संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३।।)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २ मार्च, १९३४. [संख्या २

'हरिजन-सेवक' के ग्राहकों से—

'हरिजन-सेवक' का पहला वर्ष पूरा हो गया है। पत्र की नीति ग्राहक जानते हैं। इसमें राजनीतिक प्रश्नों की चर्चा नहीं की जाती है। केवल हरिजन-सेवा के निमित्त ही इसका अस्तित्व है, और यथासंभव स्वावलंबी बनाने की चेष्टा है। एक दृष्टि से स्वावलंबी-सा है ही, क्योंकि जो घाटा आता है वह हरिजन-सेवक-संघ की ओर से नहीं लिया जाता है, तो भी दूसरी और सच्ची दृष्टि से स्वावलंबी नहीं है, क्योंकि जितने चाहिए, उतने ग्राहक अबतक नहीं बने हैं। आजतक लगभग [illegible]०० ग्राहक हुए हैं। स्वावलंबी बनाने के लिए कम-से-कम ८०० तो और चाहिएँ ही। लेकिन जो आज मौजूद हैं वे भी न रहें, तो इस अखबार के जारी रखने का कोई कारण नज़र नहीं आता। अतएव ग्राहकों से विनय है, कि अपना चंदा इस अंक के बाद [illegible] तुरंत और अवश्य भेज दें। इसके बाद जिन सज्जनों का चंदा नहीं आया होगा, उनको हरिजन-सेवक नहीं भेजा जायगा। पत्र का वार्षिक चंदा ३।।) है, और छै माह का २)। जो मित्रगण इस पत्र के ग्राहक बनाकर अथवा दूसरी तरह सहायता भेजते रहे हैं, वे कृपया अपनी वह सहायता इस वर्ष भी जारी रखें। सब सज्जन याद रखें, कि इस अखबार में सार्वजनिक खबरें भी नहीं छापी जाती हैं, और हिंदी में हरिजन-सेवक-संघ का यही एक मुखपत्र है।

मो० क० गांधी

भूल-सुधार—

[illegible] हमारा वर्ष २३ फरवरी को समाप्त हो गया था। [illegible] भूल से 'भाग २' तथा 'संख्या १' के स्थान पर 'भाग १' [illegible] संख्या ५३ कंपोज़ हो गया, इसका हमें खेद है। पाठक इस [illegible] को सुधार लें—संपादक।

विषय-सूची

बापू का पुण्य-प्रवास

[१४]

[१० फरवरी से १६ फरवरी, १९३४ तक]

निर्देशिका

[illegible] फरवरी

त्रिचिनापली : गुजरातियों की सभा, धन-संग्रह ८४९)। [illegible]रम्, ३ मील : जनता का मानपत्र, धन-संग्रह १९८।।)। [illegible]चलुर : धन-संग्रह ३३९=)७। समयापुरम्, ५ मील : [illegible]संग्रह ४=)।।। चिंतामणि : धन-संग्रह ६५)। त्रिचिनापली, [illegible]मील : हरिजन-कार्यकर्ताओं की सभा; स्वात्माभिमानियों, हरिजनों एवं सनातनियों से भेंट, तालुकाबोर्ड का मानपत्र, [illegible] संग्रह ८०); स्त्रियों की सभा [illegible]) ४; [illegible] की सभा में मानपत्र एवं धन-संग्रह ४००।।=); सार्वजनिक सभा में म्युनिसिपैलिटी और ज़िला-बोर्ड के मानपत्र; त्रिचिनापली में कुल धन-संग्रह ६१११।।=)८।

११ फरवरी

कुलीतलाई : धन-संग्रह २३९=)।। मायानूर, धन-संग्रह १२३।।=)१। करूर, ३७ मील : धन-संग्रह ९४४=)।।; कोडुमुडी २ मील : धन-संग्रह ६००।।=)१; इरोड, ४१ मील : सार्वजनिक सभा, म्युनिसिपैलिटी, तालुका-बोर्ड, व्यापारियों और हरिजन-सेवक-संघ के मानपत्र; धन-संग्रह ८५६।=)८। भवानी : धन-संग्रह ५०५।।।)।।; निर्विचनगोडु : धन-संग्रह ३९६—)।।।; पुदुपकायम, ३६ मील।

१२ फरवरी

साबा-आश्रम, पुदुपकायम : मौन-दिवस।

१३ फरवरी

पुदुपकायम : 'हरिजन' का संपादन; सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ३७०।।)१०।

१४ फरवरी

नामक्काल : धन-संग्रह १८३७)। संतमंगलम् : धन-संग्रह २६१।।)।; सलेम ५० मील: महिलाओं की सभा, हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण, सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ३६६४=)। [illegible]

१५ फरवरी

तंजोर, रेल [illegible] ५६ मील : धन-[illegible] कोलाड़, २२ मील [illegible] सभा, [illegible]

[illegible]आ मैं ले जाया [illegible]र हरिजनों के लिए [illegible]ता उन्हीं का काम है। हरि-[illegible] का हृदय-[illegible]चार करना तो उन्हीं का काम [illegible]दाह के तूफानी दौरे में मेरी शक्ति और मेरा [illegible] रहस्य [illegible] मुख्य उद्देश के लिए ही वे सुरक्षित रहने दें।"

[illegible] २०—२—३४

चन्द्रशंकर प्राणशंकर शुक्ल

१६ फरवरी

मायोर : धन-संग्रह ७०१॥) । कराईकाल : धन-संग्रह १११७=)। टिरुकादाबी; धन-संग्रह ५९-)। नागावरम् : धन-संग्रह १८८।-)४। शियाली, ४५ मील : धन-संग्रह ७६८॥-)। चिदंबरम्, ११ मील : सार्वजनिक सभा; विद्यार्थियों की सभा; धन-संग्रह ११३४=)८; कडालूर, रेल से, २५ मील : तालुकाबोर्ड और ज़िला-बोर्ड के मानपत्र; सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ८१८॥)८।

इस सप्ताह में कुल यात्रा : ५०५ मील

इस सप्ताह में कुल धन-संग्रह : ४३८२९॥=)१

अबतक कुल धन-संग्रह : ३२९५२८॥-)१०

सुप्रबंध

त्रिचिनापली में सारे दिन काम-ही-काम रहा, साँस लेने को भी फुर्सत नहीं मिली। तामिल-नाड के हरिजन-सेवक-संघ का प्रधान कार्यालय त्रिचिनापली में है। सनातनियों के विरोध का यह स्थान एक ज़बरदस्त गढ़ माना जाता है। पर प्रांतीय संघ के अध्यक्ष डाक्टर राजन तो स्थानीय सनातनियों को भली भाँति जानते थे। अभी कुछ दिन पहले, अस्पृश्यता-निवारण के कार्य में भाग लेने के कारण सनातनियोंने उनका बहिष्कार कर दिया था। पर उनका बहिष्कार का प्रयत्न व्यर्थ हो गया। डाक्टर राजन बड़े साहसी और गजब के कार्यकर्ता हैं, इसलिए विरोधियों की उनके आगे दाल नहीं गल सकी। सद्भाग्य से उन्हें साथी भी ऐसे मिल गये हैं, जो किसी भी विरोध की आँधी का बड़ी बहादुरी से सामना कर सकते हैं। उन्हें लग रहा था, कि यहाँ गांधीजी के आने के समय शायद कोई विरोध खड़ा किया जायगा। पर दर असल, बात इसके बिल्कुल विपरीत हुई। स्वागत-कारिणी समितिने गांधीजी के आदेशों का अक्षरशः पालन किया, और स्वागत में कुछ भी सजावट नहीं की। इस तरह स्वागत-समितिने हरिजन-कार्य के लिए एक-एक पाई बचाली। इसलिए सजावट के नाम थोड़ी काली झंडियाँ ही बिजली के खंभों के बीच लटक रही थीं। उस भारी भीड़ में सड़कों पर कुछ भोले-भाले लड़के छोटी-छोटी काली झंडियाँ लिये खड़े थे। जब गांधीजी की मोटर कार नज़दीक आई, तो उन लड़कों से न रहा गया और उस जयजयकार में वे भी शामिल हो गये। सचमुच वह सुहावना दृश्य देखकर आश्चर्य लगता था, कि काली झंडियाँ लिये हुए वे नवयुवक और बच्चे 'महात्मा गांधी की जय' के नारे लगा रहे थे। गांधीजीने स्वागत-समिति को इस बुद्धिमानी पर उसे बधाई दी, कि यह बहुत अच्छा किया जो स्वागत की सजावट इत्यादि पर खर्च न करके हरिजन-कार्य के लिए पैसा बचा लिया। काली झंडियों का प्रदर्शन करनेवाले विरोधियों की भी गांधीजीने सराहना की, कि उन्होंने कोई [illegible] काम नहीं किया। दिन में महिलाओं और विद्या- [illegible] -ओं हुईं, उनमें काफी ज़्यादा भीड़ थी। सभा- [illegible] पर शाम को जो सार्वजनिक सभा [illegible] ले गई। जहाँतक आशा [illegible] उपस्थिति

श्रीरंगम् में

बड़े तड़के ही गांधीजीने श्रीरंगम् का मन्दिर देखा। दक्षिण भारत में यह अत्यन्त प्रसिद्ध मन्दिर है। महान् धर्मगुरु श्री रामानुजाचार्य महाराज यहीं विराजते थे। इस मन्दिर में सात चक्राकार कोट हैं। बनावट दक्षिण भारत के अन्य प्रसिद्ध मंदिरों के समान है। मध्यकालीन दक्षिण भारत की शिल्प-कला का यह मन्दिर बड़ा सुन्दर नमूना है। बड़ा ही विशाल मन्दिर है। जिन लोगोंने इतने भारी मन्दिर का नक़शा बनाया होगा, उनका हृदय भी निस्सन्देह अपनी कृति की ही तरह विशाल रहा होगा। कई बरसतक श्रीरंगम् में श्री रामानुजाचार्य रहे थे। यहीं से उन्होंने समस्त देश को उस भक्ति साहित्य की रस-धारा से आप्लावित किया था, जिसमें न कोई ऊँच था, न कोई नीच। पर पीछे संकुचित दृष्टि और क्षुद्र हृदयवालोंने उनकी उस ऊँची और उदार प्रेम-भावना का निष्प्राण कर दिया। आज तो यह हाल है, कि श्रीरंग भगवान् की खास सन्तान को भी मंदिर के अंदर जाना मना है! मंदिर के भीतर जो प्रगाढ़ अंधकार रहता है उसे बाहर फैले हुए अज्ञानान्धकार का ही प्रतीक लोग समझेंगे। किंतु यह संतोष की बात है, कि अज्ञान का अंधेरा बड़ी तेज़ी से हट रहा है, और लोगों के हृदय में उदारता का प्रकाश आ रहा है। श्रीरंगम् में जो सभा हुई, उसमें हरिजन-आंदोलन का बड़े ज़ोरों से समर्थन किया गया। तो फिर उस विराट् समर्थन का अर्थ अन्यथा कैसे हो सकता है?

हरिजनों की शंकाएँ

उस दिन एक हरिजन-मंडल से भी गांधीजी मिले। हरिजनोंने उनसे कुछ मज़ेदार प्रश्न पूछे। वे जानना चाहते थे, कि हरिजन सेवक-संघ के कर्मचारी क्यों ९८ प्रतिशत ब्राह्मण ही हैं?

गांधीजीने इस शंका का इस तरह समाधान किया। उन्होंने कहा—"अगर ऐसा है, कि संघ का कार्य ९८ प्रतिशत ब्राह्मण कर रहे हैं, तो यह तो अत्यन्त ही सराहनीय बात है। इसका तो यही अर्थ होता है, कि सभी ब्राह्मण बुरे नहीं हैं और जो ब्राह्मण संघ में काम कर रहे हैं, उनमें प्रायश्चित्त की भावना तथा सुधार के प्रति सच्ची लगन है। मेरा अपना विश्वास तो यह है, कि जो सच्चे ब्राह्मण हैं, उनका अस्पृश्यता से कोई वास्ता नहीं।"

"क्या आप ऐसा नियम नहीं बना सकते, कि संघ के आधे सदस्य हरिजन ही होने चाहिएँ?" उन्होंने पूछा।

"संभव नहीं, कि संघ के सदस्यों में ५० प्रतिशत हरिजन रखे जायँ। कारण यही है कि हरिजन देनदार तो हैं नहीं, वे तो लेनदार हैं। और यह ठहरा देनदारों का संघ। आपके प्रश्न के पीछे जो भय है, वह बिल्कुल निराधार और असंगत है, क्योंकि स्थानीय संघ को केन्द्रीय संघ की आज्ञा के बिना एक पाई भी खर्चने का अधिकार नहीं है। आप देखेंगे कि इस संग्रहीत धन का बहुत बड़ा भाग हरिजनों पर ही खर्च होगा। प्रबंध-कार्य पर कम-से-कम खर्च किया जाय, यही तजवीज की गई है। और आपको जानना चाहिए, कि संघ के सदस्य एक पाई भी संघ से नहीं लेते हैं, वे तो सब-के-सब अवैतनिक स्वयंसेवक हैं।"

"आपके कार्यकर्ताओं पर क्या हमें विश्वास करना चाहिए?"

"ज़रूर, जो लोग संघ में काम कर रहे हैं, उनपर आपको अवश्य विश्वास करना चाहिए। अगर आप जाँचें, तो उनका रुपये पैसे का हिसाब-किताब आप को बिल्कुल ठीक मिलेगा। आपने कुछ ब्राह्मणों को आपके साथ स्वार्थवश बरताव करते देखा है, इसीसे आपका ख़याल है, कि ब्राह्मण मात्र बुरे हैं। हो सकता है, कि ब्राह्मण एक वर्ग के रूपमें बुरे हों; यद्यपि ऐसे आरोप का भी मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है। लेकिन मेरे पास ऐसे प्रमाण ज़रूर हैं, जिनसे यह सिद्ध किया जा सकता है, कि जिन ब्राह्मणों का हरिजन-आंदोलन से सम्बन्ध है, उनमें ईमानदार और सच्चे ब्राह्मण काफ़ी अच्छी तादाद में मिलेंगे; क्योंकि उनके अन्दर प्रायश्चित्त की भावना विद्यमान है और वे महसूस करते हैं, कि अस्पृश्यता एक भयंकर पाप है।"

उनकी आशाएँ

इस हरिजन-मंडल में "ईसाई हरिजन" नामधारी भी कुछ भाई थे। यह 'ईसाई हरिजन' नाम भ्रामक तो है, मगर इससे यह प्रगट होता है, कि अस्पृश्यता अपनी सीमा से भी आगे निकल गई है, और दूसरे मज़हबों को भी उसने भ्रष्ट कर डाला है। सवर्ण हिंदुओं के अत्याचारों से तंग आकर जिन हरिजनोंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था, उनका आज कहना है, कि ईसाईयों के अन्दर भी उनके साथ कुछ बहुत अच्छा सलूक नहीं हो रहा है, वहाँ भी क़रीब-क़रीब उनकी वही हालत है। अस्पृश्यता का दाग़ उनका वहाँ भी न छूटा। मलबार और तामिल-नाड में अनेक ईसाई हरिजन गांधीजी से मिले हैं। इस मंडल के साथ जो सज्जन आये हुए थे उन्होंने कहा—"हमारी भी वही दशा है, जो इन आदि-द्रविड़ हिंदुओं की है। क्या इस आंदोलन में हमारा भी कुछ भाग है?"

"अप्रत्यक्ष रूपसे अवश्य है," गांधीजीने जवाब दिया।

"पर हमें तो इससे कोई लाभ नहीं पहुँच रहा है।"

"आप लोगों को इससे अप्रत्यक्ष लाभ तो पहुँच रहा है। ईसाई पादरियों में जाग्रति तो काफ़ी आ रही है, और वे यह अनुभव करने लगे हैं कि उन्हें आपके लिए अवश्य कुछ करना चाहिए।" ये सज्जन अब आजीवन कष्टों के मारे अधीर-से हो गये हैं। उन्होंने कहा—"हम लोगोंने तो अब यही निश्चय किया है, कि अत्याचारियों का साहस के साथ सामना किया जाय। हम अपना धर्म बदलने की बात सोच रहे हैं।"

इस सम्बन्ध में, मैं कुछ नहीं कह सकता। लेकिन धर्म-परिवर्तन का कारण अत्याचार नहीं हो सकता।"

"क्या करें, दूसरा रास्ता ही नहीं। क्या आपके इस आंदोलन के द्वारा भविष्य में हमें अपने कष्टों से कुछ छुटकारा मिलेगा?"

"हाँ," गांधीजीने जवाब दिया, "मुझे पूरी खातिरी है, कि अगर यह आंदोलन सफल हो गया, तो ईसाई धर्म में से भी अस्पृश्यता निश्चय ही दूर हो जायगी।"

एक तीर्थ-स्थान

बापू का यह प्रवास आँधी की तरह चल रहा है। ऐसे में तमाम रोचक घटनाओं का देना असम्भव है। मैं तो साप्ताहि[illegible] पत्र में थोड़ी-सी चुनी हुई बातें ही लिख दिया [illegible]

पुदुपलायम के गांधी-आश्रम में, सप्ताह के अन्त में, हम लोगोंने विश्राम लिया। आज से आठ साल पहले श्री चक्रवर्ती राज-गोपालाचार्यने इस आश्रम को स्थापित किया था। आश्रमने इस बीच में बड़ा सुन्दर रचनात्मक कार्य किया है। राजाजी बरसों यहाँ के काम में जी-जान से जुटे रहे। फिर तो प्रतिवर्ष आश्रम की उन्नति ही होती गई। आश्रम-वासियोंने स्वयं अपने उदाहरण से तथा हरिजनों के बीच में सामाजिक उत्थान का काम करके अस्पृश्यता-निवारण का कार्य बड़ी सफलता से किया है। शुरू-शुरू में तो उन्हें सवर्ण हिन्दुओं के ख़ास विरोध का सामना करना पड़ा, लेकिन अपनी दृढ़ता, धीरज तथा चुपचाप लगातार सेवा के द्वारा गाँववालों के हृदय अन्त में उन्होंने पिघला ही दिये। खादी के द्वारा ये लोग गरीब सवर्ण हिन्दुओं की सेवा कर रहे हैं। खादी से ग़रीब बहिनों को कुछ काम तो मिल ही जाता है। और हरिजनों के लिए आश्रम-वासियोंने कई नये कुएँ खुदवा दिये हैं, समय-समय पर उनके बच्चों को तेल और साबुन से नहलाते हैं, छै दिवस-पाठशालाएँ और तीन रात्रि-पाठशालाएँ चला रहे हैं, जिनमें १८९ हरिजन बच्चे पढ़ते हैं, योग्य हरिजन विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ देते हैं, हरिजनों को जूते बनाने का काम सिखाते हैं, उनके लिए दो मन्दिर बनवा दिये हैं और चमार हरिजनों के लिए एक नई बस्ती बना दी है। १९२८ के दुर्भिक्ष के दिनों में आश्रमवालोंने हरिजनों में क़रीब बारह हज़ार रुपये सहायता के रूप में बाँटे थे। आश्रम को स्थापित हुए अभी नौ बरस भी नहीं हुए, फिर भी हरिजनों और दूसरे हिन्दुओं की जेब में आश्रमने खादी के ज़रिये नौ लाख रुपये से ऊपर पहुँचा दिये हैं। लेकिन राजाजी के मन का सब से अच्छा काम तो मद्य-निवारण का हुआ है। इस कार्य का जो परिणाम हुआ है, वह इतना आँकड़ों के द्वारा प्रगट नहीं किया जा सकता, जितना कि उस आनन्द या सन्तोष के द्वारा, जो कालिख और लड़ाई-झगड़े के पुराने अड्डों में आज जहाँ-तहाँ प्रत्यक्ष दिखाई देता है। दारू के विरुद्ध ज़ोरदार और लगातार प्रचार का यह नतीजा हुआ, कि आश्रम के आसपास दारू और ताड़ी की बहुत-सी दूकानें १९३० से लेकर १९३२ तक सरकार को बंद रखनी पड़ीं। इससे हरिजनों की दारू पीने की लत बिल्कुल ही छूट गई। मगर सरकारने इसके बाद पुनः दूकानों का खोल देना उचित समझा, और बेचारे ग़रीब आदमियों को अब फिर से दुष्ट शराब का चसका लगाया जा रहा है।

मेरे-जैसे आदमी के लिए तो यह आश्रम एक तीर्थ-स्थान के तुल्य है। उस दिन गांधीजीने ग्राम-वासियों से कहा, "मैं यहाँ यह देखने आया हूँ, कि आश्रमवालोंने अबतक तुम्हारी क्या-क्या सेवाएँ की हैं। चूँकि तुम्हारे बीच में एक आश्रम है, इसलिए यहाँ मेरा आना तो व्यर्थ ही समझा जाना चाहिए। अगर मुझे यह मालूम होजाय, कि आश्रम के होते हुए भी इतने बरसों में अस्पृश्यता तुम्हारे समाज से दूर नहीं हुई, तो [illegible] में ले जाया होगी। सचमुच पुदुपलायम-जैसी जगह तो [illegible]र हरिजनों के लिए अचूक कसौटी होनी चाहिए, कि अ[illegible] तो उन्हीं का काम है। हरि-के सवर्ण हिन्दुओं का हृदय-[illegible]र करना तो उन्हीं का काम [illegible] दौरे के तूफ़ानी दौरे में मेरी शक्ति और मेरा [illegible] रहस्य मुख्य उद्देश के लिए ही वे सुरक्षित रहने दें।"

[illegible] २०-१-३४

चन्द्रशंकर प्राणशंकर शुक्ल

हैं। उनका कुछ असर तो तुम्हारे ऊपर पड़ा ही होगा। इसलिए मेरा ख़याल है, कि तुम लोग भी हरिजनों के साथ निश्चय ही आश्रम वासियों की ही तरह भाईचारे का व्यवहार करते होगे।"

तंजार और कुंभकोणम्

पुदुक्कोट्टयम से गांधीजी सलेम, तंजोर और कुंभकोणम् इन प्रसिद्ध नगरों में गये। तंजोर बड़े तड़के पहुँचे। सभा का आरंभ ठीक सूर्योदय के समय हुआ। गांधीजीने इस पर कहा:—

"मैं सदा से ही प्रभात सभाओं को पसंद करता हूँ। और फिर यह हमारा आत्मशुद्धि का आंदोलन है। इसलिए इस धार्मिक प्रवृत्ति की सभाओं के लिए प्रातःकाल से अच्छा और कौन शुभ मुहूर्त हो सकता है। मैं अभी जब सभा-स्थान की ओर आ रहा था, तब मेरी नज़र आपके सुन्दर मंदिर पर पड़ी। और जब मंदिर पर सूर्योदय की आभा धीरे-धीरे पड़ रही थी, तो मन में यह कहे बिना मुझ से न रहा गया, कि सूर्य का प्रकाश तो हरिजन और अ-हरिजन सभी पर एक-सा पड़ता है, पर मंदिर का द्वार तो केवल अ-हरिजन हिंदुओं के लिए ही खुला हुआ है। मुझे ऐसा मालूम होता है, कि इससे तो मानों ईश्वर सिंहासन च्युत किया जा रहा है। आप चाहें तो सूर्योदय से यह सीख सकते हैं कि या तो मन्दिरों को अपने द्वार हरिजनों के लिए खोल देने चाहिए, या सूर्य अपने प्रकाश से जो नित्य शिक्षा देता है, उसे ग्रहण करने से उन्हें साफ़ इन्कार कर देना चाहिए, और इस प्रकार अस्पृश्यता के पापान्धकार में हिंदू-धर्म का दम घोट देना चाहिए। जिस तरह सूर्य के प्रकाश से दिन प्रकाशित हो जाता है, क्या अच्छा हो, उसी तरह स्वर्गीय प्रकाश से हमारे हृदय प्रकाशित हो जायँ।"

कुंभकोणम् की सार्वजनिक सभा में बोलते हुए गांधीजीने इस बात पर प्रकाश डाला, कि कांग्रेसवालों का इस आंदोलन के प्रति क्या रुख़ रहना चाहिए। उन्होंने कहा:—

"मैं ख़ुद कांग्रेस का पक्का आदमी हूँ, पर मेरी दृष्टि में तो हरिजन-सेवा के क्षेत्र में ऐसा कोई भेद नहीं है, कि यह आदमी कांग्रेस का है और यह कांग्रेस का नहीं है। अगर कोई आदमी कांग्रेस का न होते हुए भी हरिजन-सेवा-प्रेमी है, अपने धर्म का भक्त है और उसमें कार्यक्षमता भी है, तो उसकी अधीनता में ख़ुशी से कांग्रेसवालों को हरिजन-कार्य करना चाहिए और उसकी आज्ञाएँ माननी चाहिएँ। अगर कांग्रेसवालोंने हरिजन-सेवा को अपने ही तक महदूद रखा, तो हिंदू-धर्म पर से यह अस्पृश्यता का दाग़ कभी न छूटेगा, क्योंकि उस हालत में हज़ारों आदमी जो, कांग्रेस के नहीं हैं, हरिजन-सेवा के दायरे के बाहर ही रहेंगे। इसलिए सब हरिजन-सेवा-प्रेमियों को यह याद रखना चाहिए, कि इस शुद्ध धार्मिक आंदोलन में, आत्म-शुद्धि की इस प्रवृत्ति में दलबंदी के लिए ज़रा भी स्थान नहीं है। इस ...छे कोई राजनीतिक उद्देश नहीं है; और यह साबित ... सचमुच हरिजन-कार्य का सम्बन्ध राजनीति से ... अस्पृश्यता के पाप-कलंक से हिंदू-धर्म को ... चाहते हैं, एक ही क्षेत्र में कन्धे-से ... करना चाहिए।

"मेरे लिए यह बड़ी ख़ुशी की बात है, कि मैं फ़रासीसी राज्य में, इस दौरे के सिलसिले में, दूसरी बार आया हूँ। सबसे पहले मलबार में मुझे फ़रासीसी राज्य में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वहाँ मैं माही-उपनिवेश में गया था। वहाँ के अधिकारियों तथा प्रजाजनों से मिलकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ था। आप लोगोंने मुझे जो यह थैली दी है, इसमें मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। फ़रासीसी राज्य के लिए यह कोई नई बात नहीं है। यह कहा जा सकता है, कि सर्वप्रथम फ़्रांसने ही संसार को 'स्वतंत्रता', 'समानता' और 'बन्धुता' ये तीन उद्बोधक शब्द प्रदान किये थे। लेकिन इन शब्दों का अमल में लाना मुश्किल है। मुझे शर्म आती है, कि हिंदुओंने तो इन बातों पर ज़रा भी अमल नहीं किया। अस्पृश्यता के समर्थन में तो उन्होंने ईश्वर तक का नाम घसीटा है। पर एक प्राकृत मनुष्य की तरह बरसों यथामति हिंदूशास्त्रों का अनुशीलन करने के बाद मैं तो इस निश्चित परिणाम पर पहुँचा हूँ, कि हिंदूशास्त्रों में अस्पृश्यता के लिए कहीं भी आधार नहीं है। इतिहासकारोंने यह प्रमाणित कर दिया है, कि संसार में जहाँतक पता लगाया गया है, ऋग्वेद के मंत्र ही सबसे प्राचीन हैं। उन मन्त्रों में यही उपदेश दिया गया है, कि ईश्वर एक है, अद्वितीय है और सर्वोत्तम है; जीवात्मा उसी ईश्वर से उद्भूत हुई है और उसीमें स्थित है। जिस अस्पृश्यता को आज हम लोग अमल में ला रहे हैं, वह इस परम सत्य के बिल्कुल ही विपरीत है।"

स्वात्माभिमानियों के प्रति

शियाली में कुछ 'स्वात्माभिमानी' दलवालोंने विरोध प्रदर्शन किया था, जिसकी चर्चा करते हुए वहाँ की सार्वजनिक सभा में गांधीजीने कहा:—

"मैं देखता हूँ कि कुछ लोग सभा के बाहर खड़े काली झंडियाँ हिला रहे हैं। काली झंडियाँ हिलाते हुए भी उनके शिष्टतापूर्ण व्यवहार पर मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। उन्हें इस तरह अपने आंतरिक भाव प्रगट करने का पूरा अधिकार है। मैं जानता हूँ, कि उनके मन में यह सन्देह घर कर चुका है, कि जो रुपया इस प्रवास में जमा हो रहा है वह उस रीति से ख़र्च न किया जायगा, जिस रीति से ख़र्च करने का एलान किया जाता है। उन्हें सन्देह है, कि हरिजनों के नाम से संग्रह किया हुआ धन हरिजनों के हितों पर ख़र्च न किया जायगा। इन काली झंडीवालों का यह भी ख़याल है, कि मैं धनिकों और पूँजीवादियों के हाथ का खिलौना हूँ। ख़ैर, मैं उनके हाथ का खिलौना हूँ या नहीं, इसे साबित करने का यह प्रसंग नहीं है। इतना काफ़ी है कि मैं धनिकों के हाथ का खिलौना हूँ ऐसा उनका विश्वास है। पर मैं इन भाइयों को इतनी ही ख़ातिरी दे सकता हूँ, कि जहाँतक मैं जानता हूँ, सिवा सर्वशक्तिमान ईश्वर के, मैं और किसी के हाथ का खिलौना नहीं हूँ।

जैसा कि मैंने कल कहा था, मेरी तथा अपने को 'स्वात्माभिमानी' कहनेवालों की बहुत-सी बातें मिलती हैं, उनमें तो कुछ भी मतभेद नहीं है। स्वात्माभिमानी कहते हैं, कि इस पृथिवी पर कोई न्यायमूर्ति ईश्वर नहीं है और इसलिए उनका कहना है, कि अगर उन्हें ईश्वर नाम की किसी वस्तु में विश्वास करने को कहा जाय, तो 'मनुष्यत्व' ही उनका ईश्वर हो सकता ... मैं कबूल करता हूँ, कि ईश्वर में मेरा ज़रूरत से ज़्यादा

विश्वास है, भले इसे कोई अन्धविश्वास ही कहे । पर ईश्वर के लिए किस शब्द का प्रयोग किया जाय, इस पर मेरा किसी के साथ कुछ झगड़ा नहीं है। अगर 'मनुष्यत्व' शब्द उन्हें सन्तोष देता है, तो मैं भी अपने ईश्वर को मनुष्यत्व के नाम से पुकारा करूँगा। फिर वे कहते हैं, कि उनका सिद्धान्त-वाक्य 'प्रेम और सहानुभूति' है। उनके इस सुन्दर सिद्धान्त-वाक्य पर मैंने उन्हें बधाई दी और उनसे कहा कि मैं अपनी शक्ति पर आपका यह सिद्धान्त वाक्य अक्षरशः मानने को तैयार हूँ। तब उन्होंने कहा, कि वे दुनिया की सम्पत्ति का समान बँटवारा चाहते हैं। यद्यपि आदर्श के उनका मत मानने में मुझे कोई कठिनाई नहीं दिखाई दी। मैंने उनसे नम्रतापूर्वक कहा—"जहाँ आप लोग आदर्श की बात केवल कह रहे हैं, वहाँ मैं प्रेम की ताकत से भारत के धनिकों का धन बराबर छीन रहा हूँ—फिर चाहे वह हरिजन-कार्य के लिए हो, चाहे बिहार के पीड़ितों के लिए हो या ग़रीबों के किसी भी काम के लिए हो।' जो भाई काली झंडियाँ हिला रहे हैं या जिनके इशारे से वे ऐसा कर रहे हैं, उनको तथा आप लोगों को और सर्वसाधारण को यह बतलाते हुए मुझे सन्तोष होता है, कि कई हज़ार अच्छे सम्पन्न लोगोंने देश के ग़रीबों को खुशी-खुशी अपनी धनसम्पत्ति दे डाली है।"

नन्द को यहीं भगवान् मिले थे

सप्ताह के अन्तिम दिन गांधीजी चिदंबरम् गये। हरिजन संत नन्द की स्मृतिने इस तीर्थ-स्थान को और भी पवित्र बना दिया है। संत नंद न केवल उसी जाति के भूषण थे, जिसमें उन्होंने जन्म लिया था, बल्कि वह सारे हिंदूधर्म के लिए गौरव स्वरूप थे। उन्होंने उस अटल भक्ति के द्वारा भगवत् प्राप्ति की थी, जो कठिन-से-कठिन अग्नि-परीक्षा से मुड़ना नहीं जानती। चिदंबर-नाथ भगवान् नटराज का दर्शन लेने के लिए बेचारे नंद को उस समय भी लोगोंने इसी तरह मन्दिर में नहीं जाने दिया था, जिस तरह कि आज नंद की संतान हरिजनों को हरि-मन्दिरों में प्रवेश नहीं करने दिया जाता है। किन्तु प्रभु का प्रेम और भाव तो असीम है। वहाँ रोकटोक कैसा !

हम लोग वहाँ नंदनार मठ में ठहराये गये। यह एक शिक्षा-संस्था है। इस तीर्थ-स्थान में संतनंदने जहाँ अपना आसन जमाया था, उसी जगह यह मठ बना हुआ है। इस सुंदर मठ के संस्थापक स्वामी सहजानंदजी स्वयं हरिजन हैं। वह एक धुन के आदमी हैं। बड़ी लगन के साथ हरिजन-सेवा कर रहे हैं। अपनी सेवा-साधना के द्वारा स्वामीजीने नगर के बहुत-से सवर्ण हिंदुओं की सहानुभूति हरिजनों की ओर खींच ली है। इस शिक्षा-संस्था के अंतर्गत लड़कों और लड़कियों के लिए एक छात्रालय है, एक अनाथालय है और एक हाईस्कूल है। स्कूल में कुल ३४० विद्यार्थी पढ़ते हैं, जिनमें १० प्रतिशत सवर्ण हिंदू हैं। और १२ अध्यापकों में १० अध्यापक ब्राह्मण हैं। सवर्ण हिंदुओं का हृदय-परिवर्तन किस तेज़ी से हो रहा है, इसकी प्रत्यक्ष साक्षी यह संस्था स्वयं दे रही है।

चिदंबरम् के अन्नामलाई-विश्व-विद्यालय के विद्यार्थियों की सभा की चर्चा तो मैं यहाँ ख़ास तौर से करूँगा। गांधीजी के भाषण के बाद उपहार में मिली हुई चीज़ों का नीलाम बहुत अच्छा रहा। बहिनें इस सभा में थोड़ी ही थीं, पर उ[illegible] उत्साह तो असीम था। उन्होंने ज़ेवर भी उतार-उतारकर दिये और नीलाम की चीज़ें भी ख़रीदीं।

कुछ तो साँस लेने दो

चिदंबरम् में सारे दिन काम ही-काम रहा। करीब छै बड़ी-बड़ी सभाओं में गांधीजी को उस दिन भाषण करना पड़ा। शाम को जो सार्वजनिक सभा हुई, उसकी भीड़ का क्या पूछना। गांधीजी की मोटर गुज़रे तो कहाँ से ? लोग जैसे पागल हो गये थे। जहाँतक नज़र डालो, नर-मुंड ही दिखाई देते थे। आगे बढ़ना असम्भव हो गया। तब गांधीजी को वहाँ से अपनी गाड़ी दूसरी तरफ़ मोड़ देनी पड़ी। यह जगह कार्यक्रम में नहीं थी। आगे बढ़ने की कितनी ही कोशिश की, पर सब बेकार। आख़िर गांधीजी को एक फर्लांग पैदल ही सभास्थल तक जाना पड़ा। राम-राम करके किसी तरह वहाँतक पहुँच सके। राजाजी, ठक्कर बापा और डाक्टर राजन तो बड़ी मुश्किल से कहीं रास्ता निकाल सके। भीड़ क्या थी, एक आफ़त थी। वहाँ से कुड्डालूर जाना था। एक घंटे की सफ़र थी और वहाँ जाकर चार सभाएँ करनी थीं। लेकिन रहा बहुत अच्छा। कुड्डालूर की सार्वजनिक सभा बड़ी शांति से हुई। गांधीजी को यह आशा नहीं थी। वह तो वहाँ की शांति और सुव्यवस्था देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए। व्यवस्थापकों एवं सहकारियों से इस सभा में गांधीजीने बड़े मार्मिक शब्दों में अपील की। वह हरिजन-सेवकों में अधिक-से-अधिक शुद्धता और निरंतर जागरूकता देखना चाहते हैं। उन्हें सदा यह चिंता बनी रहती है, कि कहीं ज़रा-सी ग़फ़लत से उनके हृदय पर अपवित्रता और आलस्य कब्ज़ा न जमालें। संक्षेप में, उनके भाषण का वह महत्त्वपूर्ण अंश मैं नीचे देता हूँ:—

"आप लोगों को मेरी परिमित शक्तियों का ज्ञान होना चाहिए। साथ ही, आपको मेरे इस कार्य का उद्देश भी भली भाँति समझ लेना चाहिए। मेरी शारीरिक योग्यता या अयोग्यता पर तो मेरी सीमित शक्तियाँ निर्भर हैं ही; समय का भी तो मुझे काफ़ी ख़याल रखना पड़ता है। हर जगह ऐसा कार्यक्रम मेरे सामने रख दिया जाता है, जिसमें ज़बरदस्ती मुझे अपनी सारी शक्ति और सारे साधन लगा देने पड़ते हैं। यह तो आपने ऊपर एक अत्याचार हुआ न ? मुझे तनिक तो साँस लेने दो। मेरा सन्देश तो इतना ही है, कि सवर्ण हिंदू अपने उस अन्याय के लिए प्रायश्चित्त करें, जो सदियों से वे हरिजनों के साथ करते आ रहे हैं। जहाँतक मैं हिंदूशास्त्रों को जानता हूँ, उसके अनुसार तो हरिजनों को भी वही सब अधिकार मिलने चाहिए, जो कि आज सवर्ण हिंदुओं को हासिल हैं। अगर उन्हें यह साधारण न्याय न मिला, तो हिंदूधर्म निश्चय ही नष्ट हो जायगा। इसलिए जो प्रारम्भिक कर्तव्य हमारे सहकारियों के करने का है, उसे व्यर्थ के लिए वे मेरे ऊपर न छोड़ दिया करें। समय हो, तो मुझे तो वे हरिजन-बस्तियों में ले जाया करें; पर उन बस्तियों का साफ़ रखना, और हरिजनों के लिए पाठशालाओं का खोलना व चलाना तो उन्हीं का काम है। हरिजनों के झोंपड़ों में आशा का संचार करना तो उन्हीं का काम है। मेरे इस दौड़ादौड़ के तूफ़ानी दौरे में मेरी शक्ति और मेरा [illegible] रहता, मुख्य उद्देश के लिए ही वे सुरक्षित रहनी हैं।"

२०-२-'३४　　　चन्द्रशंकर प्राणशंकर शुक्ल

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २ फ़रवरी, १९३४

शान्ति के लिए अपील

बंगाल से एक सज्जन लिखते हैं:--

"सुधारकों और सनातनियों के बीच में आज जो झगड़ा चल रहा है, उसमें दोनों ही तरफ़ कटुता पैदा हो रही है। अच्छा हो कि परस्पर का यह वाहियात झगड़ा शीघ्र ही बन्द हो जाय। इसलिए मेरा तो दोनों ही पक्षवालों से अनुरोध है, कि वे एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता से काम लें। हिन्दुस्तान अनेक जातियों और विविध धर्म-मज़हबों का देश है। इससे देश की शान्ति और उन्नति के लिए यह ज़रूरी है, कि विभिन्न जातियों और धर्मों में सहिष्णुता बनी रहे। भारतवर्ष के इतिहास में सदा ही सहिष्णुता का तत्व सबसे सुन्दर तत्वों में से एक रहा है। जबकि गांधीजी अस्पृश्यता के विरुद्ध यह सुधार का आंदोलन चला रहे हैं, तब कलह और कटुता पैदा होने का तो कोई कारण ही नहीं। किन्तु गांधीजी और उनके अनुयायियों को यह सुधार-आंदोलन चलाते समय, कुछ सहिष्णुता अवश्य दिखानी चाहिए। सुधारक भले मानें, कि अस्पृश्यता एक बुरी वस्तु है। लेकिन उन्हें कट्टर सनातनियों का अपने निजी मन्दिरों में अपनी मर्ज़ी मुताबिक पूजा करने का अधिकार नहीं छीनना चाहिए।

अस्पृश्यता-निवारण बिल और मन्दिर-प्रवेश बिल अगर पास हो गये, तो सनातनी हिन्दुओं का यह अधिकार क्या मारा न जायगा? मान लीजिए, कि कोई सनातनी हिन्दू एक मन्दिर बनवाता है और उसमें तमाम सवर्ण हिंदुओं के लिए जाने व पूजा करने की परवानगी दे देता है, पर हरिजनों को, जिन्हें वह अछूत मानता है, मन्दिर के अन्दर जाने की मनाही कर देता है। अस्पृश्यता-निवारण बिल के अनुसार उसकी यह इच्छा, कि हरिजन मन्दिर में न आवें, पूरी न होगी; क्योंकि क़ानून किसी भी मनुष्य को अस्पृश्य नहीं मानेगा। और मन्दिर-प्रवेश बिल के अनुसार अगर सवर्ण उच्च हिंदुओं का बहुमत हरिजनों को मन्दिर में ले जाना चाहता है, तो वह मन्दिर निर्माता या दाता की इच्छा को ठुकरा सकेगा। यह तो प्रत्यक्ष ही उनके प्रति अन्याय होगा।

मैं मानता हूँ, कि सुधारकों में ऐसे बहुत-से होंगे, जो सनातनी हिंदुओं को उनके धार्मिक कृत्यों की उचित सुविधाओं से वंचित कर देना ठीक न समझेंगे। ऐसे उदार-हृदय सुधारकों को इन बिलों का समर्थन नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से, जैसा कि ऊपर कहा है, सनातनियों के जायज़ अधिकार मारे जायँगे। अगर दो में से एक पक्ष दूसरे के उचित हक़ छीन [illegible] का प्रयत्न न करे, तो मत-भेद के कारण कटुता पैदा [illegible] तो कोई कारण ही नहीं।

जो मंदिर आज मौजूद हैं, उनके विषय में इन तीन पक्षों के हित पर विचार करना आवश्यक है—(१) सुधारक, (२) सनातनी, और (३) हरिजन। आजकल हरिजनों को मन्दिरों में पूजा करने का अधिकार नहीं है। सुधारक कहते हैं, कि उन्हें मन्दिरों में देव-दर्शन तथा पूजन करने देना चाहिए। सनातनियों का विश्वास है, कि अगर हरिजनों को मन्दिर-प्रवेश कराया गया, तो वे ख़ुद विधिपूर्वक पूजा न कर सकेंगे। हो सकता है, कि सनातनियों की यह मान्यता ग़लत हो, पर इसमें ज़रा भी संदेह नहीं, कि वे ऐसा मानते ज़रूर हैं। जो अधिकार वे एक ज़माने से भोगते आ रहे हैं, अगर वह उनसे छीन लिया गया, तो स्वभावतः ही उन्हें यह बात बहुत खटकेगी। जहाँ सुधारक और हरिजन एकसाथ पूजा कर सकें, सुधार की दृष्टि से ऐसे नये मंदिरों का बनवा देना क्या सबसे अधिक शांतिपूर्ण मार्ग न होगा? सुधारक चाहें तो पुराने मंदिरों को त्याग दें। अगर, बक़ौल सुधारकों के, देश का बहुमत अस्पृश्यता के विरुद्ध है, तो फिर सनातनियों के पुराने मंदिर सून पड़ रहेंगे और इस प्रकार सुधारक दिखा सकेंगे, कि अस्पृश्यता देश से विदा हो गई है। गांधीजी अपने प्रवास में लाखों रुपये जमा कर रहे हैं, इसलिए वह चाहें, तो सुधारकों तथा हरिजनों के लिए नये मंदिर बनवाने में उन्हें कोई कठिनाई न पड़ेगी। हिंदू-समाज के अंदर फूट पैदा होने की जो संभावना है वह इस प्रकार पैसा ख़र्च करने से रोकी जा सकती है।"

त्रिचिनापल्ली में उस दिन अपने को उदार सनातनी बतलानेवाले एक वकील साहब मेरे पास एक लिखित वक्तव्य लाये थे, जिसमें से यहाँ मैं एक अंश नीचे देता हूँ:—

"हमारा विश्वास है, कि फिलहाल मंदिर-प्रवेश की बात तो छोड़ ही दी जाय, और तमाम हिंदुओं को —सनातनियों को भी—साधन-संपत्ति एकत्र करके हिंदू-धर्म की प्रणाली के अनुसार हरिजनों के आर्थिक, नैतिक, शिक्षा-विषयक एवं आध्यात्मिक कल्याण के लिए प्रयत्न किया जाय, जिससे हरिजन हर तरह से सवर्णों की बराबरी के हो जायँ; और यदि हम उनके साथ अपने बन्धु बांधवों की तरह बरताव करने लगेंगे, तो फिर अस्पृश्यता का अभिशाप दूर हो जायगा। कोई भी निरपेक्ष मनुष्य स्पष्ट देख सकता है, कि यह अत्यन्त आवश्यक है, कि जिन सामाजिक रूढ़ियों के बन्धनों में हरिजन जकड़े हुए हैं, वह हटा दिये जायँ। इस सुधार को एक क्रम से धीरे-धीरे आगे बढ़ाना चाहिए। जिस तरह हम अपने घरों में यूरोपियनों और मुसलमानों को आने देते हैं, उसी तरह हमें अपने यहाँ हरिजनों को भी आने देना चाहिए। जो रोज़गार-धन्धे सवर्णों के लिए खुले हुए हैं, उन सबको करने की हरिजनों को भी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। उन्हें इन बातों से अलग नहीं रखना चाहिए, और प्रजा के मौलिक अधिकारों पर दृढ़ रहने की भी उन्हें शिक्षा देनी चाहिए। सम्भव है, कि इस तरह पचास बरस के अंदर हमारे हरिजन भाइयों को मंदिरों में प्रवेश करने का हक़ मिल —— "

मैंने बतौर नमूने के ऊपर ये दो वक्तव्य दिये हैं। यह तो दोनों ही चाहते हैं, कि मन्दिर-प्रवेश की बात मुल्तवी कर दी जाय। पहले पत्र में 'दोनों पक्षों से परस्पर सहिष्णुता दिखाने की प्रार्थना' की गई है, मगर अन्त में यह आग्रह रखा गया है, कि सिवा एक के और सब लोग यदि हरिजनों को मन्दिर में ले जाने के लिए तैयार हों, तो भी वह अकेला एक सनातनी उनके प्रवेश को रुकवा दे सकता है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाय, तो इसका यह अर्थ हुआ कि यह बुरे-से-बुरे प्रकार का बलात्कार है, क्योंकि इसमें एक ही मनुष्य बहुमत की इच्छा को अपनी मर्ज़ी के अनुकूल मोड़ना चाहता है। इतिहास तो यही कहता है, कि सिवा ज़ालिमों के अपनी इच्छा को ज़बरदस्ती दूसरों से मनवाने में कोई और सफल नहीं हुआ; और वे ज़ालिम भी दूसरों से ऐसा कराने में ख़ुद जड़मूल से मिट गये। सुधारकों की तरफ़ से कहूँ, तो उनकी स्थिति तो साफ़ है। जबतक मन्दिर में जानेवाला ख़ासा अच्छा बहुमत हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश के पक्ष में न हो, तबतक सुधारक एक भी मन्दिर नहीं खुलवाना चाहते। इसलिए दबाव या बलात्कार का तो कोई सवाल ही नहीं। यह बात जुदी है, कि बहुत बड़े बहुमत की इच्छा के अमल को बलात्कार का नाम दे दिया जाय। बहुमतवाले अल्पमतवालों के प्रति क्षमाशील रहें—और रहना ही चाहिए—और वे अल्पमतवालों को सुविधाएं भी दें। यह कैसे सम्भव है, सो मैं 'हरिजन' में पहले ही बता चुका हूँ। परन्तु अल्पमतवाले तो जगह देने को तैयार ही नहीं, वे तो किसी तरह की कोई सुविधा देना ही नहीं चाहते। उनका तो आग्रह है, कि आज जो स्थिति है, वही अटल रहनी चाहिए। इसका अर्थ तो यही हुआ, कि अंधकूप में ही पड़े-पड़े मर जाओ। इसीलिए मैं कह रहा हूं, कि या तो हम अस्पृश्यता को नष्ट करेंगे, या फिर अस्पृश्यता हमारा हनन कर देगी। जितना सत्य इस बात में है कि कल सवेरे सूर्योदय होगा, उतनी ही यह बात अचल या अटल है।

परस्पर की कटुता या कलह का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। सनातनियों के विरोध को देखते हुए सुधारकों के दिल में कुछ भी कटुता नहीं है; क्योंकि वे यह मानते हैं, कि वे स्वयं जिस ख़ालिस ईमानदारी का दावा करते हैं, वही शुद्ध ईमानदारी परपक्ष में भी है। सुधारक आदर्श सहिष्णुता दिखा रहे हैं। काफ़ी बहुमत सुधार के पक्ष में होते हुए भी जहाँ साफ़ मतभेद दिखाई पड़ता है, वहाँ वे मन्दिर खुलवाने के काम से पीछे हट जाते हैं। इससे सुधारकों का काम तो लोकमत को अपने पक्ष में करने का ही है। और यदि सनातनी भाई सुधारकों के इस निर्विवाद अधिकार को क़बूल करलें, तो तनिक भी संघर्ष की सम्भावना न रहे।

जहाँ पहले पत्र का लेखक सनातनियों से कुछ भी करने को नहीं कहता, सिर्फ़ सुधारकों से ही हर चीज़ कराना चाहता है, वहाँ दूसरा लेखक यह क़बूल करता है कि एक-न-एक दिन तो हरिजनों के लिए मन्दिर खोलने ही पड़ेंगे। पर उसका कहना है, कि अभी बाट जोहते रहो, वह दिन अभी दूर है। लेखक का यह प्रस्ताव है, कि हरिजनों के हित की दूसरी तमाम बातों में दोनों पक्षवाले मिलकर काम करें। मैं इसमें इतना ही संशोधन करूंगा, कि मन्दिर-प्रवेश का प्रश्न बिल्कुल मुल्तवी तो न किया जाय, पर यह आन्दोलन कट्टर सनातनियों की भावनाओं का पूरा-पूरा ख़याल रखकर चलाया जाय, उनका दिल न दुखाया जाय। अगर सनातनी, नासमझी के कारण, विरोध करने के बजाय यह बहुत ही मामूली बात स्वीकार कर लें और दूसरी तमाम बातों में सुधारकों के साथ मिलकर काम करें, तो यह सारा आन्दोलन अत्यन्त विवेक और सभ्यता के साथ बिना किसी का दिल दुखाये चलाया जा सकता है।

अब प्रस्तुत बिलों के संबंध में। कहा जाता है, कि सुधार के मार्ग में आज जो बाधा है उसे हटाने के लिए इन बिलों की ज़रूरत है। जहाँतक यह आग्रह न हो, कि चाहे जितने बड़े बहुमत के विरुद्ध एक ही आदमी की मर्ज़ी के मुताबिक काम हो, वहाँतक इन बिलों में किसी भी तरह का कोई बलात्कार नहीं है। और हिंदू-समाज के बहुमत के विरोध के सामने इन बिलों के पास कराने की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। मैं तबतक बाट जोहने को तैयार हूँ, जबतक मौजूदा या भविष्य की किसी भी धारा-सभा अथवा धारा-सभाओं के हिन्दू-मेंबरों का बहुमत इस मिती बोते हुए सुधार के लिए तैयार न होगा।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

बिहार के निमित

बिहार के भूकम्प के बाद शायद ही ऐसी कोई सभा हुई होगी, जिसमें मैंने अपने भाषण में बिहार की चर्चा न की हो। बाबू राजेन्द्रप्रसाद और प्रत्येक बिहारी को यह जानकर प्रसन्नता होगी, कि उन सभाओं में दूर-दूर के गाँवों से आये हुए ग़रीब से-ग़रीब आदमियोंने भी इस फंड में काफ़ी उदारता से पैसा दिया है। दूसरों के साथ साथ हरिजनोंने भी भूकम्प-पीड़ित भाइयों के लिए यथाशक्ति पाई-पैसा दिया है। जहाँ की सभाओं में लोगोंने कुछ नहीं दिया, वहाँ उन्होंने कह दिया, कि हम अपना चन्दा राजेन्द्रबाबू को भेज चुके हैं। इन सभाओं में स्त्रियों। अपनी चूड़ियाँ और पुरुषोंने अपनी अँगूठियाँ उतारकर दी हैं। विद्यार्थियोंने अपनी फाउनटेन क़लमें दे दीं, क्योंकि उनके पास देने के लिए और कुछ नहीं था। अबतक कुल मिलाकर इन सभाओं में ५१३५।)१ का चन्दा मिला है। अवश्य ही कष्ट निवारण की सहायता के लिए जितने की ज़रूरत है, उसके मुक़ाबले यह कुछ भी नहीं है। लेकिन ग़रीब के दान का मूल्य रुपये-पैसे से नहीं आँका जाता; उसकी क़ीमत तो उसकी सच्ची हमदर्दी से ही लगाई जाती है। मनुष्य सिर्फ़ रोटी पर ही जीवित नहीं रहता है। अक्सर अपने भाइयों की सहानुभूति रोटी से कहीं अधिक जीवनदायी चीज़ साबित होती है।

इन चाँदवालों के दान का लेख लिखते समय मुझे यह सूचित

करते हर्ष होता है, कि याकोहामा (जापान) के हिंदुस्तानी व्यापारियोंने तार-द्वारा १५५९७)२ भेजे हैं। यह रकम बाबू राजेन्द्रप्रसाद के पास पटने भेज दी गई है। इसमें सन्देह नहीं, कि बिहार की घोर विपदाने संसारभर के लोगों का हृदय हिला दिया है।

'हरिजन' से]　　　　मो० क० गांधी

एक सुंदर उदाहरण

सिर्सी के नेशनल कालेज के विद्यार्थियों के आगे मैंने जो भाषण दिया था, उसके जवाब में जिस दिन मैं सिर्सी से चलने लगा, उस दिन मुझे १३ विद्यार्थियों के हस्ताक्षर का निम्नलिखित पत्र मिला :—

"इस पत्र पर सही करनेवाले हम, नेशनल कालेज के विद्यार्थी, आपके चरणों में प्रणाम करके, हरिजन-कार्य एवं ग्राम-सेवा-जैसी किसी योजना में अपनी सेवा अर्पित करने की इच्छा प्रगट करते हैं। मगर चूँकि हम विद्यार्थी हैं, इससे हमारा सारा समय हमारे हाथ में नहीं है। हम अपना छुट्टी का समय इन सत्कार्यों में देने को तैयार हैं।

पूज्य महात्माजी, आपसे हमारी यही नम्रतापूर्वक प्रार्थना है, कि आप हमें कोई ऐसी बात बतलाइए जो भविष्य में हमारे लिए पथ-दर्शक हो, और हमें अपना आशीर्वाद भी दीजिए।"

इस पत्र पर सही करनेवाले विद्यार्थियों को मैं उनके संकल्प पर धन्यवाद देता हूं। हमें आशा रखनी चाहिए, कि उनमें सदा ऐसा ही उत्साह बना रहेगा और वे अपने इस सत्संकल्प को पूरा करके ही रहेंगे। मैं तो उन्हें इतना ही मार्ग दिखा सकता हूँ, कि अगर वे खुद अस्पृश्य होते, तो जिस प्रकार का बरताव वे अपने प्रति दूसरों से कराना चाहते उसी प्रकार का बरताव वे हरिजनों के प्रति करें, अर्थात् हरिजनों को वे अपने सगे भाई बहिनों की तरह समझें। इस भावना को लेकर अगर वे हरिजन-बस्तियों में जायँगे, तो उनके के लिए सद्वचन और सद्व्यवहार का मार्ग हमेशा निकल आयगा।

'हरिजन' से]　　　　मो० क० गांधी

हरिजन-संवाद

—कलकत्ते में 'यूनियन क्लब' और 'दयामयी-बालिका-विद्यालय' के तत्त्वावधान में सार्वजनीन सरस्वती-पूजा हुई। ब्राह्मण, राजवंशी, नमःशूद्र आदि जातियों के बालक एवं बालिकाओंने शालिग्राम नारायण तथा सरस्वती देवी के सम्मुख समवेत भाव से मिलकर पुष्पांजलि अर्पित की और सबने एकसाथ बैठकर प्रसाद ग्रहण किया। पूजा के पश्चात् विख्यात व्यायामवेत्ता श्री शान्तिकुमार चक्रवर्ती विविध व्यायाम-कौशलादि दिखाकर हज़ारों नर-नारियों को मुग्ध किया।

—खेड़ा ज़िले (गुजरात) के आनंद तालुका के अंतर्गत बोरी-आवी गाँव के भंगी भाइयों की सक्रिय सहायता करने के लिए खेड़ा-हरिजन-सेवक-संघ के मंत्री तथा बोरीआवी के मुखिया श्री भाईलाल भाई के प्रयत्न से एक योजना तैयार की गई है। इस गाँव में ७ भंगी-परिवारों को पठानों का कुल ११८॥) का कर्ज़ा चुकाना था। इस रकम का हर माह उन्हें =) फी रुपये की दर से ब्याज भरना पड़ता था। उन्हें इस कर्ज़े से छुड़ाने के लिए नडियाद-निवासी बम्बई के सोलीसीटर श्री नयनसुखलाल पड्याने एक वर्ष के लिए १००) बिना ब्याज के दिये हैं। यह रकम पठानों का कर्ज़ चुका देने के लिए भंगियों को बिना सूद के दे दी गई है। फिर से वे कर्ज़ में न फँस जाय, इसके लिए बोरीआवी गाँव के भंगी भाइयोने दारू न पीने की प्रतिज्ञा की है।

—अहमदाबाद-ज़िले के वीरमगाँव तालुका और खासकर वीरमगाँव शहर में एक सवर्ण कार्यकर्त्ता हरिजन-सेवा का कार्य अवैतनिक रूप से कर रहे हैं। इन सज्जन के प्रयत्न से कितने ही हरिजन बालक स्वच्छ रहकर अखाड़े में व्यायाम इत्यादि सीखते हैं, म्यूनिसिपैलिटी की पाठशालाओं में पढ़ते हैं, अपनी बस्तियों की सफाई की ओर ध्यान देते हैं और नित्य संध्या को ७ बजे हरिजन मुहल्ले के मन्दिर के आँगन में बैठकर स्त्री, पुरुष, बालक सब एकसाथ भगवान् की प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना का कार्यक्रम भावमापूर्ण और चित्ताकर्षक रहता है।

मेला-अरसूर के हरिजनों की व्यथा

ऐसा एक भी स्थान मुझे याद नहीं पड़ता, जहाँ इस प्रवास में हरिजनोंने मुझे मानपत्र न दिया हो। अधिकांश मानपत्रों में तो वही सामान्य कष्टों की चर्चा की गई है, पर दो या तीन ऐसे भी उदाहरण मुझे याद हैं, जहाँ हरिजनोंने सवर्ण हिंदुओं के अत्याचारों की कुछ खास शिकायतें की हैं। लालगुडी तालुका में, त्रिचिनापल्ली के पास ही, मेला-अरसूर नाम का एक गाँव है। वहीं की यह बात है। मेरे प्रति सम्मानसूचक सामान्य वाक्यों के बाद, वहाँ के हरिजनोंने अपनी अपील में लिखा है :—

"हमारे मेला-अरसूर गाँव में दो तालाब हैं—एक बड़ा और एक छोटा। लेकिन हमारे लिए तो दोनों ही तालाब बंद हैं, सिर्फ सवर्ण ही उनका उपयोग करते हैं। हमें तालाबों का पानी छूने की भी मनाही है। अगर हमारे घड़े में दूर से पानी डाल देने के लिए वहाँ कोई ऊँची जाति का आदमी न हो, तो खाली घड़ा लिये ही हमें वापस आना पड़े। सब मिलाकर यहाँ हमारे ८० घर हैं। गाँव की कुल आबादी में हमारा खासा अच्छा हिस्सा है। हमने सरकार को अर्ज़ी दी थी। उसका यह नतीजा हुआ, कि तालाबों के ऊपर इस आशय की नोटिसें लगा दी गई हैं, कि किसी को भी तालाब का उपयोग करने से मना नहीं किया जा सकता। लेकिन इसमें हमें सफलता नहीं मिली। कारण यह है, कि हमारा यह प्रयत्न सवर्णों को बहुत अखरा और उन्होंने हमें अपनी खेती-बारी के काम से हटा देने की धमकी दी। यह तो और भी बुरा हुआ। पानी का कष्ट दूर हुआ, तो भूख और बेकारी के चंगुल में फँस जाना पड़ा। इस तरह नौ महीने से हम लोग बड़ी ग़रीबी में दिन काट रहे हैं—न तो काफ़ी भोजन मिलता है और न कपड़े ही। यहाँ के बड़े-बड़े ज़मींदारों से भी हमने विनती की, पर वह सब हमारा अरण्य-रोदन ही हुआ।

अब हम लोगों में कटुता बहुत बढ़ गई है। अच्छा हुआ,

कि आपको अपनी व्यथा सुनाने का हमें अवसर तो मिल गया। हम जानते हैं, कि आप ही हमें इस महान् कष्ट से छुड़ा सकेंगे और हमारे और सवर्णों के बीच में जो खटास आ गई है उसे भी आप ही दूर कर सकेंगे। एक बात और। हमारी आपसे यह विनती है, कि कृपाकर जिस तरह आप उचित समझें उस तरह हमारे प्रत्येक परिवार को कुछ दान देकर गरीबी और कष्ट से हमारा उद्धार कर दीजिए, जिससे कम-से-कम तीन महीने तो हम अपना पेट पाल सकें।"

यह प्रार्थना-पत्र मुझे त्रिचिनापली में मिला था। वहाँ के अपने सार्वजनिक भाषण में मैंने इसकी चर्चा भी की थी। अगर यह शिकायतें सच हैं, तो मेला-अरसूर के सवर्ण हिंदुओं के लिए यह बहुत ही बुरी बात है। मैं आशा करता हूँ, कि प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ सवर्ण हिंदुओं के सर्वथा अधीन इन असहाय हरिजनों के साथ न्याय करने में कुछ उठा नहीं रखेगा। मौके पर जाकर संघ को यह देखना होगा, कि उन तालाबों से हरिजन स्वच्छ पानी ले सकते हैं या नहीं। अगर उन्हें किसी तरह की रुकावट है, तो मनुष्यता का यह तकाज़ा है, कि जो लोग आज उन्हें उन सार्वजनिक तालाबों का पानी भरने से मना करते हैं, जो क़ानूनन सब के लिए खुले हुए हैं, वे उन हरिजनों के लिए स्वच्छ पानी का प्रबंध करदें।

अपना हक़ हासिल करने की कोशिश हरिजनोंने की, इस अपराध पर उन बेचारों का जो बहिष्कार किया गया है, यह तो जले पर नमक छिड़कना हुआ। मुझे उम्मीद है, कि स्थानीय हरिजन-सेवक-संघ के अच्छे प्रयत्न से हरिजनों को अब भी न्याय मिलेगा और एक ही हिंदू-परिवार के दो भागों के बीच में जो कटुता आ गई है वह दूर होकर पुनः मधुभाव पैदा हो जायगा।

अपील के अंतिम वाक्य पर ज़रूर मैं दो शब्द कहूँगा। अगर मेरी ताक़त में हो भी, तब भी मैं उन लोगों को कोई ऐसा दान देकर संतुष्ट न करना चाहूँगा, जिससे कि कम-से-कम तीन महीनेतक उनकी परवरिश हो सके। बात यह है, कि ऐसे दानों से जनता के पैसे का दुरुपयोग ही होता है। जिन्हें ऐसा दान दिया जाता है, वे लोगोंकी निगाह में गिर जाते हैं, और उनका काहिलपना और भी अधिक बढ़ जाता है। जो लोग अच्छी तरह काम कर सकते हैं उन्हें काम माँगना चाहिए, न कि दान। मैं जानता हूँ, कि इस कठिन समय में काम मिलना भी आसान नहीं है, और फिर हरिजनों के लिए तो और भी मुश्किल है। मगर मेरा विश्वास है, कि जो आदमी किसी भी इज़्ज़त की मेहनत-मजूरी से जी नहीं चुराता, उसे कोई-न-कोई काम ढूँढ़ निकालने में बहुत कठिनाई नहीं पड़ती। इसलिए मैं हरिजनों के सब मित्रों से अनुरोध करूँगा, कि वे दान या भीख माँगने के लिए उन्हें हर्गिज़ प्रोत्साहन न दें, और जो लोग काम करने से इन्कार नहीं करते उन्हें वे किसी इज़्ज़त के काम में लगा देने का प्रयत्न करें।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

विश्व-बन्धुता

[१० फरवरी को त्रिचिनापली में गांधीजीने निम्नलिखित भाषण किया था।]

त्रिचिनापली के लिए मैं कोई अजनबी नहीं हूँ। यहाँ मैं पहली ही बार नहीं आया हूँ। त्रिचिनापली की पहले की सभाओं के मेरे पास कई मधुर संस्मरण हैं। लेकिन आज की उपस्थिति अपूर्व है। इतने अधिक लोग पहले किसी सभा में नहीं आये। मेरे लिए यह आनन्द की बात है, कि यह आत्म-शुद्धि का आन्दोलन इतने भारी जन-समूह को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। मैं आशा करता हूँ, कि आप सब लोग यहाँ तमाशा देखने की नीयत से नहीं आये हैं। तमाम सवर्ण हिन्दुओं को मेरा तो यह निश्चित आमन्त्रण है, कि वे अस्पृश्यता की कालिख धोकर अपने हृदय को शुद्ध करलें। मैं आपसे यह भी प्रार्थना करता हूँ, कि आप इस कार्य के लिए यथाशक्ति रुपया-पैसा या ज़ेवर जो दे सकें, वह दें। मेरे लिए यह विश्वास करना कठिन है, कि इस आन्दोलन से आपका कोई वास्ता नहीं है, और यह सब आप योंही ऊपरी मौर से कर रहे हैं। सच बात तो यह है, कि हिन्दुस्तान भर के इतने अधिक स्त्री-पुरुष इस आन्दोलन का जो साथ दे रहे हैं, इससे मेरे विचार में तो यह आन्दोलन हिन्दूधर्म का एक महान् सुधार-आन्दोलन है।

मगर मुझे यहाँ जो कई मानपत्र दिये गये हैं, उनमें एक मानपत्र मुझे मेरे मुसलमान मित्रोंने भी दिया है। शुरू में मेरी तारीफ़ की बहुत-सी बातें लिखने के बाद, वह मानपत्र इन शब्दों में समाप्त किया गया है :—

"लोक-हित के कामों में इतनी अधिक लगन के साथ लग जानेवाला और दूसरों की हमेशा कल्याण-कामना करनेवाला, आपको छोड़कर दूसरा और कौन पुरुष मिल सकता है? आज मुल्क के एकमात्र नेता आपही हैं, दूसरा कोई नहीं। इसलिए आपसे हमारी प्रार्थना है, कि इस कठिन अवसर पर आप हमें ऐसा आश्वासन दें, जिससे हमें यह पक्की आशा बँध जाय, कि आप जो उद्धार का कार्य कर रहे हैं, वह सिर्फ़ हिन्दुओं और ईसाइयों के हित का ही नहीं है, बल्कि हम मुसलमानों का भी उसमें भला है। थोड़े में कहलाया जाय तो हम इसे यों कहेंगे, कि आपके उद्धार-कार्य के ज़रिये हमारे मुल्क के भाइयों को नागरिकता के अधिकार प्राप्त हो जायँ और उन्हें आर्थिक गुलामी से छुटकारा मिल जाय।"

इसके जवाब में अपने इन मुसलमान मित्रों को ही नहीं, बल्कि उनके द्वारा देश के तमाम लोगों को मैं यह पूरा आश्वासन दे सकता हूँ, कि मैं अपनी जीवन-संध्या के टिमटिमाते हुए क्षणों में कोई ऐसा साम्प्रदायिक काम हाथ में नहीं लूँगा, जिससे कि किसी सार्वजनिक कार्य में नुकसान पहुँचे। अगर आज आपको प्रतीत होता हो, कि मैं साम्प्रदायिक कार्य में लगा हुआ हूँ, तो आपको भरोसा रखना चाहिए, कि इस साम्प्रदायिक कार्य के पीछे निश्चय ही एक ऐसी उत्कट इच्छा मौजूद है, जिससे सारी जनता को लाभ पहुँचेगा। मेरा विश्वास जीवन की एकता या अभिन्नता में है, भिन्नता में नहीं। इसलिए जो बात एक के लिए हितकर होगी, वह अवश्य ही सब के लिए कल्याणकारी होगी। जो प्रवृत्ति इस अचूक कसौटी पर खरी न उतरती हो, उसे तो उसी क्षण तमाम लोक-हित-चिन्तकों को दृढ़तापूर्वक छोड़ देना चाहिए।

जीवनभर इस विश्व-हित के सिद्धान्त में विश्वास करते हुए मैंने कभी ऐसे किसी काम को हाथ में नहीं लिया—चाहे वह साम्प्रदायिक हो, चाहे राष्ट्रीय—जिससे कि समस्त मानव-जाति के हित को हानि पहुँचती हो। और इस विश्व-हित की लक्ष्य-प्राप्ति के प्रयत्न में कई बरस पहले मुझे यह पता चल गया था, कि आज जैसी अस्पृश्यता हिन्दू-समाज में बरती जाती है, वह सिर्फ़ हिन्दुओं के ही कल्याण-मार्ग में बाधक नहीं है, बल्कि वह सभी के रास्ते में रोड़े अटका रही है। यह प्रत्यक्ष देखा जा सकता है, कि इस अस्पृश्यतारूपी सर्पिणीने न केवल सवर्ण हिन्दुओं को ही अपनी कुण्डली में लपेट रखा है, बल्कि हिन्दुस्तान के अन्य धर्मावलंबियों को, अर्थात् मुसलमान, ईसाई और दूसरों को भी अपनी लपेट में फाँस लिया है। अस्पृश्यता राक्षसी का अन्त हो जाय, तो इससे न केवल हिन्दुओं के ही दरम्यान बल्कि हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, यहूदियों, पारसियों आदि में भी बन्धुत्व की भावना पैदा हो जायगी। कारण यह है, कि मैं संसार के सभी बड़े-बड़े धर्म-मजहबों को सत्य मानता हूँ। मेरा विश्वास है, कि वे सब धर्म ईश्वर की देन हैं। मेरा यह भी विश्वास है कि जिन क़ौमों में वे धर्म प्रगट हुए हैं, उनके लिए वे ज़रूरी थे। और मैं मानता हूँ, कि अगर हम विभिन्न धर्मों के महान् ग्रन्थों को उसी दृष्टि से पढ़ें, जिस दृष्टि से कि उन्हें उन धर्मों के अनुयायी पढ़ते हैं, तो हमें मालूम होगा, कि मूल सब का एक ही है, और वे तमाम धर्म-मजहब एक-दूसरे के सहायक या पूरक हैं।

इसीलिए मैंने अपने तमाम अहिन्दू भाइयों से यह मदद माँगते कभी संकोच नहीं किया, कि वे मेरे साथ इस कार्य की सफलता के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें। ऐसा मैंने क्यों किया? क्योंकि इस हरिजन-कार्य में मेरी अटल श्रद्धा है, और मेरी इस श्रद्धा का आधार मेरा वह विशाल अनुभव है, जिसे स्पष्ट शब्दों में प्रगट करने में मुझे कभी यह हिचकिचाहट नहीं हुई, कि अगर हम हिन्दुओंने इस अस्पृश्यतारूपी राक्षसी का अन्त न किया, तो वह हिन्दुओं तथा हिन्दूधर्म दोनों का ही भक्षण कर जायगी। और अब मैं आपसे यह कहता हूँ, कि आप अस्पृश्यता की कालिख धोकर अपना हृदय शुद्ध करलें, तो इसका ठीक-ठीक अर्थ यही होता है, कि आपको मनुष्य-जाति की मौलिक एकता और समानता में विश्वास कर लेना चाहिए। मैं आप सब लोगों से यही आग्रह करता हूँ, कि एक ही परमपिता परमप्रभु की सन्तान के बीच में ऊँच-नीच के जो भेद-भाव खड़े कर दिये गये हैं, वह सब आप भूल जायँ।

और इसीलिए जो अपने को सनातनी कहते हैं, उन सवर्ण हिन्दू भाइयों के आगे घुटने टेककर मैंने निस्संकोच रीति से बारबार यह प्रार्थना की है, और आज भी कहता हूँ कि आत्म-शुद्धि के इस आन्दोलन में वे भी मेरा हाथ बटावें। अगर धीरज के साथ वे इस आन्दोलन तथा इसके उद्देश्यों का अध्ययन करें, तो उन्हें फ़ौरन पता चल जायगा, कि उनके और सुधारकों के बीच में मतभेद की बातों की अपेक्षा मतमेल की ही बातें अधिक हैं। अगर इस आन्दोलन को ठीक-ठीक समझने का वे प्रयत्न करें, तो जिन्हें वे आज अछूत मान रहे हैं, उन बेचारों को इस बुरी तरह से ज़लील करने की बात को वे भी, जहाँतक मेरा ख़याल है, उचित या न्यायसंगत नहीं कह सकते। त्रिचिनापली से मेला अरसूर गाँव दूर नहीं है। आपको वहाँ की बात मालूम है? वहाँ के हरिजनों का यह दावा है कि सब की तरह सार्वजनिक तालाबों को काम में लाने का उन्हें भी अधिकार मिलना चाहिए। हरिजन उन तालाबों का उपयोग करें, तो क़ानून कोई रुकावट नहीं डालेगा। लेकिन क़ानून को तो सवर्ण हिन्दुओंने अपनी मुठ्ठी में दबा रखा है; और मुझे मालूम हुआ है, कि हमारे इन ग़रीब भाइयों को उन लोगोंने अनेक तरह से तंग किया है। हरिजनों के साथ जो बुरा सलूक किया जा रहा है, उसके मैं कितने ही उदाहरण दे सकता हूँ। यहाँ तो मैंने बानगी के रूप में सिर्फ़ एक ही मिसाल दी है। अब आपही बताइए, कि ऐसे दुर्व्यवहारों या अत्याचारों को किसी भी धर्म का हेत्वाभास न्यायसंगत कह सकता है?

प्रांतीय कार्य-विवरण

संयुक्त प्रान्त

[दिसम्बर, १९३३ और जनवरी १९३४]

शिक्षा—दिसम्बर और जनवरी, इन दो महीनों में ८ नई पाठशालाएँ खोली गईं। एक पाठशाला मुरादाबाद के हरिजन-सेवक-संघने खोली। मथुरा के हरिजन-सेवक-संघ-द्वारा स्थापित हरिजन-विद्यालय को वहाँ की म्यूनिसिपैलिटीने अपने प्रबन्धाधीन कर लिया है। मथुरा के संघने इधर ज़िले की तीन तहसीलों में ३ और नई पाठशालाएँ खोली हैं। विद्यार्थियों को किताबें, कलमें और कापियाँ भी दी हैं।

एक पाठशाला बदायूँ में खोली गई, जिसमें १२ हरिजन-बालक दाख़िल किये गये। बदायूँ की एक निजी पाठशाला भी हरिजनों के लिए खोल दी गई।

श्रीयुक्त जे० एन० तिवारीने बछरावाँ, ज़िला रायबरेली में हरिजनों के निमित्त एक पाठशाला खोली है।

मैनपुरी के संघने एक विद्यालय स्थापित किया, जिसमें ३२ हरिजन विद्यार्थी पढ़ते हैं।

सहारनपुर के हरिजन-सेवक-संघ के प्रयत्न से हरिद्वार की स्थानीय प्राइमरी पाठशालाओं में ५ हरिजन विद्यार्थी भरती कर लिये गये। सहारनपुर ज़िले में ४ हरिजन-पाठशालाएँ थीं—२ तो ख़ास सहारनपुर में, १ जगतीपुर में और १ कनखल में, जिनमें कनखल की पाठशाला हाल में बन्द कर दी गई है।

छात्रवृत्तियाँ तथा अन्य सहायताएँ—मेरठ के लेबर ट्रेनिंग स्कूल में इटावा के तीन हरिजन विद्यार्थी दाख़िल कराये गये। प्रान्तीय बोर्डने सरकार से प्रत्येक को ८)--८) मासिक छात्रवृत्ति दिलाने का प्रबन्ध किया है।

मैनपुरी के संघने एक-एक रुपये की दो छात्रवृत्तियाँ दो हरिजन बालकों को दीं। स्थानीय संघ के सभापतिने शिकोहाबाद और अमराना की पाठशालाओं को, 'अछूत' विषय पर सुन्दर वाद-विवाद करने के लिए चांदी के दो प्याले दिये।

सहारनपुर के संघने हरिजन विद्यार्थियों की फ़ीस और किताबों पर दो महीने में कुल १६।।।-)।। ख़र्च किये। ३) की मिठाई भी संघने हरिजन-बालकों को बाँटी।

प्रान्तीय बोर्डने छात्रवृत्ति देने के अलावा, इलाहाबाद के एक हरिजन विद्यार्थी को इन्टरमीजिएट परीक्षा की फ़ीस चुकाने के

लिए १०) दिये, और इलाहाबाद के एक दूसरे विद्यार्थी को १) की बोटबुकें दीं।

प्रचार-कार्य—८ दिसम्बर को गोरखपुर में एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें लोगों से अस्पृश्यता दूर करने के लिए कहा गया।

फर्रुखाबाद के अंतर्गत गोसाइँगंज गाँव में श्री लाला पंचमलालजी की अध्यक्षता में २२ और २३ दिसम्बर को एक हरिजन-परिषद् हुई।

पीलीभीत में हरिजन-सेवक-संघ स्थापित तो हो गया है, पर अभीतक प्रान्तीय बोर्ड से वह संबद्ध नहीं हुआ।

लखीमपुर-खेरी के म्यूनिसिपल बोर्ड और वकील-मंडलने अस्पृश्यता-निवारण तथा मन्दिर-प्रवेश बिल के समर्थन में प्रस्ताव पास किये।

सिकन्द्राबाद के म्यूनिसिपल बोर्डने हरिजनों की उन्नति के उपाय या साधन ढूँढ़ निकालने के लिए एक उपसमिति बनाई है।

इटावा की म्यूनिसिपैलिटीने हरिजनों के लिए मकान बनवाने के अर्थ ७००) और कुओं के लिए २००) मंजूर किये हैं।

सफ़ाई और दवा-दारू—बदायूँ के एक दानी सज्जनने वहाँ की हरिजन-बस्तियों में पानी का सुप्रबन्ध करने के लिए संघ को १५०) प्रदान किये हैं।

चमारों और मेहतरों के मुहल्लों में इटावा की म्यूनिसिपैलिटीने ७ लालटेनें लगवा दी हैं।

मथुरा की म्यूनिसिपैलिटीने भरतपुर दरवाज़े के पास हरिजन-मुहल्ले में एक नल लगवा दिया है।

लखीमपुर-खेरी की म्यूनिसिपैलिटीने हरिजनों के लिए एक पाख़ाना और उनकी बस्तियों में हाथ के ३ पम्प लगवा दिये हैं।

मथुरा और मैनपुरी के संघोंने हरिजन-बस्तियों का बराबर निरीक्षण किया और हरिजनों से मकान साफ़ रखने के लिए कहा।

मैनपुरी के म्यूनिसिपल बोर्डने एक प्रस्ताव इस आशय का पास किया है, कि म्यूनिसिपैलिटी के हकीम व वैद्य हफ़्ते में एक बार ज़रूर हरिजन-बस्तियों में आया करें और बिना फ़ीस लिये वहाँ मरीज़ों का इलाज किया करें। इसके अलावा कई स्थानीय डाक्टरोंने हरिजन रोगियों का इलाज मुफ़्त करने का वचन दिया है।

साधारण—सेठ जमनालालजी बजाजने अपनी गोला (ज़िला खेरी) की शुगर मिल की ओर से, मिल के आसपास रहनेवाले हरिजनों की स्थिति सुधारने के लिए २५०) दिये हैं।

ऋषिकेश में हरिजनों के लगभग २० झोंपड़े आग लग जाने से नष्ट हो गये थे। इसलिए प्रान्तीय संघने उनके नये मकान बनवा देने के लिए १००) मंजूर किये हैं।

मैनपुरी की म्यूनिसिपैलिटीने निम्नलिखित दो प्रस्ताव पास किये हैं:—

१—"निश्चय किया जाता है, कि हरिजनों को जो वेतन अभी दिया जाता है, उसमें इतनी तरक्की कर दी जाय, जिससे कि मौजूदा स्थिति में उनकी तमाम आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।"

२—"स्थानीय हरिजन-सेवक-संघ को हरिजन-शिक्षा का ख़र्च चलाने के लिए १५) माहवारी सहायता दी जाय।"

मराठी मध्यप्रांत की सालाना रिपोर्ट से

[१९३२—१९३३]

मराठी मध्यप्रांतीय हरिजन-सेवक-संघने एक वर्ष में जो कार्य किया है, उसकी रिपोर्ट के परिशिष्ट में कुछ ऐसे नक़्शे दिये गये हैं, जो बड़े काम के हैं। साल में कितना क्या ठोस काम हुआ है, इसका पूरा पता इन नक़्शों को देखकर लग जाता है। नीचे उनमें से कुछ नक़्शे दिये जाते हैं:—

नक़्शा नम्बर १

तहसील	कार्यकर्ताओं की संख्या	वैतनिक कार्यकर्त्ता	कितने गांवों में गये
नागपुर शहर	११२	३	×
नागपुर	३८	×	३५
सावनेर	२५	३	३५
उमरेर	३०	×	४०
रामटेक	३०	४	६६
काटोल	३५	×	५०
वर्धा	६०	×	३००
आरवी	२५	×	२५
हिंगणघाट	२०	×	३०
भंडारा	६५	×	१७०
गोंदिया	२१	४	१०४
चाँदा	२९	४	४५
	५००	१८	९००

नक़्शा नम्बर २

तहसील	कितनी शिक्षा-संस्थाएँ खुलीं	कितने मंदिर खोले गये	कितने कुएँ खोले गये
नागपुर शहर	४	१५	९
नागपुर	×	३	५
सावनेर	२	१	३
उमरेर	×	१	३
रामटेक	३	२	×
काटोल	×	१	१
वर्धा	२	३६	२४५
आरवी	×	२८	८२
हिंगणघाट	१	५	२०
भंडारा	१	१	५
गोंदिया	३	४	६
चाँदा	२	×	×
	१६	९७	३७९

नक़्शा नम्बर ३

(हरिजनों की सहायक संस्थाएँ)

१—सत्याग्रह-आश्रम, वर्धा—इसके द्वारा अस्पृश्यता-निवारण तथा हरिजन-उद्धार का बड़ा अच्छा कार्य हो रहा है।

२—वर्धा का हरिजन-छात्रालय।

३—हिंगणघाट का हरिजन-छात्रालय।

४—आरवी का हरिजन-बोर्डिंग-हाउस।

५—चाँदा का गांधी-सेवा-मंडल।

संपादक—वियोगी हरि "आत्मवत् सर्वभूतेषु"

वार्षिक मूल्य ३।।)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ९ मार्च, १९३४. [संख्या ३

विषय-सूची

बापू का पुण्य-प्रवास

[१५]

[१७ फ़रवरी से २३ फ़रवरी, १९३४ तक]

निर्देशिका

१७ फ़रवरी

कड्डालूर से पांडिचेरी, १६ मील : सार्वजनिक सभा; हरिजन-सेवक-संघ का मानपत्र, धन-संग्रह ८९३।।।)।। गांधीकुप्पम्, ३७ मील : कृपा-आश्रम का निरीक्षण। तिरुवण्णमलाई, ३६ मील : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ७५९।।≈)।। वेलोर, रेल से ५२ मील।

१८ फ़रवरी

वेलोर : हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण, सार्वजनिक सभा, जनता, म्यूनिसिपैलिटी, ज़िला-बोर्ड तथा हरिजनों के मानपत्र, धन-संग्रह ३०५६।।)४। कटपाडी : धन-संग्रह ६६५) गुडीयत्तम् धन-संग्रह ५६१।।।), अंबूर : धन-संग्रह २९४), तिरुपत्तूर, ५८ मील : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ८४५।।) क्राइस्ट कुलाश्रम : सभा। जलारपेट, ५ मील, से मद्रास, रेल से, १३३ मील।

१९ फ़रवरी

मद्रास : कोडम्बक्कम् : मौन-विश्राम।

२० फ़रवरी

कोडम्बक्कम् : 'हरिजन' का संपादन इत्यादि; सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ४०४।।–)७; तामिल-नाड प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ की बैठक।

२१ फ़रवरी

कांजीवरम्, रेल से, ६१ मील। चिंगलपट : धन-संग्रह १३९।।)। कांजीवरम् : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह २१३२≈) वालजापेट : धन-संग्रह १५०)। रानीपेट : धन-संग्रह १०३–)।। आरकाट : धन-संग्रह १८०≈)।।। अर्नी, ४० मील : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ९८३–)४। आरकोणम्, ४६ मील : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ४३४।।–)। मैसूर के लिए रवानगी रेल से।

२२ फ़रवरी

मसूर, २२२ मील। कुर्ग के लिए रवानगी मोटर से। टिट्टीमट्टी : धन-संग्रह ३७।।–)। कैकेरी : धन-संग्रह १०९।।≈) पन्नमपेट, ६० मील। हडीकेरी, ६ मील : सार्वजनिक सभा, जनता का मानपत्र, धन-संग्रह २५०।।।)४।

२३ फ़रवरी

विराजपेट, १३ मील : सार्वजनिक सभा, जनता एवं मुसलमानों के मानपत्र, धन-संग्रह ५९३।।)। बेलूर, ४१ मील। सोमवारपेट, ४ मील : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह २८८।।–)३ गुंडुकुट्टी, १५ मील : धन-संग्रह ९)।।। मरकारा, १२ मील : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ८६०।।≈)। हरिजन-कार्यकर्ताओं से भेंट।

इस सप्ताह में कुल यात्रा : ७७० मील
इस सप्ताह में कुल धन-संग्रह : १५८३९।।≈)।।
अबतक कुल धन-संग्रह : ३०५५३८।।≈)८

विश्व-बन्धुता के लिए

भारत एक अविभाज्य राष्ट्र है। राजनीतिक दृष्टि से भले ही ब्रिटिश भारत, देशी राज्य भारत, फ़रासीसी भारत, पोर्चुगीज भारत नाम के कई भारत हों, पर वे सभी एक भारतीय राष्ट्र के ही अंग हैं। सब में वही रक्त प्रवाहित हो रहा है, वही सामाजिक और वही धार्मिक बातें सर्वत्र पाई जाती हैं और एक ही जीवन-सूत्र में हम सब मणियों की तरह गुंथे हुए हैं। इसलिए फ़रासीसी शासन के अन्तर्गत कराइकाल और पांडिचेरी नाम के स्थानों में गांधीजी का जाना कोई आश्चर्यजनक या असाधारण बात नहीं है। पांडिचेरी के निमन्त्रण को तो वह टाल ही नहीं सकते थे। लोगोंने बार-बार लिखा था। अतः उनके ज़बरदस्त आग्रह को मानना ही पड़ा। वहाँ जो मानपत्र दिया गया, उसके जवाब में गांधीजीने विस्तारपूर्वक बतलाया, कि किस तरह यह आन्दोलन मानवमात्र की समानता और बन्धुता के साधन एकत्र कर रहा है। उन्होंने कहा :—

"अस्पृश्यता-निवारण के आन्दोलन में यदि चाहें तो सभी लोग भाग ले सकते हैं। यद्यपि आरम्भ इसका उन सवर्ण हिंदुओं के प्रायश्चित्त से होता है, जिन्होंने कि धर्म के नाम पर इतने मनुष्यों को दबाकर या गुलाम बनाकर अन्याय किया है, पर हमारा अन्तिम लक्ष्य तो इसके द्वारा विश्व-बन्धुता को प्राप्त करना है। आप लोगों पर फ्रांस का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है, इससे मेरे कथन का अभिप्राय समझने में आपको कोई कठिनाई

सम्पादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

२५

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
"हरिजन-सेवक"
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ९ मार्च, १९३४. [संख्या ३

विषय-सूची

बापू का पुण्य-प्रवास

[१५]

[१७ फ़रवरी से २३ फ़रवरी, १९३४ तक]

निर्देशिका

१७ फ़रवरी

कडलूर से पांडिचेरी, १३ मील : सार्वजनिक सभा, हरिजन-सेवक-संघ का मानपत्र, धन-संग्रह ८९३॥)॥ गांधीकुप्पम्, १७ मील : कुष्ठ-आश्रम का निरीक्षण। तिरुवन्नामलाई, ३६ मील : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ७५९॥)११ वेलोर, रेल से ५९ मील।

१८ फ़रवरी

वेलोर : हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण, सार्वजनिक सभा, जनता, म्यूनिसिपैलिटी, ज़िला-बोर्ड तथा हरिजनों के मानपत्र, धन-संग्रह १०५६॥)४ । कत्पाडी : धन-संग्रह ६६५) गुडियात्तम् धन-संग्रह ५६१॥), [illegible] : धन-संग्रह २९७), तिरुपत्तूर, ५८ मील : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ८५५॥) [illegible] : सभा। [illegible], ५ मील, से मद्रास, रेल से, १३३ मील।

१९ फ़रवरी

मद्रास : कोडम्बाक्कम् : मौन-दिवस।

२० फ़रवरी

कोडम्बाक्कम् : 'हरिजन' का संपादन इत्यादि; सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह १०३॥-)७; [illegible] प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ की बैठक।

२१ फ़रवरी

कांचीवरम्, रेल से, ६१ मील। [illegible] : धन-संग्रह ३३६॥) । कांचीवरम् : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह २१३२) [illegible] : धन-संग्रह १५०) । रानीपेट : धन-संग्रह १०३-)॥ [illegible] : धन-संग्रह १६०)॥ आर्नी, ३० मील : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ९८३-)७। [illegible], ४६ मील : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ४३७॥-) । मैसूर के लिए रवानगी रेल से।

२२ फ़रवरी

मैसूर, २२२ मील। कुर्ग के लिए रवानगी मोटर से। हिंडी [illegible] : धन-संग्रह २७॥-) । [illegible] : धन-संग्रह १०२॥) पाम्पेट, ६० मील। [illegible], ६ मील : सार्वजनिक सभा, जनता का मानपत्र, धन-संग्रह २५०॥।)४।

२३ फ़रवरी

विराजपेट, १३ मील : सार्वजनिक सभा, जनता एवं मुसलमानों के मानपत्र, धन-संग्रह ५९३॥) । बेलूर, ७१ मील। [illegible]पेट, ४ मील : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह २८८॥-)३ गुड्डहल्ली, १५ मील : धन-संग्रह ९)॥। मरकारा, १३ मील : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ८६०॥) । हरिजन-कार्यकर्ताओं से भेंट।

इस सप्ताह में कुल यात्रा : ७७० मील
इस सप्ताह में कुल धन-संग्रह : १९८३६॥)११
अबतक कुल धन-संग्रह : १०५५१६॥)८

विश्व-बन्धुता के लिए

भारत एक अविभाज्य राष्ट्र है। राजनीतिक दृष्टि से भले ही ब्रिटिश भारत, देशी राज्य भारत, फ़रासीसी भारत, पोर्चुगीज़ भारत नाम के कई भारत हों, पर वे सभी एक भारतीय राष्ट्र के ही अंग हैं। सब में वही रक्त प्रवाहित हो रहा है, वही सामाजिक और वही धार्मिक बातें सर्वत्र पाई जाती हैं और एक ही जीवन-सूत्र में हम सब मणियों की तरह गुंथे हुए हैं। इसलिए फ़रासीसी शासन के अन्तर्गत कराइकाल और पांडिचेरी नाम के स्थानों में गांधीजी का जाना कोई आश्चर्यजनक या असाधारण बात नहीं है। पांडिचेरी के निमन्त्रण को तो वह टाल ही नहीं सकते थे। लोगोंने बार-बार लिखा था। अतः उनके प्रबलतम आग्रह को मानना ही पड़ा। वहाँ जो मानपत्र दिया गया, उसके जवाब में गांधीजीने विस्तारपूर्वक बतलाया, कि किस तरह यह आन्दोलन मानवमात्र की समानता और बन्धुता के साधन पुष्ट कर रहा है। उन्होंने कहा :—

"अस्पृश्यता-निवारण के आन्दोलन में यदि चाहें तो सभी लोग भाग ले सकते हैं। यद्यपि आरम्भ इसका उन सवर्ण हिंदुओं के प्रायश्चित से होता है, जिन्होंने कि धर्म के नाम पर इतने अछूतों को दबाकर या गुलाम बनाकर अन्याय किया है, पर हमारा अन्तिम लक्ष्य तो इसके द्वारा विश्व-बन्धुता को प्राप्त करना है। आप लोगों पर [illegible] का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है, इससे मेरे कथन का अभिप्राय समझने में आपको कोई कठिनाई

नहीं पड़नी चाहिए। संसार में सबसे पहले फ्रांसने ही समानता और विश्व-बन्धुता के सिद्धान्त का प्रचार किया था। यह फ्रांस के सुधार का दोष नहीं है, कि खुद फ्रांसवालोंने भी अब-तक उस महान् सिद्धान्त को अपने जीवन में नहीं उतारा। उसके लिए बड़े-बड़े वीरोंने युद्ध किया और अपना रक्त बहाया। जिस मानव-समानता के सिद्धान्त के लिए सहस्रों मनुष्योंने अपना बलिदान किया हो, वह हमारे लिए आदर की वस्तु नहीं तो क्या है? मौजूदा हरिजन-आन्दोलन प्रत्येक व्यक्ति के हृदय से उसी समानता के लिए अपील करता है। पत्थर के दिलों को भी पिघला देने का यह आन्दोलन एक विनम्र प्रयत्न है। जिस किसी के हृदय को यह सन्देश स्पर्श करे, उसे इतना समझ लेना चाहिए, कि धर्म का साक्षात्कार आत्म-पारतंत्र्य के द्वारा नहीं, किन्तु आत्म-स्वातंत्र्य के द्वारा होता है।"

विश्व-प्रेम की ओर

जब से तामिल-नाड में गांधीजी आये, तभी से वे 'क्राइस्ट कुलाश्रम' देखने को उत्कंठित थे। मद्रास से दक्षिण-पश्चिम कोण में १४० मील के अन्तर पर यह संस्था है। श्री एस० जेसुदासन और श्री फारेस्टर-पेटन ये दो ईसाई सज्जन इस संस्था को चला रहे हैं। पहले सज्जन तो हिंदुस्तानी हैं और दूसरे स्काटलैंड के हैं। दोनों ही डाक्टर हैं। क्राइस्ट के जीवन को अपने जीवन में उतारने तथा सार्वभौम प्रेम और सेवा का गहरा अनुभव प्राप्त करने की भावना लेकर इन सज्जनोंने नौ वर्ष पहले इस आश्रम को स्थापित किया था। आश्रम की रिपोर्ट में लिखा है--"हमें सूझा, कि संस्था का नाम ऐसी भाषा में रखा जाय, जिससे लोग इसे अपना ही समझें; और हमारा यह विश्वास है कि भारतवर्ष के अतीत आश्रम-जीवन में जो कुछ सुन्दर और सत्य था उसकी सम्पूर्णता तथा सम्पन्नता का 'ईश्वर के साम्राज्य' में हम साक्षात्कार कर सकें।" 'विशाल भ्रातृत्व' की ओर उनका प्रयत्न है। उस व्यापक भ्रातृत्व को वे अपने आसपास के दलित-से-दलित भाइयों की निःस्वार्थ सेवा-साधना के द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। रोगियों को दवा-दारू देते हैं और अशिक्षितों को आरम्भिक शिक्षा। वे किसी को ईसाई धर्म की दीक्षा नहीं देते। दूसरे धर्म-मजहबों की वे निंदा, खंडन नहीं करते। वे तो सभी धर्मों का आदर करते हैं। त्याग और सेवा के द्वारा वे अपने जीवन को दूसरों के जीवन में बिल्कुल घुला-मिला देना चाहते हैं। इसलिए वे हाथ का बुना कपड़ा पहनते हैं, और राष्ट्रीय प्रगति के कामों में जनता का साथ देते हैं। दक्षिण भारत के हिंदू मंदिर के नक्शे का उन्होंने एक गिरजाघर भी बनवाया है।

पास-पड़ोस के देहातियों की एक छोटी-सी सभा में, अपने अन्तर का आनन्द प्रगट करते हुए, उस दिन गांधीजीने कहा—"मुझे यहाँ ऐसा लगता है, कि जैसे अपने घर में आ गया हूँ।" अपना सन्देश सुनाते हुए उन्होंने कहा, "सिर्फ इतना ही काफी नहीं है, कि सवर्णहिन्दू हरिजनों को छूने लगें। महज़ स्पर्श मुझे सन्तोष नहीं दे सकता। उनके हृदय में जागृति आनी चाहिए और उन्हें सचमुच यह विश्वास होना चाहिए, कि अपने से किसी भी आदमी को नीच समझना मनुष्यता का अपमान करना है। अब आप लोग आसानी से समझ सकते हैं, कि इस अस्पृश्यता-निवारण की प्रवृत्ति को मैं क्यों मानव-भ्रातृत्व की ओर ले जाने-वाली प्रवृत्ति कहा करता हूँ। मैं सिर्फ हिन्दू, हिन्दू में ही भ्रातृभाव नहीं देखना चाहता, बल्कि मनुष्य-मात्र में—फिर चाहे वे किसी भी देश के, किसी भी जाति के या किसी भी धर्म के हों—बन्धु-भाव देखना चाहता हूँ। जिन्हें सवर्णहिन्दू आज अस्पृश्य समझते हैं, उनके सम्बन्ध में वे अपना हृदय-परिवर्तन कर लें, यह तो उस विशाल लक्ष्य का केवल आरम्भ-मात्र है। इस प्रवृत्ति में भाग लेने के लिए मैंने तो तमाम दुनिया को आमंत्रण दिया है; और इस प्रवृत्ति के प्रति अपनी सहानुभूति बढ़ाकर और इसे ठीक-ठीक समझकर सारा संसार इसमें भाग ले सकता है।

इस सप्ताह गांधीजीने कोडम्बक्कम् में दो दिन विश्राम किया। यह स्थान मद्रास शहर से पाँच मील के फासले पर है। यहाँ हरिजन-सेवा का एक केन्द्र खुलनेवाला है। एक दिन में कांचीपुरी तथा रास्ते में कई स्थान देखे। और यहाँ तामिलनाड का प्रवास समाप्त हो गया। इस प्रान्त के दौरे का अन्तिम स्थान आरकोनम् था। अपने इस महीने भर के भ्रमण का अनुभव निचोड़ते हुए उस साँझ को आरकोनम् में गांधीजीने कहा :—

"चूँकि आज मैं आपके तामिल-नाड से विदा हो रहा हूँ, इसलिए मैं इस प्रान्त की पुलिस और रेल के प्रबंधकों के प्रति कृतज्ञता प्रगट करना चाहता हूँ। प्रांत भर में तमाम अवसरों पर मुझे इन लोगों से काफ़ी मदद मिली है। यह कहते मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है, कि पुलिसवालोंने तो, जैसा कि उन्हें करना चाहिए, बिल्कुल जन-सेवकों की तरह काम किया है। लंडन में मेरी देखभाल करने के लिए दो खुफ़िया विभाग के आदमी नियत किये गये थे। उनके साथ एक दिन मेरी जो शिष्टता-पूर्ण बात हुई थी वह इस समय मुझे याद आ रही है। उन्होंने कहा था, कि लण्डन के कान्स्टेबलों को अपनी ड्यूटी पर जाने के पहले नित्य सबेरे यह पाठ करना पड़ता है, कि 'हम जनता के सेवक हैं, इसलिए हम जन-सेवा के ही काम करेंगे।' अँग्रेज़ शासकों के साथ मेरा कितना भी मतभेद क्यों न हो, पर मैं अपने विरोधियों के गुणों की क़द्र करता हूँ, यह मेरा दावा है। इसीलिए मैं लंडन के कान्स्टेबल को एक आदर्श पुलिसमैन समझता हूँ। इसलिए इस दौरे में पुलिसवालोंने जो मदद दी, उनके सम्बन्ध में यह कोई मामूली प्रशंसा नहीं है, जब कि मुझे उनके प्रसंग में लंडन के कान्स्टेबिलों का स्मरण आ रहा है।

स्वयंसेवकों की सेवाओं को भी मैं नहीं भूल सकता। अक्सर उनमें बहुत-से सीखे हुए नहीं होते। यह सब होते हुए भी अगर मैं यह न कहूँ, कि मेरे प्रवास को हर हालत में उन्होंने सफल बनाया है, तो मैं कृतघ्नता का दोषी हूँगा। बड़े-बड़े कठिन अवसरों पर काम करना पड़ा है। किसे पता था, कि इतने बड़े-बड़े जन-समूह हर जगह एकत्र होंगे। उन भारी भीड़ों को काबू में रखना कोई आसान काम नहीं था। इसलिए मैं तमाम स्वयंसेवकों का आभार मानता हूँ। मेरा विश्वास है, कि इस प्रवास को वही सफल बना सके हैं। सारे प्रांत में आज जो महान् जाग्रति हो गई है, मैं आशा करता हूँ, कि उससे मेरे साथी तथा हरिजन-कार्य से प्रेम रखनेवाले अन्य लोग पूरा-पूरा लाभ उठायेंगे। कार्यकर्ता जबतक अपने कार्य में लगन और सचाई के साथ न लग जायँगे, तबतक इस महान् जाग्रति या तज्जनित शक्ति से हर तरह के ख़तरे की ही संभावना है। अगर

ऐसा हुआ, तो आत्म-शुद्धि के इस आंदोलन में यह बड़ी दु:खदायी बात होगी। इसलिए मैं आशा करता हूँ, कि जिन का इस हरिजन-कार्य से सम्बन्ध है, वे सदा ही जाग्रत रहेंगे, और वे स्वयं ही सावधान नहीं रहेंगे, बल्कि यह भी ध्यान-पूर्वक देखते रहेंगे, कि जनता इस सम्बन्ध में क्या कर रही है।

आप लोग यह भी याद रखें, कि इस अस्पृश्यता-निवारण के द्वारा हम एक बहुत बड़े अमर फल की इच्छा कर रहे हैं—और वह है मानवजाति का विशाल भ्रातृत्व। मैंने भूलकर भी कभी इस लक्ष्य से दृष्टि नहीं हटाई। और इसीलिए इस प्रवृत्ति को मैंने एक आध्यात्मिक या धार्मिक प्रवृत्ति का नाम दिया है। यही कारण है, कि मैं मानव जाति के विशाल भ्रातृत्व के लक्ष्य-पथ में, धर्म के नाम पर आनेवाली इस अस्पृश्यता को एक सबसे बड़ी बाधा समझता हूँ। मुझे यह कहने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं है, कि अगर यह अस्पृश्यता का दाग़ हमने अपने अंतर पट से न धोया, इस अभिशाप से अपने को मुक्त न किया, तो हिंदू-धर्म और हिंदू-समाज का निश्चय ही नाश हो जायगा। आज आप लोगों से मैं विदा हो रहा हूँ, इसलिए मैं चाहता हूँ कि जो आदर्श मैंने आपके सामने रखा है, उसे आप पूरी तरह से ग्रहण करलें। हृदय परिवर्तन ही इसका सरल साधन है। ईश्वर करे कि आप लोगों के हृदय में परिवर्तन हो जाय। हमारे कुछ भाइयों का ऐसा विश्वास है कि अस्पृश्यता कोई पाप तो है ही नहीं, बल्कि वह तो एक शास्त्र विहित धर्म है। पर मेरा पचास वर्ष के आचरण पर निर्भर अनुभव तो इस मान्यता के बिलकुल ही विपरीत है। एक प्राकृत और सतत कर्मरत मनुष्य के लिए जितना संभव है, मैंने हिंदू-धर्म शास्त्रों का उतना अनुशीलन भी किया है, और मेरा वह शास्त्राध्ययन भी मेरे अनुभव-ज्ञान का समर्थन ही करता है। उस नम्रतापूर्ण शास्त्रावलोकन तथा विद्वान् शास्त्रियों के साथ, जिनका अस्पृश्यता में विश्वास है, विचार-विनिमय करने के बाद, मैं तो इस निश्चित परिणाम पर पहुँचा हूँ, कि हिंदूशास्त्रों में अस्पृश्यता के लिए कहीं कोई आधार नहीं है। अस्पृश्यता तो ईश्वर और मनुष्य के विरुद्ध एक पाप है। जितना ही शीघ्र इस पाप से हमारा पिंड छूटेगा, उतना ही हमारे तथा समस्त विश्व के लिए अच्छा होगा।"

आरकोनम् स्टेशन का उस रात का वह विदाई का दृश्य बड़ा ही हृदयस्पर्शी था। पूरे चार सप्ताह जिन सज्जनों के साथ हम लोग खूब हिले-मिले रहे, उनसे बिछुड़ते समय, यह कैसे हो सकता है, कि दु:ख न हो। तामिल-नाड के कार्यकर्ताओंने दिन और रात परिश्रम किया, और उनकी उस सतत कार्य-तत्परता की बदौलत ही इस प्रवास में इतनी अधिक सफलता मिली। गांधीजी को उनकी कार्य-संलग्नता पर बड़ी प्रसन्नता हुई। मद्रास से चलते समय एक पत्र-प्रतिनिधि के यह पूछने पर, कि उन्हें यहाँ कैसी क्या कामयाबी हुई, गांधीजीने कहा—"दो कामयाबियाँ तो साफ ही दिखाई दीं। एक तो, रोज़गार-धंधे में इतनी मंदी होते हुए भी, लोगोंने खूब दिल खोलकर पैसा दिया, और दूसरे हज़ारों-लाखों की तादाद में लोग—स्त्रियाँ भी—सभाओं में उपस्थित हुए, और यह जानते हुए भी, कि वे सारी सभाएँ अस्पृश्यता-निवारण के आन्दोलन से ही सम्बन्ध रखती थीं।"

कावेरी के अंचल में

तामिल-नाड से बंगलोर और मैसूर के रास्ते गांधीजी कुर्ग आये। इस पहाड़ी प्रान्त के देखने की उनकी बड़ी अभिलाषा थी। जब उन्होंने देखा, कि समय निकल सकता है, तो उन्होंने यहाँ का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। कुर्ग एक अलग सा भू-भाग है, और बहुतों के लिए तो अब भी वह एक अज्ञात-सा ही देश है। कावेरी नदी कुर्ग की पहाड़ियों से निकली है। सारे देश में खूब सघन जंगल है। कहीं कहीं तो बड़ा ही मनोरम दृश्य है। यहाँ कोड़वा जाति की सबसे बड़ी जन-संख्या है, अर्थात् १६३०८९ की आबादी में ४४७८६ तो केवल कोड़वा लोग ही हैं। इस जाति के नाम पर ही इस देश का कोडगु या कुर्ग नाम पड़ गया है। यह लम्बाई में ६० मील और चौड़ाई में ४० मील है। कोड़वा लोग आर्य क्षत्रिय हैं। यह एक युद्ध-प्रिय जाति मानी जाती है। यद्यपि कुर्ग का क्षेत्रफल बहुत छोटा-सा है, तो भी यह एक पृथक् प्रांत माना जाता है। यहाँ का प्रधान शासक एक कमिश्नर है, जो मैसूर राज्य का रेज़ीडेंट भी है। कुर्ग के मूल निवासियों की पोशाक एक खास तरह की होती है। पुरुष और स्त्रियाँ सिर पर एक रूमाल बांधे रहते हैं। स्त्रियाँ स्वतंत्र, सुघड़ और सुन्दर होती हैं। हरिजनों की संख्या ४३ हज़ार है, यानी प्रांत में एक-तिहाई हरिजन हैं। यहाँ जो मानपत्र दिया गया, उसमें लिखा था, कि—"यहाँ के हरिजनों का मुख्य धंधा खेती-बारी है, और जो किसान नहीं हैं वे खेतों में मजूरी का काम करते हैं। कुछ लोग बांस की टोकरियाँ वग़ैरा बनाते हैं। × × × कुर्ग में अस्पृश्यता का वैसा भयानक रूप नहीं है। सार्वजनिक सड़कें और कुएं उनके लिए खुले हुए हैं। सिर्फ मन्दिरों में ही जाना मना है। सो इसके लिए भी लोकमत तैयार किया जा रहा है।" १९३२-३३ की रिपोर्ट के अनुसार ७७९ हरिजन बालक पाठशालाओं में पढ़ते थे, जिनमें ४७ लड़कियाँ भी थीं। क़रीब ८० लड़के तो हरिजन-पाठशालाओं में पढ़ते हैं, और शेष सवर्ण हिंदुओं की पाठशालाओं में। पहले हरिजन बालकों के लिए आपत्ति की जाती थी, पर धीरे-धीरे वह आपत्ति दूर हो गई है। अब तो कोई ऐसा भेद-भाव स्कूलों में दिखाई नहीं देता।

हृदय की सुन्दरता

कुर्ग में सबसे पहले कैकेरी नाम का स्थान देखा। गांधीजी तो इसे देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए। यह एक हरिजन-बस्ती थी। बड़ी ही साफ और सुथरी बस्ती थी। बड़ा ही सुन्दर स्थल था। चारों ओर अत्यन्त मनोरम दृश्य थे। वहाँ की सभा में कुछ सवर्ण स्त्रियों ने बड़ी उदारता से अपने ज़ेवर उतार उतार कर हरिजन कार्य के लिए दिये। आरम्भ बड़ा मंगलमय हुआ। दूसरा स्थान कार्यक्रम में हुडीकेरी नाम का था। यहाँ की सभा में गांधीजीने कहा—"मेरे लिए यह बड़े आनन्द का विषय है, कि ईश्वर की कृपा से मैं आपके इस सुन्दर प्रदेश में आ सका। जब से मैं यहाँ आया हूँ, इस देश के नैसर्गिक सौन्दर्य का ही पान कर रहा हूँ; और मेरा यह भी अनुमान है, कि जैसे सुन्दर आपके यहाँ के दृश्य हैं, वैसे ही सुन्दर आपके हृदय भी होंगे। लेकिन अब भी आपके हृदय की सुन्दरता के सम्बन्ध में एक शंका तो मेरे मन में है ही; क्योंकि मैं देखता हूँ,

कि इस पार्वती प्रदेश में यद्यपि वैसी ज़हरीली अस्पृश्यता नहीं है, तो भी कुछ-न-कुछ अस्पृश्यता तो आप लोगों के बीच में है ही। आपने अपने मानपत्र में कहा है, कि यहाँ के मन्दिरों में अभी हरिजन नहीं जा सकते। यह तो वही बात हुई, कि कोई पिता अपने बच्चों से कहे, कि, 'मैं तुम्हें खाना देता हूँ, कपड़े देता हूँ, मकान देता हूँ, पर मैं तुम्हें अपने हृदय में स्थान न दूँगा।' कल्पना कीजिए, उन बच्चों को कैसा लगेगा। जब तक आप हरिजनों को अपनी ही तरह मन्दिरों में जाने का अधिकार नहीं दे देते, तबतक आप यह नहीं कह सकते, कि हमारे हृदय सुन्दर हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ, कि आप लोग प्रकृति से यह पाठ लेकर अपने अन्दर का यह काला दाग़ धो ही डालें।"

बिना धर्म का जीवन कैसा ?

पलासपेट में हम लोग श्रीरामकृष्णाश्रम में ठहरे थे। इस आश्रमवासी शरथान-दूरी जमा रहे हैं। हरिजन सभा से रामोत्सा को बड़ा प्रेम है। हाल में इन्होंने हरिजन-सेवक-संघ भी यहाँ स्थापित किया है। इस छोटे-से गाँव में जो सभा हुई, उसमें करीब दस हज़ार आदमी आये थे। स्त्रियों की भी काफ़ी अच्छी उपस्थिति थी। नर-नारियों का एक समुद्र-सा दिखाई देता था। जनता की ओर से यहाँ जो मानपत्र दिया गया, उसमें हरिजन सेवा का सम्पूर्ण विवरण भी दिया था। साथ ही, उसमें यह एक आपत्ति भी प्रकट की गई थी, कि इस आन्दोलन को धार्मिक आन्दोलन नहीं कहना चाहिए। इस बात का गांधीजी ने निम्न लिखित उत्तर दिया :—

"एक क्षण आप विचार करें, तो आपको मालूम हो जायगा, कि यह आन्दोलन धार्मिक आन्दोलन नहीं तो क्या है। जो शास्त्रों का समर्थन का दावा करते हैं, वे अस्पृश्यता को धार्मिक चीज़ मानते हैं। जब अस्पृश्यता मेरे आगे धर्म का चोला ओढ़ कर आती है, तो मैं उसका सिर्फ़ इसी रूप में सामना कर सकता हूँ, कि वर्तमान अस्पृश्यता का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। अब मन्दिर-प्रवेश के प्रश्न को लीजिए। अगर यह धार्मिक प्रश्न नहीं तो फिर क्या है ? मन्दिर खुलवाने के लिए मुझे आप लोगों के हृदय का स्पर्श करना पड़ता है। और जिस वस्तु से किसी का हृदय स्पर्श होता हो, अथवा आघात होता हो, वह वस्तु उसी क्षण धार्मिक वस्तु हो जाती है। वास्तव में, जो सनातनी इस अस्पृश्यता को धर्म-संभूत मानते हैं, वे मुझ पर यह आक्षेप करते हैं, कि तुम धर्म के विषय में कुछ भी नहीं जानते हो। पर उनके इस आक्षेप को मैं सचमुच स्वीकार नहीं कर सकता। कारण इसका यही है, कि मेरा सारा जीवन धार्मिक भावना से ओत-प्रोत रहा है। बिना धर्म के मैं एक पल भी जीवित नहीं रह सकता था। मेरे बहुत-से राजनीतिक मित्रों को मेरी ओर से निराशा-सी हो गई है, क्योंकि उनका कहना है, कि तुम्हारी तो राजनीति तक में धर्म की बू आती है। और उनका कहना सही है। हाँ, मेरी राजनीति और मेरी तमाम प्रवृत्तियाँ धर्म से ही निकली हैं। मैं तो यह भी कहूँगा, कि धार्मिक मनुष्य का प्रत्येक कार्य धर्म का ही परिणाम होना चाहिए, क्योंकि धर्म का अर्थ है, ईश्वरी बन्धन, अर्थात् मनुष्य की प्रत्येक साँस पर ईश्वर का ही शासन चल रहा है। अगर इस सत्य का आप साक्षात्कार करलें, तो आप देखेंगे, कि ईश्वर ही तो आपके प्रत्येक कार्य का नियामक और संचालक है। तब जो मनुष्य धर्म के अनुकूल आचरण करने का प्रतिक्षण प्रयत्न करता रहता है, वह आपसे कहता है, कि अस्पृश्यता कदापि धर्म-संभूत नहीं है। मेरे-जैसा एक प्राकृत मनुष्य शास्त्रों को जितना देख सकता है, उसके आधार पर मैं आपसे कहता हूँ, कि अस्पृश्यता तो ईश्वर और मनुष्य के विरुद्ध एक पाप है। मैं आपसे कहता हूँ, कि वर्तमान अस्पृश्यता के लिए शास्त्रों में कहीं कोई आधार नहीं है, और इसलिए हरिजनों को अपने मन्दिरों में न आने देना निश्चय ही एक पाप कृत्य है।"

मनुष्यजाति के प्रति अतृप्त प्रेम

दूसरे दिन सवेरे गांधीजी निशाजपेट नगर देखने गये। वहाँ एक बड़े सुन्दर स्थल पर सभा हुई। सभा में शहर के मुसलमानों की ओर से उर्दू में लिखा एक मानपत्र दिया गया। उस मानपत्र को एक बुज़ुर्ग मुसलमान विद्वान् ने पढ़ा। गांधीजी ने कहा, "सुन्दर मुहावरेदार हिंदुस्तानी भाषा में यह मानपत्र पाकर मुझे आश्चर्यजनक प्रसन्नता हुई है। मैं उर्दू भाषा और उर्दू साहित्य का प्रेमी हूँ। लेकिन मैंने देखा है, कि इधर दक्षिण में मुश्किल से ही उर्दू के विद्वान् मिलते हैं, और यहाँ इतना सुन्दर उर्दू लिखने और बोलनेवाले होंगे, इसकी तो मैंने कल्पना भी नहीं की।" मानपत्र का मज़मून भी उतना ही सुन्दर था। उसका एक अंश मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ :-

"यद्यपि आपका यह दौरा खासकर हरिजनों के ही उद्धार और हित के लिए हो रहा है, तो भी हम आपको इस आदर और सहानुभूति की दृष्टि से देखते हैं। कारण यह है, कि मनुष्य मात्र में समता स्थापित हो जाय, यह आपके प्रयास का पवित्र लक्ष्य है। और मनुष्यजाति की समता का यह सिद्धान्त इस्लाम का एक आवश्यक अंग है। हम मुसलमान लोग आपके इस पवित्र निश्चय का समर्थन किये बिना नहीं रह सकते। ईश्वर से हमारी प्रार्थना है, कि वह आपके इस प्रयत्न को सफल करे, ताकि मानवता का यह दलित भाग समानता हासिल करले और गुलामी के भार से उसे छुटकारा मिल जाय।

हिंदू-मुस्लिम एकता में आपका ज़बरदस्त विश्वास है। इसलिए यह जानकर आपको खुशी होगी, कि हिंदुस्तान के इस हिस्से में हिंदू और मुसलमान बड़े प्रेम से मिलकर रहते हैं। हम उम्मीद करते हैं, कि आप ऐसी ही एकता हिंदुस्तान भर में स्थापित करने की भरसक कोशिश करेंगे। हम यह भी आशा करते हैं, कि आप भारत को साम्प्रदायिक झगड़ों से मुक्त करने में अपनी असंदिग्ध योग्यता और प्रभाव को काम में लायेंगे। इस एकता के लिए, हमें आशा है, आप हिंदुओं और मुसलमानों की एक परिषद् बुलायेंगे।"

इसका गांधीजी के हृदय पर बड़ा असर पड़ा, और इसके जवाब में उन्होंने कहा—"इस मानपत्र में कहा गया है, कि हिंदू और मुसलमानों के दरम्यान जैसी एकता यहाँ देखने में आ रही है, वैसी ही एकता सारे मुल्क में स्थापित करने के लिए जो मुझ से हो सके वह करूँ। मुझे कुछ चीज़ें, जो प्राण के समान प्यारी हैं, उनमें एक चीज़ हिंदू-मुस्लिम एकता, या हिंदुस्तान की

[३४ वें पृष्ठ के पहले कालम पर]

कांचीपुरी

"बापू, यह दक्षिण की काशी है," मैंने कहा "अच्छा हो कि मैं इन सुन्दर विशाल मंदिरों को एक नज़र देख आऊँ।"

"हाँ", बापूने जवाब दिया, "लेकिन वहाँतक मंदिरों का देखना ठीक होगा, जहाँतक कि वे हरिजनों के लिए खुले हुए हैं, उससे आगे नहीं।"

"अवश्य ही मैं उस सीमा के अंदर ही अपने को रखूंगी, जो हरिजनों के लिए आज निर्धारित है।"

बापू मुस्कराये—"तब तुम्हें कुछ अधिक देखने को नहीं मिलेगा; लेकिन, खैर, जाओ, तुम्हें एक अच्छा अनुभव तो प्राप्त हो जायगा।"

दो सवर्ण सज्जनों और एक यूरोपियन (ईसाई) को साथ लेकर मैं मन्दिर देखने चली। एक विशाल मन्दिर के फाटक पर हम लोग पहुँचे और वहाँ मोटर पर से उतर पड़े।

"हरिजन कहाँतक जा सकेंगे?" मैंने पूछा।

"बस, यहाँ से एक डग भी आगे नहीं," जवाब मिला।

दूसरे लोग, वह ईसाई सज्जन भी, फाटक के अंदर चले गये। मैं अकेली बाहर ही खड़ी रही। मैं देख रही थी, कि वे लोग बड़े-बड़े सिंहद्वारों से होकर चले जा रहे हैं, और पहला चौक पार करके अब विशाल खंभों की ओझल हो गये हैं। मंदिर कैसा सुंदर लगता था! अहा! ऊपर सुनील आकाश और सुनहरी सूर्य-किरणों में चमकती हुई वह सुंदर शिल्प-कला! जी ललचा रहा था, कि अंदर चली जाऊँ और सहस्रों वर्षों के भक्ति एवं कलापूर्ण मंदिरों की शांति और सुंदरता का आकंठ पान करूँ। मगर हरिजन के भाग्य में यह सुख कहाँ? वह तो बाहर ही अकेला खड़ा रहेगा और वहीं उसकी आशाएँ मुरझाती रहेंगी। दुनिया में इससे अधिक दुःख और कहाँ यह दुःख महसूस हो सकता, कि वह मनुष्य-जाति से बिल्कुल ही बाहर कर दिया गया है?

इतने में एक सुअर वहाँ आ पहुँचा। मैंने उसे बधाई देते हुए कहा—"भले आ गये भाई, मैं और तुम दोनों ही एक से जाति-बहिष्कृत हैं!" लेकिन मेरी इस बात के जवाब में घुरघुरा कर उसने अपनी पूँछ झटक दी, और मुझे वहीं छोड़कर वह तो मंदिर के फाटक के अंदर घुसता चला गया!

मैं अकेली खड़ी-खड़ी सोचती थी, कि मनुष्य, मनुष्य के प्रति, अरे, यहाँतक अमानुषी व्यवहार कर सकता है!

'हरिजन' से] मीरा

स्व० गोखले और हरिजन

मेरे इस दक्षिण के प्रवास में कई नवयुवकोंने मुझे लिखा है, कि अस्पृश्यता तथा अन्य कुरीतियों के, जिनसे हिंदू-समाज पीड़ित हो रहा है, ब्राह्मण ही दोषी हैं, ये सारी बुराइयाँ उन्हीं की बदौलत विद्यमान हैं। स्व० गोखले के १९ वें पुण्य-वर्ष के दिन मैं यह लेख लिख रहा हूँ। इसलिए स्वभावतः ही मुझे उनका हरिजन-प्रेम याद आ रहा है। अस्पृश्यता के कलंक से सर्वथा मुक्त श्री गोखले को छोड़कर मुझे कोई अन्य व्यक्ति याद नहीं आता। वह मनुष्य-मनुष्य के बीच में किसी प्रकार की असमानता की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। उनकी दृष्टि में तो मनुष्यमात्र समान थे। एक बार दक्षिण अफ्रीका में, एक सज्जन उन्हें एक साम्प्रदायिक सभा में लिवा ले जाने के लिए उनके पास आये। पर उन्होंने इनकार कर दिया। तब उनके हिंदू-धर्म के प्रति अपील की गई। इस पर वह बिगड़ उठे। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा, और ज़रा गर्म पड़कर उक्त सज्जन से बोले, "अगर यही हिंदू-धर्म है, तो मैं हिंदू नहीं हूँ।" लोग तो यह सुनकर आश्चर्य-चकित रह गये। किसी व्यक्ति या संप्रदाय की क्षुद्रता की कल्पना वो वह सहन नहीं कर सकते थे। विश्व-बंधुत्व की भावना उन्होंने स्वयं अपने जीवन में चरितार्थ करके दिखा दी, इस बात को उनके साथी खूब जानते हैं। पारिया (अंत्यज) कहे जानेवाले भाइयों से वह खूब दिल खोलकर मिलते थे। यह बात उनमें नहीं थी, कि वह किसी पर कृपा या एहसान कर रहे हैं। उनके हृदय में तो केवल एक सेवा का ही आदर्श था। उनका विश्वास था, कि सार्वजनिक आदमी जनता के नेता नहीं, बल्कि सेवक हैं। उनकी दृष्टि में सब से बड़ा सेवक ही सब से बड़ा नेता था। और स्व० गोखले हर तरह एक सच्चे जन्मना ब्राह्मण थे। वह जन्म-जात अध्यापक भी थे। उनसे कोई जब 'प्रोफेसर' कहता, तो बड़े प्रसन्न होते थे। विनम्रता की तो वह मूर्ति थे। राष्ट्र को उन्होंने अपना सर्वस्व दे दिया था। चाहते तो वह मालामाल हो जाते, लेकिन उन्होंने तो स्वेच्छा से ग़रीबी का ही बाना पसन्द किया। गोखले-जैसे जन-सेवक पर क्या हम ब्राह्मण-निंदकों को गर्व नहीं होगा? और यह बात नहीं, कि ऐसे ब्राह्मण एक गोखले ही थे। मनुष्य-मनुष्य के बीच में समानता को माननेवाले ऐसे ब्राह्मणों की एक खासीलम्बी सूची बनाई जा सकती है। ब्राह्मणमात्र को दोषी ठहराने का तो यह अर्थ हुआ, कि जो ब्राह्मण आज खास तौर से स्वयं निस्स्वार्थ लोक-सेवा करने को तैयार हैं, उनकी उस सेवा के मधुर फल को हम खुद अस्वीकार कर रहे हैं। उन लोगों को किसी के प्रशंसा-पत्र की ज़रूरत नहीं है। उनकी सेवा ही उनका पुरस्कार है। गोखलेने एक महान् अवसर पर लिखा था, कि 'जो सेवा किसी व्यक्ति के कहने से हाथ में नहीं ली जाती, वह किसी दूसरे की आज्ञा से त्यागी भी नहीं जा सकती।' इसलिए सब से निरापद नियम तो यह है, कि मनुष्य को हम उसके वर्तमान रूपमें ही ग्रहण करें—फिर चाहे जिस कुल में वह पैदा हुआ हो, और उसकी जाति या उसका रंग चाहे जो हो। अस्पृश्यता-निवारण के इस आंदोलन में हम किसी की सेवा की, चाहे वह कितनी ही छोटी हो, अवगणना नहीं करनी चाहिए, जहाँतक कि उसमें सेवा की भावना है, न कि उद्धार या कृपा की।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

सिर्फ़ अपने आचार को ही अच्छा रखने से संस्कारवान् नहीं बन सकते। अपना व्यवहार ऐसा रखना कि जिसमें दूसरों को अशुद्ध आचरण करने पर विवश होना पड़े, तो यह भी असंस्कारिता की निशानी है। जो वर्ण अपने को संस्कारवान् मानते हैं वे हरिजनों को अपनी जूठन खिलावें, बासी या उतरी हुई चीज़ें दें और अपने पशु से भी गया-बीता व्यवहार उनके साथ करें तो यह केवल असंस्कारिता ही नहीं, पाप भी है।

—गांधीजी

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ९ मार्च, १९३४

हमारे लिए लज्जाजनक

तामिल प्रांत के आदि-हिंदुओं की ओर से कुनूर में मुझे जो आवेदन-पत्र दिया गया था, उसका उल्लेख हरिजन के गतांक में हो चुका है। उस पर ३६ प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर थे। सही करनेवालों में कुछ तो म्यूनिसिपैल्टिी या तालुका-बोर्ड के मेंबर थे। जिन कठिनाइयों का उन्हें सामना करना पड़ रहा है, उनकी सूची, संक्षिप्त रूप में, मैं नीचे देता हूँ। संक्षिप्त करने में उनकी असली भाषा को मैंने बदला नहीं है। हाँ, उस बयान के साथ उनकी जो टीका थी, उसे मैंने अनावश्यक समझकर हटा दिया है, यों सूची में कोई हेरफेर नहीं किया गया है :—

"१—भोजनालय, धोबी की दुकानें, नाई की दुकानें, कहवा और चाय के उपाहार-गृह, विश्रांति-भवन, धर्मशालाएँ, अन्नाहार, कुएँ, तालाब, नल, झरने आदि सभी स्थान हमारे लिए बंद हैं। हमारी कहीं भी पहुँच नहीं, और तो और, गाँव के डाकख़ाने तक में हम पैर नहीं रख सकते। मंदिरों की तो बात ही न पूछिए।

२—एक जगह तो यूनियन बोर्ड के इलाके की एक आम सड़क से हम अपने मुर्दे तक नहीं ले जा सकते। बात सिर्फ़ यह है, कि उस सड़क के किनारे एक देवता का मंदिर पड़ता है। धान के एक खेत में होकर हम अपना मुर्दा ले जाने के लिए बाध्य किये जाते हैं—और उन दिनों भी, जब बरसात में घुटनोंतक वहाँ कीचड़ ही-कीचड़ मच जाता है।

३—कहीं-कहीं तो न हम छाते लगा सकते हैं, न खड़ाऊँ पहन सकते हैं, और न घुटनों के नीचेतक धोती पहन सकते हैं। अगर हम ऐसा करें तो यह बड़ा भारी जुर्म समझा जाता है। हमारी औरतें अगर कभी सोने के ज़ेवर या साफ़ कपड़े ही पहनकर आगे से निकल जाएँ, तो सवर्ण हिंदू इसे अपशकुन समझते हैं।

४—एक यूनियन-बोर्ड के इलाके में तो अछूतों के चौधरी को, जब उसे मुखिया का पद दिया जाता है, सवर्ण हिंदू आम सड़क से घोड़े पर नहीं निकलने देते।

५—कुछ गाँव के हाट-बाज़ारों में बज़ाज़ों के यहाँ से अगर हम ब्याह-शादी के लिए नया साफ़ कपड़ा देखकर ख़रीदना चाहें, तो नहीं ख़रीद सकते, क्योंकि ख़रीदने के पहले हम उस कपड़े को छू नहीं सकते।

६—बाज़ारों में अनजान-अनजान में रोटी या खाने-पीने की दूसरी चीज़ें हम से छू जायें, तो इस गुनाह का हमें भारी दंड भरना पड़ता है—दूकान में खाने-पीने की जितनी चीज़ें होती हैं, उन सब का हमें पूरा दाम देना पड़ता है।

७—मद्रास प्रांत के अधिकांश ज़िलों के गाँवों में चूँकि आबादी हमारी काफ़ी बड़ी है, पर मकान हमारी अपनी ज़मीन पर नहीं हैं, इसलिए ज़मींदारों की ज़मीन पर घर बनाकर किसी तरह गुज़र-बसर करते हैं। जब हम अपनी मजूरी बढ़ाने के लिए उन लोगों से कहते हैं, तो वे मारे गुस्से के आपे से बाहर हो जाते हैं। उनसे दबें नहीं, तो रहें कहाँ? मजूरी में वे हमें इतने पैसे नहीं देते, कि पेट अच्छी तरह से भर सके। और काम का कोई समय नहीं बँधा है—चाहे जबतक मेहनत-मजूरी कराते हैं। अक्सर पुराना सड़ा-घुना अनाज ही सारे दिन की मजूरी में हम लोगों को दिया जाता है।

८—ब्याह-बरात या देवी-देवता की सवारी के अवसर पर कभी-कभी ऐसा भी होता है, कि हमें अपनी जाति के गाने-बजानेवाले नहीं मिलते, तो उस वक़्त सवर्ण गवैये-बजैये हमारे यहाँ गाने-बजाने नहीं आते।

९—हमारी बिरादरी के नवयुवकों का साइकिल पर चढ़ना ऊँची जातिवालों को बहुत अखरता है। शहरों से बहुत दूर की देहातों में हमें बैलगाड़ियाँ चढ़ने को नहीं मिलतीं। सवर्ण हिंदू हमें अपनी गाड़ियों पर नहीं चढ़ने देते। और यही हाल मोटर लारियों का है।

१०—एक म्यूनिसिपैलिटी के इलाके में सार्वजनिक पैसे से बनी हुई आम टट्टियों में जाने से अछूतों को रोका जाता है। काफ़ी कोशिश करने के बाद अब कहीं वहाँ उनके लिए अलग टट्टियाँ बनवा दी गई हैं।

११—म्यूनिसिपैलिटी के कुछ दवाख़ानों में हमलोगों का ठीक-ठीक इलाज नहीं होता। बात यह है, कि वहाँ काम करनेवाले सब सवर्ण हिंदू हैं।

१२—गर्मियों में सवर्ण हिंदुओं की ओर से जो प्याऊ रखे जाते हैं, उनमें हम आदि-हिंदुओं के साथ बड़ा बुरा भेद-भाव बरता जाता है। यह अपमानभरा भेद-भाव तो हमें असह्य हो जाता है।

१३—जब हमारे आदमी म्यूनिसिपैलिटी, तालुकाबोर्ड और पंचायतों में मेंबर चुन लिये जाते हैं, तब इसके विरोधस्वरूप कट्टर सवर्ण हिंदू अपनी मेंबरी से इस्तीफ़ा दे देते हैं। और कहीं-कहीं तो हमारे मेंबरों को वहाँ भी अलग बिठाया जाता है।

१४—जब कोई आदि-हिंदू अपने मकान के सामने चारपाई पर बैठा हो और उस वक़्त वहाँ से कोई सवर्ण हिंदू निकले, तो उसे उठकर उसके आगे साष्टांग प्रणाम और उचित मान-प्रदर्शन करना पड़ता है। अगर कभी इस स्वागत-पूजा में गफ़लत हो गई, तो फिर उस आदि-हिंदू की ख़ैर नहीं। सवर्णों के हाथ से उसकी काफ़ी मरम्मत कर दी जाती है।

हम लोगों से यह अक्सर कहा जाता है, कि पहले अपने घर को सुधारो, तब दूसरों से अधिकार माँगो। यह तो सहज बात का टालना हुआ। जात-पाँत और छूत की उच्चता-नीचता पर ही जहाँ सारे हिंदू-समाज की उन्नति और अवनति निर्भर करती हो, वहाँ अछूत कहे जानेवालों के माथे यह दोष मढ़ना मुनासिब नहीं, कि वे तो खुद ही

आपस में छुआ नहीं सकते हैं। ये अछूत कहे जानेवाले भी अधिकतर खुद परिस्थितियों के वशीभूत हो रहे हैं।

१५—म्यूनिसिपैलिटी के हलकों में, जहाँ सवर्ण हिंदू आपत्ति करते हैं, हम लोगों के लिए अलग नल लगे हुए हैं।

१६—देहात की प्रारम्भिक पाठशालाओं में हमारे बच्चे दाख़िल नहीं हो सकते, गोकि ये पाठशालाएँ चलाई जाती हैं सार्वजनिक पैसे से। अगर कभी किसी तरह भरती भी हो गये, तो या तो उन्हें बैठने को अलग जगह दी जाती है, या ज़मीन पर उन्हें बैठना पड़ता है। अगर ये विद्यार्थी कट्टर सवर्ण शिक्षक के पास जाते या अवकाश में कभी कोई सवाल पूछने जाते हैं, तो अपवित्र हो जाने के भय से वह शिक्षक स्लेट या छड़ी के सहारे उन्हें पीछे ढकेल देता है। कहीं-कहीं तो हमारे बच्चों को पाठशाला के बाहर ही बारह महीने खड़ा रहना पड़ता है—चाहे पानी बरस रहा हो, चाहे आग। बाहर खड़े-खड़े खिड़की से ही उन्हें सबक़ लेना पड़ता है, और इस तरह से बेचारों को ब्लाक तख़्ते का देखना भी कभी नसीब नहीं होता। लोअर प्राइमरी की पढ़ाई पृथक् पाठशालाओं में जब समाप्त हो जाती है, तब उसी गाँव की सार्वजनिक अपर प्राइमरी पाठशालाओं में हमारे बालक दाख़िल नहीं हो सकते। आदि हिंदू जाति के ट्रेण्ड अध्यापकोंतक को अपर प्राइमरी स्कूलों में नौकरी नहीं दी जाती। हमारे बच्चे आम पाख़ाने तक में नहीं जा सकते। यह कितने दुःख की बात है, कि जहाँ हर तरह से सवर्ण हिंदुओं का ही बोलबाला है, वहाँ की पाठशालाओं का कभी-कभी निरीक्षण करने ज़िला-बोर्डों के हमारे आदि-हिंदू प्रतिनिधि भी नहीं जाते—सवर्ण हिंदुओं के हाथों सताये जाने और दुनियाभर की आफ़त सिर पर लेने का उन्हें डर जो बना रहता है। कोयम्बतूर के पास के सिंगानेलोर और इरूगुर गाँव तो इस बात के लिए काफ़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। देहातों की प्रारम्भिक पाठशालाएँ इन दोषों से अभी मुक्त नहीं हैं।

अब हाईस्कूलों की बात सुनिए। वहाँ हमारे विद्यार्थी उन घड़ों से पानी नहीं ले सकते, जो गर्मियों में ख़ासतौर पर रखे जाते हैं। हमारे अबोध लड़कों और लड़कियों को उन सवर्ण छात्रों के आसरे खड़ा रहना पड़ता है, जो उन्हें दूर से पानी डाल देते हैं। पानी पीने के बर्तन तक हमारे विद्यार्थियों को नहीं दिये जाते। बेचारों को चुल्लू से पानी पीना पड़ता है। चाय-पानी के आम कमरों में भी वहाँ हमारे विद्यार्थियों को बेरोक टोक नहीं जाने दिया जाता।

१७—जिन मुहल्लों में हम प्रवेश नहीं कर सकते, वहाँ के डाकख़ानों में जाकर न तो हम चिट्ठी-पत्री डाल सकते हैं, न रजिस्ट्री या मनीआर्डर वग़ैरा ही करा सकते हैं। डाकख़ाने से हटकर हमें काफ़ी फ़ासले पर खड़ा रहना पड़ता है। पोस्टकार्ड, लिफ़ाफ़ा या टिकट ख़रीदने के लिए भी हमें किसी आने-जानेवाले सवर्ण हिंदू का मुँह ताकना पड़ता है। हमारी प्रार्थना सुनली, तो वह कार्ड, या लिफ़ाफ़ा ख़रीदकर दूर से फेंक देता है।

१८—हमें दुःख होता है, कि आप-जैसे प्रतापी पुरुषने इस आदि-हिंदुओं के घर में जन्म न लिया। हमारे यहाँ आप जन्मे होते, तभी हमारी इन सारी कठिनाइयों को आप पूरी तरह से महसूस कर सकते।"

यह एक भयंकर सूची है। इसमें कहीं कोई अत्युक्ति न मिलेगी। कहीं-कहीं तो यह सभी बातें सच हैं। पर यह बात नहीं है, कि एक ही कठिनाई सब जगह हो। कोई-कोई असुविधा तो एकाध ही जगह है। और उनके अपने निजके प्रयत्न से ये कठिनाइयाँ अब कम होती जा रही हैं। यथेष्ट चित्र अगर देखना है, तो इन बातों का समझ लेना आवश्यक है। पर इससे सवर्ण हिंदुओं की शर्म में किसी क़दर कमी नहीं आ जाती, न सुधारकों के ही लिए ढील दे देने का यह कोई बहाना है। धर्म के नाम पर जबतक यह असुविधाएँ न्यूनाधिक रूपमें मौजूद रहेंगी, तबतक सवर्ण हिंदुओं का सिर शर्म से नीचा ही रहेगा। यह उनका स्पष्ट कर्तव्य है, कि वे कड़े-से-कड़े शब्दों में इन तमाम असुविधाओं की निंदा करें और धार्मिक प्रथा के नाम पर हरिजनों का आज जो बुरी तरह से दलन किया जा रहा है, उससे उन्हें बचाने के लिए वे भी सुधारकों के साथ मिलकर काम करें।

अन्त की अठारहवीं शिकायत के द्वारा आवेदन-पत्र पर सही करनेवालोंने, मैं समझता हूं, मुझे सम्मान ही दिया है। हाँ, यह बिलकुल सभंव है, कि अगर मैंने किसी आदि-हिंदू के घर में जन्म लिया होता, तो उनकी इन भयानक व्यथाओं की कसक को और भी अधिक गहराई से मैं महसूस करता। पर यह भाग्य में न होने से मैं स्वेच्छा से एक हरिजन बन गया हूँ। जबतक अस्पृश्यता रहेगी, तबतक न तो मुझे ही चैन है और न हरिजन-सेवक-संघ को ही।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

गांधीजी का श्रीरंगम् का भाषण

[१० फ़रवरी को श्रीरंगम् की सार्वजनिक सभा में गांधीजीने निम्नलिखित भाषण दिया था।]

यहाँ अपने उस पिछले भ्रमण में भी कुछ शास्त्रियों के साथ मैंने अस्पृश्यता के सम्बन्ध में सद्भावपूर्ण चर्चा की थी। जो विचार उस समय मैंने प्रगट किये थे वे बिलकुल सही थे, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। उसके बाद तो फिर कई विद्वान् शास्त्रियों से मैंने इस सम्बन्ध में बातें कीं। मेरे-जैसे प्राकृत मनुष्य के लिए जहाँतक सम्भव है, शास्त्रावलोकन करने का भी मुझे अवसर मिला, पर मैं तो इन सब से इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ, कि जैसी अस्पृश्यता आज बरती जाती है, उसके लिए तो शास्त्रों में कहीं कोई आधार नहीं है। साथ ही, ऐसा भी कोई प्रमाण नहीं मिलता, जिसके बलपर एक भी हिन्दू—चाहे वह अछूत हो या कोई और—सार्वजनिक मन्दिरों में जाने से रोका जा सके।

मैं यहाँ सारे विषय की विस्तार के साथ चर्चा नहीं करना चाहता। पर मैं अपनी ओर से उन लोगों को, जो आज हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश का विरोध कर रहे हैं, यह पूरी ख़ातिरी अवश्य

देता हूँ, कि जो सनातनी सज्जन मन्दिर-प्रवेश के विरोधी हैं, उन पर न तो कोई दबाव डाला जायगा और न उनके साथ कोई बल-प्रयोग ही किया जायगा । आपने कृपा करके अपने मानपत्र में मुझे एक सच्चा सनातनी कहा है । मैं अत्यन्त नम्रता और सत्यता के साथ आपके इस विशेषण को स्वीकार कर सकता हूँ । मैंने सदा ही सनातनी होने का दावा किया है । कारण यह है कि अपने यौवन-काल के उपरान्त मैंने शास्त्रों को जैसा जो कुछ समझा है, अपने जीवन में उसके अनुसार आचरण करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया है । और एक सनातनी होने के नाते ही मैं प्रत्येक सनातनी का यह धर्म समझता हूँ, कि अस्पृश्यता के लिए वह प्रायश्चित्त करे, अपनी आत्म-शुद्धि करे और अपने हृदय से इस पाप-कलंक को पखार डाले । जो तमाम अधिकार वह स्वयं भोग रहा है, उन पर हरिजनों का भी हक़ है यह क़बूल कर लेना उसका धर्म होना चाहिए । मन्दिरों में जाने का जहाँतक उसका अधिकार है, बिल्कुल वही अधिकार जबतक उसने हरिजनों को नहीं दिला दिया, तबतक उसे सन्तोष नहीं होना चाहिए । सन् १९३२ के सितम्बर मास में, जब मेरा उपवास चल रहा था, बम्बई में हिन्दुओं के प्रतिनिधियों की जो सभा हुई थी, उसमें यह महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुआ था, कि हरिजनों का भी मन्दिरों में जाने का वही अधिकार है, जो सवर्ण हिन्दुओं का है; और अगर इसमें कोई क़ानूनी बाधा आड़े आयगी, तो उसे हटाने का भी उपाय किया जायगा । इससे मेरे-जैसे आदमी का यह और भी बड़ा कर्त्तव्य हो जाता है, कि हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश के दावे को जायज़ ठहराने में पूरा प्रयत्न किया जाय ।

पर इससे किसी को डरना नहीं चाहिए, क्योंकि यह प्रश्न तो हिन्दुओं के ठीक तरह से परिपक्व लोक-मत पर ही निर्भर करता है । यह देखकर कि श्रीरंगनाथ का मन्दिर ठीक उसी तरह हरिजनों के लिए नहीं खुला हुआ है, जिस तरह कि उसके द्वार सवर्णहिन्दुओं के लिए खुले हुए हैं, मुझे चाहे जितना बुरा लगता हो, पर मेरी यह ज़रा भी इच्छा नहीं है, कि जबतक सवर्ण-हिन्दुओं का लोक-मत इसके पक्ष में पूरी तरह से परिपक्व नहीं हो गया है, उसके पहले ही यह मन्दिर हरिजनों के लिए खोल दिया जाय । यह प्रश्न हरिजनों का नहीं है, कि वे खुद मन्दिर-प्रवेश का अधिकार माँगें या उसका दावा करें । बस मन्दिर उनके लिए खोल दिये जायँ, फिर उनमें वे जावें या न जावें । यह तो प्रत्येक सवर्णहिन्दू का परमधर्म है, कि वह हरिजनों के लिए मन्दिर का द्वार खुलवा दे । लेकिन मन्दिर खुल नहीं सकता, क्योंकि यह तो मेरे-जैसे एक तुच्छ व्यक्ति का ख़याल है, कि मन्दिर खुल जाना चाहिए । वह तो तभी खुल सकेगा, जब सवर्णहिन्दुओं का उसे खोल देने के पक्ष में सामान्य मत होगा । कठिनाई तो तब आती है, जब एक अकेला हिन्दू कहता है, 'कि जबतक मैं विरुद्ध हूँ, तबतक मन्दिर अछूतों के लिए नहीं खोलना चाहिए ।' अगर ऐसा असम्भव सिद्धान्त मान लिया जाय, तो हिन्दूधर्म में किसी तरह की उन्नति के लिए गुंजाइश ही नहीं । ऐसा एक भी हिन्दुओं का अर्चना-स्थान या मुसल्मानों की मस्जिद अथवा ईसाइयों का गिरजाघर मुझे याद नहीं पड़ता, जो अन्य सब उपासकों की मरज़ी के विरुद्ध, अकेले एक पुजारी के विरोध के कारण ही, किसी आराधक के लिए बन्द रहा हो । मैं आपको साक्षी देता हूँ, कि अपने इस प्रवास में, मध्यप्रान्त, आंध्र, मलबार और तामिल-नाड में, मुझे हज़ारों-लाखों सवर्णहिन्दुओं के देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है; और इसमें मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं, कि हरिजनों के मन्दिर-प्रवेशाधिकार को सच्चे सवर्ण हिन्दू दिल से स्वीकार करते हैं । इसलिए मैं चाहता हूं, कि जो लोग मन्दिर-प्रवेश के विरोधी हैं, उन्हें इस आन्दोलन से घबराना नहीं चाहिए । अगर वे मन्दिर-प्रवेश की बात पसन्द नहीं करते, तो उसे वे रहने दें । और भी तो हरिजनों के हितार्थ बहुत-से काम करने को हैं । उन्हीं में वे अपनी सहायता और अपना सहयोग दें ।

उदुमलपेट के हरिजनों के कष्ट

पोदनूर और डिंडिगल के बीच में उदुमलपेट एक छोटा-सा क़स्बा है । वहाँ हरिजनोंने भी मुझे एक मानपत्र दिया था । उनके उस लम्बे-चौड़े और वेदनापूर्ण मानपत्र में से मैं नीचे एक अंश उद्धृत करता हूँ :—

"इस क़स्बे में हम लोगों को किसी भी स्वच्छ सार्वजनिक कुएँ से पानी नहीं भरने दिया जाता । हमारी औरतों और बाल-बच्चों को एक घड़ा पानी के लिए सवर्ण हिंदुओं की दया पर निर्भर करना पड़ता है । कुएँ पर घण्टों हमें खड़े-खड़े राह देखनी पड़ती है, तब कहीं, गालियों की बौछार के बाद, कोई सवर्ण हिंदू हमारे घड़े में दूर से पानी डालदेता है ।"

"हमारी ग़रीबी का क्या पूछते हैं । हममें से बहुतों को तो रहने को भी कहीं ठौर-ठिकाना नहीं । उस कड़ाके की धूप और उस मूसलाधार पानी में आकाश के नीचे ही पड़े रहते हैं । कहाँतक अपनी मुसीबतें गिनावें । बड़े कंगाले से दिन काट रहे हैं । हमारी बस्तियों की यह हालत है, कि एक झोंपड़ी दूसरी झोंपड़ी से बिल्कुल सटी हुई है । जब आग लगती है, तो हमारा माल-असबाब तो स्वाहा हो ही जाता है, कुछ जानें भी चली जाती हैं । म्यूनिसिपैलिटी को क्या पड़ी है, कि वह हमारी बस्तियों को साफ़ रखे ? हमारे मुहल्ले कभी साफ़ नहीं कराये जाते ।

न नालियाँ अच्छी तरह से बनाई गई हैं, न मैला साफ़ करने का कोई ठीक प्रबन्ध है, और न हमलोगों के स्वास्थ्य का ही कुछ ख़याल रखा जाता है । हमारी गलियों में एक लालटेन भी कहीं टिमटिमाती नज़र नहीं आती । बस्तियों में हमारे चलने-फिरने के लिए कहीं कोई ठीक सड़क भी नहीं है । क़स्बे के और तमाम मुहल्लों की तरक्की पर तो म्यूनिसिपैलिटी का अच्छा ध्यान रहता है, पर हमारी बस्तियों का तो कमेटी कुछ भी ख़याल नहीं करती ।"

अगर ये शिकायतें सच हैं, तो उन पर म्यूनिसिपैलिटी तथा जनता और स्थानीय हरिजन-सेवक-संघ को तुरन्त ध्यान देना चाहिए । इन शिकायतों में अगर कोई अत्युक्ति हो, तो उसका खण्डन मैं खुशी से प्रकाशित कर दूँगा । तबतक मैं इस पर और टीका-टिप्पणी न करूँगा ।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

बापू का पुण्य-प्रवास

[२८ वें पृष्ठ से आगे]

तमाम जातियों की एकता भी है। दिल्ली में कुछ साल पहले ऐसी एक परिषद् मैंने की थी। ऐसे अवसर के लिए तो मैं सदा ही तैयार हूँ, और इस कार्य के लिए मैं फिर अपने प्राणों की बाजी लगा सकता हूँ। मेरा जीवन अविभाज्य है, और इसीसे मेरे तमाम काम साथ-साथ चला करते हैं। मनुष्यजाति के प्रति मेरा जो अतूट प्रेम है, उसीसे मेरी सारी प्रवृत्तियों का उदय होता है। चूँकि मैं अपने आचरण के द्वारा जीवन-साम्य के साक्षात्कार का प्रयत्न कर रहा हूँ, इसलिए अगर मैं एक संप्रदाय को दूसरे सम्प्रदाय के विरुद्ध लड़ते-झगड़ते अथवा मनुष्यों का मनुष्यों के द्वारा दुर्दलन देखूँ, तो मैं कभी प्रसन्न नहीं हो सकता। इसलिए मुझे यह जानकर बड़ा सन्तोष होता है, कि आपके इस मानपत्रने यह कबूल किया है, कि इस हरिजन-आंदोलन का अंतिम लक्ष्य मनुष्यमात्र में सच्ची एकता स्थापित करना है। इस मानवी एकता के मार्ग में जब मैंने देखा, कि यह अस्पृश्यता ही सबसे बड़ी रुकावट है, तो मैं उसके निवारण करने के आंदोलन में अपनी सारी शक्ति लेकर कूद पड़ा हूँ।"

समझदार पति

गोणीकुप्पी में एक युवतीने गांधीजी को अपनी सोने की चूड़ियाँ उतारकर दे दीं। उसका पति भी वहीं मौजूद था। गांधीजीने उस युवक से कहा, "तुम्हें मालूम है, कि तुम्हारी पत्नीने मुझे अपनी चूड़ियाँ उतार कर दी हैं? क्या उसने तुम्हारी स्वीकृति लेकर ऐसा किया है?"

"जी हाँ, मेरी स्वीकृति लेकर," उसने यह भी कहा, "वह अपनी खुशी से आपको चूड़ियाँ देना चाहती थी। और फिर सारे गहने हैं भी तो उसी के। तब मैं उसे स्वीकृति क्यों न देता?"

"पर सभी पति ऐसी समझदारी से काम नहीं लेते। हाँ, तुम्हारी उम्र क्या है?"

"तीस साल की।"

"जब मैं तुम्हारी उम्र का था, तब मैंने कभी ऐसी समझदारी का काम नहीं किया था। समझ तो भाई, मुझे बहुत बाद में आई," गांधीजी की यह बात सुनकर सब लोग खिल-खिलाकर हँस पड़े।

× × ×

संध्या को हमलोग कुर्ग की राजधानी मरकरा में पहुँचे। कल कुर्ग से कर्णाटक के लिए रवाना होंगे, और वहाँ का कार्य-क्रम समाप्त करके ११ मार्च को बिहार पहुँचेंगे। भूकंप-पीड़ितों की आर्त पुकार ही वहाँ गांधीजी को लेजा रही है।

मरकरा, }
२१-२-३४ } चन्द्रशंकर प्राणशंकर शुक्ल

धर्म का मूल

जो ईश्वर का भक्त होता है, वह ईश्वर का अभीष्ट कार्य करना ही एकमात्र धर्म समझता है। अर्थ के प्रति विराग और परमार्थ के प्रति अनुराग के द्वारा ही वह भगवत्कृपा प्राप्त करता रहता है। वह जो वस्तु प्राप्त करता है, वह ऐसी वस्तु होती है, कि उससे उसका जीवन परिपूर्ण हो जाता है। भादों मास की नदी जैसे अपने दोनों तटों के बन्धन में अपने को क़ैद नहीं रख सकती, उसी प्रकार भक्त का भगवत्प्रेम भी अन्तरात्मा के बन्धन में नहीं रह सकता। प्रेमरस का जो स्वाद उसे प्राप्त होता है, उसे दूसरों को बाँटने के लिए वह व्याकुल हो जाता है। अच्छी वस्तु स्वयं भोगकर लोगों को तृप्ति नहीं होती। वह तो वह वस्तु अपने इष्ट मित्रों, कुटुम्बियों और जाति या समाज के मनुष्यों को देने के लिए उत्सुक या अधीर रहते हैं। भगवान् के कृपापात्र पुरुष भी इसी तरह अपने अन्तर की शान्ति और प्रेम दूसरे सब जनों में बाँट देते हैं। उनकी अन्तःशुद्धि असंख्य मनुष्यों को अपनी ओर खींच लेती है, और वे स्वयं भी लोक-कल्याणकारी उपदेश जनता को देकर अपने अन्तर में तृप्ति का अनुभव करते हैं। ईश्वर के दिये हुए नर-शरीर का वे पूर्णतः सदुपयोग करते हैं।

प्रत्येक महापुरुष अपनी शक्ति के अनुसार समाज-सेवा किया करता है। उसका सहारा लेकर दूसरे सब आदमी उसके नाम पर उसका सेवा-कार्य करने के लिए एकत्र हो जाते हैं; और इस तरह एक नया सम्प्रदाय, एक नया मत स्थापित हो जाता है। हिंदूधर्म के अन्दर इस प्रकार अगणित सम्प्रदाय बन गये हैं, और आज भी बनते चले जाते हैं। परन्तु इन सभी सम्प्रदायों को हिंदूधर्म की विशाल छाया में ही आश्रय मिला है; किसी नये धर्म के रचने की आवश्यकता नहीं पड़ी। मूर्ति-पूजा करो या न करो, खाने-पहनने में एक ही रीति का पालन करो या न करो, इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। सार्वभौम सत्य को ग्रहण करके जीवनयात्रा में ईश्वराभिमुख होने की नीति स्वीकार करने के अन्दर जो ऐक्य, जो सामञ्जस्य निहित है, उसी को धर्मगुरुओंने हिंदूधर्म में व्यक्त किया है। ईश्वरादेश-प्राप्त पुरुषोंने प्राचीनकाल में आत्म-तृप्ति के लिए जिस सार्वभौम सत्य का साक्षात्कार किया था, वही सत्य भारतवर्ष में धर्म का मूल समझा जाता है। वही वेद है। जिन्होंने ईश्वर को पहचाना है, वेद उनकी वाणी है। किन्तु किसी युग में किसी मनुष्य को जो ज्ञानस्फुरण हुआ, वह अन्तिम सत्य नहीं माना जा सकता। पूर्ण तो एक ईश्वर ही है, और सभी अपूर्ण हैं। इसके बाद जिस परवर्ती युग में जिस ऋषि की महावाणी प्रगट हुई है, वह मनुष्य की अपूर्ण प्रकाश-शक्ति को पूर्ण-शक्ति की ओर ले गई है। सारांश यह है, कि ईश्वर में श्रद्धा तथा सर्वभूत-हित की मूल भित्ति स्थिर और व्यापक ही होती गई है। इसी कारण इस मूल पाये के ऊपर दीवार खड़ी करके विविध साम्प्रदायिक मत हिन्दूधर्म में परस्पर-विरोधी संस्कारों के साथ भी सुविन्यस्त हो सके हैं, क्योंकि मत-विरोध होते हुए भी मूल पाये की एकता तो बराबर स्पष्ट रही है।

जिन सब ऋषियोंने हिन्दूधर्म को बाहर से आचरण की और अन्दर से अन्तरात्मा की चीज़ कर रखा है, जिन्होंने सरल विश्वास के साथ यह बात कही है, कि—

"मैंने उस पुरुष को जाना है, जो ज्योतिर्मय है—जिसमें अन्धकार और अज्ञान नहीं है।"

उन्होंने समदृष्टि प्राप्त की थी और सर्वभूत में—समस्त सृष्टि

हैं—उन्होंने ईश्वर को देखा था। हिन्दूधर्म-गुरुओं की बहु-दर्शिता पूर्णतया प्रगट होकर गीता के रूप में हिन्दूधर्म को प्राप्त हुई है। गीता हिन्दूधर्म का प्रामाणिक ग्रन्थ है—उसे परखने की कसौटी है। हिंदू-समाजने यह मान लिया है कि जो गीता के विरोधी हैं वे हिंदू नहीं हैं। परन्तु यह अपूर्व ग्रन्थ मान्य होने पर भी आज हिंदू-समाज दुखी है। जो अपने को हिंदू कहते हैं, जो अपने को गीता का माननेवाला कहते हैं, वही आज पतित होकर धर्म कर्म में हीन बन गये हैं। बाइबिल भी एक महान् ग्रंथ है; परन्तु बाइबिल के होते हुए भी बाइबिल को माननेवाले ईसाई दुखी हैं, क्योंकि ईसाई-समाज बाइबिल के उपदेश पर अमल नहीं करता।

टाल्सटायने, बहुत आश्चर्यजनक अनुभव के साथ, बाइबिल के बारे में कुछ कहा है। उन्होंने अपनी आत्म-कथा में एक जगह लिखा है, कि जिस समय मेरा जीवन निराशामय हो गया था, जिस समय कोई भी दलील मुझे ज़िन्दा रहने के लिए सन्तोषजनक नहीं मालूम पड़ती थी, उसी समय ईसाईधर्म के सिद्धान्तों की ओर मेरा मन आकर्षित हुआ। वह (टाल्सटाय) एक के बाद एक धर्म और अनुष्ठान के द्वारा सान्त्वना प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे, परन्तु उनकी अन्तरात्मा 'यह नहीं' 'यह नहीं' की ध्वनि करती थी। आखिर, अपने नवीन जीवन-स्रोत के लिए उन्होंने बाइबिल पर नज़र डाली। परन्तु उन्हें जिस तत्व की ज़रूरत थी वह 'मिला' 'मिला' करने पर भी बाइबिल में मिलता नहीं था। जिन वाक्यों का जो अर्थ मिलने से उन्हें सन्तोष होता, वह बाइबिल की टीकाओं में उन्हें नहीं मिलता था। बाद को उन्हें निश्चय हो गया कि मेरी अन्तः प्रेरणा ही सत्य है, पहले के टीकाकारों का किया हुआ अर्थ असम्पूर्ण है। इस आग्रह के साथ उन्होंने मूल बाइबिल पढ़नी शुरू की। तब उन्हें मालूम पड़ा कि दुनियावी लोगोंने बाइबिल के वाक्यों से अपना मतलब सिद्ध करने के लिए किस प्रकार शब्दों और अर्थ को विकृत किया। फलतः उन्होंने बाइबिल को अपना सम्पूर्ण आधार बना लिया और कहने लगे कि मैं जिस चीज़ की तलाश में था वह मुझे मिल गई। ईसामसीह को हुए पौने उन्नीस सदियाँ हो गई थीं। टाल्सटाय कहने लगे, कि इतने समयतक ईसा के वचन अपने सच्चे अर्थ की प्रतीक्षा कर रहे थे। इन्होंने बाइबिल का मतलब समझाया है, मानों इतने दिनतक बाइबिल उन्हीं की प्रतीक्षा कर रही थी। बाइबिल में आई हुई ईसा की वाणी उन्होंने समझी; और उसीके अनुसार, ईसा के ही प्रेम-धर्मानुसार, जीवन-यापन का प्रयत्न करके वह ऋषि हुए।

हमारे देश में इस प्रकार ईश्वर की वाणी का संशय-रहित अनुसन्धान गांधीजी को गीता में प्राप्त हुआ है। वह गीता को अपना पथ-प्रदर्शक बनाकर जीवन पथ पर आगे बढ़ रहे हैं। उन्हें गीता में जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान मिला है। संशय में पड़े बिना धर्माचरण करने का मंत्र उन्होंने गीता में से जाना है और उन्होंने गीता के वचनों को हिन्दू-धर्म के मूल सूत्र के रूप में माना है। उपनिषद् और वेद को सब कोई नहीं समझ सकते, परन्तु हिन्दू-धर्म को समझने और उसपर आचरण करने के लिए गीता पथ-प्रदर्शक है। गांधीजीने गीता को जिस रूप में समझा है, उसी रूप में औरों को भी समझाया है। टाल्सटाय की भाषा में कहें तो, इस युग में गीता मानों गांधीजी की प्रतीक्षा कर रही थी। गांधीजी के हृदय में जो विश्वबंधुत्व का भाव है, उसे गीता से ही पूर्ण तृप्ति मिली है। उन्होंने गीता में समस्त धर्म का सार देखा है। इसी गीता को हिन्दू-धर्म का आधार मानें, तो अस्पृश्यता एक क्षण भी खड़ी नहीं रह सकती"। हिन्दू होकर अस्पृश्यता मानना और गीता के धर्म का अस्वीकार करना, वस्तुतः एक ही बात है। भारतवर्ष के सौभाग्य से ईश्वरी अनुग्रहवाले जो व्यक्ति धार्मिक जीवन के आचरण-द्वारा मनुष्य को देवता बनाने में सहायक हुए हैं, गांधीजी भी उन्हीं में से एक हैं; इसीलिए धर्म की ग्लानि होती देखकर हिन्दुओं को अपने गीता-विरोधी आचरण को धर्म मानते हुए देखकर वह व्यथित हुए हैं।

इस युग में, भारतवर्ष में, धार्मिक जागृति नहीं थी। धर्म-जागृति न होने ही के कारण यह जाति इतनी दुखी और पतित हो गई है। गांधीजीने समाज को धर्मभाव से चलाने का अनुसन्धान किया है, और गीता को याद करके, हिन्दुओं को उस रास्ते चलाने के लिए आज उन्होंने आमन्त्रण दिया है। इसके अन्दर किसी प्रकार की क्षुद्रता, किसी प्रकार की सकीर्णता और किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता को स्थान नहीं है। हिन्दू-धर्म का आचरण करने में अस्पृश्यता मुख्य बाधा है। इस बाधा को दूर करने के लिए, और हिन्दू-समाज से इस पाप का विनाश करने के लिए उन्होंने आमरण प्रतिज्ञा कर रखी है। या तो वह मरेंगे या अस्पृश्यता का नाश होगा। और अस्पृश्यता के नाश का अर्थ ही हिन्दू-धर्म की पुनः स्थापना है—अर्थात्, हिन्दूलोग सचमुच धर्मपरायण होने का मार्ग ग्रहण करें।

समाज धर्मपरायण बने, इसके सिवा और कोई बड़ा आशीर्वाद हो ही नहीं सकता। जहां सच्चा धर्माचरण है वहीं एक ही सपाटे में समस्त द्वेष, हिंसा और साम्प्रदायिकता का लोप होता है। इस विपुल धर्म-परायणता को वापस लाने के लिए ही गांधीजी आज तपस्या और भ्रमण कर रहे हैं।

बंगाली 'हरिजन' से] सतीशचन्द्र दासगुप्त

प्रवास के कुछ संस्मरण

विश्व की आशा

'ईसाई हरिजन' नाम सुनकर चौंकिएगा नहीं। हिंदू-धर्म को कलंकित करनेवाला यह पाप बड़ा संक्रामक है। यह बीमारी जैन, सिक्ख आदि हिंदू-धर्म से उद्भूत सम्प्रदायों तक ही नहीं, बल्कि यहाँ के इस्लाम एवं ईसाई मज़हबतक किसी-न-किसी रूपमें वह पहुँची है। हरिजन ईसाई धर्म के अंदर भी आज मौजूद हैं। दक्षिण भारत में इन ईसाई हरिजनों की काफी संख्या है। इन्हें भी प्रायः वही सब कष्ट हैं, जो हिंदू हरिजनों को हैं। बापू को एक स्थान पर उन्होंने जो मानपत्र दिया था, उसकी कुछ पंक्तियों से उनके कष्टों का पता लग जायगा। लिखा था:—

"पूज्य महात्माजी, हमारे ख्रिस्ती धर्म के अर्चना-मंदिर (Church) ने 'ईसाई अस्पृश्यता' नामका एक वर्ग अलग ही बना दिया है। इस वर्ग को बड़े-बड़े कष्ट भोगने

पढ़ रहे हैं। ये ईसाई अस्पृश्य न तो किसी के घर में पैर रख सकते हैं, न किसी के बर्तनों को छू सकते हैं। कुएँ से पानी भरने का भी अधिकार नहीं। ये लोग अपना-मन्दिर में सब के साथ ईश-प्रार्थना भी नहीं कर सकते। मन्दिरों में एक दीवाल खड़ी कर दी गई है, जिसकी ओट से हम अछूत लोग अलग बैठकर प्रार्थना कर सकते हैं! इन सब मर्यादाओं का अनजान में ज़रा भी उल्लंघन हुआ, कि लेने के देने पड़ गये। गालियाँ तो मिलती ही हैं, मार भी पड़ती है। और अदालतें भी हमारे विरुद्ध ऊँचे पादरियों को ही न्याय देती हैं। हमारा विश्वास है, कि हिन्दू अछूतों की तथा हमारी अवस्था में कोई अंतर नहीं है। हिन्दू हरिजन भाइयों को जो सामाजिक या राजकीय अधिकार आप दिलाना चाहते हैं, कृपया हमें भी उनसे वंचित न रखिएगा।"

यह मानपत्र तो एक बानगी है। ईसाई हरिजनोंने बापू के आगे कई जगह अपना दुखड़ा रोया। बापू का उन्हें सर्वत्र यही सांत्वनाप्रद उत्तर मिला करता है, कि :—

"तुम्हारी यह अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म की अस्पृश्यता से ही उपजी है। मैं तो पादरी लोगों से प्रार्थना करूँगा, कि वे समय की गति को देखकर अपना उचित कर्तव्य पालें। मेरा विश्वास है, कि हिन्दूधर्म में से प्रचलित अस्पृश्यता जड़मूल से नष्ट हो जाने के बाद तुम्हारी इस अस्पृश्यता के दूर होने में भी काफी मदद मिलेगी।"

इस अस्पृश्यता-निवारण आंदोलन के भीतर क्या विश्व का कल्याण नहीं छिपा हुआ है? अस्पृश्यता-निवारण के द्वारा समाज उच्च-नीच भावों को जब बापू मिटाने को तैयार हैं, तब क्यों न समस्त विश्व उनकी इस विशुद्ध धार्मिक प्रवृत्ति की ओर आशाभरी दृष्टि से निहारे?

बीस नहीं, बीस हज़ार

उसदिन कंबम से कोम्बाय जाते समय, दूर से केले के पेड़ों की कमानें व तोरण-पताकाएँ दिखाई दीं। रास्ते का चौराहा लोगों से ठसाठस भरा हुआ था। बापू की गाड़ी वहाँ से गुज़री, तो 'अल्लाहो अकबर' के नारे सुनाई देने लगे। एक मुसलमान भाईने एक मानपत्र के साथ छोटी-सी थैली बापू के हाथ में रखदी। मानपत्र में लिखा था:—

"पूज्य महात्मन्, गोकि आपको अपने हरिजन-कार्य में हमारी ज़रूरत मालूम नहीं होती होगी, तो भी आपकी विश्व-प्रेम-वृत्ति से हमें अपार खुशी हो रही है। इसलिए आपके प्यारे हरिजन-कार्य के लिए यह २८ मुसलमान-कुटुम्बों के यहाँ से एकत्र किये हुए २०) की छोटी-सी थैली आपको हम लोग भेंट करते हैं। उम्मीद है, कि आप हम पर हमेशा ऐसा ही प्रेम बनाये रखेंगे।"

बापूने बड़े प्रेम से थैली लेकर उन भाइयों के मानपत्र का इस प्रकार जवाब दिया:—"मेरे प्यारे मुसलमान भाइयो, आप यह न समझें, कि मुझे इस अस्पृश्यता-निवारण के कार्य में आप लोगों की ज़रूरत नहीं है। मैं तो इसलाम का उतना ही आदर करता हूँ, जितना कि हिंदू-धर्म का या पारसी, यहूदी अथवा ईसाई मज़हब का। सब धर्म-मज़हब एक ही सिरजनहार को पहिचानने के लिए इस दुनिया में आये हैं। किसी व्यक्ति को एक ही खुदा की संतान न मानना मैं पाप समझता हूँ। हिंदु-समाज को शुद्ध करने के लिए, यही सबब है कि, मुझे ईश्वर के हर बन्दे की सहायता की ज़रूरत है। अस्पृश्यता अगर दूर हो गई, तो विश्व-बंधुता की दौड़ में हमने एक क़दम आगे बढ़ा दिया, ऐसा माना जायगा। इसलिए आपके मुहब्बत-भरे यह बीस रुपये तो मेरे लिए बीस हज़ार रुपये से भी बढ़कर हैं।"

फिर एकबार 'अल्लाहो अकबर' की आवाज़ गूँज उठी। वन्देमातरम् के नारे भी सुनाई दिये। उस समय वहाँ जैसे कंचन बरस रहा था। तब इस विश्व-प्रेम पूरित आंदोलन को साम्प्रदायिक आंदोलन कहने की भूल कौन मतिमूढ़ करेगा?

राष्ट्रभाषा की व्यापकता

दक्षिण भारत में राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रेम तो जगह-जगह देखने में आया। हम हिंदीभाषा-भाषियों के लिए यह गौरव और अभिमान की बात है, कि आज लगभग चालीस हज़ार विद्यार्थी मद्रास प्रांत में राष्ट्रभाषा का अध्ययन कर रहे हैं। क़रीब छै लाख आदमी इधर हिंदी साधारणतया बोल लेते हैं। कहीं-कहीं तो पुरुषों की अपेक्षा देवियाँ राष्ट्रभाषा की अनन्य अर्चिकाएँ देखने में आईं। दक्षिणभारत-हिंदी-प्रचार-सभाने सचमुच बड़ा काम किया है। गाँवों में लगभग ६०० प्रचारक हिंदी-प्रचार का काम कर रहे हैं। जहाँ-जहाँ बापू के हिंदी भाषण का तमिल या मलयालम् में भाषांतर करने की आवश्यकता पड़ती थी, वहाँ इन प्रचारकोंने काफ़ी मदद दी है। एक निरंतर लगन तथा सेवा-भाव से काम करनेवाले इस संस्था के प्राण श्री हरिहर शर्मा और श्री सत्यनारायणजी पर राष्ट्रभाषा की उन्नति का श्रेय है। श्री हरिहरजी से उस दिन बिदा होते समय हम में से हर एक का गला भर आया। धन्य है उनकी यह कार्य-तत्परता और सेवा-भावना।

दामोदरदास मूँदड़ा

प्रांतीय कार्य-विवरण

कोचीन-त्रावणकोर

[नवम्बर—दिसम्बर, १९३३]

शिक्षा—कोचीन-त्रावणकोर-संघ के प्रबन्धाधीन निम्न-लिखित शिक्षा-संस्थाएँ हैं :—

नागरकोइल—२ प्राइमरी पाठशालाएँ; इनमें हरिजनों के २२ लड़के और १९ लड़कियाँ पढ़ती हैं। नागरकोइल की हरिजन-सेवक-समिति मिडिल स्कूल के १० तथा हाईस्कूल के ३ हरिजन विद्यार्थियों को दिन में भोजन भी देती है।

त्रिवंद्रम—निःशुल्क छात्रालय एवं दिवस-पाठशाला; इसमें ४८ हरिजन लड़के और १२ हरिजन लड़कियाँ रहती हैं। इनके अतिरिक्त १८ अन्य जातियों के भी विद्यार्थी रहते हैं।

पल्लाना—(अलेप्पी ज़िला) १ दिवस-पाठशाला; हरिजनों के १८ लड़के, ९ लड़कियाँ तथा अन्य जातियों के २५ विद्यार्थी इस पाठशाला में पढ़ते हैं। हरिजन बालकों को समिति की ओर से दोपहर को कलेवा भी दिया जाता है।

हरिपलकुड़ा—१ रात्रि-पाठशाला; बालिग मिलाकर कुल ३५ हरिजन विद्यार्थी पढ़ते हैं।

हरिपद—(अलेप्पी ज़िला) १ रात्रि-पाठशाला।

इन पाठशालाओं के अध्यापक पढ़ाने के अलावा संघ का अन्य कार्य भी करते हैं, जैसे हरिजन-बस्तियों में जाकर आरोग्यता की बातें समझाते हैं, और दुर्व्यसनों से दूर रहने के लिए हरिजनों से कहते हैं।

संगठन—अवेलिकारा, कंडनकरी, भट्टूर और पुल्लाद में स्थानिक हरिजन-सेवक-समितियाँ स्थापित की गईं। हरिपद के युवक-संघने हरिजनों के लिए एक रात्रि-पाठशाला चलाना आरंभ किया है।

धार्मिक—तमाम पाठशालाओं एवं त्रिवंद्रम के निश्शुल्क छात्रालय में हर सप्ताह भजन-कीर्तन होता है, जहाँ आसपास के मुहल्लों के हरिजन सम्मिलित होते हैं।

नागरकोइल का सवर्ण कार्यकर्ता सवर्णों की बस्तियों में नित्य भजन-कीर्तन करता है।

नव-संस्थापित अवेलिकारा की समितिने चार बार भजन कराये। इस समितिने एक भजन-मन्दिर बनवाने का निश्चय किया है, जो शीघ्र ही तैयार हो जायगा।

आर्थिक—त्रिचूर की समितिने कुछ हरिजन लड़कों को एक समाचार-पत्र के छापख़ाने में नौकर रख दिया।

हरिजनकुटा के कार्यकर्ताने कुछ हरिजन बालकों को गृहस्थों के यहाँ नौकरी दिलादी।

साधारण—त्रावणकोर-सरकारने, संघ की प्रार्थना पर ध्यान देकर त्रिवंद्रम् शहर में हरिजनों के मरघट के लिए ज़मीन का एक टुकड़ा दिया है। बिना अपने मरघट के बेचारों को बड़ा कष्ट उठाना पड़ता था। अन्य स्थानों में भी सरकार हरिजनों को यह सुविधा देनेवाली है।

'नींट' हरिजनों को, जो सबसे नीच समझे जाते हैं, क्विलन ज़िले में पीने के पानी का महान् कष्ट रहता है। कुएँ के लिए जगह तलाशी जा रही है। उपयुक्त जगह मिल जाने पर तुरन्त कुआँ खुदवा दिया जायगा।

तालुका-नायर-परिषद् में अस्पृश्यता-निवारण तथा मन्दिर-प्रवेश के पक्ष में प्रस्ताव पास किये गये।

पुल्लाद स्थान में, जो त्रिवंद्रम से ८६ मील के अंतर पर है, एक हरिजन-सम्मेलन हुआ। वहाँ प्रांतीय संघ के अध्यक्षने सभापति का पद ग्रहण किया।

कर्णाटक

[जनवरी, १९३४]

शिक्षा—सौंदागाँव (बेलगाँव ज़िला) में ग्रामवासियों की ओर से हरिजन-बच्चों के लिए एक दिवस-पाठशाला चल रही है।

हुलीकट्टी (बेलगाँव ज़िला) की पाठशाला में हरिजन और सवर्ण छात्र एकसाथ पढ़ते हैं।

ज़िला बीजापुर के जठ राज्य के अन्तर्गत जठ नगर में एक हरिजन-पाठशाला चल रही है। इसमें ८० लड़के पढ़ते हैं। अध्यापकों में दो अध्यापक हरिजन हैं। वहाँ हाईस्कूल में भी हरिजन विद्यार्थी पढ़ते हैं। सवर्ण और हरिजन छात्र सब हिले-मिले रहते हैं।

स्वच्छता और आरोग्यता—श्रीयुत डी० गोविन्ददासने बिल्लारी ज़िले के उर्वाकोंडा, यकर, अल्लूर, चिन्ताकोंडा आदि स्थानों के हरिजनों से मुर्दार मांस व शराब छोड़ देने को कहा।

हुसपेट (बिल्लारी) में एक स्नान-केम्प फिर से खोला गया, जहाँ ६ और १२ बरस के बीच के हरिजन-बच्चे गरम पानी से नहलाये जाते हैं। इसके लिए वहाँ की म्यूनिसिपैलिटीने १००) मंज़ूर किये हैं।

साधारण—बेलगाँव ज़िले के हुंकीमाल और बोनकट्टी स्थानों में एक ही तालाब से हरिजन और सवर्ण पानी भरते हैं।

श्रीयुत ब्रह्मचारी रामतीर्थने बेलगाँव ज़िले के अन्तर्गत चिकोडी, कोठाली, ममकापुर, एकसंबा और सडलगा में प्रचार-सभाएँ कीं। सवर्णोंने ९५ फ़ीसदी अस्पृश्यता-निवारण के पक्ष में राय दी।

बीजापुर ज़िले के जठ राज्य में श्रीयुत कारख़ानिसने तीन सभाएँ कीं—एक तो शिव-मन्दिर में हुई और दो हरिजन-मुहल्लों में। शिक्षा, स्वच्छता और देवदासी-प्रथा पर १२५ हरिजनों से कारख़ानिस महोदयने दिल खोलकर बातें कीं।

चिंताकोंडा में श्री गुरु-भजन-मन्दिर की ओर से हरिजन-बस्तियों में ७ दिनतक भजन-कीर्तन हुआ।

मकर-संक्रान्ति के दिन हरिजन बच्चों को मिठाई बाँटी गई। श्रीयुत गौरीशंकर डीठाने निपाणी-आश्रम में जाकर २४ गज़ खादी दी। हरिजनों को आश्रम में भोजन भी कराया गया।

उसी दिन 'हलदी-कुंकुम' भी हुआ, जिसमें सवर्ण स्त्रियोंने हरिजन स्त्रियों को तिल-गुड़ दिया।

चिंताकोंडा में भजन-सप्ताह के अन्त में २०० हरिजनों को प्रसाद, नारियल का तेल और साबुन समिति के मन्त्रीने दिया।

श्रीयुत जे० सिद्धलिंगप्पाने अपने पुत्र के विवाह के उपलक्ष में अल्लूर के गांधी-हरिजन-छात्रालय को ७५) प्रदान किये।

जठ (बीजापुर) के पुलिस-विभाग में ३ हरिजन कांस्टेबिल हैं, मगर उनके साथ बराबरी का बरताव नहीं किया जाता है।

सार्वजनिक वाचनालय में भी वहाँ हरिजन नहीं जा सकते।

जठ में देवदासी-प्रथा अब भी मौजूद है। मुर्दार मांस जठ के हरिजन छोड़ते जा रहे हैं। वहाँ के चमारोंने शराब छोड़ दी है। बहुत-से चमार तो मांस से भी परहेज़ रखते हैं।

महाकोशल

[नवम्बर, दिसम्बर, १९३३]

शिक्षा—छिंदवाड़ा की हरिजन-सेवक-समितिने ४)-४) की छात्रवृत्तियाँ दो हरिजन विद्यार्थियों को दीं।

छिंदवाड़ा में २ रात्रि-पाठशालाएँ और खोली गईं।

हरसूद में भी एक १ रात्रि-पाठशाला खोली गई।

जबलपुर में हरिजनों के लिए एक वाचनालय खोला गया।

साधारण—हरदा में कंजरों के मुहल्ले में सत्यनारायण की कथा कराई गई, जिसमें क़रीब १०० हरिजन भाई सम्मिलित हुए।

जबलपुर में भी विभिन्न हरिजन-बस्तियों में चार कथाएँ हुईं, जिनके द्वारा उन्हें धर्मोपदेश किया गया।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि　　“आत्मवत् सर्वभूतेषु”　　Reg. No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
‘हरिजन-सेवक’
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २]　　दिल्ली, शुक्रवार, १६ मार्च, १९३४.　　[संख्या ४

विषय-सूची

बापू का पुण्य-प्रवास

[१६]

[२४ फ़रवरी से २ मार्च, १९३४ तक]

निर्देशिका

२४ फ़रवरी

मरकरा से मंगलोर, ८६ मील, मोटरकार से। सम्पाजी: धन-संग्रह ३५।); सुलिया: धन-संग्रह ५१; पुत्तूर: हरिजन-बस्ती का निरीक्षण, जनता का मानपत्र, धन-संग्रह ५८४॥=)।, विद्यार्थियों की थैली २०॥=)॥; उप्पिनगड़ी: धन-संग्रह ५१), विट्ठलगबका: धन-संग्रह ५५); कल्लड़का. धन-संग्रह १०॥); पानी मंगलोर: धन-संग्रह ८५=); बँटवाल: धन-संग्रह १७५); अरकुल: धन-संग्रह १२); अड्यार: धन-संग्रह ४०); मंगलोर: मोगवीर-समाज की थैली ११९), महिलाओं की थैली २३५), सार्वजनिक सभा, जनता की थैली १००१), ज़िला-बोर्ड की थैली ३०), म्यूनिसिपैलिटी, ज़िला-बोर्ड एवं लोकलबोर्ड के मानपत्र। मंगलोर में धन-संग्रह २१०९=)॥।

२५ फ़रवरी

मंगलोर: हरिजन-बस्ती का निरीक्षण; सार्वजनिक मन्दिर की आधार-शिला रखी; विद्यार्थियों की सभा तथा थैली १२०); कनारा हाईस्कूल के भूतपूर्व विद्यार्थियों की थैली १२०); आयुक्त विट्ठलभाई के चित्र का उद्घाटन। मंगलोर से मुलकी, २८ मील, मोटर से। गुरुपुर: धन-संग्रह ७५।); बाजपी और यक्कार में धन-संग्रह ९१); काटिल और केनांगोली में धन-संग्रह १७५॥=)११; मुलकी: सार्वजनिक सभा, मानपत्र और थैली ५०१); कार्यकर्ताओं की सभा। मुलकी से उडुपी, १८ मील, मोटर से। पदुबिदरी: धन-संग्रह ७९); काउप: धन-संग्रह १००); कटपाडी: धन-संग्रह ५५५।-)५। उद्यावर: धन-संग्रह ५५।-)५। उडुपी: खादी-भण्डार खोला, सार्वजनिक सभा। मानपत्र, धन-संग्रह १२४०)। उडुपी से कुंदपुर, २४ मील, मोटर से। ब्रह्मावर: धन-संग्रह २२१)। कुंदपुर: सार्वजनिक सभा, थैली १००५), हरिजनों की थैली १॥=)। मुलकी में कुल धन-संग्रह ८१७) और उडुपी में १८६८॥)१।

२६ फ़रवरी

कुंदपुर: मौन-दिवस

२७ फ़रवरी

कुंदपुर से करवर; नाव से तुवावली; भटकल: धन-संग्रह ४७); होनावर: धन-संग्रह ३८-)। तादरी: धन-संग्रह ॥=)।

२८ फ़रवरी

करवर: सार्वजनिक सभा, मानपत्र, थैली ५७९॥=)। करवर से अंकोला, २१ मील, मोटर से। बिनागी: धन-संग्रह २१)'; चेंडिया: धन-संग्रह ३३)। अंकोला: सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह १९०।)।; हरिजन-बस्ती का निरीक्षण। अंकोला से कुमटा, २१ मील, मोटर से। हिरागुट्टी: धन-संग्रह १५)। मातंगिरि: धन-संग्रह ५।); कुमटा: सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ७९३।-)॥; कुमटा से सिरसी, ३८ मील, मोटर से। अमीनपल्ली: धन-संग्रह १२-)॥; हेगडी: धन-संग्रह ७१-)१०। सिरसी: सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ६२१॥-)५

१ मार्च

सिरसी से सिद्धपुर तथा वापसी, ४४ मील, मोटर से। कनसूर आदि में धन-संग्रह ७९॥-)११। सिद्धपुर: सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ३३१।) (इसमें महिलाओं की भी ५५।=)११ की थैली शामिल है।); श्री सुब्रह्मण्य का मन्दिर हरिजनों के लिए खोला; हरिजन-बस्ती का निरीक्षण। सिरसी से हावेरी, ४६ मील, मोटर से। दुमनकोप, ईसालुर, इकावी, समासजी आदि में धन-संग्रह ७८=); ऊरहर: धन-संग्रह ३३२॥=)।; देवीहोसुर: धन-संग्रह २१४); हावेरी: वीरशैवमठ का निरीक्षण; हरिजन-पाठशाला खोली; सार्वजनिक धर्मशाला की आधार-शिला रखी। हावेरी से ब्याड्गी और वापसी, १८ मील, मोटर से। मोतीबिन्नूर: धन-संग्रह ५७।-)। ब्याड्गी: सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ७३२)। हावेरी: सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ९००); महिलाओं की थैली १०१)। मुर्गीमठ: धन-संग्रह १०१)।

२ मार्च

हावेरी से दावनगिरि रेल से, ४४ मील। रानीबिन्नूर: धन-संग्रह ५०६=)। हरिहर: धन-संग्रह ७०॥-)७। दावनगिरि: हरिजन-बस्ती का निरीक्षण; महिलाओं की सभा तथा धन-संग्रह ११२); आदि-कर्णाटक-छात्रावास की आधार-शिला रखी; सार्वजनिक सभा तथा म्युनिसिपैलिटी एवं ज़िला-बोर्ड के मानपत्र; कुल धन-संग्रह ८०१।)॥; दावनगिरि से हरपनहल्ली ३२ मील, मोटर से। दुग्गति: धन-संग्रह २०=); कुलवली: धन-संग्रह ११७); चिगटीपल्ली: धन-संग्रह १७०); हरपनहल्ली: सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ४८३=)॥; हरपनहल्ली से कोत्तुर, १८

मील : सार्वजनिक सभा; दीन-सेवाश्रम की आधार-शिला रखी। धन-संग्रह २२४)॥; कोलुर से संदूर ३४ मील, मोटर से। कुडिलगी : धन-संग्रह ५६॥)४; कनविहली : धन-संग्रह १०१)। संदूर : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ४५२=)८।

मरकरा से मंगलोर

२४ फ़रवरी को सवेरे ७ बजे मोटर से गांधीजी कुर्ग की राजधानी मरकरा से रवाना हुए और शाम को ५ बजे मंगलोर पहुंचे। यह ८६ मील की यात्रा थी। पश्चिमी घाट से ३८०० फुट नीचे उतर आये। रास्ते में शायद ही कोई ऐसा गाँव पड़ा हो, जहाँ सड़क पर लोग क़तार बांधे न खड़े हों और गांधीजी को जहाँ थैली या उपहार में दूसरी चीज़ें न मिली हों। रास्ते के ऐसे कार्य प्रोग्राम के बाहर होते हैं। यद्यपि ये कार्य लोक-जागृति के बड़े सुंदर चिह्न हैं, पर गांधीजी के आराम में तो बड़ी ही बाधा पहुँचाते हैं। बात यह है, कि अत्यधिक कार्य रहने के कारण सोयें वे चाहे जितनी देर से,पर २ और ३ बजे के बीच में तो अवश्य ही उठ बैठते हैं। इसलिए उस नींद की पूर्ति वे रास्ते में मोटर पर कर लिया करते हैं। जब ठक्कर बापा ने कहा कि इस यात्रा में आपको १६ मील की नींद मिल जायगी, तो वह बड़े खुश हुए। पर बापा का हिसाब तो हमेशा ही गड़बड़ हो जाता है, और उनके १६ मील के बीच में कई जगह प्रोग्राम से अतिरिक्त ऐसे कार्य आ जाते हैं, जिससे गांधीजी अपनी नींद का बकाया पूरा नहीं कर पाते।

सब से पहले, कार्यक्रम के अनुसार, सोंपाजी गाँव में ३५) की थैली भेंट की गई। दूसरा स्थान सुलिया था, जहाँ एक फूलमाला को गांधीजीने ५) में नीलाम किया। थैली के अलावा भेंट में और भी चीज़ें मिलीं। गांधीजीने वहाँ कहा, "कनाड़ा तो उपहारों के लिए एक अटूट खान है।" वहाँ छोटा-सा भाषण भी किया, जिसमें कहा, कि अस्पृश्यता के कलंक को अवश्य ही धो डालना चाहिए, और मनुष्यमात्र के साथ, सब को एक ही ईश्वर की संतति समझकर, समानता का बरताव करना चाहिए। इस संसार में न कोई ऊँचा है, न कोई नीचा। हरिजनोंने वहाँ कुछ नारियल भेंट किये। गांधीजी चलते समय कहते गये, कि वे नारियल सवर्ण बच्चों को बाँट दिये जायँ।

पुत्तुर में

सार्वजनिक सभा में भाषण करने के पश्चात् पुत्तुर में गांधीजीने भोजन किया और थोड़ा आराम भी। वहाँ सभा में एक लड़की गांधीजी को फूलमाला पहनाने आई थी। उन्होंने कहा, 'मुझे सिर्फ़ फूल देकर ही टालना चाहती हो क्या? तुम तो मुझे अपने कुछ ज़ेवर उतारकर दो।' उसने अंगूठी उतारने की चेष्टा की, पर वह बहुत ही कसी हुई थी। इससे उस वक़्त तो न उतार सकी, पर बाद को उसने वह अँगूठी गांधीजी को देदी। वहीं एक और बढ़िया अँगूठी मिली। गांधीजीने इसपर कहा, 'कर्णाटक तो मुझे हमेशा ही बढ़िया-बढ़िया चीज़ें देता है।' जो चावल मिले थे, वह हरिजनों को बाँट दिये गये। लड़कियोंने वहाँ एक मराठी गीत गाया, और स्थानीय हिंदी-प्रेमी-मंडल की ओर से हिंदी में एक मानपत्र दिया गया। खेद की बात है, कि तालुका का मानपत्र अंग्रेज़ी में था, और गांधीजी का भाषण कानड़ी भाषा में समझाने के लिए जो सज्जन चुने गये, वह हिंदी नहीं जानते थे, इससे गांधीजी को बाध्यतः अंग्रेज़ी में ही बोलना पड़ा। भाषण में उन्होंने कहा:—

"आपके कर्णाटक देशने तो मुझे बहुत-से ज़ेवर और थैलियाँ बटोरने का आदी बना दिया है। ज़ेवर देने में आपके कर्णाटक को मेरे ख़याल में आजतक कोई प्रांत मात नहीं दे सका। आपने बड़ा अच्छा आरंभ किया है। आप भले ही मानते हों, पर मैं तो आपकी थैली को तुच्छ नहीं मानता। आपने ५९०) हरिजनों के लिए और १०१) बिहार के लिए दिये हैं। मैं नहीं जानता, कि आपका ठोस थैली से क्या मतलब है। मेरे विचार से तो आपकी यह थैली ठोस है। मुझे मालूम है, कि आप लोग कुछ बहुत धनी नहीं हैं। आपने कहा है, कि 'हम लोग, आपके चरणों पर सोना-चांदी तो नहीं, पर अपना हृदय अवश्य चढ़ाते हैं।' यह तो केवल शिष्टाचार की बात हुई। और अपने पैरों पर आपके हृदय का मैं क्या करूँगा? मैं तो आपके हृदय को अपने सिर पर चाहता हूँ। मैं तो आपका हृदय-परिवर्तन देखना चाहता हूँ। यह हो जाय, तो फिर न मुझे मानपत्रों की ज़रूरत रहे और न थैलियों की। हृदय परिवर्तन ही इस आंदोलन की सफलता की चाभी है। अच्छी बात है, आपके कहे अनुसार मैं आपका हृदय लेकर जाऊँगा। अगर आपने हरिजन-सेवा न की, तो मैं आपको आड़े हाथों लूँगा। हरिजन-सेवा का मार्ग बड़ा ही सरल है। हरिजनों के साथ अपने सगे भाई-बहिनों की तरह बरताव कीजिए। बस, इसमें सब कुछ आ जाता है। मैं अभी एक हरिजन-बस्ती देखकर आया हूँ। आपने अगर हरिजनों के साथ अपने सगे भाई-बंधुओं की तरह बरताव किया होता, तो उन्हें गाँव के बाहर इस बुरी तरह से न निकाल दिया होता। शहर और उनकी बस्ती के बीच में वह कितनी बुरी खाई है। बरसात में, बेचारों की क्या हालत होती होगी। उनके बच्चे जैसे बिना धनी-धोरी के हों। शायद ही उनके बाल कभी साफ़ किये गये होंगे। मैं चाहता हूँ, कि इस सभा में जो नौजवान आये हुए हैं, वे उस हरिजन-बस्ती की काया पलट दें। इसमें लगता ही क्या है, थोड़ा-सा समय ही तो लगेगा। यह हरिजन-सेवा ही आपके हृदय-समर्पण की सच्ची कसौटी होगी।

अंत में, दो शब्द बिहार के पीड़ितजनों के संबंध में। भूकंप-पीड़ितों को समय-समय पर कुछ-न-कुछ सहायता आप भेजते ही रहिएगा। मैं ९ मार्च को बिहार जा रहा हूँ। इसलिए अच्छा हो, कि मैं आपकी तरफ़ से वहाँ बिहारी भाइयों को यह आश्वासन दे सकूँ, कि तुम्हारे दुःख में तुम्हारे कर्णाटकी भाई भी दुखी हैं।"

बँटवाल

रास्ते में विट्ठलगाबका, कलबका आदि गाँवों से थैलियाँ लेते हुए गांधीजी बँटवाल पहुँचे। बँटवाल के एक भाई सदा ही यज्ञार्थ कातना करते हैं। उन्होंने अपने हाथ के कते सूत की कुछ खादी गांधीजी को भेंट की। बँटवाल की सभा में गांधीजीने लोगों को यह सन्देश दिया:—

"आपने जब कि थैलियाँ और भेंट में इतनी अधिक चीज़ें मुझे दी हैं, तो सचमुच अब मुझे कोई सन्देश देने को नहीं रहा। पर यदि आप मुझ से कोई सन्देश चाहते ही हैं,तो आप यह हरगिज़ न समझें, कि ये थैलियाँ इत्यादि देकर आप अपने कर्तव्य से छुट्टी

पा गये । यह प्रवृत्ति आत्म-शुद्धि की है, इस भावना से आपके कर्त्तव्य का आरंभ होता है । इसलिए अपने हृदय पर लगी हुई अस्पृश्यता की कलंक-कालिमा को आप धो ही डालिए । इसका यह अर्थ हुआ, कि आप उच्च-नीच के भेद-भाव दूर कर दीजिए । कोई व्यक्ति हमसे नीचा है, इस कल्पना से हमारी आत्मा उठती नहीं, बल्कि गिरती है ।"

बँटवाल और मंगलोर के बीच में अरकुल और अड्यार में थैलियाँ मिलीं । शाम को ५ बजे हमलोग मंगलोर पहुँचे ।

मद्य-निषेध व नमक

मंगलोर में सबसे पहले 'ज्ञानोदय-समाज'ने थैली और मान-पत्र दिया । यह समाज मछुओं की मोगवीर जाति में मद्य-निषेध का ख़ासा अच्छा काम कर रहा है । अपने मानपत्र में उन्होंने कहा, कि मद्यपान से मोगवीर जाति का भयंकर पतन हो रहा है और उधर नमक के भारी टैक्सने तो उन्हें बरबाद ही कर दिया है । आप जानते होंगे कि मछलियों का धन्धा करनेवालों को नमक की कितनी अधिक आवश्यकता रहती है । इस मानपत्र के जवाब में गांधीजीने कहा—

"मैं ख़ुद एक मछुओं के गाँव का निवासी हूँ, इससे उनकी हालत को मैं अच्छी तरह जानता हूँ । ये लोग दारू के बड़े पीनेवाले होते हैं । मुझे ख़ुशी है, कि आप लोग इस दुर्व्यसन के दूर करने में लगे हुए हैं, और कुछ हदतक आपको इसमें सफलता भी मिली है । मद्य-निषेध का प्रश्न बड़ा जटिल है । फिर भी आपको हिम्मत नहीं हारनी चाहिए । हाँ, एक बात कीजिए । लोगों को ख़ाली न बैठने दीजिए । उन्हें किसी-न-किसी काम में लगाये रहिए । जब कोई काम-धंधा नहीं रहता, तो वे शराब पियेंगे ही । मैं जानता हूँ, कि मछुओं को नमक की कितनी अधिक ज़रूरत पड़ती है । एक-न-एक दिन नमक के प्रश्न को हम हल करके ही छोड़ेंगे । मुझे इसमें ज़रा भी निराशा नहीं हुई है । कोई भी लोकोपकारी कार्य अगर सचाई के साथ किया जाय, तो अन्त में उसमें अवश्य ही सफलता मिलती है ।"

दलितवर्ग का मिशन

गांधीजीने मंगलोर में दलितवर्ग-मिशन का भी निरीक्षण किया । यह संस्था बालक-बालिकाओं का एक अपर प्राइमरी स्कूल ख़ास मंगलोर में, और दो लोअर प्राइमरी स्कूल, एक वयस्क-पाठशाला तथा एक छात्रावास अन्यत्र चला रही है । बच्चों का छोटा-सा बाग़ भी गांधीजीने देखा । लड़कोंने कानड़ी भाषा में एक स्वागत-गान गाया । बच्चों को खादी-पुरस्कार देने के बाद गांधीजीने उनसे कहा—

"मुझे आशा है, कि जब तुम लोग बड़े होगे, तो अपने को इस सेवा-संस्था के उपयुक्त साबित करोगे । मुझे यह कल ही मालूम हुआ, कि यह मिशन हिंदुस्तान में शायद सबसे पुराना है और इसकी स्थापना श्रीयुत के० रंगरावने की थी । स्व० के०-रंगराव की आत्मा सदा आपका पथ-प्रदर्शन करती रहे । मैं हर तरह से इस संस्था की सफलता चाहता हूँ ।"

मंगलोर की महिलाएँ

महिलाओं की सभा में बालिकाओंने एक मराठी गीत गाया, और २३५) की एक थैली दी गई । महिला-प्रगति की प्राण-स्वरूपा श्रीमती आनंदीबाईने हिंदी में मानपत्र पढ़ा । गांधीजीने मानपत्र का उत्तर देते हुए कहा—"मंगलोर की महिलाओं की सभा में आने का यह मेरा पहला ही अवसर नहीं है । कम-से-कम दो ऐसी सभाओं का तो मुझे स्मरण है, जहाँ बहिनोंने मुझे इतने अधिक गहने दिये थे, कि मैं उन्हें लेते-लेते थक गया था । अब यह देखना है, कि आप लोग हरिजनों के लिए क्या करती हैं । सिर्फ़ २३५) से मुझे सन्तोष होने का नहीं । हिंदू-समाज पर लगा हुआ अस्पृश्यता का दाग़ अगर धोना है, तो बहिनों को सबसे आगे आना होगा । भगीरथ-प्रयत्न बहिनें ही कर सकेंगी । त्याग और तप की पात्रता पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में ही अधिक होती है, अतः आत्मशुद्धि की प्रवृत्ति में आपकी सबसे बड़ी आवश्यकता है । ऐसी एक भी माता को मैं नहीं जानता, जो अपने बच्चों में भेदभाव रखती हो । फिर जगत्पिता परमात्मा अपनी सन्तान में यह भेद-भावना कैसे रख सकता है, कि एक संतान स्पृश्य है और दूसरी अस्पृश्य? निश्चय ही शास्त्रों में अस्पृश्यता के लिए कोई आधार नहीं है । धर्म-ग्रन्थ कभी अधर्म का उपदेश नहीं कर सकता । 'अद्वैत' ही वेदों का मूल सिद्धान्त है, जिसके अनुसार मनुष्य-मनुष्य में कोई अंतर हो ही नहीं सकता । इसलिए मैं आशा करता हूँ, कि आप किसी मनुष्य को अछूत नहीं मानेंगी और हरिजनों को अपने सगे भाई-बहिनों की तरह समझेंगी । मैं अभी श्री रंगराव की हरिजन-पाठशाला देखकर आ रहा हूँ । मुझे अगर यह न बतलाया गया होता, कि वे लड़के हरिजन हैं, तो मुझे कभी इस बात का पता न चलता । उन बच्चों में और जो यहाँ बैठे हैं इनमें, मुझे कोई फ़र्क़ दिखाई नहीं देता । किसी को अपने से नीच समझना एक अक्षम्य पाप है । ईश्वर से मेरी प्रार्थना है, कि आप इस पाप की भागी न बनें ।" इसके बाद गांधीजीने उस देश के भूकंप-पीड़ितों के लिए सहायता की अपील की, जिस देश की धूल वैदेही सीता माता तथा बुद्ध भगवान् के चरणों से पवित्र हुई थी ।

महिलाओंने रुपये-पैसों और आभूषणों से सभा-मंच को पूर दिया । रुपयों की टकसाल-सी लग गई । ठक्कर बापा की बड़ी-बड़ी जेबों में ज़ेवरात समाते नहीं थे ।

सार्वजनिक सभा

मंगलोर की जनताने सार्वजनिक सभा में गांधीजी को १००१) की थैली दी । भाषण में गांधीजीने कहा—"सिर्फ़ थैलियों से—चाहे वे कितनी ही बड़ी हों—अस्पृश्यता दूर होने की नहीं । चन्द लखपती एक करोड़ रुपये भी मुझे दे दें, तब भी यह अस्पृश्यता का काला दाग़ छूट नहीं सकता । यह मैल तो सवर्ण हिन्दुओं के हृदय-परिवर्तन से ही साफ़ हो सकेगा । इस दान का तभी लाभ है, जब यह दाता के हृदय-परिवर्तन का चिह्न हो । पर जबतक हरिजनों के लिए मन्दिर न खुलेंगे, तबतक यह सुधार अधूरा ही समझा जायगा । इसलिए मन्दिरों में जाने का जो अधिकार आज सवर्ण हिन्दुओं को प्राप्त है, वही सब अधिकार हिन्दू-समाज के अभिन्न अंग हरिजनों को भी मिल जाना चाहिए । हरिजनों की आर्थिक उन्नति चाहे जितनी की जाय, पर जबतक उन्हें मन्दिर-प्रवेश का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ, तबतक उन्हें सवर्ण हिंदुओं की बराबरी का दरजा

दाखिल होने का नहीं। मगर मन्दिर-प्रवेश जबरदस्ती तो कराया नहीं जा सकता। यह प्रश्न तो सवर्ण हिंदुओं का लोकमत तैयार करने से ही हल हो सकेगा। मुझे उम्मीद है, कि आप इस दिशा में लगातार प्रयत्न करते रहेंगे।" इसके बाद गांधीजीने उपहार में मिली हुई चीज़ों का नीलाम किया।

मंगलोर के हरिजन

२५ फ़रवरी को गांधीजीने मंगलोर की एक हरिजन-बस्ती देखी। यहाँ की म्यूनिसिपैलिटी के हरिजनोंने हड़ताल कर दी थी, पर उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। इससे बेचारे बेकारी के मारे तभी से कष्ट में हैं। गांधीजीने कहा, कि स्थानीय हरिजन-सेवक-संघवाले उन बेरोज़गार हरिजनों को कोई ऐसा गृह-उद्योग सिखावें, जिससे वे अपनी जीविका तो चला सकें।

कनाड़ा हाई स्कूलमें

हरिजन-बस्ती से गांधीजी कनाड़ा-हाईस्कूल देखने गये। यहाँ उन्होंने एक सार्वजनिक मन्दिर की नींव रखी, और स्व० विट्ठल भाई पटेल के चित्र का उद्घाटन किया। यहाँ के विद्यार्थियों से गांधीजीने कहा, "थैली तुम लोगोंने दूसरी जगह के विद्यार्थियों के मुकाबले में ज़रूर छोटी दी है। पर ख़ैर, इसमें मैं मीन-मेख नहीं निकालता। क्योंकि कर्णाटक को मैं कृपण देश नहीं समझता। उदारता में कर्णाटक हमेशा आगे रहा है। इसलिए इसमें मुझे सन्देह नहीं, कि तुमने परिस्थितियों को देखते हुए अपनी शक्तिभर प्रयत्न किया है। तुम्हें गर्व है, कि तुम्हारे साथ दो-तीन हरिजन विद्यार्थी पढ़ते हैं। पर यह तो ऊँट के मुँह में जीरे के समान है। क्यों न ऐसे स्कूल में सैकड़ों हरिजन विद्यार्थी पढ़ें? मैं अभी एक हरिजन का मकान देखकर आ रहा हूँ। बड़े साफ़-सुथरे और राजाओं के रहने लायक उसके बड़े-बड़े कमरे थे। गृहस्वामिनी बड़ी योग्य और चतुर थी। उसने मेरे प्रश्नों के बड़े अच्छे उत्तर दिये। इससे हरिजन बुद्धि तथा योग्यता में किसी से कम नहीं हैं। पर उन बेचारों को अपनी बुद्धि तथा योग्यता के विकास का कभी अवसर ही नहीं मिलता। वे बुरी तरह से दबा दिये गये हैं। तुम लोगों के अध्यापक भी हरिजन-सेवा-प्रेमी हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ, कि तुम लोग बस्तियों में जाकर हरिजन लड़कों को अपने स्कूल में दाखिल कराओ। तुम लोग चाहो तो सारी स्थिति को बाएँ हाथ से पलट सकते हो। हरिजन-सेवा से तुम्हारे जीवन का पुनर्निर्माण तथा तुम्हारी बुद्धि में विकास-शक्ति का संचार होगा।"

मंगलोर से मुलकी

मंगलोर से मुलकी जाते हुए रास्ते में गुरुपुर, बाजपी, येक्कर, काटिल और केंनिगली में गांधीजी को थैलियाँ दी गईं। मुलकी में मानपत्र और ५०१) की थैली मिली। मानपत्र के अंतिम वाक्य पर, गांधीजीने अपने भाषणमें कहा—"आप लोगोंने ईश्वर से प्रार्थना की है, कि हरिजनों की शक्ति से हिंदु-जाति मज़बूत हो जाय। अगर इसका यह अर्थ है, कि हरिजनों के प्रति न्यायोचित व्यवहार करने से हिंदू-धर्म शुद्ध हो जाय और नैतिक दृष्टि से वह ऊँचा उठ जाय, तो मैं आपकी इस प्रार्थना में संपूर्ण अन्तःकरण से सम्मिलित हो सकता हूँ। लेकिन अगर आप इसका यह अर्थ लगा रहे हों, कि हरिजनों का उद्धार करने से बलहीन सवर्ण हिंदुओं की ताकत बढ़ जायगी, तो आपकी प्रार्थना में शामिल होना मेरे लिए असंभव है। ऐसी कोई बात मेरे मन में कभी आई ही नहीं। इससे संगठन की शक्ति पर निर्भर करनेवाले किसी आंदोलन में मैं कभी पड़नेवाला नहीं। मेरा यह पक्का विश्वास है, कि पाशविक बल के सहारे किसी भी धर्म का पोषण नहीं हो सकता। जो हाथ में तलवार लेते हैं, उनका नाश हमेशा तलवार से ही होता है। धर्म की रक्षा तो उसके अनुयायियों के सदाचरण से ही होती है। इसीलिए मैं बारबार कह रहा हूँ, कि यह प्रवृत्ति आत्मशुद्धि की प्रवृत्ति है। अगर हम हरिजनों की शारीरिक शक्ति के द्वारा अपने जातीय संगठन की बात एक क्षण के लिए भी सोचेंगे, तो हम नष्ट हो जायँगे।" मुलकी में भी गांधीजीने नमक-कर और मद्य-निषेध पर अपने विचार प्रगट किये। भोजनोपरांत, कार्यकर्त्ताओं की सभा हुई और उसके बाद गांधीजी उडुपी के लिए रवाना हुए। रास्ते में इन्हें नेत्रवती नदी पार करनी पड़ी और पदबिदरी और कटपाडी गाँवों में थैलियाँ भी मिलीं।

उडुपी में

यह माध्वसम्प्रदाय का मुख्य तीर्थस्थान है। हरिजन सन्त कनकदास यहीं हुए थे। यहाँ के सुप्रसिद्ध कृष्ण-मन्दिर में जब भक्त कनकदास को पुजारियोंने नहीं जाने दिया, तो भगवान् की मूर्ति का मुँह आप-से-आप अपने भक्त की ओर मुड़ गया। इस भक्ति-चमत्कार की यादगार में मंदिर की दीवार में एक छोटी-सी खिड़की बनादी गई है, जो आज भी कनकदास की खिड़की के नाम से प्रसिद्ध है।

बड़ी धारासभा के भूतपूर्व सदस्य खानबहादुर अब्दुल्ला साहबने गांधीजी का यहाँ स्वागत किया। यह कच्छ-निवासी हैं, पर इधर कई साल से उडुपी में रह रहे हैं। यहाँ गांधीजीने एक खादी-भण्डार खोला। सभा में १२४०) की थैली मिली। भाषण देते हुए उन्होंने कहा, कि उडुपी-वासियों को ऐसा लोकमत तैयार कर देना चाहिए, कि जिससे यहाँ का सुप्रसिद्ध मन्दिर हरिजनों के लिए खोल दिया जाय। मन्दिर में जानेवाले दर्शनार्थियों के ख़ासे अच्छे बहुमत के बिना कोई भी मन्दिर नहीं खोलना चाहिए। हरिजन-सेवा के सम्बन्ध में उडुपी को तो समस्त कर्णाटक प्रान्त में एक आदर्श स्थान बन जाना चाहिए।"

निरुपमा

उडुपी में हिन्दी-प्रेमी-मण्डल का मानपत्र निरुपमा नाम की एक छोटी-सी लड़कीने पढ़ा। गांधीजीने उससे कुछ आभूषण माँगे। उसने अपनी चूड़ियाँ और हार उतारकर दे दिये। पर उसका चेहरा कुछ उतर-सा गया। इसलिए गांधीजीने उसके गहने उसे लौटा दिये। निरुपमा के माता-पिताने उसका गहनों का मोह दूर करने की इच्छा से उसे त्याग के लिए तैयार तो काफ़ी कर रखा था, पर अन्त में वह डिग गई। जी तो करता था, पर मोहने जकड़ रखा था। गांधीजीने यद्यपि बारबार उसे उसके ज़ेवर लौटा दिये, पर उसके दृढ़निश्चयी माता-पिता को आख़िरकार सफलता मिल ही गई। निरुपमाने राज़ी से गहने दे दिये। वह दो दिन बराबर गांधीजी के साथ रही। यहाँ के स्वयंसेवकोंने गांधीजी से केवल एक 'वाक्य' में सन्देश माँगा, और उन्होंने यह सन्देश दिया—'कुछ भी हो जाय, पर सत्य से न डिगो।'

कुंदपुर में

कुंदपुर की सार्वजनिक सभा में, जहाँ खिलाफ़त के भी स्वयंसेवक मौजूद थे, गाँधीजीने अपने भाषण में कहा :—

"यह एक शुभ शकुन है, कि यह सभा ८० वर्ष के एक वृद्ध सज्जन की अध्यक्षता में हो रही है। इससे मालूम होता है, कि इस सुधार की आवश्यकता का अनुभव करने में हमारे बड़े-बूढ़े किसी से पीछे नहीं हैं। हमारी प्रवृत्ति का अभिप्राय तो आप लोग जानते ही हैं। अस्पृश्यता-निवारण का सन्देश बड़ा व्यापक है। अस्पृश्यता एक सहस्रमुखी दानवी है। समाज के प्रत्येक अंग को यह अपना ग्रास बना रही है। इसलिए आज हम सब एक दूसरे के लिए अस्पृश्य बन गये हैं। इसी प्रकार प्रत्येक सम्प्रदाय भी एक दूसरे के लिए अछूत है। ऐसी एक भी जाति या सम्प्रदाय नहीं, जो अपने को दूसरे से बड़ा न मानता हो। और भी दूसरे कारण हो सकते हैं, पर साम्प्रदायिक झगड़ों का कारण उच्चता-नीचता का यह भाव तो है ही। इसलिए इस आंदोलन के वास्तविक उद्देश के अनुसार तो हम लोग 'मानव-भ्रातृत्व' को प्राप्त करना चाहते हैं। सबतक यह असंभव ही है, जबतक हम अस्पृश्यता को एक धर्म की वस्तु मानते हैं। इसलिए यह तो अब सवर्ण हिन्दुओं के ही सोचने की बात है, कि वे दो में से क्या चाहते हैं—अस्पृश्यता या हिन्दूधर्म? यदि वे अस्पृश्यता को बनाये रखना चाहते हैं, तो वे तथा उनका हिन्दूधर्म निश्चित ही नष्ट होने को है। और यदि वे अस्पृश्यता का सदा के लिए अन्त कर देना चाहते हैं, तो यही उनके जीवित रहने का एकमात्र मार्ग है। इसी से इस आन्दोलन को मैं आत्मशुद्धि और प्रायश्चित्त का आन्दोलन कहा करता हूँ। हरिजनों को हमने सदियों से दबा रखा है, और ऐसा करके हम खुद भी पतित हो गये हैं। इसलिए अब शीघ्र-से-शीघ्र हमें अपने हृदय से अस्पृश्यता को जड़मूल से नष्ट कर देना चाहिए।"

हिन्दी

अनेक स्थानों में गांधीजी को हिन्दी प्रेमियोंने हिन्दी में मानपत्र दिये हैं। पर उन्होंने ऐसी कोई बात नहीं देखी, जिससे यह नतीजा निकाला जा सके, कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का सामान्यतः सर्वत्र ज्ञान-प्रसार हो गया है। यद्यपि हिन्दी से कानड़ी में भाषणों का अनुवाद करनेवाले सज्जन प्रायः बहुत-से स्थानों में मिले, पर साधारणतया तो अँग्रेज़ी में ही भाषण करने की पुकार रहती थी। जब उस छोटी-सी लड़की निडपमाले हिन्दी में मानपत्र पढ़ा, तो गांधीजीने कहा,—"मुझे खुशी है, कि आपके यहाँ हिन्दी सीखने की भी एक कक्षा है। पर तबतक आपको विश्राम नहीं लेना चाहिए, जबतक कि आप सब लोगों का हिन्दी भाषा में अच्छा प्रवेश न हो जाय। यह आपको जानना चाहिए कि हिन्दी को हिन्दुस्तान के २० करोड़ आदमी बोल या समझ लेते हैं, और यह बड़ी ही सरल भाषा है।"

प्रायश्चित्त

२८ फ़रवरी को बड़े सबेरे करवार की सार्वजनिक सभा में गाँधीजीने भाषण किया। उन्होंने कहा, "जिन कारणों से आप लोग थैली में अधिक रुपये नहीं डाल सके, उनकी गम्भीरता को मैं क़बूल करता हूँ। लेकिन बिहार का संकट तो इतना महान् है, कि अगर आप अपना सर्वस्व भी दे डालें, तो भी बिहार अपनी पूर्व स्थिति पर नहीं पहुँच सकता। इसी तरह हरिजन-कोष में आप कितना ही अधिक पैसा दें, वह काफ़ी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह पाप का प्रायश्चित्त-स्वरूप है। पाप के प्रायश्चित्त में, जो देता है वह पाता है और जो हाथ सिकोड़ता है, वह गँवा बैठता है। गुनहगार जबतक अपने पाप का प्रायश्चित्त नहीं कर लेता, तबतक वह बराबर मनोवेदना से दुखी रहता है। दुनियाभर की दौलत भी उसे सुखी नहीं बना सकती। यह अस्पृश्यता पापों की शिरोमणि है। हिन्दू-धर्म को नष्ट कर देने की इसमें भरपूर शक्ति है। धर्म का विनाश किस प्रकार सम्भव है, यह प्रश्न पूछा जा सकता है। वास्तव में धर्म का नाश नहीं हो सकता। परन्तु यदि धर्म का स्वाँग अधर्म धारण करले, तो ऐसा नकली धर्म निश्चय ही नष्ट हो जायगा। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ, कि जो अशुद्धि, जो मलिनता हिंदू-धर्म के अन्दर पैठ गई है, वह दूर हो जाय और इस तरह हिंदू-धर्म माननेवाले महान् खतरे से बच जाय। यह केवल आत्मशुद्धि से ही हो सकता है, बलात्कार से कदापि नहीं।"

अस्पृश्यता-त्याग की निशानी

करवार से गाँधीजी अकोला आये। अकोला की सभा में भाषण करते हुए उन्होंने कहा, "मुझे इतनी रुपये-पैसे की ज़रूरत नहीं है, जितनी कि हृदय परिवर्तन और रचनात्मक कार्य की। मुझे कोई करोड़पति एक करोड़ रुपया भी दे दे, तो भी मैं अस्पृश्यता को जड़मूल से नष्ट नहीं कर सकता। लेकिन अगर आज एक करोड़ सवर्ण हिंदू मुझे यह ख़ातिरी करादें, कि अस्पृश्यता को उन्होंने अपने हृदय से निकाल बाहर कर दिया है, तो अस्पृश्यता का अन्त ही गया। अगर ग़रीब आदमी कुछ पैसे-पाइयाँ ही देता है, तो मुझे इसकी चिन्ता नहीं; पर शर्त यह है, कि देनेवालेने अस्पृश्यता का त्याग कर दिया है, इस बातकी निशानी वह पैसा-पाई हो।" सार्वजनिक सभाओं में अकसर मत लेने के समय लोग हाथ उठा देते हैं। मगर गाँधीजी तो उन वोटों की रजिस्टरी पैसे-पाइयाँ लेकर ही पक्की मानते हैं। इसलिए यहाँ भी उन्होंने स्वयंसेवकों को आदेश दिया, कि वे लोगों के बीच में जाकर उनसे पैसे-पाई माँगें। इस अपील का बड़ा अच्छा असर पड़ा। थैली में जितने रुपये जमा हुए थे, उससे अधिक ही पैसे-पाई लोगोंने दिये। यही तो उनके अस्पृश्यता-त्याग की सच्ची निशानी थी।

सिरसी

कुमटा से रवाना होकर हमने अघनाशिनी नदी पार की, और शाम को हम सिरसी पहुँचे। सिरसी की सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए गाँधीजीने कहा, "सिरसी मेरे लिए कोई नई जगह नहीं है। यहाँ मेरे अनेक साथी रहते हैं। अगर मैं अपने साथियों से हरिजन-सेवा की आशा न करूँ, तो फिर किससे करूँगा?" गाँधीजी का यह अनुभव है, कि जहाँ उनके संगी-साथी काफ़ी अच्छी संख्या में मौजूद हैं, वहाँ से अस्पृश्यता बड़ी तेज़ी से काफ़ूर हो रही है। और उनके वे साथी हैं कौन? वही उनके साथी हैं, जो हिंदुस्तान में बसनेवाले मुसल्मानों, ईसाइयों

[४४ वें पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

हर हिन्दू स्मरण रखे

कि बंबई में २५ सितम्बर, १९३२ को श्रीमान् पंडित मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में हिन्दू-संसार के प्रतिनिधियों की सभा में नीचेलिखा प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ था :—

"यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि अब से कोई भी व्यक्ति, अपने जन्म से, अछूत नहीं समझा जायगा और अबतक जो ऐसा माना जाता था, उसके भी सार्वजनिक कुओं, सड़कों और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं के व्यवहार के सम्बन्ध में वही अधिकार होंगे जो दूसरे हिन्दुओं के हैं। अवसर मिलते ही इन अधिकारों को क़ानूनी स्वीकृति दे दी जायगी और स्वराज्य-पार्लियामेंट के सबसे पहले कामों में यह भी एक काम होगा, यदि तबतक ये अधिकार क़ानून-द्वारा स्वीकृत न हो चुके होंगे।

और यह सम्मेलन यह भी निश्चय करता है, कि अस्पृश्य कही जानेवाली जातियों की प्रथानुमोदित समस्त सामाजिक बाधाओं को—जिनमें उनकी मन्दिर-बन्दी भी शामिल है—शीघ्र हटाने के लिए सभी उचित और शांतिमय उपायों का ग्रहण करना तमाम हिंदू-नेताओं का कर्तव्य होगा।"

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १६ मार्च, १९३४

राय भेजिए

गांधीजी के 'हरिजन-थैली-फण्ड' के वितरण-सम्बन्धी नियमों का मसविदा

(१) सारे प्रान्तों के 'थैली-फण्ड' के एकत्र हो जाने के कोई एक या दो महीने बाद केन्द्रीय कार्यालय और प्रान्तीय कार्यालयों के वर्तमान आर्थिक सम्बन्ध का अन्त हो जायगा, और इस नये थैली-फण्ड के कारण एक नये प्रकार का आर्थिक सम्बन्ध स्थापित हो जायगा। यह फण्ड "गांधी-हरिजन थैली-फण्ड" कहलायगा।

(२) हरिजनों की उन्नति के लिए तैयार की गई योजनाओं के मंज़ूर होने के बाद, उनका सारा व्यय थैली-फण्ड से लिया जायगा, अर्थात् यह ७५ प्रतिशत थैली-फण्ड से या ५० प्रतिशत मुख्य-मुख्य नगरों से एकत्र होनेवाले धन से लिया जायगा। प्रबन्ध और प्रचारकार्य के लिए पैसा वर्तमान व्यवस्था के अनुसार ही मिलता रहेगा, अर्थात् इस प्रकार के व्यय का आधा या दो-तिहाई, या जितना भी परिमाण हो, केन्द्रीय कोष से मिलेगा। इस कोष से थैली-फण्ड अलहदा रक्खा जायगा।

(३) यदि निम्नलिखित दो बातों का पालन किया जायगा, तो बम्बई, कलकत्ता, करांची आदि नगरों को छोड़कर अन्य नगरों, ज़िलों या प्रान्तों में हुए एकत्र धन का कम-से-कम ७५ प्रतिशत उस स्थान, इलाके या प्रान्त में ही लगाया जायगा।

(अ) थैली-फण्ड का धन उपयोग में लाने के लिए हरिजनों की उन्नति की योजना केन्द्रीय कार्यालय ही तैयार, पेश और पास करेगा।

(इ) उस पास की हुई योजना या योजनाओं को मूर्त रूप देने के लिए पूरा या कोई नियत समय देनेवाले या अवैतनिक काम करनेवाले कार्यकर्ता मिलते रहें और उनके नाम स्वीकृत भी हों। स्थायी कार्यकर्ताओं की नियुक्ति के समय इस बात का ध्यान रखना होगा, कि वे पिछले दो वर्ष से लगातार काम कर रहे हैं न।

(४) थैली-फण्ड का उपयोग परिस्थिति के अनुसार स्थानिक कार्यकर्ताओं की विवेक-बुद्धि के अनुरूप और प्रांतीय कार्यकर्ताओं की सलाह से हो, पर उसकी अवधि दो वर्ष से कम की न हो।

(५) हरिजन-उन्नति की योजनाओं में ख़र्च हुए धन का भुगतान, मासिक बिल पेश होने पर, किस्तों की शक्ल में अदा होता रहेगा। हाँ, काम को चलता रखने के लिए उचित रकम पेशगी दी जा सकती है।

महात्मा गांधीने यह ताकीद विशेष रूपसे करदी है, कि थैली-फण्ड का एक भी पैसा प्रांतीय या ज़िले के कार्यालयों के प्रबंध या प्रचार-कार्य में खर्च न किया जाय और इस मद का रुपया केवल हरिजन-उन्नति की योजनाओं को कार्य-रूप में परिणत करने में ही लगाया जाय।

(६) यदि दाता अपनी रक़म किसी ख़ास मद में ख़र्च कराना चाहता हो, तो उसे दान देते समय ही बता देना चाहिए, बाद को नहीं। और ऐसी मद का उल्लेख करने के बाद उस दान को केवल तभी स्वीकार किया जायगा, जब उसपर गांधीजी की मंज़ूरी होगी।

(७) जिन ज़िलों की माँग ७५ प्रतिशत से भी अधिक की होगी, वे तभी इस विशेष सहायता के अधिकारी समझे जायगे, जबकि उनमें दारिद्र्य अपेक्षाकृत अधिक होगा, या वहाँ कार्य का क्षेत्र अधिक विस्तीर्ण होगा, या हरिजनों की संख्या विशेष होगी।

(८) जो ताल्लुका हरिजन-संघ फंड में पैसा देंगे, उनकी योजनाओं पर उचित रूप से विचार किया जायगा। ताल्लुकों में न कार्यालय रखने की आवश्यकता है, न वेतन देकर मंत्री नियुक्त करने की।

(९) प्रान्तीय मंत्री और ज़िले के मंत्री केवल कार्यालय में न रहकर हरिजन-उन्नति की योजनाओं के आवश्यक अंग बनें। इस प्रकार ज़िलों में देख-रेख रखने के लिए जो प्रान्तीय कार्यकर्ता आवश्यक होंगे, उनका व्यय फण्ड की ७५ प्रतिशत रक़म से मिलेगा और ज़िलों के बजट के अनुरूप लिया जायगा। हरिजन-उन्नति की योजनाओं की व्यवस्था करने के लिए जिन कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी, और उनपर जो खर्च किया जायगा, वह रचनात्मक कार्य के खाते का समझा जायगा।

जो सज्जन विभिन्न हरिजन-सेवक-संघों से सम्बन्ध रखते हों या जो हरिजन-कार्य्य में अन्य प्रकार से दिलचस्पी लेते हों, उन्हें उपर्युक्त नियमों पर अपनी सम्मतियाँ शीघ्र-से-शीघ्र मंत्री, सेन्ट्रलबोर्ड के पास भेज देनी चाहिए, जिससे कि इन नियमों को स्थायी रूप देते समय उन सज्जनों की बुद्धिमत्तापूर्ण सम्मतियों से भी लाभ उठाया जा सके। सम्भवतः

धन एकत्र करने की अपेक्षा उसका सद्व्यय करना अधिक कठिन होता है। सबसे बड़ी कठिनता तो पूरा समय देनेवाले, विश्वस्त और अन्य प्रकार से योग्य कार्य्यकर्ताओं को पा सकने की होती है। अतः स्थानिक संघों और व्यक्तियों को अपनी सिफारिशें भेजते समय कार्य्यकर्ताओं की कमी का ध्यान रखना चाहिए। जिन योजनाओं में हरिजनों को काम मे लगाने का विशेष ध्यान रक्खा जायगा, उन्हें अन्य ऐसी योजनाओं पर, जिनमें किसी ख़ास योग्यता की दरकार हो, श्रेय दिया जायगा। इतना ही कहना काफ़ी है कि सारी योजनाओं का एकमात्र लक्ष्य यह होना चाहिए कि उपलब्ध धन के द्वारा थोड़े-से-थोड़े समय में हरिजनों का शिक्षासंबंधी और आर्थिक उद्धार अधिक-से-अधिक मात्रा में किया जासके। ये नियम केवल पथप्रदर्शक का काम कर सकते है। इनमें न्यूनाधिकता की गुंजायश है, जिससे प्रांतीय और ज़िला-संघों-द्वारा तैयार की जानेवाली अधिक-से-अधिक योजनाओं का समावेश होसके।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

मंदिर-प्रवेश के विषय में

[कुंभकोणम् की म्युनिसिपैलिटीने गांधीजी को एक मान पत्र दिया। उसका यह आशय था, कि म्युनिसिपैलिटी ग़रीब आदमियों और खासकर हरिजनों की सामाजिक और आर्थिक उन्नति करने के लिए तो सब तरह से तैयार है, पर उसकी राय में मन्दिर-प्रवेश का प्रश्न नहीं छेड़ना चाहिए, क्योंकि यह धार्मिक प्रश्न है और इससे देश में और भी फूट फैलने का भय है। यह प्रश्न अभी छोड़ दिया जाय और हरिजनों की आर्थिक उन्नति के सम्बन्ध में ही आंदोलन किया जाय, तो इस प्रयत्न में सारा मुल्क गांधीजी का साथ देगा और गृह-कलह की फिर कोई ऐसी सम्भावना न रहेगी। इस मानपत्र का उत्तर देते हुए, उस दिन गांधीजीने निम्नलिखित भाषण किया—सम्पादक]

"आप लोगोंने मुझे यहाँ बुलाकर और यह मानपत्र देकर मेरा जो सम्मान किया है, उसकी मैं हृदय से सराहना करता हूँ। इस बात की तो मैं और भी अधिक सराहना करता हूँ, कि आपने बहुत स्पष्टता और साहस के साथ अपनी राय प्रगट की है। आपने कहा है, कि मुझे अनुकूल लोक-मत तैयार करने पर ही अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए। यही तो मैं कर रहा हूँ। हरिजनों को न्याय मिले, इसके सिवा मैं और कहता ही क्या हूँ। मन्दिर-प्रवेश के विषय में देश जो मतभेद है उसे मैं जानता हूँ। सनातनियों के साथ बस सिर्फ़ यही तो एक मेरा मतभेद है। जहाँतक मेरा और हरिजन-सेवक-संघ के केन्द्रीय बोर्ड का वश चलेगा, वहाँतक ज़बरदस्ती मन्दिर-प्रवेश कराने का कोई काम नहीं किया जायगा। मन्दिर-प्रवेश का प्रश्न तो केवल सवर्ण हिंदुओं के हल करने का है। अगर सामूहिक रूप से तमाम सवर्ण हिंदू कह दें, कि हरिजन मन्दिरों में न जायँ, तो मैं यही कहूँगा, कि यह तो दुर्भाग्य की बात है, और यह धर्म-प्रगति के विपरीत है, लेकिन जबतक सवर्ण हिंदुओं की यह सामूहिक राय न बन रहेगी, तबतक एक भी हरिजन किसी मंदिर में न जायगा। मेरा कर्त्तव्य तो इस विषय के अनुकूल लोकमत जाग्रत करने मात्र का है। पर तब तो मेरा साफ़ ही मतभेद है, जब मैं यह सुनता हूँ, कि इस विषय में मुझे एक शब्द भी मुंह से न निकालना चाहिए। यह तो मैं नहीं कर सकता। मैं तो अपने धर्म-विश्वास के अनुसार यह महसूस करता हूँ, कि जबतक हरिजनों को सवर्ण हिंदू मन्दिरों में जाने से रोकते रहेंगे, तबतक यह नहीं कहा जायगा, कि वे अपने प्राथमिक कर्त्तव्य का पालन कर चुके हैं। जिसने भी पक्षपात छोड़कर हिंदूशास्त्रों का थोड़ा-बहुत अध्ययन किया होगा, वह इससे अन्यथा मान ही नहीं सकता। जहाँ मन्दिर में जानेवाला ख़ासा अच्छा बहुमत हरिजनों के प्रवेश के पक्ष में हो, वहाँ उनके लिए मन्दिर खोल देना चाहिए। मैंने उन प्रतिमा-पूजक हज़ारों हिंदुओं की उपस्थिति में ही मन्दिर खोले हैं, जिन्होंने कहा, कि वे मन्दिरों को हरिजनों के लिए खुलवा देना चाहते हैं। लेकिन अगर आप यह कहें, कि जबतक हजारों के विरुद्ध सिर्फ़ एक ही सवर्ण हिंदू मन्दिर खुलवाने के विपक्ष में हो, तबतक मन्दिर न खोला जाय, तो मैं कहूँगा, कि यह तो बलात्कार की ही नहीं, बल्कि बदला लेने की बात हुई। यहाँ उस बड़े बहुमत से मेरा मतलब स्पष्ट ही उन हिंदुओं के बहुमत से है, जिनकी कि देव-मन्दिरों में श्रद्धा है।"

हरिजन-कोष

पत्र-लेखक कभी कभी पूछ बैठते हैं, कि प्रवास में जो पैसा मिल रहा है उसका पता जनता को क्यों नहीं है, और वह किस तरह खर्च किया जा रहा है। जो लोग यह पूछते या अख़बारों में लिखते हैं, साफ़ ही वे 'हरिजन' पढ़ने की तकलीफ़ नहीं करते। प्रवास में जो पैसा मिल रहा है, उसका हिसाब-किताब जहाँतक बनता है, पूरा-पूरा ब्योरेवार 'हरिजन' में प्रकाशित होता रहता है। पाठक देखने का कष्ट करें, तो उन्हें तमाम थैलियों, व्यक्तिगत दानों और ज़ेवरात के नीलाम की सारी रकमों का उल्लेख 'हरिजन' में मिल जायगा। हमारी प्रवास-मंडली में हिसाब रखनेवाले जो तीन सज्जन हैं, वे केन्द्रीय बोर्ड के सतत जाग्रत प्रधानमन्त्री ठक्कर बापा के अधीन दिन-रात काम में जुटे रहते हैं। उन्हें अक्सर हो हज़ारों रुपये-पैसों को गिनने और नित्य थैली मिलाने में आधी-आधी राततक बैठना पड़ता है। यह रुपया केन्द्रीय बोर्ड दिल्ली को भेज दिया जाता है, जहाँ वह ठीक तरह से बैंक में जमा कर दिया जाता है। दिल्ली में निस्संदेह हिसाब-किताब बहुत ठीक तरह से रखा जाता है। एक-एक पाई का जमा-खर्च वहाँ के बही-खाते में मिलेगा। हिसाब की वहाँ जाँच-पड़ताल की जाती है और समय-समय पर बोर्ड की बैठकों में वह सारा हिसाब पेश होता रहता है। बोर्ड का सारा कारबार किसी से छिपा नहीं है। बैंक के तरीक़ों पर संघ का बोर्ड चल रहा है, और अपने को वह एक सार्वजनिक संस्था की भाँति रुपये-पैसे तथा प्रबंध-सम्बन्धी मामलों में जनता के प्रति उत्तरदायी समझता है।

जनता को यह जानकर प्रसन्नता होगी, कि २ मार्च, १९३४ तक हरिजन-प्रवास के फंड में १५२१२०=)७ जमा हो चुके हैं।

अब रही ख़र्च की बात । सो केन्द्रीय बोर्ड की मंजूरी मिलने के बाद, जिस प्रांत से जितनी रक़म मिली है उसमें से नियमानुसार वह ख़र्च की जायगी । फण्ड की रकम किस प्रकार ख़र्च की जाय इस सम्बन्ध का एक मसविदा इस अंक में अन्यत्र प्रकाशित हुआ है, और उस पर प्रांतीय संघों तथा हरिजन-सेवा में रस लेनेवाले लोगों की राय माँगी गई है । इससे अधिक करना तो मनुष्य के लिए असम्भव ही नहीं, अनावश्यक भी है ।

'अँग्रेज़ी' से] मो० क० गांधी

गौरी का उपवास

गांधीकुटी में उसदिन सबेरे से एक लड़की इसलिए उपवास कर रही थी, कि गांधीजी को वह अपने घर पर लिवा ले जाय । जब वह गांधीजी के पास आई, तो वह अपने को सँभाल न सकी । आँखों से आँसुओं की धारा लगी हुई थी और एक शब्द भी मुँह से न निकलता था ।

"आख़िर तुम उपवास क्यों कर रही हो ?" गांधीजीने पूछा ।

"इसलिए, कि मैं आप को अपने घर लिवा ले चलूँ," उसने किसी तरह आँसुओं को रोककर भर्राई हुई आवाज़ से कहा । "मैं आपको अपने ज़ेवर दूँगी ।"

"यह तो अच्छा है । पर पहले तुम्हें अपना यह व्रत तोड़ देना होगा ।"

"नहीं, जबतक आप वहाँ चलने का वचन नहीं देते, तबतक मैं व्रत नहीं तोड़ सकती ।"

"वचन लेने की बात छोड़ो । लो, यह नारंगी खालो । सौदा न ठहराओ । मेरा विश्वास करो । तुम्हारी तो अपने अटूट प्रेम से श्रद्धा होनी चाहिए ।"

लेकिन वह क्यों खाने लगी ! वचन तो पहले ही मिल चुका है, यह बात उस भोली लड़की की समझ में न आई ।

मीरा बहिनने इस बीच में उसके लिए वह नारंगी छील दी । पर वह तो अब भी संदेह में पड़ी हुई थी ।

"हाँ, हाँ, बापू तुम्हारे यहाँ आयँगे," मीरा बहिनने कहा; तब गौरीने मुस्कराकर वह नारंगी लेली ।

ज़ेवर देने के उसके निश्चय के बारे में गांधीजी ज़रा और अधिक जानना चाहते थे । उसने कहा कि जो गहने वह दे देगी, वह फिर कभी नहीं पहनेगी । उसकी उम्र २१ बरस की थी । विवाह हो चुका था । उसका पति वहीं खड़ा था । गांधीजीने उस युवक से पूछा, "क्यों भाई, यह किसने सुझाया था, कि तुम्हारी पत्नी मुझे अपने ज़ेवर दे दे ?"

"किसीने नहीं, इसकी यह स्वयं ही इच्छा थी । फिर मैंने भी अपनी स्वीकृति देदी," उस युवकने जवाब दिया । वह चालीस रुपये मासिक कमाता था । गांधीजीने उसे काफी सचेत कर दिया, कि प्रेम की उमंग में आकर अब कभी उसे गहने बनवाने के मोह में न पड़ना चाहिए । उन्होंने कहा, "सचमुच यह अच्छा होगा, कि तुम दोनों किफ़ायत के साथ सादा जीवन बिताओ ।" गौरी और उसका पति दोनोंने गांधीजी की यह बात मानली । इसके बाद जब गांधीजी गौरी के यहाँ गये, तो उसने उन्हें कुछ ज़ेवर भेंट किये ।

बापू का पुण्य-प्रवास

[४१ वें पृष्ठ से आगे]

यहूदियों आदि को हिंदुओं की तरह ही अपने भाई-बंधु मानते हैं और अपना भारतवर्ष प्राणाधिक प्रिय होते हुए भी, जो संसार के किसी भी राष्ट्र के प्रति ज़रा भी द्वेषभाव नहीं रखते, जो स्वप्न में भी किसी को हीन या नीच नहीं समझते और जो सत्य के शोध की ख़ातिर अपनी जान भी देने को हमेशा तैयार रहते हैं । गांधीजी के ऐसे साथी किसी मनुष्य को अछूत या अपने से नीच समझ ही नहीं सकते । इसलिए गांधीजी के विश्वास के अनुसार सिरसी में तो अस्पृश्यता माननेवाला कोई मिलना ही नहीं चाहिए । जब उन्हें यह मालूम हुआ, कि म्यूनिसिपैलिटीने स्थानिक हरिजन-सेवक-संघ को सहायता और हरिजन विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी हैं, तो उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ । आश्चर्य तो तब होता, जब म्यूनिसिपैलिटीने अन्यथा किया होता । म्यूनिसिपैलिटी के मानपत्र में यह क़बूल किया, 'सभी लोगों के हृदय से उच्चता के भाव का सर्वथा अन्त नहीं हुआ है ।' अपनी कमी को क़बूल करलेना तो अच्छा ही है; क्योंकि अपनी अपूर्णता का भान ही तो पूर्णता की ओर ले जाने का सबसे पहला साधन है । गांधीजीने कहा, "मुझे आशा है, कि आप लोग उच्चता का यह भाव अपने हृदय से दूर कर देंगे । यह भाव न केवल अस्पृश्यता का ही मूल कारण है, बल्कि साम्प्रदायिक कटुता की भी जड़ यही है ।"

पशुबलि

एक मानपत्र में यह उल्लेख था, कि स्थानीय मारिकाम्बा देवी का मंदिर हरिजनों के लिए खोल दिया गया है । गांधीजी को एक पत्र-द्वारा यह भी सूचना मिली थी, कि उस मंदिर में पशुओं की बलि चढ़ाई जाती है । दोनों बातों पर प्रकाश डालते हुए गांधीजीने कहा, "मंदिर के ट्रस्टियों को इस बात पर मैं धन्यवाद देता हूँ, कि उन्होंने हरिजनों के लिए मंदिर खोल दिया है; पर यह सुनकर मुझे बड़ी व्यथा हुई है, कि जगन्माता के उस मंदिर में पशुओं की बलि दी जाती है । जहाँ पशुओं का क़त्ल होता हो, उस जगह को मैं पवित्र स्थान नहीं मान सकता । दूसरे मुल्कों में खाने के लिए लाखों पशु मारे जाते हैं, पर वहाँ के लोग यह नहीं कहते, कि वे ईश्वर को रिझाने के लिए पशुओं का वध करते हैं । पशुओं की बलि से ईश्वर को प्रसन्न किया जा सकता है, यह कहना ही मनुष्य की बुद्धि का अपमान करती है । ईश्वर तो केवल आत्म-बलि और आत्म-त्याग से ही रिझाया जा सकता है । इसलिए मुझे आशा है, कि मन्दिर के ट्रस्टी इस पापपूर्ण प्रथा का अन्त करने में कुछ उठा नहीं रखेंगे । मैं तो यहाँतक कहूँगा, कि जिन मन्दिरों में पशुओं की बलि दी जाती हो, उनमें जाने के लिए हरिजनों को प्रोत्साहन न दिया जाय ।"

सिद्धपुर

१ मार्च को सिरसी से गांधीजी सिद्धपुर गये और उसी दिन वहाँ वापस आ गये । सिद्धपुर के हरिजनोंने यह शिकायत की, कि उनके साथ गुलामों की तरह सलूक किया जाता है । इसकी चर्चा करते हुए, सभा में गांधीजीने कहा, "इस शिकायत में शायद कुछ अत्युक्ति-सी है, पर इसमें सन्देह नहीं, कि इसमें तथ्य तो है । इसलिए मैं आशा करता हूँ, कि हरिजनों को जो

तकलीफ़ें हैं, वह सिद्धपुर के सवर्ण हिन्दू दूर कर देंगे। अगर यह न किया, तो फिर हरिजन-कोष में पैसा देने का अर्थ ही क्या हुआ? दान तो प्रायश्चित्त का चिह्न होना चाहिए। इससे अब भविष्य में आप लोग हरिजनों के साथ अपने सगे भाई-बन्धुओं की तरह बरताव कीजिए। जबतक हमारे हरिजन भाई दासता की जंजीर में जकड़े रहेंगे, तबतक भारत को सुख मिलने का नहीं।

मंदी का उपाय

एक किसानने गांधीजी को सुपारी, इलायची और गोलमिर्च के कुछ नमूने नज़र किये। सन् १९२९ में इन चीज़ों का क्या भाव था और सन् १९३३ में वह कितना गिर गया, इसके हिसाब का दर-दाम भी वह पैकटों के ऊपर लिख लाया था। इस पर गांधीजीने कहा, कि वे किसान पसन्द करें, तो इस मंदी से पार पाने का एक उपाय है। वह है सूत कातना। जिससे अच्छा फ़ायदा हो, ऐसी ही चीज़ों की उन्हें खेती करनी चाहिए, और साथ ही खेती-बारी से जो समय बचे, उसका भी उन्हें उपयोग करना चाहिए। यह सोचकर वे योंही हाथ-पर-हाथ धरे न बैठे रहें, कि कातने से बहुत ही कम पैसे मिलेंगे। कुछ भी न मिलने से कुछ मिलना तो अच्छा ही है। अच्छा मज़बूत और एक-सा सूत कातें, उसके कपड़े बुनवालें और खुद पहनें, या ज़रूरत न हो, तो बेच दें।

मंदी दूर करने के लिए दूसरे अनेक असली उपाय नहीं हैं, ऐसी गांधीजी की मंशा नहीं थी। वह बड़े-बड़े प्रश्न तो राजनीतिज्ञों के हल करने के हैं। हर एक व्यक्ति अपनी व्यापार-मंदी का कष्ट किस तरह दूर कर सकता है, गांधीजी तो यही बताने का प्रयत्न कर रहे हैं। एक तो मंदी की मुसीबत, दूसरे ज़बरदस्ती की काहिली। आलस्य में जो समय नष्ट हो रहा है, उसका उपयोग किया जाय, तो कुछ-न-कुछ कष्ट तो दूर होगा ही। दूसरे लोग चाहें तो और भी अनेक फ़ायदे के धन्धे किसानों को सुझा सकते हैं। पर जो लाखों स्त्री-पुरुषों के लिए लागू हो सके, ऐसा कोई धन्धा, सिवा कातने के, गांधीजी की दृष्टि में नहीं आया।

एक मन्दिर खोला गया

सिद्धपुर में एक और आनन्ददायक बात हुई। वह यह कि श्रीयुत व्यंकटराव के श्री सुब्रह्मण्य-मन्दिर में गांधीजी हरिजनों को दर्शन कराने ले गये। यह बड़ा सुन्दर मन्दिर है। सामने एक बड़ा तालाब है, जिसमें बारहमासी झरने का पानी भरा रहता है। जब मन्दिर खोला गया, तब भारी भीड़ जमा हो गई थी। हरिजन भी काफ़ी संख्या में उपस्थित थे, और श्री व्यंकटराव के घर की तो प्रायः सभी महिलाएँ वहाँ मौजूद थीं।

वीरशैव-मठ में

दोपहर को उसी दिन गांधीजी मोटर से हावेरी गये। वहाँ उन्होंने एक हरिजन-पाठशाला स्थापित की, और एक सार्वजनिक धर्मशाला की आधार-शिला रखी। वीरशैव या लिंगायत सम्प्रदाय के प्रधानाचार्य श्री निरंजन महाराज से भी वहाँ गांधीजी मिले। यह एक विद्वान् पुरुष हैं। १२ वर्षतक उन्होंने काशी में शास्त्राध्ययन किया है। गांधीजी की तरह उनका भी यही मत है, कि अस्पृश्यता के लिए शास्त्रों में कहीं कोई आधार नहीं है। अस्पृश्यता-निवारण के सम्बन्ध में वह काफ़ी अच्छा प्रचार-कार्य कर रहे हैं।

हरिजन या हरजन ?

प्रधानाचार्यने इस पर काफ़ी ज़ोर दिया, कि हरिजनों को हिंदू-संस्कृति की शिक्षा मिलनी चाहिए और उनकी शराब पीने की आदत तो एकदम छुड़ा देनी चाहिए। श्रीनिरंजन महाराजने यह भी नम्रतापूर्वक कहा, कि वीरशैव सम्प्रदाय के हरिजन आपके इस 'हरिजन' नाम को कुछ बहुत पसन्द नहीं कर रहे हैं। गांधीजीने इसके उत्तर में कहा, "मेरी दृष्टि में तो 'हरिजन' और 'हरजन' में कोई भेद नहीं है। 'हरि' कहो या 'हर' कहो, हैं तो दोनों एक ही परमात्मा के नाम।" लिंगायत लोग शिवजी के उपासक हैं, इसलिए वे 'हरिजन' नाम पसन्द नहीं करते, क्योंकि इस शब्द का अर्थ है 'हरि या विष्णु का जन।' पर हरि-हर में कोई भेद नहीं है। और भगवान् के प्रियजन तो वही हैं, जिनका दुनिया में न कोई सहारा है, न कोई सहायक।

दावनगिरि

२ मार्च को हावेरी से गांधीजी मैसूर राज्य के अंतर्गत दावनगिरि गये। वहाँ की एक हरिजन-बस्ती देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। खूब साफ़-सुथरी और सुन्दर बस्ती थी। पम्पवाला वहाँ एक कुआँ है। स्त्रियों के नहाने-धोने के लिए एक स्नानागार भी है। पास ही एक बाग़ है। मकान खासे अच्छे हैं। मकानों की दो क़तारें हैं, और उनके बीच में एक अच्छी-सी सड़क है। बड़ी रमणीक बस्ती है। इस बस्ती में हरिजन-सेवा प्रेमी एक शर्माजी रहते हैं। यह स्नातक हैं। हरिजनों के तमाम हितकारी कार्यों की देखभाल यही सज्जन किया करते हैं।

दावनगिरि में, महिलाओं की सभा के पश्चात्, गांधीजीने आदि-कर्णाटक-छात्रावास की नींव डाली। यहाँ की म्युनिसिपैलिटीने इस छात्रावास के लिए मुफ्त ज़मीन और 1000) इमारत बनवाने के लिए दिये हैं। हरिजन-सेवा के लिए दावनगिरि के नागरिकों को गांधीजीने बधाई दी। यह जानकर उन्हें प्रसन्नता हुई, कि अस्पृश्यता वहाँ से दूर होती जा रही है। 'हरिजन' के स्थान पर 'आदिजन' नाम रख दिया जाय तो कैसा रहे—इस नई तजवीज की चर्चा करते हुए गांधीजीने कहा, कि आदिजन का अर्थ तो वह मनुष्य है, जो बहुत प्राचीन काल में हुआ था।' इसलिए यह नाम तो व्यर्थ-सा है। पर 'हरिजन' नाम का तो बड़ा अच्छा अर्थ है—अर्थात् भगवान् का प्यारा।

गांधीजी दावनगिरि से हरपनहल्ली और वहाँ से कोत्तुर गये। कोत्तुर की सार्वजनिक सभा में भाषण करने के अतिरिक्त उन्होंने दीन-सेवा-विद्यालय का भी निरीक्षण किया। वहाँ दीन-सेवा-आश्रम की आधार-शिला रखी और फिर मोटर से सन्दूर के लिए रवाना हुए।

सन्दूर

चारों ओर सुन्दर पर्वत-शृंखला से घिरा हुआ सन्दूर एक छोटा-सा देशी राज्य है। अँग्रेज़ी ज़िला बिल्लारी से यह बिलकुल अलग है। इस राज्य के संस्थापक इतिहास-प्रसिद्ध सन्ताजी घोरपाड़े थे। यह बड़े वीर पुरुष थे। वर्तमान शासक श्रीमान् राजा यशवन्तराव घोरपाड़े हैं। यह एक सुशिक्षित नरेश हैं। सन् १९३२ के नवम्बर में, वहाँ एक विशेष राजकीय आज्ञा-द्वारा

हरिजनों को राज्य के सभी शासन-कार्यों में भाग लेने का अधिकार दे दिया गया था। फलतः आज सन्दूर राज्य की काउन्सिल में एक निर्वाचित हरिजन सदस्य है। ७ अगस्त, १९३३ को सुप्रसिद्ध कुमारस्वामी के मन्दिर में हरिजनों का प्रवेश कराया गया। यह एक हज़ार वर्ष का प्राचीन मन्दिर है। दूसरे सार्वजनिक मन्दिर भी हरिजनों के लिए खुले हुए हैं। गांधीजीने एक विशाल मन्दिर में प्रार्थना की। सब के साथ हरिजन भी वहाँ उपस्थित थे।

गांधीजी सन्दूर रात को पहुँचे थे। दिन भर की लम्बी यात्रा से थके हुए थे। इससे भाषण तो नहीं कर सके, पर फिर भी अस्पृश्यता-निवारण के काम के लिए उन्होंने राजा साहब सन्दूर को तथा उनकी प्रजा को धन्यवाद दिया और कहा, कि अच्छा हो, कि सन्दूर राज्य का अनुकरण दूसरे बड़े-बड़े राज्य करें। उन्होंने यह भी कहा, कि अगर इस अस्पृश्यता से हमारा पिंड न छूटा, तो संसार में हमारा नाम-निशान भी न रहेगा।

वालजी गोविन्दजी देशाई

हरिजन-प्रवास में प्राप्त

[२७ जनवरी से २ फ़रवरी, १९३४ तक]

मदुरा—सार्वजनिक सभा में फुटकर संग्रह	१४१)॥
निवास-स्थान पर फुटकर संग्रह	९८।-)८
हस्ताक्षर-कराई	१०)
नीलाम से	४८६॥)
ओत्तीकड़ाई—जनता की थैली	४।=)
तरकुथेरु—जनता की थैली	४३)
किलूर—जनता की थैली	१०१)
नीलाम से	६)
अमरावती—श्री मागप्पा चेटियर की थैली	५१)
एक अन्य थैली	५०)
अमरावती पुदूर की ओर से थैली	१००)
करायकुडी—म्यूनिसिपैलिटी के मेंबरों की थैली	२००)
„ „ हरिजनों की थैली	५)
जनता की थैली	२५८४)
टैगोर-वाचनालय की थैली	१२१)
युवा-भारत-संघ की थैली	=)
बंबई-आनंद-भवन की थैली	१५१)
फुटकर संग्रह	१)
नीलाम से	२०४)
देवकोटा—जनता की थैली	२६००)
एक गिनी	२०)
सोशल रिफ़ार्म यूथलीग की थैली	२२)
फुटकर संग्रह में २ गिनी	४०)
सभा में फुटकर संग्रह	२५॥-)॥
महिलाओं द्वारा फुटकर संग्रह	१०।-)।
करायकुडी—नीलाम से	३०)
तिरुवादनी—तालुका-बोर्ड के मेंबरों की थैली	५१)
नीलाम से	१२१)
चिन्नूर—हरिजनों की थैली	॥=)॥
देवकोटा—दो हस्ताक्षरों का शुल्क	१०)
सभा में फुटकर संग्रह	१०४॥-)२
हस्ताक्षर-कराई	५)
श्री सावित्री के पिताने एक गिनी दी	२०)
निवास-स्थान पर फुटकर संग्रह	६॥)
नीलाम से	३९१)
तिरुप्पत्तूर—दो हस्ताक्षरों का शुल्क	१०)
जनता की थैली	३०३=)
फुटकर संग्रह	१)
नीलाम से	३२)
पगनेरी—जनता की थैली	१२५१)
श्री चोकलिंगम् तथा श्रीमती चो० चेटियर	१५१)
पगनेरी के चेटियर लोगों की थैली	६०१)
„ „ युवकों की थैली	२१)
फुटकर संग्रह	३)
नीलाम से	१४३)
अलवाकोटा—जनता की थैली	३३१)
सभा में फुटकर संग्रह	६।)१०
निवास-स्थान पर फुटकर संग्रह	७)
नीलाम से	६०)
शिवगंगा—जनता की थैली	२६९)
तालुका लोकल बोर्ड की थैली	३०)
हिंदी-प्रेमी-मंडल की थैली	११)
तीन हस्ताक्षरों का शुल्क	१५)
फुटकर संग्रह	२)
नीलाम से	६९)
मानमदुरा—जनता की थैली	२२३)॥।
सभा में फुटकर संग्रह	१०)॥
नीलाम इत्यादि से	१६॥=)
पगनेरी—श्री उमा के द्वारा दो हस्ताक्षरों का शुल्क	१०)
मदुरा—श्री वद्यनाथ ऐयर के द्वारा पूरक थैली	५५१)
फुटकर संग्रह	२॥।)॥
तिरुपारनम्—जनता की थैली	९०॥)
स्टेशनों पर फुटकर संग्रह	८५॥=)॥
पेरियानायकमपलायम्—जनता की थैली	१२३॥=)॥
वीरपंडी पुदुर— „ „	१०१)
करमाडी— „ „	१५११)
मेट्टुपलायम्— „ „	१००४)
महाजन स्कूल की ओर से	२१॥)।
हरिजनों की थैली	११-)७
कोयम्बतूर में फुटकर संग्रह	७)
नीलाम से	१५)
मदुरा—नीलाम से	२०॥)
कुन्नूर—कोयम्बतूर के एक मुल्तानी भाई के द्वारा	५)
तिरुप्पुर के श्री अशोर के एक भाटिया साझीदार	११)
फुटकर संग्रह	२४॥)४
प्रार्थना में फुटकर संग्रह	५॥=)॥
सबेरे फुटकर संग्रह	१६=)७
निवास-स्थान में फुटकर संग्रह	६॥=)।
एक पारसी सज्जन	५)

संध्या की प्रार्थना में फुटकर संग्रह	४७)७
गुडूर—१५ शिशियों की क़ीमत	२९६।)
कुनूर—हस्ताक्षर कराई	१०)
सबेरे फुटकर संग्रह	१७)।
येडपल्ली और कुनूर के बीच में फुटकर संग्रह	७–)
कोटगिरि की थैली	५५८=)१०
कोटगिरि में फुटकर संग्रह	३२॥)॥।
नीलाम से	३३)
येडपल्ली—येडपल्ली तथा दो गाँवों की थैलियाँ	१०१)
महिलाओं-द्वारा संग्रह	१८।–)॥
कुनूर—विविध धन-संग्रह	१२)
प्रार्थना-काल में विविध संग्रह	१८॥।–)
नागलकोइल—नागर कोइल से श्री जी० सीतारमण ने मनीआर्डर से भेजा	२)
सप्ताह का जोड़—	१४५१६–)२

[३ फ़रवरी से ९ फ़रवरी तक]

कुनूर—निवास-स्थान पर फुटकर संग्रह	१७।)
संध्या की प्रार्थना के समय	३४॥)
हस्ताक्षर कराई	५)
सार्वजनिक सभा में फुटकर संग्रह	४२॥।)॥
जनता की थैली	१००१)
नीलाम से	३०)
कोटगिरि—नीलाम से	५२)
कुनूर—नीलाम से	६)
टहलने के समय फुटकर संग्रह	२६॥=)॥।
फुटकर संग्रह	९॥।)
श्री टी० के० पी० मुदालियर, सलेम	१५)
प्रो० जे० हिवर माउवर	२००)
उटकमंड—जनता की थैली	८५६)
हरिजनों की थैली	४१–)।
जैन भाइयों की थैली	१०२)
फुटकर संग्रह	१३)
रामकृष्णाश्रम में महिलाओं-द्वारा	३०॥=)
धोबी भाइयों की थैली	१००)
येलनमल्ली गाँव की थैली	२९)
हस्ताक्षर कराई	५)
नीलाम से	६७॥)
बंगलोर—प्रो० कृष्णराव की थैली	२५)
कुनूर—प्रार्थना-समय में हस्ताक्षर कराई	७)
„ „ फुटकर संग्रह	३७॥=)५
विविध संग्रह	१७॥)
एक अमेरिकन प्रो० ई० ब्राउन द्वारा	१०)
सबेरे फुटकर संग्रह	२=)॥
शाम को फुटकर संग्रह	१०॥=)१०
एक मित्र के द्वारा	११)
भजन-मंडली के द्वारा	४॥।)
नीलाम से	॥)
कोयम्बतूर—नाटक-मंडली की ओर से अभिनय की थैली	१५००)
इरोड—स्वागत-कारिणी का शेष प्राप्त	७३॥।=)॥
नीलाम से	५१॥=)॥
कुनूर—सबेरे फुटकर संग्रह	१४।=)॥
चलते समय फुटकर संग्रह	३–)
चोक्कमपलायम्—जनता की थैली	१००१)
नीलाम से	४०)
मेट्टूपलायम्—फुटकर संग्रह	२)
करुवल्लूर—गाँववालों की थैली	२०–)
नीलाम से	५)
तिरुपुर—खादी-कार्यकर्त्ताओं की थैली	४५०)
म्युनिसिपैलिटी के कर्मचारियों „	१५१)
जनता की थैली	१३६५)
विद्यार्थियों „	३७।।।)
श्री चिन्नत्तामी ऐयर की थैली	२५।≡)॥
आढ़तियों की ओर से थैली	७५१)
आशेर एण्ड को० के कर्मचारियों की थैली	५१)
निवास-स्थान पर फुटकर संग्रह	९२)
गुप्तदान	२)
नीलाम से	१२२–)
कोयम्बतूर—कुछ यूरोपियन सज्जन	१०)
गुजराती, मारवाड़ी, मुलतानी भाइयों की संयुक्त थैली	१००१)
महिलाओं की सभा में फुटकर संग्रह	४॥)।
जनता की थैली	५७५७॥=)१०
हस्ताक्षर-कराई (४)	२०)
इण्डस्ट्रियल इन्स्टीट्यूट की थैली	५००)
„ „ में फुटकर संग्रह	५१)
प्रतिष्ठितजनों की थैली	७५१॥।)
फुटकर धन-संग्रह	१५)
नीलामसे	८७९)
कोटगिरि—एक अतिरिक्त थैली	९७।)४
पल्लाडम—जनता की थैली	४५०)
हिंदी-विद्यार्थियों की थैली	१०)
फुटकर	५)
सुलूर—जनता की थैली	१०६)
सिंगानल्लूर — „ „	३५॥।–)॥।
कोयम्बतूर—वाई० एम० सी० ए० के श्री जयकर्ण	२१)
रे० मिस्टर राम	५)
श्री सुब्बिया	७)
हरिजन-छात्रावास की थैली	५१॥)।
फुटकर धन-संग्रह	३९।≡)
पोदनूर—रामकृष्ण-विद्यालय की थैली	१३३)
हस्ताक्षर-शुल्क	३०)
फुटकर संग्रह	१४)
नीलाम से	८८।)
चिट्टीपलायम्—जनता की थैली	२९)
फुटकर संग्रह	३॥।≡)।
किनत्टुकडावू—जनता की थैली	४४=)।

फुटकर संग्रह	६॥≡)
नेल्लिपलायुर—जनता की थैली	१५१≡)
पोलाची—तालुका की थैली	१५००)
तालुकाबोर्ड के मेंबरों की थैली	४००)
नीलाम से	१४६॥≈)
गोमंगलम्—जनता की थैली	२१२॥≈)॥
नीलाम व हस्ताक्षर आदि से	१५)
उदुमलपेट—यू० एम० सी० की थैली	१३६)
तालुका बोर्ड की थैली	२०१)
विद्यार्थियों „	३०)
हरिजन-सेवक-संघ „	८५१॥-)॥
श्री गुरुस्वामी नायडू „	१००)
महिलाओं की थैली	२००)
श्री राजाराव „	१०१)
फुटकर संग्रह	३१)
नीलाम इत्यादि से	२२०॥≈)
पोलाची—फुटकर धन-संग्रह	५५।-)॥
पालनी—जनता की थैली	७०२)
सन्मार्ग-संघ की थैली	३९॥≈)१०
फुटकर तथा हस्ताक्षर आदि से	७३≡)२
नीलाम से	६५)
चत्रीवलाम—जनता की थैली	२०॥-)॥
डिंडीगल—कच्छी, गुजराती, मुल्तानी भाइयों की थैली	२०५≡)
हरिजन-सेवक-संघ की थैली	१३५०≈)॥
अरेनकुलम् की थैली	११६)
चेट्टीकुलम की थैली	१७)॥
ओम-कारुण्य संघ की थैली	४११)
श्रीमती शिवकामी अम्मा	१०१)
फुटकर संग्रह	६५॥)॥
नीलाम से	९३)
निवास-स्थानपर फुटकर संग्रह	१२)
अट्टूरपट्टी—जनता की थैली	३३१≡)
वटलकुंडु— „ „	५०१)
नीलाम इत्यादि से	१०)
बटुगपट्टी—जनता की थैली	३५४)
नीलाम से	२८)
पेरियाकुलम्—जनता की थैली	५०१)
हरिजनों की थैली	९)
४ हस्ताक्षरों का शुल्क	२०)
नीलाम से	४९)
वटलकुंडु—नीलाम से प्राप्त	१२)
वीरपंडी—जनता की थैली	९०)
नीलाम से	२)
पुदुपट्टी—जनता की थैली	५०-)॥
नीलाम से	७)
तेनी—जनता की थैली	२३३)
नीलाम से	१५)
पालनीचेट्टीपट्टी—जनता की थैली	१०१)
नीलाम से	८।॥)
पुलनादपुरम्—जनता की थैली	५)
उत्तमपलायम्—जनता की थैली	१०१॥≈)॥
नीलाम से	५)
तेनीपुडुपट्टी—जनता की थैली	१००)
चिन्नमन्नूर— „ „	२००)
नीलाम इत्यादि से	६)
कुंबम्—जनता की थैली	१००१)
नीलाम व फुटकर संग्रह	९१।-)।
वन्नायार्कोडिन पट्टी—जनता की थैली	४०१)
नीलाम व हस्ताक्षर आदि से	१०)
पुडुपट्टी—एक थैली	३०)
हनुमंतम् पट्टी—जनता की थैली	२५)
कोम्बाई—विभिन्न थैलियाँ	२०६)
नीलाम इत्यादि से	३०)
पन्नीपुरम्—गाँव की थैली व फुटकर	३२)
नीलाम, नाम-संस्करण व फुटकर-संग्रह से	१२)
तीवरम्—जनता की थैली	१००१-)॥
बालिकाओं की थैली	१७≈)॥
हरिजनों की थैली	१५)
महिलाओं की थैली	३८)
सी० गुरुस्वामी एण्ड सन्स	२५)
हस्ताक्षर-कराई	२०)
फुटकर संग्रह	१०१≈)११
नीलाम से	१२८)
बोडी—जनता की थैली	१०८१)
श्री जगमोहनदास	२३)
हरिजनों की थैली	३॥≈)
नीलाम आदि से	१५)
तीवरम्—विविध संग्रह चलते समय	१०॥)॥।
तेनी—नीलाम से	१५≈)
निवास-स्थान पर फुटकर संग्रह	४६।)॥।
अंदी पट्टी—जनता की थैली	५१)
हरिजनों की थैली	३॥≡)४
नीलाम से	२)
कोमलम पट्टी—जनता की थैली	२००)
बलंडुर स्टेशन—फुटकर संग्रह	२॥)
नीलाम से	२)
मदुरा स्टेशन—फुटकर संग्रह	२)
शोलवंदन—जनता की थैली	८०१)
साउथ स्ट्रीट के निवासियों की थैली	२५)
४ हस्ताक्षरों का शुल्क	१८)
फुटकर संग्रह	५)
नीलाम से	६८)

सप्ताह का जोड़—१४१२३॥-)१

पहले का मिलाकर कुल २८६६०५-)११

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S Gupte.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २३ मार्च, १९३४. [संख्या ५

विषय-सूची

बापू का पुण्य-प्रवास

[१७]

[३ मार्च से ९ मार्च, १९३४ तक]

निर्देशिका

३ मार्च

संडूर से बिल्लारी, ३३ मील मोटर से। बिल्लारी : सार्वजनिक सभा, म्युनिसिपैलिटी, ज़िला-बोर्ड और महिलाओं के मानपत्र, धन-संग्रह १४५५॥≈)॥; हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण। बिल्लारी से गदग, ९१ मील, रेल से। हुसपेट : धन-संग्रह ६०२॥)॥—भानापुर : धन-संग्रह १६३।≈)१०; गदग से जाकनी और वहाँ से गदग, ३६ मील, मोटर से। जाकनी में सार्वजनिक सभा तथा मानपत्र; धन-संग्रह ११०१।≈)। गदग : सार्वजनिक सभा, म्युनिसिपैलिटी का मानपत्र, धन-संग्रह १४३१।)५; गदग से हुबली, ३६ मील, रेल से।

४ मार्च

हुबली : हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण, म्युनिसिपैलिटी व रेल-कर्मचारियों के मानपत्र, सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह २२२०॥-)। हुबली से धारवाड़, १२ मील। धारवाड़ : सार्वजनिक सभा, म्युनिसिपैलिटी, ज़िला-बोर्ड, लिंगायत-युवक-संघ, तथा विद्यार्थियों एवं महिलाओं के मानपत्र, धन-संग्रह ४७०३॥≈)१०; हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण। धारवाड़ से बेलहोंगाल, ४२ मील। मारोवाड़ी : धन-संग्रह ५०)। अम्मीन-भावी : धन-संग्रह ५०)। मोराब : धन-संग्रह १६॥) दार-हिल्लोंगाल : धन-संग्रह २५।≈)। उप्पिनबेतागेरि : धन-संग्रह २७॥)। हिरेलिंगिरी : हनुमानजी का मन्दिर खोला गया; धन-संग्रह २०)। साउन्दत्ती : सार्वजनिक सभा तथा मानपत्र; धन-संग्रह २४०॥≈)॥; मुरकीभावी : धन-संग्रह १८॥≈)। होसुर : धन-संग्रह ३१) बेलहोंगाल : धन-संग्रह १०२३॥≈)११ एक लिंगायत-मन्दिर खोला गया; महिला-सभा; सार्वजनिक सभा; म्युनिसिपैलिटी का मानपत्र। संपगाँव : वासवण्णा-मन्दिर खोला गया; सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह २४६।≈)। ; बागीवाड़ी : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह १५१)।

५ मार्च

बेलगाँव : मौन-दिवस।

६ मार्च

बेलगाँव : कार्यकर्त्ताओं की सभा; सार्वजनिक सभा, म्युनिसिपैलिटी तथा ज़िला-बोर्ड के मानपत्र, धन-संग्रह ५९५८॥≈)॥ [विद्यार्थियों की ३५२) की थैली इस रकम में शामिल है।] टांडोकट्टी: धन-संग्रह ३५)।

७ मार्च

बेलगाँव से निपानी, ५१ मील। यमकनमर्डी : नागरिकों का मानपत्र, धन-संग्रह ३७५॥), मारुति-मन्दिर खोला गया। बैलमारी : धन-संग्रह १६॥); हुकेरी : धन-संग्रह १५६)। गोकाक : धन-संग्रह १०१) संकेश्वर : धन-संग्रह २३५≈)। गडहिंगलाज : धन-संग्रह ५१)। कणगली : धन-संग्रह ७) निपानी : हरिजन-छात्रावास एवं आश्रम का निरीक्षण; सार्वजनिक सभा, व्यापारियों, ईसाइयों तथा जनता के मानपत्र, धन-संग्रह १४०६॥≈) [इसमें व्यापारियों की २५१) की थैली शामिल है।] भोज: धन-संग्रह ५१) निपानी से शेडबाल, ३९ मील। नवालीहाल : धन-संग्रह ११।॥≈)६। कोठली : धन-संग्रह २५)। घोलगरवाड़ी : धन-संग्रह १०)। ईसाई महिलाओं की थैली १०)। चिकोडी : धन-संग्रह ३१७॥≈)। आँकली : धन-संग्रह १०१)।

८ मार्च

शेडबाल : धन-संग्रह १२६।≈)। शेडबाल से बीजापुर, ६८ मील। मँगसोली : धन-संग्रह ८९॥)॥ बालहट्टी : धन-संग्रह १०५)। अठनी : सार्वजनिक सभा तथा मानपत्र; धन-संग्रह ६३९)२। होनवाड़ : धन-संग्रह ३०)। टिकोटा : धन-संग्रह ७८॥)॥। तोर्वी : धन-संग्रह १५) बीजापुर : म्युनिसिपैलिटी तथा ज़िला-बोर्ड के सदस्यों एवं सनातनियों से भेंट; हरिजन-छात्रावास का निरीक्षण, हरिजन-परिषद् में भाषण; सार्वजनिक सभा, म्युनिसिपैलिटी और ज़िला-बोर्ड के मानपत्र, धन-संग्रह २१७≈)॥ [इसमें विद्यार्थियों की ७१) की थैली शामिल है।] इलकाल-हेगरा : धन-संग्रह १०१)। जोरापुर : धन-संग्रह ३०) बीजापुर से हैदराबाद २५७ मील, रेल से।

९ मार्च

हैदराबाद : एक हस्ताक्षर का शुल्क ५०१); सार्वजनिक

सभा तथा मानपत्र, थैली १६००) । सिकन्दराबाद में सभा, थैली ११००) । गुजरातियों की थैली १००१) । पटना के लिए प्रस्थान ।

इस सप्ताह में कुल यात्रा : ६९३ मील

सनातनियों में

३ मार्च को गांधीजी मन्दूर से बिल्लारी पहुँचे । थैली देते हुए बिल्लारी की स्वागत-समिति के अध्यक्षने कहा, कि, "मैं नहीं कह सकता, कि बिल्लारी की तमाम सवर्ण जनता की ओर से यह थैली आपको भेंट की जा रही है । यहाँ कुछ ऐसे सवर्ण भाई हैं, जिन्होंने न सिर्फ पैसा देने से ही हाथ सिकोड़ा है, बल्कि थैली का देना भी ठीक नहीं समझा और इस कारण असहयोग कर लिया है ।" इसके जवाब में गांधीजीने स्वागत-समिति के अध्यक्ष को, उनकी इस स्पष्टवादिता के लिए धन्यवाद दिया और कहा, कि मेरे लिए यह पहला ही अवसर है, जब कि मैं ऐसे असहयोग की बात सुन रहा हूँ । गांधीजीने यह भी सुन रक्खा था, कि मन्दिर-प्रवेश के सम्बन्ध में क़ानून बनवाने का जो प्रयत्न हो रहा है, उसके कारण यहाँ के सनातनी उन पर नाराज़ हैं । गांधीजीने उन्हें विश्वास दिलाया, कि धारा-सभा में जो बिल पेश है, उसमें बलात्कार की तो कोई बात ही नहीं । बल्कि जो क़ानूनी बलात्कार सुधार के मार्ग में आज रुकावट डाले हुए है, उसे हटाने के लिए ही मन्दिर-प्रवेश बिल की रचना की गई है । इसलिए उन्होंने बिल्लारी के सनातनियों से अनुरोध किया, कि हरिजन-कार्य की जिन बातों में उनका कोई मतभेद नहीं है, कम-से-कम उनमें तो वे सुधारकों का हाथ बटावें । पारस्परिक सहिष्णुता पर गांधीजीने काफी ज़ोर दिया । अगर सिर्फ इतना ही सनातनी स्वीकार कर लेते, कि मन्दिरों में आनेवाले सवर्ण हिन्दुओं के बिना ख़ासे अच्छे बहुमत के, कोई मन्दिर हरिजनों के लिए न खोला जायगा, तो उनके लिए शिकायत या नाराज़ी का कोई कारण ही नहीं था । इसलिए यह बिल पास भी हो जाय, तो भी सिर्फ उसी के सहारे कोई मन्दिर आप-से-आप न खुल जायगा । आज तो मौजूदा क़ानून के कारण यह हालत है, कि बहुमत की मरज़ी के खिलाफ़ सिर्फ एक आदमी अड़ंगा लगादे, तो मन्दिर नहीं खुल सकता । खैर, यह सवाल रहने दें । हरिजन बच्चों को शिक्षा देने या हरिजनों के लिए सार्वजनिक कुएँ व तालाब खोल देने अथवा उनकी सामान्य आर्थिक उन्नति करने-कराने में तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए । गांधीजीने कहा, कि मैं बिना किसी हिचकिचाहट के यह कह सकता हूँ, कि जो पैसा इकट्ठा किया जा रहा है, उसका उपयोग मन्दिरों के बनवाने में नहीं किया जायगा । यह फण्ड तो केवल रचनात्मक कार्यों में ही ख़र्च होगा । सनातनियों से यह अपील करने के बाद, गांधीजीने कहा कि अब मैं उस भारी जन-समूह की सहानुभूति को परखना चाहता हूँ, जो मेरे सामने सभा में उपस्थित है । इसलिए उन्होंने स्वयंसेवकों को आदेश दिया, कि वे लोगों के बीच में जाकर रुपया, पैसा, गहने या जो वे हरिजन-कार्य के अर्थ देना चाहें, वह उनसे माँगें । इस अपील का बड़ा अच्छा असर हुआ । कई लोगोंने तो खुद ही सभा-मंच पर आकर गांधीजी के हाथ में रुपये दिये और जो अपने स्थान पर बैठे रहे, उन्होंने स्वयंसेवकों को यथाश्रद्धा हरिजन-कार्य के निमित्त रुपया-पैसा दिया ।

एक ज़मींदार की हरिजन-सेवा

गदग से १२ मील के फ़ासले पर जाकली नाम का एक गाँव है । जाकली को जानेवाली सड़क तो अच्छी नहीं थी, पर गांधीजी को वहाँ श्री अन्दनप्पा नाम के एक नवयुवक ज़मींदार का हरिजन सेवा प्रेम देखने के लिए जाना ही पड़ा । ज़मींदारने हरिजनों का ८००) का कर्ज़ा माफ़ कर दिया है, और अन्य अनेक प्रकार के सेवा-कार्यों के कारण वह हरिजनों का प्रिय बन गया है । जाकली में लोगों की भारी भीड़ थी । आसपास के गाँवों से हज़ारों लोग आये हुए थे । १०००) की मुख्य थैली श्रीयुक्त अन्दनप्पाने ही दी । गांधीजी को वहाँ यह बतलाया गया, कि वहाँ के बहुत-से हरिजनोंने जो मुर्दार तथा गो-मांस और शराब का परित्याग कर दिया है, उस सब का श्रेय श्री अन्दनप्पा को ही है ।

नालियों की सफ़ाई

हुबली में गांधीजी को हरिजन-बस्तियाँ दिखाने ले गये । वहाँ तो हमें बड़ा आश्चर्य और आनन्द हुआ । वहाँ हम लोगोंने एक अच्छा कारखाना देखा, जो एक हरिजन भाई का है और जिसे वह काफी सफलता के साथ चला रहा है । उस भाईने गांधीजी को थैली दी और चाँदी का एक कटोरा भी । लेकिन उस हरिजन का वह सुन्दर कारखाना देखकर जो खुशी हुई थी, वह सब वहाँ की बस्तियों की बदबूदार गन्दी नालियोंने नष्ट करदी । म्युनिसिपैलिटी के मानपत्र का जवाब देते समय गांधीजीने हरिजन-बस्तियों की नालियों की चर्चा की । उन्होंने कहा, कि नालियों-मोरियों का साफ रखना तो प्रत्येक म्युनिसिपैलिटी का प्रथम कर्त्तव्य है । अगर म्युनिसिपैलिटी ठीक तरह से ध्यान दे, तो एक दिनमें ही हरिजन-बस्तियों की गन्दी नालियाँ साफ़ हो सकती हैं और इसमें ख़र्च का भी कोई सवाल नहीं है । स्वयंसेवक उन नालियों को बात-की-बात में साफ़ कर सकते हैं । लेकिन तभी, जब कि म्युनिसिपैलिटी के मेंबर खुद भी इस सेवा में भाग लें । जिस प्रकार शरीर का स्वच्छ रखना आसान और आवश्यक है, इसी प्रकार गाँव या शहर की नालियों को भी साफ़ हालत में रखना ज़रूरी है । सार्वजनिक सभा में भी गांधीजीने इसी प्रसंग पर कहा कि अगर शहर या गाँव को साफ़ रखने में लापर्वाही की जाती है, तो इसका यह अर्थ होता है कि प्लेग-जैसी संक्रामक बीमारियाँ वहाँ भयकरता से फैलें । इसलिए हरिजन-बस्तियों के प्रति उपेक्षा का बुरा प्रभाव निश्चय ही नागरिकों या ग्रामीणों के स्वास्थ्य पर पड़ता है ।

परिश्रम भी पूँजी है

हुबली में रेलवे के आदमियोंने, जिनमें कुछ हरिजन भी थे, गांधीजी को मानपत्र दिया था । उन्होंने उस मानपत्र में यह भी कहा था, कि बेकारों के बारे में उन्होंने जितनी भी अर्ज़ियाँ दीं, सब-की-सब अनसुनी ही गईं, उनका सारा प्रयत्न अरण्य-रोदन ही रहा । कारण यह है, कि जहाँ देखो वहाँ पूँजी का ही बोलबाला है । गांधीजीने इस मानपत्र के उत्तर में कहा, कि—"मैं तो खुद ही तुम्हारी ही तरह एक मज़दूर हूँ । मैं मज़दूरों के ही बीच में रहा हूँ । तुम लोग हिम्मत न हारो ।

अपने आप पर भरोसा रखो। जिन्हें तुम पूँजीपति कहते हो, उनके सामने अपने को असहाय महसूस न करो। परिश्रम तो स्वयं ही एक पूँजी है। यह आवश्यक नहीं है, कि मनुष्य की पूँजी का हम रुपये-पैसे से ही हिसाब लगावें। प्राचीनकाल में पशुओं से मनुष्य के धन का लेखा लगाते थे। श्रमजीवी का धन उसका परिश्रम है। इसलिए पूँजी के प्रकार में कोई भेद नहीं है। भेद तो यह मिक़दार में है। पूँजीपतियों के पास जहाँ हज़ारों रुपये हैं, वहाँ एक मज़दूर के पल्ले उसका परिश्रम है, जिसका प्रतिदिन का मूल्य सिर्फ़ ॥) ही होता है। लेकिन ५०००० मज़दूरों के एक दिन के सम्मिलित परिश्रम का अर्थ होता है २५०००) की पूँजी। यह साबित करने के लिए ऐसे कई उदाहरण दिये जा सकते हैं, कि कुछ परिस्थितियों में परिश्रम का सहयोग न मिलने के कारण पूँजीपतियों की स्वर्ण-मुद्राओं को लोगोंने माटी मोल भी न पूछा, जब कि एक अकेले श्रमजीवी का परिश्रम अमूल्य साबित हुआ। इससे अगर मज़दूर भाई एकता के सूत्र में बँधकर काम करें, तो वे ठीक मिल-मालिकों की ही तरह पूँजीपति हो सकते हैं। कारखानों के मालिक और उनमें काम करनेवाले मज़दूर एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। इसलिए शिकायत का तो उनमें से किसी को कोई अवसर ही न आना चाहिए, यदि वे अपने-अपने कर्त्तव्य की सीमाओं का अतिक्रमण न करें। और यही बात हरिजनों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है, बल्कि उन पर तो यह और भी अधिक लागू होती है। अगर उन्हें अपनी आत्मशक्ति का भान हो जाय, तो फिर संसार में ऐसा कौन है, जो उनकी आर्थिक उन्नति में बाधक हो सके?

मंदिर और कुएं खोले गये

यमकनमर्डी, हिरलिंगिरि, सौंदगाँव और बेलहोंगाल स्थानों में गांधीजीने सैकड़ों-हज़ारों नर-नारियों के बीच में हरिजनों के लिए मंदिर खोले। और हुक्केरी में उन्होंने एक अच्छा पुराना कुआँ भी खोला। दो मंदिर तो हनुमानजी के थे और दो लिंगायतों के। उस छोटे-से हिरलिंगिरि ग्राम से तो अस्पृश्यता जैसे बिलकुल ही दूर हो गई है। वहाँ के सवर्ण हिंदू तो पूरी समता और मैत्री के भाव से हरिजनों के साथ रहते हैं। अधिकांश में वहाँ के हरिजनोंने शराब और मुर्दार व गोमांस का परित्याग कर दिया है।

कार्यकर्त्ताओं के साथ

बेलगाँव में हरिजन-कार्यकर्ताओं की एक बैठक हुई थी। वहाँ एक सज्जन टाइप किये हुए कुछ प्रश्न लेकर आये थे। कुछ प्रश्न तो अत्यंत उपयोगी थे, जैसे—

'आप का यह हरिजन-कार्य क्या एक विशुद्ध धार्मिक कार्य है या इसके राजनैतिक हेतु हैं?'

गांधीजीने इस प्रश्न का झटसे उत्तर दिया कि, "निश्चय ही यह एक विशुद्ध धार्मिक कार्य है।"

दूसरा प्रश्न था—'जब आप जानते हैं कि कुछ पंडित और सनातनी अस्पृश्यता को शास्त्र-विहित मानते हैं, तो फिर विपरीत मतवालों की सम्मति आप क्यों लेते हैं?'

गांधीजीने जवाब दिया—"अस्पृश्यता के विषय में मेरा जो मत है, वह किसी की राय से स्थिर नहीं हुआ है। किसी पंडित के साथ इस विषय पर विचार विनिमय करने के बहुत पहले ही मैं अपना मत स्थिर कर चुका था। पर जब मैं अस्पृश्यता के विरुद्ध प्रचार करने लगा, और ख़ासकर मेरे प्रथम उपवास के कारण इस प्रश्नने जब संसार-भर का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया, तब मुझे उन लोगों की स्थिति का अध्ययन करना पड़ा, जो अस्पृश्यता का समर्थन शास्त्रों के आधार पर किया करते हैं। यदि मुझे अस्पृश्यता को शास्त्रविहित माननेवाले पंडित मिले, तो ऐसे भी लोगों से मिलने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ, जो इस मत का ज़ोरों से खंडन करते हैं, कि वर्तमान अस्पृश्यता के लिए शास्त्रों में कोई आधार है, और वे मेरी राय में उतने ही धुरंधर विद्वान् थे, जितने कि दूसरे। अपने मत के समर्थन में उन विद्वान् पंडितों के प्रमाण पेश करने का मुझे अधिकार है। पर मान लीजिए, कि उन विद्वान् पंडितों की सम्मति मेरे मत के विरुद्ध पड़ती, तो भी मैं मानता हूँ, कि एक भी पंडित के समर्थन के बिना भी मेरा अपना विश्वास काफ़ी दृढ़ है।"

इसके बाद यह प्रश्न किया गया, कि 'आपने यह सैकड़ों बार कहा है, कि मैंने हिमालय जैसी भारी-भारी भूलें की हैं। तो क्या आप को पूरा यक़ीन है, कि आप वैसी ही एक और बड़ी भूल फिर नहीं कर रहे हैं?'

इसका उत्तर यह दिया—"नहीं, क्योंकि मैं अपने को त्रिकालदर्शी नहीं मानता। किंतु यदि मुझे यह पता चल जाय, कि मैंने ग़लती की है, तो मुझे इस कार्य से हट जाने में तनिक भी आनाकानी न होगी। और मैं जानता हूँ, कि ईश्वरने जैसे अबतक की मेरी ग़लतियों को माफ़ किया है, उसी तरह मेरी और भूलों को भी वह दयालु स्वामी माफ़ कर देगा।"

एक दूसरे कार्यकर्त्ताने पूछा, कि 'कुछ लोगों का तो यह कहना है कि हरिजनों के लिए पृथक् पाठशालाएँ नहीं होनी चाहिए, और कुछ यह कहते हैं, कि पृथक् पाठशालाएँ तो बहुत ही ज़रूरी हैं। आपकी इस पर क्या राय है?'

गांधीजीने कहा—"मेरी अपनी राय तो यह है, कि सार्वजनिक पाठशालाओं में हरिजन बच्चों को दाख़िल कराने का पूरा प्रयत्न तो होना ही चाहिए, पर इसमें संदेह नहीं, कि उन्हें प्राइमरी पाठशालाओं के लिए तैयार करने के विचार से कुछ दिनों के लिए तो पृथक् पाठशालाओं की आवश्यकता रहेगी ही। यह आशा करना व्यर्थ है, कि तमाम हरिजन बच्चे एक बारगी ही प्राइमरी पाठशालाओं में दाख़िल हो जायँगे। और इससे विरोध की भी तो संभावना हो सकती है। इसलिए यदि हम सचमुच ही हरिजन बच्चों को शिक्षित बनाना चाहते हैं, तो उनके लिए फ़िलहाल प्रारंभिक पाठशालाओं की निस्संदेह आवश्यकता रहेगी।"

हरिजन-छात्रालय के निमित्त

कुछ वर्ष हुए, कि बेलगाँव के समीप शाहपुर में काकासाहब कालेलकर की धर्मपत्नी का देहांत हो गया था। तब से वह संन्यासाश्रम का ही पालन कर रहे हैं। पत्नी के स्वर्गवास के बाद उनकी परिग्रह-त्याग की भावना बढ़ती ही गई। बेलगाँव से पाँच मील पर उनके नाम से कुछ एकड़ पुश्तैनी ज़मीन थी। काका साहबने उसके विषय में अपने पुत्रों से परामर्श किया, तो

[५५वें पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

हिंदूधर्म में अस्पृश्यता

और

महाराष्ट्रीय साधु-संतों के उसपर विचार

संतश्रेष्ठ श्री तुकाराम महाराज स्पृश्यास्पृश्य के विषय में, देखिए, क्या कहते हैं। श्रीमद्भगवद् गीता में दिग्दर्शित चातुर्वर्ण्य की योजना गुण-कर्मों के विभागों पर ही निर्भर है, ऐसा देखने में आता है। यही तत्त्व श्री तुकाराम महाराजने भी माना है। यदि इस दृष्टि से उनके अभंगों का अध्ययन किया जाय, तो उपर्युक्त विधान की सत्यता स्पष्टत: दिखाई देगी।

वैष्णवों का धर्म, अर्थात् विष्णुधर्म क्या है ? संसार को विष्णुमय देखना। किसी भी जीव के प्रति 'मत्सर' भावना का अभाव रखनेवाला ही सच्चा वैष्णव कहलाता है।

विष्णुमय जग वैष्णवाचाधर्म। भेदाभेद भ्रम अमंगल।
कोणाही जीवाचा न घड़ावा मत्सर। वर्म सर्वेश्वर पूजनाचें।

अर्थात्—'संसार' को 'विष्णुमय' देखना, यही वैष्णवधर्म है। भेदाभेद की भावना तो अमंगल है, अशुच है और भ्रम है। किसी भी जीव के प्रति मत्सर भाव का न रखना ही उस सर्वेश्वर की सेवा का सार है।

अमुक व्यक्ति ब्राह्मण, अमुक मराठा और अमुक अंत्यज—इस प्रकार की दृष्टि वैष्णव की तो कदापि नहीं रह सकती। उस को तो घटघट में—चारों ओर—ईश्वर-ही-ईश्वर दिखाई देता है।

जन विजन झाले आम्हां। विट्ठल नामा प्रमाणें।
पाहे तिकडे बाप माय। विट्ठल आहे रखुमाई।

अर्थात्—"व्यक्तिमात्र मुझे तो विट्ठल और नामदेव-स्वरूप हैं। जिधर देखता हूँ, उधर ये पिता और माता केवल विट्ठल और रखुमाई के रूप में ही दिखाई देते हैं।

आगे का अभंग भी ऊपर के तत्त्व का ही अनुगामी है—

जाति कुळ येथें असे अप्रमाण।
गुणाचे कारण असे अंगीं।

यहाँ (इस सृष्टि में) जाति और कुल का कोई प्रमाण स्वीकार नहीं किया जाता।

इस देह में तो गुण ही (कारण) हैं। (गुणों का ही विचार किया जा सकता है।)

तुकोबा छुआछूत को शरीर अथवा जाति-जन्य नहीं मानते। उनका तो यह कहना है, कि:—

साधनें तरी हींच दोन्हीं। जरी कोणी साधील।
परद्रव्य परनारी याचा धरी विटाल।

यदि साधना ही करनी है, तो इन दो वस्तुओं के स्पर्शास्पर्श की साधना करना। वे दो वस्तु कौन-सी हैं ? परधन और परदारा—इन्हें ही अस्पृश्यता मान।

प्रभु के सेवक के लिए उसकी जाति अथवा कुल कोई अर्थ नहीं रखते।

'हरि का सेवक'—किसी भी कुल या जाति को धन्य समझेगा।

हो का भलतें कुळ। शुचि अथवा चांडाळ।
म्हणवी हरीचा दास। तुका म्हणे धन्य त्यास॥

चांडाल के कुल में जन्म हो या पवित्र कुल में—जिसने अपने को भगवान् के चरणों में अर्पित कर दिया, वही धन्य है।

ऊपर के 'अभंगों' में अशुचि कौन, यह बतलाया गया है। अब तुकोबाने 'शुचि' अर्थात् शुद्ध किसे माना है, यह भी देखें।

विटाळ तो परद्रव्य परनारि।
येथुनी जो दुरी सोवळा तो।

परद्रव्य, और परदारा, बस इन्हीं की छूत मानो जो इनसे दूर रहता है, उसे ही शुद्ध समझो।

इतने पर ही तुकोबा के स्पर्शास्पर्श का अन्त नहीं हो जाता। उन्होंने तो सब जातियों की नामवार सूची दी है और यह डंके की चोट से कहा है, कि प्रत्येक मनुष्य को नामस्मरण का समानाधिकार है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। चांडालाही अधिकार।
बाले, नारी, नर। आदी करोनि वेश्याहि।

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल—बालक, नर, नारी—वेश्या आदि सभी को यह अधिकार है।

सच्चे ब्राह्मण को भी यदि क्रोध आ जाय, तो समझना चाहिए कि उसे चाण्डालने छुआ है। और यह 'छूत' देहान्त-प्रायश्चित के द्वारा भी दूर नहीं की जा सकती, ऐसी तुकोबा की सम्मति है।

महारासि शिवें। कोपे ब्राह्मण तो नव्हे।
तया प्रायश्चित्त कांहीं। देहत्याग करितां नाहीं।
ज्याचा संग चित्तीं। तुका म्हणे तो ते याती।

महार या भंगी को छू जाने से जिसे क्रोध आ जाता है वह ब्राह्मण ही नहीं कहा जा सकता। उसके लिए तो देहत्याग के बिना अन्य प्रायश्चित्त ही नहीं। जिस वस्तु का मनुष्य अपने हृदय में ध्यान किया करता है, बस वह उसी को पाता है।

अपने अन्तर्यामी का विस्मरण जिस कारण से होता है, उसी को तुकोबा 'पाप' कहते हैं।

देव अंतर तें पाप।

परमेश्वर से अन्तर करानेवाला ही तो पाप है।

जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी यदि वह वितंडावादी है, तो उसे ब्राह्मण नहीं, किन्तु 'अन्त्यज' मानना चाहिए—

अतीवादी नव्हे शुद्ध या बीजाचा।
ओळखा जातीचा अंत्यज तो।

अतिवादी अर्थात् अनावश्यक निरर्थक वाद-विवाद करनेवाला हरगिज़ ब्राह्मण का जाया हुआ नहीं कहा जा सकता। उसे तो निश्चय ही अन्त्यज समझो। तुकोबा का कथन है, कि प्रभु के दरबार में जात पाँत का हिसाब नहीं है। गुण-अवगुण को ही परमात्मा एकमात्र प्रमाण समझते हैं।

कन्या गौ करी कन्येचा विकरा।
चांडाल तो खरा तया नांवें।
गुण अवगुण हे दोन्ही प्रमाण।
यासिशी कारण नाहीं देवा।

'कन्या' 'धेनु' है। जो कन्या-विक्रय करता है—उसी का नाम चाण्डाल है। उसी को सच्चा चाण्डाल मानना चाहिए। ईश्वर तो गुण और अवगुण इन दोनों बातों को ही प्रमाणभूत

जानता है। उसे जात-पाँत से वास्ता नहीं। जाति पर तो कुछ भी निर्भर नहीं है। यदि ब्राह्मण हो और मुख से कभी हरिनाम न जपता हो, तो उसे क्या आप ब्राह्मण कहेंगे?

ब्राह्मण तो नव्हे ऐसी ज्याची बुद्धि।
पहा श्रुतिमधीं विचारुनि।
जयासि नावडे हरिकीर्तन।
आणीक नर्तन वैष्णवांचें।

जिसको भगवत्-कीर्तन में प्रेम न हो और वैष्णवों का भक्तिमय नृत्य जिसको न सुहाता हो—उसे ब्राह्मण न कहना चाहिए। श्रुति आदि को भली भाँति देखें, तो वह भी यही निर्णय देती हैं। इसके विपरीत—यदि अंत्यज हो और 'राम नाम' से उसकी 'तालो' लग गई हो—तो?

ब्राह्मण तो याती अंत्यज असतां।
मानावा तत्त्वा निश्चयेंसी।
रामकृष्ण नाम उचारी सरळ।
आठवी सावळें रूप मनीं।
शांति, दया, क्षमा, अलंकार अंगीं।
अभंग प्रसंगीं धैर्यवंत।
तुका म्हणे गेल्या षड्ऊर्मी अंग।
सांडूनिया मग ब्राह्मण तो।

अर्थात्—'राम कृष्ण नाम' का सरलतापूर्वक जप करता हो, सांवले घनश्याम के सुन्दर रूप का जो ध्यान धरता हो, शांति, दया, क्षमा, आदि जिसके अलंकार हों, और कठिन प्रसंगों में जो अचल और धैर्यवान् रहता हो, कामक्रोधादि षड्रिपुओं को जिसके हृदय में स्थान न हो—वास्तव में यदि वह जन्म से अंत्यज भी हो तो उसे 'ब्राह्मण' ही मानना चाहिए। ब्राह्मण होते हुए भी जो भगवद्भक्तिपरायण नहीं, उसका तो मुँह देखना भी पाप है। उसकी अपेक्षा तो चमार कई गुणा अधिक अच्छा है।

अभक्त ब्राह्मण जळो त्याचें तोंड।
काय त्याची रांड प्रसवली।
वैष्णव चांभार धन्य त्याची माता।
शुद्ध उभयतां कुळयाती।

अर्थात्—अभक्त ब्राह्मण, हरे हरे! हटाओ उसे सामने से। उसका तो मुँह देखना भी पाप है। उसकी माताने क्यों ऐसे पुत्र को जन्म दिया? चमार हो और अगर वह वैष्णव हो, तो अहा हा! धन्य है उसकी जननी को। उसका कुल और उसकी जाति दोनों ही शुद्ध हैं। और जाति-गोत्र से करना ही क्या है? नामस्मरण से ही मनुष्य धन्य-धन्य हो जाता है।

तुका म्हणे नाहीं जाती सवे काम।
ज्याचे मुखीं नाम तोचि धन्य।

तुकोबा का यह कथन है कि यहाँ (परमात्मा के पास) जात-पाँत से तो कोई मतलब ही नहीं। जिसके मुख में श्री राम नाम हो, बस, वही कृतार्थ है।

भेदाभेद दृष्टि रखने से तो सब प्रकार का विनाश ही होता है। वास्तव में, यह सब सृष्टि भगवान् का स्वरूप ही तो है।

जीव अवघे देव। खोटा नागवी संदेह।

सब जीव, सब प्राणिमात्र देव है। हमारे भीतर जो संदेह उत्पन्न हो जाता है, बस वही सब बरबादी कर रहा है। किन्तु यह दिव्यदृष्टि तुकोबा को भी यकायक प्राप्त नहीं हुई थी। उनको भी प्रभु की शरण लेनी पड़ी थी।

जीव अवघे देव। ऐसा भाव दे कांहीं।

अर्थात्—हे प्रभो! जीवमात्र सब तेरे ही रूप हैं, ऐसी सर्वगत भावना मेरे भी अंतर में निर्माण कर।"

किन्तु निकट भविष्य में ही उन्होंने यह अनुभव किया कि:—

विश्वीं विश्वंभर। बोले वेदांतीचा सार।
जगीं जगदीश। शास्त्रें वदती सावकाश।
व्यापिलें हें नारायणें। ऐसें बोलती पुराणें।
जनीं जनार्दन। संत बोलती वचन।
उत्तम चांडाल नर, नारी बाल।
अवघेची सकल चतुर्भुज।
अवघा विठ्ठल दुजें नाहीं।
भरला अंतर्बाही सदोदित।

अर्थात्—वेदों का सार निकाला जाय, तो यही मालूम होगा, कि इस अखिल विश्व में वह विश्वंभर ही समाया हुआ है—यही वेदों का सार है।

शास्त्रों से भी इसी बात का पता चलता है, कि इस जगत् में जगदीश ही समा रहा है।

पुराण क्या कहते हैं—यह सब संसार श्रीनारायण से ही व्याप्त है।

सन्तों का भी यही कथन है, कि जनता में ही जनार्दन है। नर, नारी, बालक, उत्तम अथवा चाण्डाल—सब-के-सब उस चतुर्भुज परमात्मा के ही रूप हैं।

यह सब संसार 'विठ्ठलमय' है। अन्य यहाँ कुछ भी नहीं है। सर्वत्र, बाहर-भीतर, हर जगह वही विठ्ठलदेव समा रहा है।

जहाँ हृदय में परमात्मा को स्थान दे दिया, वहाँ छुआ-छूत कैसी?

जेथें देवाची तळमळ। तेथें कशाचा विटाळ।

जहाँ ईश्वर के विषय में अंतर अधीर हो रहा हो—प्रभु के ही चिंतन में जिस जगह ताळावेली मच रही हो, वहाँ अस्पृश्यता कहाँ से और कैसे आ सकती है?　　(असमाप्त)

पुरुषोत्तम हरि गद्रे

हृदय-मंदिर

"हमें अपने हृदय-मंदिर को सदा पवित्र रखना चाहिए। अन्य मंदिरों के समान इस हृदय-मंदिर को स्वच्छ और पवित्र रखना हमारा धर्म है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर की मलिनता से उसको मैला न होने देना हमारा कर्तव्य है। किसी स्त्री को कुदृष्टि से देखने, किसी निर्दोष पुरुष पर क्रोध करने, किसी की वस्तु चुराने की इच्छा करने, किसी प्रकार के पाप का विचार करने से यह हृदय-मंदिर—हमारे भीतर स्थित भगवान् का मंदिर—मैला हो जाता है। इसलिए उचित है, कि इस मंदिर के भीतर काम, क्रोध और लोभ के मैल को न पैठने दें और पैठ जाय तो जहाँतक हो सके, शीघ्र-से-शीघ्र भगवान् के नामरूपी पावन जल से धोकर साफ करलें।"

—मालवीयजी

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २३ मार्च, १९३४

मन्दिर-प्रवेश बनाम आर्थिक उन्नति

मंदिर-प्रवेश के प्रश्न के संबंध में कभी-कभी अखबारों में टीका-टिप्पणी देखने में आती है। यह आलोचना द्विमुखी हुआ करती है—एक ओर तो हरिजनों की की हुई होती है और दूसरी ओर सनातनियों की। कुछ हरिजन कहते हैं कि, 'हमें मंदिर-प्रवेश की जरूरत नहीं, यह हमें न चाहिए। रहने दीजिए यह मंदिरों का बनवाना। आप तो इस सारे पैसे को हमारी आर्थिक उन्नति में ही लगाइए।' और कुछ सनातनियों का यह कहना है, कि 'मंदिर-प्रवेश की बात तो एकदम छोड़ दीजिए। हरिजनों को मंदिरों में जबरदस्ती लाकर आप हमारी भावनाओं को ठेस पहुंचाते हैं।' यह दोनों ही आलोचक भ्रम में हैं। मंदिर बनवाने में हरिजन-थैली-फंड की एक पाई भी खर्च नहीं हुई और न होगी। प्रयत्न तो यही हो रहा है, कि सार्वजनिक मंदिर जिस प्रकार दूसरे हिंदुओं के लिए खुले हुए हैं, उसी प्रकार हरिजनों के लिए भी खोल दिये जायें। फिर यह हरिजनों की मरज़ी पर है, कि मंदिरों में वे जाय या न जाय। हरिजनों के ऊपर जो प्रतिबंध लगा हुआ है वह सवर्ण हिंदुओं को दूर करना है। जो लोग मंदिर को अध्यात्म-धन का भंडार समझते हैं, उन करोड़ों के लिए तो वह प्राण से भी अधिक प्रिय जीवित-जाग्रत वस्तु है। अस्पृश्यतारूपी पाप का यदि हम सच्चा प्रायश्चित्त करना चाहते हैं, तो हमें अपने इन अध्यात्म-भंडार मंदिरों में हरिजनों को अवश्य उचित भाग देना चाहिए। मंदिरों का खोल देना हरिजनों के लिए कितनी बड़ी बात है, यह मैं जानता हूं। धारवाड़ और बेलगांव के बीच में हरिजनों के लिए मैंने तीन मंदिर खोले। उन अवसरों पर सवर्ण हिंदू और हरिजन काफ़ी बड़ी संख्या में उपस्थित थे। आलोचक अगर वहाँ होते और उन्होंने हरिजनों का उस समय का वह हर्ष देखा होता, जो मूर्ति को प्रणाम करते तथा प्रसाद लेते समय उन्हें उस समय हुआ था, तो ऐसी टीका-टिप्पणी वे कभी न करते, उनकी सारी आलोचना वहीं ठंडी पड़ जाती। आलोचना करनेवाले उन हरिजनों की समझ में यह आजाता कि उनके खुद के अलावा बाक़ी के अधिकांश हरिजन तो मंदिर-प्रवेश को अवश्य चाहते हैं। और सनातनी आलोचक देखते, कि जहाँ भी जो मंदिर खुलते हैं, वहाँ वे मंदिर में जानेवाले लोगों की पूरी सम्मति से और उनकी खासी अच्छी उपस्थिति में ही खोले जाते हैं। गुपचुप रीति से मंदिर खोलने में कोई सार नहीं। इस से हिंदूधर्म की भलाई होने को नहीं। सार तो तभी है, जबकि ठीक प्रसिद्धि के साथ, विधिपूर्वक तथा मंदिरों में आनेवाले श्रद्धालु लोगों की सम्मति से—न कि उन सुधारकों की राय से, जिनको मंदिरों में श्रद्धा नहीं है और जो मंदिरों को वहमरूप समझते हैं—मंदिर खोले जायें। मंदिर-प्रवेश की प्रवृत्ति में पैसा तो खर्च होना नहीं। मंदिरों में जिनकी आस्था है और सवर्ण हिंदुओं पर जिनका प्रभाव पड़ता है, वही लोग इस विषय में कुछ कर सकते हैं। इसलिए यह प्रश्न बहुत ही नम्रता और सावधानी से सुलझाने का है। श्रद्धालु सुधारक ही मंदिर-प्रवेश के संबंध में काम करें। उनका यह बतलाने का अधिकार और कर्तव्य है, कि बिना मंदिर-प्रवेश के यह सुधार अधूरा ही नहीं, बल्कि व्यर्थ है। कारण यह है, अगर मंदिरों में जाने का हरिजनों को अधिकार नहीं मिला, तो यह नहीं कहा जा सकता कि अस्पृश्यता जड़मूल से नष्ट हो गई है।

रही अब आर्थिक उन्नति की बात। सो यह कहना बिल्कुल ही ग़लत है, कि मन्दिर-प्रवेश के प्रश्न से हरिजनों की आर्थिक उन्नति में बाधा पहुँच रही है। मन्दिर-प्रवेश आर्थिक उन्नति का विरोधी कैसे हो जाता है? मन्दिर-प्रवेश से तो आर्थिक उन्नति को सहारा ही मिलता है। कारण यह है कि हरिजनों को जब मन्दिरों में जाने का अधिकार मिल जायगा, तो आर्थिक उन्नति का जो मार्ग दूसरों के लिए खुले हुए हैं, वह हरिजनों के लिए भी आप-से-आप खुल जायंगे। जहाँतक हरिजन-थैली-फण्ड का सम्बन्ध है, वह सब उनकी आर्थिक उन्नति पर ही खर्च किया जायगा—अगर यह मान लिया जाय, कि शिक्षा का भी आर्थिक उन्नति के अंतर्गत समावेश हो जाता है। उस शिक्षा का यह उद्देश होना चाहिए, कि पढ़े-लिखे हरिजन जीवन की दौड़ के लिए अधिक योग्य बनें। मुझे मालूम है, कि सवर्ण लोग पढ़-लिखकर जितना चाहिए, उतने योग्य तो नहीं बने। पर ऐसा क्यों हुआ? इसलिए कि उनकी शिक्षा के अन्दर शारीरिक परिश्रम के प्रति तिरस्कार का भाव भरा रहता है। हरिजनों के सामान्य समुदाय के लिए कुछ समय तक तो अभी ऐसी किसी आपदा की आशंका नहीं है। और यह भय हमेशा के लिए भी दूर हो सकता है, अगर हमारे हरिजन-सेवक हरिजन-शिक्षा को उस दोषपूर्ण शिक्षा-पद्धति से दूर रखने का ख़याल रखें, कि जिसमें अधिकांश में उद्योग के लिए तो स्थान ही नहीं है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

आवश्यकता

है अखिल भारतीय हरिजन-सेवक-संघ के दफ्तर में एक क्लार्क के स्थान के लिए एक हरिजन नवयुवक की, जिसने हिन्दी के साथ मैट्रिक पास किया हो, और दफ़्तर के काम का जिसे थोड़ा-बहुत अनुभव भी हो। वेतन योग्यतानुसार २५) तक दिया जायगा। पत्र-व्यवहार नीचे के पते पर करना चाहिए—

जेनरल सेक्रटरी,

हरिजन-सेवक-संघ

बिरला-मिल्स, दिल्ली

गोरखपुर ज़िले में हरिजन-सेवा

[सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता श्रीयुक्त बाबा राघवदासजीने गोरखपुर ज़िले की हरिजन-सेवा का विवरण प्रकाशनार्थ भेजा है, जिसे हम नीचे देते हैं। बाबाजी का सदुद्योग वास्तव में हमारे लिए अनुकरणीय है—सं०]

पाली ग्राम के हरिजनाश्रम के समीप नखनी में फागुन सुदी ५ को एक हरिजन-सम्मेलन हुआ। प्रार्थना-पूजन के पश्चात् हरिजन बालकोंने उपस्थित जनता को प्रसाद बाँटा, जिसे सब लोगोंने सहर्ष ग्रहण किया। जिन पाँच नवयुवकोंने इस सम्मेलन का आयोजन किया था, उन्हें कुछ प्रगति-विरोधी सवर्ण सज्जनोंने जाति-बहिष्कृत कर दिया है। ग्रामवासी उनके हाथ का छुआ पानीतक नहीं पीते। तो भी वहाँ के वे हरिजन-सेवी नवयुवक और उनके परिवारवाले बड़ी दृढ़ता के साथ पूर्ववत् अपना कार्य कर रहे हैं।

हरिजनाश्रम, पाली की ओर से ग्राम-वासियों की कपड़े की कमी को दूर करने के लिए छोटे पैमाने पर खादी का कार्य आरंभ कर दिया गया है। तीन महीने में २ मन, १६ सेर सूत काता गया है, और २१ थान खादी बुनी गई है। बुनाई की दर दो पैसे गज़ नियत की गई है। बारडोली-चर्खे के ढंगपर नये चर्खे बनवाये जा रहे हैं। हरिजनाश्रम के कार्यकर्त्ता बुनाई का काम मुफ्त में कर देते हैं।

हरिजन-सेवक-संघ की ओर से स्थापित असना ग्राम की पाठशाला में छात्र-संख्या १२० से ऊपर हो गई है। हरिजन एवं सवर्ण सभी बालक इस पाठशाला में पढ़ते हैं।

भटनी (देवरिया) के पास सोनीपुर ग्राम में एक हरिजन-पाठशाला खोली गई है, जिसमें ४० हरिजन बालक पढ़ते हैं। अध्यापक भी हरिजन हैं, और संचालक भी हरिजन, जिनका नाम श्री अछयबर राम है।

श्री परमहंसाश्रम, बरहज, की ओर से भटनी, बरहज से-मोगह आदि बाढ़-पीड़ित स्थानों पर १०१ ग़रीब हरिजनों को चादरें बाँटी गईं।

आश्रम की ओर से एक हरिजन भाई को जूते बनाने का फर्मा और किरमिच आदि सामान दिया गया।

आश्रम के अधीन अनाथालय के एक हरिजन बालक को दर्ज़ी का काम सिखाने के लिए छात्रवृत्ति दी गई है।

बनकटा स्टेशन के पास भड़सर ग्राम में श्रीगंगल हरिजन-आश्रम की ओर से नक़द पैसा न लेकर गल्ले पर खादी-बुनाई का काम कराया जा रहा है। दो महीने में क़रीब १५० गज़ खादी यहाँ बुनी गई है। आश्रम के दो बालकों को बुनाई का काम सिखाया जा रहा है। इधर रुई और सूत की कमी तो नहीं थी, पर बुनाई का कोई प्रबन्ध न था। इससे किसानों को बड़ा कष्ट था। अब यहाँ के किसान पुराने ढंग पर गल्ला देकर खादी बुनवा लेते हैं, इसलिए इस सर्दी के समय ग्रामवासियों को बड़ी सुविधा हो गई है।

बरहज के समीप कसेली गाँव में एक हरिजन-रात्रि-पाठशाला खोली गई है, जिस का सब आवश्यक ख़र्च कलकत्ता-दलित-सुधार-समिति के उत्साही कार्यकर्त्ता श्रीनरसिंहनाथजी देते हैं।

बापू का पुण्य-प्रवास

[५५वें पृष्ठ से आगे]

उन्होंने बड़ी ही प्रसन्नता से अपने पिता के विचार को स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप श्रीयुक्त गंगाधर राव देशपांडे के साथ सलाह करके गांधीजीने बेलगाँव की सार्वजनिक सभा में उस दिन घोषित कर दिया, कि यह ज़मीन काका साहब कालेलकर और उनके पुत्रोंने एक हरिजन-आश्रम स्थापित करने के अर्थ प्रदान कर दी है। अखिल भारतीय हरिजन-सेवक-संघ की ओर से ट्रस्टियों का जो बोर्ड बनाया जायगा, उसी के नाम से इस आश्रम की रजिस्ट्री होगी। आश्रम का विधान और ट्रस्टियों के नाम बाद को नियुक्त तथा प्रकाशित किये जायँगे। काका साहब का यह विचार है, कि महज़ उसकी आमदनी के रूप में ही उस भूमि का उपयोग न किया जाय, बल्कि हरिजनों के हितार्थ जहाँतक हो सके साबरमती-आश्रम से मिलता-जुलता एक आश्रम वहाँ बनाया जाय।

हरिजन-व्यापारी गांधी

निपानी में व्यापारी-मंडलने गांधीजी का स्वागत किया और उन्हें एक थैली दी। सभा में जाने से पहले उन्होंने यह सुन रखा था, कि निपानी के व्यापारियोंने अपनी कमाई में से हरिजन कार्य के लिए कुछ रक़म निकालकर अलग रख देने का निश्चय किया था। लेकिन अब अपने उस वचन के पालने में व्यापारियों का रुख कुछ बदल-सा गया है। फिर भी यह बात नहीं, कि वे लोग बिलकुल ही नट गये हों। व्यापारी-मंडल के सामने भाषण करते हुए गांधीजीने कहा, "मैं एक व्यापारी की हैसियत से ही अपने व्यापारी भाइयों के सामने भाषण कर रहा हूँ। अन्तर इतना ही है, कि जहाँ आप लोग अपने-अपने कुटुम्ब के लिए व्यापार-धन्धा चला रहे हैं, वहाँ मैं एक ऐसे विराट् कुटुम्ब की तरफ से वणिज-व्यापार कर रहा हूँ, जिसमें कई करोड़ आदमी हैं। मेरा मतलब हरिजन-परिवार से है। मैंने देखा है, कि व्यापारियों की साख उनके कमाये हुए रुपये-पैसों पर नहीं, बल्कि उस प्रतिष्ठा पर निर्भर करती है, जो उन्हें अपने वादे पूरे करने से प्राप्त होती है। किसी बैंक की तिजोरियों में सोना-ही-सोना क्यों न भरा हो, लेकिन अगर वह अपने नाम का चेक न सकारे, यानी नाम खाते में उसका बकाया होते हुए भी चेक का भुगतान न करे, तो उसकी साख एक मिनिट में ही धूल में मिल जायगी। इसलिए मैं उम्मीद करता हूँ, कि करोड़ों हरिजनों के निमित्त आपने जो वचन दिया है, उसे पूरा करने में आप हरगिज़ न चूकेंगे।" अच्छा हुआ, जो मंडल की ओर से अध्यक्षने वहीं गांधीजी को यह विश्वास दिला दिया, कि व्यापारियोंने जो वचन दिया है, उसके भंग होने की कोई आशंका नहीं है।

हरिजनों के लिए

निपानी में कई अच्छे सच्चे हरिजन कार्यकर्त्ता हैं। श्रीयुक्त अक्षयचंद्र, जिनके यहाँ हम सब लोग ठहरे हुए थे, अपनी धुन के एक ही हरिजन-सेवक हैं। हरिजन बालकों तथा बालिकाओं का वह, अपने कुटुम्बियों की ही भाँति, पालन-पोषण कर रहे हैं। हरिजनों के हितकारी कार्यों पर वह अनेक प्रकार से काफ़ी रुपया ख़र्च कर रहे हैं। 'भिक्षा' हास्टल वहाँ के एक सच्चे

हरिजन-सेवक की व्यवस्था में बड़ा अच्छा चल रहा है। और वहीं एक आश्रम भी है, जिसे ब्रह्मचारी रामतीर्थने स्थापित किया है। यह सज्जन एक हरिजन-बस्ती में रहते हैं। एक हास्टल और है, जिसे ख़ुद हरिजन लोग बड़ी कठिनाई से चला रहे हैं। गांधीजीने अपने भाषण में इन सब सेवा-कार्यों की चर्चा की, और जनता से अनुरोध किया, कि उसे उन संस्थाओं की उदारता पूर्वक सहायता करनी चाहिए।

ईश्वर का हाथ

शेडबाल एक छोटा-सा रेलवे-स्टेशन है। ठीक समय पर मोटर से बीजापुर को रवाना होने के लिए गांधीजी को शेडबाल में ही रात गुज़ारनी पड़ी। इसलिए वहाँ थैली-वैली मिलने की तो कोई बात थी ही नहीं। मगर शेडबाल के कार्यकर्त्ता अपने यहाँ से बिना कोई सभा किये गांधीजी को भला कैसे जाने देते। इसलिए, सवेरे ही, वहाँ से हमारे रवाना होने से पहले, उन लोगोंने एक सार्वजनिक सभा कर डाली, जहाँ गांधीजीने हरिजन-सेवा-कार्य के लिए लोगों से सहायता की अपील की। उन्होंने बहुत छोटा-सा भाषण दिया, और लोगों से कहा, कि अगर वे इसमें विश्वास करते हैं, कि अस्पृश्यता सचमुच एक पाप है, तो उन्हें इस आंदोलन का समर्थन करना चाहिए और पैसा-पाई जो उनसे बन सके हरिजन-कार्य के लिए देना चाहिए। उनका यह दान उनके उस प्रायश्चित्त का एक चिह्न होगा। इस अपील का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। वहाँ एक हज़ार आदमियों से अधिक नहीं थे। पर शायद ही कोई स्त्री पुरुष ऐसा हो, जिसने कुछ-न-कुछ हरिजन-निधिमें न दिया हो। १२५) की रक़म इस तरह उस छोटी-सी सभा में एकत्र हो गई।

इसी सभा में गांधीजी से पूछा गया था, कि क्या वह ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं? इस प्रश्न का उन्होंने तुरंत यह उत्तर दिया—"मैं ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास किये बिना कैसे रह सकता हूँ, जब कि मैं एक मामूली-सी प्रार्थना के परिणाम में स्पष्ट ही उसकी लीला का यह विकास अपने आगे देख रहा हूँ। और उसके लीला-विधान का यह प्रमाण, यह बात नहीं कि, पहला ही उदाहरण हो—इस प्रवास में तो नित्य ही ऐसे प्रत्यक्ष उदाहरण मेरे देखने में आये हैं। ऐसी घटनाओं का सामूहिक साक्ष्य यही तो सिद्ध करता है, कि अवश्य ही कोई ऐसी रहस्यमयी शक्ति है, जिसे हम ईश्वर कहते हैं। और इतना ही नहीं, बल्कि इससे यह भी प्रमाणित होता है, कि हमारे इस आंदोलन में उसी पराशक्ति का हाथ है।"

हरिजन और ब्राह्मण

शेडबाल से हम लोग बीजापुर पहुँचे। रास्ते में कई जगह स्वागत हुआ और थैलियाँ मिलीं। बीजापुर की म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन एक मुसलमान सज्जन हैं। उन्होंने ही म्युनिसिपैलिटी का मानपत्र पढ़ा। उन्होंने ठीक ही इस इतिहास-प्रसिद्ध बात पर ज़ोर दिया, कि आदिलशाही वंश की राजधानी इसी बीजापुर के राजमहलों के ठीक बीचोबीच एक हिंदू-मन्दिर था। बीजापुर ज़िला उस महान् सुधारक बासवेश्वर का जन्मस्थान भी है, जिसने अस्पृश्यता को बिल्कुल ही उड़ा दिया था। इसलिए यह कोई अचरज की बात नहीं, जो बीजापुर में सवर्ण हिंदुओं के साथ-साथ हरिजन बड़े प्रेम से रह रहे हैं और एक ब्राह्मण-बस्ती के बीच में एक हरिजन-हास्टल मौजूद है। इस हास्टल को एक ब्राह्मण सुधारक चला रहा है, जिसने अपना जीवन ही हरिजन-सेवा के सोत्सर्ग अर्पित कर दिया है।

'विश्व-बंधुत्व' की ओर

बीजापुर की सार्वजनिक सभा में जो मानपत्र मिला, उसके उत्तर में गांधीजीने कहा—"अस्पृश्यता-निवारण का यह आन्दोलन 'विश्व-बंधुत्व' की ओर हमारे बढ़ने का एक बड़ा अच्छा प्रयत्न है। मनुष्य सब भाई-भाई हैं, इस महान् सत्य के मार्ग में धर्म के नाम पर आड़े आनेवाली यह अस्पृश्यता शायद सबसे बड़ी बाधक हो रही है। इसलिए अगर सवर्ण हिंदू स्वेच्छा और सचाई से अस्पृश्यता का परित्याग करदें, तो हम लोग इस महान् सत्य के बहुत अधिक समीप पहुँच जायँगे, इतिहास में यह एक अभूतपूर्व बात होगी। इस प्रवृत्ति का कोई राजनीतिक उद्देश नहीं है। यह तो एक आत्म-शुद्धि की ही विशुद्ध प्रवृत्ति है। हमारी हिंदूजाति मानवता के विशाल वृक्ष की एक शाखा है। अगर यह शाखा अस्पृश्यता के रोग से सदियों से पीड़ित है, तो यह अच्छा हो, कि यह मुरझा जाय और काटकर फेंक दी जाय। लेकिन अस्पृश्यता दूर होने के बाद यदि यह शाखा पनप उठे, तो निश्चय ही विश्व-मानवता का समस्त वृक्ष नीरोग तथा स्वस्थ्य हो जायगा। इसीलिए मैं इस प्रवृत्ति को विशुद्ध धर्म प्रवृत्ति कहता हूँ, और इसे सफल बनाने के लिए समस्त विश्व के प्रेमपूर्ण सहयोग को आमंत्रित करता हूँ।"

उपसंहार

बीजापुर से हम लोग हैदराबाद गये। ९ मार्च का सारा दिन हैदराबाद में ही बीता। श्रीमती सरोजिनी देवी, अस्वस्थ्य होते हुए भी, ख़ास करके गांधीजी का स्वागत करने के लिए ही बम्बई से आई थीं। दोपहर को सार्वजनिक सभा के बाद महिला-सभा हुई, जिसमें महिलाओं की काफ़ी अच्छी उपस्थिति थी। श्रीमती सरोजिनी देवी के उद्यान में गांधीजीने अपने हाथ से एक आम्र वृक्ष का आरोपण किया। गांधीजीने कहा, 'मैं आशा करता हूँ, कि नायडू-परिवार की देश-सेवाएँ इस आम्र वृक्ष की तरह दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही जायँगी।' इसके पश्चात् सरोजिनी देवी गांधीजी को सिकन्दराबाद ले गईं, जहाँ एक बहुत बड़ी सार्वजनिक सभा हुई।

यहाँ से गांधीजी को भूकम्प-पीड़ित बिहारने बुला लिया और इस तरह अभी कुछ समय के लिए यह महान् हरिजन-प्रवास स्थगित हो गया।

वालजी गोविंदजी देशाई

मेरे राम ?

बिहारके एक कृपालु विरक्त श्रीवैष्णव महानुभाव, जो मेरे चिरपरिचित हैं, मेरे साथ अन्त्यजस्पर्श के सम्बन्धमें निजू पत्र-व्यवहार कर रहे थे। मैंने अन्तिम उत्तर दिया था कि "यदि कोई मुझे, विष्ठाको भी भगवान् श्रीरामका प्रसाद कहकर देगा तो मैं उसे सादर और सभक्ति मस्तक पर धारण करूँगा। ऐसी जब मेरी स्थिति है, तो उस राम के दर्शनातुर अन्त्यजको मैं पतितपावन रामके समक्ष जाने में रोकने की भावना कैसे प्रकट कर सकता हूं ?"

इस मेरे उत्तर पर उन महात्माका एक पत्र मेरे पास आया है। इसमें एक बहुत ही मधुर आक्षेप है। बहुत दिनोंसे उनके कोमल और प्रेमपूर्ण हृदयके अन्तस्तलमें मेरे लिए यह आक्षेप निगूढ़ था, जो आज अकस्मात् प्रेमविह्वल होनेके कारण, न छिपा सकने से, बाहर निकाल दिया है। उससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। आप मेरे चिरपरिचित हैं। जहां इतना गाढ़ सम्बन्ध हो, वहां पर मेरे संकोच से मेरा दोष न कह दिया जाय तो यह मेरे साथ अन्याय ही किया जायगा। जहां प्रेम है वहां प्रेमके साथ ही, भूलते हुए प्रेमी को मार्ग बतादेने में ही प्रेमका निर्वाह है। भूलते हुए की उपेक्षा करनेमें प्रेम का कुछ अर्थ नहीं है। हमारे सम्प्रदायके बूढ़े यदि मुझे बैठाकर मेरी भूलको, चाहे प्यारसे चाहे दण्डसे परन्तु प्रेमके साथ और हित-बुद्धिसे समझा दें तो मैं अपना अहोभाग्य ही समझूँगा। मेरे मित्र को भी ऐसा ही करना था, परन्तु उस आक्षेप को उन्होंने बहुत दिनोंतक मेरे संकोच से ही छिपा रक्खा था, इसका मुझे खेद है।

मैंने 'तत्त्वदर्शी में' कभी लिखा होगा, कि 'तपस्या करनेवाले शम्बूक शूद्रका मस्तक अन्यायी राम के हाथ से कटवा दिया गया है।' इसमें अन्यायी राम यह शब्द आपको चुभ गया। चुभ जाना ही चाहिए था। न्यायस्वरूप परमकृपालु रामको अन्यायी राम कहने पर यदि किसी वैष्णवको क्षोभ न हो, तो वह वैष्णव ही नहीं है। परन्तु इसमें मेरा तात्पर्य सोचना चाहिए था।

आपने अपने पत्र में मुझसे पूछा है कि—"तुम किस राम के इतने प्रेमी हो? जिस अन्यायी रामके राज्यमें अन्यायी रामने तपस्वी शूद्रका शिर काटा था उसी दाशरथि राम के, या दूसरे किसी राम के प्रेम में इतने विह्वल हो?"

आपके इस प्रश्नमें थोड़ा-सा भ्रम है। पहले मैं उसे निराकृत कर दूं। पीछे यदि आवश्यक होगा, तो अपने रामका स्वरूप बता दूंगा। आप शम्बूक के शिर काटनेवाले राम और दाशरथि राम को एक मानते हैं। मैं दोनों को दो राम मानता हूँ। जिस रामने शम्बूक का शिर, बिना अपराध के, काट लिया, वह राम अन्यायी राम—मेरा प्रभु राम नहीं है। जिस क्रूर और निर्दयता तथा विश्वासघात का ज्वलन्त प्रतिरूप अन्यायी राम सीता को छल से, अयोध्या से बाहर जंगल में लक्ष्मण के साथ भेज देता है, वह राम मेरा प्रभु राम नहीं है। मैं वाल्मीकि-रामायणके उत्तरकाण्डको अपने वाल्मीकिका रचित नहीं मानता हूँ। वह वाल्मीकि दूसरा, वह रामायण दूसरा और वह राम भी दूसरा। मैं उस रामको अन्यायी ही नहीं, विश्वासघाती ही नहीं, इससे भी अधिक अपराधी मानता हूँ।

क्या अब भी मेरे रामके विषयमें कोई सन्देह है? नहीं होना चाहिए। मेरा राम दाशरथि राम है। मेरा राम सीतानाथ राम है। मेरा राम साकेतपति राम है। शबरीका उपास्यदेव और अन्त्यजा शबरीके हाथका जल लेकर पान करनेवाला, उसके हाथसे फल-बेर प्रेमसे खानेवाला, मधुरमूर्ति, मधुरहृदय परम-दयालु राम ही मेरा राम है। वाल्मीकि-रामायणमें बालकाण्डसे लेकर युद्धकाण्डतक जिस रामका जिस सर्वेश्वर रामका गुणगान हुआ है, चरितचित्रण हुआ है वही राम मेरा है। उसी रामके नाम पर मैं निष्ठाको माथे चढ़ाऊँगा। उसी रामके नामपर मैं अन्त्यजका स्पर्श करके भी पवित्र रह सकूँगा। उसी रामका दर्शन प्रत्येक अन्त्यज मन्दिरोंमें कर सकता है, यह मेरी धारणा है। रामके दर्शनका रोकनेवाला राम ही हो सकता है, दूसरा नहीं। यदि रामने रामायणमें कहीं भी कहा हो कि मेरे दर्शनको अन्त्यज मेरे पास न आवें, तो निस्सन्देह मैं इस आज्ञाको शिरपर चढ़ाऊँगा। मैं समझता हूँ, कि मेरे मित्र मेरे रामके स्वरूपको समझ गये होंगे और इतने स्पष्टीकरण के बिना उनके हृदयमें जो अबतक मेरे सम्बन्धमें भ्रम था, वह निकल गया होगा।

भगवदाचार्य

हरिजन-प्रवास में प्राप्त

[१० फ़रवरी से १६ फ़रवरी, १९३४ तक]

त्रिचिनापली—गुजराती, मारवाड़ी, मुल्तानी व्यापारियों की थैली	५७०)
पीरवन जवाहरलाल बैंक की थैली	२६१)
हस्ताक्षर-शुल्क	५)
नीलाम से	१८)
श्रीरंगम्—जनता की थैली	१५०)
फूल के सौदागरों की थैली	३०)
हस्ताक्षर-कराई	२॥)
फुटकर संग्रह	२)
नीलाम से	१४)
मणप्पनल्लूर—जनता की थैली	३०३॥)
विद्यार्थियों के द्वारा	७॥=)७
नीलाम से	२८)
समयापुरम्—जनता की थैली	४०१)
नीलाम से	३८)
चिंतामणिचेरी—जनता की थैली	५५)
मानपत्रों के नीलाम से	१०)
त्रिचिनापली—हरिजन कार्यकर्ताओं की सभा में	१०)
त्रिचिनापली की हरिजन-बस्तियों में कुएँ खुदवाने के लिए डा० रामचंद्र के द्वारा दान प्राप्त हुआ	५००)
तालुका-बोर्ड की थैली	८०)
महिलाओं की थैली	३२८)
विद्यार्थियों की थैली	३७८॥-)
बनिया थैली	४६१॥=)
स्वागतकारिणी समिति की थैली	१९३०)
सोशल साइन्स लीग की थैली	१६=)।
श्री नागरत्नम् पिल्ले	२५)
महिला-सभा में विविध धन-संग्रह	३५॥=)४
विद्यार्थियों-द्वारा फुटकर संग्रह	७॥)
महिला-सभा में फुटकर धन-संग्रह	३८॥=)
हस्ताक्षरों का शुल्क	४९)
फुटकर धन-संग्रह	१०३॥')८
नीलाम से	२८५॥=)॥
हरिजन-बस्ती में फुटकर धन-संग्रह	११=)१
फुटकर संग्रह	१८॥)७
मुथ्थासनल्लूर—रेल के प्लेटफार्म पर थैली	४०)
कुलीतलाई—तालुका-बोर्ड की थैली	२५)

कुळीतलाई स्टेशन पर	२५)
तेरियाकल्पुर की श्री डी० जानकी अम्माळ	५०)
पचायत-बोर्ड की थैली	२५)
अतिरिक्त थैली	१७=)॥
फुटकर सग्रह	९)
नीलाम से	८)
मायावूर—मायावूर तथा आस-पास के अन्य स्थानों की थैली	१०१=)
विविध द्रव्य-संग्रह	२२॥-)१
करूर—श्रीमती जानकी अम्माळ	४१)
जनता की थैली	७५१)
समरस उकियार-संघ की थैली	५=)
हस्ताक्षर-शुल्क	५)
फुटकर धन-संग्रह	१५)
नीलाम से	१२७)
ईरोड—जनता की थैली	२०२)
स्वदेशी कपड़े के व्यापारियों की थैली	१०१)
कंबन मिशन बोर्डिंग के विद्यार्थी	१०)
श्रीमती केशवदास कालीदास	५१)
फुटकर संग्रह	१०।)।
नीलाम से	६९)
भवानी—जनता की थैली	३००)
तालुका-बोर्ड की थैली	१०५)
हरिजनों की थैली	।॥)॥
नीलाम से	३०)
तिरुच्चिनगोड्—जनता की थैली	३००)
सन्मार्ग-सभा की थैली	४५)
कुमारपळायम की जनता की थैली	३५-)॥
नीलाम से	१६)
ईरोड—निवास-स्थान पर फुटकर सग्रह	४७)
श्री नारायणदास मथुरादास मुल्तानी	११)
श्री एम० एस० मुथुकलप्पन	५१)
फुटकर द्रव्य-संग्रह	४८=)५
तिरुच्चिनगोड्—हस्ताक्षर-शुल्क	५)
खादी-कार्यकर्ताओं तथा बुनकरों की थैली	२२६।-)१०
पुदुपळायम् गाँव की थैली	८६।-)
हरिजनपाठशाला के लड़कों की ओर से	।)
निवास स्थान पर फुटकर संग्रह	३६=)
नीलाम से	२)
ईरोड—नीलाम से	१०)
सलेम—श्री शिवोऽहम्‌ने मनीआर्डर से भेजा	५)
मदुरा—सूत का दाम	४॥)
अखबार में मिली हुई भेंट की चीजें नीलाम की गईं	१५६४॥)
त्रिचूर ज़िले में " "	१४०)
कुम्भकोणम् ज़िले में " "	२१०)
एलप्पी ज़िले में " "	२११॥)
कोट्टायम् ज़िले में " "	२६८॥=)
सेण्ट्रल त्रावणकोर में " "	११७॥)
क्विलन में " "	९०)
त्रिवन्द्रम में " "	२३०)
नागरकोइल में " "	५२॥)
त्रिणवल्ली ज़िले में " "	३७६)
मदुरा ज़िले में " "	१७८४)
देवकोटा में " "	२१४)
नीलगिरि ज़िले में " "	१७९=)॥।
मैसूर राज्य में " "	१८)
बरहमपुर में " "	२८॥-)
फुटकर नीलाम से " "	४८।)
नमक्कल—(सलेम ज़िला) जनता की थैली	१७५१)
एक हरिजन-हितैषी के द्वारा	२५)
हस्ताक्षर-शुल्क	१०)
विविध-धन-संग्रह	११)
नीलाम से	४०)
सेंद्मंगलम्—जनता की थैली	२५१)
लड़कों की थैली	४॥)।
नीलाम से	६)
रासिपुरम्—थोप्पा पट्टी की थैली	२०।=)॥।
जनता की थैली	१२६॥=)५
दुट्टीकुळम् की थैली	५९॥)
काकापनयकन पट्टी की थैली	६०)
" " में फुटकर संग्रह	२५)
वेलुकुरिची की थैली	६३॥=)८
हस्ताक्षर-कराई	५)
नीलाम से	५)
सलेम—एक गुप्तदान	७५०)
मकुन्दपुरम् की थैली	२०)
महिलाओं की थैली	२२५)
विविध धन-संग्रह	६३॥[illegible])१
महिला-सभा में फुटकर संग्रह	४)
हस्ताक्षर-शुल्क	१०)
ज़िला-बोर्ड की थैली	१०१)
श्री एन० जी० नायुडु	१०)
शावपेट झवेरी बाज़ार	१०)
जनता की थैली	२००१)
केरल-संघ की थैली	३४॥=)
भगतसिंह-भारत-बालक-सभा की थैली	७=)॥
विविध धन-संग्रह	८१-)।
अट्टूर की जनता की थैली	१९॥)
कदपुर गाँव की थैली	११)
शिवपेठ के कुछ व्यापारियों की ओर से	१११)
" "	१५०)
विविध धन-संग्रह	२३॥)।
श्री कावेरी मुद्रालयम्	७५)
वैश्य-साहित्य-मंडल की ओर से	२१४)
एक हरिजन-हितैषी	५)
नीलाम से	४८१)
ईरोड—स्टेशन पर फुटकर धन-संग्रह	५)

करूर—जनता की एक अतिरिक्त थैली	१२१≋)८
तंजोर—जनता की थैली	९७०)
प्रत्येक घर में संग्रह	५६।=)।
श्री कृष्ण एण्ड कम्पनी	२१)
४ हस्ताक्षरों का शुल्क	२०)
सिद्ध वैद्यशाला की थैली	१०१)
श्री आर्य सोराई नारायण	१०१)
विविध धन-संग्रह	१५॥।=)
नीलाम से	४४।)
अलयमपेट—जनता की थैली	१३५)
नीलाम से	६)
आगरमनगुडी—जनता की थैली	६९)
नीलाम से	१)
पापनाशम्—जनता की थैली	९७)॥।
विविध धन-संग्रह तथा हस्ताक्षरों से	१२)
सुन्दर पेरुमल कोइल की थैली	१६)
कुंभकोणम्—जनता की थैली	१२००)
विश्वकर्मा की थैली	५१)
श्री के० वेंकटचारी	७७ ≋)॥।
एक सरकस के मालिक-द्वारा	२५)
अमेरिका के एक हब्शी सज्जन	२५)
हिंदी-प्रचारिणी-सभा	१२)
श्री ए० वी० आर० चेट्टियर	१५)
गुजराती तथा हिंदीभाषा-भाषियों की थैली	२८१)
डा० सुन्दरम्	१६।=)
एक सज्जन	११)
श्री रामकृष्ण-विद्यालय के विद्यार्थी	५॥)
फुटकर धन-संग्रह	२०॥)
नीलाम से	५२)
नटचियार कोइल—जनता की थैली	९९।-)॥।
फुटकर तथा नीलाम इत्यादि से	७।)
कुरकुलम्—जनता की थैली	५०१)
मन्नारगुडी तालुका की थैली	१२७-)
अम्मायप्पन गाँव की थैली	५१)
श्री रामभद्र उडुयार	२१)
६ हस्ताक्षरों का शुल्क	३०)
नीलाम से	५८॥≋)।
तिरुवादी—जनता की थैली	७००)
श्री ओ० रामानुजम् मुदालियर	५१)
तिरुतुराईपूंडी	५१)
पुलीवालम् गाँव की थैली	१०=)॥
नीलाम से	१७१)
नेगापट्टम्—जनता की थैली	५४७॥)॥।
तालुका-बोर्ड की थैली	५५)
वरगूर गाँव के निवासियों की थैली	२०)
श्री सुब्बाराय चेटियर	५०)
महिलाओं की थैली	१)
सभा में फुटकर संग्रह	१४।)५
हस्ताक्षर शुल्क	१०।
विविध धन-संग्रह	३५।-)५
नीलाम से	१४६॥)
तिरुथुराई—जनता की थैली	५१॥=)॥
फुटकर संग्रह	१)
कोड्डयमल—जनता की थैली	९५)
फुटकर तथा हस्ताक्षर आदि से	६)
मनजाकोलाई—जनता की थैली	१०९॥।)
नेगापट्टम्—श्री आर० सीताराम ऐयर	१०१)
फुटकर संग्रह	-)॥।
निवास-स्थान पर फुटकर तथा हस्ताक्षरों से	५२)
नागोर—जनता की थैली	५२॥)
फुटकर संग्रह	२)
कराइकाल—जनता की थैली	१०१०॥।)
विद्यार्थियों की थैली	२५।=)
हस्ताक्षरों से तथा फुटकर संग्रह	२१)
नीलाम से	६०)
तिरुवाडी—जनता की थैली	५९-)
एस० कोइल—जनता की थैली	६॥)
मायावरम्—व्यापारियों की थैली	५१॥।-)४
जनता की थैली	१०१)
हस्ताक्षरों तथा नीलाम आदि से	३५॥)
शियाली—जनता की थैली	५०५)
श्री चिदंबरनाथ मुदालियर	२००)
विविध धन-संग्रह	२५॥-)।
नीलाम से	१६)
चिदंबरम्—तालुका-बोर्ड के मेंबरों की थैली	२२०)
श्री बालकृष्ण पिल्ले	१००)
श्री कुंजीतपद्म पिल्ले	२५)
श्री सुब्रह्मण्य पंडाराम	१०)
विद्यार्थियों की थैली	२२८॥≋)७
जनता की थैली	४०१-)
दो हस्ताक्षरों का शुल्क	१०)
हरिजन-सेवक-संघ की थैली	५२)
नीलाम से तथा फुटकर संग्रह	६७।≋)१
पोर्टोनोवो—स्वाग मेमोरियल क्लब की थैली	१०)
कुड्डालूर—महिलाओं की थैली	४१)
म्युनिसिपैलिटी के चेयरमेन की थैली	१०१)
साउथ आरकट ज़िला-बोर्ड की थैली	१०१)
श्री ज्ञानत्याग मुदालियर	१०)
कुड्डालूर-तालुका-बोर्ड की थैली	१००)
जनता की थैली	२३६-)
हस्ताक्षर-शुल्क	३५)
विद्यार्थियों-द्वारा संग्रह	१०)
विविध द्रव्य-संग्रह	१०॥≋)८
नीलाम से	१६७)
शियाली—श्री बालकृष्ण नायडू के द्वारा विविध द्रव्य-संचय	२५)

सप्ताह का जोड़—३३३८६॥)॥

कुल जोड़—३१९९१॥=)५

प्रांतीय कार्य-विवरण

राजपूताना

[जनवरी, १९३४]

शिक्षा—निम्नलिखित स्थानों में हरिजनों के लिए रात्रि-पाठशालाएँ खोली गईं :—

मरैना (जयपुर), वज़ीरपुर (जयपुर), रामगढ़ (जयपुर), झुंझनू और अजमेर।

निम्नलिखित स्थानों में हरिजनों के लिए दिवस-पाठशालाएँ खोली गईं :—

वज़ीरपुर (जयपुर), फतेहपुर, और गरीबा। देवराला (जयपुर) में भी एक दिवस-पाठशाला खोली गई थी, पर वहाँ के ठाकुरोंने आपत्ति की, इससे वह पाठशाला बंद कर देनी पड़ी।

नीचे लिखी हरिजन छात्राएँ सामान्य पाठशालाओं में दाखिल की गईं :—

१ हरिजन कन्या कलडेरा (जयपुर) की पाठशाला में;

४ हरिजन-कन्याएँ सीकर की पाठशाला में;

३ हरिजन-कन्याएँ जयपुर की पाठशाला में;

२ हरिजन-कन्याएँ नसीराबाद की पाठशाला में;

५ हरिजन विद्यार्थी सर्वसाधारण की पाठशालाओं में भरती किये गये।

आर्थिक—३ हरिजन काम में लगाये गये—एक मंडावा (जयपुर) में और दो अजमेर में।

बगसा में एक मेहतर को और मेहतरानी को धोती और कंबल दिये गये। इसी तरह एक ग़रीब चमार को जाड़ा काटने के लिए कंबल वग़ैरा दिया गया।

पिलानी में एक मेहतरानी को उसके प्रसव-काल का सारा ख़र्च दिया गया।

फतेहपुर (जयपुर) में ९६ हरिजन बालकों को मिठाई बाँटी गई।

नसीराबाद में हरिजन बच्चों को दो बार मिठाई इत्यादि बाँटी गई।

६८ हरिजन विद्यार्थियों को कमीज़ें, जाँघिये और अन्य कपड़े मुफ्त बाँटे गये।

२०० हरिजन विद्यार्थियों को किताबें, स्लेटें, पेंसिलें वग़ैरा दी गई।

स्वच्छता—१० विभिन्न स्थानों के हरिजन-मुहल्लों का २३० बार स्वच्छता इत्यादि के संबंध में निरीक्षण किया गया।

५०५ हरिजन लड़कों को दाँत साफ़ रखने की शिक्षा दी गई।

७४१ हरिजन लड़कों को हाथ-मुँह साफ़ रखना सिखाया गया।

१४ विभिन्न पाठशालाओं के हरिजन विद्यार्थियों को ११४ बार शिक्षकों और कार्यकर्त्ताओंने नहलाया-धुलाया।

मद्य-मांस-निषेध—१७ स्थानों में सभाएँ की गईं, जहाँ १४४६ हरिजनों को मद्य-परित्याग और सामाजिक उन्नति के लाभ समझाये गये।

४७ हरिजन युवकोंने शराब एवं मुर्दार मांस छोड़ने की प्रतिज्ञा की।

नसीराबाद में मेघवाल जाति के करीब २५ हरिजन युवकोंने एक कमेटी बनाई, जिसके द्वारा वे अपनी जाति-बिरादरी में शराब व मांस से दूर रहने और अपनी दूसरी गंदी आदतें ठीक करने का प्रचार कर रहे हैं।

औषधि-प्रचार—डाक्टरों और वैद्योंने १३ हरिजन रोगियों को देखा और उनका मुफ्त इलाज किया।

११४ बीमार हरिजनों को मुफ्त दवाइयाँ दी गईं।

साधारण—अजमेर के पास नरेली में एक हरिजन-आश्रम खोला गया।

कड़ाके की सरदी पड़ने के कारण जब विद्यार्थियों की हाज़िरी बहुत गिर गई, तब ४ रात्रि-पाठशालाएँ कुछ दिनों के लिए बन्द कर दी गईं।

अस्पृश्यता न मानने के सम्बन्ध में ४६ सवर्ण हिन्दुओंने प्रतिज्ञा की।

अस्पृश्यता-निवारण के विषय में ६ सार्वजनिक सभाएँ हुईं।

सामोद (जयपुर) की हरिजन-पाठशाला के शिक्षक को सार्वजनिक कुएँ से पानी भरने से रोका गया, पर संघ के प्रयत्न से बाद को लोगोंने यह आपत्ति उठा ली। अब कुएँ पर कोई रोक-टोक नहीं की जाती।

अजमेर में संघ के कुछ उत्साही कार्यकर्त्ताओंने एक 'हरिजन-प्याऊ' खोला है, जहाँ नित्य ५०९ से ऊपर हरिजन और सवर्ण हिन्दू पानी पीते हैं।

प्रचार-कार्य—२० स्थानों के ९१५ हरिजनों और ७६६ सवर्ण हिन्दुओं को 'हरिजन-सेवक' पढ़कर सुनाया और समझाया गया।

'हरिजन-सेवक' के ३ ग्राहक बनाये गये।

८१ हरिजन-कुटुम्बों की सामाजिक स्थिति की जाँच कराई गई।

हरिजनों तथा सवर्ण हिन्दुओंने १७ बार एकसाथ भजन-कीर्तन किया।

४ बार हरिजन-मुहल्लों में धर्म-कथाएँ कराई गईं।

उन्नति-कार्यों पर ख़र्च

निम्नलिखित ख़र्च जनवरी मास में हुआ :—

पाठशालाएँ तथा आश्रम	११५४२-)५
छात्रवृत्तियाँ	५५॥=)
पुस्तकें, स्लेटें वग़ैरा	५४॥।)।
कपड़े, साबुन इत्यादि	३४=)
दवाइयाँ	१।=)
फुटकर सहायता	१५।=)
कुल	१६६३।-)८

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office Birla Mills Delhi by R S Gupte

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ३० मार्च, १९३४. [संख्या ९

विषय-सूची

हरिजन-संवाद

ग्राम दुलदुली, ज़िला रायपुर (मध्यप्रान्त) में एक हरिजन-मेला हुआ। सवर्ण हिन्दुओंने भी भाग लिया। प्रान्तीय-संघ के सभापति श्री सेठ शिवदासजी डागा की अध्यक्षता में एक सभा भी हुई। तत्पश्चात् श्री दुलेश्वर महादेव का मन्दिर हरिजनों के लिए खोला गया।

स्मरण होगा, कि समरखा गाँव (आनन्द ताल्लुका, गुजरात) में एक हरिजन स्त्री के एक सार्वजनिक कुएँ से पानी भरने का प्रयत्न करने पर वहाँ के कुछ सवर्णोंने हरिजनों की फसल में आग लगा दी थी। तब से उन सवर्णों पर मुकदमा चल रहा था। खेड़ा ज़िले के जजने उन १५ सवर्ण अभियुक्तों को तीन-तीन वर्ष की कड़ी सज़ा दी है। मालूम होता है, सवर्ण हिन्दुओंने इस फैसले के विरुद्ध अपील की है।

पोर ग्राम (गुजरात) में हरिजन भाइयों को पानी के पानी का बड़ा कष्ट था। उनके लिए समस्त गुजरात हरिजन सेवक-संघ के प्रबन्ध से, स्थानीय नेताओं की सहायता से, एक कुआँ बनवा दिया गया है, जिसका ७ मार्च को उद्घाटन-संस्कार डा० सुमन्त मेहताने किया।

वर्धा-निवासी श्री सेठ जमनालालजीने ममन गाँव (मध्यप्रान्त) के श्री रामप्रसादजी अग्निभोज को, हरिजन होने के नाते, दो वर्ष तक के लिए 'हरिजन' पत्र दानस्वरूप दिया।

खंडवा के श्री माखनलालजी चतुर्वेदीने अपने 'कर्मवीर' प्रेस में एक हरिजन को नौकरी दी।

इंद छपरा (गोरखपुर) ग्राम में एक हरिजन-पाठशाला खोली गई।

गांधीजी के बिहार के दौरे का कार्यक्रम

२७ मार्च

सवेरे ७ बजे उत्तर विहार के प्रवास के लिए गांधीजी पटने से स्टीमर-द्वारा रवाना हुए। ९ बजे सोनपुर पहुँचे। वहाँ से मोटर-द्वारा परसा गये। परसा से चलकर शाम को छपरा पहुँचे।

२९ मार्च

सवेरे छपरा शहर देखा और कार्यकर्ताओं से मिले। ११॥ बजे दोपहर को छपरे से रवाना होकर शाम को ६ बजे मुजफ्फरपुर पहुँचे। उसी शाम को वहाँ के कार्यकर्ताओं से मिले।

२८ मार्च

सवेरे ८ बजे मुजफ्फरपुर से रवाना होकर ९ बजे बेरुकि और ११॥ बजे बेलसंड पहुँचे। वहाँ से चलकर शाम को ५ बजे सीतामढ़ी पहुँचे। शाम को वहाँ कार्यकर्ताओं से मिले।

३० मार्च

७ बजे सवेरे सीतामढ़ी से चलकर सुरसंड, पुपरी, जोगिया और कमतौल होते हुए ५ बजे शाम को दरभंगा पहुँचे।

३१ मार्च

सवेरे ७ बजे दरभंगे से रवाना होकर ११॥ बजे मधुबनी पहुँचेंगे। रास्ते में देविनाकदारी और लहुआर देखने जायँगे।

१ एप्रिल

सवेरे मधुबनी से रवाना होकर सकरी से रेल पर सवार होंगे और निर्मली पहुँचकर मोटर से सुपौल, सु-पुर, बरैल, बड़भारी और पचगछिया होते हुए ७॥ बजे शाम को सहरसा पहुँचेंगे।

२-३ एप्रिल

रात को ९॥ बजे सहरसा से रवाना होकर ३ एप्रिल को सवेरे ६॥ बजे भागलपुर पहुँचेंगे। ९॥ बजे वहाँ से रवाना होकर मुंगेर पहुँचेंगे। वहाँ भूकम्प-विध्वस्त मुंगेर नगर देखकर कार्यकर्ताओं से मिलेंगे।

४ एप्रिल

४ बजे तड़के मुंगेर से चलकर सुकामा, बाढ़, बख्तियारपुर होते हुए पटने लौट आवेंगे और वहाँ ७ एप्रिल तक रहेंगे।

८ और ९ एप्रिल को पुर्णिया में रहेंगे और वहाँ से आसाम प्रान्त को हरिजन-प्रवास के सम्बन्ध में रवाना हो जायँगे।

डेविड-छात्रवृत्तियाँ

हरिजनों की कालेज की उच्च शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए 'डेविड-शिक्षा-योजना' का सन् १९३३ के जुलाई मास में आरम्भ किया गया था। प्रिंसिपल मुकर्जी, प्रिंसिपल थडानी तथा हरिजन-सेवक-संघ के प्रधान मन्त्री, इन तीन सज्जनों की एक छोटी-सी परामर्शदात्री समिति डेविड-शिक्षा-कोष के उपयोग के लिए नियम बनाने और छात्रवृत्तियाँ देने के सम्बन्ध में बोर्ड को सिफारिशें भेजने के लिए बनाई गई। इस समिति की सहायता से कुल ५६०) मासिक की ४६ छात्रवृत्तियाँ मंजूर की गईं। विभिन्न प्रान्तों में उनकी अपनी आवश्यकताओं के अनुसार छात्रवृत्तियों का विभाजन किया गया। नीचे लिखे प्रांतों के हरिजन विद्यार्थियों को सबसे अधिक संख्या में छात्रवृत्तियाँ मिलीं :—

आंध्र	६ छात्रवृत्तियाँ
मध्यप्रान्त (हिंदी और मराठी)	८ ,,
पंजाब	४ ,,

प्रत्येक छात्रवृत्ति औसतन १२) की थी। और सब से बड़ी छात्रवृत्ति २०) की थी। उपर्युक्त ४६ छात्रवृत्तियाँ नीचे लिखे समयतक के लिए दी गईं :—

१२ छात्रवृत्तियाँ	१ साल के लिए
१५ ,,	२ ,,
७ ,,	३ ,,
१२ ,,	४ ,,

इन सब छात्रवृत्तियों की कुल रकम लगभग १५०००) के आती है।

विद्यार्थियोंने विविध प्रकार के पाठ्यक्रम चुने। अधिकतर विद्यार्थी तो साधारण आर्ट कालेजों में ही दाखिल हुए। डेविड छात्रवृत्ति पानेवाले विद्यार्थी विभिन्न पाठ्यक्रमों का अध्ययन करने के लिए कालेजों में इस प्रकार दाखिल हुए :—

ट्रेनिंग कालेजों में	६ विद्यार्थी
कानून में	४ ,,
आर्ट स्कूल, लखनऊ में	१ ,,
एम० ए० क्लास में	२ ,,

सबसे अधिक, यानी ८ विद्यार्थी नागपुर के मारिस कालेज में और ४ विद्यार्थी गौहाटी के काटन कालेज में पढ़ रहे हैं।

आसाम में पाँचों विद्यार्थी कैवर्त जाति के हरिजन हैं। और आंध्र प्रांत के २ विद्यार्थी माला जाति के तथा २ विद्यार्थी मदीगा जाति के हैं। लेकिन सबसे अधिक संख्या में महार जाति के विद्यार्थियों को ही छात्रवृत्तियाँ मिली हैं- जैसे, बरार में २ को, मध्यप्रांत में ७ को, कर्णाटक में १ को और महाराष्ट्र में २ को। पंजाब के एक पासी जाति के हरिजन को और संयुक्त प्रांत के एक डोम विद्यार्थी को भी छात्रवृत्तियाँ दी गईं।

बंगाल को कोई छात्रवृत्ति नहीं दी गई। कारण यह है, कि बंगाल प्रांतीय हरिजन-सेवक संघने 'रघुमल-दातव्य कोष' के ५००) इस प्रकार की छात्रवृत्तियों के लिए अपने बजट में खास तौर पर रख लिये थे। मैसूर और त्रावणकोर राज्य में भी आवश्यकता मालूम नहीं हुई, क्योंकि ये राज्य अपने यहाँ के हरिजन विद्यार्थियों को काफी छात्रवृत्तियाँ देते हैं। बिहार और उड़ीसा को केवल एक छात्रवृत्ति दी गई। उस प्रांत से आवेदन-पत्र भी केवल एक ही आया। संयुक्त प्रांत, मध्यप्रांत और महाराष्ट्र से बहुत-से आवेदनपत्र आये, पर इन प्रांतों के अनुपात को देखते हुए उन आवेदन-पत्रों पर कोई विचार नहीं किया जा सका।

केन्द्रीय बोर्ड से स्वीकृत फार्मों पर विद्यार्थियों की शिक्षा-प्रगति की रिपोर्ट प्रत्येक मास की ७ तारीख को साधारणतया आ जाती हैं। कालेजों के प्रिंसिपलों के नाम प्रत्येक मास की १० तारीख को छात्रवृत्तियाँ भेज दी जाती हैं। छात्रवृत्तियाँ पानेवालों की भी अब रसीदें मंगाई जाती हैं। काशी-विश्व-विद्यालय से बारबार यह शिकायत आई है, कि वहाँ विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति की रकम तुरन्त नहीं मिलती। ऐसी अवस्था में प्रधान कार्यालय विद्यार्थियों को यह सूचना दे देता है, कि छात्रवृत्तियाँ किस तारीख को भेजी गई हैं।

इसके अलावा संघ का प्रधान कार्यालय विभिन्न प्रांतों को 'रघुमल-दातव्य-कोष' से छात्रवृत्तियाँ देने के लिए ४८१) प्रति मास भेजता है। ये छात्रवृत्तियाँ हाईस्कूलतक की शिक्षा के लिए नियत की गई हैं। गत वर्ष इस कोष से ११४ छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गईं, जिनमें १० छात्रवृत्तियाँ औद्योगिक शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों को दी गईं।

इस साल यद्यपि 'रघुमल-दान' से १२५) कम कर दिये गये हैं, यानी ५००) मासिक न मिलकर अब ३७५) मासिक ही मिला करेंगे, तो भी छात्रवृत्तियाँ जितनी और जितनी रकम की अबतक मिलती थीं, उतनी ही और वैसी ही बराबर मिलती जायँगी।

प्रधान मन्त्री, ह० से० सं०

बधाई विश्व-विद्यालयों को

नागपुर-विश्व-विद्यालयने बड़ा अच्छा श्रीगणेश किया था। हरिजनों का परीक्षा-शुल्क अब दो अन्य विश्व-विद्यालयोंने भी माफ कर दिया है। आंध्र-विश्व-विद्यालय और दिल्ली-विश्व-विद्यालय की इस संबंध की सुखद सूचनाएँ नीचे प्रकाशित की जाती हैं। हमें आशा है, कि इन विश्व-विद्यालयों के अभिनंदनीय निश्चय का अनुसरण भारत के अन्य विश्व-विद्यालय भी करेंगे।

आंध्र-विश्व-विद्यालय

निम्नलिखित दशाओं में सिंडिकेट को अधिकार होगा कि दलितजातियों के छात्रों के परीक्षा-शुल्क को हटादे :—

(१) यदि परीक्षार्थी पहली बार परीक्षा में उपस्थित होता हो;

(२) यदि वह गरीब हो;

(३) यदि कालेज का छात्र होने पर, जिस कालेज में उसने पढ़ाई समाप्त की है, वहाँ के प्रिंसपल की इस रिआयत के लिए सिफारिश की गई हो,

(४) यदि लेबर-कमिश्नर के पास काफी रकम न होने के कारण उसे उस रिआयत का लाभ न मिला हो, जो सरकारी आर्डर नं० २३९६, एल. पब्लिक वर्क्स और लेबरडिपार्टमेंट में उल्लिखित है।

दिल्ली-विश्व-विद्यालय

दिल्ली-विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी सभाने अपने नियमों में संशोधन करके हरिजन-छात्रों को सन् १९४० तक परीक्षा-शुल्क देने से मुक्त कर दिया है।

हिंदूधर्म में अस्पृश्यता

और

महाराष्ट्रीय साधु-संतों के उसपर विचार

[शेषांश]

संत तुकोबा अब इस बात के प्रमाण पेश करते हैं, कि अनेक जाति के लोगों का पतित-पावन भगवान्‌ने उद्धार किया है—

पवित्र तें कुळ पावन तो देश ।
जेथें हरिचे दास जन्म घेति ।
वर्ण अभिमानें कोण झाले पावन ।
ऐसें घ्या सांगून मजपाशीं ।
अंत्यजादि योनी तरल्या हरिनामें ।
त्याचीं पुराणें भाट झालीं ।
वैश्य तुलाधार, गोरा तो कुंभार ।
धागा हा चांभार रोहिदास ।
कबीर लतीफ मुसलमान ।
सेना न्हावी आणि विष्णुदास ।
कान्होपात्रा खोइ पिंजारी तो दादू ।
भजनीं अभेद हरिचे पायीं ।
चोखामेळा बंका जातीचा महार ।
त्यासी सर्वेश्वर ऐक्य करी ।

पवित्र है वह कुल और वह देश जहां हरि के जन जन्म लेते हैं। मुझे कोई यह तो बतादे, कि वर्णाभिमान से कोई पावन हुआ है? अन्त्यजादि सब जातियों के मनुष्य प्रभु के नामस्मरण-मात्र से ही (संसार-सागर) पार कर गये हैं, और पुराणादि ग्रंथोंने भी वंदीजनों के समान इस बात का समर्थन किया है। देखिए, तुलाधार वैश्य था और गोरा कुम्हार था। रैदास चमार था न? और लतीफ तथा कबीर मुसलमान। इसी तरह 'सेना' और 'विष्णुदास' नाई थे। और कान्होपात्रा जाति का 'खोई'—तथा वह दादू पिंजारी था न? हरि-नामस्मरण करनेवाले इन भक्तों का प्रभु के चरणों के पास किसी तरह का कोई भेदभाव नहीं था। चोखामेला और बंका अंत्यज महार थे, परन्तु उस सर्वेश्वरने तो उनसे भी तादात्म्य कर लिया था। तुकोबाने और भी कहा है कि:—

सर्वमय ऐसें वेदांचें वचन ।
श्रुति गर्जती पुराणें ।

वेदों का यही कथन है कि ईश्वर सर्वमय है। पुराण, श्रुति आदि ग्रंथ भी इसी बात का डंके की चोट से प्रतिपादन कर रहे हैं।

जिनको नामस्मरण से प्रेम है, वही 'शुचि' कहा जायगा। और प्रभु का जो निरंतर ध्यान करता है, उसे ही ब्राह्मण कहना चाहिए।

ज्यासि आवडी हरिनामाचि । तोचि एक बहुशुचि ।
जपतो हरिनाम बीज । तोचि वर्णामाजि द्विज ।
तुका म्हणे भलते याती । विठ्ठल चित्तीं तो धन्य ।

अर्थात्—जिनको हरिनाम से प्रेम है, उन्हीं को अत्यन्त 'शुचि' समझना चाहिए। 'हरि' इस मंत्र को जो रटता रहता है, वही वर्णों में 'द्विज' कहलाता है। जातपांत कुछ भी हो, जिसके हृदय-सिंहासन पर भगवान् 'विट्ठल' विराजते हैं, वही धन्य है।

तुकोबा की दृष्टि अत्यंत विशाल और व्यापक थी। उनका हृदय इतना उदार और महान् था कि घटघट में उन्हें उस विश्व-विहारी श्री हरि का ही स्वरूप दिखाई देता था।

जेथें तेथें देखें तुझीच पाउलें । विश्व अवघें कोंदाटलें ।
नवगुणनाम अवघा मेघश्याम । वेगळें तें काय उरलें ।

जिधर देखता हूँ, तेरे ही पादपद्मों के चिह्न दिखाई देते हैं। सारा विश्व ही तेरे चरण-चिह्नों से अंकित है। हे घनश्याम! तेरे गुण और अनेक नाम ही तो तेरा रूप है। इसके अतिरिक्त फिर शेष रहता ही क्या है?

तुकोबाने महार को सवर्णों से भिन्न या नीचे दरजे का नहीं माना, यह स्पष्ट दिखाई देता है।

नर, नारी, याति, हो कोणी भलती ।
भावें एका प्रीती नारायणा ।
अवघा झाला आम्हा पाडुरंग ।
आतां नाहीं जग माझें तुझें ।
नाहीं वर्णधर्म याती । नामीं अवघेचि सरती ।

जो व्यक्ति अत्यन्त भक्ति-भावपूर्वक प्रभु से प्रीति रखता है, वह नर हो या नारी और किसी भी जाति का क्यों न हो, हमारी दृष्टि में तो वह विप्र ही है। हमारे विचार में तो सब 'पाडुरंग' के ही समान हैं। फिर इस संसार में न तो "तू-मैं" है और न यह तेरी दुनिया है और न मेरी। फिर न तो कोई वर्ण बाकी है और न जात पाँत। बस, प्रभु का नाममात्र रटने से ही इन सारे भेद भावों का अन्त हो जाता है।

आपका यह स्पष्ट कथन है, कि 'परमात्मा सर्वव्यापक है, और यही वेदों की सार शिक्षा है।

हरि व्यापक सर्वगत । हा तो मुख्यत्वें वेदांत ।

हरि सर्वसृष्टि में व्यापक है। वेदान्त का क्या यही सार नहीं है? वह दयालु स्वामी ऊंचनीच जाति का विचार किये बिना ही सबका समान उद्धार कर देता है।

बहुतां जातींचा केला अंगिकार ।
बहुतांचि फार सर्वोत्तम ।

अनेक जातियों को, हे नाथ, आपने अंगीकार किया। आपने यह कितना उपकार किया, कितना महान् सुन्दर कार्य किया।

भगवान के आराधन मार्ग में आपने क्या ही अच्छा कहा है—

भक्ति ते नमावें जीव जंतु भूत ।

भक्ति-पूर्ण भावना से समस्त जीवों को, चींटी मकोड़ोंको भी नमन करना चाहिए। यही यह तो बतलाया नहीं, कि अमुक जाति के लोगों को नमन किया करें और अमुक जातिवालों को ठुकरावें। इस प्रकार का उपदेश संतश्रेष्ठ तुकोबाने नहीं दिया है। जिसको प्रभुने अपना लिया है वह जन्म से नीच भी माना गया हो, तो भी उसे पूजनीय ही समझना चाहिए।

अंगिकार ज्याचा केला नारायणें ।
निंद्य तेही तेणें वंद्य केले ।
उंच नीच कांहीं नेणे भगवंत ।
तिष्ठे भाव भक्त देखोनिया ।

भगवान् जिनको अपना लेते हैं, वह यदि संसार में निच भी समझे जाते हों, तो भी उंच हो जाते हैं। भगवान् ऊंच-नीच के भावों से कोई मतलब नहीं रखते। वे तो भाव के भूखे हैं। भक्त को देखते ही उनका हृदय उसकी लौ में लग जाता है।

उच्च जाति, या उच्चवर्ण अब किसको कहें ? उच्च तो वही है, जो भगवान् की शरण को अनन्य भाव से ग्रहण कर लेते हैं।

> उत्तम त्या याति । देवा शरण अनन्य गति ।
> नाहीं दुजा ठाव । कांहीं उत्तम मध्यम भाव ।

वे ही उच्च और श्रेष्ठ जाति के हैं, जो अनन्य भाव से भगवान् की शरण में आते हैं, और जिन्हें उत्तम, मध्यम, निकृष्ट आदि कोई भावना छूती तक नहीं। इसके विपरीत—तुकोबा 'मांग' (अंत्यज) की व्याख्या, देखिए, क्या करते हैं ?

'मांग' तो उसी को कहना चाहिए, जिसको राम से पहिचान नहीं।

> ठावा नाहीं पांडुरंग । जाणा जातिचा तो मांग ।
> नामयाची जनी कोण तिचा भाव ।
> जेवी पंढरीराव तिजसवें ।
> मैराल जनक कोण त्याचें कूळ ।
> महिमान तयाचें काय सांगो ।
> यातायातिधर्म नाहीं विष्णुदासा ।
> निर्णय हा ऐसा वेदशास्त्रीं ।
> तुका म्हणे तुम्ही विचारावे ग्रंथ ।
> तैसे आम्हां केले पांडुरंगें ।

जो प्रभु को जानता नहीं, उसी को मांग समझना चाहिए। नामदेव के साथ भगवान्ने भोजन किया था न ? उसकी भावना कैसी थी ? मैराल और जनक लौकिक दृष्टि से किस कुल में जन्मे थे, किंतु इनकी महिमा का तो बखान ही नहीं किया जा-सकता। वेद-शास्त्रों का भी यही निर्णय है, कि भगवान् विष्णु के भक्तों के लिए यह कष्टकर जातपाँतमूलक धर्म है ही नहीं। वेद-शास्त्रों को, देखिए, वे क्या कहते हैं ?

प्राणिमात्र की सेवा में प्रभु-सेवा का सार किस प्रकार भरा हुआ है, यह अब बतलाते हैं—

> देवाची पूजा हे भूतांचें पाळण ।

भूतमात्र की सेवा करना ही भगवान् की पूजा है। केवल रेशमी वस्त्र पहनकर मनुष्य पवित्र नहीं बन सकता और किसी के छू जाने से वह अपवित्र भी नहीं हो सकता। जिन्होंने अपना सर्वस्व त्यागकर अपने अंतर को पवित्र कर लिया है उनके लिए छुआछूत का तो कोई अर्थ ही नहीं।

> सर्वस्वाचा त्याग तो सदा सोवळा ।
> न लिंपे विटाळा अग्नि जैसा ।

'सर्वस्व' का त्याग ही 'अखंड शुचि' है। अग्नि अशुचि या छुआछूत को लिपट ही नहीं सकती। सच्चा पुण्यकार्य परोपकार ही है और परपीड़ा ही पाप है।

> पुण्य परउपकार,—पाप तें परपीड़ा ।

जो सच्चे समर्थ हैं, वे तो वर्णभेद को मानते ही नहीं।

> समर्थासि नाहीं वर्णाभिमान भेद ।

जन्मतः ब्राह्मण होकर भी जो स्नान संध्यादि नित्य नियमों का पालन नहीं करता, उसे तो नाममात्र का ही ब्राह्मण समझना चाहिए।

> जालोन्या ब्राह्मण । न करितां संध्यास्नान ।
> तो एक नांवाचा ब्राह्मण । होय हीनाहूनी हीन ।

जो जाति से ब्राह्मण होकर भी स्नान, संध्या आदि कुछ न करता हो और यम-नियमादि का भी पालन न करता हो, उसे तो हीन-से-हीन ही समझना चाहिए।

अंत में संत तुकोबा कहते हैं :—

> काय वा करिसी सोवळें ओवळें ।
> मन नाहीं निर्मळ वाउगेंचि ।

अरे मनुष्य ! स्पर्शास्पर्श की यह क्या बकवास लगा रक्खी है ? अरे ! यह सब व्यर्थ है। तू तो अपने हृदय को शुद्ध कर। मन का मैल धो।

पुरुषोत्तम हरि गद्रे

महर्षि आपस्तंब

[काशी के सहयोगी 'सनातन धर्म' के ३५ वें अंक में श्री पंडित हीरालाल शर्मा शास्त्री का 'दूसरे के दुःख से दुःखित' शीर्षक एक बड़ा सुंदर लेख निकला है। लेखकने उक्त लेखमें स्कन्द पुराण से महर्षि आपस्तंब की एक कथा उद्धृत की है। हिंदूधर्म का मूल तत्व 'सर्वभूत-हित' ही है,यह महर्षि आपस्तंब की अमृतमयी वाणी से स्पष्ट हो जाता है। उस सुंदर कथा को कुछ संक्षिप्त करके हम नीचे देते हैं।—संपादक]

महर्षि आपस्तंब समाधिस्थ होकर जल में रहते थे। एक दिन निषाद लोगोंने मछली मारने के लिए जल में जाल छोड़ दिया। उसमें मछलियों के सहित महर्षि आपस्तंब भी फँस गये। जब निषादोंने देखा, कि जाल में महर्षि उलझे हुए हैं, तो उनसे वे नम्रतापूर्वक क्षमा माँगने लगे। किन्तु महर्षि मछलियों के करुणामय क्रन्दन को सुनकर अत्यंत दुःखित हुए। दीन-हीन और आर्त प्राणियों को देखकर उनके मुँह से दयार्द्र और स्नेहमयी यह वाणी निकली—

"मैं कौन उपाय करूँ ? इस संसार में सभी मनुष्य अपने-अपने स्वार्थ में लगे हुए हैं। अधिक क्या कहूँ, ज्ञानियों का भी हृदय ऐसा हो गया है, कि वे भी केवल अपनी ही भलाई में लगे हुए हैं। दुःख है, कि जब ज्ञानी लोग भी अपने स्वार्थ का आश्रय लेकर ध्यानावस्थित हो जाते हैं,तब बेचारे दीन-हीन और सर्वथा अनाश्रित अनाथ जन कहाँ जायँ, जिससे वे सुख पा सकें ? जो पुरुष केवल अपने ही दुःखों का भोग चाहता है और दूसरे के दुःखों का भागी नहीं होना चाहता, ऐसे मनुष्य को मुमुक्षु जन परमपापी कहते हैं। परदुःख से दुःखित मेरे लिए कौन ऐसा उपाय हो सकता है,जिससे मैं इन दुखी प्राणियों के अन्तस्तल में प्रविष्ट होकर इनके दुःख का भागी हो सकूँ और जो कुछ मेरा पुण्य है वह इन अनाथों को मिल जाय तथा इन लोगों का जितना भी पाप है वह सब मुझे मिल जाय ? अन्धे, दीन, पंगु, रोगी और अनाथों को देखकर जिसे दया नहीं आती, मेरे विचार में, वह मनुष्य राक्षस है। जो मनुष्य प्राणसंकटापन्न तथा भयभीत प्राणियों की रक्षा समर्थ होने पर भी नहीं करता, वह केवल पाप-भक्षण करता है। पीड़ित प्राणियों की किसी

हर हिन्दू स्मरण रखे

कि बंबई में २५ सितम्बर, १९३२ को श्रीमान् पंडित मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में हिन्दू-संसार के प्रतिनिधियों की सभा में नीचेलिखा प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ था :—

"यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि अब से कोई भी व्यक्ति, अपने जन्म से, अछूत नहीं समझा जायगा और अबतक जो ऐसा माना जाता था, उसके भी सार्वजनिक कुओं, सड़कों और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं के व्यवहार के सम्बन्ध में वही अधिकार होंगे जो दूसरे हिन्दुओं के हैं। अवसर मिलते ही इन अधिकारों को क़ानूनी स्वीकृति दे दी जायगी और स्वराज्य-पार्लियामेंट के सबसे पहले कामों में यह भी एक काम होगा, यदि तबतक ये अधिकार क़ानून-द्वारा स्वीकृत न हो चुके होंगे।

और यह सम्मेलन यह भी निश्चय करता है, कि अस्पृश्य कही जानेवाली जातियों की प्रथानुनोदित समस्त सामाजिक बाधाओं को—जिनमें उनकी मन्दिर-बन्दी भी शामिल है—शीघ्र हटाने के लिए सभी उचित और शान्तिमय उपायों का ग्रहण करना तमाम हिंदू-नेताओं का कर्त्तव्य होगा।"

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ३० मार्च, १९३४

अस्पृश्यता-निवारण की समस्याएँ

हुबली से एक सज्जन निम्नलिखित प्रश्न पूछते हैं :—

"अस्पृश्यता प्राकृतिक है या कृत्रिम? क्या समाज के लोगों के नैतिक तथा बौद्धिक विकास, जीवन के ढंग या व्यवहार आदि पर अस्पृश्यता निर्भर नहीं करती है? क्या आप किसी ऐसे समाज का चित्र उतार सकते हैं, जिसमें अस्पृश्यता पूरी तरह से दूर हो गई हो?"

मेरी राय में तो यह अस्पृश्यता सर्वथा एक कृत्रिम चीज़ है। लोगों के नैतिक या बौद्धिक विकास से उसका कोई संबंध नहीं। इसका यही कारण है, कि हिंदू-समाज में अस्पृश्य कहलानेवाले ऐसे आदमी देखने में आते हैं, जो ऊँचे-से-ऊँचे सवर्ण हिंदुओं से किसी क़दर नैतिक और बौद्धिक विकास में कुछ घटिया नहीं हैं, मगर तो भी उनके साथ अछूतों की तरह बरताव किया जाता है। अस्पृश्यता से सर्वथा मुक्त मानव-समाज का मेरा चित्र वह होगा कि जिसमें कोई अपने को दूसरे से उच्च न समझेगा। यह स्पष्ट है, कि ऐसे समाज में किसी तरह की वाहियात प्रतिस्पर्धा या वैमनस्य के लिए स्थान न होगा।

पत्र-लेखक का दूसरा प्रश्न यह है :—

"क्या सहभोज और वर्णान्तर-विवाह अस्पृश्यता निवारण के लिए आवश्यक हैं?"

मेरे इस प्रश्न के 'हाँ' और 'न' दोनों ही उत्तर हैं। 'न' इसलिए कि हरिजन-सेवक-संघ के कार्यक्रम में यह बात नहीं आती है। साधारणतया भी विवाह और भोजन व्यक्तिगत बातें हैं। किसी को यह हक़ नहीं है, कि वह किसी दूसरे आदमी की इच्छा के विरुद्ध उसकी लड़की के साथ विवाह करने या उसके साथ खाने-पीने के लिए कहे। लेकिन साथ ही मेरा इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' भी है। यह इसलिए कि अगर कोई मनुष्य अस्पृश्यता या नीचता की बात लेकर किसी का छुआ हुआ भोजन करने से इनकार करता है, तो कहना चाहिए कि वह अस्पृश्यता को मान रहा है। इसे हम यों भी कह सकते हैं, कि अस्पृश्यता सहभोज या वर्णान्तर-विवाह में बाधा डालने का कोई कारण नहीं बन सकती।

लेखक का एक और प्रश्न है। वह पूछते हैं :—

"धार्मिक प्रथाओं में परिवर्तन करने का क्या एक अपूर्ण मनुष्य प्रामाणिक अधिकारी हो सकता है?"

अपूर्णता एक सापेक्ष शब्द है। हम सभी न्यूनाधिक अंश में अपूर्ण हैं। किन्तु एक अपूर्ण मनुष्य किसी खास परिवर्तन के संबंध में इतना अपूर्ण नहीं हो सकता, कि उसे करने में वह असमर्थ हो। वह और बातों में चाहे जितना अपूर्ण हो, पर मादक दवाइयों और शराब के उपयोग के विषय में उसके भी खासे अच्छे निश्चित विचार हो सकते हैं। तब उसे लोगों की मदिरा-पान की आदतों में—भले ही वे आदतें धर्म-विहीन कही जायँ—हेरफेर करने-कराने का पूरा अधिकार है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

हरिजन-प्रवास और बिहार

हरिजन-प्रवास का कुछ समय के लिए स्थगित हो जाना मेरे लिए दुःख का विषय है। पर यह मुझे करना ही पड़ा, क्योंकि मेरा यह साफ़ कर्त्तव्य था, कि श्री राजेन्द्रप्रसाद के बुलाने पर तुरन्त बिहार चला आऊँ, यद्यपि जहाँतक राजेन्द्रबाबू से हो सका, वह मुझे टालते रहे। इसमें सन्देह नहीं कि, अस्पृश्यता-निवारण का कार्य अपेक्षाकृत बड़ा है और वह एक स्थायी प्रकार का कार्य है, किन्तु बिहार के भूकम्प जैसे सख़्त रोग के मुक़ाबले में अन्य तमाम पुराने रोगों की तरह अस्पृश्यता का यह रोग भी कुछ दिनों के लिए वहीं पर छोड़ा जा सकता था। इसलिए जब राजेन्द्रबाबूने, जिनके हाथ में कि यहाँ की सब व्यवस्था है, मुझे याद किया, तो मुझे अपना दौरा फ़िलहाल स्थगित कर देना पड़ा। मगर जिन प्रान्तों में मैं अभी नहीं गया हूँ उनके कार्यकर्त्ताओं को मैं यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ, कि ज्योंही यहाँ की परिस्थिति मुझे इजाज़त दे देगी, मैं अपना स्थगित दौरा फिर से आरम्भ कर दूँगा। और राजेन्द्रबाबू का यह अस्पृश्यता मुझसे कुछ कम नहीं खल रही है। वह मुझे जल्द-से-जल्द छुट्टी दे देंगे। मैं आशा करता हूँ, कि पहले उत्कल और आसाम को हाथ—इन दोनों प्रान्तों में मैं पहले कहाँ जाऊँगा, वह तो वस्तुस्थिति या प्रकृति पर निर्भर करता है। कार्यकर्त्ता सब्र धारण करें।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

कुर्ग से विदा होते समय

[२२ फ़रवरी को कुर्ग से विदा होते समय मरकरा में गांधीजीने निम्नलिखित भाषण किया था ।]

आप लोगों के सुहावने प्रांत की यह अत्यंत संक्षिप्त यात्रा आज मैं समाप्त कर रहा हूँ । आप के यहाँ मैं दो ही दिन रह सका, पर मेरे यह दो दिन रहे बड़े आनंददायी—आनंददायी इसी कारण नहीं, कि आप के देश का प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यंत मनोरम है, बल्कि इस कारण भी कि अस्पृश्यता की छाया आप लोगों पर बहुत ही कम पड़ी है । आपने मुझे जो मानपत्र दिया है, उसमें आपने हरिजनों की आर्थिक अवस्था की सच्ची बातें और आँकड़े सामने रख दिये हैं । आपने जिस ढंग से अपना मानपत्र तैयार किया है उसकी मैं सराहना करता हूँ । सचमुच आपका मानपत्र एक प्रकार की रिपोर्ट ही है । हरिजनों के संबंध की उसमें मुझे बड़ी सुंदर और विस्तृत सूचनाएँ मिली हैं । यह दुःख की बात है, कि वे बेचारे दिन-दिन कंगाल होते जारहे हैं, उनकी ज़मीन उनके हाथ से निकलती चली जारही है । मैं देखता हूँ, कि जो थोड़ी-सी ज़मीन अब भी उनके क़ब्ज़े में है, वह पड़ती पड़ी हुई है । यह अब हरिजन-सेवक-संघ का काम है, कि वह भलीभाँति उनकी इस स्थिति की जाँच करे और देखे कि इस तरह उनके क़ब्ज़े से जो ज़मीन निकलती जारही है उसकी रोकथाम के लिए क्या उपाय हो सकता है । कुछ ऐसे भी आर्थिक कारण हो सकते हैं, जो सभी पर एक-से लागू हों । इसलिए हरिजन-सेवक-संघ के लिए उन हरिजनों की आर्थिक स्थिति का समझ लेना आवश्यक हो जाता है, कि जो अपनी ज़मीन से हाथ धो बैठे हैं । संभव है, कि उस जाँच-पड़ताल का यह परिणाम निकले, कि यद्यपि उनकी ज़मीन उन के हाथ से निकल गई है तो भी वे बहुत ग़रीब नहीं हैं । लेकिन अगर उनकी दरिद्रता का यही कारण हुआ, तब तो हरिजन-सेवक-संघ को उनकी आर्थिक अवस्था में सुधार करने के लिए कोई आवश्यक उपाय सोचना ही होगा ।

अगर मेरी अपनी राय में तो जहाँतक हरिजनों का सबंध है आपके सामने आज सबसे बड़ा सवाल तो उनके मंदिर-प्रवेश का है । यह प्रश्न यहाँ इसलिए भयंकर लगता है, कि हरिजनों के लिए मंदिर खोल देने को अभी लोकमत तैयार नहीं है । मैं देखता हूँ, कि और जगह की तरह ऐसा कोई अमिट सनातनी आप के यहाँ नहीं है । इसलिए मैं तमाम हरिजन-प्रेमी कार्य-कर्ताओं से कहूँगा, कि वे इस महान् प्रश्न के हल करने में अपने आप को लगा दें । मैं चाहता हूँ, कि इस संबंध में आप का देश आगे होकर समस्त भारत को मार्ग दिखावे ।

बिहार के भूकंप-पीड़ित भाइयों की भी मैं यहाँ चर्चा करूँगा । आप लोग जैसे शेष भारतवर्ष से कुछ अलग-से पड़ गये हैं । जान पड़ता है, जैसे आपलोग अपने आप में ही मगन रहते हैं । पर मैं आशा करता हूँ, कि इससे आपका दिल कठोर नहीं बन गया है । कुछ भी हो, हैं तो आप लोग भी समस्त भारत के अंग ही । इसलिए सुदूर उत्तर भारत में बसनेवाले अपने पीड़ित भाइयों के कष्ट में आप को भी भाग लेना चाहिए । आपने सुना होगा, कि माता सीता और भगवान् गौतम बुद्ध की जन्मभूमि होने के कारण बिहार बड़ा पावन प्रदेश है । हमारे देशवासियों का विश्वास है, कि बिहार का प्रत्येक रजकण पवित्र है । और मेरे-जैसे मनुष्य को मालूम होता है, कि ईश्वरने अस्पृश्यतारूपी पाप का दंड देने के लिए इसी पवित्र देश को चुना है । मुझे इसकी तनिक भी पर्वा नहीं, कि मेरी यह कल्पना ग़लत निकले । पर हमें चाहिए कि हम इस कल्पना को अपने हृदय में आश्रय दें और अपनी आत्मशुद्धि के लिए अधिक-से-अधिक प्रयत्न करें । अगर हम समस्त मानवजाति की एकता महसूस करेंगे, तो पृथिवी के किसी भी भाग के एक मनुष्य का कष्ट हम सब को बँटाना होगा । फिर बिहार-वासी तो हमारे सगे भाई-बंधु ही हैं । और मेरी दृष्टि में तो यह भी अस्पृश्यता-निवारण का ही एक अर्थ है । अगर हमारा विश्वास है, कि समस्त मानवजाति स्पृश्य है, तो अवश्य ही इसका यह अर्थ होता है, कि हमें मानवमात्र के दुःख में भाग लेना चाहिए । अतः इस सोच में कि मैं इन चीज़ों का नीलाम करूँ, स्वयंसेवक आप लोगों के पास आते हैं और रुपया, पैसा, पाई जो आप से हो सके उनकी झोलियों में आप डाल दें । यह बात नहीं, कि इस प्रकार आप उन भूकंप-पीड़ितों के लिए रुपये-पैसे की कुछ बड़ी सहायता दे देंगे । किंतु ऐसे महासंकट के समय, जैसा कि बिहार पर आया हुआ है, दान का प्रत्येक पैसा-पाई पीड़ितों के प्रति सच्ची सहानुभूति का चिह्न समझा जाता है । यह तो हम सब लोग जानते ही हैं, कि विपदा-काल की सहानुभूति रुपये-पैसे की मदद से भी बहुत बड़ी चीज़ होती है ।

डायरी के पन्ने से

सेवा का मोह

जब से बापू के निकट सम्पर्क में आने का मौका मिला है, तब से मैं जान पाया हूँ कि उनके जीवन में आत्म-निरीक्षण और अनासक्ति का कितना सुन्दर विकास हुआ है । प्रत्येक बात की तह में वह जाते हैं । आज बापूने युक्तप्रान्त की एक प्रतिष्ठित बहन को एक पत्र में लिखा—

"दर्द होते हुए भी·········क्यों गई ? सेवा का भी मोह हो सकता है । मोह-मात्र छोड़ने से ही सच्ची सेवा हो सकती है । क्या अपंग भक्ति नहीं कर सकते हैं ? मन से भी तो सेवा हो सकती है ।"

बापू की सेवा की भावना कितनी ऊँची है । इस बहन को अपने शरीर की उपेक्षा करने के कारण उन्होंने इस पत्र में जो मीठा उलाहना दिया है उसमें सेवा का तत्त्व अत्यंत दिव्य रूप में प्रगट हो गया है । बात यह है कि सेवा तो आत्मार्पण की साधना है । इसलिए उसमें सतत जागरूकता अनिवार्य है । जहाँ मोह है वहाँ अहंकार है । जिसने सेवा का व्रत लिया है और अपना शरीर भी उसके लिए दे दिया है वहाँ उस शरीर की उपेक्षा करने का अधिकार ही उसे कहाँ रह जाता है ? वह तो दान दी हुई, देवता के चरणों में चढ़ाई हुई चीज़ है । उसे सेवा की साधना के अधिक-से-अधिक उपयुक्त बनाना सेवक का कर्तव्य है । शरीर जहाँ सेवा का साधन है और जहाँ वह सेवा साधन में लगा दिया गया है वहाँ उसकी रक्षा, परिचर्या भी कर्तव्य हो जाता है । कई बार अहंकार और आत्म-हिंसा

की एक सूक्ष्म भावना शरीर की उपेक्षा के रूप में प्रगट होती है और हम उसे शुद्ध सेवा की भावना समझ बैठते हैं। पर असल में वह सेवा का मोह होता है। शुद्ध सेवा में आग्रह नहीं है, त्याग और आत्मार्पण है। यदि हम लोग कसौटी पर बार-बार अपने को कसकर देखते रहने की आदत डाल लें, तो सार्वजनिक जीवन का स्तर परिष्कृत हो जाय और हमारे निजी जीवन में जो कलुष कई प्रकार से धोखा दे-देकर, अनेक मोहक रूप में हमारे सामने आता और हमें भुलाता है, उसकी काई भी कट जाय। आज जब दलित मानवता की पीड़ा के नाम पर हरिजन-सेवा का अलख जगाते हुए बापू हममें हिंदूधर्म की आत्मा को पुकार रहे हैं, तो इस का ध्यान रखने की कितनी ज़रूरत है।

सेवा से स्वामी भिन्न नहीं है

बापू के जीवन का मर्मस्पर्शी अनुभव और उनकी वाणी मूर्छित प्राणों को जगाती ही रहती है। एक भाई को विकारों से अपनी रक्षा करने का मार्ग बताते हुए लिखा—

"विकारों से बचे रहने का मुझे तो एक ही मार्ग मिला है—कर्तव्य में तन्मयता। ईश्वर हमको कर्तव्य में ही दर्शन देता है। कहो, वही ईश्वर हमारे लिए है। सेवा से स्वामी भिन्न नहीं है। हमारी सेवा से ही स्वामी हमें पहचानता है। ..."

कर्तव्य में तन्मयता सेवा की एक श्रेष्ठ कसौटी है। सेवा में ही हमें स्वामी के दर्शन मिलते हैं। यह सेवारूपता ही स्वामी को प्राप्त करना है। जहाँ ईश्वर को आत्मरूप कहा है, वहाँ भी बात तो यही आती है। आत्मार्पण की मात्रा जितनी अधिक होगी, कर्तव्य में उतनी ही अधिक तन्मयता आवेगी। इस तन्मयता में आग्रह और अधिकार का लोप अपने आप हो जाता है। भक्ति में भी एकरूपता ही सिद्धि है। सेवा में भी स्वामी से एकरूपता ही उसकी चरम साधना है।

वर्ण-व्यवस्था की बुनियाद

वर्ण-व्यवस्था की बुनियाद के विषय में एक भाई के प्रश्न का उत्तर देते हुए बापू लिखते हैं--

"वर्ण-व्यवस्था की बुनियाद आर्थिक तो है ही, लेकिन उसका धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा मैं नहीं मानता। इससे उलटा मेरा मन्तव्य तो यह है कि वर्ण-व्यवस्था के मार्फत शास्त्रकारने अर्थ को धर्म के ढाँचे में रख दिया और स्वार्थ से बचा लिया। वर्ण-व्यवस्थाने मनुष्य की आर्थिक लालसा की मर्यादा बना दी, जिसका पालन करके संसार में आज जो झगड़ा धनिक अथवा मालिक और मज़दूर के बीच, ज़मींदार और किसान के बीच, राजा और प्रजा के बीच होता है वह सब मिट जाय। इस दृष्टि से वर्ण-व्यवस्था सार्वजनिक और सार्वभौम नियम है, ऐसा मेरा विश्वास है। इसके साथ विवाह का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। विवाह-सम्बन्ध एक स्वतन्त्र शास्त्र है, उसकी खासी मर्यादा भी है, लेकिन वर्ण-व्यवस्था के साथ उसका कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है।"

रामनाथ 'सुमन'

विनोबा—वाणी

[आचार्य विनोबा के एक भाषण में से]

गांधी-युग के साहित्य की हलचल में अनेक गुण हैं, पर एक दोष भी है। जितने उत्साह से, प्रेम से, निष्ठा से अन्य युग में सन्त प्रचार करते थे, मुझे नहीं दीखता, कि हम उसी निष्ठा से विचार-प्रचार का कार्य कर रहे हैं। ज़बरदस्ती से, रिश्वत से, अहंकार से, उत्साह के अतिरेक से और जल्दबाज़ी से बिजली की तरह चमकोगी, अन्धवृत्ति की तरह आप विचार-प्रचार का कार्य करें, ऐसी बात मैं नहीं कहता। वह बुरी है, परन्तु निष्ठावन्त सन्त, गाँव-गाँव में जाकर हरि-नाम-ध्वनि की गूँज मचा देते थे, वह हम नहीं करते। वैसा निष्ठावन्त प्रचार वर्तमान हलचल में नहीं है। यह बातें मुझ पर भी लागू होती हैं। सन्तों का-सा उत्साह आज चाहिए। आज की हलचल में योजना की कमी नहीं। उद्धार का जो कार्य सन्तोंने किया उसी कार्यको आगे खींचा जा रहा है। परन्तु सन्तों में जो निष्ठा थी वह असीम थी—वह उनमें समाती न थी—वह फूट कर बाहर फैलती थी। उस तीव्रता की, उस वेग की निष्ठा आज नहीं मिलती। पानी कहीं-न-कहीं रुक गया है। बरसता है, पर बह नहीं रहा—वह फैलता नहीं, जलाशय नहीं बनाता, प्रवाहित नहीं होता, खेती हरी-भरी नहीं होती।

नारद तीनों लोक में फिरता। वह नीचे दरजे के लोगों में घूमता, मध्यम श्रेणी के लोगों के बीच जाता, उच्च श्रेणी के लोगों तक पहुँचता; यही तो लोक-समुदाय है। एक मित्रने मुझ से कहा कि आज के समाचार-पत्र नारद हुए। परन्तु यह नारद, नारद न हुए बराबर हैं। इनमें पैसे देने की व्याधि है, समझ लेने की उपाधि है। परन्तु देवर्षि घर-घर अपने आप जाता, मधुर वाणी में अपने विचार लोगों के गले उतारता और फिर उन्हींका आभार मानता। जो विचार सुनते, उन्हीं का वह उपकार मानता। नारद को मालूम होता कि उसे आज भगवद्-दर्शन हुए। आज देवर्षि का वही काम ठीक-ठीक नहीं हो रहा है। हो कैसे, हमारे हृदय में वह प्रतिबिम्बित ही नहीं। खादी, अस्पृश्यता-निवारण और राष्ट्रीय विचार, सबके प्रचार के लिए व्यक्ति चाहिए, किन्तु इन विचारों का तत्त्वज्ञान ही हमारे पास काफी नहीं—हमारी जानकारी ही पूरी नहीं। जानकारी न होना अज्ञान है, किंतु जानकारी की प्राप्ति में लापरवाह रहना दोष है। बापूने अभी एक छोटा-सा लेख लिखा था। उस लेख का आशय था कि हिटलर भी जर्मनी में यन्त्रों के महत्त्व को कम कर रहा है और मध्य युग के समान ही वर्तमान युग में वह घरू उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन दे रहा है। मैंने एक भले कार्यकर्ता से पूछा "आपने वह लेख पढ़ा है?" उन्होंने उत्तर दिया, 'नहीं'। कितनी ही बार ज्ञान को सम्मुख पाकर हम कह देते हैं "नया क्या होगा!" यह कल्पना ही घातक है। महाभारत के 'वन-पर्व' में एक ऋषि धर्मराज के पास आये। धर्मराज वन में दुःख भोगते थे। धर्म, दुःख की घड़ियों की उस कहानी को पाले रहते, किन्तु करुणामय ऋषि को पाकर धर्म का दुःख वाणी के द्वार से बह निकलता। वह कहते—"ऐसे दुःख किसीने न भोगे होंगे।" ऋषि कहते "राम और सीता को भी ऐसा ही वनवास भोगना पड़ा था।" धर्म कहते, "ज़रा वह राम की कथा तो कहिए।" यदि इन बातों पर से कोई कहे कि धर्म को रामकी कथा मालूम न थी, तो उस व्यक्ति के अज्ञान की हमें सीमा ही समझनी चाहिए! धर्म को दीखता कि ऋषि के मुख से पुनः राम की उज्ज्वल कथा सुननी चाहिए। पानी वही है, परन्तु जो 'गोमुख' में आया, कि अधिक पवित्र हुआ।

हरिजन-प्रवास में प्राप्त

[१७ फ़रवरी से २३ फ़रवरी, १९३४ तक]

विवरण	रकम
पांडिचेरी—जनता की थैली	५०१।।।≈)
रामकृष्ण वीथिका की थैली	७०)
श्री आर० मेक्लेन	५०)
हस्ताक्षर-शुल्क	२७)
सभा में फुटकर संग्रह	७–)२
नीलाम से	३४)
पनरुथि—जनता की थैली	२२१।।।–)४
नीलाम से	२)
कृपा-आश्रम—टिंडिवनम् के जैन-मंडल की थैली	१००)
टिंडिवनम् तालुका की थैली	१०६–)
महिला-मंडल, विल्लुपुरम् की थैली	५०)
विल्लुपुरम् के जैन-मंडल की थैली	२०१)
निवास-स्थान पर फुटकर संग्रह	६२॥)
तंजोर—चांदी के कटोरे और रकाबी के नीलाम की रकम प्राप्त हुई	२५)
तिरुकुलूर—जनता की थैली	२०१)
तिरुवन्नमलाई—जनता की थैली	६९०)
विविध धन-संग्रह	६३॥≈)११
नीलाम से	६)
वेल्लोर—जनता की थैली	१००१)
म्युनिसिपल बोर्ड की थैली	१९४)
जनता की एक अन्य थैली	१०१)
वूरहीस कालेज की ओर से	१४।≈)
कलंबूर-निवासियों की थैली	५)
सकामनाथीम गाँव की थैली	३२)
महन्त-हाईस्कूल के विद्यार्थियों की ओर से	४८)
रेड्डीपलायम् कोवंडरम् की ओर से थैली	२५)
को-आपरेटिव इन्स्टीट्यूट की ओर से	१३॥–)
हरिजन-सेवक-संघ की थैली	५)
श्री टी० सदागोपाचार्य	२०)
निवास-स्थान पर फुटकर संग्रह	४॥≈)
हस्ताक्षर-शुल्क आदि	२२॥)
सार्वजनिक सभा में फुटकर संग्रह	१८॥≈)११
नीलाम से	७५॥≈)१०
कटपाडी—जनता की थैली	६४०)
तीन हस्ताक्षरों का शुल्क	१५)
विविध धन-संग्रह	१०)
गुडीयत्तम्—गाँववालों की थैली	४२५॥≈)।।।
नवयुवक-संघ की थैली	१५)
गुडीयत्तम्-तालुका-बोर्ड की थैली	११५)।
फुटकर तथा नीलाम	६)
अंबूर—जनता की थैली	२२५)
एक साहूकार की ओर से	५०)
फुटकर तथा नीलाम	१९)
पल्लीकोंडा—गाँववालों की थैली	१२॥≈)
पेरियम् कुप्पम्—गाँववालों की थैली	३४)।
नीलाम से	१)
तिरुपत्तुर—नागरिकों तथा आसपास के लोगों की थैली	८१६)
नीलाम से	२९॥)
वानियम्बाडी—गाँववालों की थैली	२००)
हरिजन लड़कों की थैली	५)
काइस्टकुल आश्रम की सभा में	१०≈)॥
जोलारपेट स्टेशन पर हस्ताक्षर आदि से	१५)
फुटकर संग्रह	५।।।≈)
त्रिणवली—श्री एन० एम० गुरुस्वामी ने मनीआर्डर से भेजा	११)
त्रावणकोर—यूनियन क्रिश्चियन कालेज की ओर से	८।≈)
वेल्लोर—श्रीमती एम० पी० नारायण मेनन	१०)
नीलाम से	॥)
लालगुडी—श्री एस० सुब्रमनियम, संपादक, आर्यमित्रम्	७१)
कोडंयक्कम्—सभा में विविध धन-संग्रह	४०॥≈)
४ हस्ताक्षरों का शुल्क	२०)
विविध धन-संग्रह कई स्थानों पर	६०।।।≈)॥
नीलाम से	८९)
तिरुमरूर—जनता की पूरक थैली	५२॥)
पगानेरी—एप० ओ० उदयप्पम् की ओर	३०)
बकाया वसूल हुआ	२०)
वेल्लोर—श्री अब्दुल रहीम द्वारा प्राप्त हुआ	२००)
कांडंयक्कम्—फुटकर संग्रह	३)
चिंगलपट—हरिजन-सेवक-संघ की थैली	६१॥)
एक सज्जन	५१)
" "	१०)
फुटकर संग्रह	१४)
स्टेशनों पर फुटकर संग्रह	३१)।।।
कांजीवरम्—जनता की थैली	११६१)
जैन-मित्र मंडल की थैली	१०१)
३ हस्ताक्षरों का शुल्क	१५)
फुटकर संग्रह	३०≈)
नीलाम से	१०४)
कावेरी पाकम्—जनता की थैली	११।≈)२
वालजापेट—जनता की थैली	१५०)
विद्यार्थियों की थैली	५)
वलम् और अमूर गाँववालों की थैली	४५)
फुटकर धन-संग्रह	६)
रानीपेट—जनता की थैली	१०१)
फुटकर धन-संग्रह	३–)॥
आरकट—जनता की थैली	१८०≈)।।।
आर्णी—जनता की थैली	८०१)
सभा में फुटकर संग्रह	२६॥–)।
निवास स्थान पर धन-संग्रह	२७)
नीलाम से	१२८॥)
शोलिंघर—जनता की थैली	२०५)
फुटकर तथा नीलाम	२०–)४
आरकोणम्—जनता की थैली	३००)
हस्ताक्षरों से	४१)
यूनियन-बोर्ड की थैली	५०)

विविध धन-संग्रह	५=)
पर्ंजी गाँव की थैली	१४॥=)१
सभा में फुटकर संग्रह	८)
नीलाम से	३५।-)
बंगलोर सिटी—बंगलोर और मैसूर के बीच की स्टेशनों पर	२५॥)
हुंसूर (मैसूर राज्य)—जनता की थैली	१३१)
विविध संग्रह और नीलाम	३०।)
टिट्टिमट्टी (कुर्ग)—जनता की थैली	३७॥-)
कैकरा—हरिजनों की थैली	२५)
फुटकर संग्रह	२२-)
नीलाम से	३)
कुडीकेरी—जनता की थैली	७२॥)
विद्यार्थियों की थैली तथा फुटकर	२॥=)॥।
पन्नम्पेट—हरिजनों की थैली	२२-)
जनता की थैली	२२०)
सभा में विविध संग्रह	३०॥)४
विराजपेट—जनता की थैली	५०१)
हरिजनों की थैली	१०)
विद्यार्थियों की थैली	१०)
सभा में फुटकर धन-संग्रह	३६=)
नीलाम से	२७।
सिद्धपुर गाँव (कुर्ग)—जनता की थैली	९=)
सोमवारपेट—जनता की थैली	२७५॥-)१
फुटकर तथा नीलाम	२१)
गुंडुकुट्टी—जनता की थैली	९)॥
मरकरा—जनता की थैली	७६०)
विविध धन-संग्रह	२६)
३ हस्ताक्षरों का शुल्क	१५)
नीलाम से	५७)
जोड़	१४२२७।=)११
कुल जोड़	३३४२१९-)४

प्रांतीय कार्य-विवरण

राजपूताना

[फ़रवरी, १९३४]

धार्मिक—हरिजनों और सवर्ण हिन्दुओं के २३ बार संयुक्त भजन-कीर्तन हुए और हरिजन-मुहल्लों में ११ बार कथाएँ हुईं।

होली का त्योहार क़रीब-क़रीब संघ की सभी शाखाओंने मनाया, जिसमें हरिजनों और सवर्ण हिन्दुओंने बिना किसी भेद-भाव के बड़े प्रेम से भाग लिया।

शिक्षा—नीचे लिखे स्थानों पर हरिजनों के लिए रात्रि-पाठशालाएँ खोली गईं:—

मरेठी, भूकोल और बरकिया में ३ रात्रि-पाठशालाएँ;
छोटी सादड़ी (मेवाड़) में १ रात्रि-पाठशाला।

नीचे लिखे स्थानों पर दिवस-पाठशालाएँ खोली गईं:—

अजमेर के पास मरेठी में १ दिवस-पाठशाला;
लालवाड़ा (बाँसवाड़ा) में १ दिवस-पाठशाला;
नसीराबाद में १ हरिजन-दिवस-पाठशाला।

सार्वजनिक पाठशालाओं में ६ हरिजन छात्र दाखिल कराये गये। संघ की पाठशालाओं में १० हरिजन-कन्याएँ और भरती की गईं।

वनस्थली (जयपुर) की जीवन-कुटीर के एक हरिजन-विद्यार्थी के लिए ५) मासिक 'रघुमल-दातव्य-कोष' से छात्रवृत्ति मंज़ूर की गई।

१८ हरिजन विद्यार्थियों को कमीज़ें, टोपियाँ और जाँघिये दिये गये।

३०० हरिजन विद्यार्थियों को किताबें, स्लेटें, पेंसिलें इत्यादि दी गईं।

हरिजन-शिक्षा के सम्बन्ध में विभिन्न स्थानों पर १३ सार्वजनिक सभाएँ की गईं।

आर्थिक—अमरसर (जयपुर) में शिक्षक के पद पर एक हरिजन नियुक्त किया गया।

२ बेकार हरिजनों को सूरजगढ़ (जयपुर) में काम दिलाया गया।

मामूली-सी दर पर सामोद के एक मेहतर को भयंकर सूद से बचाने के लिए कुछ क़र्ज़ दिया गया।

स्वास्थ्य और स्वच्छता—२५ विभिन्न स्थानों के हरिजन-मुहल्लों का ३१४ बार निरीक्षण किया गया।

शिक्षकों तथा कार्यकर्ताओंने १९ विभिन्न स्थानों पर १५८ बार हरिजन विद्यार्थियों को नहलाया-धुलाया।

८०४ हरिजन लड़कों को साबुन मुफ्त दिया गया।

मद्य-मांस-निषेध—८९ हरिजनोंने शराब तथा मुर्दार मांस छोड़ देने की प्रतिज्ञा की।

औषधि इत्यादि—४९२ बीमार हरिजनों को मुफ्त दवाइयाँ दी गईं। डाक्टरों तथा वैद्य-हकीमोंने ३४ हरिजन मरीज़ों के घर पर जाकर उन्हें देखा।

सामान्य—२८ सवर्ण हिन्दुओंने अस्पृश्यता न मानने की प्रतिज्ञा की।

सूरजगढ़ (जयपुर) में हरिजनों के लिए एक कुआँ खोल दिया गया।

प्रचार-कार्य—९७५ हरिजनों और २५० सवर्ण हिंदुओं को १९ विभिन्न स्थानों पर 'हरिजन-सेवक' पढ़कर सुनाया और समझाया गया।

हरिजन-आंदोलन संबंधी ५४ पुस्तकें बेची गईं।

२९ हरिजन-परिवारों की सामाजिक अवस्था की जाँच की गई।

हरिजन-उन्नति पर व्यय—फ़रवरी मास में हरिजनों के उन्नति-कार्यों पर नीचे लिखे अनुसार खर्च हुआ:—

पाठशालाएँ	९९०)।
छात्रवृत्तियाँ	१६)
पुस्तकें, स्लेटें इत्यादि	१५॥=)
कपड़े, साबुन इत्यादि	१४।-)
फुटकर	५४।=)
कुल—	१०९७॥-)।

आसाम

[फ़रवरी, १९३४]

धार्मिक—सेपचारी स्टेशन के पास चायबागान के बेकार कुलियों के मुहल्लों में तीन 'नामघर' बनवाये गये। जहाँ नाम-संकीर्तन हुआ करता है।

शिक्षा—सार्वजनिक प्राइमरी पाठशालाओं में २७ हरिजन बालक भरती कराये गये।

निम्नलिखित स्थानों पर हरिजन-प्राइमरी पाठशालाएँ खोली गई :—

अलमरा में लोअर प्राइमरी स्कूल;

चारिया में लोअर प्राइमरी स्कूल;

गौरीसागर बैजगाँव में लोअर प्राइमरी स्कूल;

अयमागर में लोअर प्राइमरी स्कूल।

इनके अतिरिक्त गोलाघाट की ज़िला-समितिने ५ और लोअर प्राइमरी पाठशालाएँ, मंगलदोई की समितिने १ पाठशाला, रूपानी की समितिने १ रात्रि-पाठशाला तथा १ कन्या-पाठशाला खोली हैं।

चायबागान के कुलियों की बस्तियों में शिक्षा के संबंध में ९ सभाएँ हुईं।

आर्थिक—गोहाटी के सेवाश्रमने सारी गाँव के क़रीब २० हरिजन-परिवारों को कातने-बुनने के लिए रुई दी।

२ हरिजन युवक अध्यापकी के पद पर नियुक्त किये गये।

स्वास्थ्य तथा स्वच्छता—संघ के कार्यकर्ताओंने ३० गाँवों की हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण किया, जहाँ उन्होंने हरिजनों को स्वच्छता तथा स्वास्थ्य के लाभ समझाये।

इन कई गाँवों में पानी का काफ़ी कष्ट है। नालों का पानी बेचारों को पीना पड़ता है। और कुछ गाँवों में तो उन्हें वह भी नसीब नहीं।

मद्य-मांस-निषेध—प्रचार के फलस्वरूप १०८ हरिजनोंने शराब तथा ७ भाइयोंने मदक पीना छोड़ दिया।

सामान्य—संघ के मंत्रीने कामरूप और ग्वालपाड़ा ज़िले के कई गाँवों की हरिजन-बस्तियों की जाँच की। वहाँ सर्वत्र ग़रीबी और अशिक्षा देखने में आई।

अनेक स्थानों पर संयुक्त सभाएँ हुईं, जहाँ हरिजनों और सवर्ण हिंदुओंने बराबरी से भाग लिया।

क़रीब ३० हरिजन लड़कों को किताबें व स्लेटें दी गईं तथा मिठाई भी बाँटी गई।

सिंध

[फ़रवरी, १९३४]

धार्मिक—हैदराबाद में बराबर साप्ताहिक सत्संग होता रहा। होली की छुट्टियों में तीन बड़े-बड़े सत्संग किये गये। एक में तो आचार्य गिडवानी और साधु वास्वानी के भी भाषण हुए।

शिक्षा—कराची के म्युनिसिपल स्कूलों के हरिजन बच्चों को गरम कपड़े दिये गये। कुमारी जेठी सिपाहीमलानी तथा अन्यों के प्रयत्न से जो २००) की रक़म दानस्वरूप मिली थी, उसी से यह वस्त्र-वितरण किया गया।

श्रीयुक्त तथा श्रीमती कृटानीने चाकर की रात्रि-पाठशाला का निरीक्षण किया और सबसे अच्छी हाज़िरी तथा सफ़ाई जिनकी रही, ऐसे ६ हरिजन विद्यार्थियों को दो-दो रुपये की इनाम दी। उन्होंने मिठाई भी बच्चों को बाँटी।

कराची-छावनी की रात्रि-पाठशाला में साबुन और तेल बाँटा गया। अध्यापकों की देखरेख में बालकोंने स्नान किया और अपने-अपने कपड़े साफ़ किये।

एफ़० ए० की परीक्षा देने के लिए हरिजन विद्यार्थी श्री तुकाराम को २०) दिये गये। 'ईवनी-फ़ोकड़ इन्स्टीट्यूट' में भरती होनेवाले भरतभकार के तीन विद्यार्थियों की छात्रवृत्तियाँ मंजूर की गईं।

हैदराबाद—श्री भाई परतापराय दयालदासने किशन-नगर के पास एक हरिजन-दिवस-पाठशाला खोलने के लिए बिना किराये का एक अच्छा-सा मकान और १५) मासिक देना स्वीकार किया है।

सक्खर—पुराने सक्खर के हरिजन-आश्रम में पोस्ट आफ़िस के एक सज्जन मेहतरों के बालकों को नित्य दो घंटे पढ़ाया करते हैं। रात्रि-पाठशाला में भी यह पढ़ाते हैं। इन्होंने इस शिक्षण-कार्य के लिए ही ख़ासकर दो महीने की छुट्टी ली है।

पुराने सक्खर में स्थानीय म्युनिसिपैलिटी मेहतरों के लिए जो मकान बनवा रही थी, वह बन चुके हैं। अब वहीं पर मेहतरों के लिए एक आश्रम बनवाने के अर्थ श्री पी० बी० चंदवानीने ६००) का दान दिया है। इस आश्रम में एक भाषण-भवन, तीन कमरे और दोनों ओर बरंडे रहेंगे। इमारत १२००) में तैयार होगी। यह निश्चय किया गया है, कि बाक़ी के ६००) सक्खर में ही चंदे से एकत्रित किये जायँ।

नवाबशाह—नवाबशाह और टांडो-आश्रम की दोनों पाठशालाएँ अच्छी उन्नति कर रही हैं। दोनों में क्रमशः ४६ और ३७ विद्यार्थी हैं।

जैकोबाबाद—यहाँ एक दिवस-पाठशाला और एक रात्रि-पाठशाला खोली गई है, जिनमें क्रमशः १२ और १६ विद्यार्थी पढ़ते हैं। किताबें व स्लेटें मुफ़्त में दी गई हैं। दिवस-पाठशाला के हरिजन विद्यार्थियों को दो-दो जोड़ कपड़े भी दिये गये हैं।

आर्थिक—कराची की म्युनिसिपैलिटी के मेहतरों की सहकारी समिति को १००००) डिपाज़िट के रूप में दिये गये। छावनी के मेहतर अब म्युनिसिपैलिटी के मेहतरों की सहकारी समिति में शामिल हो गये हैं। यह समिति ही उन्हें अब आवश्यकता पड़ने पर क़र्ज़ देती है।

हैदराबाद—यहाँ की म्युनिसिपैलिटी के मेहतरों की सहकारी समिति अच्छी तरक़्क़ी कर रही है। ७१ मेंबर इस सोसाइटी के हो चुके हैं, और १८ की अर्ज़ियाँ आई हुई हैं। २१५०) क़र्ज़ में दिये जा चुके हैं। ४) सैकड़े की दर से १७००) जो मेंबर नहीं है, उन्होंने फ़िक्स्ड डिपाज़िट में जमा किये हैं।

सक्खर—सहकारी समिति अब यहाँ भी नियमपूर्वक आरंभ कर दी गई है। मेहतरोंने अपने हिस्सों के ४००) अभी-तक जमा किये हैं, और फ़िक्स्ड डिपाज़िट में भी १२००) आ चुके हैं। सहकारी समिति के कारण साहूकार लोग बहुत चौकन्ने

दी गये हैं। होली के अवसर पर उन्होंने ग़रीब मेहतरों को कुछ गुंडों के द्वारा पिटवाया भी। श्री ठाकुरदास की भी आँख में बहुत बुरी चोट आई। साहूकारों के विरुद्ध मुक़दमा दायर कर दिया गया है और इस काम के लिए सक्खर के चार प्रख्यात वकीलों का एक क़ानूनी बोर्ड भी नियत किया गया है।

सोसाइटी की ओर से एक दूकान खोली गई है, जहाँ हरिजनों को उचित दामों पर ज़रूरी चीज़ें दी जाती हैं।

सफ़ाई व आरोग्यता—कराची छावनी के मेहतर बड़ी भयावनक हालत में रह रहे हैं। और तीन-तीन, चार-चार रुपये माहवारी किराया भी उन्हें मकानों का देना पड़ता है। छावनी के अधिकारियों से इनकी हालत सुधारने के संबंध में लिखा-पढ़ी चल रही है।

हैदराबाद—मेहतरों के घरों में बड़ा अंधेरा रहा करता था। अब उनमें खिड़कियाँ खोल दी गई हैं। सफ़ेदी भी उनके घरों में करादी गई है। इस पर जो ख़र्च पड़ा है, वह संघने दिया है।

कई स्वयंसेवक अहमद कार्य कर रहे हैं। कुछ तो मकानों की सफ़ाई करते हैं, कुछ हरिजन-बच्चों को नहलाते धुलाते हैं और कुछ दवाइयाँ बाँटा करते हैं। साबुन और तेल भी बस्तियों में बाँटा जाता है।

नवाबशाह—यहाँ के संघ के मंत्रीने प्रत्येक केन्द्र का निरीक्षण किया। अध्यापकों व मंत्री की देखरेख में हरिजन बच्चों को सप्ताह में दो बार स्नान कराया जाता है और उनके कपड़े साफ़ किये जाते हैं।

मद्य-निषेध—होली के अवसर पर गुरु-संगत के मोहल्ला-पार्क में हरिजन बच्चों की एक सभा हुई। इसमें १०० बच्चों की उपस्थिति थी। बच्चों को 'मद्य-निषेध' के बैज दिये गये। आत्म-सेवा-मंडल की ओर से एक जुलूस निकाला गया, जिस में हरिजनों तथा सवर्ण हिंदुओं की भारी भीड़ के सामने 'मद्यपान का पुतला' जलाया गया।

सामान्य—हैदराबाद के एक भाटिया सज्जन की शादी में हरिजनों को निमंत्रण दिया गया। बारात में बहुत-से हरिजन भाई शामिल हुए।

एक रविवार को बाबा किशनचंद के बाग़ में सवर्ण हिंदुओं के बालकों के साथ हरिजन बालकों को मिठाई आदि बाँटी गई।

तामिल-नाड

[अक्टूबर, नवंबर और दिसंबर, १९३३]

धार्मिक—हरिजनों के लिए धारापुरम् (कोयम्बतूर) में गणपति-मंदिर और करंताइ (तंजोर) में विनायक-मंदिर खोल दिये गये।

२० भजन-मंडलियों का आयोजन किया गया, जिनमें हरिजनों तथा सवर्ण हिंदुओंने एक साथ भाग लिया।

शिक्षा—पहले की ५२ हरिजन-पाठशालाओं के अलावा निम्नलिखित पाठशालाएँ और खोली गईं :—

थेनमापट्ट चेरी में, देवकोटा के पास, १ रात्रि-पाठशाला;
उत्तरी आरकट में १ निःशुल्क विद्यालय;
धारापुरम् (कोयम्बतूर) में १ रात्रि-पाठशाला।

त्रिचिनापल्ली में १६॥), वेलोर में ७॥॥), रामनाद में ४) तथा सलेम में ८) की छात्रवृत्तियाँ हरिजन विद्यार्थियों को दी गईं। त्रिचिनापल्ली के सरकारी ट्रेनिंग स्कूल में पढ़नेवाले एक हरिजन अध्यापक को ५) मासिक छात्रवृत्ति दी गई।

आरोग्यता व स्वच्छता—८३ गाँवों में आरोग्यता-संबंधी कार्य किया गया।

साधारण—३ दिसंबर को कोयम्बतूर में डा० पी० सुब्बा-रायन के सभापतित्व में द्वितीय तामिल-नाड प्रांतीय हरिजन-परिषद् हुई। कई ज़िलों से २३४ प्रतिनिधि परिषद् में आये। इसी परिषद् में गांधीजी के प्रवास-क्रम के संबंध का आयोजन किया गया था।

त्रिचिनापल्ली से ३१ मील के फ़ासलेपर मेला-अरसूर गाँव में दो सार्वजनिक तालाबों को लेकर झगड़ा चला। हरिजनों को उन तालाबों से पानी भरने से रोका गया। डाक्टर राजन तथा अन्य कार्यकर्ताओंने ख़ुद जाकर स्थिति को देखा। कलेक्टर को लिखा-पढ़ी की गई और प्रांतीय संघ के सभापति को भी। गांधीजी को भी इस विषय का आवेदन-पत्र हरिजनोंने दिया। संघ की ओर से इस मामले में पूरा ध्यान दिया जा रहा है।

इनाडुर (चिंगलपट) में भी ऐसा ही एक आपसी झगड़ा उठ खड़ा हुआ। अदालत में यह मामला पेश है।

सत्तूर (रामनाद) के हरिजनों को बाढ़ने बड़ी हानि पहुँचाई थी। उन्हें संघने १२०) की सहायता दी, जिससे ७३ गिरे-पड़े झोंपड़ों की मरम्मत में थोड़ी-बहुत मदद पहुँची। विरुधुनगर की बरमा शेल कंपनी के एजेण्टने क़रीब ५०० हरिजनों को ८ दिनतक भोजन कराया और कपड़े भी दिये।

शियाली में आंधी-तूफ़ान आदि से हरिजनों के सैकड़ों झोंपड़ों को नुक़सान पहुँचा। गिरे हुए झोंपड़ों की मरम्मत कराने के लिए केन्द्रीय बोर्ड से लिखा-पढ़ी की गई।

वेलोर के पास सिरुमकाइचेरी में मरघट को लेकर सवर्ण हिंदुओं और हरिजनों में कुछ झगड़ा चल रहा था। संघ के मंत्रीने ख़ुद जाकर मौक़ा देखा और समझौते का प्रयत्न किया। बहुत कुछ कटुता तो दूर हो गई है, पर हरिजन अभी संतुष्ट नहीं हैं।

गांधीजयंती तथा दीपावली के अवसर पर हज़ारों हरिजनों को अनेक स्थानों पर भोजन कराया गया और लगभग ५००) रुपये के उन्हें कपड़े भी बाँटे गये।

६३ गाँवों में मद्यपान के विरुद्ध प्रचार-कार्य किया गया। इस संबंध के चित्र, व्याख्यान-सहित, जगह-जगह दिखाये गये। फलस्वरूप कुछ हरिजनोंने दारू छोड़ने का निश्चय किया।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S Gupte.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169

वार्षिक मूल्य ३।।)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)

हरिजन-सेवक

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ६ एप्रिल, १९३४. [संख्या ७

विषय-सूची

बिहार के खंडहरों में

ऊबड़-खाबड़ सड़कों पर और दम घोंटनेवाली गर्मी व धूल के बीच में ९७ मील की मोटर-यात्रा के बाद, हम लोग शाम को छपरा पहुँचे—सिर्फ़ पानापुर में ही दोपहर को भोजन व थोड़े विश्राम के लिए रुके थे। मनोरम मेहराबदार दरवाज़े और फूल-पत्तियों की सुंदर सजावट सर्वत्र गांधीजी के स्वागत में देखने में आई। बालू से भरे हुए खेत सड़क के दोनों तरफ़ दिखाई दे रहे थे। ज़मीन पर जहाँ-तहाँ बालू की दरारें और छेद प्रकृति की प्रलय-कारी कोप की साक्षी दे रहे थे। इतनी सब सत्यानाशी होते हुए भी हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ, कि श्रद्धा एवं प्रेम की अद्भुत शक्ति से लोग अपनी घोर विपदा को थोड़ी देर के लिए भूल-से गये और यही कारण है कि वे गांधीजी का स्वागत करने के लिए जगह-जगह पर सैकड़ों-हज़ारों की संख्या में उत्कंठित खड़े दिखाई दिये।

अस्पृश्यता की छाया

छुआछूत का भूत जहाँ भी गांधीजी जाते हैं छाया की तरह उनके साथ-साथ चलता है। २७ मार्च की साँझ को छपरा में तीस हज़ार से भी अधिक लोगों के सामने गांधीजी अस्पृश्यता पर बड़े ज़ोरदार शब्दों में बोले। उन्होंने कहा—"आज हम सब पर—हिंदुओं, मुसल्मानों, ईसाइयों आदि तथा ऊँच-नीच वर्णवालों पर—बिना किसी भेद-भाव के एकसमान यह घोर संकट आया हुआ है। अगर यह भयंकर संकट भी हमारे उच्चता के मिथ्या अहंकार को न मिटा सका, मनुष्य-मनुष्य के बीच के स्वेच्छाचारी मनुष्य-कृत उच्च-नीच के तमाम भेदों को यह भारी विपदा भी न मेट सकी, तो फिर इस संसार में हमारे समान भाग्यहीन और कौन होगा। मेरा यह विश्वास दिन-दिन दृढ़ होता जा रहा है, कि भगवान् की लीलाओं को मनुष्य की बुद्धि पूरी तरह से समझ नहीं सकती। ईश्वरने अपनी समझ से मानवी दृष्टि को सीमित कर रखा है—और यह ठीक ही किया है, नहीं तो मनुष्य के अहंकार की आज कोई सीमा ही न रहती। लेकिन साथ ही, जब कि मैं यह विश्वास करता हूँ, कि ईश्वर की लीलाओं को मनुष्य पूरी तरह से समझ नहीं सकता, मेरा यह भी पक्का विश्वास है, कि बिना उस सिरजनहार की मरज़ी के एक पत्ती भी नहीं हिल सकती। सब कुछ उस की आज्ञा के अनुसार ही होता है, उसी का सब हुक्म बजाते हैं। यदि हम में काफ़ी नम्रता होगी, तो हमें यह स्वीकार करते तनिक भी हिच-किचाहट न होगी कि यह भूकंप हमारे पापों का ही प्रतिफल था। इसका यह अर्थ नहीं है, कि मनुष्य के किसी ख़ास कर्म के साथ किसी ख़ास विपत्ति का संबंध हम निश्चयपूर्वक जोड़ सकते हैं। अकसर तो हम अपने बुरे-से-बुरे पापों से बेख़बर ही रहा करते हैं। मेरे कहने का तो यहाँ यही मतलब है, कि प्रकृति के प्रत्येक कोप का हमारे लिए यह अर्थ है और होना चाहिए, कि उसने हमें अन्तर्दृष्टि, पश्चात्ताप तथा आत्मशुद्धि का आमंत्रण दिया है। आज तो हमें हृदय-शुद्धि की सबसे अधिक आवश्यकता है। मैं तो यहाँतक कहूँगा, कि [illegible] यह भयंकर भूकंप भारत से अस्पृश्यता दूर कर सका, तो [illegible] महान् संकट हमारे लिए कुछ बहुत महँगे मूल्य का न आँका जायगा।

छपरा से गांधीजी रेल-द्वारा २८ मार्च के तीसरे पहर मुज़फ़्फ़रपुर के लिए रवाना हुए। यहाँ भी लोगों में वैसा ही महान् प्रेम और असीम उत्साह देखने में आया, जैसा कि मोटर-यात्रा में हमने देखा था। स्टेशनों के प्लेटफ़ार्म लोगों से ठसाठस भरे हुए थे। दर्शनाकुल लोग गांधीजी के डिब्बे को घेर लेते, खिड़कियों की ओर बेतहाशा दौड़ते, और दरवाज़ों के हैंडिल पकड़-पकड़कर इस तरह लटक जाते थे, कि गाड़ी को ठहरा देना पड़ता था। उस पगली भीड़ को हटाये बिना एक बार तो गाड़ी का आगे बढ़ना ही कठिन हो गया—डर था कि उस गज़ब की रेलपेल में कहीं कोई दुर्घटना न हो जाय।

सोनपुर में

छपरा और मुज़फ़्फ़रपुर के बीच में सोनपुर एक बड़ा जंक्शन है। पौराणिक कथा के अनुसार यहीं गज और ग्राह में प्रसिद्ध युद्ध हुआ था, और भगवान् नारायणने भक्त गजेन्द्र को ग्राह के फंदे से छुड़ाया था। आज यह तीर्थस्थान, और कई बातों के साथ-साथ, एक सबसे बड़े मेले के लिए प्रसिद्ध है, जिसमें हरसाल हज़ारों हाथियों, घोड़ों और गाय-भैंसों का क्रय-विक्रय होता है। गाड़ी इस स्टेशन पर बहुत देरतक ठहरती है। लोगों की भारी भीड़ दर्शन के लिए व्याकुल हो रही थी। गांधीजी आराम कर रहे थे। वह इतने अधिक थके हुए थे, कि गाड़ी से बाहर आना कठिन था। पर वह आग्रही जन-समूह कैसे मान सकता था? गांधीजी को डिब्बे के दरवाज़े पर आना ही पड़ा। खड़े-खड़े उन्होंने लोगों को शान्त हो जाने के लिए कहा। इसके बाद वे अपने उसी शान्ति के स्वर

में बोले—"मैं जानता हूँ, कि बिहार के इस हिस्से पर कैसी बुरी बीती है। आप लोगों की इस भयंकर विपत्ति के प्रति संसार भर की सहानुभूति है। वाइसराय तथा बाबू राजेन्द्रप्रसाद की अपील पर लोगोंने उदारतापूर्वक रुपये-पैसे दिये हैं सही, पर उत्तरी बिहार की जो भयंकर हानि हुई है, उसकी इससे पूर्ति होना असंभव है। पर मान लीजिए, कि किसी तरह क्षति-पूर्ति हो भी गई, तो भी अगर प्रकृति की इस भयंकर चेतावनी का कोई ठोस नतीजा न निकला, तो सारी सेवा-सहायता का यह एक बड़ा मामूली-सा-ही परिणाम कहा जायगा। दोनों कोषों में दान देनेवालों तथा अन्य अनेक सेवा-मंडलोंने अपना-अपना दान भेजकर शायद अपनी आत्मतुष्टि कर ली है। पर आपकी इस दैवीप्रकोप की प्रतिक्रिया क्या हुई? यदि आपने और मैंने इस संकट से कोई नैतिक शिक्षा ग्रहण न की, तो हमारी वह उपेक्षा इस संकट से भी अधिक बुरी होगी। कल ही की बात है। गंडक नदी के बाँध पर से जब हमारी मोटर जा रही थी, मुझे वहीं पास के एक गाँव के डोमों का एक छोटा-सा पर्चा मिला। उसमें लिखा था, कि उन लोगों को पानी का बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है, क्योंकि गाँववाले उन्हें सार्वजनिक कुएँ से पानी नहीं भरने देते हैं। गाँव के चौधरी से मैंने यह बात कही, तो उसने मुझे वचन दिया, कि अगर जाँच करने पर डोमों की यह शिकायत ठीक निकली, तो वह उसे दूर कर देगा। अमीर व ग़रीब, हिन्दू व मुसल्मान, सवर्ण अथवा अवर्ण सभी को ईश्वर का कोप बराबर भुगतना पड़ा है। ईश्वर की इस विशुद्ध निष्पक्षता से क्या हम यह नहीं सीख सकते, कि किसी भी व्यक्ति को अस्पृश्य या अपने से नीच समझना पाप है। यदि कोई भी डोम या अन्य व्यक्ति गाँव के कुओं के उपयोग से वंचित किया जाता है, तो निश्चय ही १५ जनवरी का सबक़ हम लोगोंने भुला दिया है। मैं इसी क्षण आप लोगों की परीक्षा लेना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि आप सब लोग ग़रीब हैं और पेशानी का पसीना बहाकर अपना पेट पालते हैं, किन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि इस भारी भीड़ में कोई इतना ग़रीब न होगा कि वह एक पैसा भी न दे सके। मैं चाहता हूँ कि आप में से हर एक भाई-बहिन ताँबे के टुकड़ों को यह समझकर दे कि उसने अस्पृश्यता पाप पर पश्चात्ताप प्रगट किया है और वह किसी को अपने से नीच नहीं समझता और ऊँच-नीच के तमाम भेदों को जड़मूल से दूर करने के लिए उसने दृढ़ निश्चय कर लिया है। इसके अतिरिक्त किसी अन्य शर्त पर मैं नहीं चाहता कि आप लोग एक पाई भी मुझे दें।" लोगोंने भाषण पूरी शान्ति से सुना। भाषण समाप्त होते ही गांधीजी के आगे रुपये-पैसे बरसने लगे। इन छोटे-छोटे दानों के लेने में बीस मिनिट से कम न लगे होंगे। गाड़ी के छूटते-छूटतेतक पैसे-पाइयों की काफ़ी वर्षा होती रही। शायद ही कोई ऐसा पुरुष या स्त्री या बच्चा वहाँ होगा, जिसने कुछ-न-कुछ गांधीजी के हाथ में न दिया हो। यह सब कार्य बड़ी शान्ति के साथ हुआ, मानो अस्पृश्यता-निवारण के सन्देशने लोगों के अन्तस्तल में घर कर लिया था।

प्रायश्चित्त की निशानी

सोनपुर से मुज़फ्फरपुर तक फिर बराबर यही क्रम जारी रहा। प्रत्येक स्टेशन पर गांधीजीने अपना सन्देश संक्षिप्तरूप में सुनाया और अस्पृश्यता-पाप के प्रायश्चित्त-स्वरूप पैसे-पाइयों का संग्रह किया। मुज़फ्फरपुर हम लोग सात बजे के क़रीब पहुँचे। स्टेशन से गांधीजी सीधे प्रार्थना-स्थल को गये। प्रार्थना के अन्त में उन्होंने सोनपुर तथा अन्य स्टेशनों का अपना अनुभव लोगों को सुनाया और कहा, कि उन्हें भी उदार भाव से सोनपुर के सुंदर उदाहरण का अनुकरण करना चाहिए। —'पी'

अधर्म दूर करने का मार्ग

अस्पृश्यता असमानता का ही रूपान्तर है। हृदय के जिस कोने में असमानता का भाव रहता है, न कि समानता का भाव, उसी स्थान में अस्पृश्यता का जन्म होता है। मुझे बड़ा होना है। दूसरे लोगों को छोटा न बनाया जाय और उन्हें छोटा करके न रखा जाय, तो मैं बड़ा हो नहीं सकता। इसलिए मुझे खुद यह बात सोचनी होगी, कि किस प्रकार दूसरे लोग छोटे हो सकते हैं और छोटे बनाकर रखे जा सकते हैं। इस प्रकार करते हुए ही सबल मनुष्य निर्बल को दबाता है, और निर्बल भी अवसर पाकर सबल होना चाहता है तथा सबल हो जाने के बाद दूसरों को दबाता है। यह भाव इतना अधिक व्यापक है, कि जो खुद दूसरों के द्वारा कुचला जाता है, तथा दुर्दलन की वेदना से सदा ही पीड़ित रहा करता है, वह भी, साथ ही, यथाशक्ति दूसरों को कुचलता रहता है।

साधु पुरुषोंने इस असमानता के विरुद्ध प्रत्येक युग में युद्ध किया है। लोगों की इस प्रवृत्ति को क़ाबू में रखकर व्यक्ति और जगत् का कल्याण करने के लिए हिंदूधर्मने वह कुशलता सिद्ध की है, कि जो समस्त देश, काल और समाज को उपयोगी है। अमीर और ग़रीब का भेद मिटाये बिना भी जन-समाज किस तरह समानता के भाव पर चल सकता है, यह बात गीता के प्रत्येक श्लोक में दिखाई देती है। अपने-अपने स्थान पर रहकर सबके साथ निर्वैर होकर, सबको समानता की दृष्टि से देखकर जीवन बिताने का मूल सूत्र गीता में बड़ी मधुर भाषा में वर्णन किया गया है। हिंदू-समाज गीता को एक महान् ग्रन्थ मानकर पूजता है। किन्तु आश्चर्य की बात यह है, कि दूसरी तमाम जातियों की अपेक्षा यह हिंदूजाति ही असमानतारूपी अधर्म को धर्म का स्थान देती चली आ रही है।

दूसरे समाजों एवं दूसरे देशों में जो असमानता मौजूद है, उसे लोग जब नग्नरूप में देखते हैं, तब उसे अन्याय मानते हुए भी वे, अपने आचरण में हेरफेर करने की दुर्बलता के कारण, सदा के लिए उसका त्याग नहीं कर सकते। परन्तु ऐसे हिंदू ही हैं, जिन्होंने असमानता को धर्म का स्थान दे रखा है। आज इतनी चर्चा और आन्दोलन होने के बाद भी तथोक्त सनातनी कहते हैं, कि अस्पृश्यता का मानना ही धर्म है। धर्म के नाम पर जब अधर्म को आश्रय दिया जाता है, तब धर्म-शुद्धि करने का दूसरा कोई रास्ता ही नहीं रहता, उसका तो तब नाश ही होता है। हिंदूधर्म सब को समदृष्टि से देखने की बात सिखाने का प्रयत्न करता है। जबतक इससे बिल्कुल विपरीत विश्वास—मनुष्य को मनुष्य न समझकर, किसी को भी जन्म के कारण ही हीन मानने का भाव—समाज में बना रहेगा, तबतक हिंदूधर्म का यह मूल सिद्धान्त व्यर्थ हो जायगा। हिंदू ही अस्पृश्यतारूपी अधर्म को, एक प्रकार की दारुण निर्दयता को, धर्म का स्थान दे बैठे हैं। इसे एक प्रकार का उपहास ही समझना चाहिए।

हिंदूधर्म के अन्दर असमानता का यह संस्कार इतना अधिक व्याप्त गया है, कि जो लोग बुद्धि-द्वारा विवेकपूर्वक यह समझते हैं, कि अस्पृश्यता एक त्याज्य वस्तु है, उनमें भी कोई-कोई व्यक्ति अस्पृश्य कही जानेवाली किसी जाति के मनुष्य को आश्रय देते अथवा उसके हाथ की सेवा लेते हुए हिचकते हैं, और बाद को अपने इस व्यवहार पर स्वयं ही लज्जित होते हैं।

धर्म की जब अत्यंत ग्लानि हो जाती है, तब उसकी पुनः संस्थापना की व्यवस्था भगवान् ही करते हैं। हिंदूधर्म की ग्लानि की इस हीन अवस्था के समय भगवत्कृपा से हिंदू-समाज को गांधीजी मिल गये हैं। गांधीजी धर्म की रक्षा के लिए अस्पृश्यता दूर कराने के काम में प्राणपण से लगे हुए हैं। समस्त भारतवर्ष उनका सन्देश सुनने के लिए उत्कंठित हो उठा है। सहस्रों स्त्री-पुरुष उनका दर्शन करने के लिए, उनकी वाणी सुनने के लिए व्याकुल हो उठते हैं। परन्तु जो लोग असमानता को ही समानता समझते हैं, अस्पृश्यता को ही धर्म कहते हैं, वे भी निश्चिन्त तो नहीं बैठे हैं। गांधीजी की इस धर्मयात्रा को विफल करने के लिए वे भी प्राणपण से प्रयत्न कर रहे हैं। बंगाल में इन लोगों के साथ कई दूसरे भी मिल गये हैं, और वे सब कमर कसकर गांधीजी की प्रवृत्ति को निष्फल करने का शोर मचा रहे हैं। ये लोग गांधीजी से कितना डरते हैं इससे एक बात तो सिद्ध होती है, कि गांधीजीने जो युद्ध आरम्भ किया है उससे वे भारी कठिनाई में आ पड़े हैं। वे लोग गांधीजी को पराजित कर देना चाहते हैं। वे कुछ ऐसी निराधार बात कहने लगे हैं, कि बंगाल प्रान्त गांधीजी को नहीं चाहता है। विदेशी ढंग के वाक्य बना-बनाकर वे लोग 'गांधीवाद का नाश हो' ऐसी बातों का अखबारों में प्रचार कर रहे हैं। परन्तु जिसके ध्वंस की वे इच्छा कर रहे हैं, वह गांधीवाद है क्या वस्तु ?

जब करांची-कांग्रेस में गांधीजी गये थे, तब जन-समुदाय की रेलपेल से बचाने के लिए १२ मील दूर के स्टेशन पर उन्हें उतार लेना पड़ा था। लेकिन जो लोग गांधीवाद का नाश करना चाहते हैं, उन्हें कौन रोक सकता है ? वे मुट्ठीभर थे। किन्तु मुट्ठीभर लोगों की चिल्लाहट एक भारी सभा को भी धूल में मिला सकती है। दो आदमी शोरगुल मचाने लगें, तो वे एक प्रार्थना-मंडली का संगीत बेसुरा तो कर सकते हैं। भले ही गांधी-विरोधी मुट्ठीभर हों, भले ही वे आज अपरिचित और असंगठित आदमी हों, किन्तु आज लोकप्रिय नेताओं के विरुद्ध एक अजीब-सा तूफान खड़ा करके वे अवश्य शक्तिशाली हो सकते हैं। चाहे वह कितना ही मामूली आदमी हो, पर किसी भी महापुरुष का अपमान करके वह उसी क्षण प्रख्यात हो सकता है। अनेक दिनोंतक कोई दौड़धूप किया करे, जी तोड़ कोशिश किया करे, पर उस महा प्रयास से भी जो फल प्राप्त नहीं हो सकता, वह 'गांधीजी के विरोधी' का पद प्राप्त करके एक मुहूर्त में ही उसे प्राप्त हो सकता है। करांची नगर के बाहर गांधी-विरोधी एकत्रित हो गये। उन्होंने शिष्टतापूर्वक गांधीजी के हाथ में काले फूलों का हार दिया। गांधीजीने उस काले हार को आदरपूर्वक ग्रहण किया। इसके बाद वे 'गांधीजी का क्षय', 'गांधीवाद का नाश हो' आदि नारे लगाते हुए या गांधीजी को धिक्कारते हुए करांची-कांग्रेस के मैदान में गांधी कुटीरतक गये। मगर इतने से भी उन्हें सन्तोष कैसे हो ? वहाँ भी खड़े-खड़े वे 'गांधी का क्षय' पुकारने लगे। इधर क्रोध से भरे लोग उन्हें घेरकर 'गांधीजी की जय' की आवाज़ लगाने लगे। क्षयवादी अपनी अवस्था कठिन करते जाते थे। गांधीजीने उनके पास सन्देश भेजा और पूछा कि आख़िर उनकी क्या इच्छा है। गांधीजी के साथ उनके कुछ मुखियों की बातचीत हुई। गांधीजीने कुछ तो उसी वक्त समझाया, और कुछ उसके बाद सभा में कहा।

इसके अनन्तर, कांग्रेस का अधिवेशन होने के पहले, लोगों की एक सभा हुई। गांधी-विरोधियों को उस सभा में बोलने के लिए आमन्त्रण दिया गया। वह कितनी बड़ी सभा थी ! कांग्रेस के लिए जो विशाल पण्डाल तैयार किया गया था, वह लोगों से ठसाठस भर गया। बड़े-बड़े दरवाज़ों के होते हुए भी भीड़ इतनी अधिक थी, कि उसमें बेचारा एक डाक्टर तो कुचल ही गया। इसके बाद सभा में क्या हुआ, यह तो ऊपर आ ही चुका है। वे सब विरोधी क्या हुए ? गांधीजी के उद्गार लोगोंने स्तब्ध होकर सुने। वह भाषण तो सुनने ही लायक था, पढ़ने ही लायक था। उस भाषण की एक बात तो चिरकाल-पर्यन्त श्रोताओं के कर्णकुहरों में मधुर एवं गम्भीर भाव से गूँजती रहेगी। वह यह, कि—'आप लोग गांधी का क्षय चाहते हैं ? गांधी के क्षय का अर्थ तो यह हुआ कि गांधी जिस सत्य और अहिंसा की बात कहा करता है उसका क्षय आप चाहते हैं। गांधी का शरीर तो क्षय को प्राप्त होगा ही; परन्तु गांधी जिसके लिए जी रहा है, उस सत्य या अहिंसा का क्षय आप लोग नहीं कर सकते। वह तो शाश्वत है, अमर है।

ऐसे मनुष्य को कौन आघात पहुँचा सकता है, कौन उसका अपमान कर सकता है ? उस को कौन धोखा दे सकता है या उसका कौन नाश कर सकता है ? गांधीजी को आघात पहुँचाने का अर्थ है खुद अपने को ही आघात पहुँचाना। गांधीवाद के ध्वंस की पुकार करने का अर्थ है अपने ही धर्म-नाश की पुकार करना। अखिल हिंदू-समाज गांधीजी के साथ एक महान् धर्मयज्ञ का अनुष्ठान कर रहा है। मुट्ठीभर लोगों की चिल्लाहट और नासमझी भी इस यज्ञ में विघ्नकारिणी और हिंदू-जाति के लिए अकल्याणकारिणी है। जो स्वार्थ के वश में होकर विरोध कर रहे हैं, और जो अधर्म को ही धर्म मान बैठे हैं, वे गांधी के शत्रु नहीं। गांधीजी उन्हें भी अपना कर उनको एक ही मन्त्र में दीक्षित करना चाहते हैं। इस की सिद्धि का सर्वप्रथम साधन है उनके प्रति सहिष्णु होना, उनके विरोध को सहन कर जाना। इसीलिए जो गांधीवाद के ध्वंस करने तथा गांधी के अपमान करने का भद्दा प्रयत्न कर रहे हैं उनके प्रति प्रेम रखकर उन्हें अपकृत्य-मार्ग से पीछे हटाने के लिए, साथ ही उन्हें गांधी-मार्ग पर चलने के अनुकूल बनाने के लिए, प्रत्येक सुधारक को प्रयत्न करना आवश्यक है। बुरे दिनों में ही धीरज धारण करने की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। जिनका गांधीजी के प्रति अनुराग है, उनके हृदय में अखण्ड सहन-शीलता होनी चाहिए। व्यक्ति के प्रति सद्भाव रखकर व्यक्तिकृत अपकार के साथ असहकार करना ही अधर्म दूर करने का, अस्पृश्यता-निवारण करने और गांधीवाद के प्रति सम्मान दिखाने का मार्ग है।

बंगाली हरिजन से] सतीशचन्द्र दासगुप्त

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ६ एप्रिल, १९३४

एक आदि-द्रविड़ की कठिनाई

एक सज्जन लिखते हैं—

"(१) क्या आप वास्तव में हरिजनों की उन्नति में रस लेते हैं या आप किसी ऐसी भीतरी मंशा से प्रेरित हो रहे हैं, जिससे हिन्दू-जनसंख्या की वृद्धि दिखलाई पड़े ?

(२) यदि आपका सचमुच यही विचार है कि हरिजन हिन्दुओं के ही अङ्ग हैं तो क्या आप हिन्दुओं-द्वारा पवित्र मानी जानेवाली मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोकों पर कृपा-कर प्रकाश डालेंगे :—

'यदि कोई पंचम ऐसा व्यापार करे जिसे प्रतिष्ठित व्यक्ति करते हैं और उससे वह धनाढ्य हो जाय तो उसकी सम्पत्ति छीनकर उसे देश से बाहर निकाल देना चाहिए।'

(मनुस्मृति १०-९६)

'जो व्यक्ति किसी भी शूद्र को शिक्षक का कार्य देगा वह उस शूद्र के साथ ही नरक में जायगा। यदि कोई शूद्र किसी ब्राह्मण को धार्मिक उपदेश देने का प्रयत्न करे, तो उसके मुख और कानों में गरम तेल डालकर सज़ा दी जानी चाहिए।'

(१४-४९)

'ज़ोर से चिल्लाकर यदि कोई शूद्र बात करे तो लोहे के गरम लाल सीखचों से उसे दाग़ दिया जाय। यदि कोई शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य के बराबर बैठे तो, उसे गर्म लाल लोहे से जला दिया जाय।'

(८-२७६; ८-२८१)

हिन्दुओं को यह आदेश है कि वे इस पुस्तक को पवित्र मानें और उसकी निर्धारित आज्ञाओं पर चलें। यदि आप इसे अपवित्र समझते हैं तो आप स्पष्ट ही ऐसा क्यों नहीं कह देते और उसके स्थान पर अपनी एक नई स्मृति 'गांधी-स्मृति' के नाम से क्यों नहीं निकाल देते ?

(३) आर्य-समाजी भी अस्पृश्यता को दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं और यह कार्य करने के लिए उनका एक अनोखा विधान 'शुद्धि-संस्कार' है, जिसके द्वारा व्यक्ति विशेष को वे अपने समाज में मिला लेते हैं। यदि अस्पृश्य वास्तव में हिन्दू ही हैं, तो इस विधान की आवश्यकता ही क्यों आन पड़ी ? क्या आप उनसे इस विषय में सहमत हैं ?"

पत्र-लेखक अपने को आदि-द्रविड़ कहते हैं, और इस-लिए मेरी मंशा पर सन्देह करने का उन्हें पूरा अधिकार है। उनके पहले प्रश्न का इसलिए सब से अच्छा उत्तर मैं यही दे सकता हूँ कि वे अपने अन्तिम निर्णय के लिए मेरी मृत्यु की प्रतीक्षा करें। हाँ, यदि इस बीच में वह मेरी बात स्वीकार करने को तैयार हों तो मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं हिन्दुओं की संख्या-वृद्धि को ज़रा भी महत्त्व नहीं देता। किसी भी धर्म के झूठे हिमायती केवल उसकी सेवा से ही वंचित नहीं रहते, बल्कि वे उसे बिल्कुल नष्ट भी कर सकते हैं। इसलिए हरिजन-आन्दोलन का कार्य करते समय मेरी मंशा केवल यही रही है कि मैं हिन्दूसमाज को अस्पृश्यता के शाप से विमुक्त और शुद्ध देख सकूँ। और यदि यह उद्देश केवल एक ही हिन्दू-द्वारा प्रगट किया जाता है तो भी मुझे पश्चात्ताप न होकर सच्ची प्रसन्नता होगी, कि वह उद्देश आख़िर मरा नहीं है।

दूसरा प्रश्न बहुत समझदारी का है। किन्तु यह प्रश्न उक्त सज्जन मुझसे न पूछते, यदि वह 'हरिजन' पत्र को निरन्तर पढ़ते होते और इस प्रकार शास्त्रों की की हुई मेरी परिभाषा से परिचित होते। मैं मनुस्मृति को शास्त्रों का एक अंश मानता हूँ। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं मनुस्मृति के छपे हुए प्रत्येक श्लोक को प्रामाणिक समझता हूँ। मुद्रित मनुस्मृति में इतनी परस्पर-विरोधी बातें हैं कि यदि उसका एक अंश स्वीकार किया जाय तो अन्य दूसरे अंश, जो उससे संगति नहीं रखते, अवश्य ही अस्वीकृत करने पड़ेंगे। मनुस्मृति के उच्च विचारों के कारण मैं उसे एक धार्मिक ग्रन्थ मानता हूँ। जिन श्लोकों को उक्त लेखकने उद्धृत किया है वे मनुस्मृति के मूल विषय के उद्देश्यों से बिल्कुल विरोध रखते हैं। लेखक को मालूम होना चाहिए कि मनुस्मृति की मूल प्रति इस समय किसी के पास नहीं है। सच तो यह है कि इस बात का कोई भी प्रमाण नहीं है कि मनु नामक ऋषि कभी हुए भी हैं। किसी-न-किसी तरह महान सत्सिद्धान्तों के रचयिताओं या प्रकाशकों को हिन्दूधर्म की प्रतिभाने कुछ घिस-सा डाला है। इसलिए सत्य-शोधकों के लिए तो मेरी यही सलाह है, कि जब वे शास्त्रों का अध्ययन करें तो उन्हें सत्य और अहिंसा के विपरीत जो भी वस्तु शास्त्र-ग्रन्थों में मिले, उसका वे परित्याग कर दें, क्योंकि सत्य एवं अहिंसा ही समस्त धर्म-मजहबों के आधार-स्तंभ हैं।

लेखक को तीसरा प्रश्न तो सीधा आर्य-समाजियों से ही पूछना चाहिए। यह मैं नई बात सुन रहा हूँ, कि आर्य-समाज में सम्मिलित करने के पहले हरिजनों का शुद्धि-संस्कार आर्य-समाजी आवश्यक समझते हैं। परन्तु ऐसा शुद्धि-संस्कार तो मैं जानता हूँ, जिसके द्वारा हरिजनों में शक्ति आ सकती है—और उनकी वह शुद्धि है गो-मांस एवं मुर्दार मांस न खाने तथा दारू-शराब न पीने की प्रतिज्ञा का ठीक-ठीक पालन। लेखक का यह कहना बिलकुल ठीक है, कि अगर एक अछूत सचमुच ही हिन्दू है, तो फिर उसके शुद्धि-संस्कार की कोई ज़रूरत ही नहीं। अगर किसी की शुद्धि की आवश्यकता है, तो वह उस सवर्ण हिन्दू की शुद्धि की है, जिसने कि अस्पृश्यता में विश्वास करके पाप किया है।

अँग्रेज़ी से]

मो० क० गांधी

कुछ संशोधन

हरिजन-सेवक-संघ के केंद्रीय कार्यालय से निम्नलिखित तीन संशोधन प्राप्त हुए हैं :—

"(१) पाँचवें नियम के दूसरे पैरे में निम्नलिखित वृद्धि की जा सकती है :—

इस इच्छा को पूरा करने के लिए केन्द्रीय कार्यालय के हिस्से में आये हुए प्रमुख नगरों से एकत्र किये धन का २५ फीसदी और ५० फीसदी केवल हरिजन-उद्धार के काम में ही खर्च किया जायगा। सेठ घनश्यामदास बिड़लाने जो २५०००) हाल ही में दान दिया है वह केन्द्रीय कार्यालय और संघ के प्रबन्ध और यात्रा आदि पर खर्च किया जायगा। प्रान्तीय संघ अब और आयन्दा प्रबन्ध और प्रचार-कार्य में जो व्यय करेंगे उसका एक नियत भाग अदा करने के लिए केन्द्रीय कार्यालय अलग चन्दा एकत्र करने का विशेष प्रयत्न करेगा।

(२) नवें नियम के स्थान पर निम्नलिखित नियम रखना चाहिए :—

प्रान्तों में गांधीजीके दौरा समाप्त होने के बाद ही साधारणतया रुपया एकत्र करना उतना सहज नहीं है, इसलिए प्रान्तीय मंत्री और ज़िला-मंत्रियों को कार्यालय के कर्मचारी मात्र न बने रहकर हरिजनोद्धार की योजनाओं का आवश्यक अंग बन जाना चाहिए। इस प्रकार प्रान्तीय कार्यकर्त्ताओं का वह व्यय, जो ज़िलों में योजनाओं के निरीक्षण-कार्य में होगा, ७५ फी सदी परिमाण में से पूरा किया जायगा और ज़िलों से वहाँ के बजट के परिमाण के अनुरूप लिया जायगा। यह नियम केवल मालभरतक, थैली-फण्ड से सम्बन्ध रखनेवाले नवीन आर्थिक सम्बन्ध के स्थापित होने के बाद से लागू होगा।

(३) दसवां नियम बढ़ाना चाहिए :—

प्रान्तों में दौरा समाप्त होने के दो मास के भीतर-भीतर प्रांतीय संघों को अपनी-अपनी हरिजनोद्धार-सम्बन्धी योजनाएँ पेश कर देनी चाहिए, अन्यथा उन्हें पुराने प्रबन्ध के मुताबिक जो सहायता मिलती रही है, वह बन्द कर दी जायगी। नवीन प्रबन्ध के अनुसार सहायता तभी मिलेगी, जब प्रांतीय संघ-द्वारा पेश की गई हरिजनोद्धार-सम्बन्धी योजना केन्द्रीय संघ-द्वारा पसन्द कर ली जायगी।"

सब को, और विशेषकर प्रांतीय संघों को, इन संशोधनों पर ध्यानपूर्वक विचार करके अपनी-अपनी टिप्पणियाँ प्रधान कार्यालय के पास शीघ्रातिशीघ्र भेज देनी चाहिएँ। यह दृष्टव्य बात है कि पाँचवें नियम के दूसरे पैरे में जो वृद्धि की गई है उसके द्वारा इस उद्देश की, कि हरिजनोद्धार के लिए प्राप्त हुई रक़में यथासम्भव केवल हरिजनोद्धार-कार्य में ही लगानी चाहिए, अधिक अच्छी तरह पूर्ति होती है। और यदि प्रांतीय-संघ हृदय के साथ सहयोग देंगे और यह समझ जायँगे कि अस्पृश्यता का शीघ्रातिशीघ्र निवारण करने का एकमात्र उपाय यही है, कि हरिजनों की सेवा मूक और स्वार्थरहित भाव से की जाय। इस प्रकार की सेवा से तीन उद्देश सिद्ध होते हैं। इस प्रकार की सेवा के लिए कार्यकर्त्ताओं में पवित्रता की आवश्यकता है, और सनातनियों पर इस पवित्रता का बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। जिन लोगों में भ्रान्त धार्मिक आस्थाएँ अब जमाकर पैठ गई है उन्हें कोई बौद्धिकतर्क नहीं समझा सकता। परन्तु सुधारक के चरित्र की पवित्रता और उसके सौजन्य के द्वारा यह निस्संदेह सम्भव है। इसके अलावा हरिजनों में स्वार्थरहित सेवा करने का यह फल होगा कि उनके सारे नहीं तो अधिकांश कुसंस्कार और बुरी टेवें दूर हो जायँगी और साथ ही उनकी उस हिंदूधर्म में आस्था जम जायगी जिसे वे अबतक अपने पतन का साधन समझते आ रहे हैं। इसके अतिरिक्त जो लोग हरिजनों की सेवा करेंगे उनका उदात्त चरित्र तो स्वयं ऐसी वस्तु है, जिसके द्वारा उन्हें आत्मानंद प्राप्त होता रहेगा।

दूसरे और तीसरे संशोधनों पर इसके अलावा किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है। इनकी ज़रूरत इसलिए पड़ी कि प्रान्तीय संघोंने रचनात्मक कार्य-सम्बन्धी अपनी-अपनी योजनाएँ भेजने में लापर्वाही से काम लिया था। मैं इस बात को अच्छी तरह से जानता हूँ—और बात यद्यपि विचित्र भी है, पर सत्य है—कि अच्छी-सी रचनात्मक योजना या वैसे ही अच्छे कार्यकर्त्ता तय्यार करना जितना कठिन है, चन्दा एकत्र करना उससे कहीं अधिक आसान है।

अँग्रेज़ी से] मो० क० गांधी

कालीकट की आदर्श हरिजन-सेवा

कालीकट के एक मित्रने लिखा है, कि उन्होंने तथा कुछ अन्य सज्जनोंने नित्य हरिजनों के दर्शन करने का निश्चय किया था—ठीक उसी तरह, जैसे कि धार्मिक हिंदू नित्य प्रात:काल गाय का दर्शन किया करते हैं। गाय को महज़ देखने से ही मनुष्य पर कोई पवित्र अथवा उच्च प्रभाव नहीं पड़ता; किंतु गो-दर्शन का अभिप्राय यह है, कि मनुष्य जब गाय को देखेगा, तो स्वभावतः वह मालूम कर लेगा, कि उसकी खिलाई-पिलाई और सार-सँभाल अच्छी तरह से होती है या नहीं, और अगर कुछ त्रुटि पाई जायगी, तो वह उसे तुरंत ठीक कर देगा। यही बात कालीकट के हरिजनों के विषय में भी हुई। हरिजनों के यहाँ नित्य जाने-आने से उन सज्जनों को मालूम हुआ, कि वहाँ की म्यूनिसिपैलिटी प्रत्येक मुलाज़िम हरिजन से एक रुपया मासिक किराया वसूल करती है। कहीं-कहीं तो एक ही कोठरी में दो-दो परिवारतक रहते हैं। और कोठरी भी कैसी—१० फुट लंबी और ८ फुट चौड़ी, सामने एक छोटा-सा ओसारा, और ३ फुट चौड़ा ज़रा-सा रसोई घर! ऐसी एक-एक कोठरी में दो से लेकर छै तक म्यूनिसिपैलिटी के मुलाज़िम रहते थे। इसका यह अर्थ हुआ, कि म्यूनिसिपैलिटी एक-एक कोठरी का दो रुपये से लेकर छै रुपये तक किराया वसूल करती थी। उन सज्जनोंने इस अनुचित किराये की शिकायत म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन से की। उसने कहा, कि, 'किया क्या जाय, कमेटी के पास और मकान ही नहीं और न इतना पैसा ही है, कि वह उनके लिए नई कोठरियाँ बनवा सके। हाँ, यह हो सकता है, कि आप लोग किसी सज्जन का मकान भाड़े पर ठीक कर सकें तो खुशी से मैं उन लोगों को वहाँ बसा दूँगा, और इस तरह वे इस भारी किराये से बच जायँगे।' बड़ी मुश्किल से भाड़े पर अपना मकान देने के लिए एक आदमी मिला। क़रीब १०

हरिजन-परिवार म्यूनिसिपैलिटी की कोठरियों से हटाकर उन नये मकान में बसा दिये गये। करीब १०० हरिजन विद्यार्थियों को किताबें मुफ्त दी गईं और पाठशालाओं में वे दाखिल कराये गये। कुछ लड़कों को, जिनके पास एक भी कपड़ा नहीं था, कपड़े दिये गये। २० ऐसे परिवारों के लिए नये झोंपड़े बनवा दिये गये, जिनके पुराने झोंपड़े रहने लायक नहीं थे। कुछ हरिजन मरीज तो अस्पताल भेजवा दिये गये और दूसरों का इलाज खानगी वैद्य-डाक्टरों से करवाया गया। करीब २० बेकार हरिजनों को कारखानों में काम दिला दिया गया।

उन सज्जनोंने हरिजनों की जो सेवा की है, उसका विवरण देने के बाद पत्र-लेखकने यह तजवीज पेश की है कि म्यूनिसि-पैलिटियों को, अपना कर्त्तव्य समझकर, अपने मुलाजिम हरिजनों के लिए अच्छे मकान बनवा देने चाहिएँ; और इस काम के लिए अगर उनके पास पैसा न हो, तो स्थानीय पैसेवाले आदमियों पर दबाव डालना चाहिए, कि वे हरिजनों के लिए मकान बनवा दें, और हर माह उन मकानों का उचित भाड़ा म्यूनिसिपैलिटी के द्वारा वसूल कर लिया करें। इस प्रकार जो पैसा वे मकान बनवाने में लगायेंगे, वह बड़ी अच्छी तरह से वसूल हो जायगा और हरिजनों को मनुष्यों के रहने लायक अच्छे मकान मिल जायँगे।

'अँग्रेज़ी'' से] वालजी गोविन्दजी देशाई

विनोबा-वाणी

[आचार्य विनोबाजी के एक भाषण से]

जो सब ओर से तुच्छ माना जाता है, जिसके न स्थान होता है न सम्मान, जिस की अवहेलना, जिसका तिरस्कार दुनिया करती है उसे भगवान् अपने हाथों लेता है। उसे वामन चाहिए, छोटे चाहिए, निरभिमानी बावले चाहिए। परन्तु अब आप बावले नहीं रहे। हम बड़े हैं, महाशय हैं। ईश्वर को यह नहीं चाहिए। जिन्हें गालियाँ मिल रही हैं, जो परित्यक्त हैं, ऐसे चुने हुए लोगों को लेकर भगवान् अपना काम करलेंगे। यदि हम चाहते हों, कि प्रभु का कार्य हमारे हाथों हो, तो—

करि मस्तक ठेंगणा। लागे संतांच्या चरणा॥

(यानी, "मस्तक नीचा करो, इतना नीचा कि वह संतों के चरणों पर जा लगे"।) यह हमें सीख लेना चाहिए। जो वर्षा हो रही है, उसे रोकने के बजाय उसका उपयोग करना चाहिए।

कई बार मेरे मन में आया है कि मैं गाँवों में घूमता फिरूँ। जेल से छूटते समय भी यही विचार था। परन्तु आज तो परिस्थिति ही भिन्न है। मुझे उसका भी दुख नहीं। जो स्थिति प्राप्त होती है, उसमें मेरे आनन्द का निवास होता है। मेरे पैरों को गति कब मिलेगी, कह नहीं सकता। एक बार गति मिली कि वह ठहरेगी ऐसा भी नहीं दीखता।

गाँवों में हमारे व्यक्ति घूमते रहने ही चाहिए। अस्पृश्यता धार्मिक हलचल है। वह कोने-कोने पहुँचनी चाहिए। गांधीजी देशभर में घूम लिये—इतना ही काफ़ी नहीं। हजारों उस काम को अपने कंधों पर ले लें। व्याख्यान नहीं, आहुति दीजिए।

गाँवों की जनता महादेव है। वह स्वयंभू महादेव है। वह गाँवों ही में रहेगा। यदि तुम इस महादेव के पूजक हो, तो तुम्हें उसके पास जाना चाहिए। तीस-तीस गाव ले लिये और लगातार घूमने की धूम मचा दी। भक्त से, जब भगवान् लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की एक हज़ार प्रदक्षिणा करने के लिए कहा जाता है तब उसमें भक्त को कुछ अनुचित नहीं मालूम होता। तब फिर जनता-रूप महादेव के पूजक में भी भक्त का वह उत्साह क्यों न होना चाहिए? देवता की एक प्रदक्षिणा करके भक्त एक बार देवता का दर्शन करता है और फिर दूसरी बार प्रदक्षिणा के लिए चल देता है। फिर दर्शन, फिर प्रदक्षिणा; यही उसका क्रम होता है। जनसेवकों को भी चौदह दिनों में चौदह गाव घूमना चाहिए। पन्द्रहवें दिन प्रधान केन्द्र में अपनी जानकारी देनी चाहिए। और फिर दक्ष होकर प्रदक्षिण-पथ में लगना चाहिए। भक्त जब प्रत्येक परिक्रमा में प्रभु-मूर्ति की ओर देखता है, तब उसके हृदय पर मूर्ति खिचती जाती है; हृदय पर जमती जाती है; उसका 'स्वरूप' ध्यान में आता जाता है। स्वरूप ध्यान में आते ही यह समझ में आता है, कि इस देवता की भक्ति का पथ क्या है; पूजा की सामग्री क्या है। उस समय यदि मैं भक्त होऊँ तो देवता से एकरूप हो जाता हूँ। मेरा हृदय देवता के हृदय से मिल जाता है। तभी देवता की कृपा होती है; उसका अनुग्रह होता है।

लोक-सेवा हमारी मूर्ति-पूजा है। ५।२५ गाँवों का संग्रह हमारा महा मन्दिर है। गाँवों में क्या-क्या है, उसकी हम फेहरिस्त बनालें; मन पर भी, कागज पर भी। फेहरिस्त हम जन-सेवकों को दे दें; वे देवता का स्वरूप समझलें। जानलें, वह दिगम्बर हो गया है, धूल लिपट रही है, सर से पानी बहता है, केवल बैल ही उसके पास सम्पत्ति रह गई है और जंगल का निवास। जन-सेवक जानलें कि देवता का स्वरूप क्या है, चेहरा कैसा है, भाव कौन-से हैं, उसकी रुचि और अरुचि की वस्तुएं क्या हैं और उसका नैवेद्य क्या हो गया है और उसपर कौन-से पुष्प चढ़ते हैं। परिचय हुए बिना पूजा न बनेगी। ऐसा न करने पर शिव पर तुलसी होगी; विष्णु पर बेल-पत्र! देव-पूजा में जल्दबाजी नहीं चलती। तुम्हें शीघ्रता हो, पर देवता को जल्दी नहीं पड़ी। वह शान्ति का अवतार है। उसपर इकट्ठा घड़ा उँडेलने से काम नहीं चलेगा; उसे तो बिन्दु-बिन्दु की चाह है। एकदम औंधाने की अपेक्षा वह तो सतत धार जारी रखने से ही प्रसन्न होता है।

अग्नि-संकट-निवारण

ऋषिकेश में २-१-३४ को हरिजनों की बीस झोंपड़ियाँ जलकर खाक हो गई थीं। स्थानीय हरिजन-सेवक-संघ की ओर से हरिजनों को काफ़ी सहायता पहुँचाई गई। महंत श्री परशुरामजी तथा लाला मंगलदत्तजी की विशेष सहायता से गृहविहीन हरिजनों के लिए चन्दा एकत्र किया गया। संयुक्त-प्रांतीय हरिजन सेवक संघने भी १००) दिये। फलतः नई झोंपड़ियाँ बनवा दी गईं और हरिजन-परिवारों को कंबल, धोतियाँ तथा खादी के थान दिये गये। आटा-दाल वग़ैरा भी दिया जाता रहा। चंदे में कुल २४५॥) प्राप्त हुए थे, जिसमें २३६।=) खर्च हो गये।

सेवानन्द

मंत्री, ह० से० सं०, ऋषिकेश

३० सितंबर, १९३३ तक का

हरिजन-सेवक-संघ का

आय-व्यय-पत्रक

	आय			व्यय				
संख्या	प्रान्तीय बोर्ड	सेंट्रल बोर्ड से सहायता दी गई	स्थानीय धन-संग्रह	प्रबंध-व्यय	प्रचार-कार्य	रचनात्मककार्य अर्थात् हरिजन उन्नति	रघुमल-दातव्य कोष से छात्र वृत्तियाँ दीगईं	विशेष विवरण
१	पंजाब	३४१८)	१२२९८)	३१६७)	५७५)	५८४१)	२४)	८ ज़िला-समितियों सहित
२	उड़ीसा	७४११)	४६८३)	४२२२)	१७१७)	५९४८)	९७)	९ " "
३	तामिल नाड	६८०४)	११९७६)	७८०८)	२०२४)	८२६४)	९३)	१२ " "
४	आसाम	१०७२)	१८६१)	१७०५)	२५९)	३२३)	×	७ " "
५	बिहार	५३४०)	६९५८)	६७४५)	१४४)	३९०९)	८४)	१३ " "
६	बंगाल	×	३४८००)	५५९१)	१८७७)	१६८४)	१५२१)	९ " "
७	कोचीन त्रावणकोर	१००२)	९३४)	१०१९)	२०२)	४५९)	×	८ " "
८	संयुक्त प्रांत	४२)	१५०९८)	४१९९)	२३३०)	२३५१)	×	१६ " "
९	कर्णाटक	५१५)	१७३९)	२४३)	१००)	१२२६)	१०)	४ " "
१०	निज़ाम राज्य	१००)	५७७)	२४२)	१५)	१०८)	×	
११	राजपूताना	४२९९)	४३२६)	१७१५)	१४७६)	४६५०)	११७)	३५ " "
१२	गुजरात	४)	२६०८४)	५३३०)	४२१०)	३५०४)	×	० " "
१३	सिंध	×	३८८०६)	३८६१)	१२२७)	५४३३)	×	५ " "
१४	बंबई	५९५)	४९२२५)	६१९९)	६०३१)	६०२७)	×	८ वार्डों सहित
१५	दक्षिणी कनाडा	३०१)	४३६)	२९३)	७०)	४३९)	×	×
१६	ग्वालियर	९५०)	१०९०)	८८५)	२८९)	५५१)	११)	×
१७	बरार	७५०)	१४७२)	७८०)	२७६)	८३२)	×	५ ज़िला समितियों सहित
१८	इंदौर	५०)	४४)	६०)	१८)	१६)	×	×
१९	मराठी मध्य प्रांत	२११५)	६१०७)	१२००)	३४६२)	१८०८)	३६)	तालुका कमेटियों के सहित
२०	मैसूर राज्य	१००४)	१६२५)	५८०)	८१८)	७४५)	×	४ ज़िला समितियों सहित
२१	मद्रास शहर	१८०७)	४२१६)	१७१६)	७६६)	३०५९)	×	×
२२	हिंदी मध्य प्रांत	६०६)	२४९)	३३८)	[illegible])	१५)	×	१ " "
२३	दिल्ली	×	४८७७)	१६४३)	२२२)	१३०६)	६०)	×
२४	आंध्र	७५८२)	१३७९४)	३३११)	४००५)	१०८५२)	×	१२ " "
२५	मलबार	१६६१)	११८३)	५४२)	३०३)	२००१)	३०)	×
२६	महाराष्ट्र	२५२२)	५२९८)	२९५३)	१७७६)	३४९३)	३०)	×
	जोड़	५१४९८)	२४९७७२)	६६४१७)	३४८७८)	७६७८४)	२११३)	
	सेंट्रल बोर्ड		१२७४०२)	१२३६८)	४१७७)	२४७४)		

विशेष—

सेण्ट्रलबोर्ड को बंगालने २००००), सिन्धने ५६६८) और बम्बईने २०९२०) दिये हैं।

हरिजन-सेवक-संघने प्रबन्ध आदि पर ३९ प्रतिशत, प्रचार-कार्य पर २० प्रतिशत और रचनात्मक कार्यों पर ४१ प्रतिशत खर्च किया है।

कर्णसिंह केन
अकाउण्टेण्ट
ह० से० सं०

प्रांतीय कार्य-विवरण

लाहौर

[दिसंबर, १९३३ से फरवरी, १९३४ तक]

शिक्षा—लड़कियों की शिक्षा के लिए विशेष प्रबंध किया गया। पिछले नौ महीने में संघ के द्वारा लड़कों और नवयुवकों में किये गये कार्यों ने, कन्या-पाठशालाएँ खोलने का उत्साह दिया। परिणामतः पूर्व समय तीन पाठशालाएँ, एक प्रौढ़ कन्याओं के

संपादक—वियोगी हरि
"आत्मवत् सर्वभूतेषु"
Reg. No. L. 3169.
वार्षिक मूल्य ३।।)
(पोस्टेज-सहित)
पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]
भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, १३ एप्रिल, १९३४. [संख्या ८

विषय-सूची

स्वागत-खर्च तथा थैलियाँ

अखिल भारतीय हरिजन-सेवक संघ के प्रधान मन्त्री श्री अमृतलाल ठक्करने प्रान्तीय संघों के नाम नीचे लिखे आशय की सूचना भेजी है :—

"महात्माजी भूकम्प-पीड़ितों की सेवा-सहायता का कार्य समाप्त कर चुकने के पश्चात् १० एप्रिल को आसाम पहुँच गये हैं। आसाम के दौरे के बाद वह दक्षिण बिहार और उड़ीसा का दौरा करेंगे। उसके पश्चात् वह कुछ समय बंगाल में व्यतीत करेंगे। फिर किसी प्रशान्त स्थान में एक सप्ताह विश्राम करने के अनंतर बहुत शीघ्र ही बम्बई, संयुक्त प्रान्त, पंजाब, राजपूताना, सिंध, गुजरात और महाराष्ट्र आदि प्रान्तों का दौरा आरम्भ कर देंगे और जुलाई के अन्ततक उनका समस्त भारत-भ्रमण समाप्त हो जायगा।

कई प्रान्तों से बहुत-से मित्रोंने पूछा है, कि महात्माजी की यात्रा और थैली की व्यवस्था किस प्रकार की जाय; वह सारा असाधारण व्यय, जैसे कार्यकर्ताओं का खर्च, हैंडबिलों की छपाई, भोजन-प्रबन्ध आदि का खर्च प्रतिदिन की सामान्य आय से नहीं डाला जा सकता। उसका इससे अलग ही हिसाब रहना चाहिए।

मध्यप्रान्त तथा मद्रास के प्रवास के अनुभव से नीचे लिखी व्यवस्था उचित समझी गई है :—

(१) महात्माजी के प्रवास में, जहाँतक हो सके, बहुत ही मितव्ययता से कार्य किया जाय। उदाहरणार्थ, यात्री-दल के भोजन के प्रबन्ध का भार किसी व्यक्ति विशेष पर डालना चाहिए। मोटर यदि आवश्यकता पड़े तो किसी ऐसे सज्जन से माँग लेनी चाहिए, जो पैट्रोल-खर्च भी खुद अपने ऊपर ले ले। अब रहा उत्सव तथा स्वयंसेवकों का खर्च, सो वह बहुत ही उचित मात्रा में करना चाहिए।

जो थैली हरिजन-प्रीत्यर्थ महात्माजी को दी जाय, वह ऐसी होनी चाहिए कि उसमें से कुछ काट-छाँट न की गई हो। खर्च का हिसाब, जो रसीदों-सहित हो, यात्री-दल के व्यवस्थापक को सौंप देना चाहिए। वह खर्च का पूरा-पूरा ब्योरा देखकर चुकता कर देंगे, यदि निम्नलिखित दो बातें पूरी तरह से ठीक पाई जायँगी—

(क) प्रचार-कार्य, भोजन-प्रबन्ध, स्वागत-व्यय तथा स्वयंसेवकों इत्यादि का खर्च थैली के समस्त धन के ५ प्रतिशत से अधिक न हो।

(ख) कोई खर्च थैली की रक़म से एकदम न काट लिया गया हो। खर्च के बिल रसीदों-सहित यात्रा-व्यवस्थापक के पास पहुँचते ही हिसाब चुकता कर दिया जायगा। इस प्रकार की व्यवस्था से हमारी रोज़ाना की आय के साधनों पर कोई असर न पड़ेगा।

मैं प्रार्थना करता हूँ, कि यह ज़रूरी सूचना सब जगह पहुँचा दी जाय, ताकि वहाँ उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार कार्य किया जा सके।

महान्तजी की प्रतिज्ञा-पूर्ति

नासिक के श्रीवैष्णव महान्त श्री सीतारामजी शास्त्री जब पिछली बार जेल गये थे, तब उन्होंने जेल से बाहर निकलकर श्रीरामनवमीतक १२ मंदिर हरिजनों के लिए खुलवा देने की प्रतिज्ञा की थी। भगवत्कृपा से शास्त्रीजी की वह प्रतिज्ञा पूरी हो गई है। प्रेम-भक्ति-प्रकाशिनी वैष्णवता का यह तकाज़ा है, कि वह भगवद्दर्शनाभिलाषी मनुष्यमात्र को हरि-सम्मुख ले जावे। हमें आशा है, कि हमारे अन्य वैष्णव संत-महात्मा हरिजनों के लिए हरि-मंदिरों के द्वार खोल देंगे। शास्त्रीजीने जो मंदिर हरिजनों के लिए खुलवाये हैं, उनकी सूची नीचे दी जाती है :—

१ श्रीशास्त्रीजी का अपने भगवान् का मन्दिर,	नासिक
२ श्रीबालाजी का मन्दिर	"
३ एक देवी का मन्दिर	"
४ श्रीहनुमानजी का मन्दिर,	वाउंडल जि० कुलाबा
५ श्रीहनुमानजी का मन्दिर,	सोनेगाँव
६ श्रीहनुमान्-मन्दिर,	तारापुर
७ श्रीपहिरनाथजी का मन्दिर,	हतनोली
८ श्रीहनुमान्-मन्दिर,	आमरोली
९ श्रीहनुमानजी का मन्दिर,	वयक
१० श्रीगणपति-मन्दिर,	"
११ श्रीहनुमान्-मन्दिर,	नवधरिकी
१२ श्रीहनुमान्-मन्दिर,	निगडोली
१३ श्रीगोविन्दजी का मन्दिर,	मकोडे
१४ श्रीराम-मन्दिर,	चौक
१५ म० श्रीभगवानदासजी का श्रीसत्यनारायण-मन्दिर,	पनवेल

संपादक—वियोगी हरि
"आत्मवत् सर्वभूतेषु"
Reg. No. L. 3169.
वार्षिक मूल्य ३।।)
(पोस्टेज-सहित)
पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का मूल्य -)
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]
भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, १३ एप्रिल, १९३४. [संख्या ८

विषय-सूची

स्वागत-ख़र्च तथा थैलियाँ

अखिल भारतीय हरिजन-सेवक-संघ के प्रधान मन्त्री श्री अमृतलाल ठक्करने प्रान्तीय संघों के नाम नीचे लिखे आशय की सूचना भेजी है :—

"महात्माजी भूकम्प-पीड़ितों की सेवा-सहायता का कार्य समाप्त कर चुकने के पश्चात् १० एप्रिल को आसाम पहुँच गये हैं। आसाम के दौरे के बाद वह दक्षिण बिहार और उड़ीसा का दौरा करेंगे। उसके पश्चात् वह कुछ समय बंगाल में व्यतीत करेंगे। फिर किसी प्रशान्त स्थान में एक सप्ताह विश्राम करने के अनंतर बहुत शीघ्र ही बम्बई, संयुक्त प्रान्त, पंजाब, राजपूताना, सिंध, गुजरात और महाराष्ट्र आदि प्रान्तों का दौरा आरम्भ कर देंगे और जुलाई के अन्ततक उनका समस्त भारत-भ्रमण समाप्त हो जायगा।

कई प्रान्तों से बहुत-से मित्रोंने पूछा है, कि महात्माजी की यात्रा और थैली की व्यवस्था किस प्रकार की जाय; वह सारा असाधारण व्यय, जैसे कार्यकर्ताओं का ख़र्च, हैंडबिलों की छपाई, भोजन-प्रबन्ध आदि का ख़र्च प्रतिदिन की सामान्य आय में नहीं डाला जा सकता। उसका इससे अलग ही हिसाब रहना चाहिए।

मध्यप्रान्त तथा मद्रास के प्रवास के अनुभव से नीचे लिखी व्यवस्था उचित समझी गई है :—

(१) महात्माजी के प्रवास में, जहाँतक हो सके, बहुत ही मितव्ययता से कार्य किया जाय। उदाहरणार्थ, यात्री-दल के भोजन के प्रबन्ध का भार किसी व्यक्ति विशेष पर डालना चाहिए। मोटर यदि आवश्यकता पड़े तो किसी ऐसे सज्जन से माँग लेनी चाहिए, जो पैट्रोल-ख़र्च भी खुद अपने ऊपर लेले। अब रहा उत्सव तथा स्वयंसेवकों का ख़र्च, सो वह बहुत ही उचित मात्रा में करना चाहिए।

जो थैली हरिजन-सेवार्थ महात्माजी को दी जाय, वह ऐसी होनी चाहिए कि उसमें से कुछ काट-छाँट न की गई हो। ख़र्च का हिसाब, जो रसीदों-सहित हो, यात्री-दल के व्यवस्थापक को सौंप देना चाहिए। वह ख़र्च का पूरा-पूरा ब्योरा देखकर चुकता कर देंगे, यदि निम्नलिखित दो बातें पूरी तरह से ठीक पाई जायँगी—

(क) प्रचार-कार्य, भोजन-प्रबन्ध, स्वागत-व्यय तथा स्वयंसेवकों इत्यादि का ख़र्च थैली के समस्त धन के ५ प्रतिशत से अधिक न हो।

(ख) कोई ख़र्च थैली की रक़म से एकदम न काट लिया गया हो। ख़र्च के बिल रसीदों-सहित यात्रा-व्यवस्थापक के पास पहुँचते ही हिसाब चुकता कर दिया जायगा। इस प्रकार की व्यवस्था से हमारी रोज़ाना की आय के साधनों पर कोई असर न पड़ेगा।

मैं प्रार्थना करता हूँ, कि यह ज़रूरी सूचना सब जगह पहुँचा दी जाय, ताकि वहाँ उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार कार्य किया जा सके।

महान्तजी की प्रतिज्ञा-पूर्ति

नासिक के श्रीवैष्णव महान्त श्री सीतारामजी शास्त्री जब पिछली बार जेल गये थे, तब उन्होंने जेल से बाहर निकलकर श्रीरामनवमीतक १२ मंदिर हरिजनों के लिए खुलवा देने की प्रतिज्ञा की थी। भगवत्कृपा से शास्त्रीजी की वह प्रतिज्ञा पूरी हो गई है। प्रेम-भक्ति-प्रकाशिनी वैष्णवता का यह तकाज़ा है, कि वह भगवद्दर्शनाभिलाषी मनुष्यमात्र को हरि-सम्मुख ले आवे। हमें आशा है, कि हमारे अन्य वैष्णव संत-महंत हरिजनों के लिए हरि-मंदिरों के द्वार खोल देंगे। शास्त्रीजीने जो मंदिर हरिजनों के लिए खुलवाये हैं, उनकी सूची नीचे दी जाती है :—

१ श्रीशास्त्रीजी का अपने भगवान् का मन्दिर,	नासिक
२ श्रीबालाजी का मन्दिर	„
३ एक देवी का मन्दिर	„
४ श्रीहनुमान्‌जी का मन्दिर,	वार्डवल जि० कुलाबा
५ श्रीहनुमान्‌जी का मन्दिर,	ओलेगाँव
६ श्रीहनुमान्-मन्दिर,	तारापुर
७ श्रीबहिरनाथजी का मन्दिर,	इसगाँवी
८ श्रीहनुमान्-मन्दिर,	आमरोटी
९ श्रीहनुमान्‌जी का मन्दिर,	[illegible]
१० श्रीगणपति-मन्दिर,	„
११ श्रीहनुमान्-मन्दिर,	नवगाँवली
१२ श्रीहनुमान्-मन्दिर,	निमगोली
१३ श्रीगोविन्दजी का मन्दिर,	[illegible]
१४ श्रीराम-मन्दिर,	चौक
१५ म० श्रीभगवान्‌दासजी का श्रीसत्यनारायण-मन्दिर,	[illegible]

शंखध्वनि

एक दिन गोसाईं तुलसीदास चोरों की एक मंडली के हाथ में पड़ गये। तुलसीदासजी बाहर से काशी नगरी में जा रहे थे। उस समय रात हो गई थी। उन दिनों काशी में चोरों का भारी उपद्रव रहा करता था। रात को तुलसीदासजी जब नगरी में प्रवेश कर रहे थे, चोरों की एक मंडली भी अपने काम से वहीं जा रही थी। उन्हें देखकर चोर उनका रास्ता रोककर उनसे पूछने लगे—'कहाँ जाना है?' तुलसीदासजीने कहा—'जहाँ तुम जाते हो, मैं भी वहीं जाता हूँ।' तुलसीदासजीने तो शहर में जाने की बात कही थी, पर चोरों-ने समझा कि यह चोरी करने के लिए जाने की बात कह रहा है। उन्होंने एक प्रकार से आग्रह करके तुलसीदासजी को अपने साथ ले लिया। तुलसीदासजीने कोई विरोध नहीं किया और उन लोगों के साथ वे चलने लगे। चोर तो एक गृहस्थ के घर में सेंध लगाने लगे और तुलसीदास से कहा, कि तुम यहीं खड़े-खड़े पहरा देते रहो, जब कोई संकट दिखाई दे, तो सावधान कर देना। दीवार में सेंध लगा ली और उसमें वे सब घरके भीतर घुसनेवाले ही थे कि कहीं से शंख की आवाज़ आई। वे रुक गये। फिर विचार करके, दूसरे एक घर में सेंध लगाकर घुसने लगे, कि उसी क्षण शंखध्वनि सुनाई दी। फिर सब लोग वहीं रुक गये। यह कौन शंख फूक रहा है? एक चोरने देख लिया था। उसने तुलसीदासजी को पकड़ लिया। तुलसीदासजी ने कहा—'हाँ, मैंने ही शंख बजाया था।' सरल विश्वास के साथ उस संतने चोरों से कहा, कि 'तुम्हींने तो मुझसे संकट आने के समय सावधान कर देने के लिए कहा था। तुम जब घर में सेंध लगाकर घुसने लगे, तब मैंने देखा कि भगवान् रामचन्द्र क्रोधित हो रहे हैं और तुम्हें दंड देने के लिए तैयार खड़े हैं। इससे बड़ा संकट तुम्हारे लिए और क्या हो सकता था? इसलिए उसी समय मैंने तुम्हें सचेत कर देने के लिए शंख फूक दिया।' तुलसीदासजी का उन्होंने नाम सुना था। अंधेरे में वे लोग इस सन्त को पहचान नहीं सके थे। अब उन्होंने अच्छी तरह से देखकर और उनकी बात सुनकर समझ लिया, कि उनका यह साथी ही सन्त तुलसीदास है। वे रोने लगे और उनके चरणों पर गिर पड़े। तुलसीदासजीने मुस्कराकर उन्हें क्षमा कर दिया। उनका जीवन बदल गया। चोर से वे साधु बन गये।

ईश्वर अपनी सन्तानों को अपनी ओर खींच लेने के लिए तुलसीदास, रामकृष्ण, तुकाराम-जैसे महापुरुषों को भेज दिया करता है। ये साधु-संत स्वयं कष्ट सहकर, दुःखाग्नि में जलकर दूसरों को बचाते हैं और इस प्रकार आत्म-शान्ति प्राप्त करते हैं। युग-युग से प्रत्येक समाज में यह लीला चली आ रही है। चोरोंने जिस तरह तुलसीदासजी को साथी के रूप में अपने साथ कर लिया था, उसी तरह समाज भी तुलसीदास आदि साधु-सन्तों को अपने साथ ले लेता है। अन्तर इतना ही है, कि उन चोरों के समान नम्रता सदैव समाज के पास नहीं होती है। शंख की चेतावनी की आवाज़ से, साधुओं के वचनों से, लोगों में चेतना नहीं आती, उलटे वे साधुओं के ही न्यायाधीश बन बैठते हैं, उन्हें अपशब्द कहते हैं, दण्ड देते हैं और बेमौत मार डालते हैं। किन्तु इससे भी ईश्वर की करुणा का अन्त नहीं होता। वह बारबार तुलसीदास, रामकृष्ण, ईसा, मुहम्मद, बुद्ध और गांधी को भेजता रहता है। ये सब शंख फूक-फूककर मोहान्ध लोगों को सचेत करते और स्वयं कष्ट सहते रहते हैं।

तुलसीदासजीने प्रेममयी दृष्टि से देख लिया था, कि चोरों के सिर पर भारी विपत्ति झूम रही है, ये लोग पाप करते आ रहे हैं और आज फिर एक नया पाप करने जा रहे हैं। तब वे शंख न फूकते तो करते क्या? दिव्य दृष्टाओं की यह दृष्टि, यह अनुभूति सामान्य लोगों की दृष्टि से भिन्न होती है। गांधीजी हमारे ही समान एक मनुष्य हैं, हमारे साथ ही वह आहार-विहार करते हैं—केवल उनकी दृष्टि अन्य प्रकार की है। जहाँ साधारण लोग एक क्षण भी राह न देखकर शीघ्र-से-शीघ्र पीछे हट जाते हैं, वहाँ गांधीजी धीरज के साथ एक-एक डग रखकर आगे जाने या बढ़ने के लिए सत्यभाव से सहस्रों वर्ष पर्यन्त प्रयत्न करने-कराने को तैयार रहते हैं। जहाँ गांधीजी देखते हैं, कि मनुष्य के जीवन में सब से अधिक कीमती वस्तु, समाज के जीवन का जीवन जो धर्म है, उसे लोग खो बैठे हैं, वहाँ वह शंख बजा बजाकर सब को सावधान कर देते हैं, कि अधर्म का त्याग करो, नहीं तो सामने मृत्यु उपस्थित है। हिन्दुओं को लक्ष्य करके अस्पृश्यतारूपी महापाप का परित्याग करने के लिए वह बारबार कह रहे हैं और विनती कर रहे हैं। उन्होंने अपने प्राण बाज़ी पर लगा रखे हैं—या तो समाज अस्पृश्यता का त्याग करेगा या वह स्वयं अपने जीवन की बलि दे देंगे। गांधीजी जिस दृष्टि से धर्म के नाश का जो दृश्य सामने देख रहे हैं, उस दृष्टि से उसे समाज नहीं देख सकता। लोग गांधीजी की बात सुनते हैं, उनकी आकुलता समझते हैं, किन्तु वे तो परकटे पंछियों की तरह बेहाल गिरे पड़े हैं, उनमें उड़ने की शक्ति नहीं है। गांधीजीने देख लिया है, कि यह सारी शक्तिहीनता केवल मन की है। वर्तमान समाज में शक्ति तो बहुत है, आवश्यकता केवल इच्छा करने की है। इस शक्ति को जाग्रत करने के लिए ही वह प्रयत्न कर रहे हैं।

शंख बज रहा है, और बराबर बज रहा है। उसकी फूक चारों दिशाओं में गूँज रही है। समाज का जो विराट् अंग इतने दिनों अचेतन होकर पड़ा था, उसकी ओर समाज की कुछ दृष्टि पड़ी है—कहीं-कहीं से जवाब भी मिला है। जो तिरस्कृत होकर अपने भाग्य को दोष देते थे, वे आज अपने आपको ही अपना भाग्य-विधाता समझकर अपने पैरोंपर खड़े होने का प्रयत्न कर रहे हैं।

बंगाल प्रान्त के दो करोड़ हिन्दुओं में से एक करोड़ मनुष्यों को अस्पृश्य बनाये रखकर हिन्दू-समाज जो पापाचरण कर रहा है, उसके परिणाम से ही बंगाली हिन्दू हीन बनते जा रहे हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। इस समाज को अगर खड़ा होना है, तो उसे सच्ची उच्चवृत्ति ग्रहण करनी होगी। परन्तु आज तो सामाजिक जीवन और मिथ्या आचरण में अन्तर नहीं रहा है। आज तो समाजने यह मान लिया है, कि असत्य ही सब से बड़ा आधार है—"सत्य का आश्रय लेंगे, तो अनेक दुःख सहने पड़ेंगे, किन्तु असत्य के आश्रय में सुख मिलेगा; क्योंकि असत्य की शक्ति बहुत बड़ी है!" समाज इस प्रकार विचार कर रहा है, और यह भूल गया है कि जो मिथ्या है

वह वास्तविक नहीं, वह 'असत्' है । उस असत् पर आधार रखना तो शून्य के ऊपर आधार रखने से भी बुरा है । ऐसे समय में आज गांधीजी धर्म का शंख फूंक रहे हैं । तुम भले ही काली झंडियों से उनका अपमान करो, उन्हें बुरा कहो, गालियाँ दो, लेकिन वह तो अविचलित गति से, परम प्रेम की उत्कटता से सब के कल्याण के लिए कर्म करते ही जायँगे । वह समझ गये हैं, कि धर्महीनता की जड़ में जो ऊँच-नीच भाव मौजूद है, वह अस्पृश्यता का अवलंबन करके समाज का नाश कर रहा है । अस्पृश्यता का पाप दूर होने से ही मनुष्य-मनुष्य के बीच में धार्मिक सम्बन्ध स्थापित होगा ।

गांधीजी की इस शंखध्वनि से भारतवर्ष जाग्रत बने, भारतवर्ष में धर्म की जागृति हो ।

बंगाली हरिजन से] सतीशचन्द्र दासगुप्त

कुछ हरिजन नेताओं की राय

आंध्र प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ के मंत्री श्रीयुक्त एस० वापीनीडू लिखते हैं :—

हमारे संघने गत नवम्बर में विभिन्न ज़िलों के तमाम प्रसिद्ध हरिजन-नेताओं एवं सेवकों के नाम एक गश्ती चिट्ठी भेजी थी, जिसमें हरिजन-उन्नति-कार्य के सम्बन्ध में उनकी राय माँगी गई थी । सर्वश्री एस० देवेंद्रुडु, जी० वैंकन्ना, एम० गुरुलु, डी० सदानन्दराव, एस० वैंकय्या, के० षण्मुखम्, पी० दास जैन हरिजन-नेताओंने संघ की प्रार्थना पर ध्यान देकर जो सम्मतियाँ भेजी हैं, उनका सारांश नीचे दिया जाता है :—

१—(क)—शहरों और गाँवों में सदा सतर्कता से देखते रहना चाहिए, कि हरिजनों को जो सुविधाएँ या रियायतें मिली हुई हैं, वे मंसूख तो नहीं हुई हैं या किसी तरह की उनमें कोई कमी तो नहीं की जा रही है ।

(ख)—बराबर इस बात का पता लगाते रहना चाहिए, कि हर गाँव के हरिजनों को क्या-क्या ख़ास असुविधाएँ हैं । उन असुविधाओं को दूर करने या हरिजनों की अवस्था सुधारने के सम्बन्ध में गाँववालों को समझाते रहना चाहिए ।

(ग)—ग्रामवासी हरिजनों की आर्थिक तथा सामाजिक अवस्था के सम्बन्ध के ठीक-ठीक आँकड़े एकत्र किये जायँ, जिसके अनुसार वहाँ वास्तविक और आवश्यक कार्य करने का सही-सही ख़ाका खींचा जा सके ।

(घ)—शहरों की अपेक्षा गाँवों में अस्पृश्यता-निवारण के प्रचार की अत्यधिक आवश्यकता है ।

(ङ)—सुयोग्य सवर्ण विद्वान् और पंडित एवं प्रतिभावान् हरिजन कथाकार प्रचार-कार्य में लगाये जायँ । बहिनों की भी प्रचार-कार्य में आवश्यकता है ।

२—(क)—ग्राम-संघटन-केन्द्रों के समान जहाँ-तहाँ हरिजन-कार्य के केन्द्र स्थापित किये जायँ, जिनके द्वारा हरिजन-बस्तियों में शिक्षा, आरोग्यता तथा आर्थिक सुधार का काम किया जा सकता है । आरोग्यता-सम्बन्धी नियमों के अनुसार मकान एवं बस्तियाँ बनाने के लिए हरिजन प्रोत्साहित किये जायँ और उन्हें सहायता भी दी जाय ।

(ख)—गाँवों का सुधार-कार्य देखने और उसमें सहयोग देने के लिए ताल्लुकाओं में कार्य-केन्द्र स्थापित किये जायँ ।

(ग)—हरएक गाँव में एक अस्पृश्यता-निवारण-समिति होनी चाहिए ।

३—इस बात का काफ़ी प्रयत्न होना चाहिए, कि सवर्ण हिन्दुओं के यहाँ तथा सार्वजनिक संस्थाओं में हरिजनों को काम दिलाया जाय, ताकि अन्य शूद्र जातियों के साथ जैसा बरताव किया जाता है, उनके साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाय । हाट-बाज़ार और मेले-ठेले में व्यापार करने का हरिजनों को भी दूसरे लोगों की ही तरह अवसर दिये जायँ ।

४—ईसाई मिशनरियों की संस्थाओं के समान पाठशालाएँ, प्रार्थना-मन्दिर, अस्पताल, अनाथालय और अन्य संस्थाएँ स्थापित की जायँ । प्रचार-कार्य भी उसी ढंग का किया जाय ।

५—हरिजनों की अशिक्षा और पिछड़ेपन का वास्तविक कारण चूँकि उनकी आर्थिक असमर्थता है, इसलिए उनकी माली हालत सुधारने पर हमेशा ध्यान दिया जाय ।

६—(क)—हरिजन मज़दूरों को मज़दूरी में जो सड़ा-गला अनाज वग़ैरा दिया जाता है, वह बन्द कराके उसके बजाय उन्हें अच्छी काफ़ी मज़दूरी रोकड़ में दिलाने का प्रयत्न होना चाहिए ।

(ख)—सहकारी आंदोलन से काफ़ी लाभ उठाना चाहिए । सहकारी समितियाँ जगह जगह खोली जायँ । ख़रीद-फ़रोख़्त की, सहकारी तरीक़े पर, समितियाँ स्थापित कराई जायँ, जिनसे साहूकारों की बेजा लूटखसोट से हरिजन बच सकें । खाने-पीने की अच्छी चीज़ें उचित दाम पर उन्हें दी जायँ । पैदावारी का क्रय-विक्रय ठीक-ठीक स्थिर कर दिया जाय । घरेलू काम-धंधों को प्रोत्साहन दिया जाय, जैसे कातना, बुनना, लुहार और बढ़ई का काम, सीना पिरोना, रस्सी बटना, जूता बनाना आदि हरिजनों को सिखाया जाय । सहकारी समितियों को मकान बनवाने, दवा-दारू कराने आदि का भी काम अपने हाथ में ले लेना चाहिए ।

(ग)—हरिजन-पंचायतें हर गाँव में स्थापित की जायँ, जिनका काम हरिजन-उद्धार कार्य का देखना और आपसी लड़ाई-झगड़ों का निबटाना हो । म्युनिसिपैलिटियों, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों और ताल्लुका-बोर्डों में हरिजन चुने जायँ और यह प्रयत्न किया जाय कि वे ऐसी तमाम संस्थाओं के अध्यक्ष बनाये जा सकें ।

ग्राहकों से

जिन ग्राहकों का चंदा समाप्त हो जाता है, उन्हें दो सप्ताह पहले फिर से वार्षिक मूल्य भेजने की सूचना दे दी जाती है । ग्राहकों से प्रार्थना है, कि वे सूचना पाते ही कृपाकर हरिजन-सेवक का वार्षिक मूल्य ३॥) भेज दिया करें ।

पते बदलवाने के लिए प्रायः बिना ग्राहक-नंबर के पत्र आया करते हैं, जिससे बड़ी असुविधा होती है । अतः हमारी प्रार्थना है कि वे पत्र इत्यादि अपना ग्राहक-नंबर अवश्य ही लिख दिया करें ।

मैनेजर

हरिजन-सेवक, दिल्ली

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १३ एप्रिल, १९३४

खोई हुई जंजीर

एक खोई हुई जंजीर का किस तरह पता चला, अन्त में एक हरिजन की ईमानदारी की बदौलत वह किस प्रकार हरिजन-कार्य में ही आगई, इस सब का नीचे लिखा विवरण पाठकों को रुचिकर होगा। पल्लाडम (तामिल-नाड) के श्रीयुक्त आर० एम० कुमारस्वामी लिखते हैं:—

"पूज्य महात्माजी,

अभी हाल में जब आप तिरुपुर से कोयम्बतूर जा रहे थे, तब रास्ते में पल्लाडम में आपको ४५०) की एक थैली दी गई थी। वहाँ मेरी ४ वर्ष की भांजी आपको अपनी सोने की जंजीर देना चाहती थी। मगर मेरी चाची की इच्छा नहीं थी, कि वह बिटिया अपनी जंजीर आपको उतार दे। इस-लिए उसने उसे लेकर अपने पास रख लिया। जब आप पल्लाडम पधारे, तब न जाने कैसे उस भीड़ में मेरी चाची के पास से जंजीर खो गई। मैंने उससे कहा, कि बेचारी बिटिया की इच्छा में विघ्न डालने का ही यह नतीजा है।

कहीं दो सप्ताह के बाद, हम लोगों को उस जंजीर के बारे में पता चला। दसेक साल के एक हरिजन लड़के को भाग्य से वह जंजीर पड़ी मिल गई थी। वह वहीं पास के एक गाँव का रहनेवाला था। १५ दिन बाद, जब हम उस लड़के के पिता के पास गये—जंजीर उसी के पास थी—तो पहले तो उसने कहा, कि मैं तुम्हारी जंजीर-वंजीर के बारे में कुछ नहीं जानता। उस बेचारे को यह डर था, कि कहीं वह धर न लिया जाय। जब मैंने आपके प्रवास का उद्देश उसे बताया और यह भी कहा, कि भाई, तुम्हारे लड़के को रास्ते में जो पड़ी हुई चीज़ मिली, उसे अपने पास रख लेने में तुमने कोई अपराध नहीं किया, तब कहीं उसे हमारा विश्वास आया और खुशी से उसने वह जंजीर हमें लौटा दी। मैंने उसे बतौर इनाम के २५) दिये। उसने कृतज्ञतापूर्वक रुपये ले लिये और दारूखोरी की अपनी बुरी लत छोड़ देने का भी मुझे वचन दिया। यहाँ के हरिजनों में वह एक सच्चा और भरोसे का आदमी समझा जाता है।

अब मेरे तमाम घरवाले बिटिया की इच्छा के अनुसार यह जंजीर आपके पास भेज देना चाहते हैं। मैं यह भी चाहता हूँ, कि कृपाकर आप इस जंजीर से जो रक़म आवे वह हमारे पल्लाडम के हरिजन-कार्य के लिए अलग रख दी जाय। मैं ख़याल करता हूँ, कि इधर के हरिजन-उद्धार-कार्य का यह एक अच्छा-सा शुभारम्भ होगा।"

पत्र-लेखक को मैंने यह विश्वास दिला दिया है, कि उनकी इच्छा के अनुसार ही जंजीर की बिक्री से प्राप्त रक़म पल्लाडम के हरिजन-कार्य के लिए अलग रख दी जायगी। पर उनका यह विचार वास्तव में ग़लत है, कि खोई हुई संपत्ति पर उसे पानेवाले का अधिकार होता है। अगर मालिक का पता न लगे, तो वह संपत्ति राज्य की हो जाती है। मालिक को उसकी जंजीर लौटा देने के लिए मैं उस हरिजन को धन्यवाद देता हूँ। उस छोटी-सी बच्ची को उसके निश्चय पर तथा उसके घरवालों को भी, आख़िरकार उसकी इच्छा पूरी कर देने के लिए, धन्यवाद देता हूँ। फिर भी वह बिटिया यह न जानती हो तो जानले, कि उसकी अपनी उम्र की वही सब से पहली लड़की नहीं है, जिसने हरिजन-कार्य के लिए अपनी प्यारी जंजीर मुझे दी हो।

अँग्रेज़ी से] मो० क० गांधी

आप कैसी प्रार्थना करते हैं ?

ईश्वर के अनुग्रह से विभिन्न धर्मावलंबी मेरे अनेक मित्र हैं। उनमें से मेरे कुछ मित्र हरिजन-आंदोलन में मेरी सहायता करने को उत्सुक हैं। यह प्रश्न मूर्त स्वरूप धारण कर रहा है, और यह आवश्यक है, कि इसका कोई निश्चित उत्तर दिया जाय। मेरी अपनी स्थिति तो बहुत स्पष्ट और निश्चित है। प्रचंड आत्म सुधार की इस शुद्ध प्रवृत्ति में मुझे सारे संसार के सहयोग की आवश्यकता है। इसी से मैं चाहता हूँ, कि समस्त जगत् इस प्रवृत्ति के अर्थ प्रार्थना करे। किन्तु कुछ अहिंदू मित्र अपनी प्रार्थना कार्यरूप में परिणत करना चाहते हैं, और वह भी जहाँ-तक हो, मेरे साथ सहयोग करके। मैं तो अधिक-से-अधिक सान्निध्य के रूप में से उनका सहयोग चाहूँगा। पर उसमें एक मर्यादा है। मान लीजिए, कि किसी ईसाई या मुसल्मान मित्र अथवा संस्था को मैं एकाध हरिजन बालक सौंप दूं, तो पीछे वे क्या करेंगे? क्या उसका पालन-पोषण वे हिंदू-बालक की तरह करेंगे अथवा उसे अपने धर्म में मिला लेंगे? मेरे लिए तो संसार के समस्त मुख्य धर्म समान हैं, क्योंकि वे सभी सच्चे हैं। मनुष्य जाति की आध्यात्मिक उन्नति में जो कमी अनुभव में आती है उसे ये सब धर्म-मज़हब पूरी करते हैं। इसलिए मुझे सौंपे हुए मुसलमान, पारसी और ईसाई बालकों का, उन्हीं के अपने-अपने धर्मानुसार पालन करते हुए, मुझे कभी कोई कठिनाई नहीं हुई। उनके विशिष्ट धर्मशास्त्रों के अनुसार उन्हें विशेष पूजा-पद्धति सिखलाने को उनके मां-बापने कहा, इसलिए उनके धर्म का कुछ साहित्य भी मुझे देखना पड़ा। किसी मनुष्य का अभिप्राय जानना हो, तो शायद सरल-से-सरल मार्ग यह है, कि उसकी प्रार्थना का पता लगाया जाय। नीचे प्रार्थना के मैं दो प्रकार देता हूँ:—

१

हे प्रभो! तू अपने सिरजे हुए सब लोगों को सद्बुद्धि दे, जिसके द्वारा प्रत्येक मनुष्य अपने प्रकाश के अनुसार तेरी उपासना करे, और अपने धर्ममें रहकर विकास को प्राप्त हो।

२

हे प्रभो! तू अपने सिरजे हुए सब लोगों को सद्बुद्धि दे, जिसके द्वारा प्रत्येक मनुष्य उसी के अनुसार मुझे पूजे और तेरा अनुसरण करे, जिसके अनुसार पूजने और अनुसरण करने का मैं प्रयत्न करता हूँ।

यह स्पष्ट है, कि प्रार्थना का पहला प्रकार ऐसा है, जिसे सभी कह सकते हैं। वह सर्वग्राही है। इसलिए इस प्रकार की

प्रार्थना जो व्यक्ति या संस्था स्वीकार करेगी, वह हिंदू बालक का हिंदूरूप में, मुसलमान-बालक का मुसलमान-रूप में, ईसाई बालक का ईसाई-रूपमें अंतःकरणपूर्वक पालन-पोषण कर सकेगी। परन्तु प्रार्थना के दूसरे पंथ पर चलनेवाला व्यक्ति अंतःकरणपूर्वक तो केवल अपने संप्रदायवालों को ही ले सकता है—दूसरे संप्रदायवालों को वह अपनी स्पष्ट इच्छा प्रगट करके, अपने धर्म में धर्मान्तरित किये बिना, नहीं ले सकता।

जो मित्र इन पंक्तियों को पढ़ें और लिखने का कष्ट उठावें, क्या वे मेरी जानकारी के लिए मुझे लिख भेजेंगे, कि वे दो में से किस प्रार्थना को मानते और प्रतिदिन करते हैं?

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

यह हालत है!

श्रीयुक्त परीक्षितलाल मजुमदार लिखते हैं:—

"मैंने सुना था, कि बेकारी के कारण या सच पूछिए तो अस्पृश्यता की वजह से, जिसने उद्योग-धंधे के द्वार बन्द कर रखे हैं, हरिजनों को ढोरों के अनपचे गोबर में से अनाज के दाने बीन-बीनकर पेट पालना पड़ता है। अभी हाल में, गुजरात में खुद अपनी आँखों यह घृणित दृश्य देखकर मुझे बड़ी वेदना हुई। भाल ज़िले के एक गाँव का मैं निरीक्षण कर रहा था। भंगियों की बस्ती में, मैंने देखा, कि वहाँ तमाम सब जगह गोबर पड़ा सूख रहा है। इसका कारण पूछने पर वहाँ के हरिजनोंने बतलाया, कि—"क्या करें, हम लोगों को कहीं काम ही नहीं मिलता। पेट कैसे पालें? इस गोबर में से दाने बीन-बीनकर खाते हैं। पहले गोबर सुखाते हैं, फिर उसमें से अधचबाया अनपचा अनाज अलग कर लेते हैं, और उसे धो-सुखाकर उसका आटा पीसके रोटियाँ बना लेते हैं!"

सवर्णहिंदुओं में ऐसी बात न मैंने कहीं देखी है, न सुनी है। जब कि श्रीयुक्त परीक्षितलाल मजुमदारने स्वयं अपनी आँखों से यह सब देखा है, तब इस बात की सचाई में सन्देह करना व्यर्थ है। सवर्णहिंदुओं को समझना चाहिए, कि यह अस्पृश्यता हिंदु-समाज के एक अंग की कैसी दुर्गति कर रही है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

गाय या भैंस?

गत वर्ष, जून मास के 'हरिजन' में गुंटूर के हरिजन-सेवक-संघ का जो कार्यक्रम प्रकाशित हुआ था, उसमें एक बात यह भी थी, कि जो हरिजन भाई मुर्दार मांस एवं मद्यपान का व्यसन छोड़ देगा, उसे संघ एक दुधारू भैंस देगा, जिसकी क़ीमत उससे छोटी-छोटी क़िस्तों में ली जायगी। अगर यह विचार किसी जगह कार्य में परिणत हुआ हो, तो मैं एक बात सुझाऊँगा, कि बजाय भैंस के गाय दी जाय। क्योंकि अगर भैंस दी गई, तो अक्सर उसे रखनेवाला उसके पड़ों को अनुपयोगी-सा समझकर मार डालने को मजबूर हो सकता है। पर गाय के बारे में यह बात नहीं है। उसका बछड़ा तो गाय की ही तरह और बल्कि उससे भी अधिक उपयोगी होता है। और फिर गाय का दूध भैंस के दूध से अधिक स्वास्थ्यकर बतलाया जाता है। इसके अलावा, अपने राष्ट्रीय अर्थशास्त्र को देखते हुए हम इन दो-दो जानवरों को रख भी तो नहीं सकते—भैंस दूध के लिए और गाय बैलों के लिए। इसलिए जनन तथा ख़ुराक में काफ़ी अच्छा सुधार करके अवश्य ही इस बात पर ध्यान देना चाहिए, कि किस तरह गाय के दूध की मिक़दार बढ़ाई जा सकती है और किस तरह वह बढ़िया क़िस्म का बनाया जा सकता है। अतः दूध तो हमें सदा गाय का ही पीना चाहिए, और फिर गाय की पवित्रता भी तो हमें ध्यान में रखनी है।

अँग्रेज़ी से] वालजी गोविंदजी देसाई

हरिजनों को हृदय से लगाया

श्रीमद्भागवत में ये दो श्लोक आये हैं:—

..........................प्राविशत्पुरीम् ॥ १० ॥

भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणामनुवर्तिनाम् ।
यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे ॥ २० ॥
प्रह्वाभिवादनाश्लेष करस्पर्शस्मितेक्षणैः ।
आश्वास्य चाश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः ॥ २१ ॥

—भागवत, स्क० १, अ० ११

इन श्लोकों से यह प्रगट होता है, कि जब श्रीकृष्ण बहुत दिनों के बाद द्वारका लौटे, तो उन्होंने द्वारकावासियों को सम्मानित किया—ब्राह्मण से लेकर श्वपाक चाण्डालतक को—जो सब यदुराज श्रीकृष्ण का स्वागत करने आये थे। भगवान्ने किसी को प्रणाम किया, किसी को हृदय से लगाया, किसी को हाथ जोड़े, किसी की ओर मुस्करा दिया और किसी को कृपा-दृष्टि से देखा। और चूँकि श्रीकृष्ण 'दीन-बन्धु' थे, इसलिए यह मान लेने का हमें पूरा अधिकार है, कि अपने बन्धु-बांधवों से मिलने के पूर्व उन्होंने हरिजनों को हृदय से लगाया, क्योंकि वैद्य की आवश्यकता रोगियों को ही होती है, नीरोगियों को नहीं।

'हरिजन' से] वालजी गोविंदजी देसाई

विनोबा-वाणी

वर्धा-सत्याग्रहाश्रम के आचार्य श्री विनोबा भावेने, अपने कुछ साथियों-समेत, वर्धा के निकट नालवाड़ी नामक गाँवमें डेरा डाल रक्खा है। वे उसी गाँव में जाकर बस-से गये हैं। उस गाँव में हरिजनों की तादाद अधिक है। गत जनवरी मास में, एक वर्ष हो चुकने के पश्चात्, संक्रान्ति के अवसर पर, आश्रमवासियों की उस गाँव में की जानेवाली हरिजन-सेवा की रिपोर्ट पढ़ी गई। फिर श्री विनोबाजीने, एक छोटा-सा प्रवचन किया। उस समय कुछ अन्य सज्जनों के साथ श्री जमनालालजी बजाज, पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी और वर्धा ज़िले के डिपटी कमिश्नर श्रीयुत वर्मा महाशय भी उपस्थित थे। लगभग १५० से ऊपर हरिजन भाई-बहिन उस समय श्री विनोबा की वाणी सुनने के लिये एकत्रित थे। श्री विनोबाजी के प्रवचनका कुछ अंश इस तरह है:—

गत वर्ष ता० २५ दिसम्बर को, अर्थात् महात्मा ईसा की पुण्यतिथि को, मैं यहाँ आकर सस्थापित हुआ। मेरे मन से मैंने इस वर्ष भर में कुछ भी नहीं कर पाया। हमने हज़ारों वर्षोंतक हरिजनों पर जो ज़ुल्म किये हैं, वे यदि तराज़ू के एक पलड़े पर

रखे जावें, और दूसरे पलड़े पर हमारी सेवा रखी जाय, तो वह 'शून्य' के बराबर ही रहेगी।

हम स्वयं कायर, क्षुद्र, असमर्थ और अत्याचारी । हमें तो अभी अपना कार्य प्रारंभ करना है। इसीलिए आज संक्रान्ति का त्यौहार मनाया जा रहा है। "तिल-गुड़ लो और मीठे बोलो।" मीठा बोलना कम-से-कम है, जो मनुष्य कर सकता है। कुछ न दें, परन्तु मीठा तो प्रत्येक को बोलना ही चाहिए। मैंने भी मीठा बोलने के सिवा वर्षभर कुछ नहीं किया। मुझसे पहले से, लगभग ५० वर्ष से, महात्माजीने हमें क्या सिखला दिया ? हमें मीठा बोलना सिखलाया। 'हरिजन' के मीठे नाम का शोध लगाने से ही, उन्होंने अपनी मीठी वाणी का प्रारम्भ किया। मेरी यह श्रद्धा है कि मन्त्र से सांप उतर जाता है। 'हरिजन' शब्द से गुंथे हुए मन्त्रने परिस्थिति में कितना अन्तर पैदा कर दिया ! सब प्रांतों से पिछड़ा हुआ मद्रास, जहां अछूत को २८ फुट दूर खड़ा किया जाता है, और जहां उसकी छाया से भी छूत मानी जाती है, वहां भी इस महामन्त्र की मिठास का प्रभाव दीख पड़ता है।

जिस देश के पुरुष इतने पीछे हों, वहाँ की स्त्रियाँ कितनी पिछड़ी होंगी ? परन्तु जब गुरुवायूर के मंदिर के द्वार अछूतों के लिए खुले रहने के विषय में मत गिने गये, तब १००० स्त्रियोंने मत दिया कि यह मंदिर हरिजनों के लिए खोल दिया जाय। यही तो मन्त्र का प्रभाव है।

जब हम हृदय से मीठा बोलना सीखने लगते हैं, तब हमारा व्यवहार भी मीठा होने लगता है। इसी तरह मैंने अभी कुछ भी नहीं किया, मेरी सेवा का अभी श्रीगणेश भी नहीं हुआ, तो भी मैं तुम्हें यह विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा तुम पर प्रेम है। मैंने भेद-भाव नहीं रखा। मेरी माँ, यद्यपि पुराने ज़माने की थीं, परन्तु उन्हें अस्पृश्यता रुचती न थी। मेरा जन्म सवर्ण ब्राह्मण-परिवार में हुआ है। आज ब्राह्मण होना पाप-रूप होगया है। तो भी मुझे शर्म नहीं मालूम होती। राम तो सब ओर रम रहा है। भेद-भावका अभाव, यह मेरी कमाई नहीं है। यह तो माँ 'गीता' का प्रसाद है। आज भी मुझे, 'काली कमली ओढ़े और लँगोटी लगाये हुए, ईंट पर, महाररूप में खड़ा हुआ नारायण' दीख पड़ता है। यही क्यों, जब गाँव के छोटे-छोटे हरिजन बालक, मेरी कुटिया के पास आकर ऊधम करते हैं, गड़बड़ मचाते हैं, तब मुझे ऐसा मालूम होता है, कि स्वयं भगवान् विट्ठल आकर मेरे साथ छेड़छाड़ कर रहा है। उन बालक-बालिकाओं में मुझे प्रत्यक्ष नारायण दीख पड़ता है। (इस समय विनोबा का गला भर आया, उनके आंसू बहने लगे, और वे यह भूल ही गये, कि वे एक सभा में बैठे हैं। कुछ हरिजन भाई-बहिनों के भी आँसू आगये। फिर विनोबाने कहा—) मैं तुम्हें यह कैसे बताऊँ, कि तुम मुझे कितने प्यारे हो।

हरिजन-प्रवास में प्राप्त

[२४ फ़रवरी से २ मार्च, १९३४ तक]

मरकरा—विविध धन-संग्रह	१९।-)
हस्ताक्षर-शुल्क	५)
सौंपाजे—जनता की थैली	१५१)
सुलिया—जनता की थैली	५१)
विविध धन-संग्रह	८)
हस्ताक्षर-शुल्क	५)
पुत्तूर—जनता की थैली	५८४॥=)।
विद्यार्थियों की थैली	२०॥=)॥।
डा० सुन्दरराव की थैली	१०१)
विविध धन-संग्रह	७६)२
हस्ताक्षरों से	२०)
नीलाम से	१०)
उप्पिनंगाडी—जनता की थैली	५१)
बंटवाल—जनता की थैली	१७५)
नाटक-कम्पनी की थैली	५१)
फुटकर तथा नीलाम से	१९)
पानी मंगलोर—जनता की थैली	८५=)
विविध धन-संग्रह	२)
मंगलोर—मोघवीर-समाज की थैली	११९)
मोघवीर-समाज की सभा में फुटकर संग्रह	२५)
महिलाओं की थैली	२३५)
महिला-सभा में विविध धन-संग्रह	१२७॥=)॥।
एक सज्जन	११६)
एस० के० डि० बोर्ड की थैली	३०)
जनता की थैली	१००१)
श्री आर० एस० नागरकर की थैली	१०५)
हस्ताक्षरों से	२०)
फुटकर धन संग्रह	८०॥)७
निवास-स्थान पर फुटकर संग्रह	४६)
मंगलोरतक की स्टेशनों पर फुटकर संग्रह	६५=) ॥
नीलाम से	२८४॥)
विट्ठलकबका—जनता की थैली	५५)
कालकाग्राम—जनता की थैली	१०।=)
मंगलोर—विद्यार्थियों की थैली	१२०)
कनरा हाईस्कूल ओल्ड ब्वायज़ असोसियेशन	१२०)
निवास-स्थान पर फुटकर संग्रह	१५=)॥
विवेकानन्द-सोसाइटी	१०)
सार्वजनिक सभा में धन का बकाया प्राप्त हुआ	३७)
फुटकर संग्रह	६)
येक्कर—जनता की थैली	९१)
किन्नीगरी—जनता की थैली	१७५॥=)११
नीलाम से	३)
मुलकी—जनता की थैली	५०१)
नीलाम से	२६२)
पडुविद्री—जनता की थैली	७९)
काउपगाँव—जनता की थैली	१००)
कटपाडी—महौषधालय की थैली	६०)
जनता की थैली	५५५-)५
नीलाम तथा फुटकर संग्रह	१३=)
उडुपी—जनता की थैली	११५०)
खादी-भंडार	२५)
जनता की पृथक थैली	९०)

विद्यार्थियों की थैली	११)
हस्ताक्षरों से	१०)
नीलाम से	४०७)
फुटकर धन-संग्रह	१६।≡)२
उदयावर ग्राम—जनता की थैली	५५)
पदुबिद्री—हस्ताक्षर-शुल्क तथा फुटकर संग्रह	११)
मुलकी—निवास-स्थान पर फुटकर संग्रह	२८॥≡)॥
हस्ताक्षर-शुल्क	१०)
फुटकर संग्रह	१०)
नीलाम से	३४)
ब्रह्मावर—जनता की थैली	२२१)
रास्ते में फुटकर संग्रह	१६।।।-)।।।
फुटकर धन-संग्रह	२)
कुन्दपुर—जनता की थैली	१००५)
हरिजनों की थैली	१॥≡)
कुन्दपुर के रास्ते में	१६)
नीलाम से	४३।।।=)
फुटकर संग्रह	१२॥-)।।।
मंगलोर—नीलाम का बकाया प्राप्त हुआ	३४)
चिदंबरम्—नीलाम का बकाया प्राप्त हुआ	१०)
कुन्दपुर—निवास-स्थान पर फुटकर संग्रह	५।)
२ हस्ताक्षरों का शुल्क	१०)
निवास-स्थान पर फुटकर संग्रह	१६)
हस्ताक्षरों से	१०)
थैली तथा सूत नीलाम किया गया	१६)
बरकाल—जनता की थैली	४१)
फुटकर धन-संग्रह	६)
होनावर—हस्ताक्षरों से	१०)
फुटकर धन-संग्रह	२८-)
ताद्री—फुटकर धन-संग्रह	॥=)
करवार—जनता की थैली	३७२।-)
फुटकर धन-संग्रह	५१॥=)
नीलाम से	११६)
विनागी—जनता की थैली	७१)।
चंडिया—जनता की थैली	५१)
नीलाम से	१२)
अंकोला—जनता की थैली	५५)
हिन्दी-प्रेमी-मंडल की थैली	१६॥)
फुटकर धन-संग्रह	६५।=)२
नीलाम से	३३)
हीरागुट्टी—जनता की थैली	१५)
अंकोला—अंकोला से कुमता तक फुटकर संग्रह	२०।=)।
मलनगिरि गाँव में	५।)
फुटकर संग्रह	४=)
कुमता—जनता की थैली	७५१)
विद्यार्थियों की थैली	११=)
भगिनी-मंडल	३६॥-)
महिला-सभा में फुटकर संग्रह	१५॥)।।।
अमीनहल्ली की थैली	१२-)॥
नीलाम से	७५)
सिराई—जनता की थैली	५०१)
एक थैली	११)
कुमता से सिराई तक फुटकर संग्रह	५४)
नीलाम से	१२०॥-)५
हंगड़ी—गाँववालों की थैली	७१-)१०
कुमता—भाटिया लोगों की थैली	१००)
सिराई—विविध धन-संग्रह	४६।=)।।।
सिद्धपुर—जनता की थैली	१८८।)
हरिजनों की थैली	८॥)
महिलाओं की थैली	५५।≡)११
बालकों की थैली	२५)
सभा में फुटकर संग्रह	१७।=)
सिद्धपुर और सिराई के बीच में थैलियाँ	७९॥-)११
नीलाम से	३५॥=)
देवीहोसुर—जनता की थैली	२००)
फुटकर धन संग्रह	१४)
सिरसीतालुका—सिरसी और हावेरी के बीच में थैलियाँ	७८≡)
अलूर (धारवाड़)—जनता की थैली	३०३)
नीलाम से	२९॥≡)।
ब्याद्गी—जनता की थैली	५५५)
नीलाम से	४१)
हावेरी—जनता की थैली	९००)
महिलाओं की थैली	१०१)
श्रीयुक्त मुर्गीनाथ की थैली	१०१।
सभा में फुटकर संग्रह	६०।-)॥
नीलाम से	२९)
मोती बिन्नूर—गाँववालों की थैली	४१)
महिलाओं की थैली	१२॥=)
फुटकर संग्रह	३॥≡)
ब्याद्गी—बकाया प्राप्त हुआ	१३६)
रानी बिन्नूर—जनता की थैली	५१०।।।-)
मारवाड़ियों की थैली	५७)
नीलाम से	९।-)
दावनगिरि—महिलाओं की थैली	११२)
जनता की थैली	५००)
विद्यार्थियों की थैली	४२।-)१
हरिजनों की थैली	२≡)१
स्टेशनों पर फुटकर संग्रह	१४।)४
नीलाम से	१३५॥)
हरिहर—हरिजनों की थैली तथा फुटकर संग्रह	४८)
विविध धन-संग्रह	२२।।।-)७
दुग्गाथी—हरिजनों की थैली	१२)
फुटकर संग्रह	३≡)
हरपानहल्ली—विद्यार्थियों की थैली	५०)
जनता की थैली	२४७॥=)
नवयुवकों की थैली	३५)
जनता की पूरक थैली	३०।।।=)॥
हेडमास्टर का दान	१०)

हस्ताक्षरों का शुल्क	३५)
फुटकर संग्रह	२७)
नीलाम से	४७।।)
कुकवती—जनता की थैली	११७)
बिलोहल्ली—जनता की थैली	१७०)
कोट्टूर—गाँववालों की थैली	१२५)
कर्णाटक-मित्र-मंडल की थैली	२९)
जगतगिरि चनबसप्पा कोप्पप्पा	३०)
दीन-सेवा-आश्रम	२०)
नीलाम से	१८।।।≶)।।
कुडुलिगी—गाँववालों की थैली	५९।।)।
कनविनहल्ली—जनता की थैली	१०१)
संदूर—जनता की थैली	४२५)
नीलाम से	२७≶)८

सप्ताह का कुल जोड़—१७९११।।)।

अबतक का कुल जोड़—३५२१३०।।-)७

प्रांतीय कार्य-विवरण

गुजरात

[मार्च, १९३४]

धार्मिक—नड़ियाद (खेड़ा ज़िला) में रामजी-मंदिर में भजन-कीर्तन हुआ, जहाँ सवर्णों के साथ हरिजनोंने भी भाग लिया।

शिक्षा—एफ़० ए० के एक हरिजन विद्यार्थी को परीक्षा-शुल्क का २०) दिया गया। वह विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हुआ।

एक हरिजन विद्यार्थी को मैट्रीक्युलेशन की परीक्षा की फीस जमा करने के लिए १५) दिये गये।

एक हाई स्कूल के विद्यार्थी को ख़ासतौर पर स्कूल संबंधी ख़र्च के लिए २५।।) दिये गये।

कोचरब बाल-मंदिर के लिए १ मार्च से १५) की मासिक सहायता मंज़ूर की गई।

अहमदाबाद के नगर-हरिजन-सेवक-संघने एक बाल और हरिजन-कन्या-छात्रालय जारी रखने का निश्चय किया है; और यह भी निश्चय किया है, कि बजाय १५ लड़कियों के अब २० लड़कियाँ छात्रालय में भरती की जायँ।

कठलाल की लोअर प्राइमरी पाठशाला का संघ के मंत्रीने निरीक्षण किया, जहाँ २६ हरिजन बालक बिना किसी भेद-भाव के भरती कर लिये गये।

आर्थिक—महेसणा ज़िले के अंतर्गत बीजापुर में मेहतरों की एक सहकारी समिति स्थापित करने का निश्चय किया गया।

बरोदा के खादी-मंडलने सूत कातने के तीन वर्ग तथा बुँटने का एक वर्ग मेहतरों के लिए खोले हैं। ४० मेहतर इन वर्गों से लाभ उठा रहे हैं। यह कार्य बरोदा प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ की देखरेख में चल रहा है।

साधारण—पोरबंदर (काठियावाड़) के पास के गाँवों में हरिजन-बस्तियों की जाँच का काम शुरू किया गया है। अबतक ८ गाँवों में काम हुआ है।

७ मार्च को डाक्टर सुमंत मेहताने हरिजनों के लिए पो (अहमदाबाद) गाँव में बनाये गये एक कुएँ का उद्घाटन-संस्कार किया।

राजल (खेड़ा) में भी एक कुआँ हरिजनों के लिए तैयार हो गया है।

नड़ियाद के हरिजन-मंदिर में रामनवमी के अवसर पर उत्सव हुआ। कुछ सवर्णोंने भी वहाँ श्रीरामोत्सव में भाग लिया।

मैसूर

[जनवरी—फ़रवरी, १९३४]

धार्मिक—ज़िला कोलर में डिप्टी कमिश्नर श्री टी० जी० राम ऐयर द्वारा एक नया भजन-मंदिर खोला गया। सवर्णों तथा हरिजनोंने उद्घाटन-उत्सव में बड़े प्रेम से भाग लिया।

इन दो महीनों में अनेक स्थानों पर रथोत्सव हुए। इन सभी उत्सवों में हरिजन भी काफ़ी संख्या में उपस्थित थे।

प्रतिवर्ष की तरह बन्नूर के सात मंदिरों में हरिजनों तथा सवर्ण हिंदुओंने मिलकर बराबर एक महीनेतक पूजा की।

शिक्षा—मैसूर शहर के मेहतरों के लिए दो पाठशालाएँ तथा बंगलोर शहर के मेहतरों के लिए एक पाठशाला स्थापित की गई।

नीलकंठमहल्ली स्कूल का स्थायी भवन तैयार कर देने के लिए वहाँ के हरिजन ५०००० पक्की ईंटें तैयार कर रहे हैं।

हरिजन-पाठशालाओं को १४७।।) की रक़म सहायता-स्वरूप दी गई; और हरिजन-छात्रालयों एवं आश्रमों आदि को २३२) दिये गये।

दो हरिजन विद्यार्थियों को बढ़ई का काम सीखने के लिए छात्रवृत्तियाँ दी गईं।

इण्टरनेशनल फ़ेलोशिप की ओर से बंगलोर की शेषाद्रिपुरम्-बस्ती के मेहतरों के यहाँ दो ब्राह्मण महिलाएँ और दो यूरोपियन महिलाएँ सप्ताह में एक बार जाती और वहाँ उनकी लड़कियों को सीना-पिरोना सिखाती हैं।

स्वच्छता तथा आरोग्यता—दीन-सेवा-संघ के दवाख़ाने में १४०७ हरिजन मरीज़ों का इलाज कराया गया।

आधे मूल्य पर १२०० साबुन की बट्टियाँ हरिजनों को बेची गईं।

मैसूर शहर तथा बंगलोर शहर और बंगलोर छावनी की हरिजन-बस्तियों का नित्य निरीक्षण किया जाता है।

साधारण—गोरूर (हस्सन ज़िला) के मेले के अवसर पर और श्यामसुंदरम् के मार्फ़त मुंडुकुथोरी में, नंदी तथा देवरायण दुर्ग में संघ की ओर से मद्यनिषेध और आरोग्यता-संबंधी प्रचार-कार्य किया गया।

सबडिवीज़नल आफ़िसर की अध्यक्षता में मुंडुकुथोरी में एक हरिजन-परिषद् हुई।

'हरिजन' के १७ लेख देशी भाषा में अनुवाद कराके राज्य के समाचारपत्रों में प्रकाशित कराये गये।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupte.

सम्पादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

एक प्रति का मूल्य -)

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २० एप्रिल, १९३४. [संख्या ९

विषय-सूची

तब अस्पृश्यता कहाँ थी ?

(१)

आज सारा ही संसार अस्वस्थ है। आर्थिक संकटों से बेतरह उसका दम घुट रहा है। राजनीतिक अत्याचार चारों ओर से मनुष्य की स्वतंत्रता को नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं। 'साम्यवाद', 'फेसिज़्म', 'राष्ट्रीयता' आदि अनेक नामों पर मनुष्य जाति की स्वतंत्रता पर कुठारा-घात किया जा रहा है। मनुष्य आज जीवन-प्रवृत्ति का ध्येय नहीं रहा, वह तो उसका महज़ एक साधन बनता जा रहा है। विश्वरूपी महान् यंत्र का मानो वह एक छोटा-सा चक्र हो गया है। गत महायुद्ध के समय मनुष्य 'तोपों का भक्ष्य' माना जाता था। आज वह थोड़ी-सी महत्वाकांक्षाओं का भक्ष्य बनता जा रहा है। मनुष्य अपने व्यक्तित्व के गौरव को भूलता जा रहा है, और उसकी स्वतंत्रता तथा सरसता, जान पड़ता है, दोनों ही नष्ट होती जा रही हैं। यंत्र-पूजा के इस पागलपने में मानव-गौरव के सौन्दर्य की अवगणना करना ही हम सीख रहे हैं।

इस प्रकार के अत्याचारों से दुर्दलित जगत् के लिए बिना 'आर्य आदर्श' के दूसरा समाधान नहीं। पश्चिम के जड़वाद से ग्रस्त मनुष्य जाति का उद्धार आर्य-आदर्शवाद को छोड़कर अन्य मार्ग से होना सम्भव नहीं। मार्क्स को सृष्टि-क्रम में अर्थवाद के अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु दिखाई नहीं दी। गांधीजी को, स्थूल-जीवन पर विजयी हुए बिना, सृष्टि की सफलता समझ में नहीं आती। जहाँ पाश्चात्य जड़वाद स्टेलीन, मुसोलिनी और हिटलर के द्वारा मानवी व्यक्तित्व के गौरव को कुचल रहा है, वहाँ आर्यों का आदर्श गांधीजी के द्वारा दलितों को मानवी प्रतिष्ठा प्रदान कर रहा है।

तो क्या आर्यत्व जगत् का उद्धार कर सकेगा ? यदि इस आर्यत्व के द्वारा मनुष्य साक्षात् देवत्व प्राप्त कर सका, तो वह जगत् का उद्धार कर देगा। यदि यह जगत् को आश्वासन न दे सका, तो फिर जड़वाद इसे भी निर्मूल कर देगा।

आर्यत्व के आधार की रचना यदि यम और नियम पर हुई है, यदि योग की शान्ति और स्वतंत्रता में उसकी सफलता समाई हुई है, तो मनुष्य-मनुष्य का भेद, वर्णभेद, किंवा अस्पृश्यत्व आदि उस पर चढ़े हुए मलिन आवरणों को नष्ट करना होगा। और यदि आर्यत्व की आत्मा स्पृश्यास्पृश्य में ही विद्यमान है, तो फिर योग-सूत्र और गीता के सिद्धान्त भयंकर-से-भयंकर भ्रान्तसिद्धान्त हैं।

इन दो के बीच का कोई तीसरा रास्ता मुझे नहीं देख पड़ता। मैं देखता हूँ, कि या तो आर्यत्व का मूल योग में है, या फिर स्पृश्यास्पृश्य में है।

मैं कोई शास्त्रज्ञ नहीं हूँ, न मैंने वेद या योग का ही अध्ययन और अभ्यास किया है। तो भी मेरा यह विश्वास है, कि आर्य-संस्कृति के मौलिक आदर्श निश्चय ही अपूर्व हैं। इसलिए, जो यह मानता या कहता है, कि सामाजिक भेद क़ायम रखने से आर्यत्व सुरक्षित रहेगा, वह, वास्तव में, आर्यत्व के, आर्य-संस्कृति के और आर्यावर्त के भविष्य का महान् शत्रु है।

(२)

आर्य जनता के आचार-विचार को बिना समझे-बूझे इस प्रश्न का निर्णय करना असम्भव है। वैदिक साहित्य की सहायता से मैं नीचे के इन दो प्रश्नों पर विचार करना चाहता हूँ :—

१—वैदिक साहित्य में क्या आनुवंशिक असमानता दिखाई देती है ?

२—वैदिक आर्यों में क्या ऐसी कोई जाति थी, जो सदा ही अधम और अस्पृश्य समझी जाती थी ?

ऋग्वेद के साहित्य में दो वर्णों का, दो रंग की प्रजाओं का वर्णन होता है—एक आर्यवर्ण और दूसरी दासवर्ण। इन दो वर्णों के बीच में हमेशा ही युद्ध हुआ करता था। आर्य ऋषियोंने विरोधी अर्थात् दास प्रजा का वर्णन उसी वैरभाव से किया, जैसे अँग्रेज़ी 'समाचार पत्र' गत महायुद्ध के दिनों में जर्मन जाति का करते थे।

> "दस्यु अविश्वसनीय, मूर्ख, लोभी, अशुद्ध भाषा बोलनेवाले, श्रद्धा-शून्य, यज्ञविहीन और पूजा-रहित हैं। अग्नि इन दस्युओं को दूर-से-दूर भगा देता है। स्वयं वह पूर्व में है और इन देव-विहीन दस्युओं को पश्चिम की ओर निकाल दिया है।" (१)

इन दस्युओं का रंग काला था, क्योंकि एक मंत्रद्रष्टा कहता है :—

> "देवने ऋजिश्वन के साथ रहकर इन कृष्णगर्भों को निकाल बाहर कर दिया।" (२)

आर्यों के देवने 'दस्युओंको मार आर्यवर्णकी रक्षाकी।' (३)

---

(१) न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणींरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान्।
प्रप्र तान् दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ॥
ऋग्वेद, ७—६—३

(२) सः कृष्णगर्भा निरहन् ऋजिश्वना। ऋग्वेद, १—१०१—१

(३) हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत्। ऋग्वेद, ३—३४—९

आर्य गौरवर्ण थे—'इन श्वेतवर्ण मित्रों की सहायता से विजय मिलती थी।' (४)

आर्य ऋषि इन दस्युओं से डरते रहते थे :—

'हमारे आसपास दस्यु लोग रहते हैं, जो कर्मकाण्ड-विहीन, बुद्धिहीन और अमानुषी व्रतों के पालनेवाले हैं। हे शत्रु-हन्ता! ये दस्यु जिस शस्त्र का प्रयोग करते हैं, उसे तू विफल करदे।' (५)

इन दो जातियों के बीच में मुख्य विरोध यह था, कि दस्यु लोग आर्यों के देवताओं को नहीं मानते थे।

'हे इन्द्र! हे महान् देव! हे हमारे सत्यदेव! तू इन शत्रुओं के समूह को वश में करले। इन लिंगपूजकों को हमारे पवित्र स्थानों के पास न आने दे।' (६)

ये दस्यु न अधम थे, न अस्पृश्य और न निर्बल ही :—

'इन्द्र पूज्यतम समर में जाता है। जय प्राप्त करने की श्रद्धा से, स्वर्ग का प्रकाश मिलने के लिए, वह प्रयत्न करता है। और दृढ़ता से सौ द्वारवाले गढ़ों की समृद्धि लूट लेता है। वह उन अमर्यादित लिंगपूजकों का संहार करता है।' (७)

आज मोहेंजादारो के खंडहर इस बात का साक्ष्य भरते हैं, कि ये लिंगपूजक सुन्दर नगरों में सभ्य जीवन बिताते थे।

शंबर इनका महान् राजा था। उसे पर्वत में से बाहर खींचकर इन्द्रने उसका संहार किया और दिवोदास को सहायता दी। (८) शंबर के पास बड़ी सेना थी और नियत गढ़ था। वर्चिन् भी ऐसा ही बड़ा दस्युराजा था। इन्द्रने उसके एक लक्ष सैनिकों का संहार किया। (९) शुष्ण भी ऐसा ही दस्युराज था।

'हे देव! तूने इसे पराक्रम से पकड़ लिया और इसके किलों को उड़ाकर इसकी संचित की हुई समृद्धि पर अधिकार कर लिया।' (१०)

कई दस्युओं के पास काफ़ी धन था—

'हे इन्द्र! तू इन धनाढ्य दस्युओं को वज्र से मार डाल।' (११)

वेतसु, तुग्र, चमरी, वरशिख, सहवसु, अर्बुद, नववास्त्व और बृहद्रथ आदि अन्य दस्युराजाओं का उल्लेख मिलता है। आर्य एवं दस्यु समान योद्धा थे।

'इन्द्रने उन्हें आर्य नाम नहीं दिया।' (१२)

इन दो जातियों के बीच में मुख्य भेद केवल धर्मक्रियाओं का था। दस्यु नास्तिक-जैसे थे। धार्मिक आर्यजनता इन धर्म-विहीनों के साथ लड़ा करती थी। (१३)

यह युद्ध बहुत लंबे समयतक चलता रहा। एक वैदिक ऋषि गा रहा है :—

'हे देव! इन सब (मंत्रों) से जो शत्रु-समूह हमारे साथ लड़ता है, तू उसे पराजित करदे। अक्षत रहकर शत्रुओं के क्रोध को रोकदे। हमारी प्रार्थना के द्वारा हमारे शत्रुओं को प्रत्येक दिशा में निकाल बाहर करदे। दास जातियों को आर्यों के अधीन रख।' (१४)

एक दूसरा ऋषि दस्युओं के गढ़ नष्ट करने के विषय में वज्रपाणि इन्द्र से प्रार्थना करता है :—

'तू दासों के गढ़ भंग करदे। हे वज्रिन्! अपने शस्त्र को तू ठीक लक्ष्य करके दस्युओं की ओर फेंक। हे इन्द्र! आर्यों की शक्ति और कीर्त्ति में तू वृद्धि कर।' (१५)

एक और ऋषि कहता है :—

'इन्द्र अव्रतियों को व्रतधारियों के सुपुर्द करदेता है, और भक्तों के द्वारा अभक्तों को विनष्ट करता है।' (१६)

अंत में, आर्य कृतकार्य होकर कहते हैं :—

'देव दासवर्ण का दमन करके उसे गुफाओं की ओर भगा देता है।' (१७)

एक ऋषि का गायन सुनिए :—

'हे अश्विनो! अपने भेरी-नाद से तुमने दस्युओं का विनाश किया है और आर्यों को दूरतक व्याप्त प्रकाश प्रदान कर दिया है।' (१८)

इस प्रकार दस्यु हार गये। इस जाति के हज़ारों आदमी युद्ध में काट डाले गये। और हज़ारों दास-स्त्रियों को राजाओं तथा ऋषियोंने गुलामों की तरह रख लिया। दासों के दान की आशा रखकर कुछ ऋषि देवताओं की प्रार्थना करते रहे।

(३)

रंग, धर्म और संस्कार से विभिन्न इन दो जातियों का यह दीर्घ कालिक युद्ध इतिहास के पन्ने-पन्ने में मिलता है। पर ऐसे युद्ध के परिणाम में जो जाति जीतती है, उसके आगे क्या यह जटिल प्रश्न नहीं आता, कि पराजित जाति का क्या किया जाय? इस प्रश्न का निराकरण जीतनेवाली जाति अपने संस्कारा-

(४) सनत् क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः। ऋग्वेद, १-१०१,१

(५) अकर्मा दस्युरभि नो अमंतुरन्यव्रतो अमानुषः।
त्वं तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दंभय ॥ ऋग्वेद, १०-२२-८

(६) न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वंदना शविष्ठ वेद्याभिः।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुॠतं नः ॥
ऋग्वेद, ७-२१-५

(७) स वाजं यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परिषदत् सनिष्यत्।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभिवर्पसा भूत ॥
ऋग्वेद, १०-९९-३

(८) अवगिरेर्दासं शंबरं हन् प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती।
ऋग्वेद, ६-२६-५

(९) उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः। ऋग्वेद, ४,३०,१५

(१०) त्वं शुष्णस्य दृंहिता प्रमृक्षो अभिवेदनं।
पुरो यदस्य संपिणक्। ऋग्वेद, ४-३०-१३

(११) वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेन। ऋग्वेद, १, ३३-४

(१२) न यो रर आर्यं नाम दस्यवे। ऋग्वेद, १०, ४९-३

(१३) अयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः। ऋग्वेद, १-३३-५

(१४) आभिः स्पृधो मिथती रिषण्यन् अमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीः आर्याय विशोऽवतारीर्दासीः ॥
ऋग्वेद, ६-२५-२

(१५) स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्विदासीः।
विद्वान् वज्रिन् दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥
ऋग्वेद, १-१०३-३

(१६) अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतान् आभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः
ऋग्वेद, १-५१-९

(१७) यो दासं वर्णमधरं गुहाकः। ऋग्वेद, २-१२-४

(१८) अभिदस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय
ऋग्वेद, १-११७-२१

नुसार करती है। रोमवालोंने जब कार्थेज के लोगोंपर विजय पाई, तब पराजित जाति को क़त्ल करडाला। एथन्स के ग्रीक निवासी जब विजयी हुए, तब उन्होंने पराजितों को अपना गुलाम बनाया। यह हालत एथन्स में यहाँतक पहुँची, कि बाहर का सारा काम तो गुलाम करते थे और ग्रीक नागरिक सिर्फ़ गुलछर्रे उड़ाते थे। एक तीसरा प्रयोग यह भी देखने में आता है, कि विजयी जाति धीरे-धीरे अपने व्यक्तित्व को खोकर पराजित जाति में घुल-मिल जाती है।

जान पड़ता है, कि वैदिक आर्योंने इस विषय में एक नया और क्रान्तिकारी मार्ग ढूँढ निकाला था। समाज-व्यवस्था जो रंगभेद, जातिभेद और विधिभेद पर की गई थी उसे बदल दिया, और उसके स्थान पर संस्कार-भेद पर अवलंबित व्यवस्था का समावेश किया। अनेक दस्यु जातियों को अपने समाज में मिला लिया। प्रत्येक जाति को उसके संस्कार के अनुसार ऊंचा या नीचा स्थान दिया गया, और जिस जन-समूह का संस्कार आर्यत्व की दृष्टि से श्रेष्ठ था, उसे सर्वोपरि स्थान दिया गया। इस प्रकार जो वर्ण—रंग—व्यवस्था थी, वह चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था में परिणत हो गई। संस्कार-भिन्नता से अब आर्य-अनार्य के भेद द्विज-शूद्र के भेदों में परिणत हो गये। यह कैसे हुआ, इस का प्रामाणिक इतिहास दाशराज्ञ के विग्रह को लक्ष्य करके वसिष्ठ और विश्वामित्र के रचे सूक्तों से मिलता है।

दस्युओं के कुछ राजा तो हार गये और कुछने आर्य राजाओं से मैत्री कर ली। आर्य जातियाँ आपस में अब एक दूसरे के साथ लड़ने लगीं, और दस्यु जाति की मदद आर्य जाति को मिलने लगी।

एक ऋषि गा रहा है:—

'हे देव हमारे आर्य शत्रुओं का विनाश करते हैं, जिस प्रकार वे हमारे दस्यु शत्रुओं का विनाश करते हैं और हमारे आर्य शत्रुओं को निकाल बाहर कर देते हैं।' (१९)

एक अन्य ऋषि का ऐसा ही गान है:—

'हे देव! उन्होंने तमाम समृद्धि जीत ली है—पृथिवी पर की, तथा पर्वत पर की। और दास एवं आर्य शत्रुओं को जीत लिया है।' (२०)

दाशराज्ञ-युद्ध का मूल वसिष्ठ तथा विश्वामित्र का पारस्परिक वैर था। तृत्सु के राजा दिवोदास के पुत्र सुदास के प्रेरक वसिष्ठ थे। उनके मुकाबले में भरतजातियों में श्रेष्ठ विश्वामित्रने दस राजाओं का एक संघ बनाया। इन राजाओं में पाँच आर्य-जातियाँ थीं—भरत, अनुस्, द्रुह्यु, तुर्वशस् और यदु। और सिम्यु, अजस्, सिग्रु तथा यक्षु ये चार दस्यु जातियाँ थीं। भेद नाम का दस्युराजा भी विश्वामित्र की ओर था। यह युद्ध बहुत समयतक चलता रहा। वसिष्ठ की सेना जीती सही, पर अंत में इस युद्ध का यह परिणाम हुआ, कि आर्य तथा अनार्य जातियाँ दोनों ही भरत जाति में मिल गईं, और इन जातियोंने इस देश का नाम 'भरत-खण्ड' रखा। परुष्णीतट पर हुए इस दाशराज्ञ-युद्धके परिणामस्वरूप आर्यों तथा दासों की एकता प्रगट हुई, साथ ही उस भयंकर रुधिर की सरिता में वर्णद्वेष सदा के लिए अदृष्ट हो गया, और दोनों जातियों के संमिश्रण से भरत-खण्ड की प्रजा तथा संस्कृति दोनों का आविर्भाव हुआ।

बाद को वसिष्ठ के शिष्य और संतान संकुचित दृष्टि के कट्टर ब्राह्मण-संप्रदाय के प्रतिनिधि हो गये। विश्वामित्र के अनुयायी और संतान उदारता तथा प्रगति एवं समाधान और संमिश्रण की पद्धति के प्रतिनिधि बने। (२१)

विश्व के प्रभातकाल में विश्वामित्र आद्य राष्ट्रसृष्टा बन गये। इस दूरदर्शी महात्माने देखा, कि आर्यत्व तो संस्कार में है, रुधिर में नहीं; और आर्यत्व को यदि अमर बनाना है तो शस्त्र-द्वारा जीती हुई प्रजा का संस्कार करना चाहिए। अतः विश्वामित्रने आर्यों और दस्युओं की एकता इन राजाओं के संघ-द्वारा स्थापित की। उनके गायत्री-मंत्र की महत्ता भी ऐसी ही थी, कि जो उसका उच्चारण करता वह संस्कारी बन जाता, आर्य बन जाता—भले ही वह किसी भी वंश या किसी भी वर्ण का हो। (२२)

विश्वामित्रने दस्युओं को अपने पुत्र के रूप में अपनाया, यह बात शुनःशेप की कथा से सिद्ध होती है।

विश्वामित्र के एक सौ एक पुत्र थे—पचास मधुच्छन्दस् से बड़े और पचास उससे छोटे। जो बड़े थे, उन्हें ये दत्तक पुत्र अच्छे न लगे। इसलिए उन्हें विश्वामित्रने यह शाप दे दिया, कि 'तुम्हारी संतान सीमान्त पर रहेगी।' ये लोग आंध्र, पुंड्र, शबर, पुलिंद, और मतिब काफ़ी बड़ी संख्या में सीमा पर रहते थे। बहुत-से दस्यु विश्वामित्र की संतान हैं। (२३)

सीमा के लिए एक शब्द 'अन्त्यम्' है। इधर पिछले युग में सायणने अज्ञान के वश होकर इसका अर्थ चंडालादिरूपान् नीच जाति विशेषान ऐसा किया है। वास्तव में ऐसा अर्थ है नहीं। इसका तो इतना ही सारांश निकलता है, कि विश्वामित्रने जिन दस्युओं को आर्य बनाया था, उनमें से कुछ दस्यु सीमान्त पर रहते थे; और आर्यावर्त के आर्यों से वे कुछ भिन्न संस्कार के समझे जाते थे। अतः यहाँ जो 'अन्त्य' शब्द आया है, उससे अनार्यता या अस्पृश्यता की कोई ध्वनि नहीं निकलती।

जो आर्य-विधि और संस्कार से विमुख थे, वही शूद्र थे। जो आर्य-विधि और संस्कार का अनुसरण करते थे, वह द्विज अर्थात् आर्य थे। इस आधार पर नये युग की रचना हुई। दाशराज्ञ तक आर्य और दासों के बीच में वैरभाव मालूम पड़ता है। यह भी प्रतीत होता है, कि आर्य अपने देवों और व्रतों के गर्व में चूर रहते थे। किन्तु दास आर्य होने के योग्य नहीं थे अथवा अस्पृश्य थे, इस बात का तो कहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता।

(अपूर्ण)

'हरिजन-बन्धु' से] कन्हैयालाल मुंशी

(१९) हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती।
हतो विश्वा अप द्विषः॥ ऋग्वेद, ६—६०—६

(२०) सस्रुव्या पर्वत्या वसूनि,
दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ। ऋग्वेद, १०—६९—६

(२१) Ragozin Vedic India P. 320

(२२) रैगोज़ीन (Ragozin) की यह कल्पना है, कि दस्युओं को आर्यत्व की दीक्षा देते समय गायत्री मंत्र का उच्चारण कराया जाता था, और इसलिए विश्वामित्रने गायत्री की रचना की। Vedic India, P. 318

(२३) अन्तान् वः प्रजा भक्षीष्ट इति। त एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबा इति उदन्त्या बहवो वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः। ऐतरेय ब्राह्मण, ७—१८

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २० एप्रिल, १९३४

एक हरिजन के कुछ प्रश्न

एक हरिजन भाईने मेरे पास नीचे लिखे प्रश्न भेजे हैं:—

"१—महात्माजी, आप हमारे उद्धार-कार्य में क्यों इतनी अधिक दिलचस्पी ले रहे हैं ?

२—अगर आप के विचार में सभी धर्म एक समान हैं, तो क्या खीस्त-धर्मावलंबी अस्पृश्यता के खिलाफ लड़ने के अधिकारी नहीं हैं ?

३—अस्पृश्यता अगर दूर हो गई, तो इससे हम लोगों को क्या-क्या लाभ होंगे ?

४—हिंदू-मंदिरों में हम किसलिए जावें ?

५—हिंदू देवी-देवताओंने क्या हमें सताया नहीं है ?

६—आर्य और अनार्य के ये दो विभाग हमारे लिए बनाये गये हैं। तो फिर हमारे अलग रहने में हानि ही क्या है ?

७—अछूतों में भी अनेक उपजातियां हैं। इस सवाल का हल आपने क्या सोचा है ?

८—एक बार आपने कहा था, कि जिस दिन अस्पृश्यता दूर हो जायगी, उसी दिन स्वराज्य प्राप्त हो सकेगा, तो क्या यह वर्तमान आंदोलन उसी लक्ष्यप्राप्ति के लिए चलाया जा रहा है ?

९—अगर यही बात है, तो क्या जो अधिकार अन्य हिंदुओं को मिलेंगे, वही सब हमारे ७ करोड़ अछूत भाइयों को भी आप दिला सकेंगे ?

१०—मंदिर खुलवाने और अस्पृश्यता दूर कराने के बजाय यह काफ़ी होगा, कि आप हमारी आजीविका का कुछ प्रबंध कर-करा दें।"

प्रश्न अच्छे हैं। इन प्रश्नों के क्रमशः मेरे ये उत्तर हैं:—

१—अस्पृश्यता के कलंक से अपने को मुक्त करके आत्म-शुद्धि के अर्थ में इस हरिजन-कार्य में लगा हुआ हूं। मैं अस्पृश्यतारूपी पाप का प्रायश्चित्त कर रहा हूं। और जिस धर्म का मैं स्वयं अनुयायी हूं, उसका कीर्तिकामी होने के नाते, मैं इस बात के लिए आतुर हो रहा हूं, कि मेरे सहधर्मी भी अस्पृश्यता के इस पाप-कलंक से मुक्त हो जायं।

२—खीस्त-धर्मावलंबी केवल इसके अधिकारी ही नहीं, बल्कि उनका यह कर्त्तव्य है, कि उनके अपने समाज में विद्यमान अस्पृश्यता का वे मुक़ाबला करें। लेकिन अगर यह प्रश्न हो, कि ईसाइयों को हिन्दूधर्म की अस्पृश्यता के खिलाफ़ लड़ना चाहिए, तो इसका यह उत्तर है, कि ऐसा वे निश्चय ही नहीं कर सकते। कारण यह है, कि ईसाइयों के लिए हिंदूधर्म के अस्पृश्य, अस्पृश्य नहीं होने चाहिएं। अस्पृश्यता-निवारण आंदोलन का अर्थ है हिंदुओं को उनके पाप से विरत कराना। यह कार्य सफलतापूर्वक अहिंदुओं के द्वारा नहीं हो सकता—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कि ईसाई या मुसलमान-समाज के अन्दर हिंदू कोई धार्मिक सुधार नहीं कर सकते। अगर इस प्रश्न का यह अभिप्राय हो, कि ईसाई धर्म में अछूतों को धर्मान्तरित करके, हिंदुओं में विद्यमान अस्पृश्यता का मुक़ाबला ईसाई करें, तो वे ऐसा करके किसी भी दशा में हरिजन-कार्य में सहायक नहीं हो सकते। यह प्रवृत्ति तो सवर्ण हिंदुओं की अपने धर्म-संशोधन की प्रवृत्ति है। सवर्ण हिंदू जब अपने इस पाप का प्रायश्चित्त कर डालेंगे, उसी क्षण अस्पृश्यता से हरिजनों का पिंड छूट जायगा। धर्म-परिवर्तन के द्वारा यह सम्भव नहीं। इससे तो मौजूदा कटुता ही और बढ़ेगी, और जो बुरी स्थिति आज है, उसमें और भी बखेड़ा खड़ा हो जायगा। हरिजन-सेवक-संघ के कार्य तथा हिन्दू-धर्मान्तर्गत अन्य आन्तरिक सुधार-आन्दोलनों की बदौलत स्थिति धीरे-धीरे सुधर रही है, और अस्पृश्यता दिन ब दिन कुछ-न-कुछ दूर होती जा रही है।

३—कई प्रकार के लाभ होंगे। उनमें से कुछ लाभों को मैं यहां गिनाता हूं—

(क)—प्रायश्चित्त करके सवर्ण हिंदू शुद्ध हो जायँगे।

(ख)—उन्नति-मार्ग में बाधक अस्पृश्यता का कृत्रिम अड़ंगा दूर होते ही उसी क्षण हरिजनों की आर्थिक, नैतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक अवस्था उन्नत हो जायगी।

(ग)—हरिजनों पर आरोपित अस्पृश्यता एक ऐसा ज़हर है, कि उसके घेरे में जो भी आया उसको वह व्याप गया। और इसलिए हिन्दू, ईसाई, मुसल्मान और अन्य सम्प्रदाय एक दूसरे के लिए अस्पृश्य बन गये हैं। वास्तविक अस्पृश्यता-निवारण हम सबको निश्चय ही एकाकार कर देगी और इस प्रकार भारत के विभिन्न सम्प्रदायों में सच्ची एकता स्थापित हो जायगी।

(घ)—पूरी तरह से यदि अस्पृश्यता दूर हो गई, तो विश्वबन्धुता बढ़ानेवाला यह एक बहुत बड़ा काम होगा।

४—हरिजन अगर नहीं चाहते तो, उन्हें हिन्दू-मन्दिरों में जाने की कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन अगर उनका मन्दिरों में विश्वास है, तो उन्हें वहां अवश्य जाना चाहिए। मन्दिर-प्रवेश-आन्दोलन का उद्देश हरिजनों को हिन्दू-मन्दिरों में ले जाना नहीं, परन्तु देवाराधन की इच्छा से जानेवाले तमाम हरिजनों के लिए मन्दिरों के द्वार खुलवा देना है। इसे यों भी कह सकते हैं, कि यह आन्दोलन सवर्ण हिन्दुओं के प्रायश्चित्त और हृदय-परिवर्तन का आन्दोलन है।

५—मुझे दुःख होना चाहिए, यदि मुझे यह मालूम हो, कि हिन्दू-देवी-देवताओंने हरिजनों को सताया था। उन्होंने यदि ऐसा किया, तो वे निश्चय ही कल्याणकारी नहीं, किन्तु अपकारी देवी-देवते थे, और इसलिए वे त्याज्य हैं।

६—वह साहसी ही व्यक्ति होगा, जो आज कुछ भी सफलता के साथ यह कह सके, कि कौन तो आर्य है और कौन अनार्य। इतिहासकार तो हमें यही बतलाते हैं, कि इन दोनों जातियों को घुले-मिले कई शताब्दियां गुज़र गईं। अगर

अब फिर से आर्य-अनार्य के अनिष्टकर विभाग का कोई प्रयत्न किया गया, तो उससे समस्त भारतवर्ष को हानि पहुँचेगी; और इतना ही नहीं, बल्कि उसकी लपेट में सारी मानवजाति क्षत-विक्षत हो जायगी।

७—जब सवर्ण हिन्दुओं-द्वारा व्यवहृत अस्पृश्यता जड़-मूल से दूर हो जायगी, तो अछूत-समाज में उसकी जो शाखा-प्रशाखाएँ फैली हुई हैं, वे तो आप ही मुरझा जायँगी।

८—वर्तमान आन्दोलन सिर्फ़ सवर्ण हिन्दुओं की ओर इसलिए हिन्दुओं की ही शुद्धि के लिए चलाया जा रहा है। जब यह शुद्धि हमें प्रत्यक्ष सिद्ध हो जायगी, तब केवल 'स्वराज्य' ही नहीं, बल्कि जिस प्रकार रात्रि का अनुगमन दिन करता है, उसी प्रकार उसके साथ ही अनेक वांछनीय परिणाम हमें प्राप्त होंगे। 'स्वराज्य' शब्द का अर्थ यहाँ महज़ एक क़ानूनी विधान नहीं है, बल्कि उससे कुछ अधिक अच्छी और अधिक स्थायी चीज़ है। मैं उसे एक ऐसी नैसर्गिक अवस्था कहूँगा, जिसका विकास मनुष्य की अन्तरात्मा से हुआ करता है।

९—'स्वराज्य' शब्द का चाहे जो अर्थ निकाला जाय, पर यदि उसमें हरिजनों को ज्यों के त्यों वही सब अधिकार हासिल न हुए, जो अन्य हिन्दुओं तथा दूसरे तमाम सम्प्रदायों को मिले हुए हैं या मिलेंगे, तो अस्पृश्यता-निवारण का यह कार्य एक तरह का दम्भ ही कहा जायगा।

१०—मेरे-जैसे एक ग़रीब मनुष्य के बूते का यह काम नहीं है, कि मैं लाखों-करोड़ों आदमियों की आजीविका का कोई प्रबन्ध कर सकूँ। यह तो उन्हीं के अपने पूरे उद्योग और भगवान् की कृपा से हो सकता है। किन्तु यदि हरिजनों के लिए मन्दिरों के द्वार खोल दिये गये और अस्पृश्यता जड़मूल से नष्ट हो गई, तो जिस भारी चक्की में वे आज पिस रहे हैं, उससे वे छुटकारा पा जायँगे और दूसरे मनुष्यों की तरह ईमानदारी से अपनी रोज़ी कमाने का उन्हें भी समान अवसर मिल जायगा।

अँग्रेज़ी से]　　　　मो० क० गांधी

ग़लत रास्ता

हरिजन-कार्य में रुचि रखनेवाले एक सज्जनने सनातनियों के लेखों से लेकर कुछेक कतरनों का एक संग्रह मेरे पास भेजा है। उनमें मेरे लेखों के कुछ ऐसे भी अंगभंग अवतरण दिये गये हैं, जिनके द्वारा साधारण जनता मेरे विरुद्ध उभाड़ी जा सकती है। उक्त सज्जनने इस अभियोग की सफ़ाई देने के लिए मुझे लिखा है। मेरे लिए यह कोई नई बात नहीं है। इनमें से कुछ बातों का जवाब मैं कई बार दे चुका हूँ। मैं कोई भी सफ़ाई दूँ, वे लोग तो सुनेंगे नहीं, जो पक्षपात से काम ले रहे हैं। और जो मेरे अनुकूल हैं, उनके ऊपर ख़ासकर ऐसे वाहियात अभियोगों का कोई असर नहीं पड़ेगा। लेकिन क़ायल न होनेवाले आलोचकों और उन समर्थकों के बीच में, जो किसी के फुसलाने में नहीं आते, हमेशा एक ऐसा मध्यम वर्ग रहता है, जो इधर या उधर किसी एक तरफ़ झुक सकता है। जिन सज्जनने मेरे पास ये कतरनें भेजी हैं, शायद वह उसी मध्यम वर्ग के हैं। इसलिए उनके पत्र का 'हरिजन' में उत्तर देना आवश्यक है। उनकी भेजी हुई कुछ कतरनों में लिखा है :—

१—"महाभारत आदि से लेकर अंततक वाहियात कूड़े-कचरे का ढेर है।"

२—"श्रीकृष्ण को मैं 'अवतार' नहीं, बल्कि एक मामूली आदमी समझता हूँ।"

३—"हिंदू-मन्दिर वेश्यालय या चकले हैं।"

४—"सदाचार में मेरा विश्वास नहीं है। मैं मूर्ति-भंजक हूँ।"

५—"हिंदुओं का धर्म शैतानी से भरा हुआ है। उनके शास्त्र निरीश्वरतापूर्ण और उनके ऋषि तथा मुनि शैतान हैं।"

"　　" यह चिह्न सनातनियों के मौलिक लेखों में हैं। किसी भी उदाहरण के अंत में 'यंग इण्डिया' अथवा 'नवजीवन' का कोई उल्लेख नहीं है। मेरे पास 'यंग इण्डिया' या 'नवजीवन' की फ़ाइल नहीं है। इसलिए यहाँ अपनी स्मृति से ही मुझे काम लेना है।

महाभारत के विषय में, पहले जो मैंने कहा है और आज भी मेरा जो विश्वास है, वह यह है, कि यह महान् ग्रन्थ बहुमूल्य हीरों की खान है। उसे जितना ही गहरा आप खोदेंगे, उतने ही हीरे उसमें आपको मिलेंगे।

श्रीकृष्ण के विषय में जो पहले था, आज भी मेरा वही विश्वास है, कि भगवान् के अनेक अवतारों में श्रीकृष्ण भी एक अवतार हैं।

हिंदू-मन्दिरों को मैंने कभी वेश्यालय नहीं कहा। किन्तु मैंने यह अवश्य कहा है और अब भी कहता हूँ, कि हिंदुओं के कुछ मन्दिर वेश्यालय के समान हैं।

मैं यह कभी नहीं कह सकता, कि 'सदाचार में मेरा विश्वास नहीं है', क्योंकि मेरी दृष्टि में धर्म और सदाचार ये दोनों पर्याय-वाची शब्द हैं। मेरे तमाम लेख इस बात का साक्ष्य देते हैं।

वास्तव में, मैं मूर्ति-भंजक हूँ, यदि मैं मूर्ति-पूजक भी हूँ। झूठे देवताओं के सामने मैं कभी अपना मस्तक नहीं झुकाता।

पाँचवाँ अवतरण तो एक ऐसा कुफ़्र है, जिसे मैं कभी मुँह से निकाल ही नहीं सकता। अगर मैंने हिंदू-धर्म को शैतानी से भरा धर्म माना होता, तो उसका मैंने बहुत पहले परित्याग कर दिया होता।

सनातनियों-द्वारा प्रकाशित पत्रों में ऐसे अंगभंग या विकृत लेख छापने से सनातन धर्म को कोई लाभ होने का नहीं।

'हरिजन' से]　　　　मो० क० गांधी

बिहार ही क्यों ?

एक विद्यार्थी लिखता है :—

"भूकंप के विषय का आपका लेख पढ़ा। मैं विज्ञान का विद्यार्थी हूँ, इसलिए मैं यह नहीं मान सकता, कि भूकंप का अस्पृश्यता से कुछ संबंध है। आप भूकंप को हमारे

पाप का परिणाम मानते हैं। यह तो निरा वहम है। पर मान लीजिए, कि ऐसा संबंध है, तो भूकंप बिहार में ही क्यों आया ? अस्पृश्यता के पाप में तो सारा ही हिंदुस्तान सना हुआ है। कृपया इस शंका का निवारण कीजिए। आप पर मेरा पूरा विश्वास है। मगर आपकी यह बात तो किसी तरह गले के नीचे नहीं उतरती।"

विज्ञान के विद्यार्थी को जितना समझ में न आवे उतना न मानने का अधिकार नहीं। विज्ञान का विद्यार्थी नम्र होता है। जो बात वह सुने उसे झट से ठुकरा न दे, उस पर उसे विचार करना चाहिए। इस संसार में थोड़ी ही चीज़ों को हम समझ सकते हैं, अगणित वस्तुओं को नहीं समझ सकते। इसी से ज्ञानियों को ज्यों-ज्यों ज्ञान प्राप्त होता जाता है, त्यों-त्यों वे नम्र बनते जाते हैं; क्योंकि ज्ञानी का ज्ञान तो अपने अज्ञान का पहाड़ देखने में है। जितना ही गहरा वह उतरता है, उतना ही वह देखता है, कि वह तो कुछ भी नहीं जानता। बल्कि जितना वह जानता है, वह सब उसका अनुमान ही है। ऐसा लिखकर मैं विज्ञान का खंडन नहीं करना चाहता। अल्प ही क्यों न हो, वह ज्ञान का उपयोग तो है ही। किन्तु जितना जानने को है, उसे देखते हुए तो हमारा उपलब्ध ज्ञान समुद्र के बिंदु से भी न्यून है।

इस जगत् में जीवमात्र का मूल एक ही है, और इसी से मूलस्वरूप में सब एक ही हैं। इसमें वनस्पति से लेकर मानव-प्राणीतक सभी का समावेश हो जाता है। जो यह समझता है, उसकी दृष्टि में एक जीव का दुःख उन सब जीवों का दुःख है, एक का सुख उन सबका सुख है। अतएव स्यागवृत्ति में सच्चा सुख माना है, और है भी। इसलिए यदि वह विद्यार्थी जीवमात्र का ऐक्य स्वीकार करता है, तो बिहार के दैवी दण्ड में सभी आ जाते हैं। जिन्हें भूकंप का स्पर्श मालूम नहीं हुआ, वे कुछ अछूते नहीं रहे। प्रत्यक्ष रीति से उन्हें अनुभव नहीं हुआ, तो यह उनका अज्ञान समझना चाहिए। बिहार ही क्यों, और दूसरा प्रांत क्यों नहीं, यह ईश्वर से पूछनेहारे हम कौन हैं ? उसकी कला समझ में नहीं आती। उसकी तो अविगत गति है। इसी से जहाँ बुद्धि की गति नहीं, वहाँ श्रद्धा काम देती है।

यह हम अनेक उदाहरणों से सिद्ध कर सकते हैं, कि भौतिक घटनाओं का अध्यात्म के साथ संबंध होता है। भौतिक वस्तु की उत्पत्ति भी एक ही शक्ति से होती है। अतः भौतिक तथा आध्यात्मिक के बीच में अनिवार्य भेद नहीं है। वर्षा का होना एक भौतिक घटना है, पर उसका संबंध मनुष्य के सुख-दुःख के साथ तो है ही। तो फिर उसके पाप-पुण्य के साथ उसका संबंध क्यों नहीं ? संसार के इतिहास में ऐसा समय हमें याद नहीं पड़ता, कि जब असंख्य लोगोंने भूकंप आदि घटनाओं को मनुष्य के पाप के साथ न जोड़ा हो। आज भी अनेक स्थानों में धार्मिक मनुष्य इस संबंध को मानते हैं।

हमारे किस पाप के कारण ऐसा संकट आता है, यह कोई समझ नहीं सकता। स्वर्ण नियम तो यह है, कि इसे सब लोग अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक पाप का दंड मानें। 'तुम्हारे पाप की बदौलत यह संकट आया है' ऐसा कहने में अभिमान है। 'मेरे पाप से यह हुआ है,' ऐसा मानने, में नम्रता है, ज्ञान है। जो लोग अस्पृश्यता को पाप नहीं मानते उन्हें यह मनवाने का मेरा प्रयत्न है ही नहीं, कि भूकंप अस्पृश्यता-पाप का फल है। वे तो खुशी से मानें, कि यह मेरे पाप का परिणाम है। ऐसी घटनाओं में सत्य-असत्य का अंतिम निर्णय अपूर्ण मनुष्य कर ही नहीं सकता। हमारे अपने पाप की बदौलत भूकंप आया, इतना विश्वास यदि मैं अपने पाठकों को करा सका, तो मैं समझूंगा, कि मेरा काम पूरा हो गया। फिर तो अस्पृश्यता को महापाप माननेवाले भूकंप के साथ उसका संबंध जोड़कर समझ पर उस पाप का यथाशक्ति प्रायश्चित करेंगे ही।

'हरिजन-बंधु' से] मो० क० गांधी

स्वागत-समितियों को चेतावनी

प्रान्तीय हरिजन-सेवक-संघों के नाम ठक्कर बापाने जो गश्ती चिट्ठी भेजी थी, उसके उत्तर में हमारे पास उन सब स्थानों से मेरे स्वागत-सम्बन्धी हिसाब-किताब के काग़ज़-पत्र आ रहे हैं, जहाँ-जहाँ मैं हरिजन-कार्य के सम्बन्ध में गया हूँ। खंडवा से, जहाँ ३०००) से ऊपर की थैली मुझे दी गई थी, जो हिसाब आया है, उसमें क़रीब ४०) की रक़म तो मेरे मानपत्र की छपाई की और कुछ रक़म स्वयंसेवकों के लिए वर्दियाँ बनवाने की मद में लिखी हुई है। दूसरी मदों के बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है, हालांकि उनमें भी मुझे फ़िज़ूलखर्ची मालूम देती है। मगर मानपत्रों और स्वयंसेवकों की वर्दियों के या ऐसे ही दूसरे खर्च थैली-खाते में डाले जायँ, तो इससे वह स्वागत सिर्फ़ एक स्वांग ही नहीं, बल्कि पतन की ओर ले जानेवाली चीज़ बन जाता है। स्वागत करना ही हो, तो मुद्रित या सुसज्जित मानपत्रों के लिए अलग से रुपया एकत्र किया जाय, और वह भी हरिजन-थैली के अर्थ धन-संग्रह कर चुकने के पश्चात्। महँगा या खर्चीला स्वागत हर्गिज़ हरिजन-दौरे का बाधक न बने। यह सब बिल्कुल ही अनावश्यक है। कुछ थोड़ा-सा स्वागत-प्रदर्शन, मेरा ख़याल है, अनिवार्य और आवश्यक है। लेकिन जब वह स्वेच्छा से किया जाता है, तब उस पर एक पैसा भी खर्च नहीं होना चाहिए—और अगर ज़रूरी ही हो, तो उसके लिए अलग से पैसा इकट्ठा कर लेना चाहिए और वह इस ढंग से किया जाय, कि थैली के लिए संग्रह का आनेवाली रक़म में उसकी वजह से किसी तरह की कमी न आवे। बिल्ले इत्यादि बनवाना ठीक नहीं। और मानपत्रों के बजाय मुझे हरिजन-कार्य का संक्षिप्त विवरण दे दिया जाया करे, और वह स्पष्ट अक्षरों में हाथ से लिखा हुआ रहे। बस, उससे काम चल जायगा।

खंडवे के खर्चे का यह उल्लेख वहाँ की स्वागत-समिति के दोष ढूँढ़ने के इरादे से नहीं किया गया है। खंडवे की समिति की तरह शायद कई स्वागत-समितियोंने ऐसा ही किया होगा। उन्होंने हरिजन-थैली की रक़म में से उस व्यक्ति को मानपत्र तथा बिल्ले इत्यादि भेंट करने का अनौचित्य ठीक तौर से अनुभव नहीं किया, जो एक सच्चा हरिजन-सेवक होने का दावा किया करता है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

गांधीजी के दक्षिण बिहार के प्रवास का कार्यक्रम

[जिन स्थानों के आगे * ऐसा चिह्न लगा हुआ है, वहाँ के पते पर पत्र इत्यादि भेजे जायँ ।]

	तारीख़	प्रातःकाल	सायंकाल	रात्रि
एप्रिल	२५	आरा	बक्सर *	रेलगाड़ी में
	२६	देवघर	गया *	गया
	२७	गया	हज़ारीबाग़ *	हज़ारीबाग़
	२८	बरमो	झरिया *	झरिया
	२९	पुरुलिया	राँची *	राँची
	३०	....	राँची *	....
मई	१ से ३ तक	....	राँची *	....
	४	तातानगर	तातानगर *	रेलगाड़ी में

उड़ीसा का कार्यक्रम

मई	५	....	संबलपुर *	....
	६	अंगुल	रेलगाड़ी में	पुरी *
	७ से ८ तक	....	पुरी *	....
	९	पुरी	पुरी *	कटक
	१०	....	कटक *	....
	११	केन्द्रपाड़ा	केन्द्रपाड़ा *	रेलगाड़ी में
	१२	....	भद्रक *	....
	१३ से १५ तक	....	बालासोर *	....
	१६	बरहमपुर	रंभा *	रेलगाड़ी में

अस्पृश्यता प्राणघातक है

[श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के नागपुर में दिये भाषण से ।]

जान पड़ता है, कि दुर्वासा-सरीखे किसी ऋषिने हिन्दुओं को यह शाप दिया है, कि वे अपने भाई और बहनों को भूल जायँ । हरिजनों के साथ हिन्दू जैसा व्यवहार करते हैं, वह शकुन्तला के प्रति किये गये दुष्यन्त के व्यवहार से भी बढ़कर तीखा है । कुछ लोगों का विचार है, कि हरिजनों को धार्मिक सुविधाएँ देने के पहले उनकी आर्थिक दशा सुधारनी चाहिए, किन्तु मुझे तो इससे बढ़कर मूर्खतापूर्ण दूसरी कोई योजना नहीं देख पड़ती, कि पहले तो शिक्षा-दीक्षा देकर हरिजनों का स्थान समाज में ऊँचा किया जाय और फिर भी उनके साथ ऐसा व्यवहार होता रहे कि समाज में उनकी स्थिति ऐसी ही नीची बनी रहे । किसी को शिक्षित बनाकर उसे समानाधिकार से वंचित रखना कटुता और घृणा को बढ़ाना है । कुछ लोग कहते हैं, कि उन्हें भोजन दो, परन्तु धार्मिक अधिकार देने के लिए परेशान न हो । परन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि हरिजनों के सिर्फ पेट ही नहीं है और न वे गूँगे जानवर ही हैं । वे मनुष्य हैं, जो रोटी से भी बढ़कर कोई चीज़ चाहते हैं ।

मन्दिर-प्रवेश तथा अस्पृश्यता-निवारण बिलों के सम्बन्ध में कुछ लोग यह भ्रम फैलाते फिरते हैं, कि इनसे धर्म में हस्तक्षेप होता है । मन्दिर-प्रवेश बिल से किसी को डरने की ज़रूरत नहीं है । वह धर्म में हस्तक्षेप नहीं करता । किसी स्थान के सवर्ण हिन्दू यदि अपने यहाँ के मन्दिरों को हरिजनों के लिये भी खोल देना चाहते हैं, तो वे अभी ऐसा नहीं कर सकते । परन्तु मन्दिर-प्रवेश बिल के पास हो जानेपर वे मन्दिर का द्वार हरिजनों के लिए खोल सकेंगे । परन्तु यदि वे मन्दिर को हरिजनों के लिए न खोलना चाहेंगे, तो वर्तमान प्रस्तावित बिल उन्हें मन्दिर खोलनेके लिए बाध्य नहीं करेगा । जो लोग यह दलील पेश करते हैं कि मन्दिर-प्रवेश के पक्ष में लोकमत जागृत करने से ही काम हो जायगा, वे भूलते हैं; क्योंकि अभी जो क़ानूनी अड़चनें हैं, उन्हें तो वर्तमान क़ानून में संशोधन करके ही दूर किया जा सकता है । लोग शास्त्रों की दुहाई देते हैं । उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि शास्त्रों के विधान अपरिवर्तनशील नहीं हैं । यदि परिवर्तन सम्भव न होता, तो आज हिन्दू सम्प्रदाय के अन्तर्गत इतने विभिन्न सम्प्रदाय न देख पड़ते । यह सब को अच्छी तरह मालूम है कि रामानुजाचार्यने अपने समय के प्रचलित मन्दिरों के नियमों में परिवर्तन किये थे । हिन्दुत्व को यह अभीष्ट नहीं है कि उसके अनुयायी विवेकहीन कार्य करें । स्वयं शास्त्रों का भी यही मत है कि मनुष्य को परमात्मा से सबसे बड़ी वस्तु विवेक मिला है । शास्त्र अपने सम्बन्ध में भी यह व्यवस्था देते हैं कि वे केवल प्रचलित प्रथा के लेखबद्ध प्रमाण हैं, अतएव जिन परिवर्तनों से समाज में प्राण-शक्ति का संचार होता है, उनका विरोध करना तो मृत्यु को गले लगाने के समान है ।

इस वर्ष के लिए 'डेविड-छात्रवृत्तियाँ'

इस वर्ष अखिल भारतीय हरिजन-सेवक-संघ 'डेविड-फंड' की ६६ नई छात्रवृत्तियाँ उन हरिजन विद्यार्थियों को देना चाहता है, जो संयुक्त बोर्ड-द्वारा प्रमाणित या स्वीकृत किसी भी शिक्षण-संस्था में उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं । १०) से २०) तक की मासिक ४४ साधारण छात्रवृत्तियाँ प्रत्येक प्रार्थी को, उसकी योग्यता और परिस्थिति पर उचित विचार करके, दी जायँगी । और १५) से २५) तक की २२ छात्रवृत्तियाँ औद्योगिक तथा शिल्पादि संबंधी शिक्षा के लिए सुरक्षित रखी गई हैं ।

छात्रवृत्ति-संबंधी आवेदनपत्र, 'प्रधान मंत्री, हरिजन-सेवक-संघ, बिड़ला-मिल्स, दिल्ली' के पते पर भेजने चाहिएँ ।

प्रत्येक आवेदन-पत्र पर उस शिक्षण-संस्था के अध्यक्ष की, जहाँ विद्यार्थी पढ़ता है, सिफ़ारिश तथा स्थानीय दो प्रतिष्ठित सज्जनों की तसदीक होनी चाहिए ।

३१ मई, १९३४ को या उसके पहले आवेदनपत्र अवश्य ही दिल्ली के हेड आफ़िस में आ जाने चाहिएँ ।

अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों को या उन्हें, जो सरकारी अथवा अन्य छात्रवृत्तियाँ पा रहे हैं, आवेदनपत्र भेजने की आवश्यकता नहीं । स्कूलों में पढ़नेवाले विद्यार्थियों को ये छात्रवृत्तियाँ नहीं दी जायँगी ।

इस आफ़िस के द्वारा निर्धारित फ़ार्मों पर लिखे हुए आवेदनपत्रों पर ही विचार किया जायगा ।

'डेविड-शिक्षा-छात्रवृत्तियों' की नियमावली हरिजन-सेवक-संघ के हेड आफ़िस से बिना मूल्य मिलती है ।

अमृतलाल वि० ठक्कर
प्रधानमंत्री
हरिजन-सेवक-संघ, दिल्ली

कोल्हापुर दरबार के छै हुक्मनामे

[बात है तो पुरानी, पर शिक्षा ग्रहण करनेवालों के हक़ में तो उसमें अबभी नित्य नूतनता है । एक आदर्श हरिजन-प्रेमी नरेश की बात है । हमारा अभिप्राय वर्तमान कोल्हापुर-नरेश श्रीमान् शाहु छत्रपति महाराज के अनुकरणीय हरिजन-प्रेम से है । सन् १९१९ में कोल्हापुर-दरबार की ओर से हरिजनों के हितार्थ जो राजकीय आज्ञाएँ प्रचारित की गई थीं, उन्हें हम इतनी पुरानी होने पर भी इस दृष्टि से यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं, कि हमारे देशी राज्य अबभी कोल्हापुर-दरबार का अनुकरण कर सकते हैं, और इस तरह कम-से-कम भारतवर्ष के एक तृतीयांश पर से तो अस्पृश्यता का यह काला कलंक धुल सकता है । कोल्हापुर-दरबारने आज से प्रायः १५ वर्ष पहले जो छै हुक्मनामे जारी किये थे, उन्हें हम इसी विचार से नीचे दे रहे हैं—संपादक ।]

हुक्म नं० १ पत्र-नं० ७६, २० अगस्त १९१९ ई०

अस्पृश्य जातियों के जो लोग राज्य की नौकरी में दाखिल हो गये हैं उनके साथ अर्थ-विभाग, न्याय-विभाग और साधारण विभाग के समस्त अफसर अवश्य कृपा और बराबरी का बर्ताव करें । इस आज्ञानुसार अस्पृश्य लोगों से बर्ताव करने में यदि राज्य के किसी कर्मचारी को कुछ आपत्ति हो, तो वह इस आज्ञा के मिलने के ६ सप्ताह के अन्दर अपने पद से इस्तीफ़ा देने का नोटिस दे दे और फिर इस्तीफ़ा दे दे । उसे पेन्शन पाने का कोई अधिकार नहीं होगा ।

हुक्म नं० २–पत्र नं० ८०, २२ अगस्त १९१९ ई०

शिक्षा-संस्थाओं को जो सरकारी मकान दिये गये हैं और उनकी निज की जायदाद नहीं है इसलिए उन्हें कोई अधिकार नहीं, कि अस्पृश्य कहे जानेवाले मनुष्यों से वे ऐसी ज़बर्दस्ती का बर्ताव करें, बल्कि उनसे तो यह आशा की जाती है कि वे सदा मेहरबानी का बर्ताव करेंगी । शिक्षा-संस्थाएँ ग़रीबों के लिए ही खुली हैं ।

ग़रीब-से-ग़रीब अस्पृश्य भी वहाँ बराबरी का बर्ताव पाने का हक़ रखता है । वे अस्पृश्य भी सब प्रकार के कर देते हैं, तब उनके साथ बुरा बर्ताव क्यों किया जाता है ? आशा की जाती है कि राज्य की और निज की समस्त शिक्षा-संस्थाएँ, जो राज से आर्थिक सहायता या इमारत तथा व्यायाम-भूमि आदि के रूप में सहायता पाती हैं, अस्पृश्यों के साथ स्पृश्य से भी बढ़कर रियायत और मेहरबानी का बर्ताव करेंगी, क्योंकि स्पृश्य तो अपना काम चला ही लेंगे, परन्तु अस्पृश्य सब प्रकार से निराधार हैं । यदि अस्पृश्यों से बराबरी का बर्ताव नहीं किया जायगा तो प्रिंसिपल से लेकर छोटे मास्टरतक सबसे जवाबतलब किया जायगा और जो सहायता निज के स्कूलों को दी जाती होगी वह बन्द कर दी जायगी ।

हुक्म नं० ३–पत्र नं० ८१, २२ अगस्त १९१९ ई०

ये मकान अस्पतालों को उनकी जायदाद के तौर पर नहीं दिये गये हैं, इसलिए उन्हें अधिकार नहीं है कि वे अस्पृश्य लोगों के साथ ऐसा ज़बर्दस्ती का बर्ताव करें, बल्कि उनसे आशा की जाती है कि वे उनके साथ हर तरह की रियायत करें । खैराती संस्थाएँ ग़रीब लोगों के लिए ही हैं ग़रीब-से-ग़रीब अस्पृश्य को भी यह हक़ प्राप्त है कि उसके साथ बराबरी का बर्ताव किया जाय । आशा करते हैं कि राज का डाक्टरी विभाग इस विषय में विदेशियों—विशेषतः मिरज के अमेरिकन मिशन—की अच्छी मिसाल का अनुकरण करेगा । कोई रोगी, चाहे वह अस्पृश्य हो या स्पृश्य, जब रेज़ीडेंशियल क्वार्टर्स में जाय तो उसके साथ सज्जनता का व्यवहार किया जाय । यदि ऐसा करने में डाक्टरी विभाग के किसी आदमी को कुछ आपत्ति हो तो वह इस हुक्म को पाने के ६ सप्ताह के अन्दर अपना इस्तीफ़ा भेज दे । उसे पेन्शन का कोई अधिकार नहीं होगा । चाहे किसी अफसर को कितना भी कठिन कार्य करना पड़े, उससे आशा की जाती है कि वह सबसे प्रथम ग़रीबों की ख़बर लेगा । डाक्टरी विभाग के सर्वोच्च अफ़सर से लेकर साधारण कंपाउंडर और दाई तक पर यह नियम लागू होगा । डाक्टरी विभाग के प्रत्येक नौकर को और आगे होनेवाले नौकरों को, इस आज्ञा की एक-एक नक़ल दी जायगी और एक नक़ल अस्पताल के आफ़िस में टांग दी जायगी, जिससे सदा उसका पालन होता रहे ।

हुक्मनामा नम्बर ४

हमारे राज्य में (जागीरों के सिवाय) अस्पृश्य जातियों के लिए जो ख़ास स्कूल कायम हैं । वे सब आगामी दशहरे से बन्द कर दिये जाँय और उनके लड़के दूसरी जातियों के लड़कों के साथ सार्वजनिक स्कूलों में पढ़ें । स्कूलों की स्थापना में स्पर्शास्पर्श का कुछ भी विचार नहीं रक्खा गया है, इसलिए सब जातियों के लड़के एकसाथ बिठाये जायँ ।

हुक्मनामा-५, पत्रनम्बर १७१, ११ अक्तूबर १९१९ ई०

किसी प्रकार का भी स्पर्शास्पर्श का विचार सरकारी इमारतों, धर्मशालाओं, सरायों, राज-क्षेत्रों, नदी-तट पर नहीं किया जायगा । इन स्थानों में कोई आदमी अस्पृश्य नहीं समझा जायगा । यदि इस [हुक्मनामा] के विरुद्ध कुछ होगा, तो गाँव के पटेल और कुलाही (नम्बरदार, और पटवारी) जिम्मेदार समझे जायँगे ।

हुक्म—६-पत्र नं० ७५१, २ मई सन १९२० ई०

अस्पृश्य जातियों से राज-परिवार के लोगों के लिए राज के दफ्तर ले जाने के सिवाय और किसी तरह साहरमौंग आदि बेगार का काम नहीं लिया जायगा । राज्य का कोई अफसर, चाहे वह दीवान, स्टेट रिजेंट या एडमिनिस्ट्रेटर के दर्जे का भी हो, उक्त जातियों के किसी भी आदमी से कोई भी काम ज़बर्दस्ती नहीं लेगा । यदि कोई पटेल (नम्बरदार) बेगार में ले जाय, तो वह अपने वेतन से रहित किया जायगा । इसी प्रकार उनको भी दण्ड दिया जायगा, जो मुफ्त काम करायँगे । यह आज्ञा फौरन प्रकाशित की जाय, और प्रकाशित होने की तारीख़ से जारी की जाय ।"

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupte.

संपादक—वियोगी हरि "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥) (पोस्टेज-सहित)

पता— 'हरिजन-सेवक' बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २७ एप्रिल, १९३४. [संख्या १०

विषय-सूची

आसाम का पत्र

(१)

निर्देशिका

१२ एप्रिल

रूपसी : सार्वजनिक सभा, मानपत्र, थैली १००१); महिलाओं की सभा। रूपसी से धूबड़ी, १० मील, मोटर से। धूबड़ी : सार्वजनिक सभा, म्यूनिसिपैलिटी का मानपत्र, थैली ५०१)। गौरीपुर : धन-संग्रह ६२)। धूबड़ी से बसबारी, १५ मील, मोटर से। बसबारी से बारपेटा रोड, ७३ मील। बसबारी से चपराकाटा : धन-संग्रह १९५=)॥ मोरमोग : धन-संग्रह ९३॥=)॥ हावली : धन-संग्रह १८=)। सोरूपेटा : धन-संग्रह ७॥-)॥ बारपेटा रोड से बारपेटा, १२ मील, मोटर से। बारपेटा : सार्वजनिक सभा; जनता तथा मवडिवीज़न और हीराकुमारों के मानपत्र : थैली ५००), फुटकर धन-संग्रह १४०=)१०); कैवर्तों की थैली ५०), बानियों की थैली १०); हीराकोगों की थैली १०)। महिलाओं की सभा में मानपत्र तथा थैली १०१)। श्री इन्द्रसेन पाठक, २५०)। बारपेटा से बारपेटा-रोड, १२ मील, मोटर से।

बारपेटा से रंगिया, ३३ मील, रेल से। रंगिया : प्रातः प्रार्थना, धन-संग्रह ३९॥)। रंगिया से रंगपाड़ा, ७७ मील, रेल से। गौरेश्वर : धन-संग्रह ९॥)॥ टाँगला : धन-संग्रह १४२॥-) ओडलगुरि से बिहुकुई : धन-संग्रह १४३॥।) रंगपाड़ा से तेज़पुर, १४ मील, रेल से। तेज़पुर : हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण; सार्वजनिक सभा, जनता तथा विद्यार्थियों के मानपत्र, थैली ५०१); महिलाओं की सभा, धन-संग्रह १५=)। स्टीमर-से तेज़पुर से गौहाटी के लिए प्रस्थान, १०० मील।

१३ एप्रिल

गौहाटी : सेवा-आश्रम का उद्घाटन, कुष्ठाश्रम तथा हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण; हरिजन-नेताओं से मुलाकात, कार्यकर्ताओं की सभा; सार्वजनिक सभा, म्यूनिसिपल बोर्ड, लोकल बोर्ड, सबडिवीज़न, पुण्यार्थ क्लब तथा हरिजनों के मानपत्र; सार्वजनिक थैली ८१०); पुण्यार्थ क्लब से १००)।

१४ एप्रिल

गौहाटी : महिलाओं की सभा। मानपत्र और थैली २००), फुटकर धन-संग्रह १५५॥=) १०। मारवाड़ियों की सभा, थैली २०२)।

तीन दिन में कुलयात्रा : ३८२ मील।

रूपसी की सभा में

१० एप्रिल को अर्द्ध रात्रि को गांधीजीने आसाम प्रांत में पदार्पण किया; और ११ तारीख को सबेरे रूपसी और धूबड़ी की सार्वजनिक सभाओं में उन्होंने भाषण दिये। रूपसी के भाषण का सारांश नीचे दिया जाता है:—

"एक मुद्दत के बाद मैं आज आसाम में आया हूं। मुझे आपके प्रांत में आकर प्रसन्नता हुई है। अबकी बार मैं हरिजन-कार्य के संबंध में अपना संदेश सुनाने आया हूँ। अस्पृश्यता सचमुच हिंदूधर्म का एक महान् कलंक है। अगर हमने समय रहते इस कलंक को न मिटाया, तो हम खुदही मिट जाएँगे, दुनिया में हमारा नाम-निशान न रहेगा। आपने मुझे जो मानपत्र और थैली दी है, उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ; मेरी दृष्टि में ये दोनों चीज़ें आपके इस निश्चय की सूचक हैं, कि आप अपने नित्य के व्यवहार में अस्पृश्यता को निर्मूल करते जाएँगे। यह कहा जाता है, कि आसाम और बंगाल में अस्पृश्यता नाममात्र को ही है। परन्तु मेरा तो ऐसा ख़याल नहीं है। आँकड़े तो कुछ और ही बतलाते हैं। मनुष्य मनुष्य के बीच में जब हम भेद-भाव स्थिर करते हैं, ऊँच-नीच की श्रेणियाँ जब हम बनाते हैं, तब निश्चय ही हम अस्पृश्यता-पाप के अपराधी बन जाते हैं। आसाम में भी यह भेद-भाव काफी देखने में आता है। जिनके प्रति यह भेद-भाव बरता जाता है, जो नीच समझे जाते हैं, उन्हें क्या ठीक वैसा ही बुरा न लगता होगा, जैसा कि भारत के किसी अन्य प्रांत के अस्पृश्यों को लगता है। फिर दूसरे प्रांतों से आये हुए भंगियों, डोमों और चमारों को आप नीच-से-नीच समझते हैं। यही क्यों, मुसलमानों, ईसाइयों और अन्य संप्रदायों के साथ भी किसी-न-किसी रूप में अस्पृश्यों-जैसा ही बरताव किया जाता है। एक जाति दूसरी जाति से अपने को बड़ी समझती है। यही तो अस्पृश्यता है। इसलिए अस्पृश्यता-निवारण का अर्थ यह है कि सभी तरह के उच्च-नीच भावों से हमें छुटकारा मिल जाय और हम सब एकही सिरजनहार की सन्तानें आपस में समता का बरताव करने लगें, और इस तरह मानव-समाज में सच्चा विश्व-बन्धुत्व स्थापित करलें। मुझे यह कहते तनिक भी संकोच नहीं होता, कि हमारे धर्मशास्त्रों में अस्पृश्यता के लिए कहीं को

प्रमाण नहीं है। जिस अस्पृश्यता का मैंने आपसे वर्णन किया है और जिसे हम व्यवहार में ला रहे हैं, वह न्यूनाधिक रूप में भारत में सर्वत्र ही मौजूद है। इस महान् पवित्र कार्य की सफलता के लिए मैं आप लोगों के आशीर्वाद और सहयोग का इच्छुक हूं।"

श्री श्री शंकरदेव

उसी दिन गांधीजी बारपेटा गये। श्री शंकरदेव के पट्ट-शिष्य श्री माधवदेव-द्वारा संस्थापित वैष्णव-सत्र के लिए यह स्थान प्रसिद्ध है। पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में महान् सुधारक श्री शंकरदेव हुए थे। वह अपने सहपाठियों में जैसे सबसे अधिक प्रतिभावान् थे, वैसे ही खेल-कूद में भी सबसे आगे रहते थे। यदि वे अपने समय के एक प्रकाण्ड विद्वान् थे, तो एक अच्छे तैराक भी थे। वे प्राय: ब्रह्मपुत्रा को तैरकर पार कर जाते थे। श्री शंकरदेवने गीता और भागवत के उदार वैष्णव धर्म का आसामियों को उपदेश किया। उन्होंने पशुओं के बलिदान की निंदा की, और केवल सर्वेश्वर भगवान् की शरण ग्रहण करने के लिए लोगों से कहा। उन्होंने केवल हरि-नाम-संकीर्तन पर ज़ोर दिया। महाप्रभु श्री चैतन्यदेव की तरह श्री शंकरदेवने भी निगूढ़ या कष्टसाध्य कर्मकाण्ड एवं साधनों से लोगों को अलग रखा। लेखक भी वे बड़े अच्छे थे। उन्होंने आसामी भाषा में भागवत का पद्यात्मक अनुवाद किया। उनकी वैकुण्ठ-यात्रा के पश्चात् उनके मुख्य शिष्य श्री माधवदेव और श्री दामोदरदेवने उनके उपदेशों का चारों ओर दूर-दूरतक प्रचार और प्रसार किया। श्री शंकरदेव का प्रेमपूर्ण वैष्णवधर्म आसाम प्रदेश का राष्ट्रीय धर्म बन गया।

श्री शंकरदेव का संप्रदाय अत्यंत उदार है। सभी जाति और सभी धर्म-मजहब के लोगों को, बिना किसी भेद-भाव के, उन्होंने अपने वैष्णवधर्म में दीक्षित किया। इसलिए यह बड़े दु:ख की बात है, कि कई वैष्णव जातियाँ, दीक्षा-संस्कार के दिन के अतिरिक्त, और कभी मंदिरों में प्रवेश नहीं कर सकतीं। बारपेटा के वैष्णव कॅवलोंने उस दिन यह शिकायत की, कि उनपर ३००) का जुर्माना सत्राधिकारियोंने इस अपराध पर कर दिया है, कि उनके कुछ युवक लड़के मंदिर में चले गये थे।

बारपेटा में गांधीजी चंद घण्टे ही ठहरे थे। डेरा बड़ा सुन्दर और सादा था। सभा-मंच छत्र की तरह बनाया गया था, जिस में एक विशेष सुन्दरता थी। गांधीजीने अपने भाषण में इस बात पर सबसे अधिक ज़ोर दिया, कि वास्तव में हमारी दुर्वासनाएँ ही अस्पृश्य हैं। मानव-हृदय को ये अस्पृश्य वासनाएँ विकृत और भ्रष्ट कर रही हैं। हमारा यह धर्म है, कि इन आन्तरिक अस्पृश्यों को हम सदैव दूर रखें। परमात्मा की रची इस सृष्टि में कोई मनुष्य अस्पृश्य नहीं हो सकता। हाँ, आपके देश में एक अस्पृश्य और है। वह है अफीम। यह अस्पृश्य अफीम आप के आसाम को धीरे-धीरे निष्प्राण करती जा रही है। अपने इस धूर्त शत्रु को तो आप अपनी सारी शक्ति लगाकर देश से निकाल बाहर करदें।

प्रात:प्रार्थना के समय

१२ एप्रिल को बारपेटा से तेज़पुर जाते हुए रंगिया की रेलवे-स्टेशन पर काफ़ी देरतक गाड़ी ठहरी। गांधीजीने प्रात: प्रार्थना वहीं स्टेशन पर की। प्रार्थना के बबाद, उन्होंने स्टेशन पर एकत्रित लोगों से जो कहा, उसका सार-मर्म नीचे दिया जाता है:—

"प्रभात-प्रार्थना के समय यों तो मैं आपलोगों से कुछ भी कहना पसंद न करता; पर चूंकि जो कार्य मुझे आसाम तक खींच लाया है, वह मेरे लिए इतना गहरा धार्मिक कार्य है, कि प्रार्थना के साथ सभा जोड़ देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। सबसे पहले मैं आप सब लोगों से, जो यहाँ इतनी बड़ी संख्या में एकत्र हुए हैं, एक बात कहूँगा। आप इसी तरह नित्य बड़े तड़के उठा करें, और सबेरे तथा सोने के पहले दोनों समय प्रार्थना किया करें। पड़ोसी एकत्र न होसकें, तो आप कुटुंब-वालों के ही साथ बैठकर प्रार्थना करें, और कुटुंबवाले भी एकत्र न होसकें, तो अकेले ही भगवान् का नामस्मरण कर लिया करें। यह नित्य का अभ्यास अगर आप डाललें, तो आप देखेंगे, कि हृदय से की हुई ईश्वर-प्रार्थना कैसी शांतिदायिनी वस्तु होती है। जिस दिन का प्रारंभ ऐसे सुंदर मंगलाचरण से हो, उसकी समाप्ति भी शुभ ही होगी। आज सबेरे की प्रार्थना में हमने यह श्लोक कहा था—

'न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दु:खतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥'

अर्थात्, हे प्रभो, न मुझे राज्य चाहिए, न स्वर्ग, मुझे मोक्ष-पद की भी इच्छा नहीं है। दु:ख से पीड़ित प्राणियों का क्लेश दूर हो, बस, इतनाही मैं चाहता हूं।

यह कोई हाल का रचा हुआ श्लोक नहीं है। यह तो एक पुरातन सनातन प्रार्थना है। प्रभु से नित्यप्रति यह प्रार्थना भी करें और अपने कुछ करोड़ भाइयों के साथ अस्पृश्यों-जैसा बरताव भी करें, यह दोनों बातें एकसाथ कैसे चल सकती हैं? उन बेचारों का जीवन पैरों से कुचला जारहा है। उनके साथ ऐसा सलूक किया जाता है, जैसा कोई पालतू जानवरों के साथ भी न करेगा। उपर्युक्त आशय की सच्चे हृदय से प्रार्थना करनेवाला व्यक्ति क्या कभी ऐसा पापकृत्य करेगा? आज आप दो में से एक कोई चीज़ चुनलें—अस्पृश्यता या प्रार्थना। मेरी तो यह सलाह है, कि आप प्रार्थना को ही चुनें और अस्पृश्यता को अपने हृदय से निकाल बाहर करदें। अस्पृश्यता को आप एक घोर पाप समझें। अस्पृश्य यदि कोई है तो वह हमारे बुरे विचार हैं, बुरी वासनाएँ हैं। हमारे ये कुविचार ही हमसे नित्य बुरे-से-बुरे पाप कराते हैं। इन अस्पृश्यों को हमें नष्ट कर देना चाहिए। आपके आसाम में एक और वास्तविक अस्पृश्य है। मेरा मतलब अफीम से है। भारत के अन्य भागों में इस दुर्व्यसन का इतना भयंकर अभि-शाप देखने में नहीं आता है। अफीम खाने की यह लत बुद्धि को कुण्ठित कर देती है, और काहिली को बढ़ाती है। इससे कोई भी लाभ नहीं होता, ऐसा मेरा विश्वास है। इसलिए अगर आप मेरी सलाह मानें, तो मैं आप से कहूंगा, कि ईश्वर से आप नित्यप्रति यही प्रार्थना करें कि किसी भी मनुष्य को अस्पृश्य न समझने की वह आपको शक्ति दे और यह बुद्धि दे, कि आप अपने प्रत्येक कुविचार को अस्पृश्य समझें। यदि आपको अफीम खाने की लत लगी हुई है, तो ईश्वर से प्रार्थना कीजिए, कि वह इस दुर्व्यसन के छुड़ाने में आपका सहायक हो।"

भाषण के अंत में गांधीजीने उपस्थित लोगों से हरिजन-कार्य के लिए पैसे माँगे। उन्होंने कहा, कि आपका यह श्रद्धा-युक्त दान आपके अस्पृश्यता-त्याग के निश्चय का एक प्रमाण समझा जायगा। जनता में शायद ही कोई ऐसा होगा, जिसने कुछ-न-कुछ गांधीजी को न दिया हो।

तेज़पुर में सिवा एक के सभी मन्दिर और नामघर हरिजनों के लिए खोल दिये गये हैं। तेजपुर में रातको तीसरे पहर गांधीजी स्टीमर पर सवार हुए, और १३ अप्रिल को सबेरे गौहाटी पहुँचे।

सेवा-आश्रम

गौहाटी में गांधीजीने 'आसाम-सेवा-आश्रम' का उद्घाटन किया। इस आश्रम को कुछ ऐसे कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओंने स्थापित किया है, जिन्होंने कांग्रेस के केवल रचनात्मक कार्य में अपने को लगा दिया है। उन लोगोंने दो तो खादी-केन्द्र खोल रखे हैं, और एक हरिजन-पाठशाला भी वे चला रहे हैं। आश्रम में दो हरिजन बालक रहते हैं। खादी-केन्द्रों से लोगों को रुई दी जाती है और उसके बदले में बना-बनाया कपड़ा उनसे लिया जाता है। एक मन रुई देकर बदले में ८ धोतियाँ ली जाती हैं। धुनाई और कताई का भी इस अवसर पर प्रदर्शन किया गया था। किन्तु उससे गांधीजी को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने आश्रम के कार्यकर्त्ताओं से कहा, कि इस तरह काम चलने का नहीं, उन्हें तो खादी बनाने की तमाम विधियों में पूरी योग्यता भली भाँति प्राप्त कर लेनी चाहिए।

म्यूनिसिपैलिटी का कुष्ठाश्रम

सेवा-आश्रम से कुष्ठि-सेवा-प्रेमी श्रीयुक्त फूकन गांधीजी को म्यूनिसिपैलिटी का कुष्ठाश्रम दिखाने ले गये। हमारे देश में गौहाटी की ही एक ऐसी म्यूनिसिपैलिटी है, जो कुष्ठरोगियों के आश्रम-स्थान का इतनी अच्छी तरह से संचालन कर रही है। अन्य म्यूनिसिपैलिटियों को गौहाटी की म्यूनिसिपैलिटी का अनुकरण करना चाहिए। सिबसागर ज़िले के गज़ेटियर में श्री एलनने लिखा है, कि 'आसाम में कुष्ठरोग बहुत अधिक फैल गया है; और कुछ ऐसे कारण हैं, जिससे कि इसे दूर करने का एक भी वैज्ञानिक उपाय अबतक सफल नहीं हुआ।' आसाम में ही सब से अधिक संख्या कुष्ठरोगियों की पाई जाती है। और इस हिसाब से समस्त भारत में यही प्रांत सबसे अधिक कुष्ठरोग-ग्रस्त है। कामरूप का ज़िला तो इस दुष्ट रोग का जैसे घर ही है। प्रति १०००० पुरुषों में कामरूप में १४, आसाम में १३ और भारतवर्ष में ५ कुष्ठरोगियों का अनुपात आता है।

आसाम की दूसरी म्यूनिसिपैलिटियाँ भी गौहाटी की म्यूनिसिपैलिटी का उदाहरण सामने रखकर इस दिशा में बहुत-कुछ काम कर सकती हैं। कुष्ठाश्रम के कुष्ठियोंने अपनी पीड़ित गलित उँगलियों से गांधीजी के पैर छुए। अक्सर तो गांधीजी अपने पैर छूने से लोगों को मना कर देते हैं, पर वहाँ यह समझकर नहीं रोका कि कहीं वे बेचारे भूल से यह न समझ बैठें, कि उनका स्पर्श गांधीजी के लिए आपत्तिजनक था।

हरिजन-बस्तियों में

इसके बाद गांधीजी वहाँ की हरिजन-बस्तियाँ देखने गये। उन्होंने हरिजनों से कहा, कि घरों में सुअर पालना अच्छा नहीं, क्योंकि इससे हमेशा ही गंदगी रहती है। एक ग़रीब हरिजन बहिन गांधीजी के पैरों पर गिर पड़ी और उसने उन्हें १) भेंट किया। हमें बतलाया गया, कि वह बहिन विधवा थी। बेचारी ग़रीब, अछूत और विधवा का वह रुपया था। ऐसे पवित्र और अमूल्य हरिजन-कोष का पैसा हमें बड़ी सावधानी से ख़र्च करना चाहिए, इस बात पर गांधीजीने काफ़ी ज़ोर दिया।

गौहाटी की सार्वजनिक सभा में गांधीजीने कहा—"मैं यहाँ की म्यूनिसिपैलिटी को धन्यवाद नहीं दे सकता। यहाँ की हरिजन-बस्तियाँ मनुष्यों के रहने-लायक नहीं हैं। यह कहना व्यर्थ है, कि हरिजन गंदी रहन से रहते हैं। अगर वे गंदे हैं, तो यह म्यूनिसिपैलिटी का ही काम है, कि वह उनकी गंदी आदतें छुड़ादे। यह अच्छी बात है, कि कामाख्या देवी का तथा और अनेक प्रसिद्ध मंदिर हरिजनों के लिए खोल दिये गये हैं। पर इतने से ही संतोष नहीं होना चाहिए। हरिजनों को जबतक आपने अन्य हिन्दुओं के बिलकुल बराबर नहीं कर दिया, तबतक आपको संतोष नहीं होना चाहिए। यों देखा जाय तो मेरी ६४ वर्ष की यह अवस्था आराम करने की है। पर मैंने ऐसा नहीं किया। मैं जगह-जगह जो अपना संदेश सुनाता फिरता हूँ, वह इसीलिए कि मेरा यह आध्यात्मिक उद्देश है। जबतक हमारे पवित्र भारतवर्ष में अस्पृश्यता की यह दानवी मौजूद है, तबतक मेरे लिए शांति से बैठना नामुमकिन है।

वालजी गोविंदजी देसाई

एक दृष्टि आसाम पर

भूकम्प के देश से भूकम्प के देश को

आसाम भी बिहार की तरह भूकम्प का देश है। सन् १८९७ में इस प्रान्त में बड़ा भयानक भूकम्प आया था। शिलांग, गौहाटी और सिलहट नगर को उस करारे धक्केने तबाह कर दिया था। १५०० से ऊपर आदमी मरे थे। सर एडवर्ड गेट-लिखित 'आसाम के इतिहास' के ३४४-३४५ पृष्ठ में इस भूकम्प की भीषणता इस प्रकार वर्णित की गई है:—

"इतना विस्तृत और हत्यारा धक्का था, कि जिन्हें उसकी भीषणता का स्वयं अनुभव नहीं हुआ, वे उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। खड़ा रहना असम्भव था। धरातल समुद्र की तरह हिलोरें ले रहा था। बड़े-बड़े वृक्ष झूले की नाईं झूलते, और धरतीतक झुक-झुक जाते थे। भारी-भारी चट्टानें उछल रही थीं। ऐसा लगता था, जैसे नगाड़े पर चोटें पड़ रही हों। कुछ ही क्षणों या पलों में, तमाम आलीशान इमारतें उस उथल-पुथल में ढह गईं। कछार की ज़मीन में बड़ी-बड़ी दरारें हो गईं। रेत और पानी को जहाँ-तहाँ भूगर्भने निकाल फेंका। नदियाँ रेत से पट गईं। धरातल में बड़े-बड़े रद्दोबदल हो गये। सैकड़ों खेत धँस गये और खेती करने-लायक नहीं रहे। कई जगह सड़कें और रेल के बाँध व पुल बिलकुल ही नष्ट हो गये।"

संक्षिप्त इतिहास

आसाम देश का प्राचीन नाम कामरूप है। पुराणों में प्रसिद्ध है, कि जब भगवान् शंकरने अपने प्रलयकर तृतीय नेत्र से कामदेव को भस्म कर दिया, तब उसे अपना सुन्दर

[१०० वें पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २७ एप्रिल, १९३४

एक सुधारक की कठिनाई

एक सज्जन लिखते हैं :—

"अस्पृश्यता-निवारण-कार्य के सिलसिले में, मालूम होता है, आप कुछ ऐसे विचार व्यक्त कर रहे हैं, जो आपके 'यंग इंडिया' में प्रकाशित पहले के लेखों से मेल नहीं खाते। दोनों में कुछ असंगति-सी मालूम देती है। उदाहरण लीजिए,—कुछ वर्ष पहले आपने लिखा था, कि अन्तर्भोज के प्रतिबंध का नियम आत्म विकास के ख़याल से बनाया गया था, किन्तु 'वर्णधर्म' का वह कोई अंग नहीं है। अब, अगर आप आत्म-विकास के लिए अन्तर्भोज के प्रतिबंध की आवश्यकता या औचित्य को क़बूल करते हैं, तो आप यह कैसे कह सकते हैं, जैसा कि आजकल आप कह रहे हैं, कि अस्पृश्यता के आधार पर किसी अस्पृश्य के साथ बैठकर खाने में एतराज करना एक पाप है? मैं आपकी इस बात से तो सहमत हूँ, कि अन्तर्भोज-विषयक प्रतिबंध वर्णधर्म का कोई अंग नहीं है; पर यह मेरी समझ में नहीं आता, कि अन्तर्भोज के कारण आत्म-विकास में बाधा क्यों पड़ती है।"

यहाँ दोहरा घुटाला हुआ है। उक्त उदाहरण में,अस्पृश्यता के आधार पर अन्तर्भोज-संबंधी प्रतिबन्ध आत्म-विकास-विषयक प्रतिबन्ध से सर्वथा भिन्न चीज़ है। पहले प्रतिबंधने जहाँ उस समूचे वर्ग को ही बाहर कर रखा है, जिसका अस्तित्वतक अस्वीकार किया जा रहा है,वहाँ दूसरे प्रकार का प्रतिबंध किसी व्यक्ति को, किसी विशेष जाति में जन्म लेने के कारण, अन्तर्भोज से बाहर नहीं रखता। किन्तु हाँ, उन व्यक्तियों को वह बाहर रख सकता है, जो कुछ ख़ास बुरे व्यसनों के आदी हों। इस प्रकार अस्पृश्यता के आधार पर जो प्रतिबंध माना जाता है वह तो अस्पृश्यों पर ज्यों-का-त्यों लागू रहता है, उनकी बुरी-भली आदतों से उसका कोई प्रयोजन नहीं। और जो प्रतिबंध आत्म-विकास के आधार पर किसी व्यक्ति पर लगाया गया होगा, वह उसी क्षण ढीला पड़ जायगा, जिस क्षण कि वह अपनी आपत्तिजनक आदतों का परित्याग कर देगा। इसलिए 'यंग इंडिया' के उस लेख के तथा मेरी वर्तमान स्थिति के दर्म्यान कोई असंगति नहीं है। 'यंग इंडिया' में मैंने जो मत प्रगट किया था, उसका अगर मैं बचाव न भी कर सकूँ, तो भी मेरे इस कथन से लेखक का संदेह दूर हो जाता है, कि अस्पृश्यता के आधार पर अन्तर्भोज-संबंधी आपत्ति को जो मैंने निंदनीय बतलाया है, उसका 'यंग इंडिया' में उल्लिखित प्रतिबंध से कोई वास्ता नहीं।

लेखकने एक और प्रश्न पूछा है। वह यह कि, वैष्णव-साहित्य में जो निश्चित या अटल मर्यादाएँ बाँध दी गई हैं, उनके साथ मेरी इस स्थिति का कैसे मेल बैठेगा? प्रश्न युक्ति-संगत है। मुझे क़बूल कर लेना चाहिए, कि मैं इन दो स्थितियों के बीच मेल मिलाने में असमर्थ हूं। यद्यपि वैष्णव-धर्मावलंबी होने का मुझे गर्व है, तथापि मेरे गर्व को इस बात की अपेक्षा नहीं है, कि मैं वैष्णव-साहित्य-द्वारा निर्धारित तमाम विधि-विधानों की पाबंदी ही करूं। वैष्णवधर्म से मैं इसलिए चिपटा हुआ हूं, कि वह विश्व-प्रेम अर्थात् विश्व-बन्धुत्व की शिक्षा देता है। सत्य और अहिंसा के पूर्ण परिपालन पर वह सब से अधिक ज़ोर देता है, और भगवान की निष्काम भक्ति का आग्रह रखता है। हिंदुओं के धार्मिक तथा गार्हस्थ्य साहित्य में संकुचितता, असहिष्णुता और हठधर्मी की जो खरी निंदा वैष्णव संतों तथा अन्य लेखकोंने की है, वह अनुपम है, और अन्यत्र दुर्लभ है। इसलिए मुझे उन सब विधि-विधानों की परेशानी में पड़ने की ज़रूरत नहीं, जो प्रत्यक्ष ही वैष्णवतत्त्व के विपरीत हैं।

अंत में वह सज्जन लिखते हैं—"हम अपनी शंकाओं का स्वयं समाधान नहीं कर सकते। आपके किये बेहतर निर्णय को हम मान लेते हैं। लेकिन जब आपके उपदेशों पर हम चलते हैं, तो हमें सदा यह ख़तरा रहता है, कि कहीं हमारे प्रिय बन्धु-बान्धवतक हमारा बहिष्कार न कर दें। ऐसी परिस्थितियों में, कहिए, क्या किया जाय?"

इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। इसका निश्चय तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी कष्टसहन की शक्ति के अनुसार ही कर सकता है। जिन्हें यह महसूस होता हो कि अस्पृश्यता एक प्रकार का पाप है, वह तो उसे किसी भी रूप में न मानही सकते हैं,न व्यवहार में ही ला सकते हैं। मुझे हर एक सुधारक से यह आशा करनी चाहिए, कि उसे जो भी सामाजिक दंड भोगना पड़े,उसके लिए उसे अपने विश्वास के बल पर साहसपूर्वक तैयार रहना चाहिए। दुनियाभर के सुधारकों की यही दशा हुई है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

एक दृष्टि आसाम पर

[९९ वें पृष्ठ से आगे]

स्वरूप यहीं पुनः प्राप्त हुआ था। इसी से इस देश का नाम कामरूप पड़ गया। नरकासुरने, जिसे विदेहराज जनकने पाला-पोसा था, कामरूप को जीत लिया, और प्राग्ज्योतिषपुर (वर्तमान गोहाटी) को अपनी राजधानी बनाया। इस प्रतापी नरकासुर का वध अन्त में श्री कृष्णने किया और उसने जो १६००० राजकन्याएँ अपने अन्तःपुर में क़ैद कर रखी थीं, उन सब को बन्धन-मुक्त करके यदुराज कृष्णने द्वारावती भेज दिया।

नरकासुर के बाद उसका पुत्र भगदत्त वहाँ का राजा हुआ। किन्तु दुर्योधन के साथ मिल जाने के कारण वह कुरुक्षेत्र के रणाङ्गण में गांडीवधारी अर्जुन के हाथ से मारा गया।

कोहित या रघुने अपने दिग्विजय के समय ब्रह्मपुत्रा नदी को पार करके प्राग्ज्योतिषपुर के राजा को पराजित किया, जिसने अधीनता स्वीकार करके राजा कोहित को भेंट में बहुत-से हाथी दिये।

यह तो हुई पौराणिक युग की झाँकी। अब हम ऐतिहासिक काल में आते हैं। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुयेन साँग, जिसने मगध के सुविख्यात नालन्द-विश्वविद्यालय में विद्याध्ययन किया था, आसाम देश के राजा भास्कर वर्मा के बुलाने पर कामरूप गया था। शिलादित्यने जो महान् भिक्षा-दान-समारम्भ किया था, उसमें हुयेन साँग के साथ राजा भास्कर वर्मा भी सम्मिलित हुआ था। शिलादित्य के आमंत्रित अतिथि राजाओं में भास्कर वर्मा को सर्वश्रेष्ठ पद दिया गया था। उस प्रसिद्ध दान-यज्ञ के जुलूस में इन्द्ररूपधारी शिलादित्य की दाहिनी ओर भास्कर वर्मा ही ब्रह्मा के भेष में हाथी पर सवार था।

राल्फ़ फ़िच सोलहवीं शताब्दी में आसाम आया था। उसने लिखा है :—

"ये लोग सब अहिंसक हैं। ये किसी भी प्राणी का वध नहीं करते। यहाँ भेड़ों, बकरियों, कुत्तों, बिल्लियों, चिड़ियों और तमाम प्राणियों के लिए अस्पताल बने हुए हैं। जब ये जानवर बूढ़े और लँगड़े-लूले हो जाते हैं, तब ये लोग उन्हें अन्त-कालतक अपने यहाँ रखते हैं और उनकी सेवा करते हैं। यदि कोई आदमी किसी पशु-पक्षी को पकड़ लेता है या कहीं बाहर से खरीदकर यहाँ लाता है, तो ये दयावन्त लोग उसे रुपये पैसे देकर उस प्राणी को या तो अपनी सेवा-शालाओं में रख लेते हैं, या उसे छोड़ देते हैं। ये लोग चींटियों को चुगाते हैं।······ बादाम इन आसामियों की सम्पत्ति है, जिसे वे प्रायः खाने के काम में भी लाते हैं।"

ब्रह्मपुत्रा के तटपर धूबड़ी नाम के एक छोटे-से क़स्बे में सिक्खों का 'दमदम गुरुद्वारा' है। गुरु तेगबहादुर की आज्ञा से उनके वीर सैनिकोंने सन् १६६५ में यहाँ एक सुन्दर कृत्रिम पहाड़ी बनाई थी। इसे बनाने के लिए ये लोग पहाड़ी से अपनी-अपनी ढालों में मिट्टी भर-भरकर लाये थे।

दारू और अफ़ीम

उत्तरी लखीमपुर के बारे में सन् १८७९ में सर विलियम हंटरने लिखा था, कि 'यहाँ की करीब एक चौथाई बालिग आबादी अफ़ीम खाने की आदी है। प्रति मास आदमी पीछे करीब दो औंस अफ़ीम खप जाती है।' इस दुर्व्यसन के लिए लखीमपुर, मालूम होता है, हमेशा ही बदनाम रहा है। ग्वालपाड़ा ज़िले के गज़ेटियर (१९०५) में श्री बी० सी० एलन लिखते हैं—'यद्यपि लखीमपुर की जन-संख्या सन् १९०१ में ग्वालपाड़े की जन-संख्या की ⅘ थी, तो भी लखीमपुर की आबकारी की आय सन् १९०३—१९०४ में अठगुनी अधिक थी। इसका मुख्य कारण यह है, कि लखीमपुर में अफ़ीम की बहुत ज़्यादा खपत है।' सच पूछिए तो पहले पहल बेप्टेन वेल्श के सिपाहियोंने आसाम में अफ़ीम का प्रवेश कराया था। पेट की शिकायत दूर करने के लिए वे अफ़ीम का थोड़ा सेवन करते थे। लेकिन तब से बेचारे आसामी तो इस लत के बुरी तरह से गुलाम हो गये हैं। विभिन्न ज़िलों में ⅓ से लेकर ½ तक सिर्फ़ अफ़ीम से ही आबकारी की आय होती है। और अभागे लखीमपुर में तो अफ़ीम की सालाना आमदनी, ज़मीन की मालगुज़ारी से भी, २ लाख रुपये अधिक की है। एलन साहबने एक नक़्शा दिया है, जिससे इस बात का पता चलता है, कि ग्वालपाड़े ज़िले में देशी दारू की किस वर्ष कितनी दूकानें थीं और उनसे कितनी चुंगी वसूल होती थी। उस नक़्शे को मैं नीचे उद्धृत करता हूँ :—

सन्	दूकानें	चुंगी से आमदनी
१८७३—७४	४	१२०)
१८७९—८०	१२	४०६०)
१८८९—९०	२१	१७१५१)
१८९९—१९००	२८	२६०३९)

अन्य ज़िलों के भी आँकड़े यही रोना रोते हैं।

हाथ की कती-बुनी खादी

गांधीजी के खादी के आदर्श को तो आसाम प्रांत पूर्णतया बहुत प्राचीन समय से मानता चला आ रहा है। आज भी यह धंधा यहाँ देखने में आता है। आसामी परिवार में कातना-बुनना अब भी गृहस्थी का एक अंग समझा जाता है। अपने "आसाम के आँकड़ों के विवरण (१९७९)" में, कामरूप ज़िले के बारे में, हंटर साहबने लिखा है—'हर गृहस्थ के यहाँ एक-एक करघा रहता है, जिस पर घर की स्त्रियाँ गृहस्थी के लिए आवश्यक वस्त्र स्वयं बुन लेती हैं।'

दारंग ज़िले की रिपोर्ट में श्री रालिन्सन लिखते हैं—'यह मूगा रेशम का धंधा यहाँ बिना पूँजी के, बिना कल-कारखानों के, अकेले व्यक्तियों के ही द्वारा चल रहा है—प्रत्येक व्यक्ति कातता है, बुनता है और अपना बनाया थान खुद रँग लेता है।'

नवगाँव के विषय में हंटर साहबने लिखा है—'कपड़े तो यहाँ कई क़िस्म के तैयार होते हैं, पर सिर्फ़ स्थानीय खपत के लिए ही।'

और शिवसागर ज़िले के बारे में हंटर का यह कहना है, कि—'रेशम और सूत के कपड़ों की बुनाई ही यहाँ की मुख्य दस्तकारी है। पर सब कपड़ा घरू उपयोग के लिए बुना जाता है।'

लखीमपुर के किसानों के विषय में लिखते हुए हंटर साहब कहते हैं—'अपना तथा अपने परिवार का तन ढाकने के लिए ये लोग रेशम के कीड़े पालते हैं, और उनकी स्त्रियाँ कपड़े बुनकर तैयार कर लेती हैं।' और भी—'यहाँ की दस्तकारी में मूगा रेशम का वस्त्र-निर्माण मुख्य है। ये लोग खुद ही अपने लिए कपड़ा तैयार करलेते हैं। प्रत्येक परिवार अपनी-अपनी ज़रूरत के कपड़े खुद ही बना लेता है, बेचने के लिए तो शायद कभी कोई नहीं बुनता। ········ आसाम में ऐसी कोई ख़ास जाति नहीं है, जो मूगा के कपड़े तैयार करके उससे अपनी रोज़ी चलाती हो। घर की स्त्रियों के हाथ से ही पूरी तरह से यह दस्तकारी है।'

अंत में, उत्तरी लखीमपुर के बारे में हंटर साहब लिखते हैं—'प्रायः जितना भी रेशम पजता है, वह सब यहाँ के लोगों की घर-गृहस्थी के ही काम में आता है।'

ऊपर का यह अधिकांश विवरण सन् १८७९ का लिखा हुआ है। १९०५ में प्रकाशित एलन के 'ग्वालपाड़ा-गज़ेटियर' को भी मैंने देखा है। इन २५ साल के बीच में बहुत ज़्यादा परिवर्तन होगया। प्रत्यक्षदर्शी श्री एलन कहते हैं 'अमीर-ग़रीब सभी के घरों में सूती कपड़े बुने जाते हैं। प्रायः प्रत्येक घर में एक या अधिक करघे दिखाई देते हैं। यद्यपि पहाड़ी इलाके में कपास की पैदावार होती है, और जंगलों में अनेक

प्रकार के रंगों की जड़ी-बूटियाँ भी पैदा होती हैं, तो भी बाहर का सूत काम में लाया जाता है। ..... स्त्रियाँ अपने ख़ाली समय का उपयोग चूँकि सिर्फ़ कपड़े बुनकर ही करती हैं, इसलिए घर के बुने कपड़े से गाँववालों का बहुत-कुछ पैसा बच जाता है।' कामरूप के गज़ेटियर में ओ'एलनने लिखा है—'इधर कुछ सालों से, बाहर से आये हुए कपड़े को लोग लेने लगे हैं। यह अच्छा नहीं हुआ। पहले करघे पर बेकारी का जो समय लगाया जाता था, वह अब किसी दूसरे वैसे ही उपयोगी धंधे में नहीं लग रहा है।'

अब आज क्या स्थिति है इसका परिचय प्राप्त करने के लिए मैंने सबसे पीछे सन् १९३१ में प्रकाशित आसाम का मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट देखी, जिसमें लिखा है, कि खेती-पातीके अलावा, ख़ाली समय में लोग दस्तकारी की जो चीज़ें तैयार करते हैं, उनसे उन्हें कुछ-न-कुछ पैसा तो मिल ही जाता है। इन घरू उद्योग-धंधों में मुख्य धंधा है हाथ की कताई और बुनाई। सेंसस सुपरिंटेण्डेण्ट श्री मूलनने ग्रामवासियों की अवस्था का दृश्य इस प्रकार चित्रित किया है—'किसान अपने बैलों से खेत जोत रहा है। उसकी स्त्री अपना करघा चला रही है—और वह चाय के बग़ीचे का मजूर खुर्पी और चाकू लिये चाय के पौधे काटने-छाँटने में लगा हुआ है।'

रिपोर्ट के साथ नक़शा (नं० ३) में ये आँकड़े दिये हुए हैं :—

धंधा	काम करनेवालों व मज़दूरों की संख्या		प्रति १००० पुरुषों के पीछे स्त्रियों की सं०
	पुरुष	स्त्रियाँ	
सूतका कातना और बुनना	३०४८	२२२४८६	७२९९४
रेशम का कातना, और बुनना	२०४	१११७	५४७५

इस नक़शे से यह प्रगट होता है, कि सन् १९३० में भी स्थिति कुछ बहुत बुरी नहीं थी। डटकर अच्छी कोशिश की जाय, तो १८८० से लेकर १९३० तक पचास वर्ष में बुनाई-कताई का जो धंधा गिर गया है, वह अब भी उसी दरजे को पहुँच सकता है, और सन् १८७९ में हंटर के समय में आसाम में जो सुख-समृद्धि थी, वह फिर ज्यों की त्यों वहाँ लौट सकती है।

हरिजन और पिछड़ी हुई जातियाँ

लोथियन कमेटी के लिए श्री मूलनने जो नोट तैयार किया था, उसके अनुसार आसाम में कोई दूरित (Unapproachable) जाति नहीं है। सभी जातियों के लड़के तमाम स्कूलों और कालेजों में बिना रोक-टोक के दाख़िल होते हैं। सार्वजनिक तालाबों और कुओं से सभी जातियाँ पानी भरती हैं, किसी तरह की कोई कठिनाई नहीं है। इन सब कारणों से श्री मूलनने हरिजनों का 'दलित' (Depressed) विशेषण उड़ा कर उन्हें 'हिन्दू बाह्य जातियाँ' (Hindu exterior Castes) यह नाम दिया है। वह लिखते हैं :—

'बाह्य जाति' शब्द के प्रयोग से मेरा हरगिज़ यह अर्थ बताने का इरादा नहीं है, कि वे जातियाँ कब तक या ऊँचे दरजे तक कभी पहुँच ही नहीं सकतीं। इसके विपरीत, मैं तो इसका यह अर्थ बताऊँगा, कि ऐसा हो सकता है—इसके पहले ठीक ऐसा ही हुआ है। बाह्य जाति का, कुछ समय में, आन्तरिक जाति में परिणत हो जाना सम्भव है।'

इसके समर्थन में श्री मूलनने शाहा लोगों का उदाहरण दिया है। लिखते हैं, 'यों तो शाहा जाति धंधे के कारण अस्वच्छ समझी जाती है, पर अपने निजी प्रयत्न और उद्योग से यह जाति अब उस दरजे को पहुँच गई है, कि ऊँची जातियाँ उसे उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकतीं।' और सूत एवं नाथ-जैसी 'अनि-बाह्य जातियों' के विषय में वह लिखते हैं, कि 'अगले दस वर्ष के अन्दर, संभव है, कि ये जातियाँ और भी अधिक सामाजिक अधिकार प्राप्त करलें और साधारणतया हिंदुओं की आंतरिक जातियों में आ जायँ।' सूत और नाथ अपने को 'दलित जातियों' में शामिल नहीं कराना चाहते और इस पर उन्हें भारी आपत्ति है।

श्री मूलन के अनुसार ब्रह्मपुत्रा की घाटी में इन बाह्य जातियों की आबादी १८३००० है। इस प्रदेश की कुल जन-संख्या ४३२३२९३ है।

पिछड़ी हुई जातियों में ये दो प्रकार की जातियाँ हैं—

(१) जंगली जातियाँ—इनमें नागा, गारो आदि कुछ पहाड़ी जातियाँ हिंदुधर्म से अब भी अछूती हैं; और मैदान में रहनेवाली मीरी, राभा आदि अन्य जातियाँ हिंदू-संस्कृति में आ गई हैं।

(२) चायबाग़ान के कुली—इनकी आबादी १० लाख से ऊपर है। इनमें ६ लाख चायबाग़ान में काम करते हैं, और बाक़ी के क़रीब ४ लाख मीयाद पूरी हो जानेवाले कुली बाग़ीचों के बाहर रहते हैं।

वालजी गोविन्दजी देसाई

तब अस्पृश्यता कहाँ थी ?

(४)

दाशराज्ञ के बाद, या उसके परिणामस्वरूप ऋग्वेद्-काल समाप्त हो गया और आर्यों का समाज एवं संस्कार बहुत-कुछ बदल गये। भारत और कुरुपांचाल मध्यदेश में आकर बस गये। (२४) आर्य और दस्युओं का भेद लुप्त हो गया, और उसके बजाय आर्य तथा शूद्र ये दो नये भेद उठ खड़े हुए। ऋग्वेद संहिता के बहुत समय पश्चात् रचे गये ब्राह्मणों तथा संहिताओं में शूद्र और आर्य एक दूसरे के अंग माने जाने लगे।

'सहस्राक्ष देव इस वनस्पति को मेरे दाहिने हाथ में रखदे, जिससे मैं शूद्र एवं आर्य सभी को देख सकूँ।' (२५) समस्त जनता के दो भाग, शूद्र और आर्य हो गये। ये दोनों, रात और दिन की नाईं, पारस्परिक सम्बन्धी माने गये (२६)

आर्य ऋषियोंने गाया है, कि वे शूद्रों के भी प्रिय हों :—

'हे दर्भ ! मुझे ब्राह्मण और क्षत्रिय का प्रिय बना। मुझे शूद्र और आर्य का भी प्रिय बना। प्रत्येक मनुष्य जो मुझे चाहे उसका प्रिय बना। ऐसा कर कि मैं प्रत्येक मनुष्य का,

(२४) ऐतरेय ब्राह्मण ८–१४

(२५) तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आदधत्।

तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥ अथर्व वेद, ४–२०–४

(२६) नक्तदाभिरस्तुवत् शूद्रार्यौ असृज्येताम् अहोरात्र अधिपत्नी आस्ताम्। वाजसनेयी संहिता, १४–३०

जिसके देखने को आँख हो, प्रिय बनूं ।' (२७)

शूद्र अथवा आर्य दो में से एक के भी विरुद्ध पाप किया गया हो, तो वैदिक ऋषि उसकी शुद्धि का आकांक्षी है। (२८) ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों का कीर्ति-गान वह करता है। (२९) और चारों को एकसमान आशीर्वाद देता है। (३०)

दाशराज्ञ के कुछ समय पश्चात् चातुर्वर्ण्य की कल्पना की गई थी, जिसका सर्व प्रथम उल्लेख 'पुरुष सूक्त' में इस प्रकार मिलता है :—

'ब्राह्मण उस विराट् पुरुष के मुख में था। राजन्य (क्षत्रिय) उसके दोनों बाहु तथा वैश्य उसकी जंघा थे। और शूद्र उसके पैरों से उत्पन्न हुए।' (३१)

ऊपर के अवतरणों से यह स्पष्ट हो जाता है, कि पहले आर्य और दास ये दो विरोधी प्रजाएँ थीं। बाद में दास प्रजा को नयी समाज-व्यवस्था में ले लिया, और उन दासों में जो लोग आर्य-संस्कार ग्रहण न कर सके, वे शूद्र माने गये। वंशभेद और जातिभेद भुला दिया गया, और इस प्रकार एक नवीन वर्ण-व्यवस्था का आविर्भाव हुआ।

(५)

अब हमें यह देखना है कि उस समय शूद्रों तथा आर्यों के बीच में सामाजिक व्यवहार किस प्रकार का था। बहुत-से विद्वान् यह मानते हैं कि शूद्र दासों की एक जाति का नाम था। बाद में धीरे-धीरे सारा दास-समूह, जिसने आर्यों की विधियों को नहीं अपनाया, शूद्र कहलाने लगा। जैसे मध्यकालीन यूरोप में 'Serfs' सेवा करते थे, वैसे ही शूद्र समूह सेवा करता। परन्तु वे सेवा के कारण अधम या अस्पृश्य कभी न थे।

शूद्र मालदार थे। यज्ञ के लिए हृष्टपुष्ट बछड़े धनवान् शूद्र की गायों के झुंडों में से लेने का उल्लेख है। (३२) कुछ राजा ऐसे भी थे, जो शूद्रों को प्रधान बनाते और यज्ञ के समय अपने साथ रखते। यह सच है कि शतपथ ब्राह्मण के रचयिता को यह बात अयोग्य मालूम हुई थी, परन्तु यह निश्चत है कि शूद्र प्रधान होता और यज्ञ में भाग लेता था। शतपथ ब्राह्मणकार कहता है :—

"एक समय स्वर्भानु नामक असुरने सूर्य को अन्धकार से ढँक दिया। अंधेरा हो जाने से वह प्रकाशित नहीं हो सका। सोम और रुद्रने उस अंधकार का निवारण किया और आज वह उस पाप से निवृत्त होकर प्रकाशित हो रहा है। उसी प्रकार जो राजा यज्ञ के लिए अयोग्य व्यक्तियों को यज्ञ का स्पर्श कराता है वह अंधकार में प्रवेश करता है, जो शूद्र को तथा दूसरे अनधिकारियों को यज्ञ में आसन देता है उसका अंधकार सोम और रुद्र दूर कर देते हैं और पाप से निवृत्त होकर वह दीक्षा प्राप्त करता है।" (३३)

तीनों द्विजाति वर्ण तथा शूद्रों के बीच स्त्री-पुरुषों का सम्बन्ध उचित-अनुचित रूप से खूब होता था।

"उशिज नामक एक दासी अंग नामक राजा के घर में काम करती थी। पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से राजाने उसे महातप (दीर्घ तमस्) नामक ऋषि के पास भेज दिया। व महान् ऋषि उसे भक्तियुक्त देखकर पानी में से बाहर निकल आये और उसके द्वारा कक्षिवत् और अन्य ऋषियों को प्राप्त किया।" (३४)

कवष ऐलुष की कथा से भी इस सम्बन्ध में प्रकाश पड़ता है :—

"ऋषियोंने सरस्वती नदी के तीर पर एक यज्ञ किया। सोम में से उन्होंने कवष ऐलुष को निकाल बाहर किया। यह तो दासीपुत्र है; चोर है; अब्राह्मण है उसे हम लोगों के बीच दीक्षा कैसे दी जा सकती है? उन्होंने उसे मरुभूमि में निकाल दिया और कहा—"वहाँ भले ही वह प्यासा मर जाय। उसे सर स्वती का जल नहीं पीने देना चाहिए।" वह जंगल में भेज दिया गया। तृषा से पीड़ित ऐलुषने वहाँ 'अपोन पुत्रीय' मंत्र के दर्शन किये। "ब्राह्मण के लिए देव दौड़ते हुए आते हैं।" उसके

(२७) प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ अथर्ववेद, १९-३२-८

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ अथर्ववेद, १९-६२-१

(२८) यद्ग्रामे, यदरण्ये, यत्सभायां, यदिन्द्रिये, यच्छूद्रे, यदार्ये, यदेनश्चकृमा वयं, यदेकस्याधिधर्मणि तस्यावयजनमसि।

वाजसनेयी संहिता, २०-१७, काठक संहिता, ३८-५ और तैत्तिरीय संहिता, १-८-३-१

(२९) रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥

वा० सं० १८-४८, तै० सं० ५-७-६-४, का० सं० ४०-१३ और मैत्रायणी संहिता, ३-४-८

(३०) यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥

वा० सं० २६-२

(३१) ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

ऋग्वेद, १०-९०-१२

(३२) यो वै वैश्यः शूद्रो वा बहुपुष्टः स्यात् तस्य गवां सार्ध्दं वत्सतरं अपवर्जेत। मैत्रायणी संहिता, ४—२—७

(३३) स्वर्भानुर्हवाऽसुरः। सूर्यं तमसा विव्याध। स तमसा विद्धो न व्यरोचत तस्य सोमरुद्रावेवैतत्तमोऽपहतां स एषोऽपहतपाप्मा तपति तथोऽएवैष एतत्तमः प्रविशत्येनं वा तमः प्रविशति यदयज्ञियान् यज्ञेन प्रसजति, अयज्ञियान् वाऽएतद् यज्ञेन प्रसजति शूद्रांस्त्वद् यांस्त्वद् तस्य सोमरुद्रावेवैतत्तमोऽपहतः सोऽपहतपाप्मैव दीक्षते।

शतपथ ब्राह्मण, ५-३-२-२,

सेनान्यादीनां अयज्ञियत्वं प्रसिद्धं इत्याह—अयज्ञियान् वा इति। तामेव प्रसिद्धिं दर्शयति शूद्रानिति। त्वदित्येक पर्यायः। एकदा शूद्रान् सेनान्यादीन् त्वद् एकदा यान् कांश्च लौकिकलौकिकान् हीनजातीनपि यज्ञे प्रसजति। तेन अयज्ञियसम्बन्धेन तमः प्रविशति—इति अतः तस्य यष्टुः राजन्यस्य तथाविधं तमः सोमरुद्रौ एव एतद् एतेन चरुणा प्रीणितौ अपहतः विनाशयतः।

सायण भाष्य

(३४) अङ्गराजगृहे युक्ता उशिजं पुत्रकाम्यया।
राज्ञा च महिता दासी गत्वा स्वयं महातपाः।
जनयामास चोत्थाय कक्षीवत्प्रमुखानृषीन् ॥

बृहद्देवता, ४-२४-२५,

प्रताप से वह जल के प्रिय आवास में गया । उसके लिए पानी उछलकर उसके पास आया । उसके निकट सरस्वती दौड़ आई । इस कारण वह यहाँ 'परिसारक' कहा जाने लगा । क्योंकि सरस्वती उसके चारों ओर फिर गई । और तब ऋषियोंने कहा कि "देवताओंने उसे पहचाना है । उसे वापस बुलाना चाहिए ।" उन्होंने उसे वापस बुलाया और उसे 'अपोनपुत्रीय' किया ।" (३५)

उसी प्रकार पंचविंश ब्राह्मण और जैमिनीय ब्राह्मण में भी वत्स ऋषि की कथा है ।

वत्स और मेधातिथि दोनों कण्व ऋषि के पुत्र थे । मेधातिथिने वत्स से कहा—"तू अब्राह्मण है; शूद्र माता का पुत्र है ।" वत्सने कहा—"चलो, हम अग्नि में से होकर चलें और यह निश्चित करें कि हममें से कौन उत्तम ब्राह्मण है ।" वात्ससामन् का जप करके वत्स अग्नि में से होकर निकल गया । मेधातिथिसामन् मंत्र बल से मेधातिथि भी चला गया । उस अग्नि में वत्स का एक बाल भी नहीं जला । उस समय उसकी यही इच्छा थी । वत्स की इच्छा परिपूर्ण करनेवाला सामन् है । इसके द्वारा वह अपनी इच्छा-सिद्धि प्राप्त कर सकता है ।"(३६)

सत्यकाम जाबाल की कथा तो बहुत प्रसिद्ध है ।

"हरिद्रुमत् गौतम के पास जाकर उसने कहा—"मेरी इच्छा आपके पास रहकर ब्रह्मविद्या सीखने की है । मुझे अपने पास रहने दीजिए ।" उन्होंने पूछा—"हे प्रिय वत्स, तेरा गोत्र क्या है ?" उसने उत्तर दिया—"भगवन् ! मैं नहीं जानता कि मेरा गोत्र क्या है ? मैंने अपनी माता से पूछा, तो उसने कहा कि 'मैं अपनी जवानी के दिनों में इधर-उधर बहुत भटका करती थी और बहुतों को खुश किया करती थी और इससे तुम्हारा जन्म हुआ । मुझे पता नहीं कि तुम्हारा गोत्र क्या है ? लेकिन मेरा नाम जबाला है और तुम्हारा सत्यकाम ।' इससे हे भगवन् ! मैं सत्यकाम जाबाल हूँ ।" ऋषिने कहा—"अद्विज अब्राह्मण होता तो ऐसा न कहता । वत्स ! तू समिध ले आ । मैं तुझे यज्ञोपवीत दूँगा । तूने सत्य को नहीं छोड़ा है ।" (३७)

और सायण कहता है कि ऐतरेय आरण्यक और उपनिषद् का कर्ता महीदास ऐतरेय इतरा नामकी शूद्रा माता का पुत्र था ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि बड़े-बड़े विख्यात ऋषि शूद्राओं से शादी करते और उनके पुत्र ऋषिपद प्राप्त करते थे ।

महामुनि वसिष्ठ गणिका-पुत्र थे । तप से वे ब्राह्मण हुए । उसका कारण संस्कार था । मछुवे की कन्या से व्यास हुए; और चांडाली से पराशर । इस प्रकार बहुत-से अद्विज विप्रत्व को प्राप्त हुए । (३८)

इसके अलावा विवाह का भी स्पष्ट उल्लेख है ।

लोग गाय में, घोड़े में, हाथी में, सोने में, दासजाति की भार्या में खेत और घरों में महिमा देखते हैं । (३९)

आर्य और शूद्राओं का अनुचित सम्बन्ध भी सामान्य था ।

'हे ताप ! तू मूजवत में चला जा । नहीं तो उनसे दूर बाह्लिक लोगों में जाकर स्वच्छंदी शूद्रा कन्याओं को खोज और उनको कंपित कर ।' (४०)

मालूम होता है, ऋषिजो सचमुच शूद्रा लड़कियों से हारे हुए थे ।

(अपूर्ण)

'हरिजन-बन्धु' से] कन्हैयालाल मुंशी

---

(३५) ऋषयो व सरस्वत्यां सत्रमासत् ते वै कवषमलूषं सोमाद् अनयन् दास्याः पुत्रः कितवोऽब्राह्मणः कथं नो मध्येऽदीक्षिष्टेति तं बहिर्धन्वोदवहन्नत्रैनं पिपासा हन्तु सरस्वत्या उदकं मा पादिति स बहिर्धन्वोदूळ्हः पिपासया वित्त एतदपोनप्त्रीयमपश्यत् प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातु रेत्विति तेनापां प्रियं धामोपागच्छत् तमापोऽनूदायंस्तं सरस्वती समन्तं पर्यधावत् । तस्माद्धाप्येतर्हि परिसारकमित्याचक्षते यदेनं सरस्वती समन्तं परिससार । ते वा ऋषयोऽब्रुवन् विदुर्वा इमं देवा उपेमं ह्वयामहा इति तथेति तमुपाह्वयन्त तमुपाहूयैतद् अपोनप्त्रीयमकुर्वत प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्विति तेनापां प्रियं धामोपागच्छन्नुप देवानाम् ।

ऐतरेय ब्राह्मण, ८-१

माध्यमाः सरस्वत्यां सत्रमासत । तद्धापि कवषो मध्ये निषसाद । तं हेम उपोदुर्दास्या वै त्वं पुत्रोऽसि न वयं त्वया सह भक्षयिष्याम इति । स ह क्रुद्धः प्रद्रवन् सरस्वतीमेतेन सूक्तेन तुष्टाव । तं हेयमन्वेयाय । तत उ हेमे निरागा इव मेनिरे । तं हान्वावृत्योचुर्ऋषे नमस्तेऽस्तु मा नो हिंसीः त्वं वै नः श्रेष्ठोऽसि यं त्वेयमन्वेति इति । तं ह ज्ञपयां चक्रुस्तस्य ह क्रोधं विनिन्युः । स एष कवषस्यैव महिमा सूक्तस्य चानुवेदिता ।

कौषीतकी ब्राह्मण, १२-३

(३६) पंचविंश ब्राह्मण १४-६; जैमिनीय ब्राह्मण ३, २३४-२३५,

(३७) स ह (सत्यकामो जाबालः) हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति । तँ होवाच किं गोत्रो नु सोम्यासीति स होवाच नाहमेतद् वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरँ सा मा प्रत्यब्रवीद् बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रः त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि सोऽहँ सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति । तँ होवाच नैतद् अब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधँ सोम्याहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति ।

छांदोग्य उपनिषद् ४-४

(३८ अ) गणिकागर्भसंभूतो वसिष्ठश्च महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारास्तत्र कारणम् ॥
जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्यास्तु पराशरः ।
बहवोऽन्येऽपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्वमद्विजाः ॥

(३९) गोअश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राण्यायतनानीति ।

—छांदोग्य उपनिषद्, ७-२४-२

(४०) तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम् ।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि ॥

—अथर्ववेद, ५-२२-७

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupte.

संपादक—वियोगी हरि "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ४ मई, १९३४. [संख्या ११

विषय-सूची

आसाम का पत्र

(२)

निर्देशिका

१४ एप्रिल

गौहाटी से छपरमुख, रेल से ५७ मील। खेतरी इत्यादि में धन-संग्रह २२॥।-)।; छपरमुख इत्यादि में धन-संग्रह ११०॥।)॥; छपरमुख से नौगाँवः मोटर से १७ मील। विभिन्न ग्रामों में धन-संग्रह ११०॥।)॥; नौगाँवः सनातनियों तथा हरिजनों से भेंट, सार्वजनिक सभा, जनता का मानपत्र, थैली ५०१); महिला-सभा में धन-संग्रह २८)। नौगाँव से छपरमुख, मोटर से १७ मील। छपरमुख से फुरकटिंग, रेल से, १४२ मील।

१५ एप्रिल

फुरकटिंग से गोलाघाट, मोटरकार से, ४ मील। गोलाघाटः कार्यकर्ताओं तथा, अहोम, नागा और मिकीर आदि के नेताओं से भेंट; कताई का प्रदर्शन, हरिजन बच्चों को प्रसाद-वितरण; सार्वजनिक सभा, लोकलबोर्ड, म्यूनिसिपैलिटी तथा महिलाओं, कैवर्तों, पिछड़ी हुई जातियों और बालिका-संघ के मानपत्र; थैली ७००) महिलाओं की ओर से १४०-)२। गोलाघाट से जोरहट, मोटर से ३३ मील। गणकपुखरी में धन-संग्रह ४०)। ढेरगाँवः सभा, महिलाओं की ओर से मानपत्र तथा थैली ७०); जनता की थैली ४०)।

१६ एप्रिल

जोरहटः मौन-दिवस।

१७ एप्रिल

जोरहटः 'हरिजन' का संपादन-कार्य, मारवाड़ियों की थैली २७५); क्षत्रियों की थैली १२५)

१८ एप्रिल

जोरहटः हरिजन नेताओं से मुलाकात; श्री के० एन० शर्मा का निजी नामघर हरिजनों के लिए खोला गया; मुकरहट नामघर तथा हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण; बोरीगाँव का सत्रा नामघर समस्त हिन्दुओं के लिए खोला गया। स्व० रोहिणीकांत हाथीबरुआ-स्मारक-भवन की आधार-शिला रखी गई; महिला-सभा, मानपत्र तथा थैली ११०); बंगाली महिलाओं की थैली ४४।≋); सार्वजनिक सभा तथा जनता का एवं ज़िला-रैयत सभा, बार असोसियेशन और वाणी-सम्मेलन के मानपत्र, थैली २९३।≋)।; बार-असोसियेशन की ओर से १००), वाणी-सम्मेलन की ओर से ६०।≈)॥, रैयत-सभा की थैली २१)। जोरहट से शिवसागर, मोटर से ३३ मील। चारिंग में धन-संग्रह १००)। छै गाँवों में धन-संग्रह ८७≈)॥; शिवसागरः सार्वजनिक सभा, मानपत्र तथा थैली ११७२); महिला-सभा तथा थैली १०१); कालीप्रसाद-हाल का उद्घाटन; म्युनिसिपल और लोकलबोर्ड के मानपत्र।

१९ एप्रिल

शिवसागर से डिब्रूगढ़, मोटर से, ५२ मील। डीमाः धन-संग्रह ३८।)॥।; सेपानः धन-संग्रह ४३॥।)॥; औनः धन-संग्रह ४७॥।)॥; डोहिंगः धन-संग्रह २६)। डिब्रूगढ़ः कार्यकर्ताओं तथा हरिजनों से भेंट; महिलाओं की सभा, मानपत्र तथा थैली ७०।), फुटकर धन-संग्रह १७३॥≈)।; मारवाड़ी महिलाओं की सभा तथा थैली १५२।-)।; सार्वजनिक सभा, मानपत्र एवं थैली १३३९)

२० एप्रिल

डिब्रूगढ़ः 'पुअर एसलम' और हरिजन-बस्तियों तथा हरिजन-पाठशाला का निरीक्षण। डिब्रूगढ़ से तिनसुकिया, मोटर से ३० मील। छाबुआ में धन-संग्रह १७५)। तिनसुकियाः कुली-बस्तियों का निरीक्षण; सार्वजनिक सभा, मानपत्र तथा थैली ५७९।≈)॥।; मारवाड़ी सोसाइटी की थैली १०००)। तिनसुकिया से बिहार के लिए प्रस्थान, रेल से।

२० एप्रिलतक आसाम में कुल धन-संग्रहः १९३७३॥≈)

इस सप्ताह में कुल यात्राः ५१८ मील।

हरिजन-सेवा

१४ एप्रिल को गांधीजी नौगाँव गये और १५ तारीख़ को गोलाघाट पहुंचे। वहाँ उन्होंने कार्यकर्ताओं, हरिजनों तथा मिकिर जाति के मुखियों से भेंट की और कताई के प्रदर्शन को देखा। गांधीजीने हरिजन बच्चों को प्रसाद भी वितरण किया। गोलाघाट की सार्वजनिक सभा में गांधीजीने हरिजन-सेवा के संबंध में विस्तारपूर्वक लोगों को समझाया। उन्होंने कहा—"मैं चाहता हूं, कि आप मुझे हरिजन-सेवा की संक्षिप्त और काम की रिपोर्ट दें। मानपत्र अनावश्यक हैं। मानपत्रों पर एक पैसा भी ख़र्च नहीं होना चाहिए। अगर आपको मानपत्र देना ही है, तो अच्छे कागज पर सुंदर अक्षरों में हाथ से लिखकर

हिन्दी या अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ, मुझे दे दें। अगर वह छपाया जाय, तो छपाई का खर्च हरिजन-थैली से हरगिज़ न लिया जाय। थैली से छपाई इत्यादि का पैसा लेना तो एक तरह की चोरी या ग़बन है। इसी तरह सवारी तथा खाने पीने का खर्च भी थैली-खाते में न डाला जाय। अगर मुझे और मेरे साथियों को खिलाने-पिलाने को कोई तैयार न हो, तो मैं अपने मित्रों से माँग लूंगा, पर हरिजन-थैली में तो कदापि हाथ न लगाऊंगा। अगर पर्चे इत्यादि छपाकर प्रचार करना ज़रूरी मालूम हो, तो कार्यकर्ताओं को उस पर कुल धन-संग्रह के ५ प्रतिशत से अधिक कभी खर्च नहीं करना चाहिए। थैली में तो हाथ लगाना ही नहीं चाहिए। ५ प्रतिशततक के जो आवश्यक बिल हों वह सब संघ के प्रधानमंत्री को दे दें। मैं अपना स्वागत कराने के लिए यह दौरा नहीं कर रहा हूं। मैं तो हरिजनों की तरफ़ से काम करने, जनता को जगाने, कार्यकर्ताओं से बातचीत करने तथा यथाशक्ति हरिजन-कोष के निमित्त धन-संग्रह करने के लिए जगह-जगह घूम रहा हू।"

कार्यकर्ताओं के कुछ प्रश्न

जोरहट में हरिजन-कार्यकर्ताओंने गांधीजी से कुछ प्रश्न पूछे। पहला प्रश्न यह था, कि--'आपके इस वर्तमान आंदोलन से हरिजनों के अलावा क्या पिछड़ी हुई जातियों को भी कुछ लाभ पहुंचेगा?' गांधीजीने कहा, 'हां, निश्चय ही उन्हें अप्रत्यक्ष रीति से फ़ायदा पहुंचेगा। जब क़ानून अस्पृश्यता को न मानेगा, तब राज्य का संरक्षण माँगने के लिए ये पिछड़ी हुई जातियां ही तो रह जायँगी, फिर वे स्पृश्य हों या अस्पृश्य।'

प्रश्न - 'अच्छा, यह तो बताइए, रोटी-बेटी-व्यवहार के बारे में आपके क्या विचार हैं?'

उत्तर—'रोटी-बेटी-व्यवहारकी बातें तो व्यक्तिगत होती हैं। सामाजिक व्यवस्था से इनका संबंध नहीं। यह सुधार तो आप ही होता जा रहा है। अस्पृश्यता से इन बातों का कोई मतलब नहीं।'

प्रश्न--'क्या इस आंदोलन से हिंदू-समाज में अन्तर्कलह होने की संभावना नहीं है?'

उत्तर- नहीं; क्योंकि ताली तो दोनों हाथों से बजती है। मैं तो इस तरीके पर काम कर रहा हूं, कि उसमें झगड़े की कोई बात ही नहीं उठेगी। मैं तो इस विषय में अनुकूल लोकमत देखने की प्रतीक्षा कर रहा हूं। पर अभी जबतक समय है, आपको दृढ़ संकल्पशक्ति के साथ काम करना होगा; नहीं तो फिर भयकर उथलपुथल होगी, मानवता विकंपित हो उठेगी—और वह वर्तमान आंदोलन के कारण न होगा, बल्कि अस्पृश्यता-पाप के स्वाभाविक प्रभाव के कारण ही ऐसी भयंकर प्रतिक्रिया होगी।' अंतमें एक कार्यकर्ताने यह प्रश्न किया—'ख़िलाफ़त के दिनों में आपने मुसलमानों को जो मदद दी थी, क्या उसके लिए आपको दुःख नहीं है?'

गांधीजी ने तुरन्त जवाब दिया—'दुःख कैसा? मुझे तो ख़िलाफ़त के कार्य पर उतना ही गर्व है, जितना कि अपने जीवन की किसी भी घटना पर हो सकता है। इतिहास में मेरा यह कार्य निस्स्वार्थ सहयोग का एक सच्चा उदाहरण कहा जायगा।'

निजी प्रार्थना-भवन खोला गया

१८ एप्रिल को गांधीजीने श्रीयुक्त कृष्णनाथ शर्मा के निजी नामघर (प्रार्थना-भवन) का उद्घाटन-संस्कार किया। श्री शर्माजी आसाम देश के वैष्णव-इतिहास में प्रसिद्ध एक भक्त घराने के वंशज हैं। आसाम में इस प्रकार का यह पहला ही मांगलिक अवसर था। शर्माजी की वृद्धा माताने अपने नामघर में हरिजन-बच्चों को अपने हाथ से भगवान् का प्रसाद वितरण किया।

इसके पश्चात् गांधीजी कैवर्त्तों का नामघर देखने गये। ब्रह्मपुत्रा की घाटी में यह कैवर्त्त जाति ही प्रधान हरिजन जाति है। गांधीजीने उन्हें उपदेश देते हुए कहा—"अफीम का व्यसन अच्छा नहीं। इसे छोड़ दो। जबतक तुम्हारे समाज में अफीमची रहेंगे, तबतक तुम्हारी कोई उन्नति नहीं हो सकती। गाँजा, शराब, ताड़ी आदि दूसरी नशीली वस्तुओं का भी तुम्हें त्याग कर देना चाहिए। और विभिन्न हरिजन जातियों के बीच में जो छूतछात मानी जाती है, उसे भी दूर करना होगा। अस्पृश्यता का तो सर्वथा नाश होना चाहिए। अपने नामघर में बिना किसी भेदभाव के सभी जाति के लोगों को आने दो। प्रभु के घर में तो उसके हम सभी बच्चे एक समान हैं; वहाँ ऊँच-नीच का भेदभाव कैसा?"

गांधीजीने म्युनिसिपैलिटी के मेहतरों की भी बस्ती देखी। बस्तीवालोंने वहाँ गांधीजी से पानी और रोशनी की बद-इंतिज़ामी की शिकायत की। आशा है, म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन साहब इस संबंध में उचित ध्यान देकर उन बेचारों के कष्ट दूर कर देंगे।

वहाँ एक और नामघर गांधीजीने हरिजनों के लिए खोला। यह हाल ही में तैयार हुआ है। इसमें मूर्ति के स्थान पर श्री श्री शंकरदेव-लिखित आसामी भाषा के श्रीमद्भागवत पुराण की एक प्रति रखी हुई है।

'रोहिणीकांत हाथीबरुआ-मेमोरियल-हाल' का आधार-शिला भी गांधीजीने वहाँ रखी। स्व० हाथीबरुआ एक सच्चे कार्यकर्ता थे। एण्डरूज़-ओपियम इनक्वायरी कमेटी के आप मंत्री थे। इसी काम के सिलसिले में आप जिनेवा जानेवाले थे, पर जा न सके, कराल कालने बीच ही में उन्हें ग्रस लिया।

धर्म-परिवर्तन

अमेरिका के एक मिशनरी के साथ उस दिन गांधीजी का बड़ा मनोरंजक वार्तालाप हुआ। धर्म-परिवर्तन के विषय में उस मिशनरीने गांधीजी के विचार जानने की इच्छा प्रगट की। गांधीजीने कहा—'इस विषय में तो मैं अपने विचार अनेक बार प्रगट कर चुका हूँ। 'मनुष्य-द्वारा' किये गये धर्म-परिवर्तन में मैं विश्वास नहीं करता। हमारे यहाँ एक दृष्टान्त प्रचलित है। कुछ अंधे आदमी हाथी देखने चले। किसीने सूँड टटोली और किसीने पूँछ। किसीने पैरों को पकड़ा और किसीने कानों को टटोला। प्रत्येकने अपने भिन्न-भिन्न स्पर्श-ज्ञान से अपने-अपने मन में हाथी के रूप की कल्पना करली। सत्य के विषय में भी यही बात है। सत्यशोधक अपने परिमित ज्ञान से सत्य की थाह लेना चाहते हैं। जिसे जितना उसका ज्ञान होता है, वह उसे पूर्ण समझ बैठता है। अपनी-अपनी परिमित दृष्टि से सभी सत्य के दर्शन का प्रयत्न करते हैं। इस-

लिए यह तो स्पष्ट ही अभिमान है, कि दूसरों को अपने धर्म में मिलाने का प्रयत्न किया जाय। प्रभु के पास जाने के उतने ही मार्ग हैं, जितने कि इस पृथिवी पर मानव-प्राणी हैं।'

मिशनरी सज्जनने जब महात्मा ईसा के साथ संसार के अन्य माननीय महापुरुषों को तोलने का प्रयत्न किया, तो गांधीजीने कहा—'यह तुलना व्यर्थ है। इतिहास का ईसा वही ईसा नहीं है, जिसे ईसाई मानते-पूजते हैं। ईसाइयों की दृष्टि में तो वह साक्षात् ईश्वर है। इसी प्रकार मैं स्वयं अपने स्वकल्पित कृष्ण को मानता हूँ। मैं अपने कृष्ण को ईश्वरवत् मानता हूँ। ऐतिहासिक कृष्ण से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। ऐतिहासिक पुरुष कभी के चल बसे हैं। पर रहस्यपूर्ण अवतार, जीवित आदर्श तो अमर हैं—पार्थिव अस्तित्व से भी वे अधिक वास्तविक हैं। धर्म कदापि इतिहास पर निर्भर नहीं हो सकता। अगर ऐसा होता, तो धर्म कभी का नष्ट हो गया होता। संत तुलसीदासने ठीक ही कहा है, कि राम का 'नाम' राम से भी बड़ा है—

'कहउँ नाम बड़ राम सें निज विचार-अनुसार।'

जोरहट से गांधीजी सिबसागर गये। प्राचीनकाल में यह रंगपुर के नाम से स्वाधीन आसाम राज्य की राजधानी था। सिबसागर में रामस्वा देवल और शिवदेवल, ये दो मन्दिर हरिजनों के लिए खोले गये। सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए वहाँ गांधीजीने कहा—"मेहतरों को अस्पृश्य समझना स्पष्ट ही अन्याय है। उन बेचारों का तो हमें कृतज्ञ होना चाहिए। वे तो हमारी माताओं और डाक्टरों का काम करते हैं। उनसे घृणा कैसी?"

यहाँ गांधीजीने कालिकाप्रसाद चालिहा-मेमोरियलहाल का उद्घाटन किया। स्व० रायबहादुर चालिहा की विधवा पत्नी तथा पुत्रोंने यह मेमोरियलहाल बनवाया है। अफीम के खिलाफ़ वह हमेशा लड़ते रहे। स्व० चालिहा महोदय ओपियम रायल कमीशन के भी सदस्य थे।

हिन्दी

१९ एप्रिल को हम लोग डिब्रूगढ़ पहुँचे। वहाँ की सार्वजनिक सभा में गांधीजीने कहा कि आसाम के हरिजनों का प्रश्न बड़ा जटिल है। बात यह है कि, कि आसाम में सिर्फ़ आसामी हरिजनों का ही अस्पृश्यता से उद्धार नहीं करना है, वहाँ चाय-बागान के कुलियों के बीच में भी तो काम करना है। इन कुलियों के साथ भी तो अस्पृश्यों की तरह बरताव किया जाता है। आसामी कार्यकर्ताओं को अगर कुलियों के साथ जीवित सम्पर्क जोड़ना है, तो हिन्दी भाषा में ज्ञान प्राप्त किये बिना वे ऐसा कदापि नहीं कर सकते। उन्हें हिन्दी सीखना अत्यावश्यक है।

२० तारीख़ को गांधीजीने डिब्रूगढ़ का 'पुअर एसलम' (दीन-आश्रम) देखा। सन् १८९८ में श्री शरच्चन्द्र रायने इस आश्रम की स्थापना की थी। डिब्रूगढ़ से गांधीजी तिनसुकिया गये, जहाँ उन्होंने चायबाग़ान के कुलियों की बस्ती का निरीक्षण किया।

आसाम से बिदा

तिनसुकिया की सार्वजनिक सभा में भाषण देने के लिए जब गांधीजी जा रहे थे, तो उन्हें रास्ते में कुछ (‐ न मिले। उन्होंने यह शिकायत की, कि प्लेटफार्म पर उन्हें अपमानित किया गया है, इसलिए वे सभा छोड़कर जा रहे हैं। फिर भी उन सज्जनोंने गांधीजी को अपनी थैली भेंट की। इस घटना पर गांधीजीने उनसे कहा, कि—'अगर किसीने आपका अपमान किया है, तो यह उनकी भूल है। पर जो धर्म की सेवा करना चाहते हैं, उन्हें मानापमान की ऐसी छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। जो अपने क्षुद्र अहंकार से ऊपर नहीं उठ सकते और पैरों की धूल के समान अपने को विनम्र नहीं बना सकते, वे हरिजन सेवा करने के योग्य नहीं हैं।"

सार्वजनिक भाषण में गांधीजीने कहा—"मैं उसी पैसे का इच्छुक हूँ, जिसके साथ दाता का हृदय हो। अगर कोई एक सज्जन मुझे एक करोड़ रुपया दे, तो मैं उससे अस्पृश्यता दूर नहीं कर सकता। लेकिन अगर एक करोड़ सवर्ण हिन्दुओं का हृदय मिल जाय, तो मैं बिना एक पाई के भी अपना काम पूरा कर सकता हूँ। सुनिए, अस्पृश्यता-निवारण से असल में मेरा क्या आशय है। इसका अर्थ है उच्च-नीच की भेदबुद्धि का सर्वथा नाश—यह बात सिर्फ़ हरिजनों के ही सम्बन्ध में नहीं है, बल्कि सवर्ण हिन्दुओं के अपने विषय में भी है। इस अस्पृश्यता-निवारण के द्वारा निश्चय ही हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों तथा अन्य सम्प्रदायों के बीच हार्दिक एकता स्थापित होगी। इस सब वैमनस्य का मूल कारण यह उच्च-नीच भाव, अर्थात् अस्पृश्यता ही है। गीता के इस श्लोक पर आप लोग ध्यान दीजिए, कि—

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥

ब्राह्मण और भंगी के प्रति एक समान बरताव कीजिए। जन्म से कोई मनुष्य अपवित्र नहीं हो सकता। अपवित्रता आपके और हमारे दिलों के भीतर मौजूद है। हमारे बुरे विचार ही अपवित्र एवं अस्पृश्य हैं। स्नान करना बहुत अच्छा है, पर भैंस भी तो नित्य स्नान करती है। केवल स्नान करने से क्या होता है? पवित्र तो केवल वही है, जो ईश्वर से डरकर चलता है और उसकी सृष्टि की सेवा करता है।

आपके आसाम में एक ख़ास अस्पृश्य है। वह है अफीम। इस अभिशाप से आपको अपना पिंड छुड़ाना ही होगा। आपके उन्नति-मार्ग में यह बड़ी भारी बाधा है। अगर यह दुर्व्यसन आपने न छोड़ा, तो संसार में आसामियों का अस्तित्व भी न रहेगा। आसामके सुसंस्कृत स्त्री-पुरुषों को चाहिए, कि वे अफीम के इस नाशक व्यसन को अपने देश में आश्रय न दें।

दूसरे प्रांतों से जो मज़दूर आसाम में आकर बस गये हैं, उनकी ओर आसाम निवासियों को विशेष ध्यान देना चाहिए। हर प्रकार से उन्हें ऊँचा उठाने और आसामी समाज में मिलाने का प्रयत्न होना चाहिए।"

सभा में मारवाड़ी लोग काफ़ी अच्छी संख्या में उपस्थित थे। गांधीजीने उन्हें लक्ष्य करके कहा—"मारवाड़ी लोग हमारे भारतवर्ष के बैंकर हैं। उनके दया-धर्म के कार्यों को मैं खूब जानता हूँ। गो-सेवा, हिंदी-प्रचार, संकट-निवारण आदि कार्यों के लिए ये लोग हमेशा पैसा देने को तैयार रहते हैं। मैं चाहता हूं, कि हरिजनों तथा दूसरे प्रांतों से आये हुए कुलियों की सेवा-सहायता में भी ये भाई अपना पूरा योग-दान दें। बेचारे कुलियों की दशा तो यहाँ अस्पृश्यों से भी बदतर है।"

अंत में गांधीजीने आसाम देश के प्राकृतिक सौन्दर्य के विषय में दो-चार शब्द कहे। उन्होंने कहा — 'धन्य है पवित्र ब्रह्मपुत्रा को, जिसने इस प्रदेश को स्वर्णभूमि बना रखा है। भगवान् की कृपा से वर्षा भी यहाँ समय पर पर्याप्त होती रहती है। स्वर्णभूमि तो यह अवश्य है, पर पुरुषार्थ की कमी है। समाज का प्रत्येक अंग यदि ठीक तरह से काम करे, तो आपका यह आसाम देश जितना सुंदर और मनोरम है, उतना ही सबल और सुखी हो सकता है।"

वालजी गोविन्दजी देसाई

तब अस्पृश्यता कहाँ थी ?

'हे ताप ! हे अपराजित सर्प ! जल्दी बोल। हम लोगों से दूर चला जा। उस नटखट दासी को खोज और अपने वज्र से उसका विनाश कर।' (४१)

दूसरी संहिता में ऋषि कहते हैं—

'जब पशु जौ खाता है तो किसान यह समझकर, कि पशु पुष्ट होरहा है, खुश नहीं होता। उसी प्रकार जब शूद्रायें आर्यों के साथ अनुचित सम्बन्ध स्थापित करती हैं, तब शूद्र यह समझकर खुश नहीं होते, कि उनकी सारी जाति उससे पोषित होती है और वे धनवान् भी होते हैं। (४२)

(६)

ब्राह्मणत्व का जन्म से होना कहीं नहीं मिलता; और यह उल्लेख है कि शूद्र भी विधिपूर्वक आर्य बनाये जाते थे।

वाक् अर्थात् वाणी की देवता सरस्वती के मुख से यह शब्द कहलाये गये हैं:—

'मैं ऐसे शब्दों का उच्चारण करती हूँ, जो देव और मनुष्य को रुचेंगे। जिस मनुष्य को मैं चाहूँ, उसे महान् बना देती हूँ, उसे बुद्धिवान्, ऋषि और ब्राह्मण बना देती हूँ।' (४३)

आर्यों की संस्कार-विधि ग्रहण करके दास लोग आर्य बन जाते थे, जैसे—

'हे इन्द्र ! हमें समृद्धि दे। निश्चल और हिंसारहित ऐसी भारी सम्पत्ति दे, जिससे हम अपने शत्रुओं को वश में करलें। उस समृद्धि के द्वारा तू कर्महीन दासों को कर्मयुक्त बनाता है, और शत्रुओं को रणभूमि में नग्न अर्थात् निस्तेज कर देता है।' (४४)

यह विधि पंचविंश ब्राह्मण में दी हुई है। व्रात्यस्तोम के नाम से यह विधि प्रसिद्ध है। आर्यों में जो पतित हो गया हो, उसे तो प्रथम व्रात्यस्तोम पुनः आर्यत्व प्रदान करता है, और दूसरा व्रात्यस्तोम संस्कार पतितों और अनार्यों को शुद्ध करता है। (४५)

कुछ लोग ऐसा कहते हैं, कि—'पंचजनाः' इस शब्द में चार वर्ण और पाँचवाँ अस्पृश्य आजाता है। यह धारणा अज्ञानता पर निर्भर है। ऋग्वेद में तो अनुस्, द्रुह्यु, यदु, तुर्वशस् और पुरु इन पाँच जातियों को पञ्चजनाः कहा है। (४६) यह पाँच जातियाँ तो आर्यों की जातियाँ हैं। इनमें यदु तथा तुर्वसु जातियाँ तो एक समय ऐसी विधिभ्रष्ट हो गई थीं, कि उन्हें दास कहा गया है। (४७)

दाशराज्ञ के पश्चात् आर्य जातियों और दास जातियों का मिश्रण हो गया, इसलिए यह बात लोग भूल गये। ऐतरेय ब्राह्मण के कथनानुसार 'पंचजनाः' का तात्पर्य देव, मनुष्य, गन्धर्व और अप्सरा, सर्प एवं पितृगण से है। (४८) बाद में चातुर्वर्ण्य व्यवस्थित हुआ। औपमन्यव के अनुसार पंचजनाः का अर्थ है चार वर्ण और पाँचवाँ निषाद। (४९) सायण का भी ऐसा ही अभिप्राय है। यास्क स्वयं गंधर्व, पितृ, देव, असुर और राक्षस, इन्हें पंचजनाः कहता है। अतः बाद को पंचजनाः का जैसा जो अर्थ टीकाकारों की दृष्टि में आया वह करने लगे।

औपमन्यव तथा सायण की टीका ठीक हो, तो भी उसमें कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता, जिसके आधार पर यह कहा जा सके, कि निषाद अस्पृश्य था। विश्वजित् यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण को निषाद के घर में कुछ समयतक रहना होता है, ऐसी एक विधि है। (५०) इसलिए निषाद अस्पृश्य नहीं हो सकता।

धीवर, रथ इत्यादि स्मृतियों ने कैवर्त को अंत्यज लिखा है। उसी कैवर्त के विषय में वैदिक ऋषि कहता है:—

'मछुओं रथकारों और लुहारों तथा बुद्धिमान शिल्पियों, इन सब लोगों को, हे पर्ण ! तू मेरे साथ रख और उनसे कह, कि वे मेरे आसपास उपस्थित रहें।' (५१)

---

(४१) तक्मन् व्याल विगद व्यङ्ग भूरि यावय।
दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय॥
अथर्ववेद, ५-२२-६

(४२) यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते।
शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति॥
वाजसनेयी संहिता, २३-३०

(४४) अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।
ऋग्वेद, १०-१२५-५

(४४) आ संयतमिन्द्र णः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि॥
ऋग्वेद, ६-२२-१०,

हे इन्द्र शत्रुतूर्याय शत्रूणां तारणाय बृहतीं महतीं अमृध्रां अहिंसितां संयतां संगच्छमानां स्वस्ति क्षेमलक्षणां संपदं हे इन्द्र नोऽस्मभ्यमाभर। वज्रिन् वज्रवन्निन्द्र—यया स्वस्त्या दासानि कर्महीनानि मनुष्य-जातानि आर्याणि कर्मयुक्तानि करः अकरोः। नाहुषाणि मनुष्यसम्बन्धीनि। नहुषा इति मनुष्यनाम एतत्। वृत्रा वृत्राणि शत्रून सुतुका सुतुकानि शोभनहिंसोपेतानि अकरोः।
सायण भाष्य

(४५) Caland, Panchavimsa Brahmana, ch XVII P. 454, 458.

(४६) Keith, Vedic Index Vol. I. p. 467

(४७) उत दासा परिविषे स्मद्दिष्टी गोपरीणसा।
यदुस्तुर्वश्च मामहे। ऋग्वेद, १०-६२-१०,

(४८) ऐतरेय ब्राह्मण, ३—३१,

(४९) निरुक्त, ३—८

(५०) कौषीतकी ब्राह्मण, २५—१५,

(५१) ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान्॥
अथर्ववेद, ३-५-६

फिर एक संहिताकार कहता है :—

'बढ़ई, रथकार कुम्हार, लुहार, पुंजिष्ठ, निषाद, श्वनिन्, शिकारी, श्वान और श्वपति—तुम सभी को मैं नमस्कार करता हूँ।' (५२)

समस्त वैदिक साहित्य में ऐसी कोई बात नहीं मिलती, जिसमें किसी भी जाति के सम्बन्ध में भोजन करने अथवा छूने का कोई प्रतिबन्ध हो। भोजन के विषय में यही एक बात मिलती है, कि वेदविद्या जाननेवाला वेदविद्या न जाननेवाले के साथ वाद-विवाद, भोजन और विनोद इत्यादि न करे। (५३) यह व्याख्या यदि आज लगाई जाय, तो हममें से कितनों को वेद-विद्या जाननेवालों के साथ वाद-विवाद, भोजन अथवा विनोद इत्यादि करने का अधिकार मिल सकता है ?

(७)

पीछे की स्मृतियों में चाण्डाल की गणना पतितों में की गई है। ऋग्वेद-काल में अथवा मंत्रों में चाण्डाल का कहीं नाम-निशान भी नहीं है। चाण्डाल का सर्वप्रथम उल्लेख वाजसनेयी संहिता में आया है। भिन्न-भिन्न जाति के मनुष्यों की जहाँ बलि देनी हो, वहाँ किस देवता को किस जाति की बलि देनी चाहिए, इसका विस्तृत वर्णन पुरुषमेध के प्रसंग में मिलता है। ब्रह्म को ब्राह्मण की, क्षत्र को राजन्य की, मरुत् को वैश्य की, और तपस् को शूद्र की बलि देनी चाहिए। नृत्त को सूत की, गीत को शैलूष (नट) की, धर्म को सभाचर (सभाओं में जाने वाला) की, नरिष्ठ को भीमल की और नर्म को अति वाचाल की बलि देनी चाहिए। यह बहुत लंबी सूची है, जिसमें आगे आता है, कि अग्नि को स्थूलकाय मनुष्य की············और वायु को चाण्डाल की बलि दी जाय। (५४) इस सूची में ऐसी कोई भी बात नहीं, जिस में यह भासित होता हो, कि चाण्डाल जाति अस्पृश्य थी। यदि इस सूची से कुछ प्रगट होता है तो यही, कि यूप पर मोटे और मुंडित मनुष्य के साथ चाण्डाल को बाँध देते थे, जिससे कि यज्ञ की क्रिया सफल हो।

इसके बाद, दूसरा उल्लेख बृहदारण्यक में मिलता है :—

'जिसने परमानंद प्राप्त कर लिया है, वह पिता और अपिता············वेद और अवेद············चाण्डाल और अचाण्डाल, पौल्कस और अपौल्कस के बीच भेद नहीं देखा करता।' (५५)

किन्तु ज्यों-ज्यों ब्राह्मण-काल लुप्त होकर सूत्र-काल आने लगा, त्यों-त्यों धार्मिक वृत्ति संकुचित होती गई और शूद्रों को धर्मक्रियाओं से बहिष्कृत करने का प्रयत्न होने लगा। अग्नि-होत्र के लिए जो दूध चाहिए, वह शूद्र के यहाँ से न दुहाया जाय, (५६) जो मनुष्य दीक्षित हो चुका हो, वह शूद्र के साथ न बोले, (५७) यज्ञ के अर्थ यथोचित स्थाली आर्य ही तैयार करे। (५८) शूद्र को सोमरस न पीने दे। (५९) प्रवर्ग्य नाम की विधि के समय विधि करनेवाला व्यक्ति शूद्र का स्पर्श न करे। (६०)

ब्राह्मणकाल के अंत में जिस वैदिक साहित्य का निर्माण हुआ, उसमें शूद्र को असाधारण महत्ता की धार्मिक क्रियाओं से दूर रखने के इस प्रयत्न का उल्लेख पहली ही बार मिलता है। शूद्रों को दूर रखने की प्रथा का थोड़ा-बहुत संचार हमारे धर्म-शास्त्रों में इस प्रकार हुआ।

इस संकुचित धार्मिक वृत्ति का प्रत्याघात भी उसी समय से होने लगा। जो उदात्त स्वभाववाले थे, उन्होंने स्थूल असमानता के परे मानव-एकता एवं सर्वभूतों में निवास करने-वाली एक अद्वितीय आत्मा का साक्षात्कार किया। (६१)

'जो पुरुष प्रत्येक प्राणी को अपनी आत्मा में देखता है, और भूतमात्र में अपनी ही आत्मा को देखता है, वह किसी की निन्दा नहीं करता।' (६२)

मैंने ज़रा विस्तार से इन उद्धरणों को ऊपर दिया है। कारण यह है, कि बिना इन्हें जाने हुए हम समाज की व्यवस्था और विकास को समझ ही नहीं सकते। (शेष आगे)

'हरिजन-बंधु' से] कन्हैयालाल मुंशी

---

(५२) नमस्तक्षभ्यो, रथकारेभ्यश्च वो नमः, कुलालेभ्यः, कर्मारेभ्यश्च वो नमः, नमः पुञ्जिष्ठेभ्यो, निषादेभ्यश्च वो नमः,
मैत्रायणी संहिता, १७-१२-१३

(५३) वेदविद् अवेदविदा समुद्दिशेन सहः भुञ्जीत न सधमादी स्यात्। ऐतरेय आरण्यक ५-३-३,

(५४) ब्रह्मणे ब्राह्मणं, क्षत्राय राजन्यं, मरुद्भ्यो वैश्यं, तपसे शूद्रं, तमसे तस्करं, नारकाय वीरहणं, पाप्मने क्लीबं, आक्रयायाऽअयोगूं, कामाय पुंश्चलूं, अतिक्रुष्टाय मागधम्।
वाजसनेयी संहिता, ३०-५

नृत्ताय सूतं, गीताय शैलूषं, धर्माय सभाचरं, नरिष्ठायै भीमलं, नर्माय रेभं, इत्यादि
वा० सं०, ३०-६,

सरोभ्यो धैवरं, उपस्थावराभ्यो दाशं, वैशन्ताभ्यो बैन्दं, नड्वलाभ्यः शौष्कलं, पाराय मार्गारं, अवाराय कैवर्तं, तीर्थेभ्य आन्दं, विषमेभ्यो मैनालं, स्वनेभ्यः पर्णकं, गुहाभ्यः किरातं, सानुभ्यो जम्भकं, पर्वतेभ्यः किंपुरुषम्।
वा० सं०, ३०-१६,

अग्नये पीवानं, पृथिव्यै पीठसर्पिणम्, वायवे चाण्डालं, अन्तरिक्षाय वंशनर्तिनं, दिवे खलतिं, सूर्याय हर्यक्षम्, नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं, चन्द्रमसे किलासं, अह्ने शुक्लं पिंगाक्षं, राम्यै कृष्णं पिंगाक्षम्।
वा० सं०, ३०-२१ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण, ३-४-१७-१,

(५५) अत्र पिता अपिता भवति, माता अमाता, लोका अलोका, वेदा अवेदा, अत्र स्तेनोऽस्तेनो भवति, भ्रूणहाऽभ्रूणहा, चाण्डालोऽचाण्डालः, पौल्कसोऽपौल्कसः, श्रमणोऽश्रमणः, तापसोऽतापसः, अनन्वागतं पुण्येन, अनन्वागतं पापेन, तीर्णोहि तदा सर्वान् शोकान् हृदयस्य भवति।
बृहदारण्यक उपनिषद्, ४-३-२२

(५६) काठक संहिता, ३१-२; मैत्रायणी संहिता ४-१-३,

(५७) काठक संहिता, ३-१-१-१०,

(५८) मैत्रायणी संहिता, १-८-३,

(५९) काठक संहिता, ९-१०,

(६०) शतपथ, १४-१-१-३१,

(६१) एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
कठ उपनिषद् २-४५

(६२) यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥
ईशावास्योपनिषद्, ३

हर हिन्दू स्मरण रखे

बम्बई में २५ सितम्बर, १९३२ को श्रीमान पंडित मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में हिन्दू-संसार के प्रतिनिधियों की सभा में नीचे लिखा प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ था :—

"यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि अब से कोई भी व्यक्ति, अपने जन्म से, अछूत नहीं समझा जायगा और अबतक जो ऐसा माना जाता था, उसके भी सार्वजनिक कुओं, सड़कों और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं के व्यवहार के सम्बन्ध में वही अधिकार होंगे जो दूसरे हिन्दुओं के हैं। अवसर मिलते ही इन अधिकारों को क़ानूनी स्वीकृति दे दी जायगी और स्वराज्य-पार्लियामेंट के सब से पहले कामों में यह भी एक काम होगा, यदि तबतक यह अधिकार क़ानून-द्वारा स्वीकृत न हो चुके होंगे।

और यह सम्मेलन यह भी निश्चय करता है, कि अस्पृश्य कही जानेवाली जातियों की प्रथानुमोदित समस्त सामाजिक बाधाओं को—जिनमें उनकी मन्दिर-बन्दी भी शामिल है—शीघ्र हटाने के लिए सभी उचित और शांतिमय उपायों का अवलंबन करना तमाम हिंदू-नेताओं का कर्तव्य होगा।"

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ४ मई, १९३४

मत किसके लिये जाने चाहिए ?

उस दिन एक सनातनी पंडितने मुझ से यह शिकायत की, कि बनारस के मजिस्ट्रेट अस्पृश्यता-निवारण बिलों के संबंध में अहिंदुओं एवं मंदिर और मूर्ति-पूजा में विश्वास न करनेवाले आर्यसमाजियों, सिक्खों तथा दूसरे लोगों का मत-संग्रह कर रहे हैं। अगर ऐसी बात है, तो वह आश्चर्यजनक है। मेरी तो हमेशा ही यह राय रही है और 'हरिजन' में भी अपना यह विचार मैं प्रगट कर चुका हूँ, कि अगर मत लेना ही है, तो न सिर्फ हिंदुओं की, बल्कि हिंदू हरिजनों की भी मत-गणना पक्ष या विपक्ष में नहीं की जानी चाहिए। कारण यह है, कि अस्पृश्यता का संबंध तो सिर्फ सवर्ण हिंदुओं से ही है और ये बिल केवल उन्हीं के मत-प्रकाशनार्थ प्रस्तुत किये गये हैं। अगर यह बात नहीं है, तब तो यह अवर्ण हिंदुओं तथा दूसरों के द्वारा सवर्ण हिंदुओं पर बलात्कार ही हुआ। अस्पृश्यता-निवारण आंदोलन सवर्ण हिंदुओं के आन्तरिक सुधार का एक आंदोलन है। यह तो पश्चात्ताप और आत्मशुद्धि की प्रवृत्ति है। यह सब आंतरिक सुधार बाहरी सहायता से होने का नहीं। इसलिए अगर सरकार पर मेरा कोई प्रभाव पड़ता हो और सनातनी पंडित की दी हुई सूचना सही हो, तो मुझे सरकार को यह सलाह देनी चाहिए, कि इन बिलों के प्रचारित करने के संबंध में उसकी तरफ़ से जो आज्ञाएँ प्रकाशित की गई हैं, उन्हें वह फिर से देखे और उनमें उचित संशोधन करदे, ताकि बड़ी धारासभा में जो बिल पेश हैं, उन पर सिर्फ़ सवर्ण हिंदुओं का ही मत लिया जाय।

मुझे भय इस बात का नहीं है, कि अहिंदुओं के मत पक्ष में आजाने से संभवतः ये बिल पास हो जायँगे। मेरी तो यह धारणा है, कि सनातनी कहलानेवाली जनता का मत असल में प्रातिनिधिक मत नहीं है। जहांतक मैं जानता हूं, हरिजनों के लिए मंदिर खोल देने के पक्ष में सवर्ण हिंदुओं का काफ़ी बड़ा बहुमत है। मैं देखता हूं, कि इन बिलों के पास कराने के संबंध में अपना निर्णय देने में साधारण जनता अयोग्य है। यह प्रश्न तो ख़ालिस क़ानून का है। क़ानून के पंडित ही इसे तय कर सकते हैं। अगर सवर्ण हिंदुओं का काफ़ी बड़ा बहुमत हरिजनों के लिए मंदिर खोल देने के पक्ष में हो, तो बड़े-बड़े पंडितों का विरोध रहते हुए भी मंदिर खोल देने पड़ेंगे। मौजूदा कानून अगर उस बहुमत को सफल बनाने में असमर्थ है—जैसाकि क़ानूनदां कहते हैं, कि वह असमर्थ है—तो धारासभा को चाहिए, कि मौजूदा चलन में वह ऐसा सुधार करदे, जिससे कि सवर्ण हिंदू अपने मत के अनुसार निर्बाध रीति से चल सकें।

सचमुच इस दृष्टि से स्थिति देख ली जाती, तो लोकमत के लिए कदापि ये बिल प्रचारित नहीं किये जाने चाहिए थे। ये बिल स्वतः तो एक भी मंदिर हरिजनों के लिए नहीं खोल सकते। ये बिल तो सहायकमात्र हैं। विरोधियों का कहना है, कि अगर एक अकेला ही सवर्ण हिंदू मंदिर खोल देने के विरुद्ध हो—और सचमुच कोई भी मंदिर खोलने के विरुद्ध न हो—तो वह मंदिर हरिजनों के लिए नहीं खुल सकता। यह बात युक्तियुक्त नहीं है, किंतु सनातनधर्म के नाम पर बोलने का जिनका दावा है, उनकी ऐसी कल्पना है, और वे यह दलील उपस्थित करते हैं। मेरी राय में सरकार का यह कर्तव्य है, कि वह इस संबंध में यथोचित न्याय से काम ले और सुधार-मार्ग में निश्चय ही जो क़ानूनी बाधा है उसे हटादे। बिलों का सिर्फ़ यही अभिप्राय है, और कुछ नहीं। मंदिरों का खुलना तो पूरे तौर से उन्हीं सवर्ण हिंदुओं की इच्छा पर निर्भर करता है, जिनका कि मंदिरों में देव-पूजा करने का अधिकार है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

तो यह शर्म की बात है

जिन पंडितजीने बिलों पर लोकमत लेने के बारे में शिकायत की है, उन्होंने मुझ से यह भी शिकायत की, कि सुधारकों के कहने पर कुछ मंदिर जबरदस्ती हरिजनों के लिए खुलवा दिये गये हैं। अगर ऐसा हुआ है, तो निश्चय ही मेरे-जैसे

आदमियों के लिए यह शर्म की बात है, जो इस आंदोलन को विशुद्ध धार्मिक दृष्टि से देखते हैं और उसे एक आत्मशुद्धि का आंदोलन समझते हैं। अगर तमाम सारे मंदिर हरिजनों के लिए ज़बरन खुलवा दिये जाय, तो मैं हिंदूधर्म के हक़ में यह बात कुछ अच्छी नहीं समझूंगा। जिस विश्व-बंधुत्व के लक्ष्य को सामने रखकर यह आंदोलन आरंभ किया गया है, उसे ऐसे बलात्कार से कोई लाभ होने का नहीं। सचमुच एक भी मंदिर ज़ोर-ज़बरदस्ती से हरिजनों के लिए खुलवाया गया, तो इससे हरिजन-आंदोलन में बाधा ही पहुँचेगी। हृदय-परिवर्तन तो केवल स्वतंत्र वातावरण में ही हो सकता है।

दो मंदिर उत्तर में ज़बरन हरिजनों के लिए खुलवा दिये गये हैं, इस शिकायत का उक्त पंडितजीने कोई सुबूत नहीं दिया। मैंने उनसे सुबूत माँगे हैं और इस शिकायत की तसदीक़ करने के लिए अपने मित्रों को भी लिखा है। मैंने देखा, कि इस विषय की चर्चा कर देना ही अच्छा है, तसदीक़ की प्रतीक्षा में रहना ठीक नहीं। अगर यह बात सच निकली, तो जितनी ही जल्दी यह ग़लती सुधार दी जायगी, हरिजन-कार्य के हक़ में उतना ही अच्छा होगा। जबतक अनुकूल समय न आजाय, तबतक के लिए वे मंदिर हरिजनों के लिए बंद कर देने चाहिएँ। और अगर यह शिकायत असत्य साबित हुई या उसमें अत्युक्ति दिखाई पड़ी, तो भी मेरी इस जरूरत से ज्यादा दी हुई चेतावनी से किसी का कुछ बिगड़ेगा नहीं।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

हरिजन क्या करें ?

पाठकों को यह तो मालूम ही है, कि मैंने हरिजनों को, हरिजन-सेवक-संघ की समितियों में अपने प्रतिनिधित्व का आग्रह न रखने के लिए, समझाया है। इसका अत्यन्त सरल और सम्पूर्ण अर्थ यह है, कि अस्पृश्यता को पाप माननेवाले तथा भूतकाल में हरिजनों के प्रति किये गये अन्याय का प्रतिशोध करनेवाले सवर्ण हिन्दुओं के लिए ये समितियाँ बनी हुई हैं। अतएव सवर्ण हिंदू देनदार हैं और हरिजन लेनदार। अब देनदार यह विचार करते हैं, कि देना किस प्रकार चुकाया जाय, तब यह अकेले उन्हीं का काम होता है, कि वे लेनदारों के आगे, उनकी स्वीकृति के लिए, ऋण-परिशोध के प्रस्ताव तैयार करके रखें। लेनदारों की भी अपनी समितियाँ हैं। वे या तो उन प्रस्तावों को स्वीकार करलें, या अस्वीकार करदें, अथवा स्वीकार करने के पहले यह बतलावें, कि उनमें कैसे क्या संशोधन होने चाहिएं। इससे मेरी यह तजवीज़ है, कि हरिजन-सेवक संघ की समितियों को मदद देने के लिए हरिजनों के परामर्श-दायक-मंडल बनाये जायँ।

मेरे इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में एक हरिजन भाईने लिखा है—

"अगर आप कृपाकर एक ऐसे आदर्श हरिजन-परामर्श-दायक-मंडल का चित्र खींचदें, जिसमें उसके कर्तव्य और कार्य-विधि तथा उसके अपने अधिकार का निदर्शन हो, तो मुझे उसकी एक स्पष्ट कल्पना हो जायगी। ऐसे मंडलों के स्थापित करने की आवश्यकता तो है, यह देखते हुए भी मुझे यह चित्र आवश्यक लगता है।"

प्रश्न ये उचित हैं। मेरी यह तजवीज़ है, कि ऐसे छोटे-छोटे व्यवस्थित प्रातिनिधिक मंडल बनाये जायँ, जो स्थानीय हरिजनों के मत को ठीक-ठीक व्यक्त कर सकें। वे अपने काम-काज के नियम बनावें और स्पष्टतया बतलावें कि सवर्ण हिंदुओं से वे क्या चाहते हैं। सामान्य रीति से हरिजन-सेवक-समितियों के काम का भी वे निरीक्षण करें। ऐसे परामर्शदायक-मंडल जहाँ-जहाँ बनें, वहाँ वे हरिजन-सेवक-संघ को अपने अस्तित्व का ज्ञान करावें और यह बतलावें, कि उन्हें सहायता देने के लिए वे स्वयं तैयार हैं। अगर हरिजन-सेवक-संघ की समितियों में अपना ऋण चुकाने अर्थात् हरिजन-सेवा करने की सच्ची आतुरता होगी, तो इन परामर्शदायक-मंडलों के साथ वे प्रगाढ़ मित्रता जोड़ लेंगी, और दोनों के बीच पूरा सहयोग और सामंजस्य रहेगा। पारस्परिक संदेह के कारण आरम्भ में, सम्भव है, कुछ संघर्षण हो। हरिजन-सेवक-संघ स्वभावतः अधिक सुसंघटित तथा हर तरह से संपन्न हैं, इसलिए जो माँगें लुटाऊ देख पड़ें, उन पर विचार करते समय उन्हें युक्ति से काम लेना पड़ेगा। परामर्शदायक-मंडल विचारपूर्वक माँगें पेश करें। ये मंडल जितना ही अधिक विवेक से काम लेंगे, उतना ही अधिक कृतकार्य होंगे। सम्मान-पूर्वक अपना काम चलाने की उनकी योग्यता, यदि कभी प्रसंग आ जाय तो, उन मंडलों को अपने स्वत्वरक्षा की कला सिखा देगी। उन्हें जानना चाहिए, कि बिना हरिजनों के सहयोग के, सवर्ण हिंदू अपना ऋण कदापि नहीं चुका सकते। किन्तु स्वत्व-रक्षा का प्रश्न अभी हाल तो उठता नहीं, क्योंकि हरिजनों का बहुत बड़ा भाग इतना अधिक लाचार बन गया है, कि उसमें अन्याय का सामना करने की इच्छा होते हुए भी शक्ति नहीं है। मेरे कहने का क्या आशय है, यह मैं समझाता हूँ। हरिजन-सेवक-संघ के तीन काम हैं—हरिजनों का आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक दरजा बढ़ाना, अथवा दूसरे शब्दों में कहा जाय तो, सदियों से सवर्ण हिंदुओंने हरिजनों के मार्ग में जो अड़ंगे लगा रखे हैं, जिनके कारण वे जीवन के किसी भी क्षेत्र में सिर ऊँचा नहीं उठा सकते उन सब को हटाना। इसलिए जहाँ-कहीं आवश्यकता मालूम हो, वहाँ हरिजन-सेवक-संघ को चाहिए, कि वह कुएँ खुदवा दे, छात्रालय तथा पाठशालाएँ स्थापित करादे, छात्रवृत्तियाँ लगादे और अन्य सामाजिक सुविधाएँ हरिजनों को दिलादे। इन बातों में सामान्यतया हरिजनों को जहाँ सहायता मिलती है वहाँ वे ले लेते हैं। इसलिए परामर्शदायक-मंडल सेवक-संघों को उपयोगी तजवीजें बतलाकर और जिस जाति के वे स्वयं प्रतिनिधि हैं उसे यथाशक्ति सहायता देकर इस कार्य को आगे बढ़ा सकेंगे तथा स्वावलम्बी बन सकेंगे। इसी रीति से उन्हें स्वत्व-रक्षा की शक्ति प्राप्त होगी। थोड़े में कहा जाय तो, परामर्शदायक-मंडलों के लिए इस कार्य में सहायता करने का उत्तम मार्ग यह है, कि वे आन्तरिक सुधारों का काम अपने हाथ में लेलें और हरिजनों के अन्दर ऐसी जागृति पैदा करदें, कि जिससे वे यह जानने लगें, कि समाज के दूसरे लोग जो अधिकार भोग रहे हैं, उन्हीं सब अधिकारों के भोगने का उन्हें भी हक़ है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

हरिजनों के कष्ट

गौहाटी में हरिजनों की ओर से मुझे जो मानपत्र दिये गये थे, उनमें से एक मानपत्र ऐसा था, जिसमें उनके कष्टों का निम्नलिखित वर्णन किया गया था :—

"१—महान् हाजो मन्दिर तथा दूसरे अनेक देवालयों में पूजार्चा करने के लिए हम लोग नहीं जा सकते। इसी प्रकार महापुरुषीय अथवा दामोदरीय संप्रदायवालों के नामघरों में भी हम लोग प्रवेश नहीं कर सकते।

२—विवाह-शादी के अवसर पर अगर हम लोग हाथियों और डोलियों का उपयोग करना चाहते हैं, तो सवर्ण हिंदू हमारे ऊपर बड़ा जुल्म करते हैं।

३—दीक्षा लेते समय हमें अपने धर्मगुरुओं के चरण-चिह्नों का स्पर्श करके ही सन्तोष मानना पड़ता है; उनका चरण-स्पर्श हमें कभी नहीं करने दिया जाता।

४—कुछ जगहों में सार्वजनिक कुओं से पानी भरने से सवर्ण हिंदू हमें मना करते हैं, हालांकि स्थानीय अधिकारी खुद ऐसा कोई भेद-भाव हमारे साथ नहीं रखते।

५—छू जाने के ख़याल से कोई ब्राह्मण पुजारी हमारे माथे पर तिलक नहीं लगाता; और हमारी बनाई हुई मूर्तियाँ अपवित्र समझी जाती हैं।

६—बहुधा कोई ब्राह्मण पुरोहित प्राप्य न होने के कारण हम श्राद्ध-संस्कार नहीं कर सकते; और कुछ ब्राह्मण देवता तो अपने घरमें भी हमारे लिए पूजा-पाठ नहीं करते!

७—गांवों में यह हालत है कि सवर्ण हिन्दू स्नान करने के अनन्तर अगर हमें धोखे से छू लें, तो वे हमारे स्पर्श से अपवित्र हो जाते हैं।

८—सिवा गौहाटी-कालेज के छात्रालय के, और कहीं भी हमें सामान्य रसोड़े में भोजन नहीं करने दिया जाता।"

इन उत्तेजक सामाजिक अत्याचारों के होते हुए भी जिन सज्जनने अन्य लोगों की ओर से मानपत्र पर हस्ताक्षर किया था, उन्होंने मुझ से कहा कि—

"हमने अपने कष्ट जो यहाँ गिनाये हैं, इससे आप यह ख़याल न करें, कि हम लोगोंने अपने भाग्यवान सवर्ण भाइयों को चिढ़ाने अथवा उनके प्रति द्वेषभाव प्रगट करने की नीयत से ऐसा किया है। हमने आपके अहिंसा-सिद्धान्त का मर्म समझने का प्रयत्न किया है, और हमारा विश्वास है, कि कुछ दिनों के बाद हिंदू जाति का प्रगतिशील वर्ग हमें अपने बंधु-बांधवों की भाँति हृदय से लगायगा।"

आसाम में मैंने देखा कि कट्टर कहे जानेवाले लोगों में भी अस्पृश्यता के संबंध में कोई ऐसी दृढ़ धारणा नहीं है। शुद्ध चरित्रवाले सुसंस्कृत स्त्री-पुरुष वहाँ थोड़ा ही उद्योग करें तो अस्पृश्यता की अधार्मिक रूढ़ि में शांति के साथ खासा अच्छा परिवर्तन हो जाय।

ऊपर जो कष्ट गिनाये गये हैं, उनमें अन्य प्रांतों से आकर बसे हुए 'कुलियों' के कष्टों को जोड़कर मैं यह सूची पूरी करना चाहता हूं। आसाम में जो भंगी हैं, वे बहुत-कुछ आसपास के प्रांतों से आकर वहाँ बस गये हैं। उन्हें नरक-जैसी बस्तियों में रखा जाता है। उनकी शिकायत है कि वहाँ ठीक तरह से न तो रोशनी ही है, न आरोग्यता-संबंधी पूरी सुविधाएं ही। मैंने उनकी बस्ती देखी तो इस ऋतु में तो उसे सब तरह से सुखद पाया, पर बरसात में तो वहाँ की बहुत ही बुरी हालत हो जाती होगी। थोड़ा ध्यान देने से और बहुत ही थोड़े पैसे से ये कष्टदायक त्रुटियां तुरंत दूर हो सकती हैं।

'हरिजन' से०] मो० क० गांधी

श्रीश्री शंकरदेव का उपदेश

आसाम के महान् धर्मसंशोधक श्रीश्री शंकरदेवने कई सुंदर पद्यों में उच्च-नीच, श्रेष्ठ-अधम, ब्राह्मण-चांडाल आदि भेद-भाव भुला देने का उपदेश किया है। उन्होंने कहा है :—

ब्राह्मणर चाण्डालर निविचारि कुल।
दातात चोरत जेनो दृष्टि एकतुल्य॥

इतना ही नहीं, उन्होंने अपने इस सिद्धान्त को कार्यरूप में भी परिणत किया। उनके जीवनचरित में लिखा है, कि समस्त जातियों के लोग, कैवर्त, बनिया, कोछ, मुसलमान, मिरी और चांडाल एवं ब्राह्मण तथा कायस्थ एकसाथ बैठकर प्रेमपूर्वक सदा हरि-कीर्तन किया करते थे:—

कैवर्त कलित कोछ बनिया यवन;
मिरी भाट चाँडाल जे कायस्थ ब्राह्मण।
सर्व मिलि नाम गावे नाहिक अन्तर॥

× × ×

गारोर गोविंद आते नगा नरोत्तम;
यवनर जयहरि मिरी नारायण।

× × ×

इत्यादि समस्त भक्त मिलि सर्वदाय;
एकेलगे बेसि सबे नामगुण गाय॥

वालजी गोविन्दजी देसाई

आवश्यक सूचना

गत वर्ष हरिजन-सेवा-प्रेमी हमारे कुछ उदारमना सज्जनों ने पुस्तकालयों, महिलाओं तथा असमर्थ हरिजनों को एक साल तक 'हरिजन-सेवक' मुफ्त अथवा आधे मूल्य पर देने के लिए हरिजन-सेवक-कार्यालय को सहायता भेज दी थी। अब उसका वर्ष समाप्त हो रहा है। यदि उन सज्जनोंने पुनः सहायता न भेजी, तो उन सब पुस्तकालयों, महिलाओं एवं हरिजनों को जो 'हरिजन-सेवक' भेजा जाता था, वह वाध्यतः हमें अब बंद कर देना पड़ेगा। अतः हमें विश्वास है, कि हमारे हरिजन-सेवा-प्रेमी उदारमना सज्जन शीघ्र-से-शीघ्र यथापूर्व सहायता भेजकर यश और पुण्य के भागी बनेंगे, ताकि हम उन सब के नाम इस वर्ष भी पत्र जारी रख सकें। इस प्रकार की सहायता भेजने के लिए अन्य दानी मानी सज्जनों से भी हमारी प्रार्थना है।

मैनेजर,
'हरिजन-सेवक,' दिल्ली

बिहार के खंडहरों में

[२]

भूकंप के भयंकर दृश्य

मोटर से २९ मार्च के सवेरे हम लोग मुजफ्फरपुर से सीतामढ़ी के लिए रवाना हुए। जहाँ भी गये, विध्वंस के वे भयावने दृश्य सर्वत्र वैसे ही देखने में आये। साथ ही, गांधीजी के प्रति लोगों की श्रद्धा-भक्ति भी वैसी ही सर्वत्र दिखाई दी।

क्रूर भूकंप के कुछ विध्वंस-दृश्य तो इतने अधिक भयानक और हृदय-द्रावक थे, कि उनका वर्णन ही नहीं किया जा सकता। मीलों तक, जहाँ पहले हरी हरी फसलें खड़ी थीं, और रेत का कहीं एक कण भी नहीं था, अब वहाँ बालू-ही-बालू नजर आती थी। वह सारा रेगिस्तान-सा लगा। सड़कें नीचे धस गई थीं। पुलों का पता नहीं था। तालाब सूखे पड़े थे। पानी की जगह वहाँ रेत-ही-रेत भरी पड़ी थी। वृक्षों की जैसे धज्जियाँ उड़ गई थीं। ज़मीन में उनके गिरे धँस पड़े थे। कहीं-कहीं धरती में बड़ी-बड़ी दरारें हो गई थीं। और गाँव-के-गाँव कहीं-कहीं जैसे मलबे के ढेर हो गये थे। यह सब प्रलय-देवता की कैसी भीषण और क्रूर लीला थी!

लेकिन मनुष्यने मनुष्य के साथ जो अमानुषिक व्यवहार किया है, उसके सत्यानाशी चिह्न को गांधीजी के मानस पट से प्रकृति-कृत यह भयंकर विध्वंस भी न मिटा सका। अस्पृश्यता का भीषण पाप तो उस प्रलय-लीला-स्थली में भी हमें भयभीत कर रहा था।

वास्तविक अस्पृश्य

सीतामढ़ी हम लोग शाम को पहुँचे। श्री सीताजी की जन्मस्थली सीतामढ़ी, जिला मुज़फ्फरपुर में, भूकंप-कष्ट-निवारण का एक सुप्रसिद्ध कार्य-केन्द्र है। गांधीजी के आश्रम के बहुत से कार्यकर्त्ता इसी सहसील में काम कर रहे हैं। गांधीजी को वहाँ यह मालूम हुआ, कि उनमें का एक मुसलमान कार्यकर्त्ता यह कठिनाई अनुभव कर रहा है, कि किसी मुसलमान या ईसाई का हाथ धोखे से भी अगर किसी खाने-पीने की चीज से लग जाता है, तो हिंदुओं की दृष्टि में वह चीज नापाक हो जाती है।

सीतामढ़ी की सार्वजनिक सभा में इस बात की चर्चा करते हुए गांधीजीने कहा—"यह तो एक बहुत बड़ा पाप है। किसी मुसलमान या ईसाई के स्पर्श को—फिर वह कितना ही सत्य-परायण, ईश्वरभीरु, पवित्र और स्वार्थत्यागी क्यों न हो—नापाक समझना क्या यह हृदय पर चोट नहीं पहुँचाता है? ईश्वरने विभिन्न धर्मों की सृष्टि की है और उसके भक्त भी भिन्न-भिन्न धर्मों में हुए और हैं। इस विचार को मैं छिपाकर भी अपने हृदय में कैसे स्थान दे सकता हूँ, कि मेरे पड़ोसी का धर्म मेरे धर्म से घटिया है, इसलिए वह अपना धर्म छोड़कर मेरा धर्म स्वीकार करले? एक सच्चे और विश्वसनीय मित्र की हैसियत से तो मैं केवल यही इच्छा कर सकता हूँ, यही प्रार्थना कर सकता हूँ, कि मेरा पड़ोसी अपने ही धर्म में रहकर पूर्णता को प्राप्त करे। उस साईं के अनेक घर हैं और वे सब एकसमान पवित्र हैं। दुनियाँ के सभी बड़े-बड़े धर्म-मज़हब मानवजाति की समता तथा बन्धुता और पारस्परिक सहिष्णुता की शिक्षा देते हैं। हिंदू धर्म को विकृत बना देनेवाली यह अस्पृश्यता धर्म-प्रगति के लिए एक भयंकर बीमारी है। इस रोग से कोई भी धर्म कभी फूल-फल नहीं सकता। अस्पृश्यता एक अन्ध विश्वास है, एक प्रकार की भ्रम-प्रवंचना है। धर्म एवं सदाचार की दृष्टि से यह एक घृणित धारणा है। सच्चे अस्पृश्य तो दिल में पैठे हुए वे अशुद्ध विचार हैं, ये दुर्वासनाएँ हैं—यह असत्य, यह लोभ, यह कपट ही वास्तविक अस्पृश्य हैं। हमारे नित्य के व्यवहार को इन अस्पृश्योंने कलुषित कर रखा है। हमें यदि किसी के संपर्क या, किसी के स्पर्श से बचना चाहिए तो सिर्फ़ इन्हीं अस्पृश्यों के।

प्रकृति की दी हुई चेतावनी

यहाँ से हम लोग दरभंगा गये। गांधीजी वहाँ दरभंगा-महाराज के अतिथि थे। स्थानिक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन महाराजाधिराज कुमारने वहाँ की विराट् सार्वजनिक सभा में गांधीजी को मानपत्र दिया। महाराजा साहब की अनिवार्य अनुपस्थिति में इन महाराजकुमारने ही गांधीजी का आतिथ्य किया। मानपत्र का जवाब देते हुए गांधीजीने आत्मशुद्धि और धर्म-संशोधन की बड़ी जोरदार अपील की। गजग्राह के पौराणिक रूपक का दृष्टान्त देकर उन्होंने लोगों को बतलाया कि यह तमाम भौतिक संकट हमारे पापों के ही अनिवार्य परिणाम हैं, और यह सब संकट हमें हमारी आध्यात्मिक निद्रा से जगाने के लिए ही हमारे ऊपर आया करते हैं। कथा प्रसिद्ध है, कि गज और ग्राह अपने पूर्वजन्म में सहोदर भाई थे। किन्तु भाई-भाई की तरह स्नेहपूर्वक न रहकर वे एक दूसरे से घृणा करते थे। इसलिए दूसरे जन्म में स्वभावतः वे एक दूसरे के शत्रु बन गये। उनकी वह घृणा अब भी दूर नहीं हुई। उन्होंने इस जन्म में भी अपने को नहीं सुधारा। एक दिन की बात है, कि सरोवर में गजेन्द्र जल-क्रीड़ा कर रहा था। अवसर पाते ही ग्राहने गज का पैर पकड़ लिया और वह उसे जल के भीतर खींचने का प्रयत्न करने लगा। लिखा है, कि गजग्राह का यह भयंकर युद्ध सुदीर्घ काल तक होता रहा। अन्त में, जब गज को अपनी शक्ति क्षीण होती दिखाई दी, और पानी के बाहर सिर्फ़ उसकी सूँड ही रह गई, तब उसने भगवान् हरि को करुणार्द्र स्वर में पुकारा। श्रीहरि गज की सहायता को दौड़े आये। भगवान्ने गजेन्द्र को ग्राह के फंदे से छुड़ा लिया। ग्राह का भ्रम दूर हो गया। माया का परदा हट गया। और पूर्वजन्म के वे दोनों भाई एक दूसरे को प्रेम करने लगे। भगवान् की कृपा से उन दोनोंने फिर नररूप धारण कर लिया। अंत में गांधीजीने कहा—"प्रकृति हमें घनघोर गर्जना की वज्र-वाणी से चेतावनी देती है। वह हमारी आँखों के आगे अग्नि-अक्षरों में अपनी चेतावनी लिख जाती है। पर हम देखते हुए भी प्रलय-संकेत को नहीं देखते। सुनते हुए भी उसकी वज्र-वाणी को नहीं सुनते। अगर आप लोगोंने प्रकृति के संकेतों पर ध्यान न दिया, तो वह ब्याज-समेत एक-एक पाई आपसे वसूल कर लेगी।"

नाथ! मुझे तो विपदा ही दो

३१ मार्च के प्रातःकाल दरभंगा से हम लोग मधुबनी के लिए रवाना हुए और दोपहर को वहाँ पहुँचे। मधुबनी में अखिल भारतीय चर्खा-संघ की बिहार-शाखा का कार्यालय है। प्रांतभर में यहीं सबसे ज़्यादा खादी तैयार होती है और बिकती भी काफ़ी है।

वहां से ८ मील की दूरी पर राजनगर नाम का एक स्थान है। राजनगर के आलीशान रंगमहल और सुंदर मंदिर, जिनके बनवाने में एक करोड़ से अधिक रुपया खर्च हुआ था, धराशायी देखकर गांधीजी का हृदय रो उठा। वहां से लौटकर मधुबनी की सभा में जब उन्होंने भाषण किया, तो कहा, कि—"राजनगर के उस सर्वनाश का चित्र जब मैंने देखा, तो मुझे अत्यंत दु:ख हुआ और ऐसा लगा कि मानो उस मानवी महाविपदाने मुझे चूरचूर कर दिया। किन्तु मुझे उस समय कुन्ती की यह प्रार्थना याद आई, कि 'हे नाथ ! मुझे तो कष्ट और विपदा ही दो, जिससे मुझे सदा तुम्हारा स्मरण बना रहे।' कुंती की वह हिमालय-जैसी ऊँची श्रद्धा हम सबको प्राप्त नहीं हुई कि हम प्रभु से वैसी प्रार्थना कर सकें; पर क्या हमसे इतना भी नहीं हो सकता कि हमारे सिर पर जो संकट आये उनसे हम आत्म-शुद्ध करने और ईश्वराभिमुख होने की शिक्षा ग्रहण करें ?"

और वे काली झंडियाँ !

और जब सर्सार ग्राम में गांधीजी इस प्रकार भाषण कर रहे थे, तब सभा के एक कोने से काली झंडियां और काले छाते लिए हुए पांच-छह आदमी दिखाई दिये। लोगों से यह कहने के बाद, कि उन काली झंडीवालों की उपस्थिति से किसी को उत्तेजित नहीं होना चाहिए, बल्कि धीरज के साथ उनके विरोध प्रदर्शन को सहन कर लेना चाहिए, गांधीजीने अस्पृश्यता के संबंध में अपने स्पष्ट विचार प्रगट किये। उन्होंने कहा, कि अस्पृश्यता शास्त्र की शिक्षाओं और सनातन धर्म के तत्व के बिल्कुल विपरीत धारणा है। सनातनधर्म तो संसार के समस्त धर्मों में सबसे अधिक उदार और सहिष्णुतापिय धर्म है। हमारी आदरणीय और पूज्य माता का काम करनेवाले 'डोम' को अस्पृश्य मानना क्या एक उपहासास्पद बात नहीं है ? गांधीजी के इस भाषण के समय वे काली झंडीवाले भाई फिर वहां देखने में नहीं आये। सभा के अंत में गांधीजीने हरिजन-कार्य के लिए यथाश्रद्धा लोगों से दान मांगा। और काफ़ी उत्साह से रुपया, पैसा, पाई आदि जो जिससे बन पड़ा यथाशक्ति गांधीजी को दिया।

कभी भूलने का नहीं

और भागलपुर ज़िला की उस यात्रा में जो अनुभव हुआ, वह तो कभी भूलने का नहीं। उस दिन काफ़ी लंबी सफ़र हुई। मोटर से एक दिन में गांधीजीने ११० मील की सफ़र की। सड़क भी काफ़ी ख़राब थी, जिससे सारे दर्शकों के नाक में दम आ गया। आठ-आठ, दस-दस मील से हज़ारों की तादाद में ऐसे लोग—स्त्री और पुरुष—गांधीजी का दर्शन करने आये थे, जिन्होंने न तो कभी पहले उन्हें देखा ही था, और न उनके पासतक कोई कार्यकर्ता ही पहुंचा था। क़रीब आधे दर्जन स्थानों में पचास-पचास, साठ-साठ हज़ार आदमियों का जमाव था। कुल मिलाकर चार लाख आदमियों से ज़रूर उसदिन गांधीजी मिले होंगे। वहाँ भाषण कहीं भी नहीं दिया—न तो संभव ही था, न लोगों को भाषण सुनने की आवश्यकता ही थी। वे तो महात्माजी का केवल दर्शन करने आये थे। सो दर्शन किया और प्रसन्नचित्त चले गये।

सबसे बड़ा रहस्य

सोमवार को गांधीजी का मौनदिवस था। उस दिन वह सहरसा में ठहर गये। सबेरे ८ बजे से ही वहाँ पचास-साठ हज़ार दर्शनातुर आदमियोंने गांधीजी के बंगले को घेर रखा था। सारे दिन वे लोग भूखे प्यासे वहीं तेज़ धूप व धूल में बैठे रहे, उठने का किसीने नाम भी नहीं लिया। शाम होते-होते वह उत्कंठित जन-समूह एक लाखतक पहुंच गया। संध्या को खुले मैदान में गांधीजीने उस विराट् सभा में भाषण किया। 'ईश्वर क्या हृदयहीन और प्रतिकारी है, जो उसने भूकंप-द्वारा हमें दंड दिया ?' यह प्रकरण भाषण में आया, तो इस का उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा—"नहीं, न तो वह हृदयहीन ही है, न प्रतिकारी ही। बात इतनी ही है, कि उसकी अविगत गति हम नहीं जानते। उस सिरजनहार का मार्ग निराला ही है। हमारे क्षुद्र ज्ञान से वह परे है।" उस दिन एक मित्र के पत्र में भी उन्होंने यही बात लिखी थी, कि—"जब हम यह जानते हैं, कि ईश्वर स्वयं एक बड़ा-से-बड़ा रहस्य है, तो उसकी किसी लीला से हम क्यों परेशान हों ? अगर हम जैसा चाहते वैसा ही वह करता, तो न हम उसकी सृष्टि होते, न वह हमारा स्रष्टा। जो अभेद्य अंधकार हमें चारों ओर से घेरे हुए है, वह हमारे लिए अभिशाप नहीं, किंतु आशीर्वाद है। हमारे सामने जो सीढ़ी है, जो डग है, सिर्फ़ उसे ही देखने की ईश्वरने हमें शक्ति दी है। यदि ईश्वरी प्रकाश से वह हमें सूझ जाय तो वह एक ही डग हमारे लिए बहुत काफ़ी है। और अपने अतीत के अनुभव से हम यह विश्वास कर सकते हैं, कि हमारा अगला डग हमेशा हमारे दृष्टि-पथ में रहेगा। जिस अभेद्य अंधकार की हमने कल्पना कर रखी है, वैसी चीज़ वह है नहीं। हमें वह तभी अभेद्य लगता है, जब हम अपनी अधीरता के वश होकर यह देखने की इच्छा करते हैं, कि उस एक डग के परे और क्या है। और चूंकि ईश्वर प्रेम-स्वरूप है, इसलिए हम निश्चयात्मक रीति से यह कह सकते हैं, कि उसकी प्रेरित ये आधिभौतिक आपदाएँ भी प्रच्छन्नरूप में हमारे लिए आशीर्वादरूप ही हैं। पर केवल उन्हीं के लिए, जो इन महान् संकटों का अन्तर्दृष्टि तथा आत्मशुद्धि के अर्थ चेतावनीस्वरूप समझते हैं।"

भागलपुर और मुंगेर

रात को सफ़र थी। रेल के हर स्टेशन पर भीड़ दिखाई दी। अपार उत्साह था। आराम लेना भीड़ने असम्भव कर दिया। बड़े तड़के, ३ एप्रिल को, हम लोग बिहपुर पहुँचे। प्रात: प्रार्थना एक भारी जन-समूह के बीच की गई। प्रार्थना में पूर्ण शान्ति रही। वहाँ से हम लोग घाट को नाव पर सवार होकर गंगा-पार उतरे और भागलपुर पहुँचे, और वहाँ से मुंगेर। दो हज़ार मकान मुंगेर में धराशायी हो गये हैं, और दस हज़ार जानें गई हैं। इस भूकम्पने मुंगेर नगर का तो सर्वनाश कर दिया है।

'पापी तो हम सभी हैं'

मुंगेर की सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए गांधीजीने कहा—"इस कल्पना से अधिक वाहियात बात और क्या हो

सकती है, कि ख़ासकर बिहारियों को ही प्रकृतिने अपना कोप-भाजन बनाया, क्योंकि वे अन्य प्रान्तवालों की अपेक्षा अधिक पापी हैं ? किसी एक व्यक्ति के अनाचार से संकटों का आना सिद्ध नहीं होता। तो भी भौतिक संकटों एवं मानवी पापों के बीच अखंड सम्बन्ध अवश्य है। जब कोई एक अंग व्यथित होता है, तो उसके कारण सारे शरीर को यंत्रणा भोगनी पड़ती है। अतः प्रत्येक विपदा व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन को पूर्ण शुद्ध बनाने के लिए ही आती है।"

उदारता या सहिष्णुता

मुंगेर से लौटकर फिर पटना ज़िला। दक्षिण उत्तर की ओर का, पटना ज़िले का यह प्रवास बड़ी जल्दी में हुआ। इस भाग-दौड़ में उल्लेखनीय भाषण गांधीजी का सिर्फ़ बरही में हुआ। यहाँ कुछ काली झंडीवालोंने अपनी व्यूहरचना कर रखी थी। स्वभावतः गांधीजी के भाषण में 'काली झंडियों' का प्रसंग आ गया। उन्होंने कहा—"सनातनधर्म में राजनीतिज्ञों की इस कूट-नीति-निपुणता का प्रवेश देखकर मुझे दुःख होता है। काली झंडियों के साथ-साथ सनातनधर्म को मैं अपने मन में कभी स्थान दे ही नहीं सकता। काली झंडियों और सनातनधर्म का यह सम्मिश्रण मुझे तो अत्यन्त कष्टदायक और विलक्षण मालूम देता है। मैंने तो राजनीति के क्षेत्र में भी कभी काली झंडियों को काम में लाना पसंद नहीं किया है। ऐसी बातों से सनातन-धर्म गौरवान्वित होने का नहीं। उदारता एवं सहिष्णुता का भाव ही सदा से सनातनधर्म का सिद्धान्त रहा है। इन काली झंडीवालों के प्रति भी हमें पूर्ण सहिष्णु रहना चाहिए। न उन पर कोई नाराज़ हो और न उनके हाथ से झंडियाँ छीन लेने का ही कोई प्रयत्न करे। मैं तो उन काली झंडीवालों के साथ भी मित्रता बढ़ाने के लिए अधीर हूँ। किसी भी तरह वे मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकते। लेकिन अगर सुधारक आपे से बाहर होकर बदला लेने पर उतारू हो जायँगे, तो हानि उन्हीं के काम में पहुँचेगी। अगर कोई व्यक्ति मेरे विचारों को पसंद नहीं करता, तो वह मेरी बात न सुने। पर इस प्रकार अशिष्टता करने का क्या अर्थ होता है ? पारस्परिक शिष्टता या विनय और आदरभाव ही संस्कृति का मूल है। मैं तो यह देखना चाहता हूँ, कि विनयशीलता की दौड़ में, देखें, कौन बाज़ी मारता है। मेरी समझ में यह नहीं आता, कि जिस धर्मने गोसाईं तुलसीदास-जैसे महान् संत को पैदा किया है, वह मनुष्यजाति के एक समूचे भाग को तुच्छता तथा नीचतापूर्ण जीवन के गढ़े में गिरानेवाली अस्पृश्यता-प्रथा का कैसे समर्थन कर सकता है। तुलसीदासजीने कहा है—

'दया धर्म का मूल है, पापमूल अभिमान।'

सब प्रकार की संकुचित वृत्ति तथा अहंता को जबतक हमने निर्मूल नहीं कर दिया, तबतक भगवान् से भेंट नहीं हो सकती। इसलिए आप सब लोग तुलसीदासजी के 'दया धर्म का मूल है' इस दोहे पर ध्यानपूर्वक विचार कीजिए।"

प्यारेलाल

आसाम का गौरव

सन् १९२१ में सरकारने पहली बार आसाम के करघों तथा अन्य गृह-उद्योगों का पत्रक तैयार कराया था। उस पत्रक के परिणाम स्वरूप आँकड़े निम्नलिखित नक़्शों में दिये जाते हैं:—

नक़्शा १

चालू करघों की संख्या

ज़िला	बिना नारी के	नारीवाले
ब्रह्मपुत्रा की घाटी	३६११८७	२४८०
ग्वालपाड़ा	४६४८५	२१०१
कामरूप	१२०४३८	१२६
दारंग	४२४१७	७
नौगाँव	४७३२५	२८
शिवसागर	६८६४१	१६८
लखीमपुर	२९७९०	४२
गारो का पहाड़ी इलाक़ा	६०९१	९
सदिया सीमा प्रदेश	११२५	१६
बालीपाड़ा सीमा प्रदेश	२०५	×

नक़्शा २

ज़िला	चालू तकलियों या चरखों की संख्या	चालू चरखियों की संख्या
ब्रह्मपुत्रा की घाटी	१४९१६५	७३०८१
ग्वालपाड़ा	१७३६६	८८९३
कामरूप	६०५३९	२६७०३
दारंग	१५७५९	५२०७
नौगाँव	२२६५९	१०६५३
शिवसागर	१२८०८	३०८०
लखीमपुर	१५९८३	३६५८
गारो का पहाड़ी इलाक़ा	४०५१	१४८८७
सदिया सीमा प्रदेश	४९५	१६७
बालीपाड़ा सीमा प्रदेश	४७	३६

गणना-पत्रक में इन आँकड़ों पर निम्नलिखित टिप्पणी दी हुई है:—

"अन्य भागों (सुरमा घाटी आदि) के मुक़ाबले में ब्रह्मपुत्रा की घाटी में करघों की काफ़ी भारी संख्या दिखाई देगी। दो घर पीछे लगभग एक करघा वहाँ होगा। कपड़ा बुनना गृहणी का एक सम्मान्य गृह-धंधा है, और लगभग सदा ही घरू उपयोग के लिए कपड़ा बुना जाता है।...... स्त्रियाँ अपने फ़ुरसत के समय में कपड़ा बुनती हैं।...... नागा की पहाड़ियों में तो गृहोपयोगी कपड़ा ब्रह्मपुत्रा की घाटी से भी अधिक व्यापक रूप में बुना जाता है। दूसरे पहाड़ी ज़िलों में कपड़े की बुनाई उतनी व्यापक नहीं है।"

साधारण करघे पर ४) से लेकर १५) तक खर्चा बैठता है; औसत १०) का पड़ता है। बढ़िया बनावट का करघा एक पीढ़ी तक या सारी ज़िंदगी चलता है। सस्ता करघा चार—पाँच साल तक चलता है। बहुत बढ़िया करघा ३०) में आता है। नागा लोगों के करघे पर तो एक पैसा भी खर्च नहीं होता, वह तो उनकी दिनभर की मेहनत से तैयार हो जाता है।

रिपोर्ट में तीन गणना-पत्रकों से ऐसे तुलनात्मक आँकड़े भी दिये गये हैं, जिन से यह प्रगट होता है, कि वस्त्र-उद्योग के द्वारा कितनी जन-संख्या की परवरिश होती थी:—

	१९०१	१९११	१९२१
कपास का ओटना, साफ़ करना और दबाना	३२७६	४६	२३

रुई का कातना, और बुनना	५३५३०	५६२९५	४५४९३
रेशम का ,, ,,	५६८	१७१७	९००

'हरिजन' से] वालजी गोविंदजी देसाई

राजपूताना

[मार्च, १९३४]

शिक्षा—निम्नलिखित पाठशालाएँ हरिजनों के लिए खोली गईं :—

रात्रि-पाठशालाएँ—मेवाड़ के भीलवाड़ा ज़िले में ३; गरियाबाँस (छोटी सादड़ी, मेवाड़, के पास) में १; श्रीमाधोपुर (जयपुर) में ३;

दिवस-पाठशालाएँ—बीकानेर में १; भीलवाड़ा (मेवाड़) ज़िले में ३; गरियाबाँस (मेवाड़) में १; गंगियासर (जयपुर) में १;

जोधपुर की २ हरिजन-पाठशालाएँ बोर्ड के स्कूलों की सूची में शामिल कर दी गईं।

नरैना (जयपुर) की हरिजन-पाठशाला में एक महिला विद्यार्थिनी दाख़िल की गई।

पिलानी-कालेज के औद्योगिक वर्ग में दाख़िल होने के लिए एक चमार विद्यार्थी को फतेहपुर की सेवक-समितिने सहायता दी।

साधारण पाठशालाओं में २७ हरिजन-विद्यार्थी दाख़िल किये गये। संघ की पाठशालाओं में १५ और हरिजन कन्याएँ भरती हुईं। इसी प्रकार संघ की पाठशालाओं में १०० और हरिजन विद्यार्थी दाख़िल हुए।

चार-चार रुपये माहवारी रघुमल-छात्रवृत्तियाँ सागवारा-आश्रम (डूंगरपुर) के ५ हरिजन-विद्यार्थियों को बढ़ाई गईं। ब्यावर के १ धोबी विद्यार्थी को ६) माहवारी रघुमल-छात्रवृत्ति दी गई।

हरिजनों में शिक्षा-प्रचार के सम्बन्ध में १७ सभाएँ की गईं, जिनमें सवर्णों एवं हरिजनों की उपस्थिति २७०० के क़रीब रही।

अमरसर (जयपुर) के हरिजन विद्यार्थियोंने एक पुस्तकालय एवं वाचनालय स्थापित किया।

'अच्छे रहो, चंगे रहो' नाम की पुस्तक की ५०० प्रतियाँ हरिजन विद्यार्थियों को बाँटी गईं।

२२८ हरिजन-विद्यार्थियों को किताबें और स्लेटें वग़ैरा मुफ़्त दी गईं।

आर्थिक—अमरसर (जयपुर) के एक हरिजन को कम ब्याज पर क़र्ज़ दिया गया।

सूरजगढ़ और अमरसर में २ हरिजनों को काम में लगाया गया।

१२ हरिजन विद्यार्थियों को मुफ़्त कपड़े दिये गये।

४३३ हरिजन बच्चों को मिठाई बाँटी गई।

कोटाबीलसा की शाखा-समितिने ख़ासकर हरिजनों के लिए एक कोआपरेटिव स्टोर खोला।

सामोद (जयपुर) की एक हरिजन स्त्री को उसका भस्मसात् झोंपड़ा फिर से बनाने के लिए ५) की सहायता दी गई।

सफ़ाई व आरोग्यता—२८ विभिन्न स्थानों की बस्तियों का ४९१ बार निरीक्षण किया गया। १२ गाँवों में कार्यकर्ता गये। १२५ हरिजन घरों का निरीक्षण किया गया, और सफ़ाई के लाभ जहाँ-तहाँ हरिजनों को समझाये गये। संघ के शिक्षकों एवं कार्यकर्ताओंने ११७ बार हरिजन विद्यार्थियों को नहलाया-धुलाया। १३६० हरिजन-बालकों को दाँत साफ़ करना सिखाया गया, तथा ११०६ हरिजन-बालकों को हाथ, पैर, मुँह साफ़ रखने की शिक्षा दी गई। ९७३ लड़कों को नहाने का साबुन मुफ़्त दिया गया। कालाडेरा में शिक्षकों तथा हरिजन विद्यार्थियोंने हरिजन-मोहल्ले साफ़ किये। नरैनो की हरिजन-बस्तियों को नरैनो-आश्रमवाले नित्य साफ़ किया करते हैं।

मद्य-मांस-निषेध—८ विभिन्न स्थानों में २४ सभाएँ हुईं, जिनमें ४५० से ऊपर हरिजन उपस्थित हुए। इन सभाओं में दारू-ताड़ी न पीने के लिए ज़ोरदार शब्दों में उनसे कहा गया। परिणाम यह हुआ, कि २०१ हरिजनोंने शराब व मुर्दार मांस छोड़ देने की प्रतिज्ञा की।

दवा-दारू—५७२ हरिजन रोगियों को मुफ़्त दवाइयाँ दी गईं। ८३ मरीज़ों को वैद्य-हकीमोंने जाकर देखा। ४४६ हरिजन औषधोपचार से रोग-मुक्त हुए। परतापुर (बाँसवाड़ा) के ३ हरिजनों को दो महीने के लिए तिल्ली की दवा दी गई।

धार्मिक—हरिजनों एवं सवर्ण हिंदुओंने मिलकर २९ बार भजन-कीर्तन किया। ११ बार हरिजन-मोहल्लों में हरि-कथाएँ हुईं। फतेहपुर की शाखा-समितिने अक्सर हरिजन विद्यार्थियों को धार्मिक शिक्षा दी।

पानी का प्रबन्ध—सूरजगढ़, झुंझनू और नरैना के सवर्ण हिंदुओं के ३ कुएँ खोल दिये गये। सीकर (जयपुर) में हरिजनों के लिए एक कुआँ खुदवाया जा रहा है। झुंझनू (जयपुर) के मोचियों के कुएँ पर भंगियों के लिए एक हौज़ बनवा दिया गया है।

सामान्य—अस्पृश्यता-निवारण के सम्बन्ध में सार्वजनिक सभाएँ हुईं। छूतछात न मानने की २५ सवर्ण हिंदुओंने प्रतिज्ञा की। झालरापाटन में चमारों का एक मन्दिर बड़े समारोह से खोला गया। ३००० हरिजन इस उत्सव में शामिल हुए। इसमें राज्य की ओर से भी काफ़ी मदद मिली।

'हरिजन-सेवक' के १४ ग्राहक बनाये गये। १३०० हरिजनों और ४२० सवर्ण हिंदुओं को 'हरिजन-सेवक' २६ विभिन्न स्थानों पर पढ़कर सुनाया और समझाया गया।

हरिजन-आंदोलन-सम्बन्धी २५ पुस्तकें बेची गईं।

जोधपुर की हरिजन-सेवक-समिति प्रान्तीय संघ से सम्बद्ध कर ली गई।

रचनात्मक कार्य पर व्यय—मार्च मास में हरिजन-सेवा के रचनात्मक कार्य पर नीचे लिखे अनुसार ख़र्च किया गया:—

पाठशालाएँ तथा आश्रम	१६९४॥-)७
छात्रवृत्तियाँ	८४=)॥
किताबें, स्लेटें इत्यादि	२१॥=)।
कपड़े व साबुन	२३।-)॥
दवाइयाँ	२।=)॥
फुटकर सहायता	४८)
कुल जोड़	१८७५॥=)१०

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupte.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ११ मई, १९३४. [संख्या १२

विषय-सूची

हार्दिक वेदना

[जसीडीह स्टेशन पर गांधीजी के ऊपर सनातनियों की ओर से जो आक्रमण हुआ था, उसके सम्बन्ध में गांधीजीने देवघर में जो भाषण हिंदी में किया था, उसका यह आशय उन्होंने स्वयं ही तैयार करके भेजा है—सं०]

"मेरे लिए यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है, कि मुझे इस पवित्र स्थान के दर्शनका अवसर मिला। मेरे पूर्वपुरुष यहां आये थे। किन्तु मैं स्वीकार करता हूं, कि मेरे आने का वह उद्देश्य नहीं है, जिस उद्देश्य से कि यहाँ वे आये थे। आपको शायद यह मालूम न होगा कि दक्षिण अफ्रीका से १९१५ में जब मैं लौटकर भारत आया था, उस समय जिन स्थानों में मैं बुलाया गया था उनमें से यह स्थान भी एक है। यहां मैं आश्रम स्थापित करने के लिए आमन्त्रित किया गया था। पिछली बार जब मैं यहां आया था, उस समय यहां के तमाम पंडोंने स्वयंसेवक बनकर मेरे प्रति अपने प्रेम का परिचय दिया था। वे यह जानते हैं कि उस समय भी अस्पृश्यता के संबन्ध में मेरे वही विचार थे जैसे आज हैं। वे यह भी जानते हैं कि उस समय भी जिन सभाओं में मैंने भाषण किये थे उन सबमें अस्पृश्यता सम्बन्धी अपने विचार प्रगट किये थे। किंतु आज वे ही पुरोहित तथा पंडे लोग दो दलों में विभक्त हैं। एक दल तो मेरा पक्षपाती है, तथा दूसरा, चाहे उसकी संख्या कितनी ही कम क्यों न हो, मेरा विरोधी है।

मैं जानता हूं कि यह बात किसी आदमी के हाथ की नहीं है कि वह सर्वदा सब मनुष्यों के प्रति अपना प्रेम पूर्ववत् रख सके। इसलिए न तो यह दुःख की बात है और न इसमें कोई आश्चर्य की ही बात है कि मेरे पुराने मित्रों में से कुछ लोग आज हमारे विरोधी हो गये हैं। किंतु मुझे इस बात का दुःख अवश्य है कि विरोध करनेका उनका तरीका अनुचित है। मैं समझता हूं कि वे लोग उन पर्चों के वितरण के लिए जिम्मेदार हैं, जिनमें मेरे संबन्ध में बिलकुल असत्य तथा अर्द्धसत्य बातें लिखकर जनता में मेरे प्रति भ्रम फैलाने की चेष्टा की गयी है, ताकि लोग मेरे विरोधी बन जायँ। पर्चों की भाषा भी भलमनसाहत से कहीं दूर चली गयी है। यह भी कहा जाता है कि इन पर्चों में से एक पर्चा गिद्धौर के महाराज के आदेश से निकाला गया है। किंतु मुझे जबतक इस बातका अकाट्य प्रमाण नहीं मिलता, तबतक मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता कि वे ऐसे पर्चों के संबन्ध में अपने को शामिल करेंगे।

दक्षिण भारत के भ्रमण के समय भी कुछ स्थानों में मेरे विरुद्ध काले झंडों का प्रदर्शन किया गया था, किंतु उन प्रदर्शनों में सौजन्य मौजूद था। केवल इस बात का ही प्रदर्शन था कि जो लोग काली झंडा लिए हुए हैं, वे इस अस्पृश्यता-निवारण-आन्दोलन के विरोधी हैं। उनमें से बहुत-से तो मेरे अभिवादन का उत्तर देते थे तथा प्रसन्नता और जयजयकार में भी सम्मिलित होने में संकोच नहीं करते थे। मुझे यह भी सन्देह नहीं है कि वहां के प्रदर्शनकारियों में से बहुत-से यह भी कहने को तैयार हो जाते कि वे भीष्म तथा द्रोण की तरह इस आन्दोलन का विरोध केवल अपने पेट के लिए ही कर रहे हैं।

किन्तु खेद है, कि यहां के प्रदर्शनकारियोंने न केवल सौजन्य तथा मनुष्यत्व का ही परित्याग कर दिया है, बल्कि उन्होंने हिंसा का मार्ग भी ग्रहण किया है। आज रातको २॥ बजे जब मैं जसीडीह स्टेशन पर उतरा तो उन्होंने अपशब्दों की चिल्लाहट से वातावरण को दूषित कर दिया। इतने से ही वे शांत न हुए। उन्होंने उपद्रव भी मचाना आरम्भ कर दिया। अगर वे अपने हिंसात्मक कार्यों में सफल हो जाते, तो मोटर का हुड टुकड़े टुकड़े हो जाता। हुड पर ज़ोरों से लाठियों की वर्षा हो रही थी। पीछे का शीशा चूरचूर हो गया और भगवान्‌ने ही गहरी चोट से मेरी रक्षा की। मैं यह विश्वास करता हूं कि ये लोग मुझे शारीरिक कष्ट पहुँचाने के इच्छुक नहीं हैं और हुड पर डण्डे बरसाकर तथा शीशा तोड़कर उन्होंने केवल मेरे प्रति अपने क्रोध का प्रदर्शन ही करना चाहा था। जो कुछ भी उनका इरादा रहा हो, कम-से-कम उनका कार्य तो अवश्य ही हिंसात्मक था।

इस आक्रमण का परिणाम इतना भयंकर हो सकता था कि बाद में शायद वे स्वयं ही दुखी होते। कालीकट के ज़मोरिन का व्यवहार जो मेरे प्रति था उससे आज के इस व्यवहार से ज़मीन-आसमान का अन्तर है। मैं गुरुवायुर गया हुआ था। इस प्रसिद्ध मंदिर पर हुए सत्याग्रह से ज़मोरिन मेरे प्रति असंतुष्ट हो सकते थे, किंतु जिस समय मैं वहां गया, उस समय उन्होंने मेरे विरुद्ध होनेवाले काले झंडों के प्रदर्शन को भी रोक दिया। अपने महल में उन्होंने मेरा सौजन्यपूर्ण तथा हार्दिक स्वागत किया। बातचीत में उन्होंने कहा कि 'हमारी आपकी लड़ाई तो सिद्धान्तों की है।'

देवघर के पंडों तथा स्थानीय वर्णाश्रम-स्वराज संघवालों को तो मेरे विरुद्ध प्रदर्शन करने का कोई कारण भी नहीं मिल सकता। फिर यह विरोध क्यों? सनातनियों का यह अभिमान, कि वे ही सनातन सत्य के जानकार हैं, क्यों है? जो उनका दावा है वही दावा मेरा भी है कि मैं सनातन धर्म के पालन करने का प्रयत्न करता हूं। शास्त्रों की व्याख्या का जितना अधिक या जितना कम अधिकार उनको है उतना ही अधिकार मुझे भी है। मैं यह भी मानता हूं कि इसी प्रकार शास्त्रों का अर्थ समझने का जितना अधिकार मुझे है उतना उन्हें भी है। अवश्य ही हमारी और उनकी समझ में, हमारे और उनके मत में भेद हो सकता है। किंतु यह भेद तो केवल शास्त्रों की व्याख्या में है। ऐसे भेद हमारे यहां सदा से रहे हैं।

सनातनियों को यह विश्वास रखना चाहिए कि मैं ज़बरदस्ती किसी के ऊपर अपना मत लादना नहीं चाहता। ज़बरदस्ती बाध्य करने के उपाय में मुझे तनिक भी विश्वास नहीं है। मैं तो लोगों को अपना मत मनवाने के लिए सत्य को सामने रखता हूं और उनकी बुद्धि तथा उनके हृदय में परिवर्तन करना चाहता हूं।

उदाहरणार्थ, मन्दिर-प्रवेश के ही प्रश्न को लीजिए। अपनी इस यात्रा में मुझे अनेक स्थानों में अनेक मन्दिरों को हरिजनों के लिए, उत्साहित तथा जयजयकार करती हुई सहस्रों की संख्या में एकत्रित जनता के सामने, खोलने का मौका मिला है। मैंने जहां भी मन्दिर खोला है वहां की हिंदू जनता में से किसी एकने भी विरोध नहीं किया है। एक स्थान में, जहाँ मुझे मंदिर खोलने के लिए कहा गया था, मैंने खोलना इसलिए अस्वीकार कर दिया कि वहां एक अत्यन्त अल्पसंख्या इस कार्य के विरुद्ध थी। मैंने कहा था कि यह कार्य तभी होना चाहिए जब या तो अल्पसंख्यक भी आपके पक्ष में हो जायँ या कम-से-कम बहुमत के मत को कार्यरूप में परिणत करने के पूर्व काफ़ी समय विचार के लिए देदिया जाय।

अगर मुझे यह मालूम हो जाय कि कोई एक भी मन्दिर जबरदस्ती या लोगों के मत के विरुद्ध खोला गया है, तो मैं उस मन्दिर को पुन: हरिजनों के लिए बन्द कर देने को आकाश और पाताल एक कर दूंगा।

मैं यह विश्वास करता हूं कि प्रत्येक सवर्ण हिन्दूका यह अनिवार्य कर्तव्य है कि वह सन् १९३२ में बम्बईमें हरिजनोंको दिये गये अपने पवित्र वचनों की पूर्तिके लिए सभी उचित उपाय करे। उस प्रतिज्ञा में यह बात भी कही गयी है, किहरिजनोंके संबंधमें आवश्यकता पड़नेपर क़ानून बनवाने का भी यत्न किया जायगा। मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि बहुमतकी बात चलाना है तो मन्दिर-प्रवेश बिल तथा वैसे ही दूसरे बिलोंका स्वीकार किया जाना नितान्त आवश्यक है। आजके क़ानूनके अनुसार एक आदमीके भी विरोध कर देनेपर हरिजनोंके लिए मंदिर नहीं खुल सकता। किंतु इसके साथ ही साथ मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि यदि इस बिल के पक्षमें हिन्दुओंका स्पष्ट बहुमत न हो तो मैं इस क़ानून का समर्थन नहीं कर सकता।

क्या मैं पूछ सकता हूँ, कि सनातनियोंके इस विरोध प्रदर्शन के क्या माने हैं? क्या वे यह चाहते हैं, कि मैं अपने मत प्रकाशन-कार्य को भी रोक दूं? क्या वे यह चाहते हैं, कि अस्पृश्यता-सम्बन्धी कानूनों के पक्षमें लोकमत जागृत करनेका कार्य भी मैं छोड़ दूं, और वह भी उस समय जब कि मैंने स्वयं ही अपने कार्य के सम्बन्धमें अनेक बन्धन लगा रखे हैं, जो हमारे साथियों तथा सहकर्मियोंको पसन्द नहीं हैं?

मैं ऐसे कानूनोंके पक्ष में मत-संग्रह का भी कार्य नहीं कर रहा हूं, क्योंकि मैं यह विश्वास करता हूं कि ऐसे टेढ़े कानूनी मसलोंमें साधारण जनता का वोट लेना गलत साबित होगा।

मन्दिर-प्रवेश बिल-जैसे कानूनों की आवश्यकताओं अथवा दोषों पर कानूनी विशेषज्ञों को ही राय देनी चाहिए और इस प्रश्न का निपटारा उन्हीं के द्वारा होना चाहिए। मैंने बारबार यह कहा है कि मन्दिर-प्रवेश के सम्बन्ध में केवल सवर्ण हिंदुओं का ही मत-संग्रह होना चाहिए।

यदि वे अपने मन्दिरों को अछूतों के लिए खोलने को तैयार नहीं हैं, तो इसका यह स्पष्ट अर्थ है कि वे अस्पृश्यताके कलंकको धोना नहीं चाहते। मेरे लिए तो इस बात का कोई मूल्य ही नहीं है कि सवर्ण हिन्दुओं के विरोधी रहते तमाम मन्दिर हरिजनोंके लिए खुल गये। ज़बरदस्ती पवित्रता नहीं लादी जा सकती।

अत: मैंने इस प्रकार के विरोध का कारण बहुत ढूंढ़ा, किन्तु मुझे अबतक कोई वजह दिखाई नहीं दी। हां, यह हो सकता है कि शायद लोकमत को तेजी के साथ परिवर्तित होते देखकर ये लोग यह चाहते हों कि किसी भी प्रकारसे मेरे इस भ्रमणका अन्त कर दिया जाय।

मुझे यह कहनेमें कोई संकोच नहीं होता, कि आज प्रातःकालके व्यवहारसे सनातनियोंने सनातनधर्मके पवित्र झण्डेको इस पवित्र स्थानमें उसी प्रकार झुका दिया है, जिस प्रकार कि महाराज युधिष्ठिरने एक अर्द्धसत्य बात कहकर झुका दिया था। क्या महाभारतकार की यह बात आपको स्मरण नहीं है, कि महाराज युधिष्ठिरने ज्योंही असत्य भाषण किया त्योंही उनका रथ पृथिवीमें धँस गया? सनातनी मित्रोंको अपने इस दुर्व्यवहार के लिए पश्चात्ताप करना चाहिए और निश्चय करना चाहिए कि भविष्यमें वे पुन: ऐसे हिंसात्मक कार्य न करेंगे।

सुधारवादियोंसे मैं यह कहना चाहता हूं कि आपकी संख्या अत्यधिक है। जो आज आपका विरोध कर रहे हैं, वे अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। आपका धर्म है कि आप अपने विरोधियों पर अपनी पवित्रता, अपने सौजन्य तथा धैर्य-द्वारा विजय प्राप्त करनेका यत्न करें। यह आन्दोलन आत्मशुद्धिका है और इसमें उसीके लिए स्थान है जिसका हृदय शुद्ध है। प्रदर्शनकारियों के कार्य में आप कोई हस्तक्षेप न करें। उन्हें आपके प्रति अपना विरोध प्रगट करनेका पूरा अधिकार है। यदि वे काली झंडियों का प्रदर्शन करना चाहते हैं, तो अवश्य करें, ताकि हम यह समझ सकें कि विरोधियों की संख्या कितनी है।

कठिनाई तो उस समय उपस्थित होती है, जब वे मेरे रास्ते में लेट जाते हैं अथवा किसी अन्य प्रकार के हिंसात्मक उपद्रव करते हैं। फिर चाहे जो हो, आप हमेशा धैर्य रखें तथा सुजनता के साथ पेश आवें। सनातनी मित्रों को समझाने-बुझाने का यत्न कीजिए और यदि इसमें भी सफलता न मिले

तो आप यह समझकर धैर्य धारण करें कि वह समय शीघ्र ही आ रहा है जब इस सत्य को सभी स्वीकार करेंगे। कोई सुधारवादी बदला लेने का भाव मनमें न आने दे। आप यह समझ लें कि यह आन्दोलन आत्मशुद्धि का है और सुधारवादियों की ओर से किया गया कोई भी हिंसात्मक कार्य मेरे लिए गहरे प्रायश्चित्त का कारण हो सकता है।

मैं समझता हूं कि इधर लाखों की संख्या में संथाल होंगे, जो हिंदू देवताओं की पूजा करते हैं तथा हिंदू-रीति-रिवाजों का पालन करते हैं, किंतु वे अछूत समझे जाते हैं। उनमें से जो अपने को हिंदू नहीं कहते, उन्हें तो आप अछूत नहीं मानते, किंतु जो बेचारे अपने को हिंदू कहते हैं उन्हें आप हिंदू होने का दण्ड देते हैं!

उन्होंने कौनसा अपराध किया है? वे दारू नहीं पीते। वे गऊ की उसी प्रकार पूजा करते हैं, जिस प्रकार आप करते हैं। वे मांस-भक्षण का भी परित्याग कर रहे हैं। वे रामनाम का उच्चारण शायद हमसे व आपसे अधिक श्रद्धान्वित तथा प्रेमपूर्ण होकर करते हैं। वे चर्खा चलाकर तथा कपड़ा बुनकर अपने अवकाश के समय का उपयोग करते हैं। क्या वे समाज से परित्यक्तों की तरह व्यवहृत होने योग्य हैं? क्या वे हमारे प्रेमपूर्ण व्यवहार का अधिकार नहीं रखते?

शास्त्रों में उन्हें अछूत मानने के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप समझते हैं कि ऐसी व्यवस्था है तो जितनी शीघ्रता से उसे बदलदें उतना ही हमारे तथा संसार के लिए अच्छा है।

संथालों से मैं कहना चाहता हूं कि यदि आपका रामनाम में विश्वास है, तो आप भगवान् को अवश्य पावेंगे, चाहे आपके भाई आपका परित्याग करदें। आपको शांति तथा प्रसन्नता देनेवाला वही पवित्र रामनाम है, जो आपकी रक्षा करता है। दूसरे चाहे सहायता करें या न करें।

आसाम की महाव्याधि

आसाम-निवासी हैं तो बेचारे अच्छे आदमी, पर अफीम का दुर्व्यसन उन्हें बर्बाद कर रहा है। औरंगजेब के सेनापति मीर जुमलाने आसाम देश पर चढ़ाई की थी। उसकी सेना में एक मुसलमान इतिहास-लेखक भी था। वह लिखता है, 'आसामी सिपाहियों की थोड़ी संख्या भी हज़ारों का सामना कर सकती है।······आसामी सिपाही की यदि मुसलमानों से भिड़ंत हो जाय, तो वह उन्हें छोड़ेगा नहीं, उनसे जूझ ही पड़ेगा और फ़तह भी उसे मिलेगी।' ऐसी शूरवीर जाति १५० वर्ष से अफीम के कालपाश में फँसी हुई है। राष्ट्रसंघ के मतानुसार प्रति १०,००० आदमियों पीछे ६ सेर अफीम तो यों ही साधारणतया दवा-दारू के तौर पर खप जाती है। ब्रह्मपुत्रा की सुरम्य घाटी के भिन्न-भिन्न भागों में अफीम कहाँ कितनी खपती है, यह नीचे के नकशे में बतलाया गया है :—

ज़िला	प्रति १०००० आदमियों पीछे सेर
सदिया सीमाप्रदेश	२३७·०२९
लखीमपुर	१८९·९७२
नौगाँव	१७३.६२७
बालीपाड़ा सीमाप्रदेश	११६·१६१
सिबसागर	११०·९४५
दारंग	१०६·७२९
कामरूप	४५·५२४

करीब-करीब आधी जन-संख्या को अफीम का व्यसन लगा हुआ है। खाने की अपेक्षा अफीम का पीना अधिक हानिकारक है; पर यहाँ के आधे अफीमची अफीम खाने मदक पीते हैं।

सन् १७९५ के पहले आसाम में अफीम की खेती ही नहीं होती थी, और जब इसकी खेती शुरू हुई तब आसाम के राज्याधिकारियोंने इसका विरोध किया; और अफीम की खेती की ३ एकड़ ज़मीन का १२) लगान वसूल किया गया। आज की दर से यह लगान ६०) या १००) के बराबर बैठता है।

सन् १८२६ में आसाम प्रांत अंग्रेज सरकार के हाथ में आ गया। इसलिए आसामी अफीम को गिराकर सरकार अब अपनी अफीम कम दाम पर बेचने लगी, मगर अफीम की खपत घटाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। सन् १८५३ में जब मिल्स की रिपोर्ट प्रकाशित हुई, उस समयतक ऐसी ही उदासीनता चली आ रही थी। उक्त रिपोर्ट से दो महत्त्वपूर्ण अवतरण नीचे दिये जाते हैं :—

"मैंने अपनी आँखों देखकर यह राय क़ायम की है, कि यहाँ की तीन चौथाई[1] आबादी अफीम खाती है; और स्त्रियाँ, पुरुष और बालक सभी अफीम खाने के आदी हैं।"

"उन्नति-मार्ग की जिन बाधाओं का हटाना या दूर करना सरकार के हाथ की बात है, उनमें सबसे बड़ी बाधा है अफीम की यह बेहद खपत।"

लेफ़्टनेण्ट कर्नल मथी अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं :—

"आसाम-निवासियों को, और खासकर यहाँ के निम्न वर्गों को, अफीम के असीम निरंकुश उपयोग से सचमुच बहुत बड़ी हानि पहुँची है।"

ग्वालपाड़ा के सिविल सर्जन डा० बरी लिखते हैं :—

"अफीम की खेती तथा सरकार की तरफ़ से अफीम की बिक्री इस देश के लोगों के लिए महान् अनिष्टकर एवं भयानक अभिशाप के समान है। एक कुटुंब में ही पिता और बालकों की यह दुर्दशा देखकर दुःख होता है; किन्तु राजनीतिक, सामाजिक और नैतिक दृष्टि से समस्त प्रजा को जब हम ऐसी घोर पतनावस्था में देखते हैं, तब हमें क्षोभ और आश्चर्य होता है, कि हमारी ऐसी दयालु और सभ्य सरकारने अपने एक प्रांत में यह स्थिति कैसे बनी रहने दी!···यहाँ उनके पुरुष आलस्य और अशक्ति के मारे भार-रूप हो गये हैं, और वंशवृद्धि करते-करते नपुंसक बन गये हैं। इनकी संतान निर्बल, नाटी और अपने बाप की तरह या उससे भी अधिक दुःखी होती है।······आसामियों की इस दुर्दशा का अगर हमें भान न हुआ और हमने कुछ उपाय-उद्योग न किया, तो मैं पूछता हूँ कि इस रमणीक

[१२२वें पृष्ठ के पहले कालम पर]

---

[1] सन् १८९२ में अफीम के रायल कमीशन के सामने गवाही देते हुए श्री डाइवर्गने कहा था, कि मीकिर जाति के ८० प्रतिशत आदमी अफीमची हैं।

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ११ मई, १९३४

तीन दुर्घटनाएँ

२५ एप्रिल को मैंने दक्षिण बिहार का हरिजन-प्रवास आरंभ किया। प्रवास के कार्यक्रम में पहला स्थान आरा था। रास्ते में मुझे एक ज़मींदार का मंदिर देखना था, जो हरिजनों के लिए खोल दिया गया था, और वहां थैली भी लेनी थी। चूँकि स्वागत-समिति को काले झंडेवाले सनातनियों की विघ्न-बाधा का भय था, इसलिए वह तजवीज बैठी, कि मैं बजाय मोटर के लारी से जाऊँ, ताकि उन सनातनियों की छेड़खानी से बच जाऊँ— मेरे इस तरह चोरी से जाने का सनातनियों को शक न हो। पर स्वागत-समिति के और मेरे दुर्भाग्य से काले झंडेवालों को पहले से ही हमारी इस बात का पता चल गया, और ज्योंही उस भारी भीड़ में हमारी लारी पहुँची, वे लोग उस पर टूट पड़े। वे समुद्र में बूँद के समान थे। हुआ क्या, कि वे लोग लारी के पहियों से चिपट गये। पर फौरन ही पकड़-पकड़कर हटा दिये गये। मैं तो वह दृश्य देख नहीं सका। यह भाग्य की ही बात थी, कि उनमें से किसी को कोई ऐसी गहरी चोट नहीं पहुँची। जन-समूह तो निश्चय ही उन विघ्नकारियों को किसी भी तरह क्षमा करने को तैयार नहीं था। 'पकड़ो, पकड़ो' की भयंकर आवाज़ें आकाश-मंडल में गूँजने लगीं। पर उन्हें काबू में लाना कोई आसान काम नहीं था। काले झंडेवाले तो आहत होने का निश्चय कर चुके थे। उस दल के नेताने मुझे पहले ही बतला दिया था, कि वे क्षत-विक्षत भले ही हो जायँ, पर वहां से हटेंगे नहीं। इसलिए जब लोग उनके बदन में हाथ लगाते, तो वे बाधा देते थे।

इस दुःखदायक दृश्य को मैं लाचार होकर देख रहा था। सिवा इसके कि मैं लौट पड़ूं, उस स्थिति के सँभालने का उस समय मेरे पास कोई और उपाय नहीं था। इसलिए मुझे यही कहना पड़ा, कि काले झंडेवाले उठाकर हटा दिये जायँ। पुलिस वहाँ थी ही और वह भी उन विघ्नकारियों को, बिना किसी तरह की चोट पहुँचाये, हटाने की कोशिश कर रही थी। यद्यपि किसी को कोई गहरी चोट नहीं पहुँची, तो भी वह दुःखद दृश्य मुझे व्यथित कर देने को तो काफी था ही। एक ऐसी संवेदना हुई, जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। मुझे लगा, कि मैं संज्ञाशून्य हो रहा हूँ। राम-नाम-स्मरण मेरा अकल रीति से तो होता ही रहता है, उस समय मैं जानकर राम का नाम जपने लगा। इससे मुझे शांति मिली। उस दिन का जो कार्य था वह सब मैंने निपटाया—किसी को यह पता नहीं चला, कि उस समय मुझ पर क्या बीती थी या मेरे हृदय में कैसा मंथन हो रहा था।

हमलोगोंने वह मंदिर देखा, थैली ली और मोटर से फिर आरा वापस चले आये। आरा की सार्वजनिक सभा में इतना अधिक कोलाहल और शोर-गुल था, कि वहाँ भाषण करना असंभव था। मानपत्र और थैली के जवाब में दो-चार शब्द कहकर ही संतोष माना। आरा से हमलोग रेल-द्वारा दोपहर को बक्सर पहुँचे। बक्सर में भी काले झंडेवालों का प्रदर्शन था। मेरी गाड़ी तो सकुशल निकल गई, पर मीरा बहिन की मोटर के हुड पर एक लाठी पड़ ही गई। मेरे वहाँ पहुँचने के १५ मिनिट के अंदर ही मैंने सुना, कि स्वागत-समिति के स्वयंसेवकों और काले झंडेवालों में धक्कमधक्का हो गया है। उस भारी जन-समूह में वे काले झंडेवाले तीस से अधिक नहीं थे। यह खबर मैं सुन ही रहा था, कि तीन स्वयंसेवक आ पहुँचे—दो के तो सिर फूट गये थे, और तीसरे का हाथ सूजा हुआ था। उन्होंने मुझे बतलाया, कि विरोध-प्रदर्शक सनातनियों के धक्के-मुक्के बचाने तथा उनके उपद्रवी बरताव के प्रति क्षुब्ध जनता को शान्त करते समय उनकी यह दशा हुई है। उन्होंने मुझे यह भी बतलाया, कि कुछ सनातनियों को भी निस्संदेह चोट आई है।

सार्वजनिक सभा में जाने का समय नज़दीक आ रहा था। मेरा जी अच्छा नहीं था। आरा की उस दुर्घटना को मैं भूला नहीं था, वह अब भी ज्यों की त्यों ताज़ी थी। ठक्कर बापा और विन्ध्या बाबू के साथ सलाह करके सभा में पैदल जाने का ही मैंने निश्चय किया। मुझे लगा, कि यह मोटर ही भड़कानेवाली चीज़ होती है, और मेरा पैदल जाना शायद काले झंडेवालों का गुस्सा ठंडा कर देगा और इस से हरिजन-कार्य के प्रेमियों की भीड़ भी संयत व शांत हो जायगी। विन्ध्या बाबू को पहले ही रवाना कर दिया। उन्होंने जनता को बतला दिया, कि गांधीजीने पैदल ही सभा में आने का निश्चय किया है, इससे न तो कोई जयकार के नारे लगाये, न उनके पैर छूने का प्रयत्न करे, और न कोई काले झंडेवालों को ही छेड़े-छाड़े अगर वे किसी तरह का विरोध-प्रदर्शन करना चाहें। मार्ग के दोनों तरफ़, जो एक मील से कम नहीं था, लोग श्रेणीबद्ध खड़े थे—बीच में मेरे जाने के लिए काफी चौड़ी जगह छोड़ दी गई थी। मेरी दृष्टि में तो वह तीर्थ-यात्रा थी। ठक्कर बापा और विन्ध्या बाबू मेरे साथ थे। सभा बहुत ही सफल रही। जो मैंने सुना और देखा था उस सब का वर्णन किया और कहा, कि स्वागत-समिति के स्वयंसेवकों के द्वारा अगर मेरे विरोध-प्रदर्शकों को कोई चोट पहुँची हो, तो मैं उनसे क्षमा माँगता हूँ। मैंने उन्हें यह भी विश्वास दिलाया, कि इन दुर्घटनाओं के बारे में मैं और भी अधिक जाँच करूँगा।

सभा समाप्त हुई और मैं पैदल ही डेरे को वापस आया। मैं पहुँचा ही हूँ, कि एक सनातनी स्वयंसेवक आया और उसने अपने सिर की एक चोट मुझे दिखाई और कहा, कि और भी लोग आहत हुए हैं, जिनमें एक तो निश्चय ही मर जायगा। वे सब अस्पताल में थे। ठक्कर बापा को मैंने अस्पताल भेज दिया, जबकि मैं स्टेशन जाने की तैयारी कर रहा था। तैयार होकर पीछे-पीछे मैं भी अस्पताल पहुँचा और वहाँ मैंने घायल आदमियों को देखा। वे कुल चार आदमी थे। जिसके बारे में यह कहा गया था, कि वह मरनेवाला है, उसकी निश्चय ही ऐसी हालत नहीं थी। उसके सिर में चोट आई थी। वह मुझ से ठीक-ठीक बात कर सका और बिलकुल होशहवास में था। मेरे विचार में उसकी चोटें उतनी गहरी या घातक नहीं थीं। डाक्टरने उसकी हालत को ख़तरनाक नहीं बतलाया। बाक़ी तीन आदमियों को अधिक चोट आई थी। उन सभीने कहा कि वे अपने एक आक्रमणकारी को पहचान सकते हैं, जो

स्वागत-समिति का पट्टा लगाये हुए था। उस समय पूरी-पूरी जाँच तो मैं कर नहीं सकता था, इसलिए मैंने उनसे कहा, कि आप लोग अपने आक्रमणकारियों के नाम या उनकी हुलिया और पूरा हाल लिखकर मेरे पास भेज दीजिएगा। आहत स्वयंसेवकोंने मुझ से जो कहा था वह मैंने उन्हें बताया और विश्वास दिलाया, कि अगर मैंने यह देखा, कि स्वयंसेवकोंने उन पर आक्रमण किया था या दूसरों को ऐसा करने के लिए उभाड़ा था, तो जहाँतक मुझसे बन पड़ेगा मैं उसके लिए प्रायश्चित्त करूँगा। मैंने उनसे यह भी कहा, कि मेरे लिए वे उतने ही प्रिय हैं, जितने कि स्वयंसेवक। अस्पताल मैं बहुत जल्दी में गया था। मुझे उसी वक्त जसीडीह जंकशन की गाड़ी पकड़नी थी, जहाँ रात को २ बजकर १० मिनिट पर पहुँचना था।

पंडित लालनाथ और उनके साथियोंने सारी रात शोर मचाया। हर स्टेशन पर ये लोग उतर पड़ते और ज़ोर-ज़ोर से गाते व अस्पृश्यता-निवारण के खिलाफ़ निंदात्मक नारे लगाते थे। जहाँतक मैं जानता हूँ, लोगोंने उन के साथ कहीं कोई छेड़खानी नहीं की। प्रायः प्रत्येक स्टेशन पर मेरा स्वागत करने के लिए जो जन-समूह आया, वह सचमुच शांत रहा, जबकि ये सनातनी या तो मुझे यह हरिजन-दौरा बंद कर देने के लिए ललकारते थे या जनता को उत्तेजित करते थे, कि वह पंडित लालनाथ और उनके साथियों के साथ छेड़खानी करे। ख़ैर, इस तरह हमलोग जसीडीह पहुँचे। लोगों की वहाँ भारी भीड़ थी। रोशनी स्टेशन पर मामूली-सी थी, इससे मैं लोगों के चेहरे नहीं देख सका। पुलिस तो वहाँ थी ही। अतः स्वयं-सेवकों के साथ-साथ पुलिसने भी मेरी मार्ग-संरक्षता में भाग लिया।

स्टेशन के फाटकतक कठिनाई से हम लोग पहुँचे। इसके आगे तो गजब की रेल-पेल थी। बीच-बीच में बहुत-से काली झंडोंवाले विरोध-प्रदर्शक भी खड़े थे। बड़ी ही मुश्किल से किसी तरह पुलिस अफ़सरों और स्वयंसेवकोंने मुझे मोटर में बिठाया। ठक्कर बापा मेरे साथ न बैठ सके। ऐसे में उनके लिए गाड़ी का रोक रखना भयावह समझा गया। इसलिए उस भीड़ में से बहुत धीरे-धीरे मेरी गाड़ी आगे बढ़ चली। गाड़ी की छत पर ज़ोर के प्रहार होने लगे। उस क्षण तो मुझे लगा, कि अब छत चूर चूर हुई। इतने में पीछे के शीशे पर एक प्रहार पड़ा। टूटे हुए काँच की किरचें मेरे आगे आ गिरीं। शशि बाबू आगे की सीट पर बैठे हुए थे। उन्हें निश्चय हो गया, कि शीशे को लक्ष्य करके पत्थर फेंका गया था। पर मेरा ऐसा विश्वास नहीं है। किन्तु मैंने देखा कि मैं बुरी तरह घायल होते-होते बच गया।

ऐसे गँवारूपने और हिंसात्मक साधनों के द्वारा सनातन धर्म का यह प्रदर्शन देखकर मुझे व्यथा और ग्लानि हुई। वर्णाश्रम-स्वराज-संघ के नाम से जो चंद आदमी जहाँतहाँ यह विरोध-प्रदर्शन करते फिरते हैं, उनके इस बरताव को मैं किसी तरह न्यायसंगत नहीं कह सकता।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

हरिजन और कताई-बुनाई

मैंने अपने दौरों में देखा है, कि कताई और बुनाई का उद्योग एक ऐसा उद्योग है, जो हज़ारों हरिजनों की पालना कर रहा है, और अगर इसका उचित रीति से संगठन किया जाय, तो यह और भी अधिक लोगों को आजीविका दे सकता है। कुछ जगहों में तो ऐसे बुनकर मिलते हैं, जो अपने धंधे की वजह से ही अस्पृश्य समझे जाते हैं। ये लोग ज़्यादातर खादी और मोटी-से-मोटी खादी बुननेवाले होते हैं। बुनकरों का यह वर्ग डूबने ही वाला था, कि इतने में खादीने आकर उसे उबार लिया, और उनके बनाये मोटे कपड़े की माँग आने लगी। उस समय मालूम हुआ, कि देश में अगणित हरिजन-कुटुम्ब ऐसे पड़े हुए हैं, जो सूत कातकर भी अपनी रोज़ी चला लेते हैं। इस तरह खादी दो प्रकार से ग़रीबों के जीवन का सहारा है। ग़रीब-से-ग़रीब, और ग़रीबों में भी सब से अधिक असहाय हरिजनों को, वह जीवन-दान दे रही है। हरिजनों के असहाय होने का कारण यह है, कि जिन अनेक धंधों को दूसरे लोग कर सकते हैं, उन धंधों को ये बेचारे नहीं कर सकते।

हरिजन-दृष्टि से तो खादी बहुमूल्य है ही, इसके अलावा भी इस हरिजन-प्रवास में खादी की समस्या का मैंने यथासम्भव सावधान अध्ययन किया है। और मुझे मालूम हुआ है, कि खादी-कार्य-कर्ताओं के लिए खादी के अर्थशास्त्र के नियमों का पालन अधिक एकाग्रता से करने की ज़रूरत पर ज़ोर देने की जितनी पहले आवश्यकता थी, उससे आज कहीं अधिक है। खादी के अर्थ-शास्त्र के कुछ नियम तथा साधारण अर्थशास्त्र के नियमों के बीच में पृथिवी-आकाश का अन्तर है। साधारणतया एक जगह की बनी हुई चीज़ें दुनिया के हर हिस्से में भेजी जाती हैं या उन्हें भेजवाने का प्रयत्न किया जाता है। जो लोग उन चीज़ों को बनाते हैं, यह ज़रूरी नहीं, कि वे ही उनका उपयोग करें। पर यह बात खादी के विषय में नहीं है। खादी की यह विशेषता है, कि वह जहाँ तैयार हो वहाँ काम में लाई जाय। और सब से अच्छा तो यह है, कि जो लोग उसे कात-बुनकर तैयार करें, वे ख़ुद ही उसे काम में लावें। जहाँ खादी का इस प्रकार उपयोग होता हो, वहाँ उसकी माँग तलाशने के लिए कहीं जाना ही न पड़ेगा। इसमें सन्देह नहीं, कि इस आदर्शतक तो हम कभी पहुँचने के नहीं। पर जहाँतक इस आदर्श की पूर्ति हो सकेगी, उसी के आधार पर हमेशा खादी की क़ीमत आँकी जायगी। आज जिस विशेष अर्थ में खादी एक गृह-उद्योग है, उस अर्थ में कोई दूसरा उद्योग नहीं है, या हो नहीं सकता—हाँ, मर्यादित अर्थ में एक खेती अवश्य है, यदि गृह-उद्योगों में उसकी गणना की जा सके। इसलिए यह आवश्यक है, कि कातने और बुननेवालों को खादी के इस सरल अर्थशास्त्र के समझने की इतनी शिक्षा तो दी ही जाय। जहाँ कातने व बुननेवाले अपने ही उपयोग के लिए कपड़ा तैयार करेंगे, वहाँ स्वभावतः वह उन्हें कम-से-कम दाम में पड़ेगा।

इससे यह परिणाम निकलता है, कि खादी जहाँ तैयार होती हो, वहाँ से उसे बेचने के लिए बहुत दूर भेजने का प्रयत्न न करना चाहिए। कातने-बुननेवालों के उपयोग से अगर अधिक खादी बच जाय, तो उसे उसी गाँव में बेच देना चाहिए। फिर भी बच रहे, तो जिस ज़िले में वह तैयार हुई हो उसमें बेच दी जाय। जो बुनकर-कुटुम्ब प्राचीन काल से खादी के सुन्दर कलामय नमूने तैयार करते आ रहे हैं, वे अपना विशेष प्रकार की खादियों का बुनना तो जारी रखेंगे ही। गाँववालों को तैयार की हुई खादी का चाहे जो हो, उस किस्म की सुन्दर

कलामय खादी तो जीवित रहेगी ही। गाँववालों की खादी को तो उनके लिए मज़दूरी और आमदनी के एक बारहमासी साधन के रूप में आना है।

ऊपर जो मैंने लिखा है, उससे अखिल भारतीय चरखा-संघ की तात्कालिक व्यवस्था में कोई क्रांति होने की नहीं। चरखा-संघ के खादी-भंडार तो सदा की भाँति चालू रहेंगे ही। किन्तु विचार-जगत् में इससे अवश्य एक क्रांति होगी। अच्छे-से-अच्छे खादी-सेवक अपनी विचार-शक्ति को एकाग्र करके गाँव की खादी ऐसी किस्म की और ऐसी टिकाऊ बनायेंगे, कि जिससे गाँववालों की रुचि को सन्तोष हो जाय। इस प्रकार एक ओर पींजनेवाले, कातनेवाले तथा बुननेवाले और दूसरी ओर खादी-सेवक सच्चे प्रेम की डोरी से बँध जायँगे। शहरों में खादी की खपत बढ़ाने की चिन्ता नहीं रहेगी। शहरों में खादी की बिक्री का आधार शहरवालों की माँग के ऊपर तथा ऐसे खादी-प्रेमियों के प्रचार-कार्य पर रहेगा, जो सीधे ग्रामवासियों तक नहीं पहुँचना चाहते या पहुँच नहीं सकते, फिर भी ग़रीब कातने व बुननेवालों के लिए थोड़ी-बहुत खादी बेचे बिना जिन्हें सन्तोष नहीं होता। इतना हमें ध्यान में रखना चाहिए, कि जब खादी को ग्रामवासी स्थायी रूप से पहनने लगेंगे, तभी उसे स्थायित्व प्राप्त हो सकेगा।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

आसाम की महाव्याधि

[११९ वें पृष्ठ से आगे]

घाटी की सुंदर साधन-सामग्री को* कौन प्रकाश में लायगा और कौन उसे विकसित करेगा? इस प्रांत में ऐसे काफ़ी लोग हैं, जो देश को धन-संपन्न कर सकते हैं। पर यहाँ जनवृद्धि न होने के मुख्य कारण हैज़े और चेचक की बीमारियाँ हैं। हैज़ा तो सफ़ाया कर देता है। पर इस भयंकर रोग के कालग्रास अधिकतर बेहद अफ़ीम खानेवाले ही होते हैं।

ज़िला कामरूप के जेल में रोग और मरण बहुत होता है, और इसका मुख्य कारण अफ़ीम का सेवन समझा जाता है यहाँ जिन जातियों के अधिकसंख्यक क़ैदी आते हैं, उनमें आमतौर से अफ़ीम का व्यसन पाया जाता है।"

डा० मेकलीन अपनी कामरूप की रिपोर्ट में कहते हैं :—

"इन लोगों में एक चीज़ तो क़रीब-क़रीब सब जगह है, जिसकी वजह से इनकी स्थिति सुधारने के सारे प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं, और सारे प्रांत में निम्न श्रेणियों के लोगों में अधिकांशतः रोग और दुःख जिसके परिणामस्वरूप हैं। मेरा मतलब अफ़ीम से है, जिसे बहुत लोग अत्यंत हानिकर मात्रा में खाते व पीते हैं। अभागा अफ़ीमची अफ़ीम के पीछे अपना सर्वस्व नष्ट कर देता है; अंत में वह कुमार्गगामी होकर जेल में अपने जीवन की अवधि पूरी करता है, अथवा देश-प्रचलित किसी सामान्य रोग का ग्रास बन जाता है। यहाँ के जेल में अधिक-से-अधिक १६० क़ैदी रहते हैं। इनमें से सिर्फ़ अतिसार रोग से जितने मर जाते हैं, उतने तो ४०० सिपाहियों में भी अन्य तमाम रोगों से नहीं मरते।"

डा० जॉन लिखते हैं :—

"अफ़ीमची का शरीर अंत में बेकाबू हो जाता है। उसे मंदाग्नि हो जाती है। पित्ताशय और मूत्राशय भर जाते हैं। रुधिर का संचार मंद पड़ जाता है। दिमाग़ काम करने लायक नहीं रह जाता। आलस्य बढ़ता ही जाता है। और अंत में जलोदर या ऐसा ही कोई दूसरा रोग हो जाता है। ऐसी जाति की संतान निर्बल, रोगी और निकम्मी होती है।"

१८६०में,मिल्ज़ की रिपोर्ट से प्रेरित होकर सरकारने इस दिशा में उद्योग किया। अफ़ीम का इजारा ख़ुद अपने पास रखा, और अफ़ीम की खेती करना जुर्म क़रार दे दिया गया। तो भी लगभग हर गाँव में अफ़ीम मिल सकती थी, क्योंकि १८७३-७४ में आसाम प्रांत में अफ़ीम की ५१३७ दूकानें थीं। १८३५ में पाँच रुपये सेर अफ़ीम बिकती थी। अब उसका भाव बढ़ते-बढ़ते ६५) सेर हो गया। १८७५-७६ में अफ़ीम की आमदनी में १२ लाख रुपये आये थे। यह आय १९२०-२१ में ४४ लाख रुपयेतक पहुँच गई। गत वर्ष इस मद की कुल आमदनी ६० लाख रुपये हुई थी। सरकार की आमदनी तो काफ़ी अधिक बढ़ गई, पर अफ़ीम की खपत में कोई कमी नहीं आई, वह तो जैसी थी वैसी ही बनी रही। मिलान कीजिए :—

सन	अफ़ीम की खपत
१८७५-७६	१८७४ मन
१९२०-२१	१६१४ मन

सन् १९२१ में सरकारने प्रमाणबंदी का सिद्धांत स्वीकार कर लिया। अतः १९२१-२२ में व्यसनविरोधी लड़ाई के परिणामस्वरूप अफ़ीम की खपत में ६०१ मन की कमी आ गई— अर्थात् पहले जहाँ १६१४ मन अफ़ीम खपती थी, वहाँ अब एक साल में १०५३ मन खपी।

इधर चायबाग़ान के कुलियों में भी अफ़ीम का व्यसन फैल गया है। एक बगीचे के व्यवस्थापकने सन् १९१३ में कहा था, कि वहाँ उम्र के कुलियों में ९८ प्रतिशत अफ़ीम खाते हैं—और कुछ लड़कों को भी अफ़ीम की लत लग गई है। एक अन्य बगीचावाला कहता है, कि 'हमारे यहाँ लोग बीमार बहुत पड़ते हैं, और इसका एकमात्र कारण है यह कमबख़्त अफ़ीम।'

पहाड़ी इलाक़ों की हृष्टपुष्ट जातियाँ भी इस घातक धुन से अछूती नहीं बची हैं। सन् १९१९-२० में प्रकाशित सरकारी आबकारी रिपोर्ट में लिखा है कि मिशमी या मिरी, खामटी और सिंगफो जातियों में अफ़ीम का व्यसन बहुत कसरत से पाया जाता है।

इस दुष्ट अफ़ीम का धर्मस्थानों में भी प्रवेश हो गया है। 'नामगाव' अर्थात् भजन-कीर्तन में अफ़ीम का प्रसाद बाँटा जाता है; और यहाँ के धर्मगुरु गोसाइयों में भी अफ़ीमची पड़े हुए हैं!

१९१५ में प्रकाशित एण्क्रूज़-ओपियम-इनक्वायरी रिपोर्ट के आधार पर यह लेख लिखा गया है। आसाम की इस महाव्याधि और उसके उपचार के विषय में अधिक जानना हो, तो मेरी प्रार्थना है, कि पाठक उक्त रिपोर्ट का अवश्य अवलोकन करें।

'हरिजन से'] वालजी गोविंदजी देसाई

* ब्रह्मपुत्रा की घाटी की जन-संख्या ४८ लाख से ऊपर है; उसमें आसामी भाषा बोलनेवाले लगभग २० लाख के हैं।

तब अस्पृश्यता कहाँ थी ?

(८)

आर्यजीवन के प्रभात-काल के दो विभिन्न भाग होजाते हैं—(१) दाशराज्ञ-युद्ध के समाप्त होनेतक का; और (२) ऐतरेय ब्राह्मण के रचना-काल का।

ऐतरेय ब्राह्मण की जब रचना हुई, तब परीक्षित के पुत्र जनमेजय को राज्य करते कुछ वर्ष बीत गये थे। (६४)

विश्वामित्र के बाद की तीन पीढ़ियोंतक का इतिहास ऋग्वेद के मंत्रों में मिलता है, किन्तु उसके बाद से जनमेजय के अंततक के समय का वैदिक साहित्य सिवा अथर्ववेद के और कहीं भी नहीं मिलता। अथर्ववेद में परीक्षित की तो चर्चा आई है, पर जनमेजय की नहीं। इसलिए इसके तथा ऐतरेय ब्राह्मण के बीच में बहुत वर्षों का अंतर नहीं है। (६५)

दाशराज्ञ के पूर्व आर्य और दास ये दो विभिन्न एवं परस्पर विरोधी प्रजाएँ थीं। दास हार गये, गुलामों की तरह बेचे गये, और उनकी स्त्रियाँ—दासियाँ—आर्यों के घर में रहने लगीं। आर्य और अनार्य-रुधिर के संमिश्रण से आर्यों की एक नई प्रजा उत्पन्न हुई।

यहीं नहीं, अनेक देशों में ऐसा हुआ है। मिस्र में, ग्रीस में, रोम में विजयी जातिने पराजित जाति की सेवा-सहायता के द्वारा साम्राज्य स्थापित किये थे। पर ये पराजित गुलाम जातियाँ विजयी जाति के संस्कार ग्रहण न कर सकीं। उनकी गुलामी के सहारे स्थापित साम्राज्य नष्ट हो गये—साथ ही विजयी जाति की संस्कृति भी नष्ट हो गई।

भारतवर्ष में आर्य ऋषियोंने राजनीतिक विजय में अन्तर्निहित पराजय का बीज देख लिया था। रणस्थली में मिली हुई विजय पर अल्पजीवी साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न उन्हें मूर्खतापूर्ण मालूम हुआ। संस्कार को ही उन्होंने श्रेष्ठता का उत्कृष्ट लक्षण माना, और आर्य तथा दास जाति के दो विभिन्न मानवखंडों पर संस्कारप्रधान वर्णव्यवस्था का सेतु रच दिया। इस सेतु के सहारे पीढ़ी-दर-पीढ़ी लाखों दासोंने आर्यत्व को प्राप्त किया। परिणाम यह हुआ, कि ब्राह्मणकाल के आरंभ से ही आर्य और दास इन भेदों के स्थान पर द्विज और शूद्र ये संस्कारप्रधान भेद समाज में दिखाई देते हैं। इस रसायन के सिद्ध करने में दो सौ से पाँच सौ वर्षतक का समय लगा होगा।

ब्राह्मण-काल में चातुर्वर्ण्य की भावना के अनुसार वर्ण-व्यवस्था बनाई गई थी। समस्त जनता को ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य तथा शूद्र इन चार विभागों में विभक्त किया गया था। शूद्र अब वैदिक दासों की तरह द्वेष के भाजन नहीं थे। बहुत-से शूद्र धनिक और अधिकारी थे, और बहुत-से गृहपति थे। द्विज और शूद्र का विवाह-संबंध शिष्टता की दृष्टि से भले ही अशोभनीय था, किन्तु उसका कोई निषेध नहीं था।

राजमंत्री की हैसियत से शूद्र यज्ञ में भी आते थे—भले ही शिष्टाचारी मुँह बिगाड़ा करें। शूद्र लोग मज़े से द्विजों में स्थान पाते थे। शूद्र पुत्र ऋषि-पद भी प्राप्त कर सकते थे। पर एक बात इस सब से भी अधिक हमारा ध्यान आकर्षित करती है। वह यह है, कि लिंगपूजकों के जिन तुच्छ देवताओं को वैदिक आर्य तिरस्कार के साथ संबोधित करते थे, उन्हें अब भूपति, महादेव, उग्रदेव, ईशान आदि उपनामों से, रुद्रादि अनेक वैदिक देवताओं के साथ, आर्यों के देव-समूह में स्थान प्राप्त हो गया। यह बात पीछे की संहिताओं में भी मिलती है। (६६)

आर्य-संस्कृति के इस प्रभात-काल में शूद्रों को—चांडालों को भी—अस्पृश्य नहीं मानते थे। धर्मक्रिया अथवा धर्मस्थान से उन्हें अलग नहीं रखते थे। और हिंदूसमाज को कलंकित करनेवाली इस अदूरिता या अदर्शनीयता का तो नाम-निशान भी नहीं था।

किन्तु जब ब्राह्मणकाल समाप्त होने लगा, तब ये दो प्रकार की सामाजिक मनोवृत्तियाँ प्रबल हो उठीं: (१) शूद्रों को संकुचित धार्मिक वृत्तिवाले यज्ञादि से दूर रखने का आदेश निकालने लगे; और (२) सामाजिक एवं सांस्कारिक असमानता के परे उदार भावना से प्रेरित होकर अपूर्वता की सिद्धि का द्वार मनुष्यमात्र के लिए खोल दिया गया। शतपथ ब्राह्मण और छान्दोग्य उपनिषद्—कर्मकाण्ड और योग—धार्मिक दम्भ और आध्यात्मिक उच्चाभिलाषा—वर्णभेद का पाप और 'सर्वभूतहितेरति' का मोक्षमार्ग, इस प्रकार ये वृत्तियाँ भिन्न-भिन्न मार्गों में विभक्त होने लगीं।

मैं एक बात पूछता हूं। ईजिप्ट गया, ग्रीस गया और रोम चला गया। आज कहाँ हैं इनकी संस्कृतियाँ ? पर भारतवर्ष अब भी तप रहा है। यह किसके प्रताप से ? यह प्रताप उनका है, जिन्होंने दासों के सर्वनाश की इच्छा की थी या जिन्होंने दासों का पितृपद ग्रहण करके उन्हें आर्य-संस्कार दिया था, उनका ? यह प्रताप उन ब्राह्मणकारों का है, जिन्होंने 'यथा काम वध्य' (अर्थात् जिसके इच्छानुसार प्राण लिये जा सकें) माना था, अथवा उनका, कि जिन्होंने संस्कारमूलक वर्ण-व्यवस्था रचकर शूद्रों को आर्य बनाने का रसायन हस्तगत किया था ? यह प्रताप उस ब्राह्मणकार का है, जिसने शूद्रों को यज्ञशाला में जाने से रोका था, अथवा उसका जिसने सत्यकाम जाबाल को ऋषिपद प्रदान किया था ?

संस्कृति कोई जड़ सभ्यता नहीं है। लोहे के बड़े-बड़े पुल, आकाश-विहारी विमान अथवा क्षण में हज़ारों का नाश करनेवाली तोपें संस्कृति नहीं हैं। राजप्रासादों के गगनचुंबी सुंदर शिखर भी संस्कृति नहीं हैं। असेंबली के रमणीक भवन और सत्ताधीशों के रंगमहल भी संस्कृति के चिह्न नहीं हैं। जिसके द्वारा मनुष्य जी रहा है वह संस्कृति नहीं है। किन्तु जिसके लिए वह जी रहा है वह संस्कृति है। जीवन अथवा समाज में जो मूल्य हमारे अन्तिम ध्येय होते हैं, संस्कृति उन्हीं से बनती है।

कोई स्त्री पत्ते और फटे-पुराने चीथड़े पहनकर घूमती फिरे या झिलमिलाती हुई बनारसी साड़ी से सुसज्जित हो, ओठ रँगकर इधर-उधर इतराती फिरे, ये संस्कृति के लक्षण नहीं हैं। संस्कृति तो इसमें है, कि वह मरते मर जाय, पर अपना सदाचार न

(६४) ऐतरेय ब्राह्मण ८—१४

(६५) २०, १२७; ७—२०

(६६) ऐतरेय ब्राह्मण, ३-३३; २-३३, १; कौषीतकी ६-१-९, Kieth. Introduction to Aitareya Br. P. 25-27.

छोड़े। सदाचार में ही ब्रह्म है। यही जीवन और समाज के अन्तिम मूल्य हैं; और संस्कृति इन्हीं से बनती है।

आदमी खूब पैसा कमावे और भोग-विलास का जीवन बितावे अथवा पर्णकुटी में रहकर फटी कथरी पर सो रहे—इन सब से उसकी संस्कृति का निर्णय नहीं होता। मनुष्य की संस्कृति तो उसके अन्तिम मूल्य से, सत्य या स्वातंत्र्य से निश्चित होती है। भारत की संस्कृति इसी अन्तिम मूल्य की बदौलत अमर बनी हुई है।

इस भारतीय संस्कृति के मूल में वैदिक आर्यों का अंतिम मूल्य अन्तर्निहित है—वह अन्तिम मूल्य, जिसने राजकीय सर्वोपरिता को त्यागकर देश-काल से अनवच्छिन्न भावनाओं के आधार पर जीवन की रचना की थी; वह अन्तिम मूल्य, जिसने मनुष्यमात्र को अपूर्व आध्यात्मिकता सिद्ध करने का अधिकार प्रदान किया था। आज भी हमारी संस्कृति संसारभर के कलहप्रियों को शांति का आश्वासन दे रही है, हिंसकों को वैरत्याग की तथा अभिमानियों को दैन्य की शिक्षा दे रही है। हमारी यह संस्कृति दलितों को उद्धार की शिक्षा दे रही है। जड़वाद के सर्वभक्षी आक्रमण के विरुद्ध जो वह आवाज़ उठा रही है, वह किस अधिकार से ?

वह अधिकार यही है, कि रागद्वेष से रहित लोक-संग्रह की भावना वैदिक आर्यों के मूल्यों में भरी हुई है।

द्वेष तथा हिंसा, वर्ण तथा वर्ग का भेद, अत्याचार और लोक-शासन आज संसार का दम घोट रहे हैं। ऐसे उत्पीड़ित जगत् में वैदिक आर्यों की यह अन्तिम भावना, आर्य-संस्कृति ही मानवी सनातन गौरव को पुनः स्थापित करेगी। यही भावना दुनियाभर के अस्पृश्यों का उद्धार करेगी।

कौन रहेगा ? अस्पृश्यता या आर्य-संस्कृति ? मेरे कानों में तो युगों के अन्तर से अथर्ववेद के अमर मंत्रद्रष्टा का यही स्वर गूँज रहा है, कि—

'समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ (समाप्त)

'हरिजन-बन्धु' से] कन्हैयालाल मुंशी

विनोबा-वाणी

चिंता प्रभु को सब लोगों की भले रहे, परन्तु विशेष चिंता होती है उसे ग़रीबों की। और लोग प्रभु के भी हैं, ग़रीब प्रभु के ही हैं। अन्यों का आधार भी अन्य होता है, किंतु ग़रीबों का तो आधार ग़रीबनिवाज ही होता है। समुद्र के बीचोबीच जहाज के मस्तूल से उड़े हुए पंछी को मस्तूल के सिवा और कहाँ कौन आश्रय ? उससे दूर होकर वह कहाँ रहे ? ग़रीबों का चित्त प्रभु से छूटे भी तो किससे लगे ? 'देव' -'लेव' से ही तो दुनियाँदारी चल रही है। 'लेव' न हो, तो 'देव' किस के लिए ? 'देव' ग़रीबों के बीच में पहुँचकर उनका 'लेव' बन जाता है। इसलिए ग़रीब प्रभु के कहलाते हैं, प्रभु ग़रीबों का कहलाता है। ग़रीबी का यही वैभव देखकर कुन्तीने उस समय ग़रीबी माँगी, जब उससे प्रभुने वर माँगने को कहा। कहनेवाले कह सकते हैं, कि प्रभु देता था कटोरे में; पर अभागिनने माँगा दोने में ! यह ताना अनुभव-सार ताना है। फूटी कटोरी से साबित दोना सौ दर्जे अच्छा।

शायद कोई 'तर्कालु' बीच में ही पूछ बैठे कि, साबित कटोरी तो सब से अच्छी ? मैं साफ कहूंगा—नहीं, भाई ! पानी पीने का जहाँतक ताल्लुक है, वहाँतक तो साबित द्रोण और साबित कटोरी दोनों एक-से—दोनों बराबर। और ज़रा तीखी आँखों से देखें, तो वह धात की कटोरी घात की चीज़ बन जाती है। कटोरी की छाती में एक और ही धुकधुकी लगी रहती है—'मुझे कोई चुरा तो नहीं ले जायगा ?' दोने के पास इस भय का होना असम्भव है; अतः वह निर्भय है।

फिर कटोरी और साबित का योग ही दुर्मिल होता है। रामदास के शब्दों में, जो बड़ा सो चोर। ऐसे उदाहरण बहुत थोड़े हैं, कि आदमी बड़ा हो और उसपर प्रभु फिदा हो। क़रीब-क़रीब ऐसे उदाहरण हैं ही नहीं। और जो कहीं और कभी दीख पड़ें, तो ऐसे कि जन्म का बड़ा, किंतु बड़प्पन का टाट उलटकर—अत्यन्त दीन होकर—भगवान् के शरण पड़ा हुआ। उस दिन प्रभुने उसे अपने निकट ले लिया। राजा बलिने जब राजत्व का साज उंडेलकर मस्तक झुका दिया, तब कहीं प्रभुने उसके आँगन में खड़े रहना अंगीकार किया। गजेन्द्र को जबतक अपने बल का गर्व रहा, तबतक उसने सब कुछ करके देख लिया और जब घमण्ड का पसीना उतरा, तब दीनबंधु की याद आई। उसी दिन की कथा का नाम तो 'गजेन्द्र-मोक्ष' है। और अर्जुन महाशय ? जिस दिन वे अपनी ज्ञानकारी के उतार से जीवित बाहर आये, उस दिन प्रभुने उनके सम्मुख गीता बाँची। पार्थ बड़,—उसका प्रभु से ही मत-भेद हो गया। बड़े आदमी जो ठहरे ! प्रभु के मत से उसके मत का सौतिया डाह क्यों न हो ? किन्तु बारह वर्ष के वनवासने उसे 'महत्व' से उतारकर 'संतत्व' की सेवा बजाने का अवसर दे दिया। ज्ञानकारी पर अधिष्ठित मन के पैर डगमगाने लगे। तब उस अवस्था में नज़दीक पड़नेवाले प्रभु के पैर उसने पकड़ लिये। "हम तो इन्द्रियों के ग़ुलाम हैं। और हमारा कौन-सा 'मत' ? हमारी तो इन्द्रियाँ जो चाहा निश्चय करती हैं और मन-महाशय उस पर अपनी सही कर देता है। वहाँ धर्म को देख सकने-वाली दृष्टि कहाँ से गुज़रकर आवे ? प्यारे, मैं तुम्हारे द्वारे का सेवक हूं। मुझे तुम्हीं बचालो।" इतना होने के पश्चात् भगवान् की वाचा फूटी—गीता कही जाने लगी। परन्तु गीता कहते-कहते भी श्रीकृष्णने एक बात तो कह ही डाली—"बड़प्पन की बात तो खूब कहते हो।" ग़रज यह कि बड़े लोगों में यदि किसी के प्रभु के प्यारे होने की बात सुनी जाती है, तो वह उसी की जो अपना बड़प्पन, अपनी महत्ता एक ओर रखकर छोटे-से-छोटा, ग़रीब, निराधार बन गया, तब वह प्रभु का अपना कहा जा सका। जिसको जगत् का आधार है, उसकी प्रभु से कौन-सी रिश्तेदारी ? जिसके वास्ते जगत् का आधार जमा नहीं रह गया, उसी का बोझ अपने कन्धों ढोने का प्रभु का बाना है।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupte.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 316

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, १८ मई, १९३४. [संख्या १३

विषय-सूची

निर्देशिका

[२१ एप्रिल से २७ एप्रिलतक की केवल निर्देशिका ही हमें प्राप्त हुई है, साप्ताहिक पत्र नहीं आया है। बक्सर, आरा, देवघर आदि स्थानों की घटनाओं पर गत सप्ताह तो गांधीजी स्वयं ही लिख चुके हैं। अतः केवल निर्देशिका नीचे दी जाती है—सं०]

२१ एप्रिल

मुज़फ़्फ़रपुर की यात्रा, रेल से, ४०९ मील।

२२ एप्रिल

मुज़फ़्फ़रपुर पहुंचे, रेल से, २५५ मील।

२३ एप्रिल

मुज़फ़्फ़रपुर : गोखलेपुरी का उद्घाटन-संस्कार।

२४ एप्रिल

मुज़फ़्फ़रपुर से पटना, रेल से, ५७ मील।

२५ एप्रिल

पटना से कुल्हरिया, रेल से, २५ मील। कुल्हरिया से अ... , मोटर से, ३ मील। अमीरा : हरिजनों के लिए एक मन्दिर खोला गया, थैली १६५)। अमीरा से आरा, मोटर से ३ मील। आरा : सार्वजनिक सभा, जनता का मानपत्र, कुल धन-संग्रह १२३१।≈)॥ बिहिया में धन-संग्रह ४१)। आरा से बक्सर, रेल से, ४२ मील। बक्सर : सार्वजनिक सभा, जनता तथा हरिजनों के मानपत्र, कुल धन-संग्रह ६७८॥-)॥ बक्सर से जसीडीह, रेल से, २१० मील।

२६ एप्रिल

जसीडीह से देवघर, मोटर से, ४ मील। देवघर: महिलाओं की सभा, धन-संग्रह १६६)४; सार्वजनिक सभा, जनता का मानपत्र, कुल धन-संग्रह १२४८।)२। देवघर से जसीडीह, मोटर से ४ मील। जसीडीह से गया, रेल से १४२ मील। नवादा : धन-संग्रह १०५≡) वारिसअली 'ज.: धन-संग्रह ३३≡)

२७ एप्रिल

गया : महिलाओं की सभा, धन-संग्रह २८९≡)११; सार्वजनिक सभा, म्युनिसिपैलिटी तथा विद्यार्थियों और हरिजनों के मानपत्र, थैली ३६५); विद्यार्थी-मंडल की ओर से ४०)॥; कुल धन-संग्रह १९१२≡)५। गया से छत्रा, मोटर से, ८० मील। शेरघाटी : धन-संग्रह १०१) छत्रा : सार्वजनिक सभा, जनता का मानपत्र, थैली ५०२≈)।; महिला-सभा में धन-संग्रह ६०।≡)१०, कुल धन-संग्रह ६८०-)७। छत्रा से हज़ारीबाग, मोटर से, ६० मील। हज़ारीबाग : महिला-सभा, मानपत्र तथा धन-संग्रह १२९-)८; सार्वजनिक सभा, जनता तथा हरिजनों के मानपत्र, कुल धन-संग्रह ८११॥)॥

साप्ताहिक-पत्र

(२२)

निर्देशिका

२८ एप्रिल

हज़ारीबाग से गोमिया, मोटर से, ४२ मील। हज़ारीबाग ज़िले में धन-संग्रह १०३॥-)। गोमिया : संथालों की सभा, सार्वजनिक तथा मानजी समाज के मानपत्र, धन-संग्रह ८५॥≡) विष्णुगढ़ : धन-संग्रह १७।≈)॥ गोमिया से बरमो, मोटर से, १० मील। बरमो : सार्वजनिक सभा, जनता का मानपत्र, धन-संग्रह २६४६।≡)॥।; महिला-सभा में धन-संग्रह २१०।≡)॥। बरमो से झरिया, मोटर से, ६४ मील। डुमारी अचल से धन-संग्रह २७।≡)। कटरासगढ़ : धन-संग्रह ५५३॥।) झरिया : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह १४८५॥≈)१

२९ एप्रिल

झरिया से पुरुलिया, मोटर से, ५२ मील। जमडोबा : सार्वजनिक सभा, टाटा कालरी वर्कर्स और हरिजन कार्यकर्ताओं के मानपत्र, धन-संग्रह ९३१॥।≈)२ पुरुलिया : म्युनिसिपैलिटी, मानभूमि ज़िला-बोर्ड, मारवाड़ी युवक-समिति तथा हरिजनों के मानपत्र; धन-संग्रह ६७७।≈)॥। पुरुलिया से रांची, मोटर से ७२ मील। आद्रा : धन-संग्रह ३२५।≈)॥ पलासकोला : धन-संग्रह १८॥।≡) रघुनाथपुर : धन-संग्रह ११५≡) चकियामा : धन-संग्रह ६९) कुटमुडा : धन-संग्रह १७।≈)। झालदा : धन-संग्रह १८३॥≈)॥

३० एप्रिल

रांची : मौन-दिवस।

१ मई

रांची : हरिजन-संपादन; सार्वजनिक कार्य; ब्रह्मचर्य-विद्यालय का मानपत्र।

२ मई

रांची : सार्वजनिक कार्य । सिली : धन-संग्रह ९०=)॥

३ मई

रांची : हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण, हरिजन-पाठशाला के बालकों की सभा; हरिजन-शिल्प-विद्यालय का उद्घाटन, निर्वाण-गांधी-आश्रम की आधार-शिला रखी गई; सार्वजनिक सभा, जनता और म्युनिसिपैलिटी के मानपत्र, कुल धन-संग्रह २४०६॥=)६½ मारवाड़ी महिलाओं की ओर से धन-संग्रह ५०२॥-) महिलाओं की सभा तथा धन-संग्रह २००।≈)२½

४ मई

रांची से चक्रधरपुर और जमशेदपुर, मोटर से, १२९ मील । चक्रधरपुर : सार्वजनिक सभा बी० एन० रेलवे के कर्मचारियों के मानपत्र, धन-संग्रह ६६२।)१½; महिलाओं की सभा, धन-संग्रह ४६॥≈)। जमशेदपुर : सार्वजनिक सभा, मानपत्र तथा धन-संग्रह ४०८४॥=)११ जमशेदपुर से झारसुगुडा, रेल से, १६४ मील ।

सप्ताह में कुल यात्रा : ५२३ मील ।

रांँची में

रांँची में गांधीजी चार दिन ठहरे । दिन-रात काम-ही-काम रहा । हरिजन-कार्य के अलावा डाक्टर अंसारी साहब तथा दूसरे स्वराजी नेताओं से गांधीजीने घण्टों बात की । ये सब लोग स्वराज दल की परिषद् में आये हुए थे । मगर मुझे सिवा हरिजन-कार्य के यहाँ अन्य बातों की चर्चा नहीं करनी चाहिए ।

हरिजन विद्यार्थी-सम्मेलन

३ मई को सवेरे गांधीजीने रांँची की हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण किया । इसके बाद अपने निवास-स्थान के अहाते में करीब २०० हरिजन विद्यार्थियों से गांधीजी मिले । एक तरह से वह खासा विद्यार्थी-सम्मेलन हो गया । इस सम्मेलन में हरिजन बालक, हरिजन बालिकाएँ और उनके अध्यापक सभी शामिल हुए थे । गांधीजीने सब से पहले उनके दाँतों, कानों, आँखों और नाखूनों का मुआइना किया । अधिकतर उन्होंने बच्चों के ये अंग अस्वच्छ पाये । बहुतों के तन पर तो सिवा एक फटी लँगोटी के और कुछ नहीं था । हरिजन अध्यापकों से गांधीजीने कहा, "आप लोग अपनी शिक्षा का आरम्भ यों करें, कि इन बच्चों को सामान्य स्वच्छता और आरोग्यता-सम्बन्धी पदार्थ पाठ पढ़ावें । अपने हाथ से इन्हें नहलावें-धुलावें । यह ख़याल करना एक वहम है, कि स्वच्छता के लिए साबुन बहुत ज़रूरी है । इस उपयोगी वस्तु (साबुन) के आविष्कार के पहले भी स्नान सार्वदेशिक था । आपके बिहार की स्वच्छ मुलायम मिट्टी कुछ अंशों में साबुन से भी अच्छी है, और उसमें एक पैसा भी खर्च होने का नहीं । आपको यह भी देखना चाहिए, कि आपके विद्यार्थी बबूल या नीम की दातौन से दाँत और जीभ ठीक तरह से साफ़ करते हैं या नहीं । उनकी आँखें और कान खूब साफ़ रहने चाहिए । नाखूनों में मैल तो नहीं भर गया है यह भी आपको नित्य देखते रहना चाहिए । बच्चों को क़वायद भी सिखानी चाहिए, और सब को ठीक तरह से पंक्तिबद्ध बैठने की शिक्षा देनी चाहिए । जबतक इन्हें व्यावहारिक स्वच्छता, आरोग्यता और व्यायाम की शिक्षा न मिलेगी तबतक किताबी पढ़ाई से कोई लाभ होने का नहीं । साथ-साथ कुछ दस्तकारी की तालीम भी इन्हें देनी चाहिए । जो बातें मैंने बताई हैं उनके अनुसार अध्यापकगण शिक्षा देते हैं या नहीं, इसके लिए मैं हरिजन-सेवक-संघ के सदस्यों को जिम्मेदार समझूँगा ।"

भगत लोग

विद्यार्थियों के पास ही कई पंक्तियों में, दूर-दूर के गाँवों से आये हुए भगत लोग भी वहीं बिठाये गये थे । 'भगत' शब्द भक्त का अपभ्रंश है । ये आदिम निवासी इसलिए भगत कहलाते हैं, कि न तो वे दारू पीते हैं, न मांस खाते हैं और न इधर-उधर घूमते हैं । एक संतपुरुष के सत्संग से उनके जीवन में ऐसा अच्छा परिवर्तन हुआ है । ये लोग खुद ही कात-बुनकर अपने लिए कपड़ा बनाते हैं । नित्य नियमपूर्वक भजन गाते हैं और रामनाम का जप करते हैं । ये लोग बड़े ही विश्वास के आदमी हैं । कोई सिखानेवाला भर हो, सीखने की लालसा तो इनमें आप हमेशा पायँगे । इन लोगों की काफ़ी अच्छी उन्नति हो रही है । भगत लोगों के साथ गांधीजी का समय बड़ा अच्छा बीता । अपना आंतरिक सुधार करके उन्होंने जो उन्नति की है, उसके लिए उन्हें बधाई देने के अतिरिक्त उनसे गांधीजी को और कहना ही क्या था । गांधीजी को दुःख के साथ यह कहना ही पड़ा कि आश्चर्य है, जो ये भगत लोग भी अस्पृश्य माने जाते हैं और उन्हें स्थानीय मन्दिरों में नहीं जाने दिया जाता !

उद्योग-शाला और आश्रम

रांँची में एक ब्रह्मचर्याश्रम है । इसके व्यवस्थापक श्री क्षितीश बाबू हैं । क्षितीश बाबू के प्रयत्न से हरिजनों के लिए वहीं एक उद्योग-शाला भी चल रही है । श्रीवंशीधर मोदीने इस उद्योग-भवन के लिए एक बीघा ज़मीन और श्री जुगलकिशोर बिड़लाने १५००) दानस्वरूप दिये हैं । वहीं पास ही एक बीघा ज़मीन और है । यह ज़मीन भी उन्हीं सज्जनने मुफ्त दे दी है । उद्योग-शाला की आधार-शिला यहीं रखवाई गई । जो इमारत तैयार हो चुकी है, वह गांधी-सेवक-संघ के कार्यकर्त्ताओं के रहने के लिए किराये पर उठा दी गई है । वयोवृद्ध निःस्वार्थ जन-सेवक निर्वाण बाबू के नाम से इस आश्रम का नाम-करण होना था । निर्वाण बाबू थे तो पुरुलिया-निवासी, पर अपना स्वास्थ्य सुधारने रांँची में आ गये थे । गांधीजीने हरिजन-उद्योगशाला का उद्घाटन किया और निर्वाण-आश्रम की आधार-शिला रखी ।

जमशेदपुर

४ मई को सवेरे ५-३० बजे गांधीजी रांँची से जमशेदपुर के लिए रवाना हुए । मोटर का १२५ मील का रास्ता था । जल्दी पहुँचने का इरादा था । इसी से काफ़ी सवेरे चले थे । पर यह न हो सका । गांधीजी की मोटर-दुर्घटना में बहुत समय चला गया । यह बड़ी भयानक दुर्घटना हुई होती, मगर अच्छा हुआ कि गाड़ी खुद ही सड़क और एक चट्टान के दर्म्यान एक खाई में आ गई, और इससे वह बिल्कुल उलट जाने से बच गई ।

जमशेदपुर में गांधीजीने तमाम हरिजन-बस्तियों को देखा । सन् १९२५ में गांधीजी जमशेदपुर आये थे । उस वक्त उन

बस्तियों की जो हालत थी, अब भी वही देखने में आई। कोई सुधार नहीं हुआ। सार्वजनिक सभा में बोलते हुए हरिजन-बस्तियों के प्रसंग में गांधीजीने कहा, "जमशेदपुर-जैसे नव-निर्मित नगर में यह अफ़सोस की बात है, कि बेचारे हरिजन आज भी उन्हीं गंदी काल-कोठरियों में रह रहे हैं, उनके लिए अच्छे साफ़-सुथरे घरों की अबतक कोई व्यवस्था नहीं हुई है। यह देखकर तो और भी दुःख होता है, कि जो जमशेदपुर शहर एक बहुत बड़े लोकोपकारी धनाढ्य के नाम पर बसा है, वहाँ की हरिजन-बस्तियों की इतनी बुरी हालत है। यह शहर तो ऐसा है, कि जहाँ के लोग संसारभर को अपना घर समझते हैं। इस दशा में जमशेदपुर-वासियों को यह शोभा नहीं देता, कि यहाँ की हरिजन-बस्तियाँ अन्य लोगों की आबादी से अलग बसी हों। यह तो खालिस मज़दूरों का ही शहर है। कम-से-कम मज़दूरों को तो अस्पृश्यता के कलंक से मुक्त रहना ही चाहिए।"

झरिया में गांधीजी सुन चुके थे, कि मज़दूरों में शराब पीने का व्यसन बहुत बढ़ रहा है। इसलिए अपने भाषण में उन्होंने मज़दूरों को लक्ष्य करतेहुए मद्यपान के सम्बन्ध में कहा, "मैं स्वेच्छा से स्वयं एक मज़दूर हूँ ऐसा मेरा दावा है। इसलिए मैं अपने मज़दूर भाइयों को सावधान कर देना चाहता हूँ, कि तुम्हारा सब से बड़ा दुश्मन पूँजीवाद नहीं है, तुम्हारे दुश्मन तो मद्य-पान और दूसरे दुर्व्यसन हैं। अगर तुमने दारूखोरी न छोड़ी, तो इससे अन्त में तुम्हारा नाश हो जायगा।"

'गुंडापन' के बारे में भी गांधीजीने ज़ोर देते हुए कहा, "सुना है, कि यहाँ गुंडापन बहुत बढ़ रहा है। यह बदनामी की बात है, कि असभ्य तरीके काम में लाये जायँ। मैंने सुना है, कि इस शरारत से भरे वाहियात गुंडापने के काम में उन मज़दूरों को लगाया जाता है, जो कारखानों से अलग कर दिये जाते हैं। अगर ऐसा है, तो तुम्हारे लिए यह शर्म की बात है।"

गांधीजी को यह मालूम हो गया था, कि जमशेदपुर की थैली में मज़दूर लोगोंने बहुत ही थोड़ा दान दिया है। पहले यह विचार था, कि मज़दूरों के इच्छानुसार कंपनी उनके वेतन से पैसा काटकर स्वागतसमिति को देदे। पर बाद में जब यह मालूम हुआ, कि ऐसा करना जायज़ नहीं है, तब कंपनीने वह हुक्म रद कर दिया। गांधीजीने इस पर प्रकाश डालते हुए कहा, कि जब रुपया हाथ में आ गया, तब धर्म-कार्यों के लिए उसमें से दान देना मज़दूर भाइयोंने अपना कर्तव्य नहीं समझा। इसलिए यह अच्छा होगा, कि मज़दूरों को अब जिसदिन वेतन मिले, उसदिन वे तथा उनके सलाहकार हरिजन-कार्य के निमित्त यथाशक्ति दान देने की व्यवस्था करें। उन्होंने कहा, "मुझे इसकी चिंता नहीं, कि मुझे मज़दूर भाइयों से बहुत कम पैसा मिला है। मैं तो यह चाहता हूँ, कि तुम लोग यह अनुभव करो कि अस्पृश्यता-निवारण का ठोस कार्य मज़दूर ही कर सकते हैं। मज़दूरोंने सर्वत्र इस धर्म-कार्य में अपना योग-दान दिया है। आज ही देखो न, चक्रधरपुर के मज़दूरोंने हरिजन-कार्य के लिए मुझे यथोचित दान दिया है।"

संभलपुर में

जमशेदपुर से हम लोग रेल-द्वारा रात को ३ बजे झरसागुडा पहुँचे। उड़ीसा प्रांत का दौरा यहीं से आरंभ हो गया। सभा के बाद, झरसागुडा से हम लोग मोटर से संभलपुर के लिए रवाना हुए। संभलपुर में पृथिवी-आकाश का अंतर पाया। कहाँ तो जमशेदपुर की वह संपन्नता, और कहाँ संभलपुर की यह दरिद्रता! यहाँ पहुँचते ही गांधीजीने सबसे पहले चारों हरिजन-बस्तियाँ देखीं। सभी बस्तियों में स्वच्छ पानी न मिलने की सख़्त शिकायत थी। हरिजन गंदे पोखरों से पानी भरते हैं। परिणाम यह होता है, कि साफ़ पानी न मिलने के कारण सभी तरह की बीमारियों के ये लोग शिकार बने रहते हैं। वहाँ के हरिजनों से गांधीजीने बातचीत के सिलसिले में कहा, कि क्या तुम लोग खुद अपने हाथों इन गंदे पोखरों को साफ़ कर डालोगे, अगर तुम्हें कोई ठीक तरह से सफ़ाई का काम बतानेवाला मिल जाय? एकस्वर से सभी बड़े उत्साह से इस पर सहमत होगये। म्यूनिसिपैलिटी के अध्यक्ष के पास यह सूचना पहुँचा दी गई। आशा है, कि अब संभलपुर की म्यूनिसिपैलिटी का सेनिटरी इंजीनियर अपनी देखरेख में संभल-पुर के उन गंदे तालाबों को साफ़ करादेगा।

वालजी गोविंदजी देसाई

वह हृदयस्पर्शी दृश्य

गोमिया और झरिया के बीच में बरमो नामक एक स्थान पड़ता है। वहाँ सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया था। भाषण कर चुकने के बाद गांधीजीने लोगों से हरिजन-कार्य के लिए धन की अपील की। मैं बहिनों के बीच में जाकर धन-संग्रह करने लगी। उन्होंने बड़ी खुशी से रुपया, पैसा, पाई जो जिससे बना मुझे दिया। पर एक बुढ़िया माईने अपने काँपते हुए हाथों से अपनी नाक की सोने की नथनी निकालकर मुझे देदी। मैंने उससे पूछा, "माई, तुम्हारी क्या उम्र होगी?" "८२ बरस की" लड़खड़ाती आवाज़ से उस बुढ़ियाने जवाब दिया। उसने यह भी कहा, "क्या मैं मंच पर जाकर महात्माजी के चरण नहीं छू सकती?" मैंने उसे समझाया कि इस भारी भीड़-भड़क्के में तुम्हारा वहाँ जाना ठीक नहीं, तुम तो इस रेलपेल में यों ही दब जाओगी, न है!"

दस मिनिट बाद तो भीड़ बेक़ाबू हो गई। बड़ा शोरगुल मच रहा था और लोग एक दूसरे को धक्का दे-देकर आगे बढ़ रहे थे। मैं मंचपर खड़ी यह सब देख रही थी। अरे यह क्या, यह तो वही हाथों की माला बुढ़िया माई है! यह कैसे यहाँ तक आ गई! वह तो किसी तरह गांधीजी तक पहुँचने की कोशिश में थी, और आखिरकार, वह वहाँ पहुँच ही गई। गांधीजीने मुस्कराते हुए उसे प्रणाम किया और कहा—"बूढ़ी माई, तुम तो मेरी माता के समान हो।" वह बहुत-कुछ कहना चाहती थी, पर कैसे कहे, उसे शब्द ही ढूँढे न मिले। मुँह की बात मुँह में ही रह गई। गला भर आया। अपने काँपते हुए हाथों की ओर देखकर इतना ही इशारा वह कर सकी, कि वह अपनी चाँदी की चूड़ियाँ भी दे देना चाहती है। पर उसकी हड्डियों से चूड़ियाँ उतारना सहज काम नहीं था। नवयुवतियों के मन में ज़ेवरों के प्रति विरक्ति बढ़ाने के लिए अकसर गांधीजी उनकी चूड़ियों को जब उतरती नहीं तो काट डालने की सलाह दे देते हैं, पर उस ८२ बरस की बुढ़िया के जीर्णशीर्ण हाथों की चूड़ियाँ काटने की आज्ञा उन्होंने नहीं दी।

अंग्रेज़ी से] मीरा

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १८ मई, १९३४

प्रवास क्या पैदल ही ?

मेरी यह भावना दिन-दिन दृढ होती जा रही है, कि हरिजन-संबंधी अपने शेष प्रवास को मैं यथासंभव पैदल चलकर ही समाप्त करूँ। जब ठक्कर बापा तथा डाक्टर राजन तामिलनाड का यात्रा-क्रम निश्चित कर रहे थे, और जब उतने समय के अंदर तमाम जगहों के कार्यक्रम का समावेश करना असंभव-सा हो रहा था, तब मैंने ठक्कर बापा से कहा था, कि अगर आप मेरी बात मानें, तो मैं इतनी बड़ी यात्रा का कुछ अंश छोड़ दूँ और पैदल चलकर प्रवास पूरा करूँ। पीछे फिर वही भावना मेरे मन में आई, और दयवर की दुःखद घटना के बाद से तो वह बहुत बलवती हो गई है।

मैं देखता हूँ, कि जो लोग हिंसात्मक उपायों का अवलम्बन करते हैं, उनकी गिनती उँगलियों पर की जा सकती है; किन्तु ऐसे दो-चार आदमी भी सभाओं में उपद्रव तो मचा ही सकते हैं। मैं उन्हें हर तरह से दिखा देना चाहता हूँ, कि यह हरिजन-प्रवृत्ति धार्मिक भावना से ही प्रवर्तित हुई है और उसी भावना से चल रही है। जब लक्ष्य धार्मिक है, तो उसका परिणाम भी धार्मिक ही होगा। मैं यह भी दिखा देना चाहता हूँ, कि धर्म का प्रचार तेज़ चलनेवाली सवारियों पर निर्भर नहीं है। एक भाई की यह तजवीज थी, कि हवाई जहाज़पर यात्रा करने की व्यवस्था की जाय तो कैसा हो। मैंने वह बात तुरंत काट दी। किसी को यह भी नहीं समझना चाहिए, कि इस प्रवास का उद्देश्य सिर्फ़ धन-संग्रह करना है। मेरा विश्वास है, कि अगर मैं पैदल यात्रा करूँगा, तो भी इस कार्य के अर्थ यथावश्यक धन और कार्यकर्ता तो मिल ही जायँगे। मेरा संदेश अगर अंतरात्मा से निकला हुआ होगा, तो रेल या मोटर-द्वारा चलने की अपेक्षा पैदल चलने पर तो उसकी गति अधिक तेज होगी।

एक बात और है। वह यह कि मैं उस शोरगुल से भी ऊब जाता हूँ, जो मुझे देखकर लोग मचाया करते हैं—यद्यपि वह हर्ष-कोलाहल जनता के प्रेम तथा आनन्द का सूचक होता है। अब मेरी नसें कमज़ोर पड़ गई हैं। इस तरह का शोर गुल अब उनसे सहन नहीं हो सकता। भीड़ के धक्कों से भी मुझे बड़ा कष्ट होता है—और ऐसे धक्के मुझे नित्य ही नसीब होते हैं। भारी-भारी भीड़ों का मेरी ओर उमड़ पड़ना और उनसे स्वयंसेवकों का मुझे बचाने का प्राणपण से प्रयत्न करना यह सब अब इस जर्जर शरीर को सहन नहीं होता। इस शोरगुल और भीड़-भाड़ में मुझे तो कोई लाभ दिखाई नहीं देता। मेरे पैर छूने के लिए लोगों का पागलपन तो मेरे शरीर के लिए और भी भयावह साबित होता है। शायद ही ऐसा कोई दिन बीतता हो, जिस दिन मेरे पैर लोगों के नाखूनों से न खुरच जाते हों। मैंने बारबार यह अनुरोध किया, कि लोग शोर न मचावें, धक्कमधक्का न करें और मेरे पैर न छुएँ, पर मेरे अनुरोध का कोई स्थायी असर नहीं हुआ। सभाओं में यदि मेरा भाषण लोग सुन पाते हैं, तो उतने समय के लिए ज़रूर कुछ शांति हो जाती है। मगर ऐसा अवसर मिलना मुश्किल है, क्योंकि मुझे एक-एक दिन तीन-तीन सभाओं में पहुँचना होता है,—वह भी एक दूसरी से बहुत दूरी पर होती हैं।

लोगों पर मेरे संदेश का असर पड़े, इसलिए यह ज़रूरी है, कि शांत और सुनने की इच्छा रखनेवाले जन-समूह को सन्देश दिया जाय। किसी सत्यमूलक उपदेश के समय वातावरण का शांत होना आवश्यक है। ऐसी स्थिति में अपने शेष प्रवास के बारे में अपने सहकारियों के सामने मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:—

(१) जिस दिन निश्चय कर लिया जाय, उस दिन जहाँ रहूँ वहीं से पैदल यात्रा शुरू कर सकूँ। पटने में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में सम्मिलित होने को अथवा ऐसे ही किसी अन्य काम के लिए यह यात्रा-क्रम स्थगित रहेगा। जिस जगह यात्रा स्थगित की जाय, उसी जगह से उसे फिर आरंभ करूँ। अथवा, यात्रा स्थगित हो जाने पर फिर नया प्रवास-क्रम आरंभ हो सकता है।

(२) उड़ीसा प्रांत का प्रवास पूरा करके किसी नये प्रांत में यात्रा आरंभ कर सकूँ। और उस प्रांत की यात्रा पूरी करके जितने प्रांतों में पैदल प्रवास कर सकूँ उतने प्रांतों में करूँ।

(३) नया प्रवास-क्रम निश्चित करके जहाँतक संभव हो विभिन्न प्रांतों में पैदल यात्रा कर सकूँ। एक प्रांत से दूसरे प्रांत में जाने के लिए ही रेल की सवारी काम में लाऊँ।

मुझे विश्वास है, कि अगर कार्यकर्ताओं का इस कार्य की आध्यात्मिकता में विश्वास है, तो उक्त प्रस्ताव की पहली बात मान लेने में उन्हें कोई आनाकानी नहीं होगी। एकबारगी तो वे किसी निर्णय पर आप-से आप पहुँच नहीं सकते। उनका भी अपना कोई निजी विश्वास है। अगर मेरी कोई भी बात उनके मन में ठीक न बैठे, तो वे उसे जाने दें। तब मैं जिस तरह मुझसे हो सकेगा, अपने शेष प्रवास को पूरा करूँगा।

यह प्रश्न उठ सकता है, कि अगर मुझे अपनी बात पर पूरा विश्वास है, तो फिर मैं स्वतंत्र रूप से क्यों न उसी तरह कार्य आरंभ कर दूँ, जिस तरह बराबर करता आया हूं। सवाल बिलकुल ठीक है। किन्तु मैं स्वतंत्र रूप से कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि यह प्रवास-क्रम मेरी अपनी प्रेरणा से निश्चित नहीं हुआ है। इसके लिए तो ठक्कर बापा और सेठ घनश्यामदास बिड़लाने मुझे सलाह दी थी। उन्हीं लोगोंने प्रवास-क्रम निश्चित भी किया था। घनश्यामदास बिड़ला के आगे मैंने अभी प्रस्ताव नहीं रखा है। किन्तु ठक्कर बापा मेरे प्रस्ताव के पक्ष में नहीं हैं। उनका कहना है, कि पैदल यात्रा करने से तो एक ही प्रांत में बहुत सारा समय लग जायगा, जो दूसरे प्रांतों के प्रति वचन-भंग के समान होगा। उनका यह भी कहना है, कि प्रांतीय संघों से बिना पूछे मैं कुछ नहीं कर सकता। ठक्कर बापा का कहना उचित ही है।

जिन प्रांतों में मुझे जाना है वहाँ की स्वागत-समितियों के सभापति और मंत्री अपने यहाँ के कार्यकर्ताओं के साथ सलाह करके क्या अपनी राय संक्षेप में तार-द्वारा तुरंत मेरे पास भेज देंगे?

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

पैदल-प्रवास का महत्व

[उपर्युक्त 'प्रवास क्या पैदल ही ?' शीर्षक लेख भेजने के बाद गांधीजीने उस दिन असोसियेटेड प्रेस को निम्नलिखित वक्तव्य दिया।]

"यह कहते हुए मुझे प्रसन्नता होती है, कि जब मैंने आज सवेरे पैदल यात्रा करने के प्रस्ताव पर उत्कल के हरिजन-सेवकों से बातचीत की, तो उन्होंने उसे तुरंत स्वीकार कर लिया और उसके आध्यात्मिक महत्वको भी समझा। हाँ, यह उन्होंने अवश्य कहा, कि जो स्थान इस पैदल-प्रवास में छूट जायँगे वहाँ के कार्यकर्ता बहुत निराश होंगे। मगर मैंने उनको समझाया, कि जब वे लोग देखेंगे, कि ऐसा करने से हरिजन-सेवा का वास्तविक संदेश शीघ्र प्रभावकारी होगा, तब उनकी वह निराशा प्रसन्नता में परिणत हो जायगी। मैं उम्मीद करता हूँ, कि हमारे सहकारी भाई इस खबर को गाँव-गाँव में फैला देंगे, और गाँवों की जनता को हमारे इस पैदल-प्रवास की गंभीरता को समझा देंगे। मेरे पहुंचने पर जो जय-जयकार के या दूसरे नारे लगाये जाते हैं, वह सब बंद कर देने चाहिए। लोग जो तले-ऊपर टूट पड़ते हैं, यह भी बंद हो जाना चाहिए। जहां सभा हो, वहां लोगों को चुपचाप मेरा संदेश सुनने के लिए तैयार रहना चाहिए। कोई मेरे पैरों को न छुए। मेरे चलते समय मेरे पैर छूने को दौड़ना बहुत ही बुरा है।

जिन गाँवों में मुझे जाना होगा, वहां के हरिजन-कार्यकर्ताओं को मैं यह सलाह दूंगा, कि अपनी थैलियाँ अपने साथ लाया करें। यदि इस पैदल यात्रा की महत्ता समझ में आ जायगी तो मुझे आशा है, कि उड़ीसा के सभी स्थानों से मुझे थैलियाँ मिलेंगी। अगर प्रांतीय कार्यकर्ता इसका महत्व समझ जायँगे, तो वे मुझे अपने प्रांतों में बुलाने से क्षमा कर देंगे। मैं समझता हूं कि मेरा उत्कल-प्रवास सारे भारतवर्ष के प्रवास के बराबर रहेगा। बारबार बाधा पड़ने से प्रवास का प्रभाव जाता रहेगा। मुझे पूरा भरोसा है, कि शेष प्रांतों में थोड़े-थोड़े दिन पैदल घूमकर, एक प्रांत से दूसरे प्रांत में चले जाने की अपेक्षा, लगातार यात्रा करने का अधिक प्रभाव पड़ेगा। कार्यकर्ताओं को चाहिए, कि मुझे अपने यहां बुलाने का विचार छोड़दें। मैं चाहता हूं, कि प्रान्तों के कार्यकर्ता मेरे इस प्रस्ताव पर विचार करें और यथाशीघ्र तारद्वारा मेरे पास अपनी राय भेजदें।"

मेरा हाथ नहीं है

२ मई के पत्र में महाराजा साहब गिद्धौरने मुझे लिखा है :—

"देवघर में हुए आपके भाषण की जो रिपोर्ट अखबारों में प्रकाशित हुई है, उसकी एक प्रति मुझे मिली। मैंने आपको तुरंत ही यह सूचित करना ठीक समझा, कि आपने जो यह सन्देह प्रगट किया है, कि किसी पर्चे पर मेरा नाम मेरी आज्ञा लेकर प्रकाशित नहीं किया गया है, वह उचित ही था।

मुझे ऐसे किसी पर्चे का पता नहीं है। सचमुच यह बात बिलकुल ही झूठ है, कि मैंने किसी पर्चे पर अपना नाम प्रकाशित करने की आज्ञा दे दी थी। मैं समझता हूँ, कि इस पत्र में मैंने अपनी स्थिति आपके सामने स्पष्ट करदी है। मन्दिर-प्रवेश बिल के सम्बन्ध में मेरी व्यक्तिगत सम्मति चाहे जो कुछ भी हो, पर मैं, आपके साथ ही, इस बात के लिए खेद प्रगट करता हूँ, कि ये झूठी बातें फैलाई जा रही हैं।

देवघर में जो असभ्य प्रदर्शन हुआ है, उसके लिए मैं भी दुखी हूँ। अगर आप ठीक समझें, तो मेरे इस पत्र को प्रकाशित करदें।"

मुझे इससे संतोष हुआ है, कि महाराजा साहब गिद्धौर का उस पर्चे में कोई हाथ नहीं था। यह खेद की बात होती, अगर ऐसे असत्य के प्रचार में महाराजा साहब अपने नाम का उपयोग करने देते।

मो० क० गांधी

ब्राह्मण और चांडालकी आग

बौद्ध-साहित्य में 'मज्झिम-निकाय' का बड़ा ऊँचा स्थान है। सुत्तन्त (सूत्र) रूप में भगवान् बुद्ध के प्रवचनों का इस बृहद् ग्रन्थ में बड़ा सुंदर संग्रह है। उदाहरणों, उपमाओं और रोचक रूपकों के द्वारा बुद्धने गहन-से-गहन विषयों को इन सुत्तन्तों में बड़ी सरलता से समझाया है। उच्च-नीच-भेद अर्थात् अस्पृश्यता के खंडन पर 'मज्झिम-निकाय' में कई सुत्तन्त मिलते हैं। उनमें से एक 'अस्सलायण' नाम का सुत्तन्त है। श्रावस्ती में, अनाथपिंडिक के आराम जेतवन में, विहार करते हुए भगवान् बुद्धने महान् विद्वान् आश्वलायन माणवक के प्रति वर्णभेद पर जो प्रवचन किया था, उसका एक अंश मैं उक्त सुत्तन्त से यहाँ देता हूँ :—

"भगवान् बुद्धने आश्वलायन से कहा—

'तो क्या, आश्वलायन, तुम ऐसा मानते हो, कि यहाँ मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा, नाना जाति के सौ आदमी एकत्र करे और उनसे कहे, कि 'आप सब, जो क्षत्रिय-कुल से, ब्राह्मण-कुल से और राजन्य-कुल से उत्पन्न हैं, यहां आवें—और साखू की या साल वृक्ष की या चंदन की या पद्मकाष्ठ की उत्तरारणी लेकर आग बनावें, तेज प्रादुर्भूत करें, और आपलोग भी आवें, जो चांडाल-कुल से, निषाद-कुल से, बसोर-कुल से, रथकार-कुल से, पुक्कस-कुल से उत्पन्न हुए हैं, और कुत्ते के पीने की, सुअर के पीने की कठरी (कठौती) की, धोबी की कठरी की, या रेंड की लकड़ी की उत्तरारणी लेकर आग बनावें, तेज प्रादुर्भूत करें'—तो क्या तुम मानते हो, आश्वलायन, कि क्षत्रिय-ब्राह्मण-वैश्य-शूद्र-कुलों से उत्पन्न पुरुषों-द्वारा शाल-सरल-चंदन-पद्म की उत्तरारणी को लेकर जो आग उत्पन्न की गई है, जो तेज प्रादुर्भूत किया गया है, क्या वही अर्चिमान, अर्थात् लौवाली, वर्णवान् और प्रभास्वर अग्नि होगी ? क्या केवल उसी आग से काम लिया जा सकता है ? और चांडाल-निषाद-बसोर-रथकार-पुक्कस-कुलोत्पन्न पुरुषों-द्वारा श्वपान-कठरी की, शूकर-पान-कठरी की तथा रेंड-काठ की उत्तरारणी को लेकर जो आग उत्पन्न की गई है, जो तेज प्रादुर्भूत किया गया है, वह अर्चिमान, वर्णवान् और प्रभास्वर अग्नि न होगी ? क्या उस आग से अग्नि का काम नहीं लिया जा सकेगा ?'

आश्वलायन समझ गया। उसे समाधान हो गया। उसने उत्तर में कहा :—

"क्यों नहीं, जो आग क्षत्रिय-ब्राह्मण-वैश्य-शूद्र-कुलोत्पन्न पुरुषों-द्वारा शाल-सरल-चंदन-पद्म की उत्तरारणी को लेकर बनाई गई होगी, वह भी अर्चिष्मान्, वर्णवान् और प्रभास्वर अग्नि होगी, उस से भी अग्नि का काम लिया जा सकेगा—और जो चांडाल-निषाद्-बसोर-रथकार-पुक्कस-कुलोत्पन्न पुरुषों-द्वारा श्वपान-कठरी की, शूकर-पान-कठरी की, रेंडकाष्ठ की उत्तरारणी को लेकर बनाई जायगी, वह भी अर्चिष्मान्, वर्णवान् और प्रभास्वर अग्नि होगी और उससे भी अग्नि का काम लिया जा सकेगा।"

इस प्रकार के अनेक उदाहरणों-द्वारा बुद्धदेवने आश्वलायन को समझाया, कि जन्म से, प्रकृति की दृष्टि से, न कोई ब्राह्मण है न कोई चांडाल, न कोई उच्च है, न कोई नीच। फिर अस्पृश्यता के लिए स्थान ही कहाँ हो सकता है ?"

वियोगी हरि

जगन्नाथपुरी में सब बराबर

भगवान् जगन्नाथ का प्राचीन मंदिर किसी समय एक नीली पहाड़ी पर था। वहाँ अत्यन्त सघन वन था। उस विकट वनमें जाने का कोई साहस नहीं करता था। पर एक शिकारी उस अज्ञात पहाड़ी के पास झोंपड़ी बनाकर रहता था। उसका नाम विश्ववसु था। जाति का वह शबर था। एक दिन की बात है, कि शिकार की खोज में वह उस पहाड़ी के शिखर पर पहुँचा, और वहाँ मानव-दृष्टि से ओझल एक गुप्त गुफा में उसने एक बड़ी मनोहर मूर्ति देखी। आनंद से उसका हृदय प्रफुल्लित हो गया। भक्तिभाव से वह शबर नाचने लगा। उस दिन से वह संसार की सब मोह-माया भूल गया। सोते-जागते उसका चित्त उस मनोहर मूर्ति में ही लगा रहता। नीली पहाड़ी के भगवान् को वह अपनी सरल भावना के वश होकर 'नीलमाधव' के नाम से पुकारा करता। नित्य प्रातःकाल उठ कर उस गुफा में जाता, मनोहर मूर्ति को स्नान कराता और उस पर सुगंधित पुष्प चढ़ाता। इतना करके वह स्वादिष्ट फल एकत्र करता, और चख-चखकर जो उसे सब से मीठे लगते, उनका अपने नीलमाधव भगवान् को भोग लगाता। अत्यंत भक्ति-भाव में डूबकर वह एक क्षण भी यह न सोचता था, कि उसके जूठे फल भगवान् को भोग लगाने लायक हैं या नहीं। उसका तो यह विश्वास था, कि बढ़िया-से-बढ़िया वस्तु ही भगवान् को आरोगनी चाहिए। फिर स्वयं बिना स्वाद लिये वह कैसे मालूम कर सकता था, कि सब से स्वादिष्ट फल कौन है ? मधुरतम फल हाथ में लेकर वह अपने भगवान् के पास दौड़ा जाता और कहता, "मेरे नाथ, इन फलों का भोग लगाइए। ये बड़े ही मीठे हैं। मैं इन्हें चखकर लाया हूँ।" उस शबर भक्त की, अहा, कैसी सरल श्रद्धा थी ! भगवान् तो भाव के भूखे हैं। अपने शबर भक्त की भेंट क्यों न अंगीकार करते ? यदि अंगीकार नहीं करते, तो हठीला भक्त अनशन करने बैठ जायगा। जबतक भगवान्ने भोग नहीं लगाया, तबतक कैसे प्रसाद ग्रहण कर सकता है ? इस प्रकार विश्ववसु शबर अपना भक्तिपूर्ण जीवन बिताने लगा। सिवा उसकी लड़की ललिता के और किसी को यह पता नहीं था, कि विश्ववसु के जीवन-लक्ष्य तो अब भगवान् नीलमाधव ही हैं।

उस समय मालव देशमें इन्द्रद्युम्न नाम का राजा राज्य करता था। वह सदाचारी और धर्मनिष्ठ राजा था। उसकी यह मनोकामना थी, कि किसी अद्वितीय तीर्थस्थान में एक विशेष प्रकार का मंदिर बनवाकर उसमें ऐसी पवित्र प्रतिमा की स्थापना कराई जाय, जो भारत-विख्यात हो। ऐसे अनुपम स्थान और ऐसी अपूर्व प्रतिमा का पता लगाने के लिए इन्द्रद्युम्न बराबर चारों दिशाओं में अपने दूत भेजा करता था। एक दिन, जब कि वह अपने निष्फल प्रयासों पर दुखी हो रहा था, एक अतिथि ब्राह्मण उसके पास आया और उसने मालव-नरेश को उस अद्वितीय नीलाचल की महिमा सुनाई, जिसके शिखर पर भगवान् नीलमाधव विराजमान थे। ब्राह्मणने कहा—"महाराज, नीलाचल के नीलमाधव साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान् हैं। यदि आप वहाँ एक सुंदर मंदिर बनवादें, तो इससे आपको अपूर्व कीर्ति तथा असीम आनन्द प्राप्त होगा, क्योंकि जहाँतक मैं जानता हूँ, समस्त भारतवर्ष में नीलाचल सबसे पवित्र तीर्थ स्थान है।" हर्षोत्फुल्ल इन्द्रद्युम्नने यह सुखद समाचार सुनकर तुरंत ही अपने प्रधान मंत्री के अनुज विद्यापति पंडित को ब्राह्मण के कथन की सत्यता जाँचने के लिए वहाँ भेज दिया।

विश्ववसु शबर की झोंपड़ी खोजने में विद्यापति को कोई कठिनाई नहीं हुई। उसने विश्ववसु को अपने आने का उद्देश्य बतला दिया। आखेटप्रिय शबरने उस महान् विद्वान् का यथोचित स्वागत-सत्कार किया, परन्तु विद्यापतिने कहा, कि भगवान् नीलमाधव का दर्शन किये बिना मैं भोजन नहीं कर सकता। विश्ववसु अपने आदरणीय अतिथि को, तुरंत उस स्थान को लिवा ले गया, जो उसे प्राणों के समान प्रिय था। नित्यप्रति विद्यापति पंडित विश्ववसु के साथ भगवान् का दर्शन करता। उस स्थान की रमणीयता में विद्यापति का मन ऐसा रम गया कि वह जिस उद्देश से वहाँ गया था उसे भूल ही गया। एक रात्रि को स्वप्न में भगवानने उससे कहा, 'विद्यापति ! यहाँ से अब चलदे, राजा इन्द्रद्युम्न तेरी प्रतीक्षा कर रहा है।'

दूसरे दिन सवेरे ही विद्यापति मालव देश के लिए रवाना हो गया। राजधानी में पहुँचकर राजा इन्द्रद्युम्न को उसने आदि से अन्ततक सब वृत्तान्त सुनाया। इन्द्रद्युम्न तुरन्त तीर्थयात्रा के लिए चल दिये। उनके आनन्द का पार नहीं था। प्रभुने उनका मनोरथ पूरा किया। किन्तु एक बात उन्हें बराबर अशान्त कर रही थी। वह यह कि एक नीच अस्पृश्य शबर नित्य भगवान् का स्पर्श कर रहा है। यह कितनी बुरी बात है। यात्रा समाप्त करते-करते राजाने यह निश्चय कर लिया, कि उस अस्पृश्य शबर को वहाँ पहुँचते ही मैं भगवान् की सेवा-पूजा से अलग कर दूँगा। इन विचारों को लेकर इन्द्रद्युम्न नीलाचल के शिखर पर पहुँचे। पर यह क्या—वहाँ तो नीलमाधव नहीं थे। गुफा सूनी पड़ी थी। नीलमाधव अन्तर्धान हो गये थे ! अब तो राजा को बड़ी घबराहट हुई। विद्वान् विद्यापति से भगवान् के रोष का कारण पूछा, तो उसने कहा—'महाराज ! आपने विश्व-

*श्री राहुल सांकृत्यायन-द्वारा संपादित 'मज्झिम-निकाय' के अस्सलायण सुत्तन्त के आधार पर।

वसु शबर को घृणाभाव से अस्पृश्य समझा है। वह तो महान् भक्त है। भगवान् नीलमाधव की उस पर अपार कृपा है। प्रभु उसके वश में हैं। आपने अपने मन में व्यर्थ उच्च-नीच-भाव को आश्रय दिया। यह अच्छा नहीं किया। भगवान् के अन्तर्धान हो जाने का यही कारण है। आपको अनशन करके आत्मशुद्धि करनी होगी और भक्तवर विश्वावसु से क्षमा माँगनी होगी। इस प्रकार जब आपके हृदय से उच्च-नीच का तमाम भेद-भाव दूर हो जायगा, और भूतमात्र को आप समभाव दृष्टि से देखने लगेंगे, तब आप भगवान् नीलमाधव का दर्शन पा सकेंगे।

राजाने अत्यन्त विनम्रता से अपना मस्तक झुकाया और विद्यापति के कहे अनुसार पश्चात्ताप तथा प्रायश्चित्त करना आरम्भ किया। कितने ही दिन राजाने अनशन किया, और आख़िरकार अपने हृदय से उच्च-नीच की तमाम भेद-भावना निर्मूल कर डाली। भगवान् नीलमाधवने इन्द्रद्युम्न को दर्शन दिया और कहा, "अब तुम्हें मेरा दर्शन नहीं होगा। कल समुद्र-तट पर जाना। वहाँ तुम्हें एक बड़ा भारी लक्कड़ पड़ा मिलेगा। उसकी चार मूर्तियाँ बनवा लेना। मेरा अंश उन प्रतिमाओं में प्रतिष्ठित होगा। एक बात और। तुम्हारी राजधानी में किसी भी प्रकार का उच्च-नीच-भेद न रहे, और मेरे महान् भक्त विश्वावसु के साथ न्याय बरता जाय।" दूसरे दिन प्रातःकाल महाराजा इन्द्रद्युम्न राजश्री ठाट-बाट से समुद्र-तट पर गये और वहाँ उन्हें एक भारी काठ पड़ा मिला। भगवान् के निर्देशानुसार उस काठ की चार प्रतिमाएँ बनाई गईं—एक जगन्नाथ की, एक बलभद्र की, एक सुभद्रा की और एक सुदर्शन की। राजा इन्द्रद्युम्नने नीलाचल पर एक सुन्दर मन्दिर बनवाया और उसमें चारों मूर्तियों का भक्तिपूर्वक प्रतिष्ठा-संस्कार कराया। और यह आदेश निकाल दिया, कि राज्य में उसकी कोई भी प्रजा उच्च-नीच भेद को आश्रय न दे। इतना ही नहीं, विश्वावसु शबर की ललिता नाम की कन्या का विवाह विद्वान् पंडित विद्यापति के साथ करके इन्द्रद्युम्नने अपनी प्रजा के आगे एक अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित किया। भगवान् जगन्नाथ के वर्तमान प्रतिष्ठित पुजारी 'पतिमहापात्र' विद्यापति तथा ललिता की ही सन्तान हैं। और जो लोग 'दैतपति' नाम से प्रसिद्ध हैं, वे विश्वावसु शबर के वंशज हैं। ये लोग मन्दिर के पूर्णाधिकारी हैं, और ये श्री जगन्नाथजी के एक प्रकार से कुटुम्बी समझे जाते हैं। भगवान् का काया-कल्प इन्हीं लोगों के हाथ से होता है। इनके पास आज भी महाराज इन्द्रद्युम्न के समय का ताम्रपत्र है।

जब राजा इन्द्रद्युम्नने मंदिर का सेवा-पूजा-विधान तथा नियम इत्यादि बनाये, तब उन्होंने ३६ जातियों के लोगों को सेवा-पूजा का अधिकार दिया। यह इसलिए, कि कहीं आगे जाकर शबर लोग ही अपने को मंदिर में जाने का एकमात्र अधिकारी न समझ बैठें। इस प्रकार ३६ जातियों के लोगों को सेवा-पूजा के विधान में लेकर राजाने यह सिद्ध कर दिया, कि मंदिर में जाति-पाँति का कोई भेद नहीं है, प्रत्येक दर्शनार्थी भगवान् का दर्शन कर सकता है। यह प्रथा तब से बराबर ऐसी ही चली आ रही है, और आज भी मौजूद है। भगवान् के मंदिर की निजी व्यवस्था में भंगी, पंडा, बाग़री, हाड़ी, चमार, धोबी आदि सभी जातियों का अपना-अपना निश्चित स्थान है, सभी जातियाँ स्वनिर्धारित सेवा-पूजा करती हैं। वहाँ यह प्रश्न ही नहीं उठता, कि एक जाति की सेवा दूसरी जाति की सेवा से उच्च है या नीच।

भगवान् को जो भोग लगाया जाता है उसे 'कैवल्य' कहते हैं, जिसका अर्थ सर्वतोभावेन 'ऐक्य' है—अर्थात् भगवत्प्रसाद में वहाँ किसी भी प्रकार का उच्च-नीच-भाव नहीं रखा गया है। सभी जातियों के साथ एक पंक्ति में, बल्कि एक ही पत्तल पर भगवत्प्रसाद ग्रहण करते हैं। प्रसिद्ध है कि—'जगन्नाथ के भात को जगत पसारै हाथ।' प्रसाद-ग्रहण की यह प्रथा भी न जाने कब से चली आ रही है।

कहा जाता है, कि हिंदू जनता को जगन्नाथजी का मंदिर समर्पित कर देने की इच्छा से इन्द्रद्युम्नने भगवान् से यह वर माँगा था, कि "इस मंदिर का कोई उत्तराधिकारी न हो। मैं यह नहीं चाहता, कि भविष्य में मेरे वंशज मंदिर तथा भगवान् के एकमात्र अधिकारी बन बैठें। मंदिर के द्वार सदैव हिंदूमात्र के लिए खुले रहें।" सिंहद्वार पर लगे शिलालेख में आज भी यह लिखा हुआ है कि—"अहिंदू मंदिर के अंदर नहीं जा सकते। कोई भी हिंदू भीतर जा सकता है।" मंदिर-विधान के महान् प्रामाणिक ग्रन्थ 'नीलाद्रि महोदय' में भी ऐसा ही उल्लेख है।

सूर्यवंशी राजा इन्द्रद्युम्न के वंशज आज नहीं रहे। आज तो पुरी के राजसिंहासन पर वर्तमान राजा 'भोई' वंश का है।

जगन्नाथपुरी में एक प्राचीन प्रथा तो आज भी प्रचलित है। रथयात्रा के अवसर पर राजा स्वयं झाड़ने-बुहारने की सेवा करता है। इससे यह सिद्ध है, कि राजा इन्द्रद्युम्न का सर्व जातियों के प्रति जो सम भाव था वह मौखिक नहीं था, उन्होंने स्वयं भी भगवान् के झाड़ूदार की सेवा हाथ में ली थी।

रघुनाथ मिश्र

उत्तरदायी कौन हो सकता है ?

पाश्चात्य शिक्षाने हमलोगों पर एक ऐसा भूत सवार कर दिया है, कि किसी भी भारी उत्तरदायित्व का काम करने के लिए, सार्वजनिक कार्य-संचालन के अर्थ, अँग्रेज़ी का जानना ज़रूरी है—राजनीतिक या म्यूनिसिपैलिटी-संबंधी जवाबदारी निभाने के लिए तो अंग्रेज़ी जानना ही चाहिए। हमारी यह धारणा हो गई है, कि स्कूल या कालेज में जिसने शिक्षा नहीं पाई, जिसने अक्षरज्ञान प्राप्त नहीं किया, उसमें बड़े-बड़े कामों के चलाने की योग्यता ही नहीं। इस विचारने हमारे अंदर घर कर लिया है। इस विचारने हमें अनुदार भी बना दिया है। राजकाज अथवा म्यूनिसिपैलिटी का भार अपढ़ भी सफलतापूर्वक उठा सकते हैं, यह हम प्रतिदिन देखते हैं। ऐसे अक्षर-ज्ञान-शून्य लोगों की बात कौन नहीं जानता, जिन्होंने लाखों-करोड़ों रुपया कमाया है, जिन्हें असीम प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है और जिनकी कार्य-कुशलता की चारों दिशाओं में प्रशंसा हो रही है? राजकाज चलाने के लिए अक्षर-ज्ञान आवश्यक ही होता, तो शिवाजी हमें कदापि न मिले होते। पर शिवाजी-जैसे नरेश संसार के नरेशों में एक या दो ही खोजने से मिलेंगे। कलकत्ते-बंबई या अन्य स्थानों में मारवाड़ी लोग अनेक व्यवसायों में आज सबसे आगे हैं। उनके इच्छानुसार लाखों-करोड़ों का व्यापार देश-विदेश में चल रहा है। ये लोग सूक्ष्म बुद्धि से अपना काम करते हैं। अब, कहिए

इनमें कितने आदमी अँग्रेज़ी पढ़े-लिखे हैं ? और इस व्यापारी वर्ग में हम कितनों को साधारणतया शिक्षित समझते हैं ? पर इससे उनका या बाज़ार का काम कुछ अटकता नहीं। जो चायवाला बढ़िया चाय बनाना जानता है, जो गृहस्थ अपनी संसारी नाव को ठीक-ठीक चलाना जानता है, जो पड़ोसियों के साथ न्यायपूर्वक व्यवहार करना जानता है, वह राजकाज अथवा नागरिकों के प्रतिनिधि के काम यथार्थ रीति से कर सकता है। चायवाला अगर अपढ़ है, तो इससे उसका काम कुछ बिगड़ता नहीं। इसी प्रकार लोगों में से कोई योग्य आदमी चुना जाय और उसे राजनीतिक अथवा म्यूनिसिपैलिटी का उत्तरदायित्व सौंप दिया जाय, तो उसमें लेशमात्र भी डरने का कारण नहीं। आज भी जितने सब प्रतिनिधि चुनकर भेजे जाते हैं, वे सभी तो क़ायदा-क़ानून के पंडित होते नहीं। देखने में तो यह भी आता है, कि शहर के सभी मेंबर आरोग्यता और शहर की सफ़ाई के संबंध में बारीकी से विचार नहीं कर सकते। वस्तुस्थिति ऐसी होती है, कि बड़े-बड़े उत्तरदायित्व के कामों में विशेषज्ञों की सहायता तो लेनी ही पड़ती है। कोई भी अपढ़ आदमी उच्चपद पर बैठा हो, तो वह भी विशेषज्ञों की सलाह लेकर काम चला सकता है। घर में कोई बीमार पड़ जाय, तो सभी कोई तो चिकित्सा करना जानते नहीं। उस समय डाक्टर या वैद्य को ही बुलाना पड़ता है। किंतु डाक्टर या वैद्य के बुलाने का निश्चय तो गृहस्थ खुद ही करता है। रोग का निदान होने के पश्चात पथ्यादि दिया जाता है। राजकाज अथवा नागरिक कार्य भी इसी प्रकार समझना चाहिए। जिस विषय में जो कुशल हो, उस विषय में उसके साथ सलाह करके काम चलाया जा सकता है। साधारणतया प्रत्येक गृहस्थ इसी नियम के अनुसार अपना सारा संसारी काम चलाता है। सैकड़ों विषयों में अज्ञ होते हुए भी जानकारों से पूछ-पूछकर वह अपनी घर-गृहस्थी का काम बराबर ठीक-ठीक चलाता रहता है। नगर एक बड़ा परिवार ही तो है। और राज्य उस से भी बड़ा परिवार है। साधारण मनुष्य जिस प्रकार चतुरता-पूर्वक अपने संसारी छकड़े को चलाते रहते हैं, उसी प्रकार वे नगर तथा समस्त राज्य के काम-काज भी सँभाल सकते हैं, इसमें लेशमात्र भी शंका नहीं। यदि हम ऐसे मनुष्यों को चुनकर नगर या राज्य का कार्यभार सौंप दें, जो हमारी समझ में योग्यतम व्यक्ति हों, जो कार्यकुशल और धर्मभीरु हों, अर्थात् बुरा काम करते जिनका हृदय काँपता हो, तो अवश्य ही उनके द्वारा अधिक-से-अधिक हित-साधन होगा। उनमें से अगर एक भी अँग्रेज़ी न जानता हो, एक भी पढ़ा-लिखा न हो, तो भी काम बिगड़ेगा नहीं।

इस मनोवृत्ति के विरुद्ध मनोवृत्ति आजकल की सभ्यता बना रही है। हँसी उड़ाने या अपने साथियों को नीचा दिखाने के लिए हम किसी अशिक्षित को जब-तब म्यूनिसिपैलिटी या धारा-सभा में भेज देते हैं। बंगाल में तो अनेक बार ऐसा प्रयोग हुआ है।

सन् १९२१ में नवाखाली ज़िले की तरफ़ से रसिकचंद्र नाम का एक चमार भाई धारासभा में भेजा गया था। उसे सदस्य बनाने या उत्तरदायित्व सौंपने की नीयत से धारा-सभा में नहीं भेजा था। वह तो दुनिया को यह दिखाने की नीयत से भेजा गया था, कि धारासभा की कुर्सियों पर जितने लोग बैठे हुए हैं, वे सब 'चमार' के समान हैं। कारण यह था, कि उन दिनों काउन्सिल-बहिष्कार का आंदोलन चल रहा था। ऐसा करके जनतंत्र की भावना कुचल दी गई, अस्पृश्यों और निरक्षरों का अपमान किया गया।

यही हाल १९३० में हुआ। कांग्रेसने धारासभाओं का बहिष्कार कर दिया था। इसलिए जब सीटें ख़ाली हो गईं, तो यह दिखाने के लिए कि काउन्सिलों में कितने नीच और तुच्छ आदमी जाते हैं, मेदनीपुर की ओर से इसेनी राउत नाम का एक मेहतर बंगाल की धारा-सभा में भेजा गया।

ऊपर के इन दोनों दृष्टांतों में अपढ़ और अस्पृश्य का घोर अपमान किया गया। इसके मूल में अस्पृश्यों के प्रति घृणा-भाव तथा अपने ज्ञान का गर्व सन्निहित था। किन्तु इन दोनों उदाहरणों में सदाचार का व्यतिक्रम स्पष्ट रीति से हुआ है। योग्यता-संबंधी भ्रमपूर्ण कल्पना के तथा अस्पृश्यों के प्रति निष्ठुर मनोवृत्ति के वश होने से ही ये उपर्युक्त बातें हुईं।

यह तो नहीं कहा जा सकता, कि आज यह मनोवृत्ति बिल्कुल बदल गई है। ऐसा होता, तो हरिजनों को धारा-सभाओं में प्रविष्ट कराने के मार्ग में विरोध या भय क्यों रहता ? हरिजनों के प्रति दयादृष्टि दिखाने की ज़रूरत नहीं है। न्याय-दृष्टि से उन्हें उत्तरदायित्व सौंपने का सुअवसर मिलना चाहिए। अड़चनें एक नहीं अनेक हैं, पर सदिच्छा के प्रताप से तमाम कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं। निर्वाचन के समय इतना अधिक पैसा बहाया जाता है, कि सिवा धनियों के भाग्य से ही कोई और विजय पा सकता है। हरिजन बेचारे ठहरे निर्धन। किंतु सदिच्छा तथा शुद्धबुद्धि हम में आ जाय, तो इन तमाम विघ्न-बाधाओं से उद्धार पाने का रास्ता तो निकल ही आयगा।

बंगाली 'हरिजन' से] सतीशचन्द्र दासगुप्त

निराधार भय

"अस्पृश्यता एक अत्याचार है, और अत्याचार ईश्वर का कोई क़ानून नहीं हो सकता। हिंदूधर्म तो न्याय और सत्य पर स्थित है। यदि ये तत्त्व उससे निकल जायँगे, तो फिर वह धर्म दुनिया से संपर्क रखनेवाला न रह जायगा। हिंदूधर्म सनातन है। पर यह कोई दलील नहीं, कि वह आजतक की भाँति सदा ही जीवित बना रहेगा। यह माना, कि हिंदू शास्त्र प्राचीन हैं। पर यह भी सत्य है, कि धूल के कण उसी समय से उन पर पड़ते आ रहे हैं। सनातनियों का विरोध बेबुनियाद है। मंदिर-प्रवेश बिल का अर्थ यह नहीं है, कि मंदिरों में हरिजनों का ज़बरदस्ती प्रवेश कराया जाय। उसका उद्देश्य तो यह है, कि वह सिपाही दरवाज़े पर से हटा दिया जाय, जो अन्य सब दर्शनार्थियों की मरज़ी होते हुए भी अकेले एक व्यक्ति के विरोध पर किसी हरिजन को मंदिर में जाने से रोक सकता है।

राजगोपालाचार्य

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupte

सम्पादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २५ मई, १९३४. [संख्या १४

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

(२३)

निर्देशिका

५ मई

झारसूगुडा : सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ४३४॥≈)७ झारसूगुडा से संभलपुर, मोटर से, ३० मील। सम्भलपुर : हरिजन-बस्तियों तथा कुष्ठि-चिकित्सालय का निरीक्षण, सार्वजनिक सभा, मानपत्र, धन-संग्रह ५३५।)५½। संभलपुर से बामुर, मोटर से, ५२ मील।

६ मई

बामुर से अंगुल, मोटर से, ४८ मील। अंगुल : सार्वजनिक सभा। धन-संग्रह ३९५-)। अंगुल से मीरमडली, मोटर से, १४ मील। बालुरपाल में धन-संग्रह १३॥≈)१०½। मीरमडली से पुरी, रेल से। मीरमंडली में धन-संग्रह ५१॥≈)५। हिंडोल में धन-संग्रह २३७≈)७½। सदाशिवपुर से कटक, धन-संग्रह ६३॥)

७ मई

पुरी : मौन-दिवस।

८ मई

पुरी : हरिजन-सम्पादन-कार्य ; सार्वजनिक सभा ; स्व० पंडित गोपबन्धु दास के चित्र का उद्घाटन। जनता तथा 'तरुण साहित्य-समाज' के मानपत्र; महिला-सभा; कुल धन-संग्रह ५८५॥)८½।

९ मई

पुरी से हरिकृष्णपुर, पैदल, ४½ मील। गोपीनाथपुर में धन-संग्रह २५≈)१०½। हरिकृष्णपुर : सभा, मानपत्र तथा धन-संग्रह १८≈)॥ हरिकृष्णपुर से चन्दनपुर, पैदल, ३½ मील। चन्दनपुर : सभा, मानपत्र तथा धन-संग्रह ९५≈)८½।

१० मई

चन्दनपुर से कडुआ, पैदल, ५½ मील, बीरगोविंदपुर में धन-संग्रह ४≈)॥ साखीगोपाल : सभा तथा जनता और सत्यवादी-यूनियन बोर्ड, सत्यवादी क्लब एवं सेवा-सदन के मानपत्र; धन-संग्रह २७८।-)॥ ; महिला-सभा। कडुआ में धन-संग्रह १६॥≈)११ कडुआ से बीर पुरुषोत्तमपुर, पैदल, ३ मील। बीर पुरुषोत्तमपुर : सभा, मानपत्र तथा धन-संग्रह १७≈)॥ मद्रक की महिलाओं-द्वारा प्राप्त २९)

११ मई

बीर पुरुषोत्तमपुर से दण्ड मुकुन्दपुर, पैदल, ५ मील। दण्ड मुकुन्दपुर : सभा तथा धन संग्रह २५॥-)८। दण्ड मुकुन्दपुर से पिपली, पैदल, २½ मील। पिपली : सभा तथा धन-संग्रह ४२।≡)११। बालासोर से प्राप्त १०।≈)

सप्ताह में कुल यात्रा : २७६ मील (१४४ मील मोटर से, १०८ मील रेल से और २४ मील पैदल)

कुष्ठ रोग

५ मई को हम लोग संभलपुर पहुँचे। यहाँ से उड़ीसा प्रांत का प्रवास आरम्भ हो गया। महानदी के बालुका-तट पर यहाँ सार्वजनिक सभा हुई। महानदी को हमने बाँस के बने एक अस्थायी पुल से पार किया। बड़ी सुन्दर और निर्मल नदी है। संभलपुर में गांधीजीने कुष्ठि-चिकित्सालय देखा। यों तो बिहार-उड़ीसा प्रान्त के कई ज़िलों में कुष्ठ रोग फैला हुआ है, पर पुरी में तो इसका पूरा साम्राज्य है। प्रांतीय सरकारने सन् १९२९–३० में पुरी ज़िले में कुष्ठ रोग की जाँच-पड़ताल कराई थी। चूँकि हम लोग आजकल पैदल ही पुरी ज़िले की यात्रा कर रहे हैं—जहाँ ८० से लेकर १२० मीलतक प्रतिदिन मोटर से और कभी-कभी ८० मील रेल से भी, यात्रा करते थे, वहाँ वर्तमान यात्रा-क्रम के अनुसार अब केवल ८ मील रोज़ पैदल चलते हैं—इसलिए सचमुच हमें कुष्ठ रोग के उन भयानक आँकड़ों की सत्यता को प्रत्यक्ष देखने का मौक़ा मिल रहा है, भयानक इसलिए, कि भारत-वर्ष में औसतन प्रति १०००० मनुष्य पीछे ५ कोढ़ी पाये जाते हैं, और आसाम में प्रति १०००० पीछे १३, पर ज़रा पुरी ज़िले के ये आँकड़े तो देखिए :—

थाना	आबादी	कोढ़ियों की संख्या	प्रति १०००० पीछे कोढ़ियों की संख्या
खुरदा	७५८५७	७१०	९२.३
टाँगी	४३६५८	४९६	११३.३
भुवनेश्वर	३५९१२	४८९	१३६.२
पुरी शहर	३८६९४	३२८	८४.८

पिपली	६५७८९	३३८	४८.४
जटनी	२५,२८४	३१९	१०६.२
बेगुनिया	४२७१२	४६७	१०२.०
पुरी सदर (आधा)	६३९३	२८८	२०५.५
सत्यवादी	३२३६२	४००	१२३.६

कुष्ठियों की संख्या इससे भी ऊपर होगी। बात यह है, कि उड़िया लोगों की ऊँची जातियों में सख्त पर्दा-प्रथा है, जिसके कारण ऊपर के आँकड़ों में पर्दानशीन स्त्रियाँ शामिल नहीं की जा सकीं। यह भयंकर संक्रामक रोग इतनी अधिकता से आखिर यहाँ फैला कैसे? लोगों का यह ख्याल है, कि भगवान् जगन्नाथजी की कृपा से यह रोग दूर हो जाता है। इसी विश्वास को लेकर दूर-दूर के कोढ़ी यहाँ आते हैं और उनकी छूत से ही पुरी में इस रोगने इतनी भयानकता से जड़ जमा ली है।

लेकिन कितने दुःख की बात है कि पुरी ज़िले में कुल जमा सिर्फ़ दो कुष्ठि-चिकित्सालय हैं—वह भी ईसाई मिशनरियों के। क्या अच्छा हो, अगर पुरी की म्युनिसिपैलिटी तथा ज़िला-बोर्ड इस सम्बन्ध में गौहाटी का अनुकरण करके अपने निजी कुष्ठि-चिकित्सालय यहाँ स्थापित करदें।

अफीम

और कुछ रोग ही नहीं, अफीम का व्यसन भी उड़ीसा में आसाम की ही तरह देखने में आता है। अभागे उड़िया लोग अज्ञानवश अफीम को सरदी और बुखार की एक अमोघ औषधि समझते हैं। 'भी ओ' मैली अपनी १९१७ की रिपोर्ट में लिखते हैं, 'वह बात आज तो नहीं है, पर सौ बरस पहले अफीम का व्यसन यहाँ सार्वत्रिक था। सरकारतक को कहना पड़ा था कि बिना अफीम के शायद ही यहाँ के आदमी जीवित रह सकेंगे।' जब यह सरकारी घोषणा की गई, कि बिना महसूली अफीम ज़ब्त करली जायगी, तब मजिस्ट्रेट के सामने सैकड़ों अफीमची गर्दन में रस्सियाँ डाले उपस्थित हुए। मतलब यह था, कि अगर अफीम का इसतरह आना रोक दिया जायगा, तो वे सब-के-सब फाँसी लगाकर मर जायँगे!' आज भी उड़ीसा में अफीम का सेवन आम तौर से किया जाता है। दीनबंधु एण्ड्रूज़ का कहना है, कि भारतवर्ष के अफीम खानेवाले स्थानों में बालासोर (शुद्ध शब्द बालेश्वर है) का दूसरा नंबर आता है।

उड़ीसा की कुछ विशेषताएँ

चूंकि वर्तमान कार्यक्रम के अनुसार हमलोगों को एक महीने से अधिक ही उड़ीसा में रहना है, इसलिए इस प्रांत की कुछ विशेषताओं पर थोड़ा प्रकाश डालना मैं अप्रासंगिक नहीं समझता।

नमक

उड़ीसा के समुद्र-तट की भूमि में काफी नमक भरा पड़ा है। 'भी ओ' मैली लिखते हैं, कि 'नमक का उद्योग यहाँ का एक खास उद्योग था, और सौ बरस पहले ईस्ट इण्डिया कंपनी को नमक से १८ लाख की वार्षिक आय होती थी।

भवन-निर्माण-कला

उड़ीसा की प्राचीन भवन-निर्माणकला अद्भुत थी। पुरी के खंडगिरि और उदयगिरि की सबसे प्राचीन जैन-गुफाएँ दर्शनीय हैं। बड़े-बड़े प्रस्तर-खंड काट-काटकर ऐसी सुंदर कोठरियाँ और गुफाएँ बनाई गई हैं, कि देखकर दाँतों उँगली दबानी पड़ती है। मौर्यकाल की यह बड़ी बढ़िया शिल्प-कला है। धौली टेकरी पर सम्राट् अशोक का सुप्रसिद्ध कलिंग-लेख भी देखने की चीज़ है। हिंदू-काल की शिल्प-कला कोणार्क और भुवनेश्वर के मंदिरों में देखने में आती है। कोणार्क के भव्य मंदिर की अद्भुत कारीगरी है। पत्थर पर जो खुदाई की गई है, उसपर न जाने कितना रुपया खर्च हुआ होगा। बड़ा ही बारीक काम है। मंदिर विशाल भी काफ़ी है। १९० फुट ऊँचा शिखर, जिसके ऊपर २५ फुट की मोटाई का एक भारी शिला-खंड रखा हुआ। इस पत्थर का वज़न अवश्य ही २००० टन का होगा। ऐसे-ऐसे शिला-खंड इतनी ऊंचाई पर कैसे चढ़ाये गये होंगे, यह एक पहेली ही है। आज भी उड़ीसा में पत्थर की खुदाई का काम कुछ बुरा नहीं होता, पर प्रोत्साहन न मिलने से अब यह कारीगरी दिन-पर-दिन गिरती जारही है।

उड़िया लिपि

उड़िया लिपि एक विचित्र ही लिपि है। अभी-अभी तक यह लिपि ताड़पत्रों पर लिखी जाती थी। सीधी लंबी लकीर खींचने से ताड़पत्र फट जाता है, इससे लेखक देवनागरी लिपि की लंबी-सीधी लकीर के बजाय अक्षरों के चारों ओर गोल-गोल टेढ़ी लकीरें लगाने लगे। उड़िया की छपी हुई पुस्तक पढ़ने के लिए बहुत तेज़ आँख चाहिए, क्योंकि असल अक्षर इन गोल-गोल चक्करों के बीच में इतने महीन होते हैं, और इस तरह छिपे-से रहते हैं कि उन पर दृष्टि नहीं जाती, और अक्षरों का पहचानना कठिन हो जाता है। पहले तो उड़िया पुस्तक जैसे गोल-गोल टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों का गोरखधंधा-सा दिखाई देगी। पर जब ज़रा गौर से देखेंगे, तब मालूम पड़ेगा, कि हर एक चक्कर के भीतर अक्षर-जैसी चीज़ भी है। उड़िया भाषा बहुत कुछ बंगला से मिलती जुलती है। अगर देवनागरी या बंगाली लिपि में वह लिखी जाय, तो उसे समझने में ऐसी कोई बहुत कठिनाई नहीं पड़ेगी। क्या कहें, अगर कहीं अपने हाथ में स्वतंत्र सत्ता होती, तो कभी का यह हुक्म जारी कर दिया गया होता, कि तमाम प्रांत स्वभावतः देवनागरी लिपि को स्वीकार करलें।

अंगुल

अब, हमें अपने प्रस्तुत प्रसंग पर आना चाहिए। संभलपुर और पुरी के बीच में एक दिन हमें अंगुल में ठहरना था। जल्दी-जल्दी में खड़े किये गये एक फटे-पुराने तंबू के नीचे वहाँ दोपहरी की सारी धूप गांधीजी को बरदाश्त करनी पड़ी। उधर अघोर जन-समूहने जुदा तंग किया। कहाँतक पैसे सँभालते। गांधीजी के हाथों में घंटों पैसे-पाइयों की वर्षा हुई। जब गिने तो १०२) के पैसे आये थे।

स्व० गोपबन्धुदास

८ मई को पुरी में गांधीजीने हरिजन-प्रवास का रूप ही बदल दिया। यहां उन्होंने उड़ीसा के शेष प्रवास को पैदल चलकर ही समाप्त करने का निश्चय कर लिया, रेल-मोटर आदि सवारियों का त्याग कर दिया। पुरी की सार्वजनिक सभामें गांधीजी पैदल ही गये। सड़कों पर भीड़ बड़ी ज़बरदस्त थी। सभामें भाषण करने के पहले उन्होंने स्व० पंडित गोपबंधुदास के चित्र का उद्घाटन किया, और उनकी सादगी, सच्चाई और साहस की भूरिभूरि प्रशंसा की।

प्रवास का नवविधान

पुरी की सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए गांधीजीने पैदल प्रवास करने के संबंध में कहा, कि "मुझे प्रसन्नता है, कि भारत के चार धाम में से एक धाम श्री जगन्नाथपुरी से मेरा पैदल प्रवास आरंभ होरहा है। जगन्नाथपुरी में किसी प्रकार का उच्च-नीच भाव नहीं है। यहाँ सब लोग भगवान का महाप्रसाद एकसाथ बैठकर ग्रहण करते हैं। निश्चय ही यह पैदल तीर्थयात्रा हरिजन-प्रवृत्ति की आध्यात्मिकता को व्यक्त करेगी। मेरे अपने अनुभवने, जिसका समर्थन इतिहास भी करता है, मुझे यह निश्चय करा दिया है, कि इन तमाम सवारियों से—बैलगाड़ियों से भी—आध्यात्मिक शक्तियों के स्वतन्त्र विकास में सहायता तो दूर रही, उलटे बाधा पहुँचती है। हमारे सामने इतना अधिक जटिल कार्य है और अस्पृश्यता का नासूर हमारे समाजमें इतनी गहराई से घर कर चुका है, कि उसे दूर करने के लिए जितना भी त्याग, जितना भी तप किया जाय उतना थोड़ा है। इसी से दिन-दिन मेरा यह विश्वास दृढ़ होता गया, कि मुझे रेल और मोटर की सवारी छोड़ ही देनी चाहिए और अस्पृश्यता निवारण का संदेश पैदल यात्रा करते हुए ही सुनाना चाहिए। पर वैद्यनाथ धाम से तो मेरी इस धारणाने मुझे व्याकुल कर दिया। मैं बहुत दिनों से यह अनुभव करता आरहा हूँ, कि मुझे अपना यह शरीर जनता-जनार्दन की ही दया पर छोड़ देना चाहिए, और मुझे यह भी लगता है, कि अगर भगवान् का अभी इस तुच्छ शरीर से लोक-सेवा लेनी है, तो उसको और-अजल भुजा इसे तमाम आपदाओं से बचाने के लिए काफ़ी है। इस तुच्छ हाड़-मांस की देह की रक्षा के लिए सवारियों की शरण लेना मुझे दुःखदायी मालूम हुआ है। पुलिस तो उधर अपना कर्त्तव्य-पालन कर रही थी, पर मैं शर्म के मारे गड़ा जारहा था, कि पुलिस को आज मेरी देह की रक्षा करनी पड़ रही है। इन सब बातों से मुझे पैदल यात्रा का निर्णय करना ही पड़ा। अगर मेरे संदेश में सचमुच सत्यता होगी, तो वह सत्कल्प शक्ति के द्वारा स्वतः लाखों-करोड़ोंतक पहुँच जायगा। अगर मेरे प्रवास का वह परिणाम न हुआ, जिसकी मैं आशा लगाये हुए हूँ, तो मैं समझूँगा, कि मैं ही इस पुण्य कार्य के अयोग्य हूं। हरिजन-प्रवास की सत्यता में तो मुझे सन्देह हो ही नहीं सकता। कल सवेरे मैं अपनी पैदल यात्रा आरंभ करूँगा। आपलोग आशीर्वाद दें, कि मेरा यह नवविधान सफल हो।

श्री जगन्नाथजी के महान् मन्दिर के सामने सनातनी विरोधियों को मैं इतना ही विश्वास दिलाता हूँ कि जहाँतक मुझसे बन पड़ेगा, मन्दिरों में जानेवाली हिन्दू जनता की मरज़ी से ही हरिजनों के लिए मन्दिर खोले जायँगे, और ज़बरदस्ती न एक भी मन्दिर नहीं खुलेगा।"

अन्त में गांधीजीने कहा, "लोग खुशी से मेरी इस पुण्य यात्रा में शामिल हों, पर उन्हें मेरे पैर छूने या मुझे घेर लेने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। वे मेरे यात्री-दल के पीछे-पीछे चलें, आगे बढ़ने या धक्कमधक्का करने की कोशिश न करें; और जो उन्हें आदेश दिया जाय उसे मानें। शोरगुल नहीं करना चाहिए, शान्तिपूर्वक चलना चाहिए। हाँ, अपने खाने-पीने और ठहरने का प्रबन्ध वे खुद ही कर लिया करें, गाँववालों पर किसी तरह का बोझ नहीं पड़ना चाहिए।

वीरहरिकृष्णपुर

९ मई को सवेरे गांधीजीने पुरी से कूच किया, और वह सारा दिन हरिकृष्णपुर में ही बिताया। हरिकृष्णपुर उड़िया ब्राह्मणों का एक आदर्श ग्राम है। उड़ीसा के प्राचीन राजाओंने यह गाँव ब्राह्मणों को दान में दे दिया था। गाँव के बीचोबीच एक सड़क है, और आसपास कतारों में नारियल के सैकड़ों पेड़ लगे हुए हैं। सड़क के दोनों तरफ़ तरतीब से घर बने हुए हैं। उड़ीसा में नारियल के पेड़ों पर ब्राह्मणों का ही एकमात्र इजारा है। प्राचीन काल के ब्राह्मणोंने यह व्यवस्था दे दी थी, कि यदि किसी अब्राह्मणने नारियल के वृक्ष लगाने की हिमाकत की, तो उसकी कुशल नहीं! हरिकृष्णपुर में एक सुन्दर प्राचीन तालाब है। बीच में एक मन्दिर है। पर यह दुःख की बात है, कि उस घाट से हरिजन पानी नहीं भर सकते, जहाँ अन्य हिन्दू भरते हैं। हमें बताया गया, कि ज़िला-बोर्ड की पाठशालाओं में कुछ हरिजन बच्चे दाखिल तो कर लिये गये हैं, पर उन्हें दूसरे लड़कों से अलग कुछ फासले पर बिठाया जाता है। इसी तरह ज़िला-बोर्ड के कुएँ भी हरिजनों के लिए सिर्फ़ कहनेमात्र को ही खुले हुए हैं।

हरिकृष्णपुर के लोगों से गांधीजीने कहा, "आप लोगों के गाँव में आने से मुझे बड़ा आनन्द हुआ है। मुझे प्रसन्नता इस बात की है, कि मैं पैदल यात्रा करते हुए एक प्राचीन परंपरा का अनुसरण कर रहा हूँ। पैदल यात्रा का यह शान्तिपूर्ण वातावरण मोटरों और रेलगाड़ियों के उस श्रम-कोलाहलपूर्ण वातावरण से बिल्कुल ही भिन्न है। पर यह यात्रा आप लोगों के समग्र सहयोग से ही सफल होगी। आपको यह चलन मिटा देना चाहिए, कि ब्राह्मणों का एक मोहल्ला हो, हरिजनों का दूसरा मोहल्ला हो, और अन्य लोगों का तीसरा मोहल्ला हो। अलग-अलग बस्तियों का बसाना ठीक नहीं। हरिजनों को भी आप वही सब अधिकार दें, जिन्हें कि दूसरे लोग भोग रहे हैं।"

इसके बाद गांधीजीने गाँववालों को अपने फुर्सत के समय में चरखा चलाने और कपड़ा बुनने की सलाह दी और बताया, कि इस तरह हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने से काम नहीं चलेगा।

पुरी के हरिजन

पुरी और हरिकृष्णपुर के बीच में, ठीक म्युनिसिपैलिटी की सड़ासों के पास, हरिजनों के कुछ झोपड़े हैं। ये बिल्कुल पास-पास एक दूसरे से सटे सार-के-सारे बेतरतीब झोंपड़े बने हैं। गलियाँ इतनी तंग और घुमावदार हैं, कि बेखटके उनमें कोई चल ही नहीं सकता। दीवारें इतनी नीची हैं, कि लोग घरों के अन्दर रेंग कर ही जाते होंगे। सफ़ाई के बारे में क्या कहूँ! सड़ासों से ऐसी दुर्गन्ध आती रहती है, कि वहाँ खड़ा नहीं रहा जाता। सारा-का सारा मोहल्ला ऐसा गंदा है, कि उसमें जानवर भी नहीं रखे जा सकते। पुरी की म्युनिसिपैलिटी के लिए क्या यह एक कलंक की बात नहीं है?

चन्दनपुर

शाम को हरिकृष्णपुर से गांधीजी चन्दनपुर पहुँचे। वहाँ उन्होंने सार्वजनिक सभा के बीच में सन्ध्या की प्रार्थना की और उसके बाद अस्पृश्यता निवारण पर भाषण किया।

गोपबन्धु-सेवासदन

१० मई को सबेरे गांधीजी साक्षीगोपाल आये। यह स्थान आज भी स्व० पंडित गोपबन्धुदास के विविध लोकहितकारी कार्यों की याद दिला रहा है। सन १९२५ में बाढ़-पीड़ितों के कष्टनिवारणार्थ यहीं उन्होंने 'दरिद्रनारायण-सेवासदन' की स्थापना की थी। यह एक खादी-केन्द्र है। सेवासदनने पिछले वर्ष में एक लाख रुपये से ऊपर की खादी बेची है। हरिजन बालकों के लिए यहाँ एक छात्रालय भी है।

साक्षीगोपाल की सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए गांधीजीने दुःख के साथ कहा, "स्व० पंडित गोपबंधुदास का चलाया हुआ वह हाथ-कताई का उद्योग आज वैसा अच्छा देखने में नहीं आ रहा है, यह सब क्या हुआ। उत्कल प्रांत भारत के प्रांतों में शायद सब से दरिद्र प्रांत है, पर इसकी दरिद्रता का मुख्य कारण लोगों की यह काहिली ही है। अगर उड़िया लोगों को जीवित रहना है, तो उन्हें यह काहिली छोड़नी ही होगी।"

सच्चा ब्राह्मण

शाम को गांधीजी वीरपुरुषोत्तमपुर पहुँचे। यह भी ब्राह्मणों को दान में मिला हुआ गाँव है। ब्राह्मणोंने गांधीजी को एक शिवमन्दिर के समीप बड़े आदरभाव से ठहराया। यहां के ब्राह्मण अस्पृश्यता दूर करने के पक्ष में तो हैं, पर कहा जाता है, कि उनमें अभी इतना साहस नहीं, कि अपने विश्वास के अनुसार चल सकें। यहाँ की सभा में भाषण देते हुए गांधीजीने कहा—

"भाइयो और बहनो! आप लोगोंने इतनी शांति रखी है, इसलिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आप लोगोंने १०) की थैली हरिजन-सेवा के लिए दी है और ताड़पत्र पर सुन्दर मधुर शब्दों में अभिनन्दन-पत्र दिया है, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। मैंने सुना है, कि इस देहात में विशेष रूप से ब्राह्मण रहते हैं। मुझे यह देखकर हर्ष होता है, कि वे सब के सब हरिजन-सेवा के लिए—अस्पृश्यता-निवारण के लिए तैयार हैं; यह आनन्द की बात है, पर आश्चर्य की बात नहीं। हमें शास्त्र तो यह बताते हैं कि ब्राह्मण अपनी तपस्या, ज्ञान तथा क्रिया से धर्म की रक्षा करते हैं। पर दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आज अधिकांश ब्राह्मण स्वार्थवश होकर जिस चाहे सो धन्धा पेट के लिए करते हैं। धर्म तो यह बताता है कि ब्राह्मण का धर्म ब्रह्मज्ञान का देना, लोगों को सदाचार की शिक्षा देकर नीतिमान बनाना है। ज्ञान देने का काम ब्राह्मण किया करते हैं।

हमारे पूर्वजोंने हमें यह सिखाया है, कि ब्राह्मण मानो नम्रता की प्रतिमूर्ति हैं। ब्राह्मण अपने ज्ञान का, क्रिया का अभिमान करे तो वह ब्राह्मण नहीं रह जाता। ब्राह्मण समभाव सिखाता है। शुद्ध ब्राह्मण तो हमसे यह कहेगा, कि ब्राह्मण और भंगी दोनों समान हैं। इसलिए मैंने जब सुना कि यहां के ब्राह्मण हरिजन-सेवा कार्य अपनाये हुए हैं, तब मुझे हर्ष हुआ, साथ ही मुझे उनकी भीरुता का भी परिचय कराया गया है, इसलिए कुछ दुःख भी हुआ। यद्यपि वे यह मानते हैं कि उनको हमारे बराबर अधिकार हैं, उनके बच्चों को पाठशाला में भरती करने में हर्ज नहीं, वे कुएँ और तालाब पर पानी भर सकते हैं, तो भी वे हरिजन भाई भगवान का दर्शन नहीं कर सकते। ऐसा क्यों? यदि हम उनको हिन्दू मानते हैं तो वे मन्दिर में क्यों न आवें? जहांतक मुझे शास्त्र का ज्ञान है, उसमें मैंने कहीं भी साधार श्लोक नहीं पाया, जिससे यह भाव निकले, कि हरिजन मन्दिर में प्रवेश न करें। शास्त्रों में ऐसे वचन मिलते हैं, कि जो मनुष्य गंदा है, जिस मनुष्यने स्नान नहीं किया है, जो मनुष्य शराब पीता है, जो गोमांस खाता है, जिसको छूत-धर्म प्राप्त हुआ है, जो स्मशान से होकर आया है, जो दुराचारी है, वह मन्दिर में नहीं जा सकता। यह अस्पृश्यता तो कर्मपरत्व हुई। जब मनुष्यने अपनी शुद्धि करली है तब उसे मन्दिर में जाने का वही अधिकार है, जितना और किसी को हो सकता है। पर ऐसा कहा जाय कि पापी को मन्दिर में जाने का अधिकार नहीं है, तो यह बात नहीं जँचती। गीता माता तो हमको यही सिखाती है, कि पापी लोग पाप धोने के लिए मन्दिर में जायँ। जिसको ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया है, उसके लिए मन्दिर में जाने की आवश्यकता ही क्या है? मन्दिर तो श्रद्धालु और पापियों के लिए हैं। इस सभा में कोई ऐसा मनुष्य नहीं होगा, जो अपने को पाप-रहित बता सके। हमको बचपन में एक श्लोक पढ़ाया जाता है, जिसका पाठ ब्रह्मज्ञानी भी करते हैं। वह है "पापोऽहं पापकर्माहं" आदि। जो मनुष्य पापरहित हो गया, फिर वह तो परमेश्वर हो गया। क्योंकि पाप-शून्य केवल ईश्वर ही है, ऐसा सब धर्म-शास्त्र कहते हैं। इसलिए हरिजन भाइयों के लिए मंदिर-प्रवेश निषिद्ध है, यह बात शास्त्र-सिद्ध नहीं। ब्राह्मण भीरु बने तो वीर कौन बने? जिसमें भीरुता है वह ब्रह्म कैसे देख सकता? इसलिए मेरी ब्राह्मणों से प्रार्थना है कि जहां वे अस्पृश्यता-निवारण के विषय में सहमत हैं वहाँ उसके साथ ही उनको हरिजन भाइयों के मन्दिर-प्रवेश के न्यायपरस्पर अधिकार को भी स्वीकार कर लेना चाहिए। मुझे उम्मीद है, कि ब्राह्मण एकत्रित होकर ऐसा निश्चय करेंगे। यदि हिन्दूधर्म की रक्षा करना है, तो हरिजन भाइयों के लिए मन्दिरों में जाने की सुविधा कर देनी चाहिए। यदि कोई ब्राह्मण मेरी इस बात में कोई भूल देखता हो, तो वह मेरे विश्राम-स्थान पर आकर मुझसे कहे। नहीं तो मेरी प्रार्थना स्वीकार कर हरिजन भाइयों का वे उनके आवश्यक अधिकार अवश्य दिलावें।"

वालजी गोविंदजी देसाई

हबशियों का कुलगुरु
बुकर टी० वाशिंग्टन
(१)
शिक्षा के लिए परिश्रम

महान् हबशी बुकर टी० वाशिंग्टन के नाम से 'हरिजन-सेवक' के पाठक अवश्य परिचित होंगे। अमेरिका में वह गुलाम था। दासता भोगकर ही वह संसार का एक श्रेष्ठ शिक्षण-शास्त्री बना। स्वयं किस तरह उसने शिक्षा प्राप्त की, टस्केजी के महान् विद्यालय का किस प्रकार निर्माण किया और सच्ची शिक्षा के संबंध में उसके क्या विचार थे, यह सब बातें 'हरिजन-सेवक' के पाठकों को अवश्य ही रुचिकर होंगी। अतः स्वर्गीय डाक्टर वाशिंग्टन के महान् कार्य के संबंध में एक लेखमाला लिखने का मेरा विचार है। डाक्टर वाशिंग्टनने स्वयं

'एक गुलाम का उत्कर्ष' (Up from slavery) नाम से अपनी आत्म-कथा लिखी है। इसी ग्रन्थ के आधार पर मैं यह लेखमाला लिख रहा हूँ। मुझे आशा है, कि इसे पढ़कर पाठकों के मनमें मूल ग्रन्थ के पढ़ने की अभिरुचि जाग्रत होगी। उक्त ग्रन्थ की भाषा शैली यद्यपि बड़ी ही सरल है, तथापि वह अत्यन्त रसमय है।

किंतु गुलाम हबशियों के कुलगुरु वाशिंगटनने दूसरों को किस प्रकार शिक्षा दी थी, इसके पहले हमें थोड़ा यह जान लेना चाहिए कि उसने स्वयं कैसे-कैसे कष्ट झेलकर विद्या प्राप्त की थी।

गुलाम के नसीब में स्कूली शिक्षा कहाँ? स्कूल के फाटक तक अपने मालिक की लड़की की किताबें लेकर जाता और उस आनंदलोक में विचरते हुए भाग्यवान् बालकों को दूर से ही ईर्ष्या की दृष्टि से देखा करता। पाठशाला के पुण्यक्षेत्र में प्रवेश करने का अधिकार गुलाम वाशिंगटन को कहाँ था?

दासत्व से छुटकारा पाने के बाद हबशियोंने अपने लिए स्वयं एक पाठशाला स्थापित की थी। उस में वाशिंगटन दाखिल हो सकता था, पर उसे सारे दिन नमक की भट्टी में काम करना पड़ता था। इसलिए दिन का काम पूरा करके रात को किसी अध्यापक के यहाँ पढ़ने का उसने प्रबंध किया। अपनी 'आत्म-कथा' में वह लिखता है, रात की वह पढ़ाई मुझे इतनी अच्छी लगी, कि दूसरे लड़के जितना दिन में पढ़ते, उससे कहीं अधिक मैं रात को पढ़ा करता। रात्रि-पाठशाला के अपने निजी अनुभव से रात्रि के पठन-पाठन पर मेरा विश्वास जम गया—और इसी से बाद को कई वर्ष हैम्पटन तथा टस्केजी की शिक्षा-संस्थाओं में रात्रि-पाठशाला के साथ मेरा संबंध रहा।'

इसके अनंतर कुछ ही महीने बाद वाशिंगटन एक दिवस-पाठशाला में पढ़ सका। पर वह पाठशाला नमक की भट्टी से कुछ दूर थी। नौ बजे तक भट्टी में काम करना पड़ता था, और पाठशाला भी नौ बजे खुलती थी। इस स्थिति में समय पर पाठशाला किस तरह पहुँचा जा सकता था? विद्याप्रिय वाशिंगटनने एक युक्ति की। घड़ी का कांटा आठ पर से घुमाकर नौ पर कर दिया! अब पाठशाला में जाने के लिए टोपी चाहिए। सो कपड़े के दो टुकड़ों को किसी तरह सीकर टोपी भी उसने तैयार करली। एक बात और थी। वह यह कि पाठशाला में तमाम लड़कों के दो-दो नाम थे। रजिस्टर में अपना नाम लिखाते समय बुकरने भी अपना दूसरा नाम 'वाशिंगटन' रख लिया।

मगर दिवस-पाठशाला में वाशिंगटन बहुत दिन नहीं पढ़ सका। उसका सारा दिन फिर मेहनत-मजदूरी में जाने लगा। इसलिए उसने फिर रात्रि-पाठशाला में नाम लिखा लिया। बचपन में जो शिक्षा उसे मिली, वह बहुत-कुछ रात्रि-पाठशाला में ही मिली। अध्यापकों का अभाव-सा था। इसलिए रात को पढ़ने के लिए उसे कई मील पैदल चलकर जाना पड़ता था।

नमक की भट्टी छोड़कर वाशिंगटन कोयले की खान में काम करने लगा। एक दिन वहाँ दो मजदूर यह बात कर रहे थे, कि हैम्पटन में हबशियों के लिए एक खासा अच्छा कृषि-विद्यालय है। वाशिंगटनने यह बात सुनी और तुरंत ही हैम्पटन में पढ़ने की उसे इच्छा हो आई।

हैम्पटन पास तो था नहीं—५०० मील दूर था। किंतु वाशिंगटन थोड़ा-सा पैसा लेकर हैम्पटन के लिए घर से निकल ही पड़ा। चलते-चलते शाम हो गई। जाड़े के दिन थे। पर एक हबशी को होटल में कौन टिकाये? गरीबने वह रात टहलते-टहलते ही काटी। रिचमंड में उसने लकड़ी के तख्ते के नीचे रात बिताई। गाँठ में एक पैसा नहीं और भूख बेतरह लगी थी। इसलिए बेचारा एक गाड़ी से लोहा उतारने-ढोने लगा, और इस तरह बड़ी बड़ी कठिनाई से उसे कलेवा करने लायक कुछ पैसे मिले। वाशिंगटन 'आत्म-कथा' में लिखता है, 'उस कलेवा में तो मुझे अपूर्व ही मिठास आई, वैसा मधुर स्वाद फिर किसी अन्य भोजन में नहीं मिला।'

निदान, वह अपनी आकांक्षाओं के स्थान हैम्पटन में पहुँच गया। पर उसके कष्टों का अंत तो अब भी नहीं हुआ। पहले तो मुख्याध्यापिकाने उसे विद्यालय में दाखिल ही नहीं किया। पर कुछ घंटे बाद उसने वाशिंगटन से कहा, 'पास के इस कमरे की सफाई करनी है। झाड़ू ले और उसे झाड़-बुहार दे।'

मुख्याध्यापिका की यह आज्ञा सुनकर वाशिंगटन आनंद-पुलकित हो गया। एक जगह, जहाँ वह नौकर था, उसने झाड़ने-बुहारने के काम में बड़ी अच्छी दक्षता प्राप्त कर ली थी। कमरे में पहले उसने तीन बार झाड़ू दी। फिर झाड़न से चार-चार बार एक-एक चीज़ को अच्छी तरह साफ किया। और हरएक सामान को हटाकर कोना-कोना खूब साफ किया। हर मेज, हर कुर्सी और हर बेंच को उसने तीन-तीन चार-चार बार झाड़न से पोंछा। वह जानता था, कि कमरे की सफ़ाई की जो छाप मुख्याध्यापिका पर पड़ेगी, उसीपर उसका सारा भविष्य निर्भर करेगा।

अच्छी तरह पूरी सफाई कर चुकने के बाद उसने मुख्याध्यापिका से आकर कहा—'आप के आज्ञानुसार उस कमरे की सफाई मैंने कर दी है। चलकर ज़रा देख तो लें।' अध्यापिका के रूमाल से ज़रा भी कहीं कूड़ा-कचरा नहीं आया। धूल या गर्द का कहीं नाम भी नहीं था। कमरा देखकर उसने कहा, 'मुझे मालूम होता है, कि इस संस्था में तुम चल सकोगे।' वाशिंगटनने लिखा है, 'इसके बाद फिर मैंने अनेक परीक्षाएँ पास कीं, पर मेरी उन सारी परीक्षाओं में यह कमरे की सफाई की परीक्षा ही सर्वश्रेष्ठ थी।'

मुख्याध्यापिकाने वाशिंगटन को पाठशाला-संबंधी कुछ काम भी दे दिया, जिसके ज़रिये वह कम-से-कम अपना भोजन-खर्च चला सके। कई कमरों की देखभाल उसके सिपुर्द की गई। आधी-आधी रात तक उसे बड़ी मेहनत से काम करना पड़ता था। फिर सबेरे चार बजे उठकर चूल्हा जलाना पड़ता और सबक भी याद करना पड़ता।

हैम्पटन-विद्यालय में जनरल आर्मस्ट्रांग नाम का एक अधिकारी था। वाशिंगटन पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा। वह लिखता है, कि जनरल आर्मस्ट्रांग-जैसे पुरुष का परिचय उत्तम-से-उत्तम विद्या-प्राप्ति के बराबर था। विद्यार्थी बहुत आते थे और जगह थोड़ी थी। इसलिए जनरल आर्मस्ट्रांग के कहने से वाशिंगटन और अन्य विद्यार्थी कड़ाके की सरदी में भी तंबुओं में ही रहते थे।

वालजी गोविंदजी देसाई

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २५ मई, १९३४

साथी कार्यकर्त्ताओं से निवेदन

जिस दिन मैं यह लेख लिख रहा हूँ, वह मेरी पैदल यात्रा का छठा दिन है। रेल और मोटर से अब तक मैं ७५० मील की यात्रा कर लेता और सरसरी तौर से कम-से-कम १५०००० आदमियों से मिला होता। पैदल ४० मील से अधिक नहीं चला, क्योंकि यह छठा दिन तो मेरा मौन म निकल गया, और क़रीब २०००० नर-नारियों के संपर्क में आसका हू।

मेरे अन्तर का भाव यह है, कि कृत्रिम यात्रा तथा स्वाभाविक यात्रा में काम उलटे परिमाण में होता है। आशय यह है, कि यात्रा की कृत्रिम गति का वेग तो अधिक, पर काम कम होता है, किन्तु स्वाभाविक यात्रा की गति का वेग जहाँ बहुत कम होता है, वहाँ काम वास्तव में अधिक होता है। इन पिछले पाँच दिनों में ग्रामवासियों के साथ मेरा खूब समागम रहा है, पर इन अनुभवों की चर्चा तो फिर कभी किसी अन्य प्रसंग पर करूंगा। इस लेख के लिखने का हेतु इतना ही है, कि मैं समस्त भारतवर्ष के सहयोग की याचना करूं। उत्कल के नेताओं के लिए यह कोई मामुली बात नहीं थी, जो उन्होंने परिश्रम और सावधानी के साथ निश्चित किये हुए अपने प्रान्त के कार्यक्रम को एकदम उड़ा दिया। भारत के इस अत्यन्त कंगाल प्रान्त से भी उन लोगों को ३००००) एकत्रित कर लेने की आशा थी। मेरी अपनी धारणा तो यह थी, कि उत्कल में ५००००) इकट्ठा हो सकता था। पर जब उन्हें सत्य का साक्षात्कार हुआ, तो उन्होंने अर्थलाभ की आशा छोड़ देने और अपने सहयोगियों के रोष का जोखम अपने ऊपर ले लेने में तनिक भी आनाकानी नहीं की। और जब डाक्टर विधानचन्द्र राय को मैंने अपना इरादा सुनाया, तो उन्हें भी अपने बंगाल प्रान्त के कार्यक्रम का त्याग करते हुए कोई कठिनाई मालूम नहीं पड़ी। मैं तो नहीं समझता, कि फिर अन्य प्रान्तों के लिए यह बात कुछ मुश्किल होगी। मैं यह विश्वास करने का नहीं, कि उनकी समझ मे यह बात न आ सकेगी, कि रेल और मोटर की यात्रा की अपेक्षा पैदल यात्रा कहीं अधिक सुन्दर है।

किन्तु कोरे निष्क्रिय सहयोग की अपेक्षा में माँगता अधिक हूँ और आशा भी अधिक की करता हूँ। मैं देशभर के सक्रिय सहयोग की याचना करता हूं। मैं आशा करता हूं, कि देश के तमाम कार्यकर्त्ता एकसाथ ही अपने-अपने प्रान्त में इसी प्रकार के पैदल प्रवास का आयोजन करें, जिसमें वे लोगों को हरिजन-सेवा का संदेश सुनावें—और अगर उनके यहाँ मैं जाता, तो जैसे वे मुझे रुपये-पैसे की थैलियाँ हरिजन-कार्य के लिए भेंट करते, उसी प्रकार मेरे पास भेज देने के लिए वे जगह-जगह जाकर रुपये व पैसे-पाई इकट्ठा करें। कार्यकर्त्ताओं और हरिजनों के बीच में खूब घनिष्ठ संपर्क स्थापित होना चाहिए और सनातनियों से भी मित्रतापूर्वक जाकर मिलना-जुलना चाहिए। जिस गाँव में कार्यकर्त्ता जावे, वहाँ के हरिजनों की कठिनाइयों और कष्टों का उन्हें पूरा पता लगाना चाहिए। वहाँ अधिक मन्दिर खुलने चाहिए और अधिक-से-अधिक हरिजन बालकों को सार्वजनिक पाठशालाओं मे भरती कराना चाहिए। कार्यकर्त्ता तथा ग्रामवासी यह समझें, कि मैं उड़ीसा के गाँवों में जो यात्रा करता हूँ, वह मानों उनके ही गाँवों में दौरा कर रहा हूं। यदि मेरा कार्य आध्यात्मिक है, तो उसका यही परिणाम होना चाहिए और हरिजन-कार्य के लिए लोगों के दिल में और भी अधिक उत्साह होना चाहिए। इस यात्रा के परिणामस्वरूप नये-नये कार्यकर्त्ता मिलने चाहिए और जो कार्यकर्त्ता मौजूद हैं उन्हें और भी अधिक शुद्धता से इस कार्य के प्रीत्यर्थ अपने को अर्पित कर देना चाहिए।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

महान् धर्मयात्रा

रेल और मोटर गाड़ी की सवारी छोड़कर पैदल ही यात्रा करने का उस दिन गांधीजीने एकदम निश्चय कर लिया। और इस प्रकार उनके बाह्य जीवन का उनके आदर्शों के साथ सामंजस्य हो गया। हरिजन-प्रवास अब अधिक वास्तविक, अधिक सत्यमय हो गया है, क्योंकि धार्मिक भावना के साथ अब उसका और भी अधिक सम्पर्क हो गया है। अब न तो शहरों की दिनरात की वह दौड़ धूप है, न वह खर्चा होता है और न स्वागत की अनावश्यक तैयारियाँ ही।

नहीं, अब यह सब नहीं है—अब तो हम लोग शान्तिपूर्वक एक गाँवड़े से दूसरे गाँवड़े में पैदल चलकर जाते हैं। अब बहुत ही कम भीड़भाड़ होती है, और गाँव के ग़रीब आदमी अक्सर हमारी यात्रा में सीलों हमारा साथ देते हैं। जब हम लोग गाँव की गलियों में गुज़रते हैं, तो वहाँ के निवासी, उच्चवर्ण ब्राह्मण से लेकर ग़रीब-से-ग़रीब हरिजनतक, अपने-अपने दरवाज़े पर खड़े गांधीजी को बड़ी श्रद्धा से प्रणाम करते हैं। उन्हें ऐसा लगता है, कि यह यात्रा पश्चात्तापियों की तीर्थयात्रा है। सभाएँ अब नये ही वातावरण में होती हैं। यद्यपि पास-पड़ोस के गाँवों से हज़ारों लोग सभाओं में उपस्थित होते हैं, तो भी पूर्ण शान्ति रहती है और भाषण का प्रत्येक शब्द सुनाई देता है।

प्रात: प्रार्थना और थोड़ा जलपान करके, हम लोग नित्य ५॥ बजे सबेरे रवाना होते हैं, और तेज़ धूप निकलने के पहले ही ७॥ बजेतक जहाँ दिन को डेरा डालना होता है वहाँ पहुँच जाते हैं। कभी-कभी हम अपना डेरा किसी गाँववाले के घर और आँगन में डालते हैं, पर अक्सर तो आम या ताड़ वृक्षों की सघन कुंजों में ही हमारा पड़ाव पड़ता है। डेरे का प्रबन्ध करने के लिए अपने एक-दो साथियों को आगे रवाना कर दिया जाता है। हमारे पहुँचने के पहले ही वे वहाँ सब इन्तिज़ाम

कर लेते हैं। खूब छायादार सघन वृक्षावली का स्थान डेरे के लिए चुना जाता है। गर्द-गुबार और लू से बचने के लिए वहाँ कुछ बाँस की टट्टियों या चटाइयों के पर्दे डाल लेते हैं। वहीं रसोई बनाने के लिए भट्टियाँ खोद लेते हैं, और कुछ दूर कूड़ा-कचरा डालने को एक बड़ा-सा गड्ढा। छोटी-छोटी खाइयाँ पाखाने के लिए खोद ली जाती हैं और आड़ के लिए चारों तरफ़ चटाइयाँ लगा दी जाती हैं। कहीं-कहीं गांधीजी और अन्य साथियों के लिए एक-दो तंबू खड़े कर देते हैं और कभी-कभी पत्तियों और चटाइयों का छायादार मँडवा बना लेते हैं। स्वच्छता की सख़्ती से पाबन्दी की जाती है। रसोई का तमाम जूठन व बचन-खुचन और दूसरा कूड़ा-कचरा सब गड्ढे में डाल दिया जाता है और फिर बाद को उस पर मिट्टी पूर दी जाती है। इसी तरह पाखानों में भी स्वच्छता व आरोग्यता के नियमों का पूरा पालन किया जाता है। शाम को चलने के पहले भट्टियाँ, गड्ढों व खाइयों को मिट्टी से भर देते हैं, ताकि बाद को कहीं गन्दगी दिखाई न दे। जिस किसी गाँव में हम जाते हैं, लोगों को नित्य इस तरह सफ़ाई व आरोग्यता का सरल पाठ मिल जाता है।

पड़ाव पर पहुँचते ही सबसे पहले गांधीजी तो उपस्थित जनता के आगे भाषण करते हैं, और इधर हम लोग जल्दी से नहा-धोकर व कपड़े साफ करके रसोई बनाने लगते हैं। सभा समाप्त होने के बाद गांधीजी चिट्ठी-पत्री लिखने बैठ जाते हैं। सारे दिन हमलोग अपने डेरे में ही रहते हैं, और शामको फिर ठीक ५॥ बजे, भोजन करने के पश्चात्, रातके बसेरे के लिए दूसरी जगह चल देते हैं।

दिनभर किसानों की भीड़ लगी रहती है। ग्रामीण लोग बड़े गौर से हमारा सब काम देखते हैं, और गांधीजी क्या कर रहे हैं इसपर तो उनका ख़ास ध्यान रहता है। जब भीड़ बहुत अधिक होजाती है, तब गांधीजी बाहर आते हैं, लोगों से अपने पीछे-पीछे आने को कहते हैं और वहाँ से कुछ फ़ासले पर भाषण करते हैं। दोपहर बाद रोज़ ही ऐसा एक या दो बार हुआ करता है।

शामको तो गाँवों के सैकड़ों लोग हमारे साथ-साथ पैदल चलते हैं, और सड़क के दोनों तरफ दर्शनातुर स्त्री-पुरुषों के झुंड-के-झुंड खड़े मिलते हैं। इनमें से कुछ लोग हमारे साथ हो जाते हैं, और जब हम रैन-बसेरे की जगह पर पहुँचते हैं, तो वहाँ एक भारी जमात को गांधी बाबा के साथ देखते हैं।

सवेरे की तरह शाम को भी वहाँ सबसे पहला काम सभा का आयोजन होता है। संध्या की सभा में पहले तो आश्रम की प्रार्थना पूर्ण शांति से की जाती है, फिर गांधीजी का भाषण होता है। सभा समाप्त होने के बाद हम सब लोग आकाश के नीचे धरतीमाता की गोद में सो जाते हैं, और सवेरे प्रात: ३ और ४ बजे के बीच में उठ बैठते हैं।

अस्पृश्यता का यह पाप-कलंक यदि इस धर्मयात्रा के आध्यात्मिक वातावरण में भी दूर न हुआ, तो फिर वह आगे आनेवाली कई सदियोंतक किसी अन्य प्रयत्न से दूर होने का नहीं।

'हरिजन' से] मीरा

हिन्दूधर्म पर प्रहार

दक्षिण भारत रूढ़िवादियों का गढ़ समझा जाता है। वहाँ के बड़े-बड़े मन्दिरों की भूमि हरिजनों के दूषित स्पर्श से ही नहीं, उनके सामीप्य से भी अलिप्त रखी गई है। किन्तु रूढ़िवादियों के दुर्भेद्य धाम उस दक्षिण भारत में गांधीजी के हरिजन-प्रवास के समय किसी भी प्रकार की हिंसा का प्रयोग नहीं किया गया। एक-दो जगह काली झंडियाँ फहराई गईं सही, पर उनके फहरानेवाले 'स्वाभिमानी' दल के लोग थे। वे लोग सनातनी नहीं, किन्तु गांधीविरोधी थे। उत्तर भारत में जहाँ हिन्दूधर्म दक्षिण भारत की तरह रूढ़िग्रस्त या आग्रही नहीं है और जहाँ अधिकांश हिन्दू सुधारों की आवश्यकता महसूस करते हैं, वहाँ गांधीजी के विरुद्ध इस हरिजन-प्रवास में एक के बाद एक अशिष्ट और हिंसापूर्ण प्रदर्शन किया जा रहा है और अनेक विघ्न बाधाएँ डाली जा रही हैं। यह क्यों ? इसका कारण मैं यह मानता हूँ, कि जहाँ आत्मविश्वास होता है वहाँ हिंसा नहीं होती। जहाँ मन में भय और पराजय का बीज छिपा रहता है, जहाँ मनुष्य को अपनी शक्ति पर भरोसा नहीं होता, वहीं वह पशुता और हिंसा का प्रदर्शन करता है। धमकी और गुंडपन सबलता के नहीं, किन्तु निर्बलता और भय के लक्षण हैं। दक्षिण के रूढ़िवादियों में आत्म-सन्तोष और आत्म-विश्वास इतना अधिक है, कि वे सुधारकों के विरोध में सिर्फ़ हँस देते हैं। माना कि उन लोगों में प्राचीन हिन्दूधर्म की विशालता और उदारता आज नहीं है, पर उस धर्म का गौरव और गांभीर्य तो उनमें अब भी है। उत्तर भारत में, जहाँ हिन्दूधर्म अनेक प्रबल प्रहारों के पड़ने से खंडित-सा हो गया है और जहाँ उसके अनुयायी सदा ही चिंतातुर स्थिति भोग रहे हैं, वहाँ उसका प्रभाव हिन्दू-संस्कृति की शान्तिप्रियता तथा सहिष्णुता पर भी पड़ा है। इस घबराहट की छूत वहाँ के सनातनी वर्ग को लग गई है। इसलिए जिस आंदोलन से उन्हें अपने गढ़ के धराशायी हो जाने का भय है उसके विरुद्ध वे हिंसा का प्रदर्शन कर रहे हैं।

हम लोग अपने कितने ही भाई-बहिनों के प्रति जिस प्रकार का बुरा बर्ताव रखते और उनके साथ जैसी सामाजिक क्रूरता करते हैं, वह हिन्दूधर्म की कीर्ति को कलंकित करने के लिए काफ़ी है। हमें जो संस्कृति विरासत में मिली है और जिसकी बदौलत हिन्दूधर्म को विश्व के धर्मों में ठीक ही प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है, उसे दुर्भाग्य से इस अस्पृश्यता के कारण लोगों के मज़ाक का विषय बनना पड़ रहा है। मालूम होता है, कि जमींदोह से सनातनियोंने हिन्दूधर्म के सब से मूल्यवान् आभूषण का हरण करके उसे निस्तेज कर देने का निश्चय कर लिया था।

हिंदूधर्म में यदि कहीं इस प्रकार की पशुता आ गई, तो फिर हमारा दुर्भाग्य पराकाष्ठा को पहुँच जायगा। हिंदूधर्म के अंतर्गत सदा से ही अनेक संप्रदाय और अनेक परस्परविरोधी धर्म और विविध आचार शांतिपूर्वक विकसित होते आये हैं, एक का दूसरे के साथ विरोध या संघर्ष नहीं हुआ। प्राचीनकाल में चाहे जैसे साहसिक सुधारों का उपदेश या प्रचार हो सकता था, हिंदूधर्म ने अहिंसा सिद्धान्त को खोजकर उसे अपना मज़मून-से-

अद्भुत गढ़ और रक्षा का साधन माना था। आज तो ऐसा मालूम होता है, कि मानो हिन्दूधर्म अपने उस आत्म-विश्वास को गँवाता जा रहा है या किसी प्रकार के भय के वशीभूत हो रहा है और उसका यह भय पशुता और गुंडपन के रूप में प्रगट हो रहा है। यक्सर और जसीडीह के सनातनियों के बर्ताव के विरुद्ध समस्त भारत के सनातनियों तथा सुधारकोंने घृणा प्रगट की है। इस व्यवहार से सिर्फ गांधीजी के मोटर के पिछले शीशे पर ही प्रहार नहीं हुआ, बल्कि हिन्दूधर्म पर प्रहार हुआ है।

किन्तु हमें आशा है, कि इस प्रकार की यह घटना सर्जन की चीरफाड़ की मेज़ पर पड़े हुए रोगी की फड़फड़ाहट-जैसी ही है। क्योंकि हिन्दूधर्म जानता है, कि वह रोगग्रस्त पड़ा है। वह यह जानता है कि उसे सर्जन के नश्तर की जरूरत है, तो भी वह ज़रा हाथ-पैर पटकता है। जिसमें चैतन्यता होगी, वह नश्तर लगाते समय बिना फड़फड़ाये तो रह ही नहीं सकता।

राजगोपालाचार्य

सनातनी संस्कृति का अपमान

[पाठकोंने पढ़ा होगा, कि गत १२ मई को वृन्दावन में हरिजन-सेवक-संघ की ओर से की गई सार्वजनिक सभा में हरिजन-आंदोलन के विषय पर श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य को कुछ रूढ़िवादियोंने शोरगुल मचाकर भाषण नहीं करने दिया था, और इस कारण अंत में सभा को विसर्जित कर देना पड़ा था। सनातनधर्म के नाम पर उपद्रव मचानेवाले रूढ़िवादियों के प्रति श्री राजगोपालाचार्यने निम्न आशय का वक्तव्य प्रकाशनार्थ भेजा है—स०]

"वृन्दावन में १२ मई की शाम को हरिजन-सेवक-संघ की ओर से जो सार्वजनिक सभा करने का आयोजन किया गया था, उसमें आपलोगों के व्यवहार को देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ।

मुझे इस बात का खेद नहीं है, कि मैं सभा में भाषण नहीं कर सका, क्योंकि मेरा विश्वास है, कि इससे हानि के बदले मुझे तो लाभ ही अधिक हुआ है। भले ही आपने मेरा एक शब्द भी बोलना असंभव कर दिया हो, पर मेरा मूल उद्देश्य तो पूरा हो ही गया।

आपने जो बुद्धिमत्ताहीन कार्य किया, मैं नहीं समझता, कि उससे सर्वसाधारण की दृष्टि में आप को कोई इज़्ज़त बढ़ी है। दुःख और आश्चर्य तो मुझे इस बात का है, कि जिन मनुष्यों का भगवान् के पवित्र मंदिरों से संबंध है और जो धार्मिक संस्थाओं की सेवा करने का दावा करते हैं, उन्होंने कैसे इस प्रकार का व्यवहार करना उचित समझा! यह उन्हें शोभा नहीं देता। इससे भी अधिक वेदना मुझे यह देखकर हुई, कि जो विद्यार्थी संस्कृत-पाठशाला में संस्कृति सीखने के लिए आते हैं उन्होंने शारीरिक उपद्रव या दंगे-फसाद की शिक्षा पाई है! यह तो उस साहित्य और संस्कृति के सिद्धांतों के बिल्कुल विपरीत है, जिसे उन्होंने अपने अध्ययन के लिए चुना है। ऐसी करतूतों से अस्पृश्यता-निवारण की प्रवृत्ति कदापि नहीं रोकी जा सकती।

मथुरा में मैंने जो कुछ कहा था, उसका आशय आप समझ गये होंगे। मैं इस बात पर ज़ोर नहीं देता, कि आप मेरा विरोध ही न करें। आप को इस प्रकार के भद्दे तरीके से लगातार सभा में शोरगुल नहीं मचाना चाहिए था। मैं आप के विरोध का स्वागत करता, यदि आप शुरू में सम्मानपूर्वक विरोध-प्रदर्शन करके खामोश हो जाते। दलील की बातों पर आप चाहें तो कान न दें। यह आप को अधिकार है। मगर दुःख तो मुझे इस बात का है, कि जो लोग मेरी दलीलें सुनना चाहते थे उनके लिए उन दलीलों का सुनना आपने अपनी शारीरिक शक्ति को काम में लाकर असंभव कर दिया। तर्क के द्वारा आप चाहें तो सुधारकों का विरोध कर सकते हैं। जनता को आप विश्वास दिला सकते हैं, कि आप ठीक रास्ते पर हैं और सुधारक गलत रास्ते पर। आप चाहें तो सुधारकों की बातें सुनने से भी इन्कार कर सकते हैं, पर उस हालत में चाहिए यह, कि आप सभाओं से उठकर शांतिपूर्वक चले जायँ। पर जो लोग सुनना चाहते हैं उनके सुनने में इस प्रकार बाधा डालने का आप को कोई अधिकार नहीं है।

मैं आशा करता हूँ, कि आप में से कम-से-कम कुछ लोग तो अब इस बात को महसूस करेंगे, कि आप का ऐसा करना उचित नहीं था। साथ ही वे आप को इससे अच्छा और अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण रुख अख्तियार करने के लिए प्रेरित करेंगे।"

"गीता-प्रवेशिका"

[परमंधामाश्रम, बरहज, के हरिजन-सेवा-प्रेमी श्री बाबा राघवदासजीने 'गीता-प्रवेशिका'* की एक प्रति हमारे पास भेजी है। साथ ही लिखा है, कि ४३ श्लोक की यह पुस्तिका हरिजन-सेवियों के लाभार्थ 'हरिजन-सेवक' में क्यों न प्रकाशित कर दी जाय। यह गीता के श्लोकों का गांधीजी का किया हुआ संग्रह है। यरोडा-मन्दिर में अपने तृतीय पुत्र रामदासजी के लिए यह संग्रह गांधीजीने किया था। भूमिका में गांधीजी लिखते हैं :—

"बाबा राघवदासने उसे काका साहेब के हाथ में देखा, पढ़ा और हरिजन-सेवकों के लिए यह संग्रह उपयोगी होगा ऐसा उनको लगा और इस दृष्टि से उसे छपवाने की सम्मति माँगी। मैं कोई पंडित नहीं हूं, इसलिए यह संग्रह छपवाने योग्य है या नहीं उस बारे में मैं निश्चय नहीं कर सकता था। आश्रमनिवासी श्री विनोबा, काका साहेब और बालकृष्ण यहीं थे। तीनों गीता के अभ्यासी और भक्त हैं। मैंने बाबाजी से कहा, यदि ये तीन आश्रमवासी पसंद करें तो उस संग्रह को छपवाने में मुझे कोई बाधा नहीं है। तीनोंने विचार करके और उपयोगिता बढ़ाने की दृष्टि से तीन श्लोक निकालने की और चार नये दाखिल करने की सलाह दी। इतनी सुधारणा के साथ यह संग्रह सेवक-सेविकाओं और अन्य गीताभक्तों के सामने रखा जाता है। आशा और आशय यह है, कि इस संग्रह को प्रवेशिका की दृष्टि से ही पढ़ा जाय और अच्छी तरह समझने के बाद पूर्ण गीता

*पुस्तक मिलने का पता—सीताराम सेकसरिया, शुद्ध खादी भंडार, १३२।१ हरिसन रोड, कलकत्ता; मूल्य एक पैसा।

का अभ्यास किया जाय। साथ इतना भी स्मरण में रखा जाय, कि प्रवेशिका अथवा पूर्ण गीता कंठ करने से ही अथवा उसका पूर्ण अर्थ समझने से ही कुछ आत्मलाभ हासिल नहीं होगा। गीता अनुकरण के लिए है। उसके पारिभाषिक शब्द अच्छी तरह समझने के बाद और उसका मध्यबिंदु अनासक्ति हृदयगत होने के बाद गीता समझने में कम कठिनाई आती है।"

प्रायश्चित्त-प्रिय प्रत्येक हरिजन-सेवक के लिए यह संग्रह अत्यन्त उपयोगी हुआ है। इसमें अधिकतर ऐसे ही श्लोक आये हैं, जिनमें भगवान् की सर्वव्यापकता और समदर्शिता का प्रतिपादन किया गया है। आत्मौपम्य के सहारे आत्मशोधन पर ज़ोर दिया गया है। अहंकार-शून्यता तथा अनासक्ति का आश्रय लेकर सतत लोक-सेवा के द्वारा ईश्वर-प्राप्ति का अक्रिमय मार्ग बताया गया है। सब हरिजन-सेवकों के लिए लोक-संग्रह-प्रधान यह गागर में सागर के समान गीता-संग्रह क्यों न उपयोगी होगा?

'सत्य ही ईश्वर है', 'अहिंसा ही धर्म' है यह जिसे अवगत हो गया, वह अस्पृश्यता-जैसी अधार्मिक धारणा को अपने हृदय में स्थान दे ही नहीं सकता। सर्वभूतों में अपनी ही आत्मा है और अपनी आत्मा में सर्वभूत हैं, यह समदर्शिता ही तो परम सत्य है। सर्वत्र समभाव रखनेवाला व्यक्ति उच्च-नीच भाव को कैसे प्रश्रय दे सकता है? ईश्वर में सब को और सब में ईश्वर को जो देखता है, उस परम आस्तिक, परम भागवत के हृदय में घृणित अस्पृश्यता एक क्षण भी नहीं टिक सकती। सर्वभूतस्थ भगवान् को जो अनन्य भाव से भजता है, और जो अपने ही समान सब को देखता है, वह नास्तिकतापूर्ण अस्पृश्यता में कैसे विश्वास कर सकता है? उपनिषद्-सर्वस्व गीताशास्त्र तो किसी भी रूप में अस्पृश्यतारूपी पाप का समर्थन नहीं कर सकता।

अपने पाप का भान होते ही मनुष्य स्वभावतः आत्म-शुद्धि की ओर दौड़ेगा। पर प्रश्न यह है कि आत्म-शुद्धि कैसे हो? गीता के अनुसार तो अनासक्त लोक-सेवा-कार्यों के द्वारा ही आत्म-शुद्धि हो सकती है। हरिजन-सेवा प्रवृत्ति इसी से एक शुद्ध धार्मिक प्रवृत्ति कही जाती है, कि वह हमें आत्मशोधन की ओर प्रवृत्त करती है। इस प्रवृत्ति में हरिजनों के उद्धार की भावना नहीं है, हरिजनों की शुद्धि की भावना नहीं है इसमें तो आत्मोद्धार अथवा आत्म-शुद्धि की ही भावना है। प्रायश्चित्त की भावना लेकर ही हम हरिजन-सेवा कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। और प्रायश्चित्त का अनुष्ठान करनेवाले की आत्मा में द्वेष-शून्यता, निरहंकारिता, समदर्शिता, सदाचारिता, तितिक्षा, श्रद्धा और भगवद्भक्ति का होना आवश्यक है। लोक-सेवा या आत्म-शुद्धि धार्मिक साधना नहीं तो फिर क्या है। सेवक या साधक अपने विरोधियों की निंदा नहीं करता, उनसे द्वेष नहीं रखता। वह किसी से झगड़ता नहीं, विवाद नहीं करता। वह तो विनम्रतापूर्वक केवल अपने सत्य का आग्रह रखता है। वह मनसा, वाचा, कर्मणा अहिंसक होता है। उसकी हृदयवाणी से निरंतर प्रेम की धारा फूटती रहती है। अपने विरोधियों को भी मोह लेने की उसकी सेवा-साधना में शक्ति होती है। वह आत्म-विज्ञापन को पसन्द नहीं करता। वह तो अपनी धुन में ही मस्त रहता है। जनता में वह जनार्दन को पूजता है, हरि के जनों में हरि की आराधना करता है। ऐसा होता है उस जन-सेवक का, उस आत्मशोधक का पुण्य जीवनमार्ग।

जान पड़ता है, इस लक्ष्य को सामने रखकर ही बापूने गीता का यह सार तत्व निचोड़ा है। प्रत्येक हरिजन-सेवक तथा दूसरे लोक-सेवक इस आत्म-शोधन की दृष्टि से ही 'गीता-प्रवेशिका' और तत्पश्चात् समग्र गीता का अभ्यास करेंगे, तभी गांधीजी को सन्तोष होगा। और वास्तविक सन्तोष तो उन्हें तब होगा, जब 'गीता अनुकरण के लिए है' उनके इस महावाक्य को सेवक अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करेंगे। —वियोगी हरि]

गीता-प्रवेशिका

१

श्रीभगवानुवाच

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

श्रीभगवान्ने कहा—

आत्मा से मनुष्य आत्मा का उद्धार करे, उसकी अधोगति न करे। आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। ६-५

२

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

उसी का आत्मा बन्धु है जिसने अपने बल से मनको जीता है; जिसने आत्मा को जीता नहीं, वह अपने ही साथ शत्रु का सा बर्ताव करता है। ६-६

३

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥

पूर्ण शान्ति से, निर्भय होकर, ब्रह्मचर्य में दृढ़ रहकर, मनको मारकर, मुझमें परायण हुआ योगी मेरा ध्यान धरता हुआ बैठे। ६-१४

टिप्पणी—ब्रह्मचारी व्रत का अर्थ केवल वीर्य-संग्रह ही नहीं है, साथ ही ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए आवश्यक अहिंसादि सभी व्रत हैं।

४

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

सर्वत्र समभाव रखनेवाला योगी अपने को सब भूतों में और सब भूतों को अपने में देखता है। ६-२९

५

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

जो मुझे सर्वत्र देखता है और सबको मुझ में देखता है, वह मेरी दृष्टि से ओझल नहीं होता और मैं उसकी दृष्टि से ओझल नहीं होता। ६-३०

६

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥

मुझमें लीन हुआ योगी भूतमात्रमें रहनेवाले मुझको भजता है, वह चाहे जिस तरह बर्तता हुआ भी मुझमें बर्तता है। ६-३१

लगी हुई है। यों न कोई ऊँच है, न कोई नीच। जिसने राम नाम का रस नहीं पिया, वही मध्यम है, वही नीच है। एक पद में कबीरने कहा है :—

> उत्पति बिंद कहां में आया;
> जोति धरी अरु लागी माया।
> नहि को ऊँच, नहीं को नीचा;
> जाका पिंड ताहि का सींचा।
> जो तूं बाह्मन बम्हनी-जाया;
> तौ आन बाट ह्वै काहे न आया?
> जो तूं तुरक तुरकनी-जाया;
> तौ भीतरि खतना क्यूं न कराया?
> कहै कबीर, मधिम नहिं कोई;
> सो मधिम जा मुख राम न होई॥

इसी प्रकार पाप-पूर्ण अस्पृश्यता-प्रथा को भी संत कबीरने आड़े हाथों लिया है। छुआछूत के खंडन का उनका यह पद बहुत प्रसिद्ध है :—

> काहे को कीजै पांडे, छूत-बिचारा,
> छूतहिं तें उपजा सब संसारा॥
> हमारे कैसे लोहू, तुम्हारे कैसे दूध?
> तुम्ह कैसे बाह्मन पांडे, हम कैसे शूद्र?
> छूत छूत करता तुम्हहीं जाये,
> तो गर्भवास काहे को आये?
> जनमत छोति मरत ही छोति,
> कहै कबीर, हरि की निर्मल जोति॥

स्पष्ट है, कि आस्तिकों या भगवद्भक्तों के मार्ग में अस्पृश्यता-जैसी पाप-प्रथा को स्थान मिल ही नहीं सकता।

वियोगी हरि

हरिजन-प्रवास में प्राप्त

[८ एप्रिल से १४ एप्रिल, १९३४ तक]

बिहार

भागलपुर ज़िला—सोनपुर से नौगछियातक विविध धन-संग्रह	२२१=)।
नवगछिया की जनता की थैली	४३)
नवगछिया स्टेशन पर-संग्रह	५=)
पूर्णिया ज़िला—दौमापुर स्टेशन पर धन-संग्रह	३))।
कटिहार " "	५४।-)॥
रौटा " "	३॥=)॥
पूर्णिया स्टेशन " "	७॥=)॥
कसाबा " "	३))॥
गढ़पाली के विद्यार्थियों द्वारा	१२॥)
" में फुटकर धन-संग्रह	१=)
फार्बसगंज और फूलका में धन-संग्रह	४७।-)
कसाबा स्टेशन पर	१५॥=)।
अरेरिया में	२२॥।=)
पूर्णियाँ—श्री हनुमानबक्स	२५॥)
पूर्णिया-म्युनिसिपैलिटी का मानपत्र नीलाम में श्रीमती वीर नारायणने खरीदा	१२५)
फुटकर धन-संग्रह	१२७॥=)॥
पूर्णिया ज़िला—टीकापट्टी आश्रम आदि में	१६७॥-)॥
कटिहार के नागरिकों की ओर से	२०)
कटिहार स्टेशन पर फुटकर संग्रह	५।=)८
सोनाइली " "	९॥=)
बरसाई " "	१३॥-)।
श्री बाबू मृत्युंजय प्रसाद	५०)

बंगाल

दीनाजपुर ज़िला—रायगंज स्टेशन पर धन-संग्रह	१३))।
बंगाल बाड़ी " "	८॥-)॥
दीनाजपुर " "	४४)
चिरीर बंदर " "	४।-)१०
पार्वतीपुर " "	५९॥=)॥।

आसाम

ग्वाल पाड़ा—जनता की थैली	१००१)
महिलाओं की सभा में फुटकर संग्रह	६॥=)
हस्ताक्षर-कराई	१०)
धूबड़ी—जनता की थैली	५०१)
रूपसी तथा धूबड़ी में फुटकर धन-संग्रह	१२३॥=)२
नीलाम से	३०)
गौरीपुर-निवासियों की थैली	६२)
बसबारी स्टेशन पर धन-संग्रह	३६॥=)॥
टिपकाई " "	५॥)।
सत्यग्राम " "	४८॥=)॥।
फकीर ग्राम " "	११॥=)।
कोकराझर " "	२४॥=)।
बसुगाँव " "	१९।)॥
बोंगाइ गाँव " "	१५॥=)॥
चपराकटा " "	१२)॥
कामरूप ज़िला—सोरभोग के निवासियों की थैली	४५)
सोरभोग स्टेशन पर फुटकर धन-संग्रह	४८॥=)
हावली—जनता की थैली	१८=)।
बारपेटा—बारपेटा रोड स्टेशन पर फुटकर धन-संग्रह	१०)॥
बारपेटा की जनता की थैली	५००)
सार्वजनिक सभा में विविध धन-संग्रह	१४०=)१०३
महिलाओं की थैली	१०१)
महिला-सभा में फुटकर संग्रह	३०=)
श्री इन्द्रसेन पाठक की थैली	२५०)
कैवर्त लोगों की थैली	५०)
श्री लावण्यवती देवी	१५)
बनिया लोगों की थैली	१०)
हीरा लोगों की थैली	१०)
महिला-सभा में विविध धन-संग्रह	५६=)॥।
सोरूपेटा स्टेशन पर विविध धन-संग्रह	७॥-)॥।
बारपेटा की सभा में नीलाम से	२५)
रंगिया स्टेशन पर फुटकर संग्रह	३९॥)।
गोरेश्वर " "	९॥)॥
दारंग ज़िला—टँगला स्टेशन पर फुटकर संग्रह	६८))

टौंगला-निवासियों की थैली ७४।-)

उदलगुरी स्टेशन पर फुटकर संग्रह ७१)॥

मजबत " " २६।-)।

धेकजला " " १४॥-)॥।

उत्तरी रंगापाड़ा स्टेशन " ८१॥-)।

रंगापाड़ा स्टेशन पर फुटकर संग्रह १२।≡)।

तेजपुर—जनता की थैली ५०१)

महिलाओं की सभा में फुटकर धन-संग्रह २२।≡)८

विविध धन-संग्रह ७२।।)४

नीलाम से ३१)

गौहाटी ज़िला—गौहाटी के पुण्यार्थ क्लब की थैली १०१)।

जनता की थैली ८१०)

सभा में विविध धन-संग्रह ५६॥-)॥।

निवास-स्थान पर फुटकर संग्रह ३३॥)

महिलाओं की थैली २००)

हस्ताक्षर से ५)

मारवाड़ियों की थैली २०२)

मारवाड़ियों की सभा में फुटकर धन-संग्रह २४=)॥

महिलाओं की सभा में " " १५५॥=)१०

निवासस्थान तथा स्टेशन पर " ३३=)॥।

नीलाम से १७३)

मेत्री स्टेशन पर फुटकर धन-संग्रह ७)

जागीरोड " " ६-)।

धर्मतुल स्टेशन पर फुटकर संग्रह ९॥)

नौगाँव ज़िला—उपरमुख गाँववालों की थैली १०)

गोरमरी " " ५)

रहयाल बरपुजीय का थैली २५=)

हरियामुख " " ५)

खोरागवा ३)

कुलबाड़ी ८≡)

साकमारह २५)

कुमारगाँव १८।)

नौगाँव—श्री रघुनाथ जमादार ५)

जनता की थैली ५०१)

श्री सुन्दरराम साहु ५)

नौगाँव-महिला-सभा से २८)

फुटकर धन-संग्रह १२५-)

नीलाम से २४)

नागा पहाड़ी ज़िला—मनीपुर रोड पर फुटकर धन-संग्रह ६८।≡)॥

सिबसागर ज़िला—फरकटिंग स्टेशन पर फुटकर धन-संग्रह १२।≡)

मारूपाथर तथा बारपाथर फुटकर धन-संग्रह १४।)॥।

ओटिंग " " ८१-)॥।

नौ जमस " " २२॥)॥।

गोलाघाट—निवासस्थान पर फुटकर संग्रह १३।)॥

जनता की थैली ७००)

महिला-समिति की थैली १४०॥।)

फुटकर नीलाम और संग्रहादि १८)

सार्वजनिक सभा में फुटकर संग्रह ५६॥≡)।

गोनुक पुखरी (सिबसागर)—गाँववालों की थैली ५०)

विविध धन-संग्रह १३॥-)।

डेरगाँव—महिलाओं की थैली ७०)

जनता की थैली ४०)

श्री शिवलाल ५२॥≡)

विविध धन-संग्रह ४२॥।)

बलोदा बाज़ार (रायपुर सी० पी०)—हस्ताक्षर-शुल्क प्राप्त हुआ श्री गयाप्रसाद की ओर से २५)

सप्ताह का कुल धन-संग्रह ८०,८१॥=)४½

अबतक का कुल धन-संग्रह ४१८६६९॥)२½

गांधीजी के हरिजन-प्रवास का कार्यक्रम

गांधीजी के हरिजन-प्रवास का कार्यक्रम अब इस प्रकार निश्चित किया गया है :—

२१ मई को कटक से करीब २० मील, बाहरी स्टेशन के पास, चम्पापुर हट के आश्रम में मौन-विश्राम।

२२ मई की शाम को कटक-केन्द्रपाड़ा रोड से पैदल यात्रा पुनः आरम्भ होगी। वहाँ से इन्द्रियापुर, जैपुर और भद्रक होते हुए १० जून के लगभग गांधीजी बालासोर पहुँचेंगे। यह यात्रा लगभग १३० मील की होगी।

बालासोर में २ दिन विश्राम करने के पश्चात्, आशा है, गांधीजी १४ जून को सवेरे सीधे बम्बई पहुँचेंगे, और वहाँ ५ दिन ठहरेंगे।

१९ जून के दोपहर को पूना पहुँचकर वहाँ ७ दिन ठहरेंगे।

वहाँ से २७ जून के सवेरे अहमदाबाद पहुँचेंगे और वहाँ ४ जुलाईतक ठहरेंगे। अहमदाबाद से सीधे अजमेर जायँगे और वहाँ सिर्फ १ दिन रहेंगे।

अजमेर से रवाना होकर ६ जुलाई को करांची या हैदराबाद पहुँचेंगे। और सिंध के किसी एक शहर में ४ दिन ठहरेंगे।

१२ जुलाई की शाम को लाहौर पहुँचकर वहाँ ४ दिन हरिजन-कार्य करेंगे और एक दिन मौनव्रत।

वहाँ से संयुक्त प्रांतीय संघ-द्वारा निश्चित किन्हीं दो शहरों में एक-एक सप्ताह रहेंगे, और इस प्रकार ३१ जुलाई को गांधीजी हरिजन-प्रवास समाप्त कर देंगे।

१० जून के बाद, वर्षाऋतु आ जाने के कारण, चूँकि पैदल यात्रा सम्भव नहीं और मोटर व रेल से सफ़र करने का विचार छोड़ दिया गया है, इसलिए अब अपने साथियों के साथ सलाह करके गांधीजीने ऊपर के कार्यक्रम के अनुसार शेष प्रांतों के सिर्फ बड़े-बड़े नगरों में ही जाने का निश्चय किया है।

अमृतलाल वि० ठक्कर
प्र० म०, हरिजन-सेवक-संघ

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R S Gupte

संपादक—वियोगी हरि

“आत्मवत् सर्वभूतेषु”

Reg. No L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, १ जून, १९३४. [संख्या १८

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

(२४)

निर्देशिका

१२ मई

पिपली से सेवका, पैदल ३½ मील। सेवका: सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ३=)॥ सेवका से बालकटी, पैदल ३ मील। बालकटी: सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ४३॥=)।

१३ मई

बालकटी से सत्यभामापुर, पैदल ३½ मील। सत्यभामापुर: सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ७२)२। सत्यभामापुर से बालियांता, पैदल ४ मील। बालियांता: सार्वजनिक सभा। पिपली में धन-संग्रह २०॥-)

१४ मई

बालियांता . मौनदिवस

१५ मई

बालियांता: हरिजन-संपादन कार्य; श्री कुंजबिहारीजी का मन्दिर खोला। बालियांता से तेलंगपेठ, पैदल ६ मील। बालियांता में धन-संग्रह १६1)८३। तेलंगपेठ: सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह २५=)५३

१६ मई

तेलंगपेठ से काजीपटना, पैदल ५ मील। काजीपटना: सार्वजनिक सभा तथा उत्तमपुर, सुभद्रापुर, गोपालपुर और संतुलीमाली गाँवों के मानपत्र और थैली ७1=)२; कुल धन-संग्रह २६७॥)१० [इसमें कटक की महिलाओं का दान भी सम्मिलित है]; कटक: सार्वजनिक सभा, हिंदी के विद्यार्थियों को पारितोषिक-वितरण, महिला-सभा, कुल धन-संग्रह ८२२॥=) कटजूड़ी से कटक स्टेशन, पैदल ५ मील। कटक से पटना को रवानगी, रेल से।

१७ मई

रात को पटना पहुँचे।

१८ मई

पटना: सार्वजनिक कार्य।

सप्ताह में कुल यात्रा: ७० मील पैदल और ५१० मील रेल से।

प्रकृति के पथ पर

'हरिजन-सेवक' के पाठक अगर काफ़ी ध्यान से प्रत्येक सप्ताह की 'निर्देशिका' देखते आये होंगे, तो उन्हें यह मालूम होगा, कि पहले की निर्देशिका कितनी उलझन की होती थी और उसके बनाने में कितना परिश्रम करना पड़ता था, और अब वह कितनी सरल व स्वाभाविक रहा करती है। पर निर्देशिका की यह सादगी, हमारे अपने जीवन की सादगी की ही सारिणी है। पहले तो यह होता था, कि नित्य के कार्यक्रम की रूपरेखा बनाने में ही आधा ताव कागज़ लग जाता और कभी कभी तो आधी-आधी रात को ठहर बापा उसे तैयार करते और टाइप कराते थे। अब आजकल कहीं आठ रोज़ के कार्यक्रम बनाने में आधा ताव कागज़ लगता है। सचमुच आजकल का नित्य का कार्यक्रम सिर्फ़ आधे दर्जन शब्दों में ही आ जाता है, जैसे, सवेरे का चलना और सभा; शाम का चलना और सभा। समय और शक्ति की कितनी अधिक बचत हो जाती है, इसका ज्ञान उन्हीं को हो सकता है, जो पहले के प्रवास में उस विकट शोरगुल व रेलपेल और आधुनिक सभ्यता की दम घोंटनेवाली भयंकरता का अनुभव कर चुके हैं और जो आज की इस पैदल यात्रा में देख रहे हैं, कि यह यात्रा कितनी सुखदायक और शांतिप्रद है। गांधीजी को आध्यात्मिकता का अधिक अनुभव पैदल चलने से तो हो ही रहा है, उनकी शारीरिक स्फूर्ति भी बढ़ रही है। रेल व मोटर की सवारी से पैदल चलने में उनकी तबीयत अधिक अच्छी रहती है। वह भारी बोझ अब उनके कंधों पर से उतर गया है। उनके शरीर में अब इतनी शक्ति नहीं रही, कि वह कृत्रिम जीवन के इतने अधिक बोझ और दौड़धूप को बरदाश्त कर सकें। प्रकृति के चूँकि गांधीजी परम उपासक हैं, इसलिए आम्रवृक्षों की शांत कुंजों में या भारतीय संस्कृति के सच्चे केन्द्र किसी किसान के झोंपड़े में बैठकर उन्हें अपने आध्यात्मिक विचारों पर ध्यान करने का थोड़ा बहुत समय मिल जाता है। पैदल प्रवास का क्या यह कोई कम लाभ है?

१२ मई को सवेरे गांधीजी पिपली से सेवका गाँव तक पैदल चले, और शाम को सेवका से बालकटी तक। सेवका और बालकटी के बीच में बाएँ तरफ़ हम लोगों को धौली की टेकरी दिखाई दी। यह वही सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक टेकरी है, जहाँ महान् सम्राट् अशोक का वह शिलालेख आज भी मौजूद है,

जिसमें भीषण नर-संहार के परिणामस्वरूप कलिंग-विजय पर उसके पश्चात्ताप एवं पाशविक क्रूरता के द्वारा साम्राज्य की सीमा न बढ़ाने तथा प्रजापर प्रेमपूर्ण शासन करने के निश्चय का उल्लेख है। बालकटी में गांधीजीने दया नदी के बालुका-तट पर संध्याकालिक प्रार्थना की और उसके पश्चात् एक विराट् सभा में भाषण किया। यहाँ भुवनेश्वर के भी हज़ारों आदमी आये थे।

१३ मई को सबेरे हम लोग बालकटी से चले और सत्यभामापुर पहुँचे। यहाँ दया नदी के किनारे-किनारे बहुत दूरतक सड़क चली गई है। सत्यभामापुर में हम लोगोंने दया नदी की विमल धारा में स्नान किया और कपड़े धोये। यहाँ बड़ा ही आनन्द आया, कारण कि पिछले कई दिनों से गाँवों में अपने देहाती भाइयों की तरह हमें भी पीने व नहाने-धोने का पानी यथेच्छ मात्रा में न मिला था।

हरिजनों का निमंत्रण

सत्यभामापुर की सभा में भाषण करने के पूर्व गांधीजीने पूछा कि, 'क्या यहाँ कुछ हरिजन भी आये हुए हैं? मैं चाहता हूँ, कि वे आज हमारे साथ भोजन करें। अगर उन्हें हमारा निमंत्रण स्वीकार हो, तो वे अपना-अपना हाथ उठावें।' पहले तो कुछ समयतक किसीने हाथ नहीं उठाया। गांधीजीने कहा, 'हमने इन बेचारों को इस हदतक गिरा दिया है, कि वे असमंजस में पड़ गये हैं और उन्हें क्या करना चाहिए यह वे निश्चय ही नहीं कर सकते। वे हमारी बात सुनकर संदेह में पड़ गये हैं, और यह उनकी समझ में नहीं आ रहा है, कि आखिर क्यों उन्हीं का निमंत्रण किया जा रहा है, और दूसरे लोगों का नहीं [अब क़रीब दस आदमियोंने हाथ उठा दिये।] या शायद यह बात हो, कि वे अपने पसीने की कमाई का खाते हैं और इसी से खैरात का खाना उन्हें पसंद नहीं। पर उन्हें तो हम अपने भाई-बन्धुओं की तरह प्रेम से बुलाकर भोजन करायेंगे। यहाँ खैरात की तो कोई बात ही नहीं है। हरिजनों को समझ लेना चाहिए, कि हम लोग यहाँ उनके मालिक बनकर नहीं आये हैं, हम तो उन्हीं में के हैं, और उनके सेवक हैं। फिर हमारे साथ भोजन करने में उन्हें क्यों आपत्ति होनी चाहिए? पहले उन्हें भोजन करायेंगे, तब पीछे हम लोग करेंगे। जो सवर्ण हिंदू यहाँ उपस्थित हैं उन्हें चाहिए, कि इसी तरह वे हर बात में अपने हरिजन भाइयों का सब से पहले ख़याल रखा करें।

उड़िया लोगों को यह काहिलपना छोड़ देना चाहिए। आप लोग चरखा चलावें। तमाम घरू उद्योगों में सूत कातना ही एक ऐसा उद्योग है, जिसे भारत के लाखों आदमी सहज ही अपना सकते हैं, और उसका फल उन्हें तत्क्षण मिल सकता है।'

शाम को हमलोग चाकियाता पहुँचे। यहाँ गांधीजीने दया नदी के तटपर एक अभयमें सार्वजनिक मंदिर में बैठकर मौनव्रत तथा 'हरिजन' का संपादन-कार्य किया।

आदर्श मंदिर

१५ मई को गांधीजीने उक्त मंदिर का उद्घाटन संस्कार हरिजनों-समेत समस्त हिंदुओं के लिए किया, और उनकी अपनी दृष्टि से मंदिर का क्या आदर्श होना चाहिए, इसकी भी उन्होंने प्रासंगिक चर्चा की। उन्होंने कहा, "मैं आशा करता हूँ, कि इस मंदिर के ट्रस्टी मंदिर को वास्तव में एक प्राणपूरक वस्तु बनाने का प्रयत्न करेंगे। जिस समाज के लिए मंदिर बनवाये जाते हैं, वे मंदिर उस समाज के प्रतिबिम्बस्वरूप होते हैं। मंदिरों के आसपास का ऐसा वातावरण होना चाहिए, कि जिससे कुछ समय तो उनमें पूजा करनेवाले अपनी कुत्सित भावनाओं से मुक्त होकर अपने को कुछ ऊँचा उठता हुआ अनुभव करें। मंदिर की भूमि पर बालक-बालिकाओं के लिए प्रारंभिक पाठशाला होती थी। मंदिर के साथ ऐसे विद्वान् पंडितों का सम्बन्ध होता था, जो जिज्ञासुओं को संस्कृत-साहित्य पढ़ाते थे। मंदिर ग़रीबों के आश्रयस्थान हैं, इसलिए उन्हें रात-विराम के समय वहाँ शरण मिलती थी। वहाँ सत्संग के लिए काफ़ी बड़े-बड़े कोठे या खुली हुई जगह रहती थी। यह आदर्श था हमारे प्राचीन मंदिरों का। मैंने अपनी भ्रमण यात्राओं में ऐसे मंदिर देखे हैं, जहाँ इस प्रकार की कुछ सार्वजनिक संस्थाएँ बनी हुई हैं। अगर मंदिरों के ट्रस्टी इस सरल आदर्श को कार्यरूप में परिणत करने का सत्प्रयत्न करें, तो जैसा मैंने ऊपर कहा है उसकी पूर्ति होने में कोई कठिनाई नहीं आयगी। न ऐसी किसी बड़ी भारी रकम की ही बात है। पाठशाला ताड़ के या अन्य वृक्षों के नीचे हो सकती है, और सत्संग-भवन आकाश के नीचे धरती माता की गोद में। प्रश्न तो केवल संकल्प-शक्ति और शुद्ध चरित्रवान् लोगों के मिलने का है। मुझे आशा है, कि ऐसे व्यक्ति मिल सकते हैं।"

मध्याह्न को हम लोग तेलंगपेठ पहुँचे। यहाँ नित्य की प्रार्थना हुई और उसके बाद गांधीजी का भाषण। सन्ध्या को हम सब लोगोंने एक बात ख़ास तौर की देखी गई, कि प्रार्थना तथा भाषण के समय हज़ारों की उपस्थिति में भी पूर्ण शान्ति रहती है।

१६ मई को हम लोग काशीपटना आये। एक ओर कटक है, दूसरी ओर काशीपटना और बीच में कटजुड़ी नदी। तेलंगपेठ और काशीपटना के बीच में दुर्गाहली और कुआखाई नदी और उसके तट पर एक गाँव के कुछ खंडहर दिखाई दिये। पारसाल की बाढ़ इस गाँव को बहा ले गई।

प्राचीन बनाम अर्वाचीन सभ्यता

काशीपटना में गांधीजी को चार गाँवों की ओर से एक मानपत्र दिया गया, जिसमें यह कहा गया था, कि गांधीजीने यह सिद्ध कर दिया है, कि पूर्व और पश्चिम का कभी मेल नहीं हो सकता। मानपत्र का उत्तर देते हुए गांधीजीने कहा, "अगर मेरे बारे में यह बात सच है, तो यह मेरे लिए प्रशंसा की नहीं, किन्तु बदनामी की बात है। मैं अद्वैतवाद का अनुयायी हूँ। मैं सर्वात्मैक्य में विश्वास करता हूँ। पूरब, पश्चिम, दक्खिन और उत्तर मेरी दृष्टि में सब बराबर हैं। जो मनुष्य अस्पृश्यता का हर दृष्टि से कट्टर शत्रु है, वह पश्चिम को अस्पृश्य कहने का कैसे साहस कर सकता है? मेरा तो असल में यह कहना है, कि पाश्चात्य या अर्वाचीन सभ्यता का अनुकरण आत्मघात के समान है। पश्चिमी सभ्यता इसे इसलिए कहा जाता है, कि वह यहाँ पश्चिम से आई है। पाश्चात्य सभ्यता, भौतिकवादियों की सभ्यता भोग-विलास की ओर ले जानेवाली सभ्यता है, जबकि प्राचीन अथवा पूर्व की सभ्यताने स्वार्थ-त्याग और आत्मसंयम को सबसे बड़ी प्रधानता दी है। इसलिए यह पूर्व और पश्चिम का नहीं, किन्तु मानव-जीवन के दो परस्पर विरोधी विचार-प्रवाहों का झगड़ा है। अस्पृश्यता भेद-भावना का

निकृष्ट रूप है। मनुष्य-मनुष्य के बीच में जो भेद-भावना घर कर चुकी है उसे नष्ट करने के लिए मेरा जो कार्यक्रम है, उसका यह हरिजन-आंदोलन पहला अंग है।

शिष्टता का पाठ

शाम को कटजुड़ी के किनारे कटक-निवासियोंने एक विराट् सभा का आयोजन किया। वहाँ एक बात उल्लेखनीय हुई। 'हरिजन-सेवक' के पाठक काशी के पंडित लालनाथ के नाम से तो परिचित हैं ही। अपने काली झंडीवाले साथियों के साथ वे फिर इतने दिनों बाद कटक की सभा में दिखाई दिये। गांधीजी के कहने से पंडित लालनाथ सभा-मंच पर लाये गये और उन्हें कुछ मिनिट बोलने के लिए भी गांधीजीने दिये। पंडित लालनाथ का भाषण शान्ति के साथ सुनने के लिए गांधीजीने जनता को धन्यवाद दिया और कहा, कि यह शिष्टाचार ही संस्कृति और धर्म का सारतत्व है। हम अपने विरोधियों के साथ विनययुक्त बर्ताव करना चाहिए और दलील से समझाकर बन पड़े तो उन्हें अपने पक्ष में मिलाने का भी प्रयत्न करना चाहिए। धर्म की सेवा हिंसा या बलप्रयोग से कदापि नहीं हो सकती।

उत्कल की भारी जिम्मेवारी

गांधीजीने यह आशा प्रगट की, कि उत्कल के कार्यकर्त्ताओं को बंगाल की इस उदारता की सराहना करनी चाहिए, जो उसने अपने यहाँ के प्रवास की बलि उड़ीसा को धर्मयात्रा की खातिर कर दी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक के बाद हम लोग उड़ीसा की यह स्थगित यात्रा पुन: आरम्भ कर देंगे। इससे यहाँ के हरिजन कार्यकर्त्ताओं की जिम्मेवारी बहुत बढ़ जाती है। यह बात उनके ध्यान में बहुत स्पष्टता के साथ आ जानी चाहिए, कि यह प्रवृत्ति एक धर्म-प्रेरित प्रवृत्ति है।

सात दिन का हमारा यह अनुभव है, कि पास-पड़ोस के गाँवों के सैकड़ों लोग बराबर नित्य हमारे पास आते रहे। अब यह कार्यकर्त्ताओं का कर्तव्य है, कि वे लोगों को अस्पृश्यता-निवारण के संदेश का महत्व उनके बीच में जा-जाकर भली-भाँति समझावें। उन्हें काम में लगाये रहें। हरिजनों के संपर्क में उन्हें आने दें। भीड़-भाड़ में हरिजनों के साथ सवर्ण हिन्दू खूब मिलते-जुलते रहें, अबतक जैसा होता आया है उसके साथ किसी प्रकार का अलगाव या भेद भाव न रखा जाय। हरिजनोंकी कहाँ कैसी क्या स्थिति है इसकी जाँच कार्यकर्त्ता बराबर करते रहें।

वालजी गोविंदजी देसाई

"गीता-प्रवेशिका"

[गतांक से आगे]

२०

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥

मुझमें चित्त लगानेवाले, मुझे प्राणार्पण करनेवाले एकदूसरे-को बोध कराते हुए, मेरा ही नित्य कीर्तन करते हुए, सन्तोष और आनन्द में रहते हैं। १०-९

२१

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

इस प्रकार मुझमें तन्मय रहनेवालों को और मुझे प्रेम से भजनेवालोंको मैं ज्ञान देता हूँ और उससे वे मुझे पाते हैं। १०-१०

२२

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

उनपर दया करके उनके हृदय में स्थित मैं ज्ञानरूपी प्रकाशमय दीपक से उनके अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करता हूँ। १०-११

२३

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥

जो मेरे दर्शन तूने किये हैं वह दर्शन न वेद से, न तप से, न दान से अथवा न यज्ञ से हो सकते हैं। ११-५३

२४

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥

परन्तु हे अर्जुन! हे परंतप! मेरे सम्बन्ध में ऐसा ज्ञान, ऐसे मेरे दर्शन और मुझमें वास्तविक प्रवेश केवल अनन्य भक्ति से ही सम्भव है। ११-५४

२५

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥

हे पाण्डव! जो सब कर्म मुझे समर्पण करता है, मुझमें परायण रहता है, मेरा भक्त बनता है, आसक्ति का त्याग करता है और प्राणीमात्र में द्वेषरहित होकर रहता है, वह मुझे पाता है। ११-५५

२६

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥

जिससे लोग उद्वेग नहीं पाते, जो लोगों से उद्वेग नहीं पाता, जो हर्ष, क्रोध, ईर्ष्या, भय उद्वेग से मुक्त है, वह मुझे प्रिय है। १२—१५

२७

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥

समस्त नाशवान प्राणियों में अविनाशी परमेश्वर को समभाव से मौजूद जो जानता है वही उसका जाननेवाला है। १३—२७

२८

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

जिसके द्वारा प्राणियों की प्रवृत्ति होती है और जिसके द्वारा यह समस्त व्याप्त है, उसे जो पुरुष स्वकर्म द्वारा भजता है वह मोक्ष पाता है। १८—४६

२९

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

हे अर्जुन! ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में वास करता है और अपनी माया के बल से उन्हें चाक पर चढ़े हुए घड़े की तरह घुमाता है। १८—६१

३०

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

हे भारत ! तू सर्वभाव से उसकी शरण ले। उसकी कृपा से परमशान्तिमय अमरपद को पावेगा। १८—६२

३१

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

सब धर्मों का त्याग करके एक मेरी ही शरण ले। मैं तुझे सब पापों से मुक्त करूँगा। शोक मत कर। १८—६६

३२

संजय उवाच

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

जहाँ योगेश्वर कृष्ण हैं, जहाँ धनुर्धारी पार्थ हैं, वहाँ, श्री है, विजय है, वैभव है और अविचल नीति है ऐसा मेरा अभिप्राय है। १८—७८

टिप्पणी— योगेश्वर कृष्ण से तात्पर्य है अनुभव-सिद्ध शुद्ध ज्ञान, और धनुर्धारी अर्जुन से अभिप्राय है तदनुसारिणी क्रिया। इन दोनों का संगम जहाँ हो, वहाँ संजय ने जो कहा उसके सिवा दूसरा क्या परिणाम हो सकता है ?

३३

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥

अर्जुन बोले—

हे देव ! आपकी देह में मैं देवताओं को, भिन्न-भिन्न प्रकार के सब प्राणियों के समुदायों को, कमलासन पर विराजमान ईश ब्रह्मा को, सब ऋषियों को और दिव्य सर्पों को देखता हूँ। ११—१५

३४

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वा सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥

आपको मैं अनेक हाथ, उदर, मुख और नेत्रयुक्त, अनन्त-रूपवाला देखता हूँ। आपका अन्त नहीं है, मध्य नहीं है, न है आपका आदि। हे विश्वेश्वर ! आपके विश्वरूप का मैं दर्शन कर रहा हूँ। ११—१६

३५

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥

आपको मैं जाननेयोग्य परम अक्षररूप, इस जगत् का अन्तिम आधार, सनातनधर्म का अविनाशी रक्षक और सनातन पुरुष मानता हूँ। ११—१८

३६

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वा दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥

जिसका आदि, मध्य या अन्त नहीं है, जिसकी शक्ति अनन्त है, जिसके अनन्त बाहु हैं, जिसके सूर्यचन्द्ररूपी नेत्र हैं, जिसका मुख प्रज्वलित अग्नि के समान है और जो अपने तेज से इस जगत को तपा रहा है ऐसे आपको मैं देख रहा हूँ। ११—१९

३७

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥

आकाश और पृथ्वी के बीच के इस अन्तर में और समस्त दिशाओं में आप ही अकेले व्याप्त हो रहे हैं। हे महात्मन् ! यह आपका अद्भुत उग्र रूप देखकर तीनों लोक थरथराते हैं। ११—२०

३८

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥

आप आदि देव हैं। आप पुराण पुरुष हैं। आप इस विश्व के परम आश्रयस्थान हैं। आप जाननेवाले हैं और जाननेयोग्य हैं। आप परमधाम हैं। हे अनन्तरूप ! इस जगत में आप व्याप्त हो रहे हैं। ११—३८

३९

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥

वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्र, प्रजापति, प्रपितामह आप ही हैं। आपको हजारों बार नमस्कार पहुँचे। और फिर भी आप को नमस्कार पहुँचे। ११—३९

४०

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥

हे सर्व ! आपको आगे, पीछे, सब ओर से नमस्कार है। आपका वीर्य अनन्त है, आपकी शक्ति अपार है, सब कुछ आप ही धारण करते हैं, इसलिए आप ही सर्व हैं। ११—४०

४१

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥

स्थावरजंगम जगत् के आप पिता हैं। आप उसके पूज्य और श्रेष्ठ गुरु हैं। आपके समान कोई नहीं है, तो आप से अधिक तो कहाँ से हो सकता है ? तीनों लोक में आप के सामर्थ्य का जोड़ नहीं है। ११—४३

४२

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

इसलिए साष्टांग नमस्कार करके आप से, पूज्य ईश्वर से प्रसन्न होने की प्रार्थना करता हूँ। हे देव ! जिस तरह पिता पुत्र को, सखा सखा को सहन करता है, वैसे आप मेरे प्रिय होने के कारण मेरे कल्याण के लिए मुझे सहन करने योग्य हैं। ११—४४

छुआछूत के संस्कार

हरिजनों को अस्पृश्य मानना, कोली, नाई आदि वर्णों को अपने से हीन समझना, खाने-पीने और नहाने-धोने के आचार-विचार को ही धर्म का सबसे महत्वपूर्ण अंग बना देना—इन सब के मूल में भ्रम है, बुद्धि से ऐसा माननेवाला वर्ग अब घटता जाता है। बहुतों को अब यह विश्वास होता जाता है कि अस्पृश्य को छूने से, अथवा जिसके हाथ का खाना आजतक नहीं खाते उसके हाथ का खाना खाने से, कोई

नैतिक या धार्मिक दोष नहीं होता। बहुत से तो यह भी स्वीकार करते हैं कि जिन लोगोंने इस प्रकार की छुआछूत तोड़ दी है, वे चाहें तो समाज की अपेक्षाकृत अधिक सेवा कर सकते हैं, वे अनेक जंजालों से मुक्त हो जाते हैं, गरीबों के प्रति सम-भाव रखने में अधिक सफल होते हैं, उनका हृदय अधिक उदार और दृष्टि अधिक विशाल होती है। इतने पर भी हमारे कथित उच्च वर्ग पर छुआछूत के संस्कार इतने गहरे पड़े हुए हैं कि उनके संसर्ग में पले हुए अनेक स्त्री-पुरुष बुद्धि से यह जानते हुए भी, कि हमारी छुआछूत दोषयुक्त है, उसे छोड़ नहीं सकते; और यह जानते हुए भी कि हमारी छुआछूत से दूसरे के प्रति अन्याय होता है, सूक्ष्म रीति से भी दूसरे के साथ अन्याय होता है, वे इससे अन्यथा नहीं कर सकते।

जब बुद्धि से समझे हुए धर्म और हृदय में अंकित धर्म के बीच विरोध होता है, तब ऐसी स्थिति कितने ही समय तक रहती है। इसका उपाय यही है कि बुद्धिगत बात को हृदय में अंकित कर लिया जाय।

बुद्धिमान माता को पड़ोसिन के बच्चे पर अपने बच्चे जितना ममत्व न होता हो, तो भी वह न्यायबुद्धि से उसके साथ वैसा ही व्यवहार रखने का प्रयत्न करती है; फिर भी उसके हृदय में निसर्गतः विषम-भाव कभी-न-कभी प्रकट हो ही जाता है। परन्तु बालक-मात्र को देखते ही जिसके मन में एक साथ स्नेह उमड़ पड़ता हो, उसको सोच-समझकर समान-भाव नहीं रखना पड़ता; वह तो सहज भाव से ही ऐसा व्यवहार करती है। गत शताब्दी के हमारे समाज-सुधारक और कवि स्वर्गीय मलाबारी की माता के बारे में ऐसा कहा जाता है कि सूरत के इनके मुहल्ले में एक भंगिन अपना दूध-पीता बालक लेकर पाखाना साफ़ करने जाती थी। काम करते समय वह अपने बालक को किसी के चौतरे के नीचे सुला देती थी। एक दिन मलाबारी के घर के सामने अपने बालक को छोड़कर वह कहीं काम करने चली गई। कुछ देर बाद बच्चा जागा और रोने लगा। मलाबारी की माता बच्चे का रोना नहीं देख सकी। उस समय मलाबारी उनके दूध-पीते बालक ही थे। माताने झट बालक को उठा लिया और अपना दूध पिलाने लगी! तर्क-से यहीं इन्होंने ऐसा निश्चय नहीं किया था कि मानव-धर्म ऐसा ही होता है, परन्तु उनके हृदय में ही वह अंकित हो गया था। उनसे ऐसा किये बिना रहा ही नहीं जा सकता था।

हरिजनों के भाइयों की (हमारी) ऐसी मनोदशा हो गई है, यह आज भी नहीं कहा जा सकता। अभी तो हम समता का धर्म बुद्धि में ही समझे हैं; हमारे अन्दर से उसके विरोधी संस्कार गिरे नहीं हैं। इसका एक कारण यह है कि हमारे हृदय में ही यह अंकित नहीं हुआ है कि मनुष्य-मात्र समान हैं, ऊँच-नीच कोई नहीं है।

दूसरा कारण यह है कि छुआछूत के संस्कार हमें बनाये रखने के काबिल मालूम पड़ते हैं। हम ऐसा समझते हैं कि इस में कुछ अच्छाई है। इससे हम अधिक शुद्ध आचरण करने का दावा करते हैं और इसमें अच्छाई समझने के कारण इसे छोड़ नहीं सकते।

छुआछूत की कई बातों में शुद्धता का भाव है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। परन्तु छुआछूत के विविध नियमों में हमारा जो दृष्टिकोण है, उसके मूल में ही एक भूल भरी हुई है। जो लोग नहाने-धोने और खाने-पीने की सफ़ाई का कोई ख़याल ही न रखते हों उनसे इस सम्बन्धी कुछ स्थूल और आवश्यक नियमों का पालन कराया जाय, यह तो ठीक है। परन्तु हमारी छुआछूत इस दृष्टि से पैदा नहीं हुई है। हमने तो छुआछूत सिर्फ़ दूसरों से अलग होने की दृष्टि से खड़ी की है। छुआछूत के हमारे भिन्न-भिन्न नियम तो इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा में उत्पन्न हुए हैं कि अमुक पंथ वाले एक बार नहाते हैं, तो हम दो बार नहायेंगे, वह एक बार हाथ धोते हैं, तो हम सात बार धोयेंगे; वह पानी से तले हुए आटे को पूरी खा सकते हैं, तो हम दूध की ही खायेंगे; वह नमक का कोई हर्ज नहीं मानते, तो हम उसे सकरा मानेंगे; वह जनेऊ नहीं पहनते, तो हम पहनेंगे; वह कण्ठी के बगैर रहते हैं, तो हम कण्ठी बगैर नहीं रहेंगे। इसके फलस्वरूप छुआछूत के रिवाज इतने अधिक और विविध हो गये हैं कि घर-घर के, जाति-जाति के, पन्थ-पन्थ के और प्रान्त प्रान्त के रिवाज बिलकुल भिन्न और कितनी ही बार तो एक-दूसरे के विरोधी भी होते हैं। उदाहरण के लिए, गुजरात में जूठी (खाना खाई हुई) थाली को मिट्टी से सिर्फ़ सुखमँज किया जाय तो वह शुद्ध नहीं मानी जाती; उसे पानी से धोना पड़ता है। परन्तु मारवाड़ में गीली मिट्टी से मांजकर अच्छे पानी से धोने पर भी वह अशुद्ध मानी जाती है, वहां सुखमँज का ही रिवाज है। न तो इस से अधिक चाहिए और न कम। इस प्रकार के नियम बनाते समय हमने यह विचार नहीं किया कि शुद्धि का वास्तविक उद्देश्य क्या है, प्रत्युत बहुत बार हम ऐसे ही विचारों से प्रेरित होते हैं कि पुराने लोगों की अपेक्षा हम कुछ नया और ज़्यादा करके बतावें। ऐसा मालूम पड़ता है कि भूल से सब वर्णोंने जहां तक हो सके कर्मकाण्डी ब्राह्मणों के रीति-रिवाजों का अनुकरण करने का प्रयत्न किया, और, फिर तो, वे उन से भी आगे बढ़ कर अपनी-अपनी स्वतन्त्र मर्यादाएँ बाँधने के फेर में पड़ गये।

इसका परिणाम यह हुआ है कि, छुआछूत के कारण, हिन्दू एक-दूसरे के निकट होने के बदले एक-दूसरे से अलग ही होते गये हैं। हमारे समाज की रचना ऐसी हो गई है कि उसमें ऐसे स्त्री-पुरुष मिल सकते हैं, जो अपनी जात बिरादरी ही नहीं प्रत्युत अपने स्त्री बच्चों से भी अलग रहने का धर्म बनाते हैं। समाज में ऐसा करने की अनुमति है, ऐसा करनेवालों को समाज आदर की दृष्टि से भी देखता है। और उनकी सुविधा के लिए स्वयं असुविधा भी सहन करता है। परन्तु यदि कोई स्त्री-पुरुष अपना हृदय विशाल बनाये और हरेक के निकट पहुँचने का प्रयत्न करे, तो हमारे समाज में उसके लिए अनुमति नहीं है। मानो प्राणिमात्र से अलग पड़ने में ही धर्म का रहस्य हो!

इस छुआछूत को मिटाना ही पड़ेगा। इसकी जड़ इतनी गहरी पहुँच गई है कि जो बहन-भाई जेल में अपनी जात-बिरादरी भूल गये मालूम पड़ते थे, अर्थात् जिन्होंने छुआछूत छोड़ दी मालूम पड़ती थी, वे भी जेल से बाहर निकलने के साथ ही कौन जाने कहाँ से पुनः छुआछूत वाले बन जाते हैं।

जबतक हमारे मन पर छुआछूत का ऐसा विष है, तबतक हृदय में भी कुछ-न-कुछ अस्पृश्यता रहना संभव ही है।

'हरिजन-बन्धु' से]   किशोरलाल घ० मशरूवाला

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १ जून, १९३४

वे इसे करेंगे ?

जब से मैंने पैदल यात्रा आरम्भ की है, सैकड़ों ग्राम-वासी यात्रियों का अनुगमन करते रहे हैं। कुछ अपनी व्यथाओं की कहानी भी सुनाते हैं। इस यात्रा में, जब मैं साखीगोपाल के निकट पहुंच रहा था, एक प्रतिनिधि बुनकरने स्वयं ही मुझसे कहा कि बुनकर बड़े कष्ट में हैं क्योंकि उनके कपड़े की कोई माँग नहीं है। मैंने उससे कहा कि यह भविष्य-वाणी तो मैंने पन्द्रहवर्ष पहले ही की थी कि जबतक ये लोग मिल के सूत का व्यवहार करेंगे,तबतक मिलों की प्रतियोगिता में ठहर नहीं सकते; हाथ-करघे का पोषणकर्ता और जीवनदाता तो चरखा ही है। इसके उत्तर मे, जहाँतक मुझे स्मरण है, पहली ही बार मैंने सुना--'हमें हाथ का कता सूत दीजिए हम उसे बुनेंगे।'

'अवश्य, यदि तुम जैसा मैं कहूँ करोगे' मैंने कहा।

'हम करेंगे'--बूढ़े ने जवाब दिया। यह बुनकर बूढ़ा था और इसकी कमर झुक गई थी।

मुझे उसके उत्तरों से अत्यधिक प्रसन्नता हुई और मैंने कहा--'यह बड़ी अच्छी बात है। पर ऐसी हालत में मैं तुम्हें, तुम्हारी पत्नी और बच्चों को ओटना, धुनना और कातना सिखलाऊंगा, तब तुम्हे अपने करघे के लिए काफ़ी सूत मिल जायगा। तुम्हें अच्छा, मज़बूत और एक-सा सूत कातना होगा और टूट-फूट एवं खराबी से बचना होगा। तब मैं उम्मीद करूंगा कि पहली बार कते इस सूत से तुम अपने निजी उपयोग के लिए खद्दर तैयार करोगे और इसके बाद जो फालतू खादी बचेगी उसे मैं खरीद लूँगा। मैं तुम्हारे कुटुम्ब का एक सदस्य बनने का प्रयत्न करूँगा और अपने अनुभवों का लाभ तुम्हे प्रदान करूँगा। यदि तुम्हे मादक द्रव्यों का व्यसन होगा तो उसे छोड़ने को कहूँगा। तुम्हारे कुटुम्ब के आय-व्यय की मैं जाँच करूगा और तुम्हे ऋण लेने से रोकूँगा।'

बूढ़े का मुख प्रसन्नता से चमक उठा और वह बोला-'हम निश्चय ही आपकी सलाह के मुताबिक चलेंगे। इस समय तो गरीबी और विनाश हमें घूर रहे हैं।' मैंने उससे कहा कि अपने कुछ साथियों को लेकर साखीगोपाल के गोपबन्धु-आश्रम में ३ बजे मुझसे मिलो।

वह अपने मित्रों के साथ आया। मैंने सुबह की बातचीत में कही हुई बहुतेरी बातें दुहराने के बाद कहा--'मैं जानता हूँ कि तुम लोग अपने करघों को चलाने लायक सूत तुरन्त ही नहीं कात सकते। इसलिए काम आरम्भ करने के लिए होनहार और उत्साही कुटुम्बों को मैं काफ़ी सूत दूँगा। जबतक तुम उस सूत को बुनोगे तबतक अपने करघों को आगे चलाने के लिए तुम काफी सूत तैयार कर लोगे। इस दिये हुए सूत से जो पहली खादी तुम बुनोगे, तुम से ले ली जायगी। दूसरी बार के लिए भी यदि तुम्हारे पास काफी सूत न होगा तो कुछ मैं फिर दूगा। इसके बाद तुम्हे स्वावलम्बी हो जाना पड़ेगा। पहले तुम अपने कुटुम्ब की कपड़े की आवश्यकता पूरी करोगे और इससे जो बचेगा उसे बेचोगे।'

मैं इसे अत्यधिक महत्व और शक्ति का प्रयोग समझता हूं। भारतवर्ष में कदाचित् एक करोड़ बुनकर हैं। कोई हजारों में भी इनकी ठीक-ठीक संख्या नहीं बता सकता पर एक करोड़ की संख्या का अनुमान बेजोखिम का है। यदि ये लोग बुनाई की कला के साथ तत्सम्बन्धी अन्य प्राथमिक कार्यों (ओटाई, धुनाई, कताई) को भी ग्रहण करलें तो ये न केवल अपने अस्तित्व को सुरक्षित कर लेंगे वरन खादी को भी संभाव्य सीमातक सस्ती कर सकेंगे और अबतक जैसी खादी बनती है उसकी अपेक्षा अधिक टिकाऊ और खूबसूरत खादी तैयार कर सकेंगे।

'हरिजन-सेवक' के पाठक जानते हैं कि मध्यप्रान्त में कुछ ऐसे हरिजन बुनकर कुटुम्ब हैं जो अपने काम के लिए स्वयं धुन और कात लेते हैं। इसके साथ में ओटाई को भी जोड़ते हैं। यदि बुनकर स्वयं अपने हित की दृष्टि से बुनाई के पूर्ववर्त्ती सब उपकरणों को स्वयं ही करने लग जाय तो खादी का भविष्य सुरक्षित हो सकता है।

मो० क० गांधी

यात्रा-मार्ग के स्फुट चित्र

संपा०

हम लोगोंने नित्य नियमानुसार दिन के आवास को साढ़े पांच बजे छोड़कर यात्रा शुरू की। इस समय साढ़े सात बज रहे थे और सन्ध्या का आगमन हो रहा था। गन्तव्य स्थान निकट आने पर बहुत से लोग लालटेनें लेकर आ गये और हमारे साथ हो गये।

सारे मार्ग में यात्रियों का समूह बढ़ता ही गया था और इस समय उनकी संख्या कई सौ तक पहुँच गई थी।

सामने, वृक्षों से छनकर आनेवाले प्रकाशने हमें बतला दिया कि सभास्थल निकट ही है। सड़क पर खड़े भीड़ने जिधर से हमको जाना था उस ओर से जाने का रास्ता हमारे लिए बना दिया था।

उस रात को, सभा के लिए, एक समालकुंज चुना गया था। श्वेतवस्त्राच्छादित एक निचले टेबुल का मंच बनाया गया था और यत्र-तत्र वृक्षों से लालटेनें टँगी हुई थीं। चारों ओर खजूर वृक्षों के लम्बे और पतले तने खड़े हुए थे और तारिकाओं से प्रकाशित आकाश में अपने परदार सिर हिला रहे थे। नीचे, बालुकामयी भूमि पर निकट और दूर-दूर से आये हुए सैकड़ों ग्रामवासी बैठे हुए थे।

कुछ ही मिनटों में चारों ओर पूर्ण शान्ति छा गई। केवल

वायु की मधुर और मंद सनसनाहट और खस-पत्तों के हिलने की आवाज़ आ रही थी। ऐसे दृश्य के बीच सांध्य प्रार्थना आरंभ हुई।

प्रार्थना की समाप्ति पर, उस शांति और पवित्रता के वातावरण में गांधीजीने अपना संदेश दिया।

"जागो, उठो और उस पाप का अनुभव करो जिसकी विरासत तुमको मिली है और जिसे तुमने आश्रय दे रखा है। हिंदूधर्म को विशुद्ध करो, अन्यथा उसका और हमारा—दोनों का नाश हो जायगा।"

जनता के नाम उनके संदेश का यही सार है।

आनन्द

हम लोग मध्ययात्रा में हैं। सम्पूर्ण मार्ग में उत्सुक ग्रामवासी पंक्ति बाँधकर खड़े हैं और गांधीजी के गुज़रने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। एक जगह असाधारण भीड़ है और लोग सारी सड़क पर फैले हुए हैं। एक धवलकेशी प्यारी बुढ़िया, जिसकी दृष्टि वृद्धावस्था के कारण धुँधली हो गई है, एकाएक लोगों के बीच इधर-उधर दौड़ती है।

"वह कहाँ है? वह कहाँ है? मैं उसे अवश्य देखूँगी।" इस उत्तेजना में वह उनके दर्शन से वंचित रह जाती; पर ऐसे समय गांधीजी उसकी कठिनाई देखकर रुक जाते हैं और उसे पुकारते हैं। वह उनकी आवाज़ की ओर उत्कण्ठा से भरी हुई आती है और अपनी धुँधली आँखों को उनपर गड़ाकर देखती है। गांधीजी हँसते हुए कहते हैं—"क्यों?" फिर उसकी ठुड्डी पर हाथ रखकर पूछते हैं—"क्या अब तू मुझे अच्छी तरह देख सकती है?" बुढ़िया के आनंद की सीमा नहीं, आनंदातिरेक में वह गांधीजी के गले में दोनों हाथ डाल देती है, और उनकी छाती पर सिर रखकर आनंद में आत्मविस्मृत हो जाती है।

गांधीजी धीरे-धीरे अपने को छुड़ाते हैं और वह बुढ़िया स्वप्नाविष्ट की तरह पुनः जाकर भीड़ में मिल जाती है पर (आनन्द का) प्रकाश उसके साथ रह जाता है जिससे उसका जीर्ण मुख चमक रहा है।

विष का असर!

एक दिन जब प्रातःकाल की सभा में गांधीजीने हमारे आवास में हरिजनों को भोजन के लिए निमंत्रित किया तो पहले उन्होंने सोचा, यह तो बड़ी अच्छी बात होगी और आने का वादा किया पर बाद में उनका साहस न पड़ा। "आखिर हम सब को अपनी जाति का विचार है; और गांधीजी का दल तो जात-पाँत रखता नहीं।" इस प्रकार के तर्क उन बेचारोंने किये। और ऐसी बात करने के पहले जाकर अपने बड़े-बूढ़ों से सलाह लेने का निश्चय उन्होंने किया। अन्त में आज्ञा लेकर वे आये, बैठे और प्रेमपूर्ण भोजन किया।

कदाचित् उन्होंने अपने जीवन में पहली ही बार ऐसा स्वच्छ और उम्दा भोजन किया होगा।

अस्पृश्यता का यह पागलपन कितनी दूर तक चला गया कि समाज-परित्यक्त ये भाई भी उन लोगों के हाथ का भोजन करने में डरते हैं जिनके बारे में जाति-पाँत न मानने की सूचना उनको मिली होती है।

जीवन की एकता

दोपहर को लगभग ११० अंश तक गरमी पड़ रही थी। उस गरमी में सब छोटी फुदकती हुई मक्खियों से भर गया। हमें बताया गया कि ये आम्रवृक्षों पर रहती हैं और जब बहुत ही ज्यादा गरमी पड़ती है तभी छाया के लिए नीचे आती हैं। आज गरमी बहुत ज्यादा होने से ये हर जगह फैल रही हैं।

हम लोग पंखे और झाड़ू के द्वारा उन्हें काम में लगे हुए गांधीजी से दूर हटाने की कोशिश करते थे पर उसमें कोई सफलता न होती थी।

तब मैं उनको अनन्त संख्या देखकर खीझने लगी और बापू से बोली—"बापू, मुझे बताया गया है कि ये वृक्षों की डालियों से छाया के लिए नीचे आई हैं।"

बापूने, शान्तिपूर्वक उनकी ओर देखते हुए, उत्तर दिया—"उनको दोष देना मेरा काम नहीं है। यदि ईश्वरने मुझे भी इन्हीं में से एक बनाया होता तो मैं भी ठीक ऐसा ही करता।"

मीरा

हबशियों का कुलगुरु

(७)

परोपकार

हेम्पटन विद्यालय में पहला साल पूरा हो जाने के बाद, वाशिंगटन के सामने एक नई कठिनाई आ उपस्थित हुई। छुट्टी में बहुत-से विद्यार्थी घर जाया करते हैं। लेकिन वाशिंगटन के पास तो घर जाने के लिए पैसे नहीं थे। और उस समय छुट्टी के दिनों में बहुत थोड़े विद्यार्थियों को स्कूल में ठहरने दिया जाता था। इसलिए बाहर गये बिना कोई चारा नहीं था। इसलिए उसने फोर्ट्रेस मन्रो के एक भोजनालय में नौकरी करली। वहाँ उसे जो तनख्वाह मिलती उससे पेट तो मुश्किल से भरा जा सकता था, इस कारण उसे कोई रुपये-पैसे की बचत तो नहीं हुई, मगर रात में तथा दोनों वक्त के भोजन करते समय उसे जो समय मिलता था उसमें उसका अध्ययन ठीक हो जाता था।

पहले साल के अंत में विद्यालय को वाशिंगटन के पास से १६ डालर लेने रह गये। छुट्टी में उसने अपने कपड़े अपने हाथ से ही धोये और आवश्यक कपड़ों के बिना भी काम चलाया, परंतु कुछ बचत नहीं हुई। एक रोज़ भोजन की मेज़ के नीचे से १० डालर का नया नोट उसे मिला, लेकिन उस भोजनालय के स्वामीने अपने पास यह कहकर रख लिया कि मकान मेरा है, इसलिए यह नोट मैं रखूँगा। वाशिंगटन हिम्मत हारनेवाला आदमी नहीं था। उसने अपनी स्थिति विद्यालय के खजानची जनरल मारशल को लिख भेजी। उन्होंने उत्तर दिया, कि हम तुमको वापस विद्यालय में दाखिल कर लेते हैं। तुम्हारा जो लेना निकलता है, वह तुम जब चुका सको चुका देना। दूसरे साल भी वाशिंगटनने पाठशाला के द्वारपाल का काम जारी रखा।

विद्यालय में वाशिंगटनने पुस्तकों में से जो कुछ सीखा वह तो उसके शिक्षण का बहुत ही अल्प भाग था। दूसरे वर्ष उसके ऊपर अध्यापकों की निस्पृहता की गहरी छाप पड़ी। उसे यह समझने में बड़ी कठिनाई होती थी, कि दूसरों के भले के लिए काम करते हुए मनुष्य सुखोपभोग कर सके, ऐसी स्थिति में वे किस प्रकार पहुँच जाते होंगे। परन्तु वर्ष समाप्त होने के पहले उसे यह भान होने लगा था, कि जो दूसरों को उपयोगी तथा

सुखी बनाने के लिए प्रयत्न करते हैं वे ही सच्चे सुखी हैं। वाशिंगटन लिखता है - "इस पाठको उस दिनसे मैंने अपने हृदय में अंकित करने का प्रयत्न किया है।" बाइबिल का प्रेमपूर्वक पाठ करना भी वाशिंगटनने इसी विद्यालय में सीखा। इसलिए इसके बाद के जीवन में यदि वह घरपर होता और उसे बहुत काम होता तो भी दिन के अन्य काम शुरू करने के पहले सुबह के समय में वह बाइबिल का एक प्रकरण या प्रकरण का एक अंश नियमित रूपसे अवश्य पढ़ा करता था। विद्यालय की सत्संगी परिषद् में भी गये बिना नहीं रहता था। शाम को भोजन के बाद और अभ्यास शुरू होने के बीच में जो बीस मिनिट का समय रहता, उसमें अधिकांश विद्यार्थी गप्प मारा करते; उसकी जगह उसने एक नई सभा स्थापित की। बादमें एक वक्ता की हैसियत से वाशिंगटन को जो ख्याति मिली उसकी नींव तो उसने इस प्रकार हेम्पटन में डाली थी।

दूसरे वर्ष के अंत में उसकी माताने तथा उसके भाई जानने उसके पास कुछ रुपया भेजा। एक शिक्षकने भी उसे कुछ रकम दी और इस प्रकार वह घर गया। लेकिन एकबार वह घर से दूर किसी गाँव में नौकरी की तलाश में गया हुआ था। उसकी अनुपस्थिति में उसकी माता का देहान्त हो गया। इससे घर रहने का उसका आनन्द शोक में परिणत हो गया। माता के इस प्रकार के मरण से उसे बड़ा आघात पहुँचा। क्योंकि उसकी यह तीव्र इच्छा थी, कि वह माता के अंत समय में उसके पास रहे। हेम्पटन में पहले समय में उसकी बड़ी अभिलाषा यह थी, कि पढ़-लिखकर वह माता को अधिक सुख और आराम पहुँचाने योग्य बन जाय।

फिर हेम्पटन पहुँचने लायक रुपया तो उसने छुट्टी में कमा लिया, लेकिन सर्दी के कपड़ों की कोई व्यवस्था न हो सकी। सत्र (Term) को शुरू होने में अभी तीन सप्ताह का समय था, पर इसी बीच में विद्यालय की मुख्य अध्यापिका का उसके पास इस आशय का पत्र आया कि विद्यालय खुलने से दो सप्ताह पहले यहाँ आ जाओ, और सफाई करने तथा नये वर्ष के लिए सब चीज व्यवस्थित करने में मुझे मदद दो। वाशिंगटन के लिए तो यह 'जो इच्छा थी वही वैद्यने बताया' वाली मसल हुई। इस काम के करने में उसे कुछ रकम अपने खाते में जमा हो जाने की आशा थी। अतः वह तुरन्त हेम्पटन चला गया।

इन दो सप्ताहों में वाशिंगटन को एक नया पाठ मिला, जिसे वह कभी नहीं भूला।

मुख्य अध्यापिका उत्तरी राज्यों की एक प्राचीन एवं ऊँचे कुल की महिला थी। परन्तु दो सप्ताह तक उसने भी वाशिंगटन के साथ-साथ विद्यालय की सारी सफाई की।

यह समझना वाशिंगटन के लिए ज़रा कठिन हुआ कि ऐसी सुशिक्षित तथा कुलीन महिला एक अभागी जाति के उद्धार के लिए इस तरह सेवा करने में कैसे आनंद मानती होगी? परन्तु वह लिखता है —"तब से मुझे यह बात अच्छी लगने लगी, कि दक्षिण में हबशियों के लिए कोई विद्यालय हो और उसमें परिश्रम की महत्ता न दिखाई जाती हो।" हेम्पटन आने के पहले तो अन्य हबशियों की तरह उसकी भी यही कल्पना थी, कि पढ़-लिखकर मौज करना चाहिए, शारीरिक श्रम कुछ नहीं करना चाहिए। 'मिहनत करनेमें कोई शरम नहीं होनी चाहिए,' यह उसने हेम्पटन में आकर सीखा। यही नहीं, उसे मिहनत करना अच्छा लगने लगा। इसलिए नहीं कि मिहनत करने से उसे पैसे मिलते, बल्कि अपने लिए तथा जगत् को जिस वस्तु की आवश्यकता है ऐसी किसी चीज को तैयार करने की शक्ति से जो स्वतंत्रता तथा स्वाश्रय का मनुष्य को होता है, उसके लिए।

(अपूर्ण)

'हरिजन-बन्धु' से] वालजी गोविंदजी देसाई

हरिजन-प्रवास में प्राप्त

[१६ एप्रिल से २२ एप्रिल, १९३४ तक]

जोरहट (सिबसागर)—कलकत्ता के श्री सी० के० सेजवरा	१००)
मारवाड़ियों की थैली	२७५)
छात्रियों की थैली	१२५)
विविध धन-संग्रह	६४॥-)
खद्दर की बिक्री से	८१।≋)
गोलाघाट (सिबसागर)—जनता की अतिरिक्त थैली	३१)
श्री तिलोत्तमादेवी से प्राप्त	३)
बीजापुर (कर्णाटक प्रांत)—एक अतिरिक्त थैली प्राप्त	३०२॥)
जोरहट (सिबसागर)—श्री के० एन० शर्मा	५०)
मुखरहट, नामघर में	२०)
बागमान, नामघर में	१०)
महिलाओं की थैली	११०)
बंगाली महिलाओं की थैली	४४।≋)
नागरिकों की थैली	२९३)
बार लाइब्रेरी की थैली	१००)
बाल सम्मेलन "	६०।≡)॥
रैयत सभा "	२१)
श्री दूरवारी "	२७।)
श्रीमती हजारिका "	१००)
जोरहट की जनता की एक और थैली	६४।-)।
सार्वजनिक सभा में फुटकर धन-संग्रह	८२।≡)॥
महिला सभा में " "	४७≡)
विविध धन-संग्रह तथा नीलाम से	२०११)५
सिबसागर—नागरिकों की थैली	११७२)
महिलाओं की थैली	१०१)
केन्दुगारी "	३४।-)॥।
हहागढ़ "	२६≡)।
चारिंग "	१००)
छोटे छोटे गाँवों की विविध थैलियाँ	२९॥≡)॥।
सार्वजनिक सभा में फुटकर धन-संग्रह	१४६-)॥।
महिला सभा में " "	४३≋)
नीलाम से	८७॥)
विद्यापीठ की थैली	१३॥।-)
पालीटेकनीकल इन्स्टीट्यूट की थैली	६॥≋)॥
इन्द्रसुरिया की थैली	३८।)॥।
सेपनगाँव की थैली	४३॥।)॥
डिब्रूगढ़ ज़िला—खोंग की जनता की थैली	४७॥।)॥
डोहिंग घाट पर एक थैली	२६)

विवरण	रकम
भगवानपुर गाँव में "	८≡)॥।
सोनपुर तथा अन्य स्टेशनों पर फुटकर संग्रह	१७≡)२
पटना—विविध धन-संग्रह	६॥=)
श्री दुमरधलाल बिहटा	५)
आरा ज़िला—कोइलवार स्टेशन पर फुटकर धन-संग्रह	१३-)॥
श्री राधामोहनसिंह के द्वारा जमीरा गाँव में थैली तथा फुटकर धन-संग्रह	१६५)
आरा—जनता की थैली	४९०)
सूरजपुर के राजा साहब की थैली	५००)
आरा के सनातन-समाज की थैली	५१)
निवास-स्थान पर विविध धन-संग्रह	१८०)॥
स्टेशन पर विविध धन-संग्रह	५-)
धनाढिया गाँव की थैली	५)
स्टेशन पर धन-संग्रह	६।=)॥
बिहिया गाँव की थैली	४१)
बिहिया स्टेशन पर फुटकर संग्रह	४॥≡)२
बक्सर (आरा ज़िला)—श्री धरिक्षणा देवी की थैली	१०१)
एक सज्जन की थैली	२९)
गुप्त दान	२१)
"	३१॥)
महाजनों की थैली	२३१)
बरहामपुर थाना में विविध धन-संग्रह	३८॥)
राजापुर थाना की थैली	५१)
बक्सर की सभा में विविध धन-संग्रह	१७५॥-)॥
डुमराँव स्टेशन फुटकर संग्रह	७=)॥
आरा स्टेशन पर " "	२०॥)४
विविध धन-संग्रह	१८५-)८
देवघर—श्री सुनीति देवी की थैली	१०)
जनता की थैली	६००)
विविध धन-संग्रह	२२८।≡)११
गोवर्धन-साहित्य विद्यालय की ओर से	५०)
श्री गणेशप्रसाद साह	५१)
गुप्त दान	११)
विविध धन-संग्रह तथा नीलाम से	१०७॥=)।
मुंगेर ज़िला—असरगंज से गयानक की रेल स्टेशनों पर फुटकर धन-संग्रह	४३।≡)॥
सेठपुर की हिन्दूमहासभा की ओर से थैली	५)
सेठपुर में फुटकर धन-संग्रह	२४।=)॥
नवादा की जनता की थैली	१०५-)
वारिसालीगंज की जनता की थैली	३३≡)
गया—अमावा और टिकारी के राजासाहब की ओर से	२५१)
महिला-सभा में फुटकर धन-संग्रह	१६०)
टिकारी राज्य की जनता की थैली	११७-)॥
गया के नागरिकों की थैली	३९५)
गया के विद्यार्थीमंडल की थैली	४०)॥
विविध नीलाम तथा हस्ताक्षर आदि से	५५९)
विविध धन संग्रह	२४०॥-)॥
श्री सिद्धेश्वरसिंहने हस्ताक्षर-शुल्क दिया	५०)
महिला-सभा में फुटकर धन-संग्रह	१२९≡)११
शेरघाटी—शेरघाटी की जनता की थैली	१०१)
छपरा—जनता की थैली	५०२=)।
सभा में फुटकर धन-संग्रह	१७९।≡)१
हज़ारीबाग—निवास-स्थान पर विविध धन-संग्रह	५०)
महिलाओं की थैली	३५)
महिला-सभा में फुटकर धन-संग्रह	९४-)८
जनता की थैली	४९१)॥
नीलाम इत्यादि से	१३५॥=)५
निवास स्थान पर फुटकर संग्रह	५१॥-)।
गिरिडीह की जनता की थैली	१७=)॥
गोमिया की " "	८५॥≡)॥।
बरमो (हज़ारीबाग ज़िला)—जनता की थैली	२१५२)
कुलियों की थैली	३३)
दुमरी अचल की थैली	२७≡)।
महिलाओं की थैली	२१०।≡)॥
श्री मथुरजी ठेकेदार की थैली	२५१)
कतरासगढ़—जनता की थैली	३०१)
नीलाम इत्यादि से	११७॥)
झरिया—(मानभूम ज़िला)—जनता की थैली	१७८-)
नागरिकों की एक और थैली	१०५२)
नीलाम तथा फुटकर संग्रह से	२४५॥-)१
हस्ताक्षर-शुल्क	१०)
जामडोबा—टाटा कारखाने के मज़दूरों की थैली	२०१)
विविध धन-संग्रह सभा इत्यादि से	९५॥।=)२
नीलाम से	१३५)
पुरुलिया—जनता की थैली	४०६=)॥
हरिजनों की थैली	५॥≡)।
विविध धन-संग्रह	२२६॥)
आद्रा—सभा में विविध धन-संग्रह	१७।=)॥
आंध्र महिलाओं के अभिनय खेलने का प्राप्त हुआ	८)
पलासकोला—जनता की थैली	१८॥≡)
चौलियामा—जनता की थैली	५१)
एस० पी० बनर्जी प्रमुख	१०)
फुटकर धन-संग्रह	८)
रघुनाथपुर—जनता की थैली	१०२)
फुटकर संग्रह	१२≡)
कुटमुडा—फुटकर संग्रह	१७।=)
कतरास—श्री पोपट नता	१५)
श्री लक्ष्मीशंकर ओझा से	१०)
श्री देवचन्द मेहता	१३॥)
श्री जे० पी० लाल जमींदार	८५)
फुटकर धन-संग्रह	७)
लछमपुर—विविध धन-संग्रह	३९-)
झालदा—गाँववालों की थैली	१५४॥)
विविध धन-संग्रह	२९=)॥
राँची—निवास-स्थान पर फुटकर धन संग्रह	१)
आसाम के रेजरान के नीलाम से	५०७-)
इस सप्ताह का कुल संग्रह	१०१३५॥=)
अबतक का कुल संग्रह	४६५२९२॥≡)२

प्रांतीय कार्य-विवरण

पंजाब

[वार्षिक विवरण—१९३२-३३]

संगठन—पंजाब प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ दिसंबर, १९३२ में स्थापित हुआ। हिसार, रोहतक, अंबाला, लुधियाना, जालंधर, अमृतसर, लाहौर, रावलपिंडी, जम्मू, स्यालकोट, लायलपुर, मुल्तान, शेखूपुरा और फ़ीरोज़पुर में संघ की शाखा-समितियाँ संगठित की गईं।

शिक्षा—निम्नलिखित ज़िलों में २८ रात्रि-पाठशालाएं वयस्क हरिजनों के लिए खोली गईं :—

लाहौर में	७	अंबाला में	१
अमृतसर में	३	हिसार में	२
रोहतक में	७	शेखूपुरा में	१
लुधियाना में	२	स्यालकोट में	२
रावलपिंडी में	२	जम्मू में	१

इन पाठशालाओं में ८०० हरिजनोंने पढ़ा।

रोहतक, जम्मू और अमृतसर के सेवक-संघोंने ३ हरिजन-आश्रमों का संचालन किया। अमृतसर-आश्रम औद्योगिक ढंग का है। इसमें बढ़ई, दरजी और मोची का काम सिखाया जाता है। अन्य दो आश्रमों में सार्वजनिक पाठशालाओं में पढ़नेवाले विद्यार्थियों के रहने तथा पढ़ने आदि का प्रबंध है। इन तीनों आश्रमों में हरिजन बालकों की संख्या ८० रही।

पंजाब प्रांतीय संघ तथा उसकी शाखा-समितियोंने ९५२-) । छात्रवृत्तियों पर खर्च किये। छात्रवृत्तियाँ २) से लेकर १०) मासिक तक की थीं। कुल ५० छात्रवृत्तियाँ दी गईं। इसके अलावा ७२) मासिक की छात्रवृत्तियां अखिल-भारतीय हरिजन-सेवक-संघ की ओर से पंजाब प्रांत के हरिजन विद्यार्थियों को दी गईं।

संघ की शाखा-समितियोंने ७०२॥-) । मूल्य की पुस्तकें तथा स्टेशनरी आदि हरिजन विद्यार्थियों को दी।

परीक्षा-प्रवेश-शुल्क और अन्य प्रकार की सहायता के रूप में हरिजन विद्यार्थियों को २११॥।≡) दिये गये।

आर्थिक—रावलपिंडी की शाखा-समितिने ऋणग्रस्त हरिजनों को बतौर पेशगी के ८००) दिये, ताकि वे अपना पुराना क़र्ज़ा चुका सकें। लाहौर और फ़ीरोज़पुर की शाखाओंने भी ऋण-परिशोध के लिए कुछ रकमें हरिजनों को दीं।

संघ की विभिन्न शाखाओंने ५० हरिजनों को घरों में या तो नौकर रखवाया या उन्हें काम-रोज़गार में लगाया।

लाहौर में मेहतरों की आर्थिक अवस्था को उन्नत करने के लिए ट्रेड यूनियन की ढंग की एक 'मेहतर-यूनियन' संगठित की गई। इसकी रजिस्ट्री भी हो चुकी है।

ग़रीब और निस्सहाय रोगी हरिजनों को कपड़े तथा दवाइयाँ संघ की ओर से मुफ्त बाँटी गईं। रोहतक की शाखाने बाढ़पीड़ित हरिजनों की सेवा-सहायता का अच्छा कार्य किया।

धार्मिक—गांधीजी के प्रथम उपवास के दिनों में ६८ मंदिर हरिजनों के लिए खोले गये।

प्रत्येक केन्द्र में हरिजन खुले तौर पर सवर्ण हिंदुओं के साथ धार्मिक उत्सवों तथा सत्संगों में सम्मिलित होते रहे।

सफ़ाई—प्रत्येक केन्द्र में हरिजन कार्यकर्ताओंने सफ़ाई इत्यादि के संबंध में हरिजन-बस्तियों में फेरियाँ लगाईं। लाहौर में इन फेरियों का अच्छा प्रभाव पड़ा। वहाँ की म्युनिसिपैलिटी हरिजन बस्तियों की सफ़ाई, रोशनी व पानी इत्यादि के प्रबंध की ओर अब अधिक ध्यान देने लगी है।

संघ की शाखाओं की ओर से १० मन साबुन हरिजनों की बस्तियों में बांटा गया।

कुएं इत्यादि—एक पक्का कुआं सांपला (ज़ि० रोहतक) में बनवाया गया। एक कुएं की ज़िला कांगड़ा में मरम्मत कराई गई। जालंधर ज़िले के ५ गांवों में हरिजनों के कुओं की सफ़ाई की गई और पक्की नालियां बनवा दी गईं।

साधारण—रोहतक-संघने देहातों में ५ कार्य-केन्द्र स्थापित किये। प्रत्येक केन्द्र में, बड़ी उम्र के हरिजनों की शिक्षा के लिए पाठशाला का संचालन, औषधियों का बाँटना और उनकी शिकायतें दूर करना, यह सब काम किया जाता है। इन केन्द्रों द्वारा १३४ हरिजनोंने शिक्षा पाई और १०१ रोगियों को मुफ्त दवाइयां दी गईं।

हरिजनों को १२ मुक़दमों में क़ानूनी सलाह और सहायता दी गई।

हरिजन सेवक-संघ, हिसार, के प्रयत्न से १२६ गांवों के अहेरियों को जरायमपेशा क़ानून की पाबंदी से छुटकारा दिलाया गया।

लाहौर-संघने २०० हरिजन बालकों के खेल इत्यादि का प्रबंध किया और उन्हें ५०) के इनाम बांटे।

लाहौरने एक जांच-कमेटी नियुक्त की, जिसका उद्देश है हरिजनों की शिक्षा सम्बन्धी तथा आर्थिक और सामाजिक उन्नति के उपायों का सोचना। कमेटी की रिपोर्ट शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली है।

प्रचार-कार्य—आल इण्डिया हरिजन-सेवक-संघ के आदेशानुसार प्रांत भर में तीनों हरिजन-दिवस बड़े समारोह से मनाये गये। हरिजनों की बस्तियों में फेरियां की गईं। घर घर जाकर भिक्षा मांगी। खेलों का प्रबन्ध हुआ। और जलसे किये गये। जिनमें हरिजनों की उन्नति के लिए प्रस्ताव स्वीकृत हुए। मन्दिर-प्रवेश बिल के समर्थन में प्रांतभर में आन्दोलन हुआ। २२ देहाती सम्मेलन किये गये। जिनमें हरिजन-सेवा, अस्पृश्यता-निवारण, समाज-सुधार, और बेगार प्रथा बन्द कराने के प्रस्ताव पास हुए।

आय-व्यय—प्रांतीय संघ तथा उसकी शाखाओं की आय ११०२३॥।≡) की थी, और खर्च ८१९२।-) का हुआ। अखिलभारतीय हरिजन-सेवक-संघ से सहायता के रूप में ३२१७॥≡)॥। प्राप्त हुए, जो कि कुल व्यय का लगभग ४० प्रतिशत भाग था। इस वर्ष के आरम्भ में २८३१॥-)१० शेष थे।

बिहार

[अक्तूबर, १९३३ से एप्रिल, १९३४ तक]

धार्मिक कार्य—निम्नलिखित मंदिर हरिजनों के लिए खोले गये :—

हज़ारीबाग ज़िला—खजांची मंदिर और पंच मन्दिर हज़ारीबाग शहर में; शिव-मन्दिर दामोदर, कोडरमा, सिलैया और चौपारन में; और दो मंदिर जैनगर और डोमचांची में।

पालामऊ ज़िला—डाल्टन गंज में महावीर स्थान और एक ठाकुरबाड़ी।

हज़ारीबाग शहर में ७ दिन चंडीपाठ, १६ दिन भगवद्गीता पाठ और २ बार सत्यनारायण की कथा हुई। अयोध्या के एक महंतजीने भक्तमाल की कथा कही। हरिजनोंने इन सब कथाओं में से प्रेमभाव से भाग लिया।

पालामऊ ज़िले के अंतर्गत डाल्टनगंज, शाहपुर, चामपुर, सोबरा, क्टेहर और चंदवा में हरिजनों एवं सवर्णों के संयुक्त हरि-कीर्त्तन हुए।

पटना ज़िले के बाढ़नगर में कथा हुई, जिसमें हरिजन भी शामिल हुए।

सारन ज़िले के मांझी थाना के अंतर्गत बरेज गाँव में संयुक्त कीर्त्तन तथा रामायण की कथा हुई।

गया ज़िला के पास करीडीह गाँव में दो बार संयुक्त हरि-कीर्त्तन हुआ।

नदियावा गांव (गया) के मोचियोंने दुर्गापूजा की, जिसमें वहाँ के ब्राह्मण भी शामिल हुए।

आद्रा, पुरुलिया, बरडा और हरमुरा में संयुक्त रूपमें जगद्धात्री-पूजा, दुर्गापूजा और कालीपूजा हुई।

शिक्षा—छात्रवृत्तियाँ—देवघर की शाखासमिति दो हरिजन विद्यार्थियों को १०) मासिक की छात्रवृत्तियाँ देती है। मुँगेर की समिति अब २९॥।) मासिक की छात्रवृत्तियाँ दे रही है। चंपारन की ज़िला-समिति परेवा गाँव की एक हरिजन बालिका को ५) मासिक सहायता दे रही है।

मुँगेर में हरिजन विद्यार्थियों के लिए एक छात्रालय स्थापित हुआ है। फिलहाल उसमें ७ विद्यार्थी रहते हैं।

रांची में ४ हरिजन कन्या-पाठशालाएँ और मुँगेर में १ हरिजन-कन्यापाठशाला हैं। समस्त प्रांत में शाखा समितियों के अधीन १५२ दिवस व रात्रि-पाठशालाएँ चल रही हैं।

आर्थिक—हज़ारीबाग की मेहतर टोली में एक सहकारी समिति स्थापित हुई है।

हज़ारीबाग की हरिजन-पाठशालाओं में २ हरिजन अध्यापकों के पद पर नियुक्त किये गये हैं।

स्वच्छता व आरोग्यता—सारन ज़िले के अंतर्गत छपरा शहर की ४ हरिजन-बस्तियों तथा मांझी हकमा, बरियारपुर, मुबारक, मिर्ज़ापुर, परसा और दिघवारा गाँव की हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण किया गया और लोगों को स्वच्छता तथा आरोग्यता के सामान्य लाभ समझाये गये।

मद्य-मांस-निषेध—हज़ारीबाग ज़िले के ३ गाँवों में, सारन ज़िले के ७ गाँवों में, और पालामऊ ज़िले के ९ गाँवों में मद्य-मांस-वर्जन के संबंध में सभाएँ की गईं।

सामाजिक व नागरिक—नीचे लिखे कुएँ हरिजनों के लिए खोल दिये गये :—

सारन ज़िला—हकमा में श्री शंकर-औषधालय का कुआँ और कुमार नरेन्द्र, मोर, हुस्सेपुर, बाँगरा बक्सर, बसमहा और घोपाल के समस्त सार्वजनिक कुएँ तथा दिघवरा का १ कुआँ।

मुज़फ़्फ़रपुर ज़िला—पटेरा बाज़ार में ४ कुएँ, आरंगी के श्री पं० लोकनाथ झा का १ कुआँ और छतवारा के श्री पंडित कपिल देव मिश्र का १ कुआँ।

चंपारन ज़िला—गायघाटी परसौनी के सभी कुएँ और १ कुआँ मदामठ में।

सारन, मुज़फ़्फ़रपुर और मुंगेर के कई गांवों में सभाएँ हुईं, जिनमें हरिजनों और सवर्णोंने बिना किसी भेदभाव के एकसाथ भाग लिया।

साधारण—सोनपुर के हरिहर क्षेत्र के वार्षिक मेले के अवसर पर मुज़फ़्फ़रपुर के हरिजन-सेवक-संघने बहुत प्रचार-कार्य किया। 'हमारा कर्तव्य', 'हमें क्या करना चाहिए', और 'हरिजनों की अपील' ये पर्चे काफ़ी तादाद में वितरण किये गये। गाजे-बाजे के साथ जुलूस निकाले गये। और श्री हरिहरनाथ के मंदिर में हरिजनोंने जाकर दर्शन किया।

भागलपुर में २३ व २४ दिसंबर, १९३३ को प्रांतीय हरिजन-सेवक-परिषद् हुई। प्रांतीय संघ की बैठक भी २४ दिसंबर को वहीं हुई।

प्रांतीय संघ की एक बैठक ८ एप्रिल, १९३४ को पटना में हुई।

संथाल परगना में—मैजिक लालटेन के द्वारा अस्पृश्यता-निवारण पर व्याख्यान कराये गये। रैदास लोगों में मदिरा-निषेध का प्रचार कराने के लिए मथुरा का एक रैदास उपदेशक नियुक्त किया गया है।

सारन ज़िले में—गरखा रात्रि-पाठशाला के वार्षिक उत्सव के अवसर पर ७ जनवरी को एक भारी सभा की गई। अछूतो-द्धार विषय का वहाँ एक नाटक भी खेला गया।

४ दिसंबर को छपरा के टाउन हाल में इलाहाबाद के श्री मुंशी ईश्वरशरणजीने अस्पृश्यता-निवारण पर भाषण किया।

पुरुलिया में 'अन्नकूट' के दिन अन्य लोगों के साथ हरिजनों को भी भोजन कराया गया।

जमालपुर (मुंगेर) में ३१ दिसंबर को बिहार-प्रांतीय चर्म-कार-सम्मेलन हुआ।

शाहाबाद ज़िला में—संघ के प्रयत्न से ज़िला बोर्डने हरिजन-उद्धार और उनकी शिक्षा के निमित्त १०००) मंजूर किये हैं। आरा की म्युनिसिपैलिटीने हरिजन-पाठशालाओं के लिए ३२४) की रकम बजट में रखी है।

एक विधवा बहिनने जवाहर टोला में हरिजन-पाठशाला का भवन बनवाने के लिए ४ कट्ठा ज़मीन दी है, जिसमें एक कुआँ भी है।

म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन चौधरी सरफ़राज़ुसेन साहबने हरिजनों के उपयोग के लिए अपनी २ कट्ठा निजी ज़मीन दी है।

चंपारन ज़िला में—संघ के प्रयत्न से मोतिहारी की म्युनि-सिपैलिटीने हरिजन-बस्ती के लिए १६ कट्ठा ज़मीन प्रदान की है।

२९ अक्तूबर को बेतिया में ज़िला-हरिजन-परिषद् हुई।

रांची में एक औद्योगिक हरिजन-पाठशाला खोली गई। इसका उद्घाटन महात्मा गांधीने किया।

मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले में ३ कुएँ हरिजनों के लिए खुदवाये गये।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

सम्पादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ८ जून, १९३४. [संख्या १६

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

(२५)

निर्देशिका

१९ मई

पटना : सार्वजनिक कार्य ।

२० मई

रेल से बैरी के लिए प्रस्थान, ३०४ मील । स्टेशनों पर धन-संग्रह ६२७-)१०½ ।

२१ मई

बैरी से चरपापुर हाट, पैदल यात्रा, ४ मील । चरपापुरहाट : मौन-दिवस ।

२२ मई

चरपापुरहाट : हरिजन-दिवस, सभा, संग्रह ३२)२ । चरपापुरहाट से भेड़ा पैदल, ४ मील । भेड़ा : सभा, मानपत्र, संग्रह ३१-)५½ ।

२३ मई

भेड़ा से कलनपुर पैदल, ३½ मील । भेड़ा में संग्रह ६'=)६ माला १०) । कलनपुर : सभा, संग्रह ३७≡)७½ । कलनपुर से गोपीनाथपुर पैदल, ४ मील । गोपीनाथपुर : सभा, मानपत्र, संग्रह ६८॥≡)३ ।

२४ मई

गोपीनाथपुर से बाहुकुद पैदल, ७ मील । लक्ष्मीनारायणपुर, ५≡)९ । बाहुकुद : सभा, संग्रह १५०॥)११½ । बाहुकुद से बिसुआ पैदल, ३½ मील । बिसुआ : सभा, संग्रह ५≡)४½ ।

२५ मई

बिसुआ से पटपुर पैदल, ५ मील । बिसुआ-संग्रह ८॥≡)१०½ । पटपुर : सभा, बेण्डुपटना के अतियों द्वारा मानपत्र, संग्रह १२३॥-)७½ । पटपुर से सिंखिन्नकोयली पैदल, २ मील । सिंखिन्नकोयली : सभा २२॥)८ ।

सप्ताह में कुल यात्रा : ३०४ मील रेल से और ३० मील पैदल ।

इतिहास के बिना सुखी

यूनानियों में एक कहावत प्रचलित थी कि जिस जाति का इतिहास नहीं वह सुखी है । अपनी यात्रा में हम बड़ी शीघ्रता से उस स्थिति को पहुँच रहे हैं जहाँ ज्यादा कुछ वर्णन करने लायक न रह जायगा । किन्तु आश्चर्यजनक घटनाओं की अनुपस्थिति में भी हम पूर्णतः सुखी हैं और हमारा सुख तब और बढ़ जाता है जब हम यात्रियों के पिछले और वर्तमान जीवन-क्रम के तीव्र अन्तर को देखते हैं । इस समय हमलोग एक आश्चर्यजनक रीति से सुन्दर देश के बीच से गुज़र रहे हैं जिसका सौन्दर्य आसाम की याद दिलाता है । आसाम के वृक्ष-त्रय में से केवल सुपारी-वृक्ष (गुवाहाटी=गौहाटी में गुवा) उड़ीसा में नहीं दिखाई देता । आसाम के आगे केला तथा पीछे बांस —

आगे केला पीछे बांस ।

लगाने का आसामी तरीका उत्कल के गांवों में भी समान रूप से प्रचलित है । बल्कि इसके साथ प्रायः प्रत्येक गृह के सामने एक 'तुलसी-कियारी' (तुलसी की क्यारी) भी होती है । आम और ताल वृक्ष तो अनिवार्यतः होते-ही हैं । खूबर तक यहाँ आकाशोन्मुख होते हैं जिसके कारण उनकी पत्तियाँ पतली और लम्बी होती हैं ।

जैसा यह प्रदेश सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों से पूर्ण है, वैसा ही हमारे जीवन का भी यथासम्भव इससे सामञ्जस्य है । संयोगवश, उस दिन सन्यासियों अथवा मुमुक्षुओं के पथ प्रदर्शन के लिए शास्त्र में दिये गये उनके आचार-सम्बन्धी नियमों को मैं पढ़ रहा था । विष्णुस्मृति (९६) का आदेश है कि उनके पास कम-से-कम वस्त्र होना चाहिए —

कौपीनाच्छादनमात्रमेव वसनमादधात ।

हमारे दल में एक आदमी ऐसा है जो इस नियम का रूप और भाव दोनों से पालन करता है । फिर यह स्मृति कहती है कि वृक्ष का मूल ही उनका आवास है —

वृक्षमूल निकेतनः

आजकल प्रायः हम अपने दिन सघन वृक्षों की छाया में व्यतीत करते हैं और भर्तृहरि के वैराग्यशतक (७९) के इस सुन्दर श्लोक का स्मरण करते हैं :

महाशय्या भूमिर्विस्तृणमुपधानं भुजलता ।
वितानं चाकाशं व्यजन मनुकूलोऽयमनिलः ।
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो .... ।

अर्थात् 'भूमि ही उसकी महाशय्या है, अपनी भुजलता ही उसकी कोमल तकिया है, आकाश ही वितान है; अनुकूल शीतल समीर ही उसका पंखा है और प्रकाशमान चन्द्रमा उसका दीपक ।'

रोग रोकनेवाली दवा

परन्तु हमें सप्ताह की निर्देशिका के अनुसार संक्षेप में विवरण भी दे देना चाहिए। २१ मई के प्रातःकाल हम लोग बैरी स्टेशन पर उतरे और वहाँ से पैदल चम्पापुरहाट के गांधी-सेवाश्रम में गये जहाँ साप्ताहिक विश्राम के दो दिन बिताने थे। आश्रम-भूमि में ही आश्रम की ओर से एक औषधालय है, गांधीजी के सार्वजनिक सभा के व्याख्यान का आधार यही था। उन्होंने कहा कि आश्रम के साथ औषधालय की आवश्यकता को मैं नहीं समझ सकता। यह उचित नहीं है कि अपनी बीमारियों को दूर करने के लिए हम औषधियों पर निर्भर करें; न कार्य-कर्ताओं के लिए यही उचित है कि वे आलस्य के साथ ग्राम-वासियों को दवा बाँटकर अपना पिण्ड छुड़ावें। पता लगाने से मालूम होगा कि बीमारियाँ अधिक या खराब भोजन कर लेने अथवा इसी तरह के अन्य कारणों से होती हैं इसलिए रोगी या पीड़ित के लिए आत्म-संयम की आवश्यकता है। इसका तात्पर्य यह है कि ग्रामवासियों को स्वच्छता तथा स्वास्थ्य के नियमों के सम्बन्ध में शिक्षा दी जाय। ऐसे आश्रमों का असल काम तो यह है कि वे लोगों को बतावें कि कैसे वे रोग से बिल्कुल बच सकते हैं। औषधि-वितरण से यह कार्य नहीं हो सकता लोग शायद इस प्रकार के प्रचार को बहुत पसन्द न करेंगे किन्तु मुझे तो इसमें कोई शंका नहीं है कि इसी ढंग पर कार्यकर्ताओं को काम करना चाहिए।

अन्य विषय

इसी प्रकार प्रत्येक व्याख्यान में अस्पृश्यता दूर करने, बेकारी के महीनों मे कातने तथा मादक द्रव्यों का सर्वथा त्याग करने की अपील की गई थी। धर्म में हमने ऊँच-नीच का जो भाव मिला दिया है वही हमारे अधिकांश दुःखों कारण है। आजकल निश्चय ही एक प्रकार की वर्ण-संकरता बढ़ रही है पर उस अर्थ में नहीं जिसकी सनातनी कल्पना करते हैं। संकरता इस बात में है कि आज कोई भी वर्ण शास्त्र निर्दिष्ट अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर रहा है और प्रत्येक दूसरे पर अपनी श्रेष्ठता के तथ्यहीन दावे कर रहा है, जब कि शास्त्र न केवल समानता और बन्धुभाव का उपदेश करते हैं वरन् एकात्म्य का भी प्रतिपादन करते हैं। शास्त्रों में इस ऊँच-नीच भाव के लिए स्थान नहीं है और न हमारा विवेक ही इसे स्वीकार करता है। इसमें सन्देह नहीं कि शास्त्रों में ऐसे भी विषयों का प्रतिपादन किया गया है जो विवेक से स्पष्टतः ग्राह्य नहीं हैं अतः श्रद्धामूलक हैं परन्तु ऐसी बातें भी विवेक के विरुद्ध नहीं हैं। अस्पृश्यता तो न केवल विवेक के क्षेत्र के बाहर है वरन् उनके आदेशों के बिल्कुल विरुद्ध है।

कभी-कभी गांधीजी नियमित रूप से प्रातःकालिक एवं सान्ध्य प्रार्थना के महत्त्व पर ज़ोर देते हैं। इससे मतलब नहीं कि हम ईश्वर को हरि, राम या कृष्ण किस नाम से पुकारते हैं क्योंकि उस प्रभु के हज़ारों, बल्कि जितने प्राणी हैं उतने, रूप और नाम हैं।

कभी-कभी स्त्रियों के शरीर पर गहने देखकर वह अपनी चिढ़ प्रकट करते हैं और उनसे उनका त्याग करने को कहते हैं। कभी-कभी कोई स्त्री उनके उपदेश को ग्रहण करके भद्दे और भारी धातु के इन टुकड़ों को, जिन्हें ग़लती से आभूषण का नाम दे दिया गया है, छोड़ देती है।

वालजी गोविंदजी देसाई

उत्कल का नर-रत्न

संवत् १९२२ में उत्कल में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा था। उस समय सनातन नामक एक बालकने जो अद्भुत वीरता प्रदर्शित की, यहाँ हम उसका पुण्य-स्मरण करना चाहते हैं। दुर्भिक्ष लगातार तीन वर्षतक रहा। पृथिवी सूर्य की किरणों से तप गई; घास का तिनका भी कहीं दिखलाई नहीं पड़ता था; वृक्ष-पत्ते, पशु-पक्षी, सब बेजान थे, परन्तु पानी नहीं बरसता था।

लोग भूखों मरने और आकाश की ओर ताकने लगे, परन्तु सब व्यर्थ था। रास्ता चलते बैल मरते थे और कुत्तों को भी कूड़े-कर्कट में से कुछ खाने को नहीं मिलता था।

सनातन, अपने माँ-बाप और एक छोटे भाई के साथ, एक छोटे गाँव में रहता था। दो वर्ष से इसके खेत में पैदावार नहीं हुई थी और इसके बैल भी उदरपूर्ति के लिए हाट में बेचे जा चुके थे।

कितने ही महीनों से इसके माँ-बाप मात्र एक मुट्ठी भात खाकर काम चलाते और अपना हिस्सा दोनों बच्चों को दे देते थे, क्योंकि भूख का कष्ट माँ-बाप की अपेक्षा बच्चों को अधिक होता था।

एक दिन बापने माँ से कहा, 'मैं अधिक खा जाता हूँ, मैं न होऊँ तो मेरे हिस्से का खाना इन बच्चों को मिल जाय।' ये शब्द सुनकर माँ रो पड़ी और बोली, 'तुम न हो तो हमारी क्या दशा होगी? इससे तो मैं ही ज़्यादा फ़ालतू हूँ, मैं न होऊँ तो अच्छा हो। बालकों को शहर में ले जाओ और वहाँ मेरे गहनों को बेचकर उन्हें खाना ले दो।'

पति भला पत्नी को इस तरह कैसे छोड़ सकता है? लेकिन गहने तो पानी के मोल बिक गये, और उनसे मिले हुए दामों से थोड़े से ही चावल आये, लगभग ऐसा समय आ गया था कि पैसे देने पर भी नाज नहीं मिलता था।

सनातनने सोचा—'हमें अगली बार का भोजन कहाँ से मिले, इसके लिए माँ-बाप को चिन्तित होना पड़ता है; अतः मुझे बाहर जाकर खाने के लिए कुछ लाने का प्रयत्न करना चाहिए।' तब, माँ-बाप से एक शब्द भी कहे बग़ैर वह चुपचाप घर से चल दिया और सारे दिन धधकती हुई धूप में पत्ते और जंगली फल ढूंढ़ता रहा; परन्तु कुछ मिला नहीं। तब थककर मुर्दा-सा बना हुआ वह घर लौटा।

उसे थका हुआ देखकर माँ थोड़े चावल देने लगी, परन्तु वीर सनातनने कहा—'माँ, आज तो मुझे काफ़ी मिल गया है; कल जंगल में से कुछ नहीं मिला तो फिर तुमसे लेकर खाऊँगा।' माँ मुह फेरकर आँसू बहाने लगी। बच्चे को सारे दिन में कुछ भी खाने को नहीं मिला, यह बात उसे पैदा करने-वाली माँ से कैसे छिपी रह सकती थी? परन्तु छोटा बालक भूख के मारे इतने करुण स्वर से रो रहा था कि छाती फटती थी, इसलिए माँने सनातन के हिस्से का खाना उसे दे दिया।

नित्य-प्रति प्रभात के समय सनातन घर से बाहर निकल

जाता । कभी थोड़े चने इसे मिल जाते, कभी प्रचण्ड सूर्य के ताप से बचे हुए किसके वृक्ष की छाया में से मिल जाते । ऐसे सुअवसर पर वह प्रसन्नचित्त माँ के पास जाता और जो कुछ उसे मिला होता उसमें से अच्छा-अच्छा उसके सामने रखता और अपने लिए कहता कि मैं तो खा चुका हूँ ।

इस प्रकार वे भयानक दिन व्यतीत होने लगे । अन्त में भूख सहते-सहते पिता इतना दुर्बल हो गया कि क़दम रखने पर ही कमज़ोरी के मारे सिर चकराने लगता । उसे महसूस हुआ कि अपने प्रियजनों के लिए मुझसे कुछ नहीं होता और मैं जो मुट्ठी-भर खाता हूँ वह भी बचा हुआ नहीं होता, अतः उसने अपनी स्त्री से कहा—'मैं गाँव से बाहर जाता हूँ, मेरी कोई चिन्ता न करना; भगवान सब ठीक करेगा ।'

स्त्री क्या उत्तर देती ? वह तो वह समझ गई कि पति का प्रवास इतना दीर्घ है कि जहाँ से कोई कभी वापस नहीं आता । साथ ही वह यह भी जानती थी कि तत्काल कोई सहायता न मिले तो अन्य सब का अन्तकाल भी निकट ही है ।

दूसरे दिन बापने काँपते हुए पैरों उस छोटे-से घर से महाप्रस्थान कर दिया, जहाँ उसके बाप-दादों का जीवन व्यतीत हुआ था और उस दुर्दिन से पहले स्वयं उसने भी सुख-भोग किया था ।

सिर्फ़ एक ही बार उसने पीछे फिरकर देखा और अपने कुटुम्ब के लिए भगवान् से प्रार्थना की । इसके बाद वह जंगल को चल दिया और फिर देखने में नहीं आया । पत्नी के कष्ट की सीमा नहीं थी, और पति के चले जाने से तो उसके ऊपर दुःख का पहाड़ ही टूट पड़ा । दिन-दिन वह क्षीण हो गई और फिर तो उसमें बिस्तर से उठने तक की शक्ति नहीं रही । तब उसका और अपने छोटे भाई का सारा भार सनातनने अपने ऊपर लिया । धीरज के साथ होशियारी से वह बीमार माँ की परिचर्या करता और उसे ज़िन्दा रखने के लिए रोज़ खाने की तलाश में जाता ।

कभी तो सनातन यहाँ से वहाँ जाता और फिर भी ख़ाली हाथ लौटता; कभी किसी से आटा, चावल या सड़ा-गला आटा माँग लाता और आनन्द के साथ घर आकर माँ से खाने को कहता । माँ को भी कुछ सहारा मिलता और कृतज्ञतापूर्वक वह मुस्करा देती ।

परन्तु ऐसे सुअवसर भी विरल होते गये, और उत्तरोत्तर ऐसे दिन आने लगे कि जब किसी को एक कौर भी खाना न मिलता ।

हज़ारों आदमी भूखों मरते थे । ऐसी हालत में माँ को ज़िन्दा रखने के लिए खाना कहाँ से आये, यह सनातन को सूझता नहीं था । वह स्वयं भी इतना सूख गया था कि उसकी चमड़ी के नीचे हड्डी-हड्डी साफ़ दिखाई पड़ती थीं और उसका छोटा भाई भूख के मारे रोया करता था ।

परन्तु सनातन की बलवान आत्मा नहीं हारी थी । पैर भले ही शरीर का भार सहन करने से इन्कार करें, फिर भी इस आशा से वह रोज़ कौन जाने कितनी जगहों का चक्कर लगाता कि शायद कहीं कोई भगवान् का लाल मुट्ठीभर खाना देदे ।

एकदिन धूप में पाँव जलते हुए भी वह कई गाँव निकल गया । यहाँ तक कि उसे प्रतीत होने लगा कि अब आगे नहीं जाया जा सकता, अतः थोड़ी देर विश्राम करने के इरादे से वह एक दरख़्त के नीचे जाकर सो गया ।

संयोगवश पास ही एक स्त्री चावल राँध रही थी । सनातन को चावल पकने की सुगन्ध आई, इससे उसका भूख-कष्ट दुगुना होगया और उसने कहा—'ऐ भली औरत, मुझे भी थोड़ा खाने को दे । मैं तीन दिनका भूखा हूँ ।' स्त्रीको दया आगई और भगोने में से थोड़ा भात निकालकर उसने सनातन को दिया । स्त्रीने तो सोचा था कि सनातन सारा भात एक ही बार गले के नीचे उतार जायगा, परन्तु सनातन तो 'भगवान तुम्हारा भला करें' कहकर काँपता हुआ उठा और अपने फटे कपड़ों में से टुकड़ा फाड़ उसमें भात बाँध कर घर को चल दिया ।

घर तो कौन जाने कितने गाँव दूर था, परन्तु मृत्युशय्या पर पड़ी हुई माता के ख़याल से उसके पैरों में शक्ति का संचार हुआ । इस बातका उसे ध्यान नहीं रहा कि मैं कहाँ हूँ और थकावट इतनी अधिक थी कि यह भी उसे मालूम नहीं पड़ता था कि पैर चलते हैं या पैरों में फफोले होते हैं । ऐसी स्थिति में कौन जाने कितने समय तक वह चलता रहा ।

'यह भात जो ले जारहा हूँ, इसे खालूं'—ऐसा प्रबल क्षोभ भी कई बार सनातन के मनमें आया, परन्तु माता का ख़याल कर उसने इस क्षोभ को रोक दिया । रात होगई, लेकिन घर अभी भी न जाने कितनी दूर था । सनातन को चक्कर आगया, सारा संसार मानों आस-पास घूमने लगा । एक-एक क़दम चलने के लिए भगीरथ प्रयत्न करना पड़ता था । आकाश में तारे निकल आये, परन्तु वातावरण गरम और शान्त था ।

सनातन थकावट से चकनाचूर होकर रास्ते में गिर गया । उसने सोचा कि यहाँ थोड़ा विश्राम लेलूं । पड़े-पड़े आकाश के एक तेजस्वी तारे पर उसकी नज़र पड़ी । उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों मेरा पिता मेरे पास ही है, पिता की सी आवाज़ भी उसे सुनाई पड़ी । फिर तो उसे कोई स्पष्ट ज्ञान नहीं रहा । थकावट या भूख, कुछ भी उसे मालूम नहीं पड़ा । सिर्फ़ सोनेकी तीव्र इच्छा उसे हुई । भात की छोटी-सी पोटली यत्न-पूर्वक उसने अपने कपड़ों के अन्दर छिपा ली, फिर दीर्घ साँस छोड़कर अपनी थकी हुई आँखें बन्द करके कहा— 'चलो उठें, घर चलें ।'

× × × ×

दूसरे दिन एक वृद्ध पुरुष वहाँ होकर जारहा था, उसने रास्ते में सोते हुए एक छोटे बच्चे को देखा । झुककर उसने उसके ठण्डे पड़े हुए हाथ का स्पर्श किया, फिर हृदय की धड़कन देखने के लिए उसके फटे-टूटे कपड़े को हटाया तो भात की पोटली उसके हाथ आई । उसे आश्चर्य हुआ कि पास में खानेके लिए मौजूद होते हुए भी बालक कैसे मरगया !

इस प्रकार मर मिटने वाले बाल-हृदय की वीरता का वर्णन अथवा अपनी माँ के लिए जो चावल ले जारहा था उसमें से एक दाना भी खाने के बजाय मृत्यु को नेवता देना अधिक पसन्द करने वाले बालक सनातन के गुण-गान करने के लिए वहाँ कोई मौजूद नहीं था फिर भी सनातन के पराक्रम के सामने विश्वविजयी अग्र-योद्धा का पराक्रम भी पानी भरता है ।*

'हरिजन-बन्धु'] वालजी गोविंदजी देसाई

*एफ० तथा एच० जी० डी० टेनेबुक के अंग्रेज़ी पत्र से ।

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ८ जून, १९३४

एक सावधान सूत्रकार

एक हरिजन-सेवक, जो एक हरिजन पाठशाला में काम करते हैं और अन्य कई बातों के अलावा अपने विद्यार्थियों एवं उनके अभिभावकों में हाथ-कताई का प्रसार करने का प्रयत्न कर रहे हैं, लिखते हैं :—

"राष्ट्रीय सप्ताह में मैंने पहले की अपेक्षा अधिक परिश्रम और कहीं अधिक सावधानी से कताई का कार्य किया। मेरी गति का औसत ३०० गज़ प्रति घण्टा था। ४० तोले रुई में मैंने १६ नम्बर का ३७ तोला सूत काता। कुल सूत ९,७०० तार था—एक तार ४ फुट के बराबर होता है। रुई को साफ़ करने और धुनने में मेरे ढाई तोले खराब गये और कातने में आधा तोला। यह खराब भाग मैंने रख छोड़ा है। इसका उपयोग मैं तकिया भरने या और ऐसे ही किसी काम में करना चाहता हूं। मैंने कई कातनेवालों को देखा है कि कभी-कभी इतना हिस्सा रद्दी कर देते हैं जो कुल रुई की कताई से उन्हें मिली मजदूरी के बराबर होता है। आपको यह भी याद रखना चाहिए, कि मैं केवल फुर्सत के समय ही कातता हूं। इतने समय में ही मैं अपनी निजी आवश्यकता से कहीं अधिक सूत तैयार कर लेता हूं। इस बचे हुए सूत को बेचकर उसकी आय अपने निरीक्षण में चलनेवाली हरिजन पाठशाला में लगाऊंगा। मेरा सूत इतना अच्छा और मज़बूत समझा जाता है कि बुनकर उसे दूसरे किसी सूत पर तरजीह देते हैं।"

मैं इस सूत्रकार (कतवैये) को जानता हूं। आज वह जो कुछ बन सका है, अपनी सचाई और लगन से ही बना है। वह साधारण सूत्रकार से कुछ अच्छा नहीं था किन्तु आज तो स्वेच्छा से कातनेवालों में बहुत ही थोड़े ऐसे निकलेंगे जो इस हरिजन-सेवक के जैसा रेकर्ड दिखा सकें। उत्कल के गांवों में भ्रमण करते हुए, लोगों से बात करते और उनके घनिष्ट परिचय में आते हुए, मैं नित्य ही हाथ-कताई की असीम सम्भावनाओं के दर्शन करता हूं। गरीब ग्रामवासियों में जो बेकारी और आलस्य आ गया है वह प्रथम श्रेणी की दुःखात्मक घटना है। मैं देखता हूं कि सैकड़ों और अकसर हज़ारों आदमी बेकार, बिना किसी काम के, सारे दिन मेरे चारों ओर घूमते रहते हैं। जो लोग हमारे चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं, किसी प्रकार अच्छी हालत में नहीं हैं। उनका भोजन बहुत ही निम्नकोटि का है। दूध-घी तो शायद ही उन्हें मिलता हो। उबले चावल, दाल और तेल ही मुख्यतया उनका भोजन है। मुझे ये लोग महत्वाकांक्षा से हीन और आशारहित प्रतीत होते हैं। इतने पर भी वे अपने जीवन में एक उच्च संस्कृति को प्रकाशित करते हैं जिसकी ओर आकर्षित हुए बिना हम नहीं रह सकते। किन्तु यदि वे अपने प्रत्येक बेकार घण्टे का लाभदायक उपयोग करना नहीं सीखते तो इस समय यह संस्कृति किसी काम न आयगी। मैं तो बाध्यतः इसी नतीजे पर पहुंचता हूं कि इन लक्ष-लक्ष लोगों को उनके बेकार घण्टों में देने के लिए चरखे के अलावा और कोई चीज नहीं है। निश्चय ही कोई उद्योग, जो लोगों को काम देता है, लाभदायक धन्धा है।

'अंग्रेज़ी' से] मो० क० गांधी

चैतन्य और हरिजन

जब कोई उत्कल में यात्रा कर रहा हो और 'हरि बोल' का ज़ोरदार राष्ट्रीय उद्गार उसे सुनाई पड़ता हो तब स्वभावतः चैतन्य की याद आती है जो उड़ीसा के संरक्षक संत हैं। चैतन्य का ४८ वर्ष का जीवन २४-२४ वर्ष के दो बराबर भागों में विभक्त किया जा सकता है जिसमें से पहला (१४८५-१५०९) उन्होंने बंगाल में व्यतीत किया। दूसरी अवधि (१५०९-१५३३) में ६ वर्ष तक वह परिभ्रमण करते रहे और नीलाचल* के नीचे तथा जगन्नाथ के सम्मुख १८ वर्ष व्यतीत किये। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि गौड़ीय (बंगाली) लोगों के साथ उड़िया भी चैतन्य के चिर-साथियों में थे।

चैतन्य के जीवन में कोढ़ी वासुदेव का आलिंगन करने से अधिक हृदयग्राही घटना कदाचित् ही दूसरी हो। वासुदेव ब्राह्मण था; उसे गलित कुष्ठ हो गया था; सारे शरीर में कीड़े भर गये थे। किन्तु असह्य पीड़ा होने पर भी जो कीड़े उसके शरीर से नीचे गिर पड़ते उन्हें प्रेमपूर्वक वह तुरंत उठाकर अपने शरीर में यथास्थान रख देता।

> वासुदेव नाम एक द्विज महाशय।
> सर्वांगे गलित कुष्ठ ताते कीड़ामय ॥१३६॥
> अंग हैते जेइ कीड़ा खसिया पड़य।
> उठाइया सेइ कीड़ा राखे सेइ ठांइ ॥१३७॥
>
> —चैतन्य चरितामृत-मध्यलीला परिच्छेद ७

वासुदेव को पता चला कि चैतन्य पुरी में आये हैं अतः उनके दर्शनार्थ वहाँ गया। किन्तु ज्योंही चैतन्यने उसे देखा, वह दौड़कर आगे आ गये और उसे इस तरह आलिंगन कर लिया जैसे बहुत दिनों के बिछुड़े मित्र को कोई आलिंगन करता है।

> सेइ क्षणे आसि प्रभु तारे आलिङ्गिला ॥१४०॥

और जैसा कि कृष्णदास कविराज, अपने चैतन्य चरितामृत में कहते हैं, जिसे उन्होंने ८६ वर्ष की आयु में १५८२ ई० में पूरा किया, वासुदेव नीरोग हो गया और उसका शरीर निखरे स्वास्थ्य से चमक उठा।

> प्रभुस्पर्शे दुःखसंगे कुष्ठ दूर गेलो।
> आनन्द सहित अङ्ग सुन्दर होइलो ॥१४१॥

आइए, यहां हम देखें कि नीच तथा अस्पृश्य कहलानेवाली जातियों के प्रति चैतन्य का क्या विचार था? अस्पृश्यों को स्पर्श करने में कभी चैतन्य को हिचकिचाहट नहीं हुई। यहांतक कि गोदावरीतट स्थित राजमहेन्द्री के राय रामानंद, जो उनके एक प्रधान शिष्य थे, के विषय में कहा गया है, कि उनका जीवन

---

* जिसपर पुरी का जगदीश मंदिर स्थित है।

ऐसा था मानो चैतन्य के जीवन के दुग्ध-प्रवाह में शर्करा घोल दी गई हो।

सहजे चैतन्य चरित्र घन दुग्धपूर।
रामानंद चरित्र ताहे खंड प्रचूर ॥३०४॥

—चै० म० ८

रामानन्द, जब पहली बार चैतन्य से मिले तो बोले—

अस्पृश्य स्पर्शिले होया तारे प्रेमाधीन ॥३०॥

अर्थात् 'आपने प्रेम के वश होकर एक अस्पृश्य को स्पर्श किया है।' सार्वभौमने चैतन्य से रामानन्द की बड़ी प्रशंसा की थी और कहा था कि नीच कुलोत्पन्न समझकर उसकी उपेक्षा न करना वरन् उनसे परिचय बढ़ाना।

शूद्र विषयी ज्ञाने उपेक्षा न करिवे।
आमार वचने तारे अवश्य मीलिवे ॥६३॥

× × ×

पृथ्वी ते रसिक भक्त नहि तार सम ॥६४॥

—चै० म० ७

और घनिष्ट परिचय में आने के बाद, चैतन्यने भी प्रगाढ़ ईश्वर-भक्ति के लिए रामानंदराय की बड़ी प्रशंसा की। उन्होंने सार्वभौम से कहा: —

प्रभु कहे एत तीर्थ कैलो पर्यटन।
तोमा सम वैष्णव न देखिलो एकजन ॥३२६॥
एक रामानन्द राग बहु सुख दिलो ॥३२७॥

—चै० म० ९

अर्थात् 'मैंने इतने तीर्थों का पर्यटन किया किन्तु उसके जैसा वैष्णव एक भी नहीं देखा। केवल रामानन्दने मुझे इतना सुख दिया।'

चैतन्य का दूसरा साथी हरिदास मुसलमान था जिसने चैतन्य से कहा कि मुझे स्पर्श न कीजिए क्योंकि मैं एक पापी अछूत हूँ :—

हरिदास कहे प्रभु ना छुंइओ मोरे।
मुंइ नीच अस्पृश्य परम पामरे ॥१८८॥

किन्तु चैतन्यने कहा कि 'मैं तो स्वयं तुम्हारे स्पर्श से अपने को पवित्र होता अनुभव करता हूँ ··· क्योंकि मैं तुम्हारे समान धर्मात्मा नहीं हूं। तुम निरंतर वेदाध्ययन करते हो, क्षण-क्षण सब तीर्थों में स्नान तथा यज्ञ, तप और दान करते हो। तुम ब्राह्मण और संन्यासी से भी अधिक पवित्र हो।'

प्रभु कहे तोमा स्पर्शि पवित्र होइते।
तोमार पवित्र धर्म नाहिक आमाते ॥१८९॥
क्षणे क्षणे करो तुमि सर्वतीर्थ स्नान।
क्षणे क्षणे करो तुमि यज्ञ तपोदान ॥१९०॥
निरन्तर करो तुमि वेद अध्ययन।
द्विज संन्यासी हेते तुमि परम पावन ॥१९१॥

—चै० म० १९

चैतन्य के मतानुसार, जिसने कृष्ण नाम को ग्रहण किया है, वह कभी नीच नहीं हो सकता वरन् वह उच्चातिउच्च है।

दोहार मुखे कृष्ण नाम करिछे नर्तन।
एइ दुइ अधम नहि होय सर्वोत्तम ॥

—चै० म० १९-७१

ईश्वर के राज्य में वही महान् है जो प्रभु-भीरु हो और वे नीच कहलाने वाले वर्ग केवल समाज से उपेक्षित होने के कारण इस महानता के अनधिकारी नहीं हो सकते, न ब्राह्मण केवल प्रतिष्ठित कुटुम्ब में जन्म पाने के कारण इसका अधिकारी हो सकता है। प्रभु की उपासना में जाति और कुटुम्ब भेद का प्रश्न ही नहीं उठता। यही नहीं, ईश्वर इन निम्न वर्गों के प्रति अधिक दयालु है और इसके विपरीत उच्चवर्णवाले, विद्वान् तथा धनिक वर्ग अपने अहंकार के कारण विनाश को प्राप्त होते हैं।

नीच जाति नहि कृष्ण भजने अयोग्य।
सत्कुल विप्र नहि भजनेर योग्य ॥६६॥
जेइ भजे सेइ बड़ो अभक्त हीन छार।
कृष्ण भजने नहि जाति कुल विचार ॥६७॥
दीनेर अधिक दया करे भगवान।
कुलीन पण्डिते धनीर बड़ो अभिमान ॥६८॥

—चै० अन्त्यलीला ४

—वालजी गोविंदजी देसाई

हवशियों का कुलगुरु

(३)

सन् १८७५ में वाशिंगटन हेम्पटन का विशिष्ट स्नातक हुआ। और कॉनेक्टिकट के एक भोजनालय में इसने परोसने के काम की —वेटर की—नौकरी की। लेकिन यह मालूम हुआ कि उसे ठीक तरह से मेज के सामने परोसना नहीं आता है, इसलिए उसे थाली ले जानेवाले का काम दिया गया। लेकिन उसने परोसने का काम सीखने का निश्चय किया। कुछ ही सप्ताह में उस कला में वह कुशल हो गया और अपनी पुरानी जगह पर फिर वापस आ गया।

ग्रीष्म के अन्त में भोजनालय बन्द हो गया। तब वाशिंगटन माल्डेन आ गया। वहाँ वह एक हवशीस्कूल में अध्यापक हो गया। उसके जीवन के अत्यन्त सुखी जीवन अंग में से एक का यह प्रारम्भ था। उसने देखा कि अपने भाइयों की उन्नति में सहायता करने का अवसर मिला है। यह तो उसने पहले से ही समझ लिया था कि केवल पुस्तकी ज्ञान ही काफ़ी नहीं है। सुबह के आठ बजे से रात के १० बजे तक वह काम करता। सामान्य अभ्यास-क्रम के उपरांत वह अपने शिष्यों को बाल साफ करना, हाथ मुँह तथा कपड़े स्वच्छ रखना आदि सिखाता। दाँत साफ करने तथा स्नान करना सिखाने पर वह विशेष ध्यान देता था।

ऐसे वयःप्राप्त लड़के-लड़की तथा स्त्री-पुरुष बहुत थे, जो दिन में काम करते थे, लेकिन पढ़ना भी चाहते थे। उनके लिए वाशिंगटनने एक रात्रि-पाठशाला खोली। उसमें खूब भीड़ रहती और दिन की पाठशाला की ही तरह विद्यार्थियों की उपस्थिति रहती। रात्रि-पाठशाला के कुछ विद्यार्थी तो ५० वर्ष की उम्र से भी ऊपर के थे।

वाशिंगटनने एक वाचनालय की भी स्थापना की और एक चर्चापरिषद् का भी आरम्भ किया। रविवार को भी वह दो वर्ग चलाता था। उनमें से जो पाठशाला माल्डन में थी, वह तो दोपहर को खुलती तथा दूसरी वहाँ से जो तीन मील दूर थी वह सुबह के वक्त खुलती थी। इसके अलावा हेम्प्टन की तैयारी करनेवाले कुछ लड़कों को वह ख़ानगी तौर पर शिक्षा देता था। वह लिखता है,—'वेतन का कुछ भी ख़याल किये बिना भी कुछ

मैं सिखा सकूं ऐसा जिसे सीखना होता, उसे मैं सिखाता। किसी की सहायता करने का मुझे मौका मिले यही मेरा परमानन्द था। परन्तु सार्वजनिक विद्यालय में मैं शिक्षक का काम करता, इसलिए उसके कोष से मुझे कुछ वेतन मिलता था।'

जिस समय वाशिंगटन हेम्प्टन में पढ़ता था, उस समय उसका बड़ा भाई जॉन कोयले की खान में काम करता, कुटुम्ब का भरणपोषण करता तथा वाशिंगटन की यथाशक्ति सहायता करने की इच्छा से अपनी शिक्षा के प्रति लापरवाही रखता था। इस ऋण को अदा करने का वाशिंगटन को अब अवसर मिला। उसने जॉन को हेम्प्टन के लिए तैयारी करने तथा वहाँ की पढ़ाई के खर्च में मदद की। जॉन भी हेम्प्टन का स्नातक हो गया। और टस्केजी में उद्योग की उच्च पदवी प्राप्त की। हेम्प्टन से वापस आने के बाद दोनों भाइयोंने मिलकर अपने धर्म भाई जेम्स को हेम्प्टन भेजा। जेम्सने भी हेम्प्टन का शिक्षाक्रम पूरा किया और वह टस्केजी में पोस्ट मास्टर का काम करने लगा।

टस्केजी की तेयारी

वाशिंगटन दो वर्ष माल्डन के स्कूल में काम करके एक वर्ष डी० सी० में अभ्यास के लिए रहा। इस संस्था में औद्योगिक शिक्षा नहीं थी, इसलिए उसे यह देखने का अवसर मिला कि शिक्षा में उद्योग के होने और न होने में क्या अन्तर पड़ता है। हेम्पटन में विद्यार्थी स्वावलम्बी बनने का सतत-प्रयत्न करते थे, जिसके कारण सहज ही उनका चरित्र-निर्माण होता था। परन्तु वाशिंगटन के विद्यार्थी कम स्वावलम्बी थे। वे बाह्य प्रदर्शन पर ही अधिक ध्यान देते थे। हेम्पटन वालों की तरह दृढ़ता से वे काम नहीं करते थे। लैटिन और ग्रीक वे अधिक जानते थे, परन्तु जीवन और जो परिस्थिति कुछ ही दिन में उनके सामने उपस्थित होनेवाली थी उसके बारे में उनका ज्ञान कम था। हैम्पटन के विद्यार्थियों की तरह कुछ वर्ष आराम करने के बाद दक्षिण के प्रान्त-प्रदेश में जाकर हबशियों के लिए काम करने की वृत्ति उनमें नहीं थी; क्योंकि ऐसा करने में आराम के साधन कम मिलते थे। वे तो होटलों में रहने और पुलमैन गाड़ियों में बैठने के लिए लालायित थे।

फिर वाशिंगटनने वहाँ धोबी का काम करके आजीविका प्राप्त करनेवाली हबशी माताओं की लड़कियों को भी देखा, जो ६-८ वर्ष यहाँ पढ़ने के फलस्वरूप बढ़िया-बहुमूल्य कपड़े-लत्तों की शौकीन बन जाती थीं। उनकी आवश्यकतायें तो बढ़ जातीं, परन्तु उसी परिमाण में उन आवश्यकताओं की पूर्ति करने की उनकी शक्ति नहीं बढ़ती थी। उलटे आठ वर्ष की पढ़ाई के कारण माता के, कपड़े-धुलाई के काम (धोबीपन) से उन्हें अरुचि हो जाती और वे उससे विपरीत मार्ग पकड़तीं। वाशिंगटनने महसूस किया कि बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ यदि इन्हें औद्योगिक शिक्षा भी मिली होती तो वे ऐसा न करतीं।

वाशिंगटन डी० सी० में साल भर पूरा होने के बाद वाशिंगटन को एक निमंत्रण मिला, जिसपर उसे हर्ष के साथ आश्चर्य भी हुआ। जनरल आर्मस्ट्रांगने उसे पत्र लिखा कि आगामी सत्र में मनुस्नातक भाषण देने के लिए तुम हैम्पटन आना। वाशिंगटनने बड़ी सावधानी के साथ भाषण तैयार किया, जिसका विषय 'विजय प्राप्त करनेवाली शक्ति' रक्खा। भाषण के लिए हैम्पटन जाते समय वाशिंगटन को ज्यादातर उसी प्रदेश में होकर जाना पड़ा, जिसमें से ६ वर्ष पहले विद्यार्थी के रूप में भर्ती होने के लिए जाते समय जाना पड़ा था, परन्तु अब वहाँ रेल चलती थी और वह उसमें बैठा हुआ था। इस प्रकार पहले और अब में कितना अन्तर था। वाशिंगटन का कहना है:—'पाँच वर्ष के अन्दर एक मनुष्य के जीवन और उसकी अभिलाषा में इतना बड़ा परिवर्तन स्यात् ही कभी हुआ होगा।'

हैम्पटन से लौटने के बाद तुरन्त ही वाशिंगटन को जनरल आर्मस्ट्रॉंग का दूसरा पत्र मिला, इसमें शिक्षक के रूप में उसे हैम्पटन आने को लिखा गया था। माल्डन के स्कूल में तैयार करके कई तेजस्वी विद्यार्थियों को वाशिंगटनने हैम्पटन भेजा था, इसलिए वहाँ पर उसकी नियुक्ति की बात उपस्थित हुई।

आर्मस्ट्रॉंग इस समय हैम्पटन में अमेरिकन इण्डियनों की शिक्षा का प्रयोग कर रहे थे, इसलिए उन्होंने ७ तरुण इण्डियनों को वाशिंगटन के सुपुर्द किया। यह कहने की शायद ही ज़रूरत हो कि इण्डियनों को शिक्षित करने में भी उसे वैसी ही सफलता मिली, और वह इण्डियन विद्यार्थियों के प्रेम, विश्वास एवं सम्मान का पात्र बन गया।

एक साल इण्डियनों को पढ़ा चुकने के बाद उसे हैम्पटन में एक दूसरा मौका मिला। जैसे वह टस्केजी के उसके जीवन-कार्य की तैयारी रूप ही हो। जनरल आर्मस्ट्रांगने देखा कि बहुत से ऐसे हबशी युवक मौजूद हैं जो पढ़ने के लिए बहुत उत्सुक हैं लेकिन भोजन खर्च तथा पुस्तकें आदि खरीदने के खर्च आदि की कोई व्यवस्था न होने के कारण वे हेम्पटन में भरती नहीं हो सकते। उन्होंने सोचा कि हेम्पटन में एक ऐसी रात्रि-पाठशाला खोलनी चाहिए जिसमें ऐसे तरुण और तरुणी भरती किये जायँ जो दिन में १० घण्टे काम करते हों और रात में २ घण्टे पढ़ सकते हों। और इस काम के बदले उनको उनके भोजन खर्च के अलावा कुछ थोड़ा-सा वेतन भी देना चाहिए। उनकी कमाई का अधिक हिस्सा विद्यालय में उनके खाते में जमा करते जाना चाहिए और एक-दो वर्ष के बाद जब वे दिन की पाठशालाओं में आवें तब उनका भोजन खर्च उनकी उस जमा रकम में से निकालना चाहिए। इस प्रकार संस्था में दूसरे कामों के अलावा पुस्तक ज्ञान का भी आरम्भ हो जायगा और किसी उद्योग की भी शिक्षा मिल सकेगी।

यह रात्रि-पाठशाला जनरलने वाशिंगटन के सुपुर्द की। पहले पहल उसमें १२ स्त्री-पुरुष दाखिल हुए। दिन में विद्यार्थी लकड़ी चीरने की मिल में तथा विद्यार्थिनियाँ धोबी विभाग में काम करतीं। काम कठिन तो था लेकिन विद्यार्थी उसे तुरन्त ही सीख गये। और वे विद्यातुर तो इतने हो गये थे कि रात में घण्टी बजने के पहले वे अपना अभ्यास छोड़ नहीं देते बल्कि बहुत बार तो सोने का समय हो जाने के बाद भी क्लास जारी रखने लिए विद्यार्थी शिक्षकों को आग्रह करते।

लोग दिन में कठिन परिश्रम करते और रात में विद्याराधना करते। इस पर से वाशिंगटनने उस कक्षा का नाम 'विद्याराधन वर्ग' रख दिया। कुछ ही हफ्तों में विद्यार्थियों की संख्या १२ से २५ हो गई। और १९०० में, जब वाशिंगटनने अपनी आत्म-कथा लिखी है, तब, वहाँ के विद्यार्थियों की संख्या ३००-४०० के लगभग थी। और वह विद्यालय हेम्पटन संस्था का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता था।

'हरिजन-बंधु' से] —वालजी गोविंदजी देसाई

हरिजन-प्रवास में प्राप्त

[३० एप्रिल से ६ मई, १९३४ तक]

बाँदा (सी० पी०)—गुजराती समाज की ओर से श्री केशवजी प्रेमचंदने मनीआर्डर से भेजा	९१)
मद्रास शहर—श्रीहरिहर शर्मा के मारफ़त शहद की बिक्री का प्राप्त हुआ	१५)
दावनगीर (मैसूर)— मनीआर्डर से शेष धन-संग्रह प्राप्त हुआ	२८-)
राँची—निवास-स्थान पर विविध धन-संग्रह	२१)
भोपाल के एक सज्जनने भेजा डाक्टर अंसारी साहब के मारफत	३००)
सिहोरा (सी० पी०)—जबलपुर के श्री महाराजदीन सिंहने मनीआर्डर से भेजा	६३)
राँची—निवास-स्थान पर विविध धन-संग्रह	९३॥।=)॥
सिल्ली (राँची ज़िला)—गाँववालों की थैली	७६॥)॥
हरिजनों की थैली	३॥=)
श्री बी० एन० सरकार की थैली	१०)
राँची—लाख-रिसर्च इन्स्टीट्यूट के हिन्दुस्तानी कर्मचारियों की ओर से	५०)
एक गिन्नी की कीमत	२१)
हज़ारीबाग—महिलाओं की एक और थैली	२४)
विविध धन-संग्रह	४)
मद्रास—श्री जे० सी० कृष्णैया	॥)
राँची—श्रीमती एम० के० सहाय	२०)
श्रीयुत बालमुकुंद	१०)
दो हस्ताक्षरों का शुल्क	१०)
मारवाड़ी महिलाओं की थैली	३९४)
" " "	१०८॥-)।
महिला-सभा में विविध धन-संग्रह	२००।≋)२¾
नीलाम से	११४)
जनता की थैली	६८०।-)॥।
सभा में विविध धन-संग्रह	९५॥।≋)९¾
निवास-स्थान पर फुटकर धन-संग्रह	५१।=)¾
विविध धन-संग्रह	१०)
गुप्तदान	३००)
बिरला जमींदारी की ओर से थैली	२०१)
हिंदू आरायन मुंडा बोर्डिंग में फुटकर संग्रह	२४।)
चक्रधरपुर—(सिंहभूम ज़िला)—जनता की थैली	५०१)
अस्पताल के एक रोगी की ओर से	५१)
सार्वजनिक सभा में विविध धन-संग्रह	८०।=)॥
महिला सभा में " "	४६॥≡)।
विविध धन-संग्रह	१२॥)
गुजराती महिलाओं-द्वारा	१३९।=)
स्टेशन पर फुटकर धन-संग्रह	१०)
नीलाम से	२२।=)४¾
जमशेदपुर—जनता की थैली	२७४०)
सार्वजनिक सभा में विविध धन-संग्रह	२६३॥≋)॥
अग्रवाल सज्जनों की थैली	५०१)
अग्रवाल-सभा में विविध-धन-संग्रह	५२।-)।
निवास-स्थान तथा स्टेशन पर	७५॥)२
नीलाम से	२५१)
आद्रा—जनता की थैली	३००)

उड़ीसा

झारसुगुडा—जनता की थैली	३१७॥)
सार्वजनिक सभा में विविध धन-संग्रह	४७=)७
निवास-स्थान पर फुटकर धन-संग्रह	२४)
नीलाम से	१५॥)
संभलपुर—गंगापाड़ा में थैली	५७॥)॥
जनता की थैली	१८२॥≋)
गुजराती महिलाओं की थैली	२३।)
वर्धा-गुजराती सज्जनों की थैली	२०८।)
सार्वजनिक सभा में फुटकर धन-संग्रह	४५)११¾
नीलाम से	३८।)
अंगुल—श्री वालजी भाई कानजी भाई की थैली	१०१)
सभा में फुटकर धन-संग्रह	१८२=)१०¾
गुजराती बहिनों की थैली	२७)
गुजराती सज्जनों-द्वारा फुटकर संग्रह	६)
फुटकर धन-संग्रह	२०॥-)४¾
नीलाम से	७-)
संभलपुर—एक सज्जन	१०)
बंगुरपाल—सभा में फुटकर धन-संग्रह	९।=)१¾
मेरमंडली—स्टेशन पर फुटकर धन-संग्रह	५१॥=)५
मार्ग में " "	७।-)॥।
हिंडोलराज्य—जनता की थैली	२२४॥-)॥
स्टेशन पर फुटकर धन-संग्रह	१२॥=)१¾
सदाशिवपुर स्टेशन—फुटकर धन-संग्रह	१७।=)७¾
राज अठगढ़—स्टेशन पर फुटकर धन-संग्रह	५॥।=)।
अंगुल—सेवा-समिति की ओर से	५१)
कटक ज़िला—गुरु दिक्षरिया से कटक स्टेशनतक	३०।-)१¾
पुरी ज़िला—डेलंग स्टेशन पर	१०)
कुल—	९८०३।-)२¾
अबतक कुल—	४५५०९६।)५¾

[७ मई से १३ मई, १९३४ तक]

शिवगिरि—गांधी-स्वागत-समिति की ओर से मनीआर्डर-द्वारा प्राप्त	२५)
लुआ—श्री एस० एस० लाल जायसवालने भेजा मनीआर्डर से	३०)
पुरी—जनता की थैली	४००)
श्री कुलमणि सामंतराय	२०)
सार्वजनिक सभामें फुटकर धन-संग्रह	५७।-)।
तरुण साहित्य-समाज की थैली	२१)
नीलामसे	१०॥।)
महिला-सभामें फुटकर धन-संग्रह	३६॥≋)
निवास स्थान पर " "	३९॥)५¾
हस्ताक्षर-शुल्क	५)
गोपीनाथपुर और रामतारापुर की थैलियाँ तथा फुटकर धन-संग्रह	२०≋)११¾

हरिकृष्णपुर—फुटकर धन-संग्रह	१८॥ ≡)॥।
चंदनपुर—जनता की थैली	७१)।
फुटकर तथा नीलामसे	२४≡)५३
वीर गोविंदपुर—फुटकर धन-संग्रह	४।≡)।।
साखीगोपाल—जनता की थैली	२१९-)।।।
फुटकर संग्रह तथा नीलामसे	५६-)५३
कटुवा—फुटकर धन-संग्रह	१९॥≡)२३
भद्रक—भद्रक की महिलाओं का दान	२९)
चीरपुरुषोत्तमपुर—जनता की थैली	५०)॥
फुटकर धन-संग्रह	७॥≡)।
ईंदुमुकुंदपुर—जनता की थैली	८॥)।।।
फुटकर धन-संग्रह	२७-)११
निनसुखिया (आसाम)—मनीआर्डर से प्राप्त	२२॥)
पिपली—श्री उदयनाथ महांति	६)
विविध धन-संग्रह	२६।≡)११
रोवला—विविध धन-संग्रह	३≡)॥
मनीआर्डर से प्राप्त	५०)
वाल्कटी—जनता की थैली	१३॥-)।
फुटकर धनसंग्रह	२१॥≡)॥
निवास-स्थानपर फुटकर धन-संग्रह	६।-)१
सत्यभामापुर—फुटकर धनसंग्रह	१२)-
श्री शिवराम चौधरी	१०)
पिपली—जनता की थैली	२०॥-)
कालियापाला—फुटकर धन संग्रह	४॥-)७

कुल १२०१)१०

सम्पूर्ण कुल ८०६४७२-)११

हरिजन-सेवक-संघ, दिल्ली

जे० के० कूपनिधि

एक दयालु सज्जन ने, जो अप्रकट रहना चाहते हैं परन्तु अप्रकट रहना उनके लिए आसान नहीं है, जून १९३३ ई० में, २,००० रु० प्रतिमास की किश्त के रूप में, २४०००), सम्पूर्ण देश में हरिजनों के लिए पीने का पानी सुलभ करने के उद्देश्य से कुएं बनवाने के वास्ते दान दिया था। यह सारी रकम अब प्राप्त होगई है। और उपर्युक्त लक्ष्य-विशेष के लिए प्राप्त यह रकम हमारे बहीखातों में दाता के संक्षिप्त नाम के अनुसार, 'जे० के० कूपनिधि' के नाम से लिखी गई है। यद्यपि यह एक बड़ी रकम है परन्तु हरिजनों की, जो देश के अधिकांश भागों में जल के सामान्य साधनों से वंचित हैं और जिन्हें इन सामान्य ग्रामीण कुओं से ईश्वर-दत्त जल लेने के अपने अधिकार का स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग करने में अभी बहुत समय लगेगा, आवश्यकताओं को देखते हुए छोटी है। फिर भी वर्तमान काल में, हरिजनों को जल सुलभ करने के लिए यह निधि बहुत भारी है।

१९२८—३३ के पिछले पाँच वर्षों में केवल गुजरात प्रान्त में, हरिजनों के लिए कुएँ बनवाने के काम में [illegible] कम नहीं खर्च किया होगा, फिर भी यह नहीं कहा जासकता कि इस एक प्रान्त में भी सब गाँवों के हरिजनों की पानी की समस्या सुलझ गई। तब इस विशाल देश के सब प्रान्तों एवं राज्यों के दूर गाँवों में रहने वाले सब हरिजनों की जीवन की इस दूसरी सबसे अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति में कितने अधिक धन की ज़रूरत होगी? पर मुझे विश्वास है कि यह फण्ड बढ़ता जायगा और सदा बढ़ती हुई माँग की पूर्ति इसके द्वारा होगी।

मैं नीचे कुछ विवरण देता हूँ कि इस रकम का उपयोग किस तरह होरहा है। पिछले २६ अप्रैल को निकाले गये एक गश्ती नोटिस के द्वारा सब प्रांतीय हरिजन सेवक संघों को उस रकम की सूचना दे दी गई, जो उन्हें इस निधि से मिल सकती है और उन्हें अपनी आवश्यकताओं को तफसीलवार लिख भेजने तथा प्रत्येक कुएँ के सम्बन्ध में २९ प्रश्नों के एक छपे पत्रक को भरकर भेजने को भी लिखा गया था। यथा संभव शीघ्रता के साथ रिपोर्टें आरही हैं। मई के अन्त तक १९ प्रान्तों में से केवल ८ प्रान्तों ने कुल १३,७६१) की लागत के ६२ कुओं के निर्माण के लिए स्वीकृति प्राप्त की है। इसमें इस निधि से ७१५९॥) दिया गया है। निधि के शेष साधनों के साथ व्यक्तियों अथवा सार्वजनिक संस्थाओं तथा चंद नगरों में हरिजनों से मिले स्थानीय दान की रकमों द्वारा इस काम की पूर्ति हुई है। मुरादाबाद, जिसके गाँवों के जल-साधनों की जांच वहाँ के ज़िलाबोर्ड, तथा अब हरिजन-सेवक संघ, के अध्यक्ष ने की थी, इस क्षेत्र में सबसे पहले अग्रसर हुआ और इस ज़िले में १४ कुँओं के निर्माण का कार्य शुरू होचुका है। जैसा नीचे की सारिणी से ज्ञात होगा, अभी तक युक्तप्रान्त, राजपूताना और गुजरात ने इस निधि का सबसे अधिक लाभ उठाया है, जब हरिजनों की इस प्रधान आवश्यकता के बारे में अन्य कई प्रान्त अभीतक सोये हुए हैं।

मई १९३४ तक जे० के० कूपनिधि द्वारा

स्वीकृत कुओं की तालिका

प्रान्त	कुओं की संख्या	कुल खर्च	निधि द्वारा स्वीकृत रक़म	पेशगी दी रक़म
१. बिहार	५	६०२)	३२७)	१३२)
२. कोचीन और ट्रावनकोर	३	३८५)	३०७॥)	७५)
३. मध्यप्रांत मराठी	२	३१५)	१७५)	१००)
४. गुजरात	७	१,७०८)	१,०४१)	५००)
५. उड़ीसा	६	८८०)	७६६)	—
६. राजपूताना	१७	४,०५१)	२,७३३)	१,०००)
७. युक्तप्रांत	२१	४,९८०)	१,४१०)	२७५)
८. महाराष्ट्र	१	७८०)	४००)	१००)
	६२	१३,७६१)	७,१५९॥)	२१८२)

बंगाल में जल की कठिनाई विशेष नहीं है। बम्बई और मद्रास नगरों में भी ऐसी ही बात है। परन्तु समझ में नहीं आता कि आंध्र, पंजाब, मध्यप्रांत, तामिलनाड, मलाबार इत्यादि इस निधि से लाभ क्यों नहीं उठाते हैं?

अमृतलाल वि० ठक्कर

प्रधान मंत्री

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

सम्पादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, १५ जून, १९३४ [संख्या १७

विषय-सूची

वे सात दिन

वे दिन, वे सात दिन बड़े आनंद में बड़ी शांति में बीते। समय जाना नहीं गया। भद्रक से जिस दिन कलकत्ते के लिए मैं चलने लगा, उस दिन ऐसा लगा कि क्या अच्छा होता यदि बापू के इस पुण्य प्रवास में और दस-पाँच दिन रहने का अवसर मिलता। पर पुण्य क्षीण हो चुका था, और मर्त्यलोक में पुनः प्रवेश करना ही था। गरदपुर (भद्रक) का आश्रम छोड़ते समय आँखें डबडबा आईं, गला भर आया। जाना आगे था, पर पैर पीछे को पड़ते थे। उत्कलवासी मित्रों की वह मंडली छोड़ी नहीं जाती थी। दरिद्र उत्कल का हृदय कितना भाव-संपन्न है यह मैं मापूँ भी तो किस फ़ीते से? मुझे तो वहाँ प्रेम-ही-प्रेम दिखाई दिया। गांधीजी को अपने आँगन में पाकर वे लोग अपनी बारहमासी विपदा को जैसे बिलकुल ही भूल गये थे। उनके यहाँ तो मंगल-उत्सव था। बापू की पहुनई में वे लोग ऐसे मगन थे, कि कुछ पूछो नहीं। करोड़ों तीर्थों का फल मानो उन्हें अनायास ही मिल गया था, उनके घर 'राम का प्यारा' आया हुआ था न—

'जा दिन संत पाहुने आवत;
तीरथ कोटि स्नान किये को अनायास फल पावत।'

पर हमारे वे आनंदोत्सव के स्वर्ण-दिवस स्वप्न की भाँति निकल गये। मित्रोंने कहा कि इस सात दिन की पैदल यात्राका कुछ विवरण लिख डालो न। पर उस अनिर्वचनीय आनंद को कैसे अंकित करूँ, जिसका अनुभव बापू के पुण्य प्रवास में प्रतिक्षण हुआ? फिर लिखूँ क्या? कोई औपन्यासिक घटनाएँ तो घटी नहीं। और निराकार सत्य का चित्रांकण करना किसी अनाड़ी चित्रकार का काम नहीं। उस आकाश में कल्पना के पंख लगाकर उड़ने की चेष्टा करना नादानी नहीं तो क्या है। इसलिए मादक भावुकता को एक तरफ़ रखकर अपने दो-चार अमर संस्मरणों को टूटे-फूटे शब्दों में लिखकर ही संतोष करूँगा। प्रवास का क्रमबद्ध वर्णन तो वालजी भाई के साप्ताहिक पत्रों में पाठकों को मिल ही जाता है। अतः मैं यहाँ कुछ फुटकर बातों पर ही प्रकाश डालने का असफल प्रयत्न करूँगा।

(१)

३० मई। रात को ९ बजे के क़रीब इन्दुपुर में एक उड़िया अध्यापक से मैं बात कर रहा था। वह टूटी-फूटी हिंदी में बोल रहा था। गांधीजी का पड़ाव उस रात अंगेचीपुर में था। इन्दुपुर से वह स्थान ५ मील है। बैलगाड़ी सामान के लिए बड़ी मुश्किल से मिली। गाड़ी एक की थी और बैल दूसरे के। आगे एक नदी पड़ती थी। रास्ता यों ही ऊबड़-खाबड़-सा था। चन्द्रोदय होने में अभी देर थी। पर भाग्य से एक लालटेन मिल गई थी। हाँ, तो उस ग्राम-पाठशाला के अध्यापक से मैं बात करने लगा। गांधीजी के प्रेमभाव से वह मतवाला था। बोला—'हमारे इस इन्दुपुर में आज बड़ा आनंद रहा, बड़ा उत्सव रहा। इस गाँवड़े में हज़ारों आदमी जमा हो गये थे। महात्माजी का दर्शन करके हम उत्कलवासी कृतार्थ हो गये। गांधी भगवान् का बड़ा भारी भक्त है, चैतन्य देव का अवतार है। कहता है, ऊँच-नीच का भाव भूल जाओ। यही शिक्षा तो हमारे महाप्रभु देते थे। बड़ा ज़बर्दस्त है गांधी महात्मा।' मैंने पूछा—'कैसा ज़बर्दस्त?' 'अरे, ज़बर्दस्त नहीं तो क्या! हम लोग ठहरे 'राधे कृष्ण, राधे कृष्ण' बोलनेवाले, पर यह महात्मा हमसे 'पतित-पावन सीताराम' की ध्वनि लगवा कर ही रहा।' यह कहते-कहते अध्यापक कृष्णचंद्र दास गद्गद हो गया, 'महात्माजी के चरणों की धूल उड़ रही थी और हम सब विह्वल हो उन्हें पहुँचा कर घर लौट रहे थे।' किस वेग से करुणा और भक्ति की धारा बह रही थी उस अध्यापक के सरल हृदय में!

(२)

इस प्रवास में चैतन्य-युग का पूर्ण आभास मिला। सर्वत्र भक्ति-भागीरथी बहती दिखाई दी। भक्ति विह्वला उत्कल-नारियाँ गांधीजी को देख-देखकर 'उलु' ध्वनि करती थीं और पुरुष 'हरि बोलो, हरि बोलो' बोलते और कूदते-नाचते थे। सर्वत्र कीर्तन बरसता था। बारी गाँव में मृदंग-मंजीर के साथ 'हरे कृष्ण हरे राम' की ध्वनि जब मैंने सुनी, तो गोप बाबू से पूछा, कि 'किसी मंदिर में आज उत्सव है क्या?' उन्होंने कहा, 'यह तो हमारे यहाँ नित्य का उत्सव है। बापू की अगवानी करने वे हमारे हरिजन भाई कीर्तन करते हुए आ रहे हैं।' कीर्तन-मंडली का वह अनुपम उल्लास देखकर मेरी आँखों में तो आँसू भर आये। नवद्वीप और वृन्दावन की याद आ गई। बापू के

आगे-आगे हरिजन हरिनाम की ध्वनि लगाते हुए नाचते-कूदते जाते थे। बीच-बीच में भेरी बजाते, शंख फूकते और फूल बरसाते थे। 'हरि बोलो' की मधुर ध्वनि में आकाशमंडल गूँज रहा था। उस समय मुझे देवघर की दुर्घटना याद आ गई। क्या इस भक्ति-प्रचारिणी प्रवृत्ति का भी विरोध हो सकता है? वे लोग कैसे ओछे हैं, जो इस चट्टान की तरह अटल विश्वासवाले बूढ़े पुरुष का, इस महान् भगवद्भक्त का बर्बरतापूर्वक विरोध कर रहे हैं? इस पुरुष के विरोध का मतलब है धर्मभाव का विरोध, प्रेमभक्ति का विरोध, भगवान् का विरोध। पर कोई अचरज की बात नहीं। ऐसा तो सनातन से होता आया है। प्रह्लाद जलते हुए खंभ से बाँधा गया था। चैतन्यदेव पर लोगोंने पत्थरों की वर्षा की थी। मीरा को ज़हर का प्याला दिया गया था। मंसूर को सूली का बोसा लेना पड़ा था। सुकरात को हलाहल पीना पड़ा था। फिर गांधी सताया जाता है, तो इसमें अचरज ही क्या! कलि को कब पसंद आता है, कि उसके साम्राज्य में भी रामभक्ति-मंदाकिनी की धारा प्रवाहित हो? किन्तु सत्य की गति को कौन रोक सकता है? ईश्वरी इच्छा में कौन बाधक हो सकता है? प्रेम के समुंदर में विरोध के नमक की यह डली ऐसी घुल जायगी, कि पता भी न चलेगा।

उड़ीसा के एक भाईने उस दिन क्या अच्छा कहा, कि हमारे प्रांत में तो बाढ़ आती ही रहती है। बाढ़ के देश को गांधीजी यदि आज भक्ति की बाढ़ से डुबा रहे हैं, तो इसमें अचरज की बात ही क्या है?

(३)

कबीरपुर की वह हरिजन-बस्ती भूलने की नहीं। हरिजनों के कैसे सुन्दर और स्वच्छ घर थे। हम लोग बड़े अभिमान से झाड़ू ले-लेकर उनके घर साफ़ करने चले थे। पर वहाँ की सफ़ाई तो नमूनेदार थी। साफ़ करने को कुछ था ही नहीं। एक हाड़ी हरिजन की झोपड़ी क्या थी, कंचन की कुटिया थी। लिपी-पुती और खूब साफ़-सुथरी। चीज़ें एक क़ायदे से रखी हुई थीं। कूड़े-कचरे का कहीं नाम भी नहीं था। घर के मालिक से जब पूछा, कि तुम कौन हो, तो उसने फ़ौरन जवाब दिया, कि 'हम लोग हरिजन हैं।'

वहाँ के ज़मींदार श्री सुरेन्द्रलाल घोष बड़े उत्साही हरिजन-सेवी हैं। उन्होंने अपना मन्दिर हरिजनों के लिए खोल रखा है, और उनका कुआँ भी सब के लिए खुला हुआ है।

बापूने जब कबीरपुर की हरिजन-बस्ती देखी, तो हठात् उनके मुँह से निकल पड़ा कि 'एक यह कबीरपुर की बस्ती है और एक वह तुम्हारी दिल्ली का नरककुण्ड!'

(४)

और अटीरा गाँव के उस वृद्ध ब्राह्मण का भक्ति-भाव तो भुलाने से भी नहीं भूलेगा। सभा के बाद की बात है। लोगों की भीड़ छट गई थी। बापू शायद विश्राम कर रहे थे। इतने में एक ब्राह्मण चन्दन और तुलसीदल लेकर पहुँचा और गांधीजी के पास जाने की ज़िद करने लगा। लाख समझाया, पर वह माना नहीं। वहीं अड़ गया। टस से मस न हुआ। उसका यह प्रेमाग्रह देखकर बापूने उसे अपने पास बुला लिया। काम तो कुछ था नहीं। बापू के शरीर पर सारा चन्दन पोत दिया और तुलसीदल देकर लगा स्तोत्रपाठ करने। स्तोत्र समाप्त होने को नहीं आता था। यहाँतक कि भक्तिभाव से वह वृद्ध ब्राह्मण गद्गद हो गया और आँखों से आँसुओं की धारा लग गई। साश्रुनेत्र वह बाहर निकला। उसे वहाँ ऐसी कौन-सी निधि मिली, यह तो उसी की आँखों से हमें देखना चाहिए।

(५)

२ जून की रात को फिर पानी बरसा। पर यहाँ बुढ़ा नदी के किनारे का मैदान नहीं था। यह एक छोटा-सा गाँव था। हम लोग एक बरामदे में डेरा डाले हुए थे। मेह आने पर वहाँ सब लोगों का सोना कठिन था। इससे जहाँ जिसे जगह मिली, वहीं वह बगल में बिस्तरा दाबकर रैनबसेरा लेने चल दिया। एक ग़रीब किसान के घर में हम दो आदमी सोये। छोटा सा घर था। पर उसका दिल बड़ा था। हमारे लिए एक चटाई बिछा दी। ठंडा पानी सिरहाने रख दिया। और बड़े प्रेम से बातें करने लगा। बोला—'बाबू, मैं जाति का ब्राह्मण हूँ, पर छुआछूत नहीं मानता। महात्मा गांधीने ठीक ही कहा है, कि अपने को दूसरों से ऊँचा मानना अधर्म है, पाप है।' 'अच्छा, तो तुम यह समझते हो, कि छुआछूत का मानना अधर्म है?' मैंने पूछा। 'क्यों न समझेंगे? इतना बड़ा महापुरुष यही तो समझाने आया है। हमारे धन्य भाग्य, जो गांधीजी के चरण हमारे गाँव में पड़े। मेरे बाल-बच्चे जब बड़े होंगे, तब कहेंगे, कि हमारे गाँव में महात्मा गांधीने एक रात्रि विश्राम किया था।' उड़ीसा के लोगों की यह भक्तिभावना कितनी सरल, पर कितनी ऊँची है। पानी पड़ना तो बन्द हो गया, पर गोमातासे बहुत सबेरे ही जगा दिया। गिरयाँ (रस्सी) खुल गया था और वह हमारे बिस्तरे के पास चक्कर लगा रही थी। यह रात के दो बजे की बात थी।

(६)

भडारी पोखरी में हमें कुछ निराशा-सी हुई। कीचड़ और कंकड़ों का रास्ता तय करते हुए हम लोग इस गाँव में सबेरे ८ बजे पहुँचे। वहाँ सिर्फ़ दस-पन्द्रह आदमी दिखाई दिये। दुपहरी काटने को एक मामूली-सा बाग़ था। छाहँ तो कहने को ही थी। धरती ओदी थी। पर उस पर कुछ पुआल बिछा लिया और बैठ गये। बापू एक छोटी-सी जीर्ण कोठरी में दिनभर आसन जमाये बैठे रहे। जेठ की सारी दुपहरी सिर पर गई। पानी का भी कष्ट रहा। पर साँझ को जब वहाँ से चलने लगे, तब तो कुछ और ही नज़ारा दिखाई दिया। डेढ़-दो हज़ार आदमियों का भीड़ इकट्ठा हो गई थी। दर्शनों के लिए लोग टूटे पड़ते थे। गांधीजी बाहर आये, तो 'हरि बोलो' की ध्वनि से लोगोंने हमारे कान बहरे कर दिये। एक वृद्ध महाशयने गांधीजी के माथेपर चन्दन लगाया, माला पहनाई और हरिजन-सेवा के अर्थ दो रुपये भेंट में दिये। फिर सभा हुई। बापू के भाषण के बाद सेवक-सेविकाओंने पैसे माँगे। रात को हिसाब लगाकर देखा, तो उस दरिद्र भडारी पोखरी में भी हमें काफ़ी पैसे और पाइयाँ मिली थीं।

(७)

गरदपुर (भद्रक) के चर्खा-संघ के आश्रम का उल्लेख न किया तो कुछ न किया। वहाँ हमारे दो दिन बड़े आनन्द में बीते। ख़ासी चहल-पहल रही। सारे दिन लोगों का ठट लगा रहता था। कड़ी धूप में भी खड़े रहते थे और मूसलधार पानी

में भी हटने का नाम नहीं लेते थे । आश्रम के संचालक भाई जीवराम के हुक्म को भी लोग कुछ नहीं समझते थे । लोगों को हटाते-हटाते बेचारे परेशान रहते थे । भाई जीवराम की सजीवता, सावधानता और सेवाभावना तो देखते ही बनती थी । एक अँगोछा लपेटे, नंगे बदन, हाथ में झाड़ू लिये ही हमें जीवरामजी दिखाई दिये । लोग कचरा फेंकाते, जीवरामजी उठाते फिरते । क्या मजाल कि नारियल का एक छिलका भी कहीं पड़ा दिखाई दे । आश्रम में चन्दन-सा रपटता था । समझ में नहीं आता था, कि जीवरामजी कब तो भोजन करते हैं, कब बैठते हैं और कब सोते हैं । रात को दो ढाई बजे मैं उठा, तो देखा, कि जीवरामजी एक बड़े गढ़े में टट्टियों की बाल्टियों का मला उँडेल रहे हैं । ३ बजेतक पाखाने साफ किये, फिर सूत काता, इतने में प्रार्थना का समय आ गया । एक मिनिट को भी आँख बन्द नहीं की । सारे दिन और सारी रात काम किया । यह शख्स आखिर सोता कब है । सोचते सोचते कबीर की वह कड़ी याद आ गई, कि—

'आशिक होकर सोना क्या, रे ?'

भाई जीवरामजी सेवा पर आशिक हैं । फिर उनकी आँखों में नींद कहाँ ?

जीवरामजी कच्छ के रहनेवाले हैं । उड़ीसा में आठ-दस साल से सेवा-कार्य कर रहे हैं । अपना एक लाख रुपया चर्खा-संघ को दान में देकर भद्रक और पुरी में एक सच्चे संन्यासी की नाईं आप दीन दुर्बलों की सेवा करते हैं । इधर एक वर्ष से तो प्रायः पुरी में ही रहते हैं और वहाँ हरिजन-बस्तियों में बड़ी लगन के साथ काम कर रहे हैं । जीवरामजी का साधु जीवन अनुकरणीय है, इसमें संदेह नहीं ।

वियोगी हरि

संत आज़र कैवान

(१)

आज़र कैवान उसी खानदान घराने के थे, जिसके कि अर्दशीर, बहमन गौर और नौशेरवाँ थे । यह पारसियों में एक बहुत बड़े विद्वान् व सन्त हो गये हैं । इनके बहुत-से चेले थे, जिन्होंने कितनी ही किताबें लिखी हैं । यह इस्तख्र में रहते थे और वहाँ से भारतवर्ष भी आये थे । भारतवर्ष में यह अधिकतर पटना में रहते थे । जब ईरान में मुसलमानी हुकूमत थी और पारसी लोग अपनी शान को खो चुके थे, उस समय भी इस सन्तने पारसी धर्म के महत्व का ऐसा आदर्श दिखाया था, कि बहुत-से मुसलमान सूफी इसे बहुत बड़ा महात्मा मानते थे ।

आप पाँच वर्ष की उम्र से ही रात को उठ-उठकर भगवद् भजन किया करते थे, और बराबर २८ वर्षतक भगवान् के दर्शन के लिए साधन करते रहे, और अपने साधन में सफलता प्राप्त की । यह ८५ वर्ष जीवित रहे, परन्तु भगवद्-भजन कभी नहीं छोड़ा । सदा भगवान् के ध्यान में ही मगन रहा करते थे । साधन के दिनों में इनका खाना बहुत कम हो गया था । बस, एक तोला भोजन में २४ घण्टे व्यतीत करते थे ।

× × × ×

उनसे यदि कोई कुछ पूछता, तो वह ऐसा चुभता उत्तर देते थे, कि वह झट समझ में आ जाता था । एक दिन एक मुसलमानने पूछा, 'आप अपने चेलों को गोश्त खाने से और जानवरों को मारने से क्यों मना करते हैं ?' उन्होंने जवाब दिया, कि 'भाई, जो खुदा की तलाश में है, उसका दिल ही काबा है । इसलिए जैसे काबे को जानेवाले के लिए गोश्त खाना और जानवर मारना ठीक नहीं है, वैसे ही जो खुदा को दिल के काबे में तलाश करें, उनके लिए भी इस ज़ियारत (तीर्थ-यात्रा) में यह बातें ठीक नहीं हैं ।'

एक मनुष्यने आज़र कैवान से पूछा कि, 'हज़रत, दुनियाँ में इतने मज़हब और फ़िर्के हैं, फिर किस पर विश्वास किया जाय कि कौन-सा ठीक है ?' आज़र कैवानने जवाब दिया, 'बस इस बात पर विश्वास करना चाहिए कि खुदाने अबतक जो कुछ चाहा किया और आगे को भी जो उसकी मर्ज़ी हो वह करे ।'

एक दिन एक मनुष्यने आकर कहा, "मैंने पक्का विचार कर लिया है, कि दुनिया को छोड़ दूँ और इसके बन्धन तोड़ दूँ ।" आज़र कैवानने कहा, 'बहुत अच्छा ।' कुछ दिन पीछे वह मनुष्य फिर आया और बोला कि 'मैं अभी माला, कमंडल, गुदड़ी और फ़क़ीरों के और सामान बनाने में लगा हुआ हूँ । जब यह सब बन जायगा, तो संन्यासी हो जाऊँगा ।' आज़र कैवानने कहा 'भाई, संन्यास या दरवेशी तो सब सामान के छोड़ने से होती है, न कि चीज़ों के जमा करने की चिन्ता से । तुम अभी संन्यास के योग्य नहीं हो ।'

एक बार एक सौदागर दरवेश हो गया और उसने अपने बहुत-से चेले बना लिये । एक दिन वह आज़र कैवान के पास आया और बोला कि, 'जब मैं मालदार था तब मुझे चोरों का हमेशा डर लगा रहता था, कि कहीं वे मुझे लूट न ले जायँ, मगर जबसे मैं दरवेश हुआ हूँ, तबसे चोरों का डर चला गया और सुख की नींद सोता हूँ ।' आज़र कैवानने कहा "ठीक है, तब चोर तुझको लूटते थे, अब तू लोगों को लूटेगा । दरवेशी दुनिया के झगड़ों में आगना नहीं है, बल्कि खुदा को याद करना है ।"

फरज़ाना खुशी लिखता है, कि "जब मैं जवान था, तब मैं किसी ऐसे गुरु की तलाश में था, जो पक्षपात-रहित हो । मैंने ईरान, तूरान, रूस और हिन्द के कितने ही ईसाई पादरी, मुसलमान और हिन्दू विद्वानों को देखा । वह कहने को तो पक्षपात-रहित बनते थे, पर पक्षपात रहित थे नहीं । सभी अपने-अपने धर्म को अच्छा कहकर उस धर्म को स्वीकार करने को कहते थे । मैं अपना धर्म छोड़ना नहीं चाहता था । एक रात को मैंने स्वप्न देखा, कि एक बड़ी भारी नदी है । उसमें से कई नहरें निकलती हैं और वह चक्कर काटकर फिर उसी नदी में मिल जाती हैं । मुझे प्यास लगी, तो मैं नहरों से पानी पीने को गया । वहाँ मैंने देखा कि उनके किनारे कीचड़ से भरे हैं, और मैं पानीतक नहीं पहुँच सकता । जब मुझे बहुत कष्ट हुआ और खुदा से प्रार्थना की, कि मुझे पानीतक पहुँचा, उस समय एक आवाज़ आई, कि भाई तू नहरों में क्यों भूलता-भटकता है ? नदी में जाकर पानी क्यों नहीं पीता ? जब मैंने नदी की ओर मुँह किया तो पहिले मलोक को देखा । उसने कहा कि 'यह नदी आज़र कैवान है । तू इसीके पास जा ।' मेरी आँखें खुल गईं । मैं आज़र कैवान के पास गया और उसे पक्षपात-रहित पाया ।"

ज्वालाप्रसाद सिंहल एम० ए०

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १५ जून, १९३४

अस्पृश्यता आज जैसी मौजूद है

हरिजन-संपादकने एक सज्जन का लिखा हुआ एक पत्र मेरे पास भेजा है। पत्र में लिखा है :—

"९ मार्च के 'हरिजन' में मैंने देखा, कि गांधीजीने अपने भाषण में यह कहा है कि 'अस्पृश्यता के समर्थन में कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है।' महात्माजी के इस आन्दोलन का समर्थन करनेवाले पंडितों में एक सब से धुरंधर पंडित हैं काशी-विश्वविद्यालय के महामहोपाध्याय श्री प्रमथनाथ तर्कभूषण। गत वर्ष उन्होंने गांधीजी को अस्पृश्यता-निवारण के पक्ष में जो पत्र लिखा था, वह उन्होंने प्रकाशित कर दिया है। तर्कभूषणजीने उस पत्र में लिखा है, कि अस्पृश्यता के समर्थक श्लोक शास्त्रों में मिलते तो हैं, पर ऐसे भी श्लोक मौजूद हैं, जिनमें कहा गया है, कि मंत्रदीक्षा और भगवद्भक्ति के द्वारा अस्पृश्यजन भी शुद्ध हो सकते हैं। इस तरह तर्कभूषणजी के कथनानुसार तो जिन चांडालों को मंत्रदीक्षा नहीं दी गई और जो भगवान् के भक्त नहीं हैं, वे शास्त्रीय दृष्टि से अस्पृश्य हैं। इसलिए गांधीजी के इस मत का समर्थन तर्कभूषणजी नहीं कर रहे हैं, कि 'अस्पृश्यता के समर्थन में कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है।'

क्या आप कृपाकर बतायेंगे, कि किन पंडितोंने गांधीजी से यह कह दिया है, कि अस्पृश्यता के समर्थन में कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है ?

गांधीजीने पहले खुद ही लिखा था, कि सनातनियोंने ऐसे अनेक श्लोक उन्हें बताये हैं, जिनसे कि अस्पृश्यता का समर्थन होता है, पर उन श्लोकों को वह प्रामाणिक इसलिए नहीं मानते, कि वे सदाचार के मूल सिद्धान्तों के विपरीत पड़ते हैं।

अब गांधीजी के इस हाल के वक्तव्य का, कि अस्पृश्यता के समर्थन में कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है, उनके उस पहले कथन के साथ कोई मेल नहीं बैठता, कि अस्पृश्यता के समर्थन में श्लोक तो हैं, पर सदाचार के विरोधी होने के कारण वह उनकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं करते।

इस प्रत्यक्ष असंगति के सम्बन्ध में क्या आप कृपाकर 'हरिजन' में कुछ स्पष्टीकरण करेंगे ?"

यह तो सभी जानते हैं, कि आजकल अस्पृश्यता के विषय में जब भी मैं बोलता हूँ, तो मेरा मतलब उस अस्पृश्यता से होता है, जिस रूप में कि वह आज बरती जाती है अथवा जिस तरह हम उसे आज समझते हैं। जो बात मैंने हज़ारों सभाओं में कही है, वही फिर कहता हूँ, कि आज हम जिस अस्पृश्यता का पालन कर रहे हैं उसके समर्थन में कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है। महामहोपाध्याय श्री प्रमथनाथ तर्कभूषणने मुझे जो पत्र लिखा था, उसका मुझे भलीभाँति स्मरण है। इस अदृश्य अस्पृश्यता-सिद्धांत के खण्डन में उन्होंने बड़ा ही प्रबल तर्क दिया है। उनका वह पत्र मेरे कथन का इस अर्थ में समर्थन ही करता है, कि एक भी अस्पृश्य सदा के लिए अस्पृश्य नहीं बना रह सकता। जब एक बार यह मान लिया गया कि केवल द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्र का उच्चार करने से कोई भी अस्पृश्य 'स्पृश्य' हो सकता है, तब अस्पृश्यता का मसला उसी वक्त हल हो गया। जैसी अस्पृश्यता आज मानी या बरती जाती है, उसके समर्थन में सनातनियोंने अब तक एक भी शास्त्रीय वचन उपस्थित नहीं किया।

अब मर्दुमशुमारी का गोरखधन्धा लीजिए। मर्दुमशुमारी के काग़ज़ों में एकबार जो अनेक जातियाँ अस्पृश्य शुमार करली जाती हैं, दूसरी बार वे ही स्पृश्य मानली जाती हैं और दूसरी कुछ नई जातियाँ अस्पृश्य लिखली जाती हैं ! निश्चय ही शास्त्रों में ऐसा कोई प्रमाण नहीं है, कि जिससे लोगों पर अस्पृश्यता की छाप लगा देनेवाले मर्दुमशुमारी के इन आँकड़ों को हम स्वीकार करलें। और आज हमलोग जिस अस्पृश्यता का पालन कर रहे हैं उसका सम्बन्ध तो सिर्फ उन्हीं करोड़ों नर-नारियों से है, जो मर्दुमशुमारी के काग़ज़ों में अस्पृश्य दर्ज कर लिये गये हैं। इसी प्रकार उन बेचारों के साथ उनके प्रांतों या ज़िलों में जैसा बरताव किया जाता है, उसके लिए भी शास्त्रों में कोई आधार नहीं है। मैंने यह अवश्य कहा है, कि सनातनियों-ने जिस अस्पृश्यता का वर्णन किया है उसके समर्थन में उपस्थित किये गये शास्त्रवचन हिंदूधर्म के मूल सिद्धांतों के विरोधी हैं। इसलिए खुद शास्त्रों के ही बताये हुए शास्त्रार्थ के नियमों के अनुसार, ऐसे वचनों को अप्रामाणिक मानकर ग्रहण नहीं करना चाहिए। इससे जब मैं यह कहता हूँ, कि जो अस्पृश्यता आज बरती जाती है उसके समर्थन में कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है, तब मेरे किसी लेख या कथन में कोई असंगति नहीं आती। हाँ, स्वच्छता के लिए एक तरह की अस्थायी या क्षणिक अस्पृश्यता मानने के प्रमाण शास्त्रों में काफ़ी मिलते हैं। पर यह अस्पृश्यता वह अस्पृश्यता नहीं है, जो बुद्धि या सदाचार की विरोधी हो। मैं जिस अस्पृश्यता के खिलाफ़ लड़ रहा हूँ, वह तो अन्तर की वह कलंक-कालिमा है, जो जन्म के साथ ही लगी आती है और लाख धोओ, पर छूटती नहीं।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

अतिशयोक्ति से बचो

पंडित लालनाथने मेरा इस ओर ध्यान आकर्षित किया है, कि अस्पृश्यता-निवारण का समर्थन करनेवाले कुछ अख़बारोंने देवघर की दुर्घटना के बारे में बहुत बढ़ा-चढ़ाकर लिखा है और मेरी मोटर के हुड पर लाठियाँ चलानेवाले लोगों पर यह इलज़ाम लगाया है, कि उनका इरादा मेरी जान लेने का था। विरोध-प्रदर्शन करनेवालों पर ऐसा कोई दोष नहीं लगाया जा सकता, कि उनका इरादा मेरी जान लेने का था। वहीं से बिना दस्तख़त का एक पर्चा भी प्रकाशित हुआ है। उसमें सुधारकों के विरुद्ध प्रदर्शन करनेवालों को मार डालने की धमकी दी गई है। मैं यह नहीं मान सकता, कि यह बेनाम का पर्चा किसी

सम्प्रदायी मंडल या व्यक्ति का छपाया हुआ है। जहाँतक मैं जानता हूँ, कलकत्ते के जिन सनातनियोंने मन्दिर-प्रवेश बिल के विरोध में सभा इत्यादि करने का जो दिन नियत किया था, उस दिन उनके विरुद्ध न तो कोई प्रदर्शन ही किया गया और न उन्हें कोई नुकसान ही पहुँचाया गया। फिर भी इस बात पर मैं जितना भी ज़ोर दूँ उतना थोड़ा है, कि सुधारकों को मन, वचन और कर्म से अहिंसक रहना चाहिए। उन्हें इन सनातनियों के विरोध-प्रदर्शनों पर कोई ध्यान नहीं देना चाहिए। मैंने जहाँतक देखा है, जनता इन सनातनियों के विरोध-प्रदर्शनों का तनिक भी समर्थन नहीं कर रही है। कुछ भी हो, उनकी भावना के प्रति आदर दिखाकर ही हमें उन्हें जीतना है। उनके कार्यों के प्रति हमें ऐसी कोई बात मुँह से नहीं निकालनी चाहिए, जिससे वे चिढ़ें या गुस्सा हों।

मो० क० गांधी

अनुकरणीय

मध्यप्रांतीय सरकार को मैं उसकी इस घोषणा पर कि, अब से तथोक्त 'डिप्रेस्ड क्लासेज़' (दलित जातियाँ) को 'हरिजन' और क्रिमिनल ट्राइब्स. (जरायमपेशा जातियाँ) को 'घुमक्कड़' कहा जायगा, बधाई देता हूँ। अवश्य ही 'डिप्रेस्ड क्लासेज़' और 'क्रिमिनल ट्राइब्स' ये दोनों नाम भद्दे अपमानजनक थे। हमें आशा करनी चाहिए, कि दूसरी प्रांतीय सरकार भी मध्य-प्रांतीय सरकार के इस सुन्दर उदाहरण का अनुकरण करेंगी।

मो० क० गांधी

सच्चा साधु

(संत गरीबदास)

सोई साध अगाध है आपा बिसरावै,
परनिंदा नहिं संचरै, चुगली नहिं खावै।
काम क्रोध तृष्णा नहीं, आसा नहिं राखै;
साँचे सूँ परचा भया, फिर कूड़ न भाखै।
एकै नजर निरंजना सब ही घट देखै;
ऊंच नीच अंतर नहीं, सब एकै पेखै।
सोई साध-सिरोमनी जप तप उपकारी;
भला भला उपदेश दे दुर्लभ संसारी।
अकल यकीन पठायदे भूले कूँ फेरै;
सो साधू संसार में हम बिरले भेटै।
सूतक खोवैं, सत कहै, साँचे सूँ लावैं;
सो साधू संसार में हम बिरले पावैं।
निरख-निरख पग धरत हैं, जिवहिंसा नाहीं;
चौरासी-तारन-तरन आये जगमाहीं।
इस सौदेकूँ करहैं सौदागर सोई;
भरे जहाज उतारि दे औसागर कोई।
भेष धरैं भागे फिरैं, बहु साखी सीखैं;
जानैं नाहिं बिबेक कूँ खर के ज्यूँ रीकैं।
खास मुकामा दरस है जो अरस रहंता;
उन्मुनि में तारी लगी, जहँ अजप जपंता।
सुख-महल अस्थान है जहँ इस्थिर डेरा;
'दास गरीब' सुजान है सत साहिब मेरा॥

गांधीजी का जाजपुर का भाषण

[गांधीजीने जाजपुर (कटक) की सार्वजनिक सभा में २-६-३४ को निम्नलिखित भाषण दिया था।]

"आपने मुझे जो मानपत्र दिया है उसमें यह स्मरण दिलाया है, कि यह क्षेत्र एक तीर्थक्षेत्र है। यह कैसा अच्छा होता, यदि आप इसके साथ-साथ यह भी कह सकते, कि इस तीर्थक्षेत्र के सब मन्दिर हरिजनों के लिए खुल गये हैं। मैंने अनेक बार कह दिया है, कि जिस मन्दिर में हरिजनों के प्रवेश करने का अधिकार नहीं, उस मन्दिर में मूर्त्ति तो है, पर वहाँ भगवान् की प्रतिष्ठा नहीं हुई है।

भगवान् को हम पतित-पावन कहते हैं। दरिद्रनारायण कहते हैं। दयानिधि कहते हैं। करुणासागर कहते हैं। भगवान् के ऐसे हज़ारों विशेषण हैं, जिनसे हम सिद्ध कर सकते हैं, कि भगवान् किसी एक ख़ास क़ौम के नहीं हैं। न ब्राह्मण के हैं, न क्षत्रिय के हैं, किन्तु वह सब के हैं। पर हम तो अपने अभिमान में डूबकर यों कहते हैं, कि भगवान् केवल हमारे लिए हैं, दूसरों के लिए नहीं। जो ऐसा मानते हैं, उनके लिए मैंने यह खोल-खोलकर सुना दिया है, कि अगर शास्त्र में कुछ सत्य है, शास्त्र के सिद्धांतों में कुछ सत्य है, तो जिस मन्दिर में हरिजनों के जाने का अधिकार नहीं है, उस मन्दिर में भगवान् नहीं हैं, वहाँ तो सिर्फ़ पाषाण है।

जो बात सामान्य बुद्धि समझ लेती है, उसे हम न समझें और उच्च-नीच भाव को अपने दिलों में रखकर हरिजनों का बहिष्कार करें, तो हिंदू धर्म और हिंदू जाति जीवित नहीं रह सकती।

मानपत्र में आपने जो लिखा है, उससे तो यह ध्वनि निकलती है, कि अस्पृश्यता का निवारण करने के लिए प्रचंड प्रचार किया जा रहा है, पर इस युग में अस्पृश्यता निर्मूल नहीं हो सकती। जिस प्रकार मनुष्य आँखों से देख लेता है, उसी प्रकार मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, कि अस्पृश्यता, हम इच्छा करें या न करें, नष्ट होने को ही है। कालचक्र की गति को कोई भी मनुष्य आजतक रोकने में समर्थ नहीं हुआ है। अगर हम अपनी इच्छा से हरिजन भाइयों को अपना लेंगे, जितने अधिकार हमारे हैं वे सब उन्हें दे देंगे, तो ईश्वर के दरबार में, ईश्वर की किताब में हमारा यह पुण्यकार्य माना जायगा। हमारी अनिच्छा से अस्पृश्यता मिट जाने से जो परिणाम होगा, तथा हमारी इच्छा से उसके मिटने का जो परिणाम निकलेगा, इन दो बातों को मैं बता देता हूँ। हमारी अनिच्छा से अस्पृश्यता के मिटने का अर्थ है हिंदूधर्म का मिटजाना। हिंदूधर्म के मिटजाने से कोई अछूत तो नहीं रह सकता। पर यह कल्याणकारी नहीं है। किंतु हिंदू-धर्मावलंबियों की इच्छा से, सवर्ण हिंदुओं के पश्चात्ताप से, उनकी आत्मशुद्धि से अस्पृश्यता का मिटना गौरव की बात होगी, पुण्य की बात होगी। और हिंदूधर्म का जो आज नाश हो रहा है उसका पुनरुद्धार होगा, उन्नति होगी। हिंदूजाति की उन्नति से भारत की और केवल भारतवर्ष की ही क्यों, इससे तो सारे जगत् में भ्रातृभाव और मैत्रीभाव पैदा हो जायगा। आपके सामने मैंने दो मार्ग रख दिये हैं—एक उन्नति का, दूसरा अवनति का। अब यह निश्चित करना आपका कर्त्तव्य है, कि आपको किस मार्ग से जाना चाहिए।

एक मुसलमान भाईने मुझे एक ख़त लिख भेजा है। वह चाहते हैं, कि उसका जवाब मैं यहीं दे दूँ। उनके ख़त का आशय यह है, कि आजतक मैंने जो-जो प्रयत्न किये हैं उनमें मुझे निष्फलता ही हासिल हुई है। वह लिखते हैं, तो आपने क्यों ख़ामख़ाँ यह एक और काम हाथ में ले रखा है? उदाहरण के लिए वह कहते हैं—'आपने हिंदू-मुसलमान-ऐक्य के लिए बड़ा भारी प्रयत्न किया, मगर उसका कोई फल नहीं हुआ, वैमनस्य ही कुछ और बढ़ गया।' इसके उत्तर में मैं इतना ही कहना चाहता हूँ, कि मैं यह स्वीकार नहीं करता कि मुझे अपने प्रयत्नों में निष्फलता मिली है, ख़ासकर हिंदू-मुसलमानों के ऐक्य के प्रयत्नमें। मेरा यह अखण्ड विश्वास है, कि जो कुछ भी प्रयत्न हिंदू-मुसलमानों की एकता के लिए किया गया है—यद्यपि आज का राजनीतिक वातावरण देखते हुए उनमें कुछ वैमनस्य बढ़ गया है—उससे एकता बढ़ी ही है। मेरा यह भी अखण्ड विश्वास है, कि हिंदू और मुसलमानों की एकता का प्रयत्न इतिहास में लिखा जायगा कि यह बड़ा अच्छा था और ऐसा ही करना चाहिए था। लेकिन हम मान भी लें, कि मेरे सारे प्रयत्न निष्फल हो गये हैं, तो भी मुझे पछतावा नहीं है; क्योंकि मैंने एक सत्य के पुजारी की हैसियत से ही अपने जीवन में ये सारे प्रयोग किये हैं। इसलिए मेरे दिलमें उनके लिए कोई पश्चात्ताप नहीं है।"

साप्ताहिक पत्र

[२६]

निर्देशिका

२६ मई

निश्चिन्त कोइली से काकटिया, पैदल, ६ मील। निश्चिन्त-कोइली में धन-संग्रह ११)७ काकटिया: सार्वजनिक सभा तथा धन-संग्रह २६।≈)। काकटिया से सलार, पैदल, २ मील। सलार: सार्वजनिक सभा तथा धन-संग्रह ११।-)।

२७ मई

सलार से भागवतपुर, पैदल ३ मील। भागवतपुर: सार्वजनिक सभा और धन-संग्रह ३१।)॥ भागवतपुर से केन्द्रपाड़ा, पैदल, ५ मील। केन्द्रपाड़ा: सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह २०।≈)४

२८ मई

केन्द्रपाड़ा: मौन-दिवस।

२९ मई

केन्द्रपाड़ा: 'हरिजन' का संपादन-कार्य, सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ४५०॥।-)१६ केन्द्रपाड़ा से बारीमूल, पैदल ३ मील। बारीमूल, पैदल ३ मील। बारीमूल: सभा तथा धन-संग्रह ६।≈)१६

३० मई

बारीमूल से इन्दुपुर, पैदल ५६ मील। इन्दुपुर: सार्वजनिक सभा, मानपत्र एवं धन-संग्रह ९३।-)७६। इन्दुपुर से अंगेचीपुर, पैदल ३ मील। कल्याणपुर: सार्वजनिक सभा, मानपत्र तथा धन-संग्रह २२॥।)७६। काळीकाटिया और कैपाड़ा में धन-संग्रह २८)४६। अंगेचीपुर में सभा तथा धन-संग्रह २०≈)५६

३१ मई

अंगेचीपुर से बारी, पैदल ४ मील। बारी: सार्वजनिक सभा, मानपत्र तथा धन-संग्रह १४०॥।-)॥। बारी से सहसपुर पैदल ४६ मील। नेवका में सभा और धन-संग्रह १२)॥। सहसपुर: सार्वजनिक सभा तथा धन-संग्रह ४≈)१

१ जून

सहसपुर से पुरुषोत्तमपुर, पैदल ५ मील। पुरुषोत्तमपुर: सार्वजनिक सभा तथा धन-संग्रह ६८-)२ पुरुषोत्तमपुर से बुढ़ा-घाट, पैदल ३ मील। बुढ़ाघाट: सार्वजनिक सभा तथा धन-संग्रह २५।-)१०६

सप्ताह में कुल यात्रा: ४४ मील पैदल।

धर्म क्षेत्र

इस सप्ताह भी कोई ऐसी ख़ास उल्लेखनीय बात नहीं हुई। किंतु भागवतपुर में गांधीजीने अवश्य एक नई बात की। यहाँ उन्होंने तकली पर सूत कातने की व्यावहारिक शिक्षा लोगों को दी और इस तरह घरेलू उद्योग के महत्व पर काफ़ी ज़ोर दिया।

केन्द्रपाड़ा का स्वागत भी ख़ूब रहा। यहाँ एक बात देखने की थी। वह यह कि डाक्टर वहीदुल्लाह साहब के साथ बहुत-से मुसलमान भाई गांधीजी के स्वागत में शामिल हुए, और हिंदुओं की 'हरि बोलो' ध्वनि के साथ-साथ उन्होंने 'अल्लाहो अकबर' के नारे से आकाश को गुंजा दिया।

हरिजनों की कीर्तन-मंडलियाँ तो प्रायः सभी जगह हमारे साथ साथ चलती हैं। उनके भक्तिपूर्ण हरिकीर्तन से हमारी सारी थकावट दूर हो जाती है।

तीर्थयात्रा में कभी-कभी मुसीबत भी तो उठानी पड़ती है। हम लोगों को भी इसका थोड़ा अनुभव शुक्रवार की रात को बुढ़ा नदी के तटपर हो गया। घुमड़-घुमड़कर काली घटा घिर आई और मेह पड़ने लगा। वहाँ कोई गाँव-खेड़ा तो था नहीं। मैदान था। एक नन्ही-सी झोपड़ी थी, जिसमें मुश्किल से पाँच-सात आदमी उकड़ूँ बैठ सकते थे। उसी की गांधीजी तथा हममें से कुछ लोगोंने शरण ली। और बांस-फूस की दो टट्टियाँ खड़ी करके एक आधारी रावटी भी बना ली। उसमें हम बीस बाईस अधभीगे आदमी बैठे रहे। रामराम करके दो तीन घंटे कटे। पर जब हमने देखा कि कुछ छोटे छोटे बच्चे, जो अपने मा बाप के साथ गांधीजी का दर्शन करने आये थे, पानी में कांप रहे हैं, तब हम अपनी आफत भूल गये।

इस सप्ताह जिस देश में से हम गुज़रे, वहाँ लगभग हरसाल बाढ़ आती है। मीलों तक पानी-ही-पानी दिख जाता है। बाढ़ का पानी कितना ऊँचा चढ़ जाता है यह जानने के लिए जहाँतहाँ दरख़्तों पर निशान लगा दिये गये हैं। हर एक नया झोंपड़ा एक बनावटी टीले पर बनाया गया है। जब बाढ़ आती है, तब ये टीलेदार झोंपड़े टापुओं में परिणत हो जाते हैं। उस वक़्त छोटी-छोटी डोंगियों से काम लिया जाता है। पर यह बाढ़-दुर्दलित देश अपनी पवित्रता, ऐतिहासिकता और साहित्य कला के लिए काफ़ी प्रसिद्ध है।

वैतरणी नदी के तीर पर जाजपुर (शुद्ध शब्द 'याजपुर' अर्थात् यज्ञों का नगर) बड़ा सुन्दर क़स्बा है। यह महाराज ययाति-केसरी का बसाया हुआ है। यहाँ उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया

था। उड़ीसा में जाजपुर का माहात्म्य काशीपुरी के समान है। सोलहवीं सदी में उड़ीसा का अंतिम राजा मुकुंददेव पराजित होकर यहीं युद्ध में मारा गया था।

चाड़ी गाँव के पास ही ललितगिरि, उदयगिरि और रत्नगिरि नाम की पहाड़ियाँ हैं। पुष्पगिरि के महान् संघ के लिए यह पुरातन पहाड़ियाँ प्रसिद्ध हैं। सातवीं सदी में सुप्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन साँग यहाँ आया था। बंगला के महान् लेखक स्व० बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय जब जाजपुर के सबडिवीज़नल अफ़सर थे, तब उन्हें इन पहाड़ियों के देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। बंकिम बाबू अपने 'सीताराम' उपन्यास में लिखते हैं :—

"हमारे धन्य भाग्य, जो हम प्राचीन बौद्ध पहाड़ियों का दर्शन कर रहे हैं। पर जब हम इस पर विचार करते हैं, कि हमारे देशवासी किसी विदेशी के चरणों के पास बैठकर ही कला-कौशल की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं, तब ऐसा लगता है, कि शर्म के मारे हमारा मर जाना ही अच्छा, यद्यपि वह विदेशी शिल्पकार हमें अपने बंधु-बांधव की भाँति प्रिय है।"

एक नमूनेदार मानपत्र

कल्याणपुर की जनताने गांधीजी को जो मानपत्र उपस्थित किया था, उसे मैं यहाँ ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर देने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। यह मानपत्र सभी हरिजन-सेवकों को सेवा का मार्ग दिखायगा, ऐसी आशा है :—

"हमारा कल्याणपुर गाँव बहुत बड़ा है। आबादी काफ़ी अच्छी है। हिंदुओं की सभी जातियाँ यहाँ हैं। अछूत भी हैं। अछूतों के अंदर भी कई श्रेणियाँ हैं। मोटे तौर पर अछूत जातियों के ये दो विभाग किये जा सकते हैं—

(१) वे अछूत, जिनके छू जाने से ही छूत लग जाती है। ये हैं पान, कांड्रा और हाड़ी।

(२) वे अछूत, जिनका स्पर्श अपवित्र समझा जाता है, यद्यपि सवर्ण हिंदू कुछ ख़ास-ख़ास प्रसंगों पर उन्हें छूकर उनकी सेवा क़बूल करते हैं।

'गोखा' लोग मछलियाँ पकड़-पकड़कर बेचते हैं। यह नियम है, कि सिवा गोखा जाति के दूसरे अछूत अगर मरी हुई मछली को छूलें, तो वह नापाक हो जाती है और फिर उसे कोई खाता नहीं। पर गोखा इस नियम से बरी हैं। उसके हाथ की मुर्दार मछली तो बड़े-बड़े ब्राह्मण भी बड़े शौक़ से ग्रहण करते हैं।

धोबी कपड़े धोते हैं। सूखी कपड़ा सिवा धोबी के दूसरा कोई अछूत छूले तो उसमें छूत लग जायगी। और कपड़े धोकर दे देने के बाद फिर धोबी भी उन्हें नहीं छू सकता है! धोबी जब कपड़े धोकर लायगा, तो उन्हें पुरुष नहीं छुएँगे, स्त्रियाँ ही इस जोखम को अपने ऊपर लेंगी!

चमार लोग ताड़ी खींचते हैं। नियम तो यह है, कि अछूतों की छुई हुई खाने की चीज़ अछूत हो जाती है। लेकिन चमार नारियलों को तोड़ते हैं और जो पानी पीना चाहे, वह ब्राह्मण ही क्यों न हो, उसके लिए नारियल का मुँह भी चट से खोल देते हैं।

(३) कुछ ऐसी भी अछूत जातियाँ हैं, जिन्हें दिन में कुछ समय छुआ जा सकता है, पर हमेशा नहीं।

'राधी' और 'सेली': स्नान करने के पहले सवर्ण हिंदू इन्हें छू सकते हैं। यह ध्यान देने की बात है, कि राधी लोग ही 'चूरा' तैयार करते हैं। उसी चूरा को अगर कोई दूसरी अछूत जाति छूदे, तो वह अस्पृश्य हो जाता है!

फिर अछूतों की ये अनेक श्रेणियाँ आपस में भी एक दूसरे की दृष्टि में अछूत हैं। एक ही जाति की कई उपजातियाँ हैं, जो आपस में न तो खाती-पीती हैं, न शादी-ब्याह करती हैं। जैसे, चमारों की चार अलग-अलग उपजातियाँ हैं और हाड़ियों की दो।

सबसे निम्न श्रेणी के अछूत हैं हाड़ी, कांड्रा, पान और गोखा। ज़मीन इनमें किसी के भी पास नहीं। मेहनत-मजूरी करके ही रोज़ कमाते-खाते हैं। हाड़ी लोग बाँस की चीज़ें बनाते और मेहतर का काम करते हैं। और गोखा जाति का धंधा है मछली पकड़ना।

यह लोग न तो मन्दिरों में पैर रख सकते हैं, न कुओं पर पानी भर सकते हैं, न स्कूलों में जा सकते हैं, न घाटों पर नहा-धो सकते हैं। हाँ, सड़कों पर चलने की मनाही नहीं है, पर बचकर चलना पड़ता है। गाँव के बाहर गंदी-से-गंदी जगह में ये लोग रहते हैं।

दकियानूसीपन हमारे प्रांत में भी वैसा ही है, जैसा कि दूसरे प्रांतों में है। यह बात सवर्ण हिन्दुओं में ही नहीं, हरिजनों में भी है। हरिजन नहीं चाहते कि सवर्ण हिंदू उन्हें छूकर अपवित्र बनें। उन्हें भय है, कि इससे कहीं ईश्वरी कोप न हम पर उतर पड़े, इससे अस्पृश्यता मिटाने की धर्म-विरुद्ध बात में हमें नहीं पड़ना चाहिए। दारू पीने और मुर्दार माँस खाने की आदत इनकी अभी साधारणतया गई नहीं है। सफ़ाई से रहना भी इन लोगोंने अभी नहीं सीखा।

अस्पृश्यता-निवारण का कुछ-कुछ कार्य यों तो इस गाँव में सन् १९२० में ही आरंभ हो गया था, पर असली काम तो १९३१ के सितंबर मास से हुआ। १९३२ में यह काम रुक गया। १९३३ में जब सारे हिंदुस्तानने यह काम ज़ोरों से उठाया और उसके बाद ही आपने जब जेल में अनशन किया, तब हमारा यह गाँव हमारे कुछ कार्यकर्त्ताओं का बड़ी निर्दयता के साथ बहिष्कार करने में लगा हुआ था। धन्यवाद है ईश्वर को, कि उसने हमारे कार्यकर्ताओं को उस तूफ़ान का सामना करने की शक्ति दी और वे अपने विश्वास पर वैसे ही अटल खड़े रहे।

अछूतों के कष्टों की कहानी कहाँतक कहें। सबसे बड़ी मुसीबत जो वे आज झेल रहे हैं, वह है पीने के पानी की बेतरह कमी। जेठ मास में बेचारे एक-एक बूँद पानी के लिए तड़पते हैं। झुलसानेवाली दुपहरी की कड़ी धूप में उन्हें प्रायः नदी से पानी लाना पड़ता है। बरसात में तो हरिजन-बस्ती और नदी के बीच का रास्ता बिलकुल बंद हो जाता है। जहाँ-तहाँ पानी-ही-पानी दिख आता है। उन दिनों कीचड़ में होकर हरिजनों को उस नदी का गँदला पानी लाने के लिए जाना पड़ता है। रास्ते में कमरतक पानी भरा रहता है। महीनों यह दशा रहती है। इसलिए ठक्कर बापाने जब हरिजनों के लिए कुएँ खुदवाने के बारे में पूछताछ की, तो कल्याणपुर के हरिजनों-ने तुरंत जाजपुर-हरिजन-सेवक-संघ के मंत्री के द्वारा ५—४—३४ को सहायता के लिए प्रार्थनापत्र भेज दिया।

बुरे विचार, आलस्य, उच्चता का अभिमान आदि ये भी तो अस्पृश्यता के ही रूप हैं। हम अस्पृश्यता के अपराधी तो हम सभी हैं। हम अपने इन सब दोषों को जानते हैं, और आपके सामने क़बूल करते हैं। आप एक आध्यात्मिक डाक्टर हैं, इसमे आप हमारी तमाम नैतिक व्याधियों को दूर करने और हमारी आत्मा को शुद्ध बनाने में भरसक प्रयत्न करें, यही आपकी सेवा में हमारी प्रार्थना है।"

वालजी गोविंदजी देसाई

प्रांतीय कार्य-विवरण

राजपूताना

[एप्रिल, १९३४].

धार्मिक—वाडोली (जयपुर) मे एक मंदिर तथा स्यारोली (जयपुर) में दो मंदिर हरिजनों के लिए खोल दिये गये। ये दोनों गाँव वज़ीरपुर तहसील के अंतर्गत हैं।

विभिन्न स्थानों में सवर्णों और हरिजनोंने दस बार भजन-कीर्तन किया।

हरिजन-समाज में ९ बार कथाएँ हुईं।

शिक्षा—सार्वजनिक पाठशालाओं में १५ हरिजन विद्यार्थी दाख़िल कराये गये।

जयपुर राज्य के स्यारोली, वाडोली और खण्डीप गाँवों में ३ दिवस-पाठशालाएँ स्थापित की गईं। और १ दिवस-पाठशाला महुआ (जयपुर) में खोली गई।

चिरावा (जयपुर) और खण्डीप (जयपुर) में हरिजनों के लिए एक-एक रात्रि-पाठशाला खोली गई।

संघ के मंत्री तथा इन्सपेक्टरने संघ-द्वारा संचालित लगभग १०० पाठशालाओं का अर्द्धवार्षिक निरीक्षण किया।

आर्थिक—रामगढ़ (जयपुर) के १३ मेहतरों को मामूली शर्तों पर कर्ज़ा दिया गया।

२७५ हरिजन विद्यार्थियों को लिखने-पढ़ने का सामान मुफ्त दिया गया।

११६ हरिजन छात्रों को मुफ्त कपड़े दिये गये। श्रीकृष्ण-पाठशाला, फ़तेहपुर (जयपुर) के हरिजन विद्यार्थियों को वार्षिक उत्सव के अवसर पर मिठाई बाँटी गई।

पिलाणी के छात्रालय मे रहनेवाले एक फ़तेहपुरवासी हरिजन विद्यार्थी को ॥) का इनाम दिया गया।

स्वच्छता व आरोग्यता—२७ विभिन्न स्थानों की हरिजन बस्तियों का संघ के कार्यकर्ताओंने ५४४ बार निरीक्षण किया।

१७ स्थानों के ३३४ हरिजन विद्यार्थियों को स्नान कराया गया।

११७३ हरिजन बालकों को साबुन दिया गया।

नारेली के हरिजन-मुहल्लों को वहाँ के आश्रमवासियोंने दो बार साफ़ किया।

मद्यमांस-निषेध—१०५३ हरिजनोंने शराब और मुर्दार मांस छोड़ देने की प्रतिज्ञा की।

दवादारू—४८५ बीमार हरिजनों को मुफ्त दवाइयाँ दी गईं। १२ हरिजन रोगियों को बिना फ़ीस लिये उनके घर जाकर वैद्य-हकीमोंने देखा। ४२० हरिजन रोग-मुक्त हो गये।

सामान्य—९३ सवर्ण हिन्दुओंने अस्पृश्यता न मानने की प्रतिज्ञा की।

फ़तेहपुर (जयपुर) की श्रीकृष्ण पाठशालाने अपना वार्षिक उत्सव मनाया, जिसमें हरिजनों के साथ-साथ सवर्ण हिन्दुओंने भी बड़े प्रेम से भाग लिया।

भीलवाड़ा और छोटी सादड़ी (मेवाड़) में संघ की समितियाँ स्थापित की गईं।

दौसा (जयपुर) में हरिजनों के लिए एक कुआँ खुदवाया जा रहा है।

२३ विभिन्न स्थानों में २३०० से ऊपर हरिजनों और ३०० सवर्ण हिन्दुओं को 'हरिजन-सेवक' पढ़कर सुनाया व समझाया गया।

उन्नति-कार्यपर मासिक खर्च—एप्रिल में हरिजनों के उन्नति-कार्यपर निम्नलिखित ख़र्च किया गया :—

पाठशालाओं, आश्रमों और छात्रालयों पर	२०६९।=)११
छात्रवृत्तियाँ	६४।)
पुस्तकें, स्लेटें आदि	३२॥≈)
कपड़े व साबुन	२६।=)
दवाइयाँ	७॥)।
फुटकर	८।-)
कुल	२२०८॥-)२

संशोधन—मार्च मास के विवरण में जो यह छपा है, कि अमरसर (जयपुर) का हरिजन-पुस्तकालय और वाचनालय हरिजन विद्यार्थियोंने स्थापित किया, वह ग़लत है। वह स्वतन्त्र संस्था है।

अमरसर में एक हरिजन को कम ब्याजपर रुपया नहीं दिलाया गया, बल्कि उसे ऋणमुक्त कराया गया।

रामनारायण चौधरी
मंत्री—हरिजन-सेवक-संघ, राजपूताना

एक और अनेक धर्म

मैं सभी धर्मों को प्यार करता हूँ। किसी से मैं घृणा करूँ, ऐसा मुझे कोई कारण ही नहीं मिलता।

चूँकि सत्यमूलक सिद्धांत सभी धर्मों के एक-से ही हैं, इसलिए अगर कोई नादानी से किसी धर्म से नफ़रत करता है, तो वह अपने ही धर्म से नफ़रत करता है।

इसलिए जब मैं समस्त धर्मों को प्यार करता हूँ, तब अपने ख़ास धर्म के प्रति मेरा प्यार और भी ज़्यादा बढ़ जाता है।

तभी अपने धर्म का सच्चा व्यावहारिक ज्ञान मनुष्य को प्राप्त होता है, जब वह दूसरे मत-मज़हबों में अधिक गहरे उतरकर उनका अध्ययन करता है।

धर्म किसी ख़ास क़ौम या ख़ास व्यक्ति की ठेकेदारी नहीं है—वह तो हम सभी के लिए एक-से अभिमान की वस्तु है। जब मैं कहता हूँ कि 'मेरा धर्म' तो इसका मैं यह मतलब निकालता हूँ, कि 'मेरा प्रेम, और मानवी विश्वधर्म का एक रास्ता।'

ए० डब्ल्यू० खाँ

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupte.

संपादक—वियोगी हरि "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २२ जून, १९३४. [संख्या १८

विषय-सूची

उत्कल में पांच दिन

जब गांधीजीने उत्कल में पैदल पर्यटन शुरू किया तो सुना कि सवेरे-शाम छांह में चलते हैं, आम्रकुञ्जों में टिकते हैं, तारों जड़े आसमान के नीचे सोते हैं। खाने को खेतों से ताजी तरकारी मिलती है। आम तो ऊपर ही लटकते रहते हैं, तोड़ लिये और खा लिये। दूध सामने दुहा पी लिया। गांधीजी के साथ कुछ दिन रहने का आनन्द और उनके साथ ऊपर-नीचे, दायें-बायें, प्रकृति के सुहावने दृश्यों का यह मन-मोहक विवरण किसके लिए लुभावना न होगा। आखिर मैं भी पहुँच ही गया। पहुँचते ही देखता हूँ कि गांधीजी ५ फीट लम्बा-चौड़ी एक तंग कोठरी में बैठे लिख रहे हैं। एक लड़का पंखा झल रहा है। बाहर छाया में दरियों पर लोग इधर-उधर पड़े हैं, कोई खा रहा है, कोई सो रहा है।

गांधीजीने कहा, "अच्छे समय पर पहुँचे। कल तो रात को वर्षा के मारे परेशानी रही। रातभर कोई सोया नहीं। एक तंग कोठरी में २५ जनोंने बैठकर रात बिताई।" सुनते ही मेरा माथा ठनका। गांधीजीने मेरी ओर इशारा करके एक भाई से कहा, "अच्छा, इनके खाने का क्या प्रबन्ध है?" मैंने कहा "जी, दूध लिया करता हूँ।" किसीने आहिस्ते से कहा, "दूध तो नहीं है।" अपनी परेशानी छिपाने के लिए मैंने कहा, "कोई चिन्ता नहीं, आमों से काम चल जायगा।" श्रीमलकानीजी मेरे अज्ञान पर मुस्कराते हुए कहने लगे, "यहाँ आम कहाँ?" मैंने साहस करते हुए कहा, "देख लेंगे।" "खा लेंगे" ऐसा तो कैसे कहता। अब हजम होता नहीं, फल-दूध का यहाँ नाम नहीं। गांधीजीने कहा, "अच्छा, नहा तो लो।" कुएँ पर गया। अन्दर झाँका तो पानी में कीचड़ भरा था। ऐसा पानी पीने की तो कौन कहे, पांव धोने में भी सूग आती थी। किसी तरह बदन को साफ सूफ करके पोखरे की पाल पर दरी डालकर सो रहा। सोचा, खाने-पीने को न सही, सो तो लें। दो घंटे के बाद एक स्वयंसेवक दो गांवों से 'हांक' कर पांच बकरियाँ दुहाकर आध सेर दूध लाया। उसे हसरतभरी निगाह से देखकर मैं पी गया। पीने के बाद ही ख्याल में आया, कि न मालूम यह पांच बकरियाँ कितने बच्चों का मन भरतीं। पेट तो आध सेर दूध से कितनों का क्या भरता! फिर लम्बी सांस लेकर लेट रहा। स्व० बंकिम बाबूने भारतवर्ष की वन्दना में इसे 'सुजलां सुफलां शस्य श्यामलां' कहा है। उत्कल में भी जल की कमी नहीं। सुफला भी है। भूमि उपजाऊ है। पर न "सुखदा" है, न "वरदा"। बाढ़ खूब आती है। और शान्तनु जैसे पुत्र पैदा करता था और गंगा उन्हें बहा ले जाती थी, वैसे ही उड़िया बोता है और बाढ़ सब कुछ बहा ले जाती है। जहाँ हम लोग बैठे थे वहीं बाढ़ आने पर पुरसों पानी चढ़ जायगा। खेती नष्ट हो जायगी। पशु मर जायँगे। मकान गिर जायेंगे। घर से निकलना मुश्किल हो जायगा। बीमारी फैल जायगी। और गरीब मरेंगे। बाढ़ के चले जाने पर लोग थके-मांदे फिर खेती करेंगे। फिर झोंपड़ों की मरम्मत करेंगे और फिर बाढ़ से लड़ने की तैयारी में लगेंगे।

शायद बाढ़ की मार से उड़िया इतना शिथिल हो गया है कि अब उसमें उत्साह नहीं। आलसी तो पक्का और शायद दुःख को भूलने के लिए ही अफीम की लत भी लगाली है। उड़िये की आँखों में न तेज है न उत्साह। बाढ़-निवारण के लिए सरकारने एक कमेटी बैठाई। उसने कुछ अच्छी-अच्छी सिफारिशें भी कीं। पचास लाख का खर्च बताते हैं। यदि इन सिफारिशों पर अमल हो जाय तो उड़िये के जीवन में एक नई स्फूर्ति आ जाय, एक नई आशा पैदा हो जाय। पर फुर्सत किसे? बाढ़-निवारण कमेटी की जांच-रिपोर्ट आज सरकारी आलमारियों की शोभा बढ़ा रही है। सुना, सिफारिशों के अमल में लाने से कुछ ज़मींदारों की भी क्षति है, इसलिए भी आगे बढ़ने में रुकावट है। मध्यप्रान्त से पानी चलता है, जो उत्कल में आकर बाढ़ उत्पन्न करता है। रेल न था, तब पानी सीधा समुद्र में जा गिरता था। अब रेल और नहरों के बनने के बाद उनकी पाल के कारण पानी को रुकावट हो गई है ऐसा इस विषय के विशेषज्ञ लोग कहते हैं। कुछ भी हो, उड़िये का तो सत्यानाश है। उड़िया शायद समझता है कि यह प्रारब्ध का दोष है। इससे अकर्मण्य हो गया है। अफीम खाता है और दिन काटता है। दुखी, दरिद्र, दीन उत्कल की यह करुण-कहानी किसका दिल नहीं दहला देगी। यमलोक में पहुँचने के लिए वैतरणी नदी पार करनी पड़ती है, उत्कल में भी वैतरणी नदी है। मानो यह नाम यमलोक और उत्कल का सादृश्य दिखाने के लिए ही किसीने रखा हो। फर्क इतना ही है, कि यमलोक में भूख नहीं लगती, उत्कल में लगती है।

ऐसे प्रदेश में गांधीजी क्या आये मानों भगवान् ही आगये। उत्कल में गोप बाबू का, मेहता बाबू का, जीवराम भाई का अलग-अलग आश्रम है। गांधी-सेवाश्रम नाम का एक और आश्रम है। यह सभी आश्रम उड़ीसा की सेवा में रत हैं। जैसे हाथी के खोज में सभी खोज समा जाते हैं, वैसे बाहर से जितनी संस्थाएँ सेवा के लिए उत्कल में पहुँचती हैं उनके बारे में उड़िया यही समझता है कि यह गांधी के ही आदमी हैं। अब तो गांधीजी स्वयं आ गये, इसलिए उड़िये के हर्ष का क्या ठिकाना। उड़िया समझता है, अब दुःख दूर होगा। इसलिए गांधीजी के सामने कीर्तन करता है, नाचता है, स्त्रियाँ उलूध्वनि करती हैं। दो-दो हज़ार आदमी साथ में चलते हैं, प्रार्थना में हजारों मनुष्य आते हैं, और बड़े जतन से तांबे के टुकड़े पैसे, अधेले, पाई लाते हैं जो गांधीजी के चरणों में रख जाते हैं। "भोजने यत्र सन्देहो धनाशा तत्र कीदृशी!" पर उड़िया भूखा है तो भी गांधीजी को देता है। बीस-बीस कोस से चलकर आनेवाले नरकंकाल का धोती की सात गांठों में से सावधानीपूर्वक एक पैसा निकालकर गांधीजी के चरणों में रख देने का दृश्य सचमुच ही रुलानेवाला होता है।

वर्षा आरंभ होते ही पैदल यात्रा में रुकावटें आने लगीं। गांवों में झोंपड़ियों की तो वैसे ही कमी रहती है और गांधीजी का दल ठहरा सौ-डेढ़सौ आदमियों का। जबतक वर्षा न थी, तब तक तो आकाश के नीचे सो लेते थे। अब झोंपड़ियों की ज़रूरत पड़ने लगी और रात को कष्ट होने लगा। कीड़े-मकोड़े, कनखजूरे बुरी तरह लोगों के बिस्तरों पर चक्कर काटने लगे। एक दिन डेरे के पास ही बड़े-बड़े चार सांप भी देखने में आये। रात को ओस के मारे कपड़े सब के भीग जाते थे। लोगों के बीमार होने की आशंका होने लगी, किन्तु गांधीजी के वातावरण में किसी को इसकी फ़िक्र न थी। मुझे लगा कि मैं गांधीजी से कहूँ कि यदि वर्षा में यह दौरा जारी रहा, तो मंडलीमें बीमारी फैलजाने की आशंका है।

भद्रक से जब हम लोग १२ मील की दूरी पर एक गाँव में पड़ाव डाले पड़े थे तब मैंने इसकी चर्चा छेड़ी। गांधीजी को बात जची। कहने लगे कि, अच्छा, तो कल एक ही मंज़िल में हम भद्रक पहुँच जायँगे। मेरे लिए तो एक मंज़िल में १२ मील तय करना कठिन काम था। इसलिए मैंने मोटर से जाना निश्चित किया। गांधीजी अपने दल के साथ मुझसे अढ़ाई घंटा पूर्व चले और यद्यपि मैं मोटर से चला, तो भी गांधीजी मुझसे आध घण्टा पहले ही भद्रक-आश्रम में पहुँच गये। रास्ते में लोगों से पूछने पर पता चला कि गांधीजी बड़ी तेज़ी से चलते जा रहे थे और उनको पकड़ने के लिए उनके साथवालोंको उनके पीछे-पीछे दौड़ना पड़ता था। पैंसठ वर्ष की अवस्था में गांधीजी की यह शारीरिक शक्ति अवश्य ही चित्त को प्रसन्न करती है। इसका रहस्य उनका संयमी जीवन है। दिन-भर में क़रीब एक सेर दूध और दो छटांक शहद, उबाली हुई तरकारी और कुछ आम यह उनका सारा भोजन है। रातको आम तौर से वह दो-तीन बजे नींद से उठ जाते हैं और जब संसार सोता है तब वह जागते हुए काम करते रहते हैं। इतना शारीरिक परिश्रम इस उम्रमें अवश्य ही एक अद्भुत चीज़ है। जब इतनी फुरती के साथ गांधीजी को १२ मील की मंज़िल तय करते देखा, तो मैंने मन-ही-मन मिन्नत की कि भगवान् हमारे भले के लिए उन्हें लम्बी उम्र दें। जो लोग गांधीजी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में कुछ जानना चाहते हों, वे जान लें कि इन वर्षों में गांधीजी को मैंने इतना स्वस्थ नहीं देखा। देश के लिए यह सौभाग्य की बात है।

उत्कल के सेवकों के विषय में कुछ लिखना आवश्यक है। इनमें गोपबन्धु चौधरी और श्री जीवराम भाई दो के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। दोनों मानो सेवा के साक्षात् अवतार। गोपबन्धु बाबू तो असल वैष्णव हैं। "परदुःखे उपकार करे तो ये मन अभिमान न आणे रे"। यह अपने ज़माने में डिपुटी-कलेक्टरी कर चुके, किन्तु सेवा के लिए सब कुछ छोड़ा। अभिमान तो मानो इनको छू नहीं गया। जीवराम भाई का यह हाल है कि लाखों रुपये छोड़कर सेवक बने। हम लोग जब सो जाते थे, तब यह रात को अकेले डेढ़ सौ आदमियों का पाखाना साफ़ करते थे। धन्य है इनकी जननी को!

इस यात्रा में हास्य रस की भी कमी नहीं थी। मिस्टर ब्यूटो (Buto) एक जर्मन युवक हैं, जो इस यात्रा में गांधीजी के साथ घूमते थे। उनका त्याग तो अव्वल दर्जे का है। गांव में खाने को तो यों ही कमी थी। श्री ब्यूटो हट्टेकट्टे जवान और बचपन से मांस पर पले हुए। इसीलिए अधभूखे रहते थे, पर अत्यन्त प्रसन्न। एक तहमद पहिनकर फिरते थे। जवान तो हैं ही, मूँछें अभी आई नहीं। गांववाले पड़ाव के चारों तरफ़ सैकड़ों की संख्या में सुबह से शामतक झाँकते रहते थे कि उन्हें गांधीजी का दर्शन हो जाय। इस बीच में तरह-तरह की चर्चा करते थे। एकने ब्यूटो की तरफ़ अंगुली उठाकर कहा कि मीरा बहिन यही है। सबको हँसी आ गई। कोई कहता था, जवाहरलाल भी साथ आया है। गांधीजी कौन-से हैं यह भी उन दर्शकों के लिए एक पहेली थी। एकने मीरा बहिन को देखकर कहा, कि यही गांधीजी हैं। दूसरेने किसी अन्य की ओर इशारा करके कहा, नहीं, गांधीजी यह हैं। तीसरेने कहा, नहीं, गांधीजी तो महात्मा हैं। वह सबको दिखाई नहीं देते!

गांधीजी के दल के लिए ऐसी-ऐसी बातें टानिक का काम देती रहती थीं। किसीने बताया कि मीरा बहिन एक मर्तबा ज़नाने डिब्बे में मुसाफ़री करती थीं। इतने में टिकट कलेक्टर टिकट देखने आया। मीरा बहिन का सिर तो मुंडा हुआ है ही। टिकट कलेक्टर आया उस समय ओढ़नी सिर पर से उतर गई थी। टिकट कलेक्टरने समझा कि यह पुरुष है और कहने लगा "आपको पता है, यह ज़नाना डिब्बा है?" मीरा बहिनने तुरन्त अपनी ओढ़नी सिर पर खींची। टिकट कलेक्टर बेचारा झेंपकर चलता बना। हम लोगोंने यह कहानी सुनी तो हँसते-हँसते आँखों में आँसू आ गये।

उत्कल की यह यात्रा हँसी और रुलाई का एक अद्भुत संमिश्रण था।

'घ्र'

हमारी वह मंडली

उत्कल के पैदल यात्रियों की हमारी वह मंडली भूलने की नहीं। बापू का वह प्रवासी-परिवार देखने ही बनता था। सब एक ही रंग में रँगे हुए थे। निदाघ के वे भीमकाय दिन हँसते-खेलते जाते नहीं पाये। बुरा किया कमबख़्त मेंहने, जो रंग में

भंग कर दिया—नहीं तो चार दिन और उस पैदल यात्रा का रस लूटने को मिल जाते। ऐसा अपूर्व सत्संग भाग्य से ही मिलता है। जहां दलपति स्वयं बापू हों, भक्ति की प्रतिमूर्ति मीरा बहिन हों, माता की नाईं लालन करनेवाली साक्षात् रमा देवी हों, परोसनेवाली दूसरी अन्नपूर्णा हों, और झाड़ूदारों के सेनानी हमारे प्रोफेसर मलकानी हों, ऐसे यात्रादल का सत्संग-लाभ पूरब के पुण्यों से ही होता है। मेरा तो सात ही दिन का पुण्य-सञ्चय था। सराहना तो उनके भाग्य की करनी चाहिए, जो महीनों बापू के उस प्रवासी-परिवार के साथ रहे। अपने इन प्रिय बन्धुओं से बिछुड़ते मुझे तो उस दिन न जाने कैसा लगा। नज़ीर का यह विछोहभरा शेर याद आ गया, कि—

'फिर मैं कहां औ तुम कहां अय दोस्तो !
साथ था मेरा-तुम्हारा चन्द रोज़।'

× × ×

प्रो॰ मलकानी

सचमुच हरिजन-सेवकों की वह टोली भुलाये नहीं भूलती। हमारे कमांडिंग आफिसर थे प्रोफेसर मलकानी। खाकी जांघिया पहने, थैला लटकाये, हाथ में झाड़ू लिये आप आगे-आगे चला करते। बड़े ही फुर्तीले, बड़े ही ज़िन्दादिल। प्रोफेसर साहब के हाथ में झाड़ू फबती भी खूब थी। उस दिन आपने ठीक ही कहा था—'अब तो भाई, झाड़ू-टोकरी का राज है। गांधी युग में झाड़ू के आगे हमारी कमबख्त कलम को आज कौन पूछता है ?'

मलकानीजी सफाई का काम बड़ी पटुता से करते थे। कूड़ा कचरा हटाते, झाड़ते, ढोते, पर मजाल क्या कि कपड़ों में कहीं ज़रा-सा दाग लग जाय। और एक हम लोग थे, जो ऐसे दीखते थे जैसे होली का भुलेंड़ा खेलकर आये हों। अनाड़ी और प्रोफेसर में फिर अन्तर ही क्या रह जायगा ! सफाई-खिदमतगारों के सरदार मलकानी साहब दिन में एकाध घण्टे प्रोफेसरी भी कर लिया करते थे—दो-तीन बहिनों को आप अंग्रेज़ी पढ़ाया करते थे। पुराने रोग की जड़ मुश्किल से ही जाती है।

गोप बाबू

गोप बाबू को देखकर भला कौन कह सकता है, कि यह मजूर जैसा अधनंगा उड़िया किसी ज़माने में कटक का मजिस्ट्रेट था और आज उत्कल प्रांत का एकमात्र राष्ट्रीय नेता है। गोपबन्धु चौधरी का प्रतापी नाम उत्कल का बच्चा-बच्चा जानता है। कमर में मोटी खादी लपेटे, नंगे पैर, नंगे बदन, सफेद थैला लटकाये उत्कल के इस महान् नेता को देखकर मैं तो दंग रह गया। स्वभाव में सरलता, चाल में गम्भीरता और कार्य में तत्परता देखते ही बनती थी। भीड़भाड़ में बेचारे सीधेसादे गोप बाबू कभी-कभी धक्के-मुक्के भी खा जाते थे—और अपने उत्कल के ही स्वयंसेवकों के हाथों !

गोपबन्धु बाबू का हिन्दी-भाषा-प्रेम सराहनीय है। गोसाईंजी की विनयपत्रिका उन्हें बड़ी प्रिय है। अपने पुत्र-पुत्रियों को भी उन्होंने हिन्दी का खूब चसका लगा दिया है। गांधीजी के आप गहरे भक्त हैं। चर्खा नित्य निष्ठापूर्वक चलाते हैं। हरिजन-सेवा में मन, वचन, कर्म से निरत रहते हैं। प्रेम की प्रतिमूर्ति हैं। मिलनसारी तो ऐसी बहुत कम लोगों में देखने में आयगी। गोप बाबू उत्कल प्रांत के सचमुच एक अनमोल रत्न हैं।

श्री रमादेवी

श्री रमादेवी को तो हमने साक्षात् रमा के रूप में देखा। गोप बाबू की यह धर्मपत्नी हैं। देश-भक्ति में पति से दूना उत्साह। यह सब बहिन रमादेवी का ही पुण्य-प्रताप है, जो गोप बाबू आज फकीरों का बाना धारण किये इतने त्याग और अनुराग के साथ देश-सेवा कर रहे हैं। सारा सङ्ग रमादेवी की सेवा से ही जाता है। हरएक की खोज-खबर रखती थीं। पंगत में कौन पीछे रह गया है, कौन क्या खाता है, इन सब बातों का उन्हें पूरा ख़याल रहता था। और उनकी विदुषी पुत्रियां भी ऐसी ही। सौ-सौ आदमियों को खिलाना-पिलाना, दिन-रात काम में लगे रहना, हरिजन-बस्तियों में भी जाना, फिर भी थकान या आलस्य का नाम नहीं। किसी काम में उन लड़कियों को मुंह सिकोड़ते नहीं देखा। उन्हीं दिनों रमादेवी की वृद्धा माता का स्वर्गवास हो गया था। हृदय में काफ़ी शोक-संताप था। पर जब उस दिन पुरुषोत्तमपुर में बापूने समझाया कि—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ;
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

तो आंसुओं को आंखों में ही रोककर फिर उसी उत्साह और प्रेम से आप सेवा-कार्य में लग गईं। धन्य रमादेवी की बड़भागिनी जननी को, कि जिसकी कोख से ऐसी चिन्तामणि उपजी।

वालजी भाई

उड़िसा के आमों का कद्र की तो हमारे वालजी भाईने। बड़े रस से, बड़ी निष्ठा से आप आम आरोगते थे। मेरे मित्र श्रीयुत 'क' के लिए तो यह कवि-कल्पना ही थी कि 'आम तो ऊपर ही लटकते रहते हैं, तोड़ लिये और खा लिये,' पर वालजी भाई अपने पुण्य-बल से सचमुच ही नित्य मनोवाञ्छित आमों का भोग लगाते थे। श्रीवालजी गोविन्दजी देसाई अंग्रेज़ी और गुजराती के धुरंधर विद्वान् और सफल लेखक हैं। अपने काम-से-काम रखते हैं, किसी के तीन-तेरह में नहीं पड़ते। अध्ययनशील व्यक्ति हैं। उनके हाथ में या तो अख़बार देखा, या कोई पुस्तक। पांच छः सौ पन्ने की जिल्द को दो-तीन घंटे में पढ़ जाना उनके लिए एक मामूली-सी बात है। दुरंगा में तो सारे दिन आप उड़ीसा के कई ज़िलों के गज़ेटियर ही उलटते रहे। किसी-न-किसी खोज में ही उनका दिमाग़ चक्कर लगाता रहता है। 'हरिजन-सेवक' के पाठक वालजी भाई के विद्वत्तापूर्ण लेखों तथा साप्ताहिक पत्रों से तो परिचित ही हैं। मराठी और हिन्दी भाषा का भी आप को अच्छा ज्ञान है। रहनी बड़ी सादी है। ढीलीढाली चाल, गज़ब की सिधाई और सादगी देखकर भला कौन कह सकता है, कि यह शख्स कभी बनारस के हिन्दू कालेज में अंग्रेज़ी का प्रोफेसर रहा होगा और आज महात्मा गांधी का प्राइवेट सेक्रेटरी है ? वालजी भाई में अपनी विद्वत्ता का रत्तिभर भी अभिमान नहीं है। ज्ञान की प्यास तो उन्हें सदैव लगी रहती है। उस दिन बड़े उत्कंठा के स्वर से मुझसे कहा—'जुलाई में जब आप काशी आओ, तो हिंदी-साहित्य की कुछ अच्छी-अच्छी पुस्तकें मेरे लिए लेते आना।'

लाला अचिंतराम

लोक-सेवक-मंडल के सदस्य लाला अचिंतरामजी के पास

प्रश्नों का अटूट ख़ज़ाना रहा करता था। गांधीजी के आगे वह नित्य ही अपना प्रश्न-कोष खोलते थे। बापू भी कभी उन से बातें करते नहीं थकते—बल्कि बड़े प्रेम से उन्हें बात करने के लिए बुला लेते। 'अच्छा, आइए अचिंतरामजी!' और अचिंतरामजी दौड़कर बापू के साथ हो जाते। बस, फिर क्या था, बापूने उनके कंधे पर हाथ रखा और खुला अचिंतरामजी का प्रश्नों का पोथा।

मुँहफट ओइम् (कुमारी उमा बजाज) ने एक दिन कहा 'कि बापू आजकल बड़े बातूनी हो गये हैं।' संभव है, ईर्ष्या से ओइमूने यह ताना दिया हो; क्योंकि जबतक अचिंतरामजी से बातें होती थीं, तबतक बेचारी ओम् बापू के साथ गप्पें नहीं लगा सकती थी। ये लड़कियाँ बापू को एक खिलवाड़मात्र ही तो समझती हैं। हाँ, तो बात करते समय की अचिंतरामजी की वह मुखमुद्रा आज भी याद आ रही है। बड़ी गंभीरता से पेशानी को कुछ चढ़ाकर और कुछ आश्चर्यपूर्ण भाव-भंगी से आप बातें किया करते थे। पर इससे कोई यह न समझ ले, कि लालाजी सिर्फ़ बातूनी ही हैं। नहीं, मेहनती भी आप पूरे हैं। हरिजन-बस्तियों में कुदारी-फावड़ा चलाने में सब से आगे रहते थे। उस दिन जाजपुर में वैतरणी-तट का नरक साफ़ करने में आपने कमाल की मेहनत की। बुढ़ा नदी के किनारे रात को वर्षाने जब हमारे साथ छेड़छाड़ की, तब घास-फूस की उस अस्थायी रावटी के चारों ओर अचिंतरामजी और कृष्णन् नायरने ही खाई खोदी थी। यह खाई न खोदी जाती, तो हम २५ आदमियों की उस फूस की झोपड़िया के अन्दर पानी-ही-पानी भर जाता, ऊपर से तो टपके लगे ही थे।

आचार्य हरिहरदास

आचार्य हरिहरदास उत्कल प्रांतीय कांग्रेस-कमेटी के प्रेसिडेण्ट हैं। हज़ारीबाग़-जेल से छूटते ही आप सीधे पुरुषोत्तमपुर में गांधीजी के यात्रीपरिवार में आ मिले। आप सच्चे अर्थ में आचार्य हैं। अच्छे विद्वान् और कर्मशील व्यक्ति हैं। अभिमान का नाम नहीं। स्वभाव के बड़े सरल। चर्खे के अनन्य भक्त। उत्कल के सभी राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता आपका बड़ी श्रद्धा से आदर करते हैं। हिंदी के प्रति आपका अच्छा अनुराग है। हज़ारीबाग़-जेल में आप हिंदी की ही पुस्तकें और पत्र पढ़ा करते थे। पर आपका एक आग्रह है। वह यह कि जितनी भी बेजान चीज़ें हैं, वह सब-की-सब पुंलिंग क़रार देदी जायँ। उस दिन भद्रक में मुझसे कहा—'हिंदी ही हमारे राष्ट्र की भाषा होगा, इसमें संदेह नहीं।' आचार्यजी की यह पुंलिंग-संबंधी बात शायद ही हम हिंदीवालों के गले के नीचे उतरे, हालांकि ख़ुद हिंदी भाषाभाषियों के बीच पुंलिंग-स्त्रीलिंग के विषय में काफ़ी धांधली चल रही है।

कृष्णन् नायर

हमारी मालगाड़ियों के गार्ड यही थे। 'लापरवाहों का दिमाग़ चढ़ानेवाला' भी इन्हें कह सकते हैं। लोग चीज़-बस्त छोड़-छाड़कर चल देते, और भाई कृष्णन् नायर मुलकड़ों की चीज़ों को बड़ी ख़बरदारी से लाकर उनके हवाले कर देते थे। हम सब गांधीजी के साथ चल देते और यह पड़ाव का कूड़ा-कचरा साफ़ करके, गाड़ियों में सामान लदवाकर पीछे-पीछे तमाम परेशानी झेलते हुए आते। सामान लादते भी थे और उतारते भी थे। गाड़ियों के पहुँचने में कुछ देर हो गई या सामान भीग-भाग गया तो बेचारे नायर की मौत। न कभी सभा देखी, न स्वागत में शरीक हुए। नायरजी की यह नित्य की कठिन कुली-गीरी देखकर मेरे-जैसे निठल्लों की आँख तो शर्म से नीची हो जाती थी।

भाई कृष्णन् का राष्ट्रभाषा-प्रेम उन देशी साहबों के लिए अनुकरणीय है, जो अँग्रेज़ी लिखने-बोलने में ही अपनी सारी देशभक्ति समझते हैं। सुनिए, मलबार का यह साहसी नायर युवक अपनी डायरी हिंदी में लिखा करता है।

शर्माजी उर्फ़ कविराजजी

आप शर्माजी हैं, मास्टरजी हैं और कविराजजी भी हैं। बड़े आनन्दी पुरुष हैं। चार दिन आप साथ रहे। उत्कल का भात खाकर तो आप निहाल हो गये थे। अरबी-फ़ारसी के आप प्रकाण्ड पण्डित हैं, यह तो मैं जानता था, पर मुझे यह पता नहीं था, कि गलियों व नालियों की सफ़ाई व मरम्मत की कला में भी आप सिद्धहस्त हैं। भद्रक की उस सँकरी सड़क पर काफ़ी कीचड़ मच गया था। कहीं-कहीं तो इतना अधिक फिसलन था, कि पाँव डेढ़-डेढ़ फुट धँस जाते थे। हरिजन बस्ती साफ़ करके हम लोग उस कीचड़ की सड़क पर पहुँचे। शर्माजीने एक घूरे का पता लगाया और बोले कि यह ढेर खोदकर सड़क पर पूर दिया जाय, तो मिट्टी और करसी उस सारे फिसलन को सोख लेगी। हम लोगोंने कहा, कि कविराजजीने नब्ज़ आख़िर पहचान ही ली। बात बिल्कुल ठीक थी। शर्माजी ही अग्रसर हुए। मिट्टी और करसी का वह सारा ढेर खोदकर सड़क पर बिछा दिया। शर्माजीने उस दिन काफ़ी कड़ी मेहनत की। मिट्टी खोदी भी और ढोई भी। वहीं मुसलमान भाइयों का एक मुहल्ला था। उसे भी शर्माजीने लगे हाथों साफ़ कर डाला। हमारी इस सफ़ाई का मुहल्लेवालों पर बड़ा अच्छा असर पड़ा।

स्पूटा!

यह जर्मन नवयुवक 'मिस्टर' कहने से चिढ़ता था। 'हर' शब्द का ही वह गौरवपूर्ण समझता था। ख़ूब हट्टा-कट्टा और लंब-तड़ंग जवान है। एक जगह एक उड़ियाने स्पूटो को देखकर कहा, कि 'यह गांधी महात्मा के दल का हनुमान है।' सच-मुच वह भारी-भारी भीड़ों में लंगूर की तरह छलांग मारता था। स्पूटो के मुँह से 'अरे राम' या 'हरी बोल' बड़ा प्यारा लगता था। हज़रत सभी से उलझ बैठते और उसी क्षण चिरौरी करके मेल कर लेते थे। बापू को बहुत डरता था। जर्मन महासमर की बातें बड़े चाव से सुनाता था। प्रो० मलकानी के साथ हर स्पूटो की अकसर बहस छिड़ जाया करती थी। मलकानीजी की दस-पाँच गालियाँ सुने बिना हमारे स्पूटो साहब को चैन कहाँ! हरिजन-बस्तियों की सफ़ाई में भी आप बड़ा रस लेते थे।

भाई दामोदरदास

दामोदरदासजी मूँदड़ा तो भावुकता में ही डूबते-उतराते रहते थे। आपकी साधारण बातचीत में भी गद्यकाव्य या छायावाद की छाया आ जाती है। यह हमारे ख़ज़ानची थे। हैं तो मारवाड़ी, पर मारवाड़ी भाषा ठीक-ठीक न बोल सकने के कारण मारवाड़ी-समाज में लज्जित होना पड़ता था। मराठी भाषा का अच्छा अभ्यास है। हिसाब-किताब लिखने में अकसर दो-ढाई बज

जाते थे। सबसे पीछे रोटी नसीब होती थी, या रुपये-पैसों की राशि के मारे भूख भाग जाती थी। काम के भार से बेचारे हमेशा दबे रहते थे। कुबेर, फिर कविहृदय—भूख-प्यास का वहाँ काम ही क्या ?

× × × ×

ऐसी थी हमारी वह टोली। हँसते-खेलते दिन बीतते थे। बापू खुद हँसते-हँसाते रहते थे। हमारे यात्रीदल में वालजी भाई-जैसे विद्वान् थे, मलकानी-जैसे सेनानी थे। नायर-जैसे सिपाही थे और गोपबन्धु जैसे त्यागी साधु थे, रमादेवी की सेवा-साधना और मीरा बहिन की भक्ति-भावना देख-देखकर हृदय में पवित्रता का संचार होता था। काका कालेलकर का चिरञ्जीवि बाल कालेलकर सबेरे-साँझ अपने मधुर स्वर में प्रार्थना कराया करता था और जर्मन नौजवान स्पटो सारी पार्टी को हँसाया-खिलाया करता था। सब कुछ था, पर एक प्रश्न तो रह-रहकर मन में उठता ही रहता था—और वह यह कि—'अस्पृश्यता के पाप को भस्म कर देने के लिए प्रायश्चित्त की जो प्रचण्ड आग बापू के अन्तर में धाँय-धाँय जल रही है, उसकी आँच हममें से कितनों के हृदय तक पहुँची है ?'

वियोगी हरि

चाण्डाल कौन है ?

(वसल सुत्त से)

एक समय भगवान् बुद्ध कोशल देश की राजधानी श्रावस्ती नगरी के समीप अनाथ-पिण्डिक सेठ के आराम 'जेतवन विहार' में निवास करते थे। उस समय (एक दिन) भगवान् बुद्धने सबेरे के समय (अपने चीवर को) पहिन-कर, भिक्षा-पात्र और ओढ़नेवाला चीवर (काषाय वस्त्र) को ले, भिक्षा के लिए श्रावस्ती नगरी में प्रवेश किया। उस समय अग्निक भारद्वाज नामक ब्राह्मण के घर में आहुति की अग्नि जल रही थी। अनन्तर बुद्ध भगवान् भी श्रावस्ती नगरी के प्रत्येक घर से भिक्षा माँगते हुए, जहाँ अग्निक भारद्वाज का घर था, वहाँ पहुँचे।

अग्निक भारद्वाज ब्राह्मणने भी दूर से आते हुए भगवान् को देख लिया, और देखकर भगवान् के प्रति यह वचन कहने लगा-'हे मुण्डि ! हे श्रमण ! हे चाण्डाल ! वहीं ठहर जा !!'

ऐसा कहने पर, भगवान् बुद्धने अग्निक भारद्वाज से यह बात पूछी, कि 'हे ब्राह्मण ! तुम वसल (चाण्डाल या नीच), और वसलकरण (चाण्डाल-कर्म) धर्म को जानते हो ?'

(अग्निकने कहा)—'हे गौतम ! मैं वसल और वसलकरण धर्म को नहीं जानता हूँ। परन्तु (मैं) प्रार्थना करता हूँ, कि आप ही मुझे उस धर्म को बतावें, जिससे वसल और वसलकरण धर्म को अच्छी तरह से जाना जाय।'

'ऐसा है तो ब्राह्मण, सुन, अच्छी तरह से मन में ख्याल कर, मैं कहूँगा' ऐसा भगवान्ने कहा। 'हे गौतम ! ऐसा ही करूँगा' इस तरह कहकर अग्निक भारद्वाज ब्राह्मणने भगवान् के प्रति उत्तर दिया, तो भगवान्ने यह वचन कहा, कि—'जो नर क्रोधी, मन में वैर रखनेवाला, पाप में लिप्त, नास्तिक और छल-कपट करनेवाला हो, उसे वसल (चाण्डाल या नीच) जानना। जो नर एकबारगी पैदा होनेवाला, दोबारगी पैदा होनेवाला, प्राणियों की हिंसा करता है, जिसके मन में प्राणियों पर दया नहीं है, उसे चाण्डाल जानना। जो गाँव या नगर को चारों ओर से घेरकर लूट लेता है, 'गाँव, नगर को लूटनेवाला' ऐसा प्रसिद्ध हो जाता है उसको, जो नर गाँव में हो, आशा लगाकर रखे हुए पराये धन को बिना दिये चुरा लेता है, उस (चोर) को वसल जानना। जो नर दूसरे से ऋण लेकर यथेष्ट खर्च करके भाग जाता है, (और कभी भेंट होने पर) 'तेरा ऋण मेरे ऊपर नहीं है' ऐसा कहता है, उस (बेईमान) को वसल जानना। जो मनुष्य ज़रासे धन की इच्छा से मार्ग में जाते हुए यात्रियों को मार-पीट-कर उस किञ्चित्मात्र धन को छीन लेता है, उसे वसल जानना; अर्थात् मार्ग के खर्च के वास्ते मुसाफिर अपने साथ थोड़-सा कलेवा ले जाया करते हैं, उसको भी दुष्ट लोग लूट लेते हैं।

जो नर अपने और पराये धन के कारण झूठी ही गवाही देता है उसे, जो नर जातिबन्धु और इष्ट मित्रों की स्त्रियों के साथ बलात्कार से अथवा राज़ी-खुशी से ही संभोग करता है, उसे, जो सामर्थ्य होने पर भी वृद्ध माता-पिता का भरण-पोषण नहीं करता है उसे, जो मनुष्य माता-पिता, भाई और बहिनों का (खुद) मारता-पीटता और गाली देता है उसे, जो मनुष्य अर्थ (हितकारक) बात को पूछने पर अनर्थ का उपदेश करता और कपट के साथ सलाह देता है उसे, जो मनुष्य पाप कर्म करके भी अपने को प्रगट करना नहीं चाहता है ऐसे गुप्त पापी को चाण्डाल जानना। जो परकुल (पराये के घर) में जाकर अच्छे-अच्छे भोजन करता है, अपने घरमें आए हुए मित्रों (अतिथियों) का सम्मान नहीं करता है उसे, जो ब्राह्मण, साधु, सन्त और याचकों को झूठ बोलकर बहका देता है, अपने पास धन होते हुए भी 'मेरे पास कुछ नहीं है' ऐसा कहकर बहका देता है उसे, भोजन के समय घर पर आये हुए अतिथिरूप ब्राह्मण, साधु की निन्दा और अपमान करता और भोजनादि को नहीं पूछता है उसे, जो मनुष्य मोह करके अत्यन्त कुण्ठित होकर ज़रासे धनके लिए भी असत्य बोलता है उसे, जो अपनी प्रशंसा और अन्य की निन्दा करता है, और अपने ही के अभिमान से नीचता को प्राप्त हो जाता है उसे, जो सब से बड़ा द्वेषी, अच्छे कामों में बाधक, सदा बुराई चाहनेवाला, कृपण, छली, निर्लज्ज और निर्भय (पाप से निडर) है उसे, जो बुद्ध की निन्दा करता अथवा उनके श्रावक (शिष्य या उपासक) परिव्राजक, गृहस्थ की निन्दा और अपमान करता है, उसे, जो अर्हत (मुक्तात्मा) न होकर भी अपने को सिद्ध या मुक्तात्मा जताता या जानता है, मृत्युलोक से ब्रह्मलोकतक सारे जगत् में वही महाचोर सब से नीच चाण्डाल है। उपर्युक्त धर्म नीच कहे जाते हैं और हमने भी दिखाये हैं।

न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
कम्मुना वसलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो ॥

जाति से न तो कोई नीच होता है और न ब्राह्मण। कर्मा-नुसार ही ब्राह्मण और नीच होता है।

वेद को दिनरात पढ़नेवाले (ब्राह्मण) जाति में उत्पन्न, वेद मन्त्र के मित्र जो ब्राह्मण हैं वे भी पाप कर्मों में नित्य फँसे हुए हैं। प्रत्यक्ष (इस जन्म) में उन (ब्राह्मणों) की निन्दा होती है, और परलोक में उनकी दुर्गति होती है। निन्दा और दुर्गति को जाति नहीं रोक सकती है।'

बुद्ध के वचनों को सुनकर भारद्वाज बड़े प्रभावित हुआ और बौद्ध हो गया।

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २२ जून, १९३४

हरिजन बनाम अ-हरिजन

हरिजन-कार्यकर्ताओं की एक बैठक में उस दिन यह भी एक प्रश्न आया था, कि "हरिजनों में रचनात्मक कार्य करने की अपेक्षा क्या यह अधिक अच्छा न होगा, कि उनके अंदर उनकी मौजूदा अवस्था के प्रति इतना अधिक असंतोष पैदा कर दिया जाय, कि वे उसे सुधारने के लिए खुद अपने पैरों पर खड़े हो सकें ? आपकी यह सवर्णों के हृदय-परिवर्तनवाली बात तो व्यर्थ-सी लगती है।" चूंकि यह महत्त्व का प्रश्न है, इसलिए इसके उत्तर में जो मैंने उस बैठक में कहा था, उसका आशय दे देना मैं उचित समझता हूं। प्रश्न में अज्ञान भरा है। हरिजन-आंदोलन का क्या अभिप्राय है, इसे प्रश्नकर्त्ताने बिल्कुल ही नहीं समझा। हरिजनों में असंतोष पैदा कर देने से तत्काल तो उनका कष्ट दूर होने का नहीं। इससे तो हिंदू-समाज के अंदर आज जो वाहियात फूट मौजूद है वह और भी स्थायी हो जायगी। इस आंदोलन का उद्देश तो यह है, कि हिंदू-समाज के अंदर सवर्णों और हरिजनों का जो यह नितांत अप्राकृतिक विभाग आज दिखाई दे रहा है, वह निर्मूल कर दिया जाय, और जिन न्यायसंगत अधिकारों के पाने के हरिजन हकदार हैं, वह सब उन्हें सवर्ण लोग दे दें। इस तरह देखा जाय तो यह आंदोलन प्रायश्चित्त और भूल-सुधार का ही एक आंदोलन है। इसलिए एक ओर तो सुधारकों को हरिजनों के अंदर रचनात्मक कार्य करना है, और दूसरी ओर धीरज से, दलील से और सब से अधिक अपने शुद्ध चरित्र-बल से सवर्णों का हृदय पलटना है। सुधारकों में यदि नम्रता, सहनशीलता और धैर्य होगा, तो जिस अस्पृश्यता-निवारण की बात को आज हमारे सनातनी भाई ताना दे-देकर घृणित और अधार्मिक कह रहे हैं, उसी को कल वे 'धर्म का सारतत्व' समझने लगेंगे। मनु महाराजने धर्म की व्याख्या करते हुए क्या यह नहीं कहा है, कि—

> विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ।
> हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ॥

"सामान्य रीति से जिसका परिपालन विद्वान, सज्जन और राग-द्वेष से रहित मनुष्य करते हैं, और जिसका अनुभव हृदय में होता है, उसी को 'धर्म' समझना चाहिए।"

इसलिए यदि मनु महाराज के बताये ये गुण सुधारकों में होंगे, तो इसमें संदेह नहीं, कि सनातनियों का हृदय पिघलेगा, और फिर पिघलेगा। और उनका हृदय-परिवर्तन हो या न हो, पर दलित मनुष्यों की इस प्रकार जो सेवा सुधारकजन करेंगे,उससे मानवोन्नति तो वस्तुतः होगी ही और वह कार्य ही स्वयं उस जन-सेवा का पुरस्कार होगा। ईश्वर की 'सनातन पुस्तक' में अवश्य ही उस सेवा का प्रतिष्ठापूर्ण उल्लेख रहेगा।

एक और प्रश्न था। वह यह कि,—"क्या आपका यह ख़याल नहीं है, कि भूख से मरते हुए इन लाखों-करोड़ों किसानों का सवाल हरिजन-सेवा से कहीं अधिक महत्त्व का है ? इसलिए क्या आप किसानों के संघ संगठित नहीं करेंगे, जिनमें, जहाँतक उनकी आर्थिक स्थिति का सम्बन्ध है, हरिजन भी आ जायँगे ?"

ऐसा होता तो अच्छा ही था। किंतु बदकिस्मती से यह जरूरी नहीं है कि किसानों की आर्थिक स्थिति के सुधार के साथ-साथ हरिजनों की आर्थिक स्थिति भी सुधर जायगी। जो किसान हरिजन नहीं है वह जितना चाहे या उसे जितना अवसर मिले उतना ऊंचा उठ सकता है, पर बेचारा दलित हरिजन ऐसा नहीं कर सकता। सवर्ण किसान की तरह न तो भूमि पर ही उसका कोई अधिकार है और न उसे वह छूट के साथ काम में ही ला सकता है। उसे हलवाहे भी मिलने के नहीं। बहुत-सी जगहों में तो यह देखा गया है, कि वह बेचारा खेती-पाती का आवश्यक बीज तक नहीं खरीद सकता। थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाय, कि ठीक अ-हरिजन किसान की ही तरह हरिजन किसान भी अपनी आर्थिक अवस्था सुधार सकता है, तब भी अनगिनती सामाजिक असुविधाओं का शिकार तो वह रहेगा ही, उन सब अत्याचारों की चक्की में तो वह तब भी वैसा ही पिसता रहेगा। उसकी आर्थिक अवस्था के सुधरते ही वे सब सामाजिक अत्याचार तब उसे और भी अधिक सालने लगेंगे। अत्याचारों का तभीतक उसे उतना अधिक भान नहीं है, जबतक कि वह कंगाल है। इसी कारण हरिजनों की सेवा के लिए एक खास संघ बनाने की जरूरत आ पड़ी, क्योंकि उनके अभाव और कष्ट भी तो खास और निराले ढंग के हैं। समाज के इस निम्नतम वर्ग की यदि यथेष्ट उन्नति हो गई, तो निश्चय ही उसके परिणामस्वरूप हमारा सारा समाज उन्नत हो जायगा। इसके अलावा साधारण किसान की कोई उपेक्षा तो की नहीं जा रही है। अखिलभारतीय चरखा-संघ किसानों की आर्थिक अवस्था को उन्नत करने में पूरी तरह से लगा ही हुआ है। यह संघ बराबर किसानों में यह भाव पैदा कर रहा है, कि कताई-बुनाई के गृह-उद्योग से उनकी खेती-पाती की साधारण आमदनी में अवश्य ही थोड़ी वृद्धि हो सकती है और इस तरह दुर्भिक्ष के मुख में पड़ने से वे स्वयं अपने आपको बचा सकते हैं।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

मजूमदार पर मार पड़ी

गुजरात-हरिजन-सेवक-संघ के मंत्री श्रीयुत परीक्षितलाल मजूमदार अपनी बीती लिखते हैं :—

"ता० २ जून को मुझे एक बड़ा सुन्दर अनुभव हुआ। यात नानी नरोली गाँव की है। यह गाँव बड़ोदा राज्य के नवसारी जिले में है। हरिजनों के लिए वहाँ एक कुआँ बन रहा है। गुजरात-हरिजन सेवक-संघने इस कुएँ के लिए १५०) मंजूर किये थे। काम कितना क्या हो गया है यह देखने के लिए मैं मढ़केश्वर गाँव से नरोली जा रहा था। समय दुपहरी का था। रास्ते में एक प्याऊ पड़ती थी। सवर्ण हिंदू की हैसियत से मैंने प्याऊ का लोटा उठाया और उससे पानी पी लिया। इसके बाद मैं सीधा गाँव की हरिजन-बस्ती में चला गया। मुझे हरिजन समझकर वहाँ की पुलिस-चौकी में यह रपट कर दी गई, कि मैंने लोटा छूकर प्याऊ को अपवित्र कर दिया है। इस फ़र्ज़ी अपराध पर मुझे थाने में ले गये,और बिना मेरी कोई बात सुने ही, दो सीख, पुलिस के हुक्म से, लगे मुझे पीटने। लकड़ी से

भी पीटा और जूते भी पड़े। मुझे कोई प्रतिवाद तो करना नहीं था। पीठ और जाँघ में तो अब भी दर्द है। गन्दी-गन्दी गालियाँ भी मिलीं और जबतक पुलिस का पटेल (मुसलमान) थाने में न आ जाय, तबतक मुझ से धूप में बैठे रहने के लिए कहा गया। पर जब पटेल न आया, तब सिपाही मुझे उसके मकान पर ले गया। मेरी स्थिति को पटेल फौरन समझ गया, और मेरा नाम व पता नोट करके मुझे छोड़ दिया। जब मुझ पर मार पड़ रही थी, तब दूर से उस गाँव के हरिजन बड़ी दयावनी दृष्टि से मेरी वह दुर्गति देख रहे थे।"

श्री परीक्षितलाल जाति के कायस्थ हैं। गुजरात विद्यापीठ के आप स्नातक हैं। हरिजन-सेवा के अर्थ आपने अपना जीवन अर्पित कर दिया है। श्री मजमुदारने तो इस जुल्म को एक 'सुन्दर अनुभव' कहा है, पर जो लोग अस्पृश्यता को धर्म का एक अंग मान रहे हैं, उनके लिए क्या यह अनीति एक लज्जा की बात नहीं है? प्रगतिशील बड़ोदा राज्य के लिए तो यह और भी शर्म की बात है। जिस राज्य में अस्पृश्यता को नेस्तनाबूद करने के लिए इतना प्रचंड प्रयत्न हो रहा हो, वहाँ की पुलिस का एक सिपाही मजुमदार-जैसे प्रतिष्ठित हरिजन-सेवक को इस बुरी तरह से, बिना ही, किसी अपराध के पिटवादे यह कहाँ तक उचित और क़ानून-संगत है? समस्त गुजरात को एक स्वर से इस अन्याय के खिलाफ़ आवाज़ उठानी चाहिए। आशा है, कि बड़ोदा राज्य के अधिकारियों का ध्यान नरोली-पुलिस की इस तानाशाही पर अवश्य जायगा। ऐसे-ऐसे अत्याचारों को जन्म देनेवाली इस अस्पृश्यता का जितना ही शीघ्र नाश हो उतना ही हिंदूसमाज के लिए अच्छा।

वि० ह०

साप्ताहिक पत्र

[२७]

निर्देशिका

२ जून

बुढाघाट से जाजपुर, पैदल ३½ मील। जाजपुर: सार्वजनिक सभा, मानपत्र तथा धन-संग्रह ७७४-)११½। जाजपुर से मंजुरी, पैदल ५½ मील। मंजुरी: सार्वजनिक सभा तथा धन-संग्रह ८॥-)

३ जून

मंजुरी से भंडारीपोखरी, पैदल ४½ मील। भंडारीपोखरी सभा और धन-संग्रह ४०।-)॥ भंडारीपोखरी से तुइंगा, पैदल ४ मील। तुइंगा: सभा और धन-संग्रह ५।॥)॥।

४ जून

तुइंगा: मौन-दिवस।

५ जून

तुइंगा से गरदपुर, पैदल १२ मील।

६ जून

गरदपुर: सार्वजनिक सभा, धन-संग्रह ७५॥।=)७½

७ जून

गरदपुर: भद्रक की सार्वजनिक सभा तथा धन-संग्रह ५५९॥।)४½

८ और ९ जून

भद्रक से खड़गपुर, रेल से १११ मील। मारकोना में धन-संग्रह ४६॥=)११½। सोरो से खतिापाड़ा तक धन-संग्रह ३५०॥।=)४½। बालासोर: सार्वजनिक सभा तथा धन-संग्रह १२६३।)॥ हलदीपाड़ा से अमर्दा रोडतक धन-संग्रह ३७।) जलेश्वर में धन-संग्रह ७२।=)४½। खड़गपुर: धन-संग्रह १४३।)१०½। खड़गपुर से वर्धा के लिए रवानगी, ६८० मील। तातानगर में धन-संग्रह ४५।-)

सप्ताह में कुल यात्रा: २९ मील पैदल।
और ७९१ मील रेल से।

'ब्रह्मकृपा हि केवलम्'

तुइंगा गाँव में अपनी शेष पैदल यात्रा का त्याग गांधीजीने यों ही नहीं कर दिया। ऐसा करते उन्हें काफ़ी हिचकिचाहट और दुःख हुआ। वर्षा आनेवाली है, इसकी हमें काफ़ी चेतावनी मिल चुकी थी। पर गांधीजीने दो बार प्रकृति की चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया। बुढाघाट में तो उस रात को और भी मुसीबत होती, पर गोपबाबूने मेह पड़ने के आध घण्टा पहले बचाव का कुछ प्रबन्ध कर लिया था। फिर भी आधीरात तक पानी से किसी को नींद तो आई नहीं। पाठकों को यह तो मालूम ही है, कि अधिकतर हम लोगों को खुले आस्मान के नीचे हा रात को ज़मीन पर सोना पड़ता था। बिस्तरे के नीचे बिछाने को दरी भी मुश्किल से मिलती थी। इसके बाद दूसरी रात को भी वर्षा हुई। पर उस रात हमारा डेरा बस्ती में था। इससे हमलोग दो-दो, चार-चार आदमी इधर-उधर गाँववालों की झोंपड़ियों में पड़ रहे। यात्रा बन्द कर देने के लिए लगातार दो रातों की यह चेतावनी काफ़ी थी। पर गांधीजीने तो प्रवास को समाप्त करदेने की आशा से उसे जारी ही रखा। सड़कों पर अब भी हम लोग चल सकते थे। और दिन को आस्मान साफ़ रहता था। किंतु तुइंगा गाँव में ४ जून को गांधीजी का मौन-दिवस था। उस दिन तड़के ही पानी बरसने लगा। इस गाँव की सड़क तो खास तौर पर खराब थी। कीचड़-ही-कीचड़ हो गया। बैलगाड़ियों का चलना मुश्किल हो गया। वर्षा अगर उस दिन बन्द न होती, तो हम वहीं टिक जाते, आगे जाना कठिन हो जाता। सबसे नज़दीक भद्रक ही एक ऐसी जगह थी, जहाँ एक-दो दिन मेह-पानी की आफ़त से बचकर टिक सकते थे। तुइंगा गाँव से भद्रक १२ मील था। साथियों के साथ सलाह करके गांधीजीने यह निश्चय किया, कि अगर कल सबेरे पानी न बरसा, तो बीच में बिना कहीं रुके सीधे भद्रक ही पहुँचेंगे, और तीन दिन वहाँ ठहरकर उत्कल-यात्रा समाप्त कर देंगे। हरिजन-सेवकों तथा अन्य कार्यकर्ताओं से भी वहीं मिलेंगे और आगे के कार्यक्रम के बारे में भी बात कर लेंगे। मंगलवार के सबेरे आकाश स्वच्छ था। भद्रक हमलोग ३ घण्टे, ३५ मिनिट में पहुँच गये। गांधीजी को कोई थकान मालूम नहीं हुई। काम भी भद्रक में उन्होंने बहुत किया। जब पूछा गया, कि इतनी अधिक आशातीत शक्ति आपमें कहाँ से आई, तो उन्होंने अपना वही निश्चित उत्तर दिया, 'मेरी क्या शक्ति

है, यह तो सब भगवान् की शक्ति है।' कितनी अटल श्रद्धा है ईश्वर में गांधीजी की !

कार्यकर्त्ताओं के साथ

भद्रक में गांधीजीने हरिजन-सेवकों तथा बाढ़-निवारण एवं चरखा-संघ के कार्यकर्त्ताओं को काफ़ी अधिक समय दिया। बाढ़ और चरखा का कार्य गांधीजी की दृष्टि में एक तरह से हरिजन-सेवा का ही अंग है। बाढ़-निवारण के कार्य में ५० प्रतिशत हरिजन आ जाते हैं। और यही बात चरखा के सम्बन्ध में भी है। ऐसे कामों में अकसर स्पृश्य और अस्पृश्य के बीच बाल बराबर अंतर रह जाता है।

हरिजन-सेवकों को गांधीजीने जो सलाह दी उसका सारमर्म नीचे दिया जाता है :—

"इस पैदल यात्रा में जो लोग हमारे साथ रहे हैं, उन्हें मालूम हो गया होगा, कि सच्चा कार्य-क्षेत्र तो हमारे लिए गाँवों में ही है। हरिजनों का बहुत बड़ा भाग गाँवों में रहता है। देहातों में अस्पृश्यताने बड़ी मज़बूती से जड़ जमा रखी है। और दरिद्रता का भी साम्राज्य हमारे ग्रामों में ही है। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है, कि शहरों की उपेक्षा की जाय, पर संघ का यह कर्त्तव्य होना चाहिए, कि वह अच्छे-से-अच्छे सेवकों को हरिजनों तथा सवर्णों दोनों की ही सेवा करने के लिए गाँवों में भेजे। हरिजनों की सेवा तो इस प्रकार, कि उनके लिए शिक्षा का प्रबंध करें, कुएँ खुलवावें, मन्दिरों में प्रवेश करावें, उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारें और उनकी बुरी आदतों को छुड़ावें, जैसे मुर्दार-मांस का खाना और मादक चीज़ों का सेवन करना। और सवर्णों के साथ मित्रतापूर्ण संपर्क स्थापित करें तथा हरिजन-सेवा में जितना हो सके उनका सहयोग प्राप्त करें। इन सब बातों में ज़रा ज़बरदस्ती से काम नहीं लेना चाहिए। काम सच्चा होना चाहिए, दिखाऊ नहीं। और शुद्ध चरित्र को तो सर्वप्रथम स्थान मिलना चाहिए। जिन सेवकों का चरित्र निष्कलंक न हो और जो सब प्रकार के कष्ट सहने को तैयार न हों, वे हरिजन-सेवा से दूर ही रहें खासकर गाँवों में। इसलिए कार्यकर्त्ताओं के चुनने में तो संघ को बहुत ही अधिक सावधान रहने की ज़रूरत है।

बाढ़-संकट

जहाँ-जहाँ उत्कल में बाढ़ भवानी का प्रकोप रहता है, वहाँ की कष्टमयी स्थिति का अध्ययन गांधीजीने बड़े गौर से किया। उन्होंने इस पर संतोष प्रगट किया, कि बाढ़-कष्ट-निवारण के कार्य में न तो लापरवाही ही की गई है और न पैसा ही बर्बाद हुआ है।

श्री हरखचंद मोतीचंद बाढ़-पीड़ितों की सेवा-सहायता करने ख़ास तौर पर काठियावाड़ से उड़ीसा गये थे। यह एक धनाढ्य और परोपकारी सज्जन हैं। इन्होंने पैसा तो दिया ही, स्थानीय कार्यकर्त्ताओं की भी इन्होंने बड़ी सहायता की। श्री हरखचंदजीने गांधीजी से भरोसे के साथ कहा, कि उनके अधीन जो ५० स्वयंसेवक थे उन्होंने बड़े-बड़े कष्ट झेलकर काफ़ी मेहनत से काम किया है और कुल मिलाकर उनका काम बहुत अच्छा रहा है। जहाँ कहीं बेईमानी या ढिलाई दिखाई दी, वहाँ सख्ती से काम लिया गया और वह ग़लती तुरन्त ठीक कर दी गई। इसके अलावा लोक-सेवक-मंडल के सदस्य श्री लिंगराज मिश्रने बाढ़-कष्ट निवारण की ताज़ी-से-ताज़ी रिपोर्टें पेश कीं। गांधीजी जब पटना में थे, तब उनकी प्रवास-पार्टी के श्री दामोदरदास और श्री आर० शर्मा बाढ़ से आक्रांत स्थानों को देखने उत्कल भेज दिये गये थे। उन्होंने भी अपनी रिपोर्ट उपस्थित की। गांधीजीने कार्यकर्त्ताओं से कहा, कि 'देखिए, अब वर्षा के दिन आ गये हैं, इसलिए जो भी साधन आपके पास हों, उनसे काम लें और जहाँतक हो सके, घासफूस के ही कुछ झोंपड़े तैयार करावें, ताकि वे लोग वर्षा के चार महीने तो किसी तरह काट सकें, जिनका आज न कहीं ठौर है, न ठिकाना।' पर कार्यकर्ताओं के हाथ में इस वक्त सिर्फ़ ५०००) हैं। कम-से-कम इस काम के लिए २५०००) की आवश्यकता है। इसमें ५०००) से ऊपर तो बम्बई से आनेवाले हैं और २००००) अहमदाबाद से। गांधीजीने कहा, 'मुझे इसमें सन्देह नहीं, कि लोगोंने जो वादे किये हैं ज़रूर पूरे करेंगे और समय पर रुपया आ जायगा।'

इसके बाद बाँधों की बात आई। बाढ़ के दिनों में ये कमबख्त बाँध कभी-कभी और भी मुसीबत का कारण बन जाते हैं। इस प्रश्न पर गांधीजीने लेजिस्लेटिव असेंबली के मेंबर श्रीयुक्त बी० दास के साथ काफ़ी देरतक बातें कीं। श्री बी० दास स्वयं एक अच्छे इंजीनियर हैं और उन्होंने ख़ुद इस प्रश्न का अध्ययन किया है ऐसा उनका दावा है।

चरखा

हाथकताई के प्रति इधर गांधीजी की श्रद्धा और भी बढ़ गई है। कारण यह है, कि इस पैदल यात्रा में वह ग्रामवासियों के बहुत अधिक संपर्क में आये हैं। उनकी सच्ची स्थिति का जितना परिचय उन्हें अबकी हुआ, उतना पहले कभी नहीं हुआ। उनका ख़याल है, कि भारत के दूसरे प्रांतों की अपेक्षा उत्कल में चरखे की सफलता के लिए बहुत अधिक स्थान है। उत्कल की दरिद्रता स्वतःसिद्ध है। इस पर्यटन में तांबे के जितने टुकड़े गांधीजी को मिले, उतने शायद ही कभी उन्हें मिले हों। उत्कल में बेशुमार बेकारी तो हद दर्जे की है। सिवा हाथ-कताई व हाथ-बुनाई के उत्कल के लाखों आदमियों के लिए दूसरा कोई ऐसा काम-धंधा देखने में नहीं आता, जो उन्हें तत्काल कुछ पैसे दे सके। गाँववालों की यह सब स्थिति देखकर गांधीजी को यह विश्वास हो गया है, कि अगर कुशल कार्यकर्त्ता मिल जायँ और वे गाँवों में ही जाकर बस जायँ, तो गाँव के लोगों में चरखे का ख़ासा अच्छा प्रचार हो सकता है। इसीलिए उस दिन भद्रक में गांधीजी को बड़ी प्रसन्नता हुई, जब उन्होंने देखा, कि वहाँ के ज़मींदार श्री मेहताब बाबू तथा उनकी धर्मपत्नी उत्कल की दरिद्र जनता के बीच चरखे के गृह-उद्योग का प्रचार करने में अपना पैसा लगा रहे हैं। उनकी धर्मपत्नी ख़ुद घर घर जाकर लोगों को धुनना व कातना सिखाया करती हैं। गांधीजीने उनकी धुनाई इत्यादि को देखा और कहा, कि उन्हें चरखा-शास्त्र का और भी अच्छी तरह से अध्ययन करना चाहिए। भद्रक के पास गरदपुर में कच्छ के सुप्रसिद्ध परमार्थी श्रीजीवराम कल्याणजी का एक आश्रम है। हमलोग इसी आश्रम में दो-ढाई दिन टिके थे। सब अपनी पत्नी के कई सालों से जीवराम भाई अब यहीं बस गये हैं। आश्रम को

उन्होंने ३००००) का दान दिया है। अनाथों और अन्य ग़रीब आदमियों की सेवा-सहायता करने के लिए ही यह आश्रम चलाया जा रहा है। आश्रम में ऐसे लोगों को भोजन-वस्त्र दिया जाता है और उन्हें धुनना, कातना, बुनना वग़ैरा भी सिखाया जाता है। जीवराम भाई की धर्मपत्नीने कभी कच्छ के भी बाहर पैर नहीं रखा था। पर आज वे गांवों में घर-घर घूमकर चरखे की अलख जगाती फिरती हैं, और गाँवों की काहिल स्त्रियों को अपने हाथ से सूत कातना सिखाती हैं। गांधीजीने खादी के कार्यकर्ताओं को यह सलाह दी कि उन्हें अपनी कला में पूरी कुशलता प्राप्त कर लेनी चाहिए, और अखिलभारतीय चरखा-संघ उन से कम-से-कम जितनी योग्यता की आशा रखता है, उसे जबतक वे हासिल न करलें, तबतक उन्हें संतोष नहीं होना चाहिए।

श्री रमादेवी

मेरा सौभाग्य है, कि मैं आज 'हरिजन-सेवक' के पाठकों को गोपबंधु चौधरी की सहधर्मिणी श्रीमती रमादेवी का परिचय दे रहा हूँ। गांधीजी तो इस देवी की योग्यता पर बेहद मुग्ध हैं। कटक में यह एक आश्रम चला रही हैं। गांधीजीने उन्हें यह सलाह दी है, कि वह अपने आश्रम को कटक से हटाकर किसी गाँव में ले जायँ, जहां वह अपनी लड़कियों को जन-सेवा की और भी अच्छी शिक्षा दे सकें। रमादेवी और उनकी लड़कियाँ गांधीजी के इस पैदल पर्यटन में कुछ दिन हमारे साथ रहीं। उस दिन उत्कल से विदा होते समय गांधीजीने श्री रमादेवी की इन सुन्दर शब्दों में प्रशंसा की—'इस प्रवास में श्री रमादेवी और उनकी लड़कियोंने जिस ढंग से सेवा-कार्य किया है, उस पर मैं मुग्ध हो गया हूं। यह पैदल यात्रा कितनी ही सुखद और सुन्दर क्यों न रही हो, पर इस में संदेह नहीं, कि वह कठिन तो थी ही। पर थकान क्या चीज़ है, यह इन बहिनोंने कभी जाना ही नहीं। इन्होंने जो कुछ किया वह सब स्वाभाविक रीति से ही किया। मैंने इनके किसी काम में कभी दिखावटीपन नहीं देखा। मुसीबतों को झेलना ये खूब जानती हैं। सादगी तो इनकी सराहनीय है ही। ये घड़ीभर भी कभी आराम से नहीं बैठीं। नित्य सबेरे ज्यों ही हम लोग अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचते, ये लड़कियाँ हरिजन-बस्तियों में दौड़कर चली जातीं और वहाँ से आकर अपने देखे हुए दृश्यों व किये हुए कार्यों की रिपोर्ट देतीं। हरिजनों के बीच ये बहिनें बेधड़क घूमतीं। भारत की हज़ारों स्त्रियों से मिलने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैंने उनका सेवा-कार्य भी देखा है। किंतु श्री रमादेवी और उनकी इन लड़कियोंने जिस ख़ूबसूरती और सहज स्वाभाविकता से काम किया है, वह अपूर्व है। यह बात मेरे देखने में और कहीं नहीं आई। इन बहिनोंने कभी किसी विशेषाधिकार का दावा नहीं किया और न किसी चीज़ की कभी कोई इच्छा ही प्रगट की।'

उड़ीसा से विदा

उड़ीसा से विदा होते समय स्वयंसेवकों को लक्ष्य करके गांधीजीने कहा—

"आप लोगों से आज जुदा होते मुझे दुःख हो रहा है। आप के साथ गाँवों में घूमना मुझे बड़ा अच्छा लगता है, और ईश्वरने चाहा तो मैं कभी फिर पैदल पर्यटन करूँगा। आपके लिए यह एक बिलकुल ही नया अनुभव था। गाँव के हज़ारों आदमियों की भीड़ को काबू में रखना कोई आसान काम नहीं था। आप लोग खुले आसमान के नीचे बड़े प्रेम से रहे। अनूठी लगन से आपने काम किया। कार्याधिक्य की कभी कोई शिकायत नहीं की। यात्रा को सफल बनाने के लिए आपने दिन और रात जीतोड़ परिश्रम किया। आपके इस प्रयत्न के लिए ईश्वर अवश्य आपका कल्याण करेगा। अब आप लोगों से मेरी यही प्रार्थना है, कि गांवों में जो काम आपने आरंभ किया, उसे इसी तरह बराबर जारी रखें। आप लोगों के सत्संग की सुखद स्मृतियों को लेकर मैं आज आपके प्यारे उत्कल से विदा हो रहा हूँ।"

वालजी गोविंदजी देसाई

क्या यही वैष्णवता है ?

सुप्रसिद्ध श्रीवैष्णव पत्र 'सरस्वती' में श्री ब्रह्मचारी भगवदाचार्यजी अयोध्या के हाल के हिंदू-मुस्लिम-दंगे से पैदा हुई परिस्थिति पर लिखते हैं :—

"अयोध्या की दशा बहुत ही ख़राब है। महात्मालोग और साधुलोग भाग गये हैं— भागते जा रहे हैं, यह बहुत बुरा है। अयोध्या हमारा धाम है। वहाँ प्रभु की जन्मभूमि है। वहाँ का मृत्यु मोक्षप्रद है। यह सब बातें हमलोग रोज़ औरों को सुनाते और सिखाते रहते हैं, परन्तु समय आने पर हमारी भक्ति का खोखलापन प्रकट हो जाता है। फाँसी पर चढ़ने का समय हो, तो भी श्रीअवध का त्याग क्यों करना चाहिए ? मन्दिरों में विराजमान प्रभु का त्याग करके हम अपना प्राण बचाने बाहर भाग जावें, यह तो अत्यन्त अधमवृत्ति है। अन्त्यज मन्दिर में न जावे, जायगा तो मैं मर जाऊँगा, मरने समयतक भी मैं अन्त्यज को मन्दिर में नहीं जाने दूँगा, यह सब अनाप-शनाप बकनेवाले लोग आज मन्दिरों को श्मशान के समान छोड़कर भाग गये हैं। इस बाह्य धार्मिकता से धर्म की रक्षा नहीं होगी। मन्दिरों के महान्त महानुभावों को चाहिए कि वे अयोध्या में लौट आवें। भगवान् के श्रीचरणों में बैठे रहें। जो होना हो, होवे। अपने भाइयों के साथ सुख और दुःख दोनों को सहन करें। इसी में मानवता है। सरकार जिन्हें पकड़ना चाहेगी, उन्हें तो वह पकड़ेगी ही। भाग जानेवाले कायर आज नहीं, तो कल लोहे की ज़ंजीर से जकड़े तो जायँगे ही। जिन्हें सज़ा होनी होगी, होगी ही। परन्तु आप के मुँह पर वह काला दाग़ लगेगा, जो श्मशान की दहकती आग में भी काला ही रह जायगा। भगवान् को छोड़कर भाग जाने में कितनी बड़ी निर्लज्जता है, इसे हमारे वैष्णव बन्धु क्यों नहीं विचारते ? आज मन्दिरों और मन्दिर के अन्दर विराजमान भगवान् की रक्षा का भार किस के ऊपर छोड़ दिया गया है ?"

ब्रह्मचारीजी की इन वेदनापूर्ण पंक्तियों पर अयोध्या के वैष्णव साधु-संतों तथा सभी सनातनधर्मावलंबियों को ध्यान देना चाहिए। गाढ़े दिनों में अपने प्राणों के भय से मंदिरों को छोड़कर भाग जानेवाले लोग सचमुच यह कहने के अधिकारी नहीं हैं, कि अगर मंदिरों में हरिजनोंने प्रवेश किया तो सनातन-धर्म डूब जायगा।—सं०

हबशियों का कुलगुरु

(४)

टस्केजी का श्रीगणेश

१८८१ के मई मास में जब हेम्पटन की रात्रि-पाठशाला में वाशिंग्टन को पढ़ाते हुए पूरा एक वर्ष हो गया, तब अलबामा के किसी सज्जनने जनरल आर्मस्ट्रांग को लिखा कि टस्केजी में हबशियों के लिए एक अध्यापन-विद्यालय स्थापित करना है और उसके लिए एक अध्यापक की आवश्यकता है। जनरलने इस जगह के लिए वाशिंग्टन की सिफारिश की। उनकी सिफारिश मंज़ूर करली गई और वाशिंग्टन टस्केजी भेज दिया गया। वाशिंग्टन बेचारा यह आशा लेकर गया था, कि वहां विद्यालय का मकान तथा पढ़ाने-लिखाने का सब सामान तैयार मिलेगा। पर वहां जाकर जो उसने देखा उससे बड़ी निराशा हुई, वहां तो कुछ भी नहीं था।

सबसे पहला काम तो यह था, कि पाठशाला किस जगह पर खोली जाय। अन्त में यह ठहरा, कि हबशियों के गिरजाघर के सामने जो एक पुरानी-सी झोपड़ी पड़ी थी, उसी में पाठशाला लगाई जाय। उस सड़ी झोपड़ी की यह हालत थी, कि बरसात में वहां बैठना भी मुश्किल था। तमाम सब जगह पानी टपकता था। जब वाशिंग्टन अन्य विद्यार्थियों का सबक सुना करता, तब एक विद्यार्थी अपना सबक छोड़ देता और अपने अध्यापक के पीछे छाता खोलकर खड़ा हो जाता। कई बार तो यह भी हुआ, कि वाशिंग्टन जब भोजन करने बैठा, तो रसोई की मालिकिन को छाता लेकर उसके पीछे खड़ा होना पड़ा।

पहले ही महीने में वाशिंग्टनने इधर-उधर घूम-घामकर स्थानीय परिस्थिति का काफ़ी परिचय प्राप्त कर लिया। बहुत-से हबशी किसान कर्ज़ के भार से दबे पड़े थे। पाठशालाओं के लिए कहीं भी मकान नहीं थे। पाठशालाएं या तो गिरजाघरों में लगती थीं या लकड़ी की कोठरियों में। एक बार वाशिंग्टनने देखा, कि पांच विद्यार्थी एक ही किताब से पाठ पढ़ रहे थे। दो तो आगे की बेंच पर बैठे हुए किताब को अपने बीच रखकर पढ़ते थे और उनके पीछे दो विद्यार्थी उनके कंधों पर से झांकते हुए वही पोथी पढ़ रहे थे। और पांचवां सब से छोटा लड़का उन चारों के कन्धों पर से झांक-झांककर किताब पढ़ता था।

१८८१ की ४ जुलाई को पाठशाला बाक़ायदा खुल गई। उसदिन ३० विद्यार्थी हाज़िर थे। वाशिंग्टन अकेला एक पढ़ानेवाला था। किंतु दूसरे महीने मिस डेविडसन नाम की एक अध्यापिका आगई, और इससे पढ़ाने में कुछ सुविधा हो गई। बाद को वाशिंग्टनने उससे शादी करली। मिस डेविडसन एक बहादुर स्त्री थी। एक बार की बात है, कि मिसीसिपी में उसके एक विद्यार्थी को चेचक निकल आई। लोग इससे भयभीत हो गये, कि कोई भी उस ग़रीब बच्चे की परिचर्या करने को तैयार न हुआ। मिस डेविडसन पाठशाला बन्द करदी और जबतक वह बिलकुल अच्छा नहीं हो गया, तबतक बराबर दिन और रात वह उसके बिस्तर के पास बैठी उसकी सेवा करती रही। फिर जब मेंफिस में महान् भयकर पीतज्वर फैला, तब उसने तुरन्त वहाँ के मेयर को तार दिया, कि वह ख़ुद सेविका का काम करने को तैयार है।

वाशिंग्टनने देखा, कि विद्यार्थियों को सिर्फ़ किताबें रटा देना ही काफ़ी नहीं है, बल्कि उन्हें यह भी सिखाना ज़रूरी है, कि किस तरह नहाना चाहिए, कैसे दांत साफ़ रखने चाहिए और किस तरह कपड़े-लत्ते धोने चाहिए। यह भी सिखाना आवश्यक था, कि क्या और किस प्रकार भोजन करना चाहिए तथा घरबार किस तरह साफ़ रखना चाहिए। उन्हें एकाध उद्योग धन्धा भी सिखाना था और शारीरिक परिश्रम करने की भी टेव डालनी थी, जिससे कि पाठशाला छोड़ने के बाद विद्यार्थी अपना जीवन-निर्वाह तो कर सकें। थोड़े में कहा जाय, तो वाशिंग्टन की यह लालसा थी, कि उसके विद्यार्थी 'जीवन-पुस्तक' का भलीभांति अध्ययन करलें।

ज़्यादातर विद्यार्थी तो गाँवों के थे, जहां खेती-पाती ही लोगों की जीविका का मुख्य साधन था। इसलिए इस बात पर उसका ख़ास ध्यान रहता था, कि कृषक-जीवन के प्रति उसके विद्यार्थियों की सहानुभूति अवश्य रहनी चाहिए। वह चाहता था, कि शहरों के कृत्रिम जीवन से वे दूर ही रहें तो अच्छा।

पाठशाला खुलने के तीन महीने बाद वाशिंग्टन को मालूम हुआ, कि एक पुराना वीरान बाग़ बिकनेवाला है। टस्केजी शहर से यह बाग़ एक मील के फ़ासले पर था। यह जगह वाशिंग्टन के मन में बस गई; पर ५०० डालर कहां से आवें? ज़मीन का मालिक इस बात पर राज़ी हो गया, कि अगर २५० डालर वाशिंग्टन पहले दे दे और बाक़ी के २५० डालर एक साल के अन्दर चुका दे, तो वह ज़मीन को अपने काम में ला सकता है। हेम्पटन इन्स्टीट्यूट के ख़ज़ानची जनरल मारशल को वाशिंग्टनने लिखा, कि वे कृपाकर २५० डालर उसे उसकी निजी ज़बाबदेही पर दे दें तो काम बन जाय। जनरलने जवाब में लिखा, कि संस्था की रक़म उधार देने का तो उसे कोई अधिकार है नहीं, पर वह ख़ुद अपने पास से आवश्यक रक़म ख़ुशी से दे सकता है।

ज़मीन ख़रीद ली गई, और अब पाठशाला इस नये बाग़ में आगई। पहले वहाँ अस्तबल था। मुर्गियाँ भी वहीं पली थीं। ख़ैर, कामचलाऊ मरम्मत के बाद अब उस जगह अध्यापन-कार्य चालू कर दिया गया।

पाठशाला की इस नई जगह को ठीक तरह से बनाने का सारा काम क़रीब-क़रीब विद्यार्थियोंने ही किया। पढ़ाई के बाद दोपहर को वे लोग यह काम करते थे। कमरों की मरम्मत हो जाने के बाद अब वाशिंग्टनने यह निश्चय किया, कि ज़मीन के झाड़-झंखाड़ काट-कूटकर उसे फ़सल बोने के उपयुक्त बना लेना चाहिए। नवयुवक विद्यार्थी इस काम से ज़रा हिचकिचाये। उनके लिए यह समझना कठिन-सा था, कि भूमि को साफ़ करने और पढ़ने-लिखने के बीच में भला क्या सम्बन्ध है। यह बात उनकी बुद्धि में नहीं बैठी, कि खेती-पाती के लिए भूमि का बनाना कोई हलका काम नहीं है। पर वाशिंग्टन को तो यह काम करना ही था। वह नित्य दोपहर को कुल्हाड़ी लेकर जंगल साफ़ करने लगा। अपने अध्यापक का यह कार्य-तत्परता देखकर विद्यार्थियों की वह हिचक दूर हो गई और वे अब बड़े उत्साह से उसे मदद देने लगे। थोड़े ही दिनों में क़रीब २० एकड़ ज़मीन साफ़ कर ली और उसमें फ़सल बोदी।

इस बीच में मिस डेविडसनने क़र्ज़ा चुकाने की एक तदबीर सोच निकाली। उसने कुछ उत्सव मनाने का आयोजन किया

और टस्केजी-निवासी गोरों व हबशियोंने जो चीज़ें उसे भेंट में दीं उन सब को उसने बेच डाला। जिन हबशियों को गुलामी से छुटकारा मिल चुका था, वे कभी ५ सेंट दे जाते थे और कभी २५ सेंट। कभी दान में एकाध गुदड़ी मिल जाती थी और कभी कुछ गन्ने। एक दिन एक ७० बरस की बूढ़ी हबशिन छड़ी टेकती हुई वाशिंगटन के कमरे में आई। उसके तन पर चिथड़े-ही-चिथड़े थे। बुढ़ियाने वाशिंगटन के हाथ पर छै अंडे रख दिये और कहा, 'बेटा, इन बच्चों की पढ़ाई के लिए मैं यह छै अंडे दे रही हूँ, सो इन्हें पवित्र काम में लगा देना।'

वाशिंग्टनने लिखा है, कि 'जब से टस्केजी का काम शुरू हुआ, तब से संस्था के निमित्त मुझे अनेक दान मिलने के सुअवसर प्राप्त हुए हैं, पर मेरा ख़याल है, कि उस बुढ़िया के दान का जैसा हृदयस्पर्शी असर मेरे ऊपर पड़ा वैसा अन्य किसी दान का नहीं पड़ा।'

वालजी गोविंदजी देसाई

सीलोन में गुलामी की प्रथा

['वसुमति' में एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें सीलोन की गुलामी की प्रथा का बड़ा ही रोमांचकारी वर्णन किया गया है। उस लेख का आशय नीचे दिया जाता है। गांधीजीने सत्य ही कहा है, कि अस्पृश्यता हज़ार मुखवाली राक्षसी है। सामाजिक, राजनीतिक, व्यावसायिक एवं धार्मिक सभी क्षेत्रों में उसका बोलबाला है। उच्चता का अभिमान मनुष्य को पशु से भी बदतर बना देता है। झूठी प्रभुता की ऐंठ में जब वह अपने मनुष्यत्व को पैरोंतले कुचल डालता है, तब अत्याचार का नग्न नृत्य करते वह तनिक भी संकोच नहीं करता। उस वक्त उसकी दृष्टिमें कहाँ का धर्म और कहाँ का ईश्वर! पर आश्चर्य तो तब होता है, जब ऐसे-ऐसे घोर अत्याचारी भी धर्म और ईश्वर की शपथ खाते हैं। दुनियाँ के इन मग़रूर मालिकों को ज़रा आँख खोलकर देखना चाहिए, कि उनका यह मालिकपना एक बुलबुले की ही तरह है। सच्चा मालिक तो कोई और ही है, जिसके आगे उनकी प्रभुता ख़ाक भी तो नहीं है। जिस देश में ऐसे-ऐसे अमानुषिक अत्याचार होते हों, वह न तो संस्कृतिवान् कहा जा सकता है, न धार्मिक। अतः इसमें सन्देह नहीं कि अगर हमने यह ऊँचनीच की भावना या मालिकी-गुलामी की पाप-प्रथा न मिटाई, तो हम खुद ही मिट जायँगे—सं०]

भारत के रजवाड़ों में लौंडी, बाँदी और गोले या दास-दासियों की भयंकर दुर्दशा किसी से छिपी नहीं है। इसी प्रकार अकाल-पीड़ित व्यक्तियों-द्वारा अन्न या नाममात्र के मूल्य पर बेचे हुए लड़के-लड़कियाँ भी जहाँ-तहाँ गुलाम बनकर जैसे तैसे अपना जीवन बिता रहे हैं और उनकी दुर्दशा की ओर किसी का ध्यानतक नहीं जाता। लाचार बेचारों को गुलामी की असह्य यंत्रणाएं सहते हुए जीवन समाप्त कर देना पड़ता है। यह प्रथा भारत के लगभग सभी प्रांतों में प्रचलित है। यहाँ से पकड़कर या धोखा देकर फिजी, मारिशस या अफ्रिका में भेज दिये जानेवाले कुलियों का जीवन भी गुलामों से किसी भी प्रकार अच्छा नहीं कहा जा सकता। अफ्रिका के हब्शियों को गाय-बैल आदि पशुओं की तरह आज भी हम हाट-बाज़ारों में बिकते देख सकते हैं। इन बेचारों का अपना निजी कोई अधिकार नहीं होता।

भारत के उपनिवेश सीलोन या लंका में भी गुलामी की प्रथा मौजूद है, किंतु उसका स्वरूप इतना भीषण नहीं है। सीलोन में पालन-पोषण के लिए बालक-बालिकाओं को 'एग्रिमेण्ट कंट्राक्ट' की शर्त पर तो नहीं, पर किराये पर अवश्य लिया जाता है और बेचारे दरिद्र तथा भूखों मरते हुए लोग अपने बाल-बच्चों को पट्टा लिखाकर गुलामी के बन्धन में डाल देते हैं।

किरायानामा सही होने के वक्त माँ-बाप या अभिभावक लोग एक खासी रक़म नज़राने के रूपमें लेते हैं और अपने बच्चों की अभिभावकता उनके बालिग़ होनेतक के लिए दाम देनेवाले को सौंप देते हैं। माता-पिताओं का कहना है कि हम केवल पेट के लिए ही ऐसा करते हैं। मगर उन बेचारे बालक-बालिकाओं का जीवन महान् कष्टकर हो जाता है। अपने मालिक (अभिभावक) के घर उन बेचारों को सुबह से शामतक कठिन परिश्रम करना पड़ता है। आधे पेट खाकर रहना पड़ता और ज़रा-सी भूल-चूक या ग़फ़लत होने पर कठोर-से-कठोर दण्ड भोगना पड़ता है।

अभी कुछ समय पहले सीलोन के प्रसिद्ध अंग्रेज़ी पत्र 'टाइम्स आफ सीलोन' में कुछ ऐसे अदालती मामले प्रकाशित हुए हैं, जिनमें इस तरह के किराये पर लिये हुए लड़के-लड़कियों को मालिकों-द्वारा निर्दयता-पूर्वक बेतों से पीटे जाने, गरम लोहे से दागे जाने और उनकी उँगलियों में आलपीनें या सुई चुभाने की शिकायतें की गई हैं। कहीं-कहीं तो आँखों में मिर्चें लगाकर कष्ट देने की घटनाएँ भी दर्ज हैं।

उन बेचारों से कठिन परिश्रम लिया जाकर भी खाने के लिए सड़ा-बुसा अन्न, और वह भी बहुत कम, दिया जाता है। वेतन या अन्य रूप में तो उन्हें एक पाई भी नसीब नहीं होती।

इसी तरह उन लोगों की और भी कई कष्ट-कथाएँ प्रकाशित हुई हैं, जिन्हें पढ़कर मन में यही संदेह होता है, कि लंका जो किसी समय राक्षसों का देश माना जाता था, वह निरी कवि-कल्पना ही नहीं थी। क्योंकि आज भी वहाँ इस प्रकार के राक्षसी स्वभाववाले पूँजीपतियों की संख्या कम नहीं है।

एक दफ्तर के क्लर्क के यहाँ दस साल का एक लड़का इस शर्त पर गुलाम बनाकर रखा गया, कि उससे किसी काम में भूल होने पर उसकी गर्दन पर एक भारी पत्थर रखकर उठक-बैठक कराई जायगी। एक दिन लड़के की ग़लती पर वह सज़ा दी भी गई। मगर मालिक को इतने ही से सन्तोष नहीं हुआ और उसने उस लड़के की उँगलियों में आलपीनें चुभोकर उसे बाँध दिया था। यहाँतक कि अन्त में दियासलाई सुलगाकर उस जलती हुई सलाई से उसके हाथ को दाग दिया। पुलिस को जब यह खबर मिली, तो उसने उस क्रूर राक्षस स्वामी को अदालत में खड़ा कर दिया। उसके अत्याचारों पर विचार होकर अन्त में न्यायाध्यक्षने उसे सौ रुपये जुर्माना और तीन सप्ताह के कठिन कारावास की सज़ा सुना दी। अदालत में उस लड़के के शरीर पर ३० ज़खम दिखलाये गये थे।

इसी प्रकार दस बरस की एक बालिका दासी
मालिकिनने बुरी तरह बेतों से पीटकर अपना
चाहा; किन्तु इतने से भी जब उसे सन्तोष
बालिका के शरीर पर खौलता हुआ तेल
बाँध दिया और ऊपर से एक काठ का

तीसरी एक दस साल की बालिका

कर उसके मालिकने बेतों से पीटते हुए उसे बेदम कर दिया। इसके बाद उसके पाँव में रस्सी बाँधकर खिड़की से नीचे औंधा लटका दिया। तीन दिन—तीन रात उस बेचारी को उसी दशामें रखा गया और खाने को एक दाना भी अन्न का नहीं दिया गया।

पाँच वर्ष की अवस्था की एक दासी को उसकी मालकिनने बर्तन फोड़ देने के अपराध पर उसका गाल गर्म लोहे से दाग दिया, पर इतने पर भी अदालतने कोई प्रत्यक्ष गवाह न पाकर अपराधिनी मालकिन को निर्दोष क़रार दे दिया!

आठ-दस वर्ष के एक बालक नौकर (दास) को उसके मालिक ने यह काम बतलाया था, कि वह उसके प्यारे कुत्ते को दोनों वक्त भात खिला दिया करे। किन्तु वह बेचारा एक बार का चावल उसे खिलाता और दूसरी बार का ख़ुद खाकर अपना पेट भरता था। इस अपराध पर उसे मालिकने बुरी तरह बेतों से पीटकर बेहोश कर दिया। पुलिसने उसके बदन पर पन्द्रह ज़ख़्म देखे। अदालतने उस लड़के को गुलामी के बन्धन से मुक्त करके पिता के घर भेज दिया और उस इकरारनामे को गैरक़ानूनी बतलाकर रद कर दिया।

इसी प्रकार के और भी कई मामलों में दास-वृत्ति करनेवाले कई बालक-बालिकाओं को अदालतने गुलामी से छुड़ाकर उनके माँ-बाप के सिपुर्द कर दिया, और साथ ही यह हिदायत भी दे दी कि अगर फिर कभी इस तरह लड़के-लड़कियों को किराये पर दोगे, तो जेल की सज़ा दी जायगी।

किन्तु उन असंख्य अत्याचार-पीड़ितों में अदालततक जानेवालों की संख्या तो इनीगिनी ही है। इसीलिए यहाँ अब एक 'शिशु-रक्षा समिति' बनाई गई है। इसकी स्थापना के समय वहाँ के गवर्नर की पत्नी लेडी टामससने बतलाया, कि यह अकेली पुलिस या समिति के बस की बात नहीं है, कि वे इन असंख्य अत्याचार-पीड़ितों की शिकायतों का पूरा-पूरा पता लगाकर अपराधियों को सज़ा दिलवा सके।

सीलोन की आबादी ५० लाख के लगभग है। किन्तु प्रत्येक गृहस्थ के घर या दूकान पर अथवा कारखाने में जितने भी नौकर हैं वे सभी कम उम्र के लड़के-लड़कियाँ हैं। जो माता-पिता अपने बच्चों को इस तरह बेचते या किराये पर दे डालते हैं, वे स्वयं भी अपने घरू काम-काज के लिए सस्ते दामों पर अन्य गरीब लोगों के बच्चों को खरीद लेते हैं।

हाल ही में इस दास-प्रथा की रोक के लिए एक नया क़ानून बनाया जा रहा है। इससे यह प्रथा दूर तो नहीं होगी, पर इसकी उचित व्यवस्था अवश्य हो सकेगी। सात साल से कम उम्र के बालक से कोई भी कुछ काम नहीं ले सकेगा। काम का समय निश्चित हो जायगा, एक बार में केवल ४ घंटे। देखें, यह व्यवस्था कहाँतक काम देती है।

कलकत्ते के नागरिकों से

[कलकत्ता-कारपोरेशन की धांगड़ श्रमिक यूनियन के संयुक्तमंत्री श्री बुलाकीराम तथा श्री मुकरने, यूनियन की तरफ़ से, कलकत्ते के नागरिकों के नाम नीचे लिखी अपील निकाली है। सचमुच कलकत्ता-कारपोरेशन के लिए यह बड़ी शर्म की बात है, कि गरीब भंगियों के वेतन का चौथाई भाग घूसखोरी में चला जाता है और उनके लिए न पानी का ही कोई ठीक प्रबन्ध है, न पाख़ाने का ही। कष्ट असह्य हो जाने से अगर सचमुच उन लोगोंने सफ़ाई आदि का काम दो दिन को भी छोड़ दिया, तो शहर की क्या हालत हो जायगी? उनमें वह शक्ति है, जो कलकत्ते-जैसे विशाल स्वर्गोपम नगर को भी नरक में परिणत कर सकती है। कारपोरेशन का यह प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिए, कि जिन गरीब हरिजनों के हाथ में नगर के स्वास्थ्य की कुञ्जी है, उनकी शिकायतों को वह तुरन्त दूर करदे—सं०]

"आप जानते हैं कि हम आपका पाख़ाना और पेशाब ढोते, सड़कें साफ़ करते और धोते, और आपके शहर को रोशन करते हैं। यह हमारी सेवा का ही फल है, कि आप यहाँ सफ़ाई से रहते हैं और कारोबार करके रुपया कमाते हैं। आप लोग अपने सुभीते और आराम के लिए जो टैक्स कारपोरेशन को देते हैं, उसमें ही हमको तलब मिलती है। इसका इन्तज़ाम आपके वोटों से चुने हुए काउन्सिलर करते हैं और अपने अधीन नौकर रखकर वह हमसे काम लेते हैं। मगर अब हालत बिगड़ गई है। घूसखोरी और लूट-खसोट बहुत बढ़ गई है। अधिकांश अधिकारी कौंसिलरोंने या तो ख़ुद नौकरी करली है या फिर अपने आदमी भर दिये हैं, जो यही चाहते हैं कि कोशिश करके, चाहे नागरिकों को लाभ न हो, जितना अधिक रुपया लूट सकें लूटकर चलते बनें। ठेका आदि में तो यह मनमाना लूटते ही हैं। मकान का नक्शा पास कराने वक्त आप भी जान लेते होंगे कि कैसी बीतती है। अब तो हमको जो तनख़्वाह मिलती है, उसमें से भी प्रायः २५ फी सदी घूस ले ली जाती है! हमको न तो वर्दी मिलती है और न पानी या टट्टी का ही कोई प्रबन्ध है। हमारे उद्धार का ढोंग रचकर ये हमारे नाम से चन्दा वसूल करके खा जाते हैं, मगर हमारी तकलीफ़ मिटाना तो दूर, हम पर गोलियोंतक चलवाते हैं। हमारे लिए अत्याचारों से बचने का एक ही उपाय बाक़ी है और वह यह है कि हम यह काम छोड़दें। मगर हम जानते हैं, कि इसमें हमारे मालिकों या नागरिकों का दोष नहीं है, यह सब करतूतें तो कुछ धूर्त प्रतिनिधियों और कारपोरेशन की नौकरशाही की है। अगर हम अचानक काम छोड़ देंगे, तो यह कलकत्ता शहर सड़ उठेगा। बीमारियाँ फैल जायँगी। शहर गर्मी के दिनों में दो-चार दिन में ही उजड़ जायगा। ऐसी हालत के जिम्मेदार हम न बना डाले जायँ। हड़ताल होने पर दूसरे आदमियों से काम लेने में खर्च भी अधिक होगा और आप पर टैक्स भी बढ़ेगा। इसलिए नागरिकों को हम सूचना दे देना चाहते हैं, कि वे हमारे ऊपर होनेवाले अत्याचारों को दूर करावें। इसके लिए हम १५ दिन या एक महीने का समय आपको देने को तैयार हैं। अगर आप उचित प्रबन्ध और न्याय नहीं कर सकते तो जवाब दें। हमारी माँगें सिर्फ़ अत्याचारों को दूर करने की है। इसके विरुद्ध हम सभी वैध उपायों से लड़ेंगे और जब कोई न्याय अन्ततक न होगा तो हम काम छोड़ देंगे, फिर चाहे आप हमें हड़ताल कहें या हमारी बदमाशी कहें। हम न्याय चाहते हैं और उसी के लिए आप से प्रार्थी हैं।"

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S Gupte.

हम लोगोंने, और न बड़ोदा राज्यवालोंने ही अबतक कुछ किया है।

यह लांछन लगाना व्यर्थ है, कि हरिजन गन्दे और मांस खाते हैं, दारू पीते हैं और गन्दी रहनी से रहते हैं। उन्हें हम बुरी तरह से ठुकराते रहेंगे, उन्हें छूना भी पाप समझेंगे, तो उनसे हम आशा आर कर ही क्या सकते हैं? हमने उन्हें ऐसी जगहों में पटक दिया है, जहाँ जानवर भी रहना पसन्द न करेंगे—फिर आज हम इस पर आश्चर्य प्रगट करते हैं, कि अरे, ये लोग कितने गंदे रहते हैं! पर वे लोग अपनी बुरी आदतें छोड़ दें, तो क्या हम उन्हें अपना लेने को तैयार हैं? सच बात तो यह है, कि हमें धीरज के साथ उन्हें ऊँचा उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। आपकी इस बम्बई नगरी की म्यूनिसिपैलिटी के मुलाज़िम हरिजनों की नरक-जैसी बस्तियाँ देखकर मेरे दिल पर बड़ी चोट आई। बम्बई एक रमणीक नगरी कही जाती है। पर उसकी वह रमणीयता कहाँ है—बालकेश्वर में या कचरापट्टी में? जबतक इन दीन दुखी हरिजनों के रहने की आपने कोई ठीक-ठीक व्यवस्था नहीं करदी, तबतक आप लोगों को मलबार हिलके अलबेले बंगलों में ठाटबाट के साथ रहने का कोई अधिकार नहीं। हरिजनों के लिए अच्छे मकान बनवाने में खर्च ही कितना होगा? जिस नगरी की म्यूनिसिपैलिटी की आमदनी करोड़ों की है और जहाँ के नागरिकोंने मुझे एक ही महीने में ४३ लाख रुपये दिये थे, उस बम्बई के लिए क्या यह कोई बड़ी बात है? मैं आपसे अनुरोध करता हूँ, कि बम्बई के इन 'प्लेग-स्पाटों' को इन काल कोठरियों को एकबार आप ज़रूर देख आवें और म्यूनिसिपैलिटी से ऐसा ज़ोरदार आग्रह करें, कि वह तुरन्त इन बस्तियों की हालत ठीक करदे।

अगर आप वालपाखाड़ी में जावें, तो आप वहाँ देखेंगे, कि श्री पुरुषोत्तमदास, श्री मुरारजी सेठ और सुपारीवाला जैसे थोड़े-से सेवक भी कितना सुधार कर सकते हैं। उनका काम भी पूरा नहीं है, पर चूँकि अन्यत्र उतना भी नहीं है, इसलिए वही हमें बहुत बड़ा दिखाई देता है। कार्यकर्ताओं की टीका-टिप्पणी करना—जैसे, ये हरिजन-सेवक-संघ के आदमी करते ही क्या हैं, सारे दिन आराम कुर्सियाँ तोड़ा करते हैं, इन्हें तो आफ़िस से निकाल देना चाहिए—यह सब आक्षेप करना आसान है। गुस्से की झोंक में चाहे जो कहा जा सकता है। उठाई और पटक दी। दूसरों की टीका-टिप्पणी करना तो हमें बहुत प्रिय है, पर हमें अपनी संस्थाओं से काम कराना नहीं आता। संस्थाओं को हम अपनी सेवाएँ अर्पित नहीं करते, और जबतक हम स्वयं संस्थाओं में सेवा करने को तैयार नहीं, तबतक हमें दूसरों की इस प्रकार खंडनात्मक टीका करने का कोई अधिकार नहीं। यह तो मैं भी मानता हूँ, कि संघ के कार्य में सुधार की अभी काफ़ी गुंजाइश है, किन्तु अपनी शक्ति के अनुसार संघ के कार्यकर्ता ईमानदारी से काम कर रहे हैं। हमें उनके काम की क़द्र करनी चाहिए, उन्हें दाद देनी चाहिए, और तब नई-नई प्रवृत्तियों के चलाने की सलाह देनी चाहिए। मुझे आशा है, कि आप सब लोग संघ को अपना सहयोग देंगे और उसकी कार्य-शक्ति को बढ़ावेंगे। यह आप भूलकर भी न कहें, कि हममें सेवा करने क्षमता ही नहीं है। इस हरिजन-प्रवृत्ति के प्रति अगर आपके दिल में लगन है, तो आप सब कुछ कर सकते हैं।

संत इमाम अहमद हंबल

इमाम अहमद हंबल एक पहुँचे हुए संत थे। वे बग़दाद में रहते थे। पारंगत विद्वान्, अनुपम विरागी, महान् परमार्थी और तेजस्वी महात्मा थे। प्रभुने हमेशा उनकी प्रार्थना सुनी। ऋषि वस्त हार्फीने इमाम अहमद के बारे में लिखा है, "आचरण और चरित्र इमाम अहमद का इतना ऊँचा था, कि उसका तो एक ज़रा भी हम लोगों में नहीं है।" ईमानदारी से जो पैसा मिलता उसी से अपना और अपने कुटुम्ब-कबीले का गुज़ारा चलाते थे। क़ाज़ीपने से सदा चिढ़ रही। इनका लड़का सालेह एक साल तक इस्पहान में क़ाज़ी के पद पर रह चुका था। इमाम अहमद मरते मर गये, पर लड़के के हाथ की रोटी भी न खाई। क़ाज़ी की कमाई को वह नापाक समझते थे।

उन दिनों बग़दाद में धर्मान्धों का ज़ोर बहुत बढ़ गया था। इमाम अहमद की सच्ची धार्मिकता उन सब की आँखों में काँटे-सी गड़ रही थी। एक दिन क़ाज़ियोंने यह निश्चय किया, कि इस इमाम को पकड़ के सख्त सज़ा देनी चाहिए, क्योंकि यह क़ुरान को मनुष्यकृत कहा करता है। ख़लीफ़ा भी अन्धश्रद्धालुओं के ही गिरोह में था। बस, फिर क्या था, अहमद इमाम को पकड़ कर ख़लीफ़ा के महल के सामने खड़ा कर दिया। एक सिपाही, जो वहाँ पर पहरा दे रहा था, इमाम साहब को देखकर बोला—"सच्ची बहादुरी दिखाइएगा। मैंने एक दफे चोरी की थी। उसके लिए एक हज़ार कोड़े पड़े थे, पर मैंने चोरी क़बूल नहीं की। आखिर को मैं छोड़ दिया गया। मैंने झूठ के लिए जब धीरज नहीं छोड़ा, तब आप सत्य के लिए धीरज क्यों छोड़ेंगे?" इससे इमाम अहमद का साहस और बल और भी बढ़ गया।

ख़लीफ़ा के दरबार में इमाम अहमद हथकड़ियों से बँधे हाज़िर किये गये। जब पूछा गया, कि 'क्या तू क़ुरान को मनुष्यकृत कहता है', तो इमाम अहमदने इसके जवाब में एक शब्द भी नहीं कहा। इसलिए ख़लीफ़ा की आज्ञा से उनकी कमर पर का कपड़ा निकाल लिया गया, और हाथ-पैर कस दिये गये। पर वह अल्लाह की प्रीति में मतवाला फ़क़ीर तो वैसे ही सहज भाव से खड़ा रहा। एक हज़ार बेत पड़े। पर उसके अंतर का रंग न बदला। बूढ़े और कृश तो थे ही, मार की पीड़ा से चोला छूट गया। जब इमाम साहब आख़िरी साँसें भर रहे थे, तब लोग उनके पास आये और पूछा, 'इन धर्मान्धोंने आप पर जो ज़ुल्म किया है, उसके बारे में आपको क्या कहना है?'

'कुछ नहीं। उनका ऐसा विश्वास रहा होगा, कि अहमद असत्य की राह पर चल रहा है। इसलिए उनसे मुझे कोई शिकायत नहीं। ख़ुदा उन्हें अपना प्रकाश दे।'

अंत समय का उस संत की यह प्रार्थना थी, कि—'ऐ मालिक! जिन्हें तूने इमान का दान दिया है, उनसे कभी कमी न करना; और जिन्हें इमान का यह दान नहीं मिला है, उन्हें अब दे दे।'

महर्षि अहमद इमाम जब दफ़नाये गये, तब उनके क़ब्र पर दो हज़ार यहूदी, ईसाई और पारसी हाज़िर थे। इमाम के पवित्र शव के ऊपर पंछी भी मँडराते हुए आर्त क्रंदन कर रहे थे।

वि० ह०

का मेरे मन के ऊपर भारी बोझ रहा करता था, और कभी-कभी तो ऐसा लगता था, जैसे एक वर्ग इंची जगह पर दस-बारह मन वज़न का दबाव पड़ रहा हो।'

वाशिंग्टनने यह निश्चय किया, कि विद्यार्थियों को सिर्फ़ खेती-पाती और घरू धंधे ही न सिखाने चाहिए, बल्कि मकान भी उन्हीं के हाथ से बनवाने चाहिए। ऐसे मकान बाहर के अनुभवी कारीगरों के बनाये मकानों की तरह सुडौल और आरामदेह भले ही न हों, पर संस्कृति और स्वावलंबन की इनसे उन्हें जो शिक्षा मिलेगी, उसमें आराम या सुन्दरता की कमी की क्षतिपूर्ति मज़े में हो जायगी। भूल भले ही हो, पर इससे भविष्य के लिए जीवनोपयोगी ज्ञान तो मिलेगा।

विद्यार्थियों के हाथ से मकान बनवाने की यह पद्धति तो बराबर ही चालू रही। सन् १९०० में छोटे-मोटे वहाँ ४० मकान थे, जिनमें सिवा चार के और सब विद्यार्थियों के ही बनाये हुए थे। नतीजा इसका यह हुआ कि किसी भी आकार या प्रकार का मकान आज बनाना हो तो उसका नकशा बनाने के काम से लेकर बिजली के तार लगाने तक का सारा काम टस्केजी के अध्यापक और विद्यार्थी कर सकते हैं, और बाहर से एक भी कारीगर नहीं बुलाना पड़ता है।

वाशिंग्टनने ईंट की भट्टी भी अपनी ही लगाई, यद्यपि इसमें उसे बड़ी कठिनाई पड़ी। घुटनोंतक घंटों गारे में खड़े रहना विद्यार्थियों के लिए कोई दिल्लगी की बात नहीं थी। फिर तीन बार भट्टी का ताव बिगड़ गया, और इस से हज़ारों ईंटों का नाश हो गया। पैसे की यह हालत थी, कि अब वाशिंग्टन की गांठ में एक भी डालर नहीं बचा था। इसलिए उसने अपनी घड़ी रहन रख दी और उससे १५ डालर उसे मिले, और इस छोटी-सी पूँजी से फिर नई भट्टी लगाई। अब कहीं जाकर उसका यह चौथा प्रयोग सफल हुआ।

टस्केजी में ईंटों का काम इतने महत्व का हो गया है, कि सन् १९०० में विद्यार्थियोंने १२ लाख ऐसी फ़र्स्ट क्लास ईंटें तैयार कीं, जो बाज़ार में अच्छी तरह खप सकती थीं। आज तो वहाँ बीसियों युवकोंने ईंटें बनाने का काम सीख लिया है और दक्षिण अमेरिका के कई राज्यों में वे इस धंधे में लगे हुए हैं।

इसी तरह गाड़ी, ठेला और बग्घी बनाने में भी औद्योगिक शिक्षा का सिद्धान्त अमल में लाया गया। टस्केजी में आज ऐसी दुर्जनों सवारी गाड़ियाँ काम में लाई जाती हैं, जो विद्यार्थियों की ही तैयार की हुई हैं। इसके अलावा स्थानीय बाज़ार में भी उनकी बनाई हुई गाड़ियाँ बिकती हैं।

दूसरे वर्ष विद्यार्थियों की संख्या १५० तक पहुँच गई। पहले मकान का कुछ हिस्सा ज्यों ही काम में लाने योग्य हो गया, कि वहाँ एक छात्रालय खोल दिया गया। उसमें न तो रसोड़ा ही था और न भोजन का ही कमरा। मगर मकान के नीचे की मिट्टी विद्यार्थियों से खुदवाकर वाशिंग्टनने एक अच्छा प्रकाशदार तहखाना तैयार कर लिया, और उसी को रसोड़ा और भोजन-गृह बना दिया। मेज़-कुर्सियाँ तो थीं नहीं, इसलिए मकान बनाते समय बढ़ई की जो पटरियाँ काम में लाई गई थीं, उन्हीं की मेज़ें बना ली गईं। अब स्टोव कहाँ से आवें? और खुले हुए चूल्हों पर ही देगचियाँ चढ़ाकर खाना पकाया गया।

शुरू में तो किसी भी चीज़ की कोई ठीक व्यवस्था नहीं था। कभी तो रोटी अधकच्ची रहती और कभी जल जाती। कभी नमक डालना भूल जाते। और कभी चाय ही ध्यान से उतर जाती। एक दिन एक लड़की को कुछ भी कलेवा करने को नहीं मिला। इसलिए बेचारीने सोचा, कि चलो पानी पीकर ही भूख शान्त कर लूँ। कुएँ पर पानी खींचने गई, तो वहाँ रस्सी टूटी पड़ी थी! कुएँ से लाचार लौट आई और बोली, 'इस पाठशाला में तो हमें पीने को पानी भी नहीं मिलता।' उसे क्या ख़बर थी, कि वाशिंग्टन उसकी यह बात सुन रहा है। पर धीरज का फल मीठा ही होता है। भगीरथ प्रयत्न का यह परिणाम हुआ, कि आखिरकार वह अव्यवस्था दूर हो गई और पाठशाला का काम एक अच्छे व्यवस्थित ढंग पर चलने लगा।

वालजी गोविंदजी देसाई

मथुरा की आर्य-कन्या-पाठशाला

श्री शिवचरणलालजी सहयोगी 'अर्जुन' में लिखते हैं :—

"मथुरा-आर्यसमाज आजकल अवैदिक कार्य कर रही है, और वह भी डंके की चोट। यहाँ के समाज की एक आर्य-कन्या-पाठशाला है। उसमें पिछले दिनों कुछ हरिजन बालिकाएँ भर्ती कराई गई थीं। उनके प्रवेश के प्रश्न पर ही समाज में ऐसी खलबली मची, कि जैसे क्रान्ति होने जा रही हो। मामला स्थानीय समाज की अन्तरंग सभा में पेश हुआ। वहाँ गरमागरम बहसें हुईं। पर बहुमतने यही निश्चय किया कि बालिकाएँ भर्ती की जायँ। इसके निर्णय पर समाज का साधारण अधिवेशन बुलाया गया, जिसमें लगभग सभी आर्य सदस्य उपस्थित हुए। वहाँ भी विजय मिली, और हरिजन लड़कियाँ भर्ती करली गईं।

इस पर कोलाहल मच गया। अध्यापिकाओंने उन्हें नहीं पढ़ाया। आधी से अधिक लड़कियाँ बैठ रहीं। इस स्थिति को देखकर कन्या-पाठशाला के अनुभवी मैनेजरने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। किंतु समाजने उनमें पूर्ण विश्वास प्रगट करते हुए इस्तीफ़ा वापस कर दिया। इसके पश्चात् उन्होंने एक अध्यापिका को तैयार किया, जो हरिजन बालिकाओं को अलग बैठाकर पढ़ाने लगी।

अब केवल एक हरिजन बालिका पढ़ने आती है, जिसे वही एक अध्यापिका पढ़ाती है। मैनेजर साहब का कहना है, कि यदि हरिजन बालिकाओं को अलग न बैठाया गया होता, तो आर्य-कन्या-पाठशाला टूट जाती। कन्या पाठशाला न टूटे, चाहे अवैदिक कार्य होता रहे, यह सार निकला।"

लेखक को मथुरा-आर्य-समाज की इस घटना पर बड़ा क्षोभ हुआ है, और क्षोभ होने की बात ही है। इस अवांछनीय प्रसंग पर वह लिखते हैं :—

"आर्य-समाज मर गया या ज़िन्दा है, यह एक अत्यन्त आवश्यक और गम्भीर प्रश्न है। हम कैसे जानें कि आर्य-समाज मर गया या ज़िन्दा है। हमारी समझ में जिस प्रकार मनुष्य की नाड़ी और शरीर के ताप को देखकर यह पता चलता है कि वह ज़िन्दा है या नहीं, उसी प्रकार

किसी समाज या धर्म के जीवन को जानने के लिए यह देखना ज़रूरी है कि आया उसमें अपने आदर्शों और सिद्धान्तों पर चलने की शक्ति है या नहीं। जो समाज या धर्म अपने आदर्शों पर आचरण करना छोड़ देता है, उसे मरा हुआ ही जानना चाहिए; कारण कि सिद्धान्तों और आदर्शों पर न चलते हुए भी यदि कोई धर्म और समाज उन्नति के पथ पर अग्रसर बने रह सकते हैं, तो फिर उनके पतन का दूसरा कोई कारण हो ही नहीं सकता। अतः हमारी समझ में तो किसी समाज या धर्म के जीवन को देखने के लिए यदि कोई ठीक तरीक़ा है, तो वह वही है जो हमने ऊपर लिखा है।"

लेखक के इन तीखे किंतु सच्चे शब्दों पर आर्य-समाज को नाराज़ नहीं होना चाहिए। मथुरा के आर्य-समाज के लिए सचमुच यह बड़ी लज्जा की बात है। आर्यसमाज का दलितोद्धार का दावा काफ़ी प्रामाणिक माना जाता है। यदि आज आर्य-समाज खण्डन-मण्डन के व्यर्थ विक्षेपण में न पड़कर अपने सिद्धांतों का मन-वचन-कर्म से आचरण करने लगे, तो दुःखितहृदय लेखक के उक्त प्रश्न का जवाब वह अब भी यही दे सकता है, कि 'आर्य-समाज मरा नहीं, जिन्दा है।'

वि० ह०

कोरी खादी खरीदिए

गांधीजीने खादी-कार्य के सुधार के सम्बन्ध में बहुत-कुछ आवश्यक बातें हाल में ही चरखासंघ को बतलायी हैं। उनमें एक यह भी है, कि कोरी खादी पहनने का प्रचार बढ़ाया जाय। लोग कभी-कभी यह शिकायत कर देते हैं, कि खद्दर बहुत कमज़ोर होता है और बहुत जल्द फट जाता है। जहाँ यह शिकायत ठीक है, वहाँ उसका सब से बड़ा कारण यह है, कि खद्दर के धोने में सफेदी लाने के लिए जो मसाले काम में लाये जाते हैं, वे कपड़े को बहुत कमज़ोर कर देते हैं। उसकी आधी शक्ति नष्ट हो जाती है। कोरी खादी को इस्तेमाल करने का सब से बड़ा लाभ यह है, कि कपड़े की आयु बढ़ जायगी। वह अधिक दिन चलेगा, जिसका अर्थ दूसरे शब्दों में यह होगा, कि वह पहले से सस्ता पड़ने लगेगा। इस प्रकार कोरी खादी का इस्तेमाल करने से यह शिकायत भी बहुत-कुछ आप-से-आप दूर हो जायगी कि खद्दर महँगा पड़ता है। खद्दर मिलके कपड़े की अपेक्षा महँगा तो पड़ेगा ही, क्योंकि हाथ के काम में मशीन की अपेक्षा अधिक मेहनत और खर्च पड़ता है। अपने घर का कता हुआ सूत गाँव में ही बुनवाकर पहना जाय, तो खद्दर मिलके कपड़े से भी सस्ता पड़ेगा। परंतु कोरी खादी के सस्ती होने की बात एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी। मान लीजिए कि धुला हुआ खद्दर चार आने गज़के भावसे बिकता है, तो कोरी खादी पन्द्रह पैसे गज मिल जायगी और उसकी आयु यदि ज्योढ़ी ही मान ली जाय तो वास्तव में उसके दाम दस पैसे गज होंगे।

आज भी मिलों का बना हुआ कपड़ा मारकीन आदि बहुत बड़े परिमाण में कोरा ही बिकता है। मिलोंने जो नकली खादी बनायी थी, वह भी कोरी ही बिकती थी। तब कोई कारण नहीं कि असली खादी भी बहुत बड़े परिमाण में कोरी ही क्यों न खप जाय? गाँववाले तो कोरी खादी को धुली हुई कमज़ोर खादी की अपेक्षा सहज ही पसन्द करेंगे। शहर के खादी-प्रेमियों में भी कुछ इसका उदाहरण रखेंगे, तो फिर दूसरे लोग भी इसे पहनने लगेंगे। यह स्पष्ट है, कि कोरी का अर्थ मोड़ी लगी हुई अथवा मैली खादी नहीं है, किंतु तेज़ मसालों का प्रयोग करके जिसमें सफेदी नहीं लायी गयी है, वही कोरी खादी है।

गांधीजी के आदेश से अब सभी खद्दर-भण्डारों में कोरी खादी बेचने का प्रबन्ध किया गया है।

खादी-सहयोग समिति, हापुड़ (यू० पी०) } रामस्वरूप गुप्त, मन्त्री, प्रकाशन-विभाग

मंदसोर के एक हरिजन-सेवक

मंदसोर से एक सज्जन लिखते हैं:—

"यहाँ एक हरिजन-पाठशाला है, जिसके अध्यापक श्रीयुत व्यासजी हैं। प्रायः सभी सवर्ण हिन्दुओंने व्यासजी को अपमानित किया है और अब उनका बहिष्कार भी कर दिया है। तो भी वह दृढ़ता से हरिजन-सेवा कर रहे हैं। हरिजन भाइयों के साथ ही वह रहते हैं। सवर्ण हिन्दू न तो उन्हें छूते हैं और न अपने कुओं पर ही चढ़ने देते हैं। पर व्यासजी को इस सामाजिक बहिष्कार की ज़रा भी पर्वा नहीं है। वह तो अपने पथ पर वैसे ही अविचल हैं।"

यह बात है, तो व्यासजी आज नहीं तो कल ज़रूर ही अपने विरोधियों के हृदय को पिघला देंगे। हो नहीं सकता, कि सेवकों की कष्ट सहिष्णुता, दृढ़ता, निष्काम सेवा और आत्म-शुद्धि का असर पड़ोसियों पर न पड़े। हरिजन-सेवा का पथ प्रायश्चित्त का पथ है, और प्रायश्चित्त सात्त्विक तप का ही दूसरा नाम है, इतना यदि हरिजन-सेवक ध्यान में रखेंगे, तो उनका बेड़ा पार है।

वि० ह०

भारतेन्दुजी और छूतछात

नीचे मैं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के दो पद्य देता हूँ। भारतेन्दुजी वल्लभकुलाश्रयी पुष्टिमार्गीय वैष्णव थे, किन्तु उनका हृदय संकीर्णता के भावों से बहुत ऊँचा था। ऊँच-नीच की भावना उनको सदा खलती थी। चौका-चूल्हा और छूतछात को वे देशघातक समझते और घृणा की दृष्टि से देखते थे। अपने 'भारत दुर्दशा' नामक नाटक में वे लिखते हैं:—

'रचि बहुविधि के वाक्य पुरानन माहिं घुसाए,
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए।
जाति अनेकन करी, नीच अरु ऊँच बनायो,
खान-पान-संबंध सबन सों बरजि छुड़ायो।'

अस्पृश्यता के बारे में—

'अपरस सोल्हा छूत रचि भोजन-प्रीति छुड़ाय।
किये तीन-तेरह सबै चौका चौका लाय॥'

सच्चा भागवत, सच्चा वैष्णव अपने प्रेमपूर्ण हृदय में अस्पृश्यता जैसी पाप-प्रथा को स्थान दे ही नहीं सकता।

वि० ह०

हर हिन्दू स्मरण रखे

कि बंबई में २५ सितम्बर, १९३२ को श्रीमान पंडित मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में हिन्दू-संसार के प्रतिनिधियों की सभा में नीचे लिखा प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ था :—

"यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि अब से कोई भी व्यक्ति, अपने जन्म से, अछूत नहीं समझा जायगा और अबतक जो ऐसा माना जाता था, उसके भी सार्वजनिक कुओं, सड़कों और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं के व्यवहार के सम्बन्ध में वही अधिकार होंगे जो दूसरे हिन्दुओं के हैं। अवसर मिलते ही इन अधिकारों को क़ानूनी स्वीकृति देदी जायगी और स्वराज्य-पार्लियामेंट के सब से पहले कामों में यह भी एक काम होगा, यदि तबतक यह अधिकार क़ानून-द्वारा स्वीकृत न हो चुके होंगे।

और यह सम्मेलन यह भी निश्चय करता है, कि अस्पृश्य कही जानेवाली जातियों की प्रथानुमोदित समस्त सामाजिक बाधाओं को—जिनमें उनकी मन्दिरबन्दी भी शामिल है—शीघ्र हटाने के लिए सभी उचित और शांतिमय उपायों का अवलंबन करना तमाम हिंदू-नेताओं का कर्तव्य होगा।"

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २९ जून, १९३४

प्रायश्चित्त का उपवास

श्री सीताराम शास्त्री आन्ध्र प्रान्त के एक प्रसिद्ध हरिजन-सेवक हैं। उनके एक मित्रने अपना एक मंदिर हरिजनों के लिए खोलने का वचन दिया था। पर बाद को वह अपने मित्रों के दबाव में पड़कर अपने उस वचन से नट गये। मित्र की इस कमज़ोरी पर बतौर प्रायश्चित्त के श्री सीताराम शास्त्रीने, कुछ दिन हुए, बिना शर्त का एक उपवास किया था। शास्त्रीजी ने इस उपवास की जब मुझ से चर्चा की, तो मैंने उनसे कहा, कि इस संबंध में मेरी जो दलील है उसे मैं संक्षेप में 'हरिजन' में दे दूंगा।

सराहनीय तो वही उपवास है, जो आध्यात्मिक उद्देश को लेकर उचित परिस्थितियों में किया जाता है। उपवास अपना स्वार्थ साधने के लिए नहीं होना चाहिए। उसमें कोई हिंसा-जैसी बात न हो; उदाहरण के लिए, किसी सनातनी की धर्म-श्रद्धा मंदिर खोलने के विरुद्ध है—यह जानते हुए भी यदि कोई उस सनातनी के ख़िलाफ़ अनशन करता है, तो उसका वह अनशन हिंसा में आजाता है। सीताराम शास्त्री को जिस प्रसंग के विरुद्ध उपवास करना पड़ा, वह जुदा है। उनके सामने तो यह सवाल था, कि जबकि उनके एक प्रगाढ़ स्नेहीने अपना वचन-भंग कर दिया है, तो उस स्थिति में उनका क्या कर्तव्य है। ऐसा वचन-भंग हुआ हो या होने की आशंका हो, तो साधारण रीति से तो उसका इलाज उपवास से होता है। जिनका यह विश्वास है, कि अस्पृश्यता-जैसे सामाजिक या धार्मिक पाप के विरुद्ध अहिंसा का युद्ध चलाने में उपवास का उपयोग धर्मसंगत है, उनके लिए उपवास कर्तव्यरूप नहीं तो कम-से-कम वाञ्छनीय तो समझा ही जाता है। पर हमें तो भीरु ही नहीं, बल्कि एक तरह से निर्वीर्य समाज से काम लेना है। ऐसे समाज से काम लेते समय वचन-भंग का भी उपचार हमें शांति से धीरे-धीरे करना होगा—ख़ासकर तब, जबकि व्यक्तिगत विषय में नहीं, बल्कि किसी सामाजिक विषय में वचन दिया गया हो। अंधविश्वास हमारे रोम-रोम में पैठ गया है। अस्पृश्यता खुद एक ऐसा बहिष्कार है, जिसमें तेज-से-तेज ज़हर भरा हुआ है। इसने हमारे मनमें काल्पनिक बहिष्कार का काल्पनिक भय भर दिया है। ऐसी भयभीत अवस्था में सामाजिक बहिष्कार की महज धमकी से ही वह मनुष्य अपने वचन से मुकर सकता है या उसे तोड़ने को तैयार हो सकता है, जो अपनी जाति से बाहर रहने की कभी कल्पना भी नहीं कर सकता। ऐसे प्रसंगपर उपवास एक बहुत सख्त उपचार साबित होता है। समझदारी का रास्ता तो यह है, कि ऐसे आदमियों से कोई वचन लेना ही नहीं चाहिए, और यदि वे वचन दे चुके हों, तो उसकी क़ीमत हमें छोटी नहीं आँकनी चाहिए। ऐसे मनुष्यों के साथ नम्रता और मुलायमियत से ही पेश आना चाहिए। उपवास-जैसे तेज़ उपचार से उन मनुष्यों की शक्ति बढ़ने के बजाय शायद वे और भी बलहीन बन जाते हैं, और इससे जिस सुधार के लिए उपवास किया जाता है, उस सुधार को ही हानि पहुंचती है।

'हरिजन' से। मो० क० गांधी

वही राम, वही रहीम

राम रहीम, करीमा केसो, अलह राम सति सोई।
बिसमिल मेटि, बिसंभर एकै, और न दूजा कोई॥
काज़ी-मुल्ला पीर पैगंबर, रोजा, पछिम निमाज़ा।
पूरब दिसा देवे-द्विज-पूजा, ग्यारसि, गंग दिवाजा॥
तुरक मसीत, देहुरा हिंदू, दुहुंठा राम खुदाई।
जहां मसीत देहुरा नाहीं, तहं काकी ठकुराई॥
हिंदू तुरक दुहू साईं के, दुबिधा कहँतें आई।
अरध उरध दसहूं दिसि जित तित पूरि रहा राम राई॥
कहै कबीरादास फ़कीरा अपनि राह चलि भाई।
हिंदू तुरक का करता एकै, ता गति लखी न जाई॥

२

मसजिद खुदा बसत है जोपै, और मुलक किस केरा।
तीरथ मूरति राम-निवासा, दुहु में किनहु न हेरा॥
पूरब दिसा हरी का बासा, पश्चिम अलह-मुकामा।
दिल ही खोजि दिलै दिल भीतर, यहीं राम रहिमाना॥
जेती औरत मरदां कहिए, सब में रूप तुम्हारा।
दास कबीर राम अल्लाह का, हरि गुरु पीर हमारा॥

साप्ताहिक पत्र

[७८]

निर्देशिका

१० से १२ जून

वर्धा : आश्रमसंबंधी तथा सार्वजनिक कार्य ।

१३ जून

वर्धा से बंबई, रेलवे, ४७२ मील । स्टेशनों पर धन-संग्रह ५४॥।)।

१४ जून

बंबई : बंबई प्रान्तीय हरिजन-सेवक-संघ तथा गांधी-सेवा-सेना की महिलाओं से मुलाकात । ईगतपुरी में धन-संग्रह ५१) कल्याण में धन-संग्रह २४।)। दादर इत्यादि में धन-संग्रह ४८) बंबई : गांधी-सेवा-सेना की ओर से १००); सन्ध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ३८॥।=)।

१५ जून

बंबई : हिन्दू स्त्रियों का मिशन तथा समग्रवंशी क्षत्रिय-सभा और सेवा-मन्दिर के प्रतिनिधियों से मुलाकात; महिलाओं की सभा, विविध धन-संग्रह ३०५।=)॥; संध्या की प्रार्थना के समय धन संग्रह ६२॥=)।

१६ जून

बंबई : हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण । डा० अंबेडकर तथा अन्य मित्रों से मुलाकात; सार्वजनिक सभा, तथा सार्वजनिक थैली ३०४६८)७; सन्ध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ११॥।=)॥

१७ जून

बंबई : घाटा कूपर में सभा व थैली ७२३४।=)॥।; सन्ध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ८४॥)

मोहिनी बंबई

पृथिवी-आकाश का अन्तर था यह ! कहाँ तो वह दारिद्र्य-दलित उत्कल के गाँवों का पैदल पर्यटन और कहाँ यह मोहमयी बंबई में मोटरों की रेलपेल ! पर गांधीजी को इस अलबेली नगरी की सुन्दरता मोहित न कर सकी । यहाँ के आलीशान महलों की ओर जहाँ गांधीजी की दृष्टि जाती है, वहाँ ग़रीबों की झोपड़ियाँ पहले उनके ध्यान में आजाती हैं । लक्ष्मी के साथ ही दरिद्रता का भी तो यहाँ निवास है । सन् १९१५ में गांधीजीने बंबई के हरिजनों की कुछ झोपड़ियाँ देखी थीं । अब की सेठ मथुरादास जी के साथ उन्हें क़रीब-क़रीब सभी हरिजन-बस्तियों के देखने का अवसर मिला ।

काम-ही-काम

बम्बई में यों तो हमेशा ही गांधीजी के ऊपर कार्य का इतना अधिक भार आ पड़ता है, कि कुछ पूछिए नहीं । पर इस बार तो उन्हें यहाँ और भी अधिक कार्यव्यस्त रहना पड़ा । हरिजन-कार्यकर्ताओं से मिलना, स्वराजियों के साथ बात करना, कांग्रेसकी कार्य-समिति में भाग लेना, हड़ताली मज़दूरों के प्रश्न पर विचार करना आदि इतने विविध कार्य थे, कि चिट्ठी-पत्री लिखने-लिखाने की तो कौन कहे, भोजन या विश्राम करनेतक का ठीक-ठीक समय गांधीजी को नहीं मिला । नतीजा यह हुआ, कि हरिजन-कार्य बहुत कम हो पाया । इसका उन्हें दुःख भी रहा । वे जानते हैं, कि अगर हरिजन-कार्य में ही उन्होंने अपना सारा समय बम्बई में लगाया होता, जिसके लिए कि वे वहाँ गये थे, तो जितना पैसा उन्हें मिला है उससे कहीं अधिक वे इकट्ठा कर लेते ।

हरिजन-सेवक-संघ

सबसे पहले गांधीजी बम्बई में पहुँचते ही प्रान्तीय हरिजन-सेवक-संघ के सदस्यों से मिले । सदस्यों का परिचय कराने के बाद संघ के अध्यक्ष सेठ मथुरादासजीने संघ का संक्षिप्त कार्यविवरण गांधीजी को सुनाया । छात्रवृत्तियों पर संघ काफ़ी पैसा ख़र्च कर रहा है । क़रीब २०० हरिजन-कुटुंबों के रहने लायक तीन निवासगृहों का संचालन भी संघ कर रहा है । संघ और क्या काम करे इस प्रश्न के उत्तर में गांधीजीने कहा—"हमारे कार्यक्रम में मन्दिर-प्रवेश का प्रश्न तो एक महत्व की चीज़ है ही । इसके साथ ही मैं यह भी चाहता हूँ, कि आप लोग सवर्ण हिंदुओं के बीच ऐसी जागृति पैदा करें, कि वे हमारे कार्य-क्षेत्र तथा अस्पृश्यता-निवारण की आवश्यकता का अनुभव करने लगें । यह काम शुद्ध, प्रामाणिक सेवक ही कर सकते हैं । दूसरी चीज़ है रचनात्मक कार्य का विस्तार । अच्छा हो, यदि संघ की ओर से एक सुन्दर बासा खोला जाय, जहाँ आते हुए हरिजनों को लगे, कि वे अपने ही घर में भोजन करने आ रहे हैं । एक सुव्यवस्थित भोजनालय हरिजनों के लिए संस्कृति का सुन्दर केन्द्र बन सकता है । यह सच है, कि कुछ हरिजनों के कपड़े साफ़ नहीं रहते । पर यह बात तो बहुत-से सवर्ण हिंदुओं के भी बारे में कही जा सकती है, जो भोजनालयों में भोजन करने आते हैं । बम्बई के हरिजनों की स्थिति की अगर आप लोग पूरी जाँच-पड़ताल कर डालें और अस्पृश्यता की बदौलत उनको जो असुविधाएँ और अभाव हैं उनकी एक फेहरिस्त बना लें, तो आप एक निश्चित कार्यक्रम तैयार कर सकते हैं । मुझे आशा है, कि कई बातों में यहाँ के कारपोरेशन से भी सहायता लेने का आप उद्योग करेंगे ।"

एक प्रश्न के जवाब में गांधीजीने कहा—"हरिजन-कार्य का राजनीति के साथ कोई सरोकार नहीं है । संघ का कार्य तो विशुद्ध धार्मिक और सामाजिक कार्य है । इसलिए संघ का द्वार सभी के लिए खुला हुआ है । मैं यह पसन्द करूँगा, कि संघ के आफिसों में सब ग़ैर-कांग्रेसी ही काम करें । कांग्रेसवाले सबके साथ उनके नीचे काम करें । हिन्दूधर्म के महान् सुधार का यह कार्य किसी एक दल या समुदाय की ठेकेदारी नहीं हो सकता । मैं यह संतोषपूर्वक कह सकता हूँ, कि अपने इस प्रवास में मैंने अनेक कांग्रेसियों को ग़ैर-कांग्रेसियों के नीचे [illegible] किसी 'हस-किबाइट के काम करते हुए देखा है ।"

सेविकाओं के साथ

श्रीमती गोसीबेन केप्टेन के नेतृत्व में बम्बई की जन-सेविकाएँ भी गांधीजी से मिलीं । इनके सेवा-कार्य का पता बहुत कम लोगों को होगा । पर गोसीबेनने अपने कार्य-विवरण का पारायण करने में गांधीजी का समय नष्ट नहीं किया । वह

तो गांधीजी से इस विषय पर दो-चार शब्द कहलवाना चाहती थीं, कि जिन सेविकाओं का हरिजन-कार्य के प्रति उदासीनता की वृत्ति है, वे क्या करें। गांधीजीने कहा—'एक काम है, जिसे वे आसानी से कर सकती हैं। एकाध हरिजन-बालक या बालिका अपने यहाँ रखकर वे उसकी सेवा कर सकती हैं। हृदय-परिवर्तन और सेवा-भावना की इच्छा भर हो, सेवा का क्षेत्र तो इस सब के लिए असीम है। आप जहाँ घर के बड़े-बूढ़े इस सुधार के विरोधी हों, वहाँ बहन क्या करें? इसमें संदेह नहीं, कि उनके मार्ग में काफ़ी कठिनाइ है, परन्तु ऐसे में ही सेवा करने का अवसर तो अच्छा मिलता है। सब से पहले उन्हें नम्रता तथा दृढ़तापूर्वक अपने बड़े-बूढ़ों को अपने पक्षमें करना चाहिए। अपने विश्वास की खातिर जो भी कष्ट उन्हें झेलने पड़े उसके लिए उन्हें हमेशा तैयार रहना चाहिए। आचरण बहुत बड़ी चीज़ है। सुधारकों का शुद्ध हृदय ही दूसरों के हृदय को पिघला सकेगा।"

महिलाओं की सभा

१५ जून को महिलाओं की सभा हुई, जहाँ भाषण देते हुए गांधीजीने कहा—"मेरे लिए यह प्रसन्नता की बात है, कि पुरुषों की सभामें भाषण देने से पहले मैं स्त्रियों की सभा में भाषण दे रहा हूं। जो श्रद्धा और भक्ति स्त्रियों में है वह पुरुषों में कहाँ? अस्पृश्यता के विरुद्ध मैंने जो यह लड़ाई छेड़ी है, यदि उसमें मुझे बहनों का पूरा सहारा मिल जाय, तो मैं यह कह सकता हूँ, कि मैंने आधी से अधिक लड़ाई जीत ली। मुझे आशा है, कि बंबई की बहनें इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देंगी। मेरा विश्वास है, कि समाज का उद्धार बहनें ही कर सकती हैं। मेरे लिए यह दुःख की बात होगी, अगर कहीं वे सुधार का रास्ता रोककर खड़ी हो गईं।

अस्पृश्यता का मूल उद्गम धर्म में नहीं है। उच्चता के इस झूठे अहंकारने ही अस्पृश्यता को जन्म दिया है। अपने से दुर्बलों को हम पैरोंतले दबाये रहे, इसी मनोवृत्ति से अस्पृश्यता पैदा हुई है। जबतक हरिजनों के साथ कोई संपर्क न रहेगा, और बुरी-से-बुरी बस्तियों में वे इसी तरह सड़ते रहेंगे, तबतक यह अस्पृश्यता जाने की नहीं। हमारे समाज में अगर वे सब लोगों के साथ आज़ादी से मिलने-जुलने लग जायँ और बिल्कुल बराबरी की हैसियत से सब काम-धंधे करने लगें, तो कुछ ही दिनों में यह देखकर हमें अचरज होगा, कि क्या ये वही तिरस्कृत हरिजन हैं!

सुधारक का काम इसलिए और कठिन हो गया है, कि अस्पृश्यता को हमने एक धर्म का अंग मान लिया है। त्याग ज़रूरी है, बिना त्याग के सेवा असंभव है। अतः अस्पृश्यता के इस पुरातन कलंक को धो मिटाने के लिए जितना भी त्याग किया जाय थोड़ा है।"

हरिजन-बस्तियाँ

१६ जून को गांधीजी बंबई की हरिजन-बस्तियाँ देखने गये। म्युनिसिपैलिटी की वालकेश्वर इस्टेट की बस्ती में उन्होंने दो परिवारों को १५ फ़ीट लंबी और १२ फ़ीट चौड़ी कोठरियों में रहते हुए देखा। म्युनिसिपैलिटी के हर मुलाज़िम को ३) या ॥=) माहवारी किराया इन कोठरियों का देना पड़ता है। वालकेश्वर घाट के बिल्कुल पड़ोस में यह बस्ती है। आलीशान ताजमहल होटल यहाँ से मुश्किल से दो फर्लांग होगा। इन झोपड़ियों को देखकर गांधीजी को जो व्यथा हुई थी, वह कुछ-कुछ नागपाड़ा में जाकर दूर हुई। बात यह हुई, कि वहाँ हरिजन बालकोंने बैंड बजाते हुए गांधीजी का स्वागत किया, और हरिजन बच्चों को इस बस्ती में उन्होंने स्वच्छ वर्दियाँ पहने कायदे के साथ कतारों में खड़े हुए देखा। श्री ऊधवजी हरिजनने यहाँ गांधीजी को एक सोने की अँगूठी भेंट की, जो उन्हें सन् १९२२ में कताई के दंगल में बतौर इनाम के मिली थी। सेठ पुरुषोत्तमदास हरकिसनदास और श्री चन्दूलाल सुरतीवाला की निस्स्वार्थ सेवाओं को ही इस बस्ती की तरक्की का श्रेय है। नागपाड़ा से गांधीजी साइवाड़ा और लव लेन की बस्तियाँ देखने गये, और वहाँ से कमाठीपुरा। कमाठीपुरा में चमड़े सिझाने का कारबार काफ़ी बड़े पैमाने पर होता है। वहाँ से वे सीधे कफ़परेड गये। यह बस्ती महालक्ष्मी में है। फिर प्रभादेवी की बस्ती देखी, जहाँ म्युनिसिपैलिटी के सैकड़ों हरिजन परिवार कनिस्तरों की टीन से छाई हुई झोपड़ियों में रहते हैं और जहाँ उघरे हुए बड़े गटर बिल्कुल पास ही बहते हैं।

डा० अंबेडकर

उसी दिन तीसरे पहर डा० सोलंकी तथा अपने अन्य मित्रों के साथ डा० अंबेडकरने गांधीजी से मुलाकात की। हरिजन सेवक संघ के कार्य की आलोचना करने के लिए गांधीजीने डा० अंबेडकर से जब कहा, तो उन्होंने यह सलाह दी, कि संघ को शिक्षा और दवादारू पर इतना अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए, क्योंकि सरकार भी तो यह काम कर रही है। फिर शिक्षा से मुख्य लाभ तो व्यक्ति को ही होता है। समाज को शिक्षा से क्या लाभ होगा, यह तो उस शिक्षित व्यक्ति पर ही निर्भर करता है। इससे उनकी राय में हरिजनों को कुछ नागरिक अधिकार दिलाने में ही संघ को अभी अपनी सारी शक्ति लगानी चाहिए—और वे अधिकार यही हैं, जैसे, सार्वजनिक कुओं से पानी भरवाना, उनके बच्चों को सार्वजनिक पाठशालाओं में बिना किसी भेदभाव के दाख़िल कराना आदि। गाँवों में हरिजनों के साथ जो बुरे सलूक होते रहते हैं, उनपर भी डाक्टर साहबने गांधीजी का ध्यान आकर्षित किया। गांधीजीने कहा, कि संघ का तो यह कर्तव्य ही है कि वह ऐसे मामलों को अपने हाथ में लेले। और संघने ऐसे अनेक मामले हाथ में लिये भी हैं, और उसे इस कार्य में थोड़ा-बहुत सफलता भी मिली है। पर यह अच्छा होगा, यदि भविष्य में डाक्टर अंबेडकर हरिजनों के प्रति किये गये प्रत्येक दुर्व्यवहार की तफ़सीलवार सूचना भेज दिया करें। गांधीजीने बतलाया कि उनके प्रवास का अनुभव तो यह है, कि गाँववालों की मनोवृत्ति में ख़ासा अच्छा परिवर्तन हो रहा है। उन्होंने कहा कि अगर डाक्टर साहब का वांछनीय सहयोग मिले, तो इस दिशा में उन्हें और भी अच्छी सफलता प्राप्त हो सकती है। शिक्षा के ऊपर गांधीजी की दृष्टि से कोई ऐसी फ़िज़ूलख़र्ची नहीं हो रही है। माँग बल्कि इसकी अधिक है, पर सुयोग्य सच्चरित्र शिक्षकों के न मिलने से वह माँग पूरी नहीं की जा सकी।

शाम को आज़ाद मैदान में सार्वजनिक सभा हुई, जहाँ लगभग तीन हज़ार लोगों की उपस्थिति में गांधीजीने अस्पृश्यता-

निवारण पर भाषण दिया। सारे दिन मेंह-पानी की झड़ी लगी रही, फिर भी लोग सभा में बड़े प्रेम से आये थे।

सांटाक्रूज़ में

१७ जून को सांटाक्रूज़ में सार्वजनिक सभा हुई। पानी थम नहीं ले रहा था, तो भी भारी जनसमूह सभा में उपस्थित था। सभा के बाद गांधीजी बम्बई की आसपास की बस्तियों के हरिजन कार्यकर्ताओं से मिले। कुछेक की यह शिकायत थी, कि हमारे सेवा-कार्य की सराहना तो दूर रही, हरिजनों का तो यहाँतक कहना है, कि हम लोग अपना मतलब गाँठने के लिए यह सब अछूतोद्धार का ढोंग रच रहे हैं! गांधीजीने कहा—'सो तो होगा ही। सदियोंतक हमने उनकी जो उपेक्षा की है, उसका नतीजा यह तो होगा ही। हमें वे गालियाँ दें, हमारे ऊपर पत्थर फेंकें, तो भी हमें उत्तेजित नहीं होना चाहिए। लेकिन बात ऐसी है नहीं। हरिजन भाई हमारी क्षुद्र सेवाओं को निश्चय ही स्वीकार कर रहे हैं। हमें हताश होने का ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता।

एक कार्यकर्ताने कहा, कि स्वच्छतापूर्वक बनाये हुए भोजन को भी एक पांत में बैठकर खाने में कई जातियाँ एतराज करती हैं। गांधीजीने कहा, कि यह भी एक तरह की अस्पृश्यता है, और यह अवश्य दूर होनी चाहिए। मगर सहभोज का यदि यह अर्थ हो, कि 'श्याम' का बनाया भोजन 'राम' करे और 'राम' का बनाया 'श्याम', तो कोई उन्हें ऐसा करने को मजबूर नहीं कर सकता, यह तो उनकी मर्ज़ी पर निर्भर करता है।

आसपास की बस्तियों के हरिजन

रास्ते में गांधीजीने एक छोटी-सी महार-बस्ती देखी। यहाँ लोग एक दूसरी से सटी हुई झोंपड़ियों में रहते हैं। ज़मीन की सतह भी काफ़ी नीची है। जिस ज़मीन पर ये मड़ैयाँ बनी हुई हैं, उसका कुछ अजीब ही पट्टा है। ज़रा-सी जगह का उन्हें झोंपड़ी पीछे एक रुपया माहवार भरना पड़ता है। यहाँ पर पक्की कोठरियाँ बनवाने तथा ज़मीन के पट्टे में उचित हेरफेर कराने का प्रयत्न तो हो रहा है, देखें क्या होता है।

पर सब से गई-गुज़री बस्ती तो खीमा (गुजरात) के अभागे हरिजनों की थी। उनकी वे टूटी-फूटी मड़ैयाँ हैं या आफ़त! ये सब-की-सब टीन की झोंपड़ियाँ हैं। ज़मीन की सतह भी नीची है। सारी बस्ती में सिर्फ़ एक नल लगा हुआ है। खाक-चोरी को छन लगाने के लिए वहीं पास ही दो होलियाँ हैं। बेचारे ये हरिजन यहाँ बिल्कुल ही लावारिस-से पड़े हैं। यह बस्ती बाँद्रा की म्युनिसिपैलिटी के अधीन है। बाँद्रा उपनगर आजकल काफ़ी उन्नति पर है। कितने ही सुशिक्षित लोग वहाँ रहते हैं। इसे एंग्लो-इंडियन और पारसी लोगों का उपनगर कहना चाहिए। हरिजनों की यह नरक-जैसी बस्ती देखकर गांधीजी को बड़ा दुःख हुआ। श्री रतन बेन मेहता यहाँ हरिजन-सेवा का कार्य कर रही हैं। उन्होंने बाँद्रा-म्युनिसिपैलिटी की इस लापरवाही की गांधीजी से सख्त शिकायत की। बाँद्रा की म्युनिसिपैलिटी को अवश्य ही इस हरिजन-बस्ती पर ध्यान देना चाहिए।

वालजी गोविंदजी देसाई

सागर ज़िले के गाँवों में

[सागर ज़िले की रहली तहसील में अनंतपुर नामका एक गांव है। यहाँ अखिल भारतीय चरखा-संघ की ओर से स्वावलंबी खादी-प्रयोग के लिए 'खादी-निवास' नाम की एक संस्था सन् १९२९ में स्थापित की गई, जिसने इधर ६ वर्ष में सुन्दर सन्तोषजनक काम किया है। हरिजन-प्रवास के सिलसिले में गांधीजी पिछले दिनों अनंतपुर गये थे, और वहाँ का खादी-कार्य देखकर प्रभावित भी हुए थे। 'अनंतपुर में मैंने क्या देखा' इस नाम का गांधीजी का एक सुन्दर लेख 'हरिजन-सेवक'में प्रकाशित हो चुका है। अनंतपुर गाँव सागर से ४० मील और रहली से १० मील दूर कापरा और कुपरिया नाम की नदियों के संगम पर बसा हुआ है। यहाँ से रेलवे लाइन लगभग ४० मील दूर है। अनंतपुर गाँव के चारों तरफ़ करीब २५ गाँवों में खादी-निवास का कार्यक्षेत्र है। खादी-निवास के श्री साधु सीतारामदासजी तथा उनके अन्य सहयोगियों ने इन्हीं २५ गाँवों की स्थिति का अपनी आँखों-देखा वर्णन 'क्षेत्र-दर्शन' नाम की एक छोटी-सी पुस्तिका में लिखा है। साधुजी लिखते हैं—"यहाँ की स्थिति एवं लोक-समाज के स्वभाव का संक्षिप्त विवरण इसने अपने अभ्यासार्थ लिखा है। घर-घर के आबाल वृद्ध व्यक्तियों के साथ तीन-चार सालतक के सतत रचनात्मक घर्षणयुक्त प्रत्यक्ष परिचय के आधार पर ही यह विवरण लिखा गया है—यह भी १०-१२ वर्षों से ग्रामों की लोक-सेवा का कार्य उत्तरदायित्व-पूर्वक करनेवालों के हाथ से।"

सागर ज़िला मध्यप्रांत में है। बोली की दृष्टि से यह भाग बुन्देलखण्ड में आता है। सागर, दमोह, जबलपुर, नरसिंहपुर आदि मध्यप्रांत के ज़िले, झाँसी, बाँदा, हमीरपुर, जालौन आदि संयुक्त-प्रांत के ज़िले तथा बुन्देलखण्ड एजेन्सी के अंतर्गत तमाम देशी राज्य इन सब में बुन्देलखण्डी बोली बोली जाती है, जो पश्चिमी हिंदी का एक रूप है और ब्रजभाषा से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। इस प्रदेश का बहुत-सारा भाग अत्यन्त ही दरिद्र है। उड़ीसा प्रांत भारतभर में सब से दरिद्र प्रांत माना जाता है, पर मैं खुद एक बुन्देलखण्ड-निवासी होने के नाते यह साधिकार कह सकता हूँ, कि बुन्देलखण्ड का कुछ भाग तो दरिद्र उड़ीसा से भी अधिक कंगाल है। गाँवों की बड़ी ही भयानक स्थिति है। कुछ जातियाँ तो ऐसी हैं, जिन्हें मुश्किल से सालमें एक-दो महीने अन्न खाने को नसीब होता है, नौ-दस महीने तो ये लोग महुआ, बेर, तेंदू, अचार आदि जंगली फलों और लठारा, कुटकी, काकुन, कोदों आदि चारे-दाने के दानों पर ही निर्वाह करते हैं। ग़रीब-परवर महुआ जिस साल फूला नहीं करता, उस साल तो उनकी मौत ही समझिए। महुआ महाराज की महिमा यहाँतक गाई गई है, कि—

"महुआ मेवा, बेर कलेवा, गुलगुच बड़ी मिठाई!"

कपड़ों की यह हालत है, कि एक चिथड़ा सिर पर लपेट लेते हैं और एक चिथड़ा कमर पर। न ओढ़ना है, न बिछौना। सौ में मुश्किल से शायद ५ आदमी रोटी-भाजी से सुखी होंगे। यह दशा हो गई है, पर यहाँ जातियों का विषोत्पन्न बैसा ही बना हुआ है, ऊँच-नीच का भाव अब भी गाँवों में काफ़ी पाया जाता है। पाखण्डने अपना पापी पंजा कहाँतक फैलाया है!

स्वयं ही मालिक है इस रसातल को जाते हुए दुर्दशाग्रस्त दरिद्र देश का।

उपर्युक्त 'क्षेत्र-दर्शन' में सागर ज़िले के गाँवों के 'आपस का व्यवहार' 'आर्थिक दशा' और 'खानपान' का विवरण संक्षिप्तरूप में नीचे दिया जाता है। विवरण दिल दहलानेवाला भी है और मनोरंजक भी—वि० ह०।]

आपस का व्यवहार

बसोर, भंगी, चमार, नाई, धोबी, कुम्हार, कुटवार, डामर, (बरौआ) ये जातियाँ 'कमीन' गिनी जाती हैं। इन जातियों को दूसरी जातियों से अपने-अपने काम के सिलसिले किसी-न-किसी प्रकार बँधी हुई होने से, अपने काम की मजूरी के रूप में वर्ष की समाप्ति पर अन्न, वस्त्र आदि मिलता रहता है। इसके सिवाय ये जातियाँ प्रायः सबके घरों से खाना पाती हैं, और तिथि-त्योहार आदि पर कलेवा (बना-बनाया भोजन) मिलता रहता है। इन लोगों को विवाह, जन्म और मरण आदि अवसरों पर जिमाना पड़ता है। इस रिवाज के अनुसार यदि कोई कमीनों को नहीं खिलाता, तो जातिवाले और गाँववाले उसे अपने यहाँ खाना बन्द कर देते हैं।

इसके सिवाय बाकी की जातियों को तो यही "तीन कनौजिया तेरह चौका" वाली कहावत है। इनमें खान-पान की प्रथा पूरियाँ कुछ जातियाँ कुछ जातियों के हाथ का खा लेती हैं, और कुछ जातियाँ (किसान आदि भी) तो किसी की बनाई पूरियाँ तक नहीं खातीं। दाल, भात, रोटी, साग तो ब्राह्मणों के हाथ का भी ब्राह्मण, बनिये, कार्छी, दाँगी, घोषी, कुर्मी आदि जातियाँ नहीं खातीं।

पानी, ब्राह्मणतक बरौआ, कुर्मी, राजगोंड, घोषी, लोधी, दाँगी, बनिया, नाई इनके हाथ का पी लेते हैं, पर उनके घर के घड़ों का नहीं। शेष कमीनों को छोड़कर छोटी-छोटी गिनी जानेवाली जातियाँ आपस में एक दूसरे का भी पानी नहीं पीती हैं। कमीन तो रोटीतक ऊँची कही जानेवाली सभी जातियों के घर की खा लेते हैं।

आर्थिक दशा

आर्थिक दुर्दशा कहना ही उपयुक्त होगा। बात यह है कि प्रथम तो इनके सभी उत्पादक साधन नष्ट हो चुके हैं, दूसरे कार्य करने का ढंग बिगड़ चुका है, आलस्य में डूब गये हैं और अल्प-संतोषी बन गये हैं। इनकी महत्त्वाकांक्षा पाताल-प्रवेश कर गई है। खेती की ज़मीन यहाँ सौ में से साठ के पास तो बिलकुल है ही नहीं। तीस प्रति सैकड़ा के पास साधारण अर्थात् निजू आवश्यकता से भी कम ज़मीन है। १० प्रति सैकड़ा के पास प्रायः सारी ज़मीन है, जिनमें बनिये, मालगुज़ार आदि ही अधिक हैं। तीस प्रतिशत के पास भी न पूरे बैल हैं, न बीज का ठिकाना। काम का ढंग तो ऐसा बिगड़ा है, जो इन्हें दिन-दिन सर्वनाश की ओर लेजा रहा है। किसान होकर भी ये लोग सूर्योदय से पहिले तो उठते ही नहीं। दातौन और कलेवा करने में ही आठ बजा देते हैं। लगभग ९ बजे के खेत पर पहुँचते हैं। घटा दो घंटा कुछ काम हुआ वह किया, कि ११-१२ बजे लौटकर घर पहुँच ही जाते हैं। पीछे स्नान और भोजन करके भी काम पर वापस चले जाँय तो बड़ी बात। धीरे-धीरे तम्बाकू पियेंगे, इधर-उधर बैठेंगे, चूल्हे की ओर ताकेंगे, भोजन बन जायगा तब धोती उठा के स्नान करने जायँगे, फिर भोजन करेंगे।

भोजन चाहे जैसा घास-पात का, रूखा-सूखा ही नहीं, दस-बीस कंट-पंट चीज़ें सान-घूसकर बनाया गया हो, तो भी खाने में भीमसेन के भाई बन जायँगे। पेट फूल जायगा, मानो जलो-दर रोग हो गया हो। हम तो इनकी बीमारी और सुस्ती का मुख्य कारण इनका अधिक खाना ही मानने लगे हैं। बेहिसाब भोजन करने के बाद फिर घटा आध घटा तो ये हिल नहीं सकते, चाहे कितने ही महत्त्व का काम क्यों न हो। फिर पान-सुपारी का बटुआ खुलेगा। पान खायेंगे, पाहुनों को खिलायेंगे। तब कहीं २॥—३ बजे के पहले शायद ही खेतपर पहुँचेंगे। ५॥ बजे के लगभग तो घर को चल ही देंगे।

खेती इनको तभी पर ही करने लगे या भोजन करते ही खेत को चल जाया करें, तो एक घंटा आने-जाने तथा एक घंटा खाने के बाद का, ये दो घंटे काम के और निकल आ सकते हैं।

[illegible] काफी है। २५)—३०) रुपये में विवाह-लायक [illegible] बन जाता है, तो भी अज्ञानवश निदाई की खेती करते हैं नहीं और न घास की झटकने का विचार है। बीज बोते गये हैं, कोदों में या जैसे कहे तैसे चला जाते हैं, भाग जात हैं और बीज़ों जाते हैं। इतना ही नहीं, थोड़ी-सी निदाई करके ही थकते बैठ जाते हैं।

इस प्रकार ६० प्रतिशत बिना ज़मीनवाले मजूर लोग भी इन्हीं ज़मीन के ऊपर जीते हैं। उधर बड़े सर्वाधिक आलसी ज़मींदार ही नहीं, बल्कि ६० प्रतिशत मजूर और ऐसे ही हैं। केवल निदाई के पीछे १०० प्रतिशत लगा देने जो भाग लगा देने पर भी निदाई का काम अधूरा ही पड़ा रह जाता है। दोनों बोनी, बखरनी और फसल-कटाई के सिवाय खेती के प्रायः सारे ही काम इसी कच्छप-गति से चलते रहते हैं।

उन्हारी के गेहूं, चना, मसूर आदि की कटाई में स्फूर्ति का कारण यह है, कि लोगों को कटाई का ⅙ भाग मिलता है। जो जितना अधिक अनाज काटे, उसे उतना ही अधिक अनाज मिलता है। इसी कारण कटाई के दिन बड़े पुरुषार्थ के दिन गिने जाते हैं।

इधर उन्हारी की खेती कम होने के कारण, फसली खेती-वाले किसान तथा मज़दूर लोग आठ-दस कोसतक फसल काटने की मजूरी करने चले जाते हैं। इन दिनों कटाई का काम ठेके पर कराने के कारण थोड़ा अधिक परिश्रम करके तीन सेर प्रति दिन के हिसाब से गेहूँ आदि इकट्ठा कर लेते हैं। इससे मजूर तो अपने को खूब धन्य मानने लगते हैं। इस मजूरी को इधर "बेन करना" कहते हैं। बहुधा बड़े गर्व से कहते हैं कि 'अरे! एक बेन कर लेंगे और ४—६ महीने बैठे-बैठे खायेंगे।'

बोनी और बखरनी तो प्रायः ज़मीन का मालिक खुद या अपने हरवाहों-द्वारा ही करते हैं। पैसों की तंगी के कारण हर-वाहे भी आवश्यकता से कम रख पाते हैं। इसलिए बखरनी भी यथोचित न होकर जैसी-तैसी ही होती है। इतनी ज़मीन की निदाई को, मालिक ज़मीन और उसके हरवाहे पहुँचना अशक्य होने से, मजूरों एवं कम ज़मीनवाले किसानों को फसल सौंप देते हैं। ज़मीनवाले तो अपने से अधेरा का सबके कायम ज़मीन का आधा ही भाग अपने अधीन रखते हैं।

हथियार छिन जाने के बाद से जंगल पास होने के कारण पशु खेती नष्ट न करदें, इस डर से रात को भी खेतों पर ही सोते हैं। चौमासे की फसल में से तो निदाई और रखवाली से लेकर कटनी, उड़ावनी तक की मजूरी के बदले आधा हिस्सा मजूरों को ही दे देना पड़ता है।

प्राय. इधर एक ही खेत में गेहूँ चने शामिल, जिसे बिर्रा कहते हैं, बोने का रिवाज है। थोड़े दिन बाद ही जब चने के पेड़ जम आते हैं, तब ये लोग उनके पत्ते नमक के साथ खाकर पेट भरने लगजाते हैं। इतने में चनों की फलियाँ या बट पक आते हैं, जो कच्चे-पक्के भूँज-भोजकर जबतक बट न जावें वहीं ही उनसे पेट भर लेते हैं।

दिन में कोई उखाड़ न लेजाय इस डर से खेतों पर ही ऊँघते रहते हैं, भले ही उस नुकसान से अपनी दूसरी मजदूरी का अधिक नुकसान होजाय।

घास-कटाई की मजूरी भी ठेके से या रोजंदारी से करते हैं। निदाई-गुड़ाई से लेकर घास-कटाई आदि तमाम काम इधर के लोग बैठे बैठे ही करते हैं, जिससे काम बहुत कम हो पाता है।

साल में लोगों को काम कितने दिनों मिलता है, यह नीचे के अंकों से स्पष्ट हो जायगा :—

कार्य	प्रतिशत लोग	दिन	प्रतिशत औसत
बखरनी	७०	२०	४
बोनी	४०	१५	६
विविध निंदाई	१००	४५	४५
फसल कटाई	४०	७॥	३
चारा-कटाई	१००	१५	१५
दाँय व उड़ावनी	२५	१०	२॥
	उन्हारी की फसल		
बखरनी	२०	८	१॥
बोनी	५०	७॥	३
कटाई	१००	२०	२०
दाँय व उड़ावनी	२५	१०	२॥
बिरवाई (बागड़ आदि)	१०	२०	२
फुटकर काम			१५॥
			१२० दिन

ऊपर कहे हुए निदाई के ४५ दिनों में पानी बरसने पर, दोनों दाँयें के ५ दिनों में हवा बन्द रहने पर, तथा फुटकर १५॥ दिनों में सब को बराबर काम न होने के कारण बीच-बीच में आधे अर्थात् ६० दिन तो फिर भी अवकाश मिल ही जाता है, किन्तु इन दिनों में मिल सकनेवाले अवकाश के समय का उपयोग तो वे तभी कर सकेंगे, जब कि उनका अन्य दिनों में उद्योग-प्रियता का स्वभाव बन जाय।

इस तरह साल भर में अधिक-से-अधिक १२० दिन खेती के काम में लगते हैं। शेष २४० दिन तो बिल्कुल बेकार हो जाते हैं। इनमें से बीमारी, ब्याह-शादी, सगे सम्बन्धियों के यहाँ आना-जाना, मकान-मँजाई आदि कामों के लिए ४० दिनों की और अधिक छूट मान ली जाय, तो भी साफ पूरे २०० दिन तो इन्हें कुछ भी काम नहीं रहता है।

इनके सिवाय बढ़ई, लुहार, सुनार, कुम्हार, तेली, दरजी, चमार, नाई, धोबी आदि को अपना-अपना धंधा भी कुछ है, पर इनकी संख्या ३ प्रतिशत ही है।

इस बेकारी की वजह से स्वभाव में आलस्य, प्रमाद, दीर्घ-सूत्रता, निद्राप्रियता, अकर्मण्यता, विषय-लालसा, व्यसन, व्यभिचार, जड़ता आदि दोषों का बुरा प्रभाव पड़ना ही चाहिए, और वह ज़्यादा पड़ रहा है। फलस्वरूप इनकी आय का अंदाज़ा क्या रह गया और उससे इन्हें किन कठिन परिस्थितियों में से गुज़रना पड़ रहा है वह भी देख लीजिए।

बिना जमीन की खेतीवालों का पाँच व्यक्तिवाला कुटुम्ब भराई (पानी) आदि मिलने पर अच्छे साल में जितना कमा सकता है उसका अंदाज़ा, इधर की प्रथा के अनुसार ५ व्यक्ति-वाला एक कुटुम्ब जिस हिसाब से खेती करता है, उस हिसाब से सियारी की फसल में :—

जुवारी	२ सेर
धान	२ सेई अर्थात् २४ सेर
कुदुवाँ	२ सेर
कपास	२ सेर

बोवे और अच्छी पके, तो उसकी उपज होगी :—

जुवारी	३०० सेर
धान	२२५ सेर
कुदुवाँ	१५० सेर
कपास	४० सेर

इसी प्रकार उन्हारी की फसल में रखवाली में काम करने लायक ३ व्यक्तियों को गेहूँ, चना १२० सेर और लुवाई (कटाई) में काम करनेलायक ३ व्यक्तियों को ३ सेर प्रतिदिन के हिसाब से गेहूँ, चना १८० सेर मिलेंगे। इनमें से सियारी की फसल की पैदावार १) रु० की २५ सेर और उन्हारी की पैदावार १) रुपया की २० सेर तथा कपास एक रुपया का ८ सेर बिके तो इन सब का दाम ४७) सैंतालीस रुपया हुआ। इस तरह ६० प्रतिशत मजूरों की तो आमदनी यही है।

३ प्रतिशतवालों की ६०) रु० और १० प्रतिशतवालों की, लागत के रुपये बाद करने के बाद, २५०) से कम ही पड़ेगी। खराब साल की कसर का औसत भी इसमें निकालें तो इनकी आमदनी क्रमशः २५), ४५) और १०) रुपया ही आयगी।

जब इनकी आमदनी का यह हाल है तो पशु-पालन पर ये लोग क्या खर्च कर सकते हैं? नसल तो ढोरों की इस क़दर बिगड़ गई है, कि ९० प्रतिशत गाय भैंस तो सुधार अवस्था में ही हैं। अधिकांश गौओं का मूल्य १५) से नीचे और भैंसियों का ४०) रु० से नीचे ही मिलता है। और यही दशा बैलों की भी है।

गाय-भैंस आदि ढोरों से होनेवाली आमदनी का हिसाब नीचे लिखे अनुसार है :—

पाँच व्यक्तियोंवाले घरों में जानवर इस प्रकार हैं :—

प्रतिशत घरों में	गाय	भैंस	अंदाज़न सालाना आमद
४५	०	०	०
३०	२	०	२८
१५	२	१॥	३४॥
१०	८	५॥	२३८॥

सम्पादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ६ जुलाई, १९३४. [संख्या २०

विषय-सूची

हरिजन-दिवस-महोत्सव

महात्मा गांधी का हरिजन-प्रवास वर्धा में गत वर्ष ७ नवम्बर से आरम्भ हुआ था। आगामी २ अगस्त को काशी में ९ महीने बाद वह समाप्त हो जायगा। यह यात्रा दक्षिण में बड़ी धूमधाम से... उड़ीसा में पैदल-पर्यटन हुआ और अब हम हिन्दुओं के ... तीर्थस्थान काशी में उस यज्ञकी 'पूर्णाहुति' होगी। यह प्रवास हिन्दूधर्म के इतिहास में इसलिए विख्यात होगा, कि इसमें हरिजनों की सेवा और हिन्दुओं के पुनःसंस्कार के लिए सब से बड़ा प्रयत्न किया गया है। इसलिए यह उचित है, कि इस हरिजन-प्रवास की समाप्ति पर देशभर में एक दिन महोत्सव मनाया जाय और भविष्य में नये सिरे से उद्योग करने की प्रतिज्ञा ली जाय। इस यात्रा ने हरिजन-सेवा का प्रश्न हिन्दुओं के लिए सब से आवश्यक बना दिया है। अस्पृश्यता की समस्या अब सिर्फ सभाओं में प्रस्ताव पास करने की चीज़ नहीं रह गयी है। अस्पृश्यता-निवारण अब अत्यावश्यक सामाजिक और धार्मिक सुधार का विषय हो गया है। इसलिए २९ जुलाई का दिन उपयुक्त रीति से मनाया जाय। उस दिन ये काम किये जायं—

(१) हिंदू-धर्म के पुनःसंस्कार के लिए अलौकिक प्रयत्न करने के निमित्त महात्मा गांधीको हार्दिक धन्यवाद दिया जाय।

(२) २५ सितंबर, १९३२ को हिन्दू-समाज-द्वारा की गयी वह प्रतिज्ञा दोहरायी जाय, जिसमें अस्पृश्यता न मानने और हरिजनों के लिए इस समय जो सामाजिक रुकावटें हैं उन्हें जल्द दूर करने का प्रण किया गया है।

(३) हरिजन-बस्तियों में लोग जायं और हिन्दू-समाज का अंग समझकर उनके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करें। उड़ीसा की यात्रा के ढंगपर हरिजन कार्यकर्ताओं का दल गांवों में एक सप्ताह पैदल यात्रा करे।

(४) हरिजनों के लिए गांवों में कुएं खोदवाने का जे० के० कोष समाप्त हो चला है। इसके लिए धन-संग्रह करने का प्रबन्ध करना चाहिए। धर्मार्थ संस्थाओं, हिन्दू-पंचायतों तथा उदार पुरुषों से इस कार्य के लिए अपील की जाय। स्थानीय बोर्डों से पैसा मांगा जाय, गांववालों से कहा जाय कि वे मुफ्त काम करदें और सवर्ण हिन्दुओं से अनुरोध किया जाय कि, वे हरिजनों के लिए कुएं खोलदें। जो काम किया जाय, उसकी रिपोर्ट १५ अगस्ततक संघ के प्रधान कार्यालय, दिल्ली में भेजदें।

घनश्यामदास बिड़ला
अध्यक्ष, हरिजन-सेवक-संघ

'बार न बाँको होइ भक्त को'

परमात्मा को धन्यवाद है, कि उसने एकबार फिर अपने प्रिय भक्त को बचा लिया। २५ जून की सांझ को पूना में गांधीजी बाल-बाल बचे। म्युनिसिपल आफ़िस में जब गांधीजी मानपत्र लेने जा रहे थे, तब एक मोटरगाड़ी पर बम फेंका गया। बम फेंकनेवालेने समझा, कि गांधीजी उसी मोटर में हैं। असलमें वह उसके बाद की मोटर में थे।

गांधीजी पर बम! यह एक अनहोनी-सी बात हुई। प्रेम की प्रतिमा पर द्वेष का धधकता हुआ अंगारा गिरे, अहिंसा के अवतार पर हिंसा लुक-छिपकर आक्रमण करे, इस पर भला सहसा किसे विश्वास होगा? यह किसी पागल आततायी का ही काम हो सकता है, जिसका न कोई धर्म हो सकता है, न कोई संस्कृति। अच्छा हुआ, कि उसका वार विफल गया, हिंसा अहिंसा पर विजय प्राप्त न कर सकी।

गांधीजी को अपने प्राणों का मोह नहीं। वह तो अपना सिर कभी का ईश्वर को सौंप चुके हैं—

'सिर साहब को सौंपते सोच न करना शूर।'

वह तो अपने सिर की तरफ़ से बेफ़िक्र हैं। आज उनका शरीर उनका नहीं है, वह तो जनता जनार्दन का है, विश्वात्मा का है। इसीसे उनके सिर पर सदा हरि का हाथ रहता है। भगवान् अपने भक्त का बाल भी बाँका नहीं होने देते—

'जो पै कृपा रघुपति कृपालु की बैर और के कहा सरै;
बार न बाँको होइ भक्त को, जो कोउ कोटि उपाय करै।'

× × × ×

धर्म की आज सब से बड़ी सेवा गांधीजी कर रहे हैं। दुनिया में कोई भी ऐसी शक्ति नहीं, जो उन्हें उनके सत्य-पथ से डिगा सके। उनका सिर उतार लेने से क्या होगा? इससे तो धर्म की ज्योति और भी जगमगा उठेगी—

'कबिरा, बाती दीप की कटि उँजियारा होय।'

पर शहीद होजाने की लालसा में भी एक तरह का अहंकार है। जिसने अपने घट को अहंकार के ज़हर से खाली कर दिया

है, वह अपने सिर पर शहादत का सेहरा बाँधने को भी उतावला नहीं है। पर अगर अपनी बलि देनी ही पड़े, तो इससे वह पीछे कदम हटानेवाला नहीं। गांधीजीने उस दिन अपना मर्मस्पर्शी वक्तव्य देते हुए कहा—

"यह स्पष्ट है, कि 'आत्माहुति' करने से हाथ में लिये गये कार्य में सफलता मिलती है। मुझे शहीद होने की लालायेली नहीं पड़ रही है, पर जिस काम को धर्म की रक्षा के लिए मैं सबसे मुख्य कर्तव्य मानता हूँ, और जिसे मेरी ही तरह लाखों हिंदू मानते हैं, उसे करते हुए अगर मुझे आत्मोत्सर्ग करना पड़े, तो मैं उसे सब तरह से सिरमाथे लेने को तैयार रहूँगा; और भविष्य का इतिहास-लेखक यह कह सकेगा, कि गांधीने हरिजनों के सामने जो यह प्रण किया था, कि 'अस्पृश्यता दूर करने के प्रयत्न में अगर प्राण दे देने की भी ज़रूरत पड़ेगी तो मैं उसके लिए भी तैयार हूँ'—उसका वह प्रण अक्षरशः पूरा हुआ।"

× × × ×

इसमें संदेह नहीं, कि—

'तकै नीच जो मीच साधु की, सो पामर तेहि मीच मरै।'

पर संतमार्ग के सच्चे अनुगामी गांधीजी तो उस आततायी की भी कल्याण-कामना मनाते हैं। कहते हैं—

"मुझे तो बम फेंकनेवाले उस अज्ञात मनुष्य पर दया आती है। अगर मेरा वश चले और बम फेंकनेवाले का पता लग जाय, तो मैं निश्चय ही उसी तरह उसे छोड़ देने के लिए कहूँगा, जिस तरह मैंने दक्षिण अफ्रीका में उन लोगों के लिए कहा था, जिन्होंने मेरे ऊपर हमला किया था।"

इतना ही नहीं, वे तो सुधारकों से भी ऐसी ही सात्त्विक अपील कर रहे हैं—

"सुधारकों को चाहिए, कि बम फेंकने पर या जो लोग उसकी पीठपर हों उनपर वे क्रोध न करें।"

गांधीजी तो यह चाहते हैं, कि इस बम-दुर्घटना से तो सुधारकों को कुछ बल ही मिलना चाहिए और देश को अस्पृश्यता के रोग से मुक्त करने के लिए उन्हें अपने प्रयत्न को अब दुगुना कर देना चाहिए।

× × × ×

ईश्वर जो भी करता है वह सब भले के लिए ही करता है। हमें आशा करनी चाहिए, कि सत्य और अहिंसा को हम अब और भी अधिक स्पष्ट रूपमें देख सकेंगे, द्वेष और कायरता के पानी से पनपनेवाली हिंसा की विष-बेलि मुरझा जायगी, ऊँच-नीच की घातक भावना हमारे दिल से निकल जायगी, प्रायश्चित्त की आग में हमारे अहंकार का मैल जल जायगा, और भगवान् की भीर-भंजनता में हम-जैसे ईश्वर विमुख भी भरोसा करने लगेंगे।

भक्त सूरदास के इस वचनमें शंका के लिए जगह नहीं, कि

'जाको श्री हरि अंग करै;
ताको केस खसै नहिं सिरतें, जो जग बैर परै'

वि० ह०

सनातन, पुरातन, नूतन

मैंने अक्सर यह देखा है कि शब्दों का ग़लत प्रयोग करके बहुधा हम स्वयं उलझन में पड़ते हैं, दूसरों को उलझन में डालते हैं और मिथ्या चर्चा अथवा कलह करने पर उतारू हो जाते हैं। 'सनातन' एक ऐसा ही दुरुपयुक्त शब्द है। 'सनातन' का अर्थ है, हमेशा का या सब समय का। इसका यह अर्थ प्रसिद्ध है और इसे सब कोई जानते भी हैं। फिर भी जहाँ 'सनातन' शब्द का प्रयोग किया जाता है, वहाँ इसी अर्थ में उसका उपयोग नहीं होता, बल्कि प्रायः पुरातन अथवा पुराने ज़माने के, प्राचीनकाल के अर्थ में वह प्रयुक्त होता है। आइए, ज़रा इस पर हम विचार करें।

'सनातन हिंदूधर्म' एक ऐसा सुपरिचित शब्द प्रयोग है, जो बरसों से रूढ़ हो चुका है। अगर किसी का नाम 'राम' है, तो हम उससे यह अपेक्षा नहीं रखते कि उसमें राम-जैसे गुण अवश्य होने चाहिए। हम तो यह मानकर ही सन्तोष कर लेते हैं कि चूँकि आदमी का कोई-न-कोई नाम तो रखना ही चाहिए, और चूँकि रखनेवाले को 'राम' का नाम ही रुचिकर था, इसलिए 'राम' नाम रक्खा गया है। इसी प्रकार अमुक विश्वासोंवाले हिंदूधर्म का भी कुछ-न-कुछ नाम तो होना ही चाहिए और चूँकि उसके अगुआओं को 'सनातन-हिंदूधर्म' नाम ही पसन्द पड़ा, इसलिए यही नाम रक्खा गया। यदि बात इतनी ही हो, तब तो सबको इसे भलीभाँति समझकर सन्तोष कर लेना चाहिए और इस विषय की चर्चा न उठानी चाहिए। परन्तु 'सनातन-हिंदूधर्म' के पुरस्कर्ताओं की ओर से यह दावा किया जाता है, कि इसमें प्रयुक्त सनातन शब्द केवल एक सुन्दर शब्द के नाते नहीं जुड़ा है, वरन् अपने मूल अर्थ में प्रयुक्त किया गया है, अर्थात् वह हिंदूधर्म सदा अथवा सब समय के लिए है। और इसी दावे के कारण यह बहस छिड़ती है कि कौन-सा हिंदूधर्म सनातन है, और कौन-सा नहीं है, और इसी को लेकर झगड़े-बखेड़े भी होते रहते हैं।

लेकिन पाठकों के विचार के लिए मैं यहाँ यह प्रश्न करना चाहता हूँ, कि आज जो 'सनातन-हिंदूधर्म' कहलाता है, वह 'सनातन' है या 'पुरातन' ? जिन आचार-विचारों से चिपके रहने का ये हिंदू आग्रह करते हैं, उसका कारण उन आचार-विचारों की सनातनता है या पुरातनता ? 'पुरातन' का अर्थ प्राचीन काल का, पुराने वक्त से चला आया हुआ है। इसका उलटा शब्द 'नूतन' अर्थात् 'आधुनिक काल में उत्पन्न हुआ', है।

वास्तव में तो कोई भी क़ौमी या साम्प्रदायिकधर्म सनातन हो नहीं सकता; अर्थात् सनातन-हिंदूधर्म, सनातन मुस्लिम धर्म, या सनातन ईसाईधर्म नाम की कोई वस्तु हो ही नहीं सकती। सनातन या सब समय के या शाश्वत धर्म तो मनुष्यमात्र के लिए एक ही प्रकार के होते हैं। वे हिंदू के अलग, और मुसलमान या ईसाई के अलग नहीं हो सकते। ये धर्म किसी शास्त्र के आधार पर स्थापित नहीं होते। वे तो सृष्टि और जीवन के धर्मों अथवा स्थिर नियमों और स्वभावों से उत्पन्न होते हैं। साम्प्रदायिक या जातीय शास्त्रोंने तो अधिक-से-अधिक कुछ किया है, तो इन नियमों और स्वभावों की थोड़ी-बहुत खोज की है, और उसके आधार पर अपनी क़ौम या जाति के आचार-

विचार बनाने का यत्न किया है। एक सरल उदाहरण लीजिए। इनेगिने अपवादों को छोड़कर हम यह कह सकते हैं कि जीव-मात्र में काम धर्म रहता है। उसके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह अकेले हिंदू या मुसलमान या ईसाई या ऐसी किसी दूसरी क़ौम का धर्म है। यह भी नहीं कि वह धर्म पुराने ज़माने में था और इस ज़माने में नहीं है, या पुराने ज़माने में नहीं था और इस ज़माने में पैदा हुआ है। अतएव हम कह सकते हैं कि काम धर्मप्राणियों का सनातन धर्म है। प्रत्येक जातीय या साम्प्रदायिक धर्म को उसका अस्तित्व मानना ही पड़ता है। इस धर्म के पालन अथवा नियमन के लिए हर एक क़ौम अपनी परिस्थिति और बुद्धि के अनुसार जो आचार-विचार या विधि-निषेध ठहराती है, वे उसके क़ौमी धर्म बनते हैं। इस प्रकार हिंदू-विवाह-धर्म, मुस्लिम विवाह-धर्म, और ईसाई विवाह-धर्म अलग-अलग हो जाते हैं। जो ऐसे जातीय या साम्प्रदायिक धर्म हैं, वे कभी सनातन हो नहीं सकते। क्योंकि वे किसी ख़ास समय में ही अस्तित्व में आते हैं। अधिक से अधिक वे पुरातन होते हैं, अर्थात् बहुत प्राचीनकाल से चले आये हैं। परन्तु आये दिन प्रत्येक क़ौम की परिस्थिति और बुद्धि में फ़र्क़ पड़ता ही है और इस प्रकार जाने-अजाने ऐसे धर्मों में थोड़ा-बहुत परिवर्तन होता ही रहता है। कुछ लोग जान-बूझकर परिवर्तन करने का हौसला और हिम्मत रखते हैं। वे उसमें परिवर्तन करके नया धर्म बनाते हैं; कुछ धीमे-धीमे और अनजाने बदलनेवाले धर्मों के अनुकूल होते जाते हैं; ये जान-बूझकर परिवर्तन करने से हिचकते हैं। ये अपने को पुरातन धर्मों के ही हिमायत बताते हैं।

इस प्रकार 'सनातन-हिंदूधर्म' शब्द का प्रयोग ही मिथ्या है। 'सनातनधर्म' न तो हिंदू का है, न मुसलमान का, न ईसाई और पारसी का, वह तो मानवमात्र का सर्वसामान्य धर्म है। ये धर्म मनुष्य की मनुष्यता को बढ़ानेवाले धर्म हैं। शास्त्र इन धर्मों का निर्माण नहीं करते, शास्त्रोंने इन्हें थोड़ा-बहुत पहचाना-भर है। हिंदूशास्त्रों में ऐसे कुछ धर्मों का परिचय करानेवाले थोड़े वचन पाये जाते हैं। जैसे—

> अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय-निग्रहः।
> एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥
> अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोध लोभता।
> भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः॥
> परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।
> आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥*

ऐसे वचन संसार के सब धर्मग्रन्थों में मिल सकते हैं। इसका तात्पर्य केवल यही है, कि दुनिया की सभी जातियों के पूर्वजोंने कुछ सनातन धर्मों को पहचाना था, उनका आधार लिया था। इस प्रकार सभी साम्प्रदायिक धर्मों की स्थापना में सनातनधर्मों को आधार बनाने का आदर्श ग्रहण किया गया है। यह हो सकता है कि हरएक क़ौम की परिस्थिति और बुद्धि के अनुसार ये धर्म किसी अंश में अधिक और किसी में कम पहचाने और पाले गये हों।

परन्तु सनातनधर्म को आदर्श मानकर जिन भिन्न-भिन्न जातीय धर्मों की स्थापना हुई है, उनमें जैसा कि ऊपर कहा गया है, पुरातन और नूतन सम्प्रदाय हो सकते हैं, और होंगे। इस रीति से सुन्नी और रोमनकैथॉलिक अपने को क्रमशः पुरातनी मुसलमान और पुरातनी ईसाई कह सकते हैं। और इसी प्रकार हिंदुओं में भी पुरातनी हिंदू और नूतनी हिंदू हैं, जिन्हें कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। सब धर्मों के पुरातनियों में पुराने आचार-विचार और पुरातन रूढ़ियों से चिपटे रहने की वृत्ति होती है, और नूतनी सदा उनमें परिवर्तन करने की चेष्टा में रहते हैं। पुरातनियों की स्थिति स्थापकता सदा उचित नहीं होती, न नूतनियों की परिवर्तन-प्रियता का जोश ही सदा उचित होता है। इन दोनों के औचित्य-अनौचित्य को ठहराने की एक ही कसौटी है, और वह यह है कि हम देखें कि मनुष्यमात्र के सनातनधर्मों और ध्येयों की पूर्णता पुरातनता से चिपटे रहने से होगी, या नूतनता को स्वीकार करने से। यदि पुरातन आचार-विचार और पद्धति इस कसौटी पर पूरे उतरें, तो उन्हीं पर दृढ़ रहना चाहिए, और यदि नूतन आचार-विचार और पद्धति कसौटी पर सोटंच साबित हों, तो उन्हें बुद्धिपुरःसर और उत्साहपूर्वक अपना लेना चाहिए। क्योंकि सनातन तो पुरातनता और नूतनता दोनों से स्वतंत्र है; हो सकता है कि वह दोनों से हो और एक में भी न हो!

यदि हम अधिक गंभीर विचार करेंगे तो हमें पता चलेगा कि मनुष्य का पुरातनी या नूतनी कहलाने का अभिमान व्यर्थ है। पुरातन और नूतन के बीच कोई स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती। जो कलतक पुरातनी था, उसे आज परिस्थितिवश नूतनधर्मों को स्वीकार करना पड़ता है, और आज का उग्र नूतनी कल का उदार पुरातनी बन जाता है। यह हमारा रातदिन का अनुभव है। पचीस वर्ष पहले जो माता-पिता अपनी लड़कियों को अधिक पढ़ाना नहीं चाहते थे, या बारह-तेरहवर्ष की उम्र के बाद उनका विवाह करने में भयंकर पाप समझते थे, वे आज यह चिन्ता करते पाये जाते हैं कि अपनी पोतियों और नातिनों को किस कालेज में भर्ती कराया जाय, और अठारह-अठारहवर्ष की हो जाने पर भी लड़कियों के ब्याह के लिए विशेष चिन्तित नहीं दीखते, उलटे उन लोगों को सिखावन देने की हिम्मत रखते हैं, जो छोटी उम्र में लड़कियों का ब्याह किया चाहते हैं। पुरातनियों में परिस्थितिने जो परिवर्तन किया है, उसका यह नमूना है। इस प्रकार पुरातनी हिन्दू बनने का अभिमानी होने का अर्थ केवल यही है कि अपने आचार-विचार और प्रथाओं में परिस्थितिवश परिवर्तन भले हो जायँ, परन्तु बुद्धिपूर्वक या विवेक से काम लेकर परिवर्तन न किये जायँ।

दूसरी तरफ़ नूतनी होने का दावा करना भी मिथ्याभिमान ही है। अधिकांश मनुष्यों की शक्ति इतनी मर्यादित होती है कि वे जीवन के कुछेक ही क्षेत्रों में नूतनी बन सकते हैं, सब क्षेत्रों में नहीं; और वह जोश भी जीवन के अमुक वर्षोंतक ही रहता है। पचीसवर्ष पहले जो उग्र सुधारक गिना जाता था, वह आज के सुधारकों की विचार धारा सुनकर काँप उठता है।

---

*मनुजीने कहा है कि संक्षेप में, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच और इन्द्रिय-निग्रह, ये चारों वर्णों के धर्म हैं।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, निष्काम, निष्क्रोध, निर्लोभ, और भूत-मात्र का हित-चिन्तन, ये सब वर्णों के धर्म हैं।

परोपकार पुण्य है, दूसरों को पीड़ा पहुँचाना पाप है।

जो अपने लिए बुरा है, उसे दूसरों के लिए भी न करो।

इस प्रकार हर एक मनुष्य अंशतः पुरातनी और अंशतः नूतनी भी है। किसी एक का आग्रह रखना भूल है।

अतएव यदि हम समझदार और विवेकवान हैं, तो न तो हम आग्रहपूर्वक पुरातनी रहें, और न आग्रहपूर्वक नूतनी बनने के ही मोह में पड़ें। बल्कि हम में जो भी कुछ विवेक-बुद्धि और ज्ञान हो उसका उपयोग करके अपने प्रत्येक आचार-विचार और प्रथाओं की छान-बीन करें, अपनी परिस्थिति का अध्ययन करें, और मनुष्यमात्र के सनातनधर्म और ध्येय की ही चिन्ता रखकर जिस रीति से वह सिद्ध हो सके, उसी रीति से बरतने का विचार रक्खें। जहाँ पुरातन प्रथा पर दृढ़ रहने से वह सिद्ध होते हों, वहाँ पुरातनता पर क़ायम रहें, और जहाँ नूतन प्रथा चलाने से सिद्ध होते हों, वहाँ उसे चलायें। इसके लिए हम प्राचीन शास्त्रों का भी अभ्यास करें, क्योंकि उनके लेखक भी महान् विचारक थे। परन्तु किसी ग्रन्थ या मनुष्य को निर्णायक न बनाकर अन्तिम निर्णय अपनी निज की विवेक-बुद्धि से ही करें।

अब इस लेख का सारांश दे दूँ:—

१ 'सनातन हिन्दूधर्म' यह शब्दप्रयोग ग़लत है। 'सनातन मानवधर्म' हो सकता है, और है। वह मनुष्यमात्र का है, किसी एक क़ौम का नहीं। क़ौमी धर्म जिस हदतक 'सनातन मानवधर्म' को सिद्ध करते हैं, कहा जा सकता है कि उस हदतक वे सनातन धर्मों का आधार लेते हैं।

२ क़ौमी धर्म प्रत्येक क़ौम की परिस्थिति और बुद्धि का परिणाम होता है। इस परिस्थिति और बुद्धि में आये दिन परिवर्तन होते ही रहते हैं, और फलतः क़ौमी मज़हबों में भी मजबूरन या जान-बूझकर परिवर्तन करने ही पड़ते हैं। कोई भी क़ौमी धर्म अपने मूल स्वरूप में नहीं रह सकता। हिन्दूधर्म इसका अपवाद नहीं है। उसके आचार-विचार और उसकी प्रथाओं में अनेक हेर-फेर हुए हैं, होते हैं, और होंगे। अतएव न तो हिन्दूधर्म सनातन हो सकता है, न ईसाईधर्म सनातन हो सकता है और न इस्लाम ही सनातन हो सकता है। कोई भी क़ौमी धर्म सनातन नहीं हो सकता।

३ जो आज 'सनातन हिन्दूधर्म' कहा जाता है, उसे ज़्यादा-से-ज़्यादा 'पुरातन हिन्दूधर्म' कहा जा सकता है। यह नाम भी बिल्कुल उचित तो नहीं है। पर यह नाम हिन्दूधर्म के उस सम्प्रदाय के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है, जो हिन्दुओं के पुरातन आचार-विचार और प्रथाओं से यथासम्भव चिपटे रहने का आग्रह रखता है, और उनमें होनेवाले हेर-फेरों को राज़ी-खुशी सहन नहीं कर सकता।

४ विवेक का मार्ग न तो पुरातनता का मोह रखने में है, न नूतनता का। विवेक तो सनातन मानवधर्म को सिद्ध करने के लिए अपनी वर्तमान परिस्थिति में किस आचार-विचार और किन प्रथाओं की आवश्यकता है, इसका अभ्यास करके तदनुसार बरतने में ही है। इसमें कभी पुरातन धर्मों पर डटे रहने से सत्यधर्म सिद्ध होता है, तो कभी नूतन धर्मों का निर्माण करने से। जो निश्चय हो जाय, उसे निःसंकोच करना ही विवेकवान का कर्तव्य है; उसे यह चिन्ता न करनी चाहिए कि ऐसा करने से कहीं इतना परिवर्तन तो न हो जायगा कि पुरातन प्रथा का नामोनिशान भी न रह जाय, या नूतनियों की निन्दा के पात्र बनने का दुर्भाग्य प्राप्त हो जाय।

'हरिजन-बंधु' से]   किशोरलाल घ० मशरूवाला

सब धर्मों के उसूल एक हैं

[श्रद्धेय डाक्टर भगवान्‌दासजी के "सब धर्मों के उसूल एक हैं" शीर्षक लेख के कुछ महत्वपूर्ण अंश]

सूफियोंने कहा ही है,

फ़क़त तफ़ावत है नाम ही का
दर अस्ल सब एक ही हैं यारो ॥
जो आबि-साफी कि मौज मे है
उसी का जल्वा हबाब में है ॥

ईसाने भी कहा है, "पहिले नेकदिली हासिल करो, उसके बाद और सब चीजें तुम्हें आप मिल जायँगी"।

मौलाना रूमने कहीं एक कहानी कही है। एक अरबी, एक ईरानी, एक तुर्की का सफर में साथ हो गया—चलते-चलते भूख लगी— जिसके पास पैसे थे इकट्ठा किये। क्या खरीदना चाहिए? अरबीने कहा, एनब खरीदना चाहिए—तुर्कीने कहा बदक—ईरानीने कहा अंगूर। हुज्जत शुरू हुई। मारामारी की नौबत आ गई। एक मेवाफरोश टोरा लिये उधर से निकला। उसने हुज्जत सुनी। बोला, लड़ो मत, मेरे पास तीनों के पसन्द की चीज़ें हैं, जो जिसको चाहे लेलो। टोरा आगे रक्खा। उसमें एक ही किस्म का फल था, मगर तीनोंने खुश होकर एक-एक झुप्पा उठा लिया। क्या बात हुई? अंगूर ही को अरबी में एनब कहते हैं— तुर्की में बदक—फारसी में अंगूर—शायद पहलवी में दाख कहते हैं, और संस्कृत में द्राक्षा। इस छोटी हिकायत में सब धर्मों और मजहबों का सत्सार दिखा दिया है। "फ़क़त तफ़ावत है नाम ही का, दरअस्ल सब एक ही हैं यारो"।

खुदा बड़ा मेवाफरोश है, उसको सबका भला मंजूर है, सब को मेवा देना चाहता है, सब की बोली समझता है, सब के दिल में बैठा है, पर अगर हम को खुदा के मजहब की परवा नहीं, "हमारा मजहब" "हमारा मजहब" इसी का हमहमा (अहं पूर्वमहं पूर्वं) है, तो मेवे तो मिलेंगे नहीं, सिर ही टूटेंगे।

अल्ला-परमात्मा, खुदेश्वर, एक है; नाम ही बहुत हैं

आप यकीन मानिए, जो खुदा आपके और मेरे दिल में बैठा है, उससे मैंने भी बहुत बार पूछा, और आप भी जब चाहिए पूछ सकते हैं, वह यही जवाब देता है, और देगा, कि मैं अरबी भी समझता हूँ, संस्कृत भी, और अंग्रेजी, फारसी, ज़िन्द, हिंदुस्तानी, चीनी, जापानी, नई-पुरानी, सभी ज़बानों को जानता समझता हूँ—मैं ही ने तो उन्हें भी और तुम्हें भी बनाया है, चाहे जिस ज़बान में मेरा नाम लो, मुझे याद करो, मुझे पहिचानो, मुझसे दुआ माँगो, मैं तुम्हारी नेक ख्वाहिशें पूरी करूँगा। लेकिन अगर हम इस हमहमे में पड़ें कि जो मेरे मुंह से निकले वही सब लोग कहें, मेरी ही नकल सब करें, मेरा ही मजहब फैले, तो दूसरे भी ऐसा ही झूठा और थोथा हठ और क्रोध करेंगे और जो गढ़े हम दूसरों के लिए खोदेंगे उनमें हम खुद गिरेंगे, जो ज़हर दूसरों के लिए बोवेंगे उससे खुद मरेंगे।

इसलिए भाइयो, दोस्तो, अगर हमलोग मसलवी नहीं, बल्कि सच्ची दोस्ती चाहते हैं तो,

ऐ ब पसमालि दिलहम की जुस्त दोस्त,
हर चि बीनी बिदाँ कि मजहरि ऊस्त।

अर्थात्, दिल की आंख से सब को दोस्त-ही-दोस्त देखो, जो कुछ देखो उसको उसी अल्ला-परमात्मा का रूप जानो ।

यही अर्थ संस्कृत लफ़्ज़ों में वेदों में कहा है,

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।।

यानी जो कोई सब चीज़ों को आत्मा में और आत्मा को सब चीज़ों में देखता है, वह फिर किसी से जुगुप्सा (नफ़रत) नहीं करता ।

यही अर्थ अरबी शब्दों में सूफ़ियोंने कहा है—

मन-अरफ़ा-नफ़्सहू-फ़क़द-अरफ़ा-रब्बहू ।

यानी जिसने अपने को पहचाना उसने ब्रह्म-रब्बको पहचाना । इसी अर्थ को कुरान में दूसरे लफ़्ज़ों में कहा है । "नसुल्लाहा फ़अन्साहुम् अनफ़ुसहुम्", यानी जो अल्ला-परमेश्वर को भूले वे अपनी नफ़्स को भूले ।

कुरान में कहा है—

अल्लाहो बि कुल्ले शयोन मुहीत ।

यानी अल्लाह सब चीज़ों को घेरे है ।

वेद-उपनिषद् में भी ठीक यही कहा है,

"ब्रह्म···सर्वमावृत्य तिष्ठति" ।

कुरान कहता है, "अल्लाहो नूरुस्समावाती वल् अर्द्" ।

यानी खुदा के नूर से आसमान और ज़मीन रौशन है । ठीक यही मज़मून वेद भी कहता है,

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्यैव भासा सर्वमिदं विभाति ।

कुरान की आयत है—"हुवल् अव्वल् हुवल् आख़िर् हुवल् ज़ाहिर् हुवल् बातिन् व हुवा अला कुल्ले शयोन् क़दीर्" । ठीक यही अर्थ गीता के श्लोक का है—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामंत एव च ।।

इंजील में भी यही कहा है—"गाड इज़ दी आल्फ़ा एंड दी ओमेगा" । यानी परमात्मा-खुदा गाड आदि-अव्वल है, अंत-आख़िर है, मध्य-बीच है, हमारे बाहर भी है, हमारे भीतर भी (चेतना होश, ज्ञान के शकल में) है ।

"ला इलाह इल् ल्लाह" इस कलमे का अर्थ पहुँचे हुए ऋषीश्, (ब्रह्मज्ञानि ऋषि,) सूफ़ियोंने यही किया है कि "ला मौजूदा इल्ला हू", यानी है नहीं कोई चीज़ सिवा उस खुदा के । कुरान में फिर-फिर कहा है "हुवल् हय्यो ला इलाहा इल्ला हू" "ला इलाहा इल्ला अना", वग़ैरा, यानी वही ज़िन्दा है इसलिए एक वही है नहीं सिवा उसके, और नहीं कोई मौजूद है सिवा मेरे (अर्थात् मैं-के-चेतना के, आत्मा के) । सूफ़ियोंने भी बारबार ऐसी ही बातें कही हैं, "अनल् हक़्" यानी "अहं ब्रह्मास्मि", "मैं ही सत्य हूँ, परमात्मा हूँ, अल्ला हूँ" । "सोऽहम्" अर्थात् वह मैं हूँ, और मैं वह हूँ । "हक़ तू", "तत्त्वमसि", अर्थात् सत्य-खुदा तू ही है, तू ही सब है । "हमा उस्त, हमा अज़ उस्त, हमा अन्दर् उस्त" यानी, सब उसी में है, सब उसी से है, सब वही है, वग़ैरा । और कुरान में कहा है कि "लाहुल् अस्मा उल् हुस्ना" यानी सब सुन्दर नाम उसी के हैं । "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" यह वेद का भी वचन है । इंजील में भी ईसा और दूसरे कवियों-मुनियोंने कहा है, "आइ एंड माइ फ़ादर् आर् वन्", "यी आर् दि लिविंग् टेम्पल् आफ् गाड्", "इन् हिम् आफ़् थिंग्ज़ लिव् एंड् मूव् एंड् हाव् देयर बीइंग्" इत्यादि, अर्थात् मैं और मेरा बनानेवाला एक ही हैं, तुम्हीं सब परमात्मा के ज़िन्दा मन्दिर हो, उसी परमात्मा (चेतना) में सब ही चीज़ें जीती हैं, बसती हैं, और उसी से अपनी सत्ता (अस्तित्व, हस्ती) पाती हैं । वेदों में, गीता आदि में, यही बातें फिर-फिर कही हैं, सिर्फ़ नमूने के लिए यहाँ कुछ वाक्यों को कहता हूँ ।

यस्मिन् इदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ।
योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये महेश्वरम् ।।

(भागवत)

"देहो देवालयः प्रोक्तः", शिवोऽहम्", "सर्वं खलु इदं ब्रह्म तज्जलान्", "नेह नानास्ति किंचन", "एकमेवाद्वितीयम्", "विद्धि त्वमेव निहितं गुहायाम्", "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा", "स वा एष आत्मा हृदि", "हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः", "यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं···मम तेजोंऽशसंभवम्", "ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि नामानि सर्वाणि रूपाणि सर्वाणि कर्माणि बिभर्ति" इत्यादि ।

यह परमात्मा सब के हृदय में मौजूद है, इसी बात को कुरान का हवाला देकर सूफ़ियोंने कहा है ।

बानमूदे कि मुसहफ़े तेरा नहनो अक़रब्, सफ़हे कुरान में लिखा था मुझे मालूम न था ।

विश्वधर्म में विश्वशांति

[डा० संडरलेंड का संदेश]

दुनिया को अगर युद्ध के सर्वनाश से बचाना है, तो राष्ट्रों और जातियों के बीच फैली हुई अविश्वास और शत्रुत्व की भावना को संसार में से निकालकर उसके स्थान पर विश्व-बंधुत्व की जड़ मज़बूत करनी ही होगी ।

धर्म के बिना यह संभव नहीं । धर्म मानव-जीवन की अत्यन्त गहरी तहतक पहुँचता है । प्रेम-भाव का निर्माण करनेवाला, जनता का एक या अनेक बनानेवाला यह सबसे बड़ी, सबसे प्रभावशाली शक्ति है । जगत् में धार्मिक बन्धुत्व स्थापित हो जाने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय तथा अन्तर्जातीय बन्धुत्व स्थापित होने में देर नहीं लगेगी, जिस तरह रात के बाद दिन आने में देर नहीं लगती ।

अक्सर यह प्रश्न पूछा जाता है, कि आख़िर यह धार्मिक विश्व-बन्धुत्व कैसे स्थापित हो ?

उत्तर में केवल यही कहना होगा, कि सब धर्मों के नेताओं को धर्म की क्रिया, संस्कार, बाहरी बातों से ऊपर उठकर, जो सदा भेद-भाव ही करती चलती रही हैं, धर्म की आन्तरिक, असली बातों पर ज़ोर देना चाहिए, जैसे प्रेम, सत्य, न्याय, क्षमा बन्धु-भाव, सेवा आदि बातों को ही महत्व देना चाहिए, जो मानव-समाज को एक करने के लिए, विश्व-बन्धुत्व स्थापित करने के लिए सहायक सिद्ध होती हैं । जब नेतागण यह कर लेंगे, अनुदारता और संकीर्णता से निकलकर हृदय, आत्मा और जीवन के गूढ़ प्रश्नों पर ध्यान देने लगेंगे, तब वे एकदम विश्वधर्म को जान लेंगे, जो समस्त धर्मों का हृदय है, जो एकमेव सत्य एवं आवश्यक धर्म है, जिसके कारण सारा मानव-समाज अपने आपको एक 'कुटुम्ब' समझने लगेगा । फलतः युद्ध की मनोवृत्ति का सत्यानाश होकर विश्वशान्ति की भावना का उदय होगा ।"

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ६ जुलाई, १९३४

पैदलयात्रा की प्रशंसा में

उड़ीसा की मेरी वह पैदल यात्रा कितनी अच्छी थी। गति उसकी धीमी थी सही, पर वह स्थायी और सफल तथा शांत यात्रा थी। वहां से मेरे साथी मुझे फिर रेल और मोटर की उसी झंझट में घसीट लाये हैं। इस बीच में नीचे का यह अवतरण पढ़कर मुझे आनन्द होता है :—

"आपकी पदयात्रा से मेरा हृदय नाच रहा है। आपका यह यज्ञ उनके योग्य है, जिनके प्रीत्यर्थ इसे आप कर रहे हैं। ढिठाई क्षमा करें, पर इसका ध्यान धरता हूँ, तो मेरा चित्त प्रफुल्लित हो उठता है। हरिजन-कार्य के लिए आपकी वह मोटर गाड़ियों की दौड़ादौड़ मुझे तो कुछ विचित्र और असंगत-सी लगती है। मेरी दृष्टि में तो यह एक विशुद्ध आध्यात्मिक समस्या है। और पैदल चलते हुए एक सच्चे यात्री की तरह आप इसकी पूर्ति कर रहे हैं। सर्वांग संपूर्ण संगीत से अथवा सुन्दर सूर्यास्त की आभा से कैसी परम-तृप्ति होती है, वैसी ही तृप्ति आपकी इस पदयात्रा से मुझे हो रही है। मेरा विश्वास है, कि 'दरिद्रनारायण' की उपासना होनी भी इसी प्रकार चाहिए। क्षमा करें, मेरे ये शब्द उस गायक के स्वतःस्फुरित उद्‌गारों के समान हैं, जो अपने तंबूरे के बिल्कुल ठीक मिले हुए तारों पर मस्त हो जाता है। लोग कहते हैं, 'लेकिन पैदल चलकर वह कितने गांवों में पहुंच सकते हैं ?' मेरा हृदय कहता है, 'हां, पर इस तरह कितनी आत्माओं को वह छूकर द्रवित कर देंगे !' निश्चय ही, गांवों की संख्या की अपेक्षा आत्मा का महत्व अधिक है, और ऐसा एक यात्री हज़ार उपदेशकों से भी बढ़कर है।"

क्या अच्छा हो, यदि मेरे दूसरे साथी भी महसूस करलें, कि हरिजन-कार्य के लिए पैदलयात्रा कितनी आवश्यक और सुन्दर चीज़ है ! इस पागलपने की दौड़ा-दौड़ में इतनी फुर्सत ही कहां, कि जनता के हृदय का स्पर्श किया जासके। यह तो जनता के शांत और घनिष्ठ संपर्क में आने से ही हो सकता है। मोटर और रेल-गाड़ियों की विकट दौड़धूप और धक्कमधक्के में मनुष्य की बुद्धि चौंधिया जाती है, और थोड़ी देर के लिए वह जैसे स्पष्ट विचार करने की शक्ति को खो बैठता है। मैं जानता हूँ, कि मेरे इस मौजूदा कार्यक्रम में कोई ऐसा भारी हेरफेर नहीं हो सकता; पर आगे कभी कोई कार्यक्रम बनाना हो तो ऊपर के विचारों पर ध्यान रखा जाय। साथ ही, थोड़े-से सप्ताहों का जो प्रवास बाक़ी रहा है, उसका कार्यक्रम ऐसा बनना चाहिए, कि उसमें दौड़धूप न करनी पड़े। भेंट-मुलाकात का क्रम कम-से-कम रखा जाय। दूसरे काम चाहे कितने ही सराहनीय हों, तो भी उनके लिए मेरी उपस्थिति का नाजायज़ फ़ायदा न उठाया जाय। जहांतक हो सके, हरिजन-कार्य के ऊपर ही मेरा मन एकाग्र रहने दें।

'अंग्रेज़ी' से] मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

[२६]

निर्देशिका

१८ जून

बंबई; मौनदिवस

१९ जून

बंबई से पूना, रेलवे, ११९ मील। स्टेशनों पर धन-संग्रह १२५॥) पूना ज़िले के हरिजन-सेवकों से मुलाक़ात; संध्याकी प्रार्थना के समय धन-संग्रह ३१॥।)॥

२० जून

पूना: कांग्रेस के रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं तथा रियासती प्रजा-प्रतिनिधियों से मुलाक़ात; संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह १४३॥-)

२१ जून

पूना: हरिजन-बस्तियों तथा नाथीबाई-महिला-विद्यापीठ का निरीक्षण; महिला कालेज से ३०) प्राप्त; महिला-आश्रम से ५१।-)॥ प्राप्त; हरिजनों की सभा तथा मानपत्र; विद्यार्थियों की सभा तथा मानपत्र और धन-संग्रह ४४१।)॥; संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ४७।-)।॥

२२ जून

पूना: क्राइस्ट-सेवा-संघ का देखना; राष्ट्रीय शिक्षण-संचालकों से मुलाक़ात; हरिजन-बस्ती की आधार-शिला रखी; नवीपेठ के हरिजनों का मानपत्र; हरिजन अनाथ विद्यार्थीगृह का निरीक्षण; श्रीयुत वी० वी० वालवेकरने ७००) दिये; व्यापारी-मंडल की ओर से ५६६) प्राप्त; अहल्या-आश्रम में प्रिवेन्ड क्राम मिशन-कन्या छात्रालय का उद्घाटन; संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ४६=)।॥

२३ जून

पूना: महाराष्ट्रीय मंडल का निरीक्षण; खादी-भंडार की थैली ५१); आयुर्वेदिक अस्पताल का निरीक्षण; हरिजन नेताओं से मुलाक़ात; महिलाओं की सभा तथा धन-संग्रह ९२-)।; पूना छावनी में सार्वजनिक सभा तथा धन-संग्रह ११५८); नामदेव ब्वाय स्काउट की ओर से २-)। प्राप्त; संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह २८।=)।; हज़रत मुहम्मद साहब की जयन्ती के उपलक्ष में मुसलमानों की सभा में शामिल होना।

२४ जून

पूना: ज़िलाबोर्ड का मानपत्र तथा १३२॥।=) की धनप्राप्ति; प्रांतीय हरिजन कार्यकर्त्ताओं से मुलाक़ात; सार्वजनिक सभा तथा थैली ३३२२।=)११; शोलापुर की थैली १२३८); कोलाबा की थैली १२६); अहमदनगर की थैली ८५५); पूर्वी खानदेश की १७४२); पश्चिमी खानदेश की थैली १००१); पाली की थैली १०१); सतारा की थैली ५००=); रत्नागिरि की थैली ५०१); नासिक की थैली ५२८।=); ठाणा की थैली २१); संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ४७॥-)॥; दिनभर में कुल धन-संग्रह ९९९३॥=)५

कार्यकर्त्ताओं से निवेदन

बम्बई के उस धकाऊ कार्यक्रम के बाद, हमने यह आशा

की थी, कि पूना में गांधीजी को कुछ आराम मिलेगा, पर ऐसा हुआ नहीं। पूना में भी वही बात थी। सारे दिन मिलने-जुलने-वालों की लँगडोरी लगी रहती थी। कोई सार्वजनिक काम से आते थे तो कोई निजू काम से। काम ही-काम की भरमार थी। फिर गांधीजी की गर्दन का दर्द बढ़ गया, जिसकी वजह से उन्हें मजबूरन उस दिन जनता से क्षमा माँगनी पड़ी, कि आज मेरा जी अच्छा नहीं है। इन सब बातों को देखते हुए कार्यकर्ता-ओं से यह उम्मीद करना क्या अनुचित होगा, कि उन्हें प्रति-दिन दो से अधिक सभाओं का आयोजन नहीं करना चाहिए, और अपने निजू काम से मिलने-जुलनेवाले भी जितने ही कम आवें उतना अच्छा ?

हरिजन-बस्ती या मुर्गीखाना ?

२१ और २२ जून को पूना शहर की अनेक हरिजन-बस्तियाँ गांधीजीने देखीं। सब से पहले वह कसबा पेठ की भँग (मेहतर) बस्ती में गये। वह बस्ती थी या मुर्गीखाना ! गांधीजी तो इस की कल्पना भी न कर सके, कि ऐसे ज़रा-ज़रा से बिलों के अन्दर आदमी रहते होंगे। वहाँकी वे ढालूदार छतें इतनी नीची हैं, कि कोई उन घरों के अन्दर जाना चाहे, तो रेंगकर ही बड़ी मुश्किल से जा सकता है, और वहाँ सीधा खड़ा तो हो ही नहीं सकता। भीतें पुराने कनिस्टरों की टीन की बनी हुई हैं। उस ज़रा-से टुकड़े में काफ़ी बड़ी आबादी बसी हुई है। नाम को भी कहीं खुली हुई जगह नहीं है। कहाँ से तो स्वच्छ हवा आवे और कहाँ से उजेला ? यह आशा करना व्यर्थ है, कि वहाँ के रहवासी आरोग्य रहते होंगे। पानी भी उन बेचारों को पर्याप्त नहीं मिलता।

हाँ, नारायण पेठ की भँग-बस्ती तरक्की पर है, जिसका श्रेय श्री माटे, श्री भावे और श्रीमती जेकब को है। ये लोग वहाँ बड़ा अच्छा सेवा-कार्य कर रहे हैं। एक रात्रि-पाठशाला चला रहे हैं, और एक को-आपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी भी स्थापित कर रखी है। इसके अलावा दारू और मुर्दार-माँस के विरुद्ध भी ये लोग अच्छा प्रचार-कार्य कर रहे हैं।

मंगलवार पेठ का महारवाड़ा, गणेश पेठ का चमार वाड़ा, गंजपेठ का भोगवाड़ा और घोरपाले पेठ की हरिजन-बस्तियाँ भी गांधीजीने देखीं।

नाथीबाई-महिला-विद्यापीठ

हरिजन-बस्तियों को देखने के पश्चात्, गांधीजी सीधे फ़र्ग्यूसन गये। वहाँ उन्होंने नाथीबाई-महिला-कालेज देखा और उसके बाद हिंगणे में स्थित महिला-आश्रम। ये संस्थाएँ स्वनामधन्य प्रोफ़ेसर कर्वे की अद्भुत प्रतिभा और सच्ची लगन का फल हैं। सन् १९३३ में यहाँ से २३ लड़कियोंने डिगरी परीक्षाएँ पास कीं और ९७ लड़कियोंने युनिवर्सिटी की एण्ट्रेंस परीक्षा। ९ लड़कियों को प्राइमरी स्कूल-मिस्ट्रेस के डिप्लोमा मिले। महिला-आश्रम के अधीन एक प्राइमरी पाठशाला, एक हाईस्कूल और अध्यापिकाओं का एक ट्रेनिंग कालेज, ये तीन शिक्षण-संस्थाएँ हैं, जिनमें क्रमशः ७४, ७६ और ४६ छात्राएँ पढ़ती हैं। आश्रम में जब गांधीजी गये, तो हरिजन बालिकाओंने उन्हें फूलमालाएँ पहनाईं। आश्रम की लड़कियों से गांधीजीने कहा "प्रोफ़ेसर कर्वे और उनके स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी इस महान् कार्य से मैं तब से परिचित हूँ, जब स्व० गोखलेने मुझे प्रो० कर्वे का यह स्तुत्य कार्य देखने के लिए प्रेरित किया था। यह २० बरस पहले की बात है। तब से मेरे जीवन का जहाज न जाने कितनी तूफ़ानी लहरों से टकराता फिरा। आज यहाँ मैं दूसरी बार फिर आया हूँ, और वह भी दैवसंयोग से। समय थोड़ा ही काढ़ सका हूँ, तो भी इतने में जो कुछ देख सका उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे आशा है, कि इस संस्था की लड़कियाँ जब बड़ी होंगी, तो अपने जीवन को कर्वे के महान् त्यागों के अनुरूप ही बनावेंगी। तुम्हारे सामने जब सेवा और त्याग का इतना सुन्दर आदर्श मौजूद है, तब विलासिता का जीवन बिताने का तुम्हें साहस ही नहीं पड़ सकता। क्षुद्र स्वार्थ से जो ज्ञान हमें मुक्ति नहीं दिला सकता, वह ज्ञान ही नहीं है। इसलिए मुझे आशा है, कि तुम अपनी अन्य अभागिनी बहिनों की सेवा में ही अपने जीवन को लगाओगी।"

हिंदी

यह देखकर गांधीजी को दुःख हुआ, कि महिला-विद्या-पीठ-जैसी राष्ट्रीय संस्था में भी हिंदी एक वैकल्पिक विषय ही है, अनिवार्य नहीं। गांधीजीने वहाँ अपने भाषण में कहा, "मैं तो यह राय दूँगा, कि अँग्रेज़ी को तो रखा जाय वैकल्पिक विषयों में और हिंदी को अनिवार्य में। मैं जब स्वयं स्कूल में पढ़ता था, तब हमारे हेडमास्टर साहबने शारीरिक व्यायाम को अनि-वार्य कर दिया था। अगर व्यायाम में कोई विद्यार्थी शरीक नहीं होता था, तो उस दिन उस एक आना जुरमाने का देना पड़ता था। क्यों न यही नियम हिंदी की पढ़ाई पर लगा दिया जाय? इस अत्यावश्यक भाषा को हम इसी प्रकार लोकप्रिय बना सकेंगे। बिना राष्ट्रभाषा के हम ठीक-ठीक देशसेवा कर ही नहीं सकते। हिंदी के समान सरल भाषा कोई दूसरा है ही नहीं। बड़ी आसानी से राष्ट्रभाषा हिंदी पर अधिकार किया जा सकता है। मराठी तथा उत्तर भारत की अन्य भाषाओं से तो हिंदी भाषा बहुत अधिक मिलती है।

विद्यार्थियों की सभा में

शाम को विद्यार्थियों की सभा हुई। गांधीजी को उन्होंने जो मानपत्र दिया, उससे छोटा मानपत्र तो अबतक मेरे देखने में नहीं आया। उसमें सब सार की ही बातें थीं। उन्होंने मान-पत्र में कहा था, 'हरिजन-सेवा हम अवश्य करना चाहते हैं, पर इसमें आप हमारा पथ-प्रदर्शन करें।' गांधीजीने पूना की हरिजन-बस्तियों का चित्र खींचते हुए उनसे कहा, कि 'अच्छा, सब से पहले तो झाड़ू, टोकरी और फावड़ा लेकर तुम सब उन गंदी बस्तियों में जाओ और वहाँ की सफ़ाई करो। फिर उन जगहों के नक़्शे तैयार करो और हरिजनों की ब्योरेवार गणना कर डालो। जहाँ ज़रूरत हो, वहाँ उनके घरों की दीवारें ऊँची उठा-कर भी तुम लोग उनकी सहायता कर सकते हो। उनके बच्चों को और खुद उन्हें भी तुम जाकर पढ़ा सकते हो। पढ़ाने से मेरा मतलब यहाँ सिर्फ़ अक्षरों और अंकों की पढ़ाई से नहीं है, बल्कि उन्हें सफ़ाई से रहना सिखाओ, उन्हें आरोग्यता के नियम और तज्जनित लाभ समझाओ और मादक चीज़ों से दूर रहने का भी उपदेश उन्हें देते रहो।"

विविध संस्थाएँ

२० जून को गांधीजी क्राइस्ट-सेवा-संघ देखने गये। वहाँ साधकों की कुटियाँ देखकर तो गांधीजी मुग्ध हो गये। कितनी अधिक सादगी थी। सजावट का कहीं नाम भी नहीं था। वहीं पास ही, हिंदू मन्दिर के नमूने का, उनका एक छोटा-सा सुंदर उपासनाघर है।

२३ जून को गांधीजीने महाराष्ट्रीय मंडल का निरीक्षण किया। यह एक व्यायाम शाला है। इस संस्था की सन् १९२४ में स्थापना हुई थी। अबतक इस महाराष्ट्रीय मंडलने ३०० स्त्रियों तथा ५०० पुरुषों को तैरना सिखाया है। हरिजनों के साथ यहाँ किसी तरह का भेदभाव नहीं रखा जाता। खादी-भंडार का भी गांधीजीने निरीक्षण किया। इधर १२ बरस में भंडारने काफी तरक्की की है। शुरू-शुरू में ५०००) की सालाना बिक्री थी, जो अब ७५०००) तक पहुँच गई है। इसके बाद "ताराचंद रामनाथ आयुर्वेदिक अस्पताल" देखने गांधीजी गये। वहाँ ऐलोपथी के डाक्टरों और आयुर्वेद के वैद्यों दोनों के ही सहयोग से काम चलता है। इलाज आयुर्वेद के अनुसार किया जाता है, और चीरफाड़ का काम डाक्टर करते हैं। ३० रोगियों के लिए अस्पताल में जगह है। पारसाल क़रीब ५०० स्थानीय और ९५४० बाहर के मरीजों का इस अस्पताल में इलाज हुआ और क़रीब २०० आपरेशन किये गये। हरिजनों का भी यहाँ अन्य मरीजों की ही तरह इलाज होता है।

ज़िला लोकल बोर्ड

२४ जून को ज़िला लोकल बोर्डने गांधीजी को मानपत्र भेंट किया, जिसमें बोर्ड-द्वारा की हुई हरिजन-सेवा का विवरण दिया गया था। गांधीजीने इसके लिए बोर्ड को धन्यवाद दिया, और कहा, "मुझे विश्वास है, कि अगर लोकल बोर्ड और म्युनिसिपैलिटियां सत्याग्रहात्मक रीति से अपना कर्तव्य-पालन करने लगें, तो हरिजनों का आर्थिक संकट थोड़े ही दिनों में दूर हो जाय और हरिजन बस्तियों की तो हालत सुधर जाय। यहाँ का यह ध्यान रखना चाहिए, कि प्राथमिक पाठशालाओं में हरिजन बच्चों को ठीक तरह से शिक्षा दी जाती है या नहीं। [illegible] [illegible] हरिजन [illegible] उनको शिक्षा तो मिलनी चाहिए, [illegible] [illegible] हरिजन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ध्यान दे, उन्हें [illegible] प्रोत्साहित करना चाहिए। [illegible] [illegible] कुओं से पानी भरने [illegible] हरिजनों [illegible] [illegible] पानी नहीं भरने दिया जाता है। [illegible] [illegible] बोर्डों को [illegible] हरिजनों को सब तरह से सहायता करनी चाहिए। पर इस बीच में इस बात का खयाल रखा जाय, कि बेचारे प्यासे न मरें। अगर कुछ अड़चन हो, तो उनकी बस्तियों में ख़ास तौर पर कुएँ खुदवा दिये जायँ।

हरिजन-सेवकों के साथ

१०० से ऊपर हरिजन-सेवकों के साथ उस दिन गांधीजीने डेढ़ घंटे तक बातचीत की। उनके सभी प्रकार के प्रश्नों के जवाब गांधीजीने बड़े धीरज से दिये। कार्यकर्त्ताओं को गाँवों में जाकर डेरा डाल देना चाहिए और वहाँ वे सवर्ण हिंदू तथा हरिजन दोनों के ही बीच में सेवा कार्य करें, इसी बात पर गांधीजीने सब से अधिक ज़ोर दिया।

एक हरिजन भाईने पूछा, कि क्या ऐसे में, जब कि इस हजारों बेकारी के मारे बी० ए०, एम० ए० पासवालों की सारे देश में मिट्टी पलीद हो रही है, हरिजनों को कालेज की पढ़ाई के लिए प्रोत्साहन देना उचित है, और क्या यह अधिक अच्छा न होगा, कि उन्हें औद्योगिक शिक्षा दी जाय? गांधीजीने इसका यह जवाब दिया, कि, "जबतक सवर्ण हिंदुओं को यह औद्योगिक शिक्षा सफलतापूर्वक जँच न जाय, तबतक यह आशा करना कठिन ही है, कि हरिजन उसे ग्रहण करेंगे। सवर्णों के लिए विश्वविद्यालयों की पढ़ाई लाभदायक न भी हो, पर हरिजनों के लिए तो वह काम की चीज़ है। मैं बहुत दिनोंतक यही समझता रहा, कि डाक्टर अंबेडकर ब्राह्मण हैं। प्रतिभा और योग्यता में वे किसी सवर्ण हिंदू से कम नहीं हैं। हरिजनों को तो इस उच्च शिक्षा से लाभ ही है। औद्योगिक शिक्षा में मैं खुद पूरा विश्वास करता हूँ, और मैं चाहता हूँ कि जितने ही अधिक हरिजन विद्यार्थी उद्योग-धंधे की शिक्षा पर ध्यान दें उतना ही अच्छा। पर हरिजन-सेवक-संघ हरिजनों को इसके लिए मजबूर नहीं कर सकता। उसे तो दोनों ही प्रकार की शिक्षाओं के लिए हरिजनों को प्रोत्साहित करना पड़ रहा है। औद्योगिक शिक्षा का उपदेश तो हरिजनों में खुद हरिजन ही करें। मैं आशा करता हूँ, कि हमारे हरिजन भाई हबशियों के कुलगुरु बुकर टी० वाशिंग्टन की जीवनी और उनकी रचनाओं से शिक्षा ग्रहण करें। वाशिंग्टन को मैं संसार के महापुरुषों में गिनता करता हूँ।"

हरिजन-बस्तियों के बारे में गांधीजीने कहा, कि देहातों में तो यह प्रश्न है नहीं, वहाँ उनके मकान बुरे नहीं हैं। रही शहरों की हरिजन-बस्तियों की बात, सो उनका सुधार म्युनिसिपैलिटियों को करना चाहिए। हरिजन-सेवक-संघ इतना बड़ा काम अपने हाथ में नहीं ले सकता। म्युनिसिपैलिटियाँ अगर अपने कर्तव्य-पालन पर उचित ध्यान दें, तो यह सवाल थोड़े ही [illegible] में हल हो सकता है।

[illegible] [illegible] [illegible] के बारे में जब गांधीजी [illegible] [illegible], तो उन्होंने यह जवाब दिया, कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] में आकर कानूनी [illegible] [illegible] करें।

सार्वजनिक सभा

[illegible] सार्वजनिक सभा एक देखने की चीज़ थी। महा-राष्ट्र प्रान्त के विभिन्न ज़िलों के प्रतिनिधि-मंडल अपनी-अपनी थैली लेकर गांधीजी को भेंट करने वहाँ आये हुए थे। विरोधी सनातनी सभा के प्रतिनिधिस्वरूप पूना के पुराने जन सेवक श्री शंकरराव लवाटे भी उपस्थित थे। श्री लवाटेने गांधीजी की अनुमति लेकर कहा, कि मैं और मेरे सनातनी मित्र अस्पृश्यता दूर करने के लिए गांधीजी से कम इच्छुक नहीं हैं, पर हमारा एतराज़ तो उस बिल पर है, जिसके सरकारी और दूसरे संप्रदायों के वोटों से पास हो जाने से सारी हिंदू-जाति पर बुरा असर पड़ने की आशंका है। गांधीजीने श्री लवाटे को उनकी शिष्टता और अत्यधिक

विनयशीलता पर धन्यवाद दिया और कहा, "मुझे दुःख है, कि जब लवाटेजी बोल रहे थे, तब लोगों को इस तरह अधीर नहीं हो जाना चाहिए था, न बीच-बीच में वक्ता को टोकना ही चाहिए था। यह शिष्टाचार के विरुद्ध है। शिष्टता का तो यह तकाज़ा है, कि जब कोई भाषण दे रहा हो, तो हमें धीरज और शांति के साथ उसकी बात सुननी चाहिए। श्री लवाटे एक मँजे हुए सार्वजनिक कार्यकर्ता हैं। जब १९१५ में मैं पूना आया, तो मुझे बतलाया गया था कि अगर पूना में कोई सच्चा जन-सेवक है, तो वह श्री लवाटे हैं। जब मैंने उनका दर्शन किया, तो मेरी आँखों के आगे प्राचीनकाल के ऋषियों का चित्र आ गया। उनके मद्य निषेध-संबंधी महान् कार्य को कौन नहीं जानता? मेरी तो उनके प्रति पहले ही जैसी श्रद्धा है, यद्यपि आज वे मेरे विरोध में खड़े हैं। मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ, कि श्री लवाटे-जैसे सत्पुरुषों के विचारों की उपेक्षा करूँ। पर मुझे भय है, कि श्री लवाटे को कुछ भ्रम हो गया है। अपने इस हरिजन-प्रवास में मैंने कहीं भी मन्दिर-प्रवेश बिल के पक्ष में वोट नहीं माँगे। मैंने तो इस बिल की चर्चा भी बहुत कम की है। मेरा विश्वास है, कि बिल के इस बखेड़े को तो हमें क़ानून के जानकारों पर ही छोड़ देना चाहिए। मुझे इसकी पूरी खातिरी है, कि बिल का पास कराना आप सब का कर्तव्य है, क्योंकि जबतक मन्दिरों के द्वार हरिजनों के लिए नहीं खुले, तबतक यह नहीं कहा जा सकता, कि अस्पृश्यता जड़मूल से चली गई। पर मैं यह हरगिज़ नहीं चाहता, कि हिंदू मेंबरों के बहुमत के बिना इस बिल को क़ानूनी रूप दे दिया जाय। मुसलमानों या ईसाइयों के वोटों से बिल का पास करा लेना तो साफ़ ही हिंसा है। श्री लवाटे तथा दूसरे सनातनी मित्रों को मैं विश्वास दिलाता हूँ, कि उनका यह भय सर्वथा निराधार है। मुझे सचमुच प्रसन्नता होगी, अगर पूना के सनातनी इस आन्दोलन में मेरा हाथ बटायँगे। मैंने सुना है, कि गाँवों के सवर्ण हिंदू हरिजनों को मुर्दार मांस खाने और उनकी मरज़ी की विरुद्ध उनसे मरे हुए ढोर उठवाने के लिए मजबूर कर रहे हैं, और अगर वे कभी अपने अधिकार के बल पर सार्वजनिक कुओं से पानी खींचने का साहस करते हैं, तो सवर्णों के हाथ से सताये जाते हैं। क्यों न हम सब ऐसे अत्याचार का मुक़ाबला मिलकर करें? ऐसी अस्पृश्यता के समर्थन में तो एक भी शास्त्रीने कोई श्लोक मुझे नहीं बताया है। मैंने शास्त्रों को जैसा कुछ समझा है, उसके अनुसार शास्त्रों के जानने का मैं दावा करता हूँ। सत्य को जिस रूप में मैंने पहचाना है, उसके लिए प्राण दे देने का भी साहस मुझ में आवे, यह मैं सदैव ही ईश्वर से माँगता रहता हूँ। यही कारण है कि मैं अपने को सनातनी कहा करता हूँ।"

वालजी गोविन्दजी देसाई

चैतन्यदेव और अस्पृश्यता

'हरिजन' के संपादक की सेवामें

प्रिय महोदय,

'चैतन्य और हरिजन' शीर्षक लेख 'हरिजन' में पढ़कर मुझे हर्ष हुआ। किन्तु उक्त लेख के संबंधमें मुझे कुछ कहना है।

लेख में कहा गया है, कि बंगाल में चैतन्य की तथा पशु-बलि-सहित काली की पूजा प्रचलित है। यह बात ठीक नहीं है। चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी वैष्णव कहलाते हैं, और वे लोग श्रीराधाकृष्ण को पूजते हैं, काली या दुर्गा को नहीं। और अगर काली को पूजते भी हैं, तो पशुबलि नहीं देते, किन्तु पशु के स्थान पर फल समर्पित करते हैं।

पर अधिक महत्व का प्रश्न तो यह है, कि अस्पृश्यता के प्रति चैतन्यदेव की धारणा कैसी थी। उक्त लेख से तो यह ध्वनि निकलती है, कि चैतन्यदेव अस्पृश्यता के विरुद्ध थे; क्योंकि (१) कोढ़ी वासुदेव भक्त को उन्होंने छाती से लगाया था, (२) रामानन्दराय नाम के एक शूद्र अधिकारी को उन्होंने हृदय से लगाया था, और (३) एक जन्म के मुसलमान कृष्णभक्ति-परायण हरिदास का भी उन्होंने आलिंगन किया था। इससे मालूम होता है, कि चैतन्यदेवने उन शूद्रों और हरिजनों को हृदय से लगाया था, जो हरिभक्त थे। पर दूसरे प्रसंग से यह स्पष्ट हो जाता है, कि चैतन्यदेवने उन्हीं हरिजनों के आचरण की सराहना की थी, जो उच्चवर्ण के मनुष्यों के संपर्क से बचते और जगन्नाथपुरी के मंदिर में नहीं जाते थे।

'चैतन्य-चरितामृत' में लिखा है, कि महाप्रभु चैतन्यदेवने सनातन नामके एक हरिजन भक्त को अपने यहाँ आमंत्रित किया था। सनातन खरी दोपहरी में वहाँ पहुँचा। गरमी का दिन था। धूप काफ़ी कड़ी पड़ रही थी। चैतन्यने देखा, तो सनातन के पैरों में फफोले पड़े थे। उन्होंने उससे पूछा, "किस मार्ग से तुम मेरे यहाँ आ रहे हो?" सनातनने जवाब दिया, "समुद्र-तट के मार्ग से।" चैतन्यने पूछा, "मंदिर के सामने का मार्ग तो काफ़ी ठंडा रहता है, उसी से क्यों नहीं आये? समुद्र-तट की बालू कितनी गरम है!" सनातनने कहा, "मंदिर के मार्ग से चलने का मुझे अधिकार नहीं। अनायास यदि जगन्नाथजी के किसी पुजारी से मेरा अंगस्पर्श हो गया, तो मेरा तो सर्वनाश ही हो जायगा।" चैतन्यदेवने कहा, "तुम हरिभक्त हो, तो भी यह उचित है, कि शिष्टाचार का परिपालन कर रहे हो; शिष्टाचार न पाला जाय तो यह लोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जायँ। तुम शिष्टाचार को न पालो, तो तुम्हारी देखादेखी दूसरे भी ऐसा ही करने लग जायँ।" इसी अध्यायमें लिखा है, कि चैतन्य महाप्रभु और उनके अन्य शिष्य तो ऊँचे मंचपर बैठते थे, और सनातन तथा हरिदास मंच के नीचे। मध्यलीला के प्रथम अध्याय में आया है, कि हरिदास, रूप और सनातन जगन्नाथ भगवान् के मंदिर में प्रवेश नहीं करते थे, क्योंकि वे हरिजन थे।

इससे प्रतीत होता है, कि चैतन्यदेवने अस्पृश्यता का कभी पाप नहीं माना। यदि ऐसा होता, तो वे अपने शिष्यों से अस्पृश्यता पालने के लिए कभी न कहते (जैसे, गांधीजी अस्पृश्यता का पालन नहीं करने देते हैं)। चैतन्यदेवने तो साफ़ कह दिया है, कि हरिजनों को न मंदिरों में ही जाना चाहिए, और न उच्चवर्ण के लोगों को छूना ही चाहिए। हरिदास, रूप और सनातन ये तीनों शिष्य यद्यपि मंदिरों में प्रवेश नहीं कर सकते थे, तो भी उनकी उत्तरोत्तर आत्मानुभूति में किसी तरह की कोई अड़चन नहीं आई। उलटे उनकी नम्रता और पश्चात्ताप-वृत्तिने उन्हें और भी शीघ्र आत्म दर्शन करा दिया। रूप, सनातन तथा हरिदास को श्रीचैतन्यदेव जो छाती से लगाते थे, तो इसका कारण यह था, कि उन भक्तों की देह अथवा मन में हरिभक्ति के प्रताप से मैल नहीं रहा था। शास्त्रों में भी

ऐसा ही लिखा है, कि भक्तिपरायण चांडाल भी ईश्वर-विमुख ब्राह्मण से अच्छा है। किंतु चैतन्यदेवने यह स्पष्ट कह दिया है, कि हरिजन चाहे कितना ही बड़ा भक्त हो, उसे शास्त्र-मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

चैतन्य महाप्रभु के इन वचनों को मानने में सनातनियों को कोई आपत्ति नहीं, कि 'ब्राह्मण और संन्यासी भी हरिदास के सदृश पवित्र नहीं' अथवा 'नीचकुलमें उत्पन्न पुरुष भगवद्-भक्ति के लिए अयोग्य नहीं।' हरिदास, रूप और सनातन इन हरिजनों पर चैतन्यदेव की कृपा इसीलिए अधिक थी, कि वे शास्त्र के उन नियमों का बराबर पालन करते थे, जो हरिजनों के लिए नियत कर दिये गये हैं, और निरंतर नाम-कीर्तनादि से भगवान् की सेवा में रत रहते थे। हरिजनों के लिए भगवत्पूजा का जो प्रकार शास्त्रों मे निषिद्ध है—अर्थात् मंदिर-प्रवेशादि—उसका उन्हें आग्रह नहीं था।

कम-से-कम ४०० वर्ष से यह निषेध-नियम चला आरहा है, कि हरिजन श्रीजगन्नाथजी के मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकते,* और इस निषेधात्मक नियम को चैतन्य महाप्रभुने पसंद किया था।

आपका
बसंतकुमार चटर्जी"

'चैतन्य और दुर्गा की बंगाल मे पूजा होती है' इस वाक्य का आशय यह है, कि अमुक बंगाली चैतन्यदेव की और दूसरे जगदंबा दुर्गा की पूजा करते हैं। यह मुझे मालूम है, कि वैष्णव लोग बलि अथवा आहार के अर्थ पशुवध के विरुद्ध हैं।

श्रीयुक्त चटरजी महोदय जब यह कहते हैं, कि 'चैतन्यदेव-ने उन शूद्रों और हरिजनों को हृदय से लगाया था, जो हरिभक्त थे', तो मेरी रायमें वे घोड़े के आगे गाड़ी रख रहे हैं। मैं तो इससे उलटा ही मानता हूँ; प्रेमावतार महाप्रभु चैतन्यदेव अपने पूर्ण प्रेमावेश में ऊंचनीच सभी को हृदय से लगाते थे, और ऊंच की अपेक्षा नीच को वे अधिक प्रेमपूर्ण प्रगाढ़ालिंगन देते थे। यह तो जाहिर ही है, कि राजा प्रतापरुद्र के प्रति चैतन्यदेवने कितना उपेक्षा का भाव दिखाया था। चैतन्यदेवने चूँकि मनुष्यमात्र को प्रेमपूर्वक हृदय से लगाया, इसीलिए सारा संसार चैतन्य महाप्रभु का अनुरागी और भगवान् का भक्त बनगया। वैष्णवधर्म समस्त बंगाल और उत्कल में जो इतना अधिक प्रचलित है उसका यही कारण है। श्रीयुक्त चटरजी क्या यह मनवाना चाहते हैं, कि जब कोई भी मनुष्य चैतन्य देव के पास भक्ति-उपदेश लेने आता था, तो वे उसे अपने आँगन के बाहर खड़ा कर देते थे और दूर से ही पहले निश्चय कर लेते थे, कि उसकी आध्यात्मिक स्थिति कैसी है? ऐसी अटपटी बात कैसे गले के नीचे उतर सकती है? अबतक तो ऐसा सुनने या देखने में आया नहीं, कि ऐसी अद्भुत रीति से कभी कहीं धर्मप्रचार हुआ है।

मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं, कि चैतन्यदेव के समय में हरिजनों के मंदिर-प्रवेश का जो निषेध-नियम प्रचलित था उसका उन्होंने समर्थन किया था। असल में देखा जाय, तो इधर तीन हजार वर्ष के इतिहास में ऐसे किसी हिंदू का मुझे पता नहीं लगता, जिसने गांधीजी की तरह इस अस्पृश्यता पिशाचिनी के ऊपर इतना प्रचण्ड प्रहार किया हो। यह शोचनीय बात है, कि अबतक ऐसा क्यों नहीं हुआ। अस्पृश्यताने हमें बर्बाद करने में कोई कसर नहीं रखी। गांधीजी की इस आखिरी चेतावनी पर हम सबने ध्यान न दिया, तो अवश्य ही हमारा सर्वनाश हो जायगा।

*तो भी इस बातके प्रमाण मौजूद हैं, कि पुरी के मंदिर में हरिजनों का प्रवेश बराबर होता रहा है, और आज भी होता है।—सं०

वालजी गोविंदजी देसाई

सागर ज़िले के गाँवों में

[गतांक से आगे]

खानपान

इधर वर्षा की अधिकता के कारण हर प्रकार के फल, फूल कसरत से होते हैं। तीन-तीन महीने महुओं पर, एकेक महीना बेलों पर, पन्द्रह-पन्द्रह दिन कुम्हड़ों पर बिता देते हैं। चिरौंजी के फल अचार और मिलावाँ भी नहीं छोड़ते हैं। कहाँतक कहें, चमार जाति तो गोबर में से भी अन्न निकाल-धोकर खा जाती है। प्रतिदिन के सामान्य खुराक में:—

प्रतिशत	अनाज
२०	जुआरी
२०	चना या तेवरा
५	गेहूँ
१०	चावल
१५	कुटुवा
२०	कुटकी, पासी, सवाँ, मचंई आदि घास-धान्य
१०	महुआ

उन्हीं के सब पदार्थ बनते हैं। तेवरा वास्तव में अकाल का अनाज है। यह देखने में कंकर जैसे होते हैं। इसके बीज खेत में झड़जाने के बाद अतिवृष्टि या अनावृष्टि में भी मरते नहीं हैं और दीवाली के बाद उगने लगते हैं। गेहूँ, चने आदि कोई भी धान्य उस खेत में बोया हो, तेवरा उन सब से पहले पक जाता है और फसल काटते-काटते तो इसके बहुत-से बीज खेतों में झड़ पड़ते हैं। यही बीज खेत में इसके मूल बीज नष्ट नहीं होने देते। इस कुधान्य को हमेशा खाने से पंगुपन आजाता है। शीघ्र पकने-वाला होने के कारण इसे कोई-कोई तो जानबूझकर भी बैलों को खिलाने के लिए बोते हैं। अकेले चना को रोटी खाई नहीं जाती, इसलिए उसमें मिलाने तथा फूलने के कारण थोड़े में पेट भर जाता है। इसलिए लोग जुआर के अभाव में इसे ही खाते हैं।

घास के धान्य में साँवा, मचंई, पासी, झुरझुर, कुरकुट, सटा, कोंतसी, राजगरा आदि अनेक प्रकार के धान्य हैं। अतिवृष्टि और अनावृष्टि में भी इनमें पोषक तत्व तो बहुत ही कम है, पर पेट तो भरना ही है। इनमें से कई तो चावल की तरह उबाल-कर और कई पीसकर रोटी बनाने के उपयोग में आते हैं। कई धान्य तो केवल छिलके-ही-छिलके होते हैं। पाँच व्यक्तियों के खानेलायक धान्य को तैयार करने में ३-४ घंटे तो अवश्य ही लग जाते हैं।

महुआ ब्राह्मण, बनिया आदि तमाम जातियाँ बड़े चाव से

खाते हैं। चावल की तरह उबालकर खाते हैं, भूँजकर चने के साथ या अकेला भी खाते हैं। इतना ही नहीं, घी में भूँजकर उपवास के दिन इसका फलाहार करते हैं और त्योहारों पर इसके नानाव्यंजन बनाकर भी खाते हैं। मुरका, लठा, दुबरी आदि कई व्यंजन महुआ के बनाते हैं।

ये सब धान्य कुधान्य खाते हुए भी इनका खाने का शौक मर नहीं गया है। हरेक घर में पापड़, बरी, कुचई, मिर्वैया, सत्तू, लड्डू, लपका, कुदुघोरा, दुबरी, महेरा, लुचई, भूँजा, दुधंगी, खीर, लडुवा, गोरस आदि अनेक नामों के पदार्थ बनाकर थोड़े नहीं खूब मात्रा में प्रतिदिन खाते रहते हैं। प्रातःकाल का कलेवा, बिना स्नान किये खाने के लिए, बहुत प्रमाण में बनाकर रख लेते हैं। भोजन तो इनका दो बजे के लगभग होता है। वैसे रोटी, दाल, भात आदि खाने की सामान्य चीज़ें इन्हीं धान्यों में से बनाकर खाते हैं। घी, तेल तो बनाने में लगता नहीं, यह सब पदार्थ सूखा या गीला वस्तुओं के मेल से थोड़े खर्च में बन जाते हैं।

इनमें से कितनी ही चीज़ें तो "तीन पुरबिया तेरह चौका" के कारण एक जाति का छुआ हुआ अन्न दूसरी जाति नहीं खाती है। इसलिए सत्तू, महुआ, मुरचन्द, भूँजा, कुम्हड़ा आदि का, जो शुष्क होने के कारण छूत में नहीं आते हैं, काम में लाते हैं।

घरों में गाएँ, भैंसें, होते हुए भी घी-दूध तो बाल-बच्चों को भी नहीं के बराबर देते हैं। छाछ अलबत्ता ये लोग खूब बापरते हैं। इनके नित्य के खाने में प्रायः छाछ के ही पदार्थ अधिक बनते हैं। चाहे जैसा अन्न इसमें घोल-घालकर उबाल लेते हैं और पेट भर खाते हैं। विवाह-शादियों में तो ८—१० दिन पहले से आसपास के सभी जान-पहचानवालों से माँग-माँगकर छाछ इकट्ठी कर लेते हैं। इसको भात के साथ गुड़ डालकर खूब प्रेम से खाते हैं, जिसे गोरस कहते हैं।

ब्याह शादियों का खर्च भी परिमितता की सीमा पर आ ठहरा है। सुधारकों को इसके लिए कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ा। आलस्यदेव की कृपा से पहले ही ये ऐसे हो गये, कि इनको दाल-चावल-जैसी सामान्य खुराक भी आनन्द बढ़ानेवाली बन गयी।

गाँव के पटेल कहलानेवाले व्यक्ति के यहाँ ब्याह होना है। पूछते हैं, 'बरात में कितने अन्न आये ?' उत्तर मिलता है, 'अरे ! कौन पाव, भैया ? १५ सेर तो चावल ही लग गये।' इतने में दूसरा कहता है, 'अरे ! इनके क्या है, ॥) की शक्कर आई, हमारे भैया के ब्याह में तो १॥) रुपैया की शक्कर आई थी !'

ब्याह-खर्च तो इतने ही से आपको स्पष्ट हो गया होगा, फिर भी नीचे की तालिका से और भी स्पष्ट हो जायगा—

प्रतिशत घरों में	ब्याह खर्च
४०	३)
२०	१०)
१५	४०)
१५	६०)
१०	२००) या ऊपर भी

इस प्रकार कम-से-कम रोटी-कपड़े के खर्च के मुकाबले में अधिक-से-अधिक आय का यह हाल न मालूम कब से होता आया होगा। आमदनी बढ़ानी तो साधारण बात न थी। उपार्जन की वृत्ति, कुछ तो बढ़ती हुई कठिनाइयों तथा कुछ कुछ दिनों से घुसी हुई विलासिता एवं आलस्य के कारण छूट चुकी थी। खर्च तो यह रोटी-कपड़े का अनिवार्य था ही। प्रतिवर्ष की टूट के कारण कर्ज़दारी बढ़कर प्रायः सारी-की-सारी ज़मींदारी मुट्ठीभर बनियों के हाथ में चली गई, लोगों के घरों की ऋद्धि-सिद्धि बिक गई और घरों का सारा परिग्रह प्रायः खाली-लोटा पर ही आ ठहरा। इतने पर भी न चला तो इन असहाय लोगोंने खुराक में कम मात्रा तथा कुधान्य, घास-धान्य आदि से निर्वाह चलाकर जैसे-तैसे ज़िन्दगी काटने का स्वभाव बना लिया। ऐसा जीवन किस तरह चलता है, इसकी कल्पना करनी भी असह्य है। यह परिस्थिति वर्षों से चली आने के कारण, परिणामस्वरूप लोगों में जड़ता, आलस्य, निराशा, अनीति, रोग आदि ओतप्रोत हो गये हैं।

इतना ही नहीं, इनकी मानसिक आकांक्षा भी इतनी क्षुद्र हो गई है, कि उसके कारण जीवन-व्यवहार और स्वभाव में भी एक आना पैसा, और एक सेर अनाज संतोष-असंतोष का कारण हो जाता है। किसी की मजूरी आदि का निश्चय कीजिए तो उसकी ओर से यही प्रश्न होगा कि, क्यों इतने में अफर जायँगे, अर्थात् इतने से पेट भर जायगा क्या ? इन बातों से स्पष्ट समझ में आ जाता है, कि ये लोग बहुत वर्षों से क्षुद्र आर्थिक हैसियत में ही रहते आये हैं। खान-पान, पहनना-ओढ़ना, परस्पर लेना-देना सब बातों में कंजूसी, मँगतापन, संकुचितता, परस्पर अविश्वास, असहाय्य आदि दुर्गुण सारे समाज के प्रायः सब व्यक्तियों में स्वाभाविक-से हो गये हैं। अल्पसंतोषी हो गये हैं और महत्त्वाकांक्षा तो बिलकुल ही मर गई है।

शिक्षा

यदि शिक्षा का इधर कुछ प्रबंध होता, तो किसी तरह इनमें सुधार होने की आशा भी होती, किन्तु अबतक तो शिक्षा के नाम से यह अभागा ज़िला सूनासा ही दीखता है। लोगों का अज्ञान चरम सीमा को पहुँच गया है। कोई इन्हें इनके बुरे-भले की पहचान करनेवाला मिले, तो भी ये लोग उसकी बात सुनने को तैयार नहीं। एक जगह हरिजनों से उनके अधिकार सुझाने की बात कही गई तो वे बोले, 'ऐसा कराकर हमें क्यों पाप में डालते हो ? पहिले जनम में पाप किये, जिससे तो इस जाति में पड़े और अब फिर तुम हमें किस घोर नरक में डालना चाहते हो ?'

हाँ, दिखाने को लोकल बोर्ड की ओर से दो-दो कोस के अन्तर पर पाठशालाएँ खुली हुई हैं, पर लोकल बोर्ड अबतक यह न जानते, कि अध्यापक बालकों को ढालने के साँचे हैं, तबतक उसका यह उद्योग उलटा ग्रामीण जनता के लिए महा घातक काम कर रहा है। पुराने बूढ़े बाबाओं से पूछने पर पता चला कि जब ये स्कूल नहीं थे तब लड़के आनंद से रामायण पढ़ते थे, सादगी से रहते थे, पर जब से ये स्कूल खुले हैं, लड़कों का सत्यानाश हो गया है। और तो कुछ हमें दीखता नहीं, मगर मास्टरों की देखादेखी, सारे ही दुर्गुण इनमें समा गये हैं। हम तो जानते भी नहीं और लड़के अनेक तरह के सोखता, चौपड़, सतरंज, जुआ, आदि खेल खेलना सीख गये। सिर पर गुलमटों की तरह जुल्फें रखाने लग गये। न भले आदमियों की पहिचान रही, न लुच्चों की। अरे, यह कैसा ज़माना आ गया है !

शिक्षित मनुष्य सोचे तो इस कथन में कितनी मर्म-वेदना भरी हुई है। सचमुच हम भी यह देखकर अचरज में आ गये कि इधर इन गाँवों में क्या बात हो गई! इतनी विलासिता, इतने कुव्यंसन, कैसे घुस गये, जो और जगह के किसानों में बहुत ही कम दीखते हैं। ढोर चराते हैं, डेढ़ रुपया वेतन मिलता है, पर सिर पर बाल रखाये हैं, तेल डला है, चिथड़े पहने हैं। गाँवों में बाज़ार भरते हैं, तो उनमें तक अतर, तेल, साबुन आदि कितनी ही विलास की सामग्री की दुकानें लगने लगी हैं। राम ही मालिक है।

"डेविड छात्रवृत्तियाँ"

हरिजन-सेवक-संघने निम्नलिखित हरिजन विद्यार्थियों को डेविड छात्रवृत्तियाँ देना मंज़ूर किया है:—

विद्यार्थी का नाम	अध्ययन-क्रम	मासिक रक़म
आसाम		
जुगलकुमार दास	एम० एस-सी०	२०)
हरिदास हज़ारिका	आई० ए०	१५)
नागेन्द्रनाथ भूयाँ	आई० ए०	१५)
आंध्र		
पी० जे० मनोहरम्	वेटेरीनरी (पशुचिकित्सा)	१५)
बोड्डुपल्ली रंगनायकुलु	बी० ए०	१०)
सुब्बु वेंकय्या	बी० ए०	१०)
कोलकलुरि वेंकिया	आई० ए०	१५)
बंगाल		
सतीशचन्द्र	आई० ए०	१५)
देवकुमार विश्वास	मेडीकल कोर्स	१५)
हिन्दी मध्यप्रांत		
बच्चूलाल रोहिदास	आई० ए०	१५)
मुरारीलाल गढ़वाल	आई० ए०	१५)
मराठी मध्यप्रांत		
तुकाराम दौलाजी बोरले	मेकनिकल इंजीनियरिंग	१०)
हरिश्चन्द्र रांगे	मेडीकल कोर्स	१५)
मधु बालीराम सोनटके	बी० ए०	१०)
कृष्णनारायण मडिले	बी० ए०	१०)
काशीनाथ तुकाराम दामले	आई० ए०	१०)
रामचन्द्र पांडुरंग कामडे	आई० ए०	१०)
बरार		
पंढरीक रंगु तयाडे	बी० ए०	१०)
गणपति गंगाराम पिंजारकर	बी० ए०	१०)
पूरण सूर्यचन्द्रजी धामडे	आई० ए०	१०)
गणपति अंबादास कानटुटे	आई० ए०	१०)
कोचीन और त्रावणकोर		
कोस्सारि आर० विश्वंभरम्	बी० एल०	१५)
पी० टी० दामोदरम्	बी० ए०	१०)
गुजरात		
वणकर बालभाई कुबेरदास	आई० ए०	१५)
कर्णाटक		
लक्ष्मण उल्ला	आई० ए०	१०)
प्रभुमल्लप्पा घोर	आई० ए०	१५)
पीरप्पा कृष्ण भोगले	आई० ए०	१५)
टी० कृष्ण	एल० टी०	१५)
महाराष्ट्र		
गणपति तुकाराम पोटे	कामर्स	२०)
के० रामचंद्र मकाजी	आई० ए०	१५)
दौलत बालाजी जाधव	बी० एल०	१५)
पांडुरंग गंगाराम पाटके	बी० एल०	१५)
ए० शिवरामजी	आई० ए०	१५)
ब्रिटिश मलबार		
कुमारी के० जी० जानकीबाई	एम० बी०, बी० एस०	३०)
मैसूर		
एन० मदुराइ मुत्तु	एल-एल० बी०	१५)
ई० लिंगय्या	मेडीकल कंपाउण्डरशिप	१०)
पंजाब		
ईश्वरचंद नानकचंद	आई० ए०	१५)
गगनराम	आई० ए०	१०)
मिलखीराम गढ़वाला	बी० ए०	१५)
रामसिंह कपिल	बी० ए०	१५)
नारायणसिंह कलोटा	आई० ए०	१५)
सिंध		
गोहिल जीवराज विश्राम	इंजीनियरिंग	१५)
तामिल नाड		
टी० के० सुब्रमनियम	आई० ए०	१५)
आर० कृष्ण पंडाराम	एल० टी०	१५)
एन० कंडस्वामी	सेनिटरी इंस्पेक्टर	१५)
सी० धर्मलिंगम्	वेटेरीनरी	१५)
मद्रास		
तंबुस्वामी जोराहराज	आई० ए०	१५)
चिदंबरम् बालसुंदरम्	सेनिटरी इन्सपेक्टर	१२)
संयुक्त प्रांत		
मानसिंह	सी० टी०	१०)
शिवसिंह केन	आर्ट्स एण्ड क्रेफ्ट्स	१५)
शिव बोधनारायण	आई० ए०	१५)
गौरीशंकर अहरवार	बी० ए०	१५)
कमलप्रसाद	आई० ए०	१५)
इंदौर		
सिताराम तुकाराम कराड़े	आई० ए०	१५)
परशुराम गणपति नितनवाड़े	बी० ए०	१५)

प्रिन्सिपल की प्रोग्रेस रिपोर्ट आनेपर हर माह की १० वीं तारीख़ के अंदर छात्रवृत्ति की रक़म भेजदी जाया करेगी। जुलाई की छात्रवृत्तियाँ अगस्त, १९३४, के आरम्भ में दी जायँगी।

प्रधान मंत्री,
हरिजन-सेवक-संघ, दिल्ली

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupte.

सम्पादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥) (पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-हाउस, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, १३ जुलाई, १९३४. [संख्या २१

विषय-सूची

"खाला का घर नाहिं !"

"काशी मंदिरों ! सुधारकों का वे क्या बिगाड़ सकती थीं—परन्तु काशी के पंडित लालनाथ पर जो वहाँ वार हुआ है, उससे निश्चय ही हरिजन-कार्य को क्षति पहुँची है। जिस किसीने पंडित लालनाथ पर यह वार किया, उसने ईश्वर तथा मनुष्य दोनों की ही दृष्टि में एक भारी पाप किया है। यह अपराध यों ही क्षमा नहीं किया जा सकता, जब कि मैं लालनाथजी की रक्षा का भार अपने ऊपर ले चुका था। हिंसापूर्ण तरीक़ों से अस्पृश्यता का यह काला दाग़ कदापि नहीं मिट सकता। अवश्य ही इस पाप-कृत्य का मुझे कोई-न-कोई प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। मेरा विश्वास है, कि हिंसा से, असत्य से या क्रोध से न तो धर्म की सेवा ही हो सकती है, न धर्म की रक्षा ही। धर्म की सेवा या धर्म की रक्षा तो आत्म-त्याग, और आत्म-संयम के द्वारा ही हो सकती है। मैं तो राज-नीतिक वातावरण में भी हिंसा को बरदाश्त नहीं कर सकता, फिर यह तो धर्मक्षेत्र है।"

असंयमी सुधारकों या अपूर्ण सेवकों को आत्मशुद्धि की ओर प्रेरित करनेवाले ये गुर्वर्थ शब्द उस दिन गांधीजीने अजमेर की सार्वजनिक सभामें कहे थे। उस प्रायश्चित्त का क्या रूप होगा, यह भी अब घोषित कर दिया है। ७ दिन का अनशन करेंगे। अपने अनशन-सम्बन्धी वक्तव्य में गांधीजी कहते हैं—

"काफ़ी हृदय-मंथन करने के बाद, मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ, कि अजमेर में हुए उस अपराध के निवारणार्थ मैं सात दिन का अनशन करूँ। मेरा यह प्रायश्चित्त-व्रत वर्धा पहुँचने के दो दिन बाद आरंभ होगा। यह व्रत उन सबको, जो इस आंदोलन में हैं या आगे शामिल होंगे, यह चेतावनी देदे, कि वे मनसा, वाचा, कर्मणा असत्य तथा हिंसा से अलग रहकर ही शुद्ध हृदय से इस हरिजन-कार्य में भाग लें।"

हमारी त्रुटियों, हमारी कमज़ोरियों के लिए अशक्त अवस्था में गांधीजी फिर एकबार अनशन करने जा रहे हैं—इससे बढ़कर हमारे लिए और क्या शर्म की बात हो सकती है। [illegible] को वे कितनी ही बार पी चुके हैं। सन्तों का तो यह सहज स्वभाव है। दूसरों का पाप-दण्ड वे अपने ऊपर ले लेते हैं। पर इससे हमें तसल्ली नहीं होनी चाहिए। हमारे गुनाहों को क्षमा कराने के लिए एक बूढ़ा तपस्वी तप की आग में पड़ा जलता रहे, और हम तब भी अपने कपट-कलुष-भरे अंतर को न टटोलें—यह तो हमारे लिए बड़ी ही शर्म की बात है।

गांधीजी शुरू से ही संयम और हृदय-शुद्धि पर बराबर ज़ोर देते आरहे हैं, पर उनकी मर्मवाणी की गहराई नापने का प्रयास कितनोंने किया? अस्पृश्यता-निवारण की इस ख़ालिस धर्म-प्रवृत्ति में संयम और शुद्धि के बिना तो काम चल ही नहीं सकता। जो लोग ख़ालिस अधर्म को ही आज धर्म मान बैठे हैं, वे यदि कोई उत्तेजनात्मक काम कर डालें, तो वह क्षमा किया जा सकता है; पर जो अधर्म को अधर्म समझते हैं, उन प्रायश्चित्त-पथिकों के अपराध पर तो माफ़ी की मोहर लग ही नहीं सकती। अस्पृश्यता के भारी पाप से एक तो यों ही हमारी नाव डगमगा रही है, अब हिंसा या द्वेष का और भार उस पर क्यों लादें!

× × × ×

संयम और शुद्धि के उग्र साधना-पथपर जो न चल सकें, बेहतर है, कि वे इस धर्म-प्रवृत्ति में न पड़ें—गांधीजीने यह अब बिलकुल स्पष्ट कर दिया है। इस धर्म-संशोधक हरिजन-आंदोलन से उन लोगों का दूर रहना ही हितकर है, जो इसकी धार्मिकता को हृदय से अनुभव नहीं कर रहे हैं।

जिसका यह ख़याल हो, या कम-से-कम मन में यह संदेह हो कि यह आंदोलन भी एक प्रकार का राजनीतिक दाँव-पेच है, वह इस क्षेत्र से जितनी ही जल्द हट जाय उतना ही अच्छा।

जो यह भावना लेकर हरिजन-कार्यमें भाग ले रहा हो, कि इससे हिंदू क़ौम की शक्ति बढ़ेगी और हिंदुओं का अच्छा संगठन हो जायगा, उसके लिए इस साधन-गृह में स्थान नहीं।

जो इस मनोवृत्ति से हरिजनों के बीच काम कर रहा हो, कि मैं उनका उद्धार कर रहा हूँ और इसके लिए उन्हें मेरा कृतज्ञ होना चाहिए, वह हरिजन-सेवा में भूलकर भी हाथ न लगावे।

जो अपने मत से मेल न खानेवाले सनातनियों अथवा दूसरे विरोधियों के प्रति द्वेषावृत्ति या हाथापाई-जैसा दुर्भाव रखता

हो, उसका इस हरिजन-आंदोलन से परहेज़ रखना ही अच्छा।

इस रपटीली डगर पर तो वही सेवा-रत साधक पाँव रखे, जो 'पाप', 'प्रायश्चित्त', 'शुद्धि' और 'सेवा' के 'सत्य-चतुष्टय' में अक्षरशः विश्वास करता हो। जिसकी पुकार में प्रेम की कुछ पीर हो, वही हरिजन-सेवा का प्रचार करने निकले। जिन संदेश-वाही शब्दों के मूल में साधन और आचरण की बीज-शक्ति मौजूद नहीं, लोगों पर उनका असर ही क्या पड़ सकता है? इस बीज-शक्ति का संचय संयम और हृदय-शुद्धि से ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए गांधीजी बारबार सेवकों के 'अन्तःशौच' पर ज़ोर देते आरहे हैं; क्योंकि उन्हें लगता है, कि सेवकों के हृदय में यदि द्वेष, क्रोध, अहंकार और चरित्र-दौर्बल्य रहा, तो निश्चय ही धर्म-प्रवृत्ति की पवित्रता को वे कलुषित करदेंगे, और सारा किया-कराया गुड़-गोबर हो जायगा। इससे सुधारकों के सामने सदा यह साखी रहे, तो अच्छा, कि—

'कोटि पाप लागे रहें एक क्रोध की लार।
किया-कराया सब गया, जब आया हंकार॥'

× × × ×

सेवा की गली कितनी सँकरी और रपटीली है। एक ओर निंदा है, अपवाद है, बहिष्कार है और शास्त्रशाही का विरोध है। दूसरी ओर अपनी सेवाओं की मदांधता है, कीर्ति की लालसा है, और चरित्र की दुर्बलता है। एक तरफ़ खाई है तो दूसरी तरफ़ कुआँ! कहीं खड्ड है, तो कहीं डूहा। ऐसे करेंड़े पथ पर सधा हुआ संयमी ही चल सकता है। गांधीजी को ऐसे ही संयमवान सेवकों की ज़रूरत है।

पर, प्रश्न यह है, कि ऐसे संयमवान सेवक तो मुश्किल से इनेगिने ही थोड़े-से मिलेंगे। और यह ठहरा एक विराट् आंदोलन। तो काम कैसे चलेगा? इस प्रश्न का जवाब तो गांधीजी कई बार दे चुके हैं, कि संख्या या मिक़दार में कुछ नहीं रखा है, गुण अथवा आचरण ही मुख्य चीज़ है। संयमी पाँच सेवक पाँच लाख सवर्ण हिंदुओं का हृदय पलट सकते हैं। अकेले एक आदर्श संयमी सेवक के मुक़ाबले में बड़े-से-बड़ा संघ भी कोई चीज़ नहीं। पर उसी सुधारक और उसी जनसेवक से हमारा यहाँ मतलब है, जिसने सन्त कबीरदास की इस अडिग भावना को लेकर सेवा के पथ पर दृढ़ता से पैर रख दिया है, कि—

'यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुइँ धरै, तब पैठै घर माहिं॥'

ईश्वर, करे गांधीजी का यह अनशन हम दुर्बल सुधारकों को अब भी सुझा दे, कि अस्पृश्यता-जैसे घोर पाप का निवारण सात्त्विक प्रायश्चित्त और आत्म-शुद्धि से ही हो सकेगा। यह बात किसी को पुसावे, तो हरिजन-सेवा के मार्ग पर पैर रखे, नहीं तो नहीं।

वि० ह०

मनुष्य-भेदों का समन्वय

वर्ण शब्द का अर्थ यदि रंग समझा जाय (आवृणोति, जो छाये रहता है, ढाँके रहता है, वह वर्ण) तो पृथिवी पर इस समय प्रत्यक्ष चार रंग की चार मुख्य जातियाँ मनुष्यों की मिलती हैं। अफ़ग़ानिस्तान, ईरान, तरकासिया, जार्जिया, यूरोप, उत्तर जापान, अमेरिका आदि में श्वेत। अमेरिका के कुछ भागों में लुप्तप्राय रक्त अथवा ताम्रवर्ण। चीन, जापान, बर्मा, स्याम, तिब्बत आदि में पीत। आफ्रिका में कृष्ण। भारतवर्ष में काश्मीर में श्वेत, राजस्थान में कुछ-कुछ ताम्रवर्ण, बहुतेरे प्रांतों में भूरे, गोहूं के रंग के, अथवा पीले तथा काले। चातुर्वर्ण्य की दृष्टि से इनका समन्वय पुराण के श्लोक में किया है—

ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियाणां तु लोहितः।
वैश्यानां पीतकश्चैव शूद्राणामसितस्तथा॥

(म० भा० शांति० अ० १८६)

पश्चिम देशों के शिष्टम्मन्य महाशय भ्रातृभाव और साम्य-वाद (ह्यूमन ब्रदरहुड और डिमाक्रेसी) का डिंडिम करते हुए भी अपने देशों में तथा दूसरों से लूटकर अपने किये हुए देशों में —यथा, यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, सौथ आफ्रिका आदि में पीले और काले आदमियों को रहने देना ही नहीं चाहते। रक्त मनुष्यों के वंश का तो इन पश्चिमी श्वेतोंने अमेरिका में हत्या से प्रायः उच्छेद ही कर दिया है। भारतवर्ष के आदमी छुआछूत की अति की दुर्बुद्धि से ग्रस्त होकर भी यह नहीं कहते, कि दूसरी जातियाँ, दूसरे वर्ण के आदमी इस देश से निकाल दिये जायँ। आपस में लड़ते-झगड़ते हुए भी किसी-न-किसी तरह परस्पर निर्वाह कर ही रहे हैं।

गुण-कर्म की दृष्टि से सांख्य के शब्दों में मनुष्य-भेदों का समन्वय यह है—

सद्गुणो ब्राह्मणो वर्णः क्षत्रियस्तु रजोगुणः।
तमोगुणस्तथा वैश्यः गुणसाम्यात्तु शूद्रता।

(भविष्यपुराण—३-४-२३)

इस जगह यह याद रखना चाहिए, कि इस श्लोक का यह अर्थ नहीं है कि कोई एक वर्ण एक ही गुण का बना है और उसमें दूसरे गुण हैं ही नहीं। ऐसा नहीं। किंतु केवल प्राधान्य उस गुण का उसमें है। इतना ही अर्थ है। ब्रह्मसूत्र ही है—

वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः।

जो लक्षण जिसमें विशेषरूप से देख पड़े, उसी के अनुसार उसका नाम पुकारा जाता है। यथा शिव-पार्वती तमोमय, विष्णु-सरस्वती सत्त्वमय, ब्रह्मा-लक्ष्मी रजोमय हैं, ऐसा पुराणों का संकेत है। अन्यथा "सर्वं सर्वत्र सर्वदा।"

और,

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः॥

(गीता)

तथा सांख्यकारिका में—

अन्योऽन्याभिभवाश्रय मिथुनजनन वृत्तयश्चगुणाः।

अर्थात्, तीनों गुण सर्वथा सर्वदा सर्वत्र एक दूसरे से मिले ही रहते हैं, अलग हो ही नहीं सकते। पर हाँ, एक समय एक स्थान में एक प्रबल होता है, दूसरे दो दबे रहते हैं। और इसी आध्यात्मिक हेतु से 'कर्मणा वर्णः' और वर्ण-परिवर्तन सिद्ध होता है। वायुपुराण, पूर्वार्ध, अ० ८ में स्पष्ट कहा है, कि पूर्वकाल में—

वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदासन् न संकरः।

न वर्ण और आश्रम की व्यवस्था थी, न संकर जातियाँ थीं —तथा महाभारत में,

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतं ॥

ब्रह्मा का बनाया हुआ है, इसलिए सभी जगत् ब्राह्म अर्थात् ब्राह्मण है। वर्णों में कोई आत्यंतिक विशेष अर्थात् भेद नहीं है, ब्रह्माने सब मनुष्यों को आदि में ब्राह्मण ही बनाया, पर क्रमशः कर्मभेद से वर्णभेद हुआ।

यही कथा दूसरे प्रकार से यों कही है, कि—

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते ।

सभी मनुष्य पैदा होते हैं शूद्र, पर भिन्न-भिन्न संस्कार से भिन्न-भिन्न प्रकार के द्विज, ब्राह्मण, वा क्षत्रिय वा वैश्य होजाते हैं। मतलब यह है कि पैदाइश से सब एक-से होते हैं, चाहे सबको ब्राह्म अथवा ब्राह्मण कहो, चाहे सबको शूद्र कहो। कर्म से, संस्कार से पृथक्-पृथक् नाम पीछे से पड़ते हैं। लौकिक व्यवहार की दृष्टि से इनका समन्वय ऐसा चरितार्थ किया है, कि इनको मुख, बाहु, ऊरूदर, पादवत् अंगांगी बनाया है, जिसके स्थान में आजकल "छुओमत" "छुओमत" की भरमार मची है। इस आफत का मूल कारण अहंकारजनित दंभ है। कृष्ण मिश्रने अपने 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक में इन्हीं नाम के पात्रों के, अर्थात् अहंकार और उसके पौत्र दंभ के, परस्पर वार्तालाप में इसका चित्र खींचकर दिखाया है। इस नाटक को लिखे प्रायः सौ सौ वर्ष होगये। दंभ कहता है अहंकार से—

सदनमुपगतोऽहं पूर्वमम्भोजयोनेः
सपदि मुनिभिरुच्चैरासनेष्वुज्झितेषु ।
सशपथमनुनीय ब्रह्मणा गोमयांभः
परिमृजितनिजोरावाशु संवेशितोऽस्मि ॥

"कुछ दिन हुए, मैं अपना दर्शन ब्रह्मा को देने के लिए उनके घर पर गया। वहाँ जो मुनि लोग बैठे थे, वे मुझे देखते ही घबराकर सहसा अपने ऊँचे ऊँचे आसन छोड़कर उठ खड़े हुए, और मुझे उन पर बैठने को कहने लगे। पर मैंने उनके छुए हुए अपवित्र आसनों पर बैठने से नाक सिकोड़ी। तब ब्रह्माने जल्दी से अपनी एक जाँघ को गोबर से लीपकर पवित्र किया, और 'मेरी क़सम आपको' आप इसी जाँघ पर बैठिए, ऐसा मेरा अनुनय-विनय करके मुझको मनाके अपनी जाँघ पर बिठाया।"

हिन्दूसमाज की बुद्धि की आजकल यह दुर्दशा हो रही है, कि जो मनुष्य चाहता है, कि यह बौद्ध-सनातन-आर्यमानव वैदिक धर्म फूले, फले और फैले, और समस्त पृथिवीतल के सब मनुष्य इसकी छाया के नीचे आवें और विश्राम पावें, वह नास्तिक, अश्रद्धालु, सभाचारी, असभ्य समझा जाता है!

यहाँतक दुर्बुद्धि बढ़ी है, कि कविता के रूपक और उपमा-अलङ्कार को रूपक और उपमा नहीं समझते, किन्तु उसे अक्षरशः ठीक मानने लगे हैं। वेद में सुन्दर, ओजस्वी, गुर्वर्थ सारगर्भ शब्दों में मनुष्यसमाज का रूपक बाँधा है। इस समाज से शरीर में सत्वज्ञानप्रधान मनुष्य मुखस्थानीय है—ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्। तथा रजःक्रियाप्रधान जीव बाहुस्थानीय है—बाहू राजन्यः कृतः। तथा तमइच्छाप्रधान जीव ऊरुस्थानीय है—ऊरू तदस्य यद्वैश्यः। और अनभिव्यक्त बुद्धिवाले जीव, जिन्हीं में से और सब जीव क्रमशः विकसित होते हैं, पादस्थानीय—पद्भ्यां शूद्रो अजायत। सबका ही सब शरीर का बोझ पैरों के ऊपर रहता है। यही अर्थ महाभारत में भीष्म-स्तवराज के एक श्लोक में कहा है—

ब्रह्मवक्त्रं भुजौ क्षत्रं कृत्स्नमूरूदरं विशः ।
पादौ यस्याश्रिताः शूद्राः तस्मै वर्णात्मने नमः ॥

वर्णात्मक समाज विष्णुरूप है, उसके ये सिर, भुजा, पेट और पैर हैं, यह सीधा-सादा रूपक है। ध्यान देने की बात है, कि वेद की ऋचा में भी और महाभारत के श्लोक में भी यह नहीं कहा गया है, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य मुख, बाहु, ऊरूदर से उत्पन्न हुए, किंतु यह कहा है, कि मुखबाहु-ऊरूदर थे, अर्थात् तद्वत् तत्स्थानीय थे। ऐसे ही पुरुषसूक्त के दूसरे श्लोकों का भी अर्थ सीधा-सीधा है।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। इत्यादि

अध्यात्म दृष्टि से समस्त जगत् परमात्मा का शरीर है, और सब जीव उस एक महा विराट्शरीर के अंगरूप हैं ही। पर नहीं, सीधे-सादे अर्थ में रस नहीं। इसलिए तरह-तरह के अनर्थ किये गये। ब्रह्मदेव बड़े बूढ़े लम्बेबाल और दाढ़ीवाले चार मुँह के पितामह हैं, और उनके मुँह से (किस मुँह से यह ठीक पता नहीं लगता) ब्राह्मण कूदे, बाँह से क्षत्रिय निकल पड़े, जाँघ से वैश्य पैदा हो गये, पैर से शूद्र। इस वास्ते ये चार अलग-अलग जाति के जन्तु हैं, जैसे बैल, घोड़े, हाथी और ऊँट!

रूपकों में लिखने-कहने समझाने का हेतु यह है, कि जिन की बुद्धि अन्तर्मुख नहीं है, बहिर्मुख ही है, उनको तरह-तरह के आकारों से समझा-बुझाकर धीरे-धीरे अन्तर्मुख किया जाय, साकार उपासना से क्रमशः निराकार दर्शन की ओर फेरा जाय। यह तो था प्राचीन आर्ष ग्रंथकारों और संप्रदायप्रवर्तकों का उद्देश। सांख्य-वेदांत के ही शब्दों का अनुवाद सब शाक्त, वैष्णव आदि तन्त्रों, संप्रदायों, पंथोंने उपासकों की प्रकृति के अनुसार सगुण, सात्विक अथवा राजस अथवा तामस रूपों में किया है। पर अक्षर को पकड़ने से, और तात्विक अर्थ को भुलादेने से भारी दोष पैदा हो गये हैं। उन प्राचीन अर्थों को ठीक-ठीक पहिचानने से ही विरोध-परिहार होकर सब बातों का उचित रूप से समन्वय हो सकता है और यह संशोधन औरसुधार बिना अध्यात्म शास्त्र के नहीं हो सकता, क्योंकि उसीकी नींव पर यह समग्र मानवधर्म और वर्णाश्रमात्मक समाज-निर्माण प्रतिष्ठित है।*

भगवानदास

हबशियों का कुलगुरु

६

जनरल मार्शल, मिस मेकी और जनरल आर्मस्ट्रांग जब टस्केजी आये, तो यह देखकर उन सब को बड़ी खुशी हुई, कि हैम्पटन के विद्यार्थी ही अधिकतर वहाँ के अध्यापक हैं।

यह असंभव था, कि जितने विद्यार्थी दाख़िल हुए थे, वे सब-के-सब स्कूल में समा सकें, इसलिए वाशिंग्टनने वहीं स्कूल के नज़दीक कुछ कोठरियाँ किराये पर लेलीं। पर ये कोठरियाँ बेमरम्मत थीं, इससे वहाँ ठंड से ठीक-ठीक बचाव होना मुश्किल था। जब ज़्यादा सरदी पड़ती, तो वाशिंग्टन की सारी रात, अपने विद्यार्थियों की चिंता में, कोरी आँख ही बीतती। आधी-आधी

---

* 'समन्वय'

रात को उठकर विद्यार्थियों की कोठरियों में जाता तो क्या देखता, कि वे बेचारे एक ही कंबल को ओढ़े-ओढ़े अँगीठी के आगे ठिठुरे हुए आग ताप रहे हैं। कुछ तो सारी रात मारे कँप-कँपी के लेटते ही नहीं थे। फिर भी किसी को कोई शिकायत नहीं थी, क्योंकि सब जानते थे, कि वाशिंग्टन से जितना हो सकता है, उसके करने में वह कोई कसर नहीं रखता है।

विद्यार्थियों में यह भाव पैदा करने का वाशिंग्टन प्रयत्न किया करता था, कि पाठशाला पर जितना अधिकार ट्रस्टियों अथवा अध्यापकों का है, उतना ही विद्यार्थियों का भी है। इससे विद्यार्थियों की अपनी संस्था पर सहज ममता थी। साल में दो-तीन बेर वह विद्यार्थियों से कहता, कि पाठशाला-संबंधी किसी भी बात के बारे में आलोचना या फ़रियाद करनी हो, तो उसे वे पत्र में लिख दें। जब कोई कुछ न लिखता, तो वह पाठशाला के उपासनाघर में विद्यार्थियों की सभा बुलाता, और उनसे पाठशाला की व्यवस्था के विषय में दिल खोलकर बातें करता। वाशिंग्टन को इन सभाओं में बड़ा आनंद आता था। बात यह थी, कि इन सभाओं से उसे भावी योजनाओं के बनाने में बहुत सहायता मिलती थी।

वाशिंग्टन चाहता था, कि उसके विद्यार्थी अपने हाथों सिर्फ़ मकान बनाने का ही काम न करें, बल्कि अपने लिए फ़र्नीचर वग़ैरा भी स्वयं ही तैयार करलें। विद्यार्थी ज़मीन पर ही सोते थे और जबतक गद्दे-जैसी कोई चीज़ नहीं बनी, तबतक बिना ही बिछौने के काम चलाते रहे। सस्ते-से कपड़ों के बोरे जैसे सी लिये और उनमें पुआल भर लिया, बस गद्दा तैयार हो गया। फिर तो वहाँ गद्दे गद्दले बनाने की कला इतनी उन्नति कर गई, कि आमतौर पर आज टस्केजी में बढ़िया-से-बढ़िया गद्दे तैयार होते हैं।

विद्यार्थियों की कोठरियों में पहले एक भी कुर्सी नहीं थी। खुरखुरी पटियों से पीढ़े ही कोठरियों में रखे हुए थे, जो उन्होंने कीलें ठोक-ठाककर खुद ही बना लिये थे। एक बात पर वाशिंग्टन बहुत ज़ोर दिया करता था। वह थी सफ़ाई। उसका कहना था, कि हमारी ग़रीबी या अकिंचनता के लिए लोग हमें माफ़ कर देंगे, पर हमारी गंदगी के लिए वे हमें कदापि क्षमा न करेंगे, इसलिए वह इसपर बराबर भार देता रहता, कि विद्यार्थियों को बिला नागा नित्य दातौन करना चाहिए और नहाना चाहिए। वह उन्हें यह भी सिखलाता था, कि उनका कपड़ा फट जाय, या खूंट लग जाय, तो उसमें तुरत टाँके लगालें।

स्कूल के बाहर उन भाड़े की कोठरियों में लड़कियाँ तो टिकाई नहीं जा सकती थीं, इसलिए वाशिंग्टनने सोचा, कि एक इतना बड़ा मकान बनाना चाहिए कि जिसमें लड़कियों के रहने व भोजन करने की जगह निकल आवे और उस पर दस हज़ार डालर से अधिक खर्चा न पड़े। जनरल आर्मस्ट्रांगने यह प्रस्ताव किया, कि वाशिंग्टन उत्तर की रियासतों में टस्केजी के निमित्त धन-संग्रह करने के लिए निकल पड़े और उसके प्रवास का सारा ख़र्च हैम्पटन संस्था अपने ऊपर लेले। भाषण के विषय में वाशिंग्टन को जनरल आर्मस्ट्रांगने जो सलाह दी, उसका सभी सार्वजनिक वक्ताओं को अनुसरण करना चाहिए। जनरलने कहा, 'अपने एक-एक शब्द के द्वारा एक-एक विचार लोगों को देते रहो।'

वाशिंग्टन एक सज्जन के पास गया, तो उसने एक पैसा भी नहीं दिया। पर दो बरस बाद उन्हीं सज्जनने १०००० डालर की एक हुंडी वाशिंग्टन के नाम भेज दी। रेलवे के रईस हंटिंग्टन से वाशिंग्टन पहली बार मिला तो उसने सिर्फ़ २ डालर दिये; पर अपनी मृत्यु से कुछ मास पहले वही हंटिंग्टन सेठ ५०००० डालर संस्था के स्थायी कोष में जमा कर गया। दस सालतक वाशिंग्टन एण्ड्रू कार्नेगी से बराबर माँगता ही रहा, तब कहीं अंत में उसने उसे पुस्तकालय का भवन बनवाने के लिए २०००० डालर दिये।

वाशिंग्टनने देखा, कि धनाढ्य लोग तो तभी रस लेंगे जब व्यापारियों की तरह संस्था का हिसाब किताब व व्यवहार बिलकुल शुद्ध रखा जायगा। इसलिए वह टस्केजी में इतना अच्छा हिसाब-किताब और व्यवहार रखता कि जिसे पसंद करने में न्यूयार्क का कोई भी बैंक आना कानी नहीं करता था।

टस्केजी की शिक्षा-संस्था को कितनी ही बड़ी-बड़ी रक़में दान में मिली थीं, पर उसका मुख्य आधार तो साधारण स्थिति के मनुष्यों की दी हुई छोटी-छोटी रक़मों के ही ऊपर रहता था। वाशिंग्टन लिखता है, 'जिन छोटे-छोटे दानों के अंदर सैकड़ों दाताओं का सद्भाव भरा हुआ हो, उन्हीं के आसरे अधिकतर लोकोपकारी काम चलने चाहिए।'

टस्केजी के स्नातकों में शायद ही कोई ऐसा होगा, जो २५ सेंट से लेकर १० डालरतक की वार्षिक सहायता अपनी प्यारी संस्था को न भेजता रहता हो।

'हरिजन' से] बालजी गोविंदजी देसाई

उनका आत्मोद्धार

[काशी के डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल एम० ए०, एल-एल० बी, डी० लिट ने 'हिंदीकाव्य में निर्गुण संप्रदाय' शीर्षक एक लेख नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में लिखा है। लेख काफ़ी शोधपूर्ण है। शूद्रों और हरिजनों के लिए जब हमारी शास्त्र-शाहीने आत्मोन्नति का द्वार बंद कर दिया, तब संतमार्ग पर चलकर उन्होंने किस प्रकार आत्मदर्शन किया और जगत् को कराया, इस पर विद्वान् लेखकने ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा बड़ा अच्छा प्रकाश डाला है। उक्त लेख से नीचे हम उसी अंश को उद्धृत करते हैं, जिसमें शूद्र और अछूत कहलानेवाली तिरस्कृत जातियों के संतों की आध्यात्मिक धारा का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित वर्णन आया है—सं०।]

मध्यकालीन भारत के धार्मिक इतिहास के पन्ने शूद्र भक्तों के नामों से भरे हैं, जिनका आज भी ऊँच-नीच सब बड़े आदर के साथ स्मरण करते हैं। शठकोप (नम्मालवार), नामदेव, रैदास, सैन आदि शूद्र जाति के भक्तों का नाम सुनते ही हृदय में श्रद्धा उमड़ पड़ती है। हमारी श्रद्धा की इस भावना की सच्ची परख हमारी क्रूरता हुई। बाधाओं को कुचलकर शूद्र आध्यात्मिक जगत् में ऊपर उठे। समाज की ओर से तो उनके लिए यह मार्ग भी बंद ही था।

शूद्रों की तपस्याने धीरे-धीरे परिस्थिति को बदलना आरंभ कर दिया। तामिल भूमि में तो मुसलमानों के आने के पहले ही शैव संत कवियों तथा वैष्णव आलवारों को 'यो नः पिता जनिता विधाता' के वैदिक आदर्श की सत्यता की अनुभूति हो गई थी। जब सबका पिता एक परमात्मा है तो

न्यायकर्ता है, तब ऊँच-नीच के लिए जगह ही कहाँ हो सकती है। उनकी धर्मनिष्ठाजन्य साम्यभावना के कारण यह बात उनकी समझ में न आती थी। एक पिता के पुत्रों में प्रेम और समानता का व्यवहार होना चाहिए, न कि घृणा और असमानता का। अतएव वे सामाजिक भावना में वह परिवर्तन देखने के लिए उत्सुक हो उठे, जिससे परस्पर न्याय करने की अभिरुचि हो, सौहार्द बढ़े और ऊच-नीच का भेद-भाव मिट जाय। तिरुमुलर (१० वीं शताब्दी) ने घोषणा की कि समस्त मानव-समाज में एक के सिवा दूसरा वर्ण नहीं और एक के सिवा दूसरा परमात्मा भी नहीं[१]। नम्माळवारने कहा, वर्ण किसी को ऊंचा अथवा नीचा नहीं बना सकता; जिसे परमात्मा का ज्ञान है, वही उच्च है और जिसे नहीं, वही नीच[२]। शैव भक्त पट्टाकिरियर की यही आंतरिक कामना थी कि अपने ही भाइयों को यहाँ के लोग नीच समझने से कब बाज आयेंगे। वह यही मानता रहा कि कब वह दिन आवेगा जब हमारी जाति एक ऐसे बृहद् भ्रातृमंडल में परिणत हो जायगी, जिसे वर्ण-भेद का अत्याचार भी अव्यवस्थित न कर सके—वर्ण-भेद का वह अत्याचार जिसका विरोध करके कपिलने प्राचीन काल में शुद्ध मनुष्यमात्र होना सिखाया था[३]। भक्त तिरुप्पना-ळवार को नीच जाति का होने के कारण जब लोगोंने एक बार श्रीरंग के मंदिर में प्रवेश करने से रोक दिया तो उच्च जाति का एक भक्त उसे अपने कंधे पर चढ़ाकर मंदिर में ले गया"।

परंतु वैष्णव धर्म का पुनरुत्थान जिन कट्टर परिस्थितियों में हुआ, उन्होंने इस न्याय-कामना के अंकुर को पनपने न दिया। आलवारों के बाद वैष्णव धर्म की बागडोर जिन महानाचार्यों के हाथ में गई वे बहुत कट्टर कुलों के थे और परंपरागत शास्त्रों की सब मर्यादाओं की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते थे। शूद्रों के लिए भक्ति का अधिकार स्वीकार करना भी उन्हें खला। जिस अज्ञान की दशा में शूद्र युगों से पड़े हुए थे, उससे उनको उठने देना उन्हें अभीष्ट न था। रामानुजाचार्यने उनके लिए केवल उस प्रपत्ति मार्ग की व्यवस्था की, जिसमें संपूर्ण रूप से भगवान् की शरण में जाना होता था,[४] भक्तिमार्ग की नहीं। भक्ति से उनका अभिप्राय अनन्य चिंतन के द्वारा परमात्मा की ज्ञान-प्राप्ति का प्रयत्न था जिसकी केवल ऊंचे वर्णवालों के लिए व्यवस्था की गई थी। शूद्र इसके लिए अयोग्य समझा गया।

किंतु उत्तर भारत में परिस्थितियाँ दूसरे प्रकार की थीं। वहां ये बातें चल न सकती थीं। मुसलमानी समाजव्यवस्था की तुलना में हिंदू वर्ण-व्यवस्था में शूद्रों की असंतोषजनक स्थिति सहसा खटक जाती थी। अतएव इन आचार्यों-द्वारा प्रवर्तित वैष्णव धर्म की लहर जब उत्तर-भारत में आई तो उस पर भी परिस्थितियोंने अपना प्रभाव डालना आरंभ कर दिया।

परिस्थितियों का यह प्रभाव बहुत पहले गोरखनाथ ही में इंगित होने लगता है, जिसने मुसलमान बाबा रतन हाजी को अपना शिष्य बनाया था, किंतु दक्षिण से आनेवाली वैष्णव धर्म की इस नवीन लहर में इसका पहलेपहल दर्शन हमें रामानन्द में होता है। रामानन्दने काशी में जाकर अद्वैतवाद की शिक्षा प्राप्त की थी, किंतु दीक्षा दी थी उन्हें विशिष्टाद्वैती स्वामी राघवानन्दने, जो रामानुज की शिष्य-परंपरा में थे। कहते हैं कि राघवानन्दने अपनी योग-शक्ति से रामानन्द की आसन्न मृत्यु से रक्षा की थी।

रामानन्दने उत्तरी भारत की परिस्थितियों को बहुत अच्छी तरह से समझा। उन्हें इस बात का अनुभव हुआ कि द्विजेतर वर्ण के लोगों के हृदय में सच्ची लगन पैदा हो गई है। उसे दबा देना उन्होंने अनुचित समझा। अतएव उन्होंने परमात्मा की भक्ति का दरवाजा सब के लिए खोल दिया। उन्होंने जिस वैरागी संप्रदाय का प्रवर्तन किया था, उसमें जो चाहता प्रवेश कर सकता था। भगवद्भक्ति के क्षेत्र में उन्होंने यह भावना उत्पन्न कर दी जिसके अनुसार 'जाति पांति पूछै नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई'। भक्ति के क्षेत्र में उन्होंने वर्ण-विभेद को ही नहीं, धार्मिक विद्वेष को भी स्थान न दिया और ऊँच-नीच, हिंदू-मुसलमान सबको शिष्य बनाया। एक ओर तो उनके अनंतानन्द, भवानन्द आदि ब्राह्मण शिष्य थे जिन्होंने रामभक्ति को लेकर चलनेवाली वैष्णवधारा को कट्टरता की सीमा के अंदर रखा, तो दूसरी ओर उनके शिष्यों में नीच वर्ण के लोग भी थ जिन्होंने कट्टरता के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई। इनमें धन्ना जाट था, सेन नाई, रैदास चमार और कबीर मुसलमान जुलाहा। कहा जाता है कि मूल श्रीसंप्रदाय वालों को स्वामी रामानन्दजी की यह उदार प्रवृत्ति अच्छी न लगी और उन्होंने उनके साथ खाना अस्वीकार कर दिया। इससे रामानन्द को अपना ही अलग संप्रदाय चलाने की आवश्यकता का अनुभव हुआ जिसे चलाने के लिए उन्हें अपने गुरु राघवानन्दजी की भी अनुमति मिल गई। पर रामानन्द-जीने भी परंपरागत कट्टर परिस्थितियों में शिक्षा-दीक्षा पाई थी। इसलिए यह आशा नहीं की जा सकती थी, कि उन्मेष-प्राप्त शूद्रों की आकांक्षाओं को वे पूर्ण कर सकते। उनके शिष्यों में अनंतानंद आदि कट्टर मर्यादावादी लोग भी थे। शास्त्रोक्त लोक-मर्यादा के परमभक्त गोस्वामी तुलसीदास भी रामानन्द की ही शिष्य-परंपरा में थे। इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने भक्त्युपदेशों और तत्वज्ञान को बे-हिचक अपनी वाणी के द्वारा ऊँच-नीच सब में वितरित किया था, तथापि वे बहुत दूर न जा सकते थे। इतना भी उनके लिए बहुत था। वेदांतसूत्र पर आनन्द-भाष्य नामक एक भाष्य उनके नाम से प्रचलित हुआ है। उसके शूद्राधिकार में शूद्र का वेदाध्ययन का अधिकार नहीं माना गया है। अभी इस भाष्य पर कोई मत निश्चित करना ठीक नहीं है।

सामाजिक व्यवहार के क्षेत्र में हिंदू को मुसलमान से जो संकोच होता है तथा द्विज को शूद्र से उसका निराकरण स्वामी रामानन्द स्वतः कर सकते, यह आशा नहीं की जा सकती थी। यह उनके शिष्य कबीर के बाँट में पड़ा, जिसके द्वारा नवीन विचारधारा को पूर्ण अभिव्यक्ति मिली।

---

(१) 'सिद्धांतदीपिका' ११, १० (अप्रैल १९११) पृ० ४३३; कार्पेंटर—'थीज्म इन मेडीवल इंडिया" पृ० ३६९.

(२) "तामिल स्टडीज़", पृ० ३२७; कार्पेंटर-थीज्म, पृ० ३८२.

(३) "तामिल स्टडीज़", पृ० १५९; ३६९.

(४) कार्पेंटर—'थीज्म', पृ० ३७९.

हर हिन्दू स्मरण रखे

कि बंबई में २५ सितम्बर, १९३२ को श्रीमान् पंडित मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में हिन्दू-संसार के प्रतिनिधियों की सभा में नीचे लिखा प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ था :—

"यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि अब से कोई भी व्यक्ति, अपने जन्म से, अछूत नहीं समझा जायगा और अबतक जो ऐसा माना जाता था, उसके भी सार्वजनिक कुओं, सड़कों और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं के व्यवहार के सम्बन्ध में वही अधिकार होंगे जो दूसरे हिन्दुओं के हैं। अवसर मिलते ही इन अधिकारों को क़ानूनी स्वीकृति देदी जायगी और स्वराज्य-पार्लियामेंट के सब से पहले कामों में यह भी एक काम होगा, यदि तबतक ये अधिकार क़ानून-द्वारा स्वीकृत न हो चुके होंगे।

और यह सम्मेलन यह भी निश्चय करता है, कि अस्पृश्य कही जानेवाली जातियों की प्रथानुमोदित समस्त सामाजिक बाधाओं को—जिनमें उनकी मन्दिरबन्दी भी शामिल है—शीघ्र हटाने के लिए सभी उचित और शांतिमय उपायों का अवलंबन करना तमाम हिंदू-नेताओं का कर्तव्य होगा।"

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १३ जुलाई, १९३४

हज़रत मुहम्मद साहब

[२३ जून की रातको, बारावफ़ात के अवसर पर, पूना में अंजुमने फिदाये इस्लाम की तरफ से मुसलमानों की एक विराट् सभा हुई थी, जिसमें गांधीजीने हज़रत मुहम्मद साहब के जीवन-चरित और इस्लाम की शिक्षा के बारे में नीचे लिखे आशय का भाषण दिया था।]

"मुसल्मान भाइयों के साथ मेरा यह भाईचारा कुछ आज का नहीं है, बल्कि पचास बरस पहले का है। मैं छोटा था, नौजवान था, तभी से मेरी मोहब्बत उनसे है। मैं दक्षिण अफ्रिका जब पहले पहल गया, तो एक मुसलमान सौदागर के काम से ही वहाँ गया था। वहाँ कई साल मैं मुसलमान भाइयों के बहुत नज़दीक रहा। वहाँ भी अली भाइयों के साथ मेरी कितनी दिली मोहब्बत रही, और वह दिन-दिन कैसी बढ़ती गई यह तो आप लोग जानते ही हैं। कुछ ही दिनों से हम लोग कुछ अलग-से दीखते हैं, तो भी आपको मालूम है, कि मौलाना शौकतअली जब चाहें तब उनके खीसे में ही हूँ।

मेरी जब इतनी घनिष्ठता मुसलमान भाइयों के साथ सदासे रही, तब मेरा यह कर्तव्य हो गया, कि मैं पैग़म्बर साहब का जीवनचरित पढ़ूँ। मेरा यह प्रयत्न तो दक्षिण अफ्रिका से ही शुरू हो गया था। पर उस वक्त मुझे उर्दू का ज्ञान नहीं था। खुदा की मेहरबानी से मुझे जेल नसीब हुआ, और वहाँ मौलाना शिबली साहब का लिखा हुआ हज़रत मुहम्मद साहब का जीवन-चरित मैंने पढ़ा। मुझे वह किताब मेरे स्व० मित्र हकीम अजमलखाँ साहबने भेजी थी। मैं वह पढ़ गया। उसके बाद तो मेरी पढ़ने की लालसा बहुत बढ़ गई और मैंने ख़लीफ़ा का वृत्तान्त भी बाँच डाला। पैग़म्बर साहब के जीवन से यही मेरा परिचय है। अँग्रेज़ी में तो मैंने इस्लाम और पैग़म्बर साहब के विषय में बहुत-कुछ देखा ही है।

अपने इस अध्ययन के आधार पर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ, कि मेरे लिए वेदादि ही धर्मशास्त्र नहीं हैं, बल्कि क़ुरान, बाइबल वग़ैरा भी उसी तरह धर्मशास्त्र हैं। मैं गीता और उपनिषद् आदि को जिस प्रकार मानता हूँ, उसी प्रकार दूसरे धर्मग्रन्थों की भी इज़्ज़त करता हूँ। मेरा विश्वास है, कि मुहम्मद साहब दुनियाँ के एक महान् पैग़म्बर थे। इसी प्रकार महात्मा ईसा भी हो गये हैं। इन ग्रन्थों के देखने से मेरे ऊपर यह असर पड़ा है, कि पैग़म्बर साहब एक सच्चे और खुदापरस्त पुरुष थे। मैं यह कोई काल्पनिक बात नहीं बतला रहा हूँ। मेरे दिलपर पैग़म्बर साहब के जीवनचरित का जो थोड़ा-बहुत असर पड़ा है, वही मैं आपको बतला रहा हूँ। मुसीबतें झेलने में उन्होंने कुछ उठा नहीं रखा था। वह एक बहादुर आदमी थे। वह किसी मनुष्य से नहीं डरते थे। डरते थे तो सिर्फ़ खुदा से। जिसे वह सत्य समझते, उसी को करते थे। उनकी कथनी और करनी एक थी। जिस वक्त जिस चीज़ को उन्होंने सत्य समझा, हक़ समझा, उसे अमल में लाते हुए उन्होंने और तमाम चीज़ों को तुच्छ गिना। ऐसा नहीं, कि कहा कुछ, और किया कुछ। आज जो ठीक जँचा उसके मुताबिक किया। कल उसी चीज़ के विश्वास में अगर फ़र्क आगया, तो फिर लोकनिंदा या मुख़ालिफ़त की पर्वा न करते हुए उसीके अनुसार आचरण किया। इसमें किसी-किसी टीकाकार को विरोध देख पड़ता है। अगर सत्य का पुजारी अन्यथा आचरण तो कर ही नहीं सकता। वह तो उसीका आचरण करेगा, जो जिस वक्त उसे सत्य लगेगा।

रहनी उनकी फ़कीरों की थी। त्याग के रंग में रँगे हुए थे। दौलत उनके पास काफ़ी आती थी, तो भी अपने भोग के लिए कभी उन्होंने उसका उपयोग नहीं किया। जब मैंने यह पढ़ा, कि वह अपने साथियों और क़बीले को लेकर मस्जिद में ही किसी तरह गुज़र किया करते थे, तो मेरी आँखें आनन्द के आँसुओं से छलछला आईं। जिसके दिलमें हमेशा ही खुदा की रटन लगी हो, खुदा का डर जिसके अन्दर समाया हो, और जिसके दिलमें दुनिया के लिए अगम अपार रहम भरा हो, उसे मेरे-जैसा सत्याग्रही न पूजे, यह कैसे हो सकता है?

आप सब लोग क़ुरान का पाठ करते हैं। मैं भी क़ुरान को पढ़ा करता हूँ। मैं आपकी ही आँख से क़ुरान को पढ़ता हूँ। अगर आप लोगों का एक बहुत बड़ा हिस्सा क़ुरान का पाठ तो करता है, पर उसकी तालीम को वह अमल में नहीं लाता। आप इस पर शायद यह कहें, कि हिंदू भी तो गीता का पारायण करते हैं, पर उस पर चलते कब हैं? यह ठीक है। पर इसका तो यही मतलब हुआ, कि दोनों कौमें अपने-अपने धरम पर चलें, तो फिर कभी झगड़ा न हो। आज तो हिंदू, मुसलमान दोनों ही मानों पागल हो गये हैं और एक दूसरे की ऐबजोई करने में लगे हुए हैं। मेरे यहाँ आने से और हज़रत मुहम्मद साहब के जीवन से मैंने जो सीखा है, उसकी चर्चा आप के आगे करने से आप लोगों में से अगर एक भी मुसलमान या हिंदूने एक दूसरे के दोष देखने के बदले आपस में प्रेम करना सीख लिया, तो मैं समझूँगा

कि मेरा आना व्यर्थ नहीं गया। इतना तो आप लोग समझ ही लें, कि मैं आपका सेवक हूँ, सब लोगों का सेवक हूँ। खुदा आप सबको मोहब्बत की अटूट डोरी से बाँध दें।"

गुमराह दोनों ही

अरे, इन दोउन राह न पाई।

हिंदुन की हिंदुआई देखी, तुरकन की तुरकाई॥
हिंदू अपनी करै बड़ाई, गागर छुवन न देई।
वेश्या के पायन तर सोवै, यह देखो हिंदुआई॥
मुसलमान के पीर औलिया, मुरगा मुरगी खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं, घरहि में करें सगाई॥
बाहर से इक मुरदा लाये, धोय-धाय चढ़वाई।
कुटुँब कबीला जेवन बैठा, घरभर करै बड़ाई॥
राम रहीम से नाता तोड़ा, माया कंठ लगाई।
कहै कबीर, सुनो भाई साधो, कौन राह ह्वै जाई॥

साप्ताहिक पत्र

[३०]

निर्देशिका

२५ जून

पूना : मौन-दिवस, सन्ध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ७६॥।−)॥; म्यूनिसिपैलिटी का मानपत्र; सेवा-सदन का निरीक्षण; दिनभर का कुल धन-संग्रह ६८३॥।−)। पूना से बंबई को रवानगी रेल से, ११९ मील।

२६ जून

'हरिजन' के लिए लेख इत्यादि लिखना। बम्बई से अहमदाबाद रेलसे ३०६ मील। बम्बई में धन-संग्रह ५७०॥।−)१। पालघर में धन-संग्रह ४४।≈)॥; दहाणु में धन-संग्रह १३१॥≈)॥।, बोर्डी घोलवाड़ में ११६−)।; दमण में ४१।≈)।; उदवाडा में ११॥−); बलसाड़ में ५६९−)१; बीलीमोरा में ७९।≈); नवसारी और मरोली में ६०३।−)॥; सूरत में ११७।≡); अंकलेश्वर में २८॥।−) भड़ोच में ५९।≡)।; पालिज वग़ैरा में ६८॥≈); बड़ोदा में ११४०॥≡)२; पेटलाद में ६५।≈)।; आणन्द में ११६॥)७; नड़ियाद में ४५॥≈)४; महेमदाबाद में ९॥।)१; दिनभर का कुल धन-संग्रह ३८२१।−) अहमदाबाद से साबरमती, ४ मील।

२७ जून

साबरमती : गुजरात हरिजन-सेवक-संघवालों से मुलाकात; महिला-सभा में धन-संग्रह १५३॥।−)७। सन्ध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह २७≈)।; वाडज हरिजन-वास का निरीक्षण; विविध धन-संग्रह १०≈)

२८ जून

साबरमती : हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण। माधियावास के हरिजनों की ओर से २२४।−)॥। प्राप्त; मोडासा में धन-संग्रह १४१); भंधुक में १०१); धोलका में १११); उत्तरी दस्क्रोई में २१२); दक्षिणी दस्क्रोई में २५); खेड़ा में ३१८८); सूरत में ५७२≈); पंचमहाल में ७८५।≡)।; वेलचन्द बैंकर, ५०००); ज़िला हरिजन-सेवकों और गुजरात स्वदेशी संघवालों से मुलाकात; सन्ध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ५५॥); दिनभर का कुल धन संग्रह १०५०८।≡)॥

२९ जून

साबरमती : कोचराब हरिजन-बाल मन्दिर, दलित-छात्रालय और कल्याण ग्राम का निरीक्षण; हरिजनों की सभा, मानपत्र और थैली ५००१) श्री अनसूया बहन-बालागृह का निरीक्षण तथा धन-संग्रह १२≈); हरिजन-कन्या-छात्रालय से ४॥≡) और हरिजन-बाल-छात्रालय का निरीक्षण; हरिजन-नेताओं से मुलाकात; ज्योति संघ की सभा; सार्वजनिक सभा, मानपत्र और थैली २७२३२॥≡)॥।; प्रोप्राइटरी हाईस्कूल की थैली २०≈)।; सन्ध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ३३॥।)४। दिन भर का कुल धन-संग्रह ३२९५१−)१०

बलसाड़ के हरिजन

२६ जून को गांधीजी अहमदाबाद पहुँचे। बम्बई-अहमदाबाद के बीच जहाँ-जहाँ कठियावाड़ एक्सप्रेस ठहरी, वहाँ के उत्साह और उल्लास के दृश्य देखते ही बनते थे। हर स्टेशन पर लोगोंने हरिजन-कार्य के लिए पैसा दिया, और जहाँ गाड़ी कुछ अधिक ठहरी, वहाँ सभा भी हुई। बलसाड़ स्टेशन पर गांधीजी को बतलाया गया, कि यहाँ की म्यूनिसिपैलिटी के बड़े-बड़े अफ़सरोंने 'स्वीपर्स को-आपरेटिव सोसाइटी' का नाम बदलकर 'म्यूनिसिपल एम्पलॉयीज़ सोसाइटी' रख दिया है, और इस तरह उन्होंने खुद अपने लिए बड़े-बड़े कर्ज़ लेने का ठाटबाट बाँधली है। २५ हरिजन परिवारों में से सिर्फ़ २ के लिए कमेटी के मकान हैं। रात्रि-पाठशाला भी म्यूनिसिपैलिटीने वहाँ अब तक नहीं खोली है। म्यूनिसिपैलिटी को चाहिए, कि वह अपने हरिजन मुलाज़िमों की ये सब शिकायतें तुरंत दूर करदे। नड़ियाद स्टेशन पर गांधीजी को एक बड़ी सुन्दर थैली मिली। वह स्कूल-मदरसों के १००० लड़कोंका १०००पैसों की थैली थी।

महिला-सभा

२७ जून को गांधीजीने अहमदाबाद की महिला-सभा में भाषण देते हुए कहा—"सारी दुनिया में धर्म की लाज रखनेवाली स्त्रियाँ ही हुई हैं। उन्होंने धर्म की रक्षा सुन्दर सुन्दर व्याख्यान देकर या ललित लेख व पुस्तकें लिखकर नहीं, बल्कि धर्म-मार्ग पर अनुसरण करके की है। वही व्याख्यान या ग्रन्थ उपयोगी हो सकते हैं, जिनमें उनका लेखक अपने आध्यात्मिक अनुभवों का सजीव चित्र उतार देता है। धर्म और त्याग की दौड़ में पुरुष से स्त्री सहज ही आगे निकल जाती है। इसलिए मेरी सफलता निश्चित है, यदि मैं अपनी बहिनों को यह महसूस करा सका, कि अस्पृश्यता एक महापाप है। हमारे सुधार मार्ग में बहिनों की ओर से अगर किसी प्रकार की बाधा रही, तो पुरुष बेचारे बिल्कुल ही असहाय पड़ जायँगे। वे अकेले कुछ भी नहीं कर सकते।"

हरिजन-बस्तियाँ

२८ जून को गांधीजीने शहर की कई हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण किया। सबसे पहले उन्हें प्रीतमपुर दिखाने ले गये। वहाँ सहकारी योजना के आधार पर हरिजनों के लिए १०९

मकान बनवाये गये हैं। हर एक मकान में एक बैठका, एक चौका, एक रसोईघर और एक ओसारा रखा गया है। हर एक पर १२००) का खर्च आया है। वही हरिजन इन नये मकानों में बसाये गये हैं, जिन्होंने दारू न पीने और औसरकाज पर फ़िज़ूल-ख़र्ची न करने के प्रतिज्ञापत्र पर सही की है। ये लोग बड़े मज़े से १०) माहवारी किस्त जमा कर देते हैं। इस तरह १० सालमें ये मकान इनके अपने हो जायँगे। अगर भाड़े का मकान इनका होता, तो अवश्य ही इन्हें ६) माहवार किराया भरना पड़ता। यह सुन्दर हरिजन-वास श्री प्रीतमराय अध्यापक की सच्ची लगन का फल है। यहाँ से गांधीजी असारवा की बस्ती देखने गये। यहाँ भी सहकारी योजना के अनुसार हरिजनों के लिए मकान बनवाये जारहे हैं।

गुजरात काटन मिल की 'चाली'

यह जगह बड़ी ही रद्दी हालत में है। पुरी और पूना के उन नरककुण्डों का चित्र यहाँ गांधीजी की आँखों के सामने आ गया। काफ़ी नीची सतह में यह चाली बनी हुई है। चौमासे में सहज ही ऐसी जगह बाढ़ का ग्रास बन जाती है। छप्पर तो इतने नीचे हैं, कि इन काल-कोठरियों के अन्दर कोई जाना चाहे, तो कमर की कमान बनाकर ही जा सकता है। और पानी का क्या पूछते हैं। १५० परिवारों के लिए सिर्फ़ एक नलका लगा हुआ है! मिल का सारा गँदला पानी चाल के सामने खुली जगह में बहता और सड़ता रहता है। उन्हीं गन्दे डबरों के बीच में वह अनटूटा नल लगा हुआ है। दूसरा उपाय ही नहीं। उसी गन्दगी में झख मारकर पानी भरते हैं। सिर्फ़ ज़मीन का ही जिस पर झोंपड़े बने हुए हैं, २) या ३) लगान हर एक को देना पड़ता है, और अगर ज़मीन-मालिकने अपने पैसे से सड़ी-सी झोंपड़िया खड़ी कर दी, तो उसका २) भाड़ा देना पड़ता है! म्यूनिसिपैलिटी कभी की क़रार दे चुकी है, कि यह चाली 'मनुष्य' नामधारी जीवों के रहने-योग्य नहीं है, पर वह नरकागार स्थित तो अब भी यथापूर्व है।

म्यूनिसिपैलिटी की मेहतर-बस्ती

इसके बाद गांधीजी गोमतीपुर गये, जहाँ म्यूनिसिपैलिटी के मेहतर लोग रहते हैं। यहाँ प्रत्येक मकान के बनवाने पर ९००) ख़र्च पड़े हैं, और २) माहवार भाड़ा उनसे लिया जाता है। पर दुर्भाग्य से म्यूनिसिपैलिटी का यह काम बड़ी ही ढिलाई से हो रहा है। हर साल दस मकान बनते हैं। और ५०० परिवारों के लिए मकान बनवाने हैं। अगर यही कच्छप-गति जारी रही, तो इस हिसाब से तो यह पूरी योजना ५० बरस ले लेगी।

तत्पश्चात् राजपुर, दौलतख़ाना, खासीपुर, नादियावास और रायखड़ की हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण गांधीजीने किया। दौलतख़ाना का यह हालत है, कि ४०० कुटुम्बों को ६ टोंटियों से पानी भरना पड़ता है—वह भी सबेरे सिर्फ़ २ घण्टे खुले रहते हैं। दो गुसलख़ाने हैं, जो खुली हुई जगह पर हैं। परदेदार गुसलख़ाना तो एक भी नहीं है। यही रोना रोशनी का भी है। नादियावास की बस्ती तो बीचो-बीच नरककुंड में स्थित है। म्यूनिसिपैलिटी की टंपुलिस ठीक बीच में विराजमान है, जिसमें ७००० आदमी टट्टी फिरते हैं।

कल्याण ग्राम

२९ जून को गांधीजी कल्याण ग्राम देखने गये। यह एक आलीशान बस्ती है। इसे महाजन सोसाइटीने बनवाया है। अहमदाबाद में ही क्यों, हमने हिंदुस्तान भर में कहीं ऐसी सुंदर बस्ती नहीं देखी।

मज़दूरों में

उसी दिन मिल के मज़दूरोंने, जिनमें ज़्यादातर हरिजन थे, गांधीजी को मज़दूर-सभा में ५०००) की थैली भेंट की। थैली लेते हुए गांधीजीने अपने भाषण में मज़दूर भाइयों से कहा, "आप लोगोंने जो यह ५०००) का दान दिया है, उसे यह न समझ बैठना, कि चलो, अस्पृश्यता के पाप से छुट्टी पाई, और अब ५०००) में अस्पृश्यता मानते रहने का हमें 'लाइसेंस' मिल गया। आप लोगों को अपनी यह आपस की अस्पृश्यता दूर कर देनी चाहिए। किसी को अपने से नीचा न समझो। अपने आपको ही दुनिया में सबसे नीचा समझो, नहीं तो झूठी ऊँचाई का यह अभिमान आपको ले डूबेगा। यह ढेढ़ है, वह चमार है, यह भंगी है इन सब झूठे ऊँच-नीच के भेद-भावों को आप अपने दिलसे निकाल दो। 'टेक्सटाइल लेबर यूनियन' आपके हित का बड़ा सुंदर काम कर रही है। पर मैं पूछता हूँ, कि क्या आप लोग उससे काफ़ी लाभ उठा रहे हैं? कल्याणग्राम एक बड़ी सुंदर जगह है। पर अगर आप लोग खुद ही गंदे बने रहे और अपनी बस्ती को साफ़ न रखा, तो यही 'कल्याणग्राम' आपके लिए 'कंटकग्राम' में परिणत हो जायगा। दारूख़ोरी और जुआ की भी आपको लत लगी हुई है। यह बुरे व्यसन भी छोड़ने होंगे। इसी तरह मुर्दार मांस भी छोड़दो। और अपने बच्चों को पढ़ाओ-लिखाओ। अगर इस प्रकार आप लोग शुद्ध संस्कृति अपना लेंगे, सच्चे 'हरिजन' बन जायँगे, तो फिर सब कोई आपको श्रेणी में आना पसंद करेंगे, सभी आपको गले से लगायँगे। सवर्ण हिंदू तो अपने पाप का प्रायश्चित्त करते ही हैं, साथ ही आप हरिजनों को भी अपनी व्यसन-शुद्धि करनी है।"

श्रीअनसूया बहिन का 'परिवार'

मिर्ज़ापुर बंगला के अस्तबल और नौकरों की कोठरियों को श्री अनसूया बहिनने सादे किंतु सुंदर मकानों में परिणत कर दिया है। यहाँ मज़दूरों और अधिकतर हरिजनों के लिए वे अच्छा सुधार-कार्य कर रही हैं। यहाँ उन्होंने कई संस्थाएँ खोल रखी हैं। एक संस्था 'बालगृह' नाम की है। यहाँ ऐसे १२७ बच्चों का लालन-पालन होता है, जिनके माँ-बाप मिलों में काम करते हैं। बालगृह में उन बच्चों को हाथ-मुंह धोना और नहाना सिखलाया जाता है। नहाने के बाद उन्हें स्कूल की वर्दी पहनाई जाती है और वह नित्य साबुन से साफ़ की जाती है। रोटला तो बच्चे अपने घर से लाते हैं, पर घी और तरकारी उन्हें स्कूल से दीजाती है। हरिजन-बालक-छात्रालय में ३० लड़के और हरिजन-बालिका-छात्रालय में २४ लड़कियाँ रहती हैं। यूनियन की संरक्षता में १२ दिवस-पाठशालाएँ और १३ रात्रि-पाठशालाएँ चल रही हैं, जिनमें १६०० से ऊपर विद्यार्थी पढ़ते हैं।

गांधीजी जब बालगृह देखने गये, तो वहाँ नन्हीं-नन्हीं हरिजन लड़कियोंने एक संस्कृत श्लोक का बहुत ही शुद्ध पाठ

किया। और फिर बड़ी मनोहर धुन में ताल-स्वर के साथ भजन गाये। ऐसा सुंदर गायन मैंने तो बहुत कम सुना है। वहाँ एक सात साल का छोटा-सा लड़का है, जो तबला बजाता है और दूसरे बच्चों को गाना भी सिखाता है। संगीत-कला में यह बालक बड़ा होनहार जान पड़ता है।

कैसा अच्छा हो, यदि हरएक मिल-मालिक की लड़की अपना ऐसा ही दरिद्रनारायणी परिवार बनाले और उसी की सार-संभाल में लगी रहे।

ज्योतिसंघ

स्त्रियों की इस ज्योति-संघ संस्था को अभी हाल में ही श्री मृदुला अंबालाल साराभाईने स्थापित किया है। उसदिन गांधीजी उक्त संघ की सदस्याओं से मिले। इसे मुख्यतया महिलाएँ ही चला रही हैं। सार्वजनिक सेवा में स्त्रियाँ रस लें और अपनी आजीविका किसी उद्योग धंधे को सीखकर चला सकें, इसी उद्देश को सामने रखकर ज्योति-संघ की स्थापना हुई है। क़वायद यहाँ अनिवार्य है। स्वयंसेवा की शिक्षा देने का भी एक वर्ग चल रहा है। दैनिक औसत हाज़िरी १२५ की रहती है। संघ की सदस्याएँ या तो खादी पहनती हैं, या स्वदेशी वस्त्र।

छोटी लड़कियाँ क्या करें, इस प्रश्न के जवाब में गांधीजीने सलाह दी, कि गुजरात काटन मिल के मज़दूरों की चालों में जाकर उन्हें यह देखना चाहिए, कि ग़रीब मज़दूर वहाँ किस तरह का जीवन बिता रहे हैं। उन्हें हरिजनों की दशा से परिचित होना चाहिए। जबतक हरिजनों को पेटभर खाना और अच्छे कपड़े प्राप्त न हों तबतक के लिए लड़कियाँ मिठाइयों और टीमटाम की वस्तुओं का त्याग करदें। इन छोटी छोटी बालिकाओं को उस काली अंधेरी दुनियाँ में मशालें बनकर जाना होगा।

हाँ, एक बात और। ज्योतिसंघ की बहिनों को केवल खादी ही पहननी चाहिए। सच्चा स्वदेशी वस्त्र केवल खादी ही है। लाखों मनुष्यों के हाथ की बनी चीज़ों का ही व्यवहार करना चाहिए, न कि आधे दर्जन करोड़पतियों के कारख़ानों में बनी चीज़ों का। उन्हें चरखा भी नित्य चलाना चाहिए। नित्य अगर हमारी लाखों लड़कियाँ सिर्फ़ आध घंटा ही सूत कातती करें तो वे राष्ट्र की संपत्ति को काफ़ी बढ़ा सकती हैं। इसमें दूसरों की बाट नहीं जोहनी चाहिए, कि जब वे कातने लगेंगी तब हम कातेंगी—नहीं, वे स्वयं ही इसे आरंभ करदें, उनकी अपनी श्रद्धा हज़ारों-लाखों बहिनों को उनके मन में मिला लेगी।

गांधीजीने कहा—"यह देखकर मुझे बड़ी ख़ुशी हुई, कि इस संघ को मुख्यतया महिलाएँ ही चला रही हैं। मैं आशा करता हूँ कि आप लोगों का यह इरादा न होगा कि पश्चिमी देशों की तरह भारत की स्त्रियाँ भी पुरुषों से बिल्कुल ही स्वतंत्र होकर रहें। यह चीज़ भारतीय संस्कृति की नहीं है। यदि यूरोप की यह उच्छृंखलता हमारे भारत में आ गई, तो निश्चय ही इससे बेहिसाब हानि पहुँचेगी। समाज में पुरुष और स्त्री दोनों ही एक दूसरे के अर्द्धांग हैं। स्त्री शारीरिक बल में पुरुष की बराबरी नहीं कर सकती, पर आध्यात्मिक बल उसमें पुरुष से अधिक है। पुरुष भले ही अपने पाशविक बल पर गर्व किया करे, पर स्त्री अपनी शारीरिक निर्बलता की चिंता में न पड़े। सच्चा स्वास्थ्य तो आत्मा का स्वास्थ्य है। सच्चा बल तो आत्मा का बल है। इतनी ही बात है न, कि स्त्रियाँ शरीर से कमज़ोर होंगी तो वे आधीरात को बाहर कहीं अकेली न निकल सकेंगी? अगर सीता के समान उनके अंदर सतीत्व की ज्वाला जल रही होगी, तो वे कालरात्रि में भी निर्भय होकर चाहे जहाँ अकेली जा सकती हैं। अगर आप लोगों को मेरी यह बात जँच गई है, तो शरीर को शक्तिशाली बनाने की अपेक्षा आप आत्मा को अधिक बलवान बनावें। कटार या तमंचा चलाने का अभ्यास करने की अपेक्षा आप साहस और आत्मबल बढ़ाने का प्रयत्न करें। इस पृथिवी पर किसी में भी किसी को दबाने की ताक़त नहीं है। मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु। मेरे इस कथन का यह मतलब नहीं है, कि आप व्यायाम न करें। व्यायाम अवश्य करें, लेकिन मेरा तात्पर्य तो यह है, कि बिना चरित्रबल के यह व्यायाम-उपार्जित बल व्यर्थ है।"

सार्वजनिक सभा

साँझ को सार्वजनिक सभा हुई। गुजरात के विविध ज़िलों के हरिजन-सेवक संघोंने गांधीजी को अपनी-अपनी थैली अर्पित की। प्रोप्राइटरी हाईस्कूल के विद्यार्थियोंने वहीं अपनी १२८९ पैसे की थैली भी गांधीजी को दी और यह शिकायत की, कि एक लड़केने अपना पैसा थैली में नहीं डाला, उसने थैली में पैसा न डालने का ही पक्का निश्चय कर लिया था। गांधीजीने उस लड़के की हिम्मत की तारीफ़ की और कहा, कि "हरिजन-कार्य के पक्ष में जिसका मत न हो, उसकी एक पाई की भी मुझे दरकार नहीं। अस्पृश्यता-निवारण का अर्थ तो सवर्ण हिंदुओं का हृदय-परिवर्तन है। अगर यह हृदय-परिवर्तन मेरी प्रार्थना से ही होगया, तो फिर मुझे पैसा इकट्ठा करने की कोई ज़रूरत नहीं; और ज़रूरत हो हुई, तो वह मेरे पास अनमाँगे ही आ जायगा। ६५ बरस की इस बुढ़ौती में मैं जो यह प्रयत्न कर रहा हूँ उसका यही कारण है, कि मेरी प्रार्थना में जितना चाहिए उतना बल नहीं है, या इसे यों भी कह सकते हैं, कि मैं एक बहुत ही अपूर्ण मनुष्य हूँ। मैं तो यह जानकर बड़ा प्रसन्न होता हूँ, कि जब मेरा कोई मित्र, झूठे संकोच में न पड़कर या मेरी गत सेवाओं का ख़याल न करके, पैसा देने से इनकार कर देता है। उसकी उस इनकारी से मुझे यह मालूम होजाता है, कि अभी कितनों का हृदय-परिवर्तन होने को है। लेकिन जो मुझे पैसा पाई देता है, उससे तो मुझे अवश्य ही हरिजन-सेवा की आशा रखनी चाहिए। अगर किसी-ने ऐसा न किया, तो मुझे मर्मान्तक निराशा होगी।"

गुजरात काटन मिल की 'चालों' के प्रसंग से गांधीजीने कहा, "ये तो पृथिवी के प्रत्यक्ष नरक हैं। अहमदाबाद जैसे सपन्न नगर में तो ऐसे 'प्लेगस्थानों' का एक दिन भी अस्तित्व नहीं रहना चाहिए। मनुष्य वहाँ मनुष्य की तरह तो नहीं, पर पशु की तरह ही रह सकता है।

आप लोग चाहें, तो एक हफ़्ते के अन्दर अपने नगर के इस कलंक को मिटा सकते हैं। इसमें तो अहमदाबाद के सनातनी, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि सभी नागरिक सुधारकों का हाथ बटा सकते हैं। जोहान्सबर्ग के उस 'प्लेगपाट' से भी अहमदाबाद के ये नरकागार अधिक भयावने हैं, जो दो दिन के अन्दर ही

जलाकर खाक कर दिया गया था और वहाँ के प्रवासी भारतीय १२ मील के फासले पर तंबुओं में फिलहाल बसा दिये गये थे। यहाँ पैसे की इतनी ज़रूरत नहीं है, जितनी कि सफ़ाई की। आप खुशी से महलों में रहें, पर आपके कल-कारखानों में जो मज़दूर या हरिजन काम करते हैं उनके रहने के लिए अच्छे मकानों का प्रबन्ध कर देना आपका फ़र्ज़ है। मैं आशा करता हूँ, कि जबतक आप लोग इस सवाल को अच्छी तरह हल न करलें, तबतक न खुद ही आराम से बैठें, न दूसरों को बैठने दें।"

बालजी गोविंदजी देसाई

गोरखपुर ज़िले के रैदास

१९२६ की बात है। पंजाब-केसरी श्रद्धेय लालाजी सीवान से गोरखपुर आरहे थे। मैं भी उनके साथ गाड़ी में था। रेलने बिहार का सीमोल्लंघन करके गोरखपुर जिले में प्रवेश किया, तो मैंने श्री लालाजी से कहा। "लालाजी! अब हम लोग गोरखपुर जिले में से गुज़र रहे हैं।" यह सुनते ही लालाजी ने खिड़की से बाहर झाँका। सहसा उनकी नज़र ऊख के खेत की मेंड़ पर खड़े एक दुबले-पतले बालक पर पड़ी। उसके तन पर केवल एक फटी लंगोटी थी। लालाजी बोले -'कितना ग़रीब है यह?' मैंने कहा "लालाजी, यह तो चमार का लड़का है, खेत की रखवाली कर रहा है, इसके बदले में बेचारा चोखने के लिए थोड़ी-सी ऊख पा जायगा।"

'क्या थोड़ी-सी ऊख!" यह कहकर लालाजी का गला भर आया। आगे बोल न सके। थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोले 'भाई! मैं तो चाहता हूं, कि भारत में 'ग़रीबों का कानून' बनना चाहिए, जिसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य को खाने-पहनने भर को तो ज़रूर मिल जाना चाहिए। क्या तुम कुछ मेरी मदद करोगे? मुझे कुछ यहाँ की आर्थिक स्थिति के नक़शे बनाकर भेजदो।" मैंने कुछ नक़शे उनके आदेशानुसार बनाकर भेज दिये थे, पर हमारे दुर्भाग्य से हमारे लालाजी को उसके सबन्ध में कुछ करने के पहले ही हमारे बीच में से चला जाना पड़ा। गोरखपुर ज़िले के बाढ़-पीड़ित प्रदेश में सहायता-कार्य से मैं घूम रहा था। गोरखपुर ज़िले की हाटा तहसील के थाना रुद्रपुर के देहात में गया था। एक बुढ़िया चमाइन बहुत बीमार है यह सुनकर मैं उसके टूटे-फूटे झोपड़े में गया। वह दुःख से कराह रही थी। सिर से कपड़ा का कोई भाग वह माँग रही थी। मैं उसके ग्यारह-बारह साल के बच्चे को साथ लेकर रुद्रपुर की ओर चल पड़ा। रास्ते में उस बालक से पूछा—"भैय्या! आज तुमने क्या खाया है?" इस पर वह बालक मेरे मुँह की ओर ताकने लगा। फिर मैंने वही प्रश्न किया। तब उसने उत्तर दिया "गोबरी की रोटी" 'गोबरी' क्या चीज़ है, यह बात पहले मेरी समझ में नहीं आई, इसलिए मैंने उससे गोबरी का मतलब समझाने को कहा। इसपर वह हँस पड़ा। फिर कुछ लज्जित-सा होकर कहने लगा—

"गोबरी तो गोबर से निकलेली। गौआ औन खेत में, खलिहानी में अनाज खा लीसन, वो के वो हजम नाहीं कर पावेली! गोबर में वो निकल आवेली। वोके हम सबनीका बटोर लेईला वोके धोके सुखा देईला और वही को कूट-पीस के माई रोटी बनावेली।"

दूसरा प्रश्न मेरा यह था—'और यह अंगोछी तुम्हें किसने दी?' यह अंगोछी क्या थी, एक बिलकुल फटी हुई लंगोटी थी, उसपर उसने कहा "मालिक! हम सालभर उन का ढोर चरवली ओकरे नौकरी में हमको वो यह अँगोछी देइल हैं। एके चार महिना भइल।"

मेरे जीवन में 'गोबरी की रोटी' और साल भर की कमाई की वह फटी अंगोछी, यह दो बातें मुझे सदा याद रहेंगी। गोरखपुर के चमारों की आर्थिक स्थिति का अनुमान इससे सहज ही लगाया जा सकता है।

गोरखपुर ज़िले में चमारों की आबादी १३ प्रतिशत है। गोरखपुर ज़िला हिंद प्रान्त में सबसे घनी आबादी का जिला है। एक वर्गमील ज़मीन में ७०० से भी ऊपर आबादी है। गोरखपुर ज़िले में ज़मीन के जितने छोटे-छोटे टुकड़े हुए हैं, उतने संसार के किसी भी स्थान पर नहीं हुए हैं, ऐसा प्रो० राधाकुमुद मुकर्जी आदि जानकारों का कहना है, और हम लोग भी इसे दूसरे ढंग से जानते हैं। मैंने ऐसे बड़े-बड़े ज़मींदारों को गोरखपुर ज़िले में देखा है, जिनको मालगुज़ारी कुछ कौड़ियाँ की ही देनी पड़ती हैं। जब ज़मींदारों की यह स्थिति है, तो खेतों में काम करनेवाले हरवाहे, चरवाहे, खेतो के मज़दूरे इनकी क्या हालत होगी?

चमारों के रोज़गार के बारे में सन् १९३१ की सेंसस रिपोर्ट में लिखा है कि, कमानेवाले १००० चमार पीछे ५२९ स्त्रियाँ कमानेवाली हैं। इसके साथ जो दूसरे आँकड़े दिये हैं वे भी मनन-योग्य हैं। १००० पीछे :—

काम-धंधा	पुरुष	स्त्रियां
चमड़े का काम करनेवाले	५१	२२३
किसानी	३५५	२५१
खेती की मज़दूरी	४६९	८३०
चरवाह	२४	२२७
दुलाइ आदि	७४	९६५

इन कामों में बुनाई नहीं आई है, जो महत्व की बात है। डा० राय के लेखानुसार गोरखपुर ज़िले में १०० वर्ष पूर्व दो-ढाई लाख रुपये ख्वाली कत्तीनें कमाती थीं, जिसमें अधिकांश चमारिनें रहती थीं। और कपड़ा पुरुष बुनते थे, जिन्हें 'कोरी' कहते हैं। पर आज ये दोनों पेशे नहीं रहे। पहले ज़माने में जब गोरखपुर ज़िले में चीनी की मिलें नहीं थीं, तब अधिकांश में ऊख पेरकर उसका गुड़ तैयार किया जाता था। गुड़ तैयार करने में चमार भाइयों का रहना आवश्यक था। इसलिए गोरखपुर ज़िले में कोई ऐसा गाँव नहीं है, जहाँ चमारटोली न हो। गाँवों में दूसरे जात के लोग रहें चाहे न रहें, पर चमारों का रहना ज़रूरी था, क्योंकि ये भी अन्न और वस्त्र के दाता थे, अब केवल अन्नदाता रह गये हैं। हज़ारों चमार गुड़ पकाने, चासनी देखने, ऊख कोट-कोट करके ऊख की गँड़ेरे बनाने में लग जाते थे। जाड़े के दिनों में, जब कि इन ग़रीबों के पास अन्न नहीं रहता था, तब महियां, रस और मटर की कोंसें (छीमी) खाकर यह अपना गुज़ारा करते थे। जाड़े को वह प्यारी चीज़ 'आगी' इन वस्त्रहीन ग़रीब भाई-बहनों को मुफ़्त और आसानी से मिल जाती थी, पर आज मिलों के कारण यह सब उनसे छीन लिया गया है।

'अकाल में तेरहवाँ' महीना इस कहावत के अनुसार गोरखपुर ज़िले में आज १२ बरस से आम की फ़सल नहीं के ही बराबर है। यों तो गोरखपुर ज़िले का कोई ऐसा गाँव नहीं, जहाँ दो-चार आम के बाग़ न हों, पर ख़ाली बाग़ से ही क्या होता है। जब आम फलते थे तो इन ग़रीब भाइयों को बग़ोचा अगोरने, आम बटोरने और खाये हुए आमों की गुठलियाँ एकत्र करके उनको सुखाकर रखने का दो-तीन मास के लिए काम मिल जाता था। इन सूखी हुई गुठलियों को फोड़-फोड़ कर उनमें से निकली हुई गुद्दी को पीसकर उसकी रोटियों से ये लोग एक-दो मास जाड़े में काट लेते थे। पर आज तो उन्हें यह भी नसीब नहीं।

राघवदास

अजमेर का मानपत्र

[राजपूताना-हरिजन-सेवक-संघ की ओर से अजमेर में ५ जुलाई को गांधीजी को जो मानपत्र दिया गया था, उसके उन महत्वपूर्ण अंशों को हम नीचे देते हैं, जिनमें राजपूताने के हरिजनों की धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति का संघने प्रामाणिक ख़ाका खींचा है।]

"राजपूताना की जनसंख्या ११२२५७१२ है। हिन्दू १०१५०१५० और हरिजन १५६५४०९ हैं। इस हिसाब से हरिजन कुल आबादी के १४ फ़ीसदी हैं और हिन्दू आबादी के १५.५ प्रतिशत हैं। यदि इनमें से २२९०९२ भील, जिनकी सामाजिक स्थिति हरिजनों से कुछ अच्छी है परन्तु आर्थिक एवं अन्य हालत हरिजनों से भी ख़राब है, शामिल कर लिये जायँ तो हरिजनों का परिमाण और भी बढ़ जाता है। इनमें मुख्य जातियाँ साधारणतः खेती, मजदूरी, चुनाई, बुनाई, सफ़ाई, बाँस एवं चमड़े का काम करती हैं। इस प्रान्त में हरिजनों को आमतौर पर मन्दिर-प्रवेश का अधिकार नहीं है। परन्तु यह बात साश्चर्य प्रसन्नता की है, कि त्यौहार एवं पर्व के अवसरों पर अनेक हरिजन-मन्दिरों में सवर्ण भक्त भी भेद-भाव छोड़कर जाते, मिलते और "अछूत" पुजारी के हाथ का प्रसाद निःसंकोच भाव से खाते हैं।

विद्यालयों में एक-दो राज्यों के सिवाय हरिजनों का प्रवेश नहीं है। जहाँ है, वहाँ भी कई स्थानों पर हरिजन-छात्रों को अलग बिठाया जाता है। मेहतरों का तो प्रायः सर्वथा बहिष्कार है। हरिजनों में पुरुष ६००० अर्थात् लगभग .४ फ़ीसदी और स्त्रियाँ २९२ अर्थात् .००२ फ़ीसदी साक्षर हैं।

हरिजनों के मुख्य कष्ट बेगार, पानी और औषधि की संतोषजनक व्यवस्था का अभाव तथा सवारियों, आभूषणों, व्यञ्जन और वस्त्र इत्यादि जीवन के सुविधाओं-सम्बन्धी सामाजिक प्रतिबन्ध हैं।

बेगार के विषय में अधिक कहने की ज़रूरत नहीं। एक युग से इस महत्वपूर्ण राजनीतिक और सामाजिक प्रश्नने सभ्य संसार का ध्यान आकर्षित कर रक्खा है। फलतः बेगार की कठोरता कुछ कम हुई है और कुछ मज़दूरी भी बढ़ाई गई है। परन्तु समस्या अभी हल नहीं हुई है। हज़ारों हरिजनों के सुख-स्वातंत्र्य के मार्ग में अब भी यह बड़ी बाधक है। यह कुप्रथा सारे प्रान्त में विद्यमान है।

पानी का प्रश्न इस प्रांत में बड़ा विकट है। हाँ, दक्षिणी और पूर्वी राजपूताने में इतना विकट नहीं है। वहाँ नदियाँ और सरोवर भी हैं। परन्तु पश्चिमी राजपूताना तो मरुभूमि है। कुएँ ही वहाँ के मुख्य जलाशय हैं। वहाँ हरिजनों की हालत बड़ी ख़राब है। आमतौर पर वे सवर्णों के कुओं पर नहीं चढ़ सकते। मेहतरों की स्थिति अत्यन्त दयाजनक है। उन्हें या तो कोई सवर्ण ऊपर से पानी डाल देता है या पीने और दूसरे कामों के लिए खेल के पानी से काम चलाना पड़ता है। खेल प्रत्येक बड़े कुए से लगे हुए लम्बे हौज़ को कहते हैं। इसमें पशु पानी पीते हैं, रजस्वला स्त्रियाँ कपड़े धोती हैं और ग्रामीण लोग आबदस्त लेते हैं। यह अमानुषिकता है भी ऐसे स्थानों में, जहाँ लक्ष्मी का बाहुल्य है, धर्म की दुन्दुभी बजती है और सुधार के दावेदार भी कम नहीं हैं। इसे भाग्य-बल कहें या अपने सुधारकों और सनातनियों की सचाई पर कलंक! यदि इनमें से एक भी चाहे तो भगवान्‌ने उन्हें ये कष्ट दूर कर देने के साधन दिये हैं।

औषधि के सम्बन्ध में भी हरिजनों के कष्ट विशेष गम्भीर हैं। कोसोंतक कोई दवाख़ाना ही नहीं। सैकड़ों मनुष्य दवा-दारू के अभाव से हर साल कराल काल के शिकार हो जाते हैं।

कई स्थानों में हरिजनों को सोने-चाँदी के ज़ेवर नहीं पहनने दिये जाते, मिठाइयाँ नहीं बनाने दी जातीं और कई ऐसी बातें नहीं करने दी जातीं, जिनसे सवर्णों के साथ समानता प्रगट होती हो। उच्च जातिवाले अपने सामने हरिजनों को न सवारी पर बैठने देंगे और न खाट पर, और न नै लगाकर हुक्का पीने देंगे।

राजपूताने के हरिजनों की आर्थिक स्थिति भी सन्तोषजनक नहीं है। हरिजन किसानों और मेहतरों पर कर्ज़ का भार लदा रहता है। उनकी आय बहुत थोड़ी है। शराब और अकाल उन्हें साहूकार के चंगुल में फँसा देते हैं। इसमें से वे पीढ़ियों तक नहीं निकल पाते। चमारों और रैगरों की हालत ज़रा अच्छी है। परन्तु ये मदिरापान में और विवाह और मृत्यु के अवसरों पर अपव्यय करके गाँठ का पैसा भी खो देते हैं और कर्ज़दार भी हो जाते हैं।

हरिजनों में शराब और मुर्दा-मांस खाने का रिवाज तो प्रायः सभी जगह है। हाँ, कई स्थानों पर सुधार की वृत्ति भी पैदा हो गई है और वहाँ बहुत-से हरिजनोंने ये दोनों बुराइयाँ छोड़ भी दी हैं।

यह है संक्षेप में इस प्रांत के हरिजनों की गम्भीर स्थिति। इसके दो मुख्य कारण हैं। प्रथम तो राजपूताना सामाजिक और राजनीतिक कट्टरता का गढ़ है। यहाँ वर्तमान स्थिति में परिवर्तन करनेवाले सभी कार्य संदेह की दृष्टि से देखे जाते हैं। दूसरी ओर चिर दारिद्र्य, अज्ञान और रोग से पीड़ित होने के कारण जनसाधारण में से आत्म-प्रेरणा की भावना नष्टप्राय हो गई है। परन्तु संघने देशी राज्यों में काम करने की जो मर्यादाएँ अपने ऊपर लगा रखी हैं उनसे हमें लाभ बहुत हुआ और कुछ छोटे राज्यों में इस कार्य के प्रति सद्भावना प्रगट हुई। देशी राज्यों में से अधिकांशने तटस्थ वृत्ति रखी। कुछ राज्यों में कार्य में बाधा भी पड़ी। परन्तु आशा है, ये घटनाएँ व्यक्तियों के स्वभाव का ही परिणाम थीं, राज्यों की नीति की परिचायक

नहीं। सार यह है कि रियासतें हलचल पसन्द नहीं करतीं, रचनात्मक कार्य को सहन कर लेती हैं।

कुछ स्थानों को छोड़कर, दूसरी जगहों पर सनातनी भाइयोंने भी विशेष विरोध नहीं किया।"

हरिजन-प्रवास में प्राप्त

[१४ मई से २० मई, १९३४ तक]

बालियांता (कटक ज़िला)—निवासस्थान पर विविध धन-संग्रह — २)
जगन्नाथपुर के श्री बाबु मदनमोहन राय — १०)
जगन्नाथपुर के एक गुजराती सज्जन — १०)
बरमा सेना के कुछ सज्जनोंने दिया — ९॥।=)
फुटकर धन-संग्रह तथा नीलाम से — १५॥।)४
तेलंगपेठ (कटक ज़िला)—विविध धन-संग्रह — २५॥=)१०
काजी पटना (कटक ज़िला)—उत्तमपुर, सुभद्रापुर तथा गोपालपुर की थैली — ७।=)॥
सभामें फुटकर धन-संग्रह — ३२॥=)४
निवास-स्थान पर फुटकर धन-संग्रह — १०)
नीलाम से — २३)
कटक—जनता की थैली — ५५१)
सभा में फुटकर धन-संग्रह — ८१।=)॥
महिलाओं की थैली — ८९॥)
उड़ीसा पुअर कॉटेज इण्डस्ट्रियल इन्स्टीट्यूट — १०१)
महिलाओं की सभा में फुटकर धन-संग्रह — ६६)६
काजी पटना की महिलाओं की थैली — ७८॥)
श्री खिलिटिया वासी साहु — १२५)
पटना जंकशन से मुकामा जंकशन तक फुटकर धन-संग्रह — २२॥-)।
मधुपुर (संथाल परगना)—राष्ट्रभाषा-परिषद् की ओर से — १९।=)
मधुपुर स्टेशन पर विविध धन-संग्रह — २९॥=)७३

बंगाल

बीरभूम ज़िला—आसंसोल स्टेशन पर — ८१॥=)
आसंसोल स्टेशन पर नीलाम — ६।=)
बहुरा स्टेशन पर — ८।=)॥

बिहार

मानभूम ज़िला—दामोदर से जयचंद पहाड़ स्टेशनों तक फुटकर धन-संग्रह — ११॥=)७३
आद्रा ज़िला—आद्रा स्टेशन पर फुटकर संग्रह — ७४)१३
आद्रा स्टेशन पर थैली — ८१)
आद्रा स्टेशन पर नीलाम से — ७)
इन्द्रविल स्टेशन पर — ३।=)

बंगाल

बाँकुड़ा ज़िला—छंदी पहाड़ी स्टेशन पर — १८=)।
बहुरा स्टेशन पर — ९=)।
बाँकुड़ा स्टेशन पर थैली — ७४)
बाँकुड़ा स्टेशन पर फुटकर धन-संग्रह — ६४।=)।
" " विविध धन-संग्रह — ८।=)
ओंदाग्राम से मड़ोया स्टेशनतक — १७॥=)१३
मिदनापुर ज़िला—गड़बड़ा से मिदनापुर स्टेशनतक — १५॥।=)।
खड़गपुर—खड़गपुर स्टेशन पर फुटकर धन-संग्रह — ७४=)७३

सप्ताह में कुल १८३४॥)५
अबतक कुल ४५८३११॥।-)॥।

[२१ मई से २७ मई, १९३४ तक]

चंपापुर हट—आश्रम के मार्गमें फुटकर तथा नीलाम से — १४)
चंपापुर हट (कटक ज़िला)—सभामें फुटकर धन-संग्रह — २४)
निवासस्थान पर " " — ८)
भेका—जनता की थैली — २५)
सभा में फुटकर धन-संग्रह — ६-)५३
निवासस्थान पर फुटकर धन-संग्रह — ६।=)॥
माला—गाँववालों की थैली — १०)
लखनपुर—गाँववालों की थैली — २६॥।)
सभा में फुटकर धन-संग्रह — ३-)४
निवासस्थान पर " " — ७।=)।
सत्यभामापुर—गाँववालों की थैली — ६१)
सभामें फुटकर धन-संग्रह — ५।=)।
श्री इच्छादेवी — १)
निवासस्थान पर फुटकर धन-संग्रह — १॥)
लक्ष्मीनारायणपुर—गाँववालों की थैली — ५=)॥।
बहुकुंड— " " — ११८)
सभामें फुटकर धन-संग्रह — १५।)८३
नीलाम से — ४)
दूसरी सभामें फुटकर धन-संग्रह — ६॥=)७३
निवासस्थान पर " " — ६॥)७३
सिसुवा—सभामें फुटकर धन-संग्रह — ५=)४३
पातपुर—गाँववालों की थैली — १०१)
सभामें फुटकर धन-संग्रह — २३॥-)७३
सिसुवा—बादको फुटकर रकम प्राप्त हुई — ८॥=)१०
निश्चितकोइली—गाँववालों की थैली — ७)
फुटकर धन-संग्रह — १४॥)१
विविध धन-संग्रह — १।)७
ककाटिया—फुटकर धन-संग्रह — ३॥)
सभामें फुटकर धन-संग्रह — २१॥।=)।
सलार—सभामें फुटकर धन-संग्रह — ११।-)।
भागवतपुर—गाँववालों की थैली — २०)
सभामें फुटकर धन-संग्रह — ११)॥।
केन्द्रपाड़ा—सभामें फुटकर धन-संग्रह — २०।=)४

सप्ताह में कुल ६०४॥)९३
अबतक कुल ४५८९१६।=)६३

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupte.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २० जुलाई, १९३४. [संख्या २२.

विषय-सूची

सतयुग की झलक

हिन्दू लोग आम तौर पर यह मानते हैं, कि यह कलियुग है, अभी घोर कलिकाल आनेवाला है, और फिर सतयुग आने में लाखों वर्षों की देर है। किन्तु न जाने क्यों, जबजब गांधीजी के संपर्क में आते हैं, ऐसा प्रतीत होने लगता है, मानों सतयुग की शुरूआत हो गई हो। हाल ही गांधीजी अजमेर पधारे थे। काशी के स्वामी लालनाथजी की पार्टी पहले से ही आ पहुँची थी। ऐसी भी अफवाहें थीं कि पूना से भी कुछ लोग गांधीजी पर हमला करने की फिराक में आये हुए हैं। धड़कते हुए दिल से, प्रार्थनापूर्ण हृदय से, अजमेरने उनका स्वागत किया। कार्यकर्ता ईश्वर से मना रहे थे कि बापूजी सकुशल यहाँ से विदा हो जायँ। मैंने भी डरकर बापा और बापूजी से यह हाल कह दिया था। यह भी खबर आई थी कि स्वामी लालनाथने अजमेर के दो बदमाशों को इसलिए तैनात किया है कि वे गांधीजी पर पत्थर फेंकें। सुनते ही बापूजीने कहा—"स्वामी लालनाथ के द्वारा ऐसा काम नहीं हो सकता। वे मुझ से कई बार मिले हैं—मैं इस खबर पर विश्वास नहीं कर सकता।" बापू की इस सहज विश्वासशीलता पर मैं खामोश रहा।

× × × ×

खबर मिलती है कि स्वामी लालनाथ गांधीजी से मिलने आयँगे। स्वामी लालनाथ को एक बार देख लेने की अभिलाषा तो थी ही। इत्तफाक से स्वामी लालनाथ को गांधीजी के कमरे में ले जाने का काम मेरे हिस्से में आ गया। स्वामीजी का चेहरा मुझे उनके उग्र विरोध का सूचक ही मालूम हुआ। किन्तु जब वे गांधीजी से बातें करने लगे, मेरा खयाल उनके बारे में बदलने लगा। गांधीजी के प्रति उनका व्यवहार बहुत आदरपूर्ण था। सहसा किसी को यह विश्वास नहीं हो सकता था कि दो विरोधी बातचीत कर रहे हैं। लालनाथजी गांधीजी से आग्रह कर रहे थे कि जब आप काशी पधारें तो हम लोगों के स्थान पर ठहरें, हमारे स्वयंसेवक आपका प्रबंध और रक्षा करेंगे। गांधीजी कहते थे, ऐसी योजना मुझे तो प्रिय ही होगी। हम दुनिया को दिखा सकेंगे कि विरुद्ध मत रखते हुए भी हम एक-दूसरे को सहन कर सकते हैं। इस संवाद में और इस सरल वृत्ति में मुझे सतयुग की झलक दिखाई दी। कहाँ वे देश, जहाँ विरोध की आवाज तक उठानेवाले को गोली से उड़ा दिया जाता है या देश-निकाला दे दिया जाता है, कहाँ यह दृश्य कि एक विरोधी दूसरे को अपना मेहमान बनाना चाहता है और दूसरा उसका स्वागत करता है! एक हम हैं कि अपने विरोधी से घृणा करते हैं, उसके पास आने-जानेवालों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं, उन्हें भी विरोधी मान लेते हैं, और एक गांधीजी हैं, जो विरोधी से खुलकर बात करते हैं, अपने प्रिय मित्रों की तरह उसका स्वागत करते हैं और अपने हृदय की विशालता और निर्मलता से उसका विरोध-भाव मिटा देते हैं!! इसका एक और नमूना उसी दिन देखने को मिला।

घटना तो अजमेर की कीर्ति को बट्टा लगानेवाली है। बारहदरी के सभामंच पर पहुँचने के बाद गांधीजी को पता लगा कि स्वामी लालनाथजी और उनके दल के लोगों को स्वयंसेवकों* तथा जनताने पीट दिया। लालनाथजी उसी समय बुला ये गये। उनका सिर खून से रँगा हुआ था। देखकर गांधीजी को जो मर्मवेदना हुई वह उनके भाषण से अच्छी तरह से लग हो जाती है। उन्होंने कहा—"पण्डित लालनाथ मेरे बुलाये हुए सभा में आ रहे थे। मैंने उन्हें तथा उनके साथियों को आश्वासन दिया था कि वे सभा में आकर भले ही काले झण्डों का प्रदर्शन करें, उनके साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न होगा। ऐसा दशा में जो मारपीट उनके साथ हुई उसका मुझे प्रायश्चित्त करना होगा। जिन्होंने लालनाथजी को और उनके साथियों को चोट पहुँचाई है उन्होंने अस्पृश्यता-निवारण के कार्य को गहरा धक्का पहुँचाया है। हिंसा से कभी धर्म की रक्षा और वृद्धि नहीं हो सकती।" फिर उन्होंने लालनाथजी से भाषण देने के लिए कहा। कुछ लोगोंने उनके भाषण में रुकावटें डालीं—'शेम शेम' की पुकार लगाई, 'नहीं सुनना चाहते' की आवाज़ उठाई। तब गांधीजीने उन्हें डाँटकर कहा—"यदि आप लालनाथजी की बात सुनना नहीं चाहते तो इसका यह अर्थ है कि आप मेरी भी बात सुनना नहीं चाहते। मुझे यदि यह कहने का अधिकार है कि अस्पृश्यता

* बाद को तलाश करने से मालूम हुआ है, कि पीटने में स्यात् स्वयंसेवकों का हाथ न था, और लालनाथजी के सिवा दूसरों को कोई खास चोट नहीं पहुँची थी।

हिन्दूधर्म का कलंक और पाप है, तो लालनाथजी को भी अपने मत को सुनाने का अधिकार है। यदि आप मेरी बात सुनते हैं, तो आपको लालनाथजी की भी बात सुननी होगी। ऐसा न करना असहिष्णुता है और असहिष्णुता हिंसा है।" अन्त में लोगोंने लालनाथजी का भाषण भी सुना।

अपने तीव्र विरोधी की बातें, सो भी अपने मत के विरुद्ध, सुनने के लिए अपने अनुयायियों को प्रोत्साहित करना, यह कलिकाल में सतयुग का प्रवेश नहीं तो क्या है? क्या हम गांधीजी के अनुयायी अपने महान् नेता की इस शिक्षा और इस आदर्श पर चलने का यत्न करेंगे?

हरिभाऊ उपाध्याय

संत अबू हाजम मक्की

अबू हाजम एक पहुँचा हुआ सन्त था। दुनिया के तमाम बन्धन तोड़ दिये थे, और एक प्रभु में ही लौ लगा रखी थी। आलिम था, पर इल्म का गरूर छू न गया था। काम-कांचन से सदा दूर रहता और दुनिया को चन्द-रोज़ा सराय समझता था। निवृत्ति-मार्ग का यह महान् मुसाफिर मक्का में रहा करता था। हज़रत मुहम्मद साहब के साथी अबू हुरैरा और अनस का इस सन्तने दरस-परस और समागम किया था। प्राचीन मुसलमान साधु-सन्तों में तपस्वी अबू हाजम ज्योति-स्वरूप था।

एक दिन अब्दुल मुल्क के पुत्र हाशमने अबू हाजम से आकर पूछा—'यह माया-मोह का फंदा तो मुझसे टूटने का नहीं, पर खुदा से मिलने की लालसा तो है ही। तो क्या कोई ऐसा भी रास्ता है, कि मैं जो धन्धा कर रहा हूँ, वह भी बराबर करता रहूँ और संसार-सागर से तर भी जाऊँ?'

अबू हाजम—'हाँ, ज़रूर है; और वह यह है, कि तुम एक पैसा भी कमाओ वह ईमानदारी से कमाओ, और जो कुछ खर्च करो, वह परमार्थ में ही लगाओ।'

हाशम—'कौन आपके बताये इस रास्ते पर चल सकता?'

अबू हाजम—'जो मनुष्य नरक-यातना से बचना चाहेगा और प्रभु की रीझ का भिखारी होगा, वह ज़रूर इस मार्ग पर चल सकेगा।'

× × × ×

सन्त अबू हाजम एक दिन अपनी धुन में कहीं चले जा रहे थे। रास्ते में एक खटीक की दूकान आई। मांस के बड़े बड़े टुकड़े दूकान में रखे हुए थे। अबू हाजम की दृष्टि उन पर पड़ी। फ़कीर को देखकर वह खटीक बोला—'क्या, मन चल रहा है क्या? लेना हो, लेलो एकाध टुकड़ा।'

अबू हाजम—'नहीं भाई, मेरे पास पैसा नहीं है।'

खटीक—पैसे का क्या काम! फ़कीरों से मैं पैसा नहीं लिया करता। बोलो, बिना पैसा लिये ही देदूँ?'

अबू हाजम—'मगर मुझे ज़रूरत नहीं।'

खटीक—'लो, ज़रूरत नहीं! एक-एक हड्डी तो तुम्हारे पाँजर की दीख रही है। गोश्त खाने की तो शाहजी, तुम्हें खास ज़रूरत है।'

अबू हाजम—'भाई! मेरे शरीर में जो कुछ गोश्त है, वही क़ब्र के कीड़ों के लिए काफ़ी है, और गोश्त का क्या करूँगा!'

'मुस्लिम महात्माओं' से] वि० ह०

इससे तो मरन ही अच्छा

माघ का महीना था वह। खूब कड़ाके की सरदी पड़ रही थी। दाँत से दाँत बजते थे। और फिर वह पठार का पुरवा। चारों तरफ़ सघन जंगल और निर्जन पहाड़ी सुनसान। लौंदिया कभी की पड़ चुकी थी। पर किसी घर में एक दिया भी नहीं टिमटिमाता था। तोम-चालीस झोंपड़ियों का गाँव था। चौराहे पर एक बड़ा-सा कौंड़ा धधक रहा था, जिसमें भारी-भारी लक्कड़ जल रहे थे। वहीं १५-२० आदमी कुछ तो बैठे ताप रहे थे और कुछ वहीं खड़े थे। सभी उघारे अंग थे। कमर पर सिर्फ एक-एक चिथड़ा था। पाँवों में किसी के लतरियाँ तक नहीं थीं। उनमें कुछ सहरिया (एक जंगली जाति) थे और कुछ चमार और लोधी। सौ धागों का एक चिकटा हुआ लत्ता लपेटे वहीं एक औरत बुढ़िया बैठी थी, जैसे हाड़ों की माला हो। पाँजर की एक-एक हड्डी दीखती थी। आग के मुँह पर खड़ी भी थर-थर काँप रही थी। पाँच-सात नंग धड़ंग बच्चे भी वहीं कौड़े के पास खेल कूद रहे थे। एक के हाथ में महुआ की काली-काली कड़ी रोटी का टुकड़ा था, तो एक नन्हा लड़का कुटकी और भाजी कठौती में सान-सानकर खा रहा था। फाड़ों से सिर जैसे सड़ गया था और नाक से रेंट बह रहा था। खाज-खाज खाज भी खुजलाता जाता था। एक लड़का अपनी बहिन की कनियाँ लिये सिकोला से महुआ और अचार चबा रहा था। वहीं एक लम्बा-सा लूला बुड्ढा लड़कों को गन्दी गन्दी गालियाँ दे रहा था। बात यह थी, कि उन छोकड़ों ने उसकी झोंपड़ी से खूँटी में रखा हुआ कुछ पालो पड़ोसी की एक बकरी चर गई थी। बुड्ढा बेचारा चिचियाता ही रहा, पर उन सुरहोंने कुछ ध्यान न दिया।

× × × ×

यह मेरे बुंदेलखंड प्रांत के एक गाँव का दृश्य है। करीब चार साल का अर्सा हुआ, कि मैं एक काम से उधर एक रजवाड़े में गया था। भूला भटका साँझ को इस गाँव में पहुंच गया। यों गवँई के हृदय-विदारक दृश्यों के देखने का मैं आदी था सही, पर इस पुरवा की हालत देखकर तो मेरे आंसू रोके न रुके। दरिद्रता और विपदा का कुछ पार! अन्न का दाना नहीं, तन पर धागा नहीं। जंगली फलों, जड़ों और कुधान्य से आधा-भूखा पेट बेचारे भर रहे हैं। न ज़मीन है, न मजूरी। जानवरों से भी बुरी हालत हो रही है। रेल की टेसन भी कोई लगी नहीं, और कल-कारखाना भी नसीब नहीं। सभ्य संसार से पचासों मील दूर इन नर-कंकालों की आबादी है। पास के किसी गांव में मजूरी मिली भी, तो उससे क्या होता है! हरवाहे को १॥) मासिक वेतन देते हैं और रोज की एक कराई जैसी रोटी। साल में एकाध फटा-पुराना कम्बल दे दिया तो दे दिया, नहीं तो नहीं। और मशक्कत पूरी लेते हैं। २०) कर्ज़ देकर कोई खातापीता किसान इस निराकार मूक प्राणी को ज़िन्दगी भर के लिए अपना बेदाम का गुलाम बना लेता है। कर्ज़े का सूद द्रौपदी का चीर बन जाता है और यह ढेर रुपये की चाकरी बड़े भाग्य से मिलती है। काम सबको थोड़ा ही मिलता है। गाँवों में यह बेकारी-रूपी सुरसा राक्षसी अपने भयावने मुँह में लोगों को बड़ी निष्ठुरता से निगलती चली जा रही है।

ग्राम-संगठन और ग्राम-सुधार की बातें हम नित्य ही सुनते हैं। यहाँ-वहाँ इनकी खबरें अख़बारों में आती हैं। और सभा-सम्मेलनों में ग़रीब मजूरों और किसानों के हित की धुआँधार स्पीचें भी होती रहती हैं। पर असल में गाँवों में जो अभाव है, जो विपदा है, जो पीड़ा है उसे हम लोगों में से कितनोंने महसूस किया है? और करें भी तो कैसे? गाँवों में एक तो हम जाते नहीं, और जाते हैं, तो गाँववालों के अपने होकर नहीं। हम तो कुछ और ही बनकर वहाँ जाते हैं और फ़ौरन भाग आते हैं। हमारा अविश्वासी रूप देखते ही सीधे-साधे गाँववाले हमसे भिड़क जाते हैं। न हमारे पास त्याग है, न संयम है, न सेवा-भाव है, न गाँवों का दर्द है, फिर हम क्या लेकर गाँवों में जायें और वहाँ संगठन करें? ग्राम-सेवा, ख़ासकर भारतीय ग्राम-सेवा, अख़बारों से, व्याख्यानों से या प्रस्तावों से नहीं हो सकती। हम अँग्रेज़ी पढ़े लिखे आदमियों को गाँववालों की भावात्मक से तो सूग है। हममें ऐसी आज क्या चीज़ रह गई है, जिसमें वे लोग अपनापन देख सकें? हमारे दिमाग़ में तो टाइप राइटरों की खटाखट, इँग्रेज़ी के शाब्दिक, जर्मनी और रूस की स्कीमें और शाब्दिक क्रांतियाँ ही समाई हुई हैं। अख़बारी बकने से जिस दिन हम अपने गाँवों को देखना भूल जायेंगे, उसी दिन उनकी असली सूरत हमें नज़र आयगी। गाँवों की बात तो अभी बहुत दूर है, गोकुल गाँव का तो पैंडा ही न्यारा है।

वि० ह०

एक ही नूर की माया

लोका जानि न भूलो भाई,
खालिक खलक, खलक में खालिक, सब घट रह्या समाई।
एक नूर अल्ला उपजाया, ताकी कैसी निंदा,
सब जग कीया ताहि नूर ते, कौन भला को मंदा?
ता अल्ला की गति नहि जानी, गुर गुड़ दीया मीठा;
कह कबीर, मैं पूरा पाया, सब घट साहिब दीठा॥

"घट-घट रह्या समाइ"

हिंदूधर्म, पारसीधर्म और सूफ़ियों के इसलाम धर्म में ईश्वर की सर्वव्यापकता का बड़ा सुन्दर समन्वय देखने में आता है। वह सिरजनहार ही सर्वत्र समाया हुआ है, घट-घट में वही रम रहा है, ज़र्रे-ज़र्रे में उसी की प्यारी सूरत झलक रही है, इसका बड़ा ही विशद काव्यात्मक वर्णन इन तीनों धर्मोंने किया है। सर्व सर्वत्र भगवान् की ही विभूति है अथवा मेरी ही आत्मा सब भूतों में, प्राणिमात्र में, चराचर जगत् में अभिव्याप्त है, यह परमसत्य जिन धर्म-मज़हबों की सम्पदा हो, उनमें अस्पृश्यता-जैसी घृणित द्वेषवृत्ति तो एक क्षण भी नहीं टिक सकती। नीचे के समन्वय-सूचक अवतरणों से यह स्पष्ट हो जायगा, कि—

'लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।'

अथवा, हिन्दू, पारसी, इसलाम आदि धर्म ये सब नाम के ही भेद हैं—असल में तो वही वही है, मैं-ही-मैं है या तू-ही-तू है, दुई का तो कहीं नाम भी नहीं है। इस दुनिया के सुन्दर शीशे में सर्वत्र उसी सुन्दरतम के सलोने मुखड़े का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है।

गीता

गीता में भगवान् कहते हैं :—

"सारे जगत् का प्रभव (आदि) और प्रलय (अन्त) का कारण मैं ही हूँ;

मुझसे परे और कुछ नहीं है; धागे में जैसे मणियाँ पिरोई हुई रहती हैं, वैसे ही यह सब मुझ में गुँथा हुआ है;

जल में रस मैं हूँ, चन्द्र और सूर्य की प्रभा मैं हूँ, सब वेदों में प्रणव (ॐकार) मैं हूँ, आकाश में शब्द मैं हूँ और पुरुषों का पराक्रम मैं हूँ;

पृथिवी में पुण्यगंध मैं हूँ, अग्नि में तेज मैं हूँ; प्राणिमात्र का जीवन मैं हूँ और तपस्वियों का तप मैं हूँ;

सब प्राणियों का सनातन बीज मुझे जान; बुद्धिमानों की बुद्धि मैं हूँ, तेजस्वियों का तेज मैं हूँ;

बलवान का काम और राग-रहित बल मैं हूँ—और प्राणियों में धर्म के विरुद्ध न जानेवाला काम भी मैं ही हूँ;

जो जो सात्त्विक, राजस या तामस भाव या पदार्थ हैं, वे सब मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं; परन्तु मैं उनमें हूँ ऐसा नहीं है, वे मुझमें हैं।

यज्ञ का संकल्प मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, यज्ञ-द्वारा पितरों का आधार मैं हूँ, यज्ञ के अर्थ उत्पन्न हुआ अन्न मैं हूँ; मंत्र मैं हूँ, आहुति मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवन द्रव्य मैं हूँ;

इस जगत् का पिता, माता, आधार, पितामह मैं हूँ; पवित्र ॐकार मैं हूँ और ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद भी मैं ही हूँ;

सब की गति, सब का पोषक, सबका प्रभु, सब का साक्षी मैं हूँ; सब का आश्रय, हितैषी, उत्पत्ति, नाश और स्थिति भी मैं ही हूँ; निधान और अव्यय बीज भी मैं ही हूँ।"

रूमी की मसनवी

दूसरा अवतरण परमहंस मौलाना जलालुद्दीन रूमी का है। मौलाना की इस मसनवी में भी जहाँ-तहाँ उसी 'लाल' की लाली झलकती हुई दिखाई देती है, जिसकी झाँकी हमें गीता के उक्त श्लोकों में मिली है। रूमी की इस मसनवी का आशय यह है :—

"मैं कणिका हूँ सूरज की स्वर्ण-किरण की, और मैं ही दहकता हुआ सूर्य हूँ। 'रम जाओ वहीं'—मैं उस ज़र्रे को हुक्म देता हूँ; 'बढ़े चलो, चक्कर देते रहो'—ग्रह-मण्डलों को मैं ही यह आदेश सुनाता हूँ;

मैं ही प्रभात की लाली हूँ, मैं ही साँझ की अठलाती हुई हवा हूँ;

पत्तियों की मंद-मंद मरमर ध्वनि मैं हूँ, और गर्वीले समुन्दर का गम्भीर गर्जन भी मैं हूँ; जाल भी मैं, बहेलिया भी मैं, पंछी भी मैं और उसका करुण क्रंदन भी मैं ही हूँ;

दर्पण मैं हूँ और उस पर पड़नेवाली परछाईं भी मैं हूँ; ध्वनि मैं हूँ और प्रतिध्वनि भी मैं हूँ;

आशिक की प्यारभरी मनुहार मैं हूँ, और माशूक़ा की लज्जा-विकम्पित वाणी भी मैं ही हूँ;

सैनिक मैं हूँ और उसे क़त्ल करनेवाली ख़ूनी तलवार भी मैं हूँ, और उसकी बिलखती माँ का हृदय-विदारक आँसू भी मैं हूँ;

ख़ुमारी मैं हूँ, अंगूर मैं हूँ, मद मैं हूँ और जाम भी मैं ही हूँ;

मेहमान मैं हूँ, मेहमाँनिवाज मैं हूँ, सराय मैं हूँ और जवाहरात की कनक-कटोरी भी मैं ही हूँ;

मैं बाँसुरी की बेधक फूक हूँ और मनुष्य का चंचल मन भी मैं ही हूँ;

गुलाब मैं हूँ, बुलबुल मैं हूँ, और उसका मधुभरा मादक गीत भी मैं ही हूँ;

मैं ही चकमक हूँ, मैं ही चिनगारी हूँ और मैं ही जले घूमनेवाला परवाना हूँ;

मैं ही पुण्य हूँ, मैं ही पाप हूँ—मैं ही कर्म हूँ और मैं ही कर्म की वासना हूँ; लोभ, गुनहगार, गुनाह, क्षमा और दण्ड सब कुछ मैं ही हूँ;

दुनिया का प्रभव और प्रलय मैं ही था, मैं ही हूँ और मैं ही रहूँगा;

मैं सब की शृङ्खला हूँ, सब कुछ मेरे ही बँधे हुए हैं, मैं ही सब का आदि हूँ और मैं ही सब का अंत हूँ।"

ज़ेंदावस्ता

अब ज़रदुश्त के ज़ेंदावस्ता के अवतरण से गीता और रूमी की मसनवी का मिलान कीजिए। यहाँ भी वही बात मिलेगी :—

"न मैं अकेला हूँ, न अलहदा; लोग क्यों कहते हैं कि 'वहाँ देखो'—वहाँ कहाँ ?

सब में ही हूँ, सब में व्यापक हूँ; देखो, मुझे सर्वत्र देख;

मैं सरस समीर हूँ और लहलही लताओं के साथ खेलता हूँ;

मैं झरने का वह गीत हूँ, जो समुन्दर में मिलने जा रहा है;

मैं सुनहरी किरणों का चुम्बन हूँ, और मेघ के आँसुओं की झड़ी भी मैं हूँ;

मैं ही बसन्त की अगवानी की सुगन्ध साँस हूँ, जो जीवन में नया प्राण भर देती है।

बीज का अँकुरा मैं ही हूँ और कलियों की मुस्कराहट भी मैं ही हूँ।

घड़ी-घड़ी भाँति की रँगरेलियाँ करनेवाली सुन्दरता भी मैं ही हूँ;

पंछियों की मधुभरी चहचह और पत्तियों की सुरीली मरमराहट भी मैं ही हूँ;

भूतमात्र की जीवन शक्ति मैं ही तो हूँ;

मैं ही अनिर्वचनीय परमानन्द हूँ, जो केवल अनुभवगम्य है;

मैं वह अचल अटल 'क़ानून' हूँ, जिसने सब को जकड़ रखा है; मैं ही सबका ध्येय हूँ, सबकी शान्ति हूँ, और सबकी व्यथा हूँ;

निर्बल का बल मैं हूँ, हारे की जीत मैं हूँ; मैं ही अनन्त आशा हूँ और मैं ही समाधि हूँ;

मैं महान् हूँ, मैं वह अमर प्रेम हूँ, जो सब को मेरी ओर खींचता रहता है;

मैं अतुल व्यापक हूँ, अक्षय शक्ति हूँ; मैं ही परमज्ञान का फल हूँ और समस्त ब्रह्माण्ड का आधार-स्तंभ भी मैं ही हूँ;

मैं वही हूँ, जिसे लोग 'ईश्वर' कहते हैं ?"

कैसा सुन्दर साम्य है ! जो बात गीता में कही गई है, वही मौलाना रूमी की मसनवी और ज़ेंदावस्ता में भी हमें दिखाई देती है। फिर यह झगड़ा कैसा, कि अमुक धर्म सच्चा है और अमुक झूठा ? जब कि—

'जहँ देखौं तहँ एक ही, दूजा नाहीं आन'

की अद्वैत-भावना का बखान सभी धर्म-मजहब एक समान एक स्वर में कर रहे हैं, तब झगड़ा किस बात का ? और धर्म के नाम पर यह ऊँच-नीच की भावना कहाँ से आ कूदी ? जब चराचर जगत् हरिमय है, ब्रह्मरूप या ब्राह्म है, तब तो सर्वत्र सर्वथा यही प्रेममयी भावना होनी चाहिए कि—

'हिंदू, मुसल्माँ, पारसी, सिक्ख, जैन, ईसाई, यहूद,
इन सबके सीनों में धड़कता एकसाँ है दिल मेरा।'

वि० ह०

लाहौर के विद्यार्थियों से

[१३ जुलाई को गांधीजीने लाहौर के विद्यार्थियों की सभा में जो भाषण किया था वह नीचे दिया जाता है।—सं०]

"आप लोगोंने मुझे जो मानपत्र और थैलियाँ दी हैं, इसके लिए मैं आपका आभार मानता हूँ। जिस बात का मुझे डर था वही हुआ। यह सभा केवल विद्यार्थियों के लिए की गई थी, किन्तु जनताने उनकी सभा पर व्यर्थ ही कब्ज़ा कर लिया है। यह तो उचित नहीं है। आप लोगों की भीड़ को देखकर मुझे कल भी भय था कि कहीं मेरी मोटर भीड़ ही से न टूट जाय। कल जो काम १५ मिनट का था उसी में आपने मेरा सवा घंटा नष्ट कर दिया। इसलिए भविष्य में जो सभा जिनके लिए हो उन्हीं को उसमें आना चाहिए। हरिजन-सेवा का कार्य एक धार्मिक कार्य है, इसलिए वह शान्ति से ही सिद्ध हो सकता है। ऐसे काम केवल शान्ति में ही किये जा सकते हैं। मुमकिन है, कि पंजाब में मेरा यह आखिरी दौरा हो, क्योंकि शायद मैं दुबारा यहाँ न आ सकूँ। इसलिए इसी दौरे में मैं आप पर अधिक-से-अधिक प्रभाव डाल देना चाहता हूँ। जो विद्यार्थी हरिजन-सेवा के कार्य में रस ले रहे हैं, उनको मैं धन्यवाद देता हूँ। जैसा कि आपने मानपत्र में कहा है, मुझे आशा है, आप लोग हरिजनों को अपने से अलग नहीं समझते। अगर आपका यह निश्चय ठीक है, तो आपको गाँवों में जाकर काम करना चाहिए। उन लोगों से आपको प्रेम करना चाहिए। यद्यपि उनमें कुछ लोग शराब पीते और अन्य बुरे काम करते हैं, तो भी आपको उनसे घृणा नहीं आनी चाहिए। आप उनके बच्चों को जाकर पढ़ावें। देहातों में इस काम की बड़ी आवश्यकता है। वहाँ काम करने के लिए आपको कालेज की शिक्षा भुला देनी होगी। इस कार्य के लिए सहनशीलता, तपश्चर्या और ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। आप में यह सब बातें होंगी, तभी आप कुछ कर सकेंगे। आपको वहाँ हरिजनों के सेवक बनकर रहना होगा और ऊपर की सब शर्तों को पूरी तरह से पालना होगा। आपका जो समय खाली बचे, उसमें आप यह काम करें तो मेरा भी बहुत-सा काम बन जायगा। अस्पृश्यता दूर न हुई तो हिन्दू जाति मिट जायगी। हम इस रोग को पहचान नहीं रहे हैं, पर यह हमें अन्दर से बराबर खा रहा है। इस भेद भाव के रोग को मिटाना तपश्चर्या से ही संभव है। आपने स्वयं मानपत्र में कहा है कि हम बड़े विलासी हैं। आपको केवल परीक्षाएं पास करने की चिन्ता लगी रहती है। आप चाहें तो असंख्य बातें भी कालेज की शिक्षा में पा सकते हैं। आप भोग को त्याग दें और संयम से ईश्वर को पहचानें

और उसके अधिक निकट हो जायें। ईशोपनिषद् में लिखा है, कि मनुष्य ईश्वर के पास जाना चाहता है तो उसे भोग-विलास त्यागना होगा। आप विद्या क्या केवल नौकरियों के लिए प्राप्त कर रहे हैं? विद्या तो वही है, जिससे मुक्ति मिले और शिष्टाचार आवे। जब आप सच्चा ज्ञान प्राप्त करने की चिन्ता करेंगे, तभी काम बनेगा। आपने इस विलास में पड़कर खादीतक का त्याग कर दिया है। मुझे तो लाहौर में यह देखकर बड़ा दुःख हुआ है, कि आप खादी नहीं पहनते हैं। इस प्रकार तो आप एक रूप में ग्रामीण भाइयों का त्याग कर रहे हैं, क्योंकि वह रुपया उनके पास नहीं जाता। आपकी शिक्षा पर जो रुपया खर्च हो रहा है, वह प्रायः उन्हीं के पास से आता है, परन्तु ग्रामीणों को आप बदले में क्या दे रहे हैं? आप उनके धन को व्यर्थ ही बहा रहे हैं। आप और कुछ न करते हुए केवल खद्दर ही पहनें, तो इससे उनकी सेवा होगी। आप खद्दर न पहनकर न केवल अपने आप को ही धोखा दे रहे हैं, बल्कि सारे भारत को धोखा दे रहे हैं। आपको चाहिए कि आप अपनी इस भारी भूल से बच जायें।"

मो० क० गांधी

हबशियों का कुलगुरु

(७)

उपसंहार

जनरल आर्मस्ट्रांग के साथ-साथ उत्तराखण्ड का भ्रमण करने से अमेरिका की जनता के साथ वाशिंग्टन का विशेष परिचय हो गया, और उसे राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद् में भाषण देने के लिए निमन्त्रण मिला। वहाँ अपने भाषण के प्रसंग में उसने टस्केजी के एक ऐसे स्नातक का उदाहरण दिया, कि जिसने एक एकड़ ज़मीन में जहाँ औसतन ४९ बुशल आलू पैदा होते थे वहाँ २६६ बुशल पैदा करके दिखा दिये थे। वहाँ के आस-पास के गोरे किसानोंने वाशिंग्टन की बड़ी इज़्ज़त की और इस विषय में वे उसकी सलाह लेने लगे; क्योंकि जिन लोगों के बीच वह रहता था, उनकी सम्पत्ति और सुख में उसने वृद्धि की थी। वाशिंग्टन का यह आशय नहीं था, कि हबशी लोग हमेशा खेती ही करते रहें, मगर यह बात ज़रूर थी, कि अगर एकबार उन्हें खेतीबारी में सफलता मिल गई, तो इससे उनकी उन्नति की नींव मज़बूत हो जायगी, और उस नींव पर उनके पुत्र-पौत्र जीवनोपयोगी अच्छे-से-अच्छे उन्नति-भवन खड़े कर सकेंगे।

सन् १८९५ में आटलांटा की प्रदर्शिनी में वाशिंग्टनने इतना सुन्दर भाषण दिया कि संयुक्तराज्यों के अध्यक्ष श्री क्लीवलैंडने उसका अभिनन्दन किया, और कहा, कि 'यहाँ और कुछ भी न हुआ होता, तो भी सिर्फ़ वाशिंग्टन के भाषण के कारण ही यह प्रदर्शिनी सफल समझी जाती।' १८९६ में हावर्ड विश्व-विद्यालय ने वाशिंग्टन को उसके सम्मानार्थ एम० ए० की उपाधि दी।

१८९९ में संयुक्त राज्यों के प्रमुख श्री मेक्किन्ली टस्केजी पधारे, और जनरल आर्मस्ट्रांग भी अपने स्वर्गवास के छै महीने पहले वहाँ आये, और पक्षाघात होने के एक बरस बाद वह फिर टस्केजी देखने आये। जनरलने मरने के पहले एक बार और टस्केजी देखने की इच्छा प्रगट की थी, इसलिए वाशिंग्टन उन्हें टस्केजी लिवा लाया। एक सहस्र विद्यार्थियों तथा अध्यापकोंने जनरल को श्रद्धापूर्वक 'दीप-समर्पण' करके सम्मानित किया। वाशिंग्टन के यहाँ उस महान अतिथिने दो मास वास किया। यद्यपि उसकी वाणी और अंग बिलकुल शिथिल पड़ गये थे, और शरीर रह आया था, तो भी वह महापुरुष प्रतिक्षण परहित-चर्चा में ही निरत रहता था।

टस्केजी का आरम्भ कितना अल्प था। पर सन् १९०० में इस संस्था की अपनी २३०० एकड़ ज़मीन थी, जिसमें १००० एकड़ में तो खुद विद्यार्थी ही खेती करते थे, और ६६ मकान थे, जिनमें सिवा ४ के शेष सब विद्यार्थियों के ही बनाये हुए थे। बौद्धिक एवं धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त ३० औद्योगिक विभाग थे। औद्योगिक शिक्षा में इन तीन बातों पर ध्यान रखा जाता था—(१) विद्यार्थी को ऐसी शिक्षा देना, कि उसमें जिस प्रदेश में वह रहता हो वहाँ की तत्कालीन परिस्थिति का मुक़ाबला कर सके; (२) उसे इतनी बुद्धि, स्वावलम्बिता और कुशलता उपलब्ध हो जाय, कि उससे वह अपना जीवन-निर्वाह कर सके; (३) और प्रत्येक स्नातक यह सिद्धान्त लेकर जाय, कि शारीरिक परिश्रम एक सुन्दर और सम्मान्य वस्तु है, वह वर्ज्य नहीं किंतु ग्राह्य है। टस्केजी की मिलकियत सन् १९०० में ७००००० डालर की (एक डालर ३।=) का होता है) थी और स्थायी कोष को मिलाकर १७००००० डालर की। सालाना खर्च १५०००० डालर का था। शुरू-शुरू में वहाँ सिर्फ़ ३० विद्यार्थी थे। १९०० में बढ़ते-बढ़ते १४०० तक विद्यार्थियों की संख्या पहुँच गई और ११० शिक्षक थे। कुटुम्ब-सहित १७०० आदमियों की टस्केजी में एक स्थायी अच्छी बस्ती हो गई। टस्केजी में पढ़े हुए कम-से-कम ६००० स्त्री-पुरुष अपने देश दक्षिण अमेरिका में काम कररहे थे। जीवन की सर्वतोमुखी उन्नति किस प्रकार होती है से या तो स्वतः दृष्टांत से अथवा प्रत्यक्ष प्रयत्न से अपने हबशी भाइयों को ये लोग बताते थे। जहाँ ये लोग जाते, वहाँ के हबशी बढ़िया ज़मीन खरीदते, घर-मकान बनाते, पैसा बचाते, पढ़ते-लिखते और सदाचारी बन जाते थे। टस्केजी-वालों के संपर्क में आने से उस समस्त प्रदेश का काया-कल्प हो जाता था।

वाशिंग्टन के सम्बन्ध की दो सुन्दर प्रशस्तियाँ देकर हम इस 'लेखमाला' को समाप्त करते हैं। हेम्पटन संस्था का संस्थापक और प्रधानाचार्य जनरल आर्मस्ट्रांग कहता है, कि 'हेम्पटन से और कोई नहीं, अकेला वाशिंग्टन ही उत्तीर्ण होकर निकला होता, तो भी हमारी संस्था पर किया हुआ हमारा सारा परिश्रम पूर्णतः सफल माना जाता। और प्रोफेसर आर० ब्रूसने अपने 'टस्केजी के वृत्तान्त' को इन चिरस्मरणीय शब्दों में समाप्त किया है:—

"हावर्ड और फिस्क और आटलांटा और बेरिया, हेम्पटन और टस्केजी—ये सब संस्थाएँ सिवा एक टस्केजी के गोरे आदमियोंने स्थापित की हैं और वेही चला रहे हैं। एक टस्केजी ही काले आदमी के हृदय, मस्तिष्क, उद्योग और व्यवस्था शक्ति का फल है। टस्केजी-विद्यालय काले मनुष्यों के उत्कर्ष का एक प्रबल साधन है, और इसके साथ ही संस्कृति-पात्रता के कारण काले मनुष्यों की योग्यता का एक अकाट्य प्रमाण भी।"

'हरिजन' से] वालजी गोविंदजी देसाई

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २० जुलाई, १९३४

अस्पृश्यता की मर्यादा

[१ जुलाई को गांधीजीने भावनगर की सार्वजनिक सभा में जो भाषण दिया था, उसके कुछ अंश संक्षिप्त रूप में नीचे दिये जाते हैं। सं०]

भगीरथ कार्य

काठियावाड़ को जितना पैसा हरिजन-कार्य के लिए देना चाहिए था, उतना तो नहीं दिया। परिश्रमी और लगनवाले काठियावाड़ियों से तो अधिक-से-अधिक आशा करनी चाहिए। पर यह सच है, कि लाखों रुपये भी काठियावाड़ दे डालता, तो भी अस्पृश्यता उससे थोड़े ही दूर हो जाती। यह तो सवर्ण हिन्दुओं का जब दिल पिघलेगा, तभी होगा। अस्पृश्यता तो रावणरूप है। पर जिसे यह रामरूप प्रतीत होती हो, वह इसकी पूजा करेगा ही। अस्पृश्यता का जो पुजारी हो और उसका हृदय पलटे, तभी इसका तत्क्षण नाश होगा। नाश तो इसका होना ही है। पर गैरराज़ी से हुआ, तो क्या! उस नाश का यश न तो हिन्दूधर्म को मिलेगा, न हिन्दूधर्मावलम्बियों को। जिस दिन हरिजनों में इतनी जागृति आ जायगी कि वे अपनी मौजूदा स्थिति को सहन न कर सकेंगे उसी दिन अस्पृश्यता का नाश अवश्यंभावी समझ लो। फिर तो अस्पृश्यता एक क्षण भी नहीं टिक सकती। पर ऐसी दशा में अस्पृश्यता-नाश का श्रेय हमें मिलने का नहीं। इसलिए हमें बहुत बड़ा भगीरथ-कार्य करना है। जो लोग इस सत्यानाशी चीज़ को रामरूप समझकर पूज रहे हैं उन्हें अनुनय-विनय करके समझाना है कि यह अस्पृश्यता राम नहीं, किन्तु रावण है।

सुधारकों से

हर जगह मैं सनातनी भाइयों से मिलता हूं, उन्हें अपनी बात समझाने का प्रयत्न करता हूँ। सनातनी भाइयों से मैं हमेशा ही यह कहता आया हूँ, कि जो कुछ मैं कहता हूं, उस पर कुछ विचार तो करो। पर सनातनियों की यह शिकायत मेरे पास आई है, कि 'हम तुम्हारे पास किसलिए आवें? आते हैं, तो सुधारकों के अख़बार हमारी खिल्ली उड़ाते हैं। और नहीं आते, तो कहते हैं कि सनातनियों का कोई कस ही नहीं है।' हो सकता है, कि कुछेक अख़बार ऐसा करते हों, पर सभी तो उनका मज़ाक उड़ाते नहीं। यह सही है कि कुछ अख़बार इन सनातनी भाइयों की निन्दा करते हैं। मनुस्मृति के दो-चार श्लोक याद करके सुधारक यदि कहें, कि उन्हें सनातनियों पर विजय मिल गई, तो इस भाँति विजय मिलने की नहीं। ज्यों ज्यों इस विषय की महत्ता का हमें ज्ञान होता जाय, त्यों-त्यों हम लोगों में नम्रता आनी चाहिए। सनातनियों के प्रति हमारा आदरभाव भी बढ़ना चाहिए। आदर-भाव किसलिए? उनमें कुछ लोग पाखंडी हैं सही, धर्म के नाम पर वे पाखंड का व्यापार कर रहे हैं इसकी चर्चा मैं कर चुका हूँ। पर ऐसा पाखंड संसार में रहते हुए भी मैं और सुधारक भी यह नहीं मानते कि सनातनीमात्र पाखंडी हैं। सनातनियों में कितने ही ऐसे हैं, जो शुद्ध हृदय से मानते हैं, कि आज जो अस्पृश्यता बरती जा रही है, वह बराबर ऐसी ही बनी रहनी चाहिए, नहीं तो समाज में वर्णसंकरता पैदा हो जायगी। सदियों से चली आई प्रथा को मनुष्य तुरन्त दूर नहीं कर सकता। ऐसे मनुष्य अस्पृश्यता को धर्म मानकर उसका पालन कर रहे हैं। इसलिए मैं सुधारकों से प्रार्थना करता हूँ, कि वे सनातनियों की निन्दा न करें, उन्हें दलील से विनय और मर्यादापूर्वक अपनी बात समझावें।

आधुनिक अस्पृश्यता का रूप

मैं कहता हूँ, कि आधुनिक अस्पृश्यता के लिए हिन्दू-धर्म-शास्त्र में कहीं भी स्थान नहीं है। इस मौजूदा अस्पृश्यता का तो किसीने भी समर्थन नहीं किया। मेरे इस 'आधुनिक' शब्द को तो मेरे बहुत-से सनातनी भाई भूल ही जाते हैं। पुन्दरपुर से आनेवाले बड़े-बड़े शास्त्रियों के साथ जब इस विषय पर मैं चर्चा कर रहा था, तो मैंने कहा, कि अमुक प्रकार की अस्पृश्यता के लिए तो सारे ही संसार में स्थान है, वह तो सबकहीं मानी जाती है और मानी जानी चाहिए। गंदे आदमी को हम कब छूते हैं। जिसके मुँह से शराब की दुर्गन्ध आ रही हो उससे अलग ही रहते हैं, उसे कैसे छू सकते हैं? उसे छून जायँ, तो उसके मुँह की दुर्गन्ध हमें चार हाथ दूर फटक देगी। ऐसी अस्पृश्यता तो माँ बेटे के बीच में भी होती है। पर यह आधुनिक अस्पृश्यता तो साँप की नहीं, बल्कि सहस्र भुजाओंवाली राक्षसी है। इस अस्पृश्यताने पाँच छै करोड़ मनुष्यों को हमसे दूर फेंक दिया है। यह आधुनिक अस्पृश्यता आखिर क्या है यह यदि पूछते हो, और यहाँ की म्युनिसिपेलटी के प्रमुख और पट्टणी साहब माफ करें तो मैं बता देता हूँ, कि भावनगर में जो यह भंगियों की बस्ती है, वही आधुनिक अस्पृश्यता है। आधुनिक अस्पृश्यता का दर्शन करना हो, तो कल सबेरे ही उस बस्ती में चले जाओ। फिर यहाँ के जुलाहों की बस्ती भी देख आओ। देखो, वे बेचारे किस तरह वहाँ गुज़र कर रहे हैं। ये सब जन्म से ही अस्पृश्य हैं और मरते दमतक अस्पृश्य ही रहेंगे! यहाँ कोई जुलाहा पढ़ना चाहे तो वह पढ़ सकता है, स्कूल-कालेज में दाखिल हो सकता है। राज्य नहीं तो हरिजन-सेवक-संघ उसे निःशुल्क शिक्षा दिला सकता है। फिर पढ़ लिख चुकने के बाद राज्य में वह न्यायाधीश का पद पा सकता है, लेकिन फिर भी वह रहता अस्पृश्य ही है! हम उस जुलाहा न्यायाधीश से अपना न्याय तो करा सकते हैं, पर उसे छूकर नहाना तो पड़ता ही है! ऐसा अंधेर-भरा न्याय (?) अस्पृश्यता के नाम पर हम छै करोड़ मनुष्यों के साथ कर रहे हैं। आधुनिक अस्पृश्यता का दर्शन आपको और कराऊँ? अस्पृश्य कौन है, इसका प्रमाण मनुस्मृति में नहीं मिलता, अथवा सरकार की सेंसस रिपोर्ट ही मनुस्मृति है! और आप यह निश्चय कर चुके हो, कि अस्पृश्य को तो जीवनभर अस्पृश्य ही रहना है, इसमें रत्तीभर भी फेरफार नहीं हो सकता। किन्तु सेंसस रिपोर्टों का कहना है, कि फेरफार होता है। हर दस बरस में जब मनुष्य-गणना होती है, तब कितने ही अस्पृश्य उस गणना-राशि से मर जाते हैं, और कितने ही नये पैदा हो जाते हैं। यह है हमारी आधुनिक अस्पृश्यता!

कहाँ है शास्त्र का प्रमाण?

इस अस्पृश्यता के समर्थन में है कोई शास्त्र का प्रमाण?

हो तो मुझे कोई दिखावे। यह मैं अभिमान के साथ नहीं कह रहा हूँ। मैंने शास्त्रों का थोड़ा-सा अध्ययन किया है, पर उनमें जो प्रमाण आये हैं, वे मुझे कुछ जँचे नहीं। मैं कोई विद्वान् नहीं हूँ, संस्कृत का ज्ञान मेरा बहुत ही अल्प है, मुझे अर्थ समझने में टीका और भाषांतर की सहायता लेनी पड़ती है। इसलिए मेरा यह दावा नहीं है कि मैं शास्त्रपारगामी हूँ। मैं शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। जब-जब शास्त्रार्थ करने का प्रस्ताव मेरे सामने आया, मैंने कह दिया कि मैं तो एक रंक आदमी हूँ, मैं शास्त्रार्थ करना क्या जानूं। मुझे तो अपनी बात आप लोगों को समझानी भर है। मैं तो सत्य का पुजारी होने का दावा करता हूँ। सत्य का शोध करते-करते ही यह चोला छोड़ूँ, यही मेरी इच्छा है, और यही प्रभु से प्रार्थना है, कि वह मुझ निर्बल को सत्य-शोधन का बल दे। ऐसा मनुष्य आपको आज यह सन्देश दे रहा है, कि इस आधुनिक अस्पृश्यता के लिए आपके पास कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है। इससे विरुद्ध यदि कोई मुझे बता सके और वह मुझे सत्य जँचे तो उसे मैं अवश्य स्वीकार कर लूंगा। यह मैं अनेक बार लिख चुका हूँ, कि मैं शास्त्र का कैसा क्या अर्थ करता हूँ। अध्यापक यदि विद्यार्थी को, और ज्ञानी यदि जिज्ञासु की मर्यादा न जानता हो, तो उन दोनों के बीच हृदय का सम्बन्ध नहीं बँधता। इसीसे उन्हें मेरी मर्यादा जान लेना चाहिए।

मंदिर-प्रवेश और बिल

सुधारकों को सनातनियों के प्रति कैसी शिष्टता और नम्रता के साथ पेश आना चाहिए यह मैं बतला चुका हूँ। सनातनियों से भी कह दिया है, कि जो काम आज मैं कर रहा हूँ, उसे अच्छी तरह समझलें। उनके ऊपर एक 'मन्दिर-प्रवेश' का भी भूत सवार है। मैंने एक भी मन्दिर बिना जनता की मरज़ी के नहीं खोला है, और वह जनता कौन—मन्दिर में जानेवाली। आर्यसमाजी, हरिजन या मन्दिर में विश्वास न करनेवाले व्यक्ति का मत मन्दिर-प्रवेश के विषय में कभी नहीं लिया गया। मन्दिर में श्रद्धापूर्वक देव-दर्शनार्थ जानेवालों के ही मत गिने गये हैं, और जब उनकी सम्मति मिल गई, तभी वह मन्दिर हरिजनों के लिए खोला गया है। इसी रीति से मैंने अनेक मन्दिर खुले हैं। और, इस तरह मन्दिर खोलने में मैं कोई दोष नहीं देखता। मन्दिर में जानेवाले दर्शनार्थियों की इच्छा के विरुद्ध जहाँतक मेरी चलती है कोई मन्दिर खुलता ही नहीं। और आज तो सुधारकों में मेरी चलती ही है। अब एसेम्बली में मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी जो बिल पेश हुआ है, उसे भी यदि वहाँ के हिंदू मेंबर स्वीकार करने को तैयार नहीं, तो वह मेरे काम का नहीं। मुझे ज़बरदस्ती यह बिल पास नहीं कराना है। मैं अपने को सनातनी हिंदू मानता हूँ। मुझे इस मर्यादा के अन्दर रहकर ही बिल को पास कराना है। इस बिल के सम्बन्ध में इन सभाओं इत्यादि में मैं कहीं भी मत-संग्रह नहीं करता, क्योंकि यह शास्त्र व क़ानून की पेचीदा बात है। इसे साधारण जनता समझ नहीं सकती। यह तो वकीलों और शास्त्रियों का ही काम है। यह एक अटपटी-सी बात है। मैं मानता हूँ कि ऐसी अटपटी बातों को सरल करके साधारण जनता को समझाने की शक्ति मुझ में है। किंतु मेरी यह शक्ति इस बिल के संबंध में लागू नहीं होती। इसी से मैंने इस बिल के गुण या दोष के संबंध में किसी जगह सभाओं में लोगों के मत नहीं लिये। किंतु बिल आवश्यक है या नहीं इसे तो सामान्य मनुष्य कह ही सकता है। बंबई में सन् १९३२ के सितंबर में हिंदूसमाज के प्रतिनिधियोंने हिंदू जनता के नाम पर यह प्रतिज्ञा की थी, कि अब से हिंदूसमाज में अस्पृश्यता न मानी जायगी। उसमें यह भी कहा गया था, कि कुएँ, धर्मशालाएँ इत्यादि तमाम सार्वजनिक संस्थाओं में प्रवेश करने और उन्हें काम में लाने का हरिजनों का उतना ही अधिकार है जितना कि सवर्ण हिंदुओं का है। यह बात भी उस प्रतिज्ञा-पत्र में थी, कि हरिजनों का सार्वजनिक मंदिरों में भी जाने का हक़ है, और जब हमारे हाथ में अपने देश की सत्ता आ जायगी, तब हम इसका क़ानून बना देंगे। और अगर आज क़ानून बनवा सकेंगे, तो बनवा देंगे। क़ानून का उल्लेख उसमें आया है, क्योंकि मौजूदा क़ानून को बदले बिना प्रगति का होना सम्भव नहीं। रास्ते में जो पहाड़ अड़ा हुआ है, उसे तो दूर करना ही होगा। फिर भी इस बिल के सम्बन्ध में जो शंका है उसे मैं दूर कर देना चाहता हूँ। बिल के बारे में मेरे ऊपर एक इलज़ाम लगाया गया है, और आप जानते हो, कि उस इलज़ाम का लगानेवाला कौन है? लखाटे जैसा जन-सेवक और त्यागी! बरसों से लखाटेजी जनता जनार्दन की सेवा करते आ रहे हैं। हाँ, तो उन्होंने पूना की सार्वजनिक सभा में उस दिन कहा, कि गांधी तो मुसलमानों और ईसाइयों का मत लेकर बिल पास कराना चाहता है। इस पर मुझे हँसी छूटी, कि लखाटे जैसा मनुष्य ऐसा क्यों मान रहा है! उनसे तो जो लोगोंने कहा वह मान लिया। मैंने उनकी आँखें खोलते हुए कहा कि जैसा आप मानते हैं वैसी कोई शंका की बात नहीं है। बिल के बारे में जो मर्यादा बाँध दी गई है, वह 'हरिजन' में कई बार प्रकाशित हो चुकी है।

यह उदासीनता कैसी ?

अन्त में एक बात और। आपने कहा है, कि हमने इतना काम किया है, पर यह कार्य तो पहाड़ के आगे राई-जैसा है। इसमें मग़रूर होने की कोई बात नहीं है। आप अपने काम के लिए धन्यवाद चाहते हो, तो मैं धन्यवाद देने को तैयार हूँ, पर संकोच के साथ। आप लोगोंने यह भगीरथ कार्य नहीं किया है। काठियावाड़-जैसे साहसी मनुष्य इस काम में ढिलाई क्यों दिखायँगे? हिस्सनवार काठियावाड़ी अस्पृश्यता का पालन तो नहीं करते। फिर भी वे इस काम के प्रति उदासीन-से क्यों हैं? हिंदू-समाजरूपी शरीर में अस्पृश्यता एक सड़ा हुआ अंग है। उसे दूर करने का इलाज न किया गया, तो समाज का शरीर ठूंठ हो जायगा। ठूंठा समाज फिर कैसे चल सकता है, कैसे प्रगति कर सकता है? इसमें तो उसका नाश ही समझो। धर्म का अंग-भंग करके क्या हम उसे चला सकते हैं? धर्म का तो प्रत्येक अंग उसका अविभाज्य अंग होता है। ठाट में से एक ईंट निकल ली जाय, तो ठाट ढह जाती है। इसी प्रकार धर्म के एक अंग का उच्छेद हो गया, एक ईंट निकाल ली गई, तो धर्म की सारी इमारत भरभराकर ढह गई समझिए। इस तरह वह टिकने की नहीं। दूसरे कामों में हम इतने चूर हो रहे हैं, कि यह देखते ही नहीं कि हिंदूसमाज कितना पिछड़ा पड़ा है। मेरे-जैसा आँखवाला तो हिंदूसमाज की यह हालत देख रहा है। इसका अर्थ कोई यह न समझे, कि हिंदू मुसलमानों से आगे बढ़ जायँ,

उनसे अधिक शक्तिशाली हो जायं । मैं हर्गिज़ यह नहीं चाहता । मैं सैकड़ों बेर यह कह चुका हूँ, कि हिंदू अगर अपनी इतनी आत्म-शुद्धि कर लेंगे, तो हमारी सारी मनोकामनाएँ पूरी हो जायँगी, और हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सभी संप्रदायों के बीच आज जो वैमनस्य मौजूद है उसे भी हम दूर कर सकेंगे। यह कितनी सुन्दर वस्तु है। यह पोषक है, नाशक नहीं । पर यह तभी हो सकता है, जब हमारे हरिजन-सेवक शुद्धचरित्रवान होंगे। उनका हृदय शुद्ध न होगा, वे निःस्वार्थ न होंगे, तो वे धर्म की सेवा कर ही नहीं सकते ।

साप्ताहिक पत्र

[३१]

निर्देशिका

३० जून

साबरमती : हरिजन-आश्रमवालों, कांग्रेसी साम्यवादियों तथा कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं के साथ बातचीत; संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ३३॥ ≈)॥; भावनगर के लिए प्रस्थान, रेल से १८० मील । वीरमगाँव : सार्वजनिक सभा, जनता का मानपत्र तथा धन-संग्रह ८२७।≈)॥ दिन भर का कुल धन-संग्रह १११२ =)।

१ जुलाई

भावनगर जाते हुए मार्ग में : उमराला में धन-संग्रह ७५); सिहोर और गुरुकुल से ७५॥ ≈), अन्य स्टेशनों पर ६८॥–)६ ।
भावनगर में सार्वजनिक स्वागत, तरुण कार्यकर्त्ताओं और सनातनियों से भेंट, हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण; नयी हरिजन-बस्ती की आधार-शिला रखी, सार्वजनिक सभा, तथा काठियावाड़ की थैली २६८४८॥ ≈)।, जिसमें निम्नलिखित स्थानों की थैलियाँ शामिल हैं—भावनगर की थैली ९०४०॥≈)', अमरेली की १४६९॥।)॥, चकाला की ३५४।=)॥, वढिया की १०१), लखतर की २०४), जेतपुर की ४५७), कुंडला की २८१), मांगरोल की ४८४), मान की ६०७॥।), बम्बई के काठियावाड़ियों की ९८५॥), धोराजी की ११७८॥), वीरावल और पाटण की १७०४), पोरबन्दर की २८३५), बीकानेर की २०१), महुआ की १८३), जामनगर की १९६४), जूनागढ़ की २०२०॥।=), राजकोट की २२०३–), मोरवी की ३०४); सन्ध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ४०=)११; दिनभर का कुल धन-संग्रह २७३२३–)

२ जुलाई

भावनगर : मौन-दिवस । धोराजी के व्यापारियोंने दिया १०१), गढ़डा से प्राप्त हुआ ३३८।–), सन्ध्या की प्रार्थना के समय ६४॥।–)४ । दिनभर का कुल धन-संग्रह ४९८।।)४ काठियावाड़-हरिजन-सेवक-संघ तथा काठियावाड़ राजकीय परिषद्-हरिजन-समिति का संयुक्त अधिवेशन ।

३ जुलाई

भावनगर : ठक्कर-हरिजन-आश्रम तथा खादी-भंडार का निरीक्षण; हरिजन कार्यकर्त्ताओं से भेंट-मुलाक़ात; २०५०) का एक गुप्तदान मिला, सामलदास कालेज से १९५) प्राप्त हुए; महिला-सभा में ८२॥≈)॥ प्राप्त हुए । भावनगर से अजमेर को स्वानगी रेलसे, ४५० मील । बोटाद स्टेशन पर ४६१॥।=), राणपुर में २६७–)७, लिंबडी में १७६), वढवाण में सभा तथा धन-संग्रह १२५७), महिला-सभा में १५७) । दिनभर का कुल धन-संग्रह ५६०८॥।≈)७

४ जुलाई

अजमेर जाते हुए रास्ते में, मेहसाणा : सभा, तथा हरिजनों का मानपत्र और धन-संग्रह १२५०॥।–)१०½ । पालनपुर : सभा, मानपत्र तथा धन-संग्रह ११५७॥।=)॥; दिनभर का कुल धन-संग्रह २७८६॥।)१½

५ जुलाई

अजमेर : महिला-सभा में धन-संग्रह २९९)॥।; स्वागत-समिति, सनातनियों, हरिजन-नेताओं, प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ और राजस्थान-चरखा-संघ के कार्यकर्त्ताओं से भेंट, थैली २००); कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं, और हरिजन-सेवकों से मुलाक़ात । नसीराबाद की थैली १०१), सूरजगढ़ की थैली १०१), जैपुर की थैली ६५१), फतेहपुर की थैली २००), डूंगरपुर की थैली १०१), करौली की थैली १२१) हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण; सार्वजनिक सभा तथा मानपत्र और थैली १८९०॥।)॥।; दिन-भर का कुल धन-संग्रह ४९४२॥–)॥।

काठियावाड़ी युवक

१ जुलाई को भावनगर में गांधीजी काठियावाड़ के नवयुवकों से मिले, और उनके अनेक प्रश्नों के उन्होंने उत्तर दिये । एक युवकने जब यह प्रश्न किया कि आप हरिजन-आश्रम में क्यों नहीं उतरे हैं, तो गांधीजीने जवाब दिया, कि जबकि मैं सवर्ण हिंदुओं का हृदय परिवर्तन करने के लिए यह प्रयास कर रहा हूं, तो मेरा यह कर्तव्य हो जाता है, कि मैं न केवल उनका निमंत्रण स्वीकार करूं, बल्कि कोशिश भी करूं, कि वे मुझे अपने यहाँ टिकावें । एक युवकने गांधीजी से पूछा, कि अपने हरिजन-प्रवास में आप इतना बड़ा दल लेकर जो चल रहे हैं वह कहाँतक उचित है ? गांधीजी तो एक-एक पाई का हिसाब रखनेवाले ठहरे । जब वे चिट्ठियाँ पढ़कर रद्दी की टोकरी में डालने लगते हैं, तब उनकी आलपीनें बड़े ध्यान से निकाल लेते हैं और उनमें जो कोरा कागज़ रहता है, उसे भी बड़ी हिफ़ाज़त से रख लेते हैं । फिर जब बड़ी-बड़ी रक़मों के ख़र्चने का सवाल दरपेश हो, तब तो वे और भी बारीकी से काम लेते हैं । उन्होंने इस प्रश्न का जवाब देते हुए कहा, 'कुछ लोग तो अपने ख़र्चे से मेरे साथ यात्रा कर रहे हैं, और बाक़ी लोगों का प्रवास-व्यय मेरे एक मित्र दे रहे हैं । हरिजन-कोष से यह पैसा ख़र्च नहीं हो रहा है । मैं जन्म का ही शिक्षक हूँ, इसलिए मेरे कुछ मित्र जनसेवा का कार्य सीखने के लिए मेरे साथ रहते हैं । कुछ मेरे निजी काम में मदद देने के लिए मेरे साथ हैं, तो कुछ ऐसे भी हैं, जिन्हें आप चाहें तो 'अजागलस्तन' कह सकते हैं, लेकिन मैं तो उनसे भी काम निकालने का प्रयत्न कर रहा हूं । मैं तो एक काठियावाड़ी बनिया ठहरा, इससे यह देखते रहना तो मेरा काम ही है, कि एक पाई भी बेकार ख़र्च तो नहीं हो रही है । फिर इस प्रश्न का उत्तर देते हुए, कि क्या उनकी दशा एक परास्त सेनापति-जैसी नहीं है, गांधीजीने कहा कि मैं तो जानता ही नहीं कि परास्त होना क्या चीज़ है । एक यह सवाल किया गया, कि क्या आप वेट (बेगार) प्रथा के

विरुद्ध हैं, और यदि हैं, तो उसे नेस्तनाबूद करने के लिए क्या करना चाहिए ? गांधीजीने कहा, 'मेरा तो सारा ही जीवन बेगार के ख़िलाफ़ लड़ने में बीता है—पहले खुद अपने कुटुम्ब में इसके विरुद्ध लड़ा, फिर दक्षिण अफ्रिका में और उसके बाद अपनी मातृभूमि में। अगर ग़रीबों से बेगार ली जाय, तो जन-सेवकों को चाहिए कि वे खुद ही बेगार को अपने ऊपर ले लें।' अगर धर्म का ख़ात्मा कर दिया जाय, तो क्या इससे हमारी कुछ हानि होगी, एक नवयुवकने पूछा। गांधीजीने इसके उत्तर में कहा, 'धर्म की ही नींव पर तो दुनिया की यह गाड़ी खड़ी हुई है। नींव अगर कोई उखाड़कर फेंक दी जाय, तो उस इमारत के ज़मींदोज़ होने में सन्देह ही क्या है ?' अंतिम प्रश्न यह था, कि क्या देशी राज्यों को नष्ट नहीं कर देना चाहिए। गांधीजीने कहा, 'एक सत्याग्रही की हैसियत से मैं उन्हें नष्ट नहीं करना चाहता, मैं तो इन राज्यों को लोक-सेवा के साधन बना देने के पक्ष में हूँ। देशी राज्यों में स्वतः कोई ऐसी अंदरूनी बुराई नहीं है।'

हरिजन-बस्तियाँ

तीसरे पहर गांधीजीने 'वणकरवास' का निरीक्षण किया। यह मुहल्ला रूवापारी से लगा हुआ है, और शहर से काफ़ी दूर है। पुलिस से इन वणकर भाइयों को कोई मदद नहीं मिलती, और शहर दूर होने के कारण हमेशा उन्हें अपने कामधंधे में अड़चन पड़ती है। विचार तो बहुत दिनों से किया जा रहा है, कि यह बस्ती यहाँ से हटाकर किसी अच्छी नज़दीकी जगह पर बसा दी जाय, और आशा है, कि इसमें अब जल्दी की जायगी। पर जहाँ वणकरों की नई बस्ती बसाई जाय, वहाँ की ज़मीन पर उनका अपना अधिकार होना चाहिए, ताकि फिर बेचारे उन्हें जगह न बदलनी पड़े, ज़िन्दगीभर बेचारे ख़ानाबदोश ही न बने रहें। अगर कोई अच्छी-सी जगह इस हरिजन-बस्ती के लिए मिल गई, तो सवर्ण हिंदुओं के संपर्क में आने से वे लोग सफ़ाई के नियमों का पालन करना सहज ही सीख लेंगे। किंतु हरिजनों का भी तो कुछ कर्तव्य है। अगर वे मद्य और मुर्दार मांस का सेवन छोड़ दें, और अपना शरीर, कपड़े और घरबार साफ़ रखने लगें, तो इससे सुधारकों को अस्पृश्यता के दूर करने में काफ़ी सहायता मिलेगी।

रूवापारी से गांधीजी भावनगर गये। यहाँ उन्होंने एक नई हरिजन बस्ती की नींव डाली। राज्य की सहायता से भावनगर की म्यूनिसिपैलिटीने इस बस्ती के बनवाने का निश्चय किया है। पहले तो यह विचार था, कि तीन साल में ३९ मकान बनवाये जायँ, पर गांधीजी के अनुरोध से अब यह तय हुआ है, कि एक ही बरस के अन्दर सारा काम समाप्त कर दिया जाय। भंगी लोग वेपुलिस के ऐन सामने टीन की झोपड़ियों में जिस हालत में आज रह रहे हैं उसे देखते हुए गांधीजी का यह कोई बहुत बड़ा अनुरोध नहीं है।

सार्वजनिक सभा

भावनगर की सार्वजनिक सभा में काठियावाड़ की तरफ़ से गांधीजी को उस दिन २७०००) की थैली मिली। अपना भाषण गांधीजीने इन शब्दों से आरंभ किया, 'आपने जो यह थैली काठियावाड़ की ओर से हरिजन-सेवा के लिए मुझे दी है इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आपका हरिजन-सेवा के विषय में इतना अल्प आत्मविश्वास है, और काठियावाड़ियों के सम्बन्ध में इतना कम भरोसा है, कि आपको २५ हज़ार रुपया एकत्र करने का संकल्प भी भारू हो गया और यह लगा कि इतना रुपया भी हम भाग्य से ही इकट्ठा कर सकेंगे और अगर न हुआ तो हम में से कुछ आदमी दो-चार हज़ार रुपया डालकर किसी तरह २५ हज़ार की थैली पूरी कर देंगे। आपने जो यह थैली मुझे दी है, वह भले आपकी आशा के अनुरूप हो, और उससे आपको सन्तोष हो, पर मेरे मन पर इसका यह असर नहीं पड़ा। यहाँ काठियावाड़ में कितने ही ये सब पहली श्रेणी के राज्य हैं। हमारा काठियावाड़ भिखारी थोड़ा ही है? काठियावाड़ के लोग साहसी हैं, उद्योगी हैं। पर माँगनेवालों को ही संकोच लगता है। बेचारा देनेवाला क्या करे ? कहाँ हरिजन-सेवा-कार्य और कहाँ यह काठियावाड़ की थैली ! हमारे सामने तो भगीरथ-कार्य करने को पड़ा है।' गांधीजी का पूरा भाषण इसी अंक में अन्यत्र दिया गया है।

ठक्कर-हरिजन-आश्रम

३ जुलाई को गांधीजीने ठक्कर बापा के नाम से प्रसिद्ध हरिजन-आश्रम देखा। आश्रम के हरिजन बालकों के मुख से मधुर स्वर में दोहे और भजन सुनकर तथा लकड़ी इत्यादि का खेल देखकर गांधीजी बड़े प्रसन्न हुए। स्व० लालाजी के लोक-सेवक-मंडल के सदस्य श्री बलवन्तराय मेहता के परिश्रम और ठक्कर बापा के आशीर्वाद से यह आश्रम चल रहा है। यहाँ के बालकों को सुनियमित दक्षिणामूर्ति विद्यालय में शिक्षा दी जाती है।

स्वावलंबी खादी

वहां से गांधीजी खादी-भण्डार देखने गये। अखिल भारतीय चरखा-संघ की काठियावाड़ी शाखा इस भंडार को चला रही है। इसके अलावा अमरेली के पास भावनगर और बड़ोदा के क़रीब १०० गाँवों में चरखा-संघ वहाँ के ग़रीब किसानों को कम-से-कम कपड़े-लत्ते के बारे में स्वाश्रयी व स्वाधीन बनाने का यथाशक्य प्रयत्न कर रहा है। कपास की फ़सल इधर बहुत अच्छी होती है। यह हुआ कि इसकी फ़सल आने पर किसानोंने ६००० मन कच्ची कपास अपने लिए रखली और अपने घरों में खुद उसे ओट डाला। ५०० किसानोंने धुनाई सीखकर ५०० मन रुई अपने घरों ही धुनक डाली। १६०० मन सूत चरखे पर काता गया और घरेलू इस्तेमाल के लिए उस सूत के कपड़े बुनवाये गये। हरिजन बुनकरों को इस प्रवृत्ति से बड़ा लाभ पहुँचा। बुनाई का काम न मिलने से बेचारों को दूसरे काम-धन्धे ढूँढ़ने पड़ते थे। और किसानों को भी इससे लाभ हुआ। कल की ओटाई हुई कपास के बिनौले से हाथ की ओटाई कपास के बिनौले बोने पर बहुत अच्छे साबित हुए।

राज्य की गोशाला

राजकीय गोशाला की थोड़ी-सी चर्चा किये बग़ैर मैं भावनगर की कथा समाप्त करूं, यह कैसे हो सकता है। अपने मित्र स्वामी आनन्द के साथ उक्त गोशाला के देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। गोशाला में बड़ी बढ़िया गायें हैं। गोशाला के एक साँड के बारे में पशुओं के प्रवीण पारखी महाराजा साहब भावनगर का तो यहाँतक कहना है, कि यह

साँड सारे काठियावाड़ में अपना सानी नहीं रखता है। क्या अच्छा हो, कि राज्य की ओर से गायों की नस्ल सुधारने की एक सुंदर योजना बनाई जाय, जिसके अनुसार हर गाँव में एक-एक बढ़िया साँड रख दिया जाय, और दूसरे तमाम बैल बधिया करा दिये जायँ और धर्म के नाम पर जो साँड छोड़ा जाय, वह बढ़िया से-बढ़िया नसल का हो, नहीं तो यह 'साँड-समर्पण' की धर्म-प्रथा एकदम मेट दी जाय।

अजमेर को प्रस्थान

३ जुलाई को स्पेशल ट्रेन से गांधीजी भावनगर से अजमेर के लिए रवाना हुए। रेलवे विभागने खास तौर पर यह प्रबन्ध किया था, ताकि दिन में ही खास-खास स्टेशनों से गांधीजी गुज़र सकें। इस तरह बोटाद, लिंबड़ी और वढ़वाण की सभाओं में गांधीजी भाषण भी दे सकें और हरिजन-कार्य के लिए रुपया भी इकट्ठा कर सके। दूसरे दिन मेहसणा में हम लोगों ने गाड़ी बदली, मेहसणा में जो समय मिला, इस बीच में वहाँ सभा हुई और थैली भी मिली। पालनपुर स्टेशन पर भी सभा हुई, और रुपया-पैसा तो हर स्टेशन पर गांधीजी को मिला।

अजमेर की महिला-सभा

४ जुलाई की रात को गांधीजी अजमेर पहुँचे। दूसरे दिन सबेरे महिलाओं की सभा हुई, जिसमें भाषण देते हुए गांधीजीने कहा, "मैं आप लोगों के आगे कोई ख़ास दलील नहीं रखना चाहता। इसमें कौन इन्कार कर सकता है, कि हम सभी इस संसार में प्रेम-बंधन से बँधे हुए हैं, प्रेम का क़ानून हमारे ऊपर शासन कर रहा है? गोस्वामी तुलसीदासने कहा है, कि 'दया धर्म का मूल है,' दया ही धर्म की जड़ है। चूँकि यह अस्पृश्यता प्रेम और दया की भावना के विपरीत है, इसलिए इस पाप का अन्त अब होना ही चाहिए। एक ओर तो हम प्रेमभाव का दावा करें और दूसरी ओर अपने ही लाखों-करोड़ों भाइयों को गंदी-से गंदी जगहों में रखें, उन्हें कुओं से पानी न भरने दें, पशुओं के गँदले हौज़ों से उन्हें पानी पीने को मजबूर करें, और अगर सार्वजनिक कुओं पर वे बेचारे अपना हक़ समझ कर पानी भरने जायँ तो उनपर आक्रमण कर बैठें—यह दोनों बातें भला एकसाथ कैसे हो सकती हैं? इसी तरह जब सवर्णों के गंदे बच्चे ख़ासी अच्छी तादाद में स्कूल-मदर्सों में जा सकते हैं, तब हरिजन बच्चों को, उनके सफ़ाई से रहते हुए भी, सार्वजनिक स्कूलों से अलग रखना कहाँतक उचित है, कहाँतक न्यायसंगत है? दूसरों को अपने से नीच समझना एक प्रकार का अभिमान है, जिसे तुलसीदासजीने सब पापों का मूल कहा है (पाप-मूल अभिमान), और अभिमान तो नाशकारी है ही।"

कुछ ख़ास कष्ट

गांधीजी राजपूताना के हरिजन नेताओं से जब मिले, तो उन्होंने सब से पहले बेगार-प्रथा का रोना रोया। रजवाड़ों में ग़रीब हरिजनों से बेगार में खूब काम लिया जाता है। दूसरी शिकायत पानी की थी। पश्चिमी राजपूताना बहुत-कुछ रेगिस्तान से मिलता-जुलता है। पानी का एक तो योंही अभाव है, फिर जहाँ दो-चार सार्वजनिक कुएँ हैं भी उनसे हरिजनों को पानी नहीं भरने दिया जाता। अकेला एक ही धर्मात्मा धनाढ्य मारवाड़ी अपना थोड़ा-सा द्रव्य इस पुण्य-कार्य में लगाने का निश्चय करले, तो ग़रीब हरिजनों का यह बारहमासी जल का अकाल सहज ही दूर हो जाय। कुछ और भी शिकायतें थीं, जैसे बड़े आदमियों के सामने न तो वे घोड़े या साइकिल पर चढ़ सकते हैं, न खाट पर बैठ सकते हैं! सोने-चाँदी के ज़ेवर या अच्छे कपड़े भी नहीं पहन सकते हैं। उनका खाना लगाना भी गुस्ताख़ी में शुमार किया जाता है! ये सब झूठे बड़प्पन की शान व ठसक बनाये रखने की भित्ति पर बने हुए पुराने ज़माने के ठकुराइसी क़ानून हैं।

खादी-सेवकों की हरिजन-सेवा

इसके बाद गांधीजी अखिलभारतीय चरखा-संघ की राजस्थानी शाखा के कार्यकर्त्ताओं से मिले। खादी-प्रचार के साथ-साथ चरखा-संघ के सेवकोंने जो हरिजन सेवा का कार्य किया उसकी रिपोर्ट उन्होंने गांधीजी को भेंट की। १९२६ में ही खादी के केन्द्र अमरसर में इन लोगोंने एक हरिजन-पाठशाला स्थापित कर दी थी। पाठशाला इतनी अच्छी तरह से चली, कि धीरे-धीरे वहाँ के ब्राह्मण बनिये भी अपने बच्चों को उसमें भेजने लगे। आज वहाँ सवर्ण और हरिजन सभी बिना किसी भेदभाव के पढ़ते हैं। अपने इस पहले ही उद्योग से उत्साहित होकर इन लोगोंने अपना एक हरिजन-सहायक-मंडल स्थापित किया, जिसकी ओर से आज तीन पाठशालाएँ चल रही हैं, शराब और मुर्दार मांस छुड़ाया जा रहा है, दवा-दारू दी जाती है और जातीय पंचायतें संगठित की जाती हैं। चरखा-संघ की राजस्थानी शाखा का यह सेवा-कार्य क्या देश-भरके खादी-कार्यकर्त्ताओं के लिए एक नमूने का काम नहीं हो सकता है?

हरिजन-सेवा की शर्तें

हरिजन-सेवा की चर्चा करते हुए गांधीजीने हरिजन-सेवकों से कहा कि, "मैं चाहता हूं, कि पूरी सचाई और ईमानदारी के साथ हमारे सेवक हरिजनों की सेवा करें। सेवा का फल सेवा ही है। स्वार्थ या किसी राजनीतिक उद्देश का तो इसमें लेश भी नहीं होना चाहिए। हमारा मुख्य लक्ष्य तो हिंदूधर्म की शुद्धि है। इसलिए उन लोगों के लिए इस हरिजन-प्रवृत्ति में कोई स्थान नहीं हो सकता, जो इसमें राजनीतिक दृष्टि से पड़ना चाहते हैं। ऐसों को तो तुरंत ही इस आंदोलन से अलग हो जाना चाहिए, क्योंकि उनका इसमें बना रहना हरिजन-कार्य को भारी हानि पहुँचा सकता है। अगर इस प्रवृत्ति के पीछे हमारा कोई राजनीतिक उद्देश हुआ, तब हम सवर्ण हिंदुओं का हृदय कभी नहीं पलट सकते। इस आंदोलन में तो केवल उन्हीं को भाग लेना चाहिए, जो सत्य और अहिंसा का सिद्धान्त स्वीकार कर चुके हों, और जिनका यह विश्वास हो, कि मंदिर हिंदूधर्म का एक अविच्छेद्य अंग है।

हरिजन-बस्तियाँ

पहले गांधीजी को दिल्ली दरवाज़े की बस्ती दिखाई गई और उसके बाद म्युनिसिपैलिटी की हरिजन-बस्ती। तारागढ़ के ढाल में यह मूलासर की बस्ती है। शहरभर का कूड़ाकरकट और मैला यहीं डाला जाता है। आबादी चूँकि अब इस ढलाव तक बढ़ती आरही है, इसलिए म्युनिसिपैलिटी को चाहिए, कि वह इसे वहाँ से हटाकर दूर ले जाय, और साथ ही अपने मुलाज़िम हरिजनों की यह सड़ी झोंपड़ियाँ गिराकर अच्छी

उनके लिए अच्छे रहने लायक मकान बनवा दे। पानी का भी इस बस्ती में सख्त तकलीफ है—२०० परिवारों के लिए सिर्फ एक टोंटी है। हरिजन-सेवक-संघने इस विषय में म्युनिसिपैलटी को लिखा है। आशा है, कि अजमेर की म्युनिसिपैलिटी तुरंत मूलासर की बस्ती में काफ़ी टोंटियाँ लगवा देगी। रेगरों के मुहल्ले में भी गांधीजी गये। ये लोग भी अछूत माने जाते हैं। हाल में म्युनिसिपैलिटीने अपना एक बड़ा तालाब रेगरों के लिए खोल दिया है।

सार्वजनिक सभा

अजमेर में सार्वजनिक सभा तो हुई, पर एक दुर्घटनाने सब रंग में भंग कर दिया। तीसरे पहर काशी के पंडित लालनाथजी गांधीजी के पास आये थे और उन्होंने यह इच्छा प्रगट की थी, कि जिस तरह कटक इत्यादि की सार्वजनिक सभाओं में मैंने भाषण दिया था, उसी तरह अजमेर की सभा में भी मैं बोलना चाहता हूं। गांधीजी इसपर फौरन राज़ी हो गये, पर उन्होंने पंडितजी से यह कहा, कि मेरे पहुँचने के बाद आपको सभा में आना चाहिए। पर पंडित लालनाथ गांधीजी के पहुंचने के पहले ही अपना काली झंडोवाला दल लेकर वहां पहुंच गये, और उनके साथियों तथा जनता के कुछ लोगों में धींगामुश्ती हो गई, जिसमें लालनाथजी के सिर पर लठा पड़ा और लहू बहने लगा। इस दुर्घटना पर दुःख प्रगट करते हुए गांधीजीने कहा, "काली झंडीवालों का साथ लेकर पंडित लालनाथ को सभा में आने और हमारे आंदोलन के विरुद्ध प्रदर्शन करने का पूरा अधिकार था। जिस किसीने पंडितजी पर यह हमला किया है उसने बहुत बड़ी अशिष्टता की है। काली झंडियाँ सुधारकों का क्या बिगाड़ सकती थीं, परन्तु पंडित लालनाथ पर जो यह वार हुआ है उससे निश्चय ही हरिजन-कार्य को क्षति पहुंची है। जिस किसीने पंडितजी पर यह वार किया है उसने ईश्वर तथा मनुष्य दोनों की ही दृष्टि में एक भारी गुनाह किया है। यह अपराध यों ही क्षमा नहीं किया जा सकता, क्योंकि मैं लालनाथजी की रक्षा का सारा भार अपने ऊपर ले चुका था। हिंसापूर्ण तरीकों से अस्पृश्यता का यह काला दाग़ कदापि नहीं मिट सकता। अवश्य ही इस पाप-कृत्य का मुझे कुछ-न कुछ प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। मेरा विश्वास है, कि हिंसा से, असत्य से या क्रोध से न तो धर्म की सेवा ही हो सकती है, न धर्म की रक्षा ही। धर्मरक्षा या धर्म की सेवा तो आत्मत्याग और आत्म-संयम के द्वारा ही हो सकती है। मैं तो राजनीतिक वातावरण में भी हिंसा को बरदाश्त नहीं कर सकता, फिर यह तो धर्मक्षेत्र है।"

गांधीजीने इसके बाद लालनाथजी से बोलने के लिए कहा। पंडितजी दो ही मिनिट बोले थे कि लोग 'शेम शेम' की आवाज़ उठाने लगे, और उनका बोलना मुश्किल हो गया। । इस पर गांधीजीने कहा, "यह तो आप लोगों की बहुत ही बुरी अशिष्टता है। एक तो पहले ही उन पर वार करके अविनय का काम किया गया और अब उनकी बात सुनने से इनकार करते हुए आप यह दूसरी अशिष्टता कर रहे हैं। अगर आप पंडित लालनाथ की बात सुनने को तैयार नहीं, तो इसका यह मतलब हुआ, कि आप मेरी भी बात नहीं सुनना चाहते। मुझ से कभी कोई भूल नहीं हुई यह दावा मैंने कभी नहीं किया। मैंने तो अपने जीवन में की हुई हिमालय-जैसी भारी-भारी भूलों को कबूल कर लिया है। अगर मैं मुक्तकण्ठ से यह कह सकता हूँ, कि अस्पृश्यता एक पाप है, तो लालनाथजी को भी यह कहने का उतना ही अधिकार है, कि उनकी राय में अस्पृश्यता-निवारण का यह आंदोलन एक अधार्मिक आंदोलन है। आप जो यह 'शेम शेम' की आवाज़ उठा रहे हैं, तो यह शेम (धिक्कार) की बात पंडितजी के लिए नहीं, बल्कि आपके लिए है। असहिष्णुता एक प्रकार की हिंसा है। जो मनुष्य अपने विरोधियों की बात नहीं सुनना चाहता, वह कदापि धर्माचरण का पात्र नहीं कहा जा सकता। हरिजन सेवा एक धार्मिक प्रवृत्ति है। इसमें असहिष्णुता या हिंसा के लिए स्थान नहीं है। मान लीजिए कि कोई मुझ पर ही घातक हमला कर बैठे, तो क्या आप आपे से बाहर हो जायँगे और पागल की तरह हिंसा करने पर उतारू हो जायँगे? अगर ऐसा है, तो मैंने व्यर्थ ही आपके आगे अपना जीवन बिताया। ऐसा करके तो आप इतने विशाल आंदोलन को ही ख़त्म कर देंगे। पर यदि आपने संयम से काम लिया तो मेरे शरीरांत के साथ-साथ इस अस्पृश्यता का अंत भी निश्चित समझिए।"

वालजी गोविंदजी देसाई

खादी की खपत पर

सिंद प्रांतीय चरखा संघ से प्रकाशित एक सूचना की ये पंक्तियाँ कितने महत्व की हैं। खादी अपनाने में टालटूल करने-वाले प्रत्येक भारत वासी को इन पर ध्यान देना चाहिए—

"हाथ की कारीगरी की उपेक्षा करके हम हाथ कटा बैठे, मशीनों के दास बन गये। आज यदि विभिन्न देशोंमें युद्ध छिड़ जाय, मशीनों का आना बन्द हो जाय, तो हम नंगे ही घूमें! यह नयी बात नहीं है। ऐसा हो चुका है। ऐसे अवसरों पर कपड़े का दाम मिलवालोंने इतना बढ़ाया, कि जो बेचारे धना-भाव से नहीं खरीद सकते थे, लज्जा-निवारण में उन्हें अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ा। हममें से अधिकांश इस इतिहास को अच्छी तरह जानते हैं—समझते भी हैं—पर कार्य-शक्ति न होने से सब व्यर्थ। चरखा चलाने के लिए पास में समय अब कहाँ से? १०० में से ९८ हममें से ऐसे हैं जो व्यर्थ के कार्यों में अधिकांश समय व्यतीत कर देते हैं। खादी उनकी मांग को पूरी नहीं कर सकती। इनके लिए अनेक त्रुटियाँ खादी में हैं। वह जल्दी मैली होती है। मोटी रहती है, दाम अधिक है, डिज़ाइन अच्छे नहीं हैं, आदि। यदि उनसे ही बहस के लिए इस विषय पर बोलने को कहा जाय तो ऐसे ही सज्जन खादी को सर्वोत्तम वस्त्र सिद्ध कर देंगे। हृदय में समझते भी हैं कि केवल देश के ही नाते खादी पहनकर हम अच्छा नहीं कर रहे हैं, किन्तु हमें इससे सचमुच लाभ भी है। पर मिलके और विलायती कपड़े की चिकनाहट, तर्ज़ और दिखावे के कम दाम देखकर फिसल पड़ते हैं। कुछ लोग, जो खादी-कार्य में लगे रहे, आज देख रहे हैं कि हमने इसे कहाँ से उठाया और आज इसे कहाँ तक उठा सके हैं। यदि उनकी ही भाँति देश के दसमांश निवासी ही खादी का व्यवहार कर देखें, तो अधिक नहीं केवल पाँच वर्ष में ही वे देख लेंगे कि देश का यह आवश्यक उद्योग कितनी उन्नति कर गया।

हरिजन-प्रवास में प्राप्त

[२८ मई से ३ जून, १९३३ तक]

साखीगोपाल (पुरी ज़िला)—म० आ० द्वारा एक अतिरिक्त थैली	१५≡)
सिबसागर (आसाम)—म० आ० द्वारा कैवर्त लोगों की थैली	५)
संभलपुर (उड़ीसा)—म० आ० द्वारा एक अतिरिक्त थैली	२८।)
कटक—स्टेशन पर धन-संग्रह	१८।=)।
भद्रक—स्टेशन पर धन-संग्रह	२२।≡)४½
खड़गपुर " "	३५।≡)॥।
मिदनापुर " "	३५।)।
बाँकुड़ा " "	३४।=)१०½
बाँकुड़ा से इन्द्राबिल तक धन-संग्रह	३॥।=)॥।
आद्रा—इन्द्राबिल से आद्रा स्टेशन तक	३९।)७½
मानभूम ज़िला—जयचन्द पहाड़ से खजूरा स्टेशनतक	४॥-)४½
बीरभूम (बंगाल)—रामरामपुर से सीतारामपुर स्टेशनतक धन-संग्रह	४०≡)
संथाल परगना—करमतार से झाकिया स्टेशनतक	१९॥।)।
पटना ज़िला—मोकामा स्टेशन पर	६॥-)।
गया ज़िला—म० आ० मुरारपुर के श्री सूर्यप्रसादने भेजा	२)
आसाम—गौहाटी की एक अतिरिक्त थैली आई	७।-)॥।
हैदराबाद (सिंध) म० आ० से श्री वसुमल मुराजमलने भेजा	५)
जमशेदपुर—श्रीविश्वनाथ पांडेने धन-संग्रह किया	२१९॥-)

ज़ेवरात के नीलाम से

आसाम—गौहाटी ज़िला	४५५)
कसीमपुर ज़िला	२२९॥=)।
सिबसागर ज़िला	२४४=)
दारंग ज़िला	२४६-)
ग्वालपाड़ा ज़िला	१४०=)
कामरूप ज़िला	१७५।)
नौगाँव ज़िला	२१।-)
बंगाल—रंगपुर	१६।≡)
दीनाजपुर ज़िला	१३०।-)
बिहार—देवघर	४१४≡)॥
गया ज़िला	१५७।)
हज़ारीबाग़ ज़िला	८०॥)
सारन ज़िला	१९।≡)
आरा	३१≡)
पटना	१२०॥=)
पुर्णिया	१०८।-)
मानभूम	८७)॥
राँची	११।≡)।
मुज़फ़्फ़रपुर	१६॥≡)
केन्द्रपाड़ा—सभा में फुटकर धन-संग्रह	२४।=)१½
गुलदान	११)
महिलाओं की थैली	२०२)
जनता की थैली	१७५)
नीलाम से	१॥)
बारीमूल (कटक)—सभा में फुटकर संग्रह तथा नीलाम से	३।≡)१½
केन्द्रपाड़ा—एक और थैला	३५)
इंदुपुर (कटक)—जनता की थैली	५१)
सभा में फुटकर संग्रह तथा नीलाम से	४२।)७½
कल्याणपुर—जनता की थैली	२२॥।)७½
कलमटिया—जनता की थैली	२८॥=)
सभा में फुटकर धन-संग्रह	९=)४½
अनयासपुर—जनता की थैली	११=)
सभा में फुटकर धन-संग्रह	६)४½
बारी (कटक)—गाँववालों की थैली	१०२॥≡)
विविध धन-संग्रह	१३॥=)॥।
नीलाम से	२४।)
नेवला (कटक)—सभा में फुटकर संग्रह	१२)॥।
साहसपुर " "	४≡)१
कबीरपुर—जनता की थैली	१४॥।)॥।
एक और थैली	२७)
विविध धन-संग्रह	२१)५
नीलाम से	४।)
बुढ़ाघाट—जनता की थैली	१३=)
सभा में फुटकर संग्रह	१०≡)१०½
नीलाम से	३)
कल्याणपुर—बुढ़ाघाट में एक और थैली	११)
कटक—नीलाम की रकमें प्राप्त	२१)
जाजपुर—जनता की थैली	५७०-)
सभाओं में फुटकर संग्रह	१२१)११½
नीलाम से	७)
जाजपुर रोड स्टेशन गाँव की थैली	४५॥)
हस्ताक्षर से	१०)
हरिजनों की थैली	३।)
जाजपुर की एक और थैली	१७)
कबीरपुर—एक और थैली आई	९)
बारी—एक और थैली आई	५॥)
मंजोरी (बालासोर ज़िला)- सभा में फुटकर संग्रह	८॥-)
भंडारी पोखरी—सभा में फुटकर संग्रह	१५।-)॥
गुलदान	२०)
हस्ताक्षर से	५)
तुड़ंगा—सभा में फुटकर संग्रह	५।≡)॥।
इस सप्ताह का कुल धन-संग्रह	५०००॥≡)॥
अबतक का कुल धन-संग्रह	४६३९१०=)¾

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupte.

सम्पादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २७ जुलाई, १९३४. [संख्या २३

विषय-सूची

गोंड़ जाति और उसकी सेवा

(१)

गांधीजी और गोंड़ जाति

धन्य थे वे दिन, धन्य थीं वे घड़ियाँ, जब पूज्य बापूजी की सेवा करते हुए मुझे अपने प्रांत के दौरा करने का अवसर मिला था। गांधीजी का मुख्य कार्य उन दिनों हरिजन-सेवा ही का था; किंतु मध्यप्रांत के ज़िलों में जहाँ-जहाँ गांधीजी के चरण पड़े, उनका स्वागत करने के लिए एकत्रित जन-समूहों में हरिजनों की अपेक्षा ये 'वनजन' गोंड भाई ही अधिक थे। हिंदी ज़िलों में पदार्पण करते ही गोंडों के झुंड-के-झुंड बापू के दर्शनार्थ आधी-आधी रात को भी निर्जन जंगली रास्तों पर खड़े मिलते और सभाओं में काफ़ी तादाद में आते थे। क्या छिंदवाड़ा क्या बालाघाट, क्या सिवनी, क्या बेतूल या मंडला सभी जगह गोंडों की लँगोटी खड़ी दिखाई देती थी।

इच्छा होते हुए भी कुछ तो समयाभाव और कुछ दूरी के कारण गांधीजी फादर एल्विन-द्वारा संस्थापित करंजिया (मंडला) के 'गोंड-सेवा मंडल' तक तो नहीं जा सके, किंतु कार्यक्रम तय होने पर भी बेतूल के श्री डंकन और मिस मेरी के आश्रमों को देखने का बापू पहले ही वचन दे चुके थे। तबीयत ठीक नहीं थी, तो भी वहाँ जाने का आग्रह तो रहा ही। जाड़े के दिन थे और फिर सतपुड़ा की पहाड़ियों की सरदी। बेतूल की वह सबेरे की हवा शरीर को जैसे काटे खाती थी। दाँत-से-दाँत बज रहे थे। उसी संध्यावेला में ठीक ६ बजे, बापूजी कंबल संभालते हुए मोटर में बैठ गये। दया करके बापूने मुझे ही साथ आने की ड्यूटी सौंपी। दिन निकलते-निकलते खेड़ी गाँव में पहुंचकर हमने मिस मेरी को सोते से जगाया। अपनी एक पालिता गोंड-बालिका को लिये वे बाहर निकल आईं। सेवा-पथ की पथिक मिस मेरी यहाँ एक मामूली-सी झोंपड़ी में भिक्षुणी का सा जीवन बिता रही हैं।

मिस मेरी को साथ लेकर हम लोग श्री डंकन के आश्रम की ओर चल दिये। हरे-भरे पहाड़ों के बीच कच्चे रास्ते पर जाने के बाद एक पहाड़ी पर डंकन साहब का आश्रम दीख पड़ा। बीच में नाला पड़ता था, इसमे मोटर से उतरकर पैदल चलना पड़ा। रास्तेभर गोंड-सेवा के प्रश्न पर और उसके साधनों के संबन्ध में बातचीत होती गई। बापूने आदि जातियों के विषय का साहित्य भी खूब पढ़ा है और इन पर विचार भी काफ़ी किया है। उनके विचार में भारत के मूल निवासियों का प्रश्न काफ़ी महत्व का है। उन्होंने कहा कि हमारे कार्यकर्ता चाहें तो इस पुण्य कार्य में अपना सारा ही जीवन लगा दे सकते हैं।

श्री डंकन एक स्काच सज्जन हैं। पश्चिम के विलासपूर्ण जीवन को त्यागकर इन्होंने भारत के उपेक्षित वनवासियों की सेवा करना ही अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य बना लिया है। हमने ऊपर जाकर उनकी कुटिया और गोंड़ बालकों के रहने का एक लंबा-सा फूस का मकान देखा। डंकन साहब का रहन-सहन बड़ा सादा और तपस्वियों के जैसा है। वे गोंडों का-सा ही जीवन उस अरण्य में बिता रहे हैं। एक गोंड बालक को अपने पास रख छोड़ा है। उसे दिखाते हुए बापू से उन्होंने कहा, 'फ़िलहाल तो यही मेरा आश्रम है।'

सतपुड़ा के इस सुरम्य पुण्यारण्य की शांत वनश्री को और निहारते-निहारते दो मिनिट को बापू ध्यानावस्थित हो गये। बाद में गहरी साँस खींचते हुए बोले, 'मेरे भाग्य में तो दौड़धूप ही बदी है। इस शांतिपूर्ण स्थान में अधिक देरतक रहना मेरे नसीब में कहाँ?' इतना कह वे उठ खड़े हुए।

श्री डंकन गांधीजी के साथ बेतूल तक आये, और अपनी कार्य-प्रणाली आदि पर बात-चीत करके अपने आश्रम को पुनः वापस चले गये। एक हम हैं, जो अपने मूलनिवासी गोंड भाइयों के परिश्रम की कमाई खाते हुए भी उनकी सेवा-सहायता करना तो दूर रहा उन्हें दिन-दिन पद-दलित ही करते चले आरहे हैं, और एक ये यूरोपीय सज्जन हैं, जो सतपुड़ा के विकट जंगलों में तपस्वियों की तरह रहते हुए उनकी सब प्रकार से सेवा कर रहे हैं।

गोंड जाति के विषय में 'हरिजन-सेवक' में एक लेख-माला लिखने का मेरा विचार है, जो तीन-चार अंकों में समाप्त होगी। हमारे सेवाप्रिय जनसेवकों का इस अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न पर ध्यान जायगा तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

ब्योहार राजेन्द्रसिंह

जैन मुनि और वेशान्तर

पिछले वर्ष 'हरिजन-सेवक' के किसी अङ्क में एक जैन मुनि के वेशान्तर करने के विषय में गांधीजीने लिखा था कि उन्हें स्वतन्त्र स्फूर्ति न होती हो और मेरी सलाह पर ही वे आधार रखते हों, तो मेरा धर्म हो जाता है कि मैं उन्हें वेश बदलने से

रोकूँ; क्योंकि दोष वेश में नहीं है, उसके दुरुपयोग में है।

पाठकों को शायद मालूम न होगा कि ऊपर जिन जैन मुनि का उल्लेख किया गया है वे ब्यावर (राजपूताना) के श्री चैतन्य मुनि (श्री चुन्नीलालजी महाराज) हैं। हाल ही में जब गांधीजी हरिजन-यात्रा के सिलसिले में ब्यावर पधारे थे, तब चैतन्य मुनिजी का और गांधीजी का इसी विषय पर अच्छा संवाद हुआ—पाठकों के, विशेष करके जैन भाइयों के, लाभार्थ उस संवाद का सार यहाँ दिया जाता है—

अजमेर के एक भद्रपुरुष सज्जनने कहा कि मुनिजी सेवा-प्रिय हैं, किन्तु समाज इनका बहुत विरोध करता है।

गांधीजी—यदि सेवा के लिए वेश-परिवर्तन करना है तो उचित नहीं, क्योंकि यदि एक राजा मिहनत करना चाहता है और लोग यह कहकर विरोध करते हैं कि राजा के लिए मज़दूरी करना उचित नहीं है तो वह राजा अपने लिबास को छोड़कर मज़दूरी करे, इसके बदले यह अधिक हितकर होगा कि वह अपने लिबास में ही काम करे। इसी प्रकार साधुओं का तो धर्म ही सेवा करना है। जब अपने खान-पान के लिए कुछ-न-कुछ प्रवृत्ति करते हैं, तो सेवा के लिए प्रवृत्ति करना और भी आवश्यक है, और इसमें कोई दोष नहीं है।

मुनिजी—मेरा मुख्य उद्देश सेवार्थ परिवर्तन करना नहीं है। किन्तु मैं साम्प्रदायिक वेशों को दलबन्दियों का चिह्न मानता हूँ। ये विभिन्न जैन-सम्प्रदाय के वेश शुद्ध जैनत्व के पोषक नहीं, किन्तु संकुचितता के द्योतक हैं; एवं जैन निग्रन्थ के नियम-उपनियम जो अति उत्कृष्ट हैं उनका पालन मुझसे होता नहीं है, अतः भिक्षादि में सदोष अन्न लेना पड़ता है जिससे दम्भ का सेवन होता है। अतएव जितना पालन हो सके उतना ही लोगों को दिखाना और उसके योग्य ही नाम रखना उचित मालूम होता है। इस दृष्टि से मैं अपने को जैन ब्रह्मचारी के योग्य कुछ अंशों में मानता हूँ और इसलिए वेश-परिवर्तन इष्ट समझता हूँ।

गांधीजी—दम्भ को छोड़ने से तो जिस पद की योग्यता न हो उसे छोड़कर योग्यतानुसार पद रखने के लिए किया हुआ परिवर्तन धर्मानुकूल है।

इस संवाद से यह बात भली भाँति प्रकट हो जाती है, कि गांधीजी के मतानुसार किसी भी सम्प्रदाय का साधु सेवार्थ पढ़ाना, सफाई करना, रोगियों की सेवा-शुश्रूषा करना, परोपकार के लिए चन्दा एकत्र करना, आदि कार्य करे तो दोष नहीं है। इसी प्रकार दम्भ को छोड़ने के लिए जो कुछ भी वेशादि में परिवर्तन किया जाय वह धर्म ही है।

हरिभाऊ उपाध्याय

द्विसाप्ताहिक पत्र

[३२-३३]

निर्देशिका

६ जुलाई

अजमेर से ब्यावर, मोटर से, ३२ मील। ब्यावर : सार्वजनिक सभा, तथा जनता का, हरिजनों का, जैन मुनियों का और जैन-गुरुकुल का मानपत्र; कुल धन-संग्रह ११७२।≈)२। ब्यावर से कराची रेल से, ५१७ मील। जोधपुर राज्य में कुल धन-संग्रह ९९३।≈)११, जिसमें मारवाड़ रेलवे जंक्शन की ६७।।)।। की थैली और लूनी स्टेशन की ८१४।।।-)२ की थैली शामिल हैं।

७ जुलाई

कराची जाते हुए : गदरो में ८७।।); छोर में ४५।।।-); धोरोनारो में ६४।≈)।; नाइीपली में १०१); अमराबाद में १२५), मीरपुर ख़ास में २६९।।≈)।।।; हैदराबाद में सभा तथा धन-संग्रह ३६२१≈)।; कोटड़ी में १४०।।।-)३६; जंगशाही वग़ैरा से ७३।।।≈); कराची की म्यूनिसिपैलिटी का मानपत्र; संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ४४।।।≈)।।।

८ जुलाई

कराची : हरिजन-सेवकों तथा कांग्रेसवालों से मुलाक़ात; इण्डियन मर्चेण्ट्स असोसियेशन के भवन की आधार-शिला रखी तथा वहाँ धन-संग्रह हुआ २३१५।।।≈)।।।; हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण; सार्वजनिक सभा तथा थैली ११०००); करखाना की थैली १६८); संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ७७।।)।

९ जुलाई

कराची : मौन-दिवस; संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ९९≈)२; दिनभर का कुल धन-संग्रह ५७०।।।-)५

१० जुलाई

कराची : हरिजन नेताओं से मुलाक़ात; विद्यार्थियों की सभा तथा धन-संग्रह ७९५-)१; शारदा-मंदिर की थैली १२२≈)।; महिला-मंडल की थैली ५१-)।; शिकारपुर की थैली २००१-); महिलाओं की सभा में धन-संग्रह ७२१।।-)।; संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह १३५।।-); दिनभर का कुल धन-संग्रह ४९५९।≈)२

११ जुलाई

कराची : प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ के कार्यकर्ताओं से मुलाक़ात; हरिजन-उद्योगशाला का निरीक्षण; भगवानलाल रणछोड़दासने दिया ८५५); कांग्रेसीकार्यकर्ताओं की बैठक; श्री शिवरतन सेठने दिया १०००); गुजरात-विद्यालय की थैली ७५।≈)४; कन्या-महाविद्यालय की थैली ५१।≈); संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह २३०।।)२; पारसियों की सभा में धन-संग्रह ५७७।।)।।; दिनभर का कुल धन-संग्रह १६५१५-)।।।; लाहौर को रवानगी रेल से, ७५५ मील।

१२ जुलाई

लाहौर को जाते हुए रास्ते में—हैदराबाद स्टेशन पर ९८८।-)२; बहादपुर स्टेशन पर १८९≈)२६; ठाकुर संदूक पंचायत में ७०); खानपुर में ९३≈)।।; खानपुर-हिन्दू-सभा की ओर से ५१); अहमदपुर-हिन्दू-पंचायत की ओर से १०१); लोदरा स्टेशन पर ६४≈-)।; खानेवाल स्टेशन पर २९६।।।-)१६; मियाँचन्नू स्टेशन पर १९५।।≈)।।; चिचावतनी स्टेशन पर ११५।।); माण्टगोमरी स्टेशन पर ६१७)। तथा महिलाओं की ओर से १११); ओकारा में ५२६।।।-); लाहौर में ८६-); दिनभर का कुल धन-संग्रह ३५२८।-)१

१३ जुलाई

लाहौर : ज़िला-हरिजन-सेवक-संघ के कार्यकर्ताओं से मुला-

कॉलेज। अंबाला की थैली १२१६॥); रावलपिंडी की थैली १०००); बन्नू की थैली ४२५); लुधियाना की थैली १०८६); हरिजनों के प्रतिनिधि-मंडल से मुलाक़ात; सर्वदलित-सभा, पंजाब का मानपत्र तथा थैली ११); सनातनधर्म प्रतिनिधि-सभाओं से मुलाक़ात तथा थैली १०१); विद्यार्थियों की सभा, मानपत्रादि और दयानन्द ए० वी० कालेज की थैली १००१); सनातनधर्म कालेज की थैली २५०); फार्मन क्रिश्चियन कालेज की थैली २५०); दयानन्द ए० वी० स्कूल की थैली १२५); दयालसिंह हाईस्कूल की थैली २०१); फुटकर धन-संग्रह ३०३॥-)७, राष्ट्रीय स्त्री-समाज की सभा तथा श्रीमती कस्तूर बा गांधी को मानपत्र और थैली २८०≈)॥; दिनभर का कुल धन-संग्रह ७५१६-)४

१४ जुलाई

लाहौर : छात्राओं की सभा, और मानपत्रादि; कन्यामहाविद्यालय की थैली ५००।; पुत्री-पाठशाला की थैली ९०), फुटकर धन संग्रह ३२८।॥)॥; ज़िला-हरिजन-सेवकों के प्रतिनिधि-मंडलों से मुलाक़ात; सियालकोट की थैली १७८१॥); जालंधर की थैली २००१); होशियारपुर की थैली २२९॥≈); जम्मू की थैली १६००।; जम्मू-हरिजन-सुधार-सभा का मानपत्र और थैली ४५१); सरगोधा की थैली ६३१); फ़ीरोज़पुर की थैली २६९३); हरिजनोद्धारक संस्थाओं से मुलाक़ात, हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण; रविदास हिन्दूसभा की थैली १०१); महिलाओं की सभा तथा थैली इत्यादि ३३१६।॥≈); साधारण तथा राष्ट्रीय स्त्री-समाज के मानपत्र; सर गंगाराम गर्ल्स स्कूल की थैली २८३); फुटकर धन-संग्रह ७७३॥≈)॥; दिनभर का कुल धन-संग्रह १३४२४≈)।

१५ जुलाई

लाहौर : ज़िला-हरिजन-सेवकों के प्रतिनिधि-मंडल : अमृतसर की थैली ४६५८॥)॥, कपूरथला की थैली ५०१); लायलपुर की थैली २४६०); शेखूपुरा की थैली ३२१); गुजरानवाला की थैली ७२५); हिसार की थैली १२७१); मुलतान की थैली ५०१); लाहौर के गुजराती बंधुसमाज की थैली २५१); अमृतसर के गुजराती सज्जनों की थैली ४५११); खालसा दरबार का प्रतिनिधि-मंडल; हिसार के ग्राम-सेवा-मंडल का डिपूटेशन, सनातन धर्म-सभाओं से मुलाक़ात; हिंदू और सिक्ख-प्रतिनिधि-मंडल; पंजाब-प्रांतीय दलित सभा का मानपत्र; प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ की बैठक; हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण; वाल्मीकि-सभाकी ओर से ५); सार्वजनिक सभा, मानपत्र तथा थैली ९३७०॥≈)॥ विविध धन-संग्रह ४६४॥।)॥; दिनभर का कुल धन-संग्रह २२८०४॥≈)।

१६ जुलाई

लाहौर : मौनदिवस। गुरदासपुर की थैली २४०-)॥; गुरदासपुर पूज्य बा गईं, वहाँ ६७॥-) प्राप्त; दीनानगर में १३७॥≈)४३; श्री धनीराम भल्लाने दिया २०००); संध्या की प्रार्थना के समय १०१॥≈)॥; दिनभर का कुल धन-संग्रह ३८१८॥-)१०३

१७ जुलाई

लाहौर : मुलतान-दयानंद ए० वी० स्कूल की थैली १०१); श्री गोपालदासने दिया १०००); स्वयंसेवक तथा सेविकाओं का व्यूह-प्रदर्शन, लोक-सेवक-मंडलवालों से तथा सीमाप्रांत के कार्यकर्ताओं और खादी-सेवकों से मुलाक़ात, आदमपुर के खादी-कार्यकर्ताओं की ओर से २५०॥।); सभा के कार्यकर्ताओं की ओर से ९५।)१३, डेरा गाज़ी ख़ां की थैली २००); झंग की थैली ८६॥); ईसाई, मुसलमान, नेशनलिस्ट तथा देशीराज्य प्रजा-मंडल और पत्रकारों से मुलाक़ात; पत्रकारोंने दिया ६२।≈)५; केन्द्रीय हिंदूयुवक-मंडल की थैली ५१); पंजाब प्रांतीय राजनीतिक कार्यकर्ताओं की बैठक, गुलाबदेवी अस्पताल तथा स्व० लालाजी के चित्र का उद्घाटन, माडल टाउन की सभा, मानपत्र तथा धन-संग्रह ८८९-)॥; दिनभर का कुल धन-संग्रह २७३६-)३३

जैनधर्म और अस्पृश्यता

६ जुलाई को बड़े तड़के ही गांधीजी अजमेर से ब्यावर पहुँचे। वहीं से कराची के लिए रेलगाड़ी पर सवार हुए। ब्यावर में गांधीजीने हरिजन-बस्तियाँ देखीं और सभा में भाषण दिया। ब्यावर की सभा में कुछ जैन साधुओंने भी गांधीजी को मान-पत्र दिया। उनके मानपत्र में यह कहा गया था, कि जैनधर्म में अस्पृश्यता के लिए स्थान नहीं है और वे हमेशा हरिजन-सेवा करने को तैयार हैं। जैनगुरुकुल के विद्यार्थियोंने भी एक मानपत्र दिया था, जिसमें 'उत्तराध्ययन' जैन सूत्र का यह श्लोक उद्धृत किया गया था:—

'कम्मणा बम्हणो होइ, कम्मणा होइ खत्तिओ।
कम्मणा वैसिओ होइ, कम्मणा हवइ सुद्दओ॥

अर्थात्, कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है और *कर्म से ही शूद्र होता है—जैनधर्म में* वर्णव्यवस्था कर्मणा मानी गई है, नकि जन्मना।

मार्ग में

कराची जाते हुए रास्ते में मारवाड़ जंक्शन, लूणी, कच्छ रोड, मीरपुर ख़ास और हैदराबाद तथा दूसरे स्थानों में सभाएँ भी हुईं और धन-संग्रह भी। हैदराबाद की सभामें गांधीजीने कहा 'मुझे दुःख है, कि मैं आपको अधिक समय नहीं दे सकता। मैं बहुत बुरी तरह से थक गया हूँ, और अगर मेरा वश चलता तो उड़ीसा की पैदल यात्रा के बाद का सारा ही यात्रा-क्रम मैं रद्द कर देता, और किसी एक जगह बैठकर जो कुछ सेवा कार्य बनता वहीं से करता। लेकिन मुझे अपने साथियों की बात माननी ही पड़ी, और शेष प्रांतों के एक-एक स्थान में जाने का उनका आग्रह अंत में स्वीकार कर लेना पड़ा।

हरिजन-सेवकों के साथ

८ जुलाई को कराची में गांधीजी सिंध के हरिजन-सेवकों से मिले। उन्होंने सबसे बड़ी शिकायत यह की, कि काबुली सूदख़ोरों के मारे सिंध के हरिजनों का नाक़ोदम है। ये लोग इन ग़रीबों से मनमाना ब्याज वसूल करते हैं, वह भी लाठी के ज़ोर पर। मूल और ब्याज उनके कहे मुताबिक भी देने को कोई तैयार हो, तो भी वे मानते नहीं, और लड़ने पर उतारू हो जाते हैं। गांधीजीने यह सलाह दी, कि ऐसे मामलों में सबसे पहले तो ख़ुदा से डरनेवाले नेक मुसलमानों की मदद की जाय। पर सेवकों का

[२२१ पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २७ जुलाई, १९३४

लाहौर की छात्राओं की सभामें

[लाहौर की विद्यार्थिनियों की सभामें गांधीजीने १४ जुलाई को निम्नलिखित आशय का भाषण दिया था।]

"आपने हरिजन सेवा के लिए मुझे जो थैलियाँ दी हैं उसके लिए मैं आपका आभार मानता हूँ। मुझे एक बहिनने सूत का एक हार भी दिया है। इस हार को देखकर मुझे दुःख हुआ है। जिस बहिनने यह हार बनाया है, उसे सूत-शास्त्र का जैसे कुछ भी ज्ञान नहीं है। यह सूत किसी काम में नहीं लाया जासकता। जो सूत काता जाय उसकी तुरंत ही अंटी बना लेनी चाहिए। जैसी दयाजनक दशा इस सूत की है, ठीक वैसी ही हमारी भी है। उसके लिए हम खुद ही जिम्मेवार हैं। आत्मा ही आत्मा का बंधु है, और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। यह बात लड़कियों, स्त्रियों और पुरुषों पर समानरूप से घट सकती है। मैंने अपने प्रवासों में लाखों लड़कियों का परिचय पाया है। उन सबके विचार में मैं पुरुष नहीं, बल्कि स्त्री ही हूँ। जब मैं दक्षिण अफ्रिका में था, तभी समझ गया था, कि मैं स्त्रीजाति की सेवा न करूँगा, तो मेरा सारा काम अधूरा ही रह जायगा। और स्यात् यही कारण है, कि जब मैं किसी महिला-समाज में जाता हूँ, तो वहाँ की महिलाएँ समझती हैं, कि उनके बीच जैसे कोई उनका मित्र आगया है। मैं अपने को हज़ारों लड़कियों का पिता मानता हूँ। लड़कियों के माता-पिता बनने का प्रयत्न मेरा सदा से ही रहा है। इसी नाते आप से मैं यहाँ एक बात कहूँगा। पंजाबी लड़कियों में टीमटाम का फैशन बहुत बढ़ रहा है। विलासिता यहाँ बहुत देखने में आती है। यद्यपि यह बात सबपर लागू नहीं होती, तो भी बहुतों पर तो घटित होती ही है। हमारी सभ्यता भी इस विलास को बढ़ाने में ही रही है। हमारा देश इस सत्यानाशी फैशन से छिन-छिन कंगाल होता जा रहा है। यदि हम सभी भोग-विलास में पड़ गये, तो हमारा नाश हो जायगा। इतिहास से पता चलता है, कि भोग में डूबी हुई जातियाँ नष्ट हो जाती हैं। भोग में डूबकर उबरना कठिन ही है। इससे मेरी विनय है, कि आप फैशन को त्यागदें, भोग-विलास में न पड़ें। दुर्भाग्य से हमारे स्कूल-कालिजों में पढ़ाये जानेवाले साहित्य की भी प्रवृत्ति कुछ ऐसी ही हो रही है। पर यह अच्छी बात है, कि यह साहित्य करोड़ोंतक नहीं पहुँच सकता, चंदहज़ार लोगों तक ही इसकी पहुँच है। जिस तरह पानी की सहज गति नीचे की ओर ही होती है, उसी तरह भोग-विलास को अपनाने-वाले भी अधोगति को ही प्राप्त होते हैं। हमें पता नहीं चलता और यह भोग हमें भीतर-ही-भीतर खोखला कर डालता है। आप इस आत्मघाती विलास से बचना चाहें तो अभी समय है, शीघ्र बच जावें, आपसे मेरी यही प्रार्थना है।

अब हरिजन-सेवा के विषय में। मैंने विद्यार्थियों से भी कहा था और आपसे भी वही बात कहता हूँ, कि अध्ययन से बचा हुआ समय आप हरिजन-सेवा में ही लगावें। इससे बहुत कुछ काम बन सकता है। अस्पृश्यता-निवारण के कार्य में आप बहुत कुछ सहायता दे सकती हैं। खादी को तो आप अवश्य अपनावें। साथ ही सूत शास्त्र का भी भली भाँति अभ्यास करलें। आज से दस बरस पहले जब मैं पंजाब आया था, तो यहाँ मैंने अच्छे चरखे देखे थे। पर आज तो वे चरखे अच्छी हालत में नहीं हैं। उड़ीसा प्रांत पंजाब से बहुत दरिद्र है सही, पर वहाँ की संस्कृति यहाँ से बढ़कर है। आप उड़ीसा-जैसे निर्धन प्रांत की सेवा करना चाहें, तो चरखा चलावें। इस प्रकार आपका खाली समय भी कट जायगा और विलास-पाश से भी आप मुक्त हो जायँगी। जो समय बचे, उसमें अवश्य आप हरिजनों की सेवा करें और चरखा चलावें। आपके शरीर पर तो सदा खादी ही रहनी चाहिए।"

द्विसाप्ताहिक पत्र

[२३५ पृष्ठ से आगे]

ख़ास काम तो यह होना चाहिए, कि हरिजनों में जाकर वे ऐसा प्रचार-कार्य करें, कि उनकी दारूखोरी और जुआ खेलने की सत्या-नाशी लत छूट ही जाय और क़र्ज़ लेने की उन्हें ज़रूरत ही न पड़े। अगर कभी किसी ख़ास ज़रूरत पर क़र्ज़ लेना ही पड़े, तो अधिक-से-अधिक ६ प्रतिशत ब्याज उन्हें देना चाहिए। थरपारकर ज़िले में क़रीब ५००० भील और मेघवालों की आबादी है। बड़ी तेज़ी से इन बेचारों के हाथ से ज़मीन निकलती जारही है, और किसानों से ये मज़दूर होते जा रहे हैं। क़ानूनी संरक्षण की इन्हें अत्यन्त आवश्यकता है। गांधीजीने भीलों और मेघवालों की इस दुर्दशा पर दुःख प्रगट करते हुए कहा, कि क़ानून बनवाने की ज़रूर कोशिश की जाय, पर जबतक ऐसा कोई क़ानून न बने, तबतक हमारे कुछ सच्चे सेवक इन पिछड़ी हुई ग़रीब जातियों की सेवा में क्यों न अपना सारा जीवन खपा दें?

भारतीय व्यापारी-मंडल

कराची के भारतीय व्यापारी-मण्डल (कराची इण्डियन मरचें-ट्स असोसियेशन) के भवन की उस दिन गांधीजीने नींव रखी। दो लाख रुपये से ऊपर इस भवन के बनाने में ख़र्च होंगे। एक लाख बीस हज़ार की तो ज़मीन ही इसके लिए ख़रीदी गई है। नींव रख चुकने के बाद गांधीजीने कहा "हरिजन-सेवा-कार्य को छोड़कर दूसरे किसी काम के लिए मुश्किल से ही मैं अपना समय काढ़ सकता हूँ। किस दिन यह दौरा समाप्त हो यही बाट जोह रहा हूँ। पर सिन्धप्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ के अध्यक्ष सेठ शिवरतन मोहता के इस प्रेमपूर्ण निमन्त्रण को मैं अस्वीकार नहीं कर सका।

भारत के व्यापारियों के साथ मेरा बहुत घनिष्ठ संपर्क रहा है। ग़रीबों की मैंने जो सेवा की उसमें उनकी मुझे सदा ही सहायता मिली है। राजे-महाराजे और बड़े बड़े सेठ-साहूकार भारतीय राष्ट्र के ही अंग हैं। ग़रीब और अमीर इन श्रेणियों में ऊपर से जो यह विरोध का संघर्ष दिखाई देता है, उसमें समन्वय स्थापित करने की मेरी सदा ही इच्छा रही है और इसके लिए मैंने प्रयत्न भी किया है। पर ऐसा करते हुए मैंने कभी भारत की निर्धन श्रेणी को नुकसान नहीं पहुँचाया। मैं खुद ही अपने को

दीन दरिद्र श्रेणी का एक व्यक्ति, एक प्रतिनिधि मानता हूँ। यह मैं कभी न चाहूँगा, कि जिस व्यापार से दरिद्रनारायण का रक्त-शोषण होता हो उसे भारत का व्यापारी वर्ग करे। मैं तो यह चाहता हूँ, कि तमाम पैसेवाले आदमी अपने को ग़रीबों का ट्रस्टी ही समझें। अक्सर यह हुआ है, कि स्वेच्छा से जो काम लोगोंने नहीं किया वह उन्हें मजबूरन करना पड़ा। पर ऐसा काम किस काम का? बिना त्याग के भोग में कोई स्वाद नहीं। भोग और त्याग का तो परस्पर सम्बन्ध है। भोग-विलास को ही जिन्होंने अपना एकमात्र लक्ष्य बना लिया है, उनका जीना-न-जीना बराबर है। मैं चाहता हूँ, कि भारत का धनी-वर्ग इस परम सत्य को अच्छी तरह समझले।"

हरिजन-बस्तियाँ

तीसरे पहर गांधीजीने शहर की कई हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण किया। सबसे पहले वे नारायणपुर की बस्ती देखने गये। यह एक 'नमूने' की चाली कही जा सकती है। कराची की म्यूनिसिपैलिटीने इसे बनवाया है। २३४०३४) इस पर खर्च हुए हैं। २०० कुटुम्ब इस चाली में बड़े आराम से रह सकते हैं। श्री नारायणदास आनन्दजी बेचार के नाम पर इस चाली का नाम-संस्करण हुआ है। कराची में श्री नारायणदास-जीने एक 'स्वीपर्स यूनियन' (मेहतर संघ) संगठित किया था। उनकी इस लगन का ही यह फल है, कि आज कराची का यह यूनियन काफ़ी तरक्की कर गया है। नारायणपुर में सह-कारी क्रेडिट बैंक है, वाचनालय है, रात्रि-पाठशाला है, कन्-ज़्यूमर्स को-आपरेटिव सोसाइटी है और एक दवाखाना भी है। इसके अलावा म्यूनिसिपैलिटी की ओर से हरिजनों के लिए १४ प्राइमरी पाठशालाएँ भी चल रही हैं, जिनमें ८०० विद्यार्थी पढ़ते हैं। म्यूनिसिपैलिटी के प्रमुख तथा प्रामाणिक जन-सेवक श्री जमशेद नसरवानजी को इस सबका श्रेय है।

इसके बाद गांधीजीने रणछोड़ लाइन की झोंपड़ियाँ देखीं। यह बस्ती बड़ी ही बुरी हालत में है। सब एक दूसरे से सटे हुए घर हैं। साँस लेने को भी जगह नहीं। न ठीक ठीक रोशनी आती है, न हवा। म्यूनिसिपैलिटी के सामने, मेरा ख़याल है यह प्रस्ताव रखा गया है, कि यह बस्ती 'मनुष्यों के न रहने योग्य' क़रार दे दी जाय। इस काम में देरी नहीं होनी चाहिए। म्यूनिसिपैलिटी को चाहिए, कि वह कराची के इस अत्यंत अभागे नागरिकों को तुरन्त इस नरकागार से उबार ले।

फिर 'रामदे चाली' देखने गये। यह एक सुन्दर चाली है। सेठ शिवरतन मोहताने इसे बनवाया है। यहाँ श्री नारायणदासजी का एक हरिजन-छात्रालय भी है।

यहाँ से हम लोग बाबा शीतलदास का 'बाग' देखने गये। यहाँ २५० ग़रीब हरिजनोंने ट्रस्ट की ज़मीन पर खुद अपने हाथों कुछ कच्चे झोंपड़े बना लिये हैं। इन लोगों की यह शिकायत है, कि ट्रस्टी लोग ज़मीन का किराया दूना कर देना चाहते हैं; और यही नहीं, बल्कि उन ग़रीबों की झोंपड़ियों पर क़ब्ज़ा भी कर लेना चाहते हैं। हमें आशा है, कि ट्रस्टी ऐसी कोई बात नहीं करेंगे, बल्कि अपने किरायेदारों को एक लम्बी मुद्दत का पट्टा (लीस) लिख देंगे।

कुम्हारवाड़ी, बग़दादी चाली, अरंबाग़ आदि बस्तियाँ भी गांधीजीने देखीं। अच्छी हालत में तो ये बस्तियाँ भी नहीं हैं। म्यूनिसिपैलिटी को चाहिए, कि इन बस्तियों में भी अपने हरिजन मुलाज़िमों के लिए वह अच्छे मकान बनवादे।

सार्वजनिक सभा

मौदा को सार्वजनिक सभा हुई। ३०००० के लगभग लोग गांधीजी का भाषण सुनने आये थे, जिनमें क़रीब ५००० महि-लाएँ थीं। दुःख है, कि लाउडस्पीकर ऐन मौक़े पर फेल हो गये, इससे लोग गांधीजी का भाषण ठीक-ठीक नहीं सुन सके। पर स्वामी कृष्णानन्दजीने लाउडस्पीकरों की बहुत कुछ स्थान-पूर्ति करदी। हरिजन-बस्तियों का प्रसंग उठाते हुए गांधीजीने कहा, 'रणछोड़-लाइन्स की चालियाँ देखकर मुझे बड़ी मर्मवेदना हुई है। मैं आशा करता हूँ, कि कराची की म्यूनिसिपैलिटी अपने सुन्दर नगर पर के इस कलंक को अविलम्ब धो डालेगी। तीन और भी ऐसी ही बस्तियाँ हैं, जिनका सुधार तुरन्त होना चाहिए। इस नगर के लिए क्या यह बदनामी की बात नहीं है, कि जहाँ आप लोग एक क्षण भी ख़ुशी से रहना पसंद न करेंगे, वहाँ कराची के अन्दर ये हरिजन—फिर चाहे वह एक ही क्यों न हो—रहने को मजबूर किये जायँ? इसलिए आप सब नागरिकों का यह फ़र्ज़ है, कि जबतक आपकी म्यूनिसिपै-लिटी आपके नगर पर लगे हुए इस कलंक को मिटा न दे, आपके हरिजन भाइयों के लिए अच्छे मकान न बनवा दे, तब-तक आप आराम से न बैठें।'

हरिजन

१० जुलाई को बड़े सबेरे कुछ ख़ास-ख़ास हरिजन गांधीजी से मिले, और उन्होंने अपने दुख सुनाकर कई बातों में गांधीजी की सलाह माँगी। म्यूनिसिपैलिटी के तथा दूसरे चुनावों के बारे में गांधीजीने कहा, कि हरिजन, हरिजन के बीच तो हर्गिज़ मुक़ाबला नहीं होना चाहिए। हरिजन ख़ुद आपस में सलाह करके जितनी जगह हों उतने योग्य उम्मेदवार चुनलें। यदि जन सेवा का अवसर मिलने के बजाय ये सीटें अधिकारों की लड़ाई का अड्डा बना दी गईं, तो हरिजनों का कोई लाभ न होगा।

कुछ हरिजनोंने यह भी माँग की, कि उन्हें अमुक फ़ीसदी सरकारी नौकरियाँ मिलनी चाहिएँ। इस पर गांधीजीने कहा, कि यह सुनकर शायद आप लोगों को अचरज होगा, कि सारे हिन्दोस्तानभर में मुश्किल से चन्द लाख जगहें सरकारी नौक-रियों की होंगी। उनमें से हरिजनों के पल्ले आख़िर पड़ेंगी ही कितनी? मान लें, कि थोड़ी-सी जगहें कुछ हरिजनों को मिल भी गईं, तो इससे क्या पाँच करोड़ हरिजनों का सवाल हल हो जायगा? इसलिए नौकरियों का प्रश्न तो अभी अलग ही रखा जाय, हरिजनों का ध्यान तो अभी योग्यता प्राप्त करने पर ही रहना चाहिए।

विद्यार्थियों से

दयाराम जेठमल सिंध कालेज में उस दिन गांधीजीने स्व० विट्ठलभाई पटेल के चित्र का उद्घाटन किया और उस अवसर पर कराची के विद्यार्थियों के आगे बड़ा ही पुरअसर भाषण दिया। उन्होंने कहा, 'तरुणों के लिए मेरे हृदय में

स्नेहपूर्ण स्थान है, और इसीसे मैं तुम लोगों से मिलने को तुरन्त राज़ी हो गया, यद्यपि तबीयत तो मेरी आजकल कुछ ऐसी है, कि किसी रोगीतक को देखने को जी नहीं करता।

इस हरिजन-प्रवृत्ति को तो स्वयं ईश्वर ही चला रहा है। लाखों-करोड़ों सवर्णों के हृदय-परिवर्तन की बात मनुष्य के वश की नहीं है, यह तो ईश्वर ही चाहे तो कर सकता है। अधिक-से-अधिक मनुष्य का किया इतना ही हो सकता है, कि आत्म-शुद्धि और आत्म-तितिक्षा के सहारे वह ईश्वर के कार्य का एक निमित्तमात्र बन जाय। मैं तो इस पर जितना ही अधिक विचार करता हूँ, उतना ही मुझे अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक पुरुषार्थहीनता का अनुभव होता है।

विद्यार्थियों को सबसे पहले नम्रता का अभ्यास करना चाहिए। बिना नम्रता के, बिना निरहंकारिता के वे अपनी विद्या का कोई सदुपयोग नहीं कर सकते। भले ही तुम लोग बड़ी-बड़ी परीक्षाएँ पास करलो और ऊँचे-ऊँचे पद भी प्राप्त करलो, पर यदि तुम्हें लोक-सेवा में अपनी विद्या का, अपने ज्ञान का उपयोग करना है, तो तुममें नम्रता का होना अत्यन्त आवश्यक है। मैं तुम से पूछता हूँ, कि भारत के उन दीन-दुखी ग्रामवासियों की सेवा में तुम्हारे ज्ञान का आज क्या उपयोग हो रहा है? दुनियाभर में आदर्श तो यह है, कि मनुष्य के बौद्धिक तथा आध्यात्मिक गुणों का मुख्य उद्देश्य लोक-सेवा ही हो, और अपना जीवन-निर्वाह तो उसे अपने हाथ-पैर चलाकर कर लेना चाहिए। ज्ञान उदरपूर्ति का साधन नहीं, किन्तु लोक-सेवा का साधन है। प्राचीन काल में क़ानूनी सलाहकार अपने आसामियों से एक पैसा भी नहीं लेते थे, और आज भी वही होना चाहिए। विद्यार्थी अगर देश-सेवा करना चाहते हैं, तो सूट-बूट और हैट धारण करके नक़ली 'साहब' बनने से काम नहीं चलेगा। तुम्हें एक ऐसे राष्ट्र की सेवा करनी है, जहाँ प्रति मनुष्य की औसत आमदनी मुश्किल से ४०) सालाना है। यह हिसाब मेरा नहीं, लार्ड कर्ज़न का लगाया हुआ है। इस दरिद्र देश की तुम लोग तभी सेवा कर सकते हो, जब कि मोटे खद्दर से तुम्हें सन्तोष हो, और यूरोपियन ढंग से रहने का यह सारा लोभ छोड़दो।

हरिजन-कार्य के लिए तुम लोगोंने मुझे जो यह थैली भेंट की है, उसका मूल्य तो तभी आँका जा सकता है, जब कि इसमें हरिजन-सेवा का तुम्हारा संकल्प भी पूरा-पूरा सन्निहित हो। तुम्हारे जीवन में यदि नम्रता और सादगी नहीं, तो तुम ग़रीब हरिजनों की सेवा कैसे कर सकते हो? ये बढ़िया-बढ़िया रेशमी सूट पहनकर तुम उन गंदी हरिजन-बस्तियों को साफ़ कर सकते हो? तुम्हें अवकाश का जितना समय मिले उसमें हरिजनों की सेवा तुम बड़ी अच्छी तरह से कर सकते हो। लाहौर और आगरे के कुछ विद्यार्थी इस प्रकार बराबर हरिजन-सेवा कर रहे हैं। गर्मी की छुट्टियाँ भी तुम इस काम में लगा सकते हो।

हरिजनों को हमने इतना नीचा गिरा दिया है, कि अगर उन्हें जूठन देना बन्द कर दिया जाता है, तो वे इसकी शिकायत करते हैं! ऐसे दयनीय मनुष्यों की सेवा तभी हो सकती है, जब सेवकों का हृदय शुद्ध हो और अपने कार्य में उनकी पूरी आस्था हो। सिर्फ़ आर्थिक स्थिति में सुधार कर देना ही काफ़ी नहीं।

ज़रा डाक्टर अंबेडकर-जैसे मनुष्यों की हालत पर तो सोचो। डाक्टर अंबेडकर के समान, मेरी जानकारी में, सुयोग्य, प्रतिभा-संपन्न और निःस्वार्थ मनुष्य इने-गिने ही हैं। तो भी जब वे पूना गये, तो उन्हें एक होटल की शरण लेनी पड़ी, किसीने उन्हें मेहमान की तरह अपने यहाँ न टिकाया। यह हमारे लिए शर्म में डूब मरने के लिए काफ़ी है। एक तरफ़ तो हमें डाक्टर अंबेडकर-जैसे मनुष्यों का हृदयस्पर्श करना है, और दूसरी तरफ़ शंकराचार्यों को अपने पक्ष में लाना है। हरिजनों को तो हमने, उनके लाख योग्य होते हुए भी, बुरी तरह पद-दलित कर दिया है, और शंकराचार्यों को नक़ली प्रतिष्ठा दे रखी है। काम हमें दोनों ही से लेना है, जोकि एक दूसरे से बिल्कुल प्रतिकूल दिशा में जारहे हैं। नम्रता, सहनशीलता और धैर्य के बिना यह कैसे हो सकता है?'

स्व० श्री विट्ठलभाई के सम्बन्ध में गांधीजीने कहा, 'सिर्फ़ विट्ठलभाई का चित्र कालेज-हाल में लटका देने से ही तुम लोग उनसे उऋण नहीं हो सकते। उनसे ऋणमुक्त तो तुम तभी हो सकोगे, जब उनकी निःस्वार्थता, उनकी सेवा-भावना और उनकी सादगी को तुम लोग ग्रहण कर लोगे। वह चाहते तो वकालत या दूसरा कोई अच्छा-सा धंधा करके लाखों रुपये कमा कर मालामाल हो जाते। पर वह तो सारी ज़िंदगी सादगी से ही रहे, और अंत में ग़रीबी की हालत में ही मरे। क्या अच्छा हो, कि तुम लोग भी स्व० विट्ठलभाई पटेल का इसी तरह पदानुसरण करो।

उस दिन सायंकाल महिलाओं की सभा हुई। देखने लायक दृश्य था वह। स्त्रियाँ सभामंच पर आतीं, बापूजी के हाथ में अपनी-अपनी पत्र-पुष्प की भेंट रख देतीं और अपने बाल-बच्चों के लिए बापू का आशीर्वाद लेकर प्रसन्नचित्त चली जाती थीं।

प्रांतीय संघ

११ तारीख़ को गांधीजी सिंध प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघके सदस्यों से मिले। संघ के मन्त्रीने हरिजन-सेवा का संक्षेप में कार्य-विवरण सुनाया। पारसाल गांधीजीने जब २१ दिन का अनशन किया था, तब २२०००) तो कराची में एकत्र हुए थे और १२०००) हैदराबाद में। यह सारा रुपया दोनों ही स्थानों में हरिजनों के लिए 'गांधीनगरों' के बनाने में ही ख़र्च किया जायगा। रोहरी का 'गांधीनगर' तो बिल्कुल तैयार हो गया है। सक्खर की म्यूनिसिपैलिटीने भी अपने हरिजन मुलाज़िमों के लिए २० पक्के घर बनवा दिये हैं। और हैदराबाद में डाक्टर चिमनदास जहाँ-तहाँ हरिजन-झोंपड़ियों में खिड़कियाँ बनवाने के काम में लगे हुए हैं।

फंड का रुपया-पैसा ख़र्च करने के सम्बन्ध में गांधीजीने संघ को यह सलाह दी, कि सिंध में मेरे प्रवास के सिलसिले में अभी जो रुपया जमा हुआ है, उसे एक प्रकार से आकाशवृत्ति से प्राप्त-जैसी चीज़ समझनी चाहिए, और इसलिए संघ के चालू ख़र्च में इस फंड की एक पाई भी ख़र्च नहीं होनी चाहिए। हर साल हमेशा की तरह स्वतंत्र रूप से जो पैसा इकट्ठा किया जाय, उसीसे संघ का यह सब चालू ख़र्च चलना चाहिए। मेरे प्रवास का सारा रुपया तो बघावकर-जैसे पिछड़े हुए ज़िले के उद्धार-कार्य में ही ख़र्च होना चाहिए। वहाँ रुपया और कहाँ से आ सकता है।

हरिजन-चर्म-उद्योगशाला

इसके बाद गांधीजीने हरिजन-चुनरशाला का निरीक्षण किया—इसमें अभी सिलाई और चमड़े के काम के ये दो विभाग हैं। ओहरा-परिवार के ५००००) के दान से इस चुनरशाला की स्थापना हुई है। दोनों विभाग दयालबाग़, आगरा, के विशेषज्ञों की देखरेख में चल रहे हैं। चमड़े का सब प्रकार का सामान यहाँ तैयार कराया जाता है, और विद्यार्थियों को काम भी सिखाया जाता है,जो तीन साल का कोर्स है। अभी हाल तो बाज़ार से ही तैयार चमड़ा ख़रीदा जाता है, पर जब टेनरी खुल जायगी, तब केवल मरे हुए ढोरों का ही चमड़ा उपयोग में लाया जायगा।

पारसियों की सभा

लाहौर के लिए रवाना होने से पहले जहाँगीर राजकोटवाला बाग़ में पारसियों की सभा हुई। स्वागत-गान के बाद श्री आर० के० सिधवाने पारसी राजकीय मंडल के स्वदेशी और मद्यनिवारण के कार्य का संक्षिप्त विवरण सुनाया। विवाह और नवजोत संस्कार के अवसर पर पारसियों का ८० प्रतिशत मद्यपान बन्द हो गया है। प्रतिवर्ष स्व० दादाभाई नौरोज़ी की जयन्ती पर यह मण्डल खादी और स्वदेशी की प्रदर्शिनी का भी आयोजन करता है। गांधीजीने इस सभामें भाषण करते हुए कहा, 'पारसियों के साथ मेरा सदा से ही भाईचारा रहा है। दान इस जाति का स्वाभाविक गुण है। पारसियोंने मुझे रुपये-पैसे ही नहीं दिये, अपने प्रेम की वर्षा भी उन्होंने मुझ पर हमेशा की है। इसलिए मैं उनसे यह प्रार्थना करने का हक़दार हूँ, कि भारत के करोड़ों ग़रीबों की सेवा में वे अपना जीवन लगादें। सात लाख गाँवों की सेवा वे खादी ख़रीदकर कर सकते हैं। बढ़िया-से बढ़िया क़िस्म की खादी आज मिलती है। ग़रीब किसानों की कितनी ख़ुशी होगी, अगर मैं उन्हें यह विश्वास दिला सका, कि तुम्हारी तैयार की हुई खादी तुम्हारे पारसी भाई ख़रीदने को तैयार हैं। खादी ही एक ऐसा घरेलू धन्धा है, जो करोड़ों बेकारों को काम दे सकता है। शादी-ब्याह के अवसर पर यहाँ के पारसियोंने ८० फी सदी मद्यपान छोड़ दिया है। यह अच्छा है। पर मेरे दिल का दर्द तो उस दिन दूर होगा, जब मैं यह सुनूंगा, कि एक भी पारसी दारू-जैसे ज़हर को नहीं छूता।

लाहौर जाते हुए

लाहौर के रास्ते में पंजाब के कई ज़िले पड़े। सभी स्टेशनों पर काफ़ी भीड़ थी। पुरुष, स्त्री, बच्चे हज़ारों की तादाद में स्टेशनों पर जमा थे। और उस विकट धूप में—धरती जैसे आग उगल रही थी। पर दुर्भाग्य से गांधीजी का दर्शन किये बिना ही उन लोगों को निराश लौट जाना पड़ा। हर स्टेशन पर क़ाबू से बाहर भीड़ थी। ऐसे में गाड़ी से न तो गांधीजी नीचे उतर सकते थे और न दो शब्द ही कह सकते थे। गुजरात और सिन्ध के स्टेशनों पर यह बात नहीं थी। बेचारे लोगों से उस झुलसानेवाली कड़ी धूप में गांधीजी का दर्शन करने आये, पर हताश लौट गये। मन की अभिलाषा मन ही में रही। थोड़ी देर को भी लोगोंने नियमबद्धता धारण कर ली होती, तो कोई कारण न था कि उनकी मनोकामना पूरी न होती।

लाहौर के स्टेशन पर तो असंयत और अधीर जनसमूह का जैसा पार ही नहीं था। प्लेटफार्म पर जहाँतक नज़र दौड़ाई, नर-नारियों का समुद्र ठिला हुआ देख पड़ा। पूरा आध घंटा गांधीजी का गाड़ी से उतरने में लग गया। उस भारी भीड़ में प्लेटफार्म पर उतरना असंभव हो गया था। आख़िर जब एक मोटरकार गांधीजी के डिब्बे के सामने लाई गई, तब कहीं बड़ी मुश्किल से उतरकर उसमें वे सवार हो सके। पर अब मोटर पर लोग चारों तरफ़ से टूट पड़े, भीड़ जैसे पागल हो गई थी। ऐसा लगता था, कि गाड़ी टूट-टाटकर कहीं टुकड़े-टुकड़े न हो जाय। अन्त में, मोटर को एक दूसरे ही रास्ते से ले गये, और राम राम करके किसी तरह 'लाजपतराय-भवन' में गांधीजी पहुँचे। पर लोग तो पीछे-पीछे लगे ही आये, और 'महात्माजी, दर्शन दो, महात्माजी दर्शन दो' की आवाज़ लगाते ही रहे।

काम-ही-काम की भरमार

१३ से लेकर १७ तारीख़तक, सिवा मौन-दिवस के, काम-ही-काम की भरमार रही। तमाम ज़िलों के हरिजन-सेवकों के प्रतिनिधि-मण्डल तीन-तीन जत्थों में तीन दिनतक मिलते रहे। और भी कितने ही मिलने-जुलनेवाले आये। हरिजनों के भी दो डिपुटेशन गांधीजी से मिले। सनातनी भी आये—सनातन-धर्म-प्रतिनिधि-सभावाले अलग मिले, और सनातनधर्म-सभा-वाले अलग। प्रतिनिधि-सभावाले तो बहुत-कुछ उदार विचार के हैं, किन्तु सनातनधर्म-सभा के सनातनी संकुचित हृदय और कट्टर विचार के हैं। छात्राओं की अलग सभा हुई, और यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि छात्रों की सभा पर साधारण जनताने क़ब्ज़ा कर लिया था। आर्यसमाज-द्वारा संचालित हरिजनोद्धारक संस्थाओं का भी एक संयुक्त डिपुटेशन गांधीजी से मिला। फिर हिंदू, सिक्ख, राष्ट्रीय मुसलमान और ईसाई सभी गांधीजी से मिलने आये। सरहदी कांग्रेस मैन, पंजाबी कांग्रेस मैन, खादी-सेवक, पत्रकार तथा देशी राज्य-प्रजा-मण्डलवाले भी अलग-अलग मिले। लाहौर के कार्यकर्त्ताओं की अलग एक बैठक हुई। और स्वयंसेवक और सेविकाओं का व्यूह-प्रदर्शन भी बड़ा अच्छा हुआ। यह सब प्रोग्राम लम्बा था सही, पर ऐसा थकाऊ नहीं था। धन्य कहिए गांधीजी को जो अपनी सहज प्रसन्नता और विनोद-प्रियता के साथ बड़े मज़े से सारा कार्यक्रम निभा ले गये।

छात्राओं की सभामें

१४ जुलाई को लाहौर की विद्यार्थिनियों की सभा हुई। लड़कियोंने गांधीजी को सूत की मालाएँ पहनाईं। उस उलझे-पुलझे सूत की टीका करते हुए गांधीजीने कहा, कि यह सूत किस काम में आ सकता है। जो सूत काता जाय, उसकी अंटियाँ न बनाई जायँगी, तो वह बर्बाद हो जायगा। गांधीजी का पूरा भाषण इसी अंक में अन्यत्र दिया गया है। फ़ैशन की ज्वाला पर पतिंगों की तरह झपटनेवाली स्कूल-कालिजों की लड़कियों के हक़ में गांधीजी का यह भाषण बड़े महत्व का हुआ।

हरिजन-बस्तियाँ

श्री रामेश्वरी नेहरू और डा० गोपीचन्द के साथ १४ और

१५ जुलाई को गांधीजीने भाटी दरवाज़ा, शाही मुहल्ला, कुई की बस्ती, मुज़ंग, किला गुज्जरसिंह आदि हरिजन-बस्तियाँ देखीं। म्युनिसिपैलिटी की लापरवाही की शिकायत आमतौर पर लोगोंने की। न पानी का कोई ठीक प्रबन्ध है, न रोशनी का। गन्दगी तो सर्वत्र है ही। कुछ बस्तियाँ तो बिल्कुल गन्दे नालों के मुँह पर बसी हुई हैं। किला गुज्जरसिंह बस्ती के बाशिंदे चालक लोग मजूरी पर गुज़र कर रहे हैं। पहले इनका धंधा बुनाई का था। पर आज उनके बुने कपड़ों की कहीं पूछ नहीं। पंजाब के हरिजनों में जागृति अच्छी है। बाल-विवाह के खिलाफ़ उनमें ज़ोरों का प्रचार-कार्य हो रहा है।

सार्वजनिक सभा

१५ जुलाई को लाहौर की सार्वजनिक सभा में बोलते हुए गांधीजीने कहा, 'पंजाब तो प्रेम का आगार है। जब-जब मैं पंजाब आया, सदा ही मेरे ऊपर प्रेम की वर्षा हुई। पर इस बार के प्रेम का तो कोई पार ही नहीं। मैं आज राजनीतिक उद्देश से नहीं किंतु धार्मिक उद्देश को लेकर आया हूं; इसलिए इतने विराट् जन समूह का इन सभाओं में उपस्थित होना ज़ाहिर करता है, कि देश से अस्पृश्यता दूर होने में देरी नहीं। अवश्य ही हमारे मुल्क के लिए यह एक शुभ चिह्न है। हमारे मार्ग में कठिनाइयाँ तो अब भी बहुत हैं। पर हमारी आशा उन कठिनाइयों से कहीं अधिक है। प्रातःप्रार्थनाओं में हज़ारों की संख्या में लोग आये, और उनकी वह पूर्ण शांति एक बार नास्तिक को भी आस्तिक बना सकती थी। ईश्वर में मेरी श्रद्धा दिन दिन बढ़ती जा रही है। मुझे लगता है, कि मैं तो उस सर्वशक्तिमान प्रभु के हाथ का एक साधनमात्र हूं। हरिजन-प्रवृत्ति किसी क़ौम या धर्म की विरोधी नहीं। हिंदुओं की संख्या बढ़ाने के लिए इस प्रवृत्ति का जन्म नहीं हुआ है। इसका लक्ष्य तो केवल आत्मशुद्धि है। मेरा दर्शन करने के लिए आप लोगों को इतना अधीर नहीं होना चाहिए। आप की तरह मैं भी तो आखिर मिट्टी का ही पुतला हूं। मेरे दर्शन से काम नहीं चलेगा। मेरी सलाह मानकर और मेरा अनुसरण करके ही धर्म का खोया हुआ रतन आप पा सकते हैं।'

खादी-सेवक

पंजाब हमेशा ही खादी-उत्पत्ति का केन्द्र रहा है। सन् १९२१ तक पंजाब अफ़ग़ानिस्तान को खादी भेजता था। इस नवविधान के अधीन भी १९२४ से १९३३ तक पंजाबने १६ लाख रुपये की खादी तैयार की। ८ लाख की खादी तो अकेले आदमपुरने ही बनाई। आदमपुर में ९९ फ़ीसदी कार्यकर्ता हरिजन हैं। 'लाजपतराय' छाप की २७ इंच अर्ज़ की खादी आज आदमपुर ≈)॥ गज़ बेच रहा है, जो १९२४ में ।≈)॥। गज़ बिकती थी। खादी के कार्यकर्ताओं से उपदिन गांधीजी ने कहा, 'खादी हमारी 'अन्नपूर्णा' है। हमारे किसान भाई अगर चरखा चलाने लगें, तो वे भूखे नहीं रहेंगे। खादी करोड़ों बेकारों को रोटी दे सकती है, जहाँ दूसरे धंधों से चंद लाख लोगों की ही जीविका चलती है। अगर गाँववाले खुद ही कातें और हमारे जुलाहे हाथकते सूत के ही कपड़े बुनें, तो खादी काफ़ी सस्ती पड़ जाय। शुद्ध स्वदेशी वस्त्र खादी ही है। भारतीय मिलों के कपड़े को खादी की तरह स्वदेशी कहना सरासर धोखा देना है।'

गुलाबदेवी-स्मारक-अस्पताल

अंतिम दिन की साँझ को गांधीजीने 'गुलाबदेवी-स्मारक अस्पताल' को खोला और वहीं स्व० लाला लाजपतराय के चित्र का भी उद्घाटन किया। लालाजी अपने स्वर्गवास के कुछ दिन पहले दो लाख रुपये का एक ट्रस्ट इसलिए बना गये थे, कि उनकी माता की यादगार में सभी जातियों की स्त्रियों और बच्चों के लिए एक अस्पताल खोल दिया जाय। लालाजी की मृत्यु के बाद ट्रस्टियोंने एक लाख रुपया और इकट्ठा किया और लाहौर से ७ मील के फ़ासले पर १६०००) की ज़मीन ख़रीदकर ४००००) से अस्पताल-भवन खड़ा कर दिया है। १ अक्तूबर को यह अस्पताल सर्वसाधारण के लिए खुल जायगा। लालाजी की स्व० धर्मपत्नी श्री राधादेवी के नाम पर भी इसके अंदर एक नया ब्लाक बनवाया जायगा और वह उन्हीं के १००००) से बनेगा।

गांधीजीने इस अवसर पर कहा, 'देशबंधुदासने भी ऐसी ही इच्छा प्रगट की थी कि कलकत्तेमें स्त्रियों के लिए एक अस्पताल बनवा दिया जाय। आज उनकी इच्छानुसार कलकत्ते में डाक्टर विधानचंद्र राय की देखरेख में 'चित्तरंजन-सेवासदन' अमूल्य सेवा-कार्य कर रहा है। भारत के इन दोनों ही महापुरुषों के हृदय में समाज-सेवा और ख़ासकर स्त्रियों की सेवा की ही भावना थी। जबतक स्त्रियों को पुरुषों के बिल्कुल बराबर समाज में स्थान न मिलेगा, तबतक राष्ट्र का मस्तक ऊँचा नहीं हो सकता। हमारे स्व० लालाजी एक महान् समाज-सेवक थे। राजनीतिक क्षेत्र में तो उन्हें परिस्थितियों के ही वश उतरना पड़ा था। और कोई भी सच्चा लोक-सेवक आज राजनीति को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकता। पर यह ध्यान देने की बात है कि चित्तरंजनदास और लालाजी दोनों की ही अंतिम अभिलाषाएँ सामाजिक सेवा में ही एकाग्र थीं। लालाजी के समान हरिजनों का हितू कोई दूसरा नहीं हुआ। इस अस्पतालमें हरिजन स्त्रियों के इलाज पर ख़ास ध्यान दिया जाय, यह इच्छा लालाजीने प्रगट की थी।'

माडल टाउन

कलकत्ते के लिए रवाना होने के कुछ ही पहले लाहौर के माडल टाउन में गांधीजी को मानपत्र और थैली दी गई। मानपत्र में इस नई बस्ती का बड़ा आकर्षक चित्र खींचा गया था। पर गांधीजी को वह मनोहर चित्र दिखाई नहीं दिया। उनके विचार से वह कैसे नमूने की बस्ती हो सकती है, जहाँ माता के समान सेवा करनेवाले हरिजनों को रही घरों में अलग बसाया जाय, और उन्हें पीने के पानी तक का कष्ट हो? माडल टाउन के निवासियों को तो हरिजनों के साथ अपने भाइयों के जैसा बरताव करना चाहिए।

बालजी गोविंदजी देसाई

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupte.

संपादक—वियोगी हरि "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ३ अगस्त, १९३४ [संख्या [illegible]

विषय-सूची

शांति से उपवास करने दें

मैं आशा करता हूँ, कि मेरे आगामी अनशन-सप्ताह (७ अगस्त से १४ अगस्त तक) में कोई मर्यादा तोड़ने का कष्ट न करेगा। उन दिनों मैं पूर्ण विश्राम और शांति चाहता हूं। मेरे साथ सहानुभूति दिखाने और मेरे शरीर में बल पहुँचाने का सब से अच्छा तरीक़ा तो यह होगा, कि मेरे तमाम मित्र हरिजनों को हर तरह से अपनाने और विरोधियों को अपने शुद्ध और विनम्र व्यवहार से जीतने की भरसक चेष्टा करें।

जिन लोगोंने साहसपूर्वक अपनी भूल क़बूल कर ली है, उस का प्रायश्चित्त वे मेरे साथ उपवास करके नहीं, बल्कि यह दृढ़ निश्चय करके करें, कि उनकी जिस भूल के कारण मुझे यह उपवास करना पड़ा है, वैसी कोई भूल वे आगे न करेंगे।

मो० क० गांधी

अजनबी न रहें

अँग्रेज़ लोग इस देश में आते हैं, लेकिन अपना व मुअल्लक बनाकर ही वे यहाँ रहते हैं। ऐसे गरम मुल्क में भी अपना फ़लेनेल और अपना नेकटाई नहीं छोड़ते। जहाँ जायँगे, वहाँ अपना गोल्फ़ ग्राउण्ड बना लेंगे, क्रिकेट खेलेंगे, बैण्ड बजायँगे, क्लब में इकट्ठे होंगे और जहाँतक हो सकेगा अँग्रेज़ी भाषा का ही व्यवहार करेंगे। उनका स्वभाव ही ऐसा है, कि जहाँ गये वहाँ अपना छोटा-सा इंग्लैण्ड बना लिया। हम शहरवासी भी जब देहातों में जाते और देहातियों की सेवा करने की बातें करते हैं, तब हम अपना छोटा सा शहर देहातों में ले जाने की ही चेष्टा करते हैं, अन्यथा मानों हम वहाँ जी ही नहीं सकते हैं। देहातों में गये तो दैनिक पत्र वहाँ मिलना ही चाहिए, साप्ताहिक से काम न चलेगा। जंगल में लकड़ी सड़ रही हो, तो भी हमें अपना मिट्टी के तेल का स्टोव तो साथ रखना ही होगा। जंगल के मेवे चाहे कितने ही रसदार क्यों न हों, हमें तो चाय-काफ़ी से ही मतलब है। देहातों में आसपास घूमघामकर किसानों से सहानुभूतिपूर्वक बातचीत करने का कष्ट हम नहीं उठायँगे, हम या तो वर्ड्सवर्थ-जैसे कवियों के देहाती जीवन का वर्णन पढ़ते रहेंगे अथवा टाल्सटाय की कोई रोचक कहानी। घर के दर पर कोई अस्थिकंकाल बुड्ढा भूख के मारे चिल्लाता हो, तो उसपे डाँटकर कहेंगे, 'कैसा गँवार है रे, कि आराम से पढ़ने नहीं देता'—और पढ़ेंगे तो वही ग़रीबों के भूखों मरने की कोई रसमयी कथा!

असली बात यह है कि हम लोगों के हृदय में काव्य इतना पैठ गया है, कि उसने वहाँ से कारुण्य को हटा दिया है। हम चाहते तो हैं सेवा करना, लेकिन वास्तव में तो अपनी विविध रस-वासना को ही हम तृप्त करते हैं। जब से बौद्धिक शिक्षा का प्रभाव बढ़ा है, तबसे हमारा जीवन-रस बौद्धिक बन गया है। व्यक्तिकी सेवा करने की अपेक्षा संस्था की कार्यवाही चलाने में ही हमें अधिक सुभीता मालूम होता है। कौटुंबिक समस्याओं को हम खानगी समझते हैं, तुच्छ समझते हैं। संस्थाएँ, परिषदें और सभाएँ हमारे मन में अधिक महत्त्व की होगई हैं। ऐसी हालत में ग़रीबों की सेवा हम जितनी चाहते हैं, उतनी हम से होती नहीं, प्रवृत्ति बढ़ाने पर भी मनुष्य जाति का दुःख दूर नहीं होता है। हम तो अपनी ही दुनिया में विचरते रहते हैं।

अगर हम ग्राम-सेवा करना चाहते हैं, तो हमें प्रथम देहाती बनना होगा, उनके सुख-दुख का स्वयं अनुभव लेना होगा। अगर हम हरिजनों की सेवा करना चाहते हैं, तो स्वेच्छा से हरिजन बनकर उनके सुख-दुख में कम-से-कम थोड़े दिन के लिए हमें शरीक होना ही होगा। जेल के एक सुधारकने अपना अनुभव बढ़ाने के लिए जेल की सारी सज़ाएँ एक बार भोगी थीं। एक डाक्टरने अपने ख़ून में रोग के कीटाणु डालकर उस रोग की सब भावनाएँ समझने की चेष्टा की थी। यह तो पराकाष्ठा के उदाहरण हुए, यहाँतक हम नहीं जायँगे, तो भी जिनकी सेवा हमें करनी है उनके और हमारे बीच अन्तराय पैदा हो जाय ऐसी आदतें तो हमें छोड़नी ही होंगी। ग़रीब लोग, हरिजन और पतित तथा दलित जन सब कुछ दे सकते हैं, पर वे अपना हृदय दूसरे के सामने कभी नहीं खोल सकते, जबतक कि उन्हें यह विश्वास न हो जाय, कि हमसे उनकी हार्दिक एकता सचमुच होगई है। हृदय एक प्रकार का कमल है। प्रेम और सहानुभूति की समानता से ही वह खिल सकता है। शहर में से उठकर देहातों में हम जा बसें, सफ़ेदपोश बस्तियों में से उठकर हरिजन-बस्तियों में रहने लगें, तो हमारा भौगोलिक अंतर तो कम हो जायगा, लेकिन हृदय का अंतर कम होगा ही, ऐसा विश्वास हम नहीं कर सकते। भौगोलिक अंतर तो तोड़ना ही चाहिए, किंतु साथ-साथ हृदय-हृदय के बीच जो अन्तर है, वह भी तोड़ देना चाहिए। यह तभी हो सकता है, जब हम उनके जीवन में हृदय

से ओतप्रोत हो जायँ, नहीं तो जैसे हमारे देश में अँग्रेज़ रहे हैं वैसे ही श्रमजीवियों के बीच में हम अपना बुद्धि-जीवन व्यतीत करते रहेंगे।

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

गोंड़जाति और उसकी सेवा

[२]

ऐतिहासिक

[illegible] हमें उस पर ऐतिहासिक दृष्टि डालना आवश्यक है। [illegible] जो यहाँ का आदि-वासी कहा जाता है वह बिल्कुल ठीक है। हमारे प्रांत के यही लोग मूल निवासी हैं, हम आर्य कहलानेवाले तो उनकी दृष्टि में विदेशी और विजेता हैं। गोंड लोग अनार्य द्रविड़ जातियों में से निकले माने जाते हैं और उनकी भाषा भी द्राविड़ी भाषाओं का एक रूप मानी जाती है। आर्यों के विन्ध्याचल पार करने के पूर्व ये गोंड लोग ही यहाँ के शासक एवं शासित थे। १४वीं सदी से हमें इनका नियमबद्ध इतिहास मिलता है। इनके राज्य बैतूल, छिंदवाड़ा, मंडला और चांदा में पाये जाते हैं। गोंडों का राज्य लगभग दो तीन सौ वर्षोंतक रहा। पहिले मण्डला या "मण्डल" त्रिपुरी (जबलपूर) के कलचुरियों तथा है-हय वंशी राजाओं का एक प्रांत था "मण्डल" था। जादोराय नामक किसी अधिकारीने मण्डला में स्वतन्त्र राज्य क़ायम कर लिया। गढ़ा-मण्डले का प्रसिद्ध राज्य गोंडों का ही था। इनके राजा हृदयशाह, संग्रामशाह, दलपतिशाह थे। महोबा की चन्देल वंश की राजकुमारी वीर-शिरोमणि रानी दुर्गावती का नाम आज भी सब लोगों के मुँह पर है, जिसने कि एक बार अकबर-सरीखे महान् सम्राट् और आसफखाँ-सरीखे नवाब का भी मुक़ाबिला किया था।

गोंड राजाओं के राज्य में शिल्पकला की अच्छी उन्नति हुई, जिसके प्रमाणस्वरूप आज भी मण्डले, चौरागढ़ (गाडरवारा) तथा सिंगोरगढ़ (दमोह) के क़िले, मदनमहल और बाजनामठ और आम खास (जबलपूर) के भवन मौजूद हैं। इन राजाओंने खेती के लिए आबपाशी का काफी अच्छा प्रबन्ध किया, जिनके चिन्ह जबलपूर के पहाड़ी तालाबों में आज भी क़ायम हैं। रानी दुर्गावती के बनवाये रानीताल, चेरीताल आदि तालाब आज भी मौजूद हैं। ये तालाब ज़मीन के भीतर वा बाहर नहरों और नलों के द्वारा एक दूसरे से आबपाशी के लिए सम्बंधित थे, जिसके निशान आज भी पहाड़ी तालाबों में पाये जाते हैं।

राजा संग्रामशाहने संग्रामसागर (जबलपूर) तथा सुप्रसिद्ध भैरव का मन्दिर बाजनामठ बनवाया और नर्मदा के तट पर चौरागढ़ का क़िला निर्माण किया। उसका पुत्र दलपतिशाह अपनी राजधानी सिंगौरगढ़ के क़िले में ले गया। चन्देल राज-कुमारी दुर्गावती का उसके साथ विवाह हुआ, जिससे आम पता है कि ये लोग अपने पराक्रम से क्षत्रियोंतक के दाँत खट्टे करने लगे थे। दलपतिशाह की मृत्यु के बाद उसके पुत्र वीर नारायण के छोटे होने के कारण रानी दुर्गावतीने स्वयं शासन की बागडोर अपने हाथ में सँभाली—अँग्रेज़ लेखकोंतकने यह स्वीकार किया है कि इस रानी की गणना संसार की सबसे बड़ी महिलाओं के बीच होनी चाहिए।" (जबलपूर गज़ीटियर पृ० २९)

महारानी दुर्गावती के पास १४०० हाथियों की सेना थी। आईने अकबरी में लिखा है, कि इनके १५ वर्ष के राज्य-शासन के समय देश इतना समृद्ध हो गया कि प्रजा सोने की मुहरों और हाथियों के रूप में इसे कर देती थी।"

इसी बढ़ती समृद्धि को देखकर अकबर के सामन्त कड़ा मानिकपुर के नवाब आसिफखाँने गढ़ा-मंडला पर चढ़ाई की। इस युद्ध में किस प्रकार वीर रानीने अपने शिशु पुत्र का मोह छोड़ [illegible] पर भी युद्ध करते हुए वीरगति पाई, तथा शेष स्त्रियोंने सिंगोरगढ़ में "जौहर" व्रत का पालन करके इस गोंडवान को भी मेवाड़ तथा चित्तौर का समकक्ष बना दिया, ये बातें इतिहास में सोने के अक्षरों से लिखी हैं। दुर्गावती के पुत्र वीर नारायणने भी वीरगति पाई। दलपति शाह के भाई चन्द्रशाह के समय अकबरने १० ज़िले अपने राज्य में मिला लिये। उसके बाद मधुकरशाह, प्रेमनारायण और हृदयशाहने ५० वर्ष उत्तम राज्य किया और गंगासागर (जबलपूर) बनवाकर अपनी राजधानी मंडला के रामनगर में स्थापित की तथा हृदयनगर बसाया। उसके बाद नरेंद्रशाहने मंडला का प्रसिद्ध क़िला बनवाकर वहाँ अपनी राजधानी बनाई। अन्तिम राजा महाराजशाह के समय मरहठा पेशवोंने वहाँ अपना राज्य जमा लिया।

स्लीमन साहब के सन् १८२५ में लिखित नोटों से प्रगट होता है, कि गोंड राज्य छोटे-छोटे सामन्तों के अधिकार में बँटा हुआ था जो इन राजाओं की अपनी सेनाओं के द्वारा समय-समय पर सहायता तो करते, किन्तु कर के रूप में उन्हें कुछ न देते थे। ये लोग उपजाऊ मैदानों की अपेक्षा जंगलों ही को अधिक पसन्द करते थे। बाद में उत्तर भारत के अन्तर्वेद आदि से ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि आर्य जातियोंने आकर इन गोंड राजाओं से खेती-बारी के लिए ज़मीन ली और वहीं वे सब शांतिपूर्वक बस गईं। इन जातियोंने अपनी बुद्धि और परिश्रम से अपनी सम्पत्ति और शक्ति बढ़ाली और गोंड सामन्तों के अधिकार से निकलकर स्वतंत्र हो गईं। जैसे-जैसे ये लोग बढ़ते गये, गोंड लोग जंगलों की ओर हटते गये। गोंड राजाओंने देश में इमारतें आदि बनवाने का प्रयत्न नहीं किया, और आलसी और आरामतलब बने रहे।

मध्यप्रांत के गज़ीटियर पृष्ठ ५८ में लिखा है, कि गोंड आलसी और अर्ध असभ्य जाति के हैं, किन्तु इससे यह नहीं प्रगट होता, कि वे बर्बर जंगली लोग थे।

किन्तु इनके विपरीत एशियाटिक सोसाइटी के एक सदस्यने, जिसने गत शताब्दी के अन्त में इस प्रांत में भ्रमण किया था, गोंड राजाओं के सम्बन्ध में इस प्रकार प्रशंसात्मक वाक्य लिखे हैं:—

"प्रांत की समृद्ध दशा का पता उसकी राजधानी और ज़िलों से लगती है, जिन्हें देखकर मैं इसके पूर्व के राजाओं की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। गोंड राजाओं के दयामय शासन के नीचे उनकी सुखी प्रजा एक उपजाऊ देश में खेती करती थी। उनके सुन्दर मन्दिरों, तालाबों और नगरों में उनकी समृद्धि के चिह्न मिलते हैं।"

एक अन्य लेखक लिखता है :—

"गोंड राजाओं के घटना-विहीन सरल राज्यों में देश की समृद्धि बढ़ी, पशुओं में वृद्धि हुई और ख़ज़ाना भर गया। इनका एक उत्तम नियम यह था, कि जो मनुष्य तालाब बनवाता उसे बिना लगान के ज़मीन दी जाती थी।"

चाँदा के एक बन्दोबस्त-अफ़सरने लिखा है :—

"वे एक बड़ा ही सुशासित और सन्तुष्ट राज्य छोड़ गये, जो कई शिल्पकलाओं के सुन्दर नमूनों से सुशोभित था। उस राज्य की समृद्धि को तो उसके बाद का कोई भी राज्य नहीं पहुँच सका।"

कौन इस गोंड जाति को "जंगली" "असभ्य" या "रावण-वंशी" पुकारने की धृष्टता करेगा ?

ब्योहार राजेन्द्रसिंह

आगामी उपवास

"गांधीजी फिर ७ दिन का उपवास करेंगे"—यह सुनकर किस का दिल न धड़क उठा होगा, किसके दिल से यह प्रार्थना न निकली होगी कि भगवान् भारत के इस बूढ़े तपस्वी की रक्षा करें ? किसे यह चिन्ता न हुई होगी कि इतनी लम्बी और शरीर को चकनाचूर कर देनेवाली यात्रा से थके-माँदे, अधमरे बूढ़े शरीर को यह कष्ट कैसे सहन होगा ? हम जबतक पामर मनुष्य हैं, तबतक यह सब स्वाभाविक है। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि हमारी यह घबराहट क्या गांधीजी के योग्य है ? जिन्होंने उनके आदर्शों को अपनाया है, उनके सिद्धान्तों को समझने का, उनकी (Spirit) को अपने रक्त में मिलाने का यत्न किया है, क्या उनका अधीर हो बैठना, विकल-विह्वल हो जाना उचित होगा, गांधीजी को इससे सन्तोष और प्रसन्नता होगी ?

इस दृष्टि से जब विचार करते हैं तो कहना होगा कि प्रायश्चित्त और आत्मशुद्धि के लिए अंगीकार किये बड़े-से-बड़े कष्ट और ख़तरे की कल्पना से न घबराना ही गांधीतत्व का सच्चा ज्ञान प्रगट करना है। हम उनके शरीर के जोखिम में पड़ जाने की चिन्ता से विह्वल अवश्य हो जाते हैं, किन्तु यह विचार करना भूल जाते हैं कि ऐसे उपवासों से उनकी आत्मा को कितनी शान्ति मिलती है, कैसा समाधान होता है, और साथ ही उनके अनुयायियों तथा विरोधियों पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है जिससे कि उनके जीवन-कार्य की प्रगति में भारी सहायता पहुँचती है।

आगामी ७ दिन के उपवास को ही लीजिए। जब बारबार गांधीजी कह चुके हैं कि विरोधियों की बातों को सहन करो, उनके प्रति अपनी सहिष्णुता तथा अपने कार्य के प्रति अपनी दृढ़ता के द्वारा उनके हृदयों को बदलो, उनके साथ ज़्यादती या बलप्रयोग करोगे तो मुझे प्रायश्चित्त करना होगा, और बावजूद इसके भी जब लालनाथजी और उनके दल के लोग पीटे जाते हैं, सो भी गांधीजी के निर्भयता के आश्वासन के बाद, तब बताइए, गांधीजी प्रायश्चित्त न करें तो क्या करें ? मैं तो समझता हूँ, ऐसी अवस्था में यदि गांधीजी अपने अनुयायियों का शासन करने के लिए अपने को दण्डित न करें तो गांधी-पन कुछ न रहे, और उनके जीवन-कार्य की शुद्धि, बल, पवित्रता, प्रगति सब नष्ट हो जाय। इसके साथ ही विरोधियों को शान्त करने, उनके हृदय में अपने जीवन-कार्य की सचाई अंकित करने का साधन इस आत्म-ताड़ना से बढ़कर और क्या हो सकता है ? ऐसी दुर्घटनाओं से यदि गांधीजी अपने लिए यह सार निकालते हों कि अभी मुझी में कुछ ख़ामी, कुछ कमी, कुछ दोष, कुछ मलिनता भरी हुई है, जिसकी अभिव्यक्ति मैं लोगों की ऐसी हिंसावृत्ति में पाता हूँ तो उसकी शान्ति और शुद्धि के लिए भी इससे बढ़कर और उपाय क्या हो सकता है ? मुझे तो बड़ा दुःख होता है जब हम गांधीजी के ऐसे उपवासों का मर्म समझकर उससे आत्मशोधन की स्फूर्ति पाने के बदले उनके शरीर की चिन्ता से दुखी होकर उनका विरोध या वाद विवाद करने लगते हैं। यदि गांधीजी को हमने ठीक-ठीक समझ लिया है तो मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ, कि हमारी इस मनोवृत्ति से गांधीजी को कदापि सन्तोष और आनंद नहीं हो सकता। वे ऐसे निर्बल अनुयायियों पर कदापि अभिमान का अनुभव नहीं कर सकते। वे तो हमारी इस निर्बलता को भी अपने हृदय की अथाह दयावृत्ति से धोने का ही यत्न करेंगे; किन्तु हमारे आत्मतेज का यह तक़ाज़ा है कि हम गांधीजी के लिए गौरव की वस्तु बनें, न कि दया की। जबतक गांधीजी को यह अनुभव होता रहेगा, कि लोगोंने मेरे संदेश को ठीक-ठीक नहीं समझा है, मेरे शरीर का उन्हें काफ़ी मोह है, मेरी आत्मा और मेरे जीवन-कार्य की उतनी चिन्ता उन्हें नहीं है, तबतक विश्वास रखिए, आपके विषय में उन्हें आन्तरिक समाधान नहीं हो सकता। मुझे तो निश्चय है कि गांधीजी ऐसे उपवासों से हरगिज़ नहीं मर सकते, उनका शरीर भी इनसे सहसा क्षीण नहीं हो सकता; किंतु गांधीजी अवश्य जल्दी क्षीण हो जायँगे, यदि वे यही देखते रहेंगे कि इन लोगोंने मुझे या तो ग़लत समझा है, या समझा ही नहीं है। मैं जानता हूँ कि यह कहना भी एक तरह से गांधीजी को न समझने के ही बराबर है; क्योंकि उनके जीवन या मरण का आधार बाह्य जगत् से उतना नहीं है जितना कि आन्तरिक श्रद्धा और आत्मबल से है। फिर भी बाह्य जगत् की घटनाएँ जिस अंशतक किसी पर प्रभाव डाल सकती हैं उस अंशतक गांधीजी इस बात से अवश्य सन्तुष्ट होंगे कि लोग उनकी तपश्चर्याओं के महत्व को समझें, उनसे उचित शिक्षा और स्फूर्ति ग्रहण करें, न कि उनकी तरफ से उदासीन रहें, या उनके केवल बाह्य-रूप से ही प्रभावित होकर उनके प्रति अपनी अरुचि प्रदर्शित करते रहें। गांधीजी के शरीर के प्रति हम जो प्रेम दिखाते हैं उससे उनके प्रभाव को कुछ समाधान भले ही हो, किन्तु उनकी आत्मा को तो सच्चा सन्तोष और आनन्द तभी हो सकता है, जब हम उनकी आत्मिक आराधना के रहस्य को समझें, उसकी तहतक पहुँच जायँ और ऐसे कष्ट या ख़तरे के अवसर पर घबरा जाने के बदले उन्हें अपने हृदय की श्रद्धा, साहस, निर्भयता और निश्चिन्तता का सन्देश भेजें।

हरिभाऊ उपाध्याय

"बाहरी परीक्षा का विष जिसे चढ़ जाता है, वह हमेशा भयभीत रहता है। "हाय! अब परीक्षा होगी, पास हूँगा या फ़ेल, कसौटी पर खरा उतरूँगा या खोटा ?" इस भूत के कारण बेचारा भ्रमित रहता है। जब परीक्षा का यह भय सारे जीवन में व्याप्त हो जाता है, तब यह उसे एकदम कडुवा बनाकर छोड़ता है; और यदि वह इस भय से मुक्त न हुआ तो पागल हो जाता है।"

—गिजू भाई

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ३ अगस्त, १९३४

कानपुर के भाषण

(१)

सार्वजनिक सभा का भाषण

[२२ जुलाई को कानपुर की सार्वजनिक सभा में गांधीजीने जो भाषण दिया था, उसका सारमर्म नीचे दिया जाता है।]

आपने मुझे जो यह ११०००) की थैली दी है, उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। लेकिन मैं आपके कानपुर शहर को नहीं जानता, यह बात तो नहीं है। मैं समझता हूँ, कि जो हरिजन-कार्य हमारे सामने है उसकी महत्ता को अगर आपने महसूस किया होता, तो मुझे इससे कई गुना अधिक धन आप देते।

मुझे मालूम हुआ है, कि कानपुर में कुछ ऐसे लोग हैं, जो मेरी हरिजन-प्रवृत्ति को पुण्यकार्य नहीं, बल्कि पाप-कार्य समझते हैं। इनकी तरफ़ से जनता में बहुत-से पर्चे बाँटे गये हैं। मुझे यह देखकर दुःख हुआ, कि वे पर्चे सरासर असत्य, हानिकारक अर्धसत्य, अत्युक्ति और तोड़-मरोड़कर बनाई हुई बातों से भरे हुए हैं। यह सब सत्य का अपलाप है। उन्होंने मेरे बारे में समझकर ऐसा नहीं लिखा, ऐसा मैं मान लेना चाहता हूँ। उदाहरण के लिए, यह कहा जाता है, कि एक जगह निर्दयता-पूर्वक सनातनियों को क़तल कर दिया। मगर मैं इस विषय में कुछ भी नहीं जानता। अगर मुझे इसका पता होता, तो मैं इसके विरुद्ध ज़रूर कड़ी कारवाई करता। मैं कोई चुप बैठने-वाला आदमी नहीं हूँ। यह कितने अफ़सोस की बात है, कि ऐसी-ऐसी मिथ्या बातों का प्रचार सनातनधर्म के नाम पर किया जाता है। मैं सनातनियों से प्रार्थना करता हूँ, कि वे इस मिथ्या-प्रचार की हीन प्रवृत्ति को रोकें।

आपने मुझे हज़ारों की जगह लाखों रुपये दिये होते, अगर आपने इस हरिजन-प्रवृत्ति का महत्त्व समझा होता। पर धन तो अस्पृश्यता का अंत नहीं कर सकता। यह तो तभी बन सकता है, जब सवर्ण हिन्दुओं के हृदय पिघल जायँ। दान देने-वालोंने यदि यह अनुभव कर लिया है, कि अस्पृश्यता धर्म पर एक कलंक है, तो उनके दान का महत्व सैकड़ों गुना बढ़ जाता है। यह तो आत्मशुद्धि की प्रवृत्ति है। संख्या से इस प्रवृत्ति का कोई मतलब नहीं। जो यह कहते हैं, कि हरिजन-आंदोलन मुसल्मानों के खिलाफ़ लड़ने के लिए खड़ा किया गया है, वे ग़लती करते हैं। हमें हरिजनों में से गुंडों को तैयार नहीं करना है। हमें तो उन्हें योग्य नागरिक बनाना है। अगर हमें कामयाबी मिली तो इससे हमें और सारी दुनिया को लाभ पहुँचेगा। धर्म के नाम पर अपने पाँच करोड़ भाइयों के प्रति हम जो अत्याचार कर रहे हैं उसके लिए अगर दुनिया हमसे और हमारे धर्म से घृणा करे, तो यह उचित ही है। यदि कोई शुद्ध रीति से शास्त्रों को, गीता को और वेदों को पढ़े, तो उन धर्मग्रन्थों में उसे कहीं भी अस्पृश्यता नहीं मिलेगी। आज तो हम हिंदूधर्म को भूल बैठे हैं। हरिजनों के प्रति जो हमने अपराध किया है, जो पाप किया है, उसके प्रायश्चित्त के लिए ही यह हरिजन-आंदोलन चलाया गया है। उपनिषद् तो यह कहते हैं, कि आत्मा सर्वव्यापक है।

काली झंडियाँ दिखलानेवालों का मुझे उतना ही ख़याल है, जितना कि सुधारकों का। और अगर संभव होता तो मैं उनको बात को मान लेता, और जैसा वे चाहते खुशी से करता। पर सत्य के अनुकूल ही आचरण करना मैं अपना धर्म समझता हूँ। धर्म को कैसे छोड़ दूँ? ईश्वर क्या कहेगा? सवर्णहिंदू मेरा तिरस्कार करें, मेरे ऊपर पत्थर फेंकें या बम फेंकें, या रिवाल्वर चलावें, पर ऐसी बातों से मैं डिगने का नहीं। धर्म के कार्य से अगर मैं हट जाऊँ, तो ईश्वर कहेगा, कि क्या तेरा शरीर अमर है? नहीं, तो फिर क्यों डर गया? मैं भी तो आख़िर को एक अपूर्ण ही मनुष्य हूँ। मैं कोई तपस्वी तो हूँ नहीं, कि एक ही फूंक हिमालय पर बैठकर मार दूँ, तो अस्पृश्यता उड़ जाय। पर मेरे जैसा अल्पज्ञानी भी कुछ करना चाहता है। जो लोग मेरी बात सुनना चाहते हैं उन्हें मैं सिर्फ़ सुना सकता हूं। और इसी कारण मैं जगह-जगह भ्रमण कर रहा हूँ, यद्यपि इस लगातार लम्बी यात्रा की थकान दूर करने के लिए अब मैं कहीं बैठकर आराम करना चाहता हूँ।

जो सनातनी धर्म का इजारा लेकर बैठ गये हैं, उनसे मैं यह कह देना चाहता हूँ, कि जिन शास्त्रों को वे मानते हैं मैं भी उन्हीं को मानता हूँ। पर हमारा मतभेद तो शास्त्रों के अर्थ लगाने में है। जब अर्थ का विरोध हो, तो शास्त्र कहते हैं, कि अपने विवेक को प्रमाण मानो। और मैं ठीक यही कर रहा हूँ। अगर वे मुझे यह समझा दें, कि मैं ग़लती कर रहा हूँ, तो मैं उनका गुलाम बन जाऊँ। पर, जबतक ऐसा नहीं होता, तब तक तो मैं आख़िरी दमतक यही कहता रहूँगा, कि यदि हमने अस्पृश्यता के कलंक को न धो डाला, तो हिंदू जाति और हिंदू धर्म का दुनिया से लोप हो जायगा।

अब, हरिजन-आंदोलन के संबंध में मुझे कुछ बातें स्पष्ट कर देनी चाहिएं। ऊँच-नीच के भावतक ही यह आंदोलन सीमित है, रोटी-बेटी-संबंध से इसका कोई वास्ता नहीं। मैं मुसलमानों और भंगियों के साथ खाता हूँ, पर यह तो मेरी व्यक्तिगत बात है। मैं तो अपने को भंगी मानता हूँ, इसमें मेरे लिए कोई शर्म की बात नहीं। पर इसमें मेरा स्वेच्छाचार नहीं है, संयम है। और ऐसा करने को मैं आपसे नहीं कहता। मैं शास्त्र के बाहर नहीं जाता। मैं तो अपनी इस बात को भी शास्त्र-विहित ही मानता हूँ। रोटी-बेटी-संबंध के व्यक्तिगत संयम के प्रचार करने की न तो आवश्यकता है, न समय। मैं तो सिर्फ़ धर्म का तत्त्व ही लोगों के सामने रख रहा हूँ। इस आंदोलन का तो यही उद्देश है कि, जो सामाजिक, नागरिक और धार्मिक हक़ दूसरे सवर्ण हिंदुओं को मिले हुए हैं वही सब हरिजनों को भी मिलने चाहिएँ।

मंदिर-प्रवेश के विषय में यह बात है, कि जबतक किसी मंदिर में पूजा करनेवाले सवर्ण हिंदुओं का काफ़ी बहुमत न हो तबतक वह मंदिर हरिजनों के लिए न खोला जाय। मन्दिर तो हमारे प्रायश्चित्त-स्वरूप ही खुलने चाहिएँ। मैं यहाँ यह कह देना चाहता हूँ, कि एक पाई भी इस हरिजन-फंड से मन्दिरों के

बनाने में खर्च नहीं की जा सकती । हमारा सतत प्रयत्न तो यह है, कि इस फंड का पैसा किस तरह हो सके अधिक-से-अधिक हरिजनों की ही जेब में जाय ।

चूंकि मेरा यह हरिजन-प्रवास है, इसलिए खादी के विषय में मैं अक्सर चर्चा नहीं किया करता, यद्यपि उसमें मेरा विश्वास तो वैसा ही है । पर आप को यह नहीं भूल जाना चाहिए, कि खादी से हज़ारों हरिजनों को काम मिलता है । खादी कातने और बुननेवालों के लिए 'अन्नपूर्णा' का काम देती है । इसलिए खादी को भी आप कभी भी गौण वस्तु न समझें ।

जिस शांति से आप लोगोंने मेरी बात सुनी है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ । पर एक बात की चर्चा तो मैं ज़रूर करूँगा, और वह यह कि यहाँ हम पुलिस की छाया के नीचे इकट्ठे हुए हैं । मैं बहुत चाहता हूँ, कि पुलिस यहाँ न रहे, पर उसे भी तो अपना फर्ज़ अदा करना है । सुधारकों और सनातनियों को तो इस पर शर्म आनी चाहिए, कि मेरी रक्षा अथवा मेरी उपस्थिति में शांति क़ायम रखने के लिए पुलिस की ज़रूरत पड़े । सुधारकों को अपने अनुशासन के महत्व को खुद महसूस करना चाहिए, ताकि पुलिस की रक्षा उनकी दृष्टि में बिलकुल अनावश्यक हो जाय । खैर, पुलिस का यहाँ होना मुझे चाहे अच्छा न लगे, पर मैं यह ज़रूर कहूँगा, कि पुलिसने मेरी यात्रा में प्रशंसनीय रीति से व्यवहार किया है । इसी तरह रेल के अधिकारियोंने समय-समय पर मुझे जो सुविधाएँ दी हैं, उनके लिए मैं उनकी भी सराहना करता हूं ।"

(२)

तिलक-हाल का भाषण

[२४ जुलाई को कानपुर में तिलक-हाल के उद्घाटन के अवसर पर गांधीजीने निम्नलिखित आशय का भाषण दिया था]

"मैंने आज प्रातःकाल जब सुना, कि मुझे तिलक-हाल खोलने का यह कार्य करना है, तो मुझे एक बात का स्मरण आ गया । जब मैं पहली बार कानपुर आया था, तब मेरी यहाँ किसी से जान-पहिचान नहीं थी । कानपुर आकर मैं गणेशशंकर विद्यार्थी को कैसे भूल सकता हूं ? उन्होंने ही तो मुझे अपने घर पर टिकाया था । उस समय और किसी व्यक्ति की हिम्मत नहीं थी, कि वह मुझे अपने घर पर ठहराता । वे उन दिनों नौजवान थे । उस समय मुझे देश में थोड़े-से लोग जानते थे । मैं स्वयं भी नहीं जानता था, कि यहाँ के राजनीतिक क्षेत्र में मेरा क्या स्थान होगा । सद्भाग्य से तिलक महाराज भी उसी दिन इस नगर में पधारे । उस ज़माने में तिलकजी को अपने घर में ठहराना कोई आसान काम नहीं था । यह चिंता हुई, कि उन्हें कौन स्थान देगा । यह काम तो निर्भीक युवक गणेशशंकर से ही हो सकता था । मेरे हृदय में तो इस नगर के संसर्ग के साथ ही गणेशशंकरजी की स्मृति भी क़ायम रहेगी । हम लोग जैसा जानते हैं, उन्होंने 'वीर मृत्यु' पाई । गणेशशंकर जी की सेवाएँ क्या थीं, उनका त्याग कैसा था, इसका आपको मुझ से ज़्यादा पता है । उनको इस अवसर पर मैं कैसे भूल सकता हूँ ?

आज जो तिलक-हाल का उद्घाटन हो रहा है, और इसके अंदर कानपुर के लोगों की जो श्रद्धा है, उसको मैं जानता हूँ । तिलक महाराजने तो अपना सारा ही जीवन भारतवर्ष की उन्नति के लिए दे दिया । यह बात मेरे लिए प्रस्तुत है, और आपके लिए भी प्रस्तुत है । हिंदूधर्म को अगर तिलक महाराज नहीं जानते थे, तो कोई नहीं जानता । उन्होंने जिस प्रकार वेद-शास्त्रों पर प्रकाश डाला, उनके अर्थों का संशोधन किया, वैसा और किसने किया ? वे तो सच्चे सनातनी थे । पर उन्होंने यह कभी ख़याल नहीं किया, कि हम उच्च हैं, और वे नीच हैं । उनके साथ मैंने इस विषय पर काफ़ी बहस की थी । उन्होंने जो कुछ हमें दिया, उसका चिरस्थायी स्मारक, जबतक हिंदुस्तान को क़ायम रहना है, तबतक क़ायम रहेगा । आज तो स्वराज्य की बात अस्वाभाविक-सी लगती है । पर स्वराज्य मिलने पर यह स्वाभाविक हो जायगी । तब उनका दिया हुआ राजनीतिक सबक़ तो भूला भी जा सकेगा, पर उनकी विद्वत्ता, उनकी आत्म-शुद्धि और उनके संयम का विषय तो, हिंदुस्तान जबतक ज़िंदा रहेगा, तबतक सारी दुनिया में अमर रहेगा । उसे कोई कैसे भूल सकता है ? तिलक महाराज का यह स्मारक तो अमर स्मारक रहेगा ।"

साप्ताहिक पत्र

[३४]

निर्देशिका

२२ जुलाई

कलकत्ता से कानपुर आये । कानपुर : म्युनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मानपत्र; सार्वजनिक सभा, मानपत्र और थैली ११०००); संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ५१॥।–)

२३ जुलाई

कानपुर : मौन-दिवस; सन्ध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ५७।≈)॥

२४ जुलाई

कानपुर : तिलक मेमोरियल हाल का उद्घाटन; सनातनियों तथा संयुक्तप्रांतीय हरिजन-सेवक-संघवालों से मुलाकात; विद्यार्थियों की सभा, सनातनधर्म कालेज के विद्यार्थियों का मानपत्र तथा थैली ५११≈)।; मेहतर-सभा का मानपत्र । दिन भर का कुल धन-संग्रह ३२४२॥≘)।

२५ जुलाई

कानपुर से लखनऊ और वापसी, ९० मील रेल से । उन्नाव स्टेशन पर थैली तथा फुटकर २८२॥।)॥ लखनऊ में महिला-सभा तथा थैली इत्यादि ११७६।≈)।; बालसभा में १०१); सार्वजनिक सभा, सनातनियों और हरिजनों के मानपत्र तथा थैली व फुटकर संग्रह ३९४५॥≘)।॥ कानपुर : ज़िला-हरिजन-सेवक-संघों के प्रतिनिधियों से मुलाक़ात : इटावा की थैली ७३२); फर्रुखाबाद की ६४५); मुरादाबाद की थैली ३२२॥); जालौन की थैली ६०१); वाल्मीकि-सुधार-सभा, आगरा की थैली ९।–)।।; सीतापुर की थैली ३०१॥–)।; बाँदा की थैली १८५≈); युक्त प्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभा का मानपत्र तथा थैली इत्यादि १२७); हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण; गुजरातियों का मानपत्र तथा थैली ११३११); गुजराती स्कूल के बच्चों की थैली १२≘); सन्ध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ८२॥)१०३ दिनभर का कुल धन-संग्रह १०९४३)७३ ।

२६ जुलाई

कानपुर : कांग्रेसवालों तथा कानपुर ज़िले के हरिजन-कार्य-कर्त्ताओं और यू० पी० के खादी-व्यापारियों से मुलाकात; सेठ कमलापत सिंघानियाने भेंट किया १५४१); महिलाओं की सभा, मानपत्र तथा धन-संग्रह ७४३॥=)॥; हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण; संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह २२०=)। दिन भर का कुल धन-संग्रह ३५९२॥-) कानपुर से बनारस के लिए प्रस्थान रेल से, २०१ मील।

कानपुर की म्यूनिसिपैलिटी

२२ जुलाई को म्यूनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्डने एक ही जगह पर अपने-अपने मानपत्र गांधीजी को दिये। यह बड़ा अच्छा हुआ, कि दोनों ही सार्वजनिक संस्थाओं की संयुक्त सभा हुई और गांधीजी को, उनके गिरते हुए स्वास्थ्य को देखते हुए, म्यूनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्डने बजाय इसके कि उन्हें आफ़िस में ले जाने का कष्ट दिया जाय उन्हें उनके निवास-स्थान डाक्टर जवाहरलाल के बंगले पर ही मानपत्र दिये।

कानपुर की म्यूनिसिपैलिटीने प्रशंसनीय हरिजन-सेवा की है। १९३२ के पहले ही उसने १५०००) ख़र्च करके अपने हरिजन मुलाज़िमों के लिए कुछ मकान बनवा दिये थे। लेकिन बाबू ब्रजेन्द्रस्वरूपजी जब से चेयरमैन हुए, तब से तो म्यूनिसिपैलिटी ने ख़ासी कर्मण्यता दिखाई है। १९३३ में चेयरमैनने बोर्ड के आगे यह योजना पेश की, कि मेहतरों के लिए १६८०००) ख़र्च करके दो या तीन साल में ५५० मकान बनवा दिये जायँ। इम्प्रूवमेंट ट्रस्टने फार्बस कम्पाउण्ड में जो ६० क्वार्टर हाल में बनवाये हैं, उन्हें म्यूनिसिपैलिटीने २६५००) में ख़रीद लिया है। ट्रस्ट ३) मासिक किराया की क्वार्टर वसूल करता था, मगर म्यूनिसिपैलिटी २) ही भाड़ा लेती है। साल पर अपने केटल बैरक कम्पाउण्ड में म्यूनिसिपैलिटीने ४० क्वार्टर बनवाये हैं, जिन पर १५०००) ख़र्च हुए हैं। यहाँ सिर्फ़ १) मासिक किराया लिया जाता है। और हाल ही सीसामऊ घोसियाना में १८ क्वार्टर ६५००) में बोर्डने ख़रीद किये हैं। इस तरह एक साल के अन्दर ही म्यूनिसिपैलिटीने ४८०००) कीमत के १८८ अच्छे हवादार और साफ़-सुथरे मकान अपने हरिजन मुलाज़िमों के लिए बनवा दिये, या ख़रीद लिये। हमें आशा है कि म्यूनिसिपैलिटी की यह प्रगति दिन-दिन बढ़ती जायगी, और अन्य स्थानों की म्यूनिसिपैलिटियाँ इस सुन्दर उदाहरण का अनुकरण करेंगी।

यहाँ की म्यूनिसिपैलिटीने हरिजन-बस्तियों में लालटेनें और नल भी लगवा दिये हैं। हरिजनों के लिए ५ गुसलख़ाने बनवा-देने का भी विचार है, जिसमें ५५००) लगेंगे। एक हरिजन-बस्ती में एक अच्छा-सा बाग़ लगवाने का भी म्यूनिसिपैलिटीने निश्चय किया है। इसके लिए १००००) की ज़मीन ले ली गई है।

पर इन सब से यह हरगिज़ नहीं समझ लेना चाहिए, कि कानपुर की म्यूनिसिपैलिटीने अपने हरिजन मुलाज़िमों के प्रति अपना फ़र्ज़ अदा कर दिया या वह उऋण हो गई। गांधीजीने यहाँ की भी हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण किया। कुछ बस्तियों के घर क्या थे, चूहों के बिल थे। न कहीं से हवा उनमें आती है, न रोशनी। कुछ तो बिल्कुल तहख़ाने-जैसे थे। म्यूनिसिपैलिटी चाहे, तो जो काम वह ३ साल में पूरा करना चाहती है, उसे बड़ी आसानी से ६ महीने में ही ख़त्म कर सकती है। फार्बस कम्पाउण्ड में क्वार्टर बहुत धीरे-धीरे बन रहे हैं, वहाँ के वाशिंदों की बुरी हालत है। एक तरह से बेचारे बिना ही घर-द्वार के वहाँ रह रहे हैं। और ग्वालटोली के क्वार्टर तो मनुष्य के रहने ही लायक नहीं। फिर एक और आफ़त है। इस बस्ती में सरकारी ताड़ी की दो दूकानें हैं, जिनके ख़िलाफ़, मालूम होता है, आवाज़ उठाई ही नहीं गई। लोगों की और भी अनेक शिकायतें हैं। उनके कुछ कष्ट तो ऐसे हैं, जिनका निवारण तुरंत होना चाहिए। म्यूनिसिपैलिटी चूँकि समाज के इन तिरस्कृत तथा उपेक्षित सेवकों के प्रति कुछ-कुछ अपना कर्त्तव्य-पालन कर रही है, इसलिए हम आशा करते हैं, कि वह उनकी सारी ही उचित शिकायतों को यथाशीघ्र दूर कर देगी।

ज़िला-बोर्ड

कानपुर के ज़िला-बोर्डने यह निश्चय किया है, कि अन्य जाति के विद्यार्थियों की तरह हरिजन विद्यार्थी भी बोर्ड के स्कूलों में भरती किये जायँ, और जो अध्यापक इस निश्चय के विरुद्ध जायँ, उन्हें अर्थदण्ड दिया जाय। प्राइमरी पाठशालाओं में हरिजन लड़कों से कोई फ़ीस नहीं ली जाती। लड़कियों को दूसरे हुनरों के साथ-साथ सूत कातना भी सिखाया जाता है। बोर्ड की केटल ब्रीडिंग कमेटीने हिसार की बढ़िया गौएँ और बैल अच्छी नसल बढ़ाने के लिए गाँवों में बाँटे हैं।

खादी

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की कन्या-पाठशालाओं में जो सूत कातना सिखाया जाता है उसकी चर्चा करते हुए गांधीजीने कहा, 'खादी में मेरा आज भी वैसा ही अटल विश्वास है। हरिजनों से खादी का बहुत अधिक संबंध है। सैकड़ों-हज़ारों हरिजन स्त्रियों और जुलाहों की इससे सेवा हो रही है। कातने या बुनने का काम अगर हम इन्हें न देते, तो ये भूखों मर जाते, क्योंकि अन्य धंधों के रास्ते तो उनके लिए बिल्कुल ही बंद हैं। इसी तरह खादी से सैकड़ों मुसलमानों का भी काम चल रहा है। परदानशीन मुसलमान स्त्रियों को अगर कातने का अवसर न दिया जाता, तो आज इससे जो वे दो-तीन पैसे रोज़ पैदा कर लेती हैं, वह भी न पैदा कर सकतीं। हज़ारों अधभूखे भारतवासियों को कुछ-न-कुछ सहायता तो चर्खा कर ही रहा है। इस तरह दरिद्रनारायण की सेवा बिना खादी के हो ही नहीं सकती है। एक गज़ खादी जिसने ख़रीद ली, उसने अपने ग़रीब भाई को सच्ची मदद पहुँचा दी, फिर वह भाई चाहे सवर्ण हिंदू हो, चाहे हरिजन, चाहे मुसलमान।

सार्वजनिक सभा

उसी दिन शाम को सार्वजनिक सभा हुई। सभा में आशातीत शांति और व्यवस्था थी। सार्वजनिक सभा में दिया हुआ गांधीजी का भाषण इसी अंक में अन्यत्र दिया जाता है।

तिलक मेमोरियल हाल

२४ तारीख़ को सबेरे गांधीजीने तिलक-हाल का उद्घाटन किया। उस अवसर पर वीरवर स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी की स्मृति-चर्चा करते हुए गांधीजीने जो महत्वपूर्ण भाषण दिया, वह इसी अंक में अन्यत्र दिया गया है।

हरिजन कार्यकर्त्ताओं से

कानपुर में गांधीजीने करीब तीन घंटे प्रांतीय हरिजन-कार्य-कर्त्ताओं को दिये। इन सबको गांधीजीने जो अत्युपयोगी परामर्श दिया, उसका सारांश मैं अगले अंक में अलग से दूँगा।

विद्यार्थी और हरिजन

शाम को हरिजनों और विद्यार्थियों की एक संयुक्त सभा हुई। हज़ारों की उपस्थिति थी। कौन पहचान सकता था, कि कौन तो वहाँ विद्यार्थी थे और कौन हरिजन और कौन जन-साधारण। गांधीजीने कहा, 'अगर हिन्दुस्तान के विद्यार्थी अपने अवकाश का समय हरिजन-सेवा में लगा दें, तो अस्पृश्यता-निवारण-कार्य की गति दस गुनी तेज़ हो जाय। और अपने भाइयों की सेवा करना ही तो शिक्षा का श्रेष्ठ अंश है।'

मेहतर हरिजनों के मानपत्र के उत्तर में गांधीजीने कहा, 'आप लोग समाज की जो सेवा करते हैं, वह एक पवित्र धंधा है। मेहतर के काम में कोई नीचता नहीं। यह अफ़सोस की बात है, कि हम झाडू देनेवालों से घृणा करते हैं। यह तो साफ़ ही अधर्म है। जो दाई, डाक्टर या माता का काम करे, उसे नीच समझना निश्चय ही नीचता है। पर आप लोग शौचादि के नियमों का पालन करें, मुर्दारमांस खाना और दारू पीना छोड़दें, और न जुआ खेलें। जूठन लेना भी छोड़दें। बिना राँधा चावल या दाल आप लोग अपने पारिश्रमिक के बदले में लें।' हड़ताल करने के बारे में गांधीजीने कहा, 'दक्षिण अफ्रीका एवं अपनी मातृभूमि भारत में मैंने स्वयं कई सफल हड़तालें कराई हैं; और इस हड़ताल शास्त्र में निपुण होने की हैसियत से मैं तो आपको यह सलाह दूँगा, कि जब अन्य उपायों से आप निराश हो जाएँ, तभी इस हथियार से काम लें।'

लखनऊ

२५ जुलाई को सबेरे गांधीजी चंद घंटों के लिए लखनऊ गये। वहाँ उन्होंने सबसे पहले महिलाओं की सभा में और उसके बाद सार्वजनिक सभा में भाषण दिया, जहाँ उन्हें ४३८३) की थैली भेंट की गई। सनातनियों की ओर से एक मानपत्र भी मिला।

आर्य-समाज

तीसरे पहर युक्तप्रांतीय आर्य-प्रतिनिधि-सभा की ओर से गांधीजी को कानपुर के आर्य-समाज-मन्दिर में मानपत्र दिया गया। मानपत्र के उत्तर में गांधीजीने कहा, 'कभी-कभी आर्य-समाज के साथ मुझे प्रेम-कलह करना पड़ा है सही, किन्तु देश तथा मानव-समाज की मैंने जो सेवा की है, उसमें आर्य-समाज का मुझे पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त हुआ है, और आगे भी होता रहेगा, ऐसी आशा है।'

हरिजन-बस्तियाँ

गांधीजीने लगातार दो दिन कानपुर शहर की विभिन्न हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण किया। फार्बस कंपाउण्ड, विपत खटीक का हाता, लक्ष्मीपुरवा, हड्डी गोदाम, मीरपुर, मोतीमहल, बेरहना, केटल बैरक और ग्वालटोली, कानपुर की ये ९ बस्तियाँ गांधीजीने देखीं।

लक्ष्मीपुरवा की बस्ती बिलकुल नीची जगह में है, इससे बरसात में वहाँ पानी-ही-पानी भर जाता है। हड्डी गोदाम और बेरहना की बस्तियाँ और भी नीची सतह में हैं। यहाँ की सँकरी और टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में गंदगी का कुछ ठिकाना! ये घर क्या हैं, प्राचीन काल की अँधेरी गुफाएँ हैं। ये सब एक दूसरी से सटी हुई कोठरियाँ हैं। इस भूल भुलैया-जैसी बस्ती से बाहर निकलना कठिन-सा है। और उस अभागिनी ग्वालटोली बस्ती का क्या पूछते हैं—एक ओर कंदुलिप्त है, दूसरी ओर हौली। इन चारों बस्तियों को तो बिलकुल साफ़ ही कर देना चाहिए, यहाँ सुधार की तो कोई गुंजाइश ही नहीं। दूसरी जगह नये सिरे से बस्तियाँ बसाये बिना काम चलने का नहीं।

वालजी गोविंदजी देसाई

कलकत्ते में तीन दिन

कलकत्ते की यात्रा हरिजन-प्रवास के कार्यक्रम में नहीं थी। कलकत्ते तो गांधीजी वहाँ के कॉंग्रेसवालों का आपसी झगड़ा पटाने गये थे। रहे वहाँ मुश्किल से तीन ही दिन, पर काम कर डाला तेरह दिन का। कर्त्ता तो ईश्वर है, यह जिसका अखंड विश्वास हो उसे असंभव भी सम्भव हो जाता है। जिसने प्रभु के हाथ में अपनी बागडोर सौंप दी हो, जो उसी का नचाया नाचता हो उसके लिए असाध्य भी साध्य हो जाता है। सच पूछिए तो कलकत्ते में हरिजन-कार्यक्रम तो कुछ था ही नहीं, तो भी हरि-जन-सेवा में रस लेनेवाले सज्जनोंने अपने ऊपर पूरी जवाबदेही लेकी और चलते-चलते ७२०००) एकत्रित करके गांधीजी को दे दिये। इतने अधिक धन-संग्रह की आशा हमें स्वप्न में भी नहीं थी। चलते समय हमें ऐसा लगा, कि अगर एकाध दिन और यहाँ ठहरना होता, तो कलकत्ते की थैली लाख रुपये तक तो पहुँच ही जाती। यह प्रेम के मंत्र का वशीकरण नहीं तो क्या है।

'आप लोग मुझे जो १००००) की थैली देना चाहते हैं, वह पर्याप्त नहीं कही जा सकती', गांधीजीने पहले दिन यह गुजराती भाइयों से कुछ प्रेम की रुखाई से कहा। गुजरातियोंने कहा कि प्रयत्न करने में तो हमने कुछ उठा नहीं रखा, किया क्या जाय, मन्दी के दिनों में इससे अधिक पत्र-पुष्प हम भेंट नहीं कर सकते। पर अंत में उनकी वही थैली १५०००) की तो हो ही गई। और परम सनातनी मारवाड़ियोंने २५०००) का तोड़ा भेंट किया। सुनता था, कि कलकत्ते के मारवाड़ी हरिजन-प्रवृत्ति के विरोधी हैं, पर मैंने तो वहाँ एक भी मारवाड़ी के हाथ में काला झंडा नहीं देखा। श्रीमती सत्यवती की कर्मण्यता धन्य कहिए, कि दिनरात मारवाड़ी महिलाओं में घूम-घूमकर उन्होंने ३०००) एकत्रित करके गांधीजी को दिये। इतना ही नहीं, कलकत्ते से विदा होते-होते तक बहिन सत्यवती मारवाड़ी महिलाओं को गांधीजी के पास ले आईं और उनके गहने उतरवाते गईं। मारवाड़ी स्त्रियों के लिए गहनों का मोह त्यागने की यह बात आश्चर्यजनक थी।

गांधीजी श्रीयुक्त जीवनलालजी के यहाँ टिके थे। जीवन-लालजी का आँगन शाम-सबेरे प्रार्थना के समय नर-नारियों से इतना भरा रहता था, कि तिल रखने को भी जगह न रहती थी। प्रार्थना में ही करीब एक हज़ार रुपया इकट्ठा हो जाता। एक सज्जन तो घर बैठे ही सबेरे चार बजे एक... गये। सबेरे से लेकर शामतक बिना...

संपादक—वियोगी हरि "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का मूल्य -)

हरिजन-सेवक

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, १० अगस्त, १९३४. [संख्या २५

विषय-सूची

डोम

[श्री रामसिंहासन सहाय 'मधुर']

१

तू राजा है, डोमिन तेरी झोपड़िया की रानी;
तेरे आश्रय में पलते थे हरिश्चन्द्र-से दानी।
मुकुटों में मणियाँ रोई हैं, रनिवासों में रनियाँ;
किंतु एकरस रही सदा से, धन्य धन्य डोमिनियाँ।

२

मरघट तेरा अचल राज है, पर्णकुटी रजधानी;
कौन नहीं करने आता है तेरे घर मेहमानी?
तेरा निंदक भी आवेगा मुँहपर ओढ़ कफ़नियाँ;
उसदिन मौन रहेगी उसकी पोथी, माला, मनियाँ।

३

हरि बोलो, माँगेगा—'दे दे अंतिम आगी-पानी';
हरिजन को कहता अछूत, तब जानेगा अभिमानी।
तेरे अपमानित गौरव पर मेरी श्रद्धांजलियाँ;
बापू दरदर घूम रहा है व्यथित देशकी गलियाँ।

४

लेलेंगे वे प्राण, हाय, वह देनेपर राज़ी है;
बक्सर से पत्थर-प्रहार, पूने से बमबाज़ी है।
डोमराज! भयभीत न होना, निठुरता हारेगी;
प्रभु की करुणा हृदय चीरकर यह बाज़ी मारेगी।

५

अंतर भींज रहा है, कैसे दीपक राग जगाऊँ?
बापू, अपनी चिनगारी दे, मैं भी आग लगाऊँ।
जग उठ, लग उठ, धधक धधक उठ तीस कोटि में ज्वाला;
आकूत पर धुआँधार हो इसका देश-निकाला।

साप्ताहिक पत्र

[३५]

निर्देशिका

२७ जुलाई

काशी : सार्वजनिक कार्य, संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह १२२।≈)११

२८ जुलाई

काशी : सार्वजनिक कार्य, गोरखपुर ज़िले की थैली ९५१); संध्या की प्रार्थना के समय २७॥≈)७६; काशी विद्यापीठ की ओर से स्वागत तथा धन-संग्रह ४४-)

२९ जुलाई

काशी: ज़िलों के प्रतिनिधि-मंडलों से मुलाकात : मथुरा की थैली १०००); गाज़ीपुर की थैली २०१); असार की थैली ११६२॥-); बलिया की ७७१।-); आज़मगढ़ की १११); कप्तानगंज की ३१२); जौनपुर की ६०); नैनीताल की ९५२); हरिजन-सेवक-संघ के केंद्रीय बोर्ड की बैठक, संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ७१॥-)११६; दिनभर का कुल धन-संग्रह ४०२६॥≈)११६

३० जुलाई

काशी : मौन-दिवस; बरेली की थैली १२५); संध्या की प्रार्थना के समय ३१।≈)४६

३१ जुलाई

काशी : हरिजन विद्यार्थियों का मानपत्र; सार्वजनिक सभा और थैली ५०००); गुजरातियों की थैली १५४); चंदौली तहसील की थैली २१७); संध्या की प्रार्थना के समय ५२॥)१६ रायबरेली की थैली ४९०); दिनभर का कुल धन-संग्रह ६५२८॥≈)।

१ अगस्त

काशी : हिंदू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का मानपत्र और थैली १७६६॥≈)८; फ़ैज़ाबाद की थैली २०३); हरिजन-कार्यकर्ताओं की बैठक; हरिजनों की सभा; अछूतोद्धार-समिति, राजभर और रैदास-सभा के मानपत्र, धन-संग्रह ३७॥-)४; कांग्रेसवालों की बैठक; संध्या की प्रार्थना के समय ५५-)।

२ अगस्त

काशी : हरिजन-बस्तियों तथा कबीरमठ का निरीक्षण, कबीरमठ में थैली तथा फुटकर संग्रह १२९≈)॥; काशी की पंडित-मंडली का मानपत्र; महिलाओं की सभा तथा थैली इत्यादि २७८८); हरिजन-प्रवास समाप्त।

संपादक—वियोगी हरि "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 3169.

वार्षिक मूल्य ४)
(डाक-खर्च-सहित)

पता—
हरिजन-सेवक
[illegible], दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, १० अगस्त, १९३४ [संख्या २५

विषय-सूची

डोम

[श्री रामविलासलाल सहाय 'मधुर']

१

तू राजा है, डोमिन तेरी कोमलकिया की रानी;
तेरे आश्रय में पलते थे हरिचन्द्र-से दानी।
मुकुटों में मणियाँ रोई हैं, रनिवासों में रनियाँ;
किंतु मुकरस रही सदा से, धन्य धन्य डोमिनियाँ।

२

मरघट तेरा अचल राज है, पर्णकुटी रजधानी;
कौन नहीं करने आता है तेरे घर मेहमानी?
तेरा निंदक भी आवेगा मुँहपर ओढ़ कफनिया;
उसदिन मौन रहेगी उसकी पोथी, माला, मनिया।

३

हरि बोलो, माँगेगा—'दे दे अंतिम आगी-पानी';
हरिजन को कहता अछूत, तब जानेगा अभिमानी।
तेरे अपमानित गौरव पर मेरी श्रद्धांजलियाँ;
बापू दरदर घूम रहा है व्यथित देशकी गलियाँ।

४

लेलेंगे वे प्राण, हाय, वह देनेपर राज़ी है;
अवसर से पत्थर-प्रहार, पूने से बमबाज़ी है।
डोमराज! भयभीत न होना, निठुरता हारेगी;
प्रभु की करुणा हृदय चीरकर यह बाज़ी मारेगी।

५

अंतर भीज रहा है, कैसे दीपक राग जगाऊँ?
बापू, अपनी चिनगारी दे, मैं भी आग लगाऊँ।
जग उठ, जग उठ, धधक धधक उठ तीस कोटि में ज्वाला;
आज अछूत पर सुनीं आज हो उसका देश-निकाला।

साप्ताहिक पत्र

[३५]

निर्देशिका

२७ जुलाई

काशी : सार्वजनिक कार्य; संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ११२३|=)११

२८ जुलाई

काशी : सार्वजनिक कार्य; गोरखपुर ज़िले की थैली २५११); संध्या की प्रार्थना के समय २७॥|=)४३; काशी विद्यापीठ की ओर से स्वागत तथा धन-संग्रह ७७-)

२९ जुलाई

काशी: ज़िलों के प्रतिनिधि-मंडलों से मुलाकात; मथुरा की थैली १०००); गाज़ीपुर की थैली २०१); आगरा की थैली ११२६॥|-); बलिया की ७०१|-); आज़मगढ़ की १११); सुल्तानपुर की ३११); जौनपुर की ६०); सीतापुर की २५२); हरिजन-सेवक-संघ के केंद्रीय बोर्ड की बैठक; संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ७१॥|-)११३; दिनभर का कुल धन-संग्रह ४०२६|||=)११३

३० जुलाई

काशी : मौन-दिवस; बरेली की थैली १२५); संध्या की प्रार्थना के समय ३१|=)४३

३१ जुलाई

काशी : हरिजन विद्यार्थियों का मानपत्र; सार्वजनिक सभा और थैली ५०००); गुजरातियों की थैली १५४); चंदौली तहसील की थैली २१७); संध्या की प्रार्थना के समय ५२॥)१३ रायबरेली की थैली ४९०); दिनभर का कुल धन-संग्रह ६५२८||=)।

१ अगस्त

काशी : हिंदू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का मानपत्र और थैली १७३६॥|=)८; फैज़ाबाद की थैली २०३); हरिजन-कार्यकर्ताओं की बैठक; हरिजनों की सभा, अछूतोद्धार-समिति, राजभर और रैदास-सभा के मानपत्र, धन-संग्रह ३७॥-)४; कांग्रेसवालों की बैठक; संध्या की प्रार्थना के समय ५५-)।

२ अगस्त

काशी : हरिजन-बस्तियों तथा कबीरमठ का निरीक्षण, कबीरमठ में थैली तथा फुटकर संग्रह १२९=)॥; काशी की पंडित-मंडली का मानपत्र, अहिरानों की सभा तथा थैली इत्यादि २०८८); हरिजन-प्रवास समाप्त।

काशी

हमारे हरिजन-प्रवास की पूर्णाहुति काशीपुरी में ही हुई। काशी के सर्वतीर्थिका या दशाश्वमेध घाटपर गंगाजी में एक डुबकी लगाना भी पूर्व के पुण्य-प्रताप से प्राप्त होता है। मन भी आस के प्रवाह के अनुभवों से हमें पूरी आशा होगई है, कि अस्पृश्यता का हमारा यह सारा पुराना-पुराना पाप-पुंज गंगा की पवित्र धारा में बह जायगा।

अखिल भारतीय संघ

काशी में गांधीजी का बहुत सारा समय तो अन्य सार्वजनिक कामों में ही चला गया। प्रथम चार दिन तो शायद ही किसी हरिजन-कार्य में उन्होंने भाग लिया हो—हाँ, २९ जुलाई को तीसरे पहर अखिल भारतीय हरिजन-सेवक-संघ की बैठक में ज़रूर आये थे। संघके आय-व्यय, उसके प्रबन्धकार्य और हरिजन सेवकों के लिए एक शिक्षा-संस्था स्थापित करने की आवश्यकता पर गांधीजी उक्त बैठक में एक घंटे से अधिक ही बोले। उनका वह पूरा भाषण अगले अंक में दिया जायगा।

हरिजन विद्यार्थी

हिंदू विश्वविद्यालय और डी० ए० वी० हाईस्कूल में हरिजन विद्यार्थियों से कोई फ़ीस नहीं ली जाती। आर्य विद्या-सभा, काशीजी की अछूतोद्धार-समिति, और हिंदू-विश्व-विद्यालय की हरिजन-शिक्षा-प्रचार सभा की ओर से हरिजनों के लिए प्राइमरी पाठशालाएँ चल रही हैं। इन सब पाठशालाओं में पढ़नेवाले करीब ५०० हरिजन बच्चों से गांधीजी ३१ जुलाई को मिले। बच्चों के बीच उनका वह आध घण्टा बड़े आनन्द से बीता। उन्होंने कहा, 'बच्चों को देखकर मुझे संतोष नहीं हुआ। ये ठीक तरह से साफ़-सुथरे नहीं रखे जाते। हरिजन-पाठशालाओं के शिक्षकों को सब से पहले तो सफ़ाई पर ही ध्यान देना चाहिए। स्वच्छता ही तो धर्म का सार है। अध्यापक बच्चों को राम नाम की महिमा बतावें, और कहें, कि इस से वे अपना मन शुद्ध रखें और फिर शरीर और वस्त्र स्वच्छ रखने की शिक्षा दें। अध्यापक अपने विद्यार्थियों के कपड़े-लत्ते धो दिया करें, उनके बालों को साफ़ करके कंघी करें, नाखून काटें और उनके दाँत, नाक, आँखें और कान साफ़ कर दिया करें। ठीक तरह से उन्हें उठना-बैठना और शिष्टता भी सिखावें। हरिजन-पाठशाला में ही क्यों, यह स्वच्छता-सभ्यता का पदार्थ पाठ तो सभी प्राइमरी पाठशालाओं में अनिवार्य रीति से मिलना चाहिए।'

एक प्रहसन

गांधीजी सार्वजनिक सभा में जाने की तैयारी कर रहे थे, कि उन्हें काशी-विश्वनाथ के इजलास ख़ास का एक 'वारंट' मिला, जिसमें यह लिखा था, कि विश्वनाथ बाबा के कोतवाल भैरव की कचहरी में क्यों न गांधीजी हाज़िर हों और सनातनधर्म की मर्यादा भंग करने के अपराध पर क्यों न उनके ऊपर मामला चलाया जाय? गांधीजी के खिलाफ़ हमारे पंडित लालनाथजी का यह आख़िरी विरोध-प्रदर्शन था। करीब २० प्रदर्शनकारी लेकर वे पहुँचे थे। किसी तरह की हुल्लड़बाज़ी नहीं थी। गांधीजी के कहने पर उस दल का एक युवक अन्दर बुला लिया गया। उसने गांधीजी को समन दिखाया। 'यह वारंट तुम्हें किसने दिया है?' गांधीजीने विनोदपूर्वक पूछा। युवकने तुरन्त उत्तर दिया, 'कालभैरवने यह वारंट देकर आपको गिरफ्तार करने के लिए मुझे भेजा है।' 'तो क्या तुम्हें कालभैरव का यह सन्देश नहीं मिला है, कि मैं तुम्हारे इस समन की तामील न करूँ?' गांधीजीने उस तरुण विद्यार्थी से पूछा। इतने में लालनाथजी भी आ गये, और कहने लगे, 'अरे, गांधीजी का एकाध फ़ोटो हो, तो दीजिए न, उसी को हम गिरफ्तार करके ले जायँगे।' गांधीजीने कहा, कि मेरे पास तो मेरी कोई तसवीर है नहीं। अब पंडित लालनाथजीने उस समन पर गांधीजी की सही करानी चाही। गांधीजीने कहा, 'मेरी सही कराके क्या करोगे? अच्छा, लाओ सही करदूँ।' समन पर दस्तख़त करके यह लिख दिया, 'यह सब बहुत अनुचित हो रहा है।' इस सौदेदार प्रहसन के बाद सुना, कि गांधीजी के चित्रों का विरोध-प्रदर्शक जुलूस निकाला गया और अन्त में वे चित्र जला दिये गये।

सार्वजनिक सभा

३१ जुलाई को सार्वजनिक सभा हुई। यह सभा कई दृष्टियों से अपूर्व थी। गांधीजी के खिलाफ़ ज़हर उगलनेवाले बड़े ही गंदे पर्चे बाँटे गये थे। इससे स्वागत-समिति तथा पुलिस को आशंका थी, कि सभा में कहीं कोई अनिष्ट न हो जाय। सभा के सकुशल संपन्न होने में सन्देह ही था। पर वह आशंका निर्मूल निकली। सभा काफ़ी शान्ति से हुई। किसी तरह की कोई दुर्घटना नहीं घटी। उपस्थिति भी लोगों की काफ़ी अच्छी थी।

काशी के विद्वान् पंडितों के मंडलने भी गांधीजी को एक सम्मान-पत्र भेंट किया। इस मण्डल में लगभग काशी-विश्वविद्यालय तथा काशी-विद्यापीठ के संस्कृताध्यापक थे। यह भी एक अपूर्व बात थी। तीसरी अनुपम बात यह थी, कि वर्णाश्रम-स्वराज्य-संघ और भारत-धर्म-महामण्डल के प्रतिनिधि स्वरूप श्री पं० देवनायकाचार्य भी अपना मत सभा में व्यक्त करने के लिए बुलाये गये थे। पंडितजी आध घंटे पीछे पहुँचे। गांधीजी उस समय भाषण दे रहे थे। पर पंडितजी के आते ही उन्होंने बोलना बन्द कर दिया, और कहा, कि जिस श्रद्धा के साथ आप लोग मेरी बात सुन रहे हैं, उसी श्रद्धा से पंडितजी की भी बात सुनें। देवनायकाचार्यजी की मुख्य शिकायत 'मंदिर-प्रवेश बिल' के सम्बन्ध की थी। पंडितजी के पश्चात् मालवीयजी महाराजने अस्पृश्यता-निवारण के समर्थन में संक्षिप्त किन्तु ज़ोरदार भाषण दिया। मालवीयजीने शास्त्रों के अनेक प्रमाण देते हुए यह सिद्ध किया कि हरिजनों को भी अन्य हिन्दुओं की तरह समान सामाजिक और धार्मिक अधिकार मिलने चाहिए। पर मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी क़ानून बनवाने के बारे में तो पंडित मालवीयजीने भी आपत्ति की, यद्यपि हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश के सम्बन्ध में उन्हें कोई एतराज़ नहीं। मालवीयजी के बाद पंडित देवनायकाचार्य की आपत्तियों का उचित उत्तर देकर गांधीजीने अपना अधूरा भाषण पूरा किया। गांधीजी के भाषण का सारांश इसी अंक में अन्यत्र दिया गया है।

हिंदू-विश्वविद्यालय

१ अगस्त को गांधीजी का स्वागत हिंदू-विश्वविद्यालय में हुआ। वहाँ वर्णाश्रम-धर्म पर बोलते हुए गांधीजीने कहा—

[शेष २५०वें पृष्ठ पर]

हरिजन-सेवक और मंदिर

"क्या हरिजन-सेवक ऐसे मन्दिर में जा सकते हैं, जहाँ हरिजनों को दर्शन करनेतक का अधिकार प्राप्त नहीं है ?"

एक सज्जनने मुझसे यह प्रश्न पूछा है। जो चीज़ हम धार्मिक रीति से करना चाहते हैं, उसकी एक विस्तृत स्मृति तैयार करनी पड़ती है। इसलिए ऐसा सवाल उठना स्वाभाविक है। किंतु इस सवाल का मैं सिद्धान्त रूप में जवाब नहीं देना चाहता हूँ। मैं मन्दिर को माननेवाला एक सनातनी हिंदू हूँ। हिमालय के सुप्रसिद्ध मन्दिर देखने के लिए हज़ारों मील का पैदल पर्यटन भी मैंने किया है। दर्शन और प्रसाद के लिए कठोरहृदय पुजारियों और पुरोहितों से अनेक बार मैंने विनय भी की है। अभिषेक का सौ घड़ा जल नित्य पूरा करने का आग्रह, बीमार पड़ने पर भी, मैंने छोड़ा नहीं था। मन्दिरों में मुझे हिंदूधर्म का सौरभ सदा ही प्रस्फुटित मिला है। मूर्तियों की मनोहरताने तो मुझे आकर्षित किया ही है, पर मनोरम मूर्तियों से भी अधिक मूर्ति में प्रतिष्ठित देवता का दर्शन करके अपने को धन्य समझनेवाले भक्तों की आँखों में मैंने धर्म का गूढ़ रहस्य पाया है। आज तो मेरी मूर्ति-पूजा की विधि की ओर पहले जैसी आस्था यद्यपि नहीं रही है, तो भी प्रसंग आने पर प्रतिमा पूजने से मैं इन्कार नहीं करूँगा।

हमारे मन्दिर, हमारी चित्रकला, हमारा संगीत, हमारा धार्मिक साहित्य, हमारी स्थापत्य-कुशलता—हमारी संस्कृति के प्रत्येक सुभग अंश के प्रतिनिधि हैं। धार्मिकता एवं कला-रसिकता का समन्वय हम अपने यहाँ के उत्सवों तथा मन्दिरों में पाते हैं। प्रभु-सेवा और जन-सेवा अभेदरूप से अगर कहीं देखनी हो, तो अच्छे मन्दिरों में वह हमें मिल सकती है। एक समय था, कि जब हर एक मन्दिर हमारे धार्मिक-सामाजिक जीवन का जीवित केन्द्र था। हमारा समाज यदि फिर वैसा ही धर्मप्राण बन जाय, तो अपने मन्दिरों के द्वारा हम धर्म-जागृति तथा समाज-सेवा का बहुत-कुछ काम कर सकते हैं, और उससे आप-ही-आप हमारा सात्विक संगठन भी हो सकता है।

किन्तु हमने—हम सनातनी हिंदुओंने अपनी जड़भक्ति और असंस्कारी उपेक्षा से मन्दिरों की जितनी दुर्दशा की है, उतनी तो स्यात् मूर्ति-भंजकोंने भी न की होगी। प्राय: बहुत-से मन्दिरों में आज न तो स्वच्छता देखने में आती है, न शान्ति—फिर पवित्रता तो बहुत दूर है। पूजाविधि तो हमने केवल यांत्रिक बना दी है। होटलों में जैसे वहाँ के नौकर लोग, किसी श्रद्धा या आदर-भावना के बिना, सेवा किया करते हैं, वैसे ही मन्दिरों के पुजारी किसी तरह पूजा-विधि समाप्त करके अपना पिंड छुड़ाते हैं। मन्दिर की सेवा केवल यांत्रिक हो गई है। जो भक्त जन मुग्ध भक्ति से प्रेरित होकर मन्दिर में आते हैं, उनकी भक्ति पर इन पुजारियों की उपेक्षा का निर्दय प्रहार कितना कठोर होता है, यह वे प्रकट रूपसे व्यक्त नहीं करते। और फिर बहुत-से भक्त तो यह कहकर संतोष कर लेते हैं, कि चंदन के इर्दगिर्द साँप तो रहेंगे ही, उन्हें सहन करना भी तो भक्ति का एक आवश्यक अंग है।

जिन मंदिरों में ऐसी अव्यवस्था के अलावा अनाचार भी [illegible] रहता है, उनकी तो बात न करनी ही अच्छी।

इतना होते हुए भी मन्दिरों के प्रति हमारी निष्ठा क्षीण नहीं होती है—क्षीण भी हो जाती है, तो नष्ट नहीं होती। किंतु जब यह मालूम होता है, कि अमुक मन्दिर में हरिजनों का प्रवेश नहीं है, तब तो उस मन्दिर में मुझे भगवान् भी दिखाई नहीं देते। इस प्रकार का प्रथम आघात मुझे बेजवाड़ा में हुआ, जहाँ मन्दिर-प्रवेश तो एक तरफ़ रहा, जिस टेकरी पर वह मन्दिर है, उसके ऊपर के आधे भाग में भी अछूतों को जाने की मनाही है! जिस मन्दिर में हरिजनों का प्रवेश नहीं है, वहाँ तो मेरे मन में अधार्मिकता का ही वायु-मंडल फैला हुआ रहता है—अन्दर प्रवेश करते ही चित्त जैसे [illegible] हो जाता है। नगर में प्रवेश करते ही आश्रम का ब्रह्मचर्य 'शाकुंतल' में कहता है :—

अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम् ।
बद्धमिव स्वैरगतिर्जनमिह सुखसंगिनमवैमि ॥

मैं स्नान कर चुका हूँ, तो भी ऐसा लगता है मानों तेल की मालिश करके बैठा हूँ, सारा शरीर अस्वच्छ-सा मालूम होता है। ऐसी ही दशा मेरे मन की हो जाती है। मन्दिर में हम जो प्राप्त करना चाहते हैं, उस से विपरीत ही अनुभव वहाँ प्राप्त होता है, वहाँ से ग्लानि ही पाकर उलटे पैर लौट आना पड़ता है।

ऐसे स्थान में हम जा सकते हैं या नहीं, इस प्रकार के विधि-निषेध का प्रश्न ही मन में नहीं उठता है, चित्तवृत्ति ही जाने से इन्कार कर देती है।

तो भी स्थापत्य और मूर्ति-विधान के अध्ययन की प्राचीन वृत्ति ज़बरदस्त होने से कभी-कभी प्रख्यात मन्दिरों में चला भी जाता हूँ। सोमनाथ के खंडित मन्दिर या विजयनगर के भग्ना-वशिष्ट राज-मन्दिरों में जिस पुरातत्व-निरीक्षण की वृत्ति से जाता हूँ, उसी वृत्ति से ऐसे मन्दिरों में भी जाता हूँ, इससे अधिक मन में कोई और भाव पैदा ही नहीं होता।

मन्दिर में जाकर यदि किसी सनातनी मित्र को मैं हरिजन-सेवा और अस्पृश्यता-निवारण की प्रवृत्ति को अधिक अच्छी तरह समझा सकूँ, इस कारण भी मैं कभी-कभी मन्दिरों में चला जाता हूँ। उस वक्त ध्यान मन्दिर और मन्दिर के वातावरण की ओर नहीं, किन्तु अपने सनातनी मित्र के शुद्ध हृदय की ओर ही रहता है।

इन दो प्रसंगों को छोड़कर यदि मुझ से कोई हरिजन-बहिष्कारी मन्दिरों में जाने को कहेगा, तो मेरे लिए तो वह कड़ी और असह्य सज़ा ही होगी। जो सज्जन हरिजन सेवा को अपना परम पवित्र कर्तव्य समझते हैं, उन्हें अपने हृदय से ही पूछना चाहिए, कि किस भाव से वे मन्दिर में जाते हैं, और वहाँ से क्या भाव लेकर वापस आते हैं।

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

देहाती भाइयों की कर्मण्यता

गोरखपुर ज़िले में देवरिया तहसील है। देवरिया क़सबे के पास तीन-चार मील की दूरी पर बैकुण्ठपुर नाम का एक गाँव है। उसमें राम भगत नाम के एक भाई रहते हैं। यह पढ़े-लिखे तो नहीं हैं, पर इनकी और इनके १५ साथियों की कर्मण्यता बड़े-बड़े विद्वानों को भी लज्जित कर देती है।

१९३० का वर्ष था। महात्माजी डांडी जारहे थे। मैं उन्हीं दिनों गोरखपुर जा रहा था। रास्ते में देवरिया स्टेशन पर श्री राम से मेरी भेंट हुई। मैंने उनसे कहा, कि महात्माजी नमक क़ानून तोड़ने जा रहे हैं, क्या आप लोग भी स्वयंसेवक बनोगे ?

अविलम्ब उन्होंने उत्तर दिया, 'ज़रूर।' बस, वहीं मैंने पेन्सिल से एक पत्र श्रीगणेशजी को लिखा, जिसमें इन भाइयों की स्वीकृति थी। एप्रिल मास आया। राष्ट्रीय सप्ताह आरम्भ हो गया। महात्माजीने नमक-क़ानून तोड़ा और साथ ही यह भी कहा कि १३ एप्रिल तक जितने स्थानों पर क़ानून तोड़ा जा सके तोड़ा जाय।

गोरखपुर में चौराचौरी-काण्ड हुआ था। लोग सत्याग्रह करने में हिचक रहे थे। दो-तीन दिन योंही निकल गये। अन्त में यह निश्चय हुआ कि राष्ट्रीय सप्ताह के भीतर गोरखपुर में नमक-क़ानून ज़रूर तोड़ा जाय और एक जत्था लेकर मैं बरहज से रवाना हो जाऊँ। यह बात ८ एप्रिल को तय पाई। ९ एप्रिल को उन्हें पत्र लिखा गया, और वह भाई १० की रात को बरहज २२ मील पैदल चलकर पहुँच गये। इधर उनके घर में तीन दिन ही पहले आग लग जाने से अन्न-वस्त्र सब स्वाहा हो चुका था। बाल-बच्चे पेड़ के नीचे पड़े हुए थे; और उनकी सहायता के लिए मैंने तीन-चार मित्रों को खरवास के लिए पत्र लिखे थे।

× × × ×

कानपुर-कांग्रेस के अवसर पर महात्माजी के निवास-स्थान के लिए 'पीर, बवरची, भिस्ती, खर' टाइप के स्वयंसेवकों की ज़रूरत थी। श्रद्धेय श्रीगणेशजीने मुझे ऐसे स्वयंसेवकों के लिए कहा। मैंने श्रीग्राम भगत के गोल का नाम लिया। ये भाई बुलाये गये। गरीब देहाती तो थे ही। कपड़े मैले थे। मैं इनको लेकर महात्माजी के निवास-स्थान के इनचार्ज सेठ जमनालालजी के पास पहुँचा। उन्होंने इनके कपड़े व शकल-सूरत देखकर कुछ उदासीनता-सी प्रगट की। पर आग्रह करने पर ले लिये गये।

श्री ग्राम भगत और उनके गोल के लोग अपने कार्य में जुट गये। सफ़ाई, कपड़े धोना, बर्तन माँजना, पानी भरना, पहरा देना आदि सब काम बड़ी तत्परता से किये। निवास-स्थान के लोग प्रसन्न हुए। स्वागतसमिति के भोजनालय से जलपान इन भाइयों के लिए आता था। कभी भेंट भी हो जाती थी, तो निवास-स्थान के प्रबन्धक इनको जलपानादि देना चाहते थे, पर ये भाई यह कहकर नहीं लेते थे कि 'हमरे खातीर वहाँ से इन्तजाम बटलेहुवाँ एमें एके कैसे ले सकब ?' एक दिन एक सज्जनने कहा कि "आज महात्माजी पण्डाल में बोलेंगे, आप लोगों को पास दिया जायगा। आप पण्डाल में जा सकते हैं।" इस पर इन कर्तव्यपरायण लोगोंने कहा "वहाँ तो रोज महात्माजी का दरसन होत बटलईयाँ। वहाँ जाके हम अधिका का देखब ?"

जिस काम का जिम्मा लिया उसे अन्ततक पूरी तरह से निबाहा, यह पाठ इन भाइयोंने हमें सिखाया।

× × × ×

बिहार में भूकम्प आया। शहरों में सेवा करनेवालों की संख्या तो बहुत थी, पर स्टेशन व पक्की सड़क से दूर देहातों में जाने के लिए बहुत ही थोड़े लोग तैयार थे। जनवरी-फ़रवरी के दिन थे। गोरखपुर ज़िले में ईख का काम अत्यधिक होने से ये भाई मजूरी-धतूरी करके किसी तरह अपने बाल-बच्चों का पेट पाल रहे थे। मैंने बिहार के हिम्मतपस्त किसानों को प्रोत्साहित करने के लिए मित्रों की सलाह से अपने ग्राम भगत के गोल को देहातों में भेजने का निश्चय किया। श्रीराजेन्द्र बाबू के परामर्श से ये लोग श्री सत्यव्रतजी के साथ दरभंगा नगर से २४ मील दूर देहातों में कुएँ साफ़ करने, अनाज बाँटने आदि कामों के लिए चले गये। जाड़े के दिन थे। उनके पास खादी की फटी-पुरानी धोती और चिथड़ेल कम्बल को छोड़कर कुछ भी नहीं था। मेरे एक मित्रने मुझे उलाहना देते हुए कहा कि "रिलीफ़ के योग्य तो ये ही लोग मालूम पड़ते हैं, इनको ही पहले कपड़े दीजिए।" मैंने यह बात ग्राम भगत से कही। इसपर वह हँसते हुए बोले "एहु से हमार काम चल जाई। हम लोग गृहस्थ हईं। दान की चीज हम लोगन के माई लेबे के चाही। ऐसन ही चीजों भरमके में पड़ जाव तब देखल जाई। हमार धरम मन बिगाड़ल जाव।" कितनी बड़ी निस्पृहता ! अपने पसीने की कमाई से सन्तोष वृत्ति से रहने की कहाँ यह भावना और कहाँ वह झूठ, विश्वासघात, कपट, कूटनीति-द्वारा पैसे कमाकर विलासितापूर्ण जीवन बिताने की हीनवृत्ति !

राघवदास

गांधीजी के स्वागत में

[काशी की सार्वजनिक सभा में ३१ जुलाई को गांधीजी का स्वागत करते हुए श्रद्धेय बाबू भगवानदासजीने निम्नलिखित भाषण दिया था।]

जिस स्थान पर आज हम लोग मिले हैं, और जहाँ आज ३५ बरस से आप लोगों की विविध प्रकार की सार्वजनिक सेवा हो रही है उस स्थान का नाम आप लोग जानते हैं कि हिन्दू स्कूल, हिन्दू कालेज है। इस पवित्र काशीपुरी के दक्षिण भाग में जो अति विशाल विद्यालय आज २० बरस से आपके बच्चों को शिक्षा दे रहा है, उसका नाम आप लोग जानते हैं कि हिन्दू-यूनिवर्सिटी है। इन स्थानों के ईंटा ढोने और जोड़नेवाले, इनको चलानेवाले लोग आपकी समझ में हिन्दूधर्म के द्वेषी हैं या सेवक हैं ? मेरा हृदय कहता है, कि आप लोगों में से प्रायः सभी सज्जन इनको अपना और हिन्दूधर्म का सेवक ही जानते हैं और दुश्मन नहीं मानते हैं। कदाचित् कुछ सज्जन ऐसे हैं, जिनका ऐसा भाव हो गया है कि ये लोग उनके और हिन्दूधर्म के सेवक नहीं हैं। इस शंका के भाव का परिमार्जन हम लोगों का कर्तव्य है। अधिक जतन से उनको समझाना चाहिए। 'वक्तुरेव हि दोष: स्याद् यत्र श्रोता न बुध्यते।' यदि सुननेवाला न समझे, तो कहनेवाले का ही दोष होगा। इस कारण से हम लोग इन शंकित भाइयों से पुनः पुनः विनीत प्रार्थना करते हैं, कि आप हमको अपना सेवक और शुभचिन्तक ही जानें।

ये नाम केचिदिह नः प्रथयंत्यवज्ञां
तेषां हिताय सकलोऽप्ययमस्ति यत्नः।
युष्माकमेव खलु सेवक एव वर्गः
स्वार्थेषु मा कुरुत मत्सरमार्यमिश्राः॥

यह तो सेवकों की सेवा का, कर्तव्य का एक अंग ही है कि ऐसी शंकाओं को शांत करें।

हिन्दू धर्म और हिन्दू जनता का ह्रास आज कई सौ वर्ष से होता आ रहा है, यह तो प्रत्यक्ष है। इसके दुःख से दुखी कुछ भाइयों-बहनों को यह विचार उत्पन्न हुआ, कि नई अवस्था में नये काल में, इस धर्म की, इस जनता की रक्षा का क्या उपाय खोज निकालना चाहिए, इस रोग के निदान कारण को

निदान करना चाहिए, और उसकी दवा का पता लगाना चाहिए, तो ऐसा जान पड़ा कि अति पुराना उपाय ही अति नया उपाय है।

इस धर्म का प्राचीन नाम सनातनधर्म भी है, वैदिक धर्म भी, आर्यधर्म भी, मानवधर्म भी, बुद्धियुक्त बौद्धधर्म भी। सभी नाम बड़े अर्थपूर्ण हैं। पर व्यवहार की दृष्टि से सबसे अधिक अर्थगर्भ नाम वर्णाश्रमधर्म है। वर्णधर्म, आश्रमधर्म, यह दोनों ऐसे परस्पर गुँथे हुए हैं, जैसे एक ही कपड़े के तागा और बाना। बिना एक के दूसरा ठीक-ठीक सिद्ध नहीं हो सकता। यह बात प्रायः सभी हिन्दू सज्जन मानेंगे। आजकाल इन दोनों धर्मोंमें सर्वथा संकर हो गया है, आश्रमसंकर भी और वर्णसंकर भी। इसका शोधन ही मूलच्छिन्न मूलशोधन, है। अन्य सब कार्य पत्ता धोना है। इसपर गहरा विचार करना चाहिए, कि यह शोधन कैसे हो सकता है। शांत मन से, प्रसन्न चित्त से ही यह विचार किया जायगा तो सफल होगा, क्रोध से, क्षोभ से नहीं।

दीर्घं पश्यत मा ह्रस्वं, परं पश्यत माऽपरम्।
सत्यं पश्यत माऽसत्यं, चार्थं पश्यत मा पदम्॥

× × ×

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

सत्य को पकड़िये, विकारों को मत पकड़िये। दूरदर्शिता कीजिये, अल्पदर्शिता नहीं। अर्थ को अधिक देखिये, पद को कम। कारण की चिकित्सा कीजिये, कार्यकी चिकित्सा अपने आप हो जायगी।

जब रोगी के प्रत्येक अंग में फोड़े हो जायँ तब चतुर वैद्य एक-एक फोड़े पर भी मरहम-पट्टी लगाता है, पर उस से अधिक यत्न रक्तशोधन का करता है। हिन्दूसमाज का हृदय कहिये, मर्म कहिये, प्राण कहिये, रक्त कहिये, सार कहिये, विशेष कहिये, वर्णधर्म है। इसके शोधन से सब फोड़े आप-से-आप अच्छे हो जायँगे। वर्णधर्म का तत्त्व क्या है, सच्चा स्वरूप क्या है, इसकी खूब गहरे विचार से जाँच करनी चाहिये। आजकाल इसका प्रचलित रूप यह है, कि पिछली मनुष्य-गणना में २३७८ परस्पर अस्पृश्य जातियाँ इस देश में गिनी गईं। आदिस्मृति, मूलस्मृति, मनुसंहिता में चार ही वर्ण कहे हैं, और वे परस्पर अस्पृश्य उस स्मृति में कहीं नहीं कहे गये हैं:—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः त्रयो वर्णा द्विजातयः।
चतुर्थस्त्वेक जातिस्तु शूद्रो, नास्ति तु पंचमः॥

यह भेदबुद्धि ही इस धर्म और इस जनता के ह्रास का हेतु हो रही है, यद्यपि इस देश के प्राचीन ज्ञान की जो पराकाष्ठा है, जहाँ वेद का अन्त है, जिसको वेदांत कहते हैं, उसका निष्कर्ष अभेदबुद्धि ही है।

वर्णधर्म के विषय में, महाभारत में, रामायण में, पुराणों में, बहुत बेर, आज हजारों वर्ष से, यह वाद उठाकर, कि वर्ण जन्मना है अथवा कर्मणा है, यही निश्चय किया है कि अन्ततोगत्वा कर्मणा ही है। "कर्मभिर्वर्णतां गतम्"। कर्म ही से इस जन्म में भी, और अन्य जन्म में भी, जीव का उत्कर्ष-अपकर्ष होता रहता है। सिद्धान्त का संग्रह यों है कि,

उत्तमं जन्मकर्मभ्यां, कर्मणैव तु मध्यमम्।
मिथ्यैव केवलं जात्या, वर्णत्वं स्मृतं बुधैः॥

इस दृष्टि से जन्मना अस्पृश्यता नहीं सिद्ध होती। कर्मणा अवश्य है। और इस अस्पृश्यता का घोरतर फोड़ा, हिन्दू-समाज के उस बड़े अंग पर देख पड़ रहा है जिसको पाँच या सात कोटि संख्यात्मक हरिजन के नाम से अब महात्माजी के नामकरण के अनुसार पुकारने लगे हैं। महात्माजीने दूरदर्शी वैद्य की दृष्टि से इस सब से बड़े फोड़े की चिकित्सा आरम्भ की है। इस चिकित्सा का यह अर्थ कभी नहीं है, कि खामख़ाह सहभोज या सहविवाह किया ही जाय, या मलदिग्ध व्यक्ति का अवश्य स्पर्श किया ही जाय। ऐसा नहीं है, केवल इतना ही है कि स्वच्छ मनुष्य दूसरे स्वच्छ मनुष्य का, अपने को ऊँची और दूसरे को नीची जाति का मानकर, तिरस्कार न करे। ऐसे अन्योन्य तिरस्कार का निवारण वर्णधर्म के परिशोधन का आवश्यक पूर्वांग है। पर मैंने महर्षिक मनुजी, और वाल्मीकिजी, व्यासजी और शुकजी की चरण-सेवा से अपनी अल्पबुद्धि से समझ पाया है वह यह है कि हरिजनों का उद्धार, जिनमें स्वयं परस्पर अस्पृश्य सैकड़ों-हजारों जातियाँ हैं, हिन्दू समाज के उद्धार का केवल प्रारम्भिक अंश है, इतने से सब कार्य समाप्त नहीं हो जायगा। इसका पूर्ण जीर्णोद्धार तभी होगा, जब समग्र मनु-जनों का, मनुष्यों का, मानवों का उद्धार वर्णव्यवस्था के मूल सिद्धान्त के अनुसार किया जायगा, और जब ऐसा होगा तब और तभी हिन्दूधर्म और हिन्दूसमाज के दिन लौटेंगे, इसका शुद्ध प्राचीन नाम मानवधर्म और मानव-समाज हो जायगा, और सब मानव आप-से-आप इसमें दौड़े हुए चले आवेंगे।

वर्णधर्म तो एक ऐसा साँचा, समग्र मानव-वंश के आदि प्रजापति मनुजीने बना दिया है कि उनके वंशज अर्थात् सभी मानव, सभी देश और सभी जातियों के, उसमें ढाले जा सकते हैं, और आज से हजार डेढ़ हजार वर्ष पहिलेतक इस देश में ढाले जाते थे। जब से इस साँचे के उद्देश्य और तत्त्व को भारतवर्षने भुला दिया, तबसे इसका ह्रास आरंभ हुआ। शरीर की, प्राण की, मूल सिद्धान्तों की रक्षा कीजिए। ऊपर के फटे-पुराने कपड़ों में प्राण मत अटकाइए। सार की रक्षा कीजिए, विकार को जाने दीजिए।

वेद के अर्थ को तो स्यात् सौ दो सौ महाविद्वान् पण्डित जन समग्र भारतवर्ष में जानते हों या न जानते हों, पर इस सारे विषय का निचोड़ थोड़े में आ जाता है—

जात पाँत पूछै नहिं कोई;
हरि को भजै सो हरि का होई।

मन और शरीर को निर्मल बनाओ। अपने और दूसरों में निर्मलता बढ़ाओ, एक दूसरे की जात-पाँत ही मत पूछते रहो।

भक्त्या पूतं मनो येषां, देहः स्नानादिभिस्तथा।
ते सर्वे स्वागताः संतु, देवदर्शनकांक्षिणः॥

इसी प्रस्तावना के साथ मैं काशी-वासियों की ओर से महात्माजी के कार्य में श्रद्धा को दिखानेवाली और उस कार्य में सहायता देनेवाली, हरिजनों पर स्नेह करनेवाली हरि-पत्नी लक्ष्मीरूपिणी, हरि-पदोपासकों के घरों से उनकी प्रीति-समेत संग्रह की हुई थैली भेंट करता हूँ।

शुभं भूयात्

सर्वः तरतु दुर्गाणि, सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः सद्बुद्धिमाप्नोतु, सर्वः सर्वत्र नन्दतु॥

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १० अगस्त, १९३४

काशी में गांधीजी के भाषण

१

[२१ जुलाई को काशी की सार्वजनिक सभा में गांधीजीने नीचे लिखे आशय का भाषण दिया था]

"ईश्वर की कृपा से मुझे काशीजी में दूसरी बेर आने का जो अवसर मिला है उससे मुझे बड़ा ही हर्ष होता है; और उस हर्ष में वृद्धि होती है, जब यह ख़याल करता हूँ कि इस पवित्र पुरी में ही मेरा हरिजन-दौरा समाप्त होता है। मुझे यह कार्य बड़ा ठीक जँचता है, कि यदि कोई भाई किसी प्रकार का मतभेद रखते हों तो वे भी इसी मंचपर कुछ कहें। मालूम नहीं, वर्णाश्रम-स्वराज्य-संघ के पण्डितजी किस कारणवश नहीं आ सके। हरिजन-आन्दोलन धार्मिक आन्दोलन है। इसमें दुराग्रह को स्थान नहीं है। मैं कितना ही जतन क्यों न करूँ, मुझसे भी ग़लतियाँ हो सकती हैं और हुई भी हैं। मैंने कभी ग़लती नहीं की है, यह दावा न तो मैंने कभी किया है और न करूँगा। जो बात मैं आज मान रहा हूँ वह नयी नहीं है। यह बात बचपनसे ही मेरे दिल में स्वयंसिद्ध रही है। जब मैं स्वेच्छाचारी बालक था, तभी मैं अस्पृश्यता को नहीं मानता था। मुझे रामनाम का मन्त्र सिखाया गया, जिसके प्रताप से मैं सुरक्षित रह सकता था। इस स्वयंसिद्ध बात के मामले में अगर मुझसे भूल हुई होगी तो इस तीर्थक्षेत्र में उसे स्वीकार करने में तनिक भी संकोच न होगा। जिस हालत में अस्पृश्यता इस समय मौजूद है उसके लिए शास्त्र में स्थान नहीं है। अस्पृश्यता हिंदूधर्म पर कलंक है। कितने ही शास्त्री मेरे निमन्त्रणपर और कितने ही स्वेच्छा से आये और उन्होंने आधुनिक अस्पृश्यता को शास्त्रसम्मत बताने की चेष्टा की, परन्तु नम्रता से शास्त्रियों की बातों को समझने की चेष्टा करते हुए भी मुझपर उनका असर न हुआ।

यह कहते बड़ा दुःख होता है कि सरकारी मनुष्य-गणना के अनुसार अस्पृश्य कहे जानेवाले भाइयों और बहिनों की संख्या ७ करोड़ के लगभग बतायी जाती है। सेन्ससवाले इस बात की जाँच करने का प्रयत्न ही नहीं करते, कि मनुस्मृति के अनुसार वे यथार्थ अस्पृश्य हैं या नहीं। सेन्सस करनेवालों को जो कोई भी जो कुछ लिखा देता है उसे वह लिख लेते हैं। हर दस वर्ष पर मनुष्यगणना होती है और मनुष्यों की संख्या इन वर्षोंमें घटती-बढ़ती रहती है। तालाबपर एक कुत्ता भले ही चला जाय, पर एक हरिजन बालक वहाँ नहीं जा सकता। यदि गया भी तो वह मार खाने से बच नहीं सकता। इस समाज की अस्पृश्यता मनुष्य को कुत्ते से भी हीन मानती है।

एक हरिजन को न्यूमोनिया हो गया। फ़ीस देकर एक मुसलमान डाक्टर बुलाये गये। फ़ीस तो आप ले चुके, पर रोगी को कैसे छुते! एक मुसलमान को बुलाकर उसे घड़ी देकर कहा, कि एक मिनट में उसकी नाड़ी कितनी बार चले उसे गिनकर मुझे बतलाओ। डाक्टर साहब को नाड़ी की गति बतायी गयी, और आप नुसखा लिखकर चले गये। फिर एक दूसरे डाक्टर बुलाये गये। उन्होंने अच्छी तरह फेफड़े और हृदय की गति की परीक्षा करके दवा दी, तब रोगी को आराम पहुँचा। इस प्रकार की जो अस्पृश्यता मानी जा रही है उसके लिए शास्त्र में कोई प्रमाण है—मेरे ख़याल से इसे कोई भी शास्त्री मानने को तैयार नहीं होगा। ऐसी अस्पृश्यता को शास्त्रसम्मत न मेरी बुद्धि मान सकती है, न मेरा हृदय। [इसी समय वर्णाश्रम-स्वराज्य-संघ के मन्त्री पण्डित देवनायकाचार्य मञ्चपर पहुँचे। आपको देखकर गांधीजीने कहा] बस, मैं अब आगे कुछ नहीं कहूँगा, पण्डितजी को भाषण करने का मौका देना इस समय मेरा सर्वप्रथम कर्तव्य है। सिर्फ एक बात कहूँगा। काशी के पण्डितों की ओर से मुझे जो स्वागतपत्र मिला है, उसके लिए मैं आभारी हूँ। उसे मैं आप लोगों का आशीर्वाद मानता हूँ। जो द्रव्य मुझे मिला है उसके लिए मैं धन्यवाद देता हूँ। यद्यपि वह बहुत थोड़ा है, परन्तु मुझे विश्वास दिलाया जा रहा है कि अभी और संग्रह करने की चेष्टा की जायगी। आप लोग पण्डितजी की बात को ध्यान से शान्तिपूर्वक सुनें और अस्पृश्यता-निवारण के संबंध में आपकी बुद्धि जो निश्चय करे उसे मानें। पण्डितजी का भाषण आप लोग अदब के साथ सुनें।"

[अस्पृश्यता के समर्थन पर पंडित देवनायकाचार्यजीने शांति और विद्वत्तापूर्वक भाषण दिया। उनके बाद मालवीयजी महाराज अस्पृश्यता निवारण के पक्ष में बोले। इसके पश्चात् गांधीजीने अपना अधूरा भाषण समाप्त करते हुए कहा]

"पण्डित मालवीयजीने आपको जो हृदय की बात सुना दी है उसके बाद मुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। पण्डित देवनायकाचार्यने जो शान्ति के साथ और संक्षेप में उपदेश दिया है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। और शान्तिपूर्वक सुनने के लिए आप लोगों को भी धन्यवाद देता हूँ। परन्तु देवनायकाचार्यजी को कुछ भी उत्तर न दूं तो असभ्यता मानी जायगी। पण्डितजी की मुख्य आपत्ति मन्दिरप्रवेश बिल के सम्बन्ध में है। जैसा कि मालवीयजीने कहा है कि मुझसे और उनसे बातचीत होनेवाली है और आगे कोई ऐसा उपाय निकल आवे जिससे मन्दिर में जानेवालों का बहुमत होने से हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश में कोई क़ानूनी बाधा न आवे, तो मुझे कोई एतराज़ न होगा, और यह तो मैं कह ही चुका हूँ कि बिना हिंदू लोगों के बहुमत के इस सम्बन्ध का कोई क़ानून नहीं बनेगा। इतना कहने से सन्तोष हो जाना चाहिए। बिल के संबंध में तो अपने हरिजन-दौरे में मैंने कोई आन्दोलन ही नहीं किया, बिल का नाम भी नहीं लिया। शास्त्रार्थ के विषय में यह कहना है, कि आजकल या कभी भी और कहीं भी शास्त्रार्थ हो सकता है, परन्तु यह बुद्धिग्राह्य विषय नहीं, हृदयग्राह्य विषय है। मन्दिर-प्रवेश को छोड़कर और किसी विषय में तो किसी का विरोध मुझे नहीं मालूम पड़ता है। मैं किसी के साथ बलात्कार तो करना नहीं चाहता और न दबाव ही डालना चाहता हूँ। किसी को भी मुझ से डर नहीं होना चाहिए। मुझ से सनातनियों का अहित, अनिष्ट नहीं हो सकता। जिस सनातनधर्म को आप मानते हैं उसी को मैं भी मानता हूँ।"

२

[१ अगस्त को हिन्दू विश्वविद्यालय की सभा में गांधीजी ने निम्नलिखित भाषण दिया था।]

"हिन्दू-विश्वविद्यालय मेरे लिए कोई नयी वस्तु नहीं है। जब यह आरम्भ हुआ, तभी से मालवीयजी महाराजने मेरा संबंध इससे जोड़ दिया है और आजतक वैसा ही बना हुआ है। यदि कोई परिवर्तन हुआ है तो वह और भी अधिक ही हुआ है और मेरा आकर्षण इसकी ओर बढ़ता ही जा रहा है। विश्वविद्यालय की उन्नति के साथ-साथ धर्म की भी उन्नति होनी चाहिए, पंडित मालवीयजी के भाव यही हैं। मुझे आशा है कि विद्यार्थी लोग शिक्षा प्राप्त करके उसका सदुपयोग करेंगे, संकुचित धर्म को ग्रहण नहीं करेंगे। उदार धर्म दूसरे धर्मों को भी अपनाता है। आज लोकमान्य तिलक की पुण्यतिथि होने का शुभ अवसर है और इस अवसर पर धर्म के एक अंश में क्या होना चाहिए यह बताने के लिए मैं आया हूँ। लोकमान्य की राजनीतिक शक्ति के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहूँगा, उसे कहने के लिए मैं अभी स्वतंत्र भी नहीं हूँ। तिलक महाराजने धर्म के बारे में क्या सुझाया है यह इस समय कहना है। आपको जानना चाहिए कि लोकमान्य के दिलमें हरिजन भाइयों के प्रति बड़ी दया थी। मुझ से और उनसे जो विचार-विनिमय हुआ था उसमें उन्होंने कहा था कि धर्मशास्त्रों में अस्पृश्यता के लिए प्रमाण नहीं है और हो भी नहीं सकता, क्योंकि हिन्दू धर्म में सत्य का दर्जा सब से ऊँचा है। अगर तराजू पर एक ओर सत्य रखा जाय और दूसरी ओर अन्य सब बातें, तो भी सत्य का ही पलड़ा झुकता रहेगा। कोई भी शास्त्री वेद, पुराण, इतिहास में कहीं भी धर्म के सिद्धान्त के विपरीत कोई बात नहीं बता सकता। और वर्णों में तो अस्पृश्यता की कोई चर्चा नहीं है। हिंदू धर्मने ही तो इजारा नहीं लिया है। हमारे धर्म में कई बातें ऐसी बताई गई हैं जो और कहीं नहीं हैं। हमारे यहाँ जो यह वर्णाश्रम धर्म है वह यदि लोप हो जाय तो हिन्दूधर्म ही लोप हो जायगा। वर्णाश्रम धर्म के साथ आधुनिक अस्पृश्यता का कोई सम्बन्ध नहीं। इस बात पर मेरा विश्वास दृढ़ होता जा रहा है और ९ मास के इस दौरे के बाद तो मैं यह और दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ।

गीता पर उपदेश

अब समय कम रह गया है, इसलिए इस सम्बन्ध में अधिक न कहूँगा। किन्तु आचार्य ध्रुवजीने आज्ञा दी है कि गीता माता के बारे में कुछ कहना होगा। उनके और मालवीयजी के सामने जो गीता को घोंटकर पी गये हैं, मैं क्या कह सकता हूँ, परन्तु मेरे-जैसे आदमी पर गीता माता का क्या प्रभाव पड़ा है यह बतलाने के लिए मैं कुछ कहता हूँ। ईसाई के लिए बाइबिल है, मुसलमान के लिए कुरान है और हिन्दुओं के लिए किसको कहें, वेदको कहें, स्मृति को कहें या पुराण को कहें? २१-२२ सालकी उम्र में मुझे ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा प्राप्त हुई। मालूम हुआ, कि वेदों का अभ्यास करने के लिए १५ वर्ष चाहिए, पर इसके लिए मैं तैयार नहीं था। मुझे मालूम हुआ, मैंने कहीं पढ़ा कि गीता सब शास्त्रों का दोहन है, कामधेनु है। मुझे बतलाया गया कि उपनिषद् आदि का निचोड़ ७०० श्लोकों में आ गया है। थोड़ी संस्कृत की भी शिक्षा थी, मैंने सोचा कि यह तो आसान रास्ता है। मैंने अध्ययन किया और मेरे लिए वह बाइबिल, कुरान नहीं रही, माता बन गयी। आधुनिक माता नहीं, ऐसी माता, जो मेरे चले जाने पर भी रहेगी। उसके करोड़ों बच्चे बच्चियाँ बिना कारण के द्वेष के उसका दुग्धपान कर सकते हैं। पीड़ा के समय वे माता की गोद में बैठ सकते हैं और कह सकते हैं, कि यह संकट आ गया है, मैं क्या करूँ, और माता ज्ञान बता देगी। अस्पृश्यता के सम्बन्ध में भी मेरे ऊपर कितना हमला होता है, कितने लोग विपरीत हैं। मैं माता से पूछता हूँ, क्या करूँ, वेद आदि तो पढ़ नहीं सकता, वह कहती है, मेरे अध्याय पढ़ ले। माता कहती है, मैं तो उन्हीं के लिए पैदा हुई हूँ, मैं पतितों के ही लिए हूँ। इस तरह आश्वासन वे ही पा सकते हैं, जो सच्चे साधुभक्त हैं, जो सब कुछ उन्हींसे प्राप्त करना चाहते हैं। वह उनके लिए कामधेनु है। कोई-कोई कहते हैं कि गीता माता बहुत गूढ़ ग्रन्थ है। लोकमान्य तिलक के लिए वह गूढ़ ग्रन्थ भले ही हो, पर मेरे लिए तो इतना ही काफी है—पहला, दूसरा और तीसरा अध्याय पढ़ लीजिए, बाकी में तो इन्हीं की बातों का दोहराना मात्र है। इनमें भी थोड़े-से श्लोकों में सभी बातों का समावेश है। और सबसे सरल गीतामाता में तीन जगह कहा है कि जो सब चीज़ों को छोड़कर मेरी गोदमें बैठ जाते हैं उन्हें निराशा का स्थान नहीं, आनन्द ही आनन्द है। गीतामाता कहती है कि पुरुषार्थ करो, फल मुझे सौंप दो। ऐसी मोटी-मोटी बातें मैंने गीतामाता से पायीं। यह भक्ति से पाना संभव है। मैं रोज़-रोज़ उससे कुछ-न-कुछ प्राप्त करता हूँ, इसलिए मुझे निराशा कभी नहीं होती। दुनियाँ कहती है कि अस्पृश्यता आन्दोलन ठीक नहीं, गीतामाता कह देती है, कि ठीक है। आपलोग प्रतिदिन सुबह गीता का पाठ करें। यह सर्वोपरि ग्रंथ है। १८ अध्याय कंठ करना बड़े परिश्रम की बात नहीं। जंगल में या कारागार में चले गये तो कंठ करने से गीता साथ जायगी। प्राणांत के समय जब आँख काम नहीं देती, केवल थोड़ी बुद्धि रह जाती है, तो गीता से ही ब्रह्मनिर्वाण मिल जा सकता है। आपने जो मानपत्र और रुपया दिया है और आप लोग हरिजनों के लिए जो कर रहे हैं उसके लिए मैं धन्यवाद देता हूँ, पर इतने से मुझे सन्तोष नहीं। मैं सोचता हूँ कि यहाँ इतने अध्यापक और लड़के-लड़कियाँ हैं, फिर इतना कम काम क्यों हो रहा है?"

३

[२ अगस्त को काशी में महिलाओं की सभा में गांधीजीने जो भाषण दिया था, वह इस प्रकार है।]

"माताओ और बहिनो, आप लोगों से इस काशी धाम को छोड़ने के पहिले दो-तीन बातें कहना चाहता हूँ। पहिली बात तो यह है कि जिसके बारे में क़रीब ९ महीने से दौरा कर रहा हूँ और जो आज इसी काशी में समाप्त होता है। हिंदूधर्म में बहुत दिनों से छुआछूत का भूत दाखिल हो गया है, जिससे दया और धर्म दिन-प्रति-दिन क्षीण होते जा रहे हैं। हम सब एक ही ईश्वर के बनाये हैं। जब लौकिक माता-पिता अपने लड़कों में भेद नहीं करते हैं, तो ईश्वर, जो अहिंसा और सत्य की मूर्ति माना जाता है, मनुष्यों में किस प्रकार भेदभाव कर सकता है? इसे [illegible] कभी नहीं कबूल कर सकता। [illegible] यही समझना है कि सब के [illegible] इस जगत् में आये हैं। आज माताओं से मेरी याचना है, कि इस छुआछूत के भूत को भूल जाओ। इसका मतलब यह नहीं, कि [illegible] और मुर्दे के बाद स्नान

शास्त्रोंने बताये हैं उनका आप पालन न करें। भागवतकारने बताया है, कि जो हृदय से द्वादशाक्षरी मंत्र जपेगा वह कैसा भी पापी हो पुण्यवान बन जायगा। तुलसीदासजीने ऐसी ही महिमा राम नाम की बतायी है। जो मनुष्य शिव का नाम हृदय से लेता है उसके लिए भी यही बात लागू है। ऐसे मनुष्य की पाप करने की इच्छा क्षीण होती जाती है। यह सब अनुभव से सिद्ध होता है। अस्पृश्य के लिए कोई ऐसी निशानी ईश्वरने नहीं बनायी है, जिससे वह अस्पृश्य समझा जा सके। इसलिए माताओं से मेरी प्रार्थना है कि वे किसी को अस्पृश्य न समझें और जिनके लिए संभव हो वे हरिजन-सेवा का कार्य करें।

दूसरी बात यह कह देना चाहता हूँ कि प्रत्येक बहिन को खद्दर पहनना चाहिए। विदेशी और मिलों के वस्त्र को त्याग देना चाहिए। खद्दर पहनने से कपड़े की ज़रूरत भी पूरी होगी और एक रुपये में पन्द्रह आना दरिद्रनारायण के पेट में जायगा। अपने जीवन को आलस्य में न बितावें और खाली समय में चर्खा चलावें।

तीसरी बात; इस विद्याभ्यास के युग में सब माताओं को कुछ विद्याध्ययन करना चाहिए और अपनी बालिकाओं को पाठशाला में भेजकर विद्याभ्यास कराना चाहिए।

चौथी बात यह है, कि जेवर आदि को, जो आप पहिने हुए हैं, वह मुझे दें या न दें, पर उन्हें अनावश्यक तरीक़े से न पहनें। माताओं की शोभा जेवर से नहीं, हृदय से है। पातिव्रत आदि गुणों के कारण सीता माता को हिंदूलोग प्रातःस्मरणीय मानते हैं।

काशी के पंडितों की ओर से स्वागतपत्र

[मङ्गलवार को हिन्दू स्कूल, काशी की सार्वजनिक सभा में विद्वान् पण्डितों की ओर से जो स्वागतपत्र गांधीजी को दिया गया था, वह इस प्रकार है।]

"श्रद्धेय अतिथि !

यह हमारा परम सौभाग्य है, कि भगवान्ने हमें आज आप-जैसे त्यागी महान् पुरुष का काशी-जैसे पवित्र तीर्थ में स्वागत करने का अवसर दिया है। हम हृदय से आपका स्वागत करते हैं।

वृद्ध तपस्वी !

इतनी अवस्था होने पर भी आपका हृदय युवा है, आपकी शक्ति अक्षुण्ण है और आपकी देश-सेवा का भाव अविचलित है। आप भारत के हृदय हैं। भारत आज दरिद्र होने पर भी आपके सहारे संसार में सिर ऊपर किये खड़ा है। तपस्वी ! हम आपका स्वागत करते हैं। विरक्त महापुरुष ! आपने देश-सेवा के व्रत में अपने सुख, स्वार्थ और ऐश्वर्य को भुला दिया है। आपने देशके कोने-कोने में स्वार्थ-त्याग, सादा जीवन और अहिंसा का पाठ पढ़ाया है। आज दरिद्र की झोपड़ी में और राजा के महलों में लोग आदर के साथ आपका नाम ले-लेकर आनन्द पाते हैं। आपने आज अपने कर्म से संसार को समानता का पाठ पढ़ाया है। सारा संसार एकस्वर से आपको एक महान् पुरुष मानता है। हम आपका स्वागत करते हैं।

महात्मन् !

आपके हृदय में किसी के प्रति द्वेषभाव नहीं है। जो आपसे सहमत नहीं हैं उन्हें भी आपके हाथों सदा प्रेम, सद्भाव और सन्तोष ही मिला है। आपने सदा दुखियों के दुःख में आँसू बहाये, पीड़ितों के कष्ट में हाथ बटाया तथा निर्भय और निश्चल होकर अपने मतानुसार सत्य का प्रचार किया। महात्मन्, यहाँ की पण्डित-मण्डली की ओर से हम आपका स्वागत करते हैं।

भवदीय—

प्रमथनाथ तर्कभूषण, वीरमणि उपाध्याय शास्त्री, केदारनाथ शास्त्री, हीरावल्लभ शास्त्री, सत्यनारायण कविराज, यज्ञनारायण उपाध्याय, जगन्नाथ शर्मा वाजपेयी, राजेश्वरीदत्त मिश्र, महेन्द्र उपाध्याय "पाराशर," अम्बिकादत्त उपाध्याय, आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव, विन्ध्येश्वरीप्रसाद पांडेय, विन्ध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री, रामव्यास पांडेय, राजनारायण शर्मा, सीताराम जयराम जोशी, विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज, पी० पट्टाभिराम शर्मा, विश्वनाथ शर्मा, रामानन्द मिश्र, वामदेव मिश्र, रामनिरंजन शर्मा व्यास, राजाराम शुक्ल, भीमसेन वेदपाठी, माहेश्वरी पाठक शास्त्री, गोपाल शास्त्री दर्शनकेसरी, श्री नीलकमल भट्टाचार्य, बलदेव उपाध्याय बटुकनाथ उपाध्याय, केशवप्रसाद मिश्र।"

हरिजन-सेवक-'गाइड'

[कानपुर में संयुक्तप्रांत के हरिजन-सेवकों के साथ गांधीजी ने जो बातचीत की थी, उसका सार-मर्म नीचे दिया जाता है।—म० मो० देसाई]

म्यूनिसिपैलिटियाँ आम तौर से लापर्वाही दिखा रही हैं, इस प्रश्न के सम्बन्ध में गांधीजीने कहा, "तो आप लोगों को चाहिए, कि अपने मेंबरों को गहरी नींद से जगावें, और मतदाताओं के बीच ऐसी जागृति पैदा कर दें, कि वे खुद अपने चुने हुए मेंबरों को कर्तव्यशील रख सकें। यह जानकर मुझे खुशी हुई है, कि कानपुर-म्यूनिसिपैलिटी के अहिंदू मेंबरोंने हरिजन मुहाल्लों के उद्धार-कार्य में दिल से सहयोग दिया है। मुझे विश्वास है कि दूसरी म्यूनिसिपैलिटियों के भी मुसल्मान मेंबर इसी तरह हरिजन-कार्य के प्रति सहानुभूति दिखायेंगे। म्यूनिसिपल मेंबर किसी एक ही कौम के मुरब्बी तो हैं नहीं, वे तो सारी पब्लिक के निगहबान हैं। और हमारा यह आंदोलन विशुद्ध मानवोद्धार का आंदोलन है। राजनीति से हमारा कोई वास्ता नहीं। हरिजन जैसी सेवा हिंदुओं की करते हैं, वैसी ही अ-हिंदुओं की भी। फिर एक और बात है। हरिजन-बस्तियों की यह गंदगी समूचे शहर के लिए खतरनाक हो सकती है। यह कुछ समझ ही में नहीं आता, कि पानी, रोशनी, पाखाना आदि की जो सुविधाएँ अन्य नागरिकों के लिए म्यूनिसिपैलिटी ने दे रखी हैं, उनसे बेचारे हरिजन ही क्यों वंचित रहें !

पर, ख़ैर, म्यूनिसिपैलिटियाँ क्या करती हैं, और क्या नहीं करतीं इसे जाने दें, हरिजन-सेवक-संघ का यह फर्ज़ है, कि हरिजनों की बस्तियों को साफ़-सुथरी रखने का वह सदा प्रयत्न करता रहे। और यह आसानी से हो सकता है, कुछ ऐसे बहुत खर्च की भी ज़रूरत नहीं। प्रथम तो यह देखना चाहिए, कि बस्ती की नालियाँ ठीक हैं न, और बस्ती में सफ़ाई कैसी है और सड़कें अच्छी हैं या नहीं। घरों में ज़रा-सा ही

सुधार कर दिया जाय तो कम-से-कम रोशनी और हवा तो आने लगे। हरिजन-बस्तियों के सुधार की कोई आसान योजना अगर आप म्यूनिसिपैलिटियों के आगे रखेंगे, तो वे आपके संघ को थोड़ी-बहुत सहायता तो दे ही देंगी। इस तरह संघ और म्यूनिसिपैलिटी मिलकर कुछ-न-कुछ सुधार तो कर ही सकते हैं। म्यूनिसिपैलिटियों के पास शायद कार्य करनेवाले आदमी न हों, और हों भी, तो इस तरह के काम में वे पूरा रस न लेते हों।

दूसरी बात यह है, कि हरिजनों के लिए पानी का खूब अच्छा प्रबंध कर देना चाहिए। शहर-वासियों की अपेक्षा बेचारे गाँव के हरिजनों को पानी का बहुत अधिक कष्ट है। इतना कहने का भी तो उन ग़रीबों में बूता नहीं, कि सार्वजनिक कुओं में पानी भरने का उन्हें भी सबके समान अधिकार है। अदालत की रक्षा में या दूसरी तरह बड़ी कठिनाई से सार्वजनिक कुओं पर पानी भरने पाते हैं। इस बीच में संघ का क्या कर्तव्य है? क्या संघ उन्हें तबतक चुल्लू-चुल्लू पानी के लिए प्यासों मरने देगा, जबतक कि उनमें अपनी अधिकार-रक्षा की काफ़ी शक्ति न आजाय? संघ को चाहिए, कि वहाँ ऐसे सुंदर कुएँ बनवादे, कि सवर्ण हिंदुओं का भी मन उनसे पानी भरने को हो आवे। पर जबतक कुएँ बन नहीं गये, तबतक सुधारकों को चाहिए कि वे खुद पानी खींच-खींचकर हरिजन भाइयों के घड़ों में डाल दिया करें।

तीसरी बात यह है, कि हरिजन बच्चों के लिए हमारा संघ अच्छी प्रारम्भिक पाठशालाएँ स्थापित करे। इन पाठशालाओं के अध्यापक सिर्फ़ अक्षर और अंक सिखाने के ही फेर में न पड़े रहें, बल्कि अपने विद्यार्थियों को शरीर और वस्त्र साफ़ रखने की भी शिक्षा दिया करें, ताकि छः ही महीने में अपने समवयस्क सवर्ण बच्चों के साथ वे हरिजन बच्चे भी बैठ सकें। हरिजन-शिक्षक में उतनी विद्वत्ता की ज़रूरत नहीं, जितनी कि सहृदयता की। अच्छा हो, कि संघ हरिजन-प्राइमरी पाठशालाओं के अध्यापकों के लिए एक 'गाइड' बनाकर छपवा दे, जिसमें यह सब रहे, कि उन्हें अपने विद्यार्थियों को वह सांस्कृतिक शिक्षा किस तरह देनी चाहिए, जो कि सवर्ण बालकों को अपने घर पर मिलती रहती है।

चौथी बात 'आश्रम' के सम्बन्ध की है। मैं देखता हूँ, कि 'आश्रम' एक इतना ऊँचा शब्द है, कि उसका प्रयोग करते हुए हमें संकोच होना चाहिए। मै तो इन संस्थाओं को 'छात्रालय' या 'उद्योगालय' कहना ही पसन्द करूँगा। मैं स्वयं नहीं चाहता, कि साबरमतीवाला आश्रम 'हरिजन-आश्रम' कहा जाय। छात्रालय के बच्चों को पाठशाला में जो शिक्षा दी जाती है, उसमें हम इतना और जोड़ दें तो बहुत अच्छा हो, कि उन्हें वहाँ एकाध धन्धा सिखाया जाय और धर्म की भी कुछ शिक्षा दी जाय, धर्म की शिक्षा पोथियों के द्वारा नहीं, किंतु अपने सच्चे सदाचार के द्वारा। यह देखते रहना छात्रालय के कुलपति का कर्तव्य है, कि उसके छात्र आलसी तो नहीं हो गये हैं और उनका सत्य केवल किताबी सत्य तो नहीं है, उनके जीवन में भी सत्य को सच्चा स्थान मिल रहा है या नहीं। सच पूछा जाय तो वह छात्रों का धर्मपिता है। छात्रों के प्रति उसका वही बर्ताव होना चाहिए, जो कि पिता का अपनी सन्तान के प्रति हुआ करता है। हर प्रांत में ऐसी सिर्फ़ दो ही संस्थाएँ हों, तो संस्कृति का इनके द्वारा बहुत बड़ा प्रसार और प्रचार हो जाय।"

'मद्य-निषेध' के विषय में गांधीजीने कहा, कि "असर तो आपकी बातों का शराबियों पर तभी पड़ सकता है, जब कि आप उनके जीवन का गहरा अध्ययन करें और उनके साथ अपना घनिष्ट संपर्क जोड़दें। सिर्फ़ प्रतिज्ञापत्र पर उनका हस्ताक्षर भर करा लेना कोई अर्थ नहीं रखता। आपको उन कारणों की तहतक जाना चाहिए, कि ये लोग शराब आख़िर पीते क्यों हैं। शराब के बदले आपको उन्हें दूध या चाय देने का शुरू-शुरू में प्रबन्ध करना होगा। खेल-कूद या कथा-व्याख्यान आदि में भी उनका मन लगाये रहना होगा।"

अंत में, गांधीजीने बड़े ज़ोरदार शब्दों में हरिजन-सेवकों से कहा, कि "जबतक आप लोग गाँवों में जाकर डेरा न डालेंगे, तबतक आपके इस अस्पृश्यता-निवारण-कार्य का श्रीगणेश भी हुआ नहीं कहा जा सकता। गाँव ही तो असल में अस्पृश्यता राक्षसी के मज़बूत गढ़ हैं। गाँवों में जब उस पर मर्मान्तक प्रहार होगा, तभी वह मृत्यु को प्राप्त होगी।"

विनोबा-वाणी

सामूहिक प्रार्थना

व्यक्ति और समूह की उन्नति में कोई भेद नहीं। जबतक सामूहिक उन्नति नहीं होती, तबतक व्यक्तिगत उन्नति भी सम्भव नहीं। जिस प्रकार एक साफ़-सुथरे घर के चारों ओर प्लेग फैल जाय, तो वह साफ़-सुथरा घर भी अछूता नहीं रह सकता, उसी प्रकार वायु-मण्डल दूषित होने पर कोई व्यक्ति उस दोष से बचा नहीं रह सकता। अतः प्रार्थना व्यक्तिगत न होकर सामूहिक होनी चाहिए। हमारा वैदिकधर्म भी सामूहिक प्रार्थना के आधार पर अवलम्बित है। गायत्री मंत्र में प्रार्थना की गई है कि, हम सब सवितादेव की प्रार्थना करते हैं; वे हमारी बुद्धि को शुद्ध करें। यह सामूहिक प्रार्थना है, न कि व्यक्तिगत; क्योंकि ऐसा नहीं है कि, मैं प्रार्थना करता हूँ और मेरी बुद्धि शुद्ध करें।

हमारी प्रार्थना तो सामूहिक होनी ही चाहिए और उसमें स्त्रियाँ और बालक-बालिकाओं को भी सम्मिलित होना चाहिए। प्रायः देखा जाता है कि प्रार्थना में स्त्रियाँ सम्मिलित नहीं होतीं। एक गाँव में मैंने देखा कि प्रार्थना में बहुत-से लोग एकत्र हुए थे; किन्तु स्त्री एक भी नहीं थी। कारण पूछने पर मालूम हुआ कि केवल एक बाई है, जो प्रार्थना में आना चाहती है, किन्तु अकेली आना उसे पसन्द नहीं। प्रार्थना में स्त्रियों को भी सम्मिलित होना चाहिए। लोग उन्हें शृङ्गार की वस्तु समझकर छोड़ देते हैं। किन्तु यह मानना भूल है। सम्पूर्ण गाँव के, या किसी संस्था के, या एक विचार के, या एक परिवार के सभी व्यक्तियों को मिलकर प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना का स्थान भी निश्चित कर लेना चाहिए। सामूहिक प्रार्थना का आयोजन हरिजन-संघ, हरिजन-छात्रावास या ऐसे ही अन्य सार्वजनिक स्थानों पर करना चाहिए, जिससे उसमें हरिजन तथा अन्य लोग अधिक संख्या में सम्मिलित हो सकें। प्रार्थना प्रारम्भ करने के पूर्व घण्टा या शंख की ध्वनि हो जानी चाहिए, जिसे सुनकर आसपास के लोग प्रार्थना के लिए समय पर एकत्र हो जायँ।

गोंड़जाति और उसकी सेवा

[३]

वर्तमान स्थिति

जन-संख्या

मध्यप्रांत की इस सबसे अधिक उपेक्षित और सबसे अधिक अशिक्षित जाति की संख्या में शायद कोई भी जाति बराबरी नहीं कर सकती। मध्यप्रांत की कुल जन-संख्या १७९९०९३७ है, जिसमे गोंड़ २२६११७४ हैं अर्थात् ⅛ के लगभग है। जन-संख्या की रिपोर्ट में इन्हें दो भागों में बाँटा गया है—एक हिन्दू गोंड़, दूसरे मूल निवासी गोंड़। हिन्दू गोंड़ों की संख्या १० लाख तथा मूल निवासी गोंड़ों की १२ लाख के लगभग बतलाई गई है। गोंड़ प्राय: प्रत्येक ज़िले में पाये जाते हैं, किन्तु गोंड़ हिन्दुओं की संख्या सब से अधिक (एक लाख के ऊपर) क्रमश: रायपुर, बिलासपुर, दुर्ग, जबलपूर और मंडला में है, और मूल निवासी गोंड़ों की क्रमश: छिन्दवाड़ा, मंडला, सिवनी तथा बेतूल में है। मध्यप्रांत की रियासतों में भी इनकी संख्या काफ़ी है—हिन्दू गोंड़ २०७४८८ और १६१८८८ मूल निवासी गोंड़ हैं।

भाषा

इनकी भाषा मध्यप्रांत की १० मुख्य भाषाओं में से एक है और हिन्दी के बाद उसी का नम्बर आता है। गोंड़ी बोलने-वालों की संख्या १२ लाख लिखी गई है। अपनी मातृभाषा के साथ ये लोग टूटी-फूटी हिन्दी भी बोलते हैं। बहुत-से तो अपनी मातृभाषा भूलते जा रहे हैं। यह भाषा लिखी नहीं जाती, केवल बोली जाती है। एक अंग्रेज़ सज्जनने इस भाषा का एक व्याकरण भी लिखा है।

शिक्षा

गोंड़ों में साक्षरों की संख्या बहुत ही कम है। इनमें केवल १५५०८ ही साक्षर (Literate) हैं। इनमें से पढ़ी-लिखी स्त्रियों की संख्या तो केवल ८०५ है। अंग्रेज़ी शिक्षा का तो इनमें अभाव-सा ही है। केवल ३१० आदमी अंग्रेज़ी पढ़-लिख सकते हैं। इन आँकड़ों से प्रगट होता है, कि इनको मनुष्य बनाने के लिए शिक्षा की कितनी बड़ी आवश्यकता है।

व्यवसाय

इस जाति का मुख्य व्यवसाय खेती तथा पशु-पालन है। दीगर व्यवसायों में लगे हुए गोंड़ों की संख्या इस प्रकार है :—

व्यवसाय	पुरुष	स्त्री
खानों में मज़दूर	२८६८	१६९७
राज, मिस्त्री आदि	६०४८	३१९७
बोझा ढोनेवाले मज़दूर	४४६५	१०२२
व्यापारी	३८१९	६३३३
घरेलू नौकरी	५१७३	२१७५
दीगर मज़दूरी	७१९६	७४७४
वकील डाक्टर आदि	३११	२४
सेना	१६१	गज़टेड
	६३९१	दीगर।
राज-प्रबन्ध	१	गज़टेड
	१२००	दीगर

इस नक़शे से जान पड़ता है, कि खेती के अलावा ये लोग मेहनत-मज़दूरी ही के काम में अधिकतर लगे हुए हैं। सेना व राज्य-प्रबन्ध के कामों में तो उनकी संख्या नहीं के बराबर है। प्रान्त की इतनी बड़ी जाति को प्रान्त के प्रबन्ध से बिलकुल बहिष्कृत रखना सरासर अन्याय है। इसका क्या अर्थ होता है, कि मुसलमान आदि जातियाँ, जिनकी संख्या प्रान्त में ४ फी सदी है, उनके लिए तो नौकरियों में विशेष स्थान रक्षित रक्खे जावें, पर जो १४ फी सदी के ऊपर हों उनकी बात भी न पूछी जाय ?

प्रतिनिधित्व

यहाँ यह बात भी उल्लेखनीय है, कि प्रान्तीय कौंसिलों तथा स्थानीय संस्थाओं में इस जाति का बिलकुल ही प्रतिनिधित्व नहीं है। मुट्ठीभर जातियों के प्रतिनिधित्व के लिए देश में इतना आन्दोलन होता है, किन्तु इतनी बड़ी जाति के लिए किसी के कान में जूँ तक नहीं रेंगती ! प्रान्तीय कौंसिल में केवल एक ही स्थान इन्हें प्राप्त है। बहुत-से लोग अपने को हिन्दू लिखाते हैं, अत: लोथियन कमेटीने इनकी संख्या बहुत कम लिखी है; किन्तु उसने चुनाव के द्वारा इन्हें कौंसिल में स्थान देने की सिफारिश की है। मध्यप्रांतीय मताधिकार-कमेटीने तो कहा है, कि "ये जंगली जातियाँ इतनी पिछड़ी हुई हैं कि उन्हें अपने प्रतिनिधित्व की कोई आशातक न करनी चाहिए। सरकार को चाहिए कि उनकी ओर से सदस्य नामज़द करे।" किन्तु लोथियन कमेटी इसके विरुद्ध है। उसका मत है कि "ये जातियाँ इतनी समझदार हैं, कि यदि इनके मुखियों का मतक्षेत्र बना दिया जाय, तो वे अपने हितचिन्तक मेम्बर को अवश्य चुनकर भेज सकती हैं।" श्री जोशीने अवश्य फेडरल कौंसिल में इन जातियों को १० स्थान देने के लिए कहा है।

रहन-सहन

फादर एल्विन लिखते हैं—"गोंड़ जाति संसार की एक पीड़ित जातियों में से है। सभी नवागंतुकों के लिए वह लूट की सामग्री रही है। उसकी औसत आमदनी एक आना रोज़ाना से अधिक नहीं।"

इस जाति का रहन-सहन सीधा-सादा और संयमी होता है। पहाड़ों व जंगलों पर रहने के कारण स्वभावत: ही ये मेहनती तथा इनकी स्त्रियाँ काम में बराबरी से भाग लेनेवाली होती हैं। पथरीली ज़मीन या पहाड़ों पर कोदों, कुटकी छींट देना, दो-चार पशु पालकर घी-दूध बेचना तथा जंगलों से लकड़ी काटकर गुज़र करना, ये ही इनकी जीविका के मुख्य साधन हैं। खान-पान भी इनका बहुत ही सादा है। कोदों तथा उसका "पेज" इनका मुख्य आहार है। जंगली फलों से महुआ, अचार आदि से भी गुजर चलती है। कभी-कभी भट्टी पोतकर अपने पीने भरके लिए महुए की शराब उतार लेना और त्योहारों या ब्याह-शादी आदि अवसरों पर पीना-पिलाना ही उनका एकमात्र व्यसन है। सो भी आबकारी विभागने कड़ी सज़ाएँ देकर इसके बदले अपनी शराब की बोतलें इनकी झोपड़ियों तक पहुँचा दी हैं। यद्यपि असहयोग आन्दोलन के समय बहुत लोगोंने शराब छोड़ दी थी, और अभीतक कुछ लोग इस प्रण पर डटे हुए हैं, तो भी इसका फिर से कुछ प्रचार बढ़ने लगा है। इसके लिए तो लगातार आन्दोलन करने की ज़रूरत है। —ब्योहार राजेन्द्रसिंह

प्रांतीय कार्य-विवरण

राजपूताना

[अक्तूबर, १९३३ से मई १९३४ तक]

धार्मिक—१८३ बार भिन्न-भिन्न स्थानों पर सवर्णों और हरिजनोंने भेदभाव छोड़कर सम्मिलित भजन-कीर्तन किया।

७४ बार हरिजनों को कथाएँ सुनाई गईं।

शिक्षा—९९ हरिजनछात्रों को साधारण पाठशालाओं में भर्ती कराया गया। संघ की ११८ पाठशालाएँ हैं। ५८ दिन की और ६० रात्रि की। कुल छात्रसंख्या ३०४० है। इनमें से ५८९ सवर्ण छात्र भी हैं। हरिजनछात्राओं की संख्या १०९ है। औसत दैनिक हाज़री २१७२ है।

२ हरिजन-सेवा-आश्रम खोले गये हैं। और २ सम्मिलित छात्रालय भी खोले गये हैं।

आर्थिक—४३ हरिजनों को थोड़े ब्याज पर ऋण दिलाया गया; और २ हरिजनों को ऋणमुक्त कराया गया।

१ सहयोग-भंडार खोराबीसल में खोला गया।

१८ हरिजनों को नौकरियाँ दिलाई गईं।

९५३ हरिजन विद्यार्थियों को मिठाई और फल बाँटे गये।

२००९ हरिजन बालकों को पाठ्य सामग्री मुफ्त दी गई। और ३१० हरिजन छात्रों को मुफ्त कपड़े दिये गये।

स्वच्छता—२७१६ बार हरिजन-मुहल्लों में जाकर सफ़ाई करने की प्रेरणा की गई।

३४२२ हरिजन छात्रों को स्नान कराया गया। ७१०८ हरिजन बालकों को साबुन मुफ्त दिया गया। ६४१५ हरिजन बालकों को दातौन-मंजन कराया गया। ५२७८ हरिजन विद्यार्थियों के मुंह, हाथ और पाँव धुलाये गये, तथा १० बार हरिजन-मुहल्लों की सफ़ाई की गई।

मद्य-मांस-निषेध—१८९१ हरिजनोंने मुर्दार मांस छोड़ने की प्रतिज्ञाएँ कीं। १८८४ हरिजनोंने शराब छोड़ी। तथा १४९ हरिजन-सभाएँ करके क़रीब २१०८९ हरिजनों को निर्व्यसन जीवन के लाभ समझाये गये।

औषधि—२५०४ बीमार हरिजनों को मुफ्त दवाइयाँ दिलाई गईं। १९१ बार डाक्टर-वैद्यों को हरिजन रोगियों के घर ले जाकर उन्हें दिखाया। २ स्त्रियों की प्रसूती-काल में सहायता की गई।

१४८३ हरिजन रोगियों को स्वास्थ्य-लाभ हुआ।

नागरिक व सामाजिक—३४१ सवर्णों से अछूतपन न मानने की प्रतिज्ञाएँ कराई गईं।

७३ सम्मिलित सभाओं में हरिजन-आन्दोलन का महत्व समझाया गया।

जल-कष्ट-निवारण—५ सवर्ण-कुएँ हरिजनों के लिए खुलवाये गये। ५ नये कुएँ, १ प्याऊ और १ हौज हरिजनों के लिए बनवाये गये। झूंझनूं (जयपुर) के मेहतरों को स्वच्छ पानी देने के लिए १५) मासिक का प्रबन्ध किया गया। और २ पुराने कुओं की मरम्मत हरिजनों के लिए करा दी गई।

प्रचार—"हरिजन-सेवक" के १७ ग्राहक बनाये गये। १३५ हरिजन-सेवा-सम्बन्धी पुस्तकें बेची गईं। ९६९१ हरिजनों को और २१३५ सवर्णों को "हरिजन-सेवक" पढ़कर सुनाया और समझाया गया।

हरिजन-अवस्था की जांच—लगभग ३० स्थानों पर ७८७ हरिजन-परिवारों की आर्थिक और शिक्षा-सम्बन्धी जांच कराई गई।

संगठन—इस समय संघ की ४३ शाखाएँ भिन्न-भिन्न स्थानों पर काम कर रही हैं।

सेवा-कार्य पर ख़र्च—इन आठ महीनों में निम्नप्रकार से सेवा-कार्य पर ख़र्च किया गया :—

१—पाठशालाएँ, छात्रलय और आश्रम	१२४४४≡)
२—पाठ्य-सामग्री मुफ्त बाँटी गई	१९६।॥=)
३—छात्रवृत्तियाँ	४५९।॥)९
४—कपड़ा, साबुन मुफ्त बाँटा गया	२५१≡)॥
५—जल-कष्ट-निवारण	२७५।॥-)
६—औषधि	१४४॥≡)॥
७—विविध सहायता	५२८।-)९
कुल	१४३००।॥≡)॥

रामनारायन चौधरी
मंत्री, ह० से० सं०

हरिजन-प्रवास में प्राप्त

[४ जून से १० जून, १९३४ तक]

जाजपुर—नीलाम से	५०)
भद्रक—भद्रक जाते हुए रास्ते में	९)
निवासस्थान पर गुजराती महिलाओंने दिया	४)
जाजपुर—एक अतिरिक्त थैली	१३)
कलकत्ता—श्री मदनमोहन मिश्र, बड़ा बाज़ार	१)
भद्रक—श्री चारुप्रभा सेन	१५)
चाँदी की रकाबी का दाम	२०)
निवासस्थान पर फुटकर प्राप्ति	७॥-)।
गर,पुर—सभामें फुटकर धन-संग्रह	६३=)४६
गौहाटी (आसाम)—गांधी-स्वागत-समिति से प्राप्त हुआ	१५)
कुलशेखरपट्टनम् (त्रिणेवली)— श्री टी० एस० ए०	
पिल्लेने म० आ० से भेजा	४॥)
भद्रक —थैली निवासस्थान पर	२७९॥-)
निवासस्थान पर फुटकर संग्रह	३३≡)॥
श्री डाहीबेन, कलकत्ता	५)
श्री मीठीबेन, कलकत्ता	१)
श्री पुरी बेन	५)
श्री नानी बेन	१)
श्री सुशीलाबाला दासी, कट्टियार राज्य	१०१)
प्रार्थना के समय फुटकर संग्रह	५४)४६
गंजाम—श्री विश्वनाथदास, बरहमपुर	२५)
कलकत्ता—श्री सतीशबाबूने अपने डायमंड हारबर के	
प्रवास में एकत्र किया	४८॥)।॥
जमालपुर की महिला-समिति	१०)
श्रीमती निरुपमादेवी, पार्क सरकस	३०)
बाकी के कुछ सज्जनोंने दिया	१६)
कटक—नीलाम का वसूल हुआ	११)

श्री कुवरजी कासनदास	१०१)
श्री सुन्दरदास भाई	२०)
श्री व्रजलाल भाई	२०)
गुजराती सज्जन	७८)
भद्रक—जनता की एक और थैली	५)
चम्पा गाँव की थैली	३९।।≈)
स्टेशन पर धन-संग्रह	२३।।-)।।
श्री ईश्वरलाल भाई	११)
मारकोना—येरन तथा आसपास के गाँवों की थैली	२०)
स्टेशन पर फुटकर संग्रह	२६।।≈)११६
सोरो—जनता की थैली	२३४)
स्टेशन पर फुटकर संग्रह	१५१)७६
बहनाग बाजार स्टेशन पर	१६)
बहनाग की जनता की थैली	१२)
खांतापाड़ा स्टेशन पर	९३।।-)
बालासोर—जनता की थैली	१०६१)
गुजरातियों की थैली	९१)
सभामें फुटकर संग्रह	७३।।≈)।।
” ”	३७।।-)
हलदीपाड़ा—जनता की थैली	१२)
स्टेशन पर फुटकर संग्रह	११-)।।।
रूपसा स्टेशन पर	९)।
बसता स्टेशन पर	६।-)
अमर्दा स्टेशन पर	८।।-)
जालासोर—स्टेशन पर	३१।≈)४६
जनता की थैली	१४१)
खड़गपुर—(बंगाल) स्टेशन पर की सभा में	१०८।।।≈)१६
स्टेशन पर फुटकर संग्रह	३४।-)।।।
कलकत्ता—श्री निर्भयराम तुलसीदास शाह	२५)
श्री तारा बेन जसमजी	५०)
सातानगर—स्टेशन पर एक अतिरिक्त थैली	१८)
स्टेशन पर फुटकर संग्रह	२७।-)
बिलासपुर से राजनांदगाँव तक—स्टेशनों पर	८९।।।≈)।।
गोंदिया स्टेशनपर—फुटकर संग्रह	२५)
नीलाम से	३५।-)४६
नागपुर—स्टेशन पर फुटकर संग्रह	७)
हस्ताक्षर तथा नीलाम से	१५)
इस सप्ताह में कुल धन-संग्रह	३३९८)८॥
अबतक का कुल धन-संग्रह	४६७३१५।।≈)।।।

साप्ताहिक पत्र

[२५० पृष्ठ से आगे]

'वर्णाश्रम धर्म का अस्पृश्यता से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। पर आज वर्णाश्रम है ही कहाँ? उसका तो नाम ही रह गया है। वर्ण में धर्म की भावना आज कहाँ है, आज तो वह अहंकार और उच्चता का सूचक हो गया है, और यह उच्च-नीच का भाव धर्म के नाम पर जड़ जमा चुका है। आज तो वर्णों का संकर हो गया है। संसार का उद्धार इस प्रकार के अशुद्ध वर्ण-धर्म से कैसे हो सकता है? इसी प्रकार आश्रमधर्म का भी बिल्कुल लोप हो गया है। आज तो चार में एक ही आश्रम रह गया है, और वह है भोग-विलास का आश्रम।

गीता

इसके बाद आचार्य ध्रुव के विशेष आग्रह से गांधीजीने भगवद्गीता के सम्बन्ध में अपनी अतुल श्रद्धा और अनुभूति का परिचय दिया। विश्व-विद्यालय में किये गीताविषयक संक्षिप्त प्रवचन का सार इसी अंक में अन्यत्र दिया जाता है।

हरिजनों की सभा

उसी दिन हरिजनों की एक विराट् सभा हुई। सभा में भाषण करते हुए गांधीजीने कहा, 'हरिजन-आंदोलन से बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। भारत की ही विभिन्न जातियों की नहीं, बल्कि संसार की श्वेत और श्वेतेतर जातियों की भी एकता के बीज इस आंदोलन में अंतर्निहित हैं।

बनारस की म्युनिसिपैलिटी और नागरिकों को इस बात पर शर्म आनी चाहिए, कि यहाँ की हरिजन-बस्तियाँ ठीक संपुलियों से भरी हुई हैं, और हरिजनों को ऐसी जगह रहना पड़ता है, जो मवेशियों के रहने लायक भी नहीं है। म्युनिसि-पैलिटी का यह कर्तव्य है, कि वह उनके लिए खुली जगह पर अच्छे मकान बनवा दे। एक बात हरिजनों से भी। गोमांस, मुर्दारमांस, शराब, जुआ और आपस का उच्च-नीच का झूठा भेद-भाव उन्हें त्याग देना चाहिए।

हरिजन-बस्तियाँ

२ अगस्त को, अर्थात् हरिजन-प्रवास के अंतिम दिन गांधी जीने ईश्वरगंगी, चेतगंज, मलदहिया और कबीरचौरा की हरिजन-बस्तियाँ देखीं। काशी के सुप्रसिद्ध कबीरमठ भी गांधीजी गये। यह जानकर गांधीजी को प्रसन्नता हुई, कि कबीरपंथियों में अस्पृश्यता नहीं मानी जाती है। 'बीजक' में कबीर के 'छूतछात' संबंधी कई अकाट्य पद मिलते हैं।

महिला-सभा

हरिश्चन्द्र हाईस्कूलमें महिलाओं की सभा हुई। 'रघुबीर तुम को मेरी लाज' इस भजन से सभा का मंगलाचरण ठीक ही किया गया। लाज तो हमारी राम के हाथ में है ही। गांधीजी का महिला-सभा का भाषण अन्यत्र दिया गया है। भाषण समाप्त करते हुए गांधीजीने कहा, 'अय राष्ट्र की माताओ, अय धर्म की रक्षिकाओ, तुम्हारा कल्याण हो! भगवान् हमारी पवित्र भारतभूमि का भला करे।'

बालजी गोविंदजी देसाई

१००) रु० की सहायता

कलकत्ता के एक हरिजन-हितैषी सज्जनने १००) भेजे हैं। इसके लिए उन्हें अनेक धन्यवाद। इस रकम से उनके इच्छानुसार असमर्थ हरिजनों व हरिजन-सेवकों को एक वर्षतक 'हरिजन-सेवक' मुफ्त दिया जायगा। बहिनों तथा सनातनधर्मी वाच-नालयों के आवेदनपत्र पर विशेष रूप से ध्यान दिया जायगा।

मैनेजर—हरिजन-सेवक, दिल्ली

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

सम्पादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg No. L. 3169

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २४ अगस्त, १९३४. [संख्या २७

विषय-सूची

व्यसन

शराबकी अपेक्षा अफीम बुरी, नटखट होनेकी अपेक्षा आलसी होना बुरा, घुड़दौड़ के शौक़ से पालकी पर चढ़ने का शौक़ बुरा, यदि ये बातें लोगों को जँच जायँ, तो समाज में फैले हुए व्यसनों की मीमांसा करना हमारे लिए अधिक सरल हो जाय। रजोगुण अत्यधिक चंचल बनाता है, तमोगुण किसी के फेर में न पड़कर स्वस्थ रहा रखता है, इसलिए उसके सत्त्वगुण का पार्श्ववर्ती होने का भास होना स्वाभाविक ही है। पर असल में तमोगुण ही सब तरह से घातक है, अभ्युदय और निःश्रेयस दोनोंको ही डुबा देनेवाला है। यह बात भी अगर समझ में आजाय, तो व्यसन में भी 'दाहिना-बायाँ' निश्चित करने का सामर्थ्य लोगों में आजाय। व्यसन तो सभी बुरे हैं, पर कुछ व्यसनोंमें दिमाग लड़ाना पड़ता है, चाल चलनी पड़ती है, और विभिन्न प्रकार की चतुराइयों को जान लेना पड़ता है। इसके विरुद्ध कुछ व्यसन मनुष्य को उसके मनुष्यत्व तथा समस्त शक्तियों का विस्मरण करा देते हैं। इन दूसरे क़िस्म के व्यसनों ने जिस समाज पर अपना सिक्का जमाया, उसकी खैरियत नहीं; क्योंकि वह जीवित रहते हुए भी मृतक समान है।

हमें यहाँ देहात के कुछ ख़ास-ख़ास व्यसनों पर विचार करना है। शराब, गाँजा, अफीम आदि व्यसनों पर विचार करने से पहले, हम कुछ अन्य व्यसनों की चर्चा करेंगे। कुछ भी न करके बेमतलब गपशप लड़ाना और गप्पाष्टकी मजलिस में उपस्थित न होनेवालों की निन्दा करने में मनमाना समय नष्ट करना, यह तो सब से बढ़कर व्यसन है। निरर्थक वाचालता से मनुष्य का पुरुषार्थ जितना क्षीण होजाता है उतना विषय-सेवन से भी शायद न होता होगा। बातें करते-करते थकजाने वालों के विषयमें वैद्यक शास्त्रने कहा है कि वाक्पात तो वीर्यपात से भी अधिक अशक्त कर देनेवाला है—'वाक्पातो वीर्यपातात् गरीयान्"। यही बात आध्यात्मिक दृष्टि से भी सच है। देहात के इस महाव्यसन को मिटा देने के लिए ग्रामीण युवकों में एक ज़बरदस्त हलचल पैदा करनी पड़ेगी। यह कहा जाता है, कि सामाजिक संस्कृति की रक्षा करने के लिए समालोचना शास्त्र अत्यावश्यक है, और यह बात कुछ अंशों में सही भी है। पर व्यर्थ गपशप और अनुपस्थित जनों की निंदा-परिहास कदापि सामाजिक उन्नति का साधक नहीं है। इसके कारण समाज दिनप्रतिदिन गिरता ही जाता है। ख़ूब सवेरे उठकर नित्यक्रिया करके खेतों पर जाना किसानों का एक भूषण माना जाता था। रात में कितना भी क्यों न जगा हो, किसान बड़े तड़के ज़रूर उठ बैठेगा। पर आज तो देरी से उठना ही सभ्यता का एक अंग माना जारहा है। जलपान के बदले चाय का प्रचार बढ़ता जारहा है। आधा से अधिक प्रातःकाल का समय यहाँ प्रायः बेकार ही जाता है। यह एक व्यसन है, यह भी बात लोगों को नहीं जँची है।

हमारे पूर्वजोंने सैकड़ों पीढ़ियों के कठोर आग्रह से स्वच्छता या शौच की आदतें जो समाज में प्रचलित करदी थीं, वे भी अब ढीली पड़ती आरही हैं। इस बात की ओर भी विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया गया है। आहार-शुद्धि, शरीर-शुद्धि, वस्त्र-शुद्धि, और वाक्-शुद्धि ये नियम संस्कृति के मूल हैं। संभव है, कि पहले की अपेक्षा आजकल के लोग अपने कपड़े-लत्ते अधिक साफ-सुथरे रखते हों, पर अन्य बातों में तो शिथिलता ही बढ़ती जारही है। पहले लोग कपड़ों का बहुत कम इस्तमाल करते थे। बाहर जाते समय के पहनने के कपड़े अलग रहते थे, और वे जतन से तह करके रखे जाते थे। वैद्यों का यह अनुभव है, कि हमारे देश में कपड़े कम पहननेवालों को क्षयरोग और चर्मरोग बहुत ही कम होते हैं। कपड़ों का अँधाधुंध फैशन बढ़ाकर हमने खर्चा बढ़ाया, रोगराई (रोगोंकी परंपरा) बढ़ायी, अस्वच्छता का एक साधन बढ़ाया और उसके देहात में पैदा न होने से दारिद्र्य-वृद्धि का भी एक साधन बढ़ाया। बेमतलब कपड़े पर कपड़ा चढ़ाते जाना व्यसन क्यों न कहा जाय?

कुछ व्यसन इतने दृढ़मूल और रूढ़ हो गये हैं, कि उनके विरुद्ध लोगों की धर्मबुद्धि —ाय होगई है। अश्लील गंदे शब्दों का चाहे जहाँ प्रयोग करना, एक दूसरे को बुरी-बुरी माँ-बहन की गालियाँ देना, और स्त्रियों, बूढ़ों और बच्चों के सामने भी निर्लज्जता से वाहियात बातें बकना भी देहाती लोगों को कोई ऐसी ख़ास बात नहीं जान पड़ती। यह दोष तो सारे संसार में फैला हुआ है, इस कारण यह साबित नहीं होता कि उसे मिटा देना उचित न होगा। इसीलिए कि कहीं अश्लील शब्दों का भण्डार ख़ाली न हो जाय, शब्दों का प्रयोग न करने से वे कहीं लुप्त न होजायँ, फगुआ-जैसे त्यौहार परंपरा से क़ायम रखे गये हैं। फाग का त्यौहार गुलामी का द्योतक है। उसका काया-कल्प करना चाहिए, उसकी शुद्धि होनी चाहिए।

समाज को भीतर से घुन लगानेवाला व्यसन है वैवाहिक नीति-सम्बन्ध का भ्रष्ट करना। एक समय वेश्यागमन हमारे

देश में अमर्याद बढ़ा हुआ था। यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय मे यह बहुत कुछ कम हो गया है। पर व्यभिचार के सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है या नहीं, इसमें तो सन्देह ही है। युवकों में अपने को नामर्द बना लेने का व्यसन पहले था या नहीं इसकी कल्पना करनी कठिन है। आजकल यह व्यसन शहरों में ही नहीं, देहातों में भी काफ़ी फैल गया है। इस व्यसन की रोकथाम करने का प्रयत्न शिक्षक और अखाड़े के उस्ताद लोग करते हैं सही, पर कभी-कभी तो खेत की रखवारी करनेवाला ही खेत चर जाता है। मॉं-बाप की यह लापरवाही समझ ही में नहीं आती है। उनकी यह उपेक्षा अक्षम्य है। फ़ैशन की नज़ाकत बढ़ जाने से शरीर-संवर्धन की ओर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। वर्धमान शरीर को युवावस्था में शुद्ध और पुष्टिकर आहार मिलना चाहिए और शरीरान्तर्गत सब विकारों के बिल्कुल पसीना हो जानेतक मेहनत और व्यायाम करना चाहिए। पर आज तो जीभ को खूब चटपटा लगनेवाला निःसत्व आहार, कपड़ों का फ़ैशन और बालों का शृङ्गार या अकाल में बुढ़ापा लानेवाले बैठकबाज़ी के खेल, बस, इन्हीं सब बातों का वातावरण बढ़ता जा रहा है। पहले देहातों में युवकों के दो दलों के बीच अकसर मारपीट हो जाया करती थी। आजकल उस मारपीट में तो कमी हो गई है, पर दलबन्दी में कोई कमी नहीं हुई।

इधर तमाखू का व्यसन भी तरक्क़ी पर है। इस व्यसन से दाँत खराब हो जाते हैं, कंठ रोग पैदा होते हैं और फेफड़ों के रोग सदा के लिए अपना घर कर बैठते हैं। टाल्स्टॉय का तो यहाँतक कहना है कि सदसद्विवेक बुद्धि और चारित्र्य की दृढ़ता इन दोनों का कचूमर निकाल लेने की शक्ति शराब से भी अधिक तमाखू में है। उन्होंने एक उदाहरण दिया है। एक शख्स को खून करने की हिम्मत नहीं हो रही थी, इसलिए पहले उसने खूब शराब पी। फिर भी हत्या करना निन्द्य कर्म है, यह पाप हमको नहीं करना चाहिए, अंतर में विवेकबुद्धि का इस प्रकार सुझाना जब नष्ट न हुआ तो अन्त में उसने चुरट की शरण ली। फिर क्या था, न्यायबुद्धि, धर्मबुद्धि, दयाबुद्धि सबका लोप हो गया और वह जवांमर्द बन गया! उसने अपना पूर्व निश्चित नीचकृत्य बिना किसी हिचक के कर ही डाला।

तमाखू की खेती करना भी कोई पाप है, कोई भूल है, शायद ही किसी किसान को इसका विचार होता होगा। हमारे शासकोंने जिस वस्तु को फैशनेबल क़रार दे दिया उसका विरोध करने की हिम्मत लोगों में रहती ही नहीं। और फिर तमाखू साहिबा तो मुगल बादशाहत से 'राजमान्य' हो बैठी हैं। जिन्हें घर पर पेटभर खाने को नहीं मिलता, अधपेटा उठनेवाले अपने प्यारे बच्चों का डरावना चेहरा जिन्हें नित्य नहीं तो साल में कम-से-कम पाँच-सात महीने तो देखना ही पड़ता है, उन्हें सत्यानाशी तमाखू के लिए पैसा बहाते हुए देखकर दुःख और आश्चर्य मालूम होता है। हिन्दुस्तान में हर साल कितने रुपयों की तमाखू फूंक दी जाती है इसके आँकड़े प्रत्येक मनुष्य को याद कर लेने चाहिए।

अफीम, गाँजा, ताड़ी, शराब, कोकेन आदि मादक पदार्थ तो व्यसनों के जैसे राजा हैं। इनका साम्राज्य इतना मज़बूत है कि उसे नष्ट करने के लिए धर्मनिष्ठों का एक बहुत बड़ा दल ही तैयार हो जाना चाहिए। मनुष्य अफीम को खाता है या अफीम मनुष्य को खाती है यह कहना कठिन है। राजपूत, ज़मींदार आदि लोगों में अफीम का व्यसन बढ़ जाने से देश का एक ख़ासा कर्तव्यपरायण अंग बिल्कुल ही निःसत्व और महत्त्वाकांक्षा-शून्य हो गया है। सर्व सामाजिक शक्ति का प्रवाह इन व्यसनों को नष्ट करने में लगाना चाहिए। कपट और हिंसा को छोड़कर अन्य सभी उपायों से शराब, अफीम आदि व्यसनों को जिस प्रकार हो सके निर्मूल कर देना चाहिए।

शराब से शरीर-प्रकृति, धन-दौलत, इज़्ज़त-आबरू सभी का नाश हो जाता है। समाज का समाजत्व ही नष्ट करने में शराब की प्रवृत्ति है। इसका पूरे तौर पर अनुभव होने पर भी संसार दारू का नाश करने में प्रवृत्त नहीं हो रहा है यह आश्चर्य की बात है। भारत में इन व्यसनों को मिटा देना अन्य बहुत से देशों की अपेक्षा आसान काम है। केवल लगकर प्रयत्न करने भर की ज़रूरत है।

घुड़-दौड़ और वहाँ खेला जानेवाला जुआ, इन व्यसनों के कारण यूरोपियन लोग बिल्कुल मिट-से गये हैं, पर सामान्य जुआ तो यहाँ ठौर-ठौर दिखाई देता है। कहीं-कहीं तो दिवाली के शुभ मुहूर्त पर जुआ का आरम्भ हो जाता है या उसकी याद आ जाती है। जुआ बहुत प्राचीन स्वदेशी व्यसन है। उसे मिटा देने के लिए खास तौर पर उग्र उपायों की एक योजना बनानी पड़ेगी।

दत्तात्रय बालकृष्ण कालेलकर

पुण्य सप्ताह

आत्मशुद्धि का आग्रह गांधीजी के जीवन में कोई नई चीज़ नहीं है। इस आग्रह को अपनाये उन्हें पचास वर्ष से ऊपर हो गया है। उनकी जीवनयात्रा का ध्रुव-तारा आत्मशुद्धि ही रही है। अपने और अपने साथियों के जीवन के प्रत्येक प्रसंग में उन्होंने सदा इसी साधना पर ज़ोर दिया है—और वह यहाँतक कि साधनने ही साध्य का, ध्येय का स्थान ले लिया है। इसमें कोई अचरज की बात नहीं, क्योंकि आत्मशुद्धि की संपूर्णता ही तो मोक्ष है। हरिजन-प्रवृत्ति व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय आत्मशुद्धि का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। अस्पृश्यता यदि बनी रही, तो हिंदू-जाति और हिंदू-धर्म दोनों ही सड़ जायँगे, और दोनों का ही नाश हो जायगा, यह धारणा जब दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई, तो उन्होंने हरिजन प्रवृत्ति के लिए पूरा एक वर्ष अर्पित कर दिया। माना कि अगस्त मास से आरंभ होनेवाले इस नये वर्ष में उनकी प्रवृत्ति का क्षेत्र संकुचित न रहकर विस्तृत हो जाता है, किंतु इस प्रवृत्ति की अनन्य साधना से आत्मशुद्धि की जो तड़प उनके जीवन की एकमात्र प्रेरक शक्ति हो गई है, वह इसके बाद की भी प्रवृत्तियों की विशेषता रहेगी। इस दृष्टि से इस सप्ताह का उपवास जिस प्रकार हरिजन-प्रवास की पूर्णाहुति समझा जाता है, उसी प्रकार वह भावी प्रवृत्ति का भी मंगलाचरण माना जा सकता है। इतनी प्रस्तावना के बाद ४ अगस्त से १४ अगस्ततक उपवास के पुण्य दिनों की संक्षिप्त डायरी आरंभ करता हूँ। उपवास का आरंभ वैसे तो ७ अगस्त के प्रातःकाल से हुआ, किन्तु गांधीजी का मन तो उपवासमय तभी से हो गया था, जब अपने उपवास का उन्होंने निश्चय प्रकाशित किया। निश्चय करने के साथ ही उपवास का आरंभ

नहीं किया। कारण इसका यह है, कि वह हरिजन-कार्य के प्रीत्यर्थ अर्पित एक वर्ष के समय में कुछ कमी नहीं करना चाहते थे, पर इस निश्चय के प्रकाशित कर देने के बाद गांधीजी के मुख से जो भी उद्गार निकले या जो भी भाषण दिया, उस से स्पष्ट प्रगट होता है, कि उसमें प्रधान ध्वनि तो आत्मशुद्धि की ही रहती थी। कलकत्ते में गये तो वहाँ कांग्रेसजनों को आत्मशुद्धि का ही मंत्र सुनाया। विरोध का प्रदर्शन करनेवालों को भी और नहीं तो विरोधभाव में प्रामाणिकता लाने के लिए भी आत्मशुद्धि करने को कहा। नौजवान विद्यार्थियों और साम्यवादियों के ऊपर पाश्चात्य लेखोंने जो चढ़ाई शुरू कर दी है उससे बचने के लिए उन्हें भी आत्मशुद्धि का ही संदेश सुनाया। और बिहार में भूकंप-कष्टपीड़ितों के बीच काम करनेवाले जन-सेवकों को भी यही मार्ग बतलाया।

४—८—३४:—पटना से लौटते हुए एक सज्जनने सहज ही रामनाम और अन्य नामों के जप की बात छेड़दी। गांधीजीने कहा, "हर एक जप भगवान् के अनुसंधान का साधन है। एक के लिए गायत्री मंत्र अनुकूल पड़ता है, तो दूसरे के लिए द्वादशाक्षरी मंत्र। मुझे तो रामनाम से जितना आश्वासन मिलता है, उतना गायत्री मंत्र से नहीं। प्रत्येक जप के पीछे उस जप के उत्पादक का महान् तप रहता है, इसलिए भविष्य में कोई तपस्वी कुछ अन्य मंत्र भी दें तो वे दे सकते हैं। पर मेरे लिए तो रामनाम में ही सब कुछ आ जाता है। मेरे जीवन में रामनाम ओतप्रोत हो गया है। मेरे बचपन में ही मेरी धायने मुझे राम का नाम लेना सिखा दिया था। जब-जब मैं भयभीत या दुखी हुआ, रामनाम लेकर मैं भयमुक्त हो सका। अब तो राम-नाम-स्मरण मेरा सहज स्वभाव ही बन गया है। यह कहा जा सकता है, कि चौबीसो घटे रामनाम का ही ध्यान मुझे रहता है। भले ही मुँह से जप न करूँ, पर जो कुछ भी मैं करता हूँ, उसमें रामनाम की प्रेरणा तो निरंतर रहती ही है। अनेक विकट प्रसंगों पर रामनामने मेरी रक्षा की है। मेरा यह सदा ही संकल्प रहता है, कि तन मेरा चाहे जिस प्रवृत्ति में लगा हो, पर मन में तो राम का मधुर नाम ही गूँजा करे।

संसार के महान् ग्रन्थों में तुलसीदासजी की रामायणने मेरे हृदय में अग्रगण्य स्थान बना लिया है। जो चमत्कार तुलसी-कृत रामायण में है, वह न तो महाभारत में है, न वाल्मीकीय रामायण में, और शायद जितने अंश में और जिस अर्थ में तुलसीकृत रामायण धार्मिक ग्रन्थ कही जाती है, उतने अंश में और उस अर्थ में महाभारत भी नहीं कहा जाता है।"

उपवास के प्रथम दिवस से ही गो० तुलसीदास की रामायण का पाठ आरंभ हो गया था।

५—८—३४:—वर्धा पहुँचकर गांधीजीने जो बातें कीं, उन सभी से प्रधान ध्वनि तो आत्मशुद्धि की ही निकली। कांग्रेस में पैठी हुई गंदगी की उन्हें इतनी अधिक सूग आती है, कि बार बार उसीकी चर्चा करते हैं और यह भी विचार करते हैं, कि यह गन्दगी किस तरह दूर हो सकती है। जमनालालजी के साथ जो एक घण्टेतक बात हुई, उसमें भी वर्धा के आश्रम, कन्या-विद्यालय आदि संस्थाओं की पूर्णशुद्धि की ही प्रधान ध्वनि रही। ज़रा भी धूल उड़ रही हो, तो आँख उसे सहन नहीं कर सकती, पलक आप ही बन्द हो जाते हैं। आँख में अगर किरकिरी पड़ जाती है, तो आँसुओं से धोकर जबतक आँख उसे निकाल नहीं देती, तबतक उसे चैन नहीं पड़ता। यही दशा गांधीजी की है।

जमनालालजी तो गांधीजी की सेवा के लिए यहीं रहना चाहते थे, पर अगर वे अपनी बीमारी का तुरन्त इलाज न कराते तो उनका जीवन तक जोखम में पड़ जा सकता था, इसलिए जमनालालजी को आग्रह-पूर्वक गांधीजीने इलाज के लिए बंबई भेज दिया। बापू को इस अवस्था में छोड़कर जमनालालजी को बंबई जाना बहुत खला, पर बापू का ज़बर्दस्त आग्रह कैसे टाल सकते थे! पैर पीछे पड़ते थे, पर बंबई जाना ही पड़ा। जमनालालजी को गांधीजीने यह आश्वासन दिया, कि आश्रम और दूसरी संस्थाओं की शुद्धि के सम्बन्ध में उपवास-काल में तथा उसके बाद जितना भवने से हो सकेगा करूँगा।

६—८—३४:—सारा दिन 'हरिजन' के लिए दो लेख तथा पत्र इत्यादि लिखने में गया। शरीर तो आराम चाहता था, पर अनिवार्य काम कैसे टाला जा सकता है? शाम को पाँच बजे उपवास के विषय में खुद अपने हाथ से यह वक्तव्य लिख डाला:—

"कल सवेरे मंगलवार से मेरा उपवास आरंभ हो जायगा। मैं उपवास आरंभ करते समय अधिक आत्मशुद्धि और अधिक एकाग्रता से कार्य करने की आवश्यकता पर हरिजन-सेवा करने-वालों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। कार्यकर्त्ताओं के सतत और अनवरत प्रयत्न के बिना, और अपनी कार्य-विषयक श्रद्धा तथा आत्मशुद्धि एवं सत्यनिष्ठा की प्रयत्नमयी साधना के बिना अस्पृश्यता राक्षसी का नाश होना असंभव है। यह भी सब लोग समझलें, कि उपवास सबके लिए और सब प्रसंगों के लिए साधन नहीं है। श्रद्धा-शून्य उपवास हमें महान् विपत्ति के गर्त्त में डाल सकता है। अनधिकारी मनुष्यों के हाथ में इस आध्यात्मिक शस्त्र का पड़ना जोखम से खाली नहीं।

कांग्रेसवादियों और कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं को भी मैं इस प्रसंग में सचेत कर देना चाहता हूँ। गत मास मुझे बारबार इसका ध्यान आया है, पर इस उपवास के सप्ताह में तो निरंतर यह बात मेरे ध्यान में रहेगी। कई जगह कांग्रेस के चुनाव में जो ज़हरीली कटुता और गन्दगी सुनने में आई है और जो निंदनीय साधन और प्रपंच काम में लाये गये हैं—जैसे, वोट देनेभर के लिए खादी शरीर पर धारण करली और फिर उतारकर रखदी—इस सबसे मैं तो दहल गया हूँ और मुझे आघात पहुँचा है। कांग्रेस के विधान में यह स्पष्ट नियम है, कि सत्य और अहिंसा के साधन ही काम में लाये जायँ। पर इधर कई प्रांतों में सत्य और अहिंसा का उल्लंघन किया गया है। मैं इस गन्दगी के सम्बन्ध में यद्यपि यह उपवास नहीं कर रहा हूँ, तो भी मेरे इन शब्दों के अंतर में जो वेदना भरी हुई है उसे कांग्रेस के कार्यकर्त्ता अगर देख सकें तो क्या अच्छा हो। इतना अगर करेंगे, तो इस आत्मशुद्धि के सप्ताह में वे आत्म-निरीक्षण करते रहेंगे, और कांग्रेस के ध्येय के अनुरूप ही उसे शुद्ध बना देंगे, ताकि किसी को हमारी इस महती संस्था के विषय में किसी तरह का सन्देह न रहे, और संसार को वह सत्य और अहिंसा की जीवित मूर्ति के रूप में दिखाई दे। मेरी तो ईश्वर के

[२७६ पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २४ अगस्त, १९३४

"धन्य है ईश्वर को"

यह खुशी की बात है कि मेरे इस उपवास के औचित्य के बारे में किसीने शंका नहीं उठाई। यही नहीं, बल्कि जिन्होंने इस उपवास के विषय में लिखा है उन्होंने यह कबूल किया है, कि उपवास करना आवश्यक था। उपवास का आध्यात्मिक मूल्य मेरी दृष्टि में इतना अधिक रहा है, कि मैं उसे आँक नहीं सकता। मैं नहीं जानता कि क्यों, पर इसमें कोई संदेह नहीं, कि जब मनुष्य पर संकट आता है, तो वह उसी तरह सर्वतोभावेन भगवान् से चिपट जाता है, जिस तरह कि कष्ट में अबोध बच्चा अपनी माँ से चिपट जाता है। मेरा चित्त प्रसन्न तो रहा, पर यह बात नहीं कि और उपवासों की तरह इस उपवास में शारीरिक कष्ट न हुआ हो। हाँ, अस्वस्थता के कारण किये गये उपवास की बात दूसरी है।

सैकड़ों सार्वजनिक सभाओं में मैंने चीख-चीखकर जो यह कहा है, कि जबतक हरिजन-सेवकों का चरित्र कुन्दन-सा शुद्ध नहीं हो जाता, तबतक अस्पृश्यता दूर होने की नहीं, उसमें अंतर्निहित भावों को इन सात दिनों में मैं और भी अधिक स्पष्टता से समझ सका। इसलिए मैं आशा करता हूँ, कि इस उपवासने मेरी आत्मशुद्धि का मतलब तो पूरा कर दिया। उपवास-काल में जिस आदर्श को मैंने आँखों देखा है, बहुत संभव है, कि उस तक पहुँचने में मुझे सफलता न मिले। किंतु मनुष्य से आगे कोई भूल होगी ही नहीं, इसका बीमा तो कोई भी उपवास नहीं ले सकता। आखिर हम लोग ठोकरें खाकर ही तो सफलता को प्राप्त कर सकते हैं।

इस उपवास का उद्देश्य कहने के लिए तो, अजमेर में हरिजन-प्रवृत्ति के समर्थकों द्वारा स्वामी लालनाथ और उनके साथियों को जो चोट पहुँचाई गई थी, उसके लिए प्रायश्चित्त करना था, पर असल में उसका उद्देश्य इस आंदोलन से सहानुभूति रखनेवालों तथा कार्यकर्त्ताओं से यह अनुरोध करना था, कि वे अपने विरोधियों के साथ चौकस और शुद्ध व्यवहार करें। विरोधियों के प्रति अधिक-से-अधिक सौजन्य दिखाना आंदोलन के हक़ में सबसे सुन्दर प्रचार-कार्य होगा। कार्यकर्त्ताओं को इस सत्य का ज्ञान कराने के लिए यह उपवास किया गया था, कि हम अपने विरोधियों को प्रेम के बल से ही जीत सकते हैं, घृणा से कभी नहीं। घृणा हिंसा का ही एक सूक्ष्म रूप है। घृणा का भाव मन में रखते हुए हम पूर्ण अहिंसात्मक नहीं बन सकते। यह तो मोटी-से-मोटी बुद्धिवाला भी समझ सकता है, कि हिंसा के द्वारा करोड़ों सवर्ण हिंदुओं के दिल से अस्पृश्यता की पाप-भावना, जिसे 'धर्म समझना' उन्हें सिखाया गया है, दूर करना अशक्य है।

अबतक के आये हुए प्रमाणों से तो यही प्रगट होता है, कि मेरे इस उपवासने अनेक कार्यकर्त्ताओं की अंतरात्मा को सचेत कर दिया है। उपवास का कितना और कैसा प्रभाव पड़ा है, इसे तो सिर्फ समय ही बतला सकेगा। उपवास के असर का हिसाब लगाना मेरा काम नहीं है। मेरे लिए तो नम्रतापूर्वक अपने स्पष्ट धर्म का आचरण करना ही काफी था। ईश्वर को धन्य है, कि उसकी कृपा से मैं यह उपवास सकुशल पूरा कर सका। पाठक भी मेरे साथ यह प्रार्थना करें कि जो काम ईश्वरने मुझे सौंप रखा है, उसे निभा ले जाने की पवित्रता और शक्ति वह मुझे और भी अधिक दे।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

पुण्य सप्ताह

[२७५ पृष्ठ से आगे]

प्रति कांग्रेस की शुद्धि के विषय में सतत प्रार्थना रहेगी ही। अस्पृश्यता-निवारण का प्रतिज्ञा तो कांग्रेस कर ही चुकी है, इसलिए यदि कांग्रेस शुद्ध हो जाय, तो अस्पृश्यता-निवारण के कार्य को अनायास ही उत्तेजन मिलेगा। देश और विदेश के सभी मित्रों से मेरी यही विनय है, कि वे इस छोटे से उपवास के निर्विघ्न समाप्त होने की भगवान् से प्रार्थना करें।"

७-८-३३ :—प्रार्थना के पहले बड़े तड़के दो पत्र लिखे—एक तो एक युवक को, और दूसरा एक अन्य कार्यकर्त्ता को। इन पत्रों में उन्हें आत्मशुद्धि करने के बारे में लिखा। प्रार्थना के अंत में अपने अंतर की तीव्र वेदना व्यक्त करके उपवास का आरंभ इन शब्दों में प्रगट किया :—

"मैंने यह अनुभव से देखा है, कि आश्रम-जीवन में उपवास के लिए स्थान है। माना कि लालनाथ के प्रसंग से इस उपवास का सीधा सम्बन्ध है, किन्तु उपवास के बारे में जो वक्तव्य मैंने प्रकाशित किया है उसमें यह साफ़-साफ़ बतला दिया है, कि यह छोटा-सा उपवास अनेकों की आत्मशुद्धि के लिए है। जिन-जिन प्रसंगोंने मेरे दिलपर असर डाला है, उन सब का आज विचार करने बैठूँ, तो यह सात दिन का रंक उपवास तो किसी गिनती में ही न आयगा। लेकिन मुझे अपने शरीर की शक्ति का माप मालूम है, इसलिए इतनी ही अवधि का उपवास करने का मैंने निश्चय किया है—इसे भले ही आप मेरे दिल की कमज़ोरी कहें, डर कहें या चाहे जो कहें।

इस उपवास का निश्चय करते समय आश्रम तो मेरी दृष्टि के सामने था ही। आश्रम में असत्य और विकारवशता इन दो भयंकर पापों से हमें सदा बचना चाहिए। हमारे इन महाव्रतों के पीछे चित्त-शुद्धि एक महत्व की वस्तु है। गीता माता हमें यह शिक्षा देती है, कि कायाकृत दोषों से दूर रहते हुए भी मन में मलिनता बस रही हो, तो सारा जीवन ही दंभमय और मिथ्याचारयुक्त हो जाता है। जिसके मन में विकार उठ रहा हो, उसके लिए यह आवश्यक है, कि विकार को लोपकर महात्मा और मिथ्याचारी बनने के बजाय वह विकार को क़बूल करले। ऐसा न करेगा, तो वह विकार का दोषी तो होगा ही, असत्य का भी दोषभागी होगा। दोष का छिपाना भी एक प्रकार का असत्य ही है। इससे मेरी इच्छा है, कि मेरा यह उपवास प्रत्येक व्यक्ति को आत्मशुद्धि की ओर प्रेरित करे और प्रत्येक व्यक्ति अपना आत्म निरीक्षण कर डाले।

फिर आश्रम-जीवन का अस्पृश्यता-निवारण भी एक अविभाज्य अंग है। हमारे ग्यारह व्रतों में से यह एक व्रत है। शेष इन व्रतों का—खासकर सत्य और अहिंसा का—हम पालन न करेंगे, तो यह साधना असंभव हो जायगी। इन व्रतों का पालन किये

बिना हमें अस्पृश्यता-निवारण के प्रचार करने का अधिकार मिल ही नहीं सकता। बिना आत्मशुद्धि के तो किसी भी प्रकार की सेवा-साधना असंभव-सी है। मेरे मन में अपने इस उपवास-काल में आत्मशुद्धि का ही विचार सदा उठता रहेगा। उपवास-निर्विघ्न समाप्त हो जाय, इसके लिए मैं चाहता हूँ कि आप सब लोग भगवान् से प्रार्थना करें।"

समस्त देश को, अखिल वसुधा को अपना कुटुम्ब माननेवाले गांधीजी को चाहे जहाँ के चाहे जिस व्यक्ति की अशुद्धि असह्य हो जाती है। बहुधा आसपास के लोगों को यह ख़याल नहीं होता, कि किस बात का उनके मन पर कितना असर पड़ेगा। दोपहर को अख़बार देखते-देखते अहमदाबाद में हाल ही में हुए एक विवाह का दुःखद समाचार बाँचकर उन्हें सख्त चोट पहुँची। उनके मुख से यही उद्गार निकला—'ओर कैसी भयानक ख़बर है!' सारे दिन यह ख़बर उनके दिलमें शूल-सी चुभती रही। रात को सोते समय कहा, "हमारा आख़िर क्या होनेवाला है? ये युवक-युवतियाँ कैसे पागल होते जारहे हैं! जिस स्त्री का पति स्वेच्छाचारी होकर दूसरी स्त्री के साथ शादी करले, उस स्त्री के कष्ट की कल्पना कैसे की जा सकती है? बहिनों को इस कष्ट से हम कैसे उबार सकते हैं? मन में जो आवेश आया कि तुरन्त उसके वश हो गये—यही हमें आज यूरोप सिखा रहा है। यह साम्यवाद का साहित्य पढ़ रहा हूँ। साम्य-वादियों का कहना है, कि साधारण वर्ग के हाथ में उत्पत्ति का साधन सौंप दो। इससे कौन इनकार करता है? पर यह भी तो देखो कि साधारण वर्ग की आज क्या हालत है। इसका किसी को ख़याल भी नहीं आता, कि आम वर्ग को तैयार करने में, उसके उत्पत्ति के साधनों का सदुपयोग करने लायक होने में कितना समय लगेगा। ऐक्य-ऐक्य की हाँक तो हम मार रहे हैं, पर मनुष्य-स्वभाव में पैठी हुई पृथक्ता को कोई नहीं देखता। ज्ञानी और मूढ़ का भेद तो सदा रहेगा ही। मूढ़ के हाथ में हथियार देने से वह उसे अपने ही ऊपर आज़मायगा और अपनी ही हानि कर बैठेगा। रूस में तो अभी प्रयोग-परीक्षा ही हो रही है। बिना पशु-बल के तो अभी पार दीखता नहीं। और भी जहाँ-जहाँ साम्यवाद के प्रचार का उतावली में प्रयत्न हुआ वहाँ अबतक उलटा ही परिणाम हुआ है, और फिर उन देशों की अपेक्षा हम कितने अधिक पिछड़े हुए हैं। हमारी वर्णाश्रम की व्यवस्था एक आदर्श व्यवस्था थी। इसीलिए आज हमारा दम घुटा जा रहा है, कि हमने अपने वर्णाश्रम धर्म को विकसित करने के बजाय उसे बिल्कुल संकुचित बना दिया है। वर्णाश्रम के जोड़ की संस्था संसार में कहीं है ही नहीं। इस अनुपम संस्था में रहकर ही प्रत्येक मनुष्य अपने मन, बुद्धि और शरीर की शक्ति के अनुसार समाज-सेवा और समाज-संरक्षण की व्यवस्था कर सकता है।

यह कहते-कहते अब आत्मशुद्धि की बात करने लगे। मैंने उन्हें अधिक बात करने से रोका, पर माने नहीं। डाक्टर शरीर की परीक्षा कर जाते हैं, हृदय दुर्बल है, और दूसरी कमज़ोरियाँ भी हैं। पर शरीर को जिसने आत्मा का एक शस्त्र बना लिया है, उसे डाक्टरों की चेतावनी की पर्वा ही क्या? "डाक्टरों का कहना भले ही निरर्थक हो, तो भी शक्ति का संचय तो होना ही चाहिए न?" मैंने जब यह कहा, तो इसका जवाब मिलता है—"पर यह संचय हो तो रहा है। मैं विश्राम सबसे अधिक चाहता हूँ। सौ महीने की यह थकावट विश्राम से ही दूर होगी। उड़ीसा के बाद तो मेरे प्रवास का सारा ही आनन्द जाता रहा। ईश्वर जानता है, कि मैंने उसके बाद किस तरह काम किया। जब आराम करने की ज़रूरत थी, तो यह उपवास आ गया। मुझे तो आज इतना आराम मिला है, कि शरीर में अब अधिक शक्ति मालूम पड़ती है। अचरज नहीं, कि दिन प्रतिदिन मेरी ऐसी ही शक्ति बढ़ती जाय।"

गांधीजी की यह आशा सफल हो, हम सब लोग ईश्वर से यही प्रार्थना करें।

८ से ११—८-३४ :—यह उपवास जितना उपाधिरहित हुआ है, शायद ही पहले उतना उपाधिरहित कोई हुआ होगा। यही एक उपवास था, जो आन्तरिक और बाह्य दोनों ही उपाधियों या व्याधियों से दूर रहा। वर्धा-जैसे स्थान में स्थानीय ही डाक्टर देख जाया करते थे—वह भी गांधीजी की अपेक्षा दूसरों के सन्तोष के लिए। बस, इस डाक्टरी व्याधि के अलावा और कोई व्याधि नहीं थी। इसलिए इस उपवास की शान्तिने तो सभी को आश्चर्य-चकित कर दिया है। कोई कहता है, कि 'आपने प्रकृति के नियम को पलट दिया है,' तो कोई कहता है, कि 'उपवास की कला में भी आप अधिक-से-अधिक निष्णात होते जाते हैं।' सच बात तो यह है, कि बेचारे डाक्टर स्थूल शरीर-शास्त्र की दृष्टि से ही सब देखते हैं। मन की वे भी उपेक्षा नहीं करते, पर मन जो काम करता रहता है, उसका मापदण्ड उनके पास नहीं है, इसीलिए प्रकृति के नियमों को पलट देने का उन्हें भास होता है। प्रकृति के क़ानून को उलटने की ताक़त मनुष्य में नहीं है। प्रकृति की तो जितनी हम आराधना करेंगे उतनी ही वह हमारे ऊपर प्रसन्न रहेगी। दूसरी बात यह है, कि बापूजीने अपने शरीर को यम-नियमादि के पालन से ऐसा बना लिया है, कि किसी नये आये हुए डाक्टर को उनके शरीर के सम्बन्ध में जितना मालूम हो सकेगा, उससे कहीं अधिक वह खुद जानते हैं। तीसरी बात यह, कि गांधीजी उपवास की कला में दिन-दिन निष्णात होते जा रहे हैं, बिल्कुल सत्य है। इसमें किसी को सन्देह हो ही नहीं सकता। कारण यह है, कि एक भी अनुभव व्यर्थ न जाने देना, उसका पूरा-पूरा उपयोग करना—गांधीजी की यह स्वभाव-जन्य बात हो गई है।

१२-८-३४ :—इस उपवास के दिनों में लोगोंने भी ख़ूब संयम रखा। शायद ही वर्धा शहर का कोई मनुष्य दर्शन के लिए आया होगा। आश्रमवाले तो दूर ही रहे। सिर्फ़ सायंकाल की प्रार्थना में सहज ही दर्शन करके उन्हें सन्तोष हो जाता था। बीमारी के अनेक उपयोगों से एक उपयोग यह भी है, कि रोगी की सार-सँभाल करनेवाले को धीरज और शान्ति का सबक़ मिलता है। शोरगुल मचाना यों ही बुरी बात है, बीमारी में तो गुल-गपाड़ा करना गुनाह तक माना जाता है। पर हमारे यहाँ शोर गुल न करने की बात सिखाई ही नहीं गई। न हमें सभा-सम्मेलनों को शान्तिपूर्वक करना आता है, न हम पाँच आदमी एक जगह बैठकर शांति से कोई सलाह ही कर सकते हैं। और फिर आम सड़कों पर या रेल में हमारे शोरगुल का तो कुछ हिसाब ही नहीं रहता। रोगी के सिर पर भी शोर मचाने से हम बाज़ नहीं आते। उपवास के अनेक पाठों में गुलगपाड़े से दूर

रहना भी एक सीखने लायक पाठ है। इस उपवास में गांधीजी को जो शान्ति मिल सकी, उसका एक मुख्य कारण यह था, कि शोरगुल का कहीं नाम भी न था।

× × × ×

नेता तो उन दिनों कोई मिलने आया नहीं, नज़दीकी परिचितों और स्नेहियोंने भी ऐसे में दूर ही रहना ही ठीक समझा। श्रीमती सरोजिनी नायडू शायद अपनी इच्छा को न दबा सकतीं, किंतु उन्हें भी अपने पति की सेवा-शुश्रूषा के कारण रुक जाना पड़ा। अपवादरूप सिर्फ़ श्री अणेजी और डाक्टर दत्त थे। किंतु लोकनायक अणेने तो पहले से ही यह वचन ले लिया था, कि वे उपवास के दिनों में वर्धा आकर जेल में रचे अपने संस्कृत श्लोक गांधीजी को सुनायँगे। और किसी समय गांधीजी को इतना अवकाश मिलेगा नहीं, और एकाध घड़ी कुछ मन भी बहल जायगा, इस हेतु से ही अणेजीने पहले पूछ लिया था। और डाक्टर दत्त भारत के उदार ईसाइयों के एक अग्रगण्य नेता हैं। सन् १९२४ के उपवास के समय गांधीजी से डाक्टर दत्त मिले थे। उस समय उपवास के दिनों में जो एकता-परिषद् हुई थी, उसमें उन्होंने अच्छा भाग लिया था। अबकी बेर दूर चुपचाप बैठे रहकर ही गांधीजी के उपवास को अच्छी तरह देखने की उनकी इच्छा थी। लाहौर में जब गांधीजी गये थे, तब उनका समय लेने के बजाय उन्होंने यह कहला भेजा था, कि मैं वर्धा के शांत वातावरण में एकाध घड़ी आपके पास बैठने के लिए आऊँगा। अपनी उसी इच्छानुसार वे यहाँ आये थे। गांधीजी के कमरे में दूर चुपचाप बैठ रहते और फिर चले जाते। इस तरह दो-तीन दिन वे यहाँ रहे। उपवास के अंतिम दिन उन्होंने प्रार्थना में भी भाग लिया।

लोकनायक अणे एक प्रकांड विद्वान् हैं, यह तो गांधीजी जानते थे और मैं भी जानता था, पर यह तो अब की ही मालूम हुआ कि वे संस्कृत के पण्डित हैं और कवि भी हैं। हम अपने कितने ही नेताओं को केवल उनके राजनैतिक कार्यों से ही पहचानते हैं। उनके आंतरिक जीवन, उनके मनोरथों और उनके मानसिक चिन्तन का हमें कुछ भी पता नहीं है। लालाजी, देशबंधु और लोकमान्य के जीवन से हमें यह पता चलता है, कि हमारे कितने ही लोक-सेवकों को अपनी आंतरिक अभिलाषाओं को दबाकर राजनीति में ही बरबस अपना समय लगाना पड़ता है। श्री माधवराव अणे का भी यही हाल है। कारागार में उन्होंने प्रकृति के निरीक्षण में और आकाश के प्राङ्गण में विलसती हुई जिस अनंत लीला और नित्यनूतन सुन्दरता की झलक देखी थी, उससे उन्होंने प्रकृति का पाठ पढ़ने में अपने समय का उपयोग किया। उन्होंने केवल पंडित्य प्रगट करनेवाले पद्य रच-रचकर नहीं, किंतु प्रकृतिदेवी को भक्ति से पूर्ण काव्य की पुष्पांजलि जगदीश्वर के चरणों में चढ़ाकर उन्होंने अपने को कृतकृत्य माना। उन्होंने १०८ श्लोक-पुष्पों की माला गूँथ के जगदीश्वर के पादपद्मों पर चढ़ाकर उसका 'निर्माल्य' लोकमत की गंगा में तिरा दिया है। गांधीजी को कहीं तकलीफ़ न हो, इस डर से उन्होंने थोड़े ही श्लोक सुनाये, और कुछ श्लोकों का संक्षेप में सारभर सुना दिया। गांधीजीने कहा, "तकलीफ़ की ऐसी क्या बात है? मेरा तो मन इससे बहुत प्रसन्न हुआ है।"

गांधीजी को अणेजी का एक श्लोक बहुत पसंद आया। उसका आशय मैं यहाँ देता हूँ। कवि रात्रि को शुभ्र आकाश-मंडल की ओर देखता क्या है, कि मृग आकाश-गंगा की ओर दौड़ रहा है। रोहिणी आकाश-गंगा के किनारे हरा घास चर रही है। उसे देखकर मृग का भी मन आकर्षित हो जाता है। अहेरिया उसके पीछे लगा हुआ है यह वह जानता है। व्याध का वाण उसके शरीर में घुस गया है, तो भी वह उधर दौड़ता ही चला जाता है, रुकता नहीं। इसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य अतृप्त तृष्णा का वशीभूत होकर विषयों की ओर दौड़ता ही रहता है। प्रकृति के नियम उसे उचित शिक्षा देते हैं, प्रकृति बार-बार उसे अपने वाण से बेधती है और रक्त बह रहा है, तो भी वह अपना विषयों के प्रति दौड़ना तो जारी ही रखता है!

१३—८—३४:—उपवास का यह अंतिम दिन है। उपवास के प्रथम दिन तो साम्यवादी साहित्य की एक पुस्तक गांधीजीने पढ़ी, पर दूसरे दिन उसका पढ़ना बंद कर दिया। साम्यवादियों को उन्होंने यह वचन दे दिया था, कि वे यह विचारपोषक मुख्य पुस्तक खुद पढ़कर उस पर अपना निश्चित मत प्रगट करेंगे। पर दूसरे दिन से तो उन्होंने तुलसी-कृत रामायण ही सुनी। शारीरिक पीड़ा इस अंतिम दिन ही मालूम हुई। उबकाइयों का आना आज दोपहर से शुरू हो गया, पानी और सोडा पीने में तकलीफ़ होने लगी, पर इस सारी व्यथा में भी शांतिप्रद रामायण का सुनना न छोड़ा। पास में जो कोई सेवा में होता उससे रामायण बँचवाते और सुनते-सुनते मीठी नींद में मग्न हो जाते। उपनिषद् का भी आज पाठ हुआ।

अणेजी आज भी आये थे। "उपवास की पूर्णाहुति के अवसर पर आपने कुछ श्लोक गाकर सुनाइएगा?" गांधीजीने यह इच्छा प्रगट की। "गाना तो मुझे आता नहीं, पर कुछ श्लोक अवश्य उस मांगलिक अवसर पर पढ़ दूँगा," अणेजीने गांधीजी की बात इस तरह स्वीकार करली। अणेजी को भी इस बात पर आश्चर्य होता था, कि यह उपवास कितने आनंद से हो रहा है, और गांधीजी को उससे कितनी शांति और आराम मिल रहा है। मैंने यों ही विनोद में अणेजी से कहा, "जानते हैं आप, जयरामदासजी को मैंने लिखा है, कि वर्किंग कमेटी में यह प्रस्ताव पेश किया जाय, कि साल में दो-तीन बार सभी कांग्रेसी कार्यकर्त्ता साप्ताहिक उपवास करें?" इस पर श्री माधवराव अणेने कहा, "बात तो बड़ी अच्छी है, पर गांधीजी जिस अर्थ में यह उपवास कर रहे हैं उस अर्थ में नहीं। वह तो दूसरों के लिए कर रहे हैं। हमारा पाप-पुंज इतना महान् है, कि इसके लिए हम जितने उपवास करें थोड़े हैं।" मैंने कहा कि, "मेरा भी यही आशय है।" "तो ठीक, तीन-चार उपवास तो थोड़े-थोड़े अंतर पर सब को करने ही चाहिए, इसमें हानि नहीं, लाभ ही है?" अणेजीने कहा।

यह तो मैं कह ही चुका हूँ, कि उपवास-काल में दर्शनार्थ आनेवाले बाहर के लोगोंने गांधीजी को ज़रा भी दिक़ नहीं किया। अनेक लोगोंने कई तरह से गांधीजी के साथ सहानुभूति प्रगट की होगी—किसीने एक-दो दिन का तो किसीने पूरे सात दिन का उपवास करके, किसीने कोई विशेष हरिजन-सेवा करके और किसीने दान-पुण्य करके। किंतु आश्रम से डेढ़ मील दूर नालवाड़ी गाँव के हरिजनोंने अपूर्व रीति से सहानुभूति व्यक्त की। श्री विनोबाजीने इस गाँव को अपनी हरिजन-प्रवृत्ति

का केन्द्र बना लिया है। यहाँ हरिजन संत चोखामेला के नाम से एक सेवा-मंडल है। उन सबने उपवास के सात दिन और इस से पहले के सात दिन इस तरह चौदह दिन चौबीसों घंटे भगवन्नाम की ध्वनि लगाई। निर्धन और हरिजन के पास हरिनाम से बढ़ा और क्या धन हो सकता है? गांधीजी का दर्शन करने उनमें से एक भी भाई नहीं आया, परन्तु हरिनाम तथा रामनाम और दूसरे अनेक भगवन्नामों की १४ दिनतक वे सब अखंड अनवरत वर्षा करते रहे। ऐसे श्रद्धालु भक्ति-भाव-भरित हृदयों के आगे सहज ही हम पामरों का हृदय झुक जाता है।

१४-८-३४:—आज ७ बजे उपवास समाप्त हो गया। अंतिम दिन हम सब लोगों को जो चिंता लग गई थी, वह पारण से परास्त हो गई। मित्रों के बधाई के तार तो कल से ही आने लगे थे। किंतु गांधीजी के हृदय में तो भगवत्कृपा के अर्थ भगवान् को धन्यवाद देने के अतिरिक्त कोई अन्य बात नहीं थी। साधारण रीति से उपवास-उद्यापन का कुछ कार्यक्रम निश्चित हुआ करता है। 'वैष्णवजन तो तेने कहिये' पद तो गवाया ही जाता है, और यदि कोई अन्य धर्मावलम्बी मौजूद हो, तो भगवद्भजन में सम्मिलित होने की उससे भी प्रार्थना की जाती है। पर अबकी बार गांधीजीने एक नया ही क्रम बतलाया। साधु विनोबा और उनके दोनों भ्राताओं की यहाँ एक अमूल्य त्रिपुटी है। महाराष्ट्र के ये तीनों ही भ्राता रत्न हैं। राष्ट्र के चरणों पर इस बंधुत्रयीने अपने जीवन को अर्पित कर दिया है। इस मांगलिक अवसर पर सौभाग्य से तीनों ही भाई उपस्थित थे। इनके होते उद्यापन करानेवाला योग्यपात्र और कौन हो सकता था? इसलिए गांधीजीने तीनों भ्राताओं से प्रसंग के उपयुक्त भजन गाने को कहा। विनोबाजीने प्रसंगानुकूल भक्तवर तुकाराम का एक सुंदर अभंग गाया। उनके बाद भाई शिवाजीने तुकाराम का एक दूसरा भक्ति-पूर्ण अभंग कहा। फिर गांधीजी का प्रिय भजन 'हरिनो मारग छे शूरानो, नहिं कायरनुं काम जोने' भाई बालकृष्णने अपूर्व भक्ति-भाव से गाया। इसके बाद डाक्टर दत्तने बाइबिल में से 'प्रेम का चमत्कार' नामक प्रसिद्ध प्रकरण का पाठ किया। बाइबिल में प्रेम-प्रशस्ति का विषय तो यह अपूर्व है ही, भाषा की दृष्टि से भी यह एक अनुपम चीज़ है। इस 'प्रेम-प्रशस्ति' गीत की कुछ कड़ियों का टूटा-फूटा भाषान्तर यहाँ देने का प्रयत्न करता हूँ:—

"मनुष्य की और देवता की वाणी में भले ही मैं बोलता होऊँ, तो भी यदि मुझ में प्रेम नहीं है, तो मुझमें और आवाज़ निकालनेवाले ढोल-तासे में कुछ भी अंतर नहीं।

मुझ में भले ही भविष्यद्वाणी करने की शक्ति हो, और परमगूढ़ रहस्यों का बोध तथा संपूर्ण ज्ञान हो, और मेरे अंतर में अचल पर्वत को भी हिला देनेवाली श्रद्धा मौजूद हो, तो भी यदि मुझ में प्रेम नहीं है, तो मैं कुछ भी नहीं हूँ।

भले मैं अपना सर्वस्व ग़रीबों को तृप्त करने में लुटा दूँ और अपना शरीरतक खुशी-खुशी भस्म हो जाने दूँ, इतना सब होने पर भी यदि मुझ में प्रेम नहीं है, तो मेरी सारी बातें व्यर्थ हैं।

प्रेम में अटूट क्षमा है, प्रेम में दया है; प्रेम असूयारहित है। प्रेम में स्वार्थ की गंध भी नहीं, प्रेम में वैर के लिए स्थान नहीं।

प्रेम की अन्याय से कभी नहीं पटती, वह तो न्याय और सत्य से रीझता है।

प्रेम सब निभा लेता है, प्रेम अविश्वास नहीं करता, प्रेम निराश नहीं होता—वह सब सहन कर लेता है।

प्रेम में कभी पराजय नहीं; भविष्यद्वाणी झूठी पड़ जायगी अच्छों-अच्छों की जिह्वा बंद हो जायगी, अच्छों-अच्छों का ज्ञान लुप्त हो जायगा;

क्योंकि ज्ञान अल्प का है, भविष्यद्वाणी भी अल्प के संबंध में होती है।

पर प्रेम परमात्मामय है, इस महान् का उदय होते अल्प सब नष्ट हो जायगा।

श्रद्धा, आशा, प्रेम ये तीनों ही शाश्वत हैं; किंतु इन तीनों में प्रेम तो सर्वश्रेष्ठ है।"

इस पवित्र प्रेम-प्रशस्ति के पाठ के पश्चात् शहीद अमतुस्सलामने क़ुरान की कुछ आयतें पढ़ीं। श्री माधवराव अणे को आने में ज़रा देरी होगई, इससे उनकी बारी सब से पीछे आई। उन्होंने अपने दस-बारह श्लोक सुनाये, जिनमें से दो श्लोकों का सारमर्म यह है—

"मेरा यह चंचल मन-पक्षी विषयरूपी पंखों को फड़फड़ाता हुआ क्षण में तो आकाश की ओर उड़ता है और क्षण में पृथिवी पर उतर आता है। हे निगम-पारगेन्द्रगुरो! इस चंचल पक्षी के विषय-पंखों को वैराग्य-वज्र से काटकर इसे पहाड़ के समान अचल बनादो न।"

"अपनी ओर खिंचते हुए लोहे के टुकड़े को चुंबक प्रेम से चूम लेता है, और ध्रुव अपने ध्येय का ध्यान धरता हुआ सदा उत्तरमुख ही रहता है; इन दोनों का बर्ताव उन सद्धर्मदर्शी साधुओं के समान है, जो शरण में आये हुए पापियों को दया-भाव से अंगीकार कर लेते हैं।"

उपवास का समय बीते यद्यपि २० मिनिट हो गये थे, पर रामधुन बिना गांधीजी को चैन पड़ सकता है? इसलिए अब रामधुन शुरू हुई। इस नाम-संकीर्तन के समाप्त होने पर श्री जमनालालजी की पत्नी श्रीमती जानकी देवी के हाथ से गांधीजीने गरम पानी और शहद लेकर पारण किया।

सामान्यतया व्रतोद्यापन के समय गांधीजी दो शब्द कह देते हैं। किंतु इस बार प्रभु के अनुग्रह-रस से उनका हृदय इतना लबालब भर गया था, कि मुख से एक अक्षर भी न निकल सका। ईश्वर के अपार अनुग्रह के ध्यान में मूक भाव से थोड़ी देर के लिए हम सब लोग लीन हो गये।

धन्य है भक्तभयहारी मंगलमय भगवान् की महिमा!

महादेव हरिभाई देसाई

गोंड़जाति और उसकी सेवा

[५]

सेवा क्यों और कैसी?

उक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि गोंड़जाति कितनी महत्वपूर्ण है और उसके सुधार तथा संगठन की कितनी अधिक आवश्यकता है। इतनी विशाल, किन्तु उपेक्षित जाति की सेवा

के लिए एक "सेवा-मण्डल" की स्थापना होनी चाहिए। हमारे प्रांत के गोंड-आबादी-प्रधान प्रत्येक ज़िले में कार्यकर्ताओं को फादर एलविन की तरह गोंड-सेवा-गृह बनाकर व उन्हीं के बीच रहकर उनकी सेवा करनी चाहिए।

संक्षेप में, अपनी तुच्छमति के अनुसार, गोंड़जाति की सेवा व सुधार की बातें मुझे ये सूझ रही हैं :—

१ शिक्षा-प्रचार, रात्रि तथा दिवस-पाठशालाओं के द्वारा;

२ दवा दारू का प्रबन्ध;

३ मद्य-निषेध का आन्दोलन;

४ जंगल के नियमों की कड़ाई कम करने के लिए प्रयत्न;

५ पानी के प्रबन्ध के लिए कुएँ आदि खुदवाना;

६ बेकारी दूर करने के लिए चर्खा का प्रचार तथा खादी-उत्पत्ति;

७ कर्ज़दारी दूर करना और सस्ते सूद पर रुपया दिलाकर साहूकारों के पंजे से छुड़ाना;

८ लगान कम कराने का प्रयत्न;

९ बेगार-प्रथा बन्द कराने के लिए आन्दोलन;

१० हिन्दुओं के मन में गोंड़जाति के प्रति अस्पृश्यता के भाव दूर कराना;

११ कठिनाइयों की जाँच-पड़ताल करना;

१२ मताधिकार आदि के लिए आन्दोलन उठाना;

गोंड़ों को ऐसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं, जो उन्हें "बाबू" बनादे, किन्तु ऐसी शिक्षा की है जो उन्हें अपनी परिस्थिति के अनुकूल हो और उस हालत में रहने के योग्य बनादे, साथ ही उनका भय छुड़ाकर उनमें आत्मविश्वास एवं स्वतंत्रता के भाव जाग्रत करदे। खेती, दस्तकारी व साधारण लिखना-पढ़ना, तथा कामचलाऊ हिसाब-किताब उन्हें सिखा दिया जाय। बढ़ईगीरी और कातना-बुनना भी सिखाना ज़रूरी है।

दवा दारू का प्रबन्ध करना भी ज़रूरी है। यों तो जंगल की आबहवा में रहने के कारण गोंड़ स्वस्थ रहते हैं, किन्तु संक्रामक रोगों के फैलने पर बिना दवा दारू के उन्हें बेमौत मरना पड़ता है। एक तो सरकारी दवाखाने इनके पास-पड़ोस में हैं ही नहीं, दूसरे ये लोग उनसे लाभ नहीं उठा सकते।

इस प्रसंग पर फादर एलविन लिखते हैं—"आप बीमार बच्चों को नहीं पढ़ा सकते। यदि आपने भूखों मरते हुए बीमार बच्चे को देखा हो, जो बुखार व खाँसी से बेचैन हो, जिसकी हड्डियाँ पतली झिल्ली के बाहर निकली पड़ती हों और जो धुआँ-भरी गन्दी अँधेरी झोपड़ी में नंगी ज़मीन पर लोट रहा हो तो आपको उस समयतक शान्ति न मिलेगी, जबतक हिंदुस्तान लोकोपयोगी औषधालयों से ओत-प्रोत नहीं हो जाता।"

मद्य निषेध के लिए सरकार का सदा यह होला रहता है, कि अगर हम उसे कम करेंगे तो लोग खुद बनाकर पीना शुरू कर देंगे। सरकारी जंगलों की हद इतनी बढ़ गई है, कि वह गाँव के बिल्कुल किनारे तक पहुँच गई है। गोंड़ों के पशु यदि उनमें ज़रा भी गये या उन्होंने अपने निस्तार के लिए लकड़ी काटी तो जुर्माना ही नहीं, जेलतक की सज़ा दी जाती है। पानी का इतना कष्ट है, कि गर्मी के दिनों में खोज-खाजकर इधर-उधर से एक-एक बूंद पानी लाना पड़ता है और वह भी गँदला। मैंने उनके इस कष्ट को खुद अपनी आँखों देखा है। बेकारी दूर करने के लिए चर्खा आदि घरेलू उद्योगों के प्रचार की बड़ी ज़रूरत है। कर्ज़दारी दूर करने के लिए सहकारी-समितियों का और अधिक प्रचार होना चाहिए तथा साहूकारों के मनमाने ब्याज के पंजे से बचाने के लिए क़ानूनी बंदिश होनी चाहिए। लगान, चराई तथा अन्य कर तो हर नये बन्दोबस्त में बढ़ते ही चले जाते हैं, उन्हें कम कराने का आन्दोलन आरम्भ करना भी बहुत ज़रूरी है।

बेगार-प्रथा अगर कहीं ज़ोरों पर है, तो इन जंगली इलाक़ों में, जहाँ कोई देखने सुननेवाला तक नहीं। छोटे-छोटे अफसर तक बेगार लेना अपना अफ़सरी-सिद्ध हक़ समझते हैं। इन सब कठिनाइयों को दूर करने के लिए संगठित प्रयत्न तथा प्रचार-कार्य की ज़रूरत है। मगर सवाल यह है कि इसे करे कौन?

पहिले तो हमें अपने मन से इन जातियों के प्रति हिकारत, नीचता तथा अस्पृश्यता के भाव दूर कर देने चाहिए। दूसरे यह भावना भी हटा देनी चाहिए कि हम इनका "उपकार" या "उद्धार" कर रहे हैं। जबतक हम सच्ची सेवा की भावना से प्रेरित न होंगे, इन वन-निवासी उपेक्षित भाइयों की सेवा-सहायता नहीं कर सकते।

अभी अगर कोई उनकी थोड़ी-बहुत सेवा-सहायता करता है तो वह है ईसाई मिशनरियों का दल। किन्तु इतने से ही क्या होता है? काम तो हमारे सामने बहुत बड़ा पड़ा हुआ है।

यह बड़े सन्तोष की बात है कि फादर एलविन-सरीखे सच्चे ईसाई तथा सत्य-निरत संत धर्म-परिवर्तन करने की मंशा से नहीं, बल्कि शुद्ध सेवा की भावना से ही उनकी सेवा कर रहे हैं।

इस लेख को मैं उदारचेता "आदिजन सेवक" साधु एलविन के ही शब्दों में समाप्त करता हूं :-

"भारत का कोई ऐसा नागरिक नहीं है, जो यह दावा कर सके कि उसे इन अरण्यवासी भाई-बहिनों से कोई मतलब नहीं। ये १२ लाख प्राणी हमें सदा चैलेंज देते रहते हैं, कि हम उनकी सेवा में अपना तन, मन, धन ही नहीं, बल्कि अपना सारा जीवन भी लगा दें। वे चाहे अपने "उद्धारकर्त्ता या रक्षकों को न चाहें, पर उन्हें सच्चे मित्रों, सहायकों तथा सेवकों की ज़रूरत है। जो लोग इस भावना को लेकर उनके पास जायँगे वे उनसे प्रेम और मैत्री प्राप्त करेंगे—और कोई दूसरा पुरस्कार उन्हें न मिलेगा।"

"भारत को अपनी नसों में इन्हीं अरण्यों के प्राचीन रक्त की आवश्यकता है। जबतक उसके पुनर्जागरण में यह रक्त प्रवाहित नहीं होता, तबतक वह बलवान् नहीं बन सकता, अपने गौरव को प्राप्त नहीं कर सकता। अरण्य ही भारत के प्राण हैं—वे सदा से ऋषियों के निवास-स्थान रहे हैं। वे भारत के ऊँचे-से-ऊँचे साहित्य के जन्मदाता हैं, उनसे भारत का प्राकृतिक सौंदर्य बना हुआ है। अत: नवीन भारत को चाहिए कि वह प्राचीन अरण्य की सन्तानों को अपनी गोद में लेकर आशीर्वाद दे।"

(समाप्त)

ब्योहार राजेन्द्रसिंह

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि
"आत्मवत् सर्वभूतेषु"
Reg. No. L. 3169
वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)
पता—
हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का
मूल्य -)
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]
भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ३१ अगस्त, १९३४. [संख्या २८

विषय-सूची

देहात की दलबंदी

श्री मध्वाचार्यने दो उँगलियाँ उठाकर संसार को दृढ़ता के साथ बतला दिया था, कि 'सत्यं भिदा ।' इसी बात को समर्थगुरु श्री रामदास अपनी काव्यमय शैली से कहते हैं, कि "भगवान्‌ने ही तो भेद उत्पन्न किया है; केवल हमारी वाणी से—वेदों से—वह नहीं मिटाया जा सकता ।"

दुनियाँ में मतभेद, दृष्टिभेद, वृत्तिभेद [illegible] हितभेद तो रहेंगे ही । मार-पीटकर, लड़-झगड़कर, वाद-विवाद या विचार-विनिमय करके अथवा आपस में समझौता करके, पैरों पर गिरके या चुपचाप बैठकर किसी भी तरह हम भेदों का मिटाना असंभव नहीं । देहात का जीवन चाहे संकुचित हो, चाहे अज्ञानपूर्ण हो, कैसा ही हो—है वह सम्पूर्ण जीवन । वह जीवित जनों का समाज है । वे सब बातें रहेंगी ही । इतना ही नहीं, भेदात्मक जीवन समृद्धि के लिए आवश्यक भी है । समाज जैसे-जैसे उन्नतिशील होता जायगा, वैसे-वैसे उसकी प्रवृत्तियाँ भी विविध प्रकार की होंगी ही । और अनुभव-भेद से, आदर्श-भेद से और साथ ही श्रद्धा-भेद से साध्य और साधन में एवं कार्य की पद्धति में भिन्नता तो रहेगी ही । इसलिए प्रश्न यह नहीं है, कि मतभेदों को कैसे मिटाया जाय—प्रश्न तो असल में यह है, कि मतभेदों के सम्बन्ध में सहिष्णुता और आदर-वृत्ति रखकर एकता किस प्रकार क़ायम रखी जाय । घर में रोटी तो एक है और उसे खानेवाले माता और पुत्र दो प्राणी हैं, इसमें संदेह नहीं कि उन दोनों का हित-सम्बन्ध, या स्वार्थ परस्परविरोधी है, तो भी इससे उन दोनों में कोई झगड़ा पैदा नहीं होता । कारण यह है, कि दोनों की समझदारी, स्वार्थत्याग और प्रेम की भावना अधिक बलवती है ।

समाजान्तर्गत झगड़े-बखेड़े निपटाने के लिए भी इन्हीं गुणों को परिपुष्ट करना होगा । भिन्नतों में अभिन्नता देखना ही समाज का कल्याणकर मार्ग है, गीताने भी इसी का प्रतिपादन किया है । मतभेद चाहे जितने हों, पर उनके कारण मनुष्यता को तिलांजलि देने की ज़रूरत नहीं । मनुष्यत्व छोड़ देने से सभी का अनहित होता है, किसी का भी हित नहीं सधता । अपनी ही नाक कटाकर दूसरों के लिए असगुन करने की जो वृत्ति समाज में बढ़ती आ रही है, उसे भी मिटाना होगा । यह कार्य सरकारी न्यायमंदिरों में न होकर समाज के हृदय-मंदिरों में ही होना चाहिए । जन-जन के स्वार्थ, ईर्ष्या, असूया-मूलक झगड़ों से लेकर द्वैत-अद्वैतवाद के सनातन शास्त्रार्थतक सभी स्थानों पर मनुष्यता का, सज्जनता का प्रवेश कराना चाहिए ।

समाज के धर्मनिष्ठ और कारुण्यवृत्ति के सिज्जनों को चाहिए, कि वे अपना समय समाज के आचार-व्यवहार में लगावें । तटस्थवृत्ति से सभी के हित पर ध्यान रखकर सब को लाभ पहुँचाना चाहिए । पर इस काम के लिए अधिकार-लिप्सा या प्रतिष्ठा का आग्रह रखना उचित नहीं । जहाँ किसी तरह का अधिकार आया, वहाँ प्रेम-सम्बन्ध का लोप ही समझो । अधिकार का आकांक्षी कम-से-कम विलंब तो हो ही जाता है । वकील-वृत्ति से प्रेम का वातावरण बनाना सम्भव नहीं । धर्मनिष्ठा और उदार भावना ही सामाजिक ऐक्य और सामर्थ्य की कुंजी हैं । इस पर कुछ लोग कहेंगे, कि यह तो निरा धर्मोपदेश है, यह व्यावहारिक कार्यक्रम नहीं है । हम उनके व्यावहारिक मार्ग की यद्यपि सैकड़ों वर्षों से आजमाइश कर रहे हैं, तो भी सफलता की दृष्टि से देखा जाय, तो वह कामयाब साबित नहीं हुआ । वास्तविक व्यवहार्य मार्ग तो वही है, जिसकी ऊपर चर्चा की गई है ।

प्रत्येक ग्राम या प्रत्येक समाज में कुछ 'ग्राम-कंटक' या 'समाज-कंटक' तो रहते ही हैं । उनका विरोध करने से वे और-और उत्पात मचाते हैं । सर्वसाधारण को साधन-साध्य के विषय में किसी प्रकार का विधि-निषेध मालूम न होने से, और देहातों में मूढ़ता, सिधाई और ईर्ष्या की वृत्ति बहुधा दिखाई देने से ऐसे ग्राम-कंटकों की खूब बन आती है । इन ग्राम-कंटकों की युक्तियों का विरोध न करके उनका और उनकी कार्यपद्धति का रूपभर लोगों को बतला देना है ।

'हिंडलग्याचा प्रसाद' से] दत्तात्रय बालकृष्ण कालेलकर

सनातनियों की कुछ भ्रांतियाँ

हरिजन-प्रवास में हमें इतने अधिक अनुभव प्राप्त हुए और ऐसी-ऐसी बातें प्रकाश में आईं, कि अगर उन सब का पूरा और हूबहू चित्र उतारा जाय, तो हर अंक के कम-से-कम पाँच छै पृष्ठ तो इसीसे भर जायँगे । पर यह कैसे हो सकता है, कारण कि दूसरे विषयों के लिए भी तो हरिजन-सेवक में स्थान रखना

है। इसलिए ऐसी तमाम बातों को छोड़ देना ही मैंने ठीक समझा है। कानपुर को ही लीजिए। वहाँ कैसी-कैसी विचित्र बातों का सनातनियोंने पर्चे बाँट-बाँटकर प्रचार किया था। वे तमाम गंदे पर्चे सोलह आने असत्यों से या अंगभंग अर्द्धसत्यों से भरे हुए थे। गांधीजी को उन पर्चों की थोड़े से प्रासंगिक चर्चा करके ही संतोष करना पड़ा। उस तमाम वाहियात पर्चेबाज़ी की छानबीन में पड़ना गांधीजी के लिए अशक्य था। यह तो हर जगह के सुधारकों को चाहिए, कि वे ऐसे असत्प्रचार की असलियत साफ़-साफ़, पर धीरज और शांति के साथ जनता के सामने रखदें। पर कानपुर के एक वाक़या की चर्चा तो मैं जरूर करूंगा। बात यह है, कि उस में कुछ ऐसे प्रश्न आये थे, जिन में आमतौर पर सब लोग रस ले सकते हैं। कानपुर की स्वागत-समितिने ख़ास तौर पर सनातनियों के लिए कुछ समय अपने कार्यक्रम में नियत कर दिया था और गांधीजी के साथ बात करने के लिए उन्हें बुलाया भी था। एक दिन सबेरे हम क्या देखते हैं, कि डाक्टर जवाहर लाल के बंगले का हाता लोगों से ठमाठस भरा हुआ है। गांधीजी वहां निश्चित समय पर सनातनियों की सेना से, जिसमें पंडित-अपंडित सभी तरहके लोग थे, प्रेमाश्रु लेकर सामना करने जा पहुँचे। पर उस भारी जमाव में कोई विपक्षी पंडित नहीं थे। हाँ, एक नवयुवक ऐसा अवश्य था, जिसने प्रश्नों की झड़ी लगादी। वह ज़िन्दादिलथा। लोग उनके अद्भुत शास्त्रार्थ (?) का कितना ही ठट्टा उड़ाते, हजरत उसकी रत्ती भर भी पर्वा नहीं करते थे। न गांधीजी के उत्तरों को ही आप सुन रहे थे। वह तो अपने आप को प्रसिद्ध करने, और गांधीजी का मज़ाक उड़ाने के लिए ही अपनी प्रश्नावली लेकर वहां आया था। उसे मालूम था कि, वहाँ उसका कोई साथ नहीं दे रहा है, तो भी चेहरे पर वही हिम्मत और वही दिल्लगी का भाव बनाये हुए था। ख़ैर, वह युवक कैसा था इससे हमें कोई सरोकार नहीं। हमें तो यहाँ उन प्रश्नोंकी चर्चा करनी है, जो निश्चय ही किसी अच्छे पंडितने उसे लिखकर दे दिये थे और जिन से उन भ्रमपूर्ण विचारों का पता चलता था, जो अब भी सनातनियों के मस्तक में घर किये हुए हैं।

"आप का यह मन्दिर-प्रवेश का आंदोलन हरिजनों को क्या आर्थिक लाभ पहुँचायगा? क्या आपको विश्वास है, कि हरिजन मंदिरों में जाना चाहते हैं?" उस युवकने पूछा।

"यहाँ हरिजनों के आर्थिक लाभ की बात नहीं है। यह तो उन सवर्ण हिंदुओं के आध्यात्मिक लाभ के लिए है, जो हरिजनों के देनदार हैं और जिन्हें अपनी आत्मशुद्धि करनी है। अगर अस्पृश्यता पाप है और हरिजन वैसे ही हिन्दू हैं, जैसे कि हम सब लोग, तो उन का भी शेष हिंदुओं की तरह मन्दिरों में जाने का वैसा ही अधिकार है। यह तो सवाल ही दीगर है, कि हरिजनों को मंदिर-प्रवेश से कोई लाभ पहुँचेगा या नहीं, अथवा उस से उनकी मुक्ति हो जायगी, या वे ख़ुद मन्दिरों में जाने के इच्छुक हैं या नहीं। प्रश्न तो यह है, कि जो मन्दिर में जाना चाहता है, बशर्ते कि उन सब नियमों का वह पालन करता है जिनका कि तमाम दूसरे हिंदू करते हैं, तो उसका मंदिर में जाने का हक़ होना चाहिए, फिर भले ही वह पतित या पापी हो। हम सब लोग मंदिरों में अपने पाप पखारने के लिए ही तो जाते हैं। पुण्यात्मा को मंदिर में जाने की आवश्यकता ही क्या? सनातनियों को तो इतना ही देखना चाहिए, कि वह मंदिर में जानेवाला हिंदू बाह्य शौच के सब नियमों का पालन कर रहा है या नहीं।"

"पर हमारे शास्त्र तो अस्पृश्यों के मंदिर-प्रवेश के विरुद्ध हैं। तो यह क्यों नहीं आप साफ़-साफ़ कह देते, कि आप अपना एक नया ही धर्मशास्त्र रचना चाहते हैं?"

"नहीं, यह बात तो नहीं है। मैं उन्हीं शास्त्रों को मानता हूं, जिनको कि आप सब मानते हैं। शास्त्र तो वही हैं, पर अर्थ मैं भिन्न करता हूं। मैं स्वयं कोई शास्त्री तो नहीं हू, किंतु यदि पंडितों और शास्त्रियों का कोई ऐसा वर्ग है, जो अस्पृश्यता को शास्त्र-विहित मानता है, तो ठीक वैसा ही प्रबल वर्ग उनका एक दूसरा भी है, जिसकी निश्चय ही यह मान्यता है, कि वर्तमान अस्पृश्यता के लिए हमारे शास्त्रों में कोई प्रमाण नहीं है।"

"पर यदि आप अस्पृश्यता को नष्ट कर देंगे, तो अस्पृश्य लोग हमारे धंधों को हथिया लेंगे। उदाहरणार्थ, वे मिठाई इत्यादि की दूकाने रखने लगेंगे। फिर तो हमारी खान-पान-सम्बन्धी सारी मर्यादा नष्ट ही समझिए।"

"आप यहाँ भूलते हैं। हरिजन-आंदोलन का तो खान-पान के प्रश्न से कोई सम्बन्ध ही नहीं। वह तो केवल वर्तमान अस्पृश्यता को नष्ट करना चाहता है। आज हिंदुओं और अब्राह्मणों की सैकड़ों दूकानें मौजूद हैं। हिंदुओं और ब्राह्मणों को कौन मजबूर करता है, कि वे उन दूकानों से सौदा ख़रीदें ही? ऐसे कितने ही कट्टर ब्राह्मण हैं जो किसी के भी हाथ का बना भोजन छूतेतक नहीं। उनकी उस मर्यादा में कौन हाथ लगाना चाहेगा?"

"पर आप यह क्यों बार-बार कहते हैं, कि अस्पृश्यता पाप है, जब कि हमारी सगी माताओं, बहिनों और पुत्रियों के भी साथ, मास में चार दिन, अस्पृश्यों की तरह बरताव किया जाता है?"

"आपको यह जानना चाहिए, कि किसी-न-किसी प्रकार की अस्पृश्यता को न केवल हम हिंदू ही बल्कि पारसी, मुसलमान, ईसाई आदि सभी धर्म-मजहबों के लोग मानते हैं। पर क्या हम अपनी माताओं और बहिनों को सदा ही अस्पृश्य समझते रहते हैं—मास के शेष २६ दिनों में भी क्या? और उनके मासिकधर्म के समय भी, क्या हम उनका अस्पृश्यों का-सा तिरस्कार करते हैं? क्या उनके आगे अपनी बचीखुची जूठन दूर से डाल दिया करते हैं? क्या उन दिनों हम उन्हें घर से बाहर रखते हैं? ईश्वर के लिए यह न भूल जाओ, कि आप जिन्हें अछूत कहते हैं उनके साथ आप ऐसा अपमानजनक और अत्याचारपूर्ण व्यवहार करते हैं, कि वैसा दुर्व्यवहार आप किसी दूसरे के साथ करने का साहस न करेंगे।"

"हमें उन अपमानों और अत्याचारों का पता नहीं। वे सब बातें हमारे यहाँ नहीं हैं। अच्छा हो, कि आप उन्हीं प्रांतों में जाकर दौरा करें, जहाँ अछूतों के साथ ऐसे अत्याचारपूर्ण व्यवहार किये जाते हों।"

"तो क्या आप मेरा साथ देंगे?"

"हम क्यों साथ देने चले। हमारे लिए यह काफ़ी है, कि हम दोषी नहीं हैं। हम लोग बराबर अछूतों को अपने आलिंगनों में स्वीलते हैं।"

"हाँ, दूर से उनके आगे अपनी जूठन फेंकने के लिए—क्या यह बात ग़लत है ?"

"लेकिन आप सुधारक लोग तो अपनी जूठन भी उन्हें नहीं देते। अपने सुधार के जोश में आकर आप उन बेचारों को भूखों मार रहे हैं। हम उन्हें भूखों तो नहीं मारते। अस्पृश्यता हम अवश्य मानते हैं, पर इतनी सहानुभूति तो हमारी उनके साथ है।"

इस अनोखी उक्ति पर सारा-का-सारा जन-समूह ठहाका मारके हँस पड़ा।

"यह आप हमेशा कहते हैं, कि हरिजन-आंदोलन का रोटी-बेटी के प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं। पर ज़रा यह तो बतलाइए, कि आपने अपने बेटे देवदास का विवाह एक ब्राह्मण-कन्या के साथ क्यों किया ?"

"यह प्रश्न तो भाई, अलग ही है। हरिजन-आंदोलन के साथ इस प्रश्न का कुछ भी वास्ता नहीं। देवदास-लक्ष्मी के विवाह को तो मैंने हरिजन-आंदोलन के नेता की हैसियत से नहीं, बल्कि एक हिंदू-सुधारक की हैसियत से होने दिया। मुझे तो वर्णाश्रमधर्म को उसकी प्राचीन उन्नत अवस्था पर पहुँचाना है। वर्णाश्रमधर्म की रचना इसी उद्देश से हुई है, कि मनुष्य की मानसिक, बौद्धिक और शारीरिक शक्ति का उपयोग समाज के हितार्थ हो। इस व्यवस्था का खान-पान या ब्याह शादी के प्रश्न से कुछ भी सम्बन्ध नहीं। मेरे पुत्र के विवाह का प्रश्न इस प्रसंग में आता ही नहीं। पर आप पूछते हैं, तो इस विषय में मेरे जो विचार हैं बतला देता हूँ। ऐसे विवाहों में इन दो-तीन बातों का मैं विचार करता हूँ। (१) वर्णाश्रमधर्म का लोप हो गया है, इसलिए जो शुद्ध मर्यादा पालनेवाले हों, और जिन्हें संयमधर्म स्वीकार करना हो, उनका यह कर्तव्य है, कि वे अपना व्यवहार संयम की दृष्टि से निश्चित करें; शुद्ध प्रेम और संस्कार के साम्य से आकर्षित होकर जो पवित्र विवाह-सम्बन्ध से अपने को बाँधना चाहते हों, वे ऐसा कर सकते हैं। मेरे पुत्र और राजाजी की पुत्री का विवाह-सम्बन्ध इसी कोटि का था। उन दोनोंने एक दूसरे के प्रति अपने आकर्षण की बात मुझे बतला दी थी। मैंने उन दोनों पर ५ वर्ष की क़ैद लगा दी और उनसे कहा, कि ५ वर्ष की मर्यादा पालो, इस अवधि में तुम दोनों एक दूसरे से मिलने, बातचीत करने और चिट्ठी-पत्री लिखनेतक का सम्बन्ध न रखो। इस क़ैद को दोनोंने खुशी से स्वीकार कर लिया, और मर्यादा की अवधि समाप्त हो जाने के बाद उन्होंने मेरी सम्मति माँगी। बिना हमारा आशीर्वाद पाये वे विवाह करने को तैयार नहीं थे। (२) यह मान लिया जाय, कि वर्ण आज भी मौजूद हैं, तो भी महाभारतादि ग्रन्थों में अंतर्वर्ण विवाह के काफ़ी दृष्टान्त मिलते हैं। (३) विवाहादि के जो नियम बनाये गये, वे उस समय की आवश्यकता को देखते हुए उसी काल के लिए बनाये गये थे, और उनमें काफ़ी सुधार संशोधनों के लिए जगह है। संयम-धर्म की अवहेलना तो कभी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि संयम-च्युत समाज टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।

फिर यह भी ध्यान में रखना चाहिए, कि स्मृति नामधारी वर्तमान ग्रन्थों में आज जो परस्पर विरोधी सैकड़ों वाक्य मिलते हैं, वे सभी प्रमाणरूप नहीं माने जा सकते। ऐसी परस्पर विरोधी बातें या तो लेखकने मूर्छित दशा में लिखी होंगी, या पीछे से उनमें ये क्षेपक जोड़ दिये गये हैं। मनुमहाराज-जैसे तपस्वी स्मृतिकार मूर्छित दशा में हो ही नहीं सकते, इसलिए उनके ग्रन्थों में असंगत लगनेवाली बातें हमें निरुपयोगी ही समझनी चाहिए। तुलसीकृत रामायण तक में जब कितने ही क्षेपक लोगोंने जोड़ दिये हैं, तब मनुस्मृति-जैसे प्राचीन ग्रन्थों में ऐसा घुटाला हुआ हो तो इसमें अचरज ही क्या ? मुझे मनुमहाराज की सनातनधर्म की यह व्याख्या यथार्थ जान पड़ती है, और इसी कसौटी पर हमें उन सब वचनों को कसना चाहिए :—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिः नित्यमद्वेषरागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातः एषधर्मः सनातनः ॥

खान-पान में मैं जिस आचार का पालन करता हूँ, वह किसी से छिपा नहीं है। खान-पान में मेरी जो मर्यादा है, उसके भीतर रहकर मैं शुद्ध भोजन चाहे जिस मनुष्य के हाथ का ग्रहण कर लेता हूँ। किंतु यह सारा प्रश्न तो व्यक्तिगत है, सामाजिक नहीं। मेरी बहिन मरजादी हैं। हरिजनों के हाथ का ही नहीं, वह तो अन्य हिंदुओं के हाथ का भी नहीं खाती हैं। उनके साथ मैं किसी प्रकार का आग्रह नहीं करता। मेरे लिए तो इतना ही बस है, कि वे किसी मनुष्य को अस्पृश्य नहीं मानतीं।

हाँ, एक बात और कह देता हूँ। मेरे नाम से जिन बहुत-सी बातों का प्रचार किया जा रहा है, मुझ से पूछे बिना उन पर आप लोग कभी विश्वास न करें।"

महादेव हरिभाई देसाई

मुंगेर में हरिजन-शिक्षा

मुंगेर ज़िला-हरिजन-सेवक-संघ के मंत्री श्री सुरेश्वर पाठक-विद्यालंकार लिखते हैं :—

"हमारे ज़िला-संघ की ओर से इस समय हरिजनों की शिक्षा पर ही खास ज़ोर दिया जा रहा है। संघ की तरफ से २६ हरिजन-पाठशालाएँ चल रही हैं। एक हरिजन-कन्या-पाठशाला भी संघ की है। इन पाठशालाओं में ७०० के लगभग बच्चे शिक्षा पा रहे हैं। शहर में हरिजनछात्रों के लिए एक आश्रम भी संघने खोला है, जिसमें ऊंचे दरजों में पढ़नेवाले ९ छात्र रखे गये हैं। इसका सारा अध्ययन-व्यय संघ ही चला रहा है। एक हरिजन-छात्रने इस वर्ष मैट्रिक की परीक्षा पास की है, जिसे संघने पटना-कालेज में भर्ती करा दिया है। इसके अतिरिक्त कोई ढाई हज़ार हरिजन विद्यार्थी ज़िला-बोर्ड की पाठशालाओं में शिक्षा पा रहे हैं।"

भूकम्प-द्वारा ध्वस्त मुंगेर ज़िले का यह हरिजन-शिक्षा का उत्साहवर्धक विवरण स्वस्थ प्रान्तों के लिए तो और भी अधिक अनुकरणीय है। सं०

दलित-सुधार सोसाइटी का

नाम-परिवर्तन

कलकत्ते की सुप्रसिद्ध दलित-सुधार सोसाइटी का नाम गत १६ अगस्त को बदलकर *'हरिजन-उत्थान-समिति'* कर दिया गया है।

गंगाप्रसाद भोतिका
मंत्री, ह० उ० स०, कलकत्ता

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ३१ अगस्त, १९३४

सच्चा स्वदेशी

१७ अगस्त के 'हरिजन-सेवक' में 'स्वदेशी' पर मैंने जो लिखा था, उसी सिलसिले में कुछ और लिखना चाहता हूँ। हरिजनों के ही खास-खास धंधे लीजिए। हरिजनों की जो दो हज़ार से ऊपर जातियाँ आज मौजूद हैं, उनका कुछ मतलब ज़रूर है। बहुत-सी जातियों से उनके अपने-अपने धंधों का पता चल जाता है, जैसे टोकरी बनाना, झाड़ू बनाना, रस्सी भाँजना, दरी बुनना वगैरा। अगर एक पूरी फेहरिस्त बनाई जाय, तो वह एक खासा काम का लिस्ट तैयार हो जायगा। ये सब धंधे अगर फ़ायदे के हों तो उन्हें उत्तेजन मिलना चाहिए, और फ़ायदे के न हों, तो उन्हें धीरे-धीरे नष्ट कर देना चाहिए। पर इसका निर्णय करे कौन, कि ये फ़ायदे के हैं या नहीं, उपयोगी हैं या अनुपयोगी? अगर एक सच्चा स्वदेशी संघ हो, तो वह इन तमाम अनगिनती दस्तकारियों की ठीक ठीक जाँच करे। यह स्याही, जिससे मैं लिखता हूँ, टिनाली (मद्रास) की बनी हुई है। इसमें १२ आदमियों की जीविका चल रही है। कठिनाई से किसी तरह वे काम को चलाये जा रहे हैं। तीन और नमूने स्याही के मेरे पास मुख्तलिफ बनानेवालोंने भेजे थे। इन सब का भी टिनालीवालों का सा ही हाल है। मुझे काम उनका अच्छा लगा। मैंने उनसे पत्र-व्यवहार किया। पर इससे अधिक मैं उनके लिए और कुछ नहीं कर सका। स्वदेशी संघ हो तो वह वैज्ञानिक ढंग पर इन स्याहियों की जाँच-पड़ताल करे और जो सब से अच्छी चलनेवाली हों उन्हें उत्तेजन दे। स्याही का यह उद्योग है तो अच्छा और तरक्की भी कर रहा है, पर इसे अच्छे रासायनिक साधनों की आवश्यकता है।

कानपुर में उस दिन एक सज्जनने अपने मित्र के बनाये काग़ज़ के कुछ नमूने मेरे पास भेजे थे। यह काग़ज़ वहीं पास के एक गाँव में तैयार होता है। पूछताछ करने पर मालूम हुआ, कि इस काम में क़रीब [illegible] आदमियों की रोज़ी चल रही है। काग़ज़ था तो मज़बूत और घुटा हुआ, पर लिखने में ऐसा बहुत अच्छा नहीं था। इस काम में जो आदमी लगे हुए हैं, उनकी ख़ाली रोज़ी ही बड़ी मुश्किल से चल रही है। मौत के किनारे बैठा हुआ एक बुड्ढा आदमी अपने हुनर से उस गाँव में यह काम चला रहा है। ठीक तरह से अगर मदद न मिली, तो उस बुड्ढे के साथ ही यह सारा काम समाप्त समझिए। मुझे बतलाया गया, कि अगर काफ़ी माँग हो, तो काग़ज़ उसी भाव पर दिया जा सकता है, जिस दर पर कि मिल का बना काग़ज़ बिक रहा है। मैं जानता हूँ, कि हाथ का बना देशी काग़ज़ नित्यप्रति बढ़ती हुई काग़ज़ की माँग को कभी पूरा नहीं कर सकता। पर सात लाख गाँवों और वहाँ की दस्तकारियों के भक्त, अगर आसानी से मिल सके तो, हाथ के बने काग़ज़ पर लिखना ही पसंद करेंगे। जो लोग हाथ के बने काग़ज़ को काम में लाते हैं, उन्हें यह मालूम है कि उसमें अपनी एक ख़ास मनोहरता होती है। अहमदाबादी प्रसिद्ध काग़ज़ को कौन नहीं जानता? मिल का काग़ज़ अहमदाबादी काग़ज़ के टिकाऊपने और चिकनाहट का क्या मुकाबला करेगा?

पुराने ढंग के सब बही-खाते अब भी उसी काग़ज़ के बनते हैं। पर दूसरी बहुत-सी ऐसी दस्तकारियों की तरह संभवतः यह उद्योग भी अब आख़िरी साँसें गिन रहा है। थोड़ा ही प्रोत्साहन मिलने से यह उद्योग मृत्यु-मुख में जाने से बच सकता है। अगर ठीक तरह से देखभाल की जाय, तो बनाने की रीतियों में सुधार हो जाय और हाथ के बने काग़ज़ में जो दोष आज दिखाई देते हैं, वे आसानी से दूर हो जायँ। इन अप्रसिद्ध उद्योग-धंधों में जो बहुत-से आदमी लगे हुए हैं, उनकी आर्थिक अवस्था की भलीभाँति जाँच-पड़ताल क्यों न की जाय? इस काम में रस लेनेवाले लोग अगर उन्हें ठीक-ठीक राह बतावें और काम की सलाह दें, तो वे निश्चय ही उनकी बात मानेंगे और उनके कृतज्ञ होंगे।

यह बतलाने के लिए, आशा है, मैंने काफ़ी उदाहरण दे दिये हैं, कि सच्चे स्वदेशी का यह क्षेत्र कितना अच्छा और अछूता पड़ा हुआ है। यह क्षेत्र मनमाना विस्तृत किया जा सकता है, और इसमें ऐसी किसी खास लागत की भी ज़रूरत नहीं है। उससे देश की संपत्ति भी बढ़ेगी, और आज जो बेकारी की हालत में लोग भूखों मर रहे हैं, उन्हें एक प्रतिष्ठित काम भी मिल जायगा।

'अंग्रेज़ी' से] मो० क० गांधी

अजमेर की दुर्घटना

यद्यपि श्रीरामनारायण चौधरी और अजमेर के स्वयंसेवकों के नायक श्री दुर्गाप्रसाद चौधरी अजमेरवाली घटना के सम्बन्ध में, अपने ऊपर किये जानेवाले लापरवाही या असावधानी के दोषारोप से मुक्त होने की इच्छा नहीं करते, तथापि वे इस बात के लिए बहुत उत्कण्ठित हैं कि स्वयंसेवक, जो अखबारों में दोषी ठहराये गये हैं और जिन्हें वे बिलकुल निर्दोष समझते हैं, दोष-रहित क़रार दिये जायँ। उन्होंने सावधानी के साथ जाँच की है और वे इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि स्वामी लालनाथ या उनके दल को चोट पहुँचाने में एक भी स्वयंसेवक शामिल नहीं था। जाँच-सम्बन्धी काग़ज़-पत्र हमारे पास भेज दिये गये हैं। स्वयंसेवकों के अपराधी होने के पक्ष में जो मुख्य प्रमाण था, वह बिलकुल झूठा सिद्ध हो चुका है। अपराध करनेवाला काल्पनिक मनुष्य जान पड़ता है जिसका कोई पता नहीं लग सका। जिस समाचारपत्रने अपराध-स्वीकृतिवाला बयान छापा था, वह लेखक का नाम प्राप्त करने में असफल हुआ है और सम्पादकने यह बात अपने पत्र में स्वीकार की है तथा एक अप्रामाणिक पत्र छापने के लिए खेद भी प्रगट किया है। इसलिए अभीतक मेरे सामने जितने भी प्रमाण आये हैं उनसे यही मालूम होता है कि इस घटना में कोई स्वयंसेवक शामिल नहीं था। मेरे बयान में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे यह आशय निकाला जा सके कि स्वयंसेवकोंने सचमुच स्वामी लालनाथ या उनके दल के किसी व्यक्ति पर वार किया। मेरा कहना तो केवल इतना था कि स्वामी लालनाथने मुझसे कहा था कि स्वयंसेवक इसमें थे। किंतु इस विश्वास में वह ग़लती पर थे। उनके बताये स्वयंसेवक का ज़रा भी पता न चला। चूँकि अजमेर के स्वयंसेवकों की काफ़ी सार्वजनिक टीका हुई है, इसलिए इस

विषय में मुझे अपनी सम्मति देना ज़रूरी था। पर इस बात से कि मेरी सम्मति में किसी स्वयंसेवक-द्वारा यह अपराध हुआ नहीं जान पड़ता, यह अर्थ नहीं निकलता कि उपवास किसी प्रकार आवश्यक नहीं था। वार किया गया, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता, और न इसी बात से इन्कार किया जा सकता है कि जो लोग इसमें शामिल थे वे सुधारक दल के थे। फिर यह बात भी रह जाती है कि श्रीरामनारायण चौधरी आवश्यक सूचनाएँ देना और दुर्घटना न हो इसके लिए समुचित प्रबंध करना भूल गये। इसलिए उपवास स्पष्टतः आवश्यक था और मैं प्रभु का आभारी हूँ कि उसने मुझे इसे पार करने की शक्ति दी। जो लोग पवित्रता के आंदोलन चलाते हैं उनकी जागरूकता की कोई सीमा नहीं हो सकती। क़ानूनी उक्ति है :—"क़ानून, अर्थात् ईश्वर जाग्रत की सहायता करता है, निद्रालु की नहीं।"

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

एक अंगरेज मित्र की चेतावनी

एक अंगरेज़ मित्रने यह संदेश भेजा है:—

"हम अँगरेज़ लोग आपके इन उपवासों का कोई अर्थ नहीं समझ सकते। आपके पिछले उपवासों को हम मुश्किल से ही बरदाश्त कर सके हैं। अगर आपने फिर कभी उपवास किया, तो आप बदनाम हो जायँगे।"

मैं जानता हूँ, कि मेरी बदनामी न हो इसीलिए यह चेतावनी दी गई है। मैं यह भी जानता हूँ कि ईसाइयों का प्रोटेस्टेण्ट संप्रदाय उपवास को पसंद नहीं करता। किंतु मेरे अंगरेज़ मित्र मुझे अच्छा कहें इस की इच्छा रखते हुए भी मैं इस विषय में सचमुच लाचार हूँ। इन उपवासों के लिए मैं उत्तरदायी नहीं। मैं दिल बहलाव के लिए उपवास नहीं किया करता। प्रसिद्धि के लिए मैं अपने शरीर को कष्ट नहीं देता, हालाँकि उपवास के समय भूख की ज्वाला और दूसरे कष्टों को मैं प्रसन्नतापूर्वक सह लेता हूँ। कोई यह न समझे, कि उपवास से मुझे क्लेश नहीं होता। मैं तो इन उपवासों को सिर्फ़ इस लिए निबाह ले जाता हूँ, कि इनका संकल्प मेरे मन में परमात्मा की प्रेरणा से उठता है, और उससे मुझे कष्ट सहन का बल भी प्राप्त होता है। उस परमशक्ति परमात्मा से ही मैं यह अनुरोध कर सकता हूँ, कि अब वह मुझे ऐसी कठिन परीक्षा में न डाले। पर अगर उसके दरबार में मेरी सुनवाई न हो और फिर दूसरे उपवास का अवसर आजाय तो उपवास करना ही पड़ेगा, चाहे दुनिया मुझे सनकी ही क्यों न कहे। यदि किसी को अखिल विश्व का आधिपत्य प्राप्त हो जाय, पर उसे धर्मच्युत होना पड़े, तो वह आधिपत्य किस काम का?

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

शरीर पर उपवास का असर

गत उपवास का मेरे शरीर पर क्या असर पड़ा इस विषय में दो शब्द कह दूँ तो असंगत न होगा। मनुष्य चाहे जितनी आध्यात्मिक वृत्ति का हो, तो भी उसके जिस काम का संबंध शरीर के साथ होता है, उसका असर शरीर पर पड़े बिना रह ही नहीं सकता। आध्यात्मिक प्रयत्न से उस असर पर नियंत्रण तो रखा जा सकता है, पर वह पूरी तरह से हटाया नहीं जा सकता। स्वास्थ्य सुधारने के लिए मैंने अकसर जो उपवास किये हैं, उनकी दृष्टि से आध्यात्मिक हेतु से किये गये इन तमाम उपवासों का अध्ययन करने से भी मैं चूका नहीं। हरिजन-कार्य के संबंध में इधर मैंने जो उपवास किये हैं, उनमें एक खास बात मैंने यह देखी है, कि सोडा या नमक के साथ या बिना सोडा-नमक के गरम या ठंडा पानी पीने से मुझे अरुचि हो रही है। सोडावाटर मैं कठिनाई से ही बरदाश्त कर सका हूँ। पानी पीने की यह असमर्थता मेरे इन उपवासों में बड़ी-से-बड़ी त्रुटि रही है। मैं यह अवश्य कहूँगा, कि मैं अधिकतर फलाहारी ही रहा हूँ और सिवा नमक के गत चालीस वर्ष से मैंने एक भी मसाला नहीं खाया, इसलिए मामूली तौर से भी मैं पानी तो शायद ही कभी पीता हूँ। शरीर को तरल तत्व की जितनी ज़रूरत पड़ती है, वह सब मुझे ताज़े रसदार फलों से, हरी तरकारियों से और शहद व गरम पानी से मिल जाता है। मैं ऐसे अनेक मित्रों को जानता हूँ, जिन्होंने एक-से-एक लंबे उपवास किये हैं, किंतु यह मैं नहीं जानता, कि उनमें से किसी को उपवास काल में मेरी ही तरह पानी पीने की अरुचि रही हो। मेरे जिन डाक्टर मित्रोंने कृपा करके मेरे उपवासों में मेरी सार-सँभार की है, वे ऐसा कोई उपाय नहीं सुझा सके, कि जिस से उपवास की मर्यादा के अंदर रहकर मैं यथेच्छ पानी पी सकूँ। काफ़ी पानी न पी सकने से शरीर पर जो बुरा असर पड़ता है, उसे कम करने का इलाज उन्होंने बताया और किया भी है। पर मेरे लिखने का उद्देश यही यह है, कि जिन्हें उपवास का कुछ ज्ञान हो, उनके अनुभव के साथ मैं अपनी इस बात की तुलना करूँ और पानी की अरुचि दूर करने का कोई उपाय ढूँढ़ निकालूँ। यद्यपि मैं उन्हें जानता नहीं, तो भी अवश्य ही ऐसे लोग होंगे, जिन्हें मेरी ही तरह उपवास के समय पानी अरुचि-कर लगता होगा। इस प्रश्न पर अगर कुछ प्रकाश पड़ सके, तो उससे मेरे जैसे अनेक उपवासियों को सहायता मिलेगी। मैं चाहता तो बहुत हूँ, कि अब उपवास न करना पड़े, पर मैं अपने मन को यह विश्वास नहीं करा सकता कि यह उपवास मेरे जीवन में अंतिम उपवास था। यह बात मेरे वश की थोड़े ही है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

हिन्दी कैसी हो ?

इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले हरिजनों से यह पूछा जा सकता है कि 'हरिजन-सेवक' में यह जिज्ञासा क्यों? हरिजनों को हिन्दी अभी दूर है। प्रचारकार्य सवर्ण हिन्दुओं में ही हो रहा है, इसलिए अधिक-से-अधिक यह जानने की इच्छा हो सकती है कि जिस भाषा से, हरिजनों के साथ, बाक़ी समाज का हितसाधन हो सकता है उसका स्वरूप कैसा हो? मेरा अनुमान है कि सम्पादकजी का उद्देश इससे भी गहरा है। वह हमें उस अस्पृश्यता की भी याद दिलाना चाहते हैं जो समाज से साहित्य में जा पहुँची है। हज़ारों शब्द इस समय हिन्दी में अछूत माने जा रहे हैं। साहित्यसेवी अपनी रचनाओं में उनसे पहलू बचाते हैं—गद्य हो या पद्य, उन्हें औरों की बराबरी से बैठने देना अत्यन्त अनुचित समझते हैं। काफ़ी अच्छे शब्द हैं,

अर्थात् कुलीन हैं, कर्मठ हैं, वक्त पर काम आनेवाले हैं—फिर भी यह शैली-सी हो रही है कि वे कुछ ख़ास लोगों की बोल-चाल तक ही परिमित रक्खे जायँ—उन्हें उससे आगे न बढ़ने दिया जाय। और उनका दोष? वही जो दूसरे क्षेत्रों में अस्पृश्य मानी जानेवाली जातियों का है! हिन्दी ऐसी होनी चाहिए जिसमें शब्दों के प्रति हमारा व्यवहार किसी प्रकार की सङ्कीर्णता का समर्थक न हो। आसन-प्रदान करते समय हम किसी से यह न पूछें कि तुम्हें पहले कहीं टाइपों की पंक्ति में जगह मिल चुकी है या नहीं, बल्कि यह कि तुम्हारी विशेषता या व्यञ्जना क्या है, तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है, स्वाभिमानी तो हो और सिर ऊँचा करके तो बैठ सकते हो?

पूछा जा सकता है कि इन प्रश्नों की ही क्या आवश्यकता? वास्तव में जबतक इनका सन्तोषजनक उत्तर न मिल जाय, कोई भी ऐसा शब्द साहित्य में स्थान पाने का अधिकारी नहीं हो सकता। समानता का यह अर्थ नहीं कि किसी प्रकार की मर्य्यादा ही न हो, और सब के-सब हर बात में बराबर समझे जायँ। योग्यता का प्रश्न तो बना ही रहेगा। आवश्यक इतना ही है कि योग्यता-सम्पादन का प्रत्येक को एक सा अवसर दिया जाय और जब वह योग्य बन जाय तब किसी तरह के तास्सुब या संगदिली से न तो उसके रास्ते में रोड़े अटकाये जायँ न उसे जकड़बन्द किया जाय। "हिन्दी-शब्दसागर" में कुछ प्रयोग प्रान्तिक या ग्राम्य बताये गये हैं। यह न तो कलंक का टीका है, न किसी प्रकार की हीनता का सूचक। और जब ऐसे शब्द ख़ास तौर से काम देनेवाले हों—संस्कृत के भी समस्त या व्यस्त पदों के कान काटनेवाले हों—तब उनका क्यों न निस्संकोच व्यवहार किया जाय?

अब "हीँड़ना" लीजिए। उक्त कोष में इस 'प्रान्तिक' शब्द का अर्थ "व्यर्थ इधर-उधर फिरना" लिखा है। 'सुमनजी' के उद्धृत वाक्य में लेखकने अपना परिश्रम 'व्यर्थ' नहीं बताया है, क्योंकि वह कहता है कि "दो गाँवों में 'हीँड़' कर पाँच बकरियाँ दुहाकर आध सेर दूध लाया।" इस शब्द से तलाशने या पता लगाने की भी ध्वनि निकलती है, यद्यपि इतना स्पष्ट है कि दौड़धूप ज़्यादा करनी पड़ी, दूध कम हाथ आया। अब सवाल यह है कि यहाँ और कौन-सा शब्द बैठ सकता था? संस्कृत का सहारा लेते हैं तो जटिलता आजाती है और सन्देह बना ही रह जाता है कि अपनी जगह पहुँचे या नहीं। हिन्दी में कई प्रयोग मिलते हैं जिनमें से मैं यहाँ 'भटकने' का पक्षपाती हूँ। पर जब 'हीँड़ना' "हिन्दी-शब्दसागर" में स्थान पा चुका है और 'भटकने' की पूरी बराबरी कर लेता है तब उसे ज़रा और ऊँची कुर्सी देकर उसका उत्साह क्यों न बढ़ाया जाय? संभव है, कल आध सेर की जगह पूरा सेर भर दूध देने लगे। शब्द भी ऐसे व्यवहार से धीरे-धीरे बन जाते हैं और हमारी विशेष सहायता करने लगते हैं।

जिस क़लम से 'हीँड़ना' निकला है उसी से 'आम्रकुञ्ज' भी, और 'सुमनजी' ने इसका स्वागत किया है। मैं यहाँ 'अमराई' की सिफ़ारिश करूँगा। अन्य भाषाभाषी अगर आम को पहचान लेंगे तो मेरा ख़याल है कि अमराई में भी अनायास पहुँच जायँगे। उनकी सुविधा के लिए हम 'आम्र' को कहाँतक अपना सकते हैं?

हिन्दी इस देशकी राष्ट्रभाषा होनी चाहिए, इसमें तो हम सभी सहमत होंगे। पर अगर साथ यह कहा जाय कि उस पद की प्राप्ति के लिए इसका अधिकाधिक संस्कृत होना आवश्यक है तो यह बात आपत्तिजनक जँचेगी। डर तो इस बात का है कि सब के लिए ग्राह्य बनने की धुन में कहीं ऐसा न हो कि हिन्दी न घर की रहे न घाट की। हिन्दी के प्रचार की दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि वह बाहर निकलने से पहले अपने हाथ-पाँव काफ़ी मज़बूत बनाले। जिसके फेफड़े कमज़ोर हैं वह साँस लेने के कृत्रिम साधनों के भरोसे, हिमालय की चोटियों की चढ़ाई में, कितना ऊपर जा सकता है? हिन्दी को चाहिए कि वह अपनी इस दिग्विजय-यात्रा से पहले अपने आपको ख़ूब साधन-सम्पन्न बनाले, अपने तरकश को तीखे तीरों से भरले; नहीं तो संस्कृत का ओढ़ना ओढ़कर भी—या यों कहिए कि उस ज़िरह-बख़्तर से अपनी शारीरिक दुर्बलता को ढककर भी—वह कहीं कामयाब न होगी। वह जहाँ की है वहीं के पानी से इसकी जड़को सींचिए, फिर देखिए कि इसमें कैसे फूल-फल लगते हैं और कहाँ-कहाँ से उनकी माँग आती है। 'सुमनजी' कह सकते हैं कि जहाँतक शैली का सबंध है वहाँतक तो आप भी संस्कृति के ही अनुयायी जान पड़ते हैं! बात बिलकुल ठीक है। आख़िर मैं भी तो उसी साँचे में ढला हूँ। पर मैं अपने साहित्य की परिपुष्टि के लिए यह ज़रूर चाहता हूँ कि यहाँ भी दलितोद्धार हो और जो शब्द आज हज़ारों की तादाद में अछूत-से माने जा रहे हैं उनके लिए हिन्दी-मन्दिर के पट बन्द न रहें। इस सुधार से हिन्दी की अभिव्यञ्जक शक्ति बढ़ सकेगी और देश के शिक्षित समाज में वह विशेष आदर की दृष्टि से देखी जाने लगेगी।

पारसनाथ सिंह

कुरान और धार्मिक मतभेद

[अरबी-फ़ारसी के सुप्रसिद्ध विद्वान् और हमारे राष्ट्रीय नेता मौलाना अबुलक़लाम आज़ादने कुरान का साम्प्रदायिक तअस्सुब से शून्य उर्दू में एक बड़ा ही सुन्दर भाष्य लिखा है। स्वर्गीय ज़हूरुल हुसेन हाशिम साहब का किया हुआ उसके कुछ अध्यायों का एक हिंदी भाषांतर प्रकाशित हुआ है। संसार के महान् धर्मों में कोई तात्त्विक मतभेद नहीं है, सभी धर्म-मज़हबों में समन्वय है, सामंजस्य है, इस बात को लक्ष्य में रखकर ही हम नीचे मौलाना आज़ाद साहब के उर्दू कुरान का एक अंश उद्धृत करते हैं। सं०]

अब थोड़ी देर के लिए उस झगड़े की ओर ध्यान दीजिए जो कुरान और उसके विरोधियों में उत्पन्न हो गया था। ये विरोधी कौन थे? ये पिछले धर्मों के अनुयायी थे, जिनमें से कुछ के पास धर्म-ग्रन्थ थे और कुछ के पास नहीं थे।

झगड़े का कारण क्या था? क्या यह कारण था कि कुरान ने उन धर्मों के संस्थापकों और पथ-प्रदर्शकों को झूठा कहा था, या उनके पवित्र धर्म-ग्रन्थों से इनकार किया था, और इसलिए वे उसका विरोध करने पर कटिबद्ध हो गये थे?

क्या यह कारण था कि कुरानने इस बात का दावा किया कि ईश्वरीय सत्य केवल मेरे ही हिस्से पड़ा है, और अन्य समस्त धर्मों के अनुयायियों को उचित है कि वे अपने-अपने धर्मों को छोड़दें?

था, फिर कुरानने धर्म के नाम पर कोई ऐसी बात उपस्थित कर दी थी जो अन्य धर्मानुयायियों के लिए बिल्कुल नई थी, और इस कारण कुरान को मानने में उन्हें आपत्ति थी?

कुरान के पृष्ठ खुले हुए हैं, और उसके आने का इतिहास भी दुनिया के सामने है। ये दोनों हमें बतलाते हैं कि ऊपर की बातों में से कोई बात भी न थी, और न हो सकती थी। कुरानने न केवल उन सारे धर्मसंस्थापकों को प्रमाण माना, जिनके नामलेवा उसके सामने थे, बल्कि साफ शब्दों में कह दिया कि मुझसे पहले जितने भी रसूल और धर्म-प्रवर्तक आ चुके हैं, मैं सबको प्रमाण मानता हूँ, और उनमें से किसी एक के न मानने को भी ईश्वरीय सत्य से इनकार करना समझता हूँ। उसने किसी धर्मवाले से यह नहीं चाहा कि वह अपने धर्म को छोड़ दे, बल्कि जब कभी चाहा तो यही चाहा कि सब अपने-अपने धर्मों की वास्तविक शिक्षा पर अमल करें, क्योंकि समस्त धर्मों की वास्तविक शिक्षा एक ही है। न तो उसने कोई नवीन सिद्धान्त उपस्थित किया, और न कोई नवीन कार्य-पद्धति ही बतलाई। उसने सदा उन्हीं बातों पर ज़ोर दिया जो संसार के समस्त धर्मों की सबसे ज़्यादा जानी-बूझी हुई बातें रही हैं— यानी एक जगदीश्वर की उपासना और सदाचरण का जीवन। उसने जब कभी लोगों को अपनी ओर बुलाया है, तो यही कहा है कि अपने-अपने धर्मों की वास्तविक शिक्षा को फिर से ताज़ा करलो, तुम्हारा ऐसा करना ही मुझे क़बूल कर लेना है।

प्रश्न यह है कि जब कुरान के उपदेशों का यह हाल था तो फिर आखिर उससे और उसके विरोधियों से झगड़े का क्या कारण हुआ? जो व्यक्ति किसी को बुरा नहीं कहता, सबको मानता और सबको इज़्ज़त करता है, और हमेशा उन्हीं बातों का उपदेश करता है जो सबके यहाँ मानी हुई हैं, उससे कोई लड़े तो क्यों लड़े? और क्यों लोगों को उसका साथ देने से इनकार हो?

कहा जा सकता है कि मक्के के कुरैशों* का विरोध इस आधार पर था कि कुरानने मूर्ति-पूजा से इनकार कर दिया था, और वे मूर्ति-पूजा से प्रेम रखते थे। निस्संदेह विरोध का कारण एक यह भी था; लेकिन सिर्फ यही कारण नहीं हो सकता। प्रश्न यह होता है कि यहूदियोंने क्यों विरोध किया, जो मूर्ति-पूजा से बिल्कुल अलग थे? ईसाई क्यों विरोधी हो गये? उन्होंने तो कभी मूर्ति-पूजा की हिमायत का दावा नहीं किया?

असल बात यह है कि इन धर्मों के अनुयायियोंने कुरान का विरोध इसलिए नहीं किया कि वह उन्हें झूठा क्यों बतलाता था, बल्कि इसलिए किया कि वह उन्हें झूठा क्यों नहीं कहता था। हर धर्म का अनुयायी यह चाहता था कि कुरान केवल उसीको सच्चा कहे, बाक़ी सबको झूठा कहे, और चूँकि कुरान सबका समानरूप से समर्थन करता था, इसलिए कोई उससे प्रसन्न नहीं हो सकता था। यहूदी इस बात से तो बहुत प्रसन्न थे कि कुरान हज़रत मूसा को प्रमाण मानता है। लेकिन वह सिर्फ़ इतना ही नहीं कहता था, वह हज़रत ईसा को भी प्रमाण मानता था, और यहीं आकर उसके और यहूदियों के बीच विरोध खड़ा हो जाता था। ईसाइयों को इस पर क्या आपत्ति हो सकती थी कि हज़रत ईसा और हज़रत मरियम की शुचिता और सच्चाई की घोषणा की जाय? लेकिन कुरान सिर्फ इतना ही नहीं कहता था, वह यह भी कहता था कि मुक्ति का दार-मदार मनुष्यों के कर्मों पर है, न कि हज़रत ईसा की कुरबानी और बपतिस्मे पर। किन्तु मुक्ति का यह व्यापक नियम ईसाई सम्प्रदाय के लिए असह्य था।

इसी प्रकार मक्का के कुरैशों के लिए इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात और कोई नहीं हो सकती थी कि हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल का महत्व स्वीकार किया जाय। लेकिन जब वे देखते थे कि कुरान जिस तरह इन दोनों का महत्व स्वीकार करता है उसी तरह यहूदियों तथा ईसाइयों के पैग़म्बरों को भी स्वीकार करता है, तो उनके जातिगत और साम्प्रदायिक अभिमान को बड़ी ठेस लगती थी। वे कहते थे कि ऐसे व्यक्ति हज़रत इब्राहीम और इस्माईल के अनुयायी कैसे हो सकते हैं, जो उनके महत्व और सच्चाई की पंक्ति में दूसरों को भी लाकर खड़ा कर देते हैं?

साराँश यह कि कुरान के तीन सिद्धान्त ऐसे थे जो उसके तथा अन्य धर्मों के अनुयायियों के बीच विरोध के कारण हो गये—

(१) कुरान धर्म के नाम पर गिरोहबन्दी का विरोधी था, और सब धर्मों की एकता का एलान था। अगर अन्य धर्मों के अनुयायी यह मान लेते, तो उन्हें यह भी मानना पड़ता कि धर्म की सच्चाई किसी एक ही गिरोह के हिस्से में नहीं आई है, बल्कि सबको समानरूप से मिली है। परन्तु यही मानना उनकी साम्प्रदायिकता के लिए घातक था।

(२) कुरान कहता था—मुक्ति और कल्याण का दार-मदार कर्मों पर है, वंश, जाति, सम्प्रदाय, अथवा बाह्य रीति-रिवाजों पर नहीं। यदि वे इस तथ्य को मान लेते, तो मुक्ति का द्वार बिना भेदभाव मनुष्यमात्र के लिए खुल जाता और किसी एक सम्प्रदाय की ठेकेदारी बाक़ी न रहती। लेकिन इस बात के लिए उनमें से कोई भी तैयार न था।

(३) कुरान कहता था, वास्तविक धर्म ईश्वरोपासना है, और ईश्वरोपासना यह है कि बिना किसी और को बीच में लाये एक परमात्मा की सीधी उपासना की जाय। लेकिन दुनियाँ के समस्त सम्प्रदायोंने किसी-न-किसी रूप में बहुईश्वरवाद और मूर्ति-पूजा के ढंग स्वीकार कर लिये थे। यद्यपि उनको इससे इनकार नहीं था, कि वास्तविक धर्म ईश्वरोपासना ही है और ईश्वर एक ही है, तथापि अपनी रूढ़ियों और प्रथाओं से अलग होना बेतरह खलता था।

* 'कुरैश' मक्के में रहनेवाला एक वंश, जिसमें मुहम्मद पैदा हुए। यही लोग काबे के पुजारी थे।

सब का साहब एक

हिंदू कहैं सो हम बड़े, मुसलमान कहै हम्म;
एक मूंग दो फाड़ हैं, कुण ज्यादा कुण कम्म।
कुण ज्यादा कुण कम्म, कभी करना नहि कजिया;
रामभगत है एक, दूजा रहिमान से रजिया।
कहै दीनदरवेश, दोय सरिता मिल सिंधू;
सब का साहब एक, वही मुस्लिम, वहि हिंदू ॥

गँवार कौन ?

आजकल गोरखपुर ज़िले में जो भयंकर बाढ़ आई है, उसके प्रकोप को देखकर पत्थर का हृदय भी पसीज जायगा। जहाँ आठ-आठ दिन से पशु पानी में खड़े सड़ रहे हों, पचास-पचास बीघा ज़मीन रखनेवाले किसान आज दाने-दाने के मुहताज हों, पेट-पीठ जिनकी एक होगई हो, जहाँ भूखी अभागिनी माताएँ अपने प्यारे बच्चों को कंधे पर रखे तीन-तीन चार-चार कोस मज़दूरी की खोजमें जाती हों पर मज़दूरी न मिलने के कारण पाँच-पाँच, छै छै फ़ाक़ा किये हों, जहाँ चारे के अभाव से व्यथित किसान अपने प्यारे पशुओं को दो-दो आने में या मुफ्त में ही दूसरों को दे देते हों, वहाँ के फटे-पुराने चिथड़े पहने भूख से तड़पते लोगों को देखकर किसका हृदय पानी-पानी न हो जायगा ?

पर इन ग़रीबों का वह बल, वह धीरज, वह धर्म पर मर मिटने की अटूट श्रद्धा और साध और कहाँ मिलेगी ? हम थोड़ी-सी किताबें पढ़कर अपने को विद्वान् समझते हैं, कुछ साफ़-सुथरे कपड़े पहनकर सभ्य होने का दावा करते हैं, थोड़ा सा ठाटबाट का सामान रखकर अपने को समाज का नेता या अग्रगण्य बनने का स्वांग रचते हैं—पर क्या हमारे अंदर वह विश्वास, वह धीरज, वह आत्म-समर्पण, वह चुपचाप मर मिटने की कुछ भी तैयारी है ? इसका उत्तर 'नकार' में ही मिलेगा।

आज ही की बात है। मैं गोरखपुर जिले के अंतर्गत नकहीं रोड स्टेशन के पासवाले बाज़ार में गया था। बाढ़ने वहाँ भी नाश कर दिया है। आषाढ़ लगते ही पानी बढ़ने लगा था। इतना पानी बढ़ा कि १६० वर्गमील में चारों ओर पानी-ही-पानी नज़र आता था। यह पानी २५ दिनतक एक ही जगह पर ठिला रहा। किसानों का सर्वस्व बह गया। न जाने कैसे आसपास की चीनी की मिलों के चोटे के खज़ाने फूट गये, जिससे पानी में सारा चोटा-चोटा ही हो गया। इससे खेतों में एक-एक, दो-दो अंगुल मोटी चोटे की तह जम गई। किसान इस तह से परेशान हैं। विशेषज्ञों का कहना है, कि इससे भूमि ऊसर होजाती है और उसमें फसल नहीं जमती। किसानों का भी यही अनुभव है।

इस महाविपदा में पड़ी हुई पाँच छै बहनों भूखी, बीस-बीस थिगरे लगे चिथड़े पहने तीन कोस मज़दूरी न मिलने से निराशा-हताश घर लौट रही थीं। रास्ते में मैंने उन्हें देखा। इनमें से दो के कंधों पर दो बहुत दुबले-पतले बच्चे थे। चेहरे उतरे हुए थे। मैंने इन बहनों से बात करनी चाही। वे मेरे साथ लौट आईं। पूछने पर उन्होंने अपनी करुण कहानी सुनाई। एकसे पूछा, 'तुम्हारे घरवाले कहाँ हैं ?' तो उसने ऊपर की ओर दृष्टि करकेबड़ी कठिनता से कहा। "सबेरे तो वोहि गइल बाटें, वो लोग कहाँ वोहि बिलाय गइल बाटे एकर पता नैखे।" उस बहन के इस वाक्य में कितनी करुणा थी, कितनी निराशा थी ! इन ग़रीबों का सर्वस्व लुट गया है। उन्हें भूखी देखकर मैंने कुछ पैसे निकालकर वहीं एक भाई को दिये और कहा, 'भाई, इन पैसों का कुछ लेकर इन बहनों को खिलादो।' वह भाई उनके पास पैसे लेकर गया और उसने उन पैसों की कोई खाने-पीने की चीज़ ख़रीदकर उन्हें देने को कहा, तो उसे यह जवाब मिलता है—"हम बाबा का पैसा कैसे लेब ! हम तो मजूरी करके खाइब।" यह कहकर वह बहन चुप हो गई।

उस भाईने जब मुझसे इन धर्मप्राणा कर्तव्यपरायणा बहनों का यह वचन, सही सही यह माधुर्य सुनाई, तो मेरे मन में यह प्रश्न उठा—गंवार कौन ?

राघवदास

याकोहामा से दान प्राप्त

याकोहामा (जापान) के प्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय व्यापारी श्रीयुक्त प्रताप चालदास के नाम ४ जून, १९३४ को गांधीजीने हरिजन-कार्य के निमित्त धन-संग्रह करने की जो अपील की थी, उसका याकोहामा प्रवासी भारतीयों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। श्रीयुक्त प्रताप चालदासजीने अस्पृश्यता-निवारण के लिए नीचे लिखे अनुसार धन-संग्रह करके ४९२७·येन अर्थात् ३८९२॥-) का चेक गांधीजी के पास भेजा है :—

एम० चालदास एण्ड सन्स	३५१·००
जे० कीमतराय एण्ड को०	३५१·००
टूहूमल ब्रदर्स	३५१·००
वालीराम सन्स	३५१·००
श्री पीसूमल मूलचन्द	३५१·००
निहालचन्द ब्रदर्स	३५१·००
श्री चतनमल मूलचन्द	३५१·००
श्री लोकूमल सतरामदास	३५१·००
श्री किशनचन्द चेलाराम	३५१·००
केवलराम एण्ड मूलचन्द	३५१·००
दयाराम ब्रदर्स एण्ड को०	२५१·००
के० हस्साराम एण्ड को०	२५१·००
डालामल सन्स	२५१·००
श्री टी० खेमचन्द तेजूमल	१०१·००
श्री सोमराज रील्मल	१०१·००
श्री धनामल चेलाराम	१०१·००
प्रेमसिंह एण्ड सन्स	५१·००
श्री वाटूमल झमनदास	५१·००
श्री एम० तोलाराम	५१·००
श्री एन० तीरथदास	२५·००
गगनदास एण्ड को०	२५·००
वाटूमल ब्रदर्स	२५·००
श्री प्रीतमसिंह	२५·००
श्री मीठाराम महतानी	२५·००
श्री एम० के० भोजूमदास	१०·००
श्री हशूमल	५·००
श्री डी० डबल्यू० मदानी	५·००
श्रीमती परसराम पहिलाजराय	६३ २९
कुल	४९२७·२९

नोट—४९२७·२९ येन के कुल ३८९२॥-) हुए। श्री प्रताप चालदासजीने अन्य राष्ट्रों में भी हरिजन-कार्य के लिए धन-संग्रह करनेका भार स्वीकार किया है।

प्रधान मंत्री—ह० से० सं०

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169

वार्षिक मूल्य ३॥) (पोस्टेज-सहित)

पता— 'हरिजन-सेवक' बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ७ सितम्बर, १९३४. [संख्या २९

विषय-सूची

छात्रालय के लिए इन्कारी

इधर कुछ बरसों से हम लोग तिरुचिंगोड़ के हाईस्कूल में पढ़नेवाले चंद हरिजन विद्यार्थियों को थोड़ी-थोड़ी छात्रवृत्तियाँ और अन्य सहायता दे रहे हैं। हमने देखा, कि उन्हें अभी जो सहायता मिल रही है उससे कहीं अधिक उन्हें रहने तथा खाने-पीने की सुविधा की ज़रूरत है। इसलिए उनके लिए एक छात्रालय स्थापित करने का हमने निश्चय किया। इसके लिए उपयुक्त स्थान तलाशा। आरम्भ में यह बात बहुत सरल लगती थी, बाद को वह अत्यन्त कठिन मालूम हुई। ऐसा कोई मालिक मकान हमें दिखाई न दिया, जो इस काम के लिए अपनी ज़मीन की जगह देने को तैयार हो। किसीने कुछ बहाना बताया तो किसीने कुछ। तब हमने ज़िलाबोर्ड के चेयरमैन को लिखा, कि वे हाईस्कूल के हाते की हमें थोड़ी-सी जगह दे दें, तो वहाँ हम एक कामचलाऊ छप्पर डालकर अपना छात्रालय खोल दें। हमें लगा, कि स्कूल क़स्बे के बाहर तो है ही, इसलिए उसके हाते में थोड़ी सी जगह इस काम के लिए अवश्य मिल जायगी। पर चेयरमैन साहब की तरफ़ से हमें हमारी दरख़्वास्त पर यह जवाब मिला-

"आपकी २१ जून की अर्ज़ी के जवाब में यह लिखते मुझे खेद होता है, कि स्कूल के हाते का कोई भी हिस्सा निजी उपयोग के लिए नहीं दिया जा सकता। वर्तमान आफ़िस के हाते की जगह भी देने में हम लोग असमर्थ हैं।"

इसपर मैंने निम्नलिखित पत्र प्रांतीय सरकार को लिखा:—

"तिरुचिंगोड़ के हाईस्कूल के हरिजन विद्यार्थियों के लिए एक अच्छा-सा सुभीतेवाला मकान किराये पर लेने की कोशिश हम लोग कर रहे हैं, ताकि उसमें उनके लिए एक छात्रालय खोल दिया जाय। इसे चलाने के लिए हम लोग अपने आश्रम से जितनी रक़म खर्च कर सकेंगे, वह तो करेंगे ही, उसके अलावा, हमें आशा है, स्थानीय चन्दा डालकर कुछ पैसा इकट्ठा कर लेंगे और हरिजन-सेवक-संघ से भी सहायता मिल जायगी। छात्रालय हाईस्कूल के नज़दीक होना चाहिए, जिससे कि हरिजनों को यह महसूस न हो, कि उनकी जाति के कारण उन्हें अलहदा रक्खा जा रहा है। यह तो आपको मालूम ही है, कि हरिजनों को अपनी जाति के कारण रहने और खाने-पीने की बातों में कितनी तकलीफ़ उठानी पड़ती है। अतः उनके रहने और पढ़ने-लिखने के लिए स्वच्छ जगह का होना बहुत ज़रूरी है।

लोगों में जो वहम और डर फैला हुआ है, उसकी वजह से तिरुचिंगोड़ में लाख प्रयत्न करने पर भी हमें जब कोई मकान न मिल सका तो मैंने सेलम ज़िला बोर्ड के चेयरमैन को लिखा, कि आप हाईस्कूल के हाते में हमें थोड़ी-सी जगह छात्रालय का छप्पर डाल लेने के लिए दे दें। स्कूल के विशाल अहाते का एक कोना ही मिल जाय, तो काम चल जायगा, और इससे स्कूल के काम में भी कुछ बाधा न पड़ेगी। मेरा तो यह विश्वास है कि असल में देखा जाय, तो स्कूल के अधिकारियों के यह प्रसन्न होने की बात थी, कि उनके स्कूल में पढ़नेवाले अमुक वर्ग के लड़कों के छात्रालय के लिए स्कूल की ज़मीन का अमुक भाग काम में आ गया। छात्रालय का सायबान बनाने के लिए १०००) की मदद भी मैंने ज़िला-बोर्ड से माँगी थी। हम छात्रालय का यह काम अपने एक कार्यकर्त्ता के सुपुर्द कर देंगे, वह लड़कों के साथ रहेगा, उनकी देखरेख करेगा और उनकी शिक्षा पर भी ध्यान रक्खेगा। स्कूल की पढ़ाई शुरू हो गई है, इसलिए इस प्रश्न को तुरन्त हाथ में लेने की ज़रूरत है। ज़िला बोर्ड ने मेरी दरख़्वास्त का जो जवाब दिया है वह क़ानून की दृष्टि से भले ही ठीक हो, पर चेयरमैन साहब ने हरिजन विद्यार्थियों की ज़रूरत को महसूस नहीं किया, मेरी बात उनके गले उतरी नहीं। हम स्कूल की ज़मीन का ब्योरा दान के नहीं माँग रहे हैं, बल्कि हाईस्कूल के जो उद्देश्य हैं, उन्हें दृष्टि में रखते हुए ज़मीन के एक टुकड़े का सिर्फ़ अस्थायी उपयोग भर करना चाहते हैं। शासन आर्थिक सहायता देने में भी अपनी असमर्थता प्रगट की है।

मुझे आशा है, कि आप अपने अधिकार को काम में लाकर कुछ ऐसा प्रबन्ध कर देंगे कि जिससे मेरे प्रार्थना-पत्र का उद्देश पूरा हो जाय। आशा है कि आप इस पत्र की यथाशीघ्र और यथोचित कारवाई करेंगे।"

इस पत्र का मुझे लोकल सेल्फ़ गवर्नमेंट के मंत्री की ओर से १५ अगस्त का लिखा यह जवाब मिला:—

"प्रार्थी को, उसके १७ जुलाई के पत्र के जवाब में, यह सूचना दी जाती है, कि इस विषय में सरकार को दख़ल देने का कोई कारण दिखाई नहीं देता।"

'हरिजन' से] चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

गाँव के कुछ रोज़गार-धंधे

खेती के काम से किसान को फ़ुरसत तो मिलती ही है और इस फ़ुरसत के समय वह अगर कोई सहायक रोज़गार न करे तो अकेली खेती से उसका गुज़ारा नहीं हो सकता। कपास का काम ऐसे फैलाव का है कि किसान को एक मिनट भी बेकार रहने की ज़रूरत नहीं। ओटाई, धुनाई और कताई का काम हर किसान सहज ही सीख सकता है और कर सकता है। इतने काम के लिए वह हर एक रुपये के खद्दर में पौने सात आने का अधिकारी हो जाता है। तो भी हम यह नहीं कहते कि इससे ज़्यादा मज़दूरी जिस काम में मिलती हो उसे छोड़कर वह कपास का ही काम करे। कपास का काम ऐसा है कि किसान जब चाहे तब करले। परन्तु और काम उसे विशेष-विशेष समय और ऋतु पर ही करने पड़ते हैं। खंडसाल की ही मिसाल लीजिए। खंडसाल का काम जाड़ों में शुरू होता है और गर्मियों के आते-आते ख़तम हो जाता है। छै महीने से अधिक नहीं रहता। इस काम में मज़दूरी ज़्यादा मिल जाती है। किसान चाहे तो खंडसाल का भी काम करे और कपास का भी। दूध-दही का काम ऐसा नहीं है कि किसान को उसमें हरवक्त फँसा रहना पड़े। वह चाहे तो यह काम करते हुए भी कपास का काम करे। बिनाई का रोज़गार ऐसा है कि अगर तीसों दिन काम मिले तो जुलाहा या कोरी खेती नहीं कर सकता। परन्तु बात ऐसी नहीं है। न तो खेती के काम में और न बुनाई के ही काम में कोई तीसों दिन लगा रह सकता है। इसलिए बुनकर भी थोड़ा-बहुत खेती का काम कर सकता है। निदान, किसान ऐसा रोज़गार भी, खेती और कताई आदि के सिवाय, कर सकता है जिसमें उसे ज़्यादा मज़दूरी मिले।

गाँव के रोज़गारों में दूध का काम काफ़ी महत्व का है। खेती के साथ-साथ किसान गऊ भी पाले तो दूध, दही, घी का रोज़गार कर सकता है। शहर के पास होने से यह कारबार बड़े ऊँचे पैमाने पर चल सकता है। दूर होने पर दूध और मक्खन पहुँचाने का विशेष बन्दोबस्त करना पड़ेगा। यह तभी हो सकता है, जब रोज़गार में नफ़ा अच्छा हो। दूधशाला का काम मक्खन और घी भी तैयार करना है। गाय का ही दूध सब से उत्तम होता है, इसलिए पीने के काम में तो यही दूध आना चाहिए। भैंस-बकरी आदि के दूध से मक्खन और घी निकाला जाय। मक्खन मथ लेने पर मथे हुए दूध को जमाकर उसका दही और मट्ठा बना लिया जाय, तो बीमारों के लिए और बहुत कड़ी मिहनत करनेवालों के लिए वह अच्छा पौष्टिक भोजन होगा। यह दूध और दही सस्ता मिलना चाहिए और यह कहकर बिकना चाहिए कि यह मक्खन निकाला हुआ दूध-दही है। ग्वालों की या दूधशाला रखनेवालों की एक पंचायत ऐसी होनी चाहिए जो दूध के रोज़गार को सचाई और ईमानदारी के साथ चलाने का पूरा प्रबन्ध करे और रोज़गारी ईमानदारी न बर्ते तो उसे दंड दे। वर्तमान काल में घी-दूध के रोज़गार की बड़ी दुर्दशा है। अच्छे साँडों के द्वारा गो-वंश को बढ़ाना होगा और सहयोग के द्वारा अनेक दूधशालाओं को मिल-जुलकर अपना माल दूर-दूर बिकने के लिए भेजने का प्रबन्ध कराना होगा। दूधशाला रखनेवाले कई होंगे, इसलिए सब का माल पंचायत के बन्दोबस्त से एक तरह का रखना होगा। शहर में या दूर-दूर बिकने को भेजने के लिए एजन्सियाँ होंगी, जो दूधशालाओं से माल लेकर भेजने का आप बन्दोबस्त करेंगी। इस तरह दूध घी मक्खन दही आदि का ख़ासा रोज़गार हर गाँव में चल सकता है। इसके लिए गौओं की रक्षा करनी होगी, उनको सस्ता परन्तु पौष्टिक चारा खिलाने का बन्दोबस्त करना होगा और उनकी सन्तान और दूध में तरक्की कराने के भी उपाय करने होंगे। डेनमार्क एक छोटा-सा देश है, जहाँ मक्खन और दूध का रोज़गार बड़े ऊँचे पैमाने पर होता है। इंगलिस्तान को दूध और मक्खन डेनमार्क का ग्वाला देता है। भारतवर्ष में तो अभी इसकी इतनी कमी है कि यहाँ के बच्चे ही ज़रूरत-भर दूध नहीं पाते। हमें बहुत दिनोंतक दूध और मक्खन विदेशों में भेजने की ज़रूरत न पड़ेगी और इस रोज़गार से काफ़ी लाभ होगा।

दूध, घी, मक्खन प्रायः सभी पशुओं से मिलता है। जो लोग दूधशाला रखते हैं और हर तरह का माल तैयार करते हैं उन्हें तो गायों के सिवाय भैंसें और बकरियाँ भी रखनी चाहिएँ। इस तरह दूधशाला रखनेवाला किसान सब तरह के पशुओं का पालन करेगा। परन्तु किसान के लिए गाय कामधेनु है। खेती में सबसे अधिक काम का पशु बैल ही है। अच्छी जाति का बैल मज़बूत होगा, बड़ा होगा और मेहनती होगा। यह गो-वंश के बढ़ाने के लिए पूरा उद्योग करने से ही हो सकता है। बैल कुएँ से पानी खींचता है, खेत जोतता है, बोआता है, अनाज दवाता है, बोरियों में भर अनाज को ढोकर बाज़ार पहुँचाता है, गाड़ी चलाता है और किसान के लिए खाद भी देता है। मरने पर भी उसका अंग-अंग मनुष्य के काम में आता है। यह बड़े काम की चीज़ गऊ पालने से ही मिल सकती है इसलिए हर किसान का कर्तव्य है कि गऊ पाले, दूधशाला रक्खे और इसी तरह का रोज़गार करे तो ज़रूर लाभ हो सकता है।

गड़ेरिये भेड़-बकरी पालते हैं। भेड़ों से ऊन उतारकर वह कम्बल बुनते हैं। यह रोज़गार बहुत अच्छे पैमाने पर चलाया जा सकता है। ऊन की उपज भिन्न-भिन्न भेड़ों से भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। भेड़ों की जाति में भी उसी तरह तरक्की की जा सकती है, जैसे गऊ की जाति में। इस तरह अच्छे नर से जोड़ा मिलाने से अच्छी जाति की भेड़ें पैदा होंगी, जिनका ऊन बारीक, लोचदार और मुलायम होगा, जिससे कि अच्छे-से अच्छे कपड़े बन सकेंगे। गड़ेरिये का रोज़गार किसान के लिए बहुत लाभदायक है और इसमें काफ़ी तरक्की की गुंजाइश है।

किसान के काम में फल और तरकारियों का रोज़गार भी बड़े लाभ की चीज़ है। इसके साथ यह आवश्यक है कि जिन बाज़ारों में इनकी खपत हो सके वहाँतक ये पहुँचाये जायँ। इसका बन्दोबस्त भी एजन्सियों के द्वारा सुभीते से हो सकता है। शहर के पास के गाँवों में किसान खुद ले जाकर बेच सकता है। ऐसे कारखाने भी खोले जा सकते हैं जिनमें फलों को इस प्रकार सुरक्षित रक्खा जाय, कि वे बहुत दिनोंतक ताज़े बने रहें। यह क्रिया उस समय की जानी चाहिए जब देश में फल इतने ज़्यादा पैदा हों कि ताज़े-ताज़े बिक न सकें।

जिन किसानों के पास फल और तरकारियों के बाग़ और बगीचे हों उनको यह बड़ा सुभीता है कि मधु-मक्खियाँ पालें। जिन देशों में यह रोज़गार होता है, वहाँ बाग़ों में इस तरह

के बक्स लगा दिये जाते हैं जिनमें एक ओर से तो मक्खियों के लिए रास्ता होता है और दूसरी ओर से एक ऐसा ढकना, जिसे खोलकर सुभीते से और मक्खियों को उद्वेग पहुँचाये बिना शहद ले लिया जा सकता है। इन बक्सों को ऊँचाई पर लगा देते हैं और 'रानी मक्खी' को लाकर उसमें बसा देते हैं। इन बक्सों में मक्खियाँ हमेशा शहद बनाती और किसान को लाभ पहुँचाती रहती हैं। किसान यह रोज़गार अपना विशेष समय लगाये बिना ही कर सकता है।

घर बैठे हर किसान कुछ और भी मज़दूरी का काम कर सकता है। कपास की ओटाई के अतिरिक्त धान की कुटाई, मूंगफली की छिलाई, दालों की दलाई और तेलों की पेलाई हर किसान घर बैठे कर सकता और मज़दूरी से लाभ उठा सकता है। खंडसाल कुछ रुपया लगाकर ही खोल सकता है। खंडसालों से उसे ख़ासी आमदनी हो सकती है। इसी तरह जंगल के पास के गाँवों में लाह की उपज बढ़ाने की भी कोशिश की जा सकती है।

तेली, कुम्हार, चमार, कोरी या जुलाहे, लोहार, बढ़ई, कसेरा, बंसफोर, सोनार और दूसरे कारीगर भी गाँवों में पाये जाते हैं। इन सब कामों की ज़रूरत तो पड़ती ही है। थोड़े-बहुत इस तरह के लोग हर गाँव में मौजूद हैं। यह तो वह रोज़गार हैं जिनका खेती से सीधा सम्बन्ध तो नहीं है, पर खेती करनेवालों को इनकी ज़रूरत पड़ती है। इनके सिवाय हर किसान को पुरोहित, वैद्य, ज्योतिषी, शिक्षक, पहरेदार, बनिया, ग्वाला, धोबी, दरज़ी, नाई, कहार और लेखक की भी ज़रूरत पड़ती है। इन सब रोज़गारियों का गाँव के अन्दर होना ज़रूरी है। पूरे गाँव में इन सब की बस्ती होनी चाहिए। इन कामों के सिवाय किसान को जो कुछ ज़रूरत पड़ती है वह स्वयं कर लेता है। जिन-जिन गाँवों में इन रोज़गारियों में से कोई नहीं होता, वहाँ के लोग दूसरे गाँवों से काम निकालते हैं। कुछ काम इस तरह के हैं, कि गाँववाले सुभीते के साथ कर सकते हैं। इनका सम्बन्ध न तो गाँव की ज़रूरतों से है और न खेती से— जैसे रंगरेज़, छीपी, चित्रकार, सोनार, गाने-बजानेवाले, नक़्क़ाशी का काम करनेवाले, काग़ज़ बनानेवाले इत्यादि। गाँववाले किसान इन सब कलाओं में से किसी भी कला का अभ्यास कर सकते हैं, परन्तु अपने फ़ालतू समय में ही। इन कलाओं का स्थान मनुष्य के जीवन में ज़रूरी है। पर इनको आश्रय तभी देना चाहिए जब किसान लोग ऋण के भार से मुक्त हो जायँ और सुखी और समृद्ध हो जायँ। जिन किसानों को इनमें से किसी कला का शौक हो वह इन कलाओं को ज़रूर सीखें। परन्तु इनसे किसानों के बीच आपस में कमाई करने का हौसला न करें। इनमें छीपी और रंगरेज़ का काम जो खद्दर को सुन्दर बनाने का है उसे हम अपवाद समझते हैं। अमीर और शौक़ीन औरतें और मर्द भी रंगीन और छपा हुआ खद्दर चाहते हैं। किसान अगर अपने घर बैठे छीपी और रंगरेज़ का रोज़गार करे तो कोई हर्ज़ की बात नहीं। इससे भी वह उचित कमाई कमा सकता है।*

रामदास गौड़

* सस्ता-साहित्य-मंडल, दिल्ली से प्रकाशित होनेवाली लेखक की 'ग्राम-संगठन' पुस्तक से।

ट्रामगाड़ियाँ और हरिजन

पारसाल, ४ अगस्त, १९३३ के 'हरिजन-सेवक' में "इनसे तो कोढ़ी ही अच्छे!" शार्षक एक नोट मैंने लिखा था। यह नोट २३ जुलाई को तीसहज़ारी मुक़ाम पर हुई एक घटना के सम्बन्ध में था। गाड़ी के कंडक्टरने ८ मेहतरों को, जिनमें दो स्त्रियाँ भी थीं, गाड़ी के पिछले हिस्से पर खड़े होने को मजबूर किया था। बेंचों पर बैठने की उसने उन्हें जब इजाज़त नहीं दी, तो मुझे इस अन्याय के विरोध में ख़ुद बेंच पर बैठा रहना अप्रिय लगा और उन भाइयों के साथ मैं भी वहीं पीछे खड़ा हो गया। बाद को मैं और प्रो० मलकानीजी ट्रामवे कम्पनी के मैनेजर के पास यह शिकायत लेकर गये। मैनेजरने कंडक्टर की ग़लती को क़बूल किया और कहा कि 'अछूतों को ट्रामगाड़ी के पीछे खड़े होने का ऐसा कोई क़ायदा क़ानून कम्पनी का नहीं है; हाँ, ग़लीज़ और छुतही बीमारीवालों के बैठने की ज़रूर मनाही है।' कम्पनीने इस सम्बन्ध में अपने कर्मचारियों को ज़रूरी हिदायत भी दे दी। इधर क़रीब डेढ़ माह का अर्सा हुआ, कि फिर वही बात देखने में आई। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' पत्र में एक सज्जनने इस सम्बन्ध में एक नोट लिखकर ट्रामवे कम्पनी का ध्यान इस बेदुनीति पर आकर्षित किया, और फिर तो लेजिस्लेटिव ऐसेम्बली तक यह बात पहुँची। उस दिन हमारे प्रश्न-वागीश श्री गयाप्रसाद सिंहजी के एतद्विषयक प्रश्न का उत्तर देते हुए सरकार की ओर से श्री जी० एस० वाजपेयीने कहा—"हाँ, दिल्ली की ट्रामगाड़ियों की बेंचों पर हरिजनों को बैठने से मना करने के सम्बन्ध में दिल्ली के एक अख़बार में जो पत्र प्रकाशित हुआ है उस पर सरकार का ध्यान गया है। दिल्ली की ट्रामवे कम्पनी का ऐसा कोई क़ायदा-क़ानून नहीं है, कि जिसकी बिना पर ट्रामगाड़ी की बेंचों पर हरिजनों को बैठने से रोका जाय।"

ट्रामवे कम्पनी की ओर से सरकारने तो यह स्पष्टीकरण कर दिया है, किन्तु कंडक्टरों की क़ानूनी किताब का सनातनी क़ायदा तो अभी अस्तित्व में है ही।

आये दिन अब भी ऐसी घटनाएँ घटती रहती हैं और कंडक्टर ही क्यों, चेकर और इन्स्पेक्टर तक अक्सर यह फ़तवा दे दिया करते हैं, कि बेंचों पर अछूतों के बैठने पर पब्लिक एतराज़ करेगी। पब्लिक एतराज़ करे या न करे, ये लोग तो एतराज़ करते ही हैं और इस तरह पब्लिक को भी एतराज़ करने का मौक़ा सहज ही देते हैं। अगर पब्लिक ऐसे एतराज़ करती, तो उसने कभी का रेलगाड़ियों का बायकाट कर दिया होता। ट्रामवे कम्पनी के कर्मचारी शायद यह भूल जाते हैं, कि ऐसा करके वे अपनी कम्पनी के ही ख़िलाफ़ जाते हैं।

हरिजनों को, जब कि वे पैसे देकर टिकट ख़रीदते हैं, गाड़ी के पिछले हिस्से पर कभी खड़ा नहीं होना चाहिए और बेंच पर बैठने से अगर कोई उन्हें रोके तो वे हरगिज़ सीट को न छोड़ें, जब तक कि कंडक्टर या चेकर उन्हें ज़बरदस्ती गाड़ी से नीचे न उतार दे। जहाँ ऐसा कोई अन्यायपूर्ण वाक़या हो, उसकी रिपोर्ट तुरन्त ट्रामवे कम्पनी के दफ़्तर या हरिजन-सेवक-संघ के आफ़िस (बिड़ला मिलस, सब्ज़ीमंडी) में, गाड़ी और कंडक्टर का नम्बर लेकर, भेज देनी चाहिए। ट्राम के कर्मचारियों के साथ व्यर्थ वितण्डावाद करने से कोई लाभ नहीं। वि० ह०

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ७ सितम्बर, १९३४

वह अभागा बिल

वह अभागा मन्दिर प्रवेश बिल जिस प्रकार उसके प्रस्तावक के हाथों दफना दिया गया है, उससे अधिक अच्छी रीति से— अगर ऐसा ही करना था तो — उसे दफनाया जाना चाहिए था। यह बिल ऐसा बिल नहीं था, कि जिसे किसी व्यक्ति विशेषने अपने निजी सन्तोष के लिए पेश किया था। वह तो सुधारकों की ओर से पेश किया गया था। इसलिए प्रस्तावक को सुधारकों से सलाह ले लेनी चाहिए था और उनके आदेश के अनुसार ही कारवाई करनी चाहिए थी। बिल के प्रस्तावक श्री रंगा ऐयरने कांग्रेसजनों के प्रति आवेश में आकर जो रोष प्रगट किया है, उसके लिए भी जहांतक मैं जानता हूँ कोई अवसर उपस्थित नहीं होता। १९३२ के २५ सितंबर को पं० मालवीयजी की अध्यक्षता में हिंदू प्रतिनिधियों की जो सभा हुई थी, उसमें खुले तौर पर अस्पृश्यता दूर करने की गंभीर प्रतिज्ञा की गई थी। मन्दिर-प्रवेश बिल उस प्रतिज्ञा या घोषणा के फलस्वरूप ही पेश किया गया था, और उसका संबंध धर्म से था। इसलिए उस बिल में हर एक हिंदू—सवर्ण अथवा हरिजन — का हित समाया हुआ था। मन्दिर-प्रवेश बिल कोई ऐसा बिल तो था नहीं, कि जिसमें कांग्रेसी हिंदू अन्य हिंदुओं की अपेक्षा अधिक दिलचस्पी रखते हों। इसलिए यह बड़े दुर्भाग्य की बात हुई, कि इस प्रसंग में कांग्रेस का नाम घसीटा गया। बिल के साथ तो इससे अच्छा सौजन्य व्यवहार किया जाना चाहिए था।

मुझे तो आग-लग को ढील कर देनेवाले और दौड़-धूप के इस दौर में दम मारने की भी फ़ुरसत नहीं थी, इसलिए मैंने सार्वजनिक सभाओं में और निजी तौर पर तथा 'हरिजन' के द्वारा सनातनी मित्रों को जो वचन दे दिया था, उसके अनुसार श्री राजगोपालाचार्य से कह दिया कि वे बड़ी धारा-सभा के हिंदू सदस्यों की राय का वाक़ई तौर पर निश्चित पता लगालें और अगर यह मालूम हो जाय, कि उनका बहुमत बिल के खिलाफ़ है, तो बिलको वापस ले लेना चाहिए। यह एक ऐसा सीधा सादा प्रश्न था, कि जिस के आधार पर या तो बिल का अन्त कर दिया जा सकता था, या उसे आगे बढ़ाया जा सकता था। सनातनी और सुधारक दोनों इस वस्तु स्थिति को समझ सकते थे। इस बिलका भाग्य-निर्णय इस तरह लस्टम पस्टम रीति से नहीं होना चाहिए था। श्री राजगोपालाचार्य या मैंने अगर कोई ग़लती की था, तो उसका फल हम भोग लेंगे। मगर बिल तो व्यक्तियों से ऊपर था। सही हो या ग़लत, उसने एक महान् सिद्धान्त प्रकाश में लाकर रखा था, इसलिए उसके साथ तो अधिक उपयुक्त सलूक होना चाहिए था।

अब रही सरकार के सम्बन्ध की बात, सो इस पत्र की नीति ऐसी है, कि जहांतक हो सरकार की टीका-टिप्पणी से इसे अलग ही रखा जाय। पर इतना तो मैं कहूँगा ही कि सरकारने वही किया, जो उस परिस्थिति में वह कर सकती थी। किंतु जनता को यह जान लेना चाहिए, कि सुधारकों की तरफ़ से न केवल लोकमत प्राप्त करने का प्रयत्न ही नहीं हुआ, बल्कि साफ़ तौर पर यह तय कर दिया गया था, कि बिल के पक्ष में साधारण जनता के हस्ताक्षर प्राप्त करने की कोई चेष्टा न की जाय; हाँ, अगर क़ानूनदाँ या विशेषज्ञ चाहें तो भले अपनी राय भेजदें। 'हरिजन' में यह बात स्पष्ट कर दी गई थी। मेरे साथी और मैं इस नतीजे पर पहुँचे, कि यह बिल जो लोकमत जानने के लिए प्रचारित किया गया है, उसके अंतर्गत इतने अधिक क़ानूनी प्रश्न हैं, कि साधारण जनता उनका निर्णय नहीं कर सकती। इसलिए सवाल यह नहीं था, कि सार्वजनिक हिंदू-मंदिरों में हरिजन ठीक उन्हीं शर्तों पर जायें या नहीं, जिन शर्तों पर कि अन्य हिंदू जाते हैं। सवाल तो असल में यह था, कि इस सम्बन्ध में कोई क़ानून होना चाहिए या नहीं और अगर कोई क़ानून हो, तो इस मंदिर-प्रवेश बिल में क्या गुण-दोष हैं। मेरी राय में ये दोनों ही प्रश्न इतने अधिक क़ानूनी और जटिल थे, कि सर्वसाधारण के आगे उनका रखना ही ग़लत था। निश्चय ही ऐसे अवसरों की कल्पना करनी असंभव नहीं है, जब क़ानूनी सहायता या दस्तंदाज़ी धार्मिक मामलों तक में अत्यावश्यक हो जाती है। ऐसे क़ानूनी हस्तक्षेप के अनेक उदाहरण मौजूद हैं। पर इस बिल पर साधारण जनता का यथेष्ट युक्तिसंगत मत प्राप्त करना कोई आसान काम नहीं था। फिर जनता को यह समझाना भी उतना ही कठिन काम था, कि मंदिर-प्रवेश बिल में रत्तीभर भी ज़ोर ज़बरदस्ती नहीं है और मंदिर में जानेवाले लोगों के बहुमत की मरज़ी के विरुद्ध एक भी मंदिर नहीं खोला जा सकता। अनुकूल परिस्थितियों में लोकमत की ऐसी जांच कोई असंभव चीज़ नहीं है, किन्तु जब पक्षपात का पूरा बोलबाला हो और सत्य की अवहेलना की जाती हो, तब तो यह बात असंभव-सी ही है।

लड़ाई तो मन्दिर-प्रवेश की जारी रखना ही है। हरिजनों को दिया हुआ वचन तो पूरा करना ही है, और उनके लिए मन्दिरों को अवश्य खुलवाना है। क़ानूनी स्वीकृति के बिना ही अगर मन्दिर खुल सकें, तो सब से अधिक प्रसन्नता सुधारकों को ही होगी। यह बात नहीं है, कि जहाँ मन्दिरों में जानेवाले सवर्ण हिंदुओं का बहुमत हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश के विरुद्ध हो, वहां भी सुधारक लोग मन्दिर खुलवाना चाहते हैं। क़ानूनी सहायता की ज़रूरत तो इसलिए आ पड़ी है, कि क़ानून-विशारदों की राय में मौजूदा क़ानून मन्दिरों के इस तरह खुलने में बाधक हो रहा है—और वहां भी, जहां कि मन्दिर में जाने-वाले लोगों का बहुत बड़ा बहुमत मन्दिर के खोल देने के पक्ष में हो। अगर ऐसी बात है, तो क़ानून का बनना ज़रूरी है। क़ानून-कृत स्थिति को क़ानून ही रद कर सकता है, फिर उस स्थिति को चाहे जिसने जन्म दिया हो, चाहे व्यवस्थापिका सभाने या किसी अदालत ने। पर इस क़ानून के पास होने में कोई बाधा दूर ही न सके, ऐसी स्थिति के आनेतक सुधारकों को राह देखनी चाहिए। किंतु यह प्रतीक्षा तो जाग्रत के लिए है। उतावली में बिल को वापस ले लेना ही हमें यह सबक़ सिखाता है। निराश होने का कोई कारण नहीं। अब दूने प्रयत्न की ज़रूरत है। हरिजन मन्दिर-प्रवेश चाहते हैं या नहीं इसे जानने या साबित करने की कोई आवश्यकता नहीं। पाप का यह निवारण उन सवर्ण हिंदुओं के आत्म-सन्तोष के लिए

आवश्यक है, जिन्होंने यह अनुभव कर लिया है, कि अस्पृश्यता रूपी घुन हिंदूधर्म को भीतर-ही-भीतर खोखला कर रहा है, और अगर समय रहते उसे दूर न किया, तो निश्चय ही वह हिंदूधर्म का अन्त करके रहेगा ।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

ग्राम-सेवा

[उपवास के पश्चात्, शय्या पर पड़े-पड़े भी गांधीजीने महत्वपूर्ण कार्यों में ध्यान देना आरम्भ कर दिया है। गुजरात-विद्यापीठ के कुछ कार्यकर्ता विद्यापीठ के भावी कार्यक्रम के विषय में बात करने के लिए अभी वर्धा आये थे। चूँकि उस बातचीत का ग्राम-सेवा तथा हरिजन-कार्य के साथ काफी निकट सम्बन्ध था, इसलिए थोड़े में उसका सार मैं यहाँ देता हूँ। म० दे०]

जगम विद्यापीठ

शुरू से ही मैं यह मानता और कहता आया हूँ, कि विद्यापीठ का सच्चा काम तो गाँवों में है। पर आजतक हम लोगोंने यह काम इस कल्पना के आधार पर ही चलाया, कि वह किसी केन्द्रीय संस्था के द्वारा चलाया जा सकता है। आज मैं एक क़दम और आगे बढ़ने के लिए कहता हूँ—और वह यह कि हमारा विद्यापीठ अब गाँवों में जा बसे। यहाँ हमें यह विचार करना है, कि गाँवों में विद्यापीठ के जा बसने से मेरा क्या अभिप्राय है।

सत्याग्रहाश्रम को जो बाह्यरूप से हमने तोड़ दिया है, उसका यह अर्थ नहीं होता कि आश्रम का असली रूप भी तोड़ दिया गया है। आश्रमवासी जहाँ कहीं भी आश्रम के आदर्शों के अनुसार आचरण करके रहें वहीं आश्रम है।

इस प्रकार यह माना जा सकता है कि आश्रम का अब एक व्यापक स्वरूप हो गया है। जीवित संस्था का तो यह उद्देश होना चाहिए, कि उसमें जो व्यक्ति तैयार हों वे सब उस संस्था को अपने जीवन-क्षेत्र में प्रत्यक्ष उतारकर दिखावें।

ऐसे जब बहुत-से व्यक्ति तैयार हो जायँ तब संस्था का मूल रूप न भी रहे, तो कुछ हानि होने की सम्भावना नहीं।

इस प्रकार विद्यापीठ का प्रत्येक सेवक, जिसने विद्यापीठ के आदर्शों की दीक्षा ले ली हो, विद्यापीठ की आजीवन सेवा करने की प्रतिज्ञा कर ली हो और जिसने 'सा विद्या या विमुक्तये' का रहस्य कम-से कम अर्थ में लेकर गहरे-से-गहरे अर्थ तक ठीक ठीक समझ लिया हो, वह स्वयं ही जगम अर्थात् चलता फिरता विद्यापीठ बनकर किसी गाँव में चला जायगा। वहाँ वह विद्यापीठ के आदर्शों का परिपालन करेगा और लोगों को सुझाने-समझाने का जतन भी।

यह सचमुच सम्भव है, कि इस तरह गाँव में बहुत-से सेवक जाकर बस जायँ और वहाँ का अनुभव प्राप्त कर लेने के पश्चात् एक पथ-प्रदर्शक केन्द्रीय संस्था बनालें। पर हमारा विद्यापीठ इस प्रकार की संस्था नहीं है, उसका गाँव का अनुभव तो न होने के जैसा ही है।

मध्यबिन्दु चर्खा

ऐसे ग्राम-सेवक का मध्यबिन्दु 'चर्खा' होगा। चर्खे के सन्देश का आशय मैं अभीतक जैसा चाहिए वैसा पूरापूरा समझा नहीं सका था, क्योंकि उसका आकलन मुझे स्वयं ही स्पष्ट नहीं हुआ था। किन्तु इस नौ महीने के दौरे में, मैंने जो निरीक्षण और चिंतन किया उससे—खासकर दक्षिण भारत के प्रवास में—मुझे वह 'दीपकवत्' स्पष्ट होगया। यह चिंतन मैं करता ही रहता हूँ, कि गाँवों में व्यापक और सहायक उद्योग के रूप में तथा दरिद्रता-विदारक साधन के रूप में चर्खा किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है। अभी तो इस रीति से चर्खे की ठीक ठीक साधना हुई ही नहीं। गाँवों के जुलाहे चर्खे से ही जिंदा रह सकते हैं, मिल-मशीनों के कते सूत से कभी नहीं यह बात भी अभी पूरीपूरी समझ में नहीं आई। आज तो चर्खे की स्थापना इतनी ही हुई है, कि शुद्ध रूप से केवल खादी ही काम में लानेवालों का जो एक वर्ग देश में तैयार हो गया है उसकी कपड़े की आवश्यकता पूरी करने तक ही गाँवों के कुछ आदमियों के लिए यह एक साधारण सा उद्योग रह जायगा। लेकिन ऐसे छोटे-से काम के लिए चर्खा-संघ-जैसी विशाल संस्था के अस्तित्व की आवश्यकता नहीं। खादी के मूल में मेरी जो कल्पना है वह तो यह है कि खादी हमारे किसानों के लिए 'अन्नपूर्णा' का काम करनेवाली है, हज़ारों-लाखों हरिजन बुनकरों की प्राण-शक्ति है। कम-से-कम चार मास तो किसान निठल्ला रहता ही है। खादी उसे उद्यम देती है। हमारे देश में न तो आज उद्योग है, न स्वावलम्बन। यहाँ तो आलस्यने बड़ी गहरी जड़ जमा ली है। उद्योग और स्वावलम्बन को देश में यदि पुनः लौटा लाना है तो वह केवल चर्खे के द्वारा ही सम्भव है।

चर्खे में साम्यवाद

इस देश में यदि हमें रक्त की नदी नहीं बहानी है, लोगों में आज से भी अधिक 'पशुता' नहीं लानी है, तो खादी के इस व्यापक सन्देश को देश की नस-नस में भर देना चाहिए। साम्यवाद के नाम से जो चीज़ आज सुनाई दे रही है वह हमारा साम्यवाद नहीं है। भारतवर्ष जिस साम्यवाद को पचा सकता है वह साम्यवाद तो चर्खे की गूँज में गूँज रहा है। लोगों को चर्खे का इतना व्यापक संदेश सुना देने का काम मेरा और चर्खासंघ का था। किन्तु खादी की प्रवृत्ति जिस रीति से आजतक चलती आरही है उसी रीति से उसे हम चलाते रहे तो वह कोई व्यापक चीज़ सिद्ध न होगी, यह इस यात्रा में मुझे स्पष्ट हो गया है। इस सन्देश को समझाने और उसे सजीव रूप देने का प्रधान कार्य हमारे ग्राम-सेवक का ही होना चाहिए।

ग्राम-सेवक गाँव में जाकर स्वयं नियम-पूर्वक चर्खा चलायगा—और सिर्फ सूत ही नहीं कातेगा, बल्कि अपनी जीविका के लिए बसूला या रंदा चलायगा, कुदाली और फावड़ा चलायगा, या हाथ पैर से जो भी मजूरी कर सके करेगा। खाने पीने और सोने के आठ घंटे बाद देकर बाकी का सारा समय किसी-न-किसी काम-काज में उसका लगा ही रहेगा। अपना एक मिनिट भी वह बेकार न जाने देगा। काहिली को न तो वह अपने पास फटकने न देगा, न दूसरों के। लोगों को वह यह बतलाता रहेगा कि मुझे तो यज्ञ करना है, शरीर का पालन-पोषण शारीरिक श्रम से ही करना है। मन के पोषण के लिए मानसिक शिक्षा-संस्कृति आवश्यक है। शारीरिक काम में भले ही श्रम-विभाग हो, किंतु यह उचित नहीं, कि एक वर्ग तो शारीरिक श्रम किया करे, और दूसरा महज़ मानसिक श्रम।

अपने इस नौ महीने के प्रवास में मैंने देखा कि हमारे देश मे अगर यह आलस्य बिदा न हुआ, तो कितनी ही सुविधाएँ क्यों न मिलें लोग भूखे ही रहेंगे। जो अन्न के दो दाने खाता है उसे चार दाने उपजाने का धर्म स्वीकार करना ही चाहिए। ऐसा अगर होजाय तो दूसरे करोड़ो मनुष्य भी हिन्दुस्तान में पलने लगें। और यह न हुआ, तो जन-संख्या चाहे कितनी ही कम होजाय भुखमरा वर्ग तो देश में बना ही रहेगा। इस प्रकार जिन सेवकोंने ग्राम-सेवा के इस कार्य में रस लिया हो वे गाँवों मे जायँगे तो शिक्षक के रूप में, पर वहाँ खुद सीखनेवाले बनकर रहेंगे, नित्य-नूतन शोध और साधना करते रहेंगे। मेरी कल्पना यह नहीं है, कि वे १६ घंटे खादी के ही काम मे लगे रहें, बल्कि यह है कि खादी के काम से जितना समय उनका निकले, उसमें वे गाँव के चालू उद्योग-धंधो की खोज करें और उसमें दिलचस्पी लें, लोगो के जीवन में अपने को ओत-प्रोत करदें। खादी या चर्खे में भले ही लोगों का विश्वास न हो तो भी इन सेवकों को वे मनुष्य तो समझेंगे ही और इनके जीवन से उन्हें जो उपयोगी बातें मिलेंगी वे ग्रहण करेंगे। अपनी शक्ति से बाहर की बातों में वे हाथ न डालें, जैसे लोगों के कर्ज़ की बात। ऐसी अशक्य बातों में पड़ने से उनमें उनके खुद फँस जाने का भय है। गाँव की सफाई ग्राम-सेवक का एक दूसरा महत्वपूर्ण कार्य रहेगा। अपने रहने का घर वह ऐसा साफ-सुथरा रक्खेगा, कि उसे देखते लोगो का दिल न भरेगा। पर जिस तरह वह अपने घर-आँगन को साफ़ रक्खेगा, उसी तरह लोगों के आँगनों की भी सफाई करता रहेगा।

वैद्य-डाक्टर न बनें

ग्राम सेवक गाँवों में वैद्यराज या डाक्टर साहब बनने का धंधा न ले बैठें। हरिजन-प्रवास में मुझे एक ग्रामाश्रम देखने का मौक़ा आया, पर वहाँ मैंने जो देखा उससे बड़ा क्षोभ हुआ। आश्रम के व्यवस्थापक और कार्यकर्ताओं को मैंने खूब खरी-खरी सुनाईं। मैंने कहा, "वाह साहब वाह! तुमने यह खूब आश्रम बनाया! यहाँ तो तुम एक आलीशान महल बनाकर बैठे हुए हो। यह तो खासा एक डाक बंगला है। और, इसमें दवाखाना भी खोल दिया है। पास-पड़ोस के गाँवों मे तुम्हारे स्वयंसेवक घर-घर दवाइयाँ बाँटते फिरते हैं। कम्पाउण्डर भी तुम्हारे दवाखाने में है। मुझ से बड़े गर्व से कहते हो, कि नित्य दूर-दूर से लोग दवा लेने हमारे आश्रम में आते हैं, और हर माह १२०० मरीज़ों की औसत हाज़िरी रहती है। तुमने आश्रम में कभी ऐसा शानदार मकान और दवाखाना देखा था? मुझे ऐसा महल खड़ा करना होता, या ऐसा बढ़िया दवाख़ाना खोलना होता, तो क्या उसके लिए मुझे कोई पैसा देनेवाला न मिल जाता? आश्रम का मकान भी मेरी मर्ज़ी से अधिक खर्चीला था, तो भी तुम्हारे इस महल की बराबरी तो मेरा आश्रम भी नहीं कर सकता। लोगों को इस तरह दवा-दारू देने का काम तुम्हारा नहीं है। तुम्हारा काम तो उन्हें आरोग्यता और स्वच्छता का सबक़ सिखाने का है। स्वेच्छाचारी बनकर, गंदे रहकर और घर या गाँव को गंदा रखकर वे लोग बीमार पड़ें और तुम्हारा दवाख़ाना उन्हें दवाइयाँ दे, यह तो ग्राम-सेवा नहीं है। तुम्हें तो गाँववालों को संयम और स्वच्छता सिखानी है, आरोग्यता के नियम सिखाने हैं। यही उनकी सेवा है। मेरी सलाह मानो, तो इस आलीशान मकान को छोड़ दो, और सामने के झोंपड़े में जा बसो। यह मकान तो भाड़े पर लोकल बोर्ड को उठा दो, और उसे ही यहाँ अपना दवाख़ाना चलाने दो। तुम्हें याद होगा, कि चंपारण में हमारे पास क्विनेन, रेंडी का तेल और आइडिन यही दो-तीन दवाइयाँ रहती थीं। आरोग्यता और सफ़ाई की बात ही ग्राम-सेवक को लोगों के दिल में बिठानी है। आज तो वहाँ यह दशा है, कि लोग चाहे जहाँ पेशाब करने बैठ जाते हैं, चाहे जहाँ थूक देते हैं, और चाहे जहाँ कूड़ा-कचरा डाल देते हैं।

इसके बाद उसे गाँव के हरिजनों की सेवा करनी है। ग्राम सेवक का घर हरिजनों के लिए हमेशा खुला रहेगा। संकट और कठिनाई के समय स्वभावतः वे लोग उसके यहाँ दौड़े आयँगे। अगर गाँववाले उस सेवक के घर में हरिजनों का आना-जाना पसन्द न करें, और उसे अपनी बस्ती से निकाल बाहर करें, या वहाँ रहकर वह हरिजन सेवा न कर सके, तो हरिजन-बस्ती में जाकर वह अपना डेरा डाल ले।

शिक्षा में अक्षरज्ञान का स्थान

अब रहा शिक्षा का प्रश्न। १९२२ में जो 'बालपोथी' मैंने लिखी थी, उसे मैं भूला नहीं हूँ। उसमें की चीज़ मैं आप लोगों को यद्यपि ग्रहण नहीं करा सका, पर वह चीज़ अब भी मेरे पास वैसी ही बनी हुई है। मैं नहीं जानता, कि वह पोथी आज प्राप्य है या नहीं; पर वह उपलब्ध न हो, तो मैं उसे फिर से लिख कर दे सकता हूं। बात तो असल में यह है, कि हाथ के पहले बालकों की आँख, कान और जीभ काम करेगी। इसलिए इतिहास, भूगोल आदि जो भी अध्यापक उसे पढ़ायगा, वह ज़बानी ही पढ़ायगा। इसके बाद वह वर्णमाला और बारह-खड़ी पढ़ेगा, और फिर अक्षर-चित्रों के बनाने का अभ्यास करेगा। इसका पूरा-पूरा प्रयोग आप को करना चाहिए। मुझे लगता है कि लोगों की बुद्धि तक पहुँचकर उसे जाग्रत करने का मेरा यह मार्ग सुगम-से-सुगम है। मेरे बचपन का अनुभव मेरी स्मृति में अब भी वैसा ही ताज़ा बना हुआ है। जब मैंने महाभारत की कहानियाँ सुनी थीं, तब मैं शायद अक्षर घोटना सीख रहा था, और रामायण की बात जब सुनी, तब एक-दो पोथियाँ पढ़ी होंगी। पर इस से मुझे महाभारत और रामायण की कथा-कहानी समझने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती थी।

लोगों को हमें भ्रमजाल में नहीं डालना है। अगर हमने उनसे यह कहा, कि बिना अक्षरज्ञान के शिक्षा प्राप्त होने की नहीं, तो वे उलटे ही रास्ते जायँगे। बड़ों को और बालकों को इस प्रकार मौखिक ज्ञान देने की यह बात मेरी इस ग्राम संगठन की कल्पना में मौजूद है। किंतु इसका अर्थ कोई यह न करे कि मैं साक्षरता का विरोधी हूँ। मैं तो अक्षरज्ञान का सदुपयोग चाहता हूँ।

ग्रामसेवक साहित्यिक या ज्ञानविलासी जीवन बिताकर ग्रामवासियों को असली शिक्षा-दान नहीं दे सकता। उसके पास तो बसूला होगा, हथौड़ा होगा, कुदाली होगी, फावड़ा होगा—किताबें तो थोड़ी-सी ही होंगी, किताबें पढ़ने में वह कम-से-कम समय लगायगा। लोग जब उससे मिलने आवें, तो वे उसे पड़े पड़े किताबों के पन्ने उलटते हुए न देखें। उन्हें तो वह औज़ार चलाता हुआ ही मिले। मनुष्य जितना ज्यादा है

उसमे अधिक पैदा करने की शक्ति ईश्वरने उसे दी है। दुर्बल से भी दुर्बल मनुष्य इतना पैदा कर सकता है। इसके लिए वह अपने बुद्धि-बल का उपयोग करेगा। लोगों से यह कहेगा, कि मैं आपकी सेवा करने आया हूँ, पेट के लिए आप मुझे दो रोटियाँ दे दें। संभव है, कि लोग उसका तिरस्कार करें, यह होते हुए भी उसे अपने गाँव में टिका तो रहने देंगे ही। किसी जगह उसे सनातनी रोटी न दें तो हरिजन भाई तो देंगे ही। उसने यदि सर्वार्पण कर दिया है, तो हरिजनों के घर से रोटी लेते उसे लज्जित होने की ज़रूरत नहीं। उसे यदि भोजन मिल जाय, तो वह अपनी पैदा की हुई चीज़ों के बेचने आदि के जंजाल में न पड़े। पर जहाँ लोगों का सहयोग न मिलता हो, वहाँ वह खुद कोई भी उद्योग करके उससे अपना गुज़ारा कर लेगा। शुरू-शुरू में तो जहाँ होसके किसी सामाजिक संस्था के कोष से थोड़ा-सा पैसा लेकर वह अपना निर्वाह कर सकता है।

गोरक्षा

अभी गोरक्षा का प्रश्न मैंने जान मानकर छोड़ दिया है। यह बड़ा व्यापक प्रश्न है। अभी तो हम चमड़ा सिझाने और रँगने का ही सवाल हल नहीं कर सके। यह तो सूझ रहा है, कि गाय का पुनरुद्धार हमें किस प्रकार करना है, पर यह बात अभी ठीक-ठीक समझ में नहीं आई, कि इस संबन्ध के उपायों की योजना किस तरह तैयार की जाय। भैंस को उत्तेजन देना एक तरह से गोवंश का नाश करना है। पर यह चर्चा मैं फिर कभी करूँगा।

आत्मबल ही मुख्यबल है

याद रखिए, कि हमारे अस्त्र-शस्त्र सब आध्यात्मिक हैं। आध्यात्मिक शक्ति एक बार हममें आई, कि फिर उसे कोई रोक नहीं सकता। इस बात को मैं अपने अनेक वर्षों के अनुभव सिद्ध विश्वास के आधार पर कह रहा हूँ। यह आध्यात्मिक शक्ति चर्मचक्षु से प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली कोई साकार वस्तु नहीं है, तो भी मैं कहता हूँ, कि मुझे तो यह प्रत्यक्ष ही देख पड़नेवाली जैसी चीज़ लगती है।

आप यह न कहें, कि ग्राम-सेवा का यह कार्यक्रम तो हम से पूरा होने का नहीं, यह चीज़ तो असम्भव है, क्योंकि हम में उतनी योग्यता ही नहीं। मेरा तो यह कहना है, कि यदि यह बात निःसंशय रीति से आपके दिल में बैठ गई है, तो आप सब लोग इस कार्यक्रम को पूरा कर सकते हैं, आप अयोग्य नहीं हैं। बात तो समझ में आ गई, पर उस पर हम अमल नहीं कर सके, इसमें कोई घबराने या हताश होने की बात नहीं। प्रयोग करने में शर्म कैसी? हमें तो गाँवों में बैठकर इसे अमल में लाना है। अमल करते-करते ही तो अनुभव प्राप्त होगा।

दक्षिण अफ्रिका में
अस्पृश्यता-निवारण

जोहान्सबर्ग, दक्षिण अफ्रिका, की हाल की एक सभा में एक सज्जनने मुझसे पूछा, कि भारत की 'अस्पृश्यता' का क्या अर्थ है। मैंने तुरन्त जवाब दिया, कि बिलकुल वही चीज़, जो यहाँ दक्षिण अफ्रिका में है; दक्षिण अफ्रिका में जिसे 'रंगभेद' (कलर बार) या वंश-भेद (रेस्यल सेग्रीगेशन) कहते हैं, उसी घृणित भावना को भारत वर्ष में 'अस्पृश्यता' के नाम से पुकारते हैं।

बापू जब अपने हिंदूधर्म पर लगे अस्पृश्यता के कलंक को मिटाने के लिए अनशन कर रहे थे, मेरे मन में ज़ोरों से यह विचार उठा, कि सचमुच उनके इस कार्य के साथ मैं तबतक वास्तविक सहानुभूति न दिखा सकूँगा, जबतक कि मैंने अपने ही ईसाई धर्म पर लगे 'रंग-भेद' के इस काले धब्बे को धो डालने का सच्चा प्रयत्न नहीं किया। इसलिए मैंने बापू को जब इस विषय में लिखा, तो मुझे यह उत्तर मिला, कि—"निस्संदेह आप का विचार बिल्कुल सही है।" उन्होंने यह भी लिखा, कि मुझे सन्देह है कि रंगभेद मिटाने का प्रयत्न संभवतः हमारे अस्पृश्यता-निवारण के कार्य से कहीं अधिक मुश्किल है।

ईश्वर को धन्यवाद है, कि दक्षिण अफ्रिका से लौटने पर मैं इतना कह सकता हूं, कि यहाँ भारत में अस्पृश्यता-निवारण का जो काम हुआ है उसके मुक़ाबले में, कुछ अंशों में, वहाँ हमारा रंगभेद निवारण का प्रयत्न बहुत अच्छा रहा। नेटाल में, जिसे 'रंग-विद्वेष' का एक मज़बूत गढ़ कहना चाहिए, वहाँ अभी हाल में ही ईसाई धर्मने एक बड़ा अच्छा काम किया है। दो काउन्सिलें वहाँ बना दी गई हैं एक का नाम तो 'इण्टर रेस्यल काउन्सिल' है और दूसरे का 'इण्डो-यूरोपियन काउन्सिल।' यह तो आप लोग जानते ही हैं, कि वहाँ 'श्वेतांग श्रमिक' नीति (ह्वाइट लेबर पालिसी) बरती जाती है—इस दुष्ट नीति के अनुसार हिन्दुस्तानी या अफ्रिकन किसी भी काले आदमी को लगे-लगाये काम से हटाकर उसके स्थान पर किसी बेकार गोरे को नियुक्त कर देते हैं! मेरीट्ज़बर्गकी इण्डोयूरोपियन काउन्सिल को रंगभेद की इस निन्दनीय नीति के खिलाफ़ आवाज़ उठानी पड़ी है। नेटाल के बिशप श्री लेनार्ड की अध्यक्षता में, उक्त काउन्सिलने सर्वसम्मति से निम्नलिखित ठहराव पास किया है :—

"चूँकि हमें विश्वास हो गया है, कि इस देश की सुख-समृद्धि 'अविभाज्य रीति' से ही सम्भव है;

चूँकि हमारे हिंदुस्तानी और अफ्रिकन नागरिक भाइयों की आर्थिक समृद्धि के होने से श्वेताङ्ग लोग भी सुखी और समृद्ध होंगे;

चूँकि यूरोपियन-इतर जातियों का सुख-सन्तोष एक ऊँचे-से ऊँचा राजनीतिक लाभ है;

चूँकि अन्य जातियों की उन्नति और समृद्धि के प्रति इस द्वेषपूर्ण कुत्सित मनोवृत्ति की दक्षिण अफ्रिका की संस्कृति पर बड़ी घातक प्रतिक्रिया होगी;

चूँकि सार्वजनिक एवं घरू मामलों में—आर्थिक स्वार्थ-भावना से भी परे—'न्याय' की प्रधानता ही उत्तम नागरिकता और नैतिकता का मूलाधार है;

चूँकि सामाजिक, राजनीतिक और अंतर्जातीय आदि सभी बातों में भ्रातृत्व के सिद्धान्त को अमल में लाने के लिए ही ईसाई धर्म का जन्म हुआ है;

और चूँकि आज हमें भविष्य के लिए इन दो सभ्यताओं—एक तो नैतिकता के सिद्धान्त पर स्थित, और दूसरी छल-कपट के आवरण से ढकी और अत्याचार के बल पर खड़ी—में से तुरन्त किसी एक को चुन लेना है,

इसलिए मरीटजबर्ग की हमारी यह इण्डो-यूरोपियन संयुक्त काउन्सिल तमाम ईसाई चर्चों से अनुरोध करती है, कि वे अपने जातिगत प्रश्नों पर सामान्य हित और सामान्य नागरिकता की दृष्टि से ही विचार किया करें ।

इस उद्देश-सिद्धि के लिए काउन्सिल की राय है कि समय-समय पर ऐसी सभाएँ की जायँ, जिनमें ईसाइयों के कर्तव्य-पालन से सम्बन्ध रखनेवाले जातिगत मसलों पर विचार किया जाय ।

काउन्सिल इस सिद्धांत को निश्चित कर देना चाहती है, कि जब किन्हीं नागरिकों—खासकर यूरोपियन लोगों—की माँगों का असर राष्ट्र के दूसरे वर्गों पर पड़ता हो, तो उन वर्गों को अपनी राय ज़ाहिर करने का मौका मिले, और ईमानदारी से उस पर यथेष्ट विचार किया जाय ।

हम अपील करते हैं, कि हमारी इन संयुक्त काउन्सिलों में, जो कि ईसाई धर्म की अनुत्वपूर्ण सहयोग की भावना का विभिन्न जातियों के बीच प्रचार करना चाहती हैं, अधिक-से-अधिक नये सदस्य शरीक हों । इस काउन्सिल को आशा है, कि हमारी ईसाई धर्म-समाजें अवश्य हमें ऐसे उदार सदस्य देंगी ।”

‘हरिजन’ से] सी० एफ० एण्ड्रूज़

प्रांतीय कार्य-विवरण

राजपूताना

[जुलाई, १९३४]

धार्मिक—हरिजन मुहल्लों में २० बार भजन-कीर्तन कराया गया । हरिजनों को ५ बार धार्मिक कथाएँ सुनाई गईं । ‘पूर्णाहुति दिवस’ धार्मिक रीति से ६ स्थानों पर मनाया गया ।

शिक्षा—निम्नलिखित रात्रि-पाठशालाएँ खोली गईं :—

एक सम्मिलित पाठशाला अजमेर में, १ पाठशाला राजगढ़ (अलवर) में, १ पाठशाला डूँगरपुर में; १ पाठशाला झुंझनू में, २ पाठशालाएँ खेड़ीमांडा के पास, और १ सम्मिलित पाठशाला खोरावीसल (जयपुर) के पास सलमानपुर में ।

निम्नलिखित दिवस-पाठशालाएँ खोली गईं

१ सम्मिलित पाठशाला अजमेर में, १ पाठशाला ब्यावर (मारवाड़) में, १ पाठशाला फुलेरा में; १ पाठशाला नागौर (मारवाड़) में, और १ सम्मिलित पाठशाला झुंझनू में ।

आम पाठशालाओं में १२ हरिजन बालक दाखिल कराये गये ।

राजपूताना-संघ इस समय कुल ११५ पाठशालाएँ चला रहा है, जिनमें ६० तो दिवस-पाठशालाएँ हैं और ५५ रात्रि-पाठशालाएँ । इनमें कुल ३४०० छात्र पढ़ते हैं । २०९८ हरिजन छात्र हैं—१०६ हरिजन कन्याएँ इस संख्या में शामिल हैं और ५१२ सवर्ण विद्यार्थी । दैनिक औसत हाज़िरी २४१५ रहती है।

इसके सिवाय नारेली और सागवाड़ा में २ हरिजन-आश्रम तथा पिलानी में एक हरिजन-छात्रालय चलाये जा रहे हैं ।

नारेली-सेवा-आश्रम में राजपूताना में काम करने के लिए हरिजन-कार्यकर्ताओं तथा अध्यापकों को सेवा-कार्य सिखाया जाता है ।

नीमका-थाना (जयपुर) में हरिजन विद्यार्थियों के लिए एक अखाड़ा खोला गया ।

आर्थिक—३ हरिजनों को अजमेर, नागौर और राजगढ़ में काम दिलाया गया; १५ हरिजनों को रामगढ़ (जयपुर) में मामूली सूद पर कर्ज़ा दिलाया गया; रामगढ़ और परतापपुर में १२२ हरिजन बच्चों को मिठाई और फल वितरण किये गये; ४६१ हरिजन छात्रों को किताबें और स्लेट-पेंसिल वगैरा मुफ्त दी गईं, ७१ हरिजनों को मुफ्त कपड़े दिये गये; मालपुरा (अजमेर) के मेहतरों के मकानों को म्युनिसिपैलटीने, हरिजन-सेवक-समिति के अनुरोध से, मरम्मत करादी ।

सफ़ाई—३० मुख्तलिफ़ स्थानों की हरिजन-बस्तियों में ५७२ बार सफ़ाई इत्यादि का निरीक्षण किया गया, २१ स्थानों पर १३१२ हरिजन बालकों को नहलाया गया, २००६ हरिजन छात्रों को दाँत साफ़ करना सिखाया गया; १५१३ हरिजन छात्रों को मुफ्त साबुन दिया गया, परतापपुर (बाँसवाड़ा) में हिंद सेवकोंने हरिजन मुहल्लों की सफाई की ।

मद्यमांस निषेध—बाँसवाड़ा के हरिजनोंने अपनी जाति-पंचायत में मुर्दार मांस और शराब छोड़ देने की प्रतिज्ञा की तथा प्रतिज्ञा-भंग पर जाति-दण्ड देना स्वीकार किया ।

७३ हरिजनोंने शराब पीना छोड़ दिया; और ९३ हरिजनोंने मुर्दार मांस खाना छोड़ दिया ।

इस सम्बन्ध में १४ हरिजन सभाएँ ९ विभिन्न स्थानों पर की गईं ।

दवादारू—५६५ रोगी हरिजनों को मुफ्त दवाइयाँ दी गईं; वैद्य-हकीमोंने ४३ रोगियों को उनके घर पर जाकर देखा; ३५४ हरिजन रोग-मुक्त हुए ।

पानी का प्रबन्ध—राजगढ़ (अलवर) के समीप मजादी में जो कुआ बन रहा था वह तैयार हो गया, अजमेर में एक म्युनिसिपैलिटी का डिग्गी (तालाब) खोल दी गई; केसरगंज (अजमेर) में एक प्याऊ तमाम हिंदुओं के लिए, बिना किसी भेदभाव के, खोल दी गई; नारेली में १ कुआ साफ़ किया गया और उसकी मरम्मत भी करा दी गई ।

साधारण—३८ सवर्ण हिंदुओंने अस्पृश्यता न मानने की प्रतिज्ञा की । हरिजनों और सवर्ण हिंदुओं की ९ सम्मिलित सभाएँ हुईं, जिनमें हरिजन-आंदोलन का महत्व लोगों को समझाया गया । ९ मुख्तलिफ़ स्थानों के ७२ परिवारों की आर्थिक और शिक्षा-सम्बन्धी जाँच की गई, १२२६ हरिजनों और २६९ सवर्ण हिंदुओं को “हरिजन-सेवक” पढ़कर सुनाया और समझाया गया; गंगापुर (जयपुर) के पास २ गाँवों में हरिजन-आंदोलन का महत्व बताया गया; अजमेर में हरिजन बच्चों के लिए खेलकूद का प्रबन्ध किया गया; “हरिजन-सेवक” के ३ ग्राहक बनाये गये, २३०० ट्रैक्ट अजमेर के संघने बाँटे ।

८७ की रक़म में भी ऊपर हरिजनों के उत्थान-कार्य पर खर्च किया गया ।

मंत्री—ह० से० सं०, राजपूताना

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R S Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg No. L. 3169

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, १४ सितम्बर, १९३४. [संख्या ३०

विषय-सूची

शंका-समाधान

अकारणस्तु नैवास्ति धर्मः सूक्ष्मोऽपि जाजले ।
कारणैर्धर्ममन्विच्छेन् न लोकं विरसं चरेत् ।
नात्यन्तिकस्तु धर्मोऽस्ति धर्मोह्यावस्थिकः स्मृतः ॥ (म० भा०)
प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम् ।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥ (मनु)
केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो विनिर्णयः ।
युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते ॥
(कुल्लूक, मनु टीका, १२—११३)

"कोई धर्म, क्या छोटा क्या मोटा, बिना हेतु के, बिना कारण के, नहीं बनता । इसलिए हेतु को समझकर धर्म करना चाहिए । हेतुहीन, रसहीन, लोकयात्रा नहीं करनी चाहिए । कोई भी धर्म आत्यन्तिक, सब देश-काल-अवस्था का उपयोगी, नहीं है । प्रत्येक धर्म आवस्थिक, अवस्था पर आश्रित है, अवस्था के भेद से धर्म में भेद होता है । जो मनुष्य धर्म की शुद्धि चाहता है, चाहता है कि मेरे धर्माचरण में, कर्तव्य-पालन में, भूल न हो, उसको तीन वस्तु तीन प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष अनुमान और विविध प्रकार के शास्त्र को अच्छी रीति से जानना चाहिए । केवल किसी एक शास्त्र की पोथी पर भरोसा करके जो धर्म का निर्णय करेगा वह भूल में पड़ेगा, धर्म की हानि करेगा ।"

३१ जुलाई, १९३४ को महात्मा गांधी का उपदेश सुनने के लिए काशीवासियों का अद्भुत महासम्मेलन हुआ था । उसमें महात्मा गांधी की अनुमति से श्री देवनायकाचार्यने महात्माजी के प्रतिपक्षियों के मत का प्रतिपादन किया । उनके भाषण का प्रकार सर्वथा शिष्टतापूर्ण और मर्यादानुसारी था । इस अंश में उसकी सब सज्जनोंने प्रशंसा की । पर उसके विषय पर कुछ विचार होना आवश्यक है ।

श्री देवनायकजी के व्याख्यान की सारभूत बातें दो जान पड़ीं—अर्थात्,

(१) "स्वच्छता" और "पवित्रता" में भेद है । स्वच्छता दृष्टि-सम्बन्धिनी है, पवित्रता अदृष्टात्मिका । कुछ मनुष्य (जिनका भारतवर्ष में पांच, छः या सात करोड़तक) जन्मना अस्पृश्य होते हैं । उनमें से किसी का मुख, शरीर, वस्त्र, वेश, बुद्धि, विद्या, भक्ति, भाव, कैसा भी सुन्दर, उज्ज्वल, परिष्कृत, परिमार्जित, धौत, "स्वच्छ" (सु+अच्छ, बहुत अच्छा) क्यों न हो, पर उनमें सूक्ष्म अदृष्ट "अपवित्रता" व्याप्त है, इसलिए वे जन्मना "पवित्र" लोगों के लिए (चाहे इन "पवित्र" लोगों का खान, पान, आचार, विचार, विहार, व्यवहार, कैसा भी "अस्वच्छ" दूषित, अप्रशंसनीय हो) आजन्म आमरण अस्पृश्य हो हैं और रहेंगे ।

(२) जब महात्मा गांधी अहिंसावादी, भूतदयावादी हैं, सब की रक्षा करना चाहते हैं, तब जो लोग अपने को सनातन-धर्मी कहते हैं, और कहते हैं कि उक्त प्रकार की जन्मना अस्पृश्यता मानना सनातनधर्म का अनिवार्य, अविच्छेद्य, मार्मिक अंग है, उनके विश्वास को, उनके भाव, आचार, व्यवहार की रक्षा आप क्यों नहीं करते, उनपर दया आप क्यों नहीं करते ?

इन दो शंकाओं का आदरपूर्वक समाधान होना उचित है । मेरी अल्पबुद्धि में अहातक आया थोड़े में समाधान यों हो सकता है ।

(१) "स्वच्छता" और "पवित्रता" का विवेक धर्म के आदिव्यवस्थापक स्मृतिकारक ऋषियों का सम्मत नहीं है । पंचमाध्याय के शुद्धि प्रकरण में भगवान् मनुने "शुद्ध", "शुचि", "पवित्र", "मेध्य" शब्द समानार्थक प्रयोग किये हैं, यथा—

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ।
अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥
नित्यं शुद्धः कारुहस्तः श्वामृगग्रहणे शुचिः ।
योऽर्थे शुचिर्हि सशुचिः, न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥
मक्षिका विप्रुषश्छाया स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥

"पवित्र" शब्द "पू" धातु से बना है, वायुका नाम "पवन" है, अग्निका नाम "पावक" है, दोनों महाभूत प्रत्यक्ष हैं, मीमांसा के संकेत में दोनों "दृष्ट" हैं, लौकिक संकेत में एक स्पष्ट है, एक दृष्ट है, दोनों "प्रत्यक्ष" हैं । मनु के इस श्लोक में दृष्ट-अदृष्ट, स्थूल-सूक्ष्म, का भेद न करके, दोनों के सम्बन्ध में उसी "पू" धातु से बने "पूत" शब्द का प्रयोग किया है ।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतं वदेद्वाक्यं मनः पूतं समाचरेत् ॥

दृष्ट और अदृष्ट का आत्यन्तिक पार्थक्य कहीं नहीं है । दृष्ट से अदृष्ट, अदृष्ट से दृष्ट, चक्रवत् उत्पन्न होता है । अन्ततोगत्वा, दृष्ट शरीर से, दृष्ट इस लोक कर्म भूमि में किये हुए दृष्ट कर्म से सूक्ष्म अदृष्ट धर्माधर्मात्मक उत्पन्न होता है, जिससे अदृष्ट आमुष्मिक लोक फल भूमि में सुख दुःख मिलता है, और पुनः उसी अदृष्ट-

द्वारा इस इहलोक में उत्कृष्ट वा अपकृष्ट इहजन्म होता है। चंडाल नामक जीव, जिसका शास्त्रीय लक्षण अब कहीं मिलता नहीं, अस्पृश्यतम, अपवित्रतम, माना जाता है। उसको भी छूकर, सचैल, कपड़े समेत, स्नान कर लेने से "स्पृश्य" जातिवाले की शुद्धि हो जाती है। यदि अपवित्रता अदृष्ट सूक्ष्मव्यापिनी होती तो, पहिले तो इस शरीरों के स्पर्शमात्र से उसका संक्रमण एक शरीर से दूसरे में नहीं होना चाहिए। अथवा यदि अपवित्रता का स्वच्छता शुद्धता से विवेक करना है, तो सूक्ष्म अपवित्रतावाले शरीर के स्पर्श से पवित्र शरीर में स्थूल अशुचिता का, स्नानापनेय अशुद्धि का, जन्म ही न होना चाहिए। दूसरे, उसका इस स्नान से मार्जन न हो सकना चाहिए।

(२) जिसको आपने "सनातनधर्म" का मार्मिक अंग मान रखा है, वह हेतुहीन "अर्वाकलन धर्माभास" है। उसकी रक्षा करना, उसपर दया करना, मानो रोगपर दया करना, कुपथ्य की वृद्धि करना है। रोगी को नीरोग स्वस्थ करने के बदले उसके प्राणपर निर्दयता क्रूरता करके उसका प्राण-नाश करना है। इस धर्माभासरूपी महाघोर राजयक्ष्मा रोग से (अर्थात्)—

एके विवेकमिच्छन्ति कर्तुं "स्वच्छ"-"पवित्रयोः"।
नतु न स्मृतिकाराणां ऋषीणामस्ति सम्मतं॥
धर्माभासस्य रक्षा तु सद्धर्मप्राणनाशिनी।
वैद्यो रोगे दयां कुर्वन् हन्यादेव हि रोगिणम्॥
शास्त्रेण व्यवहारं, तन् तेन, कालेन शोधयन्।
अभ्युदेति समाजस्तु सीदत्येव हतोऽन्यथा॥

भगवानदास

"धार्मिक पाप"

एक तीखे आलोचकने लिखा है कि हिंदू का धर्म तो उसके जीवन की प्रत्येक बात में मिलेगा—धर्म की रूह से वह सिर्फ खाना-पीना और शादी-ब्याह ही नहीं करता, बल्कि पाप-कृत्य भी वह धार्मिक दृष्टि से करता है। जब हम हरिजनों के प्रति किये जानेवाले सवर्ण हिंदुओं के बरताव पर विचार करते हैं, तो हमें इस आलोचक की तीखी टीका के सत्य को कबूल करना ही पड़ता है। बाहरी कर्मकाण्ड और रूढ़ियों का कुछ ऐसा विचित्र-सा गोरखधन्धा हमने फैला रक्खा है और इस तरह अपने धर्म को एक ऐसा विकृत या भद्दा रूप दे रक्खा है, कि हममें से कुछ लोग तो इस बात पर सन्देह तक नहीं करते कि अमानुषिकता कदापि धर्म नहीं हो सकती, और वह एक प्रकार का अधर्म है। अपने विश्वास पर खड़े इन सच्चे गुनहगारों के बीच शान्ति और धीरज के साथ अभी भारी प्रचार-कार्य की ज़रूरत है।

नीचे एक सच्ची कहानी देता हूँ। यह एक बहिन की आँखों देखी घटना है। वह बहिन तीसरे दर्जे के जनाने डिब्बे में बम्बई से अहमदाबाद जा रही थी। रात को साढ़े बारह या एक बजे के करीब टोकरियाँ लिये दो अछूत जाति की स्त्रियाँ एक स्टेशन पर गाड़ी में सवार हुईं। उसी गाड़ी में दो और स्त्रियाँ सफ़र कर रही थीं, जो देखने में ऊँची जाति की मालूम पड़ती थीं। वे दोनों माँ-बेटी थीं। लड़की की गोद में महीनेक का बच्चा था। इन हरिजन स्त्रियों के गाड़ी में घुसते ही ऊँची जाति की औरतों-ने बड़ा होहल्ला मचाया; पर चूँकि उन्हें वे धक्का देकर नीचे तो उतार नहीं सकती थीं, इसलिए थोड़ी देर में सब शोरगुल शांत हो गया। पर दुर्भाग्य से उनमें से एक बेचारी का पेट पिराने लगा और मारे मरोड़ व दर्द के वह ज़ोर-ज़ोर से चीख़ने लगी। इससे सब की निद्रा भंग हो गई और छूतछात का वहम माननेवाली उन देवियोंने तो पहले से भी अधिक प्रचंड रूप धारण करलिया।

"लो, एक तो पहले ही इन हरामज़ादियोंने हमारा डिब्बा भ्रष्ट कर दिया, और अब ये और भी अपवित्रता फैलायेंगी; क्यों री बदमाशो, तुमने घर से चलने के पहले यह सब नहीं सोचा था?"

"थोड़ी देर के लिए तकलीफ़ ही उठालो बहिनजी," उस कम उम्र की हरिजन लड़कीने कहा; "यह मेरी भौजाई है। भाई मेरा आँधरा है और हम लोग किसी तरह ये टोकरियाँ बेच-बाच कर गुज़र-बसर कर लेती हैं"। भौजाई के कई बालबच्चे हुए हैं, पर ऐसी पीरें तो इसे कभी नहीं आईं। इतना अधिक कलेस तो इसे अबकी ही हुआ है।"

"इससे पहले कई बच्चे हुए हैं, तब तो यह पूरी बेवकूफ़ ही है जो ऐसे में घर से बाहर निकली।"

"डर की कोई बात नहीं है, एक घंटे के अन्दर ही सब ठीक हो जायगा और फिर यह इस तरह ज़ोर-ज़ोर से न चीखे-चिल्लायगी। दया करो मालकिन, तुम्हें भी तो ज़िन्दगी में कभी-न-कभी ऐसा औसर आया होगा।"

"अवश्य" उस ब्राह्मणीने जवाब दिया "मेरी इस बिटिया को ही बच्चा हुआ है, अभी उस दिन जब यह मद्रास से आ रही थी—मिलोड़ी कितनी लम्बी सफ़र है वह! यह बेचारी क्या कर सकती थी? पर इसने अपनी पीरें शान्ति से बरदाश्त करलीं। इसका देवर इसके साथ था। मेरी रानीबिटियाने अपने देवरतक को मालूम नहीं होने दिया। बम्बई में इसे प्रसूतिगृह में लेजाना पड़ा और मैं तार पाते ही मद्रास से बम्बई दौड़ी गई। यह बेचारी तो कुछ दिनोंतक जैसे जीवन और मरण के बीच लटकती रही। जय हो प्रभु का, कि अब यह बिलकुल अच्छी हो गई है और इसे मैं अब देश के जा रही हूँ। पर इस कमबख़्त की तरह हमारी लड़कीने तो ऐसा चीखें नहीं मारी थीं। मेरी बाईने तो बड़ी शान्ति से सब बरदाश्त कर लिया था।"

"मुझे भी तो पहिले कभी ऐसी पीरें नहीं आईं", उस दर्द से ऐंठती हुई हरिजन बहिनने कहा; "और ईश्वर किसी को ऐसा कलेस न दे। पर आप क्यों ऐसी चिल्ला रही हैं, क्यों बेतरह घबरा रही हैं? मेरी ननदजी मेरी सब सार-सँभार कर लेंगी और सारे डिब्बे को भी धो देंगी।"

"हाँ, सो तो धोओगी ही और झख मारोगी," ब्राह्मण महिलाने कहा "पर यह हमारे सारे कपड़े-लत्ते तो तुम नहीं धो जाओगी। तुम्हें मालूम है, कि तुम हमारे ये तमाम बढ़िया-बढ़िया कपड़े छूतहे कर दोगी? अगली टेसन पर उतर जाना। ऐ, तुम हमारा यह डिब्बा खाली कर देना।"

"पर बेचारी इस हालत में कैसे उतर सकती है? क्या तुम इतना भी नहीं समझ सकतीं, कि ऐसे में अगर उतरने और चलने-फिरने का उसने यत्न किया, तो बेचारी मर ही जायगी?"

"पर यह सब पहले ही क्यों न सोच-विचार लिया? मैं ज़रूर गार्ड से बोलूँगी, कि अगली टेसन पर इन हरामज़ादियों को वह गाड़ी से बाहर करदे।" "हाथ जोड़ती हूँ, दया करो," उसकी ननदने कहा। जिस बहिनने यह कहानी सुनाई थी उसने तथा अन्य स्त्रियोंने भी उस कट्टर देवी से प्रार्थना की कि वह व्यर्थ शोरगुल न मचावे। पर उसके दिल पर तो किसी

तरह यह वहम-पकड़ा कर बैठा था, कि इस अछूतिन के बच्चा पैदा हुआ तो वह और भी अस्पृश्य हो जायगी और गाड़ी में उसके रहने का अर्थ होगा—दूनी अस्पृश्यता, दुगुनी भ्रष्टता !

ख़ैर, अगला स्टेशन आया, और उस कट्टर ब्राह्मण स्त्री के विरोध का अन्य स्त्रियों के प्रतिवाद से किसी तरह शमन हो गया। स्टेशन से गाड़ी के खुलने के कुछ ही मिनट बाद, उस हरिजन स्त्रीके एक बच्चा जना और वह प्रसन्नचित्त बैठ गई। उसके पास और कपड़े तो कुछ थे नहीं और न साफ़ लेटने को ही कुछ था। इस दर्दभरी कहानी को बतलानेवाली बहिनने उसकी सहायता की और फिर कुछ समयतक गाड़ी में सब तरह से शांति रही। किन्तु वह जच्चा तो फिर चीख़ने लगी और फिर वही शुरूमयाड़ा औरतों में मच उठा। एक और बच्चा पैदा हुआ, तब कहीं उस बेचारी को छुटकारा मिला। फिर तो वह ऐसी शान्त बैठ गई, जैसे कुछ हुआ ही न हो। उसकी ननदने डिब्बे को धो-धाकर अच्छी तरह साफ़ कर दिया।

वह देवीजी फिर चिल्लाने लगीं, "घर जाकर हमें सिर्फ़ नहाना ही नहीं होगा, वह ढेर-के-ढेर कपड़े-लत्ते भी तो धोने होंगे। अरे, तुम लोगों की समझ में इतनी भी बात नहीं आती ?"

उन स्त्रियोंने उस कट्टर देवी को अनेक तरह से समझाया-बुझाया, खुद उसको लड़की का हवाला दिया, पर सब व्यर्थ। उसके दिमाग़ में तो दुगुनी छूत या दूनी धर्म-भ्रष्टता का वह पागलपने का कुविचार ऐसा जम गया था कि उसका कुछ इलाज ही नहीं था।

ख़ैर, जैसे-तैसे जिस स्टेशन पर उन हरिजन बहिनों को उतरना था वह आगया। इस सारे क़िस्से को हमदर्दी के साथ सुनकर गार्डने उन्हें धीरे से उतार लिया। गार्ड पारसी था। उसने उन्हें अपने पास से एक रुपया भी दिया और कहा कि दिन निकलनेतक वे मुसाफ़िरख़ाने में ही रहें।

पर ज्यों ही गाड़ी छूटी, वे दोनों हरिजन स्त्रियाँ हाल के जने बच्चों को छाती से चिपकाए स्टेशन से बाहर जाती हुई दिखाई दीं।

म० ह० देसाई

हाथ की चक्की का पिसा आटा

"बेटा, इस चौथे पन में भीख भी माँगनी पड़ी। पाँच कम चार बीसी की उमर हो गई है। भरी जवानीमें दो लड़के प्लेग में चल बसे। बहुएँ निकल गईं। रोते-कलपते आँखें जाती रहीं। इस आग-लगी झोंपड़िया में अकेली भूत-सी पड़ी रहती हूँ, दुरा-पाले में पिसौनियाँ करके दो पैसे कमा लेती थी और उससे किसी तरह यह पापी पेट भर लेती थी। पर जब से गाँव में यह सत्यानासिन जादू की कल-चक्की आई, तब से वे दो पैसे भी नहीं मिलते। काग़ज़-सा महीन आटा छोड़कर अब कौन इस मरी बुढ़िया के हाथ का मोटा-झोटा चोकर खायगा ?"

उस आँधरी-धूँधरी अंध डोकरियाने लठिया टेकते हुए कहा और उसकी ज्योति-हीन आँखों से दो बूँद आँसू उसके लो ओंगरे के विकट आँचल पर ढलक पड़े। मध्यभारत के एक छोटे-से क़स्बे की यह बात है। जब से वहाँ आटे की कल आगई तब से गरीबों, अंधी-लूली असहाय बुढ़ियों और विधवाओं की रोज़ी चली गई। आपत्तिकी मिलोंने चर्खों, करघे और कोल्हू पर हाथ साफ़ किया, आटे की कलोंने जाँतों और चक्कियों को पीस-पास डाला और अब कूलडाल से टरके हुए जीर्ण चूल्हे पर होटलों की 'गृद्ध-दृष्टि' लगी हुई है। स्वदेशी का इन भीषणकाय मशीनोंने तो जैसे सर्वनाश कर डाला है। तेल, सेंट, साबुन, टूथ पेस्ट, कंघी चूड़ी आदि साज-सिंगार की भड़कीली, चटकीली चीज़ें तो हमारी स्वदेशी नुमाइशोंमें अटम-को-अटम दिखाई देती हैं, मगर ये राक्षसी यंत्र हमारे चर्खे और चक्की को जो बुरी तरह पीस रहे हैं उसपर किसी स्वदेशी प्रचारक का ध्यान नहीं जाता। अंजर-पंजर ढीला कर डाला गया है, कलेजे का कचूमर निकाल दिया गया है, प्राण-पखेरू उड़ने को फड़फड़ा रहे हैं—अब आप ही बताइए, यह बूढ़ा पंगु भारत उठने का हियाव करे तो कैसे ?

विलास के गढ़ इन शहरों को जाने दीजिए, देश की रीढ़ देहातों की भी काया अब पलटती जा रही है। गाँवों पर भी ये चालाक मशीनें नज़र लगाये बैठी हैं। रात को तीसरे पहर उठ बैठना और पिसनौट लेकर जाँत की मुठिया पकड़ लेना, कहीं-कहीं पर रुक-रुकके सुहावने सुमधुर गीत थरर-घरर स्वर के साथ मस्ती से गाना, गृहस्थों का यह सुन्दर सुखद दृश्य शहरों में तो आज कहीं देखने को मिलेगा नहीं, गाँवों में भी अब धीरे-धीरे इस यंत्र-युग के अभिशाप से ओझल या धूमिल-सा होता जारहा है। कहना चाहिए, कि इन मुहर्रमी सूरतवाली ख़ूँख़ार मशीनों ने हमारी गृहस्थी के सुख और रस को भी सुखा डाला है। हाथ के घरेलू उद्योगों के न रहने से मर्द मेहनत-मशक़्क़त के योग्य नहीं रहे और औरतें भी अहदी बनती जा रही हैं। यंत्र-युगने हमारे स्वास्थ्य को भी गहरा धक्का पहुँचाया है। धड़ाधड़ अस्पताल खुलते जा रहे हैं, लाखों की दवाइयाँ खप रही हैं। दवाइयों और बीमारियों के 'रेस' में बीमारियाँ ही हमेशा आगे रहती हैं। मशीन के पिसे आटे को ही लीजिए। मैदे या बारीक पिसे हुए आटे की रोटी खानेवाले मनुष्य सदा सुस्त-से बने रहते हैं। हमेशा उन्हें कब्ज़ रहता है। अनाज के पौष्टिक अंश को भी मशीन पीस डालती है। 'प्रोटीन' को कल की चक्की ख़ुद ही खा जाती है, अब शरीर को पुष्टि मिले तो कहाँ से ? चोकर के बहुत-कुछ निकल जाने से उस आटे में क्षार और स्निग्ध अंश नहीं रहता। इसके विपरीत, हथचक्की के पिसे आटे में पौष्टिक तत्व काफ़ी मात्रा में रहता है। स्वाद में भी यह आटा उससे अच्छा होता है। पड़ोसिनें बड़े प्रेम से एक दूसरे का नाज मिलकर पीस देती हैं, इससे आपस में प्रीति-रीति भी क़ायम रहती है। असहाय विधवा स्त्रियाँ पिसौनियाँ कर-करके अपने अनाथ बच्चे पालपोस लेती हैं और उनका रँडापा भी कट जाता है। अभी कलतक सैकड़ों-हज़ारों आश्रयहीन बहिनों की गुज़र-बसर हथचक्की की बदौलत चल जाती थी, आज आटे की इन विकराल क्रूर कलोंने बड़ी बेरहमी से उनकी कमर तोड़ दी है।

अब देश में बेकार भिखमंगों की तादाद न बढ़े, तो क्या लखपतियों की बढ़ेगी ? हमारे सुन्दर ग्रामजीवन के इस बुरी तरह से तितर-बितर होजाने के कारण ही, हमारी आज यह दुर्गत हुई है। साम्यवाद का काफ़ी शोर सुन रहे हैं। हमारे ग्रामों के, अर्थात् हमारे असली भारत के प्राण चर्खे, ओखली, कोल्हू, और चक्की को पुनर्जीवित करने में साम्यवादने अगर देश के दरिद्रनारायणों का हाथ बटाया, तो उसका शत-सहस्र बार स्वागत !

वि० ह०

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १४ सितम्बर, १९३४

चमड़े का धन्धा

हमारे गाँव का चमड़े का धंधा उतना ही प्राचीन है, जितना कि स्वयं भारतवर्ष। यह कोई नहीं बतला सकता कि चमड़ा कमाने का यह धंधा कब अनादृत हुआ। प्राचीन काल में तो यह बात हुई नहीं होगी। लेकिन हम जानते हैं, कि आज हमारे यहाँ के इस एक अत्यंत उपयोगी और आवश्यक उद्योग ने संभवतः दस लाख आदमियों को पुश्तैनी अछूत बना दिया है। वह कुदिन ही होगा, जिस दिन से इस अभागे देश में परिश्रम को लोग घृणा की दृष्टि से देखने लगे होंगे और इस प्रकार उसकी उपेक्षा कर दी होगी। लाखों-करोड़ों मनुष्य, जो दुनिया के हीरे थे और जिनके उद्योग पर यह देश जी रहा था, वे तो नीच समझे जाने लगे, और ऊपर से बड़े दीखनेवाले थोड़े-से अहदी आदमियों का वर्ग समझा जाने लगा प्रतिष्ठित! इसका दुःखद परिणाम यह हुआ, कि भारत को नैतिक और आर्थिक दोनों ही प्रकार की भारी क्षति पहुँची। यह हिसाब लगाना असंभव नहीं, तो कठिन ज़रूर है, कि इन दोनों में से कौन बड़ी हानि हुई। किन्तु किसानों और कारीगरों के प्रति की गई इस अपराधपूर्ण लापरवाहीने हमें दरिद्र, मूढ़ और काहिल बनाकर ही छोड़ा। भारत के पास क्या साधन नहीं हैं। उसका सुन्दर जल-वायु, उसके गगनचुंबी पर्वत, उसकी विशाल नदियाँ और उसका विस्तृत समुद्र, ये सब ऐसे असीम साधन हैं, कि अगर इन सबका पूरा-पूरा उपयोग किया जाय, तो इस स्वर्ण देश में दारिद्र्य और रोग आवें ही क्यों? पर जब से हमने शारीरिक श्रम से बुद्धि का संबन्ध छुड़ाया, तबसे हमारी क़ौम का सब तरह से पतन हो गया, दुनिया में आज हम सबसे अल्पजीवी, निपट साधनहीन और अत्यन्त पराजित माने जाते हैं। चमड़े के देशी धंधे की आज जो हालत है, शायद वह मेरे इस कथनका सबसे अच्छा सुबूत है। यह तो स्व० मधुसूदनदासने मेरी आँखें खोलीं, नहीं तो मैं क्या जानता था, कि देश के लाखों मनुष्योंके साथ कितना बड़ा जुर्म किया गया है। मधुसूदनदासजीने राष्ट्र के इस महान् पाप का प्रायश्चित्त एक ऐसा चर्मालय खोल कर किया, जिसमें चमड़ा कमाने का हुनर सिखाया जाता है। उनकी सब आशाएँ तो पूरी नहीं हुईं, पर कटक में सैकड़ों जूते बनानेवालों को वे जीविका तो दे ही गये।

हिसाब लगाकर देखा गया है, कि नौ करोड़ रुपये का कच्चा चमड़ा हर साल हिंदुस्तान से बाहर जाता है और वह सब-का-सब बनी-बनाई चीज़ों के रूप में फिर यहाँ वापस आजाता है। यह देश का सिर्फ आर्थिक ही नहीं बौद्धिक शोषण भी है। चमड़ा कमाने और अपने नित्य के उपयोग में आनेवाली उसकी अनगिनती चीज़ों के बनाने की शिक्षा हमें आज कहाँ मिल रही है? इस हुनर में काफी वैज्ञानिक दिमाग़ चाहिए। हज़ारों रसायन-विशारद चाहें तो इस महान् उद्योग में अपनी आविष्कारिणी शक्ति का काफी उपयोग कर सकते हैं। इसे विकसित करने के दो रास्ते हैं। एक तो यह है कि जो हरिजन गाँवों में रहते हैं, और गाँव की ख़ास बस्ती से दूर, समाज के संसर्ग से अलग, टूटे-फूटे गंदे झोपड़ों में पड़े सड़ रहे हैं, और बड़ी मुश्किल से बेचारे किसी तरह पेट पाल रहे हैं, उनकी मदद करके उन्हें ऊँचा उठाया जाय। इसका यह भी अर्थ है, कि गाँवों के पुनर्संगठन में अर्थात् कला, शिक्षा, स्वच्छता, समृद्धि और प्रतिष्ठा की वहाँ पुनर्स्थापना करने में हमारे रसायन-विशारदों की बुद्धि का उपयोग हो। रसायन-शास्त्रियों को चाहिए कि वे चमड़ा कमाने की अच्छी-से-अच्छी वैज्ञानिक क्रियाएँ ढूँढ़ निकालें। गाँव के रसायन-शास्त्री को नम्रतापूर्वक इस कला पर अधिकार करना है। चमड़ा कमाने की अनघड़ कला गाँवों में अभी जीवित है, पर वह उत्तेजन न मिलने से ही नहीं, बल्कि दुर्लक्ष्य के कारण भी बड़ी तेज़ी से लुप्त होती जा रही है। इस कला को इन रसायन-शास्त्रियों को सीखना और समझना चाहिए। उस अनघड़ तरीके को एकाएक नहीं छोड़ देना चाहिए, पहले कम-से-कम इसकी अच्छी तरह परीक्षा तो होनी ही चाहिए। इस पद्धति से सदियों तक बड़ी अच्छी तरह काम चला है। अगर इसमें कोई गुण न होता, तो उससे यह काम न चलता। जहाँतक मैं जानता हूं, हमारे देश में एक शांतिनिकेतन में ही इस विषय की कुछ खोजबीन हो रही है। इसके बाद साबरमती-आश्रम में इस काम का आरम्भ किया गया। शांतिनिकेतन का प्रयोग कितनी उन्नति कर गया है इसका पता मैं नहीं लगा सका। साबरमती-आश्रम के स्थान पर अब जो हरिजन-आश्रम है, उसमें इस काम के फिर से आरम्भ करने की पूरी संभावना है। यह शोध-कार्य तो समुद्र के समान है; उसमें हमारे इन प्रयोगों को तो आप बिन्दुमात्र ही समझें।

गोरक्षा हिन्दुधर्म का एक अविभाज्य अंग है। कोई भी असल हरिजन खाने के लिए गाय भैंस को नहीं मारेगा। किन्तु अस्पृश्य बनकर उसने मुर्दार मांस खाने की बुरी आदत सीख ली है। वह गाय की हत्या तो नहीं करेगा, पर मरी हुई गाय का मांस बड़े ही स्वाद से खायगा। शारीरिक दृष्टि से यह मांस शायद हानिकारक न हो, पर मानसिक दृष्टि से तो मुर्दार मांस खाने की तरह घृणा पैदा करनेवाली दूसरी चीज़ है ही नहीं। तो भी चमार के घर में जब मरी हुई गाय आती है, तब उसका सारा कुटुम्ब आनन्दोत्सव में फूला नहीं समाता। बालक तो लाश के चारों ओर नाचने लगते हैं, और जब उसकी खाल उधेड़ी जाती है, तब हड्डियां और मांस के लोथड़ों को एक दूसरे पर फेंकते हैं। अपना घरबार त्यागकर हरिजन-आश्रम में जो एक चमार रहता है, उसने ख़ुद अपने घर का ख़ाका खींचते हुए मुझसे कहा, कि मुर्दार जानवर को देखते ही चमार का सारा कुटुम्ब आनन्द-विह्वल हो जाता है। मैं ही जानता हूँ, कि हरिजनों के बीच काम करते हुए उनसे मुर्दार मांस खाने की यह आत्मघातिनी कुटेव छुड़ाने में मुझे कितनी कठिनाई पड़ी है। पर चमड़ा कमाने की रीति में सुधार हो जाय, तो मुर्दार मांस का यह रिवाज तो आप ही नष्ट हो जायगा।

इसमें भारी बुद्धि और चीरफाड़ की कला की ज़रूरत है। गोरक्षा की दिशा में भी इस काम के सहारे हम काफ़ी आगे बढ़ सकते हैं। अगर हमने गाय की दूध देने की शक्ति बढ़ाने की कला को न सीखा, उसकी संतति में हमने सुधार न किया और उसके बछड़े को खेती और गाड़ी खींचने के काम के लिए अधिक

उपयोगी न बनाया, गाय के गोबर व मूत्र का खाद में उपयोग न किया, और गाय और उसके बछड़ों के मरने पर उनकी खाल हड्डियों, मांस, अँतड़ियों आदि का अच्छे-से-अच्छा उपयोग करने को अगर हम तैयार न हुए, तो गाय को कसाई के हाथों तो मरना ही है।

अभी तो मैं सिर्फ़ मुर्दार लाशों की ही बात कर रहा हूँ। यहाँ हमें इतना भलीभाँति स्मरण रखना चाहिए, कि ईश्वर की कृपा से गाँवों में चमार को क़त्ल किये हुए ढोरों की नहीं, किंतु केवल मौत से मरे हुए ढोरों की ही खाल उधेड़नी पड़ती है। उसके पास मरे हुए ढोर को अच्छी तरह उठा ले जाने का कोई साधन नहीं है। वह उसे उठाता है, घसीटता है, और इस से खाल ख़राब हो जाती है। कटे-फटे उतरे हुए चमड़े के दाम भी कम मिलते हैं। चमार जो अनमोल और सुन्दर समाज-सेवा करता है उसका अगर गाँववालों और जनता को भान हो, तो वे लाश उठा ले जाने का कोई ऐसा आसान और सादा तरीक़ा ढूँढ निकालेंगे जिससे चमड़े को ज़रा भी नुक़सान न पहुँचने पायगा।

इसके बाद की क्रिया है ढोर की खाल उतारने की। इसमें भारी सुघड़ता की ज़रूरत है। मैंने सुना है, कि गाँव का चमार अपनी गाँव की बनी छुरी से इस चीर-फाड़ को जिस कुशलता से और जितनी जल्दी करता है, उस सुघड़ाई से और उतनी जल्दी कोई भी, बल्कि डाक्टर भी, नहीं कर सकता। इस विषय का जिन्हें ज्ञान होना चाहिए, उनसे मैंने इस संबंध में जब पूछताछ की, तो गाँव के चमार के चीरफाड़ के ढंग से बेहतर तरीक़ा वे मुझे नहीं बता सके। पर इसका यह अर्थ नहीं कि इससे बढ़कर तरीक़ा कोई दूसरा है ही नहीं। मैं तो पाठकों को अपने अत्यन्त सीमित अनुभव का लाभ बता रहा हूँ। गाँव का चमार हड्डियों का कुछ भी उपयोग नहीं कर सकता। हड्डियों को तो वह फेंक देता है। खाल उधेड़ते वक़्त लाश के इर्द गिर्द जो कुत्ते घूमते रहते हैं, वे सब नहीं तो कुछ हड्डियों को तो उठा ही ले जाते हैं। कुत्तों की छीना-झपटी से बाक़ी जो बच रहती हैं, वे विदेश को भेज दी जाती हैं, और वहाँ से मूठ, बटन वग़ैरा के रूप में वे यहीं फिर वापस आजाती हैं। इन हड्डियों का अगर अच्छा चूरा बना लिया जाय, तो उसका बहुत बढ़िया खाद हो सकता है।

दूसरा रास्ता इस महान् उद्योग को शहरों में ले आने का है। हिन्दुस्तान में चमड़े के कई कारख़ाने आज यह काम कर रहे हैं। उन सबकी परीक्षा करना इस लेख का उद्देश नहीं है। शहरों में इस उद्योग के ले आने से हरिजनों को शायद ही कोई फ़ायदा हो सके, गाँवों को तो कुछ भी लाभ पहुँचने का नहीं। इससे तो गाँवों की दूनी बर्बादी ही होगी। भारत में उद्योग-धंधों को शहर में ले आने और बड़े-बड़े कारख़ानों के द्वारा उन्हें चलाने का अर्थ है गाँवों और गाँवों की जनता को धीरे-धीरे पर अचूक रीति से मौत के मुँह में डाल देना। शहर के उद्योग भारत के सात लाख गाँवों में बसनेवाली उसकी ९० फ़ीसदी जन-संख्या को कभी सहारा नहीं दे सकते। गाँवों से चमड़े के धंधे को तथा ऐसे ही दूसरे उद्योगों को हटा देने का तो यही अर्थ होगा, कि वहाँ हाथ और बुद्धि के कौशल को काम में लाने का जो थोड़ा सा अवसर अभी किसी तरह बच रहा है वह भी उनसे छीन लिया जाय। और जब गाँव के उद्योग-धंधे नष्ट हो जायँगे, तब ढोरों को लेकर खेत में मजूरी करना और बरसात के छै या चार महीने आलस में बैठे-बैठे बिताना, बस इतना ही ग्रामवासियों के नसीब में रह जायगा। ऐसा हुआ, तब तो स्व० मधुसूदनदास के शब्दों में यही कहना चाहिए, कि गाँव के मनुष्य जानवरों जैसे ही हो जायँगे, न तो उन्हें मानसिक पोषण कहीं से मिलेगा, न शारीरिक, और इससे उनकी आशा और आनंद भी नष्ट ही समझिए।

यहाँ शत प्रतिशत स्वदेशी-प्रेमी के लिए काम पड़ा हुआ है। साथ ही एक बहुत बड़े सवाल के हल करने में जिस वैज्ञानिक ज्ञान की आवश्यकता है उसे काम में लाने का क्षेत्र भी मौजूद है। इस एक काम से तीन अर्थ सधते हैं। एक तो इससे हरिजनों की सेवा होती है, दूसरे ग्रामवासियों की सेवा होती है, और तीसरे मध्यम वर्ग के जो बुद्धिशाली लोग रोज़गार-धन्धे की खोज में बेकार फिरते हैं, उन्हें जीविका का एक प्रतिष्ठित साधन मिल जाता है। और यह लाभ तो जुदा ही है, कि गाँव की जनता के सीधे संसर्ग में आने का भी उन्हें सुन्दर अवसर मिलता है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

भयंकर अत्याचार

तलाजा के आसपास हरिजनों पर जो अत्याचार हो रहा है उसकी ख़बरें मेरे पास चारों तरफ़ से आरही हैं। इन समाचारों में, संभव है, कुछ अतिशयोक्ति भी हो, पर उस अतिशयोक्ति को बाद देकर बाक़ी का वर्णन जो बच रहता है, वह भी इतना भयंकर है, कि उससे हृदय काँप उठता है। यह कल्पना भी नहीं की जा सकती, कि मनुष्य ऐसी निर्दयता से काम लेता होगा।

और दुःख तो यह है, कि हरिजन बेचारे बिलकुल निर्दोष हैं। ढोरों पर महामारी आवे और उसमें वे मरें, पर दोष दिया जाय ग़रीब हरिजनों को !! लोग उन्हें देखकर आपे से बाहर हो जाते हैं और उन्हें इतना पीटते हैं कि बेचारे मरण-तुल्य हो जाते हैं, कोई-कोई तो मर भी जाता है। मारे त्रास के घरबार छोड़-छोड़कर वे भाग रहे हैं।

इससे और भी दुःख होता है, कि ऐसे-ऐसे वाक़यात भावनगर-जैसे अनुकरणीय राज्य में हो रहे हैं। मेरे यह कहने का आशय राज्य के दोष काढ़ने का नहीं है। मुझे जो चिट्ठियाँ और तार मिले हैं उनसे मालूम होता है कि राज्य के अधिकारी बराबर जाग्रत हैं। और मुझे आशा है, कि इस हत्याकाण्ड की पूरी-पूरी तहक़ीक़ात होगी और निर्दोष हरिजनों के साथ न्याय किया जायगा; साथ ही कोई ऐसी योजना राज्य की ओर से बना दी जायगी जिससे फिर कभी निर्दोष हरिजनों पर ऐसा अत्याचार न होने पाये।

दुःख होने का कारण तो यह है, कि प्रगति-शील राज्य में भी बहुत-से लोगों के हृदय हरिजनों के प्रति पत्थर-जैसे ही हैं, उन्हें वे जानवरों से भी हेय समझते हैं, और किसी हरिजन को मारडालने या मारते-मारते अधमरा कर देने में उन्हें न तो संकोच होता है, न फाँसी या कालेपानी की सज़ा का ही भय रहता है। कुत्ते-बिल्लियों को अगर अधमरा कर डालने या मारडालने में राज्य का अथवा ईश्वर का भय किसी को हो, तो हरिजनों को भी मारने-पीटने या मारडालने का भय हो, यह गणित-जैसी युक्ति बहुधा देखने-सुनने में आती है।

राज्य इसमें अधिक सहायता करे ही क्या ? राज्य तो घटना

हो चुकने के बाद ही इन्साफ़ करेगा, गुनहगार गाँव से तो वह तभी बदला लेगा। पर जहाँ लोकमत इस विषय में दृढ़ न हो वहाँ राज्य के प्रयत्न का कोई बड़ा परिणाम नहीं निकल सकता। तकाजा के हत्याकाण्ड के अंदर एक घोर अज्ञान और वहम समाया हुआ है। इस अज्ञानान्धकार को दूर करने का काम तो हरिजन-सेवकों का है। लोगों को उन्हें बताना चाहिए, कि यह महामारी तो किसी-किसी साल सारी दुनियाँ में फैली हुई देखी जाती है, पर ऐसा वाहियात वहम तो हिन्दुस्तान ही में देखने-सुनने में आता है, हिन्दुस्तान के बाहर और किसी देश में तो ऐसी अजीब बात आजतक सुनने में आई नहीं। वहाँ तो लोग ढोरों के ऐसे रोग को आसमानी मार ही समझते हैं और उसे नेस्तनाबूद करने के लिए उचित उपायों की योजना बनाते और ढोरों को दवादारू देते हैं। ऐसे ज्ञान-प्रकाश का प्रसार अज्ञानान्धकार में डूबे हुए गाँवों में अवश्यमेव होना चाहिए।

एक हरिजन भाई का इस विषय का एक हृदय-द्रावक पत्र मेरे पास आया है, जो हर सवर्ण हिंदू के पढ़ने लायक है। उस पत्र का मुख्य अंश मैं नीचे देता हूँ:—

"इधर कुछ दिनों से काठियावाड़ में ढेड़-भंगी भाइयों पर ऐसा सितम ढाया जारहा है, कि देखकर खून उबलने लगता है; और यह जुल्म उन पर हमारे सवर्ण भाइयों की ओर से ढाया जारहा है! जो काठियावाड़ आपका तथा पूज्य श्रीठक्कर बापा का केन्द्र-स्थान समझा जाता है, जो काठियावाड़ कितने ही साधु-सन्तों की जन्मभूमि माना जाता है उसी काठियावाड़ से आज ऐसी-ऐसी दिल-दहलानेवाली भयंकर खबरें आरही हैं। एक तरफ़ तो हरिजनों के लिए आप अपने प्राणों की बाज़ी लगाये बैठे हैं, और दूसरी तरफ़ काठियावाड़ के सवर्ण हिन्दू ऐसे-ऐसे अन्याय कर रहे हैं कि जो न तो मनुष्यता को छाजते हैं न हिन्दूधर्म को ही। काठियावाड़ के तमाम गाँवों में तथा आसपास के और कितने ही गाँवों में ढोरों में महामारी फैली हुई है और उससे वे मर रहे हैं। इस मौत की जवाबदेही हरिजनों के मत्थे मढ़कर सवर्ण हिन्दू उनपर बेरहमी से लाठियाँ बरसाते हैं। रोग तो फैला हुआ है कुदरती कारण से या गन्दगी की वजह से और जवाबदार समझे जाते हैं बेचारे निर्दोष हरिजन, क्या आँखों के अछत भी यह अन्धे-जैसी बात नहीं है? इन अत्याचारों का वर्णन जो अखबारों में आरहा है, उसे देखकर तो मैं रो पड़ता हूँ और दिल दहल जाता है। चाहे कितने ही कठोर हृदय का मनुष्य हो, इस जुल्म की खबर सुनकर तो वह भी एक बेर काँप जायगा। फिर यह खबरें जब आपतक पहुँचेंगी, तब आपके दिल पर कितना आघात पहुँचेगा, क्योंकि आप तो हमारे तारण-हार हैं। सवर्ण हिन्दू भाइयों को आज यह क्या हो गया है! आप शास्त्र इत्यादि के प्रमाण दे-देकर हरिजनों के प्रति भाईचारे का बर्ताव करने के लिए सवर्ण भाइयों को समझा रहे हैं, किन्तु काठियावाड़ के सवर्णों की आँख पर तो जैसे पर्दा पड़ गया है। लाठियों की मार से बेचारा एक भंगी भाई चल ही बसा। उसकी विधवा स्त्री ढाड़ मारमारकर रो रही है। उस के अनाथ बच्चे बिलप रहे हैं। कितने ही हरिजनों के हाथ-पैर मारे मार के सूज गये हैं, बेचारे दुःख से कलप रहे हैं। उन असहाय हरिजनों को मदद देकर आप इस भयंकर अत्याचार से बचाइए।"

'हरिजन-बन्धु' से] मो० क० गांधी

एक छोटा-सा प्रायश्चित्त

"जाति का मैं ब्राह्मण हूँ और एक अंग्रेज़ी पाठशाला में अध्यापक का काम करता हूँ, और सनातनधर्म का आचार-विचार पालने का प्रयत्न कर रहा हूँ। गत वर्ष यरोडा जेल में आपने आमरण उपवास आरम्भ किया और सरकारने आपको छोड़ दिया। जेल से छूटने पर आपने पूरे एक वर्षतक केवल हरिजन-सेवा करने कीप्रतिज्ञा की। उस समय मैंने भी एक छोटी-सी प्रतिज्ञा यह की कि, इस एक वर्ष में बैंक से जो ब्याज मुझे मिलेगा वह सब-का-सब साल के अन्त में आपके पास भेज दूँगा। आज ब्याज के सात रुपये मनीआर्डर से 'मंत्री, गुजरात-हरिजन-सेवक-संघ, अहमदाबाद, के नाम मैं भेज रहा हूँ। मेरी इस छोटी-सी रक़म को कृपाकर आप हरिजन-सेवा-कार्य में लगादें।

इस वर्ष पुरुषोत्तम मास पड़ा था। पुरुषोत्तम मास के अन्त में कितने ही लोग ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं। मैंने हरिजन को भोजन कराने की प्रतिज्ञा की थी। छुट्टियों में मैं अपने गाँव गया। मास के अन्त में, एक हरिजन बहिन से नहा-धोकर भोजन लेने के लिए आने को कह दिया। भगवान् को नैवेद्य आरोग कर पहली थाली तुरन्त उस हरिजन बहिन को देने के लिए रसोई से निकालकर रख ली। मैंने जूठन न देने की प्रतिज्ञा कर रक्खी है। उस बहिन को थाली देकर पीछे मैंने भोजन किया। जब मैं संध्या-पूजा करके अपने झरोखे के पास खड़ा होता हूँ तब किसी आते-जाते हरिजन का दर्शन करके मैं मानता हूँ कि मेरी ब्राह्मण जाति कृतार्थ हो गई। मेरे गाँव में एक सनातनी शास्त्रीजी महाराज रहते हैं। गाँव में मेरे पहुँचने के पहले उन शास्त्रीजीने एक सभा की थी। शास्त्रीजी मेरे पड़ोसी हैं और मेरे ऊपर उनका बहुत ही स्नेह रहता है। अबतक वह मुझे एक चुस्त सनातनी समझते थे, इसलिए मुझमें यह परिवर्तन देखकर उन्हें अचरज लगता है। सुनने में आया, कि शास्त्रीजी की सभा में दस हज़ार की जन-संख्या के गाँव में से सिर्फ़ चालीस ही आदमी गये थे। मैंने इन शास्त्रीजी के साथ दो-तीन बार हरिजन-कार्य के विषय में सवर्णों के सामने बात की है। नम्रता और आदर-पूर्वक मैंने उन्हें दलीलें दे-देकर समझाया है। उन्हें मेरे ऊपर क्रोध करने का कोई कारण नहीं मिला। विरोध तो उनका केवल हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश के सम्बन्ध में है। आपकी बात मैंने उन्हें सुनाई और समझाई। हमारी बातचीत में खूब शान्ति और विनय रही। वातावरण को शुद्ध बनाने की ही मेरी इच्छा है।

अस्पृश्यता-निवारण का यह धर्मयुद्ध आत्मशुद्धि के लिए है इस विश्वास से, और भगवान् श्री रामचन्द्रजी सनातनियों के हृदय में वास करें इसके निमित्त मैंने सम्पूर्ण वाल्मीकि-रामायण का पारायण कर डाला, और सच्चे हृदय से प्रभु रामचन्द्र से प्रार्थना की कि वे सनातनियों के हृदय में वास करें।

मैं जिस पाठशाला में अध्यापन-कार्य करता हूँ उसमें ऊँची जाति के सवर्णों के बालक पढ़ते हैं। उनसे मैं आपका अंग्रेज़ी-'हरिजन' और गुजराती 'हरिजन-बन्धु' बँचवाया करता हूँ। हरिजन-सेवा का रहस्य भी मैं उन्हें समझाता हूँ, और इस सब में मेरा हेतु रहता है केवल हृदय-परिवर्तन का।

हरिजन-बस्ती में एक पुराना कुआँ मिट्टी से पुरा हुआ पड़ा था। विचार आया, कि इसे फिर से खुदवाकर ठीक करा दिया

जाय, तो हरिजनों की चौपाल में पानी पीने की कठिनाई दूर हो जाय। हमारे यहाँ ग्राम-पंचायत के अध्यक्ष एक ब्राह्मण हैं। वह मेरे स्नेही हैं। उनसे मैं मिला और कुआँ दिखाकर मैंने उनसे कहा, कि पैसे का प्रबन्ध तो मैं करा दूँगा, पर पंचायत में हमारे यहाँ दो दल हैं, इसलिए हो सकता है कि एक दल का काम दूसरे दल को पसन्द न पड़े और इस अच्छे काम को भी वह विरोधी-पक्ष बिगाड़ दे। इसपर उन्होंने कहा कि तुम विरोधी दल के नेता से मिलो और अगर वह राज़ी हो जायँ तो यह काम तुरन्त संपन्न हो सकता है। विरोधी पक्ष के वह मुखिया भी मुझपर वैसा ही स्नेह रखते हैं। मैं उन्हें भी आप के धर्मकार्य का रहस्य समझाता रहता हूँ और वह आपके हरिजन-कार्य में दिलचस्पी भी रखते हैं। मैंने उनसे कुएँ के बारे में बात की, तो उन्होंने कहा कि इस पवित्र कार्य में मैं बाधा नहीं दूँगा, इतना ही नहीं बल्कि मैं खुद ही नगर-सभा में इस धर्म-कार्य के लिए २००) का प्रस्ताव रखूँगा। मैंने यह बात अध्यक्षजी से जाकर कही। सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए। थोड़े ही दिन सभा में इस विषय का प्रस्ताव पेश हुआ और सर्वसम्मति से वह पास भी हो गया। कुएँ का काम अध्यक्ष की देखरेख में आरम्भ हो गया है। अध्यक्ष एक सच्चे सनातनी हैं। जब-जब वे मुझे मिलते हैं, मैं आपके धर्म-कार्य का रहस्य उन्हें समझाता हूँ। आपके प्रेम-मार्ग का रहस्य अधिक-से-अधिक ऐसे दृष्टान्त से समझा जा सकता है।

इस तरह जब-जब और जहाँ-जहाँ ईश्वर मुझे अवसर देता है, तहाँ-तहाँ और तब-तब मैं सवर्णों को यथामति और यथाशक्ति इस 'शुद्धि-यज्ञ' का रहस्य समझाने की चेष्टा करता हूँ, क्योंकि शुद्ध वातावरण की, जिसे आप 'हृदय-परिवर्तन' कहते हैं, इस कार्य में ख़ास ज़रूरत है। हरिजनों के साथ भी स्वच्छता इत्यादि के विषय में समय-समय पर बातचीत किया करता हूँ।

इस प्रकार से यहाँ अस्पृश्यता-पाप का एक छोटा-सा प्रायश्चित्त कर रहा हूँ।"

इस पत्र के लिखनेवाले भाईने अपना नाम और पता-ठिकाना दिया है। पर नाम-धाम ज़ाहिर कर देने से मूक सेवा का मूल्य कहीं कम न हो जाय, इसलिए मैं उसे प्रकाशित नहीं कर रहा हूँ। इस प्रकार की मूक सेवा से ही अस्पृश्यता का निवारण हो सकता है।

'हरिजन-बन्धु' से] मो० क० गांधी

एक हरिजन भाई की शिकायतें

पूना के श्री पी० एन० राजभोज का गांधीजी के पास एक पत्र आया है, जिसमें उन्होंने बहुत-सी शिकायतें लिखी हैं, साथ ही अनेक नई बातें भी सुझाई हैं। उस पत्र की ख़ास-ख़ास शिकायतें व कुछ तजवीज़ें संक्षिप्तरूप में नीचे दी जाती हैं:—

"१—हरिजन-बोर्ड की कार्य-समितिमें जितने इतर जन हैं, उतने ही हरिजन होने चाहिएँ।

२—हरिजन-कोष का पैसा जिन कामों में ख़र्च किया जाता है, उसका ब्योरेवार पूरा-पूरा हिसाब-किताब प्रकाशित होना चाहिए।

३—संघ को अपनी शक्ति और धन को मुख्यतया रचनात्मक कार्यों—जैसे, हरिजनों को कुओं व धर्मशालाओं आदि के नागरिक अधिकार दिलाने तथा सवर्ण हिंदुओं के बिलकुल बराबरी से दूकानें खुलवाने और रोज़गार-धंधे चलवाने के—कार्यों में ही लगाना चाहिए, न कि मन्दिर-प्रवेश के कार्य में।

४—स्वतंत्र हरिजन-संस्थाओं को हरिजन-सेवक-संघ की ओर से न तो आवश्यक सहायता ही मिलती है, न प्रोत्साहन ही।

५—महाराष्ट्रीय हरिजन-बोर्ड में ब्राह्मण-ही-ब्राह्मण भरे हुए हैं, जबकि उन पदों पर सुयोग्य हरिजन बड़ी अच्छी तरह से नियुक्त किये जा सकते हैं।"

इस पत्र का गांधीजीने निम्नलिखित उत्तर दिया है:—

"आपका २५ अगस्त का पत्र पढ़कर मुझे आश्चर्य हुआ, क्योंकि हरिजन-सेवक-संघ के कार्य के प्रति इधर आपने जो रुख़ अख़्तियार किया है, वह आपके पहलेके रुखसे बिलकुल उलटा है। मेरे साथ आपका जो पत्र-व्यवहार और वार्तालाप हुआ था, उसमें तो ऐसी कोई बात नहीं थी। हो सकता है, कि इधर के अनुभवने अब आपकी राय बदल दी हो। अगर ऐसी बात है, तो मुझे यही कहना पड़ेगा, कि आपने संघ की यह टीका कुछ सुनी-सुनाई अधूरी बातों के आधार पर ही की है।

यह तो आपको मालूम ही है, कि मैं सैकड़ों बार अपनी यह राय ज़ाहिर कर चुका हूँ, कि हरिजन-सेवक-संघ तो 'प्रायश्चित्त करनेवालों' का संघ है। इसलिए हरिजनों का बहुमत तो उसमें हो ही नहीं सकता। वह असल में हरिजनों का नहीं, किंतु 'हरिजन-सेवकों' का संघ है। प्रायश्चित्त की भावनावाले सवर्ण हिंदू जो सब से उपयुक्त ढंग समझेंगे, उसी के अनुसार यह संघ अस्पृश्यता-पाप का प्रायश्चित्त करेगा। हरिजनों को अगर वह ढंग पसंद न पड़ा, तो सचमुच वह दुर्भाग्य की ही बात होगी। तब प्रायश्चित्त-कर्ताओं को फिर प्रयत्न करना होगा। किंतु कटु अनुभवों से ही तो उन्हें प्रायश्चित्त की कला को सीखना है।

जैसाकि मैंने ख़ुद अनेकबार आपसे कहा है, और मेरा ख़याल है कि आप सहमत भी थे, हरिजन-सेवक-संघको नीति को प्रभावित करने का बेहतर और अधिक असरदार तरीक़ा तो यह होगा कि स्थानीय संघों के कार्यों को सहानुभूतिपूर्वक समझने के लिए स्थानीय हरिजन पहले अपने प्रातिनिधिक परामर्शदायक-मंडल बना लें, और तब वे उन संघों को सलाह दें, उनकी टीका करें और उनके सामने ठोस रचनात्मक सूचनाएँ रखें। ऐसे परामर्श-मंडल अगर सब जगह बन जायँ, तो हरिजन-बोर्डों का काम ख़ुद ब ख़ुद अधिक प्रभावोत्पादक हो जाय। पर इस मौजूदा हालत में भी हरिजन-बोर्डों के लिए लज्जित होने का कोई कारण नहीं। अगर आप नियमपूर्वक प्रत्येक सप्ताह का 'हरिजन' पढ़ें तो यह जानकर आपको अवश्य आश्चर्य होगा, कि हिंदुस्तान भर के हरिजनों के उत्थान-कार्य पर संघ किस प्रकार पैसा ख़र्च कर रहा है। दफ़्तर के काग़ज़-पत्रों से आप यह मालूम कर सकते हैं कि हरिजनों-द्वारा संचालित कितनी ही संस्थाओं को हरिजन-बोर्डों की तरफ़ से बराबर कुछ-न-कुछ सहायता मिल रही है। अगर आप आँकड़ों को ध्यान से देखेंगे, तो आपको यह भी मालूम हो जायगा, कि हरिजनों तथा हरिजन-संस्थाओं के बीच साहाय्य-धन का यह वितरण दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा है। और इसपर ख़ास ध्यान रखा जाता है, कि हरिजन-सेवार्थ संग्रहीत धन का यह वितरण निष्पक्षपात रीति से हो रहा है कि नहीं।

आपका यह ख़याल तो बिलकुल ही ग़लत है, कि ख़र्चे का हिसाब-किताब प्रकाश में नहीं आता। प्रांतीय संघों का कार्य-विवरण समय-समय पर बराबर प्रकाशित होता रहता है। लोग जब चाहें तब हिसाब-किताब के काग़ज़ात देख सकते हैं। 'हरिजन' के पृष्ठ पलटकर आप चाहें तो मेरे कथन की यथार्थता को जाँच सकते हैं। स्थानीय बोर्डों से उनकी रिपोर्ट मँगाकर भी आप इतमीनान कर सकते हैं। मैं ठक्कर बापा को लिख रहा हूँ, कि वे 'हरिजन' में प्रकाशनार्थ मेरे पास संघ का पूरा प्रामाणिक हिसाब भेज दें। यह सब देखकर आपको स्वयं आश्चर्य होगा कि समस्त हिंदुस्तान भर की हरिजन-संस्थाओं और हरिजन विद्यार्थियों पर संघ किसतरह कितना पैसा ख़र्च कर रहा है।

अब रही मंदिर-प्रवेश की बात, सो आप देखेंगे, कि संघने मंदिरों के खुलवाने या नये मंदिरों के बनवाने में अमल में कुछ भी ख़र्च नहीं किया। अपने नौ मास के प्रवास में मैंने जितने भाषण दिये, उन सब में आप देखेंगे, कि मन्दिर-प्रवेश के प्रश्न का शायद ही कहीं ज़िक्र आया होगा। 'हरिजन' में इसे आप देख सकते हैं। हरिजन-सेवक-संघोंने तो ऐसे ही कामों पर अपना ध्यान एकाग्र कर रखा है, कि जिनकी आपने अपने इस पत्रमें चर्चा की है। संघोंने अगर उन तमाम कामों को हाथ में नहीं लिया, तो इसका यह मतलब नहीं, कि उनकी ऐसी इच्छा नहीं है; बात यह है, कि उन तमाम कामों को तुरन्त हाथ में ले लेने की क्षमता या योग्यता का अभी उनमें अभाव है।

महाराष्ट्र के हरिजन-बोर्ड पर आपने जो आक्रमण किया है वह ठीक नहीं। आप जानते हैं, कि महाराष्ट्र प्रांतीय संघ के अध्यक्ष श्री देवधर हैं, जो हरिजन-कार्य के एक ही हिमायती हैं। हरिजन-बोर्ड का जन्म तो अभी-अभी हुआ, पर श्री देवधर को तो इस काम को हाथमें लिए एक ज़माना हो गया है, शायद हममें से बहुतों का तब जन्म भी न हुआ होगा। जहाँतक मैं जानता हूँ, इस सुधार-कार्य के सम्बन्ध में लापर्वाही दिखाने का आजतक किसीने उन पर इलज़ाम नहीं लगाया। स्थानीय बोर्ड के खिलाफ़ अगर आपको कुछ ख़ास शिकायतें हों, तो क्या आपके ख़याल में आपका सर्वप्रथम कर्तव्य यह नहीं है, कि उन शिकायतों को आप स्थानीय बोर्ड के दफ़्तर में भेजदें, और वहाँ आपकी शिकायतें दूर न हों या संतोषजनक उत्तर न मिले तो संघ के प्रधान कार्यालय में अपने मामले की अपील करें? इतने पर भी जब आप देखें, कि आपकी शिकायतों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया, तब आपको पूरा अख़्तियार है, कि पब्लिक के सामने उन बोर्डों का कच्चा चिट्ठा खोलकर रखदें। पर यह तो आपका महाराष्ट्र प्रांतीय संघ के विरुद्ध एक बे-सिरपैर का ही अभियोग है, जिसके प्रति, मेरी रायमें, अच्छा सौम्य व्यवहार होना चाहिए।"

म० ह० देसाई

वर्धा ज़िले के दो छात्रालय

जब मैं पिछले महीने महात्माजी के उपवास के दिनों में वर्धा में था, तब मुझे उस ज़िले के दो हरिजन-छात्रालय देखने का अवसर मिला था—एक तो ख़ास वर्धा में है और दूसरा आर्वी में। इन दोनों छात्रालयों में अंग्रेज़ी पढ़नेवाले हरिजन विद्यार्थी रहते हैं। वर्धावाले छात्रालय को खुले तो अभी एक ही वर्ष हुआ है, पर आर्वी का हरिजन-छात्रालय सात साल से चल रहा है। सवर्ण हिंदुओं के ही ख़ास उद्योग से ये दोनों छात्रालय चल रहे हैं। सुपरिंटेंडेंट दोनों जगह हरिजन हैं।

वर्धा के छात्रालय में ११ लड़के हैं—८ लड़के तो बोर्डिंग में ही भोजन करते हैं, और ३ सिर्फ़ वहाँ रहते और अध्ययन करते हैं, भोजन अपने घर पर माँ-बाप के साथ करते हैं। बोर्डिंग के ८ लड़कों में ६ तो महार जाति के हैं और २ माँग जाति के। माँग लड़कों को दाख़िल हुए अभी दो ही महीने हुए हैं। जब ये भरती हुए तो दूसरे लड़के ज़रा घबराये। बात यह है, कि समाज में माँगों का दरजा महारों से नीचा समझा जाता है। कुछ महार लड़कोंने तो इसके विरोधस्वरूप होस्टल ही छोड़ दिया था, पर छात्रालय के प्रबन्धक इससे विचलित नहीं हुए। अब तो सब लड़के भाई-भाई की तरह बड़े प्रेम से एकसाथ रहते हैं।

आर्वी का छात्रालय पुराना ही नहीं, बड़ा भी है। म्यूनिसि-पल बोर्डने इसके लिए एक छोटा-सा मकान भी बनवा दिया है। इसमें २२ लड़के हैं, जो सब महार हैं। सुपरिंटेंडेंट, मय अपनी गृहस्थी के, छात्रालय में ही प्राचीन कुलपतियों की नाईं रहते हैं। कुछ लड़के तो ऐसे हैं, जो भोजन का पूरा ख़र्च अपने घर से देते हैं और कुछ आधा ख़र्चा तो देते हैं नक़द और थोड़ा नाज-पानी घर से मँगा लेते हैं। पैसे की यहाँ बहुत ही तंगी रहती है, न तो सरकार से ही कोई सहायता मिलती है, न स्थानीय हरिजन-सेवक-संघ से ही। १८६० के एक्ट ११ के अनुसार जबतक रजिस्टरी न हो जाय, तबतक सरकार से किसी संस्था को सहायता मिल ही नहीं सकती और रजिस्टरी कराने की फ़ीस है ५०); यह रक़म ग़रीब संस्था कहाँ से लाकर देती? इसलिए संघ के प्रधान कार्यालयने यह रक़म रजिस्टरी कराने के लिए उक्त छात्रालय को देदी है।

मध्यप्रांत और बरार के मराठी भाषा-भाषी ज़िलों में ऐसे स्वावलंबी छात्रालय काफ़ी अच्छी तादाद में मिलेंगे। इसके दो कारण हैं—एक तो वहाँ की महार जाति ख़ुद ही उन्नत है, दूसरे मद्रास को छोड़कर अन्य प्रांतों के मुक़ाबले में मध्यप्रांत की सरकार हरिजन-छात्रालयों को ग्रांट देने के मामले में काफ़ी उदार है। ऐसे छात्रालयों को सी० पी० सरकार उनका आधा प्रबन्ध-ख़र्च दे देती है, पर छात्रों के भोजन इत्यादि का ख़र्च वह नहीं देती। आमदनी का यह छोटा-सा भी, मगर स्थायी ज़रिया मध्यप्रांत के हरिजनों, ख़ासकर महारों, की शिक्षा को अच्छा प्रोत्साहन दे रहा है।

वर्धा-छात्रालय के विद्यार्थी, मय अपने सुपरिंटेंडेंट और प्रबन्धकारिणी कमेटी के अध्यक्ष के, उपवास की समाप्ति पर गांधीजी का दर्शन करने आये थे। गांधीजीने पूरी पूछताछ करने के बाद, अध्यक्ष को यह सलाह दी कि ख़ुराक में प्रति छात्र नित्य एक तोला घी और थोड़ी-सी छाछ बढ़ा दी जाय, क्योंकि भोजन में इन चीज़ों का होना ज़रूरी है। उनकी शारी-रिक गठन के लिए घी और छाछ का होना ज़रूरी है। गांधीजी का यह आदेश तो क़रीब-क़रीब उन सभी हरिजन-छात्रालयों के लिए लागू होता है, जहाँ ग़रीबी के कारण घी और छाछ का स्पष्ट ही अभाव है।

अमृतलाल वि० ठक्कर

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg No L. 3169

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २१ सितम्बर, १९३४. [संख्या ३१

विषय-सूची

दान-मीमांसा

[२७ जुलाई को, पवनार में आचार्य विनोबाजीने 'दान-मीमांसा और खादी पहननेवालों का किंचित् धर्म' इस विषय पर मराठी में जो सुंदर प्रवचन किया था, उसका भाषान्तर नीचे दिया जाता है—सं०]

फेंकदेना दान नहीं है

हमारे अन्दर धर्म करने की प्रवृत्ति है, दान करने की वृत्ति है, यह बहुत अच्छी बात है। अनेक साधु-सन्त हमारे यहाँ हुए हैं, जिन्होंने भारतीय जीवन में दान-भावना भरदी है। पर्वों के लिए, हम सब कुछ-न-कुछ दान या धर्म करते हैं। परन्तु, दान करते समय हम कुछ सोचते भी हैं ? विचारों को तो आज हमने फांसी देदी है, और विवेक हमारे पास से चला गया है। विचारों का प्रकाश न रहने के कारण, हमारे आचरण में अन्धापन आ गया है। मैं विचारों को, बुद्धि को, जो महत्त्व देता हूँ उनको जितना मूल्यवान समझता हूँ, उतना तीनों लोक में और किसी को नहीं। बुद्धि बहुत वास्तविक वस्तु है। भला, दान देते समय हम क्या विचार करते हैं ? चाहे जिसको दान देने से क्या कर्तव्य-पालन होजाता है ? यह याद रहे कि दान और त्याग में अन्तर है। त्याग तो हम उस चीज़ का करते हैं जो अच्छी नहीं होती। उत्तरोत्तर पवित्र बनने में जो वस्तु बाधक होती है, हम उसका त्याग कर डालते हैं। घर की स्वच्छता के ही लिए तो हम घर के कूड़े-कचरे का त्याग करते हैं, उसे फेंक देते हैं। अतएव त्याग का अर्थ हुआ फेंक देना। परन्तु दान का अर्थ फेंक देना नहीं है। द्वार पर कोई भी भीख माँगने आये, कोई फ़क़ीर-फ़क़रा आये, कि उसे मुट्ठीभर अन्न या एकाध पैसा दे दिया—यही दान-क्रिया नहीं है। वह अन्न या पैसे तो तुमने योंही फेंके। यह तो असावधानता है, लापरवाही है। इसमें न तो हृदय है, न बुद्धि। सुन्दर काम तो वही होता है, जिसमें भावना और बुद्धि दोनों का सम्मिश्रण हो। दान फेंकना नहीं, बोना है।

दान का अर्थ है बीज लगाना

जिस प्रकार खेती करते समय हम यह देखते हैं कि ज़मीन अच्छी है या नहीं, उसी प्रकार हमें यह भी देखना चाहिए कि जिसे दान दिया जाय वह भूमि, अर्थात् व्यक्ति, कैसी है। खेती करनेवाला इस बात का विचार करके खेती करता है कि बोये हुए एक दाने का सौ दाने अनाज कैसे होगा। सावधानी के साथ वह खेती करता है। घर से अनाज लाकर खेत में बोता है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह उसे फेंक देता है। खेत में बोने से घर का नाज कम तो होता है, परन्तु फिर वह कई गुना बढ़जाता है। यही दान-क्रिया है। जिसे मुट्ठीभर अन्न दिया जाय वह उस अन्न की मूल्य-वृद्धि करेगा या नहीं, अर्थात् वह उससे सौगुना कीमती काम करेगा या नहीं, यह हमें देखना चाहिए। दान लेनेवाले ऐसे देखने चाहिएं, जो उस दानकी क़ीमत बढ़ावें। जो दान किया जाय उससे समाज का सौगुना लाभ होना चाहिए। ऐसा दान देना चाहिए, जो अन्त में समाज को सफलता प्राप्त करावे। दान देते समय इस बात का विश्वास होना चाहिए कि उससे समाज में आलस्य, व्यभिचार और अनीति की वृद्धि नहीं होगी। हम किसीको दान दें, और वह फिर उसका दुरुपयोग करे, उस दान की सहायता से वह अनीतिमय आचरण करने लगे, तो उस पाप के ज़िम्मेवार हम दान देनेवाले ही होंगे। उस पापमय मनुष्य से हमारा सहयोग होने के कारण, हम भी दोषभागी होते हैं। अतः हमें यह देख लेना चाहिए कि हम असत्य, अनीति, आलस्य, अन्याय का साथ देंगे, या सत्य, उद्योग श्रम, प्रवृत्ति, नीति, धर्म और न्याय में सहयोग करेंगे ? हमारे दिये हुए दान का सदुपयोग होगा या दुरुपयोग, इस बात का हमें विचार करलेना आवश्यक है। इस बात का विचार न करें तो दान का अर्थ यही रह जाता है कि किसी वस्तु को हम लापर्वाही से फेंकदें। अतएव हम जो दान करें उसपर हमें ध्यान रखना चाहिए। दान तो बीज लगाना है। उस बीज के अंकुर अच्छे आते हैं या नहीं, उसका वृक्ष अच्छा होता है या नहीं, यह सब हमें देखना चाहिए। सशक्त, नारोग मनुष्यों को भीख देना, दान करना, अन्याय है। कर्महीन, अकर्मण्य मनुष्य भीख या दान पाने का अधिकारी नहीं।

श्रम की पूजा करो

ज़िन्दा रहने के लिए हरेक को श्रम करना चाहिए, यह ईश्वरी विधान है। संसार में शारीरिक श्रम न करते हुए भी भीख माँगने का अधिकार सिर्फ़ सच्चे संन्यासियों को है। सच्चे संन्यासी, ईश्वर-भक्ति के रंग में रँगे हुए संन्यासी ही ऐसा कर सकते हैं। क्योंकि ज़ाहिरा तौर पर कुछ कर्म न करते हुए मालूम पड़ने पर भी, वे अन्य प्रकार से, समाज का कल्याण तो करते

ही रहते हैं। ऐसे संन्यासियों को छोड़कर और किसी को भी आलस्य में ज़िन्दगी बिताने का अधिकार नहीं है। आलस्य को पोषण देने के समान कोई भयङ्कर पाप नहीं। यह तो ईश्वर से मिले हुए हाथ-पैरों का अपमान है, ईश्वर से मिले हुए शरीर और बुद्धि का अपमान है। अन्धे को मुझे रोटी देनी चाहिए, परन्तु उस अन्धे को भी मैं ७–८ घण्टे का कुछ-न-कुछ काम तो दूँगा ही, उसे कपास साफ करने का काम दूँगा। एक हाथ थका तो दूसरे हाथ से, इस प्रकार, ७–८ घंटे काम करके उसे रोटी खानी चाहिए। अन्धे, पागल, लूले लोगों को भी जो कुछ काम वे कर सकें वह देकर तब रोटी देनी चाहिए। इसमें श्रम की भी पूजा होती है और अन्न की भी। इसलिए जिसे दान दिया जाय, यह देख लेना चाहिए कि वह समाज की कोई सेवा, कोई उपयुक्त काम करता है या नहीं। दान को तो जोनाखोया जानेवाला अनाज ही समझना चाहिए। समाज को उसका भरपूर बदला मिलना आवश्यक है। दान देनेवाला दिये हुए दान के बारे में यदि ऐसी दृष्टि न रक्खे, तो वह दान न होकर उलटे अधर्म होगा।

विचारपूर्वक दान

चाहे जिसको कुछ तो भी देने, खाना खिलाने, बिना सोचे-समझे दान-धर्म करने से अनर्थ होता है। गो-रक्षा के लिए गोशाला को दान देते समय इन बातों का हम विचार करना होगा कि उस गोशाला में हृष्ट-पुष्ट गाएँ दिखाई देती हैं या नहीं, गाय का मधुर दूध बच्चों को मिलता है या नहीं, खेती के लिए वहाँ से उत्कृष्ट खाद मिलती है या नहीं, और वहाँ गोरक्षा, गोसंवर्धन वैज्ञानिक रूप से होता है, या नहीं; मृतप्राय गौएँ दिखाई दें, अव्यवस्था की अधिकता हो, ऐसे कमज़ोर आधार के पिंजरापोल रखना दान-धर्म नहीं है। किसी भी संस्था या व्यक्ति को जो कुछ भी दानस्वरूप दिया जाय, यह देखना चाहिए कि उससे समाज का कितना लाभ होता है। हमें देखना चाहिए कि उस दान से समाज में ज्ञान, आरोग्य, वैभव, समाधान, और सामर्थ्य की उत्पत्ति होती है या नहीं। भारतवर्ष में दानवृत्ति तो है, परन्तु उस दान के साथ विवेक का अभाव होने के कारण दान से समाज समृद्ध और सुन्दर नहीं दिखाई पड़ता; उलटे आज वह कलाशून्य, शोषित और रोगी दिखाई पड़ता है। हम धन फेंकते हैं, उसकी खेती नहीं करते। इससे इहलौकिक या पारमार्थिक मुक्ति प्राप्त नहीं होती।

(अपूर्ण)

कृष्णाभक्ति

गोकुलाष्टमी के दिन लगभग समस्त भारतवर्ष में श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव मनाया जाता है। प्राचीन साम्प्रदायिक मन्दिर तथा नवीन असाम्प्रदायिक आश्रम, विद्यालय सभी किसी-न-किसी रीति से कृष्णाष्टमी मनाने का कुछ-न-कुछ कार्यक्रम निश्चित करते हैं। मुझे आज एक जगह ऐसे ही उत्सव में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ। इच्छा से या अनिच्छा से उस उत्सव में भाषण देना भी मैंने स्वीकार कर लिया, किन्तु सभा में बोलते समय हमेशा जिस क्षोभ का मुझे अनुभव हुआ करता है उससे, तथा उत्सव मनाने की प्रचलित रीति मुझे पसन्द न आने से और कुछ दूसरे कारणों से भी मेरा वह क्षोभ और भी बढ़ गया, और इससे जो थोड़ा सा भी मैं कहना चाहता था वह भी ठीक-ठीक न कह सका। इसलिए मुझे लगता है, कि मैं अपने विचारों को पाठकों के आगे लिखकर रक्खूँ तो अच्छा हो।

यह तो मैं ऊपर कह ही चुका हूँ कि उत्सव मनाने की यह वर्तमान रीति मुझे पसन्द नहीं आई और इससे मुझे क्षोभ हुआ। पर इससे कोई यह न समझले कि मैं उत्सव के संचालकों पर किसी प्रकार का आक्षेप करना चाहता हूँ। सामान्य रीति से अच्छी संस्थाओं में जिस प्रकार यह कृष्णजन्मोत्सव मनाया जाता है उसी प्रकार का कार्यक्रम वहाँ भी रक्खा गया था, अर्थात् थोड़ा-सा नाम-संकीर्तन, स्तोत्र, आरती और कृष्णलीला के कुछ पद उस कार्यक्रम में थे, और ऐसी कोई सी बात कार्यक्रम में नहीं थी, जो रूढ़ दृष्टि से देखनेवाले भक्त को अनुचित मालूम पड़े। इसलिए क्षोभ मुझे इस संस्था के उत्सव के कारण नहीं, बल्कि उस दृष्टि के कारण हुआ, जो विचार-दृष्टि हमारे देश में कृष्ण चरित्र गाने और कृष्ण-भक्ति करने की एक ज़माने से रूढ़-सी होगई है। इस बात को मैं ज़रा विस्तार से समझाऊँगा।

राम और कृष्ण की भक्ति हमारे देश में आज कई शताब्दियों से चली आरही है। यह निर्णय करना तो आज कठिन है, कि इसका कब और किन परिस्थितियों में आरम्भ हुआ। आज तो इस बात का भी निर्णय करना कठिन है, कि राम और कृष्ण नाम के जो ऐतिहासिक महापुरुष हुए थे उनका सच्चा, यथार्थ चरित्र कैसा होगा। उनके चरित्रों की अनेक कवियों और भक्तोंने नये-नये प्रकार की आवृत्तियाँ तो रची ही हैं। इसलिए हम अपने ऐतिहासिक राम तथा ऐतिहासिक कृष्ण के विषय का पूर्ण और यथार्थ ज्ञान आज प्राप्त नहीं कर सकते। हम तो इतना ही कह सकते हैं, कि पुजारुपद् राम तथा पूजाई कृष्ण कैसे थे इसकी कल्पना भिन्न-भिन्न कवियों और भक्तोंने की है, और इसी प्रकार की एकाध कल्पना को मानकर आज हम उनकी इन पुण्य जयन्तियों को मनाते हैं।

परन्तु इस प्रकार रामचरित्र और कृष्णचरित्र की नई-नई आवृत्ति-रचना के प्रयत्न में राम और कृष्ण का चरित्र-चित्रण एक दूसरे से उलटे ही प्रकार का हो गया है। उत्तरोत्तर आवृत्तियों में जहाँ राम को अधिकाधिक उदात्त बनाने का प्रयत्न हुआ है, वहाँ कृष्ण का चरित्र अधिक-से-अधिक हलके रंगों में रँगा गया है। जैसे, वाल्मीकि के राम से तुलसीदास के राम कई गुने उदात्त पुरुष प्रतीत होते हैं। वाल्मीकि-रामायण में तो कई स्थानों पर राम की अपेक्षा लक्ष्मण के प्रति अधिक आदर-भाव हृदय में जाग्रत होता है। तुलसी के रामचरित-मानस में राम एक जुदी ही भूमिका पर प्रतिष्ठित मिलते हैं और यह भूमिका उस ग्रन्थ में बड़ी ही अच्छी तरह प्रकाश में लाई गई है।

किन्तु महाभारत में कितने ही प्रक्षिप्त भागों के होते हुए भी, उसके कृष्ण एक महात्मापुरुष हैं। भागवत के कृष्ण को महाभारत के कृष्ण से नीचे उतार दिया गया है। और इसके बाद के रचे हुए ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों में तो कृष्णचरित्र को हलका बनाने में जैसे कुछ भी कोर-कसर नहीं रक्खी गई। कृष्णभक्त इन नीचे उतारे हुए कृष्ण को ही भजने और उनका गुणगान करने में अपने को कृतकृत्य मानते हैं, और इन्हीं उतरे हुए कृष्ण की भक्ति के सम्प्रदाय भी स्थापित किये गये हैं।

ऊपर मैं यह कह चुका हूँ, कि महाभारत में भी कुछ प्रक्षिप्त भाग हैं। इन क्षेपकों में भी कृष्णचरित्र को हीन बनाने का प्रयत्न किया गया है। महाभारत के प्रक्षिप्त भागों में दिखाया गया है, कि प्रसंग आने पर कृष्ण झूठ बोलने और बुलवाने से भी नहीं चूकते थे। महाभारत के मूल रचयिता के मन में ऐसा होना सम्भव मालूम नहीं होता। उसने कैसे कृष्ण का चरित्र-चित्रण करने की कल्पना की होगी इसका अनुमान परीक्षित-जन्म के प्रसंग से हो सकता है। परीक्षित मरा हुआ जन्मा, और पाण्डवों के निर्वंश होजाने की अनिष्ट शंका उत्पन्न होने से शोक-विह्वला कुन्ती आदि स्त्रियाँ श्रीकृष्ण से प्रार्थना करने लगीं कि आप किसी भी तरह इस बालक को जिला देने का प्रयत्न करें। कवि कहता है, कि इस विनीत प्रार्थना से दयार्द्र होकर श्रीकृष्ण उत्तरा के प्रसूतिगृह में गये और मरे हुए शिशु को गोद में लेकर बैठ गये। इसके अनन्तर अत्यन्त सरलभाव से कहा कि 'आजतक यदि मैंने कभी हँसी-मसखरी में भी असत्य भाषण न किया हो, यदि मैं कभी भी धर्म-पथ से विचलित न हुआ हूँ तो मेरे उस सत्य पुण्य-बल से यह बालक जी उठे।' कवि लिखता है कि इससे वह गतप्राण शिशु जी उठा। मूल लेखक को जिस प्रकार के कृष्ण का चरित्र-चित्रण करना था वह इस प्रकार के कृष्ण थे। इस कसौटी पर खरे न उतरनेवाले कृष्ण मूल महाभारतकार के कृष्ण नहीं हो सकते।

पर आज तो हम जिस कृष्ण को लोकप्रसिद्ध रूप में देखते हैं, उनके जीवन में कर्म के दो ही प्रकार हैं—या तो छोकरों के साथ खेलना-कूदना और ऊधम मचाना, या फिर गोपियों के साथ वाहियात छेड़खानी करना। इसके सिवाय कृष्ण के जीवन की जैसे कोई दूसरी घटनाएँ ही नहीं हैं, कवियों ने इसी तरह उनका चरित्र अनुरंजित किया है। राधा अथवा गोपी की भूमिका की अपने में कल्पना करके कृष्ण को सारभक्ति से भजना ही चैतन्य, नरसिंह मेहता आदि अनेक साधु पुरुषों के जीवन का मुख्य व्यवसाय बन गया, और इनकी डाली हुई लीक को ही कृष्णभक्तों ने अपना राजमार्ग बना लिया। इस प्रकार की उपासना तथा भक्ति ने हमारा बहुत अपकार किया है। मुझे यह कहते संकोच नहीं होता कि, प्रजा के चारित्र्य को नीचा करने में कृष्ण-भक्ति के इन प्रकारों का बहुत बड़ा भाग रहा है।

राधा और कृष्ण, वृत्ति और आत्मा के रूपक हैं अथवा यह प्रेम-भावना की पराकाष्ठा तक पहुँचाने का साधन है, इत्यादि रीति से इसे समझाने का जो प्रयत्न किया जाता है उसे मैं जानता हूँ। ये सब विद्वानों के व्याख्यान हैं। यह नहीं कहा जा सकता, कि बालक, स्त्रियाँ या जनसाधारण इन व्याख्यानों के अनुसार ही कृष्णचरित्र को समझते या जानते हैं। इस उद्देश से भी ऐसे श्रृंगारी—बहुधा बीभत्स श्रृंगारी—रूपकों की रचनाएँ भी कवियों की अविवेकसूचक ही हैं। कवियों को जरासंध, शिशुपाल आदि अत्याचारी राजाओं का मद चूर्ण करनेवाले कृष्ण दिखाई न दिये, नम्रता से जूठन उठानेवाले कृष्ण पर उनकी तनिक भी दृष्टि न गई, राजनीति और धर्म का उपदेश अथवा गीता का गान करनेवाले कृष्ण उनके दृष्टि-पथ में न आये, उनकी नज़र में तो केवल श्रृंगारी कृष्ण ही चढ़ गये। इन कवियों की कृतियों से तो यही प्रगट होता है, कि जिस काल में इन काव्यों की रचना हुई होगी, उस काल का वातावरण कितना भ्रष्ट होगा।

आज के उत्सवों में भी इसी प्रकार की भक्ति का पोषण होते देखकर मुझे क्षोभ हुआ। तभी हम आगे बढ़ेंगे, जब हम अपनी प्रत्येक रूढ़ि को विचार या विवेक की कसौटी पर कसने का प्रयत्न करेंगे।

'हरिजन-बंधु' से] किशोरलाल घ० मशरूवाला

हरिजन जुलाहे

काठियावाड़ के पश्चिमी तट पर, पोरबन्दर से दो मील के अंतर पर, छाया नाम का एक गाँव है। यहाँ के ढेढ़ बुनकरों के हथकते और हथबुने ऊनी कपड़ों की दूर-दूरतक ख्याति है। सफ़ेद और काली धारियों के एक खास किस्म के कपड़े का नाम ही "छायाकापड़" पड़ गया है। लगभग ६० बुनकर-परिवार इस गाँव में रहते हैं। क़रीब ७ साल हुए कि यहाँ एक आश्रम या हरिजन बालकों का एक प्रकार का गुरुकुल स्थापित किया गया। पैसे की इस आश्रम को सख्त ज़रूरत थी। इसलिए इस संस्था के व्यवस्थापक श्री रामनारायण पाठक पिछले कई मास में बरमा और अन्य स्थानों में गये और वहाँ के काठियावाड़ी तथा गुजराती भाइयों से पैसा माँग-मूँगकर अभी हाल लौटे हैं। ४७२७॥≈) की एक अच्छी-सी रक़म उन्होंने संघ के प्रधान-कार्यालय के हवाले कर दी है, जो उक्त आश्रम पर ही खर्च की जायगी। हमें आशा है, कि अब छाया का आश्रम वहाँ के कार्यकर्ताओं की लगन और एकाग्रता से बहुत अच्छी तरह चलेगा। सचमुच संस्था के लिए पैसा उतना आवश्यक नहीं, जितनी कि कार्य में एकाग्र संलग्नता और अपनी चारित्रिक पवित्रता है।

अमृतलाल वि० ठक्कर

हरिजनों का तो प्रश्न ही भिन्न है

हरिजन भाइयों के सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'दलितोदय' के संपादकीय स्तंभ में ये बड़े महत्त्व की पंक्तियाँ निकली हैं। अस्पृश्यता निवारण के प्रश्न को जो लोग 'वर्ग-युद्धवाद' में घसीटने का प्रयत्न करते हैं, हरिजनों के इस प्रातिनिधिक पत्र की इन वज़नदार पंक्तियों को वे ध्यान से पढ़ेंगे, ऐसी आशा है:—

"हम अपनी (हरिजनों) की अवस्था भारतीय किसान व मज़दूरों के अन्दर चलनेवाले श्रेणीयुद्ध को ज़बर्दस्ती अपने ऊपर लाद नहीं सकते। हम उस दिन की बड़े उत्सुकता के साथ बाट जोह रहे हैं, जब हम में भारतीय किसान और मज़दूरों के बर बर की भी शक्ति आ जाय और हमारा वर्ग समाज में वही अधिकार प्राप्त करले जो उनको प्राप्त है। उतनी भी शक्ति हमारे अन्दर आ जाने पर फिर हम देख लेंगे कि हमें क्या करना है। परन्तु इस समय तो हमें बिना किसी श्रेणी, समुदाय, सम्प्रदाय या धर्म से किसी प्रकार का संघर्ष किये केवल अपने आप को तैयार करना है। इस तैयारी में न हड़तालों की ज़रूरत है, न किसी दल विशेष को मेंबर बनकर उसकी शक्ति बढ़ाने की। इस समय तो हमें शिक्षा, सफाई, प्रचार और नशेबाज़ी का विनाश करके अपने आप को संगठित करना है और अपने अन्दर यही आन्दोलन चलाना है।"

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २१ सितम्बर, १९३४

अभागिनी देवदासी !

एक देवदासी के साथ ब्याह करनेवाला एक आन्ध्र-निवासी ग्रेजुएट लिखता है: –

"आपको पत्र लिखने की इच्छा तो बहुत दिनों से थी, पर लिखते हुए मुझे अत्यन्त लज्जा लगती थी। धन्यवाद है ईश्वर को, कि आखिरकार आज मैंने अपना भार आपके ऊपर डाल ही दिया।

मैं 'देवदासी-समाज' का हूँ, बस यही मेरा परिचय है। मेरा जीवन सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त वेदनापूर्ण है। महात्माजी! क्या आपके खयाल में नर्तकियों के पेशे से भी बदतर पेशा दुनिया में कोई है? भारतवर्ष के लिए क्या यह एक कलंक की बात नहीं है, कि एक समूची ही जाति पर वेश्या-वृत्ति की छाप लगी रहे?

मेरे खयाल से हमारा आन्ध्र देश तो इस पाप का जैसे गढ़ है। यहाँ का हिन्दू-समाज, खासकर ब्याह शादी और देवोत्सव के अवसर पर, देवता के सामने अश्लील गीत गवाने और गंदे भाव बताने के लिए नर्तकियों को बुलाता है और इस तरह वह नवविवाहित दंपति के आगे एक बहुत बुरा उदाहरण रखता है।

वेश्या-वृत्ति का जीवन बितानेवाली इस देवदासी जाति की हतभाग्यता का कुछ पार! यहाँ के नवयुवक इस पाप को जड़मूल से उखाड़ फेंकने का भरसक प्रयत्न कर तो रहे हैं, पर उन बेचारों का न कोई सहायक है, न पथ-प्रदर्शक। कृपाकर आप क्यों न इस आन्दोलन को हाथ में लेलें, जब कि यह हरिजन-आन्दोलन के जैसा ही है और उतना ही आवश्यक है? कृपया इस चीज़ को भी अपने दिल के एक कोने में हमेशा जगह दिये रहें और समय-समय पर इसे प्रकाश में लाते रहें। सिर्फ़ कांग्रेस ही नहीं, सारा लोकमत आपके पीछे है। मेरा तो ऐसा विश्वास है, कि जो काम 'ग्राथेल्प बिल' या भारतीय दण्डविधान के किये नहीं हो सका, वह आपके एक शब्द से ही हो जायगा।

मैंने अपनी ही जाति की एक देवदासी से विवाह किया है, और हमारा यह विवाह क़ानून तथा धर्म दोनों ही दृष्टि से जायज़ है। मेरी दो लड़कियाँ भी हैं। मेरी पत्नी मेरी आँखों में उतनी ही पवित्र है, जितनी कि कोई हिन्दू स्त्री हो सकती है। तो भी समाज तो हमें नीच ही समझता है। हमारे पुरखों के पाप हमारे साथ बुरी तरह बदला भँजा रहे हैं। वेश्या-वृत्ति का धब्बा तो हमारे ऊपर लगा ही है, यद्यपि हम दोनों इस पाप से कोसों दूर हैं।

हरिजन और देवदासी यही ऐसी दो जातियाँ हैं, जो क़रीब-क़रीब एकसमान नीच समझी जाती हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि अपनी नैतिक उन्नति उन्हें खुद ही करनी होगी। तो भी आप-जैसा गुरु उन्हें और उनके समाज को जितना जल्दी सदाचारी बना सकेगा उतनी जल्दी वे अपने आप नहीं बन सकते। ये दोनों एक-सी प्रवृत्तियाँ हैं। हरिजनों के उत्थान की हालफूल में कृपया इस ग़रीब देवदासी जाति को न भूल जाइएगा।"

क्या अच्छा होता, कि ऐसी योग्यता मुझ में होती। मुझे दुःख है, कि मुझ में वैसी योग्यता या क्षमता नहीं है, मुझे अपनी परिमित शक्ति की ख़बर है। लेखक को शायद यह पता नहीं है, कि जब मैं 'यंगइण्डिया' का सम्पादन करता था, मैं बराबर देवदासी-प्रथा और वेश्या-वृत्ति की कुछ-न कुछ चर्चा करता रहता था। भले ही उससे कुछ व्यक्तियों का कष्ट दूर हुआ हो, पर मेरा प्रयत्न समाज के इस पाप को निर्मूल नहीं कर सका। 'हरिजन' में इस प्रश्न को अगर आज मैं उठा रहा हूँ, तो इसका यह कारण नहीं कि उन दिनों की अपेक्षा इस दिशा में मुझे अब कोई अधिक आशा हो गई है। मगर इस नये प्रयत्न से कुछ व्यक्तियों का कष्ट अगर दूर हो गया, तो प्रसन्नता तो मुझे होगी ही।

देवदासियों का हरिजनों के साथ लेखकने जो उपमा दी है, वह बिलकुल ठीक है। तो भी इन दोनों के बीच जो अंतर है उसे तो उसने देखा ही होगा। पर उनके दुर्भाग्य में कितना क्या अंतर है इसे बतलाने में क्यों समय नष्ट किया जाय। अगर हिंदूधर्म की शुद्धि करनी है, तो अस्पृश्यता की तरह इस पाप-पूर्ण देवदासी-प्रथा को भी नष्ट करना ही होगा। समाज को इस पाप से मुक्त करने के सत्कार्य में जो लोग लगे हुए हैं, उन्हें एक ढोल से, एक ढंग से काम करना चाहिए, और अगर अपने प्रयत्न में उन्हें सफलता न मिले, तो इससे वे हताश न हो जायँ। तात्कालिक कर्तव्य भी उनका यह होना चाहिए, कि पहले अपने निकट की बुराई को ही दूर करने का एकाग्र होकर प्रयत्न करें। काम करने के दो तरीक़े हैं। एक तो उनके बीच में काम होना चाहिए, जो अपनी नीच वासना पूरी करने के लिए देवदासियों को ब्याह-शादियों और देवोत्सवों पर बुलाते हैं, और दूसरा रास्ता यह है, कि खुद देवदासी-समाज के अंदर काम किया जाय। अगर देवदासियाँ समाज के इस पाप में भाग लेना बंद करदें, तो इस पाप-प्रथा का उसी क्षण अंत हो जाय। पर यह बात ऐसी सरल है नहीं। 'बुभुक्षितः किम् करोति पापम्?' भूख को पाप का क्या पता? गुरु द्रोण और भीष्म पितामह की तरह ये देवदासियाँ भी पाप-कृत्य के समर्थन में उदर-पोषण की ही दलील देंगी। उन की प्रकृति ही अब ऐसी बन गई है, कि उन्हें अपने पेशे में कोई पाप नहीं दिखाई देता। इसलिए वेश्या-वृत्ति की जगह उनके लिए आजीविका का कोई अन्य शुद्ध साधन ढूंढना होगा। फिर समाज के अंदर जाकर काम करना है। देवोत्सवों तथा ब्याह-बारातों के व्यवस्थापकों को दलीलें दे-देकर समझाना है। बतौर आदेश देने से तो समाज में सुधार कभी होने का नहीं। सुधारकों को तो समाज की बुद्धि और हृदय का स्पर्श करना होगा। एक तरीक़े से, सभी सुधार एक प्रकार के शिक्षण हैं, और सामान्य शिक्षा की तरह ये सुधार भी उतने ही आवश्यक हैं। इसलिए सुधार स्वयं एक शास्त्र है, और वह तभी सफल होता है, जब एक निश्चय से दत्तचित्त होकर उसके पीछे कोई पड़ जाता है।

एक देवदासी का पाणिग्रहण करके लेखकने जो साहस का काम किया है, इसके लिए वह बधाई का पात्र है। अपनी

अन्तरात्मा की स्वीकृति पर उसे संतोष करना चाहिए, और उसके तथा उसकी पत्नी के प्रति लोगों की जो तिरस्कारपूर्ण भावना है उसको उसे पी जाना चाहिए।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

'हरिजन' क्यों नहीं ?

'हरिजन'-संपादक की सेवा में—

महोदय,

'हरिजन' के १० अगस्त, १९३४ के अंक में श्री महादेव देसाईने लिखा है, कि "कुछ सज्जन, जो हरिजनों के, अथवा जिस शब्द से उन्होंने अपना परिचय दिया उस शब्द का प्रयोग करें तो 'दलितवर्ग' के, प्रतिनिधि होने का जो दावा कर रहे थे, गांधीजी से उस दिन मिलने आये थे। यह देखकर मुझे कुछ दुःख-सा हुआ, कि श्री महादेव देसाई की तीक्ष्ण बुद्धि उन लोगों के कहने के वास्तविक अभिप्रायतक पहुँच नहीं सकी। 'दलित वर्ग' शब्द में जो 'घृणित दुर्गन्ध' भरी हुई है, उसकी बदौलत ही उस वर्ग में जब जागृति पैदा होगी, तभी यह भेद-भाव समूल नष्ट होगा; और इसके परिणाम-स्वरूप समस्त हिंदुजाति का सामान्य एकीकरण और संगठन हो जायगा। हम सब लोग यह जानते हैं, कि गांधीजी का इस महान् और अद्वितीय प्रयास से उनका यही उद्देश है। किंतु 'हरिजन' नाम की यह मिठास, संभव है, उनकी और सवर्ण हिंदुओं की दरम्यानी खाई को और भी विस्तृत करदे, जो गांधीजी का निश्चय ही इरादा नहीं है। यह असली अभिप्राय श्री महादेव देसाई के ध्यान में आ जाना चाहिए था। उन्होंने जो इस संबन्ध में 'विचित्र' (curious) विशेषण का प्रयोग किया है, वह ध्यान देने योग्य तो है ही, साथ ही खेदजनक भी है, क्योंकि महात्माजी के एक अत्यंत निकट के साथी की लेखनी से यह 'विचित्र' विशेषण लिखा गया है।

इस विषय में मैं इसलिए दिलचस्पी ले रहा हूं, कि मैं खुद इस महान् वर्ग का एक व्यक्ति हूं। दूसरे लोग किस नाम या विशेषण का प्रयोग करते हैं, इसकी मुझे पर्वा नहीं। चिंता तो मुझे सिर्फ इतनी ही है, कि हमारे विशाल हिंदू-समाज में इस महान् वर्ग की भावी स्थिति पर उसका कहाँतक प्रभाव पड़ेगा। क्या आप कृपाकर यह पत्र श्रीमहादेव देसाई को दिखा देंगे ?

आपका--

एच० के० मल्लिक

[महादेवने यह पत्र मुझे दे दिया है। श्री मल्लिक को मैं जानता हूँ; थोड़े ही दिन हुए, कि जब मैं कलकत्ता गया था, उस समय वे मुझे वहाँ मिले थे। उनकी इस हार्दिक भावना में, और जबतक अस्पृश्यता का यह कलंक क़ायम है तबतक इस दुर्गन्धयुक्त 'दलित' नाम को क़ायम रखने की उनकी इच्छा में मैं हिस्सेदार हो सकता हूँ। लेकिन उन सुधारकों की भावना को महसूस करने के लिए मैं श्री मल्लिक को आमंत्रण देता हूँ, कि जिन के दिल में अस्पृश्यता अब रही ही नहीं, और जिनके प्रति उनका प्रेम है और जिनकी वे यथाशक्ति सेवा करना चाहते हैं उन प्रिय जनों के लिए किसी हीन नाम का प्रयोग करते हुए उन सुधारकों को अब भय लगता है। मैं चाहता हूँ, कि श्री मल्लिक उनकी भावना को महसूस करें। फिर हज़ारों अस्पृश्यों को 'अछूत,' 'अस्पृश्य' आदि नाम पसंद नहीं हैं, किंतु यह 'हरिजन' नाम उन्हें पसंद है, इस बात को भी तो ध्यान में रखना है। हम सबका ध्येय एक ही है, और वह यह कि अस्पृश्यता को जड़मूल से नष्ट कर देना है। जब वह मंगलमय दिन आयगा, तब या तो 'हरिजन' शब्द का लोप हो जायगा, या फिर हम सभी 'हरिजन' अर्थात् हरि के भक्त कहलाने में गर्व का अनुभव करेंगे, और उस नीच भाव का ज़हर हृदय से निकालकर इस सुन्दर नाम के योग्य अपने को बना देंगे।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

एक अमेरिकन मित्र के साथ

अमेरिका के एक कन्या-विद्यालय के आचार्य डाक्टर डॉड गांधीजी से मिलने आये थे। 'भूतकाल का कीर्तिस्तंभ ताजमहल और भविष्य का प्रतीक गांधी, इन दो चीज़ों को देखने के लिए मैं हिन्दुस्तान आया हूँ,' यह कहकर उन्होंने अपनी उसी अमेरिकन रीति से कहना शुरू किया। गांधीजीने उनकी भूत-भविष्य की आलंकारिक उक्तिपर योंही विनोद में कहा, "मुझे भूत और भविष्य में रस नहीं आता, मुझे तो इस वर्तमान से ही सन्तोष है। वर्तमान ही की आप बात करो न ?"

इसपर डा० डॉडने कहा—"आजकल का ज़माना तो उड़ाकों का है। क्या हम आपको अमेरिका उड़ा ले जा सकते हैं ?"

"नहीं, भाई ! मुझे अमेरिका ले जाकर क्या करोगे ? हिन्दुस्तान को छोड़कर अगर मैं कहीं जाऊँ, तो वहाँ अहिंसा का रहस्य, सुन्दरता और शक्ति समझाने के लिए ही जाऊँगा। मुझे नहीं लगता, कि मैं आज ऐसा कर सकूँगा। मैं अपने ही देश को अभी अहिंसा की संजीवनी बूटी पूरी तरह से नहीं पिला सका।"

"आपका आखिर ध्येय क्या है ?"

"जिस ध्येय की ख़ातिर मैं काम कर रहा हूँ, वह तो जगत उजागर है। हिन्दुस्तान के इने-गिने अमीरों और पढ़े-लिखे लोगों के ही लिए नहीं, किन्तु करोड़ों मूक निरक्षरों के लिए मैं पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना चाहता हूँ।"

"ठीक, पर इसके लिए आप किन साधनों का प्रयोग कर रहे हैं ?"

"साधन तो एक ही है—शुद्ध सत्य और अहिंसा। पर आप पूछोगे, कि सत्य और अहिंसा ये कोई मूर्त साधन नहीं हैं, इनका कोई साकार स्वरूप तो होगा नहीं ? तो उसी क्षण मैं यह जवाब दूँगा, कि मेरे साधन-क्रम का मध्यबिन्दु चर्खा है। मैं जानता हूँ कि अमेरिकन लोग मेरी यह चर्खे की बात सुनकर एकदम भड़क जाते हैं। वे पूछते हैं, कि इस ज़रा-सी मामूली चीज़ से क्या काम सध सकता है ?"

डा० डॉड ऊपर-ऊपर से देखनेवाले साधारण भूगोल-प्रवासी की तरह नहीं थे। उन्होंने उसी क्षण कहा, "नहीं, सभी अमेरिकन ऐसे नहीं हैं। हमारे यहाँ के एक दैनिक पत्र में आपके चर्खे के कार्यक्रम की बड़ी कड़ी टीका की गई थी, और उसी पत्र में अन्यत्र एक ऐसा लेख था, जिसमें कुदाली-फावड़े से काम करनेवाले ४० आदमियों का वर्णन किया गया था। ये आदमी बिल्कुल बेकार थे, इसलिए एक मशीन से जितना काम हो सकता है, उतना काम करने के लिए उन्हें वहाँ लगा दिया था।

इसी तरह आपने अपने देश की भयंकर बेकारी दूर करने के लिए यह चर्खा ढूँढ निकाला है। पर आप तो इसे एक नैतिक और आध्यात्मिक प्रतीक भी मान रहे हैं। इसका क्या अर्थ है ?"

"हाँ, चर्खे को मैं सत्य और अहिंसा का प्रतीक मानता हूँ। राष्ट्रीयता के रूप में जब हमने चर्खे को ग्रहण किया है तो इसका अर्थ सिर्फ़ इतना ही नहीं है, कि इसके द्वारा हम अपने यहाँ की बेकारी के प्रश्न को हल कर लेंगे, बल्कि इसका यह भी अर्थ है, कि किसी राष्ट्र को चूसने का हमारा क़तई इरादा नहीं है, और देश के सबसे आदमी गरीब कमज़ोरों को जो चूस रहे हैं, उस लूट-खसोट का भी हम अंत कर देंगे। यह तो एक आध्यात्मिक शक्ति है। पहले तो इसका बहुत ही कम प्रभाव दिखाई देता है, पर जनता के जीवन में इसका पूरा संचार होते ही यह शक्ति 'वायु-वेग' से काम करने लगती है। जब मैं यह कहता हूँ, कि मैं करोड़ों के लिए पूर्ण स्वराज्य चाहता हूँ, तब इसका यह अर्थ होता है, कि उन्हें खाने-पीने और पहिनने का साधन मिले सिर्फ़ इतना ही नहीं, बल्कि उन्हें दूसरों के मुँह की तरफ ताकना भी न पड़े, अर्थात् न उन्हें देश के लोग चूस सकें, न विदेश के। हिंदुस्तान को यदि यंत्र-प्रधान, मशीनमय, देश बनाना है, तब तो उसकी ३५ करोड़ की आबादी के बदले ३॥ करोड़ की आबादी क्यों न कर दी जाय ? जहाँ करोड़ों आदमी बेकार पड़े हों, वहाँ बड़े पैमाने पर चलनेवाले यंत्रों या कल-कारखानों के लिए जगह ही नहीं। हमारे यहाँ का एक अर्थशास्त्री कहता था, कि प्रत्येक अमेरिकन के पास ३६ ग़ुलाम होते हैं, अर्थात् प्रत्येक यंत्र ३६ ग़ुलामों का काम करता है। अमेरिका को भले ही इन ग़ुलामों की ज़रूरत हो, पर हमारे हिंदुस्तान को तो निश्चय ही नहीं है। मानव-समूह को हमारा हिंदुस्तान हर्गिज़ ग़ुलाम बनाकर नहीं रखना चाहता।

इसके बाद हमें अस्पृश्यता के खिलाफ़ जूझना है। एक प्रकार की आवश्यक अस्पृश्यता तो संसार में सर्वत्र ही है। आप के यहाँ कोयले की खान में काम करनेवाला आदमी खान से सीधा आता हुआ रास्ते में आप को मिले, तो वह आप से हाथ नहीं मिलायगा। वह कहेगा, कि मैं नहा-धोकर पहले स्वच्छ बन जाऊँ, तब हाथ मिलाऊँगा। अस्वच्छ शरीर को धो-धाकर फिर वह अस्पृश्य नहीं रह जाता। पर हमारे यहाँ की तो बात ही निराली है। यहाँ तो अमुक जाति में पैदा हुआ मनुष्य चाहे जितना स्वच्छ हो गया हो, फिर भी उसके नसीब में तो अस्पृश्यता ही लिखी है। उसकी यह अस्पृश्यता भी हमें दूर करनी है, और बेकारी भी नष्ट करनी है। आप के यहाँ जो बेकारी है, उसे तो आपने ख़ुद पैदा किया है। पर हिंदुस्तान की बेकारी के लिए हमीं अकेले जवाबदेह नहीं हैं। चाहे जो जवाबदेह हो, मेरा उपाय यदि सारे देश में व्यापक हो जाय, तो हमारे यहाँ की आज जितनी जनसंख्या है उसकी ही बेकारी दूर नहीं हो जायगी, बल्कि जनसंख्या और भी बढ़ जाय, तो भी बेकारी की मुझे कोई चिंता न रहेगी। हमारे यहाँ बढ़ती हुई जनसंख्या का प्रश्न ही, मेरे हिसाब से, नहीं उठता। सवाल तो सिर्फ़ यह है, कि जिनके पास कोई काम नहीं है उन्हें कुछ-न-कुछ काम मिलना चाहिए, और जहाँ एक आने की आमदनी है, वहाँ दो आने मिलने चाहिएँ। अगर मैं हरएक हिंदुस्तानी की आमदनी एक पैसे से दो पैसे की कर सका, तो मेरे लिए यह काफ़ी है। इने-गिने थोड़े-से लोगों की नहीं, किंतु करोड़ों की रोज़ की आमदनी जिससे दूनी हो सके ऐसा कोई दूसरा साधन आप ढूँढ दें, तो मैं चर्खा छोड़ देने को तैयार हूँ।"

डॉ० डोड—"मैं समझा। हमारे यहाँ आजकल काम के घंटे कम कराने का आंदोलन चल रहा है, क्योंकि दूसरा कोई और उपाय नहीं। उमड़ते हुए माल की खपत आख़िर हो किस तरह ? मगर इस तरह काम के घंटे कम हो गये, तो बाक़ी के घंटों में लोग क्या करेंगे ? बैठे-बैठे क्या मक्खियाँ मारेंगे ? क्या शौक़ियों की शरण लेंगे ? नहीं, इस हालत में तो आप का ही उपाय अधिक सही जँचता है।

अब एक दूसरा प्रश्न पूछता हूँ। मुझे प्रायः अनेक युवक-युवतियों से मिलने का अवसर आता है। आप के जीवन से वे क्या मुख्य चीज़ सीखें यह मुझे उन्हें बतलाना है। बड़ी-से-बड़ी, अथवा बड़ी-से-बड़ी न कहूँ, तो अधिक-से अधिक संतोषप्रद सफलता या सिद्धि आप को कौन-सी मिली ? जिससे युवक-युवतियाँ अपने जीवन को लगा दें, आप की ऐसी कौन-सी चीज़ मैं उनके आगे रक्खूँ ?"

"यह प्रश्न आपने विकट पूछा। मैं नहीं जानता, कि एक वाक्य में मैं क्या कहूँ। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ—आप इसे सफलता या सिद्धि कहें या न कहें—कि इस ऊपर से दीखने-वाली भारी निष्फलता और पूरी पराजय के होते हुए भी, इस आँधी-तूफ़ान में पड़े जीवन में भी, मैं अपनी आंतरिक शांति क़ायम रख सका हूँ, क्योंकि सत्य अथवा ईश्वर के विषय में मेरी श्रद्धा कभी विचलित नहीं हुई। परमात्मा की अनेक कोटि व्याख्याएँ क्यों न हों, पर मेरे लिए तो उसकी इतनी ही व्याख्या बहुत है, कि "सत्य ही ईश्वर है।"

"ठीक है। आपने इस अशांत और तूफ़ानी दुनिया में जो शांति प्राप्त की है वही आपकी सब से बड़ी सिद्धि है।"

गांधीजी—"पर बहुत-से अमेरिकन कहते हैं, कि 'तुम ईसा-मसीह को न मानोगे, तो तुम्हें शांति मिलने की नहीं।' मैं उनसे कह देता हूँ, कि मैं ईसामसीह को यद्यपि ईश्वर के एकमात्र पुत्र के रूप में नहीं मानता, तो भी मुझे शांति प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं आती।"

"जब आपने यह विषय छेड़ ही दिया, तो मैं आपसे पूछता हूँ, कि क्राइस्ट के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?"

"मैं मानता हूँ, कि वे मानवजाति के एक महान् शिक्षक थे, और शिक्षक के रूप में ही मैं उन्हें पूजता हूँ। उनके वचनों को भी श्रद्धा और भक्ति से पढ़ा करता हूँ, क्योंकि मैं तो जहाँ-तहाँ से सत्य का शोध करनेहारा मनुष्य ठहरा। संसार के अन्य शिक्षकों की शिक्षा के विषय में भी मेरी यही मनोवृत्ति रही है।"

"मिशनरियों के कार्य के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ? क्या उन्होंने आपके देश का कुछ अपकार किया है ?"

"यह मैं नहीं कहता, कि उन्होंने जान-बूझकर कोई नुकसान किया है। इच्छा बिना ही, एक उपकार तो उन्होंने किया ही है, और वह यह कि उन्हें हमारे समाज के दूषण ही दिखाई दिये, उन्होंने हमारे धर्म की कटु आलोचना ही की है, जिसका यह परिणाम हुआ कि हमें अपने दोष सुधारने के कर्तव्य का तीव्र भान हुआ, अपने धर्मशोधन के विषय में हम जागृत हो गये।"

"आप यह मिशनरी के बारे में कहते हैं या संस्थाओं के बारे में भी ?"

"मैं इन दोनों में भेद नहीं करना चाहता। मिशनरी संस्थाएँ अथवा मिशन हमारे समाज का पहले से ही कोई-न-कोई खयाल बाँध लेते हैं और उनके सदस्य उसी का प्रचार करते हैं। ३५ वर्ष से ऊपर हुआ, कि मैं जंजीबार से गुज़र रहा था। वहाँ बाइबिल खरीदने मैं बाइबिल-सोसाइटी की दूकान पर गया और बाइबिल के साथ मुझे मिशन के कार्य का एक विवरण भी मिला। इस विवरण में मिशनरियों के काम के हिसाब करने का एक विचित्र ढँग देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। एक व्यक्ति को धर्म में मिलाने से इतने शिलिंग मिलेंगे, जैसे एक रँगरूट भर्ती कराने से इतनी रक़म मिलेगी ! इतने मनुष्य धर्म में आने से धर्म इतना बढ़ गया, यह हिसाब मुझे तो बड़ा भूल-भरा लगता है।"

"आपसे एक और प्रश्न पूछूं ? आपको अपने जीवन में भारी-से-भारी निराशा क्या हुई है ?"

"मुझे निराशा-जैसी वस्तु का तो पता ही नहीं। हाँ, शायद कभी-कभी मैं अपने ही प्रति अधीर हो जाता हूँ सही, और मुझे अकुलाहट भी होती है, कि मन में उठते हुए संकल्प विकल्पों पर मैं यथेष्ट अंकुश क्यों नहीं रख सकता।"

डॉ० डोड--"मैं अभी ईसाइयों की ही एक परिषद् से आ रहा हूँ। वहाँ युद्ध और जाति-विद्वेष के विरुद्ध एक ज़ोरदार प्रस्ताव पास हुआ। मुझे भी वहां एक विषय पर बोलना था। मैंने अपने भाषण में कहा, कि हरेक ईसाई को यह प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए कि जब उसकी सरकार दूसरे राष्ट्र के विरुद्ध युद्ध छेड़दे, तब वह खुद अपने ईसाई भाइयों की जान लेने के लिए हथियार उठाने से साफ़ इन्कार करदे। आपका विचार भी क़रीब-क़रीब ऐसा ही है न ?"

"हाँ, लगभग ऐसा ही है। अंतर केवल इतना है, कि मैं 'ईसाई भाई' इस समास पद में से 'ईसाई' शब्द निकाल दूँगा। सिर्फ ईसाइयों के ही विषय में क्यों, दूसरों के लिए क्यों नहीं ?"

"नहीं; सभी के लिए। चूंकि मैं ईसाई-समाज के आगे बोलता था न, इसी से मैंने 'ईसाई भाइयो' इस पद का वहाँ प्रयोग किया।"

गांधीजी- "तब ठीक है। मुझे आपको इसलिए सचेत करना पड़ा, कि अनेक ईसाइयों की यह धारणा है, कि असभ्य कही जानेवाली प्रजा का संहार करने में कोई दोष नहीं।"

"नहीं, नहीं।" महादेव ह० देसाई

ऋण-परिशोध का प्रयत्न

इसे कौन नहीं जानता, कि हरिजन भी दूसरे ग़रीब किसानों की ही तरह क़र्ज़दार हैं और कहीं-कहीं तो वे उन से भी अधिक देनदार होंगे ? कई जगह इस क़र्ज़े के पटाने का प्रयत्न हो रहा है। अभी कहीं पूरी सफलता तो नहीं मिली, पर यह काम धीरे-धीरे ही होता है। इन प्रयत्नों का अबतक क्या फल हुआ, इसकी दो रिपोर्टें हमारे पास आई हैं, जिनका सार नीचे दिया जाता है।

बंबई के पास कुरला में 'म्यूनिसिपल हेल्थ डिपार्टमेंट को-ऑपरेटिव सोसाइटी' के द्वारा यह काम १० साल से हो रहा है। इस काम की रिपोर्ट श्रीमगनलाल नायकने भेजी है। इन दस बरसों में सोसाइटीने साहूकारों और पठानों का क़र्ज़ा चुकाने के लिए मेहतर मेंबरों को १६०००) उधार दिया। ये उधार रक़में समय-समय पर वसूल तो होती रहीं, पर यह मालूम होता है कि साहूकार और पठान के पंजे से इन लोगों का पूरी तरह से छुटकारा नहीं हुआ। कई बार तो ऐसा होता है, कि सोसाइटी में अपनी साख बनाये रखने के लिए ये लोग साहूकारों से नया क़र्ज़ा काढ़ लेते हैं, और जब उनका तगादा सख्ती से होने लगता है, तब ये फिर सोसाइटी की शरण लेते हैं। सोसाइटी से यह एक लाभ बेशक दिखाई दिया है, कि दस साल पहले साहूकारों और पठानों के आतंक से डरकर ये लोग कुरला छोड़-छाड़कर जो भाग जाते थे, अब नहीं भागते। कारण यह है, कि अब उन लेनदारों का वैसा त्रास नहीं रहा, मारपीट भी अब नहीं हो सकती। बहुत-से भागे हुए लोग लौट आये हैं। स्त्रियों को बतौर ज़ामिन के जो रखदेते थे, वह बात भी अब नहीं है। क़र्ज़ा पटवाने का काम सफलता के साथ हो इसके लिए सोसाइटीने कुछ नियम बना दिये हैं। यह प्रबंध किया गया है, कि नीचे लिखी शर्तें पूरी करने को जो तैयार हो, उसी का क़र्ज़ा पटाने को सोसाइटी उसे उधार रक़म देती है : (१) आमदनी और खर्चे का ठीक-ठाक हिसाब-किताब रखना और बतलाना; (२) आमदनी के भीतर ही खर्च करना; (३) दारू-ताड़ी, भाँग-गाँजा वगैरा व्यसनों को छोड़ देना; (४) सिवा सोसाइटी के और किसी से क़र्ज़ा न लेना; (५) मकान-कपड़े में सफ़ाई रखना और गंदी बस्तियों में न रहना; (६) सोसाइटी का क़र्ज़ा पट जाने के बाद जो पैसा बचे, उस बचत को सोसाइटी के कोष में बतौर पूंजी के जमा करते जाना।

इन शर्तों को चार कुटुंबोंने स्वीकार किया है, जिनका कुल क़र्ज़ा १०७०) का था। उनका १२५०) का क़र्ज़ा पटवा दिया गया है। जो तमाम लेनदार अपना लेना लेने आये थे, उन्होंने राज़ी-खुशी से सवा १००) की रक़म की उन्हें छूट देदी।

हरिजन-संघ, अमरेलीके मंत्री श्रीयुत जगजीवनदास महताने भी इसी तरह की एक रिपोर्ट भेजी है। उन्होंने क़र्ज़ा पटवाने का यह प्रयत्न सहकारी समिति के मारफ़त नहीं, किन्तु हरिजनों और उनके साहूकारों के साथ प्रगाढ़ परिचय प्राप्त करके किया है। यह खास ध्यान देने योग्य बात है। अमरेली में यह काम इस तरह होता है, कि पहले लेनदारों की एक फेहरिस्त तैयार की जाती है, और फिर यह प्रयत्न कियाजाता है, कि साहूकार अनुचित ब्याज न लें, सच्चा हिसाब-किताब रखें, और जहाँतक हो छोटी-छोटी किस्तों में अपना पुराना क़र्ज़ा बेबाक़ करालें। इस काम के लिए ५ आदमियों की एक कमेटी बना दी गई है, जिसमें एक साहूकार है, तीन हरिजन हैं और मंत्री श्रीमहताजी खुद हैं। हरिजनों के शादी-ब्याह और मृतक-क्रिया के खर्चे की भी रक़में निश्चित कर दी गई हैं। संघ की सिफ़ारिश से सहृदय साहूकार नाममात्र के ब्याज पर अच्छी रहन-सहनवाले हरिजनों को रुपया उधार दे देता है, जिसे वे छोटी-छोटी किस्तों में चुका देते हैं। संघ की चिट्ठी से अमुक रक़म तक का नाज-पानी, नोन-तेल, कपड़ा वगैरा भी उन्हें एक दूकान से सस्ते भाव पर और वक़्त ज़रूरत उधार भी मिल जाता है।

हरिजनों के साथ सच्चा संपर्क स्थापित किये बिना, उनके जीवन में पूर्णतः प्रवेश किये बिना, उनके ऋण-परिशोध का विकट सवाल हल करना असंभव-सा है।

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

प्रांतीय कार्य-विवरण

तामिल नाड

[जून-जुलाई, १९३४]

धार्मिक—वल्लांकुडी (मदुरा ज़िला) में मरिअम्मा का एक मन्दिर हरिजनों के लिए खोल दिया गया। उत्तरी आरकट ज़िले के अंतर्गत वेलोर, कावनूर और आरकट में तीन नये मन्दिर बन रहे हैं।

अर्नी (उत्तरी आरकट) में एक भजन-मठ बनवाया गया, जो १४ जुलाई को हरिजनों के लिए खोल दिया गया है।

कडालोर (दक्षिणी आरकट) और अर्नी में हर रविवार को भजन-कीर्त्तन हुआ। मदुरा की एक भजन-मण्डलीने हरिजन-बस्तियों में घूम घूमकर धर्म-प्रचार किया।

शिक्षा—१०२ पाठशालाएँ तो पहले से ही थीं, ये १७ नई पाठशालाएँ और इन दो महीनों में संघने खोलीं:—

१ दिवस-पाठशाला—उननाथम् (कराइकुडी)

१ रात्रि-पाठशाला—वादक्कामपट्टी (मदुरा)

१ दिवस-पाठशाला—चेवलपट्टी (विरुदनगर)

५ दिवस-पाठशालाएं—पुदुपालायम्,
रिवरचेरी,
मुल्लीग्रामम्,
विश्वनाथनूचेरी,
पुदुपालायम्-गांधी-आश्रम, } दक्षिणी आर्कट

२ रात्रि पाठशालाएँ—मेल्लीकुप्पम् (त्रिणेवली)
यमुगूर (उ० आर्कट)

१ दिवस-पाठशाला—सेवंतकुलम् (त्रिणेवली)

३ रात्रि-पाठशालाएँ—पुदुपालायम्
पुलियाकुलम्
पापनायकम्पालायम् } कोयम्बतूर

१ दिवस-पाठशाला—आदिपालायम् (कोयम्बतूर)

१ रात्रि-पाठशाला—वानियमपाड़ी (उ० आरकट)

१ दिवस-पाठशाला—मुल्लापालायम् (उ० आरकट)

तंजोर के ज़िला-बोर्डने संघ-द्वारा संचालित रात्रि-पाठशालाओं के लिए अपने ८ स्कूल सिर्फ़ रात्रि के उपयोग के लिए दे दिये हैं।

दो छात्रालय, एक कोयम्बतूर में और एक नामक्काल में, खोले गये, जिनमें क्रमशः ३७ और १२ हरिजन-छात्र रहते हैं। इसके अलावा उदमलपेट और तिरुप्पुर (कोयम्बतूर) में तथा तिरुवन्नामलाइ (उ० आरकट) में हरिजन छात्रों को खानगी तौर पर भोजन की व्यवस्था भी कर दी गई है।

इन दो महीनों में ३१५)॥ की छात्रवृत्तियाँ दी गईं और ९१५॥–)॥। की पुस्तकें व स्लेटें आदि। शिक्षा-वास्ते कुल २०४४≡)। खर्च हुए।

कोडम्बक्कम् के औद्योगिक विद्यालय में बढ़ईगीरी, लोहारगीरी, बुनाई और सिलाई सिखाने की व्यवस्था की गई है। समाम ज़िलों के विद्यार्थी यहाँ दाखिल होते जारहे हैं।

आर्थिक—कोयम्बतूर में यह व्यवस्था की गई है, कि हरिजनों को खानगी तौर पर बिना सूद के क़र्ज़ दिया जाय, जिसे वे फसल आने पर चुकादें।

चिक्करामपालायम् के मीरासदारों और दूसरे लोगों से कहा गया, कि वे हरिजन मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ादें। संघ को इस कार्य में सफलता भी मिली।

रामनाद में एक लकड़ी का कारखाना और वेलोर में एक चमड़े के धंधे का कारखाना सिर्फ़ हरिजनों को काम में लगाने के लिए खोले गये।

दक्षिणी आरकट ज़िले में एक हरिजन को पोलिस कांस्टेबिल की जगह पर नियुक्त कराया गया।

सफ़ाई व स्वास्थ्य—कोतम्पालायम् (त्रिचिनापल्ली), और रामेश्वरम् (रामनाद) में दो नये कुएँ बनवाये गये। इन के अलावा हरिजन-बस्तियों के ६ कुओं (२ मदुरा के, ४ उत्तरी आरकट के) की मरम्मत कराई गई।

कराइकुडी ज़िले के २ तालाब हरिजनों के लिए खोल दिये गये। उत्तरी आरकट के एक कट्टर सनातनीने अपना निजी कुआँ खोल दिया।

कराइकुडी में, कोयम्बतूर में और त्रिणेवली में खेलकूद के ३ क्लब खोले गये, जहाँ सभी जातियों के लड़के फुटबाल वग़ैरा खेलते हैं।

दक्षिणी आरकट, उत्तरी आरकट, कराइकुडी, मदुरा, रामनाद, त्रिचिनापल्ली, कोयंबतूर, तंजोर और त्रिणेवली इन ९ ज़िलों की १६४ हरिजन-बस्तियों का संघ के कार्यकर्ताओंने निरीक्षण किया, और लोगों को सफाई व स्वास्थ्य के लाभ समझाये।

मद्य-मांस-निषेध—इस संबंध में प्रांतभर में १०६ सभाएँ हुईं।

सामान्य—२९ जुलाई को प्रांतभर में 'पूर्णाहुति-दिवस' मनाया गया।

९६ हरिजन-बस्तियों की जाँच कराई गई, अर्थात् उनकी जन-संख्या, मकानों की हालत, पानी और शिक्षासंबंधी सुविधाओं की एक खास फार्म पर ब्योरेवार रिपोर्ट लिखवाई गई।

चिदंबरम में एक औद्योगिक पाठशाला हरिजन विद्यार्थियों के लिए खोली गई।

रामनाद ज़िले में श्री मरिया कोदंडम नामक एक हरिजन सज्जन आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाये गये।

प्रचार-कार्य—मदुरा ज़िले में हरिजन-सेवकोंने घूम-घूमकर खूब प्रचार-कार्य किया। त्रिचिनापल्ली ज़िले में भी अच्छा प्रचार-कार्य हुआ।

कष्ट-निवारण—दक्षिणी आरकट, रामनाद और कोयंबतूर की उन हरिजन-बस्तियों को सहायता पहुंचाई गई, जिनका अग्निकांड से काफ़ी नुकसान हो गया था।

एल० एन० गोपालस्वामी,
मंत्री—ह० से० संघ, तामिलनाड।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २८ सितम्बर, १९३४. [संख्या ३२

विषय-सूची

दान-मीमांसा

(२)

उत्कृष्ट हिसाब ही परमार्थ है

दान कोई विवेकशून्य कर्म नहीं है, बल्कि उसका अपना एक शास्त्र है। खादी का व्यवहार करने से यह दान कर्म बहुत अच्छी तरह सम्पन्न होता है, यह बात मैं आपको अच्छी तरह समझाऊँगा। आपकी बुद्धि यह स्वीकार करले, तभी आप इसे अपनाइए। यहाँ बहुत-से व्यापारी एकत्र हैं। आप लोग हिसाबी आदमी हैं। मुझे हिसाबी लोग बहुत पसन्द हैं, क्योंकि हिसाबी वृत्ति प्रत्येक वस्तु में उपयुक्तता को देखना सिखाती है। यह आध्यात्मिक वस्तु है। साधु-सन्त एक पाई का हिसाब न मिलने पर ही मानों रातभर हिसाब लगाते रहते हैं, बहुत ऊँचे दर्जे का हिसाब ही मानों परमार्थ है। पागलपन परमार्थ नहीं है, बल्कि बिलकुल खरा व्यापार ही परमार्थ है। हरेक काम पर विचारपूर्ण नज़र रखनी चाहिए। मैं आज आपको बतलाऊँगा कि जमा-खर्च कैसे लिखना चाहिए। आप लोग कहेंगे, कि हमारा तो जन्म ही जमा-खर्च करते बीता है, यह बाबा हमें क्या जमा-खर्च सिखायगा! परन्तु मैं बिलकुल स्पष्ट कहता हूँ कि आपको जमा-खर्च रखना नहीं आता।

खादी महँगी होती है, ऐसा लोग कहते हैं। परन्तु आप को हिसाब लगाकर मैंने बताया है कि खादी कितनी महँगी पड़ती है। आप ही लोगोंने हिसाब लगाकर बतलाया कि साल भरमें मिलका कपड़ा १०) रु० का खर्च होता है, तो खादी पर १२॥) रु० पड़ते हैं। इसका मतलब हुआ कि खादी में प्रतिमास सवा तीन आने का खर्च अधिक पड़ता है—अर्थात् प्रतिदिन सवापाई—यानी कुछ भी नहीं। स्वराज्य-प्राप्ति के इच्छुक राष्ट्र की जनता प्रतिदिन सवापाई न दे सके और ५ तोले अधिक वज़न की खादी न पहन सके, तो यह स्पष्ट है कि स्वराज्य या स्वातंत्र्य हमारे लिए नहीं हैं। परन्तु जाने दो इसे, मैं एक दूसरी ही बात कहूँगा। मिल के कपड़े लेने पर आप १०) खर्च-खाते लिखेंगे और खादी लेने पर १२॥) रु०। परन्तु खादी के १२॥) का हिसाब लिखते समय, १२॥) खादी-खर्च-खाते लिखने की ज़रूरत नहीं। १२॥) के दो भाग कर लेने चाहिए; १०) का कपड़ा और २॥) दान-धर्म मिलाकर १२॥) करना चाहिए। जो २॥) खर्च अधिक हुआ वह श्रम करनेवाले दूर के ग़रीब लोगों को मिलता है, अतः उस २॥) को दान-धर्म समझना चाहिए। यही सच्चा दान है। खादी कितने लोगों को आश्रय देगी, यह सोचना चाहिए। भारत में जो मिलें हैं उनमें भारत की आवश्यकता का ½ कपड़ा तैयार होता है। भारतीय मिलों में मज़दूरों की संख्या ५ लाख मानलें, तो ५ लाख मज़दूरों को मिल का कपड़ा लेने से रोटी मिलती है। अगर भारत की ज़रूरत का सारा कपड़ा मिलों ही में तैयार कराया जाय, तो १५ लाख मज़दूरों को काम मिल जायगा—परन्तु खादी! खादी करोड़ों मनुष्यों को काम देगी। इस प्रकार खादी न लेने का मतलब करोड़ों लोगों के मुँह का ग्रास छीन लेना है। आजकल के अर्थशास्त्र का सबसे बड़ा सिद्धान्त यह है कि सम्पत्ति के जितने विभाग हो सकें उतना ही अच्छा; एक हाथ में पैसा नहीं बटोरना चाहिए, उसे बाँट देना चाहिए। परन्तु यह बात खादी से ही सध सकती है। मिलों में, मिल-मालिक और शेयरहोल्डरों के हाथ में पैसा जाकर जमा होता रहता है। खादी में वह बँट जाता है; आना, आधआना देशभर में फैले हुए ग़रीब-गुरबों को मिलता है। इससे जो लाभ होगा वह सबको होगा, जैसे पानी बरसने से होता है। नल बहुत ज़ोर से चलने पर भी, एक जगह बहुत ज़ोर से पानी गिरने पर भी, सारी पृथ्वी पर उसका असर नहीं होता। इसके विरुद्ध वर्षा का पानी रिमझिम बरसने पर भी सर्वत्र पड़ता है और सब को लाभ पहुँचाता है। खादी में भी यह दिखता है। पावस में जो यह दैवीगुण, यह व्यापकता है, वही खादी में भी है।

'दानं संविभागः'

हमारे शास्त्रकारोंने दान की व्याख्या यह की है—'दानं संविभागः'—एक जगह एकत्र को सम्यक् रीति से सर्वत्र विभाजित कर देना। यह काम खादी से ही सधता है। महाभारत में अर्थशास्त्र का एक महान् सिद्धान्त बतलाया गया है, जो व्यापक और सनातन है। "दरिद्रान् भर कौन्तेय, मा प्रयच्छेश्वरे धनम्" जो ईश्वर है, भारी समृद्ध है, उसे मत दो; जो दरिद्र है, उसे दो। मालदार को देने की ज़रूरत नहीं, ग़रीबों की ही उदर-पूर्ति करो। यही सनातन सत्य है। आप ज़री का माल अथवा मिल का माल लें तो धन मालदार के ही पास पहुँचता है। यह तो जिसने नाकतक ठूसकर पेट भर खाया हो उसी को और रबड़ी खिलाना हुआ। यह अधर्म है, अन्याय है। परन्तु खादी लेने पर वह पैसा ग़रीब, दरिद्रनारायण के पास जायगा—और, महाभारतादि शास्त्रों का भी यही आदेश है। (अपूर्ण)

वर्ण-व्यवस्था

वर्ण-व्यवस्था 'गुणकर्म-विभागशः' है। गुण बहुत अंशों में आनुवंशिक होने से और कर्म अर्थात् उपजीविका के उद्योग अथवा धंधे में भी कुलपरंपरा का महत्त्व अधिक होने के कारण, वर्ण व्यवस्था मनुष्य के जन्मानुरूप मानी जाय, तो बतलाइए, इसमें अशास्त्रीय या अन्याय की ऐसी बात ही क्या है? जन्म से या गुण से (According to birth or according to worth) इस प्रकार का एक काल्पनिक-सा प्रश्न खड़ा करके चातुर्वर्ण्य का विरोध करने से कुछ भी मतलब सिद्ध नहीं होता। गुण-कर्म-विभाग अधिकांश में जन्म के अनुसार ही विभाजित होने के कारण, चातुर्वर्ण्य ईश्वर कृत (चातुर्वर्ण्यं मयासृष्टं) माना गया है। पर इसमें सन्देह नहीं, कि चातुर्वर्ण्य का तत्त्व गुण और कर्म है। गीता में जहाँ ब्राह्मण-कर्मों का वर्णन किया गया है, वहाँ वे उसके गुण ही हैं। क्षात्र कर्मों के विषय में भी यही कहा जा सकता है। इसी प्रकार वैश्य और शूद्र के लिए जो 'स्वभावज' कर्म बताये गये हैं, वे भी उनके केवल गुण ही हैं।

ब्राह्मण और क्षत्रिय ये दोनों वर्ण प्रत्यक्ष रूप में समाज-सेवा के लिए अर्पित हैं, इसलिए उनके जीवन-निर्वाह का दायित्व समाज पर है। सिर्फ़ वैश्य और शूद्र को आजीविका-प्राप्त्यर्थ विशिष्ट कर्म करने पड़ते हैं। इसी कारण इस प्रकार का भेद-भाव किया गया होगा। केवल मनुस्मृति में ब्राह्मणों के लिए षट्कर्म का इस प्रकार विभाजन किया गया है, कि अध्यापन, याजन, और प्रतिग्रह ये तीन कर्म तो आजीविका के लिए हैं और यजन, दान और अध्ययन ये तीन कर्म धर्म के निमित्त अर्थात् समाज-सेवा के लिए हैं। अध्यापन-द्वारा आजीविका प्राप्त करे सही, पर उसका भी प्रधान उद्देश तो समाज-सेवा ही है। केवल आजीविका के अर्थ अध्यापन करनेवाला उपाध्याय ब्राह्मणवर्ग में भी विशेष प्रतिष्ठा नहीं पाता।

किसी भी धंधे या पेशे में मनुष्य अपने वर्ण के अनुसार भिन्नवृत्ति में रह सकेगा। दर्ज़ी की दूकान में नित्य मजदूरी लेकर बखिया करना, बटन टाँकना आदि ऊपरी काम करनेवाला मनुष्य शूद्र दर्ज़ी है। सीने के काम की बड़ी दूकान चलानेवाला दर्ज़ी वैश्यवर्ण का दर्ज़ी कहा जायगा। शहर के तमाम दर्ज़ियों को संगठित करके समाज और सरकार के विरुद्ध, प्रसंग आनेपर, हड़ताल इत्यादि के द्वारा दर्ज़ी जाति को अधिकारों का संरक्षण दिलानेवाला क्षत्रिय दर्ज़ी कहा जा सकता है; और सिलाई का काम सिखाने का क्लास खोलकर लोगों को उस कला का सम्पूर्ण ज्ञान उदार हृदय से देनेवाला दर्ज़ी ब्राह्मण दर्ज़ी कहा जा सकता है। 'यतिधर्म-संग्रह' ग्रन्थ में इस प्रकार के ब्राह्मणों का वर्णन 'अत्रि-स्मृति' से उद्धृत किया गया है। उसमें क्षत्रिय ब्राह्मण, वैश्य ब्राह्मण, म्लेच्छ ब्राह्मण आदि वर्गीकरण करके उनकी विशद व्याख्या की गई है। जाति और वर्ण इन दो तत्त्वों के मेल से इस प्रकार का वर्गीकरण हुआ है।

यहाँतक 'गुणशः' दृष्टि से विचार किया गया है। पर मुख्यतः समाजमें वर्तमान इष्ट व्यवसाय या धंधों को आनुवंशिक परंपरानुसार चलाकर, समाज-द्रोही चढ़ा-ऊपरी बंद करने के लिए ही, यह वर्ण-व्यवस्था रची गई है। समाज-सेवा के निमित्त परोपकार-वृत्ति से चाहे जो मनुष्य चाहे जिस कर्तव्य कर्म को कर सकता है, क्योंकि इसमें आजीविका के निमित्त चढ़ा-ऊपरी का प्रश्न तो है नहीं। वर्ण-व्यवस्था का यह आग्रह है, कि मनुष्य अपनी वंशपरंपरागत अथवा वैसी ही किसी दूसरी आजीविका को अंगीकार करे, और इसीलिए सर्व वर्ण समाज-हित की दृष्टि से सम-समान समझे गये हैं। जबतक यह सिद्धान्त स्थिर न किया जाय कि प्रत्येक वर्ण अपनी-अपनी जगह पर श्रेष्ठ है, तब तक यह चढ़ा-ऊपरी रुकने की नहीं, और संसार में द्रोह, विग्रह और असूया का रोका जाना भी सम्भव नहीं। आनुवंशिक संस्कार के कारण स्वकर्म और स्वधर्म का अनुशीलन करने से असाधारण कौशल्य अर्जित किया जाता है। सामाजिक दृष्टि से यह बहुत बड़ा लाभ है। वकील के लड़के को बचपन में ही वकालत पेशे का दूध पिलाया जाता है। बड़े होनेपर पूर्व परिचित मुवक्किल भी उसे पहले से ही हमेशा के लिए मिल जाते हैं, और इस तरह वकील-मुवक्किलके बीच का घरेलू सम्बन्ध मज़बूत होता जाता है। कोई भी रोज़गार धंधा पैसा बटोरने की ग़रज़ से न किया जाय यह हमारे समाजशास्त्र का नियम होने से और प्रत्येक पेशे की आमदनी को पर 'सर्वभूत-हिते-रताः' जैसे निष्पक्ष तथा निस्पृह समाज-सेवी ऋषियों के द्वारा निश्चित होने के कारण विभिन्न व्यवसायों के प्रति मत्सर-भाव रखने का फिर कोई कारण नहीं रह जाता। किसी अपवादस्वरूप व्यक्ति को अपने परंपरागत व्यवसाय में रुचि भले ही न हो और कोई दूसरा ही पेशा उसे विशेष अनुकूल दिखाई देता हो, पर इस अपवाद को लेकर समाज-व्यवस्था को अव्यवस्थित और तत्वशून्य करने देना बुद्धिशून्यता का ही लक्षण है। यह मानने में कोई कारण नहीं दिखाई देता, कि आजीविका की व्यवस्था केवल समाज-हित की दृष्टि से ही करने में व्यक्ति का विकास कठिन हो जाता है। खादी बुनकर पेट भरनेवाले उस सन्त कबीर और नम्र तैयार करके अपना और अपने शिष्यों का पालन-पोषण करनेवाले उस मेट पाळ के किस प्रकार के विकास में बाधा उत्पन्न हुई थी?

हो सकता है कि स्त्रियों को, मुख्यतः, शिशु-संगोपन में लगी रहने के कारण, आजीविका के लिए किसी स्वतंत्र पेशे के करने की आवश्यकता न हो। पति के पेशे में उसने हाथ बँटाया, तो उसी में सब कुछ आ गया। वस्तु-स्थिति इस प्रकार की होने के कारण, गोत्र की तरह वर्ण के विषय में भी निश्चित किया जा सकता है, कि जो वर्ण पति का होगा, वही पत्नी का भी होगा। इससे रहन-सहन, कार्य-शैली, विचार-पद्धति परस्परानुकूल हैं। इसमें कोई भी आक्षेपयोग्य बात बाधा नहीं डालती। इस अवस्था में वर्णान्तर-विवाह से किसी भी तरह समाज-द्रोह या धर्म-हानि होने की सम्भावना नहीं। इस प्रकार के वर्णान्तर-विवाह करने पर विशेष ज़ोर भी डाला जाय, तो भी उसके अधिकांश में होने की सम्भावना नहीं। और समाज के हित-चिन्तक लोग सुयोग्य अपवादों का विरोध न करके उन्हें आशीर्वाद देंगे, तो समाज का वातावरण नीरोग और सप्राण ही रहेगा।

धर्म का अध्ययन और आचरण एवं कालानुरूप संस्करण को प्राधान्य देकर समाजान्तर्गत संस्कार, ज्ञान, कौशल्य और पराक्रम की वृद्धि करने के लिए जो लोग समाज-सेवा-कार्य के निमित्त अपने को अर्पित कर देंगे, वे ब्राह्मण कहे जावेंगे। धर्मशास्त्र (इसमें

समाज-शास्त्र का पूर्णतया समावेश हो जाता है) का सम्पूर्ण अध्ययन-अनुशीलन करनेके पश्चात् समाज के समस्त व्यवहारों के लिए आवश्यक ज्ञान प्राप्त करके समाज के सभी वर्ण और अवयवों के पालन-पोषण की जिम्मेदारी को, निष्पक्ष रीति से और निरालस्य होकर, जो लोग निभायँगे, वे क्षत्रिय।

समाज के नित्यप्रति वर्धमान विभिन्न अंगों के लिए आवश्यक उपयुक्त पदार्थ प्रस्तुत करके लोगों को बेचनेवाले अथवा समाजोपयोगी विविध प्रकार का ज्ञान और कौशल्य हासिल करके समाज के हाथ उसका विक्रय करनेवाले और वस्तु या कौशल्य प्राप्त करने में, बेचने में और अपनी जीवन-यात्रा में जो लोग धर्म अर्थात् समाज-हित का उल्लंघन नहीं करते, वे वैश्य हैं।

परिचर्या याने शरीर-सेवा करना या कराना समाज-हित की दृष्टि से कोई विशेष लाभप्रद नहीं है। जो कार्य प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिए उसे दूसरों से कराने में व्यक्ति और समाज का अनहित ही है। परिचर्या करने-करानेवाले परस्पर आश्रित ही हैं। बूढ़े, रोगी, दुर्बल अथवा मूर्ख और बालक ही स्वभावतः परिचर्या के अधिकारी हैं। अपने आवश्यक कार्यों में से भी समय निकालकर हमें ऐसे लोगों की परिचर्या कर देनी चाहिए। पर यह ध्यान रहे, कि परिचर्या अथवा सेवा हमारी आजीविका का साधन नहीं है। जब समाज हीनावस्था को पहुँच जाता है, तब उसके सेवा-क्षेत्र में पेशेवर लोग घुस आते हैं और सेवाकार्य एक पेशा होजाता है।

परिचर्या समाज-हित की दृष्टि से एक भयावह वस्तु है यह दृष्टि-कोण प्राचीन काल के आर्यों में जिस परिमाण में जागृत होना चाहिए था नहीं हुआ। प्राचीनकाल के आर्यसदृश ग्रीक यवन यह मानते थे, कि परिचारक या गुलाम समाज का एक स्वाभाविक अंग है। आज हम यह स्पष्ट देखते हैं, कि परिचर्या दोष के कारण आर्य-संस्कृति एवं ग्रीक-संस्कृति दोनों ही निकृष्टतम अवस्था को पहुँच गई हैं। इसलिए परिचारक, गुलाम, शूद्र और अंत्यज आदि श्रेणियों के संबंध में हम आज नये सिरे से विचार करना होगा।

ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण संस्कार-प्रधान हैं। संस्कार प्राप्त करनेकी जिनमें शक्ति या क्षमता नहीं, अथवा जिन्हें संस्कृत करने में समाज सफल नहीं हुआ, ऐसे लोगों की आजीविका परिचर्या पर ही निर्भर करती है। परिचर्या करनेवालों में एक ही गुण की आवश्यकता रहती है, और वह है असूया का अभाव। एक ओर से परिचर्या-क्षेत्र को कम करते जाना और दूसरी ओर से शिक्षा-शास्त्र में नये-नये प्रयोग करके संस्कार-दान की निष्फलता का क्षेत्र शून्यवत् कर देना ही समाज के उत्कर्ष का लक्षण है। सच तो यह है, कि जिस समाज का शूद्र वर्ण बड़ा है, वह समाज गले में पत्थर बाँधकर तैरने का दुस्साहस कर रहा है! ऐसा समाज तो सदा पराधीन ही रहेगा।

शिक्षा और स्वावलंबन के विकास से शूद्रवर्ण का स्थान सर्वथा नष्ट होनेपर जो वर्णत्रयी शेष रह जायगी उसीका हम अब विचार करेंगे। आलस्य और विलास के कम हो जाने पर लोभ और मत्सर भी कम हो जायँगे। संतोष और पराक्रम यदि ये दो गुण पूर्ण प्रमाण में विकसित हुए, जो न तो कोई किसी को लूटेगा, न कोई किसी के साथ अन्याय करेगा। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर प्रजा-रक्षण में अपना जीवन देनेवाले क्षत्रियों की संख्या स्वभावतः ही घट जायगी। जिस प्रकार हम यह नहीं चाहते, कि समाज में रोग बढ़ें और वैद्य-डाक्टरों का रोज़गार खूब धड़ल्ले से चले, उसी प्रकार यह कल्पना भी एक भूल होगी, कि समाज में लूटमार, अनीति, ज़्यादती बढ़े और हमारे पड़ोसी राष्ट्र बाघ भेड़िये की तरह हों और उनसे प्रजा का रक्षण करने की संधि-शक्ति क्षत्रियों को प्राप्त हो और इससे उनकी प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य बढ़े। जिस प्रकार हम यह चाहते हैं कि आग बुझानेवाला पंप (फायर ब्रिगेड), अकाल-पीड़ितों का सहायक-मंडल और अस्पताल बेकार होकर बंद हो जायँ, पर फिर भी बड़ी सावधानी से हम उनका प्रबन्ध किये रहें, उसी प्रकार क्षत्रियवर्ण रक्षा-परायण, दुष्टों से लड़नेवाला, प्राणों की ज़रा भी परवा न करनेवाला, निष्पक्ष और व्यसन-रहित हो; इस प्रकार की व्यवस्था होने पर भी हमें यही इच्छा करनी चाहिए, कि समाज में आदर्श मानवता स्थापित हो और क्षत्रियवर्ण की आवश्यकता ही न रहे।

जबतक जन्मतः ही मनुष्य प्राणी शिक्षा-संस्कृति-संपन्न न रहेगा, तबतक ज्ञान प्रदान करनेवाला वर्ग तो समाज में रहेगा ही। इस वर्ग के हाथ में न अधिकार होगा, न ऐश्वर्य। सत्य और सेवा, स्वावलंबन और ग़रीबी के बल पर ही यह वर्ग सन्तोषवृत्ति धारण करके रहेगा। ऐसा सामाजिक नियम बन जाने से इस वर्ग के द्वारा न किसी को कष्ट पहुँचेगा, न कोई संकट उपस्थित हो सकेगा। पर इस ज्ञानदायक वर्ग के लोगों की संख्या सदा परिमित ही रहेगी। ब्राह्मणों का आदर्श कठोर होगा सही, पर आनुवंशिक संस्कार होंगे तो, उसका पालन सरल होगा। फिर भी अपने उज्ज्वल जीवनक्रम से चाहे जिस वर्ण के मनुष्य के लिए सेवा-कार्य करना सम्भव है, और होना चाहिए। इस प्रकार के मनुष्य निरहंकारी होने से और इस बुद्धि के दृढ़ होने से कि सर्व वर्ण सम-समान हैं, जो ब्राह्मण वर्ग में पैदा नहीं हुआ, वह अपने को ब्राह्मण कहलाने का बिल्कुल ही आग्रह न करेगा। इसके अतिरिक्त यह भी सच है कि समाज उसकी जीवन-चर्या देख कर उसे ब्राह्मण कहे बिना और उसके साथ ब्राह्मणोचित बर्ताव किये बिना न रहेगा। ऐसे पुरुषों के वंशजों का ब्राह्मण कुल में मिल जाना स्वाभाविक है।

अब रहा वैश्य वर्ण। वेदों में 'विट्' अथवा 'विश्' का अर्थ वैश्य भी होता है और सामान्यतः मनुष्य भी। विराट् मनुष्य-समाज कभी भी वैश्य ही रहेगा। इस वैश्य-समाज में सभी प्रकार के पेशेवर आ जाते हैं। पोथी लिख-लिखकर पेट पालनेवाला, राज्य-संचालन करनेवाला, वेतन लेकर सरकारी न्यायाधीश या हाकिम का काम करनेवाला और चमड़ा कमाकर उसके जूते बनानेवाला भी किसान, ग्वाला, जुलाहा और वनिज करनेवाले बनिये की तरह वैश्य ही हैं। एक वैश्य वर्ण में असंख्य जातियों या जमातों का समावेश हो जाता है। यह नियम नहीं है, कि इन सब जातियों या जमातों में परस्पर विवाह-संबंध होगा ही। पर वर्ण-व्यवस्था की तरह इस में वैसा कोई प्रतिबंध नहीं। इस प्रकार विवाह-व्यवस्था का निर्बंधन बहुत अंशों में स्वाभाविक होने पर समाज अधिक सुसंगठित और बलशाली होगा, और स्त्रियों की स्थिति तो इससे बहुत-कुछ सुधर जायगी।

'हिंदलग्याचा प्रसाद' से] दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २८ सितम्बर, १९३४

हिंसा के विरुद्ध क्यों ?

एक सज्जन यह दलील देते हैं:—

"आप आख़िर क्यों हिंसा के विरुद्ध हैं ? क्या आपके ख़याल में प्रत्येक 'हिंसा कृत्य' में पाप है? क्या यह अजीब-सी बात नहीं है, कि जब हम कोई हत्या या क़त्ल देखें, तब एक तरह का डर, तरस और घिन महसूस करें, और संसार में नित्य प्रति धीरे धीरे जो रक्त चूसा जा रहा है उसे चुपचाप खड़े देखते रहें ? अगर किसी का यह विश्वास है, कि सफल रक्तपात की क्रान्ति से दुनियाँ की हीन दशा बहुत-कुछ सुधर जायगी, तो वह क्यों न हथियार उठावे ? मनुष्य की प्रकृति के बारे में आप अत्यधिक आशावादी मालूम होते हैं, हालांकि मैं अक्सर उसके विषय में आपके कटु अनुभवों को पढ़ा करता हूं। क्या आप यह अनुभव नहीं करते कि संसार के शासक आज इतने अधिक हृदयहीन हो गये हैं, कि जबतक वे फिर से 'बच्चे' नहीं हो जाते, तब तक आपको या मनुष्यता को वे समझ ही नहीं सकते ? मेरे कहने का यह अर्थ नहीं, कि वे पैदाइश से ही बुरे हैं। मगर उनकी बुराई हाड़-मांस में इस क़दर पैठ गई है, कि अपने आप उसे वे बदल ही नहीं सकते।"

दुनियाँ के शासक अगर बुरे हैं, तो इसका यह कारण नहीं, कि बिल्कुल प्रकृति से या सर्वथा जन्म से ही वे ऐसे हैं, बल्कि अधिकांशतः सहवास या परिस्थितियों के कारण उनमें यह बुराई आगई है, और इसीसे मुझे आशा है, कि वे सुधर सकते हैं। लेखक का यह कहना बिल्कुल ही सच है, कि अपनी बुराई को वे अपने आप नहीं बदल सकते। अगर उनकी चारों ओर की परिस्थितियोंने उन्हें अपना ग़ुलाम बना लिया है, तो उनकी बुराई उन्हें क़त्ल कर देने से नहीं बदली जा सकती, उसमें तो उनको उन परिस्थितियों के बदल देने से ही सुधार किया जा सकता है। पर वे परिस्थितियाँ हम प्रजा ही तो हैं। जैसी प्रजा, वैसा राजा। कुल मिलाकर असल में प्रजा के विस्तृत संस्करण ही इन शासकों को कहना चाहिए। मेरी यह दलील अगर ठीक है, तो शासकों के प्रति किया हुआ हमारा कोई भी हिंसाकार्य 'आत्मघात' ही कहा जायगा। और चूँकि मैं न ख़ुद आत्मघात करना चाहता हूँ, न अपने पड़ोसियों को ऐसा करने के लिए उत्तेजित करना चाहता हूँ, इसलिए मैं स्वयं अहिंसक बन जाता हूँ और अपने पड़ोसियों से भी यही मार्ग ग्रहण करने को कहता हूँ।

फिर, हिंसा एक या अनेक ज़ालिम शासकों को नष्ट कर सकेगी सही, किन्तु रावण के मस्तकों की तरह उनकी जगह वैसे ही दूसरे पैदा हो जायँगे, क्योंकि जड़ तो जायगी नहीं। वह जड़ तो हमारे अपने ही अंदर है। अगर हमने अपना सुधार कर लिया, तो हमारे शासक तो आप ही सुधर जायँगे।

लेखकने शायद यह कल्पना कर रखी है, कि 'अहिंसक मनुष्य' किसी अत्याचार को महसूस नहीं कर सकता और संसार में नित्य धीरे-धीरे जो रक्त-शोषण हो रहा है, उसे वह चुपचाप खड़ा देखता रहता है। यह बात नहीं है। अहिंसा कोई निष्क्रिय शक्ति नहीं है, न लेखक की कल्पना के अनुसार वह ऐसी बेशर्मी की ही चीज़ है। सत्य के बाद असल में अहिंसा ही संसार में बड़ी-से-बड़ी सक्रिय शक्ति है। विफल तो वह कभी जाती ही नहीं। हिंसा सिर्फ़ ऊपर से सफल मालूम देती है। किसीने कभी यह दावा नहीं किया, कि हिंसा से सफलता बराबर मिलती ही है। अहिंसा कभी यह दावा नहीं करती, कि उससे तत्क्षण प्रत्यक्ष फल मिल जाता है। वह कोई जादू की पुड़िया तो है नहीं। इसी से उसमें असफलताएँ होती दिखाई देती हैं। हिंसा में जिसका विश्वास है, वह हत्यारे को मार डालेगा और अपने इस काम की बड़ी शान बघारेगा। पर उसने 'हत्या' को तो मारा नहीं, बल्कि हत्यारे को मारकर उसने एक और हत्या कर डाली, और शायद हत्या का द्वार और भी खोल दिया। वैर से तो वैर बढ़ता ही है, उसका शमन नहीं होता।

अहिंसक मनुष्य तो अपने प्रेमबल का ही हत्यारे पर असर डालेगा। हत्यारे को दंड देकर वह उस हत्या को नहीं मिटा सकता। पर अपने प्रेम के द्वारा हत्यारे में हत्या-कृत्य पर पश्चात्ताप कराने की और उसके जीवन का मार्ग एकदम बदल देने की उसे आशा रहती है। अहिंसक मनुष्य तो सदा आत्मनिरीक्षण ही करेगा और इस परमसत्य का पता लगा लेगा कि—

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।'

हमें वही बरताव दूसरों के साथ करना चाहिए, जो हम उनसे अपने प्रति कराना चाहते हैं। यही सर्वोत्तम मार्ग है। अगर वह स्वयं हत्यारा होता, तो वह अपने पागलपने के लिए अपना वध कभी न करवाना चाहता; वह तो यह चाहता, कि उसे अपनेको सुधारने का अवसर मिले। अहिंसक यह भी जानता है, कि जिसे वह बना नहीं सकता, उसे मिटाना भी नहीं चाहिए। मनुष्य-मनुष्य के बीच का एकमात्र मुंसिफ़ तो हमारा सिरजनहार ही है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

तर्क नहीं, किन्तु अनुभव

मेरी दृष्टि में तो मेरी प्रत्येक प्रवृत्ति के लिए सत्य की तरह अहिंसा भी मेरा शाश्वत धर्म है। मनुष्येतर जीवसृष्टि के प्रति अपने व्यवहार में अनेक बार इस धर्म का जो मैं पूर्ण आचरण नहीं कर सकता, वह मेरी आत्मनिर्बलता ही सिद्ध करता है; इससे अहिंसा धर्म की सत्यता अथवा मेरी तद्विषयक श्रद्धा में कमी नहीं आती, न आ सकती है। मैं तो केवल एक रंक साधक हूँ। सदा ठोकर-पर-ठोकर खाता रहता हूँ, तो भी निरंतर ऊपर चढ़ने का जतन करता हूँ। मेरी निष्फलता मुझे पहले से भी अधिक जाग्रत बनाती है और मेरी श्रद्धा में और भी अधिक शक्ति का संचार करती है। मैं यह श्रद्धा की आँख से देख सकता हूँ, कि सत्य और अहिंसा के द्विविध धर्म के पालन में इतनी अमोघ शक्ति है, कि जिसकी हमें बहुत ही धुँधली कल्पना है।

अगर इन दोनों तत्त्वों को हमें अपने समस्त जीवन में व्यापक बना लेना है, तो अस्पृश्यता के विरुद्ध हमने जो शुद्ध धार्मिक युद्ध छेड़ा है, उसमें तो इसकी बहुत अधिक आवश्यकता है। अतएव अमेरिका के एक मित्र के लिखे पत्र का निम्नलिखित

उद्धरण पाठकों के आगे रखते हुए मुझे हर्ष होता है। इस पत्र में मेरे अमेरिकन मित्रने अपने हृदय का भाव प्रगट किया है; इस बात का वर्णन करके कि उनकी मनोवृत्तियाँ किस तरह काम कर रही हैं, उन्होंने महा-मंथनपूर्वक शोध करने के उपरान्त अहिंसा के विषय में जो श्रद्धा—अभी स्यात् वह सम्पूर्ण नहीं कही जा सकती—प्राप्त की है, उसे व्यक्त किया है।

"आपके साथ अभी पिछली बेर मेरी जो बातचीत हुई थी, उस पर से आपने यह समझा होगा कि अहिंसा के बारे में मेरी जो आस्था थी उसे अब मैं गँवाता जा रहा हूँ। इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में मुझे अनेक शंकाओंने परेशान कर रक्खा था, और इसी से मुझे आपके साथ बात करने का इतना अधिक मन हुआ। मुझे ऐसा लगता है कि यह मेरी भारी नादानी थी, क्योंकि मुझे यह साफ़-साफ़ समझलेना चाहिए था, कि महान् नैतिक तथा आध्यात्मिक सत्य तर्क के द्वारा सिद्ध हो ही नहीं सकते। इन सत्यों का तो अनुभव की आग में ही कसना चाहिए। ऐसी कठिन कसनी मैंने अपने जीवन में अभी कहां की है? मुझे लगता है, कि अहिंसा को अपने अनुभव से शाश्वत धर्म सिद्ध करने के लिए जितनी तपस्या मैंने आजतक की है, उससे कई गुनी अधिक मुझे करनी चाहिए।

किन्तु दूसरों के जीवन में इसका जो परिपाक हुआ है उसे मैं देखता हूँ, और इसका जो फल लगा है उसे भी मैं देख सकता हूँ और उससे मैं इसे अपनी धर्म-श्रद्धा के एक महान् अंग के रूप में अंगीकार भी कर सकता हूँ। राजेन्द्र बाबू जैसे पुरुषों के निकट संसर्ग में आना एक ऐसा सौभाग्य है, कि जिसके लिए मनुष्य को भगवान् का आभारी होना चाहिए। मैंने देखा है, कि राजेन्द्र बाबू और दूसरे कुछ व्यक्ति, जिनका नाम मैं बतला सकता हूँ, और जिन्होंने अपने जीवन को पवित्र अहिंसा के ही आसरे चलाए है, वे लोभ, मोह, स्वार्थ, द्वेष, भय आदि को दूर करके ही शुद्ध हो सके हैं। अनेक लोग दूसरों प्रकाशमय भविष्य की झांकी झांकी तो कुछ-कुछ ले सकते हैं, पर अन्तर में डेरा डाले हुए ये षड् रिपु उन्हें ऐसा सताते हैं, कि वे बाह्य शत्रुओं के सामने युद्ध में विजय-लाभ नहीं कर सकते। आपके विरोधियों पर अहिंसा का जो प्रभाव पड़ा है उस पर मैं इतना अधिक मुग्ध नहीं हूँ; किन्तु आप पर और दूसरे मुट्ठी भर मनुष्यों पर, जिन्होंने अहिंसा धर्म को अपने अन्तर में उतारा है, इसका जो प्रभाव पड़ा है मेरा मन तो उसी पर मन्त्र-मुग्धवत् है।

मैं मानता हूँ, कि यह विश्व नीति-नियंत्रित है। अतः जिसप्रकार दिनके बाद रात आती है, उसीप्रकार यह भी स्पष्टतः स्वयंसिद्ध है, कि चारित्र्य का ऐसा सुन्दर विकास असत्य के प्रयोगों से हो ही नहीं सकता। और इसी तरह मैं यह भी मानता हूँ, कि ईसामसीह का यह वचन अंततः सत्य ही है, कि 'जो लोग तलवार उठायँगे उनकी मौत तलवार से ही होगी।'

.........मेरा विश्वास है कि आपको अपने युद्ध की अन्तिम विजय के लिए एक ही गुण के उपयोग करने की ज़रूरत है, और वह गुण है धीरज।

.........हिन्दुस्तान का आज आप जो नेतृत्व कर रहे हैं उसके बारे में तो मैं इतना ही कहूँगा, कि आपने नेतृत्व का यह गुण एक दिन में विकसित नहीं किया, और न यह गुण आपका जन्मजात ही है। मैं मानता हूँ कि आप सत्यपरायणता का दीर्घकालिक तप करके, लम्बे और कठिन अनुभव के परिणामस्वरूप ही, अपने जीवन को इतना ऊँचा उठा सके हैं। भले ही यूरोप के लोगों को अहिंसा-पालन की शिक्षा न मिली हो, पर मैं यह नहीं मानता कि यूरोप में मनुष्य-स्वभाव हिन्दुस्तान से बिलकुल ही भिन्न होता है। इसलिए वे लोग भी आचरण-द्वारा ही अहिंसाधर्म में निष्णात हो सकते हैं। इसमें अनेक बार निष्फलता होगी, अनेक बार हिम्मत टूटेगी, अनेक बार पराजय होगी। आपके भी जीवनमें यह सब हुआ है और अब भी हो रहा है। लेकिन अगर यह सत्य है, तो इस शाश्वत धर्म का त्याग तो किसी भी समय नहीं किया जा सकता।"

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

ग़लत रास्ता

बहुधा अच्छे-अच्छे काम करनेवाले लोग जोशमें आकर न करने योग्य कार्य कर डालते हैं, और इस तरह उस कार्य को लाभ के बदले हानि पहुँचाते हैं। इसका एक छोटा-सा क़िस्सा सुनने-लायक है। श्रीयुक्त अकर्ते मोरसी (मध्यप्रांत) के एक वकील हैं। हरिजन-सेवा कार्य में इनका खब दिल लगता है। हरिजन-बस्तियों में नियमित रीति से जाते हैं। एक हरिजन-छात्रालय की देखरेख भी करते हैं। यह क़िस्सा खुद उन्हीं का बतलाया हुआ है।

मोरसी की हिंदू-सभाने एक कीर्तनकार को कीर्तन करने के लिए बुलाया था। एक विज्ञप्ति-द्वारा हिंदू-सभाने तमाम हिंदुओं को कीर्तन में आने के लिए निमन्त्रण दिया। पर कीर्तन एक ऐसे मन्दिर में कराया गया, जिसमें जाने का हरिजनों को अधिकार नहीं था। अकर्ते महाशय अपने हरिजन छात्रों को लेकर वहाँ पहुँचे। कीर्तनकार को कीर्तन के बीच में ही आपने ललकारा, और कहा कि ऐसी व्यवस्था कीजिए, जिससे मंदिर के बाहर बैठे हुए हरिजन भी आपका कीर्तन सुन सकें, या फिर बाहर आकर कीर्तन करें। कीर्तन छोड़कर बाहर जाने के लिए तो वह सज्जन तैयार नहीं थे। पर अकर्तेजी से कहा कि मैं हरिजनों के लिए हरिजन-बस्ती में आकर विशेष कीर्तन करने को तैयार हूँ। अकर्तेजी को यह असह्य हो गया। कीर्तन में विघ्न होने से मन्दिर में गड़बड़ी तो हो ही गई थी। अकर्तेजीने लगे हाथों बाहर एक छोटी-सी सभा कर डाली, जिसमें कीर्तनकार की आलोचना की और यह कहा, कि कीर्तनकार का विरोध-प्रदर्शन करने के लिए एक सार्वजनिक सभा की जायगी। यह सभा हुई और इसमें कीर्तनकार के सम्बन्ध में एक निंदात्मक प्रस्ताव भी पास हुआ। इससे खूब हलचल हुई। अखबारों में अकर्तेजी पर टीका-टिप्पणी भी की गई। अकर्तेजी को खुद भी अपनी भूल कुछ-कुछ समझ में आने लगी, और उन्होंने निश्चय किया, कि इस सारी घटना के औचित्य-अनौचित्य के बारे में गांधीजी से मिलकर उनकी राय लेनी चाहिए। विरोध-प्रदर्शक सभा करने के पहले ही अगर उन्हें गांधीजी की राय लेने की बात सूझी होती, तो बहुत अच्छा होता, पर इस घटना के बाद भी यह चर्चा आये यह अच्छा ही हुआ।

"अच्छा, तो आप एक ही तूफ़ानी झोंके में किला सर कर लेना चाहते थे ?" गांधीजीने हँसते-हँसते उनसे पूछा ।

"जी हाँ," अकर्तेजीने ज़रा शरमाकर कहा । "पर किया क्या जाता ? कीर्तनकार जब खुद अस्पृश्यता-निवारण का समर्थक है, तो क्या उसे ऐसा करना चाहिए था ?"

"सभा के पहले क्या आप कीर्तनकार से मिले थे ?"

"नहीं, पर हिंदूसभा के मंत्री से मैं मिला था, और उन से कहा था, कि यह मंदिर नहीं, किन्तु हरिजनों के लिए खुला हुआ दूसरा मंदिर कीर्तन के लिए आप पसंद करें ।"

"ठीक, पर कीर्तनकार से तो आपने इसकी कुछ भी चर्चा नहीं की थी न ?"

"कीर्तन के समय तो की थी ।"

"पर पहले तो नहीं ?"

"जी नहीं ।"

"कीर्तनकार को तो हरिजनों की तनिक भी सूग नहीं थी । वह बेचारा तो हरिजन-बस्ती में जाकर कीर्तन करने को तैयार था ।"

"जो हो, कीर्तन तो उसने वहीं किया था ।"

"तब तो कोई शिकायत नहीं रह जाती थी । वह मंदिर हरिजनों के लिए खुला हुआ नहीं था यह जानते हुए भी कीर्तन के बहाने आप वहां उनका प्रवेश कराने गये, यही बात है न ?"

"पर महात्माजी, मंदिर से बाहर निकलकर उसने कीर्तन किया होता, तो उसका बिगड़ ही क्या जाता ?"

"पर उसने हरिजनों के लिए कीर्तन तो किया ।"

"जी हाँ; पर सूचना तो यह दीगई थी न, कि कीर्तन सभी हिंदुओं के लिए है ?"

"ठीक; सभी हिंदुओं से मतलब सवर्ण हिंदुओं से था । मोरबी में तो लोग यही अर्थ 'सभी हिंदुओं' का लगाते हैं ?"

"नहीं, महात्माजी, हिंदूसभा का मंत्री तो इतना ज़रूर समझता है, कि सभी हिंदुओं का मतलब हरिजनों-सहित तमाम हिंदुओं से है ।"

"अब यहाँ वकालत रहने दीजिए । आपको विरोध-प्रदर्शक सभा करने की आवश्यकता ही नहीं थी । कीर्तनकार से पहले ही आप मिल लिये होते, तो अच्छा होता । उससे आप यह अनुरोध कर सकते थे, कि कीर्तन करते समय वह वहाँ आये हुए हिंदुओं से अस्पृश्यता-निवारण के विषय में भी दो-चार शब्द कह दे । आप सुधारवादी हिंदुओं से कीर्तन का बहिष्कार करने को भी कह सकते थे । पर आपने तो ठीक काम नहीं किया । अब भी आप वकील तो हैं ही, इसलिए आप में उत्साह हो तो बेचारे कीर्तनकार या हिंदूसभा के साथ लड़ने के बजाय मंदिर के ट्रस्टियों के साथ लड़ें । उन्हें समझावें, कि मंदिर के गर्भगृह को छोड़कर शेष भाग में तो हरिजनों को जाने देने का उनका कर्तव्य था; उन्हें रोककर ट्रस्टियोंने अच्छा नहीं किया । न मानें तो उन्हें आप नोटिस दे दें, उनपर 'टेस्ट' केस चलावें और अदालत से इसका निर्णय करावें, कि मंदिर में नहीं तो मंदिर के अहाते में तो जाने का सभी को हक है । हमारे एक भी काम में हिंसा के लिए स्थान नहीं होना चाहिए । हमारी तो अंत में अहिंसा से ही जीत होगी । हिंसा का ज़रा-सा भी अंश हमारे अंदर होगा, तो हमारा सारा किया-कराया मिट्टी में मिल जायगा ।"

अकर्तेजी को समझ में बात आगई । बोले, "मुझे दुःख है । महात्माजी, क्या करूं, मुझे गुस्सा चढ़ आया था । अगर आप कहें तो अपना 'खेद-प्रकाश' मैं अख़बारों में दे दूं ।"

"इसकी तो कोई ज़रूरत नहीं । भविष्य में आप संयम से काम लेंगे, तो उसका प्रभाव आपके इस 'खेद-प्रकाश' की अपेक्षा कहीं अधिक पड़ेगा ।"

× × × ×

अकर्तेजी को और भी कुछ बातों के बारे में गांधीजी से पूछना था । मोरबी और उसके पास-पड़ोस के गाँवों में जो हैज़ा फैला हुआ है, उसकी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा, "हमारी तरफ हैज़ा बड़ी भयंकरता से फैला हुआ है । २००० की आबादी वाले मलकापुर गाँव से ८० आदमी चल बसे । हमें इसकी खबर देर से मिली । डिपटी कमिश्नर के पास मैं गया । उन्होंने सिविल सर्जन को फोन किया और दो डाक्टरों को मेरे साथ मलकापुर भेजा । इस बीमारी में गरीब हरिजनों की बड़ी आफत थी । उनके लिए कुआँ तो है नहीं, नदी नाले का गँदला पानी बेचारों को पीना पड़ता, जो ठीक नहीं है । नदी का पानी पीने से उन्हें रोकना भी मुश्किल था । इसलिए हमें नदी पर पोलिस को तैनात करना पड़ा । स्वयंसेवकोंने भी हरिजनों को उनके घर जा-जाकर समझाया, कि हैज़े के दिनों में नदी का का पानी-पीना तुम्हारे लिए बहुत खराब है । डा० सोमणने हमारी बड़ी ही सहायता की । पाँच दिनमें क़रीब ५००० आदमियों को सुई लगाई, इसका फल अच्छा ही हुआ । रोज़ जो १३ केस होते थे, अब दो-तीन केस होने लगे । पर अब हैज़ा आसपास के गाँवों में फैल रहा है, और और भी फैलने की आशंका है । आपकी राय में उसे रोकने के लिए हमें क्या प्रयत्न करना चाहिए ? क्या ऐसे में, लोगों को घरमें बाहर निकलवाने में हम पोलिस की मदद ले सकते हैं ?"

"अवश्य ले सकते हैं । इस काम में जैसे सरकारी अस्पताल के डाक्टरों की मदद ली जा सकती है, उसी तरह पोलिस की भी मदद आप ले सकते हैं । एक बात ज़रूर करें । उबला हुआ पानी ही लोग पीयें, उसमें थोड़ी लाल दवा भी डाल लिया करें । दूसरा पानी तो उन्हें पीने ही नहीं देना चाहिए ।"

"पर ये गाँव के मनुष्य तो महामूढ़ हैं । मुश्किल से ही वे हमारी बात सुनते हैं । फिर इन बेचारों को खेतों पर जाना पड़ता है, वहाँ उबाला हुआ पानी कहाँ से लायँगे ?"

"यह बात तो आप-जैसे जन-सेवक को सोहती नहीं । यह तो कायरों की दलील है । आपको तो एक भी जतन नहीं छोड़ना चाहिए । आपको तो सभी तरह की मदद करनी है । हर एक घर में जा-जाकर समझाना, पानी गरम करने के लिए उन्हें ईंधन और घड़े ला-लाकर देना, लाल दवा को उसमें डलवाना यह सब आपको करना होगा । यों हिम्मत हारने से काम चलने का नहीं । जिन हरिजनों को आप सुई लगवा दें, उनसे भी इस प्रचार-कार्य में मदद ले सकते हैं ।"

"समझ गया । मैंने हिम्मत नहीं हारी । कल ही एक हरिजन के पास दिन और रात बैठा रहा । उसके लिए एक डाक्टर ले आया, पर जब उससे काम न चला, तो फिर दूसरा डाक्टर बुला लाया । अब वह अच्छा हो रहा है । उसका जैसा इलाज हुआ वैसा तो हमारे गाँव के बड़े-से-बड़े आदमी को भी

मयस्सर नहीं हो सकता ।"

"यह तो अच्छा ही हुआ । आपका यह सेवा-कार्य ईश्वर के बहीखाते में जमा हो गया । उसके जैसा दूसरा कोई हिसाब-किताब रखनेवाला और लेनेवाला नहीं ।"

म० ह० देसाई

हिन्दी कैसी हो ?

[श्रीयुक्त पं० रामनरेशजी त्रिपाठी का यह लेख प्रकाशित करके इस विषय के लेखों के लिए अब हम 'हरिजन-सेवक' के कालम-कपाट बन्द करते हैं । हम चाहते हैं, कि इस विषय पर हिन्दी के सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में खूब विचार-मंथन हो, साथ ही आगामी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन सब प्रान्तों के विद्वानों की एक परिषद् बुलाकर राष्ट्रभाषा के इस महत्वपूर्ण मसले को हल करने का पूरा यत्न करे । हरिजन-सेवक में जितने अन्य-प्रान्तीय और ग्रामीण शब्द आ रहे हैं, उनकी एक जंत्री जनवरी मास में हम अलग से प्रकाशित कर देंगे । आशा है, उस सूची के द्वारा हिन्दी भाषा की कुछ-न-कुछ सेवा तो होगी ही । स०]

'हरिजन-सेवक' में 'हिन्दी कैसी हो ?' इस विषय पर श्री रामनाथलाल 'सुमन' और श्री पारसनाथसिंह के अलग-अलग विचार प्रकाशित हुए हैं । श्री सुमनजी हिन्दी को अधिकांश संस्कृत शब्दों से पूर्ण रखने के पक्ष में हैं, और श्री पारसनाथसिंह आवश्यकतानुसार ग्रामीण और प्रान्तीय शब्दों को भी हिन्दी में भर लेने के पक्ष में । मेरे एक साहित्यिक मित्रने मेरी भी इस विषय में राय पूछी है । हिन्दीवालों में शायद ही अब ऐसे शिक्षित शेष हों, जिन्हें इस विषय में मेरी राय न मालूम हो; क्योंकि इस विषय पर मैं अपने ग्रंथों और भाषणों में काफ़ी प्रकाश डाल चुका हूं । पर यह प्रश्न ऐसा है कि इस पर बारबार विचार होता ही रहना चाहिए । इसलिए मैं फिर अपनी राय लिखता हूं ।

मैं श्रीपारसनाथसिंह के पक्ष का समर्थन करता हूं । मैंने क़रीब-क़रीब दो बार सारे भारतवर्ष के प्रान्तों में, शहरों से लेकर देहाततक, भ्रमण किया है । मेरा निजी अनुभव है कि सर्वत्र साधारण बोलचल की हिन्दी की अधिक व्यापकता है, बनिस्बत संस्कृत-शब्दों से लदी हुई पंडिताऊ हिन्दी के । अचरज की बात तो यह है कि हम बोलचाल में जिस हिन्दी का व्यवहार करते हैं, लेख लिखते समय उसे भूल जाते हैं और अभ्यास-वश एक बनावटी हिन्दी में लेख लिखने लगते हैं । उदाहरण के लिए, श्री सुमनजी ही के लेख में देखिए । 'पर्व' का प्रयोग बोलचाल में कोग शायद ही करते हैं, पर उक्त लेख में वह काफ़ी प्रयुक्त हुआ है । यदि आप जानबूझकर अपने घर और समाज से निकलकर कोश में बैठकर बोलने लगेंगे तब तो आपका क्षेत्र भी उतना ही छोटा हो जायगा, जितने में कोश की पहुँच है । कोश के पैरों पर चलनेवाली भाषा कभी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती । प्रियप्रवास के द्रुतविलम्बित, वंशस्थ, शार्दूल विक्रीडित और मालिनी वृत्तों की हिन्दी यदि राष्ट्रभाषा हो तो उससे अच्छा यह होगा कि संस्कृत ही को राष्ट्रभाषा बनाने का आन्दोलन क्यों न किया जाय । इससे संस्कृत और हिन्दू-संस्कृति दोनों की रक्षा होगी और मुसलमानों और तामिलवालों को छोड़कर शायद कोई विरोध भी न करेगा । पर अब से जितने युगों में संस्कृत को राष्ट्रभाषा का पद मिलेगा, उतने समयतक हिन्दू-संस्कृति बची रहेगा, क्या इसकी कोई गारंटी कर सकता है ? वर्तमान हिन्दू-संस्कृति अब विशुद्ध आर्य-संस्कृति की प्रतिनिधि नहीं रह गई है । उसमें मुसलमानी संस्कृति और अब सौ डेढ़ सौ वर्षों से युरोपीय संस्कृति का भी मिश्रण हो चुका है । न तो हिन्दू-जाति के लिए अब कोई शास्त्र है और न शास्त्रों के अनुकूल कोई हिन्दूजाति है । जो जाति अब हिन्दूजाति के नाम से मशहूर है, वह अब बिलकुल स्वतंत्र है और उसके लिए एक नवीन शास्त्र की आवश्यकता है । चाहे वह पुराने शास्त्रों को काटछाँटकर बनाया जाय, चाहे बिलकुल नया । इसीलिए आर्य-संस्कृति का सम्बन्ध हिन्दू-संस्कृति से न टूटने पाये इस आशंका से हिन्दी को संस्कृत शब्दों से ठूँस रखना यह कोई युक्तियुक्त दलील नहीं है ।

श्री सुमनजी लिखते हैं—'आजकल तो केवल राजनीतिक दृष्टि से शब्दों के प्रयोग होने लगे हैं । फारसी के शब्द संस्कृत शब्दों के साथ इसलिए प्रयुक्त होंगे कि हिन्दू-मुस्लिम 'ऐक्य' के लिए हम में शकामय उत्कंठा है ।'

यह सच है कि राजनीतिक दृष्टि से शब्दों के प्रयोग होने लगे हैं । राष्ट्रभाषा की ज़रूरत ही राजनीति के लिए पड़ी है । अतएव भाषा में राजनीति की प्रधानता बिलकुल स्वाभाविक है । पर यह बात कहना गलत है, कि संस्कृत शब्दों के साथ फ़ारसी शब्दों का प्रयोग 'हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य' के लिए किया जा रहा है । फारसी के शब्द तो सदियों से हमारे घरों में घुसे बैठे हैं । उनसे हम रोज़ काम लेते हैं, पर हमारा यह ख़्याल है कि अपने लेखों में हम यह बात प्रगट नहीं होने देते, कि पुराने अछूत अब हमारे कुटुम्बी हो गये हैं । काका, चाचा, बाबा, लाला, बच्चा, दामाद, वकील, आचार, हलवाई, अनार, अचार, बादाम, खरबूज़ा, तरबूज़, चश्मा, कुरता, पाखाना, बजाज, तार (सूत, डोरा), तालाब, तमाशा, पट्ठा, पुल, बलवा, नौकर, सितार, सारंगी, दलाल, अबीर, गुलाल, शीशा, शाशी आदि कितने ही शब्द हैं, जिनके लिए हम यह सोचते भी नहीं कि ये पराये हैं । 'हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य' का प्रश्न तो अभी कल का है । उसके बीसों वर्ष पहले फारसी के शब्दों के साथ संस्कृत विशेषण हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक अपने पत्रों और लेखों में लगा चुके हैं । प्रिय काका, माननीय चाचा, आदरणीय बाबा, श्रीमान् लाला, प्रिय बच्चा, स्नेहास्पद दामाद, विज्ञ वकील साहब, स्वादिष्ट आचार, दुर्गन्ध-युक्त पाखाना, स्वदेशी वस्त्र-विक्रेता बजाज़, कामक तार, आम्रकुञ्ज से सुशोभित तालाब, भीषण बलवा, आज्ञाकारी नौकर, सुमधुर सितार, चतुर दलाल, सुन्दर शीशा शाशी आदि प्रयोग गांधीजी के इस देश में आने के पहले के हैं । श्रीसुमनजी और श्रीपारसनाथ-सिंह दोनों साहब इस बात को खूब अच्छी तरह जानते हैं । अतएव यह कहना, कि इस प्रकार के प्रयोग 'हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य' के लिए नये शुरू हुए हैं, ग़लत है । 'नमूनेदार-मानपत्र' और 'मुकद्दस वेदान्त' से हमलोग इसलिए भड़कते हैं कि अभी ये हमारी बोलचाल में बहुव्यापी नहीं हुए हैं, नहीं तो ग़रीबनेवाज़ श्रीरामचन्द्र की तरह हम इनको भी सहन कर चुके होते ।

भाषा लेखक की योग्यता पर निर्भर है । ख़ामख़ा कोई ऐसे शब्दों का प्रयोग करे जो सर्वसाधारण में प्रिय न लगते हों तो यह प्रयोग करनेवाले की ग़लती है । जान-बूझकर भाषा को बिगाड़ना ठीक नहीं । पर जो भाषा आमतौर से समझी जाती हो, उसका प्रयोग उसी तरह बुरा नहीं, जिस तरह प्रिय काका ।

समय आ रहा है, जब 'प्रिय अंकिल' भी लिखा जायगा, और अखरता न रहेगी। पर अभी कोई लिखे तो लोग चौंकेंगे। किसी नाटक में कृष्ण को अर्जुन अगर कहे—'आदाब अर्ज़ जनाबमन,' तो हँसी आये बिना न रहेगी; पर ऐसा प्रयोग कोई समझदार लेखक नहीं करेगा। अभिप्राय यह कि भाषा योग्य लेखकों के अधीन है। वे जितना ही अधिक भावों और शब्दों को व्यवहार में लायेंगे, उतनी ही अधिक व्यापकता उनको प्राप्त होगी। यह नियम राष्ट्रभाषा के लिए अच्छी तरह लागू होगा। राष्ट्रभाषा में बहुव्यापक शब्दों को स्थान अवश्य देना चाहिए।

विषय से भी भाषा का सम्बन्ध है। जैसा विषय हो, वैसी ही भाषा लिखने में लेखक की योग्यता प्रमाणित होगी। सत्य-शीलता, तपश्चर्या और ब्रह्मचर्य भी हिन्दी शब्द हैं और 'सूग' भी। 'सूग' तो ऐसा शब्द है, जिसका ठीक-ठीक अर्थ देनेवाला शब्द हिन्दी में कोई नहीं। इसी तरह बंगला का खटना, मारवाड़ी का उडीकना, गुजराती का लगना (फल होना), अंग्रेज़ी का फ़ील, फ़ारसी का हसरत आदि शब्द हिन्दी में अपने ही रूप में आजायँ तो क्या हानि है। फ़ील का काम क्या अनुभव या अनुभूति से निकल सकता है? मैं तो समझता हूँ, कि जहाँ जैसी ज़रूरत हो वहाँ वैसे शब्द लिखने चाहिएँ। वेदान्त, धर्म, कविता, आदि में संस्कृत के तत्सम शब्द अधिक आवें तो आवश्यक हैं; पर राजनीति, उपन्यास, कहानी, यात्रा-वर्णन और संवाद में संस्कृत के तत्सम शब्द जितना ही कम आयें, उतना ही अच्छा। जिसको साहित्यिक हिन्दी सीखनी होगी, वह कोश भी खरीदेगा; पर राष्ट्रभाषा के लिए कोश की जितनी ही कम ज़रूरत हो, उतना ही हम उद्देश-सिद्धि के निकट पहुँचेंगे।

अँग्रेज़ी का प्रचार और प्रभाव दोनों हिन्दी से अधिक हैं। पर अँग्रेज़ जाति में भी उनकी भाषा सर्वव्यापक नहीं है। अँग्रेज़ी के एक विद्वान्ने हिसाब लगाकर बताया है कि—

अँग्रेज़ी भाषा में ४ लाख से कुछ अधिक शब्द हैं। कोई जीवित मनुष्य उन सब शब्दों को नहीं जानता। अँग्रेज़ किसान ५०० शब्द, होशियार कारीगर ५०००, पादरी, डाक्टर, वकील १००००। और डाक्टर लोग ऐसे शब्द भी जानते हैं, जिन्हें दूसरे लोगोंने कभी सुना भी नहीं होगा। ४३३ स्नायुओं, १०२ शिराओं, ७०७ रक्तवाहिनियों, १०९ फोड़ों, २०० से अधिक रोगों की ५०० परीक्षाओं और १३०० कीटाणुओं के नाम वे जानते हैं। समाचार-पत्रवाले २० हज़ार जानते हैं। मिल्टनने १३ हज़ार शब्द प्रयोग किये और शेक्सपियरने १५ हज़ार।

मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि इसी प्रकार का चढ़ाव-उतार हिन्दी में भी रहेगा।

गुजरातीवालोंने अँग्रेज़ी शब्दों का जो रूपान्तर और भावान्तर अपनी भाषा में कर लिया है, अभी तो हिन्दी में उसका चौथाई भी नहीं हुआ है। हमलोग अँग्रेज़ी शब्दों का पर्यायवाची बनाने के लिए संस्कृत की धातु तलाशने लगते हैं, पर गुजरातीवालोंने ठेठ बोलचाल के शब्द पकड़ लिये हैं।

मेरी राय में देश के सब प्रान्तों के विद्वानों की एक सभा होनी चाहिए, जिसमें सब प्रान्तों में अलग-अलग प्रचलित व्यापक शब्दों को उनके असली अर्थ में हिन्दी में ले लेने का निर्णय होना चाहिए। उनकी सूची बनाकर प्रकाशित कर देनी चाहिए और हिन्दी लेखकों को उनका प्रयोग जारी कर देना चाहिए।

क्रियाएँ भी बहुत-सी नई बना लेनी होंगी। जैसे—

क्षमा करना—छमना; निन्दा करना—निन्दना; दोष देना—दोषना; प्रवेश करना—प्रवेशना; प्रकाश करना—प्रकाशना; और धैर्य देना—धीरना इत्यादि।

यहाँ मैं हिन्दू-संस्कृति के कट्टर विरोधी औरंगज़ेब का एक पत्र देता हूँ, जिसे उसने अपने बेटे मुहम्मद आज़मशाह को लिखा था—

"फ़र्ज़न्द आलीजाह, डाली अम्बा मुर्सले आँ बजाय के पिदर पीर खुशगवार आमद—बरायनाम अम्बए गुमनाम इस्तदुआ नमूदा अन्द—चूँ आँ फ़र्ज़न्द ज़ूदते तबा दारन्द—च्वाहिर तकलीफ़े पिदरपीर चरा मी शवन्द—बहरहाल सुधारस वो रसनाविलास नामीदा शुद।"

अर्थात्, बेटा! आमों की डाली जो तुमने भेजी, वह तुम्हारे बुड्ढे बाप को बहुत पसंद आई; तुमने इन गुमनाम आमों का नाम रखने के लिए लिखा, तुम तो बेटा! खुद प्रतिभावान् हो; बुड्ढे बाप को क्यों तकलीफ़ देते हो? खैर, सुधारस और रसना-विलास नाम रख दिया जाता है।'

'डाली' शब्द पर ध्यान दीजिए; यह उस समय का सर्व-साधारण में प्रचलित शब्द है। यद्यपि फ़ारसी में 'ड' नहीं होता, पर बादशाहने 'डाली' को नहीं छोड़ा। सुधारस और रसना-विलास तो बादशाह औरंगज़ेब के मुँह से निकलकर कितने मधुर हो गये हैं कि जिसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता।

औरंगज़ेबने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए ऐसा नहीं किया था। यह समय का तक़ाज़ा है! हमको भी समय देखकर चलना है; और चलना है सन् १९३४ की चाल से, न कि एक हज़ार बरस पहले की चाल से।

रामनरेश त्रिपाठी

झरेरा का सेवासदन

कटक से क़रीब २० मील दूर झरेरा स्थान में डा० नृपेन्द्रनारायण सेनने एक सेवा-सदन स्थापित किया है, जिसमें दवाखाना और शफ़ाखाना दोनों ही हैं। यहाँ सभी जाति के रोगियों का इलाज होता है। हरिजन-विभाग के लिए संघ के सेण्ट्रल आफ़िस से २५) मासिक सहायता सेवा-सदन को दी जाती है। अगस्त की रिपोर्ट से मालूम होता है, कि यहाँ २ हरिजनों के तो ऑपरेशन हुए और ३४ हरिजनों को महीने में ४ बार कुष्ठरोग का टीका लगाया गया। बाहर के २७४ हरिजन रोगियों का इलाज हुआ और गाँव के आसपास की ९ हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण भी किया गया। पार साल की तरह डा० सेन इस साल भी बाढ़पीड़ित गाँवों में नाव पर सवार होकर रोगियों को देखने गये। हैज़ा रोकने को भी दवाइयाँ सब जगह बाँटी गईं। कुष्ठरोग-निवारण का तो उक्त सेवा-सदन बहुत ही अच्छा का कार्य कर रहा है।

अमृतलाल वि० ठक्कर

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg No L. 1369

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ५ अक्तूबर, १९३४ [संख्या ३३

विषय-सूची

दान-मीमांसा

(३)

खादी में बड़ी कला कौन ?

कौन कहता है कि खादी में कला नहीं, रंग-बिरंगापन नहीं ? अरे, आप अभी यही नहीं समझते कि कला है क्या चीज़ ! मैं भी कला का प्रेमी हूँ। एक बार मैं अपने एक मित्र के पास गया। मित्र मालदार था। उसने १०) रु० में एक चित्र मोल लिया था। उस चित्र का सुन्दर रंग तो मुझे दीख ही रहा था। एक जगह उसमें गहरा गुलाबी रंग था, उसे दिखाकर मित्र बोला—"कैसा सुन्दर है ! है न ?" मैंने कहा—"नहीं।" इस पर वह बोला, "मालूम होता है, तुम्हें चित्रकला का कोई ज्ञान नहीं है।" तब मैंने उससे कहा—"भले आदमी, मुझे चित्रकला का ज्ञान नहीं ! मुझे चित्रकला का बहुत ज्ञान है। सुन्दर चित्र देखने में मुझे बड़ा आनन्द आता है। परन्तु सुन्दर चित्र दिखाई ही नहीं पड़ते। मैं चित्रकला का प्रेमी हूँ, यही नहीं बल्कि ऊँची चित्रकला का प्रेमी हूँ। तुमसे मैं कहीं ज़्यादा इसका ज्ञान रखता हूँ, इसका मर्म मैं कहीं अधिक समझता हूँ। इस चित्र में वह गुलाबी रंग सुन्दर ज़रूर है—परन्तु, मैं तुम्हें एक दूसरी बात बताता हूँ। इस चित्र के तुमने ५०) दिये हैं। दिये हैं न ?

हरिजनों की बस्ती में जाओ तो तुम्हें ऐसे बालक मिलेंगे, जिनके चेहरे मुरझाये हुए होंगे। रोज़ सबेरे वहाँ जाओ। १५ मिनट जाने में लगेंगे। जाते समय सेरभर दूध अपने साथ लेते जाया करो, और वहाँ उन बालकों को पिलाओ। एक महीने में ही उन पिचके गालोंवाले, मुरझाये हुए चेहरों पर तुम गुलाबीपन देखोगे—रक्त की वृद्धि से आया हुआ गुलाबी रंग ! बताओ कि इस चित्र का गुलाबी रंग सच्चा कि उस जीवित चित्र का गुलाबी रंग सच्चा ? वे बालक भी चित्र-जैसे सुन्दर दीखने लगेंगे। अरे, जीवित कला के वे नमूने मर रहे हैं। तुम ये निर्जीव चित्र लेकर कला के उपासक बन रहे हो और वहाँ वह महान् दैवी कला मिट्टी में मिल रही है !" इसी प्रकार का अविचार आज चल रहा है। खादी के द्वारा आप कला के सच्चे पुजारी बनें। ऐसा करके आप दरिद्रनारायण के चेहरे पर से बिलट हुए गुलाबी रंग को फिर से ला सकेंगे। समाज के अपने मृतप्राण बन्धुओं को सजीव करके समाज में आनन्द ला सकेंगे। कला इससे बड़ी और कौन है ?

खादी में गुप्तदान

खादी में पैसा बट जाता है। वह बहुत गर्जू, श्रमी और दरिद्री मज़दूरों को मिलता है। खादी से कला की, जीवित कला की उपासना होती है। ईश्वरने जो जीवित चित्र बनाये हैं, उन्हें तो कोई धोता नहीं, पोंछता नहीं, सँवारता नहीं। उधर लोग काग़ज़ के चित्रों को सुनहरे चौखटे में जड़वाते हैं, इधर ग़रीब बच्चों के तन पर कपड़ा नहीं, और पेट में रोटी नहीं। यह दिव्य कला खादी से ही सफल होगी। परन्तु खादी खरीदने में तो और भी कई बातें आ जाती हैं। दान कौन-सा अच्छा है ? सब धर्मों में एक ही बात बराबर कही गई है, और वह यह कि 'गुप्तदान ही उत्तम दान है।' बाइबिल में कहा है, 'तुम बाएँ हाथ से जो दान दो उसकी खबर दाहिने हाथ को न पड़े।' सब धर्मग्रन्थों में यही बात है। खादी में इस प्रकार का गुप्तदान होता है। इतना ही नहीं, बल्कि दान देने और लेनेवाले इन दोनों को यह ख़याल भी नहीं होता, कि कोई दान दे रहा है या ले रहा है। खादी लेनेवाला कहता है, मैंने खादी लेली। खादी लेने से जिस ग़रीब को पैसे मिले वह अपने मन में यह कहता है, कि मुझे अपने परिश्रम की मजूरी मिल गई। इसमें किसी को नीचा नहीं देखना पड़ता। इतना होते हुए भी इसमें दान तो है ही। दान होना भी ऐसा ही चाहिए, जिससे किसी को दीनता का अनुभव न हो। कृपा करके, एहसान करके हम लोग जो देते हैं, उसमें दूसरे का मान घटा देते हैं। समाज में दो प्रकार के पाप होते हैं—एक तो यह कि किसी को मान ज़रूरत से ज़्यादा देदें, और दूसरा यह कि किसी के मान को ज़रूरत से ज़्यादा घटादें। एक को उन्मत्त बना देना और दूसरे को हीन और दुर्बल बना देना। मान तो सरल और नम्र होना चाहिए। न अकड़ होनी चाहिए, न गिड़गिड़ाहट। जब हम ऐंठ में आकर कर्मशून्य मनुष्य को सीधा दान देते हैं, तो हम अभिमानी और वह हीन ही बनेगा। यह दुहरा पाप है। खादी में गुप्तदान सधता है। मन में दान की भावना ही नहीं होती, पर मदद हो जाती है। देने और लेनेवाले की एक दूसरे से पहचानतक नहीं, एक दूसरे से भेंट-मुलाकाततक नहीं, पर उसमें सच्चे धर्म का पालन तो हो ही जाता है।

आत्मा का अपमान

आजकल हम लोगोंने गुप्तदान की महत्ता को बिसरा दिया है। विज्ञापनबाज़ी का ज़माना ठहरा। हमारी माता प्रचलित गुप्तदान की लीला बताया करती थीं। लड्डू के भीतर दोअन्नी, चौअन्नी रख दी जाती है, पर भट्टजी से इन शब्दों में रहस्य खोल दिया जाता है, कि महाराज, ज़रा सँभलकर खाइएगा, लड्डू के अन्दर देखिए, कुछ रखा है, कहीं दाँत न टूट जाय। लड्डू के भीतर दोअन्नी, चौअन्नी रखकर गुप्तदान भी कर दिया, परन्तु भेद न खोला जाय, तो भट्टजी के दंत-विहीन हो जाने का डर है! आजकल समाज में दान देनेवाले लोग दान देते समय अपना नाम घोषित कराने के लिए भी कह देते हैं। यह अधःपात है। एक बार एक धनी गृहस्थ मुझसे कहने लगे—'मुझे कुछ रुपया देना है।' मैंने कहा, 'अच्छा है; दीजिए।' वे बोले, 'इमारत पर मेरे नाम का पत्थर लगवा दीजिएगा?' मैंने साफ़ कह दिया, कि 'बाबा, मुझे ऐसा रुपया नहीं चाहिए।' इस प्रकार दान लेना तुम्हारी आत्मा का घोर अपमान है, और मुझे भी इससे पाप लगेगा। तुम पाप करने के लिए, अपनी आत्मा का अपमान कराने के लिए तैयार हो गये, पर मैं इसमें भागी नहीं होना चाहता। यह पाप है। इतना समझाकर कह देना तुम्हारे प्रति मेरा कर्तव्य है।' यह आत्मा का कितना बड़ा अपमान है। तुम्हारी अनन्त आत्मा, और उस पत्थर में बैठने की कामना! इसलिए हमारे पूर्वजोंने गुप्तदान का आदेश दिया है। आजकल के ये दान दान ही नहीं हैं। तुमने पैसे दिये और अपना नाम करा लिया, तो इसका तो यही अर्थ हुआ कि तुमने अपने ही हाथ से अपनी क़ब्र बना ली! तुमने अपना नाम करा लिया, इसमें दिया क्या? गुप्तदान बहुत पूज्य वस्तु है। मैं ऊपर यह कही चुका हूँ, कि खादी के १२॥) में से १०) तो खादी-खाते में और २॥) दानधर्म-खाते में समझो। यह दान देते हुए यह प्रगट नहीं होता। दान देते समय हमें इस बात का अभिमान नहीं होता, कि हमने किसी पर कोई उपकार किया है, और जिस गरीब को =) मिलेंगे उसे किसी के द्वार पर आकर यह नहीं कहनापड़ेगा—'बाबा, टुकड़ा दो।' उसे तो उलटे यह अभिमान होगा, कि मैंने ये दो आने पैसे अपने परिश्रम से कमाये हैं। ऐसे गुप्तदान का महान् धर्म खादी खरीदने से ही सधेगा। दूसरा दान-धर्म करना ही न चाहिए। वह दान-धर्म ही नहीं। जिस दान से दूसरे का स्वाभिमान जाग्रत हो वही सच्चा दान है। खादी लेने से जो मदद होगी, जो गुप्तदान दिया जायगा, उससे मजूरों को गाँव में ही काम मिलेगा। उन्हें घरबार छोड़कर कहीं भटकना न पड़ेगा। गाँव की खुली हवा में रहने को मिलेगा, और गाँव छोड़कर शहर में आने से जो व्यसन, अनीति और रोग चिपट जाते हैं, उनसे वे बच जायेंगे। गाँव के लोगों के शरीर और मन तुम नीरोग और निरालस्य रख सकोगे। खादी में जो दान होगा, उससे समाज में कितने कार्य सफल होते हैं यह देखना चाहिए। मनुष्यों के शरीर और हृदय, उनकी शारीरिक शक्ति और नीति शुद्ध रखने का शुभ कार्य खादी से ही सधेगा। यही सच्चा दान है, यही गुप्तदान है, यही विसर्जित दान है और वास्तव में यही जीती-जागती, बोलती-खेलती कला का निर्माण करनेवाला दान है।

कर्म-कौशल

आलस्य-जैसे व्यसन का पोषण करनेवाला दान, अनीति को टिकाये रखनेवाला दान दान नहीं, अधर्म है। ऐसे दान से देनेवाला और लेनेवाला दोनों ही पाप-भागी बनते हैं। तुकाराम महाराज कहते हैं, कि 'देने और लेनेवाले दोनों ही नरकगामी होते हैं।' इसलिए विवेक की आँख खोलकर दान करो। यही कर्म-कौशल है। तुमने दया के गुण की रक्षा की, और सहृदयता के गुण की भी रक्षा की, पर बुद्धि के गुण का हनन कर दिया। बुद्धि और हृदय के बीच अंतर पड़ा, कि अनर्थ हुआ। हृदय कहता है, दया करो। हृदय बोलता है, दान करो। परन्तु दया कैसी करनी चाहिए, दान कैसा देना चाहिए, यह तो बुद्धि ही बताती है, विचार ही सिखाता है। जहाँ बुद्धि और हृदय का मेल होता है, ज्ञानेश्वर महाराजने उसी को योग कहा है। जहाँ मन और बुद्धि का समन्वय हुआ, योग वहीं सधा। यही कर्म-कौशल है। आज दान भी एक प्रकार की रूढ़ि में आ गया है। आचार में से विवेक का अंश निकल जानेपर केवल निर्जीव रूढ़ि रह जाती है। इसलिए विवेकयुक्त दानधर्म करना सीखो। दान के नाम पर अलग कुछ नहीं करना पड़ता। समाज में योग्य परिश्रम करनेवाले को पारिश्रमिक देना ही दान है। दान-जैसी कोई चीज़ फिर बाक़ी नहीं रहजाती। समाज के व्यवहार में ऐसा ही गुप्तदान होता रहता है। मैं यह बता चुका हूँ, कि खादी से यह सब कैसे सधता है। तुमने इस भारतभूमि में जन्म लिया है। मुझे इस भूमि का कण-कण पवित्र लगता है। इस भूमि पर सैकड़ों साधु-संतों के चरण पड़े होंगे। ऐसा लगता है, कि इस संत-चरणांकित भूमि पर लोटा करूँ। 'दुर्लभं भारते जन्म'। ऐसी पवित्र भूमि में तुम लोग जन्मे हो, अतः अपने को बड़भागी समझो। आज ज़रा बुरे दिन आ गये हैं। क्लेश, आपत्ति, अपमान आदि सहन करने पड़ते हैं। परन्तु इस विपदा में भी धीरज बँधानेवाला विचार पास ही है। आओ, हम आशा से काम करें, विवेकपूर्ण काम करें, जीवन में साहस का संचार करें।

स्वदेशी : पुराना और नया

[गांधीजी के स्वदेशी विषयक लेख पढ़कर अनेक लोगोंने इस विषयपर स्वतंत्र रीति से विचार किया है, और जबतक गांधीजी के मन का स्वदेशी-संघ स्थापित नहीं हो जाता, तबतक यह विचार-विनिमय जारी रहना ही चाहिए। इधर अनेक सज्जनोंने गांधीजी से मिलकर इस विषय पर बात की है। गांधीजी की स्थिति अधिक स्पष्ट हो जाय, इसी दृष्टि से उस बातचीत का सारांश मैं नीचे देता हूँ—म० ह० देसाई।]

प्रश्न—यह नया स्वदेशी पुराने स्वदेशी से किस प्रकार भिन्न है?

उत्तर—पुराने स्वदेशी में इसी बात पर ज़ोर दिया जाता था, कि माल इसी देश का बना हुआ है। इस सब पर विचार नहीं किया जाता था, कि वह माल किस तरह तैयार हुआ है, किसने बनाया है, अथवा उसके खपने की कितनी सम्भावना है। अच्छे पाये पर खड़े हुए संगठित उद्योगों को मैंने जो रद कर दिया है उसका यह कारण नहीं, कि वे उद्योग स्वदेशी नहीं हैं; पर इसलिए, कि उन्हें अब ख़ास सहायता की ज़रूरत नहीं है। वे अपने पैरोंपर

खड़े रह सकते हैं, और वर्तमान जागृति की अवस्था में उस स्वदेशी माल की सहज ही खपत हो सकती है। स्वदेशी को यदि नवविधान देना है, तो उस नये स्वरूप के अनुसार मैं अपने स्वदेशी-संघ के द्वारा सूचना अवश्य कराऊँगा, कि वह तमाम ग्राम-उद्योगों का पता लगावे और इस बात की भी जाँच-पड़ताल करे, कि आज उनकी क्या दशा है। हम ऐसे कुशल कारीगर और रासायनिक विद्वानों को रखेंगे, जो अपने ज्ञान का लाभ गाँवों की जनता को देने को तैयार हों। इन कुशल वैज्ञानिकों के द्वारा हम गाँवों के कारीगरों की बनाई हुई चीज़ों की परीक्षा करायेंगे, उनमें क्या-क्या सुधार हो सकते हैं यह सब उन्हें बतलायेंगे और उन्होंने अगर हमारी शर्तें स्वीकार करलीं, तो उनकी बनाई चीज़ों को हम बेच भी देंगे।

प्रश्न—आप एक-एक करके क्या हर ग्राम-उद्योग को हाथ में लेना चाहते हैं?

उत्तर—ऐसी तो कोई बात नहीं है। मैं तो एक-एक धन्धे का पता लगाऊँगा, और यह देखूँगा, कि ग्राम-जीवन में उनका क्या स्थान है। अगर मुझे यह मालूम पड़ा, कि उन उद्योगों में उत्तेजन देने लायक गुण हैं, तो उन्हें उत्तेजन दूँगा। उदाहरण के लिए, इस झाड़ू को ही ले लीजिए। गृहस्थी की पुरानी झाड़ू को फेंककर उसकी जगह पर आधुनिक झाड़ू या ब्रुश को घर में लाना मैं कभी पसन्द न करूँगा। मैं तो कस्तूरबाई और घर की दूसरी बहिनों से पूछूँगा, कि दोनों प्रकार की झाड़ुओं के क्या-क्या गुण हैं। सभी दृष्टियों से मैं लाभ को देखूँगा। इस प्रकार देखते हुए मेरा विश्वास है, कि गाँव की पुरानी झाड़ू को ही पसन्द करना चाहिए, क्योंकि इसके उपयोग में मुझे सूक्ष्म जीव-जन्तुओं के प्रति कोमलता और दया-भाव दिखाई देता है। ब्रुश में यह बात कहाँ है? वह तो इन सूक्ष्म जीव-जन्तुओं का जैसे संहार कर डालता है। इस तरह झाड़ू के अन्दर मैं समस्त जीवन की फिलासफ़ी देखता हूँ; क्योंकि मैं यह नहीं मानता, कि सिरजनहार सूक्ष्म जीव-जन्तुओं और (अपनी दृष्टि से) सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनुष्यों के बीच कोई भेद-भाव रखता है। इस तरह मैं गाँवों के उन सभी प्रकार के उद्योग-धन्धों को अलग छाँट लूँगा, जो लोप हो जानेवाले हैं, किन्तु उपयोगी होने के कारण जो उत्तेजन मिलने के पात्र हैं। इसी रीति से मेरा अनुसन्धान-कार्य चलेगा। उदाहरण के लिए, नगण्य दतौन को ही ले लीजिए। मुझे पूरा भरोसा है, कि बम्बई के लाखों नागरिक अगर दतौन करना छोड़ दें, तो ज़रूर उनके दाँतों को नुकसान पहुँचेगा। दतौन के बदले जो यह टूथ-ब्रश का उपयोग किया जा रहा है, इसकी कल्पना ही मेरे लिए असह्य है। यह ब्रश अस्वच्छ होता है। एक बार दाँतों पर फेरने के बाद उसे फेंक देना चाहिए। उसे साफ़ करने के लिए चाहे जितनी कीटाणु-नाशक दवाइयाँ काम में लाई जायँ, तो भी ताज़े ब्रश की तरह तो साफ़ वह हो ही नहीं सकता। उससे हमारी बबूल या नीम की दतौन कहीं अच्छी कि उससे एक बार दाँत साफ किये और फेंक दिया। दतौनमें दाँत के मसूड़ों को मज़बूत बनाने का बहुत बड़ा गुण है। फिर दतौन की फाँक जीभ साफ़ करने का भी काम देती है। हमारे यहाँ की दतौन-जैसी किसी स्वच्छ वस्तु का तो पश्चिमवालोंने अभीतक अनुसंधान ही नहीं किया है। आप लोगों को शायद मालूम न होगा, कि दक्षिण आफ्रिका के एक डाक्टर का यह दावा था कि बाँटू जाति के खान-खोदकों में दतौन का आग्रहपूर्वक उपयोग कराके उन्होंने उन लोगों में फैलते हुए क्षय रोग को रोक दिया था। टूथब्रश हिंदुस्तान का बना हुआ हो, तोभी मैं उस का प्रचार न होने दूँगा। दतौन के प्रति मेरा जो पक्षपात है मैं तो उसी का प्रचार करूँगा। यह शत-प्रति-शत स्वदेशी है। इस की यदि मैं खबर रखूंगा, तो बाक़ी चीज़ें तो अपनी सार-संभार स्वयं ही कर लेंगी। मुझ से अगर आप समकोण की परिभाषा पूछें तो मैं उसे सहज ही बतला सकता हूँ। पर १ और १८० अंश के बीच के कोण को यदि आप बना सकें, तो उसकी परिभाषा आप मुझ से न करावें। अगर मुझे समकोण की परिभाषा आती होगी, तो मैं चाहे जैसे कोण को बना सकूँगा। स्वदेशी शब्द में ही उस की विस्तृत व्याख्या आजाती है। तोभी मैंने अपने स्वदेशी को 'शत-प्रति-शत स्वदेशी' कहा है, क्योंकि मुझे आज स्वदेशी में दूसरी चीज़ों के घोटाला हो जाने का भय है। शत-प्रति-शत स्वदेशी में सेवा करने की अनंत इच्छा रखनेवालों के लिए भी काफ़ी क्षेत्र पड़ा हुआ है, और इस में हर तरह की बुद्धि का उपयोग हो सकता है।

प्रश्न—इस स्वदेशी के अंत में आप 'स्वराज' देखते हैं?

उत्तर—क्यों नहीं? एकबार मैंने कहा था कि चर्खे में स्वराज है। फिर कहा कि मद्य-निषेध में स्वराज है। इसी तरह मैं यह भी कहता हूँ कि शत-प्रति-शत स्वदेशी में स्वराज अन्तर्निहित है। यह बात उन अंधों के 'गजदर्शन' के ही समान है। उन सभी अंधों का कथन सत्य था, तो भी संपूर्ण सत्य नहीं था।

अगर हम अपनी सारी साधन-सामग्री को खपासकें, तो मुझे पूरा विश्वास है, कि हमारा भारतवर्ष पहले जैसा था एक बार फिर संसार में वैसा ही समृद्ध-से-समृद्ध देश बन जाय। अगर हम आलस्य को तिलांजलि देकर करोड़ों देश-भाइयों के अवकाश के समय का सदुपयोग करा सकें, तो अपने अतीत के उस वैभव को एकबार फिर हम लौटा ला सकते हैं। पर यह तभी हो सकता है, जब हम मशीन की तरह नहीं, बल्कि मधुमक्खियों की तरह उद्यमी बन जायँ। आपको मालूम है, कि आजकल मैं "निर्दोष" मधु का प्रचार कर रहा हूँ?

प्रश्न—यह निर्दोष मधु क्या चीज़ है?

उत्तर—वैज्ञानिक ढंग से मधुमक्खियाँ पालनेवाले वैज्ञानिक रीति से जो शहद निकालते हैं वह। ये लोग मधुमक्खियाँ पालते हैं और फिर बिना उन्हें मारे हुए उनका मधु इकट्ठा कर लेते हैं। इसीलिए मैं उसे निर्दोष या हिंसाहीन मधु कहता हूँ। बढ़ाया जाय तो यह धंधा काफ़ी बढ़ सकता है।

प्रश्न—पर क्या आप उस शहद को **पूर्णतया** हिंसाहीन कह सकते हैं? जैसे बछड़े का दूध हम छीन लेते हैं, उसी तरह मधुमक्खियों को क्या हम उनके मधु से वंचित नहीं कर देते?

उत्तर—ठीक है। पर दुनिया का काम इस तरह के कोरे तर्क से ही नहीं चला करता। हम जीते हैं, इसी में कितनी हिंसा है। हमें तो वही मार्ग ग्रहण करना है, जिस पर चलने से कम-से-कम हिंसा होती हो। यों तो अनाज के खाने में भी हिंसा है—है या नहीं? इसी तरह यदि मुझे मधु की ज़रूरत ही है, तो मुझे मधुमक्खियों के साथ मैत्री-भाव रखना होगा, और जितना मधु वे दे सकें उतना ही हमें उनसे लेना चाहिए। फिर वैज्ञानिक रीति से जो मधुमक्खी पाली जाती है, उससे उसका सारा मधु थोड़ा ही कोई निचोड़ लेता है।

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ५ अक्टूबर, १९३४

ईश्वर है या नहीं ?

दक्षिण भारत में भ्रमण करते समय मेरी ऐसे हरिजनों तथा दूसरे लोगों से भेंट हुई, जो यह कहते थे, कि हमारा ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं। एक जगह हरिजनों की सभा हो रही थी। सभा के अध्यक्ष का अनीश्वरवाद पर भाषण हो रहा था—और सो भी उस मन्दिर में, जिसे हरिजनोंने अपने पैसे से अपने लिए तैयार कराया था! हरिजनों के साथ सवर्णों की ओर से जो दुर्व्यवहार होता है उससे हरिजन सभापति का दिल इतना दुखा, कि उसे ईश्वर की हस्ती पर ही सन्देह होने लगा। वह सोचने लगा, कि 'करुणासिन्धु' कहलानेवाले ईश्वर का अगर अस्तित्व होता तो क्या ऐसी-ऐसी क्रूरताएँ दुनिया में हो सकतीं? इस अविश्वास का कुछ-न-कुछ कारण तो ज़रूर रहा होगा।

पर एक और ही प्रकार की नास्तिकता का एक और नमूना मिला है, जो इस प्रश्न के रूप में है:—

"क्या आपका ऐसा ख़याल नहीं है, कि ईश्वर, सत्य अथवा वास्तविकता के विषय में पहले से ही कोई विचार स्थिर कर लेने से हमारी सारी अनुसंधान-प्रवृत्ति पर ही एक तरह रंग चढ़ जा सकता है, जो हमारे कार्य में ख़ासतौर पर बाधक हो सकता है, और हमारे जीवन के उद्देश को ही नष्ट कर दे सकता है? जैसे, आप यह मानते हैं, कि कुछ नैतिक विषय ऐसे हैं जो मौलिक सत्य हैं। लेकिन हम तो अभी खोज कर रहे हैं, और जबतक हमें वास्तविकता का पता नहीं लग जाता, तबतक हम यह कैसे मान सकते हैं कि नैतिकता का कोई ख़ास नियम ही सत्य है और उसी से हमें अपनी शोध में सहायता मिलेगी?"

जबतक किसी विषय के अस्तित्व की कल्पना पहले से स्वीकार नहीं करली जाती, तबतक उसकी खोज करना संभव नहीं। अगर हम किसी का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते, तो हमें कुछ प्राप्त भी नहीं हो सकता। सृष्टि के आदि से ही यह जगत, जिसमें ज्ञानी और मूढ़ दोनों ही शामिल हैं, यह मानता आया है, कि 'अगर हम हैं, तो ईश्वर भी है, और ईश्वर नहीं है तो हम भी नहीं हैं।' ईश्वर के अस्तित्व के विषय में हरेक मनुष्य के मन में विश्वास बना हुआ है। इसलिए ईश्वर का अस्तित्व सूर्य के अस्तित्व से भी अधिक निश्चित माना है। 'ईश्वर है'—इस जीते-जागते विश्वासने हमारे जीवन की अगणित पहेलियों को सुलझाया है। इस विश्वासने हमारी विपदाओं को हलका कर दिया है। हम जीते हैं तो इसी विश्वास के आधार पर; और परलोक में भी हमारी शांति का आधार हमारा यही विश्वास है। ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करने से ही सत्य के अनुसंधान में भी मन लगता है। सत्य की खोज ही ईश्वर की खोज है। सत्य ही ईश्वर है। ईश्वर है, क्योंकि सत्य है। हम यह मानते हैं, कि सत्य का अस्तित्व है, और उसकी खोज के सम्बन्ध में सुविज्ञात और अनुभूत नियमों के परिपालन से उसकी प्राप्ति हो सकती है, इसीलिए तो हम सत्य की खोज में प्रवृत्त होते हैं। ऐसे शोध की विफलता का कोई प्रमाण इतिहास में नहीं मिलता। ईश्वर की हस्ती में विश्वास न करनेवाले नास्तिक भी सत्य में विश्वास करते हैं—विशेषता यही है, कि उन्होंने ईश्वर को दूसरा ही नाम, सत्य का नाम दे दिया है। नाम तो उसके अनन्त हैं, पर सत्य उसका सिरमौर नाम है।

जो ईश्वर के विषय में सत्य है वही, कुछ कम मात्रा में, नैतिकता के कतिपय मौलिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में भी सत्य है। असल में, ईश्वर अथवा सत्य के अस्तित्व से ही उनका सम्बन्ध है। इन नैतिक सिद्धान्तों से पीठ फेर लेने के ही कारण सत्य से जी चुरानेवाले लोग इतने अधिक कष्ट में रहते हैं। ईश्वर अथवा सत्य की प्राप्ति-साधना कठिन है सही, पर इससे यह नहीं कह देना चाहिए, कि 'ईश्वर है ही नहीं।'

हिमालय पर वही चढ़ सकता है जो उसकी चढ़ाई के नियमों का पालन करे। नियम-पालन करने में कठिनाई आती है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि हिमालय पर चढ़ना ही असंभव है। नियम-पालन करने से खोज में और भी अधिक रस मिलता है, और लगन बढ़ती है। ईश्वर या सत्य की यह खोज हिमालय पर चढ़ाई करनेवाले अगणित अभियानों से कहीं बढ़कर है, और इसी से यह खोज बहुत अधिक रसदायक भी है। हमें जो उसमें रस नहीं मिलता, उसका कारण है ईश्वर के अस्तित्व में हमारी श्रद्धा की शिथिलता। हम जो कुछ अपने चर्मचक्षुओं से देख पाते हैं उसी को उस सत् से भी अधिक सत्य मानते हैं, जिसके सिवा और सब असत् है। हम जानते हैं, कि जो दृष्ट है, जो कुछ दिखाई पड़ता है वह भ्रम है, माया है। तो भी हम असत् को ही सत्य मानते हैं! तुच्छ पार्थिव वस्तुओं को माया समझने लग जाने से तत्वानुसंधान में आधी विजय प्राप्त हो चुकती है। मायाजाल को तोड़ देने से ईश्वर या सत्य की खोज का आधा काम हो चुकता है। जबतक हम मायामोह से मुक्त नहीं होते, तबतक इस महान् अनुसंधानकार्य के लिए हमें अवकाश ही नहीं मिल सकता।

हरिजन-सेवा का कार्य करनेवालों को यह ज्ञान रखना चाहिए, कि अस्पृश्यता-निवारण का आन्दोलन उसी महान् अनुसंधान का अंश है— भले ही हम उसे न समझ सकते हों। अस्पृश्यत्व बहुत बड़ा असत् है। इस सत्य को समझे बिना हरिजन-सेवा में हमें हाथ नहीं डालना चाहिए। सफलता के जो नियम समय-समय पर बनाये गये हैं, उन्हें तत्परता के साथ पाल करके ही हम दूसरों को इस सत्य का ज्ञान करा सकते हैं।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

'चारो दिस जागीरी में'

मेरे एक मित्र अच्छे पढ़े लिखे हैं, और पैसे-टके से भी काफ़ी सुखी। संसारी भोगों का भी उन्होंने ख़ासा अनुभव किया है। इधर कुछ वर्षों से उन्होंने सभी प्रकार की सवारियों का त्याग कर दिया है। वर्षा में, जाड़े में, धूप में, आरोग्यता में, बीमारी में आग्रहपूर्वक उन्होंने सवारी के त्याग का प्रण निबाहा है। मुझे उनके इस प्रण-पालन में कई जगह अति जान पड़ी है। पर उनके आचरण का निर्णय करनेवाला मैं होता कौन हूँ? मुझे वह बराबर चिट्ठी-पत्री लिखते रहते हैं। उनका एक पत्र मुझे हरिजन यात्रा में मिला था। उसे मैंने 'हरिजन-बन्धु' के पाठकों के लिए रख छोड़ा

था। उस पत्रमें से उस सज्जन के कुछ अनुभव मैं नीचे देता हूँ:--

"यों तो मैंने अनेक व्रत ग्रहण किये, पर यह पैदल चलने का व्रत तो मुझे बड़ा ही आनन्ददायक लगा। इसमें मुझे अनेकानेक अनुभव प्राप्त हुए और होते जा रहे हैं। ईश्वर पर मेरी बहुत श्रद्धा बढ़ गई है। अहमदाबाद से दो बरस पहले जब मैं भ्रमण के लिए निकला था, तब से आज मेरी वह श्रद्धा स्यात् तिगुनी बढ़ गई है।

इस पैदलयात्रा में ग़रीबी भी देखी और अमीरी भी देखी। अमीरी में अधिकतर मगरूरी ही मैंने पाई, और अनेक जगह धनाढ्यों का अमर्यादित या उच्छृंखल जीवन दिखाई दिया। अधिकारियों में प्राय: हुकूमत का मद देखा। और ग़रीबों में स्वभावत: ही ईश्वरपरायणता, सेवा-भाव और संकट झेलने की शक्ति देखने में आई। 'ग़रीबी प्रभु को प्यारी है, अमीरी क्या बिचारी है?' इसका मुझे डग-डगपर अनुभव मिला। ईश्वर मुझे हमेशा ग़रीबी या फ़कीरी की ही हालत में रखे, ग़रीबी में ही सदा गुज़ारा करता रहूँ। किसी भी चीज़ को खीसे में रखने का मुझे मोह न हो। कल के लिए रोटी का एक टुकड़ा रख छोड़ूँ इस परिग्रह-वृत्ति से भी ईश्वर मुझे दूर रखे। मैं तो अपने राम की दी हुई फ़कीरी में ही हरदम मगन रहूँ।

और क्या देखा, संसारी लोगों में पापी मनुष्यों के प्रति तिरस्कार। अरे, हम में से कौन इस दोष से मुक्त हो सकता है? पाप के प्रति घृणा-भाव रखो, पापी के प्रति नहीं, यह महासूत्र भी मेरी समझ में आ गया।"

इन सज्जनने गुजरात से लेकर ठेठ उत्तरतक --देहरादून से भी आगे--पैदलयात्रा की है। सैकड़ों गाँवों से यह गुज़रे और गाँववालों के संपर्क में आये हैं। इसलिए उनका यात्रानुभव आदरणीय है। सभी देशों और सभी युगों के पुरुषों को पग-पर्यटन तथा अपरिग्रह के चमत्कार का ऐसा ही अनुभव हुआ है। थोरो की पगयात्रा की स्तुति-पुस्तक 'वाल्डेन' (Walden) को कौन नहीं जानता। संसार के जिन महान् सुधारकोंने समय-समय पर धर्म में संशोधन किये हैं, उन्होंने शायद ही सवारी का उपयोग किया हो, उन्होंने तो हज़ारों कोस पैदल चलकर ही अपने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया था। आज हवाई जहाज़ में बैठकर एक जगह से दूसरी जगह उड़नेवाले मनुष्यों से जो नहीं हो सकता, उस काम का हमारे पूर्वजोंने निश्चय ही किया था। 'उतावला सो बावला, धीर सो गम्भीर'--ठीक ऐसी ही एक कहावत अँग्रेज़ी में भी है*। ये लोकोक्तियाँ जिस तरह पूर्वकाल में सच्ची थीं, उसी तरह आज भी हैं।

यह बात नहीं, कि उक्त व्रतधारी की अनुभव-कथा पढ़कर सब पैदल चलने लगेंगे, सभी ग़रीब बनने की प्रभु से प्रार्थना करेंगे, पाप और पापी का भेद समझकर सभी लोग पापी से प्रेम और पाप से घृणा करना सीख लेंगे। पर सब लोग अगर इस भावना की क़ीमत आँककर इसके अनुसार यथाशक्ति आचरण करें तो भी कुछ कम नहीं। हमारे हरिजन-सेवक तो अन्यथा कर ही नहीं सकते।

'हरिजन-बन्धु' से]

मो० क० गांधी

* Not mad rush, but unperturbed calmness brings wisdom.

वर्णाश्रमधर्म

[वर्णाश्रमधर्म पर गांधीजीने इधर पन्द्रहवर्ष के भीतर जितने लेख लिखे हैं उनका एक संग्रह 'नवजीवन प्रकाशन-मन्दिर' वालोंने तैयार कराया है। गांधीजीने इस पुस्तिका की जो प्रस्तावना लिखी है, उसका भाषान्तर नीचे दिया जाता है--सं०]

(१)

दो शब्द पाठकों से

मुझे अपने वर्णाश्रमधर्म-सम्बन्धी लेखों का पूर्वापर सम्बन्ध अविच्छिन्न रखने का लोभ नहीं। सत्य को साक्षी देकर आज मैं क्या मानता हूँ वह कह देता हूँ। पूर्वापर सम्बन्ध मिलता है या नहीं यह तो पाठकों के देखने की चीज़ है। जहाँ विषय में संगति मालूम न होती हो, वहाँ, पाठकों को मेरी मनोदशा जाननी हो तो, इस प्रस्तावना में जो लिखा है उसे प्रमाण मानकर बाक़ी का त्याग कर देना चाहिए। मैं कोई सर्वज्ञता का दावा तो करता नहीं। मेरा दावा तो सत्य का आग्रही होने का है, और जिस समय जो सत्य मालूम होता है, उसीके अनुसार मुझे यथाशक्ति आचरण करना है। इसलिए जाने-अनजाने मेरे विचारों में उत्तरोत्तर फेरफार या वृद्धि का होना संभव है। जहाँ ज्ञानपूर्वक ऐसा फेरफार दिखाई देता है वहाँ तो मैं उसे नोट कर ही लेता हूँ। पर सूक्ष्म फेरफार तो अनजाने ही हुआ करते हैं। उन्हें नोट किया ही कैसे जा सकता है? ऐसे नोट तो चतुर पाठक ही ले सकते हैं।

हिन्दूधर्म अर्थात् वर्णाश्रमधर्म

साधारण व्यवहार में 'वर्णधर्म' समास का उपयोग हम कम ही करते हैं। लोगों में 'वर्णाश्रम धर्म' समास का ही उपयोग अधिक प्रचलित है। आश्रमधर्म के सम्बन्ध में, मैंने कम ही लिखा है। ज़्यादातर तो मैंने वर्णधर्म के विषय में ही लिखा है। किन्तु हिन्दू-धर्म का सच्चा नाम 'वर्णाश्रमधर्म' कहा जा सकता है। 'हिन्दू' नाम विदेशी यात्रियों का दिया जान पड़ता है, और उसका सम्बन्ध भूगोल से है। हमने जिस धर्म का पालन किया है, उसे कोई विशेष और सूचक नाम यदि दिया जा सकता है, तो वह नाम निस्संदेह वर्णाश्रमधर्म है। हिंदुओं का धर्म आर्य-धर्म है ऐसा कहने में धर्म की कोई अभिव्यक्ति नहीं होती। इसका अर्थ तो यही हुआ, कि हिन्दू अर्थात् सिंधु नदी की पूर्व दिशा में रहनेवाले लोग अपने को आर्य मानते हैं, और दूसरों को अनार्य; अथवा वैदिक धर्म माननेवाले अपने को आर्य मानते है और दूसरों को अनार्य। मैं तो ऐसी संज्ञा में दोष भी देखता हूँ। अत: वर्णाश्रमधर्म ही उस धर्म की विलक्षणता को व्यक्त करता है।

मेरा यह विचार ठीक हो अथवा नहीं, पर इतना तो सभी स्वीकार करेंगे, कि वर्णाश्रम को हिन्दू-धर्म में बहुत बड़ा स्थान दिया गया है। स्मृतिकाल का एक भी ऐसा धर्मग्रन्थ देखने में नहीं आता, जिसमें वर्णाश्रमधर्म की काफ़ी चर्चा न की गई हो। वर्णाश्रम का मूल तो वेद में ही है। इसलिए कोई हिन्दू वर्णाश्रम की उपेक्षा नहीं कर सकता। समझने के उपरान्त यह वर्णाश्रम-व्यवस्था यदि दोषपूर्ण मालूम हो, तो ज्ञानपूर्वक उसका परित्याग कर देना चाहिए, और अगर यह व्यवस्था धर्म की कोई विशेषता जान पड़े, तो फिर उसकी हमें पुष्टि करनी चाहिए।

आश्रमधर्म का लोप

कहना चाहिए कि वर्णाश्रम में आश्रमधर्म के तो आज नाम

और कर्म दोनों लोप ही हो गये हैं। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम हिंदूधर्म में माने गये हैं और ये हिंदूमात्र के लिए हैं। पर आज ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थाश्रम का पालन तो शायद ही कोई करता हो। नाममात्र के संन्यास का भले कुछ लोग पालन करते हों, पर ये आश्रम एक दूसरे के साथ ऐसे ओतप्रोत हैं, कि बिना एक के दूसरे का पालन हो ही नहीं सकता। जिसका आज हम सब पालन करते हैं, वह तो गृहस्थ-वृत्ति है, गृहस्थ-धर्म नहीं। पर यह स्मरण रहे, कि गृहस्थ-वृत्ति अर्थात् सन्तानवृद्धि का कर्म तो संसार में सभी करते हैं। धर्म में तो मर्यादा विवेक आदि रहते हैं। अतः मर्यादा तथा विवेक-पूर्वक जो दम्पति रहते हैं, वे गृहस्थधर्म का पालन करते हैं। जो बिना मर्यादा के, बिना विवेक के व्यवहार करते हैं वे धर्मनिष्ट नहीं, किन्तु स्वेच्छाचारी हैं। और आज की गृहस्थवृत्ति से तो अधिकांश में स्वेच्छाचार या व्यभिचार का ही पोषण होता है। व्यभिचारी अथवा स्वेच्छाचारी जीवन के अन्त में वानप्रस्थ या संन्यास तो असम्भव ही समझना चाहिए। इसलिए आश्रमधर्म का तो लोप ही हो गया यह कहना चाहिए। इस धर्म का पुनरुद्धार आवश्यक है। किंतु वर्णधर्म के साथ आश्रमधर्म ऐसा संबद्ध है, कि वर्णधर्म का पुनरुद्धार हुए बिना आश्रमधर्म का पुनरुद्धार असंभव है।

सच्चा वर्णधर्म

अब वर्णधर्म लीजिए। कहना चाहिए, कि वर्णधर्म भी नाम का ही रह गया है। वर्ण चार माने गये हैं। पर आज तो असंख्य वर्ण गिनती में आते हैं। फिर भी लोग अपने को चार वर्ण में गिन सकते हैं। कोई अपने का ब्राह्मण कहता है, कोई क्षत्रिय कहता है, और कोई वैश्य। अपने को शूद्र कहते हुए तो सभी लज्जित होते हैं। शूद्र तो अपनी उपजातियों से ही पहचाने जाते हैं। शेष तीन वर्णों में भी अनेक उपजातियाँ हैं। पर वे सब जातियाँ अपने को ब्राह्मणादि बताने में लज्जित नहीं होतीं। इस तरह वर्ण अब नाम के ही रह गये हैं।

पर मनुष्य अपने साथ अमुक विशेषण लगा ले, तो इससे वह तद्वत् योग्य नहीं बन जाता। जिस प्रकार श्यामवर्ण का मनुष्य अपने को लालवर्ण का कहकर लाल नहीं बन सकता, उसी तरह अपने को ब्राह्मण मानकर कोई ब्राह्मण नहीं बन सकता। ब्राह्मण की अन्तिम परीक्षा में तो वह अपने में ब्राह्मण के गुणों को प्रत्यक्ष करके ही उत्तीर्ण हो सकता है। इस रीति से विचार करें तो हम देखेंगे, कि वर्णधर्म का आज लोप हो गया है। व्यवहार में यदि 'वर्ण' संज्ञा रख सकें, तो हम सब शूद्र हैं। पर यथार्थ रीति से तो शूद्रों में भी हमारी गिनती नहीं हो सकती, क्योंकि धर्मशास्त्र में तो वर्ण को धर्म माना है। अतएव शूद्रवर्ण भी धर्म है। और धर्म तो स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता है। उसके पालन में लज्जा के लिए तो स्थान ही नहीं। परन्तु धर्म के रूप में शूद्रत्व को आचरनेवाले आज कितने दिखाई देते हैं? काल के वश होकर ही शूद्रत्व अर्थात् दासत्व को हमने प्राप्त किया है। किसी-किसी का यह कहना है, कि वर्ण के कर्म तो किसी न किसी तरह हम करते ही हैं, अतः वर्णधर्म का लोप नहीं हुआ। जो मनुष्य जिस वर्ण के कर्मों को करता है, उसी वर्ण का वह माना जाता है। मेरी दृष्टि में यह वर्णधर्म नहीं है। इस प्रकार जहाँ कर्मों का मिश्रण हो जाय, सब स्वेच्छा से जो जिसे भावे वह कर्म करें, तो उसे तो मैं वर्णों का संकर ही कहूँगा।

वर्ण और जन्मकर्म

वर्ण का जन्म के साथ अनिवार्य नहीं तो अति निकट का सम्बन्ध तो है ही। जिसका जिस वर्ण में जन्म हुआ हो, उस वर्ण के कर्मों का यदि वह धर्मभावना से पालन करता है, तो वह वर्णधर्म का पालन करता है। इस प्रकार धर्म का पालन करनेवालों को आज हम उँगलियों पर ही गिन सकते हैं। वर्णधर्म के पालन में स्वार्थ के लिए स्थान नहीं, अथवा है तो गौण स्थान है। वर्णधर्म में तो केवल परमार्थ के लिए ही स्थान, और प्रधान स्थान हो सकता है। ब्राह्मण ब्रह्म को जानने और दूसरों को जताने में जीवन बितावे और इस विश्वास पर दृढ़ रहे कि भगवान् ही मुझे मेरी आजीविका देनेवाले हैं। क्षत्रिय प्रजा-पालन के धर्म में प्रवृत्त रहे, और अपनी आजीविका के लिए वह एक मर्यादित द्रव्य प्रजा से ले। वैश्य प्रजा के कल्याण के अर्थ व्यापार करे, और इससे उसे जो अर्थ-लाभ हो, उसमें से आजीविकामात्र लेकर बाकी को लोक-कल्याण के लिए उपयोग करे। और इसी तरह शूद्र जो भी परिचर्या करे वह धर्म समझकर ही करे।

वर्ण का निर्णय जिस प्रकार जन्म से किया जाता है उसी प्रकार कुछ अंशों में कर्म से भी किया जाता है। ब्राह्मण का बालक ब्राह्मण-कुल में जन्म लेकर ब्राह्मण तो कहलायगा ही, पर यदि वह बड़ा होने पर ब्राह्मणोचित लक्षण प्रगट नहीं करेगा, तो फिर वह ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता। तब तो वह पतित हो गया। इसके विपरीत, जो अन्य वर्ण में जन्म लेकर ब्राह्मण के लक्षणों को प्रत्यक्ष दिखा देगा, वह अपने को ब्राह्मण न कहते हुए भी ब्राह्मणों की गणना में आ जायगा, संसार उसे ब्राह्मण ही मानेगा।

वर्णधर्म का वक्र और विकराल रूप

इस धर्म या इस व्यवस्था का यदि संसार अनुसरण करे, तो फिर न कहीं असन्तोष रहे, न द्वेषपूर्ण प्रतिस्पर्धा। ईर्ष्या का कहीं नाम भी न रहे, और न कोई भूखों मरे और सारी व्याधियाँ भी दूर हो जायँ।

पर यदि वर्ण 'धर्म' हो, 'अधिकार' न हो, तो वर्ण-वर्ण के बीच उच्च-नीच का भेद न रहे, सब वर्ण सम-समान हो जायँ। आज तो हिंदू-धर्म के अंदर धर्म के नाम पर उच्च-नीच का भेदभाव पैठ गया है। यह वर्णधर्म का वक्र रूप है, विकराल रूप है। हमारे पूर्वजोंने कठिन तपश्चर्या से जिस महान् व्यवस्था का अनुसंधान किया था, जिसका यथाशक्ति उन्होंने पालन किया था, आज वही व्यवस्था अनर्थ कर रही है। आज उसने हमें जगत् में उपहास का पात्र बनाकर छोड़ा है। और इसके परिणामस्वरूप हिंदुओं में भी एक ऐसा दल पैदा हो गया है जो वर्णव्यवस्था को नष्ट कर देने का प्रयत्न कर रहा है, क्योंकि वह यह मानता है, कि इस वर्णव्यवस्था से ही हिन्दू-जाति का नाश हुआ है। और आज जो स्थिति वर्ण के नाम से देखने में आती है, उससे तो हिंदूजाति का नाश ही होने को है।

मो० क० गांधी

एक त्याज्य खेल

बुन्देलखंड (मध्यभारत) में आज भी बच्चों के कई ऐसे खेल प्रचलित हैं, जिनमें न किसी सामान की ज़रूरत पड़ती है,

न पैसा टका ख़र्च होता है, फिर भी बच्चों की काफ़ी कसरत हो जाती है। बच्चे दौड़धूप से ख़ूब प्रसन्न होते हैं, और माता-पिता का भी मन बहल जाता है। कई खेल बड़े शिक्षाप्रद हैं। पर 'साते-साते माँड़े, जूड़े-जूड़े धना' नाम का एक खेल तो बालकों की कोमल मनोवृत्ति में विष का ही संचार करता है। उनके नन्हें अबोध हृदयों में छूतछात का ज़हर बचपन से ही यह खेल भर देता है। अस्पृश्यता पूतनाने कहाँतक अपनी माया फैलाई है, कुछ ठिकाना! छोटे-छोटे पवित्रमना बालकों पर भी इस डुष्टाने अपनी छाप लगादी है।

यह खेल यह है:—

इस खेल में पाँच-सात बालक होते हैं और एक बालिका। यह बालिका मुखिया का काम करती है। अन्तिम भाग इस खेल का यह होता है, कि मुखिया बालिका सब बालकों को धीरे-धीरे धक्का देकर लुढ़का देती है और कहती है,' सो जाओ भैया, सो जाओ।' सब आँख मींचकर लेट जाते हैं।

अब मुखिया एक-एक लड़के का नाम लेकर पुकारती है—'उठो भाई, उठो, तुम्हारा बाप लड्डू लाया है।' सब धीरे-धीरे उठते और लड्डुओं के लोभ से एक पाँत में चुप-चाप बैठ जाते हैं। कोई बोलता नहीं। जो बोल देता है वह भंगी। उसे पाँत से अलग कर देते हैं। फिर मुखिया हर लड़के से कहती है, 'दतौन लो, दतौन।' लड़का पूछता है, 'दतौन काहे की?' जवाब मिलता है—'गिरधोना (गिरगिट) की पूँछ की!' तो लड़का कहता है, 'अरे, थू थू-थू!'

'अच्छा, जामुन की, नीम की, रामदतौन की, अब तो दतौन लोगे?'

लड़के दतौन अब ले लेते हैं। सबसे पीछे, उस भंगी लड़के की बारी आती है। उसे 'गिरधोना की पूँछ' की ही दतौन मिलती है! भंगी कहीं नीम, जामुन आदि की दतौन कर सकता है?

दतौन के बाद पानी। फिर वही सवाल सामने आता है। 'पानी कहाँ का?' मुखिया कहती है, 'नरदा (नाबदान) का!' फिर थू थू थू होता है। लड़के तो गंगाजल ही पियेंगे। ख़ैर, उन सब को गंगाजल दे दिया जाता है। पर भंगी के भाग्य में तो नाबदान का ही पानी बदा है। उस पंक्ति-बहिष्कृत को तो उसी से सन्तोष करना पड़ता है!

फिर नाना प्रकार के मानसिक व्यंजन परोसे जाते हैं, और मानसिक प्रीतिभोज होता है। तिरस्कृत भंगी बालक को कुछ नहीं परोसा जाता। भोजन करके सब लड़के अपना-अपना जूठा पत्तल भंगी के ऊपर फेंक देने का भाव दिखाते हैं! अब तो भंगी का आत्माभिमान जाग्रत हो उठता है। वह गुस्से में आकर उन नटखट सवर्ण बालकों की ओर झपटता है। वे सब इधर-उधर भागते हैं, कि कहीं यह अछूत हमें छू न ले। इस तरह थोड़ी-दौड़धूप के बाद खेल ख़त्म हो जाता है।

छत्रपुर-निवासी मेरे साहित्यक मित्र श्रोदीवान प्रतिपालसिंह-जीने बुन्देलखंड के ग्रामीण खेलों को लेखबद्ध किया है। क्या अच्छा हो, कि दीवान साहब तथा दूसरे सज्जन ऐसे अहितकर खेलों में उचित संशोधन करदें, और उन संशोधित खेलों का ही बच्चों में प्रचार करावें, जिससे बच्चों के हाथ-पैर भी पुष्ट हों और उनके बाल-हृदय में शुद्ध धार्मिक विचारों का संचार भी हो।

वि० ह०

उच्चशिक्षा के लिए
हरिजन-छात्रवृत्तियाँ

१९३३ के सितम्बर मास में जब हरिजन-सेवक-संघ की स्थापना हुई, तब यह विचार किया गया, कि उच्चशिक्षा के लिए हरिजन विद्यार्थियों को कुछ छात्रवृत्तियाँ दी जावँ। तदनुसार १९३३ तथा १९३४ के पूर्वार्ध में यह सूचना प्रकाशित की गई, कि हरिजन विद्यार्थी इस संबंध के आवेदन-पत्र संघ के प्रधान कार्यालय में भेजदें। चारों ओर से सैकड़ों आवेदन-पत्र आये। संघ की शिक्षा-समितिने (जिसमें दिल्ली के दो कालिजों के प्रिंसिपल श्री रुद्राजी व श्री मुकर्जी तथा संघ के प्रधान मन्त्री हैं) दफ़्तर में आये हुए प्रार्थना-पत्रों पर विचार किया। यह प्रकाशित करते हुए मुझे हर्ष होता है कि उक्त कमेटी की सिफ़ारिश के अनुसार आज ९६ हरिजन छात्रों को—जिनमें ३ लड़कियाँ भी हैं—१०) से लेकर १५) तक की मासिक सहायता दी जा रही है। मद्रास मेडीकल कालिज में पढ़नेवाली एक लड़की को तो २०) मासिक छात्रवृत्ति दी जाती है। कुल १२६९॥) मासिक छात्रवृत्तियों पर ख़र्च किया जा रहा है। विभिन्न भाषाभाषी प्रान्तों के विद्यार्थियों को नीचे लिखे अनुसार छात्रवृत्तियाँ मिल रही हैं:—

दक्षिण—आंध्र में ११, केरल में ५, मैसूर में २, मद्रास में ५, तामिल नाड में ६ और हैदराबाद राज्य में २—कुल ३१

उत्तर—आसाम में ८, बंगाल में २, बिहार में २, संयुक्तप्रांत में ७, दिल्ली में २, और पंजाब में ९—कुल ३०

बरार में ७, मराठी मध्यप्रांत में ९ और हिंदी मध्यप्रांत में ४—कुल २०

महाराष्ट्र और कर्णाटक—महाराष्ट्र में ७ और कर्णाटक में ३—कुल १०

गुजरात और मध्यप्रांत—गुजरात में ३ और मध्यभारत में २—कुल ५

यह तो हुई प्रांतों की बात। अब जातिवार कितनी छात्र-वृत्तियाँ दी गई हैं यह देखिए। महार जाति के विद्यार्थी सबसे आगे नम्बर मार ले गये हैं। हिंदुस्तानभर में यही हरिजन जाति शिक्षा में सबसे आगे है। २० छात्रवृत्तियाँ महार विद्यार्थियों को मिली हैं। ये सब महाराष्ट्र, मराठी मध्यप्रांत और बरार के हैं। इसके अलावा सी० पी० की सरकार हरिजन विद्यार्थियों से कालिज की फ़ीस नहीं लेती, और नागपुर-यूनिवर्सिटीने उन्हें परीक्षा-शुल्क से मुक्त कर दिया है। मध्यप्रांत के हरिजनों की उच्चशिक्षा की प्रगति का यह बहुत बड़ा कारण है। फिर महाराष्ट्र के महारों को बम्बई-सरकारकी ओर से 'विशिष्ट हरिजन-छात्रवृत्तियाँ' दी जाती हैं, इसलिए बम्बई अहाते की दूसरी हरिजन जातियों में शिक्षा के क्षेत्र में वहाँ की महार जाति बहुत आगे बढ़ी हुई है।

महारों के बाद नम्बर आता है चमारों का। मराठी भाषा-भाषी ज़िलों में इन्हें चँभार कहते हैं। इन्हें १२ छात्रवृत्तियाँ मिली हैं। संयुक्तप्रांत, तथा उत्तर के अन्य प्रांतों और मध्यप्रांत में चमारों की आबादी बहुत बड़ी है, पर शिक्षा का जहाँतक सम्बन्ध है, महारों से ये लोग बहुत पीछे हैं।

इसके बाद आसाम और बंगाल के कैवर्त (या मछुए)

आते हैं, जिन्हें ७ छात्रवृत्तियाँ मिली हैं। आसाम में कैवर्तों की बहुत बड़ी आबादी है, और ये लोग वहाँ अन्य हरिजनों की अपेक्षा उन्नतिशील भी हैं। १९३३ के शुरू में जब मैं आसाम प्रांत में दौरा करने गया था, तब मैं वहाँ गौहाटी के कालिजों में पढ़नेवाले विभिन्न हरिजन जातियों के क़रीब ५० विद्यार्थियों से मिला था। आसाम की दूसरी हिंदू जातियों के मुक़ाबले में वहाँ की हरिजन जातियाँ निस्संदेह शिक्षा के क्षेत्र में काफ़ी आगे बढ़ी हुई हैं।

इनके बाद आदि द्रविड़ और आदि-आंध्र आते हैं, जिन्हें क्रमशः ७ और ५ छात्रवृत्तियाँ मिली हैं। ये कोई जाति-नाम नहीं हैं, इनका तो यही अर्थ है, कि तामिल-नाड और आंध्र देश के ये लोग मूल निवासी हैं।

फिर तमाम प्रांतों की दूसरी छोटी-छोटी हरिजन जातियों का नम्बर आता है, जिन्हें क़रीब २ दर्जन छात्रवृत्तियाँ संघ की ओर से दी जारही हैं। इनमें प्रत्येक जाति के विद्यार्थियों को एक से लेकर तीनतक छात्रवृत्तियाँ मिल रही हैं। पटना-कालिज में बिहार का एक दुसाध विद्यार्थी पढ़ रहा है, डी० ए० वी० कालिज, लाहौर में एक पासी छात्र शिक्षा पा रहा है, पटना के नेशनल कालिज में एक धोबी विद्यार्थी पढ़ रहा है, और त्रिचिनापली के नेशनल कालिज में एक पारिया छात्र शिक्षा पा रहा है। इसी तरह लखनऊ के टीचर्स ट्रेनिंग कालिज में एक डोम विद्यार्थी, और बनारस के हिन्दू-यूनिवर्सिटी आर्ट्स कालिज में एक भंगी विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं।

६५ विद्यार्थी, (कुल विद्यार्थियों का दो-तिहाई भाग) तो केवल आर्ट्स कालिजों में ही पढ़ रहे हैं, और ८ पढ़ते हैं ला-कालिजों में, ६ मेडिकल कालिज और स्कूलों में, ५ साइन्स कालिजोंमें, ५ टीचर्स ट्रेनिंग-कालिजों में, ३ फ़ाइन आर्ट्स में, २ इंजीनियरिंग स्कूलों में और २ वेटरीनेरी कालिज में। क्या अच्छा हो कि भविष्य में महज़ साहित्यिक शिक्षा की अपेक्षा औद्योगिक शिक्षा की तरफ अधिक विद्यार्थी आकर्षित हों।

अमृतलाल वि० ठक्कर

नाशक नशेबाज़ी

लखनऊ की जैसवार राजवंशी सभा की ओर से दिये गये मानपत्र के उत्तर में रायसाहब सं० हरिप्रसादजी टमटाने जो भाषण दिया था, उसके निम्नलिखित अंश को हमारे हरिजन भाई ग़ौर से पढ़ेंगे, ऐसी आशा है:—

"शहरों में सबसे बड़ी ख़राबी जो मेरे देखने में आ रही है वह हमारे दुर्व्यसन हैं। प्रायः हमारे भाइयों में बीड़ी, सिगरेट तथा नशेबाज़ी निकम्मी लत है। नशेबाज़ी बहुत बुरी बला है। नशेबाज़ी से मनुष्य का विनाश हो जाता है। इस पाप के हम स्वयं जिम्मेदार हैं, अपने आप दोषी हैं, स्वयं अपराधी हैं। इसके लिए हम किसी पर दोष नहीं दे सकते, वरन् दूसरे हमें दोषी कहते हैं। इस सब से बड़े दोष और महापाप को हमें अपनी सभाओं और पंचायतों-द्वारा भारी-से-भारी सामाजिक दण्ड लगा-कर एक-दम मिटा देना चाहिए। नशा मनुष्य को पागल और मूढ़ बना देता है, स्वास्थ्य को बिगाड़ देता है और धन का नाश कर देता है। यदि हम नशारूपी महा-पिशाच से हम अपनी जाति और अपनी सन्तान की रक्षा कर सकें, तो हमारे आधे दुःख दूर हो जायँ। मैं अपने प्रत्येक भाई से हाथ जोड़कर प्रार्थना करूंगा कि इन विनाशकारी दुर्व्यसनों को जाति से निर्मूल कर देने के लिए वह हृदय से दृढ़ प्रतिज्ञा करें। जातीय चौधरी अपने आत्मसियों से मदिरा आदि नशों के विरुद्ध कठोर-से-कठोर दण्ड बाँधकर इस अभिशाप से अपनी जाति को मुक्त करें।"

करांची छावनी का विवरण

[जुलाई—अगस्त, १९३४]

धार्मिक—छावनी की हरिजन-बस्तियों में प्रति रविवार को साप्ताहिक सत्संग हुआ, जिसमें भजन-कीर्तन और धार्मिक तथा सामाजिक विषयों पर प्रवचन हुए।

आर्थिक—यहाँ की बस्ती के हरिजन ऋणभार से बहुत ज्यादा दबे हुए हैं। उसे चुकाने के लिए म्युनिसिपल स्वीपर्स को-आपरेटिव क्रेडिट बैंक से १० हरिजनों को, प्रत्येक को १५०) के हिसाब से, कर्ज़ा दिया गया।

सफ़ाई व स्वास्थ्य—हरिजनों तथा हरिजन-बस्तियों की सफ़ाई पर ख़ास ध्यान दिया जाता है। कई हरिजन-बस्तियों का, वहाँ की सफ़ाई संबंधी हालत जानने के लिए, निरीक्षण किया गया। हरिजन बालकों को नित्य नहलाया जाता है। मुख़्तलिफ़ बस्तियों में साबुन भी बाँटा जाता है। हरिजन रोगियों को उनके घर पर जाकर देखने के लिए एक डाक्टर का भी प्रबंध कर दिया गया है।

मद्य-मांस-निषेध—यह ख़ुशी की बात है, कि यहाँ के हरिजनोंने अपने गुरुजी के आगे मद्य-पानादि त्याग देने की जो प्रतिज्ञा की थी, उस से वे अबतक ज़रा भी नहीं डिगे। इसका यह नतीजा हुआ है, कि अब उन्हें कर्ज़ा नहीं लेना पड़ता है।

पूर्णाहुति-दिवस—२९ जुलाई को छावनी के हरिजनोंने गांधीजी के प्रवास का 'पूर्णाहुति-दिवस' बड़े समारोह के साथ मनाया। सबेरे ६ बजे महात्माजी को चिरायु बनाने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई, और महात्माजी को धन्यवाद दिया गया। दोपहर को हरिजन बालकों को स्नान कराया गया। रातको ८ बजे एक विशाल सत्संग हुआ, जिसमें भजन गाये गये और हरिजनोंने ईश्वर से प्रार्थना की कि वह उन्हें धर्म-मार्ग पर चलने की शक्ति दे।

सामान्य—जाँच से मालूम हुआ, कि रंटलीन की हरिजन-बस्ती में दिवस-पाठशाला तथा रात्रि-पाठशाला की ज़रूरत है। ३० बच्चे दिवस-पाठशाला में पढ़ने लायक हैं, जिनमें ६ अपनी बस्ती से बहुत दूर के एक स्कूल में पढ़ने जाते हैं। सवर्ण बालकों के लिए भी यही असुविधा है। म्युनिसिपल बोर्ड के एडमिनिस्ट्रेटिव आफ़िसर के पास उक्त बस्ती में एक दिवस-पाठशाला खुलवा देने के लिए दरख़ास्त भेज दी गई है।

भूल-सुधार

२८ सितंबर, १९३४ के 'हरिजन-सेवक' में, पृष्ठ ३२० के दूसरे कालम में, 'झारपाड़ा' के स्थान पर 'झरेरा' छपगया है। पाठक कृपया इस भूल को सुधार लें—सं०।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R S Gupta.

संपादक—वियोगी हरि　　"आत्मवत् सर्वभूतेषु"　　Reg. No. L. 1369

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २]　　दिल्ली, शुक्रवार, १२ अक्तूबर, १९३४.　　[संख्या ३४

विषय-सूची

पातिव्रत्य

मेरा शुरू से ही यह विश्वास रहा है, कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के शील के लिए अधिक आदर और चिन्ता की जाती है। प्रकृत्या ही स्त्रीजाति के लिए शीलभंग का दंडविधान अधिक स्पष्ट और सख़्त बनाया गया है। वर्तमान पीढ़ी की स्त्रियों की क्या राय है यह मैं नहीं जानता; पर पिछली पीढ़ीतक तो स्त्रियों की भी ऐसी ही राय थी, कि पुरुष भले ही भ्रष्ट जीवन बितावें, पर स्त्रियों से ऐसा न होगा।

पुरुष बिना स्त्री के अपने को कई तरह से भ्रष्ट कर सकता है, और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता, कि स्त्री से दूर रहनेवाला पुरुष हमेशा ब्रह्मचारी या संयमी ही रहता है। संभव है, कि लड़कों को विषय का ज्ञान सब से पहले अज्ञान दशा में ही किसी दूसरे बिगड़ैल छोकड़े के द्वारा होता हो। शायद अन्य प्राणियों का संभोग देखने से भी होता हो। पर इस विषय की चर्चा मैं यहाँ नहीं करना चाहता। यह विषयज्ञान उन्हें चाहे जिस तरह होता हो, पर इतना तो निश्चित है, कि स्त्री की अपेक्षा पुरुष को शीलरक्षा में अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, और यही कारण है, कि पुरुष की चरित्रभ्रष्टता को स्त्रियाँ भी अधिक क्षमा की दृष्टि से देखती आई हैं, अथवा यह कहा जा सकता है, कि पुरुष की शुद्धता के संबंध में उन्हें सदा से आशंका ही रही है। उन्हें अपने शील की रक्षा के लिए सदा ही अधिक अभिमान और चिन्ता रहती है।

इसलिए जब मैं कहीं स्त्री-पुरुष के बीच किसी अनुचित संबंध की बात सुनता हूँ, तो यह मेरे लिए पहेली ही रहती है, कि वहाँ स्त्री का पतन कैसे हुआ होगा। हिन्दूशास्त्रोंने तो पुरुष से स्त्री में अठगुनी कामवासना बताई है; और यह कहा है कि स्त्री का शील उसके चारित्र्यबल के कारण नहीं, किन्तु समाज के अथवा पुरुषवर्ग के अंकुश और चौकीपहरे के कारण सुरक्षित रहता है। महाभारत में तो यहाँतक कहा है, कि स्त्री की भोग-वासना सदा ही अतृप्त रहती है। मुझे इन वचनों में विश्वास नहीं हुआ। मुझे यह नहीं लगा, कि ये वाक्य पूर्ण अनुभव के परिणाम हैं। अनुभव तो उलटे ही प्रकार का होता है, मेरी यह राय अबतक ऐसी ही बनी हुई है।

इसलिए जब मैं कभी स्त्री के पतन की बात सुनता हूँ, तब मैं कुछ किंकर्तव्यविमूढ़-सा बन जाता हूँ। शायद यह मेरा भोलापन ही हो। किसी समाज में स्त्रियों का चारित्र्य बहुसंख्यक पुरुषों के चारित्र्य की अपेक्षा अधिक ऊँचा हो सकता है इस प्रकार की अपेक्षा ही बुद्धिहीनता की है, यदि ऐसा कोई कहे तो उसे हम दोष नहीं दे सकते। स्त्री और पुरुष दोनों एक ही वर्ग के प्राणी हैं, एक ही प्रकार की वासनाओं के पुतले हैं; इसलिए जितना आदर हमारा सच्चे प्रतिशत पुरुषों के शील या पत्नीव्रत अथवा ब्रह्मचर्य के लिए होगा, उतना ही आदर सच्चे प्रतिशत स्त्रियों के शील, पातिव्रत्य या ब्रह्मचर्य के लिए होना चाहिए—इससे कम हो नहीं सकता।

इस विचार में कुछ सत्य तो हो सकता है; तो भी कुछ तो विचारणीय रह ही जाता है, पूरा-पूरा खुलासा नहीं होता यह बात मेरे मन में हमेशा ही चक्कर लगाया करती थी।

इंगलैण्ड के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डाक्टर मॅक्डूगलने इस विषय में थोड़ा-सा खुलासा किया है, जो विचारणीय है। वह कहते हैं, कि स्त्री का स्वभाव अधिक भावनाप्रधान होता है। उसके प्रति जो प्रेमभाव प्रगट किया जाता है, उसका प्रभाव उसपर, पुरुष की अपेक्षा, अधिक पड़ता है। इसका यह अर्थ नहीं है, कि स्त्री की विषयेच्छा सदा ही अतृप्त रहती है। किन्तु स्त्री, साधारणतया, सदा ही भाव की, प्रेम की भूखी रहती है। इसलिए उसके प्रति जो प्रेमभाव व्यक्त किया जाता है उसकी प्रतिध्वनि उसके अन्तर से उठे बिना नहीं रहती। इसका परिणाम उसके हृदय पर इतना अधिक होता है, कि उसे अपने हित-अहित का बहुत भान नहीं रहता, और अपने प्रति प्रेम-भाव दर्शानेवाले पुरुष का सन्तोष देने के लिए वह चाहे जो करने को तैयार हो जाती है। यह वेग क्षणिक होता है; पीछे उसका उद्वेग पहले के वेग से अधिक प्रबल हो जाता है। किन्तु उस क्षण उसे भान नहीं रहता। धूर्त पुरुष उसके इस भावप्रधान स्वभाव का अनुचित लाभ उठाकर उसे अपना शिकार बना लेता है।

इसका यह अर्थ नहीं, कि स्त्रियाँ कभी पुरुष की अपेक्षा अधिक विकारवश या धूर्त होती ही नहीं, और पुरुष उन्हें फाँसने के बजाय खुद उनके जाल में नहीं फँसता। स्त्रियों के जाल में पुरुषों के फँसने के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। पर मैं यह मानता हूँ, कि अधिकतर पुरुष की तरफ़ से ही आकर्षण का जाल फेंका जाता है और स्त्री उसमें जा फँसती है।

उसे यह विचार या अभिमान तो त्याग ही देना चाहिए, कि उसके सतीधर्म अथवा पातिव्रत्य के संस्कार इतने प्रबल हैं, कि उनके कारण उसके ऊपर किसी भी पुरुष का आकर्षण न ठहर सकेगा। ये संस्कार महत्त्व के हैं सही, और प्रबल भी काफ़ी हैं,

तो भी उन्हें इतना अधिक महत्व नहीं देना चाहिए, कि अपने उन संस्कारों के बल पर पुरुषों के सहवास और संसर्ग में मर्यादा छोड़कर भी वे अपने को उनके आकर्षण-जाल से सुरक्षित रख सकती हैं। यह मानते हुए भी कि, सतीधर्म के संस्कारों की शक्ति सब से अधिक प्रबल है, स्थूल मर्यादा-पालन के प्रति उन्हें कदापि दुर्लक्ष नहीं करना चाहिए।

पातिव्रत्य धर्म के संस्कार डालने के लिए शास्त्रोंने, शिक्षकोंने या गुरुजनोंने चाहे जितना प्रयत्न किया हो, तो भी एक बात तो याद रखनी ही चाहिए, कि जहाँ पुरुष जाति शील मर्यादा में ढीली हो, वहाँ स्त्री जाति शील में दृढ़ हो ही नहीं सकती। यह कहीं देखने में नहीं आया, कि पुत्री को अपने पिता के गुणदोष उत्तराधिकार में न मिले हों। जब पुरुषवर्ग की पत्नीव्रतविषयक भावना तीव्र होगी, तभी स्त्रीवर्ग की पातिव्रत्यविषयक भावना तीव्र हो सकती है। आज पुरुष जाति में पत्नीव्रतविषयक तीव्र भावना तो कहीं देखने में आती नहीं। इसलिए स्त्री जाति को अपनी पातिव्रत्य की भावना पर अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए।

जहाँ स्त्री को अपने पति या कुटुंब की तरफ से कुछ असंतोष हो, उसका अनादर होता हो या उसके गुणों की क़द्र न होती हो, उसके प्रति घर में कोई प्रेम का व्यवहार न रखता हो, अथवा जहाँ कुछ आदर्श या स्वभाव का स्पष्ट ही भेद दिखाई देता हो, वहाँ कोई दूसरा पुरुष उसके आदर्श या स्वभाव के अधिक अनुकूल बर्ताव दिखानेवाला उसे मिल जाय और उसके प्रति वह पुरुष कुछ अधिक ममता या आदरभाव का व्यवहार रखता हो, उसे कुछ प्रेम-भाव से बताता हो, सिखाता हो, समझाता हो और उसकी सहानुभूति का भान उसे स्वाभाविक-सा लगता हो, तो उस पुरुष के हृदय में जो चोर छिपा हुआ है उसके द्वारा स्त्री स्वभाव का उपर्युक्त भावप्रवणता और कृतज्ञबुद्धि के दुरुपयोग हो जाने का पूरा भय है।

इसलिए राजमार्ग—सैकड़ों स्त्रियों के लिए निर्भयतापूर्वक विचरने का मार्ग—तो यही है, कि पर पुरुष चाहे कितना भी सीधा-सादा, दयालु, शुद्ध और आदर्शवादी मालूम होता हो, तो भी उसके साथ न एकांत में बैठना चाहिए, न हँसी-मज़ाक करना चाहिए, न बिना किसी ख़ास प्रयोजन के अंगस्पर्श करना या करने देना चाहिए—सौ बात की बात यह है, कि उसके साथ किसी भी प्रकार का मर्यादा-विहीन बर्ताव न करना चाहिए।

हो सकता है, कि लाखों में एकाध स्त्री या पुरुष मर्यादाओं के बंधन में न रहकर भी पवित्र बना रहे। ऐसा व्यक्ति अपने वय को सदा पाँच वर्ष के बच्चे की ही तरह अनुभव करेगा, और दूसरे स्त्री या पुरुष को माता या पिता अथवा पुत्री या पुत्र के रूप में देखेगा। ऐसे साध्वी और साधुजन सतत पूज्य हैं। पर जो व्यक्ति कभी विषय-विकार का अनुभव कर चुका है, उसे तो—

> तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु कोऽन्वखंडितधीः पुमान्।
> ऋषिं नारायणमृते योषिन्मय्येह मायया॥

(ब्रह्मा से लेकर देव, दानव, मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि कोई भी सृष्टि में, सिवाय एक नारायण ऋषि के, स्त्री-रूपी माया से खंडित न हुआ हो, ऐसा कौन पुरुष है?)—भागवत के इस वाक्य को सत्य ही मानकर चलना चाहिए। जो बात पुरुष के लिए है, वही स्त्री के लिए है।

'हरिजन-बंधु' से] किशोरलाल घ० मशरूवाला

धर्म और विधान

दीन और शरअ

[मौलाना अबुल कलाम आज़ाद-लिखित 'कुरान' के उर्दू भाष्य का स्व० मौलवी ज़हूरुल हुसैन हाशिमी द्वारा अनुवादित सर्वधर्म-समन्वय-सूचक एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंश नीचे दिया जाता है—सं०]

अच्छा, यदि मनुष्य-मात्र के लिए एक ही धर्म है और सब धर्मप्रवर्तकोंने एक ही तत्व और एक ही क़ानून का उपदेश दिया है तो फिर धर्मों में इतनी भिन्नता कैसे हुई? सब धर्मों में एक ही तरह की आज्ञाएं, एक ही तरह के कर्म, एक ही प्रकार के रीति-रिवाज क्यों नहीं हुए? किसी धर्म में उपासना की एक विधि अख्तियार की गई है, किसी में दूसरी। किसी के माननेवाले एक ओर मुँह करके उपासना करते हैं तो किसी के दूसरी ओर। किसी के यहाँ व्यवस्था और नियम आदि एक तरह के हैं, किसी के यहाँ दूसरी तरह के।

कुरान कहता है कि धर्मों की भिन्नता दो तरह की है। एक तो वह जिसे इन धर्मों के अनुयायियोंने धर्म की वास्तविक शिक्षा से हटकर पैदा कर लिया है। यह भिन्नता धर्मों की नहीं है, बल्कि उन धर्मों के माननेवालों की गुमराही का नतीजा है। दूसरी भिन्नता वह है जो वास्तव में अलग अलग धर्मों की आज्ञाओं और उनकी क्रियाओं में पाई जाती है। जैसे, एक धर्म में उपासना की कोई ख़ास विधि स्वीकार की गई है, दूसरे में दूसरी विधि। यह भिन्नता मौलिक अथवा वास्तविक भिन्नता नहीं है, केवल ऊपरी अर्थात् गौण भिन्नता है, और इस तरह की भिन्नता का होना अनिवार्य भी था।

कुरान कहता है कि सब धर्मों की शिक्षा में दो तरह की बातें होती हैं। एक तो वह जो धर्मों का तत्व और उनका सार है, दूसरी वह जिससे उन धर्मों का बाहरी रूप सजाया गया है। पहली मुख्य और दूसरी गौण है। पहली को कुरान 'धर्म-तत्व' (दीन) और दूसरी को 'विधि-विधान' (शरअ और नुसुक) का नाम देता है। इस दूसरी चीज़ के लिए 'मिनहाज' का शब्द भी इस्तमाल किया गया है। 'शरअ' और मिनहाज' का शब्दार्थ मार्ग है, और 'नुसुक' का अर्थ उपासना की विधि है। कुरान कहता है कि धर्मों में जो कुछ भी असली भिन्नता है वह धर्मतत्व की नहीं बल्कि नियमों और विधि-विधान की भिन्नता है, यानी, मूल की नहीं शाखाओं की है, असलीयत की नहीं बाहरी रूप-रंग की है, आत्मा का नहीं शरीर की है। और इस भिन्नता का होना अनिवार्य था। धर्म का लक्ष्य मानवसमाज का कल्याण और उसका सुधार है, परन्तु प्रत्येक देश और प्रत्येक काल में मनुष्यसमाज की अवस्था और परिस्थिति न तो कभी एक-सी हुई है और न हो सकती है। किसी ज़माने का रहन-सहन और उसकी मानसिक शक्तियाँ एक ख़ास ढंग की थीं और किसी ज़माने की दूसरे ढंग की। किसी देश की परिस्थिति के लिए एक ख़ास तरह का जीवन आवश्यक होता है और किसी देश के लिए दूसरी तरह का। इसलिए *जिस धर्म का आविर्भाव जिस युग और जिस परिस्थिति में हुआ और जैसी तबीयत के मनुष्यों में* हुआ उसी तरह के नियम और विधि-विधान भी उस धर्म में अख्तियार कर लिये गये।

जिस काल और जिस देश में जो ढङ्ग नियत किया गया वही उस देश और काल के लिए उपयुक्त था। इसलिए हर सूरत अपनी जगह ठीक और सत्य है, और यह भेद उससे अधिक महत्व नहीं रखता जितना महत्व कि समस्त मानवजातियों के अलग-अलग रहन-सहन और दूसरी स्वाभाविक विभिन्नताओं को दिया जा सकता है।

"(ऐ पैग़म्बर !) हमने हर गिरोह के लिए उपासना की एक ख़ास विधि नियत कर दी है, जिस पर वह अमल करता है। इसलिए लोगों को चाहिए कि इस विषय में झगड़ा न करें। (ऐ पैग़म्बर !) तुम लोगों को अपने परमात्मा की ओर बुलाओ (कि असली चीज़ यही है)। वास्तव में तुम हिदायत के सीधे रास्ते पर चलने हो। (सू० २२, आ० ६६)"

जब इस्लाम के पैग़म्बरने यरूशलम (बैतुल-मुक़द्दस) के बदले काबे की तरफ़ मुँह करके नमाज़ पढ़नी शुरू की, तब यह बात यहूदियों और ईसाइयों को अखरी, क्योंकि वे इन बाहरी और ऊपरी बातों पर ही धर्म का सारा दार-मदार रखते थे और इन्हीं को सत्य और असत्य की कसौटी समझते थे।

लेकिन कुरानने इस मामले को बिलकुल दूसरी ही नज़र से देखा है। कुरान कहता है, तुम इस तरह की बातों को इतना महत्व क्यों देते हो? यह न तो सत्य और असत्य की कसौटी ही है, और न इनका धर्म के वास्तविक अर्थात् मौलिक रूप से कोई सम्बन्ध ही है। प्रत्येक धर्मने अपनी परिस्थिति और सुविधा के अनुसार उपासना की एक ख़ास विधि अख़्तियार कर ली और उसके अनुसार लोग बरतने लगे। परन्तु असली लक्ष्य सबका एक ही है और वह ईश्वरोपासना और सदाचरण है। इसलिए जो व्यक्ति सत्य का जिज्ञासु है उसे चाहिए कि वास्तविक लक्ष्य पर ध्यान रखे और इसी दृष्टि से सब बातों की परीक्षा करे, इन बाहरी बातों को सत्य और असत्यकी कसौटी न समझ ले।

"और (देखो), हर गिरोह के लिए कोई-न-कोई दिशा है जिसकी ओर, उपासना करते समय, वह अपना मुँह कर लेता है (इसलिए इस मामले को इतना तूल न देकर) नेकी की राह में एक दूसरे से आगे बढ़ जाने का प्रयत्न करो (क्योंकि असली काम यही है)। चाहे तुम किसी जगह भी हो ईश्वर तुम्हें ढूंढ लेगा। अवश्य ही परमात्मा की शक्ति से कोई चीज़ बाहर नहीं है। (सू० २, आ० १४८)"

फिर इसी सूरे में आगे चलकर कुरानने साफ़ शब्दों में खुलासा कर दिया कि असली धर्म क्या है, और किन बातों से मनुष्य धार्मिक कल्याण और समृद्धि प्राप्त कर सकता है। कुरान कहता है, धर्म सिर्फ़ इस तरह की बातों में नहीं है कि उपासना करते समय किसी व्यक्तिने मुँह पूरब की तरफ़ किया या पश्चिम की तरफ़। वास्तविक धर्म तो ईश्वर-भक्ति और सदाचरण है। फिर विस्तार के साथ बतलाया है कि ईश्वर-भक्ति और सदाचरण की असली बातें क्या-क्या हैं।

"और (देखो) नेकी यह नहीं है कि तुमने (उपासना के समय) अपना मुँह पूर्व की ओर कर लिया या पश्चिम की ओर, (या इसी तरह की कोई दूसरी बात ज़ाहिरी रस्म व रिवाज़ की करली)। नेकी की राह तो उसकी राह है जो परमात्मा पर, आख़िरत (ईश्वर के सम्मुख उपस्थित होने) के दिन पर, फ़रिश्तों पर, समस्त ईश्वरीय-ग्रंथों और सब पैग़म्बरों पर ईमान (विश्वास) लाता है, अपना प्यारा धन सम्बन्धियों, अनाथों, दरिद्रों, यात्रियों और मांगनेवालों की राह में और गुलामों को आज़ाद कराने में ख़र्च करता है, नमाज़ पढ़ता है, ज़कात (अपनी कमाई में से धर्मार्थ) देता है, बात का पक्का है, भय और घबराहट तथा तंगी और मुसीबत के समय धीर और अविचलित रहता है। (स्मरण रखो) ऐसे ही लोग हैं जो (अपनी ईमानदारी में) सच्चे हैं। और ये ही हैं जो बुराइयों से बचनेवाले इन्सान हैं। (सू० २, आ० १७२)"

जिस ग्रन्थ में १३०० वर्ष से यह आयत मौजूद है, अगर संसार उसके उपदेश का वास्तविक लक्ष्य नहीं समझ सकता तो फिर कौन सी बात है जिसे संसार समझ सकता है?

(शेष आगे)

सजोद के हरिजनों पर रोष

भड़ोच ज़िले में सजोद नामका एक छोटा सा गाँव है। वहीं की यह बात है। हुआ क्या कि ग्राम-पाठशालाओं के अधिकारियोंने सजोद में जाकर अध्यापक को यह आदेश दिया, कि हरिजन लड़के अन्य लड़कों के साथ बिठाये जायँ, अलग नहीं। जब ऐसा किया गया, तो उच्चवर्ण के लोगोंने हरिजनों का सामाजिक बहिष्कार कर देने का निश्चय कर लिया। यह ख़बर पाते ही डा० चन्दूलाल देसाई, भूतपूर्व डिपटी कलेक्टर श्रीयुक्त दुर्लभ भाई तथा श्रीयुक्त परीक्षितलाल मजुमदार को लेकर, सजोद पहुँचे, और गाँव के प्रतिष्ठित आदमियों से इस विषय में बात की। आठ घण्टेतक बहस-मुबाहसा होने के बाद अन्त में कुछ गाँववाले इस बात पर राज़ी कर लिये गये, कि अन्य लड़कों के साथ हरिजन लड़के बैठ सकते हैं; जो सहमत न हों, वे अपने लड़कों को अलग बिठा दें और इस तरह स्वेच्छा से वे अपने आपको अस्पृश्य बनालें।

ज़ुल्म तो हरिजन बालकों पर अभी हो ही रहा है। पर आशा है, कि इस आपसी कटुता का अन्त शीघ्र हो जायगा।

परीक्षितलाल मजुमदार
मन्त्री—गुजरात ह० से० सं०

रायपुर-ज़िला-बोर्ड का

एक अनुकरणीय कार्य

हमें यह प्रकाशित करते हुए प्रसन्नता होती है, कि रायपुर (मध्यप्रांत) के ज़िला-बोर्डने अपनी पाठशालाओं के लिए एक वर्ष तक 'हरिजन-सेवक' की ३०४ प्रतियाँ लेने का निश्चय किया है, जिसके लिए उक्त बोर्ड धन्यवाद का पात्र है। हरिजन-प्रवृत्ति के अलावा अन्य सामाजिक सुधार, ग्राम-संगठन, खादी आदि लोकोपयोगी विषयों पर भी अब 'हरिजन-सेवक' में काफ़ी पाठ्यसामग्री रहती है। हिन्दीभाषा-भाषी प्रांतों के अन्य डिस्ट्रिक्टबोर्ड रायपुर-डिस्ट्रिक्टबोर्ड का अनुकरण करें, तो गांधीजी के धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक विचारों का गाँवों में अधिक-से-अधिक प्रचार हो सकता है।

संपादक
'हरिजन-सेवक'

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १२ अक्टूबर, १९३४

कुछ कूट प्रश्न

बिहार के एक सज्जन लिखते हैं:—

"मैं मिथिला प्रांत का मैथिल ब्राह्मण हूँ। हमारा कुल कट्टर सनातनी है, पर मुझ पर कट्टरता का कम ही असर पड़ा है। 'हरिजन' में प्रकाशित आपके विचारों को मैं दूसरों के आगे रखने का भी साहस करता रहता हूँ। इस प्रयत्न में मुझे थोड़ी-बहुत सफलता भी मिली है। मेरे गाँव में हम ब्राह्मणों के कुएँ में तीन-चार बरस पहले हरिजन ही क्या अन्य शूद्र जातियाँ भी पानी नहीं भर सकती थीं। पर आज वह बात नहीं रही। अब तो डोम और चमार इन दो जातियों को छोड़कर शेष सभी हिंदुओं को पानी भर लेने देते हैं। सिर्फ डोम और चमारों को ही पानी का कष्ट है। जन्मतः मानी जानेवाली घृणा-भावना तो उनके प्रति भी अब बहुत-कुछ कम हो गई है। जो थोड़ी-सी घिन उनके प्रति शेष रह गई है, वह उनकी गन्दी आदतों के ही कारण है। मुर्दार मांस का खाना, मरघट का वस्त्र पहनना, सबका जूठन खाना, सुअर का पालना आदि बातों को ये लोग छोड़दें, तो उनके प्रति फिर इतनी भी घृणा न रहे।

अब आप से मैं कुछ प्रश्न पूछने की ढिठाई करता हूँ। आशा है, मेरी शंकाओं का समाधान आप कृपाकर 'हरिजन' के द्वारा कर देंगे —

१—जिस तरह आप उच्चवर्ण के कहलानेवाले हिंदुओं पर हरिजनों को अपनालेने के लिए ज़ोर देते रहते हैं, उसी तरह आप हमारे हरिजन भाइयों से क्यों नहीं कहते, कि वे भी अपनी गन्दी आदतों को छोड़दें और स्वच्छतापूर्वक रहें?

२—'सनातन धर्म' का क्या तो रहस्य है, और क्या लक्षण? आप अपने को सनातनी हिंदू कहने का दावा करते हैं। क्या सनातनियों के लिए श्राद्ध, मूर्तिपूजा, अवतार इत्यादि का मानना ज़रूरी नहीं है?

३—आपने कहा है, कि मनुष्य जब अपने वर्ण का परम्परागत धन्धा छोड़ देता है, तब वर्ण का संकर हो जाता है। तब सनातनी 'वर्णसंकर' का जो अर्थ लगाते हैं, वह कहाँतक ठीक है? गीता के प्रथम अध्याय में आये हुए, "स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः" इस श्लोक की संगति आप अपने अर्थ के साथ कैसे बिठायेंगे?

४—प्रायः सभी स्मृतिकारों का कथन है कि ब्राह्मणी तथा शूद्र के संयोग से उत्पन्न सन्तान चांडाल होती है। ब्राह्मणी के साथ जो शूद्र विवाह करेगा, वह अवश्य ही दुष्ट स्वभाव का मनुष्य होगा, क्योंकि शूद्र के लिए तो ब्राह्मणी माता के तुल्य है। इस पर आपकी क्या राय है? यह आपके वर्णधर्म के प्रतिकूल है या अनुकूल?

५—आपके विचार से न कोई वर्ण किसी से उच्च है, न कोई किसी से नीच, सभी सर्वथा समान हैं। यद्यपि सिद्धांत रूप से यह ठीक मालूम पड़ता है, पर व्यावहारिक दृष्टि से तो यह असंगत-सा ही जान पड़ता है। संसार में बुद्धिद्वारा किये गये कामों के लिए शरीर-द्वारा किये गये कामों से अधिक मूल्य दिया जाता है। फिर ब्राह्मण को सतोगुणप्रधान, क्षत्रिय को सतो एवं रजोगुणप्रधान वैश्य को रजोगुणप्रधान, और शूद्र को तमोगुणप्रधान शास्त्रों में माना है। भागवत में लिखा है, कि जिस मनुष्य का वर्ण न मालूम हो, उसका वर्ण-निर्णय उसके गुणकर्मादि को देखकर कर लेना चाहिए। शूद्रों के विषय में स्मृतियों का क्या मत है यह भी तो देखिए। स्मृतियों के साथ आपके तात्पर्य की कहाँतक संगति बैठती है?

६—आप भी वर्ण को प्रायः जन्मना ही मानते हैं। पर कितने ही मनुष्यों में, ब्राह्मण-कुल में जन्म लेने पर भी, ब्राह्मण-स्वभाव या कर्म की ओर प्रवृत्ति नहीं पाई जाती। उन्हें आप अपनी वर्ण-व्यवस्था में कहाँ स्थान देंगे? शास्त्र में कहा है—

> ब्राह्मणस्य शरीरं हि क्षुद्रकामाय नेष्यते।
> कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानंतसुखाय च ।।
> उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती।
> सहि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।

इस प्रकार की तपस्या और धर्म की ओर प्रवृत्ति यदि किसी शूद्रकुलोत्पन्न मनुष्य की हो, तो उसे हम ब्राह्मण क्यों न कहें?

७—मनुष्य जैसा अन्न खाता है, वैसी ही बुद्धि उसकी होती है। इसलिए शास्त्रोंने चोर, डाकू, कृपण, वेश्या, कसाई आदि मनुष्यों का अन्न खाने से हमें रोका है। सनातनी पंडित कहते हैं, कि दुष्टस्वभाव के मनुष्यों का स्पर्श किया हुआ अन्न जल ग्रहण करने से हम में भी उनके संसर्गजन्य दुष्टस्वभाव के आ जाने का भय रहता है। और आप कहते हैं, कि खान-पान का प्रतिबंध वर्णधर्म का कोई आवश्यक अंग नहीं। यह बात कहाँतक ठीक है?

८—जब हम लोग जनता के बीच अस्पृश्यता-निवारण का कुछ काम करने लगते हैं, तो सनातनी पंडित आपके विरुद्ध न जाने कैसी-कैसी बातें बकते हैं। और बातें तो हम उनकी काट देते हैं, पर जब वे आश्रम के उस म्रियमाण बछड़े के बारे में दलील देते हैं, तब हम उन्हें कोई सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दे सकते। इस प्रश्न पर क्या आप कुछ प्रकाश डालेंगे?"

यह पत्र मेरे पास जून मास से पड़ा हुआ है। हरिजन-यात्रा में तो कुछ लिखना-लिखाना असंभव नहीं तो मुश्किल तो था ही। यद्यपि पत्र को आये काफी समय होगया है, तो भी पत्र में आये हुए प्रश्न उत्तर देनेलायक हैं।

१—हरिजनों को शौचादि के नियम पालने की शिक्षा तो अवश्य दी जाती है, किंतु उन्हें ऐसी शिक्षा देना एक बात है और नियमपालन को अस्पृश्यता-निवारण का एक शर्त बनादेना दूसरा बात है। ऐसी शर्त शिक्षा-प्रचार में घातक बन सकती है। उनके दोषों के जिम्मेदार वे नहीं, हम हैं। जब हम उन्हें प्रेम से अपना लेंगे, तब वे अपनी दूषित आदतों को तो अपने आप ही छोड़ देंगे। आज तो उनके ऊपर शिक्षा का असर कम ही पड़ता है। जब अस्पृश्यता हट जायगी, तब वे अपना सुधार

शोध कर लेंगे। इसका यह मतलब नहीं है, कि हम मैले-कुचैले गंदे लोगों को देव-दर्शन करने दें अथवा उनका स्पर्श करें। हमें तो जो कहना और करना है, वह तो इतना ही है, कि कोई जन्म से अस्पृश्य नहीं है। कर्म से तो हम सभी अस्पृश्य बन जाते हैं। हरिजनों के तो हम देनदार हैं, लेनदार नहीं। वे जैसे हैं उसी हालत में हमें उन्हें अपनाना है। हम उन्हें अपनाते हैं, तो हममें उनके प्रति कोई कृपा की बात नहीं है। हम अपना प्रायश्चित्त करके ही उनकी गंदी आदतों को दूर करा सकते हैं।

२—सनातनधर्म का विशेष लक्षण वर्णाश्रम है। यों तो मैंने बहुत-सी व्याख्याएँ दी हैं, किंतु वर्णाश्रम को ही सनातन धर्म का विशेष लक्षण माना जाय। श्राद्धादि न करने से कोई सनातनी मिट नहीं जाता। लाखों देहाती भाई श्राद्ध नहीं करते, तो भी सनातनधर्मी तो वे हैं ही। यही बात मूर्तिपूजा, अवतारादि के विषय में भी है। मूर्तिपूजा करोगे, अवतार मानोगे, तभी सनातनी हिंदू कहे जाओगे, अन्यथा नहीं, ऐसा कोई नियम मेरे देखने में नहीं आया है। मैं तो अवतारवाद को अच्छी तरह मानता हूँ। मूर्तिपूजा को भी मानता हूँ और करता भी हूँ। लेकिन मैं अपने को जो सनातनी मानता हूँ, उसका कारण तो मेरा वर्णाश्रम को मानना और धर्मशास्त्रों को जैसा मैं जानता हूँ उसके अनुसार आचरण करने का सतत प्रयत्न करना है।

३—जब मनुष्य अपने वर्ण के प्रतिकूल धंधे को अपनी आजीविका के लिए करने लग जाता है, तब वह वर्ण का सांकर्य करता है। ब्राह्मणने आजीविका के लिए वकालत की अथवा झाड़ू लगाई, तो उसने वर्ण का सांकर्य किया। इसी तरह धोबी जब अपनी आजीविका के लिए वकालत करता है या झाड़ू लगाता है, तब वह वर्ण-संकरता का भागी होता है। इस अर्थ में आजकल वर्ण का लोप हुआ ही मैं मानता हूँ। गीता में 'वर्णसंकर' का सम्बन्ध विवाह के साथ बताया है, पर यह याद रहे, कि दुष्टा स्त्रियों के आचरण के साथ ऐसा कहा गया है। इसका अर्थ तो मैं यह निकालता हूँ, कि जब स्त्री व्यभिचार से सन्तानोत्पत्ति करती है, तब वर्णसंकर पैदा होते हैं। भले ही वर्णसंकर का यह एक कारण हो, पर यही एक कारण नहीं है, ऐसा मेरा अभिप्राय है। वर्ण के नियत कर्मों का त्याग स्वयं-सिद्ध वर्ण-संकरता है।

४—स्मृतियों के नाम से जो ग्रन्थ आज हम देखते हैं वे सब-के-सब यथार्थ हैं ऐसा मेरा विश्वास नहीं है। स्मृतियों में बहुत-से श्लोक प्रक्षिप्त हैं। जो वचन सार्वभौम नैतिकता के विरुद्ध है, उसे धर्म मानना उचित नहीं। महाभारतादि में हम देखते हैं, कि वर्णान्तर विवाह खासी अच्छी संख्या में होते थे। और आज तो वर्णधर्म का लोप ही हुआ मैं मानता हूँ।

५—ऊपर के कारणों से मैं यह मानता हूँ, कि उच्च-नीच भावों के समर्थन में जो स्मृति-वचन आज दिखाई देते हैं, वे सब-के-सब प्रक्षिप्त हैं। वर्ण की मान्यता का आधार एक वैदिक ऋचा है। उसमें चार वर्णों की शरीर के चार मुख्य अंगों से उपमा दी गई है। यह कोई नहीं कहेगा, कि शरीर का एक अंग दूसरे अंग से ऊँचा है अथवा नीचा। सब अंग एक-सरीखे ही हैं। वर्ण में समानता का मानना ही धर्म हो सकता है। उच्च-नीच का भेद-भाव निश्चय ही अभिमानमूलक है, इसलिए अधर्म है।

६—ब्राह्मण हो या शूद्र, जिसने स्वधर्म तज दिया है, वह पतित हो गया। पतित दशा में वह किसी भी वर्ण का नहीं है। वह पुनः स्वधर्म का पालन—अपने धंधे का पालन—करके अपनी भूल सुधार सकता है।

७—सच बात यह है, कि मनुष्य जैसा खाता है, वैसा उसका स्वभाव हो जाता है, पर किसी के हाथ के छुए हुए खाने का असर उस पर नहीं पड़ता। किसी को अपने से अधम अथवा अधिक पापी मानना और ऐसा कहकर उसके हाथ का छुआ हुआ अन्न जल ग्रहण न करना साफ़ ही ईश्वर का अनादर है। खाद्याखाद्य के नियम अवश्य हैं। जो बाह्य शौचादि के नियमों का पालन नहीं करते उनके हाथ का स्पर्श किया हुआ अन्न या पानी ग्रहण न करें; किन्तु अमुक मनुष्य अमुक जाति का है इसलिए उसके हाथ का न खाना मेरी दृष्टि में पाप है। रोटी-बेटी व्यवहार का वर्णधर्म से कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है।

८—मेरे सम्बन्ध में अनेक दोषारोपण किये जाते हैं। हरिजन-सेवक उनके उत्तर देने का प्रयत्न न करें। मैं कैसा क्या हूँ, इसके साथ अस्पृश्यता-निवारण का कुछ भी सम्बन्ध नहीं हो सकता। किसी महान् वस्तु का निरीक्षण उसके गुण-दोष से ही करना चाहिए। यह सच है, कि महाव्यथा में तड़पते हुए बछड़े को मैंने धर्म समझकर ही ज़हर की पिचकारी दिलवाई थी। मैं और किसी तरह उसकी सेवा नहीं कर सकता था, न उसके दुःख का निवारण ही कर सकता था। मुझे आज भी, विचार करने के बाद भी, उस कार्य के लिए पश्चात्ताप नहीं है। यदि मैंने अज्ञान के वश होकर पाप-कर्म किया होगा, तो परमात्मा मुझे क्षमा करेगा।

मो० क० गांधी

विजय किसकी ?

हरिजन-सेवकों को अपनी इस कठिन परीक्षा के समय अधिक-से-अधिक सहनशीलता और धीरज दिखाने की ज़रूरत है। मन्दिर-प्रवेश बिल वापस ले लिया गया है, इससे सनातनी आज फूले नहीं समाते। पर हमें उनकी हालफुल पर ध्यान नहीं देना चाहिए। आज उनकी वही स्थिति है, जो कि कलतक हमारी थी। हमें उनसे द्वेष नहीं करना चाहिए। उनके प्रति तो हमें प्रेम ही व्यक्त करना चाहिए। एक श्रद्धालु बहिनने मेरे पास आयरिश कवि ए० ई० के 'इण्टरप्रेटर' की कुछ सुन्दर पंक्तियाँ भेजी हैं, जिन्हें मैं नीचे देता हूँ। हरिजन सेवक इन पंक्तियों को ध्यान से पढ़ें:—

"प्रेम और द्वेष में कया-पलट कर देने की जादू-जैसी शक्ति है। हृदय को पलट देनेवाली ये कितनी बड़ी शक्तियाँ हैं। जो हम ध्यान करते हैं, ठीक वैसा ही हमें वे बना देती हैं। व्यक्तियों में ही नहीं, राष्ट्रोंतक में यह बात देखी गई है। अपने प्रतिपक्षियों के स्वभाव की स्पष्ट जैसी कल्पना करते हैं, द्वेष की पराकाष्ठा से वे खुद वैसे ही बन जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ, कि तमाम आवेश-जनित संघर्ष हमारे स्वभाव या चरित्र का रूपान्तर कर सकते हैं। इसमें संदेह ही क्या कि जो व्यक्त द्वेष करते हैं, वे अपने हृदय-भवन का द्वार खोल देते हैं और वहाँ उनके शत्रु चुपके से आकर अपना डेरा जमा लेते हैं।"

प्रेम ही एक ऐसी ताक़त है, जो सनातनियों के हृदय को पकड़ सकती है। वे कैसे हैं, क्या हैं इसमें पड़ने का हमें कोई अधिकार नहीं। हम उनके संरक्षक तो हैं नहीं। उनका हृदय-परिवर्तन अबतक क्यों नहीं हुआ, इस तरह उनके प्रति अधीर होने का भी हमें कोई अधिकार नहीं। अगर हम खुद सच्चे हैं, निष्कपट सेवक हैं, अर्थात् अपने विश्वास के अनुसार हरिजनों की सोलह आने सेवा कर रहे हैं, तो हमारे लिए इतना काफ़ी है।

फिर हमें यह भी देखना चाहिए, कि उनकी इस जीत में ही उनकी हार है, और हमारी इस हार में हमारी जीत। हम अपने मन्दिरों में अपनी सामान्य सम्मति से यदि हरिजनों को देव-दर्शनार्थ ले जाना चाहते हैं, तो हमारे सनातनी भाई मंदिर-प्रवेश बिल की ओट में अपनी मुख़ालिफ़त का कबतक बचाव करते रहेंगे? सुधारक तो अब मन्दिर-प्रवेश के सवाल को और भी दूने जोश के साथ हाथ में ले सकते हैं।

हम सुधारक निश्चय ही पाप के भागी होंगे, अगर हमने यह समझ लिया, कि बिल के स्थगित हो जाने का अर्थ मंदिर-प्रवेश-आन्दोलन का अन्त हो जाना है। यह बात नहीं है। सनातनियों की राज़ी से जहाँ हम, बिना किसी प्रकार की कटुता पैदा किये, मन्दिर खोल सकते हों, वहाँ हमें ज़रूर खोल देना चाहिए। और अब तो यह भी संभव है, कि बिल को आपत्ति जनक समझकर जिन लोगोंने मन्दिर-प्रवेश आन्दोलन से अपने को अलग कर रखा था, वे भी अब, बिना क़ानूनी मदद के, हरिजनोंके लिए मन्दिर खुलवा देनेके इस आन्दोलनमें शरीक हो जायँ। यह याद रहे, कि बिल का कुछ हमेशा के लिए खात्मा नहीं हो गया है, वह सिर्फ़ टल गया है। मन्दिरों में जाने की ठीक उन्हीं शर्तों पर जो शर्तें कि सवर्ण हिन्दुओं के लिए लागू है, हरिजनों के लिए मन्दिर खुलवा देने में अगर सनातनियोंने सुधारकों का दिल से साथ न दिया, तो क़ानून तो बनेगा ही।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

वर्णाश्रमधर्म

[७]

वर्णधर्म और रोटी-बेटी-व्यवहार

आज रोटी-बेटी-व्यवहार की मर्यादा में वर्णधर्म का पालन समाया हुआ है। ब्राह्मण ब्राह्मण के साथ—और बल्कि अपनी उपजाति के ही साथ, रोटी बेटी-व्यवहार रखेगा और इसीमें वह अपने धर्म की पराकाष्ठा समझेगा! उत्तर भारत में ये दो कहावतें प्रचलित हैं, कि 'आठ कनौजिया, नौ चूल्हे' और 'बारह भाई, तेरह चौके!' यह है आज का धर्मपालन!! सबको सबकी छूत लगती है। इसी प्रकार खाद्याखाद्य को एक शास्त्र बनाकर अमुक वस्तु के खाने न खाने में ही ब्राह्मणत्व की इति मानी जाती है। संसार तो ऐसे धर्म का मज़ाक उड़ा ही रहा है; अनेक विचारशील हिंदू भी यदि इस अव्यवस्था का नाश कर देना चाहते हैं, तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है?

यहाँ मेरे यह कहने का निश्चय ही यह अर्थ नहीं, कि रोटी-बेटी-व्यवहार में मर्यादा या प्रतिबंध के लिए स्थान ही नहीं है अथवा खाद्याखाद्य-जैसी कोई वस्तु ही नहीं। मैं खुद चाहे जिसके साथ चाहे जो खाने को न धर्म मानता हूँ, न उसका पालन करता हूँ। चाहे जिसके साथ बेटा बेटी के लेन-देन को मैं स्वेच्छाचार ही मानता हूँ। व्यवहार-मात्र में कहीं मर्यादा या संयम का होना आवश्यक है। मैं यह मानता हूँ, कि खाद्याखाद्य का शास्त्र है। मनुष्य कोई सर्वभक्षी प्राणी तो है नहीं। खाद्य पदार्थों में उसके लिए मर्यादा है। किन्तु रोटी-बेटी-व्यवहार और खाद्याखाद्य-न्याय पर ही हमारा वर्ण-धर्म निर्भर नहीं करता। वर्णधर्म तो एक निराला ही शास्त्र है। निर्दोष वर्णान्तर-विवाह की मैं कल्पना कर सकता हूँ। मैं यह मानता हूँ, कि स्वच्छता आदि नियमों का पालन और खाद्याखाद्य का विचार करते हुए सब वर्णों के एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने में कुछ भी दोष नहीं है। प्राचीन काल में रोटी-बेटी-व्यवहार इसी प्रकार चलता था, इस बात को सिद्ध करने-वाले काफ़ी प्रमाण मिलते हैं। रोटी-बेटी-व्यवहार को वर्णधर्म के साथ जोड़ देने से हिंदू धर्म की भारी क्षति हुई है।

विश्व का महान् शोध

यह सत्य है, कि वर्णधर्म का शोध हिंदूधर्म में हुआ है, पर इससे किसी को यह न मान लेना चाहिए, कि वर्ण-व्यवस्था केवल हिंदुओं के ही लिए लागू होती है। प्रत्येक धर्म में कुछ-न-कुछ विशेषता अवश्य होती है। पर वह विशेषता यदि सिद्धांत रूप में हो, तो उसे सर्वव्यापक होना चाहिए। संसार भले ही उसे आज स्वीकार न करे। वर्णधर्म के विषय में मेरी ऐसी ही मान्यता है। इसे मैं संसार का एक महान् शोध मानता हूँ। आज नहीं तो कल दुनिया को यह वर्णधर्म स्वीकार करना ही होगा।

इस सिद्धांत को थोड़े में मैं इस तरह रखूँगा। जो मनुष्य जिस कुटुम्ब में जन्म ले, उसका धन्धा, यदि नीतिविरुद्ध न हो तो, वह धर्मभावना से करे; और इस तरह उससे जो अर्थलाभ हो उसमें से सामान्य आजीविका-निर्वाह के लिए लेकर शेष द्रव्य का वह लोकहितकारी कार्यों में ही उपयोग करे। मैं जो अर्थ लगाता हूँ उसके लिए मेरी दृष्टि से शास्त्र में अवश्य ही आधार है। यह अर्थ मैं शास्त्र से पाता हूँ, बस इतना कह देना पर्याप्त है।

समता का साम्राज्य

चार वर्ण के साथ शरीर के चार मुख्य अंगों की उपमा वेद की एक ऋचा में दी गई है। अंगों में जैसे एक उच्च और दूसरा नीच ऐसा कोई भेद नहीं होता, और यदि शरीररूपी राष्ट्र अपने अंगों में उच्च-नीच का भेद रखे तो वह छिन्नभिन्न हो जाय—वैसे ही, यह विश्व का महान् राष्ट्र भी अपने वर्णरूपी चार अंगों के बीच यदि उच्च-नीच का भेदभाव रखेगा तो वह छिन्न-भिन्न हो जायगा। आज दुनियाँ में ऊँच-नीच का भेद मौजूद है और संसार-व्यापी कलह का मुख्य कारण यह भेदभाव ही है। इस कलह का निवारण वर्णधर्म के पालन से हो सकता है, इसे समझने में तो साधारण बुद्धि के मनुष्य को भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए। वर्णधर्म में प्रत्येक वर्ण अपने-अपने कर्म का पालन धर्म समझकर करेगा। उदरपोषण तो उसका यत्किंचित् फल है। यह फल मिले अथवा न मिले, तो भी चारों वर्ण अपने-अपने धर्म में रत रहेंगे। इस प्रकार वर्णधर्म का यदि पालन किया जाय, तो आज संसार में जो विषमता दिखाई दे रही है, उसके स्थान पर समता का साम्राज्य हो जाय। सब धन्धे प्रतिष्ठा और मूल्य में एक सरीखे माने जायँ। मन्त्री'

वकील, डाक्टर, व्यापारी, चमार, भंगी और ब्राह्मण सब एक समान कमावें। जहाँ वर्णधर्म का पालन होता हो, वहाँ इस प्रकार की दयनीय स्थिति तो हो ही नहीं सकती, न होनी चाहिए, कि क्षत्रिय महल बनाकर बैठा-बैठा राजसी करे और ब्राह्मण भिखारी की भाँति झोपड़ी में गुज़र करे, वैश्य बड़ी-बड़ी लाखपतियाँ लेकर कोठियाँ चलावे और शूद्र बेचारा बिना घरबार का गुलाम होकर दर-दर ठोकरें खाता फिरे।

वर्णधर्म समस्त विश्व के लिए है

मेरे कहने का यह आशय नहीं कि जब वर्णाश्रमधर्म का शोध हुआ था, तब हिंदू-समाज इस आदर्श तक पहुँच गया था। इस बात का मुझे ज्ञान नहीं, कि किस युग में इस प्रकार का वर्णधर्म पराकाष्ठा को पहुँचा था। मैं इस शोध-प्रपंच में पड़ूँगा भी नहीं। भविष्य में वर्णधर्म इस आदर्श तक पहुँच सकता है या नहीं इस निरर्थक वाद-विवाद में भी मैं नहीं पड़ना चाहता। पर वर्णधर्म का आदर्श तो यह है ही। जो इसका मर्म समझ लेगा, उसके लिए यह धर्म-पालन कठिन नहीं। और यह वर्ण-धर्म केवल हिंदुओं के ही लिए नहीं, प्रत्युत समस्त संसार के मर्मज्ञ मनुष्यों के लिए है।

स्वामी नहीं, किन्तु संरक्षक

इस व्यवस्था के अनुसार जिसके पास जो मिलकियत होगी उसका वह सारी जनता के हितार्थ संरक्षक होगा। अपने को उसका वह कभी मालिक नहीं मानेगा। राजा अपनी प्रजा से जो कर वसूल करता है उसका वह मालिक नहीं, किंतु रखवाला है। अपना पेट भरनेलायक लेकर बाकी द्रव्य का उपयोग वह प्रजा के हितार्थ करने को बाध्य है। इसलिए प्रजा से वह जितना कर लेगा, उसे वह अपनी कार्यदक्षता से बढ़ाकर अपनी प्रजा को पुनः लौटा देगा।

आदर्श शूद्र वंदनीय है

यही बात वैश्य के विषय में है। शूद्र का तो कहना ही क्या? यदि किसी भी तरह वह तुलना में आ सकता हो, तो जो शूद्र केवल धर्म समझकर ही परिचर्या करता है, जिसके पास किसी मिलकियत का नाम भी नहीं, और मालिक बनने का जिसे लेशमात्र भी लोभ नहीं, वह सहस्रवार वन्दनीय है और सर्वोपरि है। ऐसा धर्मनिष्ठ शूद्र स्वयं किसी प्रकार का मान-सम्मान नहीं चाहेगा, पर देवता तो उस पर पुष्पों की वर्षा करेंगे ही। यह वाक्य आजकल के परिचारक के लिए शोभा नहीं देता। वह तो एक अंगुल भी ज़मीन का मालिक नहीं, पर मालिकपने की हवस रखता है, अर्थात् अपने शूद्रत्व को सुख-मय धर्मरूप में न देखता हुआ उसे दुःख-मय भोगरूप में देखता है। इसलिए मैंने तो आदर्श शूद्र को नमन किया है, और उसकी वन्दना करने के लिए जगत् को भी आमन्त्रण देता हूँ।

पर यह शूद्रों का धर्म उनके ऊपर ज़बर्दस्ती लादा नहीं जा सकता। शूद्रधर्म की बात करने का उसी वर्णत्रय को अधिकार है, जो अपने को जनता का सेवक मानता हो, और जो अपनी संपत्ति को सार्वजनिक उपयोग के लिए सिद्ध कर सकता हो। शूद्रधर्म की स्तुति भी उसी त्रिवर्ण के मुख से शोभा देती है। आज तो जहाँ तीन वर्ण नाम के ही रह गये हैं। किसी को अपने धर्म का पालन नहीं सूझ रहा है और जहाँ अपने को उच्चवर्ण का मानकर शूद्र को नीच वर्ण का मानते हैं, वहाँ यदि शूद्र उनके प्रति ईर्ष्या करते हों, और उनके स्वामित्व पर अधिकार करके बैठ गये हों, तो इसमें कोई आश्चर्य या दुःख की बात नहीं है। वर्ण को धर्म के रूप में देखनेवाले शोधकोंने बतलाया है, कि वर्णधर्म के पालन में बलात्कार का तो लेश भी नहीं है। धर्म-अधर्म के शोधकोंने यह भी कहा है, कि वर्ण-धर्म का परिपालन करने से ही संसार का निभाव हो सकता है। इस धर्म का पालन किये बिना जगत् का निस्तार नहीं। अपने-अपने वर्ण का सब आजीवन पालन करें, तभी इस धर्म का पालन होगा; दूसरों से बलात्कारपूर्वक पालन कराने से नहीं।

यही सच्चा साम्यवाद है

जिस युग में प्रतिस्पर्धा को लोग सर्वश्रेष्ठ साधन तथा अर्थ-प्राप्ति को परमपुरुषार्थ मानते हैं, जो धन्धा जिसे अच्छा लगता है उसे करने में सब अपने को स्वतंत्र समझते हैं, उस युग में यह हास्यास्पद ही माना जायगा, कि वर्णधर्म जगत् की एक व्यवस्था है, और उसके पुनरुद्धार की बात तो शायद उससे भी अधिक उपहासमनोरम समझी जायगी। तो भी मेरा यह दृढ़ विश्वास है, कि वर्तमान युग की भाषा में कहूँ तो यही सच्चा साम्यवाद है। गीता की भाषा में यह समता का 'धर्म' है, न कि 'वाद'। इस धर्म का स्वल्प पालन भी कलह, अशांति आदि से रक्षा करनेवाला और संसार को सुखशांति देनेवाला है।

यहाँ यह कह देना ज़रूरी है, कि वर्ण चार ही होने चाहिए, यह वर्ण-धर्म का कोई अनिवार्य अंग नहीं है। इतना ही कहना काफी है, कि सब अपने-अपने वर्णधर्म के पालन में ही अपनी आजीविका खोजलें। वर्णधर्म के पुनरुद्धार के सम्बन्ध में विचार करते हुए कदाचित् यह मालूम पड़े कि वर्ण चार नहीं, किन्तु अधिक होने चाहिए, तो इसमें मुझे कोई आश्चर्य न होगा।

मो० क० गांधी

अपनी इच्छा से शूद्र

एक सज्जनने वर्णधर्म के विषय में मुझसे कई प्रश्न पूछे हैं। आज तो मैं उनके एक ही प्रश्न को लेना चाहता हूं, और वह प्रश्न मेरी भाषा में यह है :—

> "आजकल चूँकि आप वर्णधर्म की उधेड़बुन में बहुत पड़े हुए हैं, इसलिए मेरी कुछ गुत्थियों को आप सुलझा सकें तो सुलझादें। खेती, गोरक्षा और व्यापार, वैश्य के ये तीन 'स्वभावज' कर्म गीता में गिनाये गये हैं। व्यापार अर्थात् एक का तैयार किया हुआ माल दूसरा लेकर तीसरे को बेच दे, अथवा खुद ही तैयार करके खुद बेचे। खेती और गोरक्षा करनेवालों की संख्या तो करोड़ों की है। फिर भी गड़ेरिया, मोची, चमार, किसान आज तो शूद्र ही माने जाते हैं, जब कि ऊपर की व्याख्या के अनुसार इन सब की वैश्यों में गिनती होनी चाहिए। मेरी और आपकी दृष्टि से तो चारों वर्ण एकसरीखे हैं। नम्रतापूर्वक एक वर्ण दूसरे के साथ रहे, यह नहीं कि एक दूसरे के सिरपर चढ़कर उसे पैरों से कुचला करे। पर समाज की दृष्टि तो जुदी ही है। ऐसी दशा में गड़ेरिया, चमार किसान इत्यादि, जो मजूरी करके गुज़र करनेवाले नहीं हैं बल्कि अपने स्वतंत्र धन्धे से आजीविका पैदा करनेवाले हैं, वे वैश्य क्यों न माने जायँ? लेकिन तो

खेती करता है, गड़ेरिया और चमार गोरक्षा करते हैं, ये किसी की नौकरी-चाकरी तो करते नहीं। अगर इन्हें हम गोरक्षक न मानें तब ये व्यापारी हैं; क्योंकि ये लोग जो पैदा करते हैं उसे खुद ही बेचते हैं। शूद्र की परिभाषा में तो ये लोग किसी भी तरह नहीं आते। इसके विपरीत, जो नौकरी करता है वह शूद्र क्यों न माना जाय—फिर भले वह मुन्सिफ़ हो या कलक्टर, सिपाही हो या भंगी ?"

ये गुत्थियाँ हैं तो सच्ची। इन उलझनों के पड़ने का कारण यह है, कि आज वर्णव्यवस्था का अंगभंग हो गया है। पर इन गुत्थियों को हम इस तरह नहीं उकेल सकते, कि गड़ेरिया, चमार आदि को वैश्य मानने लग जायँ। जो आज शूद्र माना जाता है उसे अभिमानी वैश्य अपने कथित वर्ण में थोड़े ही दाखिल कर लेंगे ? ऊपर की दलील प्रामाणिक तो है ही, पर अकेली प्रामाणिक दलील से ही न्याय नहीं मिल जाता। न्याय के लिए तो मूल का शोध करना पड़ता है, और वह अनुभव में ही प्राप्त होता है। अनुभव यह कहता है, कि वर्णधर्म का लोप हो गया है। इसलिए वर्णव्यवस्था का पुनरुद्धार करने के लिए हम सब को स्वेच्छा से शूद्र बन जाना चाहिए। लाचारी से तो हम शूद्र हैं ही। मगर लाचारी से किया हुआ अच्छा काम भी पुण्य में नहीं गिना जाता। लाचारी से मैं किसी को दो पैसे दे दूँ, तो इसमें पुण्य नहीं है। पर जो कुछ आजतक मैंने लाचारी से दिया है उसे अपनी इच्छा से देता तो वह पुण्य-खाते में आजाता। यही बात शूद्र वर्ण के लिए लागू है। जिसे वह उच्च वर्ण समझता है उस वर्ण का अपने को कहते हुए भी यदि वह अपने को शूद्र मानने लगे तो यह कहना चाहिए कि उसने वर्णव्यवस्था के पुनरुद्धार का श्रीगणेश कर दिया।

इस अर्थ पर ज़रा विचार करना चाहिए। यह स्वेच्छा से बना हुआ शूद्र परिचर्या का काम धर्म समझकर करेगा। आजीविका उसे मिले या न मिले, पर सेवा शुद्ध भाव से, तन मन से करेगा। रोटी-बेटी का व्यवहार ये कथित शूद्र उन्हीं के साथ इच्छापूर्वक रक्खेंगे जो शौचादि के नियमों का पालन करते होंगे। खुद शूद्र माने जानेवाले वर्ण में वे ओत-प्रोत हो जायँगे। उनकी ग़रीबी का अनुकरण यथाशक्ति करेंगे। उनके कष्टों को दूर करने का प्रयत्न करेंगे। ऐसे शूद्र ब्राह्मण का ब्रह्मज्ञान, क्षत्रिय का अपलायन और वैश्य की व्यापार-शक्ति साखते सिखाते हुए भी अपनी आजीविका केवल परिचर्या से ही प्राप्त करेंगे। वर्णधर्म में प्रत्येक वर्ण चारों वर्णों के गुणों का अनुकरण कर सकते हैं और उन्हें करना चाहिए। स्मृति में कहा है :—

"अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥१॥
अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥२॥

अर्थात्, हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, पवित्रता का पालन करना, इन्द्रियों को अपने वश में रखना—चार वर्णों का यह धर्म मनुने संक्षेप में कहा है।१।

हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, काम, क्रोध, लोभ से दूर रहना और प्राणीमात्र का प्रिय तथा हित-कार्य करना, यह तो सभी वर्णों का धर्म है।२।

इसलिए प्रत्येक वर्ण के विषय में भेद यह है कि उसके विशेष लक्षण उस-उस वर्ण में विशेषता से विकसित हुए हों और उनके द्वारा ही प्रत्येक वर्ण अपनी आजीविका प्राप्त करे।

'हरिजन-बन्धु' से] मो० क० गांधी

सूत का उपयोग

साबरमती-सत्याग्रह-आश्रम में एक ख़ास नियम यह था, कि समस्त आश्रम-वासियों को नित्य ग़रीबों के लिए १६० तार अर्थात् लगभग २०० गज़ सूत कातकर राष्ट्रीय यज्ञ करना ही चाहिए। इस राष्ट्रीय यज्ञ का न करना (१६० तार सूत न कातना) आश्रम के नियमानुसार अपराध समझा जाता था। इसी प्रकार साल में ३ सप्ताहतक गांधी-जयन्ती मनायी जाती है, जिसके उपलक्ष में खादी का प्रचार भी अच्छी तरह किया जाता है; यहांतक कि उसे गांधी, जयन्ती-सप्ताह न कहकर 'खादी-सप्ताह' कहा जाता है। गांधीजी के अनेक अनुयायी चातुर्मास व्रत का पालन करने के लिए सूत कातकर इसी समय उन्हें अर्पण करते हैं। कई संस्थाओं में अंतिम सप्ताह भर अखण्ड चर्खा चलाने का प्रबन्ध किया जाता है और उसमें शामिल होने के लिए बाहर के लोग भी निमन्त्रित किये जाते हैं।

बंबई में एक नवजीवन-संघ है, जिसके संचालक हैं स्वामी आनन्द। इस संघ के उद्देश्यों में खादी प्रचार को प्रधान स्थान दिया गया है। इस संघ में भी गांधी-जयन्ती के उपलक्ष में एक सप्ताहतक अखण्ड चर्खा चलाने का प्रबन्ध किया जाता है। जयन्ती मनानेवाले लोग उसी बातपर अधिक ध्यान देते हैं, जिससे उस महापुरुष को, जिसकी जयन्ती मनायी जाती है, संतोष हो। किसी को भी प्रसन्नता उसी काम से होती है, जो उसे प्रिय होता है। महात्माजी को दो चीज़ें प्रिय हैं, एक ग़रीब (हरिजन) और दूसरा खद्दर। गांधी-जयन्ती के समय हज़ारों आदमी लाखों गज़ सूत कातकर महात्माजी को तथा कई अन्य खादी-संस्थाओं को देते हैं। इसी प्रकार चर्खा-संघ के "ए" और "बी" श्रेणियों के सदस्य भी क्रमशः २००० और १००० गज़ सूत मासिक के हिसाब से देते हैं। इसके भी हज़ारों सदस्य हैं और साल में लाखों गज़ सूत देते हैं। चर्खा-संघ को १००० गज़ सूत मासिक के हिसाब से दो सालतक मैंने भी दिया है। मेरा विचार है कि चर्खा-संघ के सदस्यों का सालभर का जो सूत आता है और गांधी-जयंती के उपलक्ष में अन्य खादी-संस्थाओं को जो सूत मिलता है, उससे कपड़ा बुनवाकर ग़रीब हरिजनों को उतने ही मूल्य पर दिया जाय जितना कि बुनाई आदि में ख़र्च लगता है, क्योंकि यह सूत मुफ्त में मिलता है। और जो भाई इस प्रकार का सूत चर्खा-संघ अथवा अन्य खादी-संस्थाओं को देते हैं, उनसे भी मैं निवेदन करता हूँ कि वह भी ऐसा ही विचार प्रगट करें कि इस सूत का कपड़ा, कताई छोड़कर केवल लागत भावपर ग़रीब हरिजनों को दिया जाय।

किशोर

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, १९ अक्तूबर, १९३४. [संख्या ३५

विषय-सूची

राजपूताने के कुछ हरिजन-केन्द्र

शेखावाटी में

हाल में हरिजन-सेवा-कार्य के कुछ केन्द्रों का निरीक्षण करने मैं शेखावाटी की ओर गया था। जयपुर राज्य का यह उत्तरी भाग है। लक्ष्मी की इधर अच्छी कृपा है। रेल की तो नहीं, पर मोटर की यहाँ पहुँच है। मगर सब से सुलभ सवारी तो प्रायः सारे राजपूताने में ऊँट ही की है। ऊँट का महत्त्व तो यहाँ कभी कम होने का नहीं, क्योंकि यहाँ रेत ही-रेत है और सड़कों का तो कहीं नाम निशान भी नहीं। बैलगाड़ी तक की लीक शायद ही कहीं देखने में आती है। दिन हो चाहे रात, मोटरकार को भी राजस्थानी रथ उष्ट्रराज के चरण-चिह्नों का ही श्रद्धापूर्वक अनुसरण करना पड़ता है।

पिलाणी

इस पिछड़े हुए प्रांत में पिलाणी एक सबसे बड़ा शिक्षा-केन्द्र है। बिड़ला-एज्यूकेशनल ट्रस्ट यहाँ बहुत अच्छा काम कर रहा है। ट्रस्ट की ओर से यहाँ एक इण्टरमीजिएट कालिज है, एक अच्छा हाईस्कूल है, और छात्रालय हैं, जिसमें दूर-दूर के प्रांतों के क़रीब ३०० विद्यार्थी रहते हैं, और कालिज-स्कूल इत्यादि की इमारतें तो मानों महलात हैं। जयपुर का सुप्रसिद्ध सुन्दर स्थापत्य यहाँ देखते ही बनता है।

राजपूताना-हरिजन-सेवक-संघ की ओर से भी यहाँ एक निःशुल्क हरिजन-छात्रालय तथा एक रात्रि पाठशाला चल रही है। छात्रालय में २० हरिजन विद्यार्थी हैं। रात्रि-पाठशाला में बड़ी उम्र के हरिजन पढ़ते हैं। और, हमारे संघ के सभापति श्री घनश्यामदासजी बिड़ला खुद अपने पैसे से एक छोटा-सा चर्मालय और जूते बनाने का कारख़ाना, प्रयोग के रूप से, चला रहे हैं, जहाँ लड़कों को चमड़े का देशी उद्योग सिखाया जाता है।

संयुक्तप्रांत और मध्यप्रांत के हरिजन विद्यार्थी चाहें तो पिलाणी के कालिज में दो साल बड़े मज़े से शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। सब तरह से सुविधा-ही सुविधा है। एक तो पढ़ाई पर पैसा बहुत कम ख़र्च पड़ता है, दूसरे जगह बड़ी अच्छी है। यहाँ के छात्रालय का जीवन एक तरह से आश्रम का जीवन है। नगर की विलासिता या टीमटाम का तो यहाँ नाम भी नहीं। गाँव की शुद्ध हवा, कुएँ का जल, सादा रहन-सहन, ये सब बातें शहर के स्कूल-कालिजों में कहाँ? पढ़ाई से ड्यौढ़ा-दूना पैसा तो वहाँ ऊपरी टीमटाम पर ही स्वाहा हो जाता है।

चिड़ावा

इस क़स्बे की आबादी १२००० है। यहाँ एक अच्छे सेवक ट्रस्ट का हाईस्कूल है, और उसी की एक हरिजन-प्राइमरी पाठशाला भी है। हरिजन-सेवक-संघ की भी यहाँ एक रात्रि-पाठशाला है, जिसमें चमार, नायक और तेली जाति के लड़के पढ़ते हैं, पर भंगी बालकों का प्रवेश नहीं।

चिड़ावे में भंगियों की आबादी ख़ासी अच्छी है, क़रीब २५० घर हैं। पर कुआँ इन बेचारों के लिए एक भी नहीं है। जिन खेलों का पानी मवेशी पीते हैं, उन्हीं का गँदला पानी इन ग़रीबों को पीना पड़ता है। भंगियों के लिए अब एक अलग कुआँ बनवा देने का प्रबन्ध चिड़ावा के लोग कर रहे हैं, क्योंकि चमार और नायक अपने कुएँ से उन्हें पानी नहीं भरने देते। मेहतर जाति के लिए तो कहीं भी ठौर-ठिकाना नहीं। डेढ़ हज़ार से लेकर ढाई हज़ार रुपयेतक में इधर कुआँ तैयार होता है, क्योंकि १०० फुट से कम गहराई का तो शायद ही यहाँ कोई कुआँ होता हो।

झुंझनू

यह एक ख़ासा बड़ा क़स्बा है। यहाँ की जन-संख्या २१००० है। संघ की स्थानीय शाखा की ओर से यहाँ २ दिन की और २ रात्रि की पाठशालाएँ चल रही हैं। कई साल पहले एक पाठशाला को साधु सेवादासजीने स्थापित किया था। पर अब उन्होंने बुढ़ापे के कारण उस पाठशाला को संघ के सिपुर्द कर दिया है। यहाँ की सवर्ण जनता ही क्यों, उच्च हरिजन जातियाँ भी भंगियों के लड़कों को इन पाठशालाओं में दाख़िल नहीं होने देतीं। झुंझनू में मेहतरों के क़रीब १०० घर हैं। पानी का यहाँ भी बड़ा रोना है। संघ १५) मासिक ख़र्च करके एक कुण्ड में कुएँ का पानी भरवाकर किसी क़दर मेहतरों का जल-कष्ट-निवारण कर रहा है। दूसरी हरिजन जातियों के कुएँ से भी बेचारे तृषाक्रान्त मेहतर पानी नहीं भर सकते।

मँडावा

यहाँ की जन-संख्या लगभग ७००० के है। स्थानिक संघ के प्राण श्री कालीचरण शर्मा यहाँ २ पाठशालाएँ चला रहे हैं—१ रात्रि-पाठशाला और १ दिवस-पाठशाला। ये पाठशालाएँ एक

महाजन की एक पुरानी 'छत्री' में लगती हैं। छत्री में ग्वाला ही पड़ा रहता है। इस तरह छत्री का कुछ उपयोग तो हुआ। फिर हरिजन-पाठशाला के लिए भला कौन किराये पर मकान देता? कुल ३३ विद्यार्थी पढ़ते हैं, जिनमें ११ लड़के गरीब मुसलमानों के भी हैं। मेहतरों के लिए हाल में एक कुआँ श्रीयुक्त बिलासराय खेमाणी के प्रयत्न से बना है, जिस पर १७००) खर्च हुए हैं। खेमाणीजी हैं तो झुंझनू के, पर रहते हैं अब डिब्रूगढ़-आसाम में।

रामगढ़

यहाँ की आबादी १२००० है। स्थानिक संघ की ओर से यहाँ २ रात्रि पाठशालायें चल रही हैं। उपस्थिति काफ़ी अच्छी रहती है। सभी बालकों के लिए भी यहाँ कोई रोक-टोक नहीं है। एक पाठशाला का अपना मिट्टी का कच्चा मकान है। इसे बने सात साल हुए हैं। मैंने वह जगह भी देखी, जहाँ एक कुआँ बनवाने का विचार है। यह बड़ी अच्छी बात है, कि इस कुएँ से चमार, रैगर और मेहतर सब बिना किसी भेदभाव के खुशी से पानी भरेंगे। रामगढ़ में ऋण चुकवाने का भी कुछ काम हो रहा है। एक नई चीज़ यहाँ देखने में आई और वह यह, कि कुछ मेहतरोंने अपना निजू बैण्ड बाजा तैयार किया है, और वे लोग त्यौहारों तथा ब्याह-बारात के अवसरों पर तमाम हिन्दुओं के यहाँ बाजा बजाने जाते हैं। बैण्ड खरीदने के लिए उन्हें कुछ रुपया पेशगी दे दिया गया था, जो उन्होंने अब अपने बाजे की कमाई से एक-एक पाई चुका दिया है। बैण्ड बाजे की वर्दी बनवाने के लिए ये लोग कुछ कर्ज़ा चाहते हैं, जो उन्हें शीघ्र दे दिया जायगा।

यह प्रसन्नता की बात है, कि हरिजन-सभा का संदेश देश के इस पिछड़े हुए भाग में भी पहुंच गया है। सच्चा लगन-वाले कार्यकर्ता भी, थोड़े ही सही, यहाँ सब को मिल गये हैं। यहाँ के कुछ सभा-बन्धुओंने गत जुलाई मास में गांधीजी के हरि-जन-कोष में पत्र-पुष्प के रूप में श्रद्धापूर्वक थोड़ा-बहुत रुपया भी दिया था। यह लखपतियों का देश है। यहाँ के एक-से-एक लक्ष्मी के लाड़ले मारवाड़ी बम्बई कलकत्ते और सुदूर आसाम प्रांत तक में लाखों रुपये कमाते हैं। अगर उनसे हरिजन सेवा-कार्य के लिए, उनके पुराने रूढ़िगत संस्कारों पर बलात्कार किये बिना, एक सलीके से सहायता माँगी जाय, तो धर्मभीरु मारवाड़ियों के द्वार से हरिजन-सेवक खाली हाथ न आयेंगे।

अमृतलाल वि० ठक्कर

धर्म और विधान

[गताङ्क से आगे]

सूरा ५ में एक विशेष क्रम से कुरान से पहले के धर्मों के उत्थान का वर्णन किया गया है। यह वर्णन हज़रत मूसा और तौरात से आरम्भ होता है। फिर हज़रत मसीह के ज़ुहूर (आविर्भाव) का वर्णन किया जाता है।

मसीह के बाद इस्लाम के पैग़म्बर का आविर्भाव हुआ।

फिर इन भिन्न भिन्न उपदेशों के वर्णन के बाद कुरान लोगों को मुख़ातिब करते हुए कहता है—

हमने तुममें से हर एक के लिए (यानी प्रत्येक धर्म के अनुयायियों के लिए) एक ख़ास विधि-विधान नियत कर दिया है। अगर परमात्मा चाहता तो (विधियों और विधानों में कोई अन्तर ही न होता) तुम सब को एक ही सम्प्रदाय का बना देता। परन्तु यह भिन्नता (इसलिए हुई कि (समय और अवस्था के अनुसार) तुम्हें जो आज्ञाएँ दी गई हैं उन्हीं में तुम्हारी परीक्षा करे। इसलिए इन भिन्नताओं के पीछे न पड़कर) नेकी की राहों में एक दूसरे से आगे निकल जाने का प्रयत्न करो (क्योंकि असली काम यही है)। (सू० ५, आ० ४८)

इस आयत पर एक सरसरी नज़र डालकर आगे न बढ़ जाओ, बल्कि इसके एक-एक शब्द पर ग़ौर करो। जिस समय कुरान का आविर्भाव हुआ, संसार का यह हाल था कि समस्त धर्मों के अनुयायी धर्म को सिर्फ़ उसकी बाहरी क्रियाओं और रस्मों में ही देखते थे और धार्मिक विश्वास का सारा जोश ख़रोश इसी तरह की बातोंतक सीमित रह गया था। प्रत्येक धर्म के अनुयायी यही विश्वास करते थे कि दूसरे धर्मवालों को कभी मुक्ति नहीं मिल सकती, क्योंकि वे देखते थे कि दूसरे धर्मवालों की क्रियाएँ और रस्में वैसी नहीं हैं जैसी कि उन्होंने स्वयं अख़्तियार कर रखी हैं। परन्तु कुरान कहता है कि नहीं, यह क्रियाएँ और रस्में न तो धर्म की असल और हक़ीक़त हैं और न उनका भेद सत्य और असत्य का भेद है। यह सब धर्म केवल व्यावहारिक जीवन का ऊपरी ढाँचा है। तत्त्व और सार इससे अलग है और यही वास्तविक धर्म है। यह वास्तविक धर्म क्या है?—एक परमात्मा की उपासना और सदाचरण का जीवन। यह किसी एक गिरोह की पैतृक सम्पत्ति नहीं है जो उसके सिवा किसी और को न मिली हो। यह सब धर्मों में समान रूप से मौजूद है, क्योंकि यही धर्म की असल यानी जड़ है। इसलिए न तो इसमें परिवर्तन हुआ और न किसी तरह का अन्तर हो। क्रियाएँ और रस्में गौण हैं, देश और काल के अनुसार ये सदा बदलती रही हैं और जो कुछ भी अन्तर हुआ है इन्हीं में हुआ है।

फिर कुरान पूछता है कि क्रियाओं और रस्मोंकी इस भिन्नता को तुम इतना महत्त्व क्यों दे रहे हो? परमात्माने प्रत्येक देश और प्रत्येक युग के लिए एक विशेष प्रकार की रीति नीति स्थिर करदी, जो उसकी आवश्यकता और अवस्था के उपयुक्त थी और लोग उसी पर कारबन्द हैं। यदि परमात्मा चाहता तो समस्त मानव जाति को एक ही क़ौम बना देता और विचारों और क्रियाओं की कोई भिन्नता उत्पन्न ही न होने देता। किन्तु ईश्वरने ऐसा नहीं चाहा। उसकी सर्वज्ञताने यही उचित समझा कि विचारों और क्रियाओं की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ उत्पन्न हों। इसलिए इस भिन्नता को सत्य और असत्य की भिन्नता क्यों मान लिया जाय? क्यों इस भिन्नता के कारण एक गिरोह दूसरे गिरोह से लड़ने के लिए तैयार रहे? असल चीज़ जिस पर सारा ध्यान देना चाहिए नेकी के काम हैं, और समस्त ऊपरी क्रियाएँ और रस्में इसीलिए हैं कि उनके द्वारा हम नेकी की राह पर क़ायम रह सकें।

ग़ौर करो, इस आयत में कहा गया है कि हमने तुममें से प्रत्येक धर्म के अनुयायी के लिए एक विधि-विधान (शरअ और मिनहाज) ठहरा दिया है, इसमें यह नहीं कहा गया कि एक धर्म (दीन) ठहरा दिया है। क्योंकि धर्म तो सब के लिए

एक ही है, धर्म एक से अधिक या कई तरह का नहीं हो सकता। हाँ, विधि विधान सबके लिए एक तरह का नहीं हो सकता। हर समय और हर देश की स्थिति और योग्यता के अनुसार विधि-विधान का भिन्न-भिन्न होना ज़रूरी था, अर्थात् विविध धर्मों की भिन्नता तात्त्विक अथवा मौलिक भिन्नता नहीं है, वरन् केवल बाह्य अथवा गौण चीज़ों की भिन्नता है।

यहाँ यह बात याद रखनी चाहिए कि जहाँ भी कुरानने इस बात पर ज़ोर दिया है कि अगर परमात्मा चाहता तो सारे मनुष्य एक ही मार्ग पर एकत्र हो जाते या एक ही जाति बन जाते, जैसा कि ऊपर की आयत में बयान किया गया है, वहाँ उन सब आयतों का मतलब इसी सत्य को स्पष्ट करना है। कुरान चाहता है, यह बात लोगों के दिल में बैठा दी जाय कि विचारों और क्रिया की भिन्नता मनुष्यस्वभाव की एक विशेषता है, और जिस तरह यह भिन्नता और सब बातों में पाई जाती है उसी तरह धार्मिक बातों में भी मौजूद है। इसलिए इस भिन्नता को सत्य और असत्य की कसौटी नहीं समझना चाहिए। कुरान कहता है कि जब परमात्माने मनुष्य का स्वभाव ऐसा बनाया है कि प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक जाति, प्रत्येक ज़माना, अपनी-अपनी समझ, अपनी-अपनी पसन्द और अपना-अपना तौर तरीक़ा रखता है, और यह सम्भव नहीं कि किसी एक छोटी-से छोटी बात में भी सब मनुष्यों का स्वभाव एक तरह का हो जाय, तो फिर यह कब सम्भव था कि धार्मिक क्रियाएँ और रस्में भिन्न-भिन्न न होतीं, और सब एक ही ढंग अख्तियार कर लेते? यहाँ भी भेद होना था और हुआ। किसीने एक साधन से और किसीने दूसरे साधन से असली लक्ष्यतक पहुँचना चाहा। परन्तु असली लक्ष्य में, यानी ईश्वरोपासना और सदाचरण की शिक्षा में, सभी एकमत रहे। किसी भी धर्मने यह शिक्षा नहीं दी कि ईश्वर की उपासना नहीं करनी चाहिए। किसीने भी यह नहीं सिखलाया कि झूठ बोलना सच बोलने से बेहतर है। इसलिए जब सब का मूल लक्ष्य एक ही है तो केवल बाहरी चीज़ों और क्रियाओं की भिन्नता से क्यों कोई किसी का विरोधी और दुश्मन बन जाय? क्यों हर गिरोह दूसरे गिरोह को झुठलावे? क्या धार्मिक सचाई किसी एक ही जाति या सम्प्रदाय की बपौती समझ ली जाय?

एक स्थल पर ख़ुद पैग़म्बर मुहम्मद को मुख़ातिब करते हुए, कुरान कहता है कि तुम जोश में आकर चाहते हो कि लोगों को अपने ही मार्ग पर ले आओ, परन्तु तुम्हें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि विचारों और क्रियाओं की विभिन्नता मनुष्यस्वभाव की नैसर्गिक विशेषता है। तुम ज़बरदस्ती कोई बात किसी के गले नहीं उतार सकते।

> और अगर तुम्हारा पालनकर्त्ता चाहता तो इस पृथिवी पर जितने भी मनुष्य हैं सब-के-सब तुम्हारी बात मान लेते, (लेकिन तुम देख रहे हो कि उसके कौशल का यही नियम है, कि प्रत्येक मनुष्य अपनी-अपनी समझ और अपनी-अपनी राह रखे)। फिर क्या तुम चाहते हो कि लोगों को मजबूर करदो कि सब तुम्हारी ही बात मानें?
> (सू० १०, आ० ९९)

कुरान कहता है कि मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा बना है कि हर गिरोह को अपना ही तौर-तरीक़ा अच्छा दिखाई देता है, वह अपनी बातों को अपने विरोधियों की दृष्टि से नहीं देख सकता। जिस तरह तुम्हारी दृष्टि में तुम्हारा ही मार्ग सर्वश्रेष्ठ है, ठीक उसी तरह दूसरों की दृष्टि में उनका अपना मार्ग सर्वश्रेष्ठ है। इसलिए इस बारे में अपने अन्दर सहिष्णुता और उदार दृष्टि पैदा करो; इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं।

'दरिद्रनारायण' और 'हरिजन'

'दरिद्रनारायण' और 'हरिजन' के बीच यह झगड़ा चल रहा है कि दो में किस का किस में समावेश होता है। बिना विचार किये जवाब देनेवाला तो कहेगा कि 'हरिजन में ही।' पर क्षणेक विचार करें, तो मालूम होगा, कि दो में 'दरिद्रनारायण' ही बड़ा रूप है। हरिजन दरिद्रनारायण तो हैं ही, पर समृद्ध लोग उन्हें नाथ से-भी नाथ मानते हैं। इसलिए वे भगवान् के—हरि या हर के अधिक-से-अधिक समीपवर्ती हैं और उनके प्रिय से भी प्रियजन हैं। भगवान्ने क्या अपना नाम 'दासानुदास' नहीं रखा है? और जगत्ने जिसकी अधिक से अधिक उपेक्षा कर रखी है, उसकी सेवा भगवान् अधिक से अधिक नहीं करेंगे, तो फिर और किस की करेंगे? पर 'दरिद्रनारायण' में तो हरिजनों के सहित उन दूसरे अनेक कोटि मनुष्यों का भी समावेश हो जाता है, जिनके भाल पर जन्म से अस्पृश्यता का काला कलंक नहीं लगा हुआ है। अतः हरिजन की सेवा में तो दरिद्रनारायण की सेवा आ ही जाती है, पर यह हमेशा सम्भव नहीं कि दरिद्रनारायण की सेवा में हरिजन की भी सेवा हो जाता है। इसलिए 'हरिजन', 'हरिजन-सेवक' और 'हरिजन-बन्धु' के लेखक यह बात हमेशा ध्यान में रखें; क्योंकि उन्हें यह याद रखना चाहिए कि ये साप्ताहिक पत्र सिर्फ़ हरिजन-कार्य के लिए निकल रहे हैं, और इसी से जिस चीज़ का इस कार्य से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, उसके लिए इन साप्ताहिकों में स्थान नहीं। इस भेद को ध्यान में रखना आवश्यक है, क्योंकि अबतक जो विषय इन पत्रों में बहिष्कृत-से मालूम होते थे, ऐसे अनेक विषयों को अब मैं इनमें स्वतंत्रता से ले रहा हूँ। असल बात यह है, कि रचनात्मक कार्य के अनेक प्रश्नों के सम्बन्ध में जितना विचार मैं आज कर रहा हूँ उतने विचार करने का हरिजन-दौरे की दौड़-धूप में मुझे समय ही नहीं मिलता था, फिर इन विषयों पर कुछ लिखने-लिखाने का अवकाश मिलता ही कहाँ से? हरिजनों की स्थिति सभी तरफ़ से सुधारने के लिए असीम अवकाश है। संख्या की दृष्टि से हरिजन मनुष्यजाति का क्या एक बड़ा भाग नहीं हैं? उपयोगिता के विचार से तो शायद उनका स्थान समाज में सब से ऊँचा होगा। वे कितना उपकार का काम करते हैं, फिर भी उनके भाल पर हमने अस्पृश्यता का काला टीका लगा रखा है! अगर वे आज एकाएक यह काम छोड़दें तो भारतीय समाज के टुकड़े टुकड़े हो जायँ।

'हरिजन-बंधु' से] मो० क० गांधी

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १९ अक्टूबर, १९३४

यथार्थता की आवश्यकता

एक सज्जनने मेरे पास एक अख़बार की कटिंग भेजी है, जिसमें खादी का गुण-गान किया गया है। उसका एक अंश मैं नीचे देता हूँ :—

"एक रुपये का विदेशी कपड़ा ख़रीदा जाय, तो सिर्फ़ -)॥ हिंदुस्तानी के पल्ले पड़ेगा और साढ़े चौदह आने साधे विदेशी व्यापार की वृद्धि में चले जायँगे।

"एक रुपये का देशी मिल का कपड़ा खरीदें, तो ॥) तो मिल-मालिक की जेब में आयँगे, ।≈) मज़दूर को मिलेंगे, और ≈) विदेशियों की पाकेट में चले जायँगे।

"एक रुपये की खादी ख़रीदी जाय तो व्यवस्था ख़र्च को बन्द करके बाक़ी का सारा पैसा खादी के उत्पादक को ही मिलेगा।"

कटिंग भेजनेवाले सज्जन पूछते हैं, कि क्या यह बात सच है, कि खादी के उत्पादक को पन्द्रह आने मिलते हैं और बेचनेवाले को सिर्फ़ एक आना? मैं इतना ही कह सकता हूँ कि चरखा-संघ के खादी भंडारोंने अपने सामने आदर्श यह रखा है, कि खादी का भाव इस तरह रखा जाय, कि उपज की मण्डी में आई हुई पन्द्रह आने की खादी पर व्यवस्था ख़र्च एक आना हो अर्थात् खादी की कुल बिक्री पर रुपये पीछे सिर्फ़ एक आना मुनाफ़ा किया जाय। इसलिए इस पन्द्रह आनेमें भाड़ा इत्यादि दूसरी कई चीज़ों का समावेश हो जायगा। अतः यह कहना बिलकुल ही ग़लत है, कि एक रुपये की खादी ख़रीदने में पन्द्रह आने उत्पादक को मिलते हैं।

बुनकर के यहाँ से आने के बाद खादी की धुलाई, रँगाई, कलफ़, इस्तरी आदि कितनी ही क्रियाएँ होती हैं, और फिर गोदामों में रखी जाती है। 'उत्पादक' शब्द में कपास बोनेवाले, फलियाँ तोड़नेवाले, ओटाई करनेवाले, पींजनेवाले, पूनी बनानेवाले, कातनेवाले, अटेरनेवाले, ताना डालनेवाले, माँड़ी लगानेवाले, और बुननेवाले इतनों का ही अगर समावेश करें, पर बुनने के बाद की क्रियाएँ करनेवालों को शामिल न करें तो उत्पादक को आठ आने से ज़्यादा न मिलते होंगे। दूसरी इन सारी क्रियाओं को गिनती में न लेने का रिवाज तो है, और वह ठीक है; क्योंकि खादी का उद्देश पूरा करने के लिए ये सब क्रियाएँ ज़रूरी नहीं हैं, और गाँववाले या जिन्हें हम मज़दूर कह सकते हैं इन क्रियाओं को करें भी या न भी करें। धुलाई, रँगाई आदि का काम बहुधा संगठित यानी पूँजीवालों के कारख़ानों में कराया जाता है। अब, खादी की बिक्री बढ़ाने में जो तमाम लोग योग देते हैं, वे उत्पादक की कमाई में से कोई हिस्सा नहीं लेते, दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं, कि वे उत्पादक के मुँह की रोटी नहीं छीन लेते बल्कि उसका माल बिकवाने में उसकी मदद ही करते हैं, और पूँजीवाले होते हुए भी वे इस काम को करते हैं। बात यह है, कि पूँजीवाले अभी मुनाफ़ा उठाने के लिए खादी का काम नहीं कर रहे हैं, पर तो भी चाहे जिस नीयत से हो, उत्पादक के लिए वे काम करते हैं। इसलिए उपर्युक्त विज्ञापन में, जान या अनजान में, जो सच्ची अतिशयोक्ति हुई है, उसकी अपेक्षा, मुझे ऐसा लगता है, अगर पूर्ण सत्य लोगों के आगे रख दिया जाय, तो खादी का अधिक अच्छा विज्ञापन हो सकता है। मुझे यदि यह विज्ञापन बनाना हो तो मैं इस तरह लिखूँ :—

"आप जब एक रुपये की खादी ख़रीदें तो यह जानलें, कि खादी के उत्पादक को उसके परिश्रम का पूरा-पूरा फल मिल रहा है; पर जब आप देशी मिल का बना हुआ कपड़ा ख़रीदते हैं, तो आप उत्पादक से उसके हितकारी परिश्रम का काम छीन लेते हैं, और उसके बदले में उस बेचारे को कुछ भी नहीं देते। खादी-विक्रेता को सिर्फ़ पेट भरनेमात्र को ही पैसा मिलता है, और इसलिए वह उत्पादक की ही कोटि का है।"

इस प्रकार यदि खादी के अर्थशास्त्र का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा, कि किसी भी भारत-वासी का खादी के अतिरिक्त किसी अन्य कपड़े को काम में लाना देश के अधभूखे मनुष्यों के विरुद्ध अपराध करना है। ऐसा मनुष्य निश्चय ही किसी भूख से पीड़ित ग्रामवासी के मुँह का कौर छीन लेता है। खादी को जितनी प्रगति होनी चाहिए उतनी नहीं हुई तो इसका यह कारण नहीं कि खादी की कोई अपनी त्रुटि है, बल्कि इसका कारण तो खादी के मित्र तथा शत्रु दोनों का अज्ञान ही है।

पर हमें ग्राहक के पक्ष को भी तो देखना चाहिए। उसकी दृष्टि से ऊपर का विज्ञापन ग़लत रास्ते पर ले जानेवाला है। ग्राहक अगर अपनी अभिरुचि बदल दे, अर्थात्, वह बिना-धुली खादी ख़रीदकर पीछे उसे चाहे जैसे रंगबिरंगे बेल-बूटों से सजावे तो जिस भाव पर खादी आज बिक रही है, उससे आधी क़ीमत पर बिकने लगे। जिसके लिए मालतोल कोई चीज़ नहीं है, उसे इसको पचायत में पड़ने की ज़रूरत नहीं। पर अगर ग्राहक को मोल-तोल का विचार करना है, तो उसे जान लेना चाहिए कि धुली और सजी-सजाई खादी से अनधुली और अनसजी खादी की क़ीमत बहुत कम पड़ेगी। फिर धुली हुई खादी से अनधुली खादी टिकाऊ भी ज़्यादा होती है। लोगों को यह भी जान लेना चाहिए, कि इधर गत बारह बरस में खादी का भाव बहुत घट गया है, और उसके पोत में भी काफ़ी तरक़्क़ी हो गई है। कतैयों के औज़ारों में सुधार और उनके हुनर में तरक़्क़ी होने से अब मज़ूरी भी उन्हें अधिक मिलने लगी है। पर्याप्त काम न मिलने के कारण करोड़ों अधपेटे लोगों के इस सहायक धन्धे में अगर कुछ सुशिक्षित स्त्री-पुरुषोंने अपने आपको अर्पित न कर दिया होता, तो यह बात नहीं हो सकती थी। 'वर्ण' या 'जाति' के इस वर्तमान ग़लत विचारसे इन करोड़ों लोगों को अगर अस्पृश्यवत् न समझा होता और अपने को उच्चवर्ण का कहनेवाले वर्गने उन्हें अपने से नीच न मान लिया होता तो भारत के किसानों को, उनके अवकाश के समय, उद्यम में लगानेवाला खादी का यह मुख्य धन्धा इस तरह नष्ट न होने पाता।

इसमें सन्देह नहीं, कि खादी की संस्थाओं में त्रुटियाँ हैं, इनमें अभी पूर्ण आत्मार्पण का भाव नहीं आया, जो प्रश्न इनके सामने आते हैं, उनका ख़ूब बारीकी से अध्ययन नहीं किया जाता। पर यह कोई अचरज की बात नहीं है। सारी ज़िन्दगी की आदत कहीं एकाएक थोड़े छूट जाती है? किसी कला पर एक

कम अप्रकार थोड़े ही हो जाता है। खादी के शास्त्र में उच्चकोटि की कारीगरी और यांत्रिक कुशलता की आवश्यकता रहती है; साथ ही खादी-कार्य में उतनी ही एकाग्रता या तन्मयता की ज़रूरत है, जितनी एकाग्रता से कि श्री जगदीशचन्द्र वसु प्रकृति के रहस्यों का आविष्कार करने से पहले अपनी प्रयोगशाला में पौधों की नन्ही-से-नन्ही पत्तियों का पर्यवेक्षण करते हैं।

इसलिए जिस विज्ञापन के विरुद्ध यह शिकायत आई है, उसमें भूल यह नहीं है, कि कौशल दिखाने में अत्युक्ति से काम लिया गया है, भूल तो यह हुई है, कि खादी का पक्ष एक भद्दे और अधूरे ढंग से उपस्थित किया गया है। सत्य की अधूरी प्रशंसा के कारण जो अयथार्थता आ जाती है उसीसे ऐसा दोष पैदा होता है। सत्य की इस अचूक कसौटी पर उक्त विज्ञापन को कसें, तो उसका तीन में से एक भी खंड खरा उतरने का नहीं।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

उपयोगी आँकड़े

एक रुपये की खादी ख़रीदी जाय, तो उसे तैयार करनेवालों और बेचनेवालों में प्रत्येक मनुष्य के हिस्से में कितने पैसे पड़ेंगे इस सम्बन्ध के कुछ अत्यन्त उपयोगी आँकड़े, मेरे निवेदन पर, अखिल भारतीय चरखा-संघ की महाराष्ट्र शाखाने —जिसका प्रधान कार्यालय वर्धा में है—जुटाकर मुझे दिये हैं। १० से लेकर १४ नम्बरतक के पोत की सफ़ेद खादी के आँकड़े ये हैं:—

किसान को कपास का दाम ।)॥, ओटाई)॥, धुनाई –), कताई ≈)॥, बुनाई ।), माड़ी ८ पाई, धुलाई ८ पाई, व्यवस्था ख़र्च –) २ पाई—कुल १)

इस प्रकार से इस क़िस्म की खादी औसतन ५० फी सदी है। इसलिए एक रुपये की इस खादी पर भंडारवालों को तो सिर्फ़ –) २ पाई ही मिलता है; और मज़दूरों को, किसान से लेकर बुनकरतक, एक रुपये में ॥ –)॥ मिल जाते हैं। यह संतोष की बात है, कि सबसे ज़्यादा पैसा किसान, कतवैये और बुनकर को ही मिलता है। महीन पोत की खादी में किसान को कम और कतवैये को सबसे अधिक मिलता है। मगर ऊपरी ख़र्च तो कभी कभी २५ फी सदीतक पड़ जाता है। फिर खादी की फ़ैंसी चीज़ों का दाम तो सौ फ़ी सदी तक बढ़ जाता है। खादी का अगर हम एक रुपये का फ़ैंसी रूमाल ख़रीदें, तो 'दरिद्र नारायण' को तो सिर्फ़ आध आना या इससे कम ही मिलता। हाथ के छोटे साँचे पर बुने हुए हथकते सूत के मोज़ों को लीजिए। इनमें सूत का दाम तो बहुत ही कम होता है। आधे की साड़ी २५) की आती है, और उस पर बढ़िया बेल-बूटा काढ़ा जाय तो १५०) तक उसकी क़ीमत बढ़ जा सकती है। इसका स्पष्ट अर्थ यही हुआ, कि खादी जितनी ही सादी होगी, उतना ही अधिक पैसा ग़रीब-से-ग़रीब मनुष्यों को मिलेगा। इसमें सन्देह नहीं, कि सुन्दर सजावटने खादीको उन घरों में भी सर्वप्रिय बना दिया है, जो शायद उसकी ओर देखते भी नहीं। कुछ ऐसी भी लोकप्रिय क़िस्मों की साड़ियाँ व धोतियाँ हैं, जो ग़रीब लोगों के लिए ही बनाई जाती हैं। इन पर एक पैसा भी व्यवस्था-ख़र्च नहीं जोड़ा जाता। और चरखा-संघ के किसी भी खादी-भण्डार में ख़ालिस मुनाफ़ा-जैसी चीज़ तो होती ही नहीं। प्रबन्ध ख़र्च तो खादी को स्वावलम्बी बनाने के लिए ही जोड़ा जाता है। खादी अब भी स्वावलम्बी नहीं हो पाई है। अखिल भारतीय चरखा-संघ की समिति बराबर ही यह जानतोड़ प्रयत्न करती आ रही है, कि खादीके अधिक-से-अधिक दाम घटा दिये जायँ और खादी-भंडारों की व्यवस्था इतनी अच्छी करदी जाय, कि ख़र्च उस पर कम-से-कम पड़े।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

लोकभाषा

प्राचीन काल में जब रोम के बादशाह भूमध्यसागर के आसपास की सारी दुनियाँ पर राज्य-शासन करते थे, उस समय के इतिहास में अपने विलासी और निरंकार जीवन से राज-दरबार को सुशोभित करनेवाले राजपुरुषों का वर्णन आता है। ये सरदारगण अपनी वाणी को इतना अधिक पवित्र समझते थे, कि घर के परिचारक ग़ुलामों की अपवित्र उपस्थिति में वे अपने श्रीमुख से एक शब्द भी नहीं निकालते थे, सारा काम-काज इशारों से ही चलता था! ग़ुलामोंने अगर हमारी पवित्र भाषा सुनली तो वह भ्रष्ट हो गई और हम अपमानित हो गये, ऐसा वे लोग मानते थे। और रोम की प्रजा भी अपने बादशाहों की यहाँतक खुशामद करती थी, कि वह उनके जीवित काल में भी उनके पुतले बना-बनाकर उनकी पूजा करती थी! मनुष्य-मनुष्य के बीच ऊँच-नीच भाव की यह पराकाष्ठा नहीं तो क्या है? साम्राज्य-मद से उन्मत्त मनुष्य अपना मनुष्यत्वतक भूल जाता है, और दूसरों की मनुष्यता का अपमान करने में ही अपना गौरव समझने लगता है।

हमारे देश में भी वेदपाठी भूदेवता इस बात की चिन्ता में निमग्न रहते थे, कि वेद के अनधिकारी अब्राह्मण या शूद्र के कान में कहीं वेदवाणी की भनक न पड़ जाय। हमारे एक आचार्यदेवने तो यहाँतक लिख डाला, कि यदि कोई शूद्र वेदवाणी सुनले, तो उस दुष्ट के कान में तप्त सीसा डाल दिया जाय! वेदवाणी की पवित्रता इस प्रकार सुरक्षित रखी गई थी। यद्यपि श्रुतिने स्वयं बाहु उठाकर यह घोषित कर दिया था, कि 'त्रिगुणाः विषया वेदाः'—वेद तो खुले हुए हैं, सब उनसे लाभ उठा सकते हैं, तो भी आचार्योंने वेदों को सुरक्षित रखना ही आवश्यक समझा। पवित्रता का मद साम्राज्य मद से किस बात में कम है?

दक्षिण में आज भी ऐसे ब्राह्मण हैं, जो उषःकाल में स्नान के उपरान्त, और मध्याह्न के भोजन के पहले अपने पवित्र मुख से संस्कृत को छोड़कर अन्य किसी भाषा का शब्द निकालेंगे ही नहीं। अन्य भाषाएँ कहीं 'ब्रह्मभाषा' का स्थान ले सकती हैं? पवित्र स्थिति में तो केवल पवित्र देववाणी का ही व्यवहार होना चाहिए, किसी नरवाणी का नहीं।

आम जनता और उसकी ग़रीब भाषा का हमारे देश में प्रायः अपमान ही होता रहा है। प्रथम तो वैदिक और संस्कृत भाषाने अखंड राज्य किया, फिर फ़ारसी की हुकूमत रही—और अब फ़ारसी का स्थान अंग्रेज़ीने ले लिया है। देश की भाषा, ग़रीबों की भाषा, विशाल जनता की भाषा तो सदा अप्रतिष्ठित ही रही। बेचारी अपमानित देसी भाषाएँ श्रोता-बस्ता में एक बाजू ही पड़ी रह गईं। उनका ढांचा बाद

हमारी उन्नति में सदा के लिए बाधा डाल रहा है। सब प्रकार का पठन-पाठन पहले संस्कृत भाषा में होता था, पाठशालाओं और गुरुकुलों में गीर्वाण-वाणी ही गूँजती थी। उसके बाद मुल्क में मदरसे और मकतब क़ायम हुए, और 'क़ाफ़', 'ग़ाफ़' की शाही भाषा मदरसों को संस्कृति या सभ्यता प्रदान करने लगी। जब अधिकार का केन्द्र दिल्ली से हटकर मद्रास, बम्बई और कलकत्ते में क़ायम हो गया, और स्कूल-कॉलेज तथा यूनिवर्सिटियाँ स्थापित हो गईं, तब विदेशी राज्य-भाषा ही सार्वजनिक व्यवहार की 'बपौती' बन गई। देशी भाषाओं को तो पर्याप्त राजाश्रय कभी मिला ही नहीं। हाँ, लोकसेवक साधु-सन्तोंने बेशक इन्हीं भाषाओं की क़दर की है। जब बुद्ध भगवान् से उनके शिष्योंने पूछा, कि आपके उपदेशों को हम वैदिक भाषा में ग्रथित क्यों न करदें, तो उन्हें यह उत्तर मिला कि 'तथागत का उपदेश तो सर्वसाधारण के लिए है; तुम लोग जिस देश में जाओ, वहाँ की बोली में मेरे उपदेशों का उल्था कर सकते हो, इसमें वैदिक भाषा से कोई प्रयोजन नहीं।' तुलसीदास, नामदेव, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, वामन पण्डित आदि सन्तोंने यही आग्रह रखा था। संत कबीरने तो लोकभाषा की महिमा यहाँतक गाई है कि

> संसकिरत संसार में पंडित करें बखान।
> भाषा भक्ति दृढ़ावही, न्यारा पद निरबान॥
> संसकिरत है कूपजल, भाषा बहता नीर।
> भाषा सतगुरु सहित है, सतमत गहिर गँभीर॥

अब प्रजाकीय युग का, जनता के युग का आरम्भ हो चुका है। देशभाषाएँ अपनी-अपनी साहित्य-राशि बढ़ा रही हैं। सामान्य जनता में विद्या और ज्ञान का प्रचार और प्रसार कैसे हो, इसी शोध में देश के विद्वान् लोग लगे हुए हैं। यह शुभ लक्षण है। तो भी उच्चता-नीचता का भेद अभी हटा नहीं है। हिन्दी भाषा में संस्कृत शब्दों की भरमार हो या फ़ारसी लफ़्ज़ों की यह झगड़ा एक ज़मानेतक चलता रहा। अब दोनों भाषाओं का मिश्रण पसन्द किया जाने लगा है, लेकिन कोई यह नहीं सोचता, कि भाषा को सरल किस भाँति बनाया जाय। यह बात अभी उपेक्षा से ही देखी जाती है, कि यह ज़माना न तो संस्कृत-मिश्रित पण्डिताऊ भाषा का है, न मौलवियों की अरबी-फ़ारसी से लदी हुई उर्दू का, यह युग तो सुन्दर सरल हिन्दी का है। ठेठ हिन्दी में कुछ पुस्तकें लिखी गईं सही, मगर वहाँ भी ग्रन्थकार के आग्रहने कृत्रिमता को ही दाख़िल किया। शिष्ट लोग चाहे जो आग्रह रखें, पर उन्हें लोकभाषा की, ग़रीब जनता की भाषा की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। साहित्यिक सौन्दर्य या पद-लालित्य के लोभ से अथवा विवेचन के गाम्भीर्य की अभिलाषा से भाषा अधिकाधिक दुरूह की जा रही है, जिसका फल यह हो रहा है, कि साहित्यिक संस्कार से सामान्य जनता वंचित ही रह जाती है।

ग़रीब भोली जनता के मस्तिष्क पर यह बोझ लादना, कि "अगर तू शिक्षा-संस्कृति चाहती है, तो तमाम कष्टों को झेलकर साहित्य के ऊँचे शिखर पर तुझे चढ़ना ही होगा"—ठीक है, या ख़ुद भाषा का अपने उच्च साहित्यिक शिखर से उतरकर सर्व-साधारण के बीच में सेवाभाव तथा समानभाव से विचरण करना? अगर जनता का उद्धार वांछनीय है, तो भाषा को यह उच्च साहित्यिक शिखर छोड़ना ही होगा, और ऐसा करने से ही उसमें एक अनोखा तेज प्रगट होगा।

जब हम मनुष्य-मनुष्य के बीच का उच्च-नीचभाव दूर करना चाहते हैं, तो भाषा के क्षेत्र में भी बुद्धिपूर्वक ऐसा ही प्रयास होना चाहिए।

अगर ग़ौर से देखा जाय तो देहात के लोग कोई दो-तीन हज़ार शब्दों से ही अपना तमाम व्यवहार चला लेते हैं। उनके सामान्य जीवन के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भाव भी इतनी छोटी शब्दसंख्या से भली भाँति व्यक्त हो जाते हैं। देहातों में, जहाँ हमारी सभ्यता सर्वथा नष्ट नहीं हो गई है, वहाँ के लोगों की वक्तृत्वशक्ति असाधारण होती है। उनके अथाह अर्थ से भरे चुने हुए शब्द सुनने के लिए अच्छे-अच्छे साहित्याचार्य भी लालायित रहते हैं। हमारी राष्ट्रभाषा ऐसी होनी चाहिए, कि उसमें सादगी, सफ़ाई, रसिकता और सामर्थ्य ये चारों गुण समान भाव से दिखाई दें। अब तो सफ़ेदपोश लोगों की सरकारी भाषा छोड़कर साधारण जनता की स्वभावसुन्दर भाषा का अर्थात् लोक भाषा का सर्वत्र व्यवहार होना चाहिए।

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

खादी से उकतानेवालों के चरणों में

"चौदह बरस कातने पर भी खादी स्वराज न ला सकी, अब तो दूसरा कुछ सोचिए?"

"क्या अब भी आप की कताई चलती है!!"

"खादी तो अब बुढ़िया हो गई, क्रान्ति जवानी से आयगी।"

ऐसे सैकड़ों कटाक्ष आजकल खादी-सेवियों पर हो रहे हैं। विदेशी वस्त्र के व्यापारी या मिल के कपड़े के एजेंट के ऐसे तानों की उपेक्षा की जा सकती है, किन्तु अपने ही मित्रों के तानों से रंज होता है। कोई-कोई सहयोगी चर्खा और खादी पर मुझे गुस्से के इतना उग्र आक्रमण कर बैठते हैं, कि मानों हाथ में आया हुआ स्वराज खादीने ही लौटा दिया हो। ऐसे खादी-निन्दकों को तथा खादी से हतोत्साह देश-भक्तों से नीचे दिये गये कोष्टक पर ग़ौर करने की नम्र विनती है।

ज़िला बदाऊँ के गुलड़िया ग्राम के लिखे-पढ़े किसानों की मदद से ये आँकड़े एकत्रित किये हैं। गाँव की ढाई हज़ार आबादी में कुर्मी क्षत्रिय किसानों की आबादी एक हज़ार की है। इस जातिने परम्परा से चर्खे की उपासना नहीं छोड़ी है। लग्नादि उत्सवों में कुर्मी स्त्रियाँ जापानी और विलायती चटकीले, भड़कीले वस्त्र पहनती हैं, किन्तु घर में वे प्रायः शुद्ध खादी ही प्रयोग में लाती हैं। कपास की फ़सल तैयार होने पर सब कुर्मी स्त्रियाँ खेतों में से बीन-बीनकर अच्छे-से-अच्छे कपास को चुन लाती हैं और वर्षभर के कातने के लिए स्वच्छ रुई जमा कर रखती हैं। हम लोगोंने घर-घर जाकर मर्दुमशुमारी, सालाना कपड़े का ख़र्च और चर्खों की शुमारी लिखनी। बाद में समझदार किसानों से पूछ-पूछकर औसत निकालकर निम्न कोष्टक बनाया गया। जन्माष्टमी और देवछठ के स्थानीय मेलों में उसका बड़ा नक़शा बनाकर उस पर व्याख्यान दिये गये। अबतक किसीने हमारे इन आँकड़ों पर आपत्ति नहीं उठाई, बल्कि उन्हें कम ही बताया है। वे आँकड़े ये हैं—

विभिन्न प्रकार के वस्त्रों पर होनेवाले व्यय का विवरण

कपड़े की किस्म	प्रत्येक व्यक्ति की वर्ष भर की आवश्यकता ३० इंच अरज के गज़ों में	फी गज़ कपड़े की औसत दर	एक आदमी का साल भर के कपड़े पर क्या खर्च पड़ेगा	पाँच आदमियों के कुटुम्ब पर सालभर के कपड़ों पर होनेवाला खर्च
विदेशी वस्त्र (विलायती जापानी)	५०	।)	१२॥)	६२॥)
मिल का कपड़ा (स्वदेशी)	४०	≡)	७॥)	३७॥)
गाढ़ा (मिलका सूत, करघे की बुनाई)	३५	≡)	४।≡)	२१॥।≡)
बाज़ारू खादी (चर्खा संघ की)	४०	≡)॥।	९।≡)	४६॥≡)
मोल की रुई धुनवाकर घरकते सूत की बुनवाई हुई स्थानीय खादी	३०	≡)	३॥)	१८॥)
मोल की कपास से घर में उटाई, धुनाई, कताई से बनी खादी	३०	-)॥	३।)॥	१६।≡)॥
घर की कपास घर की उटाई, घर की धुनाई और घर की कताई की खादी	३०	-)।	२।-)॥	११॥≡)।
जुलाहे को बुनाई के बदले में सूत देने पर		×	×	×
पाँच आदमियों के कुटुम्ब में सालभर सिर्फ १ चर्खा रोज़ ७ घंटे चलाने पर	कपड़े का खर्च कुछ न पड़कर कम-से-कम ५) रु० की आमदनी होगी।			

इन आँकड़ों का स्पष्टीकरण निम्नप्रकार है :—

(१) विदेशी वस्त्र तीन आने पाँच आने गज़तक बिकते हैं। सस्ते-से-सस्ता कपड़ा भी ≡)॥ गज़ से कम में देशी दूकानें या फेरीवाले नहीं देते। अतः ।) गज़ का औसत बहुत ही कम है। चमकीले, भड़कीले, जुराब, कोट, नकली सिल्क की साड़ी, पगड़ी आदि पहनने की आदत के कारण, प्रत्येक व्यक्ति सालभर में ५० गज़ से अधिक ही कपड़ा बरतता है, कम नहीं। स्मरण रहे कि सारी गिनती सिंगल अरज के गज़ों में की है—जैसे ५ गज़ की ४५ इंच की धोती को ७॥ सिंगल गज़ माना है।

(२) जापानी कपड़ों से देशी मिलों के कपड़े ज़्यादा टिकनेवाले होने के कारण, तथा स्वदेशी पहनने की रुचिवाले लोग कपड़ों की फ़िज़ूलखर्ची कम करते हैं, इस कारण मिल के कपड़े का सालाना औसत अन्दाज़न ४० गज़ का पड़ता है।

(३) गाढ़ा मिल के कपड़े से भी मज़बूत होने के कारण ५ गज़ और भी कम बर्ता जायगा।

(४) चर्खा संघ की बाज़ारू खादी (धुली-धुलाई) जल्दी फटती है, अतः ४० गज।

(५) घर के बने कपड़े ठोस होते हैं, बहुत टिकते हैं। फटने के बाद भी उन्हें जल्दी रुखसत नहीं मिलती, इसलिए ३० गज़ से कम कपड़े से गुज़र हो जाती है। ≡) गज़ खादी इस तरह पड़ेगा। २ छटांक रुई डाढ़ पैसे, धुनाई आधा पैसा, बुनाई -) आना, धोलाई आधा पैसा, अन्य खर्च आधा पैसा। कुल ≡) आना।

(६) कपास)॥, बुनाई -), ओटाई)।, अन्यखर्च)। कुल -)॥।

(७) बुनाई -), ओटाई)। अन्य खर्च आधा पैसा, कुल -)॥

(८) बुनाई के बदले में कपड़े के वज़न का सूत देने पर कुछ भी खर्च नहीं पड़ेगा।

(९) १ गज़ कपड़े का वज़न २ छटांक के हिसाब से १५० गज़ कपड़े के लिए अधिक-से-अधिक २० सेर रुई कातनी पड़ेगी। इस गाँव में अच्छी कातनेवाला ६ नं० का सूत दिनभर में औसतन पाव सेर कात लेती है। इस हिसाब से २० सेर कातने में छुट्टी के कुछ दिन छोड़ने पर भी ४ महीने लगेंगे। सालभर में सारे कुटुम्ब की आवश्यकता से तिगुना सूत १ चर्खे पर आसानी से कत जायगा। इस कारण आमदनी का होना स्वाभाविक है।

ये सौ बातें गौर से सोचने पर खादी के विरोध का क्या कारण है पता नहीं चलता। अमेरिका, रूस, जापान आदि राष्ट्र फी ५ आदमी १ मोटरगाड़ी लेने की दौड़ लगा रहे हैं। इन सामानों की दौड़ों में शरीक होने से हमारा भूखा राष्ट्र सिर्फ थकान और बेहोशी ही पा सकता है। अगर हम अपने स्थिर गति से चलनेवाले चर्खे पर डटे रहें और फी ५ आदमी १ चर्खा देश में चालू करादें तो यह सम्भव नहीं कि हममें से कोई फाके से धनी हो जाय, किन्तु इसमें कोई शक नहीं कि सारा-का-सारा राष्ट्र पनप जायगा। लेकिन इतनी बड़ी राष्ट्र की बात छोटे मुंह से करना छोड़कर सिर्फ गुनरिया गाँव के ही कुछ सत्य-सूचक आँकड़े देकर मैं इस निवेदन को समाप्त करूँगा। इस गाँव में ३९८ कुटुम्ब हैं और ३७५ चर्खे। प्रत्येक चर्खा सालभर में चार महीने से अधिक नहीं चलता। सूत भद्दा, मोटा और कच्चा होता है, बुनाई की दिक्कत है; फिर भी चर्खे के कारण प्रत्येक व्यक्ति ४० गज़ में २५ गज़ कपड़ा घर का बुना ही पहनता है। १५ गज़ मोल लेता है। इस तरह ३०८४५ गज़ कपड़ा

५ गाँव से माल लिया जाता है। यह अन्दाज़ घर-घर के मुखियों के दिये हुए ज़बानी हिसाब से मिला है। किन्तु इतना निश्चित है कि सालभर में साढ़े सात हज़ार से ड्योढ़ी दूनी रक़म गाँव से कपड़े के पीछे बह जाती है, जब कि मालगुज़ारी ६४००) रु० ही है। अगर गाँव में चर्खा न होता तो ७५०० के बजाय ३०००० रुपये कपड़े के पीछे इस गाँव से निकल जाते। अगर गाँववाले वैज्ञानिक ढंग से अग्निहोत्र की तरह घर-घर चर्खाहोत्र भी करने लग जायँ तो सालभर में हर एक गाँव ५००००) खेल खेल में अपनी आमदनी में बढ़ा सकता है और ऐसा करने में दूसरी किसी आमदनी को कुछ भी नुकसान होने का नहीं।

अंकों से पूर्ण इस निवेदन को समाप्त करने से पूर्व मैं पाठकों से, विशेषतः खादी-प्रेमियों से, प्रार्थना करूँगा कि वे अपने-अपने गाँव, कस्बे और ज़िले के आँकड़ों से गुन्दरिया के इन आँकड़ों की तुलना करें। मेरी बात का खण्डन या अनुमोदन करें; खण्डन करनेवालों से मुझे अपने यहाँ की परिस्थिति का अध्ययन करने की नई दृष्टि मिलेगी और अपनी भूल सुधारने का सुयोग भी प्राप्त होगा।

प्रभुदास गांधी

सहयोग का सुफल

"यंग इण्डिया" के पाठक सत्याग्रह के वेड्छ-विद्याश्रम को शायद भूले न होंगे। कोलाबा ज़िले (बंबई हाता) में यह एक ही संस्था थी, जो खादी के प्रचार में सदैव प्रयत्नशील रहती थी। पर १९३२ में यह विद्याश्रम गैरक़ानूनी क़रार दे दिया गया और उसके बहुत-से अध्यापक जेल चले गये। आचार्य का हमारे पास हाल में एक बड़ा रोचक पत्र आया है। विद्याश्रम को उन्होंने अब फिर से खोल दिया है। १९३१ के चौमासे में ज़िले भर का सहयोग प्राप्त करके उन्होंने जो एक छोटा-सा प्रयोग किया था, उसका तमाम ब्योरा अपने पत्र में उन्होंने बड़े रोचक ढंग से लिखा है। विद्याश्रमने यह निश्चय किया था, कि कोलाबा ज़िले की ओर से गांधीजी को, उनकी वर्षगाँठ के उपलक्ष में, ११००००० गज़ सूत भेंट किया जाय, और वह सूत ज़िले के खादी-प्रेमी पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के हाथ का कता हो। गांधीजी तो उन दिनों इंग्लैण्ड में थे, और फिर वहाँ से उनके लौटने के बाद तीन सालतक सूत भेंट करने का कोई मौक़ा ही नहीं आया। आचार्यने अब अपने उस प्रयोग के तमाम आँकड़ों का ब्योरा भेजा है। विद्याश्रम का यह प्रयोगात्मक उद्योग सराहनीय है। २२ गाँवों के लोगोंने विद्याश्रम के इस 'चरखा यज्ञ' में योग दान दिया, और ११००००० की जगह २०००००० गज़ सूत सहज ही एकत्र हो गया। ब्योरा इस प्रकार है:—

११९ पुरुष	६४९८८० गज़
८३ स्त्रियाँ	३१९००० गज़
७५ विद्यार्थी (बालक व बालिकाएँ)	६६८८०० गज़
फुटकर बिना नाम का प्राप्त हुआ	१९९५०० गज़
जयन्ती-सप्ताह में	७४००० गज़
	कुल २०११९८० गज़

२७७ लोगोंने, जिन्होंने अपने नाम भेजे, १७३७६८० गज़ सूत काता। १९९५०० गज़ सूत, जो बिना नाम का आया उसमें १३९५०० गज़ तो ज़िले की विभिन्न पाठशालाओं के लड़के-लड़कियों का काता हुआ था, और ६०००० गज़ सूत ज़िले के बाहर की पाठशालाओं का था। और खुद विद्याश्रम का सूत तो काफ़ी अच्छी मिक़दार में होना ही चाहिए; पर इससे भी अधिक आनन्दप्रद बात तो यह हुई, कि आश्रम के असीम उत्साहने अन्य सैकड़ों लोगों को उत्साहित कर दिया। विद्याश्रम के सूत का विवरण यह है:—

११ अध्यापक	१८३००० गज़
१२ स्त्रियाँ (अध्यापकों के परिवार की)	११७५०० गज़
७५ विद्यार्थी	६६८८०० गज़
१३ भूतपूर्व विद्यार्थी	७३००० गज़
जयंती सप्ताहभर दिन-रात जो चर्खा अखण्ड रीति से चला, उससे	६१००० गज़
कुल १११ कतवैये	कुल सूत ११०३८०० गज़

इसका यह अर्थ हुआ, कि निश्चित सूत से ज़्यादा तो विद्याश्रम के अध्यापकों और विद्यार्थियोंने ही दे दिया। उन्हें यह भय था, कि कहीं ऐसा न हो कि हमारा ज़िला अपना वचन पूरा करने से चूक जाय। पर उनकी आशंका निर्मूल ही निकली—ज़िले के नर नारियों और बच्चोंने थोड़ा नहीं, ९००००० गज़ सूत यज्ञार्थ कातकर दिया।

सूत को तीन सालतक अगर योंही पड़ा रहने देते, तो वह किसी काम का न रहता और उसमें किया हुआ सारा परिश्रम योंही नष्ट हो जाता। यह अच्छा हुआ, कि उस १८९ रतल सूत की खादी बुनवाली गई, जो तोल में १७५ रतल उतरी। कई गाँवों के कतवैयों की इतनी बड़ी संख्या को देखते हुए, खराब या उलझा-पुलझा सूत एक तरह से बहुत ही कम था। १७५ रतल की यह खादी लम्बाई में ४४० गज़ निकली, जिसका तफ़सीलवार ब्योरा यह है:—

३६ इंच पाट की	४० गज़
४७ " "	३२० गज़
५० " "	८० गज़

यह ध्यान देने की बात है, कि चौमासे के दो या तीन महीने के फ़ुर्सत के समय ही यह सारी कताई लोगोंने की। इस प्रयोग का मूल्य उसके असली परिणाम से नहीं आँकना है—देखा जाय तो वह भी किसी तरह उपेक्षणीय तो नहीं है—बल्कि इस बात से उसके मूल्य का हमें अंदाज़ा लगाना है, कि किसी भी प्रयत्न की सफलता में लोक-सहयोग का कितना महत्वपूर्ण स्थान है। गाँव हो, या तालुका हो, या ज़िला हो, इस प्रकार की सेवा या यज्ञ के शुद्ध उद्देश के निमित्त अगर वह सहयोग का सहारा लेगा, प्रेम के साथ मिल जुलकर काम करेगा, तो निश्चय ही वह आत्मशुद्धि की ओर अग्रसर होगा। विद्याश्रम का यह प्रयोग अत्यन्त सराहनीय हुआ। जहाँ भी संभव हो वहाँ हरिजनों तथा दूसरे पददलित मनुष्यों के हित के लिए, क्या अच्छा हो कि इसी प्रकार के कुछ अन्य प्रयोगात्मक कार्य किये जायँ।

'हरिजन' से]

महादेव ह० देसाई

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २६ अक्तूबर, १९३४. [संख्या ३६

विषय-सूची

चीनी मोची

कलकत्ते में एक ज़माने से चीनी मोची जूते बनाने का काम करते हैं। उनकी व्यवसायनिष्ठा इस [illegible] कार की है, कि परदेशी होते हुए भी वे बंगाल के उपयुक्त [illegible] बनाते हैं।

जोड़ा बनाने के साथ साथ ये लोग ऊँचे दर्जे का चमड़ा पकाने के धंधे में भी प्रवेश कर चुके हैं। थोड़े ही वर्षों में इन्होंने इस काम में असाधारण कुशलता दिखलादी है। पुराने ज़माने में जब पेड़ की छाल और वनस्पतियों की सहायता से चमड़ा पकाने का काम होता था, तब बंगाली और हिंदुस्तानी मोची कलकत्ते के आसपास यह काम किया करते थे। उसके बाद क्रोम बनाने का रिवाज चल पड़ा, और इससे इस देश में बढ़िया चमड़ा बनने लगा। चमड़ा तैयार करने की रीति में भारी रद्दबदल हुआ। हिंदुस्तान में बड़े-बड़े कारखाने खुले। कलकत्ते में कई बड़े-बड़े शानदार चर्मालय खुल गये। मगर छोटे छोटे चर्मालयों का नाश करके ये भीमकाय कारखाने अधिक नहीं चल सके। इस अर्से में चीनी मोचियोंने चमड़ा पकाने का काम निश्चयपूर्वक हाथ में ले लिया। बड़े-बड़े चर्मालयों की अपेक्षा ये छोटे-छोटे चर्मालय क्रोम चमड़ा सस्ता बेचने लगे। आज निस्संदेह यह कहा जा सकता है, कि कलकत्ते में तो चीनी मोची ही छोटे-छोटे चर्मालयों के मालिक बन बैठे हैं। इनके दिन-दिन बढ़ते हुए धंधे से प्रसिद्ध कारखानों का भी स्थायीपना डगमगाने लगा है। कुशल कारीगरों और विशेषज्ञों के हाथ से चलते हुए बड़े-बड़े कारखाने कठिनाई से किसी क़दर टिके हुए हैं। पर कलकत्ते की मण्डी में बड़े बड़े कारख़ानों की अब कोई ख़ास पूछ नहीं। चीनी मोची और बड़े-बड़े कारख़ानेवाले एक ही दर पर—जैसे दो आने फ़ी वर्ग फुट—कच्चा चमड़ा ख़रीदते हैं। उसे तैयार करने में बड़े कारख़ानों के फुट पीछे दो आने ख़र्च पड़ जाते हैं। और चीनी मोची दो आने फुट ख़रीदकर उसे तैयार करके पौने तीन आने फुट बेच रहे हैं। बड़े कारख़ानों के चमड़े की दर पाँच-छै आने फुट से कम नहीं होती। एक ही बाज़ार में इस तरह दो भाव तो साथ-साथ चल नहीं सकते। मुमकिन है, कि महँगा चमड़ा क़िस्म में कुछ बढ़िया या चढ़कर होता हो। पर वह दर-दाम को देखते हुए बढ़िया नहीं होता, और सस्ता भी नहीं बिक सकता। इसी कारण से कलकत्ते के एक निचले भाग में, जहाँ पानी-ही-पानी भरा रहता था, वहाँ आज ७० चीनी मोचियों के छोटे-छोटे चर्मालय चल रहे हैं। बड़े बड़े कारख़ानों में विशेषज्ञ हैं, सब जगह चमड़ा बेचने और उसका विज्ञापन करने की उनके पास अच्छी-से-अच्छी सुविधा है; पर जिन बेचारों के पास न कोई विज्ञापन है, न बेचने का ही वैसा कोई साधन है, न पल्ले में पूँजी है, और न किताबों का ही ज्ञान है, ऐसे चंद चीनी परिवार इन बड़े-बड़े कारख़ानों को आज किस तरह भय-विक्षिप्त कर रहे हैं!

हिन्दुस्तानी मोचियों की हालत किस तरह सुधरे हमारे अन्तर में यह गहरी इच्छा है। शहरों या गाँवों में उनकी हीन स्थिति देखकर दुःख होता है। कलकत्ते में बंगाली मोचियों की अपेक्षा बिहारी मोचियों की संख्या अधिक है। देशी मोचियों का स्थान उनके जाति भाइयों में नीचा माना जाने लगा इससे, और उनका वातावरण दारिद्र्य और रोगपूर्ण होने के कारण से सब जूता बनाने का काम भूल गये हैं, उन्हें मोची बनना पसंद नहीं। बारदान के, सन के और हड्डियों के कारख़ानों में या म्युनिसिपैलिटी के कामों से वे अपनी रोज़ी पैदा कर रहे हैं। उनके जो चर्मालय थे, वे सब चीनियों के पदार्पण करने और धुआँधार कारख़ानों के खड़े होजाने से टूट टाट गये।

कैसी अद्भुत शक्ति है इन चीनियों की! एक तरफ़ तो अपने देश में बड़े-बड़े ज़बरदस्त कारख़ाने खोल रहे हैं, और दूसरी तरफ़ परदेश में—हिन्दुस्तान में, इस प्रकार के छोटे छोटे चर्मालय चला रहे हैं! यह आख़िर किस शक्ति के प्रताप से हो रहा है, यह जानने की इच्छा से मैं अपने एक मित्र के साथ कलकत्ते की इस बस्ती में गया। जो मित्र मुझे इस चीनी मुहल्ले में ले गये थे, वह उड़ीसा में रहनेवाले एक बंगाली थे। बी० एस० सी० पास करने के बाद बिहार-सरकार की तरफ़ से इन्होंने छात्रवृत्ति लेकर कलकत्ते के चर्म-विद्यालय में अपना बाक़ी का कोर्स पूरा किया और वहाँ पदवी प्राप्त की। इन्होंने अपना एक चर्मालय खोला है, पर चीनी मोचियों की प्रतिस्पर्धा में उसका टिक सकना मुश्किल ही है।

कलकत्ते के इस भाग में छोटे-छोटे कई पोखरे हैं, उसके चारों ओर इन लोगोंने अपना डेरा डाल दिया है। अपनी-अपनी

झोंपड़ियों में इन्होंने अपने तमाम ज़रूरी साधन जुटा रखे हैं। कई जगह तो तेल से चलनेवाली मशीनें भी इनकी हैं। जिसके पास यंत्र नहीं होता, वह दूसरों के यहाँ से अपना काम करा लेता है। जिनके पास अपना काफ़ी काम नहीं है वे राज़ी-खुशी से अपनी मशीन दूसरों को दे देते हैं, और इस तरह सारे दिन अपनी मशीन चालू रख सकते हैं। इस प्रकार यंत्रवालों और दूसरों को एक-सा लाभ पहुँच रहा है।

एक ही कोठरी में इनका सारा काम-काज होता है। खाल साफ़ करना, क्रोम के पानी में भिगोना-सिझाना, और दूसरा सब काम एक दूसरे की मदद से हरएक कुटुम्ब कर लेता है। क्रोम बनानेतक का या चमड़ा पकानेतक का सब काम ये लोग अपने ही हाथ से करते हैं। रंग भी चमड़े पर हाथ से ही चढ़ाते हैं। रंग चढ़ाने के बाद, चमक लाने के लिए चमड़े पर पॉलिश करते हैं। और फिर मशीन की सहायता से मुलायम करके उसे बाज़ार में बिकने लायक बना देते हैं।

मर्द, उसकी स्त्री और उसके छोटे-बड़े लड़के सब किसी न-किसी काम में लगे ही रहते हैं। ये सब अपने को मज़दूर ही मानते हैं। इनके कारखाने में चार-पाँच हिन्दुस्तानी मज़दूर भी होते हैं। किसी गृहस्थ के यहाँ अनाज बीनने, दलने-पीसने या रसोई बनाने का काम जिस तरह स्वाभाविक प्रसाद से होता है, उसी तरह इनके कारखानों में चमड़ा बनाने का काम शांति और मिठास के साथ होता रहता है। मशीन के होते हुए भी इनकी कुशलता में तनिक भी कमी नहीं आती।

चमड़ा साफ़ करने और रँगने का काम बड़ा ही गंदा होता है। इस काम में बदबू का आना तो अनिवार्य है ही। पर जितनी बदबू आनी चाहिए उतनी ही इनके कारखानों में आती है। बड़े-बड़े चर्मालयों में तो सड़ी बदबू के मारे खड़ा नहीं रहा जाता। उनके मुकाबले में तो इन झोंपड़ियों की दुर्गन्ध कुछ भी नहीं। इन्हें हम एक तरह से दुर्गन्धशून्य चर्म कुटीर कह सकते हैं। गंदा और बीमारी पैदा करनेवाला मैल का भी चमड़ा इन सुघड़ चीनियों के हाथ से शोभा दे उठता है। इनके कपड़े-लत्ते, बर्तन भाँडे, चमड़ा पकाने-सिझाने का सारा साज-सामान सुंदर और व्यवस्थित रहता है। इनके घर-बखरी सदा स्वच्छ और सुहावन दीखते हैं। चर्मालय तो इनके आशातीत स्वच्छ होते हैं।

एक चीनी चर्मालय के मालिक के साथ उस दिन बात करने का मुझे अवसर मिला था। चमड़े पर रंग चढ़ाने का काम ख़त्म करके वह उठा ही था। एक मोटी कूची से उसने रंग चढ़ाया था। उसके हाथ, पैर, या कपड़ों पर रंग का एक भी दाग नहीं लगा था। वह अच्छा तन्दुरुस्त था और चेहरा खिला हुआ था। उसने कहा, "बाबू, तुम्हारी समझ में यह बात नहीं आयगी। हम लोग मज़ूरों की ही तरह काम करते हैं। चमड़े की क़ीमत नहीं लेते। आठ पैसे की कच्ची खाल खरीदते हैं और उसे पकाकर दस-ग्यारह पैसे फुट के हिसाब से बेचते हैं। तुम यह किस तरह समझोगे? तुम्हें मज़ूर चाहिए, यह चीज़ चाहिए, वह चीज़ चाहिए! तुम्हारी तरह-तरह की पंचायतें हैं! हम लोग तो ख़ुद ही मज़ूर हैं और ख़ुद ही मालिक। यह काम न तो तुम्हारे बूते का है, न तुम्हें पुसायेगा ही।"

अपनी विशेषता को ये लोग अच्छी तरह समझते हैं, और इसी से विदेश में भी स्वाश्रयी बनकर मज़े से अपना जीवन बिता रहे हैं। इनमें कोई अमीर नहीं, सब एकसमान ग़रीब हैं। ख़ूब मेहनत करते हैं और उसमें जो मिलता है, उसी से संतुष्ट रहते हैं। किसी के पास न पूँजी है न मिल्कियत है। बहुत कम सूद पर रुपया उधार लेते हैं और उस रकम के ज़रिये अपना काम चला ले जाते हैं। कोई कोई मिस्त्री मामूली मेहनताना लेकर इनके कल-पुर्ज़े का काम कर देते हैं। खर्च इसमें बहुत ही कम पड़ता है। अपना सारा काम ये ख़ुद ही करते हैं। कपड़े धोना, हजामत बनाना और आवश्यकतानुसार खेतों का काम भी ये ख़ुद ही कर लेते हैं। कीचड़-पानीवाली जगह के होते हुए भी इन चीनियोंने वहाँ यूरोपीय ढंग के फुटबाल आदि के क्लब बना लिये हैं, और हर तरह की सुख-सुविधा कर रखी है।

इन लोगों के चर्मालयों के आकर्षण से चमड़ा-संबंधी सारी ज़रूरत की चीज़ों की दुकानें भी वहाँ खुल गई हैं। कच्चा, पक्का, रंगीन, टुकड़ेल सभी तरह का चमड़ा खरीदार इनके यहाँ से खरीद ले जाते हैं।

इनका संतोषी, स्वच्छ, सुंदर चेहरा देखकर बड़ा आनंद होता है। हिंदुस्तानी मोची-मज़ूर और चीनी मालिक-मज़ूर यहाँ एकसाथ काम करते हैं। देखते ही ऐसा लगता है, कि चीनी लोग सभ्य समाज के मनुष्य हैं। इनके कपड़े-लत्ते जितने सुंदर होते हैं, उतने ही ये लोग अपने काम में भी कुशल होते हैं। इसी से ये नीरोग और प्रसन्नचित्त रहते हैं। मगर हिंदुस्तानी मोचियों के कपड़े-लत्ते और शरीर गंदे होते हैं और हमेशा गंधाते रहते हैं। ग़रीबों के पैर में जूतियाँ भी नहीं होतीं। बाल रूखे और उलझे-पुलझे रहते हैं। इन सब बातों से वे सभ्य समाज के अयोग्य ही ठहरते हैं।

अशिक्षित चीनी मोची और भारतीय मोची के बीच इतना अधिक अंतर क्यों? एक मालिक-मज़ूर और दूसरा महज़ मज़ूर आख़िर क्यों? चमड़े के धंधे में नित्य नूतनता लाने की ज़रूरत होती है, और इन चीनियोंने ज़माने की ख़ासियत पहचान ली है। ये कोई बड़े जानकार नहीं होते, पर नई-से-नई जानकारी का लाभ उठाने के लिए वे उत्सुक अवश्य रहते हैं।

हमारे हिन्दुस्तानी मोची किसी भी तरह इन चीनी मोचियों की प्रतिस्पर्धा में नहीं टिक सकते। बताइए, क्या बात है?

बंगला से] **सतीशचंद्र दासगुप्त**

अनुकरणीय

श्रीयुक्त चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य लिखते हैं :—

श्री सी० सी० वेंकटाचलम् नाम के एक सवर्ण हिन्दू युवक अपने गाँव की सफ़ाई का काम बड़ी लगन के साथ कर रहे हैं। इस गाँव का नाम अलगापुरी है और यह तिरुवन्नामलै? के समीप है। सफ़ाई का यह अनुकरणीय विवरण मैं श्री वेंकटाचलम् के ही शब्दों में नीचे देता हूँ :—

"मैं यह भली भाँति जानता हूँ कि मैं अपने गाँव की सफ़ाई का काम अपने बल-भरोसे पर नहीं, किन्तु केवल भगवान् के आसरे ही कर रहा हूँ। इस गाँव के एक संघ की देख रेख में मैं यह सेवा-कार्य कर रहा हूँ। संघ के पास तामिल भाषा के कुछ दैनिक और मासिक पत्र आते हैं। अपने पुस्तकालय में हमने करीब ५० पुस्तकें भी संग्रह कर रक्खी हैं। नित्य सबेरे ६ बजे

मैं अपने गाँव की सफ़ाई किया करता हूँ । सड़कें साफ करता हूँ और उन पर पड़ा हुआ तमाम गोबर, मैला तथा मरे हुए जानवर और खपरे, ईंट-रोड़े, पत्थर-कंकर इत्यादि हटाता हूँ । मैले पर पहले मिट्टी डाल देता हूँ और फिर खपरे से एक टीन के बर्तन में डालकर उसे फेंक देता हूँ । इस काम में मुझे फावड़ा उतना उपयोगी नहीं जँचा । मैंने यह काम ११ मार्च १९३४ से आरम्भ किया है । नित्य तीन घण्टे डटकर काम करता हूँ । इसके बाद १० बजे अपने घरू काम-काज में लग जाता हूँ । जिस झाड़ू से म्यूनिसिपैलिटी के मेहतर सड़कें झाड़ते-बुहारते हैं, मैं भी उसी तरह की झाड़ू से काम लेता हूँ । हाँ, सफाई करते समय मैं आधी बाँह की कमीज और जाँघिया ज़रूर पहन लेता हूँ । इन सात महीनों में कुल मिलाकर ३० दिन मैं काम नहीं कर सका, सबब अस्वास्थ्य और दूसरे कुछ घरू कारण । सफ़ाई के इस काम के आय-व्यय का हिसाब नीचे देता हूँ :—

खर्च—

कूड़ा-कर्कट ढोने के लिए गाड़ी	११)
औज़ार वगैरह	१।=)
काम करते समय की वर्दी	३)
कुल	१५।=)

जमा—

कूड़ा-कर्कट बतौर खाद के बेचा	७)
त्यौहारों के अवसर पर तथा नित्य के	
पाई-फंड से प्राप्त	३॥)
एक मित्रने दिया	५)
	१५॥)
रोकड़ बाकी	।=) ”

यह है सच्ची मूक सेवा । छोटे-से पैमाने पर खासा अच्छा काम हो रहा है—न कोई बड़ी लियाकत की या बहुव्यय-साध्य स्कीम है, न पन्द्रह-पचास आदमियों की ज़रूरत है । एक युवकने इतना बड़ा काम अकेले ही अपने कन्धों पर उठा रखा है । क्या अच्छा हो, कि श्री वेंकटाचलम् का यह ग्राम-सेवा-कार्य देश के कोने-कोने में संक्रामक सिद्ध हो ।

शुभारंभ

बंबई में लैमिंगटन रोड पर पार्थ सिनेमा के सामने श्री केशवराम जोशी और श्री रविशंकर ठाकरने मिलकर एक उपाहारगृह खोला है, जिसका उद्घाटन-संस्कार उस दिन सरदार वल्लभभाई के हाथ से कराया गया । इस उपाहारगृह में विशेषता यह है, कि इसमें सब जातियों और धर्म के लोग आज़ादी से जायेंगे । हरिजन, बिना किसी रोकटोक के, इस उपाहारगृह में जा सकेंगे, उन्हें अपनी जाति न छिपानी होगी । अपनी जाति छिपाकर तो हरिजन आज भी बंबई जैसे शहरों के उपाहारगृहों और देश के तमाम मंदिरों में जा सकते हैं और जाते ही हैं । पर इससे अस्पृश्यता दूर नहीं होती । हरिजन अपनी जाति बतलाते हुए डरें, इससे तो अस्पृश्यता और भी दृढ़ होती है । १९३२ में जब हरिजन-आंदोलन खूब ज़ोर शोर से शुरू हुआ, तभी गांधीजीने ज़ोर देकर कहा था, कि बंबई-जैसे नगर में हिंदू-उपाहारगृहों के मालिकों को समझाकर उनमें हरिजनों का प्रवेश करने की स्वतंत्रता दिलानी चाहिए । हरिजन-सेवक-संघ की ओर से उस बाद में एक प्रसिद्ध उपाहारगृह के ग्राहकों का मत-संग्रह किया गया, तो प्रतिशत ८८ लोगोंने हरिजनों के पक्ष में राय दी । तो भी उस उपाहारगृह के मालिक की हरिजनों को प्रवेश-स्वातंत्र्य देने की हिम्मत न पड़ी । उसके बाद गांधीजीने कई बार कहा, कि कोई मालिक तैयार न हो तो संघ को खुद ही ऐसा एक उपाहारगृह खोल देना चाहिए । यह काम भी कई अड़चनों के कारण न हो सका । यह हर्ष की बात है कि वह कमी अब इस उपाहारगृह से पूरी हो गई है । आशा है, कि सुधारक तथा दूसरे सब लोग, जिन्हें हरिजनों से कोई खास विरोध नहीं, इस उपाहारगृह को अवश्य प्रोत्साहन देंगे । जो काम आज चोरीछिपे हो रहा है, वह क्यों न हिम्मत के साथ खुले आम किया जाय, यही इस उपाहारगृह का मुख्य उद्देश है । यह गृह अगर सफलतापूर्वक चल गया तो अन्य गृहों के मालिक भी हिम्मत के साथ हरिजनों के लिए अपने गृहों के द्वार खोल देंगे ।

चंद्रशंकर शुक्ल

एक ही धुन

मध्यभारत की एक रियासत का एक हरिजन-सेवक अध्यापक लिखता है :—

“जतन तो हमेशा यही करता हूँ, कि मैं अपना अधिक-से-अधिक समय हरिजनों की शिक्षा-सेवा में ही लगाऊँ,पर कह नहीं सकता, कि कहाँतक मुझे सफलता मिली है । पाठशाला में तो सिर्फ मेहतरों के ही छोटे छोटे लड़के आते हैं । लड़का दस साल का भी नहीं होता, कि उससे टहल कराने लगते हैं । बड़ी उमर के कमेटी में नौकर हैं । उन्हें दिन में तो मरने की भी फुर्सत नहीं । इसलिए उन्हें रात को उनके मुहल्ले में ही जाकर एक घंटे पढ़ा देता हूँ । यही हाल दूसरी मज़दूरपेशा जातियों का है । कुम्हारों और मेन्द्रारों को ३ बजे से ४॥ बजेतक पढ़ाता हूँ, और चमारों को ५ से ७ बजेतक । ८ बजे से ९ बजेतक गोंड़ों की बस्ती में पढ़ाने जाता हूँ । गोंड जाति को इधर अछूत मानते हैं । यह जाति बड़ी मेहनती और ईमानदार होती है । गोमगुड़ तो गोंड़ों से मिलती ही नहीं । आठ महीने तो महुआ, अचार, बेर आदि जंगली फलों से पेट भरते हैं और मुश्किल से चार महीने मोटा-झोटा अनाज खाने को मिलता है । चारा काटने, ईंधन रखाने और गन्ना लगाने में ये लोग एक ही होते हैं । पढ़ने का बड़ा चाव है । एक ही जगह और एक ही दरी तो सब हरिजन जातियाँ पढ़ नहीं सकतीं, इसलिए मैं हर एक की सुविधा को देखकर अलग-अलग समय देने का प्रयत्न करता हूँ । मुहल्ले दूर-दूर हैं । सब मुहल्लों में जाना मुश्किल हो है । मनोरथ तो बहुत बड़ा है, पर उतनी शक्ति कहाँ कि उसे पूरा करूँ ? न विद्या का ही बल है, न धन का ही । मन लगता भी अपने बल-बूते का नहीं । केवल इस तन से जो बनता है सेवा कर रहा हूँ । यहाँ कोई राह दिखानेवाला भी तो नहीं है । एक भगवान् का ही बल-भरोसा है । इतनी ही लगन है, कि इस क्षणभंगुर देह से हरिजन-सेवा न करली, तो धिक्कार है ऐसी जिन्दगानी पर ।”

हरिजन-पाठशाला के इस उत्साही अध्यापक की लगन प्रशंसनीय और अनुकरणीय है, इसमें सन्देह नहीं ।

वि० ह०

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २६ अक्टूबर, १९३४

हरिजनों के प्रीत्यर्थ

एक सज्जन पूछते हैं—

"आप यज्ञार्थ अथवा आत्मार्थ सूत कातने के विषय में क्यों इतना ज़ोर दे रहे हैं? यज्ञार्थ कातकर लोग सूत को दे देते हैं, और अपने लिए कातकर उसकी खादी बुनवाकर पहनते हैं। दोनों ही दशाओं में आप ग़रीब कतवैये के मुँह का कौर छीन लेते हैं, जिस कतवैये को कि, आपके ही कहे अनुसार, कम-से-कम रोज़ी मिलती है। यज्ञार्थ कताई से खादी का दाम घटवाने में सहायता करके ग़रीब की कुछ तो सेवा हो सकती है। पर अपने लिए कतवाकर तो निश्चय ही आप ग़रीब कातनहार के मुँह की रोटी छीन लेते हैं।"

कातना अगर सार्वदेशिक हो गया होता, तो पत्र-लेखक का यह कहना थोड़े अंशों में अथवा सर्वांश में सत्य समझा जा सकता था। मगर आज तो कितने ही हरिजन ऐसे हैं, जिनकी उपार्जन-शक्ति ५० फ़ी सदी घट गई है; कारण कि उन हरिजन बुनकरों को बुनने के लिए हथकता सूत नहीं मिल रहा है। आज तो वे किसी तरह बड़ी कठिनाई से अपना उदर भर रहे हैं। देश में अगर बड़े पैमाने पर यज्ञार्थ कताई चलती होती तो बुनकरों की ऐसी दुर्गति कभी न हुई होती। दर्शास में हरिजनों की ही तरह दुर्दशाग्रस्त दस हज़ार बुनकरों के प्रतिनिधि काम के अभाव में, अथवा यों कहिए कि, हथकता सूत न मिलने के कारण किस प्रकार भूखों मर रहे हैं—यह मैं इस पत्र में लिख चुका हूँ।

यह कहना निरर्थक है कि कोरा मिल के कते सूत के कपड़े बुन सकते हैं। ये दसहज़ार बुनकर मिल के कते सूत के कपड़े तो बुनते ही थे। पर जापान की प्रतिस्पर्धा के कारण मिल के कते सूत के हथबुने कपड़े की माँग आज बहुत कम हो गई है। खादी बुननेवालों को अपनी खादी के लिए स्थानीय बाज़ार में ख़रीदार मिल सकते हैं, पर मिल के सूत के हथबुने गाढ़े के लिए यह शक्य नहीं है। एक समय ज़रूर ऐसा था, जब हथकता सूत चाहे जितना मिल जाता था, क्योंकि यज्ञार्थ कातनेवालों की संख्या हज़ारों की नहीं तो सैकड़ों की तो थी ही, और कमी थी तो बुनकरों की थी। अब यज्ञार्थ कातने का रिवाज नष्ट हो गया है और इससे ऐसे कितने ही बुनकर बेकार हो गये हैं, जो ख़ुशी से हथकते सूत की खादी बुन सकते थे। इसलिए जबतक बाज़ार में खादी की माँग है, और जबतक आवश्यकता के अनुसार भारी परिमाण में हथकता सूत मिलने न लग जाय, तबतक राष्ट्र के जीवन में 'यज्ञार्थ' तथा 'आत्मार्थ' कातने का निश्चित स्थान है। इसके द्वारा दरिद्रनारायण की, और विशेषकर हरिजनों की उपयुक्त और प्रत्यक्ष सेवा हो जाती है।

फिर यह कताई बुद्धिशाली, सुशिक्षित स्त्री पुरुषों के हाथ में होगी तो वह कलामयी बनेगी और इससे उसमें एक महान् विकास हो सकेगा। चर्खे और उसके दूसरे साधनों में—चर्खी और धुनकी में—जो अद्भुत सुधार हुआ है वह सब इस प्रवृत्ति में मध्यमवर्ग के सुशिक्षित स्त्री-पुरुषों के दिलचस्पी लेने के कारण ही हुआ है। 'हरिजन' के सब पाठकों को शायद मालूम न होगा, कि अखिल भारतीय चर्खा संघ के मंत्री एम० ए० हैं और बम्बई के एक प्रसिद्ध तथा व्यवसाय-सफल बैंकर के पुत्र हैं, और संघ के अध्यक्ष भारत के कुशल-से-कुशल व्यापारियों में से एक हैं; तामिल नाड में खादी प्रवृत्ति के संचालक एक ऐसे सज्जन हैं जो वहाँ के किसी समय एक सुप्रख्यात वकील थे; बंगाल के खादी-प्रचार के संचालक एक तो सुयोग्य डाक्टर हैं, और दूसरे कुशल रसायनशास्त्री; और संयुक्त प्रान्त में खादी-कार्य एक राष्ट्रीय महाविद्यालय के भूतपूर्व आचार्य के द्वारा चल रहा है। खादी-द्वारा दरिद्रनारायण की सेवा का व्रत लेनेवाले दूसरे अनेक पुरुषों का उल्लेख मैं कर सकता हूँ। यहाँ तो मैंने थोड़े ही लोगों की चर्चा की है। इधर खादी की जो सुन्दर उन्नति हुई है वह इन निष्ठावन्त सेवकों की सेवा के बिना असम्भव थी, और इतने वर्षों में कातने की इस प्रवृत्ति ने लगभग ढाई लाख मनुष्यों की जेब में दान-पुण्य के रूप में नहीं किंतु प्रामाणिक मज़दूरी के रूप में, जो आधा करोड़ रुपया पहुँचा है वह न पहुँचता। चर्खे के अतिरिक्त किसी अन्य या बेहतर तरीक़े से ऐसा शान्त सेवाकार्य न होता। इस कार्य की बदौलत एक-से-एक मनुष्य देश के कुछ अत्यन्त सुसंस्कृत स्त्री-पुरुषों के घनिष्ठ संपर्क में आये हैं। दरिद्रों की अँधेरी काल कोठरियों में इसने आशा की किरण पहुँचाई है। मृतप्राय शरीरों में इसके द्वारा पुनः हृदयस्पन्दन होने लगा है। इसने दिन-दूना के तड़पते हुए हज़ारों बच्चों को दूध दिया है। अकाल के दिनों में इस प्रवृत्ति ने सहज ही अनेक ग्रामवासियों की रक्षा की है। इसने काहिली को कम किया है और हज़ारों मनुष्यों से भीख माँगने का धन्धा छुड़वा दिया है।

और इस चीज़ का अभी आरम्भ ही है। काम करनेवालों की संख्या बहुत ही कम है। जो कार्यकर्त्ता आज मौजूद हैं, उन्हें अधिक आत्मत्याग करने और अधिक एकाग्र होने की आवश्यकता है। इस राष्ट्रीय और मानवसेवा के प्रवृत्ति क्षेत्र में अभी हज़ारों मनुष्यों का समावेश हो सकता है

इसलिए यह कहना असत्य है, कि 'यज्ञार्थ' कातने अथवा 'आत्मार्थ' कातने से हम ग़रीब कतवैयों की रोज़ी में नुक़सान पहुँचाते हैं। जिससे हो सके उसका यह परमधर्म है कि वे और नहीं तो भारत के अवर्ण बहिष्कृत हरिजनों के ही प्रीत्यर्थ कम-से-कम आध घण्टा सूत काता करें।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

एक सेवक की कठिनाई

लायलपुर के एक सज्जन के ये प्रश्न ठीक ही हैं:—

"१—इधर कई चकों में, जहाँ हरिजन रहते हैं, मुसलमानों या सिक्खों की ही आबादी है। सच पूछिए तो हिंदू तो वहाँ हैं ही नहीं, या अगर दो-चार हिंदू दुकानदार हैं, तो वे अपने ज़मींदार मालिकों से इतना अधिक दबते हैं, कि वे उनको हुक्मउदूली नहीं कर सकते। उनकी तो 'जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी' की दशा है। उन्हें वे नाराज़ कैसे कर सकते हैं? इसलिए वे हिंदू अपने हरिजन भाइयों के लिए पाठशाला का प्रबन्ध नहीं करा सकते। यह कठिनाई आख़िर कैसे दूर हो?

२—'आदि-धर्मी अलग ही उलटा प्रचार-कार्य कर रहे हैं। ये लोग हिंदुओं के प्रतिपक्षी बनते जा रहे हैं, इन्होंने अपने को हिंदू-समाज से अलग कर रखा है। इन लोगों के इस घातक प्रचार-कार्य का क्या इलाज है?

३— फिर अनेक अछूत जातियों के बीच आपस में ही छुआछूत मौजूद है!"

पहले प्रश्न के विषय में, सर्वप्रथम तो मुसलमान और सिक्ख भाइयों से अनुनय विनय करनी चाहिए, कि वे हरिजनों को सार्वजनिक कुओं से पानी भरने की इजाज़त दे दें। उन्हें विनयपूर्वक समझाने के साथ-साथ, या इस उपाय के कारगर न होने के बाद दूसरा रास्ता यह है कि हरिजनों को जितने पानी की ज़रूरत हो उतना वे खुद ही कुएँ से खींचकर उन्हें दे दिया करें। निस्संदेह अदालतों से भी सहायता ली जा सकती है। ठीक सर्वसाधारण की ही तरह सार्वजनिक कुओं, सड़कों आदि का उपयोग हरिजन भी कानूनन कर सकते हैं। पर यह अंतिम इलाज है, जो बहुत ही कम अवसरों पर करना चाहिए।

दूसरे प्रश्न के बारे में तो इतना ही कहा जा सकता है, कि सवर्ण हिंदुओं के अधिक-से-अधिक प्रायश्चित्त और हृदय परिवर्तन से ही उनके और हरिजनों के बीच का यह दिन दिन बढ़ता हुआ मनमुटाव दूर हो सकता है। आदि-धर्मी खुद हिंदू तो हैं ही। उनका यह अलगाव उन पर अत्याचार करनेवाले सवर्ण हिंदुओं के विरुद्ध विद्रोह का सूचकमात्र है। जब ये आदि-धर्मी देखेंगे, कि अस्पृश्यता अब जड़मूल से नष्ट हो गई है, तब वे पुनः हिंदू-धर्म में आ मिलेंगे।

रहा अब तीसरा प्रश्न। विभिन्न अस्पृश्य जातियों में विद्यमान अस्पृश्यता सर्वांश में नहीं तो अधिकांश में उसी परिमाण में दूर होगी, जिस परिमाण में कि सवर्ण हिंदू अस्पृश्यता का निवारण करेंगे। क्योंकि सवर्ण हिंदुओं का देखा-सीखी ही तो हरिजन आपस में छुआछूत मानने लगे हैं, यह सब सवर्णों के ही पाप का प्रत्यक्ष फल है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

एक महान् हरिजन-सेवक का स्वर्गवास

राजासाहब, कालाकांकर २० सितम्बर को असमय ही स्वर्ग सिधार गये। वे एक महान् हरिजन-सेवक थे। लगभग एक साल से वे बीमार थे। मैं पिछली बार जब कलकत्ते गया, तो मैं उन्हें मुश्किल से पहचान सका। वहाँ वे अपना इलाज करा रहे थे। राजासाहब संयुक्त प्रांत के एक अत्यन्त उदारहृदय तालुकेदार थे। उनके विषय में निस्संदेह यह कहा जा सकता है, कि उन्होंने यथाशक्ति अपना जीवन अपनी प्रजा के लिए बिताया। बड़ी सादी रहन-सहन थी। लोगों से खूब दिल खोलकर मिलते थे। हरिजनों पर उनका उतना ही प्रेम था, जितना दूसरी जातियों पर। अपने प्रत्यक्ष आचरण के दृष्टांत से वे अपनी रियासत के सवर्ण हिंदुओं से अस्पृश्यता छुड़वाने और हरिजनों को भी वही सब अधिकार दिलवाने का प्रयत्न करते रहते थे, जो उनकी सवर्ण प्रजा को प्राप्त थे। राज्य के प्रबंधाधीन तमाम विद्यालय, कुएँ और मंदिर उन्होंने हरिजनों के लिए खोल दिये थे। हमें आशा है, कि रानी साहबा तथा कालाकांकर के अन्य राज-कुटुम्बी स्व० राजा साहब की स्मृति को अजर-अमर बनाये रखने के लिए उनकी उस प्रेमपूर्ण उदारता का सदैव अनुसरण करते रहेंगे।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

चरखा-संघ की सेवा

अखिल भारतीय चरखा-संघ इस समय ५००० से ऊपर गाँवों की सेवा कर रहा है।

वह २२०००० कतवैयों और बुनकरों तथा २०००० धुनियों को रोज़ी दे रहा है।

अपने इस धरम के प्रयोग में उसने इन गाँवों में सवा दो करोड़ रुपये से भी ऊपर पहुँचा दिये हैं।

इसे यों भी कह सकते हैं, कि चरखा-संघ के प्रयत्न से देश में कम-से-कम इतनी संपत्ति पैदा हुई और उसने गाँवों के किसी उद्योग-धंधे का नाश करके नहीं, बल्कि उनके फुर्सत के समय का उपयोग कराके उनकी सुख-समृद्धि बढ़ाई।

इन सवा दो करोड़ रुपयों में से तीन-चौथाई तो सिर्फ़ कतवैयों की ही जेब में गया।

और १५ लाख रुपये किसानों को उनके कपास की क़ीमत के तौर पर मिले।

कतवैये, बुनकर और धुनिये की कमाई में १२) वार्षिक की वृद्धि हुई।

किसी-किसी कतवैये की कमाई में तो प्रतिशत ४३ तक की वृद्धि हुई है।

यह कोई कपोल-कल्पना नहीं है। ये आँकड़े तो मेरे खास निवेदन पर तैयार किये गये हैं, और कोई भी सत्यशोधक चाहे तो वह इन आंकड़ों की तसदीक कर सकता है। ऊपर मैंने जो आँकड़े दिये हैं, उनमें किसी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं है, अगर है तो कुछ अल्पोक्ति ही है।

अंग्रेज़ी से] मो० क० गांधी

यही दशहरा है?

शंनो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।

—वेदवचन

दो पैरवाले और चार पैरवाले बालकों से धरती माताने कहा—'मेरा धान्य और घास तुम्हारे ही लिए है। यही मेरा दूध है; जो पियेगा वह पुष्ट होगा।'

दो पैरवाले मनुष्य तो हुए बड़े भाई-बहिन; और चार पैरवाले पशु हुए छोटे भाई-बहिन। छोटे बड़ों की आज्ञा में रहे। दोनोंने परिश्रम किया; और जहाँ-तहाँ यह सकलजलोतला तथा सुजला धरणी सुफला सस्यश्यामला होगई। सर्वत्र आनन्द छागया।

मनुष्यने कहा, 'चलो, हम उत्सव मनावें।' पशुओंने कहा, 'हाँ, उत्सव तो मनाना ही चाहिए।'

उत्सव आरम्भ हुआ। किन्तु एकाएक मनुष्य को यह क्या सूझा! मनुष्यने पशु को पकड़ा और उसकी गर्दन पर छुरी चलादी!

धरती काँप उठी। आकाश में हाहाकार मच गया। दिशाएँ बोल उठीं, 'यही है वह उत्सव?'

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

खादी का नवविधान

[थोड़े दिन हुए, कि आंध्र देश के कुछ प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता गांधीजी के साथ खादी-कार्य के भविष्य के विषय में कुछ प्रश्नों पर बात करने आये थे। इस चर्चा के सिलसिले में गांधीजीने खादी-कार्य के पुनर्संघटन के संबंध में कुछ नये और अत्यंत मार्मिक विचार बहुत स्पष्टता और विस्तारपूर्वक समझाये थे। जिस लक्ष्य को सामने रखकर आजतक हमने खादी-कार्य किया है, उससे खादीने चामत्कारिक उन्नति तो की है; पर अब अगर हमें इससे आगे बढ़ना है, तो इस मार्ग को छोड़कर कोई दूसरा ही मार्ग पकड़ना चाहिए, गांधीजी का यह मुख्य अभिप्राय था। इस नवविधान में खादी-संस्थाओं में प्रजाकीय तत्व के लिए स्थान नहीं हो सकता, वे लोकतंत्रात्मक नहीं बन सकतीं—अथवा प्रजाकीय तत्त्व का समावेश हो सकता है तो कहाँतक, साधारण व्यापार-संबंधी अर्थशास्त्र के नियम खादी के साथ कहाँतक लागू होते हैं, रोज़गार या व्यापार के साधन के रूप में खादी प्रवृत्ति निभ सकती है या नहीं—इन सब प्रश्नों पर भी उस दिन अच्छी तरह चर्चा हुई थी। उस सारी बातचीत का सारांश मैं नीचे देता हूँ—प्यारेलाल]

खादी-संस्थाओं में लोकशाही ?

खादी स्वराज-प्राप्ति का सबसे सबल साधन है, तो भी हमें अपनी खादी-संस्थाओं को सिर्फ़ आर्थिक प्रवृत्ति के रूप में ही चलाना है। ऐसी संस्थाओं में लोकशाही का तत्त्व एक अमुक अंश में ही दाखिल किया जा सकता है। लोकशाही में संघर्ष और प्रतिस्पर्धा के लिए भी स्थान होता है; किंतु आर्थिक संस्था में यह बात कहाँ चल सकती है। व्यापार के क्षेत्र में क्या हम अलग अलग दलों या परस्पर विरोधी पक्षों की कल्पना कर सकते हैं? अगर ऐसा हो तो सारा व्यापार ही अस्तव्यस्त हो जाय। फिर खादी की संस्थाएँ तो महज़ आर्थिक संस्थाएँ ही नहीं हैं; इससे बढ़कर वे पारमार्थिक संस्थाएँ भी हैं। उनका उद्देश किसी भी प्रकार के स्वार्थसाधन का नहीं, किंतु लोकहित-साधन का है। हमारी खादी-संस्थाओं का ध्येय तो जनता के 'प्रेय साधन' का नहीं, किंतु उसके 'श्रेय-साधन' का है। इसलिए रोज़ रोज़ बदलते हुए लोकमत से स्वतंत्र रहकर भी उन्हें कितनी ही बार अपना काम चलाना पड़ेगा। इन संस्थाओं को व्यक्तियों की महत्वाकांक्षा को पोसने का साधन तो बनना ही नहीं चाहिए।

उत्तर-दक्षिण का अन्तर

खादी की उत्पत्ति के नवविधान पर विचार करते हुए आपको यह न भूलना चाहिए, कि कई बातों में खादी के अर्थशास्त्र और सामान्य प्रचलित अर्थशास्त्र के बीच उत्तर-दक्षिण का अन्तर है। इंग्लैण्ड के प्रख्यात अर्थशास्त्री ऍडम स्मिथने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' में एक बात बड़े मार्के की कही है। मुझे उसका सदा स्मरण रहता है। अर्थशास्त्र के कुछ नियमों को उन्होंने व्यापक और स्थिर बताया है। फिर उन अटल नियमों में विघ्न डालनेवाली कई बातों का उन्होंने वर्णन किया है। इन बाधक वस्तुओं में उन्होंने मानवी प्रकृति अथवा उसके अंतर्गत परमार्थवृत्ति को लिया है। खादी के अर्थशास्त्र में इससे उलटा है। मनुष्य-स्वभाव की परमार्थ-भावना तो खादी के अर्थशास्त्र का मूलाधार है। ऍडम स्मिथने जिसे नफ़ा और टोटे की गिनती करनेवाली शुद्ध आर्थिक वृत्ति का नाम दिया है वह 'स्वार्थ वृत्ति' खादी के प्रगति-पथ में विघ्नरूप है और उसका प्रतिकार करना खादी का कर्तव्य है। इसलिए जिन युक्तियों से धनोपार्जन के लिए व्यापार में साधारण रीति से काम लिया जाता है, उनके लिए खादी के क्षेत्र में निश्चय ही स्थान नहीं। बतौर उदाहरण के, ठगी, दगाबाज़ी, झूठ, बढ़िया माल में हलके माल की मिलावट, जनता के व्यसनों या कुवासनाओं को उत्तेजन देकर व्यापार बढ़ाना इत्यादि बातें जो मिलों के उद्योग-धंधों या साधारण व्यापार में दिन दहाड़े चलती हैं, वे हमारी खादी-प्रवृत्ति में सर्वथा त्याज्य हैं। मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए बुनकर या कातनहार को कम-से-कम मजूरी देने की नीति को खादी-प्रवृत्ति में स्थान मिल ही नहीं सकता। इसी प्रकार अव्यावहारिकता के कारण घाटा उठाकर खादी-प्रवृत्ति नहीं चल सकती। आज हमारी खादी-संस्थाओं को जो घाटा उठाना पड़ता है, उसका कारण हमारे कार्यकर्त्ताओं का अज्ञान ही है। खादी में कतवैयों आदि को अपने परिश्रम का पूरा-पूरा फल मिल रहा है, और बीच के व्यापारियों तथा व्यवस्थापकों को अपनी मेहनत से ज़रा भी अधिक नहीं मिलता।

'क्लीच' न कराइए

अब एक ही दरजे का तमाम माल तैयार करने की बात लीजिए। खादी में ऐसे एकसरापन की आशा नहीं की जा सकती। राजगोपालाचार्यने एक बार कहा था, कि साधारण कातनेवाली ग़रीब स्त्री से यह आशा नहीं की जा सकती, कि वह हमेशा मिल के जैसा एकरस सूत कातेगी। वह कोई जड़ साँचा तो है नहीं, वह मनुष्य है। वह सुख-दुःख का अनुभव करती है। कभी चंगी रहती है तो कभी बेज़ार। कभी उसकी तबीयत अच्छी नहीं होती, कभी उसका बच्चा या कोई दूसरा नातेदार बीमार पड़ जाता है तो उसका चित्त ठिकाने नहीं रहता और उसकी उस व्यग्रता का असर कताई पर ज़रूर पड़ता है। तुम्हारा हृदय अगर वज्र-सा कठोर नहीं है, तो जहाँतक वह जान-बूझकर ख़राब सूत नहीं कातती वहाँतक, जैसा भी सूत वह काते तुम्हें स्वीकार कर लेना चाहिए। उसके शुद्ध परिश्रम का पवित्र सूत हमें प्रिय लगना ही चाहिए। मशीन के बने माल में यह व्यक्तित्व नहीं होता, इसलिए इस प्रकार का आध्यात्मिक संतोष वह नहीं दे सकता। मशीनों का बना माल सिर्फ़ आँख को ही रिझाता है, पर खादी की कला मानवी भावनाओं को संतोष देती है। वह पहले हृदय का स्पर्श करती है। खादी में बाह्य सौन्दर्य का स्थान तो पीछे आता है, इसी से मैंने निखरी हुई ('क्लीच' की हुई) खादी बेचने का विरोध किया है। खादी को निखारने से उसकी उत्पत्ति का ख़र्च बढ़ जाता है, उसका टिकाऊपन कम हो जाता है और खादी में जो धोखे-धड़ी चलती है उसका पता लगाने में मुश्किल पड़ती है। हमें यों ही अविचारपूर्वक लोक-रुचि को छकाना नहीं है, हमें तो उसे एक योग्य दिशा में विकसित करना है। दो-तीन बार धोने से खादी का खुरदरापन दूर हो जाता है, और वह निखरकर बगले के पंख-जैसी सफ़ेद निकल आती है। इतना ही नहीं, बल्कि उसमें एक तरह की मुलायमियत भी आ जाती है, जो 'क्लीच' करने से नष्ट हो जाती है। बुनाई के बाद धुलाई, कलफ़, इस्तरी आदि छोटी-छोटी जो क्रियाएँ की जाती हैं, उन सब को अगर खादी पहननेवाला ख़ुद

अपने हाथ से करें तो खादी काफ़ी सस्ती हो जाय। अब यह खादीशास्त्र के पारंगतों का काम है, कि वे ऐसा कोई अच्छे से-अच्छा मार्ग ढूँढ़ निकालें, जिससे कि लोग खुद अपने ही हाथों खादी की इन तमाम क्रियाओं को करने लग जाएँ।

घर में ही खुद कातें

अगर हमें खादी-प्रवृत्ति को सिर्फ़ व्यापार के ही एक साधन के रूप में नहीं, बल्कि भूख से तड़पती हुई जनता के उद्धार के रूप में चलाना है, तो हमें घर में ही सूत कातना होगा। जनता को हमें समझाना होगा, कि वह खुद अपने हाथ की ही बनाई खादी के कपड़े पहने। ऐसा करने से खादी की उत्पत्ति के खर्च में ही काफ़ी कमी न हो जायगी, बल्कि हमारा बिक्री का खर्च भी बिलकुल बच जायगा। अबतक हमने शहर के लोगों को ही दृष्टि के सामने रखकर खादी तैयार की है। थोड़े ही वर्षों में बहुत ही मामूली शुरूआत से खादी का व्यापार लाखों रुपये तक पहुँच गया है। तरह-तरह की खादी हम तैयार करने लगे हैं। पर अभी इतने मात्र से मुझे सन्तोष नहीं होता। खादी के विषय की मेरी महत्वाकांक्षा इससे बहुत बड़ी है, और वह यह है, कि हमें अपने गाँवों के भुख-मरेपन को एकदम नष्ट कर डालना है। यह तभी हो सकता है, जब कि गाँवों के लोग खादी को खुद ही तैयार करके उसे अपनी ज़रूरत लायक रखलें और अपन-खर्च से जो बाकी बचे उसे ही शहरों में भेजें। खादी की शक्ति का यही तो रहस्य है, कि जहाँ वह बनती है वहीं उसके ग्राहक मिल जाते हैं। उसकी बिक्री के लिए कहीं चक्कर लगाने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती।

स्वावलंबन और स्वप्रचार

खादी तैयार करने में जो व्यवस्था-खर्च पड़ता है उसे देखकर मुझे कष्ट होता है। अगर हम खादी के मुख्य हेतु को लक्ष्य में रखकर चलें तो यह व्यवस्था-खर्च काफ़ी कम हो सकता है। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, मुख्यतया मुनाफ़े के लिए चलते हुए उद्योगों में जिस रीति से माल की उत्पत्ति का खर्च कम किया जाता है, वह रीति खादी में काम नहीं दे सकती। खादी में तो एक अमुक मर्यादा के अन्दर रहकर ही उसके औज़ारों की शक्ति बढ़ाई जा सकती है। पर कला, सुघड़ाई, कार्य-कुशलता और ईमानदारी को आप चाहे जितना बढ़ा सकते हैं। अगर इन बातों में हमें श्रद्धा नहीं है, तो फिर खादी में रखा ही क्या है, तब तो उससे हमें निराश ही हो जाना चाहिए। खादी का खर्च अगर हमें घटाना है, तो खादी संस्थाओं को चाहिए कि वे कम से कम और पारमार्थिक वृत्तिवाले मनुष्यों को रखें और बाकी के तमाम आढ़तियों या दलालों को निकाल दें। और असल बात तो यह है, कि जब खादी की प्रवृत्ति पूर्णतया विकसित हो जायगी, तब इन बाह्य संस्थाओं की उसे आवश्यकता ही न रहेगी। स्वावलंबन और स्वप्रचार ही खादी-प्रवृत्ति के स्वाभाविक लक्षण हैं।

खादी का शास्त्र अभी बाल्यावस्था में है। उसका उत्तरोत्तर विकास होता जाता है। ज्यों-ज्यों मैं उसमें अधिक गहरा उतरता हूँ, ज्यों-ज्यों उसके नियमों को मैं अधिक खोजता और समझता हूँ, त्यों-त्यों मुझे भास होता है, कि उसके संबंध का मेरा ज्ञान तो अभी बहुत ही अल्प है। सिवा चीन के संसार में शायद ही कोई ऐसा देश होगा, जिसमें हमारे देश की अपेक्षा समृद्धि के अधिक साधन हों; कारण कि हमारे देश में आज सिवा चीन के, जितना मनुष्य-बल है उतना कहीं भी नहीं है। किंतु आज हमारी यह संपत्ति बेकार पड़ी-पड़ी जंग खा रही है। इस संपत्ति को उपयोग में लाने का साधन एक चर्खा ही है।

आजतक हमने खादी का काम जितना कुछ किया वह ठीक ही किया है। इतना ही नहीं, बल्कि अबतक की स्थिति में वही ठीक और उचित भी था। पर असल काम तो हमें अब करना है। आगे की मंज़िल हमें तय करना है तो उसके अनुकूल ही साधन हमें खोजने होंगे। इसलिए अगर आंध्रदेश को खादी-विषयक प्रांतीय स्वराज चाहिए तो वह आसानी से मिल सकता है। आपकी संस्था पर जो क़र्ज़ हो उसे भी चुकाने में आपको कोई भारी कठिनाई नहीं पड़नी चाहिए। इसलिए मैंने आपको जो दिशा बतलाई है, उसका अनुसरण करके अगर आप काम करना चाहते हैं तो उसे किसी भी प्रकार की विघ्नबाधा के बिना आप कर सकते हैं, इसमें मुझे रत्तीभर भी संदेह नहीं।

संयुक्त प्रांत का कार्य-विवरण

[अक्तूबर, १९३३ से मई, १९३४ तक]

शिक्षा—यों तो क़ानूनन सभी सार्वजनिक पाठशालाएँ हरिजनों के लिए खुली हुई हैं, पर व्यवहारतः यह देखा गया है, कि मेहतर जाति के बालकों के साथ सहानुभूति का बरताव नहीं किया जाता। पहले तो उन्हें दाख़िल ही नहीं करते, और किसी तरह दाख़िल कर भी लिया, तो अध्यापक उन्हें सब से अलग बिठाते हैं, और मन से पढ़ाते भी नहीं हैं। बड़ी-बड़ी दिक्कतें पेश आती हैं। कोशिश कर रहे हैं, और कुछ कुछ कामयाबी हमें मिली भी है। आगरे को ही लीजिए। म्यूनिसिपैलिटी के स्कूलों में मेहतर बालकों को दाख़िल कराने में हमें काफ़ी लड़ना पड़ा, तब कहीं बेचारे भरती हुए। हरिजनों के लिए अलग पाठशालाएँ तो हम लाचारी की हालत में ही खोलते हैं। ऐसी हरिजन-पाठशालाएँ हमें इस साल ४३ खोलनी ही पड़ीं—पार साल ९६ हरिजन-पाठशालाएँ थीं, इस साल १३९ हैं।

छात्रवृत्तियाँ—संघ की ओर से ५२ विद्यार्थियों को १८७) मासिक की छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं—इनमें से १८ छात्रवृत्तियाँ सुर्ती के 'डिप्रेस्ड क्लास इण्डस्ट्रियल स्कूल' के विद्यार्थियों को दी जाती हैं। इसके अलावा हमारी शाखा-समितियाँ भी १) से लेकर ८) तक की छात्रवृत्तियाँ ४६ विद्यार्थियों को देती हैं। शाखा-समितियोंने इस साल २६८॥ऽ)। हरिजन छात्रों को पुस्तकें इत्यादि देने में खर्च किये हैं।

हरिजन-आश्रम—इलाहाबाद, पाली (गोरखपुर) और शिवगढ़ (रायबरेली) के हरिजन-आश्रम हरिजन-सेवा-कार्य कर रहे हैं। संघ की ओर से शिवगढ़ और पाली के आश्रमों को सहायता दी जाती है। मेरठ की अछूतोद्धार-कमेटी कई बरसों से 'कुमार-आश्रम' नामक एक हरिजन-आश्रम चला रही है, जिसमें ३० विद्यार्थी रहते हैं। स्व० लाला लाजपतराय का लोक-सेवक-मंडल इस आश्रम को चला रहा है। संघ की ओर से भी कुमार-आश्रम को सहायता मिलती है।

मंदिर खोले गये—हरिजनों के लिए हमारे प्रांत में कुल ३३५ मंदिर खुल गये हैं। मिर्ज़ापुर के महंत श्री परमानंदगिरिने अपने १८ मंदिर हरिजनों के लिए खोल दिये हैं। दूसरे संत महंतों के लिए महंत परमानंदगिरि का यह धर्म-कार्य बड़ा सुंदर उदाहरण है।

कुएँ—कुल ३०४ कुएँ हरिजनों के लिए चालू किये गये हैं। इसके अलावा कुछ म्युनिसिपल और लोकल बोर्डोंने भी अपने सार्वजनिक कुओं से पानी भरने की हरिजनों को भी इजाज़त दे दी है। इजाज़त मिल तो गई है, पर सवर्ण हिंदुओं के डर से उन्हें अभी हिम्मत नहीं पड़ रही है, और उनका पानी का कसाला अब भी वैसा ही बना हुआ है।

मुरादाबाद के संघने कुएँ के प्रश्न पर सबसे अधिक ध्यान दिया। जाँच से यहाँ मालूम हुआ, कि मुरादाबाद ज़िले के सिर्फ़ ५०० ही गाँवों में हरिजनों के लिए कुएँ हैं, जबकि ज़िले में कुल ३००० गाँव हैं। संघ के सप्रयत्न बोर्डने मुरादाबाद-संघ को कुएँ बनवाने के लिए १०००) की सहायता दी है। डिस्ट्रिक्ट बोर्डने सयुक्त प्रांत में कुएँ खुदवाने के लिए २५००) मंजूर किये हैं; और गोरखपुर की कमेटी को २६५) और मैनपुरी की कमेटी को ७५) उन कुओं के लिए दिये हैं, जो अधबने पड़े थे।

दवा-दारू—कानपुर की समितिने एक चलता फिरता दवाखाना शुरू किया है, जो करीब २० हरिजन-बस्तियों में दवाइयाँ देने का काम कर रहा है। करीब १०० रोगियों को नित्य दवा दी जाती है। कानपुर ज़िले के कुछ स्कूल भी ख़ासकर जूरिया और बीरसिंहपुर के स्कूल गाँवों में दवाइयाँ बाँटने का अच्छा काम कर रहे हैं। सात डाक्टर और एक वैद्य मेरठ में, छै वैद्य और बारह डाक्टर मुरादाबाद में, तीन डाक्टर मथुरा में और छै डाक्टर मैनपुरी में बिना फ़ीस लिये ग़रीब हरिजनों का इलाज करने के लिए राज़ी हो गये हैं।

आर्थिक सुधार—कानपुर की म्युनिसिपैलिटीने अपने हरिजन मुलाज़िमों के लिए एक 'सहकारी समिति' चलाने का निश्चय किया है, और इस काम के लिए उसने ५०००) भी अलग रख दिये हैं। शीघ्र ही कार्यारंभ हो जाने की आशा है। इलाहाबाद और मैनपुरी की शाखा-समितियोंने दो हरिजन-कुटुंबों को ऋणमुक्त करने के लिए क्रमशः ५०) और ८५॥=)॥ उधार दिये हैं।

विविध—ऋषीकेश की हरिजन-सेवक-समिति को हमारे बोर्डने १००) की सहायता इसलिए दी है, कि वह वहाँ के हरिजनों की जो झोंपड़ियाँ आग से जल गई थीं उन्हें फिर से बनवादे।

मुरादाबाद में हरिजन बालकों का एक स्वयंसेवक दल संगठित किया गया।

हरिजनों तथा दूसरी जातियों के लड़कों के लिए खेल कूद के दंगलों का आयोजन किया गया।

अनेक अवसरों पर हरिजनों को कपड़े बाँटे गये।

कानपुर के संघने मेहतरों के लिए 'वाली बाल' खेल के दो क्लब खोले हैं। हनुमानदास तथा रामकृष्ण-आश्रम के हरिजन-अखाड़ों को भी उक्त संघ सहायता दे रहा है।

गोला (खेरी ज़िला) के समीप की हरिजन-बस्तियों के सुधार के लिए हिंदुस्तानी सुगर मिल्स लि० ने २५०) प्रदान किये हैं। जिससे पानी के चार नल तो गोला की बस्तियों में और छै नल पास-पड़ोस के गाँवों में लगवा दिये हैं। इस सत्कार्य के लिए हम उक्त सुगर मिल को धन्यवाद देते हैं।

म्युनिसिपल बोर्ड—निम्नलिखित म्युनिसिपल बोर्डोंने हरिजनों के लिए प्रशंसनीय कार्य किया है:—

कानपुर—करीब २ लाख रुपये हरिजन-बस्तियों पर ख़र्च करने का निश्चय किया है। हरिजनों के लिए ४० अच्छे हवादार मकान बनवा दिये, और ७८ ख़रीदे। इन ११८ मकानों पर बोर्डने ४९०००) और नल व लालटेनें आदि लगवाने पर ५०००) खर्च किये। ५६५०) के पाँच बढ़िया गुसलख़ाने भी हरिजनों के लिए म्युनिसिपल बोर्ड बनवानेवाला है। एक हरिजन-बस्ती में १२०००) ख़र्च करके एक सुन्दर बाग़ लगवाने का भी बोर्डने निश्चय किया है। बोर्ड की २ हरिजन दिवस-पाठशालाएँ भी चल रही हैं, और मेहतर बालकों को शिक्षा देनेवाली दो स्थानीय संस्थाओं को क्रमशः २०) और १५) मासिक सहायता भी बोर्ड देता है। २ रात्रि-पाठशालाएँ भी म्युनिसिपैलिटी की हैं। एक-एक रुपये मासिक की ५० छात्र-वृत्तियाँ भी बोर्ड हरिजन बच्चों को दे रहा है। भंगियों के सदर बाज़ार के अखाड़े को ४०) की सहायता दी है।

मैनपुरी—स्थानिक हरिजन-सेवक संघ को म्युनिसिपल बोर्ड २०) मासिक सहायता दे रहा है। हरिजन-बस्तियों में २ लालटेनें लगवादी हैं। रविवार को हरिजनों को आधे दिन की छुट्टी मिलने लगी है। मर्द को १५ दिन की, और ज़च्चा को १ महीने की छुट्टी मिल सकती है। बोर्डने अपने वैद्य-हकीमों को ज़रूरत के वक़्त बिना कोई फ़ीस लिये हरिजनों का इलाज करने का आदेश दे दिया है। जो अध्यापक अधिक-से-अधिक हरिजन बालकों को दाख़िल करेंगे, उनका २२) से २५) का, २०) से २२) का, और २५) से ३०) का ग्रेड नियत कर दिया गया है। सर्वोत्कृष्ट हरिजन-प्रेमी अध्यापक को एक स्वर्णपदक भी दिया जायगा। श्री पं० शम्भुदयाल भी इसी तरह का एक पदक दिया करेंगे।

मथुरा—कई हरिजन-बस्तियों में म्युनिसिपल बोर्डने आवश्यकतानुसार रोशनी, पाख़ानों, गुसलख़ानों, नालियों आदि का प्रबन्ध कर दिया है।

चँदौसी—म्युनिसिपैलिटीने अपनी हरिजन-बस्तियों के सुधार के लिए २७७८) मंजूर किये हैं।

लखीमपुर-खेरी—हरिजन-बस्ती में एक पाख़ाना बनवा दिया है, और ४ लालटेनें लगवा दी हैं।

मसूरी—यहाँ के म्युनिसिपल बोर्डने हरिजनों के लिए मकान बनवाने में ५९४१॥=)॥ ख़र्च किये, और अगले साल भी बोर्ड इस मद में ५०००) ख़र्च करेगा।

नगीना—हरिजन-बस्तियों में पक्की सड़कें बनवा दीं, और हर एक सड़क के मुहाने पर बिजली की एक-एक लाइट लगवादी। कुछ कुओं की भी मरम्मत करा दी है।

इटावा—सात पाख़ाने बनवाये। नालियों और एक पक्की लेन के लिए ३००) मंजूर किये।

उरई—एक हरिजन-पाठशाला को १२०) की सहायता दी।

इलाहाबाद—ज़िला बोर्डने, संघ के अनुरोध पर, ८०००) हरिजन बच्चों की शिक्षा के लिए मंजूर किये।

के० एस० नेगी
मंत्री, सं० प्रां०-ह० से० सं०

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

सम्पादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

हरिजन-सेवक

एक प्रति का
मूल्य -)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २ नवम्बर, १९३४. [संख्या ३७

विषय-सूची

शास्त्र और अस्पृश्यता

पूना के महामहोपाध्याय श्रीधर शास्त्री पाठक संस्कृत के एक प्रकाण्ड पंडित हैं। प्राचीन परंपरागत परिपाटी के अनुसार ही आपने संस्कृत का अध्ययन किया है। तो भी समस्त शास्त्रों का अध्ययन करके आप इस परिणाम पर पहुँचे हैं, कि जो अस्पृश्यता आज हिंदूधर्म के नाम पर बरती जाती है, वह तो केवल प्रथामूलक है, और शास्त्रविरुद्ध होने के कारण अधार्मिक भी है। अतएव गांधीजी के २१ दिन के उपवास-काल में विद्वान् शास्त्रीजीने इस विषय पर एक विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिखा। पर मराठी में होने के कारण वह विशद ग्रन्थ बहुतों के लिए अगम्य ही है। अतः उस ग्रन्थ के मुख्य तर्क का सारांश मैं 'हरिजन-सेवक' के पाठकों के लिए यहाँ दे रहा हूँ।

पंडित श्रीधर शास्त्री की सबसे पहली दलील यह है, कि सत्य, अहिंसा, अस्तेय आदि धार्मिक सिद्धान्त तो सनातन अर्थात् त्रिकालाबाधित हैं, किन्तु धार्मिक विधान और व्यवहार में समय-समय पर बराबर युक्तिसंगत सुधार या परिवर्तन होते रहते हैं। उदाहरणार्थ, यह जानी-मानी बात है, कि अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि वैदिक देवताओं को लोगोंने आज भुला दिया है, और शिव तथा विष्णु, जो वैदिक युग में अप्रसिद्ध थे, आज प्रकाश में आ गये हैं, और ऐसे भी पुरुषों की आज पूजा-प्रतिष्ठा की जाती है, कि जिनका वेदों में नाम भी नहीं।

श्रीमद्भागवत में यह कथा आई है, कि गोपाधिराज नन्द प्रतिवर्ष इन्द्र की पूजा किया करते थे, किन्तु गोपालकृष्ण के कहने से उन्होंने बजाय इन्द्रदेव के अपने प्रिय गोवर्द्धन पर्वत की पूजा की।

प्राचीनकाल की अनेक प्रथाओं को स्मृतिकारोंने 'कलि-वर्ज्य' कहकर उठा दिया है।

बौधायन और मनुने ब्राह्मणों के लिए भूमि का जोतना निषिद्ध कहा है, किन्तु बाद को पराशरने उन्हें हल चलाने की अनुमति देदी।

कहाँ तक गिनायें, इन संशोधनों या परिवर्तनों की तो काफी लम्बी सूची है।

इस सब का सार यह है, कि शास्त्र-विहित चलन को भी—यदि वह समाज-हित के विरुद्ध हो—सुधारने या मेट देने का हमें पूर्ण अधिकार है। इस अधिकार का प्राचीनकाल में बराबर उपयोग होता रहा, और अब भी हम उसे काम में ला सकते हैं।

किन्तु अस्पृश्यता का अन्त करने में हमें इस अमिट अधिकार को काम में लाने की आवश्यकता नहीं। शास्त्र या पुराण के विरुद्ध जाने की इसमें कोई ऐसी बात ही नहीं। यह अस्पृश्यता-निवारण तो वैदिक युग की हमारी उस प्राचीन स्वतंत्रता को ही फिर से क़ायम करती है, जिसे बाद के अज्ञान-तिमिराच्छन्न युगों में हम गँवा बैठे।

वैदिक युग में हमारा समस्त समाज चातुर्वर्ण्य की भित्ति पर खड़ा था, कोई चार वर्णों से बाहर नहीं माना जाता था—

नास्ति तु पंचमः । मनुः
पंचमो नाधिगम्यते । महाभारत

आज जो जातियाँ अस्पृश्य मानी जाती हैं, उन सबकी गणना उस समय चतुर्थ या 'अन्त्य' वर्ण में होती थी। वस्तुतः 'अन्त्यज' शब्द, जो पीछे 'बहिष्कृत' जाति का पर्यायवाची हो गया, पहले 'शूद्र' का समानार्थक था।

और विभिन्न वर्णों के बीच वर्णान्तर विवाह भी होते थे। ब्राह्मण चार में से किसी भी वर्ण की कन्या को वरण कर सकता था, और क्षत्रिय को ब्राह्मणी के अतिरिक्त अन्य तीनों वर्ण की कन्या के पाणि-ग्रहण करने की छूट थी। इसी प्रकार वैश्य (ब्राह्मण और क्षत्रिय-कन्या को छोड़कर) अन्य दो वर्णों में से पत्नी-वरण कर सकता था। मनुस्मृति के टीकाकार राघवानन्दने यह सिद्ध करने के लिए, कि वसिष्ठने चाण्डाली के साथ विवाह किया था, इस श्रुति को प्रमाणरूप में उद्धृत किया है—

वसिष्ठश्चाण्डालीमुपयेमे इति श्रुतेः ।

इसी प्रकार क्षत्रिय पुरुष और ब्राह्मणी स्त्री, और वैश्य पुरुष और ब्राह्मण एवं क्षत्रिय स्त्री, तथा शूद्र पुरुष और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य स्त्री के बीच भी विवाह-सम्बन्ध होते थे, यद्यपि ऐसे सम्बन्धों का स्वभावतः समाज समर्थन नहीं करता था और जहाँतक बनता था ऐसे अनमेल विवाहों को वह रोकता भी था। पर ऐसे अनमेल विवाह होते ज़रूर थे और उनकी सन्तानों के विशेष नाम रख देते थे, साथ ही पिता की अपेक्षा उनका पद नीचा और पेशा कम प्रतिष्ठित माना जाता था।

जब कि चार वर्णों में से कोई भी वर्ण किसी भी वर्ण के साथ विवाह-सम्बन्धतक कर सकता था, तब यह स्पष्ट है, कि वैदिक युग का समाज अस्पृश्यता के विष से सर्वथा मुक्त था।

'हरिजन' से] वालजी गोविन्दजी देसाई

सच्चा साम्यवाद

आजकल 'सोशयलिज़म' की खूब धूम है। देश में जहाँ देखो तहाँ समाजवादियों की सभा-समितियाँ बड़ी तेज़ी से खुलती जारही हैं। यह हवा सिर्फ़ भारत में ही नहीं, बल्कि सारी दुनिया में बह रही है। समाजवाद या साम्यवाद इस युग का एक व्यापक विचार मालूम होता है। दुनिया के अच्छे-अच्छे विचारकों को इस लहरने अपनी ओर खींच लिया है। साम्यवाद के विरोधी 'फ़ासिज़म' और 'नाज़िज़म' भी आज साम्यवाद का बाना धारण करके उसी की भाषा व उसी की दलीलों से हमारे सामने उपस्थित हो रहे हैं। इसलिए साम्यवाद की परिभाषा के दायरे में हर नये सामूहिक सुधार और हर सामूहिक आंदोलन को आना पड़ रहा है। हमें यह देखना है, कि क्या खादी-प्रवृत्ति को भी साम्यवाद की भाषा में उचित और न्याय-संगत ठहराया जा सकता है। यह भी आवश्यक है कि जिन दोनों आंदोलनों का एक ही लक्ष्य—जनता का उत्थान, हो उन में कोई परस्पर संघर्ष हो ही नहीं सकता।

इस प्रश्न पर वैज्ञानिक और यथाक्रम विचार करने के लिए यह जान लेना ज़रूरी है, कि साम्यवाद का आख़िर मुख्य उद्देश क्या है? अगर हम अपने मन में बिना कोई पूर्व धारणा बनाये निष्पक्ष होकर विचार करें, तो हम निश्चय ही यह क़बूल कर लेंगे, कि धर्म, ब्रह्मचर्य, कौटुंबिक जीवन, राष्ट्र, व्यवसायीकरण और अन्य ऐसे कई प्रश्न, जिन्हें आज अर्द्धशिक्षित और मोटी बुद्धिवाले साम्यवाद से संबद्ध मानते हैं, वस्तुतः वे साम्यवाद के मूलतत्त्व नहीं हैं। साम्यवाद का मूलतत्त्व तो उसके 'अतिरिक्त मूल्य' (Surplus Value) के सिद्धांत में (वह सिद्धांत सही हो या ग़लत) मौजूद है। यह अतिरिक्त मूल्य ही जनता का बेहद दोहन कर रहा है। मुनाफ़ा, लगान, ब्याज आदि अनेक मायावी रूप अतिरिक्त मूल्य धारण कर लेता है। ऐसे किसी भी उद्योग या व्यवसाय को, जिसमें अतिरिक्त मूल्य अर्थात् मुनाफ़े, लगान और ब्याज की कोई गुंजाइश नहीं है, साम्यवाद के अनुकूल मानना होगा। इस बात की परीक्षा के लिए यह जानना ज़रूरी नहीं, कि उस व्यवसाय का संचालक या व्यवस्थापक ईश्वर या ख़ुदा में विश्वास रखता है अथवा वह प्रकृतिवाद का माननेवाला है। हमें इस खोजबीन में उतरने की ज़रूरत नहीं, कि वह आदमी स्त्री-पुरुष-संबंधी इस विचार को मानता है या उस विचार को—अथवा राष्ट्र के व्यवसायीकरण में उसका विश्वास है या नहीं। हमारा असल मतलब तो यह है, कि वह साम्यवाद के मूलतत्त्व को स्वीकार करता है।

इस खरी कसौटी पर हम खादी के व्यवसाय को कसते हैं, तो हम देखते हैं, कि उसमें लगान, ब्याज या मुनाफ़ा किसी भी तरह के अतिरिक्त मूल्य की गुंजाइश नहीं है। उसका तमाम मुनाफ़ा उसके उत्पादक या उसमें काम करनेवालों की ही जेब में जाता है। दूसरे लोगों को, चाहे वे सच्ची सेवा करते हों या काग़ज़ी घोड़े दौड़ाते हों, खादी की आय में से उन्हें कुछ नहीं दिया जाता। काम करनेवालों को पैसा क़रीब-क़रीब एक-सा मिलता है। यहाँ मैं कुछ आँकड़े देता हूँ, जो इस बात को और भी स्पष्ट कर देंगे :—

बुनकर की	मासिक	आय औसतन	१३) से १५) तक
धोबी की	"	"	"	१२) से १५) तक
रंगरेज़ या छीपे की		"	"	२५) से ३०) तक
बढ़ई की		"	"	२५) से ३०) तक

कातनेवाले की आय बेशक कम है, पर कताई का काम सारे दिन का पेशा तो है नहीं, वह तो ख़ाली फ़ुर्सत के समय का धंधा है। फिर खादी के व्यवस्थापकों का भी पारिश्रमिक २५) मासिक ही है, हालांकि उनमें कुछ उच्च शिक्षित भी हैं। (ये गांधी-आश्रम, मेरठ के आँकड़े हैं।)

'अतिरिक्त मूल्य' के सिद्धांत के परिणामस्वरूप ही समाजवादी समस्त उत्पत्ति-साधनों के राष्ट्रीकरण पर ज़ोर दे रहे हैं। जहाँतक खादी का सवाल है, चर्खा और करघा ही उसकी उत्पत्ति के साधन हैं। इनके राष्ट्रीकरण की आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि इन बाबा आदम के ज़माने के सादे यंत्रों पर इतना कम ख़र्च पड़ता है, कि कोई भी साधारण ग्रामवासी उसे बरदाश्त कर सकता है। जहाँ भी कोई ग्रामवासी खादी का काम करना चाहता है, पर चर्खा और करघा नहीं ले सकता, वहाँ हमारा चर्खा-संघ उसकी मदद करता है। इसलिए खादी-उत्पत्ति के ये सस्ते छोटे या सीधे-सादे औज़ार राष्ट्रीकरण के साधनों से किस बात में कम हैं?

उत्पत्ति का दूसरा ज़बरदस्त साधन है पूँजी। सो यह भी, चर्खा-संघ के हाथ में होने से, राष्ट्र की ही संपत्ति है। खादी की पूँजी पब्लिक की संपत्ति है, जिस पर न लगान मिलता है, न ब्याज, न मुनाफ़ा ही। खादी-उत्पत्ति के जो थोड़े-से निजी कारोबार हैं, उन्हें चर्खा-संघ-द्वारा निर्धारित नियमों पर चलना पड़ता है। उनके हिसाबकिताब और दर-दाम नियत करने पर चर्खा संघ का नियंत्रण रहता है और समय-समय पर उनका मुआइना भी होता है। इसलिए उन्हें सिर्फ़ उतने ही लाभ से संतोष करना पड़ता है, जिसे वे अपनी बहुत मामूली मजूरी से निकाल सकें। असल में देखा जाय, तो खादी का सारा व्यवसाय ही साम्यवाद का एक प्रयोग और साहसपूर्ण प्रयत्न है।

प्रत्यक्ष तथ्यों या घटनाओं पर साम्यवाद की फ़िलासफ़ी निर्भर करती है। फिर भी भारत के समाजवादी पश्चिम से उमड़ते हुए साम्यवादी या बोल्शेविक साहित्य को कितनी ही अधीरता और लालच की निगाहों से क्यों न देखते हों, यह तो किसी भी तरह नहीं कहा जा सकता, कि साम्यवाद के तमाम सिद्धांत एकदम प्रत्यक्ष या ठोस तथ्यों के अध्ययन पर ही निर्भर करते हैं। वे यथार्थवादी हैं—यही दावा सारी साम्यवादी फ़िलासफ़ी का है। किन्हीं पूर्वनिर्धारित विचारों या पुरातन अथवा नूतन धार्मिक या वैज्ञानिक धारणाओं पर खादी का आंदोलन निर्भर नहीं करता। उसका आधार तो उन प्रत्यक्ष घटनाओं का आकलन है, जो दरिद्र भारत के सात लाख गाँवों में नित्य घटती रहती हैं।

और बातों के साथ-साथ क्रांति में भी साम्यवाद विश्वास करता है। चर्खा भी न सिर्फ़ खुद चक्कर लगाता रहता है, बल्कि वह अन्य अनेक दार्शनिक क्रांतियों का भी प्रेरक कारण है। अपढ़ जनता तो सिर्फ़ मारकाट की उथलपुथल को ही क्रांति समझती है। पर क्रांति का सच्चा सारतत्त्व तो विचार-धारा के दृष्टि-परिवर्तन में है। इस दृष्टि से भारत में खादी-आन्दोलन

ने जितनी व्यापक क्रांति की है, उतनी किसी दूसरे आन्दोलनने नहीं। और किसी एक क्षेत्र में ही नहीं, इसने तो सभी क्षेत्रोंमें क्रांति की है। जिस वस्तु में हम प्रतिष्ठा समझते थे उसमें अब अपमान समझने लगे हैं; जिसमें पहले अपमान का भाव था, उसमें अब हम सम्मान देखने लगे हैं। पहले का सुन्दर अब असुन्दर दीखने लगा है और सब की कुरूपता में आज हम सुरूपता ढूँढने लगे हैं। सुन्दरता, कला, आवश्यकता और स्वच्छता सभी में खादीने भारी कायाकल्प कर दिया है। खादीने न केवल साधारण जनता के ही, बल्कि वर्गों के भी अर्थशास्त्र-सम्बन्धी विचारों में खासा परिवर्तन कर दिया है। खादी की बदौलत हरिजनों की ओर भी लोगों का ध्यान गया है। खादी एक खास मनोवृत्ति और एक खास फ़िलासफ़ी या विचार-धारा को हमारे सामने रखती है। हम उस विचारधारा से सहमत हों या न हों, पर यह तो निश्चित है, कि उसने एक ऐसी व्यापक क्रांति तो ज़रूर कर दी है, जिसकी कोई निरपेक्ष व्यक्ति कम क़दरी या उपेक्षा नहीं कर सकता। जो व्यक्ति सत्यवादी, वैज्ञानिक और यथार्थवाद की मनोवृत्ति का है, वह खादी की न तो कमक़दरी ही कर सकता है, न उपेक्षा ही।

जे० बी० कृपलानी

हरिजनों को और भी सुविधाएँ

श्री एम० के० मेहरे को हम इस बात के लिए हार्दिक बधाई देते हैं, कि उन्होंने मध्यप्रांत के हाईस्कूल एज्यूकेशन बोर्ड से निम्नलिखित प्रस्ताव सफलतापूर्वक पास करा लिया :—

> "यह बोर्ड सिफ़ारिश करता है, कि हर एक रिकगनाइज़्ड (स्वीकृत) स्कूल को हर साल दर्जा ५ और ९ में हरिजन जातियों या आदिम जातियों या घूमने-फिरनेवाली जातियों के कम-से-कम तीन विद्यार्थी (अगर उमेदवार हों) तो दाख़िल करने ही चाहिएँ, और उनसे कोई फ़ीस नहीं लेनी चाहिए।"

हमें विश्वास है, कि यह प्रस्ताव सरकारी स्कूलों पर क़ानूनन और तमाम सहायता-प्राप्त प्राइवेट स्कूलों पर नैतिक दृष्टि से लागू होसकेगा।

मध्यप्रांत में दर्जा ५ से ८ तक तो मिडिल स्कूल की शिक्षा दी जाती है और दर्जा ९ से दर्जा ११ तक हाईस्कूल की। इस निश्चय के अनुसार उपर्युक्त वर्गों में से तीन लड़के निश्शुल्क रीति से प्रत्येक रिकगनाइज़्ड मिडिल स्कूल में, और काफ़ी विद्यार्थी मिडिल में पास हुए तो, हाईस्कूल में भी दाख़िल हो सकेंगे। दर्जा ५ और दर्जा ९ में भरती होने पर वे अपनी मिडिलतक की या हाईस्कूलतक की शिक्षा जारी रख सकेंगे, और इस तरह बिना किसी प्रकार की फ़ीस दिये अपनी शिक्षा पूरी कर सकेंगे।

अबतक तो यह बात थी, कि मध्यप्रांत में सिर्फ़ कालिजों में पढ़नेवाले ही हरिजन विद्यार्थी शुल्क-मुक्त कर दिये गये थे; पर अब इस निश्चय के अनुसार मिडिल और हाईस्कूलों में पढ़नेवाले विद्यार्थी भी एक सीमित संख्यातक फ़ीस से मुक्त कर दिये गये हैं। क्या अच्छा हो, कि भारत में दूसरे प्रांत भी मध्यप्रांत के इस शुभारंभ का अनुसरण करें।

अमृतलाल वि० ठक्कर

यह कैसा अन्धेर है!

थरपारकर ज़िले (सिंध) के एक मेघवार (हरिजन) ने उस दिन प्रोफ़ेसर मलकानीवाले दिल खोलकर जो बातें की थीं, उस-का एक अंश उन्होंने हमें लिख दिया है। हरिजनों के अंतर में अपमान की जो आग धधक रही है उसे हमने प्रायश्चित्त और सेवा के जल से समय रहते न बुझाया, तो अचरज नहीं, कि वह हिंदू-समाज और हिंदूधर्म को किसी दिन भस्म करदे। ताज्जुब है, कि उस असन्तोष की आग की आँच तो दूर, हमें उसकी अभी आसभास (ख़बर) तक नहीं। सुनिये, वह अपढ़ मेघवार क्या कहता है :—

> "बड़ी जाति का हमारा हिंदू भाई ऊँट पर बैठता है और हम उसकी नकेल की डोरी पकड़कर आगे-आगे चलते हैं। डोरी पकड़ने में कोई दोष नहीं, पर अगर धोखे से कहीं ऊँट छू गया, तो वह ऊँची जाति का हिंदू उतरकर स्नान करेगा, और सारा खाना-पीना फेंक देगा!
>
> हाँ, उस दिन की छाछरो गाँव की बात तो सुनो। डिपटी कलट्टरने गाँव के सब पटेलों को बुलाया था। लखमी मेघवार भी पहुँचा। हमलोगों में यह बड़ा आदमी है। रोटी-पानी से सुखी है। कलट्टर साहबने उसे भी सब के बराबर कुर्सी पर बिठाया। लो, गजब हो तो हो गया। हिंदू मुसलमान सब कचहरी से उठ चले—'आयँ! यह क्या हो रहा है! मेघवार के साथ हम तो न बैठेंगे।'
>
> अरे, हम लाख पाक-साफ़ रहें, हिंदू हमें अपने समाज में मिलायेंगे नहीं। मुर्दार हम शौक़ से थोड़े ही खाते हैं, भूख के मारे मुर्दार खाते हैं। तुम्हारे ढोरों की लाश उठाते हैं, खाल उतारते हैं, जूतियाँ तैयार करते हैं, कोस बनाते हैं। यह सब बुरा काम है, तो हम नहीं करेंगे।
>
> बड़े चाहे जो करें कोई उँगली उठानेवाला नहीं। डाफली तहसील के सोढ़ा राजपूतों को देखो न। यह लोग मुसलमानों को लड़की देते हैं—और वह भी बेचते हैं! और मुसलमान उन सोढ़ा स्त्री से पैदा हुई लड़की को मारडालते हैं। फिर भी वे ऊँच हैं, और हम नीच! हम तो भूख में मुर्दार खाते हैं, पर वे बड़े लोग अपने ही पेट का माँस बेचते हैं! कैसा अन्धेर है!
>
> इन्साफ़ तो तब है, जब हम ग़रीब मेघवारों के करमों को तुम बुरा कहते हो तो उन ऊँची जातिवालों के करम-अकरम को भी बुरा कहो। पर वे सब चाहे जो किये जायँ, उनके बारे में तो कोई चूँ भूँ (कानाफूसी) तक नहीं करता। बोघा (उल्लू) तो साहब, हम हैं, कि बड़ों की लातें भी खाते जायँ, और ऊपर से नीच कहलावें। पर सदा हमारे यही दिन न रहेंगे।
>
> हम अपनी पंचायत करेंगे और उसमें मुर्दार खाना छोड़ देंगे। पर क्या बड़ी जाति के हिंदू नफ़रत करना छोड़ देंगे? राम का नाम लो। उनसे हम क्या आशा करें? हमें तो ईश्वर ही ऊँचा उठायगा। हमेशा हम गड्ढे में ही नहीं गिरे पड़े रहेंगे, समझे साहब!"

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करें।

मैनेजर, हरिजन-सेवक

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २ नवम्बर, १९३४

द्वेष से नहीं, प्रेम से

एक नौजवान अँग्रेज़, जो मद्रास में दो साल रह गया है, विलायत से लिखता है:—

"कल यहाँ रविवार के एक अख़बार में हिन्दुस्तान के अछूतों के बारे में एक लेख निकला है; इस लेखने ही मुझे आपको यह पत्र लिखने के लिए प्रेरित किया है।

यह पढ़कर मुझे बड़ी खुशी हुई, कि हिंदुस्तान में आपने ब्रिटिश लोगों की सत्ता के विरुद्ध लड़ने की नीति छोड़कर अब अछूतों को उनकी पतनावस्था से उठाने का काम हाथ में ले लिया है।

आपने अब यह बड़ी शूरवीरता का काम उठाया है। 'नीच जाति' के अथवा बन्धन में पड़े हुए इन 'अवर्णों' को मुक्ति दिलाने के अन्दर निस्सन्देह एक बड़ी ऊँची भावना है। इस काम का यद्यपि सख़्त विरोध होगा, और शत्रुता भी बढ़ेगी, तो भी मैं जानता हूँ कि इससे आप अपने ध्येय से विचलित न होंगे। विरोध का मुक़ाबला किये बिना कोई भी महान् कार्य कभी सफल हुआ है?

साहस और दृढ़ता के बल से मज़बूत-से-मज़बूत बन्धन भी एक दिन टूट जायँगे।

मैं मानता हूँ, कि हिंदू समाज में बहुमत अस्पृश्यों का है। यह बात असत्य भी हो सकती है। पर अगर सत्य है तो अस्पृश्यों के इस महान् वर्ग के प्रति जो अपमान और अत्याचार आज हो रहे हैं उन्हें दूर करने या रोकने का सबसे अधिक पुरअसर इलाज यह नहीं है कि ज़ुल्म ढानेवालों के साथ विनय-अनुनय से काम लिया जाय; बल्कि यह है, कि खुद अस्पृश्यों में ही ज़ुल्म का सामना करने की मनोवृत्ति पैदा कर दी जाय।

उन लोगों में एक ऐसा संघ पैदा हो जाय, कि उसका जीवन उन्हें अस्पृश्य माननेवाले लोगों से बिलकुल अलग ही विकसित हो, उनका एक जुदा ही वर्ग बन जाय, और आज वे जैसे दुर्बल और दीन-हीन पड़े हुए हैं, जिस तरह दब्बू बने हुए हैं उसके बदले अत्याचारियों के प्रति द्वेष करने लगें, और आज उन पर जो लात घूँसे और चाबुक पड़ रहे हैं उसकी ज़रा भी पर्वा न करें।

हमदर्दी और भाईचारे की गाँठ से गँठा हुआ उनका एक ऐसा स्वतंत्र संघ बन जायगा तो लोग अवश्य उसे इज़्ज़त की निगाह से देखेंगे; और इतना ही नहीं, बल्कि उसे देखकर वे सिहायेंगे।

ग़रीबों की तरफ़ इस युग में हिकारत और सूग की नज़र से देखनेवाले ब्राह्मण तथा दूसरे लोग जब देखेंगे कि हमारी उस तिरस्कार-भावना की दशा तो पत्थर पर पानी-जैसी हो गई है, तब किसी ग़रीब का तिरस्कार करने में हो नहीं सकता कि उन्हें हिचकिचाहट न हो।"

इस अंग्रेज लेखक को यह मालूम नहीं है कि जो सलाह वह मुझे दे रहा है ठीक उसीके अनुसार प्रयत्न करनेवाला हरिजनों का एक संप्रदाय मौजूद है। पर इस रास्ते पर चलने से हरिजनों को मुक्ति मिलने की नहीं—और सवर्णों को तो निश्चय ही मुक्ति नहीं मिल सकती। यह पत्र-लेखक जो उपदेश देता है उससे तो यही परिणाम निकलता है, कि हिंदू-मुस्लिम-प्रश्न की ही तरह एक दूसरा सवाल और भी भयानक रूप में खड़ा हो जाय। यह मार्ग द्वेष अर्थात् हिंसा का मार्ग है। मैं जिस मार्ग पर चलने की चेष्टा करता हूँ वह प्रेम का अर्थात् अहिंसा का मार्ग है। ज़ुल्म करनेवाले वर्ग में जन्म लेकर और ज़ुल्म भोगनेवाले वर्ग के साथ स्वेच्छा से ऐक्य-साधन का एक नम्र प्रयत्नवान् होने के कारण मैंने तो यही सीखा है, कि न्याय का सच्चा रास्ता तो यह है, कि आपस में मान और आदर का भाव जाग्रत किया जाय—इसे यों भी कह सकते हैं कि उच्च-नीच-भाव की जगह समता और भ्रातृ-भावना स्थापित की जाय। इसके लिए श्रेष्ठ मार्ग यह है, कि 'उच्च' वर्ग जो ऊँचे स्थान पर जा बैठा है, उसे वहाँ से नीचे उतरने के लिए समझाया जाय। और 'नीच' कहलानेवाले वर्ग को हमें द्वेष करना नहीं सिखाना है; बल्कि यह समझाना है, कि नीच पने की भावना से जो भय उत्पन्न होता है उसे वे त्याग दें।

अतः हरिजन-सेवक-संघ दुहरा धर्म पाल रहा है। एक ओर तो वह सवर्ण हिंदुओं से यह कहता है, कि हरिजनों के साथ उन्होंने जो अन्याय किया है, उसका वे प्रायश्चित्त करें—और दूसरी ओर वह हरिजनों के अंदर शिक्षा-संस्कृति का प्रचार कर रहा है और साथ ही, सदियोंतक अत्याचार भोगनेवाले वर्ग में जो दुर्व्यसन पैदा हो जाते हैं, उनकी तरफ़ भी हरिजनों का ध्यान खींच रहा है। मनुष्य का जन्मसिद्ध स्वतंत्रता छीन लेना और उसे जीवन की सामान्य सुविधाएँ तक न देना उसे भूखों मारने से भी बुरी बात है। यह तो आत्मा को—देही को भूखों मारना हुआ। हरिजनों का प्रश्न इस आत्म-हनन का एक सब से प्रबल उदाहरण है। चाहे जितनी किताबी शिक्षा दी जाय, चाहे जितनी आर्थिक स्थिति सुधारी जाय, पर मनुष्य का वह खोया हुआ आत्म-गौरव फिर लौटने का नहीं। वह तो तभी लौटेगा, जब उसे आत्म-साक्षात्कार हो जायगा। जबतक ऊपर का वर्ग अपने पाप का प्रायश्चित्त नहीं करता, तबतक हरिजनों को यह आत्म-साक्षात्कार होने का नहीं। उच्चता का भान और नीचता का भान ये एक ही सिक्के के दो बाज़ू हैं। दोनों एक-से ही बुरे हैं। दोनों का ही इलाज होना चाहिए। 'उच्च' कहलानेवाले सवर्ण हिंदू जो द्वेष करते हैं उसके बदले 'नीच' कहलानेवाले हरिजन अगर उनके प्रति द्वेष करने लग जायँ तो इससे यह रोग दूर होने का नहीं, बल्कि उलटा बढ़ेगा। 'डरो नहीं, दबो नहीं' यह अच्छी सलाह है। पर 'द्वेष करो' यह डरने या दबने की ही तरह बुरा सिखापन है। इसलिए निष्पक्ष निरीक्षक तो यही सलाह दे सकता है, कि 'एक दूसरे के साथ प्रेम रक्खो।' और मुझे आशा है, कि यह पत्र-लेखक अपने दिये हुए उपदेश-सूत्र में अन्तर्निहित यह दोष देख सकेगा।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

हाथ का कुटा चावल

अपने ग्राम-प्रति-ग्राम स्वदेशी के लेख में मैंने यह बताया है, कि उसके कुछ अंग तो तुरन्त हाथ में लिये जा सकते हैं, और इस तरह भूखों मरनेवाले देश के करोड़ों लोगों को आर्थिक तथा आरोग्य की दृष्टि से लाभ पहुँच सकता है। देश के धनाढ्य-से-धनाढ्य लोगों को इस लाभ में भाग मिल सकता है। चावल को ही लीजिए। अगर धान को गाँवों में उसी पुरानी रीति से उखली-मूसल से कूटा जाय तो कूटनेवाली बहिनों को तो रोज़ी मिले ही, साथ ही करोड़ों मनुष्यों को, जिन्हें मशीन का कुटा चावल खाने से निरा 'स्टार्च' मिलता है, हाथ के कुटे चावल में कुछ पौष्टिक तत्व भी मिलने लगें। हमारे देश के जिन भागों में धान की फ़सल होती है, वहाँ प्रायः सब जगह धान कूटने के बड़े-बड़े कल-कारखाने खुल गये हैं—इसका कारण है मनुष्य की लोभवृत्ति। मनुष्य की यह भयानक लोभवृत्ति न तो स्वास्थ्य का विचार करती है, न संपत्ति का। अगर लोकमत प्रबल हो, तो वह हथकुटे ही चावल के उपयोग का आग्रह क़ायम रखे; चावल के मिल मालिकों से वह लोकमत अनुरोध करे, कि उस हानिकर धन्धे को वे बन्द करदें, जो कि राष्ट्र के स्वास्थ्य को चौपट कर रहा है, और ग़रीब लोगों के हाथ से ईमानदारी से गुज़र-बसर करने का एक ज़रिया छीन रहा है, और इस तरह वह धान कूटने की मिलों का चलना असम्भव करदे।

किंतु आहार-तत्वों के मूल्य के विषय में एक साधारण मनुष्य की बात भला कौन सुनेगा? इसलिए मेरे एक डाक्टर मित्र ने, जिनसे मैंने इस सम्बन्ध में सहायता माँगी थी, अपनी सम्मति के साथ कॉलम और सिमण्ड्स की लिखी 'दि न्यूअर नॉलेज आफ़ न्यूट्रीशन' (पोषण का नया ज्ञान) नाम की एक अँग्रेज़ी पुस्तक मेरे पास भेजी है। उसमें का एक उद्धरण मैं यहाँ देता हूँ :—

"आधी से भी अधिक मनुष्यजाति के आहार में चावल सब से अधिक महत्व का अनाज है—ख़ासकर उन प्रदेशों में चावल की बहुत ज़्यादा खपत है, जहाँ सबसे ज़्यादा नमी या तरी रहती है। अमेरिका के संयुक्तराज्यों में चावल ऐसा अधिक पसन्द तो कभी नहीं किया जाता, पर थोड़ी मात्रा में वहाँ भी लोग इसे काम में लाते हैं। जंगली और पिछड़ी हुई जातियों में हथकुटा चावल उपयोग में लाया जाता है और उसे लाल चावल कहते हैं; पर साधारणतया उसे कुछ इस तरह कूटते हैं, कि उसके जीवाणुओं का अधिकांश में नाश हो जाता है। यह जीवाणु-नाश धान को बड़ी-बड़ी काँड़ियों (ओखली) में कूटने से होता है। पर इस क्रिया में भूसी की एक परत तो रही जाती है, जिसमें खनिज क्षार अधिक मात्रा में होते हैं।

जो चावल दूर-दूर के शहरों में बेचा या देसावर को भेजा जाता है, उसे मशीनों से कूटकर ख़ूब मुलायम व चमकदार बना देते हैं। ऐसा करने से चावल की तमाम भूसी और जीवाणुओं का सर्वनाश हो जाता है। गेहूँ या मकाई के जीवाणु की तरह चावल का जीवाणु सूक्ष्म तहवाला होता है, और वही नये जीवतत्व की सृष्टि होती है। चावल में यही संपूर्ण आहारमय तत्व है। चावल में जितनी चर्बी रहती है, वह क़रीब-क़रीब सब इसी में होती है, और यह छोटे-छोटे जन्तुओं तथा बड़े-बड़े प्राणियों का अधिक पोषण करता है। यह बात मशीन के कुटे चावल में नहीं होती, उसमें तमाम पोषक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। १९२३ में हमाडाने कहा था, कि चावल के जीवाणु में रहनेवाला 'प्रोटीन' बहुत ही पौष्टिक होता है। हाथ का कुटा चावल जब गरम जल-वायु में बहुत दिनोंतक रखा रहता है, तब उसकी चर्बी पुरानी पड़ जाती है, और गँधाने लगती है। मिल के कुटे चावल में व्यापारी को इस तरह के नुक़सान का कोई डर नहीं रहता।

मॅकफ़री सन् (१९२३) इस निर्णय पर पहुँचे थे कि यंत्र में कुटे जाने के पहले धान में 'विटामिन ए' (एक पौष्टिक तत्व) होता है। वह कहते हैं, कि उसाने में जब धान को भाप लगती है, तब उस तत्व का अधिकांश में नाश हो जाता है।

चावल को मशीन में पॉलिश करने का यह काम इसीलिए शुरू हुआ, कि वह बहुत दिनोंतक ज्यों-का-त्यों ताज़ा रखा रहे; और उसमें जो दूध की फेन की तरह सफ़ेदी आगई इससे उसकी माँग और भी क़ायम हो गई। सफ़ेद चावल, मैदा और मकाई का सफ़ेद आटा लोगों को जो इतना अधिक भा रहा है, इससे यही प्रगट होता है, कि आहार की पसन्दगी में मनुष्य की मनोवृत्ति काम नहीं देती। उपर्युक्त दृष्टान्तों में कम-से-कम पुष्टिकर वस्तुओं की बाहरी सुन्दरता से ही मनुष्य मोहित हो जाता है।

मशीन के द्वारा कृत्रिम सफ़ेदी लाने का रिवाज इसी कारण चल निकला है, कि बाज़ार में चाँदी-जैसे सफ़ेद चमकदार चावल की ही खपत ज़्यादा हो रही है। पॉलिश करने के साथ-साथ चावल पर सफ़ेदा की बुकनी चढ़ाई जाती है, और 'ग्लुकोज़' की पतली परत के सहारे वह सफ़ेदा चावल पर चिपका रहता है। चावल को जब खाते हैं, तब दूध-जैसा जो उसका धोवन दिखता है उसका कारण उस पर चढ़ा हुआ यह सफ़ेदा ही है।

चार्ट नं० ३ में बताया गया है, कि मिल के कुटे-छने चावल में चारों पौष्टिक तत्व बहुत ही कम होते हैं। उसके 'प्रोटीन' में बहुत ही थोड़ा पौष्टिक तत्व होता है। शरीर की बाढ़ में जिन खनिज द्रव्यों की ज़रूरत होती है, वे भी उसमें बहुत ही कम होते हैं और विटामिन 'ए' और विटामिन 'बी' तो क़रीब-क़रीब होते ही नहीं। इस बात का चूहों पर प्रयोग किया गया तो उससे यह साबित नहीं हुआ, कि मिल के इस चावल में विटामिन 'सी' नहीं है। इस चीज़ की चूहे के आहार में आवश्यकता नहीं।

१९२४ में केनेडी को जंगली चावल में दूसरे किसी भी अनाज की अपेक्षा प्रोटीन की मात्रा अधिक मालूम हुई, पर इस प्रोटीन में पौष्टिक तत्व कुछ कम थे। दूसरे अनाजों को देखते हुए इसमें कुछ ऐसे निरवयव द्रव्य भी हैं, जिनसे प्राणियों के शरीर का विकास नहीं हो सकता। उसमें विटामिन की मात्रा यद्यपि कम होती है, पर 'ज़ेरोथॅल्मिया' नामक रोग रोकने के लिए वह काफ़ी है। असल में मिल के कुटे चावल की अपेक्षा इस जंगली चावल में पौष्टिक तत्व अधिक हैं, क्योंकि उसका प्रोटीन उच्च कोटि का है। शरीर की वृद्धि के लिए विटामिन 'बी' की मात्रा इसमें काफ़ी है।"

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

सस्ता और महँगा

["अलंकार" मे श्री 'तरङ्गित हृदय' ने उक्त शीर्षक का एक बड़ा ही सुन्दर लेख लिखा है। उसके कुछ महत्वपूर्ण अंश हम नीचे देते हैं—सं०]

मैं खद्दर बेचने पहुँचा, तो एक भाई बोले, 'हम तो जो कपड़ा सस्ता होगा उसे ख़रीदेंगे, हम खद्दर ही क्यों लें?' एक अछूत भाई को मैं शराब न पीने को समझाने लगा तो वे बोले 'हम ग़रीब लोग महँगी शराब कहाँ ख़रीद सकते हैं? हमारे पास शराब के लिए पैसा ही कहाँ है?' एक आदमी विदेशी व मिल का (अर्धविदेशी) कपड़ा इसलिए ख़रीदता है, चूँकि वह सस्ता है; दूसरा शराब केवल इसलिए नहीं ख़रीदता, चूँकि वह महँगी है! सस्ती को ख़रीदो और महँगी को छोड़ो, यह कैसा सीधा, सरल और सुन्दर सिद्धान्त है! अतः आज सब दुनियाँ आँख मींचकर इसीका अनुसरण कर रही है। लोग सस्तेपन के देवता का ही आराधन कर रहे हैं। यहाँतक कि बहुत-से लोग सस्ता-सा स्वराज पा लेना चाहते हैं। और क्या कहें, कई लोग सस्ते-से परमेश्वर को ढूँढ़कर उसे अपनाकर, बेफ़िकर हो गये हैं। वे ग्रहण करने और त्यागने की एक ही कसौटी जानते हैं, अर्थात् जिसमें कम दाम लगें उसे लेलो और जिसमें अधिक पैसे ख़र्च हों उसे छोड़दो। इसीलिए आज दुनिया के चतुर-चालाक लोगों की बन आई है। पश्चिमी व्यापारी सस्ता देखनेवाले भारतवासियों की आँखों में दिन दहाड़े धूल झोंक रहे हैं और पढ़े लिखे होशियार लोग सस्ते के नाम पर बेचारे अनपढ़ ग़रीबों को नित्य ठग रहे हैं।

क्या तुम कभी यह भी सोचते हो कि अमुक वस्तु सस्ती क्यों हुई है? क्या तुम नहीं जानते, कि उस मिल का माल सस्ता होगा, जिसके मालिक अपने मज़दूरों को कम मजूरी देते हैं, उन्हें सताते हैं और ठगते हैं? क्या तुम नहीं समझ सकते कि चोरी का सामान परिश्रम से बनाये सामान की अपेक्षा बहुत सस्ता बेचा जा सकता है? क्या तुम नहीं देखते कि उस होटल का खाना अवश्य सस्ता पड़ेगा, जो चर्बी-मिले घी और बुरादा मिले आटे का इस्तेमाल करता है? तो क्या यह चीज़ें वास्तव में सस्ती हैं? सस्ते के नाम से लेने लायक़ हैं?

ज़हर सस्ता मिलेगा, तो क्या इसने से तुम उसे खा लोगे? अभक्ष्य, हानिकारक, स्वास्थ्यनाशक वस्तुओं को सस्ता समझकर खा लेना ज़हर खाना नहीं तो क्या है?

क्या तुम ख़ूनसनी वस्तु को सस्ता होने के कारण ले लोगे? तो ग़रीबों को भूखों मारनेवाला ऐसी विदेशी मिलों का कपड़ा थोड़ा-बहुत ख़ूनसना नहीं है तो और क्या है?

घर को आग लगा देने से निःसन्देह कोयला सस्ता मिल जायगा, क्या तुम ऐसे सस्ते कोयले को लेना चाहोगे? तो फिर विदेशी (विशेषतः व्यवसायवादी कारख़ानों में बनी) चीज़ों को चाहना घर-फूँक सस्ता कोयला चाहना नहीं हैं, तो और क्या है?

मैं यह नहीं कहता हूँ कि तुम सस्ती चीज़ न ख़रीदो, तुम महँगी ख़रीदो। नहीं, तुम अवश्य सस्ती ख़रीदो, पर ज़रूर यह भी देखलो कि अमुक वस्तु सस्ती क्यों हुई है। तुम यदि एक लुटेरे से सस्ता कपड़ा ख़रीदोगे, तो तुम लूट को उत्तेजित करोगे, दुनिया में लुटेरेपने को बढ़ाओगे और यदि तुम एक ग़रीब श्रमी की महँगी रोटी ख़रीद लोगे, तो तुम ईमानदारी को उत्तेजित करोगे और श्रम के महत्त्व को दुनिया में बढ़ाओगे।

तुम महँगी वस्तु कभी मत ख़रीदो, तुम कभी घाटे का सौदा न करो। पर यह तो अच्छी तरह देखभाल लो कि कौन-सी वस्तु वास्तव में महँगी है। जो भोजन प्राणशक्ति देता है, आरोग्यवर्धक है, जिसके सेवन से मनुष्य बीमारी से अतएव दवाइयों के दामों, डाक्टर की बड़ी-बड़ी फ़ीसों से भी बचता है, वह भोजन महँगा क्योंकर है? जो कपड़ा मज़बूत है, देरतक चलता है, और जिसके पहनने से और बहुत-से ख़र्च घट जाते हैं, वह कपड़ा महँगा कैसे है?

विषमय अखाद्य पदार्थ सस्ता ही नहीं, मुफ़्त दिया जाय, तो भी हम फेंक देने के सिवाय उसका अन्य कुछ उपयोग न कर सकेंगे। ऐसी वस्तुएँ असल में हमारे लिए इतनी महँगी पड़नेवाली होती हैं कि हम उन्हें छूनातक नहीं चाहेंगे।

असली बात यह है कि लोग—धन के रोब में आये हुए हम ग़रीब लोग—सब चीज़ों को रुपये-आने-पाई से ही मापना चाहते हैं। पर ऐसी वस्तुएँ संसार में बहुत हैं, जहाँ रुपये-पैसे की पहुँचतक नहीं है। हमारे जीवन से प्रतिक्षण सम्बन्ध रखनेवाली परमावश्यक वस्तुएँ ऐसी-ऐसी हैं, जो कभी भी रुपये-पैसे से ख़रीदी या बेची नहीं जा सकती।

दीक्षा के समय कल्याण और वात्सल्य भाव से दिये गये यज्ञोपवीत का मूल्य क्या तीन धागों का ही मूल्य होता है?

प्राणपण से रक्षा करने-योग्य राष्ट्रीय झण्डे की क़ीमत क्या गज भर कपड़े की ही क़ीमत होती है?

क्या धर्म के सम्बन्ध में कभी सस्ता-महँगा देखा जा सकता है?

क्या प्रेम में कभी सौदा किया जा सकता है?

क्या सत्य के विषय में कभी भाव-ताव किये जाने की गुंजायश हो सकती है?

क्या ईश्वर-भक्ति करते हुए, प्रभु को सब-कुछ सौंपते हुए कभी थोड़े पैसे और बहुत पैसे का विचार किया जा सकता है? चाँदी और सोने का फ़र्क़ किया जा सकता है?

हम मूर्खोंने रुपये-पैसे को ही सबसे क़ीमती वस्तु समझ लिया है, इसलिए हम हरएक चीज़ की क़ीमत आर्थिक दृष्टि से ही लगाने लगते हैं।

खद्दर में दो-चार पैसे अधिक देने में वे ही लोग हिचकते हैं, जो खद्दर के मूल में विद्यमान देश-प्रेम व दरिद्रनारायण को नहीं देखते।

अपने हाथ का बनाया खद्दर तो निःसन्देह अमूल्य है। मैंने एक घण्टे में २०० गज़ सूत काता, तो मेरे अर्थशास्त्री साथी कहते हैं कि तुमने एक घण्टा ख़र्च करके आधे पैसे का भी काम नहीं किया। पर मैं कहता हूँ, कि मेरे यज्ञार्थ काते हुए २०० गज़सूत की क़ीमत एक लाख रुपया क्यों नहीं? जो वस्तु पैसे टकों में नहीं मापी जा सकती, उसे पैसे-टकों में मापने का यत्न करने से ही ऐसा मतिभ्रम होता है।

प्रेम ऐसी क़ीमती वस्तु है कि उसके लिए सर्वस्व-सम्पत्ति ही नहीं, हज़ार बार अपना सिर भी उतारकर दे दिया जाय, तो भी शायद उसकी पूरी क़ीमत अदा नहीं की जा सकती।

पर क्या हम उसके लिए इतनी क़ीमत देने को तैयार हैं ?

सत्य वह हीरे-मोतियों का अटूट ख़ज़ाना है कि उसके लिए रुपये पैसे दिखाना मचमुच बच्चों का ठीकरियों के रुपये पैसेवाला खेल करना है। पर क्या हम सत्य की यह क़ीमत समझते हैं ?

× × × ×

मीरा अपने प्यारे प्रभु गिरधर नागर के विषय में आनन्द-मग्न होकर गाती है—

"माई मैंने गोविंद लीनो मोल,
मैंने गोविंद लीनों मोल।
कोई कहे सस्ता, कोई कहे महंगा,
लियो तराजू तोल॥"

मीराने अपना सर्वस्व देकर जब अपने गोविन्द को पाया है, तो उस पर सारा संसार अपनी-अपनी टीका-टिप्पणी करता है। कोई मीरा के इस सौदे को सस्ता कहता है, कोई महँगा कहता है। पर वहाँ तो सस्ते-महँगे की कोई बात ही नहीं। वहाँ तो वह सौदा हर हालत में लेना है। वह बाज़ारू सौदा नहीं है, वह प्रेम का सौदा है। वह हर भाव लेने लायक सौदा है। असल में वह सौदा ही नहीं है। वह तो प्रतिफल की ज़रा भी इच्छा किये बिना प्रेमवश होकर अपने आपको सौंप देना है, आत्मसमर्पण कर देना है।

सच्चा खादी-प्रचार

इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है कि खादी से बढ़कर गृह उद्योग का साधन अभीतक किसीने सिद्ध नहीं किया है, न प्रयोग करके ही बताया है। दुग्धशाला, मुर्गी के अंडे की पैदावार, रेशम, शहद, साबुन, डलिया, रस्सी आदि बनाने जैसे कितने ही धन्धे आंशिक रूप में, और स्थान तथा परिस्थिति-विशेष में थोड़े-बहुत सफल हो सकते हैं, किन्तु खादी के बराबर व्यापक, सुलभ, सहजसाध्य, जीवन की एक बहुत बड़ी आवश्यकता को पूर्ण करनेवाला आदि गुणों से युक्त धंधा इनमें एक भी नहीं है। फिर भी अभीतक खादी-उद्योग की जितनी चाहिए, देश में प्रगति नहीं हुई है। इसके यों तो छोटे-बड़े कई कारण हैं, किन्तु उनमें सब से बड़ा है खादी सम्बन्धी व्यापक ज्ञान का और उसके पीछे आचरण का। अथवा पिछले १०—१२ वर्षों में खादी की उत्पत्ति बहुत बढ़ी है, किस्मे तरह-तरह की बनी हैं, पोत में भी बहुत उन्नति हुई है, बिक्री और प्रचार का भी बहुत उद्योग किया गया है, सस्ती भी पहले से काफ़ी हो गई है—फिर भी एक भारी कसर इसके कार्य में रह रही है। खादी की ओर लोगों को आकर्षित करने के लिए हमने उनके हृदयों को ज़्यादह स्पर्श किया है; उनकी बुद्धि को आवश्यक खुराक बहुत ही कम दी है। हमने ऐसी दलीलें ज़्यादह दी हैं कि खादी गांधीजी को प्रिय है, इसलिए पहनो; स्वराज की सेना की वर्दी है, इसलिए पहनो; ग़रीबों को दो रोटी देने का पुण्य मिलेगा, इसलिए अपनाओ, आदि। किन्तु उन अंकों और तथ्यों को लोगों के सामने कम रक्खा है, जिनसे उनके दिमाग़ में यह अच्छी तरह बैठ जाय, कि खादी ही एक मात्र हमारे लिए सस्ता और अच्छा कपड़ा है। इतना ही नहीं, बल्कि खादी उत्तम समाज-व्यवस्था का एक तत्व है। यह बात सच है कि बुद्धि की अपेक्षा हृदय में क्रियाबल अधिक है; किन्तु जबतक कोई बात दिमाग़ में बैठती नहीं, तबतक उसका आचरण अधकचरा ही होता है। फिर खादी यदि आत्मानुभव की तरह बुद्धि के क्षेत्र के परे का कोई तत्व होता तो बात दूसरी थी; किन्तु यह तो एक सीधा-सा आर्थिक और सामाजिक प्रश्न है और मोटी बुद्धिवाले की भी समझ में आ सकता है। बल्कि यों कहना चाहिए कि यह इतना सीधा और सरल है कि इसका यही गुण सूक्ष्म और तीव्र बुद्धिवालों को परेशान कर रहा है। इसलिए अच्छा तो यह हो कि खादी के सम्बन्ध में हम पहले लोगों की बुद्धि को समझावें और समझा चुकने के बाद यदि उनमें उत्साह न हो तो फिर उनके हृदयों और मनोभावों को जाग्रत करके उनमें काफ़ी बल और प्रेरणा उत्पन्न करें। मेरी समझ में इससे खादी का अधिक और स्थायी प्रचार होगा।

खादी के विकास और प्रचार में जिस तरह बुद्धि के प्रति अनास्था बाधक है, उसी तरह उसकी अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा भी है। मनुष्य का यह स्वभाव है कि जो वस्तु उसे प्रिय होती है उसमें उसे नये-नये गुण दीखने लगते हैं और कई बार तो अवगुण भी गुण दिखाई देते हैं। किन्तु यह जागृति, विकास और बुद्धि का लक्षण नहीं; शिथिलता, मन्दता और अन्धता का है। जिसके मूल में कोई गहरा सत्य है वह तो सूर्य की तरह अपने आप अपना प्रकाश फैलायेगा। हमारा काम सिर्फ़ इतना ही है कि एक ओर से अज्ञान और दूसरी ओर से अत्युक्तिरूपी बादलों और कुहिरों के आवरण उसके आसपास से हटाते रहें। अज्ञान और अत्युक्ति दोनों के मूल में असत्य ही छिपा हुआ है। खादी-जैसी शुद्ध वस्तु और श्रेष्ठ समाज-तत्व के प्रचार के लिए ज्ञान में या अनजान में, असत्य का अवलम्बन करके हम उसके सत्य तेज को लोगों से दूर रखते हैं।

इसलिए मेरी राय में खादी ही का क्या, किसी भी वस्तु का सच्चा प्रचार है उसके विषय में वास्तविक ज्ञान की सामग्री लोगों के सम्मुख उपस्थित करना। किन्तु इतना ही काफ़ी नहीं है। इससे उनकी बुद्धि को ज्ञान तो हो जायगा, वे निर्णय और निश्चय तो कर लेंगे, किन्तु यह नहीं कह सकते कि इतने ही से वे उसका पालन भी करने लग जायँगे। बुद्धि में निर्णय और निश्चय करने का गुण तो है, किन्तु कार्य में प्रवृत्त और अटल रखने का गुण हृदय में है। जो आदमी किसी से कहता है, पर खुद नहीं करता उसका असर नहीं पड़ता। इसका कारण यह है कि वह कहता है तो लोग भी सुन लेते हैं। लोग अधिकांश में करते तभी हैं जब कहनेवाले को करते हुए भी देखते हैं। क्योंकि वे सोचते हैं कि यदि यह बात वास्तव में हित की और अच्छी है तो फिर यह क्यों नहीं करता ? उसका आचरण ही उसकी अच्छाई या हितकारिता का यक़ीन लोगों को कराता है। होना तो यही चाहिए कि जब कोई बात हमारी समझ में आजावे और हमें हितकारी मालूम हो तब हमें इस बात से क्या प्रयोजन कि दूसरा और स्वयं उपदेशक वैसा चलता है या नहीं ? हम अपने-आप वैसा आचरण करते रहें, किन्तु ऐसी स्वयंप्रेरणा या क्रिया का बल लोगों में आम तौर पर कम पाया जाता है। यह उनके विकास की कमी है। अतएव हम लोगों को भी स्वयं खादी पहनना चाहिए और उसकी उत्पत्ति में किसी-न-किसी तरह सहायक होना चाहिए। क्रिया-बल की कमी

का एक कारण यह भी है कि हमारे शिक्षण और संस्कारों में बुद्धि-बल पर ही ज़्यादह ज़ोर दिया गया है, आचरण-बल पर कम। एक ओर अति बुद्धिवाद हमें आचरण-निर्बल बना रहा है तो दूसरी ओर बुद्धिहीन अनुकरण ज्ञान-निर्बल। हमें दोनों प्रकार की निर्बलताओं से बचना होगा। सत्य की साधना ही हमें इनसे बचायेगी। ज्ञान और सदनुकूल आचरण ही सत्य की साधना है। यही वास्तविक और सच्चा प्रचार है।

हरिभाऊ उपाध्याय

ख़ां साहब और खादी

[२० अक्तूबर को बंबई में खादी-प्रदर्शिनी और स्वदेशी बाज़ार का उद्घाटन करते हुए ख़ान अब्दुलग़फ़्फ़ार ख़ाँने नीचे लिखे आशय का भाषण दिया था।]

आप लोगोंने मुझे इस नुमाइश के खोलने की जो इज़्ज़त बख़्शी है, उसके लिए मैं तहे दिल से आपका आभार मानता हूँ। मुझे इस बात की बहुत ख़ुशी है, कि मुझे खादी की हल-चल बड़ी प्यारी लगती है। इस चीज़ पर मेरा यक़ीन न होता तो मैं आप लोगों का यह मुहब्बत से भरा न्यौता कभी क़बूल न करता। इस चीज़ को हमने अपने सूबे सरहद में १९३० में शुरू किया था। मगर बदक़िस्मती से मैं जेल चला गया, और यह काम रुक गया। १९३१ में जेल से छूटने के बाद महात्माजी के साथ खादी के बारे में मैंने बातचीत शुरू की। पर वे युरोप चले गये, और वहाँ से उनके लौटने के पहले ही हमारे मुल्क में आज़ादी का जंग छिड़ गया।

अभी जेल से छूटने के बाद मुल्क में जो मैं थोड़ा घूमा हूँ, उससे इस चीज़ पर मेरा यक़ीन काफ़ी बढ़ गया है। १९३१ में जब मैं बारडोली गया तब वहाँ मैंने खादी का काम देखा था, लेकिन उसका मेरे ऊपर इतना ज़्यादा असर नहीं पड़ा था। अभी हाल में बंगाल के कुछ गाँवों में मैं गया था। वहाँ मैंने ग़रीबों की हालत बड़ी ही दर्दनाक देखी। वहाँ लोग भूखों मर रहे हैं। उनके तनपर एक चिथड़ा भी नहीं है। जिन गाँवों में चर्खे का काम हो रहा है, वहाँ इतना तो हुआ, कि लोगों को चर्खे से कम-से-कम एक वक़्त का खाना तो मिलने लगा है। पर जहाँ चर्खा नहीं पहुँचा वहाँ लोगों को खाने की भी मुश्किल पड़ रही है।

मैं आपसे यह कहूँगा, कि ख़ुद अपनी आँखों यह सब देख-कर खादी और चर्खे पर मेरा विश्वास बहुत बढ़ गया है। पहले मैं कातता नहीं था, पर अब मैंने कातना शुरू कर दिया है। जबतक मुल्क के नेता मुल्क के सामने ख़ुद करके न दिखायँगे, अपनी मिसाल आगे न रखेंगे, तबतक लोग उनके पीछे कैसे चलेंगे? अब लोग आँख मूँदकर नहीं चलते, अपनी समझ से काम लेने लगे हैं। वे यह देखते हैं, कि उनके नुमाइन्दा कहते ही हैं, या ख़ुद करते भी हैं। अगर ख़ुद अच्छा काम करें, तो लोग ज़रूर वह काम करेंगे। उन्होंने ख़ुद अमल न किया, तो लोगों से उम्मीद रखना बेकार है। महात्माजी ख़ुद चर्खा न चलाते होते तो आज चर्खे का काम इतनी तरक़्क़ी पर न होता। महात्माजी लोगों के आगे अपनी यह मिसाल रखना चाहते हैं, कि जिस चीज़ में उनका यक़ीन है उसे वे ख़ुद करते हैं। चर्खे और खादी में अगर हमारा विश्वास है, तो चर्खा हमें चलाना ही चाहिए, और इस तरह क़ौम के आगे हमें अपना असली नमूना रख देना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं, कि इसमें वक़्त ज़ाया होता है। महात्माजी का वक़्त कितना बेशक़ीमती है, पर वे भी जब इस काम के लिए वक़्त निकाल लेते हैं, तो दूसरे लोगों को वक़्त की शिकायत क्योंकर हो सकती है?

बंगाल में मैंने देखा, कि लोग सूत कातते हैं और उसे बेच कर मिल का कपड़ा ख़रीदते हैं। वे कहते हैं, कि मिलका कपड़ा भी तो देश का ही बना हुआ है। पर हम यह नहीं चाहते। महात्माजीने जो काम शुरू किया है उसका मतलब तो यह है कि सभी लोग उससे फ़ायदा उठावें। मैं बड़े-बड़े खादी-भंडारों के ख़िलाफ़ हूँ। हमें तो ऐसी कोशिश करनी चाहिए, कि हमारे गाँव अपने पैरों पर खड़े हो जायँ, याने अपनी ज़रूरतभर के लिए वे कात-बुन लें और अपना अपना कपड़ा ख़ुद ही तैयार करलें।

मैं कुछ खादी-भंडारों में भी गया था। वहाँ मैंने देखा, कि मर्दों व बहिनों के लिए हर तरह की खादी उन भंडारों में मौजूद है। भाइयों और बहिनों से मैं यह कहूँगा, कि खादी ही पहनो, देश की ही चीज़ काम में लाओ। इतना भी हम न कर सके, तो फिर और क्या कर सकेंगे?

पांडित्य बड़ा कि आचरण?

तपस्वी अबु इस्हाक़ इब्राहिम एक दिन बैठे उपदेश दे रहे थे। एक मौलवी भी उस श्रोतृ-मण्डली में उपस्थित था। मौलवी मन-ही-मन विचारने लगा, कि मैंने अनेक शास्त्रों का अभ्यास किया है, इस्हाक़ से मैं कहीं ज़्यादा विद्वान् हूँ, तो भी लोग मेरा आदर न करके इनका आदर इतना अधिक क्यों करते हैं? तपस्वी इस्हाक़ मौलवी के इस मनोभाव को ताड़ गये। पास ही जलते हुए दीपक की तरफ़ इशारा करके वे बोले—'इस दीये के प्याले में पानी और तेल दोनों भरे हैं। उसमें का पानी तेल से कहता है कि मैं तुझसे बड़ा हूँ, फिर भी तू मेरे सिर पर सवार है! तेल जवाब देता है, कि 'मैंने बहुत तकलीफ़ें झेली हैं, तिल के रूप में धरती में गड़ा रहा, उगा, काटा गया, कुचला गया, पेरा गया, और अब लोगों को प्रकाश देने के लिए आग में जल रहा हूँ। तुम्हारी अपेक्षा मुझ में यही विशेषता है।' इतना कहकर इस्हाक़ नीचे उतरे। वह मौलवी दौड़कर उनके पैरों पर गिर पड़ा और पछतावा करके माफ़ी माँगने लगा। उसे यह सूझ गया, कि—पांडित्य पृथिवी है तो आचरण आकाश।

भूल-सुधार

[१९ अक्तूबर, १९३४ के 'हरिजन-सेवक' (अङ्क ३५) में "राजपूताने के कुछ हरिजन-केन्द्र" शीर्षक लेख में दो भूलें हो गई हैं, जिनके लिए हमें खेद है। 'चिड़ावे की रात्रि-पाठशाला में भंगी बालकों का प्रवेश नहीं' के बजाय 'भंगी बालक पाठ-शाला में पढ़ने नहीं आते' तथा 'चिड़ावे में भंगियों के क़रीब २५० घर हैं' के स्थान पर 'भंगियों की जन-संख्या लगभग २५० के है' होना चाहिए। पाठक इन भूलों को कृपया सुधार लें—सं०]

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg No. L. 1369

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ९ नवम्बर, १९३४. [संख्या ३८

विषय-सूची

राजपूताने में अस्पृश्यता

क्षेत्रफल तो राजपूताना एजेन्सी का १२९००० वर्ग मील है, पर जनसंख्या सिर्फ़ ११५००००० ही है—प्रति वर्ग मील ८७ की बस्ती समझ लीजिए। इस एजेन्सी में १९ तो स्वतंत्र रियासतें हैं, १ अगह चीफ़ है और १ स्वतंत्र जागीर है। राजा-महाराजाओं को काफ़ी अधिकार मिले हुए हैं। राजपूताने की जन-संख्या में ८५ प्रतिशत तो सिर्फ़ हिन्दू ही हैं। इनमें दलित जातियों की संख्या १५ लाख से कुछ ऊपर है। भील और कोलियों को इस संख्या में नहीं लिया। ये लोग लगभग ७६ लाख के हैं। कुछ रियासतों में इन जातियों को भी अछूत मानते हैं। चमार, बलाई, चाँभी, रेगड़ और भंगी ये जातियाँ ही राजपूताने में सब से अधिक दलित मानी जाती हैं। भंगी को छोड़कर बाक़ी को ये सब जातियाँ चमड़े का धन्धा करती हैं।

समाज में इन जातियों का दर्जा इनके धन्धे और रीति-रिवाज के अनुसार माना जाता है—जैसे, कोली, चमार से ऊँचा है, क्योंकि ख़ास धन्धा तो उसका खेती है और कपड़ा भी कुछ बुन लेता है; बलाई (मेघवाल) से चमार ऊँचा है, क्योंकि वह जूता और चरसा बनाता है, पर चमड़ा नहीं पकाता; फिर बलाई रेगड़ से बड़ा है, यह इसलिए कि वह चमड़ा पकाता है और कपड़ा भी बुनता है; और रेगड़ का दर्जा भंगी से ऊँचा है, क्योंकि चमड़ा पकाने का काम भंगी के धन्धे से फिर भी ऊँचा माना जाता है। भंगी-भंगी में भी भेद है। गाँव का भंगी सुअर पालता है। शहर के भंगी से वह ग़रीब भी होता है, पर घर-बखरी और रहन-सहन उसकी अधिक साफ़-सुथरी होती है। राजपूताने में पानी का कई जगह कमाल ही रहता है, जिससे सामान्य जनता वहाँ की दलित जातियों से कुछ अधिक स्वच्छ देखने में नहीं आती। राजपूताने में सफ़ाई की तरफ़ से तो निराश ही होना पड़ता है। फिर भी उच्च-नीच-भाव तो मौजूद है ही। लोगों की अपनी आदतें चाहे जैसी हों, इसकी कोई ऐसी अपेक्षा नहीं करता। तमाखू पीना, शराब पीना, अफ़ीम खाना या जुआ खेलना किसी जाति के सामाजिक पद या स्थान का मापदण्ड नहीं माना जाता। इस मापदण्ड से अगर काम किया जाय, तो शायद उससे समाज का सारा ढाँचा ही पूरी तरह उलट-पलट हो जाय। इस दशा में, आप जानते हैं, राजपूताने के राजपूतों का स्थान कहाँ होगा?

इस सामाजिक चढ़ा-उतरी में हमें धन्धा उतना मुख्य मालूम नहीं होता, जितना कि सामाजिक रीति-रिवाज। मुर्दे के गाड़ने या जलाने की ही बात ले लीजिए। ब्रिटिश भारत की तरह राज-पूताने में भी यह भेद-भाव मौजूद है। जो अच्छे सवर्ण हैं, वे सब अपने मुर्दे जलाते हैं, पर ग़रीब दलित जातियाँ तो अपने मुर्दे को दफ़ना ही सकती हैं। राजपूताने के चमार अब मुर्दा जलाने लगे हैं—वे ऐसा कर सकते हैं, क्योंकि वहाँ के हरिजनों में चमार ही रोटी-भाजी से सबसे अधिक सुखी हैं। भंगी आमतौर पर दफ़नाते ही हैं। बलाई (मेघवार) अभी किसी निश्चय पर नहीं पहुँचे। राजपूताने में सब लोग रामदेवजी को बड़ा मानते हैं। १७ वीं शताब्दी में मारवाड़ में यह एक अच्छे सन्त हो गये हैं। कहते हैं, कि बालक तो यह मुसलमान के थे, पर लालन-पालन इनका राजपूत माता-पिताने किया था। आज भी रामदेवजी का 'धाम' साल में ५ दिन मुसलमानों के लिए खुला रहता है। यों तो सभी हिन्दू इस 'धाम' के दर्शन करते हैं, पर जो हरिजन यह तीर्थयात्रा करने जाते हैं, वे सब साधारणतया अपने मुर्दों को गाड़ते ही हैं, जलाते नहीं। अपने मन्दिरों में ये लोग एक छोटी-सी समाधि और महात्मा रामदेवजी के चरण चिह्नों की प्रतिष्ठा करके पूजते हैं।

मुर्दार मांस का खाना भी एक ऐसा टेढ़ा सवाल है, कि जिसका विभिन्न जातियाँ भिन्न-भिन्न जवाब देती हैं। चमारों में तो मुर्दार मांस खाने का रिवाज वहाँ अब बिलकुल ही नहीं है। उनके लिए मुर्दार मांस का छोड़ देना कोई कठिन काम नहीं। बात यह है, कि ढोरों की लाश को ये लोग चीरते फाड़ते तो हैं नहीं, ये तो पके पकाये चमड़े का ही धंधा करते हैं। बलाई बेचारे पसोपेश में पड़े हुए हैं। राजपूताने-जैसे ग़रीब प्रांत के लिए यह कोई मामूली बात नहीं है। रहा भंगी, सो वह सुअर रखता है और उसका गोश्त खाता है। सुअर तो गंदे होते हैं, पर उनका गोश्त, कहते हैं, अच्छा मज़ेदार होता है।

राजपूताने में एक और अजीब रिवाज है। वहाँ कुछ हरिजन 'गोबरिया' खाते हैं। मवेशियों के गोबर में से अनाज के जो साबित दाने बीन लेते हैं उसे गोबरिया कहते हैं। यह रिवाज ऐसा बहुत ज़्यादा नहीं है, और मुझे विश्वास है कि यह बहुत जल्द दूर हो जायगा। मुर्दार मांस को तो कुछ स्वाद के लालच से खाते हैं, पर गोबरिया का खाना तो उनका अत्यन्त दरिद्रता

और दलितावस्था का ही द्योतक है। हिंदू समाजने इन बेचारों को हीनावस्था की किस हदतक पहुँचा दिया है, कुछ ठिकाना!

इन दलित जातियों के उद्धार के लिए राजपूताने की रियासतोंने कुछ भी नहीं किया। सिवा एक के, सभी हिंदू ही रियासतें हैं और उनमें आबादी भी हिंदुओं की ही सबसे अधिक है, पर ग़रीब हरिजनों को तो वहाँ डग-डग पर मुसीबतें ही हैं। किसी सार्वजनिक मंदिर के अंदर वे पैर नहीं रख सकते। सिवा एक अलवर के किसी भी राज्य के स्कूलों में उनके बच्चे दाख़िल नहीं किये जाते। अजमेरतक के सह यता-प्राप्त ख़ानगी स्कूलों में उनका प्रवेश नहीं! सिर्फ़ मिशन-स्कूलों के ही द्वार उनके लिए खुले हुए हैं। ऐसे स्कूल काफ़ी अच्छी संख्या में हैं और बड़ी अच्छी तरह चल रहे हैं। राज्यों से उन्हें ख़ासी अच्छी सहायता मिल रही है। हरिजनों के लिए एक भी पृथक् पाठशाला—साधारण या औद्योगिक—नहीं है। न हरिजन जातियों के लिए छात्रवृत्तियाँ हैं, न छात्रालय हैं, न कोई दूसरा ही प्रबंध है। असल में राजपूताने के ये १५ लाख हरिजन मर्दुमशुमारी के काग़ज़ों में सिर्फ़ इसलिए दर्ज हैं, कि वे राजा-महाराजाओं की प्रजा हैं, या वक़्त ज़रूरत 'बेगार' में उनका उपयोग कर लिया जाता है।

ऐसे पिछड़े हुए प्रांत में हरिजन-सेवक-संघ चुपचाप क़दम फूक फूककर दो साल से सेवा-मार्ग पर चल रहा है। समस्त राज्यों से संघने उनकी सीमा के अन्दर काम करने की परवानगी माँगी। कई राज्योंने तो कुछ भी हाँ—ना का उत्तर नहीं दिया और कुछ का यह जवाब आया कि हम नहीं चाहते, कि बाहर के आदमी हमारे राज्य के अन्दर काम करें, क्या हम ख़ुद काम नहीं कर रहे हैं? और राजपूताने में 'बाहरवाले' शब्द का परिभाषा विचित्र ही है—वहाँ कोटा राज्य का आदमी जयपुर या अलवर राज्य के लिए 'बाहरवाला' आदमी है! तो भी इतना तो हमें कृतज्ञतापूर्वक क़बूल करना ही चाहिए, कि अबतक अधिकांश राज्योंने संघ के कार्य का ऐसा कोई ख़ास विरोध नहीं किया। यही बड़ी बात है। इस समय संघ की ४४ समितियों की ओर से बारह बड़े-बड़े राज्यों में दिन और रात्रि की १३५ पाठशालाएँ चल रही हैं। राज्य इन पाठशालाओं को सहायता नहीं देते तो कोई बाधा भी नहीं देते हैं। वे तो इस दिन दिन बढ़ते हुए हरिजन-कार्य को तटस्थ होकर, कुछ सन्देह की दृष्टि से, देख भर रहे हैं। सिर्फ़ एक राज्यने २००) सालाना सहायता देने का वचन दिया है, और एक दूसरे राज्यने चन्द हरिजन-पाठशालाओं पर ५००) सालाना ख़र्च करने का निश्चय किया है—और यह बात उन राज्यों की है, जहाँ पोलो और रंगमहलों की सजावट पर लाखों रुपये हर साल पानी की तरह बहा दिये जाते हैं।

इसमें सारा दोष राज-महाराजाओं का नहीं है। उनका रुख़ वही होगा, जो उनकी प्रजा का होगा। चूँकि सवर्ण हिंदुओं की हरिजन-कार्य से कोई दिलचस्पी नहीं, इसलिए राज्य भी इस काम में कोई रस नहीं ले रहे हैं, फिर ऐसी स्थिति में पैसा इकट्ठा करना कठिन ही है। हाँ, कुछ लोग की सहानुभूति इस काम के साथ है, पर कोरी सहानुभूति ही समझिए—न तो पैसा ही वे देते हैं, न कोई काम ही करते हैं। और यह भी सम्भव नहीं, कि इस कार्य का नैतिक समर्थन करने के लिए कोई ज़ाहिरा अपील निकाली जाय। बड़ी आफ़त है। रियासतों के मनमाने क़ाइदों और आर्डिनेंसों के मारे मुँह खोलना भी एक बला मोल लेना है। जुलूस निकालना हो, सभा करनी हो, व्याख्यान देना हो, किताब छपानी हो—पहले से ख़ास परवानगी दरबार से लेनी होगी। इतने बड़े राजपूताने में आप यह सुनकर हैरान होंगे, कि वहाँ अँग्रेज़ी या हिंदी का एक भी दैनिक अख़बार नहीं है। बेचारी जनता युगों से गहरी नींद में पड़ी हुई है, दुनियाँ में कहाँ क्या हो रहा है उसे ज़रा भी ख़बर नहीं, और उसे चेताने या जगाने का भी कोई साधन नहीं। उधर सनातनी हमारे काम के विरुद्ध हैं, पर अबतक उनका विरोध ऐसा कुछ सख़्त नहीं रहा, उसमें कोई जान नहीं। ऐसी कोई बहुत शोचनीय दुर्घटनाएँ नहीं हुईं। चन्द जगहों में संघ के सवर्ण सेवकों को कुओं पर नहीं चढ़ने दिया। पुष्कर में जब हरिजन-पाठशाला खोली गई, तो सनातनियोंने वहाँ विरोध-प्रदर्शन किया। हरिजन पाठशालाओं के लिए मकान भाड़े पर नहीं देते और राज्य के अधिकारियों को भी भड़काते हैं, कि वे हरिजन-कार्यकर्त्ताओं को काम करने की किसी तरह की कोई सुविधा न दें।

इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी हरिजन-सेवक-संघने इतने थोड़े समय में काफ़ी अच्छा काम किया है। उसकी ४४ स्थानिक समितियाँ १३५ हरिजन-पाठशालाएँ चला रही हैं, जिनमें ३५०० विद्यार्थियों की औसत हाज़िरी रहती है। लड़कियों के लिए कोई अलग पाठशाला नहीं है, पर लड़कों के साथ क़रीब १०० लड़कियाँ भी इन हरिजन-पाठशालाओं में पढ़ती हैं। अधिकतर पाठशालाएँ दिन की ही हैं, जहाँ बच्चों को नहलाने-धुलाने और दतौन कराने का ख़ास इन्तज़ाम किया गया है। हफ़्ते में एक बार उनके कपड़े नियमित रूप से धोये जाते हैं। हाल में दो आश्रम स्थापित हुए हैं—एक तो अजमेर के पास नारेली में और दूसरा डूँगरपुर राज्य के अन्तर्गत सागवाड़ा में। प्रथम नारेली-आश्रम का अपना है। यहाँ हरिजन-सेवकों को सेवा-कार्य भी सिखाया जाता है। गतवर्ष संघने हरिजन-कार्य पर ८०००) ख़र्च किये। और इस वर्ष क़रीब २८०००) का ख़र्चा आयगा। हरिजनों की आर्थिक उन्नति में अखिल-भारतीय चर्खा-संघ भी योग दान दे रहा है। अकेले जयपुर राज्य में ही प्रतिमास २००००) की खादी तैयार होती है। क़रीब ३२० बुनकर, जो ज़्यादातर कोली और बलाई हैं, छै आने से लेकर आठ आने तक इस धन्धे से रोज़ कमा रहे हैं। १९३४–३५ का बजट जो हरिजन-सेवक-संघने बनाया है, वह क़रीब ३२०००) का है। आशा है, कि संघ का काम अब और भी जम जायगा और विस्तृत भी काफ़ी हो जायगा।

एन० आर० मलकानी

हाथ के कुटे चावल पर
डाक्टरों की राय

पार साल श्री मोठ्ठा वेंकट रमैया और मैंने मिलकर गुंटूर-ज़िले के हथकुटे चावल का प्रचार करनेवाले मंडल की ओर से गुंटूर क़स्बे के डाक्टरों की राय इस विषय में एकत्र की थी, और हमने उन सम्मतियों की एक पुस्तिका तेलगु भाषा में छपाई थी। राय देनेवाले सज्जनों में एक तो आई० एम० एस० आफ़िसर हैं, २३ एलोपैथी की हिन्दुस्तानी डिग्रीधारी हैं, २ के पास आयुर्वेद की डिग्री है, और ५ उनमें बिना डिग्री

के हैं। इन पाँच सज्जनों में २ यूनानी हैं, १ प्राकृतिक उपचार करनेवाले हैं, और २ हैं होमियोपैथीवाले। कई तो इनमें खासे पुराने और अनुभवी हैं। कुछ नये भी हैं। पर सबने एक स्वर से हाथ के कुटे चावल के पक्ष में ही राय दी है, और मिल के पोलिशदार चावल को हानिकारक बतलाया है। डा० एम० एम० आफिसर लिखते हैं, "मिल के कुटे और पोलिश किये चावल की अपेक्षा हथकुटे में पोषक तत्व अधिक है, और 'बेरीबेरी' नामक रोग को रोकने का भी उसमें गुण है। विटामिन की मात्रा भी उसमें अधिक है।" एक दूसरा डाक्टर लिखता है, "१९२९-३० में इकट्ठे किये हुए आँकड़ों से यह पता चलता है, कि जहाँ-जहाँ धान कूटने की बड़ी-बड़ी मिलें हैं, और जहाँ चावल ही लोगों का मुख्य आहार है वहीं बेरीबेरी रोग के मरीज़ अधिक-से-अधिक संख्या में पाये जाते हैं।" एक तीसरा डाक्टर अपने निजी अनुभव के आधार पर लिखता है, "हथकुटा चावल काम में लाने से मेरे कुटुम्बवालों को आरोग्य की दृष्टि से बहुत लाभ पहुँचा है।"

बेजवाड़ा के 'खद्दर-संस्थानम्' वाले श्री वेंकट कृष्णैयाने बेजवाड़ा के ८ डाक्टरों की राय इस विषय में इकट्ठी की थी। गुंटूर के वैद्य-डाक्टरों की राय से ये डाक्टर भी इस बात में सहमत हैं, कि लोगों में हथकुटा चावल खाने का ही प्रचार करना चाहिए। बेजवाड़ा के इन सम्मतिदाताओं में ४ तो वैद्य हैं और ४ डाक्टर।

कई वर्ष हुए, कि मद्रास-सरकारने कृषि-विभाग से एक पुस्तक प्रकाशित की थी। उसमें लिखा है, कि बेरीबेरी के इस दुष्ट रोग का मूल मिल के कुटे चावल में है। जापान-सरकारने एक खास हद से अधिक पोलिश किये हुए चावल खाने की मनाही कर दी है, क्योंकि एक डाक्टरने लिखा है कि, "चावल में यों ही प्रोटीन, चर्बी और क्षार की मात्रा बहुत कम होती है, उसमें भी जब चावल मिल का कुटा और पोलिशदार हो तब तो वह और भी ख़राब हो जाता है।"

इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है, कि पोलिश किया हुआ चावल काम में लाने से मनुष्य के स्वास्थ्य को बहुत नुकसान पहुँचता है। सरकार तथा जनता को जिस तरह बने जल्द ही हथकुटे चावल के उपयोग का प्रचार शुरू कर देना चाहिए। सरकार के जो अस्पताल और जेलखाने हैं, वहाँ मरीजों और क़ैदियों को पोलिश किया हुआ चावल दिया जाता है। अगले वर्ष के आरम्भ से सरकार को हथकुटे चावल के लिए टेंडर मँगाने चाहिए। सरकारने ऐसा किया तो इस उद्योग को प्रोत्साहन मिलेगा, और इस उद्योग के अनुकूल वातावरण भी बन जायगा।

हथकुटे चावल का उपयोग तो एक फैशन हो जाना चाहिए, और उसे सम्माननीय वस्तु बन जाना चाहिए। हाथ से धान कूटने का यह धंधा स्वस्थ शरीरवाले ग़रीब लोगों को सारे दिन काम में लगाये रख सकता है। इस दिन-दिन बढ़ती हुई बेकारी के ज़माने में तो यह धंधा आशीर्वाद रूप साबित होगा। हम हथकुटे चावल का एकदम सभी लोग उपयोग करने लग जायँ, तो भी न तो चावल का अकाल ही पड़ जायगा, न भाव में तेज़ी ही आ जायगी। जहाँ जितनी माँग होगी, वह सब वहीं स्थानिक प्रबंध से पूरी हो जायगी।

'हरिजन' से] श्री० सीताराम शास्त्री

ईश्वर एक है

हमारा सिरजनहार ईश्वर वास्तव में एक ही है। वह अगम, अगोचर और मानव-जाति के बहु-जन-समाज के लिए अज्ञात है। वह सर्वव्यापी है। वह बिना आँखों के देखता है और बिना कानों के सुनता है। वह निराकार और अभेद है। वह अजन्मा है। उसके न माता है, न पिता, न सन्तान—फिर भी वह पिता, माता व पत्नी या सन्तान के रूप में पूजा ग्रहण करता है। यहाँ तक कि वह काष्ठ या पाषाण के भी रूप में पूजा-अर्चा को अङ्गीकार करता है, हालाँकि वह न तो काष्ठ है, न पाषाण आदि ही। वह हाथ नहीं आता, चकमा देकर निकल जाता है। अगर हम उसे पहिचान लें तो वह हमारे बिल्कुल नज़दीक है। पर अगर हम उसकी सर्वव्यापकता को अनुभव न करना चाहें तो वह हमसे अत्यन्त दूर है। वेदमें अनेक देवता हैं। दूसरे धर्मग्रन्थ उन्हें देवदूत या नबी कहते हैं। पर वेद तो एक ही ईश्वर का गुण-गान करते हैं।

× × × ×

आवश्यकता इस बात की नहीं है कि सब का धर्म एक बना दिया जाय, बल्कि इस बात की है कि विभिन्न धर्मों के अनुयायी और प्रेमी परस्पर आदरभाव और सहिष्णुता रक्खें। हम सब धर्मों को मृतवत् एक सतह पर लाना नहीं चाहते, बल्कि विविधता में एकता चाहते हैं। पूर्व परंपरा तथा आनुवंशिक संस्कार, जलवायु और दूसरी आसपास की बातों के प्रभाव को उन्मूलित करने का प्रयत्न केवल असफल ही नहीं बल्कि अधर्म होगा। आत्मा सब धर्मों की एक है—हाँ, वह भिन्न आकृतियों में मूर्तिमान होती है और यह बात काल के अन्ततक कायम रहेगी। इसलिए जो बुद्धिमान हैं, समझदार हैं वह तो ऊपरी कलेवर पर ध्यान न देकर भिन्न-भिन्न आकृतियों में उसी एक आत्मा का दर्शन करेंगे। हिन्दुओं के लिए यह आशा करना कि इस्लाम, ईसाई धर्म और पारसी धर्म हिन्दुस्तान से निकाल दिया जा सकता, एक निरर्थक स्वप्न है—इसी तरह मुसलमानों का भी यह उन्माद करना कि किसी दिन अकेले उनके मज़हब वाले इस्लाम का राज्य सारी दुनिया में हो जायगा, कोरा ख़्वाब है। पर अगर इस्लाम के लिए एक ही ख़ुदा को तथा उसके पैग़म्बरों की अनन्त परम्परा को मानना काफ़ी होता हो तो हम सब मुसलमान हैं—इसी तरह हम सब हिंदू और ईसाई भी हैं। सत्य किसी एक धर्म ग्रन्थ की एकान्तिक सम्पत्ति नहीं है।

['हिंदी नवजीवन' से] गांधीजी

सस्ता-साहित्य-मण्डल का साहित्य

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ९ नवम्बर, १९३४

ग्राम-उद्योग-संघ

["चूँकि स्वदेशी के कार्य को आगे बढ़ाने का दावा करनेवाले अनेक मंडल सारे देश में, कांग्रेसजनों की सहायता से और बिना सहायता के भी, खुल गये हैं और चूँकि इससे स्वदेशी के सच्चे स्वरूप के सम्बन्ध में जनता के मन में भारी भ्रम उत्पन्न हो गया है; चूँकि कांग्रेस का ध्येय उसके जन्म-काल से ही जनसाधारण के साथ आत्मीयता बढ़ाते रहने का रहा है, और चूँकि ग्राम-संगठन कांग्रेस के रचनात्मक कार्य-क्रम का एक अंग है, और चूँकि गाँवों के इस नये संगठन में चर्खे के मुख्य उद्योग के बाद मरे हुए या मरते हुए ग्राम उद्योगों को पुनर्जीवित करने और उन्हें प्रोत्साहन देने का समावेश हो जाता है, और चर्खा-संघ के विधान की तरह, कांग्रेस की राजनीतिक प्रवृत्तियों से अलिप्त तथा स्वतन्त्र रहकर तन्मयता और विशेष प्रयत्नपूर्वक ही यह काम हो सकता है, इसलिए इस प्रस्ताव के द्वारा श्री कुमारप्पा को गांधीजी के परामर्शानुसार और दखरेख के आधीन, कांग्रेस की प्रवृत्ति के एक अंश के रूप में, 'अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ' नामक संस्था स्थापित करने का अधिकार दिया जाता है। यह संघ घरेलू उद्योगों के पुनरुद्धार तथा प्रोत्साहन और गाँव की नैतिक तथा शारीरिक उन्नति के लिए प्रयास करेगा; और उसे अपना विधान बनाने, धन-संग्रह करने तथा अपनी उद्देशपूर्ति के लिए तमाम आवश्यक काम करने का अधिकार रहेगा।"

गत २४ अक्तूबर को बम्बई में कांग्रेस की विषय-निर्धारिणी समिति के आगे 'ग्राम-उद्योग संघ' का प्रस्ताव पेश करते हुए गांधीजीने जो भाषण किया था उसका मुख्य भाग नीचे दिया जाता है।]

गाँवों की दरिद्रता

इस साल जब मैं हरिजन दौरा कर रहा था तब लोग मेरे पास आकर अपनी मुसीबतों को सुनाते थे। इस यात्रा में मैंने जितना भ्रमण किया उतना कभी नहीं किया और उड़ीसा की पैदल यात्रा में तो मुझे असाधारण अनुभव प्राप्त हुए। हमारे सात लाख गाँवों में कुछ पार है बेकारी का! लोग खेती पाती से किसी तरह अपनी जीविका चलारहे हैं। पर लाखों लोगों को खेती में नुकसान पहुँचता है। और आज की मुसीबत का तो कुछ लेखा ही नहीं। आज तो किसान जितना खाते हैं उतना भी पैदा नहीं होता। इतनी दरिद्रता गाँवों में पहले कभी न हुई होगी। जो लाखों-करोड़ों का सोना देश से निकल गया है उसके राजनीतिक कारण तो हैं ही, पर एक कारण लोगों की यह लाचारी भी है। इस बेकारी से ही चर्खे की उत्पत्ति हुई है। हिन्दुस्तान को छोड़कर दूसरा कौन ऐसा देश है कि जहाँ लोग केवल खेती पर ही गुजर-बसर करते हों? मधुसूदनदासने कहा था, कि खेती के साथ-साथ गाँववालों के लिए कोई-न-कोई ऊपरी धंधा तो होना ही चाहिए। जर्मनी जाकर वे चमड़े का काम सीख आये थे। उनका एक वाक्य मुझे आज भी याद है, कि हमेशा बैल के साथ काम करनेवाले की अकल भी बैल की जैसी ही होजाती है। हमारे किसान भाई आज काम-धंधे से हाथ धो बैठे हैं, और उनमें एक प्रकार की जड़ता भी आ गई है।

बेकारी का इलाज

साम्यवादियों का एक अखबार एक सज्जन मेरे हाथ में दे गये थे। उसमें एक बड़ा सुन्दर लेख है। उसमें लिखा है, कि हिन्दुस्तान के लोग मानो पशु हो रहे हैं। आज से दस ही बरस पहले देश में अनेक उद्योग-धंधे देखने में आते थे, पर आज उन सबका जैसे लोप हो गया है। अब तो सिर्फ़ खेती पर ही लोग निर्वाह कर रहे हैं, और इससे बेकारी अनेक गुनी बढ़ गई है। मैंने तो उस लेख में से यही सार निकाला, कि इस बेकारी का आखिर इलाज क्या हो सकता है? इस पर विचार करते समय स्वदेशी का शुद्ध स्वरूप मेरे आगे आया। अकेली खादी में ही २२०००० कातनेवाली स्त्रियाँ काम में लगी हुई हैं। दस साल में करीब ७५ लाख रुपये हमने इन्हें दिये हैं। इस काम की देखरेख रखनेवाले मध्यमवर्ग के ११०० आदमियों की जीविका खादी से चल रही है। इन लोगों के द्वारा यह पौन करोड़ रुपया गाँवों में पहुँचा है। खादी का यह काम आज पाँच छै हजार गाँवों में चल रहा है। और २० लाख रुपये से अधिक मूलधन इसमें नहीं लगा हुआ है।

पर इतने से हिन्दुस्तान की सारी बेकारी थोड़े ही दूर हो जाती है। बढ़ई की ही बात लेता हूँ। अपने यहाँ का बढ़ई किसी समय बड़ा अच्छा कारीगर था। आज वह सब कारीगरी भूल गया है। आज तो गाँव का बढ़ई चर्खातक नहीं बना सकता। बिहार की ही बात लीजिए। भूकम्पने वहाँ खेतों का नाश कर दिया है। बालू ही-बालू जहाँ-तहाँ दिखाई पड़ता है, और खेती करना असम्भव सा हो गया है। वहाँ यह निश्चय किया गया, कि जो लोग भूखों मर रहे हैं, उन्हें हर रोज़ भीख देना तो ठीक है नहीं, इससे और नहीं तो चर्खा चलवाकर ही उनकी बेकारी दूर करने का कुछ प्रयत्न किया जाय। पर प्रश्न यह था कि इतने चर्खे लायें कहाँ से? अच्छा हुआ कि वहाँ के बढ़ई चर्खे बना तो सकते थे।

अपने देश में शहरों की तो तीन ही करोड़ की आबादी है। बाकी के ३२ करोड़ आदमी तो दस हज़ार से कम जन-संख्यावाले गाँवों में रहते हैं। उनका हमने कभी ख़याल ही नहीं किया। वे क्या तो खाते हैं, क्या पीते हैं, क्या धन्धा करते हैं इन बातों का कभी विचारतक न करते हुए हम उन बेचारों के कन्धों पर सवारी किये हुए हैं। इन लोगों के लिए आपसे चर्खा चलाने को कहता हूँ तो आपको मेरी यह बात सुहाती नहीं। चर्खा-संघ इन लोगों को चर्खा पकड़ा तो रहा है, पर जो काम बाकी रहता है उसे यह नया संघ पूरा करेगा। चर्खे के अतिरिक्त बाकी के जिन उद्योगों को लोग घर बैठे ही कर सकते हैं, उन सब का पता यह संघ लगायेगा। जिन उद्योगों का पुनरुद्धार हो सकता है उनका पुनरुद्धार करेगा; जो चीज़ें तैयार होती होंगी उन्हें और भी अच्छी तरह तैयार कराने की योजना यह संघ बनायेगा; और नयी-नयी और क्या-क्या चीज़ें बन सकती हैं इसका भी यह पूरा पूरा पता लगायेगा। इस काम के द्वारा ग़रीब लोगों की जेब में कुछ करोड़ रुपये तो पहुँचेंगे ही। चर्खे के विषय में जितनी मुझे आशा थी, उतनी दिलचस्पी आपने नहीं की।

मेरी तो यह कल्पना थी, कि विदेशी कपड़े के पीछे अपने देश का जो साठ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष विदेश चला जाता है उसे हम चर्खे के द्वारा बचा लेंगे, पर मेरी यह कल्पना सफल नहीं हो सकी।

अब यह प्रस्ताव आपसे यह पूछता है, कि आप चर्खा नहीं चलाना चाहते तो क्या इतना स्वदेशी का काम आप दिल से करेंगे या नहीं? यह काम आपको अच्छा लगे तभी इस प्रस्ताव को पास कीजिए, नहीं तो नहीं। इसमें मेरे साथ सौदा करने का मुझे रिझाने की कोई बात नहीं है।

राजनीति से अलग

इस संघ का कांग्रेस के साथ, बस, वैसा ही सम्बन्ध रहेगा जैसा कि चर्खा संघ का है। चर्खा संघ को शंकरलाल, जमनालाल आदि चला रहे हैं, तो भी कांग्रेस उनके काम की जाँच कर सकती है। कुमारप्पा तो कांग्रेस के आदमी हैं ही। बिहार में हमारे भूकम्पनिधि के लाखों रुपये का हिसाब किताब वही रख रहे हैं। भारत-सरकार द्वारा जनता के मत्थे मढ़े हुए ऋण की जाँच-पड़ताल करने के लिए कांग्रेसने जो कमेटी नियत की थी उसके मंत्री यही कुमारप्पा थे। वह एक 'चारटर्ड अकाउण्टेण्ट' हैं। उन्होंने बड़ा त्याग किया है। रुपये-पैसे की उन्हें कोई कमी नहीं है। इस काम में वे बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। मैंने उन से इस विषय में बात की है और उन्होंने मेरा देखरेख में यह काम करना स्वीकार भी कर लिया है।

इस काम को मैं राजनीतिक दृष्टि से नहीं करना चाहता, पर इस दृष्टि से करना चाहता हूँ, कि गरीब बेकार ग्रामवासियों को इससे दो पैसे मिलें। इसलिए इसे मैं राजनीति से अलग रखना चाहता हूँ। आप लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा, कि जो दो लाख बीस हज़ार कतैये, बीस हज़ार धुनिये और बुनकर चर्खा संघ का दिया हुआ काम कर रहे हैं, उनमें कांग्रेस का एक भी सदस्य नहीं है। कांग्रेस विधान में सूतमताधिकार भी है, इसलिए वे चाहें तो उसके सदस्य हो सकते हैं, पर इसके लिए हमने प्रयत्न किया ही नहीं। ऐसा करने से भी वे हमारे राजनीतिक कार्य से अपरिचित ना है नहीं। वे यह जानते हैं, कि कांग्रेस में तो हम उनकी सेवा करने के लिए ही गये हैं, न कि राजनीति में उनका उपयोग करने की नीयत से। इस प्रस्ताव से कांग्रेस के ऊपर रुपये पैसे की जवाबदारी तो कोई आती ही नहीं; वह तो सिर्फ कांग्रेस का नाम भर चाहता है। यह चीज़ अगर आपको पसंद हो तो इस प्रस्ताव के पक्ष में अपनी राय दें, नहीं तो नहीं।

[इस प्रस्ताव पर कई संशोधन पेश हुए और कुछ पर वादविवाद भी हुआ। बाद को उन सब संशोधनों का जवाब देते हुए गांधीजीने कहा।]

नीति से कोई विरोध नहीं

एक सज्जनने यह संशोधन पेश किया है, कि इस प्रस्ताव में से 'मरे हुए या मरते हुए धंधे' यह शब्द निकाल दिये जायँ। इस प्रस्ताव का यह अर्थ नहीं है कि दूसरे उद्योग-धंधों की हमें दरकार ही नहीं। जो धंधे मर गये हैं, जिनका ख़ात्मा हो गया है या जो मरने ही वाले हैं, उन्हें प्राणदान देना इस संघ का मुख्य काम होगा।

दूसरे संशोधन 'नैतिक तथा शारीरिक उन्नति' इन शब्दों को निकाल देना चाहते हैं। ये शब्द इसलिए रखे गये हैं, कि इस प्रस्ताव का उद्देश गाँववालों को सिर्फ पैसा देने का ही नहीं है, बल्कि उनके चरित्र की रक्षा करने का भी है। कोई मनुष्य दारू या ताड़ी का धंधा करता हो, तो उसे हम यह समझायेंगे, कि वह उस चीज़ को छोड़कर कोई दूसरा धंधा हाथ में लेले। हम तो खुदाई ख़िदमतगार बनकर उनके पास जायँगे। मैं तो सभी उद्योग धंधों की खोजबीन करना चहता हूँ, और वह केवल अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से नहीं। इन लोगों की सभी प्रकार की स्थिति का पता लगाना होगा। इस काम में अध्यापक, डाक्टर आदि की मदद तो मुझे लेनी ही होगी।

इस संस्था को कांग्रेस की राजनीति से जो मैंने अलिप्त रखा है उस का एक खास उद्देश है। राजनीतिक स्थिति चाहे जैसी हो तो भी इस काम को तो चलता ही रहना चाहिए। हम अपने ग्रामवासी भाइयों के पास सेवा करने के इरादे से ही जायें, उनके कान में राजनीति का मन्त्र फूँकने नहीं। हमें तो उन्हें स्वस्थ बनाने, रोगमुक्त करने, उनकी गन्दगी छुड़ाने, उन्हें उद्यम में लगाने और बेकारी दूर करने की नीयत से ही उनके पास जाना चाहिए। हमारा अगर यह हेतु हो तो हम इस काम में राजनीति को नहीं ला सकते। कांग्रेस जब ग़ैर क़ानूनी क़रार दे दी गई थी, तब भी चर्खा संघ ग़ैरक़ानूनी नहीं ठहराया गया और उसका काम बराबर वैसा ही चलता रहा। तो भी वह कांग्रेस की ही संस्था है। पर कांग्रेस की राजनीति से चर्खा-संघ अलग ही रहता है। ठीक यही स्थिति इस नये संघ की भी रहेगी।

कराची में मैंने यही बात कही थी। उस दिन जिन लोगोंने मेरा विरोध किया था, बाद को वे मुझसे कहते थे, कि तुम्हारा कहना सच था। मैंने उस समय अस्पृश्यता-निवारण-समिति और मद्य निषेध समिति को कांग्रेस की राजनीति से अलग रखने की सलाह दी थी, और वह सलाह ठीक ही थी। एक सज्जनने कहा है, कि यह काम तो 'कुमारप्पा एण्ड को०' के द्वारा होगा। फिर कांग्रेसवालों के लिए क्या काम रह जायगा? ऐसा तो कोई बात ही नहीं है। इस संघ में तो उस प्रत्येक कांग्रेसजन के लिए स्थान रहेगा, जिसको इस कार्य में श्रद्धा होगी। आज चर्खा संघ में जो ११०० खादी-सेवक काम कर रहे हैं, वे सब-के-सब कांग्रेसवादी ही हैं।

सच्चा समाजवाद

श्री गोविंदसहायने कहा है, कि यह सब मैं प्राचीन युग की बात कर रहा हूँ, और मैं यंत्रों का कट्टर दुश्मन हूँ। मेरे लेखों को, जान पड़ता है, उन्होंने कुछ वक्र दृष्टि से पढ़ा है। मेरे सामने जो यह चर्खा रखा है क्या वह यन्त्र नहीं है? अरे, यंत्रों से कौन इन्कार करता है? पर हमें उनका गुलाम नहीं बनना है। गुलाम तो वे हमारे बनें। हमें तो ग़रीबों का गुलाम बनना है, अमीरों का नहीं। पैसेवालों से मैं ग़रीबों के लिए पैसों की मदद ले लेता हूँ; पर कोई मिलमालिक या कल-कारखानेदार मुझे पाँच हज़ार रुपये दे तो क्या इससे मैं उसकी मदद करूँगा? जो मुझे दें उन्हें तो यह समझकर ही देना चाहिए, कि ग़रीबों के पास से जो हमने बहुत-सा पैसा इकट्ठा कर लिया है, उसमें से यह थोड़ा पैसा उनके काम के लिए हम दे रहे हैं। धनिकों से पैसा लेकर मैं तो उन्हें लूट रहा हूँ। कुछ लोग कहते हैं, कि मैं धनिकों का वकील हूँ। पर मुझ से पूछो तो मैं तो

एक मजूर हूँ। मैंने मजूरों के साथ मजूरी की है। मैं उनके साथ रहा हूँ। उनके साथ मैंने खाया है, पीया है। मैं मजूरों का प्रतिनिधि होने का दावा करता हूँ, और उनके लिए धनिकों से पैसा लेता हूँ। अपने देश के ३५ करोड़ लोगों को मैं यंत्रों का गुलाम नहीं बनाना चाहता। मैं इसमें समाजवाद या साम्यवाद की कल्पना नहीं कर सकता। समाजवाद का अर्थ तो मैं यह करता हूँ, कि लोग स्वावलम्बी हो जायँ। ऐसा करने से ही वे धनिकों की लूट-पाट से बचेंगे। मैं तो मज़दूरों को यह समझा रहा हूँ कि पूँजीपतियों के पास सोना-चाँदी है तो तुम्हारे पास हाथ पैर हैं, और सोना-चाँदी की तरह यह भी एक तरह की पूँजी ही है। पूँजीपति का काम बिना मज़दूर के नहीं चल सकता। कोई इसे यह न समझ बैठे कि हम इस संघ के द्वारा पूँजीपतियों का काम करके मज़दूरों को गुलाम बनाने की बात कर रहे हैं। बात तो बल्कि इससे उलटी है। हमें तो इसके द्वारा गुलामी के बंधन से मुक्त करना है। बात तो उन्हें स्वावलम्बी बनाने की है। इसमें उन्हें गुलाम बनाने की कल्पना कैसे हो सकती है? इस सारी योजना पर मैंने खूब अच्छी तरह विचार किया है, और उसके बाद ही इसे उपस्थित किया है। ग्राम उद्योगों को जिलाने का यही एक मार्ग है, और इसमें मैं आप लोगों की मदद चाहता हूँ।

कुछ आवश्यक प्रश्न

हरिजन-छात्रालय चलानेवाले एक सज्जनने कुछ प्रश्न पूछे हैं जिन्हें मैं उत्तर-सहित नीचे देता हूँ :—

"हमने भोजन में मिर्चा नहीं रखा, पर इससे लड़के बहुत बिगड़ते हैं। बिना मिर्च की रसोई उन्हें भाती नहीं। तब थोड़ी सी मिर्चा अगर देने लगें तो कैसा हो?"

हमें अपने सारे ही देश की जनता का आहार नये आहार शास्त्र के अनुसार ठीक करना है। आहार में मिर्चा कोई ज़रूरी चीज़ नहीं। मिर्चा तो हानिकारक है। यह जठराग्नि को खराब कर देता है, और इससे ब्रह्मचर्य पालना कठिन हो जाता है। मिर्चा खाने में लाभ कुछ भी नहीं। फिर भी आहार-सम्बन्धी यह आवश्यक सुधार हरिजन छात्रालय में ज़बरन लागू न किया जाय। हरिजनों को हमारे समाज में आजतक गुलामी की दशा में ही रहना पड़ा है। छात्रालय में उन्हें स्वतन्त्रता के अवकाश का वातावरण मिलना चाहिए। उनकी गंदी आदतें आदि जहाँ हम दृढ़ता के साथ छुड़ाते हैं, वहाँ आहार के विषय में जेल के जैसा बरताव से काम लेना ठीक नहीं। आवश्यकता तो इसकी है, कि छात्रालय के व्यवस्थापक अपनी संस्था या घर में खुद मिर्चा न खायें। मुख्य नियम तो यह होना चाहिए कि छात्रालय में मिर्च का उपयोग न किया जाय, और जो मिर्चा नहीं खाना चाहते उनके लिए पूरी सुविधा होनी चाहिए। पर बिना मिर्च के जिनका काम नहीं चल सकता उनके लिए भी आरम्भ में कोई व्यवस्था कर देनी चाहिए—जैसे, मिर्चा छुड़ाना है तो थोड़ा-सा बारीक पिसा हुई काली मिर्च दे दी जाय। इसके बाद बन्द कर दिया जाय। मूली अदरक आदि कच्ची चरपरी तरकारी देकर भी मिर्चा खानेवालों को कुछ सन्तोष दिलाया जा सकता है। मगर ज़बरदस्ती से मिर्चा छुड़ाने का प्रयोग हरिजन-छात्रालय में करना ठीक नहीं।

"सिनेमा वाले हरिजनों को यहाँ मुफ्त सिनेमा दिखाने के लिए तैयार हैं। इन्हें हर पन्द्रहवें दिन सिनेमा दिखाने ले जायँ तो क्या कुछ हानि है?"

सिनेमा देखने का शौक आजकल बेहद बढ़ गया है। कालेज के लड़कों को तो हम रोक ही नहीं सकते। अखबार-वालोंने तो इस वाहियात शौक़ की प्रतिष्ठा को बढ़ाना मानों अपना एक महत्वपूर्ण मिशन मान रखा है! सिनेमा के द्वारा कला की उपासना विकसित करने का प्रयत्न होने लगा है! शिक्षा-कार भी अब यह समझाने लगे हैं कि सिनेमा शिक्षा का एक महान् तथा प्रभावकारी साधन है। सिनेमा के खिलाफ़ आवाज़ उठाना सभ्य-समाज में जातिबाहर होने के बराबर है। तो भी जनता के प्रति जिसके हृदय में हित है वह तो बालकों को सिनेमा की बुरी लत से दूर ही रखे। एक ओर तो हम नीति, सदाचार, पुरुषार्थ और पराक्रम की शिक्षा दें, और दूसरी ओर चारित्र्य को शिथिल करनेवाले चित्रपट और बोलपट (टॉकी) बालकों को दिखायें, आप ही बताइए, उन पर इसका कैसा प्रभाव पड़ेगा? सिनेमा में कितनी ही फ़िल्में अच्छी होती हैं यह दलील भ्रम से भरी हुई है। सिनेमा कैसा भी हो, इसमें सन्देह नहीं, कि असर तो अन्त में उसका बुरा ही पड़ता है। इसमें शंका ही है, कि सिनेमा से कोई शिक्षा मिलती है। दारू मुफ्त पीने को कहीं मिलती हो, तो क्या हम अपने बालकों को वहाँ ले जायँगे? जैसे ज़हर-मिला भोजन मुफ्त मिलने पर भी हमें खाना नहीं चाहिए, उसी प्रकार सिनेमा मुफ्त देखने को मिलता हो, तो भी उसका परित्याग ही उचित है। सिनेमा का व्यसन प्रतिष्ठित है, तो क्या हम उसके वशीभूत हो जायँ? क्या उसके चकमे में आ जायँ? तमाखू का व्यसन भी कम प्रतिष्ठित नहीं माना जाता, पर घर या छात्रालय में बीड़ी-सिगरेट को हम जगह नहीं देते। यही बात सिनेमा के भी विषय में है। व्यसनों की ओर खींचने या ललचानेवाली उदारता के जाल में हमें हर्गिज़ नहीं आना चाहिए।

फिर हरिजनों का प्रश्न तो और भी नाज़ुक है। हरिजन अधिकतर ग़रीब ही होते हैं। उन्हें पेटभर भोजन भी हमेशा नहीं मिलता। रहने को अच्छे स्वच्छ मकान तक नहीं। फिर उनके बालकों को अभी से सिनेमा की यह लत लगाकर हम कहीं के रहेंगे? हमें तो उनकी ख़ातिर खुद सिनेमा देखने का शौक त्याग देना चाहिए। स्वयं त्याग देने के बाद विद्यार्थियों को समझाना कठिन नहीं। आमदनी से अधिक खर्च करने की आदत पड़ी कि सैकड़ों दुर्गुण पैदा हुए।

"प्रार्थना में संस्कृत श्लोकों का होना क्या ज़रूरी ही है? अपनी मातृभाषा के पद प्रार्थना में रखें, तो बुरा है क्या? 'रघुपति राघव राजाराम' गाते हैं तो शिवजी के उपासक नाराज़ होते हैं! वे कहते हैं कि आप लोग शंकर के नाम की धुन क्यों प्रचलित नहीं करते? मुझे ऐसा लगता है, कि हम यह सारा बखेड़ा ही हटा दें और किसी ख़ास देवता या अवतार का नाम ही न लें, आपकी क्या राय है?"

ऐसा कोई नियम तो है नहीं कि प्रार्थना में संस्कृत श्लोक होने ही चाहिएँ। हमारी यह इच्छा चाहे जितनी प्रबल हो, कि संस्कृत विद्या और संस्कृत साहित्य का हमारे जीवन में व्याप न हो जाय, तो भी जनसाधारण की प्रार्थना की तो अपनी भाषा

में होना ही ठीक है। स्वामी विवेकानंदने एक बार कहा था, कि पिछड़ी हुई जातियों को अगर प्रतिष्ठित बनना है तो उनका संस्कृत भाषा पर अवश्य अधिकार होना चाहिए। हिंदू-समाज की प्रतिष्ठा की कुंजी संस्कृत भाषा में मौजूद है। जिसे संस्कृत भाषा अच्छी आती है, और जिसने संस्कृत शास्त्रों को पढ़ा है, उसे कोई शास्त्र के नाम पर दबा नहीं सकता। स्वामी विवेकानंद का यह उपदेश ध्यान में रखने लायक है। पर प्रार्थना तो लोकभाषा में ही हो यही अच्छा है।

किंतु लोकभाषा के उच्च भाव और भक्तिपूर्ण पद-भजनों को ही पसंद करना चाहिए; और बहम बढ़ानेवाले भजनों को छोड़ देना चाहिए। हमें उलट बाँसी के पदों की झंझट में भूलकर भी नहीं पड़ना चाहिए।

धुन के विषय में हमारा नियम ठीक है। हम तो लोकरुचि का आदर करके सभी पंथों की धुनों से कीर्त्तन करते हैं। हम यह मानते हैं, कि समाज में साधुजनों के चलाये और माने हुए सभी पंथ और धर्म सच्चे हैं। एक दूसरे के भय से अगर हम हृदय को शान्ति देनेवाली धुनों को छोड़दें तो धर्म का फिर मूल्य ही क्या रहे? हम अनेक धुनों से निस्संकोच रीति से कीर्त्तन करते हैं। हिंदूधर्म की यही तो विशेषता है। इस विशेषता को हमने गँवा दिया तो फिर रहा क्या? इस विशेषता के द्वारा ही हम सर्वधर्म समभाव और पारस्परिक प्रेम की उदारता लोगों को सिखा सकेंगे।

'हरिजनबंधु' से] दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

यह तो ग़लत रास्ता है

एटा (संयुक्तप्रांत) के हरिजन-सेवक-संघ के मंत्रीजीने दो आवश्यक सूचनाएं हमारे पास भेजी हैं, जिन्हें पढ़कर हरिजनों के प्रति किये गये सवर्णों के अन्याय के परिणामस्वरूप भयंकर असन्तोष का अंदाज़ा आप भलीभाँति लगा सकते हैं। सूचनाओं के मुख्य भाग को हम नीचे देते हैं:—

"सर्व जाटव भाइयों को सूचना दी जाती है, कि हम जाटवों के साथ उच्च कहलानेवाले हिंदुओं का जैसा बर्ताव है वह किसी से छिपा नहीं है। हम श्रीराम और श्रीकृष्ण की उपासना करते हैं, गौ और गङ्गा को पूजते हैं, ब्राह्मण को गुरु मानते हैं, तो भी हम अत्याचारी हिंदुओं की नज़रों में इतने गिरे हुए हैं, कि हम उनके साथ चिलम तक नहीं पी सकते। अब हमारे कपड़े भी धोबियों से धुलवाना बन्द करा दिया है। कैसी विडम्बना है! हमारा जीवन इन ऊँचे हिंदुओंने अपने बर्ताव से सर्वथा नीरस बना डाला है। इस मुसीबत से बचने का अब केवल एक ही उपाय है, कि हम जितने जाटव भाई इन हिंदुओं के इस प्रकार के व्यवहार से दुखी हों वे सब मुसलमान धर्म की दीक्षा लेलें। हम लोगोंने निश्चय कर लिया है, कि २५ अक्तूबर, १९३४ को हम एटा में सदर सफ़ाखाने के पास दीन इस्लाम क़बूल करेंगे। जिन जाटव भाइयों को दीन इस्लाम क़बूल करना हो वे नियत समय पर वहाँ आजायँ।"

इस सूचना के नीचे सर्वश्री जोरावर, सीताराम, ठाकुरदास आदि ४२ जाटव हरिजनों के हस्ताक्षर हैं।

उक्त सूचना का—भय से कहिए या प्रायश्चित्त की भावना से—ज़िले के सवर्ण हिंदुओं पर कुछ असर तो पड़ा। सर्वश्री देवीशंकर मिश्र, गिरिजाशंकर वकील, डा० चतुर्भुजसहाय, पं० मेघश्याम शास्त्री आदि ८७ प्रतिष्ठित सवर्ण हिंदुओंने २३ अक्तूबर, १९३४ को निम्नलिखित घोषणा-पत्र प्रकाशित किया:—

"हम हिंदूमात्र यह निश्चय रूप से मानते हैं, कि यह अस्पृश्यता हिंदूधर्म का अंग नहीं है, और इसका तत्काल दूर हो जाना ज़रूरी है।

"हम यह घोषणा करते हैं, कि अब से सब हरिजनों को, जिनमें हमारे जाटव भाई भी सम्मिलित हैं, बिना किसी रुकावट के सार्वजनिक स्थानों, कुओं, पाठशालाओं आदि में जाने का अधिकार है। देवदर्शन करना, कपड़े धुलाना आदि व्यवहार जैसा अन्य हिंदुओं का परस्पर प्रचलित है वैसा ही व्यवहार सब हिंदुओं को हरिजन भाइयों के भी साथ करना चाहिए।

"इसलिए कुएं से पानी भरना, साथ में चिलम पीना, देवदर्शन करना आदि व्यवहार हम आज से खोले देते हैं।

"हम यह दृढ़तापूर्वक उद्योग कर रहे हैं, कि धोबी इन भाइयों के कपड़े धोना आरंभ करदें, नहीं तो हम लोग भी उनसे अपने कपड़े धुलवाना बन्द कर देंगे। आज से हम अपने मन्दिर, कुएँ आदि, जिनके कि प्रबन्धक हम हैं, खोले देते हैं।"

इस घोषणा-पत्र के प्रकाशित होने पर जाटव लोगोंने एक खुली चिट्ठी निकालकर अपना वह निश्चय दो महीनेतक के लिए स्थगित कर दिया। चिट्ठी के अन्त में जाटव जाति के पाँच पंचोंने लिखा है:—

"आपका कृपापत्र मिला। उत्तर में निवेदन है, कि आप की आज्ञा के अनुसार हमलोगोंने २५ दिसम्बरतक अपना वह विचार मुल्तवी कर दिया है। आशा है, कि इस बीच में आप हमारे अधिकारों को दिलादेंगे और हमारे कष्टों को दूर करके हमें अपना भाई बनाये रखेंगे।"

एटा के हरिजन-सेवक-संघ के मंत्रीजीने इन काग़ज़ात के साथ जो पत्र भेजा है उसमें लिखा है:—

"फ़िलहाल दो माह के लिए यह मामला किसी तरह टल गया है। इस बीचमें हम लोग घोर परिश्रम करके जाटव भाइयों की शिकायतें दूर कराने के प्रयत्न में हैं। सबसे कठिन सवाल तो धोबियों का है। ये लोग किसी भी तरह चमारों के कपड़े धोने को तैयार नहीं। फिर भी कोशिश तो हमारी जारी रहेगी ही। धोबियों की यह समस्या यहीं नहीं, अलीगढ़ और बदायूँ ज़िले में भी है।"

यह क़िस्सा है। धर्मशास्त्रों के नाम पर हरिजनों के साथ अमानुषिक व्यवहार करनेवाले सवर्ण हिंदुओं की आँखें खोल देने के लिए यह काफ़ी है ऐसा हमारा ख़याल है। एटा के जिन प्रतिष्ठित सवर्ण हिंदुओंने उक्त घोषणा-पत्र निकाला है, उन्होंने अपनी प्रायश्चित्त-भावना का परिचय दिया इसमें सन्देह नहीं। हरिजनों के लिए सार्वजनिक स्थानों का द्वार खोल देना, उन्हें जीवन की ज़रूरी सुविधाओं या अधिकारों से वंचित न रखना अगर हमारी सहज स्वाभाविक मानवी मनोवृत्ति का परिणाम नहीं है, तो वह कार्य स्थायी नहीं हो सकता। हमें आशा है, कि हरिजनों के 'अल्टीमेटम' के भय से नहीं, बल्कि सच्चे शुद्ध प्रायश्चित्त के भाव से ही उक्त घोषणा उन्होंने निकाली होगी। साथ

ही सवर्ण सज्जनों की मनोवृत्ति में कोई कृपा या एहसान की भावना नहीं होनी चाहिए।

एक बात हरिजन भाइयों से भी। उनकी यह धर्म परिवर्तन की बात हमें कुछ जँची नहीं। धर्म वह वस्तु नहीं जो चन्द ऐहिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए एक झटके से तोड़ दिया जाय या कुरते-अँगरखे की तरह एक उतारकर दूसरा पहन लिया जाय; मनुष्य को किसी धर्म या मजहब में दाखिल होने का निस्सन्देह अधिकार है, पर तभी जब कि वह ऐसा किसी आध्यात्मिक कारण से प्रेरित होकर करना चाहे। इसमें आध्यात्मिक भूख चाहिए। इसमें शङ्का नहीं कि हरिजन भाइयों को अपार कष्टों में से गुजरना पड़ रहा है। ऐसी स्थिति में अच्छों-अच्छों का भी धीरज डिग जाता है। पर धीरज और धर्म की परख भी तो संकट के ही दिनों में होती है। उनके सब्र ने सवर्णों के हृदय को हिला दिया है और प्रायश्चित्त का पथ भी उन्हें सुझा दिया है। पर शताब्दियों का रोग दो-चार सालमें थोड़े ही दूर हो जाता है। अपने अधिकारों के लिए हमारे हरिजन भाई बराबर लड़ें, पर इस गलत ढंग से नहीं। गांधीजी के इस महावाक्य को सवर्ण ही नहीं हरिजन भी हृदयांकित करलें, कि प्रेम ही मनुष्य के हृदय को—चाहे वह पत्थर का हो क्यों न हो—पिघला सकता है, द्वेष कदापि नहीं।

वि० ह०

राजपूताने का कार्यविवरण

[अगस्त, १९३४]

धार्मिक—हरिजन-मुहल्लों में १० बार भजन-कीर्तन हुआ। मँडावा और बोसवाड़ा में हरिजनों की उपस्थिति में १८ बार धर्म-कथाओं के सुनाने का आयोजन किया गया।

शिक्षा—निम्न लिखित स्थानों में हरिजन-रात्रि पाठशालाएँ खोली गईं :—

२ पाठशालाएँ कोटा में; १ पाठशाला अजमेर में; १ पाठशाला झोटवाड़ा में; और १ पाठशाला फतेहपुर (जयपुर) में।

निम्नलिखित स्थानों में हरिजन-दिवस-पाठशालाएँ खोली गईं —

१ पाठशाला अजमेर में; १ पाठशाला पुष्कर में; और १ पाठशाला झोटवाड़ा में।

बगरा (जयपुर) के सार्वजनिक स्कूलों में ७ हरिजन-विद्यार्थी दाखिल कराये गये।

आर्थिक—नरेला-आश्रम में ४० हरिजन काम में लगाये गये; रामगढ़ (जयपुर) में १४ हरिजनों को ऋणमुक्त करने के लिए मामूली सूद पर कर्ज़ दिलाया गया; २७४ हरिजन छात्रों को किताबें, स्लेटें, पेंसिलें वगैरा दी गईं; ७५ हरिजनों को कपड़े दिये गये; बालदू और नागौर में ४० हरिजन विद्यार्थियों को मिठाई, फल वगैरा बाँटे गये।

बाँसा (जयपुर) की हरिजन-पाठशाला का यह प्रयत्न सफल हो गया है, कि 'आयर' (मृतक-संस्कार का भोज) का खर्च वहाँ के हरिजन १००) से घटाकर ३०) का करदें।

स्वास्थ्य और सफ़ाई—३० विभिन्न स्थानों की हरिजन-बस्तियों में संघ के कार्यकर्ताओंने ३२० चक्कर लगाये और बस्तीवालों को सफ़ाई आदि रखने का उपदेश दिया।

कार्यकर्ताओं तथा अध्यापकोंने १८ विभिन्न स्थानों के १५१७ हरिजन छात्रों को नहलाया-धुलाया; १६ विभिन्न पाठशालाओं के १६२० हरिजन बालकों के हाथ-पैर और मुँह साफ किये गये तथा २३२३ हरिजन विद्यार्थियों को मंजन कराया गया। १८०२ हरिजन छात्रों को नहाने का साबुन दिया गया।

नरेला के आश्रमवासियोंने नरेला की हरिजन-बस्तियों की एक बार और वहाँ के हरिजनोंने ११ बार सफ़ाई की।

मद्य-मांस-निषेध—४५ हरिजनोंने मुर्दार मांस न खाने की प्रतिज्ञा की। बोंसवाड़े की हरिजन-सेवक-समिति के प्रयत्न से बाँसवाड़े राज्य के ३६ गाँवों के चमारोंने मुर्दार गाय-बैल का मांस खाना छोड़ दिया है; साथ ही यह निश्चय किया है, जो प्रतिज्ञा पर दृढ़ न रहेगा उसे जाति-पंचायत में दण्ड भरना पड़ेगा। २७ हरिजनोंने शराब छोड़दी। नरेला के ११ हरिजन युवकोंने तमाखू पीना छोड़ दिया। ११ विभिन्न स्थानों में २१ सभाएँ की गईं, जहाँ १००० से ऊपर हरिजनों को मद्य निषेध तथा मितव्ययता के लाभ समझाये गये।

दवादारू—२७६ रोगग्रस्त हरिजनों को दवाइयाँ दी गईं; और १० मरीज़ों को वैद्य-डाक्टरोंने उनके घर जाकर देखा।

प्रचार-कार्य—८० हरिजन-कुटुम्बों की सामाजिक अवस्था की जाँच पड़ताल की गई। ६७८ हरिजनों तथा २८१ सवर्ण हिंदुओं को "हरिजन-सेवक" पढ़कर सुनाया और समझाया गया। "हरिजन-सेवक" के ६ ग्राहक बनाये गये। सहायक मंत्री और पाठशालाओं के इन्सपेक्टरोंने ७५ समितियों का निरीक्षण किया, उन्हें काम का ढंग बतलाया, उनका हिसाब किताब जाँचा और हरिजनों की तकलीफें सुनीं और हरिजन-सेवा करने के लिए लोगों को उत्साहित किया।

पानी का प्रबन्ध—हरिजनों के लिए मचाड़ी (अलवर-राज्य) गाँव का कुआँ बनकर तैयार हो गया। अजमेर में हरिजनों के लिए एक कुआँ खोल दिया गया।

साधारण—२६ सवर्ण हिंदुओंने अस्पृश्यता न मानने की प्रतिज्ञा की। ३ विभिन्न स्थानों पर अस्पृश्यता-निवारण तथा व्यसन-त्याग के सम्बन्ध में सवर्णों और हरिजनों की संयुक्त सभाएँ हुईं।

नसीराबाद के मेघवंशी हरिजनों में अरसे से जो आपसी झगड़ा चला आ रहा था उसे संघने सफलतापूर्वक निपटा दिया।

हरिजन-उत्थान-कार्यपर खर्च—नीचे लिखे अनुसार अगस्त मास में हरिजन-उत्थान-कार्य पर २२४०।=)॥ खर्च हुए। अर्थात् ८८ फ़ीसदी से भी ऊपर इस मदों पर खर्च किया गया :—

पाठशालाएँ, आश्रम और छात्रालय	१७६०॥=)॥
किताबें, स्लेटें वगैरा दी गईं	४७॥=)॥
छात्रवृत्तियाँ	७०)
साबुन व कपड़े बाँटे गये	२८॥=)॥।
पानी के प्रबन्ध पर	३२१॥-)॥
दवा-दारू	३ -)
विविध सहायता	७।=)॥।
कुल	२२४०।=)॥

रामनारायण चौधरी

मंत्री, राजपूताना—ह० से० सं०

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

सम्पादक—वियोगी हरि "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg: No L. |1369

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, १८ अक्तूबर, १९३५ [संख्या ३६

विषय-सूची

शास्त्र और अस्पृश्यता

२

[illegible] नहीं था, बल्कि मनुष्य का वर्ण उसके स्वभाव और कर्म से निश्चित किया जाता था, न कि उसकी कुल-परम्परा से। अगर ब्राह्मण अपना स्वभावज कर्म छोड़कर किसी दूसरी जाति का कर्म करने लगता था, तो वह उसी जाति का समझा जाता था।

ब्राह्मणो हीनवर्णस्य यः कुर्यात्कर्म किञ्चन ।
स तां जातिमवाप्नोति इहलोके परत्र च ॥

और यदि शूद्र का स्वभाव और कर्म उत्तम पाये जाते थे, तो उसका ब्राह्मण के समान मान होता था। महाभारत में लिखा है—

स्वभावः कर्म च शुभं यत्र शूद्रेपि तिष्ठति ।
विशिष्टः स द्विजातिर्वै विज्ञेय इति मे मतिः ॥

— अनुशासन पर्व, १४३—४९

वैष्णवों के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ श्रीमद्भागवत में तो स्पष्टतः यह स्थिर कर दिया गया है कि यदि अमुक वर्ण के व्यक्ति में किसी अन्य वर्ण के अभिव्यंजक लक्षण पाये जायें, तो वह उसी वर्ण का समझा जाय—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥

—भागवत ७—११

वायुपुराण में ऐसे अनेक क्षत्रियों के नामों का उल्लेख आया है, जो अपनी तपश्चर्या के प्रताप से विश्वामित्र की तरह ब्राह्मण वर्ण के हो गये थे। इन्द्र ब्राह्मणवर्णी ब्रह्मा का पुत्र था, किन्तु क्षात्र-कर्म स्वीकार करने से वह क्षत्रिय हो गया—

क्षत्रियः कर्मणाभवत् ।

म० भा०—शान्तिपर्व, २२—११

वेदसंपन्न शूद्र भी ब्राह्मण हो जाता था—

शूद्रोऽप्यागमसम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः ॥

—अनुशासन पर्व, १४३—४६

शूद्रयोनौ प्रजातस्य सद्गुणानुपतिष्ठतः ।
वैश्यत्वं लभते ब्रह्मन् क्षत्रियत्वं तथैव च ॥
आर्जवे वर्तमानस्य ब्राह्मण्यमभिजायते ॥

और यदि ब्राह्मण वेदाध्ययन का त्याग कर देता था, तो उसकी गणना शूद्र वर्ण में होने लगती थी—

अश्रोत्रिया अननुवाक्या अनग्नयो वा शूद्रसधर्माणो भवन्ति ॥

—वसिष्ठसूत्र ३

तथैव—

अनधीत्य द्विजो वेदानन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥

—कात्यायनस्मृति २३

विष्णुपुराण के अनुसार अंबरीष क्षत्रिय से अनेक ब्राह्मण-कुलों की उत्पत्ति हुई थी। और वायुपुराण के अनुसार एक ही पिता की संतति में शूद्र भी थे, ब्राह्मण भी थे, क्षत्रिय भी थे और वैश्य भी थे। अग्निपुराण में लिखा है, कि नाभाग के दो पुत्र थे तो वैश्य, पर ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो गये थे।

वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ ।

'हरिजन' से] वालजी गोविन्दजी देसाई

बुन्देलखंड की अस्पृश्यता

वेद बड़ा कि 'लबेद' ? वैदिक ऋचाओं के गायकों या मंत्र-द्रष्टा ऋषियों के नाम-धाम का कुछ-न-कुछ तो शोध मिल जाता है, पर लबेद अर्थात् मनमाने लोकाचार के रचनेवाले या चलानेवाले कौन थे, क्या थे इस सब का पता तो स्यात् विरंचि बाबा की भी डायरी में न होगा। कितने ही रीति-रिवाज लबेद की ओट में धड़ल्ले के साथ दुनिया में चल रहे हैं। जब उन अधर्ममूलक लोकरूढ़ियों के विरुद्ध कोई साहसी सुधारक आवाज़ उठाता है, तो हमारा धर्म (?) खतरे में पड़ जाता है। आज की यह अजीब अस्पृश्यता भी उन्हीं लबेद-प्रतिपादित प्रथाओं में से एक है। इस मायाविनी अस्पृश्यता के अनेक नाम हैं, असंख्य रूप हैं। एक ही प्रान्त में नहीं, बल्कि एक ही ज़िले में इसके भिन्न-भिन्न अभिव्यंजक रूप हैं। इसका ऐसा कोई सामान्य रूप नहीं, जिसे देखकर हम चाहे जहाँ उसे पहचान सकें।

बुन्देलखंड (मध्यभारत) को ही लीजिए। अस्पृश्यता के कुछ बुन्देलखंडी रूपों को देखकर आप आश्चर्य-चकित हो जायँगे।

बसोर (बँसफोड़) मेहतर से कम अछूत नहीं समझा जाता। उसे छूकर बिना सपरे-खोरे (नहाये-धोये) गति नहीं। पर खोर

(सोहर) में बसोरिन का दरजा ब्राह्मणी से कम नहीं माना जाता। चौबीसों घंटे वही जच्चा की सारी सार-सँभार करती है। वही उसे चरुआ का पानी पिलाती है, वही गुड़ इत्यादि खिलाती है। चार-पाँच दिन के लिए छूतछात मानों छूमंतर हो जाती है। बाद को बेचारी फिर बसोरिन की बसोरिन! फिर तो उसे छूना भी हराम है।

बारी की भी गणना वहाँ नानी जातियों में ही होती है। पूरब में बारी अछूत नहीं समझा जाता। पानी तो उसके हाथ का पीते ही हैं, कहीं-कहीं तो उसे आटा गूँधते भी हमने देखा है। पर बुन्देलखंड का बारी अछूत है। शायद इसका यह कारण हो, कि वह जूठन खाता है। वहाँ उसके हाथ का न पानी पीते हैं, न पान खाते हैं। पर इसमें भी अपवाद है। राजमहलों के बारी पेशादारों के हाथ का पान बड़े-बड़े पंडित भी सादर ग्रहण कर लेते हैं। पर साधारणतया बारी को वहाँ अछूत ही समझते हैं। मगर एक विचित्रता तो देखिए। वह यह कि मन्दिरों में उसके लिए कोई मनाही नहीं है। जूठन न खानेवाला चमार मन्दिर की देहरी नहीं लाँघ सकता, पर जूठन खानेवाला बारी बराबर मन्दिरों में जाता है। मगर इसका यह उलटा अर्थ न निकाला जाय, कि बारी को मन्दिरों में नहीं जाने देना चाहिए। देवदर्शन करने का तो सभी को एकसरीखा अधिकार है। हाँ, जूठन का खाना ज़रूर बारियों और भंगियों को छोड़ देना चाहिए। पर जूठन देनेवाले जूठन देने से बाज़ आयें तब न।

चमड़े की चीज़ें चमार भी बनाता है और मोची भी। चमार जूते बनाता है और मोची घोड़े का ज़ीन व साज़ और चमड़े के थैले व मियान वग़ैरा। मोची को कभी-कभी छू तो लेते हैं, पर उसके हाथ का छुआ पानी नहीं पीते। किन्तु मन्दिरों में जाने को मोची के लिए वैसी कोई रोक-टोक नहीं। पर उसका छोटा भाई चमार मन्दिर के अन्दर पैर रखने की कल्पना भी नहीं कर सकता।

यही गति कोरी की है। चमार-कोरी का नाम एक साथ लिया जाता है। बुनकर भी अछूत हैं। मन्दिरों में फिर कोरी का प्रवेश कैसे हो सकता है? पर एक राज्य के एक सुप्रसिद्ध कृष्ण-मन्दिर में एक कोरी दर्शनार्थ जा सकता है। यह बात नहीं, कि वह अपनी जाति के अन्य लोगों से अधिक भक्त है। वह भी सब के ही समान है; पर उसके पल्ले हीरे-जवाहरात ज़रूर हैं और ठाकुरजी की सेवा में छप्पन भोग का थाल भी वह कभी-कभी चढ़ा देता है। इसीलिए शायद वह अपवाद में आ गया है—यों कोरी जाति का मन्दिरों में प्रवेश नहीं है।

गोंड़ और कोंदर ये दोनों आदिम जातियाँ हैं, पर वहाँ ये भी अस्पृश्यता से मुक्त नहीं हैं। हाँ, राजगोंड़ को अछूत नहीं मानते—यह इसलिए कि वह प्राचीन गोंड़ राजाओं के वंशधर हैं।

वहाँ कपड़ा धोनेवाला धोबी तो अस्पृश्य है ही, कपड़ा सीनेवाले दरजी के भी हाथ का छुआ पानी अपेय है, हालाँकि वह जनेऊ धारण करता है।

कढ़िया (राज), बेलदार, चुनगर, तेली, कलार, खँगार और जसोंधी का स्पर्श भी क्लेद-निषिद्ध है।

कढ़िया मकान बनाता है। बेलदार मिट्टी खोदता और ढोकर डालता है। चुनगर चूने का भट्टा लगाता है। तेली कोल्हू से तिल पेरता है। कलार शराब बेचता है। खँगार या कुटवार गाँव की चौकसी करता है। जसोंधी या हरबोला मँजीरे के स्वर में द्वार-द्वार 'हरगंगा' के गीत गाता है। इनमें किसका कर्म निषिद्ध या निंदनीय है? तो भी हमारे क्लेदने इन जातियों के माथे पर अस्पृश्यता की घृणित मोहर लगा ही दी।

तेली का पेरा हुआ तेल खालेंगे, पर पानी नहीं पियेंगे। कलार के हाथ की दारू पीलेंगे, पर पानी नहीं। गुड़ खावें, गुलगुले से परहेज़!

खटीक कितना ही स्वच्छ रहे, फिर भी वह अछूत है। एक राज्य के तमाम खटीकोंने शराब पीना छोड़ दिया है, तो भी मन्दिरों में वे पैर नहीं रख सकते। दारू या ताड़ी का प्याले पर प्याला ढालनेवाला राजपूत मन्दिर में बेधड़क चला जायगा, पर शराब को हराम समझनेवाला खटीक मंदिर में घुसने की हिम्मत भला कर तो ले, सिर तोड़ दिया जायगा।

और खटीक खान-पान में कम त्रिवेदी नहीं है; सिवा अहीर या गड़ेरिया के वह ब्राह्मण के हाथ की भी रोटी या पूड़ी नहीं खायगा।

सवर्णों की देखादेखी हरिजनों में भी अस्पृश्यता का प्रवेश हो गया है। कहीं-कहीं तो चमारों के भी कपड़े धोबी नहीं धोते, पर बुन्देलखण्ड में तो कोरी-चमार के कपड़े धोबी धोते हैं। एतराज़ है तो सिर्फ़ भंगियों के ही कपड़े धोने में है। पर एक जगह का एक धोबी मेहतरों के भी कपड़े धोता है। पूछने पर मालूम हुआ, कि वह बुड्ढा है और अपुत्र है, इसलिए वह गुनाह से बरी है; पर बाल-बच्चेवाले जवान धोबी कभी न धोयँगे! बेचारे मेहतर भले बारह महीना धोबियों की टट्टियाँ साफ़ करें, पर उन्हें अपने सौर-सूतकतक के कपड़े धुलाने के लिए तरसना पड़े—कैसा क्रूर रूप है यह अस्पृश्यता का!

मेहतरों की तो सभी जगह दुर्गति है। रियासतों में तो उनकी दुर्दशा का जैसे कुछ पार ही नहीं। साइकिलतक पर चढ़ने की मनाही है, घोड़े या मोटर लारी पर बैठना तो दूर है। अपने अखाड़े में कुश्ती नहीं लड़ सकेंगे, हारमोनियम नहीं बजा सकेंगे, अच्छे कपड़े-लत्ते नहीं पहन सकेंगे। एक तरफ़ क्लेद की चपेट है, दूसरी तरफ़ राजसत्ता की। उनकी पढ़ाई का, सिवा एक पन्ना राज्य के, कहीं भी प्रबन्ध नहीं। अपने राज्य में हरिजन-पाठशाला खोलने में पन्ना-दरबार को बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। पास-पड़ोस की अन्य रियासतों के मेहतर तो सौ फीसदी अपढ़ हैं और मेहतर ही क्यों चमार-कोरियों की भी यही दशा है।

समझ में नहीं आता, कि अस्पृश्यता का मूल कारण आख़िर है क्या। जिन लोकोपयोगी कर्मों के करने से चमार, बसोर, मेहतर, खटीक, खंगार आदि अस्पृश्य समझे जाते हैं, न्यूनाधिक मात्रा में वही सब कर्म अन्य जातियाँ भी करती हैं, पर उन्हें तो कोई अस्पृश्य नहीं मानता। इसी प्रकार स्वार्थ-साधन के समय भी छूतछात काफ़ूर हो जाती है। जच्चा और बसोरिन (कहीं-कहीं चमारिन) का गंगा-जमुनी हेलमेल तो जग-जाहिर है ही, एक जगह तो मैंने एक मेहतर वैद्य के हाथ की दवा बड़े-बड़े त्रिवेदियों को खाते देखा है। मेहतर मरीज़ की नाड़ी छूने में वैद्य-डाक्टरतक हिचकेंगे, पर मेहतर वैद्य के हाथ की रामबाण औषधि बड़े-बड़े ब्राह्मण भी खालेंगे! आत्मादिनी अस्पृश्यता का यह कैसा विचित्र गोरखधंधा है। कुटिल कुत्सित

विचारों और भारतीय भावनाओं की गंदगी में नख से शिखतक चिपुटे रहेंगे, पर किसी हरिजन को छूलें तो हमारा धर्म खतरे में पड़ जायगा ! धन्य है अवेद, तेरी यह मोहिनी माया !!

वि० ह०

तकली की शक्ति

गांधीजी की गत जयन्ती के अवसर पर वर्धा के पास नालवाड़ी गाँव में, जहाँ श्री युक्त विनोबाजीने हरिजन-आश्रम स्थापित किया है, वहाँ एक तकली-दंगल हुआ था। उसमें २३ स्त्री-पुरुषोंने भाग लिया था। उस दंगल का जो परिणाम आया उससे यह सिद्ध होता है, कि बड़े-बड़े यंत्रों या लाखों रुपये की पूंजी के बिना भारतवर्ष के करोड़ों अनपढ़ और अधपेटा लोगों को यथेष्ट वस्त्र देने की तकली में कितनी बड़ी शक्ति है। वर्धा के सत्याग्रहाश्रम की तरह नालवाड़ी में भी नित्य आध घण्टा तकली पर सूत काता जाता है, और उस समय कातनेवाले मौन रहते हैं। गांधी-जयन्ती के दिन नित्य के आध घण्टे के बजाय छै से सात घण्टेतक तकली चलाने का निश्चय किया गया था। इस तकली-यज्ञ में जिन २३ भाई-बहिनोंने भाग लिया था उनमें ५ नौसिखिये थे। बाक़ी के १८ का औसत फी घण्टा २४७ तार का आया। सबसे अधिक औसत श्री सत्यव्रत का था, जिन्होंने पौने सात घण्टे में १६८२ तार काते। नीचे के आँकड़े देखिए:—

नं०	नाम	उम्र	कातने का समय	सूत उतारने का समय	कितने तार काते	एक घण्टे का औसत	सूत का नम्बर
१	शिवराम पंत	२४	६'४५	१'०५	१००५	१५६	११'५०
२	वल्लभभाई	२९	६'१६	१'१६	१२५६	१८८	१४'२५
३	दत्तात्रेय	२२	६'२०	१'४०	१२९०	२१३	१४'५०
४	नामदेव	१९	६'१०	१'१६	१२८६	२१३	११'५०
५	भाऊ	२२	३'००	१'००	७२०	२४०	१३'२५
६	सत्यव्रत	१९	६'४५	१'३२	१६८२	२४७	९
७	बुधसेन	१८	६'००	१'००	१२१०	२००	१०
८	राघवदास	२१	६'४५	१'१५	१२३१	१७०	१०
९	प्रह्लाद	१८	६'४८	१'१५	१४६०	२१५	११'५०
१०	हरिभाऊ	१९	६'४५	१'०९	१०२२	१५१	११
११	विश्वनाथ	१५	६'४५		१३२६	१८५	
१२	शंकरभाई	२६	६'४५	१'००	१३३३	१६८	१०
१३	शांतिलाल	२५	६'४५	१'१२	१००५	१६०	१०

छै से सात घण्टे तक अनवरत रीति से कताई हुई, तब यह औसत आया है—इस बात को ध्यान में रखें, तो इन आँकड़ों से तकली की शक्ति भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है। इन पौनेसात घण्टों में १० से लेकर १२ नंबर तक का कुल २१४६७ तार सूत काता गया। इस सूत को कुछ कतैयोंने खुद ही बुन डाला, जिसमें ३० इंची पना की ८॥ गज़ मज़बूत खादी उतरी। आदि से लेकर अन्ततक इस खादी-उत्पत्ति में कुल १३८॥ घण्टे लगे। उत्पत्ति की भिन्न-भिन्न क्रियाओं में नीचे लिखे अनुसार समय लगा:—

क्रिया	घण्टा		मिनिट
सूत का अलग-अलग छाँटना	०	—	१५
ताने के लिए लटाई पर सूत भरा	३	—	०
ताना फैलाया (९३ पुंजम)	२	—	१५
माँड़ी लगाने के लिए ताना तैयार किया	१	—	१५
माँड़ी बनाई	०	—	४५
माँड़ी लगाई	७	—	१५
करघे में ताना लगाया	३	—	०
बुनाई	१४	—	१५
बुनाई के बाद की क्रियाएँ	६	—	४५
बुनाई में	३८	—	४५
कताई में	१००	—	[illegible]
कुल समय	१३८	—	४५

अगर यह मान लिया जाय कि भारतवर्ष में प्रतिवर्ष प्रति मनुष्य १३ गज़ कपड़ा खर्च होता है, तो ऊपर के हिसाब से अपने घर में ही उतना कपड़ा तैयार करने में एक मनुष्य को २१८ घण्टे लगेंगे। और इसमें एक नन्हीं-सी तकली के अतिरिक्त और किसी मशीन की ज़रूरत नहीं। उँगलियाँ तकली चलाने की साधारण कला में पारंगत हो जायँ, बस काफ़ी है। बुनाने की कठिनाई तो पड़ेगी ही नहीं, क्योंकि हिंदुस्तान को जितना कपड़ा चाहिए उतना बुन लेनेवाले जुलाहे देश में मौजूद हैं।

हमारे वैज्ञानिकों का इस बात की चर्चा करने में बड़ा मन लगता है, कि परमाणु में उत्पात करने की जो शक्ति अन्तर्निहित है उसे उपयोग में लाने का मार्ग अगर ढूंढ़ा जा सकता तो दुनिया में कितना आश्चर्यजनक काम हो सकता था। पर यहाँ तो ३५ करोड़ जीवित-जाग्रत मनुष्यों की शारीरिक शक्ति और संकल्प बल का अटूट भंडार भरा पड़ा है, जिसे हिला-डुलाकर काम में लगाने भर की देर है। फिर भी आश्चर्य है, कि इस विषय में हमारा उत्साह उमड़ता नहीं ! हमारा विज्ञान, हमारा कला-कौशल सभीने आज शहरों की शरण ले रखी है, और उस सबका लाभ मुट्ठी भर लोग ही उठा रहे हैं। ज़रूरत तो इस बात की है, कि हम अपने इस समस्त कला-कौशल को गाँवों में ले जायँ, और करोड़ों अपढ़ और अधपेटा ग्रामवासियों को मामूली आवश्यकताओं की पूर्ति करने में उसे लगादें। बुद्धिशाली वर्ग इस दिशा में अगर कुछ करना चाहता है तो उसे सबसे पहले यज्ञार्थ कातना आरंभ कर देना चाहिए।

'हरिजन' से] प्यारेलाल

सस्ता-साहित्य-मण्डल का साहित्य

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १६ नवम्बर, १९३४

असंगति कैसी ?

'हरिजन' सम्पादक के द्वारा यह निम्नलिखित प्रश्न मेरे पास आया है :—

"९ मार्च के 'हरिजन' में गांधीजी का यह कथन प्रकाशित हुआ था, कि 'शास्त्रों में अस्पृश्यता के लिए कोई आधार नहीं।' महात्माजी के अस्पृश्यता-निवारण आंदोलन का जिन प्रकाण्ड पंडितोंने समर्थन किया है उनमें एक काशी-विश्वविद्यालय के महामहोपाध्याय प्रमथनाथ तर्कभूषण हैं। पश्चात् उन्होंने गांधीजी को, उनके आंदोलन के समर्थन में, जो पत्र लिखा था, उसे उन्होंने प्रकाशित कर दिया है। पंडितजीने उस पत्र में यह लिखा था कि यद्यपि अस्पृश्यता के समर्थक श्लोक शास्त्रों में हैं, तथापि कुछ ऐसे भी श्लोक हैं, जिनमें यह कहा गया है, कि मंत्र दीक्षा और भगवद्भक्ति के द्वारा अस्पृश्य की शुद्धि हो सकती है। इस प्रकार पंडितजी के कथनानुसार जिन चाण्डालों को मंत्रदीक्षा नहीं दी गई और जो भगवद्भक्त नहीं हैं, शास्त्रों की दृष्टि में वे अस्पृश्य हैं। अतएव पंडित तर्कभूषणने गांधीजी की इस राय का समर्थन नहीं किया है, कि शास्त्रों में अस्पृश्यता के लिए कोई आधार ही नहीं है।

क्या आप कृपाकर बतलायेंगे, कि गांधीजी ने किस पंडितोंने यह कह दिया है कि शास्त्रों में अस्पृश्यता-प्रतिपादक कोई प्रमाण ही नहीं है ?

गांधीजीने तो पहले यह खुद ही लिखा था, कि सनातनियोंने अस्पृश्यता-समर्थक अनेक श्लोक मुझे बतलाये हैं, पर मैंने उन श्लोकों को इसलिए प्रामाणिक नहीं माना, क्योंकि वे सदाचार के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध पड़ते हैं।

गांधीजी का अब यह वक्तव्य, कि शास्त्र में अस्पृश्यता के लिए कोई आधार नहीं है, उनके पहले के उस वक्तव्य से मेल नहीं खाता, कि शास्त्रों में अस्पृश्यता-समर्थक श्लोक तो हैं, पर सदाचार-विरोधी होने के कारण उनकी दृष्टि में वे प्रामाण्य नहीं, अतएव अग्राह्य हैं।

क्या कृपाकर 'हरिजन' में आप इस स्पष्ट असंगति पर कुछ प्रकाश डालेंगे ?"

संगति या असंगति मेरे लिए कोई भयावनी चीज़ नहीं है। अगर मैं अपने आपको किसी भी क्षण धोखा नहीं दे रहा हूँ, तो मेरे ऊपर आरोपित ऐसी तमाम असंगतियों की मैं कोई पर्वा नहीं करता। मगर उक्त पत्र में तो असंगति कोई है ही नहीं। अगर मैं शास्त्रों के कुछ ऐसे श्लोकों को नहीं मानता, जो प्रक्षिप्त हैं अथवा जो शास्त्र-निर्धारित सत्य, अस्तेय, अहिंसा आदि विश्वव्यापी मूल धर्म-तत्वों से मेल नहीं खाते, तो निश्चय ही मुझे यह कहने का अधिकार है, कि जिस प्रचलित प्रथा या मान्यता को वे आपत्तिजनक श्लोक शास्त्र-विहित मान रहे हैं, उसके लिए शास्त्रों में कोई आधार नहीं है। जैसी अस्पृश्यता आज बरती जाती है उसका शास्त्रों से कोई प्रयोजन नहीं— मेरी इस बात का समर्थन किसी एक ही पंडितने नहीं, बल्कि अनेक विद्वानोंने किया है। निस्सन्देह शास्त्रों में जहाँ अस्पृश्यता का जिक्र आया है, वहीं उसे दूर करने के सरल उपायों का भी उल्लेख मिलता है। जब हम शौचादि क्रिया करते हैं, तो हम सभी नित्य उतने समय के लिए अस्पृश्य हो जाते हैं। पर हमारी वह अस्पृश्यता स्नानादि करने से दूर हो जाती है। हमारे कुत्सित विचार भी हमें अस्पृश्य बना देते हैं, किंतु राम, वासुदेव, नारायण अथवा शिव का नाम स्मरण करके और भगवान् की अगाध शरण का आश्रय लेकर प्रायश्चित्त और आत्म-शुद्धि के द्वारा हमारी वह कुविचार-जन्य अस्पृश्यता भी दूर हो जाती है। यही बात हरिजन के सम्बन्ध में भी है। उसका धन्धा उसे कुछ समय के लिए अस्पृश्य बना देता है तो यह बात नहीं, कि उसके रोग का इलाज होता न हो। स्नानादि स्वच्छता से उसकी भी अस्पृश्यता दूर हो जाती है। पर यहाँ को तो बात ही दूसरी है। कुछ सनातनियों का तो यह दावा है, कि हरिजनों की अस्पृश्यता तो असाध्य है और यह सदा-परम्परागत है, और वह सृष्टि के अन्ततक ऐसी ही बनी रहेगी। और सबसे अधिक दुःख की बात तो यह है, कि हमारे ये सनातनी भाई ऐसे अमिट अस्पृश्यों की संख्या लाखों की बताते हैं। उनकी इस संख्या का प्रमाण किसी शास्त्र में तो है नहीं, वह तो मर्दुमशुमारी की रिपोर्टों में है—और वे रिपोर्टें भी कैसी, जिनमें हर दसवें साल कुछ-न-कुछ हेरफेर होता ही रहता है और जिन्हें ऐसे शुमारकुनिंदा तैयार करते हैं, जिनको हिंदूशास्त्रों का कुछ भी ज्ञान नहीं होता और अनेक जगह के शुमारकुनिंदा तो हिंदू भी नहीं होते! असल में तो यह अस्पृश्यता एक ऐसा अन्धविश्वास है, कि जिसके विरुद्ध प्रत्येक हिंदुत्व-प्रेमी को विद्रोह की आवाज़ उठानी चाहिए।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

सदस्यों की योग्यता

अक्सर लोग ये प्रश्न पूछते हैं, कि हरिजन-बोर्ड के सदस्यों की क्या तो योग्यता होनी चाहिए, और बोर्ड में कितने सदस्य होने चाहिएँ। उस दिन कानपुर में संयुक्त प्रांतीय संघ की बैठक में इन प्रश्नों का मैंने काफी विस्तार के साथ उत्तर देने की चेष्टा की थी। फिर भी जबतक कोई निश्चित नीति न बन जाय, तबतक यह आवश्यक है कि समय-समय पर इन प्रश्नों की चर्चा होती रहे।

अगर हमें इतना याद रहे, कि इन हरिजन-बोर्डों के सदस्य सेवक हैं, संरक्षक नहीं, तो बहुत-सी कठिनाइयाँ तो आप ही हल हो जायँ। किसी को रिझाने या खिझाने का तब कोई प्रश्न ही न उठे। फिर तो वही लोग बोर्ड में आयँगे, जो हरिजन-सेवा करने के लिए उत्सुक होंगे, बोर्ड की उपयोगिता को जो बढ़ायँगे और बोर्ड में आनेसे जिनकी सेवा-साधना की क्षमता और भी बढ़ जायगी।

अतः बोर्ड का सदस्य उसी व्यक्ति को होना चाहिए, जो—

(१) अस्पृश्यता के आत्यंतिक निवारण में विश्वास रखता हो;

(२) जो अपने सामर्थ्य के अनुसार बोर्ड को कुछ देता हो;

(३) जो कुछ-न-कुछ निश्चित हरिजन-सेवा कार्य करता हो;—

जैसे, अपने घर में किसी हरिजन को अपने कौटुंबिक की तरह या कम-से-कम घरू नौकर की तरह रखता हो, अथवा एक या एकाधिक हरिजनों को पढ़ाता हो, या नियमपूर्वक हरिजन-बस्ती में जाता और उसे साफ करता हो, अथवा यदि वह वैद्य या डाक्टर है, तो बिना कोई फ़ीस लिए हरिजन रोगियों का इलाज करता हो, इत्यादि इत्यादि;

(४) और जो अपने बोर्ड को हर महीने अपने सेवा कार्य की डायरी भरकर भेजता हो ।

अगर ऐसी कुछ शर्तों का पालन किया जाय, तो फिर यह प्रश्न ही नहीं उठता, कि बोर्ड में कितने सदस्य हों । ऐसे सदस्य जितने ही अधिक होंगे, उतना ही अच्छा है । समय-समय पर अनुभवसिद्ध विचारों का विनिमय करने तथा आपस की कठिनाइयों को सुलझाने के लिए ही इन बोर्डों की बैठकें हुआ करेंगी । व्यर्थ के वाद-विवादों में वे अपना समय नष्ट न करेंगे ।

हरिजन बोर्डों के साथ जो सलाहकारी समितियाँ सम्बद्ध होंगी, वे भी अपने लिए कम-से-कम कुछ योग्यता निश्चित कर लेंगी । सलाह देनेवालों में जो योग्यता होनी चाहिए, वह स्वभावतः बोर्ड के सदस्यों की योग्यता की तरह उतनी कड़ी और निर्धारित न होगी । मैंने जिन गुणों की ऊपर चर्चा की है अगर वे सब गुण बोर्ड के सदस्यों में न पाये जायँ तब क्या होगा—इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक है । इसका जो उत्तर मैंने अक्सर दिया है उसीको मैं यहाँ दुहराऊँगा । संघ का मण्डल बोर्ड जिन व्यक्तियों से उनके प्रान्तों में बोर्ड बनाने को कहे, वे जबतक उपर्युक्त योग्यतावाले सदस्य न मिलें तबतक अन्य योग्य व्यक्तियों के द्वारा अपने प्रान्तों में सेवा-कार्य करावें । "ईमानदारी से काम करो" यह प्रत्येक हरिजन-बोर्ड का आदर्श होना चाहिए, और इस निर्दोष सिद्धान्त-वाक्य की उसे कदापि अवहेलना नहीं करनी चाहिए ।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

अल्पमत का अधिकार

एक सनातनी सज्जन पूछते हैं :—

"एक सनातनी की दृष्टि से हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश के सम्बन्ध में मुझे एक कठिनाई दिखाई देती है । मान लीजिए कि किसी एक ख़ास मन्दिर के ९९ फी सदी दर्शनार्थी हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश के पक्ष में हैं और वह मन्दिर खोल दिया जाता है । इस स्थिति में उस एक दर्शनार्थी का क्या होगा, जिसे ऐसे किसी मन्दिर में देव-पूजन करने में आपत्ति है, जिसमें कि हरिजन जाते हों ? अगर सुधारकों की चल गई तो क्या सनातनियों के सनातन से चले आये पूजनाधिकार में यह एक अनुचित हस्तक्षेप न होगा ?

यहाँ एक उदाहरण देता हूँ । अँग्रेज़ों के एक शहर में रोमन कैथलिक ईसाइयों की भी सार्वजनिक चर्च है और वहीं प्रोटेस्टेण्ट लोगों की भी चर्च है । प्रोटेस्टेण्टों का बहुमत होते हुए भी वे रोमन कैथलिक चर्च के मामलों में कोई दस्तंदाज़ी नहीं करेंगे । तब फिर सुधारक (उनका बहुमत होते हुए भी) क्यों सनातनियों के किसी सार्वजनिक मंदिर के मामले में हस्तक्षेप करें ?"

ऐसा ही एक दूसरा प्रश्न रखकर मैं इस प्रश्न का उत्तर दूँगा । अगर एक अकेले सनातनी को ऐसा अधिकार है—और निस्संदेह उसे यह अधिकार है—तो फिर उस दशा में उस बहुमत का क्या होगा ? बहुमत को क्या कुछ भी अधिकार नहीं ? प्रश्नकर्ता ने जो उदाहरण ऊपर दिया है, वह यहाँ लागू नहीं होता । उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों की दो चर्चों के पास-पास होने की कल्पना की है । प्रोटेस्टेण्ट अगर रोमन कैथलिक लोगों के अधिकारों में, और रोमन कैथलिक प्रोटेस्टेण्टों के मामलों में हस्तक्षेप करें तो उनकी यह भारी गुस्ताख़ी ही होगी । मगर मान लीजिए, कि सिवा एक के तमाम प्रोटेस्टेण्ट ईसाई उन लोगों को अपने अर्चना-स्थान में आने की इजाज़त दे दें, जिन्हें कि पूर्व में उन्होंने बहिष्कृत कर रखा था, तो निस्संदेह उन्हें ऐसा करने का पूरा अधिकार है । यहाँ किसी के धर्म-परिवर्तन का तो प्रश्न ही नहीं उठता । प्रश्नकर्ता की यह कल्पना निराधार है । मन्दिर-प्रवेश की प्रवृत्ति में सुधारक किसी से यह तो कहते नहीं, कि अपना धर्म बदल डालो । किसी मन्दिर में जानेवाले अगर बहुमत से या सर्वसम्मति से भी कम-से-कम सिद्धान्तरूप में ही ऐसा कोई फैसला करदें, तो भी उस मन्दिर का उपयोग वे ऐसे किसी काम में नहीं कर सकते, जिसका कि इरादा उसके बनानेवालों के मन में न रहा होगा । सुधारकों का तो यही दावा है, कि उनका धर्म—वही धर्म जो सनातनियों का है—सवर्ण हिंदुओं की तरह हरिजन हिंदुओं को भी मन्दिरों में जाने की आज्ञा देता है । इसलिए प्रश्न तो यहीं समाप्त हो जाता है, और ऐसे मामलों में बहुमत की राय ज़रूर मानी जायगी । अगर इसकी उपेक्षा की गई तब तो यह अल्पमत के द्वारा बहुमत के प्रति बलात्कार ही कहा जायगा, और तब उस स्थिति में सब तरह की प्रगति का ख़ात्मा ही है । प्रश्नकर्ता का उपस्थित किया हुआ उक्त मत अगर मान लिया गया तो समाज का क्षय और मरण ही समझिए । यह स्मरण रहे कि अल्पमत को अपने लिए अलग मन्दिर बनाने की स्वतंत्रता है । और जहाँतक इस प्रश्न से मेरा अपना सम्बन्ध है, मैं इस विषय में अपनी यह राय दे चुका हूँ कि एक व्यक्ति के भी अल्पमत की भावना का यहाँतक आदर किया जाय कि एक घंटा ख़ासकर उसी के लिए अलग नियत कर दिया जाय, ताकि वह सुधारकों या हरिजनों के आवागमन से स्वतंत्र रहकर मंदिर में अपने इष्टदेव की आराधना और अर्चा कर सके ।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

चर्खे के साथ तकली की स्पर्धा

[१० साल हुए जब कि मुझे तकली का नया-नया शौक़ लगा था, तब मैंने कुछेक मास के प्रयत्न के बाद तकली पर 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' में एक लेख लिखा था । उस लेख में मैंने तकली का गुणगान किया था और उसके पक्ष में यथासम्भव दलीलें भी दी थीं; यह बतलाया था, कि अधिक नहीं तो ७० या ७५ गज़ सूत एक घण्टे में तकली पर सहज ही कत सकता है । मैंने यह भी बतलाया था, कि एक महीने में जितना कुछ फालतू समय मुझे मिला वह सब तकली घुमाने में लगाकर मैंने १६ से २० नवम्बर तक का चार हज़ार गज़ सूत कात लिया था । पर वह ज़माना तो अब गया । आज यह स्पष्ट दिखाई देता है,

कि इधर दस बरस के अन्दर तकली शास्त्र का एक नया ही युग आरंभ हो गया है। जेल में मैं चर्खे पर ही कातता था। आँख की शिकायत की वजह से मैंने पहले ही तकली चलाना छोड़ दिया था, इसलिए यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मेरे अपने अनुभव से वह ज़माना बदल गया है। परन्तु सद्भाग्य से एक संस्था के चार वर्षतक किये हुए वैज्ञानिक प्रयोग के परिणामस्वरूप निम्नलिखित विवरण प्राप्त हुआ है। आज तो ६० से लेकर ७५ मनुष्यों तक के किये हुए वैज्ञानिक प्रयोग का परिणाम देखकर यह कहा जा सकता है कि तब और अब में ज़मीन आसमान का अन्तर हो गया है। तकली के पक्ष में जो दलीलें दस साल पहले दी गई थीं, इन परिणामों के बाद उनका काटना और भी मुश्किल हो जाता है। इतनी प्रस्तावना लिख चुकने के बाद वर्धा-सत्याग्रहाश्रम के अंगभूत कन्याश्रम में पिछले चार वर्ष तकली का जो प्रयोग जारी रहा उसके विषय में आश्रम के श्री शिवाजी भावे के लिखे हुए एक मराठी लेख का भाषान्तर मैं यहाँ देता हूँ—म० ह० देसाई।]

किसी भी साधन की उपयोगिता की शक्ति जाँचने की ये चार कसौटियाँ हैं—(१) साधन की सुलभता; (२) उसकी उपज; (३) उत्पन्न माल के गुण-दोष; और (४) कितने समय तक उस साधन का उपयोग किया जा सकता है।

सबसे पहले हम प्रस्तुत साधन की सुलभता पर विचार करेंगे। सुलभता की दृष्टि से तो तकली की बराबरी कर ही कौन सकता है? देखिए इसके प्रत्यक्ष लाभ :—

(१) ग़रीब-से-ग़रीब के लिए भी तकली सुलभ है। ठीकरे की एक चकती और बाँस की खपची से बननेवाली तकली की क़ीमत एक कौड़ी भी तो नहीं पड़ती। पीतल या लोहे की तकली लेने जाओ तो डेढ़-दो आने में मिल जायगी। इसीलिए वर्धा तालुका में पाँच-छै महीने में दस-बारह हज़ार तकलियाँ बात-की-बात में खप गईं। चर्खे थोड़े ही इतने खप सकते थे? बात यह है कि सस्ते से भी सस्ता चर्खा जितने रुपये में मिलेगा तकली उतने आने में मिल जायगी।

(२) तकली बेचारी जगह भी कुछ नहीं रोकती, उसे आप जेब में भी रख सकते हैं; जब कि अत्यन्त ग़रीब मनुष्य की झोंपड़ी में चर्खे के रखने-रखाने में शायद कठिनाई पड़े।

(३) चर्खे में माल ठीक रखो, राल चढ़ाओ, पूलियों में तेल दो इत्यादि खटखट लगी रहती ही है। यह सब खटखट नन्हीं-सी तकली में होगी ही क्यों? तकली में तो निपट नौसिखिये के लिए भी कोई कठिनाई नहीं।

(४) सिवा साफ़-सुथरी पूनियों के और कुछ भी तकली को न चाहिए।

(५) उसे चाहे जहाँ लेकर घुमा सकते हैं। रास्ते में, गाड़ी में, पाठशाला में या खेत-खलिहान में भी तकली को हम मज़े से चला सकते हैं। सभा-सम्मेलनों में बैठे-बैठे तकली चलाना तो उसके प्रचार का एक अच्छा साधन हो जाता है।

(६) यह सच है कि चर्खे का सङ्गीत हमें तकली में नहीं मिलता, पर नौसिखिये के हाथ से चलते हुए चर्खे का वैसा कर्कश स्वर भी नहीं सुनाई देगा।

(७) तकली अगर बिगड़ जाय या टूट-टाट जाय तो वह उसी क्षण ठीक हो जाती है, और न सुधरे तो अपना जाता ही क्या है, दूसरी ले लो। पर उसमें बिगड़ने को चीज़ ही क्या?

(८) बैठे-बैठे, खड़े-खड़े, लेटे-लेटे, चाहे जैसे हम उसे चला सकते हैं।

(९) चर्खे से तकली चलाना आसानी से आ सकता है। छोटे-छोटे बच्चे तकली चलाना सहज ही सीख लेते हैं—तकली उनके लिए एक तरह का भौंरा या लट्टू ही समझिए। यहाँ ५ बरस के एक बालकने इतना सूत कात लिया था, कि जिससे १० गज़ खादी तैयार हो जाय।

(१०) तकली दोनों हाथों से चलाई जा सकती है।

अब दूसरी कसौटी लीजिए।

आध घंटे में तकली से कितना सूत निकलता है, इसके चार साल के प्रयोग के परिणामस्वरूप कुछ आँकड़े नीचे दिये जाते हैं। जो आधा घंटे का समय तकली के प्रीत्यर्थ दिया जाता है उसमें बिना किसी विक्षेप के तकली की शुद्ध उपासना ही होती है। इसी कारण इस वर्ग को भी हम 'सूत्रयज्ञ-वर्ग' कहते हैं। अब इन आँकड़ों को देखिए :—

(आध घंटे की कताई : १ तार=४ फुट)

(१) अधिक-से-अधिक तेज़ गति २०६ तार
(२) उत्तम गति १६० तार से ऊपर
(३) सामान्य गति १२० तार से ऊपर
(४) कम-से-कम तेज़ गति ८० तार

यह सब १३ से लेकर १६ नंबरतक का सूत था। इन्हीं नंबरों का सूत चर्खे से आध घंटे में नीचे लिखे अनुसार निकलता है :—

(१) अधिक-से-अधिक तेज़ गति ३०० तार
(२) उत्तम गति २०० तार से ऊपर
(३) सामान्य गति १६० तार से ऊपर
(४) कम-से-कम तेज़ गति १२० तार

ऊपर के आँकड़ों से यह मालूम हो जायगा, कि तकली की अपेक्षा चर्खे का बहुत हुआ तो डेवढ़ा परिणाम आता है। फिर चर्खे पर पिछले दस साल जो प्रयोग हुआ है वह तकली पर तो हुआ ही नहीं। इसलिए आज तकली चर्खे के साथ स्पर्धा कर रही है। अगर कुछ वर्ष बाद वह चर्खे की समता करने लग जाय, तो आश्चर्य नहीं।

तीसरी कसौटी—

तकली का सूत, चर्खे के सूत की अपेक्षा, समानता में कुछ कम ज़रूर उतरता है, पर मज़बूती में वह किसी क़दर कम नहीं होता। अच्छा मँजा हुआ कातनेवाला तो समानता और मज़बूती दोनों ही अच्छी तरह ला सकता है। तकली के सूत के बुनने में कुछ भी कठिनाई नहीं पड़ती। और तकली पर अधिक महीन सूत कातना जितना आसान है उतना चर्खे पर नहीं।

अब रही चौथी कसौटी—

अभी निश्चयपूर्वक यह बताने लायक प्रयोग नहीं हुआ, कि अधिक-से-अधिक कितने समयतक बिना थकावट के तकली चलाई जा सकती है। पर चार-पाँच घंटेतक चलाते रहने में तो कोई अड़चन नहीं आती।

अब वस्त्र के स्वावलंबन की दृष्टि से हमें तकली का परिणाम देखना है। अभ्यास हो जाने के बाद साधारण-से-साधारण मनुष्य तकली पर आध घंटे में १०० तार तो सहज ही कात सकता है,

यह अनुभव से सिद्ध हो चुका है। अतः नित्य आध घंटा नियमित रीति से कातनेवाला एक वर्ष में १६००० तार अर्थात् ४८००० गज़ सूत कात सकता है। ३२ इंची पना का एक वर्ग गज़ कपड़ा बुनवाने के लिए १३ से लेकर १६ नंबरतक का ३००० गज़ सूत चाहिए। इसका यह अर्थ हुआ, कि सालभर नियमित रीति से आध घंटा तकली चलानेवाला सहज ही १६ वर्ग गज़ खादी उत्पन्न कर सकता है। हिन्दुस्तान में औसतन १४ वर्ग गज़ कपड़ा प्रति मनुष्य खर्च होता है। इसलिए नित्य आध घंटा तकली चलानेवाला याज्ञिक अपनी आवश्यकताओं से अधिक ही खादी उत्पन्न कर सकता है; और एक घंटा चलानेवाला याज्ञिक तो एक साल में ३२ वर्ग गज़ खादी आसानी से उत्पन्न कर लेगा।

पर तकली में सफलता मिलने का रहस्य तो जुदा ही है। आजकल साधारण रीति से तकली जिस तरह चलाई जाती है उससे यह परिणाम नहीं आता। पुरानी साधारण रीति तो यह है कि तकली को दाहिने हाथ में लेकर उसे अँगूठे और उँगली से घुमाते हुए बाएँ हाथ से सूत को खींचकर लपेटते जायँ। इस तरह तकली की गति बहुत तेज़ नहीं हो सकती। किन्तु तकली को अगर पैर की एड़ी, पिंडरी, घुटने या जाँघ पर से घुमाते हुए ज़मीन पर टेक देकर उसे चलावें तो वह इतनी तेज़ चलेगी कि एक ही बार घुमाने से पूरा एक तार निकल आयगा। और इसी तरह तकली को ज़मीन पर रखकर तार को एक ही फेरे में भली भाँति लपेटने में समय भी ख़ासा बच जायगा। इस तरह दूना समय बच जाने से कताई का परिणाम भी क़रीब क़रीब दूना आयगा। इस नई रीति से साधारण मनुष्य तीनेक महीने के अभ्यास के बाद आध घण्टे में सौ से लेकर सवा सौ तारतक निकाल लेने की गति सहज ही बढ़ा सकता है। वर्धा से क़रीब बारह मील के अन्तर पर सीवापुर नाम का एक गाँव है। इस गाँव के कुछ बालक आध घण्टे में १२० तार से अधिक ही हँसते-खेलते कात लेते हैं। अनवरत अभ्यास के परिणाम-स्वरूप गति कितनी तेज़ बढ़ जाती है, यह नीचे के दो उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा। चन्द्रकला नाम की १४ वर्ष की एक लड़की की कताई का परिणाम देखिए :—

तारीख़	तार	तारीख़	तार
जून १	३०	जुलाई १	९०
„ ८	४०	„ ८	१००
„ १५	५०	„ १५	११०
„ २२	६०	„ २२	१३५
„ ३०	७०		

५५ दिनों में ३० तार की गति से लगा लगाकर इस लड़कीने १३५ तारतक की गति बढ़ा ली थी। अब शेवन्ती नाम की २२ वर्ष की एक दूसरी बहिन की कताई के आँकड़े लीजिए :—

तारीख़	तार	तारीख़	तार
मई ८	५०	जुलाई ८	१००
„ १५	६०	„ १५	१०५
„ २२	४५	„ २२	११०
„ ३०	७५	„ ३०	११०
जून ८	८०	अगस्त ८	११५
„ १५	८५	„ २२	१०५
„ २२	९०	„ ३०	१०५
„ ३०	१००	सितम्बर ८	१२०

अच्छा बढ़िया सूत कातने के लिए बढ़िया पूनियों का होना ज़रूरी है। दो-तीन अच्छी तकलियाँ रखने से भी गति काफ़ी बढ़ जाती है। पैर के जिस भाग पर तकली घुमाई जाय उस पर ज़रा-सी राख लगा लेने से भी तकली बहुत अच्छी चलती है।

स्वावलम्बन की दृष्टि तथा यज्ञार्थ कातने के विचार से तकली कितनी उपयोगी है, इसके कहने की अब आवश्यकता नहीं।। जीविका की दृष्टि से यद्यपि नन्ही-सी तकली चर्खे का स्थान नहीं ले सकती, तो भी बिहार के कुछ गाँवों में सैकड़ों स्त्रियाँ आज भी तकली चलाकर पैसे दो पैसे तो कमा ही लेती है। इस नई पद्धति के अनुसार उन बहिनों की कताई की गति सहज ही दुगुनी बढ़ सकती है। आध घण्टे में १००-१२५ तार निकाल लेने की गति बढ़ाने के लिए ढाई-तीन महीने के अभ्यास की ज़रूरत है। तीन महीने यानी कुल ४५ घण्टे का अभ्यास काफ़ी होगा। अगर नित्य कोई विद्यार्थी ४-५ घण्टे तकली चलाने का अभ्यास करे तो उसकी १००--१२५ तार निकाल लेने की गति सहज ही १०--१५ दिन में बढ़ सकती है।

'हरिजन-बन्धु' से] शिवाजी भावे

पोरबन्दर में हरिजन-मंदिर

पोरबन्दर में गांधी-जयन्ती के अवसर पर हरिजन-कार्य को अधिक प्रगतिशाली बनाने के लिए तीन कार्यक्रमों की आयोजना की गई थी। सबेरे ९ बजे पोरबन्दर की हरिजन-बस्ती में हरिजन-पाठशाला की स्थापना; फिर ११½ बजे मेहतरों के मुहल्ले में हरिजन-मन्दिर का उद्घाटन-संस्कार; और साँझ को गांधी हरिजन-आश्रम में, वार्षिक उत्सव के उपलक्ष में, हरिजनों के कला-कौशल की प्रदर्शिनी तथा हरिजनों का नाट्य-अभिनय। पोरबन्दर के नागरिकोंने उस दिन उत्साहपूर्वक योग दिया था।

पोरबन्दर की हरिजन-बस्ती १५० घर की है। जन-संख्या लगभग ६२५ के है। इस मुहल्ले के मेहतरों की अपना एक अलग मन्दिर बनाने की बहुत दिनों से इच्छा थी। पोरबन्दर के सुप्रसिद्ध हरिजन-प्रेमी श्री कालीदास गांधीने इस कार्य के लिए धन-संग्रह करने में बड़ा परिश्रम किया। पाँच साल में क़रीब छे सौ रुपये तो उन्होंने ब्याह-शादी के अवसरों पर, दस-दस रुपये के हिसाब से, एकत्र किये, और हरिजनों के वेतन से एक बार एक-एक रुपया लेकर सौ रुपये जमा कर लिये। ९५) श्री लक्ष्मीदास पीताम्बरने दिये, और सौ-दोसौ रुपये की फुटकर सहायता भी मिल गई। इस तरह कुल १०००) ख़र्च करके हरिजनों के इच्छानुसार मन्दिर बनवा दिया गया। मन्दिर के आँगन में जो कुआँ बँधवाया गया वह भी इसी रक़म में से बना। मेहतर युवकोंने यहाँ अपना एक मण्डल स्थापित किया है, जिसमें २२ सदस्य हैं। मण्डल के सदस्योंने मद्यपान करना छोड़ दिया है।

पोरबन्दर के सुप्रतिष्ठित सेठ श्री गोविंदजी पारेख के हाथ से उक्त हरिजन-मन्दिर गांधी-जयन्ती के शुभ अवसर पर खुलवाया गया। इस उत्सव में दूर-दूर के हरिजन सम्मिलित हुए थे। रात्रि को अस्पृश्यता-निवारण-विषयक एक नाटक भी खेला गया। सबेरे बाज़ार के मुख्य भाग में हरिजन-टोली भी फेरी गई थी।

'हरिजन-बन्धु' से] चन्द्रशंकर शुक्ल

गुजरात का हरिजन-कार्य

(१९३३-३४)

कार्य क्षेत्र	छात्रवृत्तियाँ	कुल रकम	पाठशालाएँ तथा आश्रम	विद्यार्थी	नये पुराने कुएँ	कुओं पर खर्च	वर्ष का कुल खर्च
अहमदाबाद	२१	७२१)	२१	४५०	८	१५१२॥-)॥	३३४०=)॥।
खेड़ा	४	२३०)॥	१२	४००	४	६३५॥)	२४०८॥।=)॥
भड़ोच	१	३०)	२	३०	×	×	१२६।=)
सूरत	२	१५९≡)॥।	१	२५	१	७५)	१३१०)
पञ्चमहाल	×	१०६॥-)॥।	१	×	×	×	९०७॥≡)॥
काठियावाड़	४	१३५)	×	×	×	×	७६३।≡)॥
बड़ौदा	५	१६३)	५	८८	×	×	१०५२-)॥
नवसारी	२	२१५)	३	५५	१	१५०)	६७।≡)
महेसाणा	८	२३२॥=)॥।	७	२५	२	२९१=)॥	९३४॥)७
महीकाँठा	×	×	३	५०	×	×	×
रेवाकाँठा	१	२०)	१	५७	×	×	×
कच्छ	×	×	२	×	×	×	८६५=)॥।
प्रांतीय कार्यालय	×	×	×	×	×	×	१३०८२=)॥।
फुटकर	×	२३८॥=)	×	×	×	१६२।)।	×
कुल	४८	२३३३॥=)॥।	६०	१२३०	१६	२८३६॥)	२४६१५≡)४*

* इस रक़म में से २००६३-)७ रचनात्मक कार्य में, ३२४७॥≠)। कार्यालय-खर्च में, और १३०३॥।-)॥ प्रचार-कार्य में खर्च हुए।

करल प्रांत में हरिजन-कार्य

[अक्तूबर, १९३३ से ३० सितंबर, १९३४ तक]

१—सेण्ट्रल बोर्डकी बनारसवाली बैठक के समय ब्रिटिश मलबार और कोचीन-त्रावणकोर-बोर्ड, केरल प्रांतीय हरिजन-बोर्ड में मिला लिया गया।

२—केरल बोर्ड के अधीन आज ८ तो जिला-कमेटियाँ हैं और ७ लोकल कमेटियाँ।

३—४२७ बार भजन-कीर्तन हुआ; अधिकांश में हरिजनों और सवर्णोंने मिलकर कीर्तन किया।

४—१४६ प्रचार-संबंधी सभाएँ—ज़्यादातर गाँवों में—हुईं।

५—संघ की कुल ३२ पाठशालाएँ हैं—१२ दिन की और २० रात्रि की। २५ पाठशालाएँ तो गाँवों में हैं और ७ शहरों में। पाठशालाओं पर मासिक खर्च कुल ४५०) का होता है।

६—५०० से ऊपर हरिजन बालकों की छात्रवृत्तियों, पुस्तकों, कपड़ों आदि पर १६०६≡) खर्च किये गये।

७—संघ की ओर से ३ हरिजन-छात्रालय चल रहे हैं, जिन पर प्रतिमास ४००) खर्च हुए।

८—४ हरिजन बोर्डिंग-हाउसों को १४५) की मासिक सहायता दी जाती है।

९—हरिजन विद्यार्थियों को जो नित्य मध्याह्न के समय भोजन दिया गया उसमें प्रतिमास १००) खर्च हुए।

१०—प्रतिमास २००) रुपये ५ हरिजन-आश्रमों पर खर्च किये गये।

११—विभिन्न हरिजन-बस्तियों का ३४५ बार कार्यकर्ताओं-ने निरीक्षण किया और लोगों को स्वास्थ्य और सफ़ाई के लाभ समझाये।

१२—मद्य-निषेध के संबंध में १२९ सभाएँ हुईं।

१३—औषधि इत्यादि पर ९२।≡)॥ खर्च हुए। डा० एम० के० रामन् (मंत्री) और डा० एम० ई० नायडूने बिना फीस लिये हरिजन मरीज़ों का इलाज किया।

१४—३ कुएँ गहरे कराये गये।

१५—२० हरिजन लड़कों को मुफ्त में सिलाई का काम सिखाया गया।

१६—त्रावणकोर की टेम्पुल-एण्ट्री-इन्क्वायरी कमेटीने आंशिकरूप से मंदिर-प्रवेश की सिफ़ारिश की।

१७—अस्पृश्यता-निवारक जत्थेने ४ तालुकों में पैदल भ्रमण करके प्रचार-कार्य किया।

१८—४ हरिजन-सम्मेलन हुए।

१९—संघ के अध्यक्ष और मंत्रीने दो बार केरल प्रांत का दौरा करते हुए २४ मुख्य हरिजन-केन्द्रों का निरीक्षण किया।

जी० रामचन्द्रन्
मंत्री—केरल—ह० से० सं०

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

सम्पादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २]   दिल्ली, शुक्रवार, २३ नवम्बर, १९३४.   [संख्या ४०

विषय-सूची

हरिजन-यात्रा के संस्मरण

[श्री अँगथा हैरिसन भारत के प्रति सहानुभूति रखनेवाली एक अँग्रेज़ महिला हैं। भारत के संबंध में इंग्लैण्ड में वास्तविक स्थिति का प्रचार हो और सद्भाव उत्पन्न हो इस नीयत से ही वह इंग्लैण्ड में काम कर रही हैं। गत मार्च मास में हिंदुस्तान की स्थिति ख़ुद अपनी आँखों देखने के लिए ही वे यहाँ आईं और चार महीने रही थीं। अपना अधिक समय उन्होंने गांधीजी के साथ बिहार के भूकंप-पीड़ित स्थानों में घूमने और दक्षिणी बिहार तथा उड़ीसा की हरिजन-यात्रा में व्यतीत किया था। उन दिनों के संस्मरणों का उन्होंने एक लेख विलायत पहुँचने के बाद 'क्रिश्चियन सेंचरी' नामक एक अमेरिकन पत्र में लिखा था। उस लेख के मुख्य भाग का अनुवाद सहयोगी 'हरिजन-बन्धु' में प्रकाशित हुआ है, जिसका भाषांतर हम नीचे देते हैं—सं०]

प्रति सप्ताह 'क्रिश्चियन सेंचरी' किस प्रकार भिन्न भिन्न स्थानों और भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पढ़ा जाता होगा इसकी कल्पना भी आनंदप्रद मालूम होती है। ऐसी एक परिस्थिति का मैं यहाँ वर्णन करूँगी।

भारत की स्थिति स्वयं 'देखने और सुनने' मैं वहाँ गई थी और चार महीने वहाँ रहकर अभी लौटी हूँ। मेरे-जैसे मनुष्य के लिए, जो दो देशों के बीच सद्भाव उत्पन्न करने के प्रयत्न में कुछ योग देता हो, इस तरह हिंदुस्तान जाकर ख़ुद अपनी आँखों वहाँ की स्थिति देख आना ज़रूरी है। ख़ासकर तो मुझे गांधीजी से मिलना और उनके साथ बातें करनी थीं।

× × × ×

उन चार महीनों के अपने अनुभवों को लिखने बैठूँ, तो एक पुस्तक तैयार हो जाय। पर ऐसी पुस्तक मैं लिख कहाँ सकती हूँ? मैं वहाँ सभी से मिली थी। अँग्रेज़ों और हिंदुस्तानियों से, प्राचीन सनातनी भारतीय समाज के प्रतिनिधियों से, नरम दल के मुखियों से, राष्ट्रीय नेताओं से और अनेक जातियों तथा धर्मों के व्यक्तियों से मैं वहाँ मिली थी। भारतीय स्त्रियों को नेत्रियों से भी मैंने ख़ूब बातें की थीं। स्त्रियों की शक्ति भारत में आज नगण्य नहीं कही जा सकती। गांधीजीने सैकड़ों बार भारतीय स्त्रियों की जागृति को 'चमत्कार-पूर्ण जागृति' कहा है।

गांधीजीने सत्याग्रह स्थगित करने का वह प्रसिद्ध वक्तव्य जब लिखा तब मैं उनके साथ थी। राजेन्द्र बाबू के साथ गांधीजी भूकम्प-विध्वस्त बिहार के खण्डहरों में जब घूम-फिर रहे थे, तब उस यात्रा में मुझे भी उनके साथ घूमने का अवसर प्राप्त हुआ था। रांची में जब राजनीतिक मंत्रणा हो रही थी, उन दिनों भी मैं वहाँ उपस्थित थी। मई के महीने में पटना में जब कांग्रेस की बैठक हुई, तब वहाँ भी उपस्थित रहने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

और अन्त में, गांधीजी के साथ दक्षिण उड़ीसा की उस ऐतिहासिक पैदल यात्रा में भी मैं थी।

× × × ×

उड़ीसा को रवाना होने से पहले मैं कलकत्ते के 'यंग विमेन्स क्रिश्चियन एसोसियेशन' में ठहरी थी। रेल की मुसाफ़िरी में पढ़ने के लिए वहाँ की बहिनोंने मुझे भी प्रेमपूर्वक कुछ पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें दी थीं उनमें 'क्रिश्चियन सेंचरी' के कुछ अंक भी थे।

जिस दिन मैं उड़ीसा पहुँची, उसके दूसरे दिन गांधीजी का मौन-दिवस था। विकट गर्मी पड़ रही थी। हम सब लोग झाड़ों की छाहँ में बैठे अपना-अपना काम कर रहे थे। गांधीजी के आस पास ढेर-के-ढेर अख़बार, चिट्ठियाँ, तार, लेख वग़ैरा पड़े हुए थे। मैं वहीं एक तरफ़ बैठी हुई 'क्रिश्चियन सेंचरी' के अंक पढ़ रही थी।

एकाएक १४वें मार्च के अंक में इस वाक्य पर मेरी नज़र पड़ी कि "हम शान्तिविषयक 'नोबल प्राइज़' के लिए गांधीजी का नाम पेश करते हैं।" उस टिप्पणी को मैं अविकल रूप में यहाँ उद्धृत करती हूँ :—

"शान्तिविषयक नोबल प्राइज़ क्यों न गांधीजी को दिया जाय? यह उन पर कुछ कृपा-भाव न समझा जाय। उन्हें तो ऐसे कृपा-भाव की चाहना भी नहीं। इस सम्मान से गांधीजी कुछ फूल नहीं जायँगे। और उस द्रव्य का उपयोग उनके हाथ से सिवा इसके कि उसे वह किसी सेवा-कार्य में लगा दें, अन्यथा होने का नहीं। यही इस पारितोषिक के लिए सबसे बड़ी योग्यता है। १९३३ के लिए कोई सुपात्र व्यक्ति पारितोषिक-समिति को नहीं मिला। ३२ वर्ष में पचास बार जिन्हें यह पारितोषिक दिया गया है उनमें अधिकतर तो वह बड़े-बड़े राष्ट्रों के अधिपतियों, अध्यक्षों और भारी-भारी शासकों को ही मिला है—शांति और निरस्त्रीकरण के सच्चे समर्थकों को तो बहुत ही कम बार मिला है। यह कहा जाता है, कि इस पारितोषिक के विधाताओं का उद्देश यह तो था नहीं कि युद्ध-प्रतिरोध-सम्बन्धी जिसने कोई सोध की कराई हो या निरस्त्रीकरण की एकाध योजना तैयार की हो उसे उसके उस काम के बदले में यह इनाम दिया जाय। इस पारितोषिक के विधाताओं का उद्देश तो असल में यह था

कि जिन धीर स्वप्नद्रष्टा तथा आदर्शवादी आत्माओं के विचार उनके युग की अपेक्षा बहुत आगे बढ़े हुए हों उन्हें, बिना किसी बाहरी सहायता के,दुनिया के दृष्टि-पथ में लाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाय। दोनों ही प्रकार की सेवा सराहनीय है। किंतु इस पारितोषिक के व्यवस्थापकों की यदि यह इच्छा हो कि नोबल प्राइज़ के इतिहास के विकास पर कुछ अच्छा प्रभाव पड़े तो वह पारितोषिक संधिविधायकों को देने की अपेक्षा आदर्श सृष्टि के रचयिता ऋषिकल्प महापुरुषों को ही देना चाहिए। गांधीजी के कठोर-से-कठोर आलोचक यह कहते हैं,कि उनमें भले ही कुछ अव्यावहारिक पागलपने के लक्षण मिलते हों,तो भी इसमें संदेह नहीं कि दुनिया में अहिंसा सिद्धान्त के वे आज सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं। अगर गांधीजी को शान्तिविषयक नोबल प्राइज़ के लिए सर्वाधिक योग्य व्यक्ति न माना गया तो इस पारितोषिक के सम्बन्ध में लोगोंने जो कल्पना बना रखी है वह उन्हें बदल देनी चाहिए।"

× × × ×

चारों ओर चिट्ठी-पत्रियों का ढेर लगा हुआ था और बीच में प्रशान्त, धीर, प्रसन्नमुख मुद्रा से युक्त गांधीजी विराजमान थे। उनकी ओर मैंने दृष्टिपात किया। मौन-दिवस की विश्रान्ति में ही वह थोड़ा-बहुत इन कागज़-पत्रों को अच्छी तरह देख सकते हैं। थोड़े फासले पर वहीं गाँव के लोगों की एक टोली बैठी थी और उस महापुरुष को, जो इस कठोर जगत् में उन दुखियों के के लिए धैर्य और आश्वासन का प्रतीक तथा निराधारों का आधाररूप है, वे कैसे बड़े अनुराग से निहार रहे थे। यह पुरुष अकिंचन बनकर उनके पास आया था। जगत् में एक कौड़ी भी ऐसी नहीं,कि जिसे वह अपनी कह सके। जिस जीवन-मार्ग पर वह स्वयं चल रहा है, उसी मार्ग पर लोगों को चलने का उपदेश देने वह वहाँ पहुँचा था।

ऊपर जो टिप्पणी मैंने उद्धृत की है उस पर पैंसिल का निशान लगाकर मैं गांधीजी के पास ले गई। उन्होंने उसे दो बार पढ़ा। फिर एक कागज़ का टुकड़ा फाड़कर उस पर यह लिख दिया—

"तुम्हारी जानकारी में क्या ऐसा कोई स्वप्नद्रष्टा है, जो किसी बाहरी सहायता से दुनिया की नज़रों में चढ़ा हो?"

बस, ज़रा-सा मुस्करा के उन्होंने कागज़ का वह टुकड़ा और मेरा वह अख़बार मुझे दे दिया। मैंने पूछा, 'आपको और कुछ कहना है?' उन्होंने सिर हिलाकर ना कह दिया।

बाद को जब गांधीजी का मौन खुला और हम लोग पैदल चलते हुए जब दूसरे पड़ाव को जा रहे थे तब रास्ते में फिर मैंने 'क्रिश्चियन सेंचरी' के उस लेख की चर्चा छेड़ दी और कहा कि, 'आज जब कि शान्ति-स्थापन में लगे हुए राजनीतिज्ञों के प्रयत्नों में निराशा होती दिखाई देती है, तब ऐसे समय में जिस लेखक को यह सूचित करने का सुन्दर विचार स्फुरित हुआ उसे मैं आपके हाथ का लिखा हुआ यह कागज़ का टुकड़ा भेज दूँगी।'

[नोट--इस बातचीत के बाद मैंने तुरन्त ही उक्त पत्र के संपादक के पास, जिन्हें मैं जानती हूँ, गांधीजी का लिखा हुआ वह कागज़ भेज दिया। लौटती डाक से संपादकने यह जवाब दिया, 'आपके लेख के साथ ही गांधीजी के हाथ के लिखे हुए वाक्य का ब्लॉक छाप देने का हमने प्रबन्ध कर लिया है।']

अब मैं विलायत वापस आ गई हूँ। लोग मुझसे रोज़ पूछते हैं, 'तुमने क्या वहाँ यह नहीं देखा कि गांधीजी का प्रभाव अब कम होता जा रहा है?'

उन चार महीनों के वे संस्मरण मेरे मानस में मानो उमड़ रहे हैं। किस-किस स्मरण को गिनाऊं? भूकम्प-पीड़ित स्थानों में गांधीजी की मोटर में तो तिरहुत मैंने भ्रमण किया था, और वहाँ के जन-धन का वह लोमहर्षण सर्वनाश अपनी आँखों देखा था। मेरा ऐसा ख़याल था कि लोगों की भाड़-भाड़ का मुझे कुछ अनुभव है। पर वहाँ के जैसा मानव-समुद्र उमड़ता हुआ तो मैंने कभी नहीं देखा था। और यह बात भी नहीं थी कि गांधीजी उनकी इस विपदा में उन पर कोई दयाभाव दिखाने फिरते थे। गांधीजी के हृदय के अन्दर तो उन विपद्ग्रस्त बिहारियों के प्रति करुणा और सहानुभूति उमड़ी पड़ती थी, पर वे उन्हें रुलाना नहीं बल्कि हिम्मत बँधाना चाहते थे। जहाँ-तहाँ वे यही पूछते, 'अरे इस आफत में आख़िर तुमने क्या सीखा है? सरकार और कांग्रेस, हिन्दू और मुसलमान, स्पृश्य और अस्पृश्य आदि के बीच भेद भाव करने का यह समय नहीं। हिम्मत हारने से काम न चलेगा। यह महान् संकट तुम्हें जो सबक सिखा रहा है उस पर चलकर यह ऊँच-नीच का भाव अपने दिल से निकाल बाहर करदो। संकट-निवारण-फंड से सहायता लो तो बदले में कुछ मेहनत भी करो।'

बिहार में पर्दा आज भी बहुसंख्यक स्त्रियाँ करती हैं। उन पर्दानशीन बहिनों से गांधीजी कहते, 'इस आफत में तुमने क्या इतना भी सबक नहीं सीखा? तो फिर तुम्हारी इस वाहियात पर्दा-प्रथा से काम ही क्या?'

गांधीजी की व्यवहार-निष्ठा मैंने यहाँ भी देखी; क्योंकि इस उजड़े प्रान्त में भी वे प्रत्येक सभा से कुछ-न कुछ पैसा इकट्ठा कर ही लेते थे। स्त्रियाँ अपने-अपने आभूषण उतारकर गांधीजी को दे देती थीं।

कई ज़िलों में तो यह हाल था कि कुछ मील तय करने के बाद मनुष्यों की दीवारों के बीचोबीच हमें अपनी मोटर लेजानी पड़ती थी। और जब कोई गाँव आता तो यह 'मानव-दीवारें' गांधीजी की एक झलक ले लेने के लिए इतनी नजदीक झुक आती थीं कि हमें ऐसा लगता था कि हमारी मोटर से कहीं कोई पिचल न जाय। कई बार ऐसा होता कि जब गांधीजी थक जाते तब मोटर की सीट पर सो जाते और मैं नीचे बैठ जाती। कोई गाँव जब नजदीक आ जाता, तो मोटर की चाल धीमी कर ली जाती, और एक तरफ़ राजेन्द्र बाबू और दूसरी तरफ मोटर-ड्राइवर धीरे-से लोगों से कहते जाते, 'गांधीजी सो गये हैं।' लोग ये शब्द धीरे से सुनकर पीछे की ओरतक पहुँचा देते। फिर भी लोग मोटर की ओर धँसते ही आते—सो रहे हैं या जाग रहे हैं इससे उन्हें क्या, उन्हें तो बस बापू की एक झलक चाहिए। मैं नीचे बैठी-बैठी उन दर्शनातुर ग्रामवासियों के भाव को एकटक निहारा करती और अवाक् बन जाती। उन लोगों के चेहरे पर ऐसा कुछ भान दिखाई देता था, जैसे वे भगवान् का दरस-परस न मिलने से हताश-से हो गये हों।

एक और संस्मरण यहाँ देती हूँ। यह हरिजन-यात्रा का संस्मरण है। उड़ीसा में हम लोग रेल और बड़े-बड़े रास्तों से कोसों दूर एक गाँव से दूसरे गाँव पैदल ही चलकर जाते थे।

बहुधा रास्ते के कभी किसी खेत या आश्रम में रैनबसेरा करते थे। खेत-खलिहान का काम छोड़-छोड़कर हमारे साथ-साथ नर-नारियों और बालकों की रेल-की-रेल चलती थी। गांधीजी उन्हें मना करते और पूछते, 'अरे, क्यों दौड़े आ रहे हो? अपना काम-काज और ढोर-बछेरू छोड़-छोड़कर तुम क्यों गड़बड़ किये आ रहे हो?' बड़ी-बड़ी सभाएँ होतीं, हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण किया जाता और स्थानीय हरिजन-सेवक-संघवालों से बातें होतीं। यह भी देखने को मिलता था, कि यह मनुष्य विरोधी सनातनियों से किस प्रकार काम निकाल लेता है। ऐसी अनेक आह्लादकारक, स्फूर्तिदायक और रोमांचकारी घटनाओं में किस प्रकार दिन बीत जाते थे यह मालूम भी नहीं पड़ता था। गांधीजी सदा से ही अस्पृश्यता का घोर विरोध करते आ रहे हैं, पर इस वर्ष १ अगस्त तक तो उन्होंने केवल अस्पृश्यता के ही विरुद्ध प्रचंड युद्ध चलाने का संकल्प किया है। इस साल भर के समय में उन्हें अस्पृश्यता-निवारण के कार्य में कितनी सफलता मिली है दुनिया को इसकी कोई ख़बर नहीं है। हज़ारों नर-नारियों की जो टोलियाँ उनका धर्म-सन्देश सुनने आती हैं, हरिजन-सेवक-संघ समस्त देश में जो सेवा-कार्य कर रहा है, गांधीजी के 'हरिजन' साप्ताहिक में इन यात्राओं के जो अद्भुत वर्णन आते हैं इन सब का यूरोप, अमेरिका आदि देशों में बहुत कम लोगों को ज्ञान है। इस 'हरिजन' पत्र का साप्ताहिक मूल्य जब कि सिर्फ़ एक आना है, तो लोग उसे क्यों न पढ़ते होंगे?

गांधीजी का यह युद्ध यद्यपि है तो अस्पृश्यता के ही विरुद्ध, परन्तु वह सारे जगत् को भी एक सन्देश देता है। वह मज़हबी तअस्सुब, अत्याचार और दुःख की जड़ पर कुठाराघात कर रहे हैं, और ग़रीब और अमीर के बीच जो भयंकर असमानता मौजूद है उसे दूर करने का जतन कर रहे हैं। फिर भी आप पश्चिमी देश के किसी राहगीर से पूछें कि तुम्हें इन सब बातों का क्या ज्ञान है तो वह आपको यही जवाब देगा, कि मुझे तो इतना ही मालूम है कि नागपुर के विद्यार्थियों की सभा में गांधीजी पर अंडा फेका गया, उनकी हरिजन-यात्रा में कई जगह काले झण्डे दिखाये गये और पूना में उनकी मोटर पर बम फेका गया। यह सब घटनाएँ घटीं तो सही, पर वहाँ के अख़बारोंने इन्हीं घटनाओं को अतिरंजन के साथ लिखा, बड़े-बड़े अक्षरों की हेड लाइनें देकर उन्हें छापा। और दूसरी जो अनेक बातें जानने लायक थीं, उन्हें छापने की ज़रूरत नहीं समझी।

यह सब देखकर मुझे एक अन्य महापुरुषकी बात याद आती है। उसने लोगों को अप्रिय किंतु कल्याणकर मार्ग बताने का साहस किया था, पर बदले में उस बेचारे को मृत्युदण्ड मिला!

× × × ×

कुछ विरोध-प्रदर्शन तो मैंने स्वयं देखे हैं। ऐसे अवसरों पर महात्माजी किस तरह काम निकाल लेते हैं यह भी मैंने देखा है। दक्षिण बिहार में एक बड़ी वाहियात घटना हो गई थी। वहाँ की धींगामुश्ती में कितने ही सनातनियों तथा गांधीजी के स्वयंसेवकों के सिर फूटे थे। अहिंसा के परम उपासक गांधीजी को यह असह्य हो गया। उन्होंने कहा, 'यह सब देखकर मेरा हृदय विचलित हो रहा है।'

गांधीजीने सुना कि उसी दिन दोपहर को एक और विरोध-प्रदर्शन होनेवाला है। पर उस विरोध-प्रदर्शन से पार पाने का उन्होंने एक अद्भुत उपाय ढूँढ़ निकाला। सभा-स्थल एक मील दूर था। वहाँतक उन्होंने अकेले ही पैदल चलकर जाने का निश्चय प्रगट किया। उनके साथियोंने बहुत कुछ अनुरोध किया कि हमें आप अपने साथ ले चलें और पीछे-पीछे मोटर को आने दें। पर गांधीजी अपने निश्चय से न डिगे न डिगे। और सिर्फ़ ठक्कर बापा को साथ लेकर चल दिये। बहुतों को यह भय था, कि आज गांधीजी ज़िन्दा लौटने के नहीं। मुट्ठीभर हड्डियों का वह शरीर जब चलने लगा तब मुझे यह प्रतीत हो गया कि संसार में निरस्त्रीकरण के जिस प्रश्न की चर्चा चल रही है उस सबका ठीक-ठीक उत्तर तो गांधीजी ही दे रहे हैं। दुनिया में जिस रास्ते से कोई विरला ही चलता है उस रास्ते पर चलकर उन्होंने स्वयं दिखा दिया। विरोधियों के सामने वे निःशस्त्र और निर्भय बनकर प्रेमास्त्र से सज्जित होकर जारहे थे। द्वेष के विरुद्ध अद्वेष का, क्रोध के विरुद्ध अक्रोध का यह प्रयोग मैंने स्वयं अपनी आँखों देखकर अपने को बड़भागी माना।

गांधीजी के यों तो असंख्य चित्र हैं। कुछ चित्र तो अत्यन्त बेढंगे और वाहियात होते हैं। पर चित्रकार कनु देसाईने उनका एक बड़ा भव्य चित्र खींचा है। उस चित्र में महात्माजी हाथ में लकड़ी लिये हुए अन्धकाराच्छन्न घोर अरण्य की ओर चले जारहे हैं; उनके आसपास जो एक तेजोमंडल है उससे प्रकाश फूट रहा है और वह उस अन्धकार को छिन्न-भिन्न करता जा रहा है। कनु देसाई का वह चित्र मुझे इस प्रसंग पर याद आ गया। गांधीजी के आसपास मैंने तेजोमंडल देखा और मन में यह धारणा कर ली कि इस महापुरुष के तन को आँच आने की नहीं। और हुआ भी ऐसा ही। उनका बाल भी बाँका न हुआ। कुछ झगड़ा भी नहीं हुआ। बड़ी विशाल और सुन्दर सभा हुई और पैसा भी अच्छा मिल गया।

मैं जब विलायत वापस आ रही थी, तब जहाज़ पर वायरलेस द्वारा यह अत्यन्त संक्षिप्त समाचार मिला—'पूना में महात्माजी के ऊपर बम फेका गया।' अभी 'हरिजन' का जो अंक मुझे मिला है उसमें गांधीजीने बम की चर्चा करते हुए लिखा है:—

"बम चाहे जिसने फेंका हो, मुझे तो उसके प्रति गहरी दया ही आती है। अगर मेरा वश चले और उस बम फेंकनेवाले का पता चल जाय, तो मैं उसे अवश्य छुड़वा देने का प्रयत्न करूँ। दक्षिण अफ़्रिका में जिन लोगोंने मुझ पर हमला किया था उनके साथ मैंने यही किया था।"

× × × ×

'गांधीजी का प्रभाव अब घटता जा रहा है' यह शब्द सुनकर मुझे हँसी आती है। चार महीनों में जिन अनेक प्रसंगों को मैंने वहाँ देखा, उनसे मुझे यह विश्वास हो गया है, कि स्थिति तो इसके बिलकुल विपरीत है। अनेक भिन्न-भिन्न शक्तियों को वह साँकल की कड़ियों की तरह जोड़ रहे हैं। गांधीजी के निर्णयों के सम्बन्ध में उनके गरम या नरम अनुयायी भले ही टीका-टिप्पणी करें, पर उनका नैतिक प्रभाव और उनकी दी हुई संस्कृति इतनी महान् है, कि मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकती हूँ, कि आज भारत में सब से बलिष्ठ शक्ति गांधीजी की ही है।

'इस शान्ति-विषयक नोबल प्राइज़ के लिए गांधीजी का नाम प्रस्तुत करते हैं।'

[३८४ पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २३ नवम्बर, १९३४

ग्राम्यउद्योग

ग्राम्यउद्योगों के सम्बन्ध में कांग्रेसने जो प्रस्ताव पास किया है उसका रचयिता मैं हूँ, और इन उद्योगों की उन्नति के लिए जो संघ स्थापित होनेवाला है उसका एकमात्र सलाहकार भी मैं ही हूँ। इसलिए इन उद्योगों के सम्बन्ध में, और इनसे जनता के चरित्र तथा स्वास्थ्य को जिस लाभ के होने की आशा है उसके विषय में मेरे मन में जो विचार चक्कर लगा रहे हैं उन विचारों को मैं क्यों न जनता के आगे रख दूँ।

हरिजन-यात्रा के सिलसिले में जब इस वर्ष के आरम्भ में मैं मलबार गया था, तभी इस ग्राम्यउद्योग-संघ के स्थापित करने का विचार एक प्रकार से निश्चित हो गया था। कोचीन राज्य के एक खादी-सेवक के साथ बात करते हुए मैंने देखा, कि शहर के लोगोंने गाँववालों के पास से जिस चीज़ को क्रूरता और अविचारपूर्वक छीन लिया है, वह चीज़ अगर हमें ईमानदारी के साथ उन्हें लौटा देनी है, तो एक ग्राम्य-उद्योग-संघ के स्थापित करने की अत्यन्त आवश्यकता है। गाँववालों में भी सब से सख्त मार ग़रीब हरिजनों पर पड़ी है। साधारण ग्रामवासियों के लिए जिन उद्योगों के करने की स्वतंत्रता है, उनमें थोड़े-से ही धन्धे हरिजन कर सकते हैं। इसलिए जब उनके हाथ से उनके उद्योग-धन्धे खिसक गये तब जिन पशुओं के साथ वे दिनरात रहते हैं उन्हीं की तरह वे जड़, बुद्धिहीन और निस्तेज बन गये।

मगर सामान्य ग्रामवासियों की भी आज इससे कुछ अच्छी स्थिति नहीं है। धीरे-धीरे अब वहाँ धरती खोंच-खोंचकर दो ग्रास अन्न से पेट भरने की नौबत पहुँच रही है। आज यह बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि हिंदुस्तान के छोटे-छोटे बचे-खुचे खेत-खलिहानों में खेती करने में किसान को लाभ के बदले हानि ही हो रही है। गाँव के लोगों में आज जीवन नहीं दिखाई देता। उनके जीवन में न आशा रही है न उमंग, और न उत्साह है न स्फूर्ति। भूख धीरे-धीरे उनके प्राणों को चूस रही है। उधर ऋण के गर्दनतोड़ बोझ से वे दबे जा रहे हैं। साहूकार उन्हें कर्ज़ा देता है, क्योंकि न दे तो जाय कहाँ? न देने से तो उसका सारा पैसा डूब जाय। कितनी ही जाँच-पड़ताल की जाय, गाँवों के कर्ज़े का यह गोरख-धंधा कभी सुलझने का नहीं। जाँच तो हमने इसकी काफ़ी बारीकी से की है, फिर भी इस विषय की हमारी जानकारी नगण्य ही है।

ग्राम्य-उद्योगों का यदि लोप हो गया तो भारत के ७ लाख गाँवों का सर्वनाश या निर्वाण ही समझिए।

ग्राम्य-उद्योग-सम्बन्धी मेरी प्रस्तावित योजना पर इधर दैनिक पत्रों में जो टीकाएँ हुई हैं उन्हें मैंने पढ़ा है। कई पत्रोंने तो मुझे यह सलाह दी है, कि मनुष्य की अन्वेषण-बुद्धिने प्रकृति की जिन शक्तियों को अपने वश में कर लिया है उनका उपयोग करने से ही गाँवों की मुक्ति होगी। उन आलोचकों का यह कहना है, कि प्रगतिशील पश्चिम में जिस तरह पानी, हवा, तेल और बिजली का पूरा-पूरा उपयोग हो रहा है उसी तरह हमें भी इन चीज़ों को काम में लाना चाहिए। वे कहते हैं, कि इन निगूढ़ प्राकृतिक शक्तियों पर कब्ज़ा कर लेने से प्रत्येक अमेरिकावासी ३३ गुलामों को रख सकता है, अर्थात् ३३ गुलामों का काम वह इन शक्तियों के द्वारा ले सकता है।

इस रास्ते अगर हम हिंदुस्तान में चलें तो मैं यह बेधड़क कह सकता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य को ३३ गुलाम मिलने के बजाय इस मुल्क के एक-एक मनुष्य की गुलामी ३३ गुनी बढ़ जायगी।

उद्योगों के यंत्रीकरण की बात लीजिए। यंत्रों से काम लेना उसी अवस्था में अच्छा होता है जब कि किसी निर्धारित काम को पूरा करने के लिए आदमी बहुत ही कम हों या नपे तुले हों। पर यह बात हिंदुस्तान में तो है नहीं। यहाँ काम के लिए जितने आदमी चाहिए, उससे कहीं अधिक बेकार पड़े हुए हैं, इसलिए उद्योगों के यंत्रीकरण से यहाँ की बेकारी घटेगी या और बढ़ेगी? कुछ वर्ग गज़ ज़मीन खोदने के लिए मैं हल का उपयोग नहीं करूँगा। हमारे यहाँ यह सवाल तो है नहीं, कि हमारे गाँवों में जो लाखों-करोड़ों आदमी सँधे पड़े हैं उन्हें परिश्रम की चक्की से निकालकर किस तरह छुट्टी दिलाई जाय। हमारे आगे तो प्रश्न यह है कि उन्हें साल में जो छै महीने का समय यों ही बैठे बैठे आलस में बिताना पड़ता है उसका उपयोग कैसे किया जाय। कुछ लोगों को मेरी यह बात शायद विचित्र लगेगी, पर दरअसल बात यह है कि प्रत्येक मिल सामान्यतः गाँवों की जनता के लिए आज त्रासरूप हो रही है। उनकी रोज़ी पर ये मायाविनी मिलें छापा मार रही हैं। मैंने बारीकी से आँकड़े एकत्र नहीं किये, पर इतना तो कह ही सकता हूँ कि गाँवों में बैठकर कम-से-कम दस मजूर जितना काम करते हैं उतना ही काम मिल का एक मज़दूर करता है। इसे यों भी कह सकते हैं, कि दस आदमियों की रोज़ी छीनकर यह एक आदमी गाँवों में जितना कमाता उससे कहीं अधिक कमा रहा है। इस तरह कताई और बुनाई की मिलोंने गाँवों के लोगों की जीविका का एक बड़ा भारी साधन छीन लिया है। ऊपर की दलील का यह कोई जवाब नहीं है कि ये मिलें जो कपड़ा तैयार करती हैं वह अधिक अच्छा और काफ़ी सस्ता होता है। कारण यह है कि इन मिलोंने अगर हज़ारों मजूरों का धन्धा छीनकर उन्हें बेकार बना दिया है तो सस्ते-से-सस्ता मिल का कपड़ा गाँवों की बनी हुई महँगी से भी महँगी खादी से महँगा है। कोयले की खान में काम करनेवाले मज़दूर जहाँ रहते हैं वहीं वे कोयले का उपयोग कर सकते हैं, इसलिए उन्हें कोयला महँगा नहीं पड़ता। इसी तरह जो ग्रामवासी अपनी ज़रूरत भर के लिए खुद खादी बना लेता है उसे वह महँगी नहीं पड़ती। पर मिलों का बना कपड़ा अगर गाँवों के लोगों को बेकार बना रहा है तो चावल कूटने और आटा पीसने की मिलें हज़ारों स्त्रियों की न केवल रोज़ी ही छीन रही हैं, बल्कि बदले में तमाम जनता के स्वास्थ्य को हानि भी पहुँचा रही हैं। जहाँ लोगों को मांस खाने में कोई आपत्ति न हो और मांसाहार जहाँ पुसाता हो वहाँ मैदा और पॉलिशदार चावल से शायद हानि न होती हो; पर हमारे देश में, जहाँ करोड़ों आदमी ऐसे हैं कि उन्हें मांस मिले तो वे खाने में आपत्ति नहीं करेंगे, पर उन्हें मांस मिलता ही नहीं, वहाँ उन्हें हाथ की चक्की के पिसे गेहूँ के आटे

और इसकुटे चावल के पौष्टिक तथा जीवन-प्रद तत्वों से वंचित रखना एक प्रकार का पाप है। इसलिए डाक्टरों तथा दूसरे आहार-विशेषज्ञों को चाहिए कि मैदे और मिल के कुटे पॉलिशदार चावल से लोगों के स्वास्थ्य को जो हानि हो रही है उससे वे जनता को आगाह करदें।

मैंने सहज ही नज़र में आनेवाली जो कुछ मोटी-मोटी बातों की तरफ़ यहाँ ध्यान खींचा है, उसका यही उद्देश है कि अगर ग्रामवासियों को कुछ काम देना है तो वह यंत्रों के द्वारा सम्भव नहीं। उनके उद्धार का सच्चा मार्ग तो यही है, कि जिन उद्योग-धन्धों को वे अबतक किसी कदर करते चले आ रहे हैं उन्हीं को भलीभाँति जीवित किया जाय।

इसलिए मेरे अभिप्राय के अनुसार अखिल भारतीय ग्राम्य उद्योग-संघ का काम यह होगा कि जो उद्योग-धंधे आज चल रहे हैं उन्हें प्रोत्साहन दिया जाय, और जहाँ हो सके और जहाँ वांछनीय हो वहाँ नष्ट या नष्ट होनेवाले ग्राम्य उद्योगों को गाँवों की पद्धति से—अर्थात् वह रीति कि जिस रीति से अनादि काल से गाँववाले अपनी झोंपड़ियों में काम करते आ रहे हैं—सजीव किया जाय। जिस प्रकार हाथ की ओटाई, धुनाई, कताई और बुनाई की क्रियाओं और औज़ारों में बहुत उन्नति हुई है, उसी प्रकार ग्राम्य-उद्योगों की पद्धति में भी काफ़ी सुधार किया जा सकता है।

एक आलोचकने यह आपत्ति उठाई है, कि प्राचीन पद्धति का अनुसरण करके प्रत्येक मनुष्य अपनी व्यक्तिगत आकांक्षा की पूर्ति कर लेता है; इस रीति से सामूहिक कार्य कभी नहीं हो सकता। यह दृष्टि मुझे बड़ी ओछी मालूम देती है। इसके पीछे कोई गहरा विचार नहीं है। ग्रामवासी भले ही वस्तुओं को अपने झोंपड़ों में बैठकर बनावें, पर यह बात नहीं कि वे सब चीज़ें इकट्ठी न की जा सकें और उनसे होनेवाला मुनाफ़ा लोगों में न बँट सके। ग्रामवासी किसी की देखरेख में किसी ख़ास योजना के अनुसार काम करें। कच्चा माल सार्वजनिक भंडार से दिया जाय। अगर सामूहिक कार्य करने की इच्छा ग्राम-वासियों के अन्दर पैदा कर दी जाय तो सहयोग, श्रम विभाग, समय के बचाव और कार्य-कुशलता के लिए तो निश्चय ही काफ़ी अवकाश है। आज ये सारी चीज़ें अखिल भारतीय चर्खा-संघ ५००० से ऊपर गाँवों में कर रहा है।

किन्तु खद्दर गाँवों के सौरमण्डल का सूर्य है, और अन्यान्य विविध उद्योग इस मण्डल के ग्रह हैं। इन उद्योगरूपी ग्रहों को खद्दररूपी सूर्य से जो उष्णता और प्राणशक्ति मिल रही है उसके बदले में वे खद्दर को टिकाये हुए हैं। बिना खादी के अन्य उद्योगों का विकास होना असम्भव है। किन्तु मैंने अपनी गत हरिजन-यात्रा में यह देखा, कि अगर दूसरे उद्योग-धन्धे ज़िन्दा न किये गये तो खादी की अधिक उन्नति नहीं हो सकती। ग्रामवासियों में अगर उनके फ़ुर्सत के समय का सदुपयोग करने की क्रिया-शीलता और क्षमता उत्पन्न करनी है, तो ग्राम जीवन का सभी पहलुओं से स्पर्श करके उसमें नवचेतना का संचार करना होगा। आशा है, कि यह नव संघ यह सब काम करेगा।

स्वभावतः राजनीति या राजनीतिक दलों के साथ इस संघ का कोई वास्ता नहीं है। मेरा विश्वास है, कि कांग्रेसने इन दोनों ही संघों को जो सर्वांश में स्वतंत्र और राजनीति से सर्वथा अलिप्त रखा है यह अच्छा ही किया है। गाँवों की आर्थिक, नैतिक और आरोग्य सम्बन्धी उन्नति करने का काम सभी दल और सभी जातियाँ कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर कर सकती हैं।

मुझे मालूम है कि एक वर्ग ऐसा है जो खादी को आर्थिक दृष्टि से लाभदायक मानता ही नहीं। मुझे आशा है कि इस वर्ग के लोग मेरे इस कथन से भड़क नहीं जायँगे कि खादी ग्राम-सेवा की प्रवृत्तियों का केन्द्र है। खादी तथा अन्य ग्राम्य-उद्योगों का पारस्परिक सम्बन्ध बताये बिना मैं अपने अन्तर का कल्पना-चित्र ठीक ठीक अंकित नहीं कर सकता था। जो लोग खादी और अन्य ग्राम्य-उद्योगों के इस सम्बन्ध को न मानते हों, वे दूसरे उद्योगों में भले अपनी शक्ति लगावें। पर मैंने इस लेख में जिस भूमिका के बाँधने का प्रयत्न किया है उसे अगर उन्होंने समझ लिया हो तो इन ग्राम्य उद्योगों को सजीव करने का काम भी वे लोग इस नये संघ के द्वारा कर सकेंगे।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

लालाजी की पुण्यतिथि

जब राजनीति को लोग भूल जायँगे, जब जनता का ध्यान खींच लेनेवाली अनेक क्षणभंगुर वस्तुएँ भी विस्मृत हो जायँगी, तब भी लालाजी के गम्भीर और विशाल हरिजन-प्रेम को और उनकी सार्वजनिक महान् सेवाओं को करोड़ों हिंदू ही नहीं बल्कि कोटिशः सवर्ण हिंदू भी—और हिंदू ही क्यों, समस्त भारतवर्ष बड़ी श्रद्धा-भक्ति से याद किया करेगा। लालाजी एक महान् मानव-प्रेमी थे, और उनका वह मानव-प्रेम विश्वव्यापी था। उनकी प्रत्येक बर्षी के अवसर पर हमें अपने जीवन में, लालाजी को उनकी प्रत्येक विगत बर्षी की अपेक्षा, अधिकाधिक सजीव करते जाना चाहिए। लालाजी-जैसे समाज सुधारकों का जब निधन होता है तब केवल उनकी देह का ही नाश होता है। उनका कार्य और उनके विचारों का देह के साथ अन्त नहीं होता। उनकी शक्ति तो उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। हमें इसका अनुभव तब और अधिक होता है जब हम देखते हैं कि, ज्यों-ज्यों समय बीतता है त्यों-त्यों इस जीर्ण चोले के बाहर इसका प्रभाव स्वतः प्रगट होता जाता है। मनुष्य के अन्दर जो क्षणभंगुर अंश है वह देह के साथ नाश को प्राप्त हो जाता है। किंतु मनुष्य का जो शाश्वत अविनाशी अंश है, वह तो देह के भस्मीभूत होने पर भी जीवित रहता है, और देह का बन्धन दूर हो जाने से वह और भी अधिक प्रकाशमान हो जाता है। इस विचार को सामने रखकर हमें लालाजी की स्मृति को चिरजीवी रखना चाहिए। हरिजन हिंदू तथा सवर्ण हिंदू दोनों ही स्व० लालाजी का पुण्यस्मरण करके हिंदू-समाज में से यह अस्पृश्यता का पाप-कलङ्क धो डालने का नये सिरे से संकल्प करें। हरिजन तो उन त्रुटियों को दूर करें जो अत्याचार बर्दाश्त करते-करते लोगों में पैदा हो जाती हैं, और सवर्ण अपने उस पाप को पखारकर शुद्ध हो जायँ, जो उन्होंने हरिजनों को जन्मना अस्पृश्य और अपने को जन्मना उच्च मानकर किया है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

समन्वयवादी अबुलफजल

[सुप्रसिद्ध 'आईने अकबरी' के सम्बन्ध में हिन्दी के ख्यातनामा लेखक श्री सुधांशुजी का, सहयोगी 'आज' में, एक परिचया-

त्मक लेख प्रकाशित हुआ है। आइने अकबरी के लेखक अबुल-फजल के बारे में श्री सुन्दरलालजीने जो लिखा है, उस महत्वपूर्ण भाग को हम 'हरिजन-सेवक' के पाठकों के लाभार्थ नीचे उद्धृत करते हैं। इन पंक्तियों में आप देखेंगे कि जगद्विख्यात अबुल-फजल सर्वधर्म-समन्वय का कितना बड़ा हामी था और मन्दिर, मसजिद व गिरजे में वह अपने सिरजनहार की सलौनी-सूरत को किस तरह एक ही नज़र से देखता था—संपादक।]

अपनी आयु के आरम्भ के दिनों में अबुल फजल की प्रवृत्ति अधिकतर इस ओर थी कि संसार से पृथक् रहकर वह एक त्यागी विरक्त का सा जीवन व्यतीत करे। उसने स्वयं एक स्थान पर कहा है कि मैं उस समय "सर्वथं एकांतवास के पथ पर चलना चाहता था।" अपने उन दिनों का वर्णन करते हुए अबुल फजलने लिखा है—

"मैं निर्जन स्थानों में, सत्य की सच्ची खोज करनेवालों के साथ, रातें गुज़ार देता था, और उन लोगों के सत्संग का आनन्द उठाता था जिनके हाथ खाली थे, किन्तु जो दिल और दिमाग के धनी थे। मेरी आँखें खुल गयीं और मैंने उन लोगों के स्वार्थ और उनके लोभ को देख लिया, जो (आम तौर पर) 'आलिम' कहलाते हैं।.........मेरे मन को चैन न था। मेरे हृदय मौंगोलिया के फकीरों, अथवा लेबेनोन पर्वत के ऊपर रहनेवाले तपस्वियों की ओर खिंचा जाता था। मैं तिब्बत के लामाओं से अथवा पुर्तगाल के पादरियों से भेंट करने के लिए उत्कण्ठित था। मैं पारसियों के पुरोहितों और जिन्देवस्ता के विद्वानों का सहवास-लाभ करने का इच्छुक था। स्वयं अपने देश के आलिमों से मेरा दिल ऊब चुका था।"

जबतक कि गुणग्राही अकबरने अबुलफजल का हाल सुनकर उसे अपनी ओर नहीं खींच लिया तबतक उसकी यही हालत जारी रही। अबुलफजल लिखता है कि सम्राट् अकबर से उसे इस बात की शिक्षा मिली कि—"संसार का कारबार अनेक ढंग का है, इसलिए वह सत्य के आध्यात्मिक ऐश्वर्य के साथ मिलाकर भी चलाया जा सकता है।"

दूसरी ओर जब अबुलफजल सम्राट् अकबर के सामने पेश किया गया, तो सब से पहली चीज़ जो उसने सम्राट् को बतौर नज़र के पेश की वह कुरान अध्याय २ आयत २५५ और २५६ पर अबुलफजल की लिखी एक व्याख्या थी। ये वह प्रसिद्ध आयतें हैं, जिनमें महात्मा की सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता का वर्णन करने के पश्चात् स्पष्ट शब्दों में आदेश किया गया है—"ला इकराहफिद्दीन।" अर्थात्—"धर्म के मामले में किसी तरह की ज़बरदस्ती नहीं होनी चाहिए।" दुर्भाग्यवश अबुलफजल की वह अमूल्य व्याख्या आज कहीं देखने को नहीं मिलती।

अबुलफजल के धार्मिक विचारों के विषय में ब्लाकमैनने मआसिर—उल—उमरा के मुसलमान रचयिता का यह वाक्य उद्धृत किया है—

"बहुत से लोग कहते हैं कि अबुलफजल काफिर था, कुछ लोग कहते हैं वह हिन्दू था, कुछ कहते हैं अग्नि का उपासक था, कुछ कहते हैं आज़ाद ख़्याल था, और कुछ लोग इससे भी बढ़कर उसे 'नास्तिक' (मुनकिर) बतलाते हैं, किन्तु और कुछ लोग इन सब की अपेक्षा ज़्यादह इन्साफ का फ़ैसला देते हैं और कहते हैं कि अबुलफजल 'सर्वम् खल्विदं ब्रह्म' (वह दतुलवजूद) का माननेवाला था, और अन्य सूफियों के समान रसूल अल्लाह की शरीयत का अपने को पाबन्द न मानता था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अबुलफजल बड़े ऊँचे चरित्र का आदमी था। वह मनुष्यमात्र के साथ सुलह से रहना चाहता था। उसके मुँह से कभी कोई बात बेजा नहीं निकली।"

अकबर के दरबार में प्रत्येक बृहस्पतिवार की रात को सर्व-धर्म-चर्चा की मजलिस हुआ करती थी, जो इतिहास में सदा के लिए स्मरणीय रहेगी। उन मजलिसों में सब से अधिक महत्वपूर्ण भाग अबुलफजल का होता था। अधिकतर अबुलफजल ही का प्रभाव था जिसके कारण अबुलफजल के शब्दों में—

"दरबार के अन्दर सब धर्मों के सन्त और विद्वान् आ आकर एकत्रित होने लगे, सब धर्मों और सम्प्रदायों के अच्छे-अच्छे उसूल अंगीकार किये गये, और उनकी त्रुटियों के कारण उनको नज़र अन्दाज़ नहीं किया जाता था; सब से एक दूसरे के साथ मिल-कर सुलह और रवादारी से रहने का मार्ग क़ायम हुआ।"

१६ वीं शताब्दी का वह नया संकलनात्मक पन्थ अकबर का 'दीने इलाही', जिसके अनुसार अकबर और उसके अनुयायियों की पूजा-विधि मुस्लिम, हिन्दू और पारसी-पूजा-विधियों का एक विचित्र संमिश्रण हो गयी थी, अधिकतर अबुलफजल, उनके भाई फ़ैज़ी और उनके पिता शेख मुबारक के ही प्रयत्नों का फल था।

अकबरने कश्मीर में एक हिन्दू-मन्दिर बनवाया था, जिसके ऊपर अबुलफजल का लिखा हुआ कतबा अबुलफजल के विचारों और उसकी लेखनशैली दोनों का एक सुन्दर नमूना है।

उस कतबे का भावार्थ यह है—

"हे परमात्मा, जिस मन्दिर में मैं देखता हूँ तेरे ही खोजने-वाले मिलते हैं और जिस भाषा में सुनता हूँ लोग तेरा ही ज़िक्र करते हैं।

कुफ्र और इसलाम दोनों तेरे ही मार्ग पर दौड़ रहे हैं।

दोनों यही कहते हैं—'तू एक है, तेरा कोई शरीक नहीं।'

अगर मसजिद है तो लोग तेरी याद में पाक नारा लगाते हैं, और अगर मन्दिर है तो तेरे प्रेम में लोग शङ्ख बजाते हैं।

मैं कभी मन्दिर में जाकर बैठ जाता हूँ और कभी मसजिद में।

अर्थात्, घर-घर मैं तुझे ढूंढता फिरता हूँ।

तेरे जो खास बन्दे हैं उन्हें कुफ्र और इसलाम दोनों से कोई काम नहीं, क्योंकि तेरा जो असली इसलाम है उसके पर्दे के अन्दर इन दोनों में से किसी की पहुँच नहीं।

कुफ्र काफिर के लिए है और दीन दीनदार के लिए।

किन्तु अत्तार (सूफी) के दिल के लिए गुलाब का एक कण बस है।

यह मन्दिर हिंदुस्तान में रहनेवाले एक परमात्मा के समस्त उपासकों और विशेषकर कश्मीर प्रदेश के समस्त ईश्वर-भक्तों के दिलों को एक दूसरे से मिलाने के उद्देश से निर्माण कराया गया है।

जो कोई, सत्य से अपनी आँख फिराकर, इस मन्दिर को खराब करेगा, उसे चाहिए कि पहले अपने उपासना-गृहको जाकर गिरादे, क्योंकि यदि मनुष्य की दृष्टि भीतर दिल की ओर है तो वह सबके साथ मिलकर रह सकता है, यदि उसकी दृष्टि बाहरी पानी और मिट्टी की ओर है तो उसे सबको गिरा देना चाहिए।"

अबुलफजल इस बात के विरुद्ध था कि किसी की जीव की

हिंसा की जाय या किसी को भी दुःख दिया जाय। वह कहता है—

"यद्यपि अनेक प्रकार के भोजन मिल सकते हैं, तथापि निःसन्देह अज्ञानता और क्रूरता के कारण लोग ज़िन्दा जानवरों को हिंसा करने पर उतारू रहते हैं, और उन्हें मारकर खा जाने में जानबूझकर भाग लेते हैं। हिंसा को बन्द करने में जो कुदरती सौंदर्य है उसे देखने के लिए, मालूम होता है, किसी के पास भी नेत्र नहीं हैं, किन्तु हर एकने अपने को जानवरों के लिए क़ब्र बना रखा है।'

अबुलफज़ल प्राणदण्ड की प्रथा के विरुद्ध था। वह लिखता है कि:—

"जिज्ञासु महात्मा लोग मनुष्य के शरीर को ईश्वर का बनाया हुआ मन्दिर समझते हैं और किसी को उसके नाश की इजाज़त नहीं देते।"

मेरी हरिजन-यात्रा

यात्रा मुझे स्वभावतः अधिक प्रिय है। मेरा वश चलता तो संघ के संगठन और निरीक्षण-संबंधी का ही काम मैं अपने हाथ में लेता—कभी आफिस में क़लम घिस रहा हूँ, कभी दौरा कर रहा हूँ इस तरह दो-दो काम करने की अपेक्षा मैं यह अधिक पसन्द करता कि समस्त देश के अथवा किसी एक सीमित क्षेत्र के संगठन तथा निरीक्षण-कार्य में ही अपने को लगा देता। इधर मैंने लगातार साल सप्ताहतक दौरा करने का निश्चय किया है, दो सप्ताह तो मध्यप्रांत और बरार आदि के लिए दे रहा हूँ और शेष पाँच सप्ताह काठियावाड़ और कच्छ को दूंगा। काठियावाड़ में मेरा जन्म हुआ, काठियावाड़ में मेरी बाल्यावस्था बीती, पर मैं वहाँ सेवा-कार्य के लिए बहुत ही कम समय दे सका हूँ। काठियावाड़ का जो भारी ऋण मेरे ऊपर चढ़ा हुआ है, उसे बेबाक़ तो क्या कर सकूँगा, पर वहाँ के हरिजनों की कुछ सेवा करके उस ऋण का थोड़ा-सा अंश अब इस चौथे पन में चुका देना चाहता हूँ।

गत जुलाई मास में, जब महात्माजी हरिजन-कार्य के सिलसिले में काठियावाड़ पधारे थे, तब से संघ की ओर से वहाँ हरिजन-सेवा-कार्य अच्छे संगठित रूप में होने लगा है। यों तो काठियावाड़-राष्ट्रीय-संघ के आश्रमों या छात्रालयों के द्वारा अथवा स्वतंत्र रीति से भी हरिजन-कार्य इसके पहले भी हो रहा था।

जहाँ-जहाँ का इस दौरे में मैं निरीक्षण करूँगा वहाँ के हरिजन-कार्य की प्रगति का संक्षिप्त वर्णन अपनी इस लेखमाला में देने का विचार मैंने किया है।

झाँसी

३०-१०-३४—यहाँ की कतिपय प्राइमरी पाठशालाओं के पाँच-छै अध्यापकों का सेवा-कार्य देखकर मुझे बहुत ही संतोष हुआ। ये लोग हरिजनों को नित्य उन्हीं की बस्ती में जाकर पढ़ाते हैं। जिस दिन मैंने उनकी पाठशाला देखी, उस दिन वहाँ १६७ में से १०८ बच्चे हाज़िर थे। बालकों के साथ-साथ कुछ बालिकाएँ भी वहाँ पढ़ती हैं। ये सेवा-प्रेमी अध्यापक पहले तो ३) मासिक अलाउन्स में ही सन्तुष्ट थे, पर अब प्रत्येक को ६) मासिक अलाउन्स देने का आश्वासन दे दिया गया है। जो माता-पिता दे सकते हैं उनसे ≈) मासिक फीस ली जाती है और थोड़ा चन्दा इकट्ठा हो जाता है। कुछ सहायता म्यूनिसिपैलिटी भी दे देती है। इस हरिजन-पाठशाला के प्राणस्वरूप प्रधानाध्यापक के आगे मेरा मस्तक हठात् श्रद्धाभक्ति से झुक गया।

संघ की पाठशालाएँ—तीन पाठशालाएँ संघ की ओर चल रही हैं। एक पाठशाला तो नयी बस्ती में है, जहाँ एक अध्यापक दिन के ११ बजे से ३ बजेतक मेहतरों के बच्चों को पढ़ाता है; और एक पाठशाला एक अन्य मुहल्ले में बसोर जाति के हरिजनों के लिए है, जो मेहतरों के साथ बैठकर पढ़ने को किसी भी तरह राज़ी नहीं होते। यह पाठशाला भी ११ बजे से ३ बजेतक लगती है। तीसरी रात्रि-पाठशाला है, जहाँ बड़ी उम्र के चमार हरिजन रात को ७ बजे से ८॥ बजेतक पढ़ते हैं।

इधर बुन्देलखंड के कट्टर हिंदू धोबी और कुम्हार को भी अछूत मानते हैं।

यहाँ की एक सार्वजनिक संस्था एक बढ़ईगिरी का स्कूल और एक अनाथालय चला रही है। बढ़ईगिरी के स्कूल को आधी सहायता सरकार की ओर से मिलती है। इस स्कूल में हरिजन दाख़िल हो सकते हैं। यहाँ फर्नीचर तैयार तो अच्छा होता है, पर अभी जैसी चाहिए वैसी खपत नहीं होती।

होशंगाबाद

१-११-३४—यहाँ म्यूनिसिपैलिटी में काम करनेवाले मेहतरों को ऋणमुक्त कराने के लिए हाल ही में एक सहकारी समिति स्थापित की गई है। अभी हाल तो १०० मेहतरों में से सिर्फ़ १० ही इसके मेंबर बने हैं, पर ज्यों-ज्यों इसका लाभ उन्हें मालूम होता जायगा त्यों-त्यों अधिक-से-अधिक मेंबर बनते जायँगे। जो सज्जन यहाँ की म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन हैं वही हरिजन-सेवक-संघ के भी अध्यक्ष हैं। संघ की ओर से यहाँ एक रात्रि-पाठशाला चल रही थी, पर अब उसे म्यूनिसिपैलिटीने ले लिया है। यह पाठशाला दिन-पर-दिन तरक्की कर रही है। यहाँ दर्ज रजिस्टर ७० विद्यार्थी हैं। किताबें, पट्टियाँ वग़ैरा संघ की ओर से दी जाती हैं। यहाँ के चमार जूते बनाने के अलावा संगतराशी का भी काम करते हैं। ये लोग पत्थर खोदने व तोड़ने का भी काम करते हैं। भंगी मिट्टी के कच्चे झोंपड़ों में रहते हैं। इन्होंने अपने अलग-अलग झोंपड़े बना रखे हैं, जो बड़े स्वच्छ और व्यवस्थित हैं। किसी भी हरिजन जाति को पानी की तंगी नहीं, क्योंकि सबके लिए यहाँ कुएँ हैं। और फिर नर्मदाजी भी शहर के पास ही बह रही हैं।

इटारसी

१-११-३४—यह कहना अयुक्त न होगा, कि यहाँ संघ की ओर से कुछ भी काम नहीं हो रहा है। इस संबंध में मैं म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन और दूसरे प्रतिष्ठित मेंबरों से मिला। उन्होंने बड़ी उम्र के हरिजनों के लिए एक रात्रि पाठशाला खोलने और कमेटी के मुलाज़िम मेहतरों के लिए एक सहकारी समिति स्थापित करने का वचन दिया है। यहाँ के मेहतर जुआ और शराबख़ोरी से पामाल होते जा रहे हैं। रेल का जंक्शन होने से इस क़स्बे में रेलवे के नौकरों की काफ़ी बड़ी जमीयत है। बड़े-बड़े ज़िलोंवाले शहरों में जो बुरे-से-बुरे व्यसन पाये जाते हैं वह सब यहाँ भी काफ़ी मात्रा में दिखाई देते हैं। जो लोग बिल्कुल ही गिर चुके हैं, सदाचार जिसमें न होने के बराबर है, वे शहरों की बुरी चालों के जाल में सहज ही फँस जाते हैं। काबुली पठान यहाँ ≈) से लेकर ।) रुपया तक व्याज १५० से लेकर ३०० की

सदी तक सूदपर मेहतरों को कर्ज़ देते हैं। इसलिए इन ग़रीबों को पठानों के पंजे से छुड़ानेवाली एक सहकारी समिति की सख़्त ज़रूरत है। आशा है कि होशंगाबाद (जो यहाँ से सिर्फ़ १२ मील दूर है) के सज्जनों के सहयोग से यहाँ हरिजन-सेवा कार्य शीघ्र ही आरंभ कर दिया जायगा।

नागपुर

२-११-३४—धारासभा के सदस्य श्री गवई का विशाल 'चोखामेला छात्रालय' देखा। इस छात्रालय में कुल ५८ विद्यार्थी हैं, जिनमें तीन तो कालेज में पढ़ते हैं और बाक़ी स्कूलों में। यहाँ अपना सारा समय देनेवाले एक ब्राह्मण ग्रेजुएट को गृहपति के पद पर नियुक्त कर दिया है, इससे आशा है कि विद्यार्थियों के अध्ययन आदि पर बड़ी अच्छी देखरेख रहेगी। मध्यप्रान्त और बरार में ऐसे अनेक हरिजन-छात्रालय हैं। ये छात्रालय तहसीली क़स्बों और बड़े-बड़े गाँवों तक में आपको मिलेंगे। पर सबसे पुराना और बड़ा छात्रालय यही है। श्री गवई खुद बम्बई के श्री विट्ठलराव शिंदे के डिप्रेस्ड क्लास मिशन के पढ़े हुए हैं।

फिर जाईबाई की कन्या-पाठशाला और खलासी लाइन की पाठशाला का निरीक्षण किया। खलासी लाइन की पाठशाला में बालिकाएँ और बालक एकसाथ पढ़ते हैं। यह पाठशाला बड़ी अच्छी चल रही है। इसे हरिजन खुद ही चला रहे हैं। कुछ सहायता सवर्णों से भी मिल जाती है। यह सहशिक्षावाली पाठशाला एक छोटे-से झोंपड़े में लगती है। बस्ती यहाँ बड़ी ही घनी है। इससे सबेरे और साँझ दोनों समय यह पाठशाला लगानी पड़ती है। सबेरे ७ बजे से १० बजेतक तो एक विभाग को पढ़ाते हैं और फिर ११ बजे से ४ बजेतक दूसरे विभाग को।

इंदापुरी की पाठशाला को खुले अभी तीन महीने हुए हैं। संघने इसे मराठी मोचियों के गंदे मुहल्ले में खोला है। इसमें ४२ बालक-बालिकाओं की औसत हाज़िरी रहती है। जब मैं यह पाठशाला देखने गया तो बहुत-से बच्चों के मा-बाप बिना बुलाये ही वहाँ आ गये और मेरी जाँच-पड़ताल को वे लोग कुतूहल और दिलचस्पी से देखने लगे। नागपुर के इस अँधेरे-से-अँधेरे कोने में ज्ञान का प्रकाश पहुँचाकर संघने बड़ा अच्छा कार्य किया है। मराठी मध्यप्रांत के चमार या मोची यहाँ के महारों की अपेक्षा बहुत ज़्यादा पिछड़े हुए हैं। महार लोग चमारों के मुक़ाबले में बहुत आगे बढ़े हुए हैं और शिक्षा में ये लोग दूसरे किसी भी हिंदू की बराबरी कर सकते हैं।

संघ की तरफ़ से इमामबाड़े में भी मेहतरों के लिए एक पाठशाला चल रही है। कुछ तो समय न मिलने से और कुछ वर्षा के कारण मैं यह पाठशाला देखने नहीं जा सका। इससे मेरे डेरे पर उक्त पाठशाला के बच्चों को लाया गया। बच्चे खादी के बड़े ही साफ़ कुरते, जाँघिये और टोपियाँ पहने थे। इस पाठशाला में चूँकि म्यूनिसिपैलिटी के मुलाज़िमों के बच्चे पढ़ते हैं, इसलिए कमेटीने इस पाठशाला के लिए एक मकान भी बनवा दिया है।

सरकार की तरफ़ से यहाँ एक औद्योगिक पाठशाला चल रही है। औद्योगिक शिक्षा में दिलचस्पी लेनेवाले जो भी सज्जन नागपुर आवें उन्हें यहाँ की यह पाठशाला तथा चर्मालय तो अवश्य ही देखना चाहिए। यहाँ बढ़ई का, लुहार का और मोची का काम सिखाया जाता है। प्रत्येक विभाग का पाठ्यक्रम तीन वर्ष का है। तमाम लड़कों को मध्यप्रांत की सरकार की तरफ़ से छात्रवृत्ति मिलती है। जूता बनाने के काम में हिंदू चमार और ईसाई लड़के काम सीखते हैं। यहीं एक बड़ा बढ़िया कारख़ाना है, और १५० लड़कों के लिए एक सुन्दर छात्रालय भी है।

कुछ वर्ष हुए कि सरकारने चमड़े का काम सिखाने के लिए यहाँ एक दूसरा भी कारख़ाना खोला था, और उसे एक भारी तनख़्वाह के योरोपियन टेनर के हवाले कर दिया था। मगर ख़र्च उसपर बहुत अधिक पड़ने लगा। इसलिए वलीभाई सुन्दरजी नाम के एक चमड़े के मुसलमान व्यापारी को यह कारख़ाना 'लीज़' पर दे दिया गया। आजकल वही इसे चला रहे हैं। सरकार के भेजे हुए १० लड़कों को उन्हें नाम्मात्र: यहाँ चमड़े का काम सिखाना पड़ता है। लड़के सब चमार जाति के ही हैं। उन्हें दो वर्ष का कोर्स पूरा करने के लिए ८) और ९) मासिक छात्रवृत्ति मिलती है। चमड़ा पकाने का काम यहाँ हाथ से तथा मशीन से दोनों ही तरह होता है। यह काम मिस्टर [illegible] नाम के एक चर्म-विशेषज्ञ की देखरेख में होता है। मध्यप्रांत का कोई भी लड़का चमड़ा पकाने का काम सीखना चाहता हो तो नागपुर के डाइरेक्टर आफ इण्डस्ट्रीज़ के मारफ़त वह इस स्कूलमें दाख़िल हो सकता है।

कामटी: नागपुर से ९ मील दूर यहाँ एक फ़ौजी छावनी है। यहाँ चमड़े के छोटे-छोटे कई कारख़ाने हैं। पर मैं उन सब कारख़ानों को देखने जा नहीं सका।

अमृतलाल वि० ठक्कर

हरिजन-यात्रा के संस्मरण

[३७९ पृष्ठ से आगे]

संसार के बुद्धिमान लोग हम पर कहेंगे कि, 'आइए, यह मज़ाक जैसी बात मत कीजिए। भारत के लोग तो ऐसे होते ही हैं। ये तो धर्मगुरुओं के प्रति सदा से ही ऐसी पागलपने की भक्तिभावना दिखाते आ रहे हैं!'

उन चार महीनों के अनेक संस्मरण मेरे मन में अब भी ताज़ा हैं, इसलिए ऐसा कहनेवालों को मैं यह जवाब दूँगी, कि 'आप चाहें तो १०० में ७५ अंश अंधश्रद्धा के मान लें, और मेरे लिए २५ अंश रहने दें। और फिर भी जो बाक़ी प्रभाव रहता है वह आज संसार के किसी भी नेता का उसके राष्ट्र में नहीं है। कारण यह है कि आध्यात्मिक दृष्टि से यह भावना अनमोल है।'

× × × ×

इस पत्र के संपादक के द्वारा दी गई सूचनापर लोग अछूत की प्रबन्ध-समिति गम्भीरतापूर्वक विचार करे और जो पुरुष अहिंसा में अटूट श्रद्धा रखता तथा अपने सारे जगत् के सम्मुख उसका आचरण करके बतलाता है उसे ही यदि वह पुरस्कार प्रदान करे, कि जिस पर अनेकों की लोभी नज़र लगी रहती है, तो जगत् के कोलाहल से पूर्ण वातावरण में कैसी ताज़ी हवा का संचार होगा!

अगाथा हैरिसन

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

सम्पादक—वियोगी हरि
"आत्मवत् सर्वभूतेषु"
Reg. No L. 1369

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ३० नवम्बर, १९३४. [संख्या ४१

विषय-सूची

श्रीगणेश चर्खा से

यहाँ से पाँच कोस पर सहजनवाँ स्टेशन है। कार्य मैंने यहीं आरम्भ किया है। यह छोटा-सा बाज़ार है। गल्ले की मंडी है। मारवाड़ियों की भी ८–१० दूकानें हैं। सहजनवाँ भी ठेठ देहात नहीं है, पर इसके आमने-सामने देहात ही-देहात है। और ग़रीबी का यहाँ अखंड साम्राज्य है। बेकारी का क्या कहना है। यहाँ सहजनवाँ ख़ास में चक्कियों से दाल दलाई का काम होता है। ६–७ सौ औरतें और २०० मर्द काम करते होंगे। १० घंटे की कड़ी मेहनत के औरत के -)॥ और मर्द के =)॥। जवान मज़बूत औरतें ही यह काम कर पाती हैं। रुपये में ॥=) हरिजन हैं। औरों से इतने में इतना परिश्रम पार भी नहीं लग सकता। इस क्षेत्र में हरिजनों की संख्या बहुत अधिक है। इन बेचारों को ब्राह्मण-क्षत्रियों के यहाँ हलवाही करके ३) महीने मिलते हैं, जिसमें ४–५ प्राणियों को गुज़ारा करना पड़ता है। यहाँ से लेकर गोरखपुर तक बरसात में बाढ़ से फसल डूब जाती है। इस साल तो भयंकर बाढ़ थी। और साल घर-दुआर नहीं बहा करते थे, पर इस साल बहुतों के घर भी पस्त हो गये। हौसले तो पहले से ही पस्त हैं। इन्हीं और ऐसों ही के बीच अपना चर्खा चलाना है। यहाँ मुद्दत से चर्खे का रवाज टूटा हुआ है। किसी के घर चर्खे नहीं हैं। न कपास की खेती ही। पहले कुछ लोगों को भोजन देकर धुनना-कातना सिखलाया गया और फिर उन्हें चर्खे दिये गये। अब कई गाँवों की माँग वहाँ जाकर सिखाने की है, तो अध्यापक वहाँ जाकर सिखाता है। इसमें कुछ देना नहीं पड़ता। चर्खे तो उधार देने ही पड़ेंगे। कुछ सूत आने लगा है। बदले में कपड़ा बुनवाकर दिया जाता है। काम बढ़ रहा है। गाँवों के साथ परिचय भी बढ़ रहा है। मैं अक्सर गाँवों में जाता हूँ। लोगों से ख़ूब मिलता-जुलता हूँ। उनकी समस्याएँ समझता हूँ। सबसे पहले उन्हें अन्न, वस्त्र और घर, फिर कुछ ज्ञान चाहिए। इनमें अपना सूत्रपात सूत से है। वस्त्रों बिना कम कष्ट नहीं है। जाड़ा तो चूल्हे में गई, भर जाड़े एक अँगोछे में—एक-दो नहीं सौ में ९८ को—रात बितानी पड़ती है या खाद-कूड़ा जलाकर कुछ गर्मी पाते हैं। रूई का एक-एक खोल—दोहर भी बना पावें तो जाड़े को मुँह 'चिढ़ावें'। दो-चारने एक-एक दोहर भर का सूत कात भी लिया। घर में दो-तीन दोहरें हो जायँ तो बाल बच्चे सब उसमें दुबके पड़े रहें। ऐसे तो सर्दी में और खाँसी और बुख़ार से पड़े बच्चे कहरते रहते हैं। दो-चार को दवा भी दिलाता हूँ और उपयुक्त भी होते हैं, पर कै दिन बच्चों की माँ ख़ैर मनावेगी? इनकी दवा कुनैन और मिक्स्चर नहीं। इनकी पहली दवा है भरपूर वस्त्र। भरपूर अन्न कराना तो आज हमारे बूते के बाहर की बात है। इससे उसे अपने दायरे से बाहर ही रखता हूँ।

आप सुनकर ख़ुश होंगे कि गाँवों में बुद्धि का अभाव नहीं है। एक छोटी-सी लड़की की बात आप से कहता हूँ। अहीर की छोरी है, बरस दसेक की होगी। कातकर अपनी साड़ी पहन ली। बुनाई के ≡)॥। बैसाख में देने को हैं। उसके घर का हाल पूछ रहा था। कहने लगी, हमलोगों के खेत अभी बोये नहीं गये, बीज नहीं हैं। पूछा, जो हरसाल देते थे वह क्या इस साल बीज नहीं देते? बोली, दिये तो पर कुछ बोये कुछ पकाये-खाये। मैंने कहा, यह तो बुरी बात है कि बीज के लिए लाया हुआ अन्न खाने के काम में लाया गया। इस पर बोली, अगर भूखों ही मर गये तो फसल कौन काटेगा। एक बार कई दिन बाद मिली तो देखा चेहरा कुछ सुस्त है जो हमेशा ही ख़ुश दिखाई दिया करता था। पूछने पर मालूम हुआ, घर पर नाज नहीं है। कहते हुए धीरे से कपड़े से आँखें भी पोंछती जाती थी। मैंने उसकी उम्र के एक लड़के को सामने करके कहा, इसे कताई में हराओ तो २॥) मन नाज बैसाख के करार पर उधार दिला दूँगा। तैयार हो गई। संयोग से लड़का हार गया। उसने अभी सिर्फ़ आधा मन नाज लिया। बाक़ी शायद और कहीं से काम चल गया।

एक दस वर्ष का लड़का और है। वह भी अहीर है। सुन्दर हनुमानजी के से चेहरे की बनावट का। मेरे साथ स्टेशन से चला तो मैंने उसके घर की बात पूछनी शुरू की। बाप नारायणपुर-आर्य-कन्या-पाठशाला में लड़कियों की गाड़ी खींचता है। ९) महीना पाता है। खानेवाले ४ प्राणी हैं, पर पूरा नहीं पड़ता। १ भैंस थी, वह बेचकर २५) कर्ज़ा चुकाया; अब एक के ८) और एक के २) रह गये हैं। कहता था, २) की तो उतनी परवाह नहीं, ८) चुकाने कठिन हैं। जब गाँव से लौटा तो कई लड़के और साथ हो लिये। इस छोटे लड़के से मैंने कहा, पढ़ने आया करो। इस पर एक क्षत्रिय का लड़का बोला, कहाँ से =) फ़ीस लावें और कहाँ से किताब का दाम। मैंने कहा, मैं किताब ला दूँगा। इस पर कहने लगा, आप एक इसको ला देंगे लेकिन और जो सैकड़ों ग़रीब हैं। मैंने कहा, वह हमारी चर्खा बिरादरी के बाहर हैं। जब हमारी बिरादरी में आ जायँगे तो उनके लिए

भी सोचा जायगा। तीरथ तो हमारी बिरादरी में हो गया है इसलिए इसकी चिन्ता करना हमारा काम हो गया है। बोला, हमको अपनी बिरादरी में नहीं मिलायँगे क्या ? उसके इस प्रश्न ने मुझे खुश कर दिया। मैंने कहा,ज़रूर मिलायँगे। और हम तो सारे हिन्दुस्तान को मिलाने बैठे हैं। यह सारी बातें देहाती बोली में होती थीं।

अपने सेवाश्रम में पाँच हरिजन विद्यार्थी रखे हैं—यों तो कई हरिजन हैं, जो दिन में धुनाई-कताई करते हैं, फिर बुनाई सीखेंगे और रात को पढ़ते हैं। ऐसे २५ विद्यार्थी लेने का ख्याल है, फिर कुछ खेत भी।

मैं चाहता हूँ कि यहाँ चमारों को चमड़ा पकाना भी सिखाऊँ। कुछ जतन कर रहा हूँ।

आश्रम के चौकेमें सब एकसाथ खाते हैं—एकाध मुसलमान भी हैं। कभी-कभी कुछ अड़चन आती है, पर हल हो जाती है।

'एक ग्राम-सेवक'

मेरी हरिजन-यात्रा

२

करंजिया-गोंड़-सेवा-मंडल

अमरकण्टक

३ नवम्बर से ५ नवम्बर, १९३४ तक। फ़ादर एल्विन का अनुपम सेवा कार्य देखने को मैं दो वर्ष से उत्कंठित था, पर अब तक वह इच्छा पूरी नहीं हो सकी थी। सचमुच वे तीन दिन मेरे बड़े ही अच्छे बीते—एक दिन तो करंजिया जाने में लगा और एक दिन वहाँ से लौटने में और एक दिन शान्तिपूर्ण गोंड-सेवा-आश्रम में रहा। इस जगह पहुँचना ज़रा कठिन है। पेण्ड्रा रोड (बिलासपुर-कटनी लाइन) स्टेशन से सबसे नज़दीकी रास्ता २५ मील का है। और मार्ग भी कैसा—फरवरी मास के पूर्व या तो पैदल जा सकते हैं या फिर घोड़े या डोली पर। फिर फरवरी से जूनतक ३६ मील की एक चक्करदार पक्की सड़क से आप मोटर पर जा सकते हैं। पर कोई नियमित रीति से मोटर-बस नहीं चलती। २५ मीलतक इस कड़ारी पगडंडी पर मैं न तो इस जराजीर्ण अवस्था में पैदल ही चल सकता था, न घोड़े की ही सवारी कर सकता था। इससे डोली पर लदकर ही मैंने यह यात्रा की। जहाँ कहीं रास्ता पथरीला और पहाड़ी पड़ जाता था, वहाँ कुछ पैदल भी चल लेता था। सामान को काँवर पर रख दिया था।

करंजिया के मार्गमें बड़ा ही रमणीय दृश्य देखने को मिलता है। नर्मदा नदी का उद्गम-स्थान रीवाँ राज्य के अन्तर्गत अमरकण्टक पर्वत से है। करंजिया के पठार पर जाने के लिए इस विकट पर्वत को पार करना पड़ता है। अमरकण्टक श्रद्धालु हिन्दुओं का एक सुप्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। आज से ५३ वर्ष पूर्व मेरे पूज्य माता-पिताने अमरकण्टक की यात्रा की थी, और मेरी भी यह लालसा थी, कि कभी इस पवित्र पर्वत का दर्शन करूँ। भाग्य से करंजिया के मार्ग में ही अमरकण्टक पड़ गया। यह तीन मील की चढ़ाई बड़ी कठिन है। रास्ता पथरीला और चक्करदार है। कहीं-कहीं तो एकदम खड़ी चढ़ाई है, जहाँ से पाँव ही काम देते हैं। घोड़े या डोली की वहाँ गति नहीं। कपिलधारा नामक नर्मदा का सुन्दर जल-प्रपात यहाँ से क़रीब २ मील है, पर समयाभाव से मैं वहाँ जा नहीं सका।

गोंड़

यह एक आदिम जाति है। यह गोंडजाति मध्यप्रान्त में ही मिलती है। गोंडों की जन-संख्या—बैगा तथा अन्य छोटी-छोटी कई जंगली जातियों को मिलाकर—लगभग ३० लाख के है। प्राचीन काल में गोंडों का यहाँ बड़ा विस्तृत राज्य था। इनका राज्य 'गोंडवाना' के नाम से प्रसिद्ध था। गढ़ा-मण्डल का इतिहास-विख्यात रानी दुर्गावती गोंड राजवंश की ही वारांगना थी। वर्तमान बस्तर रियासत और मंडला से लेकर बैतूल और निमाड़ तक गोंडों का ही राज्य था। पर ये सब पुरानी बातें हैं। आज न वह गोंडवाना है, न गोंडों का वह वैभव। आज तो उनकी बड़ी बुरी दशा है। जंगली कन्दमूल और मोटे छोटे नाज पर किसी तरह गुज़र कर रहे हैं। और बैगा लोग तो गोंडों से भी अधिक जंगली हैं। ये लोग तो एकदम घने जंगलों में रहते हैं—आपके सभ्य संसार से ही दूर नहीं, बल्क खेत-खलिहानों के पास रहनेवाले गोंडों से भी एकदम अलग। ये वनवासी जातियाँ बड़े ही सरल और निश्छल स्वभाव की हैं। एक जाति तो अपना सम्बन्ध भगवान् राम और उनके तपस्वी भ्राता लक्ष्मण के साथ बताती है, जिन्हें वह 'लछमन जती' कहती है। सामाजिक जीवन क्या चीज़ है ये लोग जानते तक नहीं। हर एक अपने-अपने तौर-तरीक़े में मगन रहता है। इनमें मिलजुलकर एकसाथ रहने की टेव नहीं। न शिक्षा है, न संसार की कोई खबर, और न सभ्यता या संस्कृति से कोई संपर्क।

सेवा कितनी कठिन है यहाँ ?

मौजूदा परिस्थितियों में गोंडों का उद्धार-कार्य बड़ा ही कठिन है। एक ज़माना हुआ, कि जर्मनी के चार मिशनरी इधर आये और यहीं बस गये; पर एक वर्ष भी न रह पाये थे कि बेचारे चारों-ही एक क़ब्र में दफ़न हो गये। ऐसे तो फ़ादर एल्विन और उनके धर्मबंधु श्री शामराव ही निकले जो यहाँ जमकर गोंडों की सेवा बड़ी लगन व सचाई के साथ ढाई साल से कर रहे हैं। सीधे-सादे गोंड लोग फ़ादर एल्विन को 'बड़े भैया' और श्री शामराव को 'छोटे भैया' के नाम से पुकारते हैं। मलेरियाने मानों यहाँ घर कर लिया है। इस इलाक़े में तो वही जमकर रह सकता है, जिसका स्वास्थ्य खूब अच्छा हो और जिसने सेवा करने का दृढ़ संकल्प कर लिया हो।

हमारे फ़ादर एल्विन यद्यपि वास्तविक अर्थ में एक सच्चे ईसाई हैं, पर वे किसी को अपने धर्म की दीक्षा नहीं देते, किसी को वे ईसाई नहीं बनाते। उनकी दृष्टि में तो एक निर्विकार मानव-सेवा ही है, और बातों से उन्हें कोई सरोकार नहीं। इस शुद्ध सेवा-लक्ष्य को सामने रखकर ही वे आज गोंडों की निष्काम सेवा कर रहे हैं। उनकी प्रार्थना में हिंदुओं के भी भक्तिपूर्ण भजन गाये जाते हैं और ईसाइयों के भी। सेवा का यह खालिस रूप ईसाइयों की दृष्टि में बिल्कुल निराला-सा है। इसलिए फ़ादर एल्विन के इस सेवा-कार्य की न तो ईसाई ही सराहना करते हैं, न हिंदू ही—ईसाई तो उन्हें इसलिए पसन्द नहीं करते, कि उन्होंने धर्मान्तरित करने का वह पुराना पथ त्याग दिया है, और हिंदू इसलिए उन्हें अविश्वास और सन्देह की नज़र से देखते हैं, कि भला ऐसा भी दुनिया में कोई ईसाई पादरी हो सकता है, जो लोगों को अपने दीन में न मिलाना चाहे ! इस तरह बेचारे एल्विन साहब को न ईसाई ही कुछ आर्थिक सहायता देते हैं,

न हमारे हिंदू ही। हाँ, कुछ थोड़े-से ऐसे सज्जनों से उन्हें थोड़ी-बहुत सहायता मिल जाती है, जो उन्हें अच्छी तरह जानते और उनके इस अनुपम सेवा-कार्य की क़द्र करते हैं।

बच्चों के लिए यहाँ गोंड़-सेवा-मंडल की ओर से पाठशालाएँ तो चल ही रही हैं, कुष्ठ-सेवा-गृह और औषधालय के द्वारा भी अच्छा काम हो रहा है। मुख्य सेवा-केन्द्र करंजिया है। यहाँ से २ मील से लेकर १० मील के दरम्यान गोंड़-पाठशालाएँ हैं। इस विकट पहाड़ी इलाक़े में पनका जाति की अहल्या नाम की एक बहिन और सात नवयुवक इन पाठशालाओं में काम कर रहे हैं। इन गोंड़-पाठशालाओं का सुन्दर झोंपड़ियाँ सिर्फ़ चालीस-चालीस, पचास-पचास रुपये की लागत की हैं। एक-एक अध्यापकवाली पाठशाला का मासिक ख़र्च शायद ही १५) से अधिक पड़ता हो।

कुष्ठगृह में क़रीब एक दर्जन कुष्ठियों के रहने की जगह है। चालमोगरा तेल का टीका लगाकर इलाज किया जाता है। श्रीशामराव कोई डाक्टर नहीं हैं, पर उन्होंने उपचारादि का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लिया है और उक्त चिकित्सा गृह उन्हीं की देख-रेख में चल रहा है। प्रधान औषधालय करंजिया में है। हरएक अध्यापक को यहीं से एक छोटी-सी पेटी में साधारण रोगों की दवाइयाँ दे दी जाती हैं और वह उन्हें आस-पास के गँवई-गाँवड़ों में बाँटता रहता है। फसली बुखार, फोड़ा और गर्मी-सुजाक का इलाज कराने यहाँ दूर दूर के गोंड़ आते हैं।

बड़ा ही शान्त और सुरम्य स्थान है यह। मैं यहाँ यद्यपि बाईस घंटे ही रहा, पर चित्त को अतिशय शान्ति मिली। शुद्ध प्रेम और उच्च भावना से किये गये मूक, अज्ञात, अदृष्ट सेवा-कार्य का सुफल जो सेवा-जनित सन्तोष और आनन्द है, वह अनुपम है, अद्वितीय है। आवें और देखें इस सेवा-मंडल को हमारे तरुण, हमारे समाजवादी, हमारे नगरों के कार्यकर्त्ता, और हमारे हिंदू पंडित। फादर एल्विन-सरीखे निरवह जन-सेवक कहीं विरले ही मिलेंगे। फिर फादर एल्विन कोई मामूली आदमी नहीं हैं। यह एक उच्चशिक्षित योरोपियन सज्जन हैं, किन्तु दिव्य सेवा-भाव से प्रेरित होकर इन्होंने जीवनसुलभ समस्त सुखभोगों को लात मार दी है। सन्त फ्रांसिस के ये सच्चे अनुगामी हैं। इन्होंने हमारे देश के एक सब से उपेक्षित जाति की सेवा के प्रीत्यर्थ अपने आपको अर्पित कर दिया है। फ़ादर एल्विन आदतन खादी पहनते हैं। यह महज़ राष्ट्रसेवक ही नहीं, किन्तु एक अन्तर्राष्ट्रीय जन-सेवक हैं। लोगों को अपने धर्म में मिलाने की तो इनके हृदय में तनिक भी इच्छा नहीं। यह तो एक सच्चे ईसाई संत हैं। मैं चाहता हूँ, कि हमारा प्रत्येक समाज-सेवक इस महान् जन-सेवक की कुटिया में अवश्य कुछ दिन रहे और अपने सेवा-धर्म की शिक्षा यहीं पूरी करे।

पेण्ड्रा रोड

६-११-३४—यह काफ़ी बड़ा क़स्बा है। स्टेशन से क़रीब एक मील के फ़ासले पर यहाँ क्षय के रोगियों का एक विशाल स्वास्थ्यगृह बना हुआ है, जिसे एक ईसाई मिशन चला रहा है। पेण्ड्रा रोड में चमारों के ३३ घर हैं। ये लोग मरे हुए ढोरों की खाल उधेड़ने और जूते बनाने का काम करते हैं। घर में रोटी-भाजी से सुखी होने पर भी और अपना गहना-गुरिया रहन रखने और ३७॥ सै॰ के तक सूद देने को राज़ी होते हुए भी इन बेचारों को कोई उधार नहीं देता। इसलिए इनके लिए एक ऋणदात्री सहकारी समिति का होना बहुत ज़रूरी है। स्कूल और कुएँ इनके लिए सब खुले हुए हैं। कहीं कोई रोकटोक नहीं। फिर इनका अपना भी एक कुआँ है। सेनेटरी कमेटी की मेंबरी के लिए यहाँ पारसाल एक मेहतर उम्मेदवार खड़ा किया गया था, किन्तु कट्टरों के ज़बर्दस्त विरोध से वह कामयाब नहीं हो सका।

बिलासपुर

६-११-३४—बिलासपुर में मैं सिर्फ़ चार ही घण्टे रह सका, पर चमारों, घासियों और मेहतरों की बस्तियाँ देखने में इस थोड़े-से समय का उपयोग अच्छा हुआ। चमार यहाँ ख़ासकर खेती का काम करते हैं, और घासिया लोग इक्के हाँकते तथा घास बेचते हैं। मेहतर और अघोरिया सूअर पालते हैं, इस कारण शहर के लोग इनसे बहुत नाराज़ रहते हैं। म्युनिसिपैलिटी के मुलाज़िम मेहतर पट्टे पर दी हुई ज़मीन पर घर बनाकर अन्य मेहतरों के पास ही रहते हैं। सारे देश के मेहतरों के लिए वह कितने सौभाग्य का दिन होगा, जब कि तमाम प्रान्तों की म्युनिसिपैलिटियों के क़ानून में इस प्रकार के संशोधन कर दिये जायँगे कि हर म्युनिसिपैलिटी का, सड़कों की मरम्मत और सफ़ाई की व्यवस्था की तरह, प्रत्येक मेहतर के लिए स्वच्छ तथा स्वास्थ्यप्रद मकान बनवाना भी एक अनिवार्य कर्त्तव्य है।

अधिकांश शहरों में उन बेचारों को गंदगी और बदबू से भरी हुई बस्तियों की झोंपड़ियों में ही जानवरों से भी बुरा जीवन बिताना पड़ता है। बिलासपुर के मेहतर कर्मचारियों की दशा भी वैसी ही है। कर्बला मुहल्ला, जिसमें कि बहुत से मेहतर रहते हैं, बड़ी ही ख़राब जगह है। स्थानीय संघने यहाँ के मेहतरों की मक़रूज़ीयत की जाँच की है। आशा है कि क़र्ज़ से मुक्त करने के लिए एक सहकारी समिति की शीघ्र ही स्थापना की जायेगी। उनके छै मास के वेतन से अधिक ऋण उन पर न निकलेगा। पेशावरी पठान या ख़ान ही उन्हें मनमाने सूद पर रुपये देते हैं जिनकी क्रूरता से हम सभी वाक़िफ़ हैं।

सरकण्डा

सरकण्डा गाँव बिलासपुर से सिर्फ़ एक मील दूर और नदी के उस पार है। श्रीयुक्त शार्मैय्याजी की देखरेख में यहाँ पर अनुकरणीय ग्राम्य-सेवा-कार्य हो रहा है। शार्मैय्याजी सहकारी समितियों के एक अवसरप्राप्त आडिटर हैं। वह गाँव के पास ही रहते हैं। गाँव के लोग नदी के किनारे पर पाख़ाना फिर कर उसे बहुत गन्दा कर देते थे। पर अब वे लोग दो फ़ीट गहरी खाई खोदकर उसमें टट्टी करते हैं; जिससे अब नदी का तट साफ़ रहने लगा है। गाँव के अधिकांश लोग चमार जाति के हैं। दुःख की बात है कि डिस्ट्रिक्ट कौंसिल की ओर से इन के लिए कोई पाठशाला नहीं है। शार्मैय्या महोदय एक महीने के भीतरही एक पाठशाला स्थापित करने का उद्योग कर रहे हैं। सारे गाँव में नियमित रीति से झाड़ू-बुहारू दी जाती है और नित्य सामूहिक प्रार्थना भी की जाती है। क्या अच्छा हो कि श्री शार्मैय्या-सरीखे हज़ारों ऐसे मूक सेवक हमारे देश के कोने-कोने में पैदा हो जायँ, जो नम्रतापूर्वक गाँवों में सफ़ाई और अन्य सेवा-कार्य को निष्काम रूप से करने में अपने आपको सहर्ष अर्पित करदें।

अमृतलाल वि॰ ठक्कर

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ३० नवम्बर, १९३४

उद्योग-संघ का प्रसव-काल

अखिल भारतीय ग्राम्य-उद्योग-संघ का जन्म होने में काफ़ी देरी हो रही है। जनता को मैं अभी इतना ही आश्वासन दे सकता हूँ कि श्री कुमाराप्पा को और मुझे जितना समय मिलता है वह सब इसी काम में लग रहा है। हमारे सामने ये तीन प्रश्न हैं—संघ का प्रधान कार्यालय कहाँ रखा जाय, केन्द्रीय मंडल (सेण्ट्रल बोर्ड) किस तरह बनाया जाय, और संघ की शाखाएँ कितनी और किस प्रकार स्थापित की जायँ।

यद्यपि ये सभी प्रश्न हमें हैरान कर रहे हैं, पर सबसे अधिक परेशानी तो हमें सेण्ट्रल बोर्ड के रचनासम्बन्धी प्रश्न से हो रही है। यह एक भगीरथ कार्य है। इसका ध्येय भी महान् है। भारी-भारी यंत्रों, कारख़ानों और इकहत्थे कारबारने आज जो चारों तरफ़ से अधिकार जमा रखा है उनके मुक़ाबले में गाँवों का कायाकल्प करना कोई आसान काम नहीं है। इसलिए हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि बोर्ड ऐसे ही थोड़े-से व्यक्तियों का बनाया जाय, जिन्हें संघ के कार्यक्रम में अखण्ड श्रद्धा हो, जिनकी इस कार्य में रुझान और लगन हो, और जो अपना सारा नहीं तो अधिक समय संघ को दे सकें। हम ऐसे व्यक्तियों के खोजने का प्रयत्न कर रहे हैं—फिर वे चाहे किसी भी राजनीतिक विचार के हों—जो इस भार को वहन कर सकें।

शाखाओं के संबंध में हम इस निर्णय पर आये हैं, कि प्रत्येक ज़िला एक खंड समझा जाय और वह सीधा सेण्ट्रल बोर्ड को जवाबदेह रहे। चूँकि ब्रिटिश सरकार के निर्धारित किये हुए ज़िले क्षेत्रफल या जन-संख्या में सब एक सरीखे नहीं हैं, इसलिए जहाँ ज़रूरत होगी, वहाँ उनके विभाग करने में हम हिचकेंगे नहीं। हमारा मुख्य ध्यान तो कार्य को अनेक केन्द्रों में बाँट देने तथा गाँवों के साथ अपना जीता-जागता संपर्क जोड़ने पर रहेगा। देशी रियासतें जहाँ इजाज़त देंगी वहाँ उनके साथ हमारा सीधा संबंध रहेगा। भौगोलिक भारतवर्ष के तमाम गाँवों की हम सेवा करना चाहते हैं।

प्रधान कार्यालय कहाँ रखा जाय इस विषय में भी कठिनाई है। अगर हो सकता तो हम उसे किसी गाँव में ही रखते। पर इन दो विचारों को सामने रखकर हमें जगह पसंद करनी है। जो थोड़ा सा पैसा हमें मिला है या जिसके मिलने का वचन प्राप्त हुआ है उसे हम ज़मीन और ईंट-गारे में नहीं लगाना चाहते। इसलिए हमें कोई ऐसी जगह पसंद करनी है, कि जहाँ हमें आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हो सकें। दूसरी बात यह है कि यह प्रधान कार्यालय रेल की किसी ऐसी मेनलाइन के पास होना चाहिए, जहाँ हिंदुस्तान के सब भागों से लोग आसानी से पहुँच सकें। पर अभी ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। पाठक अगर हमें कुछ सलाह देना चाहें तो ग्राम्य उद्योग-संघ के संबंध में मैंने यहाँ जो कहा है वह उनके लिए काफ़ी है। हमारे इस कठिन कार्य के संबंध में जो लोग सहानुभूति रखते हों उनसे यही विनय है कि वे सब हमारी उद्देश्यसिद्धि के लिए भगवान् से प्रार्थना करें।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

इसका आशय ?

उस दिन मेरे एक आदरणीय मित्रने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी लिखा था कि, 'ग्राम्य-उद्योग-कार्य से आपका जो मतलब है उसका संपूर्ण चित्र मेरी दृष्टि के सामने नहीं आ रहा है।' प्रश्न यह अच्छा है। अवश्य ऐसी शङ्का बहुतों के मन में उठ रही होगी। मैंने उन्हें उत्तर में जो लिखा उसका सारांश यह है :—

"संक्षेप में पूछा जाय तो मैं इतना ही कहूँगा कि हमें अपने नित्य के उपयोग की चीज़ें सिर्फ़ वही ख़रीदनी चाहिए, जो कि गाँवों में बनती हों। हो सकता है कि गाँव की बनी चीज़ें अभी भद्दी या बेडौल हों। तब हमें चाहिए कि गाँवों की कारीगरी को उत्तेजन देने का हम प्रयत्न करें, न कि हम इस दलील को सामने रखकर उन चीज़ों को लेने से इन्कार करदें कि विदेशी अथवा बड़े-बड़े कल-कारख़ानों की बनी स्वदेशी चीज़ें उनसे कहीं बढ़िया हैं। असल बात यह है कि ग्रामवासियों की सोई हुई कारीगरी या कला पूर्ण प्रतिभा को हमें जागृत कर देना चाहिए। सिर्फ़ इसी एक तरीक़े से हम उस भारी ऋण को थोड़ा बहुत चुका सकेंगे, जो कि गाँववालों का हमारे ऊपर चढ़ा हुआ है। इस विचार से भयभीत होने का कोई कारण नहीं कि ऐसे प्रयत्न में क्या हम कभी कामयाब हो सकेंगे। हमें अपने ही युग की ऐसी कई मिसालें याद आ सकती हैं, कि जब हमें यह ज्ञान हो गया कि अमुक काम देश की तरक़्क़ी के लिए अत्यंत आवश्यक है तो हमारे मार्ग में आनेवाली कठिनाइयाँ हमें ज़रा भी विचलित नहीं कर सकीं और उन कामों में हम असफल भी नहीं हुए। इसलिए हम से अगर हरएक इस पर विश्वास करने लग जाय कि हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व के लिए भारतीय ग्रामों का पुनर्संघटन अत्यंत आवश्यक है, और अगर हमारा इसमें अविचल विश्वास हो कि ग्रामों के पुनरुज्जीवन के द्वारा ही हम इस व्यापक अस्पृश्यता को निर्मूल करके अपने अन्दर संप्रदाय या धर्म का भेदभाव छोड़कर आत्मैक्य का अनुभव कर सकते हैं, तो हमें सच्चे हृदय से गाँवों की ओर जाना ही होगा, और बजाय इसके कि हम ग्रामवासियों के सामने उन्हें लुभाने के लिए शहर के कृत्रिम जीवन को रखें, हमें खुद गाँव की बनी चीज़ों को नमूने के रूप में अपनाना होगा। अगर यह विचार-दृष्टि ठीक है, तो हमें खुद बखुद आगे बढ़कर गाँव की बनी चीज़ों को व्यवहार में लाना चाहिए—जैसे, जहाँ संभव हो फाउण्टेनपेन या होल्डर के बजाय हम गाँव की किलक क़लम को और बड़े-बड़े कारख़ानों की बनी स्याही की जगह गाँव की बनी स्याही को काम में लावें। मैं ऐसे और भी अनेक उदाहरण दे सकता हूँ। नित्य के उपयोग की शायद ही कोई ऐसी चीज़ हो, जो आज से पहले गाँववालों-ने न बनाई हो, और जिसे वे आज न बना सकते हों। अगर हम इस तरफ़ पूरी तरह से अपना मन लगाएँ और गाँवों पर अपना ध्यान एकाग्र करलें तो हम बात-की-बात में लाखों रुपये गाँववालों की जेब में पहुँचा सकते हैं। आज तो हम उन्हें बिना कुछ मुआवज़ा दिये उल्टे उन ग़रीबों को लूट-खसोट रहे हैं। इस भयङ्कर सर्वनाश को आगे बढ़ने से हम अभी रोक सकते हैं। जो लोग आज अस्पृश्य माने जाते हैं उनकी यथाशास्त्रोचित अस्पृश्यता दूर करने की अपेक्षा अस्पृश्यता-निवारण का यह

आन्दोलन मेरे लिए अधिक व्यापक मानी रखने लगा है। शहर-वालों की दृष्टि में गाँव अस्पृश्य हो गये हैं। शहरवाला उन्हें जानता नहीं, पहचानता नहीं। न वह गाँवों में जाकर रहना चाहता है; अगर वह किसी गाँव में जा पहुँचता है, तो वह वहाँ भी अपना वही नागरिक जीवन जमाना चाहता है। यह तो तभी सह्य हो सकता है, जब कि हम अपने मुल्क में इतने शहर बना सकें कि उनमें ३० करोड़ मनुष्य समा जायँ। ग्राम्य-उद्योगों का पुनरुज्जीवन और बलात्कार की बेकारी तथा दूसरे कारणों से उत्पन्न देश की दिन-दिन बढ़ती हुई दरिद्रता का दूरीकरण अगर असंभव है तो भारत के गाँवों को शहरों में परिणत कर देने की कल्पना तो और भी अधिक असम्भव है।

'अँग्रेज़ी' से] मो० क० गांधी

गुंटूर के ग्राम्य उद्योग

रेपल्ली (ज़िला गुंटूर, आंध्र) के विनयाश्रम के संचालक श्री सीताराम शास्त्री अपने समग्र आश्रम की सेवाओं को अखिल भारतीय ग्राम्य उद्योग-संघ के चरणों में अर्पित करते हुए लिखते हैं:—

"मुझे अभी इतने काम सूझे हैं और आपसे मैं इन कामों की सिफ़ारिश करता हूँ: (१) जूता बनाना, (२) कपास को हाथ से ओटना, (३) ताड़ी के रस का गुड़ या राब बनाना, (४) मिट्टी के बासन भाँड़े की कारीगरी को उन्नत करना, (५) हाथ से काग़ज़ बनाना, (६) पत्थर का काम, (७) हाथ से मूँगफली छीलना, (८) नारंगी के छिलके से तेल और दूसरी चीज़ें निकालना, और (९) ताड़ के फलों का मुरब्बा रखना।

नम्बर २ से खादी-कार्य में भी मदद मिलेगी। नम्बर ३ से मद्य-निषेध का काम सरल हो जायगा। इस ज़िले में ताड़ के वृक्ष बहुत अधिक होते हैं। इसके पके फलों का विश्लेषण करके देखा गया तो उनमें आहार के कितने ही उपयोगी तत्त्व पाये गये हैं। इस ज़िले में नारंगी भी कसरत से पैदा होती है और काफ़ी सस्ती बिकती है; उसके छिलके को किसी काम का न समझकर लोग फेंक देते हैं, पर व्यापार की दृष्टि से यह वास्तव में एक उपयोगी चीज़ है। नारंगी के छिलके का तेल निकाला जाय तो वह जलाने के काम में आ सकता है और यह छिलका बाज़ार में भी बिकता है। हमारे ज़िले में कोंडावीडु नाम का एक गाँव है, जो हाथ के काग़ज़ के लिए इधर काफ़ी मशहूर है। ज़िला कांग्रेस कमेटीने सन् १९२१ में इस उद्योग को सजीव करने का प्रयत्न किया था, पर कारीगरों की उपेक्षा के कारण वह छोड़ दिया गया। पालनाड में एक ख़ास क़िस्म का पत्थर होता है, और उसे वहाँ के संगतराश बनाते हैं। काग़ज़-पत्र दबाने के लिए, फ़र्श पर लगाने के लिए, दीवार पर जड़ने के लिए और मेज़ पर रखने के लिए यह चिकना पत्थर काम में लाया जाता है। आम तौर पर इसे वहाँ पालनाड का संगमरमर कहते हैं। दक्षिण भारत में हाथ की छिली मूँगफली मशीन की छिली मूँगफली से कहीं सस्ती बिकती है। इस ज़िले में कई जगह मूँगफली की खेती होती है। बेजवाड़ा के वकील श्री रामस्वामी गुप्त, जिन्होंने आत्म-साधना करने के लिए वकालत छोड़ दी है, कुम्हारों की कारीगरी को काफ़ी उत्तेजन दिया है। उनकी देखरेख में बने हुए मिट्टी के बासन-भाँड़े गाँवों के सामान्य कुम्हारों के बनाये हुए बर्तनों से बहुत सुन्दर होते हैं।

इस प्रकार का यह एक ही या सर्व प्रथम ऑफर नहीं है। यह देखकर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है कि भारत के प्रायः सभी भागों से अनेक सज्जनोंने ऐसी तत्परता प्रगट की है। श्री सीताराम शास्त्री का यह पत्र तो सब से ताज़ा दृष्टान्त है, और इसमें कुछ ऐसी जानने लायक बातें हैं, जो अन्य कार्यकर्ताओं के लिए उपयोगी हो सकती हैं। जो कार्यकर्ता अपनी सेवाएँ संघ को देना चाहते हों उन सब से मेरा यह आग्रह है कि वे मेरी हिदायतों की राह न देखें, वे तो अपना काम शुरू करदें। ग्राम्य उद्योगों की योजना के पीछे मेरी कल्पना तो यह है कि हमें अपने रोज़मर्रा की आवश्यकताएँ गाँवों की बनी चीज़ों से ही पूरी करनी चाहिएँ; और जहाँ यह मालूम हो कि अमुक चीज़ें गाँवों में मिलती ही नहीं, वहाँ हमें यह देखना चाहिए कि उन चीज़ों को थोड़े परिश्रम और संगठन से गाँववाले बना सकते हैं और उनसे वे कुछ मुनाफ़ा उठा सकते हैं या नहीं। मुनाफ़े का अंदाज़ लगाने में हमें अपना नहीं, किंतु गाँववालों का ख़याल रखना चाहिए। सम्भव है कि शुरू में हमें साधारण दरभाव से देना कुछ अधिक पड़े और चीज़ हलकी मिले। पर अगर हम उन चीज़ों के बनानेवालों के काम में रस लेंगे, और यह आग्रह रखेंगे कि वे बढ़िया-से-बढ़िया चीज़ें तैयार करें, और सिर्फ़ आग्रह ही नहीं बल्कि उन लोगों को पूरी मदद देंगे, तो गाँवों की बनी चीज़ों में, हो नहीं सकता कि, दिन-दिन तरक्की न होती जाय।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

बम्बई की प्रदर्शिनी

एक उल्टी नज़र

बम्बई की प्रदर्शिनी के तीन अंग थे—खादी-विभाग, स्वदेशी बाज़ार और वस्त्र-स्वावलंबन-विभाग। कहा जाता है कि एक दिन तो अब्दुलग़फ़्फ़ार-नगर में १२,००० मोटरें गई थीं। हो सकता है। मैं नहीं जानता कि कहाँतक इतनी बड़ी संख्या एक-एक मोटर के बार-बार गिने जाने का परिणाम है। गिनती का विषय गहन है। इसका ज्ञान भी अनुभव से ही प्राप्त होता है। धोखा खा जाना आसान है। लेकिन यह मैंने देखा है कि हम कांग्रेसवाले जन-संख्या का हिसाब लगाने में औरों से कहीं अधिक निष्णात हैं। भूल भी करते हैं तो सोच-समझकर। दिल्ली में एसेंब्ली के चुनाव के सम्बन्ध में सरदार वल्लभभाई और श्री भूलाभाई देसाई के आगमन पर जो सभा हुई थी उसमें मैंने इस बात का परीक्षण भी कर लिया था। उस सभा में ऐसे भी बहुत-से अच्छे-अच्छे नागरिक आये थे जो कुछ मैदान की सभाओं में, और ख़ासतौर पर कांग्रेसी सभाओं में कम ही आया करते हैं। इनमें से कुछ तो बाहर-ही-बाहर से भाषण सुन रहे थे। मैं भी इन्हीं लोगों में था। ख़ुशी की बात है। मेरे दो-तीन ग़ैर-कांग्रेसी मित्रों पर इस सभा का बड़ा गहरा असर पड़ा था। उनमें से

एकाध तो शायद दूसरे उम्मीदवार के पक्ष के भी थे। उस दिन कइयोंने पक्ष-परिवर्तन कर लिया। लेकिन आठ या दस हज़ार की संख्या को बीस से कम तो किसीने नहीं बताया था और तीस-चालीस के पक्ष में भी काफ़ी वोट थे। बाद में अपने कांग्रेसी भाइयों का अंदाज़ दर्याफ़्त किया तो मालूम हुआ कि १० हज़ार से संख्या अधिक नहीं थी। सभाजनों की संख्या के हिसाब लगाने का आसान तरीक़ा यह है कि प्रथम दो सौ या तीन सौ व्यक्तियों का एक खण्ड गिनकर सब ऐसे खण्ड सभा में कितने हैं, इसका मोटे तौर पर पता लगा लिया जाय। जोड़ और गुणाकार की बात है। 'विराट' सभाओं में भी यह मुश्किल नहीं।

चलती हुई सड़क

लेकिन यहाँ तो मोटरों की बात थी। यह याद रखना होगा कि १२ हज़ार की संख्या केवल मोटरों की बताई गई थी। घोड़े-गाड़ियों की भी कमी नहीं थी। जिस स्थान पर "नगर" बसा हुआ था वह बम्बई का मीलों दूर क़रीब क़रीब एक निर्जन हिस्सा है। यह तो मैंने स्वयं देखा कि तीन-चार मीलतक चौड़ी सड़क में मोटरों की कई क़तारें लग जाती थीं और ये मोटरें इतने कम वेग से एकसाथ चलती थीं मानो सड़क ही नगर की ओर आगे बढ़ती चली जाती थी। एक मोटर से दूसरे मोटर-वाले के साथ एकाध घंटे तक वार्त्तालाप करना आसान था। अन्य दृश्यों में यह भी एक दृश्य था। मैंने अपने कई मित्रों से इसी चलती हुई सड़क पर मुलाक़ात की थी।

बृहद्-विज्ञापन

प्रदर्शिनी के आकर्षण के बिना शायद इतना जनसमूह न होता। यह बड़े सुभीते की बात थी कि नगर में सबसे पहले प्रदर्शिनी पड़ती थी। इसके कारण आधी भीड़ नगर के द्वार पर रुक जाती थी। यह अत्यावश्यक भी था, क्योंकि आगे की सड़कें इतनी चौड़ी न थीं और उन पर चौबीसों घण्टे जमघट लगा रहता था। इन सड़कों पर खोमचेवालोंने और ख़ासतौर पर गुलगप्पेवालों और दूध-आहार बाटनेवालोंने एक साकभर का काम कर लिया। बम्बई में शायद ही कोई भला आदमी रहा होगा जिसने प्रदर्शिनी न देखी हो। बाहर से तो हज़ारों आदमी आये ही थे। रतलाम से मुझे इन्दौर के दो मारवाड़ी सज्जनों का साथ हो गया था। प्रदर्शिनी की धूम सुनकर वे बम्बई आ रहे थे। वापसी में भी उनका साथ रहा। पीछे ही मालूम हुआ कि उन्होंने प्रदर्शिनी से किंडरगार्टेन के बक्स बच्चों के लिए ख़रीदे थे। भारतवासी व्यापारी विज्ञापन में उतनी श्रद्धा नहीं रखते जितनी कि बाहर के लोग रखते हैं। लेकिन मफ़तलालवालेने इस उपेक्षा को छिन्न-भिन्न कर डाला है। बृहद् विज्ञापन की महिमा को वे खूब समझते हैं। उनका काम भी मौलिक है। लेकिन हिन्दुस्तानी विज्ञापनों में अभी चुटकुलों (Slogans) की कमी है, यद्यपि हमारी भाषाओं में इसके लिए मसाला कम नहीं। आश्चर्य-सूचक चिह्नों तथा औषधियों के विज्ञापनों की आलंकारिक भाषा की हद से अभी हम बहुत आगे नहीं निकले। लेकिन जहाँ हम असभ्य भाषा में पहला नम्बर लेते हैं वहाँ पश्चिमवाले सभ्य के विज्ञापनों में कमाल दिखा देते हैं। वहाँ विज्ञापन न अख़बारों, मासिकों, सड़कों, दीवारों को जैसा सबसे घेरा है वैसा और किसी चीज़ने नहीं। उसकी बराबरी सिगरेट, मोटरटायर, टूथपेस्ट इत्यादि नहीं कर सकते। लन्दन के एक स्टेशन के अन्दर छः छः फुट के बड़े-बड़े चटकीले विज्ञापनों को गिनने पर मालूम हुआ कि साठ-सत्तर में से क़रीब पचास तो शराब ही के थे। 'Guinness is good for you' हमें आजतक नहीं भूला। दूसरी गोलमेज़ के दिनों में सब से उत्तम और असरकारक विज्ञापन "Buy British" चला था। मुझे ख़ुशी हुई कि इस विज्ञापन की हलचल के समय बहुत-से ऐसे हिन्दुस्तानी वहाँ मौजूद थे, जिनके लिए यह पदार्थपाठ आवश्यक था।

चित्र-विचित्र संग्रह

पिछले कुछ वर्षों से प्रदर्शिनियोंने स्वदेशी विज्ञापन-विज्ञान को भी स्फूर्ति दी है। बम्बई की प्रदर्शिनी में इसका कुछ अन्दाज़ लग सकता था। मैंने प्रदर्शिनी की पूरी यात्रा तीन-चार बार की। मैं ऐसे सूचीपत्र की तलाश में था जिसमें प्रदर्शिनी में हिस्सा लेनेवाले तमाम व्यापारियों के नाम तथा माल का पूरा-पूरा विवरण हो। प्रदर्शिनी के दो-एक अधिकारियों से पूछने पर उन्होंने मेरे निवेदन पर कुछ आश्चर्य, फिर खेद प्रगट किया। ज़्यादा पूछने पर इतना आश्वासन मिला कि शायद प्रदर्शिनी के बाद रिपोर्ट छपने पर मेरी मनोवांछना पूरी हो। लेकिन मैंने तो "स्वावलम्बी" होने का निश्चय कर लिया था। आम तौर पर सड़क पर जाते हुए यदि कोई मेरे हाथ में कोई विज्ञापन का पर्चा रख देता था तो स्वाभिमान या अभिमान उसे लेने से मुझे रोकता था और मैं उसे निर्दयता से नीचे गिरने दिया करता था। (मेरे पक्ष में एक यह भी बात रहा करती थी कि ऐसे विज्ञापन ९५ फ़ीसदी सिनेमा के ही हुआ करते थे) लेकिन आज मैंने भूत-भविष्य का एक साथ घोर प्रायश्चित्त शुरू किया। प्रत्येक दूकान से जाकर विज्ञापन के पर्चे, पुस्तिकाएँ, कार्ड माँगने लगा। अपने स्वभाव के बदलने के कारण मैंने अन्यों के स्वभाव का भी बदला पाया। कहीं कहीं दो-एक क्षण की प्रतीक्षा करने पर भी विज्ञापन का पर्चा किसीने आगे नहीं बढ़ाया। मेरे उपरोक्त अभिमान के गुण को सर्वसाधारणता से व्यापारी शायद इस विषय में काफ़ी निराश हो चुके थे। फिर भी इस आघात के असर से मैं अब भी मुक्त नहीं हूँ। आश्वासन यही है कि उन लोगों से विज्ञापन माँगकर मैंने उनको और भी अधिक आघात पहुँचाया। थोड़ी देर में मेरे हाथ में काग़ज़ों का काफ़ी ढेर जमा हो गया। इस काम के लिए मैं अकेले ही गया था। साथी यदि पूर्ण सहानुभूतिवाला न हो तो ऐसे कार्यक्रम में बाधक हो सकता है। और जिस सफलता से मेरा काम पूरा हुआ उसने मेरे इस विश्वास को और भी दृढ़ कर दिया। इसके बाद ही मैंने कांग्रेस के विधान के उस परिवर्तन को ख़ामोशी से स्वीकार कर लिया जिससे भविष्य में वर्किंग कमिटी में एक ही राय के लोग रहा करेंगे।

प्रचारार्थ इकन्नी

कई दुकानदार दो तीन तरह के इश्तहार रखते थे। मेरे हाथों में बहुत बड़ा संग्रह देखकर कुछ लोग तो अपना बढ़िया-से-बढ़िया इश्तहार देने लगे। सूचीपत्र या कार्ड कहीं-कहीं मिल गया। लेकिन कहीं-कहीं यह साफ़ सुनना पड़ा कि कार्ड और सूचीपत्र तो कुछ सौदा ख़रीदने पर ही मिलता है। दो एक मित्र जो रास्ते में मिले उन्होंने मेरे इस व्यवहार का

विचित्र मतलब निकाला। उन्होंने समझा कि सड़कों की सफ़ाई के हित में मुझे यह आवश्यक मालूम हुआ कि इश्तहारों को ज़मीन पर गिरने न देकर उन्हें हाथ ही में रक्खूँ और अन्त में कूड़ाखाने में ढेर का ढेर पटक दूँ। उनके इस विचार को निर्मूल करने में खतरा यह था कि शायद मेरा संग्रह वहीं का वहीं छीन कर नीचे गिरा दिया जाता। वैसे भी कुछ पर्चे सरककर हाथ से नीचे गिरने लगे थे। इतने में मेरी नज़र बम्बई के अँग्रेज़ी के "स्वदेशी" साप्ताहिक के विशेषांक पर पड़ी। कुछ पृष्ठों पर नज़र डालने से मालूम हुआ कि विशेषांक अपने नाम के अनुसार विशेष महत्त्व का था। पहले तो अपने इस संग्रह के लिए उसे मुफ्त लेने की कोशिश की लेकिन मालूम हुआ कि एक आना दाम था। काफ़ी संकोच हुआ। पैसा ख़र्च करके कोई चीज़ ख़रीदना मेरे प्रोग्राम के बाहर था। और भी बातें थीं। सोचा ऐसी चीज़ें ज़रा नज़र डालने पर कहीं न कहीं से बिना मूल्य मिल ही जाती हैं। लेकिन लेख कुछ अच्छे अच्छे थे और मेरे हाथ के पर्चों को इस साप्ताहिक के अन्दर डालकर उठाने में सुभीता रहता। फिर भी·········लेकिन एक बातने फ़ैसला कर दिया। मेरी देखा-देखी कुछ और भी प्रदर्शिनी की विज्ञापन पत्रिकायें जमाकर रहे थे। जहाँ मैंने आवाज़ उठा कर दुकानदार से इश्तहार माँगा कि और भी कई लोग माँग पड़ते थे। "स्वदेशी" साप्ताहिकवाले मुझे प्रचार की सहायता के लिए कई बार पत्र लिख चुके थे। मैं उनके लिए अबतक ग्राहक तो नहीं बना सका था लेकिन अन्य दिशाओं में थोड़ी-बहुत सेवा की थी। यह फिर एक सुअवसर प्राप्त हो गया था।

मेरे बाद दो-तीन और जेबों से इकन्नियाँ निकलीं। इन में मेरे किसी सी० आई० डी० वाले दामन की इकन्नी रही होगी। यह अप्रमाणित बात नहीं। रेल में तो मुझे भारत भर में इनका साथ रहता है। और यहाँतक कि एंजिन की तरह यह भी बदलते जाते हैं, लेकिन तांता बना रहता है। मुझे कष्ट नहीं देते सिवा इसके कि दो-दो घण्टे पर टिकट का नंबर दिखाते दिखाते नाक में दम हो जाता है। अबकी ये एक क़दम आगे बढ़े। बंबई स्टेशन से मेरी मोटर के पीछे-पीछे एक आदमी टैक्सी में अब्दुलगफ्फार नगर तक आया। लेकिन इन बातों से 'हरिजन' को क्या संबन्ध? [अपूर्ण]

देवदास गांधी

अनुकरणीय हरिजन-सेवा

भँड़सर (गोरखपुर) से एक सज्जन लिखते हैं:—

"हमारा भँड़सर गाँव गोरखपुर ज़िले की पूर्वी सीमा पर बनकटा स्टेशन के पास है। यहाँ एक साल से बाबा राघवदास-जी के उद्योग से खादी-प्रचार और हरिजन-सेवा के लिए एक आश्रम स्थापित हुआ है। यह आश्रम श्री मखलजी हरिजन की देखरेख में बड़ा अच्छा सेवा-कार्य कर रहा है।

दिनभर आश्रम में खादी की बुनाई आदि का काम होता है। चर्खे का कता सूत बस्तियों से लेकर यहाँ कपड़ा बुनवाया जाता है। बुनाई की मजूरी में पुराने ढंगपर अनाज लिया जाता है। इधर देहात में पहले से ही कपास की पैदावार बहुत अच्छी होती है। मगर बुनाई की सुविधा न होने के कारण चर्खे और खादी का प्रचार तो नहीं के बराबर था। पर अब इस आश्रम के सेवा-कार्य के फलस्वरूप यहाँ चर्खे भी चलने लगे हैं और अधिकांश में लोग अब खादी भी पहनने लगे हैं।

शाम को नित्य श्री मखलजी इस गाँव की तथा आसपास के किसी-न-किसी गाँव की हरिजन-बस्ती में जाते हैं। वहाँ तमाम हरिजनों को आप एकत्र करते और ८ बजे से १० बजेतक सब से हरि-नाम-संकीर्तन कराते हैं, साथ ही स्वच्छता से रहने के लाभ भी बस्तीवालों को समझाते हैं। हरिजनों पर श्री मखलजी की इस सच्ची सेवा का निस्संदेह कुछ प्रभाव तो पड़ा ही है।"

श्री मखलजी भाई का यह खादी तथा हरिजन-सेवा-कार्य स्तुत्य और अनुकरणीय है, इसमें संदेह नहीं।

प्रकाश की एक किरण

[प्रयाग-विश्वविद्यालय के उपाधि-वितरणोत्सव के अवसर पर भारत के सुप्रसिद्ध दार्शनिक सर राधाकृष्णन्ने उस दिन जो भाषण दिया था उसका एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंश नीचे दिया जाता है। हिंसा और स्वार्थ लोलुपता के अन्धकार से आच्छन्न संसार के लिए सत्य तथा अहिंसा मूलक गांधीवाद स्वर्गीय प्रकाश की एक किरण है—इसपर श्री राधाकृष्णन्ने बड़ा ही सुन्दर प्रकाश डाला है। — सं०]

जब भावी युद्ध का आरंभ होगा तब सभ्यता अगर नष्ट न हो गई तो कम-से-कम बर्बरता का साम्राज्य तो अवश्य हो जायगा। यद्यपि वर्तमान सभ्यताने विज्ञान और संघटन, साहित्य और दर्शन, धर्म और कला के क्षेत्रों में बहुत कुछ कर दिखाया है और इन बातों का विकास धीरे-धीरे शताब्दियों से होता चला आ रहा है, फिर भी हम आज अपने को उस निस्सहाय तथा असभ्य अवस्था में पाते हैं, उस विकट परिस्थिति में पाते हैं, जिसका यदि शीघ्र ही तथा उचित सुधार न हुआ तो वह उस सभ्यता को नष्ट किये बिना न छोड़ेगी। एक शक्की दार्शनिकने मानव-समाज को बन्दरों की जाति का बताया है, जो आज अपने को बड़ा सिद्ध करने की बीमारी से पीड़ित हैं। शायद उसका कहना ठीक है।

वर्तमान संसार-संकट ऐसा बुरा और साथ ही इतना गम्भीर है कि उसके परिणामस्वरूप सारी सभ्यता नाश को प्राप्त हो सकती है। मानव-समाज को उस गढ़े से निकाल बाहर करना चाहिए जिसमें आज वह फँसने को बाध्य हुआ है और साथ-साथ अपना निर्माण नये सिरे से करने के लिए दबाया जा रहा है। कोई समाज आप-से-आप उन्नति को प्राप्त नहीं होता। उसका विकास उस अल्पसंख्यक समुदाय के प्रयत्नों-द्वारा होता है, जो श्री मैथ्यू आरनल्ड के शब्दों में "बचे खुचे" लोग होते हैं। यह समुदाय उन विशेष पुरुषों की तपस्या से प्रेरित होता है जो दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में सर्वोत्तम तथा सबसे उच्च होते हैं। ये व्यक्तिविशेष साहस और शक्ति के क्षेत्र में भी सर्वोत्तम स्थान प्राप्त करते हैं। अपनी राष्ट्रीयता के संकुचित वृत्त से अत्यन्त ऊँचे रहनेवाले, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सत्य से संबंध स्थापित करनेवाले ये व्यक्तिविशेष वर्तमान सामाजिक अवस्था को देखकर उसके भविष्य की स्पष्ट झलक देखते हैं। ऐसे ही लोग वास्तव में सभ्यता या संस्कृति को आगे बढ़ानेवाले होते हैं।

वर्तमान संसार के राजनीतिक अधिनायकों की युद्ध ललकार तथा आवाहनपूर्ण शब्दों की हुंकार के मुक़ाबले में गांधीजी का

यह सन्देश जो उन्होंने विदा होते समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को उसके महाधिवेशन के वक्त दिया है, घोर अन्धकाराच्छन्न संसार के लिए स्वर्गीय प्रकाश की एक किरण के समान है। "मैं उस स्वातन्त्र्य को जो हिंसा द्वारा प्राप्त किया जाय कभी स्वीकार नहीं कर सकता।" भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए परमोत्सुक रहनेवाले, उसकी प्राप्ति के लिए काम करनेवालों में सबसे अधिक शक्ति रखनेवाले गांधीजी हमसे कहते हैं कि राज-नीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति उन्हें परमप्रिय है, पर सत्य और अहिंसा उससे भी अधिक प्रिय है। वे कांग्रेस के अपने साथियों को यह चेतावनी देते हैं कि वे अपने भीतर मानवता के प्रति उस कोमल उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत करें और अपने समाज के किसी भी प्राणी के प्रति आदर को स्थान दें। संसार के राजनीतिक संघर्षों में यह भाव एक बेजोड़ प्रमाण है जिसकी तुलना नहीं की जा सकती। आप कांग्रेसवालों को आज्ञा देते हैं कि वे स-सीम और सापेक्षता का त्याग करके जो राजनीति का स्वाभाविक अंग हो गयी है, पूर्ण और अनन्त सत्य को अपनाने तथा पूर्ण निरपेक्ष कर्तव्य को स्वीकारने की चेष्टा करें। इन्हीं बातों का समावेश विचार, विवेक तथा सत्य और प्रेम में होता है।

जब हम लोग इतिहास के पृष्ठों में अंकित घटनाओं का मनन करते हैं तो हमें भावों की शक्ति का पता लगता है। इसी प्रकार यह भी एक भाव है जिसे गांधीजी भारत-समाज के मन तथा आत्मा पर अंकित करना चाहते हैं। वे हम से अपील करते हैं कि हम और ऊँचे उठें, हम अपने प्रयत्नों को दूसरा रूप प्रदान करें, हम राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए एक नये मार्ग का अनुगमन करें तथा नैतिकता और आध्यात्मिकता की सुदृढ़ नींव पर नवभारत की स्थापना करें। अनन्त सत्य को प्रथम तथा राष्ट्रीय राजनीति को गौणस्थान देकर उन्होंने वह दीपक जलाया है जो आसानी से बुझाया नहीं जा सकेगा। उस दीपक का प्रकाश अनन्त में तीव्र गति से अपना तेज फैलाता जायगा। सारे संसार के ईमानदार और सद्भावयुक्त प्राणी इसका आदर और स्वागत करेंगे। गांधीजी की अपील पेरिक्लिस और सिसेरो, वाशिंगटन और लिंकन-जैसे राष्ट्रनायकों की उक्तियों के साथ ही न लिखी जायगी, बल्कि वह पृथ्वी के अमर सुधारकों तथा धर्मसंस्थापकों की वाणियों के साथ लिखी जायगी जिनका इतिहास मानवसमाज तथा राष्ट्रों के सर्वोत्तम प्रयत्नों की गाथा है।

भाग्य बनाम चर्खा

अनन्तपुर (सागर ज़िला) से तीन मील की दूरी पर सुसेरिया नाम का एक गाँव है। मैं इसी गाँव में रहता हूँ। यहाँ एक सिंघई जैन बनिया रहता था। घर का मालदार आसामी था। वह लेन-देन का कारबार करता था। दो साल हुए कि वह बीमार पड़ा और स्त्री तथा तीन बच्चों को अनाथ छोड़कर इस संसार से उठ गया। बेचारी स्त्री लहना वसूल करे तो कैसे? राँड रंडी की सहायता भला कौन करता? धनी-धनी के सब होते हैं, पर बिगड़ी का कौन होता है? जीविका का कोई दूसरा साधन तो था नहीं। जो ज़मीन थी वह लगान न दे सकने के कारण हाथ से निकल गई। दो साल बाद बच्चे और भी अनाथ हो गये, उनकी माँ भी उन्हें असहाय छोड़ परलोक सिधार गई। बच्चों की उम्र इस समय—जिनके नाम कमलचन्द्र, मोतीचन्द्र और तुलसीराम हैं—क्रम से चौदह, बारह और दस साल की थी। एक अच्छे समृद्ध घर के लड़के मुट्ठीभर नाज के भी मोहताज हो गये। पेट पालें तो कैसे। और फिर बेकारी के यह बुरे दिन। बड़े-बड़े साहसी और बलवान युवक-युवतियों को भी हाथ पर हाथ धरे बेकार बैठा रहना पड़ा। फिर यह तो नन्हे-नन्हे बच्चे थे। किसी तरह ये तीनों भाई अपना गुज़र-बसर करके संसार-सागर की यात्रा तय कर रहे थे। इन बेचारों के लिए तो यह जीवन-मरण का सवाल था।

इन गाढ़े दिनों में जब इनकी दशा बहुत ही शोचनीय हो रही थी, हमारे यहाँ के खादी-भंडारने गाँववालों से वह बचा हुआ सूत खरीदना आरम्भ किया, जो वे अपने कपड़ों की आवश्यकता की पूर्ति के अर्थ खादी बुनवाने के लिए कातते थे। निराशा के अन्धकार में भटकते हुए इन अनाथ बालकों को इस कार्य में आशा की एक किरण दिखाई दी, और उन्होंने भी कातना शुरू कर दिया। आज तीनों भाई सारे दिन चर्खा चलाते हैं और उन्हें इस काम में अब बड़ा रस आने लगा है। अपने हाथ के कते सूत का ही वे कपड़ा पहिनते हैं। इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं कि इन बालकोंने चर्खे-द्वारा बेकारी-निवारक शास्त्र को पूरी तरह समझ लिया है। उन्हें यह बात मालूम आने जँच गई है कि कुछ न होने से कुछ होना तो फिर भी अच्छा है और चर्खे के साथ सतत संपर्क क़ायम रखने से रोटी और कपड़े का सवाल निश्चय ही हल हो जाता है। इस समय इन भाइयों की औसत आमदनी ७) मासिक है, जब कि इन्हीं जैसा एक दूसरा परिवार, जिसने कताई को नहीं अपनाया, केवल ३) प्रति मास पैदा करता है। आज अगर आप इन नौजवान ग्राम-वासियों से मिलें तो उन्हें आप शक्ति, उत्साह और आत्म संतोष से भरपूर पायँगे। उन्होंने काहिली और निराशा को अपने जीवन से दूर खदेड़ दिया है। इनके खिले हुए चेहरों को देखकर आप आनन्द-विभोर हो जायँगे।

और अपने ढंग का यह एक ही उदाहरण नहीं है। इस निपट निर्धन प्रान्त में आधे से अधिक घर ऐसे हैं जो चर्खे के ज़रिये कपड़े आदि की आवश्यकता पूरी करते हुए अपनी जीविका भी चला रहे हैं।

भाग्य का क्रूर चक्र चाहे राजा को रंक बना दे चाहे रंक को राजा; मगर हमारा चर्खा राम सदा ही भाग्य और भयंकर बेकारी के साथ युद्ध करने में ऐसे अनेक भिखारियों की मदद करता रहता है।

जेठालाल गोविन्दजी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Seva Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

वार्षिक मूल्य ३॥) (पोस्टेज-सहित)

पता— 'हरिजन-सेवक' बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

एक प्रति का मूल्य -)

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ७ दिसम्बर, १९३४. [संख्या ४२

विषय-सूची

शास्त्र और अस्पृश्यता

[३]

यह हम देख चुके हैं कि हमारे धर्मशास्त्रों में वर्तमान अस्पृश्यता के लिए स्थान नहीं है, पर थोड़ी देर के लिए हम यह भी मानलें कि अस्पृश्यता शास्त्रविहित है—यद्यपि वस्तुतः यह शास्त्र-आज्ञा है नहीं—तो उन्हीं शास्त्र-ग्रन्थों में अस्पृश्यता के विषय में अपवाद इतने अधिक मौजूद हैं कि उन्हें देखते हुए इस अस्पृश्यता में कुछ जान नहीं रह जाती।

उदाहरण लीजिए। मिताक्षरा में एक ऐसा प्रमाण आया है, कि जिसके अनुसार अन्त्यजों के बनवाये हुए कुओं आदि जलाशयों पर सब मनुष्य नहा धो सकते और पानी भी पी सकते हैं। यह तो प्रश्न ही नहीं कि अंत्यज स्वयं अपने कुओं को अपने उपयोग में न लाते होंगे। वह प्रमाण यह है—

अन्त्यैरपि कृते कूपे सेतौ वाप्यादिके तथा।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च प्रायश्चित्तं न विद्यते॥

अगर 'अंत्यजों' के बनवाये हुए कुओं आदि पर सब लोग नहा-धो सकते और पानी पी सकते हैं, तो तर्क से यह सिद्ध हो जाता है, कि 'अन्यों' अर्थात् सवर्णों के कूपादि पर अंत्यज भी नहा-धो सकते और पानी पी सकते हैं।

पराशर का एक ऐसा श्लोक मिलता है, कि जिसमें अन्य वस्तुओं के साथ-साथ जल के सम्बन्ध में भी यह कहा है, कि उसे स्पर्शदोष नहीं लगता—

गौर्वह्निर्मानवच्छाया जलमश्वो वसुन्धरा।
विप्रुषो मक्षिका वायुर्न दुष्यन्ति कदाचन॥

प्रथा का अन्धानुसरण करने के बजाय अगर सनातनी सचमुच शास्त्रों पर चलें तो यह एक ही श्लोक कुओं के प्रश्न को सदा के लिए सुलझा देता है; साथ ही, दक्षिण भारत के उन और सवर्ण ब्राह्मणों के इस दावे को भी यह रद कर देता है, कि जो अन्त्यजों की परछाईं तक को अपवित्र मानते हैं और जो उन बेचारों को सार्वजनिक सड़कों तक पर नहीं चलने देते।

अगर सनातनी शास्त्रों के कथनानुसार चलने को तैयार हों तो उनके लिए नीचे कुछ ऐसे प्रमाण दिये जाते हैं कि जिनसे स्पष्ट रूपेण पानी का यह कष्टकर प्रश्न हल हो जाता है:—

भाण्डस्थं धरणिस्थं वा पवित्रं सर्वदा जलम्।
—यमस्मृति

भूमिष्ठमुदकं शुद्धं शुचि तोयं शिलागतम्।
शुद्धं नदीगतं तोयं सर्वदैव तथाकरः॥
—शंखस्मृति, १२–१३

महाजलसमीपेषु महाजनवरेषु।
अग्न्युत्पाते महापत्सु स्पृष्टास्पृष्टिर्न विद्यते॥
—स्मृत्यर्थसार

अब तो 'हरिजन-सेवक' के सभी पाठकों को विदित होगा, कि गुजरात-हरिजन-सेवक-संघ के मंत्री श्री परीक्षितलाल मजूमदार को उपस्थित एक कोर्ट ने किस प्रकार अपमानित किया था। उनका कसूर इतना ही था कि एक 'परब' (संस्कृत प्रपा; हिंदी प्याऊ) के कोठे से उन्होंने पानी पी लिया, और फिर वे हरिजन-सेवक भी हैं। परन्तु स्मृतियां कहती हैं, कि 'प्रपा' को तो स्पर्श-दोष लग ही नहीं सकता—

प्रपालये तथाऽरण्ये स्पर्शदोषो न विद्यते।

अब सार्वजनिक उपासना-स्थानों की बात लीजिए। शिव-पुराण में लिखा है कि बिना किसी भेद-भाव के प्रत्येक मनुष्य को सुप्रसिद्ध द्वादश ज्योतिर्लिंगों के दर्शन करने का अधिकार है—

हीनयोनौ यदा जातो ज्योतिर्लिङ्गं च पश्यति।
तस्य जन्म भवेत्तत्र विमले सत्कुले पुनः॥
म्लेच्छो वाप्यन्त्यजो वापि षण्ढो वापि मुनीश्वराः।
द्विजो भूत्वा भवेन्मुक्तस्तस्मात्तद्दर्शनं चरेत्॥

स्कन्दपुराण के अनुसार तो श्वपच भी श्री रामेश्वर महालिङ्ग का दर्शन कर सकता है। स्कन्दपुराणने तो सर्वसाम्य की यह डिंडिम-घोषणा कर दी है, कि 'सब एक समान हैं, न कोई किसी से छोटा है, न कोई किसी से बड़ा।' कहा है—

न न्यूना नाधिकाश्चस्युः किन्तु सर्वे जनाः समाः
रामेश्वरमहालिङ्गं यः पश्यति सभक्तिकम्॥
न तेन तुल्यतामेति चतुर्वेद्यपि भूतले।
रामेश्वरमहालिङ्गे भक्तो यः श्वपचोऽपि सन्॥

ब्रह्मपुराण में लिखा है, कि पुरी में भगवान् जगन्नाथजी के अर्चन-पूजन में सभी जातियों के लोग भाग ले सकते हैं—

ब्राह्मणैः क्षत्रियवैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः।
अनेकशतसाहस्रैर्वृतं स्त्रीपुरुषैर्द्विजाः॥
गृहस्थाः स्नातकाश्चैव यतयो ब्रह्मचारिणः।
स्नापयन्ति तदा कृष्णं मंचस्थं सहलायुधम्॥

विष्णु भगवान् के दोलोत्सव में, पद्मपुराण के अनुसार, सभी जातियों के लोग भाग ले सकते हैं—

आन्दोलनं ततः सर्वैः कर्त्तव्यं च विशेषतः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा याश्चान्यजातयः ॥

बृहस्पतिने कहा है कि तीर्थस्थानों तथा यात्रा-स्थानों में अस्पृश्यता के लिए स्थान नहीं—

तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे राष्ट्रविप्लवे ।
ग्रामदाहे प्रवासे च स्पृष्टास्पृष्टिर्न विद्यते ॥

स्मृत्यर्थसार में तो 'देवगृह' शब्द स्पष्टतः रख दिया गया है—

संग्रामे हट्टमार्गे च यात्रा देवगृहेषु च ।
अग्न्युत्पाते महापत्सु स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति ॥

और हारीतने तो यहाँतक कहा है, कि यदि कोई मनुष्य वासुदेवोत्सव में सम्मिलित होकर 'स्पर्श की आशङ्का' से स्नान करता है तो वह रौरव नरक को जाता है—

उत्सवे वासुदेवस्य यःस्नाति स्पर्शशंकया ।
पतितः स नरश्चैव रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

वालजी गोविन्दजी देसाई

रेगिस्तान में भी छूतछात !

सिंध ही एक ऐसा प्रांत है जहाँ अस्पृश्यता कम-से-कम घातक रूप में है। असल में अस्पृश्यता यहाँ बाहर से आई है, वह सिंध की अपनी चीज़ नहीं है। यह तो सभी लोग जानते हैं कि सिंध की जनसंख्या में आज ७५ प्रतिशत मुसलमान हैं—संभव है, कि किसी ज़माने में सिंध में अछूतों की काफ़ी बड़ी संख्या रही हो, जो सैकड़ों वर्ष के मुस्लिम शासन के समय मुसलमान हो गये हों, या बाहर से आकर यहाँ बस गये हों। आज यहाँ केवल लार (निचली भूमि) और थरपारकर ज़िले में आपको अस्पृश्य मिलते। और लार के टंडो मुहम्मद खाँ परगने में तथा थरपारकर की थर तहसील में ही हरिजनों की सब से बड़ी संख्या है।

ओड, कोली, मेघवार और भंगी ये चार जातियाँ यहाँ हरिजनों की मुख्य हैं। ज़्यादातर ये जातियाँ दुर्भिक्ष के संवत्सरों में यहाँ आईं और फिर यहीं बस गईं। मेघवार और भंगी तो काठियावाड़ से भी सिंध में पहुँचे। किसी ज़माने में सिंध में मुसलमान भंगी थे और शायद गाँवों में अब भी कुछ हों। पर सिंधी और पंजाबी भंगी तो अब कहने को ही हैं। सिंध एक ऐसा अजीब प्रांत है, जहाँ न जाने कहाँ-कहाँ के लोग आ बसे और सिंधी हो गये। पंजाबी, पुरबिये, मारवाड़ी, कच्छी, काठियावाड़ी और पारसी तो हैं ही, इनके अलावा अरबी, ईरानी, अफ़ग़ान, बलूची और हबशी आदि जातियोंने भी सिंध में अपना डेरा जमा लिया है, हालाँकि दुर्भाग्य से आज यहाँ किसी का न अपना घर है न द्वार। यहाँ के हरिजन भी, जो भिन्न-भिन्न बोलियाँ बोलते और अनेक तरह के पहनावे पहनते हैं, अभीतक सिंध को अपना 'स्वदेश' नहीं बना सके, यद्यपि वे यहाँ के लिए अब उतने अजनबी नहीं रहे।

मगर थरपारकर का थर तालुका तो निस्संदेह हरिजनों का अपना देश कहा जा सकता है। करीब-करीब सभी हरिजन जैसलमेर या मारवाड़ से पुराने ज़माने में इधर आये और यहीं के हो गये। ये लोग 'ढटकी' बोलते हैं, जो सिंधी और मारवाड़ी भाषा से बनी है। और राजपूताना और काठियावाड़ में अस्पृश्यता का जैसा घृणित और वाहियात रूप मौजूद है, थर परगने में भी आपको वही रूप देखने को मिलेगा। ठाकुरों और माहेश्वरियों को भला कौन नहीं जानता कि वह कैसे लकीर के फ़कीर होते हैं, वे अपनी पुरानी आनबान और रीतिरिवाज में एक मात्रा भी इधर से उधर नहीं करना चाहते। इन लोगों की पुरखों से चली आई परिपाटियों के अजीब-अजीब रूप देखने में आते हैं। उनकी मनोवृत्ति समझने के लिए ज़रा सिंध की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान लेना ज़रूरी है।

सचमुच यह आश्चर्य की बात है कि सिंध एक रेगिस्तान समझा जाता है। असल में तो वह नखलिस्तान है। यह तो इस प्रांत के 'सिंध' नाम से ही प्रगट होता है। हमारे भारतवर्ष का 'हिंद' या 'इंडिया' नाम शायद सिंध के ही कारण पड़ा हो। मगर सिंध के 'थर' भाग को हम मरुभूमि कह सकते हैं। यहाँ पैदावार तो कुछ होती-हवाती नहीं, पर है सिंध का सब से सुन्दर भाग यही। थर में जहाँतक नज़र पसारिए, बालू-ही बालू दिखाई देगी। कहते हैं, कि किसी समय यहाँ पानी का समुंदर ठिला हुआ था। पर समुद्र तो हट गया, और रेत की यह अपरंपार माया वह छोड़ गया। आज जल की तरंगों पर नहीं, बालू की भारी-भारी हिलोरों पर आप अपनी दृष्टि को वहाँ नचा सकते हैं। उपजाऊ भूमि का एक टुकड़ा भी कहीं नज़र न आयगा। चारों ओर रेत के ऊँचे ऊँचे टीलों का जाल-सा गुँथा दिखाई देगी। 'रेगिस्तान के जहाज़' उष्ट्रराज की ही छाती को धन्य कहिए, जो बालू की उन दुर्गम पहाड़ियों को किसी तरह पार कर सकते हैं। ऊँट न हो, तो यहाँ का सारा आवागमन ही रुक जाय। ऊँट हरिजन भी रखते हैं और दूसरे लोग भी। पर हरिजन ऊँटों को हिंदू सवारी नहीं मिल सकती। ऊँट में कोई दोष नहीं, दोष तो हमीं में है! पर ऊँट की नकेल पकड़कर वह आगे-आगे चल सकता है। नकेल पकड़ सकता है, पर ऊँट को हाथ नहीं लगा सकता। अगर ऊँट पर खाने-पीने की चीज़ें रखी हों, तो हरिजन ऊँटों के नकेल पकड़ने से वे सब नापाक हो जायँगी, नकेल की रस्सी के द्वारा अस्पृश्यता की बिजली खाने-पीने की चीज़ों को जा पकड़ेगी! हिंदुओंने शायद बहुत पहले विद्युत का आविष्कार कर लिया था! इसलिए कमबख्त हरिजनों को मुख्यतया मुसलमान सवारियों पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

मरुभूमि में जल सुलभ कहाँ? बड़े गहरे कुएँ खुदाने पड़ते हैं। १०० फुट की गहराई में अगर पानी निकल आया तो बड़े भाग्य। यों औसतन १५० फुट पर पानी निकलता है। बहुत-से कुएँ तो ३०० फुट तक की गहराई के हैं, और कुछ तो मैंने ५०० फुटतक के भी देखे हैं। मनुष्य हो या पशु, जीवन की केन्द्र-वस्तु यहाँ कुआँ ही है। २०००) से लेकर ८०००) तक कुआँ खुदवाने में यहाँ खर्च हो जाते हैं। और इसकी भी कोई गारंटी नहीं कि पानी अच्छा ही निकले। फीका, खारी और मीठा भी पानी अक्सर इन पातालतोड़ कुओं में निकलता है। इन कुओं से फिर पानी खींचना कोई आसान काम नहीं। दो-दो और कभी-कभी चार-चार ऊँटों की डाक लगाकर पानी खींचते हैं। कभी-कभी दो जोड़ गधों से भी यह काम किया जाता है। मगर गधों को यहाँ कोली और भंगी ही रखते हैं। ऊँची जाति के हिन्दू इस-लिए गधे को जोतकर पानी नहीं खींचते कि कहीं उस गन्दे जानवर की गन्दगी १०० फुट की दूरी से उनके शुद्ध जल को अपवित्र न करदे! ऊँट स्वच्छ होता है। पर जब पानी कुण्ड में भर जाता है, तब हर एक जाति भिन्न-भिन्न घाट से पानी

भर-भरकर ले जाती हैं। जो सबसे नीच जातियाँ मानी जाती हैं, उन्हें सबसे पीछे पानी भरने को मिलता है। अगर किसी बरसाती पोखरे में पानी भरा हुआ हो तो उसमें से पहले और लोग भरेंगे, हरिजनों को अपने घड़े लिए हुए घंटों खड़ा रहना पड़ेगा। बरसात के दिनों में बालू की पहाड़ियों के बीच बीच खोहों में पानी जमा हो जाता है, और इन पोखरों से ही लोग पानी भरते हैं। उन दिनों कुओं से कोई पानी नहीं भरता, क्योंकि वह ज़्यादा खर्चीला पड़ता है। आदमी और जानवर सब इन पोखरों से ही अपना निस्तार करते हैं। मैंने अपनी आँखों से भैंसों को इन पोखरों में लोटते हुए देखा है। झुण्ड-की-झुण्ड गायें वहाँ पानी पीतीं और पोखरे मथाती हैं। गधे और ऊँट भी वहाँ पानी पीते हैं। पोखरे भला इस हालत में साफ़ कहाँ रह सकते हैं। तमाम चहला-ही-चहला मच जाता है और पानी में हरी-हरी काई हो जाती है। फिर भी लोग कुएँ के खर्चीले जल के मुक़ाबले में इस सड़े हुए दुर्गन्धयुक्त हरे पानी को ही पसंद करते हैं। पर बेचारे हरिजन तो ऊँट, भैंस और गधे से भी गये-बीते हैं। इन बदबूदार गढ़ों से भी वे सबके साथ अपने घड़े नहीं भर सकते। मेघवार का बनाया हुआ चमड़े का चरसा और चमड़े की रस्सी सवर्ण हिंदुओं की दृष्टि में स्वच्छ हैं, पवित्र हैं, पर मेघवार तो मेघवार ही है—उसे छूकर भला वे अपना धरम कहीं नष्ट कर सकते हैं?

पर सिंध की यह मरुस्थली भी बरसात के दिनों में हरी-भरी खूब तृण-संकुल हो जाती है—वही मरुस्थली, जहाँ ग्रीष्म ऋतु में प्रचण्ड आग बरसती है, और सुन्दर शीतल चाँदनी रात में ही लोग ऊँट पर यात्रा कर सकते हैं। बरसात में पशु वहाँ चर-चर कर खूब मुटाते हैं। जल के दुःखद अभाव की पूर्ति यहाँ का शुद्ध घी कर देता है। थर का घी प्रसिद्ध है, और होता भी प्रचुरता से है। पशुओं और घी का व्यापार दूसरे प्रान्तों के साथ भी ख़ासा अच्छा होता है। यहाँ के भील बड़े ही दरिद्र हैं। बेचारों के पास गधे तक नहीं। पर मेघवारों की बात और है। अच्छे खाते-पीते मेघवार गायें रखते हैं और उनका घी बाज़ार में बेचते हैं। पर घी को ये लोग सीधे बनिया के हाथ नहीं बेच सकते—मुसलमान के ज़रिये बेचते हैं। और बनिया उस घी को चोरी से नहीं, बल्कि उजागर ख़रीदता है। पर मुसलमान के द्वारा मेघवार का घी ख़रीदने में वह कोई दोष नहीं मानता। स्वच्छता और धार्मिकता की और बातें भी ऐसी ही समझिए। असल में, ये सब समझ में न आनेवाली रीतिरवाजों की ही विचित्र-विचित्र पहेलियाँ हैं।

आश्चर्यजनक तो है यहाँ का यह सनातनी स्वच्छता या पवित्रता का आग्रह। जहाँ पानी ही नहीं, फिर वहाँ स्वच्छ के रहें? एक घड़ा पानी के जहाँ दो पैसे देने पड़ते हों—एक पैसा भराई का और एक पैसा ढुलाई का, जहाँ शायद ही कभी पानी अघाकर पीने को मिलता हो, जहाँ स्त्रियाँ नित्य दो लोटे पानी से, और पुरुष सप्ताह में शायद दो बार तीन लोटों से नहाते तो क्या किसी तरह देह अँगोछते हों और उसी में अपने कपड़े-लत्ते भी भिगो लेते हों और मुसलमान जहाँ चार महीने में एक दिन नहाते हों, जहाँ लोग बालू के टीलों पर रहते हों और बस्ती के साथ-साथ शायद थोरी बालू जिनके पेट में भी चली जाती हो, जहाँ अनाज मुश्किल से मिलता हो और पानी का पूरा कसाला हो, जहाँ गंदगी और गन्दगी का साम्राज्य हो, वहाँ, उस मरुदेश में अस्वच्छता के आधार पर अस्पृश्यता का मानना एक ऐसी कठिन पहेली है, कि जिसे कोई विद्वान् सनातनी ही खोले तो खोल सकता है।

किन्तु हरिजनों के लिए तो इसी मरुभूमि में बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। यह तीन अच्छे गृह-उद्योगों का क्षेत्र है, जिसमें एक उद्योग तो चल ही रहा है और दो का भविष्य हमें महान् मालूम होता है। ऊन की कताई-बुनाई यहाँ बहुत होती है। बिना धुली और बिना कंघी की हुई ऊन काफ़ी सस्ते भाव पर कराची भेज देते हैं, जहाँ से वह लद-लदकर विदेशों को चली जाती है। यहाँ के ऊनी कम्बल कुछ तो यहीं काम में आ जाते हैं और कुछ बम्बई और युक्तप्रान्त में बिक जाते हैं। गढ़रो के गाँधी-आश्रम में हर साल २००००) के कम्बल तैयार होते हैं। इस उद्योग के विशेषज्ञ यदि इधर ध्यान दें तो यह काफ़ी तरक्की कर सकता है। कम्बल मेघवार बुनते हैं और इसीसे वे रोटी-भाजी से एक तरह से सुखी हैं। ऐसे दो तीन आश्रम यहाँ और खुल जायँ, तो जो हज़ारों मन ऊन हरसाल विलायत भेज दी जाती है वह सब देश में ही खप जाय और सैकड़ों बेकार मेघवारों को काम भी मिल जाय। थर में जो भील लोग हैं उनके न घर है न द्वार। ये एक तरह से फिरंदर लोग हैं। सिवा मवेशी गायों के इनके पास और कुछ नहीं। कहीं मजूरी लग गई तो कुछ पैसा कमा लिया, नहीं तो फिर चोरी की। भीलों की यह हालत है। अगर यह ऊन का उद्योग इधर अच्छे पैमाने पर चल निकले तो उसमें ये फिरंदर भील भी लग सकते हैं और इनका जीवन सुधर सकता है। उमेरकोट, छाछो और पिथोरो में चमड़े के छोटे छोटे कारख़ाने बड़े अच्छे खुल सकते हैं। आज तो यहाँ का सारा चमड़ा बाहर भेज दिया जाता है। चमड़ा तो यहाँ है ही, मजूरी भी सस्ती है और चमड़ा पकाने की चीज़ें भी काफ़ी हैं। कमी है तो सिर्फ़ पूँजी और व्यवस्था की। तीसरा उद्योग घी और मक्खन का यहाँ अच्छा चल सकता है। सिंध में, जहाँ कि तेल खाने का रवाज बिल्कुल ही नहीं, वहाँ भी आज मिलावटी घी शुद्ध घी के नाम पर धड़ल्ले से बिक रहा है। मीरपुर ख़ास में तो एक अच्छी डेरी खोल दी जाय और थर में घी ख़रीदने की ठीक-ठीक व्यवस्था हो जाय तो यह धंधा बड़ा अच्छा चल सकता है। ये सब उद्योग छोटे छोटे घरेलू पैमाने पर भी चल सकते हैं और कारख़ानों के बड़े पैमाने पर भी। इन उद्योगों में हज़ारों हरिजनों को काम मिल सकता है। माना कि सिंध के इस भाग में सबसे गहरा अस्पृश्यता का दाग़ लगा हुआ है, पर हरिजनों की आर्थिक उन्नति के लिए भारतभर में यही एक सब फलदायक कल्पतरु है।

'हरिजन' से] एन० आर० मलकानी

सस्ता-साहित्य-मण्डल का साहित्य

'हरिजन-सेवक' के जो ग्राहक सस्ता-साहित्य-मण्डल से प्रकाशित ५) की पुस्तकें एकमुश्त ख़रीद लेंगे, उन्हें मण्डल की पुस्तकें पौने मूल्य में मिलेंगी। इसके अलावा वे मण्डल के भी स्थायी ग्राहक समझे जायेंगे। आशा है कि प्रत्येक ग्राहक इस सुविधा का अवश्य लाभ उठायेंगे।

मैनेजर—सस्ता-साहित्य-मण्डल

नया बाज़ार, दिल्ली।

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ७ दिसम्बर, १९३४

यंत्र क्यों नहीं ?

एक बहिन, जो अखिल भारतीय ग्रामउद्योग-संघ स्थापित होने की बात सुनकर उत्साह में आ गई थी, मेरा प्रारम्भिक कार्य-क्रमविषयक लेख पढ़कर लिखती है :--

"ओखली-मूसल से चावल कूटने और हाथ की चक्की से अनाज पीसने के काम को पुनर्जीवित करने अथवा उसे उत्तेजन देने के विचार से ही मैं बिचक गई हूँ, और मेरे ग्राम-सेवा-सम्बन्धी सारे उत्साह पर पानी फिर गया है। ग्रामोन्नति की योजना में श्रम बचानेवाले यंत्रों से लाभ न उठाना तो मुझे समय और शक्ति का भयंकर अपव्यय ही मालूम देता है। गांव के लोगों को और उनके साथ ग्राम-सेवकों को अगर ओखली और चक्की लेकर बैठना पड़ा तो उन्हें ग्राम-सुधार के काम के लिए शायद ही कुछ फुर्सत मिलेगी। यदि फिर वही ओखला-चक्की का पुराना रोना आरम्भ किया गया, तो शुरू में तो जोश में आकर कुछ पुरुष इस काम को करेंगे, पर अन्त में इस सब कुटाई-पिसाई के काम का भार हम स्त्रियों पर ही आकर पड़ेगा, और हमने अबतक जो थोड़ी-बहुत अपनी प्रगति की है उसे इस काम से धक्का पहुँचेगा।"

इस दलील के मूल में एक तरह का मिथ्याहेतु, अर्थात् भ्रम में डालनेवाला विचार है। यह तो यहां प्रश्न ही नहीं, कि मेहनत बचानेवाले यंत्रों से लाभ न उठाया जाय। गांव के लोगों को अगर पेटभर अन्न और तन ढकने भर के लिए वस्त्र मिलते होते तो हाथ से कूटने-पीसने का कोई कारण ही न रहता— इस दलील में यह मान लिया है, कि स्वास्थ्य का प्रश्न कोई ऐसे महत्व का नहीं, अथवा हाथ के और मशीन के पिसे हुए आटे में और हाथ के और मशीन के कूटे हुए चावल में कुछ भी भेद नहीं है। असल में है इससे उलटा। मगर सवाल तो यह है कि गांव के लोगोंने जब अपनी उत्पादन खर्च तक का भी कुटाई-पिसाई का काम छोड़ दिया तब वे निरुद्यमी बन गये। और उस बेकारी के समय का, अपनी उन्नति अथवा दूसरे किसी काम के लिए, उन्होंने कुछ भी सदुपयोग नहीं किया। भूखों मरनेवाला पुरुष या स्त्री फुर्सत के समय ईमानदारी से चार पैसे पैदा कर सके तो उसे पैदा करने में ज़रूर खुशी होगी। जब वे अपना खाली पेट भरने के लिए दो-चार पैसे कमाने में अपना समय लगा रहे हों, उस समय उन्हें यह 'श्रम बचाने' की सलाह दी जाय तो वह उन्हें ज़हर-सी लगेगी। इस बहिन का यह विचार ग़लत है, कि ग्राम-सेवक को गाँवों में कूटने-पीसने का काम करना पड़ेगा। हाँ, यह कला तो उसे ज़रूर सीख लेनी चाहिए, और ओखली, मूसल, चक्की या दूसरे औज़ारों की जानकारी उसे अवश्य होनी चाहिए, ताकि वह उन्हें सुधारने की सलाह लोगों को दे सके, और उनकी मर्यादा भी अच्छी तरह समझ सके। इस बहिन का यह ख़याल भी ग़लत है कि उत्साह की पहली बाढ़ में तो पुरुष पिसाई-कुटाई का यह काम अपनी राज़ी से करेंगे या उनसे करने को कहा जायगा, पर अन्त में तो यह भार हम अबलाओं के ही सिर पर आ पड़ेगा। सच बात यह है, कि कूटना-पीसना स्त्रियों का ख़ास अधिकार था, और लाखों स्त्रियाँ इस प्रतिष्ठित तथा बलवर्द्धक उद्योग के द्वारा स्वयं अपनी जीविका चलाती थीं। आज उन्हें मजबूरन निरुद्यमी होकर रहना पड़ता है, क्योंकि उनमें से अधिकांश का उद्यम जो हमने छीन लिया है उसके बदले में उन्हें फिर कोई दूसरा उद्यम नहीं मिला।

यह बहिन स्त्रियों की की हुई 'थोड़ी-बहुत प्रगति' के सम्बन्ध में जब लिखती है, तब उसके ध्यान में सिर्फ़ शहरों की ही स्त्रियां आती हैं, क्योंकि ग्राम्य जीवन को तो हमारे कार्यकर्ताओंने अब तक छुआ भी नहीं। अधिकांश कार्यकर्ताओं को तो इतना भी ज्ञान नहीं कि इस विशाल देश के सात लाख गांवों में लोग किस तरह रहते हैं। यह शायद ही हम जानते हों कि पौष्टिक आहार और आवश्यक वस्त्र न मिलने के कारण उन बेचारों का शरीर कैसा सत्वहीन हो गया है। और हमें तो इसकी भी ख़बर नहीं कि जो निःसत्व चावल और आटा आज उनका मुख्य आहार है उन्हें खाकर वे और उनके बाल बच्चे अपने बल और बचीखुची चैतन्यता को भी दिन-पर-दिन खोते चले जा रहे हैं।

कूटने पीसने की खातिर ही कूटने पीसने की प्राचीन पद्धति को फिर से चलाने में मुझे कोई पक्षपात नहीं है। इस उद्योग को फिर से चलाने की मैं जो सलाह देता हूं उसका कारण यह है कि जो लाखों-करोड़ों ग्रामवासी निरुद्यमी हो गये हैं उन्हें काम धन्धे में लगाने का कोई दूसरा मार्ग है ही नहीं। मैं यह मानता हूँ, कि अगर हम आर्थिक सङ्कट के इस दिन दिन बढ़ते हुए भारी बोझ को दूर न कर सके तो गांवों का उद्धार होना असम्भव है। इसलिए ग्रामवासियों को उनके अकारथ में जाते हुए समय के सदुपयोग की सलाह देना ही ठोस ग्राम-सेवा है। इस पत्र लिखने वाली बहिन से और उसीके जैसे विचार की दूसरी बहिनों से मेरा यह निवेदन है कि वे कुछेक गांवों में जायं और वहां ग्रामवासियों के साथ कुछ दिन रहें व उन्हीं की तरह रहने का प्रयत्न करें। उन्होंने अगर ऐसा किया तो यह बात तुरंत उनको लक्ष में आ जायगी कि मेरी दलील की नींव कितनी मज़बूत है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

सत्य भगवान्

रामकृष्ण जरथुस्त बुद्ध जिन ईसा और मुहम्मद भी;
कन्फ्यूसियस आदि पैग़म्बर तीर्थङ्कर अवतार सभी—

तेरी करुणा के भूखे थे, थे समस्त तेरे चाकर;
अखिल जगत् चलता है तेरी ही करुणा से करुणाकर !

श्रद्धा का अवलम्ब, ज्ञान का मर्म, वृत्त का जीवन तू;
जन-समाज का मेरुदंड तू, धर्मकोष-गृह का धन तू।

पक्षपात का नाम न रहता जहाँ पड़े तेरी छाया;
अंधकार में गिरता है वह जिसने तुझे न अपनाया।

सब धर्मों का सार, जगत् का प्राण, सब सुखों का आकर;
कर मन में निवास, हो जिससे अमलत्राण हे करुणाकर !

दरबारीलाल

अति पाण्डित्य

जिन लोगोंने संस्कृत सीखी नहीं है, केवल शुरूआत है, शुद्ध लेखन के सम्बन्ध में उनका यह ख़याल-सा बन जाता है कि अधिक-से-अधिक संयुक्ताक्षरों, समासों, अनुस्वारों और अपरिचित शब्दों का प्रयोग ही शुद्ध-लेखन है। ऐसा करते हुए वे बहुधा अति संस्कृत हिज्जों और शब्द प्रयोगों का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, 'सांवल' के बदले 'श्यामल' 'बाप' के बदले 'बाप' 'नरक' के बदले 'नर्क', 'बामन' के बदले 'बा मू.', 'उत्तर' के स्थान पर 'प्रत्युत्तर', 'देश-परदेश' के स्थान पर 'देश-प्रदेश' और 'रुक्मिणी' के स्थान पर 'रुक्मणी' आदि प्रयोगों का उल्लेख किया जा सकता है। 'जय राम रमा-रमन शमन'—जैसी संस्कृत प्रतीत होनेवाली रचनाएँ सभी प्राकृत भाषाओं में अलंकार-रूप मानी जाने लगी हैं, और इस ढंग की कविता लिखने में लोग गौरव का अनुभव करते हैं। लेकिन यह भाषा का अति पाण्डित्य है। यह हम से सावधानी के साथ भाषा का प्रयोग करने का भाव पैदा करके, जान बूझ कर हम से भाषा की भूलें करवाता है।

तथापि यह अति पाण्डित्य अपेक्षाकृत निर्दोष है। एक दूसरे प्रकार का अति पाण्डित्य भी होता है, जो हम में यह विश्वास-सा पैदा करता है कि हम सावधानी के साथ तर्क कर रहे हैं, पर जो वास्तव में हम से सावधानी के साथ तर्क की भूलें कराता है। अति पाण्डित्य के ये तर्क मनुष्य को उसी की बुद्धि के जाल में फँसा देते हैं। आज हम ऐसे ही एक दूषित तर्क का यहाँ विचार करेंगे।

"नीति अनीति, धर्म-अधर्म, सत्य असत्य, चोरी-अचोरी आदि से सम्बन्ध रखनेवाले विचार किन्हीं स्वतन्त्र सिद्धान्तों पर निर्भर नहीं होते, बल्कि शासकों, सत्ताधारियों और समाज की रूढ़ियों आदि पर वे निर्भर करते हैं। हो सकता है कि जो वस्तु आज या इस जगह नीति कही जाती है, वह कल किसी दूसरी जगह अनीति समझी जाय। देहाती गँवार की दीनता और अज्ञान से लाभ उठा कर उसे लूटनेवाला साहूकार चोर नहीं माना जाता, हालाँकि वह चोरी तो करता ही है; जबकि आफ़त का मारा कोई ग़रीब आदमी यदि उसकी कोठी में हाथ डाल कर थोड़ा अनाज ले लेता है, तो वह चोर समझा जाता है, परन्तु यह स्पष्ट है कि उसे चोर कहना उसके साथ अन्याय करना है। यही बात सत्य-असत्य आदि के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। चूँकि ये सब बातें काल्पनिक हैं, और प्रायः स्वार्थी लोगों-द्वारा निश्चित की गई हैं, इसलिए इनके सम्बंध में आग्रहपूर्वक यह कहना कि यही करो, और यह न करो, निरर्थक है। जिस समय जो लाभदायक हो, वही करना चाहिए।"

एक भाईने इस आशय का एक पत्र भेजा है, और मैं मानता हूँ कि उनके इस ढँग से विचार करनेवाले बहुतेरे मनुष्य देश में मौजूद हैं।

अब उनकी दलीलों पर हम विचार करें। उनके कथन में सचाई इतनी ही है कि धर्म, नीति, सत्य आदि के सम्बन्ध की हमारी धारणाओं और विचारों में फिर-फिर परिवर्तन होते रहते हैं। आज हम जिसे सिद्ध वस्तु मानते हैं, कल वही किसी कुछ निराधार कल्पना मालूम होती है। आज जो सत्य प्रतीत होता है, कल वही असत्य लगने लगता है; जिस मैं सच्ची नीति समझता हूँ, दूसरे को वही झूठी नीति लग सकती है; जिसे मैं अहिंसा कहूँ, दूसरा उसी को हिंसा समझ सकता है; या इसके विपरीत भी हो सकता है। इस प्रकार एक ही मनुष्य के मत स्थिर नहीं रहते, न भिन्न-भिन्न मनुष्यों के मत एकसमान होते हैं; और भिन्न भिन्न जातियों में तो बहुत ही मतभेद पाया जाता है।

उनकी दलील में इतना तथ्यांश है। लेकिन तथ्यांश का अर्थ केवल यही है कि कुछ हदतक उनकी यह दलील सच है, सम्पूर्ण रूप से सच नहीं है।

प्रति मिनट एक मील की गति से चलनेवाली रेलगाड़ी में बैठकर रास्ते पर खड़े हुए किसी मित्र से हाथ मिलाने और एक मिनटतक उसे पकड़ रखने की हम इच्छा करें तो हमारा हाथ एक मील लम्बा होना चाहिए। वर्ना या तो हमारा हाथ टूटेगा या मित्र गिर पड़ेगा। इस पर यह कहा जा सकता है कि चलती गाड़ी में किसी चीज़ को छुआ ही नहीं जा सकता; क्योंकि एक मिनट में वह एक मील पीछे रह जाती है। पर रेलगाड़ी के बाहर की चीज़ों के लिए ही यह बात सच है। लेकिन रेलगाड़ी के एक मिनट में एक मील दौड़ने से हमारे सामने की सीट पर बैठे हुए आदमी के साथ व्यवहार करने में हमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती। उसके साथ व्यवहार किया जा सकता है, क्योंकि वह हम से लगकर ही बैठा है।

इसी प्रकार नीति-अनीति और धर्म-अधर्म के विचार एक समाज में अलग-अलग समय में, या अलग अलग समाज में एक ही समय में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। लेकिन एक ही समाज के विचार किसी एक समय में तो निश्चित हो जाते हैं। उनमें हेर फेर, सुधार या घटा-बढ़ी करने की गुंजाइश हो सकती है, और इस प्रकार के परिवर्तन के लिए उसके किसी विशेष अंग पर प्रहार भी किया जा सकता है। लेकिन केवल इसी कारण यह नहीं कहा जा सकता कि किसी समाज में धर्माधर्म या नीति-अनीति के सम्बन्ध में बहुजन-मान्य या सज्जनों-द्वारा स्वीकृत कोई मर्यादा नहीं होती या हो नहीं सकती। जब मर्यादा में परिवर्तन करने का प्रयत्न किया जाता है, और विवेकशील मनुष्यों द्वारा किया जाता है, तब उसका हेतु उस मर्यादा को अधिक शुद्ध बनाने का ही होता है। धर्माधर्म या नीति-अनीति की किसी एक निश्चित मर्यादा के बिना समाज का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। अतएव किसी का यह कहना कि धर्म-अधर्म और नीति-अनीति सब काल्पनिक अथवा सापेक्ष विषयमात्र हैं, उसके महान् विचारभ्रम का ही सूचक है। सापेक्षता का यह सारा वाद वेदान्त के मायावाद की तरह ही भ्रमोत्पादक बन गया है। कोई यह सुनकर कि वेदान्त में दृश्य जगत् केवल भ्रम है, जगत् जैसी कोई वस्तु ही नहीं है, अथवा यह सुनकर कि अग्नि और जल दोनों ब्रह्म हैं अग्नि का पानी की तरह और पानी का अग्नि की तरह व्यवहार करने लगे, तो या तो वह जल मरे या डूब जाय। इसी तरह सापेक्षतावाद की बातें सुन-कर जो नीति छोड़ अनीति करने की भूल करता है, वह अपने को और अपने साथ समाज को भी भस्म करता या डुबाता है।

फिर नीति-अनीति, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य की इस या उस तफ़सील के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मनुष्यों या समाजों में मतभेद हो सकता है; किन्तु इस विषय में तो मतभेद कोई हो

ही नहीं सकता कि धर्म, नीति और सत्य ही अच्छे हैं और अधर्म, अनीति और असत्य बुरे हैं।

चोरों और लुटेरों का संघ भी अपने प्रत्येक साथी से यही अपेक्षा रखता है कि सारी दुनिया को वह भले ठग ले, परन्तु परस्पर एक-दूसरे को न ठगे। इस प्रकार यह संघ भी इस बात को स्वीकार करता है कि धर्म तो सत्य ही हो सकता है। लेकिन वह उसके आचरण के क्षेत्र को बहुत मर्यादित बना देता है। उसकी यह दृष्टि संकुचित है, क्योंकि वह कहता है कि संघ के अन्दर हम धर्म का व्यवहार करेंगे, पर बाहर दुनिया के साथ हम अधर्म बरतेंगे।

मैं ऐसे किसी सिद्धान्त को नहीं जानता कि जिसके अनुसार मित्र के नाते कोई आदमी आपके घर आवे और आपकी अनुपस्थिति में चुपके से आपकी जेब में से घड़ी चुरा ले जाय, या आपकी बहू-बेटी के साथ व्यभिचार कर जाय, और फिर भी उस का यह व्यवहार अनुचित न कहा जाय। इससे यह पता चलता है कि नीति, धर्म और सत्य के लिए कहीं-न-कहीं तो स्थिर निष्ठा होती ही है। हो सकता है कि मनुष्य स्वयं इसके अनुसार व्यवहार करने को तैयार न हो; अतः हमें ऐसे आदमी भी मिल ज़रूर सकते हैं, जो किसी की घड़ी चुराने या किसी स्त्री के साथ अनीति करने में पाप नहीं मानते। वे अपने स्वार्थ के लिए यह भी कह सकते हैं कि सत्य-असत्य जैसी कोई निश्चित वस्तु नहीं है, और उसका मज़ाक उड़ाने को भी तैयार हो सकते हैं। लेकिन यह मज़ाक तो उसी समय हो सकता है, जबतक उनकी अपनी जेब में से कोई चीज़ चुराई नहीं जाती, बल्कि दूसरों की जेब में से उनकी जेब में आती रहती है।

जो यह कहता है कि समाज में ग़रीब लोग अनेक प्रकार से लूटे जाते हैं, और यह लूट चोरी है, वह इतना तो मानता ही है कि चोरी अनीति है। अतएव इस सम्बन्ध में तो उसके मन में कोई शंका ही नहीं होती कि अस्तेय नीति है, और चोरी अनीति है। यहाँ यह बात ज़ोरों के साथ स्वीकार की जाती है कि ऐसी लूट को रोकने का उपाय होना चाहिए, क्योंकि समाज के लिए शुद्ध नीति पर ही चलना आवश्यक है।

इसके विपरीत अगर कोई भूखों मरनेवाला आदमी किसी के खेत या कोठी में से मुट्ठीभर अनाज ले ले, उसपर चोरी का कलंक लगाना, चोरी के नाम पर अन्याय करना है, और ऐसा कहना ठीक भी है। पीनलकोड विधान भी अमुक परिस्थिति में किये गये अपराधों को क्षमा के योग्य मानता है। ऐसे अवसरों पर धर्मशास्त्री भी आपद्धर्म की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं। फिर भी समाजने जिस रूप में ये नियम बनाये हैं, उसमें कभी-कभी अमानुषिक व्यवहार भी घटित हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं। पर इसका तो आशय केवल इतना ही है कि हमें चोरी की विशेष स्पष्ट व्याख्या कर देनी चाहिए। इसका यह अर्थ कभी नहीं होता कि चोरी-अचोरी दोनों सापेक्ष भावनाएँ हैं, और वास्तव में इनमें नीति-अनीति या धर्म-अधर्म की दृष्टि रखने की आवश्यकता ही नहीं है।

फिर सापेक्षवाद का जो अर्थ लगाया जाता है, वह भी भ्रमपूर्ण है। उसमें एक वस्तु को भुलादिया जाता है। और वह यह कि एक ही मनुष्य को अलग-अलग समय में अथवा स्थान में, या भिन्न-भिन्न मनुष्यों को एक ही समय में एक ही विषय पर मतभेद हो सकता है, लेकिन एक ही मनुष्य के एक ही समय और स्थान पर कभी दो मत नहीं होते। कोई वस्तु मुझे एक ही क्षण में सच्ची और झूठी नहीं लग सकती और न मैं उसे उसी क्षण चोरी और अचोरी या नीति और अनीति इन दोनों नामों से पुकार सकता हूँ। इस क्षण में या तो मैं उसे निश्चितरूप से सत्य या नीतिपूर्ण मानता हूँ, या निश्चय ही असत्य आदि मानता हूँ, या इस सम्बन्ध में सशंक हो सकता हूँ। मेरा धर्म मेरे इस क्षण के प्रामाणिक निश्चय के अनुसार आचरण करने में है। इसमें भूल हो सकती है, लेकिन वह भूल प्रामाणिक भूल होगी इस भूल का पता लगते ही उसे सुधारने का मैंने निश्चय कर लिया हो, तो मुझे उससे डरने का कोई कारण नहीं रह जाता। यदि मैं सशंक हूँ, तो मेरा कर्त्तव्य है कि मैं प्रयत्न पूर्वक किसी निश्चित मतपर आने के लिए अधिक विचार करूँ, अधिक ज्ञान प्राप्त करूँ, मुझसे अधिक जाननेवालों की सलाह लूँ और अपना कर्त्तव्य ठहराऊँ। जबतक मैं किसी निश्चय पर न पहुँचूँ, तबतक मेरा कर्त्तव्य यह होगा कि सज्जनों के आचार और उनके मतको मानकर बरतूँ। जब मैं अपना सही निश्चय करलूँ, तब संसार भर में अपने विचार का मैं अकेला ही क्यों न होऊँ, तो भी उसपर डटा रहूँ, और सभी को वैसा ही करने की सलाह दूँ।

इस बात को समझने में किसी को कोई कठिनाई न होनी चाहिए। लेकिन यह समझ में नहीं आती, इसका कारण यह है कि इन दलीलों की तह में आचरण की शिथिलता को क्षम्य मानने की इच्छा काम करती रहती है, या अपने मोह की पूर्ति के लिए कोई मार्ग ढूँढ निकालने की कल्पना रहती है। झूठ बलने या किसी की चीज़ लेने की इच्छा होने पर या किसी स्त्री अथवा पुरुष पर आसक्त होने पर मन में यह मोह उत्पन्न हो जाता है कि थोड़ी झूठ बोले तो क्या हुआ? किसी की चीज़ पर नीयत डोली तो क्या बिगड़ा? अथवा किसी स्त्री या पुरुष के साथ लोकाचार के विरुद्ध बातें हुईं तो क्या हुआ? और तभी सापेक्षतावादकी दलीलें भी याद आती हैं।

वास्तव में तो जब किसी भी व्यवहार का कोई नियम ठहराया जाता है, तब एक ही मनुष्य के एक समय और एक स्थान में सत्य और असत्य के विषय में दो मत नहीं हो सकते। यदि वह शंकित नहीं है, तो सच्चा या झूठा, कैसा भी उसका अपना निश्चित मत होता ही है। जब वह अपने इस मत के अनुसार आचरण करता है, तब सारी दुनिया ही उसकी निन्दा क्यों न करे, वह निश्चिन्त ही रहता है। परन्तु जब वह उसके अनुसार नहीं बरतता तो सारी दुनियाँ के उसकी प्रशंसा करने पर भी हृदय उसका उसे क्षमा नहीं करता। इसमें मनुष्य दूसरे को धोखा दे सकता है, पर अपने हृदय को धोखा नहीं दे सकता।

'हरिजन-बंधु' से] किशोरलाल घ० मशरूवाला

ग़रीबों का नमक

[गांधीजीने अख़बारों के लिए निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित करवाया है, जिसके साथ ही सर जार्ज शुस्टर के साथ उनके पत्रव्यवहार का आवश्यक अंश भी दिया हुआ है। वक्तव्य इस प्रकार है।]

"हरिजन-प्रवास में मुझे मालूम हुआ कि 'इरविन-गांधी-समझौते' के अनुसार नमक-सम्बन्धी जो रियायतें दी गई थीं उनसे लोग काफ़ी मात्रा में लाभ नहीं उठाते। मैंने देखा कि नमक की कमी के कारण ग़रीब लोग कितना कष्ट सहन करते हैं, यद्यपि समुद्र के किनारे कितना ही नमक उनकी आँखों के आगे पड़ा रहता है। मंगलोर में मछुओंने इस बात की तरफ़ मेरा ध्यान आकृषित किया। इसके बाद गत मार्च में मैंने सरकार से पत्र-व्यवहार किया। तत्कालीन अर्थ-सदस्य सर जार्ज शुस्टरने तुरन्त ही मेरे प्रश्नों का उत्तर दिया और मुझे यह जानकर ख़ुशी हुई कि नमक-सम्बन्धी वह धारा अभी रद्द नहीं हुई। आपने और सर जार्ज शुस्टर के बीच के पत्रव्यवहार को मुझे बहुत पहले ही प्रकाशित कर देना था, परन्तु अब मुझे देरी का कारण बतलाने की आवश्यकता नहीं। अब मैं समझौते की उक्त धारा, उसके आधार पर सरकार द्वारा निकाली गई विज्ञप्ति, उसकी शर्तें, तथा पत्रव्यवहार प्रकाशित कर रहा हूँ।

जब इरविन-गांधी-समझौता प्रकाशित हुआ था तो मैंने उसके नमक-सम्बन्धी अंश की टीका करते हुए उसे मानवता के प्रति दयाभाव से भरा बतलाया था। लार्ड इरविनने मानवता के लिए की गई अपील का अच्छा उत्तर दिया था। जो लोग रियायतों से लाभ उठाते हैं वे इस बात का ध्यान रखें कि इससे व्यापारिक लाभ उठाने का प्रयत्न न किया जाय, चाहे वह प्रयत्न प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष और इस धारा का उपयोग केवल उन्हीं हलक़ों में करें, जिनका कि सरकारी विज्ञप्ति में उल्लेख है। कांग्रेसवादी तथा अन्य सभी लोग जो गाँववालों में दिलचस्पी लेते हैं उन्हें इस बात को भली भाँति याद रखना चाहिए कि इन रियायतों से कहाँ-कहाँ लाभ उठाने की आज्ञा उठा ली गई है। कार्यकर्त्ताओं को चाहिए कि वे रियायतें फिर से हासिल करने के लिए वे स्थानीय अधिकारियों से लिखा-पढ़ी करें। किंतु कभी अनुमति माँगे बिना रियायतों से लाभ नहीं उठाना चाहिए।

मो० क० गांधी"

गांधी-शुस्टर-पत्रव्यवहार

गांधीजीने सर जार्ज शुस्टर को पटना से २८ मार्च, १९३४ को निम्न आशय का पत्र लिखा था :—

"इरविन-गांधी-संधि टूटने में मुझे किसी बात से इतना दुःख नहीं हुआ जितना कि ग़रीबों को नमक मुफ़्त में मिलनेवाली शर्त के भंग होने से हुआ है। एक मित्रने मुझे स्मरण कराया है कि इस सम्बन्ध में जो आज्ञा निकाली गई थी उसे फिर वापस नहीं लिया गया। क्या यह सत्य है? आप इस धारा के स्वीकार किये जाने के इतिहास से भली भाँति परिचित हैं। इसे बिलकुल मानवता के प्रति दया के भाव से प्रेरित होकर ही रखा गया था। क्या इसे सविनय अवज्ञा और आर्डिनेंसों से अलग किया जा सकता है? इस सम्बन्ध में दिक़्क़तें दूर करने में बिहार में मुझे कुछ भी कठिनाई नहीं हुई। ग़रीबों की नमक सम्बन्धी रियायतों को फिर से पाने की बात बड़ी महत्वपूर्ण है। इसके लिए मैं सहयोग की आकांक्षा किये बिना रह नहीं सकता। क्या आप इस मामले में मुझे—मुझे नहीं, ग़रीबों को—मदद दे सकते हैं?"

(२)

सर जार्ज शुस्टरने उपर्युक्त पत्र का दिल्ली से ६ एप्रिल, १९३४ को निम्नलिखित उत्तर भेजा :—

"मुझे आपका २८ मार्च का लिखा हुआ पत्र मिला। सत्याग्रह-आन्दोलन फिर आरम्भ करने की वजह से इस धारा में कोई भी ऐसा परिवर्तन नहीं किया गया, जिसके अनुसार नमक इकट्ठा करने और बनाये जाने की रियायत उन स्थानों के निवासियों को सरकारने दी थी, जहाँ कि नमक इकट्ठा हो सकता है, या बनाया जा सकता है। कुछ जगहों में सरकार की इस रियायत का इतना दुरुपयोग हुआ कि उसे उठाना आवश्यक हो गया। परन्तु इस बात की सम्भावना की आशा उस सरकारी विज्ञप्ति में ही करली गई थी, जो २७ मई, १९३४ को सरकारने आज्ञा दी थी।"

(३)

गांधीजीने १४ एप्रिल को पटना से उक्त पत्र का उत्तर निम्न शब्दों में दिया :—

"६ एप्रिल के पत्र के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, जो मुझे हरिजन-दौरे के बीच आसाम में मिला था। मुझे यह जानकर ख़ुशी हुई कि सत्याग्रह-आन्दोलन फिर आरम्भ होने पर इस धारा के अनुसार किये सरकार के निर्णय में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। क्या मैं कार्यकर्त्ताओं को इस सम्बन्ध में सलाह दे सकता हूं? क्या आप मुझे यह बतलाने की कृपा करेंगे कि किन-किन जगहों में यह रियायत उठा लेने की आवश्यकता हुई और फिर यह रियायत कैसे मिल सकती है?"

(४)

सर जार्ज शुस्टरने २० एप्रिल १९३४ को गांधीजी के पत्र का यह उत्तर दिया :—

"यह पत्र मैं आपको १४ एप्रिलवाले पत्र के उत्तर में लिख रहा हूँ। आप इस सम्बन्ध में सरकारी नीति का स्पष्टीकरण कर सकते हैं। मैं साथ ही आपको उन स्थानों की सूची भी भेज रहा हूँ, जहाँ से कि रियायतें वापस लेली गई। परन्तु गाँववाले अगर चाहें तो दरख़्वास्त देकर इन रियायतों को फिर हासिल कर सकते हैं। स्थानीय अफ़सर फिर इन रियायतों को अर्ज़ी देने पर जारी कर सकते हैं। अर्ज़ियों पर निष्पक्ष होकर विचार किया जायगा। नमक-विभाग के अफ़सर सरकार से सलाह लेकर इन अर्ज़ियों पर विचार किया करेंगे।"

रियायतें कहाँ-कहाँ उठाली गईं ?

निम्नलिखित स्थानों से रियायतें उठाली गई हैं :—

उत्तरी भारत—(१) साल्ट रेंज का पूरा डिवीज़न (२) बहादुर खेल सर्कल (कोहाट साल्ट्स डिवीज़न)।

मद्रास—(१) नेलोर ज़िला के गुडूर और सुलुरपेट तालुके; (२) रामनाद ज़िले के रामनाद और मुदुकालुतुर तालुके; (३) कडाप्पा का ज़िला; (४) अनन्तपुर ज़िला; (५) बेलारी ज़िला; (६) करनूल, कोइलकुन्तला, नन्दयाल, सिरवेल, नन्दयाल, धोन और पट्टीकोण्डा तालुके (करनूल ज़िला); (७) सालतोराई-

पुंडी और पट्टुकोटाइ ताल्लुके (तंजोर ज़िला), (८) चिंगलपट ज़िले का चिंगलपट ताल्लुका।

बम्बई—(१) कनारा ज़िले में मानीकोटा साल्ट वर्क्स के चारों तरफ ८ मील का हलका (२) रत्नागिरि ज़िले में शिरोडा साल्ट वर्क्स के चारों तरफ़ एक मील का हलका।

बरमा—(१) थटन ज़िला।

५ मार्च सन् १९३१ को गांधी इरविन समझौते की २०वीं धारा इस प्रकार है:—

"सरकार वर्तमान नमक-कानून-भंग करने के वर्तमान प्रयत्नों का समर्थन किसी प्रकार नहीं कर सकती और न वर्तमान आर्थिक अवस्था में वह नमक-कानून में कोई बड़ा परिवर्तन ही कर सकती है।

परन्तु गरीबों को कुछ लाभ पहुँचाने के ख्याल से सरकार कुछ स्थानों में चालू नियमों को अन्य स्थानों में जारी करने की अनुमति दे सकती है, जिसके अनुसार जहाँ नमक इकट्ठा हो सकता हो या बनाया जा सकता हो वहाँ घरेलू काम के लिए या उन्हीं गांवों के भीतर बेचने के लिए किसी स्थान के निवासियों को नमक बनाने या इकट्ठा करने की अनुमति दे दी जायगी। परन्तु इस प्रकार प्राप्त किया हुआ नमक गाँव के किसी बाहरी आदमी को बेचा नहीं जा सकता और न इसका व्यापार ही किया जा सकता है।"

सरकार की विज्ञप्ति

इरविन-गांधी समझौते की २० वीं धारा का स्पष्ट करते हुए भारत सरकारने २२ मई, १९३१ को यह विज्ञप्ति निकाली थी।

जब से लार्ड इरविन और श्री गांधी के बीच समझौता हुआ है तब से भारत सरकार समझौते के अनुसार गरीबों को नमक इकट्ठा करने और बनाने की रियायत देने के सम्बन्ध में विविध ज़िलों में प्रबन्ध कर रही थी। अब यह प्रबन्ध समाप्त हो गया। समझौते की बातें नीचे लिखे अनुसार लागू की जायँगी:—

(१) २० धारा केवल गरीबों की सहायता के लिए है। इसके अनुसार नमक के हलकों के पास के गाँववाले नमक अपने काम के लिए बना सकेंगे और गाँवों ही में बेच सकेंगे। नमक को खाद और जानवरों और मछलियों को संचित रखने के काम में भी लाया जा सकेगा।

(२) इसके लिए गाँववाले नमक को कड़ाई और क्यारियाँ भी बना सकते हैं।

(३) गाँवों के बाहर व्यापार के लिए नमक न बेचा जाना चाहिए। इसलिए यह भी कहा जाता है कि इस प्रकार का नमक गाड़ियों इत्यादि में न ले जाया जा सकेगा।

(४) इस प्रकार नमक बनाने की अनुमति देदी गई है। इसलिए सरकारी अफ़सर नमक की कड़ाई और क्यारियाँ बनाने में दखल न देंगे।

(५) जहाँ इन रियायतों का दुरुपयोग होगा वहाँ से ये उठा ली जायँगी। जब यह बात मालूम हो जायगी कि किसी गाँव में आवश्यकता से अधिक नमक बनाया या बटोरा जा रहा है तो यह मान लिया जायगा कि वहाँ रियायतों का दुरुपयोग हो रहा है।

गाँवों में साम्प्रदायिकता कहाँ?

[साप्ताहिक 'विश्व मित्र' में श्रीयुक्त 'अज्ञात' महोदयने 'ग्राम और साम्प्रदायिकता' शीर्षक एक लेख लिखा है, जिसका एक उपयोगी अंश हम नीचे देते हैं—सं०]

धार्मिक विभेद तो ग्रामों में नाम को भी नहीं है। जहाँतक धर्म से सम्बन्ध है, देहातों के रहनेवाले पारस्परिक व्यवहार में पढ़े लिखे सभ्य मनुष्यों से श्रेष्ठ हैं। उनके धार्मिक व्यवहार विशुद्ध प्रेम पर स्थापित हैं। धार्मिकता उनके जीवन में तनिक भी कटुता नहीं ला सकी।

मैं एक ऐसे मुस्लिम घर का हाल बतलाता हूँ, जिसकी स्त्रियाँ तक पढ़ी-लिखी हैं और जिसकी गणना गाँव के प्रतिष्ठित घरों में होती है।

उस मुस्लिम घर में एक लड़के को चेचक निकल आई। उसकी बूढ़ी दादीने मालिन को बुलाकर माता की मानता करादी। मांसाहार बन्द हो गया। पूड़ियों का भी बनना बन्द हो गया। प्याज आदि वस्तुओं का भी उपयोग बन्द हो गया। केवल दाल-भात-रोटी का भोजन रह गया। उसी घर के एक लड़केने, जिसकी अवस्था प्रायः अठारह-बीस वर्ष की थी और जो नागरिकों की सभ्यता से भी परिचित हो चुका था, कहा, "अम्मा, तुम यह ढोंग क्या करती हो? शरह के मुताबिक यह नाजायज़ है।" दादीने कहा, "तोबा, तोबा। तुम ऐसा क्या कहते हो? बड़े-बड़े पण्डितों के घर में ऐसा ही होता है, और उनका माता भला करती हैं। ऐसा अब न कहना। माता से माफी माँगो"।

और यह बात मुसलमानों में ही नहीं है। हिन्दू भी ताज़िया पूजते हैं, ताज़ियों के साथ घूमते हैं और मुहर्रम के खेलों में भाग लेते हैं। उन्हें कभी इस बात का ख्याल भी नहीं होता कि मुहर्रम में सम्मिलित होना हमारे धर्म के प्रतिकूल है। वे इसे पारस्परिक व्यवहार समझते हैं। मुसलमान भी कृष्ण-जन्म उत्सव के पश्चात् निकलनेवाले फूलडोल आदि में सम्मिलित होते और प्रसन्नतापूर्वक उत्सव को सम्पन्न करते हैं। दीपावली और होली के उत्सव तो हिन्दुओं और मुसलमान दोनों ही के हो गये हैं। सभी लोग दीपावली में अपने घरों में रोशनी करते हैं। होली तापने भी सभी जाते हैं। सत्यनारायण की कथा होने पर हिन्दू मुसलमानों को आमन्त्रित करते हैं और मौलूद शरीफ़ होनेपर मुसलमान हिन्दुओं को बुलाते व बताशे देते हैं।

अब तनिक अपढ़ देहातियों के अभिवादन का भी नियम सुन लीजिए। यह सभी लोग—हिन्दू और मुसलमान—जानते हैं कि ब्राह्मण सब से बड़े और पूज्य हैं। इसलिये बिना वय का ध्यान किये सभी बड़े छोटे ब्राह्मणों से 'पाँय लागी पण्डितजी' कहते हैं। परन्तु अन्य जातियों में अभिवादन का नियम बहुत ही विचित्र है। यदि हिन्दू गाँव के नाते भतीजा है और मुसलमान चाचा है, तो हिन्दू कहेगा, 'चाचा सलाम।' इसके उत्तर में मुसलमान कहेगा, 'बचा सलाम'; पर अगर मुसलमान छोटा भाई लगता है और हिन्दू बड़ा भाई, तो मुसलमान कहेगा, "भइया जै रामजी की।" उत्तर में हिन्दू भी 'जै रामजी की' कहेगा।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 1369

वार्षिक मूल्य ३॥) (पोस्टेज-सहित)

पता—'हरिजन-सेवक' बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, १४ दिसम्बर, १९३४. [संख्या ४३

विषय-सूची

अहिंसा का स्वरूप

सत्य जिस तरह स्वतंत्र, निरपेक्ष और स्वयं पूर्ण है उस तरह अहिंसा नहीं। यह सृष्टि सत्य के विभिन्न रूपों के सिवा और कुछ नहीं है। यह सब सत्य का ही विकास है। यदि सत्य अपने मूल निराकाररूप और अरूपरूप में रहता तो अहिंसा की कोई आवश्यकता ही न रहती, उसका उदय ही न होता। सत्य तो उस तत्व या नियम का नाम है जो अपने आप में परिपूर्ण है और जिसे रहने या फलने के लिए किसी दूसरी वस्तु के सहारे की आवश्यकता नहीं। किन्तु अहिंसा निष्क्रिय पक्ष में किसी को दुःख न पहुँचाने और सक्रिय पक्ष में प्रत्येक के साथ प्रेम करने की भावना या वृत्ति का नाम है। कोई होगा तभी तो उसे दुःख न पहुँचाने का या उससे प्रेम करने का भाव पैदा होगा; जब कोई था ही नहीं, केवल सत्य ही अपने असली रूप में स्थित था—एक रूप में एकरस था, तब अहिंसा का उदय कैसे हो सकता था? किन्तु सत्य के विकसित और प्रसरित होते ही, भिन्न-भिन्न नाम-रूप धारण करते ही उनका पारस्परिक सम्बन्ध कैसा रहे, यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न हुआ और चूँकि भिन्न-भिन्न नाम-रूप वास्तव में एक ही सत्य का विकास है इसलिए उनमें सम्बन्ध प्रेम, सहयोग और सहिष्णुता का ही हो सकता था—इसी स्वाभाविक भावना का नाम अहिंसा रक्खा गया।

इस प्रकार सत्य यद्यपि निरपेक्ष है और अहिंसा सापेक्ष—दूसरे की अपेक्षा से स्थित—है तो भी जबतक सृष्टि है तबतक उसका अस्तित्व है। जबतक जगत् है और नाम-रूप हैं तबतक अहिंसा बनी ही हुई है। अर्थात् जबतक हम हैं तबतक अहिंसा है। हमारे अस्तित्व और पारस्परिक सम्बन्ध के साथ वह सदा मिली और लगी हुई है।

जब हम मूल पूर्ण और निरपेक्ष सत्य को समझने का यत्न करते हैं तब तो आगे चलकर यह भी मानना होगा कि अहिंसा-भाव सत्य का ही एक अंग या अंश है। वह सत्य से बढ़कर तो हो ही नहीं सकता, बराबर भी चाहे न हो, अंशमात्र ही हो, किन्तु वह सत्य से पृथक् नहीं है, न हो सकता है। यदि वस्तुमात्र और भावमात्र सत्य का ही विकास है तो अहिंसा को उससे पृथक् कैसे कर सकते हैं? फिर जगत् में हम देखते हैं कि और भावों की अपेक्षा प्रेमभाव सबसे प्रबल है। आमतौर पर प्रेम जितना आकर्षित और प्रभावित करता है उतना सत्य नहीं। तब यह क्यों न कहें कि सत्य का आकर्षक और रमणीय रूप ही प्रेम या अहिंसा है। जो हो, इतना अवश्य मानना होगा कि सत्य और अहिंसा का नाता अमिट है और केवल सत्य को पाने के लिए ही नहीं बल्कि जगत् का अस्तित्व ठीक-ठीक रखने के लिए, समाज को सुख-शान्तियुक्त बनाने के लिए, वह अनिवार्य है।

यह तो हुई सत्य और अहिंसा के स्थान और परस्पर-सम्बन्ध तथा महत्व की बात। अहिंसा का मूल तो हमने देख लिया, अब उसका स्वरूप देखने का यत्न करें। सत्य जिस प्रकार एक अनिर्वचनीय तत्व, तथ्य, नियम या व्यवस्था है, उसी प्रकार अहिंसा भी वस्तुतः अनिर्वचनीय है—इसकी प्रतीति और अनुभूति तो हो सकती है, किन्तु परिभाषा नहीं बनाई जा सकती। परिभाषा शब्दों और उसके बनानेवाले की योग्यता और विकास-स्थिति से मर्यादित रहती है। किसीने अपने जीवन को पूर्ण अहिंसा और सत्यमय बना भी लिया तो शब्दशक्ति की मर्यादा के बाहर वह नहीं जा सकता। अपने सम्पर्क से वह अहिंसा और सत्य का उदय आपमें कर सकता है, किन्तु वाणी या लेखद्वारा वह उतनी अच्छी तरह आपको नहीं समझा सकता। यह शब्दों-द्वारा जानने की वस्तु है भी नहीं। किन्तु जहाँतक शब्दों की पहुँच है वहाँतक इसे समझाने का प्रयत्न भी अधिकारी पुरुषोंने किया है।

अहिंसा की साधारण और आरम्भिक व्याख्या यह हो सकती है—किसी को भी अपने मन, वचन, कर्म-द्वारा दुःख न पहुँचाना। यह साधक की आरम्भिक भावना है। इसके बाद की भावना या अवस्था है प्राणिमात्र के प्रति सक्रिय प्रेम की लहर मन में दौड़ाना। इससे भी ऊपर की और अन्तिम अवस्था है जगत् के प्रति अभेद-भाव को अनुभव करना। यह सत्य के साक्षात्कार की स्थिति है। यहाँ अहिंसा और सत्य एक हो जाते हैं। इसीलिए कहते हैं कि अहिंसा सत्य के साक्षात्कार का साधन है। जबतक दो का भाव है तबतक अहिंसा साधनरूप में है, जब दो मिटकर एक हो गये तब अहिंसा लोप हो गई और चारों ओर एक सत्य-ही-सत्य रह गया।

सृष्टि में दो प्रकार के गुण-धर्म पाये जाते हैं—एक कठोर और दूसरे मृदुल। साहस, तेज, पराक्रम, शौर्य आदि कठोर और दया, क्षमा, सहनशीलता, उदारता आदि मृदुल गुणों के नमूने कहे जा सकते हैं। कठोर गुणों में सत्य का और मृदुल में

अहिंसा का भाव अधिक समझना चाहिए। सत्य में प्रखरता और अहिंसा में शीतलता स्वाभाविक है। ये दोनों एक ही सिक्के की दो बाजू की तरह अभिन्न हैं। दुष्टता और क्रूरता जिस प्रकार सत्य की विकृति हैं, उसी प्रकार दब्बूपन, कायरता, अहिंसा की विकृति हैं।

अब प्रश्न रहता है कि एक ओर दुष्टता और क्रूरता तथा दूसरी ओर दब्बूपन और डरपोकपन आया कहाँ से ? और ये भाव उदय भी क्यों हुए ? बुद्धि को तो यही उत्तर देना पड़ता है कि जब सत्यने ही सारी सृष्टि के रूप में विकास पाया है तब दुष्टता, कायरता आदि भी सत्य में से ही पैदा हुए हैं और किसी-न-किसी रूप में वे सत्य के ही साधक या पोषक होते होंगे। यह मान भी लें कि इन दुर्गुणों से और दोषों से समष्टि या सृष्टि या सत्य का कोई हेतु सिद्ध होता होगा, तो भी उस व्यक्ति के लिए तो ये उस काल में सुखकारी नहीं हो सकते। सत्य और समष्टि के राज्य में, सम्भव है, गुण-दोष की भाषा ही न हो; वहाँ तो सब कार्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से परस्पर पोषक ही होते हों, किन्तु साधारण मनुष्य और साधक के लिए तो गुण गुण है और दोष दोष है। सत्य स्वरूप हो जाने पर, सम्भव है, गुण दोषों को पहुँच के बाहर हो जाय, किन्तु तबतक तो गुण-दोष का विवेक रखकर ही उसे आगे बढ़ना होगा। कहने का भाव यह है कि यदि किसी में दुष्टता, क्रूरता और कायरता या दब्बूपन है तो उसे यह मानकर सन्तोष न करना चाहिए कि आखिर इनसे सृष्टि का कोई-न-कोई हित ही सिद्ध होता होगा--बल्कि यह मानना चाहिए कि मुझे ये सत्य और अहिंसा की तरफ नहीं ले जायँगे। जहाँ दुष्टता और कायरता है वहाँ सत्य और अहिंसा की शुद्ध वृत्ति का अभाव ही समझना श्रेयस्कर है। जो सत्यवादी उद्दण्ड हो और अहिंसावादी डरपोक हो तो दोनों को पथभ्रष्ट ही समझना चाहिए। उद्दण्डता दूसरों को दबाती है और कायरता उद्दण्डता से डरती है। दूसरों से दबना और दूसरों को दबाना दोनों सत्य और अहिंसा की मर्यादा को तोड़ते हैं। जो मनुष्य चाहते हैं कि हमारा जीवन पूर्ण, स्वतंत्र और सुखी हो एवं दूसरे के सुख-स्वाधीनता और विकास में सहायक हो उन्हें सत्य और अहिंसा की विकृति से बचकर उनकी शुद्ध साधना के सिवा दूसरा मार्ग ही नहीं है।

हरिभाऊ उपाध्याय

यंत्रों के विरुद्ध युद्ध

बम्बई की कांग्रेस में अखिल भारतीय ग्राम्य-उद्योग-संघ स्थापित करने का प्रस्ताव पास हुआ तब से गांधीजी के पास इस सम्बन्ध के इतने अधिक पत्र आ रहे हैं कि कुछ पूछिए नहीं। कोई पूछताछ करता है, कोई प्रश्न पूछता है, कोई कुछ सूचनाएँ लिख भेजता है और कोई अपनी सेवा समर्पित करने की तत्परता प्रगट करता है। इन पत्रों का उत्तर तो गांधीजी यथासमय देंगे। और संघ की कार्यवाहिनी समिति, जो कुछ ही दिनों में स्थापित होनेवाली है, इन सब सूचनाओं के सम्बन्ध में ध्यानपूर्वक विचार करेगी। पर एक प्रश्न तो बारबार पूछा जा रहा है। मुझ से भी कितने ही लोगोंने यह प्रश्न पूछा है। इसलिए इस प्रश्न की चर्चा तो तत्काल की जा सकती है। एक सज्जन ने मुझ से कहा, "गांधीजीने हाल के अपने एक लेख में यह कहा है कि 'हर एक मिल मज़दूर गाँवों में वैसा ही काम करनेवाले दस मज़दूरों के जितना काम करता है, और इस तरह वह अपने कितने ही देशभाइयों को बेकार बना देता है।' पर इस तरह तो प्रत्येक ही यंत्र कुछ मनुष्यों को बेकार बना देता है। यंत्र की सहायता के बिना केवल हाथ से सीनेवाले दरज़ी की अपेक्षा सिंगर मशीन बहुत जल्दी और बहुत कम खर्च में कपड़े सीती है। मैं नहीं जानता कि इन सीनेवाली मशीनों की बदौलत कितने दरज़ी बेकार हो गये हैं। पर गांधीजी का ग्राम्य-उद्योग-संघ क्या सिंगर मशीनों के विरुद्ध भी जंग छेड़ेगा? आपने आटा पीसने-वाली और चावल कूटनेवाली मिलों के विरुद्ध तो युद्ध छेड़ने की बात ज़ाहिर कर ही दी है। तो फिर यह क्यों नहीं साफ़-साफ़ कह देते कि आप लोगों का यह युद्ध *यंत्रमात्र* के विरुद्ध है ?"

इस प्रश्न में काफ़ी विचार-दोष है और प्रश्नकर्त्ता यंत्रों के सम्बन्ध में निर्णय करने में, मालूम होता है, जल्दबाज़ी की है। मिल मज़दूरने गाँवों के मज़दूरों की रोज़ी छीन ली, यह दलील गाँवों के दरज़ी पर लागू नहीं होती; क्योंकि सीने की मशीन मनुष्य की मज़दूरी को हटाकर उसका स्थान नहीं लेती, वह एक उसे मदद देती और उसको पूर्ति करती है। किन्तु कपड़े की मिलोंने तो देश के एक ऐसे महान् उद्योग को नष्ट कर डाला है, जिससे सारे देश की जीविका चलती थी और जो दरिद्रता और बेकारी को पास नहीं फटकने देता था। जिस यंत्र को सादे से सादा ग्रामवासी काम में ला सके और जो उसकी जीविका में मदद दे, वह यंत्र उपयोगी ही नहीं बल्कि आवश्यक भी है। चरखा भी तो आखिरकार ऐसा ही एक यंत्र है, और कोल्हू भी यंत्र है। इन यंत्रों से उत्पन्न होनेवाले माल की बढ़ोतरी का जितना भी प्रयत्न हो सके उतना अवश्य करना चाहिए।

पर कपड़े की मिलोंने बेकारी और दरिद्रता जहाँ पैदा की है वहाँ चावल और आटे की इन मिलोंने हमारे देश में गरीबी और बेकारी को ही नहीं, बल्कि स्वास्थ्य और व्याधियों को भी जन्म दिया है। गांधीजी इस सम्बन्ध में डाक्टरों और विशेषज्ञों की राय ले रहे हैं और उन्हें आशा है कि ऊपर जो कहा गया है उसे वे अक्षरशः सप्रमाण सिद्ध कर देंगे।

इस बात को तो हम सभी कबूल करते हैं कि इन भारीभारी मशीनों और बड़े-बड़े पैमाने पर चलनेवाले उद्योगोंने अनेक स्थानों पर कला, सुन्दरता तथा बौद्धिक सृजनशक्ति का सर्वनाश कर डाला है।

इसलिए ग्राम्य-उद्योग-संघने यंत्रों के विरुद्ध जो युद्ध-घोषणा की है वह यंत्रमात्र के विरुद्ध नहीं, किंतु केवल उन्हीं यंत्रों के विरुद्ध जो कि गरीबी, बेकारी और बीमारियों को बढ़ा रहे हैं। असल में देखा जाय तो यह युद्ध यंत्रों के विरुद्ध है ही नहीं। इसका ध्येय तो यह है कि जो जीवनदायी उद्योग हमारे हाथ से निकल गये हैं (यहाँ इनके कारणों में उतरने की ज़रूरत नहीं) उन्हें पुनरुज्जीवित किया जाय, और जो भयङ्कर बेकारी हमारे देश में जड़ जमा बैठी है उसे भी जड़मूल से नष्ट कर दिया जाय।

हमारे मुल्क में जो लाखों आदमी आज हाथ पर हाथ धरे दिन काट रहे हैं और बेकारी के ही कारण अनेक यातनाएँ भोग रहे हैं, उन सब कष्टों से उबारने का अमोघ उपाय अगर बड़े-बड़े कारखानों और भारी-भारी मशीनों में देश को पाट देना होता तो गांधीजीने ज़रूर इस अचूक उपाय को आजमाकर देख लिया

होता। पर यह वास्तविक उपाय है ही नहीं, यह बात कुछ तथ्य और थोड़े-से आँकड़ों को देखने से तुरन्त स्पष्ट हो जायगी। भारत की जनसंख्या के विषय की श्री वाडूल की एक पुस्तक (Population Problem in India) का नया संस्करण हाल में प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक में लेखकने उद्योगवाद के परिणामों की बड़ी बारीकी से जाँच-पड़ताल की है। देश में आज जो बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे चल रहे हैं लेखकने उनकी एक तालिका तैयार की है। उसमें सन, चाय और कोयले को उन्होंने नहीं लिया, क्योंकि इन चीज़ों में अब आगे बढ़ने-बढ़ाने की गुंजायश नहीं है, इनका जितना विकास होना था वह हो गया। पर उन्होंने दूसरे उद्योगों के बारे में कुछ अधिक विस्तार से विचार किया है। उनके निकाले हुए परिणाम और आँकड़े अध्ययन करने लायक हैं। १९२१ में सूती कपड़े की मिलों में कुल ४,९२,२८४ मजदूर काम करते थे; और ये मिलें "हिंदुस्तान की कपड़े की ७२ प्रतिशत अर्थात् क़रीब ¾ माँग को पूरा कर सकती थीं। केवल ¼ ही कपड़ा बाहर से आता था। हम यह मान लेते हैं, कि यह उद्योग कुछ वर्षों में इतना बढ़ जायगा कि देश की सबकी-सब सारी ज़रूरत इससे पूरी हो जायगी। इसका यह अर्थ हुआ, कि १,५२,४५४ नये मनुष्यों को और काम मिल जायगा। मतलब यह कि ६,४६,७३८ मनुष्यों से अधिक को यह उद्योग काम नहीं दे सकता।"

दूसरा शक्कर का उद्योग है। योरोपीय महासमर के पहले १४ करोड़ रुपये की शक्कर विदेशों से यहाँ आती थी। श्री वाडूल कहते हैं—"यह उद्योग अब इतना अधिक बढ़ गया है, कि सारे देश की शक्कर की माँग को वह पूरा कर सकता है। और आज दुनिया की मंडियों में शक्कर इतनी अधिक भरी हुई है, कि हिंदुस्तान के लिए यह संभव नहीं कि वह अपने यहाँ की शक्कर विदेशों को भेज सके। इसलिए जितने मनुष्य इस उद्योग में आज काम कर रहे हैं उससे अधिक तो इसमें अब खप ही नहीं सकते।" यह संख्या ९२५०० से अधिक नहीं है।

तीसरा उद्योग है लोहे और फौलाद का। लोहे और फौलाद की चीज़ों की आयात १९३२–३३ में बहुत कम थी—केवल ३,२५,००० टन की ही थी। इसलिए इस उद्योग में भी जितने मनुष्य आज काम कर रहे हैं उससे अधिक तो मनुष्यों की समाई नहीं हो सकती।

तेल के उद्योग के संबंध में श्रीवाडूल यह मानते हैं कि "यह देखते हुए कि बरमा भारत से पृथक् होनेवाला है इस उद्योग का विकास भारत की संपत्ति को बढ़ानेवाला नहीं कहा जा सकता।" काग़ज़ के उद्योग में पिछली मर्दुमशुमारी के अनुसार क़रीब सात हज़ार मनुष्य काम करते थे, और जिन लोगों की राय को कुछ वज़न दिया जा सकता है वे यह मानते हैं कि काग़ज़ के व्यापार में तेज़ी होने पर भी नई-नई मिलें खोलने अथवा मौजूदा मिलों को ही तरक्की देने में अभी न जाने कितने बरस लग जायँगे।" सिमेंट का उद्योग गत १५ साल में बहुत तरक्की कर गया है। इसमें २०—२५ हज़ार आदमी काम करते हैं। पर "इस उद्योग में देश की माँग पूरी करने के लिए अधिक-से-अधिक ३–४ हज़ार ही मनुष्यों की और समाई हो सकती है, क्योंकि बाहर से सिर्फ़ ¼ भाग ही सिमेंट का यहाँ आता है।" दियासलाई के उद्योग में कोई गुंजाइश नहीं, इसमें नये मनुष्यों की समाई बिल्कुल ही नहीं हो सकती। हिंदुस्तान की ज़रूरत लायक दियासलाई यहाँ अब तैयार होने लगी है।"

इसमे अब खादी और विभिन्न ग्राम्य उद्योगों के विकास पर ही हमारी आशा लगी हुई है। खादी श्रीवाडूल का विषय नहीं, इस लिए उन्होंने इस सम्बन्ध में बिलकुल ही विचार नहीं किया; और जिस देश को अपने करोड़ों लोगों के लिए कोई-न-कोई उद्यम ढूँढ़ निकालना है उसे खादी को छोड़कर कोई दूसरा कपड़ा काम में लाना ही नहीं चाहिए, इस दृष्टि से श्री वाडूल विचार करने को तैयार नहीं। नाना उद्योगों को वे एक ही सपाटे में उड़ा देने की बात कहते हुए लिखते हैं—"ऐसे उद्योग, जो थोड़ी बहुत राहत दे सकते हैं, वे ज़्यादातर तो स्थानीय ही होते हैं और उनसे कोई भारी लाभ की आशा नहीं की जा-सकती। बड़े-बड़े कलकारख़ानों की प्रतिस्पर्धा में तो वे कभी टिक ही नहीं सकते; और इसलिए जिन क्षेत्रों में विदेशी माल पहुँच नहीं सकता, उन्हीं क्षेत्रों में इन विभिन्न उद्योगों का माल खप सकता है।"

हमारा ग्राम्य-उद्योग-संघ इस कथन को असत्य ठहराने का दावा करेगा। इस पुस्तक के लेखक की दृष्टि में तो सिर्फ़ साबुन, मोजे, बूट आदि के ही उद्योग हैं; जब कि ग्राम्य-उद्योग-संघ की नज़र में जो नाना ग्राम्य उद्योग हैं उनमें इन उद्योगों का समावेश नहीं होता। उसकी दृष्टि तो ऐसे मरे हुए या मरने-वाले उद्योगों पर है जिनमें किसान तथा कारीगरों की भी समाई हो सके और जिनसे जीविका के साथ साथ आरोग्य-लाभ भी हो। दूसरे देशों में जिस प्रकार विभिन्न उद्योगों के आँकड़े मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में दिये जाते हैं, उस प्रकार अपने यहाँ नहीं दिये जाते। सन् १९११ की इटली की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में लिखा है, कि वहाँ ऐसे १,८८,२४४ उद्योग-केन्द्र थे, जिनमें एक से लेकर पाँच मनुष्यतक काम करते थे। और जीना लास्बोज़ी कहता है कि फ्रान्स यूरोप में "धनाढ्य और समृद्ध देश" है, तो इसका कारण यह नहीं कि उसके बड़े-बड़े उद्योग पराकाष्ठा या सम्पूर्णता को पहुँच गये हैं, बल्कि कारण तो यह है कि "उसने बड़ी बड़ी पूँजी के उद्योग-धन्धों की टक्कर झेली है। उसके जिन बड़े बड़े उद्योगों की आज विदेशी प्रशंसा करने लगे हैं उन से उसने धन पैदा नहीं किया; अर्थसंचय तो उसने कृषकों तथा शिल्पियों के नाना उद्योगों के द्वारा किया है। × × × × × १९२१ में फ्रान्स के ४० लाख वेतन-भोगी मज़दूरों में से उन कारखानों में तो केवल ७७५००० ही काम करते थे, कि जिनमें पाँच सौ से ऊपर मज़दूरों की समाई थी। बाकी के तमाम मज़दूर अनेक छोटे-मोटे उद्योगालयों में ही काम करते थे। इन अनेक 'उद्योगवादियोंने' इन इक्के-दुक्के शिल्पकारियोंने ही फ्रांस को समृद्ध बनाया है, यही उसके उद्योग की सच्ची शक्ति है। अकेला कपड़ा ही फ्रान्स प्रतिवर्ष पन्द्रह अरब सैंतीस करोड़ फ्रांक का विदेशों को भेजता है। इसके अलावा देसावरों को चालीस लाख फ्रांक का जो माल सीधा बेचा गया वह तो अलग ही है। × × × "लायाँ के सुप्रसिद्ध रेशम का अधिकांश कुछ बड़ी-बड़ी मिलों में नहीं बुना जाता; गाँवों के छोटे-छोटे बुनकर ही उसे बुनते हैं। लायाँ के इर्द-गिर्द ऐसे क़रीब चार हज़ार बुनकर हैं, जिनके पास एक

[४०५ पृष्ठ के पहले कॉलम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १४ दिसम्बर, १९३४

आसाम में हरिजन-कार्य

आसाम प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ के मंत्रीने अपने संघ की वार्षिक रिपोर्ट मेरे पास भेजी है, जिस के खास-खास रोचक अंशों को मैं नीचे उद्धृत करता हूँ :—

संघ कुल ७२ हरिजन-पाठशालाएँ चला रहा है, जिनमें, बालक-बालिकाएँ सब मिलाकर, कुल २३६५ विद्यार्थी पढ़ते हैं। इन में २१ तो बालक-बालिकाओं की संयुक्त पाठशालाएं हैं, और ४ पाठशालाएँ केवल बालिकाओं की हैं।

इस वर्ष इन सब हरिजन-पाठशालाओं पर कुल ४४०५॥=) खर्च हुए।

संघने सामान्य सार्वजनिक पाठशालाओं में ३२८ हरिजन बालक-बालिकाओं को भरती कराया।

अंग्रेज़ी मिडिल और हाइस्कूलों में पढ़नेवाले हरिजन-विद्यार्थियों को कुल ८६४॥-) की छात्रवृत्तियाँ दी गईं।

किताबें, स्लेट, साबुन और कपड़े इत्यादि कुल २०६=)॥ के दिये गये।

२३ 'नामघर' (प्रार्थनागृह) हरिजनों के लिए खोल दिये गये।

जोरहट की हरिजन सेवक-समितिने सवर्णों और हरिजनों के लिए एक सामान्य नामघर बनवाया, जिसपर ११५६॥-)। खर्च हुए।

संघने ११ हरिजन अध्यापकों को नियुक्त किया, जिनमें २ अध्यापिकाएँ भी हैं।

डिब्रूगढ़ में भंगियों के लिए एक सहकारी समिति स्थापित की गई। ८१ भंगी इस समिति के सदस्य अबतक हो चुके हैं। ९२०) की रक़म भंगियों को अगाऊ दे दी गई है।

संघने ९ ज़िला-समितियाँ संगठित कीं; और इन समितियोंने हरिजनों की २२ उपसमितियाँ बनाईं।

१६।=) की मुफ्त दवादारू बाँटी गई।

ग़रीब हरिजनों को १० मन कपास और ४० चर्खे सूत कातने के लिए दिये गये।

१३२ गाँवों में संघ के कार्यकर्ताओंने घूम-घूमकर अफीम, शराब आदि मादक वस्तुओं के विरुद्ध प्रचार किया। फलत: १५४ हरिजनोंने शराब न पीने की प्रतिज्ञाएँ कीं, और १५ हरिजनोंने प्रतिज्ञापूर्वक मद्यक पीना छोड़ दिया।

अपने हरिजन मुलाज़िमों, ख़ासकर भंगियों के लिए, अच्छे घर बनवा देने, बस्तियों में नालियाँ खुदवा देने और पानी का ठीक-ठीक प्रबन्ध कर देने के लिए प्रांत की म्यूनिसिपैलिटियों से प्रार्थना की गई, पर दु:ख की बात है कि अबतक एक भी म्यूनिसिपैलिटीने संघ की प्रार्थना पर कोई ख़ास ध्यान नहीं दिया। गौहाटी और डिब्रूगढ़ की म्यूनिसिपैलिटियाँ तो सब से अधिक दोषी हैं।

यह खुशी की बात है कि जगह-जगह घूम-घूमकर काम करनेवाले सेवकों की सेवा-भावना से प्रेरित होकर कुछ गाँवोंने अपनी सड़कें ख़ुद ही बनालीं और अपने तालाबों का कूड़ा-कचरा भी साफ़ कर डाला।

इस साल २४६ गाँवों के हरिजनों की अवस्था की जाँच-पड़ताल की गई, जिसमें हरिजन-परिवारों की अवस्था, उनके धंधों, उनकी अयोग्यताओं और मद्यपान और अफ़ीमख़ोरी आदि के आँकड़े एकत्र किये गये।

संघ के अध्यक्ष श्रीमान् सत्राधिकारी गुरुपुरीय गोस्वामीजीने प्रांत के अनेक मुख्य स्थानों का दौरा किया। चायबाग़ान के बेकार कुलियों के सेवा-केन्द्रों को भी आपने देखा।

आसाम में अफ़ीम एक भारी अभिशाप है। अफ़ीम का प्रश्न वहाँ बड़ा ही विकट प्रश्न है। जिसे अफीमख़ोरी की यह लत लग जाती है, उसका सर्वनाश ही समझिए। स्वास्थ्य और चरित्र से तो अफीमची हाथ धो ही बैठता है, पैसा भी उसके पल्ले नहीं रहता। जाँच से यह मालूम हुआ है कि आसाम के ८ ज़िलों के ६४४५९ अफीमचियों में प्रतिमास प्रतिमनुष्य डेढ़ तोला अफ़ीम का खपत होता है। मिकिर पहाड़ियों के इलाके को छोड़कर नौगाँव ज़िले में १०,००० मनुष्य पीछे १८ सेर और लखीमपुर में १०,००० मनुष्य पीछे ६२ सेर अफ़ीम की खपत हो जाती है। मिकिर पहाड़ियों के इलाके में तो १०,००० मनुष्य पीछे ६२ सेर से भी ऊपर अफ़ीम खप जाती है!

लखीमपुर, सिवसागर और नौगाँव में अफ़ीम के सबसे अधिक आदी ग़रीब हरिजन ही हैं।

हरिजनों के अपने मुख्य घरेलू धन्धे मछली पकड़ना, मिट्टी के बर्तन-भांडे तैयार करना और सोने-चाँदी के ज़ेवर बनाना है। आशा है कि ग्राम्य-उद्योग-संघ की प्रवृत्ति से आसाम के इन हरिजन कारीगरों के उद्योग-धन्धों को मदद पहुँचेगी।

पर यह देखकर, कि संघने हरिजन-कार्य पर जितना पैसा ख़र्च किया है उसमें एक चौथाई प्रबन्ध और प्रचार की मदों पर ख़र्च हुआ है, आसाम की उक्त उत्साहजनक रिपोर्ट कुछ फीकी पड़ जाती है। कुल ११९६६) हरिजन-कार्य पर ख़र्च हुए हैं, जिनमें ३६६४) तो प्रबन्धादि खाते में ख़र्च हुए हैं और ८३०२) सेवा-कार्य-खाते में। ११४९) तो केवल प्रबन्ध-कार्यालय के कर्मचारियों पर ख़र्च हुए, और १०२०) प्रचारकों की मद में। मैंने यहाँ पूरी-पूरी रक़में ही दी हैं, आना-पाई छोड़ दिये हैं। मेरे हिसाब से सेवा-कार्य पर इससे भी अधिक ख़र्च होना चाहिए था। यह मैं सैकड़ों बार कह चुका हूँ कि रचनात्मक कार्य स्वयं ही एक सर्वोत्तम प्रचार-कार्य है। प्रबन्ध-खाते में भी काटछाँट करने की काफ़ी गुंजाइश हो सकती है। मैं जानता हूँ, कि आसाम प्रांत में काम करना टेढ़ा खीर है। फिर भी यह बात तो सदा ध्यान में रहनी ही चाहिए, कि हरिजन-सेवक-संघ केवल प्रायश्चितकारियों या देनदारों की संस्था है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

आविष्कार की जननी आवश्यकता

भारतीय व्यापारी-मंडल, बम्बई के सेक्रेटरी श्री जे० के० मेहता लिखते हैं :—

"ग्राम्य-उद्योगों के पुनरुद्धार और पुनरुज्जीवन की नई योजना के सम्बन्ध में मैं अपने एक अनुभव की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। सन् १९१७ में भारत-सरकार

ने महासमर के सिलसिले में व्यापारी-मण्डल से मेरी सेवायें स्थानान्तरित कर ली थीं। जङ्गी रसद के बोर्ड के साथ मुझे डेढ़ सालतक सिमला में रहना पड़ा था। जङ्गी रसद के बोर्ड का मुख्य काम यह था कि उन चीज़ों को जुटाकर पहुँचाया जाय कि जिनका निर्यात उन दिनों की परिस्थितियों के कारण यूनाइटेड किंगडमने या तो बन्द कर दिया था या असंभव हो गया था। यह मालूम हुआ कि यूनाइटेड किंगडम से घोड़ों के नाल भी नहीं आ सकते। यह बड़ी उलझन का प्रश्न मालूम पड़ा, क्योंकि हिंदुस्तान में नाल बनाने का एक भी कारखाना नहीं था और यूनाइटेड किंगडमने माल भेजना एकदम बन्द कर दिया था, साथ ही दूसरे मुल्कों से भी कोई माल नहीं आ सकता था। फ़ौज के अधिकारी बड़ी चिन्ता में पड़ गये कि यह ज़रूरी चीज़ अब कैसे और कहाँ से जुटाकर भेजी जाय। अन्तमें यह सवाल हल हो गया और वह इस तरह हल हुआ, कि भारत के सैकड़ों-हज़ारों गाँवों से नाल बनवा-बनवाकर क्यों न भेजे जायँ। बस फिर क्या था, कलेक्टरों और पुलिस के पटेलों के ज़रिये सरकारने गाँवों के नालबन्द लुहारों के पास आर्डर भेजना दिये और वहाँ से घुड़नाल तैयार हो-होकर जङ्गी रसद-विभाग के पास धड़ाधड़ आने लगे। सिर्फ़ यह दिखलाने के लिए ही मैं संक्षेप में आपको यह लिख रहा हूँ, कि अगर गाँवों की कारीगरी को ठीक-ठीक उत्तेजन दिया जाय तो न सिर्फ़ झाड़ू-बुहारू या माटी के बासन-भाँड़े-जैसी गृहस्थी की छोटी छोटी चीज़ों को ही जुटाने में हमारे गाँव हमें मदद दे सकते हैं, बल्कि घोड़ों के नाल-जैसी बड़ी-बड़ी ज़रूरी चीज़ों को भी बड़े पैमाने पर सप्लाई कर सकते हैं।"

यह सच है, कि 'आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है।' जो बात महासमर के दिनों में असंभव से सम्भव हो गई वह, कोई कारण नहीं कि बेशुमार काहिली और बेकारी के ख़िलाफ़ जो जङ्ग हमने छेड़ा है उसमें सम्भव न हो। श्री जे० के० मेहताने ऊपर जो उदाहरण दिया है ऐसे सैकड़ों-सहस्रों उदाहरण मिल सकते हैं। उस आपसी मारकाट के दिनों में सारे ही यूरोप का मानों कायाकल्प हो गया था—पुरुषों और स्त्रियों को, बालकों और बालिकाओं को उन दिनों अपना जीवन-निर्वाह करने के लिए यंत्रों से नहीं, अपने हाथों से काम करना पड़ता था।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

यंत्रों के विरुद्ध युद्ध

[४०३ पृष्ठ से आगे]

से लेकर दसतक करघे हैं। ये टुटपुँजिए बुनकर ही ल्यों के रेशम के उद्योग को आज शक्तिसम्पन्न बनाये हुए हैं।"

अगर फ्रान्स-जैसे बड़े-बड़े कारखानोंवाले देश की यह स्थिति हो, तो हिन्दुस्तान में तो ऐसी स्थिति बड़ी आसानी से पैदा की जा सकती है। फ्रान्सने यंत्रों के विरुद्ध युद्ध नहीं किया। फ्रान्सने तो केवल अपनी प्रजा को यंत्रों की गुलामी से दूर रक्खा है और ऐसा करके उसने लोगों को बेकारी के मुँह में जाते हुए बचाया है, साथ ही अपनी कला को भी नष्ट नहीं होने दिया है। इन दो उद्देशों के अर्थ ही ग्राम्य-उद्योग-संघ को भारत के सात लाख गाँवों के उद्योगों की शोध करके जिस प्रकार उनसे अधिक-से-अधिक लाभ देश को हो उस रीति से उन उद्योगों को चलाना है।

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

बम्बई की प्रदर्शिनी

(२)

प्रगति के चिह्न

ये प्रदर्शिनियाँ दिनों-दिन प्रगति करती जाती हैं इसमें कोई शक नहीं। अब भी खुशबूदार तेल, साबुन, अगरबत्ती, क्रीम, पोमेड इत्यादि की महक प्रदर्शिनी के क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक व्याप्त रहती है। मेरे काग़ज़-संग्रह में अबतक इत्र की खुशबू है। लेकिन जहाँ स्वयं ये चीज़ें भी पहले से बहुत अच्छी बनने लगी हैं वहाँ स्वदेशी प्रदर्शिनियों का दायरा भी बढ़ता जाता है। मेरे जमा किये हुए इश्तहार अधूरे हैं। फिर भी तीस से अधिक सुगन्धी या टाइलेट के सामान के हैं, तीस से अधिक खाने-पीने तथा औषधियों के हैं और क़रीब एक सौ के अन्य सामान के हैं। बम्बई में फर्नीचरवालोंने बहुत ऊँचे दर्जे का काम दिखाया। इनमें भिन्नता की कमी नहीं थी। दो-एक की दाहर की दुकान में जाने का मेरा विचार था, लेकिन उसे पूरा न कर सका। एक जगह साइकिल के कुछ अच्छे पुर्ज़े बिकते थे और टाटानगरवालोंने अपने लोहे के छड़ों का अच्छा विज्ञापन किया था। कैमेरावाले की काफ़ी अच्छी दुकान थी, जिस में बहुत बड़े-बड़े कैमेरा दिखाये गये थे। कल्याण से धान कूटने और चावल साफ़ करने की कल आई थी जिसके चलाने में कुछ मज़दूर भी लगे हुए थे। यह हर तरह के छोटे-बड़े कद की मिल सकती है। एक दुकान में मच्छरों के संहार करने का यंत्र था। इस से प्रथम तेज़ बत्ती-द्वारा बहुत-से मच्छरों को आकर्षित करके एकाएक हवा के खिंचाव से एक पल में हड़प कर लेने की युक्ति थी। मालूम हुआ कि १० गज़ से लेकर आध मीलतक के क्षेत्र को मशकहीन करने की शक्ति का दावा इस यन्त्र के लिए किया जाता था। एक आदमी को यह कहते हुए सुना कि यदि ब्रह्मा मच्छरों को उत्पन्न ही न करें तो इस रुद्रावतार की आवश्यकता ही न रहे। जी चाहा कि मच्छरों के ब्रह्मा कौन हैं इस विषय पर व्याख्यान शुरू करूँ—सुनने के लिए वहाँ सैकड़ों लोग मौजूद थे, लेकिन थोड़ा संयम किया। तरह-तरह के लोहे के चूल्हे भी प्रदर्शिनी में काफ़ी थे। इन में यह कोशिश की गई थी कि बम्बई में प्राइमस स्टोव की बदौलत होनेवाली अनेक अकाली मृत्युओं के कारण को दूर किया जाय। नाम भी 'निरापद चूल्हा' था। सीने का यन्त्र भी देखने में आया। अन्य वस्तुओं में तरह-तरह के ताले, फाउन्टेन पेन, ब्रह्मदेश की उत्तम कारीगरी के सामान आदि थे। तम्बाकू को बारीक काटने का एक विशेष यंत्र था। हाँ, सिगरेट की भी एक बहुत बड़ी दुकान थी। मेरे कुछ मित्रों को इससे खेद हुआ। उस दुकानवालेने तो ग्रामोफोन से और सिगरेट पीनेवाली एक मेम के पुतले को अपनी दुकान के सामने रखकर जिसका सिगरेट-वाला हाथ बिजली से गति पाता था, काफ़ी लोगों को आकर्षित कर रखा था। मेरी समझ में नहीं आया कि विभिन्न चीज़ों को स्वदेशी प्रदर्शिनी में सिगरेट-तम्बाकू को भी क्योंकर स्थान दिया जाता है। वैसे लोकव्यापी धूम्रपान तो सारे नगर में और कांग्रेस के अन्दर भी काफ़ी स्वतंत्रता से चल ही रहा था।

"एंजेल्स फ़ुड"

प्रदर्शनी में भीड़ इतनी लगी रहती है कि कोई भी शान्ति

का काम असम्भव हो जाता है । जहाँ आपने किसी चीज़ में हाथ दिखलाई और प्रश्न पूछना शुरू किया कि पीछे के धक्कने आपको दूसरी दूकान पर पहुँचा दिया । वह चीज़ वहीं की वहीं रही और आपका पैसा आपकी जेब में । बम्बईवालोंने चार आने का टिकिट लगा रक्खा था । फिर भी दिनभर सैकड़ों महाराष्ट्रीय और गुजराती कुटुम्ब-के-कुटुम्ब अपने इष्टमित्रों के साथ नगर की शोभा बढ़ाते हुए चले आया करते थे । अन्त में प्रदर्शिनी बन्द हुई, लेकिन भीड़ कम नहीं हुई । मेरा ख़ास काम एक दिन में पूरा नहीं हुआ था । लेकिन दूसरी और तीसरी बार हलका रहा । क्रय-विक्रय पर भी कुछ ध्यान दे सका । ख़ाली हाथ वापस लौटना अच्छा नहीं, कुछ तो इस हेतु से और कुछ नगर-चर्चा सुनने के हेतु से मैं दो-तीन बार और गया । हँसाने-रुलानेवाले अपने सब अनुभवों का वर्णन करना यहाँ असम्भव है, लेकिन 'लेमन ड्रॉप्स' वाला किस्सा तो निराला ही था । उसने मेरा 'झण्डु' फार्मेसीवालों से पुन: मिलना बिलकुल आवश्यक कर दिया है । फिर कभी बम्बई गया तो स्मरण रक्खूँगा । ये बताशे की तरह लेकिन ठोस टिकियाँ होती हैं । उनमें रंग दिया जाता है, और नीबू-नारंगी आदि का अर्क भी मिलाया जाता है । मेरा शौक पुराने ज़माने से चला आ रहा था । पहले चक्कर में मैंने एक टिकिया का परीक्षण किया । दूसरे चक्कर के समय एक मित्र के साथ के कारण उसे भी चखाई और मैंने एक टिकिया और मुँह में डाली । दूकानेवालेने बड़े हर्ष से साफ़-सुथरी बन्द बोतल से निकालकर दी थीं । मेरी अन्तरात्मा पर थोड़ा सा बोझ पड़ने लगा था । लेकिन हुआ ऐसा कि फिर एक बार वहीं पर लेमन ड्रॉप्स चखने का मौक़ा पड़ा । अबतक दूकानदारने देख लिया कि मुझे कुछ हिम्मत दिलाने की आवश्यकता थी । उसके सौजन्य में कसर न थी । मैंने भी कह दिया "जाने से पहले दो बोतलें ख़रीद लूँगा ।" उसका चेहरा चमका । अब अपने इरादे के आधार पर मैंने दो-चार मौजी मित्रों को झण्डु फार्मेसीवाले के यहाँ जाकर लेमनड्रॉप्स अवश्यमेव चखने की हिदायत दी । लेकिन अफ़सोस कि मालूम नहीं फिर क्या हुआ, मैं अबतक वे दो बोतलें ख़रीद नहीं पाया हूँ ।

जहाँ सौदा लेनेवाले चालाकी किया करते हैं वहाँ ख़ुद सौदागर अपने माल को बेचने के लिए तरह-तरह की तरकीबें भिड़ाने में कम नहीं पाये जाते । अजमेर और वज़ीराबाद के चाकू अब मशहूर हो गये हैं । चलते भी ख़ूब हैं । इनमें से एक की दूकान पर कुछ भीड़-सी थी । मैं भी जा पहुँचा । बेचनेवाला एक भले-से मुसलमान सज्जन से बातें कर रहा था । दूर से यह प्रतीत हुआ कि वह अपने हाथ में एक लम्बा छुरा लिये उसकी तारीफ़ सुना रहा है । फिर यह शब्द आये—"Good for stabbing" बेचारे मुसलमान सज्जन कुछ लज्जित हुए और कहने लगे—"नहीं, मुझे तो यह छोटे-छोटे चाकू देखने हैं ।"

उस दिन मुझे काफ़ी देर हो गई थी और आठ आने का टिकट ख़रीदने पर जहाँ भोजन मिलता था वह जगह बहुत दूर थी । मैंने वहीं कुछ भोजन करने का निश्चय किया । प्रदर्शिनी के बाहर कांग्रेस के स्थान के पास एक और छोटी-सी प्रदर्शिनी थी जहाँ विशेषत: पुस्तकों की दूकानें थीं । यहाँ पर खान-पान तथा फलों की दूकान के ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखे हुए कुछ शब्दोंने मेरा ध्यान पहले से आकर्षित कर रक्खा था :—'Fruit salad with Cream' । मालूम हुआ कि तीन आने का ख़र्च था, अर्थात् पाँच आने बच सकते थे । अपने बचपन में मैंने पिताजी को 'Fruit salad के लिए 'Angel's food' शब्द का प्रयोग करते कई बार सुना था । उन दिनों जब कभी कोई अच्छा Fruit Salad खाता था तो मन ही मन Angel's food की बड़ी दुहाई किया करता था । लेकिन यहाँ मालूम हुआ कि बासी केले और दूध के मिश्रण को भी 'Fruit salad with cream' कहा जा सकता है । पैसे तो दे दिये और वह विचित्र पदार्थ भी लौटा दिया । जाते हुए यह भी सुनना पड़ा कि मुझे अच्छी चीज़ की पहचान नहीं ।

प्रदर्शिनी का हृदय

प्रदर्शिनियों के कारण खद्दर स्थानभ्रष्ट होने लगा है क्या ? इसमें दो राय हो सकती हैं । खद्दरहीने अन्य स्वदेशी वस्तुओं को प्रोत्साहित किया है, और खद्दर ही के कारण स्वदेशी का भविष्य उज्ज्वल है । बम्बई की प्रदर्शिनी में क़रीब एक लाख रुपये का खद्दर बिका । खद्दर का विभाग प्रदर्शिनी का हृदय था । और भिन्न-भिन्न दूकानों के कार्यकर्ताओं को ग्राहकोंने पूरे दस दिनतक काफ़ी व्यस्त रखा था । इनामी चर्खे दो आये थे । एक चर्खे में कई तकुवे थे और दूसरे में एक ही था । दोनों चर्खे अच्छे थे लेकिन एक लाख का इनाम लेनेवाला तो अभी कोई दिखाई नहीं देता । जहाँ रफ़्तार अच्छी है वहाँ लोहे तथा पुर्ज़ों का प्रयोग इतना अधिक है कि वह इनाम की शर्तों को पूरा नहीं कर सकता ।

गुजरात के रास गाँव का एक कुटुम्ब प्रदर्शिनी में कताई-बुनाई आदि के प्रयोग दिखा रहा था । इस कुटुम्ब की सारी ज़मीन तथा सम्पत्ति सत्याग्रह के आंदोलन के समय ज़ब्त हो गई थी । तब से यह लोग चर्खे ही से अपना निर्वाह कर रहे हैं । इनकी दुहाई सारे गुजरात में बोली जाती है ।

'रेशम' के सञ्चालन इस दिनों काफ़ी स्थान ले रखा था । 'रेशम' से 'खद्दर' बहुत ख़ुश नहीं यह मानी हुई बात है । लेकिन अपनी शक्ति को समझनेवाला 'रेशम' भी हर मौक़े पर दमन की आवाज़ उठाता है । गांधीजी भी सूती खद्दर का ही अधिक प्रचार देखना चाहते हैं । उन्हें उन सब चीज़ों से वास्तविक डर तथा उपेक्षा है जो खद्दर के आंदोलन से पूरा लाभ उठाकर आगे बढ़ने में समर्थ हैं । माता अपने सब से अधिक दुबले बालक की ही ओर ध्यान देगी । चावल की कल, शक्कर, मिल का कपड़ा, हर प्रकार का रेशम आदि चीज़ों को गांधीजी के प्रोत्साहन की आशा नहीं । ये चीज़ें चल गई हैं । खद्दर के पाँव अभी कमज़ोर हैं । उनका ध्यान तो उसी पर रहेगा ।

देवदास गांधी

गाँव की वह 'नाल काटनेवाली'

बरहज (गोरखपुर) के परमहंसाश्रम के सुप्रसिद्ध राष्ट्रसेवी तथा हरिजन-प्रेमी श्री बाबा राघवदासजीने 'नाल काटने' के सम्बन्ध का निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रस्ताव भेजा है :—

शिशु की नाल-कटाई का काम अत्यन्त महत्व का है । पर हमारे उत्तरभारत में तो इसकी इतनी अधिक उपेक्षा की जा रही है कि देखकर बड़ा दु:ख होता है । यह काम गाँवों की ग़रीब हरिजन बहनें करती हैं । अछूत होने के नाते उनके साथ प्रेम

का बर्ताव शायद ही कभी होता हो। वे भी अपने फ़ुर्सत के समय या विवश होकर इस काम को करती हैं। शरीर-शास्त्र का ज्ञान न होने से, और औज़ार ठीक न रहने से वे नाल काटने का काम बड़ी बेदर्दी से करती हैं। अक्सर यह देखा गया है, कि चमारिन, कहीं-कहीं बसोरिन—बच्चा पैदा होने की ख़बर मिलने पर जङ्ग लगा हुआ, पुराना हँसिया लेकर जच्चा के घर जाती है और उस भोथरे हँसिये से रगड़-रगड़कर बालक का नाल काटती है। न उसके पास रेशम रहता है न साबुन, जिससे वह विधि-पूर्वक स्वच्छता से इस कठिन काम को कर सके। हिन्दुस्तानभर में यह पेशा अधिकांश हरिजनों के ही हाथ में है।

अतः मैं यह प्रस्ताव करता हूँ, कि अखिल भारतीय हरिजन-सेवक-संघ अपनी आगामी बैठक में इस महत्वपूर्ण विषय पर विचार करके उचित समझे तो निम्नलिखित योजना को अमल में लाने का आयोजन करे :—

"जहाँ जहाँ स्त्रियों के अस्पताल हों, वहाँ दस-दस पाँच पाँच चमारिनों, बसोरिनों या अन्य जाति की बहनों को भरती कराके ८ या १० दिनतक उन्हें प्रसूति-विद्या की मुख्य और अत्यंत आवश्यक बातें सिखाई जायँ, और उसके बाद उनकी परीक्षा लेकर उन्हें संघ की ओर से प्रमाणपत्र दिये जायँ। साथ ही उन्हें एक-एक डिबिया, जिसमें तीस-चालीस गज़ रेशम, एक अच्छी कैंची, एक कीटाणुनाशक साबुन की टिकिया तथा फ़िलालैन का एक छोटा-सा टुकड़ा हो, दिया जाय, अथवा गाँवों में स्कूलों के अध्यापकों के पास ये डिबिया रख दी जायँ जहाँ से ये नाल काटनेवाली बहनें उसे ले जायँ और काम पूरा करके वहीं लौटा दें।

अध्यापकगण कैंची आदि की सफ़ाई का ध्यान रखें और रेशम आदि जो चीज़ डिबिया में कम हो जाय उसे समय पर मँगाकर पूरी करदें।"

हरिजन-सेवक-संघ अगर इस महत्वपूर्ण कार्य को अपने हाथ में लेले, तो गाँवों की जनता का इससे बड़ा उपकार हो।

जिस प्रकार चर्खा-संघ कत्तिनों के द्वारा अपना प्रचार-कार्य बड़ी अच्छी तरह कर रहा है और गाँव गाँव में खादी के प्रचार करके अपने कार्य की महत्ता बढ़ा रहा है, उसी प्रकार इस कार्य के द्वारा हरिजन-सेवक-संघ भी अल्प परिश्रम और थोड़े पैसों से ग्रामीण जनता की बहुत बड़ी सेवा कर सकेगा। इस आवश्यक कार्य में सभी ज़िला-बोर्ड, म्युनिसिपैलिटियाँ और अन्य संस्थाएँ भी पूरा सहयोग देंगी, ऐसी आशा है।

पिलानी की शिल्पशाला

'बिड़ला-शिल्पशाला', पिलानी (जयपुर राज्य) के श्रीरघुनंदन शर्मा लिखते हैं :—

"हमारी शिल्पशाला में हरिजन भाइयों को कई प्रकार के उद्योग सिखाये जाते हैं—जैसे, चमड़ा रँगना, जूते बनाना, कंबल व दरी-गलीचे बुनना, और बढ़ईगिरी तथा रँगाई-छपाई इत्यादि का काम। जो भाई इन उद्योग धंधों को सीखना चाहें उनके रहने तथा भोजनादि का प्रबंध शिल्पशाला की ओर से निःशुल्क किया जायगा। आशा है, कि हमारे हरिजन भाई इस शिल्पशाला में उक्त उपयोगी उद्योगों को सीखकर समुचित लाभ उठायेंगे।"

राजस्थान-जैसे पिछड़े हुए प्रांत में इस शिल्पशाला का स्थापित होना ग्राम्य उद्योगों के पुनरुद्धार के लिए एक शुभ चिह्न है। फिर ग़रीब हरिजन भाइयों के निवास तथा भोजनादि की निःशुल्क व्यवस्था तो और भी अभिनंदनीय है। पिलानी की यह शिल्पशाला हरिजनों की अधिक-से-अधिक सेवा करे ईश्वर से यह हमारी प्रार्थना है।

ग्वालियर राज्य में हरिजन-कार्य

व्यवस्था—ग्वालियरराज्य के हरिजन-सेवक-संघ का कार्य एक मंडल की देखरेख में चल रहा है, जिसका कार्यालय उज्जैन में है। इस वर्ष समिति की कुल ४ बैठकें लश्कर में हुईं।

धार्मिक—मार्च १९३४ में मंदिरों के जुलूसों में १० दिन तक रामनवमी का उत्सव मनाया गया। आकाश बुवा नामक एक विद्वान् पंडितने भी बस्तियों के मुहल्लों में हरि-कथा भी कही।

पिछले १२ महीनों में उज्जैन के कुछ कट्टर सनातनियोंने इस आन्दोलन के विरोध करने का बहुत प्रयत्न किया। उज्जैन तीर्थ-स्थान है। पुराणवादियों का प्रधान गढ़ है। आन्दोलन के प्रति क्रियात्मक सहानुभूति रखनेवालों से पुरातनवादियोंने सब प्रकार के धार्मिक और सामाजिक सम्बन्धों को तोड़ देने का भरसक प्रयत्न किया।

पिछले १० वर्षों से उज्जैन में हरिजनों के गणपति विसर्जन के सम्बन्ध में विवाद चल रहा था। सुधारकों का मत था कि हरिजनों के गणेशजी को रामघाट पर विसर्जन किया जाय। इसका विरोध सनातनियों के कट्टर लोगोंने किया। प्रतिवर्ष इस प्रश्न को जटिलता बढ़ती ही गई, यहाँतक कि कई बार प्रत्यक्ष झगड़ा होते-होते बच गया। ग्वालियर राज्य की तरफ से एक कमीशन बैठाया गया और उसकी सिफ़ारिशों के अनुसार तय हुआ कि अछूतों के गणेशजी रामघाट पर जावें और वहाँ ब्राह्मण द्वारा नदी में विसर्जित किये जायँ। किन्तु पुरातनवादियों को यह भी पसन्द नहीं आया। उन्होंने इसके विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया और इस बात का बहुत प्रयत्न किया कि सरकार का यह हुक्म रद हो जाय। किन्तु इस वर्ष पुलिस के संरक्षण में औचित्य के आज्ञानुसार हरिजनों के गणेशजी रामघाट पर ही ब्राह्मण-द्वारा विसर्जित हुए।

शिक्षा—संघ द्वारा हरिजनों के लिए उज्जैन, नागदा, लश्कर, ग्वालियर और पछार में नये मदरसे कायम किये गये। साथ ही मुरैना, श्योपुर, खाचरौद, मंदसौर और नीमच की हरिजन-पाठशालाओं की आर्थिक स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया गया। शाजापुर, मुरैना, खाचरौद और बड़नगर की पाठशालाओं के लिए सरकारी सहायता भी प्राप्त कर ली गई। मुरार, लश्कर, ग्वालियर और उज्जैन के मदरसों के लिए भी सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न

"दरिद्रता और वैराग्य का अहंकार अगर धनवानों और राजाओं के अहंकार के साथ तोला जाय तो पंडितों और वैरागियों का अहंकार वज़न में अधिक उतरेगा।"

"मुर्दा, रोगी, आलसी और स्वस्थ ये चार प्रकार के मन होते हैं। धर्मद्रोही का मन मुर्दा, पापी का मन रोगी, लोभी व स्वार्थी का मन आलसी और सेवा-साधना में तत्पर व्यक्ति का मन स्वस्थ होता है।"

—एक सूफ़ी संत

किया जा रहा है। चमारों के लड़के-लड़कियों की पाठशाला जो कृष्णपुरा में है विनोद्-मिल के प्रबन्ध में दे दी गई है। अधिकांश सरकारी मदरसों में मेहतरों को छोड़कर अन्य हरिजनों के बालकों को भरती किया जाता है। कहीं-कहीं इस बात में दिक्कत आती है। इस समय ग्वालियर राज्य में हरिजनों के कुल १७ मदरसे हैं।

नीमच के श्री भवानीशंकर जाटव की लड़की शान्ता और उज्जैन के पन्नालाल मेहतर की लड़की उमा इन्दौर के शारदा राजा बोर्डिंग हाउस में भर्ती करा दी गई। पहले तो वहाँ बड़ी हलचल मच गई, किन्तु बोर्डिंग के प्रबन्धकों की दृढ़ता और साहस के कारण वह हलचल वहीं समाप्त हो गई।

विनोद्-मिल्स उज्जैन, बिड़ला-मिल्स लश्कर तथा कतिपय आर्य-समाज हरिजनों में यथाशक्ति शिक्षा-प्रचार का कार्य कर रहे हैं। खाचरोद की रात्रि-पाठशाला इस ओर विशेष उन्नति कर रही है। वहाँ बलाई, चमार, धाकड़, और मेहतर सभी के बच्चे एकसाथ बैठते और पढ़ते हैं। बच्चों की हाज़िरी क़रीब ५० के रहती है।

पोहरी जागीर में प्राथमिक शिक्षा के २१ मदरसे हैं। वहाँ के शिक्षाधिकारी उदार विचार के हैं। वहाँ छूत-अछूत सभी एक साथ पढ़ते हैं। परन्तु वहाँ भी पुराने पंथ के लोग विरोध तो कर ही रहे हैं।

आर्थिक—इस समय संघ में पाँच हरिजन काम कर रहे हैं, जिनमें ३ मेहतर, १ जाटव और १ कोरी हैं। तीनों मेहतर शाजापुर, उज्जैन तथा जोरा में शिक्षक का कार्य कर रहे हैं। लश्कर में २५ मेहतर जो गांधीजी के दर्शन के लिए आगरा गये थे, उन्हें १०) की सहायता दी गई थी।

उज्जैन में मैला ढोनेवाली मोटर के ड्राइवर की जगह पर एक बलाई नियुक्त किया गया, जिससे उसकी जाति के लोगों में बड़ी सनसनी फैल गई और उन्होंने उसे जाति से निकाल देने की धमकी दी। बहुत प्रयत्न करने पर भी इसमें सफलता नहीं मिली और जाति के दबाव से उस बलाईने नौकरी छोड़दी।

प्रचार—खाचरोद के फत्ताजी के मेले में, उज्जैन की कार्तिकी यात्रा के अवसर पर और संक्रांति-पर्व पर व्याख्यान, भजन और पर्चों के द्वारा प्रचार-कार्य किया गया। उज्जैन में मेहतरों की सभा की गई, और धुंधड़का, नीमच तथा छोटी सादड़ी में चमार-सम्मेलन किये गये। खाचरोद-परगने में स्थानिक कार्यकर्त्ताओंने कई बार बलाइयों के जातीय सम्मेलनों में जाकर प्रचार-कार्य किया। नीमच के श्री धर्मीराम सगर और भेलसा के श्री रामगोपालजी मेहताने एक सौ से अधिक ग्रामों में जाकर कार्य किया है। श्री दातेजीने राज्य के मुख्य मुख्य शहरों और तहसीलों में तथा इन्दौर और रतलाम जाकर भी प्रचार-कार्य किया। श्री दातेजी देशी-राज्य-प्रजा-परिषद् के अधिवेशन में खण्डवा भी गये थे और वहाँ उन्होंने एक ऐसा प्रस्ताव पास कराया, जिसमें देशी नरेशों से प्रार्थना की गई है कि वे अपने-अपने राज्य में सार्वजनिक संस्थाओं के संबंध में हरिजनों पर लगाये गये प्रतिबंधों को दूर करदें। उन्होंने लश्कर परगने में स्वर्गीय ओगले-द्वारा स्थापित १० स्कूलों का निरीक्षण किया। पिछली बार उज्जैन में जो अहिंसा-सम्मेलन हुआ था उसमें भी अछूतपने को दूर करने के लिए प्रस्ताव पास किया गया था। लश्कर में नवंबर, १९३३ में शिक्षकों का सम्मेलन हुआ, जिसमें उन पर ज़ोर डाला गया कि वे हरिजन-आंदोलन में सहायता करें।

भेलसा, बामोदा और मुरेना से दिल्ली आते हुए महात्माजी को छोटी छोटी दो थैलियाँ भेंट की गईं। नागदा में एक शिक्षा-सभा हुई थी, जिसमें छूत-अछूत सभी शामिल बैठे थे। फरवरी, १९३४ में उन्हेल के कुछ कार्यकर्त्ताओंने हरिजनों के लिए एक उत्सव की योजना की थी, जो अत्यंत सफल हुई। श्री पुस्तकेजीने मुरेना में स्त्रियों की सभा में और शाजापुर में सार्वजनिक सभा में इसी विषय के भाषण दिये।

इस वर्ष खाचरोद के स्कूल के अधिकारियोंने एक आदर्श गणेश-उत्सव मनाया। उसमें भंगियों और उच्च जाति के लड़कोंने समान-रूप से भाग लिया था।

पिछले १७ एप्रिल को श्री दातेजी रामघाट पर स्नान करने गये। वहाँ पंडोंने उन्हें स्नान करने देने से आपत्ति प्रगट की। श्री दातेजीने अपने स्नान करने के अधिकार को स्वीकार कर विरोध होते हुए भी स्नान किया। इस पर वे बुरी तरह पीटे गये। इस संबंध में अदालत में मामला चल रहा है।

२९ जुलाई को अखिल भारतीय हरिजन-दिवस उज्जैन, खाचरोद और मंदसौर में मनाया गया। महात्माजी के उपवास के समय ता० ७ से १४ अगस्ततक उज्जैन के भिन्न-भिन्न मुहल्लों में सभाएँ की गईं। सब से बड़ी सभा ता० १४ को नये बने हुए टाऊन हाल में हुई, जिसमें श्री पुस्तकेजीने उपस्थित जनता को संघ के उद्देश और इतिहास का परिचय कराया। गणेशोत्सव में मैजिक लैंटर्न-द्वारा हरिजन-आंदोलन का प्रचार किया गया। नवयुवक-संघ और राष्ट्र शृङ्गार-मंडलने अपने-अपने उत्सवों में और दीगर जगह भी भजनों और वाद्-विवाद्-द्वारा इस संबंध में सराहनीय प्रचार-कार्य किया।

सरदारपुर डिस्ट्रिक्ट में स्थानीय कार्यकर्त्ताओं के उद्योग से हरिजनों का एक बैंड तैयार किया गया है। यहां समय-समय पर अस्पृश्यता-निवारण के संबंध में थोड़ा-बहुत प्रचार किया जाता है। इस संबंध में मनावर के वयोवृद्ध वकील श्रीकृपाशंकरजी का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

पिछले बारह महीनों में २११ सज्जनोंने दान दिया, जिससे १२०६=)॥। वसूल हुए। प्रधान कार्यालय दिल्ली से ९७४।।।-)॥। प्राप्त हुए। पिछले वर्ष के ४०४।=)। संघ में बाकी थे। कुल २५८६=)।।। जमा हुए। प्रचार-कार्य, व्यवस्था-कार्य तथा सहायता और शैक्षणिक कार्यों में कुल मिलाकर २२६१।=)।।। ख़र्च हुए।

कृ० वा० दाते,
मंत्री—हरिजन-सेवक-संघ,
ग्वालियर राज्य शाखा

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

वार्षिक मूल्य ३।।)
(पोस्टेज-सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २१ दिसम्बर, १९३४. [संख्या ४४

विषय-सूची

ग्रामसेवा और ग्रामधर्म

(ता० ३०—११—३४ को वर्धा में गांधीसेवासंघ की परिषद् में आचार्य विनोबाजी भावे के किये हुए प्रवचन का सारांश)

आप सब लोग दूर-दूर के प्रान्तों से इस परिषद् के लिए यहाँ आये हुए हैं। लेकिन आप सब के साथ मेरा परिचय नहीं हो सका। मैंने परिचय करने की कोशिश भी नहीं की। परिचय इस तरह जल्दी-जल्दी हो भी तो नहीं सकता। फिर मेरा स्वभाव भी कुछ ऐसा है, कि परिचय करने का यत्न मैं बहुत कम करता हूँ। किंतु आप सब के लिए मेरे मन में आदर है और मेरे लिए तो बस इतना काफ़ी है। इस सभा में मैं अभी आपके सामने कुछ विचार या सूचनाएँ रक्खूंगा, और फिर उनके सम्बन्ध में या अन्य किसी विषय के संबंध में आप मुझ से अगर कुछ प्रश्न पूछेंगे तो उनका जवाब दूँगा। परिचय का मेरा यही आरम्भ होगा।

यों बोलने के लिए मेरे पास विषय तो बहुत हैं। अगर चाहूँ तो ऋग्वेद के विषय में भी बोल सकता हूँ। और भी ऐसे कई विषय हैं जो मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। लेकिन आज तो मैंने ग्रामसेवा के विषय में ही कुछ विचार प्रगट करने का इरादा किया है। मैं नहीं जानता कि आप लोगों में ग्रामसेवा का काम करनेवालों की संख्या कितनी है। लेकिन यह मानकर कि आप लोगों में से बहुतों की रुचि इस काम के लिए है, अनुभव और चिन्तन से ग्रामसेवा के विषय में मेरे जो विचार बने हैं उन्हें मैं आप के सामने रख देना चाहता हूँ।

जब हम सेवा करने का हेतु लेकर देहात में जाते हैं, तब हमें यह नहीं सूझता कि कार्य का आरम्भ किस प्रकार करना चाहिए। हम शहरों में रहने के आदी हो गये हैं। देहात की सेवा करने की इच्छा ही हमारा मूल धन, हमारी पूंजी होती है। अब सवाल यह खड़ा हो जाता है, कि इतनी थोड़ी पूंजी से व्यापार किस तरह शुरू करें। मेरी सलाह तो यह है कि हमें देहात में जाकर व्यक्तियों की सेवा करने की तरफ़ अपना ध्यान रखना चाहिए, न कि सारे समाज की तरफ़। सारे समाज के समीप पहुँचना संभव भी नहीं है। रणांगण में लड़नेवाले सिपाही से अगर हम पूछें कि वह किसके साथ लड़ता है तो वह कहेगा "शत्रु के साथ।" लेकिन लड़ते समय वह अपना निशाना किसी एक ही व्यक्ति पर लगाता है। ठीक इसी प्रकार हमें भी सेवा-कार्य करना होगा। समाज अव्यक्त है, परन्तु व्यक्ति व्यक्त और स्पष्ट है। उसकी सेवा हम कर सकते हैं। डाक्टर के पास जितने रोगी आते हैं उन सबको वह दवा देता है, मगर हरेक रोगी का वह ख़याल नहीं रखता। प्रोफ़ेसर सारे क्लास को पढ़ाता है, पर हरेक विद्यार्थी का ध्यान वह नहीं रखता। ऐसी सेवा से बहुत लाभ नहीं हो सकता। वह डाक्टर जब कुछ रोगियों के व्यक्तिगत संपर्क में आयगा, या प्रोफ़ेसर जब कुछ चुने हुए विद्यार्थियों पर ही विशेष ध्यान देगा, तभी वास्तविक लाभ हो सकेगा। हाँ, इतना ख़याल हमें ज़रूर रखना होगा, कि व्यक्तियों की सेवा करने में अन्य व्यक्तियों की हिंसा, नाश या हानि न हो। देहात में जाकर इस तरह अगर कोई कार्यकर्ता सिर्फ़ पचीस व्यक्तियों की ही सेवा कर सका, तो समझना चाहिए कि उसने काफ़ी काम कर लिया। मैंने इसी प्रकार सेवा का प्रारम्भ किया और परिणामतः दस-बीस कार्यकर्ता ग्राम-सेवा का कार्य करते हुए आज यहाँ पर नज़र आ रहे हैं। ग्राम-जीवन में प्रवेश करने का यही सुलभ तथा सफल मार्ग है। मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि जिन्होंने मेरी व्यक्तिगत सेवा की है, उन्होंने मेरे जीवन पर अधिक प्रभाव डाला है। बापूजी के लेख मुझे कम ही याद आते हैं, लेकिन उनके हाथ का परोसा हुआ भोजन मुझे हमेशा याद आता है, और मैं मानता हूँ कि उससे मेरे जीवन में बहुत परिवर्तन हुआ है। यह है व्यक्तिगत सेवा का प्रभाव। व्यक्तियों की सेवा में समाज-सेवा का निषेध नहीं है। समाज गीता की भाषा में अनिर्देश्य है, निर्गुण है, और व्यक्ति सगुण और साकार, अतः व्यक्ति की सेवा करना आसान है।

दूसरी सूचना जो मैं रखना चाहता हूँ वह यह है कि हमें देहातियों के सामने ग्रामधर्म की कल्पना रखनी चाहिए, न कि राष्ट्रधर्म की। उनके सामने राष्ट्रधर्म की बातें करने से लाभ नहीं होगा। ग्रामधर्म उनके लिए जितना स्वाभाविक और सहज है उतना राष्ट्रधर्म नहीं। इसलिए हमें उनके सामने ग्रामधर्म ही रखना चाहिए, राष्ट्रधर्म नहीं। इसमें भी वही बात है जो व्यक्ति सेवा के विषय में मैंने ऊपर कही है। ग्रामधर्म सगुण, साकार और प्रत्यक्ष होता है; राष्ट्रधर्म निर्गुण, निराकार और परोक्ष होता है। बच्चे के लिए त्याग करना माँ को सिखाना नहीं पड़ता। सावली की खादी वर्धा के लोग पहनें और सावली के लोग बाहर का कपड़ा पहनें, यह भूल इसलिए हुई है कि हमने ग्रामधर्म को

भुलाकर राष्ट्रधर्म की कल्पना अपने सामने रक्खी। आपस के झगड़े मिटाना, गाँव की सफ़ाई तथा स्वास्थ्य का ध्यान रखना आयात-निर्यात की वस्तुओं और ग्राम के पुराने उद्योगों की जाँच करना तथा नये उद्योग खोज निकालना इत्यादि गाँव के जीवन-व्यवहार से सम्बन्ध रखनेवाली हरेक चीज़ ग्रामधर्म में आ जाती है। पुरानी पंचायत-पद्धति नष्ट हो जाने से देहात की बड़ी हानि हुई है। झगड़े मिटाने में पंचायत का बहुत उपयोग होता था। अभी इस असेम्बली के चुनाव में हमें यह अनुभव हुआ है कि देहातियों को राष्ट्रधर्म समझाना कितना कठिन है। सरदार वल्लभभाई और पंडित मालवीयजी के बीच मतभेद हो गया, अब इसमें बेचारा देहाती समझे तो क्या समझे? उसके मन में दोनों ही नेता समानरूप से पूज्य हैं। वह किसे मान और किसे छोड़े? इसलिए ग्रामसेवा में हम ग्रामधर्म ही अपने सामने रखना चाहिए। वैदिक ऋषियों की भाँति हमारी भी प्रार्थना यही होनी चाहिए कि—

"ग्रामे अस्मिन् अनातुरम्"

हमारे ग्राम में बीमारी न हो।

तीसरी बात जो मैं कहना चाहता हूँ वह है सेवक के रहन-सहन के सम्बन्ध की। सेवक की आवश्यकताएँ देहातियों से कुछ अधिक होने पर भी वह ग्रामसेवा कर सकता है। लेकिन उसकी वे आवश्यकताएँ विजातीय नहीं, सजातीय होनी चाहिए। किसी सेवक को दूध की आवश्यकता है, दूध बिना उसका काम नहीं चल सकता, और देहातियों को तो घी-दूध आजकल मयस्सर नहीं होता, तब भी देहात में रहकर वह दूध ले सकता है, क्योंकि दूध सजातीय अर्थात् देहात में पैदा होनेवाली चीज़ है। किंतु सुगंधित साबुन देहात में पैदा होनेवाली चीज़ नहीं है, इसलिए साबुन को विजातीय आवश्यकता समझना चाहिए और सेवक को उसका उपयोग नहीं करना चाहिए। कपड़े साफ़ रखने की बात लीजिए। देहाती लोग अपने कपड़े मैले रखते हैं, लेकिन सेवक को तो उन्हें कपड़े साफ रखने के लिए समझाना चाहिए। इसके लिए बाहर से साबुन मँगाना और उसका प्रचार करना मैं ठीक नहीं समझता। देहात में कपड़े साफ़ रखने के लिए जो साधन उपलब्ध हैं या हो सकते हैं, उन्हीं का उपयोग करके कपड़े साफ रखना और लोगों को उसके विषय में समझाना सेवक का धर्म हो जाता है। देहात में उपलब्ध होनेवाले साधनों से ही जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने की ओर उसकी हमेशा दृष्टि रहनी चाहिए। सजातीय वस्तु का उपयोग करने में भी सेवक को विवेक और संयम की आवश्यकता तो रहती ही है। अख़बार का शौक़ देहात में पूरा न हो सकेगा।

मैं जो ख़ास बातें यहाँ पर कहना चाहता था वह तो मैंने कहदीं। अब दो-तीन और बातें कहकर मैं अपना भाषण समाप्त करूँगा।

खादी-प्रचार के कार्य में अभीतक चर्खे का ही उपयोग हुआ है। एक लाख के इनामवाले चर्खे की अभी खोज हो रही है। मैं उसे एक लाख का चर्खा कहता हूँ। लेकिन मेरे पास तो एक सवा लाख का चर्खा है—और वह है तकली। मैं सचमुच उसे सवा लाख का चर्खा मानता हूँ। खादी-उत्पत्ति के लिए चर्खा उत्तम है। लेकिन सार्वजनिक वस्त्रस्वावलंबन के लिए तकली ही उपयुक्त है। नदी का ओघ चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, वह वर्षा का काम नहीं दे सकती। नदी का उपयोग तो नदी के तट पर रहनेवाले ही कर सकते हैं। पर वर्षा सबके लिए है। तकली वर्षा के समान है। जहाँ वह चलेगी वहाँ वस्त्रस्वावलम्बन का कार्य अच्छी तरह चलेगा। मुझसे बिहार के एक भाई कहते थे, कि वहाँ मज़दूरों के लिए भी तकली का उपयोग हो रहा है। तकली पर कातनेवालों को वहाँ हफ्ते में तीन-चार पैसे मिल जाते हैं। लेकिन उनकी कातने की जो गति है वह तीन या चार गुनी तक बढ़ सकती है। यहाँ के कन्याश्रम में अभी उससे चार या पाँच गुनी गति बहुतों की है। इस तरह गति बढ़ाने से मज़दूरी भी तीन या चार या पाँच गुनीतक मिल सकेगी। यह कोई मामूली बात नहीं है। हमारे देश में एक व्यक्ति को १४—१५ गज़ कपड़ा चाहिए, इसके लिए प्रतिदिन सिर्फ़ एक सौ तार कातने की ज़रूरत है। यह काम तकली पर आध घंटे में हो सकता है। चर्खा बिगड़ता भी रहता है, परन्तु तकली तो हमेशा ही आपकी सेवा में हाज़िर रहती है। इसलिए मैं उसे सवा लाख का चर्खा मानता हूँ।

देहात में सफ़ाई का काम करनेवाले सेवक मुझसे कहते हैं कि कई दिनतक यह काम करने पर भी देहाती लोग हमारा साथ नहीं देते। यह शिकायत ठीक नहीं। स्वधर्म समझकर ही अगर हम यह काम करेंगे तो अकेले रह जाने पर उसका दुःख हमें नहीं होगा। सूर्य अकेला हो तो होता है न? यह मेरा काम है, दूसरे करें या न करें मुझे तो अपना काम करना ही चाहिए, यह समझकर जो सेवक कार्यारम्भ करेगा उसको सिंहावलोकन करने की, यानी यह देखने की कि मेरे पीछे मदद के लिए कोई और है या नहीं- आवश्यकता ही नहीं रहेगी। सफ़ाई-सम्बन्धी सेवा है ही ऐसी चीज़ कि वह व्यक्तियों की अपेक्षा समाज की ही अधिकतया होगी और होनी चाहिए। परन्तु सेवक की दृष्टि यह होनी चाहिए कि अन्य लोग अपनी जिम्मेवारी नहीं समझते इसीलिए उसे पूरा करना उसका कर्तव्य हो जाता है। इसमें सेवक का स्वार्थ भी है, क्योंकि मार्ग की गंदगी का असर उसके स्वास्थ्य पर भी अवश्य पड़ता है।

औषधिवितरण में एक बात का तो हमेशा ख़याल रखना चाहिए कि हम अपने कार्य से देहातियों को पंगु तो नहीं बना रहे हैं। उनको तो स्वावलम्बी बनाना है। उनको स्वाभाविक तथा संयमशील जीवन और नैसर्गिक उपचार सिखाना चाहिए। रोग की दवाइयाँ देने की अपेक्षा हमें ऐसा जतन करना चाहिए कि रोग होने ही न पावें। यह काम देहातियों को अच्छी और स्वच्छ आदतें सिखाने से ही हो सकता है।

मेरी हरिजन-यात्रा

३

वर्धा

७-८ नवंबर—इन दो दिन मैंने गांधीजी के साथ काम किया। छोटे मोटे कई ऐसे काम थे, जो गांधीजी के साथ बात करने पर ही तय हो सकते थे। साबरमती के हरिजन-आश्रम के बारे में बातें हुईं और यह निश्चय हुआ कि बालिका-छात्रालय—जिसे शिक्षागृह कहना अधिक उपयुक्त होगा—इतना विस्तृत कर दिया जाय कि उसमें ६० बालिकाओं तक की समाई हो जाय।

यह भी तय हुआ कि सामान्य पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ उन्हें कुछ उद्योग और घर-गृहस्थी के काम-काज भी सिखाये जायँ ।

मुख़्तलिफ़ प्रांतों के ख़र्च के बजट भी गांधीजीने देखे और बड़े ध्यान से उनमें उचित काट-छाँट की । उन ज़िलों के बजट देखकर तो गांधीजी बड़े ही प्रसन्न हुए, जिन्होंने प्रचार-संबंधी मदों में या तो बहुत ही मामूली-सी रक़म रखी थी या फिर एक पैसा भी नहीं रखा था । तामिलनाड के तो क़रीब-क़रीब सभी ज़िलोंने विविध तथा सेवा-कार्य की मदों में भारी-भारी रक़में रखी थीं । गांधीजी की भेदक दृष्टि भला कब चूकनेवाली थी— तुरन्त उन मदों पर जा पड़ी ।

मेरा सौभाग्य था, कि ख़ाँ साहब अब्दुलग़फ़्फ़ारख़ाँ और उनके भाई डाक्टर ख़ाँ साहब से मिलने का वहाँ अवसर प्राप्त हुआ । वृन्दावन के सुप्रसिद्ध प्रेममहाविद्यालय के आचार्य श्री युगलकिशोर अग्रवाल से भी वर्धा में मेरा परिचय हुआ । सद्भाग्य से उन दिनों कलकत्ते के सुविख्यात हरिजन-प्रेमी सतीश बाबू भी वहीं थे । उनके साथ मैंने हरिजन-कार्य-संबंधी कई महत्वपूर्ण प्रश्नों पर बातें कीं ।

अमरावती

९ नवंबर—छै सात घंटे ही वहाँ दे सका । इन दिनों वहाँ दिवाली की छुट्टियाँ थीं, इससे हरिजन-छात्रावास—जिसे 'एमल्गेटेड क्लोयज़ हॉस्टल' कहते हैं—और श्रीमती भट्ट का कन्या-छात्रालय नहीं देख सका । पहले वहाँ हरिजनों की तीन भिन्न-भिन्न जातियों के लिए अलग-अलग तीन छात्रालय थे, पर वे अब तीनों एक में मिला दिये गये हैं । महाजनपुरा के म्यूनिस्पल दलितजातीय स्कूल में एक छोटी-सी हरिजन-सभा हुई, जहाँ हमलोगों में बड़े मनोरंजक प्रश्नोत्तर हुए । कई वर्ष हुए कि श्री० वी० आर शिंदे के डिप्रेस्ड क्लास मिशनने इस स्कूल का आरंभ किया था, किन्तु अब यह म्यूनिसिपैलिटी के हवाले कर दिया गया है । इस स्कूल में चार अध्यापक क़रीब डेढ़सौ बच्चों को पढ़ाते हैं । यह अच्छा हुआ कि वहाँ हरिजन-नेताओं के साथ बातचीत करने पर हरिजन-सेवक-संघ के कार्य के संबंध में जो बहुत-सी ग़लतफ़हमियाँ थीं, वे दूर हो गईं ।

मोर्शी

९–१० नवंबर—यह एक तहसीली क़स्बा है । पारसाल नवंबर के महीने में जब गांधीजी हरिजन-प्रवास के सिलसिले में यहाँ आये थे, असल में तभी से मोर्शी में हरिजन-सेवा-कार्य का पुनरारंभ हुआ । गांधीजी को एक छोटी-सी थैली भी यहाँ दी गई थी । श्री अकर्ते नाम के एक तरुण वकीलने स्थानीय हाईस्कूल में पढ़नेवाले १५ हरिजन विद्यार्थियों के लिए यहाँ एक छात्रालय स्थापित किया है । एक हरिजन सज्जनने, जो सरकारी मुलाज़िम हैं, उक्त छात्रालय के लिए अपना छोटा-सा बंगला बिना किराये पर दे रखा है । बंगले के सामने सुन्दर अहाता भी है । इस निःशुल्क छात्रालय के एक लड़के को ८) मासिक सरकारी वज़ीफ़ा मिलता है, जिसमें से सिर्फ़ २) मासिक ही वह भोजन-मद्दे छात्रालय को देता है, बाक़ी के ६) कालिज की आगे की पढ़ाई के लिए बचाकर रख लेता है । उसे मैंने यह समझाया, कि देखो, छात्रालय तुम्हारे ऊपर जो ख़र्च कर रहा है उसका हर माह पूरा-पूरा हिसाब चुकता करते जाओ, और कालिज के ख़र्चे की तुम कोई चिंता न करो ।

फिर भंगियों की बस्ती देखी । वहाँ यह मालूम हुआ कि ये लोग क़र्ज़े के भार से बेतरह दबे पड़े हैं—दो आने रुपया माहवारी ब्याज पठानों और दूसरे साहूकारों को भर रहे हैं । यह अपार क़र्ज़ा इस तरह कभी बेबाक़ होने का नहीं । इसलिए मैंने सेनेटरी कमेटी के चेयरमैन साहब से कहा, कि अच्छा तो यह होगा, कि इन ग़रीबों को ऋणमुक्त करने के लिए आप यहाँ एक अच्छी-सी ऋणदात्री सहकारी समिति खुलवादें । सेनेटरी कमेटीने भंगियों के लिए अच्छे से झोंपड़े बनवाने के लिए कुछ रुपये मंज़ूर किये हैं । यहाँ भंगियों के कुल जमा १३ घर हैं ।

यहाँ से १४ मील पर विनोबा नाम का एक गाँव है । वहाँ का निवाड़ मशहूर है । मिल के सूत की निवाड़ यहाँ बड़ी मज़बूत बुनी जाती है । श्री किसनराम हरिजन भाई का सुन्दर मकान देखकर चित्त प्रसन्न हो गया । ख़ूब साफ़-सुथरा मकान है और सामने एक मनोरम बाग़ है । यहाँ एक छोटी-सी सभा में मैंने और महान् ग्रामसेवक श्रीयुक्त अमृतकरने, जिनका कि मैं मेहमान था, भाषण दिये ।

भुसावल

११ नवंबर—अमरावती के हरिजन-सेवा-रत मित्रों से मिल चुकने के पश्चात् लौटती बार मैंने भुसावल का हरिजन-कार्य देखा । भुसावल रात को काफ़ी देर से पहुँचा था । दूसरे दिन बड़े सबेरे भंगियों के बच्चों की पाठशाला देखी, और फिर भंगी लोगों का मुहल्ला देखने गया । जयपुर और अलवर राज्य के तथा इटावा ज़िले के निराधार बहुत-से भंगी भुसावलवासी हो गये हैं, और उन्हें यहाँ बसे काफ़ी अर्सा हो गया है । यहाँ सेवा-कार्य के लिए ख़ासा अच्छा क्षेत्र है, क्योंकि इस क़स्बे में और रेलवेवालों की बस्ती में हरिजनों की बहुत बड़ी आबादी है । स्थानीय संघ श्री बी० बी० दस्ताने की देखरेख में यहाँ सेवा-कार्य कर रहा है । कार्य-क्षेत्र बढ़ाया जाय तो बहुत बढ़ सकता है ।

सूरत

११ नवंबर—शाम को सूरत पहुँचा । काज़ीपुर नामक एक हरिजन-मुहल्ले में विद्यार्थी-मंडल की ओर से वहाँ एक वाचनालय खुला हुआ है । स्थानीय हरिजन सेवकों से मैं वहाँ मिला और आगे किस प्रकार का काम किया जाय इस संबंध में उनसे बातचीत भी की । म्यूनिसिपैलिटी के मेहतरों के हितार्थ यहाँ एक बहुत बड़ी ऋणदात्री सहकारी समिति काम कर रही है ।

साबरमती

१२ नवंबर—चंपल बनाने का काम सीखनेवाले आश्रमवासी लड़कों से बात की । फिर साबरमती-आश्रम की अनेक इमारतों को अच्छी तरह देखा, और वहाँ सकुटुम्ब रहनेवाले कुछ सज्जनों से मिला । यहाँ का छोटा-सा चर्मालय भी देखा, जहाँ से चंपल विभाग को बना-बनाया चमड़ा जाता है । फिर दुग्धशाला को देखा, जिसके लिए यहाँ के कुछ मकान किराये पर दे दिये गये हैं । इसके बाद अहमदाबाद में प्रांतीय कार्यकर्ताओं की जो बैठक हुई उसमें भाग लिया । संघ की शहरवाली शाखा को बंद कर देने, बल्कि उसे ज़िला-संघ में मिला देने के, विषय पर बात हुई, पर यह प्रश्न आगे के लिए स्थगित कर दिया गया ।

[४१५ पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २१ दिसम्बर, १६३४

ग्राम्यउद्योग-संघ

[कांग्रेस के बाद पिछले हफ़्ते इधर गांधीजी को बहुत काम करना पड़ा है। उनके मन में आजकल ग्राम्यउद्योग-संघ के ही विचार घर किये हुए हैं, और उनका इस विषय का पत्र-व्यवहार इतना अधिक बढ़ गया है, कि उसका निपटाना मुश्किल हो गया है। पर दो सप्ताह पहले गांधी-सेवा-संघ के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर तो काम बहुत बढ़ गया था। गांधी-सेवा-संघ में ऐसे कितने ही चुने हुए देश-सेवक हैं, जो रचनात्मक कार्य के लिए अपना सारा समय देने को सतत तत्पर रहते हैं। उनके आगे गांधीजीने उन दिनों अपना जो तीसरा भाषण दिया उसमें उन्होंने ग्राम्यउद्योग-संघ का अर्थ और उसका कार्य-विस्तार भली भाँति समझाया था। नीचे उस भाषण का सारांश दिया जाता है। म० ह० देसाई]

संघ की बात उठी कैसे ?

यह तो आप लोगों में से कई सज्जन जानते ही होंगे कि यह ग्राम्यउद्योग-संघ की बात किस तरह मेरे मन में आई। गत वर्ष हरिजन-कार्य के निमित्त जब मैं समस्त देश का भ्रमण कर रहा था, तब मुझे यह सूर्य-प्रकाश की भाँति स्पष्ट दिखाई दिया कि जिस प्रकार आज हम खादी का कार्य चला रहे हैं, उससे तो प्रकार खादी देशव्यापी होने की नहीं, और इस तरह हमारे ग्रामों को नया जीवन भी मिलने का नहीं। मैंने देखा कि खादी पहननेवाले देश में बहुत ही थोड़े हैं, और जो लोग केवल खादी पहनते हैं, वे भी कुछ ऐसा मानते हैं कि बस, अब हमने जग जीत लिया, और अब करने को रहा ही क्या —चाहे जिन चीज़ों का, वे चाहे जिस तरह तैयार हुई हों, हम उनका उपयोग कर सकते हैं। मुझे ऐसा दिखाई दिया, कि खादी के पीछे हमारी जो भावना है उसे भुलाकर केवल एक जड़ रूढ़ि की तरह हम खादी का उपयोग करने लगे हैं। मैंने देखा, कि अगर यही दशा बनी रही तो केवल पोषण के अभाव में ही खादी का खात्मा हो जायगा। अगर एकाग्रता और उत्कटतापूर्वक हम केवल खादी के ही कार्य में अपने को लगादें तो उसमें निश्चयेन हमें सफलता मिले। पर मुझे तो न तो वैसी कहीं एकाग्रता ही दिखाई दी, न उत्कटता ही। हम सब लोगोंने न तो अपना अवकाश का सारा समय ही कभी चर्खे या तकली को दिया और न हम सबने केवल खादी ही पहनने का व्रत लिया—यद्यपि कतैयों की संख्या से खादी पहननेवालों की संख्या अवश्य अधिक रही। मगर बाक़ी के सब आदमी हाथ-पर-हाथ धरे ही बैठे रहे। लाखों मनुष्य अनिच्छापूर्वक व्यर्थ दिन काटते रहे। मैंने देखा कि यह स्थिति तो हमारा सत्यानाश करके ही छोड़ेगी। मुझे यह लगा कि इन लोगों को कभी स्वराज प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि ये लोग चाहे अनिच्छा से आलस में बैठे-बैठे दिन काट रहे हों, या स्वेच्छा से, तो भी विदेशी तथा देशी लुटेरों का शिकार तो इन्हें सदा बना ही रहना है। इन्हें लूटनेवाले विलायत के हों या हिंदुस्तान के शहरों के हों, इनकी स्थिति तो ऐसी ही सदा रहेगी, इन्हें स्वराज मिलने-मिलाने का नहीं। इसलिए मैंने अपने मन में कहा, कि 'ये लोग अगर खादी में रस नहीं लेना चाहते तो इनसे कुछ दूसरा काम करने के लिए कहना चाहिए; ये लोग कोई ऐसा काम क्यों न करें, जो इनके बाप-दादे करते थे, पर जो कुछ समय से बन्द हो गया है ?' थोड़े ही बरस हुए कि ये लोग अपने नित्य के उपयोग की अनेक चीज़ें खुद ही बना लेते थे, पर अब उनके लिए उन्हें बाहर की दुनिया के आसरे रहना पड़ता है। छोटे-छोटे क़स्बों में रहनेवाले लोगों के नित्य के उपयोग की ऐसी बहुत-सी चीज़ें थीं, जिनके लिए उन्हें गाँववालों पर निर्भर रहना पड़ता था, पर अब उन चीज़ों को वे लोग शहर से मँगा लेते हैं। जिस क्षण ग्रामवासी अपने अवकाश के सारे समय को किसी उपयोगी काम में लगाने का पक्का इरादा कर लेंगे, साथ ही शहरवाले इन गाँवों की बनी हुई चीज़ों को काम में लाने का संकल्प कर लेंगे, उसी क्षण गाँववालों तथा शहरवालों का जो पारस्परिक प्रेम-सम्बन्ध टूट गया है वह फिर से जुड़ जायगा। मृत अथवा मृतप्राय ग्राम्यउद्योगों और कलाओं में से कौन-कौन उद्योग और हुनर सजीव किये जा सकते हैं, इस विषय में तो हम निश्चयपूर्वक तबतक कुछ भी नहीं कह सकते, जबतक कि हम गाँवों में जाकर उनकी ठीक-ठीक तहक़ीक़ात करके उनके कोष्ठक न बनालें और उनका वर्गीकरण न करलें। पर मैंने सबसे महत्व की तो अभी ये दो चीज़ें चुन ली हैं, खाने-पीने की चीज़ें और पहनने-ओढ़ने की चीज़ें। पहनने-ओढ़ने की चीज़ों में खादी तो हमारी है ही। रही आहार की चीज़ें, सो इस विषय में हम पहले दूसरों के आसरे नहीं रहते थे; पर आज वह स्थिति नहीं रही, आज तो खाने-पीने की चीज़ों में भी हम परावलम्बी हो गये हैं। थोड़े ही बरस पहले हम हाथ से ओखली में चावल कूट लेते और जाँते से आटा पीस लेते थे। थोड़ी देर के लिए स्वास्थ्य के प्रश्न को अलग रख दीजिए, तो भी यह बात तो निर्विवाद है, कि आटे और चावल की मिलोंने लाखों स्त्रियों का काम बड़ी बेदर्दी से छीन लिया है, न जाने कितनी असहाय राँड़ बेवा स्त्रियों का पेट पल जाता था, पर आज तो इन ज़ालिम मिलोंने उनकी रोज़ी को भी पीस डाला है। गुड़ का स्थान वह शक्कर लेती जा रही है; और बिस्कुट और मिठाई-जैसी बनी-बनाई चीज़ें हमारे गाँवों में बिना किसी रोकटोक के पैठती चली जा रही हैं। इसका यह अर्थ है, कि गाँवों के प्रायः सभी उद्योग धीरे-धीरे ग्रामवासी के हाथ से खिसकते जा रहे हैं और बेचारा ग्रामवासी अपने लुटेरों के लिए कच्चा माल पैदा करने के अतिरिक्त और कुछ कर ही नहीं सकता। वह एकदम असमर्थ और पशु हो गया है। वह हमेशा देता ही है, बदले में उस बेचारे को मिलता मिलाता कुछ भी नहीं। कच्चे माल के बदले में उसे जो नगण्य-सा पैसा मिलता है, उसे भी वह शक्कर और कपड़े के व्यापारी के हवाले कर देता है। उसके पल्ले एक पाई भी नहीं रहती। जिन पशुओं के संग-साथ वह दिन-रात रहता है, उन्हीं के जैसा उसका मन और शरीर हो गया है। जब हम विचार करते हैं तो हम देखते हैं, कि पचास बरस पहले के ग्रामवासी में जितनी समझ या चतुराई थी उससे आधी भी तो आज के ग्राम्यवासी में नहीं रही। कारण यह है कि आज का ग्रामवासी तो दारिद्र्य, परावलम्बन और आलस्य के गर्त में गिर पड़ा है, जब कि पचास बरस पहले का ग्रामवासी अपनी ज़रूरतभर की चीज़ों को अपनी

बुद्धि और अपने हाथ से खुद तैयार कर लेता था। गाँव के कारीगर की भी दशा गाँव के दूसरे लोगों से कुछ बेहतर नहीं। उसकी भी बुद्धि उन्हीं की जैसी जड़ हो गई है। गाँव के बढ़ई के पास आप जायें और उससे चर्खा बना देने के लिए कहें या गाँव के लुहार से तकुवा बना देने को कहें तो आपको निराश होना पड़ेगा। यह बड़े दुःख की अवस्था है। इस रोग का इलाज करने के लिए ही ग्राम्यउद्योग-संघ का यह विचार मेरे मन में उठा है।

पश्चाद्गमन है क्या?

कुछ आलोचक कहते हैं, कि 'ग्रामों की ओर' की इस पुकार से तो हमारी प्रगति का काँटा उलटा पीछे की ओर घूम जायगा। पर क्या यह बात सच है? इसमें गाँव की ओर हमारे पिछड़ने की बात है, या जिस चीज़ पर गाँव का अपना अधिकार था उसे लौटा देने की बात है? शहर के लोगों से मैं यह तो कहता नहीं कि तुम गाँवों में जाकर बस जाओ। मैं तो उनसे सिर्फ इतना ही कहता हूँ, कि तुम्हारे ऊपर गाँवों का जो कर्ज़ा चढ़ा हुआ है उसे अदा करदो। गाँववाला न दे तो शहरवाले को कच्चे माल की एक भी चीज़ बनाओ कहाँ से मिल सकती है? पहले तो ये गाँवों के लोग अपने निस्तार की चीज़ें खुद तैयार करते ही थे और आज भी तैयार करते होते, पर शहर वालों की लूटखसोट के मारे वे बेचारे कर ही कहाँ सकते हैं? तो हम क्यों न उन्हें पुनः उनके मृत अथवा मृतप्राय उद्योग-धंधों की ओर ले जायँ?

भगीरथ कार्य

पर ग्रामवासी को उसकी उसी प्राकृतिक स्थिति पर पुनः पहुँचा देना कोई आसान काम नहीं है। मैंने यह सोचा था कि श्री कुमारप्पा की सहायता से मैं शीघ्र ही इस संघ का विधान बना लूँगा और इसका काम चालू कर दूँगा। मगर मैं इस काम में ज्यों-ज्यों गहरा उतरता जाता हूँ, त्यों-त्यों मैं और और नीचे धँसता चला जाता हूँ। इस काम की अगम थाह मुझे अबतक मिल नहीं सकी। एक तरह से यह काम खादी से कठिन है। खादी में तो कोई ऐसा अटपटा सवाल ही नहीं आड़े आता। तमाम विदेशी और मशीन के बने कपड़े का त्याग कर दिया कि खादी मज़बूत पाये पर खड़ी हो गई। पर यह क्षेत्र तो इतना विशाल है, उद्योगों में इतनी अपार विविधता है, कि हमारे अन्दर जितनी कुछ व्यापारी प्रतिभा होगी, जितना कुछ विशेष कौशल और वैज्ञानिक ज्ञान होगा उस सबको कसौटी पर कसना है। बिना सख्त मेहनत के, बिना अविराम प्रयत्न के और इस महान् कार्य में अपनी समस्त व्यापारिक तथा वैज्ञानिक प्रतिभा लगाये बिना हमारा मतलब पूरा होने का नहीं। मैंने अपने यहाँ के अनेक डाक्टरों और रसायन-शास्त्रियों के पास एक प्रश्नावली भेजी थी, और उनसे यह प्रार्थना की थी, कि आप लोग पॉलिश किये हुए और बिना पॉलिश के चावल, गुड़ और खाँड़ इत्यादि का रासायनिक विश्लेषण तथा आहार की दृष्टि से इन सब चीज़ों के मूल्य के विषय में कृपया अपनी सम्मति मेरे पास भेजदें। मैं आभार मानता हूँ, कि मेरे अनेक मित्रोंने तुरन्त ही मेरे प्रश्नों का जवाब लिख भेजा; पर इतना कबूल करने के लिए ही, कि मैंने जिन विषयों के बारे में पूछा था उनमें कितने ही विषयों का अभी बिलकुल ही शोध नहीं हुआ। इससे बड़ी दुःख की बात और क्या हो सकती है, कि गुड़-जैसी सादी चीज़ का रासायनिक विश्लेषण कोई विज्ञान-शास्त्री न बता सके? इसका कारण यह है कि हमने ग्रामवासियों के सम्बन्ध में कभी विचार किया ही नहीं। शहद को ही ले लीजिए। मैंने सुना है कि विदेशों में शहद का विश्लेषण इतनी बारीकी से किया जाता है कि जो नमूना अमुक कसौटी पर खरा नहीं उतरता उसे बाज़ार में बिकने के लिए शीशी में भरते ही नहीं। हिन्दुस्तान में हमारे पास सुन्दर-से-सुन्दर शहद पैदा करने के लिए इतनी अधिक सामग्री पड़ी हुई है कि जिसका कुछ हिसाब नहीं। पर बात तो यह बिगड़ी है न, कि इस विषय का हमें कोई विशेष ज्ञान नहीं। मेरे एक डाक्टर मित्रने लिखा है कि हमारे अस्पताल में तो पॉलिश किये हुए चावल का उपयोग हो ही नहीं सकता—चूहों तथा दूसरे प्राणियों पर प्रयोग करके देखा गया तो यह साबित हुआ कि यह पॉलिश किया हुआ चावल हानिकारक है। किन्तु सब डाक्टरोंने अपने संशोधन तथा प्रयोगों के परिणाम प्रकाशित क्या नहीं किये, और एक स्वर से यह स्पष्टतया क्यों नहीं घोषित कर दिया कि यह पॉलिशदार चावल निश्चय ही हानिकारक है?

आवश्यकता स्वयंसेवकों की है

मैंने तो केवल एक-दो उदाहरण देकर अपनी कठिनाइयों का आशय बतलाया है। हमें किस प्रकार का विधान बनाना चाहिए? हमें प्रयोगशालाओं में किस प्रकार का शोधन कराना चाहिए? हम ऐसे अनेक वैज्ञानिकों और रासायनिकों की आवश्यकता पड़ेगी जो हमें अपने ज्ञान का लाभ देने के लिए तत्पर हों; और इतना ही नहीं, बल्कि जिस दिशा का मैंने ऊपर निर्देश किया है उस दिशा में प्रयोग करने कराने के लिए जो अवैतनिक रूप से अपना काफ़ी समय देने को राज़ी हों। हमें इन प्रयोगों का परिणाम समय-समय पर प्रकाशित करना पड़ेगा और उन्हें प्रमाण पत्र देने होंगे। इसके अलावा हमें इसका भी पता लगाना होगा कि जो ग्रामवासी एकाध अपने उपयोग या आहार की वस्तु बनाते हैं उसे वे बाहर भेजकर खुद बाहर से आई हुई चीज को अपने उपयोग में तो नहीं लाते। हम यह भी देखना पड़ेगा कि ग्रामवासी सबसे पहले अपनी आवश्यकताओं को पूर्ति खुद कर लेते हैं, और इसके बाद ही शहरवालों की आवश्यकताओं के लिए माल पैदा करते हैं न।

इस सब काम के लिए हमें ज़िला-संघ बनाने पड़ेंगे—और जहाँ ज़िला बहुत बड़ा होगा, वहाँ हमें ज़िले के भी विभाग करदेने होंगे। ऐसे ज़िले लगभग २५० के हैं। ऐसे प्रत्येक ज़िला-संघ में हमारा एक एजंट होगा। प्रधान कार्यालय से उसके पास जो सूचनाएं भेजी जायँगी, उनके अनुसार वह गाँवों के उद्योग-धन्धों की जाँच-पड़ताल करेगा और उस विषय की रिपोर्ट तैयार करके भेज देगा। ये एजेंट ऐसे होने चाहिएं, जो इस काम में अपना सारा समय दे सकें और जो बात दूसरों से कहें उस पर खुद भी पूरी तरह से अमल करें। उनके अन्दर संघ के कार्यक्रम के विषय में जीती-जागती श्रद्धा होनी चाहिए और उन्हें अपने जीवन में तत्क्षण आवश्यक हेरफेर करने के लिए सदा उद्यत रहना चाहिए। इस काम में पैसा तो चाहिए ही, पर पैसे की अपेक्षा इसमें ऐसे मनुष्यों की ज़रूरत पड़ेगी, जो अटूट श्रद्धावान् हों और इस काम में ही अपना जीवन खपादें।

प्रश्नोत्तरी

प्रश्न—खादी-कार्य तो अभी अधूरा ही पड़ा हुआ है, और आपने यह और एक काम छेड़ दिया है, क्या इससे खादी-कार्य पिछड़ नहीं जायगा ? क्या इससे खादी को हानि नहीं पहुँचेगी ?

उत्तर—कभी नहीं । खादी तो एक मध्यबिन्दु है, इससे वह अपने स्थान से हट नहीं सकती । समस्त उद्योगों के ग्रह मण्डल में खादी सूर्य के समान होगी । दूसरे सब उद्योगों को इस सूर्यरूप खादी-उद्योग से उष्मा तथा पोषण प्राप्त हुआ करेगा ।

प्रश्न—हमें किन-किन उद्योगों को सजीव करना अथवा बढ़ाना चाहिए ?

उत्तर—मैंने तो केवल दिशा बता दी है । जो उद्योग पहले जीवित-जाग्रत थे, और जिनके नष्ट होने से आज लोगों में बेकारी फैल गई है ऐसे प्रत्येक उद्योग को हमें सहारा देना है ।

प्रश्न—क्या हमें चावल और आटे की मिलों का बहिष्कार घोषित कर देना चाहिए ?

उत्तर—बहिष्कार की हमें कोई घोषणा नहीं करनी है । हम तो लोगों से यह कहेंगे, कि तुम चावल को खुद अपने हाथ से घर की ओखली में कूट लो और जाँते में अपना अनाज पीस लो । हम तो हमेशा इस प्रकार का प्रचार करते रहेंगे कि हाथ का कुटा चावल और हथचक्की का पिसा आटा ही स्वास्थ्य की दृष्टि से आहार की बढ़िया चीज़ें हैं ।

प्रश्न—इस काम में क्या हम कांग्रेस-कमेटियों का उपयोग कर सकते हैं ?

उत्तर—अवश्य । हमें तो जहाँ से मदद मिले वहाँ से लेना है । इस काम में हमें राजनीति का विचार नहीं करना है, इसमें पक्ष-विपक्ष को तो कोई स्थान ही नहीं ।

प्रश्न—संघ का केन्द्रक बोर्ड बना तो इसका तो यही मतलब हुआ न कि यह कारबार इकहत्था हो गया ?

उत्तर—नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है । कार्य के केन्द्र तो ज़िले रहेंगे । प्रधान कार्यालय तो वर्धा में बैठकर सारे हिंदुस्तान में सिर्फ़ सूचनाएँ भेजा करेगा; सारे देश का कारबार वह नहीं चलायगा । इसके ज़िम्मे तो केवल पत्र-व्यवहार करने-कराने का काम रहेगा । इसके द्वारा देशभर के एजेंट केवल विचारों तथा अनुभवों का विनिमय किया करेंगे । हमें तो कारबार को इकहत्था होने से रोकना है । हमें तो एक ऐसा मध्यवर्ती केन्द्र तैयार करना है, जहाँ से विचारों, कल्पनाओं और वैज्ञानिक ज्ञान की धारा एक स्थान से फूटकर अनेक दिशाओं में प्रवाहित हो ।

एक हरिजन-सेवक का स्वर्गवास

उस दिन बेंगलोर में ८५ वर्ष की अवस्था में श्री वी० पी० माधवराव का स्वर्गवास हो गया । मैं दिवंगत आत्मा के शोकाकुल परिवार के साथ सादर समवेदना प्रगट करता हूँ । श्री माधवराव बारगकोर, बरोदा और मैसूर राज्य के दीवान रह चुके थे । अवकाश ग्रहण करने के बाद वह अपना समय समाज-सेवा में लगाया करते थे । और यद्यपि वह इतने वृद्ध हो गये थे, तो भी स्थानीय हरिजन-सेवक-संघ का अध्यक्षपद उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया था । ईश्वर उनकी स्वर्गीय आत्मा को शाश्वत शांति प्रदान करे ।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

प्रतिष्ठा की अस्पृश्यता

हवा सब जगह बहती है सब को छूती है, और दुनिया की एकरूपता सिद्ध करती है । स्वर्ग के देव और क़ब्र के मुर्दे हवा का त्याग कर सकते हैं । दोनों अस्पृश्य हैं । ईश्वर की इच्छा पृथ्वी को पृथ्वी ही बनाये रखने की है, लेकिन कुछ लोग अपने एकांगी विचारों के प्रवाह में बहकर इस भूलोक पर ही स्वर्ग और नरक की सृष्टि करना चाहते हैं । मुर्दा सड़ता है, उसमें प्राण नहीं होता, पृथ्वी के लिए वह भाररूप है, इसलिए कोई उसे छूता नहीं; यही नहीं बल्कि उसे दफ़नाकर या जलाकर लोग उसका समूचा नाश कर डालते हैं । देव इसे छूते नहीं, न वे इस भूलोक पर विचरण ही करते हैं । जब वे विचरण करना चाहते हैं, मानवरूप धारण करते हैं, मनुष्य की तरह व्यवहार करते हैं तभी मनुष्यों से मिलते-जुलते हैं । जब देव ऐसा करने से इनकार करते हैं, तब उन्हें पत्थर बनकर 'कारागार' में रहना पड़ता है ।

हमारे समाज में भी ऐसे दो अस्पृश्य वर्ग पाये जाते हैं—एक अन्त्यजों का और दूसरा अग्रजों (कुलीनों) का । ढेढ़ों की भाँति शंकराचार्य भी अस्पृश्य हैं । हम दोनों के साथ एक पंक्ति में नहीं जीमते । दोनों से हम हाथभर दूर रहते हैं । दोनों को वेद का अधिकार नहीं है, इस कारण दोनों का समाज में स्थान नहीं । समाज में उनकी स्थिति जोखमवाली है । अगर उन्हें समाज में लेना हो, तो पहले उनकी यह अस्पृश्यता दूर की जानी चाहिए । अन्त्यजों को अस्पृश्य के रूप में समाज में रखने से देश में सामाजिक गन्दगी बढ़ेगी । इसे दूर करने के केवल दो उपाय हैं—या तो हिन्दू-समाज से उनको निकाल दिया जाय, नष्ट कर दिया जाय, या उन्हें स्पृश्य माना जाय । ब्राह्मण-संस्कृति के प्रतिनिधि शंकराचार्यों को भी समाज में मनुष्य की तरह व्यवहार करना चाहिए, समाज की स्थिति का विचार करना और धर्मोपदेश द्वारा समाज की सेवा करना चाहिए, और अगर ऐसा न करना हो तो केवल लोगों की सेवा और पूजा स्वीकार करनेवाली जड़ और मूक मूर्ति बनकर बैठ जाना चाहिए । नेपाल में राजा का महत्त्व इतना अधिक माना जाता है कि व्यवहार का कोई भी काम वहाँ राजा के करने योग्य नहीं समझा जाता । प्रजापालन, शत्रुदमन, मन्त्रियों और राजकर्मचारियों की देखरेख, क़ानून बनाना, किसी को सज़ा देना या माफ़ करना—इनमें से कोई भी काम अगर राजा स्वयं करे, तो उसकी प्रतिष्ठा को आघात पहुँचता है । सारा राजकार्य प्रधान मंत्री करता है । राजा सिर्फ़ **'होता है'** । ऐसे अस्पृश्य राजा से प्रजा को क्या लाभ होता होगा, सो तो प्रजा ही जाने । नेपाल के राजा का सम्मान चाहे जितना हो, समाज के लेखे तो वह एक अहेतुक निरुपयोग प्राणी है, क्योंकि वह अस्पृश्य है । वेद-विद्या को भी हमने ऐसा ही बना रक्खा है । वेद इतने पवित्र हैं कि उनका स्पर्शतक नहीं किया जा सकता । संस्कृत भाषा की भी यही दशा हुई है । संस्कृत तो देवों की वाणी ठहरी । मनुष्यों में उसका चलन क्योंकर हो ? उसे तो जड़, निर्जीव और वीतप्राण बनकर रहना चाहिए । इस प्रतिष्ठा की अस्पृश्यता से देववाणी और भूदेवों के वर्ग का कौन उद्धार करेगा ? जहाँ शरीर के पैर और सिर जैसे अवयव ही समाज-सेवा के लिए अयोग्य कहे जायँ, वहाँ मनुष्य को पेट के बल ही तो चलना पड़ेगा न ?

समाज को पशु न बनाना हो, तो शंकराचार्यों और नेपाल के

महाराजा जैसे राजाओं को अपनी अस्पृश्यता छोड़कर आज समाज में हिल-मिल जाना चाहिए और हरिजनों की अस्पृश्यता को दूर करके उन्हें भी समाज में मिलजुल जाने देना चाहिए। तभी धार्मिक अंधकार का नाश होगा; तभी हिन्दूधर्म के माथे का कलंक धुलेगा। दिन दहाड़े मशाल जलाकर चलने से लाभ क्या?

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

दिल्ली के साँसियों में सेवा-कार्य

दिल्ली शहर की सरहद पर और रेगड़पुरा के पास एक बस्ती है। इसमें सांसियों के ६५ घर हैं। सांसियों की गणना जरायमपेशा जातियों में की जाती है, और इसीसे उन्हें यहां कजर कहते हैं। क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट के अनुसार उन्हें नित्य पुलिस में अपनी हाजिरी देनी पड़ती है। उन्हें अछूतों से भी बदतर समझा जाता है और समाजने इनके साथ किसी तरह का संपर्क नहीं रखा है। यद्यपि इनमें से कुछ लोग अपने पसीने की कमाई खाते हैं—जैसे कुछ दफ्तरों में चपरासी का काम करते हैं, तो कुछ माली का, एक भाई मोटर ड्राइवर है, एक चौकीदार है—पर अधिकांश तो बेकार ही रहते हैं और रोजी का कोई जरिया न मिलने से कभी-कभी न करने लायक काम भी कर बैठते हैं। ये लोग सूअर पालने और उनका रोजगार करते हैं।

२८ बालिग पुरुषों को सबरे पास के पुलिस-थाने में रोज तीन बार हाजिरी देनी पड़ती है—सबेरे, शाम को और रात को १२ बजे, और ५० बालिग पुरुष ऐसे हैं, जिन्हें सिर्फ एक बार आधी रात को हाजिरी लिखानी पड़ती है। इस तरह ८५ में से ७८ बालिग पुरुष किसी-न-किसी तरह क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट के अन्दर आ जाते हैं।

प्रभुदयाल नामक एक हरिजन-सेवक सवा महीने से सांसियों की इस बस्ती में काम कर रहे हैं, और वहीं उनके बीच एक झोपड़ी में रहते हैं। दिल्ली प्रांतीय संघने उनके बच्चों के लिए एक पाठशाला भी खोल दी है। श्री प्रभुदयाल से मैंने इन लोगों के कर्जे की एक सूची तैयार कर देने के लिए कहा था, पर पहले तो कुछ लोगोंने उन्हें गलत और भ्रामक आकड़े लिखा दिये और कुछ लोगोंने यह कहकर कि, हम तुम्हें अपने घर का भेद क्यों बतावें, इसमें हमारी हतक है, लिखाने से साफ इन्कार कर दिया। मगर कुछ दिनों के घनिष्ठ परिचय के कारण जब श्री प्रभुदयाल के ऊपर उनका विश्वास जम गया तब उन्होंने अपनी आमदनी, जायदाद, कर्जे और बेकारी की उन्हें ठीक-ठीक खानापूरी करादी।

लगातार तीन दिन नित्य सबेरे हमारे उक्त सांसी-सेवकने खुद अपने हाथों बस्ती की सफाई की, पर चौथे दिन उन लोगों को कुछ शर्म मालूम हुई और इस तरह रोज-रोज दूसरे से अपने घर-द्वार की सफाई कराना उन्हें अच्छा न लगा। अब वे सब सफाई की तरफ ध्यान देने लगे हैं, और प्रभुदयाल को सिर्फ यह देखने के लिए बस्ती में नित्य चक्कर लगाना पड़ता है, कि सफाई उनके संतोष की हुई है या नहीं। जब वह यह देखते हैं, कि अमुक घर की बहिनने सफाई ठीक-ठीक नहीं की, तो वह खुद उसका कूड़ा-कचरा साफ करने लग जाते हैं। यह देखकर वह बहिन लज्जित हो जाती है और सेवक के हाथ से झाड़ू छीनकर खुद अपना दरवाजा झाड़ने-बुहारने लगती है।

प्रभुदयालजी रात को कुछ बच्चों और कुछ सयानों को पढ़ाते हैं, रामायण सुनाते हैं और रोगियों को दवा-दारू देते हैं। एक लड़का चार महीने से एक भयानक फोड़े से पीड़ित था, न तो वह फोड़ा बैठता था, न फूटता। एक दिन एक डाक्टर को लेजाकर दिखाया और तब से उसकी हालत कुछ अच्छी है। बात तो यह विगड़ी है कि ये लोग दवा-दारू में विश्वास नहीं करते। इनका विश्वास तो जादू-मंतर और झाड़-फूंक पर जमा हुआ है। इसलिए खाने-पीने की दवाई तो दूर, ये लोग पुल्टिस बँधवाने या मरहम लगवाने को भी आसानी से राजी नहीं होते।

इस बस्ती में फुटबाल और वालीबाल का भी प्रबन्ध कर दिया गया है, जिससे लड़कों और बड़ी उमृ के लोगों का मनोरंजन हो जाता है और साथ ही कुछ व्यायाम भी।

ये लोग जो कर्जदार हैं, उसका असली कारण यह है कि शादी-ब्याह के अवसर पर तीन-तीन सौ रुपयेतक इनके खर्च हो जाते हैं। लड़केवाला लड़की के पिता को खासी रकम देता है और मेहमानों की आव-भगत में भी खूब खर्च होता है। शादी-ब्याह और मरण (मृतक-संस्कार) में तो प्रायः अधिकांश हरिजन जातियां सिर से लेकर चोटीतक कर्जे में डूब जाती हैं और सूद देते-देते ही उनका कचूमर निकल जाता है, मूल चुकाने की तो कभी नौबत ही नहीं आती। सांसियों में यह रिवाज है कि लड़के का पिता लड़कीवाले को एक खासा मोटा सूअर देता है जिसकी कीमत ८०) से कम नहीं होती।

१५–२० दिन हुए, कि चंद अच्छे विचारों के सांसियोंने आइन्दा जुआ न खेलने की सौगंद खाई है। रात को नित्य रामायण की कथा सुनने से ही उन पर यह प्रभाव पड़ा है। जुआ खेलने की इन लोगों में बड़ी बुरी लत है। आशा है कि सत्संग और सेवा-कार्य से प्रभावित होकर इस सत्यानाशी व्यसन का हमारे सांसी भाई सर्वथा परित्याग कर देंगे। अमृतलाल वि० ठक्कर

मेरी हरिजन-यात्रा

[४११ पृष्ठ से आगे]

काठियावाड़ का दौरा

लखतर

१३ नवंबर—काठियावाड़ के मेरे एक मास के प्रवास का श्रीगणेश लखतर राज्य में हुआ। यहां १० साल या इससे भी अधिक अर्से से एक हरिजन-पाठशाला चल रही है, जिसे राज्य की तरफ से सहायता मिलती है। यह पाठशाला ऐसी स्थिति में नहीं है कि कुछ तरक्की कर सके। इधर दो साल से भंगी बालकों को भी एक अलग क्लास खोलकर शिक्षा दी जा रही है। हमारे काठियावाड़ में भंगियों और अन्य हरिजन हिंदुओं के दरम्यान गजब का भेदभाव देखने में आता है। आपसी भेदभाव की इस खाई को पाटना बहुत ज़रूरी है, और यह काम प्रेमपूर्वक समझाने-बुझाने और इस अत्यंत दलित हरिजनवर्ग की सक्रिय सेवा करने से ही हो सकता है। कुछ महीनों से आसपास के गाँवों में भी वहाँ तीन हरिजन-पाठशालाएँ खुल गई हैं। इन पाठशालाओं के भी बालक वहाँ उस दिन एकत्र हुए और उन्हें कुछ कपड़े दिये गये। फिर हरिजनों की एक सभा में भाषण दिया, जिसमें मुर्दार मांस छोड़ देने के लिए उनसे कहा गया। इन हरिजन-पाठशालाओं तथा अन्य सेवा-कार्य की व्यवस्था और देखरेख के लिए लखतर में एक स्थानीय समिति भी बना दी गई।

अमृतलाल वि० ठक्कर

राजपूताने का कार्यविवरण

[अक्तूबर १९३३ से सितम्बर १९३४ तक]

धार्मिक—एक मन्दिर (अजमेर का सूरजकुण्डवाला बालाजी का) हरिजनों के लिए खोल दिया गया। २६० बार हरिजन-मुहल्लों में सम्मिलित भजन-कीर्तन हुए। १७० कथाएँ हरिजन-मुहल्लों में कराई गईं। होली का त्योहार लगभग सभी शाखाओंने मनाया और हरिजनों के प्रति भ्रातृभाव दिखाया। पूर्णाहुति-दिवस, अर्थात् महात्माजी के हरिजन-प्रवास का अन्तिम दिन ६ स्थानों पर धार्मिक रीति से मनाया गया।

शिक्षा-सम्बन्धी—११९ हरिजनों को सार्वजनिक पाठशालाओं में भर्ती कराया गया। ३१ दिवस-पाठशालाएँ और ४३ रात्रि-पाठशालाएँ नई खोली गई। २ आश्रम (१ अजमेर के पास नारेली गाँव में और दूसरा डूंगरपुर राज्य के सागवाड़ा गाँव में राजस्थान-सेवक-मंडल द्वारा) खोले गये हैं। १ हरिजन-छात्रावास पिलानी की शाखाने खोला है, जिसका आधा खर्चा श्री ज्वालाप्रसादजी मंडेलिया देते हैं। संघने नारेली-सेवा-आश्रम में राजपूताने के लिए हरिजन-कार्यकर्ताओं और शिक्षकों को तैयार करने के निमित्त शिक्षण-वर्ग भी खोले हैं। १ अखाड़ा हरिजन छात्रों के लिए नीम के थाने में खोला गया है।

आजकल कुल १२२ स्कूल चल रहे हैं; उनमें से ६५ दिवस-पाठशालाएँ हैं और ५७ रात्रि-पाठशालाएँ; कुल ३४०९ विद्यार्थी इनमें शिक्षा पा रहे हैं। ६६ बालिकाओं-समेत २७५३ हरिजन और शेष सवर्ण छात्र हैं।

आर्थिक—८७ मेहतरों को सुविधाजनक शर्त पर क़र्ज़ दिलाने में सहायता दी गई। ६९ हरिजनों को नौकरियाँ दिलाई गईं। १०२८ हरिजनों को मिठाई, फल तथा अन्य खाद्य पदार्थ बाँटे गये। ८० मेहतरों को भोजन कराया गया। ३३६५ हरिजन छात्रों का स्लेट वगैरा मुफ्त दी गईं। ७४५ हरिजन छात्रों को कपड़े मुफ्त दिये गये। १३९) रु० कीमत की खादी की गाँठें बिहार के भूकम्पपीड़ित हरिजनों की सहायता के लिए भेजी गईं। २ हरिजनों को पुराने क़र्ज़ से छुड़ाया गया। १ सहयोग-भंडार खोरा-बीसल (जयपुर) गाँव में खोला गया था, किंतु ग्राहकों की कमी के कारण बन्द कर देना पड़ा। २ हरिजन बहिनों को प्रसूति-खर्च दिया गया। बाँसा की हरिजन-पाठशाला की कोशिश से एक मृत्यु-संस्कार में फ़िज़ूलखर्ची की बड़ी भारी कमी हुई। मसूदा (अजमेर) में अजमेर-शाखा की तरफ़ से काफ़ी ज़ोर दिये जाने पर म्यूनिसिपैलिटीने मेहतरों के मकानों की मरम्मत करा दी। १ हरिजन स्त्री को सामोद (जयपुर) में अपने घर पर नया छप्पर डलवाने में मदद दी गई। नारेली सेवा-आश्रम के कार्यकर्ता नारेली तथा आसपास के दूसरे गाँवों में भी हरिजनों के विवाह और औसर के खर्चों की कुछ कमी कराने में सफल हुए हैं। रामगढ़-समितिने मेहतरों को एक पूरा बैंड बाजा ख़रीद दिया है। यही बाजा हरिजन व सवर्ण हिंदू अपने यहाँ मंगाते हैं, जिससे उन्हें लगभग ५००) के आय हो जाती है।

स्वच्छता—४४८३ चक्कर सफ़ाई के प्रचार के लिए हरिजन-मुहल्लों में लगाये गये और उनको सफ़ाई के लाभ समझाये गये। १३१११ हरिजन छात्रों को साबुन की टिकियाँ मुफ्त दी गईं। ८०७७ हरिजन छात्रों को संघ के कार्यकर्ताओं तथा शिक्षकोंने नहलाया। १५ बार आश्रम के कार्यकर्ताओं की प्रेरणा से हरिजनोंने खुद अपने मुहल्ले साफ़ किये।

मद्य-मांस-निषेध—३१५१ हरिजनोंने मुर्दारमांस न खाने की प्रतिज्ञाएँ कीं। २८२४ हरिजनोंने शराब पीना छोड़ा। २२५ हरिजन-सभाएँ, जिनमें कुल उपस्थिति ३००० से ऊपर थी, की गईं। गाँव के चमारोंने बाँसवाड़ा रियासत में मुर्दार मांस छोड़ दिया और वचन-भंग करने पर जातीय दण्ड नियत किया।

बाँसवाड़ा के कुछ हरिजनोंने जातीय प्रतिज्ञाएँ की हैं, और मुर्दार-मांस भक्षण और शराब पीने के खिलाफ़ जातीय दण्ड नियत किये हैं। २५ के क़रीब मेघवंशी हरिजनोंने नसीराबाद में अपनी एक समिति बनाई है। इसके सदस्य अपने मातापिता और भाई-बन्धुओं से मांस न खाने, शराब न पीने और गन्दी आदतों को छोड़ने का अनुरोध करते हैं। रामगढ़ (जयपुर) के चमारोंने पंचायत करके एकमत से मुर्दारमांस खाना और शराब पीना छोड़ दिया और हरेक ऐसे अपराधी के लिए ११) रुपये बतौर जुर्माने के मुक़र्रिर किये। उन्होंने रामगढ़ के आसपास के ३५ गाँवों में इस संदेश के प्रसार का भी निश्चय किया है।

दवा-दारू—४६१८ हरिजनों को दवाएँ दी गई। ३२१ बार डाक्टर-वैद्यों को हरिजन रोगियों के घर लेजाकर दिखाया। ३०६४ हरिजन बीमारों को इलाज से फायदा हुआ। ३ तिल्ली के बीमार हरिजन बालकों को औषधि और उचित पथ्य दो महीने तक दिया गया। ५००) की दवाएँ मारवाड़ी-रिलीफ़-सोसायटी (कलकत्ता) ने संघ की पाठशालाओं-द्वारा बाँटने के लिए दीं।

जल-कष्ट-निवारण—७ सवर्ण कुएँ, १ प्याऊ और म्युनिसिपैलिटी की डिग्गी हरिजनों के लिए खोल दी गई। ६ नये कुएँ हरिजनों के लिए बनवाये गये। १ हौज़ भंगियों के लिए बनवाया गया। ४ पुराने कुओं की मरम्मत कराई गई। १ सम्मिलित प्याऊ हरिजनों और सवर्णों के लिए लगवाई गई। १५) रुपये मासिक मेहतरों के जल-कष्ट-निवारण पर खर्च किये जा रहे हैं।

विविध—११५२ हरिजन-परिवारों की सामाजिक और आर्थिक दशा की जाँच की गई। १४४८ सवर्णोंने छुआछूत को न मानने की प्रतिज्ञाएँ की हैं। ८५ सम्मिलित सभाएँ की गईं। इनमें कुल उपस्थिति १३००० से ऊपर थी। हरिजन और सवर्ण बिना भेद-भाव के सम्मिलित हुए और सवर्णों से अस्पृश्यता निवारण का और हरिजनों से मुर्दार-मांस न खाने, शराब न पीने और गन्दी आदतें छोड़ने का अनुरोध किया गया।

गांधीजी की यात्रा—इस वर्ष ६ जुलाई को गांधीजी अजमेर पधारे। उनकी दो दिन की यात्रा में राजपूताने से उन्हें कुल ७३२९।) हरिजन-कोष में मिले।

सेवा-कार्य में व्यय—प्रान्तीय संघ और उसकी शाखाओंने इस वर्ष कुल २६,२०८॥≶) खर्च किये। इसमें सेवा-कार्य में २०,९६१।-)॥१ पाई, यानी ८० प्रतिशत खर्च हुए। इसका ब्योरा इस प्रकार है :—पाठशालाएँ, आश्रम और छात्रावास १८,०८१)॥; मुफ्त किताबें और स्लेटें बाँटी—३७२।≶)॥, छात्रवृत्तियाँ—७९५-)॥।, मुफ्त कपड़े और साबुन बाँटा—३९१॥=)॥।, जल-कष्ट-निवारण ८२९)॥, औषधि-सहायता—२०२॥≶)।, विविध सहायता—२८०॥=)॥

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)

पता—
हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २८ दिसम्बर, १९३४. [संख्या ४५

विषय-सूची

ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह

इधर थोड़े दिन पहले लोकसेवकों का एक छोटा-सा दल वर्धा में इकट्ठा हुआ था। जो व्यक्ति, अपना सारा जीवन जनता-जनार्दन की सेवा में बिताना चाहता हो, वह निजी परिग्रह रखे या न रखे, ऐसा एक प्रश्न वहां उपस्थित हुआ था। बहुतेरे भाइयों की ऐसी राय मालूम हुई, कि अगर अक्षरशः न हो सके, तो कम-से-कम, व्यवहारतः तो लोकसेवक को अवश्य परिग्रहहीन होना चाहिए। उसका परिग्रह ऐसा और इतना अधिक न होना चाहिए कि वह उसकी सेवा में किसी तरह बाधक हो, और परिग्रह की रक्षा और वृद्धि की ओर उसे ध्यान देना पड़े।

यह तो हुई व्यावहारिक दृष्टि। आध्यात्मिक दृष्टि से भी सब भाइयों का यही अभिप्राय था कि ईश्वर के सहारे रहनेवाला लोकसेवक किसी तरह परिग्रह नहीं रख सकता। अपना या अपने बाल-बच्चों का भविष्य में क्या होगा इसकी चिन्ता जिसने भगवान् ही पर छोड़ दी है, उसे परिग्रह रखने से क्या मतलब?

ये सब विचार मुझे भी मंजूर हैं। लेकिन इसके बाद और जो बातें हुईं उन पर से इन विचारों में कुछ संशोधन करने की जरूरत मुझे मालूम होती है।

जनता का सेवक ब्रह्मचारी ही होना चाहिए या नहीं यह एक दूसरा प्रश्न विचारार्थ रखा गया था। प्रायः सब भाइयों की इस विषय पर यही सम्मति दिखाई दी, कि इस व्रत को हम अनिवार्य नहीं बना सकते। आदर्श के रूप से यह ठीक है, लेकिन उसे अनिवार्य कर देने से उसका पालन नहीं हो सकता। उल्टा उससे तो दम्भ और अनाचार ही बढ़ता है। इसलिए इस विषय में प्रत्येक सेवक को अपनी शक्ति के अनुसार अपना प्रगति-क्रम निश्चित करने की छुट्टी दे देनी चाहिए।

इन बातों को भी मैं मानता हूँ। लेकिन अब प्रश्न यह उठता है कि ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन दो व्रतों में यदि कम मुकर्रर करना हो, तो हमें पहले ब्रह्मचर्य की ओर बढ़ना चाहिए, या अपरिग्रह की ओर?

जिस तरह इन बातों की चर्चा वहां पर हुई, उससे बहुतेरे भाइयों का जोर जितना अपरिग्रही होने पर दिखता था, उतना ब्रह्मचर्य रखने पर न था ऐसा मुझे मालूम हुआ।

यदि यह सच हो, तो यह विचार की भूल है, ऐसा मेरा नम्र मन्तव्य है। परिग्रह छोड़ने की अपेक्षा ब्रह्मचर्य रखना बड़ी मुश्किल बात है, यह सत्य है। इसमें कोई आश्चर्य भी नहीं। परिग्रह को छोड़ना स्थूल त्याग है, ब्रह्मचर्य सूक्ष्म त्याग है। चोर या डाकू बलात्कार से हमें अपरिग्रही बना सकता है। इस प्रकार की समाज-रचना भी बनाई जा सकती है, जिससे धीरे-धीरे समाज का परिग्रह कम होता जाय, और थोड़े लोगों को छोड़कर शेष सब निष्किंचन बन जायं। किन्तु कोई हमें बलात्कार से स्थिरवीर्य नहीं कर सकता। इससे ब्रह्मचर्य के मार्ग में बड़ी कठिनाइयां हैं, इसे मैं स्वीकार करता हूँ।

परन्तु इस बात का भी हमें विचार करना आवश्यक है, कि बिना ब्रह्मचर्य के परिग्रह-त्याग केवल एक वृथा चेष्टा है, और समाजहित की दृष्टि से हानिकर भी है। जो मनुष्य एक ओर से तो सन्तान-वृद्धि किया करता है, और दूसरी ओर से परिग्रह छोड़ बैठता है, उसका अपरिग्रह अन्ततक नहीं टिकेगा, और अगर टिका भी तो न उसकी या उसकी सन्तति की उस अपरिग्रह से विशेष आध्यात्मिक उन्नति होगी, और न उसकी ईश्वर-श्रद्धा भी अन्ततक टिकेगी एवं उसे शान्ति देगी। मनुष्य का प्रथम और विशेष महत्व का परिग्रह तो उसका परिवार है। वह जबतक नहीं छूट सकता, तबतक केवल जड़ और आर्थिक परिग्रह के त्याग से क्या लाभ हो सकता है?

हमें यह बात न भूलनी चाहिए कि जनता का सेवक जनता का ही एक अंश है, और जो नियम सर्वसाधारण के लिए हानिकर हो, वह जनता के सेवक के लिए भी हानिकर ही होगा। क्या हम सर्वसाधारण को यह सलाह दे सकते हैं कि तुम सन्तति-वृद्धि तो भले ही करो, किन्तु अर्थ की वृद्धि और संरक्षण करने की कोई आवश्यकता नहीं? यद्यपि कुछ विद्वानों की यह राय हो, तो भी, कम-से-कम मानव-समाज की आज की परिस्थिति में न हम समाज के सामने ऐसा आदर्श रख सकते हैं और न उसकी स्वीकृति की आशा कर सकते हैं। उल्टा यह कहा जा सकता है कि आज हमारी प्रधान चिन्ता यही है कि हम कोई ऐसा मार्ग निकालें जिससे निर्धनों को अधिक धनप्राप्ति हो, ताकि वे कुछ तो अधिक सुख-सौभाग्य प्राप्त कर सकें। हमारे चरखा-संघ, ग्रामउद्योग-संघ, हरिजन-सेवक-संघ, और हमारा अन्य रचनात्मक कार्यक्रम सभी का प्रायः एक साधारण ध्येय है गरीबों का आर्थिक अभ्युदय

कराना । जनता को विशेष आर्थिक सुख पहुँचाये बिना हम उनकी आध्यात्मिक उन्नति भी नहीं कर सकेंगे ।

यही सिद्धान्त जनता के सेवकों के लिए भी है । यदि उन्हें परिवार रखना और बढ़ाना मंजूर है, तो स्पष्ट ही है कि वे परिग्रह-त्याग में कुछ मर्यादातक ही बढ़ सकेंगे । कुछ-न-कुछ परिग्रह करना, रखना, बढ़ाना उनके लिए अनिवार्य ही होगा ।

अब एक यह सवाल खड़ा हो जाता है कि अगर लोक-सेवक सपरिवार है, और आज अपने अन्दर ब्रह्मचर्य-पालन की शक्ति नहीं पाता तो क्या उसे लोक-सेवा का कार्य छोड़ देना चाहिए ? या, धनोपार्जन में लगकर अपना परिग्रह बढ़ाना चाहिए ?

मेरे कहने का मतलब यह नहीं है । मैं तो इस ओर देश के सेवकों का ध्यान खींचना चाहता हूँ, कि स्थूल परिग्रह त्याग को सिद्ध करने से पूर्व उन्हें ब्रह्मचर्य की आवश्यकता समझ लेनी चाहिए, और उस दिशा में आगे बढ़ने का कोई-न-कोई क्रम सोच लेना चाहिए, एवं प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिए ।

मेरी यह मान्यता है कि विद्या की ही उपासना करने का आदर्श और निस्संग अभिरुचि होने पर भी ब्राह्मणवर्ण की हमारे देश में जो अवनति हुई है, और ब्राह्मणों का बहुत बड़ा भाग केवल नाममात्र का ब्राह्मण रह गया है, इसका प्रधान कारण यही है कि ब्राह्मणधर्म में जितना अपरिग्रह पर जोर दिया गया था, उतना ब्रह्मचर्य पर नहीं दिया गया । दूसरे, अपरिग्रह का अर्थ केवल धनसंग्रह न करना यही नहीं समझा जाता था, बल्कि धन-निर्माण न करना यह भी माना जाता था । इसके कारण ब्राह्मण-समाज अत्यन्त परावलम्बी और शेष समाज के लिए भार-सा बन गया । पर यदि इसके साथ ही उसने कुछ ब्रह्मचर्य-पालन का नियम भी बनाया होता, तो आज की तरह उच्च-संस्कार की परंपरा ब्राह्मणवर्ण न खो बैठता । परन्तु ऐसे किसी नियम के अभाव में बढ़ती हुई ब्राह्मण-प्रजा के लिए शेष समाज से पोषण पाना अधिकाधिक कठिन बनता गया, और उससे उसकी उच्च-संस्कार प्राप्त करने की अनुकूलता क्रमशः घटती गई । अगर देश-सेवक भी केवल अपरिग्रह पर जोर देंगे और ब्रह्मचर्य को कठिन समझकर उसमें ढिलाई करेंगे तो उनकी सन्तान की भी वही दशा होगी जो उन ब्राह्मणों की सन्तान की हुई ।

और, अपरिग्रह का अर्थ धन का असंग्रह, इतना ही करना चाहिए । सेवक ब्रह्मचारी हो या भोगी, उसके अपरिग्रह का मतलब यह न होना चाहिए कि वह कुछ अर्थोत्पत्ति भी न करे, वह स्वाश्रयी भी न हो । बल्कि यह समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य का—चाहे वह जनता का एक साधारण व्यक्ति कहलाता हो या उसका सेवक कहलाता हो—कर्तव्य है कि वह कुछ नया धन-निर्माण करे, और अपने कुछ काम जो वह आज दूसरों के हाथ से कराता है, वह खुद करने लग जाय, और इस तरह व्यर्थ धन-व्यय को भी रोक दे । परन्तु इस विषय पर विशेष विचार फिर कभी करेंगे ।

किशोरलाल घ० मशरूवाला

शास्त्र और अस्पृश्यता

हमारे शास्त्रकारोंने यह अनुभव किया कि यह प्रथानुमोदित कुत्सित अस्पृश्यता तो मानवता के ऊपर एक निर्दय प्रहार है । अतः उन्होंने इससे मुक्ति पाने के उपाय तुरन्त ढूंढ़ निकाले । उदाहरणार्थ, पद्मपुराण में कहा है कि चाण्डाल के भी मस्तक पर यदि ऊर्ध्वपुण्ड्र वैष्णव तिलक हो, तो वह शुद्धात्मा तथा पूजनीय है—

ऊर्ध्वपुण्ड्रमूर्ध्वरेखं ललाटे यस्य दृश्यते ।
चाण्डालोऽपि स शुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः ॥

वामनपुराण के अनुसार वर्णबाह्य वैष्णव भी न केवल स्वयं पुनीत है, वरन वह त्रिलोक को पवित्र करनेवाला है । जो व्यक्ति उसे हीनवर्ण का समझकर उसकी अवहेलना करता है, वह निश्चय ही नरकगामी होता है—

वैष्णवो वर्णबाह्योऽपि पुनाति भुवनत्रयम् ।
शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा ।
वीक्षते जातिसामान्यं स याति नरकं ध्रुवम् ॥

इस विषय में शैवोंने भी कुछ कम उदारता नहीं दिखाई है । शिवपुराण में लिखा है, कि एक चांडाल भी, यदि उसके मस्तक पर त्रिपुण्ड्र और शरीर पर रुद्राक्षमाला है, तो वह श्रेष्ठ ब्राह्मण के समान सपूज्य है —

रुद्राक्षा यस्य गात्रेषु ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम् ।
स चाण्डालोऽपि संपूज्यः सर्ववर्णोत्तमोत्तमः ॥

शास्त्र चिन्हों में जब इतनी बड़ी शक्ति है, तब हम पद्मपुराण में यह देखकर आश्चर्य प्रगट नहीं करना चाहिए कि भगवान् के श्वपच भक्त की तो देवता भी पूजा करते हैं —

श्वपचो भक्तियुक्तस्तु त्रिदशैरपि पूज्यते ।

दस्युओं-समेत समस्त मानवप्राणियों को वैदिक धर्मक्रियाओं के करने का पुरा काल में अधिकार था —

भूमिमानां च शुश्रूषा कर्तव्या सर्वदस्युभिः ।
वेदधर्मक्रियाश्चैव तेषां धर्मो विधीयते ॥

'नमः शिवाय' इस पंचाक्षरी मंत्र के जपने का सभी को, अंत्यजों को भी, अधिकार है —

अन्त्यजो वाधमो वापि मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा ।
पञ्चाक्षरजपे निष्ठो मुच्यते पापबन्धनात् ॥

—शिवपुराण

इसी प्रकार 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस वैष्णव मंत्र को भी सब जप सकते हैं यह इसी मंत्र से आरंभ होनेवाले 'विष्णुस्तोत्र' में स्पष्ट हो जाता है —

वैश्यो भवति श्रीमान सुखी शूद्रो भविष्यति ।
अन्त्यजः श्रावयेशोऽयं पापान्मुक्तो भविष्यति ॥

—पद्मपुराण

और श्रीराम नाम के सम्बन्ध में भी यही बात है:—

राम रामेति रामेति रामेति च पुनर्जपन् ।
स चाण्डालोऽपि पूतात्मा जायते नात्र संशयः ॥

—पद्मपुराण

वालजी गोविंदजी देसाई

मेरी हरिजन-यात्रा

[४]

वढवाण

१४ से १७ नवम्बरतक—हम लोगोंने चार दिन वढवाण के हरिजन-आश्रम में, जिसे पहले 'बाल-मंदिर' कहते थे, निवास किया । यहीं से हमने झालावाड़, अर्थात् काठियावाड़ के उत्तरी-पूर्वी भाग का अधिकांश दौरा किया । १४ नवम्बर को वढवाण

शहर, वढवाण कैम्प और दूधरेज गांव की हरिजन-पाठशालाओं और हरिजन-बस्तियों को देखा। १५ नवम्बर को मूली, सायला और कूकडा का निरीक्षण किया। १६ नवम्बर को बाघेला, गुडियाला तथा खेराली ग्राम देखे, और हरिजनों की शिक्षा तथा पानी से सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नों पर हमने कुछ विस्तार के साथ विचार किया। १७ तारीख को आश्रम में ही रहा—और वहा आराम तो क्या, असल में आफिस के कुछ कागज-पत्र निपटाये, और कुछ समय तो मेरा बड़ा ही अच्छा बीता, और वह यों कि आश्रम के बालकों तथा वढवाण कैम्प की म्युनिसिपैलिटी के मेहतरों से अच्छी तरह बातें कीं। मेहतर सभी ऋणग्रस्त हैं। बेचारे कहांतक सूद भरें, और फिर सूद का कुछ हिसाब ! ये लोग चाहते हैं कि उन्हें ऋणमुक्त करने के लिए अवश्य कोई-न-कोई योजना तैयार की जाय।

वढवाण कैम्प और वढवाण शहर दोनों में ही ढेडों और मेहतरों के लिए अलग-अलग स्कूल हैं। ढेड भला भंगियों के लड़कों को कभी अपने बच्चों के साथ बिठा सकते हैं? यह कैसे दुःख की बात है कि इस बद्धमूल अस्पृश्यता के कारण यहां अलग-अलग दो हरिजन-पाठशालाएं चलानी पड़ रही हैं। पर इस पाप को कुछ हलका समझकर हम इसलिए बर्दाश्त कर लेते हैं कि ये लोग अगर कुछ पढ़-लिख गये तो अस्पृश्यता-निवारण में अवश्य इनसे मदद मिलेगी। दूधरेज है तो छोटा-सा ही गांव, पर हरिजनों की यहां खासी आबादी है, उनके यहां ८० घर हैं। इसलिए पाठशाला में उनके बच्चे काफी तादाद में आते हैं। यहां एक सड़क पर राजपूत और कुनबी किसानों की एक सभा हुई, जिसमें कि एक पुरानी आन-बान के सनातनी राजपूत के किये हुए प्रश्नों का जवाब दिया गया। रात को मैं वढवाण शहर की तीन सभाओं में गया। पहली सभा में तो युवक-मंडल के आफिस में एक हरिजन-कमेटी बनाई गई, और दूसरी और तीसरी में ढेडों और भंगियों के मुहल्लों में भाषण दिये। श्री मणिलाल कोठारी के जोरदार भाषणों से प्रभावित होकर कई हरिजन भाइयोंने मुर्दार-मांस न खाने की सौगंद खाई।

मूली गांव के चमारोंने, जिनके ८२ घर हैं, अपने लिए काफी रुपया लगाकर एक अच्छा कुआं बनवाया है, और अपने बच्चों के लिए खुद एक पाठशाला भी ये लोग चला रहे हैं। अध्यापक को हर एक विद्यार्थी ।।) मासिक फीस देता है। जो बहुत गरीब होता है, उसे फीस नहीं देनी पड़ती। पर इस पाठशाला में मेहतरों के लड़के दाखिल नहीं हो सकते। कई सालतक सायला में हरिजन-बच्चों के लिए एक स्कूल चलाया गया, किंतु कुछ ऐसे कारण आ गये कि जिनसे वह स्कूल बन्द हो गया। उस दिन वहां यह निश्चय हुआ कि राज्य के सहयोग से पुनः यहां हरिजन-पाठशाला खोली जाय। फिर हमने चमारों और मेहतरों के मुहल्ले देखे। मेहतरों की यह शिकायत है कि सायला के लोग उन्हें मजूरी में पैसे के बजाय बाजरा देते हैं, और वह भी बहुत थोड़ा। कूकड़ा गांव की पाठशाला में यह देखकर हमें संतोष हुआ कि वहां का अध्यापक १० ढेड बालकों को सहानुभूति के साथ पढ़ाता है। यह स्कूल एजेन्सी के नीचे है, और यह मानी हुई बात है, कि राज्यों की ढीली-ढाली पॉलिसी की अपेक्षा एजेन्सी हरिजनों के मामले में अधिक दृढ़ता से काम लेती है।

श्री भणसालीजी—यहां मुझे श्री जयकृष्ण भणसाली से खूब नजदीक से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। यह एक ग्रेज्युएट हैं और गांधीजी के साबरमती-आश्रम में कई वर्ष रह चुके हैं। तितिक्षा तथा कठिन तपस्या में इनका अटूट विश्वास है। आश्रम में इन्होंने ५५ दिन का उपवास किया था। मूली जब हम लोग जा रहे थे, तब रास्ते में हमें भणसालीजी मिले। नंगे पैर, जरा-सी लँगोटी लगाये और हाथ में एक तूंबी लटकाये आप अलमस्त चले आ रहे थे। श्री कोठारी और श्री जोशीने उन्हें देखते ही मोटर ठहरा ली और उछलकर उन्हें छाती से लगा लिया। भणसालीजी खूब प्रेम से हँस पड़े। आपने मौनव्रत ले रखा है। सिवा भगवत्प्रार्थना के और कोई शब्द मुंह से निकालते ही नहीं। जब मैंने गत जुलाई में इन्हें भावनगर में देखा था, तब इन्होंने एक पीतल की बाली से इसलिए अपने ओठों को सी रखा था, कि अनजान में भी कोई शब्द मुंह से न निकल सके। मुझे यह देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि उन्होंने अब वह पीतल की बाली सदा के लिए निकाल दी है। खूब महीन पिसा हुआ कच्चा ही आटा पानी में घोल या सानकर वह खाते हैं। दो-तीन दिन जबतक वह हमारे साथ रहे, बाजरे के आटे को पानी में घोलकर उसकी लपसी-सी बनाकर खाते थे। नीम की पत्तियों को बड़े स्वाद और प्रेम से चबाते हैं। रेलगाड़ी तो दूर, बैलगाड़ीतक पर कभी नहीं चढ़ते, हमेशा जैन साधुओं की तरह पैदल ही यात्रा करते हैं। पैदल चलते-चलते उनके पैरों में फफोले पड़ गये थे। यह अच्छा ही हुआ कि वढवाण में वह तीन दिन ठहर गये, उन्हें इससे बहुत आराम मिला। भणसालीजी नौजवान हैं, ४० साल की ही अभी अवस्था है। यह धूरोप भी हो आये हैं। अच्छे सम्पन्न घर के हैं। यह भिक्षु का जीवन-यापन तो उन्होंने स्वेच्छा से ही स्वीकार किया है। आज वह सर्वथा अपरिग्रही अकिंचन हो गये हैं। आत्मसंयम और तितिक्षा का जहांतक सम्बन्ध है मैं उनकी यह घोर तपश्चर्या देखकर उनकी सराहना किये बिना नहीं रह सकता, पर इस प्रकार के तापस जीवन में मुझे मानव-सेवा-जैसी कोई चीज दिखाई नहीं देती। सम्भव है, कि भणसालीजी को इसमें आत्म-सेवा दिखाई देती हो और आत्मसेवा के द्वारा मानव-सेवा।

आशा है कि इस विषयान्तर के लिए पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

१८ नवंबर के तीसरे पहर तीन और गांव देखे। बाघेला गांव के तमाम ढेड पत्थर काटने का काम करते हैं और इसमें उन्हें पैसा भी अच्छा मिल जाता है। वढवाण-आश्रम का एक शिक्षित हरिजन लड़का यहां एक लोअर प्राइमरी पाठशाला चला रहा था, मगर वह अब पत्थर खोदने का धंधा करने लगा है, जो अधिक फायदे का है और उसके बाप-दादों का भी है। इससे वह पाठशाला बन्द हो गई है। हम लोगोंने उसे फिर से खोलने का निश्चय किया। गुडियाला गांव में हमने सुना कि वहां के हरिजनों के कुएं के पानी में कुछ तेल-सा है जिसके पीने से उन्हें मूत्राशय सम्बन्धी एक बीमारी हो जाती है। इसके अलावा आस-पास की जमीन से उसकी सतह भी कुछ नीची है। इसलिए यह निश्चित हुआ, कि अगर वे लोग अपने मुहल्ले के लग खुद एक अच्छा-सा कुआं खोद सकें और उसमें पानी बढ़िया निकले तो संघ उसे अपनी तरफ से बँधवा जरूर देगा। खेराली नाम के एक छोटे-से तालुकेदारी गांव में हाल ही में एक हरिजन-पाठशाला खुली थी, जिसमें वहां के ८० घरों के बच्चे पढ़ सकते थे, पर उसे बन्द कर देना पड़ा। बात यह हुई, कि गांव के चौकीदारने मकान-मालिक को धमकाया और कहा, कि तुमने अछूतों के स्कूल के

लिए यहाँ अपना मकान मुफ्त दे रखा है। बेचारा मकान मालिक डर गया और इस कारण वह स्कूल ही बन्द कर देना पड़ा। हम लोग इस विषय में अधिकारियों से मिले और उन्हें सारा मामला आदि से अन्ततक जब अच्छी तरह समझाया, तब कहीं स्कूल फिर से खोल देने की इजाज़त मिली।

लींमड़ी

१८ नवंबर—लींमडी आते हुए रास्ते में साकली, सेमला और अंकेवालिया ग्राम देखे। बरसों श्रीदरबार गोपालदास की सुन्दर छत्रछाया में रहकर भी साकली गाव के चमारोंने मुर्दार मास न छोड़ा। उस गाव के मैनेजरने पास के नाले में बरमा लगाकर एक कुआ बनाने के लिए कुछ सीमेंट कांक्रीट के नल मगवाये थे, पर चमारों में यह अफवाह पैठ गया कि उनसे इसका पैसा वसूल किया जायगा, और इसलिए उन्होंने कह दिया कि हमें कुएँ की जरूरत नहीं। मगर उस दिन उन्हें यह इत्मीनान करा दिया गया, कि नहीं, तुम लोगों से कोई पैसा-वैसा वसूल नहीं किया जायगा। सेमला गाव में हरिजनों के सिर्फ २० घर हैं, इसलिए यह देखा, कि यहा पाठशाला खोली भी जाय, तो भी उसमें अधिक लड़के आने के नहीं। इसलिए यहा स्कूल खोलने का जो विचार था वह छोड़ दिया। अंकेवालिया में ढेढों के ७० घर हैं। करीब-करीब ये सभी मिल के सूत की खादी बुनकर अपनी रोज़ी चलाते हैं। ये लोग स्कूल चाहते हैं और एक कुआ भी। स्कूल खुलवा देने का तो हमने वचन दे दिया, पर कुएं के बारे में उनसे यह कहा, कि अगर एक अच्छे मीठे पानी का कुआ तुम लोग खुद खोदलो और १००) सब मिलकर इकट्ठा करलो तो इस काम के लिए तुम्हें संघ से सहायता मिल जायगी।

लींमडी एक खासा बड़ा कस्बा है। यहा ढेढ़ बनकरों और मेहतरों की अच्छी आबादी है—१८० घर ढेढों के हैं और ८० घर मेहतरों के। संघ की तरफ से इन लोगों के लिए दो पाठशालाएं खोली हुई हैं। ढेढों की पाठशाला में दो अध्यापक पढ़ाते हैं और यह १८ वर्ष से चल रही है। दूसरी पाठशाला को खुले अभी कुछ ही महीने हुए हैं। ढेढ-पाठशाला का मआइना मैंने सन १९२८ में किया था। मेहतर अपने बच्चों और जवान लड़कों को पढ़ाने के बड़े ही उत्सुक हैं। स्कूल में अच्छी खासी संख्या में उनकी लड़कियों का आना काठियावाड़ के लिए एक खास बात है। मुख्य सड़क दोनों ही बस्तियों की खूब चौड़ी और साफ-सुथरी हैं। मेहतरों की बस्ती तो और भी सुन्दर है। मैंने यहा देखा कि म्युनिसिपैलिटी के मेहतर—और अधिकांश में सब म्युनिसिपैलिटी में ही मुलाज़िम हैं—ऋण से बिलकुल मुक्त हैं। जब उन्हें शादी-ब्याह या किसी दूसरे काज के लिए रुपये-पैसे की जरूरत पड़ती है, तब उन्हें राज्य के बैंक से उधार मिल जाता है, जिसकी अदायगी उनकी तनख्वाह से किस्तवार होती रहती है। काठियावाड़ की दूसरी जगहों के मुकाबले में यहा तनख्वाह भी अच्छी दी जाती है, यानी ९) मासिक वेतन मेहतरों को यहा मिलता है। लींमडी के मेहतरों का रहन-सहन बड़ा ही सन्तोषजनक पाया गया। इन लोगों में कोई बुरी आदतें नहीं। खासकर सफाई तो ये लोग बड़ी ही अच्छी रखते हैं। ये लोग दारू नहीं पीते। मुर्दार मांस न खाने की भी बहुतोंने प्रतिज्ञा ले रखी है। इनका एक सुन्दर मन्दिर भी है। किसी पर कुछ कर्ज़ा नहीं है, यह एक खास बात इनमें पाई गई। काठियावाड़ में मेरे प्रवास का यह चौबीसवा दिन है, पर लींमडी की जैसी सुन्दर साफ-सुथरी मेहतर-बस्ती अन्यत्र कहीं मेरे देखने में नहीं आई, न ऐसी अच्छी प्रकृति के हरिजन ही मुझे अबतक कहीं मिले। उन्होंने बड़े गर्व से बतलाया, कि हमारे लींमडी-नरेश श्रीमान् ठाकुर साहब, जब १९२७ में यहा बाढ़ आई थी, खुद हमारी बस्ती देखने यहा पधारे थे।

अमृतलाल वि० ठक्कर

धर्म के नाम पर लूट

उड़ीसा प्रांत के बालासोर जिले में मालीनीरा नाम का एक गॉव है। वहाँ तुराई जीना नाम का एक हरिजन रहता था। उसने सुना कि वहा से पाँच मीलपर अगरपाड़ा गाव में 'गाधी' का कुछ काम चल रहा है। बेचारा तीन बरस से कष्ट में था। इसलिए कुछ राहत मिलने की आशा से उसने अगरपाड़ा जाने का विचार किया। उसके मन में कोई ऐसा धुधला-सा चित्र होगा कि उसकी जाति के मनुष्यों पर जब कोई सकट आता है तब गाधी के आदमी उनकी मदद करते हैं। उसपर यह सकट था। उसे उसके जातिवालोंने जातिबाहर कर दिया था। जातिभाई उसे और भी अनेक तरह से सताते थे। उसके घर का एक आदमी मर गया तो जातिभाई उसके शव को मरघट भी नहीं ले गये। उसे जो जातिबाहर कर दिया वह न्यायसगत है या नहीं इस बात का निर्णय कराने के लिए उसका पैसा खर्च कराके उन्होंने दो बार ब्राह्मणों की सभा भी कराई थी। ब्राह्मण देवताओंने हरबार उस गरीब से डेढ़-डेढ़ रुपया दक्षिणा का ऐंठ लिया, और यह देखने के लिए उन्होंने शास्त्रों के प्रमाण ढूढे कि तुराई जीना सचमुच पापभागी है या नहीं। पर ब्राह्मण सब एकमत न हो सके। कुछ लोगोंने कहा कि उसने कोई पाप नहीं किया। कुछेकने कहा कि थोड़ा दोष तो उसका है। लेकिन सबने इतना विचार तो किया कि अपनी जाति की प्रतिष्ठा तो रखनी ही चाहिए। इसलिए उन्होंने यह निर्णय किया, यह व्यवस्था दी कि तुराई को प्रायश्चित्त-स्वरूप ग्राम पुरोहित को दक्षिणा का एक रुपया तो देना ही चाहिए। तुराई बेचारा तो रोज कमाने और रोज खानेवाला मजूर था। कुटुब-कबीला बड़ा था। इसलिए वह पुरोहित महाराज को दक्षिणा का रुपया न दे सका। अब क्या करना चाहिए यह जब उसे न सूझा तब वह अगरपाड़ा आया था।

तुराईने अपनी रामकहानी मुझे आदि से लेकर अन्ततक सुनाई। यह तो मैं समझ ही न सका, कि उस गरीब का क्या अपराध था। उससे मैंने अनेक प्रश्न पूछे, पर उसने जो बात मुझे बतलाई थी उसी को बार-बार दुहराया। मुझे लगा कि जरूर कोई ऐसी बात है, जिसे तुराई मुझसे छिपा रहा है। मैंने यह बात न तो पहले कभी देखी ही थी और न सुनी ही, कि ब्राह्मण लोग 'अस्पृश्यों' से दक्षिणा लेते हैं, उन्हें शास्त्रार्थ सुनाते हैं और धर्म-अधर्म की व्यवस्था देते हैं। तुराई 'पान' जाति का था। हा, कटक और पुरी के पान जैसे चमार का धधा करते हैं, वैसे इस जिले के पान नहीं करते।

इस गांव में मुझे भी कुछ काम था इसलिए मैं वहा गया और मैंने तुराई की शिकायत के सम्बन्ध में तहकीकात की। गणेश पंडा से मैं मिला। तुराई की बिपदा का मूल ही यह गणेश पंडा था। पूछताछ के सिलसिले में मुझे यह मालूम हुआ कि

तुराईने जो बात मुझसे कही थी वह सच है। कुछ दिन हुए कि गांव के एक मुसल्मानने तुराई की गाय को जो मार दिया था उसका कुछ मुआवजा उसने उस मुसल्मान से ले लिया यही उस गरीब का गुनाह था। हनीफ मुसल्मान के खेत को तुराई की गाय चर रही थी। हनीफने गाय को मारने के लिए एक पत्थर उठाकर फेंका, जो संयोग से उसके माथे पर लगा और वह वहीं गिर पड़ी। तुराईने दौड़कर पुलिस में रपट लिखा दी। थानेदारने तुराई को इस नुकसान के लिए हनीफ से ४) दिला दिये और मामला वहीं पटवा दिया। यह जानकर कि तुराई की मुट्ठी गरम हो गई है, गांव के पुरोहित की नीयत बिगड़ गई और उसने तुराई से कहा, कि 'अरे, यह तो गोरक्त का पैसा है, इसलिए इसमें से तो तुझे पंडा और मंदिर को दक्षिणा चढ़ानी चाहिए।' तुराईने ३) पुरोहित को दे दिये, और १) मंदिर में चढ़ा दिया। उसके चारों रुपये गणेश पंडाने छीन-झपट लिये, और वह बेचारा खाली हाथ घर चला गया। एक हफ्ते के बाद वह गाय मर गई। शायद उस चोट से ही मर गई हो। गणेश पंडा फिर जा धमका और तुराई से बोला, 'तेरी गाय मर गई, इसमें २) मंदिर में और चढ़ा।' तुराई बेचारा अब पैसा कहां से मुसलाता? गणेश पंडाने उसकी जातिवालों को जाकर भड़काया, कि तुराईने गाय के प्रहार के बदले में जो पैसा लिया यह उसने महान् पाप किया। आजतक किसीने ऐसा पाप का पैसा नहीं लिया। शास्त्र में तो इस गोरक्त के पैसे को महान् पातक कहा है।

गणेश पंडा अपनी बात का मेरे आगे जोरों से समर्थन करने लगा। और भी कितने ही ब्राह्मण उसके स्वर में स्वर मिलाने लगे। उनके वे अशुद्ध और वाहियात उच्चारणवाले संस्कृत श्लोक मनुष्य को आपे से बाहर करा देने के लिए काफी थे। एक-दो बार तो मुझे भी गुस्सा आ गया। मगर मुझे यह लगा कि आपे से बाहर होने से तुराई का काम बनने का नहीं। मेरे आगे जो अज्ञान का पहाड़ खड़ा हुआ था उसे किस प्रकार लांघा जाय मेरे सामने तो यही महान् प्रश्न था। मुझे लगा कि तुराई की जाति-बिरादरी के लोगों से बात करूं, देखें, वे क्या कहते हैं। ये लोग दुखी है, इसलिए हैं इससे शायद मेरी बात इनकी समझ में आ जाय। उन सबसे मैं अलग-अलग मिला और बातें की। तुम्हें हिंदू-समाज 'अस्पृश्य' समझता है, तुम मंदिर में पैसा चढ़ाते हो तो भी मंदिर के अंदर पैर नहीं रख सकते। तुम्हें गांव के बाहर जंगल में रहना पड़ता है, गांवों के लोग तुम से काम तो खूब लेते हैं, फिर भी तुम्हें तुच्छ समझते हैं, तुम से घृणा करते हैं—ये सब बातें उन्हें मैंने समझाईं। उनकी इस हीन दशा का बखान करने में मेरा अभिप्राय यही था, कि ब्राह्मणोंने ही उनके मनमें यह वहम कूट-कूटकर भर दिये हैं, और इसी से गणेश पंडा तथा दूसरे ब्राह्मण न भी मानें तो भी उन्हें वहम छोड़कर तुराई का उन्होंने जो बहिष्कार कर रखा है उसे उठा लेना चाहिए। मैंने उन्हें यह भी समझाया, कि तुराईने अपनी गाय की क्षति के बदले में जो पैसा हनीफ मुसल्मान से लिया यह कोई पाप नहीं किया।

सबने मेरी बात सुनली। मुझे ऐसा लगा, कि मेरी बात उन्हें रुची भी। पर अंतमें एक बुड्ढेने उठकर धीरे से कहा—"तुमने जो कहा वह सब हमने सुना। पर हमारी तरफ ऐसा होता नहीं। तुम्हारे गांव की बात शायद जुदी होगी। तुम जो कहते हो ऐसा हमारे गांव के लोगोंने कभी नहीं किया। ब्राह्मण देवता की आज्ञा को भला हम कैसे मेट सकते हैं। तुम्हारी बात अगर सच है तो ब्राह्मणों और दूसरे लोगों की एक सभा कराओ, वे सब मान जायं तो फिर हमें कोई आपत्ति नहीं।"

तुराई के दूसरे जातिभाइयोंने सिर हिलाकर बुड्ढे बाबा की बात का समर्थन किया। मैंने तो बिल्कुल ही हिम्मत हार दी। उन स्वार्थी ब्राह्मणों को उनकी गलती सुझाना-बुझाना तो पहाड़ से सिर मारना था। मैं आठ दिन के लगभग इस गाव में रहा। भाग्य से गाव की पाठशाला के अध्यापक को मैं अपनी यह बात समझा सका कि तुराई के साथ यह अन्याय हुआ है। अध्यापकजीने एक युवक ब्राह्मण को समझा-बुझाकर ऊँची जातिवालों की एक सभा कराई। मैंने तुरन्त ही यह देख लिया, कि उनके सामने यह दलीलें देना तो बेकार है। अगर कुछ कारगर हो सकता है, तो उनके हृदय का स्पर्श करना ठीक होगा। मगर मुझे यह आशा नहीं थी कि मौजूदा दशा में कुछ हो सकता है। सभाने मेरी बात मानली, कि तुराई को अब कुछ अधिक दण्ड भरने की जरूरत नहीं। पर उन्होंने कहा कि गणेश पंडा को जो वह दे चुका है, वह तो उसे वापस मिलने का नहीं। गणेश पंडा तो वहां उपस्थित था ही। उसने सभा का यह फैसला दिल से तो नहीं, पर दबाव से स्वीकार कर लिया। मुझे तो इसी में संतोष हो गया, कि गरीब तुराई हरिजन को जो राहत मिली, चलो, यही बड़ा काम हुआ। धर्म के नाम पर ऐसा अन्याय तो किस गांव में न होता होगा, यह तो एक दृष्टान्त है। मैं तो इसी सोचा-विचारी में पड़ गया हूँ, कि हरिजनों तथा सवर्णों में जो घोर वहम और अज्ञान घर कर बैठा है और धर्म के नाम पर हरिजनों का जो इस तरह सताया और लूटा जाता है उसका आखिर किस तरह इलाज किया जा सकता है।

'हरिजन' से] हरिकृष्ण मेहताब

ग्राम्यउद्योग-संघ का
तात्कालिक कार्यक्रम

अखिल भारतीय ग्राम्यउद्योग-संघ के प्रबन्ध बोर्डने उसके तात्कालिक कार्यक्रम के सम्बन्ध में निम्नलिखित अपील प्रकाशित की है—

जबतक बोर्ड की एजेन्सियां न कायम हो जायं, तबतक ग्रामोद्धार-कार्य में समय बचाने के उद्देश से जनता से प्रार्थना की जाती है कि वह अपना ध्यान हाथ के कुटे बिना पालिश किये चावल, हाथ के पिसे आटे और गुड़ को ही लोकप्रिय बनाने की ओर लगावे। बोर्डने डाक्टरों तथा विशेषज्ञों से सलाह लेकर यह निश्चित कर लिया है, कि हाथ के कुटे चावल, हाथ के पिसे आटे और गुड़ से मिल का कुटा चावल, मिल का पिसा आटा और मिल की शक्कर बहुत खराब होती है। घानी-द्वारा पेरे गये तेल और मिल के तेल के सम्बन्ध में अभी कोई खास निर्णय नहीं हुआ है, किन्तु अधिकांश लोगों की यह धारणा है कि तेल घानी का ही अच्छा होता है। बोर्ड यह महसूस करता है, कि देहातों में सफाई का काम भी तुरन्त शुरू कर दिया जाना चाहिए। इसलिए शिक्षित वर्ग तुरन्त गांवों में सादी सड़कें बनवाने, मनुष्य के मलमूत्र को ठीक से हटाने, गांवों के तालाबों और कुओं की सफाई तथा ग्रामवासियों के लिए पानी अच्छी तरह प्राप्त करने के तरीके बतलाने का काम शुरू कर सकता है।

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २८ दिसम्बर, १९३४

'हरिजन' पत्रों का क्षेत्र

कुछ पाठकोंने यह आपत्ति उठाई है कि 'हरिजन' पत्रों में तो अब ग्राम्यउद्योग-संबंधी लेखों की भरमार रहती है और इसमें वे अपने विषय से बाहर जा रहे हैं, और कुछ दूसरे पाठकोंने यह कहकर इस विषय-परिवर्तन का स्वागत किया है कि यह अच्छा ही हुआ जो अन्य विषय के भी लेख अब आने लगे, पहले तो ये पत्र केवल हरिजन-प्रवृत्ति का ही राग अलापते थे। शायद ये दोनों ही प्रकार की राय जल्दी में बिना सोच-विचारे कायम की गई हैं। ग्रामसुधार-संबंधी कोई भी प्रश्न हो उसका भारत के लगभग छै करोड़ हरिजनों के साथ तो निकट संबंध होगा ही। अगर हमारे गाँवों में अच्छा चावल और हाथ का अच्छा आटा मिलने लगे, तो क्या इस परिवर्तन में सब के साथ हरिजनों को लाभ न होगा? मगर हरिजनों को तो एक और विशेष दृष्टि से लाभ होगा। चमड़ा पकाने और तमाम कच्ची खाल का काम तो उन्हीं का अपना इजारा है, और आर्थिक दृष्टि से हमारी ग्राम-संबंधी नई योजना में सब से अधिक महत्व का उद्योग शायद चमड़े का ही रहेगा। सचमुच हरिजनोंने जहांतक अपनी राय दी है, उन्होंने 'हरिजन' पत्रों के इस क्षेत्र-विस्तार का स्वागत ही किया है। और जो लोग इन पत्रों में केवल एक ही विषय के लेख पढ़ते-पढ़ते ऊब गये थे, मेरी राय में, वे भी गलती पर थे। जिनके हितार्थ ये 'हरिजन' पत्र निकाले जा रहे हैं, उनके साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध जिन लेखों का न हो उनसे इन पत्रों के पृष्ठ नहीं भरे जा सकते। जिन लोगों की यह शिकायत थी कि इन पत्रों में तो सदा एक ही विषय के नीरस लेखों की भरमार रहती है, वे शायद इस प्रवृत्ति में पर्याप्त रस नहीं ले रहे थे।

हां, यह एक बेशक सच्ची टीका होती, अगर मुझ से पाठक यह कहते कि 'हरिजन' पत्रों में अभी उतनी रोचकता देखने में नहीं आती, जितनी कि उनमें लाई जा सकती थी। इसके कुछ कारण हैं, जिनका सम्बन्ध स्वभावतः इस प्रवृत्ति के साथ है। यह तो हमें कबूल करना ही होगा कि हमारा यह अस्पृश्यता-निवारण का आंदोलन कोई वैसा लोकप्रिय आंदोलन तो है नहीं जैसे के बड़े-बड़े राजनीतिक आंदोलन संसार में हुए और हो रहे हैं। अस्पृश्यता-निवारण का कार्य तो एक प्रचण्ड सामाजिक सुधार है। पर वह कोई सनसनी पैदा करनेवाली प्रवृत्ति नहीं है। यह तो धीमे-धीमे जीतोड़ परिश्रम से पूरा होनेवाला कार्य है। ऐसी प्रवृत्ति को रोचक बनाने के लिए ऊँचे दर्जे की संपादकीय प्रतिभा चाहिए। परिश्रम करनेवाले परिश्रमी संपादकों को ही आकर्षित कर सकते हैं। इसलिए हरिजन-प्रवृत्ति के साथ जिनका धर्मनिष्ठ सम्बन्ध है उनके सामने तो यही एक मार्ग है कि वे अटूट श्रद्धा के साथ अनवरत रीति से बस कार्य किये चले जायँ, परिणाम क्या होगा यह सब ईश्वर पर छोड़ दें।

कुछ दिन हुए कि अखबारों में यह खबर निकली थी कि गुजराती 'हरिजन-बंधु' का प्रकाशन घाटे के कारण बंद होनेवाला है। यह खबर कच्ची और अप्रामाणिक थी। बात तो अवश्य कुछ ऐसी हुई थी। पर जब ठक्कर बापाने यह बात सुनी तो उन्होंने यह कहकर इसे वहीं खत्म कर दिया कि हिन्दी हरिजन-सेवक, गुजराती हरिजन-बंधु और अँग्रेजी हरिजन इनमें से कोई भी पत्र बंद नहीं हो सकता। इन तीनों साप्ताहिकों को घाटा पर न चलाना पड़े इसके ये तीन उपाय मुझे सूझ रहे हैं :—

१—पत्रों का चंदा बढ़ाया जाय;

२—संपादन और छपाई, व्यवस्था इत्यादि के खाते में जो खर्च हो रहा है उसमें स्वेच्छापूर्वक कमी की जाय;

३—ग्राहकसंख्या बढ़ाने के लिए एक अपील निकाली जाय।

दूसरे उपाय का प्रयोग किया जा चुका है, और अब भी किया जा रहा है। प्रकाशन-व्यय में भी बराबर कमी करने की कोशिश होती आ रही है। और ग्राहक-संख्या तो चाहे जितनी बढ़ाई जा सकती है, उसमें बेहद गुंजाइश है। और चूंकि अब इन पत्रों में ग्राम्यउद्योग और ग्रामोद्धार-संबंधी काफी लेख रहते हैं, इसलिए ग्राहक-संख्या में तो अब आप ही वृद्धि हो जानी चाहिए।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

अ० भा० ग्राम्यउद्योग-संघ

उद्देश और विधान

गांधीजी का वक्तव्य

चूंकि यह विचार था कि अखिल भारतीय ग्राम्यउद्योग-संघ की नीति और कार्यक्रम का संचालन करने के लिए ऐसे आदमियों का एक बोर्ड बनाया जाय, जो इसकी नीति और कार्यक्रम की व्यावहारिकता पर पूरी तरह विश्वास रखते हों, और जो इसमें अपना सारा समय लगा सकें, इसलिए श्री कुमारप्पा और मैंने उस बोर्ड की स्थापना के सम्बन्ध में बहुत समयतक विचार किया है।

इस विषय का कांग्रेस का प्रस्ताव ऐसे स्त्री-पुरुषों की स्वयं काम करनेवाली स्वतंत्र और अराजनीतिक संस्था बनाने के लिए है, जिनके जीवन का प्रधान उद्देश ग्रामवासियों से परिचित होना और उनकी भलाई करना हो।

नीचेलिखे सज्जन अपनी जिम्मेदारी को समझते हुए उस संघको बनाने के लिए राजी हुए हैं जिसके वे नींव डालनेवाले मेम्बर भी होंगे और साथ ही प्रथम प्रबन्धक बोर्ड के मेम्बर भी। श्री श्रीकृष्णदास जाजूजी (अध्यक्ष और कोषाध्यक्ष), श्री जे० सी० कुमारप्पा (संगठनकर्ता और मंत्री), श्रीमती गोशी बहन कैप्टैन, डाक्टर खां साहब, श्री शूरजी वल्लभदास, डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र घोष श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम आसर और श्री शंकरलाल बैंकर। इन लोगों को बोर्ड के सदस्यों की संख्या बढ़ाने का अधिकार होगा।

बोर्ड का कार्यक्रम

इस बोर्ड का यह काम होगा कि समय-समय पर ग्रामों के पुनर्संगठन के कार्यक्रम की व्याख्या करे, विभिन्न केन्द्रों में बरती जानेवाली नीति में एकसूत्रता लावे, कार्यकर्ता या एजेण्टों-द्वारा बढ़ते हुए और क्षय होनेवाले ग्राम्य उद्योगों की असली वर्तमान स्थिति तथा गांववालों की आर्थिक, नैतिक और शारीरिक अवस्था के सम्बन्ध में सूचनाएँ एकत्र करके उनकी समीक्षा और प्रचार करे, विशेषज्ञों और दक्षों की सहायता से शोध का काम करे और गांवों में बनी हुई चीजें, जो वहां खपने से बच जायें, खपाने के लिए मंडियां ढूंढे तथा तैयार करे।

फंड

बोर्ड अपने काम को चलाने के लिए धनसंग्रह करेगा। चूंकि इस संघ की सफलता इसीमें होगी कि वह ग्रामीणों को आत्मसन्तोषी और स्वावलम्बी बनावे, इसलिए कार्यक्रम खर्चीला न होना चाहिए। इसलिए विचार यह है कि जहांतक बने थोड़ी पूंजी से ही काम शुरू किया जाय।

मुख्य नीति

इसलिए बोर्ड की मुख्य नीति यह होगी कि शाखाओं को वह स्वतंत्र रखे। जितने क्षेत्रों में कार्यकर्त्ता या एजेंट मिल सकेंगे उतने ही क्षेत्रों में बोर्ड की शाखाएँ स्थापित की जायँगी। प्रत्येक क्षेत्र के कार्यकर्त्ता कार्य करके शाखा संगठित करेंगे और अपने-अपने क्षेत्र में बोर्ड के कार्यक्रम के अनुसार कार्य करने के जवाबदेह होंगे।

कार्यकर्ता कैसे हों ?

कार्यकर्ता या एजेंट ऐसे ही लोग चुने जायँगे जो अपनी जीविका-निर्वाह के लिए कार्य करते हुए अपना सारा समय इस संघ के काम में लगा सकें। एजेंट जहांतक बनेगा अवैतनिक होंगे। अपने क्षेत्र के संगठन के लिए आवश्यक धन वे चन्दे से इकठ्ठा करेंगे। हो सकता है, कि बोर्ड को ज्यादा अवैतनिक एजेंट न मिलें। शुरू में अगर कुछ जिलों में अच्छी तरह संगठन हो जाय और आर्थिक दृष्टि से तथा अन्य प्रकार से हमें कामयाबी मिले तो बोर्ड को सन्तोष ही होगा। एजेंटों के नाम समय-समय पर प्रकाशित होते रहेंगे।

सलाहकारी विशेषज्ञ

विशेषज्ञों की सहायता के बिना बोर्ड अनुसंधान का कोई काम न कर सकेगा। विशेषज्ञों से ऐसी आशा नहीं की जा सकती कि वे अपना सारा समय और दिमाग संघ के ही काम में लगादें. इसलिए मैंने अपने कितने ही मित्रों को लिखकर पूछा था कि आप अपना नाम सलाहकारी बोर्ड के सदस्यों की सूची में रखने देंगे या नहीं ? अबतक नीचेलिखे मित्रोंने कृपाकर बोर्ड में रहना स्वीकार कर लिया है —

डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सर जगदीशचन्द्र वसु, सर प्रफुल्लचन्द्र राय, सर चन्द्रशेखर वेंकटरमण, श्री रामदास पंतुलू, श्री जमाल मुहम्मद साहब, श्री घनश्यामदास बिड़ला, सर पुरुषोत्तमदास, ठाकुरदास, सर एस० पोचखानावाला, प्रोफेसर हिगिन बाटम, डाक्टर जीवराज मेहता, डाक्टर मुख्तार अहमद अंसारी, मेजर-जेनरल सर राबर्ट मॅक्कारिसन, डाक्टर राजबली, वी० पटेल, डाक्टर एस० सुब्बाराव, डाक्टर बी० सी० राय और डाक्टर पुरुषोत्तम पटेल।

प्रधान कार्यालय

संघ का प्रधान कार्यालय वर्धा में रहेगा। यह स्थान इसलिए पसंद किया गया है, कि यह देश के केन्द्र में पड़ता है, रेलवे का जकशन है और नगर नहीं बल्कि एक सुन्दर गांव है।

अनेक सज्जनोंने मुझे पत्र लिखे हैं कि हम संघ के एजेंण्ट बनने को तैयार हैं। जिन लोगोंने पत्र भेजे हैं उन्हें अब संगठन-मन्त्री श्री जे० सी० कुमाराप्पा से वर्धा के पते पर पत्रव्यवहार करना चाहिए। मैंने सब कागजात उन्हीं को दे दिये हैं।

संघ की नियमावली

बम्बई-कांग्रेस में २७ अक्तूबर को ग्राम्यउद्योग-संघ स्थापित करने के उद्देश से जो प्रस्ताव पास हुआ था, उसके अनुसार 'अखिल भारत ग्राम्यउद्योग-संघ' संगठित किया जाता है।

उद्देश

संघ का उद्देश होगा ग्रामों का पुनर्संगठन और नवरचना जिसमें ग्राम्य व्यवसायों का पुनरुज्जीवित करने, उन्हें उत्तेजन देने और उनकी उन्नति करने का तथा ग्रामवासियों की नैतिक और भौतिक दशा सुधारने का काम भी शामिल होगा।

साधन

अपने इस उद्देश की ठीक-ठीक पूर्ति के लिए संघ धन-संग्रह करेगा, अनुसन्धान-कार्य करेगा, साहित्य प्रकाशित करेगा, प्रचार-कार्य करने का प्रबन्ध करेगा, एजेंसियां स्थापित करेगा, गाँवों में जो औजार काम में लाये जाते हैं उनकी दशा सुधारने का प्रयत्न करेगा और अपनी उद्देश-सिद्धि के लिए जो आवश्यक होगा वह सब कार्य करेगा।

संघ गांधीजी के नेतृत्व में उनके परामर्श से काम करेगा।

संघ के ये अंग होंगे—(क) प्रबन्ध-बोर्ड-, (ख) सदस्य, (ग) एजेण्ट, (घ) अवैतनिक कार्यकर्ता, (ङ) वैतनिक कार्यकर्ता, और (च) सहायक और सलाहकारी बोर्ड।

सदस्यता

जो व्यक्ति नीचे लिखे प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करेगा और जिसके लिए कोई सदस्य या एजण्ट सिफारिश करेगा और जिसका भरती होना प्रबन्ध-बोर्ड मंजूर कर लेगा वही सदस्य हो सकेगा।

जो संघ के उद्देश से सहानुभूति रखेगा और कम-से-कम १००) चन्दा देगा वह सहायक बन सकेगा। और जो १०००) एकमश्त देगा वह 'आजीवन सहायक' बन सकेगा।

सलाहकारी वे ही लोग हो सकेंगे जो अपना काम करते हुए भी जब कभी उनसे सलाह माँगी जायगी मुफ्त में संघको अपनी विशेषज्ञता से लाभ पहुचायँगे।

प्रबंध-बोर्ड

पहला प्रबन्ध-बोर्ड (जिसके सदस्यों के नाम ऊपर गांधीजी के वक्तव्य में आ गये हैं) तीन सालतक बना रहेगा। इसके बाद प्रबंध-बोर्ड के सदस्य प्रबन्ध-बोर्ड का नया चुनाव करेंगे, जो फिर तीन सालतक बना रहेगा।

संघ का सारा प्रबन्ध प्रबन्ध-बोर्ड के अधीन रहेगा। संघ के रुपये-पैसे और अन्य सम्पत्ति सब प्रबन्ध-बोर्ड के जिम्मे रहेगा। बोर्ड को अपने सदस्यों की संख्या भी बीसतक बढ़ाने का अधिकार होगा।

प्रबन्ध-बोर्ड जमा-खर्च के बाकायदा बहीखाते रखेगा, जिसकी जांच आडिटरों-द्वारा हुआ करेगी और जिन्हें देखने-जांचने का अधिकार सामान्य लोगों को भी होगा।

संघ की उद्देश-सिद्धि के लिए नियम इत्यादि बनाने का अधिकार प्रबन्ध-बोर्ड को होगा।

प्रबन्ध-बोर्ड को यह भी अधिकार होगा कि बोर्ड के तीन चौथाई सदस्यों की सम्मति से वह संघ के उद्देशसम्बन्धी नियम को छोड़कर और चाहे जिस नियम में परिवर्तन, संशोधन या परिवर्द्धन करे।

प्रबन्ध-बोर्ड को यह भी अधिकार होगा कि वह संघ की सम्पत्ति के लिए ट्रस्टी नियुक्त करे।

सदस्यों के लिए प्रतिज्ञापत्र

अखिल भारतीय ग्राम्यउद्योग-सघ की नियमावली को मै पढ चुका हूँ, मै सघ का सदस्य होना चाहता हूँ और ईश्वर पर भरोसा करके यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मै अपनी पूर्ण शक्ति और बुद्धि से संघ की उद्देश-सिद्धि का प्रयत्न करूँगा, जो उद्देश भारत के ग्रामवासियो की सब प्रकार की उन्नति करना है।

जबतक मै इस संघ का सदस्य रहूँगा, तबतक किसी भी प्रकार की सविनय-अवज्ञा मे भाग न लूँगा।

अपने कर्तव्य के पालन मे मै सघ की सहायता प्राप्त करता रहूँगा और जो कोई भी सहयोग करना चाहेगा उसका सहयोग प्राप्त करूँगा, और इस सम्बन्ध मे राजनीतिक मतभेद का कोई विचार न करूँगा।

जहातक बनेगा मै यह कोशिश करूँगा कि सघ के आदर्श के अनुसार चलूँ और ग्रामो मे बनी हुई वस्तुओ का ही यथासम्भव व्यवहार करूँ।

ग्रामवासियो के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करते समय मै मनुष्य-मनुष्य मे किसी प्रकार का भेद-भाव न बरतूँगा।

नवजात बालक

जिस अखिल भारतीय ग्राम्यउद्योग-सघ की इतने दिनो से चर्चा थी, उसका जन्म वर्धा के शान्त वातावरण मे, बिना किसी धूमधाम या विधि के, १४ दिसम्बर को हो गया। सेठ जमनालालजीने सघ के उपयोग के लिए अपनी विशाल भूमि और उसके कई मकान सघ के हवाले कर दिये हैं। उनके इस दान के कारण सघ का प्रधान कार्यालय वर्धा में ही रहेगा।

अच्छा होगा कि सघ के मूल सदस्यो का हम थोडा परिचय प्राप्त करले। सघ का प्रथम व्यवस्थापक-बोर्ड इन्ही मूल सदस्यो का बना है।

श्रीकृष्णदास जाजू—जाजूजी वकील हैं। स्कूल और कालेज मे इनकी अच्छी ख्याति थी। वकालत स्वामी अच्छी चलती थी, जिसे छोडे उन्हे अब कई साल हो गये हैं। सेठ जमनालालजी की लोकोपकारी प्रवृत्तियो के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, और अखिल भारतीय चर्खा-सघ की महाराष्ट्र प्रान्तीय शाखा के यह अध्यक्ष है।

श्रीकुमारप्पा—सघ के सचालक तथा मत्री श्रीकुमारप्पा इग्लैण्ड और अमेरिका जाकर वहा से हिसाब-किताब और अर्थ-शास्त्र की डिग्री ले आये हैं। यह एक चारटर्ड एकाउण्टेण्ट हैं। बम्बई मे इनकी बडी अच्छी प्रेक्टिस चल रही थी, और तब यह योरोपीय ढग से रहते थे। पर वह सब छोड-छाडकर आप गुजरात-विद्यापीठ मे चले आये और वहा काका साहब श्रीकालेलकर के नीचे अध्यापक हो गये। इन्होने विद्यापीठ के कई अध्यापकों और विद्यार्थियो को साथ लेकर मातर तालुका की आर्थिक जांच-पड़ताल की, और अँग्रेजी में उसकी रिपोर्ट प्रकाशित कराई। १९३१ मे काग्रेसने भारत के सरकारी ऋण की जाच करने के लिए जो कमेटी बनाई थी, उसके मत्री श्री कुमाराप्पा थे। इन्होने श्री बहादुरजी और भूलाभाई देसाई के साथ इस कमेटी में काम किया था। बिहार-रिलीफ कमेटी को भी हिसाब-किताब-संबंधी सलाह देने का काम इन्होंने अबतक किया है।

श्रीमती गोशी बहिन कैप्टेन—यह ऋषि दादाभाई नौरोजी की पौत्री हैं। इन चारो बहिनोने देश की अपार सेवा की और कर रही हैं। श्री गोशी बहिन खादी-प्रचार का काम तादात्म्य भाव से कर रही हैं। श्रीमती मीठू बहिन पिटीटने सूरत जिले के गांवो की सेवा मे ही अपना जीवन अर्पित कर दिया है। उन्होने बबई मे गरीब लडकियो के लिए कढाई-सिलाई का जो वर्ग आरम्भ किया है उसे आज श्रीमती गोशी बहिन चला रही हैं।

सेठ शूरजी वल्लभदास—यह बबई के एक प्रसिद्ध व्यापारी हैं। इन्होने कई खादी-केन्द्रो का सगठन किया है। इन्होने यह सकल्प किया है कि अगर उक्त स्वदेशी बाजार से कुछ डिवीडड मिला तो उस सब का उपयोग ग्राम्यउद्योग की वृद्धि के लिए ही किया जायगा।

डा० खान साहब—यह खान अब्दुल गफ्फारखा के बडे भाई हैं। यह सरकार की इडियन मेडिकल सर्विस मे थे। खान अब्दुल गफ्फारखा अगर जेल न चले गये होते तो वही आज इस सघ के सदस्य होते। अत उनकी जगह अब डा० खान साहब चुने गये हैं।

श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम—मलबार मे यह एक नामी व्यापारी थे। आज से १५ बरस पहले व्यापार को छोडकर यह साबरमती-आश्रम मे आ बसे, और तभी से इन्होने देश-सेवा का व्रत ले लिया। गुजरात के खादी-कार्य की व्यवस्था श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम के हाथ मे थी। १९२७ मे जब गुजरात मे बाढ आई उन दिनो यह सरदार वल्लभ भाई के दाहिने हाथ माने जाते थे। और इसी प्रकार बिहार-सकट-निवारण मे भी यह राजेन्द्र बाबू को बहुमूल्य सहायता दे रहे हैं।

डा० प्रफुल्ल घोष—डा० प्रफुल्ल घोष (डी० एस-सी०) डा० प्रफुल्लचन्द्र राय के एक पुराने और प्रिय शिष्य है। कलकत्ते की सरकारी टकसाल मे यह एक उच्च पद पर थे, जिसे इन्होने १९२० मे असहयोग आरम्भ होते ही छोड दिया, और तब से गरीबी का जीवन अख्तयार करके डा० प्रफुल्ल घोषने अपने को मातृभूमि के चरणो पर अर्पित कर दिया है।

श्री शंकरलाल बैंकर—यह अखिल भारतीय चर्खा-सघ के मत्री और प्राण हैं। इन्हे खादी के प्रत्येक अगोपाग का और उसके द्वारा गावो की स्थिति का काफी परिचय है। इस विषय का इनका जितना विशाल अनुभव है शायद ही उतना किसी और का हो।

इस तरह सेठ शूरजीभाई को छोडकर व्यवस्थापक मडल के बाकी सभी सदस्य ऐसे हैं कि जिनकी न कोई अपनी निजी संपत्ति है, न कोई व्यापार-धधा, और जिन्हे सदा इसी बात की चिन्ता रहेगी कि उनके हर काम मे गाववालो का हितसाधन क्या और कहातक होता है। ये सब लोग सघ की उद्देश-सिद्धि का प्रयत्न करने की भारी जवाबदेही सिर पर लेने के लिए ही बोर्ड के सदस्य बने हैं। सघ का सीधा-सादा विधान, जो इसी अंक मे अन्यत्र दिया गया है, उसे पाठक पढले। अगर इस काम में जनता की सक्रिय सहायता मिलेगी तो उससे हमारे करोडो ग्रामवासियो के हृदय मे आशा का संचार होगा; शहरवाले जो आज गांवो की जनता को चूस रहे हैं, वे उसके सच्चे सहायक और सेवक बनेंगे; *बुद्धिशाली तथा साधारण लोगो के बीच प्रेम की अटूट गांठ बँधेगी;* और इस संघ-द्वारा मनुष्य-मनुष्य के बीच का तमाम भेदभाव नष्ट

[४२८ पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

चर्मकार के लिए विद्यालय

बंगाल की हरिजन आबादी में अधिकांश चमार और मोची है। बंगाल के कई जिलों में वे अत्यन्त नीच समझे जाते है। ये लोग अपढ, गरीब, आलसी और गन्दे होते हैं। पर इस मे इन बेचारो का कोई दोष नही, हम उनके साथ जिस निर्दयता से व्यवहार करते आ रहे हैं उसी का यह नतीजा है। हमने उनका अपने समाज से बहिष्कार करके उन्हें इस अधमतम अवस्था को पहुँचा दिया है।

हरिजन-सेवक-संघ चमारो व मोचियो की स्थिति सुधारने में सहायता करना चाहता है। चमडा पकाने का काम गावो में सहकारी कारखानो की पद्धति में किस तरह हो सकता है यह कलकत्ते के चीनी मोचियोने हमें बतला दिया है। हमे ऐसा जान पडता है कि बडी-बडी कीमती मशीनो के बिना भी गरीबो की झोपडियों में बढिया-से-बढिया क्रोम चमडा बनाया और आसानी से बेचा जा सकता है। अब एक ऐसे विद्यालय की आवश्यकता है, जहां गावो के अपढ मोची भरती किये जायँ और उन्हें चमडा बनाने की तीनो क्रियाएँ— 'क्रोम टेनिंग, 'कषाय टेनिंग,' और 'पेटेन्ट या वार्निश लेदर' बनाने की क्रियाएँ—सिखाई जायं। अन्तिम दो क्रियाओं में तो यंत्रों की जरा भी सहायता नही लेनी पडती। क्रोम बनाने में चमडे पर आवश्यक चिलक लाने के लिए, मालूम होता है, एक ग्लेजिंग मशीन की जरूरत पडती है। पर यह ग्लेजिंग मशीन यहा तैयार हो सकती है और अपने झोपडों में रखकर उसे हाथ से चला सकते हैं। आजकल तो गावों के चमारोंने चमडा बनाने का काम करीब-करीब छोड ही दिया है, और खाल उधेडने से जो नाममात्र की उन्हे आमदनी होती है उसी मे वे सन्तोष मान लेते है। उन्हें अगर चमडा बनाने की तालीम दी जाय, तो निश्चय ही उनकी स्थिति मे तत्काल सुधार हो सकता है। हमारे देश मे कितने ही अच्छे-अच्छे चमडे के कारखाने हैं। एक कारखाना कलकत्ते में है। मगर इसमें जो तालीम दी जाती है उसका उद्देश ऐसे चर्मशिष्णात तैयार करने का है जो बडे-बडे कारखानो में चमडा बनाने का काम कर सकें। इन चर्मालयों के पीछे सरकार अंधा-धुंध पैसा खर्च कर रही है, फी विद्यार्थी औसतन २५००) का खर्च आता है। इन विद्यालयों से हमारा काम कैसे चल सकता है? हमें तो अपने झोपडो में चमडा बनाना सिखाने के लिए भिन्न ही प्रकार के विद्यालय की जरूरत है।

अगर चर्मालय व्यापार की दृष्टि से चलाया जाय और वहा अनुभवी चमार उमेदवार विभिन्न स्थानो में मजूरी करते हुए यह काम सीखले, तब कहीं हमारा मतलब पूरा हो। हिसाब हमने ऐसा लगाया है कि रोज पाच कच्चे चमडे बनाये जायें तो इस काम में दूसरे कारीगरो के साथ-साथ एक उमेदवार की समाई हो सकती है। इसलिए जिस कारखाने में १० उमेदवारो को काम देना हो उसमें रोज ५० चमडे तैयार होने चाहिए। ज्यादा उमेदवार होंगे, तो काम बजाय अच्छी तरह चलने के उलटा और बिगडेगा। इतने काम के लिए हमें सचे का एक सेट जमाना पडेगा। पर इस संचे से उमेदवार को डरने की जरूरत नही। गांवो मे केवल हाथ से ही चमडा बनाने के लिए जिस किस्म की सुविधा या अनुकूलता चाहिए वह सब वहां रहेगी।

इस विद्यालय के साथ-साथ एक प्रयोगशाला भी होनी चाहिए, जहा सामान्य ग्रामवासी को उन रसायनो के रूप और गुण का परिचय कराया जाय, जिनका कि उसे चमडा पकाने मे उपयोग करना है। चमडा बनाने में जिस-जिस रसायन की आवश्यकता पडती है हम केवल उन्ही की शिक्षा देना चाहते हैं, और हमारी यह इच्छा कुछ अनुचित या असंगत नही कही जा सकती। जो मनुष्य भट्टी मे दारूखाना चलाता है उसे बारूद इत्यादि चीजो के विषय मे कुछ-न-कुछ ज्ञान होता ही है। चित्रकार को यह ज्ञान होता है कि रग किन चीजों से और किस तरह बनाये जाते है। इसी प्रकार चमार को भी अपने रसायनो के बारे मे ज्ञान होना चाहिए। 'क्रोम टेनिंग,' 'कषाय टेनिंग,' या 'वार्निशिंग' की क्रियाओं मे रासायनिक चीजे किस तरह काम करती है इसका रहस्य ग्रामवासियो को इस प्रयोगशाला मे प्रयोग बताकर सिखाया जा सकता है। इस रासायनिक ज्ञान को प्राप्त करने के साथ-साथ उमेदवार दूसरी क्रियाएं भी करते रहेंगे, और इस तरह अन्त में वे चमडा बनाने की सभी क्रियाओ से परिचित हो जायँगे। उन्हे सचा चलाने का अवसर मिलेगा। सचा चलाने के साथ ही उन्हे यह भी सिखाया जायगा कि चमडे पर जैसी चिलक सचे से आती है ठीक वैसी ही चिलक गावो मे प्राप्य साधनो के द्वारा किस तरह आ सकती है। ऐसा करते हुए उसमे आत्म-विश्वास के द्वारा यह हिम्मत आयगी कि गावों में लगा सकनेलायक बढिया चमडा वह खुद किस तरह तैयार कर सकेगा।

पर इतना ही काफी नही है। चमार को इस तरह चमडा बनाना सिखाना चाहिए कि उसका चमडा शहरो की प्रतिस्पर्धा में टिक सके। इसके लिए जब उमेदवार पूरी चर्म-शिक्षा प्राप्त करले तब उसके बाद विद्यालय मे ही उसके लिए एक झोपडी, एक खड्डा, और गावो मे प्राप्य समस्त साधन जुटा देने चाहिएँ। और चमडे के पन्ने, जैसे-जैसे तैयार होते जायँ, विद्यालय उमेदवार के खाते में उन्हे जमा करता जाय, और जो मुनाफा—अथवा दूसरे शब्दो में कहें तो उसका मेहनताना हो—वह उसे दिया जाय, और साबित करके उसे यह बताया जाय कि देखो, गांवों में चमडा बनाने मे इतना लाभ हो सकता है। इस प्रकार हमारे चर्म-विद्यालय का चित्र पूरा होता है। उमेदवार आत्म-विश्वास लेकर अपने घर जायगा, और यह निश्चय करेगा कि केवल ढोरो की खाल उधेडकर ही हमें नही बैठ रहना होगा, बल्कि बाजार की माग के मुताबिक चमडा बनाने का काम भी हमे करना होगा।

आज चमार को कच्ची खाल आध आना वर्गफुट के हिसाब से मिलती है और बढिया-से-बढिया चमडा तीन आने वर्गफुट की दर से बिकता है। गावो में चमडा बनाया जाय तो वर्गफुट पीछे तीन पैसे से ज्यादा खर्च उस पर न पडेगा। इसलिए डेढ आने का एक वर्गफुट चमडा तैयार हो सकता है। चीनी मोचियो का तैयार किया हुआ सस्ते मे सस्ता चमडा दो-ढाई आना वर्गफुट के हिसाब से बाजार में बिकता है। गाव का चमार बाजार में तैयार होनेवाले दूसरे या तीसरे नम्बर का भी चमडा तैयार कर सके तो भी वह अपनी रोजी चला सकता है।

रोज ५० चमडे बन सकें और एकसाथ १० विद्यार्थियों को जिसमें तालीम दी जा सके, ऐसे उपर्युक्त विद्यालय के लिए ११०००) की पूंजी चाहिए। मासिक खर्च अंदाजन नीचे लिखे अनुसार होगा :—

मासिक खर्च—

१५०० खाले, २) फी खाल	३०००)
रासायनिक चीजें, मजदूरी, पावर	१४००)
मकान-किराया और देखरेख का खर्च	१००)
रसायनशास्त्री तथा अन्य रसायन खर्च	१००)
	कुल—४६००)

स्थायी खर्च—

मशा (पुराना)	१५००)
मोटर	५००)
खड्डा	३००)
औज़ार	८००)
प्रयोगशाला की चीज	१०००)
चालू पूंजी	१०००)
	कुल—११६००)

ऊपर के मुताबिक शिक्षण-व्यय के १००) बाद करके कुल ४५००) का मासिक खर्चा होगा। ३) फी चमड़े के हिसाब से १५०० चमड़े ४५००) की कीमत के होंगे। इसका यह मतलब हुआ कि जितना हम मासिक खर्च करेंगे, उतनी रकम वापस आ जायगी, सिर्फ १००) ही हमारे शिक्षण-खाते में खर्च होगा।

विचार यह है कि १५ दिन में चमड़ा पकाकर तैयार किया जाय, और एक महीने के अंदर, कच्ची खाल खरीदने से लेकर बना-बनाया चमड़ा बेचने की क्रियाओं तक, सारा पैसा हाथ में आ जाय। जहां ऐसा न हो सके, वहां १५०० चमड़े तैयार कर सकने के लिए कुछ उससे अधिक पूंजी लगानी होगी।

कलकत्ते में एक मकान किराये पर ले लिया गया है और उसमें इस तरह की योजना की जा रही है। आशा है कि दिसम्बर मास में वहां यह चर्म-विद्यालय चलने लगेगा। कलकत्ते के इस विद्यालय के साथ रासायनिक प्रयोगशाला इस तरह चलाने का विचार है कि जो विद्यार्थी बुद्धिशाली हों उन्हें रसायन-विज्ञान के मूल तत्वों तथा चर्म-उद्योग के लिए आवश्यक रासायनिक विश्लेषण की शिक्षा दी जाय। आशा तो यह है कि हमारे यहां के जो सुशिक्षित नवयुवक मानव-सेवा के प्रीत्यर्थ अपना जीवन अर्पित कर देना चाहते हों, वे अपनी वृत्ति के अनुसार चर्मकार के काम में निष्णात हो जायं और चर्मकारों के लाभार्थ छोटे छोटे गांव पर इस किस्म के चर्मालय गांवों में जाकर खोलदें। हमें आशा है कि ऐसे ग्राम्य-चर्मालयों के द्वारा देश में बहुत कुछ काम हो सकता है।

ऊपर जो आनुमानिक व्यय दिया है उसमें रासायनिक प्रयोगशाला चलाने का खर्च शामिल नहीं किया। ऊपर के हिसाब के अनुसार यह विद्यालय खुद अपना खर्च निकाल सकता है। लेकिन अगर खाल सस्ते भाव पर खरीदी जाय और चमड़ा ऊँची कीमत का तैयार किया जाय तो मुनाफ़ा भी हो सकता है। और अगर खाल महंगी खरीदी गई और चमड़ा कम दामों में बिका, तब तो उलटा घाटा होगा। तालीम देने में जो चालू खर्च होगा उसे शुरू से ही अलग गिनना ठीक होगा। हो सकता है, कि यह पैसा बिक्री में से न निकल सके। कलकत्ते में तालीम-खाते हमने १००) मासिक का प्रबन्ध कर रखा है।

कलकत्ते में हमने किराये पर मकान लिया है और और भी कई सुविधाओं का प्रबन्ध किया है, इसमें आरंभ में ७०००) की पूंजी हमें इस विद्यालय में लगानी होगी ऐसा हमारा विश्वास है।

इसे पढ़कर कोई यह न मान बैठे कि ऐसा विद्यालय कलकत्ते में चालू हो गया है। अभी तो उसकी केवल कल्पना ही है। प्रयोग शुरू हुआ है, देखें, इसका परिणाम क्या आता है। किंतु इस विषय में रस लेनेवाले सज्जनों को मैं यह चेतावनी अभी से दे रखता हूँ कि खरीद-फरोख्त के भावों में और तैयार चमड़े की किस्म में अगर कुछ फर्क पड़ गया तो इस धंधे में भारी घाटा आ सकता है।

'हरिजन-बंधु' से] सतीशचंद्र दासगुप्त

गुड़ और खाँड़

गाँव-गँवई में घूमने-फिरनेवालोंने प्रायः यह चर्चा सुनी होगी, कि जब से यह विलायती गन्ने का बीज आया है तब से तो बरकत ही जाती रही है। यह विलायती गन्ना पैदा तो बहुत होता है, पर मिलता-मिलाता कुछ नहीं। जब देशी बीज बोते थे, तब वह अच्छे भाव से बिक जाता था। इस विलायती गन्ने का गुड़ भी तो स्वाद में अच्छा नहीं होता।

शहर में रहनेवालों को अच्छे-बुरे गुड़ की बारीकी से पहचान करना भी कदाचित् कठिन हो; क्योंकि गुड़ तो शायद ही उन्हें कभी देखने को मिलता हो। आज भी बहुतेरे आदमी शहरों में ऐसे मिलेंगे, जो यह नहीं जानते, कि गुड़, खाँड़ और बूरा कैसे बनते हैं। उन्हें अगर यह ठीक-ठीक पता चल जाय कि गुड़ और खाँड़ व बूरा बनाने का उद्योग कितना आसान और फ़ायदे का है और ग़रीब किसानों को उससे कई महीनों के लिए किस तरह रोज़ी मिल जाती है तो वे अवश्य इस उपेक्षित उद्योग को अपना लेंगे।

ईख की फ़सल जब तैयार हो जाती है और छोल लगाने की तैयारियाँ होने लगती हैं, तब बच्चे से लेकर बूढ़ेतक तमाम स्त्री-पुरुष बड़ी खुशी से खेतों पर जाने के लिए उत्कंठित रहते हैं। पहले पत्ती छीलकर ईख को साफ़ करते और उसके ऊपरी हिस्से को काट देते हैं जिसे गोला या 'छोल' कहते हैं। छोल के दिनों में खेत-खलिहानों में खूब चहल-पहल रहती है। मज़दूरों को गोले, गन्ने आदि उनकी मज़दूरी माफ़िक मिल जाते हैं। फिर बैलगाड़ियों में भर-भरकर गन्नों को कोल्हू पर लाकर रखते हैं। दो आदमी तो कोल्हू में गन्नों को ले-लेकर देते हैं, और दो आदमी बैल हाँकते हैं। दो आदमी रस खाली करते, और दो आदमी पत्ती झोंकते हैं। तीन-चार आदमी पत्ती इकट्ठी करके लाते हैं। एक या दो आदमी रस पकाते हैं। रस पकानेवाले हलवाइयों की संख्या अब दिन-दिन घटती जा रही है, और जो थोड़े-से बच रहे हैं वे भी अपना हुनर भूल गये हैं। हलवाइयों को पत्ती झोंकनेवालों के काम पर काफ़ी ध्यान रखना पड़ता है, जिससे आँच का ताव एकरस रहे। रस साफ़ करने के लिए सिखारी दी जाती है, जिसमें शहतून या भिंडी को काम में लाते हैं। रस की सफ़ाई और चाशनी को ठीक समय पर खाली करना तथा दूसरा घान डालना आदि बातों का गुड़ बनाने की कला में मुख्य स्थान है।

इस प्रकार सैकड़ों-हज़ारों मनुष्य इस उद्योग में लगे रहते हैं। रस पकाकर अनेक प्रकार की चीज़ें तैयार करते हैं, जिनमें गुड़ मुख्य है। गुड़ के बाद गिंदौड़े, अँधरसी, राब, शक्कर, बतासे वग़ैरा भी बनाते हैं। राब भी दो क़िस्म की होती है, एक 'खूँदाढोक' और दूसरी 'छालदार'। राब को तैयार करके बड़े-

बड़े मटकों में भर देते हैं। कोल्हू चलने पर गाँवों के कुम्हारों के लिए भी अच्छा काम मिल जाता है। गन्ने से गुड़-खाँड़ बनाने के उद्योग में सैकड़ों-हज़ारों मनुष्यों को रोज़गार मिल जाता है। मगर जब से ये भीमकाय मशीनें इस देश में आईं तब से भट्ठे डालने का ग्राम्य उद्योग तो जैसे लुप्तप्राय हो गया है। बात यह है कि भट्ठों के द्वारा खाँड़ जहाँ महीनों में बनती है, वहाँ एक १८" की मशीन एक दिन में २५ मन खाँड़ तैयार कर देती है।

खेत से गन्ना काट-काटकर मिलवालों के हाथ ।=) या ।≈) मन के भाव पर बेच देते हैं। और यह भाव भी मिलवाले ही निश्चित करते हैं। अगर इस गन्ने का गुड़ बनाकर किसान ख़ुद बेचें तो उसकी क़ीमत कम-से-कम उन्हें दूनी मिल सकती है। आज तो गन्ने के किसानों की यह दशा है, कि गन्ना बेच दिया और जेठ-असाढ़तक हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहे। करें क्या, कुछ काम ही नहीं रहता। इन मिलों और मशीनोंने बेकारी को बढ़ाकर हमारे गाँवों का किस बेरहमी से सत्यानाश किया है। किसान अगर कोल्हू चलाते रहें, तो तीन महीनेतक सैकड़ों आदमी काम धंधे में लगे-लिपटे रह सकते हैं। मजूरी तो मिलती ही है, गन्ना रस, गुड़ आदि भी उनके बाल-बच्चे मनमाना खाते रहते हैं। मगर मिलों के हाथ गन्ना बेच देने के बाद वे बेचारे एक डली गुड़ के लिए भी तरसते रहते हैं। गन्ने की बिक्री से जो रुपये मिलते हैं, वह घरतक भी नहीं पहुँच पाते कि साहूकार अथवा क़र्ज़ वसूल करने के लिए दरवाज़े पर आ धमकता है। ग़रीबों के पल्ले न तो माल रहता है, न रुपया। और रोज़गार तो हाथों से निकल ही जाता है।

ऐसी हत्यारी मज़दूरी के लिए भी हज़ारों बेकार किसान चक्कर लगाते रहते हैं, पर उन्हें वह भी नसीब नहीं होती।

गुड़-खाँड़ के ग्राम्य उद्योग में हज़ारों की तादाद में हमारे हरिजन भाई काम करते थे, पर जब से ये मिलें खड़ी हो गई हैं, तब से वे भी बेकारी के ग्रास बन गये हैं। राष्ट्रीय अर्थशास्त्र को सामने रखकर इस नष्टप्राय उद्योग को उत्तेजन दिया जाय तो वह अब भी पूर्ववत् उन्नत हो सकता है।

नौकरी-चाकरी की तलाश में दरदर ठोकरें खानेवाले हमारे शिक्षित नवयुवकों में से अगर कुछ लोग साहस और लगन के साथ इस ग्राम्यउद्योग-क्षेत्र में कूद पड़ें, तो आज भी हमारे दरिद्र ग्रामों में कंचन बरसने लगे। देश का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि एक ओर तो आज हम समाजवाद और साम्यवाद का राग अलाप रहे हैं, और दूसरी ओर बेकारी को जन्म देनेवाली मशीनों और मिलों से व्याप्त ग्रामविहीन भारत का स्वप्न देख रहे हैं।

बलबीर सिंह

एजेंटों के लिए नियम

मेरे पास कुछ ऐसे सज्जनोंने अपने नाम भेजे हैं जो अखिल भारतीय ग्राम्यउद्योग-संघ के एजेण्ट की हैसियत से काम करने को तैयार हैं। व्यवस्थापक मण्डलने कुछ ऐसे नियम बना दिये हैं, जिन में एजेण्ट के कर्त्तव्य बताये गये हैं। वे नियम नीचे दिये जाते हैं—

(१) एजेण्ट से यह आशा रखी जायगी कि वह केन्द्रीय कार्यालय के निर्धारित कार्यक्रम को देखे, समझे और उसकी काफ़ी जानकारी हो जाने के बाद अपने हलके के उन उद्योगों की जांच-पड़ताल करे कि जिनकी उन्नति या प्रचार के लिए यत्न किया जाना उचित होगा, साथ ही केन्द्रीय कार्यालय को अपनी जांच की रिपोर्ट और तपास से मालूम हुई बातों के आधारपर कार्यक्रम बनाकर भेजे।

(२) हर एजेण्ट से यह आशा रखी जायगी कि वह अपने हलके के गावों की सफ़ाई और स्वास्थ्य का ध्यान रखे।

(३) गांव की फ़ाज़िल उपज बिकवाने के लिए वह विश्वास-पात्र व्यापारियों को ढूंढ़े और आकर्षित करे। माल का मोल-भाव एजेण्ट और व्यापारी के बीच बात करके तय करलें जिसमें माल में किसी तरह की मिलावट वग़ैरा न हो।

(४) लोकमत को अपने कार्यक्रम के अनुकूल बनाने के लिए वह अपने हलके में प्रचार-कार्य करे।

(५) अपने कार्यों का ख़र्च पूरा करने के लिए उसे लोगों से चन्दा मांगना और लेना चाहिए। केन्द्रीय कार्यालय से उसे आर्थिक सहायता पाने की आशा न रखनी चाहिए। पर इस चन्दे में से एक पाई भी वह अपनी निजी आवश्यकताओं पर ख़र्च न करे।

(६) जब आवश्यक हो और उसके पास इसके लिए रुपया हो तब वह अपना कार्य-क्रम को पूरा करने के लिए वैतनिक कर्म-चारी रख सकता है।

(७) सब तरह की आमदनी और ख़र्च का उसे ठीक-ठीक हिसाब-किताब रखना होगा, जिसकी केन्द्रीय कार्यालय की ओर से जांच हुआ करेगी।

(८) केन्द्रीय कार्यालय उसके कार्यों की जांच व देखरेख करेगा।

(९) हर महीने उसे अपने कामों की रिपोर्ट और आवक-जावक का गोशवारा इस तरह प्रधान कार्यालय को भेज देना होगा जिससे कि वह अधिक-से-अधिक अगले महीने की १५ तारीखतक पहुंच जाय।

(१०) माहवारी रिपोर्ट और गोशवारा भेजने तथा केन्द्रीय कार्यालय के आदेशों का पालन करने में लापरवाही करने से उसकी एजेन्सी रद्द हो जायगी।

मैं चाहता हूं कि जो लोग मेरे पास अपने नाम भेज चुके हैं वे, और दूसरे लोग भी पूरे ब्योरे के साथ अपने नाम श्री कुमारप्पा के पास भेज दें, ताकि बोर्ड उपयुक्त व्यक्ति को चुन सके। ख़ास बात ध्यान में रखने की यह है कि कोई आदमी उतने से अधिक गांवों का भार अपने ऊपर न ले जितने का काम वह अकेले अथवा अपने साथी कार्यकर्ताओं की सहायता से कर सकता है। ये साथी उसे ख़ुद ही तलाश करने होंगे और सेण्ट्रल बोर्ड उनकी अपने ऊपर किसी तरह की आर्थिक जिम्मेदारी न लेगा। यह बात सोची जा रही है कि सेण्ट्रल बोर्ड को अगर वैतनिक कार्यकर्ता रखने पड़े तो वह भारत के सात लाख गांवोंतक अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार कभी न कर सकेगा। उसने इस धारणा के साथ कार्य शुरू किया है कि देश में ऐसे त्यागी स्त्री-पुरुष काफ़ी संख्या में मौजूद हैं, जो गांवों की सेवा करने की आवश्यकता को भलीभांति महसूस कर रहे हैं। यद्यपि हर आदमी यह जानता है कि इन गांवों के बिना नगर का जीवन असम्भव हो जायगा, फिर भी अबतक इनकी उपेक्षा ही की गई है।

अंग्रेज़ी से]

मो० क० गांधी

हरिजनों पर ज़मींदारी अत्याचार

"क्या बताऊं सा'ब, यह पड़ा है जीवा दादा दो दिन से बेहोश। चार दिन से एक दाना भी मुंह में नहीं गया। न बोलता है, न किसी को पहचानता है। इस बूढ़े जीवा के बचने की आशा नहीं। और यह दूसरी खटिया पर हमारा भाई आसा पड़ा हुआ है। इसे छयालीस छर्रे लगे हैं छयालीस। देखो न, पेट, जांघ, हाथ बेचारे के सब छिदना-छिदना हो गये हैं। और इस भाई के भी हाथ में छर्रे लगे हैं। दो-तीन लाठियां मेरे ऊपर भी पड़ी। आज यहां हम पांच ही आदमी रह गये हैं, बाकी को घर भेज दिया है। हमारी दो औरतें भी तो उस दिन घायल हो गई— उस बछिया की दशा बुरी थी बाबूजी।" यह कहते-कहते उस हरिजन भाई की आंखों में आंसू आ गये, गला भर आया।

यह मेरठ के अस्पताल की बात है। हरिजन-सेवक-संघ की ओर से मैं २३ दिसम्बर को कोताना गांव के आहत हरिजनों को देखने मेरठ गया था। अस्पताल में सात-आठ दिन मरहम-पट्टी कराके और लोग तो कोताना वापस चले गये थे, सिर्फ चार-पांच आदमी ही उस दिन वहां मौजूद थे। ७० वर्ष के वृद्ध जीवा की हालत तो अत्यंत चिंताजनक थी। वह होश में नहीं था। गड्ढों में घुसी हुई आंखें भर जगजगा रही थीं। मुझे तो वह कुछ ही घड़ियों का मेहमान मालूम पड़ा। उस पर भाले का वार किया गया था। कुहनी को फोड़कर भाला आरपार हो गया था। और आसा को बंदूक के कई छर्रे लगे थे। दो हरिजनोंने शरीर पर मुझे लाठियों के भी निशान दिखाये।

यह दुर्घटना १८ तारीख को मेरठ जिले के कोताना गांव में 'बेगार' के ऊपर हुई थी ऐसा मुझ से उन हरिजनोंने कहा। बोले "सा'ब, बेगार में हम लोग खां सा'ब (कोताना का प्रधान जमींदार) का कहांतक काम करें। महीनों से वह हमलोगों को तंग कर रहे थे। एक बार तो हमारे ढोर हँकवाकर बंद करा दिये थे। हमने बड़ी मुश्किल से एक-एक रुपया दे दे कर अपने ढोर छुड़ाये। उस दिन वे बाप-बेटे सब पचीस-छब्बीस आदमी ले हम गरीबों पर चढ़ आये। खूब मां-बहिन की गालियां दीं और मारने का डराया-धमकाया। हमारा यह बूढ़ा जीवा हाथ जोड़कर बोला, खां साहब, जुल्म-ज्यादती न करो हम गरीब चमारों पर। हम इस तरह दिन रात बेगार में आपका काम न करेंगे। उसे सामने से हट जाने को कहा, पर जीवा हटा नहीं, हाथ जोड़े वहीं खड़ा रहा। खां सा'ब उस पर आप से बाहर हो गये और एक आदमीने जीवा को भाले से छेद दिया। फिर लाठियों की हमलोगों पर खूब वर्षा हुई। लाठी ही क्या, बंदूक तक तो चलाई गई हम गरीबों पर। देखो न, इस आसा की क्या हालत है।"

मेरठ के कुमाराश्रमने इस संकट के समय इन आहत हरिजनों की अस्पताल में अच्छी सेवा-सहायता की। संघ की तरफ से मैंने उन्हें दूध इत्यादि के लिए १५) दिये और यह कहकर कि 'ईश्वर ही तुम गरीबों का सहारा है' वहां से साश्रुनेत्र चल दिया।

हा, मनुष्यों की रची अदालतों का क्या भरोसा, उन्हें यहां न्याय मिले या न मिले, पर उस दीनदयालु के दरबार में तो जरूर इन निर्धनों को इन निर्बलों को न्याय मिलेगा। कोताना गांव का तो यह एक दृष्टान्त है। ऐसे अमानुषिक अत्याचार तो हरिजनों पर अकसर ही होते रहते हैं। उन्हें मार-पीटदेना तो एक मामूली खेल हो गया है। गरीब अछूतों का मूल्य जाति और धन के मद में उन्मत्त लोग एक भुनगे के बराबर भी तो नहीं समझते। देखें, कब इन मदान्धों की आंखें खुलती हैं।

वियोगी हरि

[नोट—अभी खबर आई है कि कोताना का एक हरिजन—संभवतः वही जीवा—अस्पताल में संसार से चल बसा। वि० ह०]

नवजात बालक

[४२४ पृष्ठ से आगे]

हो जायगा, और आज ग्रामवासी, जो केवल कच्चा माल पैदा करनेवाले मजूर बन गये हैं, वे स्वतंत्र और स्वावलंबी हो जायेंगे, और शहरवालों की आवश्यकताओं की बहुत कुछ चीजें तैयार करके उन्हें वे पूरा करेंगे। ऐसे काम में राजनीतिक मतभेद निश्चय ही शान्त हो जायेंगे। इसलिए जो व्यक्ति इस काम में मदद करना चाहते हों उन सब को उनकी इच्छा और शक्ति के अनुसार संघ का सदस्य, एजेण्ट, सेवक, सहायक अथवा सलाहकार बनने का हम आमंत्रण देते हैं।

यह बड़ा बड़ा काम है। इस संघ के काम के बारे में जो आशाएँ उत्पन्न हुई हैं वे सिवा ईश्वर-कृपा के और किसी तरह पूरी होने की नहीं—और ईश्वर-कृपा उसी पर होती है जो विवेक-पूर्वक लगातार अविराम प्रयत्न करता है। बोर्ड के सदस्योंने ऐसे प्रचण्ड प्रयास करने का प्रण किया है। उनकी भूतकाल की सेवाओं में हमें उज्ज्वल भविष्य की रेखा दिखाई देती है।

ग्रामउद्योग-संघ की जन्मदात्री यद्यपि कांग्रेस है, तो भी इसे जानबूझकर राजनीति से अलिप्त और स्वतंत्र रखा गया है। इसके सदस्योंने यह प्रतिज्ञा की है कि वे जबतक संघ के सदस्य रहेंगे, तबतक सत्याग्रह युद्ध में भाग नहीं लेंगे। संघ का सलाहकार और पथप्रदर्शक के रूप में इतना मैं कह सकता हूँ कि गांवों की जनता की आर्थिक, शारीरिक और नैतिक अवस्था सुधारने के अतिरिक्त इस संघ का कोई दूसरा उद्देश ही नहीं है।

पाठक देखेंगे कि व्यवस्थापक मंडल को आरम्भ में तो अपना काम अवैतनिक एजेंटों के द्वारा ही चलाना है। ये एजेंट अपना-अपना कार्यक्षेत्र खुद चुन लेंगे। उन्हें अपने उसी भाग में क्षेत्र-संन्यास लेकर बैठ जाना पड़ेगा। इस तरह संभव है कि एक एजेंट एक ही गांव के लिए हो। अतः भारतवर्ष में जितने गांव हैं उतने ही इस संघ के एजेंट हो सकते हैं। किसी व्यक्ति को, चाहे वह कितना ही छोटा हो, संघ के चरणों में अपनी सेवा अर्पित करते हुए सकुचने की जरूरत नहीं। विचार तो ऐसा है कि यह काम जितने भी भागों में बांटा जा सके उतने में बांट दिया जाय। ऐसा करने से ही यह काम कुशलता के साथ और अधिक-से-अधिक किफायत तथा एकाग्रता से हो सकेगा। मुझे आशा है कि ग्रामपुनर्संगठन की इस सुंदर प्रवृत्ति में भाग लेने के लिए इस कोटि की लगन के प्रामाणिक सेवक तो हमें देश के हर भाग में मिल जायेंगे।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला हाउस, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ४ जनवरी, १९३५. [संख्या ४६

विषय-सूची

'हरिजन-कर्मालय' का शिलारोपण

हरिजन-सेवक-संघ के 'हरिजनिवास' में जिस हरिजन-कर्मालय के स्थापित होने की बातचीत चल रही थी, उसका शिलारोपण-संस्कार बुधवार, २ जनवरी १९३५ को गांधीजीने सबेरे ९ बजे किया। सबसे पहले गांधीजी से शिलारोपण के लिए प्रार्थना करते हुए संघ के अध्यक्ष श्री घनश्यामदासजी बिड़लाने कहा कि हम क्या करने जारहे है यह हमें पता नही है। हमारे मनसूबे बहुत बड़े है। काम भी बहुत बड़ा है, लेकिन यह सब तो कार्यकर्त्ताओं की लगन और परिश्रम पर निर्भर करता है। हमारी यह इच्छा है कि जिस तरह सूर्य से सब लोग प्रकाश ग्रहण करते हैं उसी तरह यह कर्मालय सारे भारतवर्ष को अपना प्रकाश देगा और दूसरे सब प्रांतो को रास्ता दिखायगा। पैसे की तो ऐसे कामो में जरूरत होती ही है, पर इतना मैं जानता हूँ कि धन के बिना यह काम रुका नही रहेगा। जनता की सेवा करके हम आवश्यक धन प्राप्त कर सकेगे। मुझे आशा है कि आपके आशीर्वाद और कार्यकर्त्ताओं की लगन और परिश्रम से यह काम पूरा करने में हम सफल होगे।

शिलारोपण के बाद गांधीजीने उस मगल अवसर पर उपस्थित लोगो से कहा कि यह मेरा सद्भाग्य है कि आपने मुझे ऐसा पवित्र काम सौंपा। बहुत दिनो से, शायद एक साल पहले घनश्यामदासजी ने मेरे सामने यह इच्छा प्रगट की थी कि जहां हमने हरिजन-सेवक-संघ का केन्द्रीय दफ्तर खोला है वहां हरिजनो की प्रत्यक्ष सेवा की कोई प्रवृत्ति हो। हमारे हरिजन भाई-बहिनो के प्रति हमारी सहानुभूति है इसके लिए सवर्ण हिंदुओं को कुछ प्रत्यक्ष हरिजन-सेवा करने की जरूरत है, क्योंकि ऐसी सेवा करते हुए ही वे हरिजन भाई-बहिनो के संपर्क में आने से उनके कष्टों को समझ सकेंगे। जब मैं जेल से छूटा और देखा कि साबरमती का आश्रम सरकारने तो लिया नहीं है और वह यों ही पड़ा हुआ है, तो मैंने आश्रम के ट्रस्टियो से सलाह करके हरिजन-कार्य के लिए उसे दे देने का निश्चय किया और वह हरिजन-सेवक-संघ को दे दिया गया। उसके बाद कई बार घनश्यामदासजी के मन में यह विचार आया कि जब हरिजन-सेवक-संघ को इतना बड़ा एक आश्रम मिल गया है, तब क्या दिल्ली में और एक आश्रम खोलना ठीक होगा? लेकिन मैंने तो विचार कर कहा कि चार-पांच करोड़ हरिजनो के लिए एक-दो क्या, इस तरह के कई कर्मालय चलाये जा सकते है और इस तरह इस कर्मालय की स्थापना का यह इतिहास है।

इस जमीन की कीमत लगभग ३००००) के है। और यह जो मकान बना है वह करीब २५०००) की लागत का है। इस प्रकार कुल ३२५००) के लगभग रुपया इसमें लगा है,* घनश्यामदासजीने मुझसे यह इच्छा प्रगट की है कि इस जमीन के खरीदने और इस मकान के बनवाने में जो रुपया खर्च हुआ है उसका भार संघ पर न डाला जाय और उसे मैं देदूं। **इस प्रकार इस जमीन और इस मकान में ३२५००) के लगभग जो खर्च हुआ है वह श्री घनश्यामदासजीने संघ को दान दिया है ऐसा समझना चाहिए।** ३००००) मकान इत्यादि बनवाने के लिए संघने जो मंजूर किये वह सावधानी से खर्च किये जायँगे ऐसा मेरा विश्वास है। मेरे हिसाब से तो ये रुपये कौड़ी के समान है। इस तरह के धर्म कार्य में सैकड़ो करोड़पति और लखपति अपना रुपया लुटा दे तब भी थोड़ा है। पर मेरा तो विश्वास है कि इस प्रकार के काम रुपयों के बिना रुक नहीं सकेंगे।

आजतक हम लोग इन हरिजनों के कंधों पर चढ़ते चले आये। इन पर खूब जुल्म किया। आज भी खूब अत्याचार हो रहे है। कोताना (मेरठ) के हरिजनो पर जमीदार-द्वारा किये गये जुल्म की बात तो आपने सुनी ही होगी। इसी तरह के जुल्म मेरी जन्मभूमि काठियावाड़ मे भी हुए है। मेरी तो मान्यता है कि इस प्रकार की क्रूरतियों से हिन्दूधर्म जैसा कि मैंने समझा है जिन्दा नही रह सकेगा। मुझे आज आराम की जरूरत है—लेकिन मेरे हृदय मे तो दावानल जल रहा है और जिसके दिल में दावानल जल रहा हो वह चैन से कैसे बैठ सकता है? नही तो मुझे क्या शौक सूझा था जो २१ दिन का उपवास करता? ठक्कर बापा को लेकर एक वर्ष तक सारे हिन्दुस्तान का चक्कर लगाता? मैंने तो कई बार कहा है कि अगर हिन्दूधर्म को जिन्दा रहना है तो अस्पृश्यता को मिटाना ही होगा और अगर अस्पृश्यता रहेगी तो हिन्दूधर्म तो मिट ही जायगा। हम कुछ लोगों को, चाहे वे ४ करोड़ हों या ७ करोड़ हो या १० करोड़, नीच बना करके,

*इसके अन्दर १०० बीघे और ३ बिस्वे जमीन है, जिसकी कीमत २९७९६।।)।।। है। स०

उनपर अत्याचार करके, सम्पूर्ण जगत् के साथ मैत्री करना चाहे यह हो नहीं सकता।

यहां यह भी मैं कह दूं, कि हैं मसंघ का किसी भी अन्य धर्म के साथ विरोध नहीं है। हमारे हिन्दूधर्म में तो, जैसा कि मैंने हिन्दूधर्म को समझा है, अन्य धर्मों का विरोध करना पाप माना गया है। अपने से किसी को नीच समझना पाप माना गया है। उसमें तो सब धर्म समान हैं।

अन्त में, मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ और आप भी इस प्रार्थना में शरीक हों कि यह कार्य, जिसका शिलारोपण आज हुआ है, खूब बढ़े और हरिजन-सेवियों के लिए यह स्थान तीर्थक्षेत्र बन जाय।

विशेषता और मर्यादा

धर्म के अनेक लक्षण बताये जाते हैं। आजकल जिस स्वरूप में धर्म का विचार मेरे मन में आया करता है, उसे मैं पाठकों के आगे रखना चाहता हूँ। यों तो हरेक पदार्थ का जो विशेष स्वभाव रहता है वह उसका धर्म है, ऐसा शास्त्रीय ग्रंथों में लिखा ही है। उदाहरणार्थ, पानी का स्वभाव है नीचे की ओर बहना और भिगोना, और वायु का स्वभाव है ऊपर चढ़ना, फैल जाना और सुखाना। ये स्वभाव इनके धर्म हैं ऐसा हम समझते हैं, अर्थात्, इन पदार्थों की जो विशेषताएँ हैं, वे ही उनके धर्म हैं।

लेकिन जब हम किसी पदार्थ की विशेषता को बतलाते हैं, उसी समय हम उसकी मर्यादाओं को भी सूचित करते हैं, यह बात हमारे ख्याल में आने की जरूरत है। पानी नीचे बह सकता है और भिगोता है, यह उसकी विशेषता है, और वही उसकी मर्यादा भी है। अर्थात्, वह वायु की तरह ऊँचा नहीं जा सकता, फैल नहीं सकता, सुखा नहीं सकता। न तो वायु नीचे की ओर बहता है, न पदार्थ को भिगो ही सकता है।

इस तरह हरेक पदार्थ का जो खास स्वभाव है, उसीमें उसकी विशेषता है और उसकी मर्यादा भी है। और वही उसका धर्म है।

यह बात केवल पदार्थों के विषय में ही सत्य नहीं है, वरन मनुष्य के विषय में भी सत्य है। यदि किसी मनुष्य में कुछ विशेषता होती है, तो वह विशेषता ही उसकी मर्यादा भी बन जाती है। उदाहरणार्थ मान लीजिए, तीन सज्जन हैं। तीनों सेवाभावी हैं। तीनों सहृदय हैं। जनता के लिए खूब काम करने की तीनों ही इच्छा रखते हैं। एक धनिक है, अच्छे कामों में दिल खोलकर पैसा देता है। लेकिन जिनमें से उसे पैसा मिलता है, उन व्यवसायों में भी उसको अधिक समय देना पड़ता है। वह अपना सारा समय सार्वजनिक कार्य में ही दे सके, ऐसी न तो अपने में वह शक्ति देखता है, न अपनी परिस्थिति ही पाता है। उसकी बहुत-सी सेवा आर्थिक सहायता के रूप में ही होती है। हम अनुभव करते हैं कि सेवा-कार्य में कहीं-न-कहीं धन की जरूरत पड़ती ही है। ऐसी आर्थिक सहायता देने की शक्ति उस सज्जन की विशेषता है। और वह सज्जन अपनी दृष्टि से विचार करे, तो उसी विशेषता में उसकी मर्यादा भी आगई है। वह धन दे सकता है, समय नहीं दे सकता। शरीर से उससे भी कम सेवा कर सकता है। और भी अनेक मर्यादाएँ वह अपने में पाता है। जिस व्यवसायी समाज के बीच में रहकर उसे अपने व्यवसाय चलाने पड़ते हैं, उसमें वह सामान्य लोक-सेवकों की तरह श्रमशील और सादा जीवन नहीं बिता सकता। वह बड़े मकान में रहता है, अनेक परिचारकों को रखता है, गाड़ी घोड़ों को भी काम में लाता है। इन सब साधनों का सार्वजनिक कार्यों में भी उपयोग होता है, और अपने सुख के लिए भी होता है। इस तरह वह खुद को अपरिग्रही नहीं कह सकता, और इस प्रकार उसकी विशेषता में उसकी मर्यादा दिखाई देती है।

दूसरा सज्जन धनिक नहीं है। कोई मामूली व्यवसाय करके वह अपना निर्वाह करता है। उस व्यवसाय में उसे चिन्ता भी काफी करनी पड़ती है। परिवार भी उसका बड़ा है। इतना होते हुए भी उसमें काफी सेवाभाव है, इससे वह अपना व्यवसाय और परिवार संभालता हुआ, और उसमें कुछ नुकसान भी सहता हुआ, कुछ कार्यों में अपनी बुद्धि से और कुछ में शरीर से सहायता करता हुआ वह नित्य नियम-पूर्वक अनेक सेवा-कार्यों में अपना हिस्सा देता है। वह खुद मानता है और उसके निकटवर्ती लोग भी मानते हैं कि यदि वह अपने सेवा-भाव को कम करदे तो ज्यादा धन मिल सकता है, ज्यादा सुखसे रह सकता है और परिवार को रख सकता। लेकिन वह सुख और धन की तृष्णा का संयम करता है, इस इच्छा से कि वह कुछ समाज-सेवा कर सके। वह बहुत धन की सहायता नहीं दे सकता, न अपना सारा समय ही सेवा-कार्य में बिता सकता है। किन्तु नागरिकों के लिए उसका जीवन एक अच्छा उदाहरण है। वह अपना भार समाज पर नहीं डालता और सार्वजनिक कार्यों में पूरी दिलचस्पी रखता है। इस तरह उसमें भी एक प्रकार की विशेषता है, और वही उसकी मर्यादा बन जाती है।

तीसरा सज्जन अपरिग्रही है, अपरिवार है। अगर कुछ थोड़ा परिग्रह या परिवार है, तब भी उसके लिए उसे कुछ चिन्ता नहीं उठानी पड़ती। उसने जनसेवा में अपना जीवन अर्पण कर दिया है। वह अपना और अपने छोटे परिवार का निर्वाह किसी सार्वजनिक धन में से प्राप्त करता है। इस तरह वह दिनभर समाज की सेवा करता है, लेकिन उसका भार भी तो समाज के ऊपर है। जहां उसकी विशेषता है, वहीं उसकी मर्यादा भी है।

तीनों में से हम किसे तो उत्तम कहें, किसे मध्यम कहें और किसे कनिष्ठ कहें? अपनी-अपनी विशेषता के कारण हरेक उत्तम है और मर्यादा के कारण कनिष्ठ है। हरेक को दूसरे दोनों विशेष मालूम देते हों तो वह खुद नम्र रह सकता है और उनके प्रति आदर से देख सकता है। लेकिन, दूसरे दोनों की विशेषताएँ पहिचानता हुआ भी वह अपनी विशेषता को विशेष व्यक्त करने का, उसे ही विशेष बढ़ाने का धर्म समझे तभी वह धर्म का पालन करता हुआ जीवन का समाधान पा सकता है। दूसरे दो की विशेषता को देखकर यदि वह अपनी मर्यादाओं के लिए दुःख ही करता रहे, तो न तो वह अन्य की विशेषताओं को प्राप्त कर सकेगा, न जीवन में सन्तोष ही पा सकेगा। इसमें आवश्यक है कि हरेक मनुष्य अपने में जो कुछ विशेषता हो, उसी का पूरा लाभ समाज को देने का प्रयत्न करे, और उन विशेषताओं में उसकी शक्ति मर्यादित भी हो जाती है, ऐसा समझके सदा नम्र रहे।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

इस गीतावाक्य का मैं इस तरह अर्थ बैठाता हूँ। अपनी विशेषता बढ़ाना, और वह विशेषता ही अपनी मर्यादा भी है यह समझकर नम्र रहना और अन्यों की विशेषता की दुरभिलाषा भी न रखना, ईर्ष्या भी न करना और तुच्छता भी न मानना इसीको मैं स्वधर्म-पालन समझता हूँ।

किशोरलाल घ० मशरूवाला

फोर्ड ट्रैक्टर बनाम हल

दक्षिणी अफरीका में 'कारापारा' जहाज पूर्वी अफरीका के तमाम बन्दरगाहों पर रमता हुआ मत्तगयन्द-गति में सागर की गर्वीली लहरों को चीरता हुआ चला जा रहा था। लोरेंजो मार्क्विस बन्दर पर एक अमेरिकन व्यापारी जहाज पर सवार हुआ। उसे बाद को हिन्दुस्तान आना था, पर अभी तो केनिया और युगांडा में फोर्ड कम्पनी के ट्रैक्टर हलों को बेचने के लिए उसे मोंबासा बन्दर पर उतर जाना था।

वहां से उसका विचार बम्बई आने और फिर देश के दूसरे छोर कलकत्ते जाकर वहां फोर्ड के ट्रैक्टर बेचने का था।

बेरा और मोंजाबीक के दर्म्यान हम लोगों में योंही कुछ बातचीत छिड़ गई और जहाज के मोंबासा पहुँचनेतक तो बड़े मजे की बातें हुई।

मैंने उससे पूछा, 'क्यों भाई, आप कलकत्ते में अपने ट्रैक्टर किस कीमत पर बेचेंगे ?'

वह मुझसे कुछ गर्व के साथ कहने लगा कि 'बैलों से चलनेवाले मामूली हल को जितनी जमीन जोतने में एक हफ्ता लगता है उतनी जमीन को हमारा ट्रैक्टर आधे दिन में जोत सकता है।'

मैंने कहा, 'ठीक, मुझे यह सब मालूम है। मुझे खुद एकबार बाढ़ के पानी से जमीन की जुताई में आपके फोर्डट्रैक्टर से काम लेना पड़ा था। वहां के ढोर या तो करीब-करीब सब डूब गये थे या मर-मरा गये थे, और जमीन सूर्य की प्रचण्ड धूप में कड़क होती जाती थी।'

यह सुनकर उस अमेरिकन व्यापारी को बड़ा उल्लास हुआ। वह जगह कहां है—यह उसने मुझसे बड़ी अधीरता से पूछा। उसे ऐसी आशा थी कि वहां जाकर अपने ट्रैक्टरों के कुछ आर्डर मिल सकते हैं।

उत्तरी बंगाल के उस गांव का नाम तो मैंने उसे बता दिया। पर साथ ही वह सारा किस्सा भी उसे बतला दिया कि उस अवसर पर वहां की जमीन को ट्रैक्टर से क्यों जोतना पड़ा। सतहार और पोगीसर के बीच में यह जगह लगभग १५०० वर्गमील की थी। वहां मैं काम करता था। कहीं वह जमीन और भी पत्थर-सी कड़क न हो जाय, इसलिए उसे तुरन्त जोत डालने की जरूरत थी। एक दिन सबेरे, एक झला बरस जाने के बाद, मैं बाहर निकला। जमीन अब जोतनेलायक हो गई थी। एक ऊँची-सी जगह पर जाकर मैंने आसपास मीलोंतक जब नजर फैलाई तो मैं देखता क्या हूँ, कि वहां तो कुल जमा छै ही हल चल रहे हैं!

लोगों से मैंने पूछा, 'यह क्या बात है ?' तो उन्होंने कहा, 'बाढ़ से हमारा इतना नुकसान हुआ है कि कुछ पूछिए नहीं, इने गिने थोड़े-से ही बैल ये बचे हैं।'

यह स्थिति मुझे निराशाजनक मालूम हुई। धकधकाती हुई धूप में जमीन का यह हाल था, कि कड़क होती ही जा रही थी। इसलिए जुताई का काम जितनी जल्दी हो जाय उतना अच्छा था।

इसलिए मैंने कलकत्ते से एक फोर्ड ट्रैक्टर मँगाया, और हल के बजाय उसे वहां चलवाने लगा। उसने ऊपर की वह कड़ी काली मिट्टी को—सतह से बहुत नीचे जाने की जरूरत नहीं पड़ी—एक ही झपाटे में काट-कूटकर तोड़ दिया। देखते-देखते पचासों बीघे जमीन जुत गई। इस नये ट्रैक्टर दैत्य की यह भीषण लीला देखने के लिए वहां झुंड-के-झुंड लोग जमा हो गये। पर उनके खुद करने के लिए तो अब कोई काम वहां था नहीं, क्योंकि ट्रैक्टर चलाने में तो सिर्फ दो ही आदमियों की जरूरत थी।

फोर्ड ट्रैक्टर के इस प्रचण्ड पराक्रम की कथा सुनकर उस व्यापारी की आंखें चमक उठीं। उसने मेरा अन्तिम वाक्य शायद ही ध्यान से सुना हो।

लेकिन जब मैंने उसे इसके बाद की कहानी सुनाई, तो वह उसे बहुत ध्यान देकर सुनने लगा और कुछ विचार में पड़ गया। मैंने उससे कहा कि उस जिले के जमींदार मुझसे कहने लगे कि 'इस ट्रैक्टर को आप हमारे पास छोड़ जावें। इसे कलकत्ता वापस भेजने की जरूरत नहीं। हम लोग इसे काम में लायेंगे।'

मैंने कहा, 'नहीं जी, यह नहीं हो सकता। इसका उपयोग तो बस बाढ़ की आफत के समय के ही लिए था। मगर जब तुम्हारे बैल फिर से जुट जायँगे और समय अच्छा आ जायगा, तब—'

'तब क्या ?' व्यापारीने अधीर होकर पूछा।

मैंने कहा, 'फिर क्या काम ? **फोर्ड ट्रैक्टर का मेरे लिए फिर काम ही क्या रह जाता है ?** आज जो कुटुम्ब खेती-पाती का काम कर रहे हैं, उनमें कम-से-कम ५० तो बेकार हो ही जायँगे। और उन्हें कलकत्ते जाकर जूट की मिलों में मजदूरी करनी पड़ेगी। इससे भी बुरी दशा की क्या आप कल्पना कर सकते हैं ?'

यह अन्तिम प्रश्न जब मैंने उस व्यापारी से पूछा, तब अकेले हमीं दोनों लोग डेक पर बैठे हुए थे। वह उस प्रशान्त नीलवर्ण समुद्र की ओर देख रहा था, जिसके वक्षस्थल पर धीरे-धीरे हमारा जहाज चला जा रहा था। जहाज के चलने से पानी में जो शब्द होता है उसके अतिरिक्त चहुँ ओर वहां शान्ति-ही-शान्ति थी। यह समय भरोसे के साथ खुले दिल से बातें करने का था, इसलिए उसने मेरी तरफ मुड़कर कहा—

'जी, नहीं ! मेरे भी हृदय है। और मुझे आपके सामने यह कबूल करना चाहिए, कि अभी कुछ ही दिन हुए कि मैं चीन में यांग से कियांग नदी के तट की तरफ गया था, और वहां मैंने चीन के ग्रामवासियों को जब धान बोते हुए देखा तब मुझे यह लगा कि यहां तो फोर्ड ट्रैक्टर लाना एक तरह का गुनाह है।'

मैंने कहा, 'गंगा के किनारे भी, भाई, यांग से कियांग तट की ही तरह खूब घनी आबादी है। तब आप क्या वहां अपने ट्रैक्टर दाखिल करने को तैयार है ?'

उसने कहा, 'नहीं, आपने मुझे कायल कर दिया है, आपकी बात मेरे गले उतर गई है। मैं रूस में व्यापार के सिलसिले में काफी घूम-फिर आया हूँ, ठीक साइबेरिया तक गया था। वहां की बात ही अलग है। वहां आबादी इतनी कम है कि जमीन या तो अधजुती पड़ी रहती है, या बिल्कुल ही नहीं जुतती। पर चीन और हिंदुस्तान की नदियों के किनारों पर हाथ से जो खेती होती है उसका जोड़ तो दुनिया में कहीं है ही नहीं। जो लोग सदियों से खेती करते हुए अपनी गुजर करते चले आ रहे हैं उन्हें उनके कार्यक्षेत्र से निकाल बाहर कर देना सचमुच एक भारी गुनाह है।'

अफरीका और हिंदुस्तान के दर्म्यान हिंदमहासागर के वक्षस्थल पर इसी तरह जो अनेक बातें हुई, उनमें से मैंने बहुत-कुछ सीखा। लेकिन एक चीजने तो मेरे दिल में सबसे अधिक घर कर लिया है, और मैंने उसे बारबार न जाने कितने लोगों से कहा है। फोर्ड ट्रैक्टर बेचना ही जिसके जीवन का एकमात्र ध्येय है उसके साथ हुआ यह सुन्दर वार्तालाप मैं कदापि नहीं भूल सकता।

'हरिजन' से] **सी० एफ० एण्ड्रूज़**

हरिजन-सेवक

शुक्रवार ४ जनवरी १९३५

हरिजनों का प्रतिनिधित्व

एक सज्जन के आग्रह पर मैंने ठक्कर बापा से पूछा था कि भारतवर्ष भर के हरिजन-सेवक-संघों में कुल कितने हरिजन हैं, यह वह मुझको बतलावें। अभीतक जिन दस प्रान्तों के आंकड़े प्राप्त हुए हैं, उनके अनुसार उन प्रान्तों के हरिजन-सेवक-संघों में कुल १७१ हरिजन सदस्य हैं और ११५८ इतरजन। ये आंकड़े मैं सिर्फ जानकारी के लिए दे रहा हूँ। इन पर से यह परिणाम निकालना ठीक न होगा कि ये ठोस काम के निदर्शन-स्वरूप हैं। हां, ये दो बातें बेशक इन से सिद्ध होती हैं —

(१) संघोंने इस बात की कोशिश की है कि अपनी सहायता के लिए जितने भी हरिजन उन्हें मिल सकें उनको अपना सदस्य बनालें।

(२) ऐसे प्रतिष्ठित हिन्दू काफी तादाद में मौजूद हैं, जो इन संघों के साथ अपना नाम जोड़ने के लिए तैयार हैं, जिनका कि स्पष्ट उद्देश सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक मामलों में शेष हिन्दुओं के साथ हरिजनों की समानता प्राप्त करना है।

संघों में जो बहुत-से सवर्ण हिन्दू और हरिजन हिन्दू हैं, मैं चाहता हूँ कि मैं यह बात भी लिख सकता कि, वे ठोस प्रगति के सूचक हैं। इसमें सन्देह नहीं कि संघ में अधिक संख्या में सदस्यों के होने से व्यवस्था का खर्च तो बढ़ता है, पर उस परिमाण में काम अच्छा या ज्यादा नहीं होता। अब ऐसे उपाय सोचे जा रहे हैं कि जिससे काम अच्छा और ज्यादा हो, फिर इसके लिए चाहे सदस्यों की संख्या में कमी भी क्यों न करनी पड़े। दलितों और दरिद्रों के काम में यह अत्यन्त आवश्यक है कि व्यवस्था के ऊपरी खर्चों को कम-से-कम रक्खा जाय क्योंकि असहाय लोग अपने सहायकों की फजूलखर्चियों पर कोई बन्धन नहीं लगा सकते, फिर वे सहायक कितने ही परोपकारी क्यों न हों और वे फजूलखर्चियां कितनी ही अनजान में क्यों न की जायें, और सहायक भी सुव्यवस्था के नाम पर अनजान में फजूलखर्ची करने पर जबतक कोई प्रतिबन्ध न लगायेंगे, तबतक उनसे आवश्यकता से अधिक खर्च हो जाना सम्भव ही है। अनेक दातव्य संस्थाओं की व्यवस्था की गौर से छानबीन करने पर हमें मालूम पड़ेगा कि उनमें कितनी अधिक फजूलखर्ची और अव्यवस्था है और ट्रस्टी लोग अपने ट्रस्ट की कैसी अक्षम्य उपेक्षा करते हैं। हरिजन-संघ अगर हरिजनों के सामने, जिनकी सेवा ही उनका एकमात्र उद्देश है, अपना सुंदर उदाहरण पेश करना चाहते हैं तो उन्हें इन दोनों बुराइयों से तो बचना ही होगा।

'हरिजन' से] मो॰ क॰ गांधी

अ॰ भा॰ ग्राम्यउद्योग-संघ के उपनियम

(१) संघ की साधारण बैठक प्रतिवर्ष एकबार हुआ करेगी और असाधारण बैठक किसी भी समय अध्यक्ष की स्वीकृति से मंत्री-द्वारा बुलाई जा सकती है, जो कुल सदस्यों में से कम-से-कम ⅕ के प्रार्थना करने पर बुलाई जायगी। रजिस्टर में कुल जितने सदस्य हों उनकी ⅕ संख्या, जो ७ से कम न होगी, बैठक का 'कोरम' होगी।

(२) संघ का प्रथम आर्थिक वर्ष १४ दिसम्बर १९३४ से ३१ दिसम्बर १९३५ तक शुमार होगा और इसके बाद जन्त्री के अनुसार (१ जनवरी से ३१ दिसम्बरतक) रहा करेगा।

(३) संघ की कार्यकारिणी की बैठकें मंत्री-द्वारा आवश्यकतानुसार, या कार्यकारिणी के एक-तिहाई सदस्यों के कहने पर बुलाई जायँगी।

कार्यकारिणी की ओर से किसी प्रस्ताव को मंत्री सदस्यों के पास भेज सकेगा, और अगर सब सदस्य उसपर सहमत हो जायँगे तो वह कार्यकारिणी की बैठक में स्वीकृत हुए प्रस्ताव के समान ही माना जायगा।

कार्यकारिणी की बैठक के लिए उसके सदस्यों में से एक-तिहाई का, जो संख्या में ४ से कम न होंगे, कोरम रहेगा।

कार्यकारिणी का जो सदस्य बिना छुट्टी लिए लगातार तीन बैठकों में अनुपस्थित रहेगा, वह अपने पद से पृथक् समझा जायगा।

(४) आम बैठकों तथा कार्यकारिणी की बैठकों की समस्त कार्यवाहियों का, उनमें उपस्थित होनेवाले सदस्यों-सहित, यथोचित विवरण मंत्री-द्वारा रक्खा जायगा और जिस बैठक में उस कार्यवाही को स्वीकार किया जायगा उसका सभापति उस कार्यवाही पर अपने हस्ताक्षर करेगा।

(५) संघ ऐसे किसी आर्थिक या अन्य किसी प्रकार के लेन-देन के लिए जिम्मेदार न होगा, जो इसके लिए संघ से अधिकार-प्राप्त किसी व्यक्ति की लिखित स्वीकृति के बिना कोई व्यक्ति करेगा।

(६) कार्यकारिणी किसी भी सदस्य को संघ की सदस्यता से पृथक् कर सकेगी, बशर्ते कि कार्यकारिणी की बैठक में उसके कुल सदस्यों में से कम-से-कम तीन-चौथाई ऐसी बैठक में उसे पृथक् करने के प्रस्ताव को स्वीकार करलें, जो 'एजेण्डा' में उस विषय को रखकर और पर्याप्त नोटिस देकर बुलाई गई हो।

(७) प्रत्येक सदस्य अपने को सौंपे गये कार्य की त्रैमासिक रिपोर्ट इस प्रकार प्रधान कार्यालय को भेजा करेगा कि वह उस तिमाही की समाप्ति के बाद एक महीने से पहले-पहले वहां पहुँच जाय।

अगर लगातार तीन तिमाही तक कोई सदस्य रिपोर्ट नहीं भेजेगा तो वह सदस्य न रहकर अपने पद से पृथक् हो जायगा।

(८) कार्यकारिणी-द्वारा संघ से सम्बद्ध होने के नियमोपनियमों को स्वीकार करके जो संस्थाएँ संघ से सम्बद्ध होना चाहें, इस विषय का प्रार्थनापत्र प्राप्त होने पर उन्हें सम्बद्ध किया जा सकेगा।

(९) कार्यकारिणी उन व्यक्तियों को प्रमाणपत्र दे सकेगी, जो संघ के कार्यक्षेत्र में ग्रामीण उद्योग-धन्धे करने को तैयार हों।

(१०) एजेण्टों के कर्तव्य कार्यकारिणी-द्वारा समय-समय पर निश्चित किये जायँगे।

ओखली का मधुर शब्द

आज का यह यन्त्रयुग ग्रामोफोन और टॉकी का फंदा डालकर गायकों की ललित कला का गला तो घोट ही रहा है—इसने हमारे ग्रामों के संगीतपूर्ण जीवन को भी सर्वथा नीरस बना डाला है। चर्खे के मनोरम गुंजन और जांते या हथचक्की के श्रुतिमधुर शब्द

का मिलों के इन यंत्रदैत्योंने बड़ी निर्दयता से दलन किया है। ओखली-मूसल का भी सरस शब्द धीरे-धीरे यंत्रों के प्रलय-कोलाहल में विलीन होता जा रहा है। और वह उषाकाल की मथानी का घरर-घरर शब्द भी गावों में, गोवंश के क्षय से, अब कम ही सुनाई देता है।

ओखली-मूसल की महिमा का एक सुन्दर प्रसग 'बुद्धचर्या' में आया है, जो ग्राम्य-उद्योग-कार्य मे रमलेनेवालो के लिए मनोरंजक होगा ऐसा मेरा विश्वास है।

भगवान् बुद्ध वेरजा मे वर्षावास कर रहे थे। उस समय वेरंजा मे दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था। भिक्षुओं को भिक्षा करके निर्वाह करना आसान नही था। पर उत्तरापथ के घोडो के सौदागरोने, जो वेरजा में वर्षावास कर रहे थे, बुद्ध-सघ के भिक्षुओ को नित्य एक-एक मुट्ठी चावल बाध रखा था। उसीको वे सब ओखली मे कूट-कूटकर खाते थे।

एक दिन भगवान् बुद्धने ओखली-मूसल का शब्द सुना और आयुष्मान् आनद से पूछा—

"आनद! क्या यह ओखली-मूसल का मधुर शब्द है?"

आयुष्मान् आनदने भिक्षुओ के ओखली मे चावल कूट-कूटकर खाने की वह सब बात भगवान् से कहदी।

बुद्ध भगवान्ने प्रफुल्लित होकर कहा—

"साधु! साधु! आनद, तुम सत्पुरुषोने इस लोक को जीत लिया। भविष्य की जनता तो शालि-मास-ओदन (पुलाव) की इच्छा करेगी।"

भगवान् बुद्ध की भविष्यद्वाणी सत्य ही उतरी। आज की जनता अपने हाथ से ओखली में चावल कूटना भी छोडती जा रही है। और गरीब ग्रामवासियो के पेट की रोटी छीन लेनेवाली इन मृत्युरूपी मशीनो के कुटे हुए चावल को 'रक्त-मिश्रित' ही कहना चाहिए।

वियोगी हरि

मेरी हरिजन-यात्रा

[५]

नागनेश और राणपुर

१९ नवम्बर—लीमडी से बडे सवेरे हम लोग मोटर से चले और मोजीदाडा, भोबाला, नागनेश और राणपुर के हरिजनो से उस दिन भेट की। मोजीदाडा मे बुनाई का खूब काम चलता है। यहां ढेडो के ३५ घर हैं, जिनके यहा ३८ करघे चलते हैं। ये सब मिल का ही कता सूत बुनते हैं, लेकिन अगर उन्हें बराबर चर्खे का सूत दिया जाय तो वे शुद्ध खादी बुनने के लिए प्रेरित किये जा सकते हैं। हमारे साथ यहां हरिजन-मुहल्लो में और तो कोई गया नहीं, केवल एक जैन सज्जनने साथ चलने की हिम्मत दिखाई। बात यह है कि इधर छूतछात के मामले मे जितनी कट्टरता वैष्णवों में पाई जाती है उतनी जैनियो में नही। इस गांव में कुएँ की सख्त जरूरत है, इसलिए हमने सघ की तरफ से कुआ बनवा देने का वचन दे दिया। पाठशाला खुलवाने का कोई प्रबन्ध नही हो सका, क्योंकि लोगोंने साफ इंकार कर दिया कि इस काम मे हम कुछ भी सहायता न दे सकेंगे।

दूसरे गांव मे जरा टेढी खीर थी। यहा बरसों महाजनो की हुकूमत चली आ रही है, और कड़ाई के साथ इस नियम का पालन कराया जाता है कि अगर अपने काम-काज से भी महाजन की परवानगी के लिए बिना कोई सवर्ण हिंदू हरिजन-बस्तियो में गया तो या तो उसका काफी जुरमाना किया जायगा, या उसका पूरा बॉयकाट कर दिया जायगा। इसलिए हरिजन-मुहल्लो मे हमारे साथ जाने की वहां किसी को कुतूहलवश भी हिम्मत न पडी, यद्यपि मेरे हरिजन-बस्तियो से लौटने पर लोगोने १) और एक नारियल भेंट में देकर मुझे सम्मानित किया। इस गांव के ढेड भी महाजनों की ही तरह कट्टर और कठोरहृदय हैं। जब उनसे कहा गया कि 'अगर सघ की तरफ से तुम्हारे लिए एक कुआ खुदवा दिया जाय तो इन भंगियों को—जिनके यहा केवल दो घर हैं—पानी भर लेने दिया करोगे न?' पर पानी भरने देना दर किनार, वे तो इस बात के लिए भी राजी न हुए कि पानी को वे खुद कुएँ से खींच-खींचकर भंगियो के घडो में डाल दिया करें। बुनकरो और चमारों के यहा ३२ घर है, और उनकी बस्ती मे एक कुएँ की जरूरत तो है ही।

यहा ढेड बुनकरो की डागासिया नाम की एक उपजाति है। ये लोग बजाय सूत के ऊन के कपडे बुनते है। ढेडों के साथ इनका रोटी-व्यवहार तो है, पर बेटी-व्यवहार नही। भरवाड (गडेरिया) और रबाडियो (अहीर) के लिए, जो ऊनी ही कपडे पहनते है, ये लोग ऊन के वस्त्र बुनते हैं। यह कहा जाता है कि ये डांगासिये पहले भरवाड थे, पर ढेडों के सम्पर्क मे आ जाने से खुद ही ढेड हो गये, और अब उन्होने यह ऊन बुनने का धधा अख्तयार लिया है। इन डागासियों को मैंने दाहोद में देखा है, पर वहा इन्हे कमालिया (कंबल बुननेवाले) कहते है, और काठियावाड की तरह उधर वे अस्पृश्य नही समझे जाते।

नागनेश वढवाण राज्य का एक छोटा-सा कस्बा है। इसमें हरिजनो के कुल ४४ घर हैं, जिनमे भंगियो के भी घर शामिल है। यहा हमने देखा कि नागनेश-जैसे एक अज्ञात कोने मे भी एक ही कार्यकर्ता अगर सच्ची लगन के साथ हरिजन-सेवा मे तन-मन से लग जाय, तो वह अस्पृश्यता-निवारण के पक्ष मे लोकमत मे क्रांति पैदा कर सकता है। यहा की पाठशाला के अध्यापक तथा डाकबाबू श्री बाबूलालजीने गजब का काम किया है। हरिजन-बच्चो की वह एक बडी अच्छी पाठशाला चला रहे है। उन्होने हमारे लिए दो सभाओं का आयोजन किया, एक तो स्कूल मे और दूसरी हरिजन-बस्ती मे। इन सभाओ मे सवर्ण हिंदू काफी अच्छी संख्या में सम्मिलित हुए और बिना किसी सकोच के हरिजनो के साथ प्रेम से बैठे, जो काठियावाड के गावो के लिए एक असाधारण बात है।

कुछ बडी उम्र के हरिजन भाइयोंने यहा मुर्दार मांस न खाने की सौगन्द खाई। मेहतरोंने यह शिकायत की कि नागनेश मे म्यूनिसिपैलिटी के न होने से, उन्हे सफाई वगैरा का कोई काम नही मिलता, और इस तरह बेकारी मे उनका समय व्यर्थ जाता है। किसानो के लिए कुछ टोकरिया बनादी और हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहे। भला इतने से पेट पल सकता है? इसलिए वे लोग कुछ मेहनत-मजूरी का काम चाहते हैं।

अब राणपुर आये। यह अहमदाबाद जिले मे पडता है। म्यूनिसिपैलिटी की तरफ से यहां दस साल से एक प्राइमरी पाठशाला चल रही है। हम लोगोने इस पाठशाला का मुआइना किया। यहां हरिजनों के ८० घर हैं, जिनमें १४ घर भंगियो के हैं। भंगियो को राणपुर मे तनख्वाह बहुत ही कम मिलती है—कम-से-कम ३)

और ज्यादा-से-ज्यादा ५) । कुछ साल पहले ८) से ५) तक का ग्रेड इन लोगों का कर दिया गया था, मगर इधर वेतनों में काट-छांट होने के कारण ३) और ४) की तनख्वाह के नये रंगरूट कमेटीने रख लिये हैं । बम्बई-डिस्ट्रिक्ट म्यूनिस्पल एक्ट में कुछ ऐसे संशोधन होने की जरूरत है, जिससे कि यह निश्चित कर दिया जाय, कि कम-से-कम इतनी तनख्वाह म्यूनिसिपैलिटी के मेहतरों को मिलेगी । यह कितने दुःख की बात है कि जिस जाति के बिना हमारा एक दिन भी काम नहीं चल सकता उस लोकोपयोगी मेहतर जाति के सुख-दुःख का हमें तनिक भी खयाल नहीं ।

चमड़े का ठेका

काठियावाड़ के करीब-करीब सभी राज्यों में मवेशियों की लाशें राज्य की जायदाद समझी जाती हैं, मवेशियों के मालिकों की नहीं । इसलिए होता क्या है कि मरे हुए जानवरों की लाशें उठवाने और उनकी खाल उधड़वाने आदि का इधर ठेका होता है, जिसकी बोली सबसे ऊँची जाती है, उसको यह ठेका मिलता है । चूंकि राज्यों के लिए आमदनी का यह एक जरिया है, इसलिए इसे वे क्यों छोड़ने चले ? इसे तो हम रैयत की निजी जायदाद का हरण ही कहेंगे । ऐसा कोई कायदा ब्रिटिश भारत में नहीं है, और जहांतक मैं जानता हूँ, बड़ोदा राज्य में भी नहीं है । भावनगर राज्यने अभी हाल में इस तथोक्त अधिकार पर से अपना हाथ खींच तो लिया है, पर खास भावनगर शहर और राज्य के दस बड़े-बड़े कस्बों में तो चमड़े का यह अन्यायपूर्ण इजारा आज भी जारी है ।

राणपुर तथा जिले के दूसरे कस्बों में और भावनगर राज्य के गावों में यद्यपि चमारों से राज्य की तरफ से कच्चे और पके चमड़े की कोई कीमत नहीं ली जाती—हालांकि ढोरों की लाशें उन्हें, अस करें या बस, उठानी और उधेड़नी तो पड़ती ही है—तो भी दूसरे लोगों की तो गरीब चमारों व ढेढों के ऊपर पूरी हुकूमत रहती ही है, उनके लिए तो बड़े और ऊँची जाति के आदमी ही राजे-महाराजे हैं । चाहे भी तो भी वे गाड़ी या ठेले पर लादकर लाश को नहीं ले जा सकते, उन्हें तो ढोर की चारों टांगें डंडों में बांधके अपने कंधों पर ही लाश लटकाकर ले जानी पड़ती है । और कभी-कभी तो उसे घसीटते हुए ही ले जाते हैं, जिससे खाल बहुत कुछ खराब हो जाती है । गांव के बिल्कुल बाहर लाश को ठीक तरह से ले जाना और फिर वहां उसकी खाल उधेड़ना यह कोई आसान काम नहीं है ।

हमें मालूम हुआ है कि राणपुर के छोटे-से कस्बे में, जिसकी आबादी करीब ६००० के है, वहां की विविध जातें गरीब चमारों से चमड़े का दाम हरसाल नीचेलिखे अनुसार लेती हैं, उन बेचारों को लाशें उठाकर ले जाने और खाल उधेड़ने का एक पैसा भी मेहनताना नहीं दिया जाता।—

महाजन या बनिये	२१५)	घांची वोहरे	३०)
गड़ेरिया	६०)	राजपूत	२०)
देसाई वोहरे	३२)	कुम्हार	२०)

आजकल कच्चे व पके चमड़े का बाजार भाव इतना मन्दा है कि कुछ पूछिए नहीं, लाश उठाने और चमड़ा उधेड़ने का खर्च भी मुश्किल से निकलता है । ऐसी हालत में गरीब चमार चमड़े की कीमत कहां से लाकर दें ? इसलिए चमारों से तो चमड़े के मद्धे एक पाई भी नहीं लेनी चाहिए । पर इस दुनिया में तो चतुर-चंट और सुखी संपन्न लोगोंने सदा ही भोलेभाले और पददलित लोगों को मूंड़ा है ।

बोटाद और सोनगढ़

२० नवम्बर—बोटाद भावनगर राज्य की उत्तरी सीमा का सबसे पहला कस्बा है । यहां सघने हाल ही में एक हरिजन-प्राइमरी पाठशाला खोली है, जिसमें दो अध्यापक पढ़ाते हैं । इस पाठशाला का हमने मुआइना किया । और फिर ढेढों और भंगियों की बड़ी-बड़ी बस्तियों का खूब अच्छी तरह से निरीक्षण किया । ढेढ लोगों की बस्तियों की सड़कें चौड़ी और ठीक कायदे से बनी हुई हैं । ये बस्तियां देखने में साफ-सुथरी भी हैं । यहां बेचारा एक हरिजन-युवक, जो रेलवे में काम करता है, गाड़ी का दरवाजा खोलते हुए इत्तिफाक से रेल की पटरी पर गिर गया और उसकी टांग बुरी तरह से कट गई थी । ठीक-ठीक इलाज कराने के लिए और अगर जरूरी जान पड़े तो उसकी टांग काट देने के लिए हमने उसे भावनगर के राजकीय अस्पताल में भेजवा दिया ।

यहां भी भंगियोंने वही शिकायत की कि, हिन्दू दूकानदार हमारे हाथ न तो अनाज बेचते हैं, न कपड़ा और न मिठाई वगैरा ही, हमारा तो उन लोगोंने जैसे बारहमासी बहिष्कार कर रखा है । जब हमें ये चीजें खरीदनी पड़ती हैं, तब कोई-न-कोई बिचोई खासकर मुसलमान हमें इस काम के लिए मुकर्रर करना पड़ता है और उसे पैसे भी देने पड़ते हैं ।' यह तो बड़ी ही निर्दय प्रथा है । इसमें हरिजनों का अपमान तो है ही, साथ ही बेचारों को परेशानी और आर्थिक हानि भी उठानी पड़ती है । कट्टर हिन्दू दूकानदारों का कहना यह है कि भंगियों के हाथ का छुआ हुआ रुपया-पैसा बड़ा ही अमंगलकारी होता है, उसके सम्पर्क से घर की भी लक्ष्मी चली जाती है ! यह कैसा विचित्र और वाहियात वहम है कि समाज की सेवा करनेवाले इन मंगलमूर्ति मेहतरों के हाथ से सीधा पैसा अगर दूकानदारोंने ले लिया तो उनके गृह से लक्ष्मी रूठकर चली जायगी ! कुछ ठिकाना इस अज्ञान का !

यहां दो छोटी-छोटी सभाओं में भाषण किया—एक तो महाजनों की और दूसरी हाईस्कूल के विद्यार्थियों की सभा में । महाजनों की सभा में हमने कहा कि आप लोगोंने इन गरीब भंगियों का जो बहिष्कार कर रखा है उसे उठा लेना चाहिए, यह धर्म नहीं, बल्कि अधर्म है । हाईस्कूल में यह देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई कि वहां लोअर क्लासों में हरिजनों के भी सात लड़के पढ़ते हैं और वे दूसरे लड़कों के साथ बराबर बैठते हैं । काठियावाड़-जैसे पिछड़े हुए प्रांत के लिए अवश्य ही यह एक नई बात है ।

हमलोग सोनगढ़ रात को काफी देर से पहुँचे । यहां हम गुरुकुल में ठहरे । इस गुरुकुल में १८० सवर्ण छात्र शिक्षा प्राप्त करते हैं ।

दूसरे दिन सुबह ढेढों और भंगियों के मुहल्ले देखे । हरिजनों के यहां कुल २३ घर हैं । हरिजन-पाठशाला का भी हमने निरीक्षण किया । कई भाइयोंने मुर्दार मांस न खाने की प्रतिज्ञा की । हरिजन-पाठशाला के छात्रोंने एक-एक पैसा इकट्ठा करके पांच आने की एक थैली मुझे भेंट की । अधिकतर लड़के इस पाठशाला में पास के पचवाड़ा गांव से पढ़ने आते हैं । श्रीयुत हीराचंद यहां के एक बड़े ही उत्साही और सच्चे कार्यकर्ता हैं । हरिजन-सेवा-कार्य को यह बड़ी लगन के साथ कर रहे हैं । गुरुकुल के विद्यार्थियोंने मुझे एक मानपत्र भेंट किया और अध्यापकोंने हरिजन-कार्य में हर तरह से सहायता देने का वचन दिया ।

अमृतलाल वि० ठक्कर

कच्ची बनाम पक्की रसोई

साधारण हिन्दू-समाज में जहां आपस में मिलकर काम न कर सकने के और अनेक कारण हैं, वहा यह भी एक मुख्य कारण है कि लोग यह सोचते हैं कि हम अमुक जाति के लोगो के साथ बैठकर कैसे भोजन करेगे, और उनके हाथ की कच्ची रसोई कैसे जीमेंगे।

प्रसग आजाने पर लोग पक्की रसोई के पक्ष में प्राय जो श्लोक बोला करते हैं वह यह है--

घृत पक्वं पयः पक्वं पक्वं केवल वह्निना;
तदन्नं फलवद् ग्राह्यं न दोषो मनुरब्रवीत्।

अर्थात् घी में पका हुआ, दूध में पका हुआ और केवल अग्नि से पका हुआ अन्न फल के समान है। उसके ग्रहण करने में दोष नही है--ऐसा मनजीने कहा है।

प्रथम तो यह श्लोक किसी आर्ष ग्रन्थ का मालूम नही पड़ता। दूसरे इसके अनुसार तो सीरा (हलुआ), पूड़ी आदि वस्तुएँ भी सदोष सिद्ध हुई, क्योकि इनमें जल भी पड़ता है, तीसरे इसमें जल मे बने हुए भोजन का स्पष्ट निषेध नही है।

कच्ची और पक्की रसोई के बारे मे लोगो की ऐसी मान्यता है कि, ब्राह्मण किसी अब्राह्मण के हाथ की कच्ची रसोई न जीमे; परन्तु प्राचीन ग्रन्थो के प्रमाणो से ऐसा सिद्ध होता है कि भोजन बनाकर खिलाना ब्राह्मणो का काम नही है, और शूद्रों के हाथ का भोजन करनेका जहा कई जगह प्रमाण मिलता है, वहां कच्ची-पक्की का कोई विचार ही नही है, देखिए--

समानी प्रपा सह वो अन्न भागः।

(अथर्व वेद ३।३०।६)

अर्थात्, हे मनुष्यो! तुम्हारी पानी पीने की और भोजन की जगह एक ही रहे।

शुश्रूषैव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम्।
कारुकर्म तथाऽऽजीवः पाकयज्ञोऽपि धर्मतः॥

(ग०पु०, अ० ४९)

अर्थात्, द्विजों की (ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्यों की) सेवा करना ही शूद्रों के लिए धर्माचरण करने के बराबर है, जीवन निर्वाह के लिए वे बढई का काम अथवा शिल्प का काम भले ही करलें और धर्म से **पाकयज्ञ** भी करे।

ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पचनादि क्रिया तथा।

(पृथ्वी चन्द्रोदय)

ब्राह्मणादि के घर में अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यो के घर में शूद्र को भोजन पकाना चाहिए।

सर्ववर्णानां स्वधर्मे वर्तमानानां भोक्तव्यम्।
शूद्र वर्जमित्येके तस्यापि धर्मोपनतस्य॥

(आपस्तम्ब धर्मसूत्रम् १।६।१८)

धर्म के अनुसार चलनेवाले सब प्राणियो के घर अन्न खाना चाहिए। कई लोगो का मत है कि शूद्रों को छोड़ देना चाहिए, परंतु धार्मिक हों तो उनके घर का खाने मे भी कोई हानि नही।

शबरी भीलनीने श्री रामचन्द्रजी को पीने का पानी दिया।

पाद्यमाचमनीयं च सर्वम् प्रादाद्यथाविधिः।

(वा० रामायण; अ० ४४)

शबरीने विधिपूर्वक पाद्य आचमनीय आदि सब श्रीरामचन्द्रजी को दिया।

भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चेदमुपस्थितम्।

(वा० रामा०, अयोध्या स० ५०)

अच्छा-अच्छा स्वादिष्ट भोजन, भक्ष्य, पेय, लेह्य आदि चतुर्विध भोजन वह (निषाद) लाया और श्रीरामचन्द्रजी के सामने रक्खा।

आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्तारःस्युः।

(आपस्तम्ब धर्मसूत्र ३।२।२४)

अर्थात्, आर्यों की देखभाल मे शूद्रो को चाहिए कि वे भोजन बनाने का कार्य करे।

ऊपर लिखे हुए थोड़े-से प्रमाणो पर विद्वान् लोग विचार करें और व्यर्थ के भेदभाव को छोड़े, हां, स्वच्छता और पवित्रता का ध्यान तो रखना ही चाहिए। **मूलचन्द अग्रवाल**

बलाइयों की पंचायत

'हरिजन-सेवक' के सपादकने मुझे 'राजस्थान-मेघवश सभा' नसीराबाद का एक पत्र दिया है। "राजपूताने में अस्पृश्यता" नामक मेरे एक लेख के सम्बन्ध मे उस पत्र मे जो आपत्तियां उठाई गई है, उनके आवश्यक अशों का सक्षिप्तरूप मे, मैं नीचे देता हूँ--

"हरिजन-सेवक के ९-११-३४ के अक में 'राजपूताने मे अस्पृश्यता' शीर्षक श्री नारायणदासजी मलकानी का जो लेख प्रकाशित हुआ है उसमे ये बातें आपत्तिजनक हैं --

(१) बलाइयो (मेघवंशियो) को कोली और चमारो मे भी नीचा बताया गया है।

(२) श्री रामदेव (बलाइयों के कुलगुरु) के सम्बन्ध मे कहते हैं कि उन्होंने मुसलमान के यहा जन्म लिया था, पर पालन-पोषण उनका राजपूत माता-पिताने किया था।

२१ नवम्बर के दिन पुष्कर में हमने इन्ही प्रश्नों को लेकर अपनी एक भारी पंचायत की, जिसमें करीब ८०० मेघवशी अनेक स्थानो से आकर शामिल हुए। पचायत मे सबने मिल-कर प्रो० मलकानीजी के उक्त लेख का प्रबल विरोध किया।

हमारी जाति किसी कदर कोली और चमारो से नीची नहीं है। खान-पान और धंधे की दृष्टि से देखा जाय तो थोड़ी समानता ही दिखाई देती है। गोत्र तीनो ही जातियों के परस्पर एक दूसरे से मिलते-जुलते है। शायद एक ही जाति से फूटकर बाद में तीन अलग-अलग जातियां बन गई है। गावो में पूछा जाय तो वे अपने को बलाई भी बतायेंगे, साथ ही चमार और बनकर भी बता देगे। कहीं-कहीं तो यहातक सुना गया है कि 'हम तो सब एक ही है, हममें कोई भेद नही।'

खान-पान और उद्योग-धधो की दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारी बलाई जाति चमार व कोलियों से किसी हालत मे नीची नहीं है।

दूसरी आपत्ति हमारी गुरुदेव श्री रामदेवजी के सम्बन्ध मे है। प्रोफेसर साहब का लिखना बिल्कुल गलत है। श्री रामदेवजीने राजपूत माता-पिता के यहां ही जन्म लिया था।"

मुझे दुःख है, कि मेरे उक्त लेख के सबध मे राजपूताने के बलाई भाइयो को इतना क्षोभ हुआ कि उन्हे अपनी जाति-पंचायत तक बुलानी पड़ी। थोड़ी गलत-फहमी उन्हे मेरे लेख मे हो गई ऐसा जान पड़ता है। **सबसे पहले बलाई हरिजनो को यह जान लेना चाहिए कि मैं न किसी जाति को उच्च मानता हूँ, न किसी**

नीच। कोई भी धंधा हो, अगर वह ईमानदारी से किया जाता है तो उसके कारण कोई जाति नीच नहीं हो सकती, ऐसा मै मानता हूँ। मेरे लिखने का यह कदापि अर्थ नहीं है कि बलाई जाति कोली व चमारों से नीची है। मेरा तो इतना ही आशय था, कि लोग वहां ऐसा कहते है। मतभेद के लिए तो ऐसी प्रचलित बातों मे गुंजायश रहती ही है। एक ही बात के बारे मे कुछ लोगों की एक राय होती हैं, कुछ लोगो की दूसरी। मेरा वह कोई निर्णय तो था नहीं। इसलिए मेरी उन पंक्तियो पर बलाई भाइयो को क्षुब्ध होने का कोई कारण नहीं। फिर भी मुझे खेद है कि मेरे लेख के इस अंश के कारण उनके हृदय पर आघात पहुँचा।

अब रही उनकी दूसरी आपत्ति, उसके विषय मे भी मै वही कहूँगा जो पहली आपत्ति के संबंध मे ऊपर कह चुका हूं। मुझे यह स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि श्रीरामदेव जीने राजपूत माता-पिता के यहां जन्म लिया था। आज महात्मा कबीरदास के विषय मे भी कई मत प्रचलित है। पर मै तो यह मानता हूँ, कि आत्मदर्शी संत-महात्माजन तो हिंदू मुसलमान आदि संकीर्ण कौमी दायरे से परे है।

उक्त पत्र के अंत मे लिखा है —

"आपको सुनकर अत्यंत प्रसन्नता होगी कि पुष्कर की मेघवंश-पंचायतने हम लोगो मे जो थोड़ा-सा चमड़े का रिवाज था उसका एक स्वर से बहिष्कार कर दिया है। गावों मे भी जो चमड़े का चरसा बनाने का काम थोड़ा-बहुत प्रचलित था उसका भी हमने बहिष्कार कर दिया है; क्योंकि चमड़े के धंधे के आधार पर ही शायद प्रोफेसर साहबने हमे कोली और चमारो से भी नीचा गिना है।"

पत्र के इस अन्तिम अंश को पढ़कर मुझे प्रसन्नता नहीं, अत्यन्त दुःख हुआ। बलाइयोंने चमड़े के धंधे का बहिष्कार करके कुछ अच्छा काम नहीं किया। यह उनकी एकदम गलत धारणा है कि चमड़े के धंधे के कारण वे नीची जाति के समझे जाते हैं। चमड़े का काम तो एक पवित्र धंधा है। वह तो सवर्णों के भी करने लायक धंधा है। इस लोकोपकारी चर्म-उद्योग का बहिष्कार कर देना कहीं प्रसन्नता का सूचक हो सकता है? मुझे विश्वास है कि हमारे बलाई भाई अपनी इस भारी भूल को तुरन्त महसूस कर लेगे और पुनः जाति पंचायत बुलाकर चर्म-उद्योग को दूने उत्साह के साथ चलाने का जब वे एक स्वर से निश्चय कर लेगे, तभी हमे प्रसन्नता होगी।

नारायणदास आर० मलकानी

राजपूताने का कार्य-विवरण

[अक्टूबर, १९३४]

धार्मिक—हरिजन-महल्लो मे ७ बार सम्मिलित भजन व कीर्तन हुए। ५ कथाएँ हरिजन-मुहल्लो में कराई गईं। ता० २ अक्टूबर को महात्माजी का जन्म-दिवस सागवाडा-आश्रम मे मनाया गया, जिसमें ३५ सवर्ण भी सम्मिलित हुए। सवर्णो को अस्पृश्यता छोड़ने और हरिजनो को मुर्दार मांस एवं शराब आदि छोड़ने को कहा गया।

शिक्षा—८४ हरिजन छात्रों को सार्वजनिक पाठशालाओं मे भर्ती कराया गया। दिन की एक नई पाठशाला डूंगरपुर राज्य मे बागड हरिजन-आश्रम सागवाडा की ओर से खडलाई गांव में खोली गई।

आर्थिक—२ हरिजनो को नौकरी दिलवाई गई और १०० को सेवाश्रम नारेली मे भवन-निर्माण में काम दिया गया। ७६ हरिजन बालको को मिठाई बांटी गई। ७ हरिजन बालकों को दशहरे के दिन नारेली-आश्रम मे भोजन कराया गया। १८१ हरिजन छात्रो को किताबे, स्लेट, पेंसिल आदि मुफ्त दिये गये।

स्वच्छता—४०९ चक्कर हरिजन-मुहल्लों में लगाये और सफाई के लाभ समझाये गये। ८३७ हरिजन छात्रो को साबुन की टिकियां मुफ्त बांटी गईं। ८२० हरिजन छात्रो को शिक्षक और कार्यकर्ताओंने नहलाया। १३५४ को हमारी पाठशालाओं मे मंजन कराया गया। ९९९ हरिजन छात्रो के हमारे स्कूलो मे हाथ-मुंह धुलवाये गये।

सदाचार—५४२ हरिजनोंने मुर्दार मांस न खाने की प्रतिज्ञाएँ ली। ५८ हरिजनोंने शराब पीना छोड़ा। २२ हरिजन-सभाएँ, जिनमें लगभग १८०० हरिजनो की उपस्थिति थी, की गईं, और उनसे सफाई से रहने, मुर्दार मांस व शराब छोड़ने तथा अपने बालको को पढ़ाने के लिए कहा गया।

प्रचार—गांधी-सप्ताह मे बीकानेर की ओर से हरिजनो मे प्रचार किया गया।

अजमेर-समिति की ओर से ८ बार जादू की लालटेन द्वारा शराब आदि की हानियां बतलाई गईं। इसी समितिने एक गगोज के अवसर पर ३००० के करीब रैगरो में प्रचार किया।

झुंझुनू (जयपुर) समिति के प्रयत्न से चमारों की एक सभा की गई जिसमे बिसाऊ, मंडावा, नवलगढ, कुन्दगढ, डुडलोद, झुंझनू आदि १०० कस्बो तथा गावो के मिलाकर ५०० प्रतिनिधि आये थे। व्याख्यानो व गायनों-द्वारा मुर्दार मांस न खाने की प्रतिज्ञा की और ऐसा न करनेवालो पर ११) पंचायती दंड मुकर्रिर किया।

औषधि-सहायता—७७४ हरिजनो को औषधियां दी गईं, २८ बार डाक्टर-वैद्यो को हरिजन बीमारो के घर ले जाकर दिखाया गया। प्रायः सबको इस इलाज से लाभ हुआ।

सामान्य—११८ हरिजन-परिवारो की सामाजिक एवं आर्थिक जांच की गई। ९ सवर्णोंने छूतछात न मानने की प्रतिज्ञा की। ७ सम्मिलित सभाएँ की गईं। इनमे उपस्थिति ६५०० से ऊपर ही थी। हरिजन और सवर्ण समानभाव से सम्मिलित हुए। और सवर्णों से अस्पृश्यता-निवारण का और हरिजनो से मुर्दार मांस न खाने, शराब न पीने एवं गंदी आदतों के छोड़ने का अनुरोध किया गया।

इस मास मे सेवा-कार्य पर निम्नलिखित व्यय हुआ —

पाठशाला, आश्रम व छात्रवासो का व्यय	१४६१-)॥।
पाठ्य-सामग्री मुफ्त बांटी गई	९।=)
छात्रवृत्तियां	७)
कपड़ा-साबुन मुफ्त बांटा गया	३३॥=)
जल-कष्ट-निवारण	२१)
विविध सहायता	८॥)
औषधि	१९॥)॥।
	१५६०॥-)॥

रामनारायण चौधरी
मंत्री, राजपूताना—ह० से० सं०

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि
"आत्मवत् सर्वभूतेषु"
Reg. No. L. 1369
वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)
पता—
"हरिजन-सेवक"
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]
भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ११ जनवरी, १९३५. [संख्या ४७

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

आत्मनिरीक्षण-सप्ताह

हरिजन-सेवक-संघ के केन्द्रीय मण्डल की वार्षिक बैठक जिस सप्ताह में हुई उसे मैं 'आत्मनिरीक्षण-सप्ताह' के नाम से पुकारना पसन्द करूँगा, क्योंकि उसका इससे अधिक सार्थक नाम और हो नहीं सकता। इस साल दिल्ली में प्रांत-प्रांत के जो क्रियाशील हरिजन-सेवक एकत्र हुए थे उनके संयत और गम्भीर विचार-विनिमय को देखकर हठात् मुंह से निकल पड़ता है कि वह सप्ताह सचमुच अन्तर्निरीक्षण का सप्ताह था। पद-पद पर गांधीजीने आत्म-शुद्धि की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया। और हरिजन-सेवक का एकमात्र उद्देश आत्मशुद्धि तो है ही। गत सप्ताह जो काम हुआ उस पर, ध्यान से देखें, तो अधिकतर हमें आत्मशुद्धि के पवित्र उद्देश की ही छाप लगी दिखाई देती है। अब संघ के वार्षिक विवरण को देखते हैं तो उसमें भी हमें आत्मशुद्धि और आत्म-निरीक्षण की ही भावना दिखाई देती है। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू और श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त-जैसे कुशल और अनुभवी कार्य-कर्ताओं के शिक्षा तथा ज्ञानपूर्ण विषयों पर व्याख्यानादि कराने का भी संघ के प्रधान मंत्रीने इस अवसर पर प्रबन्ध किया था। गत दो वर्षों के प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर संघ के विधान का तो एकदम कायाकल्प कर दिया गया है; और इधर जो नई बातें रखी गई हैं उनमें से बहुत-कुछ तो इस प्रवृत्ति के विराट् रूप की द्योतक हैं। हां, एक छोटी-सी सुंदर प्रदर्शिनी का भी आयोजन किया गया था, जिसमें हरिजनों की तैयार की हुई और हरिजनों के काम की चीजें ही रखी गई थीं। कराची की हरिजन-हुनरशाला तथा साबरमती के हरिजन-आश्रम में बनी हुई चीजों के अनेक नमूने इस प्रदर्शिनी में रखे गये थे। और श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त के तत्वावधान में तैयार हुए चमड़े के नमूने भी देखनेलायक थे। हमारे सतीश बाबू के अटूट रासायनिक ज्ञान का उपयोग आजकल अधिकतर 'टैनिंग' की क्रियाओं में ही हो रहा है। अंतिम किन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात इस आत्मनिरीक्षण-सप्ताह में यह हुई कि संघ के अध्यक्ष श्री घनश्यामदास बिड़लाने 'हरिजन-कर्मालय' के निमित्त करीब तीस हजार रुपये की भूमि और गांधीजी के लिए बना हुआ ढाई हजार का छोटा-सा भवन हरिजन-कर्मालय के शिला-रोपण-संस्कार के मांगलिक अवसर पर संघ को अर्पित कर दिया।

रिपोर्ट का संक्षिप्त सार

पाठकों से मेरा यह अनुरोध है कि वे संघ की वार्षिक रिपोर्ट को संघ के प्रधान कार्यालय से मँगाकर अवश्य एकबार आदि से अंततक पढ़ डालें। यह रिपोर्ट क्या है अत्यन्त मूल्यवान् तथ्यों और आकड़ों का एक खासा दस्तावेज है। प्रत्येक प्रांत में जो काम हुआ है, वह खुद ही इतने संक्षिप्त सार के रूप में संपादित किया गया है कि उसे अब और संक्षिप्त रूप में करने की जरूरत मालूम नहीं पड़ती। लेकिन ऐसे भी कुछ पाठक होंगे, जो काफी कार्य-व्यस्त रहने के कारण पूरी रिपोर्ट पढ़ने को समय न निकाल सकें, पर संघ के कार्यों में जो पर्याप्त रस लेते हों, इसलिए उनके लिए मैं रिपोर्ट में से कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्यों और आंकड़ों को लेकर नकशे के रूप में नीचे दे देता हूँ —

हरिजन-शिक्षा

छात्रवृत्तियां

डेविड-छात्रवृत्तियां पारसाल	८५	५६०)	मासिक रकम
" " इस साल	९८	१२८४॥)	"
(इसमें २८ औद्योगिक शिक्षासंबंधी छात्रवृत्तियां भी शामिल हैं)			
१) से लेकर ४) मासिक तक की स्कूली छात्रवृत्तियां, जो प्रांतीय संघोंने दीं		३०५९४।||≈)११	
रघुमल दातव्यट्रस्ट की छात्रवृत्तियां		५००)	मासिक
औद्योगिक	३७		
अन्य	८९		

पाठशालाएँ

	पारसाल	इस साल
प्रारंभिक पाठशालाएँ	४९७	९०९
हाजिरी		२४८२४
दिवस-पाठशालाएँ		५३८
रात्रि-पाठशालाएँ		३७१

छात्रालय तथा हरिजन-बालगृह

संघ के अपने तथा सहायताप्राप्त छात्रालय	४१	
संघ के छात्रालय		६०
छात्रालयों में रहनेवाले : बालक		८२७
" " बालिकाएँ		२९१
कुल खर्चा		२८८७७)७

अन्य खर्च

पुस्तके, कपडे इत्यादि मुफ्त दिये गये	१८६९४॥=)३
शिक्षण-सस्थाओ को सहायता	९५२२॥=)॥
शिक्षा पर कुल खर्च	१६३०८५॥-)१

नि:शुल्क शिक्षा देनेवाली स्थानिक सस्थाए तथा विश्वविद्यालय

तामिलनाड और केरल के तमाम डिस्ट्रिक्टबोर्ड

आन्ध्र के ५ डिस्ट्रिक्टबोर्ड

आध्र-विश्वविद्यालय

काशी-विश्वविद्यालय

दिल्ली-विश्वविद्यालय (१९४० तक)

मद्रास-विश्वविद्यालय --१०००) की वार्षिक सहायता

नागपुर-विश्वविद्यालय

कुए, मंदिर इत्यादि

सार्वजनिक उपयोग के लिए कुएँ खुलवाये गये		१७०
आन्ध्र मे " " "		४६
बिहार मे " " "		४२
कुएँ बनवाये या सुधरवाये गय		८०
प्रबध-खाते खर्च	८०५११)	१७ प्रतिशत
प्रचार-खाते खर्च	२३०६४)	८ ,,
सेवाकार्य-खाते खर्च	२०४८२६)	७५ ,,

कहने की जरूरत नही कि इन आकडो से यह प्रगट नही होता कि हमने इतना अधिक काम कर लिया है, बल्कि यह प्रगट होता है कि अब भी हमारे सामने भगीरथ कार्य करने को पडा हुआ है—और जो कुछ काम अभीतक हुआ है वह भी गाधीजी के समय समय पर किये हुए आत्मशुद्धि के प्रचड उपवासो से उत्पन्न लोकजागृति के प्रताप से हुआ है। यह कितने दु:ख की बात है कि हरिजनो के लिए रोशनी, पानी की टोटियों और स्नानागारो के अर्थ हमे अलग से एक खास रकम रखनी पडे। इसका यही कारण है कि हमारी कुछ म्युनिसिपैलिटियोने तो हरिजनो की इस आवश्यकता की ओर अभीतक कुछ ध्यान ही नही दिया, और यह तो और भी दु:ख की बात है कि जिन्होने बडे-बडे वादे किये थे उनमे से कुछ म्युनिसिपैलिटियोंने तो उन्हे अबतक पूरा नही किया। भूकप के प्रलयकारी धक्कों से हमे अपनी कुभकर्णी चेतना को जगाते रहने की आखिर कबतक जरूरत रहेगी? अगर हम समय रहते न जागे, न चेते, तो—

'फिर पछताये होत क्या, जब चिडिया चुग गई खेत।'

फिर तो यही हालत होगी कि–

'का बरषा जब कृषी सुखाये?'

याद रखिए कि जबतक यह अस्पृश्यता पिशाचिनी जडमूल से नष्ट नही हो जाती, तबतक सघ न तो अपने कार्यकर्त्ताओ को ही और न सवर्ण हिन्दुओं को ही चैन की नीद सोने देगा। यह सतोष की बात है कि हमारे अनेक कार्यकर्ताओंने खुद हरिजन-बस्तियों के बीच बस जाने और वही मूक सेवा करते-करते खप जाने की प्रतिज्ञा कर ली है, अनेक हरिजन-सेवक गांवों में कट्टर सवर्ण हिन्दुओ की बस्तियों में पैदल दौरा करने का आयोजन कर रहे हैं, और हरिजन-उपनिवेश भी बनते जा रहे है।

बजट की जांचपडताल

जहां भी गांधीजी से मिलने का हरिजन-सेवको को अवसर मिला, वहा गाधीजीने उन्हें शान्ति से नहीं बैठने दिया। प्रान्तीय बजटो की गाधीजीने जो आलोचना की, उससे हम काफी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। तकरीबन् हरेक मद के सम्बन्ध मे उन्होंने टीका की और व्यावहारिक सलाह दी। बीच-बीच कुछ मजाक भी करते जाते थे और कभी-कभी एकाध विनोदपूर्ण कटाक्ष भी कर देते थे। किन्तु अपने भाषण को उन्होने जिस गम्भीरता से समाप्त किया, वह कभी भूलने की नही—"आप लोगोने बजट बनाते समय यथेष्ट सूक्ष्मता से काम नही लिया। ऐसी सूक्ष्मता से आपको हिसाब की मदे रखनी चाहिए कि किसी को कुछ कहने का मौका न मिले। हरिजन-सेवा का मार्ग तो छुरे की सीधी और तेज धार के समान है। हमारा लक्ष्य पूर्ण आत्मशुद्धि का है न? तो हम अपने दोषों को जितना भी देखे उतना कम है। हमें तो पग-पग पर अन्तर्निरीक्षण करना है। जो अपने और अपने पूर्वजो के पाप का प्रायश्चित्त करना चाहता है, उसकी दृष्टि में हरिजनों के निमित्त सग्रहीत धन 'शिव-निर्माल्य' के समान है। हरिजन-कोष की एक-एक पाई के हम ट्रस्टी हैं। बडी सावधानी और सच्चाई से हमें यह पैसा खर्चना है। आपको ब्योरेवार यथाशक्य सूक्ष्मता से बजट बनाने चाहिए। बिना पूरे ब्योरे के ये मोटी-मोटी मदें रख देने से काम नही चलेगा। आपके बजटो मे 'इत्यादि-इत्यादि' और 'फुटकर' जैसे अस्पष्ट शब्दों के लिए जगह नही। जैसे, 'किताब, स्लेटे वगैरा-वगैरा मुफ्त दी गई' इस मद को मैं कभी सहन नही करूँगा। मान लीजिए, किसीने हमे मुफ्त भांग या गाजा दे दिया तो क्या हम उसे हरिजनो मे बाट देंगे? न तो 'पत्र, तार इत्यादि' की मद रखने की ही जरूरत है, और न अखबारो और न मकान-भाडे की ही। अखबार तो आपको चाहे जहां पढने को मुफ्त मिल सकता है। और अखबार मँगाना ही है तो 'हरिजन-सेवक' को अपने दफतरो मे मगाइए। यह पत्र अभीतक अपने पैरो पर खडा नही हो सका। इसलिए चाहे तो इसे आप अपना सकते हैं। क्या अच्छा हो कि आपसे जब कोई पूछे कि आप कैसे काम चलाते हैं तो आप यह कह सकें कि हमे चिठ्ठिया व तारो पर पैसा खर्च करने की जरूरत नही, हम तो अपने आते-जाते मित्रों के जरिये सन्देशा भेजवा देते हैं; हमें किराये पर मकान लेने की जरूरत नही, क्योंकि हमने अपने कुछ कृपालु मित्रो को हमे हरिजन-सेवा के निमित्त अपना मकान देने को राजी कर लिया है। प्रबंध-व्यय को तो मैं एक हदतक सहन कर भी सकता हूँ, पर प्रचार-व्यय को नही। प्रचार-कार्य मे पैसा खर्च किया जाय इसकी तो मुझे रंचमात्र भी जरूरत मालूम नही पडती। प्रचार बेशक कीजिए, पर यह ध्यान रहे कि उसमें एक कौडी भी खर्च न हो। हमारा सेवा-कार्य ही सब से सुन्दर प्रचार-कार्य है। दुनिया मुझे एक जबरदस्त 'प्रोपेगेण्डिस्ट' कहती है। निस्संदेह मैं एक अच्छा प्रचारक हूँ, पर मैंने अपने प्रचार-कार्य में कभी पैसा खर्च नही किया। मै मानता हूँ, कि पारसाल मेरी हरिजनयात्रा मे रेल और मोटरो में पैसा खर्च हुआ था, पर उसका पाप तो ठक्कर बापा के सिर पर है। मैं तो उस रेल और मोटर के प्रवास को सच्चे अर्थ मे सफल प्रवास नहीं कह सकता; मेरी यह मान्यता है कि सच्चा प्रचार-कार्य तो मेरे द्वारा तब हुआ जब मैंने उत्कल के गांवो में पैदल यात्रा की। ग्राम्य उद्योग-संघ की कल्पना मेरी वहीं बनी। आप चाहे तो मेरी उस पैदल यात्रा को सिहा सकते हैं। पैसे से होनेवाले प्रचार-कार्य को तो अब आप दफना

ही दीजिए। चुपचाप सेवा-कार्य करनेवाला जन-सेवक ही सब से सुन्दर प्रचारक है। इसलिए प्रचार की तो आप को यह मद उड़ा ही देनी चाहिए। हरिजनों के लिए आप एकाध पाठशाला चलाइए, एकाध कुआं या मंदिर खोल दीजिए, कुआं खुदवाने या गांव में हरिजन-पाठशाला के लिए मकान बनवाने में कुछ मदद कीजिए, बस, यह आपका सच्चा प्रचार-कार्य हो जायगा। मैं चाहता हूँ कि आप श्री फ्रेमर हायलैण्ड का अनुकरण करें। यह दक्षिणी वेल्स के एक स्कूलमास्टर हैं। भूकंप-विध्वस्त विहार में खुद अपने हाथ से काम करने के लिए यह सज्जन यहां आये हुए हैं। इन्होंने इंगलैण्ड और वेल्स के बेकार लोगों में काम किया है। उन्होंने यह समझ लिया है कि बेकार आदमियों के साथ वाद-विवाद करना ठीक नहीं, उनके साथ तो खुद काम करना चाहिए। वह यह खूब जानते हैं कि पुस्तकों और निबंधों का लिखना-लिखाना कोई प्रचार कार्य नहीं, सच्चा प्रचार-कार्य तो निष्काम मूक सेवा के द्वारा ही होता है। इसलिए प्रचार की मद में आपको कुछ रखना ही है तो 'सिफर' रख दें। अब एक मद आपके आफिस के खर्चे की है। मैं यह समझ सकता हूँ कि हमारे गरीब देश में बिना पैसे के आफिसों का काम नहीं चल सकता। आपको चपरासी रखने ही हैं, तो हरिजनों को ही रखिए, पर उनके साथ चपरासियों की तरह नहीं बल्कि अपने दत्तक पुत्रों या कुटुंबियों की तरह बरताव कीजिए। आश्रमों के खर्च के बारे में तो मैं आपको सख्त चेतावनी दूंगा। आश्रम तो एक भयानक चीज है। 'आश्रम' नाम का मोह तो हम छोड़ ही दें। बिना चारित्रिक और आध्यात्मिक पूंजी के 'आश्रम' तो चल ही नहीं सकता। प्राचीन वातावरण आश्रम के साथ न होगा, तो 'आश्रम' नाम से कोई लाभ नहीं। संघ की एक शाखाने एक आश्रम के लिए ८०००) अपने बजट में रखे हैं। जबतक मुझे यह इत्मीनान नहीं हो जाता कि वहां वे ८ लाख का काम करके दिखा देंगे, तबतक मैं कैसे उस पर मंजूरी दे सकता हूँ ? मोटे तौर पर मैं तो यही कहूँगा कि जबतक आपको यह यकीन न हो जाय कि हम अमुक काम में एक रुपया खर्च करके दस रुपये वसूल न कर सकेंगे, तबतक आपको उसमें हाथ नहीं डालना चाहिए। बिना मुनाफे का व्यापार कैसा? मुझसे कोई पूछे तो मेरा तो सच्चा संतोष ही मेरे कार्य का मुनाफा होगा।

प्रतिज्ञापत्र

यह हम ऊपर लिख चुके हैं कि संघ के विधान में काफी उलट-फेर हुआ है, अथवा उसका एक तरह से काया-कल्प हो गया है। हमारे पाठक और नहीं तो कम-से-कम अब संघ के साक्षी तो हो ही सकते हैं, और अधिक-से-अधिक वे यह कर सकते हैं कि अस्पृश्यता-निवारण की इस धार्मिक प्रवृत्ति में अपने को मन, वचन, कर्म, से लगादें। यह बात ध्यान में रखकर कि कहीं इस प्रवृत्ति में, अनुत्साह न आ जाय और कार्यकर्ता, अनजान में ही सही, खुद पाप-पथ की ओर न चले जायें, संघने अपने इस संशोधित विधान में एक ऐसी धारा रख दी है, जिसके अनुसार तमाम हरिजन-सेवकों को संघ-द्वारा निर्धारित प्रतिज्ञापत्र पर सही करनी होगी। इस प्रतिज्ञा-पत्रने काफी समय ले लिया। "मैं किसी मनुष्य को दरजे में अपने से छोटा नहीं समझूंगा, और इस विश्वास पर चलने का भरसक प्रयत्न करूंगा"—देखने में यह वाक्य कितना सरल-सा है, पर बोर्ड के सदस्यों को अपनी विचार-शक्ति सबसे अधिक इसी पर लगानी पड़ी।

यह बात नहीं थी कि इस सामान्य सिद्धान्त की वास्तविकता में किसी को कोई संदेह था, कि ईश्वर की सृष्टि में सबका दरजा समान है, किन्तु अस्पृश्यता के प्रश्न का इससे क्या सम्बन्ध है यह बात ठीक-ठीक समझ में नहीं आ रही थी। पर उसदिन के वाद-विवादने इस बात को दर्पणवत् स्पष्ट कर दिया कि संघ के सदस्यों के अंतर में जो उच्चता की मनोवृत्ति काम कर रही थी वही इस सारे प्रश्न का मूल कारण थी। कुछ लोगोंने पूछा, 'इस चीज को हम प्रतिज्ञा-पत्र में क्यों रखें ? और यह प्रतिज्ञा-पत्र तो मानव हितमूलक होने की अपेक्षा सामाजिकतापूर्ण अधिक मालूम पड़ता है। अस्पृश्यता-निवारण एक चीज है, और यह दरजे की समानता तो बिल्कुल ही दूसरी चीज है। क्या हम नौकरों का दरजा अपनी बराबरी का समझें ? हमें तो यह लगता है कि इस तरह आप धीरे-धीरे हम लोगों को सामाजिक और आर्थिक क्रांति की ओर ले जा रहे हैं।'

'मुझे आश्चर्य होता है कि इस सत्य का इतनी देरी से आपको ज्ञान हुआ'—गांधीजीने कहा। "यह आप की बहुत बड़ी भूल होगी, अगर आप को यह भय लगता हो कि जीवन की जो सुविधाएँ आप को प्राप्त हैं उन में कुछ कम की हरिजन आशा रखते हैं। वद हरिजनों के साथ बराबरी का बरताव करने को आप भले ही तैयार हों, पर जबतक आप सब हरिजनों के प्रति समता का व्यवहार करने को तैयार न होंगे—न केवल अदालत की कुर्सी पर बैठनेवाले हरिजन जज के प्रति, बल्कि सड़क पर झाड़ू देनेवाले भंगी हरिजन के भी प्रति—तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि आप अस्पृश्यता के कलंक से मुक्त हो गये। उच्चता की यह कल्पना ही अत्यंत घृणित है। संसार में अधिकतर इस घृणित कल्पना की बदौलत ही जातीय विग्रह होते हैं। यह बात यों तो सर्वत्र ही है। पर हमारे यहां तो यह उच्च-नीच की भावना अत्यंत निर्दय रूप में विद्यमान है, क्योंकि यहां तो यह दावा किया जाता है कि वह धार्मिक वस्तु है।'

'आप ठीक कहते हैं, महात्माजी', एक सदस्यने कहा, 'हमारे बोर्ड में कुछ ऐसे सदस्य मौजूद हैं, जो वेश्य से ब्राह्मण को उच्च समझते हैं।'

'तब उनका हमारे बोर्ड में क्या काम ? अस्पृश्यता-निवारण का हरिजन के लिए एक अर्थ है, सवर्ण हिंदू के लिए दूसरा अर्थ है, और हरिजन-सेवक के लिए तो उसका बिल्कुल ही भिन्न अर्थ है।'

'सो तो मैं समझती हूँ', श्रीमती रामेश्वरी नेहरूने कुछ लाचारी के स्वर में कहा, 'लेकिन जब मैं यह जानती हूँ, कि मैं अपने नौकर के साथ बराबरी के दरजे का बरताव नहीं करती, तब मैं इस प्रतिज्ञा-पत्र पर कैसे सही कर सकती हूँ ? ऐसी सही कर देने से तो मुझे परिताप ही होगा।'

'परिताप होने की जरूरत नहीं। आप उसके साथ अपने एक कुटुंबी की तरह बरताव करें न।'

'कह देना तो आसान है, महात्माजी, पर करना बहुत कठिन है। मैं खुद तो पलंग या सोफे पर सोऊँ और नौकर बेचारा दरवाजे पर खड़ा रहे—इस स्थिति में यह दावा मैं कैसे कर सकती हूँ कि मैं अपने नौकर के साथ एक कुटुंबी की तरह बरताव करती हूँ ?'

[४४२ पृष्ठ के पहले कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार ११ जनवरी १९३५

इसका अर्थ यह है

"मुझ तो कुछ ऐसा लगता है कि आधुनिक सभ्यता के खिलाफ आप एक अपार और अनोखे संग्राम का श्रीगणेश कर रहे है। एक अर्सा हुआ, जब आपने अपने को इस सभ्यता का कट्टर शत्रु कहा था। और अब अगर आप से हो सका तो इसकी जो धारा हजारों वर्ष से बहती चली आ रही है उसे आप उलटकर ही रहेंगे। मै तो महज इस विचार से ही चक्कर म पड गया हूँ।"

अपने एक परममित्र से मैंने पूछा था कि 'मेरे इस प्रयास मे आप सहयोग देंगे या नहीं ?' इसके उत्तर मे उन्होंने मुझे जो पत्र लिखा है उसी मे से मैंने ऊपर का यह अवतरण लिया है। इस मित्रने स्पष्टतापूर्वक अपनी जो राय व्यक्त की है ठीक उसी तरह की राय मेरे और भी कितने ही मित्रो की है, इसलिए मेरे लिए यह अच्छा होगा कि मैं अपनी स्थिति को स्पष्ट करदू। इस स्पष्टीकरण मे मेरा अविवेक समझा जाता, अगर मेरी स्थिति ग्राम्यउद्योग-संघ की स्थिति न होती।

जो ग्राम्यउद्योग सजीव हो सकते है, उन्हे सजीव करने का उद्देश सामने रखकर मै ऐसा कोई प्रयत्न नही कर रहा हूँ जैसा कि मेरे इस मित्रने मान लिया है। जिसके हृदय मे ग्रामजीवन के लिए कुछ भी प्रेम है, जिसके अतर म गावो की बर्बादी का दु खद चित्र अकित हो गया है वह जो काम करता है अथवा करने के प्रयत्न मे रहता है, मै भी वही करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मै गाववालो से अगर यह कहता हूं कि 'तुम लोग हाथ से अपना आटा पीस लो, बिना चाला हुआ आटा खाओ, गेहूँ का चोकर फेक न दो, बेचने के लिए नही तो कम-से-कम अपने उपयोग के ही लिए गुड बनाओ'—तो समझ मे नही आता कि इस मे आधुनिक सभ्यता का प्रवाह पलट देने की कौन-सी बात है ! अगर गाववालो से मै यह कहता हूँ कि 'तुम लोग सिर्फ कच्चा माल तैयार करके ही सतोष न मान बैठो, बल्कि उसकी बाजार मे बिकनेलायक चीजें अगर बना सकते हो तो बनाओ और इस तरह अपनी रोज की आमदनी म और नही तो दो-चार पैसे की तो वृद्धि करो'—तो मेरे यह कहने का क्या यह अर्थ लगाया जायगा कि मै आधुनिक सभ्यता के प्रवाह को उलट देना चाहता हूँ?

और यह तो निश्चित ही है कि यह आधुनिक सभ्यता हजारो वर्ष की पुरानी नहीं है। हम तकरीबन यह भी बतला सकते हैं कि इस सभ्यता का जन्म अमुक तारीख को हुआ था। मुझ से अगर हो सके तो आधुनिक सभ्यता के नाम पर आज जो तमाम बातें देखने म आ रही हैं, उनमे से निश्चयेन अधिकाश को या तो मैं नष्ट कर डालू या उनकी एकदम काया पलट दू। लेकिन यह तो मेरे जीवन की पुरानी कहानी है। मेरा यह प्रयास तो जारी है ही। सफलता इसकी ईश्वर के हाथ है। मगर मेरा प्रत्येक कार्य—यहा तक कि अहिंसा का प्रचार भी—जितने अश मे आधुनिक सभ्यता का विरोधी प्रयत्न माना जा सकता है, उससे जरा भी अधिक मात्रा में, आजीविका देनेवाले मृतप्राय ग्रामउद्योगो को सजीव करने और प्रोत्साहन देने का मेरा यह विनम्र प्रयत्न आधुनिक सभ्यता का विरोधी नही है। ग्रामउद्योगों का यह पुनरुद्धार खादी-कार्य का ही एक विस्तृत रूप है। हाथ का कता-बुना कपड़ा, हाथ का बना कागज, हाथ का कुटा चावल, घर की बनी रोटी और घर का बना अचार-मुरब्बा ये सब पाश्चात्य देशो के लिए सामान्य चीजे हैं। सिर्फ बात यह है कि हिंदुस्तान मे इनका जितना महत्व है उसका शताश महत्व भी उन देशो मे नही है। कारण यह है कि हमारे लिए तो इन चीजो का पुनरुद्धार ग्राम-वासियो की जिदगी का और इनका विनाश उनकी मृत्यु का प्रश्न है। यह यत्रयुग चाहे जो करे, पर यंत्रो के इस अंधाधुध प्रवेश की बदौलत जो करोडो मनुष्य बेकार हो जायगे उन्हें उससे रोजी तो कभी मिल ही नही सकती।

'हरिजन' से] **मो० क० गांधी**

ग्रामवासी का हाथ

हाथ के कुटे चावल, हाथ के पिसे आटे और गुड़ के बारे में डा० अंसारीने हाल ही मे अपनी राय भेजी है, जिसे मै पाठको के आगे रखता हूं। यह सबसे अधिक तर्कसगत सम्मति है। इसी प्रकार के स्पष्ट उत्तर दूसरे सुविख्यात डाक्टरो के भी आये हैं। उन सबका सार श्रीकुमाराप्पा तैयार कर रहे हैं। तैयार होते ही वह 'हरिजन-सेवक' में प्रकाशित कर दिया जायगा। इस बीच मे हमारे कार्यकर्ता और दूसरे लोग डा० असारी साहब की नीचेलिखी राय पर मनन करे —

चावल

"सब अनाजो मे चावल ही एक ऐसा अनाज है, जिस मे सबसे अधिक—करीब-करीब ५० प्रतिशत—स्टार्च होता है। चावल के स्टार्च मे विशेष लाभ यह है कि वह छोटे-छोटे और सहज में पच जानेवाले कणो के रूप मे होता है। चावल को जब उबालते हैं, तब वह फूल जाता है और अपने वजन से पंचगुना पानी सोख लेता है। उसमे जो खनिज और अन्य द्रव्य होते हैं उनका इस उबालने की क्रिया मे नाश हो जाता है। लेकिन इस क्रिया में जिस सबसे आवश्यक द्रव्य का नाश हो जाता है, वह पानी में गल जाने-वाला विटामिन 'बी' (अन्न का प्राणतत्व) है। चावल पर पॉलिश चढाने की क्रिया मे चावल का तमाम थर उखड जाता है। इस थर मे चावल का कना और चोकर दोनो ही होते हैं। पीले-से रग का जो कना होता है उसमे विटामिन 'बी', चरबी और प्रोटीन होता है, और ये सारे ही द्रव्य शरीर के स्वास्थ्य तथा पोषण के लिए आवश्यक है। इस भूसी के निकल जाने से चावल के सभी पोषक द्रव्य नष्ट हो जाते हैं। यह साबित हो चुका है कि पॉलिश किये हुए चावल में विटामिन 'बी' नही होता और उसके अभाव से 'बेरीबेरी' नाम का रोग पैदा हो जाता है। इसके विपरीत, बिना पॉलिश का हथकुटा चावल चूंकि मिलो की तरह उसाया तो जाता नही इसलिए उसमें विटामिन 'बी', प्रोटीन, चरबी और खनिज द्रव्य ज्यो-के-त्यो बने रहते हैं। ये द्रव्य चावल में मूलत: कुछ बहुत अधिक तो होते ही नही। बिना पॉलिश के चावल में भी मिल के कुटे चावल से ओखली-मूसल का कुटा चावल बढ़िया होता है; कारण यह है कि मिल में बिना पानी डाले भले ही चावल को खुश्क गरमी दी जाती हो, पर हाथ के कुटे चावल में तो इसकी भी जरूरत नही पड़ती।

आटा

"भारतवर्ष में सर्वश्रेष्ठ अनाज गेहूँ है। गेहूँ के दाने में इतने अंग होते हैं भूसी यानी ऊपरी थर, जो 'सेल्युलोज' का बना हुआ होता है, गेहूँ की 'देह', जो स्टार्च या मैदा का बना हुआ होता है, और जीवाणु जो घुल सकनेवाले स्टार्च, प्रोटीन और थोड़ी-सी चरबी का बना हुआ होता है। प्रोफेसर चर्च के मत के अनुसार गेहूँ के दाने में निम्नलिखित द्रव्य होते हैं —

पानी	१४.५%	स्टार्च और शक्कर	६९%
नाइट्रोजन	११%	सेल्युलोज	२.६%
चरबी	१.२%	खनिज द्रव्य	१.७%

मिल में जब गेहूँ को पीसते हैं, तब उसका जीवाणु और चोकर निकल जाता है, और इसके साथ ही गेहूँ के और भी कई अत्यन्त उपयोगी तत्व नष्ट हो जाते हैं। इसका यह कारण है कि जीवाणु के साथ-साथ प्रोटीन और चरबी का अधिकांश निकल जाता है। इस बात का पता लगने के बाद मिल की पिसाई में कोई ऐसी क्रिया निकाली गई है कि जिससे इन द्रव्यों का नाश होना रुक जाय। मगर गावों की हथचक्की के पिसे और बिना चले हुए गेहूँ के आटे में ये द्रव्य जितनी मात्रा में होते हैं उतनी मात्रा में मिल के पिसे आटे में ये कभी रही नहीं सकते, और इसीसे उस आटे में पोषक तत्व अधिक होता है। फिर हाथ की चक्की का आटा सस्ता भी होता है, और गावों के गरीब लोगों को वह आसानी से मिल भी सकता है।

गुड़

"दानेदार चीनी बनाते समय गुड़ तो आप ही बन जाता है। गन्ने का रस कड़ाह में डालकर जब उबाला जाता है, तब पानी तो भाप बनकर उड़ जाता है, और मटमैले रंग की गीली-गीली चीज कड़ाह में रह जाती है। इसमें दानेदार बन सकनेवाली गन्ने की खाड़, बिना दाने की फलवाली खाड़, थोड़ा-सा मैल और कुछ रंगीन-सी चीज बच रहती है। नीचे लिखे अनुसार इन उपादानों से यह बनता है.—

गन्ने की खाड़%	४७	क्षार	२.६%
फल की खाड़%	२०	पानी	२७.३%
मैल और रंगीन वस्तु २.७%			

साफ की हुई गन्ने की दानेदार शक्कर को ही लोग सबसे अधिक जानते हैं। रसायन विज्ञान की दृष्टि से इस शक्कर में तथा बीटरूट, मेपल आदि से बनी हुई शक्कर में कुछ फर्क नहीं है। जठर में एसिड आदि के बहने के बाद ही गन्ने की शक्कर पचती है, अर्थात् उसके पचने में देर लगती है; और इसके पश्चात् कलेजे में 'ग्लाइकोजन' नामक पदार्थ के रूप में वह जम रहती है। इसके विपरीत, फल की शक्कर सहज ही 'ग्लाइकोजन' में परिणत हो जाती है, अर्थात् वह आसानी से पच जाती है। सिर्फ गन्ने की शक्कर जितनी मात्रा में खाई जाय उतनी ही मात्रा में अगर गुड़ खाया जाय तो उसमें गन्ने की शक्कर और फल की शक्कर २ और १ के अनुपात में होने के कारण वह जल्दी पच जाता है। इसलिए साफ की हुई सफेद चीनी की अपेक्षा गुड़ से कम-से-कम ३२ प्रतिशत विशेष पोषणशक्ति प्राप्त होती है।"

प्रत्येक मनुष्य साफ गुड़, हथचक्की के पिसे आटे और हाथ के कुटे बिना पॉलिश किये चावल का खुद उपयोग करके उपर्युक्त मत की परीक्षा कर सकता है कि वह कहांतक सच है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

बंगीय हरिजन-सेवक-संघ

बंगीय हरिजन-सेवक-संघ के अक्तूबर तथा नवम्बर, १९३४ के कार्य-विवरण का संक्षिप्त सार नीचे दिया जाता है —

दो मास का खर्च	२३०५)
प्रांतीय संघ से संबद्ध या सहायता-प्राप्त संघ की शालाएँ और संस्थाएँ, जो केवल हरिजन-सेवा कर रही हैं	९
हरिजन-सेवा में अपना सारा समय देनेवाले कार्यकर्त्ता	३३
अस्पताल	१ (६ रोगियों के रहने की जगह है।)
औषधालय	१ (प्रतिमास १०० मरीज दवा लेने आते हैं।)
दवाइयां बांटनेवाले सेवा-केन्द्र	६
पूर्णतः तथा अंशतः सहायता-प्राप्त पाठशालाएँ	६५
छात्र-संख्या	१९००
छात्रवृत्तियां	३६
उद्योगशाला	१ (चर्म-विद्यालय, कलकत्ता)

'हरिजन-सेवक' के किसी अगले अंक में बंगीय हरिजन-सेवक-संघ के इस कार्य की मैं अवश्य कुछ विस्तारपूर्वक चर्चा करूँगा।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

क्या सुंदर बात कही

उस दिन दिल्ली की सांसी-बस्ती में एक सांसी भाईने लाखटके की बात कही। उसकी बात का मूल्य इसलिए और बढ़ जाता है कि वह केवल दिमागी खुराक पर जीनेवालों के मुहँ से निकली हुई बात नहीं थी, वह तो अपढ़ और बहिष्कृत तथा जरायमपेशा कहे जानेवाले मनुष्य के शुद्ध हृदय से निकली हुई बात थी। ऐसे लोगों की कथनी और करनी में बहुत कम फर्क होता है। जो वे कहते हैं उस पर बहुत-कुछ चलते भी हैं। इसलिए उनके वे बहुमूल्य शब्द मुझे तो कभी भूलने के नहीं।

यह पूछने पर कि तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं, उस भाईने बड़े प्रेम से कहा —

"न, मुझे कोई कष्ट नहीं। जिस दिन कुछ खाने को नहीं मिलता, उस दिन मैं खूब प्रसन्न रहता हूँ, उस दिन भगवान् का भजन करता हूँ। मैं तो चाहता हूँ, कि मुझे कठिन-से-कठिन कलेस हो, जिससे राम के नाम का और भी अधिक सुमरन करूँ। दुख कैसा, मुझे तो सुख-ही-सुख है।"

उसकी यह बात सुनकर कबीर की यह साखी सामने आ गई.—

सुख के माथे सिल पड़ै, जो नाम धनी बिसराय।
बलिहारी वा दुःख की, जो छिन-छिन नाम रटाय॥

यह भाई रामायण की कथा का प्रेमी है और इसीसे मुहल्ले के सब लोग इसे 'भगतजी' के नाम से पुकारते हैं।

ऐसे लोग हरिजन नहीं, तो फिर 'हरिजन' कौन हैं?

वियोगी हरि

साप्ताहिक पत्र

[४३९ पृष्ठ के आगे]

'आप कर सकती हैं—सिर्फ इसी आधार पर कि आप पलग या सोफे पर इस कारण से नहीं सोती हैं कि आप अपने नौकर से दरजे मे बड़ी हैं, बल्कि इसलिए कि पलग या सोफे के बिना आप सो नहीं सकती। नहीं, नहीं, आप व्यर्थ डर रही हैं। मैं आपके सामने एक-दो उदाहरण रखकर इस बात को और भी स्पष्ट कर दूंगा। जब मैं श्रीमती आस्टर से मिलने उनके घर गया, तब वे अपने तमाम नौकरों को मुझसे हाथ मिलाने को लिवा लाई। वे जरा हिचकिचाये, पर उन्होंने देखा कि हिचकने की कोई बात नहीं, और उन सबने मुझसे हाथ मिलाया। लायड जार्जने भी ऐसा ही किया था। उन्होंने अपने सब नौकरों को अपने खास बच्चों की तरह मेरे हस्ताक्षर लेने को प्रोत्साहित किया था।'

'ठीक है महात्माजी, मुझे यह मालूम है, बर्ट्रण्ड रसल भी अपने नौकरों के साथ बराबरी का बरताव करते हैं।'

'तब आप को बर्ट्रण्ड रसल से किस बात में कम होना चाहिए? आपके पिताजी तो आपके मार्ग मे कोई बाधा डालेंगे नहीं, और आप के पति भी आप का पूरा साथ देंगे।' 'नहीं, नहीं,' गांधीजीने बहस को समाप्त करते हुए कहा, 'यह प्रतिज्ञापत्र अत्यंत आवश्यक है। अगर आप इसे स्वीकार नहीं करते, तो आप इस आन्दोलन की जड़ ही काट डालते हैं, और तब **सनातनी** जो कहते है उसके लिए आप उन्हें दोष नहीं दे सकते। जिस प्रकार आप के ऊपर रुपये-पैसे की जवाबदेही का भार है उसी प्रकार नैतिक कर्तव्य की भी जिम्मेदारी आप के ऊपर है। अगर मुझे यह मालूम हो जाय कि यह रुपया अप्रामाणिकता से खर्च हुआ है,तो जिस दिन मैंने उसे इकट्ठा किया था,वह दिन, मैं तो कहूँगा कि, एक अशुभ दिन था। इसी प्रकार अगर मुझे यह मालूम हो जाय, कि मेरे ऊपर जो नैतिक भार है उसे मैं सँभाल नहीं रहा हूँ तो मैं अपने को गुनहगार समझूंगा। जब आप इस हरिजन-कार्य में शरीक हुए थे, तभी आपको इसका वास्तविक उद्देश अच्छी तरह समझ लेना चाहिए था। यहां यह बात तो है नहीं कि मैं तमाम भेदों को नष्ट कर देना चाहता हूँ। प्राकृतिक भेदों को कौन नष्ट कर सकता है? ब्राह्मण, श्वान और श्वपाक के बीच क्या कुछ अन्तर नहीं है? तो भी गीता कहती है कि—

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैवश्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥

अर्थात्, जिन मनुष्यों को सत्य का साक्षात्कार हो चुका है वे विद्वान् तथा सुसंस्कृत ब्राह्मण को, गाय को, हाथी को, कुत्ते को और चाडाल को समदृष्टि से देखते है। इन सबमें ऊपरी अंतर तो है ही, पर जो व्यक्ति जीवन-विज्ञान को समझता है वह तो यही कहेगा कि उनके बीच दरजे का किसी प्रकार का भेद नहीं है, चाहे हाथी हो चाहे चींटी, और चाहे मूढ हो चाहे पंडित। निस्सदेह मूढ मनुष्य पंडित के आतंक में आकर भयभीत हो जाय, पर पंडित को इससे यह भान नहीं होना चाहिए कि वह उस मूढ मनुष्य से कुछ उच्च है। नहीं, हम सब नियति और ईश्वर की दृष्टि में एक समान हैं। यही एक आदर्श है कि जिसका हमें अपने जीवन में अनुसरण करना है।'

'तब तो न कोई मालिक रहेगा न नौकर, यही बात है न?'

'नहीं, यह बात नहीं है। लेटिन भाषा में एक बड़ी सुन्दर कहावत है—उसका यह अर्थ है कि 'समानों में प्रथम',इसके अनुसार मालिक या अध्यक्ष सर्व समानों में प्रथम माना जायगा। मैं यह समझ सकता हूँ कि इस आदर्श पर चलना कठिन है। इसीसे तो प्रतिज्ञा लेते समय आप यह कहेंगे कि अपने इस विश्वास पर चलने का हम भरसक प्रयत्न करेंगे। अगर हम इसे एकदम या पूरी तरह से अमल मे नहीं ला सकते तो इसका यह अर्थ नहीं कि इस प्रतिज्ञा-पत्र में कोई दोष है; इससे तो यही प्रगट होता है कि हमारी प्रकृति ही अधम है। आपको यह मानना ही होगा कि इस प्रवृत्ति का यह अविच्छेद्य अंग है, अन्यथा विरोधियों का यह दोषारोप उचित ही है कि सुधारकों की यह सब प्रवचना है,।

हरिजन-कर्मालय

अब, अन्त में मैं हरिजन-कर्मालय के विषय पर आता हूँ। जैसा कि गांधीजीने आधार-शिला रखने के बाद अपने भाषण में कहा था कि हरिजन-कर्मालय का शुरू-शुरू में यह विचार श्री-घनश्यामदास बिड़ला के मन मे आया था, और आज उन्होंने साढे बत्तीस हजार की भूमि व भवन खरीदकर कर्मालय को अर्पित भी कर दिया है। चूंकि श्री बिड़लाजी संघ के अध्यक्ष हैं और पैसेवाले भी हैं इसलिए वे सदा ही हरिजनों की आर्थिक उन्नति के उपायों और साधनों के विषय में सोचते रहते थे। दिल्ली में एक ऐसा हरिजन-केन्द्र बनाया जाय कि जहा से अन्य प्रांत प्रकाश ग्रहण करें यह बिड़लाजी की अभिलाषा थी। गांधीजीने आधारशिला रखने के लिए प्रार्थना करते हुए उन्होंने कहा, 'मसूबे तो मेरे बड़े-बड़े हैं, पर कहने से कोई लाभ नहीं। हर चीज हम काम करनेवालों पर निर्भर करती है। रुपये के बिना कोई काम रुकता नहीं। सच्चे कार्यकर्ता चाहिए, रुपया तो आ ही जाता है, यह मैं कई संस्थाओं के अपने अनुभव से कह सकता हूँ।' गांधीजीने बस, यह सूत्र पकड़ लिया और इसी सूत्र मे अपने भाषण के शब्द गूंथ दिये। उनका उस दिन का भाषण आदि से अन्ततक आत्मशुद्धि और आत्मनिरीक्षण की ज्वलन्त भावना से भरा हुआ था।

"याद रखिए कि हम देनदार हैं और हरिजन लेनदार। हम आजतक उनके कन्धों पर सवार रहे। हमने उनसे बेगार में काम कराया और अगर उन्होंने बेगार देने से कभी इन्कार किया तो हम ने उन्हें मारा-पीटा और किसी-किसी के प्राणतक ले लिये। सुनते हैं, कि कोताना (मेरठ) के एक जमींदारने अपने हरिजन असामियों को उनके बेगार न देने पर बड़ी निर्दयता से मारा-पीटा। कई हरिजन और उनकी कुछ स्त्रियां सख्त घायल हुईं और एक बुड्ढा तो मर भी गया है। मेरी जन्मभूमि काठियावाड में भी इसी तरह के जुल्म हुए हैं, और वहां भी एक हरिजन मर गया है। हम सदियों से यह घोर पाप करते आ रहे हैं, पर इस पाप से मुक्त होने का समय अभी हाथ से निकला नहीं। इस संघ की रचना इसी अभिप्राय से हुई है, कि हम अपने पाप का समय रहते प्रायश्चित्त कर डालें। है तो यह भगीरथ-कार्य, पर इसे पूरा तो करना ही है। यह मैंने सैकड़ों बार कहा है और आज भी कहता हूँ कि अगर हम हरिजनों के ऋण से मुक्त न हुए तो हिन्दूधर्म का नाश हो जायगा। या तो अस्पृश्यता न रहेगी, या हिन्दूधर्म नष्ट हो जायगा। मुझे आज आराम की जरूरत है, पर आराम लूं कैसे? जिसके हृदय में दावानल जल रहा हो, वह चैन से कैसे बैठ सकता है?

जो हिन्दू यह प्रत्यक्ष देख रहा हो कि हमारा हिन्दूधर्म तो धधकते हुए ज्वालामुखी के मुह पर रखा हुआ है, उसे एक क्षण भी भला आराम से बैठना पुसा सकता है ? जबतक वह ज्वालामुखी शात नही हो जाता, तबतक उसे निश्चय ही चैन नही। घनश्यामदासजीने आज जो इस काम के लिए ३५०००) दिये हैं यह तो 'सिन्धु में बिन्दु' के समान दान है। यह काम तो बहुत बड़ा है। मेरे लेखे तो यह रकम एक कौडी के समान है। इस प्रकार के धर्मकार्य में तो सैकड़ो करोड़पति और लखपति अपना खजाना लुटादें तब भी थोड़ा है। जैसा कि घनश्यामदासजीने कहा है, रुपये की कोई कमी नही है। आवश्यकता तो दृढ संकल्प और लगन की है। हरिजन-सेवा हिन्दूधर्म की सेवा है, और हिन्दूधर्म की सेवा मनुष्यमात्र की सेवा है। हिन्दूधर्म असहिष्णुता को बर्दाश्त नही करता। असहिष्णुता को वह पाप मानता है। पर जबतक हमने हरिजनो के साथ मैत्री नही की, उनके साथ बन्धुवत् बरताव नही किया, तबतक हम सम्पूर्ण जगत् के साथ, समस्त मानवजाति के साथ मैत्री करना चाहे यह हो नही सकता। अस्पृश्यता-निवारण की यह सारी प्रवृत्ति विश्व-बन्धुत्व की स्थापना की ही प्रवृत्ति है।'

म० ह० देशाई

एक बहिन के कुछ अनुभव

एक खासी पढ़ी-लिखी बहिनने, जो देश के गरीब-से-गरीब मनुष्यो के साथ पूर्णत एकरूप हो जाना चाहती है, हमारे एक सुप्रसिद्ध नगर के पास एक गाव में जाकर धूनी जमाली है। वहा वह चुपचाप बिना किसी को कुछ जताये ठोस कार्य कर रही है। न तो वह व्याख्यान देती है, न पर्चे छपा-छपाकर बांटती है। वह तो ग्रामवासियो के तनतोड परिश्रम में खुद भाग लेने का सच्चे दिल से जतन कर रही है। यह नवजवान बहिन इस दृढ लगन के साथ उस गाव मे जाकर बैठ गई है, कि समस्त संसार का साम्राज्य भी उसे मिलता हो तो भी वह अपने सेवा-पथ से डिगने की नही। उस बहिन के एक पत्र का एक महत्वपूर्ण अवतरण मैं नीचे देता हूं :—

"पिछले हफ्ते मैंने इस गाव के किसानो के साथ-साथ तीन बार खेतो में काम किया, दो बार तो बैलो के सँभालने का भी काम मुझे दिया गया। उस दिन एक साथ पाच बैलो पर ध्यान रखना पडा था। मेरा वह बडा विकट अनुभव था। भाग्य से किसी बैलने मुझे लतयाया नहीं। दो बार हमने खेतो पर अपनी किसान बहिनों के साथ गाव का मोटा-झोटा खाना भी खाया। जिस दिन मैं पहले-पहले खेत पर काम करने गई, उस दिन कुछ बनियो की स्त्रियां मेरे पीछे हो ली और हम सबने बड़े प्रेम से एक साथ वहां भोजन किया। मैं तो इसी को सच्चा 'प्रीति-भोज' कहूँगी। वे सब बड़ी ही भली हैं, और मेरे साथ बहुत प्रेम करती हैं। मैंने एक दिन उनसे कहा, कि तुम लोग मेरे साथ हरिजनों के घर चलोगी ? उनमें जो सबसे बूढ़ी दादी थी उसने मुह बिदोर के मेरी बात को वहीं काट दिया और कुछ रुखाई से कहा, 'बिटिया ! यह कैसे हो सकता है; अछूतों के घर जाने से उसी दिन हमारी बिरादरीवाले हमें जाति-बाहर कर देंगे। लेकिन पिछले रविवार को जब मैं हरिजन लड़कियों को पढ़ाने उनकी बस्ती में जा रही थी, तब मैं देखती क्या हूँ कि दो स्त्रियां अपने नन्हे-नन्हे बच्चों के साथ मेरे पीछे-पीछे चली आ रही हैं। मुझे प्रसन्नता भी हुई और आश्चर्य भी। उन्होंने कहा, 'बहिनजी, तुम्हारे साथ हरिजन-बस्ती में चलने की बात तो हमारे मन में बहुत दिन से थी, पर हिम्मत न पड़ती थी।' मैंने कहा, अगर ऐसा है और हरिजन-बस्ती में चलने की बात तुम्हें भाती है, तो मेरी बात सुनो—मेरा यह विचार है कि एक दिन हम सब हरिजनो की बस्ती मे चले, उनके घरो और गलियो मे झाड़ू-बुहारी दे, उनके बच्चो को अपने हाथ से नहलावे और हम से उनकी जो भी सेवा बन सके वह करे। यह कैसा रहेगा ?' मेरी यह बात उन सब बहिनों को पसद आई। मैं आपको बतलाऊँगी कि अत में कैसा अच्छा कार्य हुआ। मुझे तो कुछ ऐसी आशा है कि गांवो की हमारी ये सीधी-सादी बहिनें ही, जो लोक प्रसिद्धि का नाम भी नही जानती, देश या समाज की स्थायी सेवा कर सकेगी।

किसानों के साथ मेरा परिचय अब दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। बनियो की स्त्रियां तो मेरे ऊपर स्नेह रखती ही हैं, ब्राह्मणों की भी कई लड़कियां अब कताई के वर्ग मे आने लगी हैं। कल से धुनाई का काम आरंभ कर दिया जायगा। मेरा विचार है कि कुछ बहिनो को लेकर आसपास के गावो में जाऊँ और वहां के कुछ तथ्य और आकड़े इकट्ठे करूँ। मेरा यह भी विचार है कि मकर-सक्रान्ति के दिन पास-पड़ोस के गावो की स्त्रियो को एकत्र करके यहां एक साधारण-सा प्रीति-सम्मेलन कर डालूं।

उस दिन एक ऐसे गाव का रहनेवाला, जिसकी अभीतक मैंने सूरत भी नहीं देखी है, एक भाई आया और मुझ से बोला, 'बहिन जी, हमारे गांव मे आप जरूर आइए और हमें भी सूत कातना सिखाइए। हम आपको सब तरह से मदद देंगे। मैं अपने यहां की ग्राम-पचायत का पच हूँ। हमारे गाव में हरिजन भी हैं। आप हरिजनो मे काम करेगी तो हम लोग कोई आपत्ति नही उठायेंगे।' भला, मै क्यो न ऐसे सुदर आमंत्रण को स्वीकार करती !

हमने एक छोटी-सी चक्की मँगा रखी है और नित्य आध घटा हम उसे चलाते हैं। दो हरिजन बालक नियमपूर्वक हमारे कताई के वर्ग मे काम सीखने आते हैं। आजकल मैं उन्हें धुनाई का काम सिखा रही हूँ। अगर अच्छी तरह से उन्होने यह हुनर सीख लिया, तो इससे वे पेट भरनेलायक पैसा तो कमा ही सकते हैं। इस काम के प्रति उनकी रुचि दिन-दिन बढ़ती जा रही है। इन हरिजनों को हमने अपने कुछ पुराने कपड़े बाट दिये हैं।"

'हरिजन' से]

म० ह० देशाई

सवर्णों का पश्चात्ताप

अभी बहुत अर्सा नही हुआ कि भावनगर राज्य के कुछ गावों में वहा के सवर्ण हिन्दुओंने बेचारे हरिजनो के ऊपर मनमाने पाशविक अत्याचार किये थे। सवर्णों के मन में यह वहम पैठ गया था कि अछूतोने ही यह महामारी फैलाई है कि जिससे उनके सैकड़ों-हजारो ढोर मरते जा रहे है। अगर राज्य के अधिकारियोंने समय पर इस मामले मे हस्तक्षेप न किया होता, तो झगडा बहुत ज्यादा बढ़ जाता। ऐसे मामलों में कानूनी कार्रवाइयों के बाद जो आपसी कटुता आ जाती है, वह वहां भी आ गई; और अगर हरिजन-सेवक-संघने इस मामले मे अच्छी तरह दिलचस्पी न ली होती और आपस में समझौता और पूरा मेल-मिलाप न करा दिया होता तो वह कटुता दूर नहीं हो सकती थी। सघ के हार्दिक प्रयत्न का फल यह हुआ कि सवर्ण हिंदुओंने सच्चे दिल से अपने पाशविक

कृत्य के लिए न केवल दुःख प्रगट किया, सिर्फ यह मौखिक वचन ही नहीं दिया कि भविष्य में हरिजनों के साथ हम सहानुभूति और सहकारिता से काम लेंगे, बल्कि उनके कुछ प्रतिनिधि सचमुच उन हरिजनों के पास गये जो त्रास के मारे गाव छोड़-छोड़कर अन्यत्र भाग गये थे, और उन्हें प्रेम से मनाकर लौटा लाये। अपने हार्दिक पश्चात्ताप के चिह्नस्वरूप उन्होंने हरिजन-फंड मे २५१) भी दिये। फौजदारी मे जो मुकदमे चल रहे थे, वे सब वापस ले लिये गये। हां, एक केस वापस नहीं लिया जा सका, जिसमें कि एक आदमी को इस अभियोग पर पाच वर्ष की सजा राज्य मे हुई है कि उसने एक हरिजन को इतना अधिक पीटा कि वह मर ही गया।

यह सब उचित ही हुआ, पर जब हम ठक्कर बापा की हरिजन-यात्रा की लेखमाला पढ़ते और यह देखते है कि काठियावाड की गणना भारत के उन पिछड़े हुए प्रांतो मे हो रही है जहां अस्पृश्यता बुरे-से-बुरे रूप मे विद्यमान है, तब ऊपर की बात फीकी पड़ जाती है। काठियावाड के कार्यकर्ताओं को अगर अपनी मातृभूमि के मस्तक पर लगे हुए अस्पृश्यता के इस कलुष-कलंक को मिटाना है तो उन्हें वहां सच्ची लगन और त्याग के साथ अपना जीवन इस धार्मिक कार्य मे खपा देना होगा। म० ह० देसाई

प्यासों को पानी पिलाइए

काठियावाड की मेरी एक मास से ऊपर की हरिजन यात्रा गत १५ दिसंबर को समाप्त हुई। काठियावाड के इस ३२ दिन के अविराम प्रवास में मैं ७२ गावों और ११८ हरिजन-बस्तियो मे गया। पचास गावो के हरिजनोंने खुद अपने मुहँ से अपने असहनीय कष्टों की गाथा सुनाई। इस तरह लगभग पचास हजार हरिजनो से मैं मिला हूँगा। जहा-जहां हरिजनो के सुख-दुःख सुनने और उनकी स्थिति पर विचार करने को मैं बैठता, वहा हरिजन अपने तथा अपने आसपास के गांवों की अनेक दुःखद कहानियां मुझे सुनाने लगते। उनकी यह दिल दहला देनेवाली करुण-कहानी सुनकर तो पत्थर का कलेजा भी एकबार पसीज उठेगा—

"क्या करे, पीने के पानी की हमें चोरी तक करनी पड़ती है। पकड़ जाने पर हमारी औरतो पर पत्थरो की मार पड़ती है, मटके-बासन फोड़ डाले जाते हैं। क्या पूछते हो, हम कहा का पानी पीते हैं! जहा स्त्रियां अपने बच्चो की पुतरिया (मलमूत्र भरे कपड़े) धोती हैं, या गाये-भैंसे लोट-लोट कर गहला मचा देती हैं, ऐसी तलैयों के मटमैले गँदले पानी से हमें अपना काम चलाना पड़ता है। ढोरों की चरई (हौदी) के कीड़े पड़े हुए पानी को पीकर हम लोगों को गुजारा करना पड़ता है। और कहीं-कहीं तो यह खेलो का भी पानी मुफ्त नहीं मिलता; हमें घर पीछे एक रुपया साल चरसा चलानेवाले को देना पड़ता है।"

दीन हीन हरिजनों की यह हृदय दहला देनेवाली हाय सुन कर एक काठियावाडी होने के नाते, एक हिंदू होने के नाते मेरा सिर शर्म से नीचे झुक जाता है।

ब्रिटिश भारत में—गुजरात मे—तो लोकल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंने, म्युनिसिपैलिटियो एव ग्राम्य और प्रांतिक पंचायतोंने सार्वजनिक कुओं पर इस आशय के पाटिये लगा दिये हैं कि—'इस सार्वजनिक कुएँ से हरिजन भी पानी भर सकते हैं,' और इसके अनुसार किसी-किसी जगह पर तो हमारे हरिजन भाई सार्वजनिक कुओं का बिना किसी रोकटोक के उपयोग करने भी लगे हैं, और दूसरे स्थानों पर इस बात का प्रयत्न हो रहा है।

ऐसी स्थिति मेरे काठियावाड मे कब आयगी! हरिजनो के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है इस बात का ज्ञान होने मे तो काठियावाड के राजाओं और उनकी प्रजा को अभी वर्षों लग जायगे—तबतक बिना पानी के हरिजनों को तड़पाना, मेरे विचार मे, हमारे मनुष्यत्व को छाजना नहीं है। जीवन को टिकाये रखनेवाली अत्यंत आवश्यक वस्तुओं मे हवा के बाद पानी का ही नंबर आता है। इसलिए 'आपद् धर्म' समझकर फिलहाल हरिजनों के लिए कुछ अलग कुएँ बनवा देने का काम हरिजन-सेवक-संघने हाथ मे लिया है।

कुओं की मांग हरिजनो की ओर से चारो तरफ से आ रही है। यह स्वाभाविक है कि एक-दो वर्ष के अन्दर उनकी यह सारी माग पूरी नहीं हो सकती, किंतु काठियावाड के राज्य और महाजनो की ओर से हमें आवश्यक सहायता प्राप्त होगी इस श्रद्धा के साथ मैं कई जगह यह वचन दे आया हूँ कि इस वर्ष हरिजन-सेवक-संघ के मार्फत समस्त काठियावाड मे करीब सौ कुएँ बनवा दिये जायँगे।

हरिजनो के लिए कुओं का प्रबन्ध कर देने की मेरी यह विनम्र आकांक्षा बहुत बड़ी नहीं है। मैं तो थोड़ी ही भीख मांगता हूँ। एक कुएँ पर औसतन २५०) का खर्च आयगा। मुझे पूरा विश्वास है कि इस हिसाब से काठियावाड तथा बृहत् काठियावाड में ऐसे १०० दानवीर तो निकल ही आयेंगे, जो हरिजनो के पानी के कमाल को अवश्य दूर कर देंगे।

'हरिजन-कुओं' के निमित्त दान भेजनेवाले सज्जन कृपाकर नीचे लिखे पते पर लिखा-पढ़ी करे।

अ० भा० हरिजन-सेवक-संघ
काठियावाड-विभाग
आनंदकुंज—राजकोट

अमृतलाल वि० ठक्कर
प्रधान मंत्री
अ० भा० हरिजन-सेवक-संघ

'हरिजन-कूप' के निमित्त

श्री ठक्कर बापा की उक्त अपील पर काठियावाड के हरिजनो के लिए कुएँ बनवा देने के निमित्त श्री सेठ जीवणलाल मोतीचंदने हरिजन-सेवक-संघ को १०००) प्रदान किये हैं।

एक दिन तपस्वी अबु उस्मान हयरी के सिर पर एक आदमी ने कोयले की टोकरी उँडेल दी। तपस्वी के भक्त उस आदमी को बुरा-भला कहने लगे, तो उन्होंने कहा—इस कार्य के लिए तो मुझे इस आदमी का आभार मानना चाहिए। जिसके सिर पर धधकती हुई आग की वर्षा होनी चाहिए उस पर इसने तो ठंडे कोयले ही फेंके हैं। यह तो इसका महान् उपकार है।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, १८ जनवरी, १९३५. [संख्या ४८

विषय-सूची

सभ्यता के आधारस्तम्भ

पढ़े-लिखे लोगों को प्रायः शारीरिक परिश्रम करने में शरम मालूम होती है। आठ-दस घंटे दफ्तर में रहना, नकलें करना, टाइप करना, हिसाब-किताब बैठाना, प्रूफ देखना, पुस्तकें लिखना आदि प्रतिष्ठित माने हुए कामों से वे इतना परेशान नहीं होते, जितना कि वे, अगर उन्हें रसोई बनाना, वस्त्र या बर्तन-भांडे धोना, झाड़ू लगाना, पीसना, कूटना, कातना, मोरी धोना, संडास सफा करना आदि काम करने पड़े तो, होते हैं। इसी तरह अगर उनको एक छोटा-सा भी बोझा उठाकर जाना पड़े तो उन्हें बड़ी शरम मालूम होती है। फिर बढ़ई, लोहार, राज आदि कारीगरों का काम थोड़ा भी करना सीखलें—यह तो उनसे हो ही नहीं सकता, और कभी छोटा-सा भी ऐसा काम सामने आ जाय तो हाथ जोड़कर खड़े हो जायेंगे। कलम, स्याही और कागज से चिपक के काम करने में चाहे कितने ही घंटे मेहनत करनी पड़े, और उससे अर्थप्राप्ति चाहे कितनी ही अल्प हो, फिरभी उसमें प्रतिष्ठा समझी जाती है! मगर मेहनत-मजूरी के काम—जिनमें स्नायुओं पर जोर पड़ता हो, शरीर को स्वास्थ्य-लाभ होता हो और आमदनी भी अधिक होती हो—प्रतिष्ठाहीन माने जाते हैं!

अमुक कर्म भद्र या प्रतिष्ठित है, और अमुक अभद्र या अप्रतिष्ठित, यह खयाल कभी-कभी लोकसेवकों में भी देखने में आता है। हरिजनादि पिछड़ी हुई जातियों में विद्याप्रचार की हमारी प्रवृत्तियों के साथ-साथ हम इन विचारों का भी कभी-कभी प्रचार कर देते हैं कि, 'विद्या पढ़ो जिससे तुम्हें अच्छी नौकरी मिल जायगी, कहीं स्कूल-मास्टर बन जाओगे, और तुम्हें इस तरह कहार, मजूर, कारीगर या मेहतर का काम नहीं करना पड़ेगा।' इस तरह की बातें कभी-कभी दलितों के सेवक भी अनसमझी में कह डालते हैं। स्त्रियों को भी इसी तरह सिखलाया जाता है कि आजतक तुमने रसोई बनाई, चक्की पीसी, बासन मांजे, बच्चों की सार-सभाल की, अब चूल्हा छोड़ो, चक्की बन्द करो, बच्चों को बोर्डिंग में भेज दो, और बाहर निकलकर सामाजिक कार्यों में लग जाओ। इस प्रकार की बातों से, जान पड़ता है, इन कामों के विषय में जनसेवकों के कैसे क्या खयालात हैं।

मेरी समझ में हमारे खुद के लिए यह दुर्भाग्य की बात है, अगर हम खुद ऐसे विचारों को अपने मन में स्थान देते हैं। फिर जिन लोगों की हम सेवा करना चाहते हैं उनके दिमाग में ऐसे विचारों का पैठाना, ऐसे विचारों का पैदा करना सेवा नहीं, कुसेवा है। अगर हम विचार करें, तो यह मालूम हो जायगा कि दफ्तर के कामों के बिना मानवसमाज का सभ्यतायुक्त जीवन बिताना कुछ असंभव नहीं। लेकिन रसोई, बालसंगोपन आदि गृहिणी-कार्य, चौका, बर्तन, धुलाई, सफाई आदि भृत्य-कर्म, और धान्य पैदा करना, घर बनाना, वस्त्र बुनना आदि किसान व कारीगर के कामों के बिना सभ्य जीवन बिताना असंभव-सा है। इतिहास भी हमें यह बतलाता है कि अनेक राष्ट्र ऐसे थे, जिनमें 'आफिस का इल्म' तो रत्तीमात्र भी न था, तो भी वे सुसंस्कृत और समृद्ध थे। इतना ही नहीं, बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि हमारा यह 'दफ्तरी-इल्म' तो हाल ही में पैदा हुई चीज है। मानव-समाज हजारों वर्षोंतक बिना दफ्तरों के ही चलता रहा। और आज भी ऐसा मानने का कोई कारण नहीं कि यदि सारा दफ्तरी काम एकदम बन्द कर दिया जाय तो मानवसमाज पर भूकम्प की तरह कोई बड़ी भारी आफत आ पड़ेगी।

इंग्लैंड में वकील, डॉक्टर तथा अध्यापकों के पेशों को प्रतिष्ठित पेशे कहने का रिवाज है। ऐसी कोई बात नहीं है कि सामान्य जनताने इन पेशों को यह विशेषण दिया हो। इस विशेषण को तो खुद इन पेशेवालोंने ही अपने पेशों के साथ लगा रखा है। इसी तरह हम दफ्तर का काम करनेवालोंने दफ्तरी काम को एक प्रतिष्ठित पेशा मान लिया है।

वास्तव में देखा जाय तो मानवसभ्यता की स्थिति और उन्नति के लिए आफिसी इल्म इतना जरूरी नहीं, जितना कि गृहिणीकर्म भृत्यकर्म, कृषिकर्म तथा शिल्पकर्म हैं। चाहे इन कर्मों को स्त्री करे या पुरुष, पढ़े-लिखे लोग करें या अपढ़, हाथ से किये जायँ या मशीन से किये जायँ, प्रेम और धर्मबुद्धि से किये जायँ या पैसे के लिए किये जायँ, अनाज पैदा करना, पीसना, कूटना और पकाना, वस्त्र बनाना और सीना-पिरोना, घर-द्वार, कपड़े-लत्ते बासन-भांडे इत्यादि साफ रखना, बच्चों की सार-सभाल करना, मकान बनाना और घरेलू सामान तैयार करना, मोरी, संडास, मुहल्ला, नगर, स्मशान आदि की सफाई रखना—इन सब कामों के सुव्यवस्थित रीति से चलाते रहने की अगर समाज में समुचित व्यवस्था न हो, तो उस में कितने भी विद्वान्, तर्कशास्त्री

प्रतिभावान कवि, प्रखर गणितज्ञ, पारदर्शी ज्योतिषी, कुशल मंत्री और अच्छे-से-अच्छे आलिम मुनशी क्यों न हों, उसकी सभ्यता टिक न सकेगी। इन कार्यों के लिए यंत्रों का अधिकाधिक उपयोग करने पर भी, उन यंत्रों के लिए भी मनुष्य का हाथ तो आवश्यक होगा ही। और मनुष्य के जिन हाथों के द्वारा जमीन जोतने, बीज बोने, धान्य इकट्ठा करने, उसे कूटने, पीसने, पकाने, बच्चों के पालने-पोसने, मकान बनाने, वस्त्र बुनने, मोरी-संडास-मुहल्ले साफ करने आदि की मशीनें चलेंगी, वे ही हाथ समाज की सभ्यता के आधारस्तम्भ हैं, न कि वे जो केवल कागज पर कलम घिसा करते हैं। यह सच है कि पढ़े-लिखे लोगोंने मानव-सभ्यता को विशेष उन्नत किया है, उसे अधिक सुंदर बनाया है, उसकी चहुँ ओर घोषणा भी की है, पर, साथ ही, हमें यह न भूलना चाहिए कि यद्यपि दीवार की शोभा रंग से बढ़ती है, तथापि रंग का आधार वह दीवार ही है, और दीवार के बिना रंग को स्थान ही नहीं मिल सकता। इसी तरह सभ्यता के आधारस्तम्भ प्रतिष्ठित समझे जानेवाले धंधे नहीं हैं, बल्कि शिक्षित या अशिक्षित गृहिणी, भृत्य, किसान और कारीगरों के पेशे हैं। इन पेशों को अप्रतिष्ठित कहना या समझना, उनके प्रति अनादर भाव रखना, उनको करते हुए शर्मिन्दा होना, और वे अच्छी तरह कैसे किये जा सकते हैं इसमें रस न लेना यह विद्वत्ता का लक्षण भले ही हो, पर न तो यह सभ्यता का लक्षण है, न लोक-सेवा का। लोक-सेवक के अनेक कर्त्तव्यों में एक यह भी कर्त्तव्य समझना चाहिए कि वे स्वयं इन कामों में भाग लेकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ावें और उनके करने की विधियों में संशोधन करें। पूज्य गांधीजी जिसे शरीरश्रम (श्रमयज्ञ, ब्रेड लेबर) का सिद्धान्त कहते हैं, वह यही है।

किशोरलाल घ० मशरूवाला

शास्त्र और अस्पृश्यता

(६)

प्राचीन काल में अवर्णों तथा अन्य वर्णवालों के पारस्परिक संबंध-व्यवहारादि के विषय में विद्वद्वर श्रीधर शास्त्रीने जो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं उनमें से कुछेक को यहां उद्धृत करके हम इस लेखमाला को अब समाप्त करते हैं —

महाभारत में लिखा है कि महाराज युधिष्ठिर के महलों में अग्रज, मध्यज, अन्त्यज और म्लेच्छ आदि सभी जातियों, विविध देशों और वर्गों के लोग उपस्थित थे—

सर्वे म्लेच्छाः सर्ववर्णा, आदि मध्यान्त्यजास्तथा ।
नानादेशसमुत्थैश्च नानाजातिभिरेव च ॥
पर्यस्त इव लोकोऽयं युधिष्ठिर-निवेशने ॥

महाभारत में यह भी उल्लेख आया है कि एकलव्यने, जो निषाद जाति का था, सुप्रसिद्ध गुरु द्रोणाचार्य के चरणों का अपने मस्तक से स्पर्श किया था—और लाक्षागृह में, जो पांडवों के लिए बनवाया गया था, एक निषाद स्त्री अपने पांच पुत्रों के सहित रहती थी। लिखा है—

स तु द्रोणस्य शिरसा पादौ गृह्य परंतप ।

× × ×

निषादी पंचपुत्रा तु जातुषे तत्र वेश्मनि ।
कारणाभ्यागता दग्धा............... ॥

रामायण में भी ऐसा ही प्रमाण मिलता है। कैवर्त्त गुह के साथ महाराज दशरथ का अमात्य सुमंत्र बहुत दिनोंतक रहा था—

गुहेन सार्धं तत्रैव स्थितोऽस्मि दिवसान् बहून् ।

गुहसे श्री रामचन्द्रजी का आलिंगन किया था—

तमार्त्तः सं परिष्वज्य गुहो राघवमब्रवीत् ।

श्री रामचन्द्रजीने शबरी का भी आतिथ्य स्वीकार किया था—

पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि ।

श्रीमद्भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण भी श्रीराम की ही तरह सब जातियों के लोगों से निस्संकोच रीति से मिलते-जुलते थे।

और यह बात राम-कृष्णतक ही सीमित नहीं थी, सर्वसाधारण में भी ऐसा ही अभेद व्यवहार प्रचलित था। महाभारत में एक जगह आया है कि कौशिक ब्राह्मणने धर्मव्याध के घर जाकर धर्मोपदेश ग्रहण किया था। स्कन्दपुराण में लिखा है कि एक लकड़हारे भीलने एक ब्राह्मण के घर पानी पिया और सत्यनारायण भगवान् का सबके साथ प्रसाद लिया—

पपौ जलं प्रसादं च भुक्त्वा स नगरं ययौ ।
काष्ठभारवहो भिल्लो गुहराजो बभूव ह ॥

पद्मपुराण में लिखा है कि एक वैष्णव ब्राह्मणने एक 'पुल्कस' (अन्त्यज) की उसके मरते समय सेवा-शुश्रूषा की थी। अभेद-भावना का इससे बढ़कर प्रमाण और कहां मिल सकता है?

स्कन्दपुराण में यह उल्लेख आया है कि एक लुब्धकने चतुर्दशी को शिवालय में जाकर दीपक जलाया था—

लुब्धकोऽपि चतुर्दश्यां दीपं दत्त्वा शिवालये ।

वाराहपुराण में लिखा है कि मिथिला का एक व्याध नित्य नियमपूर्वक अग्निहोत्र किया करता था—

अग्निं परिचरन्नित्यं वदन् सत्यं सुभाषितम् ।

एक ब्राह्मण के साथ एक व्याधने शिवालय के भीतर जाकर शिवलिंग का दर्शन किया था, ऐसा स्कन्दपुराण में लिखा है—

(व्याधः) समायातो मुक्तिलिंगं समीपतः ।
द्विजेन सहितो देवि दृष्ट्वा लिंगं सनातनम् ॥

पद्मपुराण में भी ऐसा ही एक प्रमाण मिलता है। एक तन्तु-वाय (बुनकर) के साथ एक राजाने देव-पूजन किया था—

अमात्यो राजपत्नी च कांभस्तंतुवायकः ।
राजा विप्रश्च पंचते............... ॥

स्कन्दपुराण में यह उल्लेख मिलता है कि एक ब्राह्मणने एक शबर के साथ तीर्थराज प्रयाग में भगवान् वेणी माधव की पूजा ही नहीं की थी, वरन उसके यहां भोजन भी किया था—

तत्रातिथिमनुप्राप्तं ब्राह्मणं शबरोत्तमः ।
भक्ष्यभोज्यविधानैश्च विविधैः समपूजयत् ॥
प्रभातायां तु शर्वर्यां तीर्थराजोदकेन तौ ।
स्नानं निर्वृत्य विधिवन्माधवं प्रणिपत्य च ॥

उन दिनों केवल रोटी-व्यवहार ही नहीं, बेटी-व्यवहार भी समाज में प्रचलित था। यह तो हमें विदित ही है कि वसिष्ठ ऋषिने एक चांडाल स्त्री के साथ विवाह किया था। इस स्त्री का नाम अक्षमाला था। बाद को यह 'अरुन्धती' के नाम से विश्व-वन्दनीया हो गई। इसी प्रकार भगवान् व्यास की माता कैवर्त जाति की थी, और पराशर की माता श्वपाकी थी।

हमें आशा है, कि जो लोग प्रमाण मानने को तैयार हैं उनके लिए हमने इस लेखमाला में काफी प्रमाण और उदाहरण दे दिये हैं;

हो, अगर किसीने, चाहे कुछ भी कहे जाओ, न मानने की ही ठान ली हो, तब तो मनुष्य की तो चलाई ही क्या, शायद,

ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति !

वालजी गोविंदजी देसाई

भिक्षु सुनीत

महामहाकारुणिक भगवान् बुद्ध के संघ में उच्च-नीच-भाव के लिए रत्तीमात्र भी स्थान नहीं था। उनके संघ में सभी जातियों के भिक्षु विद्यमान थे। तथागत की उपसंपदा का द्वार मनुष्यमात्र के लिए खुला हुआ था। उनके संघ में अन्त्यज जाति के भी अनेक भिक्षु थे। **सुनीत** और **सोपाक** भिक्षु की गणना तो प्रसिद्ध स्थविरों में हुई है। भंगी के कुल में जन्म लेनेवाले सुनीत स्थविर की संक्षिप्त आत्म-कथा **थेरगाथा** के बारहवें निपात से हम यहां उद्धृत करते हैं :—

"मैंने एक ऐसे नीच कुल में जन्म लिया था, जो अत्यंत दरिद्र था। दाने-दाने को तरसता था। मैं भंगी का नीच धंधा करता था। लोग मुझ से दूर रहते, मेरा अपमान करते, सब की भली-बुरी सुननी पड़ती। तो भी मैं नम्रतापूर्वक बड़े आदमियों को नमन करता। ऐसी हीन अवस्था में मगध देश के श्रेष्ठ नगर में भिक्षु-संघ के साथ प्रवेश करते हुए मैंने महावीर **संबुद्ध** को देखा। अपनी विष्ठाभरी कांवर उतारकर नीचे रख दी, और वंदना करने के लिए आगे बढ़ा। दयार्द्र होकर भगवान वहीं रुक गये। मैंने वंदना की और एक ओर खड़ा हो गया। मैंने जब प्रव्रज्या मांगी तो मनुष्यमात्र के प्रति अनुकंपाभाव रखनेवाले महाकारुणिक भगवान् बुद्धने मुझसे कहा 'भिक्षु, यहां आओ।' यही मेरी उपसंपदा हुई। भगवान्ने मुझे सर्वतोभावेन अंगीकृत कर लिया।

अब मैं घरबार छोड़कर एकाकी अरण्य में वास करने लगा। भगवान् के बताये हुए ध्यानमार्ग का अनुसरण करके मैंने तमोराशि का नाश कर दिया, और मुझे तथागत की कृपा से बोधि प्राप्त हो गई। इंद्र और ब्रह्माने आकर मुझे नमस्कार किया और हाथ जोड़कर कहा—

नमो ते पुरिसाजञ्ञ नमो ते पुरिसुत्तम।
यस्स ते आसवा खीणा दक्खिणेय्योसि मारिस॥

देवसंघ जब मेरा सत्कार कर चुका, तब भगवान् बुद्धने मेरी ओर देखा और मुस्कराकर कहा—

तपेन ब्रह्मचरियेन संयमेन दमेन च।
एतेन ब्राह्मणो होति एतं ब्राह्मणमुत्तमं॥

अर्थात्, मनुष्य तप से, ब्रह्मचर्य से, संयम से और दम से ब्राह्मण होता है; यही श्रेष्ठ ब्राह्मण्य है।

वि० ह०

मेरी हरिजन-यात्रा

[६]

पालीताणा—२१ नवंबर. पालीताणा जैनियों का एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। जिस दिन मैं यहां पहुँचा उस दिन संयोग से कार्तिकी पूर्णिमा थी। इस दिन हजारों जैनी शत्रुंजय के मंदिरों की यात्रा करने आते हैं। यहां राज्य की ओर से दो हरिजन-पाठशालाएँ चल रही हैं—एक तो ढेढों के करीब सौ घर के बच्चों के लिए, और दूसरी भंगियों के बालकों के लिए, जिनके यहां ३० घर हैं। इस दूसरी पाठशाला के लिए हाल में जो मकान बनवाया गया है वह सुन्दर, स्वच्छ और बड़ी अच्छी जगह पर है। शिक्षक भी हरिजन है, और वह योग्य मालूम होता है। यहां म्यूनिसिपैलिटी के भंगियों की तनख्वाह ८) माहवार है। भावनगर, राजकोट और जूनागढ़-जैसे शहरों में भंगियों को जो ५) से ८) तक तनख्वाह दी जाती है, उसे देखते हुए यह ८) की तनख्वाह बुरी नहीं है। भंगियों के घर साफ-सुथरे हैं। पास ही उनका मंदिर और प्रार्थनागृह भी है, जहां सांझ को नित्य धार्मिक पुस्तकों का पाठ होता है।

सूरखा—शाम को यहां हम लोग काफी देर से पहुँचे। हमने यहां देखा कि गांव के हरिजन बच्चे भी अपनी अज्ञानता और निरक्षरता दूर करने के लिए कितने उतावले हो रहे हैं। यहां हम लोगों के पहुँचने के बीसेक दिन पहले एक हरिजन-पाठशाला खोलने की बात चली थी, और एक अध्यापक आकर पाठशाला के लिए जगह भी देख गया था। बच्चों के बाप शहर से स्लेट और किताबें भी खरीद लाये थे। अध्यापक बालकों से यह कह गया था कि गांव के पास की नदी में नित्य नहा-धोकर खूब सफाई से रहा करो, इसलिए बच्चे बेचारे, इस आशा से कि मास्टरजी आयेंगे और हमें पढ़ाना आरम्भ कर देंगे, आठ दिन से नित्य नियमपूर्वक नदी में नहाते थे। लेकिन मास्टरजी के तो फिर दर्शन हुए ही नहीं। वह तो कहीं दूसरी जगह अपनी पाठशाला खोलकर बैठ गये थे। बच्चे हमसे हाथ जोड़-जोड़कर कहने लगे कि 'हमारे लिए आप जल्दी ही मास्टर भेज दीजिएगा।'

शिहोर—२२ नवंबर. हरिजन-सेवक-संघने यहां हाल ही में एक पाठशाला खोली है, जिसमें ढेढ और भंगी दोनों ही जाति के बच्चे पढ़ते हैं। भंगियों के लड़के अधिक हैं। इस पाठशाला के लिए भाड़े पर मकान दिया तो एक मुसल्मानने ही दिया। अस्तु, ढेढ और भंगियों की बस्ती देखी, और हरिजनों को मुर्दार मांस छोड़ देने की सलाह दी।

भावनगर—२३ से २५ नवंबरतक. २३ तारीख को सबेरे ठक्कर-हरिजन-आश्रम का निरीक्षण किया। यह आश्रम सात वर्ष से चल रहा है, और अब श्री अंबालाल पटेल नाम के एक सुयोग्य कार्यकर्ता की देख-रेख में इसकी दिन-दिन उन्नति हो रही है। तीसरे पहर हम यहां के हरिजन-सेवकों से मिले। म्यूनिसिपैलिटी के मुलाजिम मेहतरों के लिए एक सहकारी समिति खोलने की सलाह दी, तथा उन्हें ऋण से छुड़ाने की योजना समझाई और दूसरी भी बातें कीं। शाम को कपड़े की मिल की हरिजन-बस्ती देखी। वहां सभा हुई, जिसमें अनेक स्त्री-पुरुषोंने मुर्दार मांस और मदिरा छोड़ देने की प्रतिज्ञा ली। यह मिल चौबीसों घंटे चलती है। मिलवालों की बनाई लाइन में यहां हरिजनों के १२० से ऊपर कुटुंब रहते हैं। मिल-मालिकने हमारे अनुरोध पर इनके बच्चों के लिए यथाशीघ्र एक पाठशाला खोल देने का वचन दिया। हम लोग मिल के एजेंट से मिले, और वह पहली जनवरी से पाठशाला खोल देने को सहमत हो गया।

२४ नवंबर को सबेरे ढेढ और भंगियों की दो पाठशालाएँ देखीं। ये दोनों ही पाठशालाएँ राज्य की ओर से चल रही हैं। गांधीजी जुलाई में जब यहां आये थे, तब उन्होंने भंगियों की

लाइन की नीव अपने हाथ से रखी थी—पर अबतक उन मकानो के बनने का काम शुरू नही हुआ।

भावनगर में यह एक बहुत बुरी बात देखने में आई कि कितने ही भंगियो के झोपडे बपुलिस के पास है और एक जगह तो उससे बिल्कुल सटे हुए है। भंगियो के प्रति इस प्रकार का बरताव किसी भी हालत मे मनुष्य को शोभा नही दे सकता। एक जगह तो यह हालत है कि बपुलिस सफा करने का बिल्कुल टट्टियो मे लगा हुआ जो नल है, उसी मे भगी पीने का पानी लेते है। इससे यह प्रगट होता है कि भावनगर की म्युनिसिपैलिटी के कर्ता-धर्ता भंगियो को शायद मनुष्य भी नही समझते और इसी से वे उनकी जरा भी पर्वा नही करते।

चार दिन मै भावनगर मे रहा और शहर की सडके और गलिया काफी घूमघूमकर देखी। यहा रास्ते मे चाहे जहा मलमूत्र और कूडा-कचरा लोग डाल देते हैं। बदबू के मारे खडा नही रहा जाता। कूडे-कचरे के बडे-बडे घूरे सडको के कोने-कोने मे लगे हुए देखे। मैंने देखा कि सडको की सफाई की वहां बहुत ही कम पर्वा की जाती है। मैला और कचरा भी बराबर साफ नही होता। शहर की आबादी इधर बहुत बढ गई है, मगर बसीकत बढने के साथ-साथ खानगी और आम पाखानो में कोई वृद्धि नही हुई। कुल मिलाकर मुझे तो शहर और वडवा का पुरवा दोनों ही अत्यन्त गदे और बदबू मारते नजर आये। भंगियो को यहा बहुत कम तनख्वाह दी जाती है, काठियावाड के कई दूसरे शहरो में जितनी तनख्वाह मिलती है उससे भी यहा कम दी जाती है। शहर के गदे रहने का सभवत यह भी एक कारण हो सकता है। बुनकर और ढेडो के मुहल्ले मे सभाएँ हुईं, और एक सभा शहर के ठीक मध्य में हुई।

वरतेज—२५ नवम्बर भावनगर से यह स्थान सात मील के फासले पर है। वरतेज के हरिजन-आश्रम और फरियादका की पाठशाला का निरीक्षण किया। दोनों ही जगह हरिजनो की सभाएँ हुईं। उनकी बस्तिया भी देखी। अन्य दो गावो की कुओ के मुतल्लिक यहा अर्जिया मिली जिनके सम्बन्ध मे पूछताछ की।

सथरा, गोयल, तलाजा—२५ नवम्बर आज भडारिया, त्रापज, सथरा, गोयल और तलाजा इन गावो को देखा। यह वही गोयल गाव है जहा सवर्ण हिदुओने इस मिथ्या सदेह पर कि हरिजनोने ही हमारे ढोरो मे महामारी फैलाई है उन्हे इतना पीटा था कि एक हरिजन तो बेचारा पिटते-पिटते मर ही गया। हम लोग उसकी विधवा पत्नी से मिले, और राज्य मे इस आशय की एक अर्जी भेजवाई कि उसे या उसके छोटे-छोटे बच्चो के लिए कुछ वार्षिक मदद बाध दी जाय तो बडा अच्छा हो।

सथरा में श्री दूदाभाई एक बडी ही सुदर पाठशाला चला रहे हैं। गांधीजी के सत्याग्रहाश्रम मे अपना डेरा डालनेवाले हमारे यह दूदाभाई सबसे पहले हरिजन थे। **तलाजा** गाव में हमने राज्य की ओर से हाल मे ही खुली हुई हरिजन-पाठशाला का निरीक्षण किया। यो बुनकरो की सख्या यहा भगियो से ज्यादा है, पर पाठशाला मे भंगियों के ही बच्चे अधिक संख्या मे आते हैं। सामाजिक बहिष्कार के डर से एक भी सवर्ण हिंदू यहां हमारे साथ हरिजन-बस्ती में चलने को तैयार न हुआ, तब एक बोहरा सज्जन हमें वहां ले गये। शायद गाव के अछिबुस्त लोग नाराज न हो जावें इस भय से तलाजा गाव के किसी भी हिंदूने हमें अपने यहा ठहरने तक नही दिया। हरिजन-पाठशाला के अध्यापक का तो बहिष्कार यहा हो ही चुका है।

महुवा—२७ नवम्बर महुआ जाते हुए रास्ते मे हमने गुदरणा, लागिया और भादरोड गाव के हरिजनो की स्थिति के बारे मे पूछताछ की। गुंदरणा की हरिजन-पाठशाला भी देखी। भादरोड के हरिजनो से कहा कि अगर तुम लोग पाठशाला के लिए कोई घर तलाश लो तो तुम्हारे बच्चो के लिए पाठशाला खुलवा दी जायगी। महुआ मे दो हरिजन-पाठशालाएँ चल रही हैं—दिवस-पाठशाला तो राज्य की ओर से चलती है और रात्रि-पाठशाला सघ की ओर से, जिसमे सयाने हरिजन पढते हैं। एक अध्यापक इन दोनो पाठशालाओ मे यहा बडा सराहनीय काम कर रहा है। रात्रि-पाठशाला के विद्यार्थी दो आना मासिक फीस देते थे। बाद को मुझे यह मालूम हुआ कि अध्यापक पाठशाला का काम छोड बैठा है, क्योंकि उसकी स्त्री उसके साथ दिनरात इस बात पर लडती झगडती रहती थी कि वह अछूतों को क्यो पढाता है। पुराने ख्याल की स्त्रिया पति की सुधारसम्बन्धी प्रवृत्ति में कैसा विघ्न डालती हैं इसका यह एक नमूना है। फिर हमने हरिजन-बस्ती देखी। ढेडवाडे को दूसरी जगह बसाने का विचार हो रहा है, क्योंकि वहा बहुत घनी आबादी हो गई है। उस नये ढेडवाडे की जगह भी देखी। एक छोटी-सी कताई की मिल के मालिकने हरिजन मजूरो के लिए जो छोटी-छोटी कोठरिया बनवाई हैं उन्हे भी देखा। इन जरा-जरासी अधेरी काल-कोठरियो मे आठ-आठ दस दस आदमी रहते हैं। यहा १४ बरस से कम उम्र के लडको को १० ही नहीं बल्कि १२ घटे मिल के काम में पिसना पडता है।

अमृतलाल वि० ठक्कर

रुना-पुराना चावल

मै जब ट्रीनीडाड मे था तब वहां के डाक्टरोंने मुझे बतलाया था कि यहा एक विचित्र-सा रोग देखने मे आया है, जो सिर्फ हिन्दुस्तानी मजदूरो को ही होता है, और ऊख के उन्ही खेतो मे काम करनेवाले अफरीका के मजूरो को वह बीमारी कभी नही होती।

एक डाक्टरने मुझे अपनी 'केसबुक' दिखाई तो उसमे इस विचित्र रोग के अनेक नोट देखने को मिले, और मजा यह कि इस मर्ज के शिकार सब हिन्दुस्तानी ही थे। ऊख के उन्ही खेतों मे काम करने-वाले अफरीकन मजदूरो को और दूसरी बीमारिया हुई थी, पर यह बीमारी उन्हे कभी नहीं हुई थी। डाक्टरोने इस बीमारी का कोई खास नाम रख छोडा था। इसमें मरीज के फेफडो मे एक अजीब तरह का दर्द होता, और फिर उससे गले में सूजन और दमा की शिकायत पैदा हो जाती थी।

डाक्टरने मुझसे पूछा, "हिंदुस्तान में क्या यह रोग आमतौर पर मजदूरो मे होता है?"

मैंने उससे कहा कि मैने इस रोग का तो पहले कभी नामतक नही सुना, और मुझे विश्वास है कि हिंदुस्तान में यह रोग कुछ ऐसी अधिक मात्रा में न होता होगा।

डाक्टरने पूछा, "ब्रिटिश गायना के ऊख के खेतो में जो हिंदुस्तानी मजदूर काम करते हैं उन्हें क्या यह बीमारी होती है?"

मैंने कहा, "नहीं; ब्रिटिश गायना ट्रीनीडाड से कुछ बहुत

दूर नहीं है तो भी वहा के हिन्दुस्तानी मजदूरो को यह बीमारी नहीं होती ।"

डाक्टर—"तब क्या कारण है कि यह बीमारी अकेले यहीं के हिंदुस्तानियो को होती है ?"

मैंने कहा, "आप जरा उस चावल की तो अच्छी तरह जाच-पड़ताल कर लीजिए, जो हिंदुस्तान और बरमा से जहाजों मे भर-भरकर यहा आता है । "

सारे रोग का मूल ही यह चावल था । यह बहुत ही हलका, फेंक देनेयोग्य, ढोरों को भी न खिलाने लायक चावल था । बारह हजार मील से महीनो मे यह चावल जहाजो मे सँधा हुआ आता था । गोदामो में बोरे पड़े रहते और वहा एक जहाज से दूसरे जहाज मे उतारे-चढाये जाते, यहातक कि दुर्गन्ध छूटने लगती और चावल के ऊपर का कना, जिसमे सारा पोषक तत्व रहता है, रगड खाते-खाते इतना ज्यादा निकल जाता कि बोरे के नीचे उसका खासा थर जम जाता ।

हिंदुस्तानी अनाज की मंडी मे जब मैं इसकी तहकीकात करने गया, तब मुझे यह सारा किस्सा मालूम हुआ । फिर मैंने वह चावल डाक्टर को जाकर दिखाया, और उससे उसे सूघने के लिए कहा । डाक्टरने जब उसे सूघकर देखा तो मुझसे कहा, कि यह चावल तो मनुष्य के खानेलायक नहीं रहा, यद्यपि इस कारण से वह उसे बिल्कुल निरुपयोगी करार नहीं दे सका ।

उक्त रोग का प्रश्न अब करीब-करीब हल हो चुका है । अमरीका के हबशी चूकि इस चावल को कभी छूते भी नहीं, इसलिए उन्हें यह रोग नहीं होता था । ब्रिटिश गायना के प्रवासी भारतीय खुद अपनी धान उपजा लेते है और इसीसे उन्हे यह बीमारी नहीं होती । और भारत मे क्यों यह बीमारी होने लगी, वहा तो लोग अपनी धान की खेती खुद करते ही है । पर ट्रीनीडाड मे धान अधिक मात्रा मे पैदा नहीं हो सकती, इसलिए वहा के प्रवासी भारतीयों को एक अर्से से भारत और बरमा से हलके किस्म का चावल मंगा-मँगाकर खाने की यह आदत पड गई थी । उन्हें यह खयाल नहीं आता था कि इससे उन्हे और उनके बच्चो को कितना नुकसान पहुँचता है । ये लोग ब्रिटिश गायना से ताजा चावल आसानी से मँगा सकते थे और इस तरह वहा के अपने प्रवासी भाइयों की कुछ सहायता भी कर सकते थे साथ ही उक्त रोग के पाश से अपने को छुडा सकते थे । मगर भाव के नगण्य फर्क के कारण उन्हे भारत और बरमा से हलके-से-हलका चावल मँगाने की आदत पड गई थी और ब्रिटिश गायना के ताजे चावल की बात ही नहीं करते थे ।

२

इसके बाद जो बात हुई वह कुछ कम करुणाजनक नहीं । इस तमाम जाच और शोध होने के बाद ट्रीनीडाड के डाक्टरो तथा समाज-सेवकोने यह सिफारिश की कि वहा के प्रवासी भारतीयो को मुख्य आहार के रूप मे ब्रिटिश गायना के ही चावल का उपयोग करना चाहिए । उन्होंने यह सलाह दी कि ब्रिटिश गायना के चावल के दर-दाम मे इतनी कमी हो जानी चाहिए, कि वह भारत और बरमा से आनेवाले चावल की प्रतिस्पर्धा मे टिक सके और इसके लिए चावल की अलग-अलग जाते मुकर्रर करने तथा बिक्री सुधारने में अधिक-से-अधिक ध्यान देना चाहिए । अन्त में उन्होंने यह भी एक तजवीज पेश की कि एक ऐसा व्यापारिक पैक्ट बनना चाहिए कि जिसमे ब्रिटिश गायना के भारतीयो-द्वारा पैदा किये हुए चावल को प्रिफरेन्स दिया जाय और भारत से आनेवाले निस्सत्व चावल पर आयातकर लगा दिया जाय । और इसके बदले मे ब्रिटिश गायना की सरकार ट्रीनीडाड से ब्रिटिश गायना मे आनेवाले डामर और पेट्रोल को प्रिफरेंस दे ।

अगर यह सब काम निर्विघ्न रीति से होने पाता तो सभवत. इस प्रकार का समझौता अबतक हो गया होता ।

मगर इस बीच मे यह ओटावा पैक्ट आ धमका । इस नये व्यापारिक समझौते में कुछ ऐसी शर्तें थीं कि जिनके अनुसार किसी भी ब्रिटिश उपनिवेश से भारत के चावल पर न तो चुगी लगाई जा सकती थी, और न उसके बजाय किसी दूसरी जगह से चावल लिया जा सकता था--फिर ऐसा करने का उद्देश दूर के अन्य उपनिवेशों मे रहनेवाले भारतीय के ही पैदा किये हुए चावल को प्रोत्साहन देने का क्यो न हो, और उससे नजदीक के भारतीयों के स्वास्थ्य को लाभ क्यों न पहुंचता हो । आश्चर्य तो यह है कि ब्रिटिश गायना और ट्रीनीडाड दोनों ही जगहों मे रहनेवाले भारतीयो के हित-साधन के लिए भी खुद इन उपनिवेशों के बीच इस प्रकार का कोई समझौता नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा करने से कौन जाने, कहीं भारत के चावल के निर्यात को कोई करारा धक्का लग जाय ! !

ट्रीनीडाड और ब्रिटिश गायना मे रहनेवाले प्रवासी भारतीयो पर आज जो बीत रही है, उसका यह चित्र नवीन आहारविज्ञान का अध्ययन करनेवालों के लिए एक अच्छा शिक्षाप्रद उदाहरण है । यह उदाहरण इस बात को दीपकवत् स्पष्ट कर देता है कि आधुनिक यांत्रिक तरीके जब प्राकृतिक तरीको को हटाकर उनका स्थान हथिया लेगे तब हमारी कैसी दुर्दशा होगी । इतनी ही बात नहीं है कि चावल को मिलो मे कूटने मे नुकसान है, बल्कि उसे समुद्र-पार दूर-दूर के देशों मे भेजने मे भी हानि ही है । कुछ जगह चावल को भारी पैमाने मे बाहर भेजने की जरूरत शायद पड सकती है, पर और जगहो मे तो चावल को बाहर से मगा-मगाकर खानेवालो के स्वास्थ्य तथा मजदूरो की शारीरिक शक्ति दोनो को हानि ही पहुँचती है ।

उत्तर ध्रुवस्थित प्रदेशों के अन्वेषक श्री स्टीफेनसनने जो नोट तैयार किये थे उन्हे देखने से यह पता चलता है कि पोषण की दृष्टि से कितना मूल्य तो ताजे चावल का है और कितना पुराने रसे-घुने चावल का । उन्होंने यह शोध किया है कि मनुष्य जितना ही ताजा साग खायगा उतनी ही 'जलोदर' रोग होने की कम सम्भावना है । साग-भाजी जब पुरानी और बासी हो जाती है, तब रोग को रोकनेवाले 'विटामिन' उसमे से निकल जाते है ।

'हरिजन' से] सी० एफ० एण्डरूज

'यदि यह कहा जाय कि सभ्यता-द्वारा मनुष्य की अवस्था मे वास्तविक उन्नति हुई है, तो यह भी सिद्ध करना होगा कि पहले जितने खर्च मे ही पूर्वकाल की अपेक्षा उत्तम घर आदि बनने लगे हैं, और किसी वस्तु पर लगा मूल्य आकने के लिए यह देखना चाहिए कि जीवन का कितना भाग उस मूल्य के उपार्जन करने में लगा है । सभ्यताने घरो को तो उत्तम बनाया, पर उन घरोंमे बसनेवालो की कहांतक उन्नति की, यह विचारणीय है । उसने प्रासाद तो बना दिये, परन्तु पुरुष और नरेश बसाना उतना सरल काम नहीं था ।' थोरो

हरिजन-सेवक

शुक्रवार १८ जनवरी १९३५

यह भी सहभोज है ?

उस दिन जब मै हरिजनो और सवर्णों की एक परिषद् मे भाषण दे रहा था, तब मुझे प्रसगवश दुःख के साथ यह बात कहनी पडी कि आज हमारे मुल्क में रेलवे-स्टेशनो पर 'मुसलमान दूध, हिन्दू दूध, मुसलमान पानी, हिन्दू पानी' की आवाज सुनाई पड़ती है। 'हिंदू रोटी और मुसलमान रोटी' की बात तो मै बर्दाश्त कर सकता हूं, हालाकि ऐसी किसी चीज मे मै विश्वास नहीं करता, मगर 'मुसलमान दूध और हिंदू दूध' की बात तो—जिसके बनाने मे मनुष्य का कोई वास्ता ही नहीं—न तो मै समझ ही सकता हूँ और न उसे बर्दाश्त ही कर सकता हूँ। मैने वहा यह भी कहा था कि अस्पृश्यता-निवारण मे जिनका सोलह आने विश्वास है, उन्हे मुसलमान दूध या पानी और हिंदू दूध या पानी-जैसे वहमो से अपने को मुक्त करना ही होगा।

'हरिजन-सेवक' मे मै यह तो अनेक बार लिख चुका हूँ कि जो लोग हरिजनो का छुआ हुआ पानी या दूध वगैरा ग्रहण करने से इन्कार करते है, वे यह दावा नही कर सकते कि उन्होने अपने को अस्पृश्यता के कलक से मुक्त कर लिया है। और जब हमने इस भेद भाव को अपने दिल से दूर कर दिया कि यह हरिजन पानी या दूध है और यह सवर्ण पानी या दूध है, तब फिर इस भेदभाव-भरे रिवाज को उचित ठहराने का तो कोई अर्थ रही नहीं जाता कि यह मुसलमान पानी या दूध है और यह हिंदू पानी या दूध है। अगर अस्पृश्यता निवारण की यह महान् प्रवृत्ति महज अपने मनको समझा लेने की बात रह गई और उसके पीछे सत्य न रहा तो उसका सारा सौंदर्य नष्ट हो जायगा। इस अस्पृश्यतारूपी राक्षसी की पहुँच सर्वत्र है, इसका रूप सर्वव्यापी है। जो इसकी इस सर्वव्यापकता मे विश्वास करते है, वे तबतक अपने को उससे मुक्त हुआ नहीं कह सकते जबतक कि वे एक भी मनुष्य को, उसके अमुक जाति में जन्म लेने के कारण या उसके सप्रदाय या धर्म के कारण, अस्पृश्य अथवा सामाजिक दर्जे मे किसी-न-किसी तरह अपने से उसे नीचा समझते है।

मेरे पास हाल मे एक ऐसा पत्र आया है, जिसमे इस बात के स्पष्ट कर देने पर काफी जोर दिया गया है कि अस्पृश्यता-निवारण की प्रवृत्ति का यथार्थ आशय अमल मे क्या है। उसमे लिखा है कि बरार प्रात के एक हाईस्कूल की रजत-जयती के उपलक्ष मे वहा एक सार्वजनिक भोज का आयोजन किया गया था। हरिजन विद्यार्थियो को भी न्यौता दिया गया था। पत्र से मुझे यह मालूम हुआ कि हरिजन विद्यार्थियो को तो वहा अलग बिठाया गया था, और दूसरी तमाम जातियो व सप्रदायो के आमंत्रित लोग सब एक पंक्ति मे बिठाये गये थे। सस्कृतिवान हरिजन विद्यार्थियो को इस तरह वाहियात तरह से अपमानित करने की आखिर क्या जरूरत आ पडी थी ? और सब लोगों की पात मे अगर उन्हे बिठा दिया जाता तो उन्हे देखकर कौन कह सकता था कि वे हरिजन है ? एक हाईस्कूल के उत्सव के समय ऐसे अपमानजनक कृत्य से यही प्रगट होता है न कि यद्यपि अस्पृश्यता का बहुत-कुछ मैदान हम सर कर चुके है, तोभी यह पुराना वहम आज भी उसी तरह जमा हुआ है, और वह भी उन स्थानो मे जहा कि हमें ऐसी बातो की आशा करनी ही नही चाहिए। यह ध्यान रहे कि वहा न तो सहभोज का प्रश्न था, न सहपाक का, वहा तो सिर्फ एक पंक्ति में बैठकर जीमने की बात थी। अगर रेलगाड़ी के एक ही डिब्बे मे एक ही बेंच पर सबके साथ बैठना और वहीं बैठकर भोजन करना सहभोज नही समझा जाता, तो वह भी निश्चय ही सहभोज नहीं था। मगर अस्पृश्यता के कोश में तो सहभोज का कुछ दूसरा ही अर्थ है—उसमे तो एक पंक्ति मे बैठकर भोजन करने का भी निषेध है।

'अंग्रजी' से] मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

ग्रामउद्योग-कार्य और सरकारी रुख

इस सप्ताह तो कामो की भरमार शायद सबसे अधिक रही। गांधीजी वर्धा से यह आशा लेकर चले थे कि हरिजन-कार्य के अर्थ श्री घनश्यामदास और ठक्कर बापा को जो समय वह दिया करेंगे, उसे बाद करके कुछ समय तो नित्य शांति मे बैठने का उन्हे दिल्ली में मिल ही जायगा। पर यह कहा होने को था, यहा तो सारे दिन भेंट-मुलाकातवालो का ताता लगा रहता है, और काम दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा है।

ग्रामउद्योग-कार्य के बारे मे अपने मित्रों तथा दूसरे मिलने-जुलनेवालो के साथ बात करने मे अगर गांधीजी का अधिकांश समय लग रहा है तो यह स्वाभाविक ही है। "आपके इस ग्राम-उद्योग की योजना के प्रति सरकारने जो यह रुख अख्तियार किया है उसके सबध मे आपका क्या खयाल है ?" यह प्रश्न उस दिन एक बहुत बड़े प्रेस-प्रतिनिधिने गांधीजी से पूछा। साफ ही उसके मन मे भारत-सरकार का वह सर्कुलर समाया हुआ था, जिसकी चर्चा जोरो से आज सर्वत्र हो रही है। गांधीजीने उसके प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा, "सरकार अगर खुद मेरे काम को अपने हाथ मे लेकर मेरी योजना को व्यर्थ करदे तो मुझे अपार आनन्द होगा। जो काम मै करना चाहता हूँ वह बहुत-कुछ सरकार के करने का था। जो काम सरकार कर सकती है वह करे, मगर जनता को व्यर्थ भुलावे मे न डाला जाय। अगर सरकार मेरे काम मे मेरी मदद करे तो मै चमत्कार करके दिखा दूं, पर यह तभी हो सकता है जब वह सच्चे अर्थ मे मुझे सहायता दे, अर्थात् इस कार्यक्रम के रहस्य को सरकार समझे और उसकी कदर करे। करना चाहे तो वह अनेक तरीको से मेरी मदद कर सकती है। जैसे, आवश्यक कानून बनाकर वह ग्रामउद्योग-कार्य मे मेरा हाथ बटा सकती है। मगर सरकार क्या कर रही है और क्या नही इस सबके बारे मे कृपाकर आप मेरी राय न पूछे। मै सरकार के काम की टीका नही करना चाहता। अगर इसे जरूरी समझूगा, तो मै सरकार को लिख दूगा। जहातक मेरा सम्बन्ध है, मेरी हर बात जगत-उजागर है, सरकार से मेरी कोई भी बात छिपी नही है। मैने अपने कार्यक्रम मे ऐसी ही चीजो को लिया है, जिनके ऊपर अभीतक किसी का भी ध्यान नहीं गया था, और दूसरे लोग जो काम कर रहे है उस पर कब्जा करने की मेरी नीयत नहीं है। हाथ का कुटा चावल, हाथ का पिसा आटा और गांव

का बना गुड इन चीजों का प्रचार में केवल इसीलिए कर रहा हूँ कि लोग मशीन की कुटी-पिसी बाजारू चीजें खा-खाकर अपने स्वास्थ्य को खराब न करें, क्योंकि आज देखा जाय तो यही हो रहा है। मिल के चावल, आटे और शक्कर के बारे में मेरी जो राय है उसका समर्थन देश के ऊँचे-से-ऊँचे डाक्टरों और विज्ञानियोंने किया है। जमीन और खेती-पाती की तरक्की किन-किन तरीकों से हो सकती है इस बात पर में अपना खयाल नहीं दौड़ाऊँगा, क्योंकि मैं अपनी परिमित कार्यशक्ति को भली भांति जानता हूँ। बिना किसी बाहरी मदद के लोग जो खुद कर सकते हों वह सब करें, बस, इतना ही मैं चाहता हूँ। आलस्य दूर हो जाय, अपना समय लोग अच्छे कामों में लगाने लगें, रोगवर्द्धक खाद्य वस्तुओं का उपयोग न करें और अपनी सब फिजूलखर्चियां बन्द कर दें, मेरा बस यही एकमात्र उद्देश है। ओखली-मूसल के कुटे चावल, हाथ-चक्की के पिसे आटे, गाव के बने गुड, कोल्हू के पिरे तेल और गृह-चर्मउद्योग-संबंधी मेरे इस तमाम आंदोलन को बस इसी दृष्टि से देखना चाहिए।"

मिशनरियों को परेशानी क्यों ?

अस्पृश्यता-निवारण-आन्दोलन की प्रगति दुनिया में खूब ध्यान से और आलोचनात्मक दृष्टि से देखी जा रही है। इसलिए हमारे हरिजन-सेवक इस प्रवृत्ति के मुख्य अंग आत्मशुद्धि के ऊपर जितना भी अधिक ध्यान दें उतना कम है। यह सुनने में आता है कि इस आन्दोलन से हमारे कुछ मिशनरी मित्रों की परेशानी बढ रही है। गांधीजी के पास कुछ मिशनरियों के इस आशय के पत्र आये हैं, और एक मिशन तो उस दिन इस विषय पर गांधीजी से बात करते हुए अंत में यह कहा कि, "आपका यह आन्दोलन मिशनरियों के काम की तरह लोकप्रिय होता जा रहा है।"

"सो तो मैं समझता हूँ," गांधीजीने कहा, "मगर यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि इसमें मेरे मिशनरी मित्रों को घबराहट क्या होती है। हम लोग कोई व्यापारी तो है नहीं, जो एक दूसरे की मंडी पर कब्जा करने जा रहे हों। अगर यह 'स्व-सेवा' या स्वार्थसाधन की बात है तब तो मैं उनकी स्थिति को समझ सकता हूँ, लेकिन जब कि यह पूर्णतया 'पर-सेवा' का प्रश्न है, तब मुझे या उन्हें, जो दूसरों की सेवा कर रहे हैं, परेशान होना ही नहीं चाहिए।"

"लेकिन मान लीजिए कि किसी जगह पर मिशनरियों का एक अस्पताल है, उसी जगह पर एक और अस्पताल खोलने के लिए आप अपने आदमियों को भेज दें—तो ऐसी स्थिति में मिशन के अस्पतालवालों का परेशान होना शायद उचित ही है।"

"पर यह बात तो उन्हें समझ लेनी चाहिए न, कि हमारा तो एक भिन्न ही प्रकार का मिशन है। हम उन्हें सिर्फ दवा-दारू देने या मामूली अक्षरज्ञान कराने तो उनके पास जायेंगे नहीं; हम तो उनके पास अपनी प्रायश्चित्त भावना का एक यत्किंचित् प्रमाण लेकर जायेंगे और उन्हें यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न करेंगे कि अब तुम्हारा हम और अधिक शोषण नहीं करेंगे। जहां पहले से कोई अस्पताल है, वहां एक नया अस्पताल खोलने की सलाह तो मैं नहीं दूंगा; पर अगर वहां मिशन स्कूल है, तो मैं वहां पर हरिजन-बच्चों के लिए एक दूसरा स्कूल खुलवा देने में कोई हानि नहीं समझूंगा। हम क्यों न बेतकल्लुफी से अपनी स्थिति को ठीक-ठीक समझलें ? अगर हमारा उद्देश शुद्ध मानव-सेवा का है, जहां पर शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है वहां शिक्षा-प्रसार का अगर हमारा शुद्ध ध्येय है, तो हमारे मिशनरी मित्रों को तो आभार मानना चाहिए कि जो लोग अपने घर में अचेत पडे हुए थे, वे जाग तो गये, उन्हें अपने कर्तव्य का बोध तो हो गया। पर मुझे दुःख तो वहां होता है, जहां मैं यह देखता हूँ, कि हमारे मिशनरी मित्र शुद्ध मानवी सेवा की भावना से काम नहीं ले रहे हैं। उनका उद्देश तो लोगों को अधिक-से-अधिक ईसाई बनाने का है, और यही उनकी परेशानी का कारण है। जो शिकायत मैं बरसों से करता आ रहा हूँ वह आपके इस कथन से तो और भी पुष्ट हो जाती है। उस दिन एक विद्वान् पंडित के ईसाई धर्म स्वीकार कर लेने पर एक मिशन के कुछ सज्जन मारे खुशी के फूले नहीं समाते थे। वे मेरे प्रिय मित्र थे, इससे मैंने उनसे कहा कि अगर एक मनुष्य अपने धर्म का परित्याग कर रहा है तो इसमें आप लोगों का आनन्दविमग्न होना उचित नहीं। आज तो यह एक विद्वान् हिन्दू की बात है, कल किसी ऐसे अज्ञानी ग्रामवासी को आप ईसाई बना सकते हैं, जिसे अपने धर्म के सिद्धान्तों का कुछ भी पता न हो। अगर मैं कहीं ऐसी कोई पाठशाला खोलूं, जिसे हमारे हरिजन भाई मिशन पाठशाला की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हों, तो आप ही बतलाइए, इस में मिशनरियों को शिकायत क्यों होनी चाहिए ?"

"पर अगर कोई ईसाई आपके हिन्दूधर्म को स्वीकार करले, तो क्या उसके सम्बन्ध में भी आप यही बात कहेंगे ?"

"जरूर; मीरा बहिन को ही ले लीजिए। ईसाई धर्म में वह जो भी आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करना चाहे मैं उन्हें खुशी से प्राप्त करने दूंगा मैं उन्हें हिन्दूधर्म में अगर वह चाहें भी तब भी, दीक्षित करने की स्वप्न में भी कल्पना नहीं करूंगा। आज तो मीरा बहिन जैसी एक प्रौढ महिला की बात है, पर कल यही बात किसी ऐसे योरोपियन बच्चे के बारे में हो सकती है, जिसे मेरा कोई प्रिय मित्र धरोहर के रूप में मुझे सौंप जाय। खांसाहब की लडकी को लीजिए। उसके पिताने उसे मेरे हवाले कर दिया है। मैं बडी सावधानी के साथ उसे उसके इस्लाम धर्म के ही अनुसार शिक्षा-दीक्षा दूंगा और इसका भरसक प्रयत्न करूंगा कि वह अपने धर्म-पथ से कभी बहकने न पावे। दूसरे धर्म-मजहबों के बच्चों और वयस्क लोगों को अपनी निगरानी में रखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं ईश्वर का आभार मानता हूं कि वे लोग मेरे साथ रहकर कुछ बेहतर ही टाइप के ईसाई, मुसल्मान, पारसी या यहूदी बने।"

"लेकिन अगर अंतःकरण की शुद्ध बात हो, तब ?"

"मैं किसी के अंतःकरण की खबर रखनेवाला तो हूँ नहीं, किंतु यह मैं जरूर महसूस करता हूँ, कि उस मनुष्य की इस दलील में कुछ कमजोरी अवश्य है कि जिस धर्म में उसने जन्म लिया है उस धर्म में उसे शांति नहीं मिल रही है।"

इन मिशनरी मित्रों को, जिन्हें गांधीजी की सलाह कडवी लगती है, ईसाई महात्मा डा० श्वाइत्सर का इतिहास जानना चाहिए। यह निष्णात संगीतशास्त्री, ईसाई धर्मशास्त्र का पारगत विद्वान् प्रौढावस्था में अपने कर्तव्य का विचार करने लगा, और इस निर्णय पर पहुँचा कि यूरोपने अफरीका का जो रक्तशोषण किया है उसका शुद्ध परिशोध अफरीकावासियों की सच्ची सेवा के द्वारा ही हो सकेगा। पांच वर्ष के अभ्यास के अनन्तर वह शस्त्र-क्रिया और वैद्यक शास्त्र में निपुण हो गया, और भाषण तथा धर्मप्रवचन देने का सदा के लिए परित्याग करके वह अफरीका के

जगलो मे जा बैठा । यह महान् सन्त २५ वर्ष से वही गरीब अफरीकावासियो की सेवा-शुश्रूषा कर रहा है । वह वहा ईसाई धर्म का प्रचार करने नही गया है, वहा यह देखने नही गया है कि कितने मनुष्य ईसाई धर्म मे दीक्षित हो चुके है, किन्तु वह तो वहा शुद्ध हृदय से ऋण अदा करने गया है ।

डा० रॉयडन

डा० श्वाइत्सर का नाम लेते ही स्वभावत डा० रॉयडन का नाम याद आ जाता है—खासकर इसलिए और कि गत सप्ताह वह यहा की एक आदरणीय मेहमान थी । डा० रॉयडन एक उच्च घराने की अँग्रेज महिला है । यह वही महिला है कि जिन्होने गिरजाघरो मे इस बात को लेकर एक भारी आन्दोलन चलाया था कि वहा केवल पुरुषो के ही हाथ म प्रवचन करने का इजारा क्यो रहे । और आज वही एक महिला है जो गिरजो मे प्रवचन करती है और जिसे सुनने हजारो लोग जाते है । भारत के प्रश्न के विषय मे वह खूब रस लेती है । शुद्ध अहिसावादी है । १९३२ मे वह चीन-जापान की लडाई रोकने के लिए अपनी एक निःशस्त्र सेना खडी करके चीन पर चढाई करनेवाली थी । उनकी रग-रग मे अहिसा बहती है, और वह डा० श्वाइत्सर की पुजारिन है । श्वाइत्सरने अपने जीवन-सिद्धान्त को जीव पूजा का नाम दे रखा है 'दया' नही, 'पूजा' । हमारे यहा की अहिसा का शुद्ध स्वरूप भी तो प्राणिमात्र या जीवमात्र की पूजा ही है । डा० श्वाइत्सर की जीवपूजा की व्याख्या मे गाधीजी की अहिसा की व्याख्या याद आ जाती है । जीवपूजा का सिद्धान्त स्वीकार कर लेने के पश्चात्, मेरा कोई अखड अधिकार निरपेक्ष है यह बात नही रह जाती । दूसरे को अपने से अलग रखकर मै सुखी हो ही नही सकता । दूसरो की अपेक्षा मै बल मे, बुद्धि मे बडा हूँ, अत सिर्फ अपने लिए मुझे अमुक अधिकार भोगना चाहिए —यह चीज ही जीवपूजा के विरुद्ध है । 'तू सुखी है'—यह भान होते ही अतस्तल मे एक आवाज आती है, एक करुणाजनक आवाज उठती है 'अरे, तू अकेला ही सुखी नही हो सकता, तुझे त्याग करके ही सुख भोगना चाहिए । तुझे अगर दूसरे की अपेक्षा आरोग्य, बुद्धि, कौशल्य, सुख अधिक मिला है, तो उसका तू सतोष के साथ उपभोग न कर, उसका कुछ भाग तो तुझे दूसरो को देना ही चाहिए । दूसरे जीवो के लिए तुझे अपना जीवन जोखम मे डालना चाहिए । यह शुद्ध अन्तर्नाद जब सुनाई पडता है तब अच्छो-अच्छो की आखे खुल जाती है और उनका मुख फीका पड जाता है । डा० रॉयडनने डा० श्वाइत्सर का नाम लिये बिना दिल्ली मे पहले दिन यह निम्नलिखित सन्देश सुनाया । उन्हे एक चर्च मे प्रवचन करने के लिए निमत्रण दिया गया था । उनके प्रवचन का विषय तो था बाइबिल का एक वचन, पर उसमे हम सभी के लिए एक सन्देश भरा हुआ था । वह वचन 'हमारा अन्तर्यामी पिता' बस इतना ही था । लेकिन अपने प्रवचन द्वारा तो उन्होने हमारा खूब ही हृदयस्पर्श किया । उसका हम जितना भी मनन करे, उतना थोडा है । किन्तु भारतीय पाठको के लिए तो इतना ही काफी होगा :—

"ईश्वर के लिए सिवा 'पिता' के ईसा के मुह से और कोई शब्द निकलता ही नही था । दुनिया मे आते ही बच्चा मा को पुकारता है, लेकिन जब-जब उसे डर लगता है, तब-तब वह पिता की गोद मे आकर शान्ति प्राप्त करता है, निर्भयता प्राप्त करता है । ईसाने प्रभु से पिता का नाता जोडा, और वह जगत् के विषय मे निर्भय हो गया । विश्व उसके लिए 'गृह' बन गया । विश्व कोई युद्धक्षेत्र नही है, कोई कसौटी या अग्नि-परीक्षा का स्थान नही है, किन्तु एक गृह है, जिसमे हरएक को एक पिता के परिवार की तरह रहना है । इस महासत्य से जितना ही दूर हम भागते है, उतना ही हम भय, शका, कलह और क्लेश को बढाते है । 'हम सब एक ही पिता के परिवार है'—इसका भान होते ही हम लोग पिता की गोद मे बैठकर तमाम दुःखो को भूल जा सकते है । लेकिन 'हम सब एक ही पिता के परिवार है' इतना कहने से ही काम नही चलेगा । हम लोगो को सचमुच बन्धुत्व स्वीकारना चाहिए, पिता की दी हुई अनेक वस्तुओ को आपस मे बाटकर ही हमे उनका उपभोग करना चाहिए—इसमे अधिक-से-अधिक निर्भयता अन्तर्निहित है । दुनिया मे कैसा कचन बरसने लगेगा उस दिन ! गरीब के हृदय मे ईर्ष्या नही रहेगी, अमीर को भय नही रहेगा । तो क्या हम लोग बन्धुत्व स्वीकारने को तैयार है ? क्या पिता की दी हुई वस्तुओ को एक दूसरे मे बाटकर भोगने के लिए तैयार है ?"

बाइबिल के इस दिव्य सदेश से गीता, भागवत, उपनिषद् का सदेश क्या कुछ भिन्न है ? डा० रॉयडनने यह सदेश सुनाया और एक दूसरी सभा मे इस सदेश के साथ अहिसा का भी उपदेश जोड दिया । गाधीजी के पास उसी वस्तु को और अधिक जानने के लिए वह यहा आई थी । हिन्दुस्तान मे तो वह 'महिला-परिषद्' मे सम्मिलित होने के लिए आई थी, मगर दिल्ली मे तो वह केवल गाधीजी से मिलने के लिए ही आई थी, ऐसा हम कह सकते है । हिंसा का प्रचड दावानल जहा चारो ओर फूट पडा हो वहा उसे शात करने के लिए चारो तरफ से अहिसा का सहस्रमुख प्रवाह मिले तभी काम चलेगा । डा० रॉयडन का यहा आना इस दृष्टि से एक बहुत बडी बात है ।

विदुषी खालिदा खानम

लेकिन इससे भी अधिक अनमोल गाधीजी के साथ तुर्की विदुषी तथा वीरागना खालिदा खानम की मुलाकात थी । डा० रॉयडन के यहा आने की तो उन्हे खबर थी, और उनसे गाधीजी विलायत मे मिले भी थे, मगर खालिदा खानम के साथ इससे पहले उनकी कभी मुलाकात नही हुई थी । डा० रॉयडन तो एक सुखी महिला है । उन्होने दुःख की कभी सूरत भी नही देखी । लेकिन खालिदा खानम तो धूप और छाहँ दोनो मे से गुजरी है, सुख और दुख सब देख चुकी है । आज ढलती अवस्था में भी उनमे एक अजीब सुकुमारता दिखाई देती है, उनकी आखो से करुणा ही बहती दिखाई देती है । किंतु यह शिरीष कुसुम के समान सुकुमार महिला एक दिन अपने प्यारे देश की आजादी के लिए समरागण मे भी घूमी थी—यह बात उनके अगार के समान दमकते हुए ओजस्वी नेत्रो मे हम आज भी देख सकते है । तुर्की की महिलाओ को स्वतत्रता का पाठ पढानेवाली, पति को एकपत्नीव्रत सिखाने मे अपने को असमर्थ पाकर आजीवन वियोग उठाती हुई अनन्य लगन का आदर्श जगत् के सामने रखनेवाली, अपने जीवन का अपार दु.ख साहित्य-सेवा में भुला देनेवाली खालिदा खानूम-जैसी विदुषी वीरागनाएँ ससार मे विरली ही होंगी । स्व० मौलाना मुहम्मअली तथा हकीम अजमलखां साहब की स्थापित की हुई 'जामिया मिल्लिया इस्लामिया' नामक राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था के

निमंत्रण से यह तुर्की विदुषी यहां आई हुई है। पश्चिम और पूर्व के सम्बन्ध में वह चार-पांच व्याख्यान यहां देगी। पश्चिम और पूर्व के माधुर्य का एक अद्भुत समिश्रण उनमें देखने को मिलता है।

उनकी अगाध विद्वत्ता तथा प्रखर प्रतिभा का प्रमाण तो उनकी कई पुस्तकों में ही मिल जाता है, लेकिन उनका जीवन उनकी पुस्तकों से कहीं अधिक सप्राण है। गांधीजी के साथ उनकी जितनी बातें हुई वह सब यहां नहीं दी जा सकतीं। हिंसा का नग्न स्वरूप उन्होंने खूब देखा है। हिंसा में अपने मुल्क की आजादी के लिए भाग भी उन्होंने काफी लिया है। मगर इस चीज से अब उन्हें विरक्ति हो गई है। आज तो उनकी तृषित आत्मा अहिंसा में ही शांति-रस की खोज रही है। उनके त्याग और उनके कष्ट-सहन का पार नहीं। जगत् को संपूर्णतया देखकर मानो 'उलटि भई मेरे नैनन की' का उन्हें अनुभव हो गया है। उनकी राष्ट्रीयता की व्याख्या गांधीजी की व्याख्या की याद दिलाती है। व्यक्ति या राष्ट्र दूसरे व्यक्ति या राष्ट्र को समझ सके—इसलिए उसे खुद अपना अन्तर शोधना चाहिए, स्वधर्म शोधना चाहिए। यह अन्तर्निरीक्षण, स्वधर्म-शोधन और स्वधर्मपालन की सच्ची राष्ट्रीय भावना प्रत्येक राष्ट्र के अंदर हो, तो राष्ट्र-राष्ट्र में सहज ही मैत्री स्थापित हो जाय। मुझे प्रथम अपने बन्धु-बान्धवों की सेवा करनी चाहिए, उनके सुख-दुःख को जानना चाहिए, उनके व्यक्तित्व को समझना चाहिए, उनका स्वधर्म समझना व समझाना चाहिए—यह भावना अगर हममें आ जाय तो इससे अपने राष्ट्र का धर्म तथा दूसरे राष्ट्र के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है इसका भी समझना आसान हो जायगा।

"मगर एक संकुचित राष्ट्र-भावना भी तो है, जो ऐसा मानती है कि दूसरे राष्ट्रों का निकंदन या रक्तशोषण करके ही हम बढ़ सकते हैं, दूसरे राष्ट्रों को जीतकर ही और उन्हें अपना गुलाम बनाकर ही हम फूल-फल सकते हैं। यह भावना राष्ट्र-भावना नहीं, बल्कि कलह-भावना है, दर्प-भावना है—और ऐसी कलह-भावना रखनेवालोंने, दूसरों को चूस-चूसकर बलवान बननेवालोंने जितना दूसरों को नुकसान पहुँचाया है उससे अधिक खुद अपने को पहुँचाया है। जगत् के बड़े-बड़े नेता इस भूलभरी कुभावना के कारण ही महान् त्यागों और युग-युग के अनुभवों को मिट्टी में मिला रहे हैं।

इस भ्रमभरी भावना से यह विदुषी अपने देश को बचा लेना चाहती है। और बचाने का साधन वह जानती है, **सच्ची शिक्षा, शुद्ध पुनर्रचना**। देश आत्मा को जो गँवा बैठा है उसे आत्मा का भान कराना है। पाठशालाओं को जबतक हम गृह-जैसी जीवित न बनायेंगे, तबतक ऊँची-से-ऊँची वैज्ञानिक प्रणाली पर चलती हुई पाठशालाएँ निरर्थक ही होंगी—यह उनका एक सूत्र है। और समाज के ऊपर यंत्रवाद का जो यह भूत चढ़ बैठा है, उसे उतारे बिना समाज में से विषवाद, कलहवाद दूर होने का नहीं, ऐसा वह मानती हैं।

"इस यंत्रवाद को आप किस तरह दूर करेंगे?" ऐसा प्रश्न एक बार उन्होंने गांधीजी से पूछा। वीरांगना के स्वर में उनके अन्तर के तारों की सरल मधुरता भरी हुई थी। "जो मनुष्य अपनी आत्मा को नष्ट कर चुके हैं, उनका पुनर्निर्माण आप किस प्रकार करेंगे?"

"मेरे पास तो मेरा अहिंसा का ही एक मार्ग है," गांधीजीने कहा। "इसमें सब आ जाता है। मेरा सारा रचनात्मक कार्य अहिंसा से ही प्रगट हुआ है। मुझे अहिंसा के बिना हरिजन-सेवा, ग्राम-सेवा आदि का कार्य सूझता ही नहीं। इस ३५ करोड़ की जनसंख्या के देश में यंत्रवाद की बात करना ही अत्याचार है। ये ३५ करोड़ मनुष्य सब यंत्र ही तो हैं। सिर्फ इन यंत्रों में तेल डालकर इन्हें हमेशा चालू रखना है, और यही मैं कर रहा हूँ।"

"स्वराज तो मिलेगा ही, इस विषय में मुझे शंका नहीं। पर मुझे यह भय है कि अगर इस यंत्रवाद के भूतने पिंड न छोड़ा तो?"

"तो फिर यहां रक्त की नदी बहेगी। मैंने तो १९०८ में ही यह स्पष्ट रीति से देख लिया था। उसका अमल तब से आज-तक हो रहा है, और इस अमल के परिणाम से अहिंसा का स्वरूप मैं अधिकाधिक देखता जा रहा हूँ। देश को यंत्रवाद के वश किया तो किसी-न-किसी तरह हिंसा बिना व्यापे न रहेगी।

"मैं समझती हूँ। यह भी एक महान् विकट बात है। आत्मा की रक्षा करनी है। 'शरीर और आत्मा' नाम का एक नाटक जो मैंने लिखा है उसे आपको अर्पण करना है। गांधीजी, अपने यहां खाली शरीर तो बहुत हैं, पर आत्मा कम है। लेकिन आप आत्मा को शिक्षण देने की संस्था खोलें तो अच्छा ही है।"

"बात सच है। एक भी सच्चा अहिंसावादी निकल आवे तो काफी है।"

"मुझे तो कुछ बहुत आशा दिखाई नहीं देती, गांधीजी, क्योंकि शत्रु बलवान् है।'

"मेरे आशावाद में तो कभी कमी नहीं आई। जहां मुझे काला-काला अन्धकार दिखाई दिया, वहां भी आशा की रुपहरी किरण का दिखाई देना बन्द नहीं हुआ।"

"आपकी तो गांधीजी, बात ही जुदी है। आप तो अपने आशा-दीप को बुझाना भी चाहें तब भी नहीं बुझा सकते।" यह बोलते हुए उनके मुख पर एक अद्भुत आनंद और शान्ति झलक उठी।

"आप जो कहती हैं वह अक्षरशः सत्य है। मैं अपनी आशा को दूर करना भी चाहूँ तो भी वह दूर नहीं होती। उस आशा का मैं कोई प्रत्यक्ष प्रमाण तो नहीं दे सकता, मगर मेरे दिल में **हार**-जैसी कोई वस्तु ही नहीं है।"

"**हार** को आपने न तो जाना ही और न देखा ही, यह मुझे विश्वास है।"

दो आत्माओं का यह संवाद, समान कुशलता से बजती हुई अनेक वीणाओं से निस्सृत एक अखंड संगीत-जैसा लगता था। यह सुन्दर संवाद सुनने का मुझे जो सौभाग्य प्राप्त हुआ उसे पूर्वजन्म का पुण्य ही समझिए।

महादेव ह० देसाई

सिंध के हरिजन

सिंधप्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ के मंत्रीने अ० भा० हरिजन-सेवक-संघ के प्रधानमंत्री के पास अपने दौरे की यह बड़ी सुन्दर रिपोर्ट भेजी है, जो उन्होंने स्वामी कृष्णानंदजी के साथ १९ नवंबर से २९ दिसंबरतक थरपारकर जिले में किया था.—

इधर दो साल से थरपारकर में वर्षा बड़ी अच्छी हो रही है, इसलिए वर्तमान में अन्न की कमी तो नहीं है, पर ये चार कष्ट तो हैं ही—पहला तो कर्ज का कष्ट है, दूसरा पानी का कसाला

है, तीसरा बेगार का दौरदौरा है और चौथा शिक्षा का अभाव है।

प्राय: भील, कोली, मेघवार, तथा अन्य सभी हरिजन काफ़ी मकरूज़ हैं, एड़ी से चोटीतक कर्ज़े में डूबे हुए हैं। इस अपार कर्ज़े का कारण है 'ओसर', अर्थात् कुटुंब में किसी के मर जाने के बाद जाति-बिरादरीवालों को न्यौत कर खूब खिलाना-पिलाना। गरीब से भी गरीब आदमी कम-से-कम ५००) ओसर में फूंक देता है, और कभी-कभी तो इस सत्यानाशी रिवाज में १०००) से लेकर १५००) तक स्वाहा हो जाते हैं।

छछरो के सम्मेलन में यह सर्वसम्मति से निश्चय हुआ है कि किसी भी मेघवार का 'ओसर' पर दो सौ रुपये से अधिक खर्च नहीं करने चाहिए, और चार बस्तियां से ज्यादा नहीं न्योतनी चाहिए। थरपारकर के तमाम गावों में इस आशय की गश्ती चिट्ठियां भेज दी गई है कि अब आगे उक्त प्रस्ताव के अनुसार ही मेघवार भाइयों को ओसर काज करना चाहिए।

दूसरा कष्ट यहां पानी का है। यह तो आप जानते ही होंगे कि थरपारकर में पानी का अत्यन्त कमाला है। कुएँ पातालतोड़ खुदवाने पड़ते हैं, तब कहीं पानी निकलता है। दुर्भाग्य से हरिजन छोटे-छोटे गावड़ों में रहते हैं। किसी-किसी गाव में तो मुश्किल से २० घर होते हैं। इससे हरएक गाव में हरिजनों के लिए पानी का प्रबंध करना मुश्किल हो जाता है। कहीं-कहीं पर तो हरिजनों को, जहां सवर्णों की उनके साथ सहानुभूति नहीं है, चार-चार पांच-पांच मीलतक एक एक घड़ा पानी के लिए जाना पड़ता है। जिन गावों में कुओं की सख्त जरूरत है उनकी एक फेहरिस्त मैं तैयार कर रहा हूं, और मुझे आशा है कि इस अत्यन्त आवश्यक कार्य के लिए आप ज० क० फंड से अथवा कहीं अन्यत्र से कुछ सहायता दिला देने का जरूर प्रयत्न करेंगे। इस मरुभूमि में अगर हर साल कम-से-कम एक कुआ खुदवाने का हम निश्चय कर लें तो हरिजनों की यह बहुत बड़ी सेवा होगी। यह बात जरूर है कि एक कुए पर हज़ार रुपये से ऊपर ही खर्च पड़ेंगे।

अब 'बेगार' को लीजिए। इस दुष्ट रिवाज पर तो हमारा तुरंत ही ध्यान जाना चाहिए। जहां भी हम गये, हरिजनोंने इस बेगार-प्रथा का रोना रोया। सरकारी कानून के होते हुए भी सिंध में यह बेगार-प्रथा आज भी अनेक जगह वैसी ही मौजूद है। मगर थरपारकर में तो सारी बेगार गरीब हरिजनों को ही देनी पड़ती है। भील, कोली और मेघवारों से जबर्दस्ती बेगार में काम कराया जाता है और मजूरी में उन्हें पैसा तो दूर, रोटी तक नहीं दी जाती, उन्हें अगर कुछ मिलता है तो गंदी-गंदी गालियां और लात-घूंसे। धरिन्द्रो गाव की बात है। यहां लोगोंने हमें सुनाया कि क्या पूछते हो साहब, बेगार के मारे तो यहां नाकोंदम है, एक बेचारा मेघवार तो उस दिन पिटतक गया। धरिन्द्रो में हमारी हरिजन-पाठशाला भी है। अदालत में जाने से कोई फायदा नहीं। बात यह है कि ये पस्तहिम्मत हरिजन मारे डर के चाहे जब अपनी गवाही बदल देते हैं। दूसरे, और कोई गवाह मिलने के नहीं। तीसरे, प्रामाणिक डाक्टर सर्टीफिकेट नहीं देते. इससे इस जुल्म का बंद करना बड़ा कठिन हो गया है। नगर पारकर में हमें एक ऐसा मामला सुनाया गया जिसमें एक हरिजन को सरे बाजार एक चपरासीने पीटा और बेगार में काम कराने के लिए उसे वह पकड़ ले गया। इस जगह के कोली बेगार से इतने भयभीत हो गये हैं, कि वे दिन को बहुत कम शहर में आते हैं। अगर शहर में उनका कोई काम होता है, तो वे खुद बाहर खड़े रहते हैं और अपनी औरतों को शहर में भेज देते हैं।

मैं चाहता हूँ कि हमारी कमेटी की तरफ से सिंध के कमिश्नर साहब और थरपारकर के कलेक्टर के पास शीघ्र ही इस संबंध में प्रभावशाली लोगों का एक डेपुटेशन जाना चाहिए।

मैंने यह देखा कि शहर के हरिजनों के मुकाबले में थरपारकर के हरिजन पढ़ने-लिखने के लिए अधिक उत्सुक हैं। मगर कठिनाई तो यह है कि इधर लोकल बोर्ड के स्कूल इनेगिने ही हैं—अब उनके बच्चे पढ़ें तो कहां पढ़ें।

थरपारकर-हरिजन-सेवक-संघ के हरिजन विद्यार्थियों को हम अभी ८०) मासिक की छात्रवृत्तियां दे रहे हैं। इसके अलावा थरपारकर के तीन हरिजन विद्यार्थियों को हमारा प्रांतीय संघ कराची की हरिजन-हुनरशाला में छात्रवृत्तियां देकर काम सिखा रहा है।

धरिन्द्रो और फूलपुरा की पाठशालाओं के अतिरिक्त हम दो-तीन और पाठशालाओं के खोलने का विचार कर रहे हैं। जबतक थरपारकर का लोकलबोर्ड हरिजन-बस्तियों में काफ़ी तादाद में स्कूल खोलकर तथा हमारी पाठशालाओं को अच्छी-सी ग्रांट देकर हमारी मदद नहीं करता, तबतक हरिजनों की शिक्षा का यह प्रश्न सहज में हल होने का नहीं।

सवर्ण हिंदुओं की विभिन्न बस्तियों में हमने अनेक सभाएँ कीं। हमारी राय में थरपारकर जिले में प्रचार-कार्य बहुत जरूरी है।

हरिजन-सेवक-संघ का विधान

प्रस्तावना

बंबई में २५ सितम्बर, १९३२ को श्रीमान् पं० मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में समस्त भारत के सवर्ण हिंदुओं के प्रतिनिधियों की जो परिषद् हुई थी, उसमें अन्य प्रस्तावों के साथ एक यह भी प्रस्ताव पास हुआ था कि —

"यह परिषद निश्चय करती है कि अबसे कोई भी व्यक्ति, अपने अमुक जाति में जन्म लेने के कारण, अस्पृश्य नहीं समझा जायगा, और अबतक जो ऐसा माना जाता था, उसको भी सार्वजनिक कुओं, सड़कों तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं के व्यवहार के सम्बन्ध में वही अधिकार होंगे जो दूसरे हिंदुओं के हैं। अवसर मिलते ही इन अधिकारों को कानूनी स्वीकृति दे दी जायगी, और स्वराज-पार्लियामेण्ट के सबसे पहले कामों में यह भी एक काम होगा, अगर तबतक ये अधिकार कानून-द्वारा स्वीकृत न हो चुके होंगे।

और यह परिषद् यह भी निश्चय करती है, कि अस्पृश्य कहीं जानेवाली जातियों की प्रथानुमोदित समस्त सामाजिक बाधाओं को—जिनमें उनकी मंदिरबंदी भी शामिल है—शीघ्र हटादेने के लिए सभी उचित और शान्तिमय उपायों का ग्रहण करना तमाम हिंदूनेताओं का कर्त्तव्य होगा।"

इसके बाद बंबई में ३० सितम्बर को श्रीमान् पं० मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में देश के प्रत्येक भाग से आये हुए हिन्दू नेताओं-द्वारा संयोजित एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें अन्य प्रस्तावों के साथ यह भी एक प्रस्ताव पास हुआ कि—

"हिन्दुओं की यह सार्वजनिक सभा यह निश्चय करती है कि अस्पृश्यता के विरुद्ध प्रचार करने के लिए एक अखिल भारतीय

अस्पृश्यता-निवारक संघ स्थापित किया जाय, जिसका प्रधान कार्यालय दिल्ली में हो और जिसकी शाखाएँ विभिन्न प्रांतीय केन्द्रों में हों, और इस उद्देश को पूरा करने के लिए नीचेलिखे कार्य तुरन्त आरंभ कर दिये जायँ :—

(क) तमाम सार्वजनिक कुएँ, धर्मशालाएँ, सड़कें, पाठशालाएँ, कब्रस्तान, श्मशानघाट आदि दलित जातियों के लिए खोल दिये जायँ;

(ख) तमाम सार्वजनिक मंदिर दलित जातियों के लिए खोल दिये जायँ।

बशर्ते कि (क) और (ख) के सम्बन्ध में बलप्रयोग या जबरदस्ती न की जाकर शांतिपूर्वक समझाने-बुझाने के उपायों का ही सहारा लिया जाय।

यह सभा श्री घनश्यामदास बिड़ला को अध्यक्ष और श्री अमृतलाल वि० ठक्कर को प्रधानमंत्री नियुक्त करती है। ये सज्जन संघ के संगठन के लिए शीघ्र ही आवश्यक कार्य करें जिससे कि उसके उद्देशों की पूर्ति हो।

हिंदुओं की यह सार्वजनिक सभा हिन्दू-जाति से अपील करती है कि वह अस्पृश्यता-निवारण तथा तत्सम्बन्धी उद्देशों की पूर्ति के लिए यथासंभव अधिक-से-अधिक धन-संग्रह करे और इसके लिए उपर्युक्त सज्जनों को यह अधिकार देती है कि वे इसके लिए यथावश्यक कार्य करें।"

उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुसार अखिल भारतीय अस्पृश्यता-निवारक-संघ (All India Anti-Untouchability League) के नाम से एक संस्था बनाई गई, जिसका नाम बाद को 'हरिजन-सेवक-संघ' रखा गया और दिल्ली में २६ अक्तूबर, १९३२ को उक्त संघ का विधान स्वीकृत किया गया।

इसके बाद एक सांगोपांग विधान बनाना उचित समझा गया। दिल्ली में अखिल भारतीय हरिजन-सेवक-संघ के केन्द्रीय बोर्ड की जो बैठक २ जनवरी, १९३५ को हुई उसमें पहले का विधान रद्द करके निम्नलिखित विधान स्वीकृत किया गया।

विधान

१—इस संस्था का नाम 'हरिजन-सेवक-संघ' होगा।

२—संघ का ध्येय यह होगा कि सत्यतापूर्ण तथा अहिंसात्मक उपायों के द्वारा हिन्दूसमाज में पैठी हुई अस्पृश्यता और तज्जनित उन बुराइयों तथा बाधाओं को दूर किया जाय जिनका सामना तथोक्त अस्पृश्यों अर्थात् हरिजनों को आज पग-पग पर करना पड़ता है, और उन्हें शेष हिन्दू-समाज की **बिल्कुल बराबरी का दरजा** दिलाया जाय।

३—अपने इस ध्येय को सफल बनाने के लिए हरिजन-सेवक-संघ भारतवर्ष भर के सवर्ण हिन्दुओं के साथ सम्पर्क स्थापित करने और उन्हें यह बतलाने का प्रयत्न करेगा कि हिन्दू-समाज में आज जो अस्पृश्यता बरती जाती है उसका हिन्दूधर्म के मौलिक सिद्धांतों तथा मानवधर्म की सर्वोच्च भावना के साथ कोई सम्बन्ध नहीं; संघ, साथ ही, हरिजनों की इस प्रकार सेवा करने का प्रयत्न करेगा कि जिससे वे अपनी नैतिक, सामाजिक और आर्थिक उन्नति कर सकें।

४—संघका तमाम प्रबंधकार्य एक केन्द्रीय मंडल (सेण्ट्रल बोर्ड) के अधीन रहेगा। उसका निर्माण अगली धाराओं के अनुसार होगा।

५—केन्द्रीय मंडल में संघके अध्यक्ष, मंत्री और खजानची के अतिरिक्त निम्नलिखित सदस्य होंगे :—

(क) तमाम प्रांतीय बोर्डों के अध्यक्ष, अपने पद की हैसियत (एक्स-आफिसियो) से;

(ख) अन्य सदस्य, जो १५ से अधिक न होंगे और जिन्हें संघ का अध्यक्ष नामजद करेगा।

६—केन्द्रीय मंडल की बैठक में उपस्थित न हो सकने की हालत में, प्रांतीय बोर्ड का अध्यक्ष अपने मंत्री या बोर्ड के किसी भी सदस्य को बोर्ड की बैठक में शरीक होने के लिए बतौर अपने प्रतिनिधि के नियुक्त कर सकेगा, और इस प्रकार नियुक्त किया गया व्यक्ति उस बैठक में हर प्रकार से केन्द्रीय मंडल का सदस्य माना जायगा।

७—बोर्ड का अध्यक्ष हर तीसरे साल अपने पद से हट जायगा, पर तत्कालीन बोर्ड के द्वारा वह पुनर्निर्वाचित हो सकेगा।

८—मंत्री अथवा मंत्रियों तथा खजानची को नियुक्त और अलग करने तथा उनकी जगह पर दूसरे व्यक्तियों को नियुक्त करने का अधिकार अध्यक्ष को होगा, बशर्ते कि मंत्रियों की संख्या तीन से अधिक किसी हालत में न हो।

९—केन्द्रीय बोर्ड का अध्यक्ष जिस प्रांत में जितने बोर्डों या एजेन्सियों की आवश्यकता समझेगा उतने बोर्ड या एजेन्सियां उस प्रांत में बना दी जायेंगी।

१०—प्रत्येक प्रांतीय बोर्ड के अध्यक्ष का निर्वाचन केन्द्रीय बोर्ड का अध्यक्ष करेगा, और प्रांतीय बोर्ड का अध्यक्ष अपने बोर्ड के लिए जिन सदस्यों को चुनेगा उनकी संख्या १५ से अधिक न होगी—इन १५ में, जहां प्राप्य हो सके, ५ ऐसे सदस्य होंगे, जो अपना पूरा समय हरिजन-कार्य में देते हों।

११—प्रांतीय बोर्ड का अध्यक्ष अपने बोर्ड की कार्य-व्यवस्था के लिए बोर्ड के सदस्यों में से किसी एक को कार्यवाहक मंत्री नियुक्त करेगा। पर उस नियुक्ति की स्वीकृति उसे केन्द्रीय बोर्ड के अध्यक्ष से लेनी होगी।

१२—हरिजन-कार्य के निमित्त जितनी भी कमेटियों या एजेंसियों की जरूरत समझी जायगी, उतनी कमेटियों या एजेंसियों के बनाने का हरएक प्रांतीय बोर्ड को अधिकार होगा।

१३—आफिस के पदाधिकारियों, एजेन्टों तथा केन्द्रीय बोर्ड, प्रांतीय बोर्डों और कमेटियों के सदस्यों को—

(क) परिशिष्ट (अ) में दिये हुए प्रतिज्ञापत्र पर सही करनी होगी,

(ख) अगर वे केन्द्रीय बोर्ड के सदस्य हैं, तो उन्हें १२) वार्षिक पेशगी चन्दा देना होगा, प्रांतीय बोर्डवालों और एजेंटों को ६) वार्षिक पेशगी चन्दा देना होगा, और दूसरी तमाम कमेटियों के सदस्यों को ३) वार्षिक पेशगी चन्दा देना होगा (अध्यक्ष अपनी कार्यसीमा के अन्दर खास तौर पर किसी सदस्य को चन्दा देने से मुक्त कर सकता है), और

(ग) उन्हें खुद कोई-न-कोई ऐसी निश्चित हरिजन-सेवा करनी होगी, जिसे कि वे अपने लिए पसन्द कर लेंगे और जिस पर उनका बोर्ड मंजूरी देदेगा।

१४—चल और अचल संपत्ति को प्राप्त करने तथा उसकी व्यवस्था करने का संघ को पूरा अधिकार होगा। ऐसी तमाम संपत्तियां केन्द्रीय बोर्ड के अध्यक्ष-द्वारा नियुक्त एक या एकाधिक स्थायी ट्रस्टियों के अधीन रहेंगी। केन्द्रीय बोर्ड में स्वीकृत प्रस्तावों के अनुसार ही ट्रस्टी उन संपत्तियों का उपयोग करेंगे।

१५—केन्द्रीय बोर्ड या संघ की किसी कमेटी या एजेंसी का रुपया-पैसा एक या एकाधिक बैंकों में संघ के नाम से जमा रहेगा, और स्वयं अध्यक्ष या एजेंटों अथवा उनके नामजद किये हुए व्यक्तियों को उसके निकालने व जमा करने का अधिकार होगा।

१६—केन्द्रीय मंडल की बैठक साल में कम-से-कम एक बार भारत के किसी भी सुविधाजनक स्थान में हुआ करेगी। कोरम दस सदस्यों का होगा।

१७—केन्द्रीय बोर्ड को अपने तथा प्रान्तीय बजट बनाने और उन्हें पास करने के, तथा संघ के रुपये-पैसे को जमा करने, खर्चने और हिसाब-किताब जाँच कराने के, और उसके कार्य संचालन के सम्बन्ध के उपनियम बनाने का पूरा अधिकार होगा।

१८—जिन देशी राज्यों में काम करने की मनाही न हो, वहाँ केन्द्रीय बोर्ड अपना कार्य-प्रसार कर सकता है।

१९—केन्द्रीय या प्रान्तीय अथवा किसी कमेटी का सदस्य, अपने पद पर रहते हुए, सविनय अवज्ञा के आंदोलन में भाग न ले सकेगा।

२०—किसी बोर्ड या कमेटी का सदस्य जो बिना कोई उचित कारण दिखलाये अपने बोर्ड या कमेटी की लगातार तीन बैठकों में असालतन उपस्थित न होगा वह अपने पद से पृथक् हुआ समझा जायगा।

२१—किसी बोर्ड या कमेटी का सदस्य अपने प्रामाणिक अधिकारी के दिये हुए आदेशों का अगर पालन न करेगा, तो उसे केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय बोर्ड उसके पद से हटा सकता है।

२२—कोई भी व्यक्ति जो संघ के उद्देश को मानेगा और संघ को पैसा देने व दिलाने और अन्य किसी प्रकार से संघ के उद्देश को सफलीभूत बनायगा वह संघ का सहायक (असोसियेट) हो सकता है, और समय-समय पर संघ की कार्यवाहियों से वह सूचित किया जाता रहेगा, और केन्द्रीय या प्रान्तीय बोर्डों की बैठक में उसे उपस्थित होने का अधिकार रहेगा। मगर उसे वोट देने का अधिकार न होगा।

२३—केन्द्रीय और प्रान्तीय बोर्ड तथा कमेटियाँ देश की अन्य हरिजन-संस्थाओं के साथ अपना संपर्क स्थापित करेंगी; और उन्हें अपने सलाहकारों की सूची भेजने के लिए आमंत्रित किया जायगा, जिन्हें कि संघ के तमाम कार्यों से सूचित किया जाता रहेगा।

२४—हरएक बोर्ड या कमेटी में उसके सिद्धान्त के अनुकूल उतने हरिजन सदस्य रहेंगे, जितने कि यथासम्भव मिल सकेंगे—शर्त यह होगी कि उन्हें धारा १३ के खंड (क) में उल्लिखित प्रतिज्ञापत्र की जगह परिशिष्ट 'आ' में दिये हुए प्रतिज्ञापत्र पर अपनी सही करनी पड़ेगी। और उक्त धारा के खंड (ख) के उल्लेखानुसार वे चन्दा देने से मुक्त कर दिये जायँगे।

२५—संघ की कार्यव्यवस्था और भी सुचारु रूप से चलाने के लिए संघ का अध्यक्ष केन्द्रीय बोर्ड के सदस्यों में से सात सदस्य चुनकर उनकी एक कार्यकारिणी कमेटी बना देगा; इन सात सदस्यों में कमेटी के सभापति के रूप में अध्यक्ष स्वयं तथा उसके दो मंत्री भी होंगे।

२६—हर तीसरे महीने और जब भी जरूरी हो तब उक्त कार्यकारिणी कमेटी की बैठक हुआ करेगी, और जो काम केन्द्रीय बोर्ड करेगा उन सब के करने का अधिकार कार्यकारिणी कमेटी को होगा, मगर केन्द्रीय बोर्ड को यथासम्भव कमेटी की कार्यवाही में संशोधन करने का अधिकार होगा।

२७—अध्यक्ष और मंत्रियों को छोड़कर उक्त कमेटी के चारों सदस्य कमेटी से प्रति वर्ष हट जायँगे, पर वे पुनर्निर्वाचित हो सकेंगे।

२८—इससे पूर्व विधान के अनुसार अबतक जो तमाम काम जायज तरीके से हुए और जो काम आज हाथ में ले रखे हैं उन सब को मंजूर किया जाता है।

२९—उक्त धाराओं के अनुसार पुराना विधान अब रद्द किया जाता है।

३०—केन्द्रीय बोर्ड को समय-समय पर दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से विधान में संशोधन करने का अधिकार होगा, बशर्ते कि वह संशोधन संघ के ध्येय के प्रतिकूल न हो।

३१—विधान के इस परिवर्तन-काल में जबतक इस नये विधान के अनुसार परिवर्तन न हो जायँगे, तबतक संघ के मौजूदा बोर्ड पूर्ववत् काम करते रहेंगे।

३२—यह विधान, ३ जनवरी, १९३५ से अमल में लाया जायगा।

परिशिष्ट (अ)

मैं (पूरा नाम, उम्र, धंधा, सकूनत) इस बात में विश्वास करता हूँ कि हिन्दूसमाज में आज जिस रूप में अस्पृश्यता बरती जाती है उसे जड़मूल से नष्ट कर देने की आवश्यकता है, और हरिजन-सेवक-संघ के विधान को स्वीकार करता हूँ। मैं स्वयं किसी व्यक्ति को उसके जन्म या जाति के कारण अस्पृश्य नहीं समझूँगा।

मैं किसी मनुष्य को अपने से दरजे में नीचा नहीं समझता, और अपने इस विश्वास पर चलने का मैं भरसक प्रयत्न करूँगा।

हर साल ...... रुपये बतौर वार्षिक चन्दे के पेशगी दे दूँगा; (वर्ष १५ जनवरी, १९३५ से आरम्भ होगा।)

इसके अलावा मैं हरिजनों की निम्नलिखित सेवा स्वयं अपने शरीर से करूँगा —

तारीख, हस्ताक्षर

स्थान

परिशिष्ट (आ)

मैं (पूरा नाम, उम्र, धंधा, सकूनत) हरिजन-सेवक-संघ के कार्य में विश्वास करता हूँ और उसके विधान को स्वीकार करता हूँ।

हरिजनों के बीच मैं किसी भी रूप में किसी भी तरह की अस्पृश्यता न मानूँगा।

मैं किसी मनुष्य को अपने से दरजे में नीचा नहीं समझता, और अपने इस विश्वास पर चलने का मैं भरसक प्रयत्न करूँगा।

इसके अलावा मैं हरिजनों की निम्नलिखित सेवा स्वयं अपने शरीर से करूँगा :—

तारीख,

स्थान हस्ताक्षर

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि
वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)
पता—
हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369.

हरिजन-सेवक

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

एक प्रति का
मूल्य -)

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, २५ जनवरी, १९३५. [संख्या ४९

विषय-सूची

राजस्थान के भील

मेरे अनुरोध से मेरे एक मित्रने राजस्थान के भीलों की वर्तमान दशा का चित्र लिखकर भेजा है। यह भाई इस प्रांत के पुराने ग्राम-सेवक और तेजस्वी किन्तु प्रायः अज्ञात कार्यकर्त्ता हैं। गांधीजी के विचारों और कार्योंने जिन हजारों देशभक्तों के जीवन और सेवा-पद्धति पर असर डाला है उनमें से यह भी एक हैं। कुछ साथियों-सहित उनको भी यह विश्वास हो गया है कि दरिद्र-नारायण की सेवा उनके जीवन से तादात्म्य रखकर ही हो सकती है। इसी विश्वास के अनुसार यह भाई भीलों के बीच जा बैठे हैं और वर्तमान सभ्यता की सुविधाओं से कोसों दूर एक गांव में हरिजनों और भीलों में शिक्षा-प्रचार और औषधि-वितरण का काम कर रहे हैं। वह अपने ७-१२-३४ के पत्र में लिखते हैं :—

'पहले हमने एक कस्बे में डेरा डाला था। वहां हरिजनों और भीलों की आबादी तो काफी थी, परन्तु शहरी हवा के कारण वे सदाचार से गिरे हुए दीखे। शहरियों के संसर्ग से उन्होंने अपनी बुद्धि भी दूसरों को बेच दी है। यहां बैठने से हमें इतना लाभ अवश्य हुआ कि ग्रामीण हरिजनों और भीलों से हमारा परिचय हो गया। उसी के फलस्वरूप हमें वर्तमान स्थान में पाठशाला खोलने में इतनी जल्दी सफलता मिल गई। एक प्रकार से ग्रामवासियों के आग्रहपूर्ण निमंत्रण पर ही हम यहां आकर बसे हैं। हमारी पाठ-शाला में १५भील, ४ ढोली और १ चमार, कुल २० लड़के आते हैं।

क्षेत्र-परिचय

भीलों के गांव प्रायः दूर-दूर बसे हुए घरों के समूह होते हैं। इन्हें 'पाल' कहते हैं। हमारा गांव छः-सात मील के घेरे में फैला हुआ है। आबादी ८० घरों की है। इसके चारों ओर पास-पास कई गांव हैं, जिनमें सवर्णों, हरिजनों और भीलों की मिली हुई बस्ती है। इस राज्य में मेहतरों के सिवाय अन्य सब हरिजन भील आदि जातियों को साथ पढ़ने की छूट है, मगर ये लोग सरकारी पाठशालाओं से लाभ बहुत कम उठाते हैं।

ऋण

कामुलकर्चों, मौसर आदि कुरीतियों तथा बोहरों फसल और बोहरों की लूट के कारण भील लोग बहुत कर्जदार हैं, इन्हें १२॥) रुपये सैकड़ातक मासिक व्याज देना पड़ता है। और लोगों से नकद का ही व्याज लिया जाता है, भीलों से कपड़े का भी लिया जाता है। चमारों आदि का भी यही हाल है।

रहन-सहन

तीन-चार टूटली-सी खाटें, एक दो लोटे, एक कांसे का कटोरा, एकाध थाली, कुछ मिट्टी के बर्तन और कुठियां बस, यही भील गृहस्थ का सामान होता है। वस्त्रों का यह हाल है कि माघ-पूस की सर्दी में भी पुरुष अपनी धोती और स्त्रियां अपनी साड़ी ओढ़-कर खाट को उलटी बिछाकर पड़ रहते हैं। घर में ही थूकते हैं। तम्बाकू पीते हैं। मिल के कपड़े का रिवाज खूब फैल गया है। खेती की जमीन इनके पास अच्छी नहीं है। रहते पहाड़ी पर हैं और नीचे की समतल धरती हांक लेते हैं। आधे बिस्वे से एक बीघातक इनके खेत का रकबा होता है। ८० परिवारों में से १० के पास कुएँ हैं। इनमें से केवल दो में ही खेत को सिंचाने-पुरता पानी है। बाकी में तो गरमी में पीने को भी काफी नहीं रहता। जिस के पास पांच-सात भैंसें और १० पन्द्रह गायें हों वह सम्पन्न परिवार समझा जाता है। साधारणतः दो-तीन पशु हर घर में होते हैं। पशुओं की आमदनी का यह हाल है कि एक भैंस का एक महीने का घी एक रुपये का उतरता है। गायें चार मास दूध देती हैं और वह भी आध सेर रोजाना। बालोर की बेल और तम्बाकू के पौधे इनके आंगन की शोभा हैं। रास्ते गाड़ियों के लिए ही अलग हैं, बाकी आमदरफ्त घरों के आंगनों में से होती है। एक घर के तीन भाग होते हैं। आधे में पशु रहते हैं और शेष के बीच में कोठी डालकर एक तरफ दम्पति और दूसरी ओर वृद्ध माता और बच्चे गुजर करते हैं।

आहार

१५ फी सदी बच्चों के सिवाय किसी को भील-परिवार में दो पहर दिन चढ़ेतक खाने को नहीं मिलता। जाड़ों में दो बार खाते हैं। दो पहर को रोटी और रात को राब या मक्की की खील मिलती है। गरमी में केवल एक बार दो पहर को महुआ और चने उबालकर खाये जाते हैं। दूध-घी नहीं मिलता। साग में कभी-कभी बालोर की फलियां मिल जाती हैं। वैसे सदा तो पत्थर पर नमक-मिरचा पीसकर उसीकी चटनी से काम चलता है। इतने पर भी आतिथ्य इनका जबरदस्त है। घर में तीन प्राणियों के लिए ६ रोटियां पकी हों और ५ आदमी और आ जायें तो सबको समान भाग करके खिला देंगे। 'उच्च' वर्ण के मेहमानों के लिए ये तांबे के घड़े रखते हैं, क्योंकि इनके हाथ का मिट्टी के घड़ों में लाया हुआ पानी सवर्ण नहीं पी सकते।

रीति-रिवाज

एड़ी से घुटनेतक कासा-पीतल मिश्रित धातु की पैंजनिया ही भील स्त्रियो का मुख्य गहना है। किसी-किसी के गले म चादी की हँसली भी नजर आती है। साडी-लहँगा उनकी पोशाक है और एक ही जोडी रहती है। पति और उससे बडे पुरुषो से स्त्रिया घूघट काढती हैं, परन्तु बोलने की सब के साथ स्वतत्रता है।

८० मे से चार-पाच घर चोरी करते है। झूठ बोलने की बुराई तो खूब फैली हुई है, परन्तु व्यभिचार का नामोनिशान तक नही है। शादी-ब्याह मे बीस-बीस रुपये की शराब खर्च हो जाती है। होली-दिवाली पर तो सभी पीते है। मगर स्त्रियां मास खाती हैं, दारू नही पीती।

बोहरे, सिपाही, भूत, चुडैल और देवी-देवता से ये लोग बहुत डरते है। बीमारियो को देवताओ का ही कोप समझते है। दवा नही करते, देवताओ को मनाने का प्रयत्न करते हैं।

इनके नाम साधारणत सातो वारो पर और कभी-कभी विशेष पदार्थों पर रखे जाते है। उदाहरणार्थ, रविवार को पैदा होनेवाले बच्चे को 'दीता' कहेगे और खाद को देखकर 'खातरा' नाम रख देगे।

मृत्युभोज पर भीलो में सबसे अधिक अपव्यय होता है। इसका आधा हिस्सा घरवाले देते है और आधा 'पाल' वाले चन्दा करके दे देते है। विवाह मे वरपक्ष कन्या के पिता को ८२) रुपये देता है। सधवा यदि दूसरे के घर बैठना चाहे तो नया पति पुराने को २००) रुपये देता है। विधवा के सिर्फ ३०) ही लिये जाते है।

सफाई का इन्हे ज्ञान नही है। घर, शरीर और कपडे-लत्ते बडे गंदे रहते है। स्नान और दातुन का रिवाज नहीं है। शौच के बाद स्थान पर सफाई नही करते। जूठा क्या होता है, ये लोग नही जानते।

ये लोग हनुमानजी के बडे भक्त है। उन्हे 'बाबाजी' के नाम से पुकारते है। द्विज अतिथि के आने पर खाट से उतर पडते है। ऋण चुकाना अपना धर्म समझते है।

शिकार में 'हाका' देना और सडके वगैर साफ करने के काम इन्हे बेगार मे करने पडते है।

हमारा सेवा-कार्य

मै अबतक ३०० घरो के लगभग १००० स्त्री-पुरुषो से मिल चुका हूँ। राजधानी तक उस 'पाल' का सम्बन्ध होने के कारण दस हजार भीलो की आबादी के गांव में हमारा परिचय हो गया है। पाच स्थानों मे शिक्षको के लिए भोजन-वस्त्र की माग की है। एक गावने माग मजूर भी करली है। हमारी औषधियो से जिन ढोलियों को लाभ हुआ है वे हमारे प्रचारक बन गये है। यही लोग भीलो के भाट होते है। यहा के भील जब दूसरे गाव जाते है तो पाठशाला मे लडके भेजने की दूसरो से भी प्रेरणा करते है।

खादी-प्रचार—विशेषत: वस्त्रस्वावलम्बन-पद्धति से—करने के लिए यहा खासा क्षेत्र है। समाज-सुधार और ऋण-निवारण के काम की बडी गुजायश है और जरूरत भी है।

हमारा कार्य शुद्ध सेवाभाव से हो रहा है और साम्प्रदायिक एवं राजनीतिक झगडो से अलग रहने की हमने अपनी मर्यादा बना ली है। अतः राज्य की ओर से भी हमें कोई अड़चन नही आ रही है। हमारा विश्वास है कि अगर हम इस भाव और मर्यादा की सचाई से रक्षा कर सके तो हमारे मार्ग में इस ओर से कोई बाधा नही आयगी।

रामनारायण चौधरी

हरिजनोंका हिंदूधर्मशास्त्रों में स्थान

[काशीस्थ एक सनातनधर्मी आचार्य-द्वारा]

'हरिजन-सेवक' के पाठकों को यह बात भली भाति विदित है कि महात्मा गाधीने जब से हरिजन-आन्दोलन प्रारम्भ किया है तब से समस्त समाज में एक प्रकार की क्रांति-सी मच गयी है। विशेषकर हमारे सनातनधर्मी विद्वानो में इसकी बड़ी चर्चा रहती है। श्रुति-स्मृति-विचारो पर दृढ श्रद्धा रखनेवाले कुछ विद्वानोने इसकी ओर अपनी दृष्टि डाली भी है, जिसके फलस्वरूप हरिजन-सेवक के पाठको को इस विषय के बहुत-से लेख दृष्टिगोचर हुए होगे।

मेरे चित्त मे बहुत दिन से यह बात घर कर गयी है कि गाधीजी जो बात कहते हैं उसके मूल में अवश्य सत्य छिपा रहता है। इस कारण उनका यह कहना कि, 'सनातनधर्मशास्त्रो मे स्पृश्यास्पृश्य का वर्तमान स्वरूप कदापि नही हो सकता' अवश्य सत्य होगा। इसी विचार से मैंने वेद से लेकर धर्मशास्त्रतक अधिकाश पुस्तकों मे बडी रुचि के साथ हरिजनो के विषय मे जो गवेषणा की है, उसी के परिणामस्वरूप यह छोटा-सा लेख आप लोगो के सामने उपस्थित कर रहा हूँ। आशा है, इससे अवश्य हमारे सनातनधर्मी भाइयो को धर्मशास्त्र तथा प्राचीन समाजिक व्यवहारो मे हरिजनो का क्या स्थान है यह बात भली भाति विदित हो जायगी। यदि किसी भाई को इस विषय मे सन्देह हो और वह अपने विचार प्रकट करे तो मै उनका उत्तर यथाशक्ति देने का यत्न करूँगा। मेरा विचार है कि इस विषय पर पुस्तकाकार एक निबन्ध भी लिखू, ईश्वर की इच्छा हुई तो वह भी यथा-समय प्रकाशित कर सकूगा।

"रुचं नोधेहि ब्राह्मणेषु, रुचं राजसु नस्कृधि ;
रुचं विश्येषुशूद्रेषु, मयिधेहि रुचारुचम् ।" ॥१॥
"समानीप्रपा सहवोऽन्नभागः, समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि;
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्य्यतारा, नाभिमिवाभितः" ॥२॥
"समानी व आकूतिः, समाना हृदयानि वः, समानमस्तु;
वो मनो यथा वः सुसहासतिः ।" ॥३॥
"समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सह
चित्तमेषां, समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः, समानेन वो
हविषा जुहोमि ।" ॥४॥

अर्थात् "हमारे ब्राह्मणो मे प्रकाश प्रदान करो, हमारे क्षत्रियों में दीप्ति दो, वैश्यो और शूद्रो में कान्ति, सौन्दर्य और तेजस्विता का विस्तार करो, मुझमें भी इन बातो का आधान करो" ।१। ईश्वर कहता है कि,—हे मनुष्यो ! तुम्हारे जल का विभाग समान हो, तुम्हारे अन्न का बटवारा बराबर हो, तुम सभी को मै समान जुए मे (कार्यक्षेत्र में) लगाता हूँ। तुम लोग समानरूप से समाज मे चलते हुए मेरे देदीप्यमान तेज अग्नि की पूजा किया करो, और तुम लोग आपस में परस्पर इस प्रकार सुसंगठित रहो, जैसे गाड़ी के नाभी के पहिये मे उसकी आरे-कमानी सुसगठित रहती है ।२।

"तुम्हारे सकल्प (ख्यालात) समान (एक-से) हो, तुम्हारे हृदय समान हो, तुम्हारे मन (सोच-विचार, सब कार्यकलाप) समान हो, जिससे तुम लोग सुखपूर्वक अपने समाज मे उठ-बैठ सको और रह सको" ।३। तुम्हारे परामर्श समानता के द्योतक हों, तुम्हारी सभाएँ समान हों, चित्त (स्मृति) के साथ मन भी तुम्हारे

समान हों, मैं तुम लोगों को समान चिन्तन की ओर लगाता हूँ, मैं तुम लोगों को समान हविष् अन्नपानादि वस्तुएँ प्रदान करता हूँ।४।"

वेद के ये दो-चार मन्त्र नमूने के तौर पर आपके सामने रखे गये हैं, जिनका अर्थ बहुत ही सरल और उदार है। इनसे आपके प्राचीन हिन्दू (आर्य) धर्म (मर्यादा का स्वरूप-चित्र) स्पष्ट आखो के सामने आ जाता है। कितने उदात्त और गम्भीर विचार हमारे वेदों में भरे पड़े है! प्राचीन हिन्दूधर्म (मर्यादा, सभ्यता, संस्कृति) में जहां परस्पर वर्णव्यवस्था-द्वारा बाह्य कार्यपद्धति का यथार्थ रूप में विभाग था, वहां आन्तरिक भावो का एक सूत्र में परस्पर सुंदर संग्रथन भी था। प्रार्थना के मन्त्रों के विषय में एक बड़ी बिलक्षणता हिन्दूधर्मग्रन्थों में दीख पड़ती है और वह यह कि कहीं भी एकवचनान्त पदों का प्रयोग नही है। सभी जगह जहा देखिए वहा 'अस्मद्' शब्द के बहुवचन के ही रूप दीख पड़ते है। (रुच नो धेहि) 'नो' (अस्माक) तथा (मह 'वोऽप्रभाग.) (युष्माक) (समानी वः आकूतिः) (व युष्माक) इत्यादि सभी जगहो में बहुवचनान्त ही 'युष्मद्' या 'अस्मद्' शब्द आता है, जिससे ज्ञान होता है कि, हिन्दूप्रजामात्र एकदिल, एक देवोपासक है और ईश्वरविषयक भक्ति सब मे समान है।

ईश्वर का भी यही आदेश है कि, "हे मनुष्यो! तुम सभी एक प्रकार का संकल्प करो, एक प्रकार का हृदय रखो इत्यादि।"

इन मन्त्रो मे स्पष्ट ही प्रतीति हो रही है कि, ईश्वर की आज्ञा हम लोगों को परस्पर समानता का व्यवहार करने के लिए ही है। इस विषय मे तो हिन्दू वैदिक ग्रन्थो का भाव साफ ही उदारतापूर्ण है। इसम लेशमात्र भी सन्देह नही। अब सनातन-हिंदूधर्म के सर्वमान्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवत को देखिए।

श्रीमद्भाग०, ३ स्कन्ध, २९ अ० कपिल-देवहूति-सवाद मे आया है :—

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्माऽवस्थितः सदा।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्॥२१॥
यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्चां भजते मौढ्यात् भस्मन्येव जुहोति सः॥२२॥
द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति॥२३॥
अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयं।
अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा॥२७॥

मैं सभी प्राणियो में जीवात्मारूप से बैठा हूँ। उस जीवात्मा का (स्वरूपत मेरा ही) जो अपमान करता हो और मन्दिर में दिनभर मेरी पूजा किया करता हो वह केवल विडम्बनामात्र है। उससे मैं प्रसन्न होने का नहीं।

जो सभी प्राणियो मे जीवात्मारूप मे बैठे हुए मुझ ईश्वर को छोडकर मूर्खता के कारण मन्दिरो मे मेरी पूजा करता फिरता है वह तो भस्म मे हवन करने के बराबर है।

दूसरे प्राणियो में रहनेवाले मुझसे तो द्वेष करे, स्वय अभिमानी हो, परस्पर भेदबुद्धि को ही प्रश्रय देता हो, ऐसे पुरुष का बराबर दूसरों से बैर-विरोध रहता है, और किसी प्रकार भी उसका मन शान्ति नहीं पा सकता।

इसलिए सब प्राणियों के हृदय-मन्दिर में रहनेवाले मेरी पूजा को, सब से मैत्री और अभेदभाव के व्यवहार के साथ उनका दान-मान के द्वारा सत्कार करके, करे।

इत्यादि वचनो से सबके साथ समानता का ही व्यवहार करना सिद्ध होता है।

श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के द्वितीयाध्याय मे लिखा है :—

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः॥

जिसकी दृष्टि मे यह अपना है, यह पराया है ऐसा भेद धन, जन या किसी भी विषय में प्रतीत न होता हो और जो स्वय शान्त हो, सभी जीवों के साथ समानता का भाव रखता हो, वही सर्वोत्तम श्रेष्ठ भगवद्भक्त है।

इत्यादि बहुत-से वचन हैं, जिनसे यह भली भांति सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन आर्य्य (हिन्दू) मर्य्यादा (धर्मशास्त्रों) में वर्तमान समय का भाव बिल्कुल नहीं था। वहा उदारता और दयालुता का साम्राज्य देखने में आता है। जीवो के कल्याण के लिए वे आर्य्य सब प्रकार की सुविधाएँ देने को उद्यत रहते थे। मनुमहाराजने अपनी स्मृति मे ब्राह्मण से लेकर चाण्डालपर्यन्त सभी जातियो को चार ही श्रेणियो मे विभक्त किया है—

अस्मिन् धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम्।
चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैव शाश्वतः॥१।१०७॥

इस धर्मशास्त्र में चारो वर्णो के सदा के लिए आचार, कर्त्तव्य, धर्म, और गुणदोष प्रभृति सभी आवश्यक बाते बताई गयी है। इससे यह बात तो स्पष्ट है कि मनुमहाराज की दृष्टि में चार वर्ण के अतिरिक्त पचम वर्ण कोई दूसरा नही है। आगे चलकर तो उन्होने स्पष्टतया पचम वर्ण की सत्ता का ही निषेध किया है—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्तितु पञ्चमः॥१०।४॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार ही वर्ण है। चौथे शूद्र का एक ही जन्म होता है, अर्थात् उसका उपनयनरूप द्वितीय जन्म नही होता। और पचम वर्ण तो कोई है ही नही।

इस श्लोक से मनुमहाराज साफ शब्दो मे पचम वर्ण की सत्ता का निषेध करते है। और इस प्रकार वे सत् शूद्र, असत् शूद्र इत्यादि आधुनिक भेदो को एक शूद्र शब्द से ही पुकारते हुए आगे चलकर उसके कल्याण का मार्ग भी बताते हैं।

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः।
मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च॥

धर्म के रहस्य को जानकर धर्म करने की इच्छा रखनेवाले और अच्छे लोगो के किये हुए शिष्टाचारो के करनेवाले शूद्र मंत्ररहित (न पढ सकने के कारण) भी यदि अपने योग्य सस्कार यथा पंचमहायज्ञ प्रभृति कर्त्तव्यो को करे तो वे दोषी नहीं होते, बल्कि लोक में प्रशंसा के पात्र बनते हैं, इत्यादि।

[क्रमश.]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार २५ जनवरी १९३५

आरंभ कैसे करें ?

बहुत-से सज्जन तो पत्र लिख-लिखकर और अनेक मित्र खुद मुझसे मिलकर यह प्रश्न पूछ रहे हैं कि किस प्रकार तो हम ग्राम-उद्योग-कार्य का आरंभ करें और सब से पहले किस चीज को हाथ में लें।

इस का स्पष्ट उत्तर तो यही है कि, "इस कार्य का श्रीगणेश आप खुदही करें, और सब से पहले उसी काम को हाथ में लें, जो आप को आसान-से-आसान जान पड़े।"

पर इस सूत्रात्मक उत्तर से पूछताछ करनेवालों को सतोष थोड़े ही होता है। इसलिए इसे मैं जरा और स्पष्ट करदू।

हम मे से हरेक आदमी खाने-पीने, पहनने-ओढने और अपने नित्य के उपयोग की चीजों को जाच-परख सकता है, और विलायती अथवा शहर की बनी चीजों की जगह वह ग्रामवासियों की बनाई हुई उन चीजों को काम मे ला सकता है, जिन्हे कि वे अपनी मढैया मे या खेत-खलिहान मे चार-छै पैसे के मामूली औजारों से सहज ही तैयार कर सकते हैं। इन औजारों को वे लोग आसानी से चला सकते हैं और बिगड़ जायें तो उन्हे सुधार भी सकते हैं। विदेशी या शहर की बनी चीजों की जगह गांवों की बनी चीजों को आप काम मे लाने लगें, तो ग्रामउद्योग-कार्य का यह बड़ा अच्छा आरंभ होगा और आपके लिए यह खुदही एक बड़े महत्व की चीज होगी। इसके बाद फिर क्या करना होगा, यह तो आप ही मालूम हो जायगा। मान लीजिए कि आजतक कोई बबई के किसी कल-कारखाने के बने टूथब्रश से दात साफ करता आ रहा है। अब उसकी जगह वह गाव का बना टूथब्रश चाहता है। तो उसे आप बबूल या नीम की दतौन से दांत साफ करने की सलाह दें। अगर उसके दांत कमजोर हैं या दात हैं ही नहीं, तो वह दतौन का एक सिरा तो लोढी या हथौडी से कुचल ले, और दूसरे सिरे को चीरकर उसकी फाकों से वह जीभी का काम ले सकता है। दतौन का यह ब्रश उसे सस्ता भी काफी पड़ेगा और कारखानों के बने हुए रोगोत्पादक ब्रशों से वह स्वच्छ भी अधिक होगा। शहरों के बने दतमजनों को तो वह छुएगा भी नहीं। वह तो लकड़ी के कोयले को खूब महीन पीसकर और उसमें थोड़ा-सा साफ नमक मिलाकर अपने घर मे ही बड़ा बढ़िया मंजन तैयार कर लेगा। मिल के बने कपड़े के बजाय वह गाव की बुनी खादी पहनेगा, मिल के दले चावल की जगह हाथ के दले बिना पॉलिश किये चावल का और सफेद शक्कर के स्थान पर गाव के बने गुड़ का वह उपयोग करेगा। इन चीजों को मैंने यहां बतौर नमूने के ही लिया है और इन की चर्चा यद्यपि मैं 'हरिजन-सेवक' में पहले कर चुका हूँ, तो भी इस विषय पर मेरे साथ जिन लोगों की लिखा पढ़ी या बातचीत चल रही है उनकी बताई हुई कठिनाइयों को दृष्टि में रखकर मैंने पुनः खादी, चावल और गुड़ का यहां उल्लेख किया है। जैसे, कुछ लोग चावल के विषय में कहते हैं, कि 'हाथ का दला चावल मिल के चावल से बहुत महँगा पड़ता है।' फिर दूसरे लोगों का यह कहना है कि, 'हाथ की दलाई का हुनर लोग भूलभाल गये हैं, न कहीं आज चक्कियां ही मिलती हैं, न दलनेवाले।' एक तरफ तो यह शिकायत है, और दूसरी तरफ लोग यहांतक कहते हैं, कि 'हमारे उधर तो मिलका दला चावल कभी दिखता भी नहीं। हाथ का दला चावल हम रुपये का ११ सेरतक दे सकते हैं।' ये सब कथन सही भी हैं और गलत भी। सही तो उस हदतक हैं, जहांतक कि उनका अपने जिले के अनुभव से सम्बन्ध है। और इस दृष्टि से सारे कथन गलत हैं, कि वास्तविक सत्य का उन्हें पता नहीं। मुझे इस सिलसिले में नित्य ही आश्चर्यजनक अनुभव हासिल हो रहे हैं। ये सब अनुभव तभी प्राप्त होते हैं, जब मनुष्य किसी चीज का आरंभ खुद ही कर देता है। अबतक चावल के सम्बन्ध मे मैंने जो विचार या निरीक्षण किया है उसका यह परिणाम आया है।

बाजार मे ऐसा चावल दुर्लभ है, जिस पर जरा भी पॉलिश या चिलक न हो। पॉलिश का जिस चावल पर नाम निशान भी नहीं होता वह देखने मे भी सुंदर होता है, और पौष्टिक तथा स्वादिष्ट भी होता है। इस चावल की बराबरी मिलें कभी नहीं कर सकतीं। चावल दलने का बड़ा सीधा-सादा तरीका है। ज्यादातर धानें तो बिना किसी कठिनाई के हलकी सी चक्कियों मे दली जा सकती हैं। हां, कुछ ऐसी धानें हैं जिनकी भूसी दलने से अलग नहीं होती। ऐसी धान की भूसी निकालने का सबसे अच्छा तरीका तो यह है, कि पहले उसे हम थोड़ा उबाल लें और फिर उसकी भूसी को अलग करदें। कहते हैं, कि यह चावल अत्यधिक पौष्टिक होता है, और वह सस्ता तो होगा ही। गांववाले अपनी धान अगर खुद ही दललें, तो मिल के दले चावल से तो—फिर वह पॉलिशदार हो या बिना पॉलिश का—उनका चावल हर हालत मे सस्ता पड़ेगा। बाजार मे जो चावल बिकता है वह ज्यादातर न्यूनाधिकरूप मे पॉलिशदार ही होता है—फिर चाहे वह हथचक्की का दला हुआ हो या मिल का। जिस पर जरा भी पॉलिश या चिलक न हो ऐसा चावल हाथ का ही दला हुआ होता है, और वह उसी जाति के मिल के दले चावल से काफी सस्ता पड़ता है।

अभी पूरा-पूरा शोध तो हुआ नहीं, पर जहांतक और जितना शोध अभी हुआ है उससे तो यही प्रगट होता है कि हमारी अपराध-पूर्ण लापरवाही के ही कारण चावल खानेवाले हमारे लाखों-करोड़ो भाई नित्य निःसत्व चावल खाते हैं और पैसे के साथ-साथ अपने स्वास्थ्य को भी खराब करते हैं। ग्राम-सेवक खुद इसकी जाच करके देखें कि यह शोध, यह निरीक्षण कहांतक सत्य है। ग्राम-उद्योग-कार्य का यह आरंभ, मेरी राय मे, बुरा नहीं है।

अब आगामी अंक मे, मैं गुड़ तथा आहार की अन्य वस्तुओं और ग्राम-सेवा-कार्य के दूसरे अंग की चर्चा करूँगा।

'अंग्रेजी' से] मो० क० गांधी

उधार बनाम रोकड़

अखिल भारत चर्खा-संघ के अनेक खादी-भंडारों की व्यवस्था के सामने यह सवाल बार-बार आता है कि खादी उधार बेची जाय या नहीं। मेरी राय बहुत वर्षों से यह रही है कि केवल पारमार्थिक उद्देश से चलते हुए व्यापार में उधार बिक्री करना एक असत्य सिद्धान्त है। ऐसे परमार्थी व्यापार के संचालकों को जनता को यह बताना चाहिए कि खादी पहनने का अर्थ यह है कि

रोकड़ बिक्री की अपेक्षा उधार बिक्री में दर दाम बढ़ाकर लिया जाता है। पारमार्थिक उद्देश से चलते हुए व्यापार को जनता का कितना सहारा मिला है, इसका माप केवल रोकड़ बिक्री से ही हो सकता है। मैंने यह देखा है कि शुरू-शुरू में ऐसा करने से थोड़ी-सी झंझट होती है, पर इसमें सच्चा फायदा है। परमार्थी वृत्ति-वाले को तात्कालिक फल के ऊपर ही दृष्टि लगाकर नही बैठना चाहिए। उसे तो निश्छल और अचल श्रद्धा के साथ काम करना चाहिए। इसलिए अखिल भारत चर्खा-संघ और ऐसी अन्य संस्थाओं तथा हाल में कार्यारंभ करनेवाले अ० भा० ग्रामउद्योग-संघ की ओर से जो भंडार चलें उनके तमाम व्यवस्थापकों को मेरी तो यही पक्की सलाह है कि वे रोकड़ बिक्री के ही सिद्धांत से चिपटे रहें और उधार बिक्री बिलकुल ही बन्द करदें।

'अंग्रेजी' से] मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

वह वृद्ध ग्रामवासी

'हरिजन-कुटीर' में गांधीजी के दर्शनार्थ नित्य जो अनेक लोग आते हैं उनमें सभी तरह के मनुष्य होते हैं। कोई-कोई ऐसे भी आते हैं कि अगर उन्हें दर्शन न मिला या उनकी कोई शिकायत या तकलीफ दूर न हुई तो वे अनशन करके प्राण दे देनेतक की धमकी देते हैं—ऐसे बिगड़ेदिमागों के साथ पेश आना आसान नही। हरिजन और दूर-दूर के गावों के लोग तो गांधीजी की झांकी लेकर ही प्रसन्नचित्त अपने घर वापस चले जाते हैं। कुछ लोग केवल कुतूहलवश ही चक्कर लगा जाते हैं। अमरीका के विश्वपर्यटक लोग तो अवश्य ही यहां आयेंगे—और नही तो अपने देशवासियों को यह बतलाने के लिए ही सही कि हमने वहां 'गांधी' और 'कुतुब मीनार' को देखा था। और कुछ ऐसे भी लोग आजाते हैं कि जब वे अपनी कुतूहलता को भलीभांति तृप्त नही कर सकते तो 'हरिजन-कुटीर' के कमबख्त द्वारपालों को दुनियाभर की गालियां दे जाते हैं।

मगर कभी-कभी यहां ऐसे भी लोग आ जाते हैं कि जिनके आने से तमाम परेशानी और निराशा दूर हो जाती है और जो एक तरह का प्राणप्रद असर डाल जाते हैं और जिनका उदाहरण हमारे जीवन में एक सुंदर आशा का संचार कर देता है। उस दिन ऐसा ही एक वृद्ध पुरुष, जिसके तन पर मोटी खादी थी, गांधीजी का दर्शन करने आया था। गांधीजी के लिए वह कुछ भेंट भी लाया था। वह एक ग्रामवासी था। सबके साथ वह भी दर्शन की प्रतीक्षा में बाहर बैठ गया। मगर जब दर्शन की बाट जोहते-जोहते काफी देर हो गई, तो वह मेरे पास अंदर चला आया और बोला कि, 'क्या आप मेरी एक-दो मिनिट महात्माजी से बात करा देंगे? भाई साहब, बात यह है कि मुझे एक हजार रुपया गांधीजी के चरणों पर चढ़ाना है और उनका आशीर्वाद लेना है।' अयँ, यह दरिद्र-सा आदमी एक हजार रुपया भेंट करेगा! मुझे इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। वह आखिर एक किसान था न।

"रुपये आप पीछे से भेजेंगे या अभी अपने साथ लाये हैं?" मैंने उस ग्रामीण भाई से पूछा।

"रुपये तो मैं साथ ही लेकर आया हूं।"

गांधीजी से पूछकर ऊपर रावटी में वह ग्रामवासी उनके पास पहुंचा दिया गया। उस स्वच्छ खादीधारी वृद्ध पुरुषने गांधीजी के आगे सौ-सौ रुपये के दस नोट रख दिये और कहा—"जो सब से गरीब और सत्पात्र हो उन्हीं के अर्थ यह तुच्छ भेंट है। आप से अधिक पता ऐसे दरिद्रनारायणों का और किसे हो सकता है?"

"यह आपने बड़ा अच्छा काम किया है," गांधीजीने कहा। "पर यह तो बताओ, यह रकम कितने वर्षों में बचा-बचाकर जमा की थी?"

"बहुत वर्षों में। लेकिन मैंने सौ रुपये तो पारसाल भूकंप-पीड़ितों के लिए भेज दिये थे, और सौ रुपये आसाम के बाढ़-पीड़ितों के लिए—और चार साल हुए कि पांच सौ रुपये मैंने इलाहाबाद में किसानों की सहायता के लिए दिये थे।"

गांधीजीने प्रसन्नता के साथ आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा, "अच्छा! तब यह तो बतलाओ भाई, आपकी तनख्वाह क्या थी और पेंशन क्या मिल रही है? आप क्या काम करते थे?"

"मैं एक स्कूल में अध्यापक था। जब बहुत वर्षों के बाद मैंने अवकाश ग्रहण किया तब मुझे ५२) मासिक वेतन मिलता था। मुझे पेंशन कुछ नही मिलती, पर २७००) मुझे बतौर इनाम के मिले थे।"

"अवकाश ग्रहण किये कितने वर्ष हुए?"

"पांच वर्ष।"

"गुजर कितने रुपये में हो जाती है?"

"गुजर! शायद ही कभी ज्यादा खर्च होता हो।"

"फिर भी कुछ-न-कुछ तो खर्च होता ही होगा। बताओ न कि कितने में काम चल जाता है?"

"थोड़ी-सी दाल-रोटी में खर्च ही कितना होता है। १०) में मैं अपनी गुजर कर सकता हूँ। अब अकेला ही राम तो हूँ—न किसी की चिन्ता है, न फिकर। पहले अपने दो भतीजों की परवरिश करनी पड़ती थी। उन्हें से-पालकर पढ़ा-लिखा दिया है, और अब मैं निश्चिन्त हो गया हूँ। एक संस्कृत-पाठशाला खोल रखी है, और अधिकतर उसी में अब अपना समय लगाता हूँ। वह निःशुल्क पाठशाला है।"

"अच्छा, इस तरह आपने अपनी छोटी-सी तनख्वाह में से कुछ रुपया बचाया है, और आज उसे गरीबों के सेवा-कार्य में लगा रहे हो। यह तो बड़ी ही अच्छी बात है। क्या अच्छा हो कि हरेक मनुष्य आपसे यह परमार्थ की कला सीख ले।"

"महात्माजी, मैंने अपने ऊपर बहुत ही कम खर्च किया है, और इसीसे मैं कभी-कभी गरीबों की थोड़ी-बहुत सेवा-सहायता कर सका हूँ।"

"और यह सुन्दर खादी कहां मिली? यह तो खूब मोटी खादी है। शाल या कम्बल ओढ़ने की तो आपको अब जरूरत ही नही।"

"घर की ही बनी खादी है यह।"

"काश मैं भी आपकी तरह ऐसी ही मोटी खादी ओढ़ता," गांधीजीने कहा। अकसर गांधीजी यह सोचा करते हैं, कि क्या उन्हें ऐसी कीमती शाल ओढ़नी चाहिए, जो मालवीयजी-जैसे उनके कृपालु मित्र उन्हें आग्रहपूर्वक भेंट कर दिया करते हैं?

"मेरे पास अब भी कुछ रुपये जमा हैं, महात्माजी!" दान के हर्षातिरेक से प्रफुल्लित उस वृद्ध पुरुषने कहा। "मैं किसी दिन वह सब लाकर आपके चरणों पर रख दूंगा। मैं नहीं जानता कि यह रुपया दूं तो किसे दूं। मैं तो बस एक आपको जानता हूं, और आप अनाथ असहाय गरीबों को पहचानते हैं। मैं हृदय से आपका आभारी हूं।"

चलने लगा तो उसने गाधीजी के पैर छुए। वह तो चला गया, पर अपने पीछे एक स्थायी प्राणसचारक असर छोड गया।

इतिहास-निर्माता

और इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी अगर मै यह कहूँ कि उसी शाम को जब गाधीजी तुर्की विदुषी बेगम साहिबा खालिदा खानुम के भाषण का अध्यक्षपद ग्रहण करने जामिया मिलिया गये तो अज्ञातरूप से ही सही पर उस वृद्ध ग्रामवासी का वह जीवनप्रद असर तो उस समय भी उनके दिल पर जमा हुआ था। सभा की कार्रवाई आरभ करते हुए तुर्कस्तान की वीरागना को गाधीजी ने 'हल्दे टर्की' के नाम से सबोधित किया। टर्की के गौरव और पतन तथा उसकी पुनर्जागृति की कहानी गाधीजीने ध्यानमग्न होकर सुनी, और उनके लिए तो वह कहानी उस मनुष्य की कहानी थी, जिसने वीरतापूर्वक सारी जिदगी अपने भाग्य के साथ कुश्ती लडी थी। अपने भाषण के आरभ मे बेगम खालिदा खानुमने गाधीजी का—'प्रेम-साम्राज्य के सत्यरूपी किले का एकमात्र रक्षक' इन शब्दो से सबोधित किया, और कहा कि ऐसे ही सत्य-सरक्षक अपने युग के लोगो को यह अमर सदेश देकर दुनिया को समृद्ध और सफल बना जाते है, कि सत्य के दीपक को अधिक-से-अधिक प्रकाशवान रखना। भाषण की समाप्ति पर गाधीजीने जब निम्नलिखित शब्द कहे, तब शायद वह उस सीधेसादे वृद्ध ग्रामवासी की ही बात सोच रहे थे, जिसे उन्होने उस दिन देखा था और उसे वह अपने से भी ज्यादा जगत् को प्रकाश देनेवाला समझ रहे थे।

"मै नही जानता कि आप लोग जब बेगमसाहिबा की जबानी टर्की की कहानी सुन रहे थे, तब मेरी ही तरह आप भी टर्की और हिन्दुस्तान की तवारीखो की तुलना कर रहे थे या नही। इन दोनो मुल्को की कहानियो मे मुझे कई बाते बिल्कुल एकसरीखी दिखलाई दीं। बिना पीर सहे कुछ हासिल नही होता, और टर्की की यह कहानी सुनकर मुझे मालूम होता है कि अभी न जाने क्या-क्या तबदीलिया होने को है। इस अनित्य जगत् मे सभी कुछ नाशवान या परिवर्तनशील है। कौन कह सकता है कि जिस दुनिया के नकशे पर टर्की और हिन्दुस्तान तुच्छ छिटका की तरह दिखाई देते हैं उसका अन्त क्या और किस तरह होगा। मगर हमारे लिए यह जान लेना सब से अच्छा होगा कि हिन्दुस्तान की और प्रत्येक व्यक्ति की चाहे जो गति हो, है वह उसकी अपनी ही कर्मगति। हमें यह मानना ही होगा, कि सच्चा इतिहास सम्राटो और राजवशो का इतिहास नही है, बल्कि उसके निर्माता तो व्यक्ति हैं, साधारण पुरुष और स्त्रिया हैं। चन्द ऐसे लोग, कि जिनकी दुनियाने उनके आखिरी वक्त खबर भी नही ली और बिपत झेलते-झेलते ही जो चल दिये, वही सच्चे बहादुर थे, न कि वे बडे-बडे शाहशाह—फिर उन्होने संसार में कितने ही महान् साम्राज्यो को स्थापित क्यो न किया हो, और दुनिया मे तबाही और बरबादी लाने मे उनका कितना ही हाथ क्यो न रहा हो। दुनिया में व्यक्तियो का इतिहास तो अभी बन ही रहा है। काल-भगवान् के अनन्त चक्र मे आपके ये हजार या लाख बरस किस लेखे मे आते है? टर्की की कहानी सुनकर मै तो इस आशा पर पहुँचा हूँ कि अगर सत्य को और केवल सत्य को अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर हमने काम किया तो हम सब लोगों का भविष्य उज्ज्वल ही होगा।"

बेगम खालिदा खानुम का यहा आना खुद ही एक आशा का सन्देश है। तुर्की विदुषीने यह बतलाया था कि वहा सुल्तानों के शासनकाल मे काफी सहिष्णुता देखने मे आती थी, और खालिदा खानुम तो खुद ही सहिष्णुता और प्रेम की मूर्ति हैं। गाधीजीने कहा, "हिन्दुस्तान और तुर्कस्तान एक अटूट डोरी से इसलिए नही बँधे हुए है कि इन दोनो मुल्कोने एकसमान विपदाएँ झेली है, बल्कि इसलिए कि हमारे सगे बधु-बाधव हिन्दुस्तानी मुसल्मानो की ही तरह तुर्कस्तान मे भी मुसल्मानो की आबादी लाखों की है। ईश्वर करे कि हमारे देश मे बेगमसाहिबा के आने का यह परिणाम हो कि यहा के हिन्दू और मुसल्मान सदा के लिए मुहब्बत की अटूट डोरी से बँध जायँ।"

संतति-निग्रह के पीछे दीवानी

दरिद्रनारायण के चरणों पर अपना सर्वस्व चढा देनेवाले उस बूढे किसान के बिल्कुल विपरीत एक श्रीमतीजी गत सप्ताह इग्लैण्ड से यहा पधारी थी। यह महिला सतति-निग्रह के पीछे दीवानी है। इन का नाम हाउ मार्टिन है। अनेक वर्षों से यह सतति-निग्रह का प्रचार कर रही है। करांची मे जो महिला-परिषद् हुई थी उसमे इसी विषय की चर्चा करने के लिए वह वहा गई थी, और कराची से लौटते हुए वह गाधीजी से मिलने के लिए यहा ठहर गई। गाधीजी को तो वह सतति-निग्रह का शत्रु समझती थी, इसलिए उन्हे तो यह भय था, कि शायद गाधीजी मुझसे मिलेंगे भी नही, पर गाधीजी तो श्रीमती हाउ मार्टिन से इतनी अच्छी तरह मिले कि वह चकित रह गई। मुझे लगता था, कि वह आकडे और दलीले दे देकर गाधीजी को छका देने का प्रयत्न करेगी। मगर उन्होने तो नीति की ही दलीले दीं, और उसमे उन्हे अधिक-से-अधिक पछताना पडा।

"अगर एक की बात हो तो आपका कहना ठीक है," उन्होने इस प्रकार बाते शुरू की। "मगर जहा स्त्री और पुरुष दोनो की बात है वहा क्या किया जाय? बेचारी स्त्री उस स्थिति मे करे तो क्या करे?"

"स्त्री बेचारी! स्त्री को बेचारी क्या कहा जाय? मै तो स्त्री को पुरुष से कहीं अधिक बलवान मानता हूँ। स्त्री की इच्छा के विरुद्ध किस पुरुष की मजाल है कि वह उस पर अत्याचार कर सके? मैं तो अपने मधुर गृहजीवन के अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि स्त्री जब विरोध करती है तब पुरुष का कुछ वश नही चलता। पर मेरा ही यह एक उदाहरण नहीं है। आप मेरे साथ भारत के ग्रामो मे चले तो इस बात के मैं वहा आपको काफी प्रमाण दे सकता हूँ। बलात्कार-जैसी चीज ही असंभव है। जिसने यह निश्चय कर लिया, कि किसी पुरुष के वश में होने की अपेक्षा मर जाना अच्छा, उस देवी का, पुरुष तो है ही क्या, भारी-से-भारी दैत्य भी कुछ नही कर सकता। सच बात तो यह है कि जब पतन होता है, तब दोनो की ही इच्छा से होता है।"

श्रीमती हाउ मार्टिनने इस पर यह दलील दी, "पर अगर पुरुष को बालबच्चो का पालन-पोषण न करना हो और उसे विषय तृप्ति करनी हो तब तो वह दूसरी स्त्री के पास जायगा ही।"

"इसलिए उसे विषयतृप्ति करने देना चाहिए? अपनी पहली दलील से तो अब आप हट रही हैं। आप संतति-निग्रह की एक जबर्दस्त समर्थक हैं, इसलिए मैं आपकी इस वस्तु के मूल को समझना चाहता हूँ। इस चीज से आखिर आप क्या सिद्ध करेंगी

चाहती हैं ? कितने ही लोगों को तो इस संतति-निग्रह में ही जगत् का उद्धार दिखाई देता है।"

"मुझे जगत् का उद्धार तो इसमें नहीं दिखाई देता, पर ऐसा तो मुझे लगता है कि किसी प्रकार के संतति-निग्रह के बिना मुक्ति नहीं। आप संयम के द्वारा यह कराना चाहते हैं, और मैं दूसरी रीति से। मुझे आपका भी ढंग प्रिय है, पर सबको मैं यह रीति नहीं बतलाती। आप तो एक सुन्दर क्रिया को बहुत बीभत्स मान बैठे हैं। मैं तो कहती हूँ कि जब कोई नई सृष्टि उत्पन्न करने के लिए स्त्री और पुरुष मिलते हैं तब वे सिरजनहार के बहुत समीप पहुँच जाते हैं। यह तो एक दैवी वस्तु है।"

"देखिए, फिर आप अपनी दलील से हट रही हैं। माना कि सृजन-क्रिया एक दैवी वस्तु है, पर वह क्रिया दैवी रीति से करनी चाहिए, आसुरी रीति से नहीं। केवल सन्तानोत्पत्ति के शुद्ध हेतु से ही स्त्री और पुरुष का मिलना इष्ट है, किंतु जब प्रजोत्पत्ति के लिए नहीं बल्कि विषयतृप्ति के लिए वे मिलते हैं, तब तो मैं उनके मिलन को आसुरी ही कहूँगा। मनुष्य के अन्दर दैवी संपत्ति तो है ही। पर दुर्भाग्य से वह इस वस्तु को भूल जाता है और पशुता को हृदय से लगाकर वह पशु से भी बदतर बन जाता है।"

"मगर पशुता की यह बात उठाकर आप बेचारे पशु की क्यों इस तरह निन्दा करते हैं ?"

"नहीं, मैं निन्दा नहीं करता, पशु तो अपनी प्रकृति के अनुसार चलता है। सिंह की प्रकृति हिंस्र है, वह मुझे पकड़कर निगल जाय तब भी वह अपनी प्रकृति के विरुद्ध नहीं जाता। पर मान लीजिए कि मैं अपने हाथों की जगह पंजे धारण कर लूँ और आपके ऊपर आक्रमण कर बैठूँ तो मैं पशुता को धारण करके पशु से भी बदतर कहा जाऊँगा न ?"

"ठीक, मैं समझ गई। मैं आपको दलील में नहीं हरा सकती। मेरे कहने का मतलब तो इतना ही था कि संतति-निग्रह से उद्धार नहीं होता, पर शुद्ध जीवन की ओर कुछ प्रगति तो जरूर होती है।"

"मैं आपको दलील से हराना नहीं चाहता। लेकिन मैं यह चाहता हूँ कि आप मेरी विचारदृष्टि को ठीक-ठीक समझलें। मनुष्य के अन्दर देव और पशु दोनों ही विद्यमान हैं। मनुष्य को पशुता सिखाने की जरूरत नहीं पड़ती, जरूरत तो केवल दैवी अंश के सिखाने की ही है। और जब पशुता दैवी आवरण में लिपटी हुई दिखाई देती है, तब तो मनुष्य का सहज ही अधःपतन हो जाता है। अगर मैं विषय-भोग को धर्म बनालूं और लोगों से कहूँ कि भोग में ही जीवन का सार है तो मुझे लगता है कि लाखों-करोड़ों मनुष्य उसी क्षण मेरा कहना मानलें—और फिर मैं तो एक महात्मा कहलाता हूँ, मेरी बात क्यों न लोग मानेंगे ! मैं जानता हूँ कि आप तथा मेरी स्टोप्स आदि बहनें निःस्वार्थ वृत्ति से जोश में आकर आज जो पाप-पथ को पवित्रता और पुण्य का पथ बतला रही हैं उसमें कुछ समय के लिए आपको कुछ ऊपरी-सी विजय प्राप्त होती दिखाई दे इसमें सन्देह नहीं, पर यह याद रखिए कि अन्त में निश्चय ही आप सर्वनाश को आमन्त्रण देंगी और इसका आपको पता भी न चलेगा। पशुता की न तो तालीम की जरूरत है, न प्रचार की। जिसे विषय-तृप्ति करनी है, वह आपके बिना कहे भी करेगा; विषय के ऊपर तो अंकुश रखने की ही शिक्षा देने की जरूरत रहती है।"

श्रीमती हाउ मार्टिन अब तो घबराईं, और घबराहट के साथ साथ उन्होंने अपने मन में—प्रत्येक संतति-निग्रहवादी के मन में—छिपी हुई चीज को प्रगट कर ही दिया, "आप पशु और देव का यह भेद किसलिए करते हैं ?"

"आप भेद नहीं मानतीं ? आप सूर्य को मानती हैं, सूर्य के प्रकाश को मानती हैं ? तो प्रकाश और अंधकार के बीच कुछ भेद आप मानेंगी या नहीं ?"

"पर आप अन्धकार को आसुरी वस्तु क्यों कहते हैं ?"

"अच्छा, आप चाहें तो उसे अनीश्वर कहें।"

"नहीं, मैं तो यह कहती हूँ कि प्रकाश और अंधकार दोनों परमात्मा की ही कृतियां हैं। है न यही बात ? आखिरकार परमात्मा ही तो सर्वत्र है, जीवन ही तो सर्वत्र है।"

"जी हां, पर क्या यह सत्य नहीं है कि कहीं-कहीं जीवन नहीं भी होता है ? क्या आप यह जानती हैं कि हम हिंदुओं में जब किसी के प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं, तब वह हमारा प्रिय-से-प्रिय क्यों न हो उसे उसी क्षण हम मरघट में फूंक देते हैं ? परमात्मा सर्वत्र है, सब कुछ अभेदात्मक है, पर हमें भेद को छिन्नभिन्न करके अभेद के निकट पहुँचना है, अनैक्य में से ऐक्य में पहुँचना है। यह तो कोई बुद्धि का खेल नहीं है, इसका साक्षात्कार तो अनुभूति और अनेक जन्मों की तपश्चर्या से ही हो सकता है। आप तो बुद्धिबल से ऐक्य को समझने का प्रयत्न कर रही हैं।"

श्रीमतीजी बड़ी असमंजस में पड़गईं। समय तो उनका समाप्त हो गया था, पर गांधीजीने उन्हें धीरज बँधाया और कहा, "आप घबराइए मत। अब आप वर्धा आवें और वहां मेरे साथ रहें, मैं आपको दो-तीन दिन एक-एक घंटा समय दूंगा। फिर या तो आप मुझे अपने मत में मिला लेना या मैं आपको अपने मत में मिला लूंगा।"

श्रीमतीजी को इस पर बड़ी प्रसन्नता हुई। पर सत् और असत् को, मृत्यु और अमृत को, अंधकार और प्रकाश को एक मानने की कठिनाई कोई छोटी-मोटी नहीं थी। उनके लिए यह बात बिल्कुल नई ही थी, कि शरीर को शोधकर आत्मा को पहचानना है। 'असतो मा सद्गमय तमसोऽमा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय' यह श्रुति हजारों वर्ष पहले हमारे ऋषि संसार को सुना गये थे। पर आज के ऋषि तो एक नये ही उपनिषद् की रचना करने लगे हैं।

म० ह० देसाई

सांसियों की बस्ती में

१९ जनवरी को साढ़े बारह बजे गांधीजी अपना कुछ अनमोल समय निकालकर दिल्ली की सांसियों की बस्ती देखने गये थे। सांसी भाइयोंने अपने घर-आंगन और गलियों की अच्छी सफाई की थी। बस्तीवालों में उस दिन खूब आनन्द था, खूब उल्लास था। बस्ती का निरीक्षण कर चुकने के बाद दिल्ली प्रांतीय बोर्ड के अध्यक्ष श्री लाला लक्ष्मणदासजीने हरिजनों की उस छोटी-सी सभा में गांधीजी का मंगल स्वागत किया, और इसके बाद संघ की ओर से बस्ती के परिचय और सेवा-कार्य की निम्न लिखित संक्षिप्त रिपोर्ट सुनाई गई।

पुरानी बात

कहते हैं कि सासी लोग पहले राजपूताने के निवासी थे, और एक बहादुर कौम के माने जाते थे। बडे साहसी होते थे। कौन जाने, यह सांसी शब्द स्यात् साहसी का ही अपभ्रंश हो। दिनो के फेर से हमेशा जंगलो मे रहने के कारण जहां हिदूधर्म और सस्कृति से कुछ दूर पडजाने से समाज मे इनके साथ अस्पृश्यो का सा व्यवहार होने लगा, वहा अथवा अस्पृश्यता के ही फलस्वरुप ठीक-ठीक काम-धंधा न मिलने से सरकारने इनकी गणना 'जरायमपेशा' जातियों में कर दी।

दिल्ली मे इन लोगो को आये करीब सौ बरस हुए हैं। पहले ये दिल्ली में नसरूदार चौधरी के गाव मे रहते थे। इस बस्ती मे बसे तो इन्हें अभी २० ही साल हुए हैं। यह 'कजर' नाम इनका दिल्ली में ही पडा है।

आज की स्थिति

इस बस्ती म ६६ घर सासियो के हैं, और १० घर बागरियो के। ये बागरी लोग भी जरायमपेशा माने जाते हैं। सासियों की जन-सख्या २१७ और बागरियो की ३१ है।

२४ आदमियो को तो पुलिस के आगे रोज तीन बार हाजिरी देनी पडती है, और ५० आदमियो को दिन मे एक बार—इस तरह कुल ७४ आदमियो को पुलिस मे किसी-न-किसी तरह नित्य अपनी हाजिरी देनी पडती है। ५५ आदमी बरी है, जिनमे छोटे-बडे ३९ बच्चे भी शामिल हैं, यानी असल मे १६ बालिग पुरुषो को हाजिरी नही देनी पडती। पाठशाला मे पढनेवालो की भी हाजिरी नही होती।

मुख्य धधा तो इन लोगो का सुअर पालने और बेचनेका है। इनका कहना है कि इस रोजगार से उन्हे खासी अच्छी आमदनी होजाती है। कुछ लोग जगल से दतौन काट-काटकर बेचते हैं।

एक भाई एक स्कूल मे माली का काम करता है, एक मोटर ड्राइवर है, तीन बरफ ढोने का काम करते हैं, दो चपरासी हैं, एक तांगा रखता है, और एक भाई हमारे सघ के दफतर मे चपरासी का काम करता है। और सब एक तरह से बेकार ही हैं। काम चाहते तो बहुत हैं, पर कही लगता नही। एक दुःखजनक बात और है, और वह यह कि इनकी स्त्रिया नित्य शहर मे भीख मागने जाती हैं।

४०) से लेकर ७००) तक किसी-किसी पर कर्जा है। सारी बस्ती का कर्जा लगभग साढे चार हजार रुपये के है। ये लोग सब आपस में ही कर्ज का लेन देन करते है, किसी बाहर के आदमी से उधार नही लेते। कर्जा इन्हे शादी-ब्याह के अवसर पर लेना पडता है। लडकेवाला लडकीवाले को कम-से-कम १५० तो देता ही है, जिसमें ४०) का तो सुअर ही होता है। मृतक-भोज मे भी काफी खर्च हो जाता है। इनके मकरूज रहने के यही दो मुख्य कारण है।

ब्याह में अन्य हिंदुओ की तरह इनके यहां भी सात भांवर का रिवाज है। पंडित-पुरोहित तो कोई आता नहीं, इसलिए ये खुद ही पंडित-पुरोहित का काम कर लेते हैं। मुरदे को ये लोग जलाते नही, दफनाते हैं। पर इनके पड़ोसी बागरी लोग मुरदे को जलाते हैं।

शराब तो इनमें बहुत थोड़े लोग पीते हैं, पर जुआ खेलने की लत अधिक देखने में आती है।

हमारा सेवा-कार्य

पूज्य ठक्कर बापा के ध्यान में यह बस्ती शुरू से ही थी। इस बस्ती में कार्यारंभ कर देने के लिए वे अधीर हो रहे थे। दिल्ली प्रांतीय बोर्ड से अनुरोध करके उन्होंने यहां एक दिवस-पाठशाला गत अक्तूबर मास में खुलवा दी, जिसमें १८ बच्चे तो सांसियों के पढते हैं और २७ लड़के रेगडो व पास-पडोस के अन्य हरिजनों के।

पर ठक्कर बापा इतने ही काम से संतुष्ट होनेवाले थोड़े ही थे। वे तो इस बस्ती मे बसजानेवाले एक सेवक की तलाश में थे। हमे एक ऐसा सेवक मिल गया। इसका नाम श्री प्रभुदयाल है। यह करीब तीन वर्ष से पन्ना राज्य में हरिजन-शिक्षा का काम कर रहे थे। इन्हे इस बस्ती में आये ढाई महीने से ऊपर हो गया है। बस्ती के ठीक बीच मे एक झोंपडी मे रहते हैं।

प्रभुदयालजी नित्य बस्ती की सफाई देखते हैं, जहां गदगी मिलती है खुद साफ कर देते हैं। बच्चों के कपड़ो को साफ कराते हैं। बुखार, खासी, खाज आदि सामान्य रोगो की दस-पांच मामूली दवाइया रखने और लोगो को देते हैं। मगर सासियो का विश्वास झाड़-फूक या भूत-प्रेत मे बहुत ज्यादा है, इसलिए दवादारू मुश्किल से ही कराते हैं। रात को प्रभुदयालजी बड़ी उम्र के ८ आदमियो को पढाते हैं, और रामायण की कथा भी कहते हैं। चार-पाच भाई बडे प्रेम से कथा सुनते हैं। प्रभुदयालजी अपने सेवा-कार्य की साप्ताहिक रिपोर्ट सघ को बराबर भेजते रहते हैं। श्री घनश्यामदासजी बिड़ला की ओर से सांसियो की बस्ती मे यह सेवा-कार्य हो रहा है, और इसमे २५) मासिक खर्चा होता है। और पाठशाला पर दिल्ली बोर्ड २५) मासिक खर्च करता है। इस बस्ती का और हमारे तुच्छ सेवा-कार्य का यही संक्षेप मे परिचय है।

इसके पश्चात् गाधीजीने यह सक्षिप्त सारपूर्ण भाषण दिया —

"ठक्कर बापा को मैंने यह वचन दे दिया था, कि इस हरिजन-बस्ती मे अवश्य किसी दिन मे आध घटे के लिए आऊँगा। आज मुझे यहा आने का मौका मिला है। यह दुःख की बात है कि एक तरफ तो हिंदूसमाज अपने पाप से इन सांसी भाइयो को अस्पृश्य मानता है और दूसरी तरफ सरकारने इन्हें जरायपेशा करार दे दिया है। हम हिंदुओं के लिए यह शर्म की बात है कि हमारी ही लापरवाही के कारण इन्हे जब काम-धंधा न मिला, तो पेट तो भरना ही था, इसलिए इन में से कुछ लोगोने अपराध करना ही अपना धधा बना लिया। पर सभी तो अपराधी है नही, और न हो सकते है। लेकिन यह जाति ही जरायमपेशा कही जाने लगी। मैं सांसी भाइयो से यह कहूँगा, कि उनमे हमारी बेदरकारी के कारण जो बुराइयां आ गई है उन्हें वे छोड़दें। शराब और मुर्दार मांस, अगर कोई खाते हों तो, और जुए का परित्याग करदें, चोरी इत्यादि न करें, ताकि पुलिस में उनकी हाजिरी न होने के लिए, सरकार से सिफारिश की जा सके। ईश्वर आपको ऐसी सद्बुद्धि दे कि मैंने जो कहा है उस पर आप चल सकें।"

गांधीजी की उपस्थिति में तो बाल गोपालों को और बाद को बस्ती के सभी नर-नारियों को भोजन कराया गया।

वियोगी हरि

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, १ फ़रवरी, १९३५. [संख्या ५०

विषय-सूची

एक आदर्श ग्रामसेवक

वर्धा में ग्रामसेवा काफी अर्से से हो रही है। पहले वह प्रयोग क्षेत्र के रूप में वहीं सीमित थी। पर अब धीरे-धीरे उसका विस्तार होता जा रहा है। वर्धा केन्द्र के सत्याग्रह-आश्रम में ये सारी प्रवृत्तियां पूज्य विनोबाजी की देखभाल में चलती थीं। परन्तु सन् १९३० में उन्होंने अपने सारे कार्यकर्ताओं से कह दिया, कि अब एक-एक आदमी एक-एक आश्रम बनाके गांवों में बैठ जाय। ये अपरिग्रही कार्यकर्ता कंधे पर चर्खा और कम्बल का छोटा-सा बिस्तरा रक्खे, बगल में एक थैला (जिसमें पूनी और तकली रहती) और पींजन लटकाये ग्राम-सेवा के लिए निकल पड़े। पर वह समय दूसरा था। सत्याग्रह आगया। जहां जो थे गांवों के श्रद्धालु भाइयों के हाथों में चर्खा, तकली, पींजन वगैरा सौंपकर जब जेल का निमन्त्रण आया पुलिस-इन्स्पेक्टर के साथ हो लिये। जेल से छूटे और फिर अपनी ग्राम-प्रदक्षिणा पर चल दिये। फिर निमन्त्रण आया, फिर जेल चले गये। इस प्रकार आगे-पीछे मिलकर इनमें से प्रत्येक सेवकने लगभग डेढ़साल तक ग्राम-प्रदक्षिणा करके अपना क्षेत्र-निरीक्षण किया। और अब सत्याग्रह स्थगित होते ही एक-एक कार्यकर्ता अपना-अपना गांव चुनके बैठ गया है।

इस समय ऐसे आठ-दस केन्द्र स्थापित हो गये हैं। और ये कार्यकर्ता चुपचाप ग्राम-सेवा में लगे हुए हैं। मैं चाहता तो बहुत दिन से था, कि इन केन्द्रों में जाकर उनके काम को प्रत्यक्ष देखूं, परन्तु अभीतक ऐसा अवसर नहीं मिल सका था। मगर अब की बार गांधी-सेवा-संघ की बैठकें सम्पादन होते ही अपने एक मित्र श्री बालकृष्णजी गर्ग को लेकर मैं इन सेवाकेन्द्रों को देखने के लिए चल दिया।

सब से पहले हम लोग भीमापुर गये। यह मौजा वर्धा से आठ-नौ मील है। तीन-साढ़े तीन सौ आदमियों की बस्ती है। यहां पर भाई श्री तुकारामजी ठाकुर रहते हैं। दो वर्ष बड़ौदा की व्यायाम-शाला में और लगभग दस वर्ष श्री विनोबाजी के समीप में रहकर इन्होंने शिक्षा पाई है। कठोर संयमशील जीवन व्यतीत कर रहे हैं। बड़े उत्साही, कर्तव्यनिष्ठ और तेजस्वी युवक हैं। किसी पर अपना एक पाई का भी बोझ नहीं पड़ने देते। एक सुसंस्कारी किसान भाई के मकान में रहते हैं। न किसी के यहां उपदेश देने जाते और न एक मिनट व्यर्थ गंवाते हैं। चौबीसों घंटे अपने काम में लगे रहते हैं। सुबह शौच, मुखमार्जन, प्रार्थना, स्नान, व्यायाम आदि करके अपने मित्र के यहां पानी भर देते हैं और ५ सेर गेहूं या ज्वारी पीसकर दूसरे पड़ोसी के यहां चले जाते हैं। वहां नाश्ता करते और २० तोला रुई पींजते हैं। पींजते हुए जो कोई बच्चे या बच्चियां पढ़ने के लिए आती हैं उन्हें पढ़ा भी देते हैं। तबतक १० बज जाते हैं। लौटकर कुछ समय यंत्रशाला में सीखनेवाले विद्यार्थियों का काम देखते और उन्हें नया काम बताते हैं तबतक भोजन का वक्त हो जाता है। भोजन समाप्त करके चर्खे पर बैठ जाते हैं। प्रतिदिन ४ आंटी, अर्थात् २४०० तार (४ फुट का एक तार) सूत कातते हुए वे अपने सारे काम-काज करते रहते हैं। जो पढ़ने आते हैं उन्हें पढ़ाते हैं। जो भिन्न-भिन्न विषय पर चर्चा करने के लिए आते हैं उनसे चर्चा भी करते हैं और जो बीमारी के लिए दवा लेने के लिए आते हैं उनको दवा देते हैं। गत मई महीने में ये इस गांव में बैठे हैं। अबतक २५ आदमी पूरी तरह खादी पहनने लगे हैं और ४ परिवार वस्त्र के विषय में पूर्णतया स्वावलम्बी बन गये हैं। श्रीतुकारामजीने यहां पर एक बात और की है, वह यह कि वर्धा तहसील के ग्राम-सेवक-मंडल से उन्हें ६) मासिक खर्चे के लिए मिलते हैं, पर तुकारामजी तो पूर्णतया स्वावलम्बी आदमी ठहरे। इन्हें इस रकम की जरूरत नहीं रह जाती। इसलिए इन्होंने एक गरीब मजदूर को यह रकम देकर एक छोटी-सी दूकान वहां खुलवा दी है। इससे गांव के लोगों को घर बैठे सब चीजें किफायत से मिल जाती हैं, और वे सूदखोर साहूकारों के चंगुल से बच जाते हैं। उस मजदूर को भी काफी काम मिल गया है, बल्कि उसने तो अब अपनी बैलगाड़ी करली है और वह अपनी दूकान आसपास के गांवों में भी ले जाता है। अच्छी चीजें, उचित भाव और ईमानदारी का बर्ताव, इन सब के कारण लोग दूसरी दूकानों को छोड़कर इसी से चीजें खरीदते हैं। हर दूसरे तीसरे रोज तुकारामजी इसका हिसाब देख लिया करते हैं और तथा माल खरीदने आदि के विषय में सूचना दे देते हैं। श्री तुकारामजी के काम, चरित्र और सदुपदेशों की सुगन्ध आसपास के गांवों में भी धीरे-धीरे पहुँच रही है। यहां के किसान अपने खेतों में भी पहरा देते-देते चर्खा चलाते हैं। प्रति दिन सुबह (४॥ बजे) और शाम की प्रार्थना में शरीक होते हैं और नियम से अपना सूत लिखाते हैं। शाम को प्रार्थना के बाद तथा सुबह कुछ स्वाध्याय भी होता है।

बैजनाथ महोदय

साप्ताहिक पत्र

दिल्ली के ग्रामों में

कार्य मे इतना अधिक व्यस्त रहते हुए भी पिछले सप्ताह गाधीजीने दिल्ली के पास-पड़ौस के कुछ गावो में जाने के लिए थोड़ा-सा समय निकाल ही लिया। १२ बजे से ४ बजेतक का तीन दिन का प्रवासक्रम तैयार किया गया। सब से पहले दिन गाधीजी मोटर से नरेला गाव गये, जहा श्रीकृष्ण नायर और उनके कुछ मित्र एक आश्रम चला रहे हैं। नरेला की गदी गलियों से गाधीजी गुजरे, लोगों के मकानो को झाक-झाककर देखा, सभा में भाषण दिया, और फिर वहा से दूसरे गाव को पैदल ही गये। हिन्दुस्तान के गाव कैसे होते हैं यह जानने के लिए बेगम खालिदा खानम भी गाधीजी के साथ गई थीं।

दूसरे दिन तीन और ग्रामो में गाधीजी गये, पर पैदल-यात्रा का प्रयोग छोड देना पडा। पैर में बेवाई फटने के कारण चल ही नही सकते थे। और तीसरे दिन भी यही हालत रही। इससे भाषण देकर ही उन्हे सतोष मानना पडा, न तो ग्रामवासियों के अधिक सपर्क में ही आसके और न उनसे मनचाही बाते ही कर सके।

मगर स्वावलबन, स्वच्छता और हाथ की बनी चीजो की निर्भरता का सदेश तो उन्होंने सर्वत्र ही सुनाया, और ग्राम-सेवको के लिए वहा जाने और ग्रामउद्योगों के कार्यक्रम को चलाने का क्षेत्र तैयार कर दिया। भारी कार्यक्षेत्र पडा हुआ है—आरोग्यता तथा स्वच्छता सबंधी बातो का तो वहा जैसे अभी आरंभ भी नही हुआ। सुल्तानपुर गाव की ही बात ले लीजिए। यह और गावो के मुकाबले में अच्छा सपन्न गाव है। पक्के मकानात हैं। गन्ने के कोल्हू चलते हैं। लगभग एक हजार की आबादी है। जिन सज्जनने गाधीजी को दिखाने के लिए गाव के आमद-खर्च के आकडे तैयार किये थे उन्होंने कहा कि इस गाव की सालाना आमदनी २००००) की है और खर्च १५०००) का है, इसलिए सिर्फ ५०००) पर गाव के तमाम लोगों को गुजर करनी पडती है! क्या अच्छा हो अगर ये लोग इतनी-सी भी बात आसानी से समझले, कि उनके गाव मे प्रति मनुष्य १८ वोरस गज कपडा खर्च होता है और अगर सारा गाव खुद ही अपने लिए कपडा तैयार करले तो १८००० वोरस गज का पैसा वह मजे में बचा सकता है।

फिर भी इतना मै जरूर कहूँगा कि गुजरात या महाराष्ट्र के गावो के मुकाबले में ये गाव अच्छे हैं, नई रोशनी का यहा उतना ज्यादा प्रवेश नहीं हुआ है। हमारे डेरे से लगे हुए एक गाव की ही बात मैं कहता हूँ। नई सभ्यता की चाट लगानेवाली राजधानी दिल्ली से यह गाव बिलकुल पास है, फिर भी यहा हमने देखा कि हरेक घर में हाथ की चक्की चलती है, और मिट्टी के दियो मे कडुवा तेल जलता है। गुजरात की न पूछिए। वहा यद्यपि डीज लालटेनें अभी गावों में नहीं पहुँची हैं, पर न वहा कही दिया देखने मे आयगा, न अडी का तेल, वहां तो घर-घर डिबियो में घासलेट तेल जलता हुआ नजर आयगा। यह बात आप दिल्ली के इस पडोसी गांवड़े में न पायेंगे। इस गाव के किसान आज भी घी खुद ही तैयार कर लेते हैं, और यहा का तेली अपने उसी पुराने जमाने के लकड़ी के कोल्हू से आज भी तेल पेरता है। हमने उस दिन उस तेली से पूछा कि, "तुम्हारा यह कोल्हू कितने में बना था और यह कितने दिन का हो गया है?" उसने कहा, "४०) लगे थे बाबूजी, इसमे। तेल पेरने की यह घानी की भारी लाठ बडी महँगी आती है। देखिए न यह सार-ही-सार है। यह बडी मजबूत लकडी होती है। कोल्हू बिल्कुल नया ही है, अभी १५ ही बरस तो इसे बनवाये हुए हैं। इस कोल्हू का बाबूजी बिगडना ही क्या है, इसमें बिगडनेवाले कोई पेच-वेच तो है नही। इसे मैं ही क्या मेरे लड़के-बच्चेतक चलायेंगे।" मिट्टी के मकान भी यहा बहुत-से हैं। ऐसा कच्चा मकान डेढ़-दो सौ रुपये में बन जाता है। एक अच्छे भरे-पूरे घर में हमने टाट की एक भारी पखारी देखी, जो उनके अपने हाथ की बनाई हुई थी। इस भारी पाखरी में यह खूबी थी कि उसमें कहीं जोड नहीं था, टाट का एक ही टुकडा उसमें लगा हुआ था, और उसमे डेढ़ सौ मन गेहूँ भरा हुआ था। सिवा आरोग्यता और स्वच्छता की बातो के इस गाव को सिखाने के लिए हमारे पास और था ही क्या, बल्कि हमी वहा से बहुत-कुछ सीख सकते थे। इस गाव का चौधरी बडा समझदार है। उसे दुनियाभर की बाते मालूम हैं। और प्रान्तों के गांवो में गाधीजीतक को लोग पूछते थे कि इनमे महात्माजी कौन हैं, पर इस गाव के चौधरीने तो मीरा बहिन को चट से पहचान लिया, 'क्या यही मीरा बहिन है?' यह पूछते हुए वह और भी पास आ गया और अपने हाथ मीरा बहिन के कधों पर रखकर उसने पास से उनका चेहरा देखा और कहा, "बड़े भारी ओहदे के फौजी अफसर की लडकी वह मीरा बहिन यही है न, जिन्होंने कि हम लोगों की सेवा करने की खातिर अपना घर, अपना देश, अपना सर्वस्व त्याग दिया है? अरे, इनका चेहरा तो अब अग्रेजों के जैसा नही लगता। मीरा बहिन तो अब बिल्कुल हिन्दुस्तानी हो गई है।"

एक दिन सवेरे हमलोग टहलने जा रहे थे कि रास्ते में हमे एक टुटली-सी बैलगाडी मिली। उस ढीली-ढाली गाडी मे घास की एक चटाई पर तीन किसान बैठे हुए थे। उनमे से एकने हम से पूछा, 'क्यों साब, ये सामने महात्मा गाधी के तबू हैं न?' हमने कहा कि, हा, ये गाधीजी के ही तबू हैं। यह सुनते ही वह गाडी पर से फौरन उतर पडा और हमारे साथ-साथ पैदल चलने लगा। "क्या यह सच बात है, बाबूजी, कि यहा आप लोग एक चमडे का कारखाना खोलनेवाले हे और उसमे बडी जाति के हिंदुओं को ५०) माहवार तनख्वाह मिलेगी?" उसने मुझसे पूछा। मैने कहा, तुम्हे किसने यह बात बतलाई है? हा, एक चमडे का कारखाना तो बेशक यहा खुलनेवाला है, पर उसमें ऊँची जाति के हिंदू थोडे ही होग, भाई! वहा तो हरिजन लडको को चमडा पकाने का, जूता जोडे बनाने का और दूसरे-दूसरे उद्योग-धधो का काम सिखाया जायगा। उनकी सार-सँभाल या सेवा करनेवाले कुछेक सवर्ण हिंदू भी यहा रहेंगे।"

"यह ठीक है, पर हमने तो यह सुना है कि ब्राह्मणो को यहा ज्यादा तनख्वाह मिलेगी।"

"अरे भाई, गजब करते हो! ब्राह्मण भला चमड़े के कारखाने में काम करेंगे?" मैंने आश्चर्य का भाव प्रगट करते हुए उससे पूछा। यह तो "किसीने तुम्हें योंही बहका दिया है।"

"नही, यह बात नही है। यह महात्माजी की भूमि है, फिर यहा छूतछात का क्या काम?"

"सो तो ठीक है, पर यह तो बताओ भाई, तुम लोग किस जाति के हो?"

"हम लोग ब्राह्मण है।"

"और तुम लोग छूतछात नही मानते ? चमडे के कारखाने मे काम करोगे ?"

"क्यो नही ?"

"तुम्हारे गाव मे लोग क्या छूतछात नही मानते ? छुआछूत को क्या तुम लोगोने अपने गाव से खदेड़कर भगा दिया है ?"

"मै यह नही कह सकता कि हमारे गाव मे लोग छूतछात नही मानते। मगर हम तीन-चार आदमी जो भी काम यहा लगेगा करने को तैयार है।"

"चमडे का भी काम ?"

"जरूर, हमलोगोने छूतछात छोडदी है, और कही कोई काम भी तो नही मिलता। बड़ा बुरा जमाना है सा'ब। यह हत्यारी बेकारी बुरी तरह हमारे पीछे पडी है। काम नही करेगे तो पेट कैसे भरेगे ? और अगर हमारे हरिजन भाई चमड़े का काम कर सकते है, तो फिर हम क्यो नही कर सकते ?"

"बात तो तुमने बड़ी अच्छी कही, मगर ब्राह्मणो और हरिजनो के बीच यहा कोई भेद नही रहेगा। जो लोग इस काम को सीखकर पास कर लेगे, उन्हे बराबर यहा काम करने का मौका दिया जायगा। पर यह बात नही होगी कि ब्राह्मणो को तो ८०) माहवार दिये जायँ और हरिजनो को १०), समझे न ?"

"हा, सा'ब समझ गया। पर यह कारखाना कबतक खुलेगा ?"

"कम-से-कम छे महीने तो अभी लग ही जायँगे।"

विद्यार्थी यह सब करें

राजेन्द्र बाबूने कालेज के विद्यार्थियो के आगे उसदिन जो मार्मिक भाषण दिया था उसने कुछ विद्यार्थियो की ग्राम-सेवा-कार्य करने की इच्छा को उत्तेजित कर दिया। सेट स्टीफिन्स कालेज के प्रो० बिन्सर अपनी सोशल सर्विस लीग के काम मे खूब रस लेते है। समाज-सेवा करनेवाली इस लीग के विद्यार्थी पारसाल गये तो थे वजीराबाद बाढपीड़ितो की सेवा-सहायता करने, पर वहा उनका इतना मन लग गया कि कुछ-न-कुछ सेवाकार्य वहा वे करते ही रहते है। वजीराबाद को उन्होने एक तरह से आज अपना सेवाक्षेत्र बना लिया है। खैर, प्रो० बिन्सर एक दिन शाम को अपने बारह विद्यार्थियो को लेकर गाधीजी के पास आये और विद्यार्थियो के किये हुए प्रश्नो के उत्तर वे बडी शांति से बैठे-बैठे सुनते रहे।

"हम लोग चाहते है कि वहा कुछ दवादारू बाटने का काम शुरू किया जाय। यह काम, महात्माजी, किस तरह करे ? आप इस संबंध मे हमे कुछ बतला सकेगे क्या ?"

गाधीजीने कहा, "इस काम का अनुभव तो मेरा खासा पुराना है। एक जमाना हुआ जब दक्षिण अफरीका मे मैने यह काम किया था। पर सबसे पहले मै तुम लोगो को एक चेतावनी दे देना चाहता हूँ। यह समझलो कि दवादारू की उन्हे थोड़ी-सी सहायता पहुँचाकर तुम उन लोगों की कोई वास्तविक सेवा नही करते। उन्हे तो असल में आरोग्यता और स्वच्छता की बाते सिखानी चाहिए। मलेरिया रोकने का यही एक कारगर उपाय है। कुनैन से मलेरिया कुछ दिनो के लिए दब जाता है सही, पर वह जड़ से नही जाता। जरूरी तो यह है कि मलेरिया सिर उठाने ही न पावे, और इस रोग के मरीजों को बदपरहेजी से यथाशक्य बचाया जाय। उन बेचारों को क्या मालूम कि चाहे जो खा-पी लेनें से मलेरिया के कीटाणु हमारे शरीर के अदर पैदा हो जाते हैं और वही अपना अड्डा जमा लेते हैं। ये अजान ग्रामवासी जो भी चीज पाते है वह खा लेते हैं, परहेज से रहना तो वे जानते ही नही। मगर यह याद रहे कि मलेरिया के मरीज को 'स्टार्च' वाली चीजो से हमेशा दूर रहना चाहिए, और 'प्रोटीन' वाली चीजो से तो उन्हे एकदम बचना चाहिए। जबतक वे बिल्कुल चंगे न हो जायँ, तबतक तो उन्हे सिर्फ दूध ही पर रहना चाहिए। यह बात असल मे उन्हे बतलाने की है। उन्हे तो वहा जाकर तुम्हे ऐसी बातें बतलानी चाहिए कि जिससे बीमारी की जड़ ही कट जाय। अगर तुमने आकर मुझे यह बतलाया कि हमने वहा कुनैन की एक हजार गोलिया तकसीम की है, तो तुम्हारे इस काम की मैं कोई तारीफ नही करूँगा। अगर कर सको तो वहा आरोग्यता की ही बातो का प्रचार करो। कुदाली और फावड़ा लेकर वहा जाओ और बदबू मारते हुए गदे गड्ढो को मिट्टी से पूर दो, यह देखो कि पानी निकलने के लिए वहा नालिया हैं या नहीं, न हो तो खुद खोदकर बनादो, यह भी देखो कि वहा कुएँ साफ हैं या नहीं और तालाब गँदला तो नही है। स्व० प्रिंसिपल रुद्र, जिनके यहा ठहरने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था, मुझ से अकसर यह कहा करते थे कि इस दिल्ली को दलदल और मच्छरो की जन्मभूमि गदे पोखरो का किस-किस तरह सामना करना पड़ा है। पास मे काफी पैसा न होने या किसी दूसरे कारण से जो काम आज म्यूनिसिपैलिटिया या लोकल बोर्ड नही कर सकते, हम चाहिए कि वह सब काम हम लोगो से करावे। और सब से अधिक जो चीज गाववालो को सिखलाने की है वह यह है कि गाव में कूड़ा-कचरा और गदगी का कही नाम भी नहीं होना चाहिए। तुम्हारे लिए यही सब से दुष्कर काम है। जबतक तुम स्वेच्छा से भगी न बन जाओगे, तबतक गाव को गदगी से छुटकारा नही दे सकते। तुम्हे महीनो नित्य सडक और गलिया साफ करनी होगी और उन लोगो को यह बतलाना होगा, कि स्वच्छता ही आरोग्यता को कायम रख सकती है। साथ ही, यह भी बतलाना होगा कि उन्हे अपना बेशकीमती खाद किस तरह सुरक्षित रखना चाहिए। इस विषय पर पूर की लिखी 'रूरल हाईजिन' नाम की एक छोटी-सी पुस्तक बड़ी ही उपादेय है। तुम लोगो को उन्हे यह सिखलाना होगा कि वे अपने मैलेको नौ इंची गहरे गड्ढा मे डालकर उसे मिट्टी से ढक दे, पर यह देखना जरूरी है कि वह मिट्टी अच्छी जानदार है या नही और सूरज की किरणे खूब गहराई तक पहुँचती हैं या नहीं। कुछ ही दिनो मे वह सारा-का-सारा मैला सुन्दर उत्पादक खाद मे परिणत हो जायगा—और उस जमीन पर तुम बढ़िया-से-बढ़िया साग-भाजी पैदा कर सकते हो।

बेहतर होगा, कि अब खाने-पीने की चीजो के बारे मे भी मैं तुम लोगो को थोड़ा बतलादू। स्वास्थ्य की दृष्टि से तुम्हें आहार-विषयक प्रश्न का अध्ययन करना चाहिए और यह जानना चाहिए, कि आहार की किस-किस चीज मे 'विटामिन' की कितनी मात्रा है। ग्रामवासियों को यह समझाना होगा, कि उन्हे हाथ की चक्की का दला बिना पॉलिश का चावल, हथचक्की का पिसा बिना चला हुआ आटा, गुड़ और अपनी उपजाऊ जमीन की साग-भाजी तथा घानी का पिरा ताजा तेल, इन्ही सब चीजो का उपयोग करना चाहिए। आजकल हरेक डाक्टर थोड़ी-सी हरी कच्ची पत्तिया खाने पर ओर

[४६८ पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार १ फ़रवरी १९३५

उनकी आर्थिक श्रद्धा

इलाहाबाद की कृषि-संस्था के संचालक तथा अखिल भारतीय ग्रामउद्योग-संघ के सलाहकारी-मण्डल के सदस्य प्रो० सॅम हीगिन बॉटम अपने एक पत्र मे लिखते है :—

"अर्थशास्त्र के विषय मे मेरी जो श्रद्धा है उसे मै आपको बतला देता हूँ । भारतवर्ष की भलाई के लिए आर्थिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र मे मै जो प्रयत्न कर रहा हूँ उसके मूल मे मेरी यह श्रद्धा भरी हुई है ।

भूमि और श्रम ये उत्पादन की दो मुख्य चीजे है । इन वस्तुओ का जब सयोग अथवा विवाह होता है, तब उनसे मनुष्य के शारीरिक कल्याण के अर्थ आवश्यक और उपयोगी समस्त सपत्तिरूपी सतति उत्पन्न होती है । इस सतति को हम 'पूजी' के नाम से पुकारते हैं ।

पूजी भूमि और श्रम के सयोग से उत्पन्न सतति है । भारतवर्ष मे भूमि और श्रम दोनो ही प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं । अगर इन दोनो चीजो का कुशलता के साथ ठीक-ठीक उपयोग किया जाय तो भारत को अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है । अबतक तो ऐसा बहुत ही कम हुआ है । इसलिए मैं यह जोर देकर कहूँगा कि हमे ऐसे ग्राम-सेवक तैयार करने चाहिए, जो गांवो मे जाकर अपना सारा समय ऐसी शिकायतो या रोना रोने मे ही नष्ट न करे कि वहा यह चीज नही है या वह चीज नही है, और शुरू में ही निराश और पस्तहिम्मत न हो जायें । गाव जैसा जिस स्थिति मे हो वैसा ही ले ले । उसमे काम करने के साधन जैसे जो कुछ हो अथवा न भी हो उन्ही मे वे अपने काम का आरम्भ करदे, और ग्रामवासियो के हाथ मे आज जो भी साधन-सपत्ति हो उसी का वे वहां सदुपयोग करे, तथा भूमि और श्रम से गाव के अन्दर उसकी आवश्यकताओ के अनुकूल पूजी पैदा करे । यह लम्बा और धीरज का मार्ग तो जरूर है । इसमे सन्देह नही कि मेहनत काफी सख्त करनी पड़ेगी, मगर अन्त मे सफलता निश्चय ही मिलेगी ।

भारत के गाव जो कगाल हैं उसका कारण यह नही है कि वहा जमीन और मजदूरी काफी नही है, बल्कि इन चीजो का वहा यथेष्ट सदुपयोग नही हो रहा है । जमीन मे जो प्राकृतिक उपजाऊपन है उसे देखते हुए तो फस्ल बहुत ही कम होती है । ग्रामउद्योगो का विकास होते ही लोगो की खेती की स्पर्धा कम हो जायगी, और इस तरह ग्रामवासियो को जीवन की मुख्य और आवश्यक वस्तुएँ काफी मात्रा मे मिलने लगेगी । पैदावार में अच्छी बढ़ती हो जाय, तो हो नही सकता कि किसानो के पल्ले मे अधिक न पड़े । अत हमें पैदावार बढाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए ।

आज शायद हिन्दुस्तान के गांवो में जिस सब से बड़ी बाधा का हमें सामना करना है वह यह है कि लोगों के मन में वहा यह अविश्वास घर कर बैठा है कि इस बुरे युग मे तरक्की कैसे हो सकती है । लोग प्रारब्धवादी बन गये है । जो है उसी में संतोष मान बैठे हे, और इस श्रद्धा को उन्होंने खो दिया है कि पुरुषार्थ बल से उनकी मौजूदा स्थिति में भी सुधार हो सकता है । बिना आशा का काम किस काम का ? ऐसे काम से तो थकान या हैरानी ही कुछ होगी । अर्थशास्त्र के समस्त सत्यो में यह परम सत्य है । इसलिए शिक्षित ग्रामसेवक को अपने साथ उदासीनता और निराशा का वातावरण नही ले जाना चाहिए; उसे तो वहां श्रद्धा, धैर्य तथा यह आशा लेकर ही जाना चाहिए कि पुरुषार्थ के द्वारा हमारी स्थिति सुधर सकती है, और ऐसा विश्वास उसे अपने हृदय में रखना चाहिए कि ईश्वर तो अपने बालको को जितना वे मागते है उससे अधिक ही देने को अधीर रहता है । गावों के लोगो की स्थिति अन्यथा सुधर ही नहीं सकती । भारत की भूमि से ही भारतवासी अपने पुरुषार्थ से इतनी फस्ल पैदा कर सकते हैं, कि उससे वे खूब हृष्ट-पुष्ट रह सकते हैं । पर इसके लिए लोगों को ठीक-ठीक दिशा बतलाने की आवश्यकता है । यह सच्ची दिशा कोई बाहर से आकर नही बतला सकता । किन्तु जिन लोगोने ग्राम वासियो ही की दृष्टि से देखकर ग्रामसेवा की शिक्षा पाई है, जो उनके साथ रहते हैं, खाते है-पीते है, उठते है-बैठते है और उनके सुख-दुःख में खुद भाग लेते हैं, केवल वही उन्हें सच्ची राह बतला सकते हैं । भारत के सुशिक्षित स्त्री-पुरुषो के लिए जीविका हासिल करने का यह बड़े-से-बड़ा क्षेत्र है ।

ग्रामउद्योग-सघ के कार्यक्रम में इतनी चीजे तो होनी ही चाहिए, गावो के तमाम कूड़े-कचरे का जमीन के लिए सदुपयोग, जमीन को कटते जाने से रोकना, क्रम से खेती करने की ठीक-ठीक व्यवस्था; बीज, खेती के तरीके और औजारों में सुधार; ढोरों की नसल और उनकी खुराक में सुधार, गाव के माल की खरीद-फरोख्त तथा सडको की तरक्की के लिए सहयोग, चालू ग्रामउद्योगो का विकास, और जहा आवश्यक हो वहा ग्रामजीवन को स्वत पूर्ण बनाने के लिए नये-नये ग्रामउद्योगो का आरम्भ ।"

प्रो० सॅम हीगिन बॉटम के उक्त पत्र में ऐसी बहुत-सी बातें हैं कि जिनके साथ ग्रामजीवन को पुनरुद्धार-प्रवृत्ति का प्रत्येक प्रेमी निश्चय ही पूर्णत सहमत होगा ।

[अंग्रेजी से] मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

[४६७ पृष्ठ से आगे]

देता है । किसान के लिए यह बात कुछ भी मुश्किल नही । वह बडी आसानी से बेचने-बाचने के लिए न सही पर अपने घर के लिए तो सब प्रकार की साग-भाजियों को पैदा कर ही सकता है । नित्य कुछ कच्ची हरी भाजी वे खावे तो उनका स्वास्थ्य खासा अच्छा रहे । पिछले महासमर के समय यह अनुसंधान किया गया था कि दबी हुई सूखी तरकारियां हानिकर होती हैं, और बोतलो मे बन्द 'लाइमजूस' नही, बल्कि ताजे नीबू का निकाला हुआ रस स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम होता है । ताजा नीबू का रस ही खून की बीमारी को रोक सकता है ।"

"हम लोग आपका बहुत आभार मानते हैं । एक बात और पूछनी है । हम वहा एक छोटा-सा हरिजन-स्कूल चला रहे है । क्या कृपाकर आप यह बतायेंगे, कि हमें वहां हरिजन बच्चों को क्या पढ़ाना चाहिए ?"

"वही सब जो मैं अभी बतला चुका हूं । मेरी यह बात हृदय में लिखलो, कि आरोग्यता और स्वच्छता के पाठ के मुकाबले में तुम्हारी यह अक्षरों और अंकों की पढ़ाई कोई चीज ही

नही। उस दिन दरयागंज की एक पाठशाला मे मैने देखा, कि वहां जो हरिजन लड़कियां पढ़ती है वे बड़ी गंदी रहती हैं। उनके नाखूनों में मैल भरा था, और नाके तो उनकी और भी गंदी थी, वे अपनी नाक और कान में जो बालियां पहने थी उन्ही के कारण वह मैल जमा हुआ था। आश्चर्य है कि, यह बात कभी उन की अध्यापिका के ध्यान में नहीं आई। इसलिए हरिजन-बच्चों को सबसे पहला पाठ तो सफाई का सिखाओ। यह किताबी पढ़ाई कुछ ऐसे बड़े महत्व की नही कि जिसके बिना चल ही न सके। यह याद रखो कि जो लोग पढ़े-लिखे नही थे उन्हे बड़े-बड़े राज्यो पर शासन करने में कोई अड़चन नही पड़ी। प्रेसीडेंट क्रूगर मुश्किल से ही अपने नाम की सही कर सकता था। मैं यह नही कहता, कि हरिजन बच्चों को किताबी पढाई से दूर रखो —नही, उन्हे जितना चाहो उतना पढ़ाओ, पर जो आवश्यक बाते मैंने तुम्हे बतलाई है उनका जरूर ध्यान रखना।"

"एक प्रश्न और है," उन ज्ञानलोभी विद्यार्थियोंने बड़ी आतुरता से पूछा। "हमारे पास कुछ सरदी के फंड का पैसा है। हम ऐसे गरीब आदमियो का पता कैसे लगावें, जो इसके लिए अत्यन्त उपयुक्त हों?"

"अच्छा, यह बात है तो लाओ, वह पैसा या तो मुझे देदो या हरिजन-सेवक-संघ को।"

"नहीं, हम खुद ही उस पैसे का कपडा बाटना चाहते हैं।"

"तो फिर एक दिन अपने शहर की दरिद्र बस्तियो मे चले जाओ, और वहां जो गरीब-से-गरीब मनुष्य हो उन्हे जाकर देदो।"

"गरीबो की झोपडियो में?"

"और नही तो क्या वायसराय के मुहल्ले मे! वहा तो तुम्हे घोडो के अस्तबल तक हमारी झोपडियो से ज्यादा गरम और साफ-सुथरे मिलेंगे। खैर, तुम्हे बहुत दूर भटकने की जरूरत नही। तुम्हें ऐसे आदमी अपने आसपास ही मिल सकते है, जो बेचारे सरदी मे ठिठुर रहे हे। मीरा बहिनने उस दिन देखा, कि यहा का एक चौकीदार हड़कप सरदी मे काप रहा है, तो उन्होंने अपना कबल उसे उसी तरह दे दिया, जिस तरह कि डा० अमारीने अपनी शाल इंगलैंड में मीरा बहिन को देदी थी।"

"मगर महात्माजी, कभी-कभी यह देखा गया है कि ये लोग जितने गरीब होते नही उतना बनते हैं। अब आप ही बतलाइए, यह पता हमें कैसे चलेगा, कि वास्तव मे अमुक मनुष्य गरीब है?"

"तब तो इसके लिए तुम्हे अंतर्यामी ईश्वर बनना चाहिए! कृपाकर यह बात कभी मन में भी न लाओ, कि दुनिया की सारी सच्चाई का इजारा एक हमीने ले रखा है।"

जब वे लोग जाने लगे, तो गाधीजीने उन से कहा, "बस, तुम तो एक ही गाव पर, याने अपने वजीराबाद पर अपना सारा ध्यान लगा दो। उसे एक नमूने का गांव बनादो। तब मुझे बुलाकर वहां अपना काम दिखाना। आज तो मेरा आशीर्वाद ले जाओ, पीछे मेरा सर्टीफिकट लेने आना।"

वह अपरिग्रही दानी

दूसरे दिन सबेरे एक अत्यंत अपरिग्रही शुद्धहृदय व्यक्ति गाधीजी का दर्शन करने आया। उस दिन वह आगया होता तो नई रोशनी केउन छोकड़ो को उसके अपरिग्रही जीवन से बड़ा सुंदर पाठ मिल जाता। उसके पास था ही क्या, एक छोटी-सी टीन की संदूकची और बिस्तर का छोटा-सा पुलिंदा और मोटी खादी की मिरजई, खादी की टोपी और खादी की धोती। उसने दौड़कर गांधीजी के पैर पकड़ लिये, और वहीं पकड़कर रह गया। हटता ही नही था, बडी मुश्किलसे हम लोग उस प्रेमदीवाने को उठाकर एक तरफ कर सके। उसकी आखों से प्रेम के आसुओ की झड़ी लगी हुई थी, और उसे अपनी सुधबुध नही थी। अपना सामान उसने एक तरफ फेंक दिया था, और वह मारे आनद के रो रहा था।

पर वह तुरत शांत हो गया, और उसने अपनी वह टीन की संदूकिया खोलकर गीता की पोथी में रखा हुआ सौ रुपये का एक नोट निकाला। संदूक मे 'हरिजन-सेवक' के तमाम अंक थे, एक भजनों की पुस्तक थी, एक जोडा खादी के कपड़े थे और उसके हाथ का कुछ सूत था। "मेरी मनोकामना आज पूरी हो गई," प्रेमविह्वल होकर गाधीजी को वह नोट और सूत देते हुए उसने कहा।

"तुम क्या काम करते हो?" गाधीजीने उससे पूछा। "मुझे कुछ ऐसा याद आता है कि मैंने तुम्हे कहीं देखा है। अच्छा आ कहा से रहे हो?"

"मद्रास से आरहा हू। काम तो मैं कुछ नहीं करता। मैं तो केवल आपका नाम जपा करता हूं।"

"पर अगर तुम कुछ भी काम-धंधा नही करते, तो फिर यह सौ रुपये का नोट तुम्हारे पास कहा से आया?"

"महात्माजी, मेरे पास अभी कुछ और भी है।"

"तब लाओ, वह भी मुझे दे दो न?"

उसने एक दूसरा सौ रुपये का नोट निकाला और मुझे दे दिया।

"पर यह तो बताओ, तुम आखिर काम क्या करते हो?"

"मैं वैसे पैसेवाला आदमी हूँ। पर अब तो फकीर हूँ। सब छोड़-छाड दिया है। अपने तीनो लड़को को जायदाद बाट दी है, और मै अब निश्चित हो गया हूँ। सेवा लीजिए, मैं अब स्वतन्त्र हूँ। मुझे अपनी टहल में भंगी का काम दे दीजिए, बस मैं और कुछ नही चाहता।"

"अच्छा, तो तुमने इस तरह अपनी सारी सम्पत्ति अपने तीनो लड़को मे बाट दी है, और मेरे हिस्से की जायदाद कुछ नही छोड़ी है?" गांधीजीने हँसते हुए कहा।

"नही, ऐसी बात नही है। सर्वस्व आपका ही है। आपके लिए एक हजार रुपये लाने का मेरा विचार था। मेरे लड़केने मुझे एक हजार रुपये दिये तो, पर मन से नही। इस साल व्यापार में उसे कुछ घाटा हुआ है, इसलिए बड़ी रकम वह खुशी से कैसे देता? मैंने उससे कहा, "मुझे पाच सौ ही चाहिए, बाकी पाच सौ तुम्हें लौटा देता हूँ—जब मै मँगाऊँ तब भेज देना।"

यह कहकर उसने बाकी के सारे नोट निकालकर मुझे दे दिये।

"पर इस तरह तुम बिना पैसे के वापस कैसे जाओगे? कुछ रेलभाड़े के लिए तो अपने पल्ले रखलो।" गांधीजीने खूब जोर से हँसते हुए कहा।

"न, कोई जरूरत नही। मै तार से रुपये मँगा सकता हूँ। मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं। महात्माजी, सर्वस्व आप का ही है—आप यह सब ले लीजिए।"

"अब तुम क्या करना चाहते हो?"

"करना क्या है, केवल आपकी सेवा मे रहना है। अगर सेवा नहीं लेना चाहते तो मुझे दो दिन यहा ठहर ही जाने दीजिए, फिर मैं अपने देश राज-पूताने चला जाऊँगा।"

गांधीजीने उसे डेरे में ठहराने की आज्ञा देदी और मुझ से कहा, "महादेव, ये सब नोट इन्हें लौटा दो। हम यह सब रुपया कैसे ले सकते हैं ? या फिर एक नोट रखलो और बाकी सब लौटा दो।"

"यह ठीक बात नहीं," उस स्वात्माभिमानी दानीने कहा। "दी हुई चीज को मैं छुऊँगा भी नहीं। महात्माजी, विश्वास रखिए, यह सब आप ही का है। मैं हजार रुपये लाना चाहता था, पर ला नहीं सका।"

"जितना मैं चाहता हूँ उतना दे दोगे ? अच्छा, तो मुझे एक करोड़ चाहिए। लाओ, दो।"

"हां, मैं देदूंगा, पर मुझे भगवान् के पास हुंडी भेजनी होगी; पर वह सांवलिया साहु तो नरसी मेहता-जैसे भक्तों की ही हुंडी सकारता है।"

"बहुत ठीक, क्या अच्छा हो कि सब मारवाड़ी तुम्हारे ही जैसे उदारहृदय हों। तुमने आज मुझे अपना सर्वस्व दे डाला—वे बड़े-बड़े लखपती तो मुझ सौ या हजार रुपये का ही तुच्छ दान देते हैं।"

"बच्चों की तरह खुशी से उछलते हुए गांधीजीने कहा, "अपने बेटों से भी तो कहो, क्या वे भी मुझे कुछ देंगे ? ये अकेले ही अपनी तमाम सम्पत्ति का उपभोग क्यों करें ?"

"क्यों नहीं देंगे, आप विश्वास रखिए, मेरे लड़के भी आपको देंगे। मेरा कुछ नहीं है, सब कुछ आप ही का तो है। आपका धन आपको ही सौंप रहा हूं। इसमें मेरी कौनसी बड़ाई की बात है ? आज मेरी सब मनोकामनाएं सफल हो गईं, आपके दर्शन पाकर, और आपके चरण छूकर मुझे आज क्या नहीं मिल गया है। मैं आज सब तरह से कृतकृत्य हो गया हूं। धन्य भाग्य मेरा आज।"

मन तो हुआ कि उस सर्वस्वत्यागी के पैर छू लूं, पर उसकी परम पवित्र विनम्रता को दुखाने की हिम्मत न पड़ी।

म० ह० देसाई

"बेरीबेरी"

बनारस के डाक्टर मदनमोहन शुक्ल होमियोपैथ 'बेरीबेरी' रोग के सिलसिले में लिखते हैं —

इस रोग की पहली अवस्था में ऐंठन होती है और एड़ी, घुटना में शोथ हो जाता है। दोनों पैर का पिछला हिस्सा फूल जाता है और जलन होती है। यहांतक होता है कि बहुत-से मनुष्यों के तो सभी अंग फूल जाते हैं और लकवे की तरह समूचा शरीर जकड़सा जाता है। चमड़ा सूखा, कब्जियत या उदरामय, पेशाब लाल, और अन्त में हृत्पिण्ड भी आक्रान्त हो जाता है। इस अवस्था में सांस लेने और छोड़ने में कष्ट होता है और हृदय धड़कता है। इस रोग का मस्तिष्क पर बिलकुल प्रभाव नहीं पड़ता।

× × × ×

यह रोग हमारे देश में बंगालियों को अधिक होता दिखाई देता है, क्योंकि वे पालिश किया हुआ चावल, महीन मैदेकी लूची, सरसों का तेल ज्यादा खाते हैं। इनमें फासफोरस और नाइट्रोजन की कमी रहती है। इसलिए बिना छांटे चावल का भात और मोटे आटे की रोटी, मूंग की दाल, छांटे हुए चावलमें की भूसी और महीन मैदे का कुछ चोकर आटे में मिलाकर खाने से बचाव हो सकता है।

धान, गेहूं, चावल, इत्यादि के छिलकेमें "ओरिजानिन" नाम की एक प्रकार की रासायनिक चीज रहती है। उससे मनुष्य का शरीर पुष्ट होता है, इसलिए छिलके को फेंक देना किसी तरह भी उचित नहीं है। अर्थात् बिना छांटे चावल का भात और गेहूं के समूचे दाने से तैयार आटे की रोटी लाभदायक है।

हरिजनों का हिंदू धर्मशास्त्रों में स्थान

[काशीस्थ एक सनातनधर्मी आचार्य द्वारा]

इसी तरह सभी धर्मशास्त्राचार्यों में श्रेष्ठ योगी याज्ञवल्क्यजी भी चाण्डालान्त सभी शूद्रों के लिए कहते हैं कि —

"नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्नहापयेत् ।"

यदि शूद्र को और मन्त्र न आते हों तो देवतावाची शब्द के चतुर्थ्यन्त रूप के आगे नमः शब्द जोड़कर मन्त्र बना लिया करे, पर पञ्चमहायज्ञ प्रभृति अवश्य कर्तव्य नित्य विधियों को छोड़े नहीं।

इस प्रकार धर्मशास्त्रों के महामान्य आचार्य मनु और याज्ञवल्क्यजीने तो सभी शूद्रों के लिए यह मुक्तद्वार व्यवस्था की है कि, ये शूद्र सब प्रकार के धर्म, संस्कार द्विजातियों के समान ही यदि और मन्त्रों का उच्चारण इनसे ठीक न हो सके तो देवतावाची शब्द के चतुर्थ्यन्त रूपके आगे 'नमः' शब्द जोड़कर मन्त्र बना लिया करें, जैसे—'शिवाय नमः' 'गणेशाय नमः' इत्यादि और ऐसे ही मन्त्रों से सारे कार्य चला लिया करें।

मनु महाराजने तो सभी शूद्रों के लिए विधिरूप में आज्ञा दी है कि, वे लोग अच्छे-अच्छे कर्मों द्वारा अपनी उन्नति करें। इस लोक में मान-प्रतिष्ठा पाकर परलोक में भी अच्छी गति प्राप्त करें।

यथायथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः ।

तथ तथेमंचामुञ्चलोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ।१०।१२८

हिंदूधर्म में श्रद्धा रखनेवाले शूद्र लोग भी ज्यों-ज्यों अन्य हिंदुओं के आचार-व्यवहार और उनके धर्मों का अनुष्ठान किया करते हैं त्यों-त्यों इस लोक में आदर-सत्कार और सम्मान पाते हैं, तथा परलोक में भी स्वर्ग प्रभृति अच्छे लोकों की प्राप्ति कर लेते हैं।

आपको अब अणुमात्र भी सन्देह न रहना चाहिए कि, वर्तमान समय में जो अस्पृश्य जातियां बन गयी हैं, उसके दोषी धर्मशास्त्र नहीं हैं किन्तु हमीं लोग हैं, क्योंकि हिन्दूसमाज की रूढ़ि के कारण ऐसी अस्पृश्यता यहां घर कर गयी है। इसलिए मैं यहां कुछ और ऐसे शास्त्रीय वचनों को उद्धृत कर देना उचित समझता हूँ, जिन वचनों के द्वारा हरिजनों से लेकर श्रोत्रिय ब्राह्मण तक के लिए एक से धर्म, व्यवहार तथा आचार बनाये गये हैं।

हिन्दूधर्मशास्त्रों में जहां अधिकारी के भेद से कर्मकाण्डों की व्यवस्था की गयी है, जो बहुत ही उचित तथा विज्ञान-सिद्ध है,

५०) रुपये

गया के प्रसिद्ध हरिजन-प्रेमी श्री प्रभुचन्दजी अग्रवालने हमारे पास ५०) सहायतास्वरूप भेजे हैं। इसके लिए उन्हें अनेक धन्यवाद। बिहार के १४ हरिजन भाइयों को श्री प्रभुचन्दजी की तरफ से एक वर्षतक 'हरिजन-सेवक' बिना मूल्य दिया जायगा। जिला-संघ की सिफारिश के साथ प्रार्थना-पत्र १५ फरवरी तक आ जाने चाहिए।

मैनेजर—

हरिजन-सेवक, दिल्ली

वहां ही कुछ विषय ऐसे बताये हैं जिनमे सभी को समान अधिकार दिये गये है। मनु महाराजने कहा है—

अहिंसा सत्यमस्तेयंशौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः।१०।६३

अहिंसा, सत्य का व्यवहार, चोरी का त्याग, सफाई और इन्द्रियो को कब्जे मे रखना इत्यादि धर्म संक्षेप मे चारो वर्णों के लिए समानतया अनुष्ठेय है, ऐसा मनु का कथन है।

दूसरी बात यह ध्यान में रखने योग्य है कि, मनु-ऐसे सर्व-मान्य धर्मनियमप्रणेताने चाण्डाल प्रभृति सभी संकर जातियों को शूद्रो के समान मानकर शूद्रो के लिए विहित सभी अधिकार चाण्डालो के लिए भी दिये है।

शूद्राणान्तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः।

सभी संकर जातिया शूद्रो के समान है, इसलिए धर्मशास्त्रो मे जो भी बाते शूद्रों के लिए कही गयी है वे सभी अत्यजो के लिए समझी जाय, इत्यादि। संक्षेप से वक्तव्य यह है कि, शूद्र और चाण्डाल अलग दो वर्ण किसी भी धर्मशास्त्र में नही पाये जाते हैं। फिर आजकल पचमवर्ण का प्रयोग करना बिलकुल धर्म-शास्त्र के विरुद्ध है।

सनातन धर्मशास्त्रो का परिशीलन करने से यह ज्ञान होता है कि, अस्पृश्यता दोष तीन प्रकार के होते हैं—

प्रथम तो, कोई उत्कट पाप करना, भ्रूणहत्या, ब्रह्महत्या, गोहत्या, मद्यपान, चोरी, गुरुस्त्री से ससर्ग और इन पतितो से सम्पर्क करना इत्यादि अत्यन्त निन्दित कर्म करनेवाले व्यक्ति सना-तनधर्म मे गर्हित अस्पृश्य माने गये है।

द्वितीय, अवस्था विशेष मे मनुष्य अस्पृश्य होता है, जैसे—रजस्वला स्त्री, और शौचक्रिया मे आकर जबतक स्नान नही किया है, शव के साथ मरघट मे गये हुए व्यक्ति, मल की टोकरी लिये हुए भगी, किसी खास रोग से आक्रान्त व्यक्ति इत्यादि अस्पृश्य माने गये हे।

तृतीय, कुछ ऐसे व्यक्ति है, जिन्हे सनातन धर्मशास्त्रो मे जन्म से ही अस्पृश्य चाण्डाल बनाया गया है। जैसे—ब्राह्मण की कन्या के साथ शूद्र पुरुष का सम्पर्क होने से जो सन्तान पैदा होगी, वह अस्पृश्य चाण्डाल होगी।

उस संतान से पैदा हुई तथा प्रत्यवसित की सन्तान (यह जाति कोई दूसरी है, जो सीमा पर निवास करती थी) और परिव्राजक तापस अर्थात् आरूढपतित सन्यासी की सन्तान ये सब अस्पृश्य है, इनकी गणना चाण्डालो के साथ की गई है।

इन प्रकारों मे पहले प्रकार का तो शास्त्रो मे ही प्रायश्चित्ता-दि विधान है, जिसको करने से मनुष्य शुद्ध हो जाता है।

दूसरे में उस अवस्था विशेष के दूर हो जाने पर मनुष्य शुद्ध माना जाता है।

तीसरी दशा है जन्मना चाण्डाल की और उसकी अस्पृश्यता की। आज यह कहना तो बडा ही दुस्तर है कि वह कौन-सी जाति है जो ब्राह्मण कन्या और शूद्र पुरुष से पैदा हुई है। उसमे तो सगोत्रोढा सन्तान भी गिनाई गई है, अर्थात् सगोत्र की कन्या से विवाह हो जाने पर जो संतान पैदा होगी वह भी चाण्डाल है। संन्यासी की सन्तति भी चाण्डाल है। पर ये लोग तो लोक में बहुत देख पड़ते हैं। इनको कोई भी अस्पृश्य नही मानता। कांगड़ा आदि पहाड़ी प्रदेशों में तपस्वी (तपोधन) नाम की एक जाति है, जिसकी उत्पत्ति आरूढपतित सन्यासी की सन्तान-परम्परा में ही मिलती है—

चाण्डाल प्रत्यवसित परिव्राजक तापसाः।
तेषां जातान्यपत्यानि चाण्डालैः सहवासयेत्।
ब्राह्मण्यांशूद्राच्चाण्डालः, सगोत्रोढासुतः, आरूढपतितापत्यं।
(बौधायन स्मृति.)

ऐसे ही गुजरात मे भी भ्रष्ट सन्यासी की सन्तति है, जो स्पृश्य है, समाज मे ग्राह्य है। बिहार प्रान्त मे अतीत (अथीथ) नाम के संयोगी गोसाई (सन्यासी) इसी तरह की सन्तति अपने को बताते है। पर वे सब बहिष्कृत नही है। ∴ मै तो समझता हूँ कि कुछ जातिया जो आजकल अछूत कही जारही है, वे शायद पेशे के कारण अछूत कही जाती है। और धीरे-धीरे हिन्दुओसे सम्पर्क छूट जाने से वे बिलकुल हिन्दू आचार-विचार से भी भ्रष्ट होकर अत्यन्त हीनावस्था को प्राप्त हो गयी है।

शूद्राणांतु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाःस्मृताः
तपोबीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगेयुगे।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः।
(मनु, अ० १० श्लो ४१-४२)

सभी अपध्वसज प्रतिलोम संकर जातिया शूद्रो के ही समान धर्मवाली मानी जायँ। वे तपस्या और बीज के प्रभाव से युग-युग मे उत्कर्ष तथा अपकर्ष को प्राप्त हो सकती है।

(क्रमश)

स्वावलम्बन-खादी-कार्य का विवरण

पिछले दस वर्षों के खादी-कार्य का मुख्य हेतु एक ही रहा है, और वह है देहात की जनता के लिए एक सहायक धन्धे की व्यवस्था करके उसे सहायता पहुँचाना। इस प्रकार की सहायता पहुँचाने के विचार से ही चर्खा-सघने भिन्न-भिन्न प्रान्तों में खादी की उत्पत्ति और बिक्री बढाने के लिए अपनी शाखाएँ स्थापित की कि जिससे अधिक-से-अधिक सख्या मे दूर-से-दूर प्रदेश की जनता भी लाभ उठा सके।

यहा यह कहा जा सकता है कि सन् १९२४ मे सगठित खादी-कार्य का आरम्भ होने से पहिले आध्र के कुछ हिस्सो मे वस्त्र-स्वावलम्बन का कार्य एक बडी हदतक वहा के देहात मे मौजूद था। अतएव यह बात बडी जल्दी समझ में आ गई कि जहातक कपास पैदा करनेवाले प्रदेशो का सम्बन्ध है, खादी-कार्य की दृष्टि से, वहा के कार्य का मुख्य और सच्चा उद्देश वस्त्र-स्वावलम्बन ही हो सकता है। इस विचार के कारण खादी-बोर्डने अपने कार्य-काल के पहिले ही वर्ष में कपास की खेती करनेवालो के नाम एक अपील निकाली, जिसमें उनसे प्रार्थना की गई थी कि वे अपने परिवार के उपयोग के लिए आवश्यक कपास बचा लिया करे, कि जिससे उसका कपडा बनाया जा सके।

और, आरम्भ ही मे यह बात भी मान ली गई थी कि प्रच-लित व्यापारिक ढँग पर खादी-कार्य का सगठन करने के लिए एक केन्द्रीय सगठन की आवश्यकता हो सकती है, फिर भी वस्त्र-स्वा-वलम्बन का कार्य तो केवल एक निश्चित सीमा के अन्दर ही किया जा सकता है। यह भी स्वीकार कर लिया गया था कि खादी के विकास को हमेशा के लिए बाहर की मांग पर आश्रित नही रक्खा जा सकता, और न वह उस भारी खर्च को ही बर्दाश्त

कर सकती है, जो उस पर उसे एक स्थान से दूसरे दूर-दूर के स्थानोंतक पहुँचाने में रेलभाड़ा आदि के रूप में लदता रहेगा। इसलिए हमारी तमाम कोशिशों का दिली मकसद तो यही होना चाहिए कि खादी का उद्योग एक ऐसे व्यापक स्थानीय उद्योग का रूप धारण करले कि जिससे उस स्थान की और उसके निकटतम स्थानों की आवश्यकताएँ बराबर पूरी होती रहें। बोर्ड की स्थापना के साल ही में अखिल भारतीय खादी-बोर्ड के सदस्योंने दक्षिण-भारत की यात्रा की थी। इस यात्रा की जो छाप उनके मन पर पड़ी थी, उसका मनोरंजक विवरण दिये बिना आगे बढ़ना कदाचित् उचित न होगा।

तामिलनाड के खादी-केन्द्रों में तिरुपुर का पहला स्थान है। बोर्ड के सदस्योंने देखा कि "तिरुपुर के कुछ व्यवसायी शुरू से ही अपने प्रान्त के बाहर के, यानी गुजरात और बम्बई के, बाजारों पर अपने व्यवसाय के लिए निर्भर करते थे। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि जब बाहर के बाजारों की माग कम हो गई, तो उन्हें मजबूरन अपने व्यवसाय को एक बड़ी हदतक घटा देना पड़ा, जैसा कि उन्होंने आंध्र में किया भी था। जिस समय खादी का यह डेप्युटेशन तिरुपुर पहुँचा था, उस समय करीब ५००० चर्खे बेकार हो चुके थे। लेकिन अगर स्थानीय बाजार में खादी की माग स्थिर रहती, तो चर्खों की यह बेकारी टाली जा सकती थी। तिरुपुर के आसपास के गावों में रहनेवाले अधिकांश कतवैये और जुलाहे उस समय भी विदेशी कपड़ा ही पहनते देखे गये थे। फिर, कोयमबतूर और आसपास के दूसरे जिलों में खादी की इतनी अधिक माग हो सकती थी कि तिरुपुर के कतवैये और जुलाहों के लिए उसे पूरा करना दूभर हो जाता, मगर वस्तु-स्थिति बिल्कुल इसके विपरीत थी—इन जिलों में उन दिनों खादी की खपत नहीं के बराबर हो थी। यदि इन स्थानों की जनता उस समय खादी को अपना लेती, तो यहां के खादी-कार्य को जिस नाजुक परिस्थिति का उन दिनों सामना करना पड़ा था वह न करना पड़ता।

इस सिलसिले में यह बात भी याद रखने योग्य है कि सन् १९२८ की अपनी एक बहुत पहली बैठक में खादी-बोर्डने यह निश्चय किया था कि प्रत्येक प्रान्त का यह ध्येय होना चाहिए कि वह यथासम्भव प्रान्त की जनता के हाथ प्रान्त में उत्पन्न खादी ही बेचे, और जिन क्षेत्रों और प्रान्तों में वहा की खादी पर्याप्त मात्रा में तैयार नहीं हो सकती उनके लिए अपने प्रान्त की बची हुई ऐसी खादी हो सुलभ करदे, कि जो विशेष रूप से अनुकूल उत्पत्ति-केन्द्रों में तैयार हुई हो।

नीचे अखिल भारतीय चर्खा-संघ की सन् १९३३ की उत्पत्ति और बिक्री के आंकड़े दिये जाते हैं, जिनसे साफ ही पता चलता है कि संघ की शाखाओंने सारे देश में कमोबेश इसी नीति का सूक्ष्मता से पालन किया है—

प्रान्त	उत्पत्ति	प्रान्त की कुल बिक्री
आंध्र	१,७१,४५३	२,१८,५८२
बिहार	१,४८,००१	१,८७,६३६
गुजरात	५,२७०*	४१,९१२
कर्णाटक	३८,६६८	१,५८,३२८**
महाराष्ट्र	२,४६,४९९	२,७१,२०५
पंजाब	१,८३,७८१	१,१९,५९३
राजस्थान	१,१२,६६७	७१,१८२
तामिलनाड	५,३५,८०६	७,५८,५६२
युक्त प्रान्त और दिल्ली	२,०७,०३२	३,९५,९७९
उत्कल	१९,६४०	३६,७४०**

*प्रान्त में फेरी और खानगी खादी-भण्डारों द्वारा बेचा गया।

इन आंकड़ों से यह पता चलेगा कि भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जो खादी बनती है, वह पंजाब और राजस्थान को छोड़कर बहुत अधिक अंशों में उन्हीं प्रान्तों में बिक जाती है। पंजाब और राजस्थान की खादी का अधिकांश बाहर भेजना पड़ता था, क्योंकि इन प्रान्तों में खादी की काफी माग नहीं रहती। पर इन प्रान्तों में भी इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि इनमें खादी की प्रान्तीय बिक्री बढ़े, और आशा की जाती है कि शीघ्र ही इस दृष्टि से ये भी स्वावलम्बी बन जायँगे।

आगे चलकर यह भी अनुभव किया गया कि चूंकि देश की आबादी का बहुत थोड़ा हिस्सा शहरों में बसा हुआ है, इसलिए अगर खादी को देशव्यापी बनाना है, तो देहात में खादी के प्रचार का उचित प्रबन्ध अवश्य ही किया जाना चाहिए। इसके अनुसार तहसीलों के छोटे-छोटे कस्बों में खादी-भंडार खोले गये, और इस प्रकार उनके आसपास रहनेवाली ग्रामीण जनता के लिए खादी सुलभ बना दी गई। इस कार्य को और भी अधिक व्यापक बनाने के लिए कौंसिलने सन् १९२७ में विशेष रूप से खादी-फेरी की एक योजना बनाई और मंजूर की। इस योजना के अनुसार गांवों में खादी की फेरी लगानेवालों को महीने में पहले १००) की बिक्री पर १५) और १००) से अधिक की बिक्री पर फी सदी ६।) का कमीशन देना तय पाया था। संघ की कई शाखाओंने इस योजना से लाभ उठाया और गावों में खादी-फेरी का काम करनेवालों को खास तौर पर नियुक्त करके बहुत-सी खादी बेची। इन प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप छोटे कस्बों और उनके आसपास के गावों में खादी की जो बिक्री होने लगी है, वह खादी की कुल बिक्री का एक खासा अंग बन गई है। सन् १९३३ में यह बिक्री ८,८६,०८० रु० की हुई थी, जिसका ब्यौरा नीचे दिया जाता है—

प्रान्त	केन्द्रों व भण्डारों की संख्या	देहात में फुटकर बिक्री
आंध्र	१९	७५,२४६
बिहार	१३	७६,३०८
कर्णाटक	१५	५५,२९०
महाराष्ट्र	७	१,२५,७४०
पंजाब	३	७,६४८
राजस्थान	५	१,८०८
तामिलनाड	३६	१,१८,७५८
युक्त प्रांत, दिल्ली	८	१९,१०७
उत्कल	३	६,१७५

**प्रान्त की उत्पत्ति अपर्याप्त होने से प्रान्त की माग पूरी करने के लिए दूसरी शाखाओं से खादी मंगानी पड़ती है।

(क्रमशः)

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला हाउस, दिल्ली

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ८ फरवरी, १९३५. [संख्या ५१

विषय-सूची

सेवा का एक नमूना

अपने २५ नवम्बर और १२ जनवरी के पत्रों मे राजस्थान के एक हरिजन-सेवक लिखते हैं :—

"पहले पाठशाला यहा शहर के बाहर थी । वहा की अस्वच्छता और स्थान की कमी के कारण हमारा एक-एक दिन कठिनाई से कटता था । यों तो हमने आसपास सफाई कर ली थी और नित्य करते भी थे, मगर फिर भी हर रोज मुहल्ले की स्त्रिया कूड़ा-कर्कट डालकर और रात को वहा ठहरनेवाले पेशाब करके, थूककर, चिलम पीकर और कभी-कभी तो पीछे टट्टी फिरकर गंदा कर ही जाते थे । फिर स्थान भी सकीर्ण था । ५०-६० लड़के बहुत ही भिचाभीच के साथ बैठ पाते थे ।

शुरू मे मन्त्रीजी के साथ जब मै हरिजन-मुहल्लो मे गया था, तब उन्ही से यह मालम हुआ कि पाठशाला पहले यहां चमारों के मंदिर में लगती थी । मुझे यह स्थान पाठशाला के लिए बहुत ही उपयुक्त जँचा । मन्त्रीजी की भी यही इच्छा थी कि पाठशाला अगर यहा हो तो ठीक हो । दूसरे दिन से मैं हरिजन-मुहल्लो मे औषधियां देने और प्रचारार्थ जाने ही लगा था । ५—६ दिन बाद चमारो के मुहल्लो में इस सम्बन्ध में बातचीत की । उन्होंने इस शर्त पर कि लड़के ऊपर न चढे और ऊधम न मचायें, उसारी और आगन मे पढाने देना स्वीकार कर लिया । मन्त्रीजी से पूछकर मैंने २९ सितम्बर से वहा पढाई शुरू कर दी ।

पहले पाठशाला में मेहतर छात्र अलग बैठाए जाते थे । मैंने पाठशाला के बालकों को इस सम्बन्ध मे समझाबुझाकर शुरू दिन से ही सब को एकसाथ बैठाना आरंभ कर दिया । दूसरे दिन से उपस्थिति कुछ कम होने लगी । दूसरा कारण चमारों के मन्दिर में पाठशाला लगाने का उत्पन्न हो गया । उपस्थिति बहुत ही कम हो गई । मुसलमान बालकोंने तो एकदम आना बन्द कर दिया । साध, गरो, आदि कुछ हरिजन जातियां भी अपने बालकों को साथ बैठाने मे एतराज करने लगी । उन्ही दिनों मैं बीमार पड़ गया । सात दिनतक पाठशाला न जा सका । अधिक कमजोरी होने पर भी मै १२ अक्तूबर को पाठशाला गया । उस दिन हाजिरी बहुत ही कम थी । इस से कुछ चिन्ता हुई । लेकिन यह सोचकर कि शुरू मे तो ऐसा होता ही है, उस दिन मैंने अपना कार्यक्रम बनाया । उन दिनों मलेरिया खूब जोरो से फैल रहा था । इससे औषधि देने के लिए मैं नित्य हरिजन-मुहल्लो मे जाने लगा। पत्नी को भी कभी-कभी साथ ले जाया करता था ।

उन लोगो के यहा बैठना और सफाई तथा बालको की शिक्षा के सम्बन्ध में उन्हे समझाता । साथ-साथ छूतछात की निस्सारता भी बताता । ये बातें लोगो की समझ मे कुछ आई । सभी हरिजन जातियो के बालक पढने आने लगे । कुछ बालिकाएँ भी आईं । मेरे सहायक के १५ दिन की छुट्टी लेने के कारण मै अपनी पत्नी को छोटे बालको को पढाने के लिए पाठशाला ले जाने लगा, इस से बालिकाएँ और भी आईं । इस समय हरिजन बालिकाओ की संख्या इस प्रकार है:—

मेहतर		चमार		साध		गरो		
५	+	३	+	२	+	७	=	१७

मेरी पत्नी ही इनको पढाती है । सीना और चर्खा चलाना भी दो-तीन दिन बाद शुरू कर दिया जायगा ।

माह सितम्बर मे जब मै यहा आया था, उस समय की और उस माह की बालको की दर्ज सख्या नीचेलिखे अनुसार है —

	सवर्ण	मुसल्मान	भीर	मोची	साध	गरो	खटीक	चमार	मे०	कुल
सि०	१७	२५	१९	१०	८	७	२	१	७	९६
न०	३	२	१९	७	१०	१४	२	१३	१८	८८

सवर्णों की सख्या एकदम घट गई है । हिन्दुओ में से कुछ लड़के तो पहले ही से अनुपस्थित रहते थे । कुछने तो छुआछूत के कारण और कुछने भोई के अपने धन्धे के कारण आना बन्द कर दिया । आजकल एक सुनार और दो भोई के लड़के पढ़ने आते हैं, और मेहतरो के बालको के साथ ही बैठकर पढते हैं । एक विशेष वर्ग के लड़के शरारत ज्यादा करते थे । गाली-गलौज, बच्चो के साथ मारपीट, जब मन हुआ तो पढा न हुआ न पढा आदि बाते देखकर उनके साथ थोड़ी सख्ती का व्यवहार किया इस से तथा पाठशाला चमारो के मन्दिर में लगने से इन लोगोने आना बन्दकर दिया । हरिजन-बस्ती के सभी बालक नियमानुसार पढ़ने आते हैं, क्योंकि मेरा हमेशा वहां जाना-आना रहता है ।

हमने आसपास के गावो में भी जाना शुरू कर दिया है । अभीतक तो दो ही गांवों में आ सके हैं । पर अब आसपास के, एक-दो कोस के फासलेवाले सभी गांवों में जाना है । इन गांवों में

भीलों की आबादी अधिक है। कहीं-कहीं हरिजनों की बस्ती भी है।

दोनों रात्रि-पाठशालाएँ भी अच्छी तरह चल रही हैं। पहले मैं गुजराती मेहतरों के यहा पढाने जाता था, परन्तु डेढ महीने से अब पाठशालावाले मुहल्ले में जाता हूं। पहले इसमें ९ चमार विद्यार्थी थे। अब १९ हैं २ मेहतर, १५ चमार, १ गरो, १ साध। इस मुहल्ले के मेहतर लापर्वाह अधिक हैं। फिर भी मैं तो जतन कर ही रहा हूं। आशा भी है, कि मेहतर भी अधिक सख्या मे रात्रि-पाठशाला में आने लगेंगे।

जो समय बचता था उसे पाठशाला (मन्दिर) के छवाने, लिपाने-पुताने तथा आसपास की सफाई में लगाता था। अब मन्दिर खूब साफ-सुथरा और अच्छी हालत में हो गया है। इसमें कुल ।।।ऽ)। खर्च हुआ है ।ऽ) की खर्डी गोंतने के लिए, -)।। का रंग दीवालों पर शिक्षाप्रद वाक्य लिखने के लिए, ऽ) का चूना मरम्मत के लिए, =)।। आगन छानेवाले को मजदूरी में और -)। की काली मिट्टी आगन छापने को। यह सब काम बालकोंने, रात्रि-पाठशाला के युवकोंने और हम दोनों शिक्षकोंने मिलकर किया है।

अब हमने मौखिक प्रचार के सिवा क्रियात्मक प्रचार भी शुरू कर दिया है। एक माह में दो बार हरिजन बालकों के हाथ-मुंह धुलाये, और दो बार मुहल्लों में सफाई की। हाथ मुंह धुलाने में मेरी पत्नी भी साथ थी। उस दिन तो उसने आशा से भी अधिक चाव के साथ मेहतर व चमारों के अत्यन्त गन्दे बालकों के हाथ-मुंह साफ कराये। पहले-पहल तो वह यहा की बोली भी नहीं समझ पाती थी। परन्तु पाठशाला में जाने के कारण प्रतिदिन बच्चों के साथ रहने से अब टूटी-फूटी हिन्दी-मिश्रित यहां की बोली बोलकर स्त्रियों के सम्पर्क में आना शुरू कर दिया है।

मेरा विचार यहा की बुनकर तथा अन्य स्त्रियों को सूत कातना सिखाने का है। इस सम्बन्ध का प्रचार करने से आशा तो हुई है कि इसमें सफलता तो मिल सकती है। बुनकर स्त्रियोंने, जिनको कि फुर्सत का बहुत समय मिलता है, अपनी इच्छा भी प्रगट की है। चर्खा तो हमें मिल गया है, पर बिना पीजन के हमारा काम रुक रहा है। यहां सिर्फ दो ही पिंजारे हैं, और वे बिल्कुल कच्ची रूई पींजते हैं, जिसमें ५-६ नम्बर से अधिक का सूत नहीं कत सकता।

× × × ×

उस दिन 'केणवा' में साध (बुनकर) जाति में एक बड़ा भारी नुक्ता था। बड़े नुक्ते के अवसर पर इधर 'रास' (कृष्णलीला) रमने का रिवाज है। जब मुझे मालूम हुआ कि दो-तीन सौ स्त्री-पुरुष इस नुकते में इकट्ठे होंगे, तब मेरी इच्छा वहां प्रचार के लिए जाने की हुई। इस सम्बन्ध में साध लोगों से बातचीत की। इन्होंने रास देखने के लिए आने का आग्रहपूर्वक निमन्त्रण दिया। हम साधों के मेहमान बने। यहां के सभी साध स्त्री-बच्चों के साथ वहां आये हुए थे। हम अपने साथ ओढने के लिए वस्त्र और भोजन तो ले ही गये थे। सभी साध बड़े आदर और प्रेमभाव से मिले। पत्नी का भी थोडी देर में सब स्त्रियों से अच्छा परिचय हो गया। थोड़ी देर बाद हम वहा के हरिजन-मुहल्लों में गये। यहां तीन हरिजन जातियां हैं, साध (१० घर), गरो (६ घर) और चमार (१५ घर)। साध और गरो के बालक तो यहां की सरकारी पाठशाला में जाते हैं, परन्तु चमार भाइयों के बालक नहीं जाते। साध और गरो इन दो जातियों के लोग सफाई खूब रखते हैं।

साध तो सवर्णों से भी सफाई में आगे हैं। इन दोनों जातियों में मास-मदिरा बिल्कुल ही बन्द है। इतना होते हुए भी ये लोग अछूत माने जाते हैं! मैंने इस पर विचार किया और इन लोगों से भी इनके पूर्वजों का हाल पूछा। 'साध' लोग, जो अपने को भक्त कहते हैं, लगभग २५० बरस से 'मावजी महाराज' को अपना इष्ट देवता मानते हैं। इसके पहले ये लोग बलाई कहलाते थे। शायद इसी से ये लोग आजतक अछूत माने जाते हैं।

'गरो' जाति के लोग आज भी चमारों के यहा विवाह-संस्कार, मृतक संस्कार आदि कराते हैं, और इनके यहा से दान भी लेते हैं। भील लोग भी इनके यजमान हैं। वैसे त्योहारों पर तो ये अन्य सवर्ण जातियों के यहा भी मागने जाते हैं। धान, पैसा, कपड़ा आदि वस्तुओं के सिवाय खाने-पीने की चीज नहीं लेते।

इनमें अक्षरज्ञान सभी के लिए आवश्यक है। 'टीपणा' (पचाग) देखकर अपने यजमानों को तिथि, वार, त्योहार और उनकी ग्रहदशा भी बताते हैं। हानिकर ग्रहदशा के निवारणार्थ 'जप' आदि भी कराते हैं। इनकी आजीविका का यही एकमात्र सहारा है।

ये लोग आजकल के ब्राह्मणों से किसी प्रकार घटकर नहीं हैं। 'पेशा' भी इनका समान है। किन्तु चमारों के यहा क्रिया-कर्म कराते हैं, इसीलिए अछूत माने जाते हैं।

अब तो आम तौर पर बजारों में सभी सवर्ण जातिया इनसे अड़ती हैं। ये लोग दुकानों पर जाकर सवर्णों की भांति सामान भी खरीदते हैं। इस प्रकार ये दोनों जातिया तो अस्पृश्यता के शिकंजे से प्राय निकल ही चुकी हैं। बस शिक्षा-प्रचार-द्वारा रहीसही अस्पृश्यताका भी अवसान हो जायगा।

बड़े सबेरे मैं भी पचों की टोली में जा बैठा। मैंने कहा कि आप लोगों का ख्याल तो हमने खूब देखा, अब अगर सब लोगों को अच्छा लगे तो मैं भी अपना ख्याल सुनाऊं। सब लोगोंने बड़ी इच्छा प्रगट की। शौचआदि से निवृत्त होकर चमार भाइयों के मुहल्ले में गया। सभी पुरुष और कुछ स्त्री-बच्चे इकट्ठे हो गये। पहले मैंने पढाई के बारे में समझाकर उनके अपने-अपने बच्चों को सफाई के साथ सरकारी स्कूल में भेजने के लिए कहा। फिर सफाई के बारे में कहकर दारू और मुर्दार मास की बुराइयां समझाई। तीन बूढ़े हरिजन भाई तो बहुत पहले से ही मुर्दार नहीं खाते थे। अन्य पाच भाइयोंने दारू-मास न खाने-पीने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। मेरे साथ कुछ औषधिया भी थीं। १५ बीमारों को दवा बाटी। इसके बाद श्रीहीरालालजी शास्त्री-रचित 'नुकते का ख्याल' गाकर सुनाया, और उसका अर्थ भी बताया। यह उन लोगों को खूब ही रुचा, और जँचा।"

इस प्रकार यह विनम्र सेवक अपने शरीर से, बिना पैसा-कौड़ी खर्च किये, हरिजनों के जीवन में पैठकर उनकी सेवा का प्रयत्न कर रहे हैं। आशा है कि इनके उदाहरण से प्रेरित होकर हमारे हरिजन-सेवक और भी प्रोत्साहित होंगे। जिन लोगों को यह भ्रम है कि रुपया खर्च किये बिना प्रचार नहीं हो सकता उनके लिए तो यह मिसाल काफी शिक्षाप्रद होनी चाहिए।

रामनारायण चौधरी

हरिजनों का हिंदूधर्मशास्त्रों में स्थान

[एक काशीस्थ सनातनधर्मी आचार्य द्वारा]

[३]

आदित्य पुराण में कलियुग मे छोड देने के लिए बहुत-सी बातो का उल्लेख है। वहां पर अन्त में "संसर्ग दोष" यह शब्द भी आया है, अर्थात् संसर्ग दोष भी कलि मे वर्ज्य है। और युगों मे पतितो मे जो ससर्ग-स्पर्श करने से दोष माना जाता है वह कलियुग में नही लगता। अत. चाण्डाल प्रभृति के स्पर्श से पातित्य लगता है, यह भ्रम अब द्विजातियो को नही करना चाहिए।

"कल्यापद्धर्मसर्वस्व" के प्रणेता महामहोपाध्याय पं० सदाशिव मिश्रने भी ऐसा ही अर्थ अपनी ५०० पृष्ठवाली बृहत् पुस्तक मे किया है। उनको यह वचन इस प्रकार मिलता है :—

"संसर्गदोषः पापेषु मधुपर्के पशोर्वधः।"

इत्यादि उनके लिखे हुए सभी वाक्यो का ही मैं सक्षेप में उद्धरण कर देता हूँ, विद्वद्गण समझ लेंगे—

"अत्र पापेषु यावत्पापेषु संसर्ग दोषः स्पर्शदोषात्मकं एकं पातकम् युगान्तर विषयमेव कलौ तु परिहातव्यम् तन्नामकं वृजिनमित्यर्थः। सुसमीचीनोऽयमपन्थाः। कलावङ्गीकृते, तत्परिहरणे सुतरां कलियुगान्तर्गतापदि परिवर्जनीयस्तद्दोष इति परामर्शः × × × अतश्च परिशुद्ध चरित केशपरिच्छदैः प्रतिलोम संकरजातीयैः सहैकासनोपवेशनादि कार्यानुष्ठानावसरे नैव गण्यः स्पृष्टास्पृष्टिविचारः। अन्यथैषां धर्मान्तरग्रहणे स्वधर्मदौर्बल्यप्रसङ्गात् ॥

४५१ पृष्ठ

इससे यह बात स्पष्टतया सिद्ध हो गयी कि कलि में स्पर्शास्पर्श दोष नही लगता। इतने पर भी जिसका भ्रम दूर न होता हो वह नीचे लिखे हुए इन वचनो के आधार पर विशेष अवस्था मे ही स्पर्शास्पर्श दोषो का परिहार समझें। इन वचनों मे भी हरिजनो के साथ बैठने-उठने में सुविधा मिलती है —

देवयात्रा विवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च।
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टिर्न विद्यते॥
(अत्रि)

संग्रामे हट्टमार्गे च यात्रा देवगृहादिषु।
नगरे ग्रामदाहे च स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति॥
(स्मृत्यर्थसार)

कुण्डे मञ्चे शिलापृष्ठे नौकायां च गजे तथा।
संग्रामे संकटे चैव स्पर्शदोषो न विद्यते॥
(आचार पालने)

अर्थात्—देवदर्शन मे, किसी प्रकार की यात्रा मे, यज्ञ के प्रकरण मे, सब प्रकार के उत्सवों मे स्पर्शदोष नही देखा जाता।

संग्राम मे, बाजार के रास्ते मे, किसी प्रकार की यात्रा में, देवमन्दिर प्रभृति मे, और नगर मे और ग्राम मे आग लग जाने पर स्पर्शास्पर्श दोष नही लगता।

कुण्ड अर्थात् जल भरने के स्थान कुआं आदि, मञ्च याने तखत इत्यादि, नाव पर (जहाज, रेल इत्यादि), हाथी पर, युद्ध मे, और विपत्ति के समय स्पर्शदोष नही लगता।

इत्यादि बहुत-से वचन हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि विशेष-विशेष अवस्थाओं में स्पर्शदोष नहीं लिया जाता।

इन वचनो-से साफ सिद्ध होता है कि जिन-जिन जगहो में आजकल हरिजनो के लिए सुभीता कर देने का आंदोलन चल रहा है, उन जगहो में तो पहले से ही हमारे ऋषि-मुनियोने सुभीता दे रखा है। हम अपने हठ, दुराग्रह, अभिमान तथा कुरीतियो में फँसकर उन वचनो का अनादर करदें तो इसका तो कोई उपाय ही नहीं।

ऊपर के श्लोको में सार्वजनिक स्थान कुआं आ[illegible] गया है। देव-मंदिर शब्द मे सरस्वती-मंदिर शिक्षास्थान का भी उल्लेख हो ही गया। सार्वजनिक उत्सव सभा सोसाइटी, मार्ग, यात्रा प्रभृति सभी बातो का तो उल्लेख है ही। हमारे ऋषि-मुनियोने तो सभी बातो की व्यवस्था देदी है। हमें न सूझे तो वे क्या करें।

जलाशय में सभी का समान अधिकार है। इस विषय मे हिंदूधर्मशास्त्रो की सम्मति तथा प्राचीन रीति-रिवाज प्रमाण हैं।

प्राचीन काल मे नदी, तालाब, बावली कूप आदि सभी सार्वजनिक स्थानो मे हिन्दूमात्र बेरोक-टोक प्रवेश करते थे। इसमें ऊपर 'कुण्डे मञ्चे' इत्यादि धर्मशास्त्रीय वचनो के सिवाय उस काल की सामाजिक स्थिति भी प्रमाण है।

'मृच्छकटिक' नामक नाटक (प्रकरण) मे शूद्रक कवि कहता है:—

"वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपिवर्णाधम;
फुल्ला नाम्यति वायसोऽपि हि लता या नामिता बर्हिणा।
ब्रह्मक्षत्रविश: तरन्ति च यया नावा तयैवेतरे" ॥१॥

नदीकूपतडागानि सरांसि सरितस्तथा।
असंस्पृश्यान्यदोषाणि मनुःस्वायंभुवोऽब्रवीत ॥२॥
(शुद्धिचन्द्रालोके उशना)

अन्त्यैरपिकृते कूपे सेतौ वाप्यादिके तथा।
तत्रस्नात्वाच पीत्वा च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३॥
(पराशर)

जलाशयो के लिए तो हिंदूधर्मशास्त्रों की अचल आज्ञा है कि वह सभी के लिए मुक्तद्वार किये जायँ। क्योकि कुआं बावली पोखरा और तालाब वगैरा जो कुछ भी खुदाया जाता है, उसके अन्त मे एक विधि होती है जिसे 'उत्सर्ग' कहते हैं। उसमे यह संकल्प बोला जाता है कि "सर्वेभ्य प्राणिभ्य सर्वदा अनिरुद्धद्वार जल पातुमुत्सृजे" इस हालत मे जलाशय मे अमुक जल भरे अमुक न भरे यह बात हो नही सकती। स्पष्टतया सभी के लिए वचन भी धर्मशास्त्रों में भरे पड़े हैं।

ऊपर "समानी प्रपा" इत्यादि वैदिक मंत्र भी पहले प्रारम्भ में ही दिखा दिया गया है, जिससे सिद्ध होता है कि पनीसरा जलाशय प्रभृति मे सभी के लिए समान अधिकार होना चाहिए।

(क्रमश)

१ तालाब में बड़ा विद्वान ब्राह्मण भी स्नान करता है, और वही गँवार-से-गँवार वर्णाधम चाण्डाल भी स्नान करता है। जिस लता को कौवेने झुकाया है उसीको मयूर भी झुकाता है। जिस नाव से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तरते हैं उसी नाव पर बैठकर चाण्डाल भी नदी पार करता है।

२. नदी, कुआं, तालाब, झील, आदि सभी के लिए खुले रहने पर उनमे कोई दोष नहीं है।

३. चाण्डालो के बनाये कुएँ, घाट, बावली आदि जलाशयों में स्नान करने व जल पीने से कोई प्रायश्चित्त नहीं लगता।

हरिजन-सेवक

शुक्रवार ८ फ़रवरी १९३५

आरंभ कैसे करें ?

(२)

उस हफ्ते मे मैंने चावल के संबंध मे लिखा था। अब गेहूँ लेता हूँ। गेहू आहार मे सब से महत्त्व की नही तो दूसरे नम्बर की वस्तु तो जरूर है। पोषण की दृष्टि से देखें तो गेहू अन्नों का राजा है। विशुद्ध गेहू और विशुद्ध चावल की तुलना की जाय तो चावल से गेहू ऊंचा ही उतरेगा। यह तो सभी डाक्टरो की राय है कि बिना चोकर का आटा उतना ही हानिकर है जितना कि पॉलिश किया हुआ चावल। बाजार मे जो महीन आटा या मैदा बिकता है उसके मुकाबले मे घर की चक्की का पिसा हुआ बिना चला गेहू का आटा अच्छा भी होता है और सस्ता भी। सस्ता इसलिए होता है कि पिसाई का पैसा बच जाता है। फिर घर के पिसे हुए आटे का वजन कम नही होता। महीन आटे या मैदे मे तौल कम हो जाती है। गेहू का सब से पौष्टिक अंश उसके चल्लोसन या चोकर मे होता है। गेहू की भूसी चालकर निकाल डालने से उसके पौष्टिक तत्त्व की बहुत बड़ी हानि होती है। ग्रामवासी या दूसरे लोग जो घर की चक्की का पिसा आटा बिना चला हुआ खाते है वे पैसे के साथ-साथ अपना स्वास्थ्य भी नष्ट होने से बचा लेते हैं। आज आटे की मिले जो लाखो रुपए कमा रही हैं उस रकम का काफी बड़ा हिस्सा गांवो में हाथ की चक्किया फिर से चलने लगने मे गांवों मे ही रहेगा और वह मत्पात्र गरीबो के बीच बँटता रहेगा।

पर इसके विरुद्ध यह आपत्ति उठाई जाती है कि घर की चक्की मे पीसना एक झंझट है, कभी तो आटा उसमें मोटा पिसता है और कभी महीन, और गांव के लोग खुद अपने हाथ से आटा पीसे यह बात उन्हे आर्थिक दृष्टि से पुसाती नही। अगर पहले गांववालो को अपने हाथ से पीसना पुसाता था, तो आटे की मिले खुल जाने से इसमे कोई फर्क तो पड़ना ही नहीं चाहिए। यह बात तो वे लोग कही नही सकते कि हमे इस काम के लिए समय नही। और जब परिश्रम के साथ बुद्धि का संयोग होगा, तब यह पूरी आशा है कि हाथ की चक्कियो मे अवश्य ही सुधार होगा। भला यह भी कोई दलील है कि हथचक्की मे कभी तो आटा मोटा पिसता है और कभी बारीक ? अगर चक्की मे अच्छा बढ़िया आटा न पिसता होता तो अनादि काल से वह अपनी हस्ती कैसे कायम रख सकती ? पर जब यह वहम हो कि हाथ की चक्की मे मोटा-महीन आटा पिसा है तब मै यह राय दूगा कि उस आटे को चलनी से चाल लो, और चालने से जो मोटा रवा निकले उसकी थूली बनालो, और उसे रोटी के साथ अथवा पीछे खालो। अगर ऐसा किया गया तो पीसने की क्रिया अत्यन्त सरल और सुगम हो जायगी, और बहुत सारा समय और श्रम बच जायगा।

यह तमाम परिवर्तन करवाने के लिए ग्रामसेवकों को स्वयं सीखकर तथा ग्रामवासियो को सिखाकर पहले से कुछ तैयारी तो करनी ही पड़ेगी। यह आशा नहीं करनी चाहिए कि इस काम में हमें शाबाशी मिलेगी, पर अगर हमारी यह इच्छा हो कि हमारे ग्रामवासी स्वस्थ और कुछ सुखी रहे तो यह काम हमे अवश्य करना चाहिए।

इसके बाद मै गुड पर आपका ध्यान आकर्षित करूँगा। 'हरिजन-सेवक' मे मैंने डाक्टरो के जो प्रमाण दिये है उनमे यह प्रगट होता है कि सफेद चीनी की अपेक्षा गुड अधिक पौष्टिक है, और अगर गांववालोंने गुड बनाना बिल्कुल ही छोड़ दिया तो उनके बाल-बच्चो के आहार में से एक जरूरी चीज निकल जायगी। वे खुद शायद बिना गुड के अपना काम चला लेगे, पर उनके बच्चो के शरीर को बिना गुड के जरूर ही हानि पहुँचेगी। बाजारू मिठाई और शक्कर की अपेक्षा गुड अधिक बढ़िया चीज है। अगर गुड बनना जारी रहा और लोगोंने उसका उपयोग करना न छोड़ा तो ग्रामवासियों का करोडो रुपया उनकी गिरह में ही रहेगा।

मगर कुछ ग्रामसेवक यह कहते है, कि गुड की कीमत से तो उसकी पैदावार का खर्च भी नहीं निकलता। किसान को तो साहूकार का देना चुकाना है, इसलिए ऊख की खड़ी फस्ल बेचकर ही उसे पैसा मिल सकता है। ऊख का गुड़ बनावे और बेचे, तब कहीं पैसा हाथ मे आयगा, तबतक सिर पर चढा हुआ साहूकार थोड़े ही धीरज रखेगा। इससे उलटा प्रमाण भी मेरे पास है। फिर भी यह दलील उपेक्षणीय नही है। इसके लिए मेरे पास कोई तात्कालिक जवाब नही है। जिस जगह पर अमुक कच्चा माल पैदा होता हो उसी जगह पर उस चीज का तैयार माल बेचने पर अगर मजूरी का भी पैसा न निकले तो वहा उस आर्थिक व्यवस्था मे शुरू से ही कोई त्रुटि होगी। इस विषय की हर स्थान पर स्थानीय जाच-पड़ताल होनी चाहिए। गावो के लोग जो जवाब दे उसे मानकर ग्रामसेवको को उपाय के सम्बन्ध में हताश नही होना चाहिए। गुड के विषय में जो अटपटे प्रश्न उपस्थित हो रहे है उन्हे हल कर सकने से ही राष्ट्र का उन्नति-साधन हो सकता है, और शहरो का गांवो के साथ ऐक्य भी सिद्ध हो सकता है। हमे अपने मन मे इतना निश्चय कर लेना चाहिए, कि शहर के लोगो को पैसा अधिक भी देना पड़े तो भी गांवो मे गुड के उद्योग को नष्ट नही हो जाने देना चाहिए।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

मधुमक्खियां पालना

कोयबतूर के यंग मेन्स क्रिश्चियन असोसियेशन के ग्रामसेवा विभाग के संचालक श्री जयकरण को मैंने जो पत्र लिखा था उसके जवाब में उन्होंने निम्नलिखित उपयोगी सूचना भेजी है—

"छोटे पैमाने पर मधुमक्खिया पालने का काम करनेवाले कृष्णस्वामी नायडू नामक एक सज्जन अपने पड़ोसियो को यह दिखलाते हैं कि 'कोथमीर' के पौधे से साधारणतया जितना

मुफ्त के लिए न लिखें—

गत वर्ष कुछ दानी सज्जनोंने बहिनों, सार्वजनिक संस्थाओं तथा हरिजनों को मुफ्त 'हरिजन-सेवक' देने के लिए दान दिया था। इस वर्ष दो सज्जनो के अतिरिक्त किसी अन्य सज्जनने ऐसी सहायता नहीं दी है। अतः अब हम 'हरिजन-सेवक' मुफ्त न भेज सकेंगे।

मैनेजर,
हरिजन-सेवक, दिल्ली

कोथमीर पदार्थ निकलता है उतना निकलता ही है, पर परिश्रम-शील मधुमक्खियों की बदौलत इन पुष्पों के नरकेसर तथा स्त्री केसर का संयोग अच्छी तरह होने से 'कोथमीर' और भी अधिक मात्रा में निकलता है—और इन सज्जन को उत्तम जाति का २१ सेर जो सुनहरा शहद मिला है वह अलग है। इस बढ़िया शहद से ही उन्हें ६३) की आमदनी हो गई है। उनके पास शहद के केवल दस ही छत्ते हैं। उन्होंने इन प्राकृतिक छत्तों को कहीं से प्राप्त कर लिया है, और सस्ते-से चीड़ के बक्सों में उन्हें रखा है।"

मुझे ऐसा भास होता है कि मधुमक्खियां पालने के उद्योग का हमारे देश में बेहद विकास हो सकता है। गांवों की दृष्टि से तो इस उद्योग का महत्व है ही, पर धनाढ्य युवतियां और युवक इस काम को शौकिया भी कर सकते हैं। इस काम को करते हुए वे देश की संपत्ति बढ़ायेंगे, और अपने लिए सुंदर-से-सुंदर स्वास्थ्यप्रद शक्कर पैदा करेंगे। अगर उनकी वृत्ति परमार्थ की ओर है, तो वे इस शहद को बतौर एक पौष्टिक आहार के अस्वस्थ हरिजन बालकों में बांट सकते हैं। शहद श्रीमानों के शौक की चीज, या वैद्य-हकीमों के हाथ में बतौर एक कीमती दवा के ही क्यों रहे? इसमें शक नहीं कि अपनी नगण्य जानकारी के अनुमान पर ही मेरी यह आशा निर्भर करती है। गांवों और शहरों में युवक-युवतियां जो प्रयोग करें उनसे यह मालूम होना चाहिए कि शहद हमारे आहार की सामान्य वस्तु हो सकती है, अथवा आज की भांति वह असाधारण या दुर्लभ ही बनी रहेगी।

'हरिजन' से]		मो० क० गांधी

एक विनम्र सेवक का स्वर्गवास

गत १४ जनवरी को सबेरे १० बजे हमारे दरिद्र राजस्थान का एक विनम्र सेवक चल बसा। श्रीयुत प्रेमचन्दजी भील १५ वर्ष से राजपूताना, विशेषत मेवाड़ के किसानों और खासकर अपने सजातीय भील भाइयों की सेवा कर रहे थे। इस बीच में उन्हें शारीरिक, आर्थिक, मानसिक और पारिवारिक सभी प्रकार के उन कष्टों का सामना करना पड़ा, जो वर्तमान परिस्थिति में एक देशभक्त के भाग्य में बदे हैं। दलित जाति में जन्म लेने के कारण उन्हें ये कष्ट और भी तीव्र रूप में सहन करने पड़े, और अपमानित तो पग-पग पर होना पड़ा। परन्तु प्रेमचन्दजी ये सब जहर के घूंट खुशी-खुशी पीते रहे। पद और ख्याति से सदा दूर रहते हुए भी कभी सामाजिक सुधार, कभी ग्राम-शिक्षा, और कभी सदाचार-प्रचार के द्वारा निरंतर जन-सेवा करते रहे। वे दो मास पूर्व हरिजन-सेवा का काम सीखने सेवा-आश्रम, नारेली में आये हुए थे और यहीं उनका शरीरान्त दो रोज के ज्वर और अतिसार के बाद हृदय की गति बन्द हो जाने से हो गया।

प्रेमचन्दजी संगीत और बढ़ई का काम जानते थे और राजस्थानी भाषा के कवि भी थे। वे राजपूताना हरिजन-सेवक-संघ के सदस्य भी थे।

प्रेमचंदजी की आयु लगभग ५० वर्ष की थी। वे अपने पीछे विधवा पत्नी और दो लड़के छोड़ गये हैं, जिनमें बड़ा तो सेवा-आश्रम नारेली में और छोटा गुरुकुल चित्तौड़ में शिक्षा पा रहा है। ईश्वर दिवंगत आत्मा को चिर शांति दे।

प्यारचन्द

व्यवस्थापक—सेवा-आश्रम, नारेली

गुड़ के गुण

वैद्यक व हिकमत में गुड़ को बहुत महत्व दिया गया है। च्यवनप्राशादि अवलेहों में गुड़ ही अधिकतर बर्ता जाता है। गुड़-खाड के स्थान पर लोग चीनी दवाइयों में डालने है तो वह उनकी भूल ही है। चीनी या शक्कर तो गुड़ के मुकाबले में एक निस्सत्व चीज है।

चिकित्साशास्त्र के ग्रन्थों में गुड़ के गुण इस प्रकार लिखे हैं—गर्मतर होता है, सीने का दर्द, दमा, प्यास और खांसी इन रोगों का शमन करता है, हाजमे को बढ़ाता है, बलगम को छांटता है, अतड़ियों की सर्दी को मिटाता है, और पेट को नरम कर देता है।

यह बहुत पुरानी बात नहीं है, जब मिठाइयों में गुड़ ही काम में लाया जाता था। बुंदेलखंड में तो आज भी मिठाई को 'गुरयाई' कहते हैं। हलवे, पुवे, अदरसे और पागने योग्य पकवानों में तो गुड़ निश्चय ही स्वाद और गुण में चीनी से बाजी मार ले जाता है। पंजाब में पहले विवाहादि उत्सवों पर गुड़ में पगे हुए आटे या घी के मुठिये बनाये जाते थे। चीनी में पगी हुई चीज गुड़ की बराबरी कहां कर सकती है? मारवाड़ में मांगलिक अवसरों पर आज भी गुड़ का रिवाज है। देहातों में यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'अगर तुम्हारी कही यह बात पूरी हो गई तो तुम्हारा मुंह "घी-गुड़" से मीठा करेंगे।' एक तरफ चना और गुड़ खानेवाले गरीब देहातियों को खड़ा कर दीजिए, और दूसरी तरफ शहर के मिठाई-खोरों को—फिर देखिए, मेहनत-मशक्कत का काम कौन ज्यादा करता है।

कृष्णानंद

हरिजनबस्ती में वाचनालय

बड़ोदा राज्य के अन्तर्गत पेटलाद के सुणाव गांव की हरिजन-बस्ती में एक वाचनालय चलाया जा रहा है। स्व० शिवाभाई जेठाभाई पटेल के 'डिप्रेस्ड एज्युकेशन सामग्री' के प्रबंधार्थ दिये हुए ६००) के ट्रस्टफंड से इस वाचनालय का खर्च चलता है। इस फंड के ब्याज के अतिरिक्त हरसाल, जिला बोर्ड की ओर से तथा राज्य के पुस्तकालय विभाग के नियमानुसार बड़ोदा राज्य की तरफ से ठीक उतनी ही रकम और मिल जाती है। इसलिए यह भरोसे के साथ कहा जा सकता है कि इस वाचनालय को स्थायी तौर पर चलाने का खर्च मिल जाता है। यह शंका किसी-किसी को हो सकती है कि गांव की हरिजन-बस्ती में इस प्रकार का अलग वाचनालय अस्पृश्यता दूर करने के बजाय कहीं उसे और मजबूत न कर दे, क्योंकि जब उनके महल्ले में ही वाचनालय मौजूद है तब वे गांव के दूसरे वाचनालयों का उपयोग क्यों करने चले, और इससे अन्य हिंदुओं के साथ उनके आजादी से मिलने-जुलने में क्या बाधा न आयगी? यह शंका ठीक नहीं। कारण यह है कि वाचनालय तो अनेक होने ही चाहिए, जिससे कि प्रत्येक स्त्री, पुरुष और बालक अपने घर से बहुत दूर न जाकर उनका लाभ उठा सकें। फिर यह भी बात है कि हवा और पानी की

'बेरीबेरी' का कारण

दक्षिण भारत का प्रधान खाद्य है मिल का कुटा हुआ चावल, जिसमें विटामिन 'बी' का बहुत अभाव रहता है; इसलिए स्त्रियों को वहां 'बेरीबेरी' की बीमारी बहुत होती है। गर्भवती स्त्रियों के पूर्ण समय से पहले ही बच्चा पैदा हो जाता है।

—डा० लेसली हेरिसन

तरह ज्ञानप्राप्ति के साधनों की काफी सुविधा हरिजनों को भी मिलनी चाहिए। जिस प्रकार किसी बालक के घर से, और खासकर घोर अज्ञान तथा प्रतिकूल स्थान में रहनेवाले हरिजन बालकों के घर से पाठशाला एक या दो फर्लांग से दूर नहीं होनी चाहिए, उसी प्रकार अगर हम खोल सकें तो दुनिया की खबरें फैलाने के लिए हमें घर-घर वाचनालय खोल देने चाहिए। इसलिए जहां पढ़े-लिखे हरिजन हों वहां, अथवा जहां हरिजनों को कोई पढ़-पढ़कर सुनानेवाला हो वहां, ऐसी संस्थाओं या छोटे-छोटे पुस्तकालयों की उपयोगिता के विषय में शंका तो होनी ही नहीं चाहिए। मुझे अपने हाल के काठियावाड़ के प्रवास में जहां-जहां धर्मग्रन्थ पढ़ सकनेवाले हरिजन मिले, वहां मैंने उन्हें रामायण के २५ सेट सहर्ष भेंट किये। ये महँगी पुस्तकें अहमदाबाद के सस्तु साहित्य-वर्धक कार्यालयवाले स्वामी अखंडानंद की ओर से मुझे भेंट में मिली थीं। ज्ञान का घट पीकर अविद्या की निद्रा से हरिजन एक बार जागे कि थोड़े ही समय में वे अपनी अस्पृश्यता को दूर कर देंगे, और दूसरे हिंदू भी सम्मानपूर्वक बिना किसी विरोधभाव के उनके साथ समानता का बर्ताव करने लगेंगे।

'हरिजन-बंधु' से] अमृतलाल वि० ठक्कर

मेरी हरिजन-यात्रा

(७)

कुंडला

२८ नवंबर १९३४—यहां तीन बस्तियां ढेड़ों की और दो मेहतरों की देखीं। इन बस्तियों के हरिजनों से अस्पृश्यता-निवारण आंदोलन के विषय में बात भी की। राज्य की हरिजन-पाठशाला का मकान खासा अच्छा है, और हरिजन अध्यापक भी सुयोग्य हैं।

यहां हमें मालूम हुआ कि अस्पृश्यता-निवारण के विषय में यहां का लोकमत राज्य के अधिकारियों का साथ नहीं दे रहा है, बल्कि इस प्रवृत्ति को लोग अभी दूर से ही देख रहे हैं। ढेड़ या वणकर यहां मेहतरों को अस्पृश्य मानते हैं। अभीतक राज्य की पाठशाला में सिर्फ ढेड़ों के बालक पढ़ते थे, और सघ की ओर से मेहतर बालकों के लिए एक अलग पाठशाला खुलवा दी गई थी। राज्य की पाठशाला में मेहतरों के बच्चे भेजने का प्रयत्न किया गया—यह इसलिए कि जब वहां एक हरिजन-पाठशाला मौजूद है तब दूसरी पाठशाला पर क्यों पैसा खर्च किया जाय, और साथ ही इस प्रयत्न से हरिजनों की अपनी आपसी अस्पृश्यता भी दूर हो सकती है। मगर नहीं, ढेड़ माननेवाले नहीं थे। उन्होंने मेरी एक भी दलील नहीं सुनी। मेहतरों के साथ उनके लड़के बैठकर पढ़ें, यह बात भला वे कैसे बर्दाश्त कर सकते थे। उन्होंने बहिष्कार कर दिया। उनके तमाम बालकोंने पाठशाला में जाना छोड़ दिया। शिक्षा-विभागवालों को कुछ दिनों बाद ढेड़ों की ही बात माननी पड़ी, और उसी पुराने ढर्रे पर पाठशाला लानी पड़ी। राज्य जरा और तनकर रह जाता या जरा सख्ती से काम लेता, तो यह नौबत न आती।

ऐसा ही एक और किस्सा है, और वह यहीं का है। मैं उसी शाम को यहां के अंग्रेजी स्कूल में भाषण देने के लिए बुलाया गया था। पांच हरिजन बालक इस स्कूल में दाखिल कर लिये गये हैं। मगर जिस दालान में सभा हो रही थी वहां मैंने देखा कि वे बेचारे अलग एक कोने में बैठे हुए हैं। हमें यह देखकर बड़ा दुःख हुआ। जब ढेड़ों के लड़कों के साथ ऐसा बुरा व्यवहार हो रहा है और सवर्णों के स्कूल में नित्य ही उनका अपमान होता है तो हम ढेड़ लोग यह किस तरह बर्दाश्त कर सकते हैं कि हमारे लड़के मेहतरों के साथ बैठकर पढ़ें—ढेड़ अगर यह दलील दे तो हम उसे क्या मुंह लेकर अनुचित कह सकते हैं? उच्च-नीच भाव में विश्वास करनेवाला यह कट्टर काठियावाड़ है—३० लाख मनुष्यों के ऊपर यहां स्वर्ग के दो सौ देवता शासन करते हैं!

बगसरा

२८ नवंबर, १९३४—बुनाई और रंगाई के उद्योग के लिए यह जगह काफी प्रसिद्ध है, यद्यपि आज ये दोनों उद्योग अपनी अंतिम सांसें गिन रहे हैं। ढेड़ लोग बुनाई का धंधा करते हैं और खत्री रंगाई का। ढेड़ों और भंगियों की कई बस्तियों का हमने निरीक्षण किया। बहुत-से भंगियोंने मुर्दार मांस न खाने की सौगंद खाई। यहां हमें श्रीलालचंद और श्रीकृष्णलाल नाम के दो बड़े ही अच्छे हरिजन-सेवक मिले। श्रीकृष्णलाल ढेड़ों और भंगियों के बालकों को पढ़ाते हैं और उन्हें बड़े प्यार से अपने ही बच्चों की तरह रखते हैं। वह ढेड़ों को तो आदरसूचक 'वणकर' नाम से पुकारते हैं, और मेहतरों को 'ऋषि' कहते हैं—कारण कि वे लोग वाल्मीकि ऋषि के वंशज माने जाते हैं। यहां मैंने एक सार्वजनिक सभा में भाषण किया और 'बालमंदिर' की आधार-शिला रखी। इस बालमंदिर पाठशाला में सवर्ण, हरिजन और मुसल्मान सभी के छोटे-छोटे बच्चे माटेसरी पद्धति पर बिना किसी भेद-भाव के एकसाथ हिल-मिलके पढ़ते हैं।

अमरेली

२९-३० नवंबर, १९३४—काठियावाड़ का यह एक सुप्रसिद्ध कस्बा है। बड़ोदा राज्य के जो चार जिले हैं उनमें यह कस्बा अमरेली नामक जिले का हेड क्वार्टर है। अन्य तीन जिले खास गुजरात में हैं, और यह अमरेली काठियावाड़ में है। श्रीमान् गायकवाड़ महाराजने अमरेली कस्बा और अमरेली तालुका में ही सन् १८९६ में अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा के प्रयोग का श्रीगणेश किया था, और तमाम काठियावाड़ और कच्छ में और बल्कि बम्बई तक हरिजन गुजराती अध्यापक इसी अमरेली कस्बे और जिले से काफी तादाद में भेजे जाते हैं। यहां का सरकारी हरिजन स्कूल, जिसमें चार अध्यापक पढ़ाते हैं, ४० साल से बड़ी शान से चल रहा है, और २५ वर्ष या इससे भी अधिक समय से हरिजन विद्यार्थियों के लिए यहां राज्य की तरफ से एक होस्टल भी खुला हुआ है। बड़ोदा राज्य के इस अनुपम अद्वितीय शिक्षा-प्रेम की जितनी भी सराहना की जाय थोड़ी है।

फिर यह अमरेली बड़े-बड़े सार्वजनिक कार्यों का भी क्षेत्र है। यहां की विविध प्रवृत्तियों से किसी भी शहर को पदार्थ पाठ मिल सकता है। राज्य की सहायता और सहयोग से यहां एक प्रारंभिक कृषि-पाठशाला चल रही है, जिसमें उसकी अपनी खास पाठ्य पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं। यहां एक उद्योग-मंदिर भी है, जहां ओटाई, धुनाई, कताई, बुनाई और रंगाई के अलावा ग्रामीण अर्थशास्त्र और ग्राम के आयात-निर्यात के तथ्य और आंकड़ों का भी सामान्य ज्ञान कराया जाता है, और ग्रामसेवकों को काठियावाड़ी ग्राम की तमाम आवश्यक बातें सिखाई जाती हैं। इस संस्था की

योजना का उद्देश यह है कि हाथ के बुने कपडे और आहार तथा जीवन की अन्य आवश्यक चीजो के विषय मे गामो को स्वाश्रयी बना दिया जाय। यहा तीन सुदर पुस्तकालय है—तीनो एकसरीखे ही बने हुए हैं—पुरुषो, स्त्रियो और बच्चो के लिए ये अलग-अलग पुस्तकालय हैं। मेरे लिए वह दृश्य सचमुच बडा उत्साहवर्धक था, जब मैंने देखा कि बडी-बडी लडकिया और स्त्रियां हाथ मे पुस्तके लिये अपने-अपने घर पुस्तकालय से वापस जा रही हैं, और कुछ बहिनें वहा बैठी अखबार पढ़ रही है। अमरेली मे एक चौथे पुस्तकालय की नीव रखने का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ। यह नया पुस्तकालय हरिजन-बस्ती में बनेगा। पुस्तकालय-भवन के फड मे सबसे अधिक चदा, याने २५०), एक हरिजन भाईने ही दिया।

इसके बाद यहा वणकरों, चमारो और भगियों के मुहल्ले देखे। मकान बडे अच्छे और साफ-सुथरे देखने मे आये। पर यह दुख की बात है, कि भगियो के १५ परिवार इधर-उधर टीन की झोपडियो में रह रहे हैं, मिट्टी की कच्ची मढ़ैया बना लेने के लिए उन्हें कही जमीन ही नहीं मिलती। इस तरह की हालत में ये बेचारे बरसो से गुजर कर रहे है। अधिकारियोने उनकी इस दशा पर कोई ध्यान ही नही दिया, नही तो अबतक उन्होने अपने पैसे से अपने रहने के लिए कच्चे घर जरूर बना लिये होते। फिर चमारों की वह जगह देखी, जहा चमडा पकाया जाता है। यह जगह बस्ती से थोडी ही दूर है। वहा कुआं न होने से चमडा पकाने का काम बहुत ही कम होता है। लोगोने हमसे कहा, कि आप राज्य के अधिकारियो से हमारे लिए यहां एक कुआ बनवा देने के लिए सिफारिश करदे तो बडा अच्छा हो।

यहा नत्थू आला नाम का एक अत्यन्त वृद्ध चमार रहता है। इसकी १११ वर्ष की उम्र लोगोने बताई। यह भी कहा, कि नत्थू आलाने सारी जिन्दगी मे एकबार भी कभी मुर्दार मास नही खाया, और न शराब ही कभी पी है।

पुस्तकालय की आधारशिला रखने के उपलक्ष मे जो सभा की गई थी उसमे कई गावो के हरिजन बुलाये गये थे। सभा हो चुकने के बाद दस गावो के मुखियोने हमे अपने-अपने दुख सुनाये—या तो वे बेकार थे, या उनके गाव में कुआ नही था, या कर्जे में डूबे हुए थे, अथवा बेगार के मारे उनकी हुलिया तग थी। उनकी ये तकलीफे व शिकायतें नोट करके राज्य के अधिकारियों के पास भेज दी। सात आदमियोने मुर्दार मास न खाने की प्रतिज्ञा की।

मेहतरो को ऋण से छुडाने के लिए यहा जो सहकारी समिति काम कर रही है उसका हिसाब-किताब जाचा और समिति के कार्यकर्ताओ को कुछ हिदायतें भी दी।

अमृतलाल वि० ठक्कर

स्वावलम्बन-खादी-कार्य का विवरण

(२)

परन्तु खादी की बिक्री की दृष्टि से उत्पत्ति-केन्द्रो और उनके आसपास के क्षेत्रों की स्थिति सन्तोष-जनक नही कही जा सकती। एक आंध्र को छोडकर वास्तव में चर्खा-संघ की शाखाओ-द्वारा इस दिशा में कोई खास प्रयत्न भी नहीं किये गये। आंध्र में सूत-प्रचारकों के जरिये ऐसे क्षेत्रों में खादी के वितरण का प्रबन्ध किया गया है। और प्रायः सभी उत्पत्ति-केन्द्रो में खादी की बिक्री का प्रबन्ध भी है। सन् १९३३ मे भिन्न-भिन्न प्रान्तों मे इस तरह जो खादी बिकी है, उसके आकडे नीचे दिये जाते है—

प्रान्त	उत्पत्ति-केन्द्रों की संख्या	उत्पत्ति-केन्द्रों में बिक्री
आंध्र	१४	१५,३४७
बिहार	८	१९,६३५
कर्णाटक	५	९,३१४
महाराष्ट्र	६	५,४९८
पंजाब	२	४,७६९
राजस्थान	५	१,८०८
तामिलनाड	२४	२९,९९८
युक्तप्रान्त-दिल्ली	४	७,७५८
उत्कल	१	१६५

खादी-आन्दोलन के आरम्भ ही मे इस बात के महत्व पर भी जोर दिया गया है कि जो लोग खादी के काम मे पडे हुए हैं, वे स्वयम् शुद्ध खादी-धारी हो। प्राय सभी प्रान्तो के खादी-उत्पत्ति-केन्द्रो में काम करनेवाले जुलाहे अब एक बडी संख्या में अधिकतर आदतन खादी ही पहनने लगे है। किन्तु कातनेवालो का प्रश्न विशेष रूप से कठिन सिद्ध हुआ है। अधिकाश उत्पत्ति-केन्द्रो में कताई का काम करनेवाले लोग इतने दरिद्र हैं, कि उनकी सारी-की-सारी कताई की मजदूरी उनके उदर-निर्वाह मे ही खर्च हो जाती है, और इसी कारण उन्हें अपने लिए सूत कातने को मजबूर करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य प्रतीत हुआ है। इस सम्बन्ध मे ज्यादह सख्ती या पाबन्दी का आग्रह भी अनुभव से गलत ठहरा है; क्योंकि ज्यादह जोर देने पर लोग कातने से ही हाथ खींच लेते हैं। ढाका के गलीकण्डा स्थान मे ऐसा हो भी चुका है। वहा के कार्यकर्ताओंने कतवैयो के लिए यह नियम बना दिया था कि जो खादी पहनेंगे उन्हीं का सूत खरीदा जायगा। पर यह नियम वहा व्यावहारिक सिद्ध नही हुआ। फिर भी यह तो मानना ही पडेगा कि जिन उत्पत्ति-केन्द्रो में लगातार कई वर्षोतक खादी-कार्य होता रहेगा, वहां कतवैयो में अपने लिये सूत कातने का विचार एक-न-एक दिन अवश्य जागेगा—फिर वह कितनी भी कम मात्रा में क्यों न हो। नीचे जो विवरण दिया जाता है, उससे कई उत्पत्ति-केन्द्रो को इस दिशा में जो सफलता मिली है, वह स्पष्ट हो जाती है।

आंध्र

चर्खा-सघ की आंध्र शाखाने अपने उत्पत्ति-केन्द्रों में काम करनेवाले जुलाहों और कतवैयों को खादी पहनने के लिए राजी करने को बहुत-कुछ प्रयत्न किये है। वहा के कुछ केन्द्रो मे तो अपने लिए सूत कातनेवालो के सूत को बुन देने की प्रथा आज भी प्रचलित है। और इसकी मदद के रूप में प्रान्त की शाखाने खास कार्यकर्त्ताओ की सहायता से उत्पत्ति-केन्द्रो मे खादी-बिक्री का प्रबन्ध भी किया है। और, पुरीतिगड्डा, रेपल्ली, और अमृतलूर-जैसे कुछ केन्द्रो मे तो प्रान्तीय शाखा मजदूरी का एक हिस्सा खादी के रूप मे ही चुकाती है। राष्ट्रीय सप्ताह और गांधी-जयन्ती-जैसे अवसरो पर जुलाहों को भी खादी खरीदने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

इस संबन्ध का विस्तृत ब्यौरा और आंकड़े तो प्राप्त नही हो सके हैं, परन्तु नीचे प्रत्येक केन्द्र का जो विवरण दिया जाता है,

उससे पाठकों को इस सम्बन्ध की स्थिति का थोड़ा ख़याल तो अवश्य हो सकेगा।

१. अमृतलूर — सूत-केन्द्र

इस केन्द्र में कतवैयों को उनकी मजदूरी का कुछ भाग खादी के रूप में चुकाया जाता है, जिसके कारण यहां के कतवैये काफ़ी बड़ी संख्या में खादी ही पहनते है।

२. रेपल्ली — उत्पत्ति-केन्द्र और खादी-भण्डार

इस केन्द्र के आसपास के गावों में सूत काता जाता है, जिसे सूत-प्रचारक खरीद लेते है। ये प्रचारक खादी के एजन्ट भी होते है। इस केन्द्र में काम करनेवाले ७५ फी सदी कतवैये खादी पहनते है। कातनेवाली बहनें अपनी कताई की आमदनी का आधा खादी की खरीद में खर्च कर देती हैं, और बाकी के आधे के बदले में उन्हें पूनियां और नकद दाम दिये जाते है। जुलाहों में केवल १० फी सदी खादी पहनते है। रिपोर्ट के साल में राष्ट्रीय सप्ताह के अवसर पर जुलाहों की एक परिषद् बुलाई गई थी, जिसमें उन्हें खादी पहनने से होनेवाले लाभ और खादी का उपयोग भलीभांति समझाया गया था।

३. भट्टिप्रोल — खादी-बुनाई-केन्द्र

इस केन्द्र को सूत अमृतलूर से मिलता है। सन् १९३३ में यहां जुलाहों को खादी पहनने के लिए राजी करने की कोशिश की गई थी। इस केन्द्र में काम करनेवाले कुल ७० जुलाहों में से केवल २५ किसी कदर आंशिक रूप में खादी पहनने के लिए राजी किये जा सके है।

४. घण्टशाला — कताई और बुनाई-केन्द्र

कृष्णा जिले में घण्टशाला कांग्रेस का एक मजबूत गढ़ है। खादी-आंदोलन के शुरू के वर्षों में यहां बिक्री अच्छी होती थी, लेकिन बाद में अधिकांश देहाती सीधे जुलाहों से ही अपना कपड़ा बुनवा लेने लगे। इससे उन्हें कपड़ा सस्ता भी पड़ता है। बुनते-बुनते जो सूत बच जाता है, जुलाहे उसे अपने लिए बुन लेते हैं, या कतवैयों से सीधा सूत खरीदकर उसकी खादी बुनते है। यहां के जुलाहों में करीब ४० फी सदी कपड़ा खादी का पहना जाता है। राष्ट्रीय सप्ताह और गांधी-जयन्ती के अवसर पर हर एक कतवैये को समझाया गया था कि वह कम-से-कम एक रुपये की खादी तो खरीदे।

५. कुन्दुकुर और अलवलपाड़ — बुनाई-केन्द्र;

इस केन्द्र में अपने हाथ का कता-बुना कपड़ा पहनने की प्रथा अबतक वर्तमान है, और लगभग ४० फी सदी कातनेवाले अपने हाथ के कते सूत की ही खादी पहनते है। बुनकरों में आदतन खादी पहननेवाले नहीं है, लेकिन बचे हुए सूत की खादी ये बुनकर भी पहनते है। ऐसे बुनकरों का औसत अन्दाजन २० फीसदी होगा। यहां भी बाकी के जो लोग खादी नहीं पहनते है, उन्हें खादी पहनने को राजी किया जारहा है।

६. चिकाकोल — महीन खादी का केन्द्र;

कातनेवालों में खादी के प्रचार का कोई प्रयत्न यहां अबतक नहीं किया गया है। लेकिन जहांतक जुलाहों और उनके काम करनेवालों का सम्बन्ध है, वे नियमित रूप से सिर्फ़ खादी ही पहनते है। करीब २५० जुलाहे आम तौर पर खादी का ही उपयोग करते है। राष्ट्रीय सप्ताह और गांधी-जयन्ती के अवसरों पर स्थानीय खादी-भण्डारने जुलाहों के हाथ यहां करीब १२००) रु० की खादी बेची थी। इसके अलावा खुद जुलाहे लोग भी नये वर्ष के अवसर पर हाथ-कता सूत खरीदकर स्वयं उसकी खादी बुनते है।

७. गुरुवरेड्डीपालम — कताई-केन्द्र

यहां के कतवैये आम तौर पर अपनी ही खादी पहनते है।

८. पुरीतिगड्डा — कताई और बुनाई-केन्द्र

कतवैयों को खादी पहनने के लिए समझाया और राजी किया जा रहा है। सूत-प्रचारक जो सूत प्राप्त करके देते हैं, उसके मूल्य के अंशरूप में उन्हें खादी दी जाती है। इस खादी को और लोगों के साथ ही वे उन कतवैयों के हाथ भी बेचते हैं, जो कताई-केन्द्रों में काम करते है।

कतवैयों की कुलसंख्या	१,६३८
जुलाहों की „ „	३०

इनमें से करीब २० जुलाहे समय-समय पर खादी पहनते हैं और ४०० कतवैये खादी का उपयोग करते है।

९. कनुपुर — उत्पत्ति-केन्द्र

यहां इस दिशा में कोई कार्य नहीं हुआ है।

(क्रमशः)

बरार का कार्य-विवरण

[दिसम्बर, १९३४]

शिक्षा — अकोला की दोनों रात्रि-पाठशालाएँ बदस्तूर चल रही हैं। आकोट की पाठशाला भी ठीक चल रही है। दुःख है कि उगवा और दूसरे गावों की पाठशालाएँ बंद हो गई हैं। अमरावती में श्रीमती राधाबाई गोखले की देखरेख में महिला वर्ग संतोषजनक रीति से चल रहा है। इसमें २० महिलाओं को शिक्षा दी जा रही है। एक बालक-छात्रालय तथा एक बालिका-छात्रालय और एक भंगी-पाठशाला में हिंदी और मराठी की करीब १०० पुस्तकें दी गईं। अकोला और वासिम के ४ हरिजन-छात्रालयों को ६०) की आर्थिक सहायता तथा ३३) की छात्रवृत्तियां दी गईं। ३ हरिजन विद्यार्थियों को मैट्रीकुलेशन की प्रवेश-फीस जमा करने के लिए २०॥) दिये गये।

धार्मिक — हरिजन-बस्तियों में प्रति शनिवार को श्रीअग्रवाल और श्री माणेने तुलसीकृत रामायण तथा सामान्य धर्म-संस्कृति पर प्रवचन किये।

प्रांतीय संघ की अध्यक्षा श्री दुर्गाबाई जोशी और चार अन्य महिलाओंने हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण तथा हरि-कीर्तन का आयोजन किया। दशहरे के दिन भैंसों की बलि न देने तथा मुर्दार-मांस न खाने पर जोर दिया गया। दिवाली के दिन श्री अग्रवालने करीब १०० हरिजन बच्चों को मिठाई और खिलौने बांटे। इसके अलावा दिवाली के दिन अकोला के अनाथ विद्यार्थीगृह के सवर्ण बालकों के साथ हरिजन बच्चों को भी नहलाया गया।

दुर्गाबाई जोशी

अध्यक्षा — बरार-ह० से० संघ

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि   "आत्मवत् सर्वभूतेषु"   Reg. No. L. 1369.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २]   दिल्ली, शुक्रवार, १५ फ़रवरी, १९३५.   [संख्या ५२

विषय-सूची

रींगस का बहिष्कार

रींगस के युवक-सम्मेलन के एक प्रमुख कार्यकर्ता अपने ७ फरवरी के पत्र मे लिखते है :—

"आपका पत्र मिला। रींगस के लोगोंने सम्मेलन का बहिष्कार क्यों किया, इस बात का और अधिक पता लगाने के लिए, मैंने सम्मेलन के प्रबन्ध आदि में भाग लेनेवालो की आज यहा पर एक मीटिंग बुलाई थी। उसमें एकत्र लोगोंने भी यही कहा कि सिर्फ हरिजन लड़के के ऊपर बरडे मे कपड़ा बेचने के लिए बैठने पर से ही लोगोंने सम्मेलन का बहिष्कार कर दिया था। क्योंकि, लोग इस बात को बरदाश्त नही कर सकते थे कि एक हरिजन लड़का उनसे जरा ऊँची भूमि पर बैठे और अन्य लोग जरा नीची जमीन पर बैठे।

डेढ़ महीने पहले ही, जब से सम्मेलन की बात सुनी तभी से, लोग कहने लग गये थे कि यह तो ढेढों की सभा होगी।

लोगोंने हमारी देख-रेख मे चलनेवाली यहां की कन्या-पाठशाला में लड़कियो को भेजना इसलिए बन्द कर दिया है, कि लड़कियों से सम्मेलन मे प्रार्थना कराने का और भूगोल-विषयक एक खेल कराने का विचार था। लोगों का ऐसा खयाल हुआ, कि यदि लड़किया सम्मेलन में खड़ी होकर प्रार्थना करेंगी और खेल दिखलावेंगी तो निर्लज्ज हो जावेंगी और हमारे वश में नहीं रहेंगी। ग्राम के ब्राह्मण और वैश्यो की लड़कियां अब भी कन्या-पाठशाला में पढ़ने नहीं भेजी जाती। लोगों का खयाल है कि पढ़कर लड़कियां खराब हो जावेंगी।

यहां पर सेठ रामानन्दजी की एक लड़कों की पाठशाला भी है। उसके कुछ सवर्ण स्वयंसेवकों को सम्मेलन में काम बताया गया था। सम्मेलन के दरवाजे पर, इस खयाल से कि लड़के खड़े-खड़े थक जावेंगे, दो स्वयंसेवकों के लिए कुर्सियां रख दी गई थीं। जब सवर्ण स्वयंसेवको को गांववालोंने सम्मेलन के काम पर से हटा लिया, तो स्वयंसेवकों के स्थान पर उसी समय हरिजन स्वयंसेवकों को नियुक्त कर दिया था और जो कुर्सियां सवर्ण स्वयसेवकों को दे दी गई थी वे ही हरिजन सेवकों को दे दी गईं। इस पर कुछ लोगोंने ऐतराज किया कि हरिजन लड़कों को कुर्सियो पर नहीं बिठाना चाहिए। हमने कहा कि जिन सवर्ण स्वयंसेवको को सम्मेलन मे से हटा लिया गया है, अगर उनको वापस भेज दिया जावेगा, तो हम हरिजन स्वयंसेवको को कुर्सियों पर से हटा देंगे, अन्यथा नहीं। लोग यह भी चाहते थे कि सम्मेलन मे हरिजनों को जाजम पर नही बैठने दिया जाय। सम्मेलन की तरफ से भाई छगनलालजी चौधरीने लोगो को यहांतक कह दिया था कि हरिजनों की जाजम अलग और उनकी जाजम अलग बिछा दी जावेगी। लेकिन लोगों को यह बात भी पसन्द नही आई।

सम्मेलन में जाजम पर बैठे हुए बहुत-से लोगोंने कांच के गिलासों से पानी पिया था। गिलास धो लिये जाते थे। परन्तु लोगो को यह बात भी सहन नहीं हुई कि जहां अनेक जाति के लोग—सवर्ण हिन्दू, हरिजन और मुसलमान आदि—बैठे हों वहां जाजम पर ही बैठ-बैठे पानी पी लिया जाय।

सम्मेलन मे उद्योग-मन्दिर कालाडेरा के कुछ हरिजन विद्यार्थी और हरिजन अध्यापक भी थे, जो सम्मेलन के रसोडे में ही जीमते थे परन्तु भोजन अथवा पानी परोसने मे शामिल नही थे। इसके कारण तो लोगो में बहुत ही असन्तोष उत्पन्न हुआ था, जो कि इस समय भी मौजूद है।"

गांधीजी की तरह मुझे भी शंका तो थी कि केवल इतनी-सी बात पर इस जमाने मे इस प्रकार का विरोध जागृत नही होना चाहिए। मेरा अपना अनुभव इसी समाज का यह है कि आचरण मे सुधारक कितना भी आगे बढ़ जाय, अगर उसके व्यवहार मे पुराने लोगो के प्रति खूब विनम्रता और अपने कार्य मे दृढ़ता रहे, तो विरोध उग्र रूप तो धारण करता ही नहीं, बहुत समय तक टिक भी नही सकता। हां, व्यवहार में उच्छृंखलता और कार्य मे कमजोरी जरा भी हो तो उलटा परिणाम होता देखा गया है। लेकिन जिन भाई का यह पत्र है, उन्हे मैं चुस्त सुधारक और विनम्र मनुष्य समझता हूँ। इसलिए जबतक दूसरे पक्ष की बात सामने न आवे तबतक यही समझना होगा कि संबंधित समाज अभी बहुत पिछड़ा हुआ है। उसे इसीसे सन्तोष कर लेना चाहिए था कि उसका लिहाज करके सीकर के अधिकारियोंने हरिजन-आन्दोलन-सम्बन्धी चर्चा को इस सम्मेलन में स्थान न देने की संयोजकों से शर्त करा ली थी और संयोजकोंने समाज-सेवा की भावना से यह जहर की घूंट पीना मंजूर कर लिया था।

रामनारायण चौधरी

साप्ताहिक पत्र

ग्राम-वृत्ति की आवश्यकता

मिस बारने, जो अपने सीधे-सादे ढग से मध्यप्रदेश के एक सुदूर गाव में काम कर रही है और हमारे दिल्ली-निवास के समय हमारे साथ थी, गांधीजी को लिखे हुए अपने पत्र में एक ऐसे वाक्य का व्यवहार किया है जो हमारे ध्यान देने लायक है। 'मेरी ग्राम-वृत्ति बढ़े,' इस इच्छा और प्रार्थना के साथ उन्होंने अपना पत्र समाप्त किया है। सचमुच इस बात की जरूरत है, नहीं तो वर्तमान आन्दोलनने जो उत्साह और शक्ति पैदा की है धीरे-धीरे उसके विनष्ट हो जाने की सभावना है। लेकिन हमारे अन्दर यह भावना तभी बढ़ सकती है,जब कि हम आत्म-निरीक्षण करते रहे। मुझे अच्छी तरह याद है कि कई साल पहले एक जिला-मजिस्ट्रेट के दफ्तर में बना-बनू कर लिखने के लिए तैयार रक्खी हुई बरु की कुछ कलमे देखकर गाधीजी को साश्चर्य आनन्द हुआ था और उन्होने मुझसे उसका जिक्र किया था। इस अग्रेज मजिस्ट्रेटने निब और फाउण्टेनपेन इस्तेमाल करना छोड दिया था। गाधीजी ने तुरंत उसकी इस बात को अपना लिया। हमने बरु के कलम इस्तेमाल करने शुरू कर दिये और १९२१ तक एकमात्र उन्हीका इस्तेमाल करते रहे। उस अवसर का भी मुझे स्मरण है, जब एक बार रेलगाडी में एक मामूली निबदार होल्डर वहीं लिखाये हुए पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए मैंने उन्हे दिया तो उन्होने उसे उठाकर खिड़की के बाहर फेंक दिया था। "तुम समझते हो," उन्होने कुछ नाराज-सा होकर कहा, "कि बरु के कलम का व्यवहार हम दफ्तर में ही कर सकते हैं, सफर में नहीं।" इतने पर भी, जैसा कि मैं कह चुका हूँ, १९२१ मे किसी को मालूम भी न पडा और चुपचाप फाउण्टेनपेनने अपना प्रवेश कर लिया। तभी से वह हमारे लिखने का साधन बना हुआ है। इसके कारण की खोज करे तो मालूम पडेगा कि उस समय हमारे लिए, और गांधीजी के लिए भी, यह सिर्फ जोश की बात थी, उस समय तक हममे ग्राम-वृत्ति का आरम्भ नहीं हुआ था। अगर आज स्व० मगनलाल गाधी जिन्दा होते तो किस खुशी के साथ वह वर्तमान आन्दोलन का स्वागत करते, यह मैं अच्छी तरह सोच सकता हूँ। क्योकि वह तो न सिर्फ बरु की कलम का ही इस्तैमाल करते थे बल्कि पिनो की जगह बबूल के कांटो का और डीज लालटेन के बजाय अण्डी के तैल के दीये का ही व्यवहार करते थे।

लेकिन अब ग्राम-वृत्ति आ गई है और हममे से गांधीजी पहले आदमी हैं, जिन्होने फाउण्टेनपेन छोडकर उसकी जगह बरु की कलम से काम लेना शुरू कर दिया है। उस दिन जब हम दिल्ली से वर्धा का सफर कर रहे थे तो रेलगाडी में अपना सब लिखने का काम उन्होंने बरु की कलम से ही किया। हालांकि उससे इधर-उधर छिटकनेवाली स्याही से उनकी अंगुलियां कुछ रंग गई और शायद कागज व कपड़े भी कुछ बिगड़े होंगे, फिर भी उन्हें तो बजाय दिक्कत के यह कुछ आनन्ददायक ही मालूम पड़ा और इसपर से उन्होंने यही अभिप्राय निकाला कि ग्रामीण औजारों से काम लेने में जरा ज्यादा सावधानी रखने की जरूरत है। मीराबेन अभी कुछ समय पहले तक बिना आधुनिक टूथब्रश के काम नहीं चला सकती थीं, लेकिन अब बिना किसी हिचकिचाहट के उन्होंने उसे छोड़कर बबूल की दतौन करना शुरू कर दिया है। दिल्ली में तो वह हम सबसे आगे बढ़ गई और डबल रोटी भी खाना छोड दिया। अब फिर वह यहां हैं और उनकी तेज आखें ग्राम-उद्योग-कार्यालय के मकान की, जहा कि हम अब रह रहे हैं, हरेक चीज की बारीकी से जांच-पड़ताल कर रही हैं। "यह स्टोव अब न रहना चाहिए," उन्होंने कहा, "हमें तो अपनी अंगीठी से ही काम चलाना चाहिए; और बिजली की ये बत्तिया तो मेरी आंखों में बहुत ही गड़ती हैं। हमें तो अण्डी के या मीठे तेल के दीये जलाने चाहिएँ।"

इतने पर भी मैं तो अपनी पुरानी फाउण्टेनपेन से ही एक हिन्दुस्तानी मिल में बने हुए सस्ते-से-सस्ते खुरदरे कागज पर यह सब लिख रहा हूँ। इसमे कोई सन्देह नहीं कि अपनी सब असुविधाओ के होने हुए भी फाउण्टेनपेन हमारा बहुत-सा समय बचा देती है। लेकिन जब कि हम यह जानते हैं कि अपने समस्त जागृति-काल का हम बिलकुल सदुपयोग ही नहीं करते तब क्या यह बात अपनी सफाई का सिर्फ एक बहाना ही नहीं है? ग्राम-वृत्ति की दृष्टि से जब कोई विचार करने लगता है तब तो बार-बार स्याही लगाने के लिए बरु के कलम को दावात मे डुबोने मे जो वक्त लगता है वह बरु की कलम के विरुद्ध नहीं प्रत्युत उसका इस्तेमाल करने के ही पक्ष मे एक युक्ति बन जाता है। क्योंकि, यह ढोग तो बहुत कम लोग ही करेंगे कि उनके अन्दर विचारो की इतनी अखण्ड धारा प्रवाहित हो रही है कि उन्हें जल्दी-से-जल्दी प्रदर्शित करने का (बशर्ते कि हम यह कल्पना करले कि वे इस काबिल है) साधन मिलना ही चाहिए, और क्या यह बात नहीं है कि जितनी देर दावात में कलम डुबोने मे लगती है उतना समय उन्हे अपने विचार बनाने में सहायक होता है? जल्दबाजी या हरेक काम को तुरत-फुरत करना आधुनिक काल की बीमारी है। जैसे ही 'सुधार' या 'तरक्की' के नाम पर कोई बात जारी होती है, हम इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि यह कोई जरूरी बात है। जब हम सिर्फ सामुद्रिक मार्ग से ही अपने पत्र इंग्लैण्ड भेज सकते थे तब हम आज से किसी कदर निकृष्ट नहीं थे, लेकिन मूर्खतावश हम समझते हैं कि सप्ताह में दो बार हवाई जहाज से डाक आने-जाने से, जैसा कि अब होगा, हमे एक ऐसी सुविधा मिल जायगी जिसकी बड़ी भारी जरूरत थी और इस बात को भुला देते हैं कि इसके कारण हम और भी गरीब हो जायेंगे तथा बहुत सभव है कि अबसे भी अधिक जल्दबाज एव उन्मादी बन जाये। इसलिए, सार की बात यह है कि, हमें अपने जीवन में आत्म-निरीक्षक बनना चाहिए और आवश्यक मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से सब बातों का अपने आप मेल बैठाने का निश्चयात्मक रूप से प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए, हमें सच्ची ग्राम-वृत्ति की वृद्धि करनी होगी।

चीन की शिक्षा

इस सप्ताह एक अन्य मित्र चीन के ग्रामोद्धार-कार्य सम्बन्धी साहित्य का जो खजाना लाया, उसके साथ-साथ एक ऐसी चीज भी लाया जो हमारे लिए निश्चय ही शिक्षाप्रद है। एक मूल्यवान पुस्तिका में, जो गांधीजी के पास मुलाकात के लिए आने पर इंस्टीट्यूट आव पैसिफिक रिलेशन्स के सेक्रेटरी-जनरल श्री एडवर्ड कार्टर ने उनको दी, लिखा है कि "पिछले कुछ वर्षों में इस मुल्क (चीन) में 'ग्रामों की भावना' जागृत हो गई है। सामाजिक, शिक्षा-सम्बन्धी तथा राजनीतिक नेता देहाती जिले को अपनी

हलचलों का केन्द्र समझने लगे हैं। यहां तक कि बुद्धिवादियों ने भी ग्रामीण समस्या को अपने लिखने का विषय बना लिया है··· ग्रामीण पुनरुत्थान के प्रति ऐसा उत्साह एवं लगन देखकर हमारे अन्दर आशा का उदय होता है, पर साथ ही कुछ शंका भी उत्पन्न होती है। ग्राम्य-पुनरुत्थान के लिए उत्साह का होना शुभ और आवश्यक है, लेकिन खाली उत्साह ही रहा तो यह ऐसी बात हो जायगा जिसका दरअसल कोई मतलब ही नहीं होगा। कार्यक्रम के संचालन एवं प्रगति के लिए तो उत्पादक बुद्धि के साधन की आवश्यकता है। साथ ही, ग्राम्य-पुनरुत्थान के लिए नये (तरुण) नेता तैयार करने के काम में, वे मनुष्य भी बहुत उपयुक्त हो सकते हैं जिन्हें चीनी जीवन की वास्तविकताओं का गहरा ज्ञान हो और वैज्ञानिक शोध के लिए इस विषय की यथासंभव ऊँची-से-ऊँची उनकी योग्यता हो।"

वस्तुतः तो श्री कार्टर गांधीजी के पास इस उद्देश से आये थे कि हिन्दुस्तान की जिन बातों से चीन को फायदा होने की संभावना हो उनका फायदा चीन उठा ले और इसी प्रकार चीन की जिन बातों से हिन्दुस्तान को लाभ पहुँचने का आयत्न हो उनसे हिन्दुस्तान लाभ उठा ले। क्योंकि, दोनों देश दो बहुत प्रमुख बातों में एक से ही हैं। हिन्दुस्तान में कुल जनसंख्या के ८९ प्रतिशत व्यक्ति ग्रामों में बसे हुए हैं और कुल संख्या का ७२ प्रतिशत खेती-किसानी करते हैं। सिर्फ चीन ही ऐसा देश है जहां उक्त औसत क्रमशः ९३ और ५३ प्रतिशत है। सावधानतापूर्वक की गई शोध को धन्यवाद है, जिसके अनुसार हिसाब लगाया गया है कि (चीन के) छः प्रान्तों के नौ जिलों में जितनी फसल पैदा होती है उसका ८५ प्रतिशत मई से अक्तूबर तक के छः महीनों में होता है और बाकी १५ प्रतिशत काम नवम्बर से अप्रेल तक के बाकी आधे साल के लिए रह जाता है।

अध्यापक बकने 'नार्थ चाइना इण्डस्ट्रियल सर्विस यूनियन' द्वारा 'राकफेलर फाउण्डेशन' में पेश किये गये हाल के एक आवेदन-पत्र से निम्न बातें उद्धृत की हैं :—

"उत्तरी चीन में, उन स्थानों को छोड़कर कि जहां सहायक उद्योग-धन्धे मौजूद हैं, साल में ५-६ महीने किसानों के पास कोई काम नहीं रहता—वे खाली रहते हैं। राष्ट्र के १५ से ५४ वर्ष तक की अवस्थावाले उन किसानों का हिसाब लगाया जाय, जिन्हें उनके निर्वाह-योग्य पूरा काम नहीं मिलता, तो मोटे तौर पर लगभग ५,५०,००,००० के करीब बैठेगा। फिर वर्षा तथा उसके समुचित विभाजन की अनिश्चितता के कारण भी निर्वाह के लिए किसानी धन्धा बहुत अरक्षित होता है।

इसे पढ़ते हुए बहुत-कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों हम हिन्दुस्तान के ही किसी जिले की परिस्थितियों की कोई रिपोर्ट पढ़ रहे हैं। और आंशिक समय के लिए खेत पर मजूरी करने वाले तथा छोटे किसान के लिए सहायक रोजगार ढूंढने के लिए रोजी की व्यवस्था करने की हिन्दुस्तान में भी उतनी ही अधिक आवश्यकता है जितनी कि चीन में। यह ठीक है कि और जगह की तरह चीन में भी ग्रामीण उद्योगों का ह्रास हो रहा है, लेकिन फिर भी वहां अभी वे मिट नहीं गये हैं जैसा कि हिन्दुस्तान में हुआ है। रेशम और सूत की बुनाई के अलावा, घास से कपड़े तैयार करने, रस्सी और बान बनाने, तिनकों की जाली आदि बनाने, तरह-तरह की चटाइयां बुनने जैसे उद्योग अभी भी वहां मौजूद हैं। साथ ही होपी प्रांत के कोआयंग जैसे जिले भी वहां हैं जहां इन घरेलू कारीगरियों की प्रति मनुष्य २१५ डालर मूल्य है। कोआयग के इस जिले में, जिसकी जन-संख्या १,४६,९२३ है, १९२९ में हाथ-बुनाई के लिए १,००,००० गांठ सूत (हाथ-कता और मिल का मिलाकर) खरीदा गया था! लेकिन तीन ही सालों में वह घटकर ३८,००० गांठों पर आ गया, जो कि चीनी बाजारों पर जापानी व सूती कपड़ों के एकाधिपत्य का फल है। इस प्रकार जिस उद्योग से ३१० लाख डालर का माल तैयार होता था वह आज विलुप्त होने के खतरे में पड़ा हुआ है, और बेकारी की समस्या चीनियों के आगे मुह बाये मौजूद है।

लेकिन वहां फिर आशा का उदय हुआ है। यहां की तरह वहां भी ग्राम्य-पुनरुत्थान के लिए जोरों से आन्दोलन उठा है जिसका अध्ययन, श्री कार्टर के कथनानुसार, हिन्दुस्तान के लिए भी अवश्य हितकर होगा, क्योंकि उसके सामने भी यही समस्या मुह बाये खड़ी है। "अब वे जापान के सस्ते और बोदे माल की बाढ़ से, कनाडा और आस्ट्रेलिया के गेहूँ से, तथा—आप बुरा न मानिये—वर्धा की रुई से अपनी रक्षा करने का प्रयत्न कर रहे हैं; और चीन किस प्रकार अपने पुनरुद्धार एवं पुनरुत्थान का यह प्रयोग कर रहा है, यह बड़े भारी अध्ययन की चीज है।" श्री कार्टरने गांधीजी से यह कहते हुए, उन्हें एक पुस्तिका दी, जिसमें ३,९७,००० जन-संख्यावाले एक जिले में पुनर्निर्माण का जो प्रयोग चल रहा है उसका वर्णन है। यह ऐसा प्रयत्न है जिसका उद्देश लोगों में एक नई मनोवृत्ति पैदा करके 'उनके जीवन में चतुर्मुखी कार्यक्रम के प्रवेश द्वारा' नई आदतें और नये हुनर सीखने में उनकी मदद करना है। यह चतुर्मुखी कार्यक्रम है—अज्ञान, दरिद्रता, रोग और परवशता पर सांस्कृतिक, आर्थिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी एवं राजनीतिक पुनर्निर्माण के द्वारा वज्र-प्रहार करना। इनमें से अन्तिम तो चीन में ही सम्भव है, क्योंकि चीनी किसान 'स्वतंत्र' हैं, और सशक्त केन्द्रीय शासन के अभाव में उन्होंने अपनी आत्म-निर्भरता एवं स्वाधीनता को कायम रक्खा है, लेकिन प्रथम तीन कार्यक्रमों का पालन तो यहां भी हो सकता है। शिक्षा तथा स्वास्थ्य-सुधार का सब से दिलचस्प कार्यक्रम १० से १२ साल तक के बच्चों को उनके अभिभावकों, उनके चचाओं, तथा बाबाओं को फिर से शिक्षित बनाने के उद्देश से शिक्षा देना है। "प्रारम्भिक शाला का संगठन नौसिखुए दलों के इस प्रकार संगठन में होता है जिसमें एक अध्यापक शिक्षा एवं अनुशासन सम्बन्धी बहुत-सी जिम्मेदारी उन दलों के अगुओं पर डालकर कोई दोसौ बच्चों का नियंत्रण कर लेता है"।" आन्तरिक शाला के साथ-साथ एक प्रयोग भी किया जा रहा है, जिसका एक उद्देश ऐसे उपायों की खोज भी है कि जिनसे स्कूल के पाठ्य-क्रम के कुछ भाग, खासकर स्वास्थ्य और सफाई की आदतों सम्बन्धी, घर तक भी पहुँचाये जायें तथा घरवालों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाय कि सामूहिक हितों में दिलचस्पी लेकर सामाजिक उत्तरदायित्व ग्रहण करें। "अन्य उपाय है सीधे-सादे 'आम लोगों के साहित्य' और 'आम लोगों के नाटकों का आरम्भ, जिनमें क्रियात्मक भाग लेने और अन्धविश्वास पर आश्रित मिथ्या धारणाओं को छोड़कर स्व-शिक्षा के द्वारा चीन के अन्तस्तल में जो कुछ सर्वोत्तम है उसे ग्रहण करने तथा अपनी विचार-सरणि वैज्ञानिक

[४८६ पृष्ठ के पहले कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार १५ फ़रवरी १९३५

आरम्भ कैसे करें ?

(३)

आहार की कुछ खास-खास चीजों का जिक्र मैं कर चुका हूँ और यह बतला चुका हूँ कि गांववालों के स्वास्थ्य एवं सम्पत्ति मे वे कितना महत्व रखती है। लेकिन, इसके साथ ही, सफाई और स्वास्थ्य-रक्षा के प्रश्न भी उतना ही महत्व रखते है। अगर इनपर समुचित ध्यान दिया जाय तो, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से, स्वास्थ्य, शक्ति और सम्पत्ति की वृद्धि होती है।

कुछ विदेशी लेखकोंने जाच-पडताल करके बतलाया है कि, व्यक्तिगत सफाई के पालन मे भूमण्डल के सब देशो में हिन्दुस्तान का नम्बर शायद सबसे पहला है। लेकिन मुझको भय है कि यही बात हमारी सामूहिक—या दूसरे शब्दो मे गावो की —स्वच्छता के बारे में नही कही जा सकती। अगर और दूसरे शब्दों में कहा जाय तो, मैं कहूँगा कि इस दिशा मे हम पारिवारिक हित से ज्यादा आगे नही बढे है। परिवार के लिए तो हम बडी-से-बडी चीज का भी बलिदान कर देंगे, लेकिन गाव के, यानी एक अर्थ में राष्ट्र के, लिए वैसा ही करने की तत्परता नही रक्खेंगे।

किसी कुटुम्ब के लोग अपने खुद के घर को तो साफ-सुथरा रक्खेंगे; लेकिन पडौसी के घर की सफाई में कोई दिलचस्पी नही लेंगे। वे अपने घर के आंगन को तो कूडा-करकट, कीडे-मकोडो और जीव-जन्तुओ से बचावेंगे, लेकिन इन सबको पडौसी के आगन मे फैंक देने मे सकोच नही करेंगे। सामूहिक जिम्मेदारी के इस अभाव का नतीजा यह हुआ है कि हमारे गाव कूडे के ढेर बने हुए है। हालाकि हमारे देश मे मुख्यतः नगे पाव चलने का रिवाज प्रचलित है, फिर भी हम लोग अपने बाजारो और सडको को इतना गन्दा रखते हैं कि कोई भी समझदार व्यक्ति उन पर नंगे पांव चलने मे दुःख अनुभव किये बिना नही रहेगा। गाव के कूँओ, तालाबो और नदियो से साफ और पीने लायक पानी प्राप्त करना एक कठिन कार्य है। किसी साधारण गाव मे प्रवेश करने के मार्ग कचरे तथा गोबर से भरे पाये जाते हैं।

गांवों की सफाई का कार्य ही शायद अ० भा० ग्राम-उद्योग-सघ के सामने सबसे कठिन कार्य है। बिना सर्व-साधारण जनता का हार्दिक सहयोग प्राप्त किये कोई भी सरकार जनता की आदतों को नही सुधार सकती। लेकिन अगर जनता का सहयोग प्राप्त हो जाता है, तो फिर सरकार के करने के लिए बहुत थोड़ा कार्य बच रहता है।

अगर पढे-लिखे लोग—वैद्य, डाक्टर और विद्यार्थी—लगन के साथ, बुद्धि तथा उत्साह-पूर्वक और नियमित रूप से गांवों में कार्य करने लग जायें तो वे इस समस्या को सफलता पूर्वक हल-कर सकते हैं। सम्पूर्ण शिक्षा की शुरुआत व्यक्तिगत और सामूहिक स्वास्थ्य-रक्षा का ख़याल रखने में है।

गांवों में करने के कार्य यह हैं कि उनमें जहां-जहां कूडे-करकट तथा गोबर के ढेर हों वहां-वहां से उनको हटाया जाय और कुंओ और तालाबो की सफाई की जाय। अगर कार्यकर्त्ता लोग नौकर रक्खे हुए भगियो की भांति खुद रोजमर्रा सफाई का कार्य करना शुरू कर दे और साथ ही गांववालो को यह भी बतलाते रहे कि उनसे सफाई के कार्य में शरीक होने की आशा रक्खी जाती है, ताकि आगे चलकर अन्त में सारा काम गाववाले स्वय करने लग जावें, तो यह निश्चय है कि आगे या पीछे गाववाले कार्य मे सहयोग अवश्य देने लगेंगे। दक्षिण अफ्रिका चम्पारण और यहा तक कि उड़ीसा के पिछले वर्ष के जल्दी में किये हुए पैदल भ्रमण मे मुझको तो कम-से-कम ऐसा ही अनुभव हुआ है।

वहा के बाजार तथा गलियो को, सब प्रकार का कूडा-करकट हटाकर, स्वच्छ बना लेना चाहिए। उस कूडे का फिर वर्गीकरण कर देना चाहिए। उसमे से कुछ का तो खाद बनाया जा सकता है, कुछ को सिर्फ जमीन मे गाड देना भर बस होगा, और कुछ हिस्सा ऐसा होगा कि जो सीधा सम्पत्ति के रूप मे परिणत किया जा सकेगा। वहा मिली हुई प्रत्येक हड्डी एक बहुमूल्य कच्चा माल होगी, जिससे बहुत-सी उपयोगी चीजें बनाई जा सकेगी या जिसे पीसकर कीमती खाद बनाया जा सकेगा। कपडे के फटे-पुराने चिथडो तथा रद्दी कागजो से कागज बनाये जा सकते हैं और इधर-उधर से इकट्ठा किया हुआ मल-मूत्र गाव के खेतो के लिए स्वर्णमय खाद का काम देगा। मल-मूत्र को उपयोगी बनाने के लिए यह करना चाहिए कि उसके साथ—चाहे वह सूखा हो चाहे तरल—मिट्टी मिलाकर उसे ज्यादा-से-ज्यादा एक फुट गहरा गड्ढा खोदकर जमीन में गाड दिया जाय। गावो की स्वास्थ्य-रक्षा पर लिखी हुई अपनी पुस्तक मे डॉ० पूअर कहते है कि जमीन मे मल-मूत्र को नौ या बारह इचो से अधिक गहरा नही गाड़ना चाहिए। (मैं यह बात केवल स्मृति के आधार पर लिख रहा हूँ) उनकी मान्यता है कि जमीन की ऊपरी सतह सूक्ष्म जीवो से परिपूर्ण होती है और हवा एव रोशनी की सहायता से—जो कि आसानी से वहा तक पहुँच जाती हैं—ये जीव मल-मूत्र को एक हफ्ते के अदर-अदर एक अच्छी, मुलायम और सुगन्धित मिट्टी मे बदल देते है। कोई भी ग्रामवासी स्वय इस बात की सच्चाई का पता लगा सकता है। यह कार्य दो प्रकार से किया जा सकता है। या तो पाखाने बनाकर उनमे शौच जाने के लिए मिट्टी तथा लोहे की बाल्टियां रख दी जायें और फिर प्रतिदिन उन बाल्टियो को पहले से तैयार की हुई जमीन में खाली करके ऊपर से मिट्टी डाल दी जाय, या फिर जमीन में चौरस गड्ढा खोदकर सीधा उसी मे मल-मूत्र का त्याग करके ऊपर से मिट्टी डाल दी जाय। यह मल-मूत्र या तो देहात के सामूहिक खेतो मे गाडा जा सकता है, या व्यक्तिगत खेतो मे। लेकिन यह कार्य सम्भव तभी है जब कि गाववाले सहयोग दे। कोई भी उद्योगी ग्रामवासी कम-से-कम इतना काम तो खुद भी कर ही सकता है कि मल-मूत्र को एकत्र करके उसको अपने लिए सम्पत्ति में परिवर्तित कर दे। आजकल तो यह सारा कीमती खाद, जो लाखों रुपयो की कीमत का है, प्रति दिन व्यर्थ जाता और बदले मे हवा को गन्दा करता तथा बीमारियां फैलाता रहता है।

गावो के तालाबो से स्त्री और पुरुष सब स्नान करने, कपडे धोने, पानी पीने तथा भोजन बनाने का काम लिया करते हैं। बहुत-से गांवों के तालाब पशुओं के काम भी आते हैं। बहुधा उनमें भैंसें बैठी हुई पाई जाती हैं। आश्चर्य तो यह है कि तालाबों

का इतना पापपूर्ण दुरुपयोग होते रहने पर भी महामारियों से गांवों का नाश अबतक क्यों नहीं हो पाया है ! यह एक सार्वत्रिक डाक्टरी प्रमाण है कि पानी की सफाई के सम्बन्ध में गांववालो की उपेक्षा-वृत्ति ही उनकी बहुत-सी बीमारियों का कारण है ।

पाठक इस बात को स्वीकार करेंगे कि इस प्रकार का सेवा-कार्य शिक्षा-प्रद होने के साथ-ही-साथ अलौकिक रूप से आनन्द-दायक भी है और इसमें भारतवर्ष के सन्ताप-पीड़ित जन-समाज का अनिवर्चनीय कल्याण समाया हुआ है । मुझको उम्मीद है कि इस समस्या को सुलझाने के तरीके का मैंने ऊपर जो वर्णन किया है उससे इतना तो साफ हो गया है कि अगर ऐसे उत्साही कार्यकर्त्ता मिल जायँ, जो झाड़ू और फावड़े को भी उतने ही आराम और गर्व के साथ हाथ में ले लेवें जितना कि कलम और पेंसिल को लेते है, तो इस कार्य में खर्च का तो कोई सवाल ही नही उठेगा । अगर किसी खर्च की जरूरत पड़ेगी भी तो वह केवल झाड़ू, फावड़ा, टोकरी, कुदाल और शायद कुछ कीटाणु-नाशक दवाइयां खरीदने तक ही सीमित रहेगी । सूखी राख सम्भवत. उतनी ही अच्छी कीटाणु-नाशक दवा है जितनी कि कोई रसायन-शास्त्री दे सकता है । लेकिन यहा तो उदार रसायन-शास्त्री हमको यह बतलावे कि गाव के लिए वह सबसे सस्ती और कारगर कीटाणु-नाशक चीज कौन-सी है जिसे गांववाले स्वयं अपने गावों मे बना सकते हैं ।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

घोर अज्ञान

रींगस से एक हरिजन-सेवक लिखते हैं.—

"जयपुरराज्य-युवकसम्मेलन के साथ २५-१२-३४ को यहा पर जो खादी-प्रदर्शिनी की दूकान लगाई गई थी, उस पर एक बुनकर (हरिजन) का लड़का कपड़ा बेचने को ऊपर बरडे में बैठा था, और बरडे के नीचे चौक मे सभा की गई थी, जिसमे कि गाव के अन्य सवर्ण लोग थे । उसे देखकर यहा के सवर्ण हिन्दू इसलिए बिगड़ गये, कि एक हरिजन लड़के को ऊपर क्यों बैठने दिया और सवर्ण लोगोंने मन्दिर मे पंचायत की और यह निश्चय किया कि —

(१) खादी-प्रदर्शिनी और सम्मेलन मे गाव का कोई भी मनुष्य न जावे । अगर जायगा तो वह जाति-बाहिर कर दिया जायगा ।

(२) कन्या-पाठशाला में लड़कियां पढ़ने न जायं, क्योंकि पाठशाला का सम्बन्ध सम्मेलनवाले लोगो से है ।

(३) हरिजन-पाठशाला के अध्यापक को कोई अपने मकान मे न आने दे ।

पंचायत की इतनी सख्ती होने पर भी गांव के कोई २८ युवकोंने सम्मेलन के कार्य मे भाग लिया; और जब पंचायतने उन पर एक-एक रुपया जुर्माना किया, तो उन्होंने जुर्माना देने से इन्कार कर दिया ।

सम्मेलन के रसोड़े में जीमनेवाले सवर्ण भी थे और हरिजन भी । करीब तीन-चार सौ मनुष्य सभी एक जगह जीमते थे । जब से लोगोंने यह बात सुनी है, तब से तो खूब ही शोर मचा रहे हैं कि धर्म डुबो दिया, धर्म डुबो दिया ।"

इस बर्ताव में सिवा घोर अज्ञान के और तो कुछ दिखाई देता नहीं । यह उच्च-नीच का भाव दूर न हुआ तो धर्म का नाश ही समझिए । सवर्णों के बहिष्कार से लोग डरे नहीं हैं, यह एक शुभ चिन्ह मालूम होता है । जिन्होने बहिष्कार किया है उनके ऊपर किसी भी प्रकार का क्रोध न किया जाय । साथ ही, इस बहिष्कार से डरकर कोई अपना कर्तव्य न छोड़े । बहिष्कार करनेवालो में यदि कोई प्रतिष्ठित लोग हैं तो उनसे वार्तालाप भी किया जाय । संभव है, कि इस बहिष्कार का कारण कुछ और हो ।

मो० क० गांधी

भीलों में सेवा-कार्य

देवगढ़-बरिया, गुजरात के उत्तर-पश्चिम मे, एक छोटा स्टेशन है, जहां ९० प्रतिशत भील और कोली रहते हैं । ये दोनों आदिम-जातियां हैं और खेती-बाड़ी में बहुत होशियार नहीं हैं, लेकिन क्योंकि अब इधर-उधर घूमते रहने के दिन नहीं रहे और इन्हें कहीं-न-कहीं बसना है, इसलिए इन पहाड़ी इलाकों मे इन्होंने खेती करना शुरू कर दिया है । भील-सेवामण्डल, जो श्रद्धालु कार्यकर्त्ताओं की संस्था है, पिछले १२ सालों से इस रियासत के निकटवर्ती क्षेत्र मे कार्य कर रहा है । साथ ही ब्रिटिश इलाके के अन्दर भीलों मे जो सेवा-कार्य हो रहा है उसकी छूत भी आस-पास की इन रियासतों के भीलो तक पहुँची है । रियासती सरकार ने पिछले कुछ सालो मे इस इलाके के भीलों व कोलियो को शिक्षित करने के लिए बहुत कुछ किया है ।

भील और कोली बालकों के लिए निःशुल्क छात्रावास खुला हुआ है, जिसमे इस समय ८५ विद्यार्थी हैं और १०० तक की गुंजायश है । इसमे रहनेवाले विद्यार्थी ५-५ के समूह मे बँटे हुए है, जो स्वयं अपना खाना बनाते और अन्य सब कार्य घर पर ही करते हैं । मक्का उनका मुख्य आहार है, जो बहुत सस्ता नाज है, इसलिए उनके भोजन का मासिक व्यय २॥) रु० से अधिक नहीं होता । छात्रावास से लगे हुए खेतो मे लड़के अपने हाथों हल चलाते है, साथ ही कस्बे के साधारण वर्नाक्युलर या अंग्रेजी स्कूलों मे भी जाते है । इन दोनों जातियों की जो लड़कियां कन्या-शालाओं मे पढ़ती है उन्हें प्रोत्साहन के तौर पर छात्रवृत्तियां दी जा रही है । राज्य के गावो मे अभी तक करीब ४५ स्कूल खुल चुके है और उनमें हर साल १५ की वृद्धि होती रहती है । ये स्कूल किसान बालकों के लिए है जो सब, करीब-करीब सभी, भील और कोली है । साथ ही इन देहाती अध्यापकों के पठन-पाठन के क्रम को जारी रखने के लिये एक क्लास भी खोली हुई है ।

बालकों के लिए तो शिक्षा संबंधी ये सुविधाये है ही, पर इसके अलावा एक स्टेट-बैंक भी खोला गया है । यह बैंक बचाये हुए रुपये जमा करने के लिए नहीं बल्कि मक्का जमा करने के लिए है, जो कि किसी प्रकार थोड़ी-बहुत बचाकर भील लोग जमा रखते हैं । इस प्रकार अकाल और कहतसाली के वक्त वापस उन्हें देने के लिए रियासत के गोदामों मे करीब २३,२०० मन मक्का इकट्ठी हो चुकी है । साथ ही इस बैंक द्वारा इन जातियों के किसानों को, सोने-चान्दी के जेवरों की जमानत पर, सिर्फ ६ फीसदी सूद लेकर रुपया भी उधार दिया जाता है ।

ऊपर जिस काम का वर्णन किया गया है उसपर से यह स्पष्ट है कि कोई छोटी-सी रियासत भी अगर अपनी पिछड़ी हुई प्रजा के लिए थोड़ी कल्पना और सहानुभूति से काम ले तो उसका कितना हित कर सकती है । अमृतलाल वि० ठक्कर

साप्ताहिक पत्र

[४८३ पृष्ठ से आगे]

बनाने के लिए उन्हे प्रोत्साहित किया जाय। इसके बाद खेती-बाडी की तथा पशुओ की नस्ल सुधारने की शिक्षा दी जाती है, और खरीद-फरोख्त के अपेक्षाकृत उत्तम साधनों को जारी करके गृह-उद्योगो को स्थिर पायें पर रखने का प्रयत्न किया जाता है। "इस आन्दोलन का मुख्य औद्योगिक अध्ययन एक ओर तो मुख्य कृषि-सम्बन्धी अध्ययन से सम्बन्धित है, दूसरी ओर लिंगसीन की औद्योगिक हलचल से, जो कि आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। लिंगसीन के ६८,००० परिवारो में से लगभग ४०,००० व्यक्ति सूत-कताई के काम मे लगे हुए है और लगभग ३०,००० कपड़ा बुनने के काम मे"—मानो, बहुत बडे परिमाण में, अपने यहा का सावली का खादी-केन्द्र ही न हो! "प्रयोग के तौर पर एक कारखाना भी खोला गया है, जिसके द्वारा कम-खर्च मे माल की अधिक उत्पत्ति के तरीको की खोज और उसके लायक सामान का इन्तजाम किया जाता है। संशोधित मशीनें हाथ की ताकत से चलती हैं और उनके द्वारा वही तैयार हुई रुई (और थोडे परिमाण में ऊन) का सूत और कपड़ा बनाये जाते है। एप्रेण्टिसों को (जो कि ग्राम्य-संस्थाओ से चुने जाते है) कारखाने मे शिक्षा देकर उन-उनके गाव वापस भेज दिया जाता है, ताकि अपने-अपने स्थानकी सहकारी-समितियो के सम्पर्क से वे वहा कारखाने खोले।" सहकारी खरीद, बिकरी और उत्पत्ति के लिए वहा जो सस्थाये है वे 'सम्पूर्ण' सहकारी समिति कहलाती है। और उनके सदस्य वही हो सकते हैं जो वस्तुत उत्पत्ति करते हो, गारे-मिट्टी मे काम करनेवाले सच्चे किसान हों और शिक्षित हो, अर्थात् चार महीने वाली साहित्यिक परीक्षा मे पास हो चुके हो, और जिन्होने सहयोग के अर्थ एव सिद्धान्तो की शिक्षा पाई हो। स्वास्थ्य-विभाग विभिन्न स्वास्थ्य-केन्द्रो में बटा हुआ है जिनका सचालन मुख्यत गाव के स्वास्थ्य-सम्बन्धी कार्यकर्त्ता करते है। इन्हे जन्म-मृत्यु का लेखा रखने, बच्चो के नश्तर लगाने, गाव के कुए की मरम्मत कराने, प्रारम्भिक परिचर्या की पेटी में जो चीजे हो उनके अनुसार मामूली इलाज-मालजा करने और स्वास्थ्य-वृद्धि के एजेण्ट के रूप में काम करने चाहिएँ। इस बात की कोशिश की जा रही है कि स्वास्थ्य-रक्षा की सारी प्रणाली को, जिसमें अस्पताल और डाक्टर तथा दाई और दवाये भी शामिल है, इस तरह बदल दिया जाय कि सर्व-साधारण भी उसका उपयोग कर सके।

लेकिन अब मुझे यह प्रकरण समाप्त करना चाहिए। श्री कार्टरने सदा हमारी हलचलो के सम्पर्क में रहने का वादा किया है और श्री कुमारप्पा भी उन्हे यहा के आन्दोलन की प्रगति से अवगत करते रहेगे। जैसी श्री कार्टर को आशा है, असंभव नहीं कि क्रमश: प्रगति करते हुए यह सपर्क 'सफल राष्ट्रीय एव ग्राम्य-पुनरुत्थान के लिए चीन और हिन्दुस्तान के प्रयत्नो को मिलाकर सम्मिलित कर दे।'

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

हरिजनों का हिंदूधर्मशास्त्रों में स्थान

[एक काशीस्थ सनातनधर्मी आचार्य द्वारा]

[४]

अब हरिजनों के लिए अध्ययन, पूजा-पाठ करने के अधिकार पर विचार किया जाता है।

वेद का एक मन्त्र है—

"अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः तमीमहे महागयम्।"

पाञ्चजन्यः पञ्चजनेभ्योहितः चत्वारो वर्णाः निषाद पञ्चमा पञ्चजनाः तेषां हि यज्ञे अधिकारोऽस्ति।

(उव्वट)

"विप्रादयश्चत्वारोवर्णा निषादश्चेति पञ्चजनाः तेषां यज्ञेऽधिकारात्"।

अर्थात्—पाञ्चजन्य शब्द से चार वर्ण, और पाचवां निषाद माना गया है। उनका यज्ञ मे अधिकार है, उव्वट और महीधर दोनोने यही अर्थ किया है।

'विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भः' इति
यमग्निं पञ्चजना अयजन्त यजन्ते विप्राद्याश्चत्वारो निषादश्चेति ॥

(महीधरः)

इत्यादि प्रमाणो से शूद्रोचित पञ्चयज्ञादि-विधान सभी के लिए विहित है।

स्मृतियों में तो स्पष्टतया विधान है कि—

पञ्चयज्ञं विधानन्तु शूद्रस्यापि विधीयते।
प्रोक्तस्तस्य नमस्कारः कुर्वन्नित्यं न हीयते॥
"द्विजानां षोडशैव स्युः शूद्राणां द्वादशैव हि"

(शार्ङ्गधर शास्त्रे)

अर्थात्, शूद्रो के लिए भी पाचयज्ञो का विधान है। द्विजो के लिए सोलह संस्कार है। शूद्रों के लिए बारह है।

गायत्री छन्दसो ब्राह्मणाः त्रिष्टुप् छन्दसः क्षत्रियाः।
जगती छन्दसो विशः अनुष्टुप् छन्दसः शूद्राः॥

अर्थात्, गायत्री आदि छन्दो से ब्राह्मणादि वर्णो की उत्पत्ति बताकर शूद्र की अनुष्टुप् छन्द से उत्पत्ति बतायी है।

इत्यादि वचनो से शूद्रों को पञ्चयज्ञ-संस्कार आदि का जब विधान है तो इससे सिद्ध है कि, वे लोग उन विधानो को करने-लायक उतने शास्त्रो का तो अध्ययन अवश्य करेंगे। और वेद व्यासने तो पुराणादि पढने के लिए उन्हे साफ आज्ञा दी है। बल्कि उन्हीके लिए तथा स्त्रियो और अल्पज्ञानी ब्राह्मण वर्णो के लिए ही पुराणों की रचना की है। कहा है—

स्त्री शूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा;
कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्॥

अर्थ—स्त्री, शूद्र और ब्राह्मण-कुटुम्ब को वेद का अर्थ नही लग सकता। इसलिए उनके कल्याणार्थ ही महाभारतादि पुराण मुनिने कृपाकर बनाये।

वाल्मीकीय रामायण में भी "पठंश्च शूद्रोऽपि महत्वमीयात्" ऐसा लिखकर शूद्र को रामायण प्रभृति इतिहास-पुराण ग्रंथों के पढने का अधिकार दिया है। ऐसे बहुत-से प्रमाण हैं, जिनसे शूद्रो को पुराण पढने के लिए स्पष्ट ही आज्ञा है। प्राचीनकाल में ये सब बातें आम तौर पर प्रचलित थीं। सभी पापक्लान्त शूद्र

तक सभी शास्त्रों का अध्ययन करते थे। 'भोजप्रबन्ध' मे कपड़ा बुननेवाले शूद्र की कविता का उल्लेख है। "कवयामि वयामि यामि" इत्यादि ऐसे ही और भी बहुत-से उपाख्यान है।

अहो प्रभावो वाग्देव्याः यन्मातङ्ग दिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत् सभ्यः समो बाण-मयूरयोः॥
(राजतरंगिणी)

मातंग दिवाकर नाम का एक जाति का चाण्डाल था, जिसने इतने शास्त्रो का अध्ययन किया था कि, श्रीहर्ष राजा के यहा बाण और मयूर कवियो के साथ ही वह सम्मान पाता था। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उन दिनों कितनी उदारता थी कि चाण्डाल भी बाण और मयूर-ऐसे महाकवियों के साथ एक आसन पर राजदरबार मे बैठा करता था, और लोगो में इस व्यवहार पर कोई एतराज नही था। इससे ज्ञात होता है, कि उन दिनो छूआछूत का वर्त्तमान भाव कुछ भी नही था।

चाण्डाल प्रभृति सभी जातिया सब शास्त्रों का पठन करती थी। इसी प्रकार द्रोण* नाम का एक कुम्हार था, जो व्यास के सदृश विद्वान् था। इससे ज्ञात होता है कि सरस्वती के दरबार में जाति का विचार नही है। यह तो दृष्टान्तरूप से शूद्र जातियो का नामोल्लेख कर दिया गया है। भर्तृमेण्ठ† आदि बहुतसे शूद्र, अंत्यज जाति के हाथीवान वगैरा संस्कृत के महाकवि हो गये हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि, भारतवर्ष में प्राचीनकाल मे सभी जातियां शास्त्रो का अध्ययन करती थी। इसलिए अब भी उन्हे आवश्यक महाभारतादि पुराणों का अध्ययन तो सर्वथा प्राप्त है।

हिन्दी-अँग्रेजी में तो कोई रोकटोक है नही। वे लोग अपनी रुचि के अनुसार पढ़ेगे ही, शास्त्रों के अध्ययन के लिए भी कही निषेध नही है। यह ऊपर के प्रमाणो से सिद्ध है। सब का निष्कर्ष यह निकला, कि चाण्डाल प्रभृति सभी को सरस्वती-मंदिर में एकसाथ बैठकर अध्ययन करने में हिन्दू-शास्त्रों में कोई रोकटोक नही है।

हरिजनो के मन्दिर-प्रवेश, देवपूजन आदि के विषय में विस्तृत विवेचन काशी के 'आज' पत्र मे प्रकाशित हो चुका है। इस विवेचन से स्पष्ट ज्ञान हो जायगा कि, आजकल जो मन्दिरों में हरिजन नही जाने पाते यह बिलकुल रूढि है। हिन्दूधर्मशास्त्र तो इस निषेध से कोसो दूर हैं। वे तो पद-पद पर हरिजनो के वास्ते मन्दिर-प्रवेश का समर्थन करते हैं।

---

*सरस्वती पवित्राणा जातिस्तत्र न देहिनाम्।
व्यासस्पर्द्धी कुलालोद् यद् द्रोणो भारते कवि॥
(राजतरंगिणी)

†भ्यश्योतम्या मेण्ठराजस्य वहंत्याशृणिरूपताम्।
अविद्धाइव धून्वन्ति मूर्द्धानं कविकुञ्जरा॥
इत्यादि पद्य मेण्ठराज के हाथीवान् होने में प्रमाण हैं।

हिन्दुस्तानियों की औसत-आय

हिन्दुस्तानियों की दैनिक औसत-आय की गणना पहले पहल, आज से ६५ वर्ष पहले, स्व० दादाभाई नवरोजीने की थी। तब से आज तक ऐसी कई गणनायें हो चुकी हैं। अध्यापक खुशाल शाहने अपनी एक पुस्तक में इन सब का उल्लेख किया है, उसके बाद होनेवाली गणना के अंक भी उसमें जोड़कर, उसे नीचे दिया जाता है :—

गणना करनेवाले	गणना का सन्	प्रत्येक की औसत-आय वार्षिक	दैनिक
दादाभाई नवरोजी	१८७०	२० रु०	३॥ पैसे
बैरिंग बार्बर	१८८२	२७ ,,	४॥। ,,
डिगबी	१८९८-९	१८९ ,,	३। ,,
लार्ड कर्जन	१९००	३० ,,	५। ,,
डिगबी	१९००	१७४ ,,	३ ,,
फिण्डले शिराज	१९११	५० ,,	८॥। ,,
वी० एन० शर्मा	१९११	८६ ,,	१५ ,,
खुशाल शाह	१९११-२२	४६ ,,	८ ,,
गिलबर्ट स्लेटर	१९२७	७० ,,	१२। ,,
कुमारप्पा	१९३१	१४ ,,	२॥ ,,
विश्वेश्वरैया	१९३५	५० ,,	८॥। ,,

इस प्रकार फी आदमी औसत-आय की बड़ी-से-बड़ी संख्या ८६) वार्षिक यानी १५ पैसे रोज है, और छोटी-से-छोटी संख्या १४) वार्षिक यानी २॥ पैसे रोज है। १९०० में डिगबीने दैनिक औसत-आय का जो हिसाब लगाया था, वह भी ३ पैसे रोज अर्थात् २॥ पैसे से बिलकुल मिलती हुई ही है। लार्ड कर्जन का लगाया हुआ हिसाब भी ५। पैसे रोज के हिसाब से आगे नही गया। पहले वक्तो में आज की बनिस्बत सस्ताई थी, आमदनी कम थी तो वैसे ही खर्च भी कम था। आज खर्च तो बहुत बढ़ गया है, लेकिन आमदनी में बहुत वृद्धि नही हुई। अध्यापक खुशाल शाह जिन्होंने रोजमर्रा की औसत-आय ८ पैसा बताई है, उन्होने एक अन्य स्थान पर बहुतेरे अंकों की छानबीन के बाद बारीकी से हिसाब लगाकर यह निष्कर्ष निकाला है कि हिन्दुस्तान में एक आदमी को पूरी खुराक खाने के लिए साल भर में कम-से-कम ९०) चाहिएँ। फिर यह तो सिर्फ खुराक का ही खर्च हुआ, दूसरे खर्चों का इसमें शुमार नही है। लेकिन हिन्दुस्तानियो की औसत-आय तो, उन्हींकी गणना के अनुसार, सिर्फ ४६) रु० ही है। ऐसी हालत में यह स्पष्ट है कि हिन्दुस्तानी लोग अधभूखे रहते हैं। फिर, यह ध्यान रहे कि, इस औसत-हिसाब मे आराम से रहने और दिन मे चार वक्त भोजन करनेवाले भी शामिल है— इसलिए, इसका मतलब यह हुआ कि, बहुतों को तो दिन-भर में एक जून भी पेट भरके खाना नसीब नही होता।

औसत-आय का जो नकशा ऊपर दिया गया है उसमे एक को छोड़ कर बाकी सब अंक सरकारी रिपोर्टों आदि में दिये हुए अंकों के ही आधारभूत हैं। अध्यापक कुमारप्पा ने १९२९ में गुजरात-विद्यापीठ की ओर से मातर ताल्लुके के ५४ गांवो की जांच की थी; और तीन महीने तक गावो में रहकर वहां के हरेक कुटुम्ब की आगे-पीछे की आर्थिक स्थिति की बारीकी से जांच-पड़ताल करके १,२१५ कुटुम्बो के बारे में अंक इकट्ठे किये थे। उन अंको की गणना करने पर उन्होने यह अनुमान निकाला कि ताल्लुकेवालों की औसत-आय वार्षिक १४) रु० यानी २॥ पैसे रोज है। अगर यह कहा जाय कि मातर ताल्लुका गरीब है इसलिए उसकी आय इतनी कम है, तो इसका जवाब यह है कि मातर ताल्लुके से समृद्ध ताल्लुके हिन्दुस्तान में बहुत कम ही मिलेंगे। अलबत्ता निर्धनता में मातर से बाजी मारनेवाले ताल्लुके बहुत-से मिल जायेंगे।

यह गणना देते हुए अध्यापक कुमारप्पाने अपनी जांच रिपोर्ट में लिखा है :—

"इस सारे ताल्लुके में फी कुटुम्ब औसत आय ६७) रु० वार्षिक है। पुरुष, स्त्री और तीन बच्चों का एक कुटुम्ब माने तो, फी आदमी १००) वार्षिक अन्न-वस्त्र का खर्च समझकर, फी कुटुब ४००) वार्षिक चाहिए। फिर दवा-दारू, शिक्षा, सामाजिक खर्चा वगैरा को भी ले तो फी कुटुब ६००) की जरूरत है। लेकिन हमने जिन १२-१५ कुटुबो की जाच की उनमे के १८ कुटुब ६००) साल की कमाई करते है। ८६१ कुटुबों को या तो घाटा रहता है, या १००) साल से कम की आमदनी होती है। ये लोग जिन्दा कैसे रहते हैं, यही बड़े भारी आश्चर्य की बात है। ९८.८ सैकड़ा खर्च का ऊपर जो कम-से-कम परिणाम बताया गया है, उससे भी इनकी आमदनी कम है। इस प्रकार दो आदमियो को जितने में रहना चाहिए उतने मे हजार आदमी रहते है।"

यह है विधाता की निर्धनता ! फी आदमी २॥ पैसे रोज की औसत-आय, अर्थात् सबको तो २॥ पैसे रोज भी नही मिलते। इसका मतलब यह हुआ कि हिन्दुस्तान मे हजारो आदमियो को पेट भर अन्न खाने को नही मिलता। इस आमदनी मे एक पैसे की भी वृद्धि हो तो वह आशीर्वाद के समान है। ग्राम-उद्योगो को पुनर्जीवन देने की प्रवृत्ति के पीछे एक उद्देश यह भी हुई।

'हरिजन-बन्धु' से] चंद्रशंकर प्राणशंकर शुक्ल

स्वावलम्बन-खादी-कार्य का विवरण

(३)

बिहार

बिहार मे चर्खा-संघ की ओर से जितने उत्पत्ति-केन्द्र काम कर रहे है, उन सब केन्द्रो मे खादी-बिक्री का प्रबन्ध किया गया है। फिर भी यहा ऐसे जुलाहे या कतवैये नही है, जो आदतन खादी पहनते हों। हा, जुलाहो में ७५ फीसदी ऐसे लोग है जो थोड़ी-बहुत खादी पहनते है। कतवैयो मे भी जो लोग मोटा सूत कातते और उसके बदले मे कपास खरीदते है, वे ज्यादातर अपने ही हाथ-कते सूत की खादी बनवाकर पहनते है, पर महीन सूत कातनेवाले ऐसा नही करते।

बंगाल [कलकत्ता-शाखा]

इस शाखा मे काम करनेवाले प्राय सभी जुलाहे खादी पहनते है। वे आदतन खादीधारी नही है, परन्तु उनकी पोशाक का ज्यादातर हिस्सा खादी का होता है। कतवैये खादी नही पहनते, फिर भी जाडे के दिनों में वे और उनके बालक खादी की कुछ चादरो का उपयोग करते है, और खेतो मे काम करते समय मर्द लोग मोटे गाढे के छोटे अर्जवाले गमछे सहूलियत के खयाल से बहुतायत से पहनते हैं।

कर्णाटक

संघ की कर्णाटक-शाखा इस बात का बराबर प्रचार कर रही है कि उसके मुख्य केन्द्र उप्पिन बेट्टगिरि के कतवैये सूत के बदले मे खादी खरीदने को राजी हो जायँ; पर इसमे उसे अब तक बहुत कम सफलता मिली है। जुलाहे भी इस दिशा में बड़ी उपेक्षा से काम ले रहे है। १०० मे से सिर्फ १० पूरी तरह खादी का उपयोग करते है। यहां के उत्पत्ति-केन्द्रो में खादी को लागत मूल्य में बेचने की व्यवस्था भी की गई है।

कश्मीर

यहा के कारीगर ऊनी कपड़ों के सम्बन्ध में परम्परा से स्वावलम्बी रहे है। देहात मे जिस घर में स्त्री है, उस घर में चर्खा भी जरूर होता है। लगभग सभी परिवार अपनी जरूरत का कपड़ा स्वयं कात और बुन लेते है, और जो बच जाता है, उसे बेच देते हैं।

महाराष्ट्र और मराठी मध्यप्रान्त

इस शाखा की ओर से नीचे लिखे उत्पत्ति-केन्द्रों में काम हो रहा है—

१ किन्ही, २ सिन्देवाही; ३ सावली, ४ बारेगुडा; ५ बायलाल, ६ मेटपल्ली।

इनमें से प्रथम तीन केन्द्रों में उपयुक्त खादी लागत मूल्य मे, अर्थात् बिना व्यवस्था-खर्च जोड़े, बेची जाती है, जब कि दूसरे तीन केन्द्रो मे डेढ आना फी रुपया के बदले बिक्री की कीमत पर इकन्नी रुपया व्यवस्था-खर्च चढाया जाता है। यहा के जुलाहों में कुछ आदतन खादी पहननेवाले है, पर कतवैयों में कोई भी नही है। लेकिन अन्तिम तीन केन्द्रों के प्राय सभी कतवैये और जुलाहे, जो क्रमश ७,४३० और १,३४० की सख्या मे है, अपनी जरूरत का करीब आधा, यानी ५० फी सदी, कपड़ा खादी का ही पहनते है। इसके लिये संघ की ओर से कोई प्रयत्न नही हुआ है; बल्कि इन केन्द्रो मे पुराने समय से ही इस प्रकार की प्रथा चली आ रही है।

किन्ही, सिन्देवाही और सावली के कतवैये खादी नही पहनते, जब कि खादी पहननेवाले जुलाहो की औसत सिन्देवाही और सावली मे क्रमश फी सदी २५ और ३० है और किन्हीं में फी सदी १७० है, यानी सिन्देवाही के ७२ जुलाहो मे से १८, सावली के १४० मे से ४२ और किन्ही के ३० मे से ३० जुलाहे खादी पहनते हैं।

पंजाब

आदमपुर, घुड़ियाल और जँडियाला केन्द्रो के ६६ फी सदी कतवैये अपने हाथ-कते सूत की कुछ खादी पहनते है। इन केन्द्रो में काम करनेवाले जुलाहो में एक तिहाई सिर से पैर तक खादी पहननेवाले है और शेष थोड़ी बहुत खादी पहनते है।

राजस्थान

दौसा और गोविन्दगढ, ये दो राजस्थान-शाखा के उत्पत्ति केन्द्र है। इन केन्द्रों मे काम करनेवाले प्राय. सभी जुलाहे और गांव के सभी निवासी भी आमतौर पर खादी पहनते है, और यद्यपि वे आदतन खादीधारी नही है फिर भी अपनी जरूरत के लिए ज्यादातर कपड़ा खादी का ही काम मे लाते है।

(क्रमशः)

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

सम्पादक—वियोगी हरि
"आत्मवत् सर्वभूतेषु"
Reg. No. L. 1369.
वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)
पता—
हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]
भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, २२ फ़रवरी, १९३५. [संख्या १

विषय-सूची

मेरा भ्रमण

सवा-डेढ़ महीने के लिए 'हरिजन-सेवक' के काम से मैं बाहर निकला हूँ। मुख्य कार्य तो मेरा 'हरिजन-सेवक' को स्वावलंबी बनाने का प्रयत्न करना है, पर साथ-साथ हरिजन-कार्य भी जहां जाता हूँ देख लेता हूँ। बस्तियां देखता हूँ, पाठशालाओं का निरीक्षण करता हूँ, हरिजन-कार्यकर्त्ताओं से मिलता हूँ और हरिजन-प्रवृत्ति पर लोगों से बात करता हूँ। मध्यभारत के दो-तीन स्थानों और मध्यप्रान्त के कुछ भाग में ही इस थोड़े से समय में मैं जा सकूंगा। चार-पांच दिन के लिए कलकत्ते भी जाऊँगा। अपने इस भ्रमण का श्रीगणेश मैंने झांसी से किया है।

झांसी

९,१०—२—३५—यहां मैं फटते-फटते पहुँचा। संघ की तरफ से झांसी में तीन पाठशालाएँ चल रही हैं—दो तो दिवस-पाठशालाएँ हैं और एक रात्रि-पाठशाला। तीनों ही पाठशालाओं में ठाकुर नंदकिशोर पढ़ाते हैं। नई बस्ती की पाठशाला में १२ बजे से २ बजे तक, हाथीलाल बस्ती की पाठशाला में ३ बजे से ५ बजे तक, और फिर हाथीलाल की रात्रि-पाठशाला में ७ बजे से ९ बजे तक। नंदकिशोरजी तिलक-मालाधारी एक सनातनी सज्जन हैं। बड़े उत्साही और मेहनती अध्यापक हैं। लड़के यद्यपि कम आते हैं, पर पढ़ाई अच्छी हो रही है।

१० तारीख को सवेरे सिपरी बाजार की हरिजन-बस्ती देखी। इसमें मेहतर रहते हैं। कुछ घर चमारों के भी हैं। घर-आंगन साफ हैं। पर पानी का पूरा कसाला है। न कुआ है न नल। हर घर भिस्ती को ३) माहवार देता है। १) तो मकान-भाड़े में निकल गया, और १) भिस्ती के खीसे में चला गया, बचे ७)—इसी में भरे कुटुंब का गुजारा करना पड़ता है। कुएँ की इस बस्ती में सख्त जरूरत है। संघने यहां कुआ खुदवाने का निश्चय कर लिया है। श्री नोधराज शास्त्री इधर काफी रस ले रहे हैं। आशा है कि उनके प्रयत्न से सिपरी बाजार के हरिजनों की यह बारहमासी तकलीफ बहुत जल्द दूर हो जायगी।

रात को संघ की बैठक हुई, जिसमें मैं भी उपस्थित था। बैठक में एक अच्छा महत्वपूर्ण निश्चय हुआ। झांसी में एक 'दीन हित-कारिणी पाठशाला' है, जिसमें करीब २०० हरिजन विद्यार्थी पढ़ते हैं। इसमें ५ अध्यापक त्याग और सेवा के भाव से पढ़ाते हैं। म्यूनिसिपैलिटी से बहुत थोड़ी सहायता मिलती है। पिछले दिनों जब ठक्कर बापा यहां आये थे तब इस पाठशाला को देखकर उन्होंने बहुत संतोष प्रगट किया था। संघने इस पाठशाला को १०) मासिक सहायता देना उस बैठक में निश्चित किया।

झांसी की म्यूनिसिपैलिटी का ध्यान हरिजनों के प्रश्न पर अब तक गया ही नहीं, जब कि इस प्रांत की एक-दो प्रमुख म्यूनिसिपैलिटियोंने इस दिशा में अच्छा काम किया है, और थोड़ा-थोड़ा काम तो कई म्यूनिसिपैलिटियोंने किया है। यहां तो सिपरी-बाजार की बस्ती में कुआं खुदवाने के लिए कमेटी की अभी जमीन तक नहीं मिल रही है। आशा है कि झांसी की म्यूनिसिपैलिटी सार्वजनिक स्वास्थ्य की भांति हाल में [illegible] हरिजनों के प्रति अपना कर्त्तव्य पालने में किसी अन्य म्यूनिसिपैलिटी से पीछे न रहेगी।

भोपाल

११—२—३५—मध्यभारत का यह राज्य काफी प्रसिद्ध है। यहां का सुन्दर विशाल तालाब इस पुरानी कहावत को आज भी लोगों की जबान पर रखे हुए है कि 'ताल तो भोपाल-ताल, और है तलैया।' वास्तव में यह बड़ा सुरम्य सरोवर है। इसके चारों ओर अनेक नये-पुराने भव्य भवन बनवाकर भोपाल के शासकोंने अपनी स्थापत्यकला का बड़ा सुंदर परिचय दिया है। यहां का सिमला नामक स्थान देखकर तबीयत हरी हो जाती है। पर इस दृश्य-निरीक्षण को कला के पुजकों पर ही छोड़कर मैं आपको भोपाल की हरिजन-बस्तियों में ले चलूंगा। इन बस्तियों की हालत तो कहीं भी जाइए, न्यूनाधिक रूपमें सर्वत्र एक-सी ही मिलेगी। मगर कलकत्ता, बंबई या दिल्ली-जैसी बड़ी-बड़ी मोहक नगरियों की हरिजन-बस्तियों से भोपाल की बस्तियां तो भी अच्छी ही हैं, यह तो हमें मानना ही पड़ेगा।

मैंने घोड़ाचौक और बरखेड़ी की बस्तियां देखीं। संघ की यहां दो पाठशालाएँ हैं। घोड़ाचौक की पाठशाला में कुल २९ लड़के दर्ज हैं। हाजिर २४ मिले। ९ लड़के मिलावटों के हैं और ४ चमारों के—बाकी ठाकुर, नाई, तेली, कसेरा, बनिया, छीपा, तमोली और चटाईगिर इन जातियों के लड़के हैं। पाठशाला सवेरे ७ बजे से ९ बजे तक लगती है। पाठशाला की जगह अच्छी साफ-सुथरी है। लड़के भी स्वच्छ देखने में आये। पाठशाला के बाद घोड़ाचौक की बस्ती देखी। शराब का चस्का प्रायः सभी-को लगा हुआ है। इसी से सब मकरूज हैं। इस बस्ती की एक

गली बड़ी ही गंदी रहती है । बरसात में तो वह नरक की नदी बन जाती होगी । हमारे हरिजन-सेवक कुदाली-फावड़ा लेकर जुट पड़ें, तो वे दो दिन मे इस गंदी गली को पाटकर पक्की बना सकते हैं। ऐसी छोटी-छोटी बातों में म्यूनिसिपैलिटी का मुंह हेरना ठीक नहीं।

बरखेड़ी की बस्ती अच्छी है । यहां की पाठशाला मे ३६ बच्चे दर्ज रजिस्टर हैं । उस दिन उपस्थिति ३२ की थी । २४ तो सिलावट लोगो के है, और ८ कोली, काछी, लुहार और तेली जाति के । पाठशाला आजकल अथाई मे एक चबूतरे पर लगती है । पर गर्मी और बरसात के दिनों में इस खुली जगह में तो यहा पाठशाला न लग सकेगी । संघ मकान की तलाश में है । लडकोने जब प्रार्थना सुनी तो एक बडी मनोरजक बात हुई । दो मारवाड़ी बच्चे भी हाथ जोडे आख बन्द किये प्रार्थना-मडली में बडे प्रेम से खडे भजन गा रहे थे । बाद को मैंने उनसे पूछा कि तुम तो भाई विट्ठलदास बजाज के लड़के हो; तुम कैसे इस पाठशाला के हरिजन बच्चों के साथ खड़े हो गये ?

'मैं भी तो हरिजन हूं,' उस बालकने बड़ी खुशी से जवाब दिया ।

'तुम हरिजन कैसे ? तुम तो बजाज हो ?' मैंने उसे खिझाने के लिए पूछा ।

'नही, मैं तो एक हरिजन का लडका हूं ।'

'तो क्या भाई विट्ठलदास भी हरिजन हैं ?'

'हां, जरूर ।'

मैने उस स्वेच्छा से बने हुए हरिजन बालक के सिर पर चपत लगाते हुए कहा, 'अच्छा, मैंने मान लिया कि तुम दोनो भाई-बहन हरिजन हो, अब तो खुश हो ?'

इस बालक की बडी बहिन सस्कृत की प्रथमा परीक्षा की तैयारी कर रही है । हरिजन-सेवा उसे भी प्रिय है । यह बालिका बड़ी होने पर हरिजन-प्रवृत्ति का शास्त्रीय समर्थन करेगी, उसका कुछ ऐसा हौसला जान पडता है ।

भोपाल मे पहले एक अस्पृश्यता-निवारक समिति थी, पर इधर वह टूट गई थी । ११ फरवरी को फिर से सगठन हुआ, जिसका हरिजन-सेवक-समिति नाम रखा गया ।

चटाइयों का उद्योग—भोपाल राज्य के दस-बारह गावो मे खजूर की चटाइयो का उद्योग आज भी जीवित है । यह उद्योग एक हरिजन जाति के हाथ मे है, जिसे छपरबन्द कहते हैं । ये लोग यों तो खेती व मजूरी करते हैं, पर अपने फुर्सत के समय चटाइया बनाते है । रुपये की ६×३½ नाप की १८ या १६ चटाइया बेचते है । इन चटाइयो को उज्जैन, इन्दौर और अकोला की तरफ मिलवाले कपडे की गाठो मे बाधते हैं । गुड और अनाज बिछाने के काम मे भी ये चटाइयां लाई जाती हैं । यह उद्योग बढ़ाया जाय तो गरीब ग्रामवासियो की इससे बहुत-कुछ पालना हो सकती है, ऐसा यहां के लोगों का खयाल है ।

उज्जैन

१२,१३-२-३५—यह प्राचीन महापुरियो में से एक पुरी है। इसे अवंतिका नगरी भी कहते हैं । महाकालेश्वर भगवान् की इस पवित्र पुरी पर भी अन्य तीर्थस्थानों की भांति अस्पृश्यता की कलंक-कालिमा लगी हुई है । यहां के प्रसिद्ध हरिजन-सेवक श्री दाते एकाधिक बार पंडों के कोपभाजन बन चुके हैं । पारसाल एक हरिजन बस्ती में हिन्दू और मुसलमान दोनोंने ही उन्हें पीटा था । अपराध उनका यही था कि हरिजनों को वह एक सार्वजनिक जलाशय पर पानी भरवाने के लिए ले गये थे । मगर दातेजी इन ज्यादतियों से विचलित या पस्तहिम्मत नहीं हुए । वह तो वैसी ही लगन के साथ आज भी हरिजन-सेवा कर रहे हैं ।

सब से पहले मैंने यहां मुहल्ला कोट की पाठशाला देखी । रजिस्टर में लड़कियां १० और लड़के १६ दर्ज हैं । औसत हाजिरी १५ की रहती है । बलाई और चमारों के बच्चे यहां पढ़ते हैं । पाठशाला की कोठरी बहुत ही छोटी है, बडी कसाकसी से किसी तरह १५ बच्चे बैठ सकते है । दातेजी दूसरे मकान की तलाश में हैं । किया क्या जाय, सवर्ण हिंदू तो मकान देते नही, यह कोठरी तो एक मुसलमान भाईने किराये पर दी है । सब प्रकार का जातीय दड भोगते हुए भी तैलंग मास्टर नाम के एक सज्जन बड़ी लगन और सेवा-भाव के साथ हरिजन-पाठशालाओं में काम कर रहे हैं ।

इसके बाद मैंने मांगवाड़े की बस्ती देखी । इसमे दस-बारह घर बसोरों के हैं, और ५० के ऊपर माग लोगों के घर हैं । ये लोग खजूर की झाड़ू बनाते हैं । मुख्य धधा इनका यही है । पहले इसी मुहल्ले में पाठशाला थी, पर पत्थर आदि फिकने के उपद्रव के कारण पाठशाला को यहा से हटाकर दूसरी जगह ले जाना पड़ा ।

आर्यसमाज-मन्दिर में भी एक पाठशाला है । इसमें तीन-चार सवर्ण बालकों को छोडकर बाकी सब हरिजन ही हैं । रात को भी यहां पाठशाला लगती है, जिसमें मेहतरों के भी ८ बालक पढ़ने आते हैं । दिन की पाठशाला मे ४ लड़कियां भी पढ़ती हैं । आर्यसमाज का यह कार्य प्रशंसनीय है ।

फ्रीगज में राज्य की एक अपर प्राइमरी पाठशाला है, जिसमें अध्यापक जोगलेकर उर्फ 'भूत मास्टर' के सतत प्रयत्न से १०० से ऊपर हरिजन विद्यार्थी पढते है । ग्वालियर राज्यने यह हुक्म जारी कर दिया है कि सवर्ण और हरिजन बिना किसी भेदभाव के सरकारी स्कूलों मे पढ़ सकते है । मगर व्यावहारिक रूप मे इस राजकीय आज्ञा का पालन अभी कम ही होता है ।

भगवान् महाकालेश्वर के मन्दिर के पास से जब मै गुजरा तब मन हुआ कि एक नजर इस प्राचीन शिवालय को भी देखता चलू । किन्तु इस इच्छा को दबा देना पडा । जो मन्दिर हरिजनों के लिए मुक्तद्वार नही, वहा मै जाऊं, यह कैसे हो सकता है ? बाहर से ही प्रणाम करके चल दिया ।

१३ फरवरी को २ बजे प्रिंसिपल ताटके के आमंत्रण पर मैंने माधव कालेज के विद्यार्थियो के आगे 'गाधीवाद और हरिजन-प्रवृत्ति' इस विषय पर भाषण किया ।

यहां की सार्वजनिक प्रवृत्तियो के सर्वस्व साधुमना श्री पुस्तके-जी से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई ।

वि० ह०

मेरी हरिजन-यात्रा

(८)

जैतपुर

१ दिसम्बर, १९३४--चमार, धेड़ और भंगियों के घर देखे । उन्हें पानी की तो कोई तकलीफ नहीं है, लेकिन ब्याह-शादी के खर्चों के लिए, लिये जानेवाले कर्जे पर उन्हें—खासकर भंगियों को—बहुत ज्यादा ब्याज देना पड़ता है । मैंने देखा कि यहां के करीब-करीब सभी भंगी म्यूनिसिपैलिटी के एक चपरासी के कर्जदार

हैं, जो हर महीने तनख्वाह दी जाने के वक्त आसानी से उनसे अपनी वसूली कर सकता है।

यहां के भंगियों को एक मंदिर की जरूरत थी। इसके लिए उन्होंने अपनी-अपनी तनख्वाह में से दो महीने तक ॥) मासिक देकर ५०) रु० इकट्ठे करने का वादा किया और इतनी ही रकम वहां के संघ के देने की बात तय हुई। भंगियोंने अपना वादा पूरा कर दिया है, इसलिए वहां १००) की लागत का मंदिर अब जल्दी ही बनेगा। इस कस्बे में एक हरिजनने चाय वगैरा के लिए एक जलपानगृह खोला है, जिससे हरिजनों को बड़ी सुविधा हो गई है। क्योंकि हिन्दू या मुसलमानों के जितने भी होटल हैं उन सबमें उन्हें दरवाजे की सीढ़ियों पर ही चाय दी जाती है, जिससे उनके स्वाभिमान को बड़ी ठेस पहुँचती है। म्युनिसिपैलिटी ने इस (हरिजन) होटल के लिए लाइसेन्स की अपनी फीस माफ कर दी है, जो यहां साधारणतः १००) होती है। यह यहां की विशेषता है कि कस्बे के सम्मिलित स्कूल में कई हरिजन बालक भी भर्ती कर लिए गये हैं, जो काठियावाड़ के किसी कस्बे के लिए अनोखी बात है। अब यह संख्या ३५ तक पहुँच गई है।

वाडल (जूनागढ़ स्टेट)

२ दिसम्बर, १९३४—इस कस्बे में यह विशेषता पाई कि कस्बे के बीचोबीच बने हुए कुएँ से सब हरिजन, यहां तक कि भंगी भी, पानी भर सकते हैं। अभी हाल में ही ऐसा होने लगा हो, सो बात नहीं है। यह तो इस गांव की बहुत पुरानी प्रथा है। कभी इस बारे में कोई आपत्ति की गई हो, यह कोई नहीं जानता।

राज्य की ओर से एक हरिजन-शाला खुली हुई है, पर हरिजनों की बस्ती १०० घरों से कम न होने पर भी उसमें उपस्थिति बहुत कम होती है। शाला का मकान भी ठीक नहीं है। चमारों की बस्ती में जमीन से पानी खींचने का हैंण्डपम्प लगाया गया है, उससे उन्हें पानी की सुविधा हो गई है।

जूनागढ़

२ दिसम्बर, १९३४—यहां हरिजनों की तीन बस्तियां हैं—(१) गुजरातीवास (२) काठियावाड़ीवास और (३) भंगीवास। काठियावाड़ीवास में लगभग १०० परिवार रहते हैं और भंगीवास में लगभग १२५–१५०। भंगियों की बस्ती बहुत घनी और एक ही जगह में है, जो जूनागढ़ जैसे बड़े कस्बे के लिए असाधारण बात है।

पानी का प्रबन्ध—काठियावाड़ी वास की बस्ती में एक कुआं है, बाकी दोनों बस्तियों में हाल ही लोहे की टंकियां लगाई गई हैं। पहले भंगीवास के भंगियों को एक मुसलमान औरत से पानी मोल लेना पड़ता था, जो पानी के दो बर्त्तनों के ठेले के दो पैसे वसूल करती थी। लेकिन पानी की टंकियां लग जाने से अब इस औरत की रोजी जाती रही, जिस से यह उन्हें कोसती है। टंकी तथा नाली की थोड़ी मरम्मत होने की जरूरत है।

भंगियों की तनख्वाहें—७॥) औरतों को और ८॥) आदमियों को मिलते हैं। जूनागढ़-जैसे शहर में, जहां का रहना गांवों से बहुत महँगा है, इसमें वृद्धि होने की आवश्यकता है। इसमें सन्देह नहीं कि निजी टट्टियां साफ करके भी वे कुछ कमा लेते हैं, लेकिन इससे बहुत कम ही आमदनी होती है।

शिक्षा—तीनों बस्तियों में स्थानीय संघ की ओर से प्रारम्भिक शिक्षा की तीन दिवसशालायें खुली हुई हैं। इनमें से एक तीन साल पुरानी है। भंगियों की बस्ती में बड़ों के लिए एक रात्रि-पाठशाला भी है। भंगियों की बस्ती में पाठशाला की अच्छी इमारत बनने की बहुत जरूरत है, क्योंकि इन शालाओं की पढ़ाई दरख्त की छाया में होती है। राज्य से इसके लिए, तथा संघ द्वारा संचालित तीनों पाठशालाओं के लिए भी, सहायता की प्रार्थना की जानी चाहिए। चौथी शाला को तो सहायता मिल ही रही है।

सहकारी समिति—म्युनिसिपैलिटी के भंगियों को उनके वर्तमान कर्ज से मुक्त करने के लिए इसकी बहुत जरूरत है। इससे उनका आर्थिक जीवन भी व्यवस्थित होगा। उनकी तनख्वाह में से इसके लिए हर महीने ४ से ८ आने तक लिये जा सकते हैं जिसमें उनकी पूंजी बनेगी। इस समय तो (नूरभाई अलीभाई या गुलाबखां शेरखां से) उधार लिये जानेवाले प्रत्येक २०) रु० पर ५–५ रु० की आठ किस्तों में उन्हें ४०) रु० देने पड़ते हैं। अर्थात् किस्तें नियमित रूप से अदा करते रहें तो लगभग २५०) प्रतिशत ब्याज होगा। गैरसरकारी लोग चाहें तो ऐसी संस्था बना सकते हैं। म्युनिसिपल अधिकारियों का सहयोग-सद्भाव बनाये रखना चाहिए, क्योंकि इसे सफल बनाने के लिए यह जरूरी है कि कर्जे की किस्तें सीधी तनख्वाह में से ही काट लेनी चाहिएँ।

डाक्टरी सहायता—सरकारी अस्पताल में इस समय प्रति दिन की दवा का -) लगता है। रियासत से यह प्रार्थना क्यों न की जाय कि वह हरिजनों के लिए इसे माफ कर दे?

अमृतलाल वि० ठक्कर

यह अस्पृश्यता !

डा० गांगुली नामक एक बंगाली अध्यापक ने 'भारतवर्ष—अब क्या?' नाम की एक अंग्रेजी पुस्तक लिखी है। उसमें दक्षिण भारत की अस्पृश्यता के बारे में निम्न अनुभव लिखे हैं:—

"१९१८ में मुझे कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ, दक्षिण भारत की उनकी यात्रा में, जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वहां मुझे पहली बार 'अस्पृश्य' माने जाने वाले वर्गों की स्थिति का पता लगा।

पालघाट में हम एक ब्राह्मण-कुटुम्ब में ठहरने वाले थे। उसके घर पहुँचने के लिए हम ब्राह्मणवाड़े को पार करके ही जा सकते थे। ब्राह्मणवाड़ा शुरू होते ही हमारे तांगेवाले ने एकदम तांगा खड़ा कर दिया। वह नीचे उतर पड़ा और लगाम हमारे गृहपति के नौकर के सुपुर्द करदी। वह उस वर्ग का था, जो 'अस्पृश्य' माना जाता है, इसलिए ब्राह्मणों के गांव में एक मार्ग पर वह कैसे जा सकता था। गांव का दूसरा सिरा आ जाने पर ही वह तांगेवाला वापस आकर हांकने बैठा।

उसी दिन शामके वक्त एक गृहस्थ ने हमें दक्षिण में फैली हुई अस्पृश्यता का रहस्य समझाया। एक जगह मन्दिर का तालाब था, एक 'अस्पृश्य' उसके किनारे-किनारे जा रहा था। उसकी परछाईं तालाब के पानी में पड़ी, इसीसे तालाब अपवित्र हो गया! उस समय, इसी कारण उस मनुष्य पर तालाब को अपवित्र करदेने का फौजदारी मामला अदालत में चल रहा था—यह बात भी पूर्वोक्त गृहस्थ से ही मुझे मालूम हुई।"

'हरिजन' से] **चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य**

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २२ फ़रवरी, १९३५

चावल के बारे में

चावल की समस्या दिन पर दिन लोगो की रुचि का विषय बनती जा रही है। श्री शंकरलाल बैंकरने तो बिना पालिश के चावल के प्रयोग शुरू भी कर दिये हैं। वह लिखते हैं —

"पहले जब धान की हाथ से कुटाई होती थी तो सबसे ऊपर का छिलका निकालने के बाद तीन बार उसे कूटा जाता था, और अब भी निश्चय ही बहुत से लोगो का यह खयाल है कि ऐसा किया ही जाना चाहिए। इसलिए मैंने कुछ धान मँगवाकर उसका छिलका अलग करवाया और एक के बाद एक तीन दफा उसकी कुटाई करवाई। इन तीनों बार के नमूने मैं आपको भेजता हूँ। जो चावल सिर्फ एक बार कुटा था वह, दो और तीन बार कुटनेवाले चावल की बनिस्बत, खाने में कहीं ज्यादा मीठा मालूम हुआ। धान का छिलका तो सबसे पहले चक्की के द्वारा अलग किया गया, इसके बाद उसकी कुटाई या पालिश गाव के ओखली-मूसल के जरिये हुई। छिलका उतारने के बाद जो चावल रहा उसका रग करीब-करीब एक बार कुटे हुए चावल जैसा ही था। लेकिन उसके रँधने में ज्यादा देर लगी। इसलिए अगली बार जब उसे राधा तो उससे पहिले कुछ देर तक उसे पानी मे भिगो दिया, जिससे उसके रँधने मे कोई दिक्कत न हुई, बल्कि उसकी मिठास तो और भी ज्यादा हो गई। कुछ लोगो का खयाल है कि जिस चावल की अच्छी तरह कुटाई नही होती वह पचने मे भारी होता है। लेकिन एसी बात नही मालूम पड़ती। चावल की कुटाई या पालिश करने से उसका वह अश नष्ट हो जाता है, जिसके अन्दर पाचन मे मदद पहुँचाने वाला 'विटामिन' और क्षार होते है। अगर मेरे इस विश्वास को काफी न समझा जाये, तो इस बारे मे अधिकारपूर्ण जानकारी भी प्राप्त हो सकती है। यह एक रोचक बात है कि १० सेर धान के खाली छिलके अलग करने पर ही वह सिर्फ साढ़े सात सेर रह गया। इस प्रकार छिलके अलग करके उसके वजन मे २५ प्रतिशत कमी हो गई। और तीन बार कुटाई करने पर तो उसका वजन ४० प्रतिशत कम हो गया। जिस धान की कुटाई की गई उसे जीरासाल कहते हे। गुजरात मे चावल की आठ किस्मे होती है, जो निम्न प्रकार है —

(१) वरो या साठी—इस किस्म के धान से जो चावल निकलता है वह लाल रग का होता है। कीमत ।।।) फी मन होती है। इसका दाना बहुत बड़ा होता है।

(२) सुतरसाल या धोली—गायवाड़ो मे इसका भी बहुत प्रसार है। इसकी खेती बहुत होती है। कीमत ।।।) से १) मन तक। दाना सफेद होता है।

(३) उतावली—यह पहली दोनों किस्मों से ऊँचे दर्जे का माना जाता है। इसकी कीमत ।।।=) से १=) मन तक होती है।

(४) सुखवेल—यह तीसरी किस्म जितना ज्यादा नहीं बढ़ता। कीमत १) से १=) मन तक होती है।

(५) इलायची—इसमें आकर्षक सुगन्ध होती है। कीमत करीब-करीब चौथी किस्म के समान ही है।

(६) जीरासाल—इसकी कीमत १।) से १।।) मन तक होती है।

(७) कमोद—इसमें बहुत बढ़िया खुशबू होती है। कीमत १।=) से १।।।) मन तक।

(८) पणपँखड़ो—इसकी कीमत १।।।) से २।) मन तक होती है।"

इस पत्र पर मै सिर्फ यही टिप्पणी करूँगा कि, मेरे खयाल मे, इस बारे मे और डाक्टरी सम्मति की जरूरत नही है। जो सम्मतिया इकट्ठी करके मै इन पत्रो मे दे चुका हूँ, वे बिना पालिश के चावल की जोरदार समर्थक है। लेकिन जहा तक मुझे पता है, डाक्टरी साहित्य मे ऐसे प्रयोगो का कोई वर्णन नहीं है जिनकी शुरुआत हममे से बहुतों की तरह श्री बैंकरने की है। इसका सबूत तो खाने से ही मिल सकता है, हरएक को खुद ही आजमाइश कर लेनी चाहिए।

लेकिन अभ्यस्त रसोइये के तौर पर, इस सम्बन्ध में, मैं एक चेतावनी दूगा। अपनी पत्नी के साथ मेरे जो अनेक घरेलू झगड़े होते रहते थे, उनमें एक चावल रांधने पर भी था। वह एक-एक दाना खिला रखती थी, लेकिन मै तो आहार-सम्बन्धी सुधार का पक्षपाती था और इस बात को जानता था कि ऐसा चावल गुण में उससे आधा अच्छा भी नही होता, जैसा कि अच्छी तरह पका हुआ चावल होता है। मैं चावल का एक तोला मांड भी फेंकता नही था। उस वक्त पालिश किये हुये और बिना पालिश किये हुए चावल का फर्क तो मुझे मालूम नहीं था। मैं तो आम तौर पर बाजार मे बिकता हुआ चावल ले आता और उसको अच्छी तरह पकाता था। पाठको को यह जानकर खुशी होगी कि हमारे झगड़े का अन्त सुधार की विजय हुआ, और मेरी पत्नी अच्छी तरह रँधे हुए चावल के पक्ष मे हो गई। अस्तु। यह ध्यान रहे कि बिना पालिश के चावल के बारे मे और भी ज्यादा सावधानी की जरूरत है। क्योंकि चावल के उस अंश को तो और भी अच्छी तरह राधने की जरूरत है, जिसमें उसके सबसे अधिक पोषक तत्त्व होते है। इसलिये बिना पालिश के चावल को पहले कम-से-कम तीन घंटे तक ठंडे पानी मे भिगोकर तब पकाया जाय तो उसके हजम होने मे तो कोई दिक्कत होगी ही नही, उलटे निश्चित रूप से वह अधिक स्वाद हो जायगा।

मगनवाड़ी मे तो (जहां कि वर्धा मे संघ है) यह बात साबित हो चुकी है। यहा पर हमे जो चावल मिल रहा है वह अधकुटा कहला सकता है, बिलकुल वैसा नहीं जैसे का जिक्र ऊपर के पत्र मे किया गया है। पर उसको राधा अच्छी तरह जाता है और उसके हजम न होने की शिकायत किसीने नहीं की है। लेकिन चूंकि पालिश किये हुए चावल से वह अधिक पौष्टिक होता है, क्योंकि उसमें 'स्टार्च' लगभग असली रूप में रहता है, इसलिये स्वभावत: बिना पालिश का चावल उतने परिमाण मे नहीं खाया जा सकता और न खाना ही चाहिये, जितना कि पालिशदार चावल खाया जाता है। चावल की ही बात नही, पुराने तरीके पर पकाई जानेवाली सभी चीजों के बारे में यही बात लागू होती है।

अंग्रेजी से]

मो० क० गांधी

'दरजे' का अर्थ

हरिजन-सेवक-संघ का हाल में जो नया विधान बना है, उसके बारे में एक अत्यन्त प्रतिष्ठित हरिजन-सेवक लिखते हैं:—

"अ और व प्रतिज्ञा में 'दरजा' शब्द आता है। अगर उसका अर्थ यह है कि जैसे कानून में कोई ऊँचा-नीचा नहीं है वैसे ही ईश्वर की दृष्टि में भी कोई ऊँचा-नीचा नहीं है, तो हमारे यहां के सदस्य उसको मानने के लिए तैयार हैं। अर्थात्, धर्म या दर्शन-शास्त्र के सिद्धान्त के बतौर, आध्यात्मिक रूप में, वे इस बात को मानते हैं। लेकिन अगर इसका अर्थ यह लगाया जाय कि दुनिया-वी व्यवहार में मालिक-नौकर, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी, न्यायाधीश और कैदी आदि के बीच दरजे का कोई अन्तर ही न होना चाहिए, तो हमारे लिए इस प्रतिज्ञापत्र पर दस्तखत करना मुश्किल है। इसलिए आप यह बतलाने की कृपा करें कि यहां पर 'दरजे' का जो उल्लेख हुआ है वह सासारिक के बजाय आध्यात्मिक रूप में ही है या नहीं?"

प्रतिज्ञा के जिस अंश का ऊपर उल्लेख किया गया है, वह निम्न प्रकार है:—

"मैं किसी मनुष्य को अपने से दरजे में नीचा नहीं समझता, और अपने इस विश्वास पर चलने का मैं भरसक प्रयत्न करूँगा।"

मैं समझता हूँ कि ऊपर की बात का जवाब तो प्रतिज्ञा में ही दिया हुआ है। लेकिन पत्र-लेखक समानता का अर्थ भिन्नताओं का नाश करके भ्रम में पड़ गये मालूम पड़ते हैं। अगर यह भिन्नता या विविधता बिलकुल ही न होती तो यह दृश्य जगत् ही कहा होता, और समानता या ऊँच-नीच के भाव का प्रश्न ही न उठता। लेकिन जब ईश्वर अनेक रूप धारण करता है तब उन विविध रूपों में भिन्नता करनी ही पड़ती है। ईश्वर के कोई अंग दूसरे अंगों की अपेक्षा ऊँचे या श्रेष्ठ होने का दावा करें तो उसे सृष्टि-कर्त्ता के विरुद्ध विद्रोह ही कहा जायगा। क्योंकि उन सब के बीच कद, रंग, रूप, गुण आदि की भिन्नता चाहे जितनी हो, फिर भी दरजे में तो वे सब बराबर ही माने जायेंगे। पति-पत्नी, गुरु-शिष्य, नौकर-मालिक, न्यायाधीश और अपराधी, जेलर और कैदी के बीच अन्तर तो है ही, लेकिन जो पति अपनी पत्नी से, मालिक नौकर से, या न्यायाधीश सजा पानेवाले अपराधी से अपने को ऊँचा माने, तो वह अधर्माचरण होगा। दुनिया का सारा दुःख इस असमानता की भावना से पैदा हुआ है। हिन्दू जिस अस्पृश्यता का पालन करते हैं वह इसका आखिरी रूप है। इसलिए इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है कि हरिजन-सेवक इस पुराने पाप को धो डालते वक्त अन्तर्दृष्टि करके विचार करें और असमानता के विष को अपने हृदय से बिलकुल निकाल डालें? लेकिन यह किस प्रकार मालूम होगा कि अमुक मालिक तो अपने नौकर को अपने से नीचा मानता है और अमुक उसे अपने समान समझता है? इसका पता इसी से चल सकता है कि पहले मालिक को अपने नौकर के सुख-दुःख का कोई खयाल ही नहीं होगा, क्योंकि उसे तो सिवा इसके और कोई मतलब नहीं कि नौकर को तनख्वाह देकर उसके बदले काम लिया जाय, जब कि दूसरा अपने कुटुम्बी की तरह उसका खयाल रक्खेगा। ईश्वर-परायण कुटुम्बों में मालिक के बाल-बच्चे पुराने नौकरों को मां-बाप की तरह मानते हैं। नौकरों के सुख-दुःख में मालिक भी शरीक होते हैं। नौकरों को ऐसा महसूस नहीं होता कि वे मालिक से नीचे दरजे के हैं। मालिक उलटे रास्ते जाय तो वे उसे टोकते भी हैं। घमण्डी और विनम्र मालिक के बीच वैसा ही अन्तर है, जैसा खड़िया और मलाई के बीच। उनमें कम-ज्यादा का कोई भेद नहीं है, उनकी तो किस्म ही अलग-अलग है। समानता की यह स्थिति प्रकृतिजन्य है और बुद्धि एवं हृदय रखने वाले मनुष्य की हैसियत से यही हमें शोभा देती है; मगर फिर भी हम सब अभी इस स्थिति से बहुत दूर हैं। लेकिन बजाय इसके कि मरने के बाद इसके अनुसार व्यवहार करने की आशा करें, हमें अपने रोजमर्रा के ही जीवन में इसे कार्यान्वित करने का प्रयत्न करना चाहिए। अगर सच्चे दिल से हम ऐसा करने का प्रयत्न न करें, तो फिर कानून की दृष्टि में समानता का अर्थ ही क्या हो सकता है?

यह मित्र शुद्ध निष्ठा से अवैतनिक काम करनेवाले प्रतिष्ठित हरिजन-सेवक हैं। विधान की १० वीं धारा में कहा गया है कि प्रान्तिक संघों के सदस्यों में एकतिहाई संख्या ऐसों की होनी चाहिए जो संघ के काम में अपना पूरा समय देते हों। इसमें 'पूरा समय देनेवाले सेवक' शब्द आये हैं, उनका अर्थ समझने में भी इन मित्र को कठिनाई हुई है। वह कठिनाई ठीक है, क्योंकि नियमों में ऐसा कहीं नहीं बताया गया है कि ऐसे सेवक तनख्वाहदार हों या होने चाहिएँ। जिस वक्त धीरे-धीरे यह विधान बन रहा था, उस वक्त मैं वहां उपस्थित था। इसलिए जान-बूझकर उसमें जो बात नहीं रक्खी गई थी, आसानी से मैं उसकी पूर्ति कर सकता हूं। अपना पूरा वक्त देनेवाले तनख्वाह-दार सेवकों को रखने के बारे में विचार हो रहा है। इसकी योजना भी बन रही है। पूरा समय देनेवाले जिन अवैतनिक सेवकों के पास इतनी सम्पत्ति हो कि कमाई की फिक्र किये बिना वे अपना पूरा समय इसमें लगा सकें, उन्हें इस योजना से अलग नहीं रक्खा जायगा। 'तनख्वाहदार' शब्द किसी को बुरा लगेगा, यह भी विधान बनाते समय विचार उठा था, इसीलिए इसे उसमें नहीं रक्खा गया था। लेकिन यह विचार तो स्पष्ट ही है कि जहां-जहां मिल सके वहां एक-तिहाई सेवक सारा वक्त देने-वाले तनख्वाहदार सेवकों में से ही लेने चाहिएँ। अलबत्ता, यह जरूर है कि जिम्मेदारी के लिए और जिन बातों की आवश्यकता हो वे भी उनमें मौजूद हों।

इन मित्र की तीसरी एक कठिनाई भी है, जिसके बारे में वह लिखते हैं:—

"हमारे संघ के सदस्यों, खासकर हरिजनों, की इच्छा है २४ वे नियम में सुधार होना चाहिए। 'अधिक-से-अधिक जितने सदस्य मिल सकें' के बदले कम-से-कम एक-तिहाई का परिमाण निश्चित कर देना चाहिए। मद्रास जैसी जगहों में १५ हरिजन सदस्य तो आसानी से मिल सकते हैं, और जैसा कि इस समय विधान है उसके अनुसार और किसी को उसमें लिया ही नहीं जा सकता। इससे तो संघ का जो यह उद्देश्य है कि सवर्ण लोग हरिजनों की सेवा करें, वही नष्ट हो जाता है।"

यह कठिनाई संभवतः विधान की इस बात पर ध्यान न जाने से हुई है कि "अपने लिए अधिक-से-अधिक सदस्यों की जो संख्या निश्चित की हो उसका ध्यान रखते हुए।" इस नियम का पूरा वाक्य इस प्रकार है—"हरेक संघ या समिति में सदस्यों

की जो अधिक-से-अधिक संख्या रक्खी गई हो उसका ध्यान रखते हुए अधिक-से-अधिक जितने हरिजन मिल सकें उतने रक्खे जायें।"

इन मित्र ने जैसा अर्थ लगाया है ऐसा अर्थ न लगाया जाय, इसीलिए जान-बूझकर इस नियम मे उसका स्पष्टीकरण किया गया है। इन मित्र ने जो परिवर्तन सुझाया है, केन्द्रीय बोर्ड ने दिल्ली में उसपर विचार किया था। लेकिन अनेक सदस्यो को महसूस हुआ कि उपयुक्त हरिजनों का इतनी तादाद में मिलना मुश्किल है, जो संघ के एक-तिहाई सदस्य बनाये जा सकें। इसलिए यह नियम रक्खा गया, जिससे दोनो कठिनाइयो का हल हो जाता है।

इतने पर भी यहा एक बार फिर मुझे अपनी श्रद्धा प्रकट कर देनी चाहिए। हरिजन-सेवक सघो मे हरिजनो को लेने के मे विरुद्ध था, और अभीतक भी विरुद्ध हूँ। क्योकि हरिजन-सेवक-संघ अगर प्रायश्चित्त करनेवाले देनदारो की सस्था हो, जैसा कि इसे माना जाता है, तो लेनदारो के लिए उसमे कोई स्थान ही नही हो सकता। लेनदार तो लेने के लिए सामने खड़े ही है। एक न एक दिन वह अपनी बात मनवायेंगे ही। आज तो उनमे से अधिकाश असहाय हैं। कितने ही यह भी समझते हैं कि ईश्वर की सृष्टि में वे हीन-से-हीन और बहिष्कृत रहने के लिए ही बनाये गये हैं, और इससे अन्य स्थिति प्राप्त करने का विचार करना भी घोर पाप समझते हैं। प्रायश्चित्त करनेवाले सवर्ण हिन्दुओं का काम है कि पूरी नम्रता के साथ उनकी सेवा करें। उनकी वह सेवा स्वीकार हो या न हो, उनके प्रायश्चित्त का समय निकल भी गया हो और अब वह समय के बाद भी क्यों न मालूम पड़ता हो, पर उन्हें तो प्रायश्चित्त करना ही चाहिए। यह प्रायश्चित्त वे अपनी जगह हरिजनो से नही करा सकते। यह भी सम्भव है कि इस नियम का यह अर्थ जानने के बाद हरिजन मित्र यह बोझा उठाने से डरने लगें। लेकिन यह प्रायश्चित्त क्या उनके करने का है, या जो सवर्ण हिन्दू सघ मे बिलकुल होगे ही नही उनसे वे जबरदस्ती करवायेंगे?

लेकिन भिन्न-भिन्न प्रातो के जिन सदस्योंने कुछ हरिजनो को अपने संघो मे रखना चाहा था उनकी प्रत्यक्ष कठिनाई के आगे मेरा विरोध दब गया है। उनके ठोस अनुभव के सामने मेरे आदर्श को पीछे हटना पड़ा है। इसलिए इस नियम का सीधा-सादा अर्थ यही है कि हरिजन सेवक सघो मे जितने हरिजन मिल सकें उन्हे शामिल करना चाहिए, मगर भारी बहुमत सवर्ण हिन्दुओ का ही रहना चाहिए, और समस्त सघ में दो-तिहाई से कम उनकी तादाद नही होनी चाहिए। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि अगर पर्याप्त योग्यतावाले हरिजन न मिलें तो वे एक-तिहाई संख्या हरिजनों की रखने के लिए बाध्य नही हैं। हरिजनो संबंधी प्रतिज्ञा जान-बूझ कर बहुत मामूली और सीधी-सादी रक्खी गई है। इसलिए एक-तिहाई हरिजन सदस्य प्राप्त करने में कोई कठिनाई न होनी चाहिए। जबकि यह नियम है, तो ईमानदारी के साथ इसपर अमल होना चाहिए।

अंग्रेजी से] मो० क० गांधी

आवश्यकता

अखिल-भारत ग्राम-उद्योग-संघ के लिए लोग रुपये-पैसे का दान तो भेजते रहते हैं, लेकिन इसके अलावा और कई तरह के दान की भी सघ को आवश्यकता है। जैसे ग्राम-उद्योगो सम्बन्धी और गावो के खेतो पर उगाने लायक जड़ी-बूटियो के बारे में साहित्य तथा गांवों में पैदा होनेवाली चीजो के नमूने। संघ अपना एक संग्रहालय बना रहा है, उसके लिए इन सब चीजो की ज़रूरत है। इसके अलावा तेल और गन्ना पेरने के ग्रामीण कोल्हू भी हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न भागो मे इस्तैमाल किये जाते है। दोनो ही कोल्हू अलग-अलग किस्म के होते हैं और हरेक प्रान्त में उनमें थोड़ा-बहुत फर्क मिलता है। ग्रामीण उद्योगो में जिनकी रुचि है, वे अगर उत्पत्ति के भिन्न-भिन्न औजारो का पता लगाकर उद्योग-सघ के प्रधान कार्यालय मे भेजने का कष्ट उठायें तो कार्यालय उनका श्रेणी-विभाग करके उनकी आजमाइश करेगा और विशेषज्ञ लोग उनमें से जिन्हे सर्वोत्तम समझेंगे उनके बरतने की सिफारिश की जायगी। अगर किसी के पास वाट्स-कृत हिन्दुस्तान की आर्थिक-उत्पत्ति का कोष (डिक्शनरी आव इकानामिक प्रोडक्ट्स आव इण्डिया), लेफ्टिनेन्ट कर्नल कीर्तिकर-कृत दवा-दारू के काम में आनेवाली भारतीय वनस्पतियां (इन्डियन मेडीसिनल प्लाण्टस्) या नाडकर्णी-कृत भारतीय जड़ी-बूटियां (इंडियन हर्ब्स) नामक पुस्तकें हो और वे काम में न आ रही हो, न उपयोग की कोई खास सम्भावना ही हो, तो उन्हे चाहिए कि इन्हे संघ को भेंट कर दें। ऐसा करने से निश्चय ही इनका अच्छा उपयोग होगा।

अंग्रेजी से] मो० क० गांधी

राजपूताने के सहृदय गाँव

एक हरिजन-सेवक लिखते हैं :—

"आज मुझे राजावाटी (जयपुर) के ऐसे कुछ कुओ का पता लगा है कि जिन पर सवर्ण और हरिजन सभी जाति के लोग पानी भरते हैं—

(१) गोविंदगढ़ (मिलकपुर) से तीन कोस पर 'भरड़ाकी नागल' नामक गाव में एक कुँआ है।

(२) चूप बिलूंदी गांव में भी, जो चोमू सामोद से तीन कोस पर है, ऐसा ही एक कुँआ है।

(३) गठवाडी में भी, जो सामोद से दो कोस है, एक ऐसा ही कुँआ है।

(४) सामोद से डेढ़ कोस वीर हनुमान का एक कुंड है। यहां पर भादवा में बड़ा मेला लगता है और सवर्ण और हरिजन सभी उस कुंड से पानी भरते हैं।"

ऐसे अनेक जलाशय इस प्रांत में और भी हैं, जहां ऊँच-नीच का भेद नहीं रक्खा जाता। मेले और पर्व के अवसरो पर तो भेद-भाव न रखना भारतीय संस्कृति का सार्वदेशिक अंग ही है। ग्रामीण-जीवन में मानवता का प्रभुत्व होता ही है। राजस्थान के, विशेषतः राजपूताने के, गावों में सहृदयता विशेष रूप से मिलती है। ब्राह्मण, वैश्य और 'अछूत' खेत पर काम करने के बाद एक ही पेड़ के नीचे पास-पास बैठकर अन्न भगवान् के साथ न्याय करते हुए रोज देखे जाते हैं। कई मन्दिर ऐसे हैं जहां पर पुजारी 'अछूत' जाति के होते हैं परन्तु प्रसाद उनके हाथ का

सवर्ण और हरिजन सभी खा लेते हैं। अस्पृश्यता का रोग राजपूत शासन में भी इस प्रांत में बढ़ा नहीं था। सवार क्षत्रिय और सईस 'अछूत'—यह सुन्दर जोड़ी इस प्रांत में सदियों से चली आ रही है। 'सरदारों' के घोड़ें की जीन पहले चमड़े की नहीं, कपड़े की होती थी। आज भी राजपूताने में अछूतपन और उसके अत्याचारों का बोलबाला उन्हीं स्थानों पर अधिक है जहां अशिक्षित धनाढ्यों और अर्ध-शिक्षित 'पंडितों' का प्राधान्य है। परन्तु इनमें भी मानवता कुछ दिशाओं में विकृत ही हुई है, नष्ट नहीं हुई। यदि ये भाई उपर्युक्त उदाहरणों से प्रगट होनेवाली राजस्थान की स्वाभाविक सहृदयता को अपने हृदय में फिर से स्थान दे और कृत्रिम ऊँच-नीच के भाव को छोड़ देने का साहस कर लें, तो राजस्थान के माथे से वह कलंक एक पल में दूर हो जाय, जो हरिजनों के अमानुषिक जल-कष्ट के कारण लगा हुआ है और जिसके कारण गांधीजी जैसे विश्व-विभूति को घोर कायाकष्ट में पड़ना पड़ता है।

रामनारायण चौधरी

हरिजनों को जल-कष्ट

राजस्थानियों से सहायता की अपील

राजपूताने में हरिजनों को पानी का जो कष्ट है, इस वर्ष राजपूताना हरिजन-सेवक-संघ उसको दूर करने के लिए विशेष रूप से उद्योग करना चाहता है। उसकी ओर से हरिजनों की जल-कष्ट-विषयक स्थिति की जल्दी-से-जल्दी जांच शुरू होने वाली है, और आगामी ग्रीष्म ऋतु में कुँए बनवाने का काम भी जारी कर दिया जायगा। आशा है, वर्षा के पहले-पहले इस दिशा मे बहुत-कुछ काम हो जायगा।

गत वर्ष सघ ने कुछ पुराने कुँओं की मरम्मत करवाई और कुछ नये कुँए बनवाये। जितने कुँए बनवाने की अखिल भारतीय सघ ने स्वीकृति दी थी, कई कारणो से उतने कुँए नही बनवाये जा सके। इस वर्ष पहले उन्ही कुँओ को बनवाया जायगा, जो पिछले साल बनवाने से रह गये थे। इसके बाद उन स्थानो की जांच की जायगी, जहां हरिजनो को पानी का अत्यन्त कष्ट होगा। ऐसे स्थानों पर संघ की ओर से एक निरीक्षक भेजा जायगा। वह कुँए की योजना और आनुमानिक आय-व्यय की जांच करेगा और उसके पश्चात् काम शुरू करवा देगा।

राजपूताने म, खास कर पश्चिमी भागों में, पानी की बहुत कमी रहती है, और अनेक स्थानों पर तो हरिजन भाइयो को अमानुषिक स्थिति में गुजर करना पड़ता है। शायद बहुत लोगो को यह पता भी न होगा कि सन् १९३३ में गांधीजी के लम्बे उपवास का एक कारण यह भी था कि राजपूताने में हरिजन भाइयो को पानी के लिए इतनी विषम यातनायें सहनी पड़ती हैं।

इसलिए प्रत्येक उदारचेता राजस्थानी से मेरी यह अपील है कि राजपूताना हरिजन-सेवक-संघने राजस्थानी हरिजन बन्धुओं के कष्टों को दूर करने का जो यह पवित्र काम उठाया है, उसमें हृदय से सहयोग दें। सबसे पहले जो काम करने का है, वह यही कि जहां भी हरिजनों को पानी का कष्ट हो, वहां से उसका विवरण नीचे लिखे पते पर भेज दिया जाय।

रामनारायण चौधरी,
मंत्री—रा० ह० से० सं०, अजमेर।

स्वावलम्बन-खादी-कार्य का विवरण

(४)

तामिलनाड

तामिलनाड शाखा के उत्पत्ति-केन्द्रों में काम करनेवाले जुलाहे बहुत बड़ी संख्या में आदतन खादी ही पहनते हैं। इनकी संख्या नीचे दी जाती है:—

आवनाशी (६३), चिन्नसेलम (१२०), नम्बीयूर (७०), पुळियंकुरिची (२९), तिरुयम् विळइ (७६), ऊत्तुकुली (१०) और डिण्डिगल (२) केन्द्रों के सभी जुलाहे और वेयूर (१२५ में से १००), पुळियंपट्टि (१४० में से १००), राजपाळयम् (२०० में से १००), विरुदुनगर (२० मे से १०) और तिरुपुर (११७ में से ५९) के अधिकतर जुलाहे आदतन खादी-धारी हैं। जब कि काशिपाळयम् (२२), नागरकोइल (८०), के सभी जुलाहे और राजपाळयम् और विरुदुनगर के शेष जुलाहे थोड़ी-बहुत खादी पहनते हैं। सिर्फ वेयूर (२५), पुळियंपट्टि (४०), वीर-वनल्लूर (७०) और तिरुपुर के ५८ जुलाहे ही इसके अपवाद हैं।

कतवैयों में से राजपाळयम् के ५ और मुलूर के ५० को खादी पहनने के लिए राजी किया जा सका है। भिन्न-भिन्न केन्द्रों के १४७ कतवैये थोड़ी-बहुत खादी पहनते हैं, जब कि शेष, जिनकी संख्या बहुत ज्यादा है, खादी नही पहनते।

यू० पी० और दिल्ली

इस शाखा के केन्द्रों में काम करनेवाले करीब ८० फी सदी जुलाहे खादी पहनते हैं। आमतौर पर इनके नाम रजिस्टर में दर्ज रहते हैं, और इसी कारण इन्हे खादी पहनाने के लिए समझाने में कठिनाई नही होती। कतवैयों के लिए यह बात नही कही जा सकती। बुन्देलखण्ड मे करीब ९० फीसदी कतवैये सिर्फ खादी ही पहनते है, जब कि अकबरपुर मे ५० फी सदी थोड़ी-बहुत खादी पहनते है। लेकिन सयुक्त-प्रांत के उत्तर के जिलो में खादी पहनने वाले कतवैये बहुत ही कम है—कदाचित् १५ से २० फी सदीतक होंगे।

उत्कल

उत्कल शाखा के बोलगढ केन्द्र के १,००० कतवैयो में से ८५ फी सदी बिलकुल खादी ही पहनते है। इन लोगों को अपनी मजदूरी के बदले में कपास मिलता है, इसलिए जो सूत इनके पास बच रहता है, उसकी खादी ये बुनवा लेते हैं, और इस खादी में से थोड़ी खादी नमक वगैरा खरीदने के लिए बेच देते हैं और उसके पैसे खड़े कर लेते है।

केन्दु पटना केन्द्र के ६०० कतवैयों में से करीब १५० थोड़ी-बहुत खादी भी पहनते हैं।

ऊपर के दोनो उत्पत्ति-केन्द्रों में २०० जुलाहे काम करते हैं, जिनमें से करीब ६० फी सदी खादी का उपयोग करते हैं लेकिन वे आदतन खादीधारी नहीं हैं।

देहात की जनता को और खासकर सूत कातनेवाले परिवारों को बड़े पैमाने पर अपने हाथ का कपड़ा पहनने को राजी करने में जो कठिनाइएँ पेश आती हैं, उन्हें ध्यान में रखते हुए यह उचित समझा गया कि वस्त्र-स्वावलम्बन के कार्य के लिए कुछ खास जगहें चुनली जायें और वहां कुछ सालों तक लगकर ऐसा व्यापक काम किया जाय, कि जिससे ये प्रयोग सफल हों, और

यथार्थ-पाठ का काम दे सके। श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम की देख-रेख में गुजरात मे बहुत पहले इस दिशा मे कार्य आरम्भ किया गया था। सन् १९२५ में उसका सूत्रपात हुआ और बारडोली तहसील की रानीपरज जनता में कई सालों तक यह काम होता रहा। सन् १९२८–२९ मे इस कार्य का खूब विस्तार और विकास हुआ। बारडोली-स्वराज्य-आश्रम-सघ की देख-रेख मे इस कार्य के लिए जगह-जगह ११ आश्रम खोले गये। कुल २९८ गावो में इस काम का विस्तार बढ़ा और ७९ कार्यकर्त्ता अपना पूरा समय देकर इसे बड़ी मेहनत के साथ करते रहे। इस साल के अन्त मे इस क्षेत्र मे कुल ४,३५६ चर्खे चल रहे थे और ४०९ रानीपरज परिवारो ने अपने हाथ-कते सूत से अपनी जरूरत का सारा कपड़ा तैयार किया था। इस तरह करीब ३६,०१४ वर्ग गज खादी बुनी गई। लेकिन इसके बाद ही सत्याग्रह-युद्ध शुरू हुआ, जिसके कारण यह सारा कार्य अधिकतर अस्तव्यस्त हो गया।

इस दिशा में काठियावाड़-राजकीय-परिषद् के खादी-विभागने भी सन् १९२५-२६ मे काठियावाड के अमरेली और पाचनला-बड़ा स्थानों में कार्य शुरू किया था। अमरेली केन्द्र का कार्य तीस गावों मे फैला हुआ था। इनमें ४४७ परिवारो ने १७,९६० पौण्ड सूत काता और १,५३९ थान खादी के उन्होने अपने उपयोग के लिये बुनवाये। १६७ परिवारो को खादी बुनवाने के लिये बुनाई की तीन-चौथाई रकम बतौर मदद के दी गई थी। पाच-नलावड़ा केन्द्र का विस्तार ३२ गावो मे था, जिनमे ६४० परिवार काम करते थे। इस केन्द्र में कुल ५३,६२० वर्गगज खादी बुनवाई गई। यद्यपि ये परिणाम निराशाजनक नही थे, फिर भी अगले साल यहां का काम बन्द कर दिया गया।

बिहार-प्रान्तीय खादी-बोर्डने भी सन् १९२५ मे मैरवा म और तामिलनाड बोर्डने कानूर मे इस दिशा मे प्रयत्न किये थे। मैरवा में विशेष सफलता नही मिल सकी, परन्तु कानूर म गाव वालोने अपने ही सूत से अपनी जरूरत का २० फी सदी कपड़ा बुनवा लिया और ३१ परिवारोने तो अपनी जरूरत का पूरा कपड़ा बनाने मे सफलता पाई। इस सिलसिले में मैरवा और कानूर मे जो खर्च हुआ, वह क्रमश रु० ४०९–६–६ और रु० ९०६–६–६ है।

भागलपुर जिले के गौरीपुर गाव मे भी सन् १९३० मे यह प्रयोग शुरू किया गया था। उद्योग-मन्दिर साबरमती के एक पुराने विद्यार्थी श्री० रघुनाथ वर्मा और श्रीमती नन्दकिशोरीदेवी यहा के लोगो को धुनना और कातना सिखाने के लिये भेजे गये थे। इसके फल-स्वरूप यहा के बहुसख्यक लोग अपना सूत पास के मिल्की गाव मे रहने वाले जुलाहो से बुनवाने लगे थे।

बिहार-शाखा की ओर से भागलपुर जिले के अमरपुर केन्द्र में भी सन् १९२९–३० में यह कार्य शुरू किया गया था। कुल ६ गावों में काम किया गया, जिसके फल-स्वरूप गाव वालोने अपने उपयोग के लिये अपने हाथ-कते सूत की १,००६ वर्ग गज खादी बुनवाई थी।

मधुबनी, कपसिया और राजनगर मे निज का सूत कातने वालों के सूत का कपड़ा बुन देने का प्रबन्ध किया गया है। सन् १९३३ में १७९ आदमियोंने अपना सूत भेजा था, जिसकी २,९३२ वर्ग गज खादी बुनी गई थी।

इसी हेतु को सिद्ध करने के लिये पंजाब-शाखाने एक अलग ही तरीका अपनाया था। सन् १९२५ में चर्खा-संघ की पंजाब-शाखाने गावों में सूत-विनिमय के केन्द्र स्थापित किये और खानेवाल, मौण्टगोमरी और सरगोधा मे लोगों को हाथकते सूत के बदले में बगैर धुली हुई खादी दी जाने लगी। १९३० तक इस प्रकार ४०,००० पौण्ड से भी ज्यादा खादी बेची गई। बाद में लगातार नुकसानों के कारण यह केन्द्र बन्द कर दिये गये। माग इतनी कम थी कि उससे केन्द्र की व्यवस्था का खर्च भी नहीं निकल पाता था। कोट-अद्दू केन्द्र बहुत पहले, सन् १९२० में, स्थापित किया गया था। इस केन्द्र मे बनने वाली सारी खादी प्राय सूत के बदले मे खपा दी जाती थी। ६०,००० वर्ग गज से भी ज्यादा खादी इस केन्द्र में बनी थी। हिसार जिले के मीठाथल स्थान मे राष्ट्रीय खादी-आश्रमने इसी तरह सन् १९२८–२९ में ३,००० गज से ज्यादा खादी बनाई थी। इसी हेतु को लेकर सियालकोट-खद्दर-सभाने सन् १९२५ में अपना एक उत्पत्ति-केन्द्र स्थापित किया था, लेकिन इस केन्द्र का बाकायदा हिसाब तो सन् १९३२ से ही रक्खा जाने लगा है। तब से अबतक इस केन्द्र ने इसतरह की १२,९४७ वर्ग गज खादी बनाई है। गुरदासपुर का गाधी-खद्दर-सेवाश्रम अभी मई १९३३ मे ही खुला है, लेकिन इस बीच इस आश्रमने निज का सूत कातने वालो के सूत से १,८५२ पौण्ड खादी बुनी है। यह कहा जाता है कि पंजाब-शाखा के मुख्य उत्पत्ति-केन्द्र आदमपुर के आसपास के कताई-केन्द्रो में काम करनेवाली प्राय प्रत्येक कातिन अपने परिवार की जरूरत का सूत बचाकर बाकी का ज्यादह सूत ही बेचती है। हर एक कातिन हर साल औसतन ८ गज कपड़ा अपने लिये बुनवा लेती है।

(क्रमश)

तीसरे वर्ष में पदार्पण

इस अक के साथ 'हरिजन-सेवक' अपने तीसरे वर्ष मे पदार्पण करता है, यह हमारे तथा 'हरिजन-सेवक' के पाठको के लिए खुशी की बात है। लेकिन इस खुशी के बीच इस बात को हमे दरगुजर नही करना चाहिए कि अभी भी यह अपने पैरो पर खड़ा नही हो पाया है। और जबतक यह स्वावलम्बी न हो, इसके स्थायी अस्तित्व का दावा नही किया जा सकता। इसलिए नये वर्ष में प्रवेश करने की इस खुशी के बीच, हम इस ओर अपने प्रेमी जनो का ध्यान दिलाना आवश्यक समझते हैं। नये ग्राहक बनाने के रूप मे वे इसको स्वावलम्बी बनाने में सहायक हो, तभी उनके प्रेम की सार्थकता है, और उसी हालत मे 'हरिजन-सेवक' का अस्तित्व स्थायी हो सकता है। यह बात उन्हे सदा याद रखनी चाहिए—और, हम आशा करे कि, वे इसके लिए प्रयत्न भी करेंगे।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि
"आत्मवत् सर्वभूतेषु"
Reg. No. L. 1369

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला हाउस, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)

हरिजन-सेवक

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, १ मार्च, १९३५. [संख्या २

विषय-सूची

बरहज का घोर नरक

१९३३ के नवम्बर मास में जेल से लौटने के बाद मैंने बरहज बाजार के नोटिफाइड एरिया के पाखानों को देखा था। देखकर मेरा कलेजा कांप उठा। न पेशाब करने और पानी गिरने की नाली, न खुड्डी में लोहे का पत्थर। बंपुलिसों के चारों ओर सफाई का तो नाम ही नहीं। इतना ही नहीं। एक बंपुलिस के पास तो एक हफ्ते से ऊपर का मैला पड़ा हुआ था। इस पाखाने के पास सटे हुए तीनों तरफ मकान हैं, और एक तरफ खेत। यही हालत मुहम्मदपुर बंपुलिस की थी। यह बंपुलिस तो क्या, दीवार से घिरा हुआ एक बाड़ा है—उसमें न तो खुड्डियां हैं, न पानी या पेशाब गिरने के लिए कोई नाली। इस हाते से सटा हुआ वहीं एक शिवालय भी है। इसी तरह करीब दस पाखाने नरक के मानिंद ही देखे। देखने के बाद मैं नोटिफाइड एरिया के प्रमुख मेंबर श्री हरखचन्दजी केडिया से जाकर मिला और उनसे मैंने कहा कि इस गन्दगी को आप जल्द-से-जल्द हटवा दीजिए। यह भी खास तौर पर निवेदन किया कि श्री विध्याचल-जी के मकान के पास की टट्टी तो तुरन्त हटवा दीजिए, और मुहम्मदपुर के हाते (जिसमें केवल स्त्रियां ही जाती हैं) में पेशाब व आबदस्त की नाली और खुड्डियां बनवा दीजिए। साथ ही बाकी के सभी पाखानों में टीनपाट भी रखवा दीजिए, जिससे बेचारे भंगी भाइयों को मैला हाथ से न उठाना पड़े। इसपर श्री केडियाजीने वचन दिया कि यह सब काम शीघ्र करा दिया जायगा।

आज १४ महीने हो गये हैं। मैं इधर भूकम्प, बाढ़, बीमारी वगैरा के कारण बीच में समय न निकाल सका। पर जब कभी कुछ अवकाश मिलता, तब नोटिफाइड एरिया के मेंबरों से पूछ-ताछ लेता।

अभी २ फरवरी को मैंने निश्चय किया कि खुद ही बंपुलिसों को जाकर देखूं। शनिवार को सवेरे मैं श्री रामचन्द्रजी शर्मा तथा हरगोविन्दजी के साथ पहले सराय की बंपुलिस देखने गया। वहां एक बुढ़िया झाड़ू लगा रही थी। बंपुलिस के बाहर मुश्किल टीनपाट पड़े थे। अन्दर खुड्डियां भी टूटी-फूटी बुरी हालत में पड़ी थीं। चारों तरफ बदबू मार रही थी।

वहां से श्री विध्याचलवाली बंपुलिस देखने हम लोग गये। यहां तो साक्षात् रौरव नरक देखा। पांच-छै मास का मैला एक डेढ़ फुट से अधिक गहरे लंबे-चौड़े गड्ढे में पड़ा सड़ रहा था, और उसमें कीड़े बिलबिला रहे थे। ऊपर वह मैला सूख गया था। टट्टी के चारों ओर मैला-ही-मैला पड़ा हुआ था। तीन स्थानों पर तो एक-एक हफ्ते से भी ज्यादा दिनों का मैला पड़ा था। जहां यह स्थिति हो, वहां नाली-वाली और खुड्डियां कहां से बनतीं? मैं तो यह सब देखकर दंग रह गया। छै-छै महीने से मैला पड़ा सड़ता रहे, इसकी हम लोग कल्पना भी नहीं कर सकते थे। मैंने पता लगाया कि आखिर यह बात क्या है। मुझे पूछने पर मालूम हुआ कि पारसाल मैंने जो इस बंपुलिस को तोड़ देने की सिफारिश की थी उससे नोटिफाइड एरिया के सेक्रेटरी साहब तथा जमादार आगबबूला हो गये और उन्होंने कसदन यह मैला पड़ा रहने को भंगियों से कह दिया। इतना ही नहीं, उस मुहल्ले के लोगों से जमादारने यह भी कहा कि "अपने उसी राघवदास के पास जाओ, वही पाखाना साफ करेगा।"

यह सुनकर मुझे तत्काल यह निर्णय करना पड़ा कि इस मसले को हमें मामूली नहीं समझना चाहिए, क्योंकि नोटिफाइड एरिया के कर्मचारी मेरी परीक्षा लेना चाहते हैं। मैंने अपने मित्रों से कहकर कुदाली, टोकरी वगैरा मंगवा ली, और पासवाले खेत में ४ फुट से अधिक गहरे पांच गड्ढे खुदवाये, और और भाइयों के साथ स्वयं पाखाना उठाकर चार घंटे कसकर मेहनत करने के बाद छै महीने का वह सड़ा मैला गड्ढों में गाड़ दिया।

पाखाना उठाने की खबर बाजार में बिजली की तरह फैल गई। सैकड़ों स्त्री, पुरुष और बालक उस स्थान पर इकट्ठे हो गये। कई लोगोंने आगे बढ़कर बिना हिचकिचाहट के हमारा हाथ बँटाया। पचासों बहिनें यह दृश्य देखकर रो रही थीं। नोटिफाइड एरिया के सेक्रेटरी तथा कुछ सदस्यों और चौकी के थानेदार को मैंने बुलवा भेजा और उनसे पूछा कि इस सब गन्दगी का कौन जिम्मेवार है—बेचारे बस्तीवाले या नोटीफाइड एरिया के कर्म-चारी? वे परेशान थे। उन्होंने चाहा कि मैं वहां से हट जाऊं और कमेटी के मेहतरों से पाखाना साफ करा दिया जाय, पर मैंने इसे ठीक नहीं समझा, क्योंकि यह तो 'स्वच्छता का यज्ञ' था, और इसे अधूरा छोड़ना कल्याणकर नहीं था। करीब ४ गाड़ी मैला उठाया गया, तब कहीं वह नरक साफ हुआ।

अजब दृश्य था। जो लोग मैले का नाम सुनकर भागते थे, वे भी इस दृश्य को घंटों खड़े-खड़े देखते रहे। पाखाना उठानेवाले

स्त्री, पुरुष और बच्चे तो यह समझते थे कि वे जैसे गोबर या गारा उठा रहे हों।

इसके बाद मुहम्मदपुर का हाता देखा। वहा भी यही दुर्गति थी। न खुड्डिया थी, न नाली। वहां भी चारो तरफ मैला-ही-मैला पडा था।

१२ बज चुके थे, फिर भी सफाई तो करनी ही थी। गडेरी गली की बंपुलिस भी देखी। एक गाडी से अधिक मैला उठाकर वहां भी गड्ढे में गाड़ा गया।

संध्या को सार्वजनिक सभा हुई, जिसमे पाखाना उठानेवाले भाई-बहिनो के प्रति कृतज्ञता प्रगट की गई, और अन्त में 'निर्बल के बल राम' भजन गाया गया।

अभी-अभी पता चला है कि नोटिफाइड एरिया की ओर से नई खुड्डियां तथा पाखाना बनाने का काम ५ फरवरी से आरम्भ हो गया है। गनीमत है।

राघवदास

मेरा भ्रमण

इन्दौर

१४ से १८--३५--मध्यभारत के देशी राज्यो में इन्दौर एक अच्छा प्रगतिशील राज्य है। प्रजावर्ग को शिक्षित बनाने में होलकर सरकार सदा प्रयत्नशील रहती है। सब के साथ हरिजन विद्यार्थी भी राज्य की पाठशालाओं में पढ सकते हैं, और पढते हैं। 'शारदा राजे बोर्डिंग' हरिजन बहनों के हक में एक अच्छी शिक्षा-संस्था है। संघ के केन्द्रीय बोर्ड से इस बोर्डिंग को २५) की मासिक सहायता मिलती है। जीवन की बस्ती मे संघ की ओर से एक दिवस-पाठशाला चल रही है, जिसमें चमारो के ३५ लडके पढते हैं। इस पाठशाला का खर्चा २५) मासिक है। क्रिश्चियन कालेज की 'यू एण्ड आई ब्रदरहुड' नामक संस्था की दिवस एवं रात्रि-पाठशाला मे हरिजन बालक-बालिकाओं की संतोषजनक हाजिरी रहती है। दिन की पाठशाला लडकियो के लिए है, और रात की लडको के लिए। हरिजनो की १८ लडकिया दिवस-पाठशाला में पढने आती हैं, और २० हरिजन बालक रात्रि-पाठशाला में पढते हैं। क्रिश्चियन कालेज के एक उत्साही विद्यार्थीने मुझे पास की एक हरिजन-बस्ती की उस दिन खासी विस्तृत 'सर्वे' दिखाई। परीक्षा के बाद हरिजन बस्तियो की जांच अन्य विद्यार्थी भी करेंगे, ऐसा मुझे उस विद्यार्थी तथा प्रो० पाटिलने विश्वास दिलाया। अपने अवकाश के समय हमारे स्कूल-कालेज के विद्यार्थी हरिजन बस्तियों की जांच-पड़ताल का यह काम तो बहुत ही अच्छा कर सकते हैं। और नहीं तो इतना हरिजन-सेवा-कार्य तो विद्यार्थियों को अपने हाथ में ले ही लेना चाहिए।

हिंदी साहित्य का क्षेत्र--इंदौर में राष्ट्रभाषा हिंदी और उसके साहित्य के प्रति लोगों में अच्छा प्रेम है। हिंदी साहित्य-सम्मेलनने गांधीजी के सभापतित्व में यहीं मद्रास में हिंदी-प्रचार करने का निश्चय किया था। अब पुनः ईस्टर की छुट्टियो में यहां सम्मेलन होनेवाला है। अब की बार मालवीयजी महाराज सम्मेलन के सभापति होंगे। मध्यभारत हिंदी-साहित्य-समिति, जिसकी नींव गांधीजीने रखी थी, यहां की समस्त साहित्यिक प्रवृत्तियों की केन्द्र-भूमि है। समितिने कई सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित की हैं, और 'वीणा' नामकी एक सुंदर मासिक पत्रिका भी यहीं से प्रकाशित हो रही है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इंदौर की साहित्यिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियों के प्राण विद्यावयोवृद्ध डाक्टर सरजूप्रसाद के पुण्य प्रताप का ही यह सब सुफल है। इंदौर के हरिजन-सेवक-संघ के सभापति भी डाक्टर साहब ही हैं। इधर करीब दस महीने से डाक्टर साहब रोग-शैया पर पड़े हुए हैं। काफी तकलीफ है। फिर भी डाक्टरो के लाख रोकते रहने पर भी आप सार्वजनिक कार्यों के संबंध में पूछताछ करते और इस कृशावस्था में भी दिलचस्पी लेते हैं। उस दिन मुझसे कहा, 'इस जीर्ण शरीर की अब क्या आशा है। ईश्वर ही सब काम देखने और चलानेवाला है।' संघ के बारे मे डाक्टर साहब तो उस अवस्था में भी बातें करने को तत्पर दिखाई दिये, पर मैंने चर्चा न छेड़ना ही अच्छा समझा। मैं सुन चुका था, कि जरा-सी बात मे वे उत्तेजित हो जाते हैं, और उनके 'हार्ट' पर उसका बुरा असर पड़ता है। ईश्वर डाक्टर साहब को शीघ्र रोगमुक्त कर दे।

यह मुझे कबूल करना चाहिए कि हिंदी-साहित्य-सेवियों की मुझपर सदा से कृपा है। यह उनकी सहृदयता ही समझनी चाहिए, नहीं तो मैंने हिंदी-साहित्य की सेवा ऐसी की ही क्या है। जितने दिन इंदौर में मैं रहा, मेरे साहित्यिक मित्र मेरे ऊपर अपनी कृपा की सतत वर्षा करते रहे। मैं यह भी कहूंगा कि मैंने उनकी कृपा का उपयोग 'हरिजन-सेवक' के कार्य में किया। बाबू सूरजमलजी जैन का तो मैं सदा आभारी रहूंगा। उधर तो उनकी पत्नी अस्पताल मे रोग-शैया पर पड़ी हुई हैं, और इधर बाबू सूरजमलजी सारे दिन मेरे साथ चक्कर लगाते फिरते हैं।

क्रिश्चियन कालेज की 'चंद्रिका समिति' के वार्षिक उत्सव में विद्यार्थियोंने जब मुझे बड़े प्रेम से बुलाया तो मुझे उनका आग्रह स्वीकार करना ही पडा। मैंने उस अवसर से लाभ उठाया, इसमें संदेह नहीं। 'हरिजन-सेवा और विद्यार्थी' इस विषय पर मैंने करीब एक घंटा भाषण दिया।

विनम्र वक्तव्य--फिर १६ फरवरी को मध्यभारत समिति की आज्ञा चुपचाप मान लेनी पडी। मुझे 'हिन्दी-साहित्य' पर बोलने की आज्ञा हुई। इसी बहाने 'हरिजन-सेवा' पर दस-पांच टूटे-फूटे शब्द कह डालूंगा--इस दृष्टि से और, सार्वजनिक रूप से अपना 'तुकबन्दी-त्याग' का निश्चय प्रगट कर दूंगा, इस विचार से भी मैंने समिति की आज्ञा शिरमाथे लेली। विषयान्तर तो बेशक हो रहा है, पर थोड़ा तो मुझे अपने उस निश्चय के सम्बन्ध में कही देना चाहिए। कविता तो क्या, कुछ साधारण-सी तुकबन्दी मैं भी किया करता था। बरसो यह पागलपन सवार रहा। इधर चार-पांच साल से मुझे यह लगा कि कविता के क्षेत्र में तो मेरा यह अनधिकार-प्रवेश है, और जो लिखता हूँ उसके साथ तादात्म्य न होने से साफ ही मैं अपनेको तथा दूसरों को ठग रहा हूँ। मेरे लिए यह प्रयत्न एक अवास्तविक प्रयास है, अतः इस चीज से तो मुझे अलग ही हो जाना चाहिए। मुझे तुकबन्दी का क्षेत्र त्यागने में कोई कठिनाई नहीं पडी, यह ईश्वर का अनुग्रह है। तुरन्त उस तरफ से अरुचि और विरक्ति हो गई और वह चीज एकदम छूट गई। पर मेरे कृपालु मित्र तो कुछ-न-कुछ कविता लिखते रहने के लिए मुझे झकझोरते ही रहे। एक-एक को इनकारी का जवाब देना मेरे लिए एक अप्रिय कार्य था। अतः उस दिन मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति की सभा में अपना यह निश्चय मैंने सार्व-

जनिक रूप से प्रगट कर दिया। कृपया अब मेरे साहित्यिक मित्र मुझे इस विषय में न लिखेंगे, ऐसी आशा मुझे करनी चाहिए। मुझे तो अब वे यही आशीर्वाद दें कि मेरा यह शेष तुच्छ जीवन हरिजन-सेवा में ही लगे। अपना यह निश्चय मैं अत्यन्त नम्रता के साथ प्रगट करता हूँ।

इस निश्चय के बाद 'संत-साहित्य और हरिजन-सेवा' पर दो-चार टूटे-फूटे शब्द कह कर मैंने अपना साहित्य-कला-शून्य भाषण किसी तरह समाप्त किया।

महू छावनी

१७-२-३५—'प्रताप-सेवा-संघ' वालों के आमंत्रण पर मुझे इस शर्त पर महू जाना स्वीकार करना पड़ा, कि आप अगर 'हरिजन-सेवक' के कुछ ग्राहक बनवा दें तो मैं आपकी आज्ञा मानकर आपके यहां चला आऊँगा। मेरा सौदा पट गया, और मैं शाम को महू पहुँचा। प्रताप-सेवा-संघ को महू के कुछ उत्साही तरुण बड़ी लगन के साथ चला रहे हैं। इस संघ के ये तीन आदेश हैं—(१) प्राणिमात्र की सेवा करो, (२) व्यायाम के द्वारा शरीर को स्वस्थ और बलवान बनाओ, (३) राष्ट्र-भाषा हिन्दी की उन्नति करो। संघ का एक छोटा-सा पुस्तकालय भी है, जिसमें ४५० पुस्तकें हैं। संघ की ओर से महापुरुषों की जयन्तियां मनाई जाती हैं और नित्य व्यायाम कराया जाता है। प्रताप-सेवा-संघ-वालों ने गतवर्ष महू से ५०१) एकत्र करके बिहार के भूकम्प-पीड़ितों के लिए 'राजेन्द्र बाबू-फंड' में भेजे थे। इसमें ७० के लगभग सदस्य हैं। 'साहित्यलतिका' नाम की एक बड़ी सुन्दर सचित्र त्रैमासिक पत्रिका यहां से हस्तलिखित निकलती है।

महू डाक्टर अंबेडकर की जन्मभूमि है। महार लोगों का यहां 'चन्द्रोदय' नाम का एक छोटा-सा वाचनालय है। इसमें ३१८ पुस्तकें हैं और कुछ अखबार आते हैं। सवर्ण तथा हरिजन सभी इस वाचनालय से लाभ उठाते हैं।

हरिजन-बस्तियों में सफाई सन्तोष-जनक है। भंगियों में इने-गिने लोग ही शराब पीते हैं। कैण्टूनमेण्ट की तरफ से हरिजनों के लिए यहां एक पाठशाला खुली हुई है, जिसमें ५० से ऊपर लड़के हरिजनों के, खास कर मेहतरों के, पढ़ते हैं। श्री गंगादास नाम का एक मेहतर यहां मालिश और दवा-दारू का काम करता है। यह सुधरे हुए विचारों का है। कर्जे का यहां भी खासा दौर-दौरा है, और प्रायः सब प्रसिद्ध पठानों के ही कर्जदार हैं। हरिजनों को श्मशान-भूमि का भारी कष्ट है। बरसात में तो मारे कीचड़ के वहां मुर्दा ले जाना तक दुष्कर हो जाता है। क्या अच्छा हो कि इन्दौर के अधिकारी महू के हरिजनों के इस महान् कष्ट को शीघ्र-से-शीघ्र दूर कर दें।

खंडवा

१९, २०-२-३५—यहां शाम को पहुँचा। हिंदी-साहित्य-महारथी एवं राष्ट्रीय कवि श्री माखनलालजी चतुर्वेदी के घर पर ठहरा। यह मेरे पुराने परिचित हैं, और मुझपर सदा स्नेहभाव रखते हैं। महाकोशल-हरिजन-सेवक-संघ के सभापति श्री ब्योहार राजेन्द्रसिंहजी का भी दर्शन हुआ। सौभाग्य से रात के ९ बजे खंडवा के हरिजन-संघ की बैठक थी, अतः खंडवा के हरिजन-कार्यकर्ताओं का दर्शन एक ही स्थान पर हो गया। संघ के सम-विधान के अनुसार सबसदस्यों ने प्रतिज्ञा-पत्र पर सही की, और सबने अपने-अपने शरीर से कुछ-न-कुछ हरिजन-सेवा करने का निश्चय किया।

'हरिजन-सेवक' के यहां सन्तोषजनक ग्राहक बने। श्री चतुर्वेदी-जी की लोक-प्रियता और परिश्रम का ही यह परिणाम था। जो थोड़ा-सा समय मिला उसे मैंने हरिजन-बस्तियों को देखने में लगाया।

१९ फरवरी की शाम को हम लोग मोटर से पंधाना गांव गये। खंडवा से यह गांव १२ मील है। अच्छा सुंदर गांव है। करीब चार हजार की आबादी है। भाग्य से उस दिन हाट का दिन था। यहां आसपास साड़ियों की रंगाई अच्छी होती है। पर शहरों का एक जबर्दस्त अभिशाप तो इस गांव में भी हमने देखा। आटा पीसने की यहां, एक नहीं, तीन-तीन कलें हैं। आसपास के गांवड़ों के लोग भी पंधाना में आटा पिसाने आते हैं। जब मैंने यह शिकायत की तो लोगोंने कहा, कि हमारा यह गांव तो बड़ा है—यहां तो एक-एक हजार से भी कम आबादी वाले गावों में आटे की कलें चल रही हैं। हाथ की चक्कियां तो आज कहीं बिरले ही घरों में दिखाई देती हैं। मशीनों की मायाने बुरी तरह ग्रस लिया है हमारे गार्हस्थ्य जीवन को। गांधी-युग में अब भी हमारे गरीब भाई-बहिनों की आंखें खुल जायें तो गनीमत। पंधाना की एक स्वच्छ और सुंदर हरिजन-बस्ती देखी। इसमें मेहतर रहते हैं, और वे सब ग्राम-कमेटी में काम करते हैं। ९) मासिक मिलता है। ये लोग न तो मुर्दार मांस खाते हैं, न शराब वगैरा पीते हैं। यह एक खास बात पाई कि इस बस्ती के नव-युवक बीड़ी-सिगरेट तक नहीं पीते। ये मारवाड़ी मेहतर हैं। संत कबीर के इन हरिजन भाइयोंने हमें बड़े सुंदर भजन सुनाये। चतुर्वेदीजी तो उनके सत्संग पर मुग्ध हो गये। यहां २ हरिजन विद्यार्थियों को, जो सार्वजनिक मिडिल स्कूल में पढ़ते हैं, छात्र-वृत्तियां मिलती हैं। बलाइयों के इस गांव में ५० से ऊपर घर हैं। कुछ तो खेती करते हैं और कुछ कपड़ा बुनते हैं।

रात को १० बजे एक मंदिर के सामने सभा हुई, जिसमें सवर्ण और हरिजन दोनों ही अच्छी संख्या में उपस्थित थे। हरि-जन-प्रवृत्ति पर श्री चतुर्वेदीजी का बड़ा ही मार्मिक भाषण हुआ। दस-पांच टूटे-फूटे शब्दों में मैंने भी संघ के हरिजन-कार्य पर भाषण दिया।

खंडवा नगर की हरिजन-बस्तियां दूसरे दिन शाम को देखीं। घासपुरा की बस्ती में बलाई लोग रहते हैं, इनमें कुछ घर ईसाई हो गये हैं। सार्वजनिक पाठशालाओं में हरिजन विद्यार्थी बिना किसी भेदभाव के पढ़ते हैं। जो दिन में काम-धंधे में लगे रहते हैं उनके लिए संघ की ओर से एक रात्रि-पाठशाला खुली हुई है, जिसमें श्री बाबूलाल पगारे नाम के एक उत्साही युवक पढ़ाते हैं। पानी का नल इस बस्ती में एक ही है। कम-से-कम दो नल तो इतनी बड़ी बस्ती में होने ही चाहिएं। इसके बाद डमराल जाति के हरिजनों की बस्ती देखी। ये लोग बांस की टोकरी वगैरा बनाते हैं। यहां दारू कुछेक घर के लोग ही पीते हैं। चमारों की बस्ती में २३ घर हैं। ये सब सिपाही जूते बनाते हैं। इस बस्ती के एक विद्यार्थी को संघ की तरफ से २) मासिक छात्रवृत्ति मिलती है।

इसके बाद गाड़ीखाना की बस्ती देखी। यह बस्ती मेहतरों की है। करीब ५० घर हैं। भाई सालिम, जो म्यूनिसिपैलिटी में

[१४ वें पृष्ठ के पहले कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १ मार्च, १९३५

ग्राम-उद्योग-संघ की सदस्यता

अखिल भारत ग्राम-उद्योग-संघ (प्रधान कार्यालय—वर्धा, सी० पी०) की गत बैठक की कार्यवाही का सार अन्यत्र दिया गया है। संघ का सदस्य या सहायक कैसे बना जा सकता है, यह उसपर से जाना जा सकता है। आशा है कि जो लोग सदस्य या सहायक बनने की योग्यता रखते होंगे वे तत्सम्बन्धी फार्म की खानापूरी करके संघ के मंत्री के पास वर्धा भेज देंगे। इसके लिए, निमन्त्रण या किसी के आग्रह की प्रतीक्षा करना ठीक नहीं है। निमन्त्रण की आवश्यकता तो तभी होती है, जब कि सत्ता या प्रतिष्ठा प्राप्त करने की बात हो। सेवा-कार्य के लिए उसकी कोई जरूरत नहीं। यह भी ध्यान रखने की बात है कि ३१ मार्च तक सदस्य बन जाने वालों के लिए ट्रस्टी नियुक्त होने की भी सम्भावना है, जो कि इसके बाद उतनी नहीं रहती। क्योंकि संघ की स्थापना के पांच वर्ष से पहले अगर किसी ट्रस्टी की जगह खाली हुई तो बाकी ट्रस्टियों को उसकी जगह नया ट्रस्टी चुनना पड़ेगा। इस चुनाव के लिए उनका दायरा जितना बड़ा हो उतना ही अच्छा होगा, लेकिन यह तभी हो सकता है कि जब ३१ मार्च से पहले-पहले बहुत से सदस्य बन जायें। ऐसे सदस्यों की संख्या अधिक न होगी, जिनमें से चुनाव किया जाय, तो आन्दोलन को अपने आदर्श की ओर बढ़ने में बाधा पड़ेगी। क्योंकि ट्रस्टी लोग रुपये-पैसे के ही संरक्षक नहीं हैं बल्कि जिस आदर्श के लिए संघ कायम हुआ है उसकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व भी उन्हींपर है। लेकिन उस आदर्श का प्रतिनिधित्व करने के लिए वे कितने ही योग्य क्यों न हों, फिर भी जबतक उन्हें यह ज्ञान न हो कि ऐसे बहुसंख्यक स्त्री-पुरुषों की सहानुभूति हमारे साथ है, जिनसे हमें शक्ति और स्फूर्ति मिल सकती है और अपने उत्तराधिकारी चुनने पड़ें तो हम उनमें से चुन सकते हैं, तबतक नींव ढीली ही रहेगी।

संघ के ट्रस्टी का पद बहुत जिम्मेवारी का बन गया है। क्योंकि आगे कभी आनेवाले समय में, जो कि बिलकुल असम्भव नहीं है, जब कि संघ लोकतन्त्रीय बन जायगा, तब भी इसके आदर्श की रक्षा करने का दायित्व ट्रस्टियों पर ही रहेगा। और आन्दोलन की वृद्धि के लिए इसका लोकतन्त्रीय होना भी उतना ही जरूरी है जितना कि आदर्श का स्थायित्व, जिसकी कि कभी उपेक्षा न होनी चाहिए। आदर्श को अमली रूप देने के लिए ही बोर्ड की व्यवस्था की गई है, जो सब कारबार करेगा और सात बरस बाद ऐसे मतदाताओं द्वारा नये सिरे से चुना जायगा, जो संघ के ध्येय को मानते होंगे। यह ठीक है कि सदस्यता के लिए दिये हुए प्रार्थना-पत्र को बोर्ड अस्वीकार कर सकता है। लेकिन यह सावधानी सिर्फ इसीलिए रक्खी गई है कि कोई ऐसा व्यक्ति, जिसका इसमें विश्वास न हो, सिर्फ आदर्श को मलियामेट करने के लिए ही सदस्य न बन जाय। यह मताधिकार तो वयस्क-मताधिकार से भी अधिक विस्तृत है। क्योंकि कोई भी ऐसा ग्रामवासी संघ में शामिल हो सकता है, जो ग्राम्य-जीवन के महत्त्व को समझता हो और यह मानता हो कि उसके द्वारा मनुष्य-जाति बहुत सुखी हो सकती है। इसलिए जो लोग संघ के आदर्श एवं उसकी नीति में विश्वास रखते हों उन्हें चाहिए कि वे संघ के सदस्य बन जायें और अपने राजनीतिक, धार्मिक, जातिगत या साम्प्रदायिक मतभेदों का खयाल न करते हुए भारतीय ग्रामवासियों के आर्थिक, नैतिक एवं शारीरिक हित-साधन के लिए प्रयत्नशील हों। यह ध्यान रहे कि संघ जाति, धर्म राजनीति या सम्प्रदाय के किसी भेदभाव को नहीं मानता है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

गाय का बनाम भैंस का दूध

ग्राम-सुधार के बारे में विचार करते हुए इस बात की जांच करने का सवाल भी सामने आया, कि क्या गाय का दूध भैंस के दूध से अच्छा होता है? इस बारे में मैंने मित्रों को लिखा। उसपर से श्री हरिभाऊ फाटकने, उनके पास आया हुआ, अध्यापक रावबहादुर सहस्रबुद्धे का निम्न पत्र भेजा है:—

"गाय और भैंस के दूध की भिन्नता के बारे में आपने जो पूछा है, उसपर मेरा कहना यह है कि भैंस के दूध की बनिस्बत गाय के दूधकी चिकनाई और 'कैसीन' (दूध की सफेदी) अधिक सुपाच्य होती है। 'विटामिन' भी भैंस के दूध की बनिस्बत गाय के दूध में अधिक परिमाण में होते हैं। बच्चे और बड़े दोनोंही पर इन गुणों का एकसा असर होता है। लेकिन जहां बड़ा आदमी भैंस के दूध को पचा सकता है, वहां बच्चा उसे हजम नहीं कर सकता। मैं समझता हूँ, यही बात आप जानना चाहते हैं।"

गोपालक संघ (शोलापुर) के उपाध्यक्ष डा० एस० के आपटे की सम्मति भी उन्हें प्राप्त हुई है, जो उनके प्रश्नों के जवाब देनेवालों के नामों और कुछ प्रश्नों को छोड़कर नीचे दी जाती है:—

"गाय का दूध भैंस के दूध से अच्छा है या नहीं, इस सम्बन्ध में पिछले तीन सालों से चर्चा चल रही है; जिसके फलस्वरूप गाय के दूध की उपयोगिता की ओर लोगों का काफी ध्यान गया है। हिन्दुस्तान में तो प्राचीनकाल से यह धारणा चली आ रही है, और प्राचीन ग्रन्थों में भी यही लिखा मिलता है, कि गाय का दूध भैंस के दूध से ऊँचे दर्जे का होता है। दूसरे देशों में तो सिर्फ गाय का ही दूध खाने-पीने के काम में लाया जाता है, इसपरसे भी यही निष्कर्ष निकलता है। लेकिन आधुनिक समय में किसी बात को उस वक्त तक मंजूर नहीं किया जा सकता जब तक कि उसे प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध न कर दिया जाय। खाली यह कहने से काम नहीं चल सकता कि चूंकि हमारे पूर्वजोंने कहा है और अन्य देश गाय के दूध का ही इस्तैमाल करते हैं इसलिए गाय का दूध भैंस के दूध से अच्छा है। जो लोग ऐसा करते हैं, उन्हींपर इस बात के सिद्ध करने की जिम्मेदारी है। वैज्ञानिक रूप में कई प्रकार हम इस बात को सिद्ध कर सकते हैं। ऐसे कुछ उपाय निम्न प्रकार हैं:—

(१) दोनों तरह के दूधों के अन्दर जो संयोजक-पदार्थ हैं उनके गुण-दोषों की तुलना की जाय। रासायनिक तौर पर हम दोनों के संयोजक-पदार्थों का पौष्टिक महत्त्व जान सकते हैं। पूना कृषि-कालेज के अध्यापक रावबहादुर डी० एल० सहस्रबुद्धे ने ऐसा प्रयोग किया है, जिसका वर्णन ११-९-३४ के 'ज्ञानप्रकाश' में प्रकाशित हुआ है। इसमें उन्होंने न केवल यही बताया है कि छोटे बच्चों की परवरिश के लिए गाय का दूध बहुत फायदेमन्द है, बल्कि यह भी स्पष्ट कर दिया है कि भैंस का दूध वस्तुतः उनके

लिए हानिकारक है। अध्यापक सहस्त्रबुद्धे का कहना है—

'भैंस के दूध में चिकनाई ज्यादा होती है, जिसे बच्चे हजम नहीं कर सकते। और जब वह हजम नहीं होता तो उन्हें दस्त लग जाते हैं। यही नहीं, बल्कि हजम न होनेवाली उस चिकनाई में जो 'क्षार' (एसिड) होते हैं वे शरीर के उस लवण को सोख लेते हैं जिसकी कि हड्डियों के निर्माण के लिए बहुत जरूरत होती है; जिससे फिर उन्हें सूखे की बीमारी हो जाती है। गाय के और भैंस के दूध में जो चिकनाई होती है, पचने की दृष्टि से, उनमें एक-दूसरे से फर्क होता है। गाय के घी में ऐसे पदार्थों का औसत-परिमाण अधिक होता है जो शरीर में जब्त होकर उसे स्फूर्ति प्रदान करते हैं। इसलिए वह आसानी से हजम हो जाता है।'

अध्यापक सहस्त्रबुद्धे के प्रयोगों से यह भी सिद्ध होता है कि गाय के दूध में जो 'केसीन' होती है वह भैंस के दूध की 'केसीन' की बनिस्बत पेट में पहुँच कर जल्दी हजम हो जाती है। उनका सारा-का-सारा निबन्ध ज्ञातव्य और बोधप्रद है।

(२) लड़कों या आदमियों के दो बराबर-बराबर समूह बनाये जाये। उनमें से एक को सेर भर के करीब गाय का दूध दिया जाय और दूसरे को उतना ही भैंस का दूध। एक निश्चित अवधि तक यह क्रम रखकर दोनों समूहों के हरेक व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक प्रगति को दर्ज करते रहा जाय। दोनों में कौन-सा दूध दूसरे से बढ़िया है, यह मालूम करने का यह दूसरा तरीका है। यूरोप या अमेरिका में तो भैंसें हैं ही नहीं, इसलिए वहां ऐसा कोई प्रयोग करके नहीं देखा गया। लेकिन शोलापुर के गोपालक-संघने 'होअर्ड्स डेयरीमैन' से यह दर्याफ्त किया है कि हिन्दुस्तान के अलावा और कौन देश ऐसे हैं, जहां भैंसों का दूध-घी खाया जाता है। उसपर से मालूम पड़ता है कि भैंस के दूध का उपयोग हिन्दुस्तान के अलावा सिर्फ फिलिपाइन-द्वीप तथा चीन के दक्षिणी हिस्से में होता है। इसमें भी जहां तक फिलिपाइन का सम्बन्ध है, वहां वाले भैंस के दूध से गाय के दूध को ज्यादा पसन्द करते हैं। क्योंकि उसकी उपयोगिता एवं उसके महत्व को वे मानते हैं। (२८-४-३४ का 'गोरक्षण' देखिए)। इसलिए हिन्दुस्तान के अलावा, और कहीं इस तरह का प्रयोग होना सम्भव नहीं है। यह प्रयोग किसी छात्रावास में रहनेवाले विद्यार्थियों पर करना होगा। चूंकि यह खर्चतलब मामला है, इसलिए शोलापुर के गोपालक-संघने अन्य गोरक्षक-संस्थाओं तथा उदार धनियों से प्रार्थना की, कि इस तरह के तुलनात्मक अध्ययन के लिए वे संघ की आर्थिक सहायता करें। लेकिन दुःख की बात है कि कोई इसके लिए आगे नहीं बढ़ा। अगर काफी आर्थिक सहायता मिल गई होती, तो शोलापुर के डा० चाती अनाथ-विद्यार्थी गृह में आसानी के साथ यह प्रयोग कर लिया जाता। इसके लिए उस छात्रावास के लड़कों को छांटकर दो समूह बना लिये जाते और हरेक समूह को काफी तादाद में एक-एक तरह का दूध देकर उसके परिणाम को दर्ज कर लिया जाता। हरएक संस्था और व्यक्ति से मेरी हृदय से प्रार्थना है कि अगर हो सके तो वह ऐसा प्रयोग करें और उसके परिणाम को सर्वसाधारण की जानकारी के लिए प्रकाशित कर दें।

(३) मनुष्यों पर तो ऐसा तुलनात्मक प्रयोग करना बड़े भारी खर्चे की बात है। लेकिन पशुओं पर, खासकर प्रयोग-शालाओं में रखे जानेवाले चूहों व सूअरों पर, ऐसी आजमाइश की जा सकती है। चूंकि गोपालकसंघ के पास ऐसे प्रयोग का कोई सामान नहीं है, इसलिए उसने कूनूर के गवर्नमेण्ट पासच्यूर इंस्टीट्यूट को ऐसा प्रयोग करने के लिए लिखा था, लेकिन वहां के अधिकारियों का जवाब अभीतक प्राप्त नहीं हुआ है।

(४) गोपालक संघ ने इसके लिए एक चौथे और सबसे आसान मार्ग का सहारा लिया। गाय और भैंस के दूधों के बारे में, कोई छः महीने पहले, उसने एक प्रश्नावली तैयार की और भारत तथा विदेशों के सरकारी चिकित्सा एवं स्वास्थ्य-विभाग के अधिकारियों, समाचार तथा मासिक पत्रों, खोज के विशेषज्ञों, शरीरशास्त्रज्ञों तथा विविध डाक्टरों के पास उसे जवाब के लिए भेजा। मराठी व अंग्रेजी में इस प्रश्नावली की कोई सात सौ प्रतियां इधर-उधर भेजी गई। भारत के अनेक समाचार तथा मासिक पत्रों और अमेरिका के 'होअर्ड्स् डेयरीमैन' ने उसे प्रकाशित करके उसपर अपने पाठकों के विचार आमंत्रित किये। उसपर जो जवाब हमारे पास आये, उनमें सिर्फ दो बाहर के हैं। एक तो अमेरिका से आया है, और दूसरा सीलोन के सरकारी मेडिकल डिपार्टमेण्ट से। कुल ५० के करीब जवाब अभी तक प्राप्त हुए हैं।

उन जवाबों पर से जो परिणाम निकलते हैं वे निम्न प्रकार हैं:—

१—भैंस का दूध बच्चों की वृद्धि के लिए हानिकर है; मां के दूध के अभाव में, सिर्फ गाय का दूध ही उनके लिए उपयोगी हो सकता है।

२—गाय का दूध आसानी से पच जानेवाला होने के कारण, भैंस के दूध की बनिस्बत, बीमार के लिए ज्यादा फायदेमन्द है।

३—बड़ों के लिए भैंस का दूध किसी प्रकार हानिकर है, इस बात का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। पर बम्बई-सरकार के पशु-विशेषज्ञ श्री ब्रून का कहना है कि किसी भी उम्रवाले के लिए भैंस का दूध पचने में भारी होता है। क्योंकि भैंस के दूध में जो अधिक चिकनाई होती है वह झाग बनकर आंतों में प्रवेश करती है। उस समय, आंतों में साधारणतः जो लवण होता है उसके सहारे, आंतों को उसका हजम करना मुश्किल होता है। तब, उसे पचाने के लिए जितने लवण की कमी होती है, उसकी पूर्ति हड्डियों के खनिज लवण से की जाती है, जिससे हड्डियां कमजोर पड़ जाती हैं। गाय के दूध के पचने में ऐसा नहीं होता।

४—बच्चों के बौद्धिक विकास के लिए गाय का दूध खास तौर पर उपयोगी है। बड़ों के बौद्धिक विकास पर उसका असर ज्यादा अच्छा होता है या नहीं, इस बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

५—शहर में भैंस रखने के बजाय अगर गाय रक्खी जायें तो खर्च कम पड़ेगा और स्वास्थ्य की दृष्टि से उस शहर पर उसका अच्छा असर होगा।"

डा० आपटेने जो प्रयोग सुझाया है वह करने के काबिल है। गाय और भैंस के दूध में तुलनात्मक दृष्टि से कौन अच्छा है, यह प्रश्न अनेक दृष्टियों से राष्ट्रीय महत्व रखता है। क्योंकि भारत के राष्ट्रीय जीवन में इन पशुओं का जो महत्वपूर्ण भाग है वैसा संसार के और किसी देश में नहीं है। लेकिन और प्रयोग न भी किये जायें तो भी, डा० आपटेने प्रमुख डाक्टरों और पशु-विशेषज्ञों की जो सम्मतियां एकत्र की हैं वे इस बात को पर्याप्त रूप से सिद्ध करती हैं कि गाय का दूध भैंस के दूध से अच्छा होता है।

'हरिजन' से]　　　मो० क० गांधी

मेरा भ्रमण

[११ वें पृष्ठ से आगे]

जमादार है, बड़ा समझदार और मातबिर आदमी है। यह भाई खड़वा के हरिजन-सेवक-संघ का सदस्य भी है। कन्हई भी अच्छा सत्संगी है। जब मैं बस्ती में पहुँचा तब यह भाई गुरु नानकदेव के शब्दों का पाठ कर रहा था। अपने जातिभाइयों की बुराइयां दूर करने का कन्हई सदा जतन करता है, और उसके सत्संग का असर कुछ लोगों पर पड़ा भी है। मगर बेचारे पर आजकल एक विपदा आ टूटी है। अपनी बस्ती में कन्हईने एक दूकान खोल रखी थी, जिसमें वह चाय, नमक, गुड़, तेल वगैरा बेचता था। बस्ती के सब लोग यहीं से चीजें खरीदते और घड़ी-दो-घड़ी बैठ कर दारू आदि के व्यसन से बचते थे। चार मास यह दूकान चलती रही। पर अब तीन-चार दिन हुए, कि म्यूनिसिपैलिटी के एक कर्मचारीने यह दूकान बंद करादी है। बेचारा बड़ा दुखी था। पर मुझे तो यह कार्रवाई कुछ ऊपरी ही समझ पड़ी, क्योंकि दूकान बंद कराने की कोई वजह नहीं थी। खड़वा में चलते समय मुझे मालूम हुआ कि दूकान बंद कराने में सेक्रेटरी साहब का कोई हाथ नहीं था। उस बस्ती के एक हरिजन भाई को हम लोगोने समझाया कि दूकान को कन्हई फिर से खोल दे, म्यूनिसिपैलिटी कभी ऐसा अन्याय नहीं कर सकती। देखें, दूकान फिर से खुलती है या नहीं। क्योंकि बेचारे बस्तीवाले बहुत अधिक त्रस्त हैं। शायद ही उन्हें हिम्मत पड़े।

इस बस्ती के १२ लड़के पास की दूधतलाई पाठशाला में पढ़ने जाते हैं। यह पाठशाला म्यूनिसिपैलिटी की है। बड़ी उम्र के ८ हरिजन टाउनहाल की रात्रि-पाठशाला में भी पढ़ते हैं।

भाई कन्हई की एक बात लिखना तो मैं भूल ही गया, जो सदा याद रखने लायक है। जब हम बस्ती से चलने लगे, तो उसने हमसे कहा कि 'महात्माजीने तो हमारा उद्धार कर दिया। जिन्हें लोग अछूत मानते थे उन्हें महात्माजीने हरिजन बना दिया। गुरु नानकदेव की तरह उन्होंने हम दुखियों की सुध ली। और सुध-सी सुध ली।' यह कहते-कहते उस सच्चे हरिजन का गला भर आया। हमारी भी आखें भर आईं।

वि० ह०

मेरी हरिजन-यात्रा

(९)

वनथली, कशोद और मालिया

३ दिसम्बर, १९३४—ये ताल्लुके के प्रमुख कस्बे हैं। वेरावल जाते हुए मैंने इनका निरीक्षण किया।

वनथली में लगभग ८० परिवार ढेड़ों के हैं और १५ भंगियों के। इनके बच्चों के लिए पाठशाला की बहुत जरूरत है। रियासत से इसके लिए प्रार्थना की जानी चाहिए। अभी तो इन लोगोने एक अध्यापक रख रक्खा है। सिर्फ ३ बालक उससे पढ़ते हैं, जिन्हें अध्यापक के भोजन-व्यय के अलावा १) माहवार फीस देना पड़ता है।

पुश्तैनी वैमनस्य के कारण, चमार यहां नहीं रहते। ढेड़ ही मरे हुए जानवरों की खाल उतारते हैं और पास के [illegible] गांव के चमारों के पास भेज देते हैं।

सफाई की हालत बहुत खराब है। ढेड़ों की बस्ती के पश्चिमी दरवाजे से शहरपनाह के किनारे-किनारे कोई एक फर्लांग तक जो सड़क गई है उस पर लोग हगते-मूतते हैं।

कशोद में बेगार की ज्यादती की शिकायतें सुनने में आईं। उसके लिए ६०) साल दिया जाता है, पर यह बहुत कम है, क्योंकि सात परिवारों में बँटता है।

कुल १६+७ (भंगी) हरिजन परिवार यहां रहते हैं। उनके बच्चों के लिए गुजराती स्कूल में एक क्लास खुल जाना चाहिए।

वेरावल

शिक्षा—हमारे जाने के बाद स्थानीय संघ द्वारा दो शालायें खुल चुकी हैं। एक हादी या चमारवास में और दूसरी भंगीवास में। यहां की जन-संख्या बहुत ज्यादा है। हरिजनों की, एक दूसरे से अलग, दो बस्तियां हैं। १०० परिवार तो हादी या मायवालों के हैं और ६० भंगियों के। हादियों की बनिस्बत भंगी अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए अधिक उत्सुक प्रतीत हुए।

सफाई—हादीवास की बस्ती बहुत अच्छी बनी हुई है और उसमें चौड़ी सड़कें भी हैं, लेकिन उसमें जैसी चाहिए वैसी सफाई नहीं है। यहां झाड़ू नहीं लगती, जिससे इधर-उधर गोबर के चौथ-के-चौथ पड़े हुए हैं। गलियों में रोशनी की जरूरत है। कूड़े के लिए म्यूनिसिपैलिटी को दो ढोल रखवा देने चाहिएँ।

जल-प्रबंध—हादीवास में तो पानी का इन्तजाम ठीक है, लेकिन भंगीवास में नहीं है। भंगीवास में एक कुआं है पर उसका पानी पीने योग्य नहीं है। नजदीक से खारवों का कुआं है, उसमें से चुराकर पानी लाते हैं।

अमृतलाल वि० ठक्कर

अ० भा० ग्राम उद्योग संघ के

प्रबन्ध-बोर्ड की बैठक

(संक्षिप्त कार्यवाही)

[अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ के प्रबन्ध-बोर्ड की १ से ८ फरवरी तक वर्धा में बैठक हुई। नीचे उसकी कार्यवाही का सार दिया जाता है। विधान के व्यापक संशोधन भी इसमें शामिल हैं। पैराग्राफ से पहले जो अंक दिये गये हैं वे विधान की धाराओं के द्योतक हैं।—मो० क० गांधी]

कुछ संशोधन

ट्रस्टीबोर्ड

६—निम्न छः व्यक्तियों का एक स्थायी ट्रस्टी बोर्ड रहेगा। संघ का कोष और सम्पत्ति इनकी देखभाल में रहेगी और प्रबन्ध-बोर्ड की हिदायतों के अनुसार ये उसे खर्च करेंगे। लेकिन ट्रस्टियों की राय में अगर वे हिदायतें संघ के उद्देश्य या उसके हित के विरुद्ध हों तो प्रबन्ध-बोर्ड और ट्रस्टियों की संयुक्त बैठक होगी। इस संयुक्त बैठक के बाद भी अगर दो-तिहाई ट्रस्टियों को प्रबन्ध-बोर्ड की हिदायतें नापसन्द होंगी तो वे हिदायतें रद मानी जायेंगी।

(१) श्री श्रीकृष्णदास जाजू (वर्धा) खजानची, (२) श्री जे० सी० कुमारप्पा (वर्धा), (३) श्री जमनालाल बजाज (वर्धा), (४) डा० खान साहब (पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त), (५) डा० गोपीचन्द (लाहौर), (६) श्री वैकुण्ठराय एल० मेहता (बम्बई)।

इस्तीफा देने, मृत्यु या और किसी प्रकार जब ट्रस्टी का कोई स्थान रिक्त होगा तो उसकी पूर्ति शेष ट्रस्टी करेंगे । यह पूर्ति पांच साल तक सदस्य रहनेवाले साधारण सदस्यों में से की जायगी । या, अगर उस वक्त तक संघ के अस्तित्व को उतना समय न हुआ होगा तो, ३१ मार्च १९३५ से पहले जिन सदस्यों के नाम रजिस्टर में दर्ज हो चुके होंगे उनमें से की जायगी ।

संस्थापक सदस्य और प्रबन्ध-बोर्ड

७—नीचे लिखे व्यक्ति संघ के संस्थापक-सदस्य माने जायेंगे और प्रथम प्रबन्ध-बोर्ड भी इन्हीं का बनेगा । इनका कार्यकाल ३ फरवरी १९३५ से सात साल तक रहेगा और, बाद में निर्देश किये तरीके पर, ये अपने साथ अन्य सदस्यों को कोआप्ट कर सकेंगे ।

(१) श्री श्रीकृष्णदास जाजू, (२) श्री जे० सी० कुमाराप्पा, (३) श्रीमती गोशीबेन केप्टिन, (४) डा० खानसाहब, (५) श्री शूरजी वल्लभदास, (६) डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष, (७) श्री शंकरलाल बैंकर, (८) श्री लक्ष्मीदास पी० आसर ।

इसके सर्वप्रथम अध्यक्ष श्री श्रीकृष्णदास जाजू होंगे और संगठनकर्ता व मंत्री श्री जे० सी० कुमाराप्पा ।

प्रथम प्रबन्ध-बोर्ड का कार्यकाल समाप्त होने के बाद हर तीसरे साल उसका चुनाव हुआ करेगा और साधारण सदस्यों में से वे सदस्य उस चुनाव में भाग लेंगे जो कम-से-कम तीन साल तक सदस्य रह चुके होंगे ।

प्रबन्ध-बोर्ड के हरेक सदस्य पर संयुक्त तथा पृथक् रूप से संघ के नीति-पालन की जिम्मेदारी रहेगी । इसलिए यह आशा की जाती है कि मण्डल की बैठक के अलावा भी वे, जहां तक उनका असर हो सकेगा, मण्डल के प्रतिनिधि की हैसियत से अपने भरसक संघ की नीति और कार्यक्रम का पालन कराने की कोशिश करेंगे ।

साधारण सदस्य

८—जो व्यक्ति इसके साथ दिये हुए प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करेगा और जिसके लिए प्रबन्ध-बोर्ड का कोई सदस्य सिफारिश करेगा और जिसका भरती होना प्रबन्ध-बोर्ड मंजूर कर लेगा, वह संघ का साधारण सदस्य हो सकेगा ।

एजेण्ट

९—किसी गांव, गावों या जिले में बोर्ड की ओर से काम करने के लिए एजेण्ट रहेंगे । इनका चुनाव बोर्ड द्वारा साधारण सदस्यों में से इस बात को मद्देनजर रखते हुए किया जायगा कि जिस इलाके के लिए किसी को एजेण्ट बनाया जाय वहां की उसकी जानकारी कितनी है और जाहिरा तौर पर वहां कितना उसका प्रभाव है । जिन उपनियमों में एजेण्टों के कर्तव्यों का निर्देश है उनके अनुसार इन्हें काम करना होगा ।

अवैतनिक कार्यकर्ता

१०—एजेण्टों या साधारण सदस्यों के अलावा अवैतनिक कार्यकर्ता भी होंगे । एजेण्ट या बोर्ड के सदस्य द्वारा उन्हें रक्खा जायगा और उन्हें संघ का कुछ प्रत्यक्ष काम करना होगा ।

वैतनिक कार्यकर्ता

११—वैतनिक कार्यकर्ताओं का चुनाव बोर्ड या उससे अधिकार-प्राप्त व्यक्तियों द्वारा इस शर्त पर होगा कि बोर्ड उन्हें मंजूर कर ले । इन कार्यकर्ताओं को अपना पूरा समय और ध्यान संघ के काम में लगाना होगा ।

सहायक

१२—जो व्यक्ति संघ के उद्देश्य से सहानुभूति रखता हो, वह कम-से-कम १००) रु० सालाना चन्दा देकर सहायक (असोसियेट) बन सकता है । और जो एकमुश्त १,०००) देगा, वह आजीवन-सहायक (लाइफ-असोसियेट) बना लिया जायगा ।

कुल आमदनी

३१ जनवरी तक कुल ११,२६५।≈)॥ संघ को प्राप्त हुआ है ।

सलाहकारी बोर्ड

डा० एस० के० दत्त (प्रिंसिपल फोरमेन्स क्रिश्चियन कालेज) ने सलाहकारी बोर्ड में रहना स्वीकार कर लिया है ।

नये सहायक

श्री मोहनलाल कुबेरजी (बम्बई) और सोनीराम पोद्दार (रंगून) आजीवन-सहायक तथा श्री शालिग्राम रामचन्द्रजी (धूलिया), रामेश्वरदासजी जोहारमल (धूलिया) और वेणीलाल मोदी (बड़ौदा) साधारण सहायक बन गये हैं ।

अन्य संस्थाओं से सम्बन्ध

अन्य संस्थाओं को अपने साथ सम्बद्ध करने के बारे में निम्न नियम स्वीकृत हुए हैं :—

१ जिन संस्थाओं का उद्देश्य ग्रामीण उद्योगों की उन्नति और ग्रामवासियों का हित-साधन हो और जिनके विधान तथा नियमोपनियमों में इस संघ के आदर्शों के विरुद्ध कोई बात न हो, उन्हें संघ से सम्बद्ध किया जा सकता है । पर उन्हें यह वचन देना होगा कि संघ के जो नियमोपनियम हैं या समय-समय इसकी ओर से ८वें उपनियम के अनुसार प्रबन्ध-बोर्ड द्वारा बनाये जायेंगे उनका वह पालन करेंगी ।

२ ऐसी (सम्बद्ध) संस्थाओं पर यह संघ अपना निरीक्षण और नियन्त्रण रक्खेगा ।

३ हर तीसरे महीने वे उस बीच के अपने कार्य की रिपोर्ट संघ को भेजेंगी ।

४ सम्बद्ध होने की फीस १२) रु० साल से कम न होगी ।

५. सम्बद्ध-संस्थाओं को इस संघ द्वारा प्रकाशित समस्त साहित्य मुफ्त मिलेगा और आवश्यकतानुसार सलाह आदि भी दी जायगी ।

प्रमाणपत्र

प्रमाणपत्र के लिए निम्न नियम स्वीकृत हुए हैं :—

१ संघ के जो नियमोपनियम हैं, या समय-समय इसकी ओर से प्रबन्ध-बोर्ड द्वारा बनाये जायेंगे, उनका पालन करते हुए जो संस्था या व्यक्ति इस संघ के कार्यक्षेत्र के अन्दर गांवों में बनने वाली चीजों का व्यापार करना चाहेंगे उन्हें प्रमाणपत्र दिये जा सकेंगे ।

२. प्रमाणित संस्थाओं का निरीक्षण और नियंत्रण संघ कर सकेगा और उनके काम-काज की जो-कुछ जानकारी समय-समय केन्द्रीय बोर्ड चाहेगा वह उन्हें भेजनी होगी ।

प्रमाणित संस्थाओं और प्रमाणित व्यापारियों के अधिकारियों तथा कर्मचारियों से आशा रक्खी जायगी कि वे अखिल-भारत ग्राम-उद्योग-संघ के आदर्शों के अनुसार अपना आचरण रक्खेंगे ।

३. बोर्ड या बोर्ड से अधिकार-प्राप्त कोई भी व्यक्ति इसके लिए जो फीस नियत करेगा वह उन्हें देनी होगी ।

४. इन संस्थाओं को संघ द्वारा प्रकाशित सब साहित्य मुफ्त मिलेगा और जब कभी किसी सलाह-मश्वरे की जरूरत होगी तो वह भी दिया जायगा।

'हरिजन' मुफ्त मिलेगा

ऐसे हरएक एजेण्ट और कार्यकर्ता को 'हरिजन' की (हिन्दी, अंग्रेजी या गुजराती—जिसमें जो चाहेगा) एक प्रति मुफ्त देने का निश्चय किया गया है।

सहायक-भर्ती की रकम

किसी एजेण्ट द्वारा बनाये गये सहायकों के सालाना चन्दे से जो रकम इकट्ठी होगी, अगर दाता उसके लिए किसी खास जगह या काम का निर्देश न कर दे तो, उसका ७५ % उसी जिले में खर्च किया जायगा।

प्रबन्ध-बोर्ड के नये सदस्य

श्री वैकुण्ठराय एल० मेहता (बम्बई), बा० ब्रजकिशोर-प्रसाद (बिहार) और डा० गोपीचन्द भार्गव (लाहौर) प्रबन्ध-बोर्ड के सदस्य कोआप्ट किये गये हैं।

स्वावलम्बन-खादी-कार्य का विवरण

(५)

वस्त्र-स्वावलम्बन के विकास में सबसे महत्व का प्रयत्न श्री० जेठालाल गोविन्दजीने सन् १९२६ से १९२९ तक राजस्थान के बिजौलिया क्षेत्र में किया था। इस बीच चर्खा-संघने इस कार्य के लिये रु० १०,८७६-१२-१० खर्च किये थे। चार साल के इस व्यापक और लगातार कार्य के बड़े ही सुंदर परिणाम निकले। ११,००० की आबादी में से करीब ८,५०० खुद कातते और अपना कपड़ा बना लेते थे। इस प्रकार हर साल करीब ९८,५०० वर्गगज खादी तैयार हो जाती थी। श्री जेठालाल के बिजौलिया छोड़ने के बाद भी यह कार्य इसी प्रकार चलता रहा है। पर अब यह कहा जाता है कि इधर कुछ बाहरी दबाव के कारण वहां इस काम का जोर घटने लगा है।

बिजौलिया की सफलता से प्रेरित होकर सन् १९२७-२८ में राजस्थान के रींगस स्थान में एक दूसरा केन्द्र खोला गया। इस केन्द्र में ३ सालतक काम हुआ। यहा के किसानों को, जो पहिले से ही कातना जानते थे, धुनकना सिखाया गया, फलत प्रयोग के अन्त में, सन् १९२९-३० में, यहां के ३,५०० से ज्यादा लोग अपनी जरूरत का आधा या पूरा कपड़ा खुद बनाने लगे थे। इस काम पर संघ की ओर से यहां रु० २३,१३०-१०-३ खर्च हुए।

सन् १९२९-३० में श्री जेठालालने बिजौलिया का काम खतम करने के बाद उसी ढंग पर मध्यप्रान्त के अनन्तपुर गांव में नया काम शुरू किया। यह काम अभीतक हो रहा है। इसके लिए अबतक संघ रु० १७,७४४-०-६ खर्च कर चुका है। यहां वालों को कताई और उसके साथ की दूसरी क्रियाओं का नाम-तक मालूम नहीं था। परन्तु अब इसी क्षेत्र में, जहां की कुल आबादी ५,५०० है, ८० फी सदी लोग कातना जानते हैं। और ६० फी सदी धुनकना सीख गए हैं। इन कातनेवाले परिवारोंने सन् १९३३ में अपने उपयोग के लिए करीब २५,००० गज खादी बनाई थी।

यद्यपि आंध्र में इस दिशा में कोई संगठित कार्य किसी बड़े पैमानेपर नहीं किया गया है, फिर भी पुरीतिगड्डा, घण्टशाला, रेपल्ली और अमृतलूर नामक उत्पत्ति-केन्द्रों में काम करनेवाले कतवैयों के अन्दर विनिमय की पद्धति से खादी का प्रवेश और प्रचार बढ़ाया जा रहा है।

बिजौलिया की सफलता से सेठ जमनालालजी बजाज बहुत ही प्रभावित हुए और उनकी प्रेरणा से कौंसिलने सन् १९२९ में एक प्रस्ताव द्वारा इस तरह के कार्य के लिये २५,७०० रु० मंजूर किये और एक विशेष कमेटी को इसकी योजना पर विचार करने और उसे स्वीकार करने का काम सौंपा गया। इस काम को जल्दी ही शुरू कर देने के हेतु से वे शर्तें भी कुछ ढीली कर दी गई, जो कमेटी के एक सदस्य श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम के विचार में इन योजनाओं के सन्तोष-जनक व्यवहार के लिए आवश्यक थी। इस कमेटी की स्थापना के परिणाम-स्वरूप श्री सतीशचन्द्र दास गुप्तने बंगाल और उत्कल में कार्य प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने सन् १९२९ में राष्ट्रीय संघ नामक एक विशेष संस्था का संगठन किया। वर्ष के मध्य में इस संघने बंगाल के ३ और उत्कल के २ जिलों में कार्य आरम्भ किया। साल के अन्त में यह कार्य ३९ गांवों में होने लगा था, और ८२५ चर्खे चलने लगे थे। इन गांवों में कुल ८७८ पौण्ड सूत काता गया और ४६० थान खादी के बुने गये। सन् १९३० में सत्याग्रह के आरम्भ होने पर यह काम बन्द कर दिया गया। इस कार्य में उन दिनों २,०००) रु० का खर्च हुआ था।

कुमिल्ला के अभय आश्रमने भी सन् १९३० के अन्त में इसी प्रकार की एक योजना पेश की थी, जो कौंसिल द्वारा नियमानुसार स्वीकृत भी हो चुकी थी, लेकिन राजनीतिक युद्ध के कारण उक्त योजना के अनुसार कार्य शुरू नहीं किया जा सका।

वस्त्र-स्वावलम्बन की दिशा में छोटे पैमाने पर कुछ स्वतंत्र प्रयत्न भी किये गये थे। श्री बी० बी० दास्ताने की देखरेख में पूर्वीय-खानदेश-खादी-सेवा-संघने हटेड़ में और श्री ठक्कार की देख-रेख में पश्चिमी-खानदेश-जिला-मण्डलने सवाई-मुकटी ग्राम में वस्त्र-स्वावलम्बन का प्रयोग किया था। सन् १९२९ में हटेड़ केन्द्र का काम आरम्भ हुआ और ८ गावों में फैला। ५६ परिवारोंने इस कार्य में भाग लिया और ९४५ वर्गगज खादी तैयार की। सन् १९३०-३१ में इस कार्य का विस्तार १७ गावों में हुआ, जहां १२९ परिवारोंने इसमें भाग लेकर कुल ७,८७८ वर्गगज खादी उत्पन्न की। सन् १९३२ में सत्याग्रह के कारण काम बन्द कर दिया गया था, परन्तु सन् १९३३ में वह फिर से शुरू किया गया। इस बार ६ गावों में काम हुआ। ३८ परिवारोंने भाग लिया और १,०३१ वर्गगज खादी तैयार हुई। इस कार्य में शुरू से लेकर सन् १९३३ के अन्त तक कुल रु० २,५४०-१५-३ खर्च हुए।

सवाई-मुकटी केन्द्र का काम सन् १९३३ में ३ गावों में होता था। २४३ चर्खे चलते थे और २३३ परिवारोंने इस कार्य में भाग लेकर ३,७७७ वर्गगज खादी तैयार की थी। सन् १९३३ में इस केन्द्र पर रु० १,६६४-११-६ खर्च हुए, जिसमें एक ट्रेनिंग स्कूल का खर्च भी शामिल है।

(क्रमश:)

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ८ मार्च, १९३५. [संख्या ३

विषय-सूची

तितिक्षा

शीत-उष्ण, क्षुधा-तृषा, सुख-दुःख आदि को सहन कर लेना, और उन्हें सहन करने की शक्ति प्राप्त करना, यह एक प्रकार की सिद्धि है।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥
यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरु[illegible]
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्प[illegible]

इस तरह भगवद्गीता के उपदेश के [illegible] ही कहा गया है।

इस प्रकार की तितिक्षा केवल सामान्य व्यायाम आदि के द्वारा शरीर को तालीम देने से प्राप्त होती है, ऐसा हमेशा देखने मे नहीं आता। हृष्ट-पुष्ट शरीरधारी मनुष्य में वह पाई जाती है और दुबले-पतले में नही पाई जाती, यह भी नही देखते। दरिद्र में वह रहती है और धनिक में नही रहती, ऐसा भी नही कह सकते। कभी-कभी सुकोमल गरीब और सहनशील धनिक भी पाये जाते हैं। लेकिन यह कह सकते हैं कि प्राय. गरीब लोगो को इन कठिनाइयो को सहन करने का अभ्यास रखना अपरिहार्य होता है, और इस कारण उनमें अधिक तितिक्षा रहती है। मन को असह्य मालूम हो तो भी शरीर से निर्वाह तो करना ही पड़ता है।

परन्तु, जिस तरह दान, दया, तप आदि सद्गुणों के बारे में कहा है, उसी तरह तितिक्षा के विषय में भी कह सकते हैं कि वह भी सात्त्विक (अर्थात्, ज्ञानपूर्वक कमाई हुई), राजस (अर्थात्, लोभ से प्रेरित) और तामस (अर्थात्, जड़ता, आलस्य और प्रमाद से बढ़ी हुई) तीन प्रकार की हो सकती है। जिस तरह दूसरे बहुत-से गुणों के बारे में हुआ है, उसी तरह तितिक्षा के बारे में भी हुआ है। तितिक्षा के नाम पर हमने केवल जड़ता, आलस्य और प्रमाद को ही पोषा है।

जब हम यह मानने लग जायं कि एक वृत्ति अच्छी है, तब उससे चिपक रहने का हमारा आग्रह बन जाय, और उसको प्राप्त करने या बढ़ाने के लिए कृत्रिम उपाय भी किये जायं, यह स्वाभाविक है। जिसमें यह गुण न हो, या कम हो, उसके प्रति किंचित् अनादर उत्पन्न न हो जाय तो भी समभाव तो क्वचित् ही होता है। और उस गुण के फलस्वरूप यदि विवेक की बदौलत लोभ, जड़ता, अज्ञान आदि हो, तो जितनी ही उस वृत्ति की मात्रा बढ़ती जावे उतनी ही उससे जनता आगे जाने की जगह पीछे ही हटती जाती है।

धर्मग्रन्थों के अवलोकन से मालूम होता है कि तितिक्षा बढ़ाने का प्रयत्न हमारे देश में बहुत प्राचीन समय से होता आया है। अनेक प्रकार के तपों की योजना का उद्देश्य यही दीख पड़ता है कि सहनशीलता की वृद्धि हो। पञ्चाग्नि-सेवन, गर्मी में धूप में बैठना, सर्दी में खुले होकर रहना, वर्षा में बरसात में बैठना, जान-बूझ कर भूखे रहना, पानी न पीना इत्यादि तप के प्रकारों का एक हेतु हमारे कोमल ज्ञानतन्तुओं को धीरे-धीरे जड़ बनाना भी रहा है। इससे मनुष्य के तीन बलवान विकार—काम, क्रोध और लोभ—कहांतक जीते जाते हैं, इसमें तो सन्देह ही है। कारण, तपस्वी क्रोधी न हो, ऐसा किञ्चित् ही देखा जाता है। अति लोभ और अति तितिक्षा एकसाथ रहते हैं, यह किसी भी देहाती दूकानदार बनिये-व्यापारी के जीवन पर ध्यान देने से मालूम होता है। 'डोरी और लोटे' की ही पूंजी से अपना जीवन शुरू करनेवाला बनिया 'गादी और तकिये' वाला बनने के समय तक तितिक्षा की जो पराकाष्ठा करता है, वह तपस्वी भी शायद न कर सकता हो। जेब में पैसा होते हुए भी एक ही बार खाने का निश्चय करना, घर का दूध-घी होते हुए भी और किसीका कर्ज न होते हुए भी बिना घी के रोटी खाना और घी को बेच देना, सर्दी लगती हो और नया कम्बल पास में हो पर उसको मैला क्यो करें, इस विचार से जाड़े को ही सहन कर लेना—इस तरह वह लोभवश होकर अपनी हरेक इन्द्रिय को एक तरह से सहनशील बनाता है। लेकिन, ऐसी सहनशीलता होने की अपेक्षा दुःख सहन करने की शक्ति कुछ कम होना ही ठीक है, ऐसा मुझे कभी-कभी लगता है। यदि हमारी तितिक्षा-शक्ति कुछ अंश में कम रहती तो टीन के पतरे की दीवारें और छप्परे वाले मकान और उसमें हलवाई की दूकान, ऐसा आरोग्य-नाशक, सौन्दर्य-नाशक और देश के कारीगरों का उद्योग-नाशक

* हे अर्जुन, इन्द्रियों के विषय सर्दी, गर्मी, सुख और दुःख देनेवाले होते हैं। वे आते हैं और चले जाते हैं और अनित्य हैं। उन्हें तू सहन कर। हे नरश्रेष्ठ, सुख-दुःख में सम रहनेवाला जो पुरुष इन बातों से व्याकुल नहीं होता, वह मोक्ष का अधिकारी होता है।

दृश्य कभी निर्माण न होता। आ -दस हजार या उससे भी अधिक कीमत का मकान हो, परन्तु उसमें कुछ किफायत करने की दृष्टि से दीखने में बदसूरत, गर्मी में भट्ठी की तरह तपनेवाले और सर्दी में बर्फ के समान ठंडे होनेवाले टीन के पतरे के पर्दे, छप्पर या छज्जे मेरी नजर पड़ते हैं, तब मुझे मन मे क्लेश होता है। उसमे रहनेवालो की तितिक्षा-शक्ति के लिये मुझमें प्रेम नही उठता।

किसान को गर्मी, सर्दी और वर्षा तीनों ऋतुओं में काम करना पड़ता है। इस कारण, उसे शीत-उष्ण-वृष्टि और क्षुधा-तृषा-जागरण सहने पड़ते हैं। उसको भी प्राप्ति की आशा रहती है, यह भी सच है। तथापि, काम पूरा होने पर खाने के लिए पास हो तो भी भूखे सोने का और ओढ़ने को हो तो भी खुले बदन सोने का यदि वह विचार करे, तो वह तितिक्षा लोभमूलक है, ऐसा कहना चाहिए।

जिस प्रकार यह लोभ से प्राप्त की हुई तितिक्षा कोई भारी गुण नही है, वैसे ही जड़ता या आलस्य से प्राप्त की हुई तितिक्षा भी कोई सद्गुण नही है।

दरवाजे मे एक छोटी-सी दरार है। उसमे से ठंडे पवन की लहर हमेशा आया करती है, और जब आती है तब छाती मे तीर की तरह उसका वेग लगता है। उसे बन्द करना आवश्यक है। शिशिर का आरम्भ है। गले को ठंडी हवा लग गई है। शाम या सबेरे की हवा लगती है तब खासी शुरू हो जाती है, और रातभर परेशान करती है। गले पर एक कपड़ा लपेट रखने की आवश्यकता है। वर्षा लगी है। एक खिड़की में से पानी की बौछार घर मे आती है, और उससे घर का वायु आर्द्र रहता है। एक छज्जे की जरूरत है। घर मे एक मनुष्य दमे से बीमार रहता है; आधीरात को या बड़े सबेरे उसे शौचादि के लिये उठना पड़ता है। रात में तो उसने खुदको बचा रखा है। किन्तु दो-चार मिनिट के लिये उसको खुले मे जाना पड़ता है, और ठंडी हवा या बरसात सहन करनी पड़ती है। उसके हाथ-पैर ठंडे हो जाते हैं, अथवा पीठ या छाती को हवा लग जाती है, और एक क्षण मे उसका श्वास रुक जाता है। फिर सारा घर उसके पीछे परेशान होता है। मित्र आकर उसके ऊपर दया बताते हैं। लेकिन उसको रात के समय बाहर न निकलना पड़े, ऐसी उसके बिछौने के पास ही व्यवस्था चाहिए—यह न वह स्वयं मानता है न उसके सगे-संबधी मानते हैं। दरवाजे की दरार को बन्द करना, गले को कपड़ा लगाना, झोपड़ी-जैसे मकान को छज्जे की शोभा देना, बिछौने के पास बर्तन रखना या मोरीघर बनाना—ये सब सुकुमारता के लक्षण माने जाते हैं। ऐसा करनेवाला बड़ा नाजुक है, ऐसा समझा जाता है। और ऐसा करने में आलस्य भी आता है। इन सब बातों में खर्च का सवाल क्वचित् ही होता है। परन्तु इन कठिनाइयों को सहन कर लेना कुलधर्म-सा माना गया है, ऐसा देखने में आता है। इससे इन आपत्तियों को सहन करने में सद्गुण है, ऐसा समझा जाता है। यह तितिक्षा तो है, परन्तु, मेरी राय में, इसमें कोई प्रशसनीय वस्तु नहीं है।

इस प्रकार की अयोग्य तितिक्षा के कारण उसको सहन करनेवाले को जो असुविधायें होती हैं, उनका हम विचार छोड़ दें। परन्तु इसका परिणाम उसके मानसिक विकास पर किस प्रकार का होता है, उसका हम थोड़ा विचार करलें। इस तरह की असुविधायें सहन करने का जिसका स्वभाव बन जाता है, और एसी खामोशी रखने-रखाने में ही एक प्रकार की शिक्षा है, ऐसी जिसकी मान्यता हो जाती है, वह दूसरों के कष्टों के प्रति विशेष समभाव को अनुभव नहीं कर सकता, बाज दफे उनको समझ भी नही सकता। जो मनुष्य ठंड लगते हुए भी अपने पास के बिछौने और कम्बल का उपयोग नही करता, और उनका उपयोग न करने मे ही विशेषता है ऐसा समझकर बिना कुछ बिछाये और ओढ़े सोने की आदत कर लेता है, उसको खयाल ही नही आता कि दूसरे के लिए सोने की किस प्रकार व्यवस्था रखनी चाहिए, और यह कल्पना ही नही होती कि जिनके पास बिछाने और ओढ़ने का साधन नही है उनको कुछ कष्ट होता होगा।

दया-धर्म और अहिंसा-धर्म का माहात्म्य सिखानेवाले हमारे हिन्दूधर्म में हरिजनादि दलित और दरिद्र जातियों एवं प्राणियो के प्रति व्यवहार में जो अत्यंत बेपर्वाही नजर आती है उसका कारण, मेरी समझ मे, यह नहीं कि हममे स्वभावत. निष्ठुरता रही है या अधिक स्वार्थ-वृत्ति भरी है. प्रत्युत् बहुतो के लिये तो केवल यही कारण है कि दु.खो की कल्पना करने के विषय में उनमें बहुत जड़ता रहती है। वह जड़ता स्वयं अपनी जीवनचर्या में भी वे दिखाते हैं। अंग्रेज लोगो मे तितिक्षा कम है, ऐसा उनके परिचय या इतिहास से पाया नही जाता। परन्तु असुविधाओं को दूर करने के विषय मे वे उदासीन नही रहते। इस कारण, यदि कष्ट देने का इरादा न हो तो, उनका दूसरो के शारीरिक कष्टों के प्रति हमसे अधिक सहृदयता का व्यवहार होता है। जेल मे मेरा दोनों दफे यह अनुभव हुआ कि खुले मे नहाने के कारण हवा लग जाने से मुझे खासी हुआ करती थी, अत नहाने के लिए मुझे थोड़ी-सी ओट [illegible] ता थी। स्नान-घाट पर एक टट्टा बांध देने से [illegible] था। परन्तु जेल के भारतीय डाक्टरो के मन में यह न [illegible] कि ऐसा कर देना आवश्यक है। लेकिन सुपरिण्टेण्डेण्ट के मन मे यह बात बैठ गई और उसने यह व्यवस्था कर दी। इसी तरह जब रात को दमा उठा करता था और बैठ रहना आवश्यक होता था, तब पीठ के लिए किसी सहारे की आवश्यकता मालूम होती थी। लोहे की चारपाई के साथ लगा हुआ पतरा या भीत अधिक ठंडा होने के सबब काम नही देता था। एक मोटे-से लकड़ी के तख्ते की जरूरत थी। परन्तु डाक्टरो के ध्यान में यह बात नहीं बैठती थी। इसमें भी सुपरिण्टेण्डेण्टने ही समझदारी बताई। इसकी वजह यह नहीं थी कि डाक्टर कम सहृदय थे, या उनका अधिकार चलता नही था। परन्तु उनको स्वानुभव से मालूम था कि जेल के बाहर भी हम लोग ऐसी असुविधायें सहन कर लेते हैं, और ऐसी सहनशीलता को वे भी योग्य तितिक्षा समझते थे। इससे इन असुविधाओ के सहन करने में वे कोई विशेष कष्ट मान ही न सकते थे। लेकिन आखिर मे तो अधिकारियों से संबंध था, और सो भी जेल का। उनकी बात जाने दें, तो भी बाहरी समाज में सगे-सम्बन्धी और मित्र भी इस प्रकार की अयोग्य तितिक्षा का आदर्श रखनेवाले होते हैं। इससे जिनके प्रति उनका प्रेम रहता है उनके साथ वे भी इसी प्रकार का व्यवहार कर डालते हैं।

कार्यालयों और दुकानों में जो क्लर्क और अन्य कर्मचारीगण काम करते हैं वे कितने घण्टे तक किस तरह बैठते हैं, उनके लिखने वगैरा के लिए क्या व्यवस्था है, उनको वायु और प्रकाश मिलता है या नहीं, उनके पास मेज है या नहीं, है तो वह बराबर माप की

है या नहीं, इन बातों पर मालिक बेपर्वाह होता है। वह स्वयं तो ध्यान देता ही नहीं, पर यदि कर्मचारी इन सुविधाओं के विषय में बेपर्वाह न हो तो वह उसका दोष माना जाता है। विद्यार्थियों के विषय में भी हम इस तरह बेपर्वाह रहते थे, पर उनकी ओर अब कुछ ध्यान दिया जाने लगा है। परन्तु सामान्यतः तो यही उत्तर दिया जाता है, "हम तो आज तक इन साधनों के बिना ही काम करते आये, हमारा काम कभी इनके बिना रुका नहीं।" यह उत्तर झूठा भी नहीं। पर प्रश्न तो यह है, कि इस तरह काम करते आये, यह कितने अंश में योग्य था ?

'रॉबिन्सन क्रूसो' उपन्यास कुछ पाठकोंने पढ़ा होगा। उसमें एक यूरोपीय परिवार के एक द्वीप में फँस जाने का वर्णन है। वह वहां पर अपने परिश्रम से यूरोपीय पद्धति की सब सुविधायें धीरे-धीरे किस तरह उत्पन्न करता है, इसका रसपूर्ण वर्णन है। चम्मच और कुर्सी के बिना भी उसका काम नहीं चलता था। जंगल में भी उनके बिना निभा लेने में उसने सन्तोष न माना। सीपी में से चम्मच और पत्थर या मिट्टी की कुर्सी बनाने का परिश्रम करता है तभी शान्त होता है। मुझे कई बार कल्पना होती है कि इसकी जगह कोई उपन्यासकार 'रबिसेन' नाम से हिंदू परिवार का चित्र खींचे तो उसमें जंगल में मंगल मनाने की अपेक्षा बड़े महल में रहते हुए भी वह परिवार किस प्रकार की असुविधायें भोगते रहता था, इसका रसमय वर्णन कर देने में ही अच्छी सफलता प्राप्त करेगा।

जबकि हमने ग्राम-रचना के कार्य में लग जाने का सकल्प कर लिया है, हम देहातों में भूले हुए आदर्शों की ओर त्रुटियों की पूजा में न पड जायें, यह चेतावनी देने के लिए ही मैं यह लिख रहा हूँ। देहातों में अनेक उद्योगों के लिये गुंजायश है। अनेक उद्योगों का आरम्भिक ज्ञान रखनेवाले कारीगर लोग भी हरेक देहात में मौजूद हैं। लेकिन आज उनकी दशा कुछ अच्छी नहीं है। उनमें से अनेक अकुशल, अशिक्षित और आलसी भी बन गये हैं। इस बात को भी ध्यान में रखने की जरूरत है। हम यदि उनकी सेवा करना चाहते हैं, तो उनकी कारीगरी में सुधार करना भी आवश्यक होगा। उनके जीवन और घरों में भी सुधार करना होगा। देहातों से नगरों की वस्तुयें ले जाकर उनको बबई या नई-दिल्ली के छोटे-छोटे उपनगर बनाने की चेष्टा करना स्थायी भूल होगी। ग्राम-उद्योग के बहाने वे जैसे हैं उसी अवस्था में उनको रख कर पोषण देना, यह दूसरी स्थायी भूल होगी। हमारा ध्यान तो इसी बात पर रहना चाहिए कि जो भी वस्तु बनाई जाय वह देहात में जो कुछ साधन-सामग्री परिश्रम से प्राप्त हो सके उसीपर, जहां तक संभव हो उतनी सब मेहनत और बुद्धि लगा के, बनाई जाय। जिन त्रुटियों को देहाती साधनों से हम दूर कर सकें उनको—सिवाय गरीबी या ज्ञानपूर्वक त्याग के—अन्य किसी कारण से हम निभालें, तो उससे केवल आलस्य, प्रमाद और जड़ता को ही पोषण मिलेगा।

किशोरलाल घ० मशरूवाला

मेरी हरिजन-यात्रा

(९)

चोरवाड़

४ दिसम्बर, १९३४—आसपास के १२ गांवों के हरिजनों ने आकर हमें अपनी स्थिति से परिचित कराया। इनमें कहीं भी पानी की कोई खास तकलीफ नहीं है।

चोरवाड़ में एक निजी शाला है। पिछले तीन साल से श्री हरखचन्द मोतीचन्द बडी अच्छी तरह उसको चला रहे हैं। हरिजनों की तीन बस्तियों में तीन कुएँ हैं। रहने के मकान भी अच्छे हैं और उनके चारों तरफ काफी खुला मैदान है। वणकर, चमार और भंगियों के क्रमशः ७३, ३ और ८ परिवार यहां हैं।

भण्डूरी

हरिजनों के २१ परिवार हैं। गांव के स्कूल में पहले जो अध्यापक था वह हरिजन बालकों को भी पढ़ाया करता था, हालां कि उन्हें बैठाया औरों से अलग जाता था, लेकिन आजकल जो अध्यापक है वह इस तरह पढ़ाने से इन्कार करता बताते हैं। इसलिए अब कोई हरिजन बालक स्कूल नहीं जाता, हालां कि लगभग १० बच्चे पढ़ने के लिए तैयार और उत्सुक हैं।

बालागाम

यहां ढेडों के ३२ और भंगियों के ५ परिवार रहते हैं।

यह बुनाई का अच्छा केन्द्र है। यहां पाठशाला खोली जाय तो कस्बे के तथा आसपास के ओसा, पादरडी, इन्द्राना, अम्बालिया, मटियाना, बमनासा, मगोद, अखोदर और पञ्चाला गांवों के काफी बच्चे पढ़ने के लिए आ सकते हैं। राज्य से इसके लिए प्रार्थना करनी चाहिए। अब तो शीघ्र ही यहां एक अच्छी सड़क बनकर तैयार होने वाली है, तब तो बरसात में भी यहां पहुँचना आसान हो जायगा।

शिल या शील

यह ताल्लुके का कस्बा है, जिसकी कुल आबादी करीब २,००० है। हरिजन परिवार २५+५ (भंगी) हैं। यहां पाठशाला खुले तो आसपास के ७ गावों के बालक पढ़ने के लिए आ सकते हैं। राज्य से शाला या क्लास खोलने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

दिवासा गाव में हरिजनों के लिए कुआं है। लेकिन गर्मी के दिनों में उसका पानी सूख जाता है। इसलिए उसको ५-१० फुट गहरा करने की जरूरत है। इसके लिए राज्य से प्रार्थना की जानी चाहिए।

माधवपुर (पोरबन्दर राज्य)

५ दिसम्बर, १९३४—यहां की वणकर-बस्ती अच्छी है। कोई २० बरस पहले इस जगह वणकर आबाद हुए थे। बस्ती में सुव्यवस्थित गलियां हैं। वणकर परिवारों की संख्या ६० हैं, और भंगी परिवारों की ६। पीने के पानी के कुएँ दोनों के अलग अलग हैं, लेकिन भंगियों का जो कुआं है उसमें मरम्मत की जरूरत है जिसमें करीबन १००) खर्च होगा।

लेकिन खास जरूरत तो उन्हें अपने बच्चों की पढ़ाई के लिए पाठशाला की है। दूसरी-तीसरी श्रेणी तक की प्रारम्भिक शाला उनकी बस्ती में खुल जानी चाहिए, जिसके लिए उनका नौहरा मिल जायगा। अपने यहां शाला खुलने की उनकी बड़ी इच्छा है। इस लोअर प्राइमरी स्कूल की पढाई समाप्त करके उनके लड़के-लड़की दूसरे लड़के-लड़कियों के साथ साधारण स्कूलों में जा सकेंगे। इसलिए रियासत से ऐसी प्रारम्भिक शाला जल्द खोलने के लिए प्रार्थना की जाय तो ठीक होगा।

बुनाई का माधवपुर भी एक अच्छा केन्द्र है। चालू करघों की संख्या यहां ५० से ज्यादा है।

अमृतलाल वि० ठक्कर

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ८ मार्च, १९३५

पूर्ण और अपूर्ण चावल

जिस चावल के सिर्फ छिलके (भूसी) ही निकाले गये हो उसे पूर्ण कहते हैं, और जिसके दाने पर का कुछ भाग भी निकाल डाला गया हो उसे अपूर्ण। साधारणतया गुजरात में अपूर्ण चावल ज्यादा खाया जाता है। लेकिन डाक्टरों की राय यह है कि पूर्ण चावल ही खाना चाहिए, क्योंकि अपूर्ण सत्त्वहीन होता है। एक डाक्टर का तो मत है कि आजकल कब्जियत की जो आम शिकायत है उसका एक कारण हमारे यहा अपूर्ण चावल का खाया जाना है। वह अपने मरीजों की कब्जियत सदा पूर्ण चावल खिलाकर ही दूर करते हैं। लेकिन चावल खानेवाले केवल डाक्टरों की सम्मतियों पर अपूर्ण चावल खाने की अपनी कुटेव को छोड़नेवाले नहीं हैं। उन्हें तो इसके लिए अपने तथा दूसरो के अनुभवो की जरूरत पड़ेगी। होना भी यही चाहिए। जिसका अपना अनुभव किसी बात के विपरीत हो उसके लिए वह बात निरर्थक ही है। इसलिए जो लोग इस सम्बन्धी प्रयोग कर रहे हैं उनके अनुभवो को मैं प्राप्त कर रहा हूँ। इसमें जो सब से अच्छा प्रयोग मेरे देखने में आया वह श्री शकरलाल बेंकर का है, जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है।

श्री बेंकरने लिखा है कि अगर जरूरत हो तो यह सिद्ध करनेवाले डाक्टरी मत प्राप्त किये जायें कि पूर्ण चावल हाजमे को नुकसान पहुँचानेवाला है। लेकिन यह अनावश्यक है। डाक्टर मात्र एक स्वर से कहते हैं कि पूर्ण चावल ही खाना चाहिए। लेकिन यह उनकी अनुभूत बात नहीं है। अनुभव तो या तो अपना खुद का हो, या अपने मरीजों का। लेकिन ऐसे अनुभव उनके पास से थोड़े ही मिले हैं। इसलिए अनुभव तो चावल खानेवालों के ही मिले तो अच्छा होगा।

प्रयोग करनेवाले को इतना याद रखना चाहिए कि पूर्ण चावल में सब पौष्टिक तत्त्व मौजूद रहने के कारण उसे अच्छी तरह राधना चाहिए। दाना-दाना खिला रखने की आदत छोड़नी चाहिए। ऐसा चावल देखने में भले ही अच्छा लगे, पर उसमें मिठास नहीं होती। वर्धा में ग्राम-उद्योग-सघ के दफ्तर में पूर्ण चावल राधा जाता है। सब स्वाद के साथ उसे खाते हैं। लेकिन सफेद झक दीखनेवाले अपूर्ण चावल जितना वह नहीं खाया जा सकता। थोड़ा खाने में ही स्वाद और सन्तोष मिल जाता है। अर्थ-लाभ तो प्रत्यक्षत दुगुना है। दलना सहज है, इसलिए उसकी मजूरी बहुत कम होती है। कूटने-फटकने में मेहनत व होशियारी ज्यादा होनी चाहिए, इसलिए उसकी मजूरी भी ज्यादा पड़ती है। लेकिन ज्यादा-से-ज्यादा लाभ तो थोड़े परिमाण में पूर्ण चावल खाकर अधिक शक्ति और सन्तोष प्राप्त करने में ही है। मिलवाले चावल इस लाभ की बराबरी कभी नहीं कर सकते। और खाली दलने के लिए कोई मिल रक्खा भी नहीं जा सकता। इसमें पूरा ही नहीं पड़ेगा।

प्रयोग करनेवाले नीचे लिखे नियमों का पालन करेंगे तभी उनके प्रयोग शुद्ध माने जायेंगे और सफल हुए बिना नहीं रहेंगे:—

(१) धान में से सिर्फ छिलके या भूसी को ही निकाला जाय। उसे कूटा बिलकुल न जाय।

(२) पूर्ण चावल को साफ कर, कूड़ा-कचरा अलग करके, एक बार साफ ठण्डे पानी में धोया जाय। धोने में उन्हें बहुत रगड़ा या मला न जाय, क्योंकि ऐसा करने से उनके ऊपर का कुछ-न-कुछ सत्त्व जरूर निकल जायगा।

(३) धोये हुए चावल को तीन घण्टे तक ठण्डे पानी में भिगोया जाय। पानी थोड़ा ही रक्खे।

(४) भीगे हुए चावल को, जिस पानी में भिगोया जाय उसके साथ, खौलते हुए अधन में डालकर मन्दी आग पर राध जाय, और जब वह पककर एकरस हो जाय तब उतार लिया जाय। अगर पानी ज्यादा भी पड जाय तो उसे निकाला न जाय, बल्कि जज्ब होने दिया जाय। अगली बार अन्दाज से पानी रक्खे।

प्रयोग करनेवालों से प्रार्थना है कि अपने अनुभवों को मेरे पास भेजे।

'हरिजन-बन्धु' से] मो० क० गांधी

खाद के गड्ढे

पंजाब के ग्रामसुधार-सम्बन्धी सरकारी महकमे के कमिश्नर श्री ब्रेन ने, मेरी प्रार्थना पर, अपना सब साहित्य मेरे पास भेजा है। इसमें कई ऐसी पत्रिकाएं भी हैं, जो ग्रामवासियों की साधारण जानकारी के लिए उपयोगी हैं। समय-समय इनमें से चुनी हुई कुछ बातें मैं पाठकों के सामने रखना चाहता हूँ। सबसे पहले खाद के गड्ढों वाली पत्रिका को लेता हूँ :—

"अपने-आप पर दया करके, इस प्रकार दुःख मत उठाओ। हिम्मत करके, गांव के पास गड्ढा खोदो॥"

"गांव के गली-कूचों या उसके पास की किसी भी जगह आप जाये, तो आपको कूड़ा-कचरा, गोबर और गली-सड़ी चीजों के ढेर मिलेंगे। इनके कुछ अंश को हवा अपने साथ उड़ा ले जाती है, कुछ पानी के साथ बह जाते हैं, और कुछ को ढोर इधर-उधर फैला देते हैं। जो अश हवा में मिलता है वह फिर हवा के साथ-साथ मनुष्यो के शरीर के आसपास फैलकर मुह के द्वारा उनके पेट में पहुँचता है। इससे चमड़ी में खराबी होती है और पेट में अनेक रोग पैदा होते हैं। आखों में पहुँचने से आखों की बीमारियां होती हैं। ये ढेर खुले रहें तो मनुष्यों को ही नहीं, पशुओं को भी नुकसान पहुँचाते हैं। उदाहरण के लिए पानी के साथ मिलकर यह कूड़ा तालाब में जाता है और पशु उसमें नहाकर व उसका पानी पीकर तरह-तरह की बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। इस सब बुराई का कारण यह है कि गाववालों को न तो गोबर और सफाई का असली महत्व मालूम है, न वे यही जानते हैं कि इन ढेरों को खुला पड़ा रखने से आदमियों और ढोरों को कितना नुकसान पहुँचता है। इसमें शक नहीं कि 'यह चीज खेतों के लिए तो सुवर्ण है और आदमियों के लिए विष'। अगर इसकी ठीक तरह से सार-सम्हाल की जाय तो न तो इसका कोई अंश फजूल बरबाद होगा, और न इसकी बदबू से हवा ही खराब होगी। इससे हमें दुहेरा लाभ होगा। एक तो हम बढ़िया खाद पा जायेंगे, दूसरे उन बीमारियों से बच जायेंगे जो इसके खुले पड़े रह[illegible] और पशुओं को [illegible]

जाती हैं। सारांश यह, कि कूड़ा-करकट और मैले को गड्ढों में एकत्र करने में लाभ-ही-लाभ है।

(१) इस तरह किया जाय तो लोगों को होनेवाली तीन-चौथाई बीमारियां अदृश्य हो जायँगी।

(२) खाद के गुण और परिमाण में वृद्धि होगी, जिससे जमीन पर उसका चौगुना असर होगा। लेकिन यह लाभ सिर्फ इसी तरह प्राप्त हो सकता है कि घरों से कुछ फासले पर गड्ढे खोदे जायें और वह सब कूड़ा-कचरा उनमें इकट्ठा किया जाय जो गांव के आसपास या गली-कूचों में फेंका जाता है।

ये गड्ढे ६ फुट गहरे और ६ फुट चौड़े होने चाहिएँ, लेकिन लम्बाई आवश्यकतानुसार कम-ज्यादा हो सकती है। गड्ढे का एक सिरा अन्दर की ओर ढलवा होना चाहिए, ताकि उसपर जमे हुए कूड़े को आसानी से अन्दर घुसेड़ा जा सके। जब गड्ढा भर जाये, तो उसे कुछ इंच मिट्टी से ढक देना चाहिए; और दूसरा गड्ढा भरने लगना चाहिए। दूसरा गड्ढा भरेगा, इतने में पहले गड्ढे के कूड़े का बिल्कुल रूपान्तर हो चुका होगा। उसकी काली मिट्टी बन जायगी और बदबू या जहरीली हवा बन्द हो जायगी। यही नहीं बल्कि उसके गुण एवं बल में भी वृद्धि होगी। मतलब यह कि, वह बढ़िया खाद बन जायगी और जिस खेत में पड़ेगी उसमें खूब बढ़िया फसल होगी।

अब आप यह जरूर समझ गये होंगे कि हरेक गांव में ऐसे गड्ढे खोदना क्यों आवश्यक है। इनसे न केवल गांववाले और उनके पशु ही स्वस्थ रहेंगे, बल्कि उनकी सम्पत्ति में भी वृद्धि होगी। लेकिन इस सबके लिए जरूरत है पुरुषार्थ और साहस की। क्योंकि, ईश्वर उन्हींकी मदद करता है जो अपने पैरों पर खड़े होते हैं।"

इसमें जो कुछ लिखा है उसका समर्थन कोई भी कर सकता है। श्री ब्रेनने जैसे गड्ढों के लिए लिखा है वैसों की ही आम तौर पर सिफारिश की जाती है, यह मैं जानता हूँ। मगर मेरी राय में पूरने जो एक फुट के छिछले गड्ढों की सिफारिश की है वह अधिक वैज्ञानिक एवं लाभप्रद है। उसमें खुदाई की मजूरी कम होती है, और खाद निकालने की मजूरी तो या तो बिलकुल ही नहीं होती या बहुत थोड़ी होती है। फिर उस मैले का खाद भी लगभग एक सप्ताह में ही बन जाता है। क्योंकि जमीन की सतह से ६ से ७ इंच तक की गहराई में रहनेवाले जन्तुओं, हवा और सूर्य की किरणों का उसपर असर होता है; जिससे गहरे गड्ढे में दबाये जानेवाले मैले की बनिस्बत कहीं अच्छा खाद तैयार हो जाता है।

लेकिन मैला ठिकाने लगाने के तरीके कितने ही तरह के क्यों न हों, याद रखने की मुख्य बात यह है कि सब मैले को गड्ढों में मूंदा जरूर जाय। इससे दुहरा लाभ होता है—एक तो ग्रामवासियों की तन्दुरस्ती ठीक रहती है, दूसरे गड्ढों में दबकर बनी हुई खाद खेतों में डालने से फसल की वृद्धि होकर उनकी आर्थिक स्थिति सुधरती है। यह याद रखना चाहिए कि, मैले के अलावा, जानवरों के शरीर के अवयव आदि चीजें अलग गाड़ी जानी चाहिएं। यह निस्सन्दिग्ध है कि ग्राम-सुधार के काम में सफाई सबसे पहला कदम है।'

अंग्रेजी से] **मो० क० गांधी**

सच्चा और झूठा अर्थशास्त्र

एक मित्रने मेरे पास कनसास स्टेट कालेज के अध्यक्ष डा० एफ० डी० फैरल का निम्न उद्धरण भेजा है:—

"आर्थिक हितों के लिए सामाजिक हितों का बलिदान न होना चाहिए। सामाजिक रूप में अवनत होते हुए आर्थिक उन्नति करते जाना बड़ी निरर्थक बात है। हम सबको यह जानने की जरूरत है कि श्रम और कार्य के ही लिए नहीं बल्कि इसलिए हम परिश्रम और कार्य करते हैं कि अपेक्षाकृत अच्छा जीवन व्यतीत करें। अगर हम अच्छी तरह नहीं रह सकते, तो हमारे पास कितना ही रुपया क्यों न हो फिर भी हम गरीब हैं।

"खेती-किसानी का काम करनेवाले बहुसंख्यक व्यक्ति विपत्ति में पड़कर इस बात को समझ रहे हैं। इस प्रकार इसके द्वारा एक ऐसे ग्रामीण तत्त्वज्ञान को स्वीकार करने की नींव पड़ रही है जो संभवतः स्थायी होगा। इस सिद्धान्त के अनुसार खेती का मुख्य उद्देश्य रुपये-पैसे का जोड़ना नहीं बल्कि देहाती लोगों में सुख-समृद्धि का प्रसार करना है, और खेत मुख्यतः घर ही समझे जाने चाहिएँ, न कि व्यवसाय की चीज। व्यवसाय की चीज तो वे कभी संयोग-वश ही होने चाहिएँ।

"विपत्ति अब हममें से अनेकों को यह सिखा रही है कि रुपये-पैसे के अलावा जो प्राकृतिक सम्पत्ति हमारे चारों तरफ मौजूद है उसका हमें उपभोग करना चाहिए। इस सम्पत्ति में सुनहरे सूर्यास्त से लेकर बच्चों में हिलना-मिलना तक तरह-तरह की बेशुमार चीजें हैं, जिनसे सुख और सन्तोष प्राप्त किया जा सकता है। अगर हम सादा जीवन व्यतीत करें और रुपये-पैसे के अलावा जो प्राकृतिक सम्पत्ति है उसीपर अपना अधिक आधार रक्खें, तो हमें न केवल स्वास्थ्य और सुख ही प्राप्त होगा बल्कि बहुत-कुछ आर्थिक संरक्षण भी मिलेगा।"

निस्सन्देह, जो अर्थशास्त्र स्वास्थ्य का नाश करता है वह झूठा अर्थशास्त्र है; क्योंकि, स्वास्थ्य ही ठीक न हो तो रुपया-पैसा किस काम का? सच्चा अर्थशास्त्र तो वही है जिससे स्वास्थ्य बना रह सके। इसीलिए ग्राम-सुधार का जो प्रारम्भिक कार्यक्रम बनाया गया है, उस सबका उद्देश्य सच्ची अर्थनीति ही रक्खा गया है; क्योंकि ग्रामवासियों के स्वास्थ्य एवं शक्ति की वृद्धि ही इसका उद्देश्य है।

अंग्रेजी से] **मो० क० गांधी**

शर्मनाक

अभी कल की बात है, लगभग २५ वर्ष का एक हट्टा-कट्टा नौजवान मेरे पास आया। उसने मुझसे पूछा, क्या दो-तीन दिन मैं आपके पास ठहर सकता हूँ? वह बहराइच का रहनेवाला था। घर पर उसके यहां कुछ एकड़ जमीन भी है। बम्बई-कांग्रेस में गया था, तभीसे बराबर भ्रमण कर रहा है और अपरिचित लोगों के सहारे उसका निर्वाह होता है। रामानुजियों में वह हिलता-मिलता है। जैसा उसने मुझे बताया, वे उसे खाना और थोड़ा-बहुत रेल-भाड़ा देते हैं। जब मैंने उससे कहा, कि इस तरह दूसरों के दान पर रहना ठीक नहीं है, तो उसने जवाब दिया—'मुझे तो अपने खाने-खर्च के लिए भीख मांगने में कोई बुराई नहीं मालूम पड़ती, क्योंकि मैं लोगों की सेवा करने की आशा रखता

हूं।' मतलब यह कि गुजारा तो पहले ही मांग ले, फिर किसी समय उसके बदले में ब्याज-सहित सेवा कर दे। इसमें उसे अनौचित्य कुछ भी नहीं मालूम पड़ा। चूंकि वह खाने के वक्त आया था, इसलिए सबके साथ उसे भी खाना दिया गया। लेकिन उसके बाद मैंने उससे कह दिया कि वह हमारे साथ तभी रह सकता है, जब कि हमारे साथ सारे दिन जो काम उसे दिया जाय उसे करने को वह तैयार हो। तबसे अभी तक हममें से किसी को भी वह दिखाई नहीं दिया है।

मैं चाहता हूं कि ऐसा मामला फिर मेरे सामने न आये तो अच्छा। नौजवान स्त्री-पुरुषों को अपने लिए भीख मांगने में शर्म आनी चाहिए। शारीरिक श्रम के लिए शर्म का जो झूठा भाव हममें आ गया है, अगर उससे हम मुक्त हो जायें तो, जिनमें थोड़ी-बहुत भी बुद्धि है, ऐसे नौजवान स्त्री-पुरुषों के लिए काम की कोई कमी नहीं है। काफी काम उनके लिए पड़ा हुआ है।

अंग्रेजी से] **मो० क० गांधी**

मेरा भ्रमण

(३)

अकोला

२१-२-३५—तीसरे पहर अकोला पहुँचा। सांझ को बरार की प्रसिद्ध राष्ट्रसेविका श्रीमती दुर्गाताई जोशी के साथ उमरी गांव गया। अकोला से यह गांव करीब ३ मील है। यहां श्री किशोरलाल मशरूवाला की भतीजी श्री० तारा बहिन तथा श्री० सुशीला बहिन लोक-सेवा का कार्य कर रही हैं। ग्राम-पंचायत की साफ-सुथरी जगह में ये दोनों बहिनें २६ बालक-बालिकाओं को पढ़ाती तथा उन्हें नहलाती और कंघी करती हैं। दवा-दारू भी देती हैं। ये दोनों देवियां गांव से लौट रही थीं, पर श्री० दुर्गाताई को देखते ही हमारे साथ हो लीं, और उमरी गांव में उन्होंने जाकर मूक रीति से यह साबित कर दिया कि बच्चों के हृदय में उन्होंने अपनी सेवा के द्वारा किस प्रकार प्रेम और आत्मीयता का स्थान कर लिया है। बच्चे उन्हें अपनी मां की भांति मानते हैं। इस गांव में ३ घर मांगों के हैं, १० घर महारों के हैं, ५ घर ढोहोर लोगों के हैं और ६ घर चमारों के हैं। उक्त बहिनों के सत्प्रयत्न से इस गांव से अस्पृश्यता के दूर होने में सन्देह नहीं है।

उमरी के पास ही तिलक राष्ट्रीय शाला है। बरार की यह सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था है। बड़ा ही रम्य स्थान है। चारों ओर हरे-हरे खेत और शाला का सघन कदलीवन देखकर चित्त प्रसन्न हो गया। सन् १९१९ में बापू साहब सहस्रबुद्धे ने इस संस्था को स्थापित किया था। शाला की २७ एकड़ जमीन है। दो कुएँ हैं। नये विशाल कुएँ को श्री किशनलाल ओंकारदास ने १,८२७) दानस्वरूप देकर बनवाया है। अभी तो विद्यार्थी तथा अध्यापकगण झोंपड़ियों में ही रहते हैं। शाला का एक पक्का भवन तीन-चार महीने में बनकर तैयार हो जायगा। ३२ विद्यार्थी आजकल इस राष्ट्रीय शाला में विद्याध्ययन करते हैं। यह शिक्षण-शाला प्राचीन ऋषि-कुल का स्मरण दिलाती है।

उमरी से लौटकर रात को ९ बजे नवाबपुरा की हरिजन-बस्ती देखी। यह भंगियों का मुहल्ला है। कुल ३५ घर हैं। ये लोग अलवर तथा राजपूताने की अन्य रियासतों के रहवासी हैं। संघ की ओर से यहां एक रात्रि-पाठशाला चलती है। इसमें २६ बच्चों की औसत-हाजिरी रहती है। संघ के उत्साही कार्यकर्ता श्री साबड़ारामजी बड़े प्रेम से हरिजन बच्चों को पढ़ाते हैं। पाठशाला एक हरिजन भाई के घर में लगती है। बस्ती खूब स्वच्छ रहती है। मकान उनके अपने हैं। पानी और रोशनी की कोई शिकायत नहीं। मर्दानजी नाम का एक मेहतर भाई बच्चों की शिक्षा में खूब रस लेता है।

दूसरे दिन सबेरे श्री० दुर्गाताई के साथ देशमुख 'फाइल' देखी। फाइल इधर महाराष्ट्र में मुहल्ले को कहते हैं। यह भी भंगियों की बस्ती है। इस बस्ती में ज्यादातर बुंदेलखंडी मेहतर रहते हैं। चदू भाई का मकान खूब स्वच्छ और सुन्दर है। इसकी लड़की नार्मल स्कूल में पढ़ती है। इसके यहां दो-तीन अखबार भी आते हैं। यह कुटुंब काफी प्रगतिशील विचारों का है।

थोड़ी ही दूर पर तार-फाइल में इन भाइयों की एक धर्मशाला बन रही है। १,२००) की तो जमीन खरीदी है, और करीब ४००) मकान बनवाने में अबतक खर्च कर चुके हैं। इसमें वाचनालय भी रहेगा और पाठशाला भी। इन लोगोंने एक-एक रुपया २० महीने तक देकर यह धर्मस्थान बनवाया है। वसंत-पंचमी के दिन इस 'वाल्मीकि-हरिजन-सेवा-समाज' का उद्घाटन बड़े समारोह के साथ हुआ था। सवर्ण हिंदुओंने भी उनके इस उत्सव में बड़े प्रेम से भाग लिया था। उस दिन इन लोगोंने भंडारा भी दिया था। इनके गुरुजी इस बस्ती में अच्छा सुधार-कार्य कर रहे हैं। यह बस्ती तो अच्छी बात है, पर बस्ती इनकी काफी गन्दी रहती है। चारों तरफ सूअरों का मैला पड़ा रहता है। धर्मशाला तो तभी छाजेगी जब मुहल्ले से यह सारी गंदगी दूर हो जायगी।

फिर हमने "बरार-दलित महिला फिरी बोर्डिंग" का निरीक्षण किया। श्री० काशीबाई नाम की एक महार महिला इस बोर्डिंग की अवैतनिक सुपरिन्टेंडेंट हैं। एक महार दम्पती इस संस्था को तन, मन और धन से चला रहे हैं। ये दोनों पति-पत्नी बोर्डिंग की लड़कियों को अपनी ही सन्तान की तरह रखते हैं। एक लड़की यहां मांग जाति की भी है। कुल २५) माहवारी खर्चा है। यहां की ५ लड़कियां तो ए० वी० स्कूल में पढ़ती हैं और ४ अपर प्राइमरी स्कूल में।

समयाभाव से, मैं अकोला का 'जानोजी बोर्डिंग' नहीं देख सका। इसमें ५० के करीब विद्यार्थी रहते हैं। अकोला में एक और छोटा-सा हरिजन-बोर्डिंग है, जिसका नाम 'चोखा मेला बोर्डिंग' है। मराठी मध्यप्रान्त और महाराष्ट्र में महार जाति शिक्षा में बहुत आगे है, इसमें सन्देह नहीं।

नागपुर

२३, २४-२-३५—वर्धा में एक दिन ठहर कर २३ फरवरी की शाम को नागपुर पहुँचा। मेरे पहुँचने के एक घंटे बाद सीताबर्डी में गांधीजी के हाथ से खादी-भंडार के नये भवन का उद्घाटन होनेवाला था। इससे पहले दोपहर को एक तीसरा खादी-भंडार गांधीजी खोल चुके थे। नागपुर में दो खादी-भंडारों का स्वावलंबन-पद्धति से चलना तथा एक तीसरे भंडार का खुलना खादी की लोकप्रियता का निश्चय ही एक सबल प्रमाण है। गांधीजीने खादी-भंडार खोले, हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण किया, चिटनीस पार्क की सार्वजनिक सभा में भाषण दिया, पर नरकेसरी स्व० अभ्यंकर

की याद तो उन्हे सभी जगह आई। दिवंगत अभ्यंकर के वियोग को उन्होंने, जहा जब बोलने का अवसर मिला, बड़े ही हृदय-स्पर्शी शब्दों में व्यक्त किया। "कैलाशवासी अभ्यंकर की मृत्यु से मुझे उतना ही दुःख हुआ है, जितना कि किसी को अपने प्रिय-से-प्रिय रिश्तेदार की मृत्यु से हो सकता है, इसमें कोई अतिशयोक्ति न माने। उनका यह वियोग मुझे बहुत खला है। मैं किन शब्दो में अपने हृदय का दुःख प्रगट करूँ।" गाधीजी के ये करुण शब्द सुनकर सैकडों नर-नारियो की आंखें भर आई। जिस वीरात्मा की मृत्यु से गाधीजी-जैसे अनासक्त पुरुष को दुःख होता हो, उसकी अनुपम देशभक्ति और लोक सेवा में किसे स देह हो सकता है?

सार्वजनिक सभा श्रीमती अनसूयाबाई काले की अध्यक्षता में हुई। खादी-प्रवृत्ति को स्वदेशी सौर-मंडल का केन्द्र बतलाते हुए गाधीजीने ग्राम-उद्योग के सम्बन्ध म बड़ा ही मार्मिक भाषण किया। यह भाषण इसी अंक में अलग दिया जाता है।

समय थोडा और फिर यह दौड़ा-दौड। ऐसे में एकाध ही बस्ती देख सकता था। अतः श्री पटवर्द्धनजी मुझे नागपुर की सबसे खराब बस्ती झाडतरोडी दिखाने ले गये। यह मुहल्ला मेहतरो का है, और इसे मैंने 'खराब' इस अर्थ मे कहा है कि बरसात के दिनो में इस बस्ती में आवागमन अत्यन्त कष्टसाध्य हो जाता है। जब ये लोग धनतोली मे काम करने जाते हैं तो सबसे पहले एक बरसाती नाला पार करते हैं, फिर रेल की लाइन लाघते है। यह लाइन काफी ऊची है। दोनों ओर ढालू है। बस्ती की दूसरी तरफ भी नाला है। गिरते-फिसलते फिर भी बेचारे किसी तरह अपनी ड्यूटी पर पहुँचते हैं। जरा भी देर हुई कि गैरहाजिरी। बस्ती को दूसरी जगह बसाने की तजवीज म्यूनिसिपैलिटीने की है सही, पर वह जगह शहर से तीन मील दूर है। यह भी एक आफत है। यह महान् कष्ट तो तभी दूर हो सकता है, जब या तो उस नाले और रेलवे लाइन के ऊपर पुल बनवा दिया जाय अथवा पास मे किसी दूसरी जगह यह बस्ती बसवा दी जाय।

इस बस्ती में करीब ६० घर भंगियो के हैं, और ४५ झोंपडियां बसोरों की। बसोर बुंदेलखंड के हैं। पेट की ज्वाला बुझाने काले कोसो से आकर यहां घास-फूस की झोंपडियो में गुजर कर रहे है। बांस की टोकरी, सूप वगैरा बनाते हैं। मैंने उनसे बुंदेलखडी बोली में पूछा, तो बड़े प्रेम से बुड्ढेने जवाब दिया—"महाराज, हमारी खुशी को आज कौन पार। हम राजनगर-खजराहे के आयें, और तुम सोउ उतईं के आव, सो सांचूं तुम हमें प्रान से मिले हो।" वह भटँधरा (आधा अधा) मारे हालफूल के नाचने लगा। मेरी आंखें भर आईं। अपने देश की बोली में कैसा जादू होता है, कितना आकर्षण होता है, यह मुझे उस दिन प्रत्यक्ष हो गया।

संघ की ओर से झाडतरोडी बस्ती में एक पाठशाला चलती है, जिसे म्यूनिसिपैलिटी अब खुद ले लेना चाहती है। पाठशाला के लिए म्यूनिसिपैलिटीने एक अच्छा नया मकान बनवा दिया है। एक अध्यापक यहा ५ घंटे पढाता है और एक २ घंटे। करीब ५० बच्चे इस पाठशाला में पढते हैं। मासिक खर्चा ३०) के लगभग आता है।

संघ की दूसरी पाठशाला हंसापुरी की चमार बस्ती में है, जिसमें बालक-बालिकाएँ सब मिलाकर ४० विद्यार्थी पढते हैं। इस पाठशाला का भी १०) मासिक खर्चा है।

खलासी लाइन की महार आबादी में कन्याशाला है, जहां ५० बालिकाएँ पढती हैं। समयाभाव से मैं इन पाठशालाओं को देख नहीं सका।

संघ २५ हरिजन विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां देता है, जिसमें ६ छात्र प्रसिद्ध चोखामेला बोर्डिंग में रहते हैं।

सघ की ओर से तीन पाठशालाएँ रामटेक। पथरई और पारसिवनी में भी चल रही हैं, जिनमें गोंड़ और महारों के लड़के पढ़ते हैं। पथरई घोर जगल के बीच मे है। गोंड़ लोगों की यहां बहुत बडी आबादी है। जंगली जातियो के बीच काम करनेवालो के लिए यहां बड़ा अच्छा क्षेत्र है।

बुरहानपुर

२५-२-३५—सबेरे ६ बजे बुरहानपुर पहुँचा। यह सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक शहर खंडवा जिले में है। जनसंख्या लगभग ४५ हजार के है। १५ हजार के करीब तो बुनकर ही हैं। बुनकर हिंदू और मुसलमान दोनों ही हैं। ५,००० हाथ के करघे आज भी यहा चलते हैं। साड़ियां, पगड़ी, दुपट्टा, फेंटा, खन, लुंगी, रूमाल आदि बुरहानपुर के दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। सूत अधिकतर शोलापुर का लगाते हैं और कुछ विलायती सूत भी बापरते हैं। बिजली की पावर के ९० करघे देखते-देखते दो साल के अंदर चलने लगे हैं। इस लुभावनी चीज को अगर बुनकरोंने उत्तेजन दिया तो हाथ के करघां का कुछ ही वर्षो मे नाम-ही-नाम रह जायगा। पावर का संचा २५०) की लागत से चालू हो जाता है। पगड़ी, दुपट्टे और फेंटे वगैरा की चलन कम हो जाने से बुरहानपुरी बुनकरो का धधा दिन-दिन कम होता जाता है। यहां का तारजोब का काम किसी जमाने में अद्वितीय माना जाता था। कारीगर आज भी मौजूद हैं, पर उस माल की न चलन है न खपत। कलाबत्तू का काम तो यहा का संसार मे प्रसिद्ध था। एसिस्टेंट कमिश्नर मि० बेडीने अपनी १८७६ की रिपोर्ट में लिखा है—"अकेले कलाबत्तू के धधे से म्यूनिसिपैलिटी को ५,०००) की सालाना आमदनी होती थी। फी पासा* म्यूनिसिपैलिटी ।।) चार्ज करती थी। १०,००० पासे हरसाल खींचे जाते थे। १७ लाख रुपये की कलाबत्तू हरसाल तैयार होती थी। यह चीज दूर-दूर तक जाती थी। पर अब यह धंधा मर गया है।" अब तो उलटे यहा कलाबत्तू बाहर से मंगाई जाती है, जो मशीन से तैयार होती है।

और कागज भी यहा अच्छा बनता था। जैसे जरी की कारीगरी देखते-देखते काफूर हो गई, उसी तरह इन जालिम मिलोंने कागज के उद्योग को भी साफ कर दिया। ताप्ती के तीर पर जब हम खड़े हुए तो उस पार जैनाबाद में कागज के कारखानो के खंडहर देखकर आखो में आंसू आ गये। इस हत्यारे यंत्रयुगने किस तरह हमारे ग्राम-उद्योगों को नष्ट किया है और लोगों के मुंह का कौर किस तरह छिन गया है और छिनता जा रहा है—इसका रहस्य उन खडावशेषो को देखकर आंखों के सामने आ गया।

हरिजन बस्तियां देखने हम जा रहे थे कि बीच में जामा-मसजिद दिखाई दी। पैर धोकर अंदर दाखिल हुए। मसजिद बड़ी

* ६० तोले के चांदी के पासे पर १२ से ४२ माशे तक सोना चढ़ाया जाता था, और उसका तार खींचा जाता था।

ही मजबूत बनी हुई है। अंदर फारसी के साथ-साथ संस्कृत में भी एक शिलालेख है, जिसका पहला श्लोक है—

अव्यक्तं व्यापकं नित्यं गुणातीतं चिदात्मकं।
व्यक्तस्य कारणं वंदे व्यक्त्वा व्यक्तं तमीश्वरम्॥

नीचे तिथि-वार-सहित संवत् १६४६ अंकित है। और यह भी लिखा है कि मुबारकशाह के सुपुत्र श्री एदिलशाहने इस पवित्र धर्मस्थान का निर्माण किया।

कैसे सहिष्णुतापूर्ण दिन थे वे! फारसी और संस्कृत दोनों के ही लेख एक ही शिला पर खुदे हुए हैं। तवारीखों के पन्नों में सांप्रदायिकता का जहरीला रंग देखनेवाले हिंदू और मुसलमानों को चाहिए कि राम-रहीम के उन पाकदिल बंदों के बनवाये हुए इन धर्मस्थानों पर भी कभी-कभी नजर डाल लिया करें। इसमें संदेह नहीं कि बुराई के मुकाबले में भलाई फिर भी दुनिया में ज्यादा है। इस मसजिद की स्थापत्यकला भी प्रशंसनीय है।

सांझ को मीटिंग से पहले हमने दो हरिजन-बस्तियां देखीं—एक तो आलमगंज की बस्ती और दूसरी खैराती बाजार की। पहली बस्ती में निमाड़ी चमारों की आबादी है और दूसरी में करीब २० घर मेहतरों के हैं। आलमगंज के चमार चमड़ा पकाते व रंगते हैं, और जूते तथा मोट बनाते हैं। इस बस्ती में ८ कुएँ हैं। इन लोगोंने आपस में चंदा करके अपना एक विशाल मंदिर बनवाया है, जिसमें वाचनालय भी रहेगा। इनके १५ लड़के सरकारी स्कूल में पढ़ते हैं। रात्रि-पाठशाला इस बस्ती में संघ की ओर से खोलदी जाय, तो बड़ी उम्र के हरिजन भाई भी पढ़ेंगे, ऐसी इच्छा उन्होंने प्रकट की। इन लोगों में न तो कोई मुर्दार मांस खाता है, न दारू पीता है। सिंहाजी महाराज को ये लोग मानते हैं।

खैराती बाजार की मेहतर-बस्ती ताप्ती के तीर पर बसी हुई है। करीब २० घर हैं। मकान साफ-सुथरे हैं। इनके तीन-चार बच्चे सरकारी स्कूल में पढ़ते हैं।

रात को ८ बजे तिलक भवन में हरिजन-सेवियों की एक छोटी-सी सभा हुई, जिसमें मैंने हरिजन-प्रवृत्ति पर भाषण दिया।

वि० ह०

गांधीजी का भाषण

[२३ फरवरी को नागपुर की सार्वजनिक सभा में कैलाशवासी श्री अभ्यंकर का करुण शब्दों में स्मरण करते हुए गांधीजीने 'ग्रामउद्योग-पुनरुद्धार' पर जो भाषण किया था, उसे हम नीचे देते हैं।—सं०]

अर्थशास्त्र के सिद्धान्त प्रत्येक देश की परिस्थिति के अधीन रहते हैं। फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैंड और अमेरिका के अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त एकसमान नहीं है। हमारा देश स्वर्णभूमि कहा जाता था। स्वर्णभूमि मानने का यह अर्थ नहीं कि हम यहां खूब सोना-चांदी पैदा करते थे, बल्कि अनाज की समृद्धि के कारण हम भारत को स्वर्णभूमि मानते थे। सब दुनिया को हम धान्य भेजते और बाहर से सोना-चांदी लाते थे, इसलिए हमारी भारतभूमि स्वर्णभूमि थी। अब भी हम अपने देश को स्वर्णभूमि बना सकते हैं। चीन को छोड़कर भारत के जैसा सुभीता और किसी मुल्क को ईश्वरने नहीं दिया है। जितने अधिक जिंदा यंत्र हिंदुस्तान के पास हैं उतने सिवा चीन के अन्यत्र कहीं भी नहीं। इसका अर्थ यह है कि अगर मशीनें इस देश में आईं तो सब लोगों का बेकार होकर मर जाना निश्चित है। अगर हम देहातियों के आश्रित बनकर देहाती चीजों पर अपनी आवश्यकताओं को निर्भर रखेंगे तो और तभी देहातियों की बुरी दशा को हम मिटा सकते है। आज देहाती भाई बुद्धि-रहित हे, धंधा-रहित तो है ही। इसका प्रायश्चित्त शहरवालों को करना चाहिए। ईश्वर से बढ़कर कोई धैर्य नहीं रख सकता। लेकिन तब ईश्वर के भी धैर्य का अन्त हो जायगा, जब हम हमेशा ही अपने धर्म से च्युत रहेंगे। ईश्वर इस हालत को कैसे सहन कर सकेगा?

पारसाल हरिजन-प्रवास के सिलसिले में उड़ीसा में मैंने जो पैदल यात्रा की थी उसीमें देहातियों के घनिष्ठ संसर्ग में आने का मुझे अवसर मिला था। उनके रहन-सहन और उनके कष्टों का अनुभव मोटर या रेलगाड़ी की मुसाफरी में कोई कैसे कर सकता है? वे लोग तो आज जड़वत् बनते जा रहे हैं। आलस्य में बैठे-बैठे अपने दिन काटते हैं। कारण यह है कि उनके पास खेती-पाती के थोड़े-से धंधे के सिवाय और कुछ भी नहीं है। हस्तकला का करीब-करीब नाश हो गया है। इससे स्वतंत्रता मिलने पर भी भारत का उदय तबतक असंभव ही है जबतक गांवों के लोग निराश और जड़वत् बने रहते हैं। इसलिए मैंने वहां यह निश्चय किया कि भारत के गांवों के उद्योग के पुनरुद्धार की चेष्टा हमें करनी ही होगी। मैं जानता हूँ कि मेरा यह उद्योग ६६ वर्ष की इस उत्तरावस्था में एक मूर्खता का ही प्रयास माना जायगा। लेकिन जो मनुष्य ईश्वर के प्रति विश्वास रखकर उसीके काम के लिए—फिर भले उसका अंतकाल भी निकट हो—प्रयत्न करता है, वह कभी निष्फल नहीं जाता। मुझे यह विश्वास है कि यह मेरा कार्य नहीं, बल्कि ईश्वर का है।

इस कार्य में हमारे हृदय-परिवर्तन की ही जरूरत है, धन की नहीं। थोड़े स्वयं-सेवकों की अवश्य आवश्यकता है। जहांतक वह पैदल जा सकता उससे ज्यादा जाना पड़े, यह बात नहीं है। अगर वह इर्द-गिर्द की देहातों तक चला जाय तो भी हमारा काम निपट जायगा। उद्योग-संघ की बात को वह गांवों में जाकर रखे तो हम अपने काम को कर सकते हैं। सूक्ष्मताओं को बताने का समय नहीं रहा। यदि आप लोग इस विषय का भली-भांति परिचय चाहते हैं तो आप लोग 'हरिजन' और हिन्दी 'हरिजन-सेवक' को पढ़ें। इन अखबारों में आपको इस विषय की पूरी-पूरी जानकारी मिल सकती है। यह जिम्मेवारी कोई छोटी जिम्मेवारी नहीं। यहां की एजेंसी श्री टिकेकरजीने ले ली है। किसी भी एजेंट को अपनी मर्यादा से बाहर अधिकार नहीं दिया जा सकता। आप सब लोग उनसे जान सकते हैं कि आपका क्या कर्तव्य है और ग्रामउद्योग-संघ को आप किस तरह सहायता दे सकते हैं।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369.

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, १५ मार्च १९३५ [संख्या ४

विषय-सूची

सतीश बाबू के साथ एक घण्टा

हाल में, कुछ दिनों के लिए, मुझे बंगाल जाना पड़ा था। सुन्दरबन-डेल्टा में सर डैनियल हैमिल्टन की जमींदारी का जो भाग है, गया तो मैं उसे देखने के लिए था, लेकिन वहां जाने में कलकत्ता तो रास्ते में पड़ता ही है। और कलकत्ता होकर जाऊं फिर भी सतीश बाबू से न मिलूं, यह हो ही नहीं सकता। सतीश-बाबू हमारे लिए अनजाने नहीं हैं। वह बंगाल केमिकल एण्ड फार्मेस्युटिकल वर्क्स के प्राण-रूप थे, उसे छोड़कर खादी-कार्य में उन्होंने अपना जीवन लगाया और दरिद्रनारायण की सेवा के लिए भिखारी बन गये। १९३२ में गांधीजीने हरिजनों के लिए उपवास किया, तबसे हरिजन-सेवा में दत्तचित्त हो गये हैं। कलकत्ता के हरिजन जहां रहते हैं उन्हींके बीच वह भी जा बसे हैं, जिससे कि हरिजनों के सुख-दुःख अच्छी तरह देखे-समझे जा सकें। यहीं रहते हुए, आजकल वह हरिजन-सेवा के साथ-साथ ग्राम-उद्योग-कार्य पर भी ध्यान दे रहे हैं। लेकिन मैं एक दूसरे काम के लिए आया था, इसलिए सतीश बाबू के यहां तो जाकर एक नजर देख आने भर का समय ही मुझे मिल पाया।

सतीश बाबू को 'बेरी-बेरी' बीमारी हो रही थी, फिर भी वह खटिया पर नहीं पड़े थे। उलटे, उनके आसपास चमड़े की बनावट-सम्बन्धी बड़े-बड़े ग्रन्थ पड़े हुए थे और बाहर बरामदे में आस-पास से आये हुए बीमार हरिजनों का इलाज हो रहा था।

मैं उनसे आराम करने के लिए कहनेवाला था, लेकिन मैं कुछ कहता इससे पहले ही वह उठ खड़े हुए और घूम-फिर कर अपना मकान बताने लगे। मैंने देखा कि इस छोटे-से मकान में ही एक छोटा-सा दवाखाना है, जहां कुछ मरीजों के रहने की भी व्यवस्था है। साथ ही सतीश बाबू के साथ काम करनेवाले कार्य-कर्त्ताओं और समय-समय आनेवाले महमानों के लिए भी गुंजायश की हुई है। अपने साथ काम करनेवाली दो स्त्रियों का परिचय कराते हुए सतीश बाबूने मुझसे कहा—"ये दो स्त्रियां अभीतक पड़ोस की टट्टियां साफ करने का काम किये जा रही हैं। शुरुआत में तो इस काम के लिए बहुत-सी स्त्रियां आगे आई थीं, लेकिन बाद में धीरे-धीरे और तो खिसक गईं मगर ये अभी भी काम कर रही हैं। अलसुबह ये टट्टी साफ करने गई थीं, वहां से आकर नहा चुकी हैं, और अब हिन्दी पढ़ेंगी। रसोई में भी यही मदद करती हैं, और बीमारों के कपड़े भी यही धोती हैं।"

यहां नौकर नहीं हैं। इसलिए यहां रहनेवाले स्त्री-पुरुष ही, बाहरी काम के साथ-साथ, यहां का काम-काज भी आपस में मिल-जुलकर ही कर लेते हैं।

सतीश बाबू अपना छोटा-सा दवाखाना बता रहे थे, उस समय मैंने उनसे पूछा—"आपके पास बीमार किस तरह के आते हैं?" इसपर उन्होंने कहा, "जिनके इलाज का कहीं ठिकाना नहीं लगता। वह जवान औरत जब यहां लाई गई, उसकी पागलों की सी हालत हो रही थी। घर से निकाल दी जाने के कारण, वह सड़कों पर मारी फिरती थी। न जाने कितने दिनों से उसे खाने को नहीं मिला था। हाड़ तक सूख गये थे और स्मरणशक्ति बिलकुल नष्ट हो गई थी। उसे यहां आये थोड़े ही दिन हुए हैं। अभी भी है तो वह बहुत कमजोर, मगर उसकी स्मरणशक्ति पुनः जागृत हो चली है, समझदारी की बातें करने लगी है, और धीरे-धीरे हालत सुधरती जा रही है। आप आये तब, बरामदे में बैठी हुई एक अन्य स्त्री को भी आपने देखा होगा। अभी-अभी वह यहां से गई है। उसके दुष्ट पतिने उसे गर्मी की बीमारी लगाकर घर से निकाल दिया है। वह जब यहां आई तब उसके सारे शरीर पर गर्मी के घाव हो रहे थे, लेकिन अब करीब-करीब सब मिट गये हैं।"

"इस तरह की बीमारियों के इलाज के लिए जिन चीजों की जरूरत होती है, वे सब आपके पास हैं?" मैंने पूछा।

"दो डाक्टर मेरे साथ सेवा-भाव से इस काम में लग गये हैं। वे यहीं रहते और मेरी मदद करते हैं। और उस आलमारी में हमारी सब दवाइयां हैं।" यह कहकर उन्होंने मुझे कुछ दवाइयां बतलाईं, जिन्हें वह बहुत सस्ते में बनाते हैं पर अगर बाजार में लेने जाओ तो कम-से-कम दस-गुने दाम लगें। उन्होंने कहा, "इंजेक्शन की इस छोटी-सी टयूबने उस अभागी औरत को अच्छा किया है। इसपर हमारा एक आना खर्च हुआ है, लेकिन दवाफरोश इसीको एक रुपये में बेचते हैं। और देखिए, ये गोलियां हैं। खांसी, सर्दी और श्लेष्मज्वर (इनफ्लुएञ्जा) के लिए अकसीर हैं। तीन दिन के लायक गोलियां एक आने की हैं, लेकिन यही चीज देकर डाक्टर हर रोज के चार से छ आने तक वसूल करते हैं। मेरी 'सस्ता उपचार' नामक छोटी-सी पुस्तक में आपको इन सब दवाइयों का वर्णन मिलेगा।"

बात करते हुए, बीच में, कई बार उन्हें टेलीफोन को भी सम्हालना पड़ा। आखिरी बार टेलीफोन पर उन्होंने जो जवाब दिया, उसमें किसीको 'इमेटिन' का इंजेक्शन देने के लिए कहा था। यह सुनकर मैंने पूछा, "इंजेक्शन किसको दिया जायगा?"

इसपर वह हँसे और कहा, "यह तो हमारा एक लाड़ला बछड़ा है, उसके लिए है। फोन हेमप्रभादेवी (सतीश बाबू की पत्नी) ने किया था। कुछ समय पूर्व सोदपुर-आश्रम के लिए हमने सवा-सौ रुपये में एक सुन्दर गाय खरीदी थी, जो रोज २४ सेर दूध देती थी। लेकिन कुछ दिनों बाद वह बियाई और अचानक बीमार पड़कर मर गई। उसका बछड़ा है, उसे आव के दस्त लग गये मालूम पड़ते हैं। मैं तो अब ढोरो का भी डाक्टर हो गया हूँ न!"

सस्ता उपचार, पेटेण्ट दवाइयो और व्यापारिक रहस्यो के बारे में हमारी और भी बातचीत हुई। होते-होते उनकी बनाई हुई फाउण्टेनपेन की स्याही की भी बात आई, जिसे वह कई महीनो से हमारे लिए भेज रहे हैं। मैंने कहा, "बाजार में फाउण्टेनपेन की जो बढ़िया-से-बढ़िया स्याही मिलती है उससे यह मुकाबला कर सकती है।"

"इतने पर भी," सतीश बाबू ने कहा, "इसकी कीमत बहुत कम है। इन सस्ते उपचारो, सस्ती स्याही और जो साबुन आप यहा देखते हैं उसके बनाने में मेरा यही उद्देश्य है कि गरीब-से-गरीब आदमी भी अपने रोजमर्रा के इस्तैमाल की चीजें घर में ही बना लें। इन व्यापारिक रहस्यो ने तो हमे चौपट कर दिया है। मैं तो समझता हूँ कि व्यापारिक रहस्य जैसी कोई बात है ही नहीं, यह बता देना कोई मुश्किल बात नही है। इस स्याही की बोतल को ही देखिए, जिसे आप बाजार की अच्छी-से-अच्छी स्याही के मुकाबले की बताते हैं। १२ औंस स्याही की यह बोतल तीन आने से ज्यादा मूल्य की नही है। हर कोई इसे बना सकता है। मगर हम २ औंस स्याही वाली शीशी बाजार में ३ से ६ आने तक देकर खरीदते हैं। मैने एक मित्र से कहा कि हमें इस बोतल को बिकरी के लिए बाजार मे रखना चाहिए, तो उसने आशंका प्रगट की कि यह बिकेगी नही। मैने कहा कि व्यापारी लोग इसे हमारे पास से ६ आने मे लेकर ८ आने में बेचें तो भी, आज बाजार मे जो स्याही मिलती है उसकी बनिस्बत, यह दुगुनी-चौगुनी सस्ती पड़ेगी। लेकिन फिर भी मित्र को विश्वास न हुआ। उन्होंने कहा, हम तो ऐसी स्याही खरीदने के आदी हो रहे हैं, जो हो तो चाहे २ औंस ही पर हो रंगीन लेबल-वाले पुट्ठे के डिब्बे में बन्द सुन्दर शीशी के अन्दर। विदेशो से आनेवाली स्याही तो और भी अधिक सावधानी के साथ पैक की हुई होती है। इस प्रकार, जब-जब हम २ औंस की शीशी खरीदने जाते हैं तभी हमें स्याही के साथ शीशी, लेबल, पुट्ठे आदि के लिए भी पैसे देने पड़ते हैं। और यह सब उस हालत मे, जब कि आप जानते है स्याही बनाना कितना आसान है।" यह कहते हुए, कुछ ही मिनटो में, मेरे देखते-देखते, उन्होंने एक औंस स्याही बनाकर बता दी। उन्होने कहा, "यह स्याही बनाने की किताब है, जिसका मूल्य २) रु० है; लेकिन मेरी तरकीब दूसरी है, उसका कोई मूल्य नही है। मेरी तरकीब इस प्रकार है :—

गालनट का चूरा ४ औंस लेकर उसमें, दो बार मे करके, ६० औंस पानी मिलाओ। फिर पन्द्रह दिन या और अधिक समय तक उसे ज्यों-का-त्यों रहने दो। इससे वह घोल पारदर्शी हो जायगा और नट का चूरा नीचे जम जायगा। तब पानी को नितार कर इस अन्दाज से उसमें और पानी मिलाओ कि कुल मिलाकर ६० औंस हो जाय। इसके बाद नीचे लिखी चीजें उसमें और मिलाओ—फेर सलफेट २० ड्राम; सल्फरिक एसिड ४० मिनिम; वाटरब्लू (आई० जी०) ५ ड्राम; मेथिलेटेड स्पिरिट २० ड्राम। जैसा कि अभी आप देख चुके हैं, कोई भी आदमी इस तरह स्याही बना सकता है।"

इतने में चमड़े की बनावट-सम्बन्धी रसायन-शास्त्र की दो बड़ी-बड़ी किताबों पर मेरी नजर पड़ी। सतीश बाबूने कहा— "इनके लिए मुझे काफी खर्च करना पड़ा है, ४२) रु० इनपर लगे है। पर किया क्या जाय? पहले तो हमारे नौजवान इस विषय का अध्ययन ही नही करते, और अगर करते हैं तो अमेरिका से आई हुई इन किताबों पर ही उनका सारा दारोमदार रहता है। प्रयोग तो वे बिलकुल करते ही नही। गांवो मे गरीब चमार और मोची अपनी उसी पुरानी चाल पर चले जा रहे हैं, उन्हे नई दिशा सुझानेवाले होशियार आदमी नही मिलते। लेकिन उनका विचार तो हमारे ये नौजवान करने ही क्यो लगे? अत. उनके लिए हमें सस्ती पुस्तके तैयार करनी चाहिएं।"

इस प्रकार बाते करते हुए हम उनकी छोटी मोटर (बेबी ऑस्टिन) मे बैठे। बड़ा शहर है, इधर से उधर दूर-दूर तक जाना पड़ता है, इसलिए उन्हे यह मोटर रखनी पड़ी है। लेकिन इसका इस्तैमाल वह वैसी ही भावना से करते हैं जैसी कि दरिद्र-नारायण के किसी सेवक मे होनी चाहिए। मोटर-ड्राइवर उनके चर्मालय का ही एक आदमी है, और पेट्रोल आदि का खर्च भी हर महीने २०—२५ रु० से ज्यादा मुश्किल से ही कभी बैठता होगा। अस्तु। गन्दे गटर, सड़े हुए पानी के गड्ढो और आदमियो से खचाखच भरे हुए मकानों के बीच होकर हम चर्मालय पहुँचे। इस चर्मालय का आर्थिक भार हरिजन-सेवक-संघ पर है, और सतीश बाबू इसे अपना नियमित समय देते हैं। कुछ समय पहले यह जगह खरीदी गई थी। उस समय यह गिरे-पड़े मकानों का एक लम्बा मैदान था। लेकिन अपने साथी कार्यकर्त्ताओं की सहायता से, सतीश बाबूने इसे नया रूप दे दिया है। इसमें विद्यार्थियो के सोने के लिए एक छोटी-सी अटारी है, छोटा-सा रसोई-घर है, गुसलखाना है, और एक प्रयोगशाला है; बाकी सब कमरे चर्मालय के लिए दिये हुए हैं। चर्मालय तो मैने इससे पहले भी देखे हैं, लेकिन उनकी बदबू के मारे जहा मुझे नाक के आगे रूमाल लगाना पड़ा था, वहां इस चर्मालय में बदबू का नाम भी नही था। विद्यार्थी, सतीश बाबू की देख-रेख मे, साधारण चमारो के साथ काम कर रहे थे। खाल पका हुआ चमड़ा बनकर बाजार मे पहुँचती है वहा तक की उसकी सब क्रियायें सतीश बाबूने मुझे समझाईं। आंगन में बढ़ई एक बड़े संचे पर काम कर रहे थे। सतीश बाबू मुझे अपनी प्रयोगशाला में ले गये और उस संचे का अपना बनाया हुआ एक छोटा नमूना उन्होने मुझे दिखलाया। उन्होने कहा—"इसकी कीमत डेढ़-हजार रुपये या इससे भी कुछ अधिक पड़ती है और बड़े-बड़े कारखानो में इसका उपयोग होता है। लेकिन ऐसा कोई संचा नही है, जिसे कोई चमार अकेला अपनी झोंपड़ी में बैठकर चला सके। आपने आंगन में जो संचा देखा, इसीलिए मै उसको बना रहा हूँ। 'पावर' से चलनेवाले संचे की जो कीमत होती है उसकी सिर्फ १/१० इसकी कीमत पड़ेगी।"

इसके बाद उन्होंने यह बतलाया कि पेटेण्ट चमड़ा कैसे बनता है। गिद्धों के चोंच मारने से या अन्य प्रकार जो खाल बिगड़ जाती है उसको सब तरह के उपयोग के लायक बनाने की विधि भी उन्होंने मुझे समझाई।

लेकिन अब मुझे यह वर्णन समाप्त करना ही चाहिए। सतीश बाबू से विनयपूर्वक मैंने कहा—"आप थोड़ा आराम करें, और जबतक बेरी-बेरी का रोग दूर न हो जाय तबतक वायु-परिवर्तन के लिए कहीं बाहर चले जायें।" लेकिन वह नहीं डिगे। उन्होंने कहा,—"मैं पूरी सावधानी रख रहा हूँ। पर धर्मालय का काम अभी-अभी शुरू हुआ है, इसलिए मैं उसे छोड़कर नहीं जा सकता। मैं तो रोज नये-नये प्रयोग कर रहा हूँ। मै स्वयं विद्यार्थी हूँ, फिर यहां जो लोग हैं उन्हें तथा जो लोग बाहर से पत्र-द्वारा सलाह पूछते हैं उनको भी सलाह देनी पड़ती है और काम करने का ढग बताना पड़ता है। ऐसी हालत में भला मैं यहां से कही कैसे जा सकता हूँ? नही, मैं तो यहीं जल्द अच्छा हो जाऊँगा।"

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

मेरा भ्रमण

(४)

जबलपुर

२७, २८—२—३५—यहा मैंने तीन हरिजन-बस्तियां देखीं—फूटाताल, भान तलैया और टौरिया। ये तीनो बस्तियां पास-पास लगी हुई हैं। मेहतर, बसोर और चमार इन महल्लो मे रहते हैं। अच्छी स्वच्छ बस्तियां है। घर-आंगन हरे-हरे गोबर और पोतनी माटी से लिपे-पुते बडे सुदर दीखते है। पानी का कहीं-कहीं कष्ट है। यह बात नहीं कि नल न लगे हों, नल तो काफी संख्या में लगे हुए है, पर ऊँचाई के कारण पानी ठीक-ठीक नही चढता। एक कुआं खुद जाय तो पानी का यह कसाला दूर हो जाय। चमार, बसोर, मेहतर सभी उस कुएँ से पानी भरेंगे, ऐसा मुहल्लेवालो ने हमें विश्वास दिलाया। रोशनी की भी ऐसी कोई कमी नहीं है। पर बड़ी-बड़ी टोरों के आडे आ जाने से रोशनी कही-कही पडती नही यह बात जरूरी है। मगर टौरिया की टोरों का तोड़ना आसान काम नही। इन बस्तियों मे नालिया न होने से गंदगी कहीं-कहीं रहती है। ढलाव तो कुदरती है ही, पथरीली जमीन भी है, म्यूनिसिपैलिटी चाहे तो धीरे-धीरे तीन-चार साल के अदर यहा नालिया बनवा दे सकती है। पर म्यूनिसिपैलिटियों का ध्यान इन मुहल्लो की तरफ कम ही जाता है। बंपुलिसो की सफाई तक तो ठीक-ठीक होती नही।

फूटाताल का हरिजन-पुस्तकालय भी देखा। यहां तीन-चार अखबार आते है और थोड़ी-सी पुस्तकें हैं। दस-बारह हरिजन भाई नित्य इस पुस्तकालय में आते और अखबार और पुस्तकें पढते है। इसी स्थान पर रात को हरिजन-पाठशाला लगती है। यह पाठशाला संघ की है। हमें ९ विद्यार्थी हाजिर मिले। २२ बरस तक की उम्र के विद्यार्थी यहां अंग्रेजी पढते हैं। इन युवक विद्यार्थियों में खूब चाव है, खूब लगन है।

गलगला मुहल्ले की रात्रि-पाठशाला म्यूनिसिपैलिटी की ओर से चल रही है। इसमें हमें १४ विद्यार्थी उपस्थित मिले। यहां तीस-तीस साल तक के विद्यार्थी देखने में आये। रात्रि-पाठशालाएँ जिस उद्देश से खोली जाती हैं उसके लिए यह शुभ चिन्ह है। बेलबाग की रात्रि-पाठशाला भी म्यूनिसिपैलिटी की है। यहां जब हम लोग गये, तब वह बंद हो चुकी थी। म्यूनिसिपैलिटी का यह प्रयास अवश्य प्रशंसनीय है। दिन की आम पाठशालाओं में तो सवर्णों के साथ-साथ सर्वत्र हरिजन विद्यार्थी पढ़ते ही हैं। वयस्क हरिजनों के लिए, जिन्हें काम-धंधे के कारण दिन में दम लेने की भी फुर्सत नहीं मिलती, इन रात्रि-पाठशालाओं को खोलकर म्यूनिसिपैलिटीने बड़ा अच्छा काम किया है।

पाठशालाएँ देखकर टौरिया की अथाई में गया। यहां पन्द्रह-बीस मुखिया हरिजनो से बाते की। यहां भी वही सब रोना—वही दारू, वही औसर ब्याह का खर्चा, वही जुआ, वही कर्जा। कुछ नवयुवक इन बुरी लतों से बरी हैं, यह जानकर कुछ संतोष हुआ। मगर बड़े-बूढ़े या पंच-परमेश्वर कहां छोड़ते हैं इन सत्यानासी सनातनी रीति-रिवाजों को!

संघ की एक पाठशाला सदर में भी चल रही है, पर समयाभाव से मै उसे नहीं देख सका। एक काम संघ बड़ा अच्छा कर रहा है, और दूसरों के लिए वह अवश्य अनुकरणीय है। वह है सिलाई का वर्ग। इस वर्ग में १० हरिजन लड़के दर्जी का काम सीख रहे हैं। ये सब बसोरों और मेहतरों के लड़के हैं। मामूली कुरता, कमीज, पैजामा वगैरा सीना व काटना इन्होंने सीख लिया है। संघ का यह विचार है कि जब ये लोग भलीभाति यह काम सीख जायँ, तब इन्हें एक-एक सिंगर-मशीन दे दी जाय, ताकि ये अपने-अपने मुहल्ले में दरजी की दूकाने खोल लें। अभी तो बेचारे हरिजनों को अपने कपड़े-लत्ते बिना नाप के ही सिलवाने पड़ते है। दरजी दूर से अंदाजन उनके बदन का नाप ले लेता है और फिर, चाहे वह कपडा तंग हो चाहे ढीला, सीकर उनके हवाले कर देता है। संघ के इस प्रयत्न से उनका यह अभाव निश्चय ही दूर हो जायगा। शिक्षक को संघ २०) माहवार देता है और वह बड़े प्रेम से अपने विद्यार्थियों को दरजी का काम सिखाता है।

सागर

१ मार्च को ब्योहार राजेन्द्रसिंहजी के साथ सागर पहुँचा, और सारे दिन अपने धंधे-धालम मे ही लगा रहा। न कोई हरिजन-बस्ती ही देख सका और न मढ़ियापुरा की रात्रि-पाठशाला ही। इस पाठशाला को खले अभी तीन ही महीने हुए हैं और इसमें बड़ी उम्र के १५ हरिजन पढते है, यह मुझे संघ के उत्साही मंत्री श्री रतनलाल मालवीयने बतलाया।

मगर मित्रो के आग्रहवश "छत्रसाल व्यायामशाला" देखने के लिए तो जाना ही पड़ा। यह यहा की एक पुरानी व्यायाम-संस्था है। तीस-चालीस बालक और युवक यहां देशी व्यायाम सीखने आते हैं। पर यह बड़े दु:ख की बात है कि व्यायामशाला मे हरिजनों का प्रवेश नहीं। सचमुच यह कितने आश्चर्य और परिताप का विषय है कि जिनके घोड़े का पलेचा (नमदे और कपड़े की बनी हुई जीन) डोरिया (मेहतर) कसा करता था, और जिनकी सेना मे बहादुर डोरियो की भी एक टुकड़ी रहा करती थी, उन्हीं बुंदेलखड-केसरी महाराजा छत्रसाल के पवित्र नाम से अलंकृत सागर की इस व्यायामशाला में हरिजनो का प्रवेश नही है! व्यायामशाला के संचालकों का क्या इस ओर ध्यान आयगा?

कटनी

२, ३—३—३५—सबसे पहले नदी पार की हरिजन-बस्ती देखी। इसमें मेहतरो के २० घर हैं। मकान साफ-सुथरे हैं। सब म्यूनिसिपैलिटी में मुलाजिम हैं। औरत को ४) से ६) तक और मर्द को ६) से ८) तक मिलते हैं। सिवा एक-दो के शराब सभी

[३१ पृष्ठ के पहले कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १५ मार्च, १६३५

अच्छी शुरुआत

एक बहिन ने, जिन्होंने एक अन्य बहिन के साथ मध्यप्रात के एक छोटे-से गांव में अभी हाल में ही काम शुरू किया है, एक बहुत रोचक और उत्साहपूर्ण पत्र भेजा है। उसमें वह लिखती हैं:—

"ग्रामीण जीवन व्यतीत करते हुए मुझे ११ दिन हो चुके हैं, इसलिए मैं समझती हूँ कि अब मैं आपको पत्र लिख सकती हूँ। अभी तक तो मुझे इसमें बड़ा आनन्द आ रहा है। सबेरे और शाम की ठण्डक में शारीरिक मेहनत मुझे बहुत भाती है। मैंने एक गड्ढा खोदा है। वहा से गारे की टोकरी भरकर अपने सिर पर कोई ११ गज दूर अपने मकान के पिछवाड़े लाती हूँ, जहा मैं एक बरामदा बना रही हूँ। १०० से ज्यादा गारे की टोकरिया अभीतक मैं ढो चुकी हूँ। दो दिन तो मैंने रोज ४०-४० टोकरिया ढोई। यह बरामदा, जो कि मैं बना रही हूँ, है तो किसी कदर स्वार्थ की बात, लेकिन बात यह है कि मकान के पिछवाडे से खुले मैदान और दूर के वृक्षाच्छादित पार्वत्य प्रदेश का दृश्य बहुत सुन्दर मालूम पड़ता है; इसलिए दो जरा-जरा-सी खिड़कियो से ही उस दृश्य का आनन्द लेने के बजाय उधर बरामदा बना लेना मुझे ज्यादा अच्छा मालूम पडता है। यह बरामदा १४"×९" आकार का होगा और यहीं आम तौर पर हम रहेंगी और सोया करेंगी।

"म० ब० और मेरे बीच पहला और एकमात्र मतभेद इसीके बारे मे हुआ है, जैसा कि वह आपको लिख भी चुकी है। वह समझती हैं कि इसके लिए मुझे एक मजदूर रखना चाहिए, जो हमें बताये कि किस तरह हम इसे बनावे, नहीं तो मैं गलती कर जाऊँगी और व्यर्थ ही बहुत-सा परिश्रम होगा। लेकिन मुझे तो काम करने में बड़ा आनन्द आता है, मुझे मजदूर की कोई जरूरत नही है और मैं समझती हूँ कि जो काम हम कर सकते हैं उसमें किसीकी मदद लेने की कोई जरूरत है भी नही, फिर जिस गाव में ज्यादातर आदमी अपने मकान खुद ही बनाते हो वहां इतनी जानकारी तो मुफ्त ही मिल जानी चाहिए, जिससे कोई गल्ती न कर सके।

"बरामदा बन जायगा तब मैं बागबानी का काम शुरू करूँगी। म० ब० और मैं मिलकर भंगी की मदद से, क्योंकि हमारे अकेले के लिए तो यह काम बहुत भारी था, अपनी टट्टी (पैखाना) को एक कुएँ के पास ले गये हैं। इस कुएँ का पानी पीने के लिए अच्छा नही है और गर्मियो में सूख जाता है। लेकिन बाकी समय में तो इसमें पानी रहता ही है, और मै समझती हूँ कि यहा की जमीन भी अच्छी है। अतः इसके आसपास हम बागड लगा देंगे, ताकि जानवर अन्दर आकर गडबड़ न कर पाये, और इसीको अपना मुख्य बाग बनायेंगे। गर्मियो के लिए मैंने यह सोचा है कि तीसरे मकान के आंगन मे एक गड्ढा खोदें और अपने नहाने की जगह लकडी का फर्श लगाकर, उसमें बीचोंबीच छेद करके, वहा का सब पानी गड्ढे में बहकर जाने के लिए गारे की छोटी नाली बनावें। उससे हमारे नहाने का पानी बगीचे की सिंचाई के काम आवेगा, और इस प्रकार गांवों में बगीचे लगाने में जो सबसे बड़ी कठिनाई है उसका हल हो जायगा। वैसे हमारे सबसे नजदीक जो अच्छे पानी का कुआं है उसके मालिक ने भी कहा है कि मैं उसके पास कुछ फलो के पौधे लगा कर उसके पानी से उनकी सिंचाई कर सकती हूँ। मेरा तो खयाल है कि उनके फलों को कोई चुरायेगा नही, पर म०ब० का खयाल इसके विपरीत मालूम पड़ता है।"

इस पत्र में और भी बहुत-सी उपयोगी बातें हैं, पर और अधिक उद्धरण देने का लोभ मैं नहीं करूँगा। इस पत्र में जिस बात पर जोर दिया गया है उसकी मैं उपेक्षा नही करना चाहता और गावो में काम करनेवालों को बताना चाहता हूँ कि, जैसा उक्त उद्धरण में स्पष्ट रूप से बताया गया है, उन्हे गाववालो की ही तरह परिश्रम करने की आवश्यकता है। ईश्वरने यदि इन दोनों बहनो के स्वास्थ्य को बनाये रक्खा और आजीवन न सही पर कुछ लम्बे समय तक ही ये अपने काम मे लगी रही तो निश्चय ही ये अपने गाव को एक आदर्श ग्राम बना देंगी। और यह सिर्फ इसलिए नही कि इन्होने शारीरिक मेहनत से कार्यारम्भ किया है, बल्कि इसलिए भी कि ये ग्रामीणो के प्रति निःस्वार्थ प्रेम से प्रेरित हैं और इन्होने काम की जो योजना बनाई है वह सब उपयुक्त है।

हरिजन से] मो० क० गांधी

विकट प्रश्न

एक ग्रेजुएट लिखते हैं :—

"मैं रायलासीमा गांव (आन्ध्र प्रदेश) का रहनेवाला हूँ, जो इस समय दुर्भिक्ष का शिकार हो रहा है। उसकी इस दयनीय दुर्दशा के कारण निम्न प्रकार हैं, जिन्हे जानकर सब भारत-वासियो के दिल हिल उठने चाहिएँ :—

(१) इस वर्षा-विहीन और नदियो से रहित सूखे प्रदेश में आदमियो और खेती की जरूरत के लिए पानी की जो नहरें आदि होनी चाहिएँ, उनके प्रति भयानक दुर्लक्ष्य।

(२) आपकी प्रेरणा से देश के अन्य भागो में हाथ की कताई-बुनाई आदि के जिन गृह-उद्योगो को पुनरुज्जीवन मिला है, उनकी ओर यहां ध्यान नही दिया गया।

(३) लोगो का घोर अज्ञान और नई-पुरानी सब तरह की शिक्षा का अभाव, तथा सदा आपस के लड़ाई-झगड़ो और दीवानी-फौजदारी के मुकदमो मे उलझे रहना। इसलिए यहां के लोगो की जिन्दगी सुधारनी हो तो दुर्भिक्ष-निवारण के बजाय दुर्भिक्ष को रोकने का ही काम ज्यादा जरूरी है।"

इनमें से तीसरी बात शायद कारण नही, पहले दो कारणों का परिणाम है। और अगर पहला कारण ठीक हो, और उसे दूर न किया जा सकता हो या न किया जाता हो, तो इस प्रदेश के अभागे निवासियों के लिए दो में से एक ही रास्ता रह जाता है—या तो वे भूखों मर जायें, या इस सूखे प्रदेश को छोड़ दें। लेकिन पत्र-लेखक ने वहा की स्थिति का जैसा वर्णन किया है वह बिलकुल वैसा ही खराब न हो, यह भी हो सकता है। जो हो, मैं तो यह समझता हूँ कि जल-कष्ट-निवारण की व्यवस्था करना सार्वजनिक (निजी) कार्यकर्ताओ के बूते की बात नहीं है। लेकिन अगर वहां किसी भी तरह जीवन-निर्वाह हो सकता हो, तो निश्चय-ही लोगों की रोजी के लिए ईमानदारी के साथ बहुत-कुछ सच्चा प्रयत्न किया जा सकता है। हमारे देश में इतनी साधन-सामग्री फालतू पड़ी हुई है और इतना अधिक श्रम बिना किसी उपयोग

के रह रहा है कि उन दोनों का उपयोग किया जा सके तो एक आदमी को भी भूखों न मरना पड़े। और इसमें कोई शक नहीं कि संकट-निवारण के साथ-साथ उस संकट की रुकावट के उपाय भी न किये जायँ तो उस संकट-निवारण से कोई लाभ न होगा। उससे तो लोग ईमानदारी के साथ परिश्रम करने के बजाय उलटे भिखारी बन जायेंगे। ऐसा नहीं होना चाहिए। बल्कि संकट-निवारण का काम भी इस तरह किया जाना चाहिए, जिससे अपने-आप आगे के लिए उसकी रुकावट हो। इसलिए बजाय इसके कि लोगों को मुफ्त खाना दिया जाय, संकट-निवारण का काम करनेवालों को चाहिए कि वे स्थानीय उद्योग-धंधों की शुरुआत करके संकटग्रस्त लोगों से उनमें काम करने के लिए कहें। जो मनुष्य अपंग न हो, जबतक वह अपने हिस्से का काम न करले, उसे खाना नहीं देना चाहिए। मेरी राय में यहां पर, जहां कि करोड़ों आदमी भूखों मर रहे हैं, बच्चों और बड़ों को फ़िलहाल बुद्धिपूर्वक किये जानेवाले शारीरिक परिश्रम की ही शिक्षा दी जानी चाहिए। अक्षर-ज्ञान तो हस्तकौशल की शिक्षा के बाद की बात है, क्योंकि हाथ से काम करने से ही तो मनुष्य और पशु के बीच का जाहिरा फ़र्क मालूम पड़ता है। यह एक मिथ्या धारणा है कि लिखना-पढ़ना जाने बिना मनुष्य का पूर्ण विकास नहीं हो सकता है। इसमें शक नहीं कि अक्षर-ज्ञान से मनुष्य-जीवन का सौन्दर्य बढ़ जाता है, लेकिन ऐसी कोई बात नहीं है कि इसके बिना उसका नैतिक, शारीरिक और आर्थिक विकास ही नहीं हो सकता। इसलिए मैं चाहता हूँ कि यह पत्र लिखनेवाले एजेण्ट और वे सब कार्यकर्त्ता, जिन्हें हम जुटा सकें, संकट-ग्रस्त लोगों के बीच जाकर रहें और उन्हें आजीविका पहुँचाने लायक रचनात्मक कार्य में लग जायें। संकट-ग्रस्त लोगों को ऐसा काम दिया जा सके तभी उनके अन्दर ईमानदारी के साथ खरे पसीने की कमाई पर गुजर करनेवाले आदमियों जैसा आत्मगौरव पैदा होगा।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

ग्राम-संघ का घर

कोई दस दिन के लिए, मैं बंगाल गया था। वहां से लौटने पर, मैंने अपनेको एक बिलकुल नये घर में पाया। जब मैं गया तो यहां बाकायदा एक रसोईया-सा था। पानी लाने और आटा पीसने में मदद करने के लिए कुछ नौकर तो थे ही। लेकिन अपनी वापसी पर मैंने देखा कि रसोइया चला गया है, और अन्य नौकर भी हटा दिये गये हैं। हमारे घर की स्त्रियां ही, कस्तूरबा (श्रीमती गांधी) की देख-रेख में, रसोई का सारा काम सम्हाल रही हैं। नाज-सफ़ाई से लेकर खाना बनाने तक हरेक छोटा-मोटा काम वे स्वयं करती हैं। आदमियों में भी जो छोटे हैं वे आटा पीस रहे थे—और इससे भी ज्यादा अचरज की बात तो यह कि, बहुत-सा काम करने के लिए बाकी पड़ा होने पर भी, गांधीजी अपने कागज-पत्रों की बनिस्बत रसोई और घर-गृहस्थी की छोटी-छोटी बातों पर बहुत ध्यान देते हुए मालूम पड़े। बड़े-बड़े बर्त्तनों को मांजने का काम भी मैंने उन्हें स्वयं करते देखा, और शाम को प्रार्थना के बाद नाज-सफ़ाई में भी वह शरीक हुए। खाने में भी आमूल परिवर्त्तन हो गया है। इसमें शक नहीं कि खाना बनाने में वस्तुतः बहुत तरक्की हुई है, क्योंकि कस्तूरबा ६४ बरस की बुढ़िया होते हुए भी युवतियों से भी अधिक उत्साह और मनोयोग के साथ उसमें लग गई हैं।

'महादेव, तुम बंगाल गये उसके बाद यहां काफी फेर-फार हो गया है।' इन शब्दों के साथ, मेरी वापसी पर, गांधीजी ने मेरा स्वागत किया और आशा की कि मैं भी नये परिवर्तन के अनुसार बन जाऊँगा। पर मैं आसानी से ऐसा नहीं कर सकता, यह मैं मानता हूँ। दूसरे दिन सबेरे मैंने उन्हें चक्की पर बैठे देखा। मैं यह देखकर आश्चर्य में पड़ गया कि वह उसपर इस बात की आजमाइश कर रहे थे कि धान के छिलके (भूसी) अलग करने का सर्वोत्तम उपाय क्या हो सकता है।

जैसा कि मैं कह चुका हूँ, खाने में यहां आमूल परिवर्त्तन हो गया है। जो थोड़े-से मसाले काम में लाये जाते थे वे भी अब नहीं रहे। शाम को रँधी हुई सब्जी कोई नहीं होती, उसके बजाय कच्चा शाक रहता है। इन परिवर्त्तनों को सबने उत्साह के साथ अपना लिया हो, यह तो नहीं कह सकते। इसलिए मेरे आने के ठीक एक सप्ताह बाद जब हमें नागपुर जाना पड़ा, तो जाने से पहले इस परिवर्त्तन से असन्तुष्ट नौजवानों की तथा उनके विरुद्ध मीराबेन की बातों पर विचार करने के लिए रसोई-संबंधी एक बैठक हुई। इसमें गांधीजी ने एक-के-बाद एक हरेक परिवर्त्तन की उपयुक्तता समझाई। इस विचार-विनिमय के फलस्वरूप, हमने अपना खाना और भी सादा कर लिया। अब यह तय हुआ कि सबेरे तो रँधी हुई सब्जी और दूध के साथ गेहूँ खाया जाय और शाम को कच्चे शाक के साथ दाल-चावल।

एजेण्ट बनने की तैयारी

दूसरे दिन हम नागपुर गये। वहां दो खादी-भण्डार तो पहले ही हैं, उनके अलावा एक और खादी-भण्डार खोलने तथा मौजूदा खादी-भण्डारों में से एक को अपनी इमारत बन जाने पर उसका उद्घाटन करने के लिए गांधीजी को बुलाया गया था। श्री गणपत-राव टिकेकर के यहां हम लोग ठहरे। उन्होंने, श्रीमती अनसूया-बाई काले की सलाह से, नागपुर का हमारा कार्यक्रम निश्चित किया था। उन्होंने अपने बंगले के हाते में गुड़ और शकर बनाकर बताने की भी व्यवस्था की थी। शहर के खादी-भण्डारों को सफल बनाने में उन्होंने बहुत महनत की है और अब उन्होंने नागपुर के लिए ग्राम-संघ की एजेन्सी ली है। इसलिए ग्राम-उद्योग-संघ के एजेण्ट की हैसियत से उन्होंने जो प्रतिज्ञा ली है उसके अनुसार उन्हें अपना जीवन बनाना होगा। उन्होंने सचाई के साथ ऐसा जतन शुरू भी कर दिया है। धान कूटने के लिए घर पर ओखली बनाकर वह घर के कुटे चावल खाने लगे हैं। वह गांधीजी को अपने घर के पिछवाड़े ले गये, जहां धान कूटा जा रहा था। ज्योंही उसके छिलके अलग हो गये, स्त्रियां लकड़ी के ओखली-मूसल में उसको कूटने लगीं; लेकिन गांधीजीने कहा, "ठहरो, इसकी क्या जरूरत ?" "ऐसा तो करना ही होगा, जैसा यह है ऐसा तो, वह ठीक तरह से नहीं पकेगा।" "ओह, यही तो हम गलती कर रहे हैं," गांधीजीने कहा, "इस तरह कूटने में ही तो चावल का अधिकांश पोषक-तत्त्व नष्ट हो जाता है और खाली 'स्टार्च' रह जाता है।" "लेकिन आम तौर पर जैसा होता है वैसे हम इसकी 'पालिश' नहीं करते", टिकेकरजीने कहा, "तीन-चार दफे के बजाय हम तो सिर्फ एक ही बार इसकी कुटाई करते हैं।" "अच्छा, तो, अब हम इसकी तरकीब देखें।" यह कहकर गांधीजीने उन्हें वह फर्क

बताया, जो खाली छिलका उतरे हुए और छिलका उतरने के बाद कुटे हुए चावल में साफ मालूम पड़ रहा था। गांधीजीने कहा— "देखो, कितना फर्क है। सफेद चावल को देखने से मालूम पड़ता है कि इसका कुछ सत्त्व नष्ट कर दिया गया है। इसके विरुद्ध खाली छिलके उतरा हुआ चावल बाजार के अन्य सब चावल को मात कर सकता है। मिल में कुटा हुआ कोई भी चावल कभी गुण और मूल्य में उसका मुकाबला नहीं कर सकता। इसको बताकर ही हमें लोगों को यह समझाना चाहिए कि तिहेरी बर्बादी से वे किस प्रकार बच सकते हैं। यह चावल सस्ता है, क्योंकि छिलके अलग किये बाद जो और कुटाई होती है उसकी मजदूरी इसमें नहीं लगती है। दूसरे पालिशदार चावल जितना यह नहीं खाया जाता। तीसरे पालिशदार चावल से जहां तन्दुरुस्ती बिगड़ती है वहां इससे वह ठीक रहती है। यही बात आप गाववालो को समझाये।"

इस प्रकार श्री टिकेकरजी को ग्राम-उद्योग-संघ का एजेण्ट बनने की प्रारम्भिक शिक्षा तो मिल गई, लेकिन पूरी योग्यता प्राप्त करने के लिए तो और भी बातो की जरूरत थी। अत. किरलोस्कर ब्रदर्स के एक एजेण्ट से कहकर उन्होंने अपने हाते मे एक छोटी गन्ना पेरने की चरखी और शकर बनाने की एक छोटी मशीन लगवाई। इस मित्रने तुरतका निकाला हुआ गन्ने का रस गुड बनाने को औटाने के लिए कढाव में तैयार रख रखा था। लगभग तीन घण्टे मे सब काम हो गया। 'मक्खियो से इसे बचाने के लिए आप क्या करने हैं?' यह पूछने पर जवाब मिला कि 'हम उन्हे उड़ाते रहते है।' गांधीजीने पूछा—"क्या गाववाले ऐसा करते हैं? गुड बनाने की जगह को हमें डेयरी की तरह साफ-सुथरा रखना होगा और गुड को ऐसा साफ जैसे किसी आदर्श डेयरी मे शीशियों मे बन्द किया हुआ दूध रहता है।"

शकर बनाने की मशीन में गन्ने के रस की शकर तो बर्तन की सतह में जमती जाती थी और सीरा एक दूसरे बर्तन में निकलता जाता था। शकर पर सोपनट-वाटर डालकर जब उसे सफेद किया गया तो गांधीजीने उसका कारण पूछा। इस पर बताया गया कि 'लोग सफेद ही चाहते है, लाल या पीलापन हो तो छूते भी नही।'

"और सीरे का आप क्या करते हैं?" यह पूछने पर बताया गया कि "उसमें थोडा गन्ने का रस और मिलाकर उसे औटा लेते है, जिससे गुड बन जाता है।"

कोई आधे घण्टे के अन्दर यह दूसरे नंबर का गुड़ भी बन गया। शाम को यह महाशय असली गुड़, शकर और दूसरे नंबर का गुड़ लेकर गांधीजी के पास आये। गाधीजी ने तीनों को चखकर टिकेकरजी से कहा—"डाक्टर लोग जो कुछ कहते है, यह उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। गन्ने के रस से बने असली गुड़ के मुकाबले और कोई चीज नहीं है। इस असली गुड मे शकर तो हुई, पर उसके साथ ही पौष्टिक तत्त्व भी हैं, पाचक भी खाली शकर की बनिस्बत गुड़ अधिक होता है। दूसरे नंबर का गुड़ तो, जो कि सीरे से बनाया जाता है, असली गुड़ के मुकाबले कुछ भी नहीं है। अत. ठीक चावल की ही तरह यहां भी हम दुहेरी गलती करते हैं और स्वास्थ्य के बजाय बीमारी मोल लेते हैं।"

जिस मित्रने ये सब क्रियायें करके बताई थीं, उसने इनके लिए गांधीजी से प्रमाणपत्र मांगा। गांधीजीने इसके लिए बरू का कलम, ग्रामीण स्याही और हाथ का बना कागज लाने के लिए कहा। कलम और स्याही तो शीघ्र आ गई, लेकिन हाथ का बना कागज नहीं मिला। तब गांधीजीने टिकेकरजी से कहा—"अच्छा तो जबतक आप हाथ का बना कागज अपने पास न रक्खेंगे, हम आपको एजेन्सी का प्रमाणपत्र देना रोक देंगे।" इसपर सब हँस पड़े।

अभ्यङ्करनगर

खादी-भण्डार का उद्घाटन तथा सार्वजनिक सभा तो यहां का मुख्य कार्य था ही, पर इसके सिवा कुछ और भी कार्यक्रम था। नागपुर के प्रिय नेता स्वर्गीय अभ्यंकर का अभाव हम सबको बहुत अखरा, लेकिन उनकी बहादुर पत्नी, जो कि धीरज के साथ इस दु:ख को सह रही है, हर जगह गांधीजी के साथ रही। वलिभाई सुन्दरजी नाम के एक बोहरेने यहां एक चर्मालय खोल रक्खा है, उसे देखने भी गांधीजी गये। यहां ज्यादातर मरे हुए जानवरों की खाल इकट्ठी की जाती है। चर्मालय में १० विद्यार्थी हैं और यह स्पष्ट है कि इससे एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति हो रही है।

चर्मालय से हम हरिजन बस्ती में गये, जिसका नाम अब हरिजनो की सेवा में अपना बहुत-कुछ समय लगानेवाले स्व० अभ्यकर के नाम पर अभ्यकरनगर कर दिया गया है। गाधीजी की पिछली हरिजन-यात्रा के समय, यही पर, श्रीमती अभ्यंकरने अपनी चूड़िया गाधीजी को दी थी। १९३३ मे गाधीजीने २१ दिन का जो ऐतिहासिक उपवास किया था उस समय यहा हरिजन-पाठशाला खोली गई थी। शुरुआत मे इसमे २० लड़के थे, लेकिन अब ५८ की हाजिरी रहती है, जिसमे लगभग १६ लडकियां हैं। यह ध्यान देने की बात है कि यह पाठशाला एसी जगह खुली हुई है, जहा ज्यादातर भगी ही रहते हैं, फिर भी महारो और सवर्ण हिन्दुओ के भी कुछ बालक इसमे पढते हैं। बस्ती में म्युनिसिपैलिटी का एक कुआं भी है, उसे भी गाधीजीने देखा। उसकी हालत अच्छी नही थी, जिसकी हरिजनो को शिकायत थी। "हमारी शिकायत आप कब सुनेंगे?" एक हरिजन के यह पूछने पर, म्युनिसिपैलिटी की ओर से उसके एक सदस्यने जवाब दिया— "शहर का और भी तो बहुत-सा काम हमें करना है।" इसपर गाधीजीने कहा, 'इसपर तो तुरन्त ध्यान दिया जाना चाहिए। शहर का सारा काम हो लेने तक इसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ी, तब तो इसपर ध्यान दिया जा चुका।"

नौजवान की वापसी

गाधीजीने गत सप्ताह 'शर्मनाक' शीर्षक में जिस नौजवान का जिक्र किया था, वह अब लौटकर आ गया है। गाधीजीने उससे जो-कुछ कहा था, उस सब पर खूब विचार करने के बाद वह वापस आया है; और अब हमारे साथ काम करने लगा है। हमारे साथ-साथ अच्छी तरह मेहनत करके वह आठ आना रोज की कमाई करता है। जिस दिन वह आया, उसके सिर के बाल बढ़ रहे थे—और, वे सँवारे हुए तो हो ही कहां से सकते थे? दाढ़ी भी बढ़ी हुई थी। सबसे पहले उसका मुण्डन ही हुआ, उसके बाद से वह काम में लग गया है। गांधीजीने उससे कहा है कि "तुम यहां रहना चाहो तो रहो; या जब तुम्हें ऐसा मालूम दे कि अब घर जाने लायक रकम जमा हो गई है और तुम घर जाना चाहो, तो खुशी से घर जा सकते हो।"

अंग्रेजी से]

महादेव ह० देसाई

मेरा भ्रमण

[२७ पृष्ठ से आगे]

पीते हैं। इसी बस्ती में ३० घर चमारों के है, जो पल्लेदारी या मजूरी करते हैं। ये लोग जूता नही बनाते और इसमे ये एक तरह का फख्र समझते हैं! धंधे को नीच मान लेने का यह वहम जाने किस कुसायत मे इस देश में आया होगा।

कटनी नदी तो पास है ही, दो कुएँ भी इस बस्ती में है—एक तो श्री मसुरिहाजी का है और दूसरा गेंडाजी का। ये दोनो हरिजनों के लिए खुले हुए है। २५ घर इसी बस्ती मे उन चमारो के है जो जूते बनाते हैं। एक भाई के यहां उस दिन व्याह की जेवनार हो रही थी। इन लोगो मे न मुर्दार मांस का चलन है न दारू का। एक बुढ़ियाने कहा—"भैया हो! पहले हमार बस्ती मे नित्य लड़ाई-झगड़ा होत रहा। पर अब तीन दिन से दारू हमरे मुहल्ले में नाही आवत है तौन दिन से भैया, बड़ी अमन चैन है।"

रात को पुरानी बस्ती की रात्रि-पाठशाला का निरीक्षण किया। संघ की यह पाठशाला राष्ट्रीय स्कूल में लगती है। १७ लड़के दर्ज रजिस्टर है। हाजिर ११ मिले। सब-के-सब मेहतर लड़के हैं। दो-तीन विद्यार्थी यहा बड़े ही गंदे देखने में आये। शिक्षक को सफाई पर अधिक ध्यान देना चाहिए। इस पाठशाला का ८) मासिक खर्चा है।

इसके बाद लगीतार नदीपार की रात्रि पाठशाला देख डाली। कुल ३५ हरिजन बालक उपस्थित मिले। मेहतर, चमार, कोल, केवट सभी यहां पढ़ते है। गत दिसबर मास से यह पाठशाला चल रही है। लड़के आधे से भी ऊपर मैले-कुचैले देखने मे आये। नदी दूर नही है, कपड़े काफी साफ रख सकते है। संघ को कम-से-कम एक लालटैन का और प्रबंध कर देना चाहिए। श्री नारायणदत्त शर्मा बड़े उत्साह और परिश्रम के साथ इस पाठशाला में पढ़ाते हैं।

३ मार्च को सबेरे हनुमानगंज की हरिजन-बस्ती देखी। यहां मेहतरों के २७ घर है। कुछ मकान ठीक है, पर सफाई बहुत ही कम रहती है। नाली है, पर बिलकुल बेमरम्मत। तमाम गंदला पानी मिला रहता है, जिसमें सूंड़े बिलबिलाते है। दो टूटी-फूटी संपुलिसे पास-पास है। इनकी गंदगी का पार नही। सुना जाता है कि म्यूनिसिपैलिटीने टीन की नई टट्टियां खड़ी करने का निश्चय कर लिया है। यह एक अजीब बात यहा देखने में आई कि शहर के नाबदानों का तमाम गंदा पानी तथा पेशाब इस बस्ती के बिलकुल पास एक खेत में डाला जाता है। म्यूनिसिपैलिटी का इस बात पर शायद कभी ध्यान भी नही गया।

कटनी में उस दिन एक बड़ा अच्छा आदर्श कार्य हुआ। ठाकुर बीरेन्द्रसिंहजीने अपने पुत्रजन्म के उपलक्ष में दोनों रात्रि-पाठशालाओं के ५६ हरिजन बालकों को अपने घर पर बड़े प्रेम से भोजन कराया और उन्हें एक-एक धोती दी।

रायपुर

५, ६—३—३५.—छत्तीसगढ़ का यह प्रमुख स्थान है। प्राचीन काल में यह सारा इलाका गोड़ों का था। हैहयवंशियों और मराठों का भी यहां राज्य रहा है। पर उस आदिम संस्कृति के भग्नावशेष तो आज भी यहां नजर आते हैं। शिक्षा में यह बहुत पिछड़ा हुआ इलाका है। यहां काम करना आसान नहीं। फिर भी छत्तीसगढ़ के प्राण श्री रविशंकर शुक्लने यहां गांव-गांव में राष्ट्रीयता की अमर ज्योति जगादी है, इसमें सन्देह नहीं। गावों में गोड़ और कोल तक किसी खादी-धारी को देखेंगे तो 'वंदेमातरम्' से उसका स्वागत करेंगे। 'हरिजन-सेवा' का भी सन्देश यहां पहुँच गया है। गाधीजी के महाकोशल के हरिजन-प्रवास को सफल बनाने में श्री शुक्लजी ने गतवर्ष काफी परिश्रम किया था।

खास रायपुर में तो अभी कोई हरिजन-कार्य नहीं हो रहा है, पर गनियारी गांव मे अच्छा कार्य हो रहा है। रायपुर से यह गाव २२ मील है। ६ मार्च को श्री जगन्नाथ यति और संघ के मंत्री श्री खूबचन्द बघेल के साथ मैं गनियारी गांव की पाठशाला देखने गया। दूर से एक ऊँचा तिरंगा झंडा फहराता हुआ दिखाई दिया। पूछने पर मालूम हुआ कि जहा वह राष्ट्रीय झंडा फहरा रहा है, वही हरिजन-पाठशाला है। पाठशाला मे ५७ बच्चे दर्ज रजिस्टर हैं। हाजिर ४५ मिले—४१ लड़के और ४ लड़कियां। इनमे २३ हरिजन थे और बाकी सवर्ण। हरिजनों में ३ बालक पनका (कोरी) जाति के थे और शेष सब सतनामी। सतनामी संतमार्गी हरिजन हैं। ये लोग न शराब पीते हैं, न मांस खाते हैं। इनमें अब जागृति भी हो चली है। अवध के सुप्रसिद्ध बाबा रामचन्द्रने छत्तीसगढ़ के इन सतनामियों मे काफी काम किया है। बाबाजीने ही रायपुर में सतनामी-आश्रम की स्थापना कराई, जिसमें १८ सतनामी विद्यार्थी आज रहते और विद्याध्ययन करते हैं। गनियारी की यह हरिजन-पाठशाला अगस्त १९३४ को खुली थी। इसका मासिक खर्चा २०) के लगभग है, जो रायपुर का हरिजन-सेवक-संघ देता है। पाठशाला का भवन गाववालों का है। आसपास के ५ गावों के लड़के यहां पढ़ने आते हैं। रात्रि-पाठशाला भी यहां एक चल रही है, जिसमे १५ वयस्क पुरुष पढ़ते हैं, और वे सब सवर्ण हिन्दू हैं। लड़कों को नारियल की गरी और गुड़ बांटकर हम लोग गांव देखने गये।

गाव की एक-एक गली साफ दिखाई दी, एक-एक आंगन स्वच्छ मिला। कूड़े-कचरे का तो कहीं नाम भी नही था। पीली-मिट्टी से पुती हुई दीवारें और गोबर से लिपे हुए आंगन और चौतरे देखकर चित्त हरा हो गया। सजे-सजाये पक्के मकान इन सादी झोपड़ियों के सामने मुझे तो फीके ही दिखाई देते हैं। गांवों की इस स्वाभाविक शोभा को कही नगरों की वह कृत्रिम सौन्दर्य-कला पा सकती है? एक हरिजन के घर में हम लोग गये, और वहां हमने एक छोटी-सी कोठरी में उसकी सारी गृहस्थी देखी। एक ओर कुनेता (कोदो दलने का मिट्टी का जाता), एक ओर ढेकी और वही चूल्हा और सिल-बट्टा। कुनेता देखकर मैंने घर की मालिकिन से कहा—"यह कुनेता मुझे आज २० बरस के बाद देखने को मिला है। कुदई (कोदो का चावल) भी क्या सोंधी और मीठी होती है।"

"बाबू, क्यों हँसी करते हो, कुदई भला तुम लोग खाते हो—यह तो हम गरीबों का खाना है," उस बुढ़ियाने सिर मटकाते हुए कहा।

"नहीं बूढ़ी दाई, झूठ नहीं है। मैंने कुदई खाई है।" मैंने उसे और भी विश्वास दिलाया।

"क्यों झूठ बोलते हो, बाबू? मोटरों पर बैठनेवाले कहीं कुदई खाते हैं?"

उसने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया। गांधीजी का यह वाक्य मेरी आंखों के आगे आ गया कि रेल या मोटर से गांवों का असली रूप भला कोई देख सकता है?

इस गांव में कुल १३९ घर हैं और जन-संख्या ६९७ है। १० घर हरिजनों के हैं। ५ व्यक्ति आदतन खादी पहनते हैं। गाव में जो यह स्वच्छता देखने में आई वह इन खादीधारी ग्राम-सेवकों की ही सेवा का परिणाम था।

वापसी में एक गांव और देखा, जिसका नाम बंगोली है। इस गांव की जनसख्या ६५५ है। पर इस छोटे-से गाव में जागृति अच्छी है। श्री यतिजी का यह कार्यक्षेत्र है। एक वर्ष से आप यहां "ग्राम-सेवा-आश्रम" चला रहे हैं। इस सेवा-आश्रम के द्वारा ४४ गांवों में तो दवाइया पहुँचती हैं, और ५ गावो में सफाई का काम होता है। आश्रम के ११ सेवक यह सब काम करते है। यहा डिस्ट्रिक्टबोर्ड का प्राइमरी स्कूल है, जिसमे हरिजनो के भी ६ बालक पढते हैं। हरिजन-मुहल्ले मे आश्रम के सेवक रात को रामायण भी सुनाते हैं। हरिजनों के लिए बंगोली मे दो कुएँ खुले हुए हैं। घाट, बैठक वगैरा में भी सवर्ण हिन्दू हरिजनो के साथ कोई भेदभाव नही रखते। 'देहाती', 'शहराती', 'ग्राम का रोगी', 'बेगार', 'भारतीय और योरोपीय किसान' आदि बडे सुन्दर चित्र आश्रम की दीवारो पर लगे हुए है। श्री थानू मडल नाम के एक वृद्ध सज्जन यहां के एक अच्छे साधुहृदय नम्र ग्राम-सेवक हैं। यहां ४ घरों मे नित्य नियमपूर्वक चरखा चलता है, और ६ व्यक्ति आदतन खादी पहनते हैं।

रायपुर के अन्तर्गत 'फुलझर' नाम की जमीदारी मे आज भी स्वावलम्बन का, विशेषत खादी-स्वावलम्बन का, जो कार्य चल रहा है उसकी चर्चा अगर मैंने यहा न की तो मेरा यह साप्ताहिक पत्र अधूरा ही रहेगा। इधर 'अगरिहा' नाम की एक जाति रहती है, जो अपनेको आगरे की मूल निवासी बतलाती है। ये लोग नमक को छोड़कर अपनी जरूरत की प्रायः सभी चीजे स्वय तैयार कर लेने का भरसक प्रयत्न करते हैं। स्त्रियां सूत कातती हैं और घर की जरूरत के कपड़े उसी सूत से बुनवा लेती हैं। कपास भी ये लोग खुद ही पैदा कर लेते हैं। दहेज मे लड़की को चरखा दिया जाता है, और उसके साथ ४०)-५०)— यह पूजी कपास के लिए दी जाती है। उस रकम के कपास व सूत से जो पैसा आता है, वह स्त्रीधन कहा जाता है। स्वावलम्बन की इस पद्धति की बदौलत ही यह जाति कभी पैसे की मोहताज नही रहती। इनके घर धन-धान्य से भरेपूरे रहते है। पर वहीं इनके पडोसी निर्धन देखने मे आयेंगे। अगरिहा लोग बढई, लुहार, कुम्हार आदि का काम अपनी जरूरतभर के लिए खुद ही कर लेते है। बिना किसी मशीन की सहायता के मनुष्य खुद अपने हाथ-पैर चलाकर कितना संपन्न और सुखी हो सकता है, इसका यह जीता-जागता उदाहरण है। पर कोरी दिमागी खुराक पर जीनेवाले तर्कवादी लोग ऐसी बातों पर भला क्यो विश्वास करने चले?

वि० ह०

राजपूताने का कार्य-विवरण

[दिसम्बर, १९३४.]

धार्मिक—हरिजन-सेवक समिति निमाणा (कोटा) की प्रेरणा से दो गांव अतरालिया और डींगसी के मदिर हरिजनों के लिए खोल दिये गये। हरिजन मुहल्लों में ४ बार सम्मिलित भजन व कीर्तन हुए। हरिजन मुहल्लों में दो बार धार्मिक कथाएँ कराई गई।

शिक्षा—७ हरिजन छात्रों को सार्वजनिक पाठशालाओं में भर्ती कराया गया। १ रात्रि-पाठशाला राजगढ़ (अलवर) में खोली गई।

जल-कष्ट निवारण—हरिजन-सेवक समिति अजमेरने हरिजनो को स्थानीय डिग्गी (बावली) पर पानी भरने की आज्ञा म्यूनिसिपैलिटी से दिलवाई।

आर्थिक—सेवा-आश्रम नारेली में ५ हरिजनों को और कालाडेरा (जयपुर) समिति द्वारा ४ हरिजनो को काम दिलाया गया।

२६२ हरिजन विद्यार्थियो को हमारी समितियो द्वारा स्लेट, पुस्तके आदि पाठ्य सामग्री मुफ्त बांटी गई।

१४ हरिजनो को वस्त्र मुफ्त दिये गये।

३८८ हरिजन छात्रो को मिठाई व फल बाटे गये।

स्वच्छता—हरिजन मुहल्लों मे ३७३ चक्कर लगाये गये और उन्हें सफाई के लाभ समझाये। १ बार नारेली के आश्रम-वासियोने हरिजन मुहल्लो की सफाई अपने हाथो की। १५८१ हरिजन छात्रो को साबुन की टिकिया मुफ्त दी गई और साप्ताहिक छुट्टियो मे उनके वस्त्र व शरीर साफ कराये गये। ७३४ छात्रों को शिक्षकों और संघ के कार्यकर्त्ताओने नहलाया-धुलाया। १५६३ छात्रो को पाठशालाओ मे मजन कराया गया। १३३० हरिजन छात्रों के हाथ-मुह पाठशाला में धुलवाये गये।

सदाचार—४६ हरिजनोने मुर्दा-मास न खाने की प्रतिज्ञाएँ ली। ८४ हरिजनोने शराब पीना और दो ने बीड़ी पीना छोड़ा। बागबाडा परगने के चमारोंने एक सभा की, जिसमें १६ बड़े-बड़े कस्बो के प्रतिनिधि आये थे। पचायत द्वारा मुर्दा मास खाना व शराब पीना छोड़ दिया गया और मुर्दा मास खानेवालो और शराब पीनेवालो पर पचायतने ५) रु० दण्ड मुकर्रर किया। उपस्थित प्रतिनिधियोंने सबकी ओर से इसकी लिखित प्रतिज्ञा भी ली।

हरिजनो की ८ सभाएँ कराई गई, जिनमें ८०० से ऊपर उपस्थिति थी। उन्हे साफ रहने, मुर्दा मास और शराब छोड़ने और अपने बालको को पढाने के लिए समझाया गया।

नागौर समिति की ओर से हरिजन मुहल्लो मे गायन द्वारा अश्लील गीत गाने की बुराइया बतलाई गई और अच्छे गायन सुनाये और सिखाये गये।

प्रचार—सघ के कार्यकर्त्ताओने ३० गावो मे प्रचार के निमित्त दौरा किया। ८ शाखा-समितियो के कार्य एव हिसाब का निरीक्षण किया गया।

औषधि सहायता—४७६ बार रोगी हरिजनो को दवा मुफ्त दी गई। १९ बार डाक्टर-वैद्यो को बीमारों के घर ले जाकर दिखाया गया।

संगठन—इस मास १ हरिजन-सेवक-समिति प्रतापगढ़ में बनाई गई।

सेवा-कार्य पर खर्च—प्रांतीय संघ और उसकी शाखा समितियोंने दिसम्बर मास में हरिजनों की सेवा पर १८६७॥=)३ खर्च किया।

रामनारायण चौधरी
मंत्री राजपूताना ह० से० सं०, अजमेर

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि
"आत्मवत् सर्वभूतेषु"
Reg. No. L. 1369.
वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)
पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]
भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, २२ मार्च, १६३५. [संख्या ५

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

एक जनसेवक की कठिनाई

हाल में जब गांधीजी नागपुर गये थे, तब श्री टिकेकरने हरिजन-सेवकों तथा दूसरे लोगों को गांधीजी से विचार-विनिमय करने के लिए आमन्त्रित किया था। इसके अनुसार, बहुत-से लोग एकत्र हुए थे। गांधीजीने उनके सामने पूर्ण चावल, चोकर-सहित गेहूँ और विशुद्ध गुड़-का व्यवहार करने से जो आर्थिक एवं नैतिक लाभ होते हैं उनका विस्तार से वर्णन किया। साथ ही उनसे [illegible] सिफारिश की कि श्री टिकेकर के घर में इस सम्बन्ध की जो क्रियाएं हो रही हैं उनका वे अवलोकन करें। लेकिन एक मित्र को दूसरे कई प्रश्न परेशान कर रहे थे, जिन्हें वह गांधीजी जो बातें कह रहे थे उससे कहीं ज्यादा आवश्यक समझते थे। उन्होंने तफसील के साथ उन्हें लिपिबद्ध कर लिया था, जिसका सार यह था—"आप हमसे कहते हैं कि गांवों में जाकर रहो और गांव-वालों की तरह मेहनत-मजूरी करके अपनी गुजर चलाओ। मैं यह सब करके देख चुका हूँ। मैंने बुनाई, रस्सी बटने तथा लकड़ी चीरने आदि के सब काम कर लिये हैं, फिर भी अपने खर्च लायक उपार्जन मैं नहीं कर सका। बताइए, अब मैं क्या करूँ? मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि पूंजीवाद ही हमारे बहुत-से दुःखों का कारण है। थैलीशाह लोग सर्वसाधारण का शोषण करने में जरा भी दया नहीं करते। तो फिर हम भी उन्हें क्यों जाने दें? इसलिए किसी से भी वैर न करके सबसे प्रेम रखने की बात आप मुझसे न कहें, उससे मेरा सन्तोष नहीं होता।"

गांधीजीने कहा—"मैं तो आपको फिर भी यही बात कहूँगा। साथ ही यह बात भी मुझे आपको स्मरण करानी चाहिए कि आप जब स्वराज मांगते हैं तो अपने अकेले के लिए ही नहीं मांगते बल्कि अपने पड़ोसी के लिए भी चाहते हैं। इस सिद्धान्त में इतना गहरा अध्यात्मशास्त्र या अटपटा तत्त्वज्ञान नहीं है कि आप उसे समझ ही न सकें। यह तो ऐसी बात है जिसे मामूली बुद्धि रखनेवाला आदमी भी समझ सकता है। आप अपने पड़ोसी से प्रेम का व्यवहार रक्खेंगे तो वह भी आपके प्रति प्रेम-भाव ही रक्खेगा।

"ग्राम-सेवक की कठिनाई के बारे में आप जो कहते हैं वह ठीक है, लेकिन हमें तो इस बात को गलत साबित कर देना है। ग्रामवासियों की बुराइयों को छोड़कर हमें तो सच्चा ग्राम-वासी बनना है। जब हम सच्चे ग्रामवासी बन जायेंगे तब सच्ची नीयत से मजूरी करनेवाले को गुजारेलायक पैसे मिल जाने में कोई दिक्कत नहीं होगी। लेकिन कोई मुझसे आकर यह न कहे कि 'मेरे मां है, तीन विधवा बहिनों को पार लगाना है, एक भाई को बैरिस्टरी के लिए विलायत भेजना है, दूसरा म्योर कालेज में पढ़ता है, और तीसरा फौजी शिक्षा के लिए देहरादून गया है।' ऐसे आदमी को तो गांव में रोजी नहीं ही मिलेगी। लेकिन जिस तरह किसान के घर के और सब आदमी भी काम करते हैं उसी तरह उस सेवक के घर के सब आदमी भी काम करेंगे तो उन्हें उतना मिल जाना मुश्किल नहीं है जितने की कि सचमुच उन्हें जरूरत है।

"पूंजी और मजूरी के बीच विरोध तो है ही, लेकिन हमें तो अपने धर्म का पालन करके इस विरोध को दूर करना है। जिस तरह शुद्ध रक्त में जहरीले जीवाणु प्रविष्ट हो ही नहीं सकते, उसी प्रकार जब मजूर शुद्ध हो जायेंगे तब कोई उनका शोषण नहीं कर सकेगा। मजदूरों को तो यही समझना है कि मजदूरी भी पूंजी ही है। मजूरों को अच्छी शिक्षा मिले और अपनी शक्ति को पहचानकर वे संगठित हो जायें तो फिर पूंजीपतियों की चाहे जितनी पूंजी भी उन्हें गुलामी में नहीं रख सकेगी। अगर मजदूर लोग समझदार और संगठित हो जायें तो वे जो चाहें वह करा सकते हैं। अपनी निर्बलता के कारण प्रतिस्पर्धी से बदला लेने का इरादा करने में कोई तत्त्व नहीं है। हमें तो बल-वान बनने की आवश्यकता है। हृदय की निर्भयता, सुलझा हुआ दिमाग और पसीना बहाकर काम करने की तत्परता हो तो चाहे जैसी आफतों का मुकाबला करते हुए बड़ी-बड़ी विघ्न-बाधाओं को पार किया जा सकता है। अवैर से ही वैर शान्त होता है, प्रेम के सिद्धान्त का यह सूत्र पूर्ण अर्थात् सिद्ध पुरुषों के लिए नहीं है। पूंजीपति और मजदूर एक-दूसरे के पड़ोसी ही तो हैं। जरूरत इसी बात की है कि वे एक-दूसरे से ऐच्छिक सहयोग मांगें और प्राप्त करें। प्रेम के सिद्धांत का अर्थ यह तो हुई नहीं कि कोई हमें लूट रहा हो तो हम असहाय बनकर लुटते रहें। जब हमारे अन्दर आन्तरिक बल आजायगा तो किसी की इतनी जुर्रत ही नहीं पड़ेगी कि वह हमें लूट सके।

अपना-अपना दृष्टिकोण

आजकल गांधीजी से मिलने के लिए जो लोग आते हैं, वे ज्यादातर शारीरिक श्रम की नीरसता अथवा शारीरिक श्रम के गौरव आदि की ही बातें करते हैं। सादा-से-सादा चीजें भी,

गांधीजी के हाथ में ले लेने के कारण, अब लोगो को रहस्यमय मालूम पड़ने लगी हैं। वे सोच में पड़ जाते हैं, और पूछते हैं— 'इसका मतलब क्या होगा ?' लेकिन सच बात तो यह है कि ग्राम-उद्योग-संघ के उद्देश एवं कार्य को हरेक व्यक्ति अपनी निजी सकुचित दृष्टि से ही देखता है, और गाधीजी के इस नये कार्यक्रम के कारण मुझे अपने जीवन में क्या-क्या फेरफार करने पड़ेगे, हरेक इसी बात का विचार करता है। ऐसा विचार करनेवाले एक सज्जन, जिन्होंने सघ के उद्देश और नियम पढ लिये थे तथा गांधीजी से विस्तारपूर्वक उन्हे समझ लिया था, मेरे पास आये और कहने लगे—"लेकिन इसका मतलब क्या ? एक छोटे और उपयोगी संचे (तेल की मशीन) में मैंने रुपया लगाया है। अब मैं उसका क्या करूँ ?"

मैंने कहा—"आपको जो अच्छा लगे सो करना । हम तो गावों मे जाकर लोगो से यही कहेगे कि वे घानी से ही तेल निकलवाये। ऐसा करने मे मिलावट का भय नही रहता और गाव के तेली को, जो कि आज बेकार बैठा हुआ है, काम भी मिलता है।"

"लेकिन तेल की मिलों में जिन्होंने शेयर खरीद रक्खे हैं उनका क्या होगा ? वे भी तो गरीब हैं।"

"जो लोग मरने की तैयारी में हैं उनकी भांति गरीब तो वे नहीं हैं न ? और फिर, आप यह भय क्या करते हैं कि सब मिलें एकसाथ बन्द हो जायेंगी ?"

"कुछ नही, मुझे तो डर यही है कि आप गरीब व्यापारियों का खयाल नहीं करते।"

"आपका यह खयाल गलत है। जो व्यापारी 'गरीब' रहने को तैयार हों उनका तो हम खयाल रखते ही हैं। हम तो उन स्वार्थी व्यापारियों को ही मिटाना चाहते है, जो गरीबों को चूसने मे जरा भी सकोच नहीं करते।"

एक अन्य सज्जन आकर गांधीजी से पूछने लगे—"लोगों को फुरसत का तो वक्त मिलना चाहिए या नही ? इसका तो आप खयाल ही नहीं करते। गरीब लोग बहुत ज्यादा मेहनत-मशक्कत करते रहेंगे तो उन्हें मानसिक विचार-द्वारा बुद्धि बढाने और मनोरंजन-द्वारा आनन्द प्राप्त करने के लिए तो समय ही नहीं मिलेगा। पर आप तो उन्हें और ज्यादा काम करने की ही शिक्षा दे रहे हैं।"

"सचमुच ? मैं तो जिनके बारे मे सोच रहा हूँ, उनके पास इतनी फुरसत है कि उन बेचारो को समझ ही में नहीं आता कि उसका क्या उपयोग करें। इस फुरसत के ही कारण उनमें ऐसी सुस्ती आ गई है जिसने उन्हे निर्जीव पत्थर के समान जड बना दिया है। उनमें इतनी जड़ता आ गई है कि कितने तो जरा-सा हिलना-डुलना भी नहीं चाहते।"

"जहां जरूरत हो वहा आदमियो को जरूर काम पर लगाइए। पर आप तो उनसे अपने हाथों अपने चावल-आटे की कुटाई-पिसाई करने के लिए भी कहते हैं—क्या यह उनसे सूखा-नीरस काम कराने की बात नहीं है ?"

"उन्हे काहिली में अपना समय बिताना जितना नीरस होता है उससे ज्यादा नीरस यह काम नहीं है। और जब वे यह समझ जायेंगे कि इससे हमें न सिर्फ कुछ पैसो की कमाई ही हो जाती है बल्कि इससे हमारी और हमारे देशवासियों की तन्दुरुस्ती भी ठीक रहती है, तो उन्हे यह काम नीरस नहीं लगेगा। आधुनिक कल-कारखानो मे काम करने से तो निश्चय ही यह काम ज्यादा नीरस नहीं है। कोई काम कितना ही विविधता-हीन क्यो न हो, अगर मनुष्य को उसमें यह समझने का आनन्दानुभव हो सकता हो कि मैंने कुछ निर्माण किया है, तो वह उसे नीरस नहीं लगेगा। आप जूता बनाने के किसी कारखाने में जाइए। वहा कुछ आदमी जूतो के तले बना रहे होंगे, कुछ ऊपरी हिस्से, और कुछ अन्य काम कर रहे होगे। यह काम नीरस मालूम देगा, क्योंकि वे लोग बुद्धि लगाकर काम नहीं करते। लेकिन जो मोची या चमार स्वयं सारा जूता बनाता है उसे अपना काम जरा भी नीरस नही मालूम पड़ेगा। क्योंकि उसके काम पर उसकी कुशलता की छाप होगी, और उसे इस बात का आनन्द प्राप्त होगा कि अपने हाथों मैंने कोई चीज बनाई है। कौन काम किस भावना से किया गया, इसका बहुत असर पड़ता है। अपने व्यवहार के लिए पानी भरने और लकड़ी चीरने में मुझे कोई आपत्ति न होगी, बशर्ते कि किसी की जोर-जबर्दस्ती से नहीं बल्कि अपनी बुद्धि-द्वारा सोच-समझकर मैं ऐसा करूँ। कोई भी श्रम क्यो न हो, अगर बुद्धिपूर्वक और किसी ऊँचे उद्देश को सामने रखकर किया जाय तो वह उत्पादक बन जाता है और उससे आनन्द भी प्राप्त होता है।"

"लेकिन जब आप सारे दिन शारीरिक श्रम करते रहने पर ही जोर देते हैं, तो क्या उनकी बुद्धि को जड बनाने का जोखिम अपने ऊपर नहीं ले रहे है ? आप दिनभर मे कितने घण्टे का शारीरिक श्रम आवश्यक समझते है ?"

"मुझे खुद को तो आठ घण्टे काम करने मे कोई आपत्ति न होगी।"

"मैं आपकी बात नही करता। आप तो आठ घण्टे चरखा चलाकर भी आनन्द प्राप्त कर सकते हैं, यह मैं जानता हूँ। पर आपकी बात तो अपवाद-स्वरूप है। क्योंकि आपमें तो इतनी बुद्धि और उत्पादक-शक्ति है कि बाकी के वक्त मे भी आप उनका बहुत-कुछ उपयोग कर सकते हैं।"

"नहीं, मैं तो चाहता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति आठ घण्टे मेहनत करके आनन्द प्राप्त करे। सब-कुछ काम करने की भावना पर निर्भर है। आठ घण्टे लगन के साथ शुद्ध शारीरिक श्रम करने के बाद भी बौद्धिक कामो के लिए काफी समय बच रहता है। मेरा उद्देश तो जड़ता और आलस्य को दूर करना है। जब मैं ससार को यह कह सकूँगा कि हरेक ग्रामवासी अपने पसीने से २०) महीना कमा रहा है, तो मुझे परमसन्तोष प्राप्त होगा।"

शारीरिक श्रम का गौरव

एक सज्जन यहा अपने ढग के अनोखे ही आये हैं। यह नासिक के हैं और गोरक्षा के काम में दिलचस्पी रखते हैं। इनको यह बात बहुत अखरती है कि वहा हर साल जो सैकड़ो गायें मरती हैं उन्हे या तो गाड़ दिया जाता है या गीध खा जाते हैं, जिससे उनकी खाल व्यर्थ नष्ट होती है। उन्होंने गांधीजी से कहा—"आपके कार्यकर्त्ताओ में से कोई चर्मालय का काम जानता हो, तो उसे आप नासिक भेजिए न। वह वहां जाकर देखे कि इस दिशा में क्या काम हो सकता है।" वह तो इस बात का निश्चय ही करके आये थे, इसलिए कार्यकर्त्ता के आने-जाने का किराया गांधीजी के सामने निकालकर रख दिया। उन्हें आश्वासन देकर गांधीजीने उनसे परिचय बढ़ाया।

६० बरस से ऊपर उनकी उम्र है और त्यागी होते हुए भी आनन्द मानो उमड़ा पड़ता है। शरीर पर ज्यादा कपड़े नही थे। गांधीजीने पूछा, "क्या यही आपकी हमेशा की पोशाक है?" इसपर उन्होंने कहा—"नही जी, यह तो सभ्य लोगो की खातिर मैंने पहन रक्खी है; नही तो साधारणतः मैं लगोट के सिवा और कुछ नहीं पहनता।"

"लेकिन", गाधीजीने कहा, "हम सभ्य लोग नही हैं, इसलिए आप चाहे तो यहा भी खुशी से अपना लगोट पहन सकते है।"

ज्यों ही गाधीजीने यह कहा कि उन्होंने तुरन्त उसपर अमल शुरू कर दिया, मानों वह इस बात की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। गाधीजीने उनसे कुछ जलपान करने के लिए कहा, लेकिन उन्होने कहा—"नही, जबतक जलपान के लायक काम न करलू तबतक जलपान नही कर सकता। बाग मे जाकर मैं कुछ काम करूँगा। यहा आते वक्त मैंने देखा कि वहा कुएँ के पास सूखे पत्तो के ढेर के ढेर लगे हुए हैं, जिससे पानी के बहने मे रुकावट पड़ती है, और दूसरा कूड़ा-कचरा भी वहा इकट्ठा हो रहा है। मै जाकर उस सबको साफ कर डालूगा।"

यह कहकर तुरन्त वह वहा चले गये और भोजन की घण्टी हो जाने पर भी नही आये। आखिर उन्हे बुलवाना पड़ा। लेकिन खाने के बाद वह फिर काम करने के लिए चले गये। शाम को, यहा से चार मील दूर के एक गाव मे जो छोटा-सा एक दवाखाना खुला हुआ है, उसे देखने चले गये, और वहां से काफी रात गये, लगभग सोने के वक्त, वापस आये। मैने भोजन के लिए पूछा, तो कहा—"गाव मे कुछ मिल गया था, उससे मेरा काम चल गया, अब और कुछ नहीं चाहिए।"

दूसरे दिन सबेरे के जलपान और दोपहर के भोजन के समय भी वह दिखाई नही पड़े। वह तो काम मे लग रहे थे, और उसमे विघ्न नही पड़ने देना चाहते थे। लेकिन शाम को खाने के वक्त उत्सुकता के साथ आ पहुँचे। हमने पूछा—"आपने सबेरे और दोपहर क्यों नहीं खाया?" तो जवाब दिया—"मै चौबीस घण्टे मे एक ही बार खाता हूँ। अक्सर छत्तीस घण्टे मे एक बार और कभी-कभी तो अड़तालीस घण्टे मे भी एक बार।"

मैंने कहा—"लेकिन कल तो आपने सुबह और शाम दोनों वक्त खाया था?"

"हा, हा", उन्होने हँसते हुए कहा, "लेकिन इसकी वजह यह थी कि सुबह के वक्त मैंने बहुत कम खाया था। यहा के लिए मैं बिलकुल अजनबी था, इसलिए संकोच के मारे अधिक भोजन न माग सका। नही तो, मैं जब खाता हूँ तो इतना खाता हूँ जो चौबीस घण्टे तक काम दे सके और फिर दूसरे दिनतक खाने की फिक्र नही करता।"

दूसरे दिन, पूरे चौबीस घण्टे बाद, वह आये और हम सबको हँसाते हुए पेट भरकर खाना खाया। संयोगवश गांधीजीने उनसे पूछा—"आपके सब दांत ठीक हैं क्या?"

"जरूर। यहांतक कि भुने चने भी मैं खा सकता हूँ। जब कुछ और खाने के लिए नहीं होता तो भिगोये हुए चने तो मै अक्सर आरोगता हूँ।" यह कहकर उन्होंने एक मनोरंजक कहानी सुनाना शुरू किया। जबतक वह हमारे साथ रहे, सदा ऐसी ही कहानियां कह-कहकर वह हम सबको हँसाते रहे।

सफ़ाई का आंदोलन

यह अचरज की बात है कि जब कोई अच्छी चीज लोगो के दिमाग में समा जाती है तो वह, बिना किसी सगठित जतन के, एकसाथ कई जगह शुरू हो जाती है। बाबा राघवदासने गोरख-पुर जिले मे सफाई का जो काम शुरू किया, उसका वर्णन 'हरिजन-सेवक' मे पहले निकल चुका है*। इस सप्ताह कई ऐसे पत्र आये हैं, जिनमें इस संबंध के नियमित आंदोलन आरम्भ करने के लिए गाधीजी से प्रार्थना की गई है। राजकुमारी अमृतकौरने, जो सघ की सहायक सदस्या बन गई हैं और जिन्होंने महिला-आदोलन की ही तरह ग्राम-पुनरुज्जीवन के काम को भी अपना लिया है, अपने एक पत्र मे लिखा है:—"मै अक्सर गर्धा गाव जाया करती हूँ। यह गांव मेरे घर से २॥ मील दूर है। लोग गंदगी मे रहने के इतने आदी बन गये मालूम पड़ते है कि कूड़े-कचरे और भयकर बदबू की वे कोई पर्वा नही करते। इस हालत को सुधारने की तो उन्हे निश्चित ही कोई फिक्र मालूम नही पड़ती। उनकी हालत देखकर मुझे बड़ा रज होता है। इसमे शक नहीं कि हमने बहुत दिनो तक उनकी उपेक्षा की है।" और, उनकी उपेक्षा करके हमने स्वय अपनी ही उपेक्षा की है।

ग्राम उद्योग के नये ग्रह में ज्यो ही हमे यह मालूम पड़ने लगा कि अब हम कुछ जम गये है, मीराबेनने आसपास के गावों में जाना शुरू कर दिया है। सबसे नजदीक वर्धा का एक उपनगर है, और उसके आगे सिन्दी नामका एक छोटा-सा गाव है। उपनगर का नाम रामनगर है। इसमें कुछ लोग तो ऐसे रहते है कि जिनके मकानों मे पाखाने है, लेकिन सबके यहा पाखाने नही है। इसलिए अनेकों को बमपुलिसो मे पाखाना जाना पड़ता है। कोई एक मील की दूरी पर दो बमपुलिस है, जहा वही लोग आसानी से जा सकते है जो नजदीक मे रहते है। इसलिए ज्यादातर लोग आसपास के उन खुले मैदानो का ही उपयोग करते है जो म्युनिसि-पैलिटी के है पर अभी पड़े पर नहीं उठे है। लोगों के झुण्ड के झुण्ड इधर उधर हर जगह बैठकर टट्टी फिरते हैं—पुरुषो को तो मानो किसीको कोई शरम नही होती, अलबत्ता स्त्रिया किसी आदमी को आते देखती है तो खड़ी हो जाती है और जबतक वह वहा से चला न जाय खड़ी ही रहती है। सबेरे के वक्त किसी भी दिन जाकर यह अवाछनीय दृश्य देखा जा सकता है। कभी-कभी तो कई मिनट तक स्त्रियों को इस तरह, आदमी के चले जाने का इन्तजार करते हुए, खड़ा रहना पड़ता है। मीराबेन को यह बात बहुत बुरी लगी। वह मुझे भी वहा ले गई। कई दिनतक हमने यह वीभत्स दृश्य देखा।

पड़ोस के गाव का दृश्य तो और भी कुत्सित था। उसके दोनो ओर की सड़क तो गावतक मैले से भरी हुई थी। गावतक ही क्यो, गाव के अन्दर के गली-कूचे भी वैसे ही गन्दे है। गांव-वालो से जब हमने कहा, तो उन्होंने जवाब दिया—'यह तो हम जानते हैं कि यह बुरा है। लेकिन हम कर ही क्या सकते हैं? हम सब तो दिनभर मजूरी करनेवाले हैं। अपनी जमीन तो हमारे पास है नही, तब हम और कहां जायें?' यहा की ज्यादा-

[३७ पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

* बरहज का घोर नरक—'हरिजन-सेवक' ता० १ मार्च, १९३५

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २२ मार्च, १९३५

हम सब भंगी बनें

अस्पृश्यता से जितने विषैले फल पैदा हुए हैं उन सबका तो हमें पता भी नहीं। अब चूंकि गावों को सफाई की ओर ध्यान दिया जा रहा है इसलिए यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि गावों और शहरों की गंदगी का खास कारण हमारा यह अस्पृश्यता-विषयक विश्वास है। हम अपना ही मैला छूने और उसे साफ करने में डरते हैं, और हमारा जो स्पष्ट धर्म था उसका पालन हमने अपने ही अमुक भाई-बहिनों को सौंप दिया है। और हमने उन्हें इसलिए अपने समाज से बहिष्कृत कर रखा है, उन्हें अस्पृश्य मान लिया है और हम उनके सुख-दुःख की तरफ देखते तक नहीं, क्योंकि वे हमारी सबसे अधिक महत्व की सेवा करते हैं।

इस सामाजिक बुराई और पाप को दूर करने का एकमात्र उपाय यही है कि हम सब अपने-अपने भंगी बन जायँ। तभी हम स्वच्छता की कला शीघ्र सीखेंगे, गंदगी से पैदा होनेवाले अनेक महारोगों के चंगुल से छुटकारा पायेंगे और इसके साथ ही हमें अर्थलाभ भी होगा। फाउलर नाम के एक लेखकने 'सम्पत्ति तथा दुर्व्यय' (Wealth and Waste) नाम की एक अंग्रेजी पुस्तक में लिखा है कि मनुष्य का मैला अच्छी तरह ठिकाने लगाया जाय तो प्रति मनुष्य के मैले से हरसाल ५) की आमदनी हो सकती है। अनेक जगहों में तो आज सोने-जैसा खाद यों ही पड़ा-पड़ा नष्ट हो जाता है, और उलटे उससे बीमारियां फैलती हैं। उक्त लेखकने प्रो० बुलटीनी की 'कूड़े-कचरे का उपयोग' (The Use of Waste Materials) नामक पुस्तक से जो उद्धरण दिया है उसमें कहा है कि 'दिल्ली में रहनेवाले २८२००० मनुष्यों के मैले में से जो नाइट्रोजन पैदा होता है उससे कम-से-कम १० हजार और अधिक-से-अधिक ९५ हजार एकड़ जमीन को पर्याप्त खाद मिल सकता है।' मगर चूंकि हमने अपने भंगियों के साथ अच्छी तरह बर्ताव करना नहीं सीखा है, इससे प्राचीन कीर्तिवाली दिल्ली नगरी में भी आज ऐसे-ऐसे नरककुंड देखने में आते हैं कि हमें अपना सिर शर्म से नीचा कर लेना पड़ता है। अगर हम सब भंगी बन जायँ तो यह तो हमें मालूम हो ही जायगा कि हमें खुद अपने प्रति कैसा बर्ताव करना चाहिए, हमें यह भी ज्ञान हो जायगा कि आज जो चीज जहर का काम कर रही है उसे पेड़-पौधों के लिए हम किस प्रकार उत्तम खाद में परिणत कर सकते हैं। अगर हम मनुष्य के मल का सदुपयोग करें तो डा० फाउलर के हिसाब के अनुसार भारत की ३० करोड़ की आबादी से साल में ५० करोड़ रुपये का लाभ हो सकता है।

यह देखकर कोई घबरा न जाय कि यह प्रश्न तो बहुत विशाल है। जिसके गले यह बात उतर गई हो वह खुद ही इसे शुरू करदे, और हृदय में यह पूरी श्रद्धा रखे कि अगर उसका उत्साह अंततक ऐसा ही बना रहा तो अवश्य ही सब लोग उसके दृष्टांत का अनुकरण करेंगे। 'श्रद्धा' शब्द शायद यहां उपयुक्त न होगा। क्योंकि मनुष्य का मल पशु के गोबर की ही तरह मूल्यवान् है यह श्रद्धा का नहीं किन्तु नित्य के अनुभव का विषय है। आवश्यकता तो केवल युग-युगांतरों से जमी हुई जड़ता दूर करने की ही है। जिस चीज को आज थोड़े-से आदमी बुद्धि और एकाग्रता के साथ करेंगे उसे कल सभी मनुष्य करने लगेंगे।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

स्वावलम्बी खादी

श्री शंकरलाल बैंकर आजकल गांवों का दौरा कर रहे हैं। वह इस बात की जांच कर रहे हैं कि वहां खादी को स्वावलम्बी बनाने तथा अन्य उद्योग-धन्धों की प्रगति की कहांतक गुंजाइश है।

स्वावलम्बी खादी का मतलब उस खादी से है, जो गांववाले अपने-अपने व्यवहार के लिए स्वयं कात-बुनकर बनाले, साथ ही, जहां संभव हो उसके लिए कपास की उत्पत्ति और उसकी लुढ़ाई धुनाई आदि भी उसी गांव में की जाय। यही खादी का सच्चा ध्येय है। लेकिन इसमें सफलता तभी हो सकती है जबकि लगातार गांववालों के सम्पर्क में रहा जाय। इस काम में होनेवाले आर्थिक लाभ के साथ ही गौरव और प्रतिष्ठा को भी उन्हें जानना चाहिए। इस प्रकार, इस योजना के अन्दर जो खादी बनाई जायगी वह गांववालों की रुचि को मद्देनजर रखकर ही बनेगी। खादी को निखारा नहीं जायगा, यहांतक कि उसकी धुलाई भी नहीं होगी, क्योंकि पहननेवाले स्वयं अपने कपड़े धो लेंगे। इस प्रकार जो खादी तैयार होगी वह चलने में बहुत मजबूत होगी, और इस लिहाज से वह दूसरे सब कपड़ों से सस्ती पड़ेगी। शहरों में बिकनेवाली खादी में तो उसकी बनावट, स्टाक, लाने ले जाने तथा भाड़ा, कमीशन आदि के दूसरे सब खर्च भी शामिल रहते हैं, लेकिन गांव की खादी पर यह एक भी खर्च नहीं पड़ता। अतः गांवों की आवश्यकता-पूर्ति के बाद जो खादी बचे वही शहरों में जानी चाहिए। खादी-भण्डार कोई भी घाटे पर नहीं चलना चाहिए। चर्खा-संघ के भण्डारों को कला के नाम पर खाली ऊपरी तड़क-भड़क पर कभी ध्यान नहीं देना चाहिए, वे तो मुख्यतः कपड़े की किस्म पर ही ध्यान रखें। सच्ची कला क्या है यह मालूम ही किसको है? ज्यादा-से-ज्यादा यही कहा जा सकता कि कला सापेक्ष है। अतः चर्खा-संघ के भण्डारों को चाहिए कि वे मौलिक बनें और इस विश्वास के साथ शहरों में ग्रामीण कला का प्रवेश करें कि एक-न-एक दिन वे सफल होकर ही रहेंगे। यह बहुत जरूरी है कि जो भी खादी बने वह मजबूत और टिकाऊ हो। देखने में सुन्दर हो पर चलने में कमजोर, ऐसी खादी नहीं बनानी चाहिए। ऐसा करने से तो खादी का ही खात्मा हो जायगा। इसलिए अगर हम खादी को कमजोर किये बगैर सुन्दर न बना सकते हों तो हम इस सम्बन्ध की अपनी असमर्थता मंजूर करलें, पर खादी को निःसत्त्व न बनावें। मैंने देखा है कि ब्लीच की हुई खादी अक्सर पहली बार पहनने में ही फट जाती है, अतः ब्लीचिंग से मैं काफी भयभीत हो गया हूँ। निखारी हुई हरेक खादी में ऐसा होता ही है, यह मेरा अभिप्राय नहीं है। लेकिन ऐसे काफी मामले मेरे सामने आये हैं जिन पर से मैं यह कह सकता हूँ कि ब्लीच की हुई खादी की कमजोरी के कारण ग्राहक खादी से असन्तुष्ट हुए हैं। अतः खादी-भण्डारों को चाहिए कि मैंने जो-कुछ कहा है उसको मद्देनजर रखते हुए वे अपनी व्यवस्था को ठीक करने की कोशिश करें।

और जो बात खादी के लिए कही जा सकती है वही अन्य ग्रामीण उद्योगों के लिए भी सच है। अतः ग्राम-सेवकों को चाहिए

कि काफी अनुभव प्राप्त किये बगैर वे पुराने औजारों, पुराने तरीकों और पुराने नमूनों में दखल न दें। मूल को ज्यों का त्यों सुरक्षित रखते हुए उसमें सुधार करने की ओर उनकी प्रवृत्ति रहे, यही ठीक है। ऐसा करने पर उन्हें मालूम पड़ेगा कि यही सच्ची अर्थ-नीति है।

अंग्रेजी से] मो० क० गांधी

हरिजनों की पारस्परिक अस्पृश्यता

रींगस से श्री मूलचन्द अग्रवाल लिखते हैं:—

"ता० ७–३–३५ को मैंने एक दृश्य देखा, जो मैंने सुन तो रखा था परन्तु स्वयं नहीं देखा था। एक कंजर का लड़का खेल में से पानी की मटकी भरकर ले जा रहा था। पूछने पर मालूम हुआ कि वह पीने के लिए ले जा रहा है। इसके लिए और भी पूछताछ की। इसपर नीचे लिखी बातें अबतक मालूम हुई हैं.—

(१) भंगियों का एक कुआ है, मगर उसपर भंगी भाई कजरों को पानी नही भरने देते। भगी लोग जब पानी भरने जाते हैं तब अगर कंजर भी मटकी लेकर पहुँच जाय तो वे उसे पानी डाल देते हैं। अगर उस समय न पहुँचे, या कजर पर भगी किसी कारण से नाराज हो जायँ, तो उसे पानी नही देते—और, फिर उसे खेल में से पानी लेना पड़ता है।

(२) एक अन्य सज्जन की मार्फत भगियों को कहलाया था कि वे उस कजर को भी पानी भर लेने दिया करें, लेकिन भंगियोंने साफ इकार कर दिया, और कहा कि अगर हमारे कुएँ पर कंजर पानी भरेगा तो फिर हमको बनियां-ब्राह्मणो के कुएँ पर पानी भरने दिया जाय। हम कंजर को पानी नही भरने देंगे।

(३) यहा पर कजर का (जिसे सासी भी कहते है) एक ही घर है। उसके घर में चार-पाच आदमी है।

(४) भगियों के तो १०–१२ घर है, उनको राज्यने कुआं दे रखा है।

(५) कजर भगियों के साथ सफाई का काम करता रहता है, और भगी और कजर एक ही चिलम से तमाखू भी पी लेते हैं।

आसपास के गांवों में कजरों और भगियो का परस्पर कैसा-क्या व्यवहार है, तथा जहा पर कजरों के घर ज्यादा है वहा पर उनके पानी की क्या व्यवस्था है, और कजर जिस कुएँ से पानी भरते हैं, उसपर और भी किसी जाति के लोग पानी भर लेते है या नही, आदि बातो की खोज करने का मेरा विचार है। इस विषय में आपका क्या अनुभव है और इस सम्बन्ध मे क्या किया जा सकता है ?"

अस्पृश्यता का अत्याचार पैदा तो ऊँच-नीच के भाव से सवर्णों द्वारा ही हुआ है। वह हरिजनो मे भी इन्ही के संसर्ग से फैला है। अल्पमत भी इसे पोषण देता देखा गया है। धन्धे के साथ-साथ आचरण का भी असर पड़ता ही है। भील, बलाई आदि अनेक जातियों में देखा गया है कि जो 'भगत' बन जाते हैं और मास-मदिरा छोड़कर भगवद्भजन करते हैं, पवित्रता से रहते हैं उनका दर्जा अपने-आप बढ़ जाता है। कजर और मेहतर का पेशा एक ही होते हुए भी कंजर सभी जगह मेहतर से नीचा—कम-से-कम मेहतर की नजर में—इसलिए समझा जाता है कि जातिगत रूप में मेहतर चोरी आदि अपराध नही करते और कंजर करते है। हम हरिजन-सेवकों को जहां सवर्णों को अस्पृश्यता के अन्याय से विमुक्त करना है वहा हरिजनो को भी स्वच्छता और सदाचार सिखाना है।

रामनारायण चौधरी

साप्ताहिक पत्र

[३५ पृष्ठ से आगे]

तर जमीन जमींदार की है, जिसका आधिपत्य आजकल एक महिला के पास है। उस महिला से हम मिले और वर्धा के कुछ वकीलों से मिलने का भी हमने निश्चय किया, क्योंकि उनकी भी कुछ जमीन वहा है। कुछ दिनो की कोशिश का यह फल हुआ कि जमींदार-स्त्रीने गांववालो के पाखाने जाने के लिए अपनी जमीन के एक भाग में खाइया खोदने की इजाजत देदी। गांव में हमारे जाने से, वर्धा-म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों का भी उधर ध्यान गया। एक दिन सबेरे वे लोग भी हमारे साथ वहां गये। शाम को हमने एक सभा की, जिसमें हमारे साथ उन्होंने भी लोगों से कहा, कि उनके गांव की सफाई करके उसे बिलकुल साफ-सुथरा और बढ़िया बनाने में वे हम लोगों के साथ सहयोग करें। मैंने गांववालों को यह सूचना दी कि अगले दिन खाइयां खोदी जायेंगी, उसके १५ दिन बाद भी अगर हमने लोगो को गली सड़को पर पाखाना फिरते देखा तो सबके सामने हम लोग पाखाना उठायेंगे। हमने सोचा था कि सबेरे खाइयां खोदने के लिए वे कुदाली-फावडे लेकर आयेंगे, लेकिन आया कोई नहीं। गांधीजी को हमारे काम का साधारण ज्ञान तो था ही, पर जब आखिरी बात उन्हे मालूम हुई तो उन्होने कहा—'अच्छा, कल सबेरे मैं खुद वहा चलूगा।' हमसे खुद कुदाली, फावड़ा और टोकरी लेकर चलने के लिए उन्होंने कहा। "उन्हे १५ दिन का नोटिस देना बेकार है," गाधीजीने कहा, "हमे तो तुरन्त काम शुरू कर देना चाहिए, फिर वे चाहे उसमें शरीक हो या न हों। उस मैले को खाद के लिए अपने बाग मे ले आयेंगे।" मुझे और मीराबेन को तो थोड़ा सकोच हो रहा था कि इस तरह कही हम गांववालो को मियाद के पहले ही ठेस न पहुँचादें, लेकिन गांधीजी तो निश्चय कर चुके थे। दूसरे के खेतो मे खाइया खोदने का चाहे उन्हे अधिकार न हो, लेकिन सड़को के बजाय खेतो में पाखाना फिरने से तो उन्हें कोई न रोकेगा। सफाई का यह पहला सबक उन्हे क्रियात्मक प्रदर्शन के ही द्वारा सिखलाया जा सकता है। अत रामनगर से हमने काम की शुरुआत की। रास्ते मे जो भी कूड़ा-कचरा मिला उसे हम साफ करते जाते थे। लेकिन सिन्दी मे तो इतना कूड़ा था कि एक टोकरी से काम नही चल सकता था। इसलिए हमने सड़क के एक किनारे उसका ढेर लगाकर मिट्टी से उसे अच्छी तरह ढक दिया, ताकि दूसरे दिन हम उसे उठाकर अपने बाग मे ले आयें। बाद को हम उस जगह गये, जो खाइयो के लिए अलग कर दी गई थी। जब लोगो को यह मालूम पड़ा कि स्वय गाधीजी भी आये हैं, तो वे भी चुपचाप आ पहुँचे। उनमें से कुछ तो बहुत शर्मिन्दा हुए और उन्होने दूसरे दिन सुबह ही कुदाली-फावडे से काम शुरू कर देने का वादा किया। गांधी-जीने पुरुषो और स्त्रियो के लिए अलग-अलग जगह का चुनाव करके, शुरुआत के लिए सबसे आसान तरीका बताया। उन्होने कहा—छः फुट चौड़ी और एक फुट गहरी कुछ खाइयां खोदो, जिनके बीच की जगह खुली रहे। इस खुली जगह मे जमीन से निकली हुई मिट्टी के ढेर लगादो। खाई की खुली जगह के आस-पास के जो किनारे हों उन पर दोनों पाव रखकर लोग बैठें। सबसे आसान तरीका यही है। इतने वर्षोंतक आप लोग शर्म को ताक पर रखकर काम चलाते रहे हैं, इसलिए बिना टट्टियों के आप का

काम चल सकता है; लेकिन अगर आप टट्टियां चाहे तो आपके गांव की ही चीजों से हम उनके बनाने में भी आसानी से आपकी मदद कर सकते हैं। आपको जो-कुछ करना है तो यही कि मैले को वहीं की मिट्टी से पूर दिया करें। आपने ऐसा किया तो आठ दिन में ही वह बढ़िया खाद बन जाया करेगा और तमाम साल उससे कभी चारे की और कभी सब्जी की फसल होती रहेगी। यह सब मैं अपने तजुरबे की बात कह रहा हूं। इससे बिना किसी अतिरिक्त व्यय या प्रयत्न के आपकी फसल में वृद्धि होगी, मक्खियों के साथ रोग के कीटाणु न पहुँचने से आपका स्वास्थ्य सुधरेगा, और आपका गांव बिलकुल साफ-सुथरा बन जायगा। तब, आओ हमारे साथ। बोलो, अपने कुदाली-फावड़ा लेकर आओगे या नहीं ?"

'आयेंगे, जरूर आयेंगे'—उन्होंने जोर से कहा। इसमें शक नहीं कि यह तो अभी शुरूआत ही है, लेकिन इसे भारत-व्यापी स्वच्छता-आंदोलन क्यों न बनाया जाय ? इस छोटे-से वर्णन में ऐसी काफी बातें हैं, जो सब परिस्थितियों में काम दे सकती हैं।

हमारी सरगर्मियाँ

हमारी सरगर्मियां जारी हैं। हम रोज नये-नये प्रयोग करते हैं। मेहमान लोग भी कोरे मेहमान बने रहने में संतोष नहीं मानते। यहांतक कि अंग्रेज मित्र भी अपने हाथों अपने कपड़े धोने और बासन मांजने के लिए आग्रह करते हैं। बेगम खालिदाखानम, जिनका परिचय कई सप्ताह पूर्व दिया जा चुका है, अपने वादे के मुताबिक वर्धा आकर तीन दिनतक हमारे साथ रहीं। डा० जाकिरहुसैन साहब भी उनके साथ थे। डाक्टर साहब के लिए तो हमें कोई भय न था, क्योंकि वह तो इधर कई वर्ष से हमारे ही साथी रहे हैं, लेकिन इस तुर्की विदुषी को आराम पहुँचा सकेंगे या नहीं, यह डर हम सब को था। लेकिन उन्होंने हमारी सारी शंकाओं को निर्मूल कर दिया। उन्होंने कहा कि यहां मैं जितनी सुखी रही उतनी सुखी इससे पहले कभी नहीं रही। उन्होंने अपना काम खुद करने पर जोर दिया, और तीसरे पहर श्री कस्तूर बा तथा अन्य बहिनों के साथ गेहूँ बीनने भी आ बैठीं। अपनी टट्टी साफ करने के लिए भी उन्होंने आग्रह किया, पर मीराबहन के आगे उनकी चल न सकी। तब, उन्होंने सफाई के लिए हमारे साथ चलने पर जोर दिया।

हमारे रहने की जगह से कुछ ही गज के फासले पर एक घानी है। वर्धा में घानी से निकला हुआ साफ तेल मिलने में हमें बड़ी दिक्कत हुई, क्योंकि नगर में बहुत कम देसी घानियां हैं और बाजार में मिल का ही तेल मिलता है। "यहां घानियां होंगी जरूर" यह कहते हुए गांधीजीने हमारी टोली के एक सज्जन से पता लगाने के लिए कहा। उन्होंने जाकर खोज की और लौटकर बताया कि 'हैं तो कई, पर ज्यादातर बेकार पड़ी हुई हैं।' तब गांधीजीने तुरन्त एक घानी खरीद लेने की सलाह दी। घानी आई और अब हम अपनी घर की ही घानी का तेल काम में ला रहे हैं। लेकिन जिन सज्जन से यह घानी लाकर यहां लगाने के लिए कहा गया था उन्हें यह समझ में नहीं आया है कि ऐसा करके हमने कौन-सी बुद्धिमानी की है।

"एक मिनिट में मैं आपको यह समझाता हूँ", गांधीजीने कहा, "देखिए, एक घानी बनाने में शायद ५०) से कम खर्चा नहीं बैठता। अब देशभर की कुल घानियों का हिसाब लगाइए। अगर सात गांवों पीछे एक घानी शुमार करलें, जो कि निश्चय ही बहुत कम अन्दाजा है, तो देशभर में एक लाख से ज्यादा घानियां होती हैं। अब अगर इन से तेल पेरना बन्द कर दिया जाय तो ये सब बेकार हो जायगी न ?"

"जरा सोचिए तो कि इसका क्या मतलब हुआ। फी घानी ३०) ही शुमार करे तो भी इसका अर्थ यह है कि हमारी तीस लाख रुपये की पूंजी बेकार पड़ी हुई है। क्या यह दुःख की बात नहीं है ? भला इसे हम बरबाद कैसे होने दे सकते हैं ? और अगर ये सब चालू हो जायं तो, एक घानी पीछे अगर एक आदमी का ही शुमार करें तब भी, सोचिए कि कितने आदमियों को इनसे काम मिल जायगा। फिर उससे अलावा गाय-बैलों के लिए कितनी खली तैयार होगी। यही बात ईख पेरने के कोल्हू की भी है।"

"लेकिन," सहायशील सज्जनने पूछा, "लोग क्या इस बात पर ध्यान देंगे ?"

"लोगों के ध्यान में लाने के लिए ही तो हमने अपने यहां यह घानी लगाई है, अपना चावल खुद तैयार कर रहे हैं और खुद ही अपना आटा पीसते हैं। लेकिन इतने पर भी अगर वे ध्यान न दें तो हम क्या करें ? कल्पना कीजिए कि लोग सत्य और अहिंसा के सन्देश पर ध्यान नहीं देते, तो क्या हम उनसे असत्य और हिंसा ग्रहण करने के लिए कहेंगे ? हमें तो चाहिए कि राष्ट्र के लिए तथा जिन गरीब लोगों से राष्ट्र बना है उनके लिए जो बात अच्छी हो उसे करते रहें। और लोग ऐसा करेंगे या नहीं, इस बात की हमें पर्वा नहीं करनी चाहिए।

अंग्रेजी से] महादेव ह० देसाई

मेरा भ्रमण

(५)

बिलासपुर

७-३-३४—अरपा नदी के उस पार सरकंडा गांव में एक हरिजन-सेवी सज्जन का दर्शनलाभ करके उस दिन मेरी आंखें कृतार्थ हो गईं ऐसा मैं मानता हूँ। वहां श्री साबा नाम के एक वृद्ध सज्जन रहते हैं। पहले यह कोऑपरेटिव बेंक के ऑडीटर थे। अब अवकाश ग्रहण कर लिया है। गुजारे लायक पेंशन मिल रही है। श्री साबा की हरिजन-सेवा स्तुत्य है, अनुकरणीय है। अरपा नदी का तमाम घाट गन्दा रहा करता था। चाहे जहां लोग टट्टी फिर जाते थे। शिवालय के सामनेतक की यही दशा थी। समझाने-बुझाने से तो कोई मानता नहीं, इसलिए श्री साबाने कथनी को ताक पर रखकर करनी से काम लिया। एक नवयुवक को साथ लेकर ८ अक्तूबर, १९३४ से आपने झाड़ने-बुहारने का काम शुरू कर दिया। सैकड़ों आदमियों का पाखाना उठाना, कूड़ा-कचरा फेंकना और घाट का झाड़ना-बुहारना उनका नित्य का धंधा हो गया। सरकंडा में कोई म्युनिसिपैलिटी तो है नहीं, इसलिए टट्टी तो लोग मैदान में ही जाते हैं। श्री साबाने छोटे-छोटे गड्ढों का खोदना शुरू कर दिया। जो लोग पाखाना फिरने जाते उनसे विनयपूर्वक कह देते कि गड्ढे में ही टट्टी फिरिए और बाद को उस गड्ढे को मिट्टी से ढक दीजिए। मैं उनके साथ जब नदी का घाट देखने गया तो मुझे पचासों गड्ढे उन्होंने दिखाये। फिर भी कुछ लोग तो आज भी इधर-उधर टट्टी फिर ही जाते हैं। किन्तु श्री साबा थकने या निराश होनेवाले जीव नहीं। उनका काम तो वैसा ही जारी है और रहेगा।

वे तो फलेच्छा के बिना काम करते हैं। मैंने जब उनके इस सेवा-कार्य की सराहना की तो बड़े सरल भाव से बोले, 'इसमें ऐसी तारीफ की बात ही क्या—मैं ठहरा बूढ़ा आदमी, बैठे-बैठे भोजन पचेगा नहीं, इससे शाम-सबेरे कुछ काम कर लेता हूँ, थोड़ा व्यायाम हो जाता है।' यह सुनकर मेरा मस्तक उनके चरणों पर और भी श्रद्धा के साथ झुक गया।

फिर उनके साथ सरकडा की हरिजन-बस्ती और पाठशाला देखी। बस्ती की गलियां खूब साफ, घर और आगन स्वच्छ। यहां भी श्री सांबा नित्य झाड़ू लगाते हैं। एक सवर्ण भाई के घर पर नित्य प्रातः और सायंकाल 'रामधुन' कराते हैं, जिसमें सवर्ण तथा हरिजन सब सम्मिलित होते हैं। पाठशाला में १५ बालक हाजिर पाये—९ बालक सवर्णों के और ६ हरिजनों के। पाठशाला के बच्चे श्री सांबा को पितृवत् मानते हैं। उनके साथ सरकडा में मेरा जो एक घंटा बीता वह मेरे जीवन में कभी भूलने का नहीं। वह सत्संग-लाभ मेरे किसी पूर्व के पुण्य का ही फल था ऐसा मैं मानता हूँ।

कलकत्ता

हरिजन-बस्तियाँ— यहां मैं ९ मार्च से १४ मार्चतक ठहरा। भारत के इस सबसे बड़े शहर की सभी बातें बड़ी होनी चाहिए। यहां सम्पन्नता बड़ी है और दरिद्रता भी बड़ी है। प्रकाश बड़ा है और अन्धकार भी बड़ा है। जितनी बड़ी स्वच्छता है, उतनी ही बड़ी गंदगी है। चौरंगी देखकर दो मिनिट के लिए आप हाजरा डिपो, बीबी बागान और मेंहदी बागान की हरिजन-बस्तियां तो देखिए। इस स्वर्गोपम पुरी में आपको घोर-से-घोर नरक देखने को मिलेगा। दुःख तो यह है कि बड़ा बाजार और चौरंगी पर तो सभी की नजर जाती है, पर इन कमबख्त नरकागारों को कितने देखते हैं। मैंने कुल दस बस्तियां देखीं। कैसे उनका शब्द-चित्र खीचूं? अबतक मैं भारत की वर्तमान राजधानी दिल्ली की ही बस्तियां सबसे गंदी समझता था, पर भारत की भूतपूर्व राजधानी कलकत्ते की बस्तियां देखकर मुझे अपनी वह धारणा गलत ठहरानी पड़ी।

हाजरा डिपो की बस्ती कार्पोरेशन की बस्ती है। इसमें मेहतर, डोम और हाडी रहते हैं। कार्पोरेशनने अपने मुलाजिमों के लिए छोटी-छोटी कच्ची कोठरियां बना रखी हैं। मुश्किल से दो मनुष्यों का निभाव वहां हो सकता है, मगर एक-एक कोठरी में पांच-पांच छै-छै प्राणी बसे हुए हैं! ।) फी आदमी किराया वसूल किया जाता है। जिन्होंने अपनी मिट्टी की कोठरियां बना ली हैं उन्हें भी केवल जमीन का प्रति मनुष्य =) मासिक भाड़ा देना पड़ता है। बस्ती से बिल्कुल लगा हुआ डलाव है, जहां सारे दिन मैले की गाड़ियों का मेला-सा लगा रहता है। वहीं बंपुलिस है। नालियों-मोरियों में अलग सड़ा गंदा पानी ठिला रहता है। कुछ झोंपड़ियां ऐसी हैं कि जिन पर न छानी है न छप्पर। छप्पर की जगह चीथड़े-गूदड़े और कनिस्टरों के टुकडे पड़े हुए हैं। बरसात और गर्मी के दिनों में इन झोंपड़ियों के प्राणियों पर न जाने क्या बीतती होगी।

बीबी बागान की बस्ती तो और भी महारौरव नरक है। वहां बारह मास गँदला पानी भरा रहता है। कनिस्टर की टीन छप्पर है और कुछ टाट के चिथड़ों के सहित वही दीवार भी। बड़ी ही बीभत्स बस्ती है। यह मुहल्ला मलेरिया का तो खास अड्डा है। मेंहदी बागान की बस्ती देखी तो वहां मेरे अचरज का ठिकाना न रहा। दो-दो कतारों में तीन तरफ यह बस्ती बसी हुई है। दोनों कतारों के बीच साढे तीन या चार फुट का फासला है। एक कोठरी को मैंने नापा तो वह ८ फुट लम्बी और ७ फुट चौड़ी निकली; और किराया ५) माहवार लिया जाता है! रोटी बेचारे बाहर उस सँकडी गंदी गली में बनाते हैं, पर बरसात में तो उस कालकोठरी में ही उन्हें अपना सारा निस्तार करना पडता है। गर्मी में भी उन्हीं कोठरियों में घंधे रहते हैं। बस्ती के इर्दगिर्द कोई मैदान भी तो नहीं है कि जहां बेचारे जेठ-बैसाख की ऊमस में खटिया डालकर सो रहे। कितना बडा अन्तर है—जहां हवाई बंगलों और आलीशान मकानों में बिजली के पंखे लगाकर लोग सोते हैं, वहीं, उसी कलकत्ते में सार्वजनिक स्वास्थ्य का कर्णधार हमारा हरिजन भाई पांच-सात फुट भी खुली हुई जगह न मिलने के कारण ५) माहवार किराया देकर भी अपनी उसी गंदी कोठरी में सडता है। जिस जमींदार के अहाते में यह बस्ती है वह बडी बेरहमी से भाड़ा वसूल करता है। दो दिन की भी देरी हुई कि वह कोठरी में अपना ताला बन्द करा देता है। वहीं सामने ताडी की दूकान खुली हुई है, जिस पर हमेशा पियक्कड़ों का ठट लगा रहता है। इस मुहल्ले में मेहतरों के करीब ५० घर हैं।

यह सब क्या है? जिस कार्पोरेशन की करोड़ों की वार्षिक आय हो, क्या वह दो-चार लाख रुपये भी इन नरकतुल्य बस्तियों पर खर्च नहीं कर सकता? पर जाने दीजिए कार्पोरेशन को, उसे तो अपने आपसी लडाई-झगडे से ही फुर्सत नहीं—मैं तो कलकत्ते के उन लखपतियों और करोडपतियों से अपील करूँगा, जो हरसाल लाखों रुपये दान-पुण्य में खर्च करते हैं। फिर यह कोई दान की बात नहीं है। जितना रुपया वे नई बस्तियां बसाने में लगायेंगे, वह सब का सब वसूल हो जायगा। जिस देश में ऐसी-ऐसी नरक-तुल्य मानव-बस्तियां मौजूद हों, उस देश में अब नई-नई धर्मशालाओं, नये-नये मन्दिरों और नये-नये बाग-बगीचों का बनवाना मानवता के प्रति पाप नहीं तो क्या है? इन नरकागारों में रहनेवालों को हम किस मुंह से सफाई से रहने का उपदेश दें? नहाने-धोने की कौन कहे, रोटी बनानेतक को तो जगह नहीं। फिर भी मैंने मेहतरों की उन छोटी-छोटी कोठरियों को काफी स्वच्छ और व्यवस्थित पाया। चोरबागान की बस्ती में दुसाधों को छोडकर मेहतरों के ही करीब दो सौ घर हैं। उनके घरों के भीतर की स्वच्छता और व्यवस्था देखने ही लायक है। मगर बस्तियों की गंदगी का उत्तरदायित्व थोडे ही उनके ऊपर लादा जा सकता है। कार्पोरेशन की इस निर्दयतापूर्ण लापर्वाही का इलाज तो कलकत्ते के मानवता-प्रेमी नागरिक ही कर सकते हैं।

शिक्षा-प्रचार—यह तो हुई बस्तियों की एक झलक, अब कलकत्ते के हरिजन-कार्य पर थोड़ा-सा प्रकाश डालूंगा। मेरा अधिकांश समय हरिजन-बस्तियां, पाठशालाएं और टैनरी वगैरा देखने में ही खर्च हुआ। पहले मैं पाठशालाओं के सम्बन्ध में लिखूंगा।

जिन सज्जन के साथ मैंने कलकत्ते की हरिजन-बस्तियों और पाठशालाओं का निरीक्षण किया, पाठकों को उनका थोड़ा-सा परिचय कराना मैं अपना धर्म समझता हूँ। इनका नाम श्री

नृसिहदास है। जिला गोरखपुर के निवासी हैं। हरिजन-सेवा के पीछे दीवाने है। पाच-छै साल मे जिस लगन, जिस अनन्यता और जिस परिश्रम के साथ यह हरिजन-सेवा कर रहे है, वह स्तुत्य है, अनुकरणीय है। नृसिहदासजी एक कर्मरत साधु हैं। एक अर्से से कलकत्ते मे रहते हुए भी इनकी काली कामरी पर शहर का कोई रग नही चढा। सोलह आने ग्रामीण हैं। खादी की चार गजी धोती और दो गज का एक मोटा चदरा ओढते हैं। पैरो मे न जूता पहनते हैं, न चप्पल। चलते-चलते पैर घिस गये हैं। मेरे बहुत आग्रह पर चप्पल पहनना मान तो लिया है, पर मुझे यह पछतावा तो है ही कि मै अपनी आखो के आगे उन्हे चप्पल न पहना सका। अपने ही हाथ से भोजन बनाते हैं, अपने ही हाथ से बर्तन माजते है। हरिजन-उत्थान-समिति की तमाम पाठशालाओ को देखते और बस्तियो मे कभी रामायण बाचने और कभी रामधुन कराते है। बाबा राघवदासजी के आप परमभक्त है। अखबारों की दुनिया मे बाबा नृसिहदासजी का शायद ही नाम आता हो। उन्हे अपनी प्रसिद्धि की जरा भी इच्छा नही। वे तो अपने काम से काम रखते है।

कलकत्ते मे दो सस्थाएँ शिक्षा-प्रचार का काम कर रही हैं—हरिजन-सेवक-सघ और हरिजन-उत्थान-समिति। पिछली सस्था का सचालन कुछ सुधार-प्रेमी मारवाडी सज्जनो-द्वारा हो रहा है। यह सस्था १९२६ से हरिजनो मे शिक्षा-प्रचार का काम कर रही है। पहले इसका नाम 'दलित-सुधार-सोसाइटी' था। समिति की कुल २४ पाठशालाएँ है—१७ रात्रि-पाठशालाएँ और ७ दिवस-पाठशालाएँ। रामबगान की रात्रि-पाठशाला केवल कन्याओ के लिए है। इन पाठशालाओं मे कुल ९९५ विद्यार्थी पढते है। मैंने हाथी बागान, तालतल्ला, बालीगंज, बीबी बागान बेलियाघाटा की रात्रि-पाठशालाएँ तथा तालतल्ला, एण्टाली, और नरकुलडागा की दिवस-पाठशालाएँ देखी। इन सभी पाठशालाओं मे हिंदी पढाई जाती है। बात यह है कि मेहतर, डोम दुसाध और चमार बिहार और युक्तप्रात के ही कलकत्ते मे आप को मिलेगे। यह अच्छी बात है कि हरिजन विद्यार्थियो के साथ प्राय. सभी पाठशालाओ मे ब्राह्मण, वैश्य आदि सवर्ण जातियो के भी कुछ बालक पढते है। दो-तीन पाठशालाओं मे एक-एक दो-दो मुसलमान विद्यार्थी भी पढते है। हाथीबागान, तालतल्ला, नरकुलडागा, बीबीबागान और बेलियाघाटा की पाठशालाओ मे विद्यार्थी बडी अच्छी सख्या मे उपस्थित मिले। बीबीबागान मे दर्ज रजिस्टर ३६ हैं, जिनमें ३५ हाजिर मिले। इसी तरह नरकुलडागा मे ३७ मे ३६ हाजिर पाये। यह सब नियमित निरीक्षण का ही परिणाम है। पढाई तो अच्छी है ही, सफाई इत्यादि भी असतोषजनक नही है। बीबीबागान की रात्रि-पाठशाला देखकर तो मेरे आनद का पार नही रहा। पाठशाला का मकान खूब साफ-सुथरा है। यह बस्ती जितनी गदी है, पाठशाला-भवन उतना ही स्वच्छ और सुंदर है। श्री हरिहर बाबूने अपने मकान का एक हिस्सा रात्रि-पाठशाला के उपयोग के लिए मुफ्त दे रखा है। श्री हरिहर चौधरी बड़े उत्साही और सेवा-प्रेमी सज्जन हैं। बिजली की रोशनी भी बाबूसाहब मुफ्त ही अपनी ओर से पाठशाला को दे रहे हैं। लड़के भी मैंने यहां खूब स्वच्छ पाये।

समयाभाव से सघ की तो पारसी बागान की ही केवल एक दिवस-पाठशाला देख सका। यहा दर्ज रजिस्टर ७७ विद्यार्थी हैं, हाजिर केवल ३३ मिले। मोची, ताती, तेली और कांदू जाति के लड़के इस पाठशाला में पढते है। दर्जा ३ तक की पढाई होती है। दो अध्यापक पढाते है।

देशी खेलों के दंगल—१२ मार्च को श्री नृसिहदासजीने तीन भिन्न-भिन्न स्थानो पर देशी कसरत और खेलों के दिखाने का आयोजन किया था। १४ पाठशालाओ के करीब १५० लडकोंने व्यायाम के दगलों में भाग लिया। लेजम का बड़ा अच्छा अभ्यास है। हाथीबागान की पाठशाला के लड़के बैण्ड भी बजाते हैं। मैं तो सदा से ही क्रिकेट, फुटबाल, हॉकी आदि विलायती खेलो के मुकाबले मे अपने देशी खेलों को दाद देता हूँ। जहा विदेशी खेलो मे लाखो रुपये स्वाहा हो जाते है, वहां हमारे इन देशी खेलो मे मुश्किल से ही कुछ पैसा खर्च होता है—कबड्डी-जैसे खेलों मे तो एक पाई भी खर्च नही होती। इन खेलों को देश मे जितना ही प्रोत्साहन दिया जाय थोडा है।

बालमंदिर—अब दो शब्द 'बालमंदिर' पर। हाजरा रोड पर बाल-मदिर नाम की एक संस्था है। पारसाल जनवरी मे श्री घनश्यामदासजी बिड़लाने इसका उद्घाटन किया था। यह चीज देखकर मुझे अमित आनद हुआ। यहा ६ मास से लेकर ३ वर्षतक की उम्र के हरिजन बच्चो को नित्य साबुन और गरम पानी मे नहलाया जाता है, उनके कपडे साफ किये जाते हैं और फिर उन्हे ताजा दूध पिलाया जाता है। आजकल यहा ५३ बच्चो को दूध दिया जाता है। एक नर्स रहती है और एक दाई। हां, जच्चा को भी ६ महीने तक दूध दिया जाता है। आजकल ८ जच्चाओ को दूध मिलता है। रोगी बच्चो को दवाई भी दी जाती है। डॉ० पाल और मिस बोस सप्ताह मे दो बार बाल-मंदिर मे आकर रोगी बच्चो को देखते है। बच्चे मुझे काफी चगे दिखाई दिये। बालमदिर की व्यवस्था श्री सौदामिनी मेहता करती है। मासिक खर्च २००) के लगभग है। १००) हरिजन-सेवक-सघ से मिलता है और बाकी पैसा बाल-मदिर के संचालक सदा से इकट्ठा कर लेते हैं। क्या अच्छा हो कि एक-एक बूद दूध के लिए तरसनेवाले गरीब हरिजन बच्चो के प्रीत्यर्थ ऐसे बाल-मदिर हमारे देश के प्रत्येक नगर मे स्थापित हो जायँ।

चर्मालय—इस दौडधूप मे थोडा-सा समय निकालकर श्री सतीशबाबू का चर्मालय भी देख आया। यहा ८ विद्यार्थी चमड़ा कमाने का काम सीख रहे है। वही छोटी-सी रसायनशाला है। सतीश बाबू की तैयार कराई हुई हाथ की 'ग्लेजिग' मशीन भी देखी। विद्यार्थी इसी मशीन पर काम करते हैं और यह खासा अच्छा काम देती है। हरिजन-सेवक-संघ के इस चर्मालय के इर्दगिर्द चीनी मोचियो के पचासो छोटे-छोटे चर्मालय हैं, जिन्होंने कि बड़ी-बड़ी फैक्टरियो की भी जड़ें हिला दी हैं।

कलकत्ते में ही मेरा हरिजन-सेवक-सम्बन्धी भ्रमण समाप्त हुआ। श्री सीतारामजी सेकसरिया और श्री भागीरथजी कानोड़िया के प्रयत्न से मुझे अपने कार्य मे खासी सफलता मिली, अत: उनके प्रति कृतज्ञता प्रगट करना मै अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

वि० हु०

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369.

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, २९ मार्च, १९३५. [संख्या ६

विषय-सूची

एक ही कुएँ पर

उस दिन कलकत्ते के विद्यावयोवृद्ध सुविख्यात राय बहादुर पूरणचन्द्र नाहर एम० ए०, एम० एल० ने अपना संग्रहालय देखने के लिए मुझे निमन्त्रण दिया था। नाहरजी का यह संग्रहालय दूर-दूरतक प्रसिद्ध है। कलकत्ते में यह अनुपम चीज है। पुरातत्व के शोधक यहां बैठकर बहुत-कुछ प्राप्त कर सकते हैं। प्राचीन-से-प्राचीन पाषाण और धातु की मूर्तियों, सिक्कों, चित्रों और हस्त-लिखित तथा मुद्रित पुस्तकों का यह बड़ा सुन्दर संग्रह है। तीन घण्टे तक नाहरजीने मुझे अपने संग्रहालय की एक-एक चीज दिखाई। सूक्ष्मता से देखा जाय, तब तो कई सप्ताह चाहिए। मैंने तो सब विहंगम दृष्टि से ही देखा।

एक चीज वहां मैंने बड़े काम की देखी। वह 'इंडियन माइक्रा-कॉज्म' (Indian Micracosm) है। सन् १८२८ में मद्रास के जे० गेंज एण्ड सनने इसे प्रकाशित किया था। इसमें बड़े ही सुन्दर चित्र हैं। चित्रों में रंग हाथ से भरा गया है। 'जुआरिहि सूझइ आपन दाऊ' के अनुसार मेरी नजर 'पनिहारिनो' (Water women) के चित्र पर जा पड़ी। यह २० नम्बर का प्लेट है। चित्र बड़ा सुन्दर है। एक ग्राम का दृश्य है। एक कुएं पर सवर्ण और शूद्र स्त्रियां पानी भर रही हैं। सवर्ण स्त्रियों के हाथ में पीतल और तांबे के घड़े हैं, और शूद्र स्त्रियों के हाथ में मिट्टी के। कोई पानी खींच रही है और कोई भरकर ले जा रही है। एक ही पनघट पर सवर्ण और शूद्र पनिहारिने पानी भर रही हैं।

चित्र-परिचय में लिखा है—

The exhibition in this plate is a group consisting of Brahmin, Gentoo and Shudra women of caste, at a village well, drawing and conveying water for domestic purposes, being one of the principal employments alloted to them.

Water being an element considered by Brahmins *undefileable* they scruple not to bath, wash their clothes and drink out of the same well in common with Shudra caste.

आज से १०० वर्ष पूर्व जल में स्पर्श-दोष नहीं लगता था। सब जलाशय सब के लिए एकसमान मुक्तद्वार थे। पर आज उसी मद्रास में तालाबों और कुओं पर हरिजनों की छाया भी नहीं पड़ने देते। नाहरजीने चित्र दिखाते हुए कहा—"सौ बरस पहले महात्मा गांधी मद्रास के गांवों में तो कहने गये नहीं थे कि ब्राह्मणों और शूद्रों को एक ही कुएं पर पानी भरना चाहिए।"

अस्पृश्यता के पृष्ठपोषक जरा इस चित्र पर विचार करें और अपनी अंतरात्मा से पूछें कि अन्त्यजों के लिए कुएँ, तालाब आदि बन्द करके हमने पुण्य किया है या पाप।

वि० ह०

एक हरिजन-गांव में

जब से मैं महात्मा गांधी के कार्यक्षेत्र को पाश्चात्य कलाकारों के आलंकारिक शब्दचित्रों के द्वारा नहीं किन्तु उसके वास्तविक रूप में प्रत्यक्ष देखने लगी हूँ, तबसे मुझे तुर्की के अनातोलिया प्रांत के उस 'अहिलेर' नामक आंदोलन की याद आ जाया करती है जो वहां तेरहवीं सदी में हुआ था। तुर्की का वह राजनीतिक और शायद नैतिक तथा आर्थिक अवनति का युग था। और ऐसे समय में प्राय जैसा हुआ करता है उच्चवर्गवाले दूसरों को लूटते थे और नीचे के वर्ग अध:पतन के गर्त में पड़े हुए थे। उस समय अनातोलिया की प्रजा का नैतिक और आर्थिक पुनरुद्धार करने के अर्थ 'अहिलेर' आंदोलन आरंभ हुआ। महात्मा गांधी आज जिस तरह नीतिधर्म के आधार पर आर्थिक रचना करने का प्रयत्न कर रहे हैं, यह 'अहिलेर' प्रवृत्ति भी उसी तरह की थी। इन दोनों आंदोलनों में साम्य यह है कि 'अहिलेर' भी पागलपन से भरी हुई प्रतिस्पर्धा के बिना प्रजातंत्र स्थापित करना चाहता था और महात्मा गांधी का आंदोलन भी ऐसे ही प्रजातंत्र की स्थापना का प्रयत्न कर रहा है। स्वार्थपूर्ण व्यक्तिवाद और यंत्रों का साम्राज्य इन दोनोंने मिलकर आधुनिक प्रजातंत्र को जोखम में डाल दिया है। समाज में संपत्ति का बँटवारा न्यायपूर्वक हो, जवाबदेही और सेवा सबकी समान रहे ऐसा सामूहिक प्रयत्न 'अहिलेर' आंदोलन के संचालकोंने किया था।

इसका तो हमें पता नहीं कि 'अहिलेर' आंदोलन में ग्रामोद्धार का समावेश था या नहीं। पर उन लोगोंने समस्त हस्तकला-सम्बन्धी उद्योगों के जन-मंडल जरूर बनाये थे, और देश का तमाम कच्चा माल वे काम में लाते थे। प्रत्येक मंडल एक धर्मसंघ

था, और वे ही लोग उसमे लिये जाते थे जो उस मण्डल का धधा सीखना चाहते थे। सारे देश मे माल खपाने की व्यवस्था भी यही मंडल करता था। ऐसे जनमंडलों की सख्या दो सौ से ऊपर पहुँच गई थी। इन सबके बीच स्नेह तथा महयोग का सम्बन्ध था। मेरा यह विश्वास है कि इस प्रकार के धार्मिक आधार पर जो वहां मजदूरों का संगठन हुआ था, वही तीन शताब्दियो तक तुर्की में ओटॉमन राज्य को टिकाये रहा। 'अहिलेर' का प्रथम जनमंडल—प्रथम धर्मसघ चमारो का था। सघ का यह अटल नियम था कि प्रत्येक मनुष्य को हर तरह से स्वाश्रयी होना चाहिए। अपने बाप-दादो की समृद्धि की डींग मारनेवाले वहा प्रवेश नही कर सकते थे। 'कोई पैगम्बर का ही लडका क्यो न हो', पर अगर उसमे स्वत: कोई गुण नही है तो उसका कुछ भी मूल्य नही था।

महात्मागाधी का रहन-सहन देखकर मुझे उन सात प्रतिज्ञाओं की याद आ जाती है जो तुर्की के उन कारीगरो के धर्मसघ में प्रवेश करनेवाले प्रत्येक नये मनुष्य को लेनी पडती थी। सात व्यसनों का त्याग और सात व्रतो का पालन—सात दरवाजे बद कर देना और सात दरवाजे खोलना। यह इस प्रकार :—१. क्षुद्रता का द्वार बद करना और उदारता का खोलना, २ अत्याचार और बलात्कार का द्वार बंद करना और नम्रता तथा करुणा का खोलना; ३. विषयवासना का द्वार बद करना और तप तथा त्याग का खोलना; ४ लोकैषणा का द्वार बद करना और न्याय का खोलना; ५. कलह और निदा का द्वार बद करना और विद्या तथा विनय का खोलना; ६. लोभ का द्वार बद करना और सतोष का खोलना; ७. असत्य का द्वार बंद करना और सत्य का खोलना।

इस सघ मे इतने मनुष्यो का प्रवेश नही हो सकता था-- नास्तिक, ज्योतिषी, कसाई, शस्त्र-चिकित्सक, कर वसूल करने वाले, शिकारी और साहूकार।

आज सवेरे जब मै हरिजनो के गाव मे जा रही थी और आश्रम के कार्यों को देख रही थी उस समय मुझे ऐसा लगा कि सादगी और स्वतंत्रता के जिस जीवन को मै भूल गई थी उसका मानो मै भारतवर्ष के इस मध्यभाग मे अनुभव कर रही हूँ। मैने प्रभुसे प्रार्थना की कि यह सादी रहनी भारतवर्ष को यत्रासुर के जुल्म से मुक्त रखे। क्या मुक्त रखेगी? इस अनात्मवादी यत्रासुर को दूर रखने की आशा दुनिया मे अगर कही हो सकती है तो वह भारतवर्ष मे ही हो सकती है, क्योकि भारतवर्ष के पास अपार जनबल है और प्राचीन सरलता है। क्या भारतवर्ष अपना विकास धर्ममार्ग पर स्थिर रहकर करेगा? मनुष्य को मनुष्य से अलग रखने के जो प्रतिबध हैं क्या उन्हे वह तोड़ डालेगा? मनुष्य-मनुष्य में वह भ्रातृभाव उत्पन्न करेगा? क्या वह उनका आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक पुनरुद्धार करेगा? क्या भारतवर्ष इन पुरानी सडी-गली रूढियो और जर्जरित जंजीरो को एक झटके से तोड़कर अपने शाश्वत ज्ञानपुज को, अपने परमोज्ज्वल धर्म को सप्राण तथा सतेज करेगा? भारतवर्ष के आगे—और जगत् के भी आगे—आज यही समस्या है।

'हरिजन' से] **खालिदा खानुम**

बीकानेर के हरिजन

इस बार श्री० शंकरलाल भाई बैंकर के सत्संग और सम्पर्क का लाभ मिला। उन्होंने मुझे बीकानेर-यात्रा मे साथ चलने का आग्रहपूर्ण निमत्रण दिया था। मुझे अनायास बीकानेर जाकर वहां के हरिजन-कार्य देखने का अपना वचन पूरा करने का अवसर भी मिल गया। आनन्द तो रहा ही, मेरा अनुभव भी बढ़ा।

फुलेरा

रास्ते मे एक दिन फुलेरा ठहर गया। यह रेल्वे का एक खासा केन्द्र है। हरिजनो की आबादी काफी है। ये प्राय: रेल्वे मे ही काम करते हैं। कुछ अर्से से यहा के थोड़े-से रेल्वे कर्मचारियों-ने एक हरिजन-सेवक-समिति बनाकर उसके तत्त्वावधान में एक हरिजन-पाठशाला स्थापित कर रखी है। आरंभ में यह संयुक्त पाठशाला थी। सवर्ण लडके भी काफी आने लगे थे। परन्तु स्थानीय सरकारी पाठशाला में छात्रसख्या घटने लगी। इस पर जयपुर राज्य के शिक्षा-विभाग की आज्ञा से सवर्ण लड़कों का द्वार बन्द कर देना पड़ा। जयपुर राज्य में यह नियम है कि स्वतत्र शिक्षण-सस्थाए भी राज्य की मंजूरी से ही खोली जा सकती हैं, उनमें पाठ्य-क्रम सरकारी ही रखना पडता है और शिक्षक भी राज्य की अनुमति से ही रखे जा सकते हैं!

फुलेरा के शिक्षक अपनी सेना—वानर-सेना—सहित स्टेशन पर मिले। यह भाई नारेली-आश्रम मे सघ-द्वारा निर्दिष्ट शिक्षण-क्रम पूरा कर चुके हैं। उनके लडके प्राय साफ-सुथरे थे और जहीन भी दीखते थे। पाठशाला मे छात्रसख्या ३० है। अभी मेहतर जाति का प्रवेश नही हुआ है। मेहतर बालकों को एक साक्षर मेहतर युवक स्वतत्ररूप से थोडी फीस लेकर पढ़ाता है। समिति के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं से बातचीत करके यह तय हुआ कि १ मार्च से किसी पास के गाव मे रात्रिशाला और खोल दी जाय।

गत जनवरी मास मे कुछ जोशीले भाइयोंने एक हरिजन कन्या की एक ब्राह्मण युवक से शादी करा डाली। इस पर सवर्ण और हरिजन, दोनों में ही खूब तूफान उठा। अब वह धीरे-धीरे शात हो रहा है।

फुलेरा मे ऐसे अनेक रेल्वे कर्मचारी हैं, जिन्हे भगवान्ने साधन और सुविचार दिये हैं। अभीतक इनकी ओर से हरिजन-सेवा मे जैसा चाहिए सहयोग नही मिल रहा है। आशा है, अब विलम्ब न होगा।

बीकानेर

२७ फरवरी को हम लोग बीकानेर पहुँचे। बीकानेर मे हरिजन-कार्य आरंभ करनेवाले पं० नदकिशोर और हरिजन-पाठशाला के सुशान्त और लोकप्रिय अध्यापक श्री सोहनलाल गुप्त से आनन्ददायक भेट हुई। पुलिस और जकात के कर्मचारियो का भी एक-एक को समाधान करना ही पडा। तीसरे पहर वाल्मीकि-पाठशाला देखी और मेघवाल-मुहल्लों का चक्कर लगाया। शाम को नापासर पहुँचे। यह बीकानेर के पूर्व में ऊन के उद्योग का अच्छा केन्द्र है। रात को वहीं रहे। नापासर के हरिजनों को जल का कष्ट है। न उनका अपना कुआ है, न सवर्ण कुओं पर वे चढ सकते हैं। बेचारे पैसे दे-देकर अपनी मटकियां भरवा लाते हैं। कुआं बनवाने को भी कम-से-कम ३०००) रु० चाहिए। इनकी स्त्रिया ऊन कातती हैं और पुरुष कम्बल बुनते हैं। कई अच्छे कारीगर हैं। बीकानेर की कम्बलें अब भी खूब बिकती हैं, मुनाफ़ा अच्छा मिल जाता है। मगर अब फ़रासीसी ऊन आने लगी है और मेघवाल खुद विलायती और मिल का कपड़ा पहनते हैं। ये बुरी

जाते हैं। परन्तु स्त्री-पुरुष दोनोंने ही हमारे प्रश्नों का उत्तर चाव से दिया। हर सवाल पर उनकी आंखें आशा से चमक उठती थीं। उन्होंने अपना-अपना काम बड़े चाव से दिखाया, किसी-किसीने तो आगे होकर समझाया। यदि संगठन-शक्ति और सीधे सच्चे व्यवहारवाले कार्यकर्ता पहुँचें तो बीकानेर ही क्या सारे पश्चिमी राजपूताने के ऊनी उद्योग का भविष्य उज्ज्वल हो जाय।

वैसे बीकानेर के हरिजन दूसरों से खुशहाल दीखते हैं। वे चार महीने खेती करते हैं और आठ मास बुनाई या चमड़े का काम। धरती माता साधारण परिश्रम से बारह मास के गुजर लायक अन्न दे देती है। मोठ बाजरा इनके मुख्य खाद्य हैं। एक दो गाय भी रखते हैं। थोड़ा घी-दूध भी मिल जाता है।

परन्तु अधिक खुशी और थोड़ा आश्चर्य तो मुझे इनका स्वच्छता-प्रेम देखकर हुआ। इस पर तो सवर्ण भी ईर्ष्या कर सकते हैं। वे समझदार और तीक्ष्ण बुद्धिवाले भी लगे। उदाहरणार्थ, जब नापासर के लूमला मेघवालने श्री० शंकरलाल भाई के सम्मुख चर्खा-संघ से ऊन के उद्योग को स्थायी रूप से अपनाने की अपील रखी, तो वह जानता था कि वह एक बड़े बुद्धिशाली व्यक्ति से बात कर रहा है, फिर भी जिस आत्मविश्वास और प्रवाह के साथ उसने अपना मामला पेश किया वह एक अच्छे वकील का काम था।

परन्तु हमें अधिक आश्चर्य और हर्ष तो दूसरे दिन सुबह हुआ जब हम एक दबगर के तहखाने में पहुँचे। यह ६० वर्ष का बूढ़ा जिसकी आखें गड़ी हुई और गाल पिचके हुए थे एक मरणोन्मुख उद्योग को जीवित रखने के पवित्र कार्य में लगा हुआ है। वह ऊँट या भैंस के चमड़े से तेल की कुप्पियां बनाता है। उसकी कला, उसके औजार और उसका माल सभी बड़े रोचक हैं। वह स्वयं और उसका रंगढंग भी कम आकर्षक नहीं है। जब शंकरलाल भाईने पुछवाया, 'क्यों बाबा, क्या-क्या और कैसी-कैसी चीजें बना सकते हो?' तो उसका चेहरा तमतमा उठा और वह शिकायत के लहजे में बोला, 'बाबूजी, क्या कहते हो, कोई कदरदान नहीं रहा, वरना आप जो सपना देखो वह मैं कारीगरी में उतार दूं।' उसका यह वाक्य मेरे हृदय पर अंकित हो गया।

२८ फरवरी को तीसरे पहर हम शिवबाड़ी गये। यह गांव लालेश्वर महादेव के मन्दिर के कारण इस नाम से प्रसिद्ध है। शिवजी के मन्दिर का यहां एक अच्छा कुआ है। इसके हौज में नल लगे हैं। नीचे-ही-नीचे हरिजनों के नल हैं। वे पैसे देते और पानी भर ले जाते हैं। मन्दिर के भीतर जाकर हरिजनों को देवदर्शन करने का अधिकार नहीं है। हां, महन्तजी को नजर देने से वे उनके पासतक पहुँच सकते हैं, पर उन्हें छू नहीं सकते। बीकानेर-समिति शिवबाड़ी में एक दिवस-पाठशाला चलाती है। इसमें २४ हरिजन और ४ सवर्ण छात्र हैं। मकान पक्का है। वातावरण बड़ा स्वच्छ और सुन्दर है। श्री० भोलाराम रैगरने यह मकान बनवा दिया है। उनकी पत्नी प्रातः ही भक्तिभाव से वहां झाड़ू लगा जाती है। हरिजनों का मुख्य उद्योग यहां चमड़ा पकाना है। यह कला हमें श्री० शिवलाल मोतीलाल रैगर के बुढ़े पिताने विस्तार से दिखाई और समझाई। ये दोनों भाई चमड़े के खाते-पीते व्यापारी और हरिजन-कार्य के उत्साही सहायक हैं।

किन्तु सब से अधिक आनन्द तो मुझे चौधरी मंगनूराम के परिचय से हुआ। यह बीकानेर के मेहतरों के मुखिया हैं। उन्हीं के आगे ... ८०, ६० हजार के असामी हैं। बड़ा-सा घर है, जिसका एक भाग पाठशाला को दे रखा है। सहायता भी अच्छी देते हैं। बालकों को पानी मुफ्त पहुँचाते हैं—मरुभूमि में यह बड़ी बात है। अध्यापक के लिए तो चांदी की झारी और गिलास रखते हैं। बड़े लड़के को छोड़कर इनके विशाल परिवार में कोई मांस-मदिरा को छू नहीं सकता और स्नान किये बिना भोजन नहीं करता। सायंकाल को उन्होंने हमें कुछ 'हरजस' सुनवाये। स्त्री-पुरुषोंने मिलकर गाये। उस समय यह पहचानना कठिन था कि ये बहिनें मेहतरानियां हैं या सवर्ण कुलवधुएँ। उनकी पोशाक और जेवर में कोई भेद नहीं था। मंगनूराम को भगवान्ने जो दिया है उसके लिए वह बहुत आभारी हैं, परन्तु अपनी जाति की दरिद्रता और पीड़ा पर उनकी आत्मा तड़पती है। उन्होंने अनेक घर मुझे दिखाये। मैंने मेहतरों के शरीर और घर खूब साफ पाये। इसका कारण कुछ तो उनका स्वाभाविक स्वच्छता-प्रेम और कुछ वहां का सूखा जलवायु और सफाई करने का तरीका मालूम होता है। वे कचरा और मैला रेत से ढककर गधे पर ढोते हैं। यह उमदा तरीका अनुकरणीय है।

हां, मैं उस अतीव आनन्द का वर्णन करना तो भूला ही जा रहा था जो मुझे १ मार्च को तीसरे पहर प्राप्त हुआ। उस समय मैं वाल्मीकि-पाठशाला देख रहा था। अध्यापक सोहनलाल अपने ४१ छात्रों के साथ—इनमें ६ बालिकाएँ भी थीं—मर्म-स्पर्शी स्वर से यह प्रार्थना गा रहे थे :—

निर्बल के प्राण पुकार रहे, जगदीश हरे, जगदीश हरे !
श्वासों के स्वर झङ्कार रहे, जगदीश हरे, जगदीश हरे !

अन्त में बीकानेर के प्रमुख वकील और समिति के प्रधान श्री० मुक्ताप्रसादजी और मंत्री श्रीयुत सिंहजी आर्य को धन्यवाद दिये बिना नहीं रहा जाता। दोनों सज्जन प्रायः सारे कार्यक्रम में मेरे साथ रहे। श्री० सिंहजी तो बुढ़ापे में भी जवानों की तरह समय और शक्ति लगाकर वहां के हरिजन-कार्य को संभालते हैं।

भादरा

२ मार्च को मैं भादरा पहुँचा। यह हिसार जिले से मिली हुई बीकानेर राज्य की तहसील है। भाई खूबरामजी सराफने बहुत पहले से यहा हरिजन-सेवा, ग्राम-उद्योग और शिक्षा-प्रचार की ज्योति जगा रखी है। यह भाई आधुनिक शिक्षा से कोरे हैं, परन्तु इनकी सरलता, सचाई और उदारता के आगे पण्डितों की भी बुद्धि झख मारती है। उन्होंने मुझे हरिजन-मुहल्ले, उनके उद्योग और घर दिखाये, उनके भजन सुनवाये और उनके अन्न-जल की समस्याओं पर उनसे और मुझसे चर्चा की। खेती, बुनाई और चमड़े के सिवाय यहां के ग्रामीण हरिजन कच्चा शोरा निकालने का काम भी करते हैं। मैंने देखा कि यही नहीं, बल्कि अन्य ग्राम-उद्योग भी स्वावलम्बन-पद्धति पर चलते हैं। विदेशों से तो उनके लिए कोई सामग्री मंगाई ही नहीं जाती, क्षेत्र से बाहर की भी बहुत कम चीजें मंगानी पड़ती हैं।

मेरे भादरा के दो दिन के मुकाम में यह निश्चय हुआ कि एक दिन की और एक रात की पाठशाला तुरन्त खोल दी जाय और एक कुआं हरिजनों के लिए शीघ्र बनवा दिया जाय। सेठ खूबराम-जीने तो अपना कुआं पहले से ही हरिजनों के लिए खोल रखा है।

रामनारायण चौधरी

साप्ताहिक पत्र

महाकठिन काम

हमारा सफाई का काम नित्य बराबर बढता ही जा रहा है, और हमे यह दिन-पर-दिन स्पष्ट होता जाता है कि यह काम कितना कठिन है, कितना दुस्साध्य है और इसमें कितने धीरज तथा अनवरत प्रयत्न की जरूरत है। मैंने अपने पिछले साप्ताहिक पत्र में कहा था, कि गांववालोंने अपने-अपने कुदाली-फावडे लेकर खाइयां खोदने मे हमे मदद देने के लिए आनेका वचन दिया था। लेकिन दूसरे दिन उन्होने यह कहला भेजा कि हमारे गांव में चूंकि एक फौजदारी मामले की तहकीकात करने के लिए पुलिस आ रही है जिससे सारे गांव मे दौडधूप मची रहेगी इससे बेहतर तो यह होगा कि यह खाइयो की खुदाई का काम कल के लिए स्थगित कर दिया जाय। हमने ऐसा ही किया, पर सड़को पर जो तमाम गंदा कूड़ा-कचरा पड़ा हुआ था उसे साफ करने के लिए तो हम अपनी झाडू, फावड़े और टोकरियां लेकर गये ही। इस काम मे सचमुच हमे किसी सक्रिय सहयोग की आशा नही थी, और हमे कोई सहयोग मिला भी नही। मगर यह आशा हमे थी ही कि गांववाले हमें अपने कुदाली-फावडा तो दे ही देंगे, पर यहा भी हमें निराशा ही हुई। जब हमने अपना खुदाई का काम शुरू किया, तब सिवा चद छोटे-छोटे बच्चों के, जिनके कि नाम हमने उस दिन सभा के समय लिख लिये थे, और कोई भी हमारे पास नही फटका। एक लड़का जरूर अपने वचन का सच्चा निकला और अपना फावड़ा लेकर आ पहुँचा। दूसरे दिन कुछ हट्टे-कट्टे आदमी वहा आये और हमारा काम देखने लगे। मीरा बहिन, मैं और जमनालालजी के दो छोटे-छोटे बच्चे जब कुदाली-फावडे से खाइया खोदने-खादने मे व्यस्त थे, तो वे सब खडे-खडे तमाशा देख रहे थ।

हम जब वापस जाने लगे, तो उनमें से एक आदमीने कहा, "अच्छा, यह है दो दिन का आप लोगो का काम ? इतने समय में तो मैं अकेला ही इससे दूनी खुदाई कर सकता था।"

"तब आओ न, खडे-खडे तमाशा क्यों देख रहे हो ?" मैंने उससे कहा।

"यह काम तो हमें खुशी से करना चाहिए। यह बात नही कि हमें शर्म न आती हो। पर अगर हमने खाइयां खोदने मे आपका हाथ बटाया तो हमारी जाति-पंचायत हमारे ऊपर ५०) जुर्माना ठोक देगी।"

"यह अजीब बात है। अरे, क्या आप लोग अपने खेतों मे खुदाई का काम नही करते ?"

"करते है, पर यह काम तो भंगियो का है न।"

"हम आप से यह तो कहते नही कि आप हमारे साथ कूड़ा-कचरा या मलमूत्र साफ करें। हम तो सिर्फ आप से खाइया खोदने के लिए ही कह रहे है।"

"पर हमारी बिरादरी के लोग यह बात कहा समझते है।"

"पर मान लीजिए कि आपकी जाति-बिरादरी के अगर दस-बारह आदमी यहां आकर हमारे इस काम में हमे मदद दें, तो क्या आपकी जाति-पंचायत की यह हिम्मत पड़ेगी कि वह आप सब लोगों पर जुर्माना ठोंक दे ? पंचायत के ऐसे फैसले को क्या आप तोड़ नहीं सकते ?"

"यह हिम्मत हम मे नही है। अगर हमने ऐसा किया, तो वे पच हमे जाति से बाहर निकाल देंगे। तालाब में रहें और मगर से बैर बिसाहें, यह कैसे हो सकता है।"

"पर थोडा साहस तो आप लोगों मे होना ही चाहिए। यह तो आप मानते ही है कि यह काम जरूरी है और लाभदायक भी है। तब उसे करने से हिचकते क्यों हैं ? अपनी बिरादरी के लोगों को दलील देकर समझाना चाहिए। मुझे पूरा भरोसा है कि आप जरूर उन्हे अपने पक्ष में कर सकते है।"

बाद को मैंने उनकी जाति के बारे मे पूछा। वे लोग महार थे। यों ये लोग भी 'अस्पृश्य' माने जाते हैं, पर भंगियों से महार अपने को ऊँचा समझते है।

दूसरे दिन उन्होंने सूरत भी नही दिखाई। एक आदमीने हमारे मागने पर अपना फावडा हमे जरूर दिया, पर थोडी ही देर मे हमे उसकी स्त्री की यह कर्कश आवाज सुनाई दी कि, "मेरा वह कीमती फावडा क्यो उन्हे खराब करने को दे दिया है ? मैंने उसे एक रुपये मे खरीदा था एक रुपये में। अरे, उन लोगों से इसी वक्त वापस मँगालो न मेरा फावड़ा।" वह खूब गला फाड-फाडकर चिल्ला रही थी, और उसका पति खड़ा-खडा हँसता था।

पर अप्रत्यक्ष रीति से जो दूसरी तरह का थोडा-बहुत सहयोग हमे मिला उसकी चर्चा तो मैं यहा जरूर करूंगा। एक लड़का जिसके कि विचार हमने बदल दिये हैं, वह खाई मे टट्टी फिरने का उदाहरण लोगो के सामने रख रहा है, और खाई को ठीक तरीके से काम में लाता है। मगर बहुत-सी स्त्रिया, जो पहले आम तौर पर सडके खराब कर दिया करती थी, अब खेतों में जाने लगी है। जिस वाहियात दृश्य की चर्चा मुझे अपने पिछले साप्ताहिक पत्र मे करनी पडी थी वह दृश्य तो अब बिल्कुल ही लोप हो गया है। दो स्त्रियों को तो हमने उस दिन यह कहते सुना कि, "लोग यह जानते है कि तुम यहा नित्य सबेरे आते हो। कम-से-कम तुम हमसे यही आशा करते हो न कि हम खेतों मे ही टट्टी फिरने जायें ? हमे आश्चर्य होता है कि उन सबमें शर्म या हया तो जैसे रही नही और अब भी वे सडकों को खराब कर रही हैं।"

हमारे सात-आठ दिन के प्रयत्न का यह नतीजा हुआ है कि एक आदमी को हमने उस दिन यह कहते देखा कि, "अबतो आपको सतोष होगा ? क्या आप नही देखते कि कल की अपेक्षा आज बहुत ही कम अपराधी देखने मे आये हैं ? आज मैं खूब तड़के से ही यहां खडा-खडा चौकसी करता रहा और कुछ लोगो को चौकन्ना कर देने में मुझे सफलता भी मिली।"

हमने उसे धन्यवाद दिया और कहा कि, आप इसी तरह हमें नित्य मदद दिया करें। सब से अधिक प्रोत्साहन तो हमारे काम में हमे जमनालालजी के गजब के उत्साही लड़के रामकृष्ण से मिला। उम्र इस लड़के की अभी बारह ही बरस की है। झेंपना क्या चीज है वह जानता ही नहीं। चाहे जितना गंदा कूड़ा-कचरा पड़ा हो उठाने को हमेशा तैयार रहता है। और दलील करने मे किसी से दबता नहीं और उसकी दलील में बच्चों का-सा भोलापन तो रहता ही है। दो मकान वहां ऐसे थे कि जिनके सामने दो-तीन दिन से मैला पड़ा हुआ था। घर के लोगों के सामने ही हमने उस मैले को साफ किया। उनकी समझ में अब हमारी सारी बात आ गई है और वे अब ठीक तरह से काम रहे हैं।

'रसरी आवत-जात ते सिल पर परत निसान,' यह पुरानी कहावत कितनी सच्ची है हमें यह बात सड़कों की सफाई इत्यादि के इस काम में ही अधिक-से-अधिक मालूम हुई।

बेगम साहिबा का आशीर्वाद

बेगम साहिबा खालिदा खानुम तीन दिन हमलोगों के साथ यहां रहीं। उन्होंने हमें जो कृपापूर्ण संदेश और आशीर्वाद दिया उसके लिए उनके प्रति सच्ची कृतज्ञता के एक-दो शब्द कहे बिना मैं उनसे जुदा नहीं हो सकता। उन्होंने न केवल हमारे गृहस्थी के काम-काज में ही हमें मदद दी, बल्कि उन्होंने यहां की हरेक सार्वजनिक संस्था को भी देखा—सत्याग्रहाश्रम को देखा, खादी-भंडार को देखा, तमाम हिंदुओं के लिए मुक्तद्वार श्रीलक्ष्मीनारायण के मंदिर का दर्शन किया और विनोबाजी के उस छोटे-से धर्मालय को भी देखा, जिसे उनके साथी यहां के एक सब से नजदीकी गांव में चला रहे हैं। उन्होंने कृपा करके हमारे कन्याश्रम में उपदेश किया और एक सार्वजनिक सभा में भी उनका भाषण हुआ, जहां कि स्थानीय म्यूनिसिपैलिटीने उनके स्वागत में उन्हें एक अभिनंदन-पत्र दिया। उनके इन दोनों भाषणों के कुछ स्थायी महत्व के अंशों को यहां मैं जरूर दूंगा। कन्याश्रम की लड़कियों से बेगम साहिबाने कहा, "तुम लोगोंने चूंकि 'अहिंसा' का व्रत ले रखा है, इसलिए आजादी हासिल करने का सीधा मार्ग, याने हिंसा का मार्ग तुम्हारे लिए खुला हुआ नहीं है। पर मैं तो तुम से यह कहूंगी कि जिन्होंने अहिंसा का व्रत नहीं लिया है उन्हें भी यह हिंसा का मार्ग अख्तियार नहीं करना चाहिए। बात यह है कि हिंसा के जरिये कोई भी राष्ट्र आजाद नहीं हो सकता, और न अपनी आजादी को वह कायम ही रख सकता है। राष्ट्रीयता की भावना प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री के अंदर व्याप्त हो जाय, हमारा बस यही एकमात्र ध्येय होना चाहिए। इसका कोई अर्थ नहीं होता कि राष्ट्र के चन्द आदमियों में राजनीतिक जाग्रति आ जाय और वे ताकतवर बन जायं। राजनीतिक चेतना तो तमाम कौम की नस-नस में भर जानी चाहिए, और शक्ति में भी सब का हिस्सा एक-सा होना चाहिए। हमारी तुर्की महिलाओं में गजब की राष्ट्रीय भावना थी। हमारे अधिकांश अस्पतालों को हमारी बहिनोंने ही स्थापित किया था। सत्रहवीं शताब्दी में जहां दूसरे मुल्कों में पागलों का इलाज न्यूनाधिकरूप में पाशविक बल के द्वारा किया जाता था, वहां हमारे स्त्रियों-द्वारा सचालित पागलखानों में मनुष्योचित तरीकों से अर्थात् संगीत और दया तथा स्नेहपूर्ण तरीकों से उनका इलाज होता था। हमारी अधिकांश पाठशालाएँ उन महिलाओंने ही खोली थीं, जो स्त्रियों की जाग्रति और शिक्षा में अपना अधिक-से-अधिक समय और मन लगाती थीं। सबसे बढ़कर बात तो हमारे यहां यह है कि हमारी बहिनें शारीरिक श्रम से जरा भी नहीं डरतीं। मुझे खुशी है कि तुम्हारे ग्यारह व्रतों में एक व्रत शारीरिक श्रम का भी है।" सार्वजनिक सभा में उन्होंने गांधीजी के नेतृत्व की सराहना करते हुए कहा, "कौन कहता है कि गांधीजी का नेतृत्व पुराना हो गया है? उस पर तो आज भी मौलिकता की वही छाप लगी हुई है। भारत के ही सबसे बड़े पुरुष के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए मैं वर्धा नहीं दौड़ी आई हूं, मैं तो यहां विश्व के एक सबसे महान् सेवक का अभिनन्दन करने आई हूं। गांधीजी आज जो कार्य कर रहे हैं उस पर समस्त मानवजाति का अधिकार है, और यही कारण है जो संसार का प्रत्येक व्यक्ति उनके प्रत्येक कार्य को इतनी अधिक दिलचस्पी से देख रहा है। यों तो दुनिया में कितने ही महापुरुष, कितने ही धर्मगुरु आये हैं। ऐसे भी हैं जिन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि जीव की मुक्ति दुनिया की तमाम चीजों को त्याग देने से ही हो सकती है और ऐसे भी कि जिनका लक्ष्य केवल इस लोक को ही सुखमय और आनंदमय बनाने का रहा है। मगर ऐसा लोकगुरु तो एक गांधी ही हैं जो यह चाहता है कि हम अपनी आत्मा को भी मुक्त करलें और जगत् को भी नाश के मुख से बचा लें—वह भारतवर्ष को अधिक-से-अधिक सुखी और आनंदित देखना चाहता है, साथ ही भारत की आत्मा को भी हाथ से नहीं जाने देना चाहता है।"

हरिजन-प्रवृत्ति पर बोलते हुए उन्होंने कहा, "हम बाहरवालों को आपकी यह बात बिलकुल नहीं सुहाती कि आप लोग अपने चार करोड़ भाई-बधुओं केसाथ मनुष्योचित व्यवहार भी नहीं करते, उन बेचारों को आप अपने देव-मन्दिरों में नहीं आने देते। मन्दिर जैसे दूसरे हिन्दुओं के हैं उनका भी उन पर वैसा ही अधिकार है। यहां न कोई बड़ा है, न कोई छोटा। मनुष्य को बड़ा तो उसका गुण, विद्या या धर्म बनाता है। इसलिए गांधीजी जो यह ऊंच-नीच के तमाम भेद-भावों को दूर करने का अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन चला रहे हैं उसमें उन्हें अवश्य सफलता मिलेगी ऐसी हमें आशा है और ईश्वर से हमारी प्रार्थना भी यही है। जमनालालजी-जैसे जब उनके सहकर्मी हैं, तब उन्हें सफलता मिलेगी और अवश्य मिलेगी। आज शाम को मैंने जमनालालजी का वह मन्दिर देखा, जो हरिजनों के लिए सब से पहले हिन्दुस्तान में खोला गया था। हालांकि मैं मुसल्मान हूं, तो भी मैं अपने अल्लाह की सिजदा उसकी बनाई पृथिवी पर, इस नीले-नीले आसमान की छाहँ में हर जगह कर सकती हूँ, और इसी से उस मन्दिर में जाने से मुझे क्यों न प्रफुल्लता हो, जहां मेरे विचार से भारत के पुरुषत्व और नारीत्व का सृजन हो रहा है, और जहां मनुष्य-मनुष्य के बीच के प्रतिबंध नष्ट हो रहे हैं?"

हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य के प्रसंग में उन्होंने कहा, "हमारे लिए तो हिन्दू-मुसल्मान का कोई सवाल ही नहीं है। आपके मुल्क में दो महान् धर्म हैं—इसलाम का सम्बन्ध भारत से उतना ही है जितना कि हिन्दूधर्म का। इसलाम कतई साम्प्रदायिक मजहब नहीं है। वह तो समानता का हामी है। इसलाम व्यापक-से-व्यापक सामाजिक लोकतन्त्र का समर्थन करता है। मनुष्य-मात्र को वह भाईचारे का पैगाम देता है। और मेरे खयाल में हिन्दूधर्म का भी यही सिखापन है। क्या अच्छा हो कि हम एक दूसरे के ऊंचे आदर्शों पर चलें और इसलाम और हिन्दूधर्म के नाम पर अब अपना स्वार्थ-साधन न करें। इस सम्बन्ध में भी मैं जमनालालजी की तारीफ करूंगी। उस दिन जब मैंने दिल्ली में जामिया मिल्लिया इसलामिया की नींव रखी तो उक्त संस्था के इमारत के फण्ड में सब से अधिक पैसा जमनालालजीने ही दिया।"

बेगम साहिबा के विदा होने का समय जब आया तो जमनालाल-जी की भेंट की हुई एक थैली गांधीजी उनके हाथ में थमाने लगे। पर जबतक गांधीजीने उन्हें यह यकीन नहीं दिला दिया कि उस थैली को वह अपनी तरफ से बतौर दान के चाहे जिस संस्था को

[४८ पृष्ठ के पहले कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २९ मार्च, १९३५]

मंदिर-प्रवेश

'हरिजन-सेवक' के पाठकों को यह तो मालूम ही है कि ठक्कर बापा हरिजन-कार्य के सिलसिले मे आजकल दक्षिण भारत का दौरा कर रहे है। श्रावणकार मे उनकी उपस्थिति का लाभ लेकर वहा के कार्यकर्त्ताओने अरणमला मे एक हरिजन-परिषद् की थी, जिसका सभापति उन्होने ठक्कर बापा को बनाया था। यह परिषद् १० मार्च को हुई थी। काफी बड़ी सख्या मे लोग इस परिषद् मे सम्मिलित हुए थे। सवर्ण हिंदुओ की तरह हरिजनो की भी खासी अच्छी उपस्थिति थी। इस परिषद् मे हरिजनो की ओर से ठक्कर बापा को एक मानपत्र दिया गया था। मानपत्र मे मंदिर-प्रवेश के प्रसग का यह अंश काफी महत्व का है :—

"यह हमारा अटल विश्वास है कि जबतक मदिरों के द्वार हमारे लिए बद है तबतक अस्पृश्यता का कभी अत नही हो सकता और न होगा। मदिर-प्रवेश ही हमारे लिए इस हरिजन-आन्दोलन की सफलता की सबसे खरी कसौटी है। जबतक हमे मदिरो में प्रवेश करने का अधिकार नही दिया जाता तबतक हमारे उद्धार क सारे प्रयत्न हमे झूठे मालूम होते है। हमे मदिर-प्रवेश का अधिकार दिलाने मे आप हरिजन-सेवक-सघ की सारी शक्ति लगादे, आपसे हमारी यही प्रार्थना है।"

इसमे सदेह नही कि जबतक प्रत्येक हिंदू के लिए मदिरो के द्वार ठीक उसी तरह नही खुल जाते जिस तरह कि दूसरे हिंदुओं के लिए खुले हुए है तबतक अस्पृश्यता का अत नही होता। पूजा का सार्वजनिक स्थान ही सर्वसामान्य धर्म का अचूक-से-अचूक प्रमाण है। इसमे आश्चर्य नही जो हरिजनो को दूसरे तमाम प्रयत्न झूठे प्रतीत होते है। पर चूकि वे झूठे प्रतीत होते है, इसलिए वे वास्तव मे झूठे ही है यह बात नही है। सैकडो हरिजन-सेवक ऐसे है कि जिनका अस्पृश्यता दूर करने का प्रयास सिर्फ इसलिए असत्य नही कहा जा सकता, क्योंकि वे आज हरिजनो के लिए प्रत्येक मदिर का द्वार नही खुलवा सकते। जो बीज बो दिया गया है वह कभी मरने का नही। उसका जब समय आयगा तब फल अवश्य लगेगा। बडे-बडे वृक्षों के बीज अंकुरित होने मे बहुत समय ले लेते हैं। तो भी हर मिनिट वे उगते रहते है। इसी तरह मंदिर-प्रवेश का बीज धीरे-धीरे अंकुरित हो रहा है। जबतक हरेक सार्वजनिक मंदिर हरिजनों के लिए नही खुल जाता तबतक सुधारक आराम से नही बैठेंगे। ये तमाम सुधार के कार्य मंदिर-प्रवेश की दिशा की ओर ही ले जा रहे है। हम सब लोगों को, जो हरिजन-सेवा करना चाहते हैं, हरिजनो के उक्त मानपत्रने हमे यह अच्छी समय पर याद दिलाई है कि चूकि आजकल अखबारो मे मंदिर-प्रवेश संबंधी कोई चर्चा नही रहती, इसलिए हम यह न सोचे कि यह प्रश्न छोड दिया गया है। सार्वजनिक आदोलन वे इस प्रश्न पर न करे, पर कार्यकर्त्ताओ को चाहिए कि वे निजी तौर पर अपने पड़ोसियो को अपने पक्ष मे मिलाते रहे और ट्रस्टियो तथा मंदिरो मे जानेवाले लोगों को मंदिर खोल देने के संबध में समझाते रहे।

अंग्रेजी से]

मो० क० गांधी

'धर्म-परिवर्तन' का दुःख

देवकोटा के एक हरिजन-सेवकने अपनी तरफ के हरिजनों के ईसाई हो जाने के विषय मे मुझे एक दुख.जनक पत्र लिखा है। लोगो से यह छिपा नही है कि उधर के हरिजनो को नट्टार लोग किस तरह बराबर सताते आ रहे हैं। दिन रात की सासत से तग आकर और सवर्ण हिन्दुओ से मामूली मदद भी न पाकर अगर गरीब हरिजन ईसाईधर्म की शरण मे चले जायँ, तो हमें इसमे आश्चर्य नही करना चाहिए। और अगर हम अपने दु ख को प्रबल कार्यशक्ति मे परिणत नही कर सकते तो वह बिल्कुल व्यर्थ है। शारीरिक कष्ट के दबाव मे किया हुआ धर्म-परिवर्तन कोई आध्यात्मिक धर्म-परिवर्तन तो है नही। लेकिन अगर हरिजन अपनी भौतिक स्थिति सुधारने और सवर्णों की यत्रणाओ से बचने के लिए अपना धर्म बदल रहे हैं तो इसपर हम क्यो कुढें ?

दु ख तो हमे उनके धर्म-परिवर्तन के कारण पर होना चाहिए। हमे यह देखना और कबूल करना चाहिए कि इस धर्म-परिवर्तन का कारण सवर्ण हिन्दू हैं। अगर देवकोटा के सवर्ण हिन्दुओ को यह खबर होती कि वहा के हरिजनो के प्रति उनका क्या कर्तव्य है, तो नट्टार लोगों को, जो खुद सवर्ण हिन्दू हैं, इस तरह हरिजनो को सताने की कभी हिम्मत न पडती, वे जरूर समझते कि हरिजन भी उसी मानव-कुटुब के हैं जिसके कि वे हैं। पत्र-लेखकने मेरे सामने यह तजवीज रखी है कि बाहर के कुछ सज्जन देवकोटा जायँ और वहा नट्टारो और हरिजनो के बीच काम करे। यह होता तो अच्छा ही था। मगर इस तरह कभी-कभी बाहर के भूले-भटके लोगो के एकाध चक्कर लगा आने से कोई सच्चा फल हासिल होगा इसमे मुझे संदेह ही है। ऐसा कोई भी प्रयत्न उन डाक्टरों के प्रयत्न की तरह निश्चय ही निष्फल जायगा, जो रोगियों के पास जाते और उनका इलाज करने का जतन तो करते हैं, पर रोगी खुद उनकी बताई हुई दवाइयो का सेवन नहीं करते। रोग से तो सवर्ण हिन्दुओं के दोनों ही पक्ष ग्रस्त है—वे सवर्ण हिन्दू जो अलग खड़े-खड़े यह सब देख रहे हैं, और नट्टार सवर्ण हिन्दू। नट्टार तो अपने भाई-बन्धुओं के समान हरिजनो के पीछे पड़े हुए हैं, उन्हे नाना प्रकार की यत्रणा दे रहे हैं, और दूसरे सवर्ण हिंदू अपराधपूर्ण उदासीनता से ग्रस्त हैं। रोगग्रस्त दोनो ही हैं। बाहर के आदमी तो अधिक-से-अधिक यही कर सकते हैं कि वे वहा जायँ, लक्षण देखकर रोग को पहचाने और नुस्खा बतादे। दवा का लेना मरीज का काम है। सो देवकोटा के सवर्ण नवयुवक रोग का कारण और उसकी दवा तो जानते ही हैं। क्या वे उसे काम मे लायेंगे ? ठक्कर बापा या तो वहा पहुँच गये होंगे या पहुँचनेवाले होंगे। क्या वे लोग उनकी सलाह पर ध्यान देगे ? यह धर्म-परिवर्तन तो उस रोग का एक छोटा-सा परिणाम है। धर्म-परिवर्तन तथा इससे भी बुरे अनेक परिणामो को रोकना है तो रोग के मूल कारण को दूर करदो।

अंग्रेजी से]

मो० क० गांधी

ग्राम-सेवक की यात्रा

श्री सीताराम शास्त्री ग्राम-सेवको की ऐसी यात्राओं का आयोजन कर रहे हैं, जिन्हे हम तीर्थयात्रा कह सकते हैं। ये ग्राम-सेवक अपने इर्दगिर्द ग्रामसेवा का सदेश लेकर जाते हैं।

शास्त्रीजीने दूसरी तीर्थयात्रा का जो संक्षिप्त विवरण मेरे पास भेजा है, उसका कुछ अंश मैं नीचे देता हूँ :—

"दूसरी यात्रा १७ फरवरी के प्रातःकाल आरम्भ हुई और ४ मार्च की शाम को समाप्त हुई। इस यात्रादल में ८ आदमी थे। दल के नेता श्री एन० वेंकटाचलपति और श्री रामिनेनी अप्पय्या थे। दोने चार-चार दिन काम किया, एकने ग्यारह दिन, और पांचने आदि से अन्ततक लगातार।

ये लोग बापटला तालुका के १३ गावो मे, टेनाली तालुका के १ गांव में और रेपल्ली तालुका के एक गाव मे, इस तरह कुल १५ गांवो में गये। इन्होंने रेल से, मोटर से, बैलगाड़ी से और पैदल यात्रा की, कुल ७५ मील की इन लोगोने यात्रा की।

मैजिक लालटैन की सहायता से इन लोगोंने ४ गावां मे व्याख्यान दिये और ५ गावो मे ग्रामोफोन मे काम लिया।

गावो मे उन्होंने नीचे लिखी चीजे बेची :—

खादी	मूल्य	१०३०॥=)॥
स्वदेशी चीजे	"	१३५॥≋)॥
मिट्टी के बासन	"	३।≋)
तकलिया २	"	≋)
उस्तरे ५	"	२॥-)
भृंगामलक तैल २ पाउण्ड, १० आउन्स	"	४।=)
जूते और चप्पल ४२ जोड़े	"	३४॥=)
	कुल	१२१२।-)।

उस्तरे ओंगोल तालुका के अन्तर्गत चेरुकपाल्लेम के बने हुए थे, और तकलिया और जूते तथा चप्पल खुद विनयाश्रम मे तैयार किये गये थे। इस यात्रा मे पहली यात्रा की अपेक्षा बिक्री अधिक हुई। यात्रा मे कुल ३६≋)। खर्च हुए।"

कार्यारम्भ यह अच्छा है। पर मैं यह सलाह दूगा कि ग्राम-यात्रियो को रेल, मोटर और गाव की बैलगाड़ियोतक की सवारी से परहेज रखना चाहिए। अगर वे मेरी सलाह मानेंगे तो वे देखेंगे कि उनके काम का और भी अधिक असर पड़ेगा और अमल मे एक पाई भी उनकी खर्च न होगी। दो-तीन आदमियो से अधिक का यात्रीदल नहीं होना चाहिए। मुझे आशा है कि ग्रामवासी ऐसे छोटे-छोटे यात्रीदलो को अपने घरो मे टिका भी लेंगे और उन्हें प्रेम से रोटी-भाजी भी खिला देंगे। भार तो बेचारे गाववालो पर बड़े-बड़े यात्रीदलो की मेहमानी का पड़ता है, दो-दो तीन-तीन सेवकों की छोटी-छोटी टोलियों का नहीं।

इन ग्रामसेवकों को अधिक ध्यान ग्रामो की आरोग्यता और स्वच्छता पर देना चाहिए। उन्हें गावो की अवस्था के तथ्य और आंकड़े इकट्ठे करने चाहिए। गांववालो को ऐसी सलाह देनी चाहिए कि बिना अधिक पूंजी लगायें वे कौन-सा उद्योग कर सकते हैं और किस तरह वे अपने स्वास्थ्य और आर्थिक अवस्था को सुधार सकते है।

अगर हमें गावो को अधिक-से-अधिक स्वाश्रयी बनाने का प्रयत्न करना है तो जिन गांवो मे हम जावें वहां दूसरे गांवो की बनी हुई चीजो की बिक्री की अधिक गुंजाइश नहीं है। हां, वहां की बात दूसरी है जहां यह स्पष्ट हो जाय कि गांववाले अपने गांवों में ऐसी चीजों को या तो तैयार करते नहीं या कर नहीं सकते। अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघने ग्रामसेवा का जो संकल्प किया है वह अनूठा है। शहरवालो के दल गावों में सफाई करने के लिए, सिखाने के लिए और वहा की बनी चीजे खरीदने के लिए जावें। और गांववालो के दल शहरों में अपने यहां की चीजें बेचने और उनकी उपयोगिता को प्रदर्शन-द्वारा प्रमाणित करने के लिए भेजे जा सकते हैं।

इस ग्रामोद्धार प्रवृत्ति का उद्देश तो यह है कि सपत्ति के इकहत्थेपने को रोका जाय, गांववालो के स्वास्थ्यमें सुधार किया जाय और वहा के कारीगरों की कला को प्रोत्साहन दिया जाय।

अंग्रेजी से] **मो० क० गांधी**

कचरे में कंचन

श्री ब्रेन की इस सलाह की अपेक्षा कि मैले को खाद के गहरे गड्ढो मे गाड़ देना चाहिए गाधीजीने अपने पिछले लेख मे जब इस तरीके को बेहतर बतलाया था कि मैले को कम गहराई के या छिछले गड्ढो मे गाड़ना चाहिए, तो उन्होंने यह बात दक्षिण अफ्रीका के फिनिक्स सेटिलमेंट और साबरमती-आश्रम के अनुभव पर से लिखी थी। गाधीजी के एक पुराने साथीने, जिन्होंने कि उनके साथ दक्षिण अफ्रीका मे काम किया था, गुजराती में एक लेख भेजा है। विसापुर की जेल मे जेल के अधिकारियो की इजाजत से उन्होंने इस सम्बन्ध मे जो प्रयोग किये थे उनके परिणामो का उन्होने अपने इस लेख मे वर्णन किया है। उनके गुजराती लेख का सारांश मैं नीचे देता हूँ :—

"१९३२-३३ की साल मे मैं विसापुर की जेल मे था। हम सब करीब १६०० कैदी थे। आप सोच सकते है कि हम लोगों के लिए रोज कितनी सब्जी की जरूरत पड़ती होगी। मगर यह बात जेल के अधिकारियो के ध्यान मे नहीं आई थी कि तमाम मैले का अगर ठीक तौर से उपयोग किया जाय तो जेल की जमीन पर बारहो महीने कितनी कसरत से साग-तरकारी पैदा हो सकती है। वे करते क्या थे कि मैले को पास के एक गड्ढे मे फिकवा देते थे, जिससे इतनी बदबू निकलती थी कि एक मिनिट भी वहा खड़ा रहना मुश्किल था, और सम्भवत. उसका हमारे स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता था। रसोड़े की व्यवस्था मेरे जिम्मे थी। एक दिन मैंने सुपरिटेंडेंट से कहा कि हम इस तमाम मैले को जिस बुरी तरह से बर्बाद कर रहे है, वह तो अच्छा नहीं है। मैंने उनसे यह भी कहा कि थोड़ी-सी जमीन आप मेरे जिम्मे करदे तो मैं उस जगह मैले को इस प्रकार इकट्ठा करूँ कि उसका सुन्दर खाद बन सके। वे इस पर राजी हो गये, और मेरे कहे मुताबिक जमीन का एक जरा-सा टुकड़ा मुझे उन्होंने दे दिया। मैंने उस पर अपना प्रयोग इस तरह शुरू किया। उस टुकड़े पर मैंने नौ इंची गहरी और एक फुट चौड़ी खाइया खोदी। खाइयो के दोनों तरफ मिट्टी के कुरीने लगा दिये। टीन की कुंड़िया प्राय दो-तिहाई खाली रहती थी। इस खाली हिस्से को हमने मिट्टी और पानी से भर दिया—जितनी मिट्टी डाली पानी भी उतना ही डाला, और सब चीजों को अच्छी तरह एकदिल कर दिया। इसके बाद टीन के उन बर्त्तनों को खाइयो में उँडेलकर उस सब मैले व मिट्टी को एक सतह में अच्छी तरह फैला दिया। फिर किनारे के मिट्टी के कुरीने खाइयों में पूर दिये। इस बात का हमने ध्यान रखा था कि मैले को ढाकने

वाली वह मिट्टी की तह कम-से-कम छै इंच ऊँची है न। करीब पन्द्रह दिन मे हमने इस तरह तैयार की हुई जमीन मे टमाटर के बीज डाल दिये। हमारी वह फसल देखने ही लायक थी। जेल के बाग का टमाटर साधारण तौर पर तोल में १० आउन्स का उतरता। मगर हमारे टमाटर २४ आउन्स के उतरे और सुपरिंटेंडेंट को आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता भी। इस जमीन में पहली फसल मे करीब ६५ मन सब्जी हुई, और दूसरी फसल पास के एक तालाब की बाढ से नष्ट न हो गई होती तो १२५ मन टमाटर तो हमें उससे मिल ही जाते। हमारे इस प्रयोगने जेल के अधिकारियो की आखे खोल दी, और वे नित्य एक बीघा जमीन मे जेल के मैले का खाद देने लगे। करीब दो महीने मे वहा की ६० बीघे जमीन को उन्होंने खाद देकर साग-सब्जी के लिए तैयार कर लिया। और वहा करमकल्ला, गोभी, शलजम, चुकदर बैगन आदि सब्जिया इस कसरत मे पैदा हुई कि कुछ पूछिए नही। इस हिसाब से १०००० की आबादीवाले हर एक गाव मे प्रतिदिन एक बीघे में यह खाद दिया जा सकता है, और आज जो योही नष्ट हो रहा है उस तमाम कचरे मे कचन निकल सकता है।

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

साप्ताहिक पत्र

[४५ पृष्ठ से आगे]

दे सकती है तबतक उन्होंने उसे ग्रहण नही किया। उन्होने फिर बडी खुशी से वह थैली लेकर जामिया मिल्लिया को बतौर दान के दी, और उस देते समय गाधीजी से कहा, "मै तो जमनालालजी पर मुग्ध हूँ। दुनिया मे हजारो-लाखो उदार आदमी भरे पडे है। मगर अमीर आदमी उदार होते है यह मुश्किल से ही देखने मे आया है। बाइबिल में कहा है कि धनी मनुष्य स्वर्ग के राज्य मे प्रवेश करे इसमें यह कही ज्यादा आसान है कि ऊँट सुई के बंध मे से निकल जाय। लेकिन मैं नही समझती कि जमनालालजी-जैसे धनी मनुष्य के लिए यह बात कठिन है।

"मै जानता हूँ," गाधीजीने कहा, "क्योंकि उनका ऐसा विश्वास नही है कि यह सारी धन-सम्पत्ति उनकी है। वह तो यह मानते है कि मेरी तमाम दौलत मेरे देशवासियो के हितार्थ है।

"अगर तमाम धनी आदमी ऐसा ही मानने लग जायँ तो फिर धनियों के खिलाफ आज दुनिया लडे ही क्यो?"

"आप ठीक कहती हैं। ये धनाढ्य आदमी ही तो युद्धाग्नि प्रज्वलित कराते है, और इसीलिए दुनिया आज उनके खिलाफ लड रही है।"

ग्रामउद्योग-संघ की बैठक

गत सप्ताह जिन्हे ग्रामउद्योग-सघ के व्यवस्थापक मडल की बैठक मे उपस्थित रहने का अवसर मिला था उन्होंने वहा इतना तो देखा ही कि संघ के सदस्य प्रत्येक प्रश्न की चर्चा काफी उत्साह से करते है, और उन्होने ग्रामो की नवरचना करने का जो ध्येय बना रखा है उससे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नो के विषय मे उनका ज्ञान मर्यादित होने के कारण वे सतर्कता के साथ आगे बढना चाहते है। सदस्यों के प्रतिज्ञा-पत्र के बारे में बहुत ही लम्बी बहस हुई। सरदार वल्लभभाई और बाबू राजेन्द्रप्रसाद-जैसे मित्रों तथा शुभचिन्तकों को भी बैठक में आमन्त्रित किया गया था, इसलिए जो चर्चा हुई उसमें सघ के सदस्यो को विचार करने की काफी सामग्री मिली, और कुछ लोग तो, जो ऐसी भीषण प्रतिज्ञा ले बैठे थे, इस सोचाविचारी मे पड गये कि उन्होने यह प्रतिज्ञा सोच-समझकर ली है या यो ही। फिर इसमे केवल आत्मनिरीक्षण का ही प्रश्न नही था, बल्कि सदस्य होनेवाले नये व्यक्तियो के आवेदन-पत्र पर तटस्थ वृत्ति से विचार करने की भी बात थी। क्या सचमुच नये सदस्य अपना समय, अपनी शक्ति और अपनी बुद्धि का अधिकाश सघ के ध्येय में लगायेंगे? जो सदस्य होना चाहता है वह वकील है या डाक्टर? क्या सचमुच उसमें सदस्य होने की योग्यता है? सदस्य होने लायक योग्यता को क्या और भी अधिक स्पष्ट रूप नही दिया जा सकता है? जैसे, क्या यह निश्चित नही किया जा सकता कि सघ के सदस्यो को गावो मे सफाई-जैसा कुछ ठोस काम करना चाहिए? सदस्य इन सब बातो का सहज ही कोई निर्णय कर सके यह सम्भव नही था। इसलिए वे सब गांधीजी के पास गये, और इस पर उनकी राय मागी। गाधीजीने उनकी सारी बात सुनकर उसपर अपनी यह राय दी—"इस प्रतिज्ञा का रूप निश्चय ही आध्यात्मिक है। हम बारम्बार इसकी जो चर्चा कर रहे है यही प्रगट करता है कि हमारा व्यवस्थापक मडल सघ के उद्देशो के अनुकूल रहकर ही काम करना चाहता है। यह प्रतिज्ञा पूर्ण विचार करने के बाद निश्चित की गई थी। और यह चिन्ता तो हमें जरा भी नही करनी है कि इस प्रतिज्ञा के कारण हमे बहुत कम सदस्य मिल सकेंगे। छै सदस्य होंगे, तो भी सघ का काम रुकने का नही। हमें तो सिर्फ इस प्रतिज्ञा का अर्थ समझा देना है। जो स्त्री या पुरुष इस प्रतिज्ञापत्र पर सही करेगा वह खुद विचारपूर्वक देखेगा कि उन सब शर्तों का पालन उससे हो सकता है या नहीं। जो सघ का सदस्य होगा, वह अपने दिल से प्रतिक्षण—खाते-पीते या चलते-फिरते भी—पूछेगा कि 'मै अपनी बुद्धि और शक्ति के अधिकाश का उपयोग संघ की ध्येय-सिद्धि के लिए कर रहा हूँ या नही?' आपको यह प्रतीत होता हो कि यह प्रतिज्ञा-पत्र सदिग्ध है तो इसे और भी स्पष्ट कर दीजिए, पर मुझे तो यह सदिग्ध मालूम नही पडता। यह एक भद्र-पुरुष की प्रतिज्ञा है, और इस प्रतिज्ञा का अर्थ लगाना तो हमे सदस्य की सज्जनता पर ही छोड देना चाहिए। किसी मनुष्य के जीवन के तमाम व्यवहारों मे हमे दखल नही देना चाहिए। हरेक मनुष्य खुद अपना मुसिफ बने। मैं आपसे कहता हूँ, कि किसी उद्योगी सॉलीसीटर के लिए यह सभव है कि वह अपनी सारी बुद्धि और शक्ति को सघ के ध्येय मे लगा दे। वह अपने आफिस को एक जुदा ही रूप दे देगा। वह हाथ के बने कागज के रीम-के-रीम अपने आफिस मे खपायगा, और गांव की बनी स्याही को ही काम में लायगा। उसका सदा यह आग्रह रहेगा, कि उसके आफिस में जितने कागज-पत्र लिखे जाते है वे सब हाथ के ही बने कागज पर और गाव की ही स्याही से लिखे जाते हैं न। अनेक आदमी उसके आफिस मे काम करते होगे। इससे जब कभी उसे फुर्सत मिलेगी वह यह प्रयत्न करेगा कि उसके आदमी सघ के काम में दिलचस्पी ले, और वह यथासंभव गांवों की बनी चीजो को ही काम में लाने के लिए उन्हें समझायगा। यह तो मैंने एक उदाहरण दिया है।"

दूसरे दिन सबेरे गांधीजीने इन सब बातो को एक संक्षिप्त सूची के रूप में लिखडाला। जो चर्चा हुई वह व्यर्थ नही गई, क्योंकि उससे बहुत गलतफहमी दूर हो गई; और जिन्हें स्व० मगनलाल

गांधी के स्मारकस्वरूप स्थापित होनेवाले संग्रहालय को तैयार करने का काम सौंपा गया है उन्हे इस सब चर्चा से बहुत-कुछ सहायता मिलेगी। मगनलाल भाई साबरमती-सत्याग्रहाश्रम के प्राण थे। और उनका अधिक समय खादी-कार्य में लगता था, पर ग्रामवृत्ति के तो वे साक्षात् अवतार थे; और यह उचित ही है कि जिस भूमि पर हमारे नष्टप्राय ग्रामउद्योगों को पुनरुज्जीवित करने तथा ग्रामजीवन की नवरचना करने का काम होना है उसी भूमि पर स्व० मगनलाल भाई का स्मारक-मंदिर बनाया जाय।

ग्राम्यवृत्ति पर और भी प्रकाश

कार्य शुरू कर देनेवाले सदस्यों के दिमाग को जो कई प्रश्न परेशान किये हुए थे उनके वाद-विवाद में गांधीजी को अपना बहुत अधिक समय देना पड़ा। आरम्भिक कार्यक्रम मे यद्यपि हथ-कुटे छिलक-रहित चावल, गांव के बने गुड़, घानी के तेल और हाथ की चक्की के पिसे आटे का ही आग्रह और इन्ही चीजों का प्रचार अन्तर्निहित था, तो भी इसका यह हर्गिज अर्थ नही था कि सदस्यो के ध्यान मे जो दूसरी चीजें आवें उन्हे कार्यक्रम में शामिल ही न किया जाय। इन दो-चार चीजों का नामोल्लेख तो इसलिए किया गया कि वे सार्वत्रिक महत्व की चीजें है, पर इस बात के लिए संघ के मेम्बर और एजेण्ट स्वतंत्र ही नही, बल्कि उनका कर्तव्य भी है कि वे अपने कार्यक्रम में हाथ की छिली फलियो, गांव की कुटी-पिसी हलदी या धनिये का बूका, चटाइयां, बास की टोकरियां या कुंमिया, अथवा गांव में पकाया हुआ चमड़ा और चमड़े का सामान इन सब चीजों को शामिल करलें। मगर गाव में तैयार की हुई ताड़ी या गांव का पिसा लाल मिर्ची का बूका, अथवा गांव का बना हुलास या बीड़िया आदि हानिकारक वस्तुओ को अपने कार्यक्रम में शामिल करने की बात तो किसी भी सदस्य को नही सोचनी चाहिए।

फिर साबुन, फाउण्टेन पेन आदि ऐसी भी चीजें है जो हमारे वर्तमान युग के कृत्रिम जीवन के लिए आवश्यक समझी जाती है। ये चीजें यो गावो मे बन सकती है। पर वे संघ के कार्यकर्ताओ के कार्यक्रम का अंग नहीं है। "सतीशबाबू, हां, कोई ऐसी चीज आप मुझे जरूर बतलावें, जो साबुन की जगह गावो में काम आ सके," सतीशबाबू से गाधीजीने पूछा। बोर्ड की बैठक के लिए सतीशबाबू खास करके कलकत्ते से आये थे। "मगर," सतीशबाबूने कहा, "कपड़े धोने का सस्ते-से-सस्ता साबुन तो गांववाले खुद ही बड़ी आसानी से तैयार कर सकते है।"

"मुझे मालूम है," गाधीजीने कहा, "पर साबुन के फेर में वे पड़ें ही क्यो? हमारे बाप-दादे साबुन को कब काम मे लाते थे? जरूर कोई-न-कोई ऐसी चीज थी जो साबुन का काम देती होगी। उदाहरण के लिए हम उनसे सज्जी मिट्टी से कपड़े साफ करने के लिए क्यो न कहें? ऐसी मिट्टी हमारे देश में कई जगह मिलती है जिसमें कुदरती तौर पर सोडा रहा करता है। हमारे यहां स्त्रियां रीठे का आज भी काफी इस्तेमाल करती है, और महाराष्ट्र में सीकाकाई से काम चलाते हैं।"

"निस्संदेह ये अच्छी चीजें हैं।"

"मगर नहाने के साबुन का भी इसी तरह कोई चीज काम दे सकती है या नहीं?"

"क्यों नहीं, बेसन या मसूर का आटा," सतीश बाबूने कहा। आज भी बेसन से लोग उबटन करते हैं। चमड़े को सिर्फ वह साफ ही नही करता, बल्कि उसे चिकना और मुलायम भी बना देता है।"

"अच्छा, तब हमें इस बात के लिए परेशान होने की जरूरत नहीं कि गांववालो को हम साबुन बनाने की सस्ती-से-सस्ती विधि बतलाने जायँ। जो चीजें जहां अत्यन्त आसानी से मिलती हों उन्हीं को वे काम मे लावे, बस यही प्रोत्साहन उन्हे देना चाहिए।"

यही बात फाउण्टेन पेन के बारे मे है। "यह बिल्कुल संभव है कि गांवो में फाउण्टेन पेन तैयार हो सकता है। मगर इस आधुनिक चीज का गावो में प्रवेश कराया जाय इसकी ऐसी जरूरत ही क्या है। फाउण्टेन पेन से जितना वे लिख सकते हैं उससे अगर कुछ कम लिखेंगे तो इससे उनका नुकसान ही क्या होगा? बरू की कलम काफी अच्छा काम देती है," गांधीजीने कहा।

बिना पालिश का हथकुटा चावल

पॉलिश या छिलक-रहित चावल के अर्थ पर बंगाल के विज्ञानी सदस्यो और गांधीजी के बीच खासी गरमागरम बहस हुई। कुछ सदस्योंने जिंदगी मे पहली ही बार गांधीजी की परिभाषा का शत-प्रति-शत छिलक-हित चावल यही खाया था, और कुछने तो उसे यह समझा था, कि वह हाथ का कुटा चावल हैं जिस पर थोड़ा पॉलिश तो रहता ही है और ऐसा चावल हमारे गांवों में अब भी मिलता है। लेकिन गांधीजी तो डाक्टरो की दी हुई राय पर दृढ थे इसलिए वह अपनी दलील से टस से मस नही हुए और बराबर इस बात पर लड़ते ही रहे कि डाक्टरो का मत तो यह है कि मिल के छिलकदार चावल मे जो 'विटामिन' नष्ट हो जाते हैं वे तो बिना कुटे ही चावल मे रह सकते हैं, और किसी अन्य प्रकार के चावल मे नही। अब यह रसायनशास्त्रियों और वैज्ञानिको को साबित करना पड़ेगा, कि एक या दो बार के कुटे चावल मे वे सब 'विटामिन' बने रह सकते है।

"मगर हाथ से गाव की ढेकी मे सिर्फ एकबार जो चावल कुटता है वह तो करीब-करीब बिना पॉलिस का ही होता है।"

"वैज्ञानिक तो ऐसी बात नही करते। क्या हम यह कहेगे कि अमुक कोण करीब-करीब पूर्ण समकोण है? समकोण तो समकोण है, और वह ठीक ९० अंश का होता है, न इससे न्यून, न इससे अधिक।"

"लेकिन लोगो को तो कुछ-न-कुछ छिलकदार चावल के खाने की ऐसी कुछ टेव पड़ गई है कि उन्हें यह समझाना बड़ा मुशकिल है कि उन्हे बिल्कुल ही बिना कुटा चावल खाना चाहिए जिसपर जरा भी छिलक न हो।"

"सुधारक तो ऐसी दलील नही देगा।"

"पकता भी तो वह आसानी से नही है, और जब पकता है तो उस सब की लुब्दी-सी बध जाती है। ऐसा भात भला लोग खायगे?"

"यह सच है कि उसके पकने मे समय अधिक लगता है, पर यह निस्संदेह प्रमाणित हो चुका है कि छिलकदार चावल से बिना छिलक का चावल कही अधिक स्वादिष्ट होता है; और फिर यह बात तो है नहीं कि जो चीज देखने मे सुदर लगती हो वह वस्तुत. सुदर ही है। सुदर तो वही है जिसका स्वाद सुंदर हो।"

"बापू, आप दलील के आवेश में आकर पुरानी कहावतों का खून न करे," गोशी बहिन, जो अनकुटे पूर्ण चावल के ही पक्ष में थीं, बोल उठीं।

"ठीक, जो आदमी सदियों के पुराने मिथ्या विश्वासों और वहमोका खून करने निकलाहो, उससे और हो ही क्या सकता है?"

पर मुझे इस बातचीत का अन्य अंश छोड़ देना चाहिए। वे विज्ञानशास्त्री भी अपनी बात पर डटे हुए थे। उन्होंने यह कबूल किया कि एक बार के कुटे चावल का ऊपरी कना निकल जाता है, पर क्या वह स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है ?

गांधीजीने कहा, "यह स्वास्थ्य के लिए आवश्यक नहीं है इसे आप साबित कर सके तो मैं उसी वक्त अपने हथियार रख दूगा।"

"मगर आहार का प्रश्न केवल विटामीन और प्रोटीड के हिसाब में ही अन्तर्निहित नहीं है। प्राणिशास्त्र की दृष्टि से हमें प्रयोग भी करने चाहिए, और उन प्रयोगों के परिणाम पर ही इस विषय में कोई अंतिम निर्णय होना चाहिए।

"इन प्रयोगों के करने का काम तो आप लोगों का है। झट से आप यह न कहदें कि बगालियों को नित्य एक पाव चावल चाहिए और इतना उन्हें पचाना ही चाहिए। उनके लिए आप वैज्ञानिक दृष्टि से किसी सर्वांग सम्पूर्ण आहार की योजना बनाइए। यह निश्चित कीजिए कि साधारण मनुष्य के शरीर के लिए कितने स्टार्च की जरूरत है। अपने गावो के लोगो की खुराक मे जबतक मैं थोडा दूध और घी तथा हरी सब्जी न बढा सकूगा, तबतक मुझे सतोष होने का नहीं। मुझे ऐसे रसायन-शास्त्री चाहिए कि जो अपने गरीब देशवासियों के अर्थ आदर्श आहार ढूढ निकालने के लिए भूखे मरने को भी तैयार हो। हमारी यह बदकिस्मती है कि हमारे डाक्टरोने दयाधर्म की दृष्टि से या गरीबों की दृष्टिसे इस प्रश्न पर कभी विचार ही नहीं किया।"

इस सब चर्चा के फलस्वरूप यह निर्णय हुआ कि अनकुटे चावल के सबध मे फिलहाल प्रमाणपत्र देना बद कर दिया जाय, और सदस्योसे प्रार्थना की जाय कि वे इस विषय में ऐसी जाच-पडताल और खोजबीन करें कि जिसमे सदेह के लिए जराभी स्थान न रहे।

'हरिजन' से] महादेव ह० देशाई

मेरी हरिजन-यात्रा

(१०)

बलेज, रातिया, गरेज, ओड़दर—१ दिसम्बर माधवपुर से पोरबन्दर को जाते हुए (३१ मील) रास्ते मे बलेज, रातिया, गरेज और ओडदर गावो को देखा। इन गावो मे बुनकरो के क्रमशः २०, १३, ९ और ३० घर हैं। दूसरे गाव भी बुनाई के अच्छे केन्द्र है। यहा खादी या मिल के सूत के कपडे के अतिरिक्त हथकते ऊन के कम्बल भी बुने जाते है। बलेज मे छगनभाई नाम का एक हरिजन लिखना-पढना जानता है। अपनी जाति-बिरादरी में वह सुधारक भी है। उसे हमने रामायण की दो पुस्तके भेंट मे दीं। इस तरफ के सभी बुनकर मुर्दार मांस खाते हैं, और वे इस गंदे रिवाज को छोडने को तैयार नहीं। उनसे मुर्दार मास छोडने की प्रतिज्ञा लेने का मेरा तथा वहा के एक प्रतिष्ठित सज्जन का सारा प्रयत्न निष्फल ही गया। ओड़दर गाव में एक प्रारंभिक पाठशाला की आवश्यकता है, क्योकि यहाँ के हरिजन अपने गांव से चार मील से ऊपर छाया की पाठशाला में, जहां छात्रालय भी है, अपने बालकों को पढने नहीं भेजते। बलेज के हरिजनोने अपने यहा पाठशाला खोलने के लिए हम से निवेदन किया, पर यह अच्छा होगा कि अलग पाठशाला खोलने की अपेक्षा इस गांव की पाठशाला में ही उनके बालकों के लिए एक कक्षा खोल दी जाय।

आदित्याणा, अमरदड, राणावाव—इन तीन गांवों को मैंने ६ दिसम्बर को दोपहर के बाद देखा। आदित्याणा में ५२, अमरदड मे ४० और राणावाव में हरिजनो के ६० कुटुम्ब हैं। राणावाव में २५ घर भगियो के हैं। इन तीनो गांवों में पानी की कोई शिकायत नही, क्योकि वहा उनके अपने कुएँ हैं। मगर आदित्याणा और राणावाव में उनके बच्चों के लिए पाठशाला की खास जरूरत है। पोरबन्दरी पत्थर की खुदाई का काम ये सब करते है और उससे इन्हे अच्छी रोजी मिल जाती है। राणावाव में यह सुना कि वहा की पाठशाला के हिन्दू और मुसलमान लड़के हरिजन बालको से दूर भागते है। यह बडे ही दुःख की बात है कि राज्यने राणावाव-जैसे बडे गाव मे हरिजन बालको के लिए पाठशाला की कोई भी सुविधा नही दी है। यहा मरे हुए ढोरों के चमडे पर राज्य का हक है। इस साल के लिए आदित्याणा और राणावाव मे यह हक क्रमश ४५०) और ९५०) मे नीलाम कर दिया गया है। यहा के चमारोने बतलाया कि इस ठेके के समय अधिक-से-अधिक बोली बोलने के लिए हमारे ऊपर अनुचित दबाव डाला जाता है और इस तरह इस सौदे मे हमे नुकसान ही उठाना पड़ता है।

बखरला—यह गांव राज्य की उत्तर दिशा मे पड़ता है। इसमे बुनकरो के ३० घर है। उन्होंने बतलाया कि यहा हमारे बालको के लिए पाठशाला खोलने की राज्यने मंजूरी तो देदी थी, परन्तु पाठशाला का अभीतक आरम्भ नही हुआ। अगर यहा पाठशाला खुल जाय, तो बखरला के इर्दगिर्द के गांवो के बालक भी उससे फायदा उठा सकते हैं।

पोरबंदर—७ दिसम्बर पोरबन्दर मे चूकि म्यूनिसिपैलिटी है और यह अच्छा खासा शहर है इसलिए अकेले भंगियो के ही वहा १११ घर है। ये लोग अपने खुद के ही मकानो मे रहते हैं। ये घर है तो वैसे खुली जगह मे, पर बहुत पास-पास हैं। वे जानते हैं कि कराची मे म्यूनिसिपैलिटी के मेहतरों को क्या-क्या सुख-सुविधाएँ प्राप्त है, इसलिए यहा भी उन्ही की तरह सुख और सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए वे स्वभावतः उत्सुक हैं। उन्होंने अपनी ये मागे एक कागज मे अपनी ही भाषा मे लिखकर मुझे दी :—

(१) एक ऐसी सहकारी समिति चाहिए जो इन्हें कम सूद पर कर्ज दे और इनकी तनख्वाह मे से उस कर्ज को किस्तवार वसूल करले। इसके लिए राज्य आसानी से दो हजार रुपये निकाल सकता है; और म्यूनिसिपैलटी के मत्री, म्यूनिसिपैलिटी के मेम्बर तथा हरिजन कार्यकर्त्ताओं की एक समिति बना दी जाय, जिसके द्वारा ये बेचारे मौजूदा कर्ज से और ७५ से लेकर २५० प्रति सैकड़ेतक के ब्याज-ग्राह से मुक्त हो सके।

(२) इनकी बस्ती मे पानी का सिर्फ एक ही नल है। इससे एक ऐसी पानी की टंकी की बड़ी जरूरत है, जिसमें कई नल लगे हो। इसके अतिरिक्त स्त्रियों के लिए स्नानागारों और कपड़े धोने के लिए पक्की जगह बनवा देने की भी जरूरत है। इनके लिए पानी का पूरा-पूरा इन्तजाम करा दिया जाय तो ये सभी भंगी भाई स्वच्छ रहने लगें।

(३) इनके मुहल्ले मे अथवा शहर के किसी दूसरे सुविधा-जनक स्थान में इन लोगों के लिए चाय-पानी के होटल की भी आवश्यकता है। किसी हदतक इसकी बदौलत ये लोग शराब से भी दूर रहते हैं। उन्होंने अपनी दरखास्त में लिखा है, "हिन्दू होटलवाला तो हमारे अपने प्याले में भी हमें चाय नहीं देता।

इससे चाय के लिए हमे मुसलमानी होटल की शरण लेनी पड़ती है। वे लोग भी हमारे साथ कुत्तो के जैसा बर्ताव करते है और हमे चाय पीने के लिए बैठने की जगह भी नही देते।" वास्तव मे होटलवाले उनके साथ जो बर्ताव करते है उसका यह सच्चा वर्णन है। जेतपुर मे हरिजनो का अपना एक होटल है, जहा उनके साथ पूर्ण सम्मान का व्यवहार होता है।

(४) उन्हे ११) मासिक वेतन मिलता है। वेतन बुरा नही है। लेकिन उन्होंने बतलाया कि दूसरी जगहों की तरह यहा एक ही कुटुम्ब के दो-तीन आदमी नौकर नही रखे जाते, एक घर का एक ही आदमी नौकर रखा जाता है। इसकी ठीक-ठीक तहकीकात होनी चाहिए, क्योंकि इस चीज का उनकी आर्थिक स्थिति पर बहुत बडा असर पडता है, हालाकि यो देखने मे उनका वेतन कुछ कम नही है।

श्री कालिदास गाधी उर्फ कालाबापा के प्रयत्न से भंगियो के अपने तथा चन्दे के सार्वजनिक पैसे से हाल मे यहा एक मन्दिर बना है। यहा उनके बच्चों के लिए कई वर्षो से राज्य की ओर से एक पाठशाला चल रही है, पर उसका लाभ सिर्फ २० ही बालक उठाते है। म्युनिसिपैलिटी के मत्री और यहा के कार्यकर्त्ता कोशिश करे तो सहज मे यह छात्रसख्या दूनी हो सकती है। यहा के हरिजनो की यह शिकायत है कि गुजराती की चौथे दर्जे की पढाई समाप्त कर चुकने के बाद हमारे बालकों को अग्रेजी स्कूल मे अगर भरती न किया, तो उन्हे इस पाठशाला मे भेजने से फायदा ही क्या? काठियावाड के कई राज्यो की भाति यहा भी प्रत्येक योग्य हरिजन बालक को बिना किसी जातिगत भेदभाव के अग्रेजी स्कूल मे भरती कर लेना चाहिए। पोरबन्दर मे भंगियो की अपेक्षा बुनकरो की आबादी कम है। ये लोग नौकाओं के लिए पाल का कपडा बुनते है और इमारती काम मे मजूरी वगैरा भी करते है। उनकी स्थिति सतोषजनक कही जा सकती है। उनकी बस्ती एक दूसरी जगह पर बसाने का विचार हो रहा है। यह आशा की जाती है कि उनकी हाल की आवश्यकताओं तथा भविष्य के विस्तार के लिए उन्हे वहां काफी जगह मिल जायगी। उनके बालकों के लिए सघ की ओर से यहा एक पाठशाला चल रही है।

छाया-आश्रम—८ दिसम्बर गत सात वर्ष से पडोस के छाया गाव मे सघ की ओर से एक छात्रालयवाली पाठशाला चल रही है। आश्रम के मकान सुन्दर भी है और मजबूत भी। ये पोरबन्दर के सेठ नानजी कालिदास के दिये हुए मकान है। छात्रालय में ९ बालिकाएँ और ९ बालक नि:शुल्क रहते है, इसके अतिरिक्त अन्य ३० विद्यार्थी भी पाठशाला में पढने आते है। अधिकाश विद्यार्थी छाया गाव के ही है। आश्रम के कार्यकर्त्ता पाठशाला की ही जमीन पर रहते है यह बहुत लाभदायी है। यहां कम्बल बुने जाते है और चप्पल भी बनते है। इन दोनों कामों को छाया-आश्रम के बालक भी सीखते हैं। यहा की हरिजन-बस्ती में उस दिन सभा का भी आयोजन किया गया था। वहा यह मालूम हुआ कि यहा के बुनकरो मे दो दल हैं। वे एक-दूसरे के विरुद्ध अदालत तक गये थे। यहा उनके ६२ घर है। बहुत करके ये लोग अपना बुनाई का हुनर भूल गये है और पोरबन्दर में मकान और सडक बनाने की मजदूरी करते है, जिससे रोजी इन्हे अच्छी मिल जाती है।

भाणवड़—९ दिसंबर : बुनाई का यह भारी केन्द्र है। इस कस्बे मे और आस-पास के गावो मे करीब १०० करघे चलते है। मगर यहा के बहुत-से बुनकर काम-धधे की तलाश मे ओखाबदर और गोंडल राज्य के उपलेटा मे जा बसे है। यहा की बुनाई के उद्योग को राज्य की ओर से प्रोत्साहन मिलने की जरूरत है, नही तो यह दिन-दिन छीजता हुआ उद्योग कुछ बरसो में मृतप्राय हो जायगा। यहा इन भिन्न-भिन्न जाति के हरिजनों के चार मुहल्ले हैं: (१) सोरठिया, (२) चमार, (३) महेश्वरी अथवा जाडेजा (४) मेघवाल, और (५) भंगी, जिनकी कुटुब-सख्या क्रमश: २० ४१, ११ और १० है। चमारो का मुहल्ला शहर से दूर है। मकान अच्छे है और एक सिलसिले से बने हुए हैं। इस जगह में बसे उन्हे करीब २२ बरस हुए है। हम लोग जहा भी गये वहा बुनकरो और चमारोने यह आम शिकायत की कि यहा के जो बुनकर और चमार खेती नही करते उनसे भारी टैक्स लिया जाता है। हरसाल बुनकरो को ४) और चमारो को २॥) टैक्स के देने पडते है। सिवा राजधानी के जामनगर राज्य के करीब-करीब हरेक कस्बे और गाव में यह रिवाज है। हरिजनो को, खासकर चमारो को यह टैक्स बहुत भारी पडता है, क्योंकि चमारो को 'भाम' के इजारे के लिए और चमडा पकाने के काम मे आनेवाली आंवले की छाल के इजारे के लिए बहुत भारी कीमत देनी पडती है। बद-किस्मती से काठियावाड मे किसानो तथा दूसरो के मरे हुए ढोर के चमडे पर राज्य का अधिकार माना जाता है। राज्य हरसाल चमडे के इस हक को नीलाम मे अधिक-से-अधिक रकम बोलने-वाले को दे देता हैं। राज्य को इस ठेके से बहुत पैसा मिलता है। इस वर्ग के हितकारी कार्य मे अथवा जिससे इस वर्ग की तरक्की हो उस कार्य मे इस रकम को खरचेगा यही उससे आशा की जा सकती है। भावनगर राज्यने तहसीली कस्बो के सिवाय दूसरे तमाम गावो मे यह हक छोड दिया है। भाम के इस इजारे के अलावा चमारो को आवले के इजारे के लिए भी तो पैसा देना पडता है। चमडे के उद्योग पर यहा यह एक दूसरा टैक्स है। इसमे भी भाम के इजारे मे एक तिहाई पैसा भरना पडता है।

सोरठिया और मेघवाल लोगो का कुआ पुराने ढग का सीढियोवाला है। इसकी अच्छी तरह मरम्मत होने की जरूरत है। इसकी दो कमान तो चाहे जब गिर पडेगी इस हालत मे है। चमारो के कुएँ की दीवार ऊँची करा देने की जरूरत है। जाडेजा लोगो को उच्च जाति के हिन्दुओं के कुएँ से लुक-छिपकर पानी लाना पडता है। यहा उनके बच्चों के लिए एक अलग पाठशाला खोलने की सख्त जरूरत है। यह पाठशाला चमारो की बस्ती मे खुल सकती है, क्योंकि यह बस्ती बडी-से-बडी है। हरिजन-सेवक-संघ यहा पाठशाला खोलने का निर्णय कर चुका है। यहा १८ मनुष्योने मुर्दार मास न खाने की प्रतिज्ञा की, पर इतना काफी नही है। राज्य से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि वह भाम के इजारे की यह शर्त बनादे कि मुर्दार-मास का उपयोग (जैसा कि भावनगर राज्य मे है) मनुष्य के आहार के रूप मे न किया जाय, बल्कि वह गीध और कुत्तो को फेंकवा दिया जाय। जो यह शर्त लगा दी जाय तो उसका अमल उनसे राज्य एव हरिजन कार्यकर्त्ता दोनों करा सकते है।

लालपुर—९ दिसम्बर यहां चमारों के सिर्फ १४ और बुनकरों के ८ घर है। गाव के ढेडवाव नामक एकमात्र मीठे कुएँ से उन्हे पानी नही भरने दिया जाता। इस कुएँ से पानी भरने की

उन्हे सख्त मनाही है। इसमे सन्देह नहीं कि यहा सारे कस्बे के लोगो को—और खासकर हरिजनो को—पर्याप्त पानी नही मिलता। पानी के लिए यहा हरिजनो को दयालु गरासिये की दयापर निर्भर रहना पड़ता है। हरिजन उसके बाग के कुएँ से पानी भरते है, जिसके लिए उन्हे गरासिये को कुछ पैसा जरूर देना पड़ता है। चमड़ा पकाने के लिए वे एक मेमणे के कुएँ से पानी लाते है। कस्बे के कुछ कृपालु सज्जनोंने यह इच्छा प्रगट की है कि अगर आधी रकम बाहर से मिल जाय तो शेष आधी रकम हम खुशी से कुएँ के लिए दे देंगे।

जामनगर—१० दिसबर जामनगर की सात हरिजन-बस्तियां और उनका विवरण नीचे लिखे अनुसार है —

१ मोटा पालिया, इसमे लगभग ८० कुटुब है। २ भगी-वास, यह आशापुरी बारी के पास है। इसमे लगभग २५ कुटुब है। ३ चमारवास, यह पुरबिया चौकी के पास है। इसमे लगभग ५६ कुटुब है। ४ मेघवालवास, यह कालवड दरवाजे के बाहर है। इसमे सिर्फ ७ कुटुब है। ५ जीवा सेठ के डेला के पास का वास, इसमे ८ कुटुब है। ६ बुनकरवास, खोजा नाका के पास। इसमे ८० कुटुब है। ७ भगीवास, यह सेठ मथुरादास के बगले के पास है। यहा लगभग ५० कुटुब है।

जामनगर मे कुछ बुनकर अथवा मेघवाल मिट्टी के काम के तथा सड़क सुधारने के छोटे-छोटे ठेके लेने का धधा करते है। ये लोग सवर्ण हिन्दुओ की तरह सफाई और सुघड़ाई के साथ उनके बीच मे रहते है। बाकी के लोग मेहनत-मजूरी करते है और रोजदारी मे जो मिलता है उसीसे गुजर चलाते है। पाचवा और छठा वास शहर के ठीक बीच मे पड़ते है और दूसरी बस्तियो से बिल्कुल अलग है। यहा खाने-पीने से सुखी मेघवाल ठेकदार सुदर पक्के मकानो मे रहते है। दूसरे तथा सातवे वास मे भगी रहते है। इनमे पहला वास बड़ाही घिचपिच और गदा मुहल्ला है। दूसरा वास शहर के बाहर होने से खुला हुआ और विस्तृत है। लेकिन यह भी व्यवस्थित रीति से नही बना हुआ है, इसलिए यह बहुत सकड़ा है और गलिया टेढी-मेढी है। म्युनिसिपैलिटी या राज्यने अपने इन सेवको के लिए मकानो की कुछ भी व्यवस्था नही की है। यहा भगियो को १२) मासिक वेतन मिलता है। काठियावाड मे १२) का यह वेतन अच्छा समझा जाता है। लेकिन उनकी खासकर जो मुख्य सड़के साफ करते है उनकी एक खास शिकायत काम के बारे मे है। उन्हे दस-दस घटे काम मे पिसना पड़ता है। इतना ही नही, बल्कि जो काम उनके सुपुर्द किया जाता है उसे पूरा करने के लिए उन्हे अपने कुटुब की भी मदद लेनी पड़ती है। उन्हे इसके लिए एक पैसा भी अधिक नही मिलता। अगर यह बात सच है, तो इसमे सुधार होना चाहिए। उन्हे हर हफ्ते आधे दिन की छुट्टी मिलने लगे तो आराम भी उन्हे कुछ मिल जाय और बेचारे ठीक तरह नहा-धो भी सकें।

इधर छै साल से छठे वास के पास राज्य की ओर से एक प्राथमिक पाठशाला चल रही है। यह पाठशाला अधिक आबादीवाले पहले वास से बहुत दूर पड़ती है। इस पाठशाला का अध्यापक हरिजन है। पर वह अपने काम से बहुत ही अयोग्य मालूम पड़ा। पहले नंबर के वास में एक दूसरी पाठशाला की खास जरूरत है। उस से अन्य वास भी लाभ उठा सकते है। सातवे वास मे गत तीन मास से स्थानीय हरिजन-सेवक एक पाठशाला चला रहे है। इस वास के भगी बालक उसमे पढ़ते है। इस पाठशाला के बालकोने शुद्ध भाषा मे हमे प्रार्थना सुनाई। अभी हाल तो यह पाठशाला इमली के एक विशाल वृक्ष के नीचे लगती है। पर यह विश्वास है कि राज्य अथवा जामनगर का कोई उदार सज्जन इस पाठशाला के लिए एक अच्छा-सा मकान बनवा देगा।

अमृतलाल वि० ठक्कर

अ० भा० ग्रामउद्योगसंघ के
कार्यकर्ताओं के प्रतिज्ञापत्र

वर्धा मे अ० भा० ग्रामउद्योग-संघ के व्यवस्थापक मडल की, १६ से १८ मार्च तक, जो बैठक हुई थी, उसमे सघ के सहायको, और वैतनिक तथा अवैतनिक कार्यकर्त्ताओ का प्रतिज्ञासबधी यह महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुआ —

प्रस्ताव नं० ६

सहायको, वैतनिक कार्यकर्त्ताओ और अवैतनिक कार्यकर्त्ताओं के प्रतिज्ञापत्रो पर विचार होने के बाद निम्नप्रकार के फार्म निश्चित किये गये —

सहायक के लिए

'ग्राम-उद्योग-सघ के प्रति चूकि मेरी सहानुभूति है, इसलिए अ० भा० ग्राम-उद्योग-सघ की प्रवृत्ति मे जो भावना निहित है उसका जहातक हो सकेगा मै स्वय पालन करूँगा और यथासभव गावो मे बनी चीजो का ही काम मे लाऊगा।

तारीख हस्ताक्षर

वैतनिक कार्यकर्त्ता के लिए

अ० भा० ग्रामउद्योग-सघ के ध्येय मे मैं विश्वास करता हूँ, और इस बात का मै अपनी शक्तिभर पूरा-पूरा प्रयत्न करूँगा कि केवल ग्रामवासियो की बनाई हुई चीजों को ही काम मे लाऊँ। साथ ही, जिन लोगो की मातहती मे मुझे जब जहा काम करना पड़ेगा उनके दिये आदेशो का मै पालन करूँगा और उन्हे वफादारी के साथ पूरा करूँगा।

तारीख हस्ताक्षर

प्रमाणित किया गया।

अवैतनिक कार्यकर्त्ता के लिए

अ० भा० ग्रामउद्योग-सघ के ध्येय और विधान को मैंने पढ लिया है। मैं इस ध्येय को आगे बढ़ाने के लिए इस बात का अपनी शक्तिभर पूरा-पूरा प्रयत्न करूँगा कि गाव की बनी चीजो का पता लगाकर मै खुद उनका उपयोग करूँ, और अपने पड़ोसियों तथा जिनके भी सपर्क में मैं आऊँगा उन सब मे उन चीजोंके व्यवहार का प्रचार करूँ। साथ ही, ग्रामवासियों की सेवा का जो भी अवसर मुझे प्राप्त होगा उसमें मैं अपनी शक्तिभर हर तरह से उनकी सेवा करने का जतन करूँगा। अ० भा० ग्रामउद्योग-सघ की ओर से मैं जो भी काम करूँगा हर तीसरे महीने उसका विवरण सघ के मत्री के पास भेज दिया करूँगा।

तारीख हस्ताक्षर

स्वीकृत किया गया।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

संपादक—वियोगी हरि
वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)
पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369.

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग २] दिल्ली, शुक्रवार, ५ एप्रिल, १९३५. [संख्या ७

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

हमारा भंगी का काम

इस दिशा में हम जो प्रयत्न कर रहे हैं उसमें हमें अब कुछ-कुछ सफलता प्राप्त होती दिखाई देती है। यद्यपि हमें कोई सक्रिय सहयोग नहीं मिल रहा है, तो भी लोग पाखाना फिरने अब खेतों में जाने लगे हैं, और इससे सड़कों पर गंदगी बहुत कम देखने में आती है। कुछ यश तो इसका वर्धा-म्यूनिसिपैलिटी के वाइस चेयरमैन को है, जो इस गांव में सवेरे और शाम दोनों वक्त जाते हैं और गांववालों से मिलकर उनकी आंखें खोलने की चेष्टा कर रहे हैं। वर्धा से स्वयंसेवक भी हमें मिलने लगे हैं। एक हफ्ता पहले जहां हम पूरे गांव की सफाई नहीं कर सकते थे, वहां हम लोगों की संख्या अब इतनी काफी हो गई है कि हम तमाम गलियों और सड़कों की सफाई अब अच्छी तरह हाथ में ले सकते हैं। एक दिन सवेरे जमनालालजी भी म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन साहब तथा अपनी दो लड़कियों के साथ वहां गये थे और गांव के तमाम मुखियों से उन्होंने काफी देरतक बात की थी। मीरा बहिन की नित्य की उपस्थिति से बड़ा लाभ पहुँचता है। मुझे आशा है, लोग बहुत जल्द यह अनुभव करेंगे कि सड़कों व गलियों को खराब करना एक तरह का पाप है, और सबसे अच्छा तरीका यही है कि दस कदम आगे बढ़कर खेतों में ही टट्टी फिरना चाहिए। फिर भी हमें अभी लगातार प्रयत्न तो करना ही पड़ेगा।

मगनवाड़ी की बातें

यह तो मैं अपने एक पहले के साप्ताहिक पत्र में कह ही चुका हूँ कि मगनवाड़ी में हम लोगोंने अपनी एक घानी लगाली है, और वह बड़ा अच्छा काम दे रही है। हमें अब नित्य ताजा तेल मिलने लगा है। सतीश बाबूने अभी लिखा है कि खली बैलों के लिए तो सबसे उपयोगी है ही, नहाने के साबुन का भी वह अच्छा काम दे सकती है। पर अभी हमने इस प्रयोग को आजमाया नहीं। हमारे यहां ईख पेरने की एक चरखी भी आ गई है। यह चरखी किर्लोस्कर-बंधुओंने संघ को भेंट की है। गांव की बनी चरखी आने पर दोनों का मुकाबला करके हमें यह देखना है, कि किससे कितना रस निकलता है। बहुत-सा लिखा-पढ़ी का काम जो पिछड़ गया था उसे पूरा करने के लिए यद्यपि गांधीजी को मजबूरन चार सप्ताह का मौन लेना पड़ा है, तो भी घर-गृहस्थी-संबंधी तथा बाग की एक-एक चीज को वे नित्य ध्यान से देखते हैं। कुछ दिनों से वे भाफ से खाना पकवाने की बात सोच रहे थे। पर चार-छै आदमियों का सवाल तो था नहीं, करीब तीस आदमियों की रसोई का प्रश्न था। बाजार में आसानी से मिल जानेवाला कीमती 'कुकर' (चूल्हा) तो हमें पुसाया नहीं। हमें तो कोई अपना ही 'कुकर' ढूंढ निकालना था। यह कहते हुए मुझे प्रसन्नता होती है, कि भला हो कलकत्ते के उन तीनों रसायन-शास्त्रियों का, जो हाल में मगनवाड़ी आये हुए थे—उन्होंने एक ऐसी तरकीब सुझाई, जो बड़ा अच्छा काम दे रही है। गांधीजीने बाजार से एक बड़ा-सा रद्दी ढोल मंगाया और उसका अंदर का हिस्सा खूब रगड़-रगड़कर साफ कराया और उसके ऊपर एक ढक्कन लगवा दिया। पहले-पहल उसमें बर्तन रखकर लपसी, चावल और दाल को जब पकाया, तो वह बड़ा ही अच्छा साबित हुआ। खाना अच्छा बढ़िया और अधिक वैज्ञानिक ढंग से पका, ईंधन भी कम लगा और परिश्रम तो कुछ भी नहीं पड़ा, क्योंकि किसी को कलछी लेकर बारबार देखने व चलाने की जरूरत नहीं पड़ी, और समय की भी खासी बचत हुई, क्योंकि खाना जल्दी पकता है, और बर्तन भी बड़ी आसानी से साफ हो जाते हैं।

सबसे प्रभावकारी तरीका

हमारे यहां उसदिन एक पादरी मित्र आये थे, जिन्होंने गांधीजी से यह प्रश्न किया कि 'यीसू के धर्मसंदेश का उपदेश करने का सबसे प्रभावकारी तरीका कौन-सा है? मेरा तो यह जीवन-कार्य है।' गांधीजीने उन्हें यह जवाब दिया —

"धर्मसंदेश को जीवन में उतारना ही उपदेश का आदि, मध्य और अंत में सबसे प्रभावकारी तरीका है। यह दुनियाभर के भाषण मुझ पर कोई असर नहीं करते, और मुझे तो ऐसा उपदेश करनेवाले मिशनरियों पर संदेह हो जाता है। मैं तो उन्हें प्यार करता हूँ, जो कभी उपदेश नहीं करते, किंतु अपने अंतर्बोध के अनुसार वैसा आचरण करते हैं। वे कुछ कहते नहीं, तो भी उनका वह मूक आचरण उनके धर्मउपदेश का अत्यंत प्रभावकारी प्रमाण देता है। इसलिए मैं यह नहीं कह सकता कि किस चीज का उपदेश किया जाय, पर मैं यह कह सकता हूँ कि सेवा और अत्यंत सादगी का जीवन ही सर्वोत्तम धर्मउपदेश है। अगर लोगों की आप सेवा करते चले जायें, साथ ही उनसे दूसरों की सेवा

करने को भी कहे, तभी उनकी समझ में आपका यह धर्मप्रचार आयगा। पर आप तो कोरा उपदेश करते है, उसके अनुसार स्वयं आचरण नही करते। अब वे विश्वास करे तो कैसे ? मेरे ऊपर ऐसे उपदेश का कोई असर नही होता, और मुझे विश्वास है कि लोग ऐसे धर्मोपदेश को कभी नही समझेगे। जहा भी कोरे उपदेश के द्वारा धर्म-संदेश ग्रहण करने की बात कही जाती है वहा मेरी हमेशा यह शिकायत रहती है, कि वहा कोई-न-कोई मतलब की बात होगी।"

"मगर यह तो हम भी जानते है" उन सज्जनने कहा, "और हम ऐसे किसी हेतु से बचने का भरसक प्रयत्न भी करते है।"

पर आप उससे बच ही नही सकते। सारे धर्मउपदेश को हमारा एक लोभपूर्ण हेतु नष्ट कर देता है। वह एक बूंद जहर के समान है, जो सारे भाजन को खराब कर देता है। इसलिए मुझे तो बिना ही उपदेश के अपना काम चला लेना चाहिए। गुलाब के फूल को उपदेश करने की जरूरत नही पडती। वह तो केवल अपनी सुगन्ध फैला देता है। वह सुगन्ध ही उसका पवित्र प्रवचन है। अगर मनुष्य की जैसी समझ गुलाब के फूल मे होती, और बहुत-से उपदेशको को वह रख सकता, तो जितने फूलो को उसकी वह सुगन्ध बिकवा देती है उससे अधिक फलो को उसके वे तमाम उपदेशक कभी न बिकवा सकते। फिर धार्मिक तथा आध्यात्मिक जीवन की सुगन्ध तो गुलाब की सुगन्ध से कही ज्यादा मीठी और सूक्ष्म है।"

पर इस सब कहने का कुछ प्रभाव पडा हो ऐसा प्रतीत नही हुआ। उस पादरी सज्जनने बात को खत्म करते हुए यह अभिशाप-सा दिया (अथवा यह आशीर्वाद होगा ?) कि, "मि० गांधी, आप वृद्ध होते जाते हैं और कुछ समय के बाद ऐसा दिन आयगा, जब आपकी परख **आपके** पुण्य से नही, किन्तु यीसू के पुण्य से की जायगी।" बेचारे पादरी को यह मालूम नही था कि गाधीजी में सत्य और अहिंसा की जो कुछ शक्ति है वह सब ईश्वर की ही है ऐसा गांधीजी मानते है।"

और भी अनेक प्रश्न

एक दूसरे दिन कुछ मिशनरी बहिनें वहा नागपुर से आई थी। उन्होने भी अनेक प्रश्न पूछे थे। उनका पहला प्रश्न यह था—"आप गावो मे जो आरोग्यता-सम्बन्धी काम कर रहे है उसमे लोगो को कुछ डाक्टरी सहायता भी देते हैं या नहीं ?"

गाधीजीने कहा, "हम डाक्टरी सहायता नही देते, हमे तो वहा यह करना है कि रोग पैदा ही न हो। इसलिए हम अपना सारा ध्यान लोगो की शारीरिक स्वच्छता तथा घर और गाव की सफाई पर ही दे रहे है। मेरा मत यह है कि ज्यादातर यह डाक्टरी सहायता लोगो को अधिक असहाय बनाने के लिए ही दी जाती है। बहुत-कुछ जगहो मे तो दवा-दारू की सहायता का अपव्यय किया जाता है, और इससे उन लोगो पर उसका कुछ भी असर नही होता। मेरे कुछ साथी नजदीक के एक गाव में सफाई करने जाते है। वहा की सडके और गलिया मल-मूत्र और कूडे-कचरे से पुरी रहती है। फिर इसमे आश्चर्य ही क्या, अगर वहा के बच्चो की आखे खराब रहती हो और उन्हे तरह-तरह की बीमारिया होती हो ? मेरे साथियो के काम का लोगो के मन पर कोई असर पड रहा है यह अभी मालूम नही होता। पर जब वे यह देखेगे कि उनके गाव मे सफाई रहने की वजह से रोग की मात्रा भी अब कम हो गई है, तब वे इस रहस्य को समझ सकेगे। अभी अगर वहा मुफ्ती दवाखाना खोल दिया जाय और जो भी आवे उसे शीशी भर-भर दवा दी जाया करे तो काम जरा भी आगे न बढे। गांवो की सफाई को हाथ में ले लेना ही सच्चा ठोस काम है। यह बुराई पूरी तरह से रोकी जा सकती है। पर यह संभव होते हुए भी हमने अपने गावो में यह गन्दगी का ढचरा बरसो चलने दिया, ग्रामवासियो को बरसो इस बुराई को बर्दाश्त कराते रहे। काम यह महान् कठिन है। मुफ्त दवा बाटने का काम तो बहुत आसान है। पर मै तो अपने साथियो से यही कहा करता हूँ कि वे कोई आसान-सा काम करके सस्ती वाहवा लूटने की लालच मे न फँसे। सबसे पहले तो हमे यह प्रयत्न करना चाहिए कि रोग पैदा ही न होने पावे; फिर बाद को हम रोग को देख लेगे।"

"तो क्या आप डाक्टर नही रखेंगे ?"

"नही, पर मेरे अर्थ का अनर्थ न करना। मैने खुद रोगियो की सेवा की है और उन्हे दवाइया भी दी है। अभी गत मास मे ही डाक्टरोने काठियावाड के हरिजनो का मोतियाबिंद निकाला और आख के अन्य रोगो का भी मुफ्त इलाज किया। पर मैं तो अभी लोगो का साधारण स्वास्थ्य सुधारने के उपायो की बात कर रहा हूँ। और मेरे साथी जब गावो की सफाई करने का प्रारम्भिक कार्य कर चुकेगे तब उसके बाद भी उन्हे केवल ये चार ही दवाइया मुझे देनी है—कुनैन, रेंडी का तेल, सोडा और आयडीन। पाचवीं चीज की हमे जरूरत ही नही।"

"पाठशालाओ को, मालूम होता है, आपने अपने कार्यक्रम मे अन्तिम स्थान दिया है ?"

"नही, हम हरिजनो के लिए अनेक पाठशालाएं चला रहे है, और हरिजन बालको को कितनी ही छात्रवृत्तिया दे रहे है। ग्राम-उद्योगसघ के काम मे यह पाठशालाओ का काम बढाने से फायदा ही क्या ? इस नये सघ का उद्देश तो हरिजन-सेवक-सघ और चरखा-सघ का काम पूरा करना है। चरखा-सघ के पास आज २० लाख रुपये की पूंजी है, और हरिजन-सेवक-सघ के पास भी खासा अच्छा फड है। मेरे मन मे यह आया कि अब मुझे ऐसा आदोलन आरम्भ करना चाहिए जिसमे पैसे की बहुत कम जरूरत पडे, और जिससे गरीबो की जेब में कुछ पैसा पहुँचे। इसलिए अगर मै गावो के लोगो को इतना ही समझा सकू कि मनुष्य के मैले को व्यर्थ बर्बाद न करके खाद के रूप मे उसका सुंदर उपयोग करे, तो मै एक कौडी की भी पूंजी लगाये बिना हरसाल उनके ५० करोड रुपये बचवा सकता हूँ। मनुष्य के मैले को छिछले गड्ढो मे गाडकर उसका सुंदर खाद बनाने की यह विधि मैने डा० पूरे से सीखी है। यह विधि सरल-से-सरल और सबसे अधिक उपयोगी है। दूसरी विधिया कठिन भी है और ज्यादा खर्चीली भी है।"

उन बहिनोंने अपना यह मुख्य प्रश्न तो अत मे पूछने के लिए रखा था कि, "आपका हरिजन-सेवक-संघ लोगो के आत्मकल्याण के लिए भी कुछ करता है या नहीं ?"

गाधीजीने कहा—"मेरी समझ मे तो उनकी आत्मा के कल्याण का समावेश इसमे हो जाता है कि मनुष्य का चरित्र सुधरे और वह सदाचारी हो जाय। इससे आपके इस प्रश्न का उत्तर मे यह देता हूँ कि 'सभी कुछ' और 'कुछ भी नही।' 'कुछ भी नहीं' में इसलिए कहता हूँ कि उनके आत्मकल्याण की देखरेख

[६० वे पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

गाय का बनाम भैंस का दूध

क्या अच्छा हो कि डा० सदाशिव राव आपटेने इस विषय पर जो प्रमाण इकट्ठे किये है उनके साथ श्री ईसा ट्रीड की 'भारत में गोपालन' (Cow-Keeping in India) पुस्तक का यह अंश और जोड़ दिया जाय —

"भैंस एक भारी-भरकम जानवर है और वह ढेर-का-ढेर खाती है। गाय से वह तिगुना चारा खा जायगी। फिर भैंस गाय से अधिक सुकुमार होती है, और वह बहुत जल्द रोगग्रस्त हो जाती है। गाय के बछडे या बछडी से भैंस की पाडी या पाडे का पालन-पोसन कहीं ज्यादा मुश्किल है।

मेरी राय में डेरी (दुग्धशाला) के उपयुक्त तो भैंस बिल्कुल ही नही। इस नतीजे पर पहुँचने के मेरे मुख्य कारण ये है—पहले तो, भैंस के दूध की तासीर बहुत गर्म होती है, और जबतक उसकी मलाई न निकाल ली जाय और पानी मिलाकर उसे खूब पतला न कर दिया जाय, तबतक वह मनुष्य के हजम करने लायक नही। जो मा-बाप दिल से अपने बच्चों के शुभचिंतक है उन्हें कभी बच्चों को भैंस का दूध नही पीने देना चाहिए। अगर भैंस का दूध बच्चों को दिया गया तो रक्त के अत्यधिक गर्म हो जाने से उन्हें जिगर की, अँतडियों की और और कई बीमारियां पैदा होगी। श्री एम० ए० हाउमैन, जिन्होंने कि सन १८९० में अपनी भारत की डेरी सम्बन्धी रिपोर्ट सरकार को दी थी, मेरे इस कथन को पूर्णतया पुष्ट करते है। वह कहते है कि भैंस का दूध बच्चों और मरीजों के जिगर को सभवत बहुत हानि पहुँचाता है। बबई के स्कॉटिश अनाथालय में भैंस का दूध दिया जाता था और वहा के बच्चे इसी दूध के कारण अकसर बीमार रहते थे यह उन्होंने प्रत्यक्ष देखा था।

"यह बात बहुत अधिक अर्थ रखती है कि हिंदुस्तान मे घोड़ो के रखनेवाले अच्छे अनुभवी लोग अपने बछेडों को भैंस का दूध नहीं पिलाते, क्योंकि उनका यह कहना है कि गाय के दूध पर पले हुए घोडों की अपेक्षा भैंस के दूध पर पले हुए घोड़े बहुत जल्द गर्मी और थकान के वशीभूत हो जाते है।

"दूसरे, गाय का मक्खन जितना अच्छा होता है उतना अच्छा प्राय भैंस का मक्खन नही होता।

वालजी गोविंदजी देसाई

प्रतिज्ञापत्र का तात्पर्य

[ग्रामउद्योगसघ के सदस्यों की प्रतिज्ञा के अर्थ में काफी मतभेद देखकर सघ के व्यवस्थापक मडलने सदस्यों के मार्ग-प्रदर्शनार्थ गाधीजी से एक नोट तैयार कर देने की प्रार्थना की थी। गाधीजी का वह नोट नीचे दिया जाता है —]

"जिस रूप में यह प्रतिज्ञापत्र हमारे सामने है इरादतन उसी रूप मे वह बनाया गया है। यह सामान्यरूप का प्रतिज्ञापत्र है। यह एक भद्रपुरुष की प्रतिज्ञा है। 'भारतवर्ष के ग्रामवासियों का सब तरह से हित-साधन करने का सघ का जो उद्देश है उसे पूरा करने के लिए मैं अपनी शक्ति और बुद्धि को अधिक-से-अधिक अंश में काम मे लाऊँगा'—इन शब्दों का अर्थ करना प्रत्येक स्त्री या पुरुष सदस्य की अपनी सत्यनिष्ठा पर छोड़ दिया गया है।

सदस्योंने केवल सघ की उद्देश-सिद्धि के लिए काम करने की ही नही, बल्कि 'सघ के आदर्शों को अपने आचरण मे उतारने, तथा गावों की बनी चीजो को ही काम मे लाने की' भी प्रतिज्ञा की है।

इसलिए व्यवस्थापक मडल का सिफारिश करनेवाला मेंबर यह जरूर देखेगा कि सदस्यता का उम्मेदवार अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति मे ग्रामवासियो का हित हृदय से चाहता है या नही। इससे यह अर्थ निकलता है कि ऐसा व्यक्ति कम-से-कम अपना कुछ समय नित्य गावों के काम मे देगा—यह जरूरी नही कि गावो में ही जाकर वह काम करेगा, पर गावो के लिए काम करेगा। इस तरह, शहर मे रहनेवाला सदस्य अमुक दिन अगर किसी आदमी के हाथ कोई गाव की बनी चीज बेचता है अथवा खरीदने के लिए उसे समझाता है तो यह माना जा सकता है कि उस दिन उसने कुछ ग्राम-सेवा की है।

सिफारिश करनेवाला सदस्य यह भी देखेगा कि उम्मेदवार, जहांतक कि सभव है, खुद गावों की बनी हुई चीजो को ही काम मे लाता है न—जैसे, मिल के कपड़े की जगह खादी, कारखाने के बने चीनी मिट्टी के बर्तनों की जगह गावों के बने मिट्टी के बर्तन, होल्डर की जगह बर्रु की कलम, साधारण कागज के स्थान पर हाथ का बना कागज, अत्यत गदे और हानिकारक आधुनिक टूथब्रश के स्थान पर बबूल या नीम की रोगाणुनाशक दातुन, बाजार मे मिलनेवाली चमडे की चीजो की जगह गावों के कमाये हुए चमडे की गावों मे बनी हुई चीजे, मिल की शक्कर के बदले गावो का गुड, मिल के चावल की जगह हाथ का कुटा पूर्ण चावल आदि।"

ग्रा० उ० सं० के दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव

[१६-१८ मार्च की बैठक में स्वीकृत]

प्रस्ताव नं० ७— यह निश्चय किया जाता है कि सेठ जमनालाल बजाज के दिये हुए दान की शर्तों के अनुसार मगनवाडी की भूमि पर स्व० मगनलाल खुशालचद गाधी के स्मृति-रक्षणार्थ सग्रहालय के योग्य भवन तुरत ही बनवाया जाय, जिस पर पचास हजार रुपये से अधिक खर्च न किया जाय। और यह भी निश्चय किया जाता है कि इस स्मारक के मकान का प्लान मँगवाने और उसे मजूर कराने तथा इमारत का काम शीघ्र ही आरभ कराने के लिए श्री कृष्णदास जाजू, श्री कुमारप्पा और सेठ जमनालाल बजाज की एक समिति बना दी जाय।

प्रस्ताव नं० १४—बिना पॉलिश का चावल प्राप्त करने की कठिनाइया तथा ऐसा चावल बेचनेवालो को दिये गये प्रमाण-पत्रो के विषय मे चर्चा हुई, और निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित कराने का यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ —

जनता के लिए बिना पालिश का चावल प्राप्त करने के प्रयत्न मे व्यवस्थापक मडल को बाजार मे पूर्ण, बिनाकुटा पॉलिश-रहित चावल मिलने मे बडी कठिनाई मालूम होती है, और हाथ का कुटा तथा मिल का कुटा चावल अनेक भिन्नभिन्न मात्राओं मे पॉलिश किया हुआ देखने में आया है। इसलिए इस विषय मे अधिक जाच-पड़ताल और शोध होने के समय तक पॉलिश-रहित चावल के सबंध के प्रमाणपत्र देना बद किया जाता है, और जो प्रमाणपत्र दिये जा चुके हैं उन्हे रद्द किया जाता है। फिर भी व्यवस्थापक मडल जनता से यह सिफारिश करता है कि—वह केवल हाथ के कुटे अर्थात् कम-से-कम पॉलिशदार चावल का ही उपयोग करे।

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ५ एप्रिल, १९३५

मंदिर-प्रवेश

अभी कुछ दिन हुए कि त्रिचिनापल्ली के कुलीतलाई तालुका-निवासी पल्ला लोगो की एक परिषद् हुई थी, जिसमें ये नीचे लिखे दो प्रस्ताव पास हुए :—

१—"महात्माजीने असेंबली के मंदिर-प्रवेश बिल के संबध मे जो रुख अख्तयार कर रखा है उसे यह परिषद् दु:ख और बड़ी निराशा के साथ देखती है, और इसलिए यह परिषद् महात्मा गाधी से प्रार्थना करती है कि इस विषय पर उनके जो मौजूदा विचार है उन्हे वे बदल दे, साथ ही इस विषय को पुन: असेंबली मे पेश होने दे, उसका नतीजा फिर चाहे जो हो।"

२—"अगर महात्माजी मंदिर-प्रवेश बिल के सम्बन्ध मे अपनी मौजूदा राय नही बदलना चाहते है, तो इस परिषद्ने देशभर की दलित जातियों के लोगो से यह प्रार्थना करने का इरादा कर लिया है कि वे सब-के-सब या तो मुसल्मान या ईसाई हो जायँ, या फिर ब्रिटिश-मंत्रिमण्डल के प्रधानमंत्रीने दलित जातियों के लिए पृथक् निर्वाचन का जो निर्णय किया था उसे ही कायम रखने का वे आंदोलन करे।"

मुझे पहला प्रस्ताव पसद है। इस परिषद्ने मंदिर-प्रवेश के प्रश्न मे जैसी दिलचस्पी ली है मैं चाहता हूँ कि तमाम हरिजन वैसी ही दिलचस्पी ले। तब मेरा काम उतना मुश्किल नही रहेगा जितना कि आज है। पर वह मुश्किल हो या आसान, मै तो हरिजनो के लिए हरेक सार्वजनिक हिंदू-मंदिर का द्वार खुलवा देने की दृष्टि से जो मार्ग सब से अच्छा समझूगा उसे जरूर पकड़ूंगा। क्योंकि, मेरी राय में, जबतक अन्य हिंदुओं की तरह हरिजनो के लिए तमाम देव-मंदिर नही खुल जाते, तबतक यह दावा नहीं किया जा सकता कि अस्पृश्यता दूर हो गई है।

मगर यह दूसरा प्रस्ताव तो, जहांतक कि परिषद् का सम्बन्ध है, मंदिर-प्रवेश के मूल पर ही कुठाराघात करता है। जो लोग अपने धर्म को छोड़ देने की धमकी सिर्फ इस वजह से देते है कि उसी धर्म को मानने का ढोंग करनेवाले कुछ दूसरे लोग उन्हे मंदिरों में जाने से रोकते है, वे कदापि धर्मनिष्ठ नही कहे जा सकते। ऐसे मनुष्य धर्म की भावना से प्रभावित हैं यह कैसे कहा जा सकता है। मंदिर तो उपासनागृह है। वे उन सब के लिए है जिनकी कि उनमे आस्था है। यह धार्मिक जुल्म कुछ आज की चीज नहीं है। जुल्म उतना ही प्राचीन है, जितना प्राचीन स्वय धर्म है। यह जुल्म अपने धर्म से न डिगनेवालो की अग्नि-परीक्षा लेता है और उन्हे कचन-सा शुद्ध कर देता है। हरिजन यदि इस यत्रणा को धैर्यपूर्वक बर्दाश्त कर सके तो अन्त में विजयमाल उनके ही गले में पड़ेगी।

मगर जिस धर्म को वे सनातन से बिना किसी शिकायत के मानते चले आ रहे हैं उसे अगर वे आज इस वजह से छोड़ने की धमकी दें कि उन्हें मंदिरों में नही जाने दिया जाता, तो उनकी यह धमकी ही उनके सारे मामले को खारिज कर देती है। हरिजन अगर हिंदू-समाज को छोड़ दें तो सनातनी शायद इसकी पर्वा भी नही करेंगे। और लड़ने को अगर कोई केस ही न रहा तो फिर सुधारक भी निरुत्तर हो जायँगे। पर सद्भाग्य से ऐसे लाखो हरिजन मौजूद है जो इन सब यत्रणाओं के बावजूद भी अपने धर्म से जरा भी विचलित नही हुए है।

धर्म निश्चय ही एक व्यक्तिगत चीज है। वह मनुष्य और ईश्वर के बीच की वस्तु है। उसे हर्गिज मोल-तोल की चीज नही बनाना चाहिए। कुलीतलाई-निवासी पल्ला लोगों की परिषद् के कर्णधारो को मेरी तो यही आदरपूर्वक सलाह है कि वे इस मंदिर-प्रवेश के प्रश्न पर उसके गुण-दोष की दृष्टि से ही विचार करे और अपने दूसरे प्रस्ताव में उन्होने धर्मत्याग की जो धमकी दी है उससे इस प्रश्न को व्यर्थ की उलझन मे न डाले।

अंग्रेजी मे] **मो० क० गांधी**

गाय का बनाम भैंस का घी

काशी-हिंदू-विश्वविद्यालय के औद्योगिक रसायनविज्ञान के अध्यापक डा० गोडबोलेने मेरी प्रार्थना पर गाय और भैस के घी का विस्तृत और आलोचनात्मक विश्लेषण लिख भेजा है। साधारण पाठक के लिए यह बड़ी गूढ वस्तु है। इस महत्वपूर्ण विषय के किसी भी विद्यार्थी के पास मैं प्रसन्नता से इस विश्लेषण-विवरण को भेज सकता हूँ। इस बीच मे डा० गोडबोले जिस निर्णय पर पहुँचे है उसे यहा देकर मैं सतोष मानता हूँ।

"१—गाय के घी मे आयडीन का तत्व है। इसका प्रमाण नही मिलता कि यह तत्व भैस के घी मे है।

२—गाय और भैस दोनों के ही घी मे विटामिन 'ए' और 'डी' है, पर गाय के घी में विटामिन 'ए' अधिक है, जब कि भैस के घी मे विटामिन 'डी' की मात्रा अधिक है।

३—घी अन्य किसी भी प्रकार की चर्बी या वनस्पति-जन्य घी की अपेक्षा बढ़कर है इसमे तिलमात्र भी शका नही।

४—गाय का घी कुल मिलाकर भैस के घी के मुकाबले मे आसानी से हजम हो जाता है; और इससे वह बच्चो तथा कमजोर मनुष्यो के लिए अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल पड़ता है।

५—आर्थिक दृष्टि से देखे तो गाय से भैंस अधिक घी देती है।

हमारी रायमे ये प्रयोग हमारे यहा होने चाहिए कि तिल का तेल, और नारियल आदि का तेल, जिनमे विटामिन की मात्रा तो कम है, पर पाचक द्रव्य अधिक है, ये सब मनुष्य के शरीर के लिए कितने अनुकूल पड़ते है।

इन दोनो में भैस के घी की अपेक्षा गाय का घी मनुष्य के शरीर की चर्बी से अधिक मेल खाता है।"

'हरिजन' से] **मो० क० गांधी**

आधे मूल्य पर

कलकत्ते के सुप्रसिद्ध हरिजन-प्रेमी श्री रामकुमारजी भुआलकाने ५० ग्राहकों को एक वर्ष तक आधे मूल्य पर 'हरिजन-सेवक' देने के लिए हमे ८७॥) दिये है। अत: आधे मूल्य में पत्र चाहनेवाले पुस्तकालयो और हरिजनो को २० एप्रिल, १९३५ तक अपने-अपने स्थानीय हरिजन-सेवक-संघ के मार्फत अपने आवेदन-पत्र, मय ३) के, भेज देने चाहिए। २०) एप्रिल के बाद जो पत्र आयँगे उनपर विचार नही किया जायगा। व्यवस्थापक

'हरिजन-सेवक,' दिल्ली

आदमपुर के खादी-केन्द्रों में

राजस्थान के खादी-केन्द्रो की यात्रा समाप्त करके अखिल भारत-चर्खा-सघ के मत्री शंकरलालजी बेंकर के साथ पहली मार्च को हम गांधी-आश्रम, मेरठ पहुँचे। वहां जाकर बैठे ही थे, कि हमारे सामने मीठी मुसकान से मुसकराता हुआ एक अधेड़ व्यक्ति आ खड़ा हुआ। ठिगना कद, स्वस्थ शरीर, गेहुआं रंग, गोल चेहरा, और खिचड़ी-से बाल इस व्यक्ति की विशेषताएँ थीं। आते ही वह श्वेतखादी-धारी अधेड़ युवक हम अतिथियों से घुल-घुल-कर बातें करने लगा, और थोड़ी हीं देर मे उसने हमारा प्रोग्राम बदलवा दिया। बीकानेर से चलकर चौबीस घण्टे बाद हम रात को उसदिन मेरठ पहुँचे ही थे कि चर्खा-सघ की पंजाब-शाखा के मत्री श्री किशनचंदजी भाटिया उसी रात को हमें लेकर जालन्धर के लिए चल दिये। उनके मीठे स्वभाव की यह पहली और मीठी विजय थी।

दूसरे दिन सुबह हम जालन्धर पहुँचे ओर स्टेशन से तागे मे बैठकर आदमपुर क लिए चल दिये। आदमपुर चर्खा-सघ की पजाब-शाखा का प्रधान उत्पत्ति-केन्द्र है। जालन्धर शहर से ११ मील दूर पक्की सड़क के किनारे बसी हुई यह एक छोटी-सी पुरानी बस्ती है। जालन्धर से आदमपुर तक सड़क के आजू-बाजू कोसों तक गेहूँ के हरे-भरे खेतो का जो विशाल समुद्र-सा लहरा रहा था, उसे देखकर तो आखे हरी हो गई। पंजाब की इस पुण्य निधि को निहारते-निहारते और मन में हर्ष का अनुभव करते हुए हम बात-की-बात मे आदमपुर पहुँच गये। बस्ती के किनारे ही एक लम्बे-चौड़े मैदान गेहूँ के हरे-भरे विशाल खेतो के बीच, आदमपुर का खादी-कार्यालय है। कोई एक पहर दिन चढे हम वहा पहुँचे और पहुँचते ही आवश्यक कामों में लग गये।

इस बीच कार्यालय के आगन मे अपनी बुनी हुई खादी जमा कराने और नया सूत ले जाने के लिए आस-पास के गावो से जुलाहे आ-आकर इकट्ठा होने लगे और उनका लेन-देन शुरू हो गया। थोड़ी देर में हम भी इन जुलाहो के बीच पहुँच गये और श्री बेंकर ने उनसे बातचीत शुरू करदी। आरंभ मे वहां कोई तीस जुलाहे थे, पर बातचीत खतम होनेतक उनकी सख्या दुगुनी के करीब हो गई थी। कन्धों पर खादी के थान लादे एक के बाद एक वे कार्यालय मे जा रहे थे।

चूंकि आजकल चर्खा-सघ के सामने वस्त्र-स्वावलम्बन का कार्यक्रम ही मुख्य है, इसलिए सब से पहली बात जो पूछी गई, वह जुलाहो की पोशाक के सम्बन्ध मे थी। हमें मालूम हुआ कि कार्यालयने अपने जुलाहों को **अ**, **ब** और **स** नामक तीन श्रेणियों मे बांट रक्खा है। **अ** श्रेणी में वे लोग हैं, जो सदा सिर से पैर तक शुद्ध खादी ही पहनते हैं। **ब** मे वे हैं, जो पगडी या साफे को छोड़कर शेष सारी पोशाक खादी की पहनते हैं। और **स** में वे जुलाहे हैं, जो केवल कमीज या कुर्त्ता ही शुद्ध खादी का पहनते हैं। जो जुलाहे हमारे सामने थे उनमें इन तीनों ही श्रेणियों के लोग मौजूद थे। जब से वस्त्र-स्वावलम्बन की, और विशेषकर कत्तिनों और जुलाहों को खादी-धारी बनाने की बात चली है, तब से कार्यालयने विशेषतः अपनी यह नीति बना ली है कि जो जुलाहे शुद्ध खादी ही पहनेगे, उन्हींसे खादी बनवाई जायगी, और उन्हीं की खादी खरीदी भी जायगी। इस शर्त के कारण जुलाहे जल्दी-जल्दी खादी को अपना रहे है। हमने देखा कि तात्कालिक सफलता की दृष्टि से तो यह नीति उपयोगी हो सकती है, पर जबतक कत्तिने और जुलाहे स्वय स्वेच्छा से खादी ही पहनने के मर्म और लाभ को ठीक से न समझ लें, तबतक इन उपायो से हमारा असल हेतु स्थायी-रूप से सिद्ध न हो सकेगा। इसी सम्बन्ध में जुलाहों के विचार जानने की इच्छा से श्री बेंकरने उनसे कुछ प्रश्न पूछे थे, जिनके बड़े ही सीधे और बोधप्रद उत्तर हमें मिले। यहां इन प्रश्नोत्तरों की थोड़ी बानगी परोसे बिना आगे बढ़ना स्यात् उचित न होगा। उन्होंने पूछा-

—आप लोग तो खादी बुनते है न ? अब जरा मुझे यह तो बताइए कि आपकी राय में कौन-सा कपड़ा ज्यादा मजबूत, टिकाऊ और फायदेमन्द होता है, और क्यों होता है ?

—हम तो यह जानते हैं जी, कि मिल के कपड़े के मुकाबिले में हमारा हाथकता-हाथबुना खद्दर ज्यादा मजबूत होता है, और टिकता भी खूब है। और खद्दर को तो हम जितना चाहें, उतना अच्छा बना सकते है। फायदा तो इस खद्दर ही में है।

—तो आप यह मानते हैं न, कि दूसरे कपड़ो के मुकाबिले में आपका खद्दर ज्यादा अच्छा होता है ?

—मानते हैं जी ! और न मानने की कोई वजह भी तो नहीं है।

—तो मैं आपसे एक बात पूछू ? आपको कड़ाके की भूख हो, और आपके सामने घर का बना उम्दा खाना परोसकर रक्खा हो, तो आप क्या करेंगे ? क्या उसे ठुकराकर आप होटल मे जीमना पसन्द करेंगे ?

—नहीं जी, ऐसा नहीं होगा। घर की चीज छोड़कर बाजार मे जाना तो सरासर बेवकूफी है। कोई इतना बेवकूफ तो न होगा।

—अच्छी बात है। तो अब कपड़े को लीजिए। कपड़ा कौन-सा अच्छा ? घर का या बाहर का ?

—जी, कपड़ा तो घर ही का अच्छा। उसमे फायदा है। बचत है। वह सस्ता पड़ता है और ज्यादा टिकता है।

—लेकिन मै तो देखता हूँ कि बात ऐसी नहीं है ! आप लोगो में से कई ऐसे है, जो घर का कपड़ा नहीं पहनते है। अगर बाहर का कपड़ा पहनने मे नुकसान है, तो फिर उसे क्यो पहना जाय ? यह जानकर भी कि इस कटोरे मे जहर है, अगर मै उसे पी लू, तो आप मुझे क्या कहेगे ? पागल ही कहेगे न ?

—जी, अब हम समझे। हम से बड़ी भूल हुई। कार्यालयवाले तो १० साल से हमे यही समझा रहे हैं, पर हम कम्बख्त हैं कि अबतक नहीं समझे !

—तो भाई, इसमें समझने की बात ही क्या है ? अगर मैं जहर की शीशिया मुफ्त मे बाटू, तो क्या आप उन्हें ले लेगे और पी जायँगे ? आप यह क्यों नहीं समझते कि बाहर का कपड़ा आपके लिए जहर है, और अगर वह मुफ्त भी मिले, तो भी आपको उसे छूना न चाहिए। मैं तो देखता हूँ कि आप लोगोंने अनजाने ही क्यों न हो, अपने घरों में एक जहरीला सांप पाल रक्खा है, जो आपको फूंक-फूंककर डँस रहा है। क्या यह अच्छा है कि वह इसी तरह आपको डँसता रहे ? आप समझ लीजिए कि यदि आप ही अपना बनाया कपड़ा न पहनेगे, तो दूसरो को क्या पड़ी है कि वे आपसे खरीदकर उसे पहने ? और अगर सभी लोग बाहर का कपड़ा पहनने लगें, तो सोच लीजिए कि आपकी क्या दशा होगी ?

—अजी, दशा तो यह होगी कि बेमौत भूखों मर जायँगे। आज अपने बाल-बच्चों के साथ जो थोड़ा-बहुत खा-पी लेते हैं, कल वह

भी नसीब न होगा ! देश में बेकार जुलाहों की आज ही कौन कमी है ? अगर लोग हमारा कपड़ा न खरीदेंगे, तो हम भी बेकार हो जायेंगे और भूखों मरने लगेंगे ।

—अगर ऐसा है तो आप आज ही यह निश्चय क्यों नही कर लेते कि हम लँगोट पहनकर रह लेंगे, पर बाहर का कपड़ा न पहनेंगे, हरगिज न पहनेंगे ? सोचिए तो, यह हमारे लिए कितनी शर्म की बात है कि हम औरो को तो अपने हाथ का बनाया शुद्ध और मजबूत कपड़ा पहनाते हैं, और खुद गाठ के पैसे खर्च करके बाहर का सस्ता पर कमजोर कपड़ा पहनते है ? मै तो आपको यह सलाह दूगा कि आप अपनी पचायत कीजिए और उसमे एकमत होकर स्वेच्छा से शुद्ध खादी ही पहनने का फैसला कर लीजिए। और घर की औरतों को भी खादी ही पहनने को समझाइए।

—आप बहुत ठीक कहते हैं जी ! हम अभी अपनी एक मीटिंग किये डालते हैं। उसमें हम यह ठहराव कर लेंगे, और आइन्दा खुद भी खादी पहनेंगे और औरतों को भी पहनावेंगे।

लेकिन कुछ जुलाहे तो इस मीटिंग के लिए भी न ठहरे। एक तो वही अपना साफा फेंककर खड़ा हो गया। और फिर एक-के-बाद एक कोई ६–७ साफे हमारे सामने आ गिरे। एक नौजवान सिक्ख जुलाहा हमारे सामने बैठा था। वह सिर पर मलमल का नया गुलाबी साफा बाधे था। उसके चेहरे से मालूम होता था कि वह कुछ कहना चाहता है। वह अपना साफा उतार देना चाहता था, पर उसके पास सिर पर लपेटने को कोई दूसरा कपड़ा न था। वह मन-ही-मन अकुला-सा रहा था। जब लोगोने कहा कि सिक्ख अपना सिर कभी खुला नही रखते, तो हमे उस नौजवान जुलाहे की कठिनाई मालूम हुई और उसी समय कार्यालय की ओर से उसे खादी का एक साफा बँधवाया गया। वह एक अद्भुत दृश्य था। उस नौजवान का चेहरा तो मारे खुशी के दमकने लगा था।

श्री शंकरलालजीने इन जुलाहों को समझाया कि भाइयो! मै यह नही चाहता हूँ कि आप इस तरह जोश में आकर अपने कपड़े फेंकदें और फिर बाद मे पछताये। अगर सचमुच ही आप यह महसूस करते है कि बाहर का कपड़ा आपके लिए जहर है और उससे आपके रोजगार को नुकसान पहुँच रहा है, तो आप खुद सोच-समझकर उसे छोड़दें। और अगर आपका यह खयाल हो कि घर में रहने से यह कपड़ा बार-बार आपको लालच मे फँसायेगा, तो आप इसे इकट्ठा करके यहा कार्यालय मे ले आइए, और भाई किशनचन्दजी को सौप दीजिए। वह आपकी गठरी पर आपका नाम और पता लिखकर उसे यहा हिफाजत से रख देंगे। अगर किसी वजह से आपको यह खयाल आवे कि नहीं, वह कपड़ा तो अच्छा है, और इससे उसे पहनने में कोई हर्ज नही है, तो आप कार्यालय से अपनी वह गठरी फिर ले जा सकते हैं, और उसका मनचाहा उपयोग कर सकते है। लेकिन अगर आपका मन न डिगे और घर के कपड़े की बात ही मन मे रमी रहे, तो आपकी ये गठरिया दूसरो को भी उनके फर्ज की याद दिलायेंगी, और आप तो जब कभी उन्हें देखेंगे, तभी खादी से उनका मुकाबला कर लेंगे, और अपने अन्दर खादी के लिए बढ़ती हुई मुहब्बत को महसूस करेंगे।

जुलाहों को उन्होने यह भी समझाया कि जिन कत्तिनो से वे सूत खरीदते हैं, उन्हे भी खादी ही पहनने को समझावें और उनसे अच्छा मजबूत और एकसा सूत ही खरीदें। अगर कत्तिने अपने कुछ सूत की खादी बुनवा लिया करें, तो और भी अच्छा। उन्होंने हमारी इस सलाह को माना और यह वादा किया कि आइन्दा वे कत्तिनों को इसके लिए समझावेंगे और उनके दिये सूत का अच्छा और मजबूत कपड़ा सस्ते में और जल्दी बुनकर उन्हें दे दिया करेंगे। लेकिन उन्होने कहा कि "हम लोग गरीब है, और कत्तिनें अच्छे घर की हैं। हम कोशिश तो करेंगे, पर हम गरीबों की बात इतनी आसानी से भला वे क्यो मानने लगीं?"

श्री बैंकरने उन्हें समझाया कि आप गरीब नही हैं। आप लोग गाधीजी के सिपाही है, उनके साथी हैं। उनका कोई साथी गरीब नही हो सकता। पैसे की गरीबी कोई गरीबी नहीं है। सच्ची गरीबी तो दिल की है। लेकिन आप लोग तो दिल के अमीर हैं, और यही सच्ची अमीरी है। गरीब तो हम है कि जो सिर्फ बाते करना जानते है, और काम करने से दिल चुराते हैं। आप लोग तो अपने पेशे के उस्ताद, कला मे निपुण और काम के धनी है। आप हरगिज अपने को गरीब न समझिए।

(क्रमशः)

काशीनाथ त्रिवेदी

स्वावलम्बन-खादी-कार्य का विवरण

[अंक २, भाग ३ से आगे]

(६)

सन् १९२७ मे मेरठ के गाधी-आश्रमने भी मेरठ जिले के गाधना गाव मे इसी तरह का काम शुरू किया था। गाव के लोगों को कातना और धुनकना सिखाया जाता था और रियायतन थोड़ी सहूलियत के साथ उनके काते हुए सूत का कपड़ा भी बुनवा दिया जाता था। कुछ परिवारोने अपनी जरूरत का पूरा कपड़ा स्वयं ही बना लेना स्वीकार किया था। परन्तु सरकारी दमन के कारण यह काम पनप नही सका। केन्द्र के मुख्य कार्यकर्त्ता को सरकारने गिरफ्तार करके जेल भेज दिया। सन् १९३३ तक यह केन्द्र किसी तरह उपेक्षित अवस्था मे, जैसे-तैसे, जीवित रहा। उसके बाद फिर मे यहा के काम मे जान डालने के लिए कुछ नौजवान कार्यकर्त्ता इस केन्द्र मे काम करने के लिए भेजे गये। मगर सरकार फिर बीच मे आई और इस बार आश्रम को जब्त कर लिया। कार्यकर्त्ता फिर भी डटे हुए हैं।

बिहार मे गुमियां और आसपास के थानो की सरहद मे रहनेवाले सथालोने एक धर्म-कार्य की तरह तकली पर सूत कातना शुरू किया था। सन् १९२८–२९ मे उन्होने चर्खा-सघ की बिहार-शाखा से अपने प्राथमिक उपयोग के लिए खादी की माग की थी और यह वचन दिया था कि भविष्य मे वे अपने हथ-कते सूत का ही कपड़ा बुनवाकर पहनेंगे। उन्होने कपास की माग भी पेश की और अपने कते हुए सूत का कपड़ा बुनवाने मे सघ की मदद भी चाही। बिहार-शाखा के एक कार्यकर्त्ता को इस कार्य के लिए मार्च सन् १९३० मे वहा भेजा गया था। अगस्त सन् १९३० में वह गिरफ्तार कर लिये गये और पुलिस हिसाब के वे सब कागजात भी उठा ले गई जो उन्होंने उन लोगोके सबन्ध में तैयार किये थे, जिन्होंने अपना कपड़ा खुद बुनवा लिया था! उनकी रिपोर्ट थी कि ३५ गांवों की अधिकांश जनता अपने हथ-कते सूत की खादी बुनवा लेती थी।

इसके सिवा, बिहार-शाखाने सन् १९३३ में अपने विभिन्न केन्द्रों में १७९ परिवारों-द्वारा काते गये सूत की २,९५३ वर्गगज खादी तैयार करवाई थी।

मई सन् १९२९ से जयपुर राज्य के वनस्थली ग्राम और उसके आसपास के ग्रामों में जीवन-कुटीर की ओर से लगातार वस्त्र-स्वावलम्बन का कार्य हो रहा है। ५,००० की बस्तीवाले १६ गांवों में यह काम फैला हुआ है और लोगों में अपना कपड़ा खुद बुनवा लेने के लिए व्यापक प्रचार किया जा रहा है। सन् १९३३ में इन गांवों में करीब ५,०४० पौण्ड सूत काता गया था। इस कार्य का प्रभाव पड़ौस के दूसरे ८४ गांवो पर भी पड़ा और वहा भी इस वर्ष करीब ८,००० पौण्ड सूत काला गया। कातनेवालो के उपयोग के लिए इस सब सूत का कपड़ा बुनवा लिया गया है, जो कुल ३२,६०० वर्गगज हुआ है। अप्रैल सन् १९३४ तक के ५ वर्षों मे इस कार्य पर १७,२००।।।=)।। खर्च हुए हैं।

वस्त्र-स्वावलम्बन के विकास के बिलकुल ताजे प्रयत्नो में काठियावाड में श्री० रामजी भाई का काम विशेष उल्लेखनीय है। यहा सगठित रूप मे कार्य का आरम्भ तो सन् १९३२ मे ही हुआ था, लेकिन सन् १९३३ के नीचेलिखे आंकड़ों को देखने से उनके कार्य की सत्वर प्रगति का भलीभांति पता चलता है—

		म० पौ० तो०
गांव	१११	
परिवार	२००४	
कपास काम में लाया गया		५,२८६–११–०
कपास ओटा गया		१,७६१–१२–०
धनकना सीखनेवालो की सख्या	५०३	
पीजन खरीदनेवालों की सख्या	११७	
खुद के लिए धुनका हुआ कपास		४९५–१ –२०
पिजारो-द्वारा धुनका हुआ कपास		१,०७८–२०–२
सूत काता गया		१,५३५–१५–२
सूत का औसत नम्बर ४ से ८		
खादी से बुने हुए थानो की सख्या ५,०७९		
बुनी गई खादी का वजन		१,२६२–३ –२०
बुनी गई खादी की लम्बाई वर्गगज ८४,६५०		

[गुजरात का मन=४० पौण्ड]

इस केन्द्र के लिए कुल २८ कार्यकर्ता नियुक्त किये गये थे। और सब मिलाकर १४,१८२।।।-)११ इसपर खर्च हुए, जिसमे से ५,५००) चर्खा-सघने दिये।

यहा के काम का भावनगर राज्य के अधिकारियो पर बहुत गहरा असर पड़ा है, जिसके फलस्वरूप राज्यने अपनी हद में किये गये काम का सारा खर्च देना स्वीकार कर लिया है।

ऊपर जिन प्रयत्नों का उल्लेख किया गया है, उनसे यह स्पष्ट है कि संघ की शाखाओ के सामने वस्त्र-स्वावलम्बन का विचार न्यूनाधिक मात्रा में सदा ही रहा है। यदि किसी प्रकार यह काम अपेक्षाकृत कम मालूम होता है, तो उसका कारण अधिकांश में वे कठिनाइयां हैं, जो गांववालों तक इस सन्देश को पहुँचाने में बाधक होती रही हैं। जहा लोग पहले से ही कातने और धुनकने की कला से परिचित हैं, वहां भी सूत की बिक्री से या कताई की मजदूरी से होनेवाले तात्कालिक आर्थिक लाभ का प्रश्न एक गम्भीर समस्या उपस्थित कर देता है। कई जगहों में कताई का काम करनेवाले लोग इतने गरीब होते हैं कि उनकी कताई की मजदूरी से उनका गुजारा भी जैसे-तैसे ही हो पाता है। ऐसे क्षेत्रों में कतवैयो या कत्तिनों को अपने उपयोग के लिए सूत कातने को समझाना स्वभावत कठिन है। दूसरे, इस प्रकार के काम के लिए ऐसे कार्यकर्ताओं की आवश्यकता रहती है, जिन्हें खादी की सभी क्रियाओं का उत्तम ज्ञान हो, और लगातार वर्षों-तक जो एक निश्चित क्षेत्र में अविचल विश्वास के साथ पूरी-पूरी मेहनत करने को तैयार हों। और, यह एक मानी हुई बात है कि ऐसे कार्यकर्ता सुलभ नहीं हैं। साथ ही, चूंकि इस काम को कई वर्षोंतक चालू रखना आवश्यक है, इसलिए बहुत बडी तादाद में खर्च की रकम का भी समुचित प्रबन्ध करना पडता है। फिर भी यदि किसी प्रकार इस उद्देश को सिद्ध करना ही हैं, तो दृढ़ प्रयत्न के साथ इन कठिनाइयों को भी दूर करना ही होगा। गांधीजी इस कार्य को उत्तेजन दे चुके हैं, और चर्खा-संघ की कौंसिल भी वस्त्र-स्वावलम्बन के सम्बन्ध में अपना निर्णय कर चुकी है। इस निर्णय-द्वारा यह तय किया गया है कि इस दिशा में खूब लगकर कार्य किया जाय, और उत्पत्ति-केन्द्रों मे लागत मूल्य पर खादी बेची जाय। आशा है कि कौंसिल के इस निर्णय से वस्त्र-स्वावलम्बन का कार्य बहुत सरल हो जायगा और उन्नति भी कर सकेगा।

मेरी हरिजन-यात्रा

[११]

यहा हरिजनोंने यह शिकायत की कि गुजराती की चौथी या पाचवी कक्षा की पढाई पूरी करने के बाद हमारे लडकों को अँग्रेजी के मिडिलस्कूल में भरती नहीं करते। इससे कुछ हरिजन विद्यार्थियो को ३) मासिक खर्च करके प्राइवेट तौर पर अँग्रेजी पढ़नी पडती है। मुझे यहा मालूम हुआ कि जामनगर में अँग्रेजी के दो मिडिलस्कूल है। ये दोनो ही स्कूल प्राइवेट है और राज्य की ओर से उन्हें सहायता मिलती है। राज्य की तरफ से ऐसा एक भी मिडिलस्कूल नहीं है, इसलिए बेचारे अच्छे योग्य हरिजन विद्यार्थी भी अंग्रेजी नही पढ सकते। राज्य का हाईस्कूल उनके लिए निरुपयोगी है, क्योकि प्राथमिक अंग्रेजी शिक्षा उन्हे वहां दी नहीं जाती। हरिजन विद्यार्थियो को अगर दाखिल किया जाय तो सवर्ण हिन्दुओ के लडके बायकॉट कर देंगे, इस भय से प्राइवेट स्कूलो में उन्हें भरती नही करते। फिर राज्य का शिक्षा-विभाग भी इस विषय मे कोई आग्रह नही रखता। राज्य का तो कोई अंग्रेजी मिडिलस्कूल है ही नहीं कि जिसमे दाखिल होने के लिए वे कह सकें। जामनगर-जैसे बड़े शहर मे यह एक विचित्र ही बात है। वर्तमान परिस्थिति मे तो हरिजन विद्यार्थियों को हाईस्कूल की शिक्षा के लिए प्रोत्साहन दिया नही जाता—और इतना ही नही बल्कि यह कहा जा सकता है कि वे अंग्रेजी शिक्षा से दूर ही रखे जाते हैं। यह सब बडे ही दुःख की बात है। इस स्थिति को सुधारने की राज्य से तुरन्त प्रार्थना करनी चाहिए।

जल-व्यवस्था—गर्मियों में प्रथम हरिजनवास के लोगो को पीने के ताजे पानी का बड़ा कसाला रहता है। इस बस्ती में पानी का एक भी नल नहीं है। एक छोटी-सी टकी यहा लगा दी जाय तो यह तकलीफ दूर हो जाय। कोई कुआं भी तो यहां नहीं है। बेचारे एक-एक घड़ा पानी मांग-मांगकर काम चलाते हैं। नंबर २ के वास में एक दयालु वैश्यनें एक नल लगवा दिया है,

मगर जहां नल लगा है उस जगह को पक्की बनाने की जरूरत है। साथ ही पानी निकलने को वहां एक नाली भी निकाल देनी चाहिए। इतना काम तो राज्य तुरंत कर सकता है। नंबर ३ के वास में पानी की टोंटियो की सख्त जरूरत है। खासकर गर्मी के दिनो में तो यहा जल का बड़ा कष्ट रहता है। यह बस्ती बड़ी घिचपिच बसी हुई है। इसमें सुधार होने की बड़ी जरूरत है। यह देखकर बड़ा सतोष हुआ कि इस वास के अंदर चमड़े कमाने का काम नही करने दिया जाता। यहां से एक मील दूर जहा उन लोगों का अपना कुआं है, चमड़ा कमाने का काम होता है। मगर एक कुएँ मे काम नही चलता। वहा पानी बहुत ज्यादा चाहिए। नबर ४, ५ और ६ के वास छोटे-छोटे हैं, और पानी की वहा कोई शिकायत नही है। नंबर ७ का वास खासा बड़ा है। उसमें हरिजनो के ५० कुटुब रहते हैं। सिर्फ एक नल से सारी बस्ती का काम चल रहा है, जिसे सेठ मथुरादास विसनजीने अपने पैसे से लगवा दिया है। मगर राज्य का भी तो फर्ज है कि वह अपने सार्वजनिक सेवको के लिए पानी की पर्याप्त व्यवस्था करदे। दो-तीन टोंटियो की एक छोटी-सी टकी यहा राज्य लगवादे, तो फिर पानी की कोई शिकायत न रहे।

पाखाने—नं० १, २, ३ और ७ की बस्तियों में सार्वजनिक पाखानों की बड़ी जरूरत है। पाखाने न होने से लोग इर्दगिर्द के मैदान और सड़को को खराब करते है, और तमाम जगह गंदगी-ही-गदगी पुरी रहती है।

हरिजन-सेवक—कुछ हरिजन-सेवकोने यहा अपनी एक समिति बना ली है और कुछ महीनों से वे हरिजन-सेवा-कार्य कर रहे है। आशा है कि राज्य के सहयोग और शुभेच्छा से यहा की तमाम हरिजन-बस्तियों मे, पीने के पानी की, तथा अंग्रेजी एव औद्योगिक शिक्षा की और दूसरी बातो की सतोष-जनक व्यवस्था हो जायगी।। जामनगर राज्य के दीवान साहब श्री मेहेरवानजी से जब मैं मिला, तो उनकी मुलाकात से मुझे यह आशा हुई है। हरिजन-सेवकोंने हरिजनो के बीच मुर्दार-मांस खाने के विरुद्ध यदि लगातार प्रचार-कार्य और सच्चा सेवा-कार्य किया तो जामनगर शहर तथा राज्य के गावो से अस्पृश्यता अवश्य दूर हो जायगी।

जाम-वनथली—इस कस्बे में हरिजनो के ८२ घर हैं। पाठशाला की यहां इतनी अधिक आवश्यकता है कि अगर पाठशाला खुल जाय तो बुनकर अपने लड़को के साथ खुशी से भंगियो के लड़को को बिठायेंगे। यहा की ग्राम-पाठशाला तो उन्हे दाखिल करेगी नहीं, इसलिए राज्य से ही यह प्रार्थना करनी चाहिए कि उनके लिए एक अलग प्राइमरी पाठशाला खुलवा दी जाय। लोगोने हमें बतलाया कि कुछ समय पहले राज्यने बुनकरो को पाठशाला का मकान बनवाने के लिए कुछ जमीन दी थी, पर बुनकर वहां जब मकान न बनवा सके, तो राज्यने वह जमीन वापस लेली।

अगर राज्यने यहां पाठशाला न खोली, तो तबतक उस हालत में जामनगर के हरिजन-सेवक ही एक पाठशाला खोल दें। यह स्थान जामनगर से १७ मील के फासले पर है। यहां एक अधबना कुआं पड़ा है, जिसके बनने में सौ-सवा-सौ रुपये खर्च होंगे। जामनगर की हरिजन-सेवक-समिति को इस पर तुरन्त ध्यान देना चाहिए। सुधार के लिए यहां के हरिजन काफी अधीर हैं—जरूरत है तो पथ-प्रदर्शन की। वनथली में श्री साकलचंद पानाचंद और श्री वल्लभदास भानजी, ये दो प्रमुख हरिजन-सेवक है।

अमृतलाल वि० ठक्कर

साप्ताहिक पत्र

[पृष्ठ ५४ से आगे]

रखनेवाला हमने कोई विभाग नहीं रखा है। और 'सभी कुछ' में इसलिए कहता हूँ, क्योंकि हमारे सेवकों के संपर्क से उन लोगो में निश्चय ही परिवर्तन होगा जिनके बीच वे काम कर रहे हैं। अभी ही दभ क्या कुछ कम है? और फिर इस आत्मकल्याण के काम का विभाग रखे तो काम दूना कठिन हो जाय। सुधारक के रूप में मैने अपने जीवन में प्रत्येक वस्तु को सदाचार की दृष्टि से देखा है। राजनीतिक, सामाजिक या आर्थिक चाहे जिस प्रश्न को मैं हाथ में लूं, नीतिधर्म या सदाचार का पहलू उसी वक्त सामने आ जाता है, और मेरी सारी मनोवृत्ति उसी रग मे रग जाती है। पर मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि हरिजनों के आत्मकल्याण की देखरेख रखने के लिए हरिजन-संघ में मैने कोई खास विभाग नही रखा है।"

"पर हम ईसाइयों को यह प्रतीत होता है कि हमारे पास यदि कोई वस्तु हो तो उसमें से हमे दूसरो को हिस्सा देना चाहिए। हमें यदि आश्वासन की आवश्यकता हो तो वह बाइबिल में मिल जाता है। मगर हरिजनों को तो हिन्दू-धर्म मे कोई आश्वासन मिलता ही नही, तब उनकी आत्म-पिपासा को हम किस प्रकार शान्त करे?"

"गुलाब के फूल को देखिए न, वह क्या करता है? आप भी वैसा ही करे। गुलाब का फूल क्या अपना प्रचार करने कही जाता है? या उसका प्रचार अपने आप हो जाता है? अपने सौन्दर्य की घोषणा कराने के लिए उसने मिशनरियो का कोई दल नियुक्त कर रखा है क्या?"

"पर मान लीजिए, कोई हम से पूछ बैठे कि यह सुगंध तुम्हें कहा से मिली तो?"

"गुलाब के फूल को यदि भान हो और वाणी हो तो वह यह जवाब देगा कि, अरे मूर्ख, देखता नही है कि मेरी यह सुगन्ध मेरे सरजनहारने मुझे दी है?"

"पर अगर कोई यह पूछे कि क्या तुम्हारा कोई धर्मग्रन्थ ही नहीं है, तब?"

"तो यह कह दो कि 'हां, मेरे लिए बाइबिल तो है।' मुझ से कोई यह प्रश्न पूछे तो मे कुछ लोगों को कुरान, कुछ लोगों को गीता, कुछ लोगो को बाइबिल और कुछ लोगों को तुलसीकृत रामायण बता दू। समझदार डाक्टर की तरह जिस रोगी को जिस दवा की जरूरत होती है वही मैं उसे देता हूँ।"

"गीता में अधिक मिल सकता है मुझे तो यह कठिन ही मालूम होता है।"

"आपको कठिन मालूम होता होगा, पर मुझे बाइबिल और कुरान में बहुत-कुछ सार की चीज मिल जाती है, और इसमें मुझे कोई कठिनाई मालूम नहीं होती।"

'हरिजन' से]   महादेव ह० देसाई

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369.

संपादक—वियोगी हरि
वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, १२ एप्रिल, १९३५. [संख्या ८

विषय-सूची

सात्त्विक तितिक्षा

'तितिक्षा' के विषय पर 'हरिजन-सेवक' के ८ मार्च, १९३५ के अंक में मैंने जो लेख लिखा था उसे पढ़कर एक सज्जन लिखते हैं, कि उससे तो तितिक्षा के अयोग्य प्रकार का खयाल होता है, किंतु उसके योग्य अथवा सात्त्विक प्रकार कौन-से हैं, यह समझ में नहीं आता। बल्कि ऐसा भी अनुमान होना संभव है, कि तितिक्षा को मैं कोई विशेष सद्गुण नहीं समझता, और जिस गुण के विषय में गीताने इतना अधिक जोर दिया है और कहा है कि उसके कारण मनुष्य मोक्षपद के योग्य होता है उसे मैं तुच्छ समझता हूँ।

इस प्रश्न का उत्तर देना मैं उचित समझता हूँ।

मनुष्य चाहे कितना ही धनाढ्य और समृद्ध हो, और अपने शारीरिक स्वास्थ्य के लिए वह चाहे कितना ही प्रबंध करे, तो भी ऋतुओं के फेरफार और परिस्थिति के भेद से शीत-उष्ण, क्षुधा-तृषा आदि के सुख-दुःख और उनके फलस्वरूप जरा-व्याधि आदि के कष्ट प्रत्येक मनुष्य के जीवन में आते ही रहते हैं। हुमायूं आदि बड़े बड़े बादशाहों के जीवन में कैसी-कैसी क्रान्तियां हुई, और उनके कारण उन्हें किस प्रकार सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, आकस्मिक विपत्तियों आदि से परेशान होना पड़ा यह हम सब लोगोंने इतिहास में पढ़ा है और अनेक बार देखा भी है। यह तो हम जानते ही हैं कि बादशाह सप्तम एडवर्ड की मृत्यु सर्दी लग जाने से हुई, और पंचम ज्यॉर्ज को जुकाम होने के समाचार तो हमने कई दफे पढ़े हैं। हम यह नहीं कह सकते कि इन्हें सर्दी से बचने के साधनों की कोई कमी थी इस कारण वे बीमार पड़े। परन्तु जीवन में ऐसे प्रसंग आते ही रहते हैं, और काल के अधीन पड़ा हुआ कोई भी प्राणी इनसे सर्वथा मुक्त नहीं रह सकता। इससे जीवन के इस स्वभाव को हमें ठीक समझ लेना चाहिए, और ऐसे प्रसंग का हमारे जीवन में भी कभी-न-कभी आना संभव है यह मान लेना चाहिए। इन विपत्तियों के खयाल से और इनके आ जाने पर हम अधीर न हो जायँ, कर्तव्य से हटने का विचार न करें, ईश्वर की कृपा हमारे ऊपर नहीं है अथवा उसकी अवकृपा हुई है यह न मानें, अथवा यह न सोचें कि ईश्वर हमारे साथ अन्याय करता है या दूसरों के साथ पक्षपात करता है इसके लिए यह जरूरत आवश्यक है। दुःख आने पर जो मनुष्य इस प्रकार का धैर्य धारण नहीं कर सकता, अथवा दुःख के भय से अपना कर्तव्य करने को तैयार नहीं होता, उसमें तितिक्षा का अभाव है और यह अभाव जीवन के उत्कर्ष में बाधक है।

फिर ऐसे कष्ट आ जाने पर उनके परिहारार्थ कई मनुष्य जिस प्रकार के उद्यम-उपाय करते हैं उनमें विवेक, न्याय और धर्म नहीं रहता। मैं भूखा हूँ, मेरी पत्नी भी भूखी है। दोनों के लिए पर्याप्त अन्न घर में नहीं है। जो कुछ थोड़ा-सा अन्न पड़ा है, मैं खा लेता हूँ, और पत्नी को अपने भाग्य पर दोष देने का उपदेश करता हूँ। मैं और मेरा एक साथी यात्रा कर रहे हैं। मेरे साथीने अपने साथ ओढ़ने के लिए एक कम्बल रख लिया है। मैं ठहरा आलसी। जहां पहुँचूंगा वहां कुछ-न-कुछ तो मिल ही जायगा, इस विचार से साथ में कुछ नहीं रखता। अब एक जगह पहुँचते हैं। वहां मुझे कम्बल नहीं मिल सका। तब मेरा यह कर्तव्य होता है कि मैं सर्दी सहन करलूं। लेकिन आलस्य के साथ स्वार्थ न हो ऐसा कम ही देखने में आता है। अपने मित्र की अनुपस्थिति में मैं उसका कम्बल ओढ़कर सो जाता हूँ। वह सोने के लिए आता है तो मुझे अपना कम्बल ओढ़े सोता हुआ देखता है। फिर वह बेचारा आप सर्दी सहन करता हुआ पड़ रहता है। मेरा तितिक्षा का यह अभाव दोषरूप है। और भी एक उदाहरण लीजिए। अत्यंत गर्मी पड़ रही है। मैं कमरे में बैठा हूँ। दरवाजे पर खस की टट्टी लगा रखी है, और एक पंखा टँगा हुआ है। एक लड़का बाहर गर्म लू में बैठा हुआ टट्टी पर थोड़ी-थोड़ी देर में पानी छिड़कता है, और पंखा चला रहा है। उसके भी तो सर्दी-गर्मी का अनुभव करनेवाली ज्ञानेंद्रिया है, इस बात का मैं कभी खयाल नहीं करता। गर्मी में उसे नींद का झोंका आ जाता है। टट्टी सूख जाती है और पंखा बंद हो जाता है। मुझे गर्मी मालूम होती है। मैं लड़के पर गुस्सा होता हूँ। कष्ट-निवारण का यह उपाय दोषरूप है। मेरा यह कार्य मेरी अतितिक्षा का परिणाम है। इतनी तितिक्षा तो अवश्य ही होनी चाहिए कि इस प्रकार हम अपना कष्ट-निवारण न किया करें।

अतितिक्षा का एक और भी उदाहरण देता हूँ। दूध और फल अपने स्वास्थ्य के लिए मैं आवश्यक समझता हूँ। मैं एक ऐसी जगह अतिथि होकर गया हूँ, जहां इन पदार्थों का मिलना असंभव तो नहीं पर महाकठिन है। तीन मील के अन्दर दूध नहीं मिलता; फलों के लिए २५ मील पर के शहर में ही आदमी भेजा जाय तब काम चल सकता है। मेरा यजमान भावुक होने पर भी निर्धन मनुष्य है, पर स्वाभिमानी है। यदि मैं इस तरह का भाव दिखाऊँ कि बिना दूध और फल के मुझे अत्यंत असुविधा

होगी तो वह अपना यह धर्म मान लेगा, कि उसे हर तरह का प्रयत्न और खर्च करके मेहमान के लिए दूध और फल मंगाने ही चाहिए। ऐसे समय पर मेरा यह फर्ज है कि मैं दूध और फल की गर्ज न रखू, और जो कुछ वहां मिल जाय उस पर ही अपना गुजारा कर लू, और स्वास्थ्य को हानि पहुँचाना भी मंजूर कर लू। वह तितिक्षा आवश्यक है। अगर अमुक प्रकार के कर्तव्य कर्म किये जायँ तो इस-इस प्रकार की असुविधाएँ सहन करनी होंगी, इस विचार से यदि हम उन कर्तव्य कर्मों से दूर भागते हैं तो वह भी अतितिक्षा है। कर्तव्य कर्म के समय जो व्यक्ति इस प्रकार की असुविधाओं का ख्याल किया करता है वह मोक्षपद पाने के योग्य नहीं हो सकता, गीता का यह बोध बिल्कुल ठीक है।

लेकिन, ऊपर के दृष्टान्तों से कोई ऐसा मान ले कि आधा-पेट भोजन करके या सर्दी में बिना ही कंबल के सोकर अथवा गर्मी में लू में बैठकर और दूध और फलों का परित्याग करके ही जीवननिर्वाह करने की आदत डाल लेना आवश्यक है तो मेरी नम्र सम्मति में वह भूल है। जहांतक जीवन-धारण हमें प्रयोजनीय है, वहांतक हमें पर्याप्त अन्नादि का मिलना, स्वास्थ्य के लिए आवश्यक और उपयुक्त अन्न, वस्त्र, गृह आदि का प्राप्त करना और सबको प्राप्त हो जाय ऐसा प्रयत्न करना हमारा धर्म है। जिस गांव में दूध-फलादि प्राप्त नहीं होते वहां से भाग जाना यह धर्म नहीं, दो-चार रोज ठहरना हो तो उसके बिना चला न लेना यह भी धर्म नहीं, लेकिन वहां रोज रहना हो तो उस गांव में दूध-फल पैदा करने का—और अपने ही लिए नहीं, बल्कि सबके लिए पैदा करने का—प्रबन्ध न करके तितिक्षा का सबक सिखाना यह भी धर्म नहीं है। किसी उदात्त ध्येय को सिद्ध करने के लिए उस ध्येय पर हम इस तरह आसिक हो जायँ कि 'रूखा सूखा राम का टुकड़ा, चिकना और सलोना क्या' बस, यह तितिक्षा आवश्यक है। लेकिन जनता के रूखे-सूखे टुकड़े पर घी और नमक किस तरह लगाया जा सकता है, इस प्रश्न का हल करना ही जब हमारा ध्येय हो, तब घी और नमक का विचार करना ही कर्तव्य हो जाता है, तितिक्षा का विचार करना कर्तव्य नहीं होता।

तितिक्षा शौर्यवृत्ति का एक प्रकार है। शूर सिपाही शत्रु के बाणों से बिद्ध होने तथा युद्ध के अन्य कष्टों की कल्पना से कांप नहीं उठता, किंतु उनका सामना करने में भूषण समझता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वह युद्ध के कष्टों से बचने का कोई प्रबन्ध नहीं करता। वह ढाल रखता है, जिरहबख्तर पहिनता है, और और भी सरजाम रखता है।

आशा है कि मेरा वक्तव्य अब अधिक स्पष्ट हो गया होगा।

किशोरलाल घ० मशरूवाला

साप्ताहिक पत्र

भंगी का काम

हमारे स सफाई के काम में अब आशा और उत्साह का संचार होने लगा है। वर्धा कस्बे से तीन स्वयंसेवक आकर हमारी पलटन में शामिल हो गये हैं, और अब हम सारे गांव की सफाई अपने हाथ में बड़े मजे से ले सकते हैं। इस सप्ताह में हमने अपनी कार्यपद्धति में कुछ हेरफेर किया है। अब मीरा बहिन और हम लोगों में से एक आदमी सबेरे पांच बजे गांव में जाते हैं, ताकि लोगों को रास्तों पर टट्टी फिरने से रोक सकें; और दूसरी टुकड़ी करीब एक घंटा बाद वहां पहुँच जाती है। फिलहाल हमने खाई खोदने का भी काम छोड़ रखा है, क्योंकि हमने देखा कि हम खाई खोदना और रास्ते साफ करना ये दो-दो काम नहीं कर सकते और इसी से हमने यह विचार किया कि सबसे पहले अगर गांव के तमाम कूड़े-कचरे की नित्य सफाई होती जाय, तब काम बने, और होगा भी यह बहुत बड़ा काम। यह योजना काफी सफल हुई। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां जल्दी लज्जित हुई हैं, और अब उनमें से शायद ही कोई खेत के बाहर टट्टी फिरने बैठती होगी। बालकों को इस नियम का पालन करने में बड़ा मजा आता है। एक दिन हमने देखा कि तीन-चार बच्चे हमारी बाट जोहते हुए खड़े हैं। हम लोग चूंकि सफाई का सामान लिये हुए जा रहे थे, इसलिए दो छोकरोंने हमसे कहा, "हम तो उस सामने के खेत में गये थे, पर इस लड़केने हमारा कहना नहीं माना, इसे आप समझाओ न?" यह कहकर उन्होंने उस लड़के को पकड़के हमारे सामने खड़ा कर दिया। उसने अपना अपराध स्वीकार किया, और यह वचन दिया कि मैं आइन्दा ऐसा कभी नहीं करूँगा। हम अपने परि-श्रम के परिणाम अदाजन तो बतला सकते थे, पर यह निश्चय किया कि जितने आदमियों को हम रास्तों पर खेतों के बाहर बैठते हुए देखें उनकी गिनती रखी जाय, ताकि हम अपनी प्रगति का ठीक-ठीक हिसाब लगा सकें। हर्ष की बात है कि हमें अपने काम में इतनी अधिक उन्नति दिखाई दी कि उसका मैं नकशा खींच सकता हूँ। करीब एक हजार की आबादी के गांव में गत सप्ताह दो सौ आदमी रास्ते में बैठनेवाले निकले थे, पर इस सप्ताह वह संख्या सौ से भी कम हो गई, और आज तो, जिस दिन कि मैं यह पत्र लिख रहा हूँ, इससे भी कम आदमी रास्तों में बैठे दिखाई दिये। प्रगति का यह क्रम धीमा तो जरूर है, पर है निश्चित। प्रगति कितनी ही धीमी हो, पर यह सुखद समाचार फैल तो चारों ओर रहा है। इसे सुनकर पड़ोस के एक गांव के मुखियाने तो हमें यहां-तक लिखा है कि, 'यह गांव सुधरने का नहीं, आप क्यों इसके पीछे अपना समय खराब कर रहे हैं? कृपाकर हमारे यहां आइए न। मैं आपको सफाई के इस काम में पूरी सहायता दूंगा।'

घर-गृहस्थी की झंझटें

इस बात का अनुभव हमें प्रतिक्षण हो रहा है कि मिलकियत का मालिक बनना कोई आसान काम नहीं है। फिर जहां मगन-वाड़ी की जैसी भारी और भांति-भांति की मिलकियत मिले वहां की झंझट का तो कुछ पूछिए ही नहीं। एक जमाना हुआ कि साबरमती-आश्रमवालों को अहमदाबाद शहर में पैदल या बैलगाड़ी में जाते-आते देखकर एक सज्जनने गांधीजी को एक मोटरकार देने की इच्छा प्रगट की थी। उस समय गांधीजीने उन्हें जो जवाब दिया था वह आज भी याद आ रहा है। गांधीजीने उन्हें यह जवाब दिया था कि, "मोटर लेने को मैं तैयार हूँ—पर शर्त यह है कि मोटर के साथ-साथ आप पेट्रोल, ड्राइवर और मोटर रखने की जगह भी हमेशा देते रहें।" आज हमारे पास अनेक फलदार वृक्षों का जो बाग है उसे सम्भालने में जो कठिनाई पड़ रही है वह सब देखकर मुझे गांधीजी का किया हुआ यह विनोद याद आ रहा है। बाग में दो बड़े-बड़े कुएँ हैं, मगर काम तो उनसे तभी चलेगा, जब पानी या तो हाथ से खींचा जाय या बैल मोट में जोतकर। हमें जब बाग का कब्जा मिला, तब एक कुएँ पर तेल के इंजन से चलनेवाला एक पम्प लगा हुआ था। पर वह बेमरम्मत था।

श्रीकुमाराप्पा को अपना आफिस व्यवस्थित करने मे जितना समय लगा उससे अधिक समय उन्हे इस पम्प को ठीक-ठाक करने में लगाना पड़ा। इस पर भी वह कुछ ठीक नहीं चला। पम्प बारबार अटकने लगा, और पिछले हफ्ते तो कुछ ऐसा अटका कि उसका सुधारना ही असम्भव हो गया। श्री कुमाराप्पाने यह विचार किया कि पम्प को बिजली से चलाया जाय। बाद को यह पता चला कि बाग में बिजली का एक इजन पड़ा हुआ है। इसलिए हमे आशा हुई कि कुछ दिनो मे हमारा यह पम्प मजे में चलने लगेगा। मगर नहीं— आफत तो अब भी हमारे सामने थी। तबतक इस बीच मे बिना पानी के सूखते हुए पेड़ों के लिए आखिर क्या किया जाय? बैलो की जोड़ी मांगने-मूंगने से मिल नही सकती—और बैल भी मिल गये, तो बाग मे पानी की नालिया बनानेवाले आदमी कहा मिलेगे? बेचारी मीरा बहिन की चिन्ता का तो कुछ पार ही नही था। सबेरे मे लेकर शामतक इधर-से-उधर दौड़ती फिरती, कभी आदमियो को आवाज लगाती, कभी स्त्रियो से चिरौरी करती, और कभी उस निगोड़े इंजन को कोसती। "यह बिजली का इजन यहा ग्राम-उद्योग-सघ की जमीन पर चाहिए ही किसलिए?"

"लेकिन बापू, कलतक अगर यह चालू न हुआ, और बैल भी न मिले तो फिर हमे क्या करना चाहिए?" मीरा बहिनने बडी व्याकुलता से पूछा।

मैंने कहा, "मैंने तो मीरा बहिन के आगे यह तजबीज रखी थी कि घर का हरेक आदमी कम-से-कम दस डोल पानी खींचे और पेड़ो को दे।"

मीरा बहिनने कहा, "कहना आसान है, पर करना कठिन है। ये कमबख्त पेड़ तो बिना ही पानी के सूख-सूखकर मरेंगे।"

गाधीजीने कागज के एक टुकड़े पर यह लिख दिया, "पर डोल किसलिए चाहिए? बजाय बैलो के मनुष्य क्यो न चमड़े का चरसा खीचे?"

मीरा बहिन हँस पडी। "यह किस तरह बन सकता है?"

"तुम्हे मालूम नही, चरसा तो मनुष्य अकसर खीचते हैं?"

"नही। चरसे मे तो कितने ही डोल पानी अमाता है। और वह भारी मोटा रस्सा तो मनुष्यो से खिच ही नही सकता।"

"तो यह तुम्हारी भूल है। मैं तुमसे कहता हूं कि लोग बडी अच्छी तरह चरसा खीच सकते है।"

नन्ही मदालसा बोल उठी, "इसमें है ही क्या? चरसा तो हमने भी खीचा है। कई लड़कियोंने एकसाथ मिलकर रस्से को खीचा है। और जेल मे तो चरसा खीचा ही है।"

"मैंने मीरा बहिन से कहा, "हम लोग इतने ज्यादा हे कि रस्सा पकड़कर चरसा खींच सकते हे।" मीरा बहिन को अब थोड़ा विश्वास हुआ कि हम लोग यह मजाक नहीं कर रहे हे।

"तो हम लोग आज शामको यह काम करेगे?" मीरा बहिनने कुछ-कुछ अविश्वास के स्वर में पूछा।

गांधीजीने फिर लिख दिया, "हां, अगर बैल न आयें तो।"

मगर बैल आ गये, और जहा हमारी चरसा खींचने की आफत टली, वहां हमारा मजा भी तो किरकिरा हो गया।

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

यह बात थी असल में

खंडवा के 'हिंदी स्वराज्य' में प्रकाशित ये पंक्तियां मनन करनेलायक हैं—

नायगडे (पूना) के ग्राम-सगठन-मंदिर के कार्यकर्ताओंने उस दिन गाव के बूढ़ो से पूछा कि—

"आपके लड़कपन मे जो बूढ़े लोग थे, उनकी अवस्था कैसी थी?"

जवाब मिला—"पुष्ट, बलवान।"

"वजह क्या थी?"

"वजह? हमारे जमाने मे गाव के लोग बाजरी की रोटी, गुड़ और तिल के तेल मे मसलकर, खाते थे। कोई-कोई दूध-रोटी खाया करते थे। मिर्ची का व्यवहार कम था। शक्कर बहुत कम खाते थे। आज तो शक्कर, चाय, हलुवा, चावल आदि 'अमीरी' चीजे खाने का रिवाज बढ़ रहा है। हमारे जमाने में दूध की खीर ही सर्वोपरि मिष्टान्न था।"

चटपटा निस्सत्व भोजन करनेवाले कब्ज के अनन्य आश्रयदाता हमारे शहराती लोग, और उनकी नकल करनेवाले हमारे ग्रामवासी भाई क्या इन सारभरी पक्तियो पर कुछ ध्यान देंगे? ग्राम-उद्योग सघ का यह आहार-सशोधन का विनम्र प्रयत्न अब भी हमारी आखें खोल दे तो गनीमत।

वि० ह०

सेवा का पुरस्कार

दरभगा से एक सेवकने लिखा है —

"होली की छुट्टियो में मैं अपने गाव गया था। वहा की सड़के बड़ी गन्दी देखी तो सोचा कि इन्हे साफ कर डालू। इस इरादे से मैंने वहा के नवयुवको से कहा कि हमारी इस छुट्टी का सब से अच्छा उपयोग तो यह होगा, कि आप लोग इस सारे कूड़े-कचरे को साफ करने मे मेरा हाथ बटावे। करीब तीस युवकोने मेरा साथ दिया। फावड़े लेकर चार घण्टे हमने डटके काम किया। सारे कचरे को इकट्ठा किया और उसे एक गड्ढे मे गाड दिया। हमने सोचा कि चलो आज यह एक अच्छा काम हो गया। पर गाव के बड़े-बूढ़ो को हमारा यह काम अच्छा नही लगा। भंगियो का, नीच-से-नीच अस्पृश्यो का काम करके हम सब खुद ही पतित हो गये ऐसा उन्हे लगा। उन्होंने पचायत बुलाई और जिन्होंने सड़को की सफाई का यह काम किया था उन सब को जाति-बाहर कर दिया। यह खुशी की बात है कि उनके इस जाति-बहिष्कार के हुक्म से गाव के नवयुवक जरा भी भयभीत नही हुए।"

इस अत्यन्त सराहनीय सेवा-कार्य के लिए यह सेवक और उसके नौजवान साथी हार्दिक बधाई के पात्र है। जाति-बहिष्कार के इस पचायती हुक्म से तो यही प्रगट होता है कि सुधारको को अभी कैसे-कैसे अज्ञान का सामना करना है। इस तमाम विरोध को दबाने का तो एक ही रास्ता है, और वह यह है कि जो ऐसा अत्याचार करें उनपर क्रोध न किया जाय, और फिर चाहे जितनी आपदाएँ झेलनी पड़ें पर सेवा के मार्ग से न डिगा जाय। लोक-सेवक यह विश्वास रखे कि अगर वे अततक दृढ़ता धारण किये रहे और सेवा-पथ से विचलित न हुए तो जो लोग उन्हें आज पानी पी-पीकर कोस रहे हैं, कल वही लोग यह देखकर, कि यह सफाई का काम कितना अनमोल और सुन्दर है, उन्हे असीसेंगे और दिल से असीसेंगे।

अंग्रेजी से] मो० क० गांधी

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १२ एप्रिल, १९३५

पंडे-पुजारी और अस्पृश्यता

सिबसागर से एक सज्जन लिखते हैं :—

"नीचे मैं अपनी डायरी से एक उद्धरण दे रहा हूँ जिससे खुद ही सारी बात प्रकाश मे आ जायगी । दस दिन पहले दुर्भाग्यवश मैने जो दृश्य देखा उस की स्मृति अब भी मेरे हृदय मे शूल-सी चुभ रही है और मुझे प्रेरित कर रही है कि मै आपको उन सब बातो से परिचित कराद । लीजिए, यह है वह डायरी का अवतरण :—

"समय चूंकि काफी था और उसे हम खर्च भी कर सकते थे, इसलिए हम सैर-सपाटे के लिए निकल पड़े और देरगाव का मदिर देख डाला । ट्रक रोड से सिर्फ एक मील के फासले पर, जोरहट और गोलाघाट के बीच यह मदिर है । इससे पहले मैने कभी यह मदिर नही देखा था । एक छोटी-सी गोल पहाड़ी पर यह मदिर बना हुआ है, और उसके चारो ओर अधिकतर चाय के ही बाग दिखाई देते हैं । चहुँ ओर के उन सुन्दर हरे-हरे ढालुओंने मुझे तो बरबस मोह लिया । ब्रह्मपुत्रा की वह दूर की रजतोपम रेणुका-राशि और उसकी पुलिनस्थलियो पर सरसो के फूलो की सुन्दर सुहावनी क्यारियो को आप यहा से खूब देख सकते हैं । मदिर की भूमितक पत्थर की सीढ़ियो का रास्ता बना हुआ है । सीढ़िया चढ़ सकने के बाद ज्यो ही आप बेल और ताड़ के वृक्षो की कुजगली मे होकर मदिर की ओर बढ़ेगे, कपि-कुल आपका स्वागत करेगा । आप जो फल इत्यादि उनकी तरफ फेकेगे, उस पर वे तमाम बंदर झपटा-झपटी करेगे, और उनमे जो सबसे बहादुर होगा वह तो लपककर आपके हाथ मे से ही चीजो को छीन लेगा । यह दुख की बात है कि मदिर के चारो ओर की जगह बिल्कुल बेवाला पड़ी हुई है । न कोई कभी वहा की कँटीली झाड़ियो को काटता है न उस उलझीले जगल को । इस दशा मे मदिर के आसपास सुदर फूल-पत्ती का लगाना व्यर्थ ही है—इस झाड़-झखाड़ की जगह को फूलो की वाटिका भला कैसे सजा सकती है ? पर इस मदिर की बनावट देखने लायक है । मदिर पत्थर और ईंट का बना हुआ है । बहुत ऊँचा नही है । पर उसके स्थापत्य मे कुछ ऐसी चीजे हैं जो आसाम के अन्य मदिरो मे देखने मे नही आती । बीच के बड़े शिखर के नीचे तो शिवलिंग प्रतिष्ठित है, और उसमे जो छोटे-छोटे अन्य गुम्मट हैं वे चार भिन्न-भिन्न देवताओ के बने हुए हैं । बाहर की दीवारो पर जटिल पाषाण-मूर्तिया तो बड़ी सुदर स्थापत्य-कला का परिचय देती हैं ।

पर हमारे गौरवमय अतीत की इस पुण्यनिधि के सौन्दर्य तथा आकर्षण को, देवस्थान के इस पवित्र वातावरण को हमारे पंडो-पुजारियो की लूट, लालच और निर्लज्जताने आज बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है । मुझे आश्चर्य हुआ कि जिस स्थान को इन लोभी-लालची पुजारियोने सचमुच ही मोल-तोल का एक बाजार बना रखा है, और जहा प्रभु के विनम्र प्रियजनों का प्रवेश निषिद्ध कर रखा है, वहां, उस स्थान में देवता भला कैसे वास करते होंगे ?

जिस दिन हम लोग मंदिर देखने गये, उस दिन द्वार पर पूजा चढ़ानेवालो की भारी भीड़ जमा थी—उनमे ज्यादातर चायबागान के कुली और मीरी लोग थे । खासी रेलपेल मची हुई थी । मदिर के सामने बिल्कुल बाजार का सा दृश्य देखने मे आ रहा था । एक भक्त कबूतरो का एक जोड़ा चढ़वाना चाहता था और ये पुजारी उस गरीब से चढ़ोत्री के दो आने माग रहे थे । एक दूसरे भक्त को एक बकरा चढाना था । भेट का एक रुपया तो वह पुजारियो को दे चुका था, पर एक चवन्नी अभी और चाहिए थी, क्योंकि सवा रुपये से कम मे देवता के चरणो पर अजा-बलि चढ ही नही सकती ! वे बेचारे सीधे-सादे भोले-भाले हिंदूधर्मानुयायी साफ ही चोरो के चगुल मे पड गये थे । मंदिर-द्वार के बाहर ये लोग बड़ी श्रद्धा से घुटने टेके हुए बैठे थे—जो लोग बेरोकटोक मंदिर के भीतर चले जा रहे थे उनकी ओर ये बेचारे ईर्ष्या की दृष्टि से देख रहे थे, उनकी आश्चर्यचकित सतप्त आंखे देव-मूर्ति की सिर्फ एक झलक लेने के लिए व्यर्थ ही अदर के उस घोर अधकार को टटोल रही थी ।

अधर्म और प्रवचना के इस दृश्य को देखकर मै वहा से तुरन्त लौट पडा । बड़ी व्यथा हुई । मेरा मन विद्रोह करने लगा और मैने यह सकल्प कर लिया कि ईश्वर और मनुष्यता के खिलाफ यह जो अपराध किया जा रहा है, उसे तमाम दुनिया के आगे उजागर कर देना चाहिए और हरिजनो के लिए यह मदिर खुलवाने मे हम अब कुछ उठा नही रखना चाहिए ।"

आप को यह तो शायद मालूम ही होगा कि आसाम के अधिकाश सार्वजनिक मदिर हर जाति के हिंदुओ के लिए खुले हुए हैं । मैने अपवादस्वरूप यह देरगाव का ही मदिर देखा है । चायबागान के वर्तमान तथा पहले के तमाम कुली या मजदूर और मीरी लोग बराबर मदिरो मे जाते हैं, और मदिरो को अधिकाश आमदनी इन्ही लोगो की बदौलत होती है । कहने की आवश्यकता नही कि इन भोले-भाले लोगो के धार्मिक उत्साह तथा अज्ञान का ये पुजारी काफी फायदा उठाते हैं ।

चायबागान और मीरियो की आबादी के पड़ौस मे होने के कारण हरिजनो के हक मे इस मन्दिर की प्रसिद्धि दिन-दिन बढ़ने को ही है । यह मदिर इन दलित लोगो के लिए खुल जाय तो जरूर इनमे एक तरह की चेतना जाग उठेगी और इनके बीच काम करने के अनुकूल एक वातावरण भी बन जायगा ।"

पारसाल जब मैं हरिजन-कार्य के सिलसिले में आसाम प्रात मे दौरा कर रहा था, तब मैने समझा था कि चायबागान के कुली वहा अस्पृश्य समझे जाते हैं और मीरी लोगो को भी वहा अस्पृश्य ही मानते हैं । खैर, चाहे जो हो, पर यह एक गंभीर प्रश्न है कि जहां लोगो के वहम का पंडे-पुजारी अनुचित लाभ उठाते हों, और जहा निरपराध पशु-पक्षियो का बलिदान होता हो, क्या ऐसे मंदिर में हरिजनों के प्रवेश कराने का आंदोलन उठाना उचित है ?

इसमें संदेह नही कि मंदिरो का सुधार एक अलग प्रश्न है । पर सुधार होनेतक हरिजनो का मंदिर-प्रवेश रुका थोड़ा ही रहेगा । लेकिन उन मंदिरो को मै छोड़ देता हूँ, जहा पशु-पक्षियों की बलि चढाई जाती है । जबतक यह पशु-बलि बंद नहीं हो जाती, तबतक मैं इन मंदिरों की बात नहीं करूंगा । मंदिरों के भीतरी भ्रष्टाचार का भक्त पर असर नहीं पड़ सकता, क्योंकि उसे उसका कोई पता

ही नहीं चलता, पर इस पशु-बलि के साथ तो प्रत्येक पूजा करनेवाले का घनिष्ठ संबंध है, क्योंकि उसे ऐसी बलि चढ़ानी ही पड़ती है। और पहले-पहल जो हरिजन ऐसे मंदिर में जायगा उससे स्वभावतः यह आशा की जायगी कि वह जरूर एकाध निरीह पशु-पक्षी चढ़ाने को लाया होगा। वह मांस खाता हो या न खाता हो पर उसे एक निर्विकार हरिजन को यह सिखाने का पाप तो अपने सिर पर लेना ही होगा कि ईश्वर अपने भक्तों से यह आशा रखता है कि वे उसे उन मूक प्राणियों के रक्त से संतुष्ट करें जिन बेचारों ने न कोई पाप किया है और न जिन्हें पाप का कुछ भान ही है। मैं चाहता हूँ कि आसाम के नेता देरगांव के इस मंदिर को पशु-बलि के कलुष-कलंक से मुक्त करदें। इसका यह जवाब नहीं है कि इस सुधार का आरंभ देरगांव के जैसे अप्रसिद्ध मंदिर से नहीं, बल्कि काली-मंदिर में होना चाहिए। अधिकांश सुधारों का आरंभ मूलतः अल्प रूप में ही हुआ है। अगर ये छोटे-छोटे मंदिर निरपराध प्राणियों की हत्या के पाप-कलंक से अपने को मुक्त करलें तो फिर काली-मंदिर का विशाल पापगढ़ तो अपने आप ही ढहकर गिर पड़ेगा।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

निराशा कैसी ?

भारत के शायद सबसे पुराने राष्ट्र-सेवक श्रीयुत हरदयाल नाग लिखते हैं :—

"यह देखकर मुझे निराशा मालूम देती है कि आपके इस अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ का काम करने के लिए आपके पास पर्याप्त ग्राम-सेवक नहीं हैं। इस संबंध में अगर आप मुझपर कर्त्तव्य की उपेक्षा करने का दोषारोपण करें, तो अपना यह अपराध स्वीकार कर लेने के सिवा मेरे लिए दूसरा कोई रास्ता ही नहीं। अपने सार्वजनिक जीवन के आरंभ में ही मैं ग्रामउद्योगों के प्रश्न के आर्थिक पहलू का अध्ययन करता रहा हूँ। आपका कार्य-क्रम मुझे जो बहुत प्रोत्साहित नहीं करता, उसका यही कारण है कि उसमें मुझे उसका कोई आर्थिक रूप नहीं दिखाई देता। कौन जाने, यह मेरी ही भूल हो। खैर जो हो, मुझे अपनी शंकाओं को तो दूर करना ही है।

सारे हिंदुस्तान के ग्राम-उद्योगों को हड़प लेनेवाला विदेशी व्यापार का यह शैतान तो अब भी यहां मौजूद है। आर्थिक जाल में फँसानेवाली वह मोहिनी माया तो आज भी उसी मस्ती में वही तान छेड़े जा रही है कि—"सब से सस्ता माल खरीदो", और उसके जादू का असर भी खूब पड़ रहा है। थोड़ी देर के लिए आप कल्पना कीजिए कि हिंदुस्तान में तमाम सब जगह गांवों का बना माल भरा पड़ा है, मगर उस माल के खपानेवाले या खरीदार नहीं हैं तो उससे लाभ ही क्या ? हाथ का करघा खद्दर तैयार कर सकता है, पर वह उसके खरीदार थोड़े ही पैदा कर सकता है। मेरा तो यह दुःखपूर्ण अनुभव है कि बहुत-से कातनेवाले अपने हाथ के काते हुए सूत का एक भी वस्त्र नहीं पहनते। अधिकांश कतैयों या कत्तिनों के तन पर तो मैंने खद्दर भी नहीं देखा। सूत को बेचते हैं तो उससे उन्हें एक तरह से कुछ भी नहीं मिलता। कुछ लोग तो अपना सूत बेचने या बतौर चंदे के देने के लिए भी राजी नहीं। ऐसे शौकीन कतैये आखिर कितने दिनतक सूत कातते रहेंगे ? अब अगर भारत के तमाम ग्रामों के कारीगर, अपने खुद के इस्तेमाल के लिए नहीं बल्कि बिक्री के लिए, अपने हाथ से चीजें बनाने लगें तो उनके उस सब माल के खरीदार कहां से आयेंगे ? जबतक भारत राजनीतिक गुलामी से जकड़ा हुआ है तबतक कोई दूसरा देश वह माल खरीदने का नहीं। और ये हिंदुस्तानी ग्राहक हिंदुस्तान के गांवों की बनी कुरूप चीजों को क्या खरीदेंगे ! गुड़ तैयार करनेवाला जरा-सा गुड़ अपने देश के प्रति मौखिक भक्ति दिखाने के लिए भले ही चखले, पर क्या वह अपनी चाय या दूध में गुड़ की डली डालेगा ? गांव का जूते का कारखानेवाला बाहर के बने हुए बढ़िया और काफी सस्ते जूतों के मुकाबिले में क्या कभी अपने कारखाने का बना भद्दा जूता-जोड़ा पहनेगा ? मैंने दुर्भाग्यवश ऐसे कई छोटे-मोटे देशी धंधों को असफल होते हुए देखा है, जिनमें रुपये के लिए और केवल बिक्री के लिए माल तैयार होता था। सिर्फ रुपया पैदा करना ही जब उनका एकमात्र ध्येय था, तब असफल तो उन्हें होना ही था। हमारे यहां के ग्रामवासियों को जबतक यह पाठ न पढ़ाया जायगा कि जिन चीजों को वे अपने कच्चे माल से, और खुद अपने हाथ-पैर की मेहनत से तथा अपने ही इस्तेमाल के लिए तैयार करते हैं उनके मुकाबिले में विलायती चीजें सस्ती पड़ ही नहीं सकती तबतक वे विदेशी चीजों के खरीदने का मोह कभी छोड़ेंगे ही नहीं। विलायती माल खरीदने के लिए उन्हें कर्ज काढ़ना पड़ता है, पर अगर अपने जीवन की जरूरी चीजें वे खुद बनाने लगें तो फिर उन्हें कर्ज लेने की कोई जरूरत ही न पड़े। जहांतक ग्रामवासियों का संबंध है, चीजों के अदल-बदल की सहकारी प्रथा इस मुद्रा-प्रथा से लाख दर्जे अच्छी है। हमारे देश के ग्रामवासियों को इस विदेशी व्यापार के शैतानने इतना अधिक नीति-भ्रष्ट कर दिया है कि सिवा रुपये-पैसे से खरीद-फरोख्त करने के दूसरी बात वे सोच ही नहीं सकते।"

हरदयाल बाबू के ये दिन अब विश्राम करने के हैं, और अगर वे अब तमाम सार्वजनिक कार्यों से हट जायें तो किसी को उनकी इस बात की शिकायत भी नहीं करनी चाहिए। मगर अपने इन तीनों होडियों—पंडित मालवीयजी, अब्बास तैयबजी और विजयराघवाचार्य—की तरह हमारे हरदयाल बाबू का काम करने का हौसला कम नहीं हुआ। इसलिए वे यह आशा नहीं कर सकते कि आलोचकगण उनकी अवस्था के कारण उनके साथ कुछ रियायत करेंगे। मैं जानता हूँ, वे ऐसी कोई आशा नहीं रखते। उनका शरीर और उनका मस्तिष्क देश के लिए अब भी वैसा ही बना हुआ है, उनमें कोई कमी नहीं आई है, और देश चाहे जब उनसे अपनी सेवा ले सकता है।

मुझे हरदयाल बाबू को यह बतला देना चाहिए कि जो लोग ग्राम-उद्योग के इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं उनके सामने निराशा-जैसी कोई चीज ही नहीं। यह क्षेत्र इतना नया है कि तैयार होने में उसे अभी बहुत समय लगेगा। कार्यकर्त्ताओं ने जो काम अपने हाथ में लिया है उसकी तहतक वे अभी पहुँचे नहीं।

फिर हरदयाल बाबू को जो निराशा की बात मालूम दे रही है, मेरी राय में, उसका वही कारण है जो उन्होंने ऊपर दिया है।

कर्तव्य के प्रति उपेक्षा दिखाने का अपराध उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। अगर उन्होंने, जैसी कि उनका प्रकृति है, यह काम हाथ मे ले लिया होता, तो इसमे संदेह नही कि वह उन्हे बहुत कठिन तो जरूर मालूम पडता, पर निराश तो वह निश्चय ही न होते। इस प्रवृत्ति का जो आर्थिक रूप उन्हे दिखाई नही दे रहा है उस का यही कारण है कि उन्होने उसे देखने के लिए व्यावहारिक रीति से प्रयत्न नही किया।

हरिजन-कार्य में मैं पड़ा तो मुझे यह पता लगा कि अगर भारत-वर्ष को जीवित रहना है तो हमें कौमी निसेनी के सबसे निचले गोडे को सबसे पहले ठीक करना होगा, अपने कार्य का श्रीगणेश यही से करना होगा। अगर पहली ही सीढी सड़ी-गली होगी, तो सब से ऊपर की या किसी बीच की सीढी पर हम जो काम करेंगे, अत में वह सब निश्चय ही असफल होगा।

मुल्क के सामने आज जो कार्यक्रम रखा गया है उसमें आर्थिक दृष्टि तो है ही, इसके अलावा कुछ और भी है। इस कार्यक्रम मे राष्ट्र को पौष्टिक आहार देने का जिस ढग का खाका खीचा गया है उससे अर्थ-लाभ भी होगा और आरोग्य-लाभ भी। गावो के लोग अपना चावल ओखली में खुद कूटकर उसे ज्यों-का-त्यो छिलकरहित रूप मे ही खाने लग जायँ, तो इससे हरसाल तीस करोड रुपये की बचत ही न हो, बल्कि उनके स्वास्थ्य मे भी उन्नति हो। पर दुःख की बात तो यह है कि साधारणतया बाजारो में हमे ऐसा छिलकरहित पूर्ण चावल मिलता ही नही। कुछ दिन ठहरने के बाद ही ग्रामउद्योग-सघ राष्ट्र को इस सबध मे कोई स्पष्ट रास्ता दिखला सकता है। राष्ट्र को यह सब बताने की जरूरत है, कि क्या तो उसका भोजन हो और वह किस तरह तैयार किया जाय।

गावो में तडक-भड़कदार चीजे बनाने और उन्हे बेमन से खरीदनेवालो के मत्थे मढने की तो कोई बात इस कार्यक्रम मे है ही नही। एक ही प्रकार की विदेशी या स्वदेशी चीजो के साथ जब प्रतिस्पर्धा की कोई बात ही नही, तब असफलता का तो सवाल ही नहीं आता। गावो के लोग खुद तैयार करेगे और खुद ही खरीदेगे। अपने बनाये माल को अव्वल तो वे खुद ही खपालेगे, क्योंकि नब्बे फीसदी जन-संख्या ग्रामवासियों की ही है। शहरो के लिए तो वे उन्ही चीजो को बनायेंगे, जिनकी शहरो में माग होगी और जिन्हे वे लाभ की दृष्टि से तैयार कर सकेगे। दूध या चाय मे गुड मिलाने की सलाह लोगों को जरूर दी जायगी इसमें जरा भी सदेह नही। उन्हें यह बतलाया जायगा—और आज भी बतलाया जा रहा है—कि यह खयाल करना निरा वहम है कि दूध या चाय के साथ गुड खाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। एक सज्जनने मुझे लिखा है कि मेरी स्त्रीने जबसे गुड की चाय पीना शुरू किया है तब से कब्जियत की उसकी सारी शिकायत दूर हो गई है। मुझे इसमें कोई आश्चर्य नही हुआ, क्योंकि गुड़ की जो थोड़ी रेचक तासीर है वह शक्कर मे तो है ही नहीं। ग्रामों का शोषण मध्यमवर्ग के लोगोने किया है। उनमें से कुछ लोग गावो को यह अनुभव कराके अब अपनी भूल को सँवार रहे हैं कि राष्ट्रीय विकास में गांवो का एक गौरवमय और महत्वपूर्ण स्थान है।

अब सफाई का प्रश्न लीजिए। इस प्रश्न पर ठीक-ठीक ध्यान दिया जाय तो इससे हरसाल मुल्क को प्रति मनुष्य दो रुपये की आमदनी हो सकती है। इसका यह अर्थ हुआ कि स्वास्थ्य और शक्ति मे तो उन्नति होगी ही, इसके अलावा साठ करोड़ की सालाना आमदनी भी मुल्क को होगी। भारत के सात लाख गांवों की डगमगाती हुई नैया को अगर सब तरह से सँभालना है तो इस काम को मौजूदा कार्यक्रम से आरंभ करके ही हम कर सकते हैं। यह काम तो बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था। भारत की राज-नीतिक अवस्था चाहे जैसी हो, इस काम को तो हमें पूरा करना ही है। भगी से लेकर साहूकार तक सभी कोटि के ग्रामवासी इस कार्यक्रम को हाथ मे ले सकते हैं। यह ऐसा काम है जिसमे सभी विचारो के लोग दिलोजान से शरीक हो सकते है। अगर अच्छे कार्यकर्त्ता मिलते जायँ तो असफलता तो इसमें हो ही नही सकती।

अग्रेजी से] **मो० क० गांधी**

मेरी हरिजन-यात्रा

[१२]

राजकोट—११–१२ दिसंबर, १९३४—राजकोट काठिया-वाड का शासन-केन्द्र है, और काठियावाड के हरिजन-सेवक-सघ का प्रधान कार्यालय भी यही है। गाधीजी पारसाल जुलाई के महीने मे जब यहा हरिजन-दौरे के सिलसिले मे आये थे, तब से यहा का सघ अच्छा व्यवस्थित हो गया है, यद्यपि चार निशुल्क हरिजन-छात्रालय तो कई वर्ष से यहा चल रहे है।

राजकोट राज्य की प्राइमरी पाठशालाओ का मैने निरीक्षण किया, और कई हरिजन-बस्तिया भी देखी, और वहा की सभाओ मे भाषण भी किया। सोरठिया-वास नाम की एक बस्ती मे तो एक रात मैं ठहरा भी।

फिर रइरडा-वास का चमड़े का कारखाना देखा, जो एक मुसल्मान सज्जन का है। इस कारखाने में केवल बकरी का चमडा कमाते है और फिर वह बाहर भेज दिया जाता है। बकरी के बाल और भेड की ऊन भी इकट्ठी करके यहा से बाहर भेजते है। १०० से ऊपर हरिजन इस कारखाने मे काम करते है।

राजकोट शहर की म्युनिस्पैलिटी मे जो मेहतर मुलाजिम है उन्हे सिर्फ ५) मासिक वेतन मिलता है। इस पर राज्य के अधिकारियो का ध्यान आकर्षित किया गया। शराब यहा प्राय. सभी मेहतर पीते है। यहा मुझे यह भी पता चला कि राज्य का बैंक यद्यपि मेहतरो को रुपया उधार देता है, मगर ब्याज के अतिरिक्त भी उन्हे कर्जे की २० प्रतिशत रकम एक बिचोई जामिनदार को देनी पड़ती है। राज्य उन लोगो के चाल-चलन की जमानत पर अगर कर्जा देने मे हिचकता है तो वह उनके मकानो और उनकी नौकरी की जमानत पर तो सीधा उन्हे कर्जा दे ही सकता है, इसमें तो रकम डूबने की कोई बात ही नहीं। लिमड़ी राज्य यही तो कर रहा है

काठियावाड़ के हरिजनो के लिए जो कुएँ बनवाने है उसके अर्थ धन-संग्रह करने के लिए बैरिस्टर मसुरेकर की अध्यक्षता मे यहा के खास-खास नागरिकों की एक कमेटी बना दी गई है।

समढियाला—१३–१२–१९३४—यहा समढियाला में सेठ वीरचद पानाचंद खासा अच्छा ग्रामोत्थान-कार्य कर रहे है। मैंने उनका वह सब काम देखा। पर यह काम यहां केवल हरिजनों के ही लिए नहीं, बल्कि सारे गांव के लिए हो रहा है। दो दृष्टियो से तो यह काम अनोखा ही है—(१) कुनबी जाति के किसानों की लड़कियों और स्त्रियों को पढ़ाने-लिखाने के

लिए एक रात्रि का वर्ग चल रहा है, और (२) हरिजनो के मकान नये सिरे से स्वच्छ स्थान पर बनाने की योजना। इस काम का शीघ्र ही आरम्भ होगा, क्योंकि राज्यने सुविधाजनक शर्तों पर इस नई बस्ती के लिए जमीन दे दी है। छात्रालय इत्यादि के लिए जो एक बड़ा मकान सेठजी बनवा रहे थे वह करीब-करीब तैयार हो गया है। ऐसे छोटे-से गाव मे इतनी बड़ी इमारत का होना भी अनोखा ही है। यह हर्ष की बात है कि सेठ वीरचद के इस ग्रामोत्थान-कार्य के साथ राज्य की पूरी शुभेच्छा और सहानुभूति है।

वांकानेर—१४-१२-३४—हरिजनो की शिक्षा के सबध में इस छोटे-से राज्यने काफी अच्छा काम किया है। कुछ बरसो से हरिजनो के बालक और बालिकाएँ राज्य की आम पाठशालाओ मे बराबर पढ रहे है, यद्यपि बिठाया उन्हे अलग जाता है। पिछड़े हुए काठियावाड में इसे एक प्रगतिकारक और साहस का ही काम कहना चाहिए।

यहां की हरिजन-बस्तिया देखीं। हरिजन खाने-पीने से सुखी हैं, और उन्हे कोई खास शिकायत नही है। सघ की ओर से यहा बड़ी उम्र के हरिजनो के लिए एक रात्रि-पाठशाला चल रही है।

मोरवी—१४-१२-३४—मोरवी शहर के चमारो तथा मेहतरों की बस्ती को जो भी यहा देखेगा उसे एक अच्छा पदार्थ-पाठ मिल सकता है। चमारो की बस्ती तो खास तौर पर साफ-सुथरी है। मकान अच्छे कायदे से बने हुए है और चालीस-चालीस फुट चौड़ी सड़कें है। लेकिन इस स्वच्छता का सबसे बड़ा कारण यह है कि थोड़ी दूर पर राज्यने अपने पैसे से एक खास घेरा बनवा दिया है, जहां लाशे उधेड़ी जाती है। मुर्दार मास फेक दिया जाता है, जिसे गीध, कुत्ते और सियार खा जाते है। हरिजनोद्धार के काम मे महाराजा साहब मोरवी काफी रस लेते है। समय-समय पर वे खुद उनकी बस्तिया देखने जाते है और यही कारण है कि लोगो पर उनकी सत्ता का नहीं किन्तु उनके नैतिक दृष्टात का प्रभाव पड़ता है। मैसूर और त्रावणकोर की दलित जातियो के 'प्रोटेक्टर' की तरह यहा भी राज्य का एक अफसर हरिजनो की नैतिक एवं आर्थिक उन्नति की देखरेख करता है।

अमृतलाल वि० ठक्कर

आदमपुर के खादी-केन्द्रों में

(२)

आदमपुर की आशा

दोपहर को भोजन के बाद हम आदमपुर से चार फर्लांग दूर बसी हुई फुर्दपुर नामक एक बस्ती देखने गये। इस बस्ती मे जाट और सिक्ख जमींदारो की आबादी ज्यादा है। इस तरफ का हर किसान जमींदार कहलाता है। हमें यह देखकर बड़ी खुशी हुई, कि इन जमींदारो के घर मे प्रायः लोग आधों-आध खादी पहनते हैं। बहनें घर-घर सूत कातती हैं और एक-एक घर में कई-कई चर्खे चलते हैं।

एक जमींदार के घर में हमने एक साथ पांच चर्खे चलते देखे। जवान और बूढ़ी सभी बहनें बैठी कात रही थीं। हम वहां ठहर गये और बहनों से बातें करने लगे। उनमें से कुछ को शुद्ध खादी में न देखकर हमने उनसे पूछा कि यह आधा खद्दर और आधा दूसरा क्यों? उन्होंने कहा कि हम गांठ का पैसा खर्च करके तो बाहर का कपड़ा बहुत ही कम खरीदती हैं। पर ऐसा कुछ कपड़ा कभी-कभी हमे अपने रिश्तेदारो से और मायकेवालो से मिल जाता है, जिसे हम रख लिया करती है। पर अब तो हम उतना भी न लेगी। हमारे यहा तो रिवाज है और हम यह चाहती भी है कि अपनी लड़कियों को दहेज मे घर के कते सूत ही का कपड़ा दें। हममें से कुछ तो उन्हे घर की खादी ही देती हैं। पर सारी खादी घर की ही बनाने में हमारे सामने कई कठिनाइयां है। एक तो हमारे पास नकद पैसो की कमी रहती है। दूसरे, जुलाहो मे भी हमें सावधान रहना पड़ता है। जब हम उन्हे एक साथ बहुतसे सूत बुनने को देती है, तो अकसर वे हमारा सूत बदल लेते है, देर से बुनकर देते हैं, और कभी तो बुनाई भी ज्यादा ले लेते हैं। हम जानती हैं कि अगर हम अपना सूत बेचें तो हमे पैसे मिल सकते हैं। पर सूत बेचना हमारे लिए मुमकिन नही है। सालभर मे हम मुश्किल से मन-डेढ-मन सूत कात पाती हैं, और इतना सूत तो हमें अपने कपड़ो के लिए ही रख लेना पड़ता है। यही वजह है कि हम अकसर अनाज देकर सूत बुनवाती और रुई धुनवाती है। कपास तो हमारा अपना होता ही है।

हमें यह जानकर खुशी हुई कि ब्याह-शादी के अवसरो के लिए बहुत पहले से ये बहने सूत इकट्ठा करने लगती है, और फिर एकसाथ दो-दो मन सूत की खादी बुनवा लेती है। वे खादी की महिमा और उसका महत्व समझती हैं और जब बहुत मजबूर हो जाती हैं, तभी दूसरे कपड़े को अपने पास फटकने देती हैं। उनके ऊँचे-पूरे मर्दों और जवांमर्द बच्चों को सिर से पैरतक मोटा खद्दर पहने देखकर तो दिल हरा हो जाता है, और खद्दर की महिमा का सच्चा स्वरूप आखो के सामने नाचने लगता है।

फुर्दपुर की इन बहनो से विदा होकर हम आदमपुर से चार मील पर बसे हुए मदारा गाव मे पहुंचे। इस गाव मे नब्बे फी सदी से ज्यादा बस्ती मुसल्मान भाइयों की है। प्राय सभी काश्तकार है और जमींदार कहलाते हैं। कुछ घर जुलाहो के भी हैं। गाव की सरहद पर पैर रखते ही हमने उन लोगो को गिनना और देखना शुरू किया जो रास्ते मे हमें आते-जाते मिले। हमे यह देखकर सानन्द आश्चर्य हुआ कि प्राय सभी के बदन पर अधिकतर हाथ-कती-हाथबुनी मोटी खादी ही शोभा दे रही है। हमने कई भाइयों से खादी के सम्बन्ध मे बाते की। हमें पता चला कि वे खादी के महत्व और मोल को समझते हैं और सस्ता और सुन्दर दीखने पर भी बाहरी कपडे की जगह घर की मोटी-झोटी खादी पहनना हर तरह अच्छा और लाभदायक समझते हैं।

एक घर मे हमने देखा कि कुछ मुसलमान बहने ओसारी में बैठी हुई चर्खों पर सूत कात रही है। श्री किशनचन्दजी के साथ हम उनके पास गये और उनसे बातचीत करने लगे। पहले तो हमने उनके चर्खें पर खुद सूत कातकर देखा और उनकी पूनिया परखी। पजाब के चर्खों को इतना मजबूत, सुन्दर और अच्छा पाकर हमें बड़ी खुशी हुई। कत्तिने अच्छा कातना जानती हैं, और खुद ही बिगड़े हुए चर्खे को सुधार भी लेती हैं। उनका तकुआ नंगा और सूत बलदार और एक-सा होता है।

जिस कत्तिन के घर हम गये थे, उसने पिछले साल अपने घरखर्च के लिए करीब एक मन सूत काता था। अपने इस सूत से उसने खादी के कई थान बुनवाये थे। इस साल भी वह अबतक अपने सूत के दो खेस बुनवा चुकी थी। वह स्वयं भी बहुत-कुछ

“आत्मवत् सर्वभूतेषु”

Reg. No. L. 1369

संपादक—वियोगी हरि

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)

पता—
‘हरिजन-सेवक’
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग ३]　　दिल्ली, शुक्रवार, १९ एप्रिल, १९३५.　　[संख्या ९

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

सफाई का काम

इस सप्ताह सफाई के काम के सम्बन्ध में जाननेयोग्य बात यह हुई कि वर्धा जिले के कलेक्टर एक दिन सबेरे जब हम लोग सफाई में लगे हुए थे वहां आ पहुँचे। गन्दे रास्ते पर हमारे पीछे-पीछे चलकर उन्होंने हमारा काम देखा और लोगों को यह हिदायत दी कि जब हम लोग काम कर रहे हों तब ठट बांधके खड़े-खड़े [illegible] करें। [illegible] से क्या-क्या बीमारियां पैदा होती हैं, और यह भी जोर देकर समझाया कि मैले को मिट्टी या राख से जरूर ढक देना चाहिए।

एक आदमी के मकान के सामने से हमने ढेरों कचरा साफ किया। मालूम होता है कि हमारी सलाह उसके गले उतर गई है, और उसने कुछ-कुछ हमारी बताई हुई पद्धति का एक पाखाना बना लिया है। हमें कुछ ऐसा ज्ञान पड़ा कि उसे अपने इस काम के लिए गर्व था, और हमने जब उसे धन्यवाद दिया तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ।

पर हमारा हार्दिक धन्यवाद तो पड़ोस के एक गांव की पाठशाला के तीन बालकोंने प्राप्त किया। पाठशाला के आगे से डोल और फावड़ा लिए हम लोगों को नित्य सबेरे गुजरते हुए ये बालक देखा करते थे। इस हफ्ते उनमें से कुछ बालकोंने जिस गांव में हम काम करते थे वहां हमारे पीछे-पीछे आने का निश्चय किया। कुछ देरतक तो खड़े-खड़े देखते रहे, फिर उनमें से तीन आगे बढ़े, और उन्होंने कहा कि क्या आप हमें ये डोल उठाने देंगे? हमने कहा कि हां, तुम यह काम कर सकते हो। फिर वे दो रद्दी कनिस्तर के टुकड़े उठा लाये और मैला उठाने में मदद करने लगे। यह सब काम उन्होंने खुद अपनी राजी से किया, हमें जरा भी नहीं कहना पड़ा। दूसरे दिन इनकी छुट्टी थी, इसलिए उस दिन भी ये आये। इनका उत्साह अगर संक्रामक सिद्ध हुआ तो हमारे पास सफाई का काम करनेवालों की खासी अच्छी पल्टन तैयार हो जायगी। शहर से आनेवाले स्वयंसेवकों की संख्या भी दिन-दिन बढ़ती जा रही है, और कुछ ही दिनों के अन्दर, हमें आशा है कि, हम घर-घर सफाई का सन्देश पहुँचा सकेंगे। •

अनुशीलन की आवश्यकता

मेरे एक परम मित्रने, जो ‘हरिजन’ के लेखों को खूब मनोयोग के साथ पढ़ा करते हैं, नीचे लिखी यह आलोचना शुद्ध हृदय से मेरे पास भेजी है —

“आपके दो सप्ताह पहले के साप्ताहिक पत्र में एक यह वाक्य आया है कि—‘खली बैलों की तो उत्तम खुराक है ही, पर अब सतीश बाबू लिखते हैं कि इसका नहाने के साबुन के रूप में भी उपयोग हो सकता है।’ मुझे यह लिखते हुए हँसी आ रही है। सतीश बाबू नहाकर कितना स्वच्छ होना चाहते हैं इसी पर सब निर्भर करता है। मलबार में तेल चुपड़के नहाने का जो रिवाज है उस तेल को छुड़ाने के लिए ही खली वहां काम में लाई जाती है। पर इस ऊपरी तेल को छुड़ा देने के अलावा उस खली से कोई और मतलब नहीं निकलता। मैं यह नहीं मानता कि खली नहाने के साबुन की जगह ले सकती है। यह बात तो मैंने प्रसंगवश कही, पर मुख्य बात तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि ‘हरिजन’ में बिना पूरी जांच-पड़ताल के ऐसी चीजें देदी जाती हैं मानो वैज्ञानिक रीति से उनकी सत्यता सिद्ध हो चुकी है। मैं यह आशा नहीं करता—और चाहता भी नहीं, कि दुनियाभर के कार्यों में व्यस्त महादेव देसाई समय निकालकर मेरे इस कथन का जवाब दें। पर यदि कहीं जवाब दें तो मुझे खुशी तो जरूर होगी। मैं तो मेरे मन में जो बात घर कर चुकी है उसे आपको बतला देना चाहता हूँ। वैज्ञानिक विषयों के सम्बन्ध में यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करके उसे पचाने में समय भी अधिक लगता है और परिश्रम भी। जो लोग ‘हरिजन’ में वैज्ञानिक विषयों पर लिखते हैं, उन सबने लम्बा अनुभव प्राप्त करके अथवा गहरा अनुशीलन करने के बाद ऐसे लेख लिखने की योग्यता प्राप्त की होगी या नहीं, इस विषय में मुझे संदेह ही है।”

इस चेतावनी के प्रति उपेक्षा करने से काम नहीं चलेगा। लेकिन अपने इन मित्र को मैं यह विश्वास दिलाता हूँ कि वैज्ञानिक विषयों पर लिखने की पूरी योग्यता सतीशबाबू में है। फिर वैज्ञानिक विषयों पर लिखने की जिसने योग्यता प्राप्त नहीं की उससे, फिर वह चाहे कितना ही बड़ा विद्वान् हो, इन विषयों पर इस पत्र में लिखने के लिए कभी कहा ही नहीं जाता। इस पत्र में जिन बातों की चर्चा की जाती है उनमें हम अधिक-से-अधिक सावधानी से काम लेते हैं। सतीशबाबू का जो वाक्य दिया गया वह तो सिर्फ इसीलिए कि दूसरे मित्र उसके साथ अपने अनुभव और अभिप्राय का मिलान करें। यह मिलान हमारे इन आलोचक मित्रने तो किया ही है। उस वाक्य के साथ मैंने यह भी लिखा था कि हमने यहां अभी साबुन की जगह खली का उपयोग करके देखा नहीं। इन वैज्ञानिक विषयों पर हम कितनी अधिक सावधानी से काम लेते हैं इसके एक-दो उदाहरण मैं यहां देता हूँ। यह बात

Reg. No. L. [illegible]

हरिजन-सेवक

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

[illegible]] दिल्ली, शुक्रवार, १९ [illegible] [[illegible]

[illegible]-सूची

साप्ताहिक पत्र

सफाई का काम

इस सप्ताह सफाई के काम के सम्बन्ध में [illegible] बात यह हुई कि [illegible] जिले के कलेक्टर एक दिन सवेरे जब हम लोग [illegible] में लगे हुए थे वहां आ पहुंचे। गन्दे रास्ते पर हमारे पीछे-[illegible] उन्होंने हमारा काम देखा, और लोगों को यह हिदायत [illegible] [illegible]

क्या-क्या बीमारियां पैदा होती हैं, और यह भी जोर देकर समझाया कि मैले को मिट्टी या राख से जरूर ढक देना चाहिए।

एक आदमी के मकान के सामने से हमने ढेरों कचरा साफ किया। मालूम होता है कि हमारी सलाह उसके गले उतर गई है, और उसने कुछ-कुछ हमारी बताई हुई पद्धति का एक पाखाना बना लिया है। हमें कुछ ऐसा जान पड़ा कि उसे अपने इस काम के लिए गर्व था, और हमने जब उसे धन्यवाद दिया तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ।

पर हमारा हार्दिक धन्यवाद तो पड़ोस के एक गांव की पाठशाला के तीन बालकोंने प्राप्त किया। पाठशाला के आगे से डोल और फावड़ा लिए हम लोगों को नित्य सवेरे गुजरते हुए ये बालक देखा करते थे। इस हफ्ते उनमें से कुछ बालकोंने जिस गांव में हम काम करते थे वहां हमारे पीछे-पीछे आने का निश्चय किया। कुछ देरतक तो खड़े-खड़े देखते रहे, फिर उनमें से तीन आगे बढ़े, और उन्होंने कहा कि क्या आप हमें ये डोल उठाने देंगे? हमने कहा कि हां, तुम यह काम कर सकते हो। फिर वे तो रद्दी कनिस्तर के टुकड़े उठा लाये और मैला उठाने में मदद करने लगे। यह सब काम उन्होंने खूब अपनी राजी से किया, हमें जरा भी नहीं कहना पड़ा। दूसरे दिन उनकी छुट्टी थी, इसलिए उस दिन भी वे आये। [illegible] अगर संक्रामक सिद्ध हुआ तो हमारे पास सफाई का काम [illegible] की [illegible] जल्द तैयार हो जायगी। [illegible] [illegible] की [illegible] भी [illegible] आ रही हैं, [illegible] [illegible] है कि, [illegible] सफाई [illegible]

अनुशीलन की आवश्यकता

मेरे एक परम मित्रने, जो 'हरिजन' के लेखों को खूब सावधानी के साथ पढ़ा करते हैं, नीचे लिखी यह आलोचना शुद्ध हृदय से मेरे पास भेजी है:—

"आपके दो सप्ताह पहले के साप्ताहिक पत्र में एक यह वाक्य आया है कि—'खली बैलों की तो उत्तम खुराक है ही; पर अब सतीश बाबू लिखते हैं कि इसका नहाने के साबुन के रूप में भी उपयोग हो सकता है।' मुझे यह [illegible] हुए हंसी आ रही है। सतीश बाबू नहाकर कितना स्वच्छ होना चाहते हैं इसी पर सब निर्भर करता है। मलबार में तेल चुपड़के नहाने का जो रिवाज है उस तेल को छुड़ाने के लिए ही खली वहां काम में लाई जाती है। पर इस ऊपरी तेल को छुड़ा देने के अलावा उस खली से कोई और मतलब नहीं निकलता। मैं यह नहीं मानता कि खली नहाने के साबुन की जगह ले सकती है। यह बात तो मैंने प्रसंगवश कही, [illegible] बात तो मैं यह कहना चाहता हूं कि 'हरिजन' में [illegible] के ऐसी चीजें देखी जाती हैं [illegible] रीति से उनकी सत्यता सिद्ध हो चुकी है। मैं यह आशा नहीं करता—और चाहता भी नहीं, कि दुनियाभर के कार्यों में व्यस्त महादेव देसाई समय निकालकर मेरे इस कथन का जवाब दें। पर यदि कहीं जवाब दें तो मुझे खुशी तो जरूर होगी। मैं तो मेरे मन में जो बात घर कर चुकी है उसे आपको बतला देना चाहता हूं। वैज्ञानिक विषयों के सम्बन्ध में यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करके उसे पचाने में समय भी अधिक लगता है और परिश्रम भी। जो लोग 'हरिजन' में वैज्ञानिक विषयों पर लिखते हैं, उन सबने लम्बा अनुभव प्राप्त करके अथवा गहरा अनुशीलन करने के बाद ऐसे लेख लिखने की योग्यता प्राप्त की होगी या नहीं, इस विषय में मुझे संदेह ही है।"

इस चेतावनी के प्रति उपेक्षा करने से काम नहीं चलेगा। लेकिन अपने इन मित्र को मैं यह विश्वास दिलाता हूं कि वैज्ञानिक विषयों पर लिखने की पूरी योग्यता सतीशबाबू में है। फिर वैज्ञानिक विषयों पर लिखने की जिसने योग्यता प्राप्त नहीं की उससे, फिर वह चाहे कितना ही बड़ा विद्वान् हो, इन विषयों पर इस पत्र में लिखने के लिए कभी कहा ही नहीं जाता। इस पत्र में जिन बातों की चर्चा की जाती है उनमें हम अधिक-से-अधिक सावधानी से काम लेते हैं। सतीशबाबू का जो वाक्य दिया गया वह तो सिर्फ इसीलिए कि दूसरे मित्र उसके साथ अपने अनुभव और अभिप्राय का मिलान करें। यह मिलान हमारे इन आलोचक मित्रने तो किया ही है। उस वाक्य के साथ मैंने यह भी लिखा था कि हमने यहां अभी साबुन की जगह खली का उपयोग करके देखा नहीं। हम वैज्ञानिक विषयों पर कम कितनी अधिक सावधानी से काम लेते हैं इसके एक-दो उदाहरण मैं यहां देता हूं। यह बात

तो साबित हो चुकी मानी जाती है कि पॉलिशदार चावल की अपेक्षा पॉलिशरहित चावल में पौष्टिक तत्व बहुत अधिक हैं। पर इस विषय में डाक्टरों की प्रामाणिक सम्मति देखकर ही हमने संतोष नहीं माना। अनेक स्थानों पर इसके प्रयोग किये जा रहे हैं। परामर्शदायक मण्डल के पास नई प्रश्नमाला भेजी गई है, और जिन विशेषज्ञों की सम्मतियां मंगाई गई हैं अभी उन सबका जवाब नहीं आया है। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि ये विशेषज्ञ भी यह स्वीकार करते हैं कि आज जिन प्रश्नों के बारे में उनसे विचार करने के लिए कहा जाता है उनकी तरफ पहले कभी उनका ध्यान नहीं गया था। लकड़ी का बारीक पिसा हुआ कोयला एक बढ़िया और सस्ता दंतमंजन है इस बात पर एक सज्जनने जब शंका उठाई तो डाक्टरों की राय मांगी गई, और अब डाक्टरोंने सप्रमाण हमारे पास अपनी यह राय भेजी है कि सूखा और बारीक पिसा हुआ कोयला एक सबसे अधिक लाभकारी तथा सस्ते-से-सस्ता दंतमंजन है।

पर जहाँ डाक्टर हार जायँ वहाँ ?

इस विषय पर लिखते हुए अच्छा होगा कि मैं यहां एक मनोरंजक पत्र-व्यवहार की चर्चा करदूं। अपने एक डाक्टर मित्र के पास हमने जो प्रश्न भेजे थे उनके जवाब में उन्होंने सरल भाव से यह लिख भेजा कि "यह मेरा क्षेत्र नहीं है। पॉलिशदार या पॉलिश-रहित चावल के विषय के जो प्रश्न हैं उनका सम्बन्ध औद्योगिक रसायन-शास्त्र से है, अतः जिन लोगोंने प्रयोगशाला में इस विषय के प्रयोग किये हों वही इस सम्बन्ध में अधिकारपूर्वक कह सकते हैं। मुझे दुःख है कि मैं आपके पास इस सम्बन्ध में कोई राय नहीं भेज सकता।" यह अच्छे प्रतिष्ठित और अनुभवी डाक्टर हैं, इसलिए गांधीजी को उनके इस प्रकार के जवाब की बिल्कुल ही आशा नहीं थी। उन्होंने डाक्टर साहब को उनके इस पत्र का जो जवाब भेजा वह उन्हें उलझन में तो डाल ही देगा, पर उसे पढ़कर हँसते-हँसते उनका पेट दुखने लगेगा इसमें सन्देह नहीं —

"धन्य हैं आप डाक्टरों को ! आप अपने मरीज से कहते हैं, 'अगर अपना कब्ज मिटाना है तो अनपॉलिश्ड चावल खाओ।' मरीज कहता है, 'साहब बाजार में तो यह चावल मिलता है, यह ठीक है न ?' उससे तब आप शायद यह कहेंगे, 'यह बताना मेरा काम नहीं। इसके लिए तुम किसी औद्योगिक रसायनवाले के यहां जाओ।' मुश्किल ही क्या है ! एक और भारी फीस देनी पड़ेगी, बस ! हम कैसे विचित्र युग में रह रहे हैं ! अब मैं श्रीमती-जी —से पूछूंगा, कि आपके लिए वह कौन सा चावल रांधती हैं ? पॉलिश्ड या अन-पॉलिश्ड, या जैसा आपका 'निष्णात' नौकर बाजार से खरीद लाता है ?"

दो मुलाकाती

गांधीजी के इस मौन-काल में बाहर से मिलने के लिए बिरले ही लोग आते हैं, और जो आते हैं वे भी गांधीजी को कदाचित् ही कष्ट देते हैं। पर कभी-कभी ऐसे भी अवसर आ जाते हैं जब भेंट-मुलाकात करनी ही पड़ती है। ऐसी दो मुलाकातों के बारे में मैं यहां लिखूंगा। लार्ड फरिंगडन इंग्लैण्ड की सोशयालिस्ट पार्टी के रईस हैं। ये भारत में आये थे, इसलिए गांधीजी से उनके मौनकाल में भी मिलने के लिए वे वर्धा आये। उनके प्रश्नों के उत्तर गांधीजीने लिखकर दिये। कुछ प्रश्न तो मुझे छोड़ ही देने चाहिए। कारण स्पष्ट है।' बताने की जरूरत नहीं। पर यहां मैं उन्हीं प्रश्नों को गांधीजी के दिये हुए संक्षिप्त और स्पष्ट उत्तरों के साथ दूंगा, जिनमें कि 'हरिजन' के पाठक दिलचस्पी लेते हैं।

ग्रामउद्योग-संघ का वास्तविक उद्देश क्या है इसे खुद गांधीजी के ही द्वारा जानने की लॉर्ड फॉरिंगडन की इच्छा थी।

गांधीजी—"लोगों को यह बतलाना कचरे में से कंचन कैसे पैदा होता है।"

तरुण लॉर्ड को यह उद्देश अत्यन्त आदर्शवाद का प्रतीत हुआ। इसलिए उन्होंने पूछा, "इस उद्देश को आप किस तरह पूरा करना चाहते हैं ?"

गांधीजी— सर्वार्पण करनेवाले सेवकों की सेना खड़ी करके। हमारे ये सेवक ऐसा रास्ता दिखायेंगे कि भूख से तड़प-तड़पकर मरनेवाले लोग मृत्यु-मुख से किस प्रकार बच सकते हैं। इससे दूसरा कोई रचनात्मक कार्यक्रम लोगों के सामने नहीं है।"

"तब तो आपको असंख्य सेवक चाहिए। ये सेवक आपको किस प्रकार मिल सकेंगे ?"

गांधीजी—"यदि वह समय आ गया होगा तो हमें काम करनेवाले सेवक मिल ही जायेंगे।"

लॉर्ड फॉरिंगडन—"ग्रामों के कर्ज के प्रश्न का आप किस तरह हल करना चाहते हैं ?"

गांधीजी—"इस प्रश्न को हमने हाथ में नहीं लिया है। राजसत्ता प्रयत्न करे तभी यह हल हो सकता है। मैं तो अभी हाल ऐसी ही चीजों का पता लगा रहा हूँ जिन्हें लोग राजसत्ता की सहायता के बिना ही कर सकें। यह बात नहीं है कि मैं राजसत्ता की मदद नहीं लेना चाहता। पर मैं यह जानता हूँ कि वह सहायता मुझे मेरी शर्तों पर नहीं मिल सकती।'

लार्ड फॉरिंगडन साम्प्रदायिक प्रश्न के विषय पर गांधीजी के विचार जानने के लिए अधीर थे।

"यह सवाल आखिर कैसे हल होगा ?" उन्होंने पूछा।

गांधीजी—"अभी तो इस प्रश्न का हल करना अशक्य हो गया है। मुझे लगता है कि इसे अब समय ही हल करेगा। अगर मैं मुसल्मानों को कोरा चेक देदेने की बात हिंदुओं को समझा सकूं तो यह प्रश्न आज हल हो जाय। पर दोनों सम्प्रदायों के बीच आज इतना अधिक अविश्वास भर गया है कि निकट भविष्य में इस प्रश्न का हल होना मुझे तो असंभव ही मालूम देता है।"

और दूसरा प्रसंग यह था कि जब गांधीजी खुद ही एक सज्जन से मिले। यह सज्जन किसी समय साबरमती-आश्रम में हमारे साथ रहते थे, पर अब विरक्त हो गये हैं। इनका नाम जयकृष्ण भणसाली है। भणसालीजी बंबई-यूनिवर्सिटी के ग्रेज्युएट हैं। उन दिनों इनमें खूब जोश था और आगे पढ़ने की इच्छा थी। 'रिसर्च'-छात्रवृत्ति में लात मारकर असहयोग के जमाने में ये गांधीजी के पास आये, और हमारे गुजरात-विद्यापीठ में अध्यापक हो गये। फिर वे जेल चले गये। जेल में अपनी अमीरी आदतें छोड़ना सीखा, और वहां से आत्मदर्शन की उत्कट लालसा लेकर निकले। स्व० श्यामजी कृष्ण वर्मा रिश्ते में इनके मामा होते थे, और उनका यह इरादा था कि भणसाली मेरी जगह लें। इसलिए उन्होंने भणसालीजी को यूरोप बुलाया। यह वहां गये तो, पर तुरंत ही लौट आये। यूरोप में उन्होंने जो देखा उससे वह कांप उठे। वहां से वापस आकर वे आत्मदर्शन के लिए कठिन-से कठिन

साधना करने लगे। कुछ वर्ष हमारे साथ आश्रम में रहे। वहां लंबे-लंबे उपवास किया करते थे। आश्रम में सबसे अंतिम और सबसे लंबा उपवास उन्होंने ५५ दिन का किया था। और उसके बाद हमारे सारे रहन-सहन से भी उनका दिल विरक्त-सा होगया, और एकदिन आश्रम छोडकर चले गये। इसके बाद उन्होंने अपने शरीर को इतना अधिक दंड दिया कि ओठो को तांबे के मोटे तार से सी लिया, और लोहे के कमरपट्टे और टाट की लगोटी के सिवाय तन पर एक धज्जी भी नही रखी। और द्वार-द्वार भिक्षा मांगने लगे। पारसाल गांधीजी जब हरिजन-प्रवास कर रहे थे, तब उन्हें भावनगर में भणसालीजी मिले। कई साल से उन्होंने मौनव्रत ले रखा था, एक शब्द भी किसी से नही बोलते थे। पर उन्हे कुछ ऐसा लगा कि उनका गांधीजी के साथ का आध्यात्मिक संबंध पहले की अपेक्षा अब अधिक निकट का हो गया है। तीन-चार महीने हुए कि उन्होंने गांधीजी को एक पोस्टकार्ड मे यह लिखा कि, 'मैं पैदल ही वर्धा आना चाहता हूँ और वहां आपसे मिलने का मेरा विचार है, आपके साथ बात करने के लिए ही मैं अपना मौनव्रत तोड़ूंगा।' पैदल चलते-चलते कुछ महीनों मे आपके पास पहुँचूगा।' मुझ-जैसे मनुष्य को तो यह डर था कि गांधीजी का कार्यक्रम अनिश्चित देखते हुए यह मुलाकात कभी हो ही नही सकती। किन्तु त्यागी भणसाली को ऐसी कोई शका नहीं थी, इसलिए वह तो आ ही पहुँचे। नंगे शरीर, नगे पैर उन्होने महीनो पैदल यात्रा की थी। ससार में उनके पास ऐसी एक भी चीज नही जो उनकी अपनी कही जा सके। वे हमारे 'स्वजन' होते हुए भी हमसे कितने भिन्न दिखाई देते थे! न तो उन्हे कोई प्रश्न पूछना था, न किसी जिज्ञासा का समाधान करना था। प्रश्नादि तो सब हमीं को पूछने थे। किसी ने दे दिया तो पानी में सान-सूनकर आटा या नीम की पत्तिया खाकर शरीर-निर्वाह करने की आदत उन्होंने बरसो से डाल रखी है। आकर बेचारे एक कोने मे बैठ गये। किसी के काम मे उन्होंने कोई खलल नही दिया, और उनकी शान्ति मे बाधा कौन दे सकता था। उन्होने जिज्ञासा जीत ली है, पर हमने तो नहीं जीती, गांधीजीने भी नहीं जीती। गांधीजीने दो दिन शाम को प्रार्थना के बाद उन्हें बुलाया, और स्वय लिखकर उनसे कुछ प्रश्न पूछे। भणसालीजीने तीन वर्ष के बाद मुंह खोला।

"तुम्हें यह आहार अनुकूल पड़ता है?"

"जी हां, बिल्कुल अनुकूल।"

"शायद नीम की पत्तियों से बहुत मदद मिलती होगी?"

"निस्सन्देह। जाड़े के दिनो मे मुझे पत्तिया छोड़ देनी पड़ती है, क्योंकि इस शरीर मे कुछ-कुछ सधिवात की शिकायत रहती है।"

"पत्तिया क्या बहुत कड़वी नहीं लगती?"

भणसालीजी हँस पडे, "नीम में भी अनेक जातें होती है। और कुछ पत्तियां कड़वी होती हैं, और कुछ नही होती। जीभ को खाते-खाते टेव पड जाती है, और यहातक कि फिर वही चीज स्वादिष्ट लगने लगती है। यहा भी स्वादेन्द्रिय के निग्रह का प्रश्न आ खड़ा होता है!"

"और तुम सोते कहा हो? तुम्हारे पास ओढने-बिछाने को तो कुछ भी नहीं।"

"चाहे जहां पड़ रहता हूं। जो मिला वही ओढ-बिछा लिया।"

"गद्दा, चद्दर और ओढने का कपडा कोई दे तो तुम्हे कोई आपत्ति तो नही होती?"

"जी नहीं। पर मैं अकसर पेड़ के नीचे, या योंही खाली जमीन पर आकाश के नीचे, और मरघट में सो रहता हूँ।"

"कभी साप या व्याघ्रादिने तो नहीं सताया?"

"शायद ही। एक बार बिच्छूने काट खाया था, पर ऐसा लगा जैसा किसी कीडे-मकोडेने काटा हो। साप तो मुझे कई बार मिला है। एक बार चीता भी मिला था। पर उनकी मेरे साथ कोई शत्रुता तो थी नहीं, और मुझे भय भी नही लगा।"

"भिक्षा मांगने को क्या तुम्हे कभी बोलना पड़ता है?"

"जी नहीं।"

"आटा हमेशा मिल जाता है?"

"जी नहीं। कितनी ही बार मुझे भूखा रहना पड़ता है। एक बार तो लगातार तीन दिन भूखा रहना पडा। कुछ लोग मुझे खुशी से खिला देते हैं, पर कितने ही लोग मुझे सच्चा नही मानते—कुछ तो धूर्त समझते हैं और कुछ खुफिया पुलिस का आदमी भी।"

"अपने जिन पुराने मित्रो और सबधियो के लिए तुम इतने चिन्तित रहते थे, क्या उनमें से किसीकी तुम्हे कभी याद आती है?"

"कभी नही, वह सब याद अब नहीं आती। अब तो सब भूल-भाल गया हूं।"

"गांवो की यह दारुण दरिद्रता देखकर क्या तुम्हें दुख होता है?"

"होता है। उसे देखकर मुझे आपके व सब लेख याद आते हैं। आपके 'यंग इंडिया' मे लिखे हुए वे 'पतग-नृत्य' जैसे हृदय-विदारक लेख मुझे याद आते हैं, और ऐसा लगा करता है कि वह 'पतग-नृत्य' तो जारी ही है, उसकी प्रलय-भीषणता तो बढ़ती ही जा रही है। वह सब देखकर मुझे ऐसा लगता है कि जो यह मुट्ठीभर आटा खाता हूं उसे खाने का भी मुझे हक नहीं। मुझे सतोष बस इतना ही है कि इससे अधिक मैं किसी का न कुछ मूसता हूं न लूटता हूं। और श्मशान में मृत्यु का जो प्रत्यक्ष दर्शन होता है यह भी मेरे लिए आश्वासनरूप है।"

"तो तुम किसी दिन फिर मेरे पास आ जाओगे न, और तुम्हारे सबध मे मैं जो स्वप्न देखा करता था उसे पूरा करोगे न?"

"मैं चाहता तो हूँ कि 'हा' कह सकूं। पर मैं क्या जानूं, जाननेवाला तो ईश्वर है। शायद ऐसा संयोग आ जाय। अस्पष्ट-सा संयोग संभव तो है।"

"सारे दिन तुम क्या विचार किया करते हो?"

"सदा मंत्र जपा करता हूं। मुझे कोई वस्तु क्षुब्ध नहीं करती, न किसी वस्तु से व्यथा ही होती है।"

"तो यह कहा जा सकता है कि तुम्हारा सारा भय चला गया है?"

जी हा। मैं तो शांति के महासागर में तैर रहा हूं। यह

[७६वे पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

सब आप का ही प्रताप है। आपने ही मुझे यह सब सिखाया है, मै अपना वह अतीत काल बहुत करके भूल गया हूँ सही, पर आप गीता और 'भगवद्भक्त की यात्रा' (Pilgrim's Progress) पर जो प्रवचन करते थे उनको नहीं भूला हूं। मुझे अखंड शांति प्राप्त हो गई है। सोने में शायद ही स्वप्न बाधा देते हैं। लोग

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १९ एप्रिल, १९३५

मूक सेवा

आश्रम के एक पुराने साथी सीलोन-निवासी श्री जयरामदास, जिनके जरिये कि सीलोन के हाल के भयंकर मलेरिया-प्रकोप के सम्बन्ध मे थोडी-बहुत जानकारी प्राप्त करने की मैं कोशिश करता रहा हूँ, अपने एक पत्रमे लिखते है —

"आपके ८ तारीख के पत्र का जवाब देने मे जो इतना विलब हुआ है उसके लिए मै क्षमा-याचना करता हूं। देरी का कारण यह है कि ५ तारीख से मै बराबर बाहर था, और सेवा-केन्द्रो का काम देख रहा था। वहा मुझे फिर से बुखार आ गया और उसके बाद आव पडने लगी। ठीक तरह से सेहत मिलने के पहले ही मलेरियाने मुझे फिर धर दबाया।

आपको यह लिखते हुए मुझे खुशी होती है कि अब इस सक्रामक बीमारी की बाढ उतार पर है, और हमने अपने ११ सेवागृहो में से ६ को अब बद कर दिया है।

नीचेलिखे रोगियो की हमने सेवा-शुश्रूषा की है, जिनमे भाग्य से एक की भी मृत्यु नही हुई —

गाव जहा सेवागृह खोला गया	मरीज दाखिल किये गये	अच्छे होकर चले गये	जिनका अब भी इलाज हो रहा है
डिप्पितिगा	२१२	१८५	८७
मावनेल्ला	७८	५३	२१
बलबतगामा	१५७	१५७	- बद होगया,
हनमतगामा*	१७७	१२२	५५
वेदामलदीनिया	२१४	८८	२६
अरकोटाबेल्ला	८८	३०	१८
कईगमुवा	६३	६३	— बद होगया
अरमा	१३५	१३५	,,
ताल्गसपितिया	१०२	१०२	— ,,
उस्मापितिया	३९	३९	— ,,
	१८९६	१७२०	१६७

अब केवल ८५ स्वयसेवक काम कर रहे है, जिनमें २१ तो भिक्खु है और ६४ गृहस्थ, इसके अलावा १२ भिक्खु और ७८ गृहस्थ हमारे काम म सहायता दे रहे है।

यहा अब थोडा मेह पड गया है, और मौसिम ऐसा ही अनुकूल बना रहा, तो हमे आशा है कि बीमारी और भी कम हो जायगी।"

सीलोन से मेरे पास इस आशय की अपीले आई थी, कि मै इस सकट-काल मे वहा के लोगो की कुछ सहायता करूं। जितना मुझ से हो सका मैने इस विषय मे पूछताछ की। सीलोन मे तामिल लोगो की एक बहुत बडी बसीकत है। जहातक संभव था, उस बस्तीने लोगो को इस सकट-काल मे मदद दी। सहायता का अधिकाश काम सीलोन-सरकार के हाथ मे था। मगर लोगो की दरिद्रता और आरोग्य-सम्बन्धी प्रारम्भिक नियमो के विषय मे उनकी अज्ञानता इन दो चीजो के कारण उस सहायता से लोग अधिक लाभ नही उठा सके। श्री जयरामदास-जैसे कार्यकर्त्ताओंने अवश्य स्वेच्छा से कुछ सेवा-सहायता पहुँचाई। मलेरिया के इस भयकर प्रकोप से सबसे बडा लाभ यह हुआ कि सीलोन के कुछ भिक्खु विहार छोड-छोडकर सेवा करने के लिए निकल पडे। ये लोग कोई परिश्रम का काम नही करते। ये बस थोडा अध्यापन का काम करते है। अगर चाहे तो समाज की वास्तविकरूप मे सेवा करके ये लोग इस सुन्दर सुहावने द्वीप को दरिद्रता तथा रोग से मुक्त कर सकते है, और प्रकृति के दिये हुए उसके जिस सौन्दर्य को मनुष्यने आज निर्दयतापूर्वक छीन लिया है उसे वे लौटा ला सकते हैं। भिक्खुओ का यह धर्म और कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे सीलोन की झोपडी-झोपडी मे स्वच्छतादेवी का सदेश पहुँचा दे। यह अपराध नही तो क्या है कि जब बीमारी की भयकरता कम हो गई तब तो हम निश्चित होकर बैठ रहे या सो गये और जब बीमारी फिर सिरपर नाचने लगी तब जागे और घबराकर इधर-उधर दौडने लगे? सच्ची सेवा तो इसी मे है कि ऐसे उपाय ढूढ निकाले जायं, कि जिससे बीमारी फिर सिर उठा ही न सके।

सरदार वल्लभभाई पटेल हमे आज एक पदार्थ पाठ सिखा रहे है। वे बोरसद मे, जहा प्लेग फैला हुआ है, सेवा-सहायता के कार्य मे जी-जान से जुटे हुए है। डॉ० भास्कर पटेल और कुछ स्वयसेवको की सहायता से वे वहा रोगियो को दवा-दारू की मदद दे रहे है। पर उनका स्थायी काम तो यह हो रहा है कि वे वहा तमाम गदगी को साफ करने मे लगे हुए है। एक'एक करके प्लेग से आक्रान्त तमाम गावो की वे सफाई कर रहे है। लोगो से वे कहते है कि अपने इन अधकारपूर्ण मकानो को छोड दो और मैदान मे जाकर तबतक अपने खेतो मे रहो। इस बीच मे वे मकानो के छानी-छप्पर को खोलवा देते है, और उनमे रोशनी, धूप और हवा आने देते है। और तमाम रोडे और मलबे को हटाते है, कूडे-कचरे को साफ करते है और गदी छुतही जगहो के कीटाणुओ को नष्ट कर देते है। गावो मे वे ऐसे लाखो पर्चे बँटवा रहे है जिनमे इस महामारी से बचने की हिदायते लिखी हुई है। न तो सरदार वल्लभभाईने धन के ही लिए कोई अपील निकाली है और न स्वयसेवको के ही लिए। स्वयसेवक सब स्थानीय ही भरती किये गये है। प्लेग सभी गावों में नही है। और जिस जगह सकट आया हुआ है वहा सहायता की भावना अगर जाग्रत नही की जा सकती, तब यह एक विवादास्पद प्रश्न है कि जबतक सहायता की स्पिरिट वहा के लोगो मे न आवे तबतक क्या उसकी प्रतीक्षा की जाय? यह हो सकता है कि विशेषज्ञो को बाहर से बुलाया जाय और लोगो को वे रास्ता सुझायें। मगर कार्यकर्त्ता तो निश्चय ही वहीं इर्दगिर्द के होने चाहिए, और इसी तरह वही किसी पास-पड़ोस से पैसे की भी सहायता मिल जानी चाहिए। बंबई तथा दूसरे बडे-बडे शहरो को ऐसे कामो के लिए उन स्थानो मे, जहा पैसा नही मिल सकता, खूब दिल खोलकर पैसा देना चाहिए,—पर साथ ही यह भी जरूरी है कि विपदग्रस्त लोग अपनी सहायता आप करना सीखे।

अग्रेजी से]

मो० क० गांधी

*केवल स्त्रियों और बच्चों के लिए खोला गया।

हरिजन और सूअर

दो महीने का अर्सा हुआ कि आगरे के सेठ अचलसिंहजीने मुझे एक पत्र लिखा था। उन्होंने उस पत्र मे एक ऐसे दृश्य का वर्णन किया था, जिसे उन्होंने अपने जीवन में पहली ही बार

देखा था। सूअरो के मुंह रस्सी से खूब कसके हरिजन उन्हे जिन्दा ही भून रहे थे यह हृदयविदारक दृश्य उन्होने अपनी आखो से देखा था। उस वर्णनने तो मुझे दहला दिया। मगर मैं यह जानता हूँ कि सूअर को सिक्ख तथा आध्र देश के हजारो हिंदू भी खाते हैं। सभवत. भारत के दूसरे प्रातो में भी इतर हिंदू सूअर का मांस खाते हैं। निश्चयपूर्वक तो सिर्फ यही कहा जा सकता है कि, निरामिषभोजियो के अतिरिक्त, मुसलमान ही केवल एक ऐसे हैं जो कभी सूअर का गोश्त नही खाते।

वर्धा के मेरे साथियोने, जिन्होने अपनी आखो सूअरो का यह निर्दय वध देखा है, मुझे बतलाया है कि जिनके हृदय में कुछ दया होती है वे लोग तो आनन-फानन उसका दम घोटकर तुरत समूचा ही उसे भून डालते हैं। पर जिन लोगो के दिल मे दयाभाव का लेश भी नही होता वे तो उसे जिन्दा ही भूनते हैं। अच्छी मजबूत लाठियां लेकर चारो तरफ से लोग आग को घेर लेते हैं, और जब वह गरीब जानवर मारे दर्द के ऐंठता हुआ इधर-उधर भागने की कोशिश करता है तब वे लोग उसे लाठिया मार-मारकर उस दहकती हुई आग की तरफ ठेलते हैं। मैने श्री बार्पानीड्को लिखा था कि आपके आध्र में सूअर को किस तरह मारते हैं। उनका यह जवाब आया है :—

"आध्र के भिन्न-भिन्न स्थानो में सूअर को मुख्तलिफ तरीको से मारते हैं, और वे सभी अत्यन्त निर्दयता-पूर्ण हैं। वे तरीके ये हैं :—

"१- सुअर को पकडकर उसकी टागे एक काफी लम्बी रस्सी से खूब कसके बाध देते हैं, और फिर नथुनो के ऊपर उसका मुह एक दूसरी रस्सी से खूब मजबूती से कस दिया जाता है। इससे उसकी सास रुक जाती है, और कुछ समय बाद दम घुटने के कारण वह मर जाता है। आध्र देश में सबसे अधिक यही तरीका प्रचलित है।

२—जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, सूअर की टागो को खूब कसके बाध देते हैं, और उसके मुह को रस्सी से कसने के बजाय, उसे पानी मे डुबो देते हैं, और वह वहीं तडपता हुआ मर जाता है।

३—तीसरा तरीका यह है कि टागो को बाध देते है और भाला चुभो-चुभोकर उसे मार डालते हैं। सूअर चूंकि बडा बलिष्ठ जानवर होता है इसलिए वह आसानी से नही मरता और बडी देरतक तडपता रहता है।

४—एक तरीका मारने का यह भी है कि उसकी पिछली और अगली टागो को अलग-अलग बाध देते हैं और दो आदमी उसे चित लिटाकर उसकी टागो को खूब जोर से पकडे रहते है, फिर एक तीसरा आदमी उसकी छाती पर तबतक खूब प्रहार करता है जबतक कि वह मर नही जाता। यह तरीका सबसे अधिक कष्टदायक है।

मुझे यह भी बतलाया गया है कि आजकल कुछ लोग बंदूक से भी सूअर को मारते हैं, पर यह तरीका बहुत ही कम प्रचलित है।

महँगा होने के कारण सूअर का गोश्त यो हरिजन बहुत कम खाते हैं। पर शादी-ब्याह के अवसर पर तो सूअर के मांस के बिना चल ही नही सकता। कहीं-कहीं हरिजन सूअरों के छोटे-छोटे बिठले खरीद लेते हैं, और जबतक वे कत्ल करनेलायक नही हो जाते, तबतक उन्हे पालते-पोसते रहते हैं। फिर सारा गांव मिलकर एक अच्छा मोटा-ताजा सूअर किसी हरिजन से खरीद लेता है और उसे मारकर सारा गाव आपस में बाट लेता है, उसका खर्चा सबके हिस्से में बराबर-बराबर पडता है।"

श्री बार्पानीड्ने अपने पत्र के साथ अमेरिका की छपी हुई एक छोटी-सी पुस्तिका भी भेजी है, जिसका नाम 'वी केन किल ए हॉग' (सूअर मारने के तरीके) है। इस पुस्तिका में इस बात का बडा दिल दहलानेवाला वर्णन आया है कि सूअर कैसी-कैसी बेरहमी से गोश्त की खातिर मारे जाते हैं। पर मुझ तो वह चीज दिल थाम कर किसी तरह पढनी ही पडी, और उसे पढकर जो वेदना हुई उसे कैसे बताऊँ ? सूअरो के मारने के जो तरीके उसमे दिये गये हैं उनमें निर्दयता की दृष्टि में कोई विशेष अतर नही है। अगर बेरहमी की मात्रा का खयाल किया जाय तो ऐसा लगता है कि सूअरो के मारने के लिए अपार बेरहमी की जरूरत होती है। मेरा लिखने का मतलब यह है कि इस सबध में हरिजन तो सबसे कम दोषी हैं, मानना हूँ कि वे ऐसा स्वेच्छा से नहीं करते, बल्कि निरी आवश्यकता उनसे मजबूरन यह काम कराती है। इसलिए सेठ अचलसिहने जो प्रश्न उठाया है उससे स्वत इस निश्चय की भ्रांति निकलती है कि यह सुधार हरिजनो से सबध नही रखता, बल्कि यह तो दयाधर्म का एक व्यापक सुधार है। यह ठीक नही है कि जो भी बुरी बात हमारे देखने मे आवे उसे हम गरीब हरिजनो के मत्थे मढदे।

मगर इस सुधार की आवश्यकता इस बात से कुछ कम नही हो जाती कि उसका हरिजनो के साथ कोई खास सबध नही है। अगर हमारी सदसद्विवेक-बुद्धि कुठित न हो गई होती, तो हम यह स्वीकार कर लेते कि मनुष्यो से पशुओ के हकूक कुछ काम नहीं है। दयाधर्म का प्रचार करनेवाली सस्थाओ का यह खास काम होना चाहिए कि वे लोगो को 'हृदय' की शिक्षा दे। मैं जानता हूँ कि मनुष्य के गुस्ताखी से भरे हुए प्रभुत्व के पैरो के तले पडी हुई यह मानवेतर-सृष्टि बुरी तरह कराह रही है। यह मनुष्य जब अपनी वासना शात करने पर उतारू हो जाता है, तब जा हो या बेजा वह किसी भी प्रकार की बेरहमी को अनुचित या निदनीय नही समझता।

अंग्रेजी से]　　　　मो० क० गांधी

एक उदार दान

ठक्कर बापा जब त्रावणकोर में दौरा कर रहे थे उस दर्म्यान में केरल प्रातीय संघ के अध्यक्ष श्री परमेश्वरन् पिल्लेने सघ को अपनी जमीन का एक हिस्सा हरिजन-आश्रम के लिए दान किया था। यह जमीन त्रावणकोर राज्य के अतर्गत विदुर नेडुमगद गाव में है। श्री पिल्लेने सभा में इस दान के सबंध में जो छोटा-सा भाषण किया था उससे उनके दान का उद्देश पूर्णतया समझ में आ जाता है। वह भाषण यह है . —

"चौदह बरस से ऊपर हुआ, जब यहा एक पाठशाला खोली गई थी। दस महीने का अर्सा हुआ कि मैने करीब आठ सौ रुपये लगाकर इस पाठशाला का मकान फिर से बनवा दिया। आजकल इस पाठशाला में तीन कक्षाएँ और ७५ विद्यार्थी हैं। इन-में ४० हरिजन हैं—३४ बालक तथा ६ बालिकाएँ; और १६ बच्चे 'कनी' जाति के पढते हैं। यह एक जंगली जाति है। हरिजनों को जो कष्ट हैं वे तो कनी लोगो को भोगने ही पड़ते हैं, पर उनकी

दशा हरिजनों से भी खराब है। वे अब भी जगली ही हैं; और इसमे जो लोग उनके अज्ञान का अनुचित लाभ उठाते है उनके घोर अत्याचार का शिकार उन्हें होना पडता है।

मेरा बहुत दिनों से यह विचार था कि ऐसी पाठशाला जबतक किसी आश्रम के साथ न होगी तबतक उसका उद्देश पूर्णत सफल होने का नहीं। ऐसे आश्रम मे एक-दो-सेवक दिन रात रहे, और वे हरिजन-सेवा का काम अपने हाथ में ले ले, और उसे नित्य नियमपूर्वक करे। इसीलिए मैने आश्रम के लिए यह एक छोटा-सा मकान बनवाया है। आश्रम के निमित्त मैने दस एकड जमीन भी अलग कर दी है, जिसमें से ८॥ एकड जमीन पर करीब दो हजार सुपारी के पेड लगवा दिये है। दो साल में इन पेडो मे फल आने लगेगे। सुपारी के दाम तो अच्छे आ ही जाते हैं, इससे आश्रम को आमदनी का यह एक अच्छा जरिया हो जायगा। आश्रम के मौजूदा मकान पर सिर्फ १५०) ही खर्च हुए हैं। मेरा यह विचार है कि इसमे एक छप्पर तो दवाखाने के लिए और दूसरा छप्पर ग्राम-उद्योग-विभाग के लिए और डलवा दिया जाय। पाठशाला को राज्य की ओर से २५॥) मासिक सहायता मिल रही है। इस तरह पाठशाला तो स्वावलबी रहेगी ही। मेरा विचार ऐसे ५ हरिजन विद्यार्थियो को तुरत ही ले लेने का है जो आश्रम मे ही रहकर विद्याध्ययन करे। इनमे २ विद्यार्थी कनी-जाति के होगे। एक ऐसे कार्य-सचालक की नियुक्ति कर दी गई है जो आश्रम मे विद्यार्थियो के साथ रहेगा। छै महीन बाद ५ और विद्यार्थी दाखिल करने का मेरा विचार है। इस तरह कुल १० विद्यार्थी हो जायँगे। आश्रम के सचालक का बाहर के हरिजनो की, और खासकर कनी-लोगो की, सेवा का एक पूरा कार्यक्रम बनाना होगा। मेरी यह खास इच्छा है कि यह आश्रम खादी-कार्य का एक सुदर केन्द्र बन जाय। मुझे आशा है कि कुछ दिनो में दवाखाने का भी काम शुरू हो जायगा, जो हरिजनो के लिए आशीर्वादस्वरूप सिद्ध होगा। आश्रम का ग्रामउद्योग-विभाग अखिल भारतीय ग्रामउद्योग-सघ के साथ सबद्ध कर दिया जायगा। इस विभाग मे इधर के जगलो में पैदा होनेवाली बॉस की कम-चियो की टोकरिया और चटाइया छोटे पैमाने पर तैयार हुआ करेगी। तीन कर्घे भी रहेंगे। मेरा यह विचार है कि जहातक हो नागर कोइल के हाथकते सूत को ही यहा बुनवाया जाय। इस विभाग मे हरिजन बालको को काम सिखाया जायगा।

इस विचार से कि ऐसी सस्था हरिजन-सेवक-सघ की अग-स्वरूप रहकर ही अच्छा काम कर सकती है, मैने पाठशाला, आश्रम का भवन, और १० एकड जमीन यह सब हरिजन-सेवक-संघ की करल प्रान्तीय शाखा के सुपुर्द कर दिया है। मुझे आशा है कि इस काम के लिए हमारा सेण्ट्रल बोर्ड आर्थिक सहायता देगा। पर इस सस्था का एक तिहाई खर्चा मैंने खुद ही देना स्वीकार कर लिया है। आज जो यह अल्पारंभ हो रहा है भविष्य में उससे हरिजनों की और खासकर कनी लोगो की सच्ची सेवा होगी ऐसा स्वप्न मैं देख रहा हूँ।"

इस उदार दान देने के लिए श्री पिल्ले को मै बधाई देता हूँ, और यह आशा करता हूँ कि इस आश्रम की ओर चूकि दाता को स्वय प्रेमपूर्वक ध्यान देना है इसलिए हरिजन उसका पूरा सदुपयोग करेगे।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

अस्पृश्यता का ही परिणाम है

कराईकुडी में नट्टार लोग हरिजनों पर जो अत्याचार ढा रहे है उससे 'हरिजन-सेवक' के पाठक भलीभांति परिचित हैं। अब राजपूताने से भी वैसी ही एक खबर आई है। जयपुर राज्य के अतर्गत सीकर के ठिकाने में खुडी नामका एक छोटा-सा गाँव है। मरे पास जो पत्र आये है उनमे इस बात की पुष्टि होती है कि गत २८ मार्च को राजपूतो की एक टोलीने जाटों की एक बारात को घेर लिया और बेचारे निहत्थे जाटों पर उसने बुरी तरह लाठिया बरसाई— गुस्ताखी उन बारातियो की यह थी कि उनका दूल्हा घोडे पर सवार था।* इधर दुनिया के इस हिस्से मे यह रिवाज मालूम देता है कि शादी-ब्याह के अवसर पर जाटो को हाथी या घोडे को सवारी के काम मे नही लाना चाहिए। यह विश्वास किया जाता था कि दोनो पार्टियों में समझौता हो गया है और किसी भी अवसर पर जाट लोग हाथी या घोड़े को सवारी के काम मे ला सकते है। पर इन घटनाओ मे तो यह जाहिर होता है कि जिसने यह करार कराया था वह उसका पालन कराने मे राजपूत लोगो पर जोर नही डाल सका। कहा जाता है कि राजपूतोंने इस लाठी-चार्ज के पहले ही एक जाट को कत्ल कर दिया। ४० आदमियो से ऊपर ही लाठियों से सख्त घायल हुए, और एक आहत तो बेचारा मर ही गया।

हमे आशा करनी चाहिए कि राज्य के अधिकारी इस मामले की पूरी-पूरी तहकीकात करेगे और गरीब जाटो को ऐसा उचित सरक्षण देगे कि जिससे वे उन सामान्य अधिकारो को अमल में ला सके जो न्यायत मनुष्यमात्र को प्राप्त है।

हमारे साथ इस घटना का यहा यह सबध है कि यह मूर्खता-पूर्ण अत्याचार इस अस्पृश्यता का ही, इस विश्वास का ही एक प्रत्यक्ष परिणाम है कि ईश्वरने जो मानव-सृष्टि सरजी है उसमे कुछ मनुष्य दूसरो से बड़े या ऊँचे है, और यह दर्प-भावना इस हद तक पहुँच जाती है कि वे छोटे आदमी अस्पृश्य ही नही, अदर्श-नीय तक हो जाते हैं! खुडी गाव के जाटो पर जो अत्याचार हुआ है वह अस्पृश्यता का ही एक प्रकार है- हा, 'हरिजन-सेवक' के पाठक अस्पृश्यता के जिस रूप से परिचित हैं उससे यह अस्पृ-श्यता सिर्फ मात्रा मे ही भिन्न है। अस्पृश्यता के उग्र रूप को नष्ट करने मे जहां हम सफल हुए कि उसके शेष रूप तो निश्चय ही नष्ट हो जायँगे। इसलिए यह जरूरी है कि इस महापिशाचिनी का अत हर तरह से और जल्द-से-जल्द किया जाय।

अग्रेजी से] मो० क० गांधी

पूर्ण प्रायश्चित्त

कुछ समय हुआ कि मैने इस पत्र मे सार्वजनिक दान पर निर्वाह करनेवाले बहराइच के एक नवयुवक के विषय मे लिखा था। बाद को वह युवक पूरा पश्चात्ताप करके मेरे पास लौट आया यह बात भी इस पत्र मे लिखी जा चुकी है। अब भी वह मगन-वाडी में रहता और हमारे साथ काम करता है। शारीरिक श्रम में वह अपना पूरा हिस्सा देता है। कुछ ही दिनो में वह बहराइच जानेलायक किराये का पैसा कमा लेगा। पर किराये का पैसा कमाकर मगनवाडी से तुरन्त ही चले जाने की उसकी इच्छा

* कहीं-कहीं तो राजपूतों के सामने गरीब जाट न तो खटिया पर बैठ सकते हैं और न हुक्का ही नली लगाकर पी सकते हैं। सं०

नहीं है। उसका विचार यहां रहकर कुछ सीखने का और कुछ अधिक लाभ उठाने का है। उसके सम्बन्ध मे जो आलोचना हुई उससे उसके बहराइच के मित्रों का दिल दुखा है। इस युवक का नाम अवधेश है। अवधेश मेरी की हुई आलोचना का औचित्य तो स्वीकार करता है, पर अपने बचाव मे यह कहता है कि वह दान ले-लेकर यात्रा करने या खाने-पीने में कोई पाप-जैसी चीज नही मानता था, क्योकि उसके कथनानुसार रामानुज सप्रदाय मे ऐसी प्रथा है। किन्तु अब चूंकि उसने अपनी गलती मान ली है, इसलिए फिर से उस भूल को न करने का उसने मुझे वचन दिया है। इस प्रकार उसने अपनी भूल से लाभ उठाया है, और जो कुछ भी कलक उसे लगा हुआ था उसे उसने मेरी आलोचना से धो डाला है। हम चाहते हैं कि दूसरे बहुत-से लोग जो अवधेश की तरह दान पर गुजर करते हैं, इस दृष्टात मे लाभ उठायें, और इसी तरह अपने जीवन मे नया अध्याय आरम्भ करे। मनुष्य से भूल होना स्वाभाविक है। पर गौरव मनुष्य का इसी मे है कि जब उसे अपनी भूल का पता चल जाय तो वह उसे सुधारने और उसे फिर से न करने का दृढ सकल्प करले।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

देहरादून के चावल और गुड़

आदमपुर में खादी-प्रेमी नर-नारियों की उस सुन्दर कला के दर्शन करके हम रात की गाड़ी से देहरादून के लिए रवाना हो गये। हरद्वार के आसपास सबेरा हुआ। नौ बजे देहरादून पहुंचे। हमे आशा थी कि गांधी-आश्रम मेरठ के मत्री भाई श्री विचित्र-नारायणजी शर्मा से स्टेशन पर भेंट हो सकेगी। पर वह न आ सके और उनकी अनुपस्थिति मे हम देहरादून के देशभक्त वकील श्री कक्कड़ महोदय के अतिथि बने। वकील साहबने बड़े प्रेम से हमें अपनाया और अपने होनहार बच्चो की सहायता से हमारी हर तरह खातिर की, जो हमारी तरह अचानक आये हुए अतिथियो की की जा सकती थी।

हमे सबसे अधिक आनन्द तो वकील साहब की ग्रामवृत्ति देखकर हुआ। अतिथियों को भी आपने बड़े उत्साह और चाव से गुड की चाय और गुडमिला दूध ही पिलाया। उन्होने यह भी सुनाया कि जब से घर में गुड का चलन चला है, शकर की चाय पीनेवाले उनके शौकीन बच्चोने चाय पीना ही छोड दिया है, और अब वे केवल दूध पीते हैं। इस प्रकार गुड से उन्हें दोहरा लाभ हुआ—एक तो चाय की आदत छूटी और दूसरे गुड़ और दूध दोनो से उन्हें प्राण-पोषक तत्व मिलने लगे।

हमने सुना था कि देहरादून के चावल और वहां का गुड़ मशहूर है। हम इन्ही दो चीजो की खोज मे देहरादून पहुंचे थे। मेरठ मे जब भाई विचित्रनारायण से हमें यह मालूम हुआ कि देहरादून तो उनका वतन है, तो हमें बड़ी खुशी हुई। तत्काल ही हमने उनकी सहायता से देहरादून के इन दो प्रसिद्ध उद्योगो का अध्ययन करने का निश्चय किया और उन्हे भी देहरादून चलने के लिए राजी कर लिया।

वह मेरठ से सीधे देहरादून पहुंचे थे और हम आदमपुर होते हुए वहां पहुंचे। वकील साहब के घर उनसे भेंट हुई। स्नान और जलपान से निपटकर हम तांगों पर सवार हुए और देहरादून से करीब सात मील पर हिमालय की हरी-भरी पहाड़ियो की गोद में बसे हुए नवादा ग्राम पहुंचे। इस ग्राम में एक पहाड़ी टीले पर अपूर्व वनश्री से घिरा हुआ शर्माजी का एकाकी मकान खड़ा हुआ है। उनके वृद्ध माता-पिता और दूसरे कुटुम्बी यहीं रहते हैं। हम उनसे मिले और परस्पर प्रसन्न हुए। थोड़ी देर सुस्ताये और चावल की चर्चा मे लग गये। शर्माजी के घर नया बासमती धान आकर पड़ा था। थोड़ा धान लिया, पास मे चक्की रक्खी, और दलने बैठ गये। पर चक्की भारी थी, हाथ नये थे; दलने के बजाय धान पिसने लगा और वह प्रयोग छोड देना पड़ा। जब चक्की को हल्का करके फिर दला तो पूरे चावल मिले। बड़ी खुशी हुई। दले हुए चावलो को भूसी से अलग किया, झरने से झाग और कनकी और चावल अलग-अलग निकाल लिये। हमारे इस प्रयोग में उनके वृद्ध माता-पिता सहित शर्माजी का सारा परिवार हमारे साथ हो गया और उसमे पूरी दिलचस्पी लेने लगा। शर्माजी का उत्साह तो वातावरण मे छाया ही हुआ था।

धान दल चुकने के बाद शर्माजी के पिताजी के साथ बड़ी देरतक देहरादून और गुजरात के विविध चावलो और उनके गुण-दोषो की रसमय चर्चा होती रही। उसके बाद शर्माजीने हमे हथकुटे चावल और चक्की के आटे की रसोई जिमाई।

दुपहरी वही बिताकर हम फिर नीचे उतरे और बदरीपुर आये। यहा रास्ते में श्री रगीलाल चौधरी का गुड़ का कारखाना देखा। पास ही मे उनका कोल्हू चल रहा था। एक सायबान के नीचे चार भट्टियो पर चार बड़े-बड़े कड़ाह रक्खे हुए थे, जिन-मे ईख का रस उबल रहा था। सायबान के बाहर एक कोने मे पानी से भरी मिट्टी की एक अधफूटी हँडिया रक्खी थी, जिसमे पूलू की छाल भीग रही थी। इस छाल का चिकना पानी बड़ी सफाई के साथ रस का मैल छुड़ा देता है और उसकी पकी हुई चासनी को कसरिया रग दे देता है। देहरादून मे इस रस की जो खास चीज बनती है, वह गुड़ नहीं, अदरकी कहलाती है और बड़ी साफ और स्वादिष्ट होती है। अदरकी बनाने की क्रिया हमें बहुत ही स्वच्छ, सरल और सस्ती मालूम हुई। अदरकी के रस को कुछ अधिक ताव देने पर उसका गुड और गुड के रस को थोड़ा और तपाने पर उसकी 'शकर' बनती है, जो बड़ी मजेदार होती है। इस तरफ गुड के चूरे को 'शकर' कहते हैं, और शकर को खाड। देहरादून मे अदरकी का भाव साढे पाच रुपये मन का है। १०० मन ईख से साधारणतया १२ मन अदरकी बनती है, पर इस साल पाले के कारण ईख पर बुरा असर पड़ा है, और १२ के बजाय १० मन अदरकी बैठ रही है। मामूली गुड़ की तुलना मे इस अदरकी की एक विशेषता यह भी है कि इसे खौलते हुए दूध मे डालने पर भी न तो दूध फटता है, और न बदमजा ही होता है। शर्त यही है कि दूध ताजा और साफ होना चाहिए।

कोई घंटे भरतक ठहरकर हमने बदरीपुर में अदरकी की सब क्रियाएँ ध्यान से देखी। कुल चार या पाच आदमी अदरकी बनाने में लगे थे। दो कोल्हू पर, दो भट्टी पर, और एक सहायक। उनके काम की सफाई और हाथ की उस्तादी देखकर हम बहुत खुश हुए और फिर चौधरीजी से ।~)॥ आने की २॥ सेर अदरकी खरीदकर देहरादून के लिए चल पड़े।

शाम को देहरादून पहुँचते ही सीधे श्री केदारनाथजी की 'राइस फैक्टरी' मे पहुंचे और उनके यहां पॉलिशवाले, बगैर पॉलिश के और हाथ से दले हुए चावलों के गुण-दोषो की चर्चा की, उन्हें परखा और प्रयोग करके उनका परिणाम निकाला।

ग्राम-उद्योग-संघ के प्रोग्राम में जिन बिना पॉलिशवाले हथकुटे चावलों का जिक्र आता है, सर्वसाधारण में उनके सम्बन्ध में काफी भ्रम फैला हुआ जान पड़ता है। हथकुटे चावलों के प्रचार का हेतु तो यह है कि लोग निःसत्त्व चावलों की अपेक्षा सत्त्ववाले चावल खायें और हृदय-रोग और बेरी-बेरी आदि चावल-जन्य रोगों से अपना पिण्ड छुड़ावें। पर हमने देखा कि लोग हथकुटे चावलों को भी इतना कूट लेते हैं कि वे मिलके पॉलिसदार चावलों के समान ही सफेद और सत्त्वहीन हो जाते हैं। यह न होना चाहिए। इससे हमारे निर्धन देश के धन और बल का व्यर्थ ही दुरुपयोग होता है और स्वास्थ्य को जो भयंकर हानि पहुँचती है, सो अलग! इसीलिए अब गांधीजीने धान को चक्की में केवल एकबार दल लेने की सलाह दी है। इस प्रकार दलने से चावल की सुर्खी और उसके सभी प्राण-पोषक तत्त्व और सत्त्व सुरक्षित रहते हैं। ये चावल खाने में मीठे, चिकने और पौष्टिक होते हैं—और गेहूँ के दलिये का-सा स्वाद देते हैं। इस तरह के दले हुए चावलों को पहले कुछ समयतक पानी में भिगोकर फिर पकाना अच्छा होता है। इन चावलों का एक लाभ यह भी है कि पॉलिश किये हुए चावलों की तुलना में ये कम खाये जाते हैं, पर कूवत ज्यादा पहुँचाते हैं, और सस्ते तो पड़ते ही हैं। सत्त्ववाले चावलों की एक पहचान बड़ी मजे की है, जो हर एक को स्वयं करके देख लेनी चाहिए। एक प्याली में आप मिल के थोड़े पॉलिशदार चावल भिगो दीजिए और दूसरी में चक्की में दले हुए पूरे सत्त्ववाले चावल भिगो लीजिए। फिर दोनों में 'आयोडिन' की दो-दो बूँदें डाल दीजिए। आप देखेंगे कि मिल के चावलों का रंग बड़ी तेजी से पलट रहा है, और वे नीले पड़ रहे हैं, जबकि सत्त्ववाले चावलों पर उसका कोई भी असर नहीं हो रहा है। हमें विश्वास है कि अकेली एक यह परीक्षा ही आपको अपनी परम्परागत भूल का परिचय करा देगी और आपको सत्त्ववाले पूरे चावल ही खाने को बाध्य भी करेगी। अस्तु।

देहरादून के चावलों में बदरीपुर और मेवलामाजरा के बासमती चावल श्रेष्ठ माने जाते हैं। धान की फसल जेठ-असाढ़ में बोई और अगहन-कातिक में काटली जाती है। देहरादून में प्रति वर्ष करीब ३ लाख मन धान पैदा होता है। इसमें से करीब २॥ लाख मन स्थानीय मिलों में कुट जाता है और शेष बाहर चला जाता है। जिला देहरादून में २० और खास देहरादून में चावल कूटने की ७ मिलें हैं।

बासमती देहरादून के धानों का राजा कहलाता है। इसके अलावा अजना, अजनी, रामअजवायन, भगवानदास, मुरामालती, नयाधान आदि कुछ दूसरे प्रकार के धान भी यहां पैदा होते हैं।

श्री केदारनाथजीने हमें बताया कि बरसात में यहां का धान सुरक्षित नहीं रहता। इधर उन दिनों एक ऐसी हवा चलती है, जिससे धान बिगड़ जाता है, और उसका दाना अंदर से टूट जाता है। कम पॉलिशवाले चावलों पर जो मिठास और सत्त्व रहता है, उसके कारण अधिक दिनोंतक बन्द पड़ा रहने से इस चावल में सुरसरी नामक एक लाल कीड़ा लग जाता है, जो सारे सत्त्व को चाट लेता है। पॉलिशवाले पुराने चावलों में भी इल्ल पड़ जाती है। धान की अपेक्षा सफेद चावल अधिक समयतक रह सकता है। बिना पॉलिश के यानी सत्त्ववाले बहुत पुराने चावल बदमजा हो जाते हैं और कड़ुए लगने लगते हैं। इसका एक उपाय यह हो सकता है कि जरूरत के अनुसार थोड़ा-थोड़ा धान समय-समय पर दल लिया जाय और वही खाया जाय। यह थाली की शोभा तो न बढ़ा सकेगा, पर ताजगी के साथ पुष्टि देनेवाला, और घर में किफायत लानेवाला जरूर होगा।

हमने भाई केदारनाथ के कारखाने में धान कूटने की मशीनें भी देखीं। ये मशीनें प्रायः आटा पीसने की मशीन के समान ही होती हैं, और रोज का औसतन ३०–३५ मन धान कूट देती हैं। कूटे हुए धान की जो भूसी निकलती है, वह बिक जाती है, और घोड़ों के खाने के काम आती है। यह भूसी चार-चार आने मन बिकती है। एक मन धान में से औसतन १२–१३ सेर भूसी निकलती है, जबकि चक्की में दले हुए धान में मन पीछे ९–१० सेर भूसी ही निकलती है।

इस प्रकार घंटे-पौन घंटे में देहरादून के चावलों का थोड़ा कामचलाऊ अध्ययन करके हम वापस श्री कक्कड़ साहब के घर आये। वहां कुछ कांग्रेस-प्रेमी मित्रों के दर्शनकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उनसे कुछ देर को ग्राम-उद्योगों के सम्बन्ध में नाना प्रकार की रसपूर्ण चर्चा करते रहे। फिर वकील साहबने बड़े प्रेम से हमें भोजन कराया। भोजन से निपटकर हमने अपना असबाब सम्हाला और भाई श्री विचित्रनारायणजी शर्मा के साथ देहरादून के मित्रों से घिरे हुए हम स्टेशन पहुँचे। गाड़ी आई, हम चढ़े और मित्रों से विदा लेकर चल दिये। आधीरात को नजीबाबाद पहुँचे। शेष सारी रात स्टेशन पर वेटिंगरूम में सोये। सुबह फिर गाड़ी में सवार हुए और नगीना पहुँचे। नगीना गांधी-आश्रम, मेरठ का एक खादी उत्पत्ति-केन्द्र है।

काशिनाथ त्रिवेदी

साप्ताहिक पत्र

[७१ पृष्ठ से आगे]

अकसर मेरा मजाक उड़ाया करते हैं, मेरा तिरस्कार किया करते हैं। इससे मुझे आनंद आता है, और अकसर मैं चाहा भी करता हूँ कि मेरा मजाक उड़ाया जाय, मेरा तिरस्कार किया जाय। इस चाह का भी शमन हो जाय इतनी ही चाह अब रह गई है। प्रशंसा से मुझे आनंद न हो, तो फिर उपहास से क्यों होना चाहिए? मुझे तो अविचल समता चाहिए—मान और अपमान के विषय में समत्व चाहिए, 'शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः' यह स्थिति मुझे चाहिए। विपत्ति में भी सुख न हो बस यही मैं चाहता हूँ। पर बापू, तब मैं कैसा विलासी था! अरे, वे कैसे विलास के दिन थे! यह सब मन की ही माया है, जो नरक को स्वर्ग बना देती है और स्वर्ग को नरक। आज मेरी शांति का पार नहीं। और तब उन दिनों में कितने विलास में डूबा हुआ था!" यह कहकर भणसालीजी खिलखिलाकर हँस पड़े।

"तुम सारे दिन कहां बैठे रहते हो?"

"नीचे कोठरी में। लोग आते हैं और जाते हैं। मुझे जरा भी बाधा नहीं होती। कौन आता है और कौन जाता है यह भी मुझे मालूम नहीं पड़ता।"

"यही सच्ची विजय है," गांधीजीने लिख दिया।

यह संवाद यहां समाप्त हुआ। अहा! कैसी आनन्ददायिनी घड़ी थी वह!

'हरिजन-बन्धु' से]

महादेव ह० देसाई

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

सम्पादक—वियोगी हरि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369.

वार्षिक मूल्य ३॥)
(पोस्टेज सहित)

पता—
'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

हरिजन-सेवक

एक प्रति का
मूल्य -)

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

भाग ३]

दिल्ली, शुक्रवार, २६ एप्रिल, १९३५.

[संख्या १०

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

सफाई का काम

यह तो मैंने अपने गत सप्ताह के पत्र में कहा ही था कि हम लोगों की संख्या अब खासी अच्छी हो गई है, इसलिए अब हम सफाई का काम खूब जोरों से चला सकते हैं। हमारी दो बड़ी-बड़ी टुकड़ियां नित्य सबेरे गांव में पहुँच जाती हैं, और रास्ते पर बैठ जानेवाले लोगों को जाकर ललकारती हैं, उनके साथ दलील की जाती है, और उनसे फिर कभी रास्ते पर न बैठने का वचन लिया जाता है। पर यह काम है महाकठिन। ऐसे वचन भी बड़ी मुश्किल से लोग देते हैं, और कुछ तो साफ कह देते हैं, कि खेतों में बैठने से आखिर हमें क्या लाभ होगा? एक स्त्रीने उस दिन गुस्से में आकर कहा, "इससे हमें तो कोई फायदा दिखाता नहीं। तुम कहते हो कि मैले का अच्छा बढ़िया खाद बन जाता है। ठीक है, बन जाता होगा। पर वह खाद पड़ेगा किसके खेत में? हमारा तो कोई खेत है नहीं, कि उसमें हम वह खाद डालेंगे। फसल खूब ज्यादा होगी तो उससे हमारा खाड़ा तो भर नहीं जायगा, वह सारा अनाज तो खेत के मालिक के घर जायगा। हमें उससे क्या लाभ होगा?"

यह दलील बिल्कुल सही है। गरीब और अमीर के बीच का यह भेद जो दिन-दिन बढ़ता जा रहा है उसका प्रतिबिम्ब इस बहिन के शब्दों में दिखाई देता है। गावों में अधिकतर गरीबों की ही बसीकत है। इन गरीबों की मेहनत की बदौलत जिन्होंने पैसा इकट्ठा किया है उन्होंने अगर कभी गरीबों का विचार नहीं किया और उनकी कोई सेवा नहीं की तो हम यह किस प्रकार आशा रख सकते हैं कि धनियों को जो थोड़ा अधिक मुनाफा होगा उससे ये गरीब आदमी संतुष्ट रहेंगे? ऊपर जो दलील दी गई है उसमें एक पदार्थपाठ तो है ही, साथ ही वह उन लोगों के लिए चेतावनी भी है, जो अबतक दूसरों को दबाकर मौज की जिंदगी बिता रहे हैं।

काहिली और जड़ता बड़ा जरूर है, पर उसकी भी जड़ है तो वही, अर्थात् स्वार्थरूपी विषवृक्ष के ही ये कुफल हैं। हमने स्वार्थ की मदिरा पीकर इन गरीब लोगों की इतनी अधिक उपेक्षा की है कि आज वे हमारे अच्छे-से-अच्छे प्रयत्नों को भी संदेह की दृष्टि से देखते हैं, और उनसे जब हम यह कहते हैं, कि मैले पर मिट्टी डालकर उसे खेत में गाड़ दो, जिससे मक्खियां कम हो जायँ, बीमारियां अधिक न फैलें और सबका स्वास्थ्य ठीक रहे तो हमारी यह दलील उनके गले उतरती ही नहीं।

इन लोगों में जो समझदार दिखाई देते हैं वे कहते हैं, कि "यह अच्छी बात है कि आप यहां आकर सफाई करते हैं। पर आप आखिर कबतक यह पीसना पीसते रहेंगे? यह तो हमारी सैकड़ों बरस की आदत है, और वह किसी तरह जा ही नहीं सकती।"

"पर मान लीजिए कि आप किसी शराबी के पास शराब छुड़ाने जायें, और वह कहे कि मेरी यह जनम की लत है, तब आप क्या करेंगे? क्या उसे समझाना छोड़ देंगे? ऐसे कैसे बनेगा? पर आओ, हम आप को ही पहले समझाते हैं। क्या आप खुद मुझे वचन देंगे कि हम अब रास्ते पर टट्टी नहीं फिरेंगे, और खेत में जायेंगे और मैले को मिट्टी से ढक दिया करेंगे?"

"हां, मैं वचन देता हूँ। मैं तो इन खेतों में जाता ही हूँ।"

"तो बस ठीक है, इतना ही तो हमें चाहिए, अब चलें, हम उस भाई को समझावें। वह वचन देगा या नहीं?"

"वह भी मान जायगा, पर कठिनाई तो वहां आती है जब आप हम से मैला पूरने की बात कहते हैं। इस विचार से ही हमें घिन मालूम होती है। यह तो भंगी का काम है, और हम लोग कुछ भंगी तो हैं नहीं।"

"आपके बच्चे क्या घर में ही टट्टी नहीं फिरते? क्या उनकी मां उस पाखाने को साफ नहीं करती?"

"करती है। पर यह भी तो आदत की बात है।"

"तब हमें इतना ही कहना है कि बुरी आदत छोड़ दो और अच्छी आदतें डालो।"

"मुझे तो नहीं लगता कि हम कभी भी इन आदतों को सीखेंगे। सूखा काठ कहीं नवता है?"

"पर हम आपको कुछ इस तरह छोड़नेवाले तो हैं नहीं।"

कावड़ पर मैले के दो डोल लटकाये हुए हम निकले तो एक हरिजन स्त्री हमें देखकर चिल्ला उठी। "पड़ोस के गांव में लोग क्या रास्ते में नहीं बैठते? तुम लोग वहां क्यों नहीं जाते? हमारा पिंड क्यों नहीं छोड़ते? वाह! क्या कहना है, तुमने एक टट्टी बना दी है, उससे सारे गांव का काम चल जायगा, क्यों?"

हमने जो एक पाखाना बनाया है उसकी भी बात सुनने-लायक है। लोग हमसे कहते थे कि अगर आप एक खाई खोद-

कर उस पर टट्टी बना दे तो कुछ लोग जो परदे की जगह चाहते हैं वह उन्हें मिल जायगी। हमने उनके कहने के अनुसार टट्टी बना दी, और एक दिन ग्राम को इस विचार से सभा बुलाई कि सफाई और टट्टी का काम में लाने का ढंग लोगों को समझा दिया जाय। सभा रात को आठ बजे शुरू होने को थी। हम लोग दस बजेतक बैठे-बैठे राह देखते रहे। खैर, हमने लोगों को सभास्थल पर बुलाने के लिए एक आदमी भेजा, मगर एक-दो युवकों और कुछेक लड़कों को छोड़कर वहां कोई आया ही नहीं। हमने तब उन्हीं दो-चार आदमियों के साथ बात की, और उनसे यह वचन लिया कि वे अब खेतों में ही टट्टी फिरने जाया करेंगे, और दूसरों को भी वैसा ही करने को समझायेंगे। हमें ऐसा लगा कि एक नवयुवक को सच्चा पश्चात्ताप हुआ, और उसने यह स्वीकार किया कि वह अपने मकान के पास की दो गलियों की देखरेख रखेगा। वह अपनी बात का पूरा धनी निकला यह हमने दूसरे ही दिन देख लिया।

इस प्रकार इस सप्ताह के हमारे काम की यह कथा है। काम कठिन है इसका यह अर्थ है कि अभी हम खूब जोरों के साथ और दृढ़ता से काम करना होगा। निराश होनेसे तो काम चल ही नहीं सकता। अभी यह नहीं कहा जा सकता कि हम अपने प्रयत्न की पराकाष्ठा तक पहुँच गये है। और वह प्रेम की शक्ति भी तो हमारे पास नहीं है, जो समस्त कठिनाइयों को जीत सके।

समस्या कठिन है

गतांक के पत्र में मैंने यह कहा था, कि भणसालीजी के साथ बात करने के लिए तो गांधीजी को खुद ही कुतूहल उत्पन्न हुआ था। पर वह कोरा कुतूहल नहीं था। गांधीजी के उस कुतूहल के अन्तर्गत भणसालीजी की मनोदशा समझने और उसमें यदि कोई विचारदोष हो तो उसे सुधारने की तीव्र उत्कण्ठा मौजूद थी। वह अपने इतने असाधारण त्याग को निष्क्रियता में परिणत कर दे क्या यह ठीक है? अत गांधीजीने अतिशय प्रेम और नवनीत-सी नम्रता के साथ भणसालीजी की मनोदशा का विश्लेषण दो-तीन दिनतक नित्य प्रार्थना के बाद प्रश्न पूछ-पूछकर किया। गांधीजी और भणसालीजी के उस प्रेम संवाद को मैं नीचे दे रहा हूँ —

गांधीजी—तुम जब ध्यानावस्थित होकर बैठते हो तब क्या केवल 'ओंकार' का ही जप करते हो ?

भणसालीजी—जी, हां।

गा—क्या दूसरे कुछ विचार मनमें आते हैं ?

भ—जी, नहीं।

गा - क्या सारे दिन कोई अन्य विचार मन में नहीं आते ?

भ यह बात तो नहीं है। आपके साथ जो बातें होती हैं उनका तो बारबार विचार आता है।

गा- तो ठीक, तुमने उसदिन कहा था, कि अपने आसपास मैं चहुँओर जो दु ख-दावानल देखता हूँ उससे मुझे पीड़ा होती है। तो क्या उसके निवारण के लिए कुछ करने को तुम्हारा मन नहीं होता ?

भ—नहीं।

गा—तब यह कहने का अर्थ ही क्या हुआ कि तुम्हें उससे पीड़ा होती है ?

भ—दूसरों का दुःख देखकर पीड़ा तो होती है, पर यह भी लगता है कि मैं लाचार हूँ, कुछ कर नहीं सकता।

गा—पर तुम्हारे पैर में कांटा लग जाय, तो क्या तुम उसे निकालोगे नहीं ?

भ—जी, निकालूंगा।

गा—तुम्हें जब भूख लगती है तो तुम कुछ खाते हो या नहीं ?

भ—खाता हूँ।

गा—तब अगर दूसरे के पैर में कांटा लगा हो तो तुम्हें क्या ऐसा लगता है कि यह कांटा मेरे ही पैर में लगा है, और क्या उसे निकाल देने की इच्छा नहीं होती ?

भ—जी हां, होती है।

गा—इसी प्रकार दूसरों की भूख तुम शांत कर सको तो करोगे या नहीं ?

भ—करूँगा, अगर मेरी सामर्थ्य में होगा तो।

गा—यदि कोई मनुष्य कष्ट से पीड़ित हो और सिवा तुम्हारे दूसरा कोई भी उसके पास न हो, तो ?

भ—शायद कुछ उसके लिए करूँ। पर मुझसे अधिक हो ही क्या सकेगा ? मैं तो अपनी लाचारी कबूल कर रहा हूँ।

गा—यह कहकर तुम्हारे-जैसा व्यक्ति जिम्मेवारी से छूट थोड़े ही सकता है

इसके उत्तर में भणसालीजीने धीरे से मुस्करा दिया।

गा - पर हमने इस वार्ता का आरंभ ही तुम्हारी इस स्वीकृति से किया है कि आसपास का दुःख देखकर तुम्हें पीड़ा होती है। तुम उस दिन कहते थे न, कि 'नवजीवन' का वह 'पतंग-नृत्य' लेख आज भी कानों में गूंज रहा है।

भ—जी हां, वह लेख आज भी मेरे कानों में गूंज रहा है। पर मैं कहता तो हूँ कि मैं लाचार हूँ।

गा—जो मनुष्य अपनी पूरी शक्ति लगा चुका हो वही यह कह सकता है कि अब वह उससे अधिक और कुछ नहीं कर सकता। अगर किसी लूले-लंगड़े आदमी की उसे सेवा करनी है, तो उसकी वह सामर्थ्यभर सेवा करेगा, उस एक मनुष्य की सेवा में उसके लिए मनुष्यमात्र की सेवा आ जाती है। इसी तरह सारा संसार चल रहा है। गीताने कहा है न कि -

> **सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।**
> **अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्॥**

इत्यादि।

भ—यह ठीक है, पर ईश्वर-भजन भी तो एक प्रकार का धर्म ही है न ?

गा—ईश्वर-परायणता कोई ऐसी अनोखी चीज तो है नहीं जो तिजोड़ी में जवाहरात की तरह बन्द रखी जाय। वह तो हमारी कृति में दिखाई पड़नी चाहिए। पर इसका जवाब मैं अभी नहीं चाहता। लेकिन चूंकि तुम अपनी बात का विचार करते हो इसमें मैं तुम्हें इस पर विचार करने के लिए छोड़ देता हूँ। फिर भी तुम्हारे ऊपर इसका कोई दबाव भी नहीं पड़ना चाहिए। तुम्हें मेरे ये प्रश्न अच्छे लगते हों तभी मैं तुमसे पूछूंगा। यह तो तुम देखते ही हो कि मुझे तुम्हारा कितना अधिक खयाल रहता है।

दूसरे दिन हमारे भणसालीजी खुद गांधीजी के पास गये, और फिर अपनी वही लाचारी प्रगट की। पर गांधीजी उन्हें इस तरह सहज में छोड़नेवाले थोड़े ही थे।

गा—अब तुम्हें जो कहना था वह मुझसे कह चुके, पर मुझे

तो अपना राग अभी अलापने ही आना है।

भ—अवश्य, आपको अधिकार है, बापू ! पर अपनी मनोवृत्ति मैं आपको बतला चुका।

गा—तुम्हारी मनोवृत्ति तो मैं जान गया। पर तुम्हारी तरह करने का उल्लास मुझे क्यों नहीं होता ? तुम्हारी तरह भ्रमण करना तो मुझे अच्छा लगता है, और शरीर गवाही दे तो आटे और नीम की पत्तियों पर भी निर्वाह करूँ, तो भी यह तो प्रतीत होता ही है कि तुम्हारे जीवन में कोई भारी विचार-दोष भरा हुआ है। तुम्हारा यह मार्ग यदि सत्य हो तो सत्य के शोधक के नाते उस पर चलना मेरा धर्म हो जाता है। इसके विपरीत तुम्हारी वृत्ति में यदि कोई दोष मालूम पड़ता हो, तो मुझे वह बात तुम्हारे कान में डाल देनी चाहिए। मुझे जो दोष मालूम पड़ रहा है वह तुम्हारे भ्रमण में अथवा आटा और नीम की पत्तियां खाने में नहीं, किन्तु तुमने 'यज्ञ' के साथ जन्म लिया है, फिर भी तुम इस देह के साथ सम्बद्ध वस्तु की अवहेलना कर रहे हो। 'सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः' भगवान्‌ने प्रजा को यज्ञसहित उत्पन्न किया और उससे कहा कि इससे तुम वृद्धि को प्राप्त होओ।

भ—जरा इस यज्ञ को और स्पष्ट कीजिए।

गा—भगवान्‌ने यह कहा है कि जो बिना यज्ञ किये खाता है वह चोरी का अन्न खाता है। भिक्षा जो मांगकर खाते हैं यह ठीक है। पर उस यज्ञार्थ कर्म के बाद खावें।

भ—मैंने इसे सुना है। आज सारे दिन मैं यही सोचता रहा कि मैं कोई काम तो करता नहीं, तब मुझे आटा और नीम की पत्तियां खाने का अधिकार है या नहीं ?

गा—तुमने जो यह सुना है सो तो ठीक ही है। पर सारा संसार जिस धर्म को जानता है उसे उसी प्रकार वर्तता है, जिस प्रकार जैन साधु और संन्यासी। ये दोनों भिक्षा का अन्न तो खाते ही हैं, पर अपने मन में ऐसा मानते हैं कि वे लोगों को जो धर्मोपदेश देते हैं उतना यज्ञ उनके लिए पर्याप्त है। मैं मानता हूँ कि इसमें वे थोड़ी भूल करते हैं। धर्म का बोध अवश्य देना चाहिए, पर उसके साथ ही उन्हें शारीरिक परिश्रमरूपी यज्ञ में भी अवश्यमेव भाग लेना चाहिए। किन्तु उस यज्ञ का बदला चाहने के बजाय वे लोगों की दया पर जीना पसन्द करके शुद्ध ब्राह्मणधर्म का पालन करते हैं। इसलिए मैं तुम्हें इतना बारबार समझाना चाहता हूँ कि जगत् में अभीतक किसीने जो नहीं किया उस अनोखी वस्तु से—जिसमें कोई त्याग नहीं बल्कि सूक्ष्म भोग है, क्योंकि उसमें मानसिक आलस्य है—तुम दूर रहो। यह मेरा लिखा तुमने पढ़ लिया हो तो उसे अपने साथ ले जाओ। मैंने जो लिखा है उसके पीछे समस्त जगत् का अनुभव है, और मेरा जीवित-जाग्रत अनुभव भी उसका साक्षी है। भगवान् की प्रेरणा से प्रेम के वश होकर तुम यहां आये हो। इस प्रेम का बदला मैं दूं तो क्या दूं ? क्या अच्छा भोजन कराके ? नहीं, इसकी तुम्हें इच्छा भी नहीं। पर निर्मल प्रेम जो मुझसे कहला रहा है वह जरूर कहूँगा।

भ—अवश्य कहिए।

इसके बाद एक-दो दिन तो साधारण बातचीत करने में गये। बाद को एक दिन गांधीजीने मधुर विनोद के द्वारा अपना अर्थ सधवाने का प्रयत्न किया।

गा—बोलो, आज तुमने कितना सूत काता है ?

भ—जरा भी नहीं।

सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े।

गा—पर तुम थोड़ा-थोड़ा कातने लगे हो, ऐसा मैंने सुना था न ?

भ—ऐसा थोड़ा तो कातता हूँ। उस दिन पचासेक गज मुश्किल से काता होगा।

गा—ऐसे कैसे चलेगा ? जानते हो, मुझे तुम्हारा बनाया हुआ कच्छ पहनना है ?

मैंने कहा, सिर्फ छै हजार गज सूत एक कच्छ के लिए काफी है। और नित्य तीन सौ गज सूत काता जाय तो २० दिन में एक कच्छ तैयार हो जाता है।

गा—ओहो ! तब एक कच्छ तो तुम्हारा ही बनाया पहनूंगा, और मुझे दो कच्छ बनाकर दो तब तो और भी अच्छा हो।

हम सब खूब खिलखिलाकर हँस रहे थे। और यह मालूम होता था, कि भणसालीजी से सूत कतवाने का यह बड़ा अच्छा मार्ग गांधीजीने ढूंढ़ निकाला है। पर भणसालीजीने तो यह जवाब दिया—

'ऐसे मेरे भाग्य कहां बापू, कि आप मेरा बनाया हुआ कच्छ पहनें ! क्या करूं, आज वह वृत्ति ही नहीं।'

'हरिजन-बन्धु' से] **महादेव ह० देसाई**

एक हरिजन-सेवक की दिनचर्या

जयपुर राज्य के एक हरिजन-सेवक लिखते हैं —

'प्रातः ४ बजे उठकर ४॥ बजेतक शौच आदि से निवृत्त हो लेता हूँ। ४॥ से ५॥ तक प्रार्थना और भजन कर लिया करता हूँ। ५॥ से ८॥ तक रेलवे-स्टेशन पर जाकर अंग्रेजी पढ़कर लौट आता हूँ। ८॥ से १० तक स्नान करके भोजन बना और खा लेता हूँ। फिर १० बजे पाठशाला में पढ़ाने चला जाता हूँ। पहले प्रार्थना करके पाठशाला के चौक और इर्द-गिर्द की सफाई करके विद्यार्थियों के वस्त्र, दांत और हाथ-मुंह धुला दिया करता हूँ। बाद में पढ़ाई शुरू कर देता हूँ। ४॥ बजेतक पाठशाला में काम करता हूँ। इसी बीच में विद्यार्थियों के साथ डफ (चंग) पर धमाल के राग में सुधरे हुए ग्राम-गीत गाता हूँ।

पाठशाला में एक बूढ़े राजपूत बाबा को रख लिया है। वह लड़कों को पानी पिला देता है और उनके हाथ, पांव, दांत वगैरह भी साफ करा देता है। बाबा इन विद्यार्थियों से प्रेम रखता है और आनन्दपूर्वक काम करता है। इस भाई को खाने को १) मासिक अनाज देता हूँ।

पाठशाला रात में भी लगती है। इसमें ८ विद्यार्थी पढ़ते हैं, जो सब-के-सब हरिजन हैं और २० साल से अधिक उम्र के हैं।

हां, नित्य २५० गज सूत भी कात लिया करता हूँ।"

इस दिनचर्या में सुधार की गुंजाइश नहीं, सो बात नहीं है। परन्तु यदि प्रत्येक हरिजन-सेवक इनकी भांति यह समझ ले कि अपने सब काम अपने हाथों करना, अपना एक-एक क्षण सेवा में लगाना, गरीबों के साथ तादात्म्य स्थापित करना और ईश्वर पर भरोसा रखना ही अपना धर्म है तो बहुत-सी जटिल समझी जानेवाली समस्याएँ सुगम हो जायँ।

रामनारायण चौधरी

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २६ एप्रिल, १९३५

पाप का पोषण

'पाप को पोसना मृत्यु है', यह बाइबिल का वाक्य है। अपने अस्पृश्यतारूपी पाप को पोस-पोसकर, हम नित्यप्रति आर्थिक मृत्यु को आमंत्रण दे रहे हैं इस बात का दृष्टान्त राजपूताने के एक सज्जन के पत्र में मिलता है। उस पत्र का सार यह है —

"इधर हमारी तरफ जहां भी मैं देखता हूं ढोरों की हड्डियां रास्तों पर पड़ी दिखाई देती हैं। पड़ी किसे है कि कोई उन्हें इकट्ठा करता फिरे? इससे गावों के इर्दगिर्द की तमाम जगह उपेक्षित श्मशान-सी दिखाई देती है। और ये कुत्ते तो और भी खराबी करते हैं। आपने 'हरिजन' में इस विषय पर जब-तब लिखा तो है, पर क्या आप हरिजनों एवं ग्राम-सेवकों के पथ-प्रदर्शनार्थ इस संबंध में कुछ और सलाह नहीं देंगे? अगर आप इन हड्डियों को किसी हड्डी पीसनेवाली मिल में भेजने की सलाह देंगे तो वह तो व्यर्थ-सी बात होगी, क्योंकि वहांतक भेजने का खर्चा बहुत ज्यादा पड़ जायगा। फिर आपको इस धार्मिक कट्टरता का भी खयाल रखना होगा कि हड्डियों आदि की बनी हुई चीजों को लोग इस्तेमाल नहीं करते।"

इस देश में चीजों का जो दुर्व्यय हो रहा है, वह सचमुच भयानक है। अस्पृश्यता पिशाचिनी के कारण जो बर्बादी हुई और हो रही है उसके आंकड़े अगर कोई अर्थशास्त्री निकालकर रख दे तो वे सचमुच दिल दहलानेवाले होंगे। अस्पृश्यता पाप का पोषण करने में हम जो लाखों करोड़ों रुपए स्वाहा कर रहे हैं, उससे तो आराम से भूखों मरनेवाले करोड़ों आदमियों को रोटी दे सकते हैं। यह कोई छोटी-मोटी बर्बादी नहीं है, जो भारत के पांच करोड़ मनुष्यों की जान-मानकर मानसिक और नैतिक वृद्धि नहीं होने देती, साथ ही जो उनकी आर्थिक हानि भी खूब कर रही है। मगर इस प्रश्न पर कोई इतने बड़े रूप में विचार करने बैठेगा तो वह चक्कर में पड़ जायगा। कार्यकर्ताओं के लिए तो यह प्रश्न काफी सरल है, क्योंकि उन्हें न तो लाखों-करोड़ों की संख्या में धन का हिसाब लगाने बैठना है और न जन का ही।

धार्मिक भावनाओं में तो परिवर्तन करना ही होगा। भारत-जैसे देश में जहां पशुओं तक का भी जीवन पवित्र माना जाता है, हमें मौत से मरे हुए पशुओं की लाश के तमाम भागों का उपयोग भी उतना ही पुण्यकार्य समझना होगा। मगर मुर्दार मांस को खाने के काम में हरगिज नहीं लाना चाहिए। मेरा खयाल है कि हरिजन-सेवकोंने अब इस स्थिति का अनुभव कर लिया है। मेरा यह अनुमान अगर ठीक है, तो गांव के रास्तों पर उन्हें जो हड्डियां पड़ी दिखाई दें उन सबको वे जमा करके तबतक किसी जगह रखे रहें जब तक कि उन्हें कोई दूसरा आदेश न मिले। मैं किसी ऐसे आसान तरीके की तलाश में हूं, जिससे कि हड्डियों को पीसकर उनका बुरादा बनाया जा सके। मुझे ऐसा लगता है कि हड्डियों का खाद बनाना ही उन्हें ठिकाने लगाने का सस्ते-से-सस्ता तरीका है। खादी-प्रतिष्ठान के सतीश बाबू आजकल इस बात के प्रयोग करने में लगे हुए हैं कि गांव के लोगों के हक में ऐसा कौन-सा बढ़िया-से-बढ़िया तरीका हो सकता है कि जिससे वे अपने पशुओं की लाश के तमाम हिस्सों का सबसे अच्छा आर्थिक उपयोग कर सकें। सतीश बाबू अपने अनुसंधानों से जिन नतीजों पर पहुंचे हैं, उन्हें 'हरिजन-सेवक' के पाठकों के आगे रखने का मेरा विचार है।

अंग्रेजी से] **मो० क० गांधी**

स्वावलंबी खादी

मैसूर राज्य सदा से ही इस बात की कद्र करता आ रहा है कि किसान के लिए हाथ की कताई एक सहायक धंधा है। इस उद्योग के ऐसे कई केन्द्र मैसूर चला रहा है। इन केन्द्रों के व्यवस्थापक अपने को अखिलभारत चर्खा-संघ के संपर्क में इसलिए रखते हैं कि सघन खादी के क्षेत्र में जो भी नये-से-नये शोध तथा सुधार किये हों उनके अनुसार वे बराबर अपने-अपने केन्द्र में कार्य कर सकें। चर्खा-संघ के मंत्री के नाम लिखे हुए बदनवाल केन्द्र के इस पत्र को पाठक रसपूर्वक पढ़ेंगे, ऐसी आशा है —

"आपको यह सूचित करते हुए मुझे प्रसन्नता होती है कि मैसूर-सरकारने हमें इस नीति पर चलने की स्वीकृति दे दी है कि जिस स्थान में खादी तैयार हो वहीं उसे बेचा जाय और गांवों में उसे लोकप्रिय बनाया जाय। आपके अखिलभारत चर्खा-संघ-द्वारा जारी किये हुए परिवर्तनों के साथ-साथ चलने की नई नीति ग्रहण करने का ही यह परिणाम है।

इस इलाके के असली बुनकरों और कतैयों को खादी लागत दाम पर दी जाती है। १९३४ के नवंबर मास से यह काम शुरू किया गया है। अबतक हमने करीब एक हजार कतैया व कत्तिनों को २०००) से ऊपर की खादी बेची है। हम उन्हें कपड़ा दे देते हैं और उनका मन मर्यादित समय उनसे हर हफ्ते किश्तवार दाम वसूल कर लेते हैं। एप्रिल से हम फिर यह बिक्री का काम जोरों से चलाना चाहते हैं। हमारी मंशा यह है कि इस समय फिर २०००) की खादी, जिसमें खासकर गांव की गाढ़ियां होंगी, बेची जाय। हम देखते हैं कि हमारा यह कार्यक्रम यहां बिल्कुल ठीक तरह से चल रहा है।"

इसी तरह की उत्साहवर्द्धक खबरें अनेक स्थानों से आ रही हैं। मैं कार्यकर्ताओं को यह सलाह दूंगा कि अब चूंकि खादी का सच्चा रहस्य उनकी समझ में आ गया है इसलिए उन्हें खादी के सम्बन्ध के तमाम काम एकसाथ ही हाथ में ले लेने चाहिए। कपास की पैदावार से श्रीगणेश किया जाय। कपास की खेती की स्थिति का खूब अच्छा ज्ञान होना चाहिए। गांव के उपयोग के लिए तो करीब-करीब सभी जगह कपास पैदा हो सकता है। बढ़िया से-बढ़िया जमीन पर तो हमें तभी अपना ध्यान एकाग्र करना चाहिए जब सारी दुनिया को कपास पहुंचाने की हमारी हवस हो। पर जहां केवल गांव की ही जरूरत पूरी करने का हौसला है वहां तो इससे उल्टी ही बात है। खेत के एक जरा-से कोने में ही गांव के किसान के लिए आसानी से काफी कपास पैदा हो सकता है, अथवा गांव के सब लोग अपने-अपने उपयोग के लिए मिल-जुलकर कपास पैदा कर सकते हैं। अगर यह किया जाय तो आप देखेंगे कि बाहर का कोई भी कपड़ा न तो दाम में इस स्थानीय खादी का मुकाबला कर सकता है और न टिकाऊपने में ही। ऐसी आदर्श अवस्थाओं में ओटाई, धुनाई और बुनाई की क्रिया आनंददायी और सरल हो जाती है। चर्खों में भी मरम्मत की आवश्यकता रहती है। तकुआ जब यथेष्ट चक्कर नहीं लगता,

तब कलैयेकी शक्ति का बहुत अपव्यय होता है। मेरा विचार है कि मै खासकर इसी विषय के एक लेख मे इसकी चर्चा करूं।

अंग्रेजी से]

मो० क० गांधी

गाय बनाम भैंस

गाय और भैंस का विरोध हमारे ग्रामीण अर्थशास्त्र मे इतने अधिक महत्व का है कि उसका सब दृष्टियो से ध्यानपूर्वक अध्ययन होना चाहिए।

हमारे भारतवर्ष मे गाय का बछड़ा खेती-पाती के द्वारा हमे अन्न देता है, और साथ ही, प्राथमिकरूप मे फसल को ढोता भी वही है। किन्तु बिना गाय के चूकि गाय का बछड़ा हमे प्राप्त नही हो सकता, इसलिए गाय को तो हर हालत मे हमे रखना ही पड़ता है। मगर गाय बछड़े के अलावा, जब ठीक-ठीक दूध देती हो तभी हमे गाय का रखना पुसायगा। और फिर कोई सबब नहीं कि गाय इन दोनो दृष्टियो से हमारी सारी आवश्यकताओ की पूर्ति न करे। पर इसके लिए परिश्रम की जरूरत है। युनाइटेड स्टेट्स की गाय सन् १८५० मे जहां औसतन १८३६ पाउण्ड सालाना दूध देती थी, वहा वह परिश्रम के प्रताप से सन् १९२५ मे ४५०० पाउण्ड दूध देने लगी- अर्थात् ७५ साल मे दूध की मात्रा तिगुनी हो गई। युनाइटेड स्टेट्सने जो पुरुषार्थ कर दिखाया है, उससे कम अगर हम करते हैं तो हमारी यह गोरक्षा और हमारा यह दयाधर्म किसी अर्थ का नहीं।

केवल ऐसी सम्मतियो का प्रचार करना ही पर्याप्त नही है कि गाय का दूध भैंस के दूध से अच्छा होता है। हमे इस बात का पता लगाना चाहिए कि गाय के दूध से भैंस का दूध क्यो इतना अधिक लोकप्रिय है और अधिक मक्खन आदि निकलने के जिन गुणो से भैंस का दूध इतना प्रिय हो गया है उन गुणो को हम गाय के दूध मे भी उत्पन्न करना चाहिए। केवल भावना से सदा काम नही चलेगा। जिस प्रकार आज हम गरीब और अमीर प्रत्येक की सुविधा और रुचि देखकर भाति-भाति की खादी तैयार करते है उसी प्रकार जो जैसा चाहे वैसा गाय का दूध हमे उसके पास पहुंचाना होगा।

मादा दूध के काम मे और नर ढोने-खींचने के काम मे न आता हो तो ऐसे ढोरो का रखना हमे पुसा नही सकता। पाड़ा चूकि हल या गाड़ी मे जुतनेलायक नहीं होता, इसलिए उसे अधिकतर लोग भूखो ही मारते है। गाय के प्रति उपेक्षा करने से ही यहा भैंस का प्रवेश हुआ, फलतः एक ओर तो गाय का नाश हो रहा है और दूसरी ओर पाड़े का। हम अपने देश के मवेशियो के आकड़ो को यदि सहज भाव से देखे, तो यह बात तुरन्त हमारे ध्यान मे आ जायगी। सयुक्त प्रांत के सन् १९३० के आकड़ो को मै सबसे पहले लेता हूँ। इन आकड़ो को मैने यु० पी० की पशुगणना की रिपोर्ट से लिया है :—

साड और बैल की संख्या	१,००,९४,७७२
गाय की संख्या	६२,३२,५२२
गाय से बैल की अधिक संख्या	३८,६२,२५०
× × × × ×	
भैंस की संख्या	४०,८१,५१५
पाड़े की संख्या	७,८०,९८४
पाड़े से भैंस की अधिक संख्या	३३,००,५३१

इससे यह प्रगट होता है कि जहां एक ढोर से काम चल सकता था वहा दो रखे गये और इसी से इस एक प्रान्त मे ही करीब ४० लाख गायो और ३० लाख से ऊपर पाड़ो का अनावश्यक नाश हुआ। यदि यथेष्ट स्थिति होती तो गाये उतनी ही होती, जितने कि बैल है, और पाड़े उतने ही होते जितनी कि भैंसे है।

सयुक्त प्रान्त के भिन्न-भिन्न विभागो (डिवीजन) के मवेशियो के आकड़े भी विचारणीय है :—

विभाग	बैल लगभग	गाय लगभग	पाड़ा लगभग	भैंस लगभग
मेरठ	८ लाख	४ लाख	१० हजार	५ लाख
आगरा	६ "	३ "	७५ "	६ "
रुहेलखण्ड	११.५ "	५.५ "	१.८० लाख	४ "
इलाहाबाद	९ "	६.५ "	१.६० "	४.८० "
झांसी	६ "	६ "	२५ हजार	७.५ "
बनारस	१० "	७ "	१६ "	३.२ "
गोरखपुर	१५ "	८ "	१४ "	४ "
नैनीताल	२ "	१.० "	० "	३५ हजार
लखनऊ	१२ "	६ "	२ लाख	५ लाख
फैजाबाद	१२ "	११ "	८४ हजार	६ "
बनारस राज्य	८० हजार	५४ हजार	२ "	३५ हजार
रामपुर राज्य	१ लाख	४८ "	१८ "	३३ "
टेहरी राज्य	८२ हजार	२ लाख	७ "	६२ "

झांसी, जालौन, हमीरपुर और बांदा जिले मे गाय की स्थिति प्रायः उतनी ही अच्छी क्यो है, जितनी कि बैल की, इसका क्या कारण है इसका पता लगाना चाहिए। यह काफी दिलचस्पी का विषय है। टेहरी राज्य मे बैल की दशा अच्छी नहीं है। इसका कारण शायद यह हो कि पहाड़ो की खेती मे बिना ही बैल के काम चल सकता है। पर नैनीताल भी पहाड़ी इलाका है, मगर वहा बैलो की संख्या करीब-करीब गायो की संख्या के ही बराबर है, अतः इस विषय मे अधिक जाच-पड़ताल करने की जरूरत है।

भैंस के मुकाबले मे पाड़ो की संख्या रामपुर, रुहेलखण्ड, लखनऊ और इलाहाबाद विभाग मे सबसे अधिक है (२ या ३ : १), झांसी, बनारस और गोरखपुर विभाग मे कम है (१०, २० या ३० : १) और मेरठ विभाग मे तो सब से कम है (५० : १)।

जब यह हालत है तब गाय के दूध को और दूध के गुण को बढ़ाने के लिए हमे अच्छे बढ़िये साड़ रखने चाहिए, और गाय को घास-वगैरा ठीकठीक खिलाना चाहिए तथा उसकी अच्छी सार-संभार रखनी चाहिए। अगर हमने यह सब किया तो गाय का स्वास्थ्य मिल जायगा और जहा भैंस के जितना ही पाड़े का भी उपयोग हो सके, देश के उन्हीं भागो मे भैंस का राज हो सकेगा।

वालजी गोविंदजी देसाई

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करें। ग्राहक-नंबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा।

व्यवस्थापक—'**हरिजन-सेवक**' दिल्ली

टिप्पणियाँ

मैले के गड्ढे

एक सज्जन पूछते हैं :—

"एक जगह एक फुट गहरा गड्ढा खोदकर उसमें मैला गाड़ा गया हो तो उसी जगह दूसरी बार मैला गाड़ने के पहले कितना समय चाहिए ?"

साधारणतया धान बोने के बाद तुरन्त ही खेत जोता जाता है। अगर बोनी से आठेक दिन पहले मैला गाड़ा गया हो तो जब खेत जोता जायगा तब क्या वह मैला ऊपर न आ जायगा, और इस तरह हलवाहों और बैलों के पैरों को खराब नहीं करेगा ?"

(१) ठीक-ठीक बतलाई हुई रीति के अनुसार मैला अगर छिछले गड्ढे में गाड़ा गया हो तो अधिक-से-अधिक पंद्रह दिन बाद बीज बोने में कोई अड़चन नहीं आती। एक साल उपयोग करने के बाद उसी जगह फिर मैला गाड़ा जा सकता है।

(२) मनुष्य या ढोर के पैर खराब होने का सवाल तो उठ ही नहीं सकता, क्योंकि जबतक मैला सुगन्धित खाद में परिणत न हो जाय, तबतक वहां कुछ भी नहीं बोया जा सकता, और न बोना चाहिए। ऐसा खाद बन जाने के बाद तो उस मिट्टी को हम बिना किसी हिचक के खुशी से हाथ में ले सकते हैं।

'हरिजन' में] मो० क० गांधी

चावल और तेल

बिना कुटे चावल का मैंने जो प्रयोग किया है, और घानी-द्वारा अलसी का तेल निकालने के सम्बन्ध में जो हिसाब लगाया है उससे मैं नीचे लिखे नतीजों पर पहुँचा हूँ।

अनकुटा चावल

हाथ के कम कुटे हुए चावलों का उपयोग तो हम करते ही थे, किन्तु अब बिनाकुटे चावलों का भी प्रयोग शुरू कर दिया है। हमें यह अनुभव हुआ है कि जबतक ये चावल काफी देरतक पानी में भिगोकर फुलाये नहीं जाते तबतक कठिनता से ही चुरते (पकते) हैं, और बीच में कुछ कनी (कण) रही जाती है। पकने के बाद अगर इन्हें कुछ देरतक ढँककर रखा जाय, तो और भी नरम हो जाते हैं। मगर इतना करने पर भी कुटे हुए चावलों की अपेक्षा ये अनकुटे चावल कुछ-कुछ कड़े रह ही जाते हैं। तो भी स्वाद इनका कुटे चावलों की अपेक्षा अधिक सरस मालूम होता है। पच तो बड़ी आसानी से जाते हैं।

घानी का तेल

गावों में घानी से तेल—खासकर अलसी का—पेरा जाय, तो किसानों को काफी लाभ हो सकता है। मैंने उसका इस प्रकार हिसाब लगाकर देखा है :—

१ खंडी (= २१ मन) अलसी का दाम ८) होता है, लेकिन गांव में कोल्हू से पेरने से १ खंडी अलसी से २० सेर तेल और ७० सेर खली निकलेगी। तेल रुपये का २ सेर बिकता है, इसलिए तेल का दाम १०) आ जायगा, और १६ सेर के भाव से ४।≈) की खली उतरेगी। इस तरह १ खंडी अलसी बाजार में न बेचकर अगर घानी से घर में ही पेरी जाय तो १४।≈) किसान को मिल जायँगे। पिराई का खर्च २) निकाल दिया जाय, तो १२।≈) की बचत तो उसे अच्छी तरह हो जायगी। ड्योढ़ा मुनाफा है। पर आज तो यह हालत है कि अलसी को किसान लगेहाथों बेच डालते हैं। पसीना बेचारे किसान बहाते हैं, और लाभ दूसरे ही उठाते हैं!

आशा है कि ग्रामउद्योग-संघ के कार्य में रस लेनेवाले सज्जन अलसी को घानी-द्वारा पेरने के सम्बन्ध में अवश्य ध्यान देंगे।

ब्योहार राजेन्द्रसिंह

'हरिजन-डिफेन्सकमेटी'

> सांचे बानी ए रजवा, सांचे बानी रे।
> खलके गंगा में किरिया खिआय ना ले,
> देवी दुर्गा के चौरा छुआय ना ले;
> हम के नावा कराहो में नाय ना ले।
> सांचे बानी ए रजवा, सांचे बानी रे।

भोजपुरी के प्रान्त में जरायमपेशा कही जानेवाली जाति के हरिजनों में यह गीत बहुत प्रचलित है। किंवदन्ती है, कि किसी हरिजन स्त्री पर एक उच्च वर्ण के पड़ोसी की कुदृष्टि लग गई। इसी कुचेष्टा से उसने उस साध्वी स्त्री के पति को किसी मुकदमे में फँसा दिया। बेचारा हरिजन इस अभिशाप से वर्षों कारागार में रहा। घर लौटने पर उसे अपनी पत्नी के चरित्र पर कुछ सन्देह हुआ। पत्नीने अपनी अग्नि-परीक्षा दी। उसी अवसर का यह गीत है। बात पुरानी है, किन्तु इसमें अबतक वैसा ही आकर्षण है और वैसी ही करुणा से हरिजन स्त्रियां समय-समय पर यह गीत गाती हैं। सच पूछिए तो हरिजनों का जीवन अग्नि-परीक्षा का ही जीवन है। इस विषय में विस्तृत व्याख्या की आवश्यकता नहीं।

सौभाग्य से हरिजनों के लिए इस समय जनता और सरकार दोनों ही ओर से प्रयत्न हो रहे हैं। हरिजनों पर सामाजिक अत्याचार अब अधिक दिनोंतक नहीं ठहर सकते। सभी जानते हैं, कि वर्तमान कानूनने प्रत्येक अपराधी को यह अधिकार दिया है कि मुकदमे में फँसने पर वह अपनी पूरी पैरवी करे। परन्तु निर्धनता के कारण बेचारे हरिजन इस अधिकार का पूरा उपयोग कैसे कर सकते हैं? बिना पैसे के वकील की सहायता दुर्लभ है। सामाजिक दुरवस्था से हरिजनों को सफाई देने में भी कठिनाई होती है। इस कठिन परिस्थिति में यह नितान्त आवश्यक है कि प्रत्येक जिले का हरिजन-सेवक-संघ निर्धन हरिजनों के मुकदमे में उनकी उचित सहायता करे। यह वैध अधिकार है और सरकार को भी इसमें सन्तोष और प्रसन्नता ही होगी। इसके लिए प्रत्येक जिले में **"हरिजन डिफेन्स कमेटी"** का निर्माण होना चाहिए।

'मधुर'

'रहिमन-खादी'

आज हम एक आदर्श मुस्लिम महिला रहिमन के सम्बन्ध में लिखना चाहते हैं, जिसने इस बिगड़े हुए जमाने में भी पुराने रस्म-रिवाजों के आदर्श पर स्वयं अपने को बलिदान कर दिया है। इसके चरित्र का मुकाबला आप श्रवणकुमार से, जो हमारे धर्म-ग्रन्थों में माता तथा पिता की सेवा का आदर्श स्थापित कर गये हैं, कर सकते हैं। मुरादाबाद जिले के सम्भल नामक कस्बे में इस देवी का परिवार बहुत दिनों से रहता है। रहिमन की अवस्था इस समय ३०–३२ वर्ष की है। जिस समय इसके पति का स्वर्गवास हुआ, इसकी अवस्था २२–२३ वर्ष की थी। पति मर जाने

के बाद, अपने माता-पिता को भी छोड गया था, जो दोनो ही दोनों आखो से अन्धे थे।

पति के स्वर्गवास के बाद यह समस्या उपस्थित हुई कि क्या किया जाय। घर मे दो दिन के लिए भी खाने का ठिकाना नही, पहनने को कपडा नही, खाने के लिए बरतन नही---इस असहाय अवस्था में भी इस वीर रमणीने साहस का काम किया और श्रवण के आदर्श पर सास-ससुर को माता-पिता समझकर उनकी सेवा करने का व्रत ले लिया। खुद भूखो रहना पर सास-ससुर को खिलाना, उन्हें पाखाने के लिए, पेशाब के लिए हाथ पकड़के उठाना, बीमारी मे उनकी सेवा करना उसका धर्म हो गया।

यह देवी वस्त्र बुनने की कला मे थोडी जानकारी रखती है। सम्भल में श्री महावीरप्रसादजी पोद्दार का खोला हुआ खादी का एक केन्द्र है। वह इसी केन्द्र द्वारा सफेद खादी के थान बुनती है। एक महीने मे चार थान बुनलेती है, जिनसे उसे ढाई से तीन रुपया माहवारतक मिलता है। जरा कल्पना कीजिए, तीन रुपया माहवार मे तीन प्राणियो का जीवन-निर्वाह! इनके लिए ससार सूना है। महीने में सात दिन उपवास करना पडता है, बाकी दिन एक समय खाना खाते हैं। पर रहिमन बहिन में स्वाभिमान की मात्रा है। वह दान लेना या भिक्षा-वृत्ति से निर्वाह करना पसन्द नहीं करती। अपने बाहुबल से पैदा करके ही निर्वाह करना पसन्द करती है।

'खादी ही गरीबो का सहारा है' यह उदाहरण यहा समझा जा सकता है। इसकी बनायी हुई खादी का नाम 'रहिमन खादी' है। इतिहास में माता-पिता की सेवा के उदाहरण मिलेंगे, पर सास-ससुर की सेवा के नहीं।

रामनाथ टंडन

तीसरी यात्रा

हमारी ग्रामसेवकों की तीसरी यात्रा विनयाश्रम से २० मार्च का दिन के २ बजे आरभ हुई और २ एप्रिल की शाम को समाप्त हुई। श्री नेति वेंकटाचलपति और श्री मारनु पुन्नैया के नेतृत्व मे दो स्त्रियों और सोलह पुरुषोंने इस यात्रा में भाग लिया। इनमें स्त्रियो-समेत छै ग्रामसेवकोने तो आदि से लेकर अततक पूरी यात्रा की, और दूसरे लोगोने कम से-कम एक दिन और अधिक-से-अधिक ग्यारह दिन साथ दिया। टेनाली तालुका के तेरह गावो मे यह यात्रीदल गया, और कुल ३१ मील की यात्रा की। यह सारी यात्रा करीब-करीब पैदल ही की गई। दो बैलगाड़िया माल-असबाब ले जाने के लिए और बीच-बीच मे थके-मादे यात्रियो की सवारी के लिए साथ में रहती थी। यह यात्रीदल अपने साथ खादी, तकलिया, स्वदेशी चीजे, चेरुकुपालम् के बने उस्तरे, जूते, विनयाश्रम के बने तेल तथा दवाइया, बारडोली के कपास का बीज और पोन्नूर के वेलमा तथा पट्टुसाली बीज ले गये थे।

नीचेलिखे अनुसार चीजे बेची —

खादी	११२६॥-)
उस्तरे	२१।)
आश्रम की चीजे	३२॥।=)।
स्वदेशी माल	६०=)११
कुल	१२२०=)२

माल वगैरा ले जाने में कुल १७।)८ खर्च हुए। खर्चा पहले से अब बहुत कम हो गया है; और बिक्री पहले की यात्राओ के मुकाबले में अब बढ़ गई है।

'हरिजन' से] जो० सीताराम शास्त्री

संयुक्तप्रान्त के खादी-केन्द्रों में

(१)

देहरादून से चलकर तारीख ४ मार्च को सुबह भाई शर्माजी के साथ हम नगीना पहुँचे। नगीना गांधी-आश्रम, मेरठ का एक उत्पत्ति-केन्द्र है। आजकल श्री देवकरणजी अपने साथियों के साथ इस केन्द्र का काम चला रहे हैं। बस्ती हमें पुरानी किन्तु काफी बडी मालूम हुई। कार्यालय के मकान की छत पर चढ़कर मैंने एक निगाह मे सारे नगर का विहगावलोकन कर डाला।

स्नानादि से निपटकर कार्यालयवालों के साथ हम कत्तिनो के मुहल्ले में गये। साथ में कार्यालय का एक बूढा धुनिया भी था। यहा की कत्तिनो के लिए तमाम रुई यही धुनिया धुनता है और उसके गाले बनाकर कार्यालयवालो को दे देता है। कत्तिने कार्यालयवालो से धुनी हुई रुई के ये गाले ले जाती हैं, और उनकी पूनिया बनाकर सूत कातती हैं। यहा कताई का काम पर्दा करनेवाली मुसलमान बहनो के हाथ मे है। इसलिए सब कत्तिनो से मिलकर हम उनके चर्खे, तकुए और कताई आदि नहीं देख सके। फिर भी धुनिये की कोशिश मे एक बूढी विधवा कत्तिन अपना चर्खा लेकर हमारे सामने आई और सूत कातने बैठी। हमने देखा कि वह अपने नंगे तकुए पर यकसा, मजबूत और महीन सूत कात सकती थी। पर उसकी पूनिया जरूरत से ज्यादा मोटी थी, और चिमटी की पकड में नहीं आपाती थी। हमने अपने आस-पास लुक-छिपकर खड़ी हुई कत्तिनो का अपने पास की पतली पूनिया बताई, और उन्हे इन पूनियो का लाभ समझाया। उस बूढी कत्तिनने तो अपने चर्खे पर हमारी पूनिया कातकर पतली पूनियो की उपयोगिता हाथो-हाथ समझली और स्वीकार भी करली। फिर हमने उसके तकुए के चक्कर गिने और साश्चर्य देखा कि एक बार मे तकुआ ११२ चक्कर खाता है। ऐसे तकुए पर भी यदि उसका सूत मजबूत, महीन और ज्यादा न कतता तो फिर किसपर कतता! खुशी की बात तो यह है कि ये कत्तिने अपने चर्खे की रग-रग को पहचानती है और उसकी छोटी-मोटी हर टूट-फूट को खुद ही सुधार लेती है। वे प्राय. कच्चे लोहे के तकुए पर ही कातती है और टेढा हो जाने पर उसकी टेढ भी स्वय निकाल लेती है।

यह सब तो सुन्दर और सराहनीय था, पर दुःख इस कमी का था कि उन्होंने अबतक भी खादी पहनना शुरू नहीं किया था। हमने उनसे इसका कारण पूछा; उनकी कठिनाइया जानी, और उन्हे विश्वास दिलाया कि यदि वे खादी ही पहनने का निश्चय करलें, तो उनकी ये कठिनाइया सहज ही दूर कराई जा सकती है। उनकी बातो से हमे मालूम हुआ कि अगर खादी उन्हे लागत मूल्य मे मिले, और जुलाहे सहूलियत के साथ उनका सूत बुन दिया करें, तो वे खुशी-खुशी खादी पहन सकती हैं। हमने उन्हे इसका विश्वास दिलाया और कार्यकर्त्ताओं को सलाह दी कि वे अपनी कत्तिनों के लिए इतनी सहूलियत तो अवश्य करदे।

यहा से हम धुनिये के घर गये। उसकी धुनी हुई रुई और रुई धुनने की तरकीब देखी। धुनाई उसकी हमे सतोषजनक नहीं मालूम हुई। हमने उसे सलाह दी कि वह और भी होशियारी से धुने और रुई में कनी, गाठ या कचरा तनिक भी न रहने दे। लापरवाही से धुनी हुई रुई से महीन सूत कातने मे कत्तिनो को जो तकलीफ होती और नुकसान पहुँचता है, उसकी ओर भी हमने

उसका ध्यान खींचा, और उसने हम से वादा किया कि भविष्य में वह ऐसा नहीं करेगा, यानी ऐसी कत्तिनों के लिए वह बढ़िया-से-बढ़िया रुई धुनकर दिया करेगा।

दुपहर को हम हरगनपुर और नयापुरा की कत्तिनों से मिलने और उनकी स्थिति समझने गये। यहा हर हफ्ते सूत का बाजार लगता है, और कत्तिनें उसमें जुलाहों और खादीवालों के हाथ अपना सूत बेचती है। नयेपुरे में, जो हिन्दुओं की एक छोटी-सी बस्ती है, कुछ परिवार अधिकतर घर के सूत का बुना कपडा ही पहनते है। हमारी बड़ी इच्छा थी कि हम नयेपुरे की कत्तिनों को उनकी असली पोशाक में देखे और खादी के सम्बन्ध में उनके विचार जाने। पर हमें यह मौका ही न मिला। उस दिन गाव में किसी के घर विवाह था, और सब बहनें विवाह के काम में लगी हुई थी। हमने कोशिश तो की कि कुछ बहनें आजायें और हम उनका काम देखले, पर ऐसा न हो सका। तब तो हमने वहां की एक कत्तिन का चर्खा ही मँगवा लिया और उस पर स्वय कातकर देखा। यहा के चर्खे का पहिया बड़ा, पटरी छोटी और तकुआ नंगा था। तकुए के चक्कर ९० के करीब थे और सूत साधारण महीन और मजबूत कतता था।

गाव में घुसते ही हमें पास के एक मकान की ओसारी में कुछ भाई बैठे हुए मिल गये। हमने उन्हींसे खादी की बाते शुरू कर दी। उनमें से कुछ तो सिर से पैरतक खादी ही पहने थे। पर एक भाई से जब खादी की बात पूछी गई तो उन्होंने शिकायत की कि खादी की धोतिया बहुत ही कम चलती है और दूसरी तरह की खादी भी काफी कमजोर हो गई है। फिर भी हमने देखा कि एक धोती के सिवा उन भाई के शेष सब कपड़े खादी ही के थे। हमने वहीं इसका कारण जानना चाहा, पर तत्काल कोई खास कारण मालूम न हो सका।

वहा से हम फिर हरगनपुर गये। रास्ते में एक कार्यकर्त्ताने हमें बताया कि इधर कुछ समय से यहा की असली रुई में मिलों की रुई के कचरे की मिलावट होने लगी है, जिसके कारण सहज ही सूत कमजोर कतता है, और कपड़े को भी कमजोर बना रहा है। धुनियों और कत्तिनों में इस उपाय से थोड़ा पैसा कमा लेने का लोभ पैदा हो गया है, और यही वजह है कि मिलों की रुई का यह कचरा, जिसे लोग इस तरफ 'रूँग' कहते है, यहा खूब बिकने लगा है, और इधर के प्राय. सभी गावो में बरता जाने लगा है। यह सुनते ही हमें बड़ा दुःख हुआ और यह खयाल आया कि देखें तो सही कि यह कम्बख्त 'रूँग' क्या बला है, और इसका क्या इतिहास है। हम पूछते-पूछते हरगनपुर के एक धुनिये के घर पहुँच गये। वह बेचारा बहुत ही भला आदमी निकला। उसने बड़े प्रेम से हमें अपने पास की 'रूँग' का नमूना बताया और कहा कि यह बाजार में उसे रुपये की ५ सेर से लेकर ७ सेरतक मिल जाती है, जब कि असली रुई रुपये की २-२॥ सेर ही मिलती है।

जब हमने इस भले धुनिये को, जिसने हमें अपना नाम रहीम-बख्श बताया था, रूँग के व्यापार की बुराइया बताई, और उससे होनेवाली हानिया समझाई, तो वह हमारी बात मान गया और कहने लगा कि अगर ऐसी बात है, तो मैं आइन्दा रूँग का लेन-देन ही बन्द कर दूगा और उसकी जगह कोई दूसरा काम ढूढ लूगा। हमें उसकी इस तैयारी से बड़ी खुशी हुई और उससे रूँग का थोड़ा नमूना लेकर इस नई समस्या पर विचार करते हुए हम आगे चल दिये।

हरगनपुर में हम एक जुलाहे के भी घर गये। वे दो भाई थे। एक अपने कर्घे पर मिल का सूत बुन रहा था, और मिल के कपड़े पहने था, जब कि दूसरा घास के गट्ठे बाध रहा था, लेकिन बदन पर शुद्ध खादी के कपड़े पहने था। हमने उससे पूछा कि ये तुम्हारे पास कितने दिन चलते है, और किसके बनाये हुए है? उसने कहा कि मैं अपने कर्घे पर कभी-कभी कुछ कपडा बुन लेता हूँ और वही यह कपड़ा है। यह एक कुर्त्ता और एक वास्कट मेरे पास एक साल चल जाती है। हमने देखा कि वह एक अच्छा कारीगर है, पर काम न मिलने के कारण उसे अपना कर्घा छोड़कर दूसरी-दूसरी मजदूरी करनी पड़ती है। तुरन्त ही हमने एक लम्बी उसास ली और सोचा कि आज देश में ऐसी तो न जाने कितनी कुशल शक्तिया पड़ी हैं कि जिनका ठीक-से कोई उपयोग नहीं हो रहा है, और जिसके कारण देश को भयकर आर्थिक क्षति उठानी पड़ रही है।

हरगनपुर और नयापुरा की इन नई समस्याओं पर वहा के खादी-सेवकों के साथ बातचीत करते हुए हम बुन्दकी स्टेशन आये और वहा से धामपुर के लिए रवाना हो गये। (क्रमश.)

काशिनाथ त्रिवेदी

---

३२५ ग्राहकों को आधे मूल्य में

कलकत्ते के निम्नलिखित सज्जनोंने एक वर्षतक आधे मूल्य में 'हरिजन-सेवक' देने के लिए ५८४॥) प्रदान किये है, जिसके लिए हम हृदय से उनके आभारी है :—

श्री घनश्यामदासजी लोयलका	१७५)
श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका	८७॥)
श्री भगीरथजी कानोडिया	८७॥)
श्री बसतलालजी चतुर्वेदी	३५)
श्री देवीप्रसादजी खेतान	३५)
श्री रामकुमारजी केजड़ीवाल	३८॥)
श्री मूलचदजी अग्रवाल	३५)
श्री बसतलालजी मुरारका	७०)
श्री शिवशरणदासजी मित्तल	२१)

हमने इस दान में अपने प्रांतीय हरिजन-सेवक-सघों के मार्फत नीचे लिखे अनुसार एक वर्षतक आधे मूल्य में, अर्थात् २) में, "हरिजन-सेवक" देना निश्चित किया है। निम्नलिखित प्रांतीय सघों के मत्रियों को शीघ्र-से-शीघ्र, मय रुपयों के, ग्राहकों के नाम, स्पष्ट पतों के साथ, कृपाकर भेज देने चाहिए —

प्रांत	ग्राहक	प्रांत	ग्राहक
बंगाल	२५	महाराष्ट्र	१०
बिहार	४५	मध्यभारत	१५
संयुक्तप्रांत	६०	बरार	१०
दिल्ली	५	हिंदी मध्यप्रांत	१५
पंजाब	२५	मराठी मध्यप्रांत	१०
सिंध	५	तामिलनाड (मय मद्रास शहर)	१०
उड़ीसा	१०	आंध्र	१०
गुजरात और		केरल	५
काठियावाड़	१०	कर्णाटक	५
राजपूताना	४५	मैसूर राज्य	५

व्यवस्थापक
'हरिजन-सेवक' दिल्ली

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi...

बढ़ता हुआ दुराचार ?

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३]

दिल्ली, शुक्रवार, ३ मई, १९३५.

[संख्या ११

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

सफ़ाई का काम

मुझे एक काम से बाहर जाना पड़ा, और मीरा बहिन तथा दूसरे मित्रों को इंदौर आना पड़ा, मगर हम लोगों की अनुपस्थिति से काम कुछ अटका नहीं। सफाई के काम की देखरेख रखने के लिए गांधीजी हमारे एक सहायक को जानमानकर वर्धा में छोड़ आये थे, नहीं तो वे इंदौर जरूर आते।

एक टट्टी तो हमने वहां खड़ी कर दी है, और अब हम यह चाहते हैं कि अपने मसाले और मेहनत से बाकी का काम गांव के लोग खुद कर डालें। पर हमें इतनी जल्दी इस तरह के किसी काम की आशा नहीं है। पाखाने में जाते तो बहुत से लोग हैं, पर अपने मलमूत्र पर मिट्टी तो अब भी कोई नहीं डालता। उनका यह काम अभी हमीं को करना पड़ता है। बड़प्पन के इस सत्यानाशी खयालने उनके दिल में इतनी मजबूत जड़ जमाली है कि अपने मलमूत्र को मिट्टी से ढक देने का उनका मन ही नहीं होता, हालांकि वे यह जानते हैं कि भंगी बिना किसी हिचक के यह काम करते हैं। मेरा खयाल है कि गांव के लोग अपने को हम लोगों से बड़ा तो नहीं समझते, पर वे हमें सनकी जरूर समझते हैं, और शायद उन्हें यह दृढ़ संदेह है कि हमारा यह सारा उत्साह बहुत जल्द खतम हो जायगा और अंत में हम उनका पिंड छोड़ देंगे। मगर यहां वे भूल करते हैं। उन्हें यह पता नहीं है कि गांधीजी तो इंदौर में भी बैठे बैठे यह सोच रहे थे और प्रयत्न कर रहे थे कि ऐसा कोई बढ़िया-से-बढ़िया तरीका ढूंढ निकाला जाय, जिससे सब मौसिमों में कम-से-कम खर्च में मैला ठिकाने लगाया जा सके। बात यह है कि बरसात के दिन आनेवाले हैं, और तब हमें कूड़ा-कचरा हटाने और लोगों से खेतों में जाने के लिए कहने के बजाय कोई-न-कोई दूसरा उपाय सोचना ही होगा।

नया प्रयत्न

सूत कातने की ओर भणसालीजी की प्रवृत्ति तो थी नहीं, यह तो मैं कह ही चुका हूं। पर दूसरे दिन फिर इसी विषय पर बातें हुईं। बालोचित भोलेपन के साथ भणसालीजीने गांधीजी से पूछा, 'आप कच्छ नहीं चाहते हैं, बापू! मैं समझ गया, आप तो मुझ से कुछ काम कराना चाहते हैं। है न यही बात?'

'तुम्हारा खयाल ठीक है।' गांधीजीने कहा। 'पर तुम्हें जब काम करना ही है, तो फिर मेरे लिए यह काम क्यों न करो?'

'मुझे काम करना ही है तो मुझ से आप कोई दूसरा काम क्यों नहीं लेते? मुझ में वह पात्रता ही कहां कि आपके प्रीत्यर्थ मैं यह पवित्र काम कर सकूं?'

'पर इसका मुझे विश्वास है कि मैं जिनके काते हुए सूत का कपड़ा पहिनता हूं वे तुम से किसी भी कदर अधिक पवित्र नहीं हैं।'

'नहीं बापू! मैं तो तुच्छातितुच्छ हूं, उनके चरणों की धूल से भी तुच्छ हूं मैं।'

इसके दूसरे दिन काकासाहब-जैसे पुराने साथियोंने प्रयत्न किया। 'अरे, तुम बापू को कोई प्रेमोपहार नहीं दोगे? मैं तो अपना अहोभाग्य समझूं, अगर [illegible] के लिए कातूं।'

पर भणसालीजी तो बराबर अपनी अयोग्यता ही प्रगट करते रहे।

'लेकिन', काका साहबने कहा, 'मानलो कि बापू एक गिलास पानी लाने के लिए किसी से कहें, और हम सब-के-सब उनसे यह कहने लगें कि बापू, हमें खेद है, हम अपवित्र मनुष्य आपकी कोई सेवा करने योग्य नहीं, तो बापू का फिर क्या हाल होगा? उन्हें तो वह एक गिलास पानी मिलने से रहा!'

काका साहब का यह निशाना सीधा बैठ गया। भणसालीजीने लिख दिया (क्योंकि बोलते तो वे केवल गांधीजी से ही हैं) कि, 'अच्छी बात है, तब मैं कातूंगा। भूल ही करनी है तो फिर ऐसी क्यों न करूं कि जिसमें कोई जोखिम न हो?' और अब हमारे भणसालीजी नित्य नियमपूर्वक सूत कातते हैं।

मौन की समाप्ति

१९ एप्रिल के प्रातःकाल गांधीजी के मौन का चौथा सप्ताह समाप्त हुआ। गांधीजी को तो नहीं, पर हम सब को एक तरह से छुट्टी मिली। प्रभात-प्रार्थना के बहुत पहले ही से लोग इकट्ठे होने लगे थे। पर गांधीजी का काम तो वैसा ही बदस्तूर चलता रहा, इस सबसे उसमें कोई फर्क नहीं पड़ा। आखिरी मिनिटतक वे उसी तरह लिखते रहे। हम लोगोंने नरसी मेहता का भजन 'वैष्णवजन तो तेने कहिये' गाया। प्रार्थना समाप्त होने पर गांधीजीने कहा:—

"मैंने यह मौन किया तो था सिर्फ इस विचार से कि कागज-पत्र लिखने का जो बहुत-सा काम पिछड़ गया था, उसे इस बीच में साफ कर डालूं, पर अब मैं देखता हूं कि उसके अलावा इस मौन से मुझे और भी अनेक लाभ हुए हैं। चूंकि मेरी दृष्टि के

सामने सदा केवल आध्यात्मिक लक्ष्य ही रहता है, इसलिए मेरे इस मौनव्रत से मुझे स्पष्ट ही आध्यात्मिक लाभ हुआ। जो अपने जीवन में निरन्तर अनवरत रीति से सत्य का शोध कर रहा हो उसके लिए मौन बहुत आवश्यक है। किन्तु वह मौन मेरे इस मौन से कहीं अधिक महान् वस्तु है। उसमें तो बातचीत का साधन यह लिखना भी बन्द कर देना चाहिए। अन्तर में सत्य यदि होगा तो वह बिना ही वाणी के बिना ही लेखनी के उसके प्रत्येक कार्य के द्वारा बोलेगा। उस दिन विनोबा का मुझे एक पत्र मिला था। भाऊने मुझे जो पूनिया बनाकर भेजी थीं और जिनके लिए मैंने उनकी प्रशंसा की थी उसी सम्बन्ध में विनोबा का वह पत्र था। उसमें उन्होंने लिखा था कि, "आपने भाऊ की जो प्रशंसा की है वास्तव में वे उसके पात्र है, पर मैं चाहता हूँ कि आपकी पूनिया और भी अच्छी हों। जिस रुई की उन्होंने पूनिया बनाई है वह गाठ की रुई है। आपको ऐसी रुई काम में लानी ही नहीं चाहिए। जो रुई दबाई हुई नहीं होगी उसका असर तो कुछ और ही होगा।" जब तारीबेन बहुत बारीक सूत कातने की क्रियाओं का अभ्यास करने नालवाड़ गई थीं और वहां से लौटकर उन्होंने मुझे खास तौर पर बिना प्रेस की हुई रुई की कुछ पूनिया बनाकर दीं, जब मुझे इस बात की सचाई का पक्का प्रमाण मिल गया था। जब मैंने इन पूनियों को काता, तो मुझे काफी फर्क मालूम पड़ा। सूत टूटा तो जरा भी नहीं। यह बात नहीं कि मैंने कुछ खास ध्यान से काता था, पर वह रुई ही अत्यन्त सावधानी के साथ साफ करके धुनकी गई थी। मैं यह बतलाने का प्रयत्न कर रहा हूं कि सत्य में कितनी सावधानी की आवश्यकता है और जो मधुर स्वाद 'करनी' में है वह 'कथनी' में कहां। कुछ वर्ष हुए कि कलकत्ते की एक सभा में इतना ही कहकर मैंने मन में सन्तोष मान लिया था कि, 'आप लोग तो मेरी इन उँगलियों का मूक भाषण ध्यान से सुनें, जो यह तकली चला रही हैं।'

इस मौन में एक गुण और मुझे दर्पणवत् दिखाई दिया। क्रोध जैसे सबको आता है मुझे भी वैसे ही आ जाता है। पर मैं उसे सफलतापूर्वक दबा सकता हूँ। खैर, मुझे यह मालूम हुआ कि क्रोध को दबाने में मौन से जितनी मदद मिलती है उतनी शायद किसी अन्य साधन से नहीं मिलती। मनुष्य जब मौन रहेगा तब क्रोध वह कहां से प्रगट करेगा? नेत्रों के द्वारा तो प्रगट नहीं करेगा। और जब उसने अहिंसा का व्रत ले लिया है, तब शारीरिक हिंसा के द्वारा तो वह क्रोध को उत्तेजन दे ही नहीं सकता। लिखकर भी वह क्रोध को प्रगट नहीं कर सकता, क्योंकि लिखने की क्रिया आरम्भ करने में ही क्रोध का शमन हो जाता है।

मौन के और भी अनेक लाभों का मैं वर्णन कर सकता हूं, पर यहां तो इतना ही काफी होगा। एक बात मैं आप लोगों से कह दूं। वह यह कि इस मौनव्रत की समाप्ति के लिए मैं कुछ आतुर नहीं हो रहा था। मुझे तो यह डर लग रहा था कि मौन-भंग करने का दिन अब आ पहुँचा। और मैं तो चाहता हूं कि महीने-चार महीने का न सही, पर थोड़े-थोड़े दिनों का मौनव्रत तो मैं बीच-बीच में लिया ही करूँ।"

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

इंदौर में अ० भा० हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति के पद से गांधीजीने जो काम किया उसके संबंध में, 'हरिजन-सेवक' का क्षेत्र देखते हुए, मुश्किल से ही यहां कोई चर्चा की जा सकती है। मैं तो एक-दो उन्हीं बातों की यहां चर्चा करूँगा जो कि जन-साधारण के हित की हैं, क्योंकि यह पत्र खासकर जन सेवा को सामने रखकर ही निकाला जा रहा है। भारत की राष्ट्रभाषा बनने की योग्यता सबसे अधिक हिंदी में ही है, और इस तरह जन-साधारण को यही भाषा एकसूत्र में गूंथ सकती है इस बात को अगर हम एक तरफ रख दें तो फिर गांधीजी के लिए हिंदी में कोई खास रस नहीं रह जाता। और अगर इस प्रकार के किसी सम्मेलन का सभापति बनने का उन्हें कोई अधिकार है तो उसका पता हमें उनकी उस जोरदार अपील में मिलता है, जो उन्होंने हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के इस महान् अधिवेशन के अवसर पर भारत के तमाम प्रांतों में—खासकर दक्षिण भारत में—हिंदी का संदेश पहुँचाने के संबंध में की है। १९१८ में इसी इंदौर में इसी साहित्य-सम्मेलन के सभापति-पद से जिस प्रयत्न का सूत्रपात गांधीजीने किया था, उसका यह फल हुआ है कि आज दक्षिण भारत में ६००,००० से ऊपर स्त्री-पुरुषों को हिंदी का कामचलाऊ ज्ञान हो गया है। यहां अंग्रेजों के आने के पूर्व, एक प्रांत का दूसरे प्रांत के साथ संपर्क रखनेवाले मध्यम हिंदी-भाषा और वे तीर्थयात्री तथा साधु-संत ही थे, जिन्होंने बदरी-केदार से रामेश्वर तक और जगन्नाथपुरी से द्वारका तक समस्त भारत के देवमंदिरों का दर्शन करते हुए धार्मिक परंपरा को अक्षुण्ण और भारत की मौलिक एकता को कायम रखा। आज अस्पृश्यता-निवारण का संदेश, खादी का संदेश और ग्रामोद्योगों को पुनरुज्जीवित करने का संदेश भारत के दूर-दूर के गांवोंतक केवल हिंदी भाषा के माध्यम द्वारा ही पहुँचाया जा सकता है।

हिंदी को इस अन्तर्प्रान्तीय संस्कृति और आध्यात्मिक विनिमय की भाषा बनाने के लिए सम्मेलन को ऐसे-ऐसे प्रभावशाली प्रयत्न करने होंगे जिससे कि सचमुच हिंदी हमारे अज्ञान तथा निरक्षर जनसमूह के अनुकूल बन जाय। गांधीजीने अध्यक्ष-पद से जो मौखिक भाषण दिया था उसमें इस बात पर उन्होंने बहुत अधिक जोर दिया :

'भारतवर्ष आज अपने किसानों के सहारे ही जी रहा है। वे अगर आज काम बंद कर दें तो सब को—महाराजा साहब को भी भूखों मरने की नौबत आ जाय। सर हुकुमचंद सहारा के रेगिस्तान में जा पहुँचें और वहां उन्हें पानी देनेवाला कोई न हो तो उनके पास कीमती जवाहरात होते हुए भी उन्हें प्यासा ही मर जाना पड़े। हमारे पास चाहे जितना सोना और जवाहरात हो तो भी वे हमारी न तो भूख बुझा सकते हैं, न प्यास। हमारा जीवन अपने इन किसानों और मजदूरों के ऊपर निर्भर करता है, और हमारी संस्कृति भी इस चीज को स्वीकार करती है। इन किसानों और मजदूरों की भाषा—ऐसी भाषा जिसे वे सहज ही समझ सकें—हिंदी या हिन्दुस्तानी ही है। वही हमारी राष्ट्रभाषा हो सकती है। ऐसी भाषा के क्षेत्र में सच्ची जनसत्ता मानी जा सकती है। जिस भाषा में कालिदास बोलते थे उस भाषा में आप उनसे बोलें तो वे उसे समझने के नहीं। आपको तो उन्हीं की भाषा सीखनी पड़ेगी और उनके साथ उन्हीं की भाषा में बोलना पड़ेगा। इस कार्य के निमित्त मैं आपको एक वर्षतक के लिए अपनी सेवा अर्पण कर रहा हूं।"

इंदौर में जो ग्रामउद्योगों की प्रदर्शिनी हुई थी उसके संबंध में आगामी सप्ताह में लिखूंगा।

'हरिजन' से]

महादेव ह० देसाई

करंजिया का गोंड-सेवा-मंडल

उपेक्षित गोंड़जाति की सेवा के लिए किये गये फादर एल्विन इस सत्प्रयत्न को अपनी आंखों देखने की इच्छा बहुत दिनों से थी ही। "गोंड़जाति और उसकी सेवा" शीर्षक मेरी लेखमाला "हरिजन-सेवक" में पढ़कर गांधीजी ने भी एक बार गोंड-सेवा-मंडल का कार्य स्वयं देख आने के लिए कहा था। गत नवम्बर में श्री ठक्कर बापा ने इस वृद्धावस्था में भी पहाड़ी बीहड़ रास्ता पार करने का जो श्रम उठाया था उससे तो वहां जाने के लिए और भी उत्सुकता बढ़ गई, किन्तु उसके पूर्ण होने का अवसर अभी मिल सका।

करंजिया मण्डला जिले के उन सुन्दर स्थानों में से है जहां रेल तो क्या मोटर भी पहुँचना कठिन है। पेंड्रा रोड स्टेशन से, जो कटनी-बिलासपुर लाइन पर है, यह स्थान सड़क-द्वारा ३२ मील दूर है। सूखे दिनों में किराये की मोटर भी मिल जाती है। पैदल रास्ते से २३ मील ही पड़ता है। मण्डला से यह स्थान मोटर-द्वारा १०० मील पड़ता है। रास्ता दोनों ही ऊबड़ खाबड़ और पहाड़ी है।

आश्रम करंजिया ग्राम से आध मील दूर टिकराटोला नामक एक सुन्दर पहाड़ी पर स्थित है। दूर ही से फूस से छाई हुई मिट्टी की कुटियों की पांति दीख पड़ती है, मानों कोई गोंडी गांव हो। अन्तर सिर्फ इतना ही है कि आश्रम अधिक साफ-सुथरा और सुन्दर है। इन्हीं छोटी छोटी कुटियों की कतार के अन्त में, पहाड़ी के छोर पर, एक कुटिया में एक ईसाई सन्त रहता है। कहने को तो यह विदेशी और परधर्मी है, किन्तु असल में गोंडों का देश ही उसका देश है और उनकी सेवा ही उसका धर्म है। आचार-व्यवहार, रहन-सहन, बोल-चाल, सभी में उन्होंने अपने को यहां के निवासियों से एकाकार कर लिया है। यहां के लोग उन्हें फादर एल्विन की अपेक्षा "बड़े भैया" के नाम से अधिक पहचानते हैं।

कुटिया में से निकलकर अपने शरीर ही के समान स्वच्छ खादीधारी "बड़े भैयाने" हमारा स्वागत किया और भीतर ले जाकर मचैया पर बिठाया। आप एक बार जबलपुर आये थे; उस समय का कुछ परिचय था। कुछ समय से आपने बाहर आना-जाना बन्द-सा कर दिया है। सरकार ने आपके पीछे भाषणादि न देने, खास-खास लोगों से न मिलने आदि के इतने प्रतिबन्ध लगा रखे हैं कि आप इसी क्षेत्र के भीतर स्वेच्छा से नजरबन्द रहना पसंद करते हैं।

इस कुटिया की एक कोठरी की टूटी-फूटी आलमारियों में अंग्रेजी की कुछ पुस्तकें हैं जो आक्सफोर्ड से भारत आते समय आप अपने साथ लाये थे। आंगन के किनारे-किनारे सुन्दर फूलों की क्यारी लगी हुई है। एल्विन साहब गोंडों के भीतरी जीवन को विद्या के द्वारा सुन्दर बनाने के साथ-ही-साथ उनकी बाहरी दुनिया को—उनके घरों और बाड़ियों को फूल और फलों के पौधों से सुन्दर सुवासित और सरस बनाने का भी जतन कर रहे हैं। आंगन के बीच में एक छोटा-सा फूस ही से छाया हुआ गिरजा है जो आश्रम के तीन ईसाई मेंबरों ही के काम आता है। गिरजे की नीची मिट्टी की दीवारों पर प्रभु ईसा तथा माता मेरी के चित्र लटक रहे हैं और गर्भगृह के द्वार पर सेवा के अवतार सन्त फ्रांसिस की सुन्दर मूर्ति मानो पहरा दे रही है। छोटे-से गर्भगृह के भीतर खादी से ढँका हुआ एक मञ्च है जिस पर महात्मा ईसा की छोटी-सी सुन्दर मूर्ति शान्ति बरसा रही है। फादर अपने को चर्च आफ् इंगलैण्ड का अनुयायी मानते हैं, किन्तु लोगों को ईसाई बनाने से इन्कार करने के कारण उक्त सम्प्रदाय के पादरी आपकी ईसाईयत "स्वीकार" नहीं करते।

गिरजे के पीछे के खुले कमरे में आपकी सोने-बैठने की जगह है। कुटिया के बाहर पहाड़ी के किनारे आश्रमवासी सांझ-सबेरे प्रार्थना के लिए इकट्ठे होते हैं। 'आश्रम भजनावली' की प्रार्थना, गीता-पाठ, और भजनों के अलावा एक ईसाई भजन भी नित्य गाया जाता है।

हम लोगों को आश्रम दिखाने के लिए आप नंगे पैर ही चल पड़े। एक कुटिया पर "जमनालाल-गृह" लिखा हुआ है। यही आश्रमवासियों का भोजनालय भी है। पास ही छोटी-सी पाकशाला है। आंगन में केले व पपीते के पेड़ लगे हुए हैं। रास्ते के किनारे तुलसी के पौधे देखकर हमारे हिन्दूपने को विशेष आनन्द हुआ। आगे चलकर "छात्रालय" है जहां विद्यार्थी रहते हैं। पास ही शिक्षकों की भी कुटिया है। एक कुटिया में औषधालय है, जिसमें अधिकांश अंग्रेजी दवाइयां ही हैं। यहां से ५० मील दूर डिंडोरी तथा ४० मील दूर बजाग में सरकारी अस्पताल कायम है किन्तु काफी दवा आदि न मिलने के कारण रोगी ४०-५० मील की दूरी लांघ-लांघकर भी यहां आना पसंद करते हैं। औषधालय से १५-२० रोगी नित्य लाभ उठाते हैं। मैंने इस सम्बन्ध में सतीश बाबू की सस्ती दवाइयों का प्रयोग करने और साथ ही कुछ देशी दवाइयों के पौधे लगाकर सस्ती आयुर्वेदिक दवाइयां तैयार कर लेने की बात "छोटे भैया" से कही और उन्होंने इस ओर ध्यान देने का वादा भी किया।

इन छोटे भैया का नाम श्री श्यामराव है। यही यहां अस्पताल में दवा-दारू बांटने और कुष्टालय में चिकित्सा करते हैं। साथ ही वे बड़े भैया को सब प्रकार से सहायता देते हैं जिनके आग्रह से उन्होंने विलायत से उच्च डिगरी प्राप्त करने की लालसा छोड़कर सभ्यता से सैकड़ों मील दूर कुष्टी-गोंड-नारायण की सेवा में अपना जीवन लगा दिया है।

इसी कुटी के एक कमरे में छोटा-सा हिन्दी-पुस्तकालय है, जिसमें लगभग ३०० पुस्तकें हैं। "हरिजन-सेवक", "कर्मवीर", "प्रताप" पत्र आते हैं। हिन्दी पत्रिकाओं की आवश्यकता जान पड़ती है। आगे चलकर बाज़ू में अतिथिशाला है और बीच में मदरसा जिसपर "गांधी-ज्ञान मन्दिर" लिखा हुआ है। इसमें करीब ३५ बालक दर्ज हैं व २५ औसत हाजिरी है, जिनमें एक चमार का बालक भी है। श्री सुन्दरराव अपने एक साथी के साथ यहां शिक्षा देते हैं।

आश्रम से कुछ हटकर 'कुष्टि-निवास' है, जिसमें कोढ़ के रोगी बस्ती से दूर रखे जाते हैं और उनकी दवा-दारू की जाती है। इस समय यहां १६ स्त्री-पुरुष और बच्चे रहते हैं, जिनमें ४ बैगा और बाकी गोंडजाति के हैं। दो परिवार ऐसे मिले जिनमें सब-के-सब माता-पिता व उनके दो बच्चे कुष्ट रोग से पीड़ित हैं। यहां की सेवा-शुश्रूषा और दवा-दारू से उन्हें लाभ हो रहा है। एक बैगा भाई, जिसके मुंह व होठों में कोढ़ निकल आया है, १५ दिन से यहां आया हुआ है। आने के समय उसका खाना-पीना बन्द हो गया था, पर यहां वह खाने लगा है। सभी रोगियों के हृदय इन दीन-सेवकों को आशीर्वाद दे रहे हैं। बड़े भैया और छोटे भैया को इन परित्यक्त प्राणियों की सेवा करते देखकर मुझे सन्त फ्रांसिस की याद आ गई, जिन्होंने एक कोढ़ी के अन्दर अपने प्रभु के दर्शन किये थे और उसके मुंह पर कोढ़ देखकर उसे चूम लिया था। (अपूर्ण)

ब्यौहार राजेन्द्रसिंह

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ३ मई, १९३५

बढ़ता हुआ दुराचार ?

सनातनधर्म कालिज, लाहौर के प्रिंसिपल लिखते हैं :—

"इसके साथ मैं जो कटिंग, और विज्ञप्तियां वगैरा भेज रहा हूं उन्हें देखने की मैं आपसे प्रार्थना करता हूं। इन कागजों से ही आपको सारी बात का पता लग जायगा। यहां पंजाब में 'युवक हितकारी-संघ' बहुत उपयोगी काम कर रहा है। विद्वत्-समाज एवं अधिकारीवर्ग का उसकी ओर ध्यान आकृष्ट हुआ है, और बालकों के सुसंस्कृत माता-पिताओं की भी दिलचस्पी सघने प्राप्त की है। बिहार के पंडित सीतारामदासजी इस आंदोलन के प्रणेता हैं, और इस आंदोलन के आश्रयदाताओं में यहां के अनेक प्रतिष्ठित सज्जनों के नाम गिनाये जा सकते हैं।

इसमें तनिक भी सदेह नहीं कि कोमल वय के बालकों को फँसाने का यह दुराचार भारत के दूसरे भागों की अपेक्षा इधर पंजाब और उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्त में ज्यादा है।

क्या आप कृपाकर 'हरिजन' में अथवा किसी दूसरे अखबार में लेख या पत्र लिखकर इस बुराई की तरफ देश का ध्यान आकर्षित करेंगे ?"

इस अत्यन्त नाजुक प्रश्न के सम्बन्ध में बहुत दिन हुए कि युवक-संघ के मंत्रीने मुझे लिखा था। उनका पत्र आने पर मैंने डॉ० गोपीचन्द के साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया, और उनसे यह मालूम हुआ कि संघ के मंत्रीने जो बातें अपने पत्र में लिखी हैं वे सब सच्ची हैं। लेकिन मुझे यह स्पष्ट नहीं सूझ रहा था कि इस प्रश्न की चर्चा 'हरिजन' में या किसी दूसरे पत्र में चर्चा करूं। इस दुराचार का मुझे पता था, मगर मुझे इस बात का विश्वास नहीं था, कि अखबारों में इसकी चर्चा करने से कोई लाभ हो सकेगा या नहीं। यह विश्वास अब भी नहीं है। किन्तु कॉलेज के प्रिंसिपल साहबने जो प्रार्थना की है उसकी मैं अवहेलना नहीं करना चाहता।

यह दुराचार नया नहीं है। यह बहुत दूर-दूरतक फैला हुआ है। चूंकि इसे गुप्त रखा जाता है, इसलिए यह आसानी से पकड़ में नहीं आ सकता। जहां विलासपूर्ण जीवन होगा वहीं यह दुराचार होगा। प्रिंसिपल साहब के बताये हुए किस्से से तो यह प्रगट होता है कि अध्यापक ही अपने विद्यार्थियों को भ्रष्ट करने के दोषी हैं। बारी जब खुद ही खेत को चर जाय तो फिर किससे रखवारी की आशा करें ? बाइबिल में कहा है कि 'नौन जब खुद अलोना हो जाय तब उसे कौन चीज नमकीन बना सकती है ?'

यह प्रश्न ऐसा है कि इसे न तो कोई जांच-कमेटी ही हल कर सकती है, न सरकार ही। यह तो एक नैतिक सुधार का काम है। माता-पिताओं के दिल में उनके उत्तर-दायित्व का भाव पैदा करना चाहिए। विद्यार्थियों को शुद्ध स्वच्छ रहन-सहन के निकट संसर्ग में लाना चाहिए। सदाचार और निर्विकार जीवन ही सच्ची शिक्षा का आधार-स्तंभ है, इस विचार का गंभीरता के साथ प्रचार करना चाहिए। शिक्षण-संस्थाओं के ट्रस्टियों को अध्यापकों के चुनाव में बहुत ही खबरदारी रखनी चाहिए, और अध्यापकों को चुनने के बाद भी उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि उनका आचरण ठीक है या नहीं। ये तो मैंने थोड़े-से उपाय बतलाये हैं। इन उपायों के सहारे यह भयंकर दुराचार निर्मूल न हो तो कम-से-कम काबू में तो आ ही सकता है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

हमारी राष्ट्रभाषा

[इंदौर में अ० भा० हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के चौबीसवें अधिवेशन में अध्यक्ष-पद से गांधीजीने जो भाषण किया था उसके कुछ महत्वपूर्ण अंश नीचे दिये जाते हैं।]

ईश्वर की गति गहन है। अक्तूबर मास से मैं इस बोझ को टाल रहा था। यह पद पूजनीय मालवीयजी महाराज का था। पर उनका स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण, और उनको विदेश जाना था इसलिए, उन्होंने त्यागपत्र भेजा। दूसरा सभापति चुनने में आपको कुछ मुसीबत थी। मेरा नाम तो स्वागत-समिति के सामने था ही। मुझको जब स्वागत-समिति का संकट बताया गया तो मैं विवश होगया और पद ग्रहण करना स्वीकार कर लिया।

मेरा क्षेत्र बहुत मर्यादित है। मेरा हिन्दी भाषा का ज्ञान नहीं के बराबर है। आपकी प्रथमा परीक्षा में मैं उत्तीर्ण नहीं हो सकता हूँ। लेकिन हिन्दी भाषा का मेरा प्रेम किसी से कम नहीं ठहर सकता है। मेरा क्षेत्र दक्षिण में हिन्दी-प्रचार है। आप पूछ सकते हैं कि केवल दक्षिण ही में हिन्दी-प्रचार के लिए क्यों ? मेरा उत्तर यह है कि दक्षिण भारत कोई छोटा मुल्क नहीं है। वह तो एक महाद्वीप-सा है। वहां चार प्रान्त और चार भाषाएं हैं—तामिल, तेलुगु, मलयाली और कानडी। आबादी करीब सवा सात करोड़ है। इतने लोगों में यदि हम हिन्दी प्रचार की नींव मजबूत कर सकें तो अन्य प्रांतों में बहुत ही सुभीता हो जायगा।

दक्षिण में हिन्दी-प्रचार सबसे कठिन कार्य है। तथापि अठारह वर्षों से हम व्यवस्थित रूप में वहां जो कार्य करते आये हैं उसके फलस्वरूप इन वर्षों में छः लाख दक्षिणवासियोंने हिंदी में प्रवेश किया। ४२००० परीक्षा में बैठे, ३२०० स्थानों में शिक्षा दी गई, ६०० शिक्षक तैयार हुए और आज ४५० स्थानों में कार्य हो रहा है। सन् ३१ से स्नातक परीक्षा का भी आरम्भ हुआ, और आज स्नातकों की संख्या ३०० है। वहां हिन्दी की ७० किताबें तैयार हुईं और मद्रास में उनकी आठ लाख प्रतियां छपीं। सत्रह वर्ष पूर्व दक्षिण के एक भी हाईस्कूल में हिन्दी की पढ़ाई नहीं होती थी, पर आज सत्तर हाईस्कूलों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। सब मिलाकर यहां ७० कार्यकर्त्ता काम कर रहे हैं और आजतक इस प्रयास में चार लाख रुपया खर्च हुआ है जिसमें से आधे से कुछ कम रुपये दक्षिण में ही मिले हैं। यहां एक और बात कह देना जरूरी है। काका साहब अपने निरीक्षण के बाद कहते हैं कि दक्षिण में बहनोंने हिन्दी-प्रचार के लिए बहुत काम किया है। वे इसकी महिमा समझ गई हैं। वे यहांतक हिस्सा ले रही हैं कि कुछ पुरुषों को यह फिक्र लग रही है कि यदि स्त्रियां इस तरह उद्यमी बनेंगी तो घर कौन सँभालेगा ?

क्या इतनी प्रगति सन्तोषजनक नहीं मानी जा सकती ? क्या ऐसे वृक्ष को हमें और भी न बढ़ाना चाहिए ? आज जब कि मुझे यह स्थान दिया गया है तब भी मैं इस संस्था को चिरस्थायी बनाने का यत्न न करूं तो मेरे जैसा मूर्ख कौन माना जा सकता है ? मुझको यदि दुबारा यह पद लेने का कुछ भी अधिकार है तो सिर्फ मेरे दक्षिण-हिन्दी-प्रचार के कार्य के कारण ही। भले ही

उस कार्य मे मैने कोई पद लेकर काम न किया हो; पर हर हालत मे उस वृक्ष को सीचने मे तो मैने काफी हिस्सा लिया ही है।

मैने आपको इस संस्था का उज्ज्वल पक्ष ही दिखाया है। इसका यह मतलब नही है कि उसका काला पक्ष है ही नही।

'जड़ चेतन गुणदोषमय, बिस्व कीन्ह करतार।
संतहंस गुण गहहिं पय, परिहरि बारि-बिकार॥'

निष्फलता भी काफी हुई है। सब कार्यकर्त्ता अच्छे ही निकले, ऐसा भी नही कहा जा सकता। यदि सब कार्य आरम्भ से अन्त तक अच्छा ही रहता तो अवश्य ही और भी सुन्दर परिणाम आ सकता था। पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि यदि अन्य प्रान्तो के हिन्दी-प्रचार मे इसकी तुलना की जाय तो यह काम अद्वितीय ठहरेगा।

× × × ×

मैने अन्य प्रान्तो के लिए भी काफी प्रयत्न किया है; लेकिन कार्यकर्त्ताओं के अभाव के कारण वहा इतनी क्या थोड़ी भी सफलता नही मिल सकी। बेचारे बाबा राघवदास उत्कल, बगाल और आसाम मे हिन्दी प्रचार के लिए अथक प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ सफलता भी मिली है लेकिन उसे नही के बराबर ही मानना चाहिए। जो कुछ भी सहायता मैं उनको दिला सकता था वह दिलाने की चेष्टा भी मैने की है। बाबाजी के मार्फत आसाम मे गोहाटी, जोरहट, शिवसागर और नौगाव मे प्रयत्न हो रहा है। वहा १६० विद्यार्थी पढ रहे हैं। दो छात्रो और दो छात्राओं को छात्रवृत्ति देकर काशी-विद्यापीठ और प्रयाग-महिला-विद्यापीठ मे पढाया जा रहा है। एक आसामी भाई बरहज (गोरखपुर) मे हिन्दी पढ रहे हैं और वहावालो को आसामी पढा रहे हैं। आसामी प्रतिष्ठित लोग इस प्रचार कार्य मे कम रस लेते हैं। जो मदद बाबाजी को मिली भी है वह एक ही वर्ष के लिए है।

उत्कल मे कटक, पुरी और बरहमपुर मे कुछ प्रयत्न हो रहा है। उत्कल के बारे मे एक बड़ी आशाजनक बात यह है कि श्री गोपबंधु चौधरी और उनकी धर्मपत्नी रमादेवी हिन्दी-प्रचार मे बहुत दिलचस्पी लेती हैं। अपने परिवार को भी उन्होने हिन्दी का काफी ज्ञान प्राप्त करा दिया है। वे सब आजकल एक देहात मे रहते हुए ऐसी ही क्रियात्मक सेवा कर रहे है। ऐसे ही कुछ दूसरे भी त्यागी कार्यकर्त्ता उत्कल मे है। इसलिए उत्कल मे हिन्दी-प्रचार की आशा अवश्य रखी जा सकती है।

पजाब की बात मैं छोड देता हूं, क्योकि पजाब मे उर्दू तो सब समझते हैं। वहा तो केवल लिपि की बात रह जाती है। इस प्रश्न पर विचार करने के लिए काकासाहब की अध्यक्षता मे लिपि-परिषद् हो ही रही है, इसलिए मैं इस बारे मे कुछ नही कहना चाहता। अब रहे सिंध, महाराष्ट्र और गुजरात। इन तीनो प्रान्तो मे जो कुछ हो रहा है वह शायद ही उल्लेखयोग्य हो। पर मेरी उम्मीद है कि इसी सम्मेलन मे हम वहा के लिए भी कुछ-न-कुछ रचनात्मक कार्य करने का निश्चय करेंगे।

मेरी राय मे अन्य प्रान्तो मे हिन्दी-प्रचार, सम्मेलन का मुख्य कार्य बनाना चाहिए। यदि हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाना है तो प्रचार-कार्य सर्वव्यापी और सुसगठित होना ही चाहिए। हमारे यहां शिक्षकों का अभाव है। सम्मेलन के केन्द्र मे हिन्दी-शिक्षको के लिए एक विद्यालय होना चाहिए जिसमें एक ओर तो हिन्दी प्रान्तवासी शिक्षक तैयार किये जायें और उनको जिस प्रान्त के लिए वे तैयार होना चाहे उस प्रान्त की भाषा सिखायी जाय, और दूसरी ओर अन्य प्रान्तो के भी छात्रो को भरती करके उन्हे हिन्दी-शिक्षा दी जाय। ऐसा प्रयास दक्षिण के लिए तो किया भी गया था, जिसके फल-स्वरूप हमको प० हरिहर शर्मा और हृषीकेश मिले।

× × × ×

यदि हिंदी अंग्रेजी का स्थान ले ता कम-से-कम मुझ तो अच्छा ही लगेगा। लेकिन अंग्रेजी भाषा के महत्व को हम अच्छी तरह जानते है। आधुनिक ज्ञान की प्राप्ति, आधुनिक साहित्य के अध्ययन, सारे जगत् के परिचय, अर्थप्राप्ति, राज्याधिकारियो के साथ सम्पर्क रखने और ऐसे ही अन्य कार्यों के लिए अंग्रेजी ज्ञान की हमे आवश्यकता है। इच्छा न रहते हुए भी हमको अंग्रेजी पढनी होगी। यही हो भी रहा है। अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीयभाषा है।

लेकिन अंग्रेजी राष्ट्रभाषा कभी नही बन सकती। आज इसका साम्राज्य-सा जरूर दिखायी देता है। इससे बचने के लिए काफी प्रयत्न करते हुए भी हमारे राष्ट्रीय कार्यों में अंग्रेजीने बहुत स्थान ले रक्खा है। लेकिन इससे हमें इस भ्रम में कभी न पड़ना चाहिए कि अंग्रेजी राष्ट्रभाषा बन रही है। इसकी परीक्षा प्रत्येक प्रात मे हम आसानी से कर सकते है। बगाल अथवा दक्षिणभारत को ही लीजिए, जहा कि अंग्रेजी का प्रभाव सबसे अधिक है। वहा यदि जनता की मार्फत हम कुछ भी काम करना चाहते है तो वह आज हिंदी-द्वारा भले ही न कर सके, पर अंग्रेजी-द्वारा तो नहीं ही कर सकते। हिंदी के दो-चार शब्दो से हम अपना भाव कुछ तो प्रगट कर ही देंगे। पर अंग्रेजी मे तो इतना भी नही कर सकते। हां, यह अवश्य माना जा सकता है कि अबतक हमारे यहा एक भी राष्ट्रभाषा नही बन पायी है। अंग्रेजी राजभाषा है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। अंग्रेजी का इससे आगे बढना मे असम्भव समझता हूं, चाहे कितना भी प्रयत्न क्यो न किया जाय। हिन्दुस्तान को अगर सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो—चाहे कोई माने, या न माने राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिंदी को प्राप्त है वह किसी दूसरी भाषा को कभी नही मिल सकता। हिंदू-मुसलमान दोनों को मिलाकर, करीब बाईस करोड़ मनुष्यो की भाषा थोड़े-बहुत फेरफार से —हिंदी हिन्दुस्तानी ही है। इसलिए उचित और सम्भव तो यही है कि प्रत्येक प्रान्त मे उस प्रान्त की भाषा, सारे देश के पारस्परिक व्यवहार के लिए हिंदी, और अन्तर्राष्ट्रीय उपयोग के लिए अंग्रेजी का व्यवहार हो। हिंदी बोलनेवालों की सख्या करोड़ों की रहेगी, किन्तु अंग्रेजी बोलनेवालो की सख्या कुछ लाख से आगे कभी नही बढ सकेगी। इसका प्रयत्न भी करना जनता के साथ अन्याय करना होगा।

मैंने अभी 'हिंदी-हिंदुस्तानी' शब्द का प्रयोग किया है। सन् १८ मे जब आपने मुझको यही पद दिया था तब भी मैने यही कहा था हिन्दी उस भाषा का नाम है जिसे हिन्दू और मुसलमान कुदरती तौर पर बगैर प्रयत्न के बोलते है। हिंदुस्तानी और उर्दू मे कोई फर्क नही है। देवनागरी लिपि मे लिखी जाने पर वह हिंदी और अरबी में लिखी जाने पर उर्दू कही जाती है। जो लेखक या व्याख्यानदाता चुन-चुनकर संस्कृत या अरबी-फारसी के शब्दो का ही प्रयोग करता है वह देश का अहित करता है। हमारी राष्ट्र-भाषा में वे सब प्रकार के शब्द आने चाहिए जो

जनता में प्रचलित हो गये हैं। हर व्यापक भाषा में यह शक्ति रहती ही है। इसीलिए तो वह व्यापक बनती है। अंग्रेजीने क्या नहीं लिया है ? लैटिन और ग्रीक में से कितने ही महावरे अंग्रेजी में लिये गये हैं। आधुनिक भाषाओं को भी वे लोग नहीं छोड़ते। इस बारे में उनकी निष्पक्षता सराहनीय है। हिन्दुस्तानी शब्द अंग्रेजी में काफी आ गये हैं। कुछ अफ्रीका में भी लिये गये हैं। इसमें उनका 'फ्री ट्रेड' कायम ही है। पर मेरे यह सब कहने का मतलब यह नहीं है कि बगैर अवसर के भी हम दूसरी भाषाओं के शब्द लें, जैसा कि आजकल अंग्रेजी पढ़े-लिखे युवक किया करते हैं। इस व्यापार में विवेक-दृष्टि तो रखनी ही होगी। हम कंगाल नहीं हैं, पर कंजूस भी नहीं बनेंगे। कुरसी को खुशी से कुरसी कहेंगे, उसके लिए 'चतुष्पाद पीठ' शब्द का प्रयोग नहीं करेंगे।

इस मौके पर अपने दुःख की भी कुछ कहानी कहूं। हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा बने या न बने, मैं उसे छोड़ नहीं सकता। तुलसीदास का पुजारी होने के कारण हिन्दी पर मेरा मोह रहेगा ही। लेकिन हिन्दी बोलनेवालों में रवीन्द्रनाथ कहां है ? प्रफुल्लचन्द्र राय कहां हैं ? जगदीश बोस कहां है ? ऐसे और भी नाम मैं बता सकता हूं। मैं जानता हूं कि मेरी अथवा मेरे जैसे हजारों की इच्छामात्र से ऐसे व्यक्ति थोड़े ही पैदा होनेवाले हैं। लेकिन जिस भाषा को राष्ट्र-भाषा बनना है उसमें ऐसे महान् व्यक्तियों के होने की आशा रक्खी ही जायगी।

वर्धा में हमारे यहां एक कन्या-आश्रम है। वहां सम्मेलन की परीक्षा के लिए कई लड़कियां तैयार हो रही हैं। शिक्षकवर्ग और लड़कियां भी शिकायत करती हैं कि जो पाठ्य पुस्तकें नियत की गयी हैं उनमें से सब पढ़नेलायक नहीं हैं। शिकायत के लायक पुस्तकें शृंगार रस से भरी हैं। हिन्दी में शृंगार-साहित्य काफी है। इस ओर कुछ वर्ष पूर्व श्री बनारसीदास चतुर्वेदीने मेरा ध्यान खींचा था। जिस भाषा को हम राष्ट्र-भाषा बनाना चाहते हैं उसका साहित्य स्वच्छ, तेजस्वी और उच्चगामी होना चाहिए। हिन्दी भाषा में आजकल गन्दे साहित्य का काफी प्रचार हो रहा है। पत्र-पत्रिकाओं के संचालक इस बारे में असावधान रहते हैं, अथवा गन्दगी को पुष्टि देते हैं। मेरी राय में सम्मेलन को इस बारे में उदासीन न रहना चाहिए। सम्मेलन की तरफ से अच्छे लेखकों को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। लोगों को सम्मेलन की तरफ से पुस्तकों के चुनाव में भी कुछ सहायता मिलनी चाहिए। इस कार्य में कठिनाई अवश्य है, लेकिन कठिनाई से हम थोड़े ही भाग सकते हैं।

संयुक्त प्रांत के खादी-केन्द्रों में

(२)

बुन्दकी से चलकर तीसरे पहर ४॥ बजे हम धामपुर पहुँचे। धामपुर में चर्खा संघ-द्वारा प्रमाणित चार निजी खादी-कार्यालय हैं। हरएक कार्यालय के अपने-अपने गाव हैं, जहां कत्तिनों से सूत खरीदा और जुलाहों से खादी बनवायी जाती है। खास धामपुर में भी कत्तिनें अपना सूत बेचने को लाती हैं। धामपुर की खादी के सम्बन्ध में कार्यालयवालों से जब बातचीत हुई, तो पता चला कि अबतक धामपुरवाले भी अधिकतर उत्पत्ति शहरवालों के लिए ही करते रहे हैं। गांववालों की आवश्यकता का कपड़ा बनाने की ओर अभीतक खास तौर पर किसीने कोई ध्यान नहीं दिया है। पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि इस ओर सब का बिलकुल लक्ष्य ही रहा हो।

शुद्ध खादी-कार्यालयवाले श्री उमरावसिंहजीने हमें अपने हलके के मौरना गांव की बात सुनाई। इस गांव में वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से उन्होंने कुछ प्रयोग किये थे। लोगों को रुई धुनना सिखाने की कोशिश की गई थी और बिना मुनाफा लिये उनका सूत बुनवा देने का प्रबन्ध भी किया था, पर कहते हैं कि जनताने इससे पूरा लाभ नहीं उठाया। उन्होंने कहा कि इधर के देहात में खादी का कुछ रिवाज तो अब भी है। औरतें, वजनदार हो जाने पर भी, प्रायः मोटी खादी का ही लहँगा पहनती हैं। लोगों को धुनाई सीखने में कोई आपत्ति भी नहीं है, बल्कि वे तो बड़े चाव से धुनना सीखा चाहते हैं, और यही वजह है कि कोई खास प्रयत्न न करने पर भी देहात में आज तक तांत और पीजन की मांग बनी हुई है, और लोग ये चीजें खरीदते रहते हैं। अगर किसी बात की कमी मालूम होती है, तो वह है एक ऐसे कुशल धुनिये की, जो धुनाई-शिक्षक की योग्यता रखता हो और चर्खे की दूसरी सभी क्रियाओं में भी निपुण हो। उन्होंने हमसे कहा कि यदि कोई ऐसा होशियार खादी-सेवक मिल जाय, तो वह फिर से मौरना में वस्त्र-स्वावलम्बन का कार्य शुरू कर देंगे, और उसमें हर तरह की मदद करेंगे। उनका यह विचार हमें बहुत पसन्द आया और हमने उन्हें इसके लिए प्रोत्साहित भी किया। आशा है, कि सुयोग्य कार्यकर्त्ता के मिल जाने पर मौरना में यह कार्य फिर शुरू हो सकेगा और सफलता प्राप्त करेगा।

किन्तु हमें यह जानकर खेद हुआ कि यहीं के श्रीवर्मा खादी-कार्यालयवालोंने इस सम्बन्ध में बिलकुल उलटा अनुभव किया है और उन्हें अपने वस्त्र-स्वावलम्बन के प्रयोग में नितान्त असफल होना पड़ा है। एक सुयोग्य खादी-सेवक की, जो खादी की सभी क्रियाओं में निपुण हो, कमी तो उनके यहां भी रही है, और अपनी असफलता का एक कारण वे इसे भी मानते हैं। पर हमें यह भी पता चला कि वस्त्र-स्वावलम्बन के लिए उनका क्षेत्र उतना अनुकूल न था, जितना कि मौरना रहा है। उन्होंने सरकड़ा और गुहावर गांवों को अपने इस प्रयोग के लिए चुना था। पर दोनों गांव के लोग धुनाई को हलका काम समझते हैं, और धुनाई सीखने से जी चुराते हैं, झिझकते हैं। फिर भी वर्माजी को हमने तो यही सलाह दी कि वे किसी सुयोग्य खादी-सेवक को ढूंढ़ लें और उसकी मदद से एक बार फिर वस्त्र-स्वावलम्बन के काम में अपनी पूरी ताकत से जुट जायँ, और उम्मीद है कि वे अवश्य जुट जायँगे।

खादी और सूत के सम्बन्ध में बातचीत करते समय हमें पता चला कि दूसरे उत्पत्ति-केन्द्रों की तरह धामपुरवालों के पास भी इधर खादी की शिकायत आने लगी है, और वे सब उनके कारणों को खोजने और उन्हें मिटाने की कोशिश कर रहे हैं। उनकी धोतियों के बारे में आम शिकायत है कि वे ज्यादा नहीं चलतीं। बारीकी के साथ उनके सूत और उनकी खादी की परीक्षा करने पर हमें मालूम हुआ कि इसमें कुछ दोष सूत का है, और कुछ धुलाई की अधिकता का भी है। यह तो खुशी की बात है कि धामपुर में ब्लीचिंग पाउडर बिलकुल नहीं बरता जाता, और केवल 'रेह' से धुलाई होती है। पर यदि 'रेह' की धुलाई में भी भट्टियों की संख्या कम करदी जाय, तो उम्मीद है कि खादी की मजबूती फौरन बढ़ जायगी। इसी तरह अगर मुसल्मान कत्तिनों का हवाला देकर हिन्दू कत्तिनों को भी पक्का, मजबूत सूत ही कातने को समझाया जाय और जुलाहों से मजबूत सूत की ही

खादी खरीदने का नियम बना लिया जाय, तो खादी पर आया हुआ यह संकट आसानी से दूर हो सकता है ।

× × × ×

भाई विचित्रनारायणजी शर्मा तो धामपुर में भी हमारे साथ ही थे । उनसे हमें पहले ही मालूम हो चुका था कि धामपुर में भी एक खँडसाल है, और उसमें देशी ढग से खाड तैयार होती है । स्टेशन से चलकर हम सीधे पहले खँडसाल देखने पहुँचे । देहरादून में अंदरकी की क्रिया देखने के बाद खाड की क्रियाएँ देखने की इच्छा हमारे लिए सहज थी । हम खँडसाल म गये और राब स खाड बनाने की सब क्रियाएँ झट-झट देखली । समय कम होने से हमें हर एक क्रिया का सन्तोष-जनक परिचय तो नही हो सका । पर यहा की एक बात हमे बहुत खटकी । खँडसाल का सारा वातावरण हमे तो काफी गन्दा और घिनौना-सा मालूम हुआ । सडी हुई शैवाल और सीरे की बदबू तो थी ही, पर मक्खियो का तो मानो वहा साम्राज्य ही था ! जहा छत पर मजदूर खाड को पैरो से पीस रहे थे, वहा भी मक्खियो का काफी दौर-दौरा था ! यह सब देखकर हमने मन-ही-मन अपने से पूछा कि क्या खडसाल मे इससे ज्यादा सफाई के साथ खाड नही बनाई जा सकती ? और क्या इतने गन्दे तरीके से गन्दे वातावरण म बनी हुई यह खाड स्वास्थ्य के लिए हितकर हो सकती है ? कोई खँडसाली इस पर प्रकाश डाल सके, तो बडी कृपा हो ।

× × × ×

धामपुर में खादी और खँडसाल का काम देखकर उसी दिन रात को हम मुरादाबाद पहुँचे और रातभर वहा रहे । सुबह कदरकी स्टेशन के नजदीक जलालपुर नामक गाव म खादी का वातावरण देखने गये । जलालपुर महीन कताई का एक केन्द्र है, और प्रधानत. मुसल्मान भाइयो की बस्ती है । और जगहो की तरह हमे यहा भी यह देखकर आनन्द ही हुआ कि इन मुसल्मान बहनोने न केवल चर्खे को जीवित रक्खा है, बल्कि उसकी सुन्दर कला को नष्ट होने से बचाया भी है । अपने-अपने पुराने चर्खों पर पुराने साधनों मे जितना महीन, मजबूत और एकसा सूत ये निपुणता के साथ कात लेती है, उतना औरो से नही कतता । इन बहनो की कताई और सूत को देखकर हमें जो आनन्द हुआ, उस से बढ़कर आनन्द हमे गाव मे खादी के वातावरण को और लोगों की अनुकूलता को देखकर हुआ । आदमपुर के मदारा गाव मे तो हमने राहगीरो की पोशाक को दूर से ही निहारकर सन्तोष माना था, पर जलालपुर मे तो वहा का वातावरण देखकर भाई विचित्र-नारायणजी को इतनी प्रसन्नता हुई कि वह रास्ता चलते लोगो को खड़ाकर-करके उनकी पोशाक परखने मे लग गये । अपने इस नये कार्य मे उनको तल्लीनता देखने योग्य थी ! जितने लोग मिले, वे प्राय. सभी आधो-आध खादी पहने थे; पर विचित्र बाबू की आखे तो उस आदमी की तलाश मे थी, जो सिर से पैरतक खादी ही पहने हो ! उनसे नही रहा गया और उन्होने अपने पास खडे हुए ग्रामीणो को चुनौती देदी कि जो सिर से पैरतक खादी ही पहने होगा, उसे मैं इनाम दूगा । फिर क्या था ? बात बिजली की तरह लोगो मे फैल गई और बात-की-बात में एक शुद्ध खादीधारी नौजवान भीड़ मे से निकलकर सामने आया और हाथ फैलाकर इनाम मांगने लगा । विचित्र बाबू बहुत ही प्रसन्न हुए और तत्काल ही उस नवयुवक को अपनी बाथ में भरकर शाबासी पर शाबासी देने लगे । वह नवयुवक तो खुश हो गया । उसे अपना इनाम मिल चुका था । फिर तो कई लोग ऐसे इनाम के उम्मीदवार हो गये और आइन्दा खादी ही पहनने की बात कहने लगे । उन्हे खादी ही पहनने की सलाह देकर हँसते-हँसते हम वापस कँदरकी आये, और कँदरकी से मुरादाबाद पहुँचे । खादी-कार्यालय मे स्नान और भोजन से निपटकर जल्दी-जल्दी अगली यात्रा के लिए तैयार हो गये और स्टेशन पहुँचकर हापुडवाली गाड़ी मे बैठ गये । तीसरे पहर हापुड पहुँचे ।

× × × ×

गाडी से उतरकर सीधे शहर में गये और कुछ घटो के लिए भाई श्री प्यारेलालजी के मेहमान बने । हापुड मे आपका चर्खा-सघ-द्वारा प्रमाणित एक खासा निजी खादी-कार्यालय है, जो चिरंजीलाल-प्यारेलाल के नाम से मशहूर है । जब से वस्त्र-स्वाव-लम्बन की बात चली है, और चर्खा-सघने उसे अपना मुख्य कार्य-क्रम बनाया है, तब से आप भी उस ओर काफी आकर्षित हुए है और अपनी कत्तिनों और जुलाहों को शुद्ध खादी ही पहनाने का प्रयत्न कर रहे हैं । उनके लिए आपने कुछ सुविधाएँ भी कर दी हैं, और सबसे बडी बात तो यह है कि देहातवालों की आवश्यकता को समझकर आपने अपने यहा छोटे अर्ज की कुछ ऐसी मजबूत और सस्ती खादी बनाना शुरू की है, जो खासकर कत्तिनो और जुलाहो को लागत के हिसाब से डेढ आना और पौने दो आना गज मे मिल जाती है, और धीरे-धीरे लोकप्रिय हो रही है । यदि दूसरे खादी-केन्द्रो मे भी इस ओर प्रयत्न किया जाय, तो देहातवालो को खादीमय बनाने मे अधिक समय न लगे ।

साझतक श्री प्यारेलालजी के साथ खादी-सम्बन्धी विविध चर्चा होती रही । उसके बाद हम उनसे विदा हुए और रातको मोटर-द्वारा हापुड से मेरठ पहुँचे । (क्रमश:)

काशिनाथ त्रिवेदी

उत्कल के दरिद्रनारायण

गत मार्च मास मे आचार्यवर काका कालेलकर के सभापतित्व मे उत्कल प्रान्तीय हिन्दी-प्रचार-सभा का तृतीयाधिवेशन हुआ था । मै भी हिन्दी-प्रचार-कार्य का यह शुभावसर हाथ से न जाने दू इस विचार से, और काका साहब के आदेशानुसार उत्कल पहुंचा था । पिछले वर्ष गाधीजीने उत्कल प्रान्त मे जब पैदल भ्रमण किया था उस समय भी मुझ उनके साथ रहकर देहात का यत्किंचित् ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिला था । मै जितना ही उत्कलवासी भाई-बहनो के समीप जा रहा हूँ उतना ही मुझे उनकी घोर दरिद्रता का अनुभव होता है ।

उस दिन मै तालचर रियासत मे जा रहा था । होली के त्योहार का दिन था । और प्रान्तो मे न मालूम क्या-क्या पकवान गरीब-से-गरीब भी बनाते होगे । पर इस दरिद्र उत्कल प्रात की तो बात ही न्यारी है । तालचर की सडक पर तीन गरीब किसान बहने थोडा-सा भात लेकर बैठी थी । एक बहिन भात मे पानी मिला रही थी । पानी मिलाने के बाद उसने थोडे-से इमली के टुकडे और उसमें मिला दिये । बाद को वे बहिने भोजन करने लगी । हा ! आज सर्वमान्य त्योहार के दिन भी इन किसान बहिनो को पेटभर रूखा-सूखा भाततक भी नसीब न हो !

कटक से २२ मील के फासले पर चम्पापुरहट नाम का एक स्थान है । वहां श्री गोविन्दजीने एक आश्रम खोल रखा है । काका साहब के आदेशानुसार में वहां गया था । देहात की, और

खासकर देहात के हरिजनो की स्थिति जानने के लिए वहा की हरिजन-बस्ती मे गया। तीसरे पहर का समय था। उस दिन बाजार भी था, इसलिए बस्ती के अधिकाश लोग बाजार गये हुए थे। कुछ स्त्रिया और बच्चे बस्ती म थे। दो बहने बहुत ही दुबली पतली एक दरवाजे क सामने बैठी थी। बस्ती मे सफाई अच्छी थी। हम लोगो को रास्ता भूलते हुए देख एक बहिन आगे बढी और मेरे साथी से बोली, आप लोग इधर से जाओ। उस बहन स बाते करने का अवसर पाकर मैने अपने साथी के द्वारा उससे पूछा, "आपके घर मे खाने को क्या है ?" इस पर वह बोली, "कुछ नही।" फिर मैने पूछा कि "रात को आपका यह छोटा बच्चा क्या खायगा ?" उसकी आखो मे आसू भर आये। वह बहुत धीरे से रुआसे स्वर मे बोली "उसने दिन मे तो थोडा भात खाया है, रात को थोड़ा ठडा पानी पिला दूगी।" उस बहिन के शरीर का चिथडा टुकड़े-टुकडे हो चुका था। ईश्वर ही उसकी लाज रखे।

× × × ×

हिन्दी-प्रचार-कार्य से मै बरहमपुर गया था। यह जिला अभी यद्यपि मद्रास सूबा मे गिना जाता है, पर इस जिले मे अधिकाश आबादी उत्कल-निवासियो की ही है।

२० मार्च की सध्या को मै अपने काम से निवृत्त हो जिला-काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री दिवाकरजी के साथ भ्रमण करने निकला। रास्ते मे दरिद्रबधु स्वर्गीय गोपबधुजी के कुछ सस्मरण वह मुझे सुनाते जाते थे। उनमे स दो सस्मरण मै यहा देता हूँ—

१९२२ म श्री गोपबधुजी काग्रेस-प्रचार कार्य स बरहमपुर पहुँचे। एक धनी-मानी सज्जन के यहा उनके ठहरने का प्रबन्ध किया गया। दिनभर तो सभा का ही काम रहा। भोजन के लिए समय ही नही मिला था। रात के समय यजमानने भोजन की व्यवस्था की। करीब पच्चीस कटोरियो मे नाना प्रकार के षट् रस व्यजन लगाकर पतल के चारो ओर रख दिये, और श्री गोपबधुजी को भोजन के लिए बुलाया। गोपबधुजी आये और अन्नदेव को प्रणाम करके फूट-फूटकर रोने लगे। अपने यजमान से बोले कि **"यह आपने क्या किया ! जहा हमारे उत्कलवासी बहिन भाई एक-एक कौर के मुहँताज हो वहा मेरे लिए इतने पदार्थ ! भाई, उन्हे भूखा देखते हुए मुझे क्या अधिकार है कि मै इतना खाऊ ? मुझे तो उड़िये का ही रूखा-सूखा भोजन कराओ। मुझे लजाओ मत।"**

× × × ×

उत्कल राजनीतिक कान्फरेन्स एक स्थान पर हो रही थी। बहुत से कार्यकर्ता एकत्रित हो गये थे। सध्या के समय बहुत जोरो स अधड ओला पानी सब एकसाथ आया। और लोग तो घबराये हुए अपनी-अपनी सुविधा के लिए परेशान थे, पर हमारे स्वर्गीय गोपबाबू एक जगह बैठे रो-रोकर भगवान के चरणो को करुणा के जल से भिगो रहे थे। इस समय गाव के उड़िये किसान हाय, कैसी मुसीबत मे होगे ? उनके बाल-बच्चे कहा होगे ? बाढ से, तूफान मे उनके झोपडो और जानवरो की क्या गति हुई होगी।" इस प्रकार उनकी आखो के सामने समस्त उत्कलनिवासियों के कष्टो का दारुण दृश्य नाच रहा था। वह बेचैन थे। रातभर उन्हे नीद नही आई। रोते-रोते ही उनकी सारी रात कटी।

ईश्वर हमे शक्ति दे कि इन दरिद्रनारायणों के चरणों पर हम अपनी योग्य पूजा चढा सके !

राघवदास

एक शुभ विचार

श्री चिरजीव शर्मा, मत्री हरिजन-सेवक-समिति, हिण्डौन (जयपुर), लिखते हैं :—

"हिण्डौन की मेहतर-पाठशाला अच्छी तरह चल रही है। १८ लडके हैं, जिनमें ३ तो चमारो के हैं और १५ मेहतरो के। विरोध भी हो रहा है। कुछ बाहरी प्रभाव से भी लोगो को भड़काने की चेष्टा हुई है। मेहतरो और चमारों का मुहल्ला बिलकुल मिला हुआ है, इसलिए दिन और रात की पाठशालाएँ पास-पास ही है। चमारो मे विरोध वही लोग करते हैं, जो ऊँची जाति के सम्पर्क मे है, जैसे चुनाई का काम करनेवाले कारीगर आदि। दूसरे चमारो को कोई आपत्ति नही है। वे तो हमारे साथ भगियो की अथाई पर आते-जाते और उनमे खूब मिलते हैं। भगियो के लडको को खादी की पोशाक बनवा दी है। ये लोग उन कपडो को पहनकर बाजार मे भी चक्कर लगा जाते हैं। इसलिए यह चर्चा सारी बस्ती मे फैल चुकी है। अध्यापकजी जब पाठशाला मे जाते है तो उनपर भी आक्षेप किये जाते हैं। लेकिन हम काफी सयम और विनम्रता से काम ले रहे है। इन बीस दिनो मे ५ दिन मै मेहतरो के घरो और मुहल्लो मे गया हूँ।

चमारो से तो इन लोगो मे कही अधिक सफाई पाई गई है। मुहल्लो के बाहर जरूर कचरे के ढेर लगे हुए हैं। लेकिन घर तो सब के इतने साफ है कि जितने यहा के उच्च वर्णवालो के भी नही। गदगी चमारो मे बहुत अधिक है। अगर कुछ दिन और उन्होने हमारी बातो पर ध्यान नही दिया तो सफाई का काम हम अपने हाथो करने का विचार कर रहे हैं।"

सयम और विनम्रता के साथ विरोध को सहन कर लेना तो सुधारक की ढाल है ही, परन्तु जिसे समाज गदे-से-गदा काम समझकर उसे करनेवाले मेहतर भाइयो को घृणा की दृष्टि से देखता है उस वस्तुत पवित्र कार्य का बीडा जब सवर्ण सुधारक उठायेंगे तो समय पाकर वह घृणाभाव और उसके साथ लगा हुआ अत्याचार भी काफूर हुए बिना नही रहेगा। आशा है, सफाई को अपने हाथो से करने के इस शुभ विचार को राजस्थान के अन्य हरिजन-सेवक भी ग्रहण करेगे।

रामनारायण चौधरी

आवश्यक सूचना

आज-कल हमारे पास ऐसे बहुत पत्र आ रहे हैं जिनमे 'हरिजन-सेवक' मुफ्त भेजने की माग रहती है। हमें कलकत्ते से जो दान प्राप्त हुआ है उसका उद्देश यह है कि ऐसे ३२५ ग्राहको को ही आधे, अर्थात् २) वार्षिक मूल्य मे 'हरिजन-सेवक' दिया जाय, जिनके नाम व पते, मय अपनी सिफारिश के, पूर्व सूचना के अनुसार हमारे प्रान्तीय हरिजन-सेवक-सघ लिख भेजें। अत. केवल प्रातीय सघो के द्वारा आये हुए पत्रो पर ही विचार किया जायगा।

व्यवस्थापक हरिजन-सेवक, दिल्ली

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi, and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 1369.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक' सम्पादक—वियोगी हरि वार्षिक मूल्य ३॥)
[illegible] प्रेस, दिल्ली. [हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में] एक प्रति का -)

भाग [illegible] दिल्ली, शुक्रवार, १० मई, १९३५. [संख्या १२]

विषय-सूची

तकली की उपासना

[एप्रिल के प्रथम सप्ताह में ग्राम-यात्रा के सिलसिले में श्री विनोबाजीने देवली (वर्धा) ग्राम में भाषण करते हुए तकली की महत्ता पर कहा—स०]

स्नान और प्रार्थना के पश्चात् तकली-उपासना। रोज आध घंटे मौन धारण करके तकली चलानी चाहिए। कल तकली कातते हुए पूछा गया कि यहां कितने लोग तकली चलाते हैं ? उत्तर मिला—दो सौ। मुझे आकड़े नहीं चाहिए थे। मैंने तो सहज ही पूछा था। यह तो गंगाजी का प्रवाह है। प्रारम्भ में अत्यन्त छोटा दीखता है पर आगे इतना प्रचण्ड होजाता है कि आर-पार की सुविधा ही नहीं रह जाती। उसमें केवल डुबकी ही लगानी होती है। तकली बिलकुल छोटी दीखती है, परन्तु उसकी शक्ति अनन्त है। वह चाहे जहां पहुँच सकती है। घर में वह और हाथ में भी वह माला-जैसी ही कहो न ! तुम कैसे ही उसे रक्खो, वह जब कभी कोई शिकायत करे ? गुम हो जाय तो उसके गुमने की शिकायत नहीं। यदि हम उसकी परवाह करें तो उसमें उतनी शक्ति है जितनी और किसी यन्त्र में नहीं। तकली हमारी हलचल का, हमारे आन्दोलन का राम नाम है। कहते हैं कि मोक्ष वेदों पर खड़ा है। तब जिनकी पहुँच वेदोंतक नहीं वे मोक्षतक क्यों पहुँचने लगे ? उस समय संतोंने राम-नाम का प्रचार किया। दो अक्षरों का शब्द, पर उसमें कैसी शक्ति ! घर-घर नाम का प्रचार हुआ और भक्ति-भाव की बाढ़ आने लगी। हनुमान् की एक बात कहते हैं। हजरत कूदकर लंका पर चढ़ गये, पर देखा तो उतरने के लिए जगह नहीं ! रातभर हवा में भटकते रहे। सारी लंका राक्षसों की। वहां जगह कहां मिलने को थी ? इतने में भटकते-भटकते एक मकान में से राम नाम का स्वर सुन पड़ा। सुनते ही कितना आनन्द हुआ हनुमान को, ताली बजाकर नाच उठे और पुकार उठे—मिल गई, मिल गई, मेरे अधिकार की जगह !' यही जगह मिली, इसीलिए हनुमान आगे का पराक्रम दिखा सके, नहीं तो सारी छलांगें व्यर्थ जा रही थीं।

तकली, देश-सेवा के पथिक को ऐसी ही अधिकार की जगह है। जिस घरमें वह दीख पड़े वहां निःशंक प्रवेश कर जाओ और चना-चबेना में साथ हो जाओ। वहां प्रवेश किया कि तुम्हें दीख पड़ेगा कि तुम चक्कर काटकर अपने ही घर में आगये। संख्या चाहे जितनी छोटी हो किन्तु यदि उसका गुणक बड़ा हुआ तो गुणाकार बड़ा हो ही जाता है। तकली छोटी-सी है किन्तु वह करोड़ों के गुणक बनने के लिए सुलभ है। यह उसका सामर्थ्य है।

आज तो तकली के पीछे एक मन्त्र भी बन गया है। मन्त्र के मानी साहित्यिकों की बकझक नहीं है। मन्त्र के मानी हैं तपश्चर्या के पेट में निवास करनेवाली सूक्ष्म वस्तु। तकली के लिए अनेकों ने खूब तपश्चर्या की। बेलगांव जेल में काका [कालेलकर] साहेबने तकली के लिए ग्यारह उपवास किये। यरवदा जेल में कामल वय के तारकेश्वरने बाईस उपवास किये। मर्म भार्डन पट का आपरेशन होने पर भी पड़े-पड़े तकली पर १६० तारों की एक लड़ कातने का नियम-टूटन नहीं दिया। बाद को बाया हाथ प्राय. निरुपयोगी हो गया है तब भी तरुण विद्यार्थी का [illegible] बाले उत्साह से वे अपने बाये हाथ से यह प्रयत्न करते रहते हैं कि आधे घंटे में तकली की एक अमुक गति होनी चाहिए।

मनुष्य प्राणी को अर्द्धहत्या की आदत लग गई है। जानवरों को मारना प्रारम्भ करके हमने आधी सृष्टि मार डाली, अस्पृश्यादि जातियां निर्माण करके आधी मनुष्य जाति मार डाली, स्त्रियों को पुरुषों से अलग करके कुटुम्बों का आधा निरुपयोगी कर दिया और बायें और दायें का भेद करके हमने अपना आधा अंग मार डाला। अर्जुन को यह बात सहन नहीं हुई थी। उसका कहना था कि यदि मुझे दोनों हाथों से धनुष चलाना न आया तो मैं धनुर्धारी कैसा ? गीता में भगवानने अर्जुन से कहा है कि "निमित्त मात्र" हो। परन्तु उसके साथ 'सव्यसाचिन्' का विशेषण लगाया है। निमित्त मात्र ही के मानी हैं कि दोनों हाथों से काम करें। प्रभु के हाथ का शस्त्र बन रहना साधारण बात नहीं है। जो अपनी सम्पूर्ण शक्ति का उपयोग करेगा वही प्रभु के हाथ का शस्त्र बन सकेगा। वह मुरली, अपना अहंभाव ही भूल गई। जभी बदन के आरपार छेद हो गये, उसी दिन प्रभु का चुम्बन नसीब हुआ। सौ फीसदी काम करने का व्रत लेनेवाले ही सच्चे निरहंकारी हैं। कम काम करके प्रभु की सहायता मांगनेवाले सब अहंकारी हैं।

ग्रामउद्योगों का महत्व

[हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्य से अभी गांधीजी जब इन्दौर गये थे, तब वहां उन्होंने ग्रामउद्योगों के सम्बन्ध में निम्न-लिखित भाषण दिया था।]

आप लोग जो शहर-निवासी हैं, उनसे प्रार्थना है कि आप देहातों की ओर देखें। हमारे काम होते जाते हैं और हम प्रतिक्षण

मृत्यु के मुख की तरफ पैर बढ़ाते जाते हैं। यदि हम दीर्घ दृष्टि से विचार करें तो हमें पता चलता है कि हमारा नश्वर शरीर क्षीण होता जाता है। वह अपनी ओर नहीं देखता, वह दूसरे की बुराई देखता है। हम अपनी कंगालियत का ख्याल भी नहीं होता। हमारी सरकार इसमें हस्तक्षेप नहीं करती। हमें सोचना है कि हमारा उसमें कितना कर्तव्य है। हमारे भारत की जो कंगाल स्थिति हो गई है यदि आप लोग थोड़ी भी सहायता दें तो पता चले कि हम उसके लिए क्या कर सकते हैं। यह हमारे लिए दुखद प्रश्न है। दूसरा हो भी क्या सकता है?

इस बात का मतलब तो यह है कि शहर-निवासियों ने जो देहातों में रहते हैं उनके प्रति दुर्लक्ष्य रखा है, उनका ख्याल नहीं रखा। उनसे जितने पैसे मिल सकें लेने की कोशिश करते हैं, उन्हें हमीं कंगाल करके स्वयं कंगाल हो रहे हैं। यह हिन्दुस्तान पहले सुवर्ण-भूमि कहलाता था। यह किसकी बदौलत कंगाल हुआ? हमारी ही बदौलत। हमारे पास तमाम ऐश-आराम की चीजें हैं। मोटर है, सोने को गद्दे हैं और अन्य सुविधाएँ हैं, परन्तु सच पूछो तो हमको इनमें से एक भी चीज का अधिकार नहीं है। हम नहीं सोचते कि जिनके द्वारा हम यह पाते हैं उनको यह मिलता है या नहीं। मुझे मेरी 'हरिजन-यात्रा' में सूझा कि यह कोई निराशा की बात नहीं, इसका सुधार हो सकता है। हिन्दुस्तान की सभ्यता पश्चिम की सभ्यता से निराली है। जहां जमीन ज्यादा और लोग कम, और जहां जमीन कम और लोग ज्यादा, उसमें तो फर्क होना ही चाहिए। मशीनें या कलें उन अमेरिका-वालों के लिए जरूरी होगी ही जहां लोग कम और काम ज्यादा है, किन्तु हिन्दुस्तान में जहां एक काम के लिए अनेक खाली हैं, मशीनरी की जरूरत नहीं और न इस प्रकार भूखा मरकर समय बचाना ही ठीक है। यदि हम खाना भी यन्त्र-द्वारा खायें तो मैं समझता हूँ कि आप कभी यह पसन्द न करेंगे। इसीलिए हमें उस खाली या बेकार जनता का उपयोग कर लेना चाहिए। हिन्दुस्तान की आबादी इतनी बढ़ गई है कि उसके भरण-पोषण के लिए उसकी जमीन बहुत कम है, ऐसा बहुत-से अर्थशास्त्रज्ञ कहते हैं। मैं इसे नहीं मानता। हम यदि उद्योग करें तो दूना पैदा कर सकते हैं। इसमें मुझे पूरा विश्वास है। यह हमारे सोचने की बात है कि हम सच्चा उद्योग करें और देहातियों के साथ सम्बन्ध बढ़ावें और उनके सच्चे सेवक बन जायें तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम हिन्दुस्तान के छोटे-छोटे उद्योगों से करोड़ों रुपयों का धन पैदा कर सकते हैं। इसमें पैसे की भी विशेष आवश्यकता नहीं, जरूरत है लोगों की, मेहनत की। यदि हम विचारशील जीवन रखें तो हमारा बड़ा फायदा हो सकता है। हम लोग जो आटा खाते हैं, वह आटा नहीं जहर खाते हैं। हमारे लिए आस्ट्रेलिया से खाने को आटा आता है, वह तो जहर ही है। ऐसा मैं नहीं कहता, आपके डाक्टर लोग कहते हैं। यहां हम अमृत को भी जहर बनाकर खाते हैं। जो आटा हम कल में पिसवाकर खाते हैं उसका सब द्रव्य निकल जाता है और हम निश्शक्त भोजन खाते हैं, इससे दिनों दिन क्षीण हो रहे हैं। हमारे घर में जो बुढ़िया जिन्दा हैं वे भी यही कहती हैं कि हमें कल में पिसवाकर आटा नहीं खाना चाहिए। आटा तो रोज घर की चक्की में पीसकर ताजा खाना चाहिए। मनों आटा पीसकर नहीं रख छोड़ना चाहिए क्योंकि कुछ दिन के बाद वह भी दूषित हो जाता है, जैसे बाजरी का आटा एक दिन के बाद दूसरे दिन ही खराब हो जाता है। यह डाक्टरों का कहना है, मेरा नहीं। इस प्रकार घर में आटा पीस लेने में दो फायदे हैं। पहिला तो शुद्ध, शक्तियुक्त भोजन खाने को मिलता है जिससे हम दीर्घजीवी हो सकते हैं और दूसरे उस बहाने हमारी बहिनों का, जो निकम्मी-सी हो गई हैं, व्यायाम हो जायगा, जिससे वे भी स्वास्थ्य-लाभ कर सकेंगी। यदि इतना ही पैसा जिसे हम कल में पिसवाने के लिए देते हैं बच रहे तो सब मिलकर देश का कितना फायदा हो सकता है। इससे तो आम के आम और गुठली के दाम भी मिल जाते हैं। हमारी इससे कितनी बचत हो सकती है। धन भी बचे और स्वास्थ्य-लाभ भी हो यह अर्थ-शास्त्र की बात नहीं, अनुभव की बात है।

इसी प्रकार चावल के साथ भी हम अत्याचार करते हैं। आज मैं यह दुःख की बात सुनता हूं। चावल की भूसी कलों-द्वारा न निकलवानी चाहिए, उससे भी चावल का द्रव्य-पदार्थ नष्ट होता है। उसे तो घर में ही हाथों से कूटकर साफ करना चाहिए। इस समय यदि मेरे पास मैजिक लैण्टर्न होती तो मैं बता सकता था कि हम धान का धूल बनाकर खाते हैं। हमें तो धूल को भी धान बनाना चाहिए। इसे हम ठीक-ठीक करें तो कितने पैसे की बचत हो सकती है। यही बात तेल और गुड़ के लिए है। हमें शक्कर का प्रयोग न करके गुड़ खाना चाहिए। गुड़ की ललाई ही खून को बढ़ाती है, शक्कर की सफेदी नहीं, वह तो जहर है। लेकिन आजकल तो शुद्ध गुड़ भी नहीं मिलता। उसे तो हमें स्वयं तैयार करना चाहिए। इसमें भी दूना लाभ होगा। शहद-जैसी कीमती चीज भी इसी प्रकार पैदा की जा सकती है। अभी तो शहद इतना कीमती है कि या तो बड़े बड़े लोग उसे काम में ला सकते हैं, या वैद्यराज अपनी गोलियां बनाने में, सर्व साधारण नहीं। इसे भी मधु-मक्खियों को पालकर पैदा किया जा सकता है। हमें गुड़ और शहद के लिए देखना होगा कि वह सफाई से बनाया और निकाला जाय। इन छोटे-छोटे उद्योगों में आगे बढ़ें तो हमारा जीवन ही कलामय हो जाय और हम करोड़ों रुपया पैदा कर सकें। हम आरोग्यशास्त्र भी नहीं जानते। इससे तो हमें स्वयं ही आरोग्यशास्त्र का सामान्य ज्ञान हो सकता है। जो लोग इन्दौर के 'प्लान्ट इन्स्टीटचूट' में गये होंगे वे यह जान सकते हैं कि ग्रामीणों की उन्नति के लिए यह कितना महत्वपूर्ण है। हम लोग मल को त्यागते हैं, वह भी अशुद्ध नहीं है, उससे भी हम सोना बना सकते हैं, अर्थात् अच्छी खाद बनाने के उपयोग में वह आ सकता है। उसका प्रयोग न करके हम उसका दुरुपयोग करते हैं और बाहिर दरिया वगैरा में फेंककर अनेक रोग पैदा करते हैं, जो हमारे प्राणघातक हैं।

संक्षेप में मेरा यही निवेदन है कि मैंने आपका ध्यान इधर खींचने की कोशिश की है। यदि आप इससे लाभ न उठावें तो मैं लाचार हूँ। आप उन छोटी-छोटी बातों से बहुत कुछ कर सकते हैं, लेकिन एक शर्त है कि उसे चन्द लोग करें और बाकी उन पर निर्भर रहें तो वे अवश्य भूखों मरेंगे। किन्तु यदि सब मिल-कर करेंगे तो करोड़ों रुपये का फायदा हो सकता है, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। सबको अपना हिस्सा देना चाहिए। यह बात उद्यमशील के लिए है, अनुद्यमी के लिए नहीं। मैं उम्मीद करता हूँ कि आप लोग इस पर अवश्य विचार करके अमल में लायेंगे।

करंजिया का गोंड़-सेवा-मंडल

(गतांक से आगे)

आश्रम का कार्यक्षेत्र केवल टिकराटोला ही में केन्द्रित नहीं है, बल्कि आसपास के ८-१० मील के घेरे में फैला हुआ है, जहा इसके आठ केन्द्र कायम हो चुके हैं और एक और कायम होने जा रहा है। इनका विवरण इस प्रकार है। टिकराटोला से २ मील दूर, सड़क ही पर, बोदर गाव में एक स्कूल है जहा २५ बालक दर्ज हैं। ३ मील दूर, रैतवार नामक गाव के मदरसे में ४० बालक दर्ज हैं तथा २ शिक्षक पढ़ाते हैं। इसी प्रकार ४ मील दूर हरीढोला स्कूल में २४; ५ मील पर बर्नें स्कूल में ४२, ६ मील पर बरबसपुर में २६; ७ मील पर कांगी गाव की शाला में १८ तथा ५ मील दूर मनगुढ़ा स्कूल में ४० बालक दर्ज तथा दो शिक्षक काम करते हैं। करबदी गाव में हाल में स्कूल खुला है और करोदी गाव में भी स्कूल खोलने का विचार हो रहा है—इस प्रकार कुल ९ केन्द्रों में ११ शिक्षक काम करते हैं और २१० बालक और ४० बालिकाएँ शिक्षा पाती हैं। अधिकांश बच्चे ८ वर्ष से १५ वर्ष के भीतर के हैं और गोंड जाति के हैं। गोंडों के अलावा बेगा, पनका, महरा, मुसलमान जातियों के बालक भी पढ़ते हैं। एक बसोर और दो चमारों के भी बालक पढ़ते हैं।

आश्रम के कुछ शिक्षकों और बालकों से मिलने का भी मौका मिला। विशेषता यह है कि अधिकांश शिक्षक स्थानीय हैं जो आस पास के स्कूलों ही से पढ़कर निकले हैं और स्थानीय बातों से अच्छी तरह परिचित हैं। सभी लोग सिर से पैरतक खादी धारण करते हैं। क्या ही अच्छा हो कि यह खादी उन्हीं के हाथ की बनाई हुई हो। इस पर फादर एल्विन से बातचीत हुई तो उन्होंने यहा कपास न होने की कठिनाई बतलाई। किन्तु यह देवकपास के द्वारा हल की जा सकती है। मैंने बीज भेजने का वादा किया। पहले तो स्वयं शिक्षकों ही को चर्खाशास्त्र में पारंगत होना चाहिए। एक-दो को बाहर भेजकर इसकी शिक्षा दिलाना आवश्यक है, जिससे वे लौटकर दूसरों को सिखा सकें। फिलहाल तकली का प्रचार तो किया ही जा सकता है।

अभी सभी स्कूलों में प्रायमरी तक की शिक्षा दी जाती है। माण्टेसरी पद्धति से आरम्भ कर लिखना-पढ़ना और गणित सिखाया जाता है। ऐतिहासिक कहानियां और भूगोल का साधारण ज्ञान भी दिया जाता है। सफाई और तन्दुरुस्ती के मूल सूत्र भी समझाये जाते हैं। एक माध्यमिकशाला खोलने का विचार हो रहा है। इसकी आवश्यकता भी है।

डिस्ट्रिक्ट कौंसिल मण्डला की ओर से एक पाठशाला करंजिया में है किन्तु आस-पास उनकी ओर से कोई स्कूल नहीं है। उक्त कौंसिल को इस सेवामण्डल के प्रयत्न को अपने शिक्षा-प्रचार के काम में सहायक समझना चाहिए न कि बाधक। इतना ही नहीं बल्कि आर्थिक सहायता देना भी उसका काम है। इसके विपरीत सुना यह गया है कि कुछ अफसर गांवों के लोगों को सेवा-मण्डल की पाठशालाओं में जाने से रोकते हैं!

सरकारी अफसरों को इस निश्छल प्रयत्न में भी राजनीति की गंध आती है और वे सदा कार्यकर्त्ताओं की गति-विधि को सन्देह की दृष्टि से देखते रहते हैं। जनता में से भी अविश्वास का भाव गया नहीं है। वे समझते हैं कि यह भी ईसाइयत फैलाने की एक चाल है। समय ही इस अविश्वास को दूर कर सकता है।

यद्यपि सेवा-मण्डल का मुख्य कार्य इस समय शिक्षा-प्रचार ही है, तथापि वह यहींतक सीमित नहीं है। जिन गांवों में इनके स्कूल हैं उनके निवासियों से भी कार्यकर्त्ता सम्पर्क में आते हैं और उन्हें सफाई करना, खाद के गड्ढे बनाना और आदर्श पाखाने बनाना सिखाते हैं। ९ गांवों में यह कार्य आरम्भ भी हो गया है। नसल सुधारने के लिए एक सांड लेने का भी विचार चल रहा है। पंजाब-ग्राम-सुधार-विभाग की ओर से दीवारों पर चिपकाने के के लिए पोस्टर तथा पर्चे इन्हें मुफ्त मिल जाते हैं। किन्तु रेड-क्रास सोसाइटी से पैसे देकर ये चीजें खरीदनी पड़ती हैं। इनका भी गांव-गांव प्रचार है, किन्तु इन्हें समझने के लिए पढ़ना जानना जरूरी है। इसी कारण सबसे पहले अक्षरज्ञान फैलाने पर मण्डल के कार्यकर्त्ता ध्यान दे रहे हैं।

आश्रम आज से तीन वर्ष पहले सन् १९३२ के फरवरी मास में प्रारम्भ किया गया था। सबसे पहले दवाखाना स्थापित किया गया। उस समय फादर एल्विन के पास केवल १००) थे। इसी से कार्य आरम्भ कर दिया गया। विश्वास उत्पन्न करने के बाद धीरे-धीरे पाठशालाओं का आरम्भ किया गया। गोंड-सेवा-मण्डल का जन्म राष्ट्रीय संस्थाओं के आश्रयदाता सेठ जमनालालजी बजाज के मकान पर हुआ था और उन्होंने यह विचार फादर एल्विन को सुझाया था। वे ही आज भी आश्रम की सब से अधिक आर्थिक सहायता कर रहे हैं।

और कई सब स्थानों को छोड़कर करंजिया का पसन्दगी स्थान ही क्यों चुना गया इसके पीछे एक इतिहास है। पहले बेतूल छिन्दवाड़ा आदि में उपयुक्त स्थान की खोज की गई किन्तु वहां जमीन मिलने में कठिनाई हुई। इसी समय फादर एल्विन ने किसी पुस्तक में पढ़ा कि सन् १८४[illegible] में पांच जर्मन पादरी मण्डला के करंजिया नामक स्थान में धर्मप्रचार करने गये थे, उनमें से चार तो मलेरिया के कारण अपने प्राण खो चुके, जिनकी समाधियां आज भी करंजिया में एक पेड़ के नीचे देखी जा सकती हैं और पांचवा पादरी मरणासन्न अवस्था में किसी प्रकार बचाया गया। इस वृत्तान्त को पढ़कर आपकी इच्छा इस बलिदान-भूमि को देखने की हुई और इस स्थान पर आते ही आपने इसे आश्रम के लिए चुन लिया।

तब से बराबर उसी लगन और सेवाभाव से आप प्राकृतिक तथा मानवी बाधाओं से युद्ध करते हुए अपना कार्य जारी किये हुए हैं। मलेरिया आज भी यहां प्रबल है, जिससे कई बार आप बीमार भी पड़ चुके हैं। उस पर सरकारी सन्देह, प्रतिबन्ध और प्रतिरोध की परवा न कर आप शान्तिपूर्वक सच्चे त्यागी ईसाई के समान निष्काम सेवा में निरत रहते हैं। इतने पर भी खेद है कि प्रान्त अथवा देश की जनता से जैसी सहायता आपको मिलनी चाहिए वह नहीं मिल रही है। मुख्य कारण यही जान पड़ता है कि लोगों को इस महायज्ञ का पता ही नहीं है जो मण्डला के जंगलों में हो रहा है। क्या हम आशा करें कि इन पंक्तियों से कुछ लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित होगा?

ब्योहार राजेन्द्रसिंह

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करें। ग्राहक-नंबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा।

व्यवस्थापक—'हरिजन-सेवक' दिल्ली

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १० मई, १९३५

दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव

इंदौर के अ० भा० हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में कुछ खास उपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुए। एक में तो हिंदीभाषा की परिभाषा बनाई गई है, और दूसरे में यह मत प्रगट किया गया है कि उन समस्त भाषाओं को देवनागरी लिपि में ही लिखना चाहिए, जो या तो संस्कृत से निकली हैं या संस्कृत का उनके ऊपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। पहला प्रस्ताव इस तथ्य पर जोर देता है कि हिंदी प्रांतीय भाषाओं को नष्ट नहीं करना चाहती किंतु उनका पूर्तिरूप बनना चाहती है, और अखिल भारतीयता के सेवा-क्षेत्र में हिंदी बोलनेवाले कार्यकर्ता के ज्ञान तथा उपयोगिता को बढ़ाती है। वह भाषा भी हिंदी ही है जो लिखी तो उर्दू लिपि में जाती है, पर जिसे मुसलमान और हिंदू दोनों ही समझ सकते हैं, इस बात को स्वीकार करके सम्मेलनने इस संदेह को दूर कर दिया है कि उर्दू लिपि के प्रति सम्मेलन की कोई दुर्भावना है। तो भी सम्मेलन की प्रामाणिक लिपि तो देवनागरी ही रहेगी। पंजाब तथा दूसरे प्रांतों के हिंदुओं के बीच देवनागरी लिपि का प्रचार अब भी जारी रहेगा। यह प्रस्ताव किसी भी प्रकार देवनागरी लिपि के महत्व को कम नहीं करता। वह तो मुसलमानों के उस अधिकार को स्वीकार करता है कि अबतक जिस उर्दू लिपि में वे हिंदुस्तानी भाषा लिखते आ रहे हैं उसमें अब भी लिख सकते हैं।

दूसरे प्रस्ताव को व्यावहारिक रूप देने की दृष्टि से एक समिति बना दी गई है, जिसके अध्यक्ष और संयोजक काकासाहब कालेलकर हैं। यह समिति देवनागरी लिपि में यथासंभव ऐसे परिवर्तन और परिवर्द्धन करेगी, जो उसे और भी आसानी के साथ लिखने के लिए आवश्यक होंगे, और मौजूदा अक्षरों से जो शब्द ध्वनि व्यक्त नहीं हो सकती उसे व्यक्त करने के लिए देवनागरी लिपि को और भी पूर्ण बनायेंगे।

हम अगर अन्तर्प्रान्तीय संपर्क को बढ़ाना है, और अगर हिंदी को एक दूसरे प्रांत की लिखा-पढ़ी का माध्यम बनाना है तो उसमें इस प्रकार का परिवर्तन आवश्यक है। फिर इधर गत पचीस वर्ष में हिंदी-साहित्य सम्मेलन की उद्देश्य-पूर्ति में योग देनेवाले सज्जनों का यह निश्चित कर्तव्य भी रहा है। इस लिपिसंबंधी प्रश्न पर चर्चा तो अकसर हुई पर गंभीरतापूर्वक वह कभी हाथ में नहीं लिया गया। अन्य प्रांतीय भाषाओं का ज्ञान आज असंभव-सा है। बंगाली लिपि में लिखी हुई 'गीतांजलि' को सिवा बंगालियों के और पढ़ेगा ही कौन? पर देवनागरी लिपि में वह लिखी जाय तो उसे सभी लोग पढ़ सकते हैं। संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द उसमें बहुत अधिक हैं, जिन्हें दूसरे प्रांतों के लोग आसानी से समझ सकते हैं। मेरे इस कथन की सत्यता को हर एक जांच सकता है। हमें अपने बालकों को विभिन्न प्रांतीय लिपियों के सीखने का व्यर्थ कष्ट नहीं देना चाहिए। यह निर्दयता नहीं तो क्या है कि देवनागरी के अतिरिक्त तामिल, तेलुगु, मलयाली, कानड़ी, उड़िया और बंगाली इन छै लिपियों के सीखने में दिमाग खपाने के लिए कहा जाय? हां, यह जानने के लिए कि हमारे मुसलमान भाई क्या कहते और क्या लिखते हैं हम उर्दू लिपि को सीख सकते हैं। जो अपने देश या मनुष्यमात्र का प्रेमी है उसके सामने मैंने कोई ऐसा प्रचंड प्रोग्राम नहीं रखा है। आज तो अगर कोई प्रांतीय भाषाएँ सीखना चाहे और प्रांतीय भाषाभाषी हिंदी पढ़ना चाहे तो यह लिपियों का अभेद्य प्रतिबंध ही उनके मार्ग में कठिनाई उपस्थित करता है। काकासाहब की यह समिति एक ओर तो इस सुधार के पक्ष में लोकमत तैयार करेगी, और दूसरी ओर सक्रिय उद्योग के द्वारा उसकी इस महान् उपयोगिता को प्रत्यक्ष करके दिखायगी कि जो लोग हिंदी या प्रांतीय भाषाओं को सीखना चाहते हैं उनका समय और उनकी शक्ति इससे बच सकती है। किसी को भूलकर भी यह कल्पना नहीं करनी चाहिए कि यह लिपि-सुधार प्रांतीय भाषाओं के महत्व को कम कर देगा। सच पूछिए तो वह तो उनकी उसी प्रकार श्रीवृद्धि करेगा, जिस प्रकार कि एक सामान्य लिपि स्वीकार कर लेने के फलस्वरूप प्रांतीय व्यवहार-विनिमय सरल हो जाने से योरप की तमाम भाषाएँ समृद्ध हो गई हैं।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

इंदौर की प्रदर्शिनी

इंदौर में गांधीजीने जिस प्रदर्शिनी का उद्घाटन किया था उसे हम ग्राम-उद्योगों की प्रथम प्रदर्शिनी कह सकते हैं। गांधीजीने जब इंदौर जाने की हामी भरी, तब इस ग्राम-उद्योग-प्रदर्शिनी का लोभ तो उनके मन में था ही। इस प्रदर्शिनी को खोलते समय उन्होंने जो छोटा-सा भाषण दिया उसमें कहा कि हमारे ग्रामउद्योगों की जो तबाही हुई है उसके जवाबदेह सुसंस्कृत कहलानेवाले हमीं लोग हैं। इन उद्योगों को पुनरुज्जीवित करना और अपनी संस्कृति में उन्हें पुनः उचित स्थान देना भी सर्वथा हमारे ही ऊपर निर्भर करता है। इंदौर-जैसे नगरों में जो ऐसी प्रदर्शिनियां होती हैं उनका उद्देश यह होता है कि ग्रामवासियों के प्रति नगरनिवासियों के कर्त्तव्य का भान कराया जाय। इसके अतिरिक्त इन प्रदर्शिनियों को नगर और ग्राम इन दोनों अवयवों के बीच शृंखलारूप भी बनना चाहिए।

इस बात को देखते हुए कि इसका आयोजन बहुत ही थोड़े समय में किया गया था, यह प्रदर्शिनी प्रथम प्रयत्न के रूप में बहुत सुन्दर कही जा सकती है। आयोजकोंने मुख्य-मुख्य समस्त ग्रामउद्योगों के दिखाने का महान् प्रयत्न किया था। नुमाइश के मध्यभाग में खादी और उसकी उत्पत्ति की क्रियाओं का प्रदर्शन था। कुम्हार चाक चला रहा था, और कसेरा बैठा हुआ तांबे के बासन-भांडे गढ़ रहा था। पर कुल मिलाकर देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उसमें ग्रामउद्योगों की जो समस्त क्रियाएँ दिखाई गई थीं उनमें दर्शक को शिक्षा देने के प्रयास की अपेक्षा हम लोगों की सृजन-शक्ति तथा कला का प्रदर्शन अधिक था। एक जगह पर इन्दौर के एक कारीगर की बनाई हुई एक घड़ी रखी थी, जिससे उसकी अन्वेषण-बुद्धि का अच्छा परिचय मिलता था। उसने घड़ी का एक-एक पुरजा हाथ से बनाया था, और उन सब पुरजों के बनाने के औजार भी उसने खुद ही तैयार किये थे। यह कारीगर राज्य का नौकर है। अपने शौक के लिए आठ-नौ महीनेतक छुट्टी के समय में यह कार्य वह करता था। उसका कहना था कि यह घड़ी एक-एक सेकण्ड का समय बतलाती है और इसके एक

पीढ़ीतक चलने की गारण्टी दी जा सकती है। किन्तु इस चीज को ग्रामउद्योग-प्रदर्शनी में किस प्रकार स्थान दिया जा सकता है यह कहना कठिन था। एक भारी तिजोड़ी रखी थी, जिसे वहीं पड़ौस के एक लुहारने बनाया था। उसमें ऐसी कई करामातें थीं, जैसे चोर चोरी करने गया कि वह वहीं गिरफ्तार हो गया। इस तिजोड़ी को शिल्पकला-प्रदर्शिनी में अवश्य स्थान मिल सकता है, पर ग्रामउद्योग-प्रदर्शिनी में उसे किस तरह स्थान मिलेगा? एक तरफ की पूरी पंक्ति में किस्म-किस्म की वनस्पतियां तथा उनसे बनी हुई औषधियां रखी थीं। यह आयोजन संग्रहालय में शोभा दे सकता है। अगर इस विभाग में यह दिखाया गया होता कि थोड़ी-सी सादी-स-सादी वनस्पतियों को लेकर बिना पैसा-टका खर्च किये उनकी घरेलू दवाइयों से साधारण रोगों का इलाज किस तरह हो सकता है, तो यह वनस्पति-विभाग बड़ा उपयोगी साबित होता। बिना कुटा पूर्ण और एकदम पॉलिश किया हुआ निस्सत्व ये दोनों ही प्रकार के चावल वहां थे। लेकिन इन दोनों तरह के चावलों का भेद बतलानेवाले और दर्शक को शिक्षा देनेवाले कोई नकशे वहां नहीं थे। गांव की घानी तो थी, पर उसके साथ ऐसा कोई नकशा वहां नहीं था जिसे देखकर यह मुकाबला किया जा सकता कि कितना तेल और कितनी खली बैलों से चलनेवाली घानी से निकलती है, और कितना तेल व खली मशीन से। बाजार में बिकनेवाले हानिकारक मिलावटी तेलों का विश्लेषण भी दिखाना चाहिए था। प्रदर्शिनी में कोल्हू तो था, पर वहां कोई ऐसी बड़े-बड़े अक्षरों की विज्ञप्तियां नहीं थीं जिनसे यह पता चलता कि चूंकि शक्कर से गुड़ बढ़िया होता है इसलिए शक्कर को छोड़कर हम गुड़ ही खाना चाहिए। सफाई का विभाग और भी बड़ा होना चाहिए था, जिसमें क्या अच्छा होता अगर यह दिखाया जाता कि मक्खियां और मच्छर कैसे भयकर शत्रु हैं, और ये कहां पैदा होते हैं और कैसे किन उपायों से उनका आक्रमण रोका जा सकता है। प्रदर्शिनी में पानी से धुलनेवाला एक ऐसा पाखाना था, जिसमें कई बरतन (पाट) रखे हुए थे और जहां मक्खियों का प्रवेश असंभव था। इसके बनानेमें एक स्थानीय डॉक्टरने अपनी कुशलता काफी खर्च की थी। पर यह बात किसी तरह नहीं बतलाई गई थी, कि मैले को व्यर्थ फेंककर हम कितना नुकसान उठाते हैं, और अगर वह ठिकाने लगाया जाय तो उससे हमें कितना पैसा मिल सकता है। गोबर और घर के कचरे के खाद के नमूने तो वहां रखे हुए थे, पर यह नहीं बतलाया गया था कि यह खाद किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं।

इस तरह तो न जाने कितना लिखा जा सकता है। इस सब लिखने का हेतु प्रदर्शिनी के आयोजकों की आलोचना करना नहीं है, किंतु यह बताना है कि भविष्य में ग्रामउद्योगों की प्रदर्शिनियां किस तरह की जानी चाहिए। इस प्रदर्शिनी में जो त्रुटियां थीं, वे अनिवार्य थीं, क्योंकि अभी तो हमारे इस आंदोलनने होश भी नहीं सँभाला है, और इसके हमने पहले तो प्रयोग ही बहुत कम किये हैं, और परिणाम तो और भी कम प्राप्त हुए हैं। यही महान् आश्चर्य का विषय है जो प्रदर्शिनी के आयोजकगण इतना भी काम कर सके।

सफाई का काम

इस काम को आरम्भ किये हमें दो महीने हुए हैं, इसलिए अबतक के काम के परिणामों का हिसाब लगाना चाहिए। एक परिणाम तो प्रत्यक्ष ही है कि पहले की अपेक्षा अब यह गांव साफ-सुथरा दीखने लगा है। जिस मुख्य सड़क की पहले यह हालत थी कि गन्दगी की वजह से नाक पर रूमाल लगाये बिना आप चल नहीं सकते थे, वह अब खासी साफ रहने लगी है। और दो गन्दी-से-गन्दी गलियां भी अब काफी साफ रहती हैं। अधिकांश लोग अब खेतों में पाखाना फिरने जाते हैं, और बच्चों को तो इस बात का गर्व है कि वे खेतों को छोड़कर और कहीं जाते ही नहीं।

मगर बस इतना ही। यद्यपि लोग खेतों में जाने की कृपा तो करने लगे हैं, पर वे अपने मल-मूत्र को मिट्टी से ढकते नहीं, जो बहुत जरूरी है। चल टट्टियां बना देने के लिए सामान जुटा देना तो दूर, वे बनी-बनाई टट्टी को भी ठीक तरह से काम में नहीं लाते। यह हालत है। असल में थोड़ा विरोध पैदा हो रहा था ऐसा मालूम हुआ है। उस दिन एक नवयुवकने हमसे कहा कि तुम्हारा यह पाखाना ऐसी बदबू मारता है, कि सोया नहीं जाता। कहांतक बर्दाश्त करूँ इस सड़ी हुई दुर्गन्ध को? उसके झोपड़े से पाखाना काफी फासले पर है, सौ गज से ऊपर ही होगा। अपने खास अहाते को आप खुद ही और दूसरे लोग-बाग जब नित्य ही गन्दा करते थे, तब तो यह हजरत कुछ कहते नहीं थे! अब इन्हें बदबू की शिकायत है! पाखाना कभी गन्दा तो रहता नहीं। हम लोग उसे रोज साफ करते हैं और मैले को मिट्टी से ढक देते हैं। फिर बदबू कहां से आयगी? यह तो एक बहाना है। हम यह सुनकर उसी वक्त खेत को गये और वहां देखते क्या हैं कि टट्टी खाई की जगह से अलग हटा दी गई है। कुछ सीधे-सादे लोगोंने तो जहां वह रखी थी ठीक उसी जगह पर पाखाना फिरा था। हमने उसे फिर ठीक जगह पर रख दिया। दूसरे दिन हमने देखा कि वह उखाड़कर फेंक दी गई है। हमने फिर से उसे उसी जगह जमा दिया। गनीमत यही है कि हमारे टट्टी-विरोधियोंने उसे जलाकर खाक नहीं कर दिया है।

यह सब विरोध हमें चुपचाप सहना ही पड़ा। दुःख की बात यह है कि यह विरोध हरिजनों की ओर से हो रहा है। पर सब नहीं, थोड़े ही लोग हमारा विरोध कर रहे हैं। यों तो लोग-बाग काफी संख्या में हमारे पास आते हैं, खासकर जब कोई बीमार हो जाता है और उन्हें उसके इलाज की जरूरत होती है। दवा-दारू के लिए तो दौड़े आयँगे, पर बीमारी रोकने का जो सर्वप्रथम उपाय सफाई है उसपर ध्यान नहीं देंगे!

पर कुछ नवयुवकों की अंतरात्मा जागृत हुई है, और वर्धा से जो म्यूनिसिपैलिटी के मेम्बर और उनके मित्र आते और लोगों को सफाई के अच्छे-अच्छे तरीके अख्तियार कराने की चेष्टा करते हैं, उनका साथ गांव के ये नवयुवक बराबर देते हैं।

सद्भाग्य से सहायकों की कोई कमी नहीं है। एक दिन सबेरे कन्या-आश्रम की लड़कियोंने सड़कों की सफाई में कई घंटे खर्च किये, उन्होंने तमाम गन्दा कूड़ा-कचरा साफ किया। दो डाक्टर और एक व्यापारी सज्जन नित्य नियमपूर्वक आते हैं। एक डाक्टर के साथ उनकी दो छोटी-छोटी लड़कियां भी आती हैं, जिन्हें इस काम में खूब ही मजा आता है। हमारे मेहमानों को तो इस गांव में आने की हमेशा ही चाह रहती है, और अगर कोई यूरोपियन सज्जन हुए तो उनकी तरफ तो लोगों का बहुत ही ध्यान आकर्षित होता है।

इंदौर की अन्य सभाएँ

और भी कई ऐसी सभाएँ इंदौर में हुईं जिनकी चर्चा मुझे संक्षेप में अवश्य करनी चाहिए। गुजराती गुजरात के बाहर जहां कहीं भी आकर बस गये हैं, उन्होंने कुछ यह नियम-सा बना लिया है कि गांधीजी को वे आमंत्रित करते और जो भी प्रवृत्ति उस समय गांधीजी के हाथ में होती है उसके निमित्त वे उन्हें श्रद्धापूर्वक पत्र-पुष्प भेंट करते हैं। इंदौर में भी उन्होंने गांधीजी के प्रीत्यर्थ एक छोटी-सी सभा का आयोजन करके उसमें उन्हें एक छोटी-सी थैली भेंट की। इसके बदले में उन गुजराती भाइयों को गांधीजी-ने यह हितकर और सामयिक संदेश दिया —

"मुझे इस बात की खुशी है कि आप लोगों के यहां जो दो पक्ष हो गये थे मेरे आने से वह सब विरोधभाव दूर हो गया। पर मैं तो अब आप से इससे भी एक कदम और आगे बढ़ने के लिए कहूँगा। जहां से आप लोग अपनी जीविका-उपार्जन करते हैं वहां का ध्यान आपको अवश्य रखना चाहिए। अपनी कमाई की सारी-की-सारी बचत अपने घर भेज देने की बात तो आप को स्वप्न में भी नहीं सोचनी चाहिए, बल्कि जिन मराठी और हिंदीभाषा-भाषी लोगों के बीच आप रह रहे हैं, उनके लिए आप को अवश्य कुछ पैसा खर्च करना चाहिए। धर्मनीति के साथ व्यापार की कोई संगति नहीं यह सोचना ही गलत है। मैं जानता हूँ कि बिना बेईमानी और झूठ के भी व्यापार मुनाफे के साथ बड़ी अच्छी तरह चल सकता है। व्यापार और ईमानदारी में कोई संगति नहीं, इस दलील को तो वही लोग आगे रखते हैं जो संकुचित स्वार्थ-साधन से ऊंचा उठना ही नहीं चाहते। जो अपना ही स्वार्थ साधना चाहेगा वह तो सभी तरह के बुरे-से-बुरे साधनों से काम लेगा, मतलब जो पूरा करना है! मगर जो अपना नहीं, बल्कि अपने समाज की सेवा करेगा, उसमें सच्चाई और ईमानदारी का खून कैसे हो सकता है? यह बात आप को ध्यान में रखनी चाहिए कि आप जितना चाहें उतना पैसा कमा तो सकते हैं, पर उसे मनमाने तौर पर खर्च करने का आप को अधिकार नहीं। ठीक तरह से खाने-पहनने की आवश्यकताएँ पूरी हो जाने के बाद जो भी पैसा बचे, उसपर आपका नहीं, आपके समाज का अधिकार है।

यहां ऐसा एक भी गुजराती न होगा, जो हिंदी न समझता हो। हमारी गुजराती बहनें भी हिंदी समझती होंगी ऐसा मैं खयाल करता हूँ, क्योंकि यहां की हिंदी बोलनेवाली बहिनों-द्वारा संचालित साधारण समाज-सेवा के कामों में उन्हें भी तो योग देना है।"

गुजराती युवक संघवालोंने जब अलग-अलग भाषण करने की अनुमति मांगी, तब गांधीजीने उनसे कहा, "क्या यह बेहतर न होगा कि मैं आपको अपने और दो मिनिट दूं बनिस्बत इसके कि आप व्याख्यान देने के लिए दो मिनिट ले लें? खैर, मैं यह पसंद करूँगा कि आपके पास 'मौन' का एक संदेश छोड़ जाऊं। उस भाषण में न तो पवित्रता ही रहती है और न सुंदर कला ही, जिसके पीछे क्रियाशीलता से प्राप्त अनुभव नहीं होता। मैं तो आपसे यह कहूँगा कि आप भाषण के मोह में न पड़ें। आप तो अपना शरीर समाज-सेवा में लगा दें। अगर आप कुछ ही वर्ष मेरे कहने पर चलें, अर्थात् कोरी 'कथनी' से नहीं किंतु 'करनी' से सेवा करें तो आपके मुख से वह अमरवाणी निकलेगी जिसमें प्रभाव होगा और जो कभी निष्फल नहीं जायगी।"

समय यद्यपि बहुत कम था, तो भी जल्दी-जल्दी में 'शारदा राजे कन्या बोर्डिंग' देखने के लिए दस-पांच मिनिट गांधीजीने निकाल ही लिये। इसमें हरिजन लड़कियां रहती हैं और वहीं शिक्षा भी पाती हैं, और इसके लिए उनसे कोई फीस नहीं ली जाती। इस निश्शुल्क बोर्डिंग स्कूल को कुछ सहायता राज्य से भी मिलती है।

पर इंदौर की हरिजन-बस्तियां और हरिजन-पाठशाला को देखे बिना गांधीजी को भला कभी संतोष हो सकता था? सारे दिन कामों की इतनी ज्यादा भरमार रही कि भोजन करने को भी समय नहीं मिला। शाम को जब गाड़ी चली तब कहीं खाने-पीने की फुरसत मिली। गाड़ी छूटने के मुश्किल से कुछ मिनिट ही रहे होंगे, पर हरिजन-बस्ती देखना जरूरी था। हजारों आदमी वहां शांतिपूर्वक खड़े गांधीजी की बाट जोह रहे थे। वे यह जानते थे कि गांधीजी आज ही शाम को इन्दौर से जानेवाले हैं, और उन्हें यह भी मालूम था कि समय अब जरा भी नहीं रहा है, फिर भी आस लगाये खड़े थे। पाठशाला के बच्चे और बालिग विद्यार्थी तो जहां थे वहीं रहे, और बस्ती के लोगोंने कुछ फासले से स्वागत किया। इस इतनी बड़ी भीड़भाड़ में भी खासी शांति रही। एक ही मिनिट गांधीजी वहां बोले, पर उन्होंने जो कहा वह तमाम हरिजनेतर लोगों के लिए एक पदार्थपाठ होना चाहिए। कहा, "सवर्ण हिंदू क्या करते हैं या क्या कहते हैं, इस पर आप लोग ध्यान न दें। आप तो यही सोचें कि आपका क्या कर्तव्य है। यह छोटी बात नहीं है, कि आपकी अब भी उस धर्म पर श्रद्धा बनी हुई है, जिसने आपको ऊंचा नहीं उठने दिया। यह मैं नहीं जानता कि इसके लिए मैं उस धर्म की महत्ता को श्रेय दूं अथवा आपकी महान् सहन-शक्ति को। पर चाहे जिसके कारण यह हो, मैं आपसे यह जरूर कहूँगा कि कुछ दिन और आप धीरज रखें और हरेक तरह की बिपता झेलते हुए भी जिस धर्म को आप पकड़े हुए हैं उसे और भी गौरवान्वित करें। अपने शुद्धाचरण से, हृदय की और शरीर की स्वच्छता से, मुर्दार मांस और मद्य-परित्याग से तथा ईश्वर-प्रार्थना के बल पर आप यह कर सकते हैं। राम-नाम में चमत्कारिक शक्ति है, पर तभी जब श्रद्धापूर्ण और शुद्ध हृदय से उसका स्मरण किया जाय। इस अस्पृश्यता का तो नाश होना ही है, और शीघ्र ही होगा, और समाज में आप लोगों को उचित स्थान मिलेगा इसमें संदेह नहीं। भगवान् आपका कल्याण करें।"

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

टिप्पणियाँ

आय दूनी कैसे हो?

चर्खे का आन्दोलन यद्यपि सत्रह साल से चल रहा है, और उसमें हर साल एक लाख बीस हजार स्त्रियों को थोड़ी किन्तु स्थायी आमदनी हो जाती है, तो भी हमारे कार्यकर्ताओं के कताई विज्ञान के शोचनीय अज्ञान के कारण यह आमदनी जितनी होनी चाहिए उससे बहुत कम होती है। खराब रुई को अनाड़ीपने से धुनेंगे, और फिर कमजोर चर्खे पर तकुवे के चक्करों का खयाल रखे बगैर कातेंगे, तो सूत तो कम निकलेगा ही। एक-एक चीजपर ध्यान दिया जाय तो सहज ही सूत दूना उतरे और इससे आमदनी

भी दूनी बढ़ जाय। कपास को ठीक तरह से तोड़ा जाय, हाथ से ओटा जाय, और फिर रुई को अच्छी तरह से धुना जाय तो सूत तो अधिक उतरेगा ही, वह ज्यादा मजबूत और यकसा भी होगा। तकुवे के चक्करों पर, अर्थात् चर्खे के पहिये के प्रत्येक घुमाव में तकुवा जितने चक्कर खाता है उनपर सूत की गति, मजबूती, समानता तथा अंक शायद सब से अधिक निर्भर करते हैं। उसका हिसाब लगाने का आसान तरीका यह है कि तकुवे की गिर्री पर एक खड़ी लकीर खींच दी जाय, और पहिया इतना धीरे-धीरे घुमाया जाय कि जिससे तकुवे के चक्कर आसानी से गिने जा सकें। पहिये का एक चक्कर और तकुवे के सौ चक्कर, इससे कम तो होने ही नहीं चाहिए, किन्तु श्री शंकरलाल बेंकरने यह रिपोर्ट दी है कि उन्होंने अपने दौरे में सिर्फ ३५ ही चक्कर लगानेवाले तकुवे देखे हैं। अब अगर सूत बहुत ही कम और कच्चा तथा छीछनेदार उतरे तो इसमें कोई अचरज की बात नहीं। तकुवे के चक्कर बढ़ाने की तरकीब यह है कि माल का अपनी ठीक जगह पर रखने-वाली तकुवे की माली की मोटाई कम कर दी जाय। स्थानीय कार्यकर्त्ताओं को अपने गांव के प्रत्येक चर्खे की जांच-पड़ताल करके उसके तकुवे तथा दूसरे हिस्सों में जहां आवश्यक जान पड़े, वहां हेरफेर कर देना चाहिए। यह भी सम्भव है कि अन्त में तकली सूत की उत्पत्ति का सब से बढ़िया साधन साबित हो। उसमें कम-से-कम ध्यान देने की जरूरत रहती है, और तकली चलाने की नई पद्धति से प्रति घंटा औसतन २०० तार यानी २९६ गज सूत कतता है, और ४४० तारतक की गति बढ़ सकती है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

अनुकरणीय है

कानपुर की म्युनिस्पैलिटीने हरिजन-बस्तियों में जो सुधार किया है उसपर 'हरिजन-सेवक' में समय-समय पर प्रकाश डाला जा चुका है। कानपुर के बाद हमारी दृष्टि मथुरा की म्युनि-स्पैलिटी पर जाती है। म्युनिसपल बोर्ड के चेयरमैन श्री जमुना-प्रसादजीने अच्छा सराहनीय कार्य किया है। उसदिन भरतपुर दरवाजे की हरिजन-बस्ती देखकर मुझे तो बहुत ही प्रसन्नता हुई।

यह मेहतरों की बस्ती है। कुल २१० घर हैं। पहले इसकी बहुत बुरी हालत थी। ऊँची-नीची कच्ची गलियां बरसात में तो और भी कष्टकर हो जाती थीं। न कोई पाखाना था, न पानी का ही ठीक-ठीक प्रबंध। लालटेनें भी नहीं थीं। पर आज तो इसका रूप कुछ और ही होगया है। तीन सड़कें पक्की, मय नालियों के, बनवा दी गई हैं, जो खूब साफ रहती हैं। दो पाखाने भी खासे बड़े बन गये हैं। एक टंकीवाला गुसलखाना है, जिसमें स्त्रियों के नहाने के लिए अलग जगह है। सात टोटियों के तीन नल हैं। पानी का अब कोई कष्ट नहीं है। सफाई भी मुहल्ले में अच्छी रहती है। हां, सूअर जो गंदगी फैलाते हैं उसकी बात अलग है। ७ लालटेनें लगवा दीगई हैं। बोर्ड का एक स्कूल भी बस्ती में है, जिसमें २ अध्यापक पढ़ाते हैं। ६० में सिर्फ ३८ लड़के हाजिर मिले। यहां अनिवार्य शिक्षा है। हाजिरी की अच्छी कोशिश की जाय तो बहुत बढ़ सकती है।

यह तो एक बस्ती की बात है। और भी दो-तीन बस्तियों में म्युनिस्पैलिटीने इसी प्रकार सुधार किया है। संयुक्त प्रांत की अन्य म्युनिस्पैलिटियों को कानपुर और मथुरा की म्युनिस्पैलिटियों के इस सुधार-कार्य का अवश्य अनुकरण करना चाहिए। वि० ह०

निमाड़ का एक हरिजन

खंडवा के उत्साही सेवक श्री बाबूलाल पगारे लिखते हैं:—

"एक हरिजन भक्त की बात कहता हूँ। वह निमाड़ के एक गांव का रहवासी है। उम्र करीब ५० साल की है। नाम बुद्धू है। गांव का कोटवार है। जाति बलाई। ये लोग मुर्दार मांस खाते हैं, पर बुद्धू भगत का रहन-सहन तो निराला ही है। यह भाई एकादशी का व्रत रखता है, वह भी निराहार। नित्य सांझ को रामायण बांचता है। जब लड़के की शादी हुई तो उस परगने के बलाइयों में वह पहला अवसर था, जिसमें मद्य-मांस का स्पर्श तक नहीं हुआ। बुद्धू सदा सत्य बोलता है। न उसे लोभ डिगा सकता है, न भय। एक बार पुलिसवालोंने एक झूठे मुकदमे की गवाही देने के लिए बुद्धू से कहा तो वह निर्भीकतापूर्वक बोला—'साहब, यह तो झूठ है। आप मुझे चाहे मार डालो, पर मैं अदालत में कहने का नहीं। मैं तो साफ-साफ यही कहूँगा कि यह मामला झूठा है।' मेरा मस्तक बुद्धू दादा के चरणों पर आप ही झुक गया।"

पर हमारा यह अधर्म-प्रेरित उच्च-नीच का भेदभाव तो बुद्धू-जैसे सत्यनिष्ठ हरिजनों को भी 'अस्पृश्य' ही कहेगा। पर इसमें सदेह नहीं कि ऐसे ही अज्ञात भगवद्भक्तों की बदौलत हमारा यह विकारग्रस्त हिंदूधर्म अबतक टिका हुआ है। मनुष्य के प्यारे न सही, पर ये दलित जन हरि के प्यारे तो हैं ही।

वि० ह०

संयुक्तप्रांत के खादी-केन्द्रों में

(३)

मेरठ में हम श्रीगांधी-आश्रम के मेहमान बने। सूबा हिन्द के राष्ट्रीय इतिहास में मेरठ के श्रीगांधी-आश्रम का इतिहास सोने के अक्षरों में लिखाजाने योग्य रहा है, और लिखा जायगा। एक छोटी-सी झोपड़ी और अँगुली पर गिने जानेवाले सर्वस्व-त्यागी साथियों के बल पर आचार्य कृपलानी-जीने आज से १५ वर्ष पूर्व जब इस आश्रम का बीजारोपण किया था, तब शायद स्वयं कृपलानीजीने भी यह न सोचा होगा कि १५ वर्षों के अन्दर उनका यह आश्रम कुछ-का-कुछ हो जायगा और सूबा हिन्द में उसके नाम और काम की धाक जम जायगी। जो एक मढ़ैया से शुरू हुआ था, वह अब छोटे-मोटे बँगलों में बसा हुआ है और मधुमक्खी के छत्ते की तरह सारा दिन काम में गूंजा करता है। एक विशाल उद्यान के बीच खड़ी हुई आश्रम की अनेक छोटी-बड़ी इमारतें, सादा और संयमपूर्ण आश्रम-जीवन, खिलाड़ियों का-सा सुन्दर, सुखद, बेलाग वातावरण और एक 'अपटुडेट' खादी भण्डार, इस आश्रम के संस्थापक और उनके साथियों की सफल साधना और अखण्ड पुरुषार्थ के सजीव उदाहरण हैं।

आचार्य कृपलानीजी इस आश्रम के प्रेरक प्राण हैं, और श्री० विचित्र बाबू उसकी प्रसन्न शक्ति के पहले प्रतिनिधि हैं। आचार्य आश्रम के दादा हैं, और विचित्र बाबू भाई! घुंघराले बालों से घिरा हुआ उनका गौर मुख-मण्डल, और चश्मे के भीतर से चमकती हुई प्रफुल्ल आंखें उनके वीर और खिलाड़ी स्वभाव की सूचक हैं। उनका अट्टहास्यपूर्ण फक्कड़पन, बालकों की-सी निर्दोष चपलता और लाग-लपेट से दूर रहनेवाला सतत-जाग्रत स्वाभिमान उनकी अपनी चीज है, और उन्हें सारे आश्रम

का प्रेरणा-स्थान बनाये हुए है।

आश्रम का उद्देश्य खादी को केन्द्र में रखकर हर सम्भव रचनात्मक कार्य-द्वारा भारतीय जनता की सेवा करना रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पिछले १५ वर्षों में आश्रमने जो कार्य किया है, वह उसकी मनस्विता और कर्मण्यता का एक अनोखा नमूना है। सन् १९२० में आश्रम की स्थापना हुई। सन् २२ में उसने देहात में खादी का कार्य शुरू किया और सन् १९२५ में चर्खा-संघ की ओर से हिन्द प्रान्त में संघ की एक शाखा स्थापित हुई। सन् १९२७ में चर्खा-संघ का यह काम भी आचार्य कृपलानीजी को मिल गया। सन् १९३० में आश्रम और संघ दोनो मिल गये और दिल्ली और हिन्द प्रान्त में खादी की उत्पत्ति और उसके प्रचार का काम करने लगे हैं।

पिछले कुछ वर्षों में आश्रमने विविधता, सुन्दरता, और व्यापकता की दृष्टि से खादी को जो रूप दिया है और उसका जितना विस्तार किया है, वह सचमुच ही खादी की शक्ति और उसकी क्षमता का एक अपूर्व उदाहरण है। खादी-उत्पत्ति की दृष्टि से अब आश्रमने अपने को प्राय हर तरह स्वावलम्बी बना लिया है, और प्रान्त में अपनी खादी के लिए बहुत-कुछ माग भी पैदा करली है। लेकिन अब तो वस्त्र-स्वावलम्बन की बात ध्यान में रखकर वह खादी में देहातवालों की आवश्यकता के अनुकूल परिवर्तन और सुधार करने जा रहा है।

आश्रमने मेरठ में लोहार, बढ़ई और दर्जी का, और धुलाई, कुन्दी, रँगाई और छपाई आदि का सुचारु रूप में प्रबन्ध कर लिया है। रँगाई और छपाई तो अब आश्रम की विशेषताएँ हो गई हैं। हाल ही में ठप्पे बनाने का कार्य भी आश्रम में होने लगा है। जाली बँधाई आदि के काम में भी मेरठ की बहुत-सी असहाय विधवाओं और गरीब स्त्रियों की परवरिश हो रही है।

उत्पत्ति-केन्द्रों में आश्रम की ओर से रोगियों के इलाज का प्रबन्ध है। मेरठ में तो गरीबों के लिए एक औषधालय ही खुला हुआ है, जिसमें बीमारों की रोजाना हाजिरी उनके करीब रहती है। जहां-तहां रात्रि-पाठशालाएँ भी चलाई जाती हैं। अकबरपुर केन्द्र में हरिजन-पाठशाला भी है, जिसमें ५० विद्यार्थी पढ़ रहे हैं।

सन् १९३३ में आश्रमने डा० अन्सारी द्वारा दिल्ली में दिल्ली के उपयुक्त भारत के एक सब से बड़े भण्डार और प्रदर्शन-भवन का उद्घाटन कराया था। तब से लखनऊ के और इलाहाबाद के भण्डारोंने भी खूब तरक्की की है, और उनका काया-पलट हो चुका है। ये नये भण्डार अब अच्छी-से-अच्छी कपड़े की दूकान का मुकाबिला करते हैं; और न केवल खादी-प्रेमियों का, बल्कि उन सब को भी आकर्षित करते हैं, जिन्हें खादी में कोई खास प्रेम नहीं है, पर जिनकी कला और सौन्दर्य की रुचि पश्चिम के दिखाऊ और भद्दे माल से नष्ट नहीं हो चुकी है।

हमे यह जानकर खुशी हुई कि एक ओर से तो इस आश्रम का खादी-कार्य खादी-प्रेमी जनता की कृपा से प्राय सदा स्वावलम्बी रहा, और दूसरी ओर से उसका रचनात्मक और ग्राम्य-कार्य सदा बढ़ता और फैलता रहा। और अब तो आश्रम अपने रचनात्मक और ग्राम्यकार्य को स्वावलम्बन की दृष्टि से सगठित और व्यापक बनाने जा रहा है। जिस आश्रमने अबतक शहरवालों की रुचि की पूर्ति के लिए विविध प्रकार की बढ़िया-से-बढ़िया खादी तैयार की, वही अब उन ग्राम-वासियों की जरूरत का कपड़ा बनाने की धुन में है, जो सख्या में कई करोड़ है, और जिनके साथियोंने अबतक केवल शहरवालों के लिए कात-कातकर सूत बेचा है, और खादी को बुना, धोया, रँगा और छापा है।

नई दृष्टि से खादी की अब जो पुनर्रचना हो रही है, सभी विचारशील खादी-सेवक उसका महत्त्व समझ रहे है, और ज्यों-ज्यों वे इस नई योजना की तह में घुसते है, त्यों-त्यों उन्हे इसकी मौलिकता, क्षमता और राष्ट्रहितकारिता का विश्वास होता जा रहा है, और वे इसकी ओर अधिकाधिक आकर्षित हो रहे है। इसलिए अब इन मुग्ध खादी-सेवकों के प्रयत्न से जो खादी बनेगी, वह अबतक बनी हुई खादी से भिन्न प्रकार की होगी, और देशभर में देहातियों के घर-घर की वस्तु बन सकेगी।

आश्रम में हम दो दिन ठहरे और दोनों दिन उसकी कार्यप्रणाली को समझने और वहा की खादी का अध्ययन करने में बिताये। एक दिन हम आश्रम के खद्दर-स्टोर में जा बैठे और चुन-चुनकर आश्रम की सभी अच्छी-भली चीजें देख-परख डालीं। खादी की विविधता का विराट् दर्शन मैंने तो पहली बार इसी स्टोर में किया। खादी की ऐसी कोई चीज न थी, जिसकी आपको जरूरत हो, और जो आपको इस भण्डार में न मिले। स्टोर में हमने सस्ती-से-सस्ती और महँगी-से-महँगी हर तरह की खादी देखी। फिर कार्यकर्त्ताओं से ग्रामीण खादी, टिकाऊ खादी, धुली और बिना धुली खादी के सम्बन्ध में चर्चा की और इस सम्बन्ध के अपने-अपने अबतक के अनुभव सुने-सुनाए। हापुड़वालों की सस्ती खादी के नमूनों का भी हमने अपने इन मित्रों से जिक्र किया, और हमने देखा कि हमारी बातें आश्रम के हमारे इन मित्रों के गले उतर रही है, और नई दिशा में खादी का काम करने के लिए उनके मन में मन्थन शुरू हो गया है।

दूसरे दिन सुबह आश्रम में कुछ जुलाहे अपनी खादी जमा कराने आये थे। हम भी इन जुलाहों से मिलने और उनकी बुनी खादी देखने को उत्सुक थे। आश्रम के उत्पत्ति-सचालक भाई श्री० राजारामजी शर्मा के साथ हम उनसे मिले और कुछ देर वहा बैठकर सूत और कपड़े के लेने-देन का तरीका समझा। हमें यह देखकर हर्ष हुआ कि आश्रम के सभी जुलाहे सिर से पैरतक शुद्ध खादी ही पहने थे और बड़ी सरलता और कुशलता से अपना सारा काम कर रहे थे। जब एक नौजवान जुलाहे की बुनी हुई ५२ इंची अर्ज की खादी की चादरें सामने आईं तो हमें बड़ी प्रसन्नता हुई और हमारी आखें उस भाग्यवान जुलाहे की टोह में ऊपर को उठ गईं। वास्तव में खादी के बिना यह अर्ज असाधारण था। और जब हमें यह मालूम हुआ कि ऐसी चादरें बुनकर वह कुशल जुलाहा रोज का रुपया-सवा-रुपया और कभी इससे भी अधिक कमा लेता है, तो हमें अतिशय सन्तोष हुआ। मुसलमान कत्तिनों की तरह इधर के इन मुसलमान जुलाहों की यह कलापूर्ण कारीगरी सचमुच ही सराहने और अनुकरण करने योग्य है।

इस प्रकार मेरठ में दो दिन बिताकर तीसरे दिन हम आश्रम के मित्रों से बिदा हुए और दिल्ली के लिए रवाना हो गये।

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

एक ग्रामसेवक के प्रश्न

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, १७ मई, १९३५. [संख्या १३

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

सफाई का काम

इस सप्ताह सिवा इसके कि लोगों की अंतरात्मा धीरे-धीरे जाग्रत हो रही है कोई ऐसी उल्लेखनीय बात नहीं, कि जिसमें अधिक दिलचस्पी ली जा सके। उस दिन एक बड़े आँगनेवाले हाते के पास से गुजरते हुए हमें आँगन में कचरा पड़ा दिखाई दिया। कचरा साफ करने के लिए हम ज्योंही हाते का फाटक खोलने लगे कि उस घर की मालकिनने हमें धीरे से मना किया और कहा कि मैं यह कचरा हटाये देती हूँ, और उसने उस गंदगी को हटाकर साफ कर दिया। लेकिन असल में दुःख की बात तो यह है कि ये भली स्त्रियां भी कचरे व मैले को हटा देंगी, उसे उठाकर रास्ते पर फेंक भर देंगी, पर उस पर मिट्टी नहीं डालेंगी। यह एक अजीब-सा खयाल है कि मिट्टी डालने से ही छूत लग जाती है! यह कहना तो कठिन है कि यह विचित्र धारणा अस्पृश्यता का परिणाम है या अस्पृश्यता को इस धारणाने जन्म दिया है, पर यह धारणा यहां है जरूर, और हमारे लाख जतन करने पर भी यह दूर नहीं हो रही है। उसदिन एक छोटे से लड़केने हमें बतलाया कि 'देखो, वह कुछ कदम पर मैला पड़ा हुआ है, अरे, तुम्हें वह दिखाई नहीं दिया!'

'पर, मेरे प्यारे बच्चा, तुम उसे हटा क्यों नहीं देते?'

'मुझे छूत जो लग जायगी', उसने कंधे मटकाते हुए घृणा के भाव से कहा।

'पर हमें छूत न लगेगी?'

'तुम्हें भी लगेगी, पर तुम ऐसा मानते नहीं!'

उसकी समझ में हम लोग वज्र पापी थे। यह हरिजन का लड़का था!

पर जैसा कि मैंने कहा है लोगों की चेतना धीरे-धीरे जाग्रत हो रही है। अब कई आदमी बड़े तड़के उठकर सड़कों पर टट्टी फिरनेवालों को आगाह कर देते हैं और उनसे खेतों में जाने के लिए कहते हैं। कल जब गांधीजी गांव देखने गये, तब इन लोगों ने उनसे किनारा नहीं काटा, बल्कि उनके सामने आये और यह वचन दिया कि हम सफाई के काम में आपके आदमियों की मदद करेंगे।

मगनवाड़ी में राजाजी

श्री राजगोपालाचार्य सार्वजनिक प्रवृत्तियों से अलग होना चाहते हैं यह बात कुछ ऐसी गूढ़ मालूम होती थी कि हम लोग उनके जबलपुर से मद्रास वापस जाते हुए यहां आने की राह देख रहे थे। मैं यह जानता था कि गांधीजी के कांग्रेस से अलग होने का सबसे अधिक विरोध राजाजीने ही किया था। इसलिए पहले-पहल जब यह बात मेरे कान में पड़ी तो मुझे उस पर विश्वास नहीं हुआ। राजाजी-जैसे विकट योद्धा युद्ध से थक जायँ यह बात कुछ समझ में नहीं आई। शरीर ही जवाब दे दे तब तो बात दूसरी है, पर योंही कार्यक्षेत्र से हट जाना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। जब वे यहां आये तो हमने देखा कि उनका शरीर जवाब देने ही वाला है। अखबारों में उनके सार्वजनिक प्रवृत्तियों से अलग होने के बारे में तरह-तरह की अफवाहें छपी थीं। कुछ मूर्खतापूर्ण वाहियात कटाक्ष भी उन पर किये गये थे। इन सब बातों पर उन्होंने सिर्फ हँस दिया और कहा, "किसी उत्तरदायी मनुष्यने यह बातें कही होतीं तो मैं उनकी पर्वा करता, इन बातों पर तो मैं विचार भी करने को तैयार नहीं।" वे बिल्कुल ही थके हुए दिखाई देते थे। उनका यहां काफी समयतक ठहरने का विचार था, तो भी यहां की गरमी की भट्टी में उन्हें व्याकुल होते हुए देखकर गांधीजी को उन्हें ठहराने की हिम्मत नहीं पड़ी। एक समय वह था जब कोई जेठ-बैसाख की गरमी की शिकायत करता तो राजाजी उसे इस तरह मजाक में उड़ा देते कि 'जेठमास में हम गरमी की शिकायत करते हैं, जाड़े में सर्दी का रोना रोते हैं, पानी न बरसे तो दैव को कोसते हैं, अधिक बरसे तो शिकायत करते हैं! यह रोना रोने की तो हमारी आदत ही पड़ गई है। किसी भी काम के लिए ईश्वर को धन्यवाद देना तो हम भले आदमियोंने सीखा ही नहीं।' उन दिनों उनके मुँह से कुछ इसी प्रकार के वाक्यों के निकलने की मैं कल्पना कर सकता हूँ। पर यहां की गरमी से उन्हें बड़ी बेचैनी मालूम हुई। उन्होंने कहा, "कह नहीं सकता कि कारण क्या है, पर शरीर में थकावट आ रही है, सिर में चक्कर आते हैं, आंखों में ऊँघाई भरी रहती है, पर रात को नींद नहीं पड़ती। शरीर के खटिया पकड़ने के पहले ही इन सब प्रवृत्तियों से अलग हो जाऊं तो अच्छा; तबीयत ठीक होने पर मैं बिना बुलाये ही कार्यक्षेत्र में वापस आ आऊँगा।" मैंने पूछा, "समुद्रयात्रा से स्वास्थ्य ठीक नहीं हो जायगा?" इस पर उन्होंने कहा, "हां ठीक तो हो जायगा, पर जब किसी शांत गांव में १५) मासिक खर्च करके स्वास्थ्य-

लाभ किया जा सकता है, तब दो हजार रुपये फेंककर कौन समुद्र-यात्रा करना चाहेगा ?"

मुझे लगा कि उनके साथ अधिक वाद-विवाद करना एक तरह की निर्दयता है।

हमारे सफाई के काम में राजाजीने खूब दिलचस्पी ली थी।

उन्होंने उस दिन कहा, "इस अस्पृश्यता के पीछे आर्थिक प्रश्न है। हमारे इधर कई स्थानों में हरिजन कचरा साफ किया करते थे, और जमींदार अपने खेत के लिए अपनी जमीन पर उस कचरे को इकट्ठा कराते थे। अब उन्होंने नित्य अपनी बस्ती में झाड़ू लगाना शुरू कर दिया है, क्योंकि उन्हें यह बात मालूम पड़ गई है कि उस कचरे से खाद के रूप में जरूर कुछ दाम खड़े हो सकते हैं। जमींदार को यह बात पसंद नहीं, क्योंकि हरिजनों की गंदगी में उसका स्वार्थ जो है। हरिजनों से वह कहता है, "सड़कों पर झाड़ू मत लगाओ।" वह साल में सिर्फ एक बार कचरा इकट्ठा कराता है। वस्त्रोंका सवाल लीजिए। ये लोग हरिजनों को न उपरना पहनने देते हैं, न चोली। कारण बिल्कुल साफ है। हरिजनों को इन ऊपरी कपड़ों पर पैसा खर्च करने दिया, तो उन्हें अधिक पैसा देना पड़ेगा, और फिर मजूरी महँगी पड़ेगी। फिर तिरुचिगोड़ के पास के गरीब हरिजनों को लीजिए। ये लोग यकायक ईसाई हो गये हैं। कारण इसका यह है कि दुर्भिक्ष के दिन थे, और कैथलिक पादरी के पास उन्हें देने के लिए पैसा था।"

एक दिन दोपहर को मैंने देखा कि राजाजी लेटे हुए हैं और बगल में वाल्मीकीय रामायण रखी हुई है। मुझे देखकर उन्होंने कहा, 'यह एक ऐसा प्रसंग है, जो तुम्हारे लिए रोचक होगा।' तुरत ही उन्होंने बालकाण्ड का ५८ वां अध्याय निकाला। कथा यह थी कि स्वर्ग जाने की इच्छा रखनेवाले त्रिशंकु को चांडाल हो जाने का शाप दिया गया था। विश्वामित्र का यह विश्वास था कि चांडाल को यज्ञ करने का अधिकार है। दूसरे लोगों की यह धारणा थी कि चांडाल को यह अधिकार नहीं है। टीकाकारोंने इस श्लोक का अर्थ करते हुए यह लिखा है कि "त्रिशंकु जन्म से या कर्म से चांडाल नहीं था, किन्तु शाप के कारण वह चांडाल था, और इसलिए उसे यज्ञ करने का पूर्ण अधिकार था।" अतः चांडाल का चांडालपन नष्ट हो सकता है या नहीं इस प्रश्न पर उस प्राचीनकाल में भी विवाद चला था।'"

नीम के विषय में

पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि श्री भणसालीने ११००० गज सूत कात लिया है, और उसे गांधीजी को अर्पित कर दिया है। यह सूत-समर्पण की बात मेरी दृष्टि में उल्लेखनीय है, क्योंकि इस काम को भणसालीजीने जिस पवित्रता के साथ किया वह वर्णनीय और अनुकरणीय है। प्रातःकाल स्नान करने के बाद बैठ जाते और इतनी एकाग्रता से कातते कि आसपास की किसी चीज पर शायद ही उनकी दृष्टि जाती थी। गांधीजी के लिए सूत कातना उनकी दृष्टि में आत्म-ध्यान के जितना ही पवित्र कार्य था। नित्य शाम को अपने काते सूत की अटी बनवा लेते थे। अटी सख्त बनाने के लिए पैर के अंगूठे से काम लेने का रिवाज है। अटी बनानेवाले सज्जन अंगूठे से काम ले रहे थे। इस पर भणसालीजीने उन्हें मना किया, और एक चिटपर यह लिख दिया, "न, ऐसा न करो, यह बापू का सूत है। इसे हम पैर के अंगूठे से कैसे छू सकते हैं?" कदाचित् उन्होंने अपने सूत के एक-एक तार को अपने मंत्र-जाप से पवित्र किया था। जिस दिन उन्होंने पूरा सूत कात लिया उस दिन उसका सुंदर बंडल बनाया और उस पर कुंकुम लगाकर उसे गांधीजी के चरणों पर समर्पित कर दिया।

सूत-समर्पण की यह बात है तो छोटी-सी, पर उससे हम सब लोग एक सबक ले सकते हैं। जो काम हमारे सामने आवे, वह चाहे छोटा हो चाहे बड़ा, उसे हम यह मानकर क्यों न करें कि वह पवित्र और प्रभु-प्रीत्यर्थ है? यह पाठ हमने भणसालीजी से सीखा हो या नहीं, पर एक चीज तो जरूर सीखी है ऐसा मालूम होता है। उन्होंने हमें अपना नीम खाने का चसका लगा दिया है। एक दिन शाम को गांधीजीने उनके साथ नीम के गुणों के सम्बन्ध में चर्चा की। भणसालीजी का यह अनुभव है कि नीम में न केवल पाचन-शक्ति ही है, बल्कि वह आंख को ठंडक भी पहुँचाती है। उन्हें पहले कम दीखता था। रात को तो वे कुछ भी नहीं पढ़ सकते थे। पर अब उन्हें करीब-करीब वैसा ही दिखाई देने लगा है, जैसा कि कुदरती तौर पर दिखाई देना चाहिए। आयुर्वेद के प्रत्येक ग्रन्थ में नीम का मुक्तकंठ से गुणगान किया गया है। कई बरस हुए जब गांधीजीने स्वयं नीम का उपयोग किया था। उन्होंने सोचा कि अपच और अनर्दाह की जिन लोगों को शिकायत है उनपर नीमोपचार आजमाने का यह अच्छा अवसर है। पर गांधीजी का यह स्वभाव रहा है कि जबतक वे खुद किसी चीज को न आजमा लें तबतक दूसरों को उसका उपदेश नहीं देते, इसलिए उन्होंने खुद नीम की पत्तियां खाना शुरू कर दिया, और अभीतक थोड़े-एक जनों को नीम खाने की बात समझा सके हैं। इन उत्साहियों में गांधीजी की चार वर्ष की एक पौत्री भी है। उसकी आंख खराब है, इसलिए वह बड़ी खुशी से कड़वी पत्तियों को चबा जाती है। 'इससे तेरी आंखें अच्छी हो जायगी,' बापूजी इस बात को वह मानती है। पर नीम की पत्तियां खाने के बाद एकाध गुड़ की डली तो उसे मिलनी ही चाहिए।

कुछ रोचक प्रश्न

उस दिन हमारे यहां एक मिशनरी महिला आई थीं, जिसने गांधीजी से कई रोचक प्रश्न पूछे।

'मैंने सुना है कि आपको कभी क्रोध नहीं आता। क्या यह बात ठीक है?"

"यह बात तो नहीं है कि मुझे क्रोध आता नहीं। बात यह है कि मैं क्रोध को प्रगट नहीं होने देता। अक्रोधरूपी धैर्य के गुण का मैं अभ्यास करता रहता हूँ, और साधारणतया उसमें मुझे सफलता भी मिली है। पर मुझे जब क्रोध आता है, तब मैं उसे दबा लेता हूँ। यह प्रश्न व्यर्थ-सा है कि मैं किस तरह उसे दबा सकता हूँ, क्योंकि यह एक ऐसी आदत है जिसे प्रत्येक मनुष्य डाल सकता है और निरंतर के अभ्यास से उसमें उसे सफलता भी मिल सकती है।"

"आपके अंतर में दीन-दुखियों के प्रति यह परम प्रेम किस प्रकार प्रगट हुआ? वह समय अथवा प्रसंग क्या आप मुझे बतला सकेंगे?"

"दीन-दुखियों के लिए मेरा यह आत्यंतिक प्रेम मेरे जीवन का अभिन्न अंग आदि से ही रहा है। अपने अतीत काल के जीवन

में मे दृष्टांत देने बैठूं तो मैं बतला सकता हूँ कि मेरा यह दीन-प्रेम एक जन्मसिद्ध वस्तु है। यह मैंने कभी माना ही नहीं कि मेरे और गरीबों के बीच में किसी तरह का कोई भेद है। उन्हें मैंने सदा अपना सगा-संबंधी ही माना है।"

"गंदगी और कचरे के लिए क्या आप के मन में घिन पैदा नहीं होती?" यह कोई असाधारण प्रश्न नहीं था, क्योंकि इस प्रश्न पूछनेवाली महिलाने बरसों नर्स का काम किया था।

गांधीजीने कहा, "मेरे मन में गंदे लोगों के लिए कोई घृणा नहीं होती, पर गंदगी देखकर मैं कांप जाता हूँ। मैं गंदी थाली में न खाऊँगा, न गंदा चम्मच या रूमाल छुऊँगा। पर कचरे को उसके उपयुक्त स्थान पर हटा देने में मेरा विश्वास है। वहां वह कचरा कचरा नहीं रहता।"

फिर उसने भिखारियों का प्रश्न छेड़ दिया। गांधीजीने कहा, "यह मुझे जरूर लगता है कि भिक्षावृत्ति को प्रोत्साहन देना अच्छा नहीं, तो भी मैं भिखारी को काम करने और अन्न मिलने की बात बताये बिना नहीं जाने दूंगा। अगर वह काम नहीं करेगा तो फिर उसे भूखा ही चला जाने दूंगा। जो अपंग हैं, लूले-लंगड़े हैं या अन्धे हैं उनकी परवरिश सरकार को करनी चाहिए। पर अंधेपन के ढोंग के नाम पर या सचमुच के अंधेपन के नाम पर आज भारी दगाबाजी चल रही है। कितने ही आधे सूरदास अनुचित रीति से पैसा पैदा करके मालदार बन बैठे हैं। उन्हें इस लाभ-चक्र में फंसाने से तो यह कहीं अच्छा है कि किसी अनाथाश्रम में उन्हें भरती कर दिया जाय।"

अब आया वही धर्म-परिवर्तन का महान् प्रश्न। इस प्रश्न को पूछते हुए न तो ये पादरी लोग थकते हैं, और न जवाब देते हुए गांधीजी ही थकते हैं। "लोगों को धर्मान्तरित करने के लिए जो पादरी भारत में आते हैं क्या आप उनका आना रोक देंगे?"

"उन्हें रोकनेवाला मैं कौन होता हूँ? अगर मेरे हाथ में सत्ता हो और मैं कानून बना सकूं तो मैं धर्मान्तर करने का यह सारा धंधा ही बंद करादूं। इससे वर्ग-वर्ग के बीच निश्चय ही कलह बढ़ता है और पादरियों से द्वेष पैदा होता है। लेकिन अगर किसी भी राष्ट्र के मनुष्य शुद्ध सेवा-भाव से सेवा करने के लिए आवें तो मैं उनका स्वागत करूँगा। हिंदू-कुटुंबों में पादरी के प्रवेश से वेश-भूषा, रीति-रिवाज, भाषा और खान-पानतक में परिवर्तन हो गया है, और इस सब का नतीजा यह हुआ है कि वे सुंदर हरे-भरे कुटुंब अंग-भंग हो गये हैं।

"आप जो कहते हैं वह तो पुराने जमाने की बात है। अब धर्म-परिवर्तन के साथ इन सब चीजों का संबंध नहीं।"

"बाह्य स्थिति शायद बदल गई होगी, पर आन्तरिक स्थिति तो अधिकतर अब भी वैसी ही है। हिन्दूधर्म की निन्दा दबी जबान से आज भी की जाती है। पादरियों की दृष्टि में अगर आमूल परिवर्तन हो गया होता तो मिशनों की दूकानों पर मरडोक की किताबें क्या आज बिकने दी जातीं? पादरियों के संघोंने इन किताबों का बेचा जाना क्या मना किया है? इन किताबों में सिवा हिन्दूधर्म की निन्दा के और है ही क्या? आप कहती हैं कि उस पुरानी कल्पना के लिए अब स्थान नहीं रहा। पर मैं इस कैसे मानूं? अभी कुछ ही दिन हुए कि एक पादरी दुर्भिक्षपीड़ित देश में पैसा लेकर पहुँच गया, अकालपीड़ितों को उसने पैसा बांटा, उन्हें ईसाई बनाया, उनका मन्दिर हथिया लिया, और उसे तुड़वा डाला। यह अत्याचार नहीं तो क्या है? जिन हिन्दुओंने ईसाईधर्म ग्रहण कर लिया था उनका अधिकार तो उस मन्दिर पर रहा नहीं था, और ईसाई पादरी का भी उस पर कोई हक नहीं था। पर वह पादरी वहां पहुँचता है, और जो लोग कुछ ही समय पहले यह मानते थे कि उस मन्दिर में ईश्वर का वास है उन्हीं के हाथ से उसे तोड़वा डालता है।"

उस बहिन पर गांधीजी की इस बात का असर पड़ा है, ऐसा मुझे लगा। शायद यह बात उसने सुनी नहीं थी। उसने कहा, "हम अपने अस्पताल में मरीजों के धार्मिक विश्वासों पर प्रभाव डालने का प्रयत्न नहीं करते। हमारे डाक्टर का यह कहना है कि जो लोग आफत में हमारे पास इलाज कराने आते हैं उनसे हमें अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिए। पर गांधीजी, आप धर्म-परिवर्तन के ही विरुद्ध क्या हैं? लोगों को हम और भी अच्छा जीवन बिताने के लिए जो आमंत्रण देते हैं क्या उसके लिए बाइबिल में प्रमाण नहीं है?"

"हां है, पर उसका यह अर्थ नहीं है कि उन्हें आप ईसाई धर्म में दीक्षित करलें। आप अगर अपने धर्म-वचनों का ऐसा अर्थ करने लग जायें जैसा कि हो रहा है तो इसका यह मतलब हुआ कि मानवजाति का अधिकांश यदि आप लोगों के विश्वासों का अनुकरण नहीं करता तो आपकी दृष्टि में वह निन्दनीय है। ईसा मसीह यदि आज पृथिवी पर पुनः अवतीर्ण हों तो ईसाई धर्म के नाम पर जो बातें आज हो रही हैं उनमें से बहुत-सी बातों को वह निषिद्ध ठहरा दें। 'प्रभो, प्रभो' ऐसा जो मुख से उच्चारण करता है, वह ईसाई नहीं है; पर 'जो प्रभु की इच्छा के अनुसार आचरण करता है,' वह सच्चा ईसाई है। और जिस मनुष्यने ईसामसीह का नाम नहीं सुना, वह क्या प्रभु की इच्छा के अनुसार आचरण नहीं कर सकता?"

'हरिजन-बन्धु' से] **महादेव ह० देसाई**

तकली और त्यागवृत्ति

खादीयात्रा की प्रदर्शिनी के 'नैवेद्य-विभाग' में आप देखेंगे कि १२०० मील से आये हुए और यहां ३ बरस से रहनेवाले एक बच्चेने अपने बायें हाथ से तकली पर काते हुए सूत का थान नैवेद्य कहकर प्रदर्शिनी में रखखा है। आंखें खोलकर देखो, यह तो उपनिषद्-युग के दृश्य नजरों के सामने आ रहे हैं। प्रभु को अर्पण की हुई वस्तु में त्यागवृत्ति चाहिए। ताजमहल कितना बड़ा है, किन्तु गंगा को देखकर मेरा मन जितना उछलता है उतना उसे देखकर नहीं उछलता। वह वैभव व्यर्थ गया जो प्रभु के चरणों में अर्पण न किया गया।

तकली की उपासना में ऐहिक अभ्युदय और पारमार्थिक कल्याण है। लोग पूछते हैं, स्वराज्य कहां मिला? मैं पूछता हूँ, तुमने उसके लिए त्याग ही क्या किया? गांधी के शिष्यों को अभी कौन-से कष्ट हुए? उस ईसा के शिष्यों को सौ-सौ बरस, शिकार के जानवरों को निकाल-निकालकर मारने-जैसे कष्ट हुए। ईसा का मुख्य शिष्य था 'पीटर' यानी पत्थर। इस पत्थर के लाखों टुकड़े करके उसे पीसपास डालने का प्रयत्न किया गया। किन्तु उन लाख-लाख पत्थरों में से लाख-लाख पीटर पैदा हुए।

विनोबा

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १७ मई, १९३५

एक ग्रामसेवक के प्रश्न

एक ग्रामसेवक लिखता है —

"१—सीगांव घर की बस्ती के एक छोटे-से गांव में मैं काम कर रहा हूँ। आप कहते हैं कि दवा-दारू देने के पहले ग्रामसेवकों को स्वच्छता पर ध्यान देना चाहिए। लेकिन जब कोई ज्वरपीड़ित ग्रामवासी मदद मांगने आवे तब ग्रामसेवक का क्या कर्तव्य है? अबतक तो मैं उन्हें गांव में मिलनेवाली देशी जड़ी-बूटियों का ही काम में लाने की सलाह देता आया हूँ।

२—बरसात के दिनों में मैले का क्या करना चाहिए?

३—मैला क्या सभी फसलों में काम दे सकता है?

४—शक्कर के बजाय गुड़ खाने में क्या लाभ है?"

जहां ज्वर, अजीर्ण या इसी प्रकार के सामान्य रोगों के रोगी ग्रामसेवकों की मदद लेने आवें, वहां जो मदद वे उनकी कर सकें जरूर करें। रोग का निदान भर अच्छी तरह मालूम हो जाय, फिर गांव में उस रोग की सस्ती-से-सस्ती और अच्छी-से-अच्छी दवा तो मिल ही जायगी। दवाइयां कोई अपने पास रखना ही चाहता है तो अंडी का तेल, कुनैन और उबला हुआ गरम पानी, ये सब से बढ़िया दवाइयां हैं। अंडी का तेल सभी जगह मिल सकता है। सनाय की पत्ती से भी वही काम निकल सकता है। कुनैन का मैं कम ही उपयोग करता हूं। प्रत्येक प्रकार के ज्वर में कुनैन देने की जरूरत नहीं, और न प्रत्येक ज्वर कुनैन से काबू में आता ही है। अधिकांश ज्वर तो पूर्ण या अर्द्ध उपवास से ही शान्त हो जाते हैं। अन्न और दूध को छोड़ देना, और फलों का रस अथवा मनक्के का उबला हुआ पानी लेना, और नीबू के ताजे रस या इमली के साथ गुड़ का उबला हुआ पानी लेना भी, अर्द्ध उपवास है। उबला हुआ पानी तो रामबाण औषध है। आंतों को वह खलभला डालता है, और पसीना लाता है, जिससे बुखार का जोर कम हो जाता है। यह एक ऐसी रोगाणुनाशक औषध है, जिसमें किसी भी तरह का जोखम नहीं है और सस्ती इतनी कि एक कौड़ी भी खर्च नहीं होती। हर हालत में जब भी पानी पीना हो तो उसे कुछ सिराकर पीना चाहिए, उतना ही गरम पीना चाहिए जितना कि अच्छी तरह सहन हो सके। उबालने का मतलब महज गरम करना नहीं है। पानी में जब बुलबुले उठने लगें और उससे भाप निकलने लगे तभी उसे उबला हुआ समझना चाहिए।

जहां ग्रामसेवक खुद किसी निश्चय पर न पहुँच सकें वहां उन्हें स्थानीय वैद्यों का अवश्य पूरा-पूरा सहयोग लेना चाहिए। जहां वैद्य न हों, अथवा भरोसे का न हो और ग्रामसेवक पड़ोस के किसी परमार्थी डाक्टर को जानते हों तो उन्हें जरूर उसकी मदद लेनी चाहिए।

पर उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि रोग के उपचार में भी स्वच्छता का स्थान सब से महत्व का है। उन्हें यह याद रखना चाहिए कि सर्वश्रेष्ठ वैद्य तो एक प्रकृति ही है। इस बात का वे विश्वास रखें कि मनुष्य जिसे बिगाड़ देता है प्रकृति उसे सँवारती रहती है। लाचार तो वह उस समय मालूम पड़ती है जब मनुष्य लगातार उसकी अवहेलना किया करता है। तब जो असाध्य हो जाता है उसे नष्ट कर डालने के लिए वह अपने अन्तिम और अटल दूत 'मृत्यु' को भेजती है, और उस देहधारी को नया चोला पहना देती है। इसलिए स्वच्छता और स्वास्थ्य-रक्षा का कार्य करनेवाले मनुष्य प्रत्येक व्यक्ति के इस सर्वश्रेष्ठ वैद्य की उत्तम-से-उत्तम सहायता करते हैं, उसे इसका पता हो या न हो यह और बात है।

(२) बरसात के दिनों में भी गांववालों को ऐसी जगहों पर शौचक्रिया करनी चाहिए जहां मनुष्य के आने-जाने का रास्ता न हो। मैले को गाड़ जरूर देना चाहिए। पर ग्रामवासियों को परंपरा से जो भ्रामक शिक्षा मिली है उसके कारण यह मैले के गाड़ने का प्रश्न सबसे कठिन है। सिंदी गांव में हम यह प्रयत्न कर रहे हैं कि गांववाले सड़कों पर पाखाना न फिरें, बल्कि पास के खेतों में जायँ, और अपने पाखाने पर सूखी साफ मिट्टी डाल दिया करें। दो महीने की लगातार मेहनत और म्युनिसिपैलिटी के मेंबरों तथा दूसरे लोगों के सहयोग का इतना परिणाम तो हुआ है कि वे साधारणतया सड़कों को खराब नहीं करते। मगर मिट्टी तो वे अब भी अपने मल-मूत्र पर नहीं डालते, चाहे उनसे कितना ही कहा जाय। पूछो, तो यह जवाब देंगे 'यह तो निश्चय ही भंगी का काम है। विष्ठा को देखना ही पाप है, फिर उस पर मिट्टी डालना यह तो उससे भी घोर पाप है।' उन्हें शिक्षा ही ऐसी मिली है। यह विचित्र विश्वास उसी शिक्षा का फल है। इसलिए ग्रामवासियों के हृदय पर नया संस्कार जमाने के पहले ग्रामसेवकों को उनके इन रूढ़िगत संस्कारों को एकदम मिटा देना होगा। अगर हमारा अपने कार्यक्रम में दृढ़ विश्वास है, अगर नित्य सवेरे झाड़ू लगाते रहने के काम में हमारे अंदर पर्याप्त धैर्य है, और गांववालों के इन कुसंस्कारों पर अगर हम चिढ़ते नहीं हैं, तो उनके ये सब मिथ्या विश्वास उस प्रकार लुप्त हो जायँगे, जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से कुहरा नष्ट हो जाता है। युगों का यह वज्र-अज्ञान कहीं आपके दो-चार महीने के पदार्थ पाठ से दूर हो सकता है?

सिंदी गांव में हम वर्षा का सामना करने की भी तैयारी कर रहे हैं। अपनी खेती की रखवारी तो किसान करेंगे ही, तब इस तरह थोड़े ही वे लोगों को अपने खेतों में आने देंगे जिस तरह कि आज आने देते हैं। हमने लोगों के सामने यह तजवीज रखी है कि वे खेत की हदबंदी के अंदर कुछ जमीन को बिलकुल अलग करके उसमें आड़ लगा लें, और उस घेरे के भीतर ही टट्टी फिरा करें। चौमासे के अन्त में जमीन के उस टुकड़े में काफी खाद तयार हो जायगा। वह वक्त आरहा है, जब खेतवाले खुद ही लोगों से अपने खेतों में शौचक्रिया करने के लिए कहेंगे। अगर डॉ० फाउलर का कूता हुआ हिसाब हम मानलें तो एक अमुक खेत में बिलानागा शौचक्रिया करनेवाला मनुष्य वर्ष में २) का खाद उस खेत को दे देता है। ठीक दो ही रुपये का खाद हासिल होता है या कुछ कम-बढ़, इसमें संदेह हो सकता है। पर इसमें जरा भी संदेह नहीं कि मल-मूत्र के संचय से खेत को फायदा तो जरूर होता है।

(३) यह सलाह तो किसीने दी नहीं है कि मैला सीधा ज्यों-का-त्यों बतौर खाद के सभी फसलों के काम में आ सकता है। तात्पर्य तो यह है कि एक नियत समय के बाद मैला मिट्टी के साथ सुंदर खाद में परिणत हो जाता है। मिट्टी में गाड़ने

के बाद मैले को कई प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है, तब कहीं जमीन जुताई और बुवाई के उपयुक्त होती है। इसकी अचूक कसौटी यह है। जहां मैला गाड़ा गया हो उस जमीन को नियत समय के बाद खोदने पर अगर मिट्टी से कोई दुर्गन्ध न आती हो और उसमें मैले का नाम-निशान तक न हो तो समझ लेना चाहिए कि उस जमीन में अब बीज बोया जा सकता है। मैंने पिछले तीस साल इसी प्रकार मैले के खाद का उपयोग हर तरह की फसल के लिए किया है, और इससे अधिक-से-अधिक लाभ हुआ है।

(४) इस बात को सभी विशेषज्ञ एक स्वर से मानते हैं कि शक्कर से गुड़ अधिक ताकतवर है, क्योंकि गुड़ में जो क्षार और विटामिन हैं वे शक्कर में नहीं हैं। जिस प्रकार मिल के पिसे-छने आटे से जाते का बिना चला आटा, अथवा पॉलिशदार चावल से बिना कुटा बिना पॉलिश का चावल अच्छा होता है, उसी प्रकार शक्कर के मुकाबले में गुड़ तो अच्छा होगा ही।

अंग्रेजी से] **मो० क० गांधी**

घोर दुर्व्यवहार

"करीब चार महीने से मैं हरिजन-सेवक-संघ की ओर से एक चेरी (बस्ती) में काम कर रहा था। गांव में मेरे काम शुरू करने से पहले एक हरिजन इस चेरी से उस चारित्रिक अपराध पर निकाल बाहर कर दिया गया था कि उसने एक ब्याही-बरी औरत को भगा लिया था। एक दिन वह हरिजन अपने लड़के को, जो हमारी पाठशाला में पढ़ रहा था, देखने आया। मैंने उसे अपने साथ वहीं ठहरा लिया। रात में वह पाठशाला के ओसारे में पड़ा हुआ था। मैं किसी काम से बाहर गया हुआ था। इस बीच में यह हुआ कि उस औरत के पांच नजदीकी नातेदार और कुछेक सवर्ण हिंदू वहां चढ़ आये, और उस पुराने अपराध पर उस हरिजन को उन लोगोंने बहुत बुरी तरह से पीटा, और घसीटकर उसे ओसारे से बाहर कर दिया। ज्योंही मुझे इस वाकया का पता लगा, मैं तुरंत उन लोगों के पास पहुँचा, जिन्होंने कि खुद ही कानून को अपने हाथ में ले लिया था। मैंने उनके उस दुर्व्यवहार का विरोध किया, और उस हरिजन को फिर से चेरी में दाखिल कर लेने के लिए उनसे कहा, पर उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। इसलिए मैंने वहां रहना ठीक नहीं समझा, और उस गांव को छोड़कर चला आया।"

एक लंबे पत्र का यह बहुत ही संक्षेप में सारांश है। इस कथन की यथार्थता का मैं कोई प्रमाण तो नहीं दे सकता। किंतु यदि जैसा कहा गया है वह सही है, तो निश्चय ही उस हरिजन को पीटना एकदम अनुचित था। अगर उसने कोई जुर्म किया था तो अदालत से उसे दंड दिलाना चाहिए था। पर इस तरह कानून को खुद अपने हाथ में ले लेने का, खुद ही मुंसिफ बन जाने का किसी को कोई अधिकार नहीं था। जो बस्ती इतना भी मामूली-सा इंसाफ करने को तैयार नहीं थी वहां इस हरिजन-सेवकने न रहना मुनासिब समझा तो अच्छा ही किया। मैं आशा करता हूँ कि यह मामला स्थानीय संघ के आगे रखा जायगा और संघ इस बात का प्रयत्न करेगा कि लोग उस हरिजन के प्रति सद्व्यवहार करने लगें। इस सारे मामले की बहुत अच्छी तरह तहकीकात होनी चाहिए। मुझे भय है कि ऐसे मामले तो अकसर और काफी तादाद में होते रहते हैं। यह हरिजन-सेवकों का काम है कि एक ओर तो वे अत्याचार-पीड़ितों की रक्षा करें, और दूसरी ओर जहां उनके चरित्र में कोई दोष देखें वहां उन्हें सदाचार का मार्ग दिखावें। अपराधियों की कोई खास जाति नहीं होती। भूल किससे नहीं होती। दूध का धोया कोई नहीं है। अपराधियों के हृदय पर केवल सुयोग्य और सच्चरित्र जनसेवकों का ही प्रभाव पड़ सकता है।

'हरिजन' से] **मो० क० गांधी**

हरिजनों के लिए कुएँ

बंबई-सरकारने बंबई सूबे में हरिजनों के लिए कुएँ बनवाने का जो निर्णय किया है, उसके लिए हमें उसे धन्यवाद देना चाहिए। काम को देखते हुए तो यह रकम बहुत ही कम रखी गई है। यह तो हम सब को भली भांति विदित है ही कि कांग्रेस-द्वारा स्थापित भूतपूर्व अस्पृश्यता-निवारक बोर्ड की तरफ से कई वर्ष हुए कि गुजरात में हरिजनों के लिए कुएँ बनवाये गये थे, और अब सन् १९३२ से यह काम हरिजन-सेवक-संघ कर रहा है। संघ का कूप-निर्माण का कार्यक्रम काफी व्यापक है। और अब चुपचाप काम करनेवाले महान जन-सेवक श्रीयक्षन जटाभाईने भी इस सुंदर धर्मकार्य पर ध्यान देने का निश्चय किया है। क्या अच्छा हो कि इस एक ही उद्देश को लेकर काम करनेवाली इन भिन्न-भिन्न संस्थाओं में पूरा पूरा सहयोग रहे। अगर सहयोग का प्रयत्न संभव न हो, तो कम से-कम श्रम और कार्यक्षेत्र का विभाग तो होना ही चाहिए। खैर, जो कुछ भी काम किया जाय उसमें यह ध्यान रहे कि काम शीघ्रता से हो, अच्छा हो, और पैसा कम-से-कम खर्च हो। सस्ते-से सस्ता काम तो तभी हो सकता है, जब हरिजन हिंदू या सवर्ण हिंदू अथवा दोनों ही स्वेच्छापूर्वक इस धर्मकार्य में अपने शारीरिक श्रम का योग दें।

मो० क० गांधी

कोयले का दंतमंजन

कर्नल रामसेरसिंहने लकड़ी के कोयले और गाय के गोबर की राख पर निम्नलिखित सम्मति भेजने की कृपा की है —

"लकड़ी का कोयला एक अच्छा दंतमंजन है। उसमें मांजने का, दाग छुड़ाने का और दुर्गन्ध दूर करने का बहुत अच्छा गुण है। गाय के गोबर की राख इसलिए लाभ-कारी है कि उसमें बढ़िया क्षारतत्व रहता है। मेरा विश्वास है कि अगर कोयला और राख दोनों एकसाथ मिला दिये जायँ, तो एक बहुत बढ़िया दंतमंजन तैयार हो सकता है।"

'हरिजन' से] **मो० क० गांधी**

पेरियाकुलम के हरिजन

तामिलनाड में पेरियाकुलम् नामका एक खासा अच्छा म्युनिसिपल कस्बा है। आबादी लगभग २६००० के है। हरिजन करीब दो-तीन हजार हैं। भंगी तो हैं ही, उनके अलावा पल्लार, पारिया और चक्कलार लोग भी हैं, जो खेतों में मजूरी वगैरा का काम करते हैं। यहां के प्रमुख वकील श्रीसुंदरेश ऐयर और प्रसिद्ध जमींदार श्रीरामस्वामी चेट्टियर के तत्वावधान में हरिजन-सेवक-संघ दो-सवा दो वर्ष से यहां सेवा-कार्य कर रहा है। इन सज्जनों के अतिरिक्त हमारे दो सुयोग्य हरिजन-सेवक यहां के हरिजन-कार्य में अपना पूरा समय लगा रहे हैं।

संघ का कार्यारंभ एक दिवस-पाठशाला से हुआ था। पहले इस पाठशाला में ७० लड़के थे, और तीन अध्यापक, पर अब ५०

लड़के रह गये हैं । सबब यह है कि यहां एक दूसरा स्कूल ईसाई मिशन का खुल गया है । दो रात्रि-पाठशालाएँ भी शुरू की गई । संघ के कार्यकर्त्ता नित्य नियमपूर्वक बस्तियों में जाते, वहां सफाई करते और आरोग्य की बातें बताते । इस सब से वे हरिजनों के निकट-से-निकट परिचय में आये । थोड़े ही दिनों में हरिजन उनका इतना अधिक विश्वास करने लगे कि जब कार्यकर्ताओंने उनके आगे वक्तजरूरत के लिए पैसा बचाने का विचार रखा तो उन्होंने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया । पैसा जमा कराने में यों उन्हें कोई आनाकानी नहीं थी, तोभी कार्यकर्त्ताओं को नित्य घर-घर जाना पड़ता था और उनकी आमदनी की बचत जमा करानी पड़ती थी ।

हरेक को एक पासबुक दी जाती है, और उसमें उनकी २ पाई से लेकर ८ आने तक की प्रतिदिन की रकम चढ़ा दी जाती है । पेरियाकुलम् की को-आपरेटिव सोसाइटी के सेविंग्स बैंक के हिसाब में यह रुपया जमा कर दिया जाता है । जब जरूरत पड़ती है, खासकर जब कर्जा चुकाना होता है तब को-आपरेटिव सोसाइटी से रुपया निकालकर उन्हें दे दिया जाता है । आजकल करीब चार-पांच सौ हरिजनों का पैसा जमा है । एक समय तो करीब ५०००) उनका जमा था । मगर इधर सूखा पड़जाने के कारण सारे तालों का जल सूख गया, खेती करना भी दूभर हो गया तब उन्हें विवश होकर रुपया निकालना ही पड़ा । यह [illegible] रहा, तो भी २५००) तो उनका हमेशा ही जमा रहा ।

इसके बाद संघने सोचा कि बैंक में उनका जो रुपया जमा है उसका अच्छे-से-अच्छा क्या उपयोग हो सकता है । साहूकारों को अधिक-से-अधिक सूद तो ये गरीब हरिजन देते ही हैं, इसके अलावा एक मुसीबत और उनके सर थी, और वह यह कि दूकानदार खाने-पीने की चीजों के उनसे मुंह-मांगे दाम लेते हैं । इसलिए खाद्यवस्तुओं का एक ऐसा भंडार [illegible] खोल दिया गया, जहां से हरिजन सस्ते दामों पर खाने-पीने की चीजें खरीद सकें । संघने भंडार खोल दिया, जिसमें उसके करीब २००) लगे । यह खाद्यवस्तु भंडार एक कार्यकर्त्ता के जिम्मे कर दिया गया है---जिसे ७) मासिक वेतन मिलता है । और चार-चार रुपये तनख्वाह के दो हरिजन लड़के उसकी मदद के लिए रख दिये गये हैं ।

तमाम हरिजन इसी भंडार से सौदा खरीदते हैं । रोज की बिक्री का औसत १५) पड़ जाता है । बिक्री ज्यादातर नकद ही होती है । सुपारी, तमाखू और दूसरी चीजों के अलावा लगभग बीस प्रकार की खाद्यवस्तुएँ यहां रहती व बिकती हैं । रोकड़ बही, खाता और रोजमर्रा की खरीद फरोख्त की बही यहां बाकायदा रखी जाती है । उधार बिक्री भी होती है, पर औसतन ५) से अधिक की नहीं । उधार सिर्फ उन्हीं को दिया जाता है, जिनका सेविंग्स बैंक के खाते में रुपया जमा होता है ।

खाद्यवस्तु-भंडार की इस योजना से हरिजनों को जो लाभ होरहा है उसे वे अनुभव करने लगे हैं, और यह कहा जा सकता है कि प्रायः सभी हरिजन इस भंडार से ही चीज खरीदते हैं ।

हरिजन कार्यकर्त्ता अगर सचमुच हरिजनों की कुछ सेवा-सहायता करना चाहते हैं, और उन्हें साहूकारों तथा बनियों की लूट-खसोट से बचाना चाहते हैं तो उन्हें पेरियाकुलम् के इस सुंदर सेवा-कार्य के नमूने का अनुकरण करना चाहिए ।

अमृतलाल वि० ठक्कर

मेरी हरिजन-यात्रा

(१३)

१५ दिसंबर गांगोदर---कच्छ का रण पार करने के बाद (यह रण दिसंबर के अधबीच में सूख जाता है) कच्छ राज्य का पहला गांव गांगोदर आता है । हमें मालूम हुआ कि कि यहां के मेघवाल हरिजनों का गांव की अन्य आबादी के साथ कुछ झगड़ा चल रहा है । यहां की जमीन पथरीली होने के कारण ७० फुट की गहराई पर पानी निकलता है । इससे कुआ खुदवाने में पैसा बहुत ज्यादा लग जाता है । इस गांव के एकमात्र सार्वजनिक कुएं में पानी भरने का यहां के हरिजनों का सनातन अधिकार है । मगर गांव के शेष लोगोंने उन बेचारों का बहिष्कार कर दिया है, इससे रात को लुक-छिपकर चोरी से पानी भरते है । इसके अलावा गांव का जो राजमार्ग है उसपर इन गरीबों को चलने नहीं दिया जाता ।

लाकड़िया---इस गांव का जागीरदार हरिजन-कार्य में अच्छा योग देता है । हरिजन-बस्ती की सभा में उसने हमारे साथ आकर हरिजनों को शुद्ध सदाचारी जीवन के लाभ और मुर्दार मांस खाने की हानियां समझाईं । यहां के हरिजनों को पानी का भारी कसाला है, इसलिए जागीरदारने हमें एक कुआ बनवादेने का वचन दिया । हरिजनों के यहां करीब ८० घर हैं, इसलिए उनके बच्चों के लिए एक पाठशाला की खास जरूरत है ।

सामखियाली---यहां हमें मालूम हुआ कि पिछले सौ बरस से इस गांव के हरिजन और अन्य हिंदू एक ही कुएँ से पानी भरते चले आ रहे हैं । लेकिन गांव के लोगोंने इधर हरिजनों के लिए एक अलग कुआ बनवा दिया है और उनका सार्वजनिक कुएं से पानी भरना बंद कर दिया है । गांव के लोग अगर चौथाई खर्चा देना स्वीकार करलें तो यहां एक पाठशाला खोल दी जायगी यह वचन मैंने उन्हें दिया ।

भचौ---इस कस्बे में हरिजनों के ६० घर हैं । यहां हरिजनों के लिए कुएं की सख्त जरूरत थी, इसलिए एक कुआ खुदवा देने का वचन मैं दे आया था । वचनानुसार कुआ की खुदाई का काम शुरू भी हो गया है । यहां बहुत-से हरिजनोंने मुर्दार मांस न खाने की प्रतिज्ञा की । यहां एक पाठशाला की तो सख्त जरूरत है । अब कच्छ-हरिजन-सेवक-संघ की ओर से यह शीघ्र ही खोल दी जायगी ।

१६ दिसंबर---कुभारिया---यहां के कुछेक हरिजन खेती करते हैं । जमीन या तो वे अपनी खास जोतते हैं या पट्टे पर ली हुई । यहां संघ की शाखा स्थापित करदी गई है । संघने हरिजन-पाठशाला बनवाने के लिए राज्य में जमीन मांगी है । इस गांव को राज लोगों की बिलायत कह सकते हैं । देश के विभिन्न भागों में ये लोग बड़े-बड़े ठेके लेते हैं । ये सब स्वामी नारायण-पंथ के हैं । इनमें अधिकांश लोग सुधार-कार्य के विरोधी हैं । किंतु उनमें जो नवयुवक हैं उन्होंने अपना संघ बना लिया है । गांव की चौपाल में हमारी जो सभा हुई, उसमें सुधार-विरोधी लोगोंने बड़ी गड़बड़ाई मचाई ।

अंजार---कुछ दिनों से यहां की हरिजन-पाठशाला बड़ी अच्छी तरक्की कर रही है । इस पाठशाला के विद्यार्थियोंने सभा में सुन्दर सुमधुर गायन गाया । इस सभा में समीप के एक

गाव की हरिजन-पाठशाला के विद्यार्थी भी उपस्थित थे। सवर्ण हिंदू भी जलूस के साथ हरिजन-बस्ती में आये थे और वहा एक विराट् सभा हुई थी। यहां आस-पास के अनेक गावों के हरिजन इकट्ठे हुए थ। उनकी खास-खास तकलीफें और शिकायतें सुनी। इस कस्बे में एक सार्वजनिक सभा भी हुई, जिसमें काफी संख्या में लोग उपस्थित हुए थे। भंगी मुहल्ले में भी सभा की गई थी। उनकी स्त्रियोंने मद्यनिषेध में बहुत दिलचस्पी ली। कुछ पुरुषोंने शराब न पीने की प्रतिज्ञा की।

१७ से १९ दिसंबर—भुज—तीन दिन कच्छ की राजधानी भुज में व्यतीत किये, जिनमें एक दिन विश्राम का रखा था। दूसरे दिन मैं यहा से १२ मील दूर नकार गाव गया। भुज में मेघवाल तथा भंगियों की भिन्न-भिन्न आठ बस्तियों का निरीक्षण किया। स्थानीय संघ की ओर से यहां एक हरिजन-पाठशाला चल रही है। अध्यापक इसमें काठियावाड़ से बुलाकर रखा गया है। सवर्ण हिंदुओं की एक, और हरिजनों की चार इस तरह कुल पांच सभाएँ यहां की। एक सभा में हमें रामा नाम के एक हरिजन कवि की कच्छी भाषा की कविता सुनने को मिली, जिसमें जुए और शराब की बुराइयों का उसने बड़ा सुन्दर वर्णन किया था। यहा के एक विद्यार्थीने कराची के छात्रालय में अथवा किसी दूसरी जगह जाने की इच्छा प्रगट की, और तदनुसार वह कराची भेज दिया गया है। यहा कच्छ के भिन्न-भिन्न भागों के हरिजन-कार्यकर्ता इकट्ठे हुए थे। उन्होंने समस्त राज्य का एक संघ स्थापित करने का निर्णय किया। दीवानसाहब से भी मैं मिला और उनके आगे हरिजनों की पानी, शिक्षा तथा जमीन-सबंधी तकलीफें पेश की। मुख्यतया स्वामी शुकराजदास के सत् प्रयत्न से हरिजनों के लिए यहा एक छात्रालय-भवन बन रहा है।

नकार—स्वामी शुकराजदासजी यहा के हरिजन-कार्य में अपना सारा समय दे रहे हैं। उन्हें जमीन का एक खासा बड़ा 'प्लाट' मिल गया है, जिस पर वे हरिजन तथा सवर्ण बालकों के लिए एक पाठशाला और अन्य मकान बनवा रहे हैं। गाव के सब लोगोंने बिना किसी प्रकार के भेद-भाव के इस पाठशाला में अपने बालकों को पढ़ाना मंजूर कर लिया है। इस पाठशाला की आधार-शिला मेरे हाथ से रखवाई गई।

मेघवालों के अतर्गत चारणिया नाम की एक उपजाति है। ये लोग सुधरे हुए विचारों के हैं। इन्होंने मुर्दार मास का सर्वथा परित्याग कर दिया है। उनमें कुछ लोगोंने बढ़ई का, और कुछेक-ने दरजी का या ऐसा ही कोई दूसरा धंधा ले लिया है। ये लोग खूब साफ-सुथरे रहते हैं। जैसा कि उनके नाम से प्रगट होता है, ये लोग राजपूतों के कवि चारणों की जाति में से निकले हैं और दिनों के फेर से आज इस गिरी हुई दशा को प्राप्त हो गये हैं।

२० दिसंबर—मंजल, मंगवाणा, मुंद्रा—कच्छ में सड़कें बहुत ही कम हैं। परदेश में पर्यटक कच्छी लोग जब लक्ष्मी कमाकर उसे भोगने के लिए अपने देश में आते हैं तब उन्हें प्रायः अपने लिए सड़कें बनानी पड़ती हैं। माडवी बंदर पर तो रोशनी का खर्च भी कोई स्टीमर कपनी मुसाफिरों से बतौर टैक्स के वसूल करती है। पर यह तो मैं विषयातर कर रहा हूँ।

मंजल की हरिजन-बस्ती की सभा में मेघवाल लोगों के पीर या पुरोहित से हम लोग मिले। लोगों को मुर्दार मांस छोड़ देने की बात समझाने में उन्होंने हमें काफी मदद दी। हमारे साथ के फोटोग्राफरने उनकी सुदर पोशाक में उनकी तसवीर उतारी। स्थानीय सज्जनों की ओर से यहा जो हरिजन-पाठशाला चल रही है उसका भी निरीक्षण किया।

मंगवाणा—यहा की हरिजन-पाठशाला देखी। इस पाठ-शाला का खर्चा एक ट्रस्ट के फड से मिलता है।

मुंद्रा—यहा शाम को पहुँचा। तीन हरिजन-बस्तियों का देखा और सभा की। यहा बहुत-से आदमियोंने मुर्दार मास न खाने की प्रतिज्ञा की। मुंद्रा के बाजार में भी एक सार्वजनिक सभा हुई। यहा की दोनों हरिजन-पाठशालाओं का भी मैंने निरीक्षण किया।

२१ दिसंबर—विदड़ा और सुथरी—सारे दिन काम-ही-काम रहा। दोपहर होते-होते हमने पांच गावों को देख डाला। रास्ते में एक हरिजन-पाठशाला और एक औषधालय का भी निरीक्षण किया। इस औषधालय में हरिजनों के साथ बिना किसी भेदभाव के बर्ताव किया जाता है। विदड़ा की हरिजन-बस्ती तथा हरिजन-पाठशाला का भी निरीक्षण किया। करीब १८ मील का ऊबड़-खाबड़ रास्ता किसी तरह तय करके हमलोग सुथरी पहुँचे। यह बबई के सुप्रसिद्ध श्रीशूरजी वल्लभदास का गाव है। यहा वे अपने खर्च से एक हरिजन-पाठशाला चला रहे हैं। दूसरे दिन सबेरे हमने इस पाठशाला का निरीक्षण किया और हरिजन-बस्ती की सभा में भाषण दिया। इस सभा में करीब ३० आदमियोंने मुर्दार मास छोड़ देने की प्रतिज्ञा की।

२२ दिसंबर—माडवी—इस कस्बेने सन् १९२५ तक हरिजनों के प्रति उचित बर्ताव करने का भारी विरोध किया था। पर इधर दस साल में माडवी-निवासियों की मनोवृत्ति में आश्चर्य-जनक परिवर्तन हुआ है। हरिजनों और सवर्णों का जो संयुक्त जुलूस माडवी के मुख्य-मुख्य बाजारों से होकर निकला वह उस दिन का एक सफल कार्यक्रम कहा जा सकता है। शाम को एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसके अध्यक्ष एक प्रतिष्ठित भाटिया सज्जन थे। उनके प्रति जरा भी अनादर प्रदर्शित किये बिना यह कहा जा सकता है कि वे सनातनी थे। इस सभा में एक महिला कार्यकर्त्री भी बोली थीं। श्री गोकुलदास खीमजी नामक कच्छ के काफी प्रतिष्ठित एवं सच्ची लगन के हरिजन-कार्यकर्त्ता ५० बालकों का एक नि शुल्क हरिजन-छात्रालय चला रहे हैं। इस के लिए उन्होंने एक ट्रस्ट बना दिया है। अपने खर्च से दूसरी जगह भी यह तीन हरिजन-पाठशालाएँ चला रहे हैं। हरिजन-सेवा-कार्य में इनका काफी समय लग रहा है। इस सेवा-कार्य के पुरस्कारस्वरूप उनके सगे नातेदार और पुलिसवाले खुले आम उन्हें पीट भी चुके हैं। पर उन्होंने बिना किसी तरह की शिकायत किये इन सब अत्याचारों को सहर्ष सहन कर लिया। भंगी-मुहल्ला भी हम देखने गये थे। वहा जितने लोग मौजूद थे उन सबने, सिवा एक के, दारू न पीने की प्रतिज्ञा की। उनकी स्त्रियोंने उनके बीच सुखशांति स्थापित करने के अर्थ हमें आशीर्वाद दिया। फिर सलाया नामक मेघवाल लोगों की बस्ती देखी। यहा के तमाम मेघवाल बुनाई का धधा करते हैं। ये लोग सुदर कंबल और स्त्रियों की चोली का बढ़िया मजबूत लाल कपड़ा बुनते हैं। यहा की पाठशाला भी देखी। करीब २५ आदमियोंने मुर्दार मास न खाने की प्रतिज्ञा की।

रात को यहा पुन. कच्छ के सब हरिजन-कार्यकर्ता हमें विदा

करते आये। स्वामी प्रकाशजयरामजीने हरिजनो के लिए दस नये कुएं बनवादेने के निमित्त धन-संग्रह करने का वचन दिया।

इस तरह काठियावाड़ और कच्छ की हमारी ४० दिन की यह हरिजन-यात्रा समाप्त हुई। इस यात्रा में हमारे साथ श्री छगनलाल जोशी, और हरिजन-कार्य मे काफी दिलचस्पी लेनेवाले मेरे दो मित्र थे। इनमे एक तो बबई के शेयर दलाल है, और दूसरे एक नौजवान व्यापारी है। मांडवी से स्टीमर में बैठकर मै बबई आया और वहां से पूना, दाहोद होता हुआ दिल्ली।

अमृतलाल वि० ठक्कर

जयपुर की कला और उसके साधन

लोग कहते हैं कि जिस प्रकार खादी का नाम लेते ही चर्खे की याद आजाती है, उसी प्रकार जयपुर का नाम लेने पर वहां के विविध कला-कौशलो का दृश्य हमारी आंखों के सामने सजीव बनकर खड़ा हो जाता है। आज के इस गये-गुजरे जमाने में भी यदि हम जयपुर को कला का आगार कहें, तो कदाचित् अत्युक्ति न होगी। जयपुर के मकान कला के सुन्दर नमूने है। शहर की चौड़ी सड़कें और [illegible] हाट और बाजार भी यह स्मरण जयपुर के निर्माता की कलाप्रियता का स्मरण कराते है। जयपुर का अजायबघर तो कलापूर्ण वस्तुओं का एक जीवित प्रदर्शन ही है। और जयपुर की भूमि भी कलात्मक वस्तुओं के [illegible] सामग्री की खानों से जहां तहां सर्वत्र भरी पड़ी है। कहीं देवता के लिए मकराना या सोपस्टोन की अद्भुत खान है, तो कहीं कओलीन की खदानें है। जयपुर की संगमरमर और इमारतों का लाल पत्थर तो मशहूर ही है। राज्य में अभ्रक की खान भी यहां है।

मकराना का सोपस्टोन एक प्रकार का सफेद और मुलायम पत्थर होता है। पहले लोग इसे घर में चक्की में पीस लेते थे और इसके पाउडर का व्यापार करते थे। इधर कुछ समय से दौसा में इसे पीसने की एक फैक्टरी खुल गई है। इस पत्थर के भिन्न भिन्न कोई सौ उपयोग हैं। यह विदेश में भी खूब जाता है। फेस पाउडर, टाल्कम-पौडर और दन्तमंजन में यह बहुत खर्च होता है। इसमें मिट्टी का तेल मिलाकर मलने से चांदी के बरतन भी खूब साफ हो जाते है। अंग्रेज लोग अपने नृत्य भवन की फर्श के लिए इसका उपयोग करते हैं।

जयपुर की खानों में मिलनेवाली 'कओलीन' चीनी मिट्टी की टक्कर के बढ़िया बर्तन बनाने के काम आती है, और जयपुर के कला-भवन में इस मिट्टी के प्याले, रकाबी, गुलदस्ते, वगैरा चीजें बनती भी है। पर आज इनकी खपत जयपुर के विदेशी यात्रियों तक ही परिमित है। यदि इस उद्योग को बड़े पैमाने पर चलाया जाय तो इससे सारे देश की एक बड़ी आवश्यकता पूरी हो सकती है, और चीनी बरतनों के पीछे हमारा लाखो रुपया प्रति वर्ष बाहर जाने से बच सकता है।

जयपुर राज्य में 'जेडस्टोन' भी मिलता है। यह पत्थर असाधारण रूप से मजबूत होता है और माधोपुर में इसकी अच्छी खरलें बनती है। इन खरलों में मोती और लाल पीसे जा सकते है।

जयपुर की खास दस्तकारी यानी पीतल का काम मुरादाबाद से अच्छा बताया जाता है और पीतल पर एम्बॉसिंग वगैरा सभी तरह का बढ़िया काम होता है।

जयपुर में बननेवाली संगमरमर की मूर्तियां तो गजब की होती है, और दुनियाभर में मशहूर है।

जयपुर राज्य के सवाई माधोपुर और मालपुरा स्थानों में लकड़ी पर लाख की कारीगरी बहुत अच्छी होती है, और यह चीज दूर-दूरतक जाती है।

यहां का पेपरमशी का उद्योग एक अनोखा और भलीभांति विकसित उद्योग है। रद्दी कागज को गलाकर यहां उसके तरह-तरह के खिलौने और मनष्याकृतियों के हूबहू नमूने बनाये जाते है। जयपुर के अजायबघर में ऐसे सैकड़ो चेहरे और खिलौने प्रदर्शित किये गये है और वे बड़े भावपूर्ण है।

जयपुर राज्य के मालपुरा गांव में ऊनी नमदे भी अच्छे बनते है। नमदों के अखण्ड कोट, हैट और बरसाती बनानेवाले कुछ कारीगर भी राज्य में मौजूद है। मालपुरा में ऊंटों और घोड़ों की जीन बढ़िया बनती है।

जोबनेर और सागानेर में कपड़े पर छपाई का काम बहुत ही बढ़िया होता है। जोबनेर के चाकू, छुरी, कैंची और ताले भी मशहूर है।

जयपुर में हाथीदांत और खासकर लकड़ी पर नक्काशी का काम भी अच्छा होता है। औरतें सुई से सोजनी का काम भी काफी अच्छा करती है।

जयपुर की जेल में ऊनी गलीचे अच्छे बनते है। शहर में भी इनके ७-८ कारखाने चल रहे है। हमने जयपुर में श्री केसरलाल-जी वकील दिग्गीवाला की गणेश कार्पेट फैक्टरी देखी थी। फैक्टरी में काम ठेके से होता है। १० ठेकेदार ५० मजदूरों के साथ काम करते है। सारे कारखाने से कोई २५० स्त्री-पुरुषों का पालन-पोषण हो रहा है। एक बाने के सूत को छोड़कर कारखाने मे लगनेवाला सारा माल प्रायः शुद्ध देशी ही बरता जाता है। अगर कारखानेवाले सूत भी हाथकता ही लगावें तो यह सारा उद्योग शुद्ध स्वदेशी उद्योग बन सकता है।

जयपुर के इन गृह-उद्योगों की तलाश में घूमते हुए हमें यह अनुभव हुआ कि अगर इन गृह-उद्योगों की पूरी छान-बीन कराई जाय और इनकी वर्तमान स्थिति का निकट से गहरा अध्ययन किया जाय तो वह परिश्रम व्यर्थ न जायगा, और जिस महाभाग को यह पुण्यकार्य करने का सौभाग्य प्राप्त होगा, वह अपने जीवन में नयापन, नवीन स्फूर्ति और नित-नये उल्लास का अनुभव कर कृतार्थ हो सकेगा। और इस के लिए वैसे न तो विशेष धन की आवश्यकता है, न विशेष मेहनत या दौड़धूप की ही जरूरत है। अगर हम में थोड़ी कल्पना हो और अपने फुरसत के समय का सदुपयोग करलेने की तत्परता हो तो घर बैठे भी हम अपने गांव के अनेक अर्धविकसित और उपेक्षित गृहउद्योगों का अध्ययन करके उनकी स्थिति का विश्लेषण कर सकते हैं, और उनको बढ़ाने और जिलाने में भी एक हदतक सहायक हो सकते है। और, जहां चाह है, वहां राह तो निकल ही आती है।

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, २४ मई, १९३५. [संख्या १४

विषय-सूची

वह मुसल्मान संत

बेंच पर चारखाने की एक फटी-सी तौलिया बिछाकर उस दमे की बीमारी से पीड़ित अधेड़ने नमाज पढ़ी, और फिर बड़ी करुणा-भरी धुनि से रामायण की चौपाइयां गाने लगा। खासा रामायणी व्यास की तरह अर्थ भी कहता जाता था। कभी 'या इलाही', कभी 'अय राम' उसकी दर्दभरी आवाज से निकल रहा था। जब उसने प्रभाती की धुनि में 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' मीरा का यह पद गाया, तो वह गद्गद हो उठा। फिर पागलों की तरह बकझक करने लगा। हमारे साथ के पेसेंजरों की यह हालत थी, कि कुछ तो उसकी ओर आश्चर्यचकित दृष्टि से देख रहे थे, और कुछ जोर से हँस रहे थे। बंबई-एक्सप्रेस छोटी-मोटी स्टेशनों को छोड़ती हुई बेतहाशा भागती चली जा रही थी, और वह मस्तमौला अपने कुमार्गी मन को सैकड़ों गालियां सुनाये जा रहा था, 'साला धोखेबाज कहीं का! खुदी के जहर का घड़ा लेकर मिलने चला है उस मोहिनी सूरत के सनम से, मीरा के उस गिरधर गोपाल से! शर्म भी नहीं आती तुझ शैतान को!'

पौ फट रही थी, फिर भी अंधेरा-सा था। दतिया का स्टेशन आ गया था। यह भाई भजन में अब भी मस्त था। मन हुआ कि क्यों न उससे कुछ बात की जाय। मैं उसके पास वहीं बेंचपर बैठ गया। टीन का टोंटीदार लोटा, रामायण का फटा-पुराना गुटका, एक लकड़ी और कंबल, बस यही उसका सारा सामान था। दस मिनिट भाई मुनौअरखां (यही उसका नाम था) से मेरी जो बात हुई उसका संक्षिप्त सार यह है :—

"मालिक का गुनहगार हूँ जनम-जनम का। रामजी के रहम का आसरा है। वह रहीम है, तारनहार है। बुंदेलखंड का एक गरीब मुसलमान हूँ। एक रियासत में ६) गुजरबसर के लिए मिलते हैं। घर मे गऊमाता पाल रखी है। मैं उसकी सेवा करता हूँ और आपके बालगोपाल दूध पीते हैं। गोश्त से दिली नफरत है। सूखी-रूखी रोटी खाकर तो इस शैतान शोहदे मन का यह हाल है, पुलाव-कबाब मिले तो न जाने क्या करे! चाकरी से जो समय बचता है उसे खुदा की याद में लगाने का जतन करता रहता हूँ। तिवारी दद्दा से रामायण का अर्थ पूछ लिया करता हूँ। उन्हें मैं अपने बाप की तरह मानता हूँ। भैयाजी, मैं हिंदू और मुसल्मान में भेद नहीं करता। यह सारा पसारा राम रहीम का ही तो नूर है। प्रेम ही यहां सार है, और सब असार है।"

उस मुसल्मान संत का दर्शन करके मैंने अपने को कृतार्थ माना। बरबस उस मस्त औलिया से बिदा लेनी पड़ी, क्योंकि झांसी का स्टेशन आ गया था।

यह सच्ची कहानी गत ९ फरवरी की है।

वि० ह०

अच्छी शुरूआत

प्रतापगढ़ से श्री प्यारचन्द लिखते हैं —

"इसी मास में पाठशालाओं का आरंभ होने से विद्यार्थियों की उपस्थिति अभी कम ही है। सूरजपोल बाहर मेहतरों की दैनिक पाठशाला (नं० २) तो १० दिनतक खुली रही। पर एक मेहतर स्त्री के मर जाने से १२ दिन पाठशाला बन्द रही। अब तक पाठशाला खुले में एक चबूतरे पर लगती है। आशा है, अब शीघ्र ही छप्पर डाल दिया जायगा।

धमोतर दर्वाजे की पाठशाला भी एक चबूतरे पर लगती थी, पर कुछ ही दिनों के बाद लोगोंने एक मकान खाली कर दिया। वह रहने के योग्य नहीं था। अब विद्यार्थियों से लिपवाकर ठीक करवा लिया है। यह मकान हरिजनों के बीच में है।

हरिजनों में पढ़ने की रुचि जरूर है, पर साथ ही वे शौकीन भी खूब हैं। चाय पीना, पान खाना और अंग्रेजीबाल रखाना हर एक के लिए मानो आवश्यक-सा है, भले ही कपड़े पहनने को न मिलें। मुर्दार मांस तो नहीं खाते, पर शराब पीने और जूठन खाने का रिवाज है। समझाने-बुझाने से शराब छोड़ने की कोशिश तो कर रहे हैं, मगर जूठन छोड़ने में वे अभी असमर्थता दिखा रहे हैं।

पहले इन लोगों के मुहल्लों में बहुत गंदगी रहती थी। जबसे पाठशाला खुली है तब से कुछ सफाई रखने लगे हैं।

पहले वे सूअर बहुत मारा करते थे, पर अब वह बन्द-सा है। ऐसी आशा की जाती है कि कुछ ही दिनों में सूअर-वध की यह जघन्य प्रथा दूर हो जायगी। इनके मुहल्लों में सूअर ही अधिक गंदगी फैलाते हैं।

एक दिन खास तौर पर मैं इनके मकानों का निरीक्षण करने गया। भीतर घुसकर अच्छी तरह से देखे तो, हैं तो कच्चे, किन्तु प्रायः वे सुन्दर और स्वच्छ दिखाई दिये। जमीन पर एक भी चीज

झिलमिले पड़ी हुई नजर नहीं आई। दीवारों पर लकड़ी की टांडे बनाकर, उन पर सब वस्तुएँ बड़े अच्छे ढंग से पंक्तियों में जमाई हुई थीं। मैंने तो ऐसी सुरुचि शायद ही किसी सवर्ण घर में देखी होगी।

मगर हृदय पर चोट पहुँचानेवाली भी एक बात नजर आई। एक मकान बाहर से तो इतना साफ था कि आपको ढूढने पर भी उसमें कहीं कचरा न मिलेगा, पर जब मैं एक छोटी-सी खिड़की में से उस कुटिया में गया तो वहां देखा, कि दाल, सेव, लड्डू और सूखी रोटियों पर हजारों मक्खियां और मच्छर भिन-भिना रहे हैं। यह सब खाने के लिए था। समझाने-बुझाने से दूसरे दिन वह सब सड़ा खाना जानवरों को खिला दिया गया।

मेहतर करीब-करीब सभी कर्जदार हैं। आर्थिक अवस्था ठीक नहीं है। रात्रि-पाठशाला गालियों के महल्ले में छै-सात रोज से खोल रखी है। छात्रसंख्या ५-६ है। एक-दो दिन से कुछ मुसलमान बनकर भी रात को पढ़ने आते हैं।

मैंने यहां की परिस्थिति के कारण अभीतक हरिजनों या सवर्णों में ज्यादा प्रवेश नहीं किया है। परिस्थिति अब उतनी जटिल नहीं है। पहले पड़ोसी और दूसरे लोग मेहतरों को पढ़ाने और छूने से मुझ पर नाराज थे, पर अब वे समझते और सहन करते जारहे हैं।

मेहतरों को छोड़कर दूसरे सब हरिजन हरएक बावड़ी या कुएं से पानी भर सकते हैं। मेहतरों का जल का कष्ट अवश्य है। ये लोग बेरियां खोद-खोदकर पानी लाते हैं। गरमी के दिनों में स्नान करने और पीने के पानी की तकलीफ होती है।

मन्दिरों में भंगी और मेहतर नहीं जा सकते। दूसरे सब हरिजन जा सकते हैं।"

लगभग एक मास के इस कार्य को अच्छी शुरुआत कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है। जहां सेवाभाव, एकनिष्ठा और कहने की अपेक्षा करने की धुन अधिक हो, वहां थोड़े-से समय में ही कितना काम हो सकता है, यह इससे अनुमान किया जा सकता है।

रामनारायण चौधरी

टिप्पणियाँ

अक्षम्य उपेक्षा

हमारे देश की कुछेक म्युनिसिपालिटियोंने आम मशुरिना के बिलकुल पास मेहतरों के मकान बना रखे हैं, इस बात को हम लोग अच्छी तरह जानते हैं। यह कितनी बुरी बात है। कोई कारण नहीं कि इन गरीबों को नरक-कुंड के पास अपनी सारी जिन्दगी काटनी पड़े। मगर मुजफ्फरपुर की म्युनिसिपैलिटी की लापरवाही का तो कोई पार ही नहीं। वह तो इस पापपूर्ण उपेक्षा की दौड़ में सब से बाजी मार ले जाती है। सरैयागंज की बस्ती की बात है। वहां मेहतरों के ग्यारह मकान हैं। वहीं पर वर्पालिस बनी हुई है— और वर्पालिस ही नहीं, मैला ढोने की चार गाड़ियां भी हमेशा वहीं खड़ी रहती हैं, कभी खाली, कभी भरी हुई। इतना ही नहीं, अभी और सुनिए— उसी जगह ठीक बीच में एक कत्लगाह बना हुआ है, जो बाजार और बिलकुल खुला हुआ है। करीब ६० बकरे नित्य सबेरे यहां कटते हैं।

क्या कोई सार्वजनिक संस्था निर्दयता में इससे भी आगे जा सकती है? किसे पड़ी है जो इन अत्यन्त दलित मेहतरों के करुण क्रन्दन पर कान दे?

अमृतलाल वि० ठक्कर

अमरूद के बीज

कर्नल शमशेरसिंहने अमरूद के बीज के विषय में मेरे पास यह नोट भेजा है:—

"अमरूद और उसके बीज के विषय में इधर कुछ दिनों से मैं काफी परिश्रम के साथ खोजबीन कर रहा था। मैं इतना मालूम कर सका हूँ कि अमरूद के बीयों को लोग प्रायः बिना चबाये ही निगल जाते हैं, जिसका शायद रेचक प्रभाव पड़ता है। कुछेक देशी वैद्य-हकीमोंने मुझे यह बतलाया कि इन बीजों में भी पौष्टिक तत्त्व होते हैं।

इसलिए मेरे एक कलकत्ते के मित्रने जब यह प्रामाणिक नोट मेरे पास भेजा तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई:—

'बंगाल केमीकल एण्ड फर्मास्युटिकल वर्क्स, लि० के डॉ०बी० सी०गुहने हाल में यह बतलाया है कि अमरूद में विटामिन 'बी' काफी मात्रा में रहता है। उसके बीयों में ये निम्नलिखित तत्त्व हैं:—

प्रोटीन	१५.२५%	चर्बी	१४.३%
स्टार्च	१३.२५%	शकर	०.१%

इस विश्लेषण से यह प्रगट होता है कि बीयों में खासी अच्छी पोषण-शक्ति है; इसलिए बीज को भी फल की ही तरह खूब चबाकर खाना चाहिए। अगर अच्छी तरह चबाकर बीयों को न खाया, तो वे सिर्फ रेचन का ही काम देंगे। अमरूद कितना पौष्टिक होता है, इस पर कोई खोज हुई ही नहीं।"

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

नारंगी का छिलका

एक सज्जन लिखते हैं:—

'नारंगी के छिलके को हम योंही फेंक देते हैं। मेरी यह सलाह है कि उसे खूब सुखा लेना चाहिए और बजाय मिट्टी के तेल के, आग सुलगाने में उस सूखे हुए छिलके से काम लेना चाहिए। नारंगी के सूखे हुए छिलके से आग बड़ी अच्छी तरह सुलग सकती है।"

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

छिलके के उपयोग

नीबू, नारंगी आदि फलों के छिलके सिर्फ आग सुलगाने का ही काम नहीं देते, बल्कि इनसे भी अधिक अच्छा उपयोग उनका हो सकता है। नीबू, नारंगी, मोसंबी, जबूरी आदि सभी फलों के छिलके मीठी महक और आकर्षक रंग के होते हैं। इन छिलकों में एक खास तरह का तेल रहता है, जिससे फलों पर घातक बीमारियां असर नहीं कर सकतीं। इतनी अच्छी चीज का आज कुछ भी उपयोग नहीं हो रहा है, उसे हम यों ही फेंक देते हैं। इन फलों के छिलकों के निम्नलिखित उपयोग हो सकते हैं:—

(१) सुगंधित तेल-फुलेल: छिलके के टुकड़े धूप में—या यह और भी अच्छा होगा कि कुछ समयतक छांह में, सुखाकर सिर में लगाने के सुगंधित तेलों में उनका उपयोग किया जाय। बनाने की विधि काफी सस्ती और सरल है। नारियल के तेल में छिलके के टुकड़ों को रख दे, और जब उनकी सारी महक और रंग तेल में उतर आय तब उन्हें निकाल ले, बस, खुशबूदार सुंदर तेल तैयार हो जायगा।

(२) अचार-मुरब्बा: छिलके के टुकड़ों या फांकों का अचार और मुरब्बा भी बन सकता है।

(३) विविध : (क) सूखे-सुखाये टुकड़े या मोटा पिसा हुआ बुरादा झींगुर आदि कीड़े-मकोड़ों के हटाने के काम में आता है; (ख) इन छिलकों को बतौर धूप के आग में जलाने से एक खासी अच्छी सुगंध वायुमंडल में भर जाती है (ग) इन छिलकों को गाड़ देने से एक अच्छा प्राणप्रद खाद तैयार हो सकता है।

'हरिजन' से] डो० जे०

त्यागा सो त्यागा

कलकत्ते की हरिजन-उत्थान-समिति के परमोत्साही कार्यकर्त्ता बाबा नृसिंहदासजी लिखते हैं :—

"एण्टाली की हरिजन-बस्ती से मेरा सदा से ही सहज प्रेम है। यहां के हरिजनों की मैंने यत्किंचित् सेवा की है और भगवत्कथा भी यदाकदा कहा करता था। एक दिन यहां एक ऐसे हरिजन से साबिका पड़ा, जो पक्का शराबी था। पहले तो मैं नहीं समझ सका, पर जब उसकी बकझक बंद न हुई, तब एक भाईने धीरे से मेरे कान में कहा कि 'क्यों आप इस दारूखार के मुंह लगते हैं? आज तो यह खूब पीकर आया है।' मैं हंस पड़ा। पर उसे छोड़ा नहीं। अब उसे मैं शराब की बुराइयां समझाने लगा। उस पर तो नहीं, पर जो दूसरे लोग वहां खड़े थे उन पर मेरी बातों का कुछ असर पड़ा ऐसा मुझे लगा। जब मौका मिलता तब मैं उस शराबी भाई को बड़े प्रेम से समझाता और उसे पश्चात्ताप भी होता था। अब मैं बस्ती में ही रहने लगा।

एक दिन उस बज्र शराबीने यह भीषण प्रतिज्ञा कर डाली कि 'आज से शराब का पीना तो दूर उसे छूऊँगा भी नहीं।' और सचमुच वह अपनी बात का धनी निकला। बिना गंगास्नान किये और राम का नाम लिये वह भोजन नहीं करता। कुछ लोग हृदय से और कुछ व्यंग से उसे 'भगतजी' कहने लगे।

उसके सत्संग का प्रभाव घरवालों तथा कुछ दूसरे लोगों पर भी पड़े बिना नहीं रहा।

अब उसके घरवालों की अग्नि-परीक्षा के दिन आते हैं। उसके घर पर हमने 'रामजप यज्ञ' किया और 'यज्ञ-समाप्ति' के बाद ही वह भाई इस संसार से चल बसा। बस्ती के दकियानूसी लोगों को हँसने का मौका मिल गया। कहने लगे, 'दारू छोड़ने और भगत बनने का देखा, यह फल मिला!' पर उस घर के लोग तो दृढ़ निश्चयी थे। उन्होंने मृतकभोज के अवसर पर ताड़ी की जगह बिरादरीवालों को शर्बत पिलाया। मांस भी नहीं आने दिया।

कुछ दिनों के बाद घर का एकमात्र नौ जवान लड़का यकायक पागल हो गया। बिरादरी के पंचों को और भी ताना कसने का मौका मिल गया। बोले 'अभी हुआ क्या है? यह घर देखते-देखते धूल में मिल जायगा। यह देवता का कोप है, देवता का। बिना सूअर की बलि और ताड़ी की बोतल लिये देवता पिंड छोड़ने का नहीं।' पर उस घर के मनुष्य तो अपने वचन के पक्के थे। सत्य के पथ से एक पग भी पीछे न हटे। पंचों को यह वीरोचित जवाब दिया, 'भले ही हमारे घर का सर्वनाश हो जाय, पर न तो हम शराब छू सकते हैं, और न किसी देवी-देवता के नाम पर जीव-हत्या ही कर सकते हैं। जो त्यागा सो त्यागा। बिरादरी को जो करना हो करले। हम अपने वचन से पीछे हटनेवाले नहीं।' मैंने मन में कहा, गजब की दृढ़ता है इन हरिजन भाइयों की।"

यह सब हरिजन-सेवकों के सतत संपर्क का ही परिणाम है। कोरे उपदेशों-द्वारा नहीं, किन्तु उनके हृदय में सेवा-मार्ग के जरिये पैठने से ही ऐसे शुभ परिणामों की आशा रखी जा सकती है। और बाबा नृसिंहदासने यही तो किया। सत्य के पथ पर आरूढ़ उनका स्नेह-भाजन यह हरिजन कुटुम्ब सतत वन्दनीय है।

वि० ह०

विवाह में मद्य-मांस का क्या काम?

हरसूद (मध्यप्रांत) के हरिजन-सेवक-संघ के मंत्री श्री दत्तात्रेय पुरंदरे लिखते हैं :—

"खंडवा के श्री छोटू मेहतर के दो पुत्रों का विवाह हाल ही में हरसूद के श्रीमुन्नीलाल जमादार की कन्याओं के साथ हुआ है। विवाह में हरसूद के कई प्रतिष्ठित सवर्ण हिंदू सम्मिलित हुए थे। भाई मुन्नीलालने मद्य और मांस को शादी में कतई नहीं आने दिया। बोले- 'इस मांगलिक अवसर पर मद्य-मांस का काम ही क्या?' मुन्नीलालजी के इस दृढ़ निश्चय से प्रभावित होकर उस दिन कई लोगोंने शराब न पीने की शपथ ली। हां, विवाह में कुल स्वदेशी वस्त्र ही काम में लाये गये।"

श्री मुन्नीलाल को हम उनके इस शुभ संकल्प पर हृदय से बधाई देते हैं। मद्य-मांस को अग्राह्य करार देकर उन्होंने अस्पृश्यता को सचमुच एक करारा धक्का दिया है। हमारे हरिजन भाइयों को इस धर्मकार्य का अधिक-से-अधिक अनुकरण करना चाहिए।

वि० ह०

'जवाहर-ग्रामउद्योग-भंडार'

इलाहाबाद के श्रीयुक्त पं० श्यामसुंदर शुक्ल सूचित करते हैं :—

"गत २१ मई को इलाहाबाद में हीविट रोड पर श्रीमती उमा नेहरूने 'जवाहर-ग्रामउद्योग-भंडार' का उद्घाटन किया। इस अवसर पर गांधीजी का आशीर्वादात्मक संदेश पढ़कर सुनाया गया। उद्घाटन के बाद उपस्थित सज्जनों को 'गुड़' बांटा गया। इस भंडार में ग्रामों में तैयार की हुई चीज़ें ही रखी जायँगी।"

प्रत्येक नगर में यदि ऐसे ग्रामउद्योग-भंडार खुल जायं, तो नगरनिवासियों को कम-से-कम आहार की स्वच्छ, शुद्ध तथा पौष्टिक चीजें तो मिलने लगें, साथ ही ग्रामों के साथ उनका थोड़ा-बहुत संबंध भी जुड़ जाय। आज तो यह हालत है कि इन शहरों में हाथ की चक्की का आटा और पॉलिश-रहित चावल भी नहीं मिलता। आशा है कि इलाहाबाद का यह शुभ उद्योग संयुक्त प्रांत के अन्य नगरों में संक्रामक साबित होगा। वि० ह०

बिना पॉलिश का पूर्ण चावल

४ मई के 'हरिजन' में पॉलिशरहित पूर्ण चावल के विषय की विज्ञप्ति पढ़कर सेठ शूरजी वल्लभदास लिखते हैं कि -)॥। की २ पाउण्ड की थैली के भावसे निम्नलिखित स्थानों पर बिना पॉलिश का पूर्ण चावल मिल सकता है :—

(१) शूरजी वल्लभदास स्वदेशी बाजार, २२०– २३० प्रबंरी बाजार, बंबई

(२) क० श्रीनिवासन, बी० पी० टी० चाल, किंग्स सर्कल, माटुंगा (जी० आई० पी०)

(३) ग्रामउद्योग-मंदिर, स्वदेशी मार्केट, कालबादेवी रोड, बंबई २

(४) प्रतापसिंह त्रिकमदास, पनवेल (जि० कोलाबा)

चंद्रशंकर

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २४ मई, १९३५

हरिजनों की शिक्षा

माध्यमिक और कालेज की शिक्षा से प्राथमिक शिक्षा का प्रश्न अनेक दृष्टियों से कहीं अधिक कठिन है। और हरिजनों की शिक्षा तो सब से कठिन है। भले ही वह कच्ची हो पर कुछ-न-कुछ संस्कृति तो हरिजनेतर बालक को घर पर मिलती ही है। ऐसी संस्कृति हरिजन बालक को बिल्कुल ही नहीं मिलती, कारण कि समाज के साथ उसका संपर्क नहीं रहता। इसलिए जब तमाम प्राथमिक पाठशालाएँ हरिजन बालकों के लिए खुल जायँगी--जल्दी से या देरी से उन्हें खुलना तो है ही, और मेरी राय मे देरी से नहीं, बल्कि जल्दी ही खुल जानी चाहिए—तब भी, यदि हरिजन बालकों को पिछड़ी हुई दशा में नहीं रखना है तो उनके लिए प्राथमिक पाठशालाओं की आवश्यकता तो पड़ेगी ही। यह प्रारम्भिक शिक्षा-प्रणाली किस प्रकार की होनी चाहिए इसका शोध किया जा सकता है, और हरिजन-सेवक-संघों की ओर से समस्त भारतवर्ष में जो सैकड़ों हरिजन-पाठशालाएँ चल रही हैं उनमें उस प्रणाली का परीक्षण भी हो सकता है। हरिजन बालकों की इस प्रारम्भिक शिक्षा में शिष्टाचार, सुन्दर वाणी और सद्व्यवहार का अवश्य समावेश होना चाहिए। हरिजन बालक आज चाहे जिस तरह बैठता है चाहे जैसे कपड़ा पहनता है, और उसकी आँखों में, कानों में, दांतों में और नाखूनों में अकसर मैल भरा रहता है। बहुतेरों को तो यह भी पता नहीं कि नहाना-धोना किसे कहते हैं। मुझे सन् १९१५ की यह बात आज भी याद है कि जब मैं ट्राकीबार (तामिलनाड) से एक हरिजन लड़के को कोचरब के आश्रम में लाया था। सबसे पहले मैंने उसका मुंडन कराया, फिर अच्छी तरह नहलाया और पहनने को उसे खादी, साफ धोती, कुरता और टोपी दी। चन्द मिनटों में ही वह मैला-कुचैला लड़का ऐसा दीखने लगा था कि सरकारी घर के किसी भी बालक से वह जरा भी भिन्न मालूम नहीं पड़ता था। उसका माथा, आँखें, कान, नाक सब अच्छी तरह साफ कर दिये गये थे। उसके नाखूनों में मैल-ही-मैल भरा हुआ था। उन्हें मैंने कटवाकर साफ कराया। उसके पैर, जिन पर धूल की तह जम गई थी, खूब रगड़-रगड़कर साफ कराये गये। जरूरत पड़े तो पाठशालाओं मे आनेवाले हरिजन बालकों के तमाम शरीर की सफाई नित्य इसी तरह करनी चाहिए। तीन महीनेतक तो उन्हें स्वच्छता की ही शिक्षा देनी चाहिए। उन्हें ठीक तरह से खाना खाने की भी तालीम देनी चाहिए, हालांकि यह वाक्य लिखते हुए मुझे उड़ीसा की पैदल यात्रा का एक दृश्य याद आ रहा है। उस यात्रा में कुछेक स्थानों पर हरिजन बालकों और वयस्कों को भोजन कराया गया था; उन्होंने औरों की अपेक्षा अधिक स्वच्छता से खाया था। दूसरे लोग उँगलियां सानने-सूनने मे खराब कर लेते थे, और जूठन जहां-तहां छोड़कर जीमने की जगह गंदी करके उठते थे। हरिजन अपनी पत्तल या थाली में कुछ भी नहीं छोड़ते थे, उसे बिल्कुल साफ कर देते थे। भोजन करते समय हर कौर में वे अपनी उँगलियों को चाटकर साफ कर लेते थे। यह मैं जानता हूँ कि मैंने जिनका यह वर्णन किया है उनकी जैसी स्वच्छता में सब हरिजन बालक नहीं लाते।

अगर इस प्रारंभिक शिक्षा का आयोजन समस्त हरिजन पाठशालाओं में करना है, तो अध्यापकों के लिए उनकी भाषा में विस्तृत आदेशों की पत्रिकाएँ तैयार करके बँटवानी चाहिए। साथ ही, पाठशालाओं के इन्स्पेक्टरों को यह आदेश दे दिया जाय कि वे पाठशालाओं का मुआइना करते समय अध्यापकों तथा विद्यार्थियों की इस विषय में परीक्षा लिया करें और इस दिशा में जो प्रगति हो उसकी पूरी-पूरी रिपोर्ट भेज दिया करें।

नये अध्यापकों की नियुक्ति तथा वर्तमान अध्यापकों की शिक्षापद्धति पर ध्यान रखने से ही यह कार्यक्रम सफल हो सकेगा। मगर संघ को यदि उन हजारों हरिजन बालकों के प्रति अपना फर्ज अदा करना है, जिनकी सार-संभाल का दायित्व उसने ले रखा है, तो उसे इस सब पर ध्यान देना ही होगा।

'हरिजन' से] **मो० क० गांधी**

एक ग्रामसेवक की डायरी से

श्रीयुत जी० एस० मदने नामके एक महाराष्ट्र कार्यकर्त्ताने राष्ट्रीय सप्ताह में किये हुए अपने काम की एक लम्बी रिपोर्ट भेजी है। उनकी उस मराठी रिपोर्ट का सारांश मैं नीचे देता हूँ —

"६ एप्रिल—आज मैं वणी गांव गया। यह गांव धूलिया से आठेक मील के फासले पर है। मैंने वहां देखा कि आठ महीने पहिले वहां की जो शर्मनाक हालत थी अब भी वह वैसी ही है। वही कचरा, वही गन्दगी, वही मलमूत्र! गांव के गेवड़े को तो लोगोंने जैसे नरककुण्ड बना रक्खा था। जहां देखो तहां मैला-ही-मैला। पुरुष, स्त्रियां और बच्चे चाहे जहां टट्टी फिरने बैठ जाते थे, और स्कूल की यह दशा थी कि एक गटर का पानी उसके चारों तरफ बह रहा था, जिससे गिलाव (कीचड़) की गंदली गड़ैया बनगई थी। गांव की एक आम जगह पर महीनों से कूड़े, कचरे और मैले के घूरे लगे हुए थे। आठ महीने पहिले जब मैं यहां आया था तब मैंने लोगों का ध्यान इस तमाम गंदगी की तरफ आकर्षित किया था। मैंने उनसे पूछा कि आप लोगोंने मुझे जो वचन दिया था उसका आखिर क्या हुआ? उनके पास सिवा चुप रहने के जवाब था ही क्या। मैंने उनसे कहा 'कि चलो, लाओ मुझे टोकरी, झाड़ू और एक फावड़ा देदो।' उन्होंने कहा कि, 'हमें अभी इस सब काम की फुरसत नहीं है।' तब मैं पुलिस के पटेल के पास गया। उसने कहा, 'आप चावड़ी पर चलिए, मैं सब जरूरी सामान लेकर वहीं आता हूं।' मैं खड़ा-खड़ा राह देखता रहा, पर पटेलने सूरत भी नहीं दिखाई। तब मैंने गांव के महार का पता लगाकर उससे कहा कि 'चलो भाई, तुम्हीं इस गंदगी को साफ करने में मुझे मदद दो।' वह बोला, 'आप क्यों परेशान होते हैं? यह सब हमारे ऊपर छोड़ दीजिए न, हम कर लेंगे। लोगों का मैला उठाने की यह सनक आपके सिर पर आखिर कहां से सवार हुई?'

लाचार होकर मैंने कपास की कुछ सूखी डंठलें इकट्ठी कीं और उनकी एक कामचलाऊ झाड़ू बनाली। पुलिस के पटेल के मकान के पास जो गन्दी नाली थी वहीं से मैंने सफाई का काम शुरू किया। पटेल मकान से बाहर निकल आया और बोला, 'महाराज, मत लजाइए मुझे, मैं खुद ही इसे साफ कर दूंगा।' 'तो फिर आओ न? लेलो एक फावड़ा और ढोल और करो मेरी मदद। आओ, जल्दी करो।' वह फावड़ा, ढोल वगैरह उठा लाया और योंही मेरी ऊपर-ऊपर से दिखाऊ मदद करने लगा। मैंने उसे सफाई का तरीका बतलाया और कहा, 'भाई साहब, यों नहीं, सफाई यों की

जाती है, जिस तरह कि मैं कर रहा हूँ।' गंदला कीचड उठाने मे उसे शर्म मालूम हुई। मैंने कहा, 'यह काम तो बिना किये होने का नही, काम खतम होने पर तुम साबुन से अपने हाथ साफ कर सकते हो।' ज्यों-त्यों करके वह नाली साफ तो हुई। अब मैं गंवडे की ओर जाने को तैयार हुआ। मेरे साथ तमाशबीनों की खासी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। 'इस गन्दे काम में क्यो आप हाथ लगाते है' उन लोगोने झिझकते हुए मुझे रोका। "जगह-जगह यही हालत है, यहातक कि आपके धूलिया शहर की भी। तब फिर आप यही क्यो हलाकान हो रहे हैं? अबतक जो हुआ सो हुआ, अब लोग शौचक्रिया करने खेतो मे ही जाया करेंगे। कृपाकर आप जाइए, अब आपको यहा गन्दगी नही मिलेगी।" मगर मैं कोरी बातो मे आनेवाला तो था नही। मैंने कहा, "मैं तो निश्चय करके आया हूँ और इस गन्दगी को साफ करके ही रहूँगा। आपके इस जबानी उपदेश का मेरे ऊपर कुछ असर पड़ने का नही। आपमे से अगर कुछ बड़े आदमी इस पवित्र कार्य मे मुझ ब्राह्मण की मदद करे तो आपके इस कोरे उपदेश से उसका अधिक असर पड़ेगा।" लेकिन कौन सुनता था मेरी इस दलील को? सब भुस का कूटना हुआ। मैंने खुद ही रद्दी टोकरिया और इधर-उधर पड़े हुए टीन के टुकड़े उठाकर वहा काम करना शुरू कर दिया। करीब तीन घंटे मुझे सफाई करने मे लगे। लोग खड़े-खड़े देखते थे और यह देखकर शर्मिन्दा होते थे कि मै उनके मलमूत्र को उठा रहा हूं। मगर मेरी मदद करने को तैयार नहीं थे। हाथ लगाना तो दूर, अपनी चीजे भी मुझे नहीं दी।

७ एप्रिल—आज मैने बरखेडी गाव का काम हाथ मे लिया। धूलिया से यह गाव तीन मील है। यहा भी वही सब दृश्य देखने मे आया—वही कचरा, वही कीचड, वही मलमूत्र और लोगों की वही टालटूल। पर उन्होंने यह कहा कि हम गांव के महार से सफाई करा देंगे। महार बुलाया गया और उससे कहा गया कि वह मेरी देखरेख मे सफाई का काम करे। उसने कहा कि मै सड़कों की सफाई तो कर दूगा, पर मैं यह मैला उठाने का नही। हाथ तो क्या अपनी झाड़ भी इसमें नही लगाऊँगा, हां, सड़कें झाड़-बुहार कर साफ किये देता हूँ। वह अपनी झाड़ू लेने गया तो फिर वापस आया ही नही। कबतक खड़ा-खड़ा राह देखता? मैं खुद उसके घर गया और सफाई का सरजाम इकट्ठा करके काम शुरू कर दिया। करीब २½ घटा मैंने खूब लगकर काम किया, पर इतना ही काफी नहीं था। न तो पुलिस के पटेलने ही वहां आने की कृपा की और न महारने ही।

८ एप्रिल—वही गाव। आज यहा डिप्टी कलक्टर की अवाई थी, इसलिए गाव के तमाम अफसर वहा हाजिर थे। जिस-जिस सड़क से कलक्टर साहिब की मोटर निकलनी थी उनकी खूब सफाई करदी गई। गढ्ढों को उसी वक्त या तो मिट्टी से पूरदिया या उनपर तख्ते पाट दिये। मगर जिस जगह की मैंने कल सफाई की थी उसकी हालत तो वैसी ही थी। डिप्टी कलक्टर को वहा तो आना नहीं था। जहा-जहां कलक्टर साहिब के चरण नही पड़ने थे उन सब जगहों की यही दशा थी। मैंने गाव के पटेल और तलाटी से मदद मागी। उन्होंने मेरे साथ जाने के लिए आज महारों को हुक्म दे दिया। पहिले तो उन्होंने आनाकानी की, पर अन्त में उस तमाम कचरे के हटाने मे, जिसका ढेर मैंने कल लगा दिया था, मुझे मदद दी और उसे मिट्टी से पूर-पार दिया।

९ एप्रिल—बडजाई गाव, धूलिया से करीब तीन मील। गाव के कोई मुखिया नहीं मिले, इसलिए मैं सीधा हरिजन-बस्ती मे गया। उनके झोपडो के पास जो गन्दी गढैय्या और मोरियां थी उन्हे साफ करने लगा। वे लोग मुझे मदद देने के लिए बाहर निकल आये, पर मैला हटाने के लिए तैयार नही हुए। एक भाई किसी तरह हिम्मत बाधकर मेरे साथ काम करने को तैयार हुआ। उसकी देखादेखी तब तीन-चार आदमी और खुशी से हमारे साथ काम करने लगे, जिसका यह नतीजा हुआ कि उनकी सारी बस्ती बिलकुल साफ होगई।

१० एप्रिल—वही गाव। आज मैंने दूसरे मुहल्लो को लिया। एक महार स्त्रीने मुझे अपनी टोकरी देदी, और वही मैने एक कामचलाऊ झाडू बनाली। मै एक ऐसी गली से गुजरा, जिसे जनाना बपूलिस ही कहना चाहिए। यह गली मैले से पूरी पटी थी। तिल रखने को भी कही जगह नही थी। मै तो वह दुर्गन्ध बर्दाश्त नही कर सका, तो भी मुझे मालूम हुआ कि इसी जगह स्त्रिया नित्य शौचक्रिया करती हैं! पर काम तो करना ही था। मैने पूरी हिम्मत के साथ काम आरम्भ कर दिया। एक युवक, जो दूर पर खडा-खडा मुझे देख रहा था, हिकारत के साथ चिल्लाकर बोला, "अरे, तुम अपने को ब्राह्मण कह रहे हो? भगी का काम करने म तुम्हे कुछ शर्म भी नही आती। तुम ब्राह्मण नही, भगी हो भगी।" मैने कहा, 'मुझे खुशी है कि तुम मुझे भगी समझ रहे हो और भगी कहते हो। मै इसमे जरा भी बुरा मानने का नही, मैं तो इसमे उलटा प्रसन्न हूगा। मगर मैं तुमसे यह कहूँगा कि यह काम जितना मेरा है तुम्हारा भी उतना ही है; और मै आशा करता हूँ कि तुम इसे आज नहीं तो कल अवश्य करोगे। वह इसका बगैर कुछ उत्तर दिये चला गया।

११ एप्रिल—फिर वही गाव। आज पटेल मुझसे मिलने आया और तुरन्त सफाई का सब सामान उसने मुझे दे दिया। कुछ समयतक सफाई का काम करके आज मैने यह तय किया कि लोगो से मिलकर उन्हे उनका कर्तव्य सुझाया जाय। इसलिए मै हरएक के घर गया और उनसे कहा, कि तुम लोग और नही तो कम-से-कम इतना काम तो कर ही सकते हो। मन्दिर के इर्द-गिर्द की जगह भी नहीं बचने पाई थी, वह भी गन्दी कर दी गई थी। मैंने उनसे कहा, कि कितनी शर्म की बात है कि आज लोगोने देवालय तक के आसपास की जगह नही छोडी! इसके बाद फिर हरिजन-बस्ती की तरफ मुडा। गाव मे तो लोग मेरे साथ काफी सख्या मे थे, जब कि मै उन्हे सफाई की बात समझा रहा था। पर जब मै हरिजन-बस्ती की ओर मुडा तो उन्होंने कहा कि इस रास्ते से नहीं, आप इस रास्ते स चलिए। हरिजन-बस्ती मे जाने की उनकी हिम्मत नही पड़ी और मुझे छोड़कर वे सब चल दिये। यहा के ये 'स्पृश्य' लोग अस्पृश्य हरिजनों के मुहल्ले मे आजतक कभी गये ही नही थे!

१२ एप्रिल—आज मुकटी गाव गया। यहा मुझे 'उद्योग-मन्दिर' के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होना था।

१३ एप्रिल—फिर वही बडजाई गाव। आज एक महा-दुर्गन्धपूर्ण नाली को हाथ मे लिया, और उसे साफ करना शुरू किया। पास के एक मकान मे रहनेवाली स्त्रीने मुझे मेरे काम मे मदद दी, पर यह बात ठीक-ठीक उसकी समझ मे नहीं आई कि मैं क्यों उसके गाव मे इतनी ज्यादा दिलचस्पी ले रहा हूँ। जो स्त्रिया

वहा जमा हो गई थी उन्हे मैने सारी बात अच्छी तरह समझाई और इस काम का महत्त्व बतलाया। मैंने उनसे कहा कि गलियो मे न बैठकर कृपया आप खेतो मे जाया करें और मैले को मिट्टी से पूर दिया करे, साथ ही अपने घरवालो को भी समझा दे कि वे भी अपनी शौचक्रिया के लिए कोई एक जगह नियत करले, यो चाहे जहा बैठ जाना ठीक नही। इस पर एक स्त्रीने कहा, 'हमारे आदमी हमारी बात भला क्यों सुनने चले। वे हमारी रत्तीभर भी पर्वा नहीं करते। हा, हम जरूर खेतो म जायँगी। हम अपनी ही बात कह सकती है। दूसरो के बारे मे हम कुछ नही कह सकती।' सबसे पहले यही मैने सहानुभूति का भाव देखा। मेरी बात इन्ही बहनोंने दिल से सुनी। मुझे आज यहा सचमुच बडी खुशी हुई।"

श्रीयुत मदने अपनी डायरी समाप्त करते हुए कहते है कि "कांग्रेस-द्वारा निर्धारित शारीरिक श्रम का अपना दो महीने का काम मैने इस तरह पूरा किया है।" श्री मदनेने यह बडा अच्छा किया जो अपने लिए इस प्रकार का शारीरिक श्रम चुना। क्या अच्छा हो कि हम सभी इसी काम को उठाले। पर इस इतने बडे कठिनकार्य को देखते हुए महीने मे आठ घंटेका समय बहुत ही कम है। अगर इस चीज को पूरे उद्योग के साथ हाथ मे लेना है, और उसका कोई परिणाम हासिल करना है तो राष्ट्र के प्रत्येक सच्चे कार्यकर्त्ता को खास अपने यहा अथवा अपने पडोस मे इस स्वच्छता-यज्ञ के लिए नित्य प्रति कम-से-कम एक घंटे का समय तो देना ही चाहिए। सैकडो बर्षतक हमने इस काम को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है, और यह कहकर सदा अपनी झूठी चातुकारी की है कि हम इससे कहीं अधिक महत्त्व के काम कर रहे है। इस कार्य की यह कठिनाई ही प्रगट करती है कि इससे अधिक महत्त्व का कोई और काम है ही नही, और इसे अगर हमने हल कर लिया तो हमारे बहुत-से आवश्यक प्रश्न आप ही हल हो जायगे।

अँग्रेजी से] **महादेव ह० देसाई**

विलेपार्ले की प्रदर्शिनी

हाल मे जिला-कान्फ्रेन्स के साथ विलेपार्ले मे जो खादी तथा ग्रामउद्योगो की प्रदर्शिनी हुई थी, वह इंदौर की ग्राम उद्योग-प्रदर्शिनी की तरह कोई विशाल आयोजन की चीज नही थी। दुकाने कुलजमा तीस थी। एक विभाग केवल कला का था और दूसरे मे दस्तकारी की चीजे थी। एरियल्स आर्ट स्कूल की श्रीमती वकीलने इन दोनो विभागो की रचना की थी। इनमे आठ दुकाने तो केवल खादी की ही थी, जिनमे कई प्रामाणिक कपड़ा की किस्म-किस्म की खादी रखी गई थी। हथकते हथबुने कपडे का निर्माण ही भारतीय गृहउद्योग का मूलाधार है इसलिए स्वदेशी प्रदर्शिनी में खादी को सर्वोच्च महत्व देना उचित ही है। एक दुकान को केवल स्त्रिया ही चला रही थी, और एक दूसरी दुकान मे स्त्रियो-द्वारा सचालित 'कस्तूरबा-सेवाश्रम' की बनी हुई चीजे रखी थी। यह आश्रम सूरत के पास मारोली मे है। दस्तकारी के विभाग मे महिलाओ की पोशाक के अनेक बेल-बूटेदार सुदर नमूने रखे गये थे, जो सब महिलाओ के ही काढे हुए थे। इधर हाल मे पश्चिमी भारत मे जितनी प्रदर्शनिया हुई हैं उन सब मे विलेपार्ले की प्रदर्शिनी मे यह खास बात देखने मे आई कि हथकते हथबुने कपडे की तरफ शहर की स्त्रियों की मनोवृत्ति में आज काफी परिवर्तन हो गया है।

अन्य ग्रामोद्योगो, खासकर ग्रामउद्योग-संघ जिन्हे लोकप्रिय बनाना चाहता है, उन उद्योगों की चीजें—जैसे, हथकुटा बिना पॉलिश का चावल, हाथ की चक्की का पिसा गेहूँ आदि का आटा, जँतरिया (छोटी चक्की) की दली हुई दालें, और घानी का तेल—ये सब चीजे भी प्रदर्शिनी मे बिक रही थीं। गाव का बना गुड तो दिखाई नही दिया, पर उसकी जगह गांव की बनी दो ऐसी चीजें वहा देखने मे आईं, जिन्हे तरक्की देने का निर्णय ग्राम-उद्योग-संघ कर चुका है। एक तो गाव के बने जूते थे, और दूसरा हाथ का बना कागज। चमडा मौत से मरे हुए ढोरो का था और वह गावो म ही पकाया-कमाया गया था। कागज बनाने की विधि का प्रदर्शन तो बडा ही रोचक था। रद्दी चीजो, रस्सियो के टुकडो और खादी के चिथडो से कागज बना रहे थे। हौजो और खानो मे वही कागज का माबा बनाया जा रहा था, और बडी होशियारी से उसके ताव-के-ताव उतारे जा रहे थे। दर्शक बडे ध्यान से कागज बनाने के इस प्रदर्शन को देखते थे। इसी तरह चूडी बनाने-वाले के इर्द-गिर्द भी खासी भीड लगी रहती थी। उसे जिस किस्म की चूडिया बनाने को कहा जाता उसी किस्म की चूडिया वह काच की टूटी-फूटी किरचो को गलाकर ढाल देता था। इस प्रदर्शन-विभाग पर घानी और करघेने तो मानो कलसा रख दिया था।

ग्राम-उद्योग-संघ-द्वारा प्रमाणित ठूरजी वल्लभदास मार्केट की दूकान एक छोटे-से सुन्दर झोपडे मे लगाई गई थी। इस दूकान मे बालना और मिट्टी के घडो मे अनेक प्रकार की चीजे रखी हुई थी। इस दूकान की फर्श और दीवारो पर ग्रामउद्योग सम्बन्धी जहा कुछ चित्र और नकशे लगे हुए थे, वहा गाधीजी के एतद्विषयक लेखों के उद्धरण भी थे। बिहार के भूकम्प-कष्ट-निवारण तथा ग्रामउद्योगो के पुनरुज्जीवन के पोस्टर खास तौर पर इस प्रदर्शिनी के लिए तैयार कराये गये थे। ये पोस्टर तो दर्शको की दृष्टि को बरबस खींच लेते थे। यह बहुत अच्छा होता, अगर प्रमाणिक आकडो के कुछ और भी नकशे वहा टाग दिये जाते।

'हरिजन' से] **वैकुंठ लल्लूभाई मेहता**

राजस्थान का ऊनी उद्योग

खादी और चमड़े के बाद ऊन का उद्योग ही राजस्थान का सब से बडा सहायक धधा है। इसे प्राय हरिजन ही करते है। इस बार भाई शोभालालजी गुप्त, सयुक्त मत्री, राजपूताना हरिजन-सेवक-सघ, पश्चिमी राजपूताने के निरीक्षण के सिलसिले मे बीकानेर और जोधपुर राज्यो के अनेक स्थानो पर जो कुछ देखा, सुना, या जाना उसका वर्णन पाठको को रुचिकर हुए बिना नही रहेगा। वे लिखते हैं:—

"बीकानेर खास और उसके आसपास के गावो मे ऊन का उद्योग खूब चल रहा है। अकेले बीकानेर में ही ३–४ हजार ऊन की कतवारिया होंगी। ऊन के बुनने का काम मेघवाल जाति के हरिजनो के हाथ में है। मेघवाल ढेड भी कहलाते हैं। ये लोग अधिकतर कम्बल बुनते हैं। बीकानेरी कम्बल बहुत प्रसिद्ध होते हैं और बिकने के लिए दूर-दूरतक जाते है। कुछ अर्से से हाथकती ऊन के स्थान पर थोडी फेंच ऊन भी काम मे आने लगी है; इस क्षेत्र से कच्ची ऊन विदेशो को भी काफी भेजी जाती है। यही ऊन धुली, रंगी और बढिया कती हुई वापस इस देश में आती है।

अनेक व्यापारी ऊन के धन्धे में मालामाल, लखपति तक हो गये है। खेमराज मानमल नाम की एक फर्मने ऊनी कम्बलों के

व्यवसाय में पिछले ८–१० वर्षों में लाखों रुपया कमाया है। चर्खा-संघ के खादी-भण्डारने गत वर्ष २० हजार रुपये का ऊनी माल बेचा।

आजकल ऊन १) रु० की सर-सवा सेर तक मिल जाती है। ऊन इतनी बारीक भी कतती है कि रुपये की दो छटांक तक बिकती है। वैसे आम तौर पर ८, १० और १२ छटांक तक रुपये की कती हुई ऊन मिलती है। जो लोग बारीक ऊन के कम्बल बुनते हैं, उन्हें काफी लाभ हो जाता है। मोटी ऊन बुननेवाले विशेष नहीं कमा पाते। प्राय छै गज लबे और ५०" से ५६" अर्ज के कम्बल बुने जाते है। जैसा माल होता है उसके अनुसार ४) से लगाकर १०), २०), और २५) रुपये तक कीमत के कम्बल तयार होते है। औसतन प्रत्येक बुनकर को ।।) दैनिक मजदूरी पड़ जाती है। इतनी कम मजदूरी का कारण यह है कि बीचवाले काफी मुनाफा उठाते है। व्यापारी एक कम्बल पर दो-दो तीन-तीन रुपया मुनाफा आसानी से कमा लेते है। कम्बल प्राय १।।–२ सेर वजनवाले होते है। उनको सफेद निकालने मे बुनकरों को बहुत परिश्रम करना पड़ता है। बहुत कूटने पर ही ऊन सफेद निकलती है।

भेडों पर से उतारने के बाद ऊन इस तरह तयार की जाती है कि पहले उस बास की बल्लियों से खूब फटकारा जाता है ताकि उसका सब मैल और कचरा अलग हो जाय। भेड के बच्चो की ऊन बहुत मुलायम होती है। इस ऊन की बहुत अच्छी चीजे तयार हो सकती है। किंतु लोग अज्ञानवश इस ऊन को अलग नही रखते और सब तरह की ऊन में मिला देते है। कचरा अलग कर देने के बाद हाथ से ऊन के तार अलग-अलग किये जाते है। यही ऊन कातने के लिए कतवारिया खरीदती है। कती हुई ऊन सूत की भाति ही कर्घ पर बुनी जाती है। उस पर बाजरी के आटे का पानी लगाया जाता है। बुनने के बाद कम्बलो का सफेद निकालने के लिए पानी में भिगोकर खूब कूटते है और गंधक की धूनी लगाते है। एक बुनकर को औसतन प्रति कम्बल २) रु० मिलता है। इस दो रुपये म स्त्री-पुरुष की दो दिन की मजदूरी शामिल होती है। कम्बलो को बेचने में उसका एक-दो दिन लग जाता है। कती हुई ऊन खरीदने के लिए उसे बनिये से पैसा कर्ज लेना पड़ता है। बेचते समय व्यापारी के यहा धक्के खाता फिरना है। अतः कभी-कभी ऐसा भी होता है कि ऊन के दाम भी वसूल नहीं होते और उसे उलटा घाटा उठाना पड़ता है। कुछ बुनकर सम्पन्न भी होते हैं। नापासर म एक बुनकर है, जो ६० हजार का आसामी बताया जाता है।

मारवाड़ में मेड़ता सिटी और बीकानेर में देशनाक, नापासर भीनासर, उदासर, रड़मलसर आदि गाव उनके खास केन्द्र है। ऊनकी रंगाई का काम अगर शुरू हो जाय तो कम्बलो के अलावा कोटिंग आदि के लिए भी विविध प्रकार का ऊनी माल तयार हो सकता है। धुलाई की क्रिया में ऐसी युक्ति निकाली जा सकती है, जिससे कम परिश्रम पड़े। ऊन के उद्योग म सुधार की काफी गुंजायश है। खेद की बात है कि यह उद्योग बीकानेर राज्य का प्रमुख उद्योग होते हुए भी राज्य की ओर से उसे कोई सरक्षण या प्रोत्साहन नही मिल रहा है। सुना है कि राजमहलो मे एक बार ऊनी कम्बलों की मांग हुई थी, किन्तु जब बीकानेर मे कती ऊन के कम्बल उपस्थित किये गये, तो यह कहकर लौटा दिये गये कि 'ऐसे देशी कम्बल नहीं चाहिए, फ्रेंच ऊन के कम्बल लाओ!' कुछ भी हो, इन राज्यो को यह सुंदर उद्योग अवश्य अपनाना चाहिए।"

यह आवश्यक है कि राजस्थान के शासक और सेवक सभी ऊन के महत्वपूर्ण उद्योग की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दे। हम हरिजन-सेवकों का कर्तव्य तो स्पष्ट ही है।

रामनारायण चौधरी

सबलगढ़ के खण्डहरों में

राजस्थान-चर्खा-संघ के उत्पत्ति-केन्द्रो में सबलगढ़ का केन्द्र बिलकुल नया होते हुए भी अपने ढंग का एक निराला क्षेत्र है, और उसका भविष्य बहुत उज्ज्वल मालूम होता है।

उस दिन मेरठ से दिल्ली होते हुए रात को १२ बजे हम ग्वालियर पहुँचे। रातभर वहा ठहरकर सुबह सबलगढ़ के लिए रवाना हो गये। मोटर की सवारी थी, ६७ मील का रास्ता था। हमने सोचा था कि २।।–३ घण्टे में सबलगढ़ पहुँच जायँगे। पर 'अपन मन कछु और है, कर्ता के कछु और!' रास्ते मे हमारी मोटर फेल हो गई और एक दुर्घटना होते-होते बच गई। दो-ढाई घण्टे हमारे इसी में चले गये। करीब ११।। बजे हम सबलगढ़ पहुँचे।

सबलगढ़ महीन कताई का केन्द्र है। राजस्थान के केन्द्रों में सबलगढ़ से ज्यादा महीन सूत और कहीं नही कतता। कत्तिने २० से लेकर २५ नम्बरतक का सूत कात लेती है। चर्खे उनके पुराने ढंग के, सस्ते और हलके होते हैं। अधिकतर कत्तिने मुसलमान है। कुछ हिन्दू बहने भी कातती है। हिन्दू कत्तिने 'पलाण' वाले तकुए पर कातती है, और मुसलमान कत्तिने नंगे तकुए पर। इसी कारण हिन्दू कत्तिनों का सूत उनकी मुसलमान बहनों के मुकाबिले मे कुछ कमजोर होता है और कम कतता है।

सबलगढ़ की रुई साधारणत अच्छी ही कही जा सकती है। उसका रेशा मुलायम और लम्बाई में औसत दर्जे का होता है। खास सबलगढ़ के सिवा कत्तिने मुरैना और करौली का कपास भी बरतती है। धुनिया, जिसे यहा 'कँडेरा' कहते हैं, बाजार से रुपये की ५ रतल रुई खरीदकर उसे धुनता है और कत्तिना को रुपये की ३ रतल पूनी देता है। यदि धुनिया और भी अधिक होशियारी से धुने और अच्छी पूनी बनाकर दे, तो यहा काफी महीन, मजबूत और सुन्दर सूत कत सकता है। सबलगढ़ का कँडेरा अपनी रुई लिपी-पुती नंगी फर्श पर ही धुनता है— वह धुनते समय चटाई का उपयोग नहीं करता। हमने कँडेरा, कत्तिनों और कार्यकर्ताओं का ध्यान इस ओर खींचा और उन्होंने हमें विश्वास दिलाया कि वे इस दिशा म पूरा प्रयत्न करेंगे।

सबलगढ़ का खादी-भण्डार ग्वालियर के भण्डार की शाखा है। अभी कोई ५-७ महीनों से यहा उत्पत्ति का काम कुछ व्यवस्थित रूप से होने लगा है। इस थोड़े अर्से मे भी जैसी सुन्दर खादी यहा बन सकी है, उसे देखते हुए इस केन्द्र की क्षमता बहुत अधिक मालूम होती है। राज्य के अधिकारियों और कार्यकर्त्ताओं के दिल में भी इस केन्द्र के प्रति ममता और आकर्षण है, यह जानकर हमें आनन्द ही हुआ। सबलगढ़ के आसपास शापुर वगैरा गावों में भी अभीतक चर्खे जीवित हैं और इस क्षेत्र में खादी की सत्वर और सहज उन्नति की आशा दिला रहे हैं।

इस केन्द्र मे लम्बे अर्ज की अच्छी महीन खादी बनने लगी है, जो यहा मलमल कहलाती है। महीन पोत की धोतियां और साडियां भी बनती हैं। थोडा कोटिंग-शटिंग भी तैयार होता है। गांववालो के लिए शहर की खादी के मुकाबले मे यह खादी सस्ती भी पड़ती है। धुलाई मे ब्लीचिंग पाउडर का तनिक भी उपयोग नही किया जाता। गोबर, सोडा और चूने की सहायता से सन्तोषजनक धुलाई हो जाती है। धुलने पर खादी बर्फ-सी सफेद तो नही होती, पर काफी सफेद हो जाती है, और ब्लीचिंग पाउडर मे धुली हुई खादी की तुलना में मजबूत और टिकाऊ भी अधिक होती है।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि सबलगढ की खादी सब तरह अच्छी है और उसमे उन्नति या सुधार की कोई गुंजाइश ही नही है। अब तो खादी की उत्पत्ति का दृष्टि-कोण ही बदल गया है। अबतक हम गावो मे शहरो के लिए खादी बनाते थे। अब गावों में गांववालो के लिए ही बनानी है और उन्हीं को पहनानी है। इस दृष्टि से तो सबलगढ मे श्रीगणेश ही अब होगा।

कार्यकर्त्ताआन खादी-कार्य के इस नये दृष्टि-कोण को अब समझा है और समझ करके गांववालो की आवश्यकता का वे अध्ययन करने लगे है। आशा है कि कुछ ही महीनो मे सबलगढ के स्त्री-पुरुषो के लिए तरह-तरह की अच्छी मजबूत खादी तैयार होने लगेगी और वह शीघ्र ही लोकप्रिय भी हो सकेगी।

यहा हमने एक अनुकूलता और भी देखी। दूसरे उत्पत्ति-केन्द्रो में कातनो को खादी पहनने के लिए समझाना कठिन सिद्ध हुआ है, और जुलाहा, धुनिया, धोबी वगैराने भी कई जगह केवल अनुशासन के कारण खादी पहनना शुरू किया है। सबलगढ मे परिस्थिति इतनी प्रतिकूल नही है। यदि थोड़ी अनुकूलता मिल जाय तो कातिन खुशी-खुशी खादी पहनने को तैयार हैं। उनमे कुशलता है, चितलता है, काम करने की तत्परता है, और हर तरह अपने उद्योग को जीवित रखने और उन्नत बनाने की उत्सुकता है। चर्खेने उन्हे जो सहारा दिया है, उसमे उनके जीवन मे नई आशा और कर्मण्यता का सचार हो रहा है, और वे भिखारी कर-करके कहती है कि 'महाराज! हमको रोटी मिलनी चाहिए। 'कजक' हमारा बना रहना चाहिए। खाने को रोटी और पहनने को कपड़ा हमें मिलना चाहिए। आप जो कहेगे हम वही करगी।'

जब उन्हे तग तकुए पर मजबूत सूत कातने और खादी ही पहनने को कहा गया तो वे तत्काल बोल उठी—"अच्छा महाराज! हम बिन्ते ही कात उठगे। हमे पक्का तकुआ मिल जाय तो बड़ी मेहर हो। हम खुद खादी ही पहनेगी, और अपने बाल-बच्चो को भी पहनावेगी—पर हमे काम बराबर मिलना चाहिए महाराज!"

एक नौजवान मुसलमान बहनने कहा—"जी, मै तो कती सूत ही कातती हूँ। मुझसे कमजोर काता ही नहीं जाता। कती सूत ही अच्छा होता है। और तुम्हारा कपड़ा जो तुम लोगोने बनाया है, वह तो खूब पसन्द आता है और सस्ता भी है। मै तो अब सब कपड़े उसी के पहनूगी, जी!"

इसी बस्ती मे हमने एक अस्सी बरस की बूढ़ी कातिन को देखा, जो अपनी बहू-बेटियो के साथ आगन मे बैठी प्रेम से चर्खे पर सूत कात रही थी। उसे ग्वालियर राज्य की एक प्रदर्शिनी में अच्छा सूत कातने के लिए खादी की एक ओढ़नी इनाम में मिली थी। उसकी बहू को भी वैसी ही एक सफेद साड़ी इनाम मे मिली थी। दोनो उसे ओढ-पहनकर धूप मे बैठी कात रही थी।

गढ की नई बस्ती मे घूमने के बाद हम ऊपर गढ पर गये और उसके खंडहरो मे बसनेवाली कुछ मुसलमान कातिनों से मिले। जाते ही एक घर में एक ७५ वर्ष की बूढ़ी कातिन को देखा। वह बैठी सूत कात रही थी। जब हमने उससे पूछा कि 'अम्मा, तुम खादी क्यो नही पहनती हो? तुम्ही अपनी खादी न पहनोगी तो भला लोग तुम्हारा सूत क्यो खरीदेगे?' तो झट से अपनी धुधली आखें हमारी ओर उठाकर बड़े करुणस्वर मे वह बोल उठी—"ना भैया, ऐसा न करना। सूत तो हमारा बराबर खरीदते रहना भैया! मैं अब तुम्हारा ही कपड़ा पहना करूँगी। महीने छ महीने की उमर और होगी बेटा! नेक निबाह लोगे तो बेटा गुन मानूंगी। यह चर्खा है, तो जिन्दगी कुछ कट जाती है, नहीं तो भैया, जीने में अब कोई सार नही है।"

एक और अधबूढ़ी बहनने, जिसके मैके मे अब कोई नहीं रहा, और जो बैठी अपने चर्खे पर सूत कात रही थी, इसी सिलसिले मे अपनी निराशा व्यक्त करते हुए जब यह कहा कि "भैया, अब मेरा है ही कौन? ऊपर आसमान है, और नीचे धरती!" तो सुननेवालो का कलेजा उमड पड़ा और आखें डबडबा आई।

वह हाट का दिन था। गढ को जाते हुए रास्ते मे हमने सबलगढ के हाट की भी सैर की। हाट मे ज्यादातर दुकानें चमडे और जूतियों की थी। कुछ जुलाहे मोटे हाथकते सूत की शुद्ध खादी भी बुनकर लाये थे। उन्होंने १२ गजी थान का मोल १॥) बताया। इन थानो को देखकर हमें खादी के भविष्य के सम्बन्ध मे और भी आशा बंधी। खादी-प्रचार की अनुकूलता का यह एक और प्रमाण हमें मिला। इस हाट मे हमने एक किसानी जूता भी १॥) मे खरीदा। इधर के किसान मोटे तलुओं के काफी वजनदार जूते पहनते है, जो उनके पास साल-सवासाल चल जाते हैं।

सबलगढ मे लकडी पर लाखका काम भी बढ़िया होता है। इस काम के कोई ८-९ कारीगर गाव मे हैं, जो लकड़ी के सुन्दर खिलौने, इत्रदान, कमल, शतरंज के मोहरे वगैरा बनाने मे निपुण हैं। बाजार मे इनकी माग भी खूब रहती है।

यहा कुछ दिनों से चर्खा-संघ के कार्यकर्त्ताओ के प्रयत्न से एक हरिजन-पाठशाला भी चल रही है। पाठशाला मे करीब १८ हरिजन छात्र पढ़ते है। सभी छात्र जाति के मेहतर हैं और कुछ छात्र तो बड़ी उम्र के भी है। सबलगढ के लिए यह हरिजन-पाठशाला एक नई चीज है, फिर भी लोगो का इसके साथ सहयोग देखकर खुशी होती है। यदि छात्रो को पढाई के साथ उद्योग और सफाई की तालीम भी दी जाय तो बड़ा लाभ हो।

खादी-भण्डार ग्वालियर के व्यवस्थापक श्री० महाजनी, बामा के श्री० ओमदत्तजी और सबलगढ के श्री० नारायणदत्तजी बड़ी लगन के साथ यहा के कार्य को आगे बढाने में लगे हैं। ईश्वर करे, उन्हे अपने इस प्रयत्न में पूरी सफलता मिले और उनके हाथों ग्वालियर राज्य के इस प्रदेश मे दिन-दिन खादी का विकास और व्यापक प्रचार हो।

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

एक लाख रुपया चाहिए

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य २॥)
एक प्रति का -)

भाग ३]

दिल्ली, शुक्रवार, ३१ मई, १९३५.

[संख्या १५

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

सफाई का काम

गत सप्ताह मुझे एक काम से बाहर जाना पड़ा था, इसलिए यह पत्र आज पंद्रह दिन बाद लिख रहा हूं। पर सिंदी गांव में हमारा जो सफाई का काम चल रहा है उसकी खबरें तो मुझे वहां भी बराबर मिलती रहती थीं। इस गांव में सफाई का काम शुरू किये आज करीब तीन महीने हुए हैं। मेरी अनुपस्थिति में हमारे स्वयं-सेवकों की संख्या बहुत गिर गई थी—यहां तक कि एक दिन तो केवल एक ही सज्जन वहां पहुंच सके थे। पर हर्ष की बात यह है कि गांव के लोग अब हमारे उद्देश को समझने लगे हैं, और हमें अब उतना ज्यादा कचरा और मैला नहीं उठाना पड़ता है। एक महीने पहले तो हमें कई बाल्टियां मैला उठाना पड़ता था। अब वह बात नहीं है। अब तो कुल दो ही बाल्टियां मैला निकलता है। लोगों की मुखालिफत भी अब दिन-दिन कम होती जा रही है। वे यह समझने लगे हैं कि उनका गांव अब देखने में अच्छा लगता है। और इतना ही नहीं, बल्कि ज्यों ही उनकी समझ में यह बात आजायगी कि उनके स्वास्थ्य में भी उन्नति हुई है त्योंही वे हमारे कहे अनुसार चलने लगेंगे। बाबा राघवदास जी भी हमारे काम में आजकल यहां योग दे रहे हैं। पाठकों को यह तो मालूम ही होगा कि इन्हीं बाबा राघवदासजीने बरहज के उस घोर नरक की सफाई की थी। वे हम से कहते थे कि वहां के लोगोंने खुद ही इस अंतर को महसूस किया कि तब बरहज की क्या हालत थी और अब क्या है। गत वर्ष वहां तीन महीने तक प्लेग का दौर दौरा रहा था; पर इस साल तो एक महीने के ही भीतर प्लेगने बरहज का पिंड छोड़ दिया। लोग कहते थे कि यह बाबा राघवदासजी के प्रयत्न का ही परिणाम है। हमने अभी अपने सिंदी गांव के लोगों से इस प्रकार का प्रशंसापत्र प्राप्त करने-जैसा कोई पराक्रम नहीं दिखाया, पर ऐसा प्रमाणपत्र किसी-न-किसी दिन हमें मिलेगा जरूर। हमारे सद्भाग्य से श्रीपीअर सेरेसोल और श्री जो विलकिन्सन बिहार के भूकंप-विध्वस्त जिलों में काफी परिश्रम का काम करके स्वदेश वापस जाते हुए वर्धा उतर पड़े। उन्हें हमारे साथ सिंदी गांव में मैले की दो बाल्टियां उठाये बिना भला संतोष हो सकता था? हमारे लिए तो यह बड़े ही भाग्य की बात थी, पर सिंदी के लोग अभी इतने अज्ञानी हैं कि वे इस बात को नहीं समझते कि उनकी सेवा कैसे-कैसे लोग आकर करते हैं। उस गंदगी के प्रश्न को सफलतापूर्वक हल करने के बाद ही हम उनके अज्ञान-तिमिर को दूर करने का प्रयत्न करेंगे, क्योंकि वह गंदगी का प्रश्न अधिक भयंकर है।

पीअर सेरेसोल

इन दोनों विदेशी मेहमानों का परिचय मुझे 'हरिजन-सेवक' के पाठकों को दे देना चाहिए। उस दिन वर्धा के स्टेशन पर ये दोनों सज्जन जब थर्ड क्लास के डिब्बे से उतरे, तब उन्हें देखकर कौन भाप सकता था कि ये लोग कोई प्रसिद्ध या प्रतिष्ठित मनुष्य होंगे। ये लोग मजदूरों के ऐसे कपड़े पहने हुए थे। उनके कपड़ों पर कठिन परिश्रम की छाप भी लगी हुई थी। बिहार में जो भूमि भूकंप से ध्वस्त और बाढ़ से आप्लावित हो गई थी उसे पूरने-पाटने का काम करने के लिए ये लोग बिहार में ठहरे हुए थे। वहां इन्होंने मकानों और सड़कों को नये सिरे से बनाने, सिंचाई में आजानेवाले गांवों को ऊंची सतह पर ले जाने वगैरा का काम किया है। सेरेसोल स्विट्जरलैण्ड-निवासी और अंतर्राष्ट्रीय सेवा-सेना के अध्यक्ष हैं। पारसाल दीनबन्धु एण्ड्रूजने बिहार के भूकंप-पीड़ित लोगों की सहायता के लिए उस संस्था से प्रार्थना की थी, और उनकी उस प्रार्थना पर पीअर सेरेसोल गत वर्ष यहां आये थे। उनकी मातहती में काम करने के लिए जो कितने ही नौजवान यूरोप से आये उनमें एक जो विलकिन्सन थे।

कई साल हुए कि पीअर सेरेसोल स्विट्जरलैण्ड के एक विश्व-विद्यालय में गणित, भौतिक विज्ञान तथा इंजीनियरी की डिग्री लेकर वहां के एक स्कूल में पढ़ाने का काम करने लगे। पर उनकी साहसवृत्ति उन्हें अमेरिका ले गई, जहां उनके भाई रहते थे। अमेरिका से वे जापान गये, और वहां एक स्विस कोठी में काम करने लगे। जब योरोपीय महासमर की रणभेरी बजी उस समय वे अपने देश स्विट्जरलैण्ड में वापस आ गये। जो लोग अपनी अन्तरात्मा की आवाज पर सेना में भरती होने से इन्कार करते थे, उन्हें वहां की सरकार कैद कर लेती थी। इसके विरोध में सेरेसोलने फौजी कर देने से इन्कार कर दिया जिसके लिए चार बार उन्हें जेल जाना पड़ा। स्विट्जरलैण्ड तो युद्धक्षेत्र में उतरा नहीं था, पर रंगरूटों को देश की सरहद की रक्षा करने का काम सौंप दिया गया था। जिन्होंने इस काम में भाग लेने से इन्कार किया उन सैकड़ों अहिंसावादियों को बरसों जेल की सजा काटनी पड़ी थी। पर सेरेसोल को तो बहुत ही कम मियाद की सजा मिलती थी—कारण इसका यह था कि उनके पिता किसी समय स्विस

प्रजातंत्र के प्रेसीडेंट रह चुके थे। राजनीति के साथ तो सेरेसोल का बहुत ही कम सम्बन्ध रहा। स्विस पार्लियामेण्ट में जब वे निर्वाचित होकर गये तो उन्होंने अपनी अन्तरात्मा के अनुसार चलने की मर्यादा रखकर राजभक्ति की शपथ ली। अधिकारियों को उनकी यह मर्यादित शपथ मंजूर नहीं थी। अतः उन्हें डेढ़ दिन के अन्दर ही सदस्यता से इस्तीफा दे देना पड़ा। विधाता को तो उनके हाथ से मनुष्यजाति की अधिक उच्च कोटि की सेवा लेनी थी, इसलिए राजनीति के दलदल से उन्हें उबार लिया। सच्चे शान्तिवादी के रूप में वे सन् १९२० में अंतर्राष्ट्रिय शान्ति-संघ की कांग्रेस में सम्मिलित हुए। इस सभा में यह निश्चय हुआ कि शान्तिवादी स्वयं शान्ति-स्थापना के लिए यथाशक्ति प्रयास करें, और मनुष्यों तथा राष्ट्रों के बीच वाणी से नहीं बल्कि अपनी कृति से सच्ची शान्ति स्थापित करने की चेष्टा करें। इस प्रकार की जीती-जागती शान्ति स्थापित करने के लिए जिन लोगोंने अपने को खपा देने की प्रतिज्ञा की उनका सेरेसोलने संगठित किया। एक डच महिलाने अपनी समस्त सम्पत्ति इस कार्य के लिए अर्पित करदी। जर्मनी, आस्ट्रिया और इंग्लैण्ड के स्वयं-सेवक इस शान्ति-स्थापक मण्डल में शरीक हुए। एक जर्मन स्वयं-सेवकने सब से पहले यह काम हाथ में लेने की सलाह दी कि फ्रांस में जर्मनीवालोंने फौजी हुक्म के जोर से जिन-जिन स्थानों को अंगभंग किया हो वहां चलकर मरम्मत का काम किया जाय। मगर इस मण्डल के जर्मन और आस्ट्रियन स्वयं-सेवक यह काम करें इसमें फ्रांस में 'मरे हुओं का अपमान' समझा गया, और इस तरह इन अन्तर्राष्ट्रिय स्वयं-सेवकों को यह पहला सबक मिला। उन्होंने तब यह निश्चय किया कि आर्थिक सहायता से दूर रहकर सद्भाव के द्वारा ही शांति स्थापित करने का ध्येय रखा जाय। इस संघ का द्वार उन सभी सद्भाववाले स्त्री-पुरुषों के लिए उन्मुक्त कर दिया गया जो यह प्रतिज्ञा करें कि युद्ध, बाढ़, हिमप्रपात और भूकम्प-जैसे महान् संकटोंके आने से जहां भी मरम्मत और पुनार्रचना की जरूरत पड़ेगी वहां जाकर वे सहायता करेंगे। इस काम में वेतन मिलने की आशा नहीं रखी जा सकती थी और भोजन तथा मकान-भाड़ा छोड़कर बाकी का सारा खर्च केन्द्रीय-मण्डल के खाते में डालना था। सन् १९२४ से इस संघने फ्रांस, स्विट्जरलैण्ड, वेल्स, यॉर्कशायर, ससेक्स, आदि अनेक स्थानों में काम किया है। इसमें स्वयं-सेवक यों तो मुख्यतया स्विट्जरलैण्ड, जर्मनी, इंग्लैण्ड और फ्रांस के हैं; किन्तु यूरोप के और भी बहुत-से देशों और अमेरिका, मेक्सिको और भारतवर्ष के प्रतिनिधि भी इस संघ में हैं। स्वयं-सेवकों की सब से बड़ी संख्याने सन् १९२८ में राइन नदी के फटने के बाद राइन-घाटी के प्रदेश में काम किया। २२ देशों के ५० भिन्न-भिन्न धन्धे करनेवाले ७१० मनुष्योंने (जिनमें ७८ स्त्रियां थीं) इस कार्य में योग दिया था, और १८७ दिन उन सबने काम किया था। इस संघ की फौजी अधिकारियोंने भी कितनी ही बार मदद की है।

सेरेसोल मुझसे कहने लगे कि, "यह शैतान दिनरात जाग्रत रह कर हमारी जन, धन और बुद्धि के उत्तम साधनों का उपयोग कर रहा है। हम आखिर कबतक जागते रहेंगे? युद्ध के ही लिए सेवा और त्याग हो, इसे हम कबतक सहन करते रहेंगे?" अन्तर्राष्ट्रिय सेवा-सेना का उद्देश यही है कि कठोर परिश्रम और अनुशासन की जो शिक्षा शस्त्रयुद्ध से मिलती है उस सब की संयत जीवन के द्वारा पूर्ति की जाय और निष्काम सेवा-कार्यों के द्वारा सद्भाव का स्तूप खड़ा करके अन्त में युद्ध को असम्भव कर दिया जाय। बाइबिल में एक जगह यह भविष्यद्वाणी मिलती है कि "लोग अपनी तलवारों को तोड़-ताड़कर हल के कुसिये, और भालों को तोड़कर उनके हँसिये बनायेंगे; कोई भी राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के खिलाफ तलवार नहीं उठायगा, और न वे लड़ना ही सीखेंगे।" इस सेना के सदस्यों का चिन्ह फावड़ा है; उसके ऊपर तलवार के दो टुकड़ों पर '**शान्ति**' यह शब्द लिखा हुआ है।

यह अत्यंत दूर का आदर्श है। इसतक पहुँचने के लिए एक नहीं, अनेक जन्म चाहिए। किन्तु यह आदर्श ऐसा है कि इसके लिए जीने और मरने दोनों में ही जीवन की सार्थकता है। सेरसोल की करुणापूर्ण आंखें कुछ इस प्रकार भविष्य की ओर दृष्टिनिक्षेप करती हैं, जैसे उन्हें यह आदर्श सिद्ध होता हुआ दिखाई देता हो। सेरेसोल ईमर्सन की पूजा करते हैं, और उस ऋषि के नेत्रों में जैसी करुणा झलकती थी कुछ उसी प्रकार की सेरेसोल के नेत्रों में भी देख पड़ती है।

मैंने उनसे कहा, "यह बड़े भाग्य की बात है कि आपने एक ऐसे देश में जन्म लिया है, जिसने कई शताब्दियों से युद्ध नहीं देखा।"

"नहीं, भाई, ऐसी बात नहीं है। मेरा देश दूसरों के देशों की ही तरह विकृत होता जा रहा है। शांतिवाद को हमारे देश में लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं, और हमारे यहां भी रंगरूटी सेना भरती करने का कानून मौजूद है। फिर यह कहना भी सही नहीं कि हमारे यहां सैकड़ों बरसों से कोई युद्ध हुआ ही नहीं। ८० साल पहले हमारे देश में प्रोटेस्टेंटों और कैथलिकों के दर्म्यान लड़ाई हुई थी; यद्यपि मुझे यह कहना चाहिए कि उस लड़ाई में एक सेनापति ऐसा शूरवीर निकला जिसके नाम का हमारे देश को आज भी अभिमान है। उस प्रोटेस्टेंट सेनानी का नाम डुफर था। वह महान् राष्ट्रभक्त था। और उसीने अपनी सूझ और सद्भाव से शीघ्र ही उस युद्ध का अंत कर दिया। उस का ऐसा महान् कार्य था, कि युद्ध के बाद उसे धन्यवाद देने का जो प्रस्ताव रखा गया था उसमें कैथलिक लोग भी सहर्ष शरीक हुए थे। उसने स्थायी शांति की ऐसी पुख्ता नींव रखी कि इतने बरसों तक इन दोनों सम्प्रदायों के बीच फिर कभी कोई संघर्ष हुआ ही नहीं। सेनापति डुफर हमारे देश का एक महान् से महान् पुरुष था।"

"आप यहां वापस आयेंगे न?"

"मेरा काम अभी पूरा तो हुआ ही नहीं। उसकी परीक्षा तो बरसात में होगी। हमारे गांव में अगर बाढ़ न आई, तो हम जरूर अपना काम आगे बढ़ायेंगे।"

"पर आप वापस कैसे आ सकेंगे? देश पहुँचने पर आप क्या काम करेंगे?"

"मुझे वहां अपना अध्यापन-कार्य करना पड़ेगा। मुझे जब छुट्टी की जरूरत होती है तब स्कूल के अधिकारी दे देते हैं। मुझे अक्तूबर मास में भारत वापस आने की आशा है।"

जो विलकिन्सन

जो विलकिन्सन सेरेसोल के एक नौजवान साथी हैं। दीनबंधु एण्डरूज के कहने से यह सेरेसोल के साथ आये थे। इन्होंने किसी यूनिवर्सिटी में शिक्षा नहीं पाई, और इनका जीवनक्रम भी उज्वल नहीं कहा जा सकता। किन्तु उनमें सेवा करने की खूब लगन है। बिहार के लोग उन्हें इतना अधिक प्यार करते थे कि वे वहां उनके

घर आदमी की तरह हो गये थे। सेरेसोलने गांधीजी से उनका परिचय कराते हुए कहा कि, "हमारे इन जो विलकिन्सन को लोग इतना अधिक प्यार करते थे, कि जहां इन्हे दो फूलमालाएँ पहनाई गई, वहां मुझे एक ही माला पहनाई गई।" यह कहकर वे खूब खिलखिलाकर हँसने लगे। सेरेसोलने मुझ से कहा कि, "मुझे इसका पता ही नही, कि कोई अंग्रेज इतना अधिक लोकप्रिय हो सकता है। यह हजरत तो बिहारी बोली तक बोल लेते हैं। और अगर यह फिर वापस आये तो लोग तो इनके लिए मकान बनवादेने और इन्हें बिल्कुल स्वजन की भांति अपने साथ रखने को तैयार हैं। इनमे सिर्फ एक ही दोष है। मेरे अनेक बार कहने-सुनने पर भी ये हजरत सिगरेट पीना नही छोड़ते।" यह कहकर सेरेसोल फिर खिलखिलाकर हँसने लगे। मैंने पूछा कि "क्या आप सिगरेट नहीं पीते ?" "नहीं, मैं नही पीता। पर इसमें मेरी कोई बहादुरी नही। मुझे यह अच्छी ही नही लगती।" यद्यपि बिहार के लोगो के साथ जो विलकिन्सन की दिली मुहब्बत है, तो भी वहां की एक बात उनकी समझ में नही आती। एक दिन हमारे साथ बर्तन माजते हुए कहने लगे, "मुझे यह देखकर तअज्जुब हुआ कि अच्छे हट्टे-कट्टे जवान आदमी भी बेचारे नौकरो पर हमेशा हुकम चलाते रहते हैं। दूसरा कोई आदमी मेरा काम करे तो मुझे तो इससे शर्म आनी चाहिए।"

धार्मिक प्रश्न

ये दोनों सज्जन उन सच्चे मिशनरियों के वर्ग में आ सकते हैं जिन्होंने निःस्वार्थ रीति से मनुष्यमात्र की सेवा करना अपना जीवन-कार्य बना लिया है। सेरेसोलने कहा—"मैने अच्छे-से-अच्छा कोई मिशनरी देखा है तो वह.........था। उसने मुझसे कहा था कि 'मैने १४ बरस में एक ही मनुष्य को ईसाई बनाया है, और वह भी अनिच्छापूर्वक।' फिर उन्होने हाल में जो कतिपय पुस्तकें पढी थी उनके विषय में वे गांधीजी से बात करने लगे। उन्होंने एक पुस्तक जो पढी थी वह किसी धर्मान्ध प्रोटेस्टेंट ईसाई की लिखी हुई थी। उसमें लिखा था कि ईसा की शरण में जाने से ही मुक्ति मिल सकती है; हिंदुओ की फिलॉसफी का मुख्य ढांचा तोड़ डालना चाहिए। ईसा मसीह की शरण में गये बिना भारत का उद्धार हो ही नही सकता। इस बात को तो लेखकने बारबार कहा है। इस तअस्सुब से भरी पुस्तक को पढ़कर सेरेसोल को क्षोभ हुआ। उन्होने जो दूसरी पुस्तक पढी वह और प्रकार की थी। उसमें इस बात का खंडन किया गया था कि ईसाई धर्म ही अंतिम धर्म है। उसमे लिखा था आज जहांतक हम पहुँचे है उससे भी अधिक पूर्ण और उच्च धर्म अभी आयगा; और ईश्वर अन्य धर्मों तथा अनेक कौमो के परमदर्शनो का भी उपयोग करके मनुष्यजाति के विचार-समूह को समृद्ध बनायगा।" बाईबिल जो प्रेरणा देती है वह दूसरी प्रेरणाओं की अपेक्षा श्रेष्ठ है, इस दावे को छोड़ देने में ही लेखक को निश्चित लाभ दिखाई देता है, और वह कहता है कि 'मै उन लोगों में से हूं कि जो ईसा मसीह को एक सद्गुरु मानते हैं, किंतु परमप्रभु नहीं।'

गांधीजीने कहा, "ऐसा लगता है कि अभी प्रतिक्रिया चल रही है। हमारे यहा एक जो ईसाई सज्जन हैं वह कहते हैं कि बाईबिल के न्यूटेस्टामेंट का उपदेश जीवन मे किस प्रकार उतारा जा सकता है यह बात मुझे गीता में मिली है; और न्यूटेस्टामेंट के कितने ही वचन जो मुझे गूढ मालूम देते थे उनका अर्थ अब गीता के अध्ययन मे खुलता जा रहा है।"

तो भी सेरेसोल यह महसूस करते है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने ही धर्म से समाधान मिलना चाहिए। हमारी प्रातः और सायंकाल की प्रार्थनाओं में वे नियमित रीति से आते थे। किंतु एक दिन साझ को कहने लगे, "एक ही चीज का जो यह बारबार पाठ होता है वह मेरे कान को कुछ रुचता नही। सभव है कि यह मेरे बुद्धिवादी गणित स्वभाव का दोष हो। पर वही श्लोक नित्य बारबार गाये जायं यह मुझे अच्छा नही लगता। उदाहरण के लिए, 'बाक' के अलौकिक संगीत मे भी जब वही एक पद बारबार गाया जाता है जब मेरे मन पर उसका कोई प्रभाव नही पडता।

गांधीजीने मुस्कराते हुए कहा, "पर आपके गणित में क्या पुनरावर्ती दशमलव नही होता ?"

"किन्तु प्रत्येक दशमलव से एक नवीन ही वस्तु निकलती है।"

गांधीजी—"इसी प्रकार प्रत्येक जप में नूतन अर्थ रहता है। प्रत्येक जप मनुष्य को भगवान् के अधिक समीप ले जाता है, यह बिल्कुल सच्ची बात है। मैं आपसे कहता हूं कि आप किसी सिद्धान्तवादी से तो बात कर नही रहे हैं, आप तो एक ऐसे मनुष्य के साथ बात कर रहे हैं जिसने इस वस्तु का अनुभव जीवन के प्रत्येक क्षण मे किया है—यहातक कि इस अविराम क्रिया का बंद होजाना जितना सरल है उससे अधिक सरल प्राणवायु का निकल जाना है। हमारी आत्मा की यह भूख है।"

"मैं इसे अच्छी तरह समझ सकता हूँ, पर साधारण मनुष्य के लिए तो यह एक खाली अर्थशून्य विधि है।"

"मैं मानता हू, पर अच्छी-से-अच्छी चीज का भी दुरुपयोग हो सकता है। इस मे चाहे जितने दंभके लिए गुंजाइश है सही, पर वह दंभ भी तो सदाचार की स्तुति ही है न! और मैं यह जानता हू कि अगर दस हजार दंभी मनुष्य मिलते है तो ऐसे करोडो सरल श्रद्धालु भी होंगे जिन्हे ईश्वर के इस नामरटन से शांति मिलती होगी। मकान बनाते समय पाड़ बाधने की जरूरत पडती है न- ठीक वैसी ही यह चीज है।"

सेरेसोल—"मगर मैं आप की दी हुई इस उपमा को जरा और आगे ले जाऊं तो आप यह मान लेंगे न कि जब मकान तैयार हो जाय तब उस पाड़ को गिरा देना चाहिए ?"

"हा, जब शरीर पात हो जायगा तब वह भी दूर हो जायगा।"

"यह क्यों ?"

श्री विलकिन्सन इस संवाद को ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। उन्होंने कहा "यह इसलिए कि हम निरंतर निर्माण ही करते रहते हैं।"

गांधीजी—इसलिए कि हम निरंतर पूर्णता के लिए प्रयत्न करते रहते हैं। केवल एक ईश्वर ही पूर्ण है, मनुष्य कभी पूर्ण नही होता।"

सेवाकार्य

एक दिन सेवा-कार्य पर बात होने लगी। अंतर्राष्ट्रिय सेवा-सेनाने अपने खर्च से लोगों को यहा भेजा, और उनके भोजन और दूसरे इखराजात का पैसा भी सेना ही देती थी। गांधीजीने कहा, कि यही सच्ची सेवा है; और उन्होंने सेरेसोल को बिहार मे यही प्रथा चलाने की सलाह दी।

[१२० पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ३१ मई, १९३५

एक लाख रुपया चाहिए

हरिजन सेवक संघ का सेण्ट्रल बोर्ड सेठ जुगलकिशोर बिड़ला के दिये हुए रुपये से बहुत-से कुएं हरिजनों के लिए बनवा चुका है। वह रुपया अब समाप्त हो चला है, और हरिजनों के लिए कुएं बनवाने की अब भी आवश्यकता है। सार्वजनिक कुओं से हरिजनों के पानी भरने का विरोध अबभी अनेक स्थानों में किया जा रहा है, और बेचारे हरिजनों को या तो मवेशियों की हौदियों का पानी पीना पड़ता है, या लोग दयावश उनके घड़ों में दूर से जो पानी डालते हैं उसके लिए उन्हें बैठा रहना पड़ता है। इसलिए जितने भी नये कुएं बनेंगे उनसे उतनी मदद नहीं कि हरिजनों का कष्ट निवारण ही होगा, साथ ही, उनसे उनकी सम्पत्ति में वृद्धि भी होगी। इस काम के लिए हरिजन-सेवक-संघ के सेण्ट्रल बोर्डने एक लाख रुपये की अपील निकालने का निश्चय किया है। किस प्रान्त में कितने कुओं की जरूरत है इसके आंकड़े जनता के सामने रखने के लिए तैयार किये जा रहे हैं। इतनी बड़ी आवश्यकता को देखते हुए एक लाख रुपया तो कुछ भी नहीं। मगर संघ के पास कोई ऐसा जरिया नहीं कि जिससे वह कुओं के बनवाने पर बड़ी-बड़ी रकमें खर्च कर सके। यह ऐसा काम है जो धीरे-धीरे ही होता है, और फिर उसमें विशेष बुद्धि-कौशल भी चाहिए। हर कोई कुआं नहीं बनवा सकता। फिर यह काम एक-दो जगह तो होता नहीं, तमाम प्रांतों में सैकड़ों जगह कुएं बनवाने हैं, इससे काम की ठीक ठीक देखभाल रखना भी बहुत मुश्किल है। बोर्ड की यह नीति है कि जिस काम पर वह ठीक तरह से पैसा खर्च नहीं कर सकता और जनता के आगे उसका ठीक-ठीक हिसाब-किताब नहीं रख सकता उस कामके लिए वह पैसा मांगता ही नहीं। मैं उम्मीद करता हूं कि लोग इस छोटी-सी अपील का तुरन्त पर्याप्त उत्तर देंगे।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

स्व० मोहनलाल पंड्या

मोहनलाल पंड्या-जैसे सच्चे शूरमा और स्वभावसिद्ध सैनिक का निधन समस्त गुजरात के हृदय में बहुत दिनोंतक सालता रहेगा। गुजरात के हृदय का यह गहरा घाव जल्दी भरने का नहीं। मोहनलाल पंड्या एक असाधारण व्यक्ति थे। आज हम जहां-तहां थकावट और निराशा की बात सुन रहे हैं। पर ६३ बरस के बूढ़े मोहनलाल पंड्या न कभी थकते थे, न हताश होते थे। कैसा ही कठिन समय हो, उनके चेहरे पर वही मृदु हास्य खेलता रहता था। ऐसे शूरवीर सिपाही का चल बसना इस कठिन काल में किसे न खलेगा? सरदार वल्लभभाई साधारणतया किसी की मृत्यु की खबर सुनकर विचलित नहीं होते। पर अपने इस अनन्य साथी की मृत्यु से उन्हें भी बड़ा धक्का लगा, और उन्हें सर्वत्र सूना-सूना-सा लगने लगा। पंड्याजीने सरदार का साथ सदा छाया की तरह दिया—जहां सरदार, तहां पंड्याजी। फिर क्यों न उनकी मृत्यु से सरदार विचलित हो जायें?

मोहनलाल पंड्या कृषिशास्त्र के ग्रेज्युएट थे। बरोदा राज्य में उन्हें एक खासा अच्छा ओहदा मिल गया था, पर उस नौकरी को लात मारकर सन १९०५ के देशव्यापी स्वदेशी आंदोलन के रंग में वह भी रंग गये। फिर देशभक्ति का बाना गहा सो गहा। अंतकालतक जोगी का ही भेष धारण किये रहे। पहले वह हिंसा नीति के स्वप्न देखते थे, पर गांधीजी के संपर्क में आने से उन्होंने सत्य और अहिंसा का मंत्र इस तरह ग्रहण किया कि फिर उसे अंततक नहीं छोड़ा। पर ग्रामसेवा का मंत्र तो मानो वे जन्मघुट्टी के साथ पीकर आये थे। उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वे ग्रामवासी नहीं हैं। पर उनकी सेवा और सैनिकता की दूसरी तारीफ यह थी कि उन्होंने अपने ही जिले को अपना सेवा-क्षेत्र बनाया। 'गाव का जोगी जोगिया, आन गांव का सिद्ध' इस कहावत से डरकर बहुत-से लोग अपने गांव की सेवा करने से दूर भागते हैं। पर मोहनलाल पंड्या ऐसी कहावतों से डरनेवाले जीव नहीं थे। उनके लिए जैसा आन गांव वैसा निज गांव। बल्कि उन्होंने अपने गांव और अपने जिले को सेवा के दिव्य प्रदीप से और भी देदीप्यमान कर दिया।

उन्होंने कट्टर-से-कट्टर विचारवाले ब्राह्मण-कुटुंब में जन्म लिया था। और वह गांव भी ऐसा था, जहां सुधार की गंध भी नहीं पहुंची थी। पर उन्होंने किसी की भी पर्वा न करके अपने घर में सुधारों को दाखिल किया, और निरक्षर भाई-बहिनों के गले सहज ही सुधारों को उतार दिया। हरिजनों को उन्होंने अपने सगे सहोदरों की तरह गले लगाया, और सदा उनकी सेवा की। दो साल की बात है कि अपने बड़े भाई की जिंदगीभर की कमाई की बचत के २०००) लेकर पंड्याजी गांधीजी के पास आये और वह रुपया उन्हें हरिजन-कार्य में लगाने के लिए दे दिया। हमें तो यह देखकर आश्चर्य ही हुआ।

जेलने उनके शरीर को जर्जर कर दिया था। जेल वे अनेक-बार गये थे। दांत मारे-के-मारे गिर गये थे। पर 'सी' क्लास के भोजन से वे डरते नहीं थे। मरने के थोड़े ही दिन पहले सरदार वल्लभभाई के पास आप प्लेग-निवारणार्थ एक सैनिक के रूप में बोरसद जा पहुंचे, पर सरदारने उनकी जर्जरावस्था देखकर उन्हें उसी वक्त यह कहकर वापस भेज दिया कि जाओ, पहले अपना शरीर संभालो तब बोरसद आना। सरदार को क्या खबर थी, कि अब पंड्याजी का दर्शन होने का नहीं, वह तो गये सो गये!

उन्हें कौन नहीं जानता था, और कौन नहीं प्यार करता था? संकट के समय सभी को पंड्याजी की याद आती थी, और आती रहेगी। बिना उनके सरदार और गुजरात के पितामह अब्बास तैयबजी को आज सर्वत्र सूना ही दिखाई देता है। और आज जब कि हम इस ग्रामसेवा-कार्य में अपना सारा ध्यान लगा रहे हैं, उनकी याद हमें प्रतिक्षण आ रही है। पर पंड्याजी गये नहीं हैं। अपनी वीरता और निर्भयता का अद्भुत पाठ वे हमारे लिए छोड़ गये हैं। उनके उज्ज्वल जीवन से हमें चाहे जब प्रेरणा मिल सकती है।

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करें। ग्राहक-नंबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा।

व्यवस्थापक—'हरिजन-सेवक' दिल्ली

साप्ताहिक पत्र

[११९ पृष्ठ से आगे]

इस पर कुमाराप्पाने कहा, "मैंने देखा है कि पैसा देकर जो मजदूरी कराई जाती है उससे यह स्वयंसेवकों की सेवा अंत में दूनी महंगी पड़ जाती है ।"

गांधीजी—"इसका सबब यह है कि सच्चे स्वयंसेवक नहीं मिलते । आप अगर लोगों को यह विश्वास दिलादें कि हम तुम्हें भोजन भी देंगे और रहने को मकान भी, तो दूसरे ही दिन भूखों मरते हुए ग्रामवासियों की अर्जियों का ढेर लग जायगा । नहीं, जिन्हें सेवा करनी हो उन्हें तो शुद्ध सेवाभाव से ही आना चाहिए, और इसलिए अपने खाने और रहने का खर्च उन्हें खुद ही देना चाहिए । इससे वे अपने समय का भी मूल्य समझेंगे, बैठे बैठे मक्खियां न मारेंगे, क्योंकि वे अपना समय व्यर्थ नष्ट करेंगे तो अपने खर्च पर ही नष्ट करेंगे ।"

सच्ची सेवा

एक ईसाई विद्यार्थी, जो आजकल हमारे साथ ग्रामों की स्थिति का अध्ययन कर रहा है, और अपने को ग्रामसेवा-कार्य के योग्य बना रहा है, उसने एक दिन गांधीजी से पूछा कि क्या बगैर धर्म के भी कोई सेवा हो सकती है :

गांधीजीने कहा, "जिस सेवा कार्य में स्वार्थ की लेशमात्र भी गन्ध न हो, वही परमधर्म है ।"

"किन्तु मनुष्य की क्या किसी एक के प्रति निष्ठा होनी ही चाहिए ?"

"हां, अवश्य—सत्य के प्रति उसकी निष्ठा होनी चाहिए । मैं सिवा सत्य के और किसी का भक्त नहीं हूँ, और सत्य के सिवाय मैं किसी और का अनुशासन नहीं मानता ।"

"पर इस सामान्य कल्पना से मनुष्य को प्रेरणा कैसे मिल सकती है ?"

"इसका यही अर्थ हुआ कि तुम एक ऐसे ईश्वर को चाहते हो जिसका कि कोई आकार हो, और सत्य तुम्हारे लिए एक अत्यन्त अव्यक्त वस्तु है ? खैर, मूर्ति-पूजा तो मानव-प्रकृति का मानो एक अभिन्न अंग बन गई है। पर तुम चाहो तो निराकार ईश्वर को सत्य के रूप में पूज सकते हो, अगर सत्य को ईश्वर के रूप में नहीं पूज सकते । ईश्वर सत्य तो है ही, किन्तु ईश्वर के और भी अनेक रूप हैं । इसी से मैं यह कहना पसन्द करता हूँ, कि सत्य ही ईश्वर है । पर तुम्हें इस रहस्यवाद-जैसी लगनेवाली चीज में जाने की जरूरत नहीं । तुम तो केवल उसी को पूजो जो तुम्हें सत्य जान पड़े, क्योंकि सत्य सापेक्ष रूप में ही भासित होता है । केवल यह स्मरण रखो कि सत्य उन अनेक गुणों में नहीं आता, जिनके साथ कि हमने कोई-न-कोई नाम की उपाधि लगा रखी है । सत्य तो ईश्वर का साक्षात् स्वरूप है, और यही जीवन है, और मैं सत्य को पूर्णतम जीवन के रूप में देखता हूँ, और इसी कारण वह साकार बन जाता है—क्योंकि यह समस्त सृष्टि ही, यह सारी हस्ती ही ईश्वर है, और जो कुछ भी 'है,' जो कुछ भी 'सत्य' है उस सब की सेवा ईश्वर की ही सेवा है ।"

"पर हम ईसाई विद्यार्थी गांवों में किस तरह जायें ? शायद वे लोग हम से दूर रहें, हम से बचें, क्योंकि हम लोग ईसाई जो हैं ।"

"तुम लोग उनसे कहो कि 'हम बेशक ईसाई हैं, पर तुम्हें हमसे डरने की जरूरत नहीं, जिस तरह तुम्हारे हिंदू होने से हम तुमसे नहीं डरते । तुम्हारे पास हम कोई स्वार्थ का हेतु लेकर नहीं आये हैं, और हम जानते हैं कि हमारे प्रति तुम्हारे दिल में भी कोई आक्रमण का भाव नहीं है । हम चाहते हैं, कि तुम और भी अच्छे हिंदू बनो, जिस तरह कि तुम्हारे संसर्ग में आने से हमें मालूम है कि हम और भी अच्छे ईसाई बन जायेंगे ।' उनके पास जाकर उनकी सेवा करने का यह तरीका है । ईश्वर के नाम पर लोगों को अपने धर्म में मिलाने की बात करना व्यर्थ है । अरे, सर्वशक्तिमान ईश्वर क्या इतना असहाय है कि वह मनुष्यों को अपनी ओर खींच नहीं सकता ? प्रत्येक मनुष्य का धर्म उसकी अपनी चीज है । मैं हिंदूधर्म का उपदेश नहीं कर सकता, मैं तो उसका केवल आचरण ही कर सकता हूँ ।"

महादेव ह० देसाई

टिप्पणियाँ

दलितों में भी दलित

यह तो हम सभी जानते हैं कि मेहतर, बसोर, मांग और डोम जातियों को हरिजनों में भी निम्नतम स्थान मिला है । ये अत्यंत दलित हैं । इधर प्रान्तीय संघों की जो रिपोर्टें आई हैं उन्हें देखने से पता चलता है कि डोम, मेहतरों के बीच भी सेवा-कार्य होरहा है, और वह असंतोषजनक नहीं कहा जा सकता । जबलपुर में संघ की तरफ से जो सिलाई का वर्ग चल रहा है उसमें बसोर जाति के ही लड़के अधिक हैं । बोलका (गुजरात) में मेहतरों के बच्चों के लिए हाल में एक रात्रि-पाठशाला खोली गई है । माधोपुर (मुजफ्फरपुर जिला) ग्राम में डोमों के १४ घरों की सफाई हरिजन-सेवकोंने की । अतरदा (मुजफ्फरपुर) गांव में नथुनी डोम के यहां सत्यनारायण की कथा हुई, जिसमें एक दर्जन से ऊपर सवर्ण हिंदुओंने भी भाग लिया । अकोला के भंगीपुरा में गुड़ी पड़वा के उत्सव का आयोजन नगर-सेवक-मंडल की ओर से किया गया, जिसमें बरार-हरिजन-सेवक-संघ की अध्यक्षा श्री दुर्गाताई जोशीने 'राम और शबरी' के प्रसंग पर प्रवचन किया । अकोला के मांगपुरा में भी उक्त उत्सव मनाया गया । भंगियों के हितार्थ ऋणदात्री सहकारी-समितियों का काम तो अनेक स्थानों पर चल ही रहा है । मगर इन अतिशय दलित हरिजन जातियों की हीनावस्था देखते हुए यह सब काम अभी 'सिन्धु में बिन्दुवत्' ही है । इन जातियों के बीच जितना भी सेवा-कार्य किया जाय उतना थोड़ा है । ये साधु जातियां सदियों से हमारी जो सेवा करती आ रही हैं उससे उऋण तो हम हो ही नहीं सकते, उनकी अधिक-से-अधिक सेवा करने का प्रयास ही हम कर सकते हैं ।

वि० ह०

श्री सिद्धान्तीकी धर्मसेवा

आंध्र प्रान्तीय हरिजन-सेवक-संघ के मंत्री श्री आपीनीडू अपनी छैमाही रिपोर्ट में लिखते हैं :—

"भापुरम् (गंजाम जिला) के श्रीयुक्त जे० अप्पाप्पा सिद्धान्ती हरिजनों के बीच धार्मिक जाग्रति-सम्बन्धी बड़ा अच्छा कार्य कर रहे हैं । वे नित्य नियमपूर्वक हरिजन-बस्ती में जाते हैं, और वहां हिंदूधर्म तथा भगवद्भक्ति का उपदेश करते हैं । प्रार्थना कराते हैं और पुराण भी सुनाते हैं । पुराण-कथा में तो सैकड़ों हरिजन आते थे । यह कथा गुडुगुरु (पश्चिमी कृष्णा जिला) में

दो महीने तक हुई थी। श्री सिद्धान्तीजी के इस धर्म-प्रचार का हरिजन भाइयों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा है।"

श्री अप्पान्ना सिद्धान्ती की तरह हमारे अन्य सनातनी विद्वान धर्म-वंचित हरिजन भाइयों में भगवद्भक्ति का उपदेश करें तो कितना अच्छा हो। हरिनाम-कीर्तन का अमृतरस जीवमात्र को पिलाना ही तो सनातन धर्म का अन्तिम लक्ष्य है। वि० ह०

सुन्दर लिखावट

हिन्दी की सुलेखन-प्रणाली के सुप्रसिद्ध विशेषज्ञ श्री गौरीशंकर भट्ट लिखते हैं:—

"सुन्दर लेखन मनुष्य के मन का प्रतिबिम्ब है। प्राचीन समय में जब टाइप और छापे की मशीनों का जन्म नहीं हुआ था, लोग सुन्दर अक्षर लिखने में दत्तचित्त होकर ऐसे-ऐसे सुन्दर ग्रन्थ लिखते थे, जिन्हें देखने से नेत्र और मन प्रफुल्लित हो जाते थे। उस समय के अनेकानेक ग्रन्थ आज अनेक अद्भुतालयों में सुरक्षित हैं।

कश्मीर के जीवन भट्टने संवत् १८५८ में हरिवंश पुराण लिखकर दक्षिण हैदराबाद के दीवान चन्दूलाल को अर्पण किया था और गुणग्राही दीवान साहबने उसे अवलोकन कर कहा था कि "इस ग्रन्थ का मूल्य कोई चक्रवर्ती भी नहीं दे सकता। मेरी तो कुछ भी योग्यता नहीं; किन्तु श्रद्धापूर्वक मैं कुछ पत्र-पुष्प इस पूज्य ग्रन्थ पर चढ़ाता हूं, इसे आप स्वीकार कीजिए।" यह कहकर उन्होंने सवालक्ष मुद्रा उक्त हरिवंश पुराण पर चढ़ाये थे और ग्रन्थ लेखक को लौटा दिया था, जो इस समय हरिद्वार के 'गुरु-मण्डलाश्रम' में सुरक्षित रखा है।

खेद है कि इन दिनों हमारे अन्य कला-कौशल के साथ लेखन-कला का भी विनाश हो रहा है। किलक, मुश्कबेद और नरकुल की सस्ती कलमों के स्थान पर नाना प्रकार के मूल्यवान होल्डर और फाउण्टेनपेन चलने लगे; जिनकी बदौलत हिन्दी-लेखन की क्षमता वर्तमान समय के सुशिक्षितों का साथ छोड़ चुकी है। अंग्रेजी के सैकड़ों प्रकार के सुन्दर-सुन्दर भांति-भांति के अलकृत अक्षर मिलते हैं, पर हिन्दी में वैसा कुछ नहीं है। अंग्रेजी के 'मोनोग्राम' और अरबी तथा फारसी लिपि के 'खतेतुगरा' आदि लिपियों की भांति हिन्दी में क्या है, कोई बतला सकता है?

अत्यन्त लज्जा की बात है कि हमारे स्कूल-मदरसों में बालक-बालिकाओं को जो व्यावहारिक लिपि-शिक्षा दी जाती है उसके लिए विलायती और देशी पुस्तक-प्रकाशक जिम्मेदार हैं। ये इतना भी नहीं जानते कि हिन्दी की कलम कैसी होनी चाहिए और उसके सञ्चालन का नियम क्या है। इस अवस्था में विद्यार्थियों के सुलेखन सीखने की आशा कौन कर सकता है?"

सुन्दर लिखावट की कला तथा ऐसी ही दूसरी कलाओं को ग्रामउद्योग-संघ के द्वारा ही हम पुनरुज्जीवन और प्रोत्साहन दे सकते हैं। कृत्रिमता को जन्म देनेवाले यंत्रों से कला के विकास की आशा कैसे रखी जा सकती है? सादगी के सरोवर में खिलनेवाले सौन्दर्य का दर्शन तो ग्रामोद्योग ही हमें करा सकेंगे इसमें सन्देह नहीं।

वि० ह०

एक महत्वपूर्ण सरकारी विज्ञप्ति

बंबई-सरकारने हाल में हरिजनों के संबंध में एक महत्वपूर्ण विज्ञप्ति प्रकाशित की है, जिसमें उसने विभिन्न विभागों के अफसरों के नाम इस आशय की आज्ञाएँ जारी की हैं कि क्यों न ऐसे उपाय काम में लाये जायँ, जिनसे तमाम सार्वजनिक स्कूलों, कुओं, अस्पतालों, धर्मशालाओं, सड़कों और सवारियों का उपयोग हरिजन जातियां निर्बाध रूप से कर सकें। ये आज्ञाएँ अत्यंत उपयुक्त हैं, और इन आज्ञाओं को अधिक-से-अधिक प्रकाश में लाने का आग्रह रखने, तथा उनका ठीकठीक पालन कराने की दृष्टि से विस्तृत हिदायतें जारी करने के लिए सरकार को हम धन्यवाद देते हैं। मगर ऊँची-से-ऊँची सद्भावना के होते हुए भी और तमाम मातहत और ऊँचे अधिकारियों के सक्रिय सहयोग के बावजूद भी —जो कि इस प्रस्ताव को प्राप्त होगा ही—सरकार को तबतक तिलमात्र भी सफलता नहीं मिल सकती जबतक कि उसे जनता का सहयोग प्राप्त नहीं होता। इस कार्य में प्रभावोत्पादक सहायता हरिजन-सेवक—हरिजन-सेवक-संघ के सदस्य—ही दे सकते हैं। हरिजनों को उनके घर-घर इन आज्ञाओं का आशय सुनाकर, अपने हलके के हरेक गांव के तथ्य और आंकड़े इकट्ठे करके, और उनकी तरफ सरकार का ध्यान खींचकर हरिजन-सेवक ही इस काम में सच्ची मदद दे सकते हैं। इस प्रकार के विवरण समय-समय पर प्रकाशित भी होते रहने चाहिए। इस संबंध का अहमदाबाद के वीरमगाव तालुका का यह निम्नलिखित विस्तृत विवरण बड़ा रोचक प्रतीत होगा:—

तालुका के हरिजन आबादीवाले कुल गांव	१५८
वे गांव जिनका निरीक्षण किया गया	१३९
,, जिनमें स्कूल नहीं हैं	७५
,, जिनमें सार्वजनिक दवाखाने हैं	४
,, जिनमें निःशुल्क निजी दवाखाने हैं	१२

४३ गांव ऐसे हैं जहां की पाठशालाओं में हरिजन बालकों का प्रवेश नहीं है।

केवल २० गांवों में ही हरिजनों के लिए पक्के कुए हैं।

सिर्फ २० गांवों में खुदे हुए बिना बँधे कुएँ हैं।

१०७ गांवों में तो यह हालत है कि हरिजनों को या तो तालाबों से पानी भरना पड़ता है या उन तालाबों में गढ़ैयां खोद-खोदकर पानी उलीच-उलीचकर लेना पड़ता है (यह बात नहीं कि इन गांवों में कुएँ नहीं हैं, कुएं तो बेशक हैं, पर उन तक हरिजनों की पहुँच नहीं!)

२९ गांवों में तो तालाबों का यह लस्टम पस्टम उपयोग भी उन बेचारों के लिए वर्जित है।

यह हालत बंबई हाते के सिर्फ एक तालुका की है। हरिजन-सेवक जहां कहीं कोई अन्याय देखें उसपर तो उन्हें ध्यान देना ही चाहिए, पर उन्हें अपना बहुत कुछ समय अब इस काम में लगाना होगा कि हरेक गांव के विगतवार आंकड़े एकत्र किये जायं, और उन्हें सब अपने नोटों के, सरकारी आज्ञाओं को मद्देनजर रखकर समय-समय पर प्रकाशित किया जाय।

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

हरिजनों के सम्बन्ध में

बम्बई-सरकार की आज्ञाएँ

बम्बई-सरकारने निम्नलिखित विज्ञप्ति प्रकाशित की है:—

सरकारने समय-समय पर अपने मुख्तलिफ महकमों के अफसरों के नाम आज्ञाएँ जारी करके यह बतलाया है कि जो सार्वजनिक सुविधाएँ अन्य तमाम जातियों को जिस रूप में मिली हुई हैं उसी रूप में वे सब सुविधाएँ दलित जातियों को भी अबाधरूप से प्राप्त

हो सकें इसके लिए किन उपायों से काम लिया जाना चाहिए। सुभीते की दृष्टि से, सरकारने अब यह निश्चय किया है कि उन सब आज्ञाओं को और भी सुदृढ़ बना देने के लिए सरकारी अफसरों के नाम एक आज्ञा-पत्र जारी किया जाय। सरकार यह चाहती है कि इन तमाम आज्ञाओं का कड़ाई के साथ पालन किया जाना चाहिए, जिससे यह स्पष्ट हो जाय कि न तो सरकार ही और न सरकारी अफसर ही दलित जातियों के सार्वजनिक सुविधाओं और सरकारी नौकरियों से लाभ उठाने में किसी प्रकार की बाधा डालने के लिए तैयार है।

स्कूल

स्कूलों में दलित जातियों के बच्चों के दाखिल किये जाने की सरकारी आज्ञाएं तो है ही, अब शिक्षा-विभाग के अफसरों को यह देखना चाहिए कि सरकार-द्वारा चलाये जानेवाले अथवा सरकारी सहायता पानेवाले किसी स्कूल में दलित जातियों के बच्चों पर कोई प्रतिबन्ध तो नहीं लगाया गया है। उन आज्ञाओं में यह भी आया है कि जो स्कूल मन्दिरों में या दूसरी धार्मिक इमारतों अथवा दलित जातियों को अलहदा रखने की शर्त के साथ किराये के मकानों में लग रहे हैं उन्हें दूसरे स्थानों पर उठा ले जाने की कोशिश करनी चाहिए। सरकार की यह साफ आज्ञा है कि क्लास में सभी छात्रों को एकसाथ बैठना चाहिए, किसी की कोई भी जाति होने से उसके बैठने में कोई भेद नहीं करना चाहिए, और दलित जातियों अथवा अन्य जातियों के छात्रों को अलग बिठाकर पढ़ाने की व्यवस्था नहीं चलने देनी चाहिए।

स्थानीय अधिकारियों के द्वारा इन आज्ञाओं का पालन हो रहा है या नहीं इसे देखने की जवाबदेही यद्यपि मुख्यत: शिक्षा-विभाग के अफसरों पर आती है; तो भी यह वांछनीय है कि दूसरे विभागों—खासकर महकमा माल—के अफसर भी गांवों के स्कूलों का मुआइना करते हुए इन बातों पर ध्यान रखें; और जहां वे देखें कि इन आज्ञाओं के पालन में धांधली हो रही है या उनका बिल्कुल ही पालन नहीं हो रहा है वहां की रिपोर्ट तो वे करें ही, साथ ही अपने व्यक्तिगत प्रभाव को भी काम में लावें ताकि जिन परिणामों को सरकार देखना चाहती है वह हासिल हो सके।

अस्पताल, दवाखाने और धर्मशालाएँ

इस संबंध की सरकारी आज्ञाएँ नीचेलिखे अनुसार हैं:—

(क) सरकारने सर्जन जनरल से यह अनुरोध किया है कि वे तमाम सिविल सर्जनों और सरकारी तथा सरकारी सहायता पानेवाले अस्पतालों (मेंटल हास्पिटल और लेपर एसूलम भी शामिल हैं) और दवाखानों के मेडिकल अफसरों को यह हिदायत करदें कि प्रथा, धर्म या हिंदुओं की कट्टरता के आधार पर दलित जातियों के मरीजों के साथ कोई भेदभाव न बरता जाय। और अगर इस प्रकार के भेदभाव का कोई उदाहरण देखने में आवे तो उसके संबंध में वे उचित कार्रवाई करें और अगर आवश्यकता समझी जाय तो सरकार को भी उस की रिपोर्ट दें।

(ख) जिला बोर्डों और म्यूनिसिपैलिटियों को अपने तमाम दवाखानों और धर्मशालाओं पर इस आशय के पाटिये लगा देने चाहिएँ कि उनका उपयोग सभी जातियां कर सकती हैं, जिनमें दलित जातियां भी शामिल हैं।

(ग) सार्वजनिक संस्थाओं की तरफ से अगर धर्मशाला आदि बनवाने के लिए सरकार से जमीन मांगी जाय तो उस पर तबतक मंजूरी नहीं मिलनी चाहिए जबतक कि प्रार्थना-पत्र में यह शर्त न हो कि समस्त सुविधाएँ समानरूप से सभी जातियों को मिलेंगी।

कुएँ और तालाब

कुओं और तालाबों के संबंध में सरकारने निम्नलिखित आज्ञाएँ जारी की हैं:—

(क) जो लोकल बोर्ड सार्वजनिक कुओं पर सभी जातियों के साथ समान व्यवहार करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करेंगे उन्हें 'वाटर सप्लाई' के लिए जो सहायता मिलती है वह कम करदी जायगी।

(ख) सरकारने स्थानीय बोर्डों को पहले यह आज्ञा दी थी कि उन्हें जिले के २० फी सदी सार्वजनिक कुओं पर बतौर आजमाइश के, इस आशय के पाटिये लगा देने चाहिए कि उन कुओं का उपयोग सभी जातियों और श्रेणियों के लोग निर्बाधरूप से कर सकते हैं। सरकार का यह भी इरादा था कि यह प्रयोग म्युनिसिपैलिटियों की सीमा के अन्दर ऐसे स्थानों में किया जाना चाहिए जहां दलित जातियों को सार्वजनिक कुओं पर चढ़ने से रोका जाता है। अब सरकारने यह आज्ञा जारी करदी है कि स्थानीय बोर्डों की सीमा के अंदर जो कुएं आते हैं उन सब पर स्थायी रूप से उक्त आशय के पाटिये लगवा देने चाहिए।

(ग) सार्वजनिक कुओं के उपयोग करने का सभी जातियों को समान अधिकार है, इस बात को सरकार की तरफ से बारंबार कहा गया है। अफसरों को चाहिए कि वे इसे इससे संबंध रखनेवाले लोगों को स्पष्टरूप से बतलाने में एक भी मौका हाथ से न जाने दें।

(घ) दलित जातियों तथा आदिम जातियों की कमेटीने अपनी रिपोर्ट के ९२वें पैरे में जिस नीति को पेश किया है वह सरकार की दृष्टि में न्यायसंगत है; मगर जहां जैसी स्थिति हो उसके अनुसार आवश्यक कार्रवाई ताल्लुका लोकल बोर्ड, पंचायत या सेनेटरी बोर्ड अथवा कमेटी को करनी चाहिए।

(ङ) स्थानीय बोर्डों की यह प्रार्थना, कि कुएँ या तालाब बनवाने के लिए सरकारी जमीन दी जाय, इसी शर्त पर स्वीकार की जानी चाहिए कि उन कुओं, तालाबों आदि का उपयोग सभी जातियां समानरूप से कर सकेंगी। दौरे पर जानेवाले सभी सरकारी अफसरों को गांवों में इस बात की जांच करनी चाहिए कि सार्वजनिक कुओं से पानी लेने में दलित जातियों के लोग अपने अधिकार का उपयोग करते हैं कि नहीं, और उन्हें इस बात पर जोर देना चाहिए कि दलित जातियों का यह अधिकार है कि वे सार्वजनिक कुओं से अन्य जातियों के समान पानी भरें।

सार्वजनिक सवारियां

सरकारने सवारियों से सम्बन्ध रखनेवाले अफसरों को यह हिदायत की है कि मोटर लारी आदि किराये पर चलनेवाली सवारियों के, जून १९३० में प्रकाशित, नियमों के १४वें नियम के इस अंतिम वाक्य का कड़ाई के साथ पालन कराया जाय:—

"कोई ड्राइवर, मालिक या मालिक का एजेण्ट किसी व्यक्ति को किसी जाति का होने के कारण टिकट देने अथवा किसी व्यक्ति को उसके पास टिकट होते हुए भी उसी कारण से किसी खाली जगह पर बैठने से इन्कार नहीं करेगा।"

सरकार चाहती है कि इस नियम के तोड़े जाने पर मालिक को या ड्राइवर को, या दोनों को, कुछ दिनों के लिए या हमेशा के लिए उनका लाइसेंस रद्द करके अथवा उन पर मुकदमा चलाकर उन्हें सजा दी जानी चाहिए।

बिहार के खादी-केन्द्रों में

(२)

करीब ६॥ बजे स्टीमरने दीघा घाट के किनारे लंगर डाला और जब हम 'मुजफ्फरपुर' स्टीमर पर सवार हुए तो गंगातट के धुंधले भोर को अपनी सुनहली किरणों से आलोकित करता हुआ सूरज पूरब में उग चुका था और यात्रियों की चहल-पहल से स्टीमर में जान-सी आ गई थी। करीब सात बजे 'मुजफ्फरपुर' ने लंगर उठाया और बड़े गर्जन-तर्जन के बाद गंगा मैया की जलराशि को चीरता हुआ लगभग आध घण्टे में वह पहलेजा घाट के किनारे आ लगा। पास ही खड़ी हुई रेलगाड़ी में हम सवार हुए और मुजफ्फरपुर के लिए चल दिए। दोपहर होते-होते वहां पहुंचे और गाड़ी से उतरकर अखिल भारत चर्खा-संघ की बिहार-शाखा के मंत्री श्री० लक्ष्मी बाबू के घर गये। आने पर मालूम हुआ कि लक्ष्मी बाबू हमारी अगवानी के लिए स्टेशन गये थे, और संभवतः [illegible] में मुलाकात [illegible]। मिलते ही हम तुरन्त मधुबनी जाने की फिकर में पड़ गये और आखिर [illegible] तीन बजे मधुबनी के लिए रवाना हो गये।

मुजफ्फरपुर से दरभंगा-मधुबनी करीब ७० मील के फासले पर है। हम चाहते थे कि सांझ पड़ने से पहले मधुबनी पहुंच जायं, लेकिन हमने देखा कि रास्ता अधिकतर कच्चा और इतना ऊबड़-खाबड़ था कि उस पर वेग से मोटर चलाना मुश्किल था। फिर भी यह गनीमत थी कि अंधेरा होते-होते हम मधुबनी पहुंच गये, और बड़े मजे से पहुंच गये। रास्ते में थोड़ी-थोड़ी दूर पर दिखाई पड़नेवाले गांवों से और आसपास की हरी-भरी भूमि से हमें इस प्रदेश की घनी आबादी का और इसके उपजाऊपने का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा था। लेकिन जब हमारा ध्यान इन गांवों में बसे हुए लाखों-करोड़ों नर-नारियों की गरीबी और उनकी असहाय अवस्था पर जाता था, तो मन में एक वेदना-सी होती थी और रह-रहकर यह सवाल उठता था कि आखिर इस परेशानी का कारण क्या है? धूप, बारिश और ठण्ड की परवा किये बिना जो लोग लगातार धरती माता की सेवा में रत रहते हैं और इस सेवा में अपने खून का पसीना बहाया करते हैं, उन्हें रहने को अपनी घास-फूस की झोंपड़ी तक न हो, खाने को भरपेट दाना न हो, और पहनने को जरूरत भर कपड़ा न मिले, इससे बढ़कर क्षोभ, शोक और लज्जा की बात भला और क्या हो सकती है? अपनी साठ मील की इस यात्रा में हमने तो रास्ते भर यही देखा कि करीब ८० फी सदी लोगों के बदन पर कुर्ता है, तो धोती पूरी नहीं है, और धोती पूरी है तो कुर्ता नहीं है। [illegible] हाथ अर्ज के छोटे-छोटे गमछे पहने और कन्धेपर एक फटी बिछल चादर ओढ़े ठठ्ठ-के-ठठ्ठ लोग गांवों में विचरते दिखाई देते हैं। छोटी उम्र के बच्चों को तो हमने प्रायः हर जगह नंग-धड़ंग ही देखा। ८-१० वर्ष के बालक भी फटी-पुरानी धोतियों के टुकड़ों का लंगोटा बांधे दिनभर धूप में भटका करते हैं। जूता और टोपी तो किसी बिरले ही देहाती के पास पाई जाती है। बहनों के कपड़ों का तो और भी बुरा हाल है। एक-एक साड़ी में बीस-बीस पैबन्द लगाकर साल-साल तक वे उसे घसीटती रहती हैं, और इन जर्जर वस्त्रों में लिपटी हुई उनकी काया जब सूरज की रोशनी में आती है, तो ऐसी मालूम होती है, मानो जमीन में गड़ी जा रही हो। इन बहनों का यह असह्य अभाव ही उन्हें चौबीसों घण्टे घर की चहारदिवारी के अन्दर बन्द रहने को विवश करता हो, तो कोई आश्चर्य नहीं! मिथिला की ये सीतायें देश के दुर्दैव से आज भी जीवित ही जमीन में गड़ी-सी रहती हैं; और पुराने इतिहास को मानो नित नया-सा बनाये हुए हैं। बाहर के लोग बिहार के भाई-बहनों की उनकी सादगी, सचाई और सरलता के लिए हँसा करते हैं, और उनके भोलेपन पर तरस खाया करते हैं, पर इसमें उनका कोई दोष नहीं है। अगर हम उनकी इस अवस्था की तहतक पहुँचें, तो हँसने के बजाय रो पड़ें, और उतने सहृदय बन जायँ कि फिर कभी किसी का उपहास करने का विचारतक हमारे मन में न आवे। जो लोग युगों से आस्मानी और सुल्तानी आफतों के शिकार रहे हैं, यदि करुणा उनके जीवन में न मिलेगी, तो और कहां मिलेगी? फिर इस करुणा में जो ऊँची मनुष्यता छिपी हुई है, वह इतनी अनमोल है, कि उसके सामने दूसरी सब बातें हेच हैं, नगण्य हैं, और इसी में तो बिहार का गौरव और उसकी सच्ची प्रतिष्ठा निहित है।

इस प्रदेश की गरीबी उसके मनुष्यों को ही नहीं, पशुओं को भी पीड़ा पहुंचा रही है। हाड़-चाम से मढ़े हुए निरे ढांचे भी तो इन ढोरों से अधिक पुष्ट मालूम होते हैं। गोमाता की और उसके जायों की दुर्दशा देखकर तो कलेजा मुंह को आता है। सुबह से लेकर शाम तक सूखे खेतों में से मुंह मारा करती है, फिर भी भूखी ही रहती है और मुश्किल से दिनभर में आधसेर तीन पाव दूध दे पाती है। कई गांवों में तो दूध के दर्शनतक दुर्लभ हैं। अधिकतर तो लोग अब इन ढोरों को इनके गोबर के लिए पालने लगे हैं। पुआल और भूसा मिलाकर वे इस गोबर का जलावन तैयार करते हैं; कुछ खुद जला डालते हैं, और कुछ बेचकर उससे थोड़ी आमदनी कर लेते हैं। जहां गौ की और उसके जायों की इतनी ही कीमत रह गई हो, वहां लोग खान-पान की और अच्छी परवरिश की तो बात ही क्या करें! दूध का तो लोग अब शायद सपना देखना भी भूल गये हैं।

जिस प्रदेश की यह दशा हो, और जहां प्रकृति भी क्रूर बनने में न हिचकिचाती हो, वहां आशा, उत्साह, उमंग, और कर्मण्यता की मात्रा का घट जाना अस्वाभाविक नहीं मालूम होता। मनुष्य को किंकर्तव्यविमूढ़ बनाने के लिए इससे अधिक और चाहिए ही क्या? यह तो ईश्वर की कृपा ही है कि इतना सब होते हुए भी यहां के भाई-बहनों में निराशा और मूढ़ता का उतना संचार नहीं हो पाया, जितना कि अवस्था को देखते हुए हो जाना चाहिए था। और मैं तो इसी में बिहार की युग-युग की पुरानी संस्कृति और उसके सहज स्वभाव की सुन्दर विजय के दर्शन कर सका हूँ और उसके सम्मुख नतमस्तक हुआ हूँ।

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

द्वारकाकी सहायता

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३]

दिल्ली, शुक्रवार, ७ जून, १९३५.

[संख्या १६

विषय-सूची

"पानी-फंड"

हरिजन-बस्तियों में, खासकर गांवों के इलाकों में, पानी का आवश्यक प्रबन्ध करने के लिए हरिजन-सेवक-संघने सन् १९३३ के जून में, 'जे० के० पानी-फंड' स्थापित किया था। यह फंड सेठ जुगलकिशोर बिड़ला के २५०००) के दान से शुरू किया गया था, और तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघ की भिन्न-भिन्न प्रान्तीय शाखाओं में विभक्त कर दिया गया था। पर यह रकम बहुत ही थोड़ी थी, और नये कुँए उसमें इतने कम बन सके कि अब हम देखते हैं कि जो महान् कार्य हमारे सामने है उसे देखते हुए हमारे अबतक के प्रयत्न बहुत ही अपर्याप्त, या यों कहना चाहिए कि, समुद्र में बूंद के समान है।

इसलिए इस कार्य को चलाने के लिए फंड का बढ़ाना जरूरी है। गत २९ दिसम्बर, १९३४ का सेन्ट्रल बोर्ड की दिल्ली में जो बैठक हुई थी, उसमें इस कार्य के निमित्त एक लाख रुपया एकत्र करने का निश्चय हुआ था। तब से संघ के मुख्तलिफ प्रांतीय बोर्डोंने पानी के सम्बन्ध की जांच-पड़ताल की, और ऐसे नकशे तैयार किये, जिनसे यह मालूम हो सके कि कुँए कहां-कहां बनेंगे, और खास-खास जगहों की उन्होंने साधारण रिपोर्टें भी लिखीं। इस प्रकार, इस महत्वपूर्ण ढंग से, हमारे संघने काम शुरू करने के ये आवश्यक उपाय हाथ में लिये हैं। अब मेरा यह कर्तव्य है कि हमारे इस हरिजन-पानी-फंड में उदारतापूर्वक पैसा देने के लिए मैं आम जनता की सेवा में अपील करूँ।

यह तो हम सभी अच्छी तरह जानते हैं कि निजी या सार्वजनिक कुओं पर हरिजनों को अब भी नहीं चढ़ने दिया जाता—रिवाज और अक्सर कानून दोनों ही उनके मार्ग में बाधक बने हुए हैं। मगर इस पर किसी की दो रायें नहीं हो सकती कि सभी हरिजन इन आम कुओं से पानी भरने के इच्छुक हैं। हरिजन-सेवक-संघ के कार्यकर्त्ता या संघ के प्रवर्तक स्वयं महात्मा गांधी हिन्दुओं के हृदय पर अभीतक इतना प्रभाव नहीं डाल सके कि यह महान् अन्याय दूर हो जाय। तो भी मेरा यह विश्वास है कि हमारे स्वभाव को और हमारे विचारों को रूढ़ियोंने जकड़ रखा है सही, पर हमारे हृदय इतने कठोर नहीं हो गये हैं कि वे मनुष्यों के कष्टों पर न पसीज उठें। अगर सवर्ण हिन्दू अपने ही लिए कुएँ रिजर्व रखना चाहते हैं, तो वे हरिजनों के लिए कुओं की आवश्यकता को अस्वीकार नहीं कर सकते। इसलिए मैं हिन्दू-जनता से यह अपील करता हूँ कि वह समय की गति को देखते हुए, जहां इस काम के लिए आर्थिक सहायता की अत्यन्त आवश्यकता हो वहां सहायता देने से न चूके। चाहे जो हो, संघने तो यह निश्चय कर लिया है कि हरिजनों का जलकष्ट दूर करने के लिए वह प्रतिवर्ष घर-घर भिक्षा मांगेगा, और संघ को यह पूरा भरोसा है कि थोड़े ही समय के अन्दर हरिजनों का यह पानी का कठिन कसाला दूर करने में उसे जरूर कामयाबी मिलेगी।

इस फंड का हर प्रकार का दान महात्मा गांधी के पास वर्धा अथवा प्रधान मंत्री, हरिजन-सेवक-संघ, दिल्ली के पते पर भेजा जाय।

घनश्यामदास बिड़ला
अध्यक्ष, ह० से० सं०

साप्ताहिक पत्र

सफाई का काम

इस सप्ताह कोई ऐसी उल्लेखनीय बात नहीं हुई। मेरी अनुपस्थिति में मीरा बहिन और काका साहब इस काम की देखभाल रखते हैं। उन्होंने लिखा है कि पहले जैसी स्थिति थी वैसी ही है। ब्याह-बरातों के कारण हमारा नित्य का काम कुछ बढ़ ही गया है!

इस सप्ताह गुजरात में अपने जिन मित्रों में से मैं मिला उन्हें कुछ ऐसा लगता है कि इस तरह इस सफाई के काम का वर्णन हर सप्ताह 'हरिजन' में देने से कोई लाभ नहीं। इससे एक ओर तो लोगों की जड़ता को प्रोत्साहन मिलता है, उन्हें लगता है कि इस अपराध के करनेवाले एक हमीं नहीं हैं, बल्कि देश के दूसरे भागों में भी यही सब होता है; और दूसरी ओर ग्रामसेवकों को अपने प्रयत्न के नगण्य परिणाम से संतोष हो जाता है, क्योंकि वे देखते हैं कि जहां काका साहब और मीरा बहिन-जैसे प्रतिष्ठित कार्यकर्त्ताओं को बहुत सफलता नहीं मिली, वहां उनकी गिनती ही क्या है? मुझे इस आलोचना की चिंता नहीं। यह तो इस बात का एक नया चिह्न है कि हमारा यह काम कितना कठिन है, और इससे हमें और भी अधिक प्रयत्न करने की जरूरत है। इससे यह भी प्रगट होता है कि देश के अन्य प्रांतों में भी इस प्रकार का काम हो रहा है; इसलिए हमें एक दूसरे के साथ अपने-अपने अनुभव का मिलान करना चाहिए। अल्पसंतोष की जो बात है उसके विषय में तो इतना ही कहा जा सकता है कि सहज ही हताश या अधीर हो जाने की अपेक्षा अल्पसंतोष मान लेना शायद अच्छा है।

सफाई के काम के जो नोट मैं लिख रहा हूँ उनमे प्रत्येक व्यक्ति को इतना तो मालूम होता ही जायगा कि हम बराबर आगे बढने का प्रयत्न कर रहे हैं।

मगनवाड़ी की बातें

इदौर से वापस आने पर हमने मगनवाड़ी में ही हड्डियां जलाने का एक छोटा-सा प्रयोग करके देखा। उसमें हमें सफलता भी मिली, और उन जली हुई हड्डियों को पीसकर हमने उनका खाद बनाया। इस काम में हमें कोई कठिनाई नही पड़ी। इससे अधिक कठिन किंतु शिक्षा की दृष्टि से अधिक महत्व का काम तो मगनवाड़ी में एक मरे हुए बैल की खाल उतारने का था। साधारण रीति से तो इस बैल की लाश वर्धा मे दो मील दूर नालवाड़ी में भेजवा दी जाती, जहा कि हमारा एक छोटा-सा चर्मालय है; पर गांधीजी का यह आग्रह था, कि उसकी खाल उनके सामने ही उतारी जाय, इसलिए हम सब मगनवाड़ी-वासियों को खाल उधेड़ने की वह क्रिया देखने को मिली। इस काम में हमे कोई सफाई या सुघराई मालूम नही हुई। खाल धीरे-धीरे उतारी गई। खाल उतारनेवाला नौसिखिया-सा मालूम होता था। मगर हम सब के लिए तो वह एक अपूर्व अनुभव था। कन्याश्रम की बड़ी उम्र की लड़कियां आज-कल हमारे ही यहां रहती हैं। उन्होने बिना किसी तरह की घिन के इस क्रिया को देखा, और बैल की समस्त शरीर-रचना का ज्ञान बडी उत्सुकता मे प्राप्त किया। चूंकि काम धीरे-धीरे हो रहा था, इसलिए उस बीच में गाधीजीने कई काम कर डाले। एक सज्जन मे भेंट कर डाली, एक लड़की को उसके सिर मुंडाने में मदद दी, क्योंकि वह बाल नहीं रखना चाहती थी, और खुद अपनी हजामत बनाई तथा दूसरे कितने ही काम निबटा डाले। पर जब खाल उतारने का काम खत्म हो चुका और वह आदमी बैल के पेट पर छुरी चलाने लगा, उस वक्त ऐसी भयानक दुर्गन्ध छूटी कि हमलोगों में से कई आदमी तो उसे बर्दाश्त ही नही कर सके। मगर यह काम चाहे जितना अप्रिय हो, तो भी पशुसबंधी अर्थशास्त्र में वह एक महत्त्व का काम है, इसलिए उसे किये बिना हमारा काम चल ही नहीं सकता। जब हममें से कुछ आदमी नाक को रूमाल से दबाये खड़े थे, उस वक्त एक आश्रमवासी और उसकी पत्नी, जो दोनों ही इस काम में अभ्यस्त हो गये हैं, उस चमार के लड़के का काम बड़े गौर से देख रहे थे और उसे छुरी चलाने की क्रिया भी बतलाते जाते थे। यह सज्जन जाति के ब्राह्मण हैं और ग्रेज्युएट हैं।

धनियों का प्रश्न

पीअर सेरेसोल और जो विल्किन्सन को २३ जून को यूरोप जाना था, इसलिए वर्धा से बंबईतक वे हमारे साथ ही आये। वर्धा में सेरेसोलने एक ऐसी पुस्तक पढी थी, जिसमें कम्यूनिस्ट लेखकने अहिंसा-सिद्धात की आलोचना की थी। सेरेसोलने कहा, "मुझे इस आलोचना की पर्वा नहीं। लेखक की कुछ दलीलों के साथ तो मैं भी सहमत हूं। पर यह बात किसी तरह मेरी समझ मे नही आरही है कि ये साम्यवादी लोग बिल्कुल ही असत्य और सत्य के अंगभंग रूप को पेश करके अपनी स्थिति के समर्थन करने का प्रयत्न आखिर किसलिए कर रहे है। मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि इस पुस्तक में निरा असत्य-ही-असत्य भरा हुआ है। गांधी-सिद्धांत के फलस्वरूप पूंजीवाद के साथ एक बुरी तरह का समझौता करना पडता है—यह कहकर सतोष मानने के बजाय यह आदमी कहता क्या है कि गांधी गरीब लोगों के साथ प्रेमभाव दिखानें का ढोंग रचता है, और धनिकों के प्रति उसका जो सच्चा प्रेम है उसे वह इस ढोग के ढक्कन मे ढांके रहता है, और इस तरह पूंजीवाद को टिकाये हुए है! पूंजीवाद और पूंजीपतियो के साथ हमारा क्या संबध है इस विषय की शकाए तो मेरे मन में भी भरी हुई हैं। मगर यह असत्य तो मेरी समझ में आ ही नही सकता।" रेल में सेरेसोलने अपनी इस विषय की कुछ शंकाओ को गांधीजी के आगे खूब सोच-विचारकर रखा।

"धनिकों के लिए उनके रहन-सहन का कोई नियम क्या हम निश्चित कर सकते है? अर्थात्, क्या यह निश्चित किया जा सकता है कि धनियो का अधिकार कितने धन पर है और कितने पर नही?"

गांधीजीने मुस्कराते हुए कहा, "हा, यह निश्चित किया जा सकता है। धनी मनुष्य अपने खर्च के लिए ५ प्रतिशत धन या १० प्रतिशत, अथवा १५ प्रतिशत ले सकता है।"

"पर ८५ प्रतिशत नहीं?"

"मैं तो २५ प्रतिशत तक जाने का विचार कर रहा था। पर ८५ प्रतिशत तो एक लुटेरे को भी नही लेना चाहिए!"

सेरेसोल की असल कठिनाई यह थी कि धनियों के गले यह बात उतारने के लिए हमें कबतक राह देखनी चाहिए।

गांधीजीने कहा, "यही साम्यवादियो के साथ मेरा मतभेद है। हमें यह हमेशा याद रखना चाहिए कि एक दिन हम लोग भी धनियों की जैसी ही स्थिति मे थे। हमें अपनी सम्पत्ति का त्याग करना आसान नही मालूम पड़ता था, हमने जिस तरह अपने प्रति धीरज रखा, उसी तरह दूसरो के प्रति भी रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त, मुझे यह मान लेने का कोई हक नहीं, कि मैं सच्चा हूँ और वह झूठा। जबतक मैं उसके गले अपनी बात नहीं बतार सकता, जबतक मुझे राह देखनी ही चाहिए। इस बीच में अगर वह कहे कि 'मैं २५ प्रतिशत अपने लिए रखकर बाकी का ७५ प्रतिशत परोपकारी कामो मे लगाने को तैयार हूँ', तो मैं उसकी बात मान लूगा। क्योंकि मैं जानता हूँ कि संगीन के भय से दिये हुए १०० फी सदी धन से स्वेच्छापूर्वक दिया हुआ ७५ फी सदी का यह दान कहीं अच्छा है। अहिंसा का अंचल तो हम दोनों को ही पकड़े रहना चाहिए।

इस पर शायद आप यह कहें कि जो मनुष्य आज बलात्कार से अपना धन सुपुर्द कर देता है वह कल अपनी इच्छा से इस स्थिति को कबूल कर लेगा। यह संभावना मुझे बहुत दूर की मालूम देती है, और इस पर मैं अधिक निर्भर नही करता। इतनी बात पक्की है कि यदि मैं आज हिंसा का उपयोग करता हूँ तो कल निश्चय ही मुझे भारी हिंसा का सामना करना पड़ेगा। अहिंसा को अगर हम नियम बना लेते हैं तो इसमें संदेह नहीं कि जीवन में हमें अनेक समझौते करने पड़ेगे। किंतु अनंत अखड कलह की अपेक्षा यह स्थिति अच्छी है।"

धनाढ्य मनुष्य की न्याय्य स्थिति का वर्णन एक शब्द मे आप किस प्रकार करेंगे?"

"वह ट्रस्टी है। मै ऐसे कितने ही मित्रों को जानता हूँ जो गरीबों के लिए पैसा कमाते और खर्चते है, और अपने को अपनी संपत्ति का स्वामी नहीं, किन्तु ट्रस्टी मानते हैं।"

"मेरे भी कुछ अमीर और गरीब मित्र है । मै खुद अपने पास कोई संपत्ति नहीं रखता, पर मेरे धनी मित्र जो धन मुझे देते हैं, उसे मैं स्वीकार कर लेता हू । इस बात को मै किस तरह न्यायसंगत मानू ?"

"आप खुद अपने लिए कुछ भी स्वीकार न करें । सैर-सपाटे की गर्ज से स्विट्जरलैण्ड जाने के लिए आप चेक स्वीकार न करें, पर हरिजनो के निमित्त कुएँ या स्कूल अथवा औषधालय बनवाने के लिए आप उनके लाख रुपये भी स्वीकार करलें । स्वार्थ की भावना उडादी कि यह प्रश्न सहज ही हल हो गया ।"

"पर मेरा निजी खर्च कैसे चलेगा ?"

"आपको इस सिद्धान्त के अनुसार चलना होगा कि हरेक मजदूर को उसकी मजदूरी मिलनी चाहिए । आपको अपनी कम-से-कम मजदूरी लेने में कोई सकोच नही होना चाहिए । हम सब यही तो करते है । भणसाली की मजदूरी केवल गेहूँ का आटा और नीम की पत्तियां है । हम सब भणसाली तो नहीं हो सकते, मगर वे जैसी जिन्दगी बसर कर रहे है उसके नजदीक पहुँचने का प्रयत्न तो हम कर सकते हैं । मैं अपनी आजीविका प्राप्त होने पर सन्तोष मान लूगा, पर मैं किसी धनी आदमी से यह सिफारिश नहीं कर सकता कि वह मेरे लडके को अपने यहा किसी अच्छी-सी जगह पर रखले । मुझे तो इतनी ही चिन्ता रखने की जरूरत है कि जबतक मै समाज-सेवा करता रहूँ तबतक यह शरीर टिका रहे ।"

"किन्तु जबतक मै किसी धनवान के यहा से अपने निर्वाह का खर्च लेता हूँ तबतक निरन्तर उससे यह कहते रहना क्या मेरा कर्तव्य नही है कि 'यह बात नही कि तुम्हारी जो स्थिति है उसकी किसी को ईर्ष्या न होती हो; और तुम्हारी आजीविका पर जितना खर्च होता है उसे छोडकर बाकी की सम्पत्ति पर से तुम्हे अपना स्वामित्व उठा लेना चाहिए ?"

"हा, अवश्य, ऐसा कहने का आपका कर्तव्य है ।"

"पर ये धनी मनुष्य भी सब एक समान थोडे ही होते है ? उनमे से कुछेक तो शराब के व्यापार से मालामाल बन जाते है ।"

"हा, भेद आप अवश्य करे । आप खुद कलवार का पैसा न ले, पर आपने अगर किसी सेवा-कार्य के अर्थ धन की अपील निकाली हो तो आप क्या करेंगे ? लोगो से क्या आप यह कहते फिरेगे कि जिन्होने न्याय-पथ पर चलकर पैसा कमाया हो केवल वही इस फण्ड में दें ? मै तो इस शर्त पर जरा भी पैसा मिलने की आशा रखने के बजाय अपील को ही वापस ले लेना पसन्द करूँगा । यह निर्णय करनेवाला कौन है कि अमुक मनुष्य धर्मवान है और अमुक अधर्मी । और यह धर्म भी तो एक सापेक्ष वस्तु है । हम अपने ही दिल मे पूछे तो यह पता चलेगा कि हम अपने तमाम जीवन में धर्म या न्याय का अनुकरण करके नही चले । गीता मे कहा है कि सब का एक ही लेखा है; इसलिए दूसरो के गुण-दोष देखते फिरने के बजाय दुनिया मे अलिप्त बनकर रहो । अहभाव का नाश ही सच्चा जीवन-रहस्य है ।"

सेरेसोलने कहा, "ठीक, मै समझता हूँ" और थोडी देर वे शांत रहे । फिर आह भरकर उन्होंने कहा, "पर कितनी ही बार स्थिति अत्यंत क्लेशकर मालूम होती है । बिहार में मैं कुछ ऐसे आदमियों से मिला हूं, जो दो आने से भी कम, और कभी-कभी तो एक आने से भी कम की मजूरी के लिए सबेरे से लेकर शाम तक जीतोड़ परिश्रम करते हैं । उन लोगोंने मुझ से अक्सर कहा कि ये अमीर आदमी आज अन्याय का पैसा जोड़-जोड़कर खूब मौज उडा रहे है, क्या अच्छा हो कि उनसे यह पैसा छीन लिया जाय ! मैं यह सुनकर अवाक् हो जाता और आपकी याद दिलाकर मै उनका मुहँ बंद कर दिया करता था ।"

सेरेसोल की सभी शकाओ का समाधान तो हुआ नहीं था । तमाम दिन काम करने के बाद गाधीजी को मारे थकान के नींद आ रही थी, नहीं तो सेरेसोल की बातों का सिलसिला जारी ही रहता । पर उन्होने अपनी मनोदशा को जिस वेदना के साथ आगे रखा, और इस प्रश्न की चर्चा करते हुए उनके चेहरे पर जो विषाद की रेखा दिखाई देती थी, उसे देखकर ऐसा लगता था, कि यह हो नही सकता कि अन्याय की ऐसी-ऐसी बातें सुनकर किसी के अंतर को चोट न पहुँचे । उन्हें इतना तो प्रगट हो ही गया कि यह प्रश्न अंत मे अहिंसा का बन जाता है, और तब यह सवाल हमारे सामने आजाता है कि अहिंसा के पालन में हम कहांतक आगे बढने को तैयार हैं ।

'निर्बल के बल राम'

श्रीमती कमला नेहरू को डाक्टरो की सलाह से २३ जून को यूरोप के लिए रवाना होना था; और उनसे मिलने के लिए ही गाधीजी बबई आये थे । गाधीजी को इधर कई महीनो मे उनकी तबीयत के बारे मे चिंताजनक खबरे मिल रही थी, और अगर उनसे हो सकता तो वे कमलाजी को देखने इलाहाबाद जाते । पर इसी बीच मे सरदार वल्लभ भाईने उन्हे बोरसद बुलाया । इसलिए गाधीजीने यह सोचा कि बोरसद जाते हुए बबई में श्रीमती कमला नेहरू से मिल लिया जाय । गाधीजी की उनके साथ बहुत देरतक बाते हुई, और इससे उनकी बहुत कुछ चिंता दूर हो गई । इस लबी बातचीत का निचोड उनके इस एक ही वाक्य मे आ जाता है कि, "ईश्वर पर उनकी अब पूर्ण श्रद्धा जम गई है, और उन्होंने अपनी सारी चिता ईश्वर पर छोड दी है ।" एक समय ऐसा था, जब ईश्वर पर उनकी दृढ आस्था नहीं थी । श्रीमती कमला नेहरू को शारीरिक तथा मानसिक कष्ट कुछ कम नही भोगना पडा । पति को जेल मे छोडकर यूरोप जाने में उन्हे क्या कुछ आनद हो सकता था ? तो भी उन्होंने दृढतापूर्वक अपनी सारी चिता भगवान् के हवाले कर दी है ।

श्रीमती कमला नेहरू के पास से यही सदेश लेकर वे उसदिन प्रार्थना सभा में गये । यह सभा बंबई के कांग्रेस-भवन में हुई थी । बबई के हमारे मित्र तो एक सार्वजनिक सभा का आयोजन करने के लिए अधीर होरहे थे; पर चूंकि गाधीजी की किसी ऐसी सभामें भाषण करने की इच्छा नहीं थी, इसलिए उन लोगोंने सार्वजनिक सभा के बजाय जब प्रार्थना-सभा की तजवीज रखी, तो गाधीजीने उनकी इस बात को सहर्ष स्वीकार कर लिया । कांग्रेस-भवन के हाते मे जब गांधीजी पहुँचे और वहा एक ऊँचे मच पर बैठे तो उन्होने देखा कि हजारो स्त्री-पुरुष तमाम हाते मे और सड़को पर, और मकानो की छतो, छज्जो और चबूतरों पर बड़ी शांति से प्रार्थना मे सम्मिलित होने और उनके एक-दो शब्द सुनने के लिए उत्सुक बैठे है । ऐसा लगता था कि वह समस्त वातावरण गाधीजी का संदेश सुनने के लिए हृदय से उद्यत है । गाधीजी ध्वनि-वर्द्धक यंत्र से बोल रहे थे, इसलिए उनका प्रत्येक शब्द लोगोको साफ-साफ सुनाई दिया, और अत में जब गीता के

[१२८ वें पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ७ जून, १९३५

दवादारू की सहायता

अखिल भारतीय ग्रामउद्योग-संघ की प्रवृत्ति का श्रीगणेश होते ही हमारे बहुत-से कार्यकर्त्ताओंने गावों मे दवाइया बांटने के काम को अपना एकमात्र नहीं तो मुख्य कार्यक्रम तो बना ही लिया है । गावों के लोगों को एलोपैथी, आयुर्वेद और यूनानी अथवा होमियोपैथी की दवाइया मुफ्त देने की यह प्रवृत्ति है । इन दवाइयों के विक्रेताओं के पास हमारे ग्रामसेवक थोड़ी-बहुत दवाइया लेने जायँगे, तो वे इतना उपकार खुशी से कर देंगे । उसमें उन दवा बेचनेवालों को कोई नुकसान तो होगा नहीं, बल्कि इस दान को वे स्वार्थ की दृष्टि से देखें तो संभव है कि इसमें उन्हें ग्राहक अधिक मिल जायं । बेचारे रोगियों को इन हितचिन्तकों किन्तु नीमहकीमों या जरूरत से ज्यादा उत्साही ग्रामसेवकों का शिकार होना पड़ता है । तीन-चौथाई से ऊपर ये दवाइया सिर्फ निरुपयोगी ही नहीं होतीं, बल्कि उनके शरीर के अंदर जाने से प्रत्यक्ष रीति से नहीं तो परोक्ष रीति से वे हानि भी पहुँचाती हैं । यदि रोगियों को इन दवाइयों से कुछ अस्थायी आराम पहुचता है, तो गावों में ऐसी जड़ी-बूटियों की औषधिया तो मिल ही जाती हैं जो वैसा ही काम दे सकती हैं ।

पश्चिम के डाक्टर धीरे-धीरे मगर निश्चित रूप से इस बात को समझते जा रहे हैं कि वे जितनी ही कम दवाइया देंगे उतना ही अधिक फायदा रोगियों को पहुँचेगा । वहां के अच्छे-से-अच्छे डाक्टर अपने मरीज को उस अज्ञान में नहीं रखते कि उसे उन्होंने क्या दवा दी है । अनेक डाक्टर तो दुनिया भर की दवाइया देने के बजाय अपने मरीजों को अब थोड़ी-सी ऐसी सादी दवाई देते हैं, जो फायदा न करे तो नुकसान भी नहीं करती। अच्छे-से-अच्छा इलाज उनका यह होता है कि वे रोगी को धीरज बँधाते हैं, उसका डर दूर करते हैं, और उनका यह आग्रह रहता है कि उसकी अच्छी तरह सेवा-शुश्रूषा हो और उसके आहार में यथोचित फेरफार कर दिया जाय । यह धारणा उनकी अब दिन-पर-दिन दृढ़ होती चली जारही है कि बढ़िया-से-बढ़िया वैद्य तो एक प्रकृति ही है ।

इसलिए ग्राम-उद्योग-संघने इस प्रकार की डाक्टरी सहायता देने का तो विचार ही नहीं रखा । आरोग्यता और कमखर्ची के संबंध में लोगों को शिक्षा देने की ओर ही वह अपना ध्यान रखेगा । इन दोनों चीजों का क्या एक दूसरे के साथ संबंध नहीं है ? करोड़ों मनुष्यों के लिए स्वास्थ्य का अर्थ क्या संपत्ति नहीं है ? उनके धनोपार्जन का मुख्य साधन उनकी बुद्धि नहीं किन्तु उनका शरीर है । इसलिए ग्रामउद्योग-संघ लोगों को यह सिखाने का प्रयत्न करेगा कि बीमारियां किस तरह रोकी जा सकती हैं । इसे तो सभी लोग भलीभांति जानते हैं कि करोड़ों मनुष्यों के आहार में पौष्टिकतत्त्व की कमी रहती है । जो कुछ वे खाते हैं वह उनकी देह में नहीं लगता । गांवों की सफाई की हालत भी बहुत खराब है। इसलिए अगर ये दोष दूर हो सकें और लोग स्वच्छता के सरल नियमों को पालने लग जायँ तो जिन रोगों से वे आज पीड़ित रहते हैं उनमें से बहुत-कुछ रोग तो बिना किसी अधिक प्रयत्न के या बिना पैसा-टका खर्च किये दूर हो सकते हैं । इसलिए औषधालयों के खोलने का संघ का विचार ही नहीं है । गावों में ही क्या-क्या दवाइया मिल सकती हैं इस की खोज-बीन बराबर हो रही है । सतीशबाबू की सस्ती दवाइया इस दिशा में एक प्रयत्न हैं । ये दवाइया यद्यपि अत्यंत सादी हैं, तो भी सतीशबाबू इस बात के प्रयोग बराबर कर रहे हैं कि इन दवाइयों का असर तो वही बना रहे, पर उनकी संख्या में काफी कमी हो जाय । सतीशबाबू बाजार की दवाइयों का अध्ययन और उसी प्रकार की अंग्रेजी दवाइयों के साथ उनका मिलान कर रहे हैं । इस सब के मूल में सीधे-सादे ग्रामवासियों को इन अजीब-अजीब गोलियों और अर्कों या काढ़ों के भय से छुड़ाने का ही उनका उद्देश है ।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

[१२७ वें पृष्ठ से आगे]

श्लोकों का पाठ हुआ और सूरदासजी का 'सुने री, मैंने निर्बल के बल राम' यह भजन गाया गया, तो लोगोंने बड़ी शांति के साथ प्रार्थना में भाग लिया । गांधीजी के उस प्रार्थनाकालिक संदेश का सारांश यह है —

"आप लोगों को आश्चर्य होगा कि जब कि अनेक मनुष्यों के लिए ईश्वर का अस्तित्व भी संदेह का विषय हो रहा है, तब मैंने बंबई में प्रार्थना की सभा करने के लिए क्यों हामी भर दी ! ऐसे भी लोग है, जिनका यह कहना है कि, 'अगर ईश्वर का हरेक के हृदय में वास है, तो फिर कौन किसकी प्रार्थना करे, और कौन किसका नाम-स्मरण ?' मैं यहां इन विचित्र-विचित्र दिमागी पहेलियों को सुलझाने नहीं आया हूं । मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि मेरे बचपन से ही यह प्रार्थना मुझे ढाढ़स और बल प्रदान करती आ रही है ।

मुझ से लोग कहते हैं कि जब से जेल जाने की मनाही कर दी गई तब से सर्वत्र निराशा-ही-निराशा छा गई है और सब के दिल गिर गये हैं । मैंने सुना है कि लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं । न जाने क्यों उन्हें अपना कर्तव्य नहीं सूझ रहा है, जब कि पूरा रचनात्मक कार्यक्रम उनके सामने रखा हुआ है । जब जेल जाने का कार्यक्रम चल रहा था, तब दंभ, बलात्कार और हिंसा के लिए स्थान था । मौजूदा रचनात्मक कार्यक्रम में ये चीजें आती ही नहीं । और न इसमें हताश होने का ही कोई कारण है । फिर भी लोग संशय-ग्रस्त और हताश हो रहे हैं । ऐसे लोगों के लिए ईश्वर का नाम ही सहारा है । प्रभु का यह बाना है कि जो भी अपने को निर्बल और असहाय समझकर उसकी शरण में जाता है, उसकी तमाम निर्बलता को वह हर लेता है । भक्त सूरदासने यही तो गाया है कि 'सुने री मैंने निर्बल के बल राम' । यह बल अस्त्र-शस्त्रों से या उसी प्रकार के अन्य साधनों से प्राप्त होने का नहीं । यह बल तो उस अशरण-शरण राम के नामस्मरण में सर्वतोभावेन तन्मय हो जाने से ही प्राप्त हो सकता है । रामनाम तो भगवान् का केवल एक प्रतीक है । उसे आप 'गॉड' या 'अल्लाह' या जिस नाम से पुकारना चाहें पुकार सकते हैं । उसी क्षण आप में शक्ति आ जायगी, आपकी सारी निराशा दूर हो जायगी, जब आप सर्वाश्रय छोड़कर एक ईश्वर का ही आश्रय गह लेंगे । सूरदास के इस भजन में जो यह आया है कि—'जबलगि गजबल अपनो बरत्यो नैक सरयो नहिं काम, निर्बल ह्वै बल राम पुकारयो आये आधे नाम'—उसपर आप

मनन कीजिए। आपको यह तो मालूम ही होगा, कि गजेन्द्र को जब ग्राहने ग्रस लिया, तब पैर छुड़ाने का उसने बहुतेरा जतन किया, पर सब बेकार गया। सिर्फ सूंडभर गजेन्द्र की जल के ऊपर निकली हुई थी। उसने अंत में अपने को सर्वथा निर्बल निस्सहाय पाकर ज्यों ही हरि का नामस्मरण किया, त्यों ही भगवान्ने उसका फंदा काट दिया। गजेन्द्र-मोक्ष तो एक रूपकमात्र है। पर इसके अंदर एक महान सत्य छिपा हुआ है। मैंने अपने जीवन में बार-बार उस सत्य का अनुभव किया है। घोर से भी घोर निराशा के समय, जब इस दुनिया में न तो कोई हमारा सहायक दीखता है और न कोई सहारा, तब भगवान् का अमोघ नाम ही हमें बल और स्फूर्ति प्रदान करता है और हमारे तमाम संशय तथा निराशा को एक क्षण में दूर कर देता है। हो सकता है कि आज निराशा की काली-काली घटाएँ घिरी दिखाई देती हों, पर उन्हें छिन्न-भिन्न कर देने के लिए हमारे अन्तस्तल से निकली हुई प्रार्थना काफी है। इस प्रार्थना की ही बदौलत मैंने अपने जीवन में निराशा-जैसी चीज को कभी जाना ही नहीं। यद्यपि आज मैं कांग्रेस से अलग हो गया हूँ, तो भी मैं सब देखता हूँ, सब सुनता हूँ। मेरे चारों ओर जो कुछ हो रहा है उस सब का मुझे पता है, और अगर यह सब देख-सुनकर किसी मनुष्य को निराशा हो सकती है, तो वह मुझे ही होनी चाहिए। लेकिन निराशा तो मैंने कभी जानी ही नहीं। तब फिर आप लोग क्यों निराश हो रहे हैं? भगवान् से आज हम यह प्रार्थना करें कि वह हमारे हृदय से क्षुद्रता, नीचता और कायरता को दूर करे। निश्चय ही वह हमारी इस प्रार्थना को सुनेगा। मैं जानता हूँ कि अनेकों को इस प्रार्थना के सहारे निश्चय ही बल मिला है।

स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। जबतक हम उस अधिकार को खुद-ही नहीं छोड़ देंगे, तबतक हमारे हाथसे उसे कौन छीन सकता है? हमने अपने उस जन्मसिद्ध अधिकार को छोड़ दिया है और हमें उसे आज फिरसे प्राप्त करना है। स्वराज महज जेल जाने पर निर्भर नहीं करता। अगर ऐसा होता, तो आज भी तो हजारों कैदी जेल में पड़े हुए हैं। वह तो प्रत्येक मनुष्य के अपने कार्य पर निर्भर करता है। उस कार्य की दिशा आपको बतला दी गई है। गावों में जाकर अपना डेरा जमाइए, ग्रामवासियों की ही तरह वहां रहिए, हरिजनों को अपनाइए, और हिंदू-मुस्लिम-ऐक्य को वास्तविक रूप दीजिए। देशमें जो हिंदू-मुस्लिम दंगे होरहे हैं उनसे आप हर्गिज हताश न हों, आप तो अपना निर्धारित कार्य करते चले जाइए, और यह यकीन रखिए कि वह तारनहार प्रभु निश्चय ही आपकी नैया को पार लगा देगा।"

'हरिजन' से] **महादेव ह० देशाई**

टिप्पणियाँ

बिहार भी रेगिस्तान ?

पूर्णिया (बिहार) से श्री रामेश्वरप्रसादसिंहजी लिखते हैं —

"गत एप्रिल मास में हम लोग सफाई का काम करने धरहरा गांव गये थे। वहां डोम लोगों के केवल दो घर हैं। जब हम उनके मकानों के इर्द-गिर्द पड़ा हुआ मैला व कचरा उठाने लगे तो हमारे साथ वे सब स्त्री-पुरुष सफाई के काम में जुट गये। उनके कपड़ों और शरीर से बदबू निकल रही थी। हमने उनसे पूछा, 'तुम लोग सफाई से क्यों नहीं रहते?' उन्होंने कहा, 'बाबू, सफाई तो पानी से होती है। हमने डेढ़ महीने से स्नान नहीं किया। जब नहाने की इच्छा होती है, तब यहां से एक मील दूर एक गड्ढे में किसी तरह नहा-धो लेते हैं। कपड़े कहां साफ करें?' एक डोम बहिन बिलख-बिलखकर कहने लगी, 'घंटों खड़ी रहती हूं, तब कहीं एक-दो बाल्टी पानी मिल पाता है।' रिलीफ के कुएँ पर भी लोग इन्हें पानी नहीं भरने देते।"

तो हरिजनों के लिए बिहार की हरी-भरी भूमि भी रेगिस्तान ही हुई! हम किस मुंह से यह कहते हैं कि ये लोग गंदे रहते हैं, इसीलिए उन्हें छूत हुए सूग लगती है? एक तरफ उन्हें कुओं पर चढ़ने नहीं देना, दूसरी तरफ उन्हें साफ स्वच्छ देखना चाहते हैं, यह एक निर्दयता से भरी हुई पहेली नहीं तो क्या है? भूतमात्र को 'वासुदेवरूप' समझनेवाला यह अत्यन्त उदार हिंदूधर्म आज कैसा विकृत हो गया है! **वि० ह०**

लाख गज़ सूत

मराठी मध्यप्रान्त के हरिजन-सेवक-संघ के मंत्री श्री ई० एस० पटवर्धन लिखते हैं —

"सादिया तहसील के अन्तर्गत सवनी की हरिजन पाठशाला के विद्यार्थियोंने एक लाख गज सूत काता, और उस सूत की १०० गज खादी बनवाई गई। 'वस्त्र-स्वावलम्बन' का प्रयोग पवनिया के हरिजनों में भी हम लोग कर रहे हैं।"

अन्य प्रान्तों के हरिजन-सेवकों के लिए श्री पटवर्धन का यह वस्त्रस्वावलंबन संबंधी प्रयास अनुकरण करने योग्य है। महाराष्ट्र प्रांतिक हरिजन-सेवक-संघने सुधागड़ ताल्लुका में कताई का काम शुरू कर दिया है। मार्च के महीने में वहां के हरिजनोंने २५०० गज सूत काता। राजपूताने के संघने भी कताई को अपने शिक्षा-क्रम में महत्व का स्थान दे रखा है। **वि० ह०**

प्यासों के मुहँ मे पानी डालिए

अखिल भारतीय हरिजन-सेवक-संघ के प्रमुख श्री घनश्याम-दास बिड़लाने 'हरिजन-पानी-फंड' की एक अपील निकाली है, जिसे पाठक ध्यान से पढ़ेंगे ऐसी आशा है। इसके पूर्व 'एक लाख रुपया चाहिए' शीर्षक गांधीजी का भी एक लेख प्रकाशित हो चुका है। हमारे प्रान्तीय संघोंने भी इस संबंध की मार्मिक अपीलें निकाली हैं। इन सब अपीलों को देखकर शायद ही किसी को अब इस बात में संदेह रह कि हरिजनों के लिए पानी की कितनी बड़ी आवश्यकता है, और यह प्रश्न वास्तव में कितने बड़े महत्व का है। मैंने ऊपर 'शायद' का प्रयोग इसलिए किया है कि अवश्य ऐसे कुछ लोग होंगे और हैं, जो पानी के इस प्रश्न पर कभी सोचते ही नहीं, और न उन्हें सोचने की जरूरत ही पड़ती है। मध्य भारत के एक देशी राज्य में मुझसे एक सज्जनने कहा था कि यह पानी-वानी का सवाल तो आप लोगोंने फिजूल ही छेड़ दिया है, पानी-जैसी चीज तो सभी को मिल जाती है—एक दिन भी कोई प्यासा नहीं रहता। उनके बंगले के रमणीय उद्यान में तीन-चार सुंदर फव्वारे चलते रहते हैं, [और मखमल-सी मुलायम हरी-हरी घास का सैकड़ों गैलन पानी से खूब अभिषेक होता रहता है। हरिजनों को एक घड़ा पानी भी बड़ी मुश्किल से मिलता है इस बात की वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। इसी प्रकार एक धनिक सनातनी सज्जनने यह दलील देकर संतोष मान लिया कि—'कौन हम सनातनियों को कठोरहृदय कहता है—हम लोग त्रिकाल संध्या करते

हैं, और जानते हो कि सन्ध्या करते समय हम इन अछूत चांडालो को ही नहीं, जीवमात्र को जलांजलि देकर नित्य ही परितृप्त करते रहते हैं ?' मेरे 'शायद' के दायरे में ऐसे विचित्र विचार के लोग भी आ सकते हैं। मगर पानी के प्रश्न को उपेक्षा की दृष्टि से देखनेवाले दुर्भाग्य से ऐसे बहुत ही कम लोग निकलेंगे। इस प्रश्न के महत्व को तो प्राय सभी स्वीकार करते हैं।

मगर सवर्ण हिंदू हरिजनो को निजी या सार्वजनिक कुओं से पानी नहीं भरने देते, यह बात तो अभी है ही। प्रथा और कहीं-कहीं कानून इस अन्याय को अभी टिकाये हुए है। संघ का मुख्य लक्ष्य अस्पृश्यता का खात्मा कर देना है, अत स्वभावत. वह यह चाहेगा कि सवर्ण और हरिजन एक ही कुएं पर बिना किसी भेद-भाव के पानी भरें। पर अभी इस स्वप्न को संघ वास्तविक रूप नहीं दे सका। कार्यकर्ताओं की तपस्या की यह कमी ही है, जो अभीतक सवर्ण भाइयों के हृदय को वे पिघला नहीं सके। अब सवाल यह उठता है कि जबतक कुएं नहीं खुल जाते, तबतक हरिजन क्या प्यासे ही तड़पते रहें ? मनुष्यता तो कदापि इस प्रकार के निष्ठुर धैर्य को कबूल नहीं कर सकती।

पानी के मामले की कहानी कौन कहने बैठे ? बड़ी लंबी कहानी है, और ठीक-ठीक कही भी तो नहीं जा सकती। कहां-कहां की बात कही जाय ? राजपूताने की ही बात लीजिए। हरिजनो को वहां अनेक स्थानों पर 'खलों' का पानी पीना पड़ता है। 'खल' राजस्थानी बोली में उस लंबे और नीचे हौज को कहते हैं, जो प्रत्येक बड़े कुएं के साथ बना होता है। इस खल में ढोर पानी पीते हैं, रजस्वला स्त्रियां कपड़े धोती हैं, और अपढ़ आदमी आबदस्त भी लेते हैं! वही पानी मेहतर भाइयों को लाचार हो कर पीना पड़ता है! कहीं-कहीं दयालु सवर्ण हिंदू इन मेहतरों को अन्न की तरह ऊपर से पानी की भी भिक्षा डाल देते हैं। पूज्य ठक्कर बापा को, उनके काठियावाड़ के प्रवास के सिलसिले में, हरिजनोंने जब अपनी यह दिल दहला देनेवाली करुण-कहानी सुनाई तो उनका हृदय रो उठा—"बापा, क्या करें, पीने के पानी की हमें चोरीतक करनी पड़ती है। पकड़े जाने पर हमारी औरतो पर पत्थरों की मार पड़ती है मटके-बासन फोड़ डाले जाते हैं। क्या पूछते हो कि हम कहां का पानी पीते हैं ! जहां स्त्रियां अपने बच्चों की पतरियां (मल-मूत्रभरे कपड़े-लत्ते) धोती हैं, या गाये भैंसे लोर-लोरकर जहां चहला मचा देती हैं, ऐसी तलैयों के मटमैले गंदले पानी से हमें अपना काम चलाना पड़ता है। ढोरों की हौदियों के कीड़े पड़े हुए पानी को पीकर हमें गुजारा करना पड़ता है। और कहीं-कहीं तो यह हौदियों का भी पानी मुफ्त नहीं मिलता; हमें घर पीछे एक रुपया साल चरसा चलानेवाले को देना पड़ता है।" यह एक रुपया साल तो फिर भी सस्ता है। झांसी की एक बस्ती में मैंने पूछा तो मालूम हुआ कि वहां तो एक मशक का एक रुपया माहवार भिश्ती को देना पड़ता है ! और झांसी में कुएं भी हैं, नल भी हैं। नलों पर भी पानी भरने की उन्हें मनाही है। सिंध प्रांत का 'थर' भाग रेगिस्तान ही ठहरा। वहां तो पानी का सभी को कष्ट है, पर हरिजनो को तो सब से ज्यादा तकलीफ है। प्रो० मलकानी अपने एक लेख में लिखते हैं, "अगर किसी बरसाती पोखरे में पानी भरा हुआ हो तो उसमें से पहले और लोग भरेंगे, हरिजनों को तो अपने घड़े लिये हुए घटों खड़ा रहना पड़ेगा। मैंने अपनी आंखों से भैंसों को इन गंदे पोखरों में लोरते हुए देखा है। गधे और ऊंट भी वही पानी पीते हैं। पर बेचारे हरिजन तो ऊंट, भैंस और गधे से भी गये-बीते हैं। इन बदबूदार गढ़ों से भी वे सब के साथ अपने घड़े नहीं भर सकते।"

हरिजनों के लिए तो सर्वत्र ही रेगिस्तान है। गर्मी के दिनों में तो उनके कष्ट का कुछ पार ही नहीं रहता। गांवों में तो बेचारों का और भी मरण है। अज्ञानजनित अस्पृश्यता का अखंड राज्य गांवों में ही तो है। एक-एक दो-दो मील भभूवर (गर्म बालू) में चलकर नालों से, पोखरों से, गड़ैयों से पानी भर लाते हैं। स्वच्छ मीठा पानी तो बेचारों को कभी नसीब ही नहीं होता।

यह दशा उस धर्मप्राण देश की है, जहां लोग चींटियों को आटा और शक्कर चुनाते हैं, मछलियों को रामनाम की गोलियां बना-बनाकर खिलाते हैं, और जगह-जगह पर पौसरे या प्याऊ रखाते हैं ! प्याऊ पर भी हरिजनो के साथ भेद-भाव बरता जाता है। सब से पीछे उन्हें पानी पीने को मिलता है, और वह भी टीन की एक गंदी टोंटी के जरिये !

इस दशा में हरिजनों के लिए अलग कुएं बनवाने की सख्त जरूरत है। वे दिन दूर नहीं, जब संघ के बनवाये हुए इन कुओं में हरिजनों के साथ एक ही घाट पर सवर्ण हिंदू भी पानी भरेंगे। संघ हरिजनों के लिए मंदिर अलग नहीं बनवायगा, पर कुओं का प्रश्न तो भिन्न ही है। यह तो तात्कालिक आवश्यकता का प्रश्न है। एक लाख रुपये की श्री बिड़लाजीने जो अपील की है, वह सचमुच इतने बड़े भगीरथ-कार्य को देखते हुए, कुछ भी नहीं है। यह तो करोड़ों रुपयों का काम है। मंदिरों और धर्मशालाओं पर लाखों रुपये खर्च करनेवाले हजारों लखपती-करोड़पती देश में पड़े हुए हैं। कुओं का यह काम दया धर्म का काम है। हमारे देश के श्रीमंत चाहें तो एक वर्ष के अंदर ही वे हरिजनों के इस असह्य जल-कष्ट को दूर कर सकते हैं। लाख रुपया तो उनके लिए कोई चीज ही नहीं। यह तो उनके हाथ का धोवन है। धन का इस से अच्छा सदुपयोग और क्या हो सकता है ? दया-धर्म के अवतार सम्राट-प्रवर अशोक के इस शिला-लेख को हमारे देश के श्रीमंत ध्यानपूर्वक देखें और अपनी चंचला लक्ष्मी का कूप-निर्माण के इस परमार्थ-कार्य के साथ वरण करें, यही उनसे प्रार्थना है —

"मैंने मार्गों पर बरगद के वृक्ष रोपवा दिये हैं कि पशुओं और मनुष्यों को छांहें देंगे, आमों की वाटिकाएं रोपवाई हैं, जगह-जगह पर मैंने कुएं खुदवाये हैं, और सरायें बनवाई हैं। जहां-तहां पशुओं और मनुष्यों के प्रतिभोग के लिए बहुत-से प्याऊ बैठा दिये हैं। किंतु ये सब प्रतिभोग बहुत थोड़े हैं। पहले राजाओंने और मैंने भी विविध सुखों से लोगों को सुखी किया है। पर मैंने यह सब इसलिए किया है कि वे धर्म का आचरण करें।"

वि० ह०

कोयरी जाति और मैले का खाद

गोरखपुर जिले में आप यह एक अजीब बात देखेंगे कि जिन जातियों के पास अधिक-से-अधिक खेत-खलिहान हैं वे तो भूखों मरती हैं, और जिन जातियों के पास केवल एक-दो खेत हैं वे रोटी-भाजी से दुखी नहीं हैं ! ब्राह्मण-क्षत्रियों को जोताऊ जमीन की कमी नहीं, पर उन्हें आप प्राय: दरिद्र ही देखेंगे। इसके विपरीत, स्वाश्रयी जातियों में कोयरी जाति को ले लीजिए। वह

जाति आनंद से अपने कुटुंब का पालन-पोषण करने में सर्वप्रथम कही जा सकती है।

कोयरी लोग 'भगत' कहलाते हैं। ये लोग न मांस को छूते है, न मदिरा को। और व्यसनों से भी ये बचे हुए हैं। तंबाकू का व्यसन भी इनमें सबसे कम ही है। इन भगतों के पास दो-चार बीघा भी जमीन हो तो ये मजे में अपने कुटुंब का पालन कर सकते हैं। ये लोग दिन-रात अपने उसी खेत को कमाने, जोतने, बोने, सोहने आदि कामों में बारह मास जुटे रहते है। अन्नदाता खेत की ये अपने इष्टदेव की तरह सेवा करते है।

जब से मैं गोरखपुर जिले में आया हूं, मैं बराबर इस बात को देख रहा हूं कि कोई कोयरी निरुद्यमी और गंदा भी है या नहीं। मुझे तो ऐसा एक भी नहीं मिला। कपड़े-लत्ते सदा स्वच्छ ही देखे, और उनके चेहरे पर एक प्रकार का वह तेज भी मैंने देखा, जो नियमित रूप से पुरुषार्थ करने से प्राप्त होता है। इनमें त्याग भी गजब का है। सत्याग्रह-संग्राम में देश के नाम पर मर-मिटनेवालों में हमारे इन भगत भाइयोंने सभी जातियों से अधिक त्याग किया है। फिर ऐसी उद्यमी, वीर और पुरुषार्थी जाति पर किसे अभिमान न होगा ?

कल २५ मई की सांझ को इस उद्यमशील जाति के संबधमें एक बड़ी ही शिक्षाप्रद बात मालूम हुई—और वह यह है कि, **कोयरी कभी भी अपना खेत छोड़कर दूसरी जगह या दूसरे खेतों में पाखाना फिरने नहीं जायगा, और पाखाना फिरने के बाद मैले को मिट्टी से ढंक देगा। इस जाति की स्त्रियाँ भी पाखाना फिरके उस पर गोबर डाल देंगी और उससे ढंक देंगी।**

आज गांधीजी मैले के उपयोग पर विशेष ध्यान दे रहे हैं। उनके कथनानुसार, प्रति मनुष्य इस 'नरक' के 'सोनखाद' (मराठी में मैले के खाद को सोनखाद अर्थात् सुवर्ण खाद कहते है) से दो रुपया वार्षिक प्राप्त कर सकता है। कोयरी लोग स्वभावतः उस सोनखाद का ठीक-ठीक उपयोग करके किस प्रकार अपनी धान्य-संपत्ति बढ़ा रहे है यह देखते ही बनता है।

मैं बहुत दिनों से इनके पुरुषार्थ, ईमानदारी, सरलता आदि गुणों के विषय में जानता था और सुनता था। इनकी सफलता का रहस्य आखिर क्या है, यह मैं नहीं जानता था। मैं प्रत्यक्ष देखता था, कि वहीं एक ब्राह्मण के खेत से बीज की भी कीमत नहीं निकलती और उसी खेत से सटा हुआ कोयरी का खेत काफी अन्नराशि देता है। अब समझ में आया रहस्य। यह सब मैले के खाद की ही करामात है।

अभी उस दिन आश्रम के गोशाला-विभाग के ब्राह्मण कार्यकर्त्ता श्री परशुराम पांडे से ज्ञात हुआ कि उनके पितामह श्रीपती पांडे अपने ही खेत में छोटा-सा गड्ढा खोदकर उसमें पाखाना फिरते और मिट्टी से ढंक देते थे। वह कहते थे कि अपनी गंदगी से दूसरों को क्यों कष्ट पहुंचाया जाय। इसमें सेवाभाव तो है ही, उसका पुण्य तो उन्हें मिला ही होगा। साथ ही, यह भी लाभ हुआ कि उन के खेत में सबसे अधिक पैदावार होती रही है और आज भी होती है।

प्रकृति के नियम अटल है। उनका भंग करने में मनुष्य का अहित ही है।

राघवदास

बिहार के खादी-केन्द्रों में

(२)

मोटर की वेगवती यात्रा में भूकम्प से पीड़ित उत्तरी बिहार के इस सौम्य करुण रूप के दर्शन करते हुए लहेरिया सराय और दरभंगा के रास्ते जब रात को हम मधुबनी पहुँचे, तो काफी थक चुके थे। इस मधुबनी में ही चर्खा-संघ की शाखा का प्रधान कार्यालय और केन्द्रीय खादी-भंडार है। मोटर से उतरते ही भण्डार के अन्य कार्यकर्त्ताओं के साथ यहां हमें श्री लक्ष्मी बाबू के दर्शन हुए। उनकी दुबली-पतली काया और विनय-भार से दबी हुई सौम्य मुखमुद्रा देखकर तबीयत हरी-भरी हो गई, और वह सारी निराशा काफूर हो गई, जो हमें उनके मुजफ्फरपुर में न मिलने के कारण हुई थी। मीठे स्वभाव की यह एक मीठी विजय थी।

धूल झाड़कर और मुंह-हाथ धोकर हम थोड़े स्वस्थ हुए। कुछ समय कुशल-मंगल पूछने में बीता। खादी के सम्बन्ध की प्रारम्भिक चर्चा हुई, फिर भोजन से निपटे और वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से बिहार में खादी के भविष्य पर विचार-विनिमय करने बैठे। कोई आधी राततक इस प्रश्न की हर पहलू से छानबीन होती रही। और जब उठे तो नये कार्यक्रम की मौलिकता, उपयोगिता और व्यावहारिकता में पहले से भी अधिक श्रद्धा और विश्वास का बल लेकर उठे। स्वावलम्बी खादी का सन्देश सुनने में अटपटा होते हुए भी व्यवहार में बड़ा मनोहर और कार्य में पूरी कसौटी करनेवाला है। लेकिन जिन्हें खादी के भविष्य में विश्वास है, वे तो इस कार्यक्रम की असलियत को समझते ही गद्गद् हो उठते हैं, और यह सोचकर पछताने लगते हैं कि शुरू में ही उन्हें यह बात क्यों न सूझी ?

यह तो हमें मालूम ही था कि बिहार में वस्त्र-स्वावलम्बन का काम शुरू हो चुका है। बिहार-शाखा के निरीक्षण में गुमिया के सन्थालोंने वस्त्र-स्वावलम्बन की दिशा में काफी प्रगति की है। गुमिया की विस्तृत चर्चा तो एक स्वतंत्र लेख का विषय है। इसलिए अभी तो उसे यहीं छोड़कर आगे बढ़ना उचित मालूम होता है। गुमिया के अलावा भी बिहारवालोंने वस्त्र-स्वावलम्बन के लिए क्षेत्र का निरीक्षण करके मधेपुर को इस काम के लिए अधिक अनुकूल पाया है। मधुबनी आदि उत्पत्ति-केन्द्रों में कार्यकर्त्ताओंने कत्तिनों को खादी ही पहनने और खादी ही खरीदने के लिए समझाया और उसमें उन्हें कुछ सफलता भी हुई। पिछले चार महीनों में मधेपुर केन्द्र में ७५ कत्तिनों का करीब सवा दो मन सूत आया, जिसके बदले में उन्हें ५४६ वर्ग गज खादी दी गई और कत्तिनोंने अपने सूत की ५२१ वर्ग गज खादी बुनवाई। इसी प्रकार अँधरा टाढी केन्द्र की ५२ कत्तिनोंने सीधे जुलाहों से अपने लिए अपने सूत की साड़िया बुनवाली। इस प्रकार वहां कोई २६० वर्ग गज खादी बुनी गई। और ४ कत्तिनोंने ३७ वर्ग गज खादी भण्डार के मार्फत बुनवाई। इस प्रकार कार्यकर्त्ताओं के प्रयत्न से जो वातावरण बना उसके कारण संघ की कोई २,००० कत्तिनों में से १,५०० कत्तिनोंने न्यूनाधिक खादी खरीदी और भविष्य में खादी ही बरतने का विश्वास भी दिलाया।

उसी रात को मधुबनी के कार्यकर्त्ताओं के सामने हमने अपने वे अनुभव रक्खे जो दूसरे प्रान्तों में वस्त्र-स्वावलम्बन का निरीक्षण करने के बाद हमें प्राप्त हुए थे। राजस्थान, पंजाब और संयुक्त-प्रान्त के खास स्वावलम्बन-केन्द्रों की कुछ विशेषताएँ भी उन्हें

सुनाई। और जब इस दृष्टि से हमने इस सारे प्रश्न की छानबीन की तो हम इस परिणाम पर पहुँचे कि बिहार में भी वस्त्र-स्वावलम्बन का काफी काम हो सकता है। मधेपुर का वातावरण इस कार्य के अनुकूल है ही। आवश्यकता मात्र एक ऐसे प्रभावशाली कार्यकर्त्ता की थी, जो वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से सारे प्रान्त को संगठित करे और व्यवस्थित रूप से सारे कार्य को चला ले। हमें यह जानकर खुशी हुई कि बिहार शाखा के मन्त्री श्री लक्ष्मी बाबू स्वयं इस उत्तरदायित्व को ले रहे है। उनसे बढ़कर इस काम का कर्णधार बिहार मे कोई हो भी तो नही सकता। अगर लक्ष्मी बाबू अपना पूरा समय इस ओर द सके, तो आशा है कि बिहार मे वस्त्र-स्वावलम्बन का काम जम जायगा और थोड़े ही समय में आदर्श बन सकेगा।

इस क्षेत्र की सब से बड़ी और मौलिक कठिनाई स्थानीय रुई के अभाव की है। वस्त्र-स्वावलम्बन के लिए स्थानीय कपास पहली आवश्यकता है। अभीतक तो यहा मेवात की रुई बरती जाती है। पर इस वर्ष स्थानीय कपास पैदा करने का प्रयत्न किया जा रहा है। अबकी कताई-केन्द्रों मे कपास की खेती करवाई जायगी, और यदि उसमे सफलता मिल गई तो नये कार्यक्रम की सफलता मे कोई सन्देह न रह जायगा।

कत्तिनों को अपने सूत की ही खादी पहनने के लिए प्रोत्साहित करना भी आवश्यक है। इसके लिए उनके सूत को विशेष सहूलियतों के साथ बुनवा देने का तरीका उपयोगी मालूम हुआ है। बिहार में कत्तिनो को कुछ सहूलियतें दी भी गई है और और भी देने का निर्णय हुआ है।

खादी के लिए यह समय सक्रमण का है। तिस पर विश्व-व्यापी मन्दी और देश की विलक्षण परिस्थितिने भी खादी पर अपना विशिष्ट प्रभाव डाला है। दूसरे दिन सुबह कार्यकर्त्ताओं के साथ खादी के इस पहलू की चर्चा हुई। व्यवसायी खादी की दृष्टि से बिहार की खादीने देश मे अपना एक स्थान बना दिया है। पर पिछला साल तो बिहार के लिए भीषण दैवी प्रकोप का साल रहा। सारा वर्ष भारी सकट मे बीता। खादी के कार्यकर्त्ताओ को भी स्वभावतः ही भूकम्पपीड़ितो की सहायता मे लग जाना पड़ा। इससे चालू काम की कठिनाइयां बढ़ गईं। फिर भी ईश्वर को धन्यवाद है, कि विशेष कठिनाइयां नहीं आई, कार्यकर्त्ता डटे रहे और कार्य सन्तोषजनक रीति से चलता रहा। सन्तोष और खुशी की बात तो यह है कि बिहार मे जो खादी बनती है, वह सब बिक जाती है, और सघ को उससे कोई घाटा नही होता।

देहात की जनता में खादी को लोकप्रिय और सुलभ बनाने की दृष्टि से हमने बिहारी खादी के मौजूदा भावो पर भी एक निगाह दौड़ाई और उन पर विचार किया। हमें यह आवश्यक मालूम हुआ कि खादी को व्यापक बनाने के लिए उसे और भी सस्ती और उपयोगी बनाया जाय तो अच्छा हो। वैसे तो बिहार की खादी के भाव इधर काफी घटे हैं, पर उनमें और भी कमी करने की योजना पर विचार हो रहा है। और गावो में चलनेवाली कुछ किस्मों के भावो में कमी करने का तो निश्चय भी हो चुका है।

इस चर्चा के बाद हम मधबनी की खादी देखने के लिए श्री लक्ष्मीबाबू के साथ खादी-भण्डार में पहुँचे। धुली और बिना धुली, महीन और मोटी, सब तरह की खादी हमने देखी। बिहार की कोकटी और महीन खादी देखकर तबीयत प्रसन्न हो गई। क्या सफाई और क्या मजबूती, हर दृष्टि से हमने इस खादी को सन्तोषजनक पाया। प्रयोग की दृष्टि से कुछ महीन खादी के नमूने भी हमने अपने उपयोग के लिए खरीदे। इधर ८ नबर से लेकर ४०—४२ नंबर तक का सूत कतता है। कत्तिनें प्रायः सभी हिन्दू हैं और अच्छा कातती हैं। जुलाहे भी यहां के अपनी कारीगरी में कुशल हैं। फिर भी हमने देखा कि भण्डार में मोटे सूत का कुछ बिना धुला कपड़ा ऐसा है, जो बुनाई की दृष्टि से नापास किया जा सकता है, खासकर इसलिए कि कत्तिनो, जुलाहो और ग्रामीणो मे ज्यादातर इसी मोटे कपड़े की खपत होती है और इन लोगो के लिए तो यह आवश्यक है कि जो कपड़ा ये अपने लिए खरीदें, या अपनी मेहनत के बदले में लें, वह मोटा होते हुए भी अच्छे-से-अच्छा, और मजबूत हो कि जिसमें वह इनके पास ज्यादा चले और सस्ता पड़े। इस सम्बन्ध मे कार्यकर्त्ताओ से बातचीत करके हमने इस ओर उनका ध्यान आकर्षित किया और स्वावलम्बन के नये कार्यक्रम में मोटी खादी का महत्त्व उन्हें समझाया। अगर शहरों से उठाकर खादी को गावों मे केन्द्रित करना और फैलाना है, तो गाववालों की जरूरत को समझकर उनके लायक हर प्रकार का मोटा और मजबूत कपड़ा देने से ही वह फैल सकती है। आज तो दुर्दैव से खादी का गावों में भी बाहर के कपड़े का जोरदार मुकाबला करना पड़ रहा है। आप चाहे कि इस मुकाबले मे खादी निरी भावना पर ही टिकी रहे और फूल-फल सके, तो यह मुमकिन नहीं है। मुकाबले मे ठहरने के लिए तो खादी को व्यवहार की कसौटी पर भी सीटच उतरना पड़ेगा और इसके लिए यह आवश्यक है कि गाववालो के लिए जो खादी हम बनायें, वह इतनी बढ़िया और टिकाऊ तो जरूर ही हो कि शुरू मे तनिक महँगी दिखने पर भी अन्त मे निश्चित रूप से सस्ती और उपयोगी सिद्ध हो सके, कि जिससे गाववालो का विश्वास उसपर जमे और बाहर के कपड़े को छोड़कर वे अपने आसपास की बनी खादी ही पहनने को बरबस ललचायें।

स्वावलम्बी खादी का यही लक्ष्य है, और आज इसी राह पर हमें खादी को ले जाना है। और बिहार का क्षेत्र तो इस लक्ष्य के लिए बहुत ही अनुकल प्रतीत होता है। बिहार के पास उसका अपना बढ़िया कोकटी कपास है, उसकी कत्तिनों और जुलाहों के पास धुनने, कातने और बुनने की बेजोड़ कला है, देशरत्न राजेन्द्रबाबू-जैसा एकनिष्ठ खादी-सेवक उसका शिरोमणि नेता है, श्री लक्ष्मीबाबू-जैसे अनेक निःस्वार्थ खादी-सेवक रात-दिन खादी की आराधना मे वहा लगे हुए हैं, और भोले-भाले, सादगी के अवतार-से अकिंचन बिहारी किसान और मजदूर नाममात्र की मजदूरी पर खादी के लिए सहर्ष परिश्रम करने और बदले मे मोटी-झोटी खादी पहनकर सन्तुष्ट रहने को तैयार है। स्वावलम्बी खादी की दृष्टि से जो बिहार साधन-सम्पन्नता में इतना आगे बढ़ा हुआ हो, वह भला अब अपनी खादी की खपत के लिए शहरों की मुहजोई क्यों करने लगा? वह तो अब स्वावलम्बी खादी बनाने मे इतना गड़ जाना चाहता है, और गड़ सकता है कि व्यवसाय-जीवी खादी का उसे ध्यान और भान भी न रहे। जिस दिन बिहार में खादी का यह उत्कर्ष सिद्ध हो जायगा, उसदिन बिहार आज का बिहार न रहेगा।

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

आइए, प्रार्थना करें

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३]

दिल्ली, शुक्रवार, १४ जून, १९३५.

[संख्या १७

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

सफाई का काम

इधर दसेक दिन के लिए मैं बाहर चला गया था, इसलिए उन दिनों सिंधी गांव की सफाई का काम मीरा बहिन की देखरेख में चलता था। मीरा बहिनने अपने अनुभवों का जो नोट तैयार किया है उसे ही मैं इस साप्ताहिक पत्र में देता हूँ:—

"यह काम कठिन तो है ही, पर अब गांव का आधा भाग स्वच्छ देखते हुए मन को कितनी सुखद प्रेरणा मिलती है! हमने अपना कार्यारम्भ गांव के उत्तरी भाग में किया था। वहां के लोगों की समझ में अब आ गया है और करीब-करीब सभी अब खेतों में टट्टी फिरने जाते हैं। तीन महीने पूर्व जिन रास्तों पर पहली बार जाते हुए मैंने दोनों तरफ मैले व कचरे के करीने लगे देखे थे, वहां आज प्राय: उसका नाम-निशान भी देखने में नहीं आता। और जब उत्तर का हिस्सा सुधर गया, तो दक्षिण का क्यों नहीं सुधरेगा? यह भी सुधरने लगा है, और गांव का लोकमत हमारे अनुकूल बराबर बढ़ता ही जाता है। इसलिए अब हम रास्ते साफ करने और दूसरी साधारण सफाई हाथ में लेने का विचार कर रहे हैं।

कुछ लोगों का खयाल है कि यह सफाई का काम धीरे-धीरे चलनेवाला और अरुचिकर या घिनौना है। पर ऐसा मत गम्भीर विचार किये बिना ही बना लिया गया है। युगों से पड़ी हुई इन उपेक्षाजनित आदतों को बदलवाने के लिए समय तो चाहिए ही। एक-दो बरस में भी ये आदतें सुधर जायें तो भी हमें मानना चाहिए कि काम जल्दी ही हुआ। इस काम में जो घिन लगती है उसके बारे में यह कहा जा सकता है कि वह तो सिर्फ नाक और आंखों की ही बात है। अपने गावों से इस बहुत बड़ी बुराई को निकाल बाहर कर देने की अपेक्षा हमारी बुद्धि के लिए दूसरी आकर्षक वस्तु और क्या हो सकती है, इसकी कल्पना करना कठिन है। ज्यों-ज्यों मैं इस काम का अध्ययन और मनन करती हूँ, और इसमें अपने को लगाती हूँ, त्यों-त्यों इसके महत्त्व का चित्र मेरे सामने आता जाता है। इस नींव के ऊपर ही हमें अपनी अन्य तमाम प्रवृत्तियों की इमारत उठानी चाहिए। अगर हम अपनी राष्ट्रीय उन्नति की इमारत गन्दी और कमजोर नींव पर बनायेंगे तो वह कितने दिन टिकेगी? वह तो गिरने को ही है।

एक बात और कह दूं और बस। इससे पाठक यह कल्पना कर सकेंगे कि यह सफाई का काम कितने महत्त्व का है। अनेक वर्षों की दरिद्रता में मनुष्य तथा पशु भूख के मारे अधमरे-से हो रहे हैं। आज आप गांवों के बाहर देखें तो गौएँ मैला खाती हुई दिखाई देंगी। जो श्रीसम्पन्न लोग इन दरिद्रताग्रस्त गांवों का दूध पीते हैं वे अगर इस बात का एक क्षण भी विचार करें कि यह दूध किस तरह पैदा होता है, और इसके बाद उसमें सुधार करने के लिए ठीक-ठीक प्रयत्न करें तो कितना अच्छा हो!"

बोरसद के गाँवों में

सरदार वल्लभभाई की काम करने की रीति अनोखी ही है। ऐसा मालूम होता है कि वे अपने यज्ञ में किसी को भाग नहीं लेने देना चाहते। जब गुजरात में सन् १९२७ में भयंकर जल-प्रलय हुआ उन दिनों गांधीजी बंगलोर में विश्राम ले रहे थे। उन्हें सरदारने यह तार दिया कि आपको गुजरात आने की जरूरत नहीं। सन् १९२८ के बारडोली-युद्ध के समय उन्होंने दूसरे प्रांतों से स्वयंसेवकों या नेताओं को न बुलाने का ही निर्णय किया, और गांधीजी की सलाह यद्यपि कभी-कभी वे ले लेते थे, तो भी युद्ध समाप्त होने के बाद ही उन्होंने गांधीजी को बारडोली बुलाया था। यही बात उन्होंने अबके भी की। प्लेग के गावों में जाकर वे बैठ गये और बोरसद ताल्लुका के ही ६० स्वयंसेवकों की सहायता से उन्होंने प्लेगरिपु के साथ अच्छा डटकर युद्ध किया। फंड के लिए उन्होंने कोई सार्वजनिक अपील नहीं निकाली। थोड़े ही दिनों में अपने पांच-छै मित्रों से उन्हें करीब आठ हजार रुपये मिल गये, और दो-एक डाक्टरों की सहायता पाकर ही वे सन्तुष्ट हो गये। प्लेग-युद्ध समाप्त होजाने के बाद गांधीजी को उन्होंने इस प्रयत्न में भाग लेने के लिए नहीं, किंतु उनका आशीर्वाद लेने के लिए बोरसद बुलाया था।

प्लेग के विरुद्ध सरदार का यह युद्ध अपूर्व ही हुआ है। यह प्लेग-निवारण का काम बाढ़-संकट-निवारण के काम के ही जैसा था, सिर्फ विस्तार इसका उतना नहीं था। इसके अंदर जनता तथा शासक दोनों के ही लिए सच्ची शिक्षा भरी हुई थी। इस किस्म का रचनात्मक कार्य पहले कभी नहीं हुआ था। सरदारने दो-एक महीनेतक जो दैनिक पर्चे निकाले थे उनसे लोगों को काफी नसीहत मिली। गांधीजीने भी उन पर्चों की खूब प्रशंसा की। युवा और वृद्ध स्वयंसेवकोंने जिन गावों में अधिक-से-अधिक प्लेग था उन गावों के कोने-कोने की सफाई की। उन गांवों में ३७ और १०० केसों में से ३६ और ८० तक मृत्युएं हुई थीं। गजब का जोर था। ऐसी भयंकर जगहों में जा-जाकर लोगों को समझाया और उनका सहयोग प्राप्त किया। डॉ० भास्कर पटेल बार-बार रोगियों को देखने जाते थे; और लोगों के घरों में ४४

तथा छावनी के अस्पताल में १९ प्लेग के रोगियों का उन्होंने इलाज किया था। श्रीमती भक्तिलक्ष्मी देसाई और उनके साथ की सेविकाओंने अस्पताल में आई हुई प्लेगग्रस्त मुसलमान बहिनों की सेवा-शुश्रूषा इतने प्रेम से की कि मुसलमान भी उनकी प्रशंसा करते थे।

गांधीजीने इन गावों में दस सभाओं में भाषण दिये। उन्होंने लोगों से कहा कि यह समझकर कि प्लेगरूपी शत्रु चला अब हट गया है, आप लोग सो न जाना, बल्कि ऐसा स्थायी प्रयत्न करना कि वह फिर कभी सिर न उठाये। एक-दो सभाओं में उन्होंने कहा, "चूहे और पिस्सू छूत फैलाते हैं, इसलिए डाक्टरों का कहना है कि चूहों और पिस्सुओं को नष्ट कर देना चाहिए, पर चूहे और पिस्सू तो ईश्वर के संदेशवाहक हैं। इनके द्वारा ईश्वर हमें चेतावनी देता है। मैं प्रत्यक्ष अपनी आंखों से देखता हूँ कि जिन गांवों में आपको प्रकृतिने अच्छे-से-अच्छा जल वायु और स्वास्थ्यकर जमीन प्रदान की है वहां आप प्रकृति के नियमों का ऐसा भंग करते हैं कि यह मालूम होने लगता है कि वहां महामारीने हमेशा के लिए अपना डेरा जमा रखा है। आप चूहों और पिस्सुओं को तो नष्ट कर देंगे, पर यदि आपने अपने घरों और आंगनों को इतना साफ न रखा कि चूहे और पिस्सू पैदा ही न हों, तो वे तो वहां बारबार पैदा होंगे ही। उन्हें मारने से होगा ही क्या? मेरे-जैसा अहिंसावृती मनुष्य तो यही कहेगा कि चूहों और पिस्सुओं को भी जीने का उतना ही अधिकार है जितना कि मुझे है, और इसलिए उन्हें नष्ट करने के बजाय मुझे खुद ही नष्ट होजाना चाहिए। पर मैं इस जन्म में अहिंसा की इस कोटि तक नहीं पहुँच सकता, शायद अनेक जन्मों में भी न पहुँच सकूं, और आप लोग भी शायद न पहुँच सकें, लेकिन आप ऐसी स्थिति तो अवश्य पैदा कर सकते हैं, जिससे चूहे और पिस्सू कभी घर बना ही न सकें। मैं चाहता हूँ कि आप ऐसी स्थिति पैदा करें। मैं चाहता हूँ कि स्वयंसेवकोंने सफाई का जो काम किया है उसे आप स्थायीरूप देवें, घरों के फर्श उखाड़ डालें, चूहों के बिल खोद डालें, और फिर फर्श ऐसे बनायें कि जिसमें चूहे बिल बना ही न सकें।"

बोरसद में गांधीजीने लोगों को नागरिक धर्म विस्तार के साथ समझाते हुए कहा, "यह शर्म की बात है जो यहां प्लेग चार बरस रहा। खास बोरसद की सिर्फ तेरह हजार की आबादी है और तालुका की आबादी १४४००० की है। खास बोरसद और बोरसद तालुका से प्लेग को नेस्तनाबूद कर देना कोई ऐसी बात नहीं, जो अशक्य हो। पर सारे गांव के लिए सिर्फ छै भंगी रखने से यह काम पूरा होने का नहीं। आप सब लोग खुद भंगी न बनेंगे, खुद सफाई का काम न करेंगे, तो सरदार और उनके स्वयंसेवकों के प्रयत्न करने पर भी यह बात नहीं कि प्लेग यहां फिर न आवे। सच बात तो यह है कि स्वयंसेवकोंने जो काम पूरा किया है उससे आपकी जिम्मेदारी और अधिक बढ़ गई है। आपने सफाई का यह काम चालू न रखा तो यह सारा परिश्रम व्यर्थ ही जायगा।

पिछले दिनों आप लोगोंने सविनय अवज्ञा के युद्ध में जो वीरता दिखाई थी और जो कष्ट सहन किये थे तथा त्याग किया था उस सब के लिए मैं आप को बधाई देने आया था। लेकिन आज मैं आप से यह कहने आया हूँ कि जो लोग सरकार के खिलाफ लड़ सकते हैं वे नहीं, किंतु इस प्लेग-जैसे विकट संकट से जो मोर्चा ले सकते हैं वही स्वराज भोग सकेंगे। मैं आपसे यह कहूँगा कि जब से मैंने 'स्वराज' शब्द सीखा, तभी से मैं इस किस्म के काम में रस लेता आया हूँ। सन् १८९३ से ही जब से मेरे सार्वजनिक जीवन का आरंभ हुआ, मेरी मुख्य रुचि इस प्रकार के रचनात्मक कामों में रही है। सरकार के साथ लड़ने का मौका तो मेरे जीवन में बहुत देर से आया। पर यह कहा जा सकता है कि वह अनेक वर्षों के ठोस रचनात्मक कार्य की पुख्ता नींव पर खड़ी की हुई इमारत है। मैंने म्यूनिसिपैलिटी के हर कायदा-कानून का यथाशक्ति पालन किया है, और जिस सरकारने मुझे अनेक बार जेल की सजा दी है वह भी मेरी नियम-पालन करने की योग्यता को जानती है। मैंने पहले-पहल दक्षिण अफरीका में जब भंगी का काम सीखा, तब से मैं यह जोर देकर कहता चला आ रहा हूं कि इस किस्म के काम से ही हम स्वराज भोगने के योग्य बनेंगे। आप यह तो कहेंगे ही नहीं कि स्वराज प्राप्त हो जाने के बाद आप सो जायँगे और इस काम की पर्वा नहीं करेंगे। स्वराज का अर्थ अराजकता नहीं। आप को स्वराज मिलने के बाद भी इन सब प्रश्नों को हल करना ही पड़ेगा। याद रखिए कि जिस मनुष्यने सविनय अवज्ञा की आवाज उठाई थी वही मनुष्य इस प्रकार के आवश्यक काम के लिए आपको आज आमन्त्रण दे रहा है। जबतक आपने अपने शरीर और अपने घर को नीरोगी नहीं बना लिया तबतक आप खादी की उत्पत्ति का तथा ग्रामउद्योगों को पुनरुज्जीवित करने का रचनात्मक कार्य भी नहीं कर सकते; और इसी से यह सफाई का काम तमाम रचनात्मक कार्यों का मूलाधार है।"

गांधीजी आठ दिन बोरसद में रहे। इस बीच में उन्होंने डॉ० भास्कर पटेल से इस आशय के अनेक पर्चे प्रकाशित करवाये कि मकान चूहों से और मनुष्य का शरीर रोगों से किस प्रकार सुरक्षित हो सकता है। एक भाषण में गांधीजीने कहा, "प्लेगपीड़ित चूहे या पिस्सू से प्लेगपीड़ित मनुष्य कहीं ज्यादा खराब है। आप तब तक इन संक्रामक रोगों को नष्ट नहीं कर सकते जबतक कि आप अपने शरीर को इस प्रकार का नहीं बना लेते कि उसे रोग की छूत लगे ही नहीं। प्रकृतिने तो हमें रोगों के साथ लड़ने की काफी शक्ति दी है, पर हमने उसके नियमों की उपेक्षा करके उस शक्ति को गँवा दिया है। आहार-विहार के नियमों का समुचित पालन करके हम उस खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करना चाहिए।"

सरकारने भी इस प्रदेश में संक्रामक प्लेग को काबू में लाने के लिए जरूरी कार्रवाई करने का वचन दिया है। पर अगर लोग जाग्रत न हुए और सफाई के काम को उन्होंने स्थायी रूप से चालू न रखा तो ये प्रयत्न भी व्यर्थ ही जायँगे। लोगों को यह काम चालू रखने के लिए समझाना ही गांधीजी का बोरसद जाने का एकमात्र हेतु था।

रास की यात्रा

रास की यात्रा के संबंध में लिखना इसीलिए जरूरी है कि इससे पाठक थोड़ा-बहुत यह समझ सकें कि गांधीजी की मनोवृत्ति किस प्रकार काम किया करती है। सत्याग्रह का गहरा अर्थ समझने के लिए भी इस प्रसंग का लिखना आवश्यक है। बोरसद जाने के पहले गांधीजी का यह विचार था कि बोरसद से तमाम गांवों में पैदल चलकर ही जाना चाहिए। मगर सरदार वल्लभ भाई की तबीयत की वजह से यह असंभव हो गया, और इसलिए

हमलोग सबेरे और शाम को मोटर में बैठकर गांवो में जाते थे। लेकिन गांधीजी की मनोवृत्ति तो रास को अपवाद बनाने की थी। तीर्थयात्रा तो पैदल चलकर ही की जानी चाहिए। पर सत्याग्रही को द्विगुण सावधान रहना चाहिए। रास सविनय अवज्ञा की लड़ाई का केन्द्र था, इसलिए इस वक्त गांधीजी पैदल चलकर अगर रास गये तो शायद सरकार के दिल मे उनके हेतु के विषय मे शक पैदा हो जाय। सौभाग्य से रास मे महामारी के चरण नही पड़े थे, इसलिए रास जाने का हेतु तो केवल सविनय अवज्ञा की लड़ाई में बर्बाद हुए लोगो को आश्वासन देने के लिए जाने का ही था। सरकार को शक या वहम के लिए जरा भी गुजाइश न रहे, इसी कारण गांधीजीने रास पैदल जाने का विचार छोड दिया। इस विषय का स्पष्टीकरण उन्होने नडियाद की सभा में किया था।

रास के लोगो के साथ गांधीजीने जो बाते की उनमें आज उनके मन मे जिस कार्य का विचार चल रहा है उसी की ध्वनि थी। रचनात्मक कार्य ही उनका विषय था। उन्होने वहा के लोगो को समझाया कि इस कार्य के द्वारा ही शत्रु को भी सहोदर भ्राता के समान समझनेवाली अहिंसा का साक्षात्कार किया जा सकता है।

एक घंटा नडियाद में

नडियाद में एक घंटे के अन्दर गांधीजीने तीन कार्य सम्पन्न किये। एक मांटेसोरी स्कूल देखा, जो स्व० फूलचन्द शाह के स्मारक-स्वरूप चल रहा है, एक हरिजन-मन्दिर का निरीक्षण किया, और एक कन्या-पाठशाला का उद्घाटन किया, जो स्व० विट्ठल भाई के स्मरणार्थ स्थापित किया गया है। हरिजन-मन्दिर में उन्होंने हरिजनों (मेहतरों) से कहा, "दारू और मुर्दार मास छोड़ देने की जो तुमने प्रतिज्ञा की है उसपर दृढ़ रहना, और जिस तरह मकानो के अन्दर सफाई रहती है उसी तरह नडियाद की हर सड़क और गली को साफ रखना।" सफाई की यह अपील इस बात पर की गई कि नडियाद की म्युनिसिपैलिटीने भंगियो को शहर के तमाम कचरे को इकट्ठा करके कमेटी के बनवाये हुए गड्ढो मे डालने और फिर उसे बतौर खाद के बेचने की इजाजत देदी है। इससे उनके प्रत्येक कुटुम्ब को ६०) साल की अतिरिक्त आमदनी हो जाती है।

स्व० फूलचन्द शाह, जिनकी स्मृति मे मांटेसोरी स्कूल स्थापित किया गया है, और स्व० मोहनलाल पड्या इन दोनों लोकसेवको की प्रशंसा करते हुए गांधीजीने कहा, "मैंने चुपचाप सेवा करनेवालो के आदर्श को सदा सामने रखा है। ये दोनों इसी कोटि के सेवक थे। दोनोने अपनी सेवा का चिंतवन करते-करते ही प्राण त्यागे।"

स्व० फूलचद की स्मृति मे जो बालमंदिर (मांटेसोरी स्कूल) बनवाया गया है उसके विषय में गांधीजीने कहा, "ऐसे छोटे-छोटे स्मारको से हम अपनी आत्मा को धोखा न दे तो अच्छा। स्थायी स्मारक ईंट और चूने के मकान मे पैसा लगाकर थोड़े ही बन सकता है। इसका अर्थ यह नही कि आप ऐसे स्मारक न बनवायें। मेरा आशय तो केवल यह है कि इन दिवंगत आत्माओ की स्थान-पूर्ति कीजिए। वही उनका सच्चा स्मारक होगा। ऐसे सच्चे स्वयंसेवको के चल बसने का दुःख तो होता ही है, पर उनका अभाव खटकना नही चाहिए। बादशाह की मृत्यु के बाद जैसे बादशाह का तख्त खाली नही रहता और हम यह कहते हैं कि 'बादशाह चिरंजीवि रहे,' उसी तरह जो सेवक संसार मे चल बसते हैं उनकी संस्था चालू रहनी ही चाहिए। फूलचद और मोहनलाल ये दोनों व्यक्ति नहीं बल्कि मूर्तिमंत संस्था थे। शेक्सपियरने कहा है कि "मनुष्य जो अच्छा काम करता है वह उसके साथ दफन हो जाता है, उसका बुरा काम ही ऊपर रहता है।" इसमे कविने कोई सनातन सत्य नहीं कहा, बल्कि दुनिया को एक ताना मारा है। सच बात तो यह है कि प्रकृति कूड़े-कचरे का संचय नही करती। वह तो तमाम गंदगी और कचरे को खपा-पचाकर दुनिया को फूल और फल ही देती है। इसी प्रकार हमारे बुजुर्गो और स्वर्गीय नेताओ मे कोई दोष हो तो उसे तो हमे दफना देना है, और उनके सद्गुणो का ही संचय करना है।

बालमंदिर के संचालकों से मुझे आज सबेरे यह मालूम हुआ कि बालको को नित्य मंदिर में ले आने के लिए पचास रुपये मासिक गाड़ी-खर्चा पड़ता है। बालशिक्षण तथा मांटेसोरी पद्धति मैं समझता हूँ। विदुषी मांटेसोरी से मैं मिला हूँ। मैंने उनसे कोई सबक नही पढा, तो भी उन्होंने मुझे यह सर्टीफिकेट दिया है कि तुम हमेशा से मेरी पद्धति का अमल करते आ रहे हो। इस प्रमाणपत्र मे झूठी चापलूसी नहीं थी, क्योंकि यह प्रमाणपत्र तो मैंने पहले से ही अपने को दे रखा था। इसलिए बालशिक्षण की संपूर्ण जानकारी रखते हुए मैं आप से यह कहूँगा कि यह पचास रुपये का खर्चा मुझे भयंकर मालूम देता है। बच्चो को अपंग बनाने के लिए पचास रुपये खर्च करना हर्गिज मांटेसोरी पद्धति नही है। हमें यूरोप का अंधानुकरण नहीं करना है। और आप कहां-कहां अनुकरण करेंगे ? इस पद्धति मे पाठशाला के साथ बागीचा होता है, वह यहा कहां है ? बालको के मकान से मंदिर एक मील मे दूर नहीं है। बड़े मजे मे बच्चे पैदल चलकर आ सकते हैं। अध्यापक उनकी उंगली पकड़कर उन्हे प्रेम से नित्य सबेरे ला सकते हैं, और यह ५०) का खर्चा बच सकता है।"

कन्याओ की शिक्षा पर बोलते हुए गांधीजीने कहा, 'जो दिन-रात कन्याशिक्षा की बातें करते रहते है उनसे मै पूछूगा कि आपने अपनी स्त्री, अपनी लड़की, अपनी बहिन और अपनी माता के प्रति जब अपने धर्म का पालन नहीं किया तो दूसरो की पुत्रियों, बहनों और स्त्रियो को आप क्या सिखाने निकले है ? वे बी० ए०, एम० ए० पास भले ही हो, पर मैं तो उन्हे इसी कसौटी पर कसूगा।"

स्व० विट्ठल भाई पटेल के स्मारकस्वरूप उस दिन नडियाद मे एक कन्या-विद्यालय खुलवाया गया था। भाषण के अन्त में इस प्रसंग पर बोलते हुए गांधीजीने कहा, "नडियाद मे विट्ठल भाई के स्मारक का क्या काम ? उनका सेवाक्षेत्र तो बहुत विशाल था। आप पाटीदारोने उन्हें अपनी जाति का समझकर यह स्मारक बनवाया है। यह तो भगवान् जाने, कि वे पाटीदार थे या क्या थे। मैंने तो उन्हें पहले-पहल जब फैज टोपी पहने और दाढ़ी रखाये देखा तो उन्हे मुसलमान समझा। पूछने-पाछने की मेरी आदत नहीं, इससे पूछा भी नहीं। सब को अपना भाई-बंधु माननेवाला व्यक्ति किसलिए किसी की जात-पांत पूछे ? विट्ठलभाई को पाटीदार कहकर उनका मजाक उड़ाना हो तो आप भले उड़ावें। विट्ठलभाई को आप अपनी जाति का मानेंगे, तो फिर ढेड भंगी आदि सब को अपनी जाति-बिरादरी का मानना पड़ेगा, क्योंकि

[१३८ पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १४ जून, १९३५

आइए, प्रार्थना करें

जब कोई मनुष्य गिर पड़ता है तो वह उठने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है। तामिल भाषा में एक कहावत है कि वह निराधारों का आधार है। क्वेटा का यह भयंकर महानाश मनुष्य की बुद्धि को चक्कर में डाल देता है। वह हमारे पुनर्निर्माण के तमाम प्रयत्नों पर पानी फेर देता है। इस महानाश के विषय में संपूर्ण सत्य शायद कभी मालूम न हो सकेगा। जो बेचारे इस दुर्घटना में मर गये उन्हें फिर से जीवन-दान नहीं दिया जा सकता।

पर मनुष्य को तो अपना प्रयत्न जारी रखना ही चाहिए। जो बच गये हैं उन्हें सहायता अवश्य मिलनी चाहिए। ऐसा पुनर्निर्माण जहांतक संभव है, किया जायगा। पर यह सब और इसी प्रकार का और भी काम ईश्वर-प्रार्थना का स्थान नहीं ले सकता।

मगर प्रार्थना की ही क्यों जाय? अगर कोई ईश्वर है तो क्या उसे इस भयंकर दुर्घटना का पता न होगा? और क्या इस बात की आवश्यकता है कि पहले उसकी प्रार्थना की जाय तब कहीं वह अपना कर्तव्य-पालन करे?

नहीं, ऐसी बात नहीं है, ईश्वर को याद दिलाने की कोई जरूरत नहीं। वह तो घट-घट का वासी है। बिना उसकी आज्ञा के एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। हमारी प्रार्थना तो सिर्फ इसलिए है कि हम अपने अंतर का शोधन करें। प्रार्थना के द्वारा तो हम खुद अपने को यह याद दिलाते हैं कि उसके अवलंब के बिना हम सब कितने असमर्थ और असहाय हैं। हमारा कोई भी प्रयत्न बिना ईश्वर-प्रार्थना के विफल ही है। वह प्रयत्न तबतक किसी प्रकार पूर्ण नहीं कहा जा सकता, जबतक कि उसमें प्रार्थना की पुट न हो। मनुष्य के जिस प्रयत्न के पीछे ईश्वर का आशीर्वाद नहीं, वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, बेकार ही जाता है, यह एक मानी हुई बात है। प्रार्थना से हम विनम्र बनते हैं। वह हमें आत्म-शुद्धि की ओर ले जाती है, अंतर-निरीक्षण करने के लिए प्रेरणा देती है।

जो बात मैंने बिहार के भूकंप के समय कही थी, उसे मैं आज भी कहूंगा। हरेक भौतिक विपत्ति के पीछे कोई-न-कोई ईश्वरीय अभिप्राय रहता है। एक समय ऐसा आयगा जब पूर्ण विज्ञान की बदौलत पहले से ही हमें भूकंप आने की बात उसी तरह मालूम हो जायगी जिस तरह कि हमें ग्रहण पड़ने की खबर पहले ही मालूम होजाती है। मनुष्य के दिमागी ज्ञान की यह एक और विजय होगी। पर ऐसी एक नहीं असंख्य विजयों से भी आत्मा की शुद्धि नहीं हो सकती, और बिना आत्मशुद्धि के सब व्यर्थ है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि जिस प्रकार हम बिहार की विपता को भूल गये हैं उसी प्रकार क्वेटा की इस महाविपता को भी भूल जायँगे। जो लोग आत्मशुद्धि की आवश्यकता में विश्वास करते हैं मैं उनसे कहूंगा कि वे मेरे साथ प्रार्थना में शरीक हों ताकि ऐसी दारुण विपत्तियों में हम ईश्वर के अभिप्राय को समझ सकें और जब कभी ऐसी विपता आवे तब हम विनम्र भाव से अपने सिरजनहार की शरण गहकर बिना किसी तरह के भेदभाव के अपने विपद्ग्रस्त भाइयों की सेवा-सहायता कर सकें।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

एक सेवक के प्रयत्न

"कुछ साथियों की सहायता से मैं एक आश्रम चला रहा हूँ। उसका उद्देश हमें अपने को आदर्श किसान बनाने की शिक्षा देना है, कि जिससे हम गांव के लोगों और गांव के समाज के साथ एक-रूप हो जायँ, और इस प्रकार उनकी थोड़ी-बहुत सेवा कर सकें। इस उद्देश को सामने रखकर खेती को यहां आजीविका का मुख्य साधन बनाया गया है, और कताई और बुनाई उसमें पूरक उद्योग का काम देती है।

गत जनवरी मास से धान की मुख्य फस्ल गाह लेने के बाद, आश्रमने इधर ईख, उड़द और साग-भाजी-जैसी गौण फस्लों की खेती शुरू की है। पारसाल के जून से, यानी आश्रम के आरम्भ-काल से आजतक आश्रमवासियोंने औसतन दस नम्बर का करीब ६० हजार गज सूत काता है, और मार्च के महीने से एक कर्घे पर बुनाई का काम भी शुरू कर दिया गया है। बुनाई का काम भी आश्रम में होता है। इस तरह आश्रमने अपनी मर्यादित आवश्यकताओं के लिए काफी सूत कात लिया है, और आशा है कि अब यह सारा सूत हमारे आश्रम में ही बुन जायगा।

इस तरह हमारे आश्रम को अपने इस प्रथम वर्ष में एक ऐसे स्वावलम्बी कृषक-परिवार के आदर्शतक पहुँचने के प्रयत्न में सफलता प्राप्त हुई है, जो अपनी प्रायः सभी आवश्यकताओं की पूर्ति अपने ही परिश्रम से कर लेता है, और शहर की तमाम लूट-खसोट से बच जाता है।

आश्रमने आजतक कभी अपना आटा दूसरी जगह नहीं पिसवाया और न चक्कर का ही कभी उसने उपयोग किया है। पिछले तीन महीने से हम आश्रमवासी अपने आश्रम की धान का ही बिना पॉलिश का चावल काम में ला रहे हैं।

आश्रम का आरम्भ करते समय ऐसा सोचा गया था कि स्वावलम्बी किसान की जिन्दगी बसर करने का आदर्श साधने के साथ-साथ हम लोग हरिजन-सेवा, और चर्खा वगैरा के द्वारा गांव की भी कुछ सेवा कर सकेंगे। मगर हमें इस उद्देश में पूरी निराशा ही हुई है, क्योंकि हमें अभीतक आश्रम के लिए कोई अनुकूल स्थान नहीं मिल सका। आजकल जिस जगह आश्रम है, वहां एक-एक दो-दो घर की ही बस्ती है और ये छोटे-छोटे झोंपड़े एक दूसरे से आध-आध मील या एक-एक मील के फासले पर हैं।

फिर एक चीज से आश्रम के काम को भारी धक्का पहुँचा है। आहार के विषय में मैंने कई भारी भूलें कीं, और उनका पता मुझे अब चला है। मुझे अब ऐसा मालूम होता है कि गरीबी के आदर्श को लेकर जरूरत से ज्यादा उत्साह के ही कारण हमने अपने आहार का बंधान बहुत नीचा रखा था। उदाहरण के लिए, साग-भाजी को ले लीजिए। सब्जी आश्रम में तो पैदा होती नहीं थी, इसलिए नियमित रूप से नहीं, किन्तु कभी-कभी हम साग-तरकारी खाते थे। एक-दो महीने के बाद हमने इस भूल को तो सुधार लिया, मगर घी-दूध न लेने की भूल तो रही ही। घी-दूध को हम भोग-विलास की चीज समझते थे, और यह मान बैठे थे कि गरीबों के भोजन में तो घी-दूध आ ही नहीं सकता। इसलिए घी-दूध का

हमने बिल्कुल परित्याग कर दिया था। लेकिन अब हमने एक गाय खरीद ली है और दूध वगैरा अब लेने लगे हैं। गाय खरीदे हमें आठेक दिन हुए हैं। तबतक तो हम घी की जगह नारियल का तेल खाकर ही सन्तोष मान रहे थे। फिर इस प्रदेश में मुख्य आहार चावल का है। इन सब कारणों से आश्रमवासियों के स्वास्थ्य को बहुत क्षति पहुँची है। आरम्भ मे हम बारह आश्रमवासी थे, पर आजकल हम केवल पाच ही जन रहते है। मलेरिया से भी आश्रमवासियों की तबीयत जजर-मजर रहती है। यह जगली तालुका है इसलिए मलेरिया तो यहा बारहों मास डेरा डाले रहता है।

आश्रम अबतक शारीरिक श्रम से ही आजीविका प्राप्त करने के आदर्श को पकडे हुए है। यह सही है कि इस आदर्श पर अगर बुद्धिपूर्वक अमल किया जाय तो हमारा नीतिबल बढे और सिद्धांतो के अनुसार जीवन बिताने में हम दृढ भी बने, पर इसके कारण हमारे कुछ साथी हमसे अलग भी रहते हैं। प्रश्न यह है कि 'ब्रेडलेबर' (शारीरिक श्रम के द्वारा आजीविका प्राप्त करना) का आदर्श अक्षुण्ण रखते हुए भी ऐसे कार्यकर्ता किस तरह आश्रम की ओर आकर्षित हो सकते हैं?

मित्र तथा सहानुभूति दिखानेवाले सज्जन और आलोचक टॉल्सटॉय के इस 'ब्रेडलेबर' के सिद्धान्त के विरुद्ध समाज-सेवा का आदर्श रखते हैं, और कहते हैं कि तुम्हारा आश्रम समाज की जो सेवा कर सकता वह इस सिद्धांत के कारण रुक गई है। 'समाज-सेवा' करने के लिए मनुष्य यदि 'ब्रेड लेबर' के सिद्धान्त के साथ कुछ समझौता करले तो यह कहातक ठीक समझा जा सकता है? 'होना' और 'करना' इन दोनों के बीच यह जो भेद दिखाई देता है वह अक्सर क्या आभासमात्र नहीं होता? और असल में तो 'होना' ही क्या 'करना' नहीं होता? 'ब्रेड लेबर' का सिद्धात अतिशयता को पहुँचा हुआ कब कहा जा सकता है? या यह कब समझा जायगा कि उसके 'अक्षरों' का पालन करके उसके 'अर्थ' का घात कर दिया गया है?

औसतन हम सात आदमियो पर आठ महीने मे नीचे लिखे अनुसार खर्च हुआ है —

भोजन	१७१॥)॥।
कपडे	१६॥-)॥।
रोशनी	८॥=)
डाकखर्च	३।=)॥।
फुटकर	५=)९
बर्तन	३॥)॥।
दवाइया	७॥)।
अखबार ('हरिजन')	३॥=)
सफर-खर्च	१०=)।
	कुल—२३१॥=)११

इससे यह प्रगट होता है, कि प्रति मास प्रति मनुष्य का भोजन-खर्च ३) और वस्त्रादि का खर्च १) आया है।"

श्री किशोरलाल मशरूवाला के नाम एक सुशिक्षित निस्स्वार्थ कार्यकर्त्ताने जो पत्र लिखा है, ऊपर उसी मे का यह उद्धरण दिया गया है। एक विशुद्धहृदय सेवक के प्रयत्नो का यह हूबहू चित्र है, और जो व्यक्ति सेवामय जीवन बिताने का प्रयत्न कर रहे हों उन सब को संभव है कि इससे कुछ सहायता मिल सके।

प्रयत्न सराहनीय है। यह अच्छा है कि लेखक तथा उसके साथियों को जब कोई भूल दिखाई देती है तब वे उसे स्वीकारने और सुधारने में हिचकिचाते नही।

यह मैं नही जानता कि लेखकने इस पत्र मे जो प्रश्न पूछे हैं उनका श्री किशोरलालने क्या जवाब दिया है। पर इस पत्रलेखक को जिस प्रकार के प्रश्नोंने परेशान कर रक्खा है, उनमें दिलचस्पी लेनेवाले साधारण पाठकों के सहायतार्थ उनके उत्तर देने का प्रयत्न मैं अवश्य करूँगा।

ऐसा मालूम होता है कि 'ब्रेड लेबर' के सिद्धात के विषय मे कुछ गलतफहमी हो गई है। यह सिद्धात समाज-सेवा का विरोधी तो है ही नही। बुद्धिपूर्वक किया हुआ श्रम उच्च-से-उच्च प्रकार की समाज-सेवा है। कारण यह है कि यदि कोई मनुष्य अपने शारीरिक श्रम से देश की उपयोगी सपत्ति मे वृद्धि करता है तो उससे उत्तम और हो ही क्या सकता है? 'होना' निश्चय ही 'करना' है।

श्रम के साथ जो 'बुद्धिपूर्वक किया हुआ' विशेषण लगाया है वह यह बतलाने के लिए लगाया है कि समाजसेवा मे श्रम तभी खप सकता है जब उसके पीछे सेवा का कोई निश्चित हेतु हो; नही तो यह कहा जा सकता है कि हरेक मजदूर समाज की सेवा करता है। एक प्रकार मे तो वह समाज की सेवा करता ही है, पर जिस सेवा की यहा बात हो रही है वह बहुत ऊचे प्रकार की सेवा है। जो मनुष्य सबके हित के लिए सेवा करता है वह समाज की सेवा करता है, और जितने मे उसका पेट भर जाय उतनी मजदूरी पाने का उसे हक है। इसलिए इस प्रकार की 'ब्रेड लेबर' समाज-सेवा से भिन्न नही है। अधिकाश मनुष्य जो काम अपने शरीर के पोषण के लिए या बहुत हुआ तो अपने कुटुब के लिए करते हैं, उसे समाज-सेवक सब के हित के लिए करता है। इन सात आश्रमवासियों को आज यह मालूम हो रहा है कि उन्हे अपने अन्न-वस्त्र के लिए मेहनत करने के पश्चात् दूसरी सेवा करने का समय शायद ही रहता है। ये सेवक अगर अपने काम मे कुशल होते, तो ऐसी बात कभी न होती। असल मे वे कार्य-कुशल नहीं है। खेती-बारी के मजदूर के रूप मे उन्हे हम देखते है तो वे साधारण मजदूरो की बराबरी कर ही नही सकते। कारीगरो की कोटि मे भी वे नौसिखिये ही कहे जा सकते हैं। ईश्वर की कृपा से प्रत्येक कार्यकर्ता अब यह जानता है कि सूत कातनेवाला अपने औजारो को अगर बुद्धि के साथ काम में लावे तो अमुक समय मे वह सूत की मात्रा सहज मे दूनी कर सकता है, अर्थात् उसकी चर्खे की आमदनी दूनी हो सकती है। यह बात अधिकाश वस्तुओं के संबध मे सत्य है। खेती मे, उनके इन्हीं औजारों मे तरक्की करने का क्षेत्र इतना विशाल है कि यदि प्रकृति बीच मे न पडे तो किसान अपनी बुद्धि का उपयोग करके नित्य उतने ही घंटे काम करते हुए अपनी आमदनी सहज ही चौगुनी कर सकते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि आज जितनी आमदनी के लिए वह मेहनत करता है, उतनी मजदूरी करने की उसे जरूरत न रहेगी। इसलिए ये सेवक जब कुशलता प्राप्त कर लेंगे, तब आज की अपेक्षा बहुत कम समय में वे अपने अन्न-वस्त्र भर के लायक कमा लेंगे, और हरिजन-सेवा अथवा किसी दूसरे काम में वे अपनी शक्ति को बिना किसी बाधा के लगा सकेंगे। अनेक जगड्वालों मे फँसे हुए साधारण गृहस्थों के लिए यह समस्या जटिल हो सकती है, पर जिस त्यागी सेवक को महीने में केवल

चारही रुपये की जरूरत है उसका तो चार रुपया कमाने की मेहनत मजूरी कर लेने के बाद बहुत-सा समय बच सकता है।

लेकिन प्रति मनुष्य यह तीन रुपये का मासिक खर्च देखते हुए मनुष्य का पेट क्या सचमुच भर सकता है ? डॉ० तिलकने बबई के लिए जो ५) का हिसाब बाधा है अगर वह सही है, तो गांव के रहन-सहन के लिए यह तीन रुपया ठीक ही है। और डॉ० तिलकने भोजन की जो सूची दी है उसमें मैं अपना निजी अनुभव जोड़दू तब तो कोई कठिनाई रहती ही नही। डॉ० तिलकने गांव की खूराक में से दूध के बुरादे को अलग कर दिया है। पर वे यह कहते है कि बिना दूध के काम चल ही नही सकता। इन आश्रमवासियोंने दूध का जो त्याग कर दिया था वह उनकी भूल थी। यह सही है कि करोड़ो मनुष्यों को दूध की एक बूंद भी नसीब नही होती। पर ऐसी तो और भी अनेक चीजे है जो उन्हे नहीं मिलती। अगर हमे सेवा करने के लिए जीवित रहना है तो उन्हे छोड़ने का हमें साहस नही करना चाहिए। इसलिए जिनके बिना हमारा काम चल ही नहीं सकता ऐसी चीजे हम न छाडे और गाववालो को इसमे मदद दे कि वे अपने लिए भी उन चीजों को पैदा करलें। गेहूँ, चावल, बाजरा, जुआर-जैसे पूर्ण अनाज, और ऐसी हरी भाजिया, जो कच्ची ही खाई जा सकती है, और दूध और गावों मे पैदा होनेवाले आम, अमरूद, जामुन, बेर आदि मौसिमी फल नीरोगी जीवन के लिए जरूरी है। नीम की पत्ती को तो शायद हरी भाजियों की रानी कहा जा सकता है। नीम की पत्तिया भारत मे सर्वत्र मिल सकती है। और मनुष्य के खाने लायक अनेक प्रकार का ऐसा घास भी है जिसका हमे पता नही। इमली सब जगह मिलती है। यह भी फेक देने की चीज नहीं है। पर इमली के विरुद्ध एक तरह का जो नअस्मुब है उसे समझना कठिन है। कीमती नींबुओ की जगह मैं अब इमली काम मे लाने लगा हूँ, और इससे मुझे बहुत ही लाभ हुआ है। आहार मे क्या-क्या सुधार हो सकते है इस सब के शोध के लिए हमारे सामने असीम क्षेत्र पड़ा हुआ है। इस शोध के ऐसे-ऐसे बड़े-बड़े परिणाम निकल सकते है, जो संसार के लिए और खासकर भारत के भूखो मरनेवाले करोड़ो मनुष्यो के लिए काफी महत्व का स्थान रखते है। इसका यह अर्थ हुआ कि स्वास्थ्य और सपत्ति दोनो की ही उनसे प्राप्ति हो सकती है। रस्किन के कथनानुसार तो ये दोनो चीजे एक ही है। इस छोटे-से आश्रम के सदस्यो की यह धारणा बिल्कुल सही है कि वे सदा सन्मार्ग पर चलकर बड़ी-से-बड़ी समाज-सेवा करेंगे। उनकी सेवा की सुगध वहा आसपास फैलेगी और वह सक्रामक सिद्ध होगी। कालातर मे यह सेवा-भावना समस्त भारत में और फिर अखिल विश्व मे व्याप्त हो जायगी। इस सेवा मे एक का कल्याण सबका कल्याण है।

'हरिजन' से] **मो० क० गांधी**

शुद्धि किसकी ?

गत २४ मई के हरिजन-सेवक में प्रकाशित 'वह मुसल्मान संत' शीर्षक मेरा लेख देखकर शुद्धि प्रवृत्ति के हिमायती मेरे एक मित्रने मुझ से उस दिन कहा कि 'तब तो वह मुसल्मान भाई आसानी से शुद्ध किया जा सकता है। बारह आने तो वह हिन्दू है ही, कसर चार ही आने की तो है।'

मुझे यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ। निश्चय ही यह 'धर्मान्तर' की मनोवृत्ति शोचनीय है। शुद्धि तो असल मे इस मनोवृत्ति की ही होनी चाहिए। धर्म और ईश्वर के नाम पर अन्य धर्मानुयायियो को अपने दायरे में लाने की या अपने सप्रदाय की जन-सख्या बढाने की चेष्टा करना धर्म का निर्दय उपहास नही तो क्या है ! द्वेष और अहकार को आश्रय देनेवाली यह मनोवृत्ति हर्गिज धार्मिक मनोवृत्ति नही कही जा सकती। एक सप्रदाय अगर 'धर्मान्तर' की बुराई करता है तो दूसरा सप्रदाय उस बुराई की नकल क्यों करे ? राजनीति के नाम पर दुनिया मे भला-बुरा सब कुछ हो रहा है, पर 'धर्मनीति' के नाम पर तो वह सब निश्चय ही शोभा नही देता।

आत्मशुद्धि की बात तो समझ मे आ सकती है और आनी चाहिए, पर यह परशुद्धि कैसी ? दूसरो को शुद्ध तो घट-घट की जाननेवाला एक ईश्वर ही कर सकता है। उसकी दया का सहारा लेकर हमे तो अपनी ही शुद्धि करनी है। हम नापाक मनुष्य, जिनके पोर-पोर मे खुदी का विष भरा हुआ है, दूसरों की शुद्धि क्या खाक करेंगे ! और फिर ईश्वर के नाम पर ! गांधीजी का यह वाक्य हमेशा याद रखने लायक है कि "वह सर्वशक्तिमान ईश्वर क्या इतना असहाय है कि वह मनुष्यों को अपनी ओर खीच नही सकता।"

वि० ह०

साप्ताहिक पत्र

[१३५ पृष्ठ के आगे]

उन्होंने तो भगी और पाटीदार के बीच कभी भेद नही माना। आप तबतक विट्ठलभाई पटेल के नामपर सच्चा स्मारक नही बना सकते जबतक कि आप इसके द्वारा ऐसी लोक-सेविकाएँ उत्पन्न नही करेंगे, जो अपने जीवन को समस्त भारतवासियों की सेवा मे अर्पण करदे। इस आदर्श को सामने रखकर आप इस संस्था को चलायेंगे तभी विट्ठलभाई का यह सच्चा स्मारक समझा जायगा।"

एक झलक साबरमती की

साबरमती-जेल में अगर गाधीजी को खान अब्दुलगफ्फार खा से मिलनेकी इजाजत न मिलती, तो वे शायद ही साबरमती जाते। गाधीजी के साथ सरदार वल्लभ भाई भी थे। खा साहब के पास दोनोंने एक घंटा बड़े आनद मे बिताया। खा साहब कुछ विशेष स्वस्थ्य नही दिखाई दिये। जलवायु का कारण तो है ही, पर उनके शरीर पर वहां अकेले रहने का असर आबोहवा से भी बुरा पड़ा है।

साबरमती की एक झलक और। उस दिन गाधीजी हरिजन-आश्रम मे छोटी-छोटी हरिजन लड़कियों को देखने गये थे। ये लड़किया ही अब साबरमती-हरिजन-आश्रम की हीर हैं। उन नन्ही-नन्ही बच्चियो के साथ गाधीजी के विनोद का आरंभ इस प्रश्न से हुआ—"तुम्हारी कितनी अध्यापिकाएँ हैं ?" एकने कहा, 'मनी बहिन।' दूसरीने कहा, 'जय बहिन।' तीसरीने कहा, 'आनंदी बहिन' चौथीने कहा, 'माधुरी।' इस तरह तबतक तांता लगा ही रहा, जबतक कि हरिजन-आश्रम मे रहनेवाली बड़ी उम्र की बहिनो की नामावली समाप्त न हो गई !

'यह आपकी यूनिवर्सिटी से भी बड़ी बात नहीं है क्या ?' गाधीजीने आचार्य आनंदशंकर ध्रुवसे कहा, जो वहां सांझ की प्रार्थना में शामिल होने के लिए आये हुए थे। 'इन मुट्ठीभर छात्राओं को पढाने के लिए इतनी अध्यापिकाएँ तो आपके यहां भी न होंगी ?'

'आप ठीक कहते हैं', आचार्य भ ुवने कहा, 'पर इन अध्यापिकाओं के नाम तो वे अपनी मडली में से ही बतला रही हे । इतनी अध्यापिकाएँ थोडे ही हो सकती हैं ।'

गांधीजीने कहा, 'खैर, आपको यह नही भूलना चाहिए कि यह आश्रम पुराना सत्याग्रहाश्रम है !' और फिर गाधीजी इन छोटी-छोटी लडकियोसे पूछने लगे कि उन्हे कौन अध्यापिका क्या पढाती है ।

प्रश्न—'अमुक अध्यापिका तुम्हे क्या सिखाती है ?'

उत्तर—'धुनना ।'

प्रश्न—'और अमुक ?'

उत्तर—'कातना ।'

प्रश्न—'और अमुक अध्यापिका ?'

उत्तर—'गाना ।'

प्रश्न—और अमुक ?'

तुरत उत्तर मिला, जिसे सुनकर सभी खिलखिलाकर हँस पडे । वह उत्तर था—

'नाश्ता ।'

'तो तुम्हारी सबसे अच्छी अध्यापिका नाश्ता का मीठा पाठ देनेवाली ही होगी ?'

'जरूर,जरूर' सब बच्चियोने बडी प्रसन्नता से कहा ।

'अच्छा, मझे अब यह बताओ कि तुम लोगो मे नटखट लडकी कौन है ?'

फौरन कई नाम बतला दिये गये ।

'और तुममें कोई झूठ भी बोलती है ?'

'हाँ, हा, हम बोलते हं, जब काम से जी चुराते है ।'

'कौन ? नाम बताओ ।'

'मै' एकने हँसते हुए कहा ,

'पर यह तो बुरी बात है, है न ? तुम्हे ऐसी कोशिश करनी चाहिए जिससे कभी झूठ न बोलना पडे ।'

'कोशिश तो करती हूँ, पर म हमेशा चूक जाती हूँ ।'

'तुम कोशिश ही नही करती ।

'करती हूँ, पर क्या करूँ, झूठ मुह से निकल ही जाता है । मालूम नही कि मै अपने प्रयत्न में कैसे सफल हो सकूगी ।'

'मैं बतलाऊँ कि कैसे ? अच्छा, तुम नित्य सबेरे उठकर राम का नाम लो और यह कहो कि 'हे प्रभु, मेरी सहायता कर कि मैं झूठ न बोलू ।' और नित्य शाम को जब सोने के लिए जाने लगो, तब यह कहो कि 'हे प्रभु, सत्य बोलने में इतनी बार मैने आज भूल की है । मेरी यही प्रार्थना है कि सत्य बोलने में तू मेरी सहायता कर ।' अब तुम मेरे कहे अनुसार चलोगी न ?'

'जी हा,' सबने एक स्वर से कहा ।

'यह अच्छी बात है । अपने बचन पर दृढ रहना । तो अब हमारा खेल खत्म हुआ, और मैं अब तुम से विदा लेता हूँ । क्यों जाऊँ न अब ?'

'नहीं, नही,' उनमें से कई लड़कियोंने कहा ।

'क्यों ? क्या तुम्हे मुझ से कुछ पूछना है ? तो पूछो फिर ।'

'आप यह बतलाइए कि आप यहां हमारे साथ क्यों नही ठहरे ?'

'क्योंकि तुमने मुझे निमंत्रण नहीं दिया, और बुधा भाईने दिया ।'

'निमंत्रण तो आपको हमारा भी मिलता । "पर आप हमारे साथ यहां ठहरेंगे नही । बतलाइए, इसका क्या कारण है ।'

'जब तुम स्वराज प्राप्त कर लोगी, तब मैं यहां तुम्हारे साथ ठहरूँगा ।'

पर अब तो एक लड़कीने गांधीजी को चक्कर में डाल दिया, बोली, 'यह बात तो तब थी, जब यह आश्रम आपका था । जबतक स्वराज नही मिला, तबतक आप अपने आश्रम मे न ठहरें । पर यह आश्रम अब तो आपका रहा नही । यह तो हरिजन-आश्रम है । तब फिर आप हमारे साथ क्यों नहीं ठहरते ?'

गांधीजीने खूब जोर से हँसते हुए कहा, 'अच्छी बात है, अब की जब मैं यहां आऊँ, तब तुम मुझे निमंत्रण देना ।'

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

बिहार के खादी-केन्द्रों में

(३)

मधुवनी मे खादी के सिवा थोडी चर्चा हमने ग्राम-उद्योगो की भी करली । इस चर्चा में चावल का नम्बर पहला रहा । बिहार तो चावल की भूमि है और अधिकतर बिहारियो का मुख्य भोजन चावल ही है । लेकिन बिहार मे जो चावल हमने खाया, उसमे हमें बडी निराशा हुई । हमने श्री लक्ष्मीबाबू और उनके साथियो से इसकी चर्चा की, और उन्हे बताया कि घुटे-घुटाये, सफेद और नि:सत्व चावलो की तुलना में बिना छँटा पूर्ण चावल सत्व का भण्डार है, और क्या स्वाद, क्या तन्दुरुस्ती और क्या किफायत, हर पहलू से, फायदेमन्द है; खासकर गरीबों के लिए तो वह एक ही चीज है, जिसपर वे अपनी सब आशाएँ बाध सकते हैं । हमने उन्हे बिहार के अपने सभी खादी केन्द्रो मे बिना छँटा पूर्ण चावल ही चालू करा देने को कहा है, और कहीं-कहीं तो कार्यकर्त्ता अब यही चावल लाने भी लगे है ।

हमारी चर्चा का दूसरा विषय गुड था । गुड के साथ खाड की बात भी निकली और जब हमे यह मालूम हुआ कि मधुबनी मे एक खँडसाल भी है, तो हम वक्त न रहते भी दौडे हुए उसे देखने गये और देखकर सन्तुष्ट हुए । धामपुर क बाद यही खँडसाल हमने देखी, जो व्यवस्था और सफाई की दृष्टि से हमे बेहतर जँची । इस खँडसाल म गाव मे कच्ची और पक्की खाड और बूरा आदि बनाया जाता है ।

खंडसालवालो से ही हमें यह भी मालूम हुआ कि उनकी एक दूकान पर पड़ौस के नेपाल राज्य में बने हाथ के देशी कागज और जडी-बूटिया आदि का अच्छा संग्रह रहता है । हमने उनसे नमूने के लिए कुछ पतले नेपाली कागज लिये और उन्हें ज्यादा मजबूत और बढ़िया कागज का आर्डर देकर हम वापस आये । भोजन किया, मित्रो से विदा हुए, और स्टेशन पहुँचे । ग्यारह बजे थे, पर धूप कडाके की तपने लगी थी, और इसी कड़ी और पसीने से नहलानेवाली धूप मे जब बी. एन. डब्ल्यू. रेलवे अपनी उकतानेवाली धीमी चाल से हमे सीतामढी की ओर ले चली तो हमारी बेबसी देखने ही लायक थी ।

(४)

दरभंगा-मधुबनी से चलकर उसदिन शाम को दिन डूबते हम कुँडवा-चैनपुर पहुँचे । रास्ते में भूकम्प की क्रूर विध्वंस-लीला के उदाहरण-स्वरूप हमने रेल के पुल देखे, जो जमींदोज होचुके थे

और अब फिर से बन रहे हैं। श्री लक्ष्मीबाबूने तो हमें मधुबनी से चलते समय यह कहकर डराना चाहा था कि कुँड़वा-चैनपुर स्टेशन से चम्पारन मधुबनी तक हमें पैदल जाना होगा और सो भी अँधेरी रात में, अनजान रास्ते से। लेकिन तकदीर हमारी सिकन्दर निकली और श्री० ध्वजाबाबू की कृपा से हमें वहां ऐसी सुखद सवारी मिल गई कि जिसकी हमने कल्पना भी नहीं की थी। स्टेशन के बाहर एक हथिनी हमारी राह देखती हुई खड़ी थी। शुरू में तो हम यह सोचकर सकपकाये कि उसकी बिना अम्बारीवाली पीठपर हम बैठेंगे कैसे? पर जब हिम्मत करके बैठे और 'अनारकली' अपनी मस्त गति में हमें लेकर चली तो वह आनन्द आया कि कुछ पूछिए नहीं। तारों से छिटकी हुई अँधेरी रात में काली हथिनी पर बैठे हुए जब हमें शीतल-मन्द समीर के झोंके लगने लगे, तो दिनभर की सारी तपन और थकान का दुःख भूल गया, और अपने चारों ओर के काव्यमय वातावरण से प्रभावित होकर हम परस्पर अपने जीवन के पुराने और विविध सस्मरणों की रसभरी चर्चा में लीन होगये। कोई छः मील का रास्ता था। दो-ढाई-घण्टे की दौड़ थी। मधुबनी के निकट पहुँचते पहुँचते तो जंगल की ठण्डी मीठी हवाने इतने जोर से हमें उँघियाना शुरू किया कि बैठे-बैठे झोंके खाते थे और जब गुपककर चौंकते थे तो कसकर रस्से को पकड़ लेते थे और फिर ऊँघने लगते थे। उधर अनारकली को भी सूने खेतों में अरहर और गेहूँ पर डाका डालने का अच्छा मौका मिल गया था, और अपनी इस धुन में न वह महावत की पर्वा करती थी और न हमारे उपहास की! आखिर जब रात को करीब ९॥ बजे हम मधुबनी की खादी-कला-शाला में पहुँचे तो बिहार शाखा के सहायक मंत्री श्री ध्वजाबाबूने हमारा मीठा स्वागत किया। आवश्यक कार्यों से निपटकर और थोड़ा सुस्ताकर हमने भोजन किया और फिर कुछ देर बाद सो गये।

× × × ×

सुबह ४॥ के करीब घण्टी बजी, लोग उठे, प्रार्थना की, और थोड़ी देर में सारा वातावरण कार्यकर्त्ताओं की चहल-पहल से गूँज उठा। गुजरात के श्री० मथुरादास पुरुषोत्तम इस खादी-कला-शाला के आचार्य हैं। भूकम्प के बाद पीड़ितों की सहायता के लिए जो रिलीफ कमेटी बनी थी, उस कमेटी में काम करने के लिए ही श्री मथुरादास भाई बिहार आये थे। जब प्रारंभिक सहायता का काम समाप्त हुआ और लोगों के मन कुछ स्वस्थ हुए, तो कमेटी की ओर से भूकम्प-पीड़ितों की सहायता के लिए सोतीहारी के आसपास खादी का काम शुरू किया गया। १ जुलाई सन् १९३४ के दिन श्री मथुरादास भाईने इस खादी-कला-शाला की स्थापना की। थोड़े ही समय में कई लोगोंने आकर उस शाला में बुनने और कातने की क्रियाएँ सीखीं। शुरू में ज्यादातर पुरुष ही आये। बाद में विश्वास जमने पर लड़कियां और उनके बाद स्त्रियां भी सीखने के लिए आने लगीं। इस प्रकार आवश्यकताने अपना रास्ता बना लिया और एक गढ़ की कुछ दीवारें टूट गईं। शुरू में गाववालों को स्त्रियों का यह आना-जाना खटका; कुछ मनचले युवकोंने छेड़खानी भी की, पर जब औरतें मर्दानी बनगईं और उनके हाथों दो-चार गुण्डों की पीठ-पूजा होगई, तो मैदान साफ हो गया, वातावरण सुलझ गया और अब बहनें निश्चिन्त और निर्भीक होकर आती-जाती हैं, कातती-बुनती, लिखती-पढ़ती, और गावों में बहनों को कातना-बुनना सिखाती हैं। आज शाला में ऐसी छोटी-बड़ी कोई तीस बहनें काम कर रही हैं। शाला की ओर से इन्हें प्रतिदिन डेढ़ से लेकर दो आनेतक का पारिश्रमिक मिलता है। शुरू में इनके पास पहनने को साबुत साड़ी तक नहीं थी, कुछ के पास अब भी नहीं है, पर बहुतेरी ऐसी भी हैं, जिन्होंने स्वयं धुन और कातकर और शाला की अन्य सेवाएँ करके इतना कमा लिया है कि अब वे शुद्ध खादी की सुन्दर साड़ियां पहनती हैं और स्वावलम्बन के सब लाभ उठा रही हैं। इन बहनों के साथ किशोरवय के १२ लड़के भी हैं, जो आसपास के गावों में रहते हैं और धुनाई-कताई में इतने होशियार हो गये हैं कि गावों में जाकर लोगों को स्वतंत्र रूप से प्रारंभिक धुनना-कातना सिखाते रहते हैं। इन्हें भी प्रतिदिन डेढ़ आना मिलता है। खादी का कुर्त्ता और खादी की धोती अब ये भी पहनने लगे हैं। सुबह इन लोगों को एक घण्टा पढ़ाई का मिलता है। शाला के आचार्य और दूसरे बड़े कार्यकर्त्ता सुबह ७ से ८ तक इन्हें पढ़ाते हैं। आम के पेड़ों के नीचे, खुले मैदान में, सुबह के समय जब ये भाई-बहन नम्रता और जिज्ञासा की मूर्ति बनकर लिखने-पढ़ने और भूगोल सीखने बैठते हैं, तो सारा वातावरण पुराने ऋषि-कुलों सा पुनीत होने लगता है। पढ़ाने का ढंग भी सरल और मौलिकता लिये होता है, जिससे पढ़ने-वालों के दिमाग पर किसी प्रकार का विशेष बोझ नहीं पड़ता और हँसते-खेलते वे अपने अभ्यास में प्रगति करते रहते हैं।

पहले शाला गाव के एक मकान में थी। अब इधर डेढ़ महीने से गाव से कुछ दूर खुले मैदान में आम और बास की घटा के बीच उठकर चली आई है। खादी-भण्डार, बढ़ई-शाला, और भोजनालय के लिए घास-फूस और बास की कुछ झोंपड़ियां कार्यकर्त्ताओंने स्वयं बनाली हैं। सुबह ४॥ से रात के ९ तक वे इनमें काम करते हैं और रात को खुले मैदान में आकाश के नीचे 'अलमस्त' की तरह गाढ़ी नींद लेते हैं। श्री मथुरादास भाई की सहायता के लिए चर्खा-संघ के पुराने मँजे हुए कार्यकर्त्ता श्री ध्वजाबाबू और रामदेवजी इधर आगये हैं। इनके अलावा शालामें खादी की क्रियाओं को जाननेवाले २० विद्यार्थी और हैं, जो दिन-भर कड़ी मेहनत करते हैं और मोटा-झोटा खाकर मस्त रहते हैं। इन्हें अबतक शाला की ओर से प्रतिमास सात या आठ रुपये की सहायता दी जाती थी, पर अब तो इनमें से कुछ ऐसे लोग तैयार हो रहे हैं, जो निज के परिश्रम से अपनी रोटी कमा सकें और शाला पर किसी प्रकार का बोझ न डालें। ये लोग आजकल शाला के मकान के लिए इमारती लकड़ी को चीरने का काम करते हैं, और कष्ट-सहिष्णुता के साथ-ही-साथ सुन्दर स्वास्थ्य का लाभ उठा रहे हैं। इन दो महीनों में हमने कई खादी-केन्द्र देखे, पर जैसे कसे हुए, गठीले बदन के चौड़ी छातीवाले नौजवान खादी-सेवक हमने यहां देखे, वैसे कहीं भी नहीं देखे। अगर इन भाइयों का यह व्रत सफल हुआ और आजीवन टिका रहा तो देश के लिए वे अनमोल धन होंगे, और सबकी आखें उन पर रहेंगी।

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

प्रार्थना का रहस्य

"आत्मवत सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, २१ जून, १९३५. [संख्या १८

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

सफाई का काम

इस सप्ताह लोगों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए हमने एक नया काम हाथ में लिया है। अक्सर लोग मीरा बहिन के आसपास जमा हो जाते हैं। एक दिन गांव के दो निठल्ले आदमी आकर उनके सामने खड़े ही रहे और पूछने लगे, 'गांधीजी तुम्हें कितनी तनखाह देते हैं ?' किस तरह वे हिन्दुस्तान आईं, गांधीजी के पास आकर किस प्रकार रही और इस गांव में जिस काम को लोग गन्दे-से-गन्दा समझते हैं उसे करने में उन्हें कितना आनंद आता है ये सब बातें मीरा बहिनने उन्हें बड़ी मिठास के साथ समझा दीं। इतने में एक तीसरा आदमी आया और उन दोनों निठल्लों को उनकी बेवकूफी के लिए डांटने लगा। इस पर वे दोनों प्रसंग बदलकर अब यह कहने लगे, 'इस काम से क्या मिलता-जुलता है ? गांधीजीने एक के बाद एक इस तरह न जाने कितने काम हाथ में लिये, पर पूरा एक भी न हुआ। इसीलिए तो स्वराज मिलता नहीं।'

मीरा बहिनने कहा, "तुम्हें बीड़ी-सिगरेट तो चाहिए ही, सिनेमा भी नहीं छोड़ा जाता, फिर भी तुम आसमान से स्वराज टपक पड़ने की आशा रखते हो ? अरे, स्वराज आसमान से नहीं टपका करता। उसे तो जमीन में से कुरेद-कुरेदके निकालना है, और हम वही काम कर रहे हैं।"

वे दोनों आदमी लज्जित हो गये और बिना कुछ कहे-सुने ही चल दिये। मीरा बहिनने अब तीसरे को लिया और उसे समझाते हुए कहा कि हम लोग अब यह विचार कर रहे हैं कि बरसात आने के पहले ही सारे गांव की अच्छी तरह सफाई कर डालें और यहां की बड़ी-बड़ी सड़कों को भी ठीक करदें। इसे मीरा बहिन की यह बात अच्छी लगी और उसने हमें वचन दिया कि इस काम में मैं भी आपको थोड़ी-बहुत मदद दूंगा।

दूसरे दिन गांव के एक बहुत ही गंदे हिस्से में सफाई करने का काम हमने कमर कसके शुरू कर दिया। गाड़ियों कूड़ा-कचरा साफ करना था, और हमा सामने की थी। तो भी काम खत्म करने का निश्चय तो हमने कर ही लिया था, इसलिए तीन घंटे डटकर मेहनत की। थोड़ी देर बाद हमारा दूसरा जत्था भी आ पहुँचा। इस जत्थे में दो मजदूर भी थे, जिन्हें हमने खुदाई का काम करने के लिए लगा रखा था। इस टुकड़ीने तीन घंटे काम करके एक कुएँ के इर्दगिर्द का हिस्सा साफ किया, और जहां पानी ढिलकर रास्ता खराब कर देता था वहां उसके निकास के लिए एक नाली तैयार की। कुएँ पर आनेवाली पनिहारिनों को यह काम रुचा। बहुत-सी स्त्रियां वहां इकट्ठी हो गईं, और एकबार तो उन्हें इतनी खातिरी हो ही गई कि हम जो काम कर रहे हैं उसमें हमारा कोई स्वार्थ नहीं हो सकता। यहीं पास के एक ईंट के भट्टे से एक आदमी आकर हमारी योजना के बारे में बात करने लगा, और हमें काम करने का रास्ता सुझाने लगा। उसने हम से कहा कि अगर किसी आदमीने एक-दो गाड़ी मुरम और पत्थर न दिये तो हम लोग इस रास्ते को बहुत अच्छा नहीं बना सकते। उसने खुद एक गाड़ी रोड़ा देने का वचन दिया और कहा कि मैं आपको इस काम में मदद भी दूंगा। एक दूसरा आदमी कहने लगा, "क्या करें, हम लोग इतने लाचार हैं कि जबतक जमीदारिन हमें मदद नहीं देगी, तबतक हम कर ही क्या सकते हैं ?"

मैंने कहा, "पर तुम अपने हाथ-पैर की मदद तो दे ही सकते हो। जमीदारिन के पास हम लोग गये थे, और उसने यह कहा है कि आप लोग मेरी टेकरी से मुरम और पत्थर खुशी से ले जा सकते हैं, अपनी गाड़ी लाओ और भर ले जाओ।"

उस भाईने कहा, "ठीक है, हमें ईश्वरने हाथ-पैर दिये हैं और हम अवश्य आपकी सहायता करेंगे।"

हमारे जत्थे में एक जर्मन सज्जन थे। वे आजकल हमारे यहां मेहमान हैं। उन्होंने दूसरे जत्थे के साथ काफी कड़ी मेहनत की। अपनी कमीज उतारकर उन्होंने मजदूरों के साथ साढ़े दस बजे तक धूप की पर्वा न करके खूब डटके काम किया। ऐसा जान पड़ता था कि लोगों का सब से अधिक ध्यान वही आकर्षित कर रहे थे।

पहलवानों का आग्रह

एक दिन कुछ घुमक्कड़ पहलवान आ पहुँचे और गांधीजी को अपने कसरत के दो-चार खेल दिखाने का आग्रह करने लगे। गांधीजीने बहुत कहा कि 'एक तो मुझे समय नहीं, दूसरे जो चीज देश के लाभ के लिए काम नहीं आती उसे देखने में मेरा मन नहीं लगता, और फिर तुम्हें इनाम चाहिए, वह मैं कहां से दूंगा ?' पर वे लोग भला कब माननेवाले थे, उन्हें तो अपनी कसरत के हाथ दिखाने ही थे। यह कितने दुःख की बात है कि हमारे देश का बहुत-कुछ कला-कौशल व्यर्थ ही जा रहा है। ये कुशलता-सम्पन्न लोग अपनी अतुल शक्ति का राष्ट्र की दृष्टि से विचार करते ही नहीं। ये पहलवान एक मुक्के से पत्थर तोड़ सकते थे, पर उनसे गांव

का रास्ता ठीक करने को कहा जाय तो न करेंगे। ये भारी-से-भारी वजन उठा सकते थे, पर किसी सकट-निवारण के काम में जाने के लिए कभी इनका मन न होगा। और इतना शारीरिक बल होते हुए भी ये भीमसेन के भाई-बन्धु भिखारी ही बने रहते है, क्योंकि सिवा पैसा कमाने के उन्हे अपनी शक्ति का उपयोग और सूझता ही नहीं। कलकत्ता जाने के लिए इन्हे पैसे की जरूरत थी। इसलिए कहने लगे, "हम बहुत ही लाचार है।"

गांधीजीने कहा, "लाचारी, और तुम्हे? तुम्हारे शरीर में तो इतना अधिक बल है कि तुम एक घूसा मारकर पत्थर तोड़ सकते हो। मै तोडना चाहूँ तो मेरा तो हाथ ही टूट जाय।"

"पर आपके पास तो एक दूसरा ही उच्च प्रकार का बल है।"

"वह बल तो तुम्हारे भी अन्दर है।"

"जी नहीं। हमारे अन्दर वह बल होता तो हम आज गाव-गाव भीख मागते न फिरते होते।"

"वह बल जितना मेरे पास है उतना ही तुम्हारे पास भी है। अन्तर इतना ही है कि तुम्हारे अन्दर वह सो रहा है, और मेरा बल जाग्रत है और काम करता है। मैने उस बल को विकसित किया है। हर आदमी उसे विकसित कर सकता है। पर हरेक पहलवान नहीं हो सकता। मैं तो प्रयत्न करने पर भी नहीं हो सकता।"

यह बात तो ये समझ गये, पर भीख मागना कैसे छोड सकते थे? उनका तो धधा ही भीख मागना हो गया है।

एक हरिजन-सेवक की कठिनाइयाँ

एक कसा हुआ और सच्चा हरिजन-सेवक हमारे यहा एक-दिन रह गया है। चार सालतक उसने अविराम परिश्रम किया, पर उसका फल उसे कुछ अधिक नहीं मिला। अपनी सस्था के लिए हरिजन-सेवक-सघ से उसे काफी पैसा नहीं मिल सका। उसके पास नवयुवक आते और कुछ दिन वहा रहकर चले जाते थे, क्योंकि इस काम में उनका मन नहीं लगता था। उधर ब्राह्मणेतर लोग अलग उसके काम में विघ्न डालते थे, क्योंकि उन्हे ऐसा लगता था कि यह मनुष्य हरिजनो का काम करके दूसरो को नीचा बना रहा है। और हरिजनो से भी उसे अक्सर निराशा हुआ करती, क्योंकि वे अपनी बुरी आदते सुधारने और शराब तथा मुर्दार मास छोड देने का वचन तो दे देते थे, पर वचन का पालन नहीं करते थे। ऐसी-ऐसी उसकी अनेक कठिनाइया थी।

गांधीजी के पास उसके लिए सिवा इसके दूसरा और संदेश था ही क्या कि, 'हिम्मत न हारो, धीरज के साथ अब भी मेहनत किये जाओ।' गांधीजीने कहा, "यह कोई आसान काम नहीं है। हमें सदियो से जमे हुए अंधविश्वास को जीतना है, इस लक्ष्य को दृष्टि मे रखते हुए राष्ट्र के जीवन में तुम्हारे ये चार बरस किस गिनती में आते है? और अनत काल के आगे तुम्हारा यह एक जीवन भी किस हिसाब में आता है? और हम पर्याप्त परिश्रम कर चुके है क्या? क्या हम काफी कष्ट झेल चुके है? बुकर टी० वाशिंगटन का ही उदाहरण लेलो। जितने कष्ट वाशिंगटनने उठाये थे, क्या उतने कष्ट हम में से किसीने उठाये है? हमलोग हरिजनो के दुःखो का तो वर्णन करते है, पर क्या हमने कभी उनके इन दुःखों में खुद भाग लिया है? हरिजन काफी चतुर हैं, इसलिए वे देख सकते हैं कि भूखों हम लोग नहीं मरते, भूखो तो वे मरते है, हमें अच्छा मीठा पानी मिल जाता है, पर उन बेचारों को तो गँदले पोखरो से ही पानी भरना पडता है।

तुम कहते हो कि हरिजन-सेवक-संघ तुम्हें पैसा नहीं देता। सघ की दृष्टि से यह ठीक ही है। हमने आरभ ही गलत सिरे से किया है। हम अपने बल पर खडे रहने के बजाय बाहर की सहायता पर निर्भर करते चले आ रहे हैं। अब ऐसा समय आ गया है, जब हमें यह बाहर से सहायता लेना बंद कर देना चाहिए। बच्चो को किसी बरामदे या उनके छप्परो में ही बिठाकर क्यों न पढ़ाया जाय, और इस तरह पाठशाला का विकास क्यो न स्वाभाविक रीति से किया जाय? छात्रालय के लिए जितने अनाज या साग-भाजी की जरूरत पड़े उतना उन्ही की मदद से क्यो न वही-का-वहीं पैदा कर लिया जाय? इस तरह तुम्हारे छात्रालय का खर्चा बहुत-कुछ कम हो सकता है। यह बात तो समझ मे आती ही नही, कि त्रिवेन्द्रम में तो कोई पाठशाला हो, और वहा से काले कोसों पर दिल्ली मे उसका आधार रखा जाय! यह तो बडी ही अस्वाभाविक चीज है। शुरू-शुरू मे हो सकता है कि ऐसा करने की जरूरत पड़े, पर अब इस बाहरी सहायता की दरकार नहीं होनी चाहिए। ऐसी पाठशाला चलानेवाला आदमी अगर दिल्ली से तनखाह पाता हो तो वह परदेशी-सरीखा है। अगर वह हरिजनो में खूब अच्छी तरह घुल-मिल जायगा तो वे जरूर उसे अपनी दो रूखी-सूखी रोटियां देदेगे, उसे वे भूखो नही मरने देंगे। हर बक्त दिल्ली के कार्यालय की ओर दृष्टि डालने मे कोई सार नही। दिल्ली का कार्यालय तमाम काम को सुन्दर रीति से चलाता रहेगा, पर कार्य-सचालन की सब साधन-सामग्री तो प्रातीय सघो को ही जुटानी होगी। किन्तु मेरा मन नित्यप्रति इतने अधिक अनुसंधान कर रहा है कि मुझे कुछ ऐसा लगता है कि हमे यह पैसा इकट्ठा करने की झंझट भी अब छोड देनी चाहिए। अगर हमारे पास पैसा नहो है, तो काम रुक नही सकता। खोजने की कला भर चाहिए अन्य साधन-सामग्री हमारे पास बहुत पडी हुई है।

और हरिजनो के विषय मे हम हताश क्यो हो? प्रतिज्ञा लेकर उसे पालनेवाले अधिक आदमी बनाओ न मुझे। हमने ही क्या अपनी सब प्रतिज्ञाओ का पालन किया है? और उन्हे जो मर्दार मास खाने की आदत पड गई है उसके लिए हमे इतना अधिक व्याकुल होने की जरूरत? उनकी यह बुरी आदत तो हमें छुडानी ही है, पर इस तरह अधीर होने से काम चलने का नहीं। यह तो स्वाभाविक ही है कि जब अनेक सवर्ण हिंदू मासाहार करते है तो हरिजन मुर्दार मास जरूर खायेंगे। कत्ल किये हुए जानवर का मांस और मर्दार मास इन दोनो मे शायद ही कोई रासायनिक भेद हो। तुम्हें याद होगा कि डॉ० देशमुखने मुझे लिखा था कि ताजा कत्ल किया हुआ मास और ताजा मर्दार मास इन दोनो मे कोई फर्क देखने मे नहीं आता। और हरिजनो का कसूर ही क्या है? एक पैसेवाला हिंदू अपने खाने के लिए बकरा कत्ल करा सकता है, पर बेचारा गरीब हरिजन क्या करे? तुम उसे जिंदा बकरा भी नही देते, और संयोग से, मरे हुए बकरे का मांस उसे मिलता है, तो वह भी नही खाने देते हो! नहीं; हमें यह समझना चाहिए कि हरिजनों में ऐसी एक भी बुरी आदत नहीं है कि जिसके मूल मे हमारा दोष न हो। प्रायश्चित्त सब हमीं को करना है। करोड़ों सवर्ण हिंदू मासाहार त्याग दें, तो हरिजन मुर्दारमांस खाना आज ही छोड देंगे।"

"क्या हम उनसे यह कह सकते हैं कि वे अपनी मलिन मढैया छोड़कर हमारे मुहल्लों में आकर बस जायँ?"

"इस बात का कहना आसान है, पर करना कठिन है। सब सवर्ण हिंदू अगर सुधारक हो जायँ, तो फिर तुम्हारा यह प्रश्न उठे ही नही। आज अगर हरिजन सवर्णों के मुहल्लों मे जाकर रहने लगें तो उन पर जो बीतेगी उसमे उनकी रक्षा करना सुधारको के बस की बात नही। पर मैं यह जरूर कहूँगा कि जहा हरिजनों पर हमेशा ही अत्याचार होता रहता हो—जैसाकि नट्टारी पर—तो हरिजन वह स्थान छोड़कर वहां से चले जायँ।"

"हरिजनो के 'उपनयन' संस्कार के विषय मे आपकी क्या राय है?" जनेऊ उन्हे पहनाया जाय?"

"नही; इसका तो यह अर्थ होता है कि हरिजन नीचे है और उन्हे ऊँचा बनाना है। नीचापन तो उनमें जरा भी नही। उनमे जो नीचापन दिखाई देता है वह हमारे ही घोर नीचपन की परछाई है। मान लो कि मेरा एक लड़का रोगी है, तो मैं उसका क्या करूँ? क्या मैं उसे फेंक दू? उसे नीचा मानू? नहीं, मुझे यह विचार करना पड़ेगा कि यह बालक मेरे ही पाप मे दुःख भोग रहा है, और इसलिए मुझे उसकी खास सार-सँभाल रखनी चाहिए। पर यहा हरिजनों के विषय मे तो मै यह अक्षरशः मानता हू कि वे हम लोगों से बहुत ऊँचे है। हमने उनके ऊपर अत्याचार करने मे कुछ उठा नहीं छोड़ा, तो भी वे हमारे साथ बने रहे, और अब भी हमें नहीं छोड़ रहे है। जिस धर्म के कुछ अनुयायी हरिजनों मे यह कहते हो कि तुम्हारे लिए इस धर्म म स्थान नही, उस धर्मको हरिजन अब भी मानते है यह मुझे महान् आश्चर्य की बात मालूम होती है। नही, जिस उच्चासन पर हम सैकड़ों वर्ष अहकारवश आसीन रहे उससे हमें अब उतरना ही चाहिए, और उनके साथ हमे अपना स्वाभाविक स्थान लेना चाहिए।"

'हरिजन-बन्धु' से] महादेव ह० देशाई

आहार और आरोग्य

यह प्रसिद्ध बात है कि जिस फल को पक्षी नहीं खाते, उसे मनुष्य को नहीं खाना चाहिए। इसलिए हमें ऐसी कोई भी चीज नहीं खानी चाहिए जो पशु-पक्षियों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाती हो और जिससे उनकी आयु कम होती हो। गेहू और चावल के पोषक तत्वों की मात्रा का पता लगाने के लिए अमेरिका, इग्लैण्ड, जर्मनी और भारतवर्ष के बड़े-बड़े डाक्टरोने पशु-पक्षियों पर बीसियो बार जो प्रयोग किये हैं उनके परिणाम बहुत ही महत्व के और ज्ञानप्रद हैं। उनके कुछ प्रयोग-परिणाम नीचे दिये जाते है :—

(१) कलकत्ते के डॉ० सी० ए० बेटली कहते है कि कबूतर, मुर्गिया, कुत्ते और चूहे विटामिन-रहित आहार पर जीवित नहीं रह सकते।

(२) जर्मनी के प्रोफेसर आईकमैनने कबूतरो को घुटा हुआ चावल खिलाया और देखा कि तीन हफ्ते के अर्से में वे सब-के-सब बीमार पड़ गये, वे अपनी गर्दन ऊंची नही रख सकते थे, और उनका गला इतना अकड़ गया था कि वे किसी चीज को निगल नहीं सकते थे। 'बेरीबेरी' की बीमारी होने पर जो दशा मनुष्यों की हो जाती है, वैसी ही दशा इन कबूतरों की हो गई थी। इसके बाद प्रो० आईकमैनने घुटे हुए चावलो का कना किया, और पानी में घोलकर हरेक कबूतर के गले में एक नली के द्वारा थोड़ा-थोड़ा वह रसा डाला। और जिन कबूतरो की हालत इतनी खराब नही हुई थी कि वे कोई चीज निगल न सकें, उन्हें थोड़ा-सा वह कना खिलाया। तीन घटे मे यह आश्चर्यजनक बात हुई कि वे कबूतर अच्छे होने लगे, और दिन डूबने के पहले-पहले वे बिल्कुल वैसे ही ताजा हो गये, जैसे कि हमेशा रहते थे।

(३) इग्लैण्ड मे डॉ० कैसीमर फकने एक महत्वपूर्ण शोध किया है। वह यह है कि मुर्गियो को जब केवल आधुनिक लोहे की मशीन का पिसा हुआ महीन मैदा खिलाया गया तो तीन हफ्ते मे उनकी वैसी ही बुरी हालत हो गई, जैसी कि पॉलिशदार चावल खिलाने से हो गई थी।

(४) अमेरिका के बर्नार्ड मैकफेडनने भी कुत्तो पर प्रयोग किये थे। उन्होने कुत्तो को मैदे के बिसकिट खिलाकर रखा। नतीजा यह हुआ कि तीन महीने के अन्दर वे सब-के-सब मर गये।

वे लिखते है कि आटे में से चोकर अलग कर देने का आजकल जो रिवाज है वही इस बारहमासी कब्ज का खास कारण है। पूर्ण गेहूँ अर्थात् गेहूँ के बिना छने आटे का आहार ही असल में पूर्ण आहार है, क्योकि शरीर को पर्याप्त पोषण देने के लिए जिन अनेक तत्वों की आवश्यकता रहती है, वे करीब-करीब सब यथावश्यक मात्रा मे पूर्ण गेहू मे ही होते हैं।

बर्नार्ड मैकफेडनने लोगो को यह सलाह दी है कि उन्हे मैदे को जहर समझकर उसका त्याग कर देना चाहिए। अनेक लोगों को यह अपच का रोग मैदा खाने से ही हो जाता है। अत्यन्त महीन मैदे का आतों पर बहुत ही बुरा असर पड़ता है, उससे वे खूब सख्त हो जाती है, फिर चाहे उसे आप किसी भी रूप में खावें।

इसके साथ मै इतना और जोड़ दू कि पूर्ण गेहूँ और बिना पॉलिश का पूर्ण चावल खाने से मेरा खुद का स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहा है।

'हरिजन' से] प्रताप नारायण

सच्ची ग्रामीणता चाहिए

हमारी खादी-यात्रा उस बात के नापने का मील का पत्थर है कि प्रतिवर्ष खादी की कितनी प्रगति हुई। खादी के कारण गावों का स्वराज ग्रामीणों के हाथ मे रहेगा। प्रार्थना में हारमोनियम नही चाहिए। गाव मे तैयार की हुई वीणा चाहिए। और यही दृष्टि सब जगह चाहिए। हमारे सम्पूर्ण व्यवहार मे सच्ची ग्रामीणता आनी चाहिए। यदि गावों में जाने के लिए कहे तो सुशिक्षित शहराती पूछते हैं, हमें गावों मे फल मिलेंगे? भाजिया मिलेगी? अरे भाई, क्या उन्हे नहीं सूझता कि फल और भाजिया शहराती हवेलियों की चादनी पर नही उगते। फल, भाजी जो गावों मे नजदीक दीख पड़नी चाहिए, वह हमें दूर दीख पड़ती है। आजकल के युग की नजरबन्दी ही कुछ ऐसी है कि नजदीक की चीज दूर दीख पड़ती है।

सब ओर आदर्श स्वच्छता चाहिए। सन्त ज्ञानेश्वर कहते है, कि अधिष्ठान वह जो आखों मे प्रगट दीख पड़े। किसी झरने को देखकर प्रसन्नता क्यो होती है? मन की अशांति क्यों दूर होती है? इसलिए कि वह निर्मल है। अत यह हो कि मै गदली जगह देखकर यात्री एकत्र करूगा और उसे स्वच्छ करके छोड़ूगा यात्रा तो गंगा जैसी हो। परन्तु ऐसा न हो कि जैसी गंगा प्रारम्भ में निर्मल रही वैसे आगे निर्मल न रह पाई। यात्रा-गंगा तो एकसी निर्मल रहनी चाहिए। विनोबा

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २१ जून, १९३५

प्रार्थना का रहस्य

गत सप्ताह क्वेटा के भूकंप के लिए लोगों को प्रार्थना और प्रायश्चित्त करने की सलाह जिन थोड़ी-सी पंक्तियों के द्वारा मैंने दी थी, उनके संबंध में इधर कुछ निजी पत्र-व्यवहार हुआ है। एक पत्र-लेखकने पूछा है कि, "बिहार के भूकंप के समय आपने कहा था कि इसे सवर्ण हिंदुओं के किये हुए अस्पृश्यतारूपी पाप का दंड मानना चाहिए। तब यह क्वेटा का इससे भी अधिक भयानक भूकंप किस पाप का दण्ड होगा ?" लेखक को उक्त प्रश्न पूछने का अधिकार है। जिस प्रकार मैंने बिहार के विषय में खूब विचारपूर्वक कहा था, उसी प्रकार क्वेटा के विषय का यह लेख भी विचारपूर्वक ही मैंने लिखा है। प्रार्थना का यह आमंत्रण निश्चय ही आत्मा की व्याकुलता का द्योतक है। प्रार्थना पश्चात्ताप का एक चिन्ह है। प्रार्थना हमारे अधिक अच्छे, अधिक शुद्ध होने की आतुरता को सूचित करती है। प्रार्थनापरायण मनुष्य भौतिक विपत्तियों को दैवी दण्ड समझता है। यह दण्ड व्यक्तियों तथा राष्ट्रों दोनों के ही लिए होता है। ऐसे सभी दंड लोगों को एकसमान नहीं चौंकाते। कुछ दण्डों का प्रभाव तो केवल व्यक्तियों पर ही पड़ता है। दूसरे कुछ दण्डों का असर जन-समूहों अथवा राष्ट्रों पर मामूली-सा ही होता है। क्वेटा की जैसी विपत्तियां हमें स्तब्ध बना देती हैं। यदि नित्य ऐसे-ऐसे संकट आने लगें तो अत्यंत परिचय के कारण मन में उनके प्रति अवज्ञा का भाव आ जाता है। भूकंप यदि नित्य होता रहता तो उसकी तरफ हमारा ध्यान भी न जाता। क्वेटा के इस भूकंप से भी हमारे मन में उतनी व्यथा नहीं हुई जितनी कि बिहार के भूकंप से हुई थी।

लेकिन समस्त संसार का कुछ ऐसा अनुभव है कि जब भी विपत्ता पड़ती है, तब समझदार मनुष्य घुटने टेक देता है। वह यह मानता है कि ईश्वरने यह मेरे पापों का दण्ड दिया है, और इसलिए अब मुझे अपना और भी अच्छा बर्ताव रखना चाहिए। उसके पाप उसे अत्यंत निर्बल बना देते हैं, और अपनी उस निर्बलता में वह प्रभु को अधीर होकर पुकारता है। इस प्रकार करोड़ों मनुष्योंने अपने ऊपर पड़ी हुई विपत्तियों का अपनी आत्मशुद्धि के लिए उपयोग किया है। राष्ट्रोंने भी विपत्ति पड़ने पर ईश्वर से मदद मांगी है, इसके भी उदाहरण मिलते हैं। उन्होंने भगवान् के आगे विनम्र बनकर प्रार्थना, प्रायश्चित्त और आत्मशुद्धि के दिवस नियत किये हैं।

मैंने कोई नई या मौलिक बात नहीं सुझाई। आज-कल के जमाने में, जब कि अश्रद्धा को लोगोंने एक तरह का फैशन बना लिया है, स्त्री-पुरुषों से पश्चात्ताप करने के लिए कहा जाय तो उसमें कुछ साहस की जरूरत तो पड़ती ही है। पर मैं साहस के लिए कोई यश लेने का दावा नहीं करता; क्योंकि मेरी कम-जोरियों और विचित्रताओं को संसार में कौन नहीं जानता ? जिस तरह मैं बिहार और बिहार-वासियों को जानता हूँ उसी तरह अगर मैं क्वेटा को जानता होता तो क्वेटा के पाप का उल्लेख मैं अवश्य करता, यद्यपि यह संभव है कि जिस प्रकार अस्पृश्यता का पाप अकेले बिहार का पाप नहीं था उसी प्रकार यह पाप केवल क्वेटा का ही नहीं हो सकता। किन्तु हम सब—शासक और प्रजा—यह मानते हैं कि हमें ऐसे अनेक व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय पापों का जवाब देना है। अतः यह उन सब को प्रार्थना और नम्रता के लिए आमंत्रण है। सच्ची प्रार्थना से अकर्मण्यता कदापि उत्पन्न नहीं होती। उससे तो निरंतर निष्काम कार्य के लिए शक्ति तथा उत्साह उत्पन्न होता है। स्वार्थ का विचार करके आलस्य में बैठ रहनेवाला मनुष्य आत्मशुद्धि कभी कर ही नहीं सकता। आत्मशुद्धि तो निःस्वार्थ रीति से उद्यम करनेवाला व्यक्ति ही कर सकता है।

'हरिजन' से] **मो० क० गांधी**

भयंकर नुकसान

राहा (आसाम) से श्री अन्नदा बाबू लिखते हैं :—

"पैसे की बचत और बढ़िया आहार-तत्व के खयाल से आप घानी के तेल को काम में लाने की सलाह देते हैं। चर्खा-संघ के काम से आसाम के इस भाग में घूमते हुए मैंने सरसों का तेल पेरने और खली फेंक देने की जो भयानक बर्बादी की रीति देखी उसके विषय में मैं आपको कुछ लिखना चाहता हूं।

ग्वालपाड़ा जिले के धुबरी तालुका में फकीरग्राम नाम का एक गाव है। मैंने देखा कि वहा १५-२० कुटुबोंने मिलकर गाव के बीच में ५) खर्च करके एक घानी लगा रखी है। जब किसी कुटुब को तेल की जरूरत पड़ती है तो वह बैल या पाड़ा और सरसों लेकर आता है और घानी में तेल पेरकर ले जाता है। गाव के सब लोग अब घानी का ही तेल काम में लाते हैं। यहा प्रायः प्रत्येक किसान सरसों या राई बोता है। तीन मन सरसों से एक मन तेल निकलता है।

मगर नौगाव जिले के इस राहा गाव में लोग सरसों तो बोते है, पर उन्हें घानी का पता नहीं। उन्होंने तेल पेरने की अपनी वह अजीब अटपटी और नुकसानवाली पुरानी रीति छोड़ दी है और अब मिल का तेल काम में लाने लगे हैं। उनकी वह पुरानी रीति यह है। सरसों को ढेकी में डालकर कूटते हैं और फिर उसे पानी में भिगोकर आग पर रखके उबालते हैं। इसके बाद उसे बेंत की टोकरी में डाल देते हैं और उस टोकरी को एक लकड़ी के बर्तन पर रख देते हैं। फिर एक पेड़ के तने में छेद करके उसमें एक तख्ता लगा देते हैं, और उस तख्ते के दूसरे सिरे पर वजन लटका-कर टोकरी को दबाते हैं। इस तरह चार मन सरसों से एक मन तेल निकलता है। सबसे अधिक दुःख की बात तो यह है कि ये लोग खली भी ढोरों को नहीं खिलाते, उसे यों ही फेंक देते हैं। लोग अब अपना सरसों ८॥-) मन के भाव से बेच रहे हैं, और १७) मन के भाव से मिल का तेल खरीदते हैं। उन्हें यह पता नहीं कि अगर वे अपने बैल की मदद से घानी में तेल पेर लें तो उन्हें अच्छा बढ़िया तेल १२)-१३) मन के भाव का पड़ जाय। (घानी में ३ मन सरसों का १ मन तेल निकलता है।) और खली की कीमत तो अलग ही है।

यहां जो सज्जन चर्खा-संघ का काम करते हैं उनसे मैंने कहा है कि जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी वे यहां एक घानी लगालें और लोगों को उसे मुफ्त अथवा कुछ खली लेकर काम में लाने दें,

ताकि वे अपना बैल या पाड़ा लेकर आयें और अपना सरसों पेर कर ले जायें।

आप विश्वास करेंगे कि यहा के लोग बिनौलों को योही फेंक देते है, और ढोर छोटे-छोटे बछड़ों की तरह होते है, जिनके शरीर की आप एक-एक हड्डी गिन सकते हे ?"

मुझे आशा है कि अमदा बाबूने जो यह भयानक नुकसान की बात बतलाई है उसे आसाम के कतिपय कार्यकर्त्ता दूर कर देंगे। बिनौलों को अगर वहा योही फेंक देते है तो कोई नवयुवक उन्हे इकट्ठा करके उनसे कुछ पैसा कमा सकता है, [क्योंकि बाजार मे बिनौले के अच्छे दाम मिल जाते है। इसमें अज्ञानी लोगो को शिक्षा देने की ही बात है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

सत्यानाशी जुआ

मेरे एक मित्रने मुझसे यह कितने ही बार कहा कि बम्बई मे उच्च वर्ग के लोगो मे जो नाना प्रकार का जुआ या सट्टा जोरों से प्रचलित है, उस पर आप सर्वसाधारण का ध्यान जरूर आकर्षित करें। अपने उन मित्र की तरह मुझे भी इस बुराई पर पूरा और हार्दिक दुःख है, पर मुझे इसपर कुछ लिखने की हिम्मत नही पडती थी। मुझे ऐसा लगता था, कि इस विषय पर मेरा कुछ लिखना भुस का कूटना होगा, क्योंकि मुझे यह आशा नही थी कि मेरे लिखने के परिणाम-स्वरूप इस बुराई को दूर करने का कोई अच्छा संगठित रचनात्मक प्रयत्न किया जायगा। इस बुराई पर कुछ लिखू या नही इस उधेड़-बुन मे मैं पड़ा था कि सरदार पटेलने मेरी तलबी की और मुझे बोरसद जाना पड़ा। गुजरात के गांवो को यह जुआ कैसा तबाह कर रहा है इसकी बड़ी-बड़ी भयकर कहानियां मुझे सरदार पटेल और उनके स्वयंसेवकोंने बोरसद मे सुनाई। यह सत्यानाशी जुआ वहा प्रचड दावानल की तरह फैलता जा रहा है। बिना कोई उद्योग-धधा किये ही हरेक आदमी धनी बनने के लिए आतुर हो रहा है। 'फला आदमी तो अमुक माल के निश्चित भाव का सही-सही अन्दाजा लगा ही लगा, फिर मै ही क्यो सट्टे से दूर रहूँ ?' जुआरी यह दलील देता है और सर्वनाश को गले लगाने दौड़ पड़ता है। एक समय गुजरात के जो घर सुखी और सम्पन्न थे, वे अब दिन-दिन तबाह होते जा रहे हैं।

इसमें सन्देह नही कि यह जुआ बाबा आदम के जमाने से चला आ रहा है। इसके रूप और नाम मे चाहे कितना ही हेर-फेर हो जाय, पर चीज तो वही-की-वही है, उसमें तो जरा भी परिवर्तन नही हुआ।

इस जुए के विरुद्ध कानून जरूर होना चाहिए। पर अगर किसी कानून के पीछे लोकमत न हो तो वह कोई अर्थ नही रखता। इसलिए लोक-सेवकों के लिए यह आवश्यक है कि जिस तरह उन्होंने प्लेग या भूकम्प का संकट दूर करने के समय खूब डटकर उद्योग किया उसी तरह इस सत्यानाशी जुए को उखाड़ फेंकने के लिए भी वे कमर कसके तैयार हो जायें। जबतक इस दुर्व्यसन का जड़-मूल से नाश न हो जाय, तबतक उन्हे सन्तोष नही मानना चाहिए। एक तरह से तो यह जुआ प्लेग या भूकम्प से भी बुरा है, क्योंकि यह हमारी अन्तरात्मा को नष्ट कर देता है। और जिसकी आत्मा नष्ट हो चुकी वह पृथिवी पर भाररूप ही है। इसमें संदेह नहीं कि प्लेग या भूकम्प-संकट के विरुद्ध लड़ना जितना आसान है, इस महारिपु से लोहा लेना उतना आसान नही है। जहां प्लेग और भूकम्प का सकट दूर करने मे थोडा-बहुत सहयोग पीड़ित जनो का भी मिल जाता है, वहा इस जुए में जुए के शिकार खुद ही दुनियाभर की आफतों को मोल लेकर गले लगाते हैं। जुआरी का जुआ छुडादो चाहे शराबी की शराब, दोनों बराबर हीं हैं। यह महाकठिन काम है। पर अगर समय रहते यह बुराई दूर न हुई तो हमें इस काम को पूरी ताकत के साथ हाथ में लेना ही होगा। बम्बई नगर को तो इसने जैसे ग्रस लिया है। गावो की ओर भी अब इस दुष्टने हाथ बढाना शुरू कर दिया है। गांवों के लिए यह निश्चय ही खतरे की घंटी है। कोई भी देशभक्त इस खतरे की घंटी को सुनकर बेखबर रहने का साहस नहीं कर सकता।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

हानिकारक शक्कर

शक्कर एक कुपथ्य की चीज है। उसे अधिक मात्रा मे खाकर बच्चे कही बीमार न पड़ जायें इस बात की चिता और देखभाल समझदार मा-बाप सदैव करते रहते हैं। बीस पच्चीस बरस का अच्छा तगड़ा जवान भी अगर तमाम दिन शक्कर और मिठाइया ही पेट में झोंकता रहे तो उसका सारा शरीर क्षीण पड़जाता है, पीला-पीला और बिल्कुल कान्तिहीन दीखने लगता है इस अनुभव से इस जमाने मे शायद ही किसी शहर का घर खाली होगा। यह सुना गया है कि आदमी चाहे चगा हो चाहे बीमार, शक्करने उसे घातक नुकसान पहुँचाया है। किन्तु गुड़ से घातक हानि हुई कही नही सुनी। एक साथ एक ही बार में डेढ़-डेढ़ और तीन-तीन पाव गुड़ खा डालनेवाले कितने ही देहाती दीख पड़ते हैं, पर किसीको यह कहते नही सुना कि 'गुड़ खाने से हमारा हाजमा खराब हो गया है, अब खाना हजम नहीं होता और सारा शरीर गल गया है।' गुड़ खाने में अतिरेक करने पर आदमी को तुरन्त उसका पता चल जाता है, शरीर मे जलन पैदा होती है, फोडे निकल आते है और अपने आप वह फिर मर्यादा मे आ जाता है।

लेकिन इस समय शरीर की दृष्टि से शक्कर की विषाक्तता और गुड़ की पौष्टिकता मै सिद्ध करने नही चला हूँ। यह कार्य तो वैद्यो और डाक्टरो का है। इस वक्त तो मैं मेरे देहात को चार वर्ष के इस छोटे-से अरसे मे शक्कर कितनी हानि पहुँचा चुकी है और वह कितना निचुड़ गया है, इसके चद आकड़े देना चाहता हूँ।

मेरा कार्य-क्षेत्र तो खादी का है। बीसियों महीने सिर्फ एक ही देहात में डेरा जमाये मै पड़ा रहा। घर का कपास बेचकर मिलो की और विलायती धोतिया और उतनिया खरीदकर यह गांव कितना घाटा उठाता है इसका सही अदाजा लगाने और लोगो को समझाने में मै मशगूल था। अपनी देहातरूपी नौका को डुबानेवाले दूसरे भयानक छिद्र का मुझे भान तक न था। कानो मे भनक पहुँचती तो थी, पर आंख उठाकर उस ओर देखने का मुझे होश न था। ग्रामउद्योग-संघ के बारे में वर्तमान पत्रो में जो कुछ निकलता वह अक्षरशः ढूढ़-ढूंढ़कर पढता और लोगों के साथ बड़े चाव से उस पर बहस भी करता था। ग्रामउद्योग-संघ का कार्य आरम्भ कर देने का मनोरथ भी मैं करता रहता था। फिर भी मेरी मूढता गई न थी। अभी दिल्ली मे हरिजन-कुटीरमें जब गांधीजी टिके हुए थे तब दो-एक दिनके लिए उनके पास जाने का मुझे मौका मिला था। उस समय दो-तीन सज्जन गांधीजी

के पास बहस करने आये थे कि "आप गुड़ बनाने को तो कहते हैं, किन्तु किसानों को गन्ना बेचने के बजाय गुड़ बनाना महँगा पड़ता है, अतः उसे बेचने में उन्हें टोटा उठाना पड़ता है।" मैंने अपनी बिल्कुल मामूली-सी जानकारी के आधार पर गांधीजी से कहा कि "हमारे देहात के किसानों का तो यह कहना है कि हमें गुड़ में मुनाफा है" किन्तु इससे अधिक ऐसा कुछ भी ज्ञान मैंने प्राप्त नहीं किया था कि जिसके बूते पर इस विषय में बड़े-बड़े वकीलों से मैं बहस कर सकता। यह मेरी खुशकिस्मती ही थी कि गांधीजीने मुझसे अधिक सवाल-जवाब नहीं किये। मैं अपने प्रमाद पर पड़ने-वाली उनकी डांट-फटकार से बच गया। उन्होंने इतना ही कहा कि 'मैं तो मानता ही हूं कि गुड़ बनाने में नुकसान हो ही नहीं सकता। यह सारी शिकायत तो इसलिए है कि इसकी कोई गहरी खोज-बीन नहीं की गई।'

दिल्ली से लौटकर मैंने गांधीजी के कथनानुसार शक्कर के मुकाबले में गुड़ के आंकड़ों की पूरी जांच शुरू की। शक्कर की मिल में गन्ने बेचनेवालों, खंडसार का काम करनेवालों और गुड़ बनाने-वालों की परस्परविरोधी दलीलें सुनीं। अन्त में भिन्न-भिन्न पक्ष के चालीस किसानों के सामने छान-बीन करके जो आंकड़े तैयार किये और सर्वानुमत से पाई-पाई का जो हिसाब निश्चित हुआ वह यह है। यहां पर एक बैलगाड़ी में २० मन गन्ना भरा जाता है। प्रति बीस मन के तीनों तरीकों से क्या उत्पन्न होता है उसका जमा-खर्च निम्नप्रकार बताया है। मन ८० तोलेवाले सेर का माना है। भाव में कमी-वेशी होती रहती है, इसलिए २५ दिसंबर, सन् ३४ के रोज जो भाव था वही भाव इसमें दिया गया है। गुड़ का भाव इसके पंद्रह दिन बाद बराबर चढ़ता ही गया है।

२०) मन गन्ना मिल में बेचने पर २५-१२-३४ की आमदनी :—

जमा	नाम
६।), ।-) मन की दर से २०) मन के	१) स्टेशन तक बैलगाड़ी ले जाने का दिनभर का किराया
	)। धर्मादा के एजंट को
	-)। फी गाड़ी दस सेर कूड़े की कटौती के
	१-)॥ खर्च
	५=)॥ बचत
	६।)

खंडसारी को २०) मन गन्ने का रस बेचने पर उसी दिन की आमदनी :—

जमा	नाम
५), २०) मन गन्ने से औसतन १३) मन रस निकलेगा; उसके दाम ६२॥) मन के २४) रुपये की दर से	॥-)॥ कोल्हू का २०) मन गन्ना पेलने का किराया
	।=)॥ तीन मजदूरों की =)॥ की दर से दिनभर की मजदूरी
	॥)॥ बैलों का चारा और उन को पिलाने के पौन मन रस की कीमत
	१॥-)॥ खर्च
	३।=)॥ बचत
	५)

२०) मन गुड़ बनाने में उसी तारीख को आई हुई आमदनी :—

जमा	नाम
९।-)॥ बैलों को पौन मन रस पिलाने के बाद बचे हुए १२।) मन रस का औसतन २॥)४ सेर गुड़ बनेगा, उसके दाम फी मन ३।) की दर से उस दिन के बाजार-भाव के मुताबिक	१-)॥ कोल्हू और कड़ाई का किराया
	॥) गुड़ बनानेवाले कारीगर को पांच सेर गुड़ के रूप से
	॥)॥ बैलों का खर्च खंडसारी के हिसाब के अनुसार
	।-) कोल्हू पर काम करनेवाले २ मजदूरों को; तीसरे मजदूर का काम कारीगर स्वयं करता है।
	२।=) खर्च
	६॥=)॥ शेष
	९।-)॥

फी एकड़ औसतन कम-से-कम दो सौ मन गन्ना पैदा होता है, अर्थात् किसान को गन्ने की फी एकड़ की पैदावारी का गुड़ बनाने में ६९-) मुनाफा होता है। मिलों को गन्ना बेचने पर ५१॥-) की तथा खंडसारी को रस बेचने पर ३४-) की आमदनी होती है। हमारे गांव में करीब तीन सौ एकड़ जमीन में ईख की खेती होती है। मुश्किल से एक तिहाई किसान गुड़ बनाते होंगे। बाकी के किसान गन्ना या रस बेच डालते हैं। दोनों का औसत घाटा फी एकड़ २५) ही मानें, तो भी गांव को गुड़ न बनाने के प्रमाद के कारण कम-से-कम पांच हजार रुपया सालाना जुर्माना भुगतना पड़ता है। सच पूछिए तो गुड़ की आमदनी पूरे गांव को, जो ऊपर बताई गई है उससे कहीं अधिक मिलती है। फी एकड़ ६९-) तो सिर्फ गन्नेवाले को मिलता है। इसके अलावा गुड़ बनाने-वाले कारीगर और कड़ाई बनानेवाले देहाती लोहार को फी एकड़ १०) मजदूरी मिलती है। अर्थात् इस गांव में गुड़ न बनने के कारण सात हजार रुपये सालाना फोकट में ही जा रहे हैं, और वह भी इस साल के गुड़ के मन्दे-से-मन्द भाव से लगाने पर! दिसम्बर के बाद गुड़ का भाव ४) मन तक चढ़ गया है। इस हिसाब से इस वक्त फरवरी में गुड़ बनाने से फी एकड़ १००) या इससे भी अधिक गांव को मिल सकता है। मिलें भी अब मन के ।-)॥ देती हैं, इसलिए वहां से ५८) मिलते हैं और खंडसारी से तो ३८) ही मिल रहे हैं।

पुराने जमाने से यहां खंडसारी को कोल्हू पर तैयार रस बेचने का रिवाज है। ६२॥) मन रस के २४) रु० के हिसाब से इस साल कतिकी में भाव तय हुआ है। इस प्रकार निश्चित किये गये भाव में सालभर कोई उतार-चढ़ाव नहीं किया जाता। इस हालत में खंडसारीवाले पहिले से ही किसानों को थोड़े-से पैसे पेशगी देकर उससे चौगुने-पचगुने दामों का रस बेचने का वादा उनसे लिखवा लेते हैं। ऐसे वादों में फँसा हुआ किसान अपने लिए चोरी-चोरी गुड़ बनाले और रस पीले, इस बात को थोड़ी देर के लिए छोड़दें। लेकिन अधबीच में गुड़ बनाकर बेचने का इरादा करने पर भी किसान उसे कर नहीं सकेगा। अगर करेगा तो अदालत में घसीटे जाने से गरीब अपना पिंड नहीं छुड़ा सकेगा। खंडसारी का पेशा अधिकतर लेनदेन करनेवाले छोटे-बड़े साहूकार ही करते हैं। मग-सिर में तैयार होनेवाली ईख को वे सावन-भादों से भी पेश्तर

लिखवाकर कर्जा दे देते हैं। फलतः उन्हें रस मिलों के मुकाबले में बहुत ही सस्ते दामों में मिलता है। कर्ज के दलदल में गलेतक फँसा हुआ किसान सब कुछ देखते हुए भी इस गोरखधंधे से बच नहीं सकता। खरीफ का लगान और साहूकारों की किश्तें चुकाने के लिए रुपये का माल आठ आने में ही वह बेच देता है। उसके ख्याल से बिना ब्याज के दो-चार महीनेतक के लिए कोई सौ दो सौ रुपये उधार दे दे, तो वह खरीफ का लगान देते समय उसे अमृत मिलने के बराबर है।

गुड़ बनाने में इतना ज्यादा मुनाफा होने पर भी उसे न बना सकने का दुःख किसान यही बताते हैं, कि गुड़ बहुत धीरे-धीरे बिकता है, हाथ-के-हाथ उसके दाम नहीं मिलते। कर्जा चुकाने में खड़सारी से उन्हें मदद मिलती है। मिलवाले भी गन्ने को तोलकर तुरन्त ही रुपये दे देते हैं। किन्तु गुड़ के तो कोई बड़े व्यापारी हैं ही नहीं। शहर के बाजार में भी एक मुश्त २०) मन गुड़ खरीदनेवाला कोई शायद ही मिलता है। फिर, करीब पांच एकड़ का गन्ना बेचकर सात-आठ दिन में मिलवालों से पैसा मिल जाता है, जब कि उतने ही गन्ने का गुड़ बनाने में महीने-के-महीने बीत जाते हैं। दूसरी यह भी जिरह लोग करते हैं कि गुड़ का भाव डांवाडोल रहता है, मगर उनकी इस जिरह में अधिक दम नहीं है। पार साल जब भाव बहुत गिर गया था, तब २॥) मन के भाव से गुड़ बिका था। और गन्ना ।)॥ आने के भाव में बिका था। इस हिसाब से भी २०) मन गन्ने की ४।)॥ आमदनी होगी और गुड़ की ४॥=)। अर्थात् गुड़ में तो घाटा है ही नहीं। फिर देहाती मजदूरों और कारीगरों की रोजी खादीशास्त्र के अनुसार लगाली जाय, तो साफ ही सवाया मुनाफा रखा हुआ है।

चाहे खड़सारी की खांड, बूरा या शक्कर हो चाहे मिल की चीनी हो, आर्थिक दृष्टि से जैसे खादी के मुकाबले में बिलायती या मिल के कपड़े हानिकर हैं, वैसे ही गुड़ के मुकाबले में शक्कर हानिकारक है, यह बात ऊपर के तथ्यों और आंकड़ों से दर्पण की तरह स्पष्ट मालूम हो जाती है।

प्रभुदास छगनलाल गांधी

मथुरा और कालपी का
हाथ का बना कागज

सन् १९२४ में संयुक्तप्रान्त की सरकारने मौलवी हमीद रजा जाफरी की लिखी मथुरा जिले की औद्योगिक जांच की एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी। उक्त जिले के कागज के उद्योग का निम्न-लिखित वर्णन मैं उसी रिपोर्ट से लेकर यहां देता हूँ —

"मथुरा का कागज सरकारी दफ्तरों तथा महाजनों की कोठियों में काम में लाया जाता था, और आम लोग तो उसका उपयोग करते ही थे। मिल के कागजने तो इस उद्योग का खात्मा ही कर दिया है। अब तो यह कागज महाजनों के बहीखातों के काम आता है, और वह भी बहुत ही कम। पंजाबी सौदागर रेशम की गुच्छियां बांधने के लिए भी इस कागज का उपयोग करते हैं। करीब १०० बरस पहले कागज के यहां ३०० कारखाने थे, जिनसे करीब ७००० आदमियों की रोजी चलती थी, और प्रतिवर्ष १४,००,००० रुपये का कागज तैयार होता था। आज सिर्फ सात ही कारखाने रह गये हैं जिनमें करीब ७० आदमी काम करते हैं, और साल में २४२०० रुपये का कागज तैयार होता है।

पहले यह कागज सन का बनता था; पर अब वह रद्दी कागजों का बनाया जाता है। अलीगढ़ के पोस्टल प्रेस में १) मन से लेकर ३) मन तक यह रद्दी बिकती है, और वहीं से उसे कागज बनाने-वाले खरीद लाते हैं।

पहले यह कागज काफी पतला और बड़ा बढ़िया बनता था। एक गड्डी की तौल सिर्फ ४ सेर होती थी। अब एक गड्डी साधारणतया १० सेर की उतरती है।

एक गड्डी में १० दस्ते (२४ ताव का दस्ता) होते हैं। करीब ५) एक गड्डी कागज बनाने पर खर्च होते हैं और वह ७) की बिकती है। मजदूरों को औसतन ।=) रोज दिये जाते हैं।

कागज बनाने की विधि यह है। पानी भरे हुए पक्के गड्ढों में रद्दी कागज को डाल देते हैं, और करीब तीन दिन तक उसे वहीं भीगने देते हैं। इसके बाद उसे निकाल लेते हैं और पैरों से लगभग तीन घण्टे तक उसे खूब रौद-रौदकर गूंधते हैं। फिर जमुना की बहती हुई धार में उसे खूब अच्छी तरह धोते हैं। इसके बाद उसका पानी निचोड़ दिया जाता है। रद्दी की इस पिठ्ठी में फिर पानी मिलाते हैं और दो घण्टे तक उसे इतना फेंटते हैं कि उसकी लेई-सी बन जाती है। इसके बाद उस पतली लेई को हलके हाथ से सींकों के 'पट्टे' (सांचा) पर फैलाते हैं, जो बांस के चौखटे पर सधा रहता है। सींकों की जाली से पानी-पानी छनकर निकल जाता है, और कागज का ताव तैयार हो जाता है। एक ताव के ऊपर दूसरा ताव जमीन पर रखते चले जाते हैं, और उन्हें पत्थर की चीप के नीचे दबा देते हैं। अन्त में, सूखने के लिए इन तावों को या तो दीवारों पर चिपका देते हैं या जमीन पर फैला देते हैं। इस कागज को 'कच्चा कागज' और इस बनाने की विधि को 'कच्ची विधि' कहते हैं।

'पक्के' कागज पर महीन मैदे की मांडी लगाते हैं और फिर उस पर चिलक लाने के लिए उसे एक चिकने पत्थर से अच्छी तरह घोटते हैं।

अब तो इस कागज का यह वर्णन केवल उद्योग-कला के प्रेमियों के मनोरंजन का विषय रह गया है, क्योंकि मिल के बने कागज की प्रतिस्पर्द्धाने इसका बिल्कुल नाश कर दिया है।"

सौ बरस पहले कालपी में भी कागज का यह उद्योग अच्छी उन्नति पर था, पर जैसा कि श्री गंगानारायण भार्गवने संयुक्त प्रांतीय सरकार-द्वारा प्रकाशित (सन् १९२३) अपनी जालौन जिले की औद्योगिक जांच की रिपोर्ट में कहा है, अब कालपी में कागजियों के केवल सात कुटुम्ब इस काम को करते हैं। ये लोग रद्दी कागजों और पुरानी दफ्तियों के टुकड़ों को पानी में भिगो देते हैं। जबतक उन सब की पिठ्ठी नहीं बन जाती, तबतक उसे पानी में भीगने देते हैं। इसके बाद उसमें चूना मिलाते हैं, और तब उसे चक्की में पीसते हैं। इस तरह जब अच्छी बढ़िया पिठ्ठी (पल्प) तैयार हो जाती है, तब उसे धोकर लकड़ी के चहबच्चों में डाल देते हैं। सांचा घास के तिनकों का होता है। कागज बनानेवाला कारीगर एक लड़के की मदद से उस पानी-सी पतली पिठ्ठी को चहबच्चे में हिलोरता है और उसमें सांचे को इस तरह डुबोता है कि उसके ऊपर उस पल्प की एक यकसां तह जम जाती है। सांचे पर के ताव को बहुत धीरे से एक सहायक लड़का फर्श पर बिछे हुए एक गीले कपड़े पर रख देता है। फिर दूसरा ताव दूसरे गीले कपड़े पर रख दिया जाता है। इस तरह

ढूक के ऊपर एक ६०-७० तावों तक की तहें लगाते चले जाते हैं। इस के बाद खूब दबाकर उन सब तावो का पानी निचोड़ देते हैं। फिर एक-एक ताव अलग करके दीवारों पर चिपका देते हैं। जब सूख जाते हैं, तो वे आपसे आप नीचे गिर पड़ते हैं। फिर कूची से उनपर चावल की माडी लगाते हैं, और सूख जाने पर चिकने पत्थर से उन्हें खूब घोटते हैं। बस, कागज तैयार हो जाता है।"

मथुरा और कालपी के ग्रामोद्योगी, हमें विश्वास है, उक्त वर्णनों पर सक्रिय रूप से ध्यान देंगे और देखेंगे कि संयुक्त प्रान्त का यह कागज का उद्योग सर्वनाश के कराल ग्रास से बच सकता है, क्योंकि अब भी समय है।

'अंग्रेजी' से] वालजी गोविंदजी देसाई

बिहार के खादी-केन्द्रों में

(४)

गत जुलाई से अबतक कलाशालाने अपने कार्य का विस्तार आस-पास के १६ गावों में किया है। कोई ७०० से अधिक स्त्री-पुरुष कातना और धुनना सीख गये हैं। करीब ५० पीजन और ४०० चर्खे इन गावों में अबतक तकसीम हुए हैं। इनमें से कुछ तो लोगोंने नकद दाम देकर भी खरीदे हैं, और शेष धीरे-धीरे दाम चुकाने की कोशिश में हैं। जो चर्खे इन गावों में चल रहे हैं, उन पर अधिक-से-अधिक २६ नबर तक का सूत कतता है, और फी घण्टा ज्यादा-से-ज्यादा ४०० गज सूत निकलता है। चर्खे का लागत मूल्य १।) है, पर ग्रामीणों को बतौर मदद के ॥।-) में दिया जाता है। पीजन नौ आने में बिकती है। प्रति मास करीब २॥ मन सूत कतता है। पहले यह सूत दरभगा मधुबनी में बुनवाया जाता था, पर अब यहीं बुनवा लिया जाता है। बुनाई की दर कपड़े की लम्बाई-चौड़ाई आदि के अनुसार फी गज तीन पैसे से लेकर छः-सात पैसे तक है। चम्पारन मधुबनी में अब कुल तेरह जुलाहे ऐसे तैयार हो गये हैं, जो शुद्ध खादी ही बुनते हैं। पहले ये लोग मिल का सूत बुनते थे। अब खादी बुनते हैं और स्वयं बहुत-कुछ खादी ही पहनते हैं।

कत्तिनों और गाववालों को भी खादी पहनने के लिए समझाया जा रहा है, और उन्हें अपने सूत का कपड़ा बुनवा लेने या उसके बदले में बना-बनाया कपड़ा ले लेने के लिए हर तरह की सहूलियत दी जा रही है। इस सहूलियत का अच्छा असर पड़ रहा है और पिछले तीन महीनों में इन लोगोंने करीब २५०) की खादी कला-शाला के भण्डार से खरीदी है। हमें यह देखकर खुशी हुई है कि इस प्रकार यहा धीरे-धीरे स्वावलम्बी खादी के लिए अनुकूल वातावरण बनने लगा है।

कलाशाला की ओर से जो चर्खे बनाये गये हैं, वे अच्छे हैं। चर्खे में देखने की मुख्य दो वस्तुएँ हैं—१ उसका हलकापन, और २. तकुए के चक्कर। जिस चर्खे में वेग नहीं होता और तकुए के चक्कर सौ से कम होते हैं, वह उपयोग की दृष्टि से हलके प्रकार का और सदोष माना जाता है। तकुए के चक्कर का आधार चर्खे के पहिये की परिधि और तकुए के पतलेपन पर है। राजस्थान के चर्खे बिहार से कद में बड़े हैं, पर तकुआ मोटा होने के कारण वहां चर्खे की गति कम है, और तकुए के चक्कर भी ५० और ६० के बीच में रहते हैं। इससे कत्तिनों को दोहरा नुकसान होता है और समय और शक्ति का अपव्यय भी। इसीलिए राजस्थान में हमें नये तकुए पर रालवाली माल से कातने की सलाह देनी पड़ी और कत्तिनों को उसका प्रत्यक्ष प्रयोग बताकर उससे होनेवाले लाभ भी समझाने पड़े। नगीना में, जो संयुक्त प्रांत का एक खादी केन्द्र है, हमने बिलकुल उलटी बात देखी। वहा तकुए का घेरा आधइंच था और चर्खे का पहिया काफी बड़ा। इससे चर्खे के एक बार घूमने पर तकुआ १२० बारतक घूमता था। यही कारण है कि वहां की कत्तिनों का सूत मजबूत, महीन और यकसां होता है, और दूसरी कत्तिनों के मुकाबले ज्यादा भी कतता है। मधुबनी की खादी-कला-शाला का तकुआ भी चर्खे के एक चक्कर में ११२ बारतक घूमता है। यहा का चर्खा बारडोली के चर्खे के ढंग पर बनाया गया है और अच्छा काम देता है। इस सबंध में प्रत्येक केन्द्र के कार्यकर्त्ताओं को यह देख लेना उचित होगा कि उनके केन्द्रों में प्रचलित चर्खे वहीं के साधनों से किस प्रकार वैज्ञानिक और उपयोगी बनकर एक निश्चित 'स्टेण्डर्ड' पर आ सकते हैं। चर्खा छोटा भी हो तो पर्वा नहीं—मुद्दे की बात तो यह है कि चर्खे के मुकाबले में तकुआ बराबरी में पतला हो और कम-से-कम एकबार में १०० चक्कर लेनेवाला हो। यदि इतना हो सका और कायम रह सका तो समझिए कि प्रगति निश्चित है, और कत्तिनों का हित भी सुरक्षित है। बिहार का पुराना चर्खा साधारण चर्खों से छोटा है, पर तकुआ पतला होने के कारण उसके चक्कर १०० के करीब होते हैं। खादी-कला-शाला के नये चर्खे इन चर्खों से भी अधिक उपयोगी बन पड़े हैं। यदि आवश्यक हेरफेर के बाद पुराने चर्खों को भी नये 'स्टेण्डर्ड' तक ले आया जाय, तो कत्तिनों के हित में एक बड़ी बात हो।

पहले तो यह सोचा गया था कि चम्पारन मधुबनीकी कत्तिनों का सूत उनसे न खरीदा जाय और उन्हें अपने ही सूत की बुनी खादी पहनने को समझाया और राजी किया जाय। शुरू में इस दिशा में कोशिश भी की गई, पर अनुभव से यह पता चला कि इस विषय में अधिक पाबंदी से काम लेना उचित न होगा। जनता की गरीबी इतनी भयंकर है कि लोगों को नकद आमदनी की आशा छोड़कर स्वांत:सुखाय सूत कातने और उसका कपड़ा बुनवाने को कहना उनके साथ क्रूर उपहास करने के समान है। सूत की कताई से रोजाना ३-४ पैसे की जो आमदनी हो जाती है, वही तो उनके जीवन का आधार है। उसके बिना उनका घर-खर्च चलना मुश्किल हो जाता है। अनुभव से यह सब सीखने के बाद कला-शालावालोंने सूत न खरीदने का अपना विचार छोड़ दिया और अब चर्खा-संघ की दर पर कत्तिनों से सूत खरीदा जाता है और सूत के बदले में कत्तिनों को उनकी आवश्यकता की खादी या नकद दाम दिये जाते हैं।

काशिनाथ त्रिवेदी

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करें। ग्राहक-नंबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा।

व्यवस्थापक—'हरिजन-सेवक' दिल्ली

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

जीवमात्र एक हैं "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 3369

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक' बिड़ला लाइन्स, दिल्ली. | संपादक—वियोगी हरि [हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में] | वार्षिक मूल्य ३॥) एक प्रति का –)

भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, २८ जून, १९३५. [संख्या १९

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

सफ़ाई का काम

यह सप्ताह भी नीरस नहीं रहा। हमलोगोने अपने को खुदही दो टुकडियों में बांट लिया था—एक टुकडी तो सफाई के काम मे लग गई थी और दूसरी सडक ठीक करने मे। जैसाकि मैं अपने पूर्व पत्रो मे लिख चुका हूँ, सफाई का काम अब बहुत ही कम रह गया है, और इसी से दो मुख्तलिफ कामो के लिए अपनी दो टुकडिया बनाने मे हमें कोई दिक्कत नही पडी।

जिस सडक की मरम्मत का काम हमने हाथ में ले रखा था, उससे करीब बीस-पचीस गांवो का काम निकलता है। पश्चिम की तरफसे वर्धा का इतवारी बाजार करने जो भी जायगा, वह इस गाव से और इस सड़क पर से जरूर गुजरेगा। इसलिए इस सड़क को सुधारने मे हम सिंधी गाव की इतनी सेवा नही कर रहे थे जितनी कि आसपास के दूसरे गावों की। वास्तव में, जिन लोगों के पास बैलगाडिया नही हैं, उनमें से कुछो का यह खयाल है कि सडक से उनका तो उतना वास्ता है नही, जितना कि बैलगाडिया चलानेवालो का है। लेकिन सडक के साथ-साथ हम उस छोटी-सी गली की भी मरम्मत करते जाते थे, जो कुएँ को जाती है, और लगे हाथों वही एक नाली भी खोदते जाते थे, ताकि सड़क को खराब करनेवाला तमाम निस्तारू पानी उसमें से निकल जाया करे। यह नाली एक छोटे-से झोंपडे के सामने है। इस मकान के आदमियोने उस पर दो चीपें रख छोड़ी हैं, और उन्हीं पर बैठकर वे सब नित्य नहाते-धोते हैं, इससे पानी तमाम चारों तरफ मच जाता है। हमारे जर्मन मित्र और कनू गांधी अपने काम मे लगे हुए थे, कि उस मकान की मालिकिन से उनका सामना हो गया, जो महज उन्हे देखने के लिए उस दिन वहां आ खड़ी हुई थी। ठीक उसी वक्त एक बैलगाडी सड़क से निकली, और एक जगह वह ऐसी अड़ गई कि बेचारे बैल टस-से-मस न हुए। हमारे जर्मन मित्र और कनू गांधीने दौड़कर पहियों को हुमसाने (जोर से उठाने) में गाडीवान की जब मदद दी, तब कहीं वह आगे बढी। गाडीवान तो अत्यत प्रसन्न हुआ ही, पर हमारी इस मामूली-सी मदद का उस बहिन पर बड़ा ही अच्छा असर पड़ा। वह बड़ी प्रसन्नता से अब पत्थर ढोने-ढाने में हमें मदद देने लगी। दूसरे दिन उसका पति आया, और हम लोगों को बतलाने लगा कि नाली को आपलोग इस तरह नही, बल्कि इस तरह ठीक कीजिए।

"तुम्ही खुद करके दिखाओ ना।" मैंने उस भाई से कहा।

"समय मिले तब ना; देखते नही, हमे सारे ही दिन काम में जुता रहना पड़ता है ?"

"पर यह तो भाई, चंद मिनिटो का ही काम है, यह क्या समय का बहाना बना रहे हो, इसमे तो तुम्हे शर्म आनी चाहिए।"

"यह सब ठीक है, पर यह सडक कुछ मेरी बैलगाड़ी से तो खराब होती नही है। जिन लोगो की गाडियो से सड़क का नाश होता है, वे ही क्यों न आप को इस काम में मदद दें ?"

सड़क दुरुस्त करते समय भी वही सकीर्ण मनोवृत्ति देखने मे आई। दो दिन का सबेरे का समय हमारा व्यर्थ ही गया। बैलगाडी या उसका सरजाम मागने घर-घर जाते थे, पर सब जगह टालटूल का ही जवाब मिलता था। एक के यहा गये तो उसने कहा, "हम खुद ही अपना खाद ढो रहे हैं, गाड़ी खाली हो तब ना।" दूसरेने कहा, मै गाड़ी आपको दे सकता हूँ, पर उसमें किड़ा नही है। आप किडा कही से माग लाइए, गाड़ी हाजिर है।" टटिया जरूरी थी, क्योकि बिना टटिये की गाडी मे मुरम और रोडा कैसे आ सकता था ? किड़ा मांगने गये तो तीसरी जगह यह जवाब मिलता है, "मैं जरूर दे देता, पर वह टूटी पडी है, उससे आपका काम नही निकलेगा।" चौथेने कहा, "बारह आने मे ही तो टटिया आ जाती है। बाजार से खरीद क्यों नही लेते ? कोई दस-पाच रुपये की बात थोडे ही है।" अब पांचवे का जवाब सुनिए, "आजकल भाई साहब, गाडी किसी की भी खाली नहीं।" "पर यह काम भी तो तुम्हारा ही है। क्या यह तुम्हारा काम नही है ?" "जरूर है, पर चौमासा लगनेवाला है, और खेत पडे हुए हैं, जिन्हे जोतना सब से जरूरी है।" यह जवाब मिला। खैर, एक जगह हमें किड़ा तो मिल गया; पर जिन सज्जनने गाड़ी और बैल देने का वादा किया था, उनके पास दूसरे दिन जब हम लोग टोकरी और बोरे सिर पर रखे हुए पहुँचे, तो वे कुछ झेंपते हुए से बोले, "कल रात को काफी मेह पड़ गया है, इसलिए अब बजाय दो दिन बाद, खेत हमें आज ही जोतना पड़ेगा। आप देखते ही हैं कि हमारे बैल खेत में जुताई का काम कर रहे हैं। मुझे बड़ा दुःख है, पर क्या करूँ, लाचार हूँ।" क्या कहते, अपना-सा मुंह लिए हम लोग वापस चले आये।

पर धन्यवाद है ईश्वर को कि सड़क अब करीब-करीब तैयार हो गई है, लोगों के चेहरे पर प्रसन्नता और कृतज्ञता का भाव दिखाई देता है और हमें अब चारो ओर से यह भी उदारतापूर्ण वचन मिल रहे हैं कि 'अब आप हमारी बैलगाड़ी ले जा सकते हैं, क्योंकि तीन-चार दिन बाद हमे बैलगाडी की जरूरत नही रहेगी।'

"हिन्दुस्तान के ये गांवों के लोग वादा पूरा करना तो जानते ही नही," हमारे जर्मन मित्रने शिकायत के सुर मे कहा ।

"आप इस तरह एकसमेट सब धान बाईस पसेरी न तौलिए, सभी एक-से नही हैं," मैने कहा । "फिर आपको यह भी तो याद रखना चाहिए कि इन गरीब मनुष्यो का न तो आज मन स्वस्थ दशा मे है और न तन, और उनकी सकल्प-शक्ति भी लुज पड गई है। यह काम भी हम इस सड़क की ही तरह दुरुस्त करने का है।

ग्राम-मनोवृत्ति का सार

एक सज्जनने, जो इटली के सुमाली देश में कई बरस रह चुके हैं, हमें बतलाया है कि ऊँट की लीद से कपडे धोने का वहा इतना अधिक चलन है कि जिन्होने यह बात कभी सुनी नही उन्हे इस पर विश्वास ही नही हो सकता । वहा के लोग रातभर कपडो को पानी मे भीगने देते हैं, और उसमे ऊँट की लीद के छोटे-छोटे टुकड़े डाल देते हैं, दूसरे दिन उन माये हुए कपडो को समुद्र के पानी मे खूब पछाडकर धो डालते हैं और कपडे दूध की माफिक सफेद निकल आते हैं। जब हमने अपने एक सीमाप्रान्तीय मित्र को यह किस्सा सुनाया, तो उन्होने कहा कि हमारी तरफ ऊँट की लीद से तो नही, पर बकरी की लेंडियो से कपडे धोये जाते हैं। मगर जब हमने उन्हें गाय के गोबर से घर-आगन लीपने की बात सुनाई तो उन्हे खुद अचरज हुआ। उनका यह खयाल था कि गाय का गोबर कुछ गन्दा-सा होता है, बकरी का नही !

असल बात यह है कि सच्ची ग्राम-मनोवृत्ति सीखने के लिए मनुष्य को गावो मे मिलनेवाली साधारण-से-साधारण चीजो का अध्ययन करना चाहिए, और उनका उपयोग ढूढ निकालना चाहिए। नजदीक में जो चीजें मिल जायँ, उन्ही से काम चला लेने का प्रयत्न करना चाहिए। ग्रामवृत्ति का अर्थ अच्छी-से-अच्छी सूझ ही तो है। इस आधुनिक सभ्यता से जो गाव अभी बर्बाद नही हुए है, वहा के रहनेवालो के रहन-सहन की अगर विगतवार जाच-पड़ताल की जाय, तो यह बात समझ मे आ जायगी। सतीश बाबूने जब यह लिखा कि साबुन की जगह खली से काम चल सकता है, और उन्होने उसका उपयोग शुरू कर दिया है, तो बबई के हमारे एक मित्रने हमारी खिल्ली उड़ाते हुए कहा कि, 'आप लोग यह क्या पुराना जगली रास्ता पकड रहे है ! मुझे तो यह देखकर हँसी आती है।' पर अब एक बहिन लिखती है कि, 'जब मैं देश जाती हू तब शरीर और बालो को खली के बटने से ही साफ करती हू । और उससे मेरा चमड़ा वैसा ही मुलायम और बाल वैसे ही चमकदार रहते है जैसे कि बढ़िया-से-बढ़िया साबुन लगाने से रहते है । जब मैं अपने देश से बाहर जाती हू, तब कभी-कभी साबुन का उपयोग कर लिया करती हूं।'

क्वेटा से आये हुए एक सज्जन

बकरी की लेंड़ियों से कपडे साफ करने के सिलसिले में जिन सज्जन का मैने ऊपर जिक्र किया है, वे खासकर गाधीजी को भूकंप-प्रकोप का कुछ हाल बताने की दृष्टि से ही वर्धा आये हुए थे । उन्होने अपनी आंख से वहा क्या-क्या नुकसान देखा और जो सब न करना चाहिए था वह हुआ और जो करना चाहिए था वह नही हुआ, इस सब के पचडे मे मै यहा नहीं पड़ना चाहता। सौभाग्य से उस समय राजेन्द्र बाबू भी वर्धा मे थे, और उन सज्जनने भूकप की जो रिपोर्ट दी वह उनके लिए बड़ी उपयोगी साबित हुई । पर उनकी कही हुई एक बात मैं यहा जरूर दूंगा। गाधीजी का प्रार्थना-सबधी लेख उन्होने ध्यानपूर्वक पढा था, और उन्होने तो यहातक कहा कि 'यह भूकंप की विपत्ति ईश्वर का कोप नही किन्तु आशीर्वाद है । भूकम्प से जो मर गये है, वे तो ससार से छुटकारा पा गये; जो बच गये है उन्हे ही आत्मशोध का अर्थ समझाना है।'

'पर' उन्होने कहा, 'प्रार्थना क्यो, और सेवा क्यो नही ?'

गाधीजीने कहा, 'अवश्य, अगर सेवा का द्वार हमारे लिए खुला होता तो । मगर ऐसे लाखो मनुष्य है जो भूकम्प से बचे हुए मनुष्यो की सेवा करने मे बिल्कुल ही असमर्थ है। इसलिए इस दैवी प्रकोप की बात करने के बदले उन्हे अपने अतर की मथना और आत्मशुद्धि करनी चाहिए। प्रार्थना आत्मशुद्धि के लिए एक आमत्रण है।'

'किन्तु सेवा-रहित कोरी प्रार्थना क्या निरर्थक नही है ?'

'मै यहा प्रार्थना के बाहरी प्रदर्शन की बात नहीकर रहा हूँ। मै तो आत्मनिरीक्षण और आत्मशुद्धि की बात करता हूँ। इस प्रार्थना की हम सभी को जरूरत है। जागृतावस्था का अपना सारा समय अगर हम सेवा-कार्य मे लगाते रहते, तो मुझे कुछ नही कहना था । पर यह बात है नही । और जब सेवा-कार्य मे हमारा सारा समय नहीं लग रहा है, तब आत्मशुद्धि करने के लिए भगवान् का नाम हम ले तो वह व्यर्थ जाने का नहीं।'

'यह मै समझता हूं । भूकप से कुछ मनुष्य जो जिन्दा बच गये है—हमारे अपने आदमी, और पहले दो दिन लोगो को बचाने का काम करनेवाले फौजी आदमी—उनके सबध मे यह कहना चाहिए कि उन्हे प्रार्थना करने की अत्यत आवश्यकता है । जब ऐसी आपत्त आती है, तब क्षणभर के लिए तो हम जडवत् बन जाते है, प्रार्थना और विश्वबन्धुता की बाते करने लगते है, किन्तु दूसरे ही क्षण विपत्ति को भूल जाते है, और फिर वही हवस और वही तृष्णा हमारे ऊपर सवार हो जाती है, जिसका यह नतीजा होता है, कि भूकप-जैसी विपत्तियों से भी हम जरा भी अपने को नही सुधारते ।

मशीनों का बचाव

एक दिन मशीनो की वकालत लेकर एक सोशलिस्ट सज्जन गाधीजी के पास आये और बोले, 'आपके इस ग्रामउद्योग-आंदोलन का उद्देश क्या मशीन-मात्र को निकाल बाहरकर देने का नही है ?'

'यह चर्खा मशीन नही है क्या ?' गाधीजीने सूत कातते हुए उनके प्रश्न पर यह प्रश्न पूछा ।

'मै इस मशीन की बात नही करता, मेरा मतलब तो बड़ी-बड़ी मशीनो से है।'

'आपका मतलब क्या सीने की सिंगर मशीन से है ? उसे भी ग्रामउद्योग की प्रवृत्तिने सरक्षण दे रखा है। जो मशीने हजारों आदमियों को उनके श्रम करने के अवसर से वचित नहीं कर देती, बल्कि जो व्यक्ति को उसके श्रम मे मदद देती हैं, और उसकी कार्यशक्ति को बढ़ाती हैं, और जिन मशीनों को मनुष्य अपनी

इच्छा से बिना उनका गुलाम हुए चला सकता है, उन सब मशीनों को हमारे इस आंदोलनने अभयदान दे रखा है।'

'लेकिन बड़े-बड़े आविष्कारों के विषय में ? आप क्या बिजली को रद कर देंगे ?'

'ऐसा कहा किसने है ? अगर हरेक गाव के झोपडे-झोपडे में बिजली की पहुँच हो सके, तो लोग अपने औजारो को बिजली की सहायता से चलावे, मुझे कोई आपत्ति नही। लेकिन तब पावर हाउस पर गांव के प्रतिष्ठित लोगो का या सरकार का आधिपत्य रहेगा, जैसा कि आज गोचरभूमि पर है। किन्तु जहा बिजली न हो और मशीने भी न हो वहा के बेकार बैठे हुए लोग क्या करे ? आप उन्हे काम देंगे, या आप यह चाहेंगे कि काम के अभाव मे उनके मालिक उन्हे निकाल बाहर करदे ?

मनुष्यमात्र के लाभ के लिए विज्ञान के जो-जो आविष्कार हुए हैं उन सब को मै अत्यन्त मूल्यवान समझता हूँ। आविष्कार भी किस्म-किस्म के हैं। एकसाथ हजारो आदमियो का सहार कर सकनेवाले जहरीले गैसो की मुझे चिन्ता नही। सार्वजनिक उपयोग के जो काम मनुष्य के हाथ की मेहनत से नही हो सकते, उनके लिए मशीनों का उपयोग अवश्य किया जा सकता है, पर उन सब पर आधिपत्य सरकार का रहना चाहिए, और उनका उपयोग केवल लोक-कल्याण के लिए ही हो। जो मशीन अनेक मनुष्यों को निर्धन बनाकर थोड़े-से मनुष्यों को धनवान बनाने के ही लिए है, अथवा बहुत-से आदमियों की उपयोगी मजदूरी छीन लेने के लिए जो बनाई गई हैं, मेरे विचार मे, उनके लिए स्थान नही हो सकता। मगर आप सोश्यलिस्ट की दृष्टि से भी यह तो चाहेंगे ही नहीं कि मशीनों का उपयोग अन्धा-धुन्ध रीति से किया जाय। छापे की मशीन को लेले। उसे कौन बन्द करता है ? वह तो चलेगी ही। अब डाक्टर के चीरफाड़ के औजारों को ले। ये औजार हाथ से कैसे बन सकते हैं ? इनके लिए बड़ी-बड़ी मशीनों की जरूरत तो रहेगी ही। मगर आलस्य मिटाने के लिए तो इसे छोड़कर दूसरी कोई मशीन है ही नही।" गांधीजीने चर्खे की तरफ इशारा करते हुए कहा। "आपके साथ बात करते हुए भी मै इस मशीन को चला रहा हूँ, और देश की सम्पत्ति मे थोड़ी-सी वृद्धि भी कर रहा हूँ। इस मशीन को कौन हटा सकता है ?"

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

चर्खे के पंजाबी गीत

जेठ के 'विशाल भारत' में श्री देवेन्द्र सत्यार्थी अपने 'पचनद का संगीत' शीर्षक लेख में चर्खे के पंजाबी गीतो के विषय मे लिखते हैं :—

"कुछ वर्ष पूर्व महात्मा गाधीने लिखा था—"पजाब की सुदर स्त्रियोंने अभीतक उँगलियो की कला का सर्वनाश नही होने दिया, इसके लिए हमें भगवान् को धन्यवाद देना चाहिए। अधिक हो चाहे कम, उनके यहा चर्खे की कला स्थापित है।" ['यंग इंडिया', १० दिसंबर १९१९]

पंजाब के ग्रामो में औसत मे प्रति पांच आदमी पीछे एक चर्खा चलता है। चर्खा कातते हुए स्त्रियों के हृदय मे यह भावना रहती है कि जो कोई भी उनके सूत से बुना हुआ वस्त्र धारण करे वह चिरजीवी हो और यह वस्त्र उसका भरसक शृंगार कर सके। प्रायः स्त्रियां किसी एक स्थान पर इकट्ठी होकर चर्खा कातती हैं। इस चर्खा-संघ का पंजाबी नाम 'त्रिजन' या 'तिंजन' है। अनेक गीत हैं, जिन्हे स्त्रियां चर्खा कातते हुए गाया करती हैं। अपनी मा को सबोधन करती हुई कोई नववधू गाती है—

'हे मेरी माने ! चरखे ने घूंघूं लाई।
सियोंणे दा मेरा चरखड़ा, चांदी दी गुज्झ पुआई।
हे मेरी माने⋯⋯
पट्ट रेशम मेरी माल है सोहणे रंग रँगाई।
हे मेरी माने ⋯⋯
तंद कढ्ढे मेरा जीवड़ा, झड़ी नैनाने लाई।
हे मेरी माने⋯⋯

—हे मां ! मेरा चर्खा घूघू कर रहा है। स्वर्ण का मेरा चर्खा है, और मैंने उसमे चादी की गुज्झ डलवाई है। रेशमी है मेरे चर्खे की माल, और मैने उसे सुदर रग मे रगा है। हे मा, मेरा हृदय तार निकाल रहा है, और मेरी आंखोने लगा रखी है आंसुओ की झडी।

सब चर्खा कातनेवाली उपर्युक्त गीत की नायिका की भांति इतनी खुशकिस्मत नही होती कि स्वर्ण-निर्मित चर्खे के गीत गा सके। गरीब स्त्रियो के चर्खे प्राय कीकर की मामूली लकड़ी के बने होते हैं, और इस पर वे साधारणतया रुई या ऊन काता करती हैं; पर कोई-कोई गरीब स्त्री चदन के खुशबूदार चर्खे पर रेशम कातने के स्वप्न देखती हुई गा उठती है—

"किक्कर दा मेरा, चरखा, माहिया !
चन्नण दा बनवा दे वे !
रूं न कत्ता, उन्न न कत्तां
रेशम हुण मँगवा दे वे !"

परदेश जाते हुए पतियो को संबोधन करके स्त्रियां गाया करती हैं—

'जे उठ्ठ चल्लियों नौकरी वे माहिया !
नौकरी वे माहिया !
सानूं वी लै चल्लीं नाल वे !
अक्खियां नूं नींद क्यों न आई वे !
तूं करेंगा नौकरी, नौकरी वे माहिया !—
नौकरी वे माहिया !
मैं कत्तांगी सोहण सूत वे !
अक्खियां नूं नींद क्यों न आई वे !
इक टका तेरी नौकरी, नौकरी वे माहिया !—
नौकरी वे माहिया !
लक्ख टके दा मेरा सूत वे !
अक्खियां नूं नींद क्यों न आई वे !'

—"प्राणनाथ ! तुम परदेश मे नौकरी करने चले हो, तो मुझे भी अपने साथ ही ले चलो ना। क्या तुम नही जानते कि जब से तुमने जाने का नाम लिया है, मेरी आखों को नींद नही आई ? प्राणनाथ ! तुम नौकरी किया करोगे और मै काता करूंगी सुंदर सूत। नौकरी मे तुम्हे (नित्यप्रति) एक टका प्राप्त हुआ करेगा; पर मैं लाखो रुपयो का सूत कात लिया करूंगी।"

आशा है कि ग्रामगीतो के प्रेमी श्री देवेन्द्र सत्यार्थी अन्य प्रांतो में प्रचलित चर्खे और चक्की-संबंधी गीतों पर भी प्रकाश डालेंगे। हमारे देश के हृदय का सुंदर सात्विक साहित्य तो असल में इन्हीं उपेक्षित ग्रामगीतों मे अन्तर्निहित है।

वि० ह०

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २८ जून, १९३५

जीवमात्र एक हैं

गत मास मैं सात-आठ दिन के लिए बोरसद गया था। वहां मैंने अपने कई भाषणों में यह कहा था कि यद्यपि मैं यह मानता हूं कि प्लेग के कीटाणुवाले चूहे और पिस्सू भी मेरे लिए सहोदर के समान है, और जीने का जितना अधिकार मुझे है उतना ही अधिकार उन्हें भी है, तो भी डॉ० पटेल के चूहे और पिस्सू मारने के प्रयत्न का मैं बिना किसी संकोच के समर्थन करता हूं।

एक पत्र-रिपोर्टरने, जिसे मेरी यह चूहों और पिस्सुओं के सहोदरपने की बात सुनकर आश्चर्य हुआ, पर जिसने यह पर्वा नहीं की कि मैंने किस प्रसंग पर यह कहा था, चट से मेरी वह बात तार-द्वारा अपने अखबार को भेजदी। सरदार पटेल की तीक्ष्ण दृष्टि उस पैरे पर जा पड़ी, और उससे जो हानि होने की संभावना थी उसे सुधार देने के लिए उन्होंने मुझसे कहा। मगर उन्होंने जो काम मुझे सौंप रखा था उससे मुझे फुर्सत नहीं थी, इसलिए मैंने यह कहकर लिखने की बात टाल दी, कि जिन लोगों का इस बात के साथ संबंध है वे कभी मेरे कहने का गलत अर्थ नहीं लगायेंगे।

लेकिन सरदार का कहना ठीक निकला। वह अर्द्धसत्यवाली खबर तार से लंदन भेज दी गई। वहां जो लोग यूरोप में मेरी ख्याति बढ़ने के विषय में चिंतित रहते हैं उन्हें वह पैरा पढ़कर क्षोभ हुआ, यद्यपि इतना तो वे समझते थे कि इस सहोदरपने के दावे में मैंने बहुत-कुछ मर्यादाएँ तो रखी ही होंगी। उन्होंने मेरे पास उस पैरे की कटिंग भेजदी। अब उन मित्रों के खातिर भी मैं बाध्य हूं कि अपनी स्थिति को साफ करदूं, यद्यपि जो अर्द्धसत्य एकबार चल निकला, वह एकदम कैसे रोका जा सकता है?

मैं जिन लोगों के आगे वहां भाषण दे रहा था, वे उन जंगली जानवरों को भी नहीं मारते, जो नित्य ही उनकी खेती का नाश करते रहते हैं। सरदारने अपने प्रचंड प्रभाव का पूरा उपयोग जब किया, तब कहीं चूहों का संहार वहां हो सका। इसके पहले बोरसद तालुका में कभी एक भी चूहा या पिस्सू नहीं मारा गया था। लेकिन सरदार का उन लोगों पर बहुत बड़ा उपकार था, इसलिए उनकी बात का विरोध वे नहीं कर सकते थे, और उन्होंने डा० भास्कर पटेल को चूहों और पिस्सुओं का संहार निर्वाधरीति से करने दिया। बोरसद में जो काम हो रहा था उसकी मुझे रोज-ब-रोज खबर मिलती रहती थी।

जो काम वहां हुआ था उसपर मेरी स्वीकृति लेने के लिए ही सरदारने मुझे बुलाया था। कारण कि, यह काम अब भी जारी रहना था, हालांकि लोगों को अब खुद अपने स्वतंत्र प्रयत्न से यह काम करना था। इसलिए, अपनी सम्मति पर जोर देने के लिए मैंने अहिंसा अर्थात् जीवमात्र की अवध्यता तथा एकताविषयक अपनी अटल श्रद्धा अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में सुनादी।

किन्तु श्रद्धा और क्रिया के बीच यह विरोध किसलिए? विरोध तो अवश्य है ही। जीवन एक अभिलाष है। उसका ध्येय पूर्णता अर्थात् आत्मसाक्षात्कार के लिए प्रयत्न करना है। अपनी निर्बलताओं या अपूर्णताओं के कारण हमें आदर्श नीचा नहीं करना चाहिए। मुझ में निर्बलता और अपूर्णता दोनों ही हैं। यह नहीं कि मुझे उनका दुःखद भान न हो। अपनी उन निर्बलताओं और अपूर्णताओं को दूर करने में सहायता देने के लिए सत्य भगवान् के समक्ष मेरे हृदय से मूक पुकार प्रतिक्षण उठती रहती है। मैं यह मानता हूं कि सांप, बिच्छू, बाघ और प्लेग के चूहों तथा पिस्सुओं से मुझे डर लगता है। मुझे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि खतरनाक दिखाई देनेवाले डाकुओं और हत्यारों से भी मुझे डर लगता है। मैं यह जानता हूँ कि मुझे इनमें से किसी से भी नहीं डरना चाहिए। पर यह कोई बुद्धि की बहादुरी का काम नहीं है। यह तो हृदय का व्यापार है। सिवाय ईश्वर के और सबका भय त्याग देने के लिए वज्र-सा कठोर हृदय चाहिए। अपनी निर्बलताओं के कारण बोरसद के लोगों को मैं यह सलाह तो नहीं दे सकता था कि आप लोग हत्यारे चूहों और पिस्सुओं को न मारें। पर मैं यह जानता था कि यह छूट मानवी निर्बलता का ही परिणाम है।

तो भी अहिंसा और हिंसा-संबंधी विश्वासों में उतना ही अंतर है, जितना कि उत्तर दिशा और दक्षिण दिशा में है, या जितना अंतर जीवन और मृत्यु के बीच में है। मनुष्य अहिंसा, अर्थात् प्रेमधर्म के समुद्र में जब अपने भाग्य की किश्ती छोड़ देता है, तो वह नित्य विनाश का दायरा कम करता जाता है, और उतने अंश में जीवन और प्रेम का क्षेत्र बढ़ाता जाता है। जो मनुष्य हिंसा अर्थात् द्वेष को आलिंगन देता है वह क्षण-क्षण अपने विनाश का क्षेत्र विस्तृत करता जाता है, और उतने अंश में मृत्यु तथा घृणा को बढ़ाता है।

यद्यपि बोरसदवासियों के आगे मैंने अपने सहोदरवत् चूहों और पिस्सुओं के विनाश का समर्थन किया, तो भी मैंने उन्हें जीवमात्र के प्रति अमर प्रेम-धर्म का महान् सिद्धांत शुद्ध रूप में बतलाया। यद्यपि इस जन्म में उस सिद्धांत का पालन पूर्णतया मैं नहीं कर सकता, तो भी उसपर मेरी अटल श्रद्धा तो रहेगी ही। मेरी प्रत्येक असफलता मुझे उसके साक्षात्कार के अधिक-से-अधिक समीप ले जाती है।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

सच्चा संबंध

जो सुशिक्षित लोग आश्रम चला रहे हैं अथवा गांवों में बसने की इच्छा रखते हैं—किन्तु जिनके शरीर काम-काज के अभाव में अशक्त या क्षीण हो गये हैं और इसमें जिन्हें शारीरिक श्रम का काम करते हुए कठिनाई मालूम पड़ती है तो भी जिन्हें ग्राम-सेवक बनना है—उनकी यह शिकायत है कि कम-से-कम हमारे साथ एक भी साथी न हुआ तो हमें वहां सूना-सूना-सा मालूम होगा। आश्रम को जो किसानों, ग्वालों और कारीगरों की बस्ती में परिणत करना चाहते हैं वे अपने यहां मजदूरों को रख लें, और मजदूरी पर रखे हुए उन स्त्री-पुरुषों के साथ ऐसा बर्ताव रखें गोया वे आश्रमवासी ही हैं। इस तरह वे अपने नौकरों की घरू और आर्थिक स्थिति समझेंगे, और उन्हें जो वे मजदूरी देंगे उससे अगर उनका काम निकलता होगा तभी वे उन्हें नौकरी पर रखेंगे। वे खुद उनके जीवन में इस तरह रस लेंगे मानो वे आश्रम-वासी ही हों। मजदूरों के साथ अगर इस प्रकार का बर्ताव रखा जायगा तो यह संभव है कि जो मजदूरी वे मजदूरों को देंगे, बदले में उससे अधिक ही उन्हें मिल जायगा। इस प्रकार के व्यवहार

से यह भी देखने में आयगा कि वे मजदूर अपने ऊपर बरसाये हुए प्रेमवारि का जवाब प्रेम से ही देंगे।

इस योजना के अनुसार आश्रम का संस्थापक अपनी रहनी मे रहेगा, और मजदूर अपनी रहनी में। मैंने देखा है कि सयुक्त रसोडा अक्सर आश्रम की अच्छी-से-अच्छी शक्ति को बाधा पहुँचाता है, और आश्रमवासियो के बीच कलह और द्वेष का अड्डा भी बन जाता है। जब फकत मजदूर ही नौकर रखे जायँगे, तब यह नौबत बिल्कुल ही नही जायगी। मजदूरों को जिस तरह का खाना खाने की आदत पडी होती है उसे वे छोड़ते नही, और उसे खाकर वे तदुरुस्त भी रहते है। पढे-लिखे आदमियो का जायका कुछ दूसरा ही और अक्सर कृत्रिम-सा हो जाता है। मजदूरो का खाना अगर वे खाने लगे तो उनका स्वास्थ्य ही गिर जाय।

मेरे यह कहने का मतलब यह नही है कि सयुक्त रसोडे का प्रयोग विफल गया है। जहा आदर्श समान होते है और दोनों ही पक्ष जहा पूर्ण स्नेह-सबध मानते है वहां सयुक्त रसोडे का होना जरूरी है। मगर मजदूरो से अभी बहुत वर्षोतक यह आशा नही रखी जा सकती।

मैंने ऊपर जिस योजना को रखा है उसमे दभ के लिए कम-से-कम गुजाइश है। बुद्धि और श्रम के बीच यह योजना स्वाभाविक एकता स्थापित कर सकती है। दोनो एक दूसरे की पूर्ति करेंगे। इसके अलावा यह भी ममकिन है कि इस प्रकार जो आश्रम चलाया जायगा, वह तुरत स्वावलंबी बन जायगा, और उसका विकास भी तेजी से होगा।

जो काल्पनिक आश्रम इस नयी योजना का प्रयोग करेंगे, उनके लिए तो यह सब बहुत अच्छा है; पर जो ग्रामसेवक अपने जीवन मे पहली ही बार गावों मे बसने जाता है वह क्या करे? मेरी यह योजना कुछ आवश्यक हेरफेर के साथ उस पर भी लागू होती है। जिन लोगो के बीच मे उसे बसना है उनसे वह भिन्न प्रकार का मनुष्य है ऐसा ख्याल उसे नही रखना चाहिए। जिन ग्रामवासियो के बीच वह काम करे उन्हे उसे अपना मित्र और साथी समझना चाहिए। अपनी आवश्यकताओ के अनुसार जिनकी सेवा की उसे जरूरत पडे उन्हे वह उनकी खुशी हो तो अपने यहा काम मे लगाले। और अगर उसमे ग्रामवासियो के अनुकूल पडने-वाली बुद्धि है तो वह उन सभी ग्रामवासियो को पैसा देकर काम पर रख सकता है जो आज मजबूरन बेकार बने बैठे है और अगर वे चाहे तो उनकी फुर्सत के समय का उपयोग वह कर सकता है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

तीन सेवा-संघ

खादी-सेवा, ग्राम-सेवा और हरिजन-सेवा, इन तीनों सेवाओं के नाम ही भिन्न है, वास्तव मे, ये तीनो हैं एक ही। ये विशुद्ध परोपकारी सस्थाएँ है, और दरिद्रनारायण की सेवा के अतिरिक्त इनका दूसरा कोई भी ध्येय नही है। करोड़ो दरिद्रनारायणो मे हरिजन सब से अधिक पददलित है। हरिजनो की सेवा में सभी की सेवा आ जाती है। ईश्वर के नाम पर हरिजन को पिलाया हुआ एक कटोरा पानी मनुष्यजाति के समस्त दीनदलितो को पिलाने के बराबर है।

जिन संघोंने इस प्रकार की शुद्ध सेवा की कल्पना कर रखी है, उनके साथ पूजी और श्रम का विचार जोड़ना ही गलत है। अवैतनिक अध्यक्ष से लेकर वैतनिक चपरासियो तक सब सेवक ही है। प्रत्येक सघ का पैसा उसके ट्रस्ट का है। इन सघों के व्यवस्थापक बोर्ड समय-समयपर जो नियम बनाते है, उनके अनुसार ही वैतनिक या अवैतनिक सेवको को चलना पड़ता है। जहा केवल कर्त्तव्य की ही कल्पना है, वहा अधिकार का प्रश्न आता ही नही। इसलिए इन सेवासघो में कार्य करनेवाले जो किसी स्वत्व या अधिकार का विचार करते है, उन्हे किसी-न-किसी दिन निराश ही होना पडेगा। कारण यह है कि इन सेवा-सघो मे उनकी धीरे-धीरे आर्थिक स्थिति सुधरने की कोई आशा नही, बल्कि वह समय आ गया है या आनेवाला है, जब आर्थिक लाभ का त्याग हमे दिन-दिन अधिक-से-अधिक करना पड़ेगा। कर्त्तव्यपालन का पुरस्कार कर्त्तव्य के पालन मे ही है। इन सेवाओ मे जो सतोष है उसमे तो कोई संदेह ही नही। पर वह सतोष कर्त्तव्य-पालन का है। यह सच बात है कि सबने इन कामों को विशुद्ध सेवा-भाव से प्रेरित होकर नही अपनाया। इसलिए इन तीनो सेवा-सघो मे जो सब से पुराना है उसमे यदा कदा कुछ कलह देखने मे आता है। इस कलह को दूर करने का एकमात्र मार्ग यह है कि हमे बार-बार अपने मन मे उस बात का स्मरण करना चाहिए कि हम लोग इन सेवा-सघो मे अधिकार प्राप्त करने की नीयत से नही, किन्तु दरिद्रनारायण के प्रति अपना कर्त्तव्य पालने के लिए ही प्रविष्ट हुए है। हमारे ऊपर किसी का आधि-पत्य है तो एक दरिद्रनारायण का, और फिलहाल अगर हम किसी को अपने से बडा मान रहे है, तो हम स्वेच्छा से ऐसा करते है, क्योकि हम यह भली भांति जानते है कि बिना अनुशासन के कोई सस्था चल ही नही सकती। नियत्रण के लिए किसी एक मुख्य व्यवस्थापक का होना जरूरी है। वह प्रधान व्यवस्थापक केवल सर्वसमानो मे प्रथम है। और एक विशुद्ध सेवक होने के कारण, सब का प्रमुख बनने के लिए उसे अपने सब साथियो मे अधिक-से-अधिक नम्र होना चाहिए। प्रमुख-पद उसका दूसरो की दया पर निभता है। जबतक वह इस पद पर रहे तबतक उसे यह आशा रखने का अधिकार है कि उसके दूसरे तमाम साथी उसके प्रति पूर्ण हार्दिक निष्ठा रखे, और बिना किसी शिकायत के उसकी आज्ञा का पालन करे।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

हरिजनों के लिए कुएँ

यद्यपि भूकप-विध्वस्त क्वेटा की डरावनी छाया अब भी मेरे हृदय पर पड़ रही है, तो भी देश के उदार दानियो से यह कहने मे मुझे न तो दुःख है, न सकोच कि उन्हे 'हरिजन' में प्रकाशित 'पानी-फड' की अपील का तुरंत उचित उत्तर देना चाहिए। क्वेटा का सहायक तो आज सारा ससार है, पर हरिजनो के मददगार के थोडे ही है। क्वेटा का एक भी पीड़ित मनुष्य न तो प्यासो मर रहा है, और न उसे वह मजबूरन गदा पानी पीना पड रहा है, जिसे लोग अपने पशुओ को भी पिलाना पसंद न करेंगे।

ऐसी-ऐसी भारी विपत्तियो के आने पर हमे अपनी विवेक-बुद्धि नहीं गँवा बैठना चाहिए। शायद कुछ हालतों को छोडकर एक क्षण के लिए लोगो की रंगरेलियां तक तो बद हुई नही। क्वेटा की मुसीबत का यह सारा बोझ क्या गरीब हरिजन के ही सदियों से कुचले हुए कधे पर पड़ना चाहिए? हरिजनो को पीने

का स्वच्छ पानी देने के लिए दानाओंने जिस आर्थिक सहायता का सकल्प कर लिया था, उस सहायता का रुख अगर उन्होंने दूसरी तरफ मोड दिया, तो उन्हे अतर्यामी ईश्वर की अदालत मे गबन के अपराधियो के रूप मे हाजिर होना पडेगा। इसलिए उचित तो यह होगा कि वे अपने जाती बजट को, न कि धर्मादा के बजट को, फिर से देखे और उसी मे उचित काट-छाट करे—हरिजन-पानी-फड के निमित्त जो प्रायश्चित्तस्वरूप सकल्प वे कर चुके हो, उसमें की तो एक पाई भी इधर की उधर न करे।

प्रार्थना के लिए जो अपील की गई है, वह बिना किसी अर्थ या अनुभव के नही की गई। अतस्तल से निकली हुई प्रार्थना मनुष्य को शक्ति व साहस देती है, उसे नम्र बनाती है और उसे उसके तात्कालिक कर्तव्य का रास्ता भी बताती है।

पाच बडी-बडी नदिया जिस प्रात मे बह रही हो, उस पचनद प्रदेश के हरिजनो के जल-कष्ट की रिपोर्ट पाठक पढ़े। क्या यह शर्म की बात नही है कि पजाब के धनी लोग हरिजनो के लिए स्वच्छ पानी का प्रबध नही कर सकते? पानी-फड की जो यह एक लाख रुपये की तुच्छ अपील निकाली गई है उस मे जल्द-से-जल्द एक लाख से ऊपर ही रुपया आ जाना चाहिए।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

'रामराम' या 'जय रामजी की'

छावनी नीमच से श्री मूलचन्द अग्रवाल लिखते है —

"यहा के सवर्ण हिंदुओ मे ऊँच-नीच की भावना कहा तक पहुँच गई है इसका एक नमूना नीचे लिखी एक बातचीत मे मिलता है।

चार-पाच दिन पहले एक डाकखाने मे काम करनेवाले एक ब्राह्मण बाबूसाहबने एक वैश्य महाशय से 'राम राम' कहा तो वैश्य सज्जन बोले, 'देखो जी, आप हमे 'राम राम' मत कहा करो, 'जय रामजी की' कहा करो, क्योकि 'राम राम' तो हलकी जाति के लोग—भगी, चमार आदि—आपस मे कहा करते है।'

दूसरे एक सज्जनने कहा कि भाई 'राम राम' कहने मे हानि ही क्या है? 'जय रामजी' मे तो एक ही दफा राम का नाम आता है, और 'राम राम' मे तो दो दफा राम का नाम आ जाता है।

वैश्य महाशय यह कहकर चल दिये कि, 'अच्छा, किसी जानकार से पूछके इसका जवाब दूगा।"

इसमे 'किसी' से पूछने की कौन-सी बात है? उन्हे तो अपनी अंतरात्मा से ही पूछ लेना चाहिए था कि इस विचित्र विचार मे सार ही क्या है, और क्या राम का पवित्र नाम ही ऊँच-नीच की भावना व्यक्त करने के लिए उन्हे मिला है? रूढ़िमूलक धर्म के नामपर बुद्धि की, जो ईश्वर का प्रसाद है, कैसी अवज्ञा हो रही है आज!

वि० ह०

पंजाब के हरिजन और कुएँ

पंजाब मे हरिजनो की सब से ज्यादा आबादी खासकर पहाड़ी इलाको में और केन्द्रीय तथा पूर्वी जिलो मे है। उनकी भौगोलिक स्थिति के अनुसार पानी का कष्ट उन्हे कहीं तो बहुत ज्यादा है, और कहीं कम है तो कही बिल्कुल ही नही—जैसे, कागडा, जम्मू, होशियारपुर, अम्बाला और सिमला के पहाडी इलाको में और रोहतक व हिसार और उनके इर्द-गिर्द के रेतीले प्रदेश में पानी की उन्हें बहुत ज्यादा तकलीफ है, और यह तकलीफ केवल उन्ही को नही, बल्कि इन हिस्सो मे रहनेवाली दूसरी जातियो को भी है। जिला कागडा और होशियारपुर में, और इसी तरह के दूसरे हिस्सों मे गरमी के दिनो में लोग मुख्यतया तालाबो का ही पानी पीते है। कही-कही एक-दो कुएँ भी है, जिनके बनानेमे यहा दो-दो तीन-तीन हजार रुपये लग जाते हैं। इन हिस्सोमें जो हरिजन रहते हैं, वे 'कच्चे' तालाब से पानी ले सकते है, पक्के से नही। कुओ का भी यही हाल है। हरिजनो को पानी देने के लिए वहां एक आदमी रखना पडता है। इसलिए अगर सघ इन हिस्सो मे रहनेवाले हरिजनो को कुएँ बनवाने मे मदद दे सके, तो सचमुच यह उसकी बहुत बडी सेवा होगी। सब से भारी कठिनाई तो पैसे की है। औसतन एक-एक कुआ दो-दो हजार रुपया खा जाता है। और फिर ऐसे सैकडो कुएँ चाहिए। हरिजन-सेवक-सघ ऐसी बडी-बडी व्ययसाध्य योजनाएँ कभी हाथ मे ले भी सकेगा इसमे तो मुझे सन्देह ही है। इस सम्बन्ध में हमे यह याद रखना चाहिए, कि इन पहाडी और रेतीले इलाको की आबादी मे सब से गरीब ये हरिजन ही हैं, और उनस यह आशा रखना व्यर्थ ही है कि इस काम के लिए वे कोई रुपये-पैसे की मदद दे सकेंगे। हा, उनके शारीरिक श्रम की सहायता आप सहर्ष उनसे ले सकते हैं।

जाड़े और चौमासे मे इन इलाको के हरिजन बावली या झरने के पानी से काम चलाते हैं। कुछ जगहो पर ये पक्के बने हुए हैं, पर ज्यादातर झरने तो कच्चे ही हैं। सघ अगर इन झरनो को पक्का बनादे, याने वहा एक छोटा-सा कुड बनवादे और पानी ठीक-ठीक आने के लिए उसमे कुछ टोटिया लगवा दे, तो कुछ हदतक यहा के हरिजनो का जल-कष्ट कम हो सकता है। पक्का झरना बनाने का औसत खर्चा १००) से ज्यादा नहीं पडेगा। कम-से-कम आधा खर्चा तो आसानी से स्थानीय हरिजन ही आपस मे चन्दा करके दे सकते हैं, शरीर की मेहनत-मजूरी वह अलग।

हिसार, रोहतक और गुडगाव के रेतीले और खुश्क इलाको की स्थिति दूसरी ही है। कुआ बनवाने पर वहा खर्च भी काफी ज्यादा पडेगा, और हरिजन भी वहा के रुपये-पैसे की कुछ अधिक मदद नही कर सकेंगे।

सियालकोट, लाहौर, अमृतसर, जालधर और लुधियाना के इलाके मे पानी का यह प्रश्न किसी भी रूप में गंभीर नही है। यहा पक्के कुएँ आसानी से बन सकते हैं। एक कुएँ पर औसतन दो-तीन सौ रुपये का खर्चा आता है। हरिजन भी इधर के और जगह के हरिजनों के मुकाबले मे अच्छी हालत में हैं। कम-से-कम कुएँ का चौथाई खर्चा तो वे दे ही देंगे, शरीर की मेहनत वह अलग। इन इलाको में ऐसे सैकड़ो कुएँ हैं, जिनकी मरम्मत और उघराई (सफाई) कराने की सख्त जरूरत है। हरिजन-सेवक-सघ इस काम मे बडी आसानी से मदद दे सकता है। ५०) से अधिक एक कुएँ पर खर्च नहीं पड़ेगा।

जे० के० फड से पजाब प्रात को जो २०००) मिले है, उस रुपये से निम्नलिखित गावो मे कुएँ बनवाने का काम पहले से ही सघने हाथ में ले रखा है:—

गाँव	ज़िला	गाँव	ज़िला
मनावाली	लुधियाना	बूट	लुधियाना
गल्लोरा	,,	खानखानान	जालंधर
बुलारा	,,	काला पठानान	लायलपुर
सियाल	,,	मुछाल	अमृतसर
मगल और गलेनाल	,,	तुगबाला	,,

राडोरी (जि० करनाल), दीनानगर (जि० गुरदासपुर) टीका कुलकर (जि० कागडा) और शहदरा (जि० लाहौर) मे कुएँ बनवाने की मंजूरी तो ले ली गई है, मगर उनकी देख-रेख करने के लिए अच्छे भरोसे के आदमी न मिलने के कारण, काम अभीतक शुरू नही किया गया।

इसके अलावा, हमारे प्रांतीय सघ और शाखा-समितियोने नीचेलिखे गांवों में कूप-निर्माण के काम मे मदद दी है—

गाँव	ज़िला	गाँव	ज़िला
मापला	रोहतक	आदमपुर	जालधर
सारन	कागड़ा	मीरपुर	जम्मू
बूला	अबाला		

सेण्ट्रल बोर्ड के प्रस्ताव के अनुसार कुछ स्थानो की जल-कष्ट संबधी जाच कराके ३२ नये कुएँ बनवाने की फेहरिस्त प्रधान कार्यालय को भेज दी गई है। तकरीबन २८००) इन कुओ के लिए चाहिए, याने एक कुएँ पर ८५) का औसत आयगा। प्रत्येक कुएं मे करीब २० कुटुबो का काम चलेगा। देखरेख के लिए अभी से सतोषजनक प्रबध कर दिया गया है, और अगर पानी-फड से पैसा मिल गया, तो जाडों मे कुए बनवाने का यह पुण्यकार्य अवश्य आरभ कर दिया जायगा।

मोहनलाल
मत्री, पजाब—ह० से० स०

मेरे प्रवास के कुछ नोट

गत फरवरी मास के मध्य से एप्रिल मास के अनतक मद्रास हाता के अनेक भागो में (सिवा आध्र के) हरिजन-कार्य के निरीक्षणार्थ मैंने दौरा किया था। हमारा साधारण विश्वास कुछ ऐसा हो गया है कि समस्त भारत के किसी भाग मे सब से अधिक अस्पृश्यता अगर कही है तो वह मद्रास इलाके में है। मगर यह विचार भ्रांतिपूर्ण है। यह शायद ही कही देखने मे आया है कि मद्रास की अपेक्षा गुजरात मे, या गुजरात की अपेक्षा पजाब मे हरिजनो के प्रति कुछ अच्छा बर्ताव किया जाता है। घर-घर का एक ही लेखा है। हरिजनो की दशा तो सर्वत्र एक सरीखी ही है, सर्वत्र उनपर एक समान ही अत्याचार होता है।

इस प्रवास में मुझे जो अनुभव प्राप्त हुए उनके सक्षिप्त नोट मैं नीचे देता हूँ :—

कोटा राजपूताने का एक प्रगतिशील राज्य कहा जाता है। वहां के हरिजनो (भगियो) के संबध में दो नई बातें मालूम हुईं। राज्य की ओर से भगियोको गाय-भैंस रखने की मनाही है। गाय-भैंस ये लोग रख सकें तो उनका दूध-घी बेचकर वे दो पैसा कमा सकते हैं। पर राज्य का हुक्म नही। यह धधा वे करे तो कैसे ? इसलिए उन्हें और उनके बालबच्चो को दूध क्या छाछ भी नसीब नही हो सकता। दूसरी बात यह मालूम हुई कि वेतन उन्हे प्रतिमास नही मिलता, किंतु पुराने रिवाज के मुताबिक हर दो माह की उन्हें तनखाह मिलती है। तनखाह के बारे में पूछा तो यह मालूम हुआ कि ११) तनखाह मिलती है। पर अधिक पूछताछ करने पर यह मालूम पड़ा कि यह तनखाह तो दो माह की है! कुछ साल पहले तो राज्य के सभी अफसरो और छोटे-छोटे नौकरों की तनखाह दोमाही होती थी, मगर अब तो दो-तीन को छोड़कर बाकी सब मुहकमों की तनखाह माहवारी हो गई है। उन दो-तीन भाग्यशाली मुहकमो मे म्युनिसिपैलिटी के ये गरीब नौकर आजाते है!

* * * *

रतलाम के पास नामली गाव का हरिजन-स्कूल देखने गया। वहा तो हरिजन-स्कूल के बजाय नामली गांव ही स्कूल निकला। अच्छा बड़ा गाव होते हुए भी यहा कोई सार्वजनिक स्कूल नहीं है। इसलिए रतलाम के हरिजन-सेवकोने नामली में यह स्कूल खोला, और उसमें गाव के सवर्ण और हरिजन-बालकों को दाखिल किया। लेकिन भगियों के दो बालको के भाग्य मे तो कोठरी के बाहर धूल और धूप में बैठना ही बदा था। दूसरी कोई पाठशाला गाव में है नही, इसलिए सवर्ण बालको की संख्या अधिक होनी ही चाहिए—दो तिहाई सख्या सवर्णों की थी और एक तिहाई हरिजन बालको की, तो भी नाम तो उस पाठशाला का हरिजन-पाठशाला ही है, और हरिजन-फंड का पैसा सारे ही गाव पर खर्च हो रहा है। यह उचित नही। हरिजनो के नाम से इस तरह सवर्णों पर, जान मे हो या अनजान मे, पैसा खर्च करना अच्छा नही। हरिजन-फड के विषय मे हरिजन-सेवकों को सतत जागृत रहना चाहिए। अब सवर्ण बालको से फीस लेने की प्रथा जारी करदी है।

* * * *

गुटकल और गुटी मद्रास जाते हुए रास्ते मे पड़ते है। यहा दुर्भिक्ष-निवारण के काम दो जगह देखे। एक जगह काले पत्थर की गिट्टी तोड़ने का काम खूब तेज धूप मे लोग कर रहे थे। वहां छाहँ का कही नाम भी नही था। वहा मैंने देखा कि नन्हें-नन्हे बच्चो और अत्यन्त बुड्ढो के लिए रसोडे मे पीले जुआर की खिचडी की छोटी-छोटी चकतिया तैयार की जा रही थी। काम करनेवालो की खास शिकायते दो थी—(१) गिट्टी तोड़वाने के बजाय गुटी के बडे तालाब मे से गिलाव निकालने का काम अगर सरकार दे दे तो वहा कुछ छाहँ भी मिले और गरमी के दिनो में पानी भी तालाब मे अधिक रहने लगे, (२) मजूरी मे मर्द को =)। और औरत को -) मिलता है। इतनी कम मजूरी से पेट नही भरता। पीछे मजूरी की इस दर मे एक-एक पैसा बढा दिया गया है। हर जगह दो-दो हजार आदमी काम करते हुए देखे। क्या अच्छा होता कि इन लोगों का हर तरह की मदद पहुँचाने के लिए यहा कुछ स्वयसेवक होते। सुविधा सिर्फ एक थी और वह यह कि दूकान पर लोगों को लागत भाव पर अनाज मिल जाता था।

* * * *

कोलर शहर की सोने की खानो पर काम करनेवाले मजदूरों के भी गाव देखे। हरेक झोपड़ा १५×१०फुट के माप का छोटा-छोटा बनाया गया है। उनकी दीवारें बास की खपच्चियो की है, जो ऊपर से लिपी हुई है। उनके छप्पर या तो नालीदार चद्दरों के है या मंगलोरी नरियों के। इस तरह के हजारो झोपड़ा के सीधी कतारो मे बसे हुए गांव देखे। सफाई तो यहा की देखते ही बनती है। जमीन ढालूदार होने से पक्की गटरों से गन्दा पानी फौरन बह जाता है। मजदूरो के आम उपयोग के लिए नाटकशाला, खेल-कूद का मैदान, धोबीखाना और विवाह का मडप इत्यादि स्थान भी देखें। सफाई के ऊपर खास ध्यान रखा जाता है, और मकानों के पास जानवर न बांधने देने के प्रतिबन्ध का पालन भी कड़ाई के साथ होता है। यहा अधिकांश आबादी हरिजनो की है।

* * * *

कोलर शहर मे भंगी का काम वडुर लोग करते है। वडुरों का

मूल धंधा मिट्टी खोदने या पत्थर की खदानों मे काम करने का है, परन्तु सन् १८७७ के भयकर दुर्भिक्ष में चित्तूर जिले मे आकर इन लोगोंने सारे भूख के पाखाना साफ करने का काम स्वीकार कर लिया, और आजतक वही काम ये लोग करते चले आ रहे है। जिस प्रकार काठियावाड के बणकर ढेड बम्बई मे आकर मैला-कचरा उठाने का काम करने लगे है, उसी प्रकार यहा वडुर लोग भगी का काम करते है।

* * * *

बगलोर मे हरिजन विद्यार्थियो के लिए मैसूर राज्य की ओर से पढने और रहने व खाने-पीने की अनेक सुविधाएँ मिली हुई है। एक छात्रालय मे १४० लडको को नि शुल्क रखने की व्यवस्था है, तो एक उद्योग-गृह मे २२० विद्यार्थियो को बढई का काम, जूते और चप्पल का काम, लुहार का काम, दरजी का काम और बेत का काम, ये पाच किस्म के हुनर सिखाये जाते है। प्राइवेट छात्रालय जो छोटे-मोटे चार-पांच है, वे अलग। हरिजन-सेवा मे निरत श्री गोपालस्वामी नाम के एक सज्जन राज्य और हरिजनो के बीच पुल बनकर यहा बडा ही सुन्दर काम कर रहे है। राज्य की जहा पूर्ण सहायता होती है, वहा कार्यकर्ता भी वैसे ही मिल जाते है। मैसूर राज्य के हरिजन-सेवक-सघ के मंत्री ब्रह्मचारी रामचन्द्र एक सच्चे और पक्के हरिजन-सेवक है ही।

अमृतलाल वि० ठक्कर

बिहार के खादी-केन्द्रों में

[गताक से आगे]

खादी-कला-शाला की ओर से गावो मे धुनाई और कताई सिखानेवाले लडको और लडकियों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। शाला के स्थान से डेढ मील पर रघुनाथपुर नामक एक गाव मे उस दिन हम इन किशोर शिक्षको का काम देखने गये। साथ मे शाला के आचार्य श्री मथुरादास भाई भी थे। इन कार्यकर्त्ताओ की देखरेख मे गाव के अन्दर करीब ५० चर्खे चलने लगे है। लडकिया गाव की बहनो को धुनना-कातना सिखाती है और लडके, लडको और मर्दों को। अच्छा वातावरण बन रहा है। सिखानेवाले सिखाते भी है और रात-दिन के प्रत्यक्ष अनुभव और अभ्यास से अपनी योग्यता भी बढाते जाते हैं। हर कार्यकर्त्ता चर्खा और पीजन की दुरुस्ती का सामान सदा अपने साथ रखता है। खाकी खादी की उनकी वह छोटी बगली झोली हमे बडी उपयोगी मालूम हुई। उस झोली मे कार्यकर्ता तात, काकर, माल, तेल की कुप्पी, चाकू आदि साधन रक्खे रहते है, और आवश्यकता पडते पर तत्काल उनका उपयोग कर लेते है। गाव के लडको और लडकियो का इस रूप मे यह उपयोग सभी केन्द्रो के लिए अनुकरणीय और खादी-प्रचार मे बहुत-कुछ सहायक हो सकता है। श्री मथुरादास भाई का कथन है कि अभी तो उनके ये कार्यकर्त्ता नये रँगरूट ही है। धीरे-धीरे वे उन्हे अधिक सुयोग्य और कार्यक्षम बनाने का प्रयत्न कर रहे है, और आशा है कि उनका यह प्रयत्न केवल सफल ही नही होगा, बल्कि उनके कार्य को यशस्वी बनाने मे भी बहुत कुछ सहायक बनेगा।

असल मे तो चर्खा-संघ कत्तिनो का ही सघ है, लेकिन आमतौर पर अभी तो इस संघ मे पुरुष ही विशेष रूप से काम कर रहे है। ऐसी स्थिति मे जब मधुबनी मे हमने ३० बहनों के एक दल को खादी-प्रचार का काम करते देखा तो हमें बडी प्रसन्नता हुई और चर्खा-सघ के असली रूप की एक नन्हीं-सी झाकी का वहा दर्शन करके हम गद्गद् हो उठे। यदि देश की बहनें सघ के काम को सम्हाल ले, तो प्रगति सहज हो जाय और काम व्यापक बन जाय। क्योंकि असल में चर्खा उन्ही की चीज है और आज नही तो कल चर्खे को देशव्यापी बनाने मे उन्हींका सगठित उद्योग अधिक काम आयेगा और हमे अपने लक्ष्यतक पहुँचा सकेगा।

मधुबनी मे कलाशाला के कार्यकर्त्ताओ से हमे यह जानकर अतिशय सतोष हुआ कि उनके कार्य को स्थानीय जनता का भी सहयोग प्राप्त है और कुछ खादी-प्रेमी सज्जन तो सच्चे दिल से शाला के कार्यकर्त्ताओ की सहायता और खादी का प्रचार करते रहते है। इनमे से बहुतेरे स्वय भी खादीधारी हैं, और अपने गांव के वजनदार लोगो में है।

मधुबनियो मे सर्वश्री दीपलाल महतो, शिवनदन महतो, लक्ष्मण महतो, रकटो महतो, रामभजन महतो और हरगेनराम चमार स्थानीय खादी-सेवको के बड़े सहायक सिद्ध हुए है। श्री हरगेनराम तो आदतन खादीधारी है और जेल की भी यात्रा कर आये है। अपने फुरसत के समय मे वे पीजन के लिए तात भी बनाते है। कलाशाला की ओर से भी तात बनाने और तात बनाना सिखाने का समुचित प्रबन्ध किया गया है।

मधुबनी के श्री दीपलाल महतो अच्छी हैसियत के गृहस्थ हैं। कताई, धुनाई के अलावा स्वय बुनना भी जानते है। घर मे छः चर्खे नियमित चलते है। खादी-सेवको के बडे सहायक है। श्री शिवनदन महतो भी वही के खादी-भक्त सज्जन है। कताई में निपुण है। १ घटे मे २८ नवर का ३००–३५० गज सूत कातते है। कताई में १०) का पुरस्कार भी सरकार-द्वारा आयोजित एक कताई-दगल मे जीत चुके है। सीतलपाटी, रघुनाथपुर, बेला, गगापीपर आदि गावो के भी कई खादीप्रेमी सज्जन शाला के प्रेमियो मे है और उसके कार्यों मे सदा दिलचस्पी लेते रहते है। खादी-आन्दोलन की लोकप्रियता और उसका स्थायित्व ऐसे ही लोगो की निस्वार्थ मूक सेवा और सहायता से सिद्ध होगा, इसमे सन्देह नही।

और जगहो की तरह हमने यहा के देहात मे भी लोगो को हाथकुटा अखा चावल खाने की आवश्यकता समझाई और आयोडिन का प्रयोग बताकर उन्हे मिल के नि.सत्व और हाथकुटे सत्व-पूर्ण चावलो का भेद समझाया। मधुबनी के श्री दीपलालजी के घर उन्हीके धान को चक्की से दलवाकर हाथो हाथ उसका अखा तैयार करवाया और उस रात को आश्रम-वासियो के साथ उसी चावल का भात बनवाकर खाया। सभी को इन चावलो का स्वाद जँचा और यह तय हुआ कि भविष्य मे आश्रमवाले तो इन्ही चावलो का उपयोग करेगे।

इस प्रकार बिहार के दो मुख्य खादी-केन्द्र देखकर दूसरे दिन सुबह हम मोतीहारी आये और वहा से पटना होते हुए खादी-भक्त सथालो का काम देखने के लिए तीसरे दिन सुबह गूमिया पहुँचे।

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

श्रमयज्ञ

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३]

दिल्ली, शुक्रवार, ५ जुलाई, १९३५.

[संख्या २०

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्राम-सेवा

मेरा खयाल है कि मुझे अब सिंदी गांव के काम का शीर्षक बदल देना चाहिए, क्योंकि अब हमने सफाई के काम के अलावा और भी तो बहुत-सा काम हाथ में ले रखा है। सफाई का काम अभी चल ही रहा है, और तबतक चलता रहेगा, जबतक कि लोग खुद ही इस काम को न करने लगेंगे। लेकिन सद्भाग्य से इस काम में आजकल हमारा अधिक समय खर्च नहीं होता।

जैसा कि मैंने गत सप्ताह के पत्र [illegible] था, सड़क की मरम्मत का काम करते हुए हमें अनेक त[illegible] के अनुभव प्राप्त हो रहे हैं। कई दिनतक तो हमें गांव के लोगों की सहायता के बिना ही काम चलाना पड़ा। सहायता बस हमें एक गाड़ी की चाहिए थी, जो हमारे साथ मिट्टी और रोड़ा लाने या खोदने और जमीन की सतह एक-सी करने के लिए कुछ आदमियों की जरूरत थी। जब गाड़ी नहीं मिली तो सोचा कि चलो, किराये पर ही एक गाड़ी करलें। काम तो पूरा करना ही था। इतने में वर्धा के हमारे मित्र डॉ० पिंगले आ गये। यह नागपुर गये हुए थे, और वहां से कई दिन बाद अब लौटे थे। उन्होंने देखा कि हम लोगोंने इधर अपना कार्यक्षेत्र बहुत बढ़ा लिया है। हमने उनसे पूछा कि, 'आप हमें कहीं से एकाध गाड़ी दिला सकेंगे, डॉक्टर साहब?' उन्होंने कहा, 'यह काम तो जनाब, मैं ही कर सकता हूँ, जितनी भी गाड़ियां जब आपको चाहिए उतनी उसी वक्त दिलवा दूंगा।' हमने मन में कहा, 'एक बुद्धू हम हैं कि इतने दिन एक गाड़ी के लिए चक्कर काटते फिरे, पर गाड़ी तो क्या एक सड़ा-पुराना छिड़ा भी न मिला!' अब देखें, यह डॉक्टर साहब किस तरह इन मिजाजी आदमियों से काम निकालते हैं। पर उन्होंने तो जैसे जादू की लकड़ी फेर दी! एक ऐसे आदमी को उन्होंने ढूंढ निकाला, जिससे इस गांव के लोगों का नित्य ही साबिका पड़ता था। यह ठेकेदार है, और अगर मैं भूलता नहीं हूँ तो एक अच्छा साहूकार भी है। और साहूकार के प्रभाव को कौन नहीं जानता? कहने भर की ही देरी थी। ठेकेदार साहबने गांव में जरा-सा कहला दिया कि इतनी गाड़ियों की जरूरत है, इसलिए देनी ही होंगी। बस, फिर क्या था, जितनी हमें जरूरत थी उससे ज्यादा ही गाड़ियां आ गईं।

एक दिन सबेरे जब हम लोग गाड़ी में रोड़ा भर रहे थे, एक दूसरी गाड़ी वहां से गुजरी, और उस गाड़ीवानने हमारे गाड़ीवाले की तरफ कुछ अचरज और अनादर-भरी निगाह से देखा। इसलिए हमारा गाड़ीवाला जोर से चिल्लाकर कहने लगा, 'हां, तो इससे क्या हुआ? क्या हम यह किसी गैर पर एहसान कर रहे हैं? यह तो हमारा ही काम है। देखते नहीं हो कि ये बड़े-बड़े आदमी हमारे लिए कितनी मेहनत उठा रहे हैं?' एक छिड़े के लिए जहां हम कई दिनतक सिर मारते रहे, वहां आज एक पल में ही इतने छिड़े आ गये।

इस तरह हम सिंदी गांव में प्रयत्न कर रहे थे कि ग्रामउद्योग-संघ के अध्यक्ष श्री जाजूजी, जो हमारे काम को खूब ध्यान से देखते आ रहे हैं, और हमारी हर तरह से मदद करते हैं, एक दिन आये और गांधीजी से कहने लगे कि, इस काम को अगर हमें कोई स्थायी रूप देना है तो हम लोगों में से कोई आदमी इस गांव में जाकर बस जाय। गांधीजीने कहा, "उस 'कोई' में मैं ही अपने को क्यों न लेलूं?" जाजूजी तो आश्चर्यचकित रह गये। वह इस तरह का जवाब सुनने को तैयार नहीं थे। उन्होंने दृढ़ता के साथ कहा, 'नहीं, यह तो हो ही नहीं सकता। मैं तो यहां जो बहुत-से कार्यकर्ता हैं उनमें से किसी एक के लिए कह रहा हूँ।' श्री विनोबाजी के अच्छे-से-अच्छे सहकारियों में से एक पसन्द किया गया और विनोबाजी की अनुमति भी ले ली गई। पर अब यह प्रश्न था कि गांव में बसा जाय तो कहां। कोई मकान या झोंपड़ा खाली देखने में नहीं आया। वर्धा के एक सज्जन का इस गांव में एक घर है, जहां उनकी खेतीपाती की देखरेख रखनेवाले आदमी रहते हैं। उन्होंने कहा कि मैं आपको अपने मकान के ओसारे का एक हिस्सा दे दूंगा, जहां आप अपने रहने के लिए एक कोठरी बना सकते हैं। पर हरिजनों के दो फालतू झोंपड़े पड़े हुए थे। उन्हें वे काम में तो ला रहे थे, पर अगर हम अपने खर्च से उनपर नया छप्पर डलवाने को तैयार हो जायें, तो वे हमें बिना किसी कठिनाई के अपने झोंपड़े दे सकते थे। एक झोंपड़े में मालिक मकान की मां रहती थी। उस आदमीने मीरा बहिन को वह झोंपड़ा दिखाया, और दूसरे दिन मीरा बहिन मुझे वह झोंपड़ा दिखाने ले गईं। पर हे भगवान्! उस बुढ़ियाने हमारा ऐसा स्वागत किया कि जनम भर याद रहेगा! वह तो चंडिका का रूप धारण करके दांत पीसती हुई हमारी तरफ झपटी और लगी गालियां देने! वह झोंपड़ी काफी जीर्ण-शीर्ण थी। छोटा-सा दरवाजा था, और

वह भी टूटा-फूटा। खपरे तो इतने कम थे कि आप उन्हें दूर से गिन सकते थे। पर बुढ़िया के लिए तो वह उसके पुरखो का आलीशान महल था। हम-जैसे खानाबदोश आदमियो को वह अपने झोपड़े मे क्यों पैर रखने देती ?

दूसरे घर पर हमारा स्वागत अच्छा हुआ। स्त्रियोने हम से आदरपूर्वक पूछा, 'आपलोग यहा किसकी खोज मे है ?'

मैंने कहा, 'हमें यहा एक छोटी-सी झोपडी चाहिए।'

'महारबाड़ा में ?' एक बहिनने बहुत ही आश्चर्य के साथ पूछा।

'हा, इस झोपडी के मालिकने हमे यह झोपडी देने के लिए कहा है, इसीलिए हम इसे देखने आये है।'

'नही, जी, यह कैसे हो सकता है ? आप तो हँसी कर रहे है। आप को क्या यह मालूम नही है, कि हम लोग महार है ? आपके जैसे बडे आदमी इस बस्ती मे रहने का कभी विचार भी नही करेगे ?'

'पर हम बडे आदमी हो तब ना ! हम तुम्हारे गाव मे आकर रोज मैला नही उठाते ? ईश्वर के घर मे हमारे और तुम्हारे बीच मे क्या कोई फर्क है ?'

'नहीं, पर ये वर्ण ईश्वरने ही बनाये है ना ? चाहे जो कहो, आप ब्राह्मण है और हम महार।'

मैने उस स्त्री के बच्चे को गोदी मे लेने के लिए हाथ बढाया, पर वह हम लोगो से कुछ सहम-सा रहा था। हमे यह लगा कि अगर हमने यहा कोई झोपडा लिया तो ऐसा तूफान उठेगा, कि हरिजनेतर लोग तो उसे कुछ झेल ही ले जायँगे, पर हरिजन ही नही झेल सकते है। यह पत्र लिखने समयतक तो हमने अभी कोई झोपडा लिया नही।

एक जर्मन अतिथि

इस गाव के सेवा-कार्य के सिलसिले मे मै यह जरूर कहूँगा कि जिन जर्मन मित्र का जिक्र मैने पिछले पत्रो मे किया है उनकी आज हमे रहरहके याद आ रही है। उन्होने हमारे साथ तनतोड काम किया था। शातिवादी होने के कारण उन्होने अपना देश छोड दिया, और वे वहा किसानों के सहकारी मडल का जो काम करते थे वह भी छोड दिया, क्योकि वहा के वर्तमान शासन के साथ उनका मेल नही खाता था। उनका यह इरादा था कि सारी दुनिया का चक्कर लगाया जाय और खुद ही सब चीजो का अध्ययन किया जाय। कुछ दिन शातिनिकेतन मे रहकर वे यहा आये थे। किसी भी काम करने मे उन्हे घृणा नहीं होती थी। हम लोग जब गाव मे काम करने जाते थे तो वह दोपहर को वहीं रह जाते और कडाके की धूप मे नगेबदन काम करते रहते थे। शुद्ध निरामिषभोजी थ। भोजन के समय थोडे-से आम और कुछ दूध मिल गया तो सतोष। सबेरे नाश्ते मे भीगा हुआ गेहूँ या खली की लपसी लेते थे। इस लपसी मे उन्हे बडा ही स्वाद आता था। अपना सारा काम खुद ही कर लेते थे, और सब के साथ उन्होने मित्रता का सबध जोड लिया था। यह बात नही कही जा सकती कि उन्होने शिक्षा अधिक पाई थी, मगर सच्ची सस्कृति के उनमे पूरे गुण थे, और यह मालूम होता था कि गरीबो का सा जीवन बिताने की योग्यता भी उनमें पूरी है। सड़क की मरम्मत का हमारा काम जब खत्म होने को आया, तब उन्होने कहा, 'अब ऐसा कोई और काम आपके पास करने को न हो, तो मैं अब चला जाऊँ।' हमारा चर्मालय देखकर वह बहुत खुश हुए। उन्होने पहली ही बार यहा मरे हुए जानवरों का चमड़ा देखा, और तैयार चमडे की अनेक चीजें खरीदी। खादी-भंडार मे जाकर बहुत-सी खादी खरीदी, और फिर यह पता नही, कि कहा चले गये। क्योकि उन्होने 'हरिजन' का चदा देकर उसे भेजने का पता बबई के डाकखाने का ही दिया है। किंतु वह हमारे साथ पत्र-व्यवहार रखना चाहते है—खासकर इसलिए कि हमे खेतीबारी और बागबानी की कितनी ही बातें बतलाने मे उन्हे रस मिलता था। मुझसे वह अकसर पूछा करते थे कि, 'आप यहा जेतून के पेड क्यो नही लगाते ? जेतून तो खराब-से-भी खराब जमीन मे हो सकता है, उसके लिए कोई ऐसी सार-सभाल की भी जरूरत नही पडती, और स्पेन और इटली मे तो जब दूसरी तमाम फस्लें निष्फल जाती है, तब जेतून ही वहा बोते है।' वह बहुत ही शांतस्वभाव के अतिथि थे। कभी किसी के काम मे कोई दखल नही देते थे। वह इस बात के नमूना थे कि दूसरी जगह या देश-विदेश मे जानेवाले लोगो को वहा किस तरह रहना चाहिए।

एक सुंदर प्रयोग

मुझसे अगर कोई यह पूछ बैठे कि, गाधीजी को छोडकर किसी दूसरे ऐसे लोकसेवक का नाम बतलाओ कि जिसे उसके किये हुए प्रयत्नों मे अधिक-से-अधिक सहकर्मियो का सच्चा सहयोग प्राप्त हुआ हो, तो मैं बिना किसी हिचकिचाहट के चट मे विनोबाजी का नाम ले दूगा। गत पन्द्रह वर्षों में उन्होंने कुदन-जैसे ऐसे कितने ही कार्यकर्ता तैयार कर दिये है, कि जो हमारे राजनीतिक जीवन की हलचलो से जरा भी विचलित न होकर बराबर अपना काम निष्ठापूर्वक करते आ रहे है। इसका कारण खोजने के लिए बहुत गहरे जाने की जरूरत नहीं। विनोबाजीने अपने आदर्श के लिए अखड, अनवरत और अनन्य साधना की है, और ऐसी एक भी चीज का उन्होंने दूसरो को उपदेश नही किया, जिसे उन्होंने स्वय दीर्घकाल तक आचरण की कसौटी पर न कस लिया हो। विनोबाजी के आश्रम और उनके साथियो मे 'यज्ञार्थ कताई' का व्रत जिस निष्ठा के साथ स्वीकार किया गया है वैसा भारत में अन्यत्र कहीं देखने मे नही आता। विनोबाजीने अपनी अद्वितीय आध्यात्मिक एव बौद्धिक शक्ति का उपयोग जैसा सर्वतोभावेन राष्ट्र के ही निमित्त—खासकर दीन-दलितो की सेवा के लिए किया है, वैसा बहुत ही कम लोगोने किया होगा। इधर अपने जीवन के कुछ वर्ष उन्होंने चर्खे की उपासना को लोकप्रिय बनाने के प्रयत्न मे लगाये है, और अपनी गणित की प्रतिभा का सारा उपयोग उन्होने इस काम मे किया है। उन्होंने इस काम में किया है। उन्होंने अब जो एक नया प्रयोग शुरू किया है, उसके बहुत बडे परिणाम आये बिना नही रह सकते। ८ जून से उन्होने नित्य कम-से-कम आठ घटे ३० नंबर का मजबूत यकसा सूत कातने का सकल्प किया है, जो ३४१२ गज (१६ अटी) उतरता है। इसके अतिरिक्त अध्यापन और आश्रम के आचार्य का काम भी सँभालते रहेंगे। प्रति घटा ३० नंबर का ४२५ गज सूत कातना कुशलता और एकाग्रता की पराकाष्ठा नही तो क्या है। छै घंटे तक सस्कृत, अँग्रेजी और गणित-जैसे विविध विषयो का एकाग्रतापूर्वक पढ़ाना और उसके साथ ही कताई की प्रगति का यह क्रम रखना तो और भी विलक्षण बात है। प्रार्थना, तकली और अन्य आवश्यक कार्य ये

सब मिलकर १२ घंटे के काम का यह क्रम है । शायद यह बहुत ही कम लोगों को पता होगा कि विनोबाजी उन बहुत थोड़े-से लोगों में से एक हैं, जो बगैर तार तोड़े सूत कात सकते हैं, और बहुत ही ऊँचे दरजे के शिक्षक भी हैं ।

उनके इस अनुशासन के अंगीकार करने का हेतु यह है कि ऐसे सेवक प्राप्त हो सकें, जो अनुशासन व एकाग्रता के नमूने हों ।

डायरी आवश्यक है

जिस प्रकार सत्य सब से कठिन सद्गुण है, उसी प्रकार अपने विचारों, भावनाओं और कर्मों का नित्य नियमपूर्वक लेखा रखना एक कठिन-से-कठिन कला है । इसलिए इस काम में अनेक कठिनाइयां रहती है, और अक्सर यह सिर्फ प्रवंचना का साधन बन जाता है, इससे मनुष्य नित्य अपने आपको धोखा देता है । इसलिए डायरियां यद्यपि लिखी बहुत जाती हैं, तो भी ऐसी बहुत कम होती हैं, जिन पर कि सत्य की छाप लगी हो । किंतु जो मनुष्य सत्येश्वर को प्रतिक्षण अपने जीवन का साक्षी मानकर आचरण करता है उसके लिए तो यह आसान-से-आसान चीज है । और इसलिए गांधीजी का डायरी रखने के संबंध का जो आग्रह है वह समझ में आ सकता है । यह बात नहीं कि सच्ची डायरी रखने में जो कठिनाई रहती है उसे गांधीजी समझते न हों । लेकिन जब उनका यह आग्रह है कि लोकसेवकों को डायरी जरूर लिखनी चाहिए, तब उनका उस कठिन डायरी से आशय नहीं है, जिसका वर्णन मैंने ऊपर किया है । गांधीजी उसमें विचारक के विविध विचारों और भावों का उल्लेख नहीं चाहते, वह तो उसमें साधारण मनुष्य के काम-काज सीधे-सादे नोट चाहते हैं । इस बात का शायद सब को पता न होगा कि हमारे ठक्कर बापा इस किस्म की डायरी १५ साल से लिखते आ रहे हैं । इस तरह की डायरी का रखना गांधीजीने यहां रहनेवाले सभी के लिए एक आवश्यक कर्तव्य बना दिया है—चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, चाहे थोड़े समय के लिए आया हो, या अधिक समय के लिए । डायरी की आवश्यकता खासकर इसीलिए मालूम होती है कि अब हमारा परिवार बढ़ गया है । हम लोग कोई नौकर तो रखते नहीं, इसलिए अगर हरेक आदमी अपने हिस्से का काम घड़ी के कांटे की तरह नियमित रूप से न करे तो परिवार का काम व्यवस्थित रीति से नहीं चल सकता । जिन्हें काम की देखरेख रखने का अधिकार होगा वे लोग इस डायरी से डायरी रखनेवाले के काम की जांच कर सकेंगे, इतना ही नहीं बल्कि डायरी रखनेवाले को खुद भी वह हमेशा स्मरण और चेतावनी देती रहेगी ।

चोरी का अपराध

कई महीने हुए कि एक अच्छा हट्टा-कट्टा नौजवान आया और बोला कि आप मुझे अपने यहां नौकर रख लीजिए । विनोबाजी के आदमियों के नीचे उसने काम किया था, इसलिए गांधीजी नाहीं तो नहीं कर सके, पर उससे यह कहा कि, तुम्हें हम अपने कुटुंब के आदमी के रूप में दाखिल कर लेंगे, बतौर नौकर के नहीं, क्योंकि हम अपने यहां किसी को नौकर नहीं रखते । और जगह जितना तुम्हें मिले उससे कुछ ज्यादा ही पैसा हम तुम्हें देंगे, और खाना अलावा । शर्त सिर्फ इतनी है कि तुम एक कुटुंबी की तरह ही काम करना ।' कई महीनें तो उसने ठीक विश्वास के साथ काम किया । वह खूब प्रसन्नता के साथ बिना किसी तरह की थकावट के काम करता था । अपने काम के अलावा उसने भणसालीजी की सेवा-जैसे कुछ और भी काम अपनी इच्छा से ले रखे थे । और नित्य नियमित रूप से प्रार्थना में जाता था, और चाहे जितना अधिक काम आ पड़े उसे आनंद के साथ करता था ।

मगर यह सब होते हुए भी वह चोरी करने के लोभ में फँस गया । एक बार चोरी की, तब मालूम नहीं पड़ा । दूसरी बार करते हुए पकड़ा गया । बेचारे को चोरी कबूल करने की हिम्मत नहीं पड़ती थी । किंतु गांधीजीने अपने आत्यंतिक प्रेम के बल से उससे उसका अपराध कबूल करवा ही लिया । उसकी वह अपराध-स्वीकृति सुनकर हम सब की आंखों के सामने इस बात का एक दुःखद चित्र आगया, कि हमारे देश के गरीब आदमी कैसी बुरी हालत में रहते हैं । पहली बार तो उसने अपनी गाय के लिए थोड़ा-सा गेहूं का भूसा चुराया था, और इस बार अपने बाप के लिए कुछेक सेर गेहूँ चुराये थे । बाप बेचारा बुड्ढा है और दमे की बीमारी से पीड़ित रहता है । इसलिए काम नहीं कर सकता । घर में स्त्री है और कई कच्चे-बच्चे । स्त्री बड़ी मुश्किल से मजूरी धतूरी करके किसी तरह परिवार का पेट पालती है । इस नौजवान लड़के को भी स्त्री है, और तीन बच्चे । इस तरह घर में कमानेवाले दो ही हैं, एक यह नौजवान और दूसरी उसकी मां । इसकी स्त्री मजूरी कर सकती थी, पर वह भी बेचारी बीमार है । बुड्ढे को अक्सर फाके करने पड़ते हैं । बुड्ढा यहां से दस मील दूर एक गांव में, और उसका यह लड़का अपनी स्त्री और बच्चों के साथ हमारे पड़ोस में एक कोठरी में रहता है । कोठरी का डेढ़ रुपया माहवारी किराया देना है, जो उसके वेतन के दस प्रतिशत से भी ऊपर पड़ता है ।

वह बेचारा बहुत ही दुखी मालूम पड़ता था, पर उसे अपनी सद्वृत्ति के विरुद्ध जाकर जिन परिस्थितियों में चोरी करनी पड़ी, उन पर विचार करते हुए हमें बहुत दुःख हो रहा था । उसने कहा, 'मुझे आप जो चाहें वह सजा दें । मेरी तो आपके पास आने की हिम्मत भी नहीं पड़ती थी । मुझे ऐसा लगता था कि यहां से कहीं चला जाना चाहिए, और मुझे अब यहां अपना मुंह तक नहीं दिखाना चाहिए । आपने मुझ पर अपार स्नेह रखा है । आपने मुझे अपने घर का ही आदमी समझा है । पर मैं आपके स्नेह का पात्र नहीं हूँ ।' गांधीजीने कहा, "सजा कुछ भी नहीं । मैं तुम्हें निकाल नहीं सकता । मैं तो इतना ही कहता हूँ कि आइंदा फिर कभी ऐसा न करना । तुम्हें किसी चीज की जरूरत हो तो मांग लेना, पर चोरी न करना । यहां जो कुछ है वह सब जनता की संपत्ति है, और हम सब तो ट्रस्टी हैं । तुम्हारा पिता भले ही यह गेहूँ ले जाय ।'

'महाराज, कपड़े का यह टुकड़ा भी मुझे ले जाने दो,' बुड्ढेने कहा ।

'ले जाओ,' गांधीजीने कहा, 'पर तुम्हारे लड़के को फिर कभी इस तरह लालच में नहीं पड़ना चाहिए ।'

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करें । ग्राहक-नंबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा ।

व्यवस्थापक—'हरिजन-सेवक' दिल्ली

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ५ जुलाई, १९३५

श्रमयज्ञ

गीता मे कहा है कि, "आरभ मे यज्ञ के साथ-साथ प्रजा को उत्पन्न करके ब्रह्माने उससे कहा, 'इस यज्ञ के द्वारा तुम्हारी समृद्धि हो, यह यज्ञ तुम्हारी कामधेनु हो, अर्थात् यह तुम्हारे इच्छित फलो का देनेवाला हो··· ····।' जो इस यज्ञ को किये बिना खाता है वह चोरी का अन्न खाता है।" "तू अपने पसीने की कमाई खा," यह बाइबिल का वचन है। यज्ञ अनेक प्रकार के हो सकते है। उनमे एक श्रमयज्ञ भी हो सकता है। यदि सब लोग अपने ही परिश्रम की कमाई खावे, तो दुनिया म अन्न की कमी न रहे, और सब को अवकाश का काफी समय भी मिल। न तब किसी को जनसख्या की वृद्धि की शिकायत रहे, न कोई बीमारी आवे, और न मनुष्य को कोई कष्ट या क्लेश ही सतावे। यह श्रम यज्ञ उच्च-से-उच्च प्रकार का यज्ञ होगा। इसमे सदेह नही, कि मनुष्य अपने शरीर या बुद्धि के द्वारा और भी अनेक काम करेगे, पर उनका वह सब श्रम लोक-कल्याण के प्रीत्यर्थ प्रेममूलक श्रम होगा। उस अवस्था मे न कोई राव होगा न कोई रक, न कोई ऊँच होगा न कोई नीच, न कोई स्पृश्य रहेगा न कोई अस्पृश्य।

भले ही यह एक अलभ्य आदर्श हो, पर इस कारण हमे अपना प्रयत्न बद कर देने की जरूरत नही। यज्ञ के सपूर्ण नियम को अर्थात् अपने 'जीवन के नियम' को पूरा किये बिना भी अगर हम अपने नित्य के निर्वाह के लिए पर्याप्त शारीरिक श्रम करेगे तो उस आदर्श के बहुत-कुछ निकट तो हम पहुँच ही जायेगे।

यदि हम ऐसा करेंगे तो हमारी आवश्यकताएँ बहुत कम हो जायँगी, और हमारा भोजन भी सादा बन जायगा। तब हम जीने के लिए खायँगे, न कि खाने के लिए जियेगे। इस बात की यथार्थता मे जिसे शका हो वह अपने परिश्रम की कमाई खाने का प्रयत्न करे। अपने पसीने की कमाई खाने मे उसे स्वाद ही कुछ और मिलेगा, उसका स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा, और उसे यह मालूम हो जायगा कि जो बहुत-सी विलास की चीजे उसने अपने ऊपर लाद रखी थी, वे सब बिल्कुल ही फिजूल थी।

मनुष्य अपने बौद्धिक श्रम की कमाई क्यो न खावे ? नही यह ठीक नही। शरीर की आवश्यकताओ की पूर्ति शारीरिक श्रम से ही होनी चाहिए।

केवल मस्तिष्क का, अर्थात् बौद्धिक श्रम तो आत्मा के प्रीत्यर्थ है, और वह केवल सतोषरूप है। उसमे पारिश्रमिक मिलने की इच्छा नही करनी चाहिए। उस आदर्श अवस्था मे डाक्टर, वकील आदि समाज के हित के लिए ही काम करेंगे, अपने लिए नही। शारीरिक श्रम के नियम पर चलने से समाज में एक शातिमय क्राति पैदा होगी। जीवन-सग्राम के स्थान पर पारस्परिक सेवा की प्रतिस्पर्धा स्थापित करने मे मनुष्य की विजय होगी। पाशविक नियम का स्थान मानवी नियम ले लेगा।

ग्रामो की ओर जाने का अर्थ यह है कि निश्चित रीति से शरीर-श्रम के धर्म को, मय उसके अगो के, स्वेच्छापूर्वक स्वीकार कर लिया जाय। किंतु आलोचक इसपर यह कहते हैं कि, "करोडो भारतवासी आज गावो मे ही तो रहते हैं, तो भी उन बेचारो को वहा पेटभर भोजन नसीब नही होता, और भूखो मर रहे हैं।" बात तो यह बिल्कुल सत्य है। सद्भाग्य से हम यह जानते है कि वे स्वेच्छा से नियम की पालना नही कर रहे है। अगर उनकी चलती तो ऐसा शारीरिक श्रम वे कभी न करते, बल्कि वे किसी अत्यत नजदीकी शहर की ओर बसने के लिए दौडते, अगर वहा उनके लिए जगह होती। मालिक का हुक्म जब जबर्दस्ती से बजाया जाता है, तब उसे परवशता या दासता की स्थिति कहते है। पिता की आज्ञा का जब स्वेच्छा से पालन किया जाता है, तब वह आज्ञा-पालन पुत्रत्व का गौरवरूप कहा जाता है। इसी तरह शरीर-श्रम के नियम का जब बलात्कार-पूर्वक पालन किया जायगा, तब उससे दरिद्रता, रोग और असतोष की ही सृष्टि होगी। और स्वेच्छा से जब उस नियम का पालन किया जायगा, तब उससे अवश्य ही सतोष और आरोग्य का लाभ होगा। और आरोग्य ही तो सच्चा धन है। चादी-सोने के ये टुकडे सच्ची सपत्ति नही है। इसी स्वेच्छामूलक शारीरिकश्रम के क्षेत्र मे ग्रामउद्योग-सघ एक प्रयोग है।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

निराधार विधवा

एक सज्जनने, जिनके कई स्वजन क्वेटा के भूकप मे मर गये हैं, एक १७ वर्ष की युवती की दशा का वर्णन करते हुए एक बडा हृदयविदारक पत्र लिखा है। वह युवती अपना पति, दो महीने का एक बच्चा, ससुर और देवर, यानी ससुराल के सभी स्वजनो को क्वेटा के भूकप मे गवा बैठी है। पत्र-लेखक सज्जन कहते हैं कि यह लड़की किसी तरह बच गई, और जो कपड़े उस वक्त उसके तन पर थे वही पहने हुए यहा आई है। यह बहिन उनके चाचा की लडकी है। उन भाई की समझ मे यह नही आता कि किस तरह उस लडकी को आश्वासन दिया जाय, और उसका क्या किया जाय। यह बात नही कि उस बहिन को खुद कोई नुकसान न पहुँचा हो। उसके पैर मे जरब आई है, यद्यपि सद्भाग्य से उसकी हड्डी टूटने से बच गई है। पत्र समाप्त करते हुए वह सज्जन लिखते है --

"मैने उसे उसकी मा के पास लाहौर मे रख दिया है। लडकी तथा दूसरे रिश्तेदारो के सामने मैने धीरे से जब यह चर्चा छेडी कि यह कैसा होगा अगर इसका पुनर्विवाह कर दिया जाय, तब कुछ लोगोने तो मेरी बात को सहानुभूति के साथ सुना और कुछने नाराजी प्रगट की। मुझे विश्वास है कि जो दशा मेरी इस भतीजी की हुई है वैसी ही दशा वहा अनेक लड़कियो की हुई होगी। क्या आप इन अभागिनी विधवाओ के लिए प्रोत्साहन के एक-दो शब्द लिखेगे ?"

मै नही जानता कि जिन चीजो के अदर हमारे वहम सदियो से जड जमा चुके है उनपर मेरी कलम या आवाज का क्या असर पड सकता है। मैने यह बीसियो बार कहा है कि प्रत्येक विधुर को पुनर्विवाह करने का जितना अधिकार है उतना ही अधिकार प्रत्येक विधवा को भी है। हिंदूधर्म में स्वेच्छा से पाला हुआ वैधव्यव्रत जहां अमूल्य आभूषणरूप है, वहां, बलात्कारपूर्वक पाला गया वैधव्यव्रत अभिशापरूप है, और मुझे तो यह महसूस

हो रहा है कि अनेक तरुण विधवाएँ, यदि वे शारीरिक अकुश के भय से नही, किन्तु हिंदूसमाज के लोकापवाद के भय से मुक्त हो, तो बिना किसी सकोच के वे अपना पुनर्विवाह कर डाले । इस-लिए क्वेटा की इस दुखिया बहिन की जैसी स्थिति मे जो अभागिनी तरुण विधवाएँ हो उन्हे पुनर्विवाह करने के लिए हर तरह से समझाना चाहिए, और उन्हे ऐसा अभयदान दे देना चाहिए कि अगर वे फिर से विवाह करना चाहती हो तो समाज मे उनकी जरा भी निंदा नही होगी । इतना ही नही, बल्कि उनके लिए योग्य वर खोज देने का भी पूरा प्रयत्न होना चाहिए । यह काम किसी सस्था का किया नही हो सकता । यह तो खुद उन सुधारको को करना चाहिए, जिनके कुटुब या सबधियो मे स्त्रिया विधवा हो गई हो । उन्हे अपने-अपने दायरे मे प्रचड किंतु गौरवमय और संयत प्रचारकार्य करना चाहिए । जहा-जहा उन्हे इस काम मे सफलता मिले, वहा उन्हे उसे अधिक-से-अधिक प्रकाश मे लाना चाहिए । इसी रीति से भूकप मे जो स्त्रिया विधवा हो गई हैं उन्हे सच्ची राहत दी जा सकती है । यह मुमकिन है कि उस विपता का स्मरण जबतक लोगो के मन मे ताजा बना हुआ है, उसी बीच मे उनकी सहानुभूति आसानी से इकट्ठी की जा सकती है । और एक बार अच्छे बडे पैमाने पर यह सुधार हो जाय तो स्वभावत विधवाओ को, यदि उनकी इच्छा हो तो, पुनर्विवाह करना आसान हो जायगा ।

'हरिजन' से]   मो० क० गांधी

जुए का व्यसन

बंबई से एक सज्जन 'आकफरक' जुए के इस बढते हुए व्यसन के बारे मे अपने एक हृदयस्पर्शी पत्र मे लिखते हैं —

"यह दुष्ट व्यसन जिस तरह गुजरात के सीधे-सादे और गाय-जैसे भोले-भाले किसानो का चौपट कर रहा है, उसी तरह इसने शहरो के अच्छे-अच्छे पदवीधारियो, बैरिस्टरो, वकीलो, डाक्टरो, व्यापारियो, बीमादलालो, और राष्ट्रीय चरित्र और नीति के पहरेदार अध्यापकोतक पर अपना मायाजाल फैला रखा है । सुनते हैं कि खुद पुलिस विभाग तक के आदमी इस बुराई मे फंसे हुए हैं ! जब बारी ही खेत चरने लगे तो फिर कौन उसकी रखवारी करे ? स्त्रियो, और सुकुमार वय के बच्चों को भी यह निगोडी लत लग गई है । अरे, ये आधरे भिखमगे तक तो इस जुए की मोहिनी माया से बचे नही । और यहा के अखबार भी इस दुष्ट व्यसन की विज्ञापनबाजी पर पनप रहे हैं । कुछ सुधारक इस दिशा मे प्रयत्न कर रहे हैं सही, पर कोई असर नही हो रहा है । यह बुराई तो बढती ही जा रही है । दिन-दिन बढती हुई गरीबी और उसके फलस्वरूप यह जबर्दस्त बेकारी ही क्या इसका कारण नही है ?"

मेरा ऐसा खयाल नही है । इसमे सदेह नही, कि जुए के प्रचार मे बेकारी से उत्तेजन मिलता है । पर कारण इसके कुछ और भी गहरे होने चाहिए । जुए के इस विकट जाल में जो तमाम वर्गों के लोग फँसे हुए है इस बात से ही हमें आगाह हो जाना चाहिए, और इस व्यसन के इतना अधिक फैलने के असल कारण क्या हैं इसकी और भी गहरी खोज हमें करनी चाहिए ।

'हरिजन' से]   मो० क० गांधी

ग्रामउद्योग-संघ

ग्रामउद्योग-संघ के व्यवस्थापक बोर्ड की गत २० और २१ जून को वर्धा मे जो बैठक हुई थी उसकी कार्यवाही के निम्नलिखित अवतरण पाठक रुचिपूर्वक पढेंगे, ऐसी आशा है .—

२० जून, १९३५ को ग्रामउद्योग-सघ के व्यवस्थापक बोर्ड की बैठक मगनवाडी, वर्धा मे हुई, जिसमे निम्नलिखित सज्जन उपस्थित थे—

महात्मा गाधी, श्री श्रीकृष्णदास जाजू, श्रीमती गोशी बहिन कैप्टन, डॉ० प्रफुल्लचद्र घोष, श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम, श्री वैकुठराय महेता, और श्री कुमाराप्पा ।

१. सघ के मत्रीने सूचित किया कि डा० गोपीचद, श्री शकरलाल बैंकर और श्री शूरजी वल्लभदासने छुट्टी लेली है, इसलिए वे उपस्थित नही हुए ।

२. १४, १५ और १६ मार्च को बोर्ड की जो बैठकें हुई थी उनका तफसीलवार विवरण सुनाया गया और मजूर किया गया ।

३. २४, २७, २८, ३१ मार्च, ८, ९, ११, १८, १९, २७ एप्रिल; १, ३, ६, १४, २१ मई, और १३ जून का कार्यालय का कार्यविवरण स्वीकृत किया गया ।

१५ जून, १९३५ तक का कोषाध्यक्ष का निवेदन—जिसमे यह बतलाया गया है कि ३०५२७॥=)७॥ की आमदनी हुई और ६९०७।)। की इपीरियल बैंक मे रोकड बाकी है—पढकर सुनाया गया और दर्ज किया गया ।

२० जून को सघ के पत्रक मे नीचेलिखे अनुसार उल्लेख था —

३५४	साधारण सदस्य	६	सबध सस्थाएँ
५४	एजेंट	५	आजीवन सहायक
१८	प्रमाणित दूकाने	२६	सहायक

बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद का, उनकी तबीयत अच्छी न रहने के कारण, व्यवस्थापक बोर्ड से इस्तीफा देने के सबंध का पत्र सुनाया गया । बाबू ब्रजकिशोरप्रसादने आजतक जो सेवा की है, उसे बोर्डने धन्यवादपूर्वक दर्ज किया, और ऐसी परिस्थिति मे उनका इस्तीफा सखेद स्वीकृत किया गया, और यह बात सहर्ष नोट की गई कि बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद यद्यपि अब बोर्ड के सदस्य न रहेंगे, तो भी अपने स्वास्थ्य को देखते हुए जहातक उनसे बनेगा, वे सघ के काम मे दिलचस्पी लेते रहेंगे ।

यह निश्चय हुआ कि विधान मे अगर कोई परिवर्तन करने का विचार हुआ करे, तो उसकी सूचना मत्री के पास इस तरह भेजनी चाहिए कि जिस बैठक मे उस पर विचार होना हो उसके १५ दिन पहले वह परिवर्तन बोर्ड के सदस्यो के पास गश्ती चिट्ठी के साथ भेजा जा सके ।

यह निश्चय किया जाता है कि जो एजट, सदस्य और सारा समय काम करनेवाले ग्रामसेवक, 'हरिजन' पत्रो को चदा देकर नही खरीद सकते, उन्हे, उनका प्रार्थनापत्र आनेपर, सघ की ओर से 'हरिजन', 'हरिजन-सेवक' या 'हरिजन-बधु' बिना मूल्य दिया जायगा ।

निश्चय हुआ कि जो सारा समय काम करनेवाले सेवक गावो में रहते हैं, और संघ के कार्यक्रम के अनुसार ग्राम-पुनर्संगठन का काम करते है, उन्हे संघ के एजेंट अथवा व्यवस्थापक बोर्ड के नीचे काम करने के लिए रख लिया जाय, और १०) मासिक से अधिक

उन्हें निर्वाह-खर्च न दिया जाय। इस प्रस्ताव से किसी सेवक को किसी खास वजह से अधिक पैसा देने में कोई रुकावट नहीं आयगी।

निश्चय हुआ कि वाडा, ढोरों को बांधने की जगह, करघा, घानी, ईंधन इत्यादि पर जो १७९०) का खर्चा हुआ है वह मजूर किया जाय, और इन सब कामों को पूरा करने तथा दूसरे सुधारों को आगे बढ़ाने के लिए १०००) की और मजूरी दी जाय।

यह निश्चय हुआ कि हरेक प्रमाणित (सर्टीफाइड) दूकान से यह कहा जाय कि वह अपना हिसाब वगैरा हर छै महीने—३० जून और ३१ दिसंबर को बंद करदे, और बंद करने की तारीख से एक महीने के भीतर वह अपना हिसाब-किताब संघ के प्रधान कार्यालय को भेजदे।

बोर्ड की अगली बैठक के लिए फिलहाल अगस्त की २२ वी तारीख निश्चित की गई।

अनकुटे चावल के प्रमाणपत्र स्थगित कर देने के विषय में निश्चित हुआ कि—

कुटे हुए और बिलकुल ही अनकुटे चावल के गुणों पर विशेषज्ञोंने जो राय दी है उस पर विचार करने के बाद बोर्ड इस निर्णय पर पहुँचा है कि बोर्ड को तो पूर्ण अनकुटे चावल के लिए ही प्रमाणपत्र देना चाहिए। फिर भी प्रमाणित भंडारों को दूसरा चावल रखने और बेचने की स्वतंत्रता रहेगी। शर्त सिर्फ यह रहेगी कि वह चावल मिल का कूटा न हो, बल्कि गांव की चक्की का दला या ढेंकी का कुटा हुआ होना चाहिए।

प्रमाणपत्र

······· को इसमें पूर्ण अनकुटा चावल रखने और लोगों को बेचने का अधिकार दिया जाता है। संघ की ओर से समय-समय पर जो शर्तें निश्चित होंगी, उनमें से किसी भी शर्त को भंग करने पर यह प्रमाणपत्र रद किया जा सकता है। चावल का जो पैकेट (थैला) बेचा जाय उसके साथ यह निम्नलिखित पर्चा ग्राहक को मुफ्त दिया जायगा।

पर्चा

डाक्टरों का मत यह है कि पॉलिशदार चावल का उपयोग हानिकारक है, क्योंकि उसमें के विटामिन, प्रोटीड, चरबी, क्षार इत्यादि पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। चावल जितना ही कूटा जायगा उतना ही उसका पौष्टिक अंश निकल जायगा। बाजार में आमतौर पर जो चावल बिकता है, वह कई बार का कुटा हुआ पॉलिशदार चावल होता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से सब से अधिक सुरक्षित और सस्ता चावल अनकुटा अथवा चावल ही है, इस में संदेह नहीं।

चावल को धोने के पहले उसमें के तमाम कंकड़ व कचरा वगैरा बीन डालना चाहिए। धोते समय उसे रगड़ना नहीं चाहिए। पानी डालकर सिर्फ निथार लेना चाहिए।

यह अच्छा होगा कि चावल छै घंटेतक पानी में फूलता रहे जिस पानी में वह भिगोया जाय, उसे फेंक नहीं देना चाहिए, बल्कि अदहन में मिला देना चाहिए। अदहन कितना रखा जाय यह चावल की किस्म पर निर्भर करता है। इसका निर्णय अनुभव से ही हो सकता है। साधारण रीति से यह कहा जा सकता है कि खूब कटे हुए चावल के लिए जितने पानी की जरूरत होती है उससे आधा पानी इस चावल के लिए चाहिए, और जैसा कि ऊपर बताया गया है उसके अनुसार अगर चावल पानी में भिगोया न गया हो, तो उसके लिए एक चौथाई पानी और अधिक चाहिए।

चावल को तबतक चुरने देना चाहिए, जबतक कि उसकी कनी-कनी न हो जाय, और उसका लोंदा न बन जाय। जिस तरह समूचा गेहूं चुरने में देर लगती है, उसी तरह अनकुटा अखा चावल चुरने में भी काफी समय लगता है।

चावल को दलकर हम उसकी कनकिया कर लें, और उसे उसके कना के साथ ही राधें तो समय व ईंधन में बचत हो सकती है। पोषण की दृष्टि से तो कोई हानि होती ही नहीं।

गेहूं की तरह पूर्ण अनकुटा चावल दलकर उसके आटे की रोटियां बन सकती हैं। आटे का कोई भी अंश फेंकना नहीं चाहिए।

नोट: अनकुटा चावल बहुत दिनोंतक रखा नहीं जा सकता। बुद्धिमानी इसी में है कि उतना ही चावल दलकर रखना चाहिए, जितने से आठ दिनतक का काम चल जाय, इससे अधिक नहीं।

"पानी-फंड"

'पानी-फंड' में २ जुलाई, १९३५ तक निम्नलिखित दान सेण्ट्रल बोर्ड को प्राप्त हुए हैं —

१	श्रीयुक्त बिजयदयाल सिंह	५)
२	,, राधाकृष्ण, गार्ड, फतेहगढ	१०)
३	,, एम० शापुरजी टाडीवाला	५१)
४	मंत्री, आर्यसमाज, पलवल (गुड़गांव)	७॥)
५	कुमारी अलाबेन पोचा, नेपियर रोड, पूना	२५)
६	श्रीयुक्त दीपचंद टाकुरदास, शिकारपुर (सिंध)	४७॥)
७	एक मित्र (१०००) मासिक एक वर्षतक)	१२०००)
	कुल	१२१४६)

प्रधान मंत्री,
हरिजन-सेवक-संघ, दिल्ली

मेरा दक्षिण-प्रवास

(२)

बेंगलोर शहर से छावनी नजदीक ही है। उसके एक हिस्से को, जिसमें भंगी और चमार रहते हैं, ब्लैकपल्ली अथवा काले आदमियों का गांव कहते हैं। चार-पांच मुहल्लों का नाम घसियारों की गली है। इन मुहल्लों में हरिजन-पाठशालाएँ अच्छी तरह चल रही हैं। छावनी के पास ही बीनमंगलम् गांव है। यहां की हरिजन-पाठशालाओं में हरिजन, मुसलमान और 'स्पृश्य' हिंदू सभी के बालक पढ़ते हैं। इसके अतिरिक्त प्राइवेट फंडों से चलनेवाली पाठशालाएँ भी देखीं। यहां के चमार अच्छे सुधरे हुए विचारों के हैं। इन्होंने अपना एक मंडल बना लिया है, और मंदिरों में देवी को जो बकरे का बलिदान देते थे वह अब बंद कर दिया है।

* * * *

बेंगलोर से २२ मील के फासले पर डोडबल्लापुर नाम का एक शहर है। बुनाई का यह खासा बड़ा केन्द्र है। बुनकर यहां के बिजली की ताकत से करघे चलाते हैं। राज्य के औद्योगिक स्कूल में भी बिजली से चलनेवाले करघे पर बुनाई सिखाई जाती है। इस स्कूल में हरिजन बालक भी सीखते हैं। वाइ० एम० सी० ए० का यहां जो एक नया केन्द्र खुला है, उसे भी देखा। यहां मुर्गियां पालना, अंडे सेना, शहद की मक्खी पालना, भेड़ें रखना और

फलों को बंद डिब्बो में भरकर सुरक्षित रखना वगैरा कामो के सिखाने की यहां अच्छी व्यवस्था है।

यहां दीन-सेवा-संघ नाम की एक संस्था है। ब्रह्मचारी रामचन्द्र इस संस्था के प्राण हैं। मिल के तथा दूसरे मजदूरों के बालकों के लिए दो बड़ी-बड़ी पाठशालाओ को यह संस्था चला रही है, और अन्य प्रकार से भी मजदूरो का कल्याणकारक काम करती है। गरीब लोगो के लिए छोटे-छोटे फूसफेर घर बने हुए है। ये घर १७×११ फुट के है, और उनके चारो तरफ थोड़ी-थोड़ी खुली हुई जमीन है। ये करीब १०० मकान है। हरेक मकान के आगे-पीछे और दोनो बाजू मे इसी तरह अगर थोड़ी-थोड़ी खुली जमीन रखी जाय, तो उससे इर्दगिर्द सफाई भी अच्छी रह सकती है और साग-भाजी भी वहा थोड़ी-बहुत बोई जा सकती है।

* * * *

चेटापटना बेंगलोर से ३७ मील दूर है। राज्य की ओर से यहा एक औद्योगिक प्रदर्शिनी हो रही थी। उसमे लकडी पर चपडा चढाने का काम, खिलौने, जगली जडीबूटिया, तरह-तरह की इमारती लकडी के नमूने और रेशमी काम वगैरा देखा। बेंगलोर के साइन्स इन्स्टीच्यूट मे बने हुए गैस की बत्ती के मेंटल भी मैंने यहा देखे।

* * * *

मैसूर-सरकारने हरिजनो के लाभ के लिए कुछेक साल पहले यह हुक्म जारी किया था कि सार्वजनिक तालाबो से हरिजन बिना किसी रोक-टोक के पानी भर सकते है। इस हुक्म के मुताबिक कोतनहल्ली गाव के हरिजनोने अपने गाव के तालाब से पानी भरा। इस पर अन्य हिन्दुओने हरिजनो पर हमला कर दिया। उनके मिट्टी के बर्तन फोड़ डाले, उनका बहिष्कार कर दिया, उन्हे मजदूरी पर भी न रखा, यहातक कि उन्हे अपने खेतो मे आनेतक नही दिया। इतना अधिक वैमनस्य बढ गया। वहीं पड़ोस के गाव मे एक ईसाई प्रचारक रहता था। उसे जब यह बात मालूम हुई, तो उसने आकर हरिजनो को समझाया कि, तुम सब लोग अगर ईसाई हो जाओ तो फिर गाववालो की हिम्मत नही कि तुम्हे जरा भी सता सके। ईसाई हो जाने पर तुमलोग पानी भी आजादी के साथ भर सकोगे। और तब तुम्हारी फरियाद मैसूर का रेजीडेण्ट भी सुनेगा। हरिजन भी ललचा आये और ईसाई होने के लिए करीब-करीब तैयार हो गये। स्थानीय कार्यकर्ताओ के द्वारा यह बात जब मुझे मालूम हुई तो मैं उस गांव मे गया। हरिजनों और सवर्णों तथा दोनो की ही बाते अलग-अलग सुनी, और उनके फौजदारी मामले के बारे मे भी मालूम किया। उनमे किसी तरह आपसी समझौता हो जाय इसके लिए भी मैंने प्रयत्न किया। यह तो एक गाव की बात है। इस तरह तो न जाने कितनी जगह हरिजन जलकष्ट से या दूसरे दुःखो से पीडित होगे, और इन्ही कारणों से वे ईसाई धर्म का आश्रय खोज रहे होगे। उच्च कहलानेवाले हिंदुओ की ऐसी-ऐसी क्रूरताओ के दुष्परिणामों का हमें पतातक नही है।

* * * *

मंडया एक तहसीली शहर है। यह शहर फैलाव में बसाया जा रहा है। हरिजनों के लिए भी उसमें अच्छी जमीन के टुकड़े छांटकर सस्ते दामों में दिये गये हैं। एक तरफ तो हिंदू हरिजनों के और दूसरी तरफ ईसाई हरिजनो के बसाने की सुदर व्यवस्था कर दी गई है। हरेक को अपना-अपना सार्वजनिक स्थल बनाने की भी सुविधा दी गई है।

* * * *

श्रीरंगपट्टन के पास सोमनाथपुर नाम का एक गाव है। इसमे केवल हरिजन ही रहते हैं। यहा दोपहर को विश्राम किया। यहां एक ग्रेज्युएट हरिजन सज्जन रहते हैं। यह मेरे साथ छे महीने काम कर चुके हैं। उन्ही के यहा हम उतरे और वहीं हमने भोजन किया। इस गांव के बाहरी हिस्से मे ५००—६०० वर्ष का एक प्राचीन विशाल मदिर है। अद्भुत कारीगरी है। पत्थर इतना सख्त है कि उसका नक्कासी का काम आजतक खराब नही हुआ है।

अमृतलाल वि० ठक्कर

खादी और नवनिर्माण

प्रस्ताविक

[जब सत्याग्रह स्थगित हुआ और गुजरात-विद्यापीठ के भावी कार्यक्रम पर विचार किया गया, तो यह तय हुआ कि विद्यापीठ को जंगम स्वरूप दे दिया जाय। इस जगम विद्यापीठ को गावो मे जाकर लोकसेवा और ग्रामसगठन का काम किस रीति मे करना होगा, विद्यापीठ के शिक्षको के सामने यह एक प्रश्न था। गाधीजीने उनके इस प्रश्न को एक बातचीत मे हल कर दिया था। उसके बाद वस्त्र-स्वावलम्बन के विचार का उदय हुआ और एक दूसरी बातचीत के दरम्यान गाधीजीने यह बताया कि किस प्रकार वस्त्र-स्वावलम्बन को मध्यबिन्दु मानकर खादी और ग्राम-सेवा की जा सकती है, और इसके लिए खादी का कैसा व्यापक अर्थ करके गावो मे उसका सन्देश फैलाया जा सकता है। प्रदर्शिनियो मे खादी के वस्त्र-स्वावलम्बन-विभाग को एक स्वतत्र विभाग बनाने की सलाह देते हुए इसी बातचीत के दरम्यान गाधीजीने सेवको को देश के सम्पूर्ण आर्थिक पुनःसगठन के लिए आवश्यक स्वावलम्बी और शत-प्रतिशत-स्वदेशी दृष्टि का रहस्य भी समझाया था। इस बातचीत का आशय और वे मुद्दे, जिनकी इन बातचीतों के दरम्यान गहरी छान-बीन हुई थी, कुछ विस्तार से नीचे श्री स्वामी आनद के शब्दो मे दिये जाते हैं।—**काशिनाथ त्रिवेदी**]

खादी के सन्देश की इति वस्त्र-स्वावलम्बन मे ही नही हो जाती। देश की आर्थिक नवरचना मे खादी का जो व्यापक अर्थ समाया हुआ है, वह तो एक दृष्टि है—एक संस्कृति है। यह सम्पूर्ण दृष्टि और संस्कृति खादी या चर्खे की तह मे शुरू से ही रही है। वस्त्र-स्वावलबन का सम्पूर्ण अर्थ यह है कि प्रत्येक किसान और ग्रामवासी, अर्थात् देश की आबादी के नब्बे फी सदी लोग, अपनी फुरसत का सारा समय अपनी जरूरत का सूत कातने और उसका कपडा बनाने मे खर्च करे। देहात मे आज इसका लोप हो गया है, और इसी कारण देहातवाले निरुद्यमी और आलसी बन रहे हैं और बन चुके हैं।

कताई-बुनाई का यह मतलब नहीं है कि लोग पुराने ढग से पुराने टूटे-फूटे साधनो को काम मे लावे और उनमें किसी भी प्रकार के सशोधन या परिवर्तन बिना, वैसे ही उनपर कातते और बुनते रहे। बल्कि इष्ट तो यह है कि शिक्षितवर्ग के लोग गावों में जाकर बैठ जायँ और गांववालों को अपने औजारों में वे सब

सुधार करना सिखला दे, जो बुद्धि और युक्ति के साथ अपने हाथों और अँगुलियों-द्वारा वे आसानी से कर सकते हैं। इस तरीके से हरएक किसान और मजदूर अपनी फुरसत के सारे वक्त का उपयोग अपने को एक छोटा-सा कारीगर बना लेने में कर सकता है, और इस प्रकार के उपाय-द्वारा वह अपनी जरूरत की उपयोगी चीजें घर में ही बना सकता है, और ऐसे किसी-न-किसी घरेलू उद्योग में ही अपने और अपने परिवारों के सारे फुरसतिया समय का सदुपयोग कर सकता है। खादी के अर्थशास्त्र के गर्भ में यह एक गहरी दृष्टि रही है। अपनी विलायत-यात्रा के दिनों में मैंने श्री ....के पिताजी को देखा था। वह बूढ़े थे। बुढ़ापे के कारण उनकी कमर झुक गई थी। फिर भी मैंने देखा कि सारे दिन घर में छोटा-बड़ा कुछ-न-कुछ काम वह किया ही करते थे। मैंने उन्हें बैठे-बैठे रस्सी बँटते देखा था। उनके परिवार के छोटे-बड़े बच्चे और दूसरे लोग भी, जब-जब उन्हें थोड़ी भी फुरसत मिलती, फौरन आकर उनके काम में मदद देने लगते थे।

परिश्रम और बुद्धि का मेल

कटकवाले स्व० श्री मधुसूदनदास का एक वाक्य मेरे हृदय पर सदा के लिए लिख गया है। उन्होंने मुझ से कहा था कि हिन्दुस्तान का किसान अपने जीवन का अधिकांश बैल की संगत में बिताता है। लेकिन ईश्वरने मनुष्य को हाथ दिये हैं। ये हाथ उसके तारणहार हैं। यदि वह अपने इन हाथों का उपयोग करना न सीखे और बुद्धि से काम लेकर इन हाथों, पंजों और अँगुलियों को हस्तकौशल में कुशल न बनावे, तो भय है कि कहीं वह भी बैल ही न रह जाय! आज किसान को अपने हाथों का इस प्रकार बुद्धिपूर्वक उपयोग सिखाने की आवश्यकता है। किसान के लिए इस समय दो काम अत्यन्त महत्व के हैं—एक तो यह कि वह खेती, बुवाई, और फुरसत के समय में करनेयोग्य छोटे-मोटे गृह-उद्योगों में और उनकी भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं में अपने हाथ, आँख और अंगुलियों का सब-तरहसे सतत उपयोग करना सीखे और उन उद्योगों और उनकी प्रक्रियाओं में सुधार करे। दूसरा यह, कि जो औजार रात-दिन उसके काम आते हैं, उन्हें मामूली तौर पर इस प्रकार दुरुस्त करना सीख ले कि जिस से काम व्यवस्थित रूप से बराबर चल सके। जिन गृहउद्योगों में अपनी बुद्धि लड़ाकर गाववाले अपने समय का सदुपयोग और कारीगरी का विकास कर सकते हैं, उनमें से कुछ के नाम उदाहरण के रूप में नीचे दिये जाते हैं —तरह-तरह की गाठें बाधना और खोलना, हथौड़ा चलाना, रद्दा फेरना, लकड़ी चीरना, चौखट बनाना, चौखट जड़ना, सीधी कील ठोकना, टीपना, छीलना, गट्ठर या बोझ बाधना, सन या मूज की रस्सी बनाना, खटिया बुनना, चटाई, टोकनी, झाड़ आदि गूथना, लीवर या गिर्री के उपयोग से परिश्रम में जो अन्तर पड़ता है उसे समझना, बिगड़े हुए या बेकार सूत में से बैल और बछड़ों के लिए रास या रस्सी बटना अथवा घरेलू उपयोग के लिए पलँग की नीवार, नाड़ा आदि तैयार करना, तकुए, पीजन, शटलवाले करघे और चर्खे में अबतक जो सुधार हुए हैं उन्हें समझना और उनमें नये सुधार करना, गांठवाली और साबूत माल या ढीली माल के कारण तकुए के चक्कर में और सूत टूटने के कारण कताई की गति में पड़नेवाले अन्तर को समझना और उसका प्रतिकार करना, आदि-आदि।

सहज साक्षरता

जो ग्रामवासी किसान और मजदूर आज आलस्य, निरुद्यम, और बेकारी के कारण 'तन छीन मन मलीन' हो चुके हैं, उनकी तालीम का यही प्राथमिक और महत्त्वपूर्ण अंश है। उनके लिए लिखने-पढ़ने की अपेक्षा आज इस तालीम का कहीं अधिक मूल्य है। देश के श्रमिकों के बुझते हुए जीवन-दीप में यदि कहीं आशा और उमंग का तेल डाला जा सके, और वे अपने तन-मन को पुनः एक बार उद्योगमय बनाकर, क्या खेतों में और क्या घरों में, मधुमक्खी की तरह उद्योगपरायण बन सकें, और स्वेच्छा से ग्राम-सेवा की दीक्षा लेकर गावों में बसे हुए शिक्षित प्रजा सेवकों का आसपास से ही उन्हें समय-समय पर सहारा मिल सके, तो उनकी इस उद्योग-प्रवणता के कारण ही सस्ते लेखन-मुद्रण के इस युग में पढ़ना-लिखना उनके लिए अनायास सुलभ हो जाय। और फिर तो ऐसे कई किस्से बन जायेंगे कि जब किसान और मजदूर को यह पता भी न चलेगा कि उसने कब, कहां, और कैसे लिखना-पढ़ना सीख लिया! उद्योग-ही-उद्योग में बिना स्वतंत्र और विशेष प्रयत्न के वह लिखना, हस्ताक्षर करना, पता या पत्र लिखना, गिनती करना, सारे हिसाब लिखना, जमा-खर्च करना, जोड़ना-घटाना, तरह-तरह के वजन, माप और उनके बीच के अन्तर को समझना, नकशों के आकारों को याद रखना, उनपर छपे हुए नामों को पढ़ना और नदी, पहाड़, तालाब आदि को पहचानना सीख जायगा। इसका यह आशय नहीं कि साक्षरता अनावश्यक या गौण है। आशय तो केवल इतना ही है कि यदि आज देश के सात लाख गावों में स्वतंत्र रूप से शिक्षा का प्रचार करना देश के शिक्षाशास्त्रियों, शिक्षकों और सेवकों की शक्ति से परे की बात हो, तो भी खादी की संस्कृति के अनुरूप गावों की पुनारचना के सत-प्रति-सत स्वदेशी कार्यक्रम में तो शिक्षा के प्रचार का समावेश अनायास और प्रायः बिना खर्च के ही हो सकता है।

यही तो नवनिर्माण है

बीस वर्ष पहले जो चर्खे हमें मिले थे, और आज भी देहात में जो पुराने चर्खे चल रहे हैं, उनके मुकाबले में शिक्षितवर्ग-द्वारा बनाये गये उन्हीं नमूना के चर्खे कहीं अच्छे हैं, और दोनों में जमीन-आसमान का फर्क पड़ गया है। कारण यही है कि नये चर्खों के बनाने में बुद्धिमान मनुष्यने अपनी बुद्धि का, खोज और आविष्कार की सम्पूर्ण शास्त्रीयता का और अपनी व्यवस्थित कार्यकुशलता का भलीभाति उपयोग किया है। खादी और वस्त्र-स्वावलंबन की पुकार का व्यापक अर्थ भी यही है कि देहात के किसानों और मजदूरों को ये सारी शक्तियां देकर उन्हें कुशल उद्योगी बनाया जाय। इसके लिए उनमें रहना, उन्हें सिखाना और उनके सुख दुख में हाथ बँटाना जरूरी है। और इसीलिए यह आवश्यक है कि सुशिक्षित लोग गावों में जाकर बसें और गाववालों के जीवन में घुल-मिल जाय। यही रचनात्मक कार्य है। इसी का नाम नवनिर्माण और नवविधान है।

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

चर्खे में सुधार

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३]

दिल्ली, शुक्रवार, १२ जुलाई, १९३५.

[संख्या २१

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्राम-सेवा

जिन सड़को की हमने मरम्मत की है वे ऐसी कुछ बुरी मालूम नही होती। हम कोई कारीगर तो है नही, न हमारा यह धधा ही है। नौसिखियो का काम जैसा हुआ करता है, उसे देखते हुए हमारी सड़को की यह मरम्मत बुरी साबित नहीं हुई। इधर मेह भी जोर का पड गया है। हमे डर था कि कही मेह पड़ने से सड़के खराब न हो जायँ, पर सद्भाग्य से ऐसा हुआ नही। कई गाड़िया ... और बलुही मिट्टी डाली गई थी क्योंकि गाव के एक भाइ... इधर अपनी गाड़ी हमे खुद अपनी खुशी से दी थी—और यह बड़ा अच्छा हुआ कि पानी से वह सब मुरम व मिट्टी अच्छी तरह बैठ गई। इसमे शक नही कि कुछ गाडी मिट्टी और वहा बड़ी आसानी से पड सकती थी। पर अब कठिन है, क्योकि सड़को पर तमाम चिपचिपा कीचड मच गया है, और बोनी का काम जोरो से हो रहा है, इसलिए ऐसे मे गाडिया मिलना मुश्किल ही है।

और इन सड़को की तरह यहा के लोग भी इस जोर की वर्षा के कारण डगमगाये नही। हमे यह भय था, कि जब मेह पड़ेगा, तब ये लोग फिर अपना वही पुराना रास्ता पकड़ लेगे और चाहे जहा टट्टी फिरने बैठ जाया करेगे, और इस तरह हमारा बहुत-कुछ किया कराया गुड गोबर हो जायगा। मगर बड़ी-बड़ी कठिनाइयो के होते हुए भी ये लोग जरा भी विचलित नहीं हुए। गाव की उत्तर तरफ की स्त्रिया अबतक एक बहुत बड़े खेत मे टट्टी फिरने जाया करती थी, पर अब खेतवालोने उसके चारो तरफ काटेदार तार की बारी लगादी है। ऐसी हालत मे बेचारी स्त्रिया जाती भी तो कहा? पर बजाय इसके कि पहले की तरह गलियो व सड़को को खराब करें, वे उस चिपचिपे कीचड़ की परवाह न करके काफी दूर गई। यह कोई मामूली बात नही थी और इससे हमारी अब यह और भी अधिक जिम्मेदारी बढ जाती है कि उनके लिए खेतो के इर्दगिर्द किसी ऐसी एकात और बंद जगह का प्रबंध कर दिया जाय जहां काश्त न होती हो। हमारे साधन-संपन्न मित्र डॉ० पिंगले, सदा की भाति, इस काम में भी हमारी मदद करेंगे, और हमे आशा है कि जल्द ही यह कठिनाई दूर हो जायगी।

इस गीली-गाली जमीन मे सफाई करना भी हमारे लिए बड़ा मुश्किल काम हो गया है। गाव से काफी दूर जबतक लोगों की शौचक्रिया के लिए हमने किसी ऐसी जगह का प्रबध नहीं कर दिया जहा काश्त न होती हो, तबतक हमारे सामने काफी टेढ़ा और मेहनत का काम रहेगा। और अभी हुआ क्या है, चौमासे का यह तो अभी आरभ ही है। बारिश मे हमें अभी अनेक नई-नई मुसीबतो का सामना करना पड़ेगा। पर लोगो के हम आभारी है, कि वे अब यह महसूस करने लगे है कि उन्हे रास्ते खराब नही करने चाहिए। हरिजन स्त्रियोनकने हमसे बड़े प्रेम से विनती की कि 'अब इस खेत मे तो हम लोग जा नही सकेगी। दो-तीन दिन बाद यहा का रास्ता बद हो जायगा। इसलिए कृपाकर अब आप हमें कोई दूसरी जगह बतला दे।' एक आदमीने कहा, 'हम अब पहले की तरह अपने दरवाजो के सामने पाखाना फिरने नही बैठ सकते। ऐसा तो कुत्ते और बिल्लिया भी नही करती। हमे सफाई का यह सबक जरूर उनसे सीखना चाहिए।'

एक दिन जब हम लोग घर वापस आ रहे थे, एक नवयुवक हमारे साथ हो लिया और मुझसे कहने लगा कि आप कृपाकर मेरे लिए कही ऐसा प्रबध करादें जहा मै कपड़ा बुनने का काम सीख सकू। मैने उससे पूछा कि 'तुम वैसे क्या काम करते हो, और यह बुनाई का काम तुम किसलिए सीखना चाहते हो?' उसने कहा, 'मै काग्रेस का स्वयसेवक था, और एक बार जेल भी गया था। मेरा कोई खेत-खलिहान तो है नही कि जहा खेती करूँ। किसी तरह बड़ी मुश्किल से गुजर कर रहा हूँ। घर पर तीन प्राणी है, जो सब स्त्रिया ही है। वर्षा मे कभी-कभी कुछ काम मिल जाता है, पर आमदनी का कोई स्थायी जरिया नही।' मैने कहा, 'मै आसानी से तुम्हे किसी जगह बुनाई का काम सीखने के लिए भेज सकता हूं। पर घर मे जो औरते है, उनका क्या होगा?'

'उनकी आप कोई चिंता न कीजिए', उसने विश्वास के साथ कहा। 'उन्हे हमेशा खेतो मे कुछ-न-कुछ मजदूरी का काम मिल जाता है। वे भूखी नही रहेगी। कठिनाई तो एक ही है, और वह यह कि अगर आप मुझे काम सीखने के लिए कही भेज देंगे तो मैं वहां अपने रहने व भोजन वगैरा का खर्चा न दे सकूगा। आपकी यह बड़ी कृपा होगी। अगर आप मुझे किसी ऐसी जगह भेज सके जहा मुझे कोई खर्चा न देना पडे। मैं बुनाई का काम सीख गया, तो यही अपना करघा लगाकर कपडे बुना करूगा। बाहर से अगर न भी मिलेगा, तो मेरे घर की स्त्रिया मेरे करघेभर का तो काफी सूत कात ही लेंगी।'

मुझे वह युवक होनहार मालूम हुआ। मैंने देखा कि वह हमारे लिए एक अच्छा स्थायी ग्रामसेवक बन सकता है, इसलिए मैंने उसे वचन दे दिया कि मैं तुम्हे बुनाई का काम सिखवा दूगा।

प्रगति बड़ी धीमी है

सरदार वल्लभभाई को देखने के लिए, जिन्हे आजकल पीलिया की शिकायत है, पिछले हफ्ते मुझे बबई जाने का अवसर मिला था। वहा के ग्रामवस्तु-भडार कैसी क्या प्रगति कर रहे है, इस बात की भी पूछताछ मैंने उस समय वहा की थी। बबई में ऐसे तीन भडार है—शूरजी भाई का स्वदेशी बाजार, गृहउद्योग-मंदिर और सेण्डहर्स्ट रोड पर गाधी-सेवा-सेना का भडार। समय बहुत थोडा था, इसलिए मैं ये आकडे नही ले सका कि इन भडारो मे बिनाकुटा चावल, गावकी चक्की का आटा, घानी का तेल और गुड तथा गावकी बनी दूसरी चीजे अबतक कहा कितना बिकी है। पहले दो भडार बिना कुटे चावल के साथ-साथ हाथ का कुटा चावल भी बेचते है, जिन पर जरा-सी छिलका रहती है। गृह-उद्योग-भडार से एक पर्चा निकला करता है जिसमे उसकी माहवारी बिक्री के अक रहते है। उन आकडो मे चावल की बिक्री का तो कोई उल्लेख नही है, पर उसे देखकर यह मालूम हुआ कि इन चार महीनो मे हाथ की चक्की का आटा सिर्फ ३६८० पाउण्ड बिका है। यह बिक्री शायद ही सतोषजनक कही जा सकती है। शूरजी भाई के स्वदेशी बाजार मे हाथ का पिसा आटा अच्छे सुदर पैकटो मे और घानी का तेल दो-दो पाउण्ड के बद बोतलो और पाच-पाच पाउण्ड के टीनो मे बेचा जाता है। भडारवालोने मुझे बतलाया, कि इन चीजो की यह बिक्री सतोषप्रद है। बबई से ४० मील दूर पनवेल मे हमारे ग्रामसेवक इस आटे को हाथ की चक्की मे पीसते और तेल को घानी मे पेरते है।

बिल्कुल अनकुटा चावल और केवल गावो की ही बनी चीजे तो सेण्डहर्स्ट रोड के गाधी-सेवा-सेनावाले भडार मे ही मिलती है। बिना कुटा चावल यहा एप्रिल मे ९२७ पाउण्ड, मई मे ७४० पाउण्ड और जून की २० तारीख तक ८५५ पाउण्ड बिका है। बिक्री के इन आकडो को मैंने खूब ध्यान से देखा, क्योकि गावो की चीजे कहातक लोकप्रिय बन सकी है इसका मापक यत्र मैं अनकुटे चावल के प्रचार को ही मानता हूं। इन अको से यह प्रगट होता है कि इस काम मे सलग्न बहिनो के प्रयत्नो को देखते हुए यह प्रगति बहुत ही धीमी है। इस भडार को अकेली गाधी-सेवा-सेना की बहिने ही चला रही है जो अनेक कठिनाइया के होते हुए भी बडी ही लगन के साथ ग्रामउद्योग की इस नई प्रवृत्ति का प्रचार कर रही है। ये खुद इन चीजो का उपयोग करती है और दूसरी बहिनो से भी गावो की ही वस्तुओ को काम मे लाने के लिए आग्रहपूर्वक कहती है। मगर इस धीमी प्रगति का इन बहिनो की अटल श्रद्धा पर कोई असर नही पडा, और उनका यह विश्वास है कि समय आने पर लोग अवश्य इस मार्ग को पकड लेगे। ये कोई छुईमुई की श्रद्धावाली बहिने नही है। फिर इन श्रद्धालु स्वामी आनद के अथक प्रयत्नो का भी उन्हे सहयोग मिल गया है। गत सप्ताह स्वामी आनद के काम देखने का भी मुझे अवसर मिला था।

पथ-प्रदर्शक

स्वामी आनद अब थाणा मे जाकर बैठ गये है। यहा पाच एकड जमीन की एक छोटी-सी बाड़ी है, और थोड़े-से कार्यकर्ता। कार्यकर्त्ताओ मे एक भाई मछुआ है और एक हलवाहा। यह जगह सालों से बिल्कुल ही बेवाली पड़ी हुई थी। इस बाड़ी में जो मकानात है उनकी तो बहुत ही बुरी हालत हो गई है। बरसो से मरम्मत नही हुई। और जमीन का यह हाल है कि वहा कॅटीले झाड-झखाडो और सापो का सर्वत्र साम्राज्य हो गया था। आमके दरख्तो के खोडरो मे लाखो चेमटे (लाल चीटे) भरे पड़े थे। कोठरियोमे न दरवाजे है, न छानी-छप्पर। और खेतो मे बारी का नाम निशान भी नही। जमीन मे एक खड्ड है जिसे कुएँ का नाम दे रखा था। इसलिए सबेरे से लेकर साझतक सारे दिन तनतोड मेहनत करनी पडी। स्वामी आनद और उनके साथियोने यह निश्चय किया, कि फकीरो की तरह रहा जाय और बैलो की तरह काम किया जाय। इमारतो मे तो अब भी मरम्मत की बहुत जरूरत है, मगर जमीन वगैरा को उसके झाड-झखाड काट-कूटकर साफ कर लिया है, कुआ भी खासा अच्छा बना लिया है और खेतो के चारो तरफ बारी भी लगा ली है। इस सब काम मे कुछ मजदूर तो रखने ही पडे, पर उन मजदूरो के साथ-साथ स्वामी आनद के इस ग्राम-उद्योग-मदिरवालोने भी खूब कडी मेहनत की। इन छै महीनो के दरम्यान स्वामी आनदने अधिकतर पैदल ही ७५ से ८० गावो का दौरा किया और हरेक गाव के तथ्य और आकडे उन्होने एकत्र किये। पास-पडोस के गावो की स्त्रियो के भी सपर्क मे ग्रामउद्योगमदिरवाले आये और बबई मे बेचने के लिए उनसे गेहूँ पिसवाने और धान कुटवाने का प्रबध किया। इस बात का खास ध्यान रखा जाता है कि जो भी चीज बबई भेजी जाय वह गाव की बैलगाडियो पर ही भेजी जाय, मोटर लारियो पर नही। बैलगाडियो का नाश ये मोटर बसे ही तो आज कर रही है। यहा का कुछ चावल और कुछ आटा तो गाधी-सेवा-सेना की दूकान पर भेज दिया जाता है और कुछ यही गावो मे बिक जाता है। ग्रामस्वयसेवक चावल और आटा लिये हुए घर-घर घूमते है और इन वस्तुओ को अधिक-से-अधिक लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न करते है।

यह सब महाकठिन काम है। लेकिन श्रद्धा भी तो एक जबर्दस्त चीज है। श्रद्धा के बल से एक छलाग मे समुद्र भी पार किया जा सकता है। ग्राममनोवृत्ति का रस जिसके रोम-रोम मे भिद रहा हो, वह सहज मे निराश होने का नही। हाल मे स्वामी आनद ने मुझे जो पत्र लिखा है उससे उनकी दृढमूल ग्राम्यवृत्ति का पता चलता है। लिखते है, "बाह्य जगत् मे कहा क्या हो रहा है इसका मुझे पता नही। 'हरिजन' हमे मिल जाता है, और वही हमारे लिए बहुत है। हम और कोई भी अखबार नही खरीदते। जब कभी मैं बबई जाता हूँ तब वहा अपने मित्रो से कुछ साप्ताहिक पत्र माग लेता हूँ और यहा जो लोग पढना चाहते है उनके लिए उन पढे-पढाये अखबारो को ले आया करता हूँ। इस तरह हमारा काम चल जाता है। अखबार खरीदने या मोटर बस या ट्रामपर चढने अथवा किसी भी ऐसी चीज पर जो गाव की बनी हुई नही है, कैसे एक आना खर्चू ? अतरात्मा पर जैसे झटका लगता है। अंदर स्वत: कोई चीज चुभती-सी है, और मैं उस वक्त अपनी आत्मा से पूछता हूँ कि जब एक आने मे एक गरीब स्त्री पाचसेर गेहूँ पीसती है या सवामन धान कूटती है, तब मुझे एक आना फेक देने का क्या हक है ? ग्रामउद्योग-सघ की इस पिछली बैठक मे मेरी बड़ी ही दिलचस्पी थी, और मन हुआ था

कि मित्रो से इस अवसर पर मिलू और ग्रामउद्योगो की बातोपर उनके साथ विचार-विनिमय करूँ। मैने श्री गोशीबहिन को करीब करीब वचन भी दे दिया था, कि मैं आपके साथ वर्धा चलूगा । पर रात को जब सोते समय मैने हिसाब लगाकर देखा कि १६) वर्धा जाने-आने मे खर्च पडेगें, तब मुझे बडी व्याकुलता हुई। मैने देखा कि कितने ही गरीबो के मुहँ का कौर छीनकर मीटिंग में जाना अच्छा नही। इसलिए मैने वर्धा न जाना ही तय किया और दूसरे दिन गोशी बहिन को कहला भेजा कि मैं वर्धा नही जा सकूगा ।"

नासिक में चंद घंटे

बबई से वर्धा वापस आते हुए ग्रामउद्योग-सघ के सदस्य श्रीशूरजी भाई और डॉ० प्रफुल्ल घोष के साथ मे नासिक मे उतर पडा। मुझे नासिक का पिंजरापोल दिखाने की शूरजी भाई की बहुत इच्छा थी। पिंजरापोल के साथ वे एक चर्मालय खोलना चाहते है और इसमे मेरी राय लेना चाहते थे। दो-तीन सौ ढोर हरसाल यहा मरते है, और वे सब-के-सब गाड दिये जाते है। पिंजरापोल मे करीब १३०० मवेशी है और साल मे करीब २८०००) का दूध बिकता है। स्थानीय कार्यकर्ता गद्रे बधुओ मे से बडे भाई के चार्ज मे तो काग्रेस कमेटी है और छोटे भाई के चार्ज मे हरिजन-सेवक-सघ। गद्रे बधुओने एक छोटी-सी परिषद् का अपने यहा आयोजन किया था। हमें भी उसमें उन्होने बुलाया। हम लोग महर्षि उनके यहा गये। बातचीत के सिलसिले मे यह मालूम हुआ कि सार्वजनिक कार्यो की यहा बडी शोचनीय स्थिति है। मैने पूछा, "आप लोग पिंजरापोल के कामो मे रस लेते है यह आश्चर्य है! आप दूध तो जरूर वहा से खरीदते है, पर आपने पिंजरापोल कभी देखा भी है? पिंजरापोल के साथ अगर वहा एक चर्मालय खोलदिया जाय तो आप लोगो मे से उसमे क्या कोई दिलचस्पी लेने को तैयार है? एक छोटे-से चर्मालय के लिए पैसा मिल जाना आप लोगो के लिए तो बडा आसान काम होना चाहिए।

हरिजन-सेवक-सघ के व्यवस्थापक छोटे गद्रेजीने लबी आह खीचते हुए कहा, 'मुझे दुःख है, यहा कुछ करना असभव ही है। मेरी बहुत इच्छा है कि एक-दो हरिजन लडके चमडे का काम सीखने के लिए कहीं भेज दिये जायँ, पर मैं नही जानता कि उन्हे किस तरह भेजा जाय। आप पूछते है कि क्या यहा के लोग चर्मालय के काम मे दिलचस्पी लेगे। चर्मालय तो दूर रहा, हमारे हरिजन-छात्रालय तक मे तो वे दिलचस्पी लेते नही। श्रीयुक्त लक्ष्मीदास तेरसी-जैसे कुछ गुजराती मित्र और प्रेमी अगर हरिजन-छात्रालय को नियमित रीति से न देखते रहते और उसकी आर्थिक सहायता न करते रहते, तो हमे छात्रालय बद ही कर देना पडता।'

'और ग्रामउद्योगों के काम के बारे मे?' हमने उनसे पूछा।

'हमने कोशिश की थी कि लोग इस काम मे रस ले, हममे से कुछ लोगोने यह भी चेष्टा की थी कि गाव के लोग जो यहा मजूरी करने के लिए आते है उनसे गेहू का आटा पिसवाया जाय और चावल कुटवाये जायँ, लेकिन कोई तैयार नही हुआ। और साधारण जनता की बात पूछे तो उसका तो जैसे इस काम से कोई सरोकार ही नही। यहा के खादी-भंडार की भी हालत दिन-दिन गिरती ही जारही है। मैं हर रविवार को खादी की फेरी लगाता हू, और बडी मुश्किल से सिर्फ ३०—५० रुपये की खादी मित्रो को बेचता हूँ, सो भी बडे आग्रह के साथ। मेरी मुरौअत मे आकर खरीद लेते है। यह मकान जिसमे हमलोग रहते है किसी जमाने मे तेलियो की बस्ती मे था। करीब ४०० घानियां यहा चलती थी। आज सिर्फ ४ घानिया ही यहा रह गई है।'

एक सज्जनने कहा, 'आप अगर कुछ नियमित ग्राहक बनवादे तो मे आपके लिए हाथकी चक्की से गेहू का आटा पिसवा सकता हूँ, घानी का तेल पेरवा सकता हूँ, और धान की सिर्फ भूसी निकलवा सकता हूँ। मुझे दुःख है कि मै चावल कुटवा नही सकूगा।'

'पर चावल कुटवाने की जरूरत ही क्या है? बस, उसकी भूसी अलग करवा देना ही काफी है।' मैने कहा।

'तो क्या सिर्फ भूसी निकला बिना कुटा चावल खाया जा सकता है?'

मुझे दुःख है कि आप 'हरिजन' ध्यान से नही पढते,' मैने कहा, और पॉलिशवाले और बिना पॉलिश के चावल में क्या अतर है और बिनाकुटा बिना पॉलिश का चावल कितना फायदेमद है इस सब का मैने विस्तार से वर्णन किया। गद्रे बधुओने इस काम पर अधिक ध्यान देने तथा एक ऐसा मडल बनाने का वचन दिया, जिसमे लोग नियमितरूप से बिना कुटे चावल, हाथ के पिसे आटे और घानी के पिरे तेल का ही उपयोग करेगे। दोनो ही भाई अच्छे लगनवाले कार्यकर्त्ता है, किन्तु ऐसा मालूम होता है कि आस-पास की अवस्था से उनके मनमे लाचारी और निराशाने घर कर लिया है।

छोटे गद्रेजी हमे हरिजन-छात्रालय दिखाने ले गये। छात्रालय देखकर तो मुझे बडा आनद हुआ, पर साथ ही यह देखकर दुःख हुआ कि उसे बिलकुल ही सहायता नही मिल रही है। २५ विद्यार्थियो के रहनेलायक झोपडिया जिस जमीन पर बनी हैं, वह जमीन भी एक मिशनरी महिलाने दी है, और लडको के खाने-पीने का खर्चा, जो १५०) मासिक से ऊपर नही है, वह भी बाहरी सहायता से ही चल रहा है। रसोईघर और कमरे बहुत ही साफसुथरे थे, और विद्यार्थी भी काफी सुघर और कार्यकुशल मालूम हुए। गद्रेजी नित्य छात्रालय मे आते है, प्रार्थना कराते है, और जितनी उनसे बनती है छात्रों की हर तरह से सहायता करते है। कालेज मे पढनेवाला एक बडी उम्र का विद्यार्थी छात्रालय का व्यवस्थापक है। इस विद्यार्थी मे सेवा के प्रति अच्छा उत्साह है। यहा एक चीज देखकर मुझे बडा दुःख हुआ। सब लडके विदेशी कपडे पहने हुए थे। यह कोई जवाब नही, कि वे खादी खरीद नही सकते। गद्रेजी सदा खादी ही पहनते है। उन्हे इन लडकों को अपने खादी-प्रेम का चेप (छूत) लगा देना चाहिए। लडके नित्य एक घटा बडी आसानी से चर्खा चला सकते है, और अपनी जरूरतभर के कपडो का सूत बडे मजे मे कात सकते है।

यह कैसे दुःख की बात है कि इस छोटी-सी सस्था को सहायता देनेवाले मित्र इतने बडे नासिक शहर मे नही है!

डायरी

गत सप्ताह के पत्र मे मैने डायरी के संबध में जो लिखा था उसके बाद से गाधीजी हमारे कुटुब के भाई-बहिनो की डायरियां

[१६९ वे पृष्ठ के पहले कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १२ जुलाई, १६३५

चर्खे में सुधार

सावली मध्यप्रान्त मे खादी का एक अच्छा उत्पत्ति-केन्द्र है। वहा पूछताछ करने पर यह मालूम हुआ है कि कतैया औसतन एक घटे मे एक पाई से अधिक नही कमाता। सद्भाग्य से या तो उसकी कमाई के कुछ अन्य साधन है, या उसके कुटुंब के दूसरे लोग अधिक कमाई का कोई दूसरा धंधा करते है। इतने ज्ञान से संतोष मानकर बैठ रहना खादीसेवक को नही पुसा सकता। उसे ऐसे उपाय सोचने चाहिए कि जिनसे कतैया अधिक पैसा कमा सके। इसके तीन मार्ग है- (१) मजदूरी अधिक देना और व्यापार की खादी के दाम बढाना, (२) ओटनेवाले, धुनने-वाले और बुननेवाले से कहा जाय कि वे अपनी कमाई में से कुछ हिस्सा निकालकर कतैये को दे, और (३) मौजूदा चर्खे मे सुधार करना, तथा कतैये को यह सिखाना कि वह आज कातने मे जितना ध्यान रखता है उससे भी अधिक ध्यान रखा करे।

यदि यह अंतिम मार्ग संभव न हो तो पहले दो मार्गो मे से एक-न-एक तो ग्रहण करना ही होगा। लेकिन मौजूदा चर्खे मे और कतैये की पद्धति मे अवश्य सुधार किया जा सकता है। किर्लोस्कर कंपनी का प्रयत्न परीक्षा मे अगर बिल्कुल ठीक उतरा होता, तो कतैये की मजदूरी आसानी से तीन पाई तक पहुंच जाती। पर ऐसा हुआ नही। चर्खा संघ के पास जितने चर्खे आये थे, उनमे किर्लोस्कर कम्पनी का चर्खा सर्वश्रेष्ठ था सही, लेकिन परी-क्षकोने गावो की आपत्तियो के लिए जो कसौटी रखी थी, उस पर वह ठीक-ठीक नही उतर सका ऐसा परीक्षको का खयाल था। वह चर्खा मौजूदा चर्खो का स्थान नही ले सका। हम आशा है कि किर्लोस्कर कम्पनी या दूसरे अन्वेषक उस प्रयत्न को छोड नही देंगे। पारितोषिक यद्यपि हटा लिया गया है, तो भी मुझे इसमे संदेह नही कि अगर कोई भी अच्छा प्रयास होगा तो संघ उसकी परीक्षा करने के लिए हमेशा तैयार रहेगा, और अगर वह चर्खा सचमुच छोटा और चलने मे हलका हुआ तो उसपर पूरा पारि-तोषिक दिया जायगा। किन्तु उस सुन्दर दिवस के आनेतक हमे इस मौजूदा चर्खे मे अवश्य सुधार करना चाहिए। श्री शंकरलाल बैंकर तकुवे की गति की तरफ अपना सारा ध्यान दे रहे है। यह एक आवश्यक सुधार है। यह मालूम हुआ है कि चर्खे के एक पहिये के एक बार घुमाने से तकुवे के बहुत कम चक्कर—यहा तक कि ३५ ही चक्कर होते है। नतीजा यह आया है कि घटे मे १०० गज भी सूत निकलने का औसत नही पडता; १५० गज से ऊपर तो सूत उतरता ही नही। अधिक-से-अधिक गति ८०० गजतक पहुँची है। अगर तकुवे के वेग मे सुधार हो जाय, तो सूत का औसत और मजदूरी आसानी से दूनी हो सकती है। तकुवा और पतली माल काम में लाने से तथा तकुवे की गरीं का घेरा कम कर देने से यह हो सकता है। सुधार आसानी से किस प्रकार हो सकते है इसके ये तो केवल यहा दृष्टांत दिये गये है।

लेकिन जबतक खादीसेवक कलाई-शास्त्र में कुशल नही बनेंगे तबतक कुछ भी सुधार नही हो सकता। उनमें शास्त्रीय तथा व्यावहारिक दोनो ही प्रकार का ज्ञान होना चाहिए। उन्हें मौजूदा चर्खों की अत्यंत सादी बनावट का और उनके हरेक पुर्जे के उपयोग का अध्ययन करना चाहिए। इसके अलावा उन्हें कतैये के हक मे अधिक-से-अधिक दिलचस्पी लेनी चाहिए।

इसका मतलब यह हुआ कि खादी-सेवा-संघ की रचना नये सिरे से होनी चाहिए। यह काम जितना जल्दी हो उतना ही उससे हम सब को लाभ है। हम जब यह जानते है, कि कतैये के काम मे आसानी से सुधार हो सकता है, तब हमें उसके लापरवाही से किये हुए काम से संतोष नही मानना चाहिए।

'हरिजन' से] **मो० क० गांधी**

हरिजन-सम्मेलन

१६ जून को मैसूरराज्य-हरिजन-सेवक-संघ की ओर से मैसूर मे श्रीमती रामेश्वरी नेहरू की अध्यक्षता मे हरिजन-सेवकों का एक सम्मेलन हुआ था। मैसूर के दीवान सर मिरजा इस्माइलने निम्नलिखित सन्देश भेजा था —

"मुझे यह जानकर बडी खुशी हुई है कि मैसूर राज्य का हरिजन-सेवक-संघ अपने गतवर्ष के कार्य का परिणाम देखने तथा भावी कार्य की दिशा निश्चित करने के लिए उन सब कार्यकर्त्ताओ का सम्मेलन कर रहा है, जो हरिजनो की उन्नति के पुण्यकार्य मे लगे हुए है। इस सम्मेलन को मै हृदय से सफलता चाहता हूँ इसके कहने की जरूरत नही। यह बात किसीसे छिपी नही है कि श्रीमान् महाराजा साहब और उनकी सरकार का अपनी रिआया की भलाई और खुशहाली के लिए जो गहरा खयाल है उसमे जात-पात, धर्म या कौम के भेदभाव के लिए कोई जगह नही है। श्रीमान् महाराजा साहब की प्रजा मे हरिजनो की काफी संख्या है। उनकी सामाजिक और शिक्षासम्बन्धी प्रगति के लिए श्रीमान् महाराजा साहब की सरकारने सक्रिय सहानुभूति और सहायता दी है और अब भी देगी। इधर कुछ वर्षो के अन्दर हरिजनो की स्थिति सुधारने के लिए सरकारने कई काम किये है। इस काम मे प्रजा तथा बेंगलोर-हरिजन-सेवक-संघ-जैसी संस्थाओ का सहयोग अभिनन्दनीय है। मै चाहता हूं कि हरिजनो के सामाजिक जीवन को ऊँचा उठाने और उन्हे राज्य के सार्वजनिक जीवन मे भाग लेने लायक बनाने के प्रयत्न मे इस संघको पूरी सफलता मिले।"

सम्मेलनने स्थानीय महत्त्व के जो अनेक प्रस्ताव पास किये है, उनसे एक अवतरण लेकर मै नीचे देता हूँ —

"यह सम्मेलन सरकार से प्रार्थना करता है कि वह हरिजनो को नीचे लिखी ये सुविधाएँ और देदे-

(१) इर्विन नहरवाले भाग मे तथा वाणीविलास सागर के पास कृषिसबंधी बस्तिया बसाने के लिए जगह।

(२) गावो में हरिजन-बस्तियो को विस्तृत बनाने के लिए जमीन।

(३) गावो मे हरिजनो को कुएँ बनवा देने के लिए बजट में एक निश्चित रकम रखने की योजना।

(४) हरिजन-छात्रालयो की आर्थिक सहायता तथा छात्र-वृत्तियो में वृद्धि; और खेल-कूद की तथा पुस्तकालयो की फीस से हरिजन छात्रो की मुक्ति।

(५) हाईस्कूल और कालिज की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हरिजनो को सरकारी नौकरियों में पसदगी।

(६) राज्य के हरिजनों के नैतिक और आर्थिक सुधारों की देखरेख रखने के लिए एक खास अफसर की नियुक्ति।

(८) मैसूर में हरिजन बालिकाओं के लिए एक निःशुल्क छात्रालय।

(९) सरकार के 'मुजराई' विभाग के अधीन तमाम मंदिरों में हरिजनों के प्रवेश और पूजा करने की परवानगी।"

हमें आशा है कि राज्य के अधिकारी सम्मेलन की इन उचित प्रार्थनाओं पर स्वीकृति दे देंगे, और राज्य के हरिजनों तथा दूसरे नागरिकों के बीच पूर्ण समानता स्थापित हो जायगी।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

[१६७ पृष्ठ से आगे]

देखने लगे हैं। एक भाई से उन्होंने कहा, 'तुम्हारी डायरी स्पष्ट नहीं है,' दूसरे से कहा, 'तुमने लिखने में लापरवाही की है,' तीसरे से कहा, 'तुम्हारी डायरी देखने से यह मालूम होता है कि तुम चोरी का अन्न खाते हो,' चौथे से कहा, 'तुम्हारी डायरी अधूरी-सी है।' एक सज्जन को बहुत दिनों से कब्ज की बीमारी थी, और गांधीजी के उपचार से उनकी वह शिकायत अब दूर होती जा रही है। उन्होंने गांधीजी से पूछा कि, 'मुझे अपनी डायरी में क्या लिखना चाहिए और क्या नहीं।' गांधीजीने उनके इस प्रश्न का जो उत्तर दिया उसे मैं यहां अवश्य दूंगा, क्योंकि उससे यह व्यक्त होता है कि सच्ची डायरी कैसी होनी चाहिए, यह अलग बात है कि वैसी डायरी मनुष्य रख सकता है या नहीं। गांधीजीने कहा, 'तुम्हारी तबीयत कैसी रहती है इसकी एक-एक बात ब्योरेवार तुम्हारी डायरी में रहनी चाहिए। तुम अगर अपने तमाम काम को घंटों में बांट सको, तो एक-एक घंटे के काम का ब्योरा भी उसमें होना चाहिए। तुम्हारी डायरी तुम्हारे मन की आरसी होनी चाहिए। उसमें तुम्हारे भले-बुरे विचारों और स्वप्नों का भी उल्लेख रहना चाहिए। अच्छे या बुरे जो भी काम तुमने किये हों उनका भी उसमें उल्लेख होना चाहिए। यह डायरीरूपी प्रतिबन्ध आत्म-शुद्धि में सहायता करता है। मनुष्य का पेट साफ रहे तो शरीर निश्चय ही अच्छा रहेगा। यह बाह्य शौच है। जिस तरह शरीर के स्वास्थ्य के लिए बाह्य शुद्धि आवश्यक है, उसी तरह आत्मा के आरोग्य के लिए अन्तःशुद्धि की आवश्यकता है। सच कहा जाय तो बाह्य शुद्धि की आवश्यकता अन्तःशुद्धि की आवश्यकता से उलटी मात्रा में है, अर्थात्, हमारा अन्तर शुद्ध हो तो बाहर की शुद्धि तो आप ही हो जायगी। हमने क्या यह बात नहीं सुनी है कि योगी के शरीर से सुगंध निकला करती है? सुगंध का अर्थ यहां दुर्गन्ध का अभाव है।"

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

खादी-सत्य

खादी क्या है? एक कपड़ा है। वह हाथ-कते सूत का और हाथ का बुना हुआ होता है? तो इसका महत्त्व क्या? उपयोगिता क्या है? यह परिश्रम और परिश्रम के योग्य विभाग का स्वाभाविक नियम बनाता और बताता है। जैसे, कपास बोने से लेकर कपड़ा बुनने और रंगने, छापनेतक जितनी प्रक्रियाएँ करनी पड़ती हैं, उन सब के परिश्रम का मूल्य साधारण रूप में उन परिश्रम करनेवालों को मिल जाता है। उसका मुनाफा किसी एक के घर में जमा नहीं होता। पारिश्रमिक के रूप में जगह-जगह अपने आप बंट जाता है। इसके विपरीत मिल के कपड़े में परिश्रम का विभाजन उतना स्वाभाविक और योग्य नहीं होता, बल्कि वह मुनाफे के रूप में पहले मिल-मालिकों के घर में जमा होता है और फिर भागीदारों में बांटा जाता है। खादी की क्रियाओं में पारिश्रमिक ही पारिश्रमिक है, यदि मुनाफा कहीं हो भी तो वह एक जगह एकत्र नहीं होता। किसान, कतवैये, बनवैये, रंगरेज, छीपी आदि में जहां-का-तहां बंटता रहता है। परन्तु मिल में वह पहले एक जगह आता है और बहुत बड़े रूप में आता है और फिर सिर्फ भागीदारों में बंट जाता है, उन लोगों में नहीं, जिन्होंने दरअसल उस कपड़े को बनाने में तरह-तरह का परिश्रम किया है। इसके सच्चे हकदार कौन हैं? वे जो परिश्रम करते हैं। रुपया लगाना परिश्रम नहीं है। मिल वही खड़ी करता है, जिसके पास रुपये होते हैं। शेयर वही खरीदता है, जिसके पास रुपया है। यह रुपया हमारे पास जमा कैसे होता है? हम रुपयेवाले कैसे बन सकते हैं? इसकी जांच यदि करें, धनी लोगों के अनुभव यदि सुनें तो इसी नतीजे पर पहुंचना पड़ेगा कि धन सच्चाई से और सीधे उपायों से— बिना किसी-न-किसी प्रकार की चोरी किये—जमा नहीं हो सकता। तो मिल-मालिक लुटेरे या चोर हो गये। एक तो शुरूआत का पैसा जमा करने में चोरी हुई, दूसरे मिल के जिस मुनाफे का उन्हें हक नहीं है उसे लेने में चोरी हुई। मुनाफा क्या है? बचाया हुआ पारिश्रमिक।

तो आप पूछेंगे, रुपयेवाले मुफ्त ही कारखानों में रुपया लगाते रहें? तो हम कहते हैं, बाबा! किसने उनकी गर्दन पर तलवार रखकर कहा है कि मिल खोलनी ही पड़ेगी। फिर यदि रुपया लगाया है तो उसका मामूली ब्याज भर लेलें। पर यह हमारा असली विषय नहीं है। बात यह है कि कपड़े के लिए कारखानों की आवश्यकता ही नहीं है। कारखानेवालों का, कुछ अच्छे अपवादों को छोड़ दीजिए, यह उद्देश कभी नहीं था कि वे समाज के एक अभाव की पूर्ति करें। उन्हें धन कमाना था, उन्होंने कारखाने खोले, उससे धन बढ़ाया भी। जब दुनिया में कारखाने नहीं थे, तब क्या लोग नंगे ही रहते थे? क्या ढाके की मलमल और शबनम के मुकाबले का कपड़ा किसी मिलने आजतक बनाया है? तो खादी का महत्त्व यह हुआ कि वह पारिश्रमिक का स्वाभाविक बटवारा कर देती है और जो उसका सच्चा अधिकारी होता है उसीके घर में उसे पहुँचा देती है।

खादी का यह गुण, यह उपयोगिता, खादी का सत्य हुआ। यों खादी में चार सत्य समाये हुए हैं—(१) खादी एक कपड़ा है, जिससे शरीर की रक्षा होती है (२) खादी एक प्रथा है, जिससे परिश्रम का यथायोग्य बटवारा स्वाभाविक क्रम में हो जाता है। (३) खादी एक सिद्धान्त है, जो हाथ से काम करना यानी शारीरिक श्रम या स्वावलम्बन सिखलाता है और (४) खादी एक सेवा है, जो आज भारतवर्ष में दरिद्रनारायण की सेवा और पूजा सिखलाती है। ये सब सत्य हमें इस महासत्य तक पहुँचाते हैं कि खादी एक ऐसी वस्तु है, जो हमारे व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की सुव्यवस्था के लिए अनिवार्य और परम उपयोगी है। अतः खादी की साधना सत्य की ही साधना है।

हरिभाऊ उपाध्याय

ग्रामसेवक की वृत्ति

अनेक ग्रामसेवको के मुह से यह शिकायत सुनी है। ग्राम-सेवको को लोग प्राय यह ताना मारा करते हैं, कि 'तुम अपना आगन साफ रखते हो, सूत कातते हो, और जो यह सब काम करते हो, सो तुम्हारे योग्य ही है! तुम्हें और भी कोई काम है? खेती-पाती के काम मे तो तुम्हे जुतना नही। तुम्हारी तो 'जोरू न जाता खुदा से नाता' वाली बात है। हमे तो कितने ही काम करने पडते हैं। खेती का काम है, ढोरो की ग्वासली का काम है, और और भी कई काम हैं। मैं जब देहात मे रहता था तो मुझे भी ऐसे ही ताने सुनने को मिलते थे। उन दिनो मैं ज्यादातर खादी पहनने और चर्खा चलाने की बात लोगो से किया करता और अपने हाथ के काते हुए सूत के कपड़े बतौर नमूने के उन्हें दिखाया करता था। मगर वे कहते थे कि 'तुम्हारा तो धातम (धधा) ही सूत कातना ठहरा। कातोगे नही तो आश्रम मे तुम्हे क रखेगा? हमारी तरह तुम्हे खेती तो करनी नही।'

ऐसे ताने सुनकर कुछ ग्रामसेवको के मन मे यह विचार आता है कि लोगो का यह कहना बिल्कुल सही है। जबतक हम सार्वजनिक फड से सहायता लेकर गाव में रहते हैं तबतक लोग ऐसा तो कहेगे ही। इसलिए अगर हमे सच्ची ग्रामसेवा करनी है तो गाव के लोग जिस तरह खेती-पाती और दूसरे धधे करके अपनी जीविका चलाते है उसी तरह हमे भी अपना गुजारा करना चाहिए, और फिर फुर्सत के समय जितनी हम से बन सके उतनी सेवा करनी चाहिए। ऐसा करने से हमारी सलाह का लोगो पर असर अधिक पडेगा। हमे उनसे अधिक कहना भी न पडेगा। हमारा जीवन ही उनके लिए दृष्टान्तरूप बन जायगा।

इस प्रकार अपने जीवन को दृष्टातरूप बना लेने की वृत्ति से, गाव का किसान या कारीगर बनकर वहा रहने से अधिक अच्छी ग्रामसेवा होगी। इसका भी हमे प्रत्यक्ष अनुभव हो जायगा, कि गाव के किसानो और कारीगरो को कैसी-कैसी कठिनाइया झेलनी पडती है, और उन्हे कैसे-कैसे अन्याय और अत्याचार बर्दाश्त करने पडते है। पर इसके साथ एक जोखिम भी है। नये-नये गावो मे किसान और कारीगर बनने के जजाल मे हमारे ग्रामसेवक कुछ ऐसे फँस जायँगे, कि सेवा तो दरकिनार रही, उलटे उन्हे लेने के देने पड जायँगे। यही कहना पडेगा कि 'आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास!' या तो घर-बार बिक जायगा, या कर्ज की आफत मोल लेनी पडेगी।

ऐसे ग्रामसेवको को मैने एक दूसरा ही रास्ता सुझाया है। यह सही है कि मैं खुद अभीतक किसी गाव मे जाकर बैठा नही हूँ, इसलिए मेरा यह मार्ग-प्रदर्शन 'परोपदेशे पाण्डित्यम्' जैसा ही है। पर चूकि विचार सूझा है, और जिन ग्रामसेवको के सामने मैने अपना वह विचार रखा है, उन्हे वह पसद भी बहुत आया है, इसीलिए उसे प्रगट करने का साहस कर रहा हूँ। बजाय इसके कि ग्रामसेवक खुद खेती-बारी करने या कारीगर की दूकान लगाकर बैठने की झझट मे पडे, वह यह नियम बनाले कि जितने घंटे किसान या कारीगर खुद शारीरिकश्रम करते है उतने घटे उनके साथ वह भी अपने तन से मेहनत करेगा। सार्वजनिक फड से अपना गुजारा करनेवाला आदमी ऐसी मजदूरी का पैसा नही लेगा, या लेगा तो उसे सार्वजनिक फड मे जमा कर देगा। उसे अपना जीवन अत्यन्त सादा बनाना होगा। जिस गाव मे वह काम करता हो उस गाव की स्थिति के अनुरूप गरीबो का सा उसका जीवन होना चाहिए। यह विशुद्ध ब्राह्मणवृत्ति है। अपनी तमाम शक्ति समाज के काम मे खर्च कर डालना, और अपनी साधारण-सी आवश्यकताओ को इतना कम कर देना कि उनकी पूर्ति करने में समाज को अपने ऊपर कोई बोझा मालूम न हो—यही तो विशुद्ध ब्राह्मणवृत्ति है। हमारी ऐसी आवश्यकताएँ समाज पूरी कर ही देगा। इस प्रकार का विश्वास रखकर अपना काम करते जाना चाहिए। बौद्ध और ईसाई धर्म का प्रचारकार्य सस्थाओ के द्वारा हुआ है। धर्मप्रचार के लिए वहां भिक्षुओ और साधुओ के सघ स्थापित किये गये थे। इन सघो मे कालातर मे खराबी आ गई इससे कौन इन्कार कर सकता है? पर सर्वस्व का त्याग करके अपने जीवन-निर्वाह की चिंता न रखकर धर्म-कार्य करनेवाले अनेक सच्चरित्र व्यक्ति इन सघो से निकले, तभी दुनिया मे धर्म का प्रचार हुआ। हमारे देश मे यह ग्रामसेवा का कार्य भी एक धर्मप्रचार के जैसा ही कार्य है। कामतो हमे प्राचीनकालिक भिक्षुओ और साधुओ की ही तरह करना है, पर इतना अतर रखना है कि केवल उपदेश देकर हम अपने को भिक्षा का अधिकारी न समझे, किंतु पूर्ण और पर्याप्त शरीरश्रम करके ही हम अपने को रोटी पाने का हकदार मानें। फिर हमे कोई ताना नही देगा, और देगा भी, तो वह ऐसा हमे खलेगा नही।

'हरिजन-बन्धु' से]　　　　**नरहरि द्वारकादास परीख**

हरिजन विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ

इस वर्ष भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तो के कॉलिजो मे पढनेवाले ५७ हरिजन विद्यार्थियो को सघने १०) से लेकर २०) तक की छात्रवृत्तिया मजूर की है। ये ७९०) की मासिक छात्रवृत्तिया है।

कलकत्ते की सेण्ट्रल टेनरी मे चमडे का काम सीखनेवाले १० विद्यार्थियो को १८ महीने के लिए १०)-१०) की छात्रवृत्तियां दी गई है। इनके अलावा ११७) मासिक की जो ५२ छात्रवृत्तिया अब-तक दी जाती थी, वे इसवर्ष भी जारी रहेंगी। इस प्रकार संघ कुल ११९ छात्रवृत्तियो पर १९२८४) वार्षिक खर्च करेगा।

प्रधान मंत्री, ह० से० सं०

मेरा दक्षिण-प्रवास

(३)

तगडूर गाव मैसूर से २४ मील दूर है। खादी का यह एक अच्छा केन्द्र है। हरिजनो के हालांकि यहा ३०० घर हैं, तो भी गाव की सरकारी हरिजन-पाठशाला से सिर्फ ३० हरिजन बालक लाभ उठाते है। इस सबध मे गाव के लोगो की मैने एक सभा की और उन्हे एक मीठी-सी डाट-फटकार बतलाई। हरिजन-सेवको का यह कर्तव्य है कि जहा-जहा हरिजनो के लिए खास सरकारी पाठशालाएँ हो वहा उनसे पूरा-पूरा लाभ उठाया जाय। उस जगह जरूरत हो तो कुछ समय के लिए एक खास आदमी रख लिया जाय। इससे बहुत लाभ होगा। यहां सादी चटाइयां बडी अच्छी बनती है। ८×५ फुट की चटाई सिर्फ दो आने मे मिल जाती है।

मैसूर की हरिजन-बस्तियों मे घूमते हुए भगियो के दो मुहल्ले देखे। कनिस्टर की टीन के छप्परवाले झोपडों मे ये रहते है। यह देखकर दुःख हुआ कि इतने बड़े शहर में और हरिजनो का खास ध्यान रखनेवाले मैसूर राज्य में भी भंगियो की स्थिति में कोई तरक्की

नहीं हुई। हरेक मुहल्ले में पानी का एक-एक नल है, पर लालटैन तो एक भी किसी मुहल्ले मे नही थी। इन तमाम झोंपड़ों को गिराकर अच्छे पक्के मकान म्यूनिसिपैलिटी को बनवा देने चाहिएँ। २०-३० साल पहले बबई शहर मे ताडदेव पर म्यूनिसिपैलिटी के मुलाजिम भगियो के ऐसे ही या इनसे भी खराब झोपडे थे, मगर अब उनकी जगह पर नालीदार चद्दर के छप्परवाले मकान बन गये हैं।

* * * *

मैसूर से रवाना होकर ५६ मील दूर कुर्ग के पहाडी प्रदेश के गोनीकोपल गाव मे आया। चावल, कालीमिर्च, इलायची, सतरा, कॉफी वगैरा इस प्रदेश मे खूब होती है। जमीन बहुत है, और पडती पडी रहती हैं, इसलिए रिवाज यहां यह है कि जितनी जोती जाय, उतनी ही जमीन का सरकार को लगान दिया जाता है। सारा प्रदेश ऊँची सतह पर होने के कारण आठ महीने तो यहा की आबोहवा बडी ही अच्छी रहती है। कुर्गी लोग अपने को राजपूत कहते है। इनका रहन-सहन अग्रेजो के ढग का है। पारसियों और सिंध के आमिल लोगों की तरह ये भी टेबल-कुर्सी पर खाना खाते है, और अग्रेजो का अनुकरण और भी बहुत-सी बातों मे करते है। यहा एक आरमरी नामक गाव मे एक हरिजन-पाठशाला है। पाठशाला का अध्यापक अच्छा हरिजन-हितैषी है। पहले आठेक महीने बिना तनख्वाह लिये ही वह पाठशाला चलाता रहा। उसके बाद सघने उसे उचित सहायता दी। गावों मे ऐसे कई कार्यकर्ता अज्ञात रूप से काम कर रहे है, जिनका लोगो को पता भी नही, और यही कारण है कि हरिजनो की प्रगति का काम आगे बढ़ता जाता है। इसमे शका करने का कोई सबब ही नहीं। इस पाठशाला के लिए एक एकड़ जमीन भी एक सज्जनने मुफ्त दे दी है।

* * * *

कुर्ग के मुख्य नगर मरकारा मे रात के समय भगियो की कोठरियों मे उनसे मिलने और बातचीत करने के लिए गया। मर्द घर पर नही थे, पर उनकी स्त्रियो से पूछताछ करने पर यह मालूम हुआ कि उनके मर्द दारू-ताडी मे खूब पैसा बहाते है। उस समय पुरुष ताडी की दूकान पर गये हुए थे, और अब वहा से उनके वापस आने का वक्त हो रहा था। इसलिए मै उनके लौटने के रास्ते से ही गया। नशे मे खूब चूर वे लोग रास्ते मे मुझे मिले, साथ मे दो स्त्रियां भी थी। वे भी ताडी पीकर आ रही थी। इन के सुधारने का हमारी तरफ से कोई प्रयत्न तो होता नही, तब अगर वे इस हालत मे रहते है, तो उन्हे क्यो दोष दे? एक भगीने अपने दो लड़को को एक ईसाई मिशन के सुपुर्द कर दिया है। उसने कहा कि मिशन के आदमी उन बच्चों का पढा रहे है, पर उन्हे उनके मा-बाप के पास आने नही देते।

* * * *

मरकारा से मेंगलोर आया, जो वहा से ८५ मील दूर समुद्र के तट पर बसा हुआ है। यहा 'हिंद-सेवक-समाज' की ओर से 'डिप्रेस्ड क्लासेज मिशन' काम कर रहा है। यह मिशन सन् १८९७ में श्रीरंगराव नामक एक वकील सज्जनने शुरू किया था, और अपनी वृद्धावस्था में उन्होंने सन् १९२३ मे यह मिशन हिंद-सेवक-समाज को सौंप दिया। जिस जमाने में भारत के किसी भी भाग में हरिजन-सेवा का काम आरंभ नहीं हुआ था, उस जमाने में श्रीरंगरावने भारत के एक कोने में चुपचाप यह काम शुरू कर दिया था। लोगो की ओर से विरोध होते हुए भी इस कार्य को उन्होने बडी अच्छी तरह विकसित किया। इस मिशन की ओर से एक बडा स्कूल चल रहा है, बालको को औद्योगिक शिक्षा दी जाती है, और लड़को और लड़कियों के लिए अलग-अलग छात्रालय भी हैं। जगल मे रहनेवाली कोरगा जाति को बसाने का काम भी मिशन की ओर से हो रहा है।

मेंगलोर से ३४ मील उत्तर कार्कल नामक एक खासा बडा ताल्लुका शहर है। वहा जाकर शहर से करीब एक मील दूर सरकार के बसाये हुए कुरगा लोगो के झोपडे देखे। अपनी तरफ के गोंड-भीलो से भी अधिक जगली स्थिति मे ये लोग रहते हैं। कई तो म्यूनिसिपैलिटी मे भगी का काम भी करते हैं, और बास के टोकरे व सूप वगैरा भी बनाते हैं।

अमृतलाल वि० ठक्कर

बिहार के हरिजन और कुएँ

आम तौर पर दक्षिणी बिहार से उत्तरी बिहार अधिक कट्टर या दकियानूसी है, और इसीसे उत्तरी बिहार के हरिजनों को अपेक्षाकृत अधिक असुविधाएँ और कष्ट हैं। उदाहरण के लिए, पानी को ही बात ले लाजिए। मुजफ्फरपुर, दरभगा, सारन, मुगेर, पटना, भागलपुर और आरा इन जिलो मे हरिजनों को पानी का अत्यधिक कष्ट है। गर्मी के दिनो मे तो यह प्रश्न और भी भयकर रूप धारण कर लेता है। नहरों और पोखरों का पानी सूख जाता है, और हरिजनों को एक-एक घडा पानी लाने के लिए कालेकोसों जाना पडता है। उनकी औरतो को सवर्णो के कुओ पर तबतक खड़ा रहना पड़ता है, जबतक कि कोई भला आदमी उनकी दया देखकर उनके लिए एकाध घडा पानी कुएँ से नही निकाल देता। कहीं-कहीं तो उन्हे इसके लिए या तो कुछ देना पड़ता है, या उन लोगो का कोई छोटा-मोटा काम कर देना पडता है। अक्सर यह देखा गया है कि हरिजनों के यहा जब कोई मेहमान आ जाते हैं तो उन्हे रूखा-सूखा खाना तो मिल जाता है, पर पानी नही मिलता। अपने पडोसियो से ये लोग एकाध घडा पानी माग लाते है तब मेहमानो का काम चलता है, नही तो बेचारों को रातभर प्यासो ही मरना पडता है।

बिहार मे डोम और मेहतर ये दो जातियां सब से नीची मानी जाती हैं। डोम और मेहतर साधारण तौर पर शहरो मे ही मिलते है। म्यूनिसिपैलिटी मे चूकि ये लोग काम करते हैं, इससे कमेटी के नलो से ये पानी भर सकते हैं। डोम गावो में भी पाये जाते हैं। वहा वे बास की टोकरी वगैरा बनाते हैं। एक-एक गाव मे उनके तीन-तीन चार-चार घर से ज्यादा नही हैं। गावो मे उनकी इतनी कम आबादी है और वे इतने अधिक गरीब हैं, कि अपने लिए अलग कुआ नही बनवा सकते। और सवर्ण हिंदुओं की उनके प्रति कट्टरता की भावना इतनी अधिक है कि उनके लिए अलग कुएँ का बनवाया जाना भी वे सहन नही कर सकते। इसलिए इन अल्पसख्यक डोमो के लिए अलग कुएँ बनवाये जायें तो उनपर खर्चा अधिक बैठेगा, और सारा पैसा बाहर का ही लगेगा। डोमो के कुओ के लिए पैसे का देवार यहा कौन बैठा है?

गतवर्ष जे० के० फड के पैसे से बिहार मे ११ नये कुएँ खुदवाये गये। इस साल ४५ कुओ की और एक फेहरिस्त तैयार की गई है। पानीसबंधी जाच-पड़ताल का काम अधिकतर मुजफ्फर-

पुर और भागलपुर इन दो जिलो मे ही किया गया है। क्योकि सपूर्ण उत्तरी बिहार की पैमाइश का काम हाथ मे लेना मुश्किल है। औसतन ४० कुटुबो का एक कुएँ से काम चलेगा। औसतन २० फुट की सतह पर यहा पानी निकलता है। और लगभग २००) का खर्चा एक कुआ बनवाने पर बैठेगा। ये कुएँ आमतौर पर या तो रेल के स्टेशनों के पास बनवाये जायँगे, या ऐसी जगह पर जहा हरिजन आसानी से जा सकते हैं।

इन ४५ कुओ पर हमारे आनुमानिक हिसाब के अनुसार ८६५०) खर्च होगे। १४८०) तो हमारे सघ को स्थानीय चदे से मिल जायँगे ऐसी आशा है, और ७१७०) की सहायता हमे सघ के केन्द्रीय 'पानी-फड' से लेनी होगी।

विन्ध्येश्वरी प्रसाद वर्मा

मत्री, बिहार-ह० से० स०

खादी और नवनिर्माण

(गताक से आगे)

बिहारी किसान का जड़ और निराशामय जीवन

बिहार के बारे मे यह कहा जाता है कि वहा आबादी घनी है और सन्तानोत्पत्ति पर कोई अकुश नहीं है, इसीसे सारा प्रदेश बगीचे की तरह हराभरा होते हुए भी लोग भूखो मरते है। लेकिन ये कोई खास कारण नहीं है। इस बीमारी का मूल कारण तो वह घोर आलस्य है, जो लोगो की नस-नस मे भर गया है। सारा प्रान्त एक बगीचे की तरह हराभरा है, नदिया नित नई मिट्टी लाकर जमीन को उपजाऊ बनाती रहती है, आम, लीची, ऊख और धान घास की तरह उगते है। इन सब प्राकृतिक सुविधाओ के कारण जो कुछ निपजता और पैदा होता है, लोग जैसे-तैसे उसी को बटोरकर बैठ रहते है। विशेष रूप से कोई परिश्रम करने या बुद्धि दौड़ाने की वृत्ति ही लोगो मे नही रह गई है। छोटे-मोटे सहायक उद्योग-धन्धे सब लुप्त हो गये और साथ ही देहातियो की बुद्धि पर भी जग चढ़ते गये। इस समय लोग एकदम जड़ बन गये है और जीवन से निराश होकर जैसे-तैसे दिन गुजार रहे है। उनके जीवन मे न कोई रस रह गया है, और न आशा। यही एक सवाल हो गया है कि उद्यम क्यो किया जाय? मर्दुमशुमारी के आकडे हमे यह मानने को विवश कर रहे है कि देश की आबादी बढ़ रही है; लेकिन मनुष्यगणना की रीति मे चौकसाई तो इधर ही कुछ समय से आने लगी है। नई मर्दुमशुमारी के अको की पिछले दस, बीस, तीस या चालीस साल की मर्दुमशुमारी से तुलना करके यदि किसी निर्णय पर पहुँचा जाय, तो वह निर्णय बड़ा धोखा देनेवाला होगा, इसमे शक नही। यह बात मानने मे नही आती कि पिछले तीस-चालीस बरसो मे हिन्दुस्तान की आबादी ड्योढ़ी हो गई है। जो राष्ट्र आधापेट खाकर जीवित रहता हो और दिन-दिन भूखो रहकर जीने की दिशा में प्रगति कर रहा हो, उसकी आबादी बढ़ेगी या घटेगी? यदि हमें मनुष्य-गणना के सच्चे साधन उपलब्ध हो तो हम कदाचित् इसी परिणाम पर पहुँचे कि भारतीय प्रजा एक मुमूर्षु प्रजा है और वह दिनो-दिन क्षीण ही होती जा रही है।

सारा देश एक उद्यान क्यों न बने?

अतएव यदि गावों के नवनिर्माण की दिशा में वस्त्र-स्वावलम्बन पहला कदम है तो उसका व्यापक अर्थ यह है कि जो किसान वस्त्र की दृष्टि से स्वावलम्बी बनें वे अपने हाथ, पैर, अँगुलियो और बुद्धि को भी सतेज और सतत क्रियाशील रक्खें और इतने बुद्धिमान् और कुशल कारीगर बन जायँ कि अपनी फुरसत का सारा समय किसी उत्पादक श्रम मे खर्च करने लगें। बगैर मशीने खड़ी किये और बगैर शहर बसाये यदि किसी प्रकार सारा देश उद्योगमय बन सकता है तो वह यही प्रकार है। इसकी तो कल्पना भी नही की जा सकती कि हिन्दुस्तान के ७ लाख गाव कभी ७०० या ७,००० शहरो मे बदल जायँगे और सारा हिन्दुस्तान पश्चिम की तरह कल-कारखानो और मजदूरो का एक देश बन जायगा। और यह एक असह्य स्थिति है कि इतने बड़े विशाल देश के करोड़ो किसान केवल कुदरत के भरोसे अनाज बोकर बैठे रहते है और बारिश की सहायता से जितना मिल जाय उतना धान काटकर बाकी का सारा समय अनिवार्य रूप से बेकारी मे अहदी बनकर बिताते है। और दुःख तो यह है कि उन्हे यह सूझता तक नहीं कि बेकारी के इस समय का सुन्दर उपयोग भी किया जा सकता है। देश मे प्राकृतिक सुविधाओ की कमी नही है। पर यह सब होते हुए भी हमारा यह विशाल देश और इसकी यह उपजाऊ भूमि एक उद्यान-सी हरी-भरी और सम्पन्न क्यो नही बनती?

खादी-कार्य के तीन प्रकार

इस दृष्टि से खादी, वस्त्र-स्वावलम्बन और चर्खा ये तीनों हमारे प्रतीक है। इनके गर्भ मे खादी-द्वारा सूचित अर्थशास्त्र और संस्कृति की दृष्टि से सारी ग्राम-पुनारचना का विचार रहा है और यही खादी का व्यापक सन्देश भी है। इसी को हम प्रथम श्रेणी का खादी-प्रचार भी कह सकते हैं। अपनी जरूरतभर की खुद खादी बना लेना दूसरे नम्बर का खादी-प्रचार है। और चर्खा-सघ-जैसी सस्था और दूसरी खादी-सस्थाएँ कुछ चुने हुए स्थानों के लोगो से घर बैठे काम लेकर और उनकी आमदनी मे थोड़ी बढ़ोती करके हजारो लाखो की खादी तैयार करावे, शहरो मे उस खादी को बेचे, नगरनिवासियो को उसका शौक लगावे, और उनके मन को लुभानेवाली तरह-तरह की सुन्दर और आकर्षक खादी तैयार करे, तो उनका यह काम तीसरे नम्बर का खादी-काम होगा। अब हम उस मंजिलतक पहुँच सके है कि जहा पहुँचने के बाद प्रचारक सस्थाएँ इस तीसरे नम्बर के काम से पृथक् हो जाती है, और शहरो के व्यापारियो अथवा निजी तौर पर साहस के साथ खादी का व्यवसाय करनेवालो पर इस काम को अधिकाधिक प्रमाण मे छोड़ दिया जाता है। और यही इष्ट है। अबतक जो कुछ भी काम हुआ है, वह कुछ कम नहीं है। दूसरा कोई उसे करता भी नही, कर सकता भी नही। इस काम के कारण हजारो कत्तिनो को रोजी मिली है। सैकड़ो धोबियो, छीपियो, रगरेजो, कुन्दीगरो और जुलाहो आदि को इसकी वजह से नया जीवन प्राप्त हुआ है। यह सब आवश्यक था, अनिवार्य था। लेकिन अब ये सब काम नये और ताजा खूनवालो को सौंपकर हमें आगे बढ़ जाना है। (अपूर्ण)

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R S Gupta

एकसी मजदूरी

"आत्मवत सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, १९ जुलाई, १९३५. [संख्या २२

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्रामसेवा

हमारा यह सप्ताह मैंने कुछ अशांति से गुजरा—कुछ तो हमारी अनुभवहीनता और अधीरता से ऐसा हुआ, और कुछ गाव के लोगों के पुराने वहम इस अशांति के कारण थे। जैसा कि मैं लिख चुका हूँ, वर्षा से हमारे काम में कठिनाई आगई है। बोनी के दिन हैं, इसलिए ये गरीब आदमी किसी भी खेत में नहीं बैठ सकते। सब बद कर दिये गये हैं। अब बेचारे जायँ तो कहां जायं? बड़ी मसीबत है। स्त्री और पुरुषों के लिए कोई ऐसी खुली जगह मिल ही नहीं रही थी। हमीं जानते हैं कि हमें कितनी कठिनाई हुई। अंत में, एक जमीदार हमारे बहुत कहने-सुनने पर किसी तरह अपनी जमीन का एक हिस्सा देने को तैयार होगया। हमने यह सोचा कि सबसे अच्छा यह होगा कि स्त्रियों के लिए नजदीक की कुछ अच्छी जमीन और पुरुषों के लिए आगे का हिस्सा रिजर्व कर दिया जाय। लोगों को यह बात सुना भी दी गई। पर हमने कुछ अधीरता से काम लिया, और यह हमारी भूल थी। उन्हें हमने इन सुविधाओं का उपयोग उनके अपने ढग से नहीं करने दिया। हमारे कुछ आदमी यह देखने के लिए कि स्त्री और पुरुष अपनी उन्हीं सुरक्षित जगहों में टट्टी फिरते हैं या नहीं, दिन निकलने से पहले ही हाथ में लालटेनें लिये हुए सिंदी गाव जा पहुँचे। गाव के लोग हमारी इस दस्तदाजी को बर्दास्त नहीं कर सकते थे। उनके लिए यह असह्य होगया। गुस्से में आकर कहने लगे, "यह खूब रहा! अब तो आप लोग टट्टी भी हमें शांति से नहीं फिरने देंगे? यहां भी लालटेनें लिये आ धमके। आप लोगों को और भी कुछ काम है? आपने तो हमारा नाकों दम कर रखा है, आपके मारे यहां रहना मुश्किल होगया है।" और भी इसीतरह न जाने क्या-क्या कहा। उन्होंने हमारे एक भी आदेश की पर्वा नहीं की। जहां जिसका जी चाहा वहा बैठ गया। हमारी पसंद की हुई एक जगह को बतलाया कि वहां भूत-प्रेत रहते हैं। भुतही जगह में वे कैसे जा सकते थे! और दूसरी जगह एक मरघट से लगी हुई थी। औरतें भला अपने नन्हे-नन्हे बच्चों को वहां कैसे भेज सकती थीं? हम भी क्या बुद्धू थे जो ये साधारण-सी बातें भी न समझ सके।

लेकिन मैं यह जरूर कहूंगा कि उन लोगोंने फिर भी हमारे साथ भलमसाहत का सलूक किया। नौबत इससे भी बुरी पहुँच सकती थी, चाहते तो वे हमारी मरम्मत भी कर सकते थे। पर उन्होंने ऐसी कोई बात की नहीं। अपने गुस्से को किसी कदर पी गये। हमने देखा कि गलती हमारी ही थी। उस दिन से अब हम दिन निकलने से पहले गाव में नहीं जाते। हमें क्या पड़ी थी जो कुसमय वहां जाकर दखल दिया। सबसे अच्छा तो हमारे लिए यह है कि चुपचाप अपना सफाई का काम करते चले जायँ। गाववालों से हम यह सब कहे ही क्यों कि तुम ऐसा करो और ऐसा न करो। भंगी को अपने मालिक से कहने का यह क्या हक है कि आप इस तरह अपने को साफ रखा करें? एक दिन जब हम कचरा वगैरा साफ कर रहे थे, तब मैंने देखा कि एक स्त्री सड़क पर खड़ी हुई है। मैंने सोचा कि वह हम लोगों को सिर्फ देख रही है। दो-चार मिनिट मैं चुप रहा। इसके बाद मैंने देखा कि उसके हाथ में तो भरा हुआ लोटा है, और वह इस प्रतीक्षा में खड़ी है कि हम लोग कब वहां से चले जायं। 'बहिन, तुम थोड़ा और आगे क्यों नहीं चली जाती?' मैंने उससे अत्यंत नम्रता के साथ कहा। 'मैं क्यों आगे जाऊं?' उसने गुस्से में आकर जवाब दिया, और हम लोगों से कुछ कदम हटकर हमारी ओर नाक भौं सिकोड़ती हुई वहीं बैठ गई। तब हमीं लोग वहां से हट गये।

यह भी एक विकट प्रश्न था कि यह सारा कचरा डाला कहां जाय। पर वहीं पड़ोस के हमारे एक मित्रने हमारी यह मुसीबत दूर कर दी। हमने उनसे कहा, "क्या अच्छा होता, अगर कहीं नजदीक में हम कुछ काफी बड़े गड्ढे खोद सकते और उनमें यह नित्य का तमाम कचरा डालते जाते।" श्री वेंकटरामने कहा, "आप खुशी से मेरे खेत के उस हिस्से में गड्ढा खोद सकते हैं, जो मैंने लोगों के लिए अलग कर रखा है। इसमें किसी के साथ एहसान करने की बात थोड़े ही है, क्योंकि मैं यह जानता हूं कि अंत में यह सारा खाद आयगा तो मेरे ही काम में।" श्री वेंकटराम अपने वचन के धनी निकले। ऐसे तीन-चार वेंकटराम अगर हमें मिल जायँ, तो हमारी सारी कठिनाई दूर हो जाय। गांव के चारों ओर हम छोटे-छोटे गड्ढे खोद-खोदकर टट्टियां तैयार कर सकते हैं, और जो लोग इस काम के लिए हमें जमीन देंगे, वे उस कंचन-से खाद का अपने खेतों में उपयोग कर सकते हैं। उन्हें टट्टी में जाने की आदत डलवाना फिर भी हमारे लिए एक प्रश्न रहेगा, पर उसे हम बड़ी आसानी से हल करलेंगे।

अभी तो यह हालत है कि अगर उनकी नाक के सामने भी किसी जानवर की लाश पड़ी हो तो उसे वे वहां से हटायंगे तक नहीं। उसदिन हमने एक मरी हुई बिल्ली सड़क पर पड़ी

देखी । बिल्कुल ही सड़गई थी, और उसमें कीड़े बिलबिला रहे थे । मारे बदबू के नाक फटी जाती थी । हम बड़े फेर में थे कि आखिर यह असह्य दुर्गन्ध आ कहां से रही है । हमने जब पूछ-ताछ की तब दो आदमियोंने हाथ के इशारे से हमें बतलाया कि यह बदबू इस सड़ी हुई बिल्ली की आरही है । बस, वही से खड़े-खड़े बतलाभर दिया । यह न हुआ कि उसे वहा से हटा देते । खैर, हमने एक कुदाली और एक फावड़ा मगाकर एक गड्ढा खोदा और उसमे उस सड़ी हुई लाश को गाड़ दिया । यह एक अच्छा पदार्थ-पाठ था । पर हम यह आशा करें कि लोग खुद ही ये सब काम करने लग जायँ इसके पहले हमें अभी ऐसे सैकड़ों पदार्थ-पाठ देने होंगे ।

काकासाहब का पहला शिष्य

काकासाहब कालेलकर वर्धा के पास एक छोटे-से गांव में जा बसे है । एक सज्जनने अपने बाग का एक छोटा-सा मकान उन्हें दे रखा है, और वहीं से वे अपना अखिल भारतीय लिपि समिति का तथा हिंदी-प्रचार का काम करते है । पर इस काम से उनका जो फुर्सत का समय बचता है, उसमे वे ग्रामवासियो के साथ सपर्क बढाने का प्रयत्न करते रहते है । गाव के बच्चो को वे जमा कर लेते है और उन्हें सदर किस्से-कहानिया सुनाते है । कभी-कभी काकासाहब का प्रेम बड़ी उम्र के लोगों को भी लुभा लेता है । साझ की प्रार्थना म कभी-कभी वे भी आकर शामिल हो जाते है । एक ग्रामवासी उस दिन पूछ बैठा कि आपका आखिर यहा क्या कार्यक्रम रहेगा । उन्होंने कहा, "तुम्हारे गाव में मैं कोई ऐसा बड़ा कार्यक्रम लेकर नही आया हूँ । तुम्हारा गाव साफ-सुथरा रहे इसमें मैं तुम्हारी मदद करूँगा, और दूसरी बात जो मैं चाहता हूँ वह यह है कि पाठशाला के बच्चों मे तकली का प्रचार हो जाय । पढने-लिखने से उन्हें कौन रोकता है ? मैं तो उनसे केवल इतना ही कहूँगा कि तुम लोग मदिर में इकट्ठे भर हो जाया करो, मैं तुम्हे वहा तकली चलाना सिखा दूगा । और जब उसका चलाना आजाय तो फिर मजे से रोज चलाया करो । बस, इतना ही मेरा यहा का कार्यक्रम है ।"

"सचमुच आपका यह सब बड़ा सादा कार्यक्रम है," उसने अविश्वास के स्वर मे ताना देते हुए कहा । "ठीक है, शुरू-शुरू मे आप लोग सभी ऐसे ही सीधे-सादे कार्यक्रम लेकर आते है ।"

पर खुद बाग में, जहा काकासाहब रहते हैं, वहा उनके साथ अच्छा प्रेमपूर्ण बर्ताव हुआ । वहा उन्हें अपने पड़ोस में ही एक हरिजन मिल गया । उसने वहा सतरो का ठेका ले रखा है, और वही एक झोपड़े मे रहता है । पहले ही दिन काकासाहबने उससे कहा कि 'भाई, या तो मुझे अपना यह डोल देदो, या अपने आदमियो से मेरे लिए बाग के इस कुएँ से दो-एक डोल पानी खिचवा दो ।' वे सब यह सुनकर स्तब्ध हो गये । एक ब्राह्मण पडित एक हरिजन से उसका डोल माग रहा है, और उनसे कह रहा है कि वे उसके लिए उस कुएँ से पानी खीच दें, जिस पर वे बेचारे पैर भी नही रख सकते ! काका साहब हँसने लगे और उन्हे समझाते हुए बोले, "अरे भाई ! तुममें और मुझमें अतर ही क्या है ? जैसे तुम, वैसा मैं । तुम मेरे यहा आना, जरूर आना, मै वहा तुम्हे अच्छी तरह समझा दूगा ।" उस नौजवान हरिजन को यह सुनकर आनद भी हुआ और आश्चर्य भी । इससे पहले ऐसा स्नेह-पूर्ण व्यवहार उसके साथ किसीने नहीं किया था, यद्यपि वह इतना स्वच्छ रहता है कि सवर्णों के बीच में खड़ा हो जाय तो कोई यह नहीं कह सकता कि वह हरिजन है । काका साहब का आमत्रण उसने स्वीकार कर लिया और नित्य शाम को प्रार्थना में आने लगा । एक दिन वह अपना सितार ले आया और संत तुकाराम के कुछ अभग उसने बड़े भक्तिभाव से गाये । फिर वह प्रश्न पूछने लगा, और उसने देखा कि काका साहब-सरीखा गुरु तो उसे अपने जीवन में कभी मिला ही नहीं, क्योंकि उन्होंने उसकी शकाओ का बड़ा सुदर समाधान किया । वह थोड़ा पढ़ा-लिखा है, और अपनी जाति-बिरादरी के और लोगों से कुछ सपन्न और सुधरे हुए विचारों का भी है । इसलिए वह उनमे जाकर सद्‌विचारों का प्रचार किया करता है । अब उसे काका साहब मिल गये है, इसलिए वह कहता है कि कुछ भी हो, कुछ दिनों तो अपना प्रचार-कार्य बद ही रखूगा, अब तो मैं मन लगा कर पढूगा । एक दिन आकर उसने काका साहब को यह सुखद समाचार सुनाया कि नागपुर के पास मेरे गाव में मेरी बिरादरी के लोगोंने बालको के लिए एक नि शुल्क छात्रालय खोला है, और बिना किसी बाहरी सहायता के उसे वे खुद ही चला रहे है । उसने कहा, 'आप मुझे यह सिखा दीजिए कि विद्यार्थी-गृह अथवा छात्रालय का प्रबध किस तरह किया जाता है, तब मैं वहा जाऊँ और कुछ दिन विद्यार्थियों के साथ रहू ।' हमारे धार्मिक ग्रन्थो का भी उसे थोड़ा-सा ज्ञान है । उसने सोचा कि क्या काका साहब मुझे सस्कृत पढायेंगे । काकासाहब ठहरे जन्म-सिद्ध अध्यापक । मृत्युशैया पर भी वे पड़े हो और उस समय उनसे कोई पढने आवे तो इन्कार नहीं करेंगे, और यही कारण है कि अन्य निश्चित कार्यों के रहते हुए भी वे अपने इस शिष्य को सस्कृत पढानेके लिए समय निकाल ही लेते है । साथ ही, अपने अटूट ज्ञान-भडार मे से भी उसे नई-नई बातें बताते रहते है । उस दिन जब मैं इस तरुण हरिजन से मिला, तब वह अत्यंत आह्लाद म था । कहने लगा, 'काका साहब-जैसे सत्पुरुष से भेंट होना निश्चय ही मेरे पूर्वपुण्यों का फल है ।'

विदेशियों के लिए नियम

हमारे यहा आजकल एक जापानी भिक्षु ठहरे हुए हैं । स्वच्छता के तो आप मानो नमूना है । नम्रता अनुकरणीय है । किसी के काम में कभी दखल नहीं देते, अपने काम से काम रखते हैं । उनके काम और प्रार्थना का सारा समय बँधा हुआ है । उनकी आदर्श नियमानुकूलता है । हमारे नित्य के तमाम कामों में वे बड़े मनोयोग से भाग लेते हैं, और अपने को उन्होंने हम लोगों में आश्चर्यजनक रीति से घुला-मिला लिया है । उन्हें यहा आये अभी कुछ ही महीने हुए हैं, पर इतने ही समय मे वे हिंदी अच्छी तरह समझ लेते हैं, और बड़ी लगन के साथ उसे पढ रहे हैं । उन्हें कुछ कपड़े की जरूरत थी, इसलिए बाजार जाकर सस्ता जापानी कपड़ा खरीद लाये । मुझे यह मालूम नहीं, कि उन्होंने जान-मानकर जापानी कपड़ा खरीदा या यों ही, क्योंकि हिंदुस्तानी मिल का या दूसरा विदेशी कपड़ा भी तो खरीद सकते थे । शायद जापानी कपड़ा सबसे सस्ता मिलता है, और सस्ते कपड़े की ही उन्हें जरूरत थी । लेकिन जब गांधीजीने उनके हाथ में वह बंडल देखा, और उन्हें यह मालूम हुआ कि यह जापानी कपड़ा है, तब उन्होंने जापानी भिक्षु से कहा कि, "निश्चय ही यह कपड़ा आप के लिए 'स्वदेशी' है, पर यह वह कपड़ा नहीं है, जो आपको हिंदुस्तान में पहनना चाहिए ।

'जैसा देश वैसा भेष' यह कहावत कुछ निरर्थक नहीं है। जिस देश का हम नमक खाते हो, वहा के रहन-सहन और रीति-रिवाजों के अनुसार चलने का हमें जरूर प्रयत्न करना चाहिए। जब मैं दक्षिण अफ्रीका मे था, तब वहा जितना मुझसे हो सकता था, अफ्रीका की बनी हुई चीजो को काम मे लाने की कोशिश किया करता था। इसलिए अगर आपका कोई खास आपत्ति न हो तो मैं तो आपसे खादी पहनने के लिए ही कहूंगा। खादी निस्सदेह कुछ महगी तो मिलती है, पर जरूरत से कुछ कम कपड़े पहनिए।" हमारे मित्रने न तो इसपर कोई बहस की और न उनसे यही कहा गया कि आप इस जापानी कपडे को वापस कर आइए। मगर जरूरत पड़े तो कुछ फिरता देकर भी उस कपडे को वापस कर देने के लिए वे उसी वक्त बाजार को चल दिये। शाम को उन्होने अपनी डायरी में ये शब्द लिखे, 'दुःख है कि आज एक बड़ी भारी भूल होगई।'

आदर्श और व्यवहार

'जीवमात्र सब एक है' नामक अपने लेख मे गाधीजी उन तमाम प्रश्नो का जवाब दे चुके है जो उनके श्रद्धा और आचरण विषयक विरोधाभासो के सम्बन्ध मे उठाये गये थे। ठीक उसी प्रकार के प्रश्नो के जवाब मे गाधीजीने एक सज्जन को अभी एक पत्र लिखा है, जिसमे गाधीजी की तथा उनके आदर्श के साधको की स्थिति जहातक सभव है और भी स्पष्ट हो जाती है। लिखा है, "हमारे अदर प्रकाश और अधकार, सत्य और असत्य और राम और रावण के बीच शाश्वत सग्राम चल रहा है। यह युद्ध तो हमे अपनी ताकतभर जारी रखना ही है, पर हमें अपनी सीमित शक्तियो का हमेशा ध्यान रखना होगा। अर्जुन अपनी सीमित शक्तियो को भूलने ही वाला था कि भगवान् कृष्णने उसे ऐसा करने से रोका। अहिंसा जीवन का नियम है, पर यदि मै साप से डरता हू तो उस समय मेरा क्या कर्तव्य है? मन म तो मै पहले ही साप का वध कर चुका, सिर्फ मेरी निर्बलता ही बाधा दे रही है। उस समय मेरा धर्म कहता है कि 'उसे मार डाल उसे मारने से बचने का तेरा जो यह मिथ्या प्रयत्न है वह त्याग दे।' यही बात ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम के विषय मे भी है। श्रद्धापूर्वक इच्छा तो हमें आजीवन ब्रह्मचर्य की ही अततक करनी चाहिए, पर जो अपनी विषयवासना को काबू मे नहीं रख सकता, जिसका मन और इन्द्रिया कामतृप्ति के लिए तडप रही है वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके शुद्ध गृहस्थ-जीवन बिताये। उसके लिए आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत का प्रयास व्यर्थ है। आदर्श मे तो वह यहीअ खंड श्रद्धा रखेगा पर उस आदर्श तक आत्मसयम के द्वारा ही वह धीरे-धीरे पहुंच सकेगा।"

'हरिजन' से]　　महादेव ह० देसाई

चर्खा-संघ

अ० भा० ग्रामउद्योग-संघ के मारफत काम करनेवाले कारीगरो के सम्बन्ध मे जो बात सत्य है, वह अ० भा० चर्खा-संघ के द्वारा काम करनेवाले कारीगरों के विषय मे भी उतनी ही सत्य है। अन्तर केवल इतना ही है कि ग्रामउद्योग-संघ को बिना किसी पुराने अनुभव के आधार पर काम करना है। चर्खा-संघ को अगर तमाम कारीगरों के लिए कम-से-कम एकसरीखी मजदूरी का नियम चलाना है तो उसे इन पद्रह वर्षों से चली आई हुई प्रथा को रद करना ही होगा। अगणित कतैयो की सहायता करने मे हमें बुनकरों, जो कतैयो के दसवे भाग के बराबर है, और उनके बाद धुनियो, ओटैयो और दूसरे कारीगरो का भी खयाल रखना है। हरेक वर्ग की मजदूरी की दर मे अतर है। बुनकर की कमाई और कतैये की कमाई मे इतना अधिक अन्तर है कि उनमे समानता का लाना असम्भव-सा मालूम देता है। कतैये को जहा एक घटे मे २ पाइया मिलती हैं, वहां बुनकर को कम-से-कम एक आना और कभी-कभी दो आनेतक मिलते है। कतैये की मजदूरी का दो पाई से बारह पाई पर लाना बहुत बडा सवाल है—खासकर जब हमारा इस बात पर ध्यान जाता है कि कतैयों की सख्या करीब डेढ़ लाख है।

मगर चर्खा-सघ को अगर अपने विरद के योग्य बनना है तो उसे उचित काम करने के लिए काफी साहस से काम लेना पडेगा। कठिनाइया देखकर हमे हिम्मत हारकर नही बैठ जाना चाहिए। जो लोग दरिद्रनारायण के प्रीत्यर्थ खादी खरीदते हैं, उनसे हमे यह भरोसा रखना चाहिए कि आजतक खादी की जो कीमत उन्होने दी है उससे अब अधिक ही देगे। अगर ऐसा न हुआ तो खादी की बिक्री चाहे जितनी गिर जाय उसके लिए हमे तैयार रहना चाहिए। जो लोग खादी के प्रेमी है वे, खादी कितनी ही महँगी हो जाय, उसे जरूर खरीदेगे--यदि उन्हे यह मालूम है कि खादी खरीदने म सौ रुपये मे से पचानवे रुपये दरिद्रनारायण की जेब मे जाते हैं।

पर अत मे देखा जाय तो खादी का यह व्यापारी उपयोग उसका गौण और छोटे-से-छोटा उपयोग है। ऐसे एक करोड से अधिक मनुष्य, यानी नगरनिवासी, नहीं निकलेंगे जिन्हे खादी खरीदने की जरूरत पडा करती हो। इतने मनुष्यो को तो पूरा समय काम करनेवाले बीस लाख कारीगर आसानी से और मजे से उनकी जरूरत का कपडा दे सकते है। खादी का पहला ध्येय तो यह है कि किसानो का वह एक गौण उद्योग बन जाय। उन लोगो को यह सिखाना है कि अपने उपयोग के लिए वे खुद अपना सूत कात लिया करे, और या तो खुद ही उसका कपडा बुनले अथवा बुनकरो से बुनवा लिया करे। जिस तरह वे खुद अपना खाना पकाते है और खुद ही उसे खाते है, उसी तरह खुद ही खादी तैयार करे और खुद ही उसे खरीदे, अथवा यो कहिए कि खुद ही उसका उपयोग करे। इस काम में शायद ही हमने अभीतक सच्चे दिल से हाथ लगाया हो। श्री शकरलाल बैंकर शाति के साथ धीरे-धीरे इस प्रकार का परिवर्तन कर रहे है। परिवर्तन होने के इस बीच में, कतैये को उसका पर्याप्त पारिश्रमिक देकर उसके प्रति हमारा जो फर्ज है वह हमें अदा करना है। इस मजदूरी मे नित्य आठ आने दिये जायें या इससे कम? चाहे जो सीमा बाध दी जाय, पर उतना पैसा पाने की योग्यता के लिए कतैये को आखिर कितना सूत कातकर देना चाहिए? यही प्रश्न ओटनेवालो, धुनियो, बुनकरों और खादी के दूसरे तमाम कारीगरो के संबंध मे हमे हल करना है।

खादी में जो लोग दिलचस्पी लेते है, और खादीशास्त्र का जिन्हे जरा भी ज्ञान है, क्या वे मजदूरी की दर मे इस प्रस्तावित परिवर्तन के सबध में अपनी सम्मति भेजने की कृपा करेंगे? यदि वे इस परिवर्तन के पक्ष में हों, तो वे यह भी लिखें कि कम-से-कम मजदूरी की क्या दर वे निश्चित करते है।

'हरिजन' से]　　मो० क० गांधी

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १९ जुलाई, १९३५

एकसी मजदूरी

अखिल भारतीय ग्रामउद्योगसंघने अपने एजेंटों तथा दूसरों को निम्नलिखित प्रश्नावली भेजी है। इन प्रश्नों के जवाब आगामी १ अगस्त के पहले संघ के प्रधान कार्यालय में पहुँच जाने चाहिए —

"यह तजवीज की गई है कि ग्रामउद्योगसंघ के मारफत तैयार होनेवाली या बिकनेवाली तमाम चीजों में गांव के कारीगर को उसकी मेहनत का पर्याप्त पारिश्रमिक मिले ऐसा आग्रह हमें रखना चाहिए। इसके लिए हमें मजदूरी का एक समान मान निश्चित करना पड़ेगा। ऐसा मान स्त्री हो या पुरुष, उसके काम के लिए एक सरीखा ही होना चाहिए। ऐसा नियम बनाया जा सकता है कि आठ घंटे का दिन माना जाय, और यह भी निश्चित कर दिया जाय कि माल की कम-से-कम इतनी उत्पत्ति होनी ही चाहिए। चीज की जो कीमत पड़ेगी उसमें इस मजदूरी का समावेश हो जायगा, और उसे लेकर ही बिक्री का मूल्य निश्चित किया जायगा। आमतौर पर चढ़ाऊपरीवाले बाजार में हम चौकस भाव नहीं ठहरा सकते, पर जो चीजें प्रतिस्पर्धा में नहीं आतीं, और जिस माल को ग्राहक उसके खास गुण के कारण पसंद करते हैं उनके संबंध में हम इस प्रकार भाव निश्चित कर सकते हैं।

यह प्रश्नावली नीचे की बातों पर आपकी राय जानने के लिए भेजी जाती है —

१ क्या आपकी राय में ऐसी पक्की व्यवस्था हो सकती है कि प्रतिदिन की कम-से-कम मजदूरी निश्चित करदी जाय, और चीजों का ठीक-ठीक भाव निश्चित करके वह मजदूरी कारीगरों को मिला करे ?

२ हम अपना अंतिम मान निश्चित करलें, और उस मान तक पहुँचने के लिए दर बढ़ाते चले जायँ, या कम-से-कम दर का एक छोटा-सा प्रमाण निश्चित करके ज्यों-ज्यों आगे बढ़ें त्यों-त्यों उसे बढ़ाते जायँ ?

३ मजदूरी का यह मान किस आधार पर निश्चित किया जाय ? वस्त्र तो मनुष्य को अपने लिए खुद ही परिश्रम करके बना लेना चाहिए, इसलिए फिलहाल उसकी खुराक को ही आधार मानलें तो सिर्फ निर्वाहयोग्य मजदूरी की दर हमें कितनी निश्चित करनी चाहिए, इसके संबंध में क्या आप कोई सलाह दे सकेंगे ? प्रति घंटा आध आना क्या बहुत कम होगा ?"

चर्खा-संघ, ग्रामउद्योग-संघ और इसी तरह की अन्य परोपकारी संस्थाओं को इस व्यापारी सूत्र का अनुसरण नहीं करना चाहिए कि चीजें सस्ती-से-सस्ती खरीदी जायँ, और महँगी-से-महँगी बेची जायँ। चर्खा-संघने तो निश्चय ही चीजों को सस्ती-से-सस्ती कीमत में खरीदने की कोशिश की है। लेकिन इस सम्बन्ध में मैंने इसी अंक में अन्यत्र चर्चा की है। खादी के विकास के बारे में मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ है उसका लाभ ग्रामउद्योग-संघ उठाये, इस इच्छा से ही मैंने संघ के नीचे काम करनेवाले कारीगरों को जो मजदूरी मिलती है उसके विषय में कुछ चर्चा शुरू की थी। उसी चर्चा का परिणाम यह प्रश्नावली है।

इस बात का तो पता चल ही गया है कि ग्रामउद्योग-संघ के एजेंटों में जरूरत की चीजों को कम-से-कम कीमत पर तैयार कराने की प्रवृत्ति पाई जाती है। बेचारे कारीगर का गला न काटा जाय तो किसका काटा जाय ? इसलिए मजदूरी की अगर कोई कम-से-कम दर निश्चित न की गई तो बेचारे गांव के कारीगर को काफी कष्ट सहन करना पड़ेगा इस बात का पूरा भय है, यद्यपि यह ग्रामउद्योगसंघ उनके ही हित के लिए स्थापित हुआ है।

हम इन सब के पुतले गरीब ग्रामवासियों को न जाने कितने समय से लूटते चले आ रहे हैं। ग्रामउद्योग-संघ परोपकार की चादर ओढ़कर इस लूट-खसोट में और वृद्धि न करे। संघ का यह ध्येय नहीं है कि गांवों में चीजें सस्ती-से-सस्ती बनवायी जायँ। उसका ध्येय तो बेकार ग्रामवासियों को ऐसे काम में लगाना है जिससे कि उन्हें पेट भरनेलायक मजदूरी मिल सके।

कुछ लोगोंने यह दलील दी है कि गांवों की बनी हुई चीजों की कीमत अगर किसी भी दृष्टि से बढ़ा दी गई तो जिस उद्देश से ग्रामउद्योग-संघ स्थापित हुआ है वह उद्देश ही मारा जायगा। कारण यह है कि गांवों की चीजों की कीमत अगर बहुत ऊँची चढ़ा दी गई, तो फिर उन्हें कोई नहीं खरीदेगा। किसी चीज की कीमत से अगर कारीगर को सिर्फ पेट भरनेलायक ही मजदूरी मिलती है, तो उस चीज की कीमत ऊँची आखिर कैसे समझी जायगी ? ग्राहकों के आगे हमें ग्रामीण जनता की दरिद्रय-दशा का हूबहू चित्र खींचकर रख देना चाहिए। हमें यदि करोड़ों श्रमजीवियों के साथ न्याय करना है तो हमें उनके काम की उचित मजदूरी देनी ही चाहिए। जितने से उनका निर्वाह हो सके उतनी कीमत हमें उनके माल की देनी चाहिए। हमारे लिए यह उचित नहीं कि उनकी असहाय अवस्था का अनुचित लाभ उठाकर उनकी बनाई चीजों की हम उन्हें इतनी कम कीमत दें कि जिससे उन बेचारों का पेट एक वक्त भी न भर सके।

यह बिलकुल स्पष्ट है कि संघ को मिल के बने माल की प्रतिस्पर्धा में पड़ना ही नहीं चाहिए। हम जब यह जानते हैं कि इस बाजी में हमें हारना ही है तब उसमें हम शामिल ही क्यों हों ? रुपये-पैसे के बल पर बड़े-बड़े व्यापारी — फिर वह विदेशी हों या स्वदेशी — एकसाथ मिलकर मनुष्य के हाथ की बनी हुई चीजों को भाव में हमेशा ही हरा सकते हैं। संघ तो यह करना चाहता है कि मिथ्या तथा मानव-हित का विचार न करनेवाले अर्थशास्त्र के स्थान पर सच्चा और मानव-हित का विचार करनेवाला अर्थशास्त्र चलाया जाय। संहार-कारिणी प्रतिस्पर्धा नहीं, किंतु जीवनदायी सहयोग ही मनुष्य का धर्म है। सहृदयता की अवहेलना का अर्थ 'मनुष्य की भावनाओं' को भूल जाना है। यदि हम भगवान् के प्रतिरूप हैं, तो अल्पजन का नहीं, बहुजन का भी नहीं, बल्कि सर्वजन का हित-साधन ही हमारे जीवन का लक्ष्य हो सकता है।

इस प्रश्नमाला में आये हुए प्रश्नों पर ग्रामउद्योग-संघ-जैसी संस्था विचार न करे यह कैसे हो सकता है ? इन प्रश्नों का सच्चा हल अगर आचरण में असंभव मालूम होता हो, तो संघ को उसे

संभव बनाने की चेष्टा करनी चाहिए। सत्य का तो आचरण सदा ही शक्य है। इस प्रकार विचार करने पर सघ के कार्यक्रम को हम 'लोकशिक्षा' का नाम दे सकते है।

और अगर सघ को अपने नीचे काम करनेवाले कारीगर को पेट भरनेलायक मजदूरी देनी है तो उसे इस बात का भी पता रहना चाहिए कि उसका कारीगर अपनी गृहस्थी की किस मद मे क्या खर्च करता है। सघ को यह देखरेख रखनी चाहिए कि उसके दिये हुए एक-एक पैसे का कैसा क्या उपयोग हो रहा है।

सब से कठिन प्रश्न तो यह है कि कम-से-कम या पेट भरने लायक मजदूरी किस तरह निश्चित की जाय। मैने यह सलाह दी है कि अच्छी योग्यता का कारीगर आठ घटे सख्त मेहनत करके अगर अमुक चीज अमुक प्रमाण मे तैयार करता है तो उसके लिए उसे आठ आने रोज दिये जायँ। आठ आने की यह मजदूरी तो जीवन की आवश्यकताओ का एक अमुक प्रमाण बतानेवाला केवल एक सकेत है। अगर पाच आदमियों के कुटुब मे दो आदमी पूरा काम करनेवाले हो, तो मेरी बतलाई हुई इस दर से -- छुट्टी या बीमारी का एक भी दिन हिसाब मे न लेकर -- वे ३०) माहवार कमा सकते है। पाच आदमियो की परवरिश के लिए ३०) की यह मासिक आय कुछ अधिक नही कही जा सकती। इस प्रस्तावित पद्धति में स्त्री-पुरुष का या उम्र का कोई भेद रखा ही नही गया है। किंतु जिनके पास यह प्रश्नावली भेजी गई है, वे अपने अपने निजी अनुभव के आधार पर उक्त प्रश्नो का जवाब दे।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

खादी का लक्ष्य

खादी का इतना ही ध्येय नहीं है कि शहर के लोगो के लिए मिल के कपड़े की समता करनेवाली किस्म-किस्म की रगबिरगी खादी जुटाई जाय और इस तरह दूसरे उद्योगो की भांति चद कारीगरो को काम मे लगा दिया जाय, बल्कि उसका ध्येय तो यह है कि वह खेती का एक पूरक उद्योग बन जाय। यह ध्येय अभी अधूरा ही है।

इस ध्येय की पूर्ति करने के लिए खादी को स्वावलबी बनाना होगा, और उसका उपयोग गावो मे फैलाना होगा। जिस तरह गाववाले अपनी रोटी या चावल खुद पका लेते है उसी तरह उन्हे अपने उपयोग की खादी भी खुद ही तैयार करनी होगी। उसके बाद खादी बच रहे, तो उसे बेच सकते है। खादी-सेवा-सघ की रचना जबतक नये सिरे से नही होती, और जबतक चर्खा-सघ अपनी नीति मे परिवर्तन नही करता, तबतक खादी का यह ध्येय सिद्ध होने का नही।

खादी तैयार होने के पहले कपास की जो-जो प्रक्रियाएँ होती है उन सब का ज्ञान खादी-सेवा-सघ के प्रत्येक सदस्य को होना चाहिए।

स्वावलबी खादी पर जब जोर दिया जायगा, तब व्यापारी तरीके पर उतनी ही खादी बनेगी कि जितनी खादी की शहरवालों को असल मे जरूरत होगी। तब वह चर्खा-संघ के हाथ मे केन्द्रित रहने के बजाय प्राइवेट व्यापारियों के हाथ में चली जायगी।

खादी को व्यापारी चीज बनाने के प्रयत्न में चर्खा-संघ को अबतक बाजार के भावो पर निर्भर रहना पड़ा है। इसलिए किसी भी किस्म की मजदूरी की अपेक्षा कताई की मजूरी कम-से-कम रही है। इस मजदूरी की दर भी प्रात-प्रात की अलग-अलग है। इसलिए विभिन्न प्रातो की खादी के भावो मे भी फर्क पड़ता है। जिनका ध्येय महज मुनाफा उठाने का है उनके लिए यह सब ठीक है कि वे एक दूसरे का गला काटने की प्रतिस्पर्धा को आश्रय ही नही, बल्कि प्रोत्साहन भी दें. मगर जिन संस्थाओ का एकमात्र हेतु निर्धनो की सेवा करना है, उन्हे ऐसी प्रतिस्पर्धा में पड़ना नही पुसा सकता। बिहार की कातनहारी को गुजरात की कातनहारी से कम मजूरी क्यो मिले? निस्सदेह प्रात-प्रात के भाव में फर्क पड़ने का कारण यह है कि प्रत्येक प्रात का रहन-सहन जुदा-जुदा है। पर सघ को यह मौजूदा परिस्थिति नही पुसा सकती। यदि वह न्याय-सगत नही है तो सघ को उसे बदल देना चाहिए। कोई कारण नही, कि एक घटे की कताई की मजदूरी एक घटे की बुनाई की मजदूरी से कम हो। सादी बुनाई की अपेक्षा कताई मे अधिक कुशलता की आवश्यकता पड़ती है। सादी बुनाई केवल एक यांत्रिक प्रक्रिया है। किन्तु सादी-से-सादी कताई के लिए हाथ की कला की आवश्यकता पड़ती है। तो भी बुनकर को फी घंटा कम-से-कम दो पैसे मिलते हैं और कतैये को सिर्फ एक ही पाई मिलती है। धुनिये को भी उसने अच्छी—करीब-करीब बुनकर की जितनी ही—मजदूरी मिलती है। इस स्थिति के लिए ऐतिहासिक कारण हैं। पर यह बात नही कि उनके ऐतिहासिक होने की वजह से ही वे न्याय्य हैं। अब वह समय आ गया है, जब सघ को अपनी देखरेख मे चलनेवाली तमाम मजदूरी की दर स्थायी नही तो एक समान तो कर ही देनी चाहिए। कितनी ही जगह इसका अर्थ यह लगाया जायगा कि बुनकर को जहा एक घटे मे एक आने से अधिक मिलता है वहा उससे उसमे कमी करने के लिए कहना पड़ेगा। ऐसा समय तो शायद कभी न आवे जब सब बुनकर खुद अपनी राजी से इस समान दर को स्वीकार करले। पर सब प्रकार के उत्पादक श्रम के लिए मजदूरी की दर एकसरीखी होनी ही चाहिए। यह सिद्धान्त अगर सही है तो सघ को इस आदर्श के अधिक-से-अधिक नजदीक पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए। एक ही बार में यह सब न हो सके, तो भी कतैये के एक पूरे घटे के काम की मजदूरी की दर में उचित वृद्धि करके इस दिशा मे आरभ तो कर ही देना चाहिए। विनोबा अपने वर्गों को पढाने के साथ-साथ नित्य लगभग नौ घटे के हिसाब से कातने का प्रयोग कर रहे है। एक घटे मे वे जितना सूत कातते है, उसे एक घटे की सामान्य उत्पत्ति समझनी चाहिए, और कतैये को इतनी सामान्य मजदूरी मिलनी ही चाहिए। मुझे आशा है कि विनोबा के परिश्रम के परिणामो को मैं शीघ्र ही प्रकाशित करूँगा।

मेरी योजना के लिए इतना तो जरूरी है ही कि खादी-सेवक का कातनेवाले के साथ घनिष्ठ सपर्क होना चाहिए। जो सस्था मजदूरी की दर में आशातीत वृद्धि करेगी, वह इसकी भी खोज-खबर रखेगी कि जो पैसा वह श्रमिको को देती है उसका किस तरह खर्च हो रहा है। अगर वह पैसा दारूखोरी या शादी-ब्याह की फजूलखर्ची में बर्बाद हो रहा हो तो उनकी मजूरी बढा देना व्यर्थ ही होगा। खादी का काम करीब-करीब अस्पृश्यता-निवारण के काम की ही तरह है। इन उच्च कहलानेवाले वर्गोंने नीचे के वर्गों की इतनी अधिक उपेक्षा की है कि कुछ पूछिए नही। नतीजा इसका यह हुआ कि जो नीचे के वर्ग समझे जाते हैं वे जीने की कला ही भूल गये।

उनकी यह धारणा है कि हमे तो विधाताने सिर्फ तम मारने के लिए ही पैदा किया है। इन ऊँचे वर्गवालो को अपने कुकर्मों का दंड न मिले यह कैसे हो सकता था ? उन्हे भी सजा मिली। वे भी तो जीने की कला नही जानते। उन्हे अगर आज 'नीचे के वर्गों' से सहायता मिलना बंद हो जाय, तो आज ही उनका नाश हो जाय। 'उच्च वर्गों' को 'नीचे के वर्गों' के प्रति प्रायश्चित्त करने के लिए आमंत्रित करके इस दोहरी दुरवस्था को सुधारना ही खादी का ध्येय है।

ग्रामउद्योग के सेवको को भी यह देखरेख रखनी है कि जिन उद्योगो को उन्होने पुनरुज्जीवित किया है उनमे काम करनेवाले ग्रामवासियों को संघ-द्वारा नियत न्यूनातिन्यून मजदूरी मिल रही है या नही।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

सदस्य सचेत हो जायँ

श्रीयुक्त कुमारप्पाने मेरे पास निम्नलिखित सूचना प्रकाशनार्थ भेजी है :—

"साधारण सदस्यों को यह याद दिलाई जाती है, कि वे संघ के ११वे उपनियम के अनुसार बराबर हर तीसरे महीने अपने काम की रिपोर्ट मंत्री के पास भेज दिया करे। वह उपनियम यह है—

'संघ के प्रत्येक साधारण सदस्य को अपने काम की तिमाही रिपोर्ट मंत्री के पास इस तरह भेजनी होगी कि तीन महीने की अवधि पूरी होने के बाद वह एक महीने तक प्रधान कार्यालय मे पहुँच जाय। यदि किसी साधारण सदस्य के काम की रिपोर्ट लगातार नौ महीनेतक न आयगी, तो वह संघ का सदस्य नही रहेगा।'

जिन साधारण सदस्योने रिपोर्ट न भेजी हो उनसे यह प्रार्थना है कि वे ३० जून, १९३५ तक के काम की रिपोर्ट तुरन्त भेजदे।"

श्रीयुक्त कुमारप्पा एक सजग मंत्री हैं, और संघ के अध्यक्ष श्री जाजूजी भी वैसे ही है। वे दोनो ही यह मानते है कि किसी भी संस्था के नियमो का या तो कड़ाई के साथ पालन होना चाहिए, या फिर उन्हे रद कर देना चाहिए। इस उचित नियम को रद करने की चूंकि जरा भी संभावना नही है, इसलिए मुझे आशा है कि संघ के सदस्य इस नियम के मर्म का अक्षरशः पालन करेंगे।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव

कुछ दिन पहले हमने बंबई-सरकार की एक ऐसी विज्ञप्ति प्रकाशित की थी जिसमें हरिजनो के लिए सार्वजनिक स्थानो और अन्य सुविधाओ के संबंध के नियम निर्धारित किये गये हैं। इधर सार्वजनिक पाठशालाओ की दिशा मे तो मद्रास-सरकारने खासा अच्छा कदम बढ़ाया है, और दूसरी किसी प्रांतीय सरकारने इस विषय में जितना काम किया है उससे अधिक ही करने का उसने निश्चय किया है। नियम, गश्ती चिट्ठियां, और प्रस्ताव जारी करके ही मद्रास सरकारने संतोष नही माना, बल्कि उसने अपने लोकलबोर्डों, म्यूनिसिपैलिटियो आदि स्थानीय संस्थाओं के प्रबंधाधीन तमाम स्कूलो की रिपोर्टें मँगाईं, और अब उसकी तरफ से जो प्रस्ताव प्रकाशित हुआ है वह निश्चय ही हरिजनों की इस विषय की मौजूदा परेशानी को बहुत कुछ अंशो में दूर कर सकेगा। मद्रासहाते के शिक्षा-विभाग के डायरेक्टरने सन् १९३३-३४ में सार्वजनिक पाठशालाओ मे हरिजन विद्यार्थियों को दाखिल करने के संबंध में एक रिपोर्ट की थी। उस रिपोर्ट को देखकर ही मद्रास-सरकारने यह प्रस्ताव प्रकाशित किया है। प्रस्ताव के निम्नलिखित अवतरण से यह प्रगट होता है कि सरकार इस विषय में किसी तरह की ढिलाई या टालटूल बर्दाश्त करने को तैयार नही :—

"डायरेक्टर के दिये हुए आकड़ो से यह प्रगट होता है कि सब जातियो के लिए खुली हुई अधिकांश पाठशालाएँ यद्यपि दलित वर्गों की बस्तियो के पास ही हैं, तो भी दलित जातियो के विद्यार्थियों को करीब ५० प्रतिशत पाठशालाओंने ही दाखिल किया। इसलिए यह स्पष्ट मालूम होता है कि बहुत-सी पाठशालाए, जो दलित वर्गों के लिए सिर्फ कहने मात्र को खुली हुई है, वास्तव मे, उन्हे दाखिल करती नही। दलित वर्ग को दाखिल करने की सलाह बारबार देने पर भी उसका कोई अच्छा उल्लेखनीय असर नही हुआ। इसलिए मद्रास की प्राथमिक शिक्षा के कानून के अनुसार सरकारने ऐसा मसविदा तैयार किया है कि अगर किसी पाठशाला मे दलित जातियों के विद्यार्थियों की उपस्थिति ठीक-ठीक न रहती हो तो यह समझा जायगा कि वह पाठशाला उन्हे दाखिल करने से इनकार करती है, और यदि व्यवस्थापक यह नही बतलायगा कि पाठशाला से एक मील के चक्कर के अंदर ऐसा कोई विद्यार्थी नही रहता, अथवा दलित वर्ग के विद्यार्थियो की गैरहाजिरी के वह अन्य संतोषजनक कारण नही बतलायगा, तो वह पाठशाला सरकार की ओर से अप्रामाण्य करार देदी जायगी। आशा है कि यह नियम जब अमल मे आयगा तब उसका वांछित फल हुए बिना नही रहेगा।"

इसके साथ-साथ मद्रास-सरकार अगर इन पाठशालाओ मे पढ़नेवाले हरिजन विद्यार्थियों की फीस माफ कर देने की घोषणा कर देती तो और भी अच्छा होता, क्योंकि इससे यह होता कि मानो सरकार उन्हे घर बैठे शिक्षा दे रही है। तमाम पाठशालाएँ हरिजनो के लिए खोलकर सरकार जो उद्देश पूरा करना चाहती है वह इस फीस की माफी की घोषणा से बहुत आसान हो जायगा। इस विषय मे कुछ भी बहाना या टालटूल न रखने का सरकार का जो निश्चय है वह नीचे के पैरे से स्पष्ट हो जाता है :—

"प्रांतीय फंड की सहायता से चलनेवाली ऐसी पाठशालाओ की संख्या में यद्यपि कमी कर दी गई है जो ऐसी जगहो पर थीं जहां दलित वर्गों के विद्यार्थी पहुँच नही सकते, तो भी ऐसी २७१ पाठशालाएँ तो अब भी है। सरकार चाहती है कि स्थानीय संस्थाएँ इन पाठशालाओ को तुरन्त ऐसी जगह हटा देने का प्रयत्न करे, जहां सब जातियो के विद्यार्थी पहुँच सकें।"

जहां हरिजन बालको के आने से सवर्ण मां-बाप अपने बालको को पाठशालाओ से निकाल लेते हैं वहा हरिजन बालको के लिए अलग पाठशालाएँ खोलकर इस प्रश्न में कोई समझौता न करने की जो यह सलाह सरकारने स्थानीय संस्थाओं को दी है, वह जितनी उचित है उतनी ही आवश्यक भी है :—

"इस साल कहीं-कहीं ऐसा हुआ है कि दलित वर्ग के बालकों के दाखिल होने के कारण वहां की पाठशालाओं में से सवर्ण विद्यार्थियों को निकाल लिया गया है। बेल्लारी जिला-बोर्ड के अध्यक्ष लिखते हैं कि एक पाठशाला में से सवर्ण विद्यार्थियों को निकाल लेने से बोर्ड उस जगह दलित वर्ग के बालकों के लिए अलग पाठशाला खोलने के प्रश्न पर विचार कर रहा है। सरकार की घोषित नीति चूंकि इन वर्गों के लिए अलग पाठशालाएँ खोलने के विरुद्ध है इसलिए वह ऐसे काम में प्रोत्साहन नहीं दे सकती। अतः उक्त बोर्ड के अध्यक्ष को यह सलाह दी जाती है कि उन्हें अलग पाठशाला खोलने का यह विचार त्याग देना चाहिए। मौजूदा पाठशाला में सवर्ण विद्यार्थी फिर से दाखिल होना चाहें तो हो सकते हैं।"

नीचे के पैरों में जो उपाय बतलाये गये हैं उनमें जरा भी सख्ती नहीं है, और इसमें संदेह नहीं कि उनसे मौजूदा स्थिति में भारी परिवर्तन हो सकता है —

"चिंगलपट-जिलाबोर्ड के अध्यक्ष की भेजी हुई रिपोर्ट से यह मालूम होता है कि किसी-किसी जगह अध्यापकोंने खुद ही आदि-द्राविड़ विद्यार्थियों के प्रवेश का विरोध किया था। इस बुराई का उपाय यह है कि जिन पाठशालाओं में सवर्ण विद्यार्थी पढ़ते हों उनमें हरिजन अध्यापकों की काफ़ी अच्छी संख्या में नियुक्त किया जाय। सरकारने इस उपाय की पहले भी सलाह दी थी और अब फिर स्थानीय संस्थाओं से इस उपाय की सिफारिश की जाती है।

ऐसा देखा गया कि कुछेक जिलों में जिन पाठशालाओंने दलित वर्गों के विद्यार्थियों को दाखिल करने से इनकार किया था, उन्हें मिलनेवाली सहायता बंद कर दी गई है। सरकार को विश्वास है कि जो पाठशालाएँ खास दलित वर्गों के ही लिए न हों उनमें उन्हें दाखिल कराने के लिए जहां आवश्यकता हो वहां जरूर यह उपाय काम में लाया जाय।"

यह प्रस्ताव जितना पूर्ण हो सकता है उतना पूर्ण है। इसके लिए हम मद्रास-सरकार को बधाई देते हैं, और आशा करते हैं कि दूसरे प्रांतों की सरकारें इस दिशा में मद्रास-सरकार का अनुसरण करेंगी।

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

पारसाल और इस साल

पारसाल—

आज से एक साल पहले जब मैंने गुलरिया गांव की हरिजन-बस्ती में आमद-रफ्त शुरू की और हरिजन भाइयों से परिचय बढ़ाना चाहा, तब उनके घरों में एक आतंक-सा छा गया। इस गांव में ही नहीं, बल्कि बदायूं जिले के लिए मैं एक बिल्कुल नया आदमी था। न मैं किसी को जानता था, न कोई मुझे जानता था। दूसरे, मैं खादीधारी—गांधी का आदमी। लोग समझते थे कि जेल भेजने के लिए कांग्रेसी रंगरूट बटोरने के काम से ही यह आदमी हमारे गांव में आया है! तीसरे, गांव के कुछ बड़े-बड़े जमींदारों और पुलिसवालोंने इन लोगों को मेरी छाया से बचे रहने की ताकीद चुपके-चुपके कर रखी थी! इस हालत में हजारहा पुश्तों से ठुकराये हुए उन पद-दलित मेहतरों का भयभीत हो जाना स्वाभाविक ही था। उनके दरवाजों के सामने मेरा चक्कर काटना उनकी समझ में वैसा ही था, जैसे दोपहर के समय सघन अमराई में विश्राम लेती हुई चिड़ियों पर दुष्ट बाज का मँडराना। मुझे देखते ही उनके छोटे-छोटे बच्चे झोंपड़ियों के अँधेरे कोनों में जाकर छिप जाते थे और बड़े लड़के तितर-बितर हो जाते थे। अगर मैंने किसी को पुकारा तो कोई यह बहाना बनाकर भाग जाता था, कि 'मेरा सूअर भाग रहा है' और किसी को टट्टी लग आती थी! बड़ी उम्र के लोगों को घरू झगड़ों से ही फुर्सत नहीं थी। मुंह में उनके हुक्के की नली ही नहीं छूटती थी। मेरी तरफ मुखातिब ही नहीं होते थे। फिर दस-पांच मिनिट के बाद धीरे से उठकर खिसक जाते थे। उन्हें काफी चौकन्ना रहना पड़ता था कि कहीं इस खादीधारी आदमी के साथ बात करते उन्हें कोई देख न ले और जमादार से जाकर उनकी शिकायत न जड़ दे!

उनका यह 'भय का भूत' तो भगाना ही था। भाग्य से एक मौका हाथ आया। मैंने सुना कि एक भंगी के यहां शादी है, जिसमें पचासेक गांव के मेहतर इकट्ठे हुए हैं। उसका घर हमारे यहां से एक मील था। मैं अपने यहां के एक जमींदार साथी को लेकर जहां बारात का डेरा था वहां पहुंचा। खासा अच्छा जमघट था। रंगबिरंगे फैंसी कपड़े—नकली रेशम और बारीक-से बारीक मलमल—सबके तन पर देखने में आये। मेरे सहयोगी जमींदार को देखकर बारातवाले जरा चौकन्ने-से हो गये। हमारे लिए एक चारपाई डाल दी गई। एक ओर सारंगी और तबले के साथ एक लड़का नाच रहा था और दूसरी ओर किसी बिरादरी के मामले पर पंचायत लगी हुई थी। खूब शोरगुल मच रहा था। तीन-चार सफ़ेद मूछवाले बूढ़े-बड़े हमारी चारपाई के लगे आ बैठे। बहुत समझाने के बाद उनमें से दो आदमी हमारे साथ खाट पर बैठे। मैंने कहा, थोड़ी देर बाद यह गाना-बजाना करावें तो हम आसानी से आपसे कुछ बात कर सकें।' उन्होंने नाच बंद करा दिया। नौजवान लड़कों को यह बड़ा नागवार गुजरा। उन्होंने फिर बाजे बजवाना शुरू कर दिया। मैं समझ गया कि इस वक्त कुछ कहना-सुनना फिजूल ही है। पर यह सुंदर अवसर खोदूं यह भी ठीक नहीं। फिर इतने मेहतर एक जगह कहां मिलेंगे? मैंने थोड़े में उन्हें समझाया कि इस तरह कबतक पग-पग पर ठोकर खाते रहोगे। अपने लड़कों को तालीम दो और अपने अधिकारों को पहिचानो। मैंने इस बात का आग्रह किया कि यह अच्छा मौका है, इसे हाथ से न खोओ। एक अपना पंच नियुक्त कर दो, जो बच्चों को मेरे पास पढ़ने को भेजे और आप लोगों को जो तकलीफें हों उन सबकी मुझे समय-समय पर सूचना देता रहे।

सबसे पहले वही सुप्रसिद्ध जवाब मिला कि 'अजी, 'हम गरीब आदमी कहां पढ़ सकते हैं?" "पढ़ने में गरीब-अमीर का सवाल थोड़े ही है," मैंने कहा। "थोड़ा-सा लिखने-पढ़ने और गिनती सीखने में कोई ऐसा भारी खर्चा नहीं पड़ता।" इस पर एकने यह चतुराई से भरा जवाब दिया, 'हमें मजूरी करके पेट पालना पड़ता है। हमारे बच्चे पढ़ेंगे तो खायेंगे क्या?" मैंने कहा, "मैं आपके बच्चों को मदरसे भेजने के लिए थोड़े ही कहता हूँ। रात को या दोपहर को जब आप लोग ठलुवे बैठे रहते हैं, तब घंटा-आध घंटा पढ़ लिया करो। मैं आपसे बी ए एम ए पास करने को तो कहता नहीं। रामायण वगैरा आप बांचने लगें, बस बहुत है। डाक्टरी वकालत वगैरा पढ़ना चाहें तो आगे भी पढ़ सकते हैं। उस ऊँची पढ़ाई का प्रबन्ध हमारा हरिजन-सेवक-संघ कर देगा।"

अब एक बुड्ढेने एक नया विघ्न डाला "हम लोग तो कमीन है। हम आपस में लड़ना ही जानते है, मेल करना नहीं जानते। हमारा कोई सरपच नही है। सब अपने-अपने पच है। किसी का लड़का पढ़ने जायगा तो दूसरे उसे बहकायेंगे, सौतिया-डाह की तरह कोई किसी का भला नही देख सकता। आप चाहे कितना ही समझावे, हम पुश्तो से जैसे है, वैसे ही रहेंगे। आप बड़े आदमियो के लड़को को पढावे। हमारे पीछे आप परेशान न हो।"

एक नौयुवकने मुझे मानो चित करने का अन्तिम दॉव खेलते हुए कहा "मै अपना दस वर्ष का बच्चा आपके पास लाऊँगा। आप उसे अपने साथ रक्खेंगे और पढायगे? उसे खाना-पीना देगे?" उसने समझ रक्खा था कि मै इस बात से इनकार कर दूगा। वह शहर की चतुराई सीखा हुआ मालूम पडता था। जब मैंने उससे बड़े उत्साह से कहा कि "हा, हा, जरूर, कहा है वह लड़का? लाओ ना, यहा आया है कि नही?" तब वह ढीला पड गया। लड़के को दिखाने से आनाकानी करने लगा। आखिरकार दो-तीन आदमियो के कहने से उसने अपना लड़का दिखा दिया। मगर जब मैंने उसे दूसरे दिन मेरे पास लाने के लिए कहा, तब उसने छै दिन की मोहलत माग ली। आज बारह महीने के बाद भी वह मोहलत पूरी नहीं हुई है!

निराशा और दुख से मन मे कुढ़ता हुआ मै उठा। इन्हे कैसे पढावे? कैसे समझावे? इनकी आदते कैसे बदले? यह सब होना असभव है। इन ढाई सौ, तीन सौ आदमियो मे से किसी के भी कान पर जूँ तक नही रेंगी।

इस साल—

एक बरस के बाद इस साल पौ फटी प्रतीत होती है। वर्ष भर कुछ अधिक हरिजन-सेवा मैं नही कर सका। एक ही हरिजन के आगन में मै कार्य करता रहा। गाव के एक उत्साही, त्यागी और अच्छे सेवक की मुझे सहायता मिलती रही, तो भी हमारी सेवा उसी एक आगन मे केन्द्रित रही। हरिजन-सेवक-सघ को हर महीने हम अपने स्कूल के विद्यार्थियो की रिपोर्ट भेजते रहे। उपस्थिति सिर्फ चार-पाच विद्यार्थियो की ही रहती थी। हा, उनका जलकष्ट दूर कर सके सही। लेकिन मुझे यह असन्तोष सदा ही रहा कि हरिजनो के लिए हम कुछ नहीं कर सकते है। कोई विशिष्ट क्रान्ति किये बिना उनकी परिस्थिति जैसी की तैसी ही बनी रहेगी। लेकिन इस वर्ष उनके यहा हमारे पास पढ़नेवाली लड़की की शादी थी। उस समय जो अनुभव हुआ उससे मालूम हुआ, कि बिना क्रान्ति के ही धीरे-धीरे कितना परिवर्तन हो जाता है। मैंने लड़की के बाप से शारदा एक्ट की बात कही थी और नौ वर्ष की छोटी लड़की की शादी न करने के लिए काफी समझाया था, किन्तु जब गाव में बड़े-बड़े जमीदार बालविवाह करते है तब वह मेरा उपदेश कैसे मानता? लेकिन जिस बात का मैंने कभी जिक्र भी नही किया था, वह उसने अपने आप ही कर डाली। उसने अपने समधी से इस बात का वचन ले लिया था कि बारात मे शराब की एक बूंद भी नहीं आयगी। और वह बात का धनी निकला। इसके अलावा शादी के दिन जब मै उनके साथ बात करने गया, तब पारसाल से बिल्कुल जुदा ही अनुभव हुआ। हमारे जाते ही नाच-तमाशे रोक दिये गये। हुक्का बीच से हटा लिया गया। सब लोग ठीक ढंग से हमारे साथ एक ही दरी पर बैठ गये। जवान और बूढ़े सभीने उत्सुकता से विचारपूर्वक हमारे साथ चर्चा की। पारसाल जिन नौजवानों को गाना-बजाना रोकने में चिढ चढी थी, वे इस बार हमारी बातें सुनने मे गाने से भी अधिक रस ले रहे थे; और ताज्जुब की बात यह थी कि इनमें से किसी को भी मै नही जानता था। दूर-दूर के गांवो से वे लोग आये थे। और कुछ तो दूसरे जिले के भी थे। इन लोगोने मेरे कहने से नीचेलिखे तीन प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किये —

१. ब्याह-शादी मे शराब का बिल्कुल उपयोग न करना,

२. आतिशबाजी के पीछे एक पैसा भी बर्बाद न करना,

३. नाच-तमाशा बिल्कुल बन्द कर देना।

दो एक नवयुवकोने सभा मे यह भी आग्रह किया कि ब्याह-शादियो मे जीवहत्या बन्द करने की सब से पहले जरूरत है। दूसराने कहा "यह तो कभी नहीं छूट सकती। बिना सूअर कटे भंगी की शादी हो ही नही सकती।" मैंने इस विवाद को आगामी वर्ष मे, जब वे तीन नियम पूरी तौर से पाल लिये जायँ तब, आगे बढाने के लिए कहा और एक-एक करके उक्त तीनो नियमो को दोबारा हर आदमी से रटवाया।

एक साल पहले जो हमारे पास आने से बिदकते थे, वेही इस वर्ष इतने आगे बढ चुके थे, इसका अन्दाज मुझे उसी दिन लगा। इन प्रस्तावो के पास हो जाने के बाद कई नौजवानो और कई बूढ़ोने मेरे पास कृतज्ञता प्रगट की और कहा, कि "आपने हमारा बड़ा बोझ उतार दिया। आप जो कुछ कहते है, हमे ऊँचा उठाने के लिए ही कहते है। अगर हम उसे न करें तो हम से बुरा कोई नही। हम जरूर इन तीनों बातो को मानेंगे, दूसरे माने या न माने।" मुझे ऐसा आश्वासन देनेवाला एक बूढ़ा हरिजन पन्द्रह-बीस मील दूर का रहनेवाला था। उसकी बात सुनकर मुझे विश्वास हो गया कि एक ही स्थान पर गहरा और सतत कार्य करने मे भी काफी प्रचार होता है, सिर्फ दौड़धूप करने और सभाएँ करते रहने से ही प्रचार होता है, ऐसा नही है।

इस लेख को पूरा करने से पहले मै अपनी पाठशाला का भी कुछ हाल बताद्। जो हरिजन लड़के पारसाल मुझे देखते ही भाग जाते थे, वे इस साल मुझे दूर से ही देखकर दौड़ते हुए मेरे पास चले आते है। मा-बाप के मना करने पर भी रात को दो-दो बजे आकर अपने घर के मरीज को देखने के लिए मुझे जगाकर ले जाते है। सुबह नित्य दतौन करके मेरे पास आ जाते है और नहाने और कपडे-लत्ते धोने का भी जिक्र, जब मुझे देखते है, करते हैं। अत मेरी मेहतर-पाठशाला में पचास विद्यार्थियों के बजाय चार लड़के और तीन लड़कियो के होते हुए भी मुझे वह पाठशाला अधूरी प्रतीत नही होती।

यह तो वर्षभर में हरिजनों में जो परिवर्तन हुआ, उसका ही वर्णन है। हरिजनो के साथ सवर्णों का जो सलूक बढ़ा है, उसका ठीक अन्दाजा आंकड़ो या किस्सों से नहीं लगाया जा सकता। लेकिन मुझे उसका अनुभव होता है। हरिजन भी सवर्णों से पहले जितने भयभीत रहते थे, उतने अब नहीं हैं।

प्रभुदास छगनलाल गांधी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

अहिंसा का अर्थ

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३]   दिल्ली, शुक्रवार, २६ जुलाई, १९३५.   [संख्या २३

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्राम-सेवा

सब देखते हुए, इस सप्ताह हमारे गांव के लोगोंने हमारे साथ अच्छा ही व्यवहार किया। बस्ती की गलियों और सड़कों को जो वे पहले खराब कर देते थे वह सब बात अब देखने में नहीं आती। चौमासे की इस मूसलधार वर्षा में भी पुरुष और स्त्रियां सभी गांव के बाहर जाकर टट्टी फिरते हैं, हालांकि जितना हम चाहते हैं उतनी दूर नहीं जाते।

इस बीच में डॉ० पिंगले घर-घर जाकर हरेक आदमी को समझाते हैं। यह बात नहीं, कि वे समझते न हों। असल बात तो यह है कि इस दारुण दरिद्रता में उनकी नागरिकता या स्वच्छता से रहने की बुद्धि मानो कुंठित पड़ गई है। चिथड़े लपेटे हुए एक भाईने उस दिन मजाकके लहजे में ठीक ही कहा कि 'आपने यह बड़ा अच्छा काम उठाया है। पर महाराज, हमारे पाखाना फिरने के बारे में आप जो इतनी परेशानी उठा रहे हैं, क्या उतना रस आप इस बात में नहीं ले सकते कि हम लोग क्या तो खाते हैं और कितना हमें खाने को मिलता है?' इसमें संदेह नहीं कि साल में कुछ मास तो ये लोग बिल्कुल ही बेकार बैठे रहते हैं, एक पैसा भी नहीं कमाते और पेट काट-काटकर उस मामूली-सी मजूरी से जो थोड़ा पैसा बचा रखते हैं उसीसे बेचारे अपनी गुजर करते हैं। सचमुच बड़ी मुसीबत है। दो आदमियोंने हमसे कहा था कि बुनाई का काम सीखने की उनकी बड़ी इच्छा है, इसलिए जिस गांव में हमारे करघे चलते हैं वहां उन्हें भेजवा देनेका प्रबंध हम करदें। हम बराबर तब से इस कोशिश में हैं कि उन दोनों को बुनाई का काम सिखवा दिया जाय। पर वे वहां जाने का निश्चय कर ही नहीं सकते। एकने कहा, 'मैं जाने को तो बिल्कुल तैयार *बैठा हूं, पर मेरी स्त्री और बच्चों की परवरिश कौन करेगा?'*

मैंने कहा, 'सबेरे और शाम तुम्हें हम खाना खिला सकते हैं। काम सीखते हुए जो कपड़ा तुम बुनोगे उसके लिए भी हम तुम्हें कुछ पैसा दे सकते हैं, बस यहींतक हम तुम्हारे साथ खास रिआयत कर सकते हैं।' 'यह आपकी कृपा है, जो मेरे साथ इतनी रिआयत करने को आप तैयार हैं,' उसने कहा, 'पर क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तीन-चार घंटे का मुझे दस-पांच पैसे की मजूरी का कोई काम मिल जाय, और उसके बाद मैं आपका करघा चलाने का काम सीखा करूं? यह कैसा रहेगा?' मैंने कहा, 'हां, हां, शहर में तुम खुशी से अपने लिए कोई ऐसा काम तलाश सकते हो, हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं, और करघा तुम जितने घंटे चलाना चाहो, चला सकते हो। तुमसे हम सारे दिन के लिए थोड़े ही कहते हैं।'

वह अभी सोच रहा है। अभी हाल तो वह जाने को तैयार नहीं, क्योंकि दस-पंद्रह दिन छौनर-छप्पर के काम में आठ आने से लेकर बारह आने रोजतक वह यहां कमा लेगा।

और दूसरा आदमी बाईस साल का पट्ठा है। घर में स्त्री है, मां है और तीन बच्चे हैं। इन सबके पालन-पोषण का भार उसीके ऊपर है। खानेवाले पांच हैं, और कमानेवाला एक। कपास की ओटाई के दिनों में उसे थोड़ा मासिक वेतन मिल जाता था। आजकल बेकार बैठा है। बड़ी मुश्किल से किसी तरह उसी पैसे से पेट पाल रहा है।

किस-किस की बात कहें? घर-घर का यही हाल है। जितना ही हम देखते हैं उतना ही यह प्रश्न पेचीदा मालूम पड़ता है। मीरा बहिन तो अब घर-घर की लाडली हो गई हैं। गांव की स्त्रियां उन्हें अपनी सहेली समझती हैं। वे हरेक के यहां जाती हैं और नित्य एक-न-एक नई समस्या लेकर लौटती हैं! आज वे ऐसी स्त्रियों से मिलती हैं जो अपना अनाज अपने हाथ से पीसने को तैयार तो हैं, पर उनके यहां न जांता है, न चक्की। दूसरे दिन वे यह पता लगाकर आती हैं कि किसी जमाने में उस बूढ़े दंपति की झोपड़ी कैसी हरीभरी रहती थी, वहां करघे का मधुर सुर गूंजा करता था और आंगन में कंचन बरसता था। पर आज तो वहां जैसे भायँ-भायँ लगता है, क्योंकि उनका करघा इधर बरसों से बंद पड़ा है, बेचारे दोनों बेकार बैठे हैं।

जिन सज्जन को हम अपने सिंदी गांव में बसाना चाहते हैं उनके लिए अबतक हमें कोई अच्छा सुभीते का मकान नहीं मिल सका। अपनी कठिनाइयों और सीमित शक्तियों की हमें नित्य याद आती है। एक 'अस्पृश्य' महारने अपना मकान किराये पर देने का वादा कर दिया था। पर आज वह नट गया। बोला, "कुछ भी हो, जो आदमी यहां रहेगा वह आप लोगों की तरह होगा तो आखिर भंगी ही। हम भंगियों के साथ नहीं रह सकते। भंगियों *से हमारी जाति ऊंची है!"*

हमारी मुसीबतें

यहां खुद हमारे घर में काफी उपाधियां हैं। ऐसी-ऐसी मुसीबतें आ रही हैं जिनकी हमें आशा भी नहीं थी, और करीब-करीब

नित्य ही कोई-न-कोई आफत सिरपर आ जाती है। हर तरह के मुसीबतजदा लोग यहा आ पहुंचते है। शायद हमारा यह भारी मकान—हम-जैसे शकर के गणो के समान ३० मनुष्यो के लिए यह मकान ऐसा कुछ बडा नही है—और हमारा यह बडा-सा बाग देखकर लोगो को विश्वास नही होता कि हम गरीबी का बाना धारण किये हुए है। खैर, कारण कुछ भी हो, घर-गृहस्थी की हमारी झझटे बहुत बढ गई हैं। कोई शारीरिक कष्ट से तो कोई मानसिक कष्ट से पीडित यहा आ ही जाते है और उन्हे निराश लौटना पडता है। फीस, किताबो, या छात्रवृत्तियों के लिए प्राय नित्य ही हरिजन विद्यार्थी आते है। मै उनसे यही कहता हूँ कि आप हरिजन-सेवक-सघ को अपनी दरखास्त भेजे, यद्यपि मै यह जानता हूँ कि सघ एक सीमा के अदर ही सहायता दे सकता है, और वह इस दिन-दिन बढती हुई माग को पूरी कैसे कर सकता है। फिर कुछ सिडी और सनकी भी हमारे इस दरे दौलतपर अक्सर आ पहुँचते है, और उनके साथ हमे काफी माथापच्ची करनी पडती है।

यह सब तो नित्य का ही रोना है। मगर कुछ भेट मुलाकात करनेवाले बिना ही इत्तिला दिये आ जाते है और कुछ ऐसे भी आते है, जिनकी अपनी खास कठिनाइयो से हमारी मुसीबत दुगनी हो जाती है। यही लीजिए। हमारे साथ एक ऐसे सज्जन रहते है, जिन्हे लकवा मार गया है। वे बिल्कुल अकेले असहाय तमाम सब जगह चक्कर काटते हुए यहा पहुँचे। उन्हे यह पूरा भरोसा था कि मगनवाडी मे जरूर उन्हे आश्रय मिल जायगा। आकर बडे करुणस्वर में कहने लगे, 'मै अपाहिज हूँ, इसलिए सारे दिन शरीर से काम नही कर सकता। और मै यह जानता हूँ कि पृथिवी पर मै भाररूप हूं। पर आप मुझपर दया करे और जितना इस लुजपुज देह से काम हो सकता है उतना काम आप ले। मै आपसे और कुछ नही मागता, सिर्फ यहा पडा भर रहने दीजिए।' वे काम-चलाऊ अग्रेजी और हिंदी जानते है, और मामूली मेहनत का काम भी कर सकते है। उन्होने कहा, 'मै आपकी नीच से भी नीच टहल करने को तैयार हूँ, पर कृपाकर आप मुझे यहा से अब निकालिए नही।' 'आप खुद अपनी सार-सभाल कर सकते है ना? आप अपनी थाली और कपडे धो सकते है ना? अगर आप यह सब काम कर सकते है, तो हम आपको अपने यहा टिका लेगे,' गाधीजीने उनसे कहा, क्योकि वे उन्हे लौटा ना नही चाहते थे। और वे अब हमारे ही साथ रहते है।

और सुनिए। कुछ ऐसे भी दृढप्रतिज्ञ लोग आ पहुँचते है, जो आसन जमाकर बैठ जाते है, हमारे मकान के हाते से हटने का नाम भी नही लेते। उस दिन एक स्त्री ही तीन नन्हे-नन्हे बच्चो को लिए रोती-बिलपती आ पहुँची। वह हमारी पडोसिन थी। पति से उसका कुछ झगडा हो गया था। पतिने उसे मार-पीट दिया था, और वह इस आशा से घर छोडकर हमारे यहा चली आई थी कि एक-दो दिन हम उसे अपने यहा टिका लेगे, औ रइस बीच मे उसका पति पछतायगा और झख मारकर उसे लिवा ले जायगा। मैने उससे कहा कि हम लोग किसी के घरू झगडो में नही पडते और यह अच्छा होगा कि तुम इसी वक्त अपने घर चली जाओ। इसपर उसने कहा कि, 'अच्छी बात है, मै चली जाऊँगी।' पर चार घटे बाद मैं देखता हूँ तो वह वही बैठी हुई है। यह बात गाधीजी के कान मे पडी। जब उन्हे यह मालूम हुआ कि वह स्त्री हमारे पडोस मे ही रहती है तो उन्होने मुझसे कहा कि 'जाओ, देखो क्या बात है, और उसके पति को समझाओ।' अब मेरे लिए यह एक और नई आफत आ खडी हुई। मैने उससे कहा, 'चलो, अपना घर बताओ, मै वहा चलता हूँ।' बहुत ही बेमन से वह चलने को राजी हुई। उसने मुझसे बहुत विनती की और कहा, 'मुझे सिर्फ दो-तीन दिन यहा रह जाने दो। मेरे पति की इससे जरा अक्किल तो ठिकाने लग जाय।' मैने जाकर देखा तो उसका पति पश्चात्ताप कर चुका था। मैने उससे कहा, 'ऐसे-ऐसे छोटे-मोटे लडाई-झगडे तो जीवन में मजेदार चटपटी चटनी की तरह है। ऐसे झगडे तो होते ही रहते है। मै और मेरी स्त्री अनेकबार लडे-झगडे है, पर हम लोगो मे एक दूसरे के प्रति विरक्ति का भाव कभी नही आया। तुमने अपनी स्त्री को जो मारा-पीटा है यह अच्छा नही किया। तुम्हे इसके लिए शर्म आनी चाहिए।' स्त्रीने कहा, 'यह मुझे भले मारे, पर किवाड बंद करके मारे। दुनिया को तमाशा न दिखावे। अगर आज की तरह इन्होने सबके सामने मुझपर फिर कभी हाथ उठाया तो मै इस घर मे रहना तो दूर, पानीतक नही पीऊँगी।' मैने कहा, 'चलो, चलो, बहुत हुआ। तुम्हारा ब्याह हुए २५ बरस हो गये है। यह क्या फजीहत कर रहे हो, तुम दोनो को ही इसमे शर्म आनी चाहिए। देखो भाई, तुमने अगर अब कभी इसे मारा-पीटा तो हमे फिर कोई सख्त कार्रवाई करनी पडेगी। और यह बहिन अगर फिर कभी घर से बाहर भागी, तो इसे हम अपने यहा तो पैर रखने नहीं देगे।' इस तरह उनका घरू झगडा उस वक्त किसी तरह पटाकर मै चला आया।

पर यह चर्चा हमेशा नही चल सकता। हमारे यहा यो ही तिल रखने को जगह नही है। अब हमे जरा कडाई से पेश आना ही होगा।

हमारा सद्भाग्य

गत सप्ताह जब मैने जापानी भिक्षु के सम्बन्ध मे लिखा था तब मुझे यह पता नही था कि कुछ ही समय मे वे हमें छोडकर चले जायँगे। इस सप्ताह एक दिन उनके पास उनके गुरु का इस आशय का एक तार आया कि 'मैने अपना दूसरा एक शिष्य कोलबा भेज दिया है। इसलिए उसका स्थान लेने के लिए तुम तुरन्त कलकत्ते चले आओ।' इस तरह तो कितने ही मित्र और मेहमान यहा आते-जाते रहते है, पर जापानी साधु को विदा करते समय गाधीजीने अपने अतस्तल से उसकी प्रशसा में जो उद्गार प्रगट किये वैसे उद्गार तो उन्होंने किसी भी अतिथि की विदा के समय नही निकाले। उस प्रशसा के भाजन तो वे जापानी साधु थे ही, क्योकि वे उन थोडे-से लोगो में से थे जो यहा लेने के लिए नही, बल्कि कुछ देने के लिए आते है। गाधीजी के उस समय के प्रवचन का सार मै यहा दे रहा हूँ, क्योंकि वह हम सबको कुछ-न-कुछ मार्ग दिखा सकता है। गाधीजीने कहा, "अपने मेहमानो की विदा के समय मै शायद ही कभी कुछ कहता हूँ, पर आज मै कुछ कहूँगा। इसका पहला कारण तो यह है कि हमारा यह अतिथि जापान देश का है, पर दूसरा और मुख्य कारण यह है कि यह भाई जिस ढग से हमारे यहा रहा है उसकी एक बडी सुंदर छाप उसने हम सबके ऊपर लगा दी है। चार-पाच महीने यह हमारे यहां रहा है, पर इसने जितने प्रेम से, जितनी एकाग्रता से और जितनी त्यागवृत्ति से काम किया है उतना किसीने नही किया। ऐसा चुपचाप काम किया है कि शायद ही किसी को उसका

पता चलता था। इस साधु की प्रार्थना की एकाग्रता देखकर तो कोई भी आश्चर्यचकित हो जायगा। एक ही मंत्र का दिन में चार घंटेतक, और योंही जैसे-तैसे पिंड छुडाने के लिए नहीं, किंतु उत्साह, प्रेम और एकाग्रता के साथ, जप करना कोई साधारण बात नहीं है। जब वह यहां आया, तब उसे ऐसा लगता होगा कि मैं कहां इस देश में अजनबी-सा आ पड़ा ! पर वह अजनबी रहा नहीं। वह हिंदी पढ़ने लगा, और थोड़े ही दिनों में उसने हमारे साथ कुछ बोल लेनेलायक हिंदी सीखली। पर जिस आनंद से इस साधुने इतने दिन हमारे यहां बिताये हैं, उसका मेरे ऊपर सबसे बड़ा प्रभाव पड़ा है। तुम लोग कल्पना करो कि तुम एक ऐसे अनजाने देश में जा पड़ते हो, जहां तुम्हारी जान-पहचान का कोई भी नहीं, जहां की भाषा व रीति-रिवाज सभी तुम्हारे लिए एकदम नये हैं; अब तुम अपने मन से पूछो कि जिस तरह यह जापानी साधु हमारे यहां रहा है उस तरह तुम वहां रह सकोगे ? मुझे लगता है कि मैं तो नहीं रह सकता, न तुम लोगों में से ही कोई रह सकता है। इसलिए मैं कहूँगा कि यह भाई अपनी आत्मा में ही आनंदरस प्राप्त करता रहता था। क्योंकि जिस वातावरण में वह आ पड़ा था उसमें उसे ऐसा आनंद मिल ही नहीं सकता था। किसीने उसे कभी क्षुब्ध या रुष्ट होते नहीं देखा। वह हर जगह आनंद-ही-आनंद बिखेरता रहता था। हम उसकी इस बात की सराहना करते हैं। यही कारण है कि उसका बिछोह हम सबको साल रहा है। हम अपने इस प्रिय अतिथि को हार्दिक सद्भाव से विदा करते हैं, और हमें आशा है कि जितनी जल्दी उससे हो सकेगा वह हमारे यहां फिर आ जायगा।

गांधीजीने यह सब हिंदी में कहा था। यह अच्छा ही हुआ कि हमारा मित्र गांधीजी का प्रवचन समझ नहीं सका, क्योंकि उसका कोमल और विनम्र स्वभाव इतनी अधिक प्रशंसा से घबरा जाता। गांधीजीने उससे पूछा, 'केशो, मैंने जो कहा है वह सब तुम्हारी समझ में आया कि नहीं ?' वह मुस्कराया। उत्तर में एक शब्द भी नहीं कहा। अपना प्रिय मंत्र जपता जाता था, और बारबार गांधीजी को प्रणाम कर रहा था।

तीसरे दरजे की यात्रा

अंग्रेज लेखक स्टीवेन्सनने कहा था कि, 'मैंने अपने जीवन में तीसरे दरजे में ही मुसाफिरी की है।' ग्रामवृत्ति के रंग में रंगे हुए जो थोड़े-से पढ़े-लिखे लोग होते हैं उनमें एक स्टीवेन्सन था। इसमें तो संदेह है कि पास में पैसे होते हुए भी मनुष्य अपने जीवन में तीसरे दरजे का सफल यात्री हो सकता है या नहीं, पर अगर वह जनसाधारण और ग्रामवासियों के साथ एकाकार हो जाना चाहता है तो तीसरे दरजे की मुसाफिरी तो जरूर की जा सकती है, और करनी ही चाहिए। दिन में थर्ड क्लास में सफर करते हुए तो कुछ भी असुविधा नहीं होती। मनुष्य अगर मेहनत करने का आदी न हो, और नींद का बुलाना उसके वश का न हो, तो रात में तीसरे दरजे के सफर में जरूर उसे कुछ अड़चन पड़ती है। पर यह आदत तो बड़ी जल्दी डाली जा सकती है। लेकिन तीसरे दरजे में जो शोरगुल, लड़ाई-झगड़ा, तथा गंदा पाखाना और बीड़ी तमाखू व थूंक-खखार और कचरा वगैरा होता है उसका क्या इलाज है ? इसका विचार करने बैठें तो यह सब ऊँचे दरजे की मुहर्रमी मुसाफिरी से तो फिर भी अच्छा मालूम होता है। पहले और दूसरे दरजे के मुसाफिर नीचे को मुहँ लटकाये या तो कोई उपन्यास बड़ी गंभीरता से पढ़ते होंगे या कोई अखबार। यह भी भला कोई जीवन है ? और सुधारक को तो तीसरे दरजे में स्वच्छता और आरोग्यता का सबक देने का सुन्दर अवसर मिलता रहता है। अभी थोड़े दिन की बात है। मैं बबई से आ रहा था। उसी डिब्बे में एक आदमी अपने साहब बहादुर के दो छोटे-छोटे लड़कों को लिये हुए बैठा था। इन बच्चों को तीसरे दरजे की मुसाफिरी में जो मजा आ रहा था, वैसा मजा लेते मैंने योरोपियन लोगों के लड़कों को कभी नहीं देखा। लोगों के साफे व फेंटे और उनका बोल-चाल और चढ़ने-उतरने का ढंग देखकर उन दोनों बच्चों को खूब मजा आ रहा था। कभी-कभी तो मारे खुशी से वे चिल्ला पड़ते और कभी नाचने लगते थे। यह स्पष्ट मालूम होता था कि वहां उन्हें जो 'जीवन' दिखाई देता था वह उन्होंने पहले या दूसरे दरजे में कभी नहीं देखा था। तीसरे दरजे की मुसाफिरी में मजा लेना हो तो, बस एक शर्त है। और वह यह है कि मनुष्य को अपनापन भूलकर साधारण लोगों के साथ बिल्कुल एकता का अनुभव करना चाहिए।

एकदिन एक सज्जन से गांधीजी इस विषय पर जो बात कर रहे थे उसी पर से यह लिखने का प्रसंग आया है। उन सज्जनने पहले कभी तीसरे दरजे में मुसाफिरी नहीं की थी, पर अब वे अपने मित्रों और रिश्तेदारों के विरोध करने हुए भी बड़े आग्रह से तीसरे दरजे में ही मुसाफिरी करते हैं। उन्हें ऐसा मालूम होता है कि जिस मनुष्य को ग्रामीण मनोवृत्तिवाला बनना है उसे चाहे जितनी तकलीफ या असुविधा उठाते हुए भी मुसाफिरी तीसरे दरजे में करनी ही चाहिए। आज तो इसका इतना ही लाभ दिखाई देता है कि तीसरे दरजे के यात्रियों का कष्ट उनके साथ सफर किये बिना दूर नहीं किया जा सकता। किन्तु गांधीजीने उस दिन उन सज्जन को जो लाभ बताया, वह मेरे जैसे जन्म से ही तीसरे दरजे में मुसाफिरी करनेवाले के ध्यान में भी नहीं आया था। यह तो गांधीजी की तरह स्वच्छता का असाधारण ध्यान रखनेवाले के ही खयाल में आ सकता है। उन्होंने कहा, 'ऊँचे दरजे के गद्दे-तकिये पर आपको अच्छी साफ सीट मिल ही नहीं सकती। धूल, कचरा और पसीना वगैरा जितना इन गद्दे-तकियों में जज्ब होता है उतना और किसी में नहीं होता। आप उस सीट पर सिर्फ इसलिए बैठते हैं कि वह मुलायम होती है। तीसरे दरजे की सीट तो हमेशा धुलती रहती है या धोई जा सकती है, और उसे आप जितनी बार साफ करना चाहें उतनी बार साफ कर सकते हैं।

एकसी-मजदूरी

यहां आज-कल हम लोगों में 'एकसी-मजदूरी' विषयक गांधीजी के लेखों पर मुख्यतया चर्चा होती रहती है। खादी-सेवकों और खादी-प्रेमियों के प्रशांत वातावरण में मानो यह बम का गोला आ पड़ा है। इस चीज की आवश्यकता और औचित्य तो सभी स्वीकार करते हैं, पर यह किसी की भी समझ में नहीं आ रहा है कि यह हेरफेर आखिर किस तरह किया जाय। इन बातचीतों और चर्चाओं को जबतक मैंने खुद अच्छी तरह नहीं पचा लिया और जबतक अपने मन में कोई निर्णय नहीं कर सका तबतक मैं यहां उन सब चर्चाओं का सार नहीं दूंगा। लेकिन उस के पहले विनोबाजी के जिस प्रयोग के संबंध में दो सप्ताह पूर्व मैंने लिखा था उसकी प्रगति के विषय में कुछ सूचना और दे देता हूँ।

[१८५ पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

हरिजन-सेवक
शुक्रवार, २६ जुलाई, १९३५

अहिंसा का अर्थ

एक अंग्रेज मित्रने मुझे नीचेलिखा पत्र भेजा है :—

"'मद्रास मेल' मे प्रकाशित आपके एक पत्र की नकल इसके साथ नत्थी करके भेजता हूं, उसे देखने की और मुझे यह बतलाने की क्या आप कृपा करेंगे कि उसमे आपके ठीक-ठीक शब्द आये हैं या नही ? और यदि ठीक-ठीक आये है तो क्या आप कृपाकर यह समझायेंगे कि यहा आपने जो मत प्रगट किया है उसकी सगति आपके हमेशा के वक्तव्यो के साथ कैसे बैठती है ? मुझे तो ऐसा लगता है कि आजतक जितने सिद्धातो का उल्लेख मिलता है उनमे यह सब से भयकर है। यह तो किसी भी मनुष्य को कानून अपने हाथ मे ले लेने और हत्या या दूसरी किसी भी तरह की हिसा करने का आमत्रण देना है—बहाना सिर्फ यह रहेगा कि वह या तो खुद डरता है, या फिर उसके लिए हिसा का एकमात्र विकल्प कायरता का मार्ग है जो हिसा से भी बुरा है ! अगर यह बात है तब तो बोलो जनरल डायर की जय !"

'मद्रास मेल' की वह कतरन (कटिंग) यह है :—

"एक प्रसिद्ध कांग्रेसवादीने अपनी चिट्ठी मे आन्ध्रदेश के एक गाव के हिंदू-मुसल्मानो की तनातनी और मुसल्मानो की सीना-जोरी का वर्णन किया था, साथ ही यह सलाह चाही थी कि ऐसी हालत मे क्या करना चाहिए। उसके उत्तर मे गाधीजी अपने एक निजी पत्र मे लिखते हैं—

'प्रिय मित्र,

आपकी वर्णन की हुई यह स्थिति शोचनीय है। लोग अगर अपने मुसल्मान भाइयों से डरते है तो उन्हे शारीरिक बल का प्रयोग करके अपनी रक्षा करने का पूरा अधिकार है।

ऐसा न करना कायरता का काम समझा जायगा। कायरता किसी भी तरह अहिसा नही कही जा सकती। कायरता तो खुली हुई और सशस्त्र हिंसा से भी बुरी प्रकार की हिसा है।'"

मेरे पास उस पत्र की नकल नही है, तो भी उसकी जो 'नकल' प्रकाशित हुई है उसमे मेरे विचारो का सार आ जाता है। पत्र-लेखक का न तो मुझे नाम याद है, न मै उसे पहचानता हू। अगर वह कोई प्रसिद्ध काग्रेसवादी होता तो मेरा विश्वास है कि मै उसे जानता होता। जैसा कि 'मद्रास मेल' के सवाददाताने कहा है, मेरा वह पत्र एक प्रश्न के उत्तर मे लिखा हुआ निजी पत्र था। जिन परिस्थितियो के लिए मैने वह जवाब लिखा था उन परिस्थितियो को लक्ष्य मे रखकर ही उसे पढना चाहिए। मैने वह पत्र अगर अपने पास रख लिया होता तो उसके मुख्य अश मै अवश्य यहा उद्धृत करता। वह खासा लबा पत्र था। लेखकने उसमे गाव के लोगो की परिस्थिति का विस्तार के साथ वर्णन किया था, और लिखा था कि हिंदू यहा के असहाय और भयभीत हो गये है। अहिसा क्या चीज है यह वे बिल्कुल ही नही जानते। गाव के मुसल्मानो का जोरोजुल्म दिन-दिन बढता ही जा रहा है, और दूसरे गावो के मुसलमान आ-आकर इस अत्याचार को और भी शह दे रहे है। ऐसी स्थिति मे गाववाले आखिर क्या करे ? पत्र-लेखकने मुझसे यह प्रश्न पूछा था। उसे मैने जो सलाह दी थी, वैसी सलाह ऐसी परिस्थितियो मे मैने हमेशा ही दी है। सन् १९२० मे अलीभाइयो के साथ जब मै भ्रमण कर रहा था, तब मेरे पास यह खबर आई कि बेतिया के पास एक गाव मे पुलिसने निरकुशता के साथ मार-पीट और लूटपाट की है। इस विषय पर बेतिया के अपने सार्वजनिक भाषण मे मैने कहा था, और १५ दिसबर, १९२० के 'यंग इण्डिया' में इस सबध मे एक लेख भी लिखा था, जिसका प्रासंगिक भाग इस लेख के अंत मे उद्धृत किया जाता है।†

जो आदमी मरने से डरता है और जिसमें सामना करने की ताकत नही है उसे अहिसा का पाठ नही पढाया जा सकता। असहाय चूहे को अहिसक नही कह सकते, क्योंकि वह तो हमेशा ही बिल्ली के मुहँ का ग्रास बना रहता है। उसमे अगर ताकत होती तो वह उस हत्यारी बिल्ली को खुशी से खा जाता। पर वह तो बिल्ली को देखकर बिल मे छिपने को भागता है। हम उसे कायर नही कहते, क्योंकि प्रकृतिने उसका स्वभाव ही ऐसा बनाया है। मगर जो मनुष्य खतरा देखकर चूहे के ऐसा बर्ताव करता है, उसे अगर कायर या नामर्द कहे तो ठीक ही है। उसके दिल मे हिसा और द्वेष भरा हुआ है, और खुद मार खाये बिना अगर वह शत्रु को मार सके तो उसे मारना भी चाहता है। ऐसा मनुष्य अहिसा से लाखो कोस दूर है। उसे अहिसा का उपदेश देना बिल्कुल ही अकारथ है। वीरता का लेश भी उसके स्वभाव में नही होता। अहिसा समझ सकने के पहले उस मनुष्य को यह सीखना होगा कि आक्रमण करनेवाले पहाड-जैसे मनुष्य के सामने भी छाती खोलकर खडा हो जाना चाहिए, और उसके आक्रमण से अपनी रक्षा करते हुए जान भी चली जाय तो कोई पर्वा नही। इससे अन्यथा करते है तो उसकी कायरता और भी दृढ हो जायगी, और अहिसा से वह और भी दूर जा पडेगा। यह सही है कि मै किसी को प्रत्याघात करने मे मदद नही दूगा, पर इस तरह की अहिसा की ओट मे अगर कोई अपनी कायरता को छिपाता है, तो मै उसे यह नही करने दूगा। अहिसा तो शूरवीरो का मार्ग है—इस बात को न जानने से बहुतो का यह सच्चा विश्वास रहा है कि जब कोई खतरा आवे—और खासकर जिसमें जान जाने का डर हो—तब सामना करने के बजाय पीठ दिखाकर भाग जाना एक प्रकार का कर्तव्य है। बतौर अहिसा के एक शिक्षक के, जहातक मेरे लिए सभव है, ऐसे नामर्दी के विचार के खिलाफ मुझे जरूर लोगों को आगाह कर देना चाहिए।

अहिसा तो मानवजाति के पास एक ऐसी प्रबल-से-प्रबल शक्ति पडी हुई है कि जिसका कोई पार नही। मनुष्य की बुद्धिने ससार के जो प्रचड-से-प्रचड अस्त्र-शस्त्र बनाये है उनसे भी प्रचड यह अहिसा की शक्ति है। सहार कोई मानवधर्म नही है। मनुष्य अपने भाई को मारकर नही, बल्कि जरूरत हो तो उसके हाथ से मरजाने को तैयार रहकर ही स्वतत्रता से जीवित रहता है। हत्या या अन्य प्रकार की हिसा, फिर चाहे वह किसी भी कारण से की गई हो, मानवजाति के विरुद्ध एक अपराध है।

किन्तु मै यह बिल्कुल स्पष्ट देखता हूँ कि अहिसाविषयक यह सत्य दुर्बल असहाय मनुष्यो को नहीं समझाया जा सकता। उन्हे तो आत्मरक्षा करने की ही बात समझानी चाहिए।

शकाशील मनुष्य तब यह दलील देगा : 'आप दुर्बल मनुष्य

को अहिंसा सिखा नहीं सकते, और बलवान् के पास उसे ले जाने का आपका साहस नहीं। तो फिर यह क्यों नहीं मान लेते कि अहिंसा एक निरर्थक चीज है ?'' इसका जवाब यह है कि अहिंसा आचरण-द्वारा ही सिखाई जा सकती है। जब उसकी शक्ति और क्षमता का अचूक प्रदर्शन होगा, तब दुर्बल तो अपनी दुर्बलता छोड़ देंगे, और बलवानों को अपने बल की निरर्थकता का उसी क्षण पता चल जायगा और वे नम्र बनकर अहिंसा की सर्वोत्कृष्टता स्वीकार कर लेंगे। सामूहिक प्रवृत्ति में भी हम इस ध्येय को प्राप्त कर सकते हैं, यह बताने का मेरा नम्र प्रयत्न है। इस अंग्रेज मित्र-जैसे आलोचकों से मेरी यह प्रार्थना है कि वे जरा धीरज रखे।

आंध्र के पत्र-लेखक को मैंने जो खत लिखा था उससे मेरे इस अंग्रेज मित्रने जो परिणाम निकाला है वह मेरी राय मे निकल ही नही सकता। जिस पत्र का मैने जवाब दिया था उस पत्र के बिना भी इतना तो स्पष्ट ही है कि जब पुलिस की मदद मौजूद है तब मनुष्य के सामने आत्मरक्षा करने का कोई मौका ही नहीं आता। पुलिस अगर अपना कर्तव्य-पालन करती है, तो खुले आम हमला या मारपीट वह होने ही नही देगी। आत्मरक्षा के लिए सामना करने की कानून मे इजाजत है। मैने जिन परिस्थितियो की चर्चा की थी उनके सम्बन्ध मे मैने यह मान लिया था कि वहा पुलिस या कानून की पहुँच नहीं हो सकती। अपराध रोकने की अपेक्षा वे अपराध का दण्ड अधिक देते हैं, और अपराध का पता तो और भी कम लगाते है। **इसलिए जहाँ शरीर होम देने की तत्परता न हो, वहाँ आत्मरक्षा का मार्ग ही एकमात्र प्रतिष्ठित मार्ग है।**

'हरिजन' से] **मो० क० गांधी**

†''और अगर आइन्दा कभी ऐसी घटना घटे तो उस समय अपनी रक्षा करने के लिए तैयार रहना चाहिए। अपने जान-माल की रक्षा के लिए प्रहार करने की अपेक्षा यह बेहतर है कि वीरता के साथ अत्याचार बर्दाश्त कर लिया जाय और लूटमार होती हो तो होने दे। यह तो सचमुच विजय की पराकाष्ठा कही जायगी। किन्तु इस प्रकार की क्षमा तो बलवान् ही रख सकता है। यह बात दुर्बल के बूते की नही। जबतक यह शक्ति नही आई, तबतक अपने शारीरिक बल से अत्याचारी का विरोध करने के लिए तैयार रहना चाहिए। पुलिस जब गिरफ्तार करने के लिए नहीं, किन्तु सताने के लिए आती है, तब वह अपने अधिकार के बाहर काम करती है। उस वक्त उसे डाकू समझना चाहिए और डाकू की ही तरह उसके साथ पेश आने का हरेक नागरिक को जन्मसिद्ध अधिकार है। इसलिए वे पुलिस को लूटपाट करने से रोकने के लिए अपनी पूरी ताकत का प्रयोग करेगे। अपनी स्त्रियो के सतीत्व की रक्षा करने के लिए तो वे जरूर ही अपने शरीर-बल का प्रयोग करेंगे। अहिंसा का सिद्धान्त कमजोर और नामर्द आदमी के लिए नही है। वह तो शूरवीर और बलवान् के लिए है। जो ऊँचे-से-ऊँचा शूरवीर होता है वह दूसरो पर हाथ न उठाकर उनके हाथ से मरता है। वह किसी की जान लेने या किसी को चोट पहुँचाने से अपने को जो दूर रखता है उसका यही कारण है कि वह यह जानता है कि चोट पहुँचाना अनुचित है। चंपारन के ग्रामवासियों के बारे में यह बात नही है। वे तो पुलिस को देखकर भागते हैं। उन्हें यदि कानून का भय न हो तो वे पुलिस पर जरूर हमला करे और उसे मार भी डालें। उन्हे अहिंसा का पुण्य तो मिलता नही, बल्कि कायरता और नपुसकता के लिए उन पर उलटी फटकार पड़ती है—सरकार और मनुष्यजाति दोनो के ही आगे वे अपराधी बनते हैं।''

साप्ताहिक पत्र

[१८३ पृष्ठ से आगे]

मैने कहा था कि विनोबाजी का यह प्रयोग अपूर्व है। पर मुझे यह पता नहीं था कि उस प्रयोग का यह भी उद्देश होगा कि कतैये के लिए एक-सी मजदूरी का मान निश्चित किया जा सकता है। तीन-चार सप्ताह मे विनोबाजी को यह पता चला कि दाहना हाथ अब थकने लगा है और उसे थोड़ा आराम न दिया गया तो वह काम नहीं देगा। लेकिन फिर प्रयोग कैसे जारी रखा जाय ? अतः सव्यसाची अर्जुन की तरह उन्होने बायें हाथ से कातना शुरू किया। पहले दिन तो कठिनाई मालूम हुई, और ६४० गज से अधिक नही कात सके। लेकिन कुछ ही दिनो मे उन्हें अद्भुत सफलता मिली, और मेरा खयाल है कि उस सफलता से उन्हे खुद ही आश्चर्य हुआ होगा। अब वे आध-आध घंटे का बीच देकर दाहिना-बायां हाथ बदलते हुए निश्चित किया हुआ २४१२ गज सूत आठ घंटे से कुछ ही अधिक समय मे आसानी से कात लेते हैं। दाहिने हाथ से बायें हाथ का वेग यद्यपि कुछ कम है, तो भी वह अद्भुत है, याने आध घंटे में वे अपने बायें हाथ से ३० नंबर का २०० गज मजबूत सूत कात लेते हैं। इस तरह नित्य यह कताई का क्रम आठ घंटे चलता है। इससे अधिक प्रामाणिक और गम्भीर कार्य की कोई कल्पना कर सकता है ? इस प्रकार की एकाग्रता से जो आदमी काम करने को तैयार हो उसे पेटभर मजदूरी न देना कहा का न्याय है ? इस दलील का विरोध करना बहुत ही टेढ़ी खीर है।

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

टिप्पणियाँ

एक हरिजन-सेवक का स्वर्गवास

गत २३ जुलाई को हमारे हरिजन-सेवक-संघ के कोषाध्यक्ष श्री ज्वालाप्रसादजी मंडेलिया का स्वर्गवास हो गया। संघने अपना एक अनमोल रत्न खो दिया। मंडेलियाजी में यो तो अनेक सद्-गुण थे, पर हरिजन-सेवा की लगन तो उनकी खास हृदय-निधि थी। अस्पृश्यता-निवारण की प्रचंड ज्वाला उनके अंदर अंतिम घड़ीतक जलती रही। हरिजनो के साथ उनका सहोदर-सम्बन्ध था। और यह प्रेमसंबंध अंततक अटूट बना रहा। अरथी मे उनके प्रिय हरिजनोंने भी कंधा लगाया। एक भंगी को तो बरसो से आप घर में अपने परिजन की भांति रखते थे। हरिजन-प्रेम के पीछे आपको जातिकृत अपमान के भी कडुवे घूंट पीने पड़े थे। पिलाणी (जयपुर) में आपका स्थापित किया हुआ हरिजन-छात्रालय आपके हरिजन-प्रेम का एक पवित्र स्मारक है।

इसी तरह विधवाओ के भी प्रति मंडेलियाजी के हृदय मे बड़ी गहरी सहानुभूति थी। विल मे १५०००) रुपये विधवाओ के निमित्त इस रूप मे लिख गये हैं कि पिलाणी के ८० कोस के इर्द-गिर्द जो विधवा पुनर्विवाह करना चाहे, उसे १०००) बतौर दहेज के दिये जायँ। ७५००) का सूद उनकी वृद्धा माता को मिलेगा, और उनकी मृत्यु के बाद यह मूलधन हरिजन-शिक्षा में खर्च किया जायगा।

साम्प्रदायिक जहर से मडेलियाजी का हृदय-घट एकदम खाली था। हिंदू-मुसल्मान के बीच वे जरा भी भेद नहीं मानते थे।

उनका एक गुण तो बरबस मोह लेना था। और वह था उनका अभिमानरहित सादा सयममय जीवन। बिडला मिल के सेक्रेटरी के पद पर रहते हुए भी अभिमान उन्हे छूतक नहीं गया था। तरुणाई और फिर विधुरावस्था मे अपने जीवन को उन्होंने जिस तरह सयत रखा वह तो प्रत्येक साधन-सपन्न मनुष्य के लिए एक अनुकरण करने जैसी चीज है।

ईश्वर दिवगत मडेलियाजी की आत्मा को चिर शाति और उनकी शोकविह्वला वृद्धा माता को धैर्य का सहारा दे। **वि० ह०**

भारत-भाग्ययात्रा

६ और १३ एप्रिल के दर्म्यान राष्ट्रीय सप्ताह मे हमारी चौथी यात्रा हुई। इस यात्रा मे ७ कार्यकर्त्ता थे, जिनमे दो स्त्रिया भी थी। श्रीमती दुर्गाम्बा और श्रीयुत राम रायप्पा के नेतृत्व मे यह यात्रा हुई। यह कुल ३८ मील की यात्रा थी और इस यात्रा के यात्री ११ गावो में गये।

पाचवी यात्रा आश्रम से १९ एप्रिल को आरभ हुई और २ मई को समाप्त। इसमे ९ यात्री थे, जिनमे ३ स्त्रिया थी। श्रीयुत एन० वेंकटाचल जाति और श्रीमती एस० शेषाम्मा के नेतृत्व मे यह यात्रा हुई। कुल १० गाव और ७९ मील की यह यात्रा थी—३२ मील के चक्कर मे तो ये १० गाव थे, और आश्रम से गावो तक जाने-आने का फासला ४७ मील का था। पहले दल के ४ यात्रियोने, जिनमे २ स्त्रिया भी थी, पूरे सात दिन कार्य किया। दूसरी यात्रा के ३ यात्रियोने १४ दिन, और बाकी के लोगोने दो दलो मे विभक्त होकर २ दिन से लेकर ९ दिनतक कार्य किया। हमेशा की तरह इन यात्राओं मे भी हमारे कार्यकर्त्ता खादी, स्वदेशी वस्तुएँ, आश्रम की बनी चीजे, तकलिया वगैरा ले गये थे। दोनो यात्राओं मे सामान इत्यादि के लिए बैलगाडी भी साथ रहती थी। अधिकतर पैदल ही दोनो यात्राएं हुई। ७ जगहों पर मैजिक लाल्टेन के जरिये ग्रामसेवा पर व्याख्यान दिये गये, और दूसरी यात्रा मे ग्रामोफोन के शिक्षाप्रद रिकार्ड तमाम गावो मे सुनाये गये। बिक्री और खर्च नीचेलिखे अनुसार है .—

बिक्री—

मद	चौथी यात्रा	पाचवीं यात्रा	कुल
खद्दर	३९३≡)॥	५०२॥)।	८९५॥≡)॥।
स्वदेशी वस्तुएँ	१७॥=)	५०॥)॥	६८=)॥
आश्रम की चीजे	१॥।=)	१०॥)	१२।=)
चेरुकपालिम के उस्तरे	×	१।=)	१।=)
दोनो यात्राओं में बिक्री से कुल आय हुई			९७७॥=)।
खर्च—	५॥)	१४॥–)।	२०।–)।

जी० सीताराम शास्त्री

एक सेवक की दिनचर्या

सूरजगढ़ (जयपुर) से एक हरिजन अध्यापक लिखते हैं .—

"सेवाश्रम नारेली से ट्रेनिंग समाप्त करके जब से यहा लौटा हूँ, मेरी यह दिनचर्या रहती है :—

तडके ४॥ बजे उठता हूँ। शौचादि से निवृत्त होकर प्रार्थना और भजन करता हूँ। फिर पाठशाला और उसके आसपास की सफाई करता हूँ। ७ बजे से १० बजेतक पाठशाला मे पढ़ाता हूँ। स्नान-भोजन, विश्राम आदि से निपटकर ३ बजे से ५॥ बजेतक फिर पाठशाला चलाता हूँ। इसके बाद, हरिजन-मुहल्लों मे चक्कर लगाता हूँ। ७॥ बजे से ९ बजेतक प्रार्थना के पश्चात्, रात्रि-पाठशाला बन्द करके अपनी दिनचर्या रोजनामचे मे लिखता हूँ और १० बजे सो जाता हूँ।"

यद्यपि इस दिनचर्या मे सुधार और सेवाकार्य मे वृद्धि की गुजायश है, फिर भी अनेक दृष्टियो से यह मनन करनेयोग्य है। यह भाई हरिजन है, साधारण पढ़े-लिखे हैं और दो बरस से हरिजन-शिक्षा तथा सेवा का काम कर रहे हैं। वैसे इनके स्वच्छता-प्रेम की छाप तो हमारे प्रान्तीय संघ के निरीक्षको पर हर बार पडी है और इस दृष्टि से हमारी बहुसख्यक पाठशालाओ मे इनकी पाठशाला का विशेष स्थान रहा है। लेकिन जब यह २ मास मेरे पास रहकर गये, तब मुझे इनके गुणो का अधिक परिचय हुआ। इनकी सफाई, विनम्रता, परिश्रमशीलता, मधुर व्यवहार और ज्ञानपिपासा देखकर, और इनकी भाति अन्य हरिजन कार्यकर्ताओ के गुण देखकर भी मुझे यह विश्वास हो गया है कि उचित अवसर मिले तो हमारे हरिजन भाई किसी भी क्षेत्र मे सवर्णों या अन्य लोगो से पीछे न रहे।

जिस तरह यह सज्जन अन्य हरिजन-सेवको के लिए कई बातो मे उदाहरणस्वरूप हो सकते है, उसी तरह इनकी समिति के अध्यक्ष भी सहायको के लिए दृष्टान्तरूप बन सकते है। यह सज्जन पाठशाला का आधा खर्च देते हैं, खादी पहनते हैं और समाज के विरोध की कुछ भी पर्वा न करके हरिजन-कार्य मे खूब योग देते हैं। इनकी ओर से सूरजगढ़ और आसपास के गावो के २० गरीब और अनाथ हरिजनों और हरिजन बहिनो को ६॥ मन अन्न प्रतिमास और समय-समय पर कपडा भी मुफ्त बाटा जाता है।

रामनारायण चौधरी

"पानी-फंड"

१४ जुलाई, १९३५ तक 'पानी-फड' में निम्नलिखित दान प्राप्त हुए .—

श्रीयुक्त रामकुमार भुवालका	५००)
,, मानीराम पोद्दार	५००)
,, छगनलाल मेताबभाई, ब्रह्मभट्ट, गोधरा	१०१)
रणछोडदास धारसी क०, कराची	५००)
डॉ० एम० जी० देसाई, गढासिया (वाया बबई)	१०)
	१६११)
पूर्व प्राप्त	१२१४६)
कुल	१३७५७)

प्रधान मंत्री, ह० से० संघ

बढ़े चलो

एक ग्रामसेवक के एक लबे पत्र से कुछ अवतरण लेकर मैं नीचे देता हूँ .—

"इस गांव मे जिस कदर द्वेष और कलह का बाजार गरम है उसकी कल्पना से ही मेरा दिल कांप उठता है। हर दस या पन्द्रहवे दिन किसी-न-किसी को धमकी की चिट्ठी मिलती है; और वह निरी धमकी ही नही होती, उसका अमल भी फौरन ही होता है। अकसर धमकियो की चिट्ठियो में लिखे अनुसार अच्छे-से-अच्छे आम के दरख्त काट डालने, गंजियो मे आग लगा देने, ढोर मार डालने, और लोगों का खून कर

देनेतक की खबरें सुनने में आती है। ये लोग साल मे छै-छै आठ-आठ महीनेतक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं, इसलिए शैतानी नही सूझेगी, तो सूझेगा क्या ?

मैं नित्य उनके आगन मे जाकर झाड़ू देता हूँ। वे मेरी तरफ दात किचकिचाके कहते है, 'तुम तो आज हमारा उद्धार करनें आये हो। तुम्हे यह सब कूडा कचरा देखकर घृण चढती है,पर हम तो जनम से इसी नरक मे रहते हैं, तो भी मरे नहीं। कृपाकर तुम हमारा पिंड छोड़ दो।' मैं हँस देता हूँ, और अपना काम चुपचाप किये जाता हूँ। फिर कुछ लोग मेरे हाथ से झाड़ू छीन लेते और कहते हैं, 'हम तुम्हारा आभार मानते है। पर नित्य यह सब किसलिए करते हो ? यह अब हमारे लिए असहनीय हो गया है।'

इस ऋतु में तमाम जगह-जगह बिच्छू-ही-बिच्छू निकल रहे हैं। उस दिन जब हमारे मित्र श्रीयुक्त—आये थे, तब तीन आदमियो को बिच्छूने काटा था। एक उनमे हरिजन था। मेरे घर के अदर तो वह आता नही था। मैंने बहुत विनती करके उसे अपने मकान पर बुलाया और दवा लगाई। इतना करना था कि गाव मे जैसे तूफान आ गया। हम धीरज के साथ लोगो को समझाने लगे। हमने कहा, 'आप लोग जितनी चाहे छूतछात मान, पर हमसे आप यह आशा न रखे कि हम भी आपकी ही तरह छूतछात मानेगे।' पर वहा कौन हमारी बात सुनता ! वे तो खूब क्रोध से गरज-गरज कर कहने लगे, 'देखो जी, तुमने अगर ऐसा काम किया, तो हम गाव मे नहीं रहने पाओगे।' हरिजन-बस्ती वहा से बिल्कुल पास ही है, और हम उसमें चले जाते, पर हरिजन खुद हमे रहने को जगह न देते। तब हम क्या करते ? हम चुपचाप कडुवा घूट पी गये। लोगो से बहस करना छोड दिया, इससे उत्पात थम गया। मैं नहीं जानता कि यह समझौता करके मैंने उचित किया या अनुचित, पर मैं यह मानता हू कि अभी हाल उनके पुराने वहमो के लिए उन्हे छेडना मे व्यर्थ समझता हू। मेरा यह विचार है कि कुछ दिन तो अस्पृश्यता की उनसे कोई बात ही नही करनी चाहिए। मुझे तो अभी उनकी इतनी सेवा करनी चाहिए कि अगर मै यह गाव छोडकर चला जाऊ तो उन्हे मेरा बिछोह दुखदायी मालूम दे। इस उत्पात के कारण अब सिवा एक के और कोई विद्यार्थी पढने नही आता, और शाम को सिर्फ तीन-चार ही आदमी मेरे पास बैठने आते हैं।

कुछ दिन पहले मुझे यहा कूडे-कचरे का एक भारी घूरा साफ करना पडा था। मेरे मकान के पिछवाडे एक आम रास्ता है, जिसका कुछ हिस्सा गोबर, जूठन और किस्म-किस्म के कूडे-कचरे से बिल्कुल पुर गया था। वहा कूडा-कचरा डालकर घूरा न बनाने के लिए मैंने बीसियो बार लोगो से हाथ जोड-जोडकर विनती की, पर उसका कोई नतीजा नही निकला। तब मै खुद ही वह ढेर साफ करने लगा। इस पर मुहल्ले की स्त्रियोने मुझे खूब गालिया दी। वे कहने लगी, 'यह रास्ता तो आम रास्ता है, इस पर सब का हक है। यह कुछ तुम्हारी बपौती नही है, जो लगे साफ करने ! हम चाहे साफ रखें, चाहे कचरा फेंके, तुम्हे इससे मतलब ?'

मगर मैंने तो अपना काम छोड़ा नही। चार दिनतक रोज करीब सौ-सौ टोकरी कचरा उठाया। कुछ दिन तो मेरे साफ किये हुए रास्ते पर स्त्रिया आकर नित्य कूडा-कचरा डाल जाया करती। मैं एक शब्द भी नही कहता था,चुपचाप उठाकर उसे फेंक देता था। मेरे इस काम का पुरुषो पर अच्छा प्रभाव पड़ा। उन्होने स्त्रियो को अच्छी डांट बतलाई, और अब वह रास्ता साफ रहने लगा है।

यहां जो आपसी अदावत का जहर फैल रहा है, उसका तो मेरे पास कोई उपाय ही नही। प्रेम ही उसका एक इलाज है, पर उसका असर तो बहुत ही धीरे-धीरे होता है ! फिर भी मुझे अपने प्रत्येक कार्य मे उनके प्रति प्रेम प्रगट करते रहना चाहिए।

मुझे इसका पता नही कि मै सच्चे रास्ते पर चल रहा हूँ या गलत रास्ते पर। कभी-कभी मेरे मन मे यह आता है कि इन लोगो को इनकी अपनी किस्मत पर छोड़कर क्यो न एक अच्छे ईमानदार ग्रामवासी की तरह रहूँ। सुधारक के जीवन से ईमानदार किसान का जीवन अच्छा है। क्यो न थोडे-से मित्रो को लेकर यहा बस जायें और मजे में खेती करें और अपनी गृहस्थी चलाते हुए लोगो के लिए दृष्टान्तरूप बन जायें ?

और हम इन लोगो को, जो साल मे छै या आठ महीने ठलुवे ही बैठे रहते हैं, क्या काम दे ? चर्खा तो वे छुएँगे नहीं। मिट्टी खोदेगे, दरख्त काटेगे, पत्थर भी तोडेगे, पर चर्खा चलाना तो उनकी दृष्टि मे शायद ऐसा काम है जो मर्दों को शोभा नही देता।

मै नित्य रास्ते पर झाड़ू लगाता हूँ, कचरा व मैला साफ करता हूँ, दोपहर को थोडा पढाता हूँ, लोगो से मिलता-जुलता हूँ, खेत मे खोदाई का काम करता हूँ, झाडो की ठुठिया उनके साथ उखाडने लगता हूँ, नियमित रीति से प्रार्थना करता हूँ, और शाम को जो लोग मुझसे मिलने आते हैं उनके साथ बैठकर साधारण ज्ञान की बाते करता हूँ। आटा अपना खुद पीस लेता हूँ, पर मुझे हर चौथे दिन एकबार पीसना पड़ता है।"

यह कहा जा सकता है कि हमारे इस पत्र-लेखक मित्र को जैसा अनुभव हुआ है वैसा अनुभव गावो मे जाकर बैठ जानेवाले प्रत्येक जन-सेवक को होता है। सिंदी गाव में काम करते हुए क्या इसी तरह की कठिनाई हमें नही हो रही है ? मगर मुसीबतें छोटी हो या बडी, उन्हे पार किये बिना काम चलने का नही। हमारे मित्र इसपर कहेगे कि इस बात का लिखना आसान है, पर करना कठिन है। 'जाके पायँ न फटी बिवाई, सो कहा जाने पीर पराई।' मै यह मानता हूँ कि मेरे-जैसा मनुष्य जो गाव मे जाकर बैठ नही गया है वह अगर ऐसी सलाह देता है तो उसमें अविवेक तो है ही, पर ऊपर जो बात मैंने लिखी है वह बतौर सलाह देनेवाले के नही, बल्कि इस क्षेत्र मे काम करनेवाले एक सेवक के रूप मे लिखी है। गावो मे हमें सुधारक बनकर नही जाना चाहिए। उन्हे किसी सुधारक या उद्धारक की जरूरत नही। उन्हे हमारी जरूरत हो तो हमे वहा उनके विनम्र सेवक के रूप मे ही जाना चाहिए। हमें उनके वहमो और विचित्रताओ, उनकी क्षुद्रताओ और त्रुटियो को सहन करना चाहिए। बिना बोले काम चल जाय तो न बोलना चाहिए। ताने मारें या अपमान करे तो

वह भी चुपचाप हँसते हुए सहन कर लेना चाहिए । जार्ज मैकडॉनल्ड नामक एक लेखकने अंग्रेजी मे 'सर गिबी' नामका एक उपन्यास लिखा है । उसका नायक गिबी गूंगा है, तो भी उसमे दिखाया गया है कि एक मूक मनुष्य किस तरह निस्स्वार्थ सेवा करता है । उसकी सेवा का नमूना हमे अपने हृदय पर अंकित कर लेना चाहिए । जितना ही हम अपने अहंभाव का त्याग करते जायँगे उतना ही हमे अपने सेवा-कार्य मे आनंद आयगा, और हमारा काम भी आसान हो जायगा । ग्रामसेवक को चिढ़ना नही चाहिए, न थकना चाहिए, और न आसमान मे उड़ने का प्रयास ही करना चाहिए । उसे अगर लोगो का हृदय जीतना है तो उसे रजकण की नाई नम्र और सुमन-सुवास-सरीखा सुमृदु बनना चाहिए । हम ऐसे कितने ही लोकसेवकों के दृष्टान्त पढ़ते हैं जिन्होने दूर-दूर के देशो मे जाकर धूनी रमाई और वहा अपने इष्ट कार्य की बलिवेदी पर प्राणतक चढ़ा दिये । उन हुतात्माओ के मुकाबिले हमारा काम तो बहुत आसान और सीधा-सादा है, क्योकि हमें तो अपने ही भाई-बहिनों की सेवा करनी है, और अपने ही दरवाजों पर लगे हुए कूड़े-कचरे के घूरों को साफ करना है ।

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

खादी और नवनिर्माण

(२१वें अंक से आगे)

स्वदेशी प्रदर्शिनी के आयोजकों से

इसलिए अब जो प्रदर्शिनियां हो, उनमे पहले, दूसरे और तीसरे नंबर के खादी-कार्य की प्रगति के सूचक और सर्वसाधारण के लिए बोधप्रद तीनों विभाग अलग-अलग रक्खे जाने चाहिएँ । प्रदर्शिनी में उस स्वदेशी के भिन्न-भिन्न विभाग हो, कि जिसे हम शत प्रतिशत स्वदेशी कहते है । स्वावलंबन विभाग मे स्वयं कातने, धुनने और बुननेवाले बड़े-बड़े वकील, बैरिस्टरो और डॉक्टर परिवारो के साथ उनकी बराबरी मे किसानो और मजदूरों को भी स्थान मिलना चाहिए, जो वस्त्र की दृष्टि से उन्ही की तरह स्वावलम्बी है, पास मे उनके उद्योग और कारीगरी के नमूने रक्खे जायँ, कोष्टक, नकशे, चित्र, अंक, और तफसील का एक अलग विभाग हो । दोनों प्रकार के तरीकों मे, बुद्धि के उपयोग और शुद्ध व्यवस्थित कार्य-प्रणाली के कारण जो अन्तर मालूम होता है, एक पृथक् विभाग-द्वारा दर्शको को उसकी प्रत्यक्ष प्रतीति होनी चाहिए । दर्शको को यह भी बताना चाहिए कि तकुआ, चमरखा, बॉशर, माल, तकुए के चक्कर आदि मे सुशिक्षित समूह-ने जो लाभ उठाय है, किसानों और मजदूरों को उनकी पुरानी रीति से होनेवाले लाभ की तुलना में वे लाभ कितने महत्व के है । इस तुलनात्मक प्रदर्शन की रीति इतनी चोकस और सरल होनी चाहिए कि देखते ही दर्शक ठिठक जाय । यदि प्रदर्शन मे संगीत और वाद्य का विभाग हो तो यह ध्यान रक्खा जाय कि वह नाटयशाला, सभामंडप या सरकस का तम्बू न बन जाय और न उसमे देशी बनावट के बैण्ड, हारमोनियम, या पियानो ही प्रदर्शित किये जायँ । इस विभाग मे तो सहनाई, नौबत, वीणा, भेरी, गोमुख, शख, आदि-आदि वस्तुओ का जीर्णोद्धार करने की दृष्टि मे इनके नमूनो का संग्रह करना चाहिए और इनके बजानेवालो को प्रदर्शिनी में उपयुक्त स्थान मिलना चाहिए । यह तो है ही नहीं कि शहरवालों को बैंड और हारमोनियम कभी सुनने को ही न मिलते हो ! लेकिन सहनाई, भेरी, वीणा आदि वस्तुएँ तो नगर-निवासियो मे विचार-जाग्रति कर सकती है; और जो ग्रामवासी या उनके प्रतिनिधि प्रदर्शन देखने आवें वे अपने हृदयो मे आशा और उत्साह के साथ मन में यह शुभ संदेश लेकर उमगपूर्वक अपने गावो को लौटें कि अब तो हमारे पुराने कारीगरो, बजरों, बाज-त्रियो, नटो, सुनारो, लुहारो आदि-आदि के लिए काम निकल रहे है—फिर से उनकी कदर होने लगेगी और उनके दिन पलटेंगे । उन्हे यह सोचकर धीरज बँधेगा कि लोग अब फिर से उनकी कला और कारीगरी की दाद देने लगे है । इसीका नाम शत प्रतिशत स्वदेशी है । प्रदर्शन मे इसी प्रकार रस्सी बनानेवालो, बँसफोड़ो, झाड़ू, चटाई आदि बनानेवालो, गुथाई और रफूगिरी का काम करनेवालो को स्थान मिलना चाहिए । उनके कार्य की सराहना होनी चाहिए, खादी का यही व्यापक अर्थ है ।

चर्खा नई संस्कृति का प्रतिनिधि

इस प्रकार खादी के गर्भ में इस विशाल देश की पुनर्घटना की सम्पूर्ण कल्पना रही है। और इसी कारण चर्खे को नवनिर्माण या नवीन सस्कृति का प्रतिनिधि माना है और राष्ट्र की आदर्श सृष्टि के प्रतीक-स्वरूप राष्ट्रीय झण्डे पर भी उसकी स्थापना की गई है । और इसी हेतु से देश के आर्थिक पुनर्निर्माण मे खादी और वस्त्र-स्वावलंबन को कुंजी की उपमा देकर उन्हें प्रथम पूजा का सम्मान दिया जाता है । इस योजना की तह में दो बातों का निश्चय रहा है—एक तो देश की समस्त उद्यमशक्ति और साधन-सामग्री की बुद्धिपूर्वक विराट् और व्यापक पुनारचना करना, और दूसरे, शहरो और बड़े पैमाने पर चलनेवाले कारखानों से दूर रहकर सर्वसाधारण को घर बैठे ही उद्योगपरायण बना देना । और इसीलिए बारबार यह पुकार उठाई जाती है कि पढ़े-लिखे लोग स्वेच्छा से गरीबी का बाना धारण करके इस नवनिर्माण के लिए गावो मे जाकर बस जायँ और वहा के कामो मे तल्लीन होजायँ, गड़जायँ ।

इस लेख में जिन बातो का उल्लेख किया गया है, वे तो समुद्र में बूंद के बराबर है, केवल उदाहरणरूप है । एक बार इस दृष्टि को समझ लेने के बाद तो बुद्धिमान लोक-सेवकों को अपने आप ही बहुत-सी बाते सूझती और जँचती रहेंगी । अपने लक्ष्य को ध्यान मे रखकर विचार करने मे उन्हे सहज ही यह मालूम होता रहेगा कि कौनसी चीजे उनकी मर्यादा में आती है और कौनसी उससे निकल जाती हैं । गांवो को फिर से स्वावलम्बी और उद्योगमय बनाने के नये-नये साधन और नई-नई रीतियां अपने आप उन्हें सूझेंगी और काम इतना रोचक बन जायगा कि लोग अपना आपा भूलकर उसके रंग में रंग जायँगे । ऐसे अनु-रक्त कार्यकर्त्ताओ को अपने कार्य से जो सुख और तृप्ति प्राप्त होगी, वही उनका बड़े-से-बड़ा पुरस्कार और पारिश्रमिक होगा । उसकी तुलना में दूसरे सब इनाम और आकर्षण उनके लिए हेय होंगे, निरर्थक होंगे ।

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

आरंभ कैसे करें ?

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३]

दिल्ली, शुक्रवार, २ अगस्त, १९३५.

[संख्या २४

विषय-सूची

खादी-बिक्री की कला

[श्री विठ्ठलदास जेराजाणी]

[बम्बई के विख्यात खादी-विक्रेता **श्रीयुत विठ्ठलदासजी जेराजाणीने** खादी-बिक्री की कलापर एक सुन्दर विचारोत्तेजक लेख लिखा है, जो नीचे दिया जाता है—**का० ना० वि०**]

"चर्खा-संघ का या चर्खा-संघ-द्वारा प्रमाणित खादी-भण्डार, यानी शुद्ध हाथ-कते, हाथ-बुने कपड़े की दूकान। जो खादी खरीदना चाहते हैं, वे खादी-भण्डारों में जाते हैं। यह सच है कि कभी-कभी कुछ ऐसे लोग भी खादी-भण्डारों में आ पहुँचते हैं, कि जिनके लिए खादी एक कुतूहल की वस्तु होती है, फिर भी अधिकतर तो थोड़ी बहुत खादी खरीदने की इच्छा से ही लोग खादी-भण्डारों में आते हैं। खादी बेचनेवालों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे इन दोनों प्रकार के लोगों को सन्तुष्ट करें। यह सोचकर कि 'ऊँह, यह तो खादी देखने आया है,' आनेवाले की उपेक्षा करना एक बड़ी और भयंकर भूल है। केवल दूकान का माल बेचना ही बेचनेवाले का काम नहीं है, बल्कि आनेवालों को दूकान में रक्खा हुआ माल दिखाना भी उसका एक महत्त्व का कर्तव्य है। *अतएव दूकान पर* आनेवाला किसी भी हेतु से क्यों न आवे, बेचनेवाले को तो हरएक के साथ समान व्यवहार ही करना चाहिए। एक बार किसी दूकान या भण्डार पर आया हुआ मनुष्य, आवश्यकता पड़ने पर पुनःपुनः उसी दूकान पर पहले पूछताछ करने आवे, तो समझिए कि वह एक सफल दूकानदार है।

बेचनेवाला नया हो, या पुराना और अनुभवी हो, वह अपनी शक्तिभर तो खरीदार को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करता ही है। पश्चिमी देशों में तो बिक्री का एक स्वतन्त्र शास्त्र बन गया है। *उस शास्त्र का मर्म इतना ही है* कि दूकानदार अपने ग्राहक के मन में हर तरकीब से अपना माल खरीदने की लालसा उत्पन्न करता है—भूख जगाता है। किसी भी रीति से अपने धन्धे को बढ़ाना ही इसका हेतु होने से इसमें नीति-अनीति, सत्य-असत्य, सुरुचि अथवा कुरुचि की बहुत ही कम पर्वा की जाती है।

अवश्य ही खादी बेचनेवाले का यह ध्येय नहीं है। खादी-आन्दोलन इसलिए शुरू नहीं किया गया है कि जो खादी का व्यापार लेकर बैठे हैं, वे हर किसी उपाय से जनता को खादी खरीदने के लिए मजबूर करें। हमें तो खादी बेचकर अपने करोड़ों देशवासियों की सेवा करनी है। इसलिए खादी बेचते समय उसे मोहक और आकर्षक बनाने की अपेक्षा बेचनेवाले को चाहिए कि वह अपने ग्राहकों में खादी के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करे और खादी के गर्भ में अतर्निहित भूत-दया के भावों को जगावे और इस प्रकार खादी बेचे। अतएव अपने ग्राहक को सन्तुष्ट करने की हमारी और विदेशवालों की रीति में अन्तर तो रहेगा ही। हमारी दूकान पर आनेवाला आदमी खादी पहननेवाला हो या न हो, दूकान छोड़ते समय उसे यह अनुभव हो जाना चाहिए कि यदि मुझे तनिक भी लोक-सेवा करनी है, तो मेरे लिए सिवा खादी के और कुछ पहनना शर्म की बात होनी चाहिए। उसके दिल में यह बात बैठ जानी चाहिए कि हमारे देश की मौजूदा हालत में तो आधा पेट खाकर जीनेवाले करोड़ों भाई-बहनों की खादी-द्वारा आज जितनी सहायता की जा सकती है, उतनी और किसी उपाय से नहीं की जा सकती।

जनता में यह विश्वास उत्पन्न करने के लिए खादी-भण्डार की सजावट और खादी-विक्रेता का स्वभाव, साधारण दूकानों और दूकानदारों की अपेक्षा भिन्न होना चाहिए। खादी-भण्डार का आकर्षण केवल आंखों को चौंधिया देनेवाला न हो, बल्कि उसकी शोभा तो एक सुन्दर देवालय की तरह सात्त्विक होनी चाहिए। खादी-भण्डार खोलते समय हमारे दिल में यह भाव होना चाहिए कि हम एक देव-मन्दिर स्थापित कर रहे हैं। देवालय की तरह ही खादी-भण्डार की पवित्रता भी उसकी अन्तर्बाह्य स्वच्छता पर निर्भर है। खादी-भण्डार भी अन्दर और बाहर से बिलकुल स्वच्छ और साफ रहने चाहिएँ। इसके लिए दिन में कम-से-कम दो बार भण्डारों की सफाई अवश्य की जानी चाहिए। बम्बई के खादी-भण्डार की अपेक्षा छोटे शहरों और कस्बों के भण्डारों में धूल जमने की अधिक सम्भावना रहती है। गर्मी में तेज हवा और अन्धड़ों के कारण दूकान में धूल की तह-पर-तह जमने लगती है, और दूकान धूल से भर जाती है। दूकानदार सहज ही इस धूल को झाड़-झटककर दूकान को साफ कर लेता है। लेकिन आमतौर पर दूकानदार का ध्यान उस धूल, कूड़े-कचरे, जाले वगैरा पर नहीं जाता, जो कोनों में, फर्नीचर पर, खूंटियों और छतों पर, तस्वीरों और बत्तियोंपर रहता है। खादी-भण्डार के सञ्चालकों को इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। भण्डार की फर्श हफ्ते में कम-से-कम दो बार तो अवश्य ही धोना चाहिए, और आसपास के स्थानों, नालियों, गटरों और मोरियों को भी साफ रखना चाहिए।

मन्दिरों की तरह भण्डारों में और भण्डारों के सामने भी मंगल-दर्शन होने चाहिएँ। यह तो एक जानी हुई बात है कि पारसी

दूकानदार शराब की दूकानो के सामने पानी छिड़कते हैं, उसे रांगोली से सजाते हैं, और पत्तो या फूलो का तोरण द्वारपर बाधकर अपनी अमंगल दूकान को भी बाहर से मांगलिक बनाने का प्रयत्न करते हैं। खादी-भण्डारो का आन्तर्दर्शन तो मांगलिक होना ही चाहिए, साथ ही उनका बाहरी रूप भी आखो को मगलमय दिखना चाहिए। आने-जानेवालो को उधर से निकलने मे सहज ही प्रसन्नता का अनुभव होना चाहिए, और उस प्रसन्नता के वश हो उन्हे भण्डार की ओर खिचा चला आना चाहिए। (अपूर्ण)

राजपूताने में हरिजन-कार्य

राजपूताने के हरिजन-सेवक-सघ के मत्री श्री शोभालाल गुप्तने मई मास की जो रिपोर्ट हमारे पास भेजी है, उसे देखने से मालूम होता है कि वहा हरिजन-कार्य अच्छी सतोषजनक प्रगति कर रहा है। रिपोर्ट के कुछ महत्वपूर्ण अश हम नीचे देते है। पानी के प्रबध क सबध मे लिखा है :—

"इस महीने मे हरिजनो के जल-कष्ट-निवारण-कार्य मे हमे विशेष सफलता मिली। फतहपुर (जयपुर) मे भगियो के लिए एक कुआ बनना आरभ हो गया। रैनी (बीकानेर) मे जो कुआ अधूरा पड़ा हुआ था, वह बनकर तैयार हो गया। खड़लाई (डूगरपुर) मे एक कुआ खुदवाया गया। पाच पुराने कुओ की मरम्मत करवाई जारही है। यह भी सन्तोष की बात है कि चिड़ावा (जयपुर) मे मेहतरो के लिए कुएँ की योजना को कार्यरूप देने के लिए खासतौर पर कोशिश की जारही है। भादरा (बीकानेर) मे एक कुआ बनवाने की योजना थी, किन्तु बीच मे स्थानीय परिस्थिति के कारण यह प्रश्न खटाई मे पड गया था। खुशी की बात है कि इस कुएँ के लिए २५०) रुपया एक ऐसे स्थान से मिल गया है, जिसकी कल्पना भी न थी। सीकर (जयपुर) के मेहतरो के लिए भी कुआ बननेवाला था, किन्तु वहा की राजनीतिक स्थिति के कारण वहाँ का काम बन्द पड़ा है। फतहपुर के कुएँ के खर्च का सारा भार अपने सिर पर लेकर श्री मोहनलालजी बगड़ने उन लोगो के सामने एक अच्छा उदाहरण रखा है, जिन्हे परमात्माने भाग्यशाली बनाया है। इस कुएँ पर २०००) से अधिक खर्च होने की सभावना है। रैनी (बीकानेर) का कुआ सुधरवाने के लिए जितने रुपयो की आवश्यकता थी वह भी स्थानीय श्रीमन्तो की उदारता से पूरी हो गई है।"

बड़लू और हिंडौन के हरिजन-सेवको का निम्नलिखित सेवा-कार्य अत्यत प्रशसनीय और अनुकरणीय है। कितना पवित्र जलयज्ञ है यह :—

"बड़लू (मारवाड) और हिंडौन (जयपुर) के सघ के कार्यकर्ताओने अपने चन्द मित्रो के सहयोग से उन लोगो के सामने सेवा का एक नया क्षेत्र उपस्थित कर दिया है, जिनमे सेवा-भाव तो खूब है किंतु हरिजनों की पारस्परिक अस्पृश्यता के कारण अथवा हरिजनो के पानी की अलग व्यवस्था करने के लिए जो आवश्यक साधनो के अभाव मे हतोत्साह रहते हैं। ये लोग रस्सिया और बाल्टिया लेकर नित्य नियमपूर्वक एक सवर्ण-कुएँ पर जाते हैं। खुद अपने हाथो से पानी खीचते और विभिन्न हरिजन जातियो के लिए जल सुलभ करते हैं।"

रिपोर्ट मे एक अजीब अधविश्वास की चर्चा की गई है। सवर्णो के इस अंधविश्वास से हरिजनो को कितना मानसिक कष्ट पहुँचता होगा, इसकी जरा कल्पना तो कीजिए :—

"बड़लू (मारवाड) मे इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पाया गया। वहा ढोली एक हरिजन जाति है। ये लोग अपने मुर्दों को गाड़ते हैं। जब वर्षा कम या देर से होती है तो सवर्ण हिन्दू समझते हैं कि ढोलिया की कब्रो पर हल चलाने से इन्द्रदेव प्रसन्न हो जायँगे। अत बेचारे ढोलियो को तरह-तरह से तग करके उनसे उनकी कब्रो का पता पूछा जाता है।"

इतना सब होते हुए भी सघ को क्षितिज मे आशा की पर्याप्त किरणे दिखाई दे रही हैं। लिखा है :—

"जब एक ब्राह्मण युवक बिना किसी सकोच के खुले आम एक मेहतर से मिलता है, तब इसका प्रत्यक्ष और कुछ प्रसगो मे अनिवार्य असर होता है। बलाई के दिल मे भी यह जिज्ञासा होती है कि 'मै भी क्यो न ऐसा ही करूँ!' हमारी ऐसी पाठशालाओ की सख्या बढती ही जा रही है, जहा सब जातियो के विद्यार्थी बिना किसी भेद-भाव के साथ-साथ बैठते हैं। साथ ही ऐसे कुओ की भी सख्या, चाहे वह कम ही क्यो न हो, बढ रही है जिनसे हरिजन जातिया समान रूप से लाभ उठा रही हैं।'

शिक्षणप्राप्त अध्यापकों के द्वारा गावो मे कितना अच्छा कल्याणकारी सेवा-कार्य हो सकता है, इसकी एक झलक हम नीचे के पैरे मे मिलती है :—

"शिक्षण वर्ग के कारण हमारे शिक्षको को प्रान्तीय सघ के प्रमुख कार्य-कर्ताओं के घनिष्ठ सम्पर्क मे आने का अवसर मिलता है। वे हरिजन-सेवा की मूल भावना समझ लेते है। हरिजन सेवा किस प्रकार करनी चाहिए, इसका उन्हे पदार्थ-पाठ मिल जाता है। जब शिक्षक अपना शिक्षण-क्रम समाप्त करके सेवा-केन्द्रो मे पहुचते है, तो इस शिक्षण का परिणाम शिक्षकों के व्यक्तिगत जीवन और कार्य मे दिखाई देता है। प्रार्थना, यज्ञार्थ कताई, विद्यार्थियो की शारीरिक स्वच्छता और पाठशाला के आसपास की तथा ग्राम की सफाई की छूत किसी-न-किसी रूप मे नारेली से अजमेर, डूगरपुर, खोरा, सूरजगढ और सागवाडा आदि स्थानो मे फैल रही है। विद्यार्थियो को स्नान और दन्तमजन कराना हमारी पाठशालाओ मे एक नियमित काम बन रहा है। बामवाडा-केन्द्र के भीतरी उपक्षेत्रो मे मकानो के सुधार और पीने का पानी स्वच्छ रखने का काम शुरू कर दिया है। नाहरू-जैसे भयंकर रोगो से बचने और गदी आदतो से त्राण पाने के लिए बहुत-से लोग छाना हुआ पानी काम मे लाने लगे है। पाठशालाओ के कुछ विद्यार्थी उबला हुआ पानी पीने लगे है, और अपना पाखाना मिट्टी से ढकने लगे है। कुएँ के भीतर उतरने के रास्ते बन्द किये जा रहे है। कुछ मकानो मे खिड़किया खोल दी गई है। लगभग सौ परिवारोंने खाद के गढे खोद लिये हैं।"

राजपूताने के हरिजन-सेवक-सघने अपने विनम्र सेवा-कार्य का यदि यही प्रगतिकारक क्रम जारी रखा तो अवश्य एक दिन वह सवर्णों का हृदय पलट देगा, और निश्चय ही अस्पृश्यता का अंत हो जायगा। किन्तु सत्य और धैर्य का सहारा लिये बिना काम चलने का नहीं।

वि० ह०

मेरा दक्षिण-प्रवास

[४]

कासरगोड़—यह मेंगलोर जिले का एक ताल्लुका शहर है। यहां मैंने मजदूर-विभाग की हरिजन-पाठशाला देखी। मद्रास-सरकार इधर १५-१६ साल से हरिजनों की सहायता के लिए खास अच्छे खर्च पर जो मुहकमा चला रही है,उसे 'मजदूर-विभाग' कहते हैं। इस विभाग की ओर से सैकड़ो हरिजन-पाठशालाएँ इस इलाके मे चल रही हैं, और और भी अनेक हितकारी कार्य हो रहे हैं, जैसे कुएँ, सहकारी समितियां, छात्रालय इत्यादि। कासरगोड़ की इस पाठशाला में अध्यापिका एक देशी ईसाई महिला है। उसका काम बड़ा ही व्यवस्थित देखने में आया। यहीं पास में कुछ हरिजनों को सरकार के उक्त मजदूर-विभागने जमीन देकर बसाया है।

स्वामी आनंदतीर्थ—यह मलबार के एक युवा सन्यासी है। नायर जाति मे इनका जन्म हुआ, और एम ए पास करके केवल हरिजनो के हितार्थ ही इन्होंने यह भेष धारण कर लिया। अर्ध-अस्पृश्य तिया जाति के सुप्रसिद्ध गुरु श्री नारायण से इन्होंने प्रवृज्या ली थी। स्वामी आनंदतीर्थ के साथ मेरा पत्र-व्यवहार तो हुआ था, पर उनसे मिलने का अवसर मुझे अभी आया। यह दो भिन्न-भिन्न स्थानो पर हरिजन-आश्रम चला रहे हैं। मैंने उनका पायानूरवाला आश्रम देखा। १६ लड़के और २ लड़कियां इस आश्रम में हैं। स्वामीजी बड़े प्रेम से उनका पालन-पोषण करते हैं। ये बच्चे शहर की पाठशाला मे पढ़ते हैं। दूसरा आश्रम इनका कानानूर मे है। उसमें भी १८ विद्यार्थी हैं।

कानानूर में कृष्णन् नाम का एक दर्जी है, जो अच्छा हरिजन प्रेमी है। अपनी दुकान मे ७-८ लडकों को दर्जी का काम सिखाता है। इसके अलावा एक लड़के को मोटर और एक को साइकिल दुरुस्त करने तथा एक को जिल्दसाजी और एक को बढ़ईगीरी की शिक्षा देता है। यह सब काम वह अपनी खुशी से करता है। थोड़ी सहायता संघ भी कृष्णन् को देता है।

केलप्पन का आश्रम—पायोली गाव से तीन मील दूर एक ऊँची टेकरी पर तंग और ऊबड़-खाबड़ रास्ते से होकर इस आश्रम को जाते हैं। किसी बड़े आदमी का हवाई बंगला-सा मालूम होता है। आश्रम मे मकान है, अलग दवाखाना है, कुआं है और दो एकड़ जमीन में एक बगीचा है। सिंगापुर और मलाया जाकर इस काम के लिए श्री केलप्पन भिक्षा मांग-मांगकर लाये थे। यह आश्रम हरिजन-सेवक-संघ को बिना किसी शर्त के देने की इच्छा श्री केलप्पनने प्रगट की। आश्रम चलाने में उन्हें कठिनाई पड़ रही है। पैसा बड़ी मुश्किल से मिलता है। और चालू खर्च के लिए पैसा चाहिए ही। इसलिए इस उपाधि से वह मुक्त हो जाना चाहते हैं। यहां के अत्यंत दरिद्र पुलया अथवा चेरुमा लोगों की एक टोली मुझ से मिलने आई। इनकी बड़ी ही बुरी अवस्था है। हर जमीदार के खेत मे इनके १०-२० कुटुंब मजूरी करके किसी तरह पेट पालते हैं। ऐसी हरीभरी भूमि के उपजाऊ देश मे इन अधपेट रहनेवाले मलबारी चेरुमा लोगों की बड़ी ही दयनीय दशा है।

गोपालपुर—१९२२ में मलबार में जो मोपला लोगों का बलवा हुआ था उसके शांत हो जाने के बाद मोपलाओं तथा दूसरे लोगों के संकट-निवारणार्थ कई बड़े-बड़े 'फंड' स्थापित हुए थे। उस समय भारत-सेवक-समिति की ओर से श्री गो. कृ. देवधरने काफी मेहनत की थी। संकट-निवारण फंड में जो थोड़ी रकम बच गई थी उसमे मोपलाओ और हरिजनों की शिक्षा आदि का कल्याणकर कार्य हो रहा है। गोपालपुर मे हरिजन-छात्रालय, पाठशाला और औद्योगिक गृह है। काम सुंदर है। १०-२० हरिजन-कुटुंबो को थोड़ी-थोड़ी जमीन देकर यहां बसाया गया है। एक छोटी-सी टेकरी के ऊपर ये सब कुटुंब बसे हुए हैं।

ग्राम-पाठशाला—मलबार के हरिजन-ग्रामों में पाठशालाएँ बहुत ही कम खर्चे में चलरही है। मैंने एक ऐसी हरिजन-पाठशाला वहां देखी जिसमें दिन में ३३ और रात में २३ लड़के पढ़ते हैं। संघ इस काम के लिए कुल ३) मासिक खर्चा देता है। इसमें से प्रधान अध्यापक अपने सहायक अध्यापक को १) मासिक वेतन देता है। अध्यापको को गांव से थोड़ा-थोड़ा पैसा मिल जाता है, और उसीसे वे किसी तरह अपनी गुजर चलालेते हैं।

कालीकट—यहां के चावल के व्यापारी भाई शामजी सुंदरजी पूरे हरिजन-प्रेमी है। कालीकट हालांकि एक काफी बड़ा और तिजारती शहर है, तो भी यहां की म्यूनिसिपैलिटी की तरफ से उसके भंगी मुलाजिमों के रहने की पर्याप्त व्यवस्था नहीं थी। इसलिए यह सज्जन दयार्द्र होकर इस विचार से काफी परिश्रम कर रहे हैं कि कहीं थोड़ी खाली जगह मिल जाय तो सार्वजनिक चंदा करके भंगियों के लिए कुछ कोठरियां बनवा दी जायँ। लाहौर की जो आर्य-प्रतिनिधि सभा की जमीन यहां पड़ी हुई है वह अगर मिलजाय तो यह काम बन सकता है। भाई शामजी सुंदरजी इस जमीन के लिए कोशिश कर रहे हैं।

एरनाकुलम्—यह शहर कोचीन के पास है। इन दोनो के बीच में एक खाड़ी है। संघ की ओर से यहां २३ बालकों का एक छात्रालय चल रहा है, जिसका माहवारी खर्चा करीब १३०) है। राज्य की तरफ से मकान-किराया और बालकों को थोड़ी-सी छात्रवृत्ति मिलती है।

आरनमुला को परिषद्—मध्य त्रावणकोर के अंतर्गत आरनमुला गांव में हरिजन भाइयोंने एक परिषद् का आयोजन किया था। मैं भी उसमें गया था। उनके उत्साह का पार नहीं था। जुलूस बड़ा शानदार निकला था। लाल और दूसरे रंग की कई बड़ी-बड़ी छत्रियां थीं। भजन-कीर्तन तो होना ही चाहिए। पंपा नदी के तट पर परिषद् का मंडप तालपत्रों का बनाया था। सारे काम का भार श्री कुमार के ऊपर था। संघ के यह एक प्रमुख कार्यकर्ता हैं। मलयाली भाषा में इनका बड़ा जोशीला भाषण होता है। त्रावणकोर में हाल में जो एक नया हिंदू मिशन स्थापित हुआ है, उसके कार्यकर्ता भी इस परिषद् में आये थे। परिषद् में पांच-छै हजार आदमी जरूर होंगे। एक तिहाई तो स्त्रियां ही थीं। सवर्ण और अवर्ण सभी कंधे-से-कंधा भिड़ाकर बड़े प्रेम से बैठे थे। मंदिर-प्रवेश, या जिसे यहां 'क्षेत्र प्रवेश' कहते हैं, उस पर हरिजन भाइयों के बड़े जोरदार भाषण हुए। एक हरिजन महिला का भाषण तो बड़ा ही सुंदर हुआ।

लोगों का ऐसा विश्वास है कि रामायण में जिस पंपासरोवर का वर्णन आता है वह यही पंपानदी है। ऐसा मानते हैं कि सीताजी की खोज मे श्री रामचंद्रजीने इस तरफ खूब भ्रमण किया था।

अमृतलाल वि० ठक्कर

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २ अगस्त, १६३५

आरंभ कैसे करें ?

खादी के तमाम कारीगरो के लिए मजदूरी की एक ही दर या कम-से-कम अमुक दर निश्चित हो या न हो, पर मौजूदा स्थिति में सुधार तो करना ही पड़ेगा, इसमें संदेह नही। अबतक जितनी राये आई है, उनमें सिवा एक के, मजदूरी की दर में वृद्धि करने की मेरी तजवीज का और किसीने विरोध नहीं किया। तो भी किसीने अबतक आठ आने की दर रखने का प्रस्ताव स्वीकार भी नहीं किया। बल्कि कुछ सम्मतिदाताओं को ऐसा लगता है कि आठ आने की दर निश्चित कर देने से खादी का नाश हो जायगा। वे कहते हैं कि अगर यह आठ आने की दर निश्चित हो गई तो खादी की कीमत इतनी चढ़ जायगी, कि फिर खादी खरीदनेवाले इने-गिने ही रह जायेंगे। चाहे जो हो, अगर इसमें कोई भी वास्तविक सुधार करना है तो कुछ शर्तों का पालन तो करना ही होगा। इसलिए यह हाथ मे आया अवसर न गवाकर जहा सभव हो, वहा तो नीचेलिखे सुधार तुरन्त दाखिल करदेने में ही बुद्धिमानी है —

(१) प्रत्येक कार्यकर्त्ता को कपास तोड़ने से लेकर सूत बुननेतक की सारी क्रियाओ को खूब अच्छी तरह जान लेना चाहिए, ताकि वह दूसरो को भी सिखा सके।

(२) व्यवस्थापकों को अपने-अपने केन्द्र या हल्के में काम करनेवाले तमाम धुनियो, कतैयो, बुनकरो वगैरा का रजिस्टर रखना चाहिए।

(३) उन्हे यह भी मालूम रहना चाहिए कि उनके कतैये किस जाति की रुई काम मे लाते है, और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जितने नबरतक का सूत उस रुई से कत सकता है उससे वे अधिक नबर का सूत तो नही कातते।

(४) कतैयो तथा खादी के दूसरे कारीगरो से यह साफ कह देना चाहिए कि अगर वे खुद अपने घर म खादी न पहनेंगे तो उन्हे कोई भी काम नहीं दिया जायगा।

(५) इस चेतावनी के साथ-साथ, उनके लिए यह सुविधा भी कर देनी चाहिए कि उन्हे उनकी मजदूरी के बदले में हमेशा खादी मिल सके।

(६) खादी-कार्यालय मे आनेवाली सूत की हर कुकड़ी की मजबूती और समानता जाचनी चाहिए, और जिस तरह कच्ची रोटी को फेंक देते हैं, उसी तरह कमजोर और असमान सूत को नही लेना चाहिए।

(७) साधारणतया, प्रत्येक कतैये का सूत अलग ही रखना चाहिए, और जब कपड़ा बुननेलायक पर्याप्त सूत इकट्ठा हो जाय, तब उसे अलग बुनना चाहिए। इससे खादी मे टिकाऊपन भी आयगा, और बुनावट तथा सफाई मे भी निश्चय ही सुधार हो जायगा।

(८) जहा ओटनेवाले, धुननेवाले, कतैये और बुनकर सभी अलग-अलग हो, वहा इस तरह तैयार किये हुए हरेक थान पर उन सबके नाम की चिटें होनी चाहिए।

(९) जहा कारीगर लोग एक ही घर के हो वहा उन्हे यह समझाना और प्रोत्साहन देना चाहिए कि वे इन तमाम उपर्युक्त क्रियाओ को खुद ही अपने घर में कर लिया करे। मजदूरी अगर एकसी या करीब-करीब एक समान कर दी जाय, तो यह सारा काम आसान हो जायगा।

(१०) कार्यकर्त्ताओ को अपने-अपने हलके के कारीगरो के रहन-सहन और उनके आय-व्यय का खूब ध्यान से अध्ययन करना चाहिए, और जिन कारीगरो की गृहस्थी का खर्चा विवेकपूर्वक होता हो, उनकी उन्हें मदद करनी चाहिए।

(११) किसी समय खादी की खपत कम हो जाने की वजह से अगर सघ के नीचे काम करनेवाले कारीगरो की सख्या घटानी पड़े तो पहले उन्हीं कारीगरो को हटाना चाहिए कि जिनकी जीविका के कोई दूसरे जरिये हों। मेरी समझ मे तो आज ऐसी स्थिति है कि कुछ प्रातों मे सिर्फ जीविका के लिए ही कत्तिने सूत कातती हो यह बात नहीं है, बल्कि ऐसी भी किफायत करनेवाली स्त्रिया कातती हैं जो अपनी जरूरत की छोटी-मोटी चीजे खरीदने के लिए किसी तरह दो पैसा बचा लेती हैं। उनके सामने अच्छा बढ़िया खाना मिलने या कर्जा चुकाने की बात तो है ही नही।

(१२) हर जगह कार्यकर्त्ताओ को धुनकी और चर्खे की खूब बारीकी से जाच करनी होगी- -खासकर उन्हे यह जाचना होगा कि चख का तकुआ काफी फेरे लगाता है या नही। क्योंकि इस दर बढ़ा देने का अर्थ यह नही है कि चाहे जैसे कतैये को चाहे जैसी कताई पर अधिक मजदूरी दी जाय। दर तो कुछ जरूर बढ़ेगी, पर आज जितना सूत कातते हैं उतने ही समय मे उससे अधिक गज और उससे अधिक अच्छा सूत कातनेवाले को वह मजदूरी मिलेगी। जो कतैया या कत्तिन अपनी कातने की पद्धति मे सुधार नही करेगी, उसे, जबतक कि खादी की माग बढ़ नही जाती तबतक, कुछ भी अधिक मिलने की सभावना नही।

(१३) ऊपर के इस पैरे से तब यह परिणाम निकलता है कि चर्खा-सघ का शुरूआत मे नये चर्खे और नये तकुवे वगैरा कुछ सस्ते दामो मे देने होग। अनेक स्थानो मे तो माल और तकुवा सुधार देने से आप ही सूत की किस्म सुधर जायगी।

ये सब शर्तें तो तभी पूरी होंगी, जब कार्यकर्त्ता इस खादी-कार्य को अपना महान् कर्त्तव्य समझेंगे, और यह अनुभव करेंगे कि अधपेट रहनेवाले कारीगरों और मजदूरो के विशाल परिवार के ही हम एक विनम्र मजदूर भाई है।

कपास की उत्पत्ति का प्रश्न तो मैंने छेड़ा ही नहीं। यहांतक तो मैंने बाजार के लिए तैयार होनेवाली खादी की ही बात की है। स्वावलबी खादी के लिए कुछ दूसरे ही नियम बनाने होंगे। कतैये अगर खुद कपास पैदा न करे या हर गाव मे कपास की खेती न हो, तो यह स्वावलबी खादी कभी कामयाब होने की नहीं। इसलिए स्वावलबी खादी की दृष्टि से तो हर जगह कपास की खेती होनी ही चाहिए। इसके लिए जिन गावो मे खादी का यह काम चल रहा हो उनकी सेंसस लेनी होगी। क्योंकि हरेक कतैये या बुनकर के पास जमीन का जरा-सा एक टुकड़ा भी नही है, जहा वह कपास बो सके। खादी की यह स्वावलबन-पद्धति एक बहुत बड़ी समस्या है। केवल इस प्रश्न को हल करने के लिए ही चर्खा-सघ का अस्तित्व न्याययुक्त माना जा सकता है। अभीतक इस दिशा मे चर्खा-सघने कोई उल्लेखनीय प्रयत्न नहीं किया।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्रामसेवा

इस सप्ताह कोई ऐसी उल्लेखनीय बात नहीं हुई। हां, हमारे काम में कठिनाइयां, ज्यों-ज्यों जोर की वर्षा होती है त्यों-त्यों नित्य बढ़ती ही जारही हैं। करीब-करीब हम सबके लिए इन कीचड़दार सड़कों व पैर फिसलानेवाली पगडंडियों और चहलेदार खेतों में सख्त मेहनत करना एक अजीब-सा अनुभव है। कभी रिमझिम मेह बरस रहा है तो कभी मूसलधार, और सामने बह रही है, पछाहीं तीर-सी तेज हवा और हम हाथ में बाल्टियां लिये मल-मूत्र उठा रहे हैं—हमारे लिए तो यह सब विचित्र ही अनुभव है। एक दिन तो पानी में इतना भीगे कि कुछ पूछिए नहीं। ऐसा मालूम होता था कि हमलोगों में से कुछ आदमियों को सर्दी लगने ही वाली है। बहुत संभव है कि ऐसे में किसी दिन सर्दी लग भी जाय, इसलिए अब हमें अधिक-से-अधिक सजग रहना होगा।

मगर जो मार्मिक अनुभव हमें हो रहा है उसके आगे ये तकलीफें कुछ भी नहीं। इस काम के द्वारा भंगियों की कष्टकर अवस्था का भान हमें खूब हो रहा है। बिना किसी शिकायत या उलहने के बेचारों को यह सब काम करना पड़ता है। पानी में भीगे हुए घर आते हैं तो बदलने को दूसरा कपड़ा भी नहीं होता। और कंबल भी शायद ही होते हैं कि जिनमें ठिठुरे हुए शरीर को कुछ गरमा लें। कमरों या आफिसों में आराम से बैठे हुए हम उनके बारे में कभी सोचते भी नहीं। हम तो यह कल्पना कर लेते हैं कि यह सफाई का काम तो योंही होजाता है; यह सोचते तक नहीं कि बेचारे भंगियों को कैसी-कैसी मुसीबतें उठानी पड़ती हैं। उनकी जीर्णशीर्ण गीली कोठरियों पर कभी हमारा ध्यान गया है ? हमने कभी यह सोचा है कि नख से शिखतक पानी में भीगे हुए जब काम करके वे घर लौटते हैं तो कहां तो बैठते होंगे, और कहां बेचारे खाना पकाते होंगे ? हमने उनसे कभी यह पूछने का कष्ट किया है कि चौमासे में तुम्हें क्या-क्या तकलीफें भोगनी पड़ती हैं, तुम्हें कभी दवा-दारू की भी मदद मिलती है, तुम्हारे पास बदलने के लिए एकाध और धोती कुरता है या नहीं ? सियारी के किसान की तो और भी मौत है। उसे तमाम दिन पानी से भरे हुए खेतों में काम करना पड़ता है, और सारा मेह उसके सिर के ऊपर से जाता है। जब हम बड़े स्वाद से चावल खाने बैठते हैं तब क्या हम कभी यह सोचते हैं कि यह चावल कैसी मेहनत और तकलीफ से किसानने पैदा किया है ?

उसदिन हमारे साथ का एक नवयुवक कुछ अधीर होकर एक स्त्री से कह बैठा कि, 'तुम्हें इसका कुछ खयाल है कि तुम मुझे कितना परेशान कर रही हो ? जरा और आगे हटकर बैठ जाती तो क्या बिगड़ जाता ?' उस दिन वह बेचारी काफी दूर जाकर बैठी थी, और हाथ में लोटा लिये जब वह लौट रही थी तो उसे यह आशा थी कि यह लड़का आज मेरी तारीफ करेगा। पर तारीफ की जगह मिली उसे फटकार। बस, उसके आग-बबूला हो जाने के लिए इतना काफी था। उसने हम सबको खूब गालियां सुनाईं। जो मुंह में आया सो बकी। बोली, 'क्या तुम हमारे साथ कोई उपकार कर रहे हो ? तुम यह सब काम अपने पेट के लिए कर रहे हो। आग लगे तुम्हारे भाग्य में, तुम्हारे भाग्य में यही सब मलमूत्र उठाना बदा है। नाश हो तुम्हारा !' ऐसी बुरी-बुरी गालियां देने का उसे हक था। हमीं लोगों की वजह से तो वह इस मूसलाधार वर्षा में अपनी रोज की जगह से इतनी दूर गई थी। उसपर पड़ी यह फटकार ! गुस्सा आना ही चाहिए। मैंने उसे शांत करने का प्रयत्न किया। मैंने कहा 'बहिन, यह तो तुम्हारे लड़के की तरह है। तुम्हें इसके कहे-सुने का बुरा नहीं मानना चाहिए। और उसने खासकर तुमसे थोड़े ही कुछ कहा, उसने तो तुम्हारी ओट लेकर दूसरों को कहा।' कर्तव्यनिष्ठा और शांत तथा मूक सेवा-कार्य की महत्ता हमें अभी बहुत कुछ सीखनी है।

ऋतु-परिवर्तन-काल की बीमारियाँ

वर्षा शुरू हुई कि मलेरिया आया। इधर फसली बुखार के मरीजों की दो-दो, तीन-तीन खाटें बिछी ही रहती हैं। सबसे उत्तम और अत्यंत संयमी हमारे भणसालीजी तक को तो जूड़ी बुखारने छोड़ा नहीं। श्रीकुमाराप्पा तो पंद्रह दिन से पड़े हुए हैं। शायद उनका यह मियादी बुखार है। पर इसका यह मतलब नहीं कि रतजगा करना पड़ता हो या एक क्षण को भी कभी उनकी चिंताजनक स्थिति हुई हो। इसका कारण यह है कि बुखार आने के पहले ही दिन से उन्हें गरम पानी और नीबू और शहद दिया जा रहा है। अपने आफिस के बगल के कमरे उनकी खाट बिछी हुई है और वहीं से थोड़ा आफिस का काम भी लेटे-लेटे कराते रहते हैं। हमने यहां जो सख्त नियम बना रखे हैं और जिनका हम पालन कर रहे हैं, वे सब जगह के लिए मलेरिया के इस मौसिम में उपयोगी हो सकते हैं। पहला साधारण नियम, जो सबके लिए लागू हो सकता है, वह यह है कि हमेशा थोड़ा भूखा रहे, भोजन अत्यंत स्वादिष्ट लगे उसी वक्त छोड़ दे। दूसरा नियम यह है कि ऐसी चीजें छोड़ दी जायँ, जिनमें प्रोटीन (पोषकतत्व) की मात्रा अधिक हो, जैसे दाल वगैरा, और जरूरत हो तो एकाध वक्त का खाना छोड़ दे।*तीसरा नियम यह है कि जरा तबीयत कुछ नासाज मालूम पड़े या कुछ हरारत मालूम हो, तो उसी वक्त रेंडी के तेल की पूरी मात्रा लेले, और खाना एकदम त्याग दिया जाय। ज्वर के आरंभ में लंघन सौ दवा की एक दवा है। जब बुखार हो या कंपकंपी मालूम हो रही हो, तब बारबार गरम पानी और नीबू और नमक (या गुड़ या शहद) लिया जाय। बुखार में यह उपचार हमेशा ही काम देता है। खाना तो एकदम छोड़ देना चाहिए। दूध भी नहीं लेना चाहिए। चौथा नियम यह है कि मसहरी लगाकर सोया जाय। पर यह तो उन्हीं के लिए है जो मसहरी खरीद सकते हैं। गरीब आदमियों को अपने शरीर के उन हिस्सों में जो खुले हुए रहते हों, मिट्टी का तेल चुपड़कर सोना चाहिए। इससे मच्छर नहीं काटेंगे। इस इलाज से हमें जूड़ी और बुखार के करीब-करीब सभी केसों में सफलता मिली है, और अभीतक कुनैन की शरण नहीं लेनी पड़ी (हालांकि कुनैन लेने की किसी भी दृष्टि से कोई मनाही नहीं है)। श्री कुमाराप्पाने तो कोई भी दवा नहीं ली।

आहार में हेरफेर

आहार में हमने जब भी कोई परिवर्तन किया है, तब वैद्य-डाक्टरों की जरूर उसपर राय लेली है। आहार और 'विटामिन' संबधी पुस्तकों से यद्यपि हमें काफी मदद मिली है, तो भी डॉ०

* एक बुंदेलखंडी कहावत है—
"सावन क्यारी जब-कब कीजै; भादों उसका नाम न लीजै।
क्वार के दो पाख; जतन-जतन जी राख।"

तिलक की 'युक्ताहार' (Balanced Diets) नामकी छोटी-सी पुस्तिका से तो हमें बड़ा ही सहारा मिला है। प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, चर्बी, प्राकृतिक क्षार और विटामिन, इन सब तत्वों के सम्मिश्रणवाले आहार की आवश्यक सूचनाएँ डॉ० तिलकने अपनी इस पुस्तिका में दी हैं, और यह बताया है कि मनुष्य को ठीक-ठीक तन्दुरुस्त रखने के लिए किस प्रकार का आहार पर्याप्त होगा। माटुंगा (बंबई) के बेरामजी जीजीभाई होम के बालकों के आहार में सुधार करने के लिए जो प्रयोग किये गये हैं उनके आधार पर यह पुस्तिका लिखी गई है। वहां का सारा आहार बदल डाला गया है, और सोयाबीन, चावल का कना, ताजी खली, दूध का सूखा बुरादा और चना, मटर आदि द्विदल अनाजों की दाल वगैरा शामिल करके, उसे करीब-करीब 'युक्ताहार' के बराबर पहुँचा दिया है। आज ढाई-तीन महीने से वहां के बच्चे इसी आहार पर रह रहे हैं, और वे काफी हृष्टपुष्ट हैं। सोयाबीन और खली की हमने अभीतक परीक्षा नहीं की। हां, इस हफ्ते से खली हम लेने लगे हैं। खली में दूध से अधिक और दाल से कम पोषक (प्रोटीन) तत्व है। गांधीजीने कहा कि और नहीं तो चौमासे में दाल की जगह खली क्यों न दी जाय? पहले दिन तो खली पानी में घोलकर परोसी गई। उसदिन वह बहुतों को पसद नहीं आई—इसलिए नहीं कि वह बेजायका थी, बल्कि वह अलसी की खली थी, इसलिए दूसरे दिन वह सूखे चूरमा के रूप में परोसी गई। इसमें उतनी भड़क नहीं रही। और तीसरे दिन तो उसमें थोड़ी छाछ मिलादी गई और कुछ मसाला भी डाल दिया गया। तब कहीं जाकर लोगों को संतोष हुआ,और हमें ऐसा मालूम पड़ता है कि यह चीज लोकप्रिय हो जायगी। यद्यपि दाल को अभी बंद नहीं किया, पर इतना कह सकते हैं कि हम उसे छोड़ने ही वाले हैं। डॉ० तिलक की 'युक्ताहार' पुस्तक में दिये हुए नकशे के अनुसार एक आदमी के लिए पांच तोला दाल और सवा तोला खली यह युक्त मात्रा है। हमारा विचार अब अपने आहार में सोयाबीन शामिल करने का है।

आहार में यह एक चीज दाखिल करने से हम लोगों में एक तरह की खलबली-सी मच गई। गांधीजीने हरेक आदमी से इसपर अपनी-अपनी राय लिखने के लिए कहा। दूसरे दिन हम लोगों में से तीन आदमियोंने एक छोटी-सी चिट लिखी, और उसमें आहार-संबंधी इस नये परिवर्तन का घोर विरोध किया। गांधीजीने दाल की जगह खली उसी दिन दी थी। उन्होंने तुरन्त दाल फिर से शुरू करा दी और हम लोगों को विश्वास दिलाया कि मैं एकदम इन नये-नये सुधारों को दाखिल नहीं करना चाहता। पर उस छोटी-सी चिट पर से गांधीजीने हम लोगों को एक उपदेश दे डाला। कहा, "हम जो ये छोटे-छोटे काम करते हैं उनसे हमारी कीमत जितनी आंकी जाती है उतनी बड़े-बड़े कामों से नहीं। इस रद्दी-सी चिट के बजाय तुम जरूर कुछ अच्छा कागज काम में ला सकते थे, और अक्षर भी खूब साफ लिख सकते थे। फिर अँग्रेजी में लिखने का तुम्हारे पास कोई भी कारण नहीं था, खासकर जब कि तुम गुजराती या हिंदी में यही बात लिख सकते थे, और अंग्रेजी की तो तुम्हारी वे दो लकीरें भी ठीक नहीं थीं। चाहे जितना छोटा काम तुम्हें करना हो, उसे उतनी ही सावधानी या ध्यान के साथ करो जितनी सावधानी या ध्यान से तुम किसी काम को बहुत महत्व का काम समझकर करते हो। छोटे-से-छोटा काम भी पूर्ण मनोयोग के साथ करो। 'योगः कर्मसु कौशलम्' का यही अर्थ है। क्षुद्र-से-क्षुद्र कार्य-कौशल में ही तुम्हारा मूल्य आंका जायगा।"

हिंदुस्तानी और अंग्रेज़ी पोशाक

हमारे इस ग्राम-जीवन में भी यह बात नहीं कि कुछ रस न हो, कुछ लुत्फ न हो। गत सप्ताह कुमारी चेजली और कुमारी इगम हमारी मेहमान थीं। हमारे ग्राम-पुनारचना की प्रवृत्ति में ये दोनों देवियां बहुत रस लेती हैं, और बैतूल के पास एक छोटे-से गांव में वे ग्रामसुधार का अच्छा काम कर रही हैं। कुमारी इगम तो अभी हाल ही में आई हैं, किन्तु कुमारी चेजली को उस गांव में बसे छै महीने से ऊपर हो गया है। उनको हर बात के जानने की इच्छा रहती है। प्रश्न पूछने से तो कभी थकती ही नहीं। ईमानदारी की नीयत से कोई कितने ही प्रश्न पूछे, गांधीजी कभी खीझेंगे नहीं। ऐसे प्रश्नों से तो वे प्रसन्न ही होते हैं। हमारे कुछ साथी आधी आस्तीन की कमीज और जांघिया पहनते हैं। इसीपर एक दिन कुमारी चेजली गांधीजी से पूछ बैठी। हम में से अधिकांश लोग धोती ही पहना करते हैं, और सफाई वगैरा का काम कर चुकने के बाद अब भी धोती पहनते हैं, मगर काम के समय हमें मजबूरन मजदूरों की यह वरदी पहननी पड़ती है। लेकिन कुमारी चेजली, उर्फ तारा बहिन ,को हमारा यह पहनावा बहुत भद्दा, बेडौल और कलाशून्य लगा। इस पर बड़ा मजेदार संवाद हुआ।

'पर आपको इसमें आपत्ति क्या है?' गांधीजीने कहा।

'क्योंकि यह अंग्रेजी पहनावा है।'

'पर अंग्रेजी पोशाक में जो अच्छी चीज हो उसे हम क्यों न अपना लें? मुझे तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी, अंग्रेज लोग हिन्दुस्तानी पोशाक को भले ही घृणा की दृष्टि से देखें।'

'यह पहनावा बड़ा ही कलाशून्य है। यह अंग्रेजी नेकर आपके हिन्दुस्तानी कुरते के साथ मेल नहीं खाता, यह सब बहुत बुरा दीखता है।'

'तब तो मेरा यह खयाल है कि अगर मैं सोला हैट पहनने को कहूँ तो आपको शायद इसमें चक्कर आ जायगा।

यह संवाद मीरा बहिन सुन रही थीं। यह कौन नहीं जानता कि मीरा बहिन का भारत की हरेक चीज पर एक भारतीय से भी अधिक प्रेम है? इसलिए वे भी इस संवाद में शामिल हो गईं, और तारा बहिन (मिस चेजली) की तरफ से अब उन्होंने जवाब दिया, "हां, मुझे तो जरूर चक्कर आ जाय। वह कितना कीमती होता है, और उसमें आराम ही कितना मिलता है? मुझे तो वह हैट कभी पसन्द नहीं आया।"

इसपर योंही मजाक के स्वर में गांधीजीने कहा, 'तब इसमें तो यही मालूम होता है कि जो हैट तुम लगाती होगी, वह तुम्हारे सिर पर ठीक न आता होगा।'

'नहीं, नहीं,' मीरा बहिनने कहा, 'मेरे पास उन दिनों अच्छे-से-अच्छे टोप थे, पर मेरा तो हमेशा ही उन ऊँची दीवार के टोपों से सिर दुखने लगता था।'

'तब तो मुझे यह कहना चाहिए कि तुम्हारा माथा ही बेडौल होगा?' कहकर गांधीजी खिलखिलाके हंस पड़े। फिर गम्भीर होकर बोले, 'मेरे कहने का तो इतना ही आशय है कि यह सोला हैट धूप में अच्छा काम देता है।'

मीरा बहिन के गले यह बात भी नहीं उतरी। बोली, 'मैं यह नही मानती। मैं तो इस हैट की जगह पगड़ी बांधना अधिक पसन्द करूँगी।'

'खैर; पर यह जाघिया तो बहुत बुरा लगता है। आपके कच्छ और इस जाघिये में तो स्वर्ग और नरक का अन्तर है।'

'ऐ! तब तो तुम्हे मुझे यह समझाना पड़ेगा!'

'मैने जरा यहा सख्त भाषा का प्रयोग कर दिया है। मैं यह कहती हूँ कि शायद दिन और रात का फर्क है।'

'पर मेरा यह कारण नही है,' तारा बहिनने कहा। मुझे तो हिन्दुस्तानी और अँग्रेजी पोशाक की यह खिचड़ी पसन्द नही। यह क्या आधी बुलबुल और आधी बटेर! आपका यह कच्छ कितना सुन्दर है! ये लोग क्यो न ऐसा ही कच्छ पहने? मेरा तो इतना ही कहना है कि या तो सारी ही शुद्ध अँग्रेजी पोशाक पहनी जाय या फिर हिन्दुस्तानी पोशाक, पर यह खिचडी ठीक नही।'

'तब शुद्ध अंग्रेजी पहनावे के लिए मुझे पूरा विलायती साहब बनना चाहिए। और शराब की दूकान पर भी जाना चाहिए ना?' इसपर सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े।

'मेरा यह कच्छ तो सुन्दर है ही, इसमें सन्देह नहीं। पर बात तो यह है कि ये बेचारे मेरी तरह कच्छ पहनने लग जायँ तो उनकी मौत ही है। लोग मजाक उड़ायेंगे कि वाह, अब तो ये सभी महात्मा बन बैठे हैं!'

'पर तब ये लोग कमीज का नीचे का हिस्सा जाघिये के अन्दर आखिर दबाते क्यों नहीं?'

'आप लोग ऐसा करते हैं। पर यह तो आरोग्य की दृष्टि से बुरा है।'

इस तरह यह बहस काफी देरतक चली। पर तारा बहिन हमारा पीछा छोड़नेवाली नहीं थीं। यहा से जाने के एक दिन पहले उन्होंने यह इच्छा प्रगट की कि मैं आप लोगों से जरूर इस विषय में दो-चार शब्द कहूंगी। उन्होंने कहा कि मुझे तो इस विषय पर सोचते-सोचते रात को नींद भी नहीं पड़ी! हमारे लिबास के विरुद्ध उन्होने दो दलीलें दी। उनकी एक दलील का सार तो ऊपर की बातचीत में इस प्रकार आ ही गया है कि- "तुम हिन्दुस्तानियो की पोशाक कैसी सुन्दर है, उसमे कैसी अच्छी कला है! फिर किसलिए तुम उसे बिगाड़ रहे हो? तुम्हारे इस ढील-ढाले कुरते के नीचे तो तुम्हारी यह झलनदार धोती ही शोभा देती है। फिर किसलिए तुम अपनी सुन्दर पोशाक त्याग कर इस अँग्रेजी पोशाक का अन्धानुकरण कर रहे हो? तुम्हारा यह गुलामी-सूचक अनुकरण नहीं तो क्या है?'

दूसरा एतराज यह था, 'गाधीजी का घनिष्ठ सपर्क तो एक भारी लाभ है। जैसा तुम करोगे, दूसरे भी वैसा ही करेंगे। मुझे तो यह भय है कि तुम्हारा अनुकरण करके लोग कहीं विलायती न बन जायं। इसलिए उनके सामने कोई बुरा उदाहरण नहीं रखना चाहिए। मैने गावो के किसानो को खेतो में नगे बदन काम करते देखा है। वे जैसे सुन्दर मालूम देते हैं, वैसे तुम लोग शोभा नहीं देते। मैने 'हरिजन' में ही पढ़ा है कि एक जर्मन सज्जन, जो यहा आया हुआ था, नगे बदन तुम्हारे सिंदी गांव में काम करता था। करना ही चाहिए। क्योंकि जर्मनी में तो उघारे बदन काम करने की बड़ी महिमा है। तब तुम लोग किसलिए भारत के जलवायु के अनुकूल पोशाक छोड़ यह अंग्रेजी लिबास पहन रहे हो।'

यह सब मैंने मनोरंजन के लिए नहीं लिखा। इसके मूल में एक भद्र अंग्रेज महिला का जो भाव समाया हुआ है, उसे बताने के लिए ही मैंने यह प्रसग लिखा है। ऐसे अंग्रेज सज्जन भी कहीं-कहीं पड़े हुए हैं जिन्हें भारत का जो कुछ अच्छा है, जो कुछ कलामय है उसे अगर जरा भी आच आती है तो, चोट पहुँचती है। पर मैं यह कहूँगा कि मिस बेजली की इस बातचीत का हम लोगो में से बहुतो पर कोई बहुत असर नहीं पड़ा। इसका सीधा कारण यह है कि हमने हिन्दुस्तानी लिबास का त्याग तो कुछ किया ही नही। हम सब बड़े प्रेम से धोती पहनते हैं। पर मिट्टी खोदने में, पाखाना साफ करने में और कपड़े धोने में दिक्कत पड़ती थी। इसीसे जाघिया पहनने लगे हैं। कमीज तो गरमियो में हम लोग बिल्कुल ही नही पहनते। यह तो हमारी मजदूरो की वरदी है। ये कपड़े जल्दी धुल जाते हैं, साबुन कम लगता है, और काम करने में सुविधा रहती है। पर गाव के गरीब आदमियों की नाई लगोट की तरह क्यो न छोटा-सा कपड़ा कमर में लपेट लिया करे? यहातक हम अभी नहीं पहुँचे। हम यह कबूल करते हैं कि न लगोटी लगाने की अभी हमारी हिम्मत ही है, न उसके लिए हम तैयार ही हैं। इस भय का कोई कारण नहीं कि लोग हमारा अनुकरण करके विलायती साहब बन जायंगे। मैं तो बल्कि यह दिल से चाहता हू कि जिन लोगो के बीच हम काम करते हैं वे हमारी इस चीज का अनुकरण करे। ये लोग आज बहुत-सा व्यर्थ कपड़ा पहनते हैं। हमारा यह पहनावा अगर वे पहनने लग जायं, तो उनका जरूर कुछ पैसा बचेगा, और खादी भी उतनी खपेगी। मगर आज तो वे हमारा अच्छा या बुरा कोई भी अनुकरण करने के लिए तैयार नहीं दीखते। उनकी दृष्टि में हम अनुकरणीय हैं ही नही। उनकी नजर में तो आज हम केवल तकलीफ देनेवाले भगी हैं।

लेकिन तारा बहिन का हम आभार मानते हैं जो उन्होंने निर्भयतापूर्वक हमे अपने विचार सुना दिये, और हमें यह याद दिलादी कि हम जो कुछ भी करते हैं उसपर दुनिया की नजर रहती है, और हमें गाधीजी के जिस सुन्दर समागम का लाभ प्राप्त हुआ है उसे हमें लजाना नहीं चाहिए।

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

टिप्पणियाँ

सर्वस्व-दान

महान् हरिजन-सेवक श्री ज्वालाप्रसाद मंडेलिया अब इस लोक में नहीं है। केन्द्रीय हरिजन-सेवक-सघ के वे कोषाध्यक्ष थे। और फिर उस कार्य के कोषाध्यक्ष, जो उन्हे प्राणो के समान प्रिय था। आजकल प्राय. जिस अर्थ में धनी शब्द का प्रयोग होता है वह वैसे धनी नहीं कहे जा सकते थे। पर वे बिड़ला,मिल्स, दिल्ली के सेक्रेटरी थे, और वहां उन्होने जो कुछ कमाया जो कुछ उनके पास था वह सब दान कर गये। अपने जीवनकाल में भी उन्होने परोपकारी कार्यो में दिल खोलकर पैसा दिया। वे एक जन्म-सिद्ध सुधारक थे। विधवाओं का उद्धार-कार्य उन्हें उतना ही प्रिय था जितना कि हरिजनो का, और अपनी वसीयत में वे इन्हीं दोनो के लिए अपना सर्वस्व दान कर गये है।

मो० क० गांधी

७६००) रुपये और

गतांक में स्व० ज्वालाप्रसाद मंडेलिया के 'विल' के विषय में मैंने लिखा था। सूचना देनेवाले मित्र की भूल से उसमें दान की एक बड़ी रकम छूट गई थी। ७६००) की वह रकम उन हरिजन लड़कों के भोजन-वस्त्र और शिक्षा के लिए हैं, जो रिकगूनाइज्ड स्कूलों में ऊँची जाति के बालकों के साथ पढ़ना चाहेंगे।

वि० ह०

एकाकी यतचित्तात्मा

नया ग्रामसेवक जब अपना सेवा-ग्राम पसंद करके वहां जाने लगता है तब वह यह इच्छा करता है कि क्या अच्छा हो अगर कोई समानधर्मी अर्थात् समान विचारों का साथी मेरे साथ हो। सेवा-कार्य में एकाग्रता और गंभीरता आवे इसलिए, तथा उस छोटे-से गांव पर एक से अधिक सेवकों का भार न पड़े इस दृष्टि से भी उसे एकाकी रहकर ही वहां अपना योग-साधन करना आवश्यक है।

एक तरुण ग्रामसेवकने, जिसने अपना कार्य बड़ी ही गंभीरता के साथ आरंभ किया है, संगी-साथी लेने का यह लोभ आग्रहपूर्वक त्याग दिया है। एक दूसरे सज्जन को किसी साथी का लोभ नहीं था, पर उनके साथ रहने का उनके मित्रों को खास आकर्षण था। उन्हें गांधीजीने जो सलाह दी है, वह सभी ग्रामसेवकों के लिए एकसमान उपयोगी है। गांधीजी उन्हें लिखते हैं :—

"तुम्हारा पत्र कल ही मिला। सुंदर है। इसी तरह मुझे वर्णन लिख भेजा करो। उसी निवास में—उसे अपनी झोपड़ी, गुफा या जो कुछ कहो—वर्षों जमकर बैठोगे, तभी सच्चा काम होगा। अभी किसीको भी अपने साथ रहने की अनुमति न देना। उन लोगों से कह दो कि 'अभी तो आप लोग मुझे माफ ही करें।' वहां तुम्हारे अच्छी तरह स्थिर हो जाने के बाद कोई आ जाय और कुछ दिन रहना चाहे, तो भले रह सकता है। पर अभी तो जो भी मनुष्य तुम्हारे साथ वहां रहेगा, वह तुम्हारे काम में विक्षेप ही करेगा। इससे बचना। शरीर का खूब ध्यान रखना। किसी वक्त बीमार पड़ जाओ, तो किसी आश्रमवासी के साथ की इच्छा या आशा न रखना। वहां जो मनुष्य हो वही तुम्हारा साथी है। वही तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा करेगा। और न करे तो हरिइच्छा। हरि का साथ तो जहां जाओगे वहां है ही।"

गीता में भगवान्ने भी योग साधनेवाले को ऐसी ही सलाह दी है :—

"योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ;
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।"

'हरिजन-बन्धु' से] जु०

अ० भा० ग्राम-उद्योग-संघ

३० जून, १९३५तक संघ-द्वारा प्रमाणित तथा संघ से संबद्ध संस्थाओं की सूची नीचे दी जाती है :—

नाम	पता	
१. शूरजी वल्लभदास स्वदेशी बाजार	झवेरी बाजार, बंबई	प्रमाणित
२. प्रतापसिंह त्रिकमदास ठक्कर	पनवेल (कोलाबा)	,,
३. शामलभाई बेचरभाई पटेल	बोचासन (खेड़ा)	,,
४ लालभाई डी० नायक	नवसारी (सूरत)	,,
५. त्रिकमदास धनजीभाई	बलसाड (सूरत)	,,
६. गृहउद्योग-मंदिर	स्वदेशी मार्केट, कालबादेवी, बंबई	,,
७. रामचंद्र	मेरठ	,,
८. किसनदास शुद्धवस्तु-भंडार	आर्य हाईस्कूल के पास, सियालकोट	,,
९. रुदरजी रणछोड़जी देसाई	देगांव (बीलीमोड़ा से) बी बी सी. आई.	,,
१०. रविजी भाई एन. पटेल	लिंबासी (खेड़ा)	,,
११. गृहउद्योग-मंदिर उत्पत्ति-केन्द्र	स्वदेशी मार्केट, कालबादेवी, बंबई	,,
१२. गांधी-ग्रामसेवा-संघ	मेरठ	संबद्ध
१३. कृपा-आश्रम	गांधीकुप्पम्, तिरुवे-न्नलूर	,,
१४ व्रज-ग्रामसेवा-उद्योग-संघ	परखम, पो. आ. फरह (मथुरा)	,,
१५ खादी-सेवासंघ	१८ रोड, खार बंबई	,,
१६ विलेज इण्डस्ट्रीज आफिस	मारफत—गोकुलदास शिवभाई पंपल, बामड (बी.बी.सी. आई.)	प्रमाणित
१७. खादी-आश्रम	रींगस (राजपूताना)	संबद्ध
१८. केशवलाल नगीनदास शाह	हरिजन-आश्रम, साबरमती	प्रमाणित
१९. सजीवन खाद्यभण्डार	बांसटोला, कलकत्ता	,,
२०. दीनानाथ हंसराज	बटाला, अमृतसर	,,
२१. गृहउद्योगशाला	सुनारों की पोल, मंदसोर	,,
२२. श्री गांधी सेवाआश्रम	(१) नरेला, दिल्ली (२) रामताल, मेहरोली दि०	संबद्ध
२३. विलेज इण्डस्ट्रीज एण्ड प्योर विलेज फुड प्रोडक्ट्स	नायर बिल्डिंग, सेण्ड-हर्स्ट रोड, बंबई ४	प्रमाणित
२४. कर्ममंदिर	अग्रपाड़ा (भद्रक) उड़ीसा	संबद्ध
२५. नारायण विष्णु ललित	पलाणी, तालुका पनवेल (कोलाबा)	प्रमाणित
२६. ग्रामउद्योग-भंडार	धिरनी पोखर, मुजफ्फरपुर	,,
२७. गुडूर जिला ग्रामउद्योग-संघम्	गुडूर (आंध्र)	,,

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करें। ग्राहक-नंबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा।

व्यवस्थापक—'हरिजन-सेवक' दिल्ली

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

वस्त्रस्वावलंबन

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, ९ अगस्त, १९३५. [संख्या २५

विषय-सूची

टिप्पणियाँ

सार्वजनिक स्थान और हरिजन

बम्बई-सरकार की पिछड़ी हुई जातियों के मुहकमे (बैकवर्ड क्लास डिपार्टमेण्ट) की सन् १९३३-३४ की रिपोर्ट में इस बात का दुःख के साथ उल्लेख किया गया है कि कहीं-कहीं सरकार के इस हुक्म का पालन नहीं किया गया कि स्कूलों में किसी तरह का कोई वर्णभेद न माना जाय। मगर यह भी रिपोर्ट में कहा गया है कि किसी-किसी जगह स्थानीय अधिकारियों को इसमें कठिनाई महसूस हुई है कि गांव का एकमात्र स्कूल बन्द करके वहां सख्ती से काम लिया जाय, और इसलिए वे लोगों के तअस्सुब को युक्ति के साथ दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं। रिपोर्ट में यह भी लिखा है कि अनेक स्थानीय अधिकारियोंने यह नीति भी ग्रहण की है कि सामान्य पाठशालाओं में तो हरिजन अध्यापक रख दिये जायं और हरिजन-पाठशालाओं में सवर्ण अध्यापक। प्राइमरी स्कूलों के हरिजन विद्यार्थियों की विशिष्ट छात्र-वृत्तियों पर २०८), और हाई स्कूलों के हरिजन लड़कों की छात्र-वृत्तियों तथा छात्रालय शुल्क पर १०९२), और औद्योगिक शिक्षा प्राप्त करनेवाले हरिजन विद्यार्थियों के ऊपर ८४३) इस मुहकमेने खर्च किये हैं।

हरिजन अध्यापकों के लिए बम्बई हाते के तीन डिवीजनों के ट्रेनिंग कालिजों में १५ प्रतिशत, और उत्तरी डिवीजन के ट्रेनिंग कालिज में १० प्रतिशत स्थान सुरक्षित रखे गये थे। चपरासियों और नौकरों की १० फी सदी जगहें हरिजनों के लिए रिजर्व कर दी गई हैं, और इसके अनुसार खाली जगहों पर अब हरिजन ही रखे जायँगे। उक्त विभागने मुख्तलिफ मुहकमों में क्लर्कों के ९३ हरिजन उमेदवारों के लिए स्थान सुरक्षित करके प्रतिवार १२-१२ रुपये मासिक वेतन पर छः-छः उमेदवार बतौर एप्रिण्टिस के नियुक्त करने की सरकार से मंजूरी लेली है, जो दफ्तर का साधारण कामकाज सीख चुकने के बाद चपरासियों और क्लर्कों की जगह पर नियुक्त कर दिये जायँगे।

रिपोर्ट के अनुसार हरिजनों का पानी का सवाल अभीतक कहीं भी हल नहीं हुआ है। हरिजन जब भी अपने अधिकारों को अमल में लाने का प्रयत्न करते हैं, तब सवर्ण हिन्दू उनका बहिष्कार कर देते हैं और डरा-धमकाकर उन बेचारों को वहीं दबा देते हैं। २० प्रतिशत सार्वजनिक कुओं पर बतौर परीक्षण के तख्तियां लगाने का हुक्म दिया गया था, पर स्थिति जैसी थी वैसी ही बनी हुई है।

इन सब मामलों में सरकार के साथ जनता को अधिक-से-अधिक सहयोग करना चाहिए। हरिजन-सेवकों को चाहिए कि वे अपने-अपने सेवाक्षेत्रों का बिल्कुल सही विवरण तैयार करके हिन्दुओं के सुशिक्षित तथा समुन्नतवर्ग का समर्थन तथा सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करें, और इस प्रश्न को सरकार तथा जनता के सामने बार-बार रखें।

'हरिजन' से] म० ह० दे०

एक देश-सेवक का स्वर्गवास

पुरुलिया के निवारण बाबू, जिनका अभी हाल में स्वर्गवास हो गया है, बड़े ही विनम्र स्वभाव के पुरुष थे। जिस तरह हरिजनों के सच्चे सेवक थे, उसी तरह वे समस्त दीन-हीनों के सच्चे बंधु थे। अहिंसा की अनुपम सुन्दरता का उन्होंने खूब गहरे जाकर साक्षात्कार किया था, और उसे अपने जीवन में उतारने का वे अहर्निश प्रयत्न करते रहते थे। उनका जीवन उनके अनेक मित्रों और अनुयायियों के लिए प्रेरणाप्रद था, और वे भारी से भी भारी संकट के समय निवारण बाबू से पथ-प्रदर्शन तथा आश्वासन की आशा रखते थे। उनके मित्रों और अनुयायियों को उनके जीवन की स्मृति सदा शक्तिप्रद रहे और उन्हें सन्मार्ग पर उत्तरोत्तर प्रगति करने की स्फूर्ति दे।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

एक हरिजन-सेवक का सेवा-कार्य

जरायमपेशा हरिजनों की एक बस्ती में हमारे संघ का एक सेवक आठ-नौ महीने से रह रहा है। वहां वह बड़ी लगन और मेहनत से काम कर रहा है। उसकी जुलाई मास की रिपोर्ट के कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं—

"यहां इस बस्ती में काम करते हुए मुझे पग-पगपर काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। यह तो आप जानते ही हैं कि इन लोगों की गणना दुर्भाग्य से जरायम-पेशा जातियों में है। हरिजन तो हैं ही। आठेक महीने के बाद अब कहीं इन लोगों का मेरे ऊपर कुछ-कुछ विश्वास जमा है।

जुआ खेलने की इन्हें बहुत बुरी लत लगी हुई थी। पर इस महीने में मैंने किसी को जुआ खेलते नहीं देखा, यह मेरे लिए कम हर्ष की बात नहीं है। एक भाई तो बड़ा ही जबरदस्त

जुआरी था। उस दिन शराब के नशे में चूर एक दूसरी जगह खेल रहा था। मैंने समझाया, पर कुछ समझा नहीं। शराब का नशा उतरने पर उसकी स्त्रीने डाटकर कहा, 'तुम्हे शरम नहीं आती, कि मैं तो दर-दर भीख मांगती हूँ और तुम घर को इस तरह फूक रहे हो? तुम्हें मुन्ना की कसम है जो आज से कभी जुआ खेला।' बात उसे लग गई। आकर मुझसे माफी मागी और बोला,'आज से मैं कभी जुआ न खेलूगा और औरत को अब शहर मे भीख मागने नही भेजूगा।' अभीतक तो वह अपनी बात का धनी मालूम पड़ता है।

भीख मागने इस महीने मे सिर्फ चार-पाच स्त्रिया ही गई। दिन-दिन उनकी संख्या अब कम होती जा रही है।

रात को रामायण की कथा कहता हूं, पर श्रोता तो सिर्फ दो-तीन ही आते हैं। मेरी पाठशाला के बच्चे बेशक अच्छी सख्या मे आ जाते हैं। ये बच्चे 'रघुपति राघव राजाराम' की धुन बड़े प्रेम से बोलते है।

बस्ती में सफाई अब अच्छी रहने लगी है। मुश्किल से मुझे अब सारी बस्ती में एक-दो घरो की ही सफाई करनी पड़ती है। पर सूअर जो गन्दगी फैलाते हैं, वह तो अभी बेइलाज ही है।

मेरी पाठशाला के ५ लड़के अच्छे होनहार मालूम होते हैं। उन्होंने मास का एकदम परित्याग कर दिया है। तम्बाकू तक नहीं पीते। मास छोड़ देने पर इनके मा-बापोंने इन्हें बहुत डाटा, मारा-पीटा भी, पर ये अपने वचन से जरा भी नही डिगे। जिस दिन इनके घर मांस पकता है, उस दिन मैं खुद दाल-तरकारी बनाकर उन्हे दे देता हूँ। इनके माता-पिता भी अब मास खिलाने का आग्रह नही करते। इन लड़को की उम्र १२ बरस से कम ही है। नित्य सबेरे ये घूमने जाते हैं, और गड्ढा खोदकर पाखाना फिरने और उसे मिट्टी से ढक देते हैं। फिर नहा-धोकर प्रार्थना करके पाठशाला मे आते हैं। एक दर्जी की दूकान पर सिलाई का काम भी ये बच्चे सीख रहे हैं।"

वि० ह०

शाबाश काठियावाड़

श्री ठक्कर बापाने अपने प्यारे काठियावाड के हरिजनो के जल-कष्ट-निवारण के सबध मे जो हृदयद्रावक अपील निकाली थी उसका काठियावाडी प्रजाने अच्छा उत्साह-वर्द्धक उत्तर दिया है। काठियावाड-हरिजन-सेवक-सघ के मत्री श्री मो० एन० जोशीने १०१५२॥॥ की दान-सूची हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजी है। स्थान सकीर्णता के कारण उस लम्बी सूची को ज्यो-का-त्यो प्रकाशित न कर सकने का हमें खेद है। धर्मप्रिय काठियावाड़ियोने दयाधर्म के इस पुनीत फण्ड मे जो सात्विक दान दिया है, वह निश्चय ही दूसरे प्रान्तो के लिए अनुकरणीय और ईर्ष्या करनेलायक चीज है।

वि० ह०

केवल उन्हींको चन्दा दें

उज्जैन के प्रख्यात हरिजन-सेवक श्री कृ० वि० दातेने गणेशोत्सव के सम्बन्ध मे एक सामयिक सूचना भेजी है :—

"लोकमान्य तिलक महाराजने हिन्दू समाज मे ऐक्य स्थापित करने के उद्देश से ही 'गणेशोत्सव' को राष्ट्रीय रूप दिया था। पर यह बड़े दुःख की बात है कि हिन्दुओं के अन्दर अब भी ऊँच-नीच का विषाक्त भेदभाव मौजूद है, और 'गणेशोत्सव' मे अक्सर सवर्ण हिन्दू हरिजनों को शामिल नहीं करते। गणेशोत्सव अब आनेवाला है। इसलिए मेरी यह सलाह है कि केवल उन्ही सार्वजनिक गणेशोत्सवों में जनता चन्दा दे कि जिनमे हरिजन भी सवर्णों के साथ-साथ सम्मिलित हो सकें, चन्दा देते समय व्यवस्थापकों से ऐसा वचन ले लिया जाय, कि वे हरिजनों के साथ किसी तरह का कोई भेदभाव नही बरतेंगे।"

श्रीयुक्त दाते की इस सामयिक सलाह पर, हमें आशा है, अवश्य ध्यान दिया जायगा। उच्च-नीच भाव को आश्रय न देनेवाला दान ही उत्तम और सात्विक दान है, धर्मान्वेषी लोगो को इतना ध्यान तो रखना ही चाहिए।

वि० ह०

रायपुर के मन्दिर में हरिजन

रायपुर (मध्य प्रात) से एक सज्जन लिखते है :—

"मच्छी तालाव पर श्री हनुमान्‌जी के प्राचीन मदिर के अहाते मे गोडिहारी मुहल्ले के व्यापारियो तथा अन्य सज्जनोने चंदा करके श्री राधाकृष्णजी का एक नया मदिर बनवाया है। अभी गत ६ जुलाई को इस मदिर की प्राणप्रतिष्ठा हुई। उस दिन शहर मे भगवान् की मूर्ति का अच्छा शानदार जुलूस निकाला गया, जिसमे सवर्ण हिन्दुओ के साथ हरिजनोने भी बिना किसी भेदभाव के प्रेमपूर्वक भाग लिया। दर्शनाभिलाषी हरिजनोंने जब मदिर के भीतर भगवान् की मूर्ति के दर्शन करने की इच्छा प्रगट की, तब 'सरस्वती ऑयल मिल' के सचालक श्री हरीसिहजी स्वय अपने नेतृत्व में उन हरि-दर्शनातुर हरिजनों को मदिर के भीतर ले गये और उन्हे सब के साथ श्री राधाकृष्ण का दर्शन कराया, और तीर्थप्रसाद दिलवाया। मदिर के महंत श्री दयालदासजीने भी वैष्णवोचित उदारता से काम लिया।"

अन्य मदिरो के महतो और व्यवस्थापको के लिए रायपुर का यह सुन्दर उदाहरण अवश्य अनुकरणीय है।

वि० ह०

सिरसी में

हरिजन-सेवक-सघ के इन्सपेक्टर श्रीयुक्त बी० के० भडारी की रिपोर्ट का यह अश देखनेलायक है :—

"सिरसी मे हरिजनो के लिए दो मंदिर खुले हुए है—एक तो 'मरिअम्मा' का विशाल और समृद्ध मदिर और दूसरा एक निजी मदिर। यहा के सार्वजनिक तथा इन मदिरो के कुओं से हरिजन बिना किसी रोक-टोक के पानी भरते है। इस जिले मे हरिजनो के लिए भी पानी की कोई तगी नही है, क्योंकि वर्षा यहा काफी होती है,और कुएँ खोदने मे भी कोई कठिनाई नहीं पड़ती।"

चं० गु०

खादी-बिक्री की कला

(श्री विठ्ठलदास जेराजाणी)

[२]

कुछ दूकानदार बत्तियो की सुन्दर छटादार मेहराब लगाकर, चूड़ी का बाजा बजाकर, तरह-तरह के पुतले और नकली प्राणी रखकर ग्राहकों को आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं। खादी-भण्डार ऐसा नही कर सकते। उनके तो सभी प्रयत्न सात्विक

होने चाहिएँ। अतएव ग्राहकों को आकर्षित करनेवाले हमारे साधन हैं हमारी स्वच्छता, पवित्रता, हमारा राष्ट्रीय झण्डा, हमारे राष्ट्रनेताओं के चित्र, खादी-विषयक जानकारी बढ़ानेवाले सुन्दर-सुन्दर नकशे, तालिकाएँ, भण्डार की सादी किन्तु कला-पूर्ण सजावट, हमारा शील, हमारा सौजन्य और हमारा मनोहारी स्वभाव।

पश्चिमवालों के बिक्रीशास्त्र का सम्पूर्ण अनुकरण करना यद्यपि हमारे लिए सम्भव नहीं है, फिर भी उनकी कुछ बातें हमें अवश्य अपना लेनी चाहिएँ। हमें अपने धन्धे की पूरी जानकारी और उसे चलाने का सम्पूर्ण ज्ञान हस्तगत होना चाहिए। बिक्री-शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग दूकान के माल की सजावट है। हमारे पास जितनी तरह का माल हो, उतनी तरह से हम उसकी सजावट कर सकते हैं। हर दूसरे-चौथे दिन दूकान के सारे माल को नित नये ढंग से हम सजा सकते हैं—उदाहरण के लिए, यदि भण्डार में कोटिंग के थानों का एक जत्था है, तो उसे हफ्तोंतक वैसा ही और वहीं रक्खे रहने से उसमें कोई नवीनता नहीं रह जायगी। लेकिन इसी जत्थे को यदि हम अदल-बदलकर, उलट-पुलटकर सजाते रहें, तो नये माल के अभाव में भी वह सारा जत्था नित नया-सा मालूम होगा। एकबार दूकान में माल सजाकर हम दूर हट जायँ और उसे देखें, अपने साथियों को बतावें, और यह निश्चय करें कि वह आंखों को सुन्दर, आकर्षक और कलापूर्ण प्रतीत होता है या नहीं। इस प्रकार रात-दिन के अभ्यास से आंखें अभ्यस्त होती जाती हैं, और माल को नित नये ढंग से सजाने की रुचि और शक्ति बढ़ती जाती है। इस रीति से प्रथम दर्शन ही में ग्राहक को सन्तुष्ट करने की कला हस्तगत हो सकती है।

दूकान पर पैर रखते ही ग्राहक को यह प्रतीत होना चाहिए कि मानो हम अपनी मन्द मुसकान और मीठे शब्दों से उसका स्वागत कर रहे हैं। हमें ग्राहक के आने की खुशी होनी चाहिए और यथासंभव उसे खुश करके ही भेजने का हमारा निश्चय होना चाहिए। उसका आशय समझकर उसे उचित विभाग में ले जाना चाहिए, या नम्रतापूर्वक उधर जाने की सलाह देनी चाहिए। वह जिस उद्देश से खरीद करना चाहता है, उसे भलीभांति समझकर हमारे विचार में जिस-जिस माल से उसका वह उद्देश सिद्ध हो सकता हो, वह सब माल उसे बताना चाहिए। अकसर ग्राहक अपनी आवश्यकता को तो जानता है, पर हमारी दूकान के किस माल से उसकी वह आवश्यकता पूरी हो सकेगी, इसकी उसे स्पष्ट कल्पना नहीं होती। ऐसे समय दूकान के तात्कालिक लाभ को घड़ीभर भुलाकर हमें ग्राहक को, उसके एक सलाहकार के नाते, उचित सलाह देनी चाहिए। अगर वह यह कहे कि माल इतनी कीमत के अन्दर हो, तो उतनी ही कीमत में हमें उसका मतलब सिद्ध करने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि हमें उसके पास पैसों की कुछ गुंजाइश मालूम हो, तो उसे ऐसी सलाह देनी चाहिए कि जिससे उसका काम उत्तम रीति से सम्पन्न हो सके। ग्राहक ज्यादा दाम दे सकता है या ज्यादा खर्च कर सकता है, इसलिए जानबूझकर उससे ज्यादा खर्च कराने की हमारी कोशिश या नीति नहीं होनी चाहिए। ग्राहक के पसन्द किये हुए माल में कोई दोष हो और वह ऐब हमें मालूम हो, तो हमें चाहिए कि हम उसे वह दोष बता दें। उस माल की पसन्दगी में और कारणों से भी हमें कोई भूल मालूम होती हो, तो उसकी तरफ भी हमें ग्राहक का ध्यान आकर्षित कर देना चाहिए। अपनी चीज की उत्तमता के बारे में हमें जितना विश्वास हो, उससे अधिक विश्वास हम अपने ग्राहक को कभी न दिलावें। उदाहरण के लिए, यदि हमें किसी माल के रंग की पक्काई के सम्बन्ध में पूरा विश्वास न हो, तो ग्राहक को यह कहकर कि रंग पक्का ही है, हम उस माल को कभी न बेचें। किसी ग्राहक की खास जरूरत का कोई कपड़ा हमारी दूकान में न हो, तो उसके नजदीक का और उसकी जरूरत को पूरा करनेवाला माल हम उसे बतायें और उसमें से पसन्द करने की प्रार्थना हम अपने ग्राहक से करें। बहुधा इस प्रकार की सूचनाएँ बड़ी उपयोगी सिद्ध होती हैं। कभी-कभी ग्राहक किसी खास प्रकार की खादी बार-बार मांगते हैं, पर वह माल हमारे भण्डार में नहीं होता। दूकानदार को फौरन ही इस पर ध्यान देना चाहिए और अपने अधिकारी को इसकी सूचना कर देनी चाहिए। अगर उसे वह मांग इष्ट प्रतीत होगी, तो वह वैसा माल बनवाने या मँगाने का प्रयत्न करेगा।

भंडार के व्यवस्थापकों को प्रचलित फैशनों का भी अध्ययन करते रहना चाहिए। फैशनों की भलाई-बुराई को तौलकर उसे यह भी सोच लेना चाहिए कि भंडार के लिए उसका कैसा और क्या उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, आजकल लोग बाजार-हाट के लिए झोलियों का उपयोग करते हैं। यह झोली खादी-आंदोलन का परिणाम है और खादी-प्रचारकोंने ही इसका निर्माण किया है। शुरू में इसका रूप बगल-झोली का था, अब वह इस रूप में लोकप्रिय हो गई है। मिल के कपड़े पहननेवाले लोग भी इस तरह की झोलियां बहुतायत से रखने लगे हैं।

लकड़ी और चमड़े से बननेवाली कई चीजें कपड़े की भी बन और बिक सकती हैं। भंडार के व्यवस्थापकों को इसका भी अभ्यास करते रहना चाहिए।

ग्राहक को उसकी जरूरत का माल देकर ही हमें अपना कर्त्तव्य समाप्त नहीं समझ लेना चाहिए। हमें चाहिए कि हम अपने ग्राहकों को खादी की प्रतिदिन होनेवाली प्रगति से भी समय-समय पर सूचित करते रहें। खादी की नई नई चीजें जबतक हम खुद ग्राहक को बतायेंगे नहीं, उसे पता कैसे चलेगा? इसलिए ऐसी चीजें ग्राहकों को बतलाते रहना चाहिए। उन्हें जब जरूरत होगी, वे ऐसी चीजें हमारे भंडारों से खरीद लिया करेंगे। अच्छा तो यह हो कि ऐसी नई चीजें हम अपने भंडारों में ऐसी जगह और इस ढंग से सजाकर रक्खें कि ग्राहक की नजर बरबस उन पर पड़ती रहे।

खादी-भंडारों के ऐसे व्यवस्थापक अपने खरीदारों को तो खुश रखते ही हैं, साथ ही वे जनता में खादी की रुचि और उसके धर्म का प्रचार भी करते रहते हैं।

"पानी-फंड"

२५ जुलाई, १९३५ तक 'पानी-फंड' में निम्नलिखित दान प्राप्त हुए हैं:—

श्रीयुक्त एन० रामचन्द्रन्, पो० बॉ० नं० ८, रंगून के द्वारा	२१॥)
" अमृतलाल एन० गांधी, रंगून	५०)
" विश्वनाथ खेमका, रतनगढ़ (बीकानेर) के द्वारा	१३)
हरिजन-से० सं०, कटनी के द्वारा	२)
	८६॥)
पूर्व प्राप्त	१३७५७)
कुल	१३८४३॥)

प्रधान मंत्री, हरिजन-सेवक-संघ

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ९ अगस्त, १९३५

वस्त्रस्वावलंबन

खादी बनाने की जितनी प्रक्रियाएँ है उनमें से किसी भी प्रक्रिया करने का परिश्रम उठाने की जिन शहरवालो की इच्छा अथवा शक्ति नही होगी, उनके लिए बनाई जानेवाली खादी की सफलता के लिए एक प्रकार के नियम होते है, जब कि वस्त्रस्वावलंबन के प्रयोग की सिद्धि के लिए उससे भिन्न ही प्रकार के नियमो से काम लेना पड़ता है। बेचने के लिए जो खादी बनाई जाती है उसमें कपास बोने और उसकी फलियां चुनने से लेकर सूत बननेतक की प्रत्येक क्रिया अनेक आदमियो के बीच में आसानी से बॅट सकती है। खास करके जहा मजदूरी सबको करीब करीब एक-सी दी जाती हो, वहा तो क्रियाओ का यह विभाजन और भी आसान हो जाता है। चर्खा-संघ की देखरेख में, और सहकारिता के आधार पर विभिन्न मनुष्यो को भिन्न-भिन्न क्रियाओ में लगाया जाय तो परिणाम अधिक अच्छा आयगा। लेकिन जहा कोई चीज अपने घरू उपयोग के लिए ही बनानी हो, वहा तो एक ही कुटुम्ब के या एक सरीखे मनुष्य तमाम क्रियाओ के करने में जितनी ही अधिक एकाग्रता रखेगे, उतनी ही समय और धन की बचत होगी। किसी मनुष्य के पास यदि ऐसी थोडी-सी भी जमीन हो, जिसे वह एक उचित समयतक अपनी जमीन कह सके, और उसपर वह मनुष्य नित्य परिश्रम करे तो वह अथवा उसके कुटुम्ब के आदमी फुर्सत के समय सिर्फ थोडा हाथ-पैर चलाकर अपनी जरूरतभर की खादी बना सकते हैं। उन्हे केवल इतना ही बता देने की जरूरत है कि हरेक मनुष्य करीब-करीब मुफ्त मे ही अपनी जरूरतभर की खादी किस तरह बना सकता है। खादी-उत्पत्ति मे यदि मजदूरी देनी पड़े, और जब उसकी प्रति घंटा समान दर रखी गई हो, तब सब से अधिक पैसा कताई की क्रिया पर बैठेगा। कारण यह है कि एक गज खादी के लिए सूत कातने मे जितना समय लगता है उससे कम ही समय उसकी पहले की या बाद की किसी भी क्रिया मे लगेगा। कोई मनुष्य अगर कपास खुद ही ओटले, खुद ही धुनले और खुद ही कातले—और इतना तो वह आसानी से कर सकता है—तो उसे खादी करीब-करीब उतनी ही कीमत की पड़ेगी कि जितनी कीमत का मिल का कपड़ा पड़ता है। किसी चीज के बनाने मे मजदूरी का जितना पैसा खर्च होता है उतनी उस चीज की कीमत समझी जाती है। इसलिए जब उस चीज को उपयोग मे लानेवाला मनुष्य खुद ही फुर्सत के समय सारी मजदूरी करता है, तब वह चीज उसे मुफ्त जैसी पड़ जाती है। वस्त्रस्वावलंबन मे बिचौर्ड व्यापारी के लिए तो कोई जगह ही नही। अधपेट रहनेवाले करोड़ो ग्रामवासियों की आय में प्रत्यक्ष वृद्धि करने का यह आसान-से-आसान तरीका है।

मगर ये ग्रामवासी अपने उपयोग की खादी खुद बना लेने की क्या कभी आदत डालेंगे? जरूर, यदि हम में श्रद्धा और खादी-उत्पत्ति की कला होगी, अथवा यों कहिए कि यदि हम मे पहाड़ को भी डिगा देनेवाली श्रद्धा, और इस कठिन काम के लिए आवश्यक कुशलता होगी तो ग्रामवासियों को वस्त्रस्वावलंबन की आदत पड़े बिना न रहेगी। पर यह काम कठिन हो या सरल, उसे किसी बड़े पैमाने पर अथवा सुसगठित रीति से या विचारपूर्वक बनाई हुई किसी योजना के अनुसार करने का प्रयत्न शायद ही हुआ है। सारे हिंदुस्तान के गांवो में रहनेवाले लोगों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि जिससे वे अपना कपड़ा खुद पैदा करले, और इस तरह उनके पास जो थोड़ी-सी सपत्ति बची है, उसे अपने गांवों मे अकारथ खिच जाने से रोकलें। यह काम चर्खा-संघ का है। यदि वह यह काम नही करता, तो उसका अस्तित्व सफल नही कहा जा सकता, क्योकि अब कुछ दिनो से मै यह जोर देकर कहता चला आ रहा हूं कि खादी का संदेश तो यही है कि गांवो मे रहनेवाले समस्त स्त्री-पुरुष गांवो में खादी खुद तैयार करें और खुद ही उसका उपयोग करे। इसका आरंभ इस तरह करना होगा कि हरेक गांवमें—ऐसे भी गांवो मे जहां कपास की खेती का नाम भी नहीं जानते—लोगो को कपास बोने के लिए समझाया जाय। प्रत्येक गांव में जबतक कपास नही बोया जायगा, तब तक खादी की सार्वत्रिक उत्पत्ति संभव नही। हमारे सामने ऐसे प्रसिद्ध उदाहरण मौजूद है कि जहां किसी जमाने मे रेगिस्तान थे वहा आज हरे-भरे लहलहे बाग देखने मे आते है। जमीन में उचित परिवर्तन या सुधार करने से क्या नही हो सकता? इसलिए गांव-गांव मे स्थानीय उपयोग के लिए पर्याप्त कपास पैदा कर लेना असंभव नही होना चाहिए। ऐसा करने से ही ग्रामवासियो को खादी सस्ती पड़ेगी—और सस्ती ही नही, बल्कि वह खादी टिकाऊ भी होगी। अनुभव से इतना तो निर्विवाद रीति से साबित हो चुका है कि कपास की किस्म और उसके चुनने, साफ करने, ओटने, धुनने और कातने की रीति मे जो फर्क होता है उसका असर खादी की मजबूती और उसकी उत्पत्ति की मात्रा पर भी पड़ता है। जिस चीज से ढाका की जगत्प्रसिद्ध मलमल तैयार होती थी उस चीज की ओटाई, धुनाई, कताई, बुनाई आदि सारी प्रक्रियाएँ अत्यंत सभाल के साथ होनी ही चाहिए, तभी तो उससे 'शबनम' जैसी खादी बन सकेगी।

'हरिजन' से]   मो॰ क॰ गांधी

कपास उगानेवाली कत्तिन

गीत

वह कैसी लहलही श्याम,
मेरी कपास की क्यारी, कपास की क्यारी।
फूलेगी मक्खन की-सी गोली, मक्खन की-सी गोली,
ढोंढी ललित ललाम; मेरी कपास की क्यारी,
कपास की क्यारी।

पीजे पे होंगी कोमल पूनियां, कोमल पूनियां,
जिन्हें कातूंगी मैं थाम; मेरी कपास की क्यारी,
कपास की क्यारी।

उगलेंगी उजले महीन-से धागे, महीन-से धागे,
मेरा कत्तिनों में होगा नाम, मेरी कपास की क्यारी,
कपास की क्यारी।

कातूं मैं निसदिन नाम ले तेरे, नाम ले तेरे,
घनी-घनी उपजादे राम, मेरी कपास की क्यारी,
कपास की क्यारी।

अनुवाद

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्राम-सेवा

इस सप्ताह पानी की ऐसी झड़ी लगी रही कि कुछ पूछिए नहीं। तीन दिन तो बारिश के मारे हम गाव में सफाई करने जा ही नहीं सके। पर मैं यह आशा कैसे करूँ कि हमारी यह गैर-हाजिरी लोगों को खली होगी ? मनुष्य चाहे या न चाहे, प्रकृति तो उसकी मदद करती ही रहती है। कड़ाके की धूप कूड़े-कचरे को सुखाकर उसकी दुर्गन्ध दूर कर देती है, तो अच्छी जोर की वर्षा तमाम गन्दगी को बहा ले जाती है।

तो भी लोगो के सपर्क मे समय-समय पर तो हम आते ही रहे। अपनी यात्रा पूरी करने के पहले हमे अभी कितनी मंजिल तय करनी है और कैसे-कैसे नदी-नाले लाघने हैं इसका निरन्तर स्मरण करानेवाले प्रसग तो आते ही रहते है। पाठको को याद होगा कि कुछ दिन पहले हमने इस गांव की कुछ सड़के ठीक की थी और दो कुओं के इर्द-गिर्द का कूड़ा-कचरा साफ किया था। एक कुएँ के पास गढ़ैया भरी रहती थी, क्योकि पानी निकलने का वहा कोई रास्ता नही था। आसपास की जमीन मे इतने खड्डे थे कि उसे पाटकर पानी निकल जाने के लिए रास्ता बनाना हम नौसिखियो के बूते का काम नही था। हमे लगा कि यह काम तो इजीनियर ही कर सकता है। लोगो के कहने से हमने वही नजदीक एक छोटा-सा गड्ढा खोद दिया था, जिसमें तमाम गन्दा पानी इकट्ठा हो जाता था। गर्मियों मे तो उससे काम चल गया, पर अब यह डर लगा रहता है कि कुएँ के पास खेलनेवाले बच्चे कहीं उसमे गिर न पड़े। उस गड्ढे को लोग चाहते तो बड़ी आसानी से पूर सकते थे, पर कौन इतनी मेहनत करे ? एक दिन जब हमारी टोली के आदमी उस गड्ढे का पाटने गये और वही नगीच के एक टीले से मिट्टी खोदने लगे, तब लोगोने बड़ा होहल्ला मचाया कि, यह तो माता का टीला है! जो लोग गड्ढे मे एक मुट्ठी भी मिट्टी डालने को तैयार नही थे, उन्ही लोगोने झट से कँटीले झाड़-झंखाड उठा-उठाकर माता के उस टीले पर डाल दिये, जिससे हम उसकी पवित्र मिट्टी न खोद सके!

इस गाव मे हरिजनो की दो जातिया हैं—एक महार और दूसरी माग। महार अपने को माग से ऊँचा समझते हैं। उन्हे इसकी जरा भी पर्वा नही कि सवर्ण हिन्दू अपने को महारो से ऊँचा समझते हैं। उन्हे तो इतने ही मे सन्तोष है कि उन्होंने माग से अपने को जो ऊँचा मान रखा है, उनकी वह ऊचाई भर कायम बनी रहे। महारो का कुआ अलग है, और मागो का अलग। एक मुहल्ले के महारोने एक खासा बड़ा कुआ खुद खोद तो लिया है, पर उसकी बँधाई के लिए उनके पास पैसा नही है। बिना जगत का पड़ा है। कहां से तो ईंटें लावे और क्या राज को दे ? इसलिए वे एक दिन मीरा बहिन से पूछने लगे कि मजदूरी का काम अगर हम अपने आप करले तो क्या गाधीजी ईंट-चूना के लिए पैसा देंगे ?' हमने उन्हे जाकर समझाया कि 'पैसा गांधीजी के पास तो है नहीं, पर हरिजन-सेवक-संघ तुम्हें पैसा दे देगा। लेकिन एक शर्त है, और वह यह कि तुम्हें अपना यह कुआं सब के लिए खोल देना पड़ेगा—याने, मांग भी इससे पानी भर सकेंगे।' इतनी बात सुनते ही एक आदमी आपे से बाहर हो गया, और बोला, 'इससे तो कुआं जमींदोज हो जाय तो अच्छा, पर मांग को तो इसपर हम हर्गिज नहीं चढ़ने देंगे।' दूसरा एक आदमी जरा समझदार और चतुर था। उसने कहा, 'इस बात का जवाब तुरन्त नही दिया जा सकता। सोच-विचारकर हम आपसे कहेंगे।'

एक तरफ जहां यह हो रहा है, वहा दूसरी तरफ मीरा बहिनने गाव के कुछ बच्चों को नित्य शाम को प्रार्थना के समय मगनवाड़ी आने का मोह लगा दिया है। मूसलाधार वर्षा क्यों न होती हो, तो भी वे बच्चे मगनवाड़ी आये बिना नही रहते। रविवार को तो सात बालक आये थे। हम मे से एक आदमी उन्हे नित्य सुन्दर कहानियां सुनाता है, और 'गीताई' के मराठी श्लोको का उच्चारण सिखाया करता है।

खादी का भविष्य

मजदूरों की एकसरीखी दर कर देने की आवश्यकता पर गाधीजीने इधर जो लेख लिखे हैं उनसे तमाम खादी कार्यकर्त्ता गहरे विचार में पड़ गये है, और बहुतो के मन मे महान् मंथन हो रहा है। अधिकाश खादी-सेवको की राय यह मालूम होती है कि हमे समान मजदूरी की एक दर निश्चित तो अवश्य कर देनी है, पर उसे एकदम शुरू न किया जाय, बल्कि ऐसा करना चाहिए कि मजदूरी मे धीरे-धीरे वृद्धि करके अत मे उसे उस निर्धारित आदर्शतक पहुँचा दिया जाय। मजदूरी मे इतना पैसा तो मिलना ही चाहिए कि जिससे मजदूर का पेट तो भर सके। और उसे पेट भरनेलायक मजदूरी देनेके साथ-साथ हमे यह आग्रह भी जरूर रखना चाहिए कि माल अच्छे-से-अच्छा तैयार हो। इस अंतिम बात के प्रसंग में गाधीजी 'स्ट्राबेरी' के मुरब्बे के उस कार-खाने की यह बात कार्यकर्त्ताओं सुनाते कभी अघाते ही नहीं, जिसे उन्होने कई बरस पहले विलायत में देखा था—"उस कारखाने में हरेक 'स्ट्राबेरी' की अच्छी तरह जाच की जाती है, और जो फल निश्चित आकार का नहीं होता या हलकी किस्म का होता है उसे फेंक देते है। इसी तरह हमारे यहा अमुक कस, समानता और नम्बर मे जो सूत हलका उतरता हो उसे लेने से इकार कर देना चाहिए। हमारे खादी-केन्द्रों मे आनेवाली हरेक कुकडी की हमे जांच करनी चाहिए, और हरेक का अलग-अलग नोट रखना चाहिए, और अमुक समयतक निश्चित की हुई समानता, कस और नबरतक अगर वह सूत न पहुँचे, तो उसे लेने से हमे साफ इकार कर देना चाहिए।"

इस सबध मे श्री शकरलाल बैंकरने दक्षिण भारत मे जाकर जो काम किया है वह उल्लेखनीय है। दक्षिण से लौटते समय कुछ दिन वे हमारे यहा ठहरे थे। उन्होने खुद अनेक प्रकार के चर्खो पर कातने के प्रयोग किये हैं, अनेक नबर का सूत निकाला है, सभी तरह के तकुवे आजमाकर देखे है, और खादी-उत्पत्ति से संबध रखनेवाली प्रत्येक छोटी-से-छोटी चीज में उन्होंने एक निष्णात की जैसी कुशलता प्राप्त की है। दक्षिण भारत की अपनी इस लबी यात्रा मे वे खादी-उत्पत्ति के हरेक केन्द्र मे गये और इतना ही नहीं कि वहां के काम-काज की सिर्फ पूछताछ ही की हो, बल्कि सैकड़ो कत्तिनों की झोपड़ियो मे जा-जाकर उनके चर्खे देखे, तकुवो की जाच की, मालें देखी, तकुवे के चक्कर गिने कि चर्खे के एक चक्कर में वह कितने फेरे करता है, और कत्तिनों को यह बतलाया कि वे अच्छा बढ़िया तकुवा काम मे लाने से सूत कितना ज्यादा और मजबूत कात सकती हैं। और उन्हे यह विश्वास दिलाया कि मौजूदा स्थिति मे भी वे जितना आज कमाती है, उस

मे ड्योढा पैसा तो बडी आसानी से कमा सकती है। खादी-केन्द्रों में तैयार होनेवाली खादी की एक-एक किस्म उन्होने जाची, और खादी-सेवकों को मोटी कसौटी के जरिये यह बतला दिया कि जो खादी देखने में बढ़िया-से-बढ़िया लगती है वह अक्सर कम-से-कम टिकाऊ होती है। खादी के कुछ नमूने वे अपने साथ लाये थे। अच्छी-से-अच्छी दिखनेवाली खादी को उन्होने हाथ में लेते ही चीर डाला। ऐसे अनेक नमूनों को उन्होंने देखते ही नापास कर दिया ! हम तो सब दग रह गये, और अपने हाथ के काते हुए सूत की खादी उन्हे जाचने के लिए देने मे हमारे तो हाथ कापते थे।

इस तरह अभी खादी का भविष्य तो निर्माण के गर्भ मे है। किन्तु यह सद्भाग्य की बात है कि खादी के खास-खास कार्यकर्त्ता जाग्रत है और इस प्रश्न का सच्चा हल जबतक नही हो गया, तब-तक वे आराम से बैठनेवाले नही।

काल्पनिक पहेली

गाधीजी जो कितनी ही सादी-से-सादी बाते कहते और लिखते हैं, वे भी कुछ लोगो को पहेली-सी मालूम होती हैं और उन्हे सशय के भँवर में डाल देती हैं। सादी-से-सादी बात का भी कुछ लोग तरह-तरह का अर्थ लगाते हैं, और अनेक पहेलिया खडी कर देते हैं ! गाधीजीने शरीर-श्रम पर जो लेख लिखा था उसका सीधा-सादा भावार्थ तो इतना ही है कि हरेक आदमी खुद अपने पसीने की कमाई खाने लगे तो परावलंबन और यह गरीबो का शोषण बंद हो जाय, और फिर किसी को किसी मनुष्य से उसकी शक्ति से ज्यादा काम न लेना पड़े। पर कुछ लोग इससे इस घबराहट में पड़ गये हैं कि अधिकांश मनुष्य तो यह शरीर-श्रम करते नही, तब उन्हें रोटी मिलने का क्या हक है ? वकीलो को ही लीजिए। ये लोग हजारो रुपये कमाते हैं। इनकी एक-एक घटे की फीस रुपयो की नही, अशर्फियो की होती है। इसी तरह डाक्टर भी खासी चादी बनाते है। पर ये लोग कुछ भी शरीर-श्रम नही करते। गांधीजी इस प्रश्न का यह जवाब देते हैं, "जो लोग शरीर-श्रम नही करते, उनसे तुम ईर्ष्या क्यो करते हो ? दुनिया मे हरेक आदमी अपने पसीने की ही कमाई खायगा ऐसी कल्पना तो मैंने कभी नही की। मैंने तो एक स्वर्ण-नियम भर बतला दिया है। उसपर चलने के लिए तुम खुद तैयार हो या नही ? यदि हा, तो जिस मनुष्य मे इस नियम पर चलने की तैयारी या शक्ति नही है उसके प्रति तुम्हे द्वेष नही करना चाहिए। मैं जो दूध और फल खाता हूँ उन्हे अगर शुद्ध शरीर-श्रम करके प्राप्त नही करता तो इसका यह अर्थ हुआ कि मै दया का पात्र हूँ, इससे शरीरश्रम के उक्त नियम मे कोई न्यूनता नही आती। ब्रह्मचर्यव्रत का पालन थोड़े-से इने-गिने लोग ही करते होगे, पर इससे क्या उन्हें ब्रह्मचर्य का पालन न कर सकनेवाले करोडो मनुष्यो के प्रति द्वेष करना चाहिए ? वे तो द्वेष के नही, दया के पात्र हैं।"

ऐसी ही बिचूचन का एक दूसरा उदाहरण है, पर उसका कारण इससे उलटा है। एक सज्जन पूछते है, "मुझे इस नियम का पालन तो करना है, पर मेरा शरीर इतना कमजोर है कि उसका पालन हो नही सकता। मुझे इस बात का दुःख तो बहुत होता है, पर अब करूँ क्या ?" गांधीजी उन्हे यह जवाब देते है, "मैने तो जिस आदर्शतक हमें पहुँचना है वह बतलाया है। हरेक मनुष्य उसका यथाशक्ति पालन करे। अगर आपसे किसी भी तरह का शारीरिक श्रम नही हो सकता तो उसके लिए आप दुःख न करे। आप दूसरा जो शुद्ध धधा कर सकते हो वह करें, और इतना ध्यान रखें कि आपके लिए जो लोग तन गारते हैं उनको आप चूसें नही। आप यह मानते है कि डाक्टरों वगैरा को शारीरिक श्रम करने के लिए फुर्सत नहीं मिलती, तो उनके लिए आप चिंता न करें। ये लोग यदि शुद्ध-सेवा-भाव से समाज की सेवा करेंगे तो समाज इतना ध्यान तो रखेगा ही कि उन्हे भूखों न मरना पड़े।"

नियम पालन

'हरिजन-सेवक' के पाठको को शायद यह मालूम न हो कि श्री भणसालीजीने हमारे साथ यह संपूर्ण चातुर्मास बिताने का निश्चय कर लिया है, और वे यहा के संघ के नियमो का बहुत ही सूक्ष्मता के साथ पालन कर रहे है। वे नित्य नियमितरीति से सूत कातते है, और यह तो कोई नही चाहेगा कि वे अपनी दिनचर्या लिखा करे, तो भी वे बराबर नियमितरीति से डायरी लिखते हैं। किन्तु नितनये देहदमन के मार्ग शोधने की ओर ही उनकी मनोवृत्ति रहती है। हम लोगो मे यहा जिन्हे अपने शरीर का बहुत मोह है उन्हे चेतावनी देने के लिए ही मानो उन्होंने अमुक घटे दिन मे और अमुक घटे रात में खडे-खडे ध्यान करने का व्रत गांधीजी की सम्मति से लिया है। इस नये व्रत के लेने की इच्छा जब उन्होने प्रगट की, तब गाधीजीने उनके साथ बहुत बहस नहीं की। उन्होंने सिर्फ इतना ही पूछा "तुम किसी चीज का सहारा नही ले सकते हो ?" भणसालीजीने कहा, "यह मुझे पसद नही।" गाधीजीने कहा, "तब ठीक है। यह बात नहीं कि इस प्रकार के तप का मैं मूल्य नही समझता। मनुष्य को देखना केवल यह चाहिए कि उसका तप सात्विक न रहकर तामसिक तो नही बन रहा है।" लेकिन भणसालीजीने जब एकांतर उपवास आरभ करने के सबंध में पूछा, तब गाधीजीने उन्हे यह दूसरा व्रत लेने से रोक दिया और समझाया। उन्होने अपनी आख से देखे हुए ऐसे मनुष्यों के दृष्टात दिये जिन्होने अनेक उपवास करके बाद को जब खाना शुरू किया तो इतना ठूस-ठूसके खाते थे कि पेट मे सास लेने की भी जगह नही रहती थी ! गाधीजीने कहा, 'यह भय तो है ही नही कि तुम उचित मात्रा से अधिक खाओगे, क्योंकि तुम आटा और नीम की पत्तियो को छोडकर और तो कोई स्वादिष्ट चीज खाते नही। पर मैं एक अच्छा रास्ता बतलाता हूँ। तुम अपना आहार आधा करदो और फिर देखो कि यह कैसा लगता है। एकातर उपवास करने की अपेक्षा इस आधे आहार के नियम का असर शरीर पर अच्छा पड़ेगा।" भणसालीजीने एक क्षण विचार करके देखा और गांधीजी की यह बात सहर्ष मानली। भणसालीजी को तब बहुत ही दुःख होता है, जब गांधीजी उनसे कोई ऐसा काम करने को कहते हैं जो उनसे सध नहीं सकता। और जब वे यह देखते हैं कि मैं गांधीजी की सलाह पर अमल कर सकता हूँ, तब उन्हे बालक की तरह प्रसन्नता होती है।

मोची की शिक्षा

यहा सत्याग्रहाश्रम का एक छोटा-सा चर्मालय है, जिसे कुछ पुराने आश्रमवासी चला रहे हैं। अब उसमे एक मोची का विभाग और बढ़ा दिया गया है। उसमे मरे हुए ढोरो के चमड़े के चप्पल, स्लीपर और अन्य अनेक चीजें बनती हैं। हम लोग ज्यादातर वही से चप्पल वगैरा मंगाते हैं। इस विभाग का जो प्रधान मोची है

उसकी वर्धा में दूकान थी। दूकान बन्द करके अब वह हमारे यहां आ गया है। उसे मोची का और काम तो अच्छा आता है, पर दूकान में उसने कभी चप्पलें नहीं बनाई थीं और हम सब लोग तो अधिक तरह चप्पलवालेही ठहरे! जैसी चप्पल बनाकर वह हमे दे देता है उससे हम अपना काम चला लेते हैं। पर गांधीजी को इससे भला सन्तोष हो सकता है? उन्होंने तो मोची-विभाग के सारे कारीगरो को मगनवाड़ी में बुलाया, ताकि वे खुद ही मोचियो को उनकी त्रुटियां बता सके और अपने सामने उन्हे सुधार सके। सो एक दिन दोपहर को वे सब मोची आ पहुँचे और गांधीजी की बैठक के सामने छोटी-सी जूते बनाने की दूकान उन्होने लगादी। हम सब को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। इतने में राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू, सरदार वल्लभ भाई, कांग्रेस के मंत्री और कार्यकारिणी समिति के कुछ सदस्य आ पहुँचे। गांधीजी उस वक्त उन मोचियों को सुन्दर चप्पल बनाने का पदार्थ पाठ दे रहे थे। वे तो यह चप्पल-शिक्षण देखकर आश्चर्यचकित हो गये। गांधीजी मोचियो को समझा रहे थे, "देखो, यह पट्टी यहां इस तरह आडी लगानी चाहिए। टांके इस जगह देने चाहिए। तल्ले में जहां पैर की दाब पड़ती हो वहां चमड़े के कुछ टुकड़े आड़े डाल देने चाहिए, इत्यादि इत्यादि।" अपनी आख के सामने उन्होंने तमाम सीवन खुलवाई और फिर से टांके लगाने के लिए उस मोची से कहा। पर उधर कार्यकारिणी समिति के सदस्य कुछ अधीर-से हो रहे थे। उन्होंने कहा, "पर जितना समय हमें मिला है उसमें से बहुत कुछ तो ये मोची ही लिये लेते है।" गांधीजीने हँसते हुए कहा, "अरे, आप लोग क्यों इन बेचारो पर ईर्ष्या करते हैं? ये रोज-रोज तो आते नही आपको भी देखना हो तो देखे कि अच्छा बढ़िया चप्पल कैसे बनता है।" बेचारे वे मोची तो उन बड़े-बड़े आदमियों को देखकर घबरा-से गये और तुरत ही वहां से उठकर बाहर बरामदे में जा बैठे। पर उनकी ठकठक की आवाज तो हो ही रही थी। इसलिए कार्यकारिणीवाले फिर अधीर हो उठे। एक आदमी आवाज बंद करने के लिए उन लोगों से कहने गया। पर गांधीजी ने उसे रोका और कहा, "अरे, यह क्या करते हो, मोची अपना काम कर रहा हो तो उसके पास बैठकर भी काम करने की हमे आदत डालनी चाहिए ना! और फिर आप लोगों को इस बात का पता कैसे चलेगा कि यह ग्रामउद्योग-संघ का कार्यालय है?"

मेरा ऐसा खयाल है कि कार्यकारिणी समिति के कुछ सदस्यो को और 'हरिजन-सेवक' के अनेक पाठकों को शायद इस बात का पता न होगा कि गांधीजीने जूता जोड़ा बनाना सबसे पहले दक्षिण आफ्रिका में टॉलस्टॉय फार्म में सीखा था और वहीं इस कला में उन्होंने कुशलता हस्तगत की थी। स्व० सोराबजी अडाजणिया उन दिनों गांधीजी के साथ काम करते थे। उन्होंने गांधीजी का बनाया हुआ एक चप्पल जोड़ा बंगाल के नरमदल के वयोवृद्ध नेता श्री सत्यानंद बोस को भेंट किया था, जिसे वे बरसो से एक अनमोल उपहार के रूप में बड़ी हिफाजत के साथ रखे हुए हैं।

'हरिजन' से]　　　　**महादेव ह० देसाई**

मेरा दक्षिण-प्रवास

[५]

पतलम्—कोचीन और त्रावणकोर इन दो राज्यों की प्रजा को—फिर चाहे वह ब्राह्मण हो, चाहे नायर हो, या सबसे नीच समझी जानेवाली पुलया जाति हो—प्राथमिक शिक्षा के प्रति इतना अधिक प्रेम है कि उसके लिए वे लोग हर तरह का कष्ट सहन करने को तैयार रहते हैं। यहां के गांवो में एक ही जगह सब मकान नहीं होते। खेत-खलिहानों में फुटफेर घर होने से जहां भी पाठशाला होती है वहांतक इनके बच्चे बड़ी खुशी से मील-दो मील दौड़े चले जाते है। पतलम् गांव में ऐसी ही एक पाठशाला मैंने देखी। सन् १९३४ के आरम्भ में गांधीजी की हरिजन-यात्रा के समय इस गांव के लोग सड़क पर मोटर के सामने खड़े हो गये थे, और वहां से मील-दो-मील कच्चे रास्ते से गांधीजी को बड़े आग्रह के साथ अपनी पाठशाला दिखाने ले गये थे। वहां जाने का परिणाम अच्छा ही हुआ। हरिजनोंने खुद अपने हाथ से पाठशाला का मकान बनाया था, और बड़ी कठिनाई से एक अध्यापक रखकर पचासेक लड़कों को वे लोग शिक्षा दिला रहे थे। यह देखकर कि हद दरजे के गरीब होते हुए भी ये बेचारे इतनी मेहनत से पाठशाला का खर्चा चला रहे हैं, गांधीजीने स्थानीय संघ के मंत्री से उन्हें सहायता देने के लिए कह दिया था। एक साल बाद यह पाठशाला मैंने गत मार्च मास में फिर देखी। तब से अब उसकी और भी अच्छी अवस्था है। छप्पर तो पहले की तरह ताड़पत्र का ही था, पर अध्यापक दो थे। बालक-बालिकाओं की संख्या पारसाल ५० थी, इस साल ७५ हो गई है। बच्चे सब खूब स्वच्छ, माथे पर चंदन लगाये अच्छी व्यवस्थित रीति से बैठे हुए थे। उनके मां-बाप भी अच्छी खासी संख्या में वहां इकट्ठे हो गये थे, और संघ उनकी पाठशाला को जो सहायता दे रहा है उसके लिए आभार मानते थे। उनकी दो मांगें और हैं एक तो उन्हें तीसरा अध्यापक चाहिए, और दूसरी मांग उनकी यह थी कि पाठशाला का छप्पर मंगलोरी खपरो का बनवा दिया जाय। सड़क से दूर इन छोटे-छोटे गांवो पर अगर थोड़ा भी ध्यान दिया जाय, तो उसका कितना अच्छा परिणाम निकल सकता है इस बात का यह स्कूल एक बढ़िया उदाहरण देखने में आया।

नट्टाग्नपलम्—श्री रामन् पिल्ले नामक एक नायर सज्जन यहां के नेता हैं। हरिजन-कार्य में वह खूब रस लेते हैं। वह मुझे गाजे-बाजे के साथ सड़क से एक मील दूर हरिजनो के एक छोटे-से गांव में ले गये। यहां हरिजन भाइयों का बनवाया हुआ ब्रह्मी-घाट का एक छोटा-सा, पर सुंदर और कलामय मंदिर देखा। उनका उत्साह देखकर हमें बड़ा आनंद हुआ। यहां इन हरिजन भाइयोंने अपने बच्चों के लिए पाठशाला खुलवा देने की इच्छा प्रगट की। पहले यहां एक पाठशाला थी। उसके पत्थर के खंभ यहां पड़े हुए हैं। मैंने उन्हें यह वचन दे दिया कि दो-चार मास के भीतर संघ उनके बच्चो के लिए पाठशाला का प्रबंध कर देगा। इस गांव में श्री रामन् पिल्ले बुनाई का एक अच्छा स्कूल चला रहे हैं। उसमें ३० करघे चलते हैं, और ७० लड़के-लड़कियों को कपड़े बुनना सिखाया जाता है। सूत यद्यपि मिल का लगाते हैं, तो भी यहां का हाथ का बना कपड़ा बहुत ही बढ़िया होता है। माल अच्छा बनता है और बिकता भी खूब है, इससे दूकानदार लोग खुद यहां आकर माल खरीद ले जाते हैं।

पल्लन—यह गांव समुद्र के तट पर है। यहां ७-८ घंटे विश्राम किया, जिससे शारीरिक और मानसिक थकान बहुत-कुछ दूर हो गई। तीन-चार मील बांस के डांड से चलनेवाली छोटी-सी डोंगी में चलना पड़ा, तब पल्लन गांव पहुँचा। इस नहर के किनारे

नारियल की रस्सी बुनने के बहुत-से छोटे-छोटे कारखाने हैं। नारियल की छाल तीन-चार महीने पानी में सड़ाते हैं, और फिर उसमें से रेशा निकालकर हाथ के छोटे-छोटे मचों पर उसकी डोरियां भाजते हैं, और चटाई, आसन वगैरा गृहस्थी के काम की अनेक चीजें उससे बनाते हैं।

हिदुस्तान के सभी भागों में यहां से ये चीजें भेजी जाती हैं। काम करनेवाली हरिजन स्त्रियों और लड़कियों को यहां ≈) रोज मजदूरी मिलती है, और उसमें वे सतोषपूर्वक अपना निर्वाह करती हैं।

यहां भी समुद्र-तट पर ताड़पत्रों से छाई हुई एक हरिजन-पाठशाला देखी। पाठशाला के बच्चे और हरिजन गीत गाते हुए हमें बुलाने आये थे। मछुवे हरिजनों की यह पाठशाला देखकर चित्त हरा हो गया। एक अध्यापक, जिसे ८) वेतन मिलता है, ५० बालकों को पढ़ाता है। वहीं पास ही एक सरकारी स्कूल है, जिसमें चार अध्यापक हैं। इस पाठशाला के खुलने के पहले सरकारी स्कूल में सिर्फ दस ही हरिजन लड़के जाते थे। उनके लिए अब यह खास पाठशाला खुलजाने से हरिजन लड़कों की काफी संख्या बढ़ गई है, और वे यहां खूब प्रेम से पढ़ते हैं। यह सुंदर कार्य उत्साही युवक श्री शंकर पिल्ले की बदौलत ही हुआ है। ऐसे छोटे-से गांव के पुरातन-प्रिय वातावरण में उन्होंने अद्भुत परिवर्तन कर डाला है।

एर्नाक्युलम—कोचीन राज्य का यह मुख्य नगर है। पहले भी एकबार मैं यहां आया था। अबकी फुर्सत के साथ अच्छी तरह हरिजन-बस्तियों को देखा। वालन नामक मछुवे हरिजनों की एक सुंदर बस्ती देखी। पहले ये लोग शहर में एक दूसरी जगह रहते थे। वहां से हटाकर अब उन्हें यहां बसाया है। कोचीन-सरकारने ६०–७० कुटुंबों के रहने के लिए अलग-अलग पत्थर के पक्के मकान बनवा दिये हैं। फी मकान २५०) खर्च पड़ा है। छप्पर ताड़पत्र के हैं, जो हर दो बरस के बाद बदलने पड़ते हैं। ऐसे एक सेवक की यहां खास जरूरत है, जो उनके हितकारी कार्यों को हमेशा करता रहे।

इसके बाद पेल्लापाढ़ी नाम का एक दूसरा मुहल्ला देखा। यह मुहल्ला एक बगीचे में है। यहां पुलया लोगों के करीब सौ झोंपड़े हैं। अपना मुर्दा ले जाने में इन बेचारों को बड़ी मुश्किल पड़ती है। सवर्ण हिंदुओं को यह बर्दाश्त नहीं कि अपनी पवित्र बस्तियों और गलियों में होकर पुलया लोगों की अपवित्र अरथी निकलने दें! जीवित अवस्था में तो गरीब पुलया का तिरस्कार होता ही है, मरजाने के बाद उसके मुर्दे का भी अपमान किया जाता है! वहीं एक ताड़ी की दूकान देखी। वहां बीसियों मनुष्य ताड़ी पीते और पागल बनते हुए नजर आये।

यहां हरिजन स्त्रियों को आश्रय देनेवाली एक संस्था है। एक नायर स्त्री, जिसे लोग तपस्विनी माई कहते हैं, इस संस्था को चला रही है। इस संस्था का नाम 'अबलाशरण औद्योगिकगृह' है। सूत और नारियल की डोरियां यहां हाथ के करघों पर बुनी जाती हैं। ३०–४० हरिजन स्त्रियों को यहां बुनाई का काम सिखाया जाता है। कोचीन-सरकार इस औद्योगिकगृह की प्रत्येक स्त्री को ३) मासिक सहायता देती है।

भंगियों के मुहल्ले में गया तो वहां ताड़ी के पियक्कड़ों का जमघट देखा। खूब छके हुए थे। बेशर्मी का कुछ ठिकाना! बेचारी उनकी स्त्रियां अपने पुरुषों के इस निर्लज्ज बर्ताव पर मारे शर्म के गड़ी जाती थीं। जब हरिजन-सेवक-संघ के बारे में उन्हें बतलाया और समझाया कि तुम्हें आदमी की तरह रहना चाहिए, जानवरों से भी गये-बीते न बन जाओ, तब उन्हें भी कुछ होश आया और शर्मिन्दा हुए। लेकिन यह आध घंटे का उपदेश टिक ही कितनी देर सकता था? नित्य उनके घर जाकर उन्हें सेवा-भाव से समझाया जाय तो उनका जीवन सहज ही पलट सकता है।

तीया जाति मलबार के समुद्र-तट पर यद्यपि अस्पृश्य मानी जाती है, तो भी वह काफी सुधरी हुई और संस्कारी और स्वच्छ है। शिक्षा के तो ये लोग खास प्रेमी हैं। बड़े-बड़े सरकारी ओहदों पर भी ये लोग हैं। इसीसे मद्रास-सरकार की फेहरिस्त में उन्हें 'हरिजन' या 'शिड्यूल्ड कास्ट' में शामिल नहीं किया है। यह सब होते हुए भी हिन्दू-समाज में उनका दरजा नीचा ही गिना जाता है। इसलिए कितने ही तिया लोग बौद्धधर्म में दीक्षित हो गये हैं, जिससे कि उनकी अस्पृश्यता दूर हो जाय। तीया जाति के बालक-बालिकाओं के अलग-अलग दो छात्रालय हैं। दोनों छात्रालयों के विद्यार्थी एक जगह एकत्र हो गये थे। उनसे हम मिले और उनके साथ दो-दो बातें कीं। तीया जाति में छोटे समझे जानेवाले अन्य हरिजनों के लिए यहां संघ का जो छात्रालय चल रहा है, उसे भी देखा और बालकों के साथ थोड़ी देर बातचीत की।

अमृतलाल वि० ठक्कर

अनुकरणीय

कहना तो इस काम को 'सिंधु में बिन्दुवत्' ही चाहिए, पर 'धर्म का स्वल्पांश भी महान् भय से बचानेवाला होता है' गीता के इस वाक्य पर जब हम ध्यान देते हैं, तो अजमेर की रिपोर्ट का निम्नलिखित अंश कल्याणकारक तो है ही, उत्साहवर्द्धक भी है, साथ ही अनुकरणीय भी —

"रैगर भाइयों को कोर्ट-द्वारा डिग्री से पानी भरने की आज्ञा दिलवाई गई। गरमी के मौसिम में जादूगर मुहल्ले में एक 'हरिजन-प्याऊ' बिठाई गई, जिस पर सवर्णों और हरिजनोंने समान रीति से पानी पिया। केसरगंज की प्याऊ मेहतरों के सिवाय सब हरिजनों के लिए खोल दी गई। पड़ाव की प्याऊ पर से हरिजनों के लिए लगाई गई नली (टोंटी) हटवा दी गई। २ कुएँ हरिजनों के लिए खोले गये। २५ बार नगारों के कुएँ से मेहतरों को पानी दिया गया।"

वि० ह०

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करें। ग्राहक-नंबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा।

व्यवस्थापक—

'हरिजन-सेवक' दिल्ली

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

बंबई का खादी-भंडार

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३]　　दिल्ली, शुक्रवार, १६ अगस्त, १९३५.　　[संख्या २६

विषय-सूची

कारेल हुयेर

कारेल हुयेर एक असाधारण व्यक्ति है। इसे हमारे यहां आये अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। उम्र सिर्फ ३२ बरस की है। पर बात कुछ ऐसी अनुभवजनित आत्मश्रद्धा के साथ करता है, जैसे कोई ६० वर्ष का अनुभवी वृद्ध हो। सभी विषयों में प्रवेश है। और फिर चञ्चु-प्रवेश नहीं, किंतु विचार अथवा गहरे संस्कार का परिणामस्वरूप परिपक्व ज्ञान उसमें दिखाई देता है। यह युवक जेकोस्लोवेकिया का है। वह अपना परिचय खगोलवेत्ता के नाम से देता है और खगोलवेत्ता है। दुनिया में वह खूब घूमा है। खगोल-विद्या का अध्ययन करने के लिए वह एक वर्ष इंग्लैण्ड में, दो वर्ष फ्रांस में और पांच वर्ष अमेरिका में रहा है। यूरोप की सभी भाषाएँ जानता है। केवल सूर्यचन्द्रादि ताराओं से विभूषित नभोमंडल को देखकर वह संतोष माननेवाला जीव नहीं, उसे तो इस नभोमंडल की अतुलनीय व्यवस्था, अपार शांति और अद्भुत संगीत हमारी इस पृथिवी पर उतारना है। इतनी कम उम्र में वह अहिंसा का पुजारी है। टॉल्स्टॉय को गुरुवत् मानता है। खगोल विद्या में फ्रांस के महान् खगोलवेत्ता फ्लामेरियों को वह अपना गुरु मानता है। और अहिंसा के पुजारी गांधीजी के साथ कुछ दिन रहने के लिए वह यहां आया है। दिल्ली में वह गांधीजी से मिला था। पर उसकी दस-पांच मिनिट की बातचीत का गांधीजी पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने उसे वर्धा आने के लिए कहा। वह भारत में छै-सात महीने से है। भारतवर्ष के प्राचीन खगोल विज्ञान का अध्ययन करके अब वह अपने देश वापस जा रहा है। फ्लामेरियों-जैसे और भी खगोलवेत्ता आज यूरोप में हैं, जीन्स तो है ही, पर फ्लामेरियों को कारेल हुयेरने अपना गुरु क्यों बनाया? इसका कारण यह है कि फ्रांस का यह खगोलशास्त्री एक संत था। उसका सिद्धांत यह था कि सच्चे खगोलवेत्ता का जीवन मलिन होना ही नहीं चाहिए। फ्लामेरियोंने कभी शराब या सिगरेट नहीं पी, और इसी तरह हमारे राष्ट्रपति मेसेरिक का जीवन,' कह कर वह तुरंत अपने देश की स्तुति करने लगता है। उसकी देश-भक्ति उसके रोम-रोम में दिखाई देती है। 'हमारा देश ही यूरोप का एक सच्चा प्रजातंत्रात्मक देश है। हमारे ८६ वर्ष के प्रेसिडेंट मेसेरिक की प्रकृति में ही सीजरशाही, हिटलरशाही या म्युसोलिनी-शाही नहीं है। उसे एक भी बात बिना प्रजा की राय के करना अमुहाती लगती है। शराब से उसे बड़ी ही घृणा है। उसकी चले तो वह शराब का बहिष्कार सारे राज्य से करावे। उसका शासन-सूत्र इतना सुंदर चल रहा है कि १७ बरस से हमारा वही प्रेसिडेंट बना हुआ है। दूसरा प्रेसिडेंट चुनने का हमारा मन ही नहीं होता हमारा प्रेसिडेंट टॉल्स्टॉय का भक्त है। टॉल्स्टॉय से मिलने वह रूस गया था। गांधीजी को भी वह जानता है, और उनकी खूब प्रशंसा करता है।'

स्वदेश की बात करते हुए तो कारेल हुयेर कभी थकता ही नहीं। "हम स्लाव लोगों और आप भारतीयों के बीच मानो परापूर्व का संबंध है। हम लोगोंने एक ही संस्कृति का दूध पिया है। हमारी भाषा को ही देखिए। जेक और स्लोवाक प्रजा कहने को दो हैं, पर दोनों की भाषा करीब-करीब एक ही है। आपकी भाषा और हमारी भाषा में यों देखने में भारी अंतर मालूम पड़ता है। पर हमारी भाषाओं का मूल तो एक ही है। हमारी भाषा का शब्द 'द्वेजे' ले लीजिए। स्लोवाक लोग उसका 'द्वेरे' उच्चारण करते हैं, जेक लोग 'द्वेजे' कहते हैं। 'द्वेरे' और संस्कृत 'द्वार' में क्या अंतर है? 'द्वेजे' और फारसी 'दरवाजा' में क्या कोई बड़ा फर्क है? 'दूम' शब्द का अर्थ हमारी भाषा में घर होता है। 'दूम' और 'धाम' शब्द में अंतर ही कितना है? आपको आश्चर्य होगा कि हमारे पड़ोस की भाषा लिथुएनियनने संस्कृत का 'गुरु' शब्द ज्यों-का-त्यों ले लिया है। पर यह तो भाषा की बात हुई, मैं तो आप से यह कहता हूँ कि हम लोगों की धमनियों में एक ही प्रकार का शांत रक्त प्रवाहित हो रहा है। आप लोग अहिंसा के उपासक हैं, और यूरोप में स्लाव लोग अहिंसा के सच्चे उपासक हैं।'

'पर रूस में भी स्लाव लोग ही हैं ना?' मैंने पूछा।

'हां, वहां भी स्लाव ही हैं, पर उन स्लावों का दिमाग आज चक्कर खा गया है। ठिकाने आयगा, पर ठोकर खाकर ठिकाने आयगा। रूस में यह विप्लव का बीज फ्रेंच विप्लव से आया है। तो भी स्लावों का सच्चा प्रतिनिधि तो टॉल्स्टॉय ही था। रूस की यह हिंसा तो एक ऊपरी चीज है। रूस धर्म की नहीं, किंतु मौजूदा **धर्म-संस्था** की निंदा करता है, क्योंकि धर्मने नहीं, बल्कि धर्मसंस्था याने चर्चने यह सब सत्यानाश किया है। चर्चने हमेशा ही धनिकों की खुशामद की है, और गरीबों को चूसने में मदद दी है। यों तो मैं भी किसी चर्च को नहीं मानता। जन्म मेरा रोमन कैथलिक घराने में हुआ था, पर रोमन कैथलिक चर्च छोड़े तो मुझे कई साल हो चुके हैं। आज तो मैं 'ईसाई' बनने का विनम्र प्रयत्न कर रहा हूँ।

'पर हमारे यहां भी इस जमाने की हवा बह रही है। हमारे शहरों में आप घर-घर रेडियो लगे देखेंगे। हम जो यह मानते हैं कि

रेडियो से हमारी ज्ञान-वृद्धि होती है, यह हमारा भ्रम है। अरे, यह सब धनियो के चोचले हैं। इस रेडियो के द्वारा ही लड़ाइयो और खूनखराबियो की अधकचरी खबरें गांव-गांव मे फैलाई जाती हैं।

'और यह चर्खा भी किसी जमाने मे हमारे घरो मे गूजता था। हमारी भाषा मे चर्खे और कर्घे पर अनेक गीत मिलते हैं। पर आज तो हम लोग भी इस 'उद्योगवाद' के शिकजे मे फँसे हुए हैं। अब हमारे यहा चर्खे और कर्घे की कहानी ही कहने को रह गई है।'

पर अब महान् प्रतिभावान् कारेल ह्युयेर के खगोल-ज्ञान की थोड़ी-सी बानगी दे दू। वह यह मानता है कि खगोल-विज्ञान का आध्यात्मिक सन्देश ग्रहण करने के लिए खगोल-शास्त्री होने की आवश्यकता नही। हम लोग साधारणतया आख मूदकर और कान बन्द करके जीते हैं, इसलिए विश्व से जो सीखने की चीज है वह हम नही सीख सकते। कारेल ह्युयेर का अगाध ज्ञान देखकर गाधीजीने जमनालालजी से कहा कि इसका यहा भाषण कराना चाहिए। अपने भाषण मे हमारे उस युवक मेहमानने सबको मत्र-मुग्ध कर दिया। उसकी मातृभाषा अग्रेजी नही है। साधारण बातचीत मे अकसर अशुद्ध व्याकरण के प्रयोग करता है, और भाषा भी उसे टूटी-फूटी ही आती है। पर जब वह भाषण देने के लिए खड़ा हुआ और बोलने लगा, तब ऐसा लगा कि जैसे कोई दृष्टा बोल रहा है। वह बोलता तो जमीन पर था, पर उड रहा था आसमान मे। उसकी असाधारण तन्मयता देखकर आश्चर्य होता था। बल्कि यह तन्मयता ही उसके जीवन की कुंजी है। उसके भाषण को मैं शब्दश दू तो पाठक उसे ठीक-ठीक समझेंगे नही, और जो लाखो-करोडो और अर्ब-खर्ब के आकडे वह उगलता चला जा रहा था वह सब मैं यहा दू, तो पाठक घबरा जायँगे। इसलिए मैं तो उसके भाषण का केवल साराश ही दूगा।

अनादि अनत काल का भान हमे सबसे पहले खगोलविद्याने कराया। और हमारा जीवन इस अनवधि काल मे एक बिदुमात्र है इस बात का पता हमे अपने इस गृहो और नक्षत्रो से विभूषित नभोमण्डल से चलता है। यह सामने दिखाई देनेवाला शीतल चन्द्रमा हम से इतना दूर है कि अगर हम वहा जाना चाहे तो एक एक्सप्रेस गाडी मे बैठकर १७५ दिन मे हम चन्द्रलोक मे पहुँच सकेंगे! और सूर्यतक पहुँचने मे? सूर्य की बात तो इससे भी निराली है। हम अपनी इस पृथिवी की ही विशालता से विस्मित हो रहे हैं। पर सूर्य तो इस पृथिवी से १३ लाख गुना बडा है! सूर्यतक पहुँचना हो, तो ७५ मील की स्पीडवाली एक्सप्रेस ट्रेन से १७५ वर्ष मे हम वहा पहुँचेगे! और फिर नभोमण्डल मे यह एक ही सूर्य नही है। ऐसे अगणित सूर्य आकाश-मण्डल मे हैं। यह अखिल विश्व-ब्रह्माण्ड अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त कालतक चलेगा। इसका कभी नाश होने का नही, यद्यपि इसमे परिवर्तन तो प्रतिक्षण होता ही रहता है। यह सूर्य भी कई लाख वर्ष के बाद नष्ट हो जायगा, किंतु लाखो सूर्यो की भस्म से अन्य अनेक नये सूर्य प्रगट होते रहेंगे। प्रयत्न मिथ्या नही जाता। इस जीवन मे नही तो अनेक जीवनो के अनंतर वह अवश्य सफल होगा, इस जीवन के नाश मे से अनेक उज्ज्वल जीवन प्रगटेंगे। लोवेल नाम का एक साधुचरित खगोल-शास्त्री सारी जिंदगी अन्वेषण करते-करते मर गया, अपनी शोध का फल उसने तो नही, उसके बाद के लोगोंने देखा। उसने तो सामग्री इकट्ठी की और उँगली से दिखाकर वह बतला गया कि, 'देखो, फलां जगह नया गृह 'प्लूटो' होना चाहिए।' सन् १९१४ में वह गुजर गया, और १९३० में उसके बताये ग्रह का दर्शन हुआ। अन्वेषक के बाद अन्वेषण का दर्शन हुआ। पर क्या उसे कम सफलता मिली? उसने तो इस अनत अपार विश्व के एक अल्प अग के रूप में अपना पुरुषार्थ जगत् को अर्पित कर दिया, और अपने जीवन का साररूप यह सिद्धात ससार के आगे रख गया कि, 'नभोमंडल के तत्त्व तो उसके भक्तो के ही लिए हैं। और फिर वे भक्त कैसे? इस दुनिया के वातावरण से अपने चित्त को पराङमुख करके जगत् से निवृत्त होकर हृदय की गुफा में प्रवेश करके संपूर्ण आत्म-शुद्धि कर चुकने के बाद ही मनुष्य सच्चा भक्त बन सकता है। जिस आत्मशुद्धि की साधना हमारे पूर्व के ऋषि-मुनियोने की थी, वही आत्मशुद्धि हमारी आख को सच्ची दृष्टि देगी, हमारे कान को सच्ची श्रवण-शक्ति देगी। तभी हम अदृष्ट देख सकेंगे, अश्रुत सुन सकेंगे।'

यह सारा विश्व अहर्निश घूम रहा है। एक ग्रह के आसपास अनेक चंद्रमा घूम रहे हैं। कुछ तो एक दूसरे के आसपास घूमनेवाले दुगुने, तिगुने और चौगुने आकारवाले नक्षत्र हैं। ये सब अपनी इतनी नियमित गति से घूमते हैं कि उसमे क्षण के एक हजारवे भाग के जितना भी फर्क नही पडता। ईश्वरीय नियम से ये सब नक्षत्र अपनी-अपनी कक्षा मे घूमते हैं, और इसीसे वे आपस में कभी टकराते नही। इसीलिए विश्व मे विवाद नही, किंतु सवाद है; कोलाहल नही, बल्कि स्वर्गीय सगीत है। इस संगीत को सुनकर भी हम अल्प जीव क्या आपस का कलह नही भूलेंगे? हमारा जीवन क्या है! खगोल की इस विशाल घडी के लटकन की टिक् टिक् की अपेक्षा हमारा जीवन कितना क्षणिक है! इसलिए हम गरूर किस बात का करें? किस गुमान में रहे? लेकिन फिर भी आज हम आखें होते हुए भी अंधे होकर घूम रहे हैं, कान होते हुए भी बहरे बने फिर रहे हैं! जहां एक भूकप पलक मारते हजारो के प्राणों को ले लेता है, वहा बडे-बडे युद्ध करोडो का सहार कर देते हैं। हमारे जीवन-कलह के नीच स्वार्थों का भी कोई पार नही। अमेरिका मे ऐसे-ऐसे करोडपती पडे हुए हैं, जिन्हे यह भी पता नही कि वे अपने पैसे का किस प्रकार उपयोग करें, और उनकी आंखों के आगे ही लाखो बेकार आदमी भूखो मरते रहते हैं। जहां एक १३०० फुट ऊँची इमारत मे ७५ लिफ्ट लगे हैं, जो लोगों को ११५ वी मंजिल तक पहुँचाते हैं, वहा कितने ही ऐसे मनुष्य हैं, जिन्हे रहने को झोपडीतक नही। कनसास के परगने मे मेरे देखते-देखते लाखो टन गेहूँ नष्ट कर दिया गया, और टेकसास के परगने मे लाखों टन रुई की गांठो मे आग लगादी गई—इसलिए कि रुई और गेहूँ का भाव कही गिर न जाय, और धनाढ्य लोग कहीं कम धनवान् न हो जायँ! जब कि उसी अमेरिका मे हजारो लोग चिथडा लपेटे घूम रहे थे, जब अमेरिका मे ही नही, बल्कि हिंदुस्तान और चीन मे लाखो नगे और भूखे मनुष्य बिलबिलाते फिरते थे। यह सभ्यता है या जंगलीपना? अब भी हम चेत जायें, तो विधिनियता के नियम पर टिके हुए इस दिव्य नभोमडल का दर्शन करके अपना यह मलिन हृदय शुद्ध करले, और मनुष्य-मनुष्य और राष्ट्र-राष्ट्र के बीच का यह नाशकारी कलह दूर करके पृथिवी पर स्वर्ग को उतार ले।

'हरिजन-बन्धु' से]

महादेव ह० देशाई

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्रामसेवा

दो दिन तो बड़ी ही आफत रही। गांव में जाना मुश्किल हो गया। घुटनो तक बरसाती घास, और रास्ते में तमाम चिपचिपा कीचड़! एक दिन तो अधबीच से हम लोगों को लौट आना पड़ा। आगे जाना असंभव हो गया। डग-डग पर फिसलन थी। फिर भी इससे कौन इकार कर सकता है कि सबेरे खूब कड़ी मेहनत करने के बाद जो आनंद आता है वह निराला ही होता है। और इतना ही नही, बल्कि आत्मोन्नति के लिए भी इस तरह का परिश्रम आवश्यक है। कड़ी-से-कड़ी मेहनत करनेवाले थोरोने कहा है कि, 'अगर तुम्हें आत्मशुद्धि करनी है, आत्मा का मैल पखारना है, तो कोई भी शारीरिक परिश्रम—फिर चाहे वह अस्तबल साफ करने का ही क्यो न हो—खूब तन-मन से करो।'

उधर मीराबहिन गाव के लोगोंपर अपनी दया-धारा की सतत वर्षा करती रहती हैं। वे इस बात का पता लगाती रहती हैं कि गांव मे कहा कौन बच्चा बीमार है, और डॉ० पिंगले को ले जाकर उन बच्चो को दिखाती और उन्हे दवा-दारू दिलाती हैं। एक दिन उन्होने देखा कि सडक पर एक स्त्री माथे पर हाथ रखे हुए बैठी कराह रही है। मीराबहिन वहा ठहर गईं और उन्होने उसकी तबीयत का हाल पूछा। मीराबहिन को वह स्त्री अपने घर लेगई, और वहा बिठाकर विस्तार के साथ अपनी बीमारी का हाल बताया। मीराबहिनने कहा, "देखो, खूब गरम पानी जितना पिया जाय उतना पीओ, उसमें थोडा नमक मिला लेना और नीबू मिले तो उसे भी निचोड़ लेना।' उसे इससे काफी आश्वासन मिला, क्योंकि यह सीधा-साधा-सा इलाज उसे कभी सूझा ही नही था।"

एक दिन एक घर में मीराबहिनने देखा कि हाथ का कता थोडा-सा पुराना सूत वहा पड़ा हुआ है और उसपर मकडजाला लग गया है। यह देखकर दूसरे घरो में भी वे पता लगाने लगी। तीन-चार घरो में उन्होंने ऐसा सूत ढूढ निकाला जो बरसो से यो ही पड़ा हुआ था। वह खासा बुनाई के लायक सूत था। मीराबहिन को घरो मे जा-जा कर खोज-बीन करने का यह और एक नया क्षेत्र मिल गया है।

स्नेह-वत्सला मीराबहिनने गाव के जिन बच्चो का मगनवाड़ी आने का चसका लगा रखा है उनकी संख्या दिन-दिन बढ़ती ही जाती है। इस गांव के और वही पास के एक दूसरे गांव के कितने ही बच्चे सांझ की प्रार्थना करने के लिए और 'गीताई' का उच्चारण सीखने के लिए नित्य हमारे यहा आ जाते हैं। भाऊ नामके एक महाराष्ट्र तरुण उन्हे 'गीताई' के श्लोक घोखाते हैं, कवायद कराते है, और उनके साथ खेलते भी है। मीराबहिन के ऊपर घर गिरस्ती के छोटे-छोटे काम करने का बोझा न हो, तो बालको को वे और भी अधिक समय दें। एक दिन भाऊ कही बाहर चले गये थे, इसलिए बच्चोने मीराबहिन को जा घेरा। देखनेलायक था वह दृश्य। बच्चों को रिझाने की कला भी मीराबहिन खूब जानती है। रद्दी कागज तो यहां काफी पडे रहते हैं। उन कागजो और कैंची को लेकर मीराबहिन बैठ गईं, और कागज काट-काटकर बच्चों को उन्होंने यह बताया कि सुंदर छोटे-छोटे लिफाफे कैसे बनाये जाते हैं। इसके बाद किस्म-किस्म की छोटी-बड़ी कागज की नावें बनाईं, और कागज के ही काटकर आदमी और बच्चे बनाये और उन्हे उन नावों मे बिठाया; और बालकों से कहा, 'अच्छा, तुम भी कागज की ऐसी नावे और ऐसे आदमी बनाओ।' शिक्षिका और बच्चे दोनो ही अपने-अपने राग में मगन थे। बच्चो को तो बड़ा ही मजा आरहा था।

आज का महान् प्रश्न

कारीगर मात्र को, और खास करके जिन हजारो कत्तिनों से हम आज काम ले रहे हैं उन्हे प्रति घंटा, उनसे एक अमुक परिमाण में काम लेकर, एक सरीखी दर से मजदूरी देने के संबंध मे गांधीजीने 'हरिजन' में जो लेख लिखा है, उससे खादी-कार्य की पुनःरचना खादी-सेवको तथा ग्रामसेवकों के लिए एक भारी समस्या बन गई है, और जगह-जगह आज उसीकी चर्चा चल रही है। कार्य-कारिणी समिति के सदस्य सलाह लेने आते थे तो उन्हें समय देते हुए गाधीजी को कुछ सकोच-सा होता था, पर इस महान् प्रश्न पर बातचीत करने जो भी आये, उन्हे गाधीजीने खुशी से समय दिया, और काफी देरतक उनके साथ बाते की। राजेन्द्र बाबू, सरदार पटेल, श्री जयरामदास, जमनालालजी, डॉ० पट्टाभि सीतारामैया, श्री गगाधर राव देशपांडे और कृपलाणी-जैसे कार्य-कारिणी के मेंबरो मे कुछ तो गांधी-सेवा-सघ के सदस्य है, और खादीकार्य को काग्रेस के कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं। गाधीजीने इनके साथ इस विषय पर खूब बाते की, और काफी विस्तार के साथ चर्चा हुई। यह चीज किस तरह सामने आई और उसने यकायक इतना बड़ा रूप कैसे धारण कर लिया, इस सब की गांधीजीने विस्तृत कहानी सुनाई और उन्हें यह समझाया कि आज मेरा मन इस महान् प्रश्न की उधेड़-बुन में किस तरह लगा हुआ है। गाधीजी के मन और हृदय में आग सुलगा देने के लिए एक जरा सी चिनगारी काफी होती है। कुछ ऐसी नगण्य-सी दिखने-वाली घटनाएँ घटी कि जिससे उनका मन और हृदय धधक उठा। उन्हे लगा कि जबतक यह अत्याचार दूर नही होता, तबतक उनके दिल को शांति मिलने की नही। वे नगण्य-सी घटनाएँ ये थी:

(१) गांधीजी के एक निकट के साथी सावली का खादी-केन्द्र देखने गये थे। वहा पूछताछ करने पर उन्होने यह देखा कि गरीब कत्तिने सारे दिन चर्खा चलाती ही रहती है, तो भी उनकी एक घटे की कमाई दो पाई से ऊपर नही जाती! (२) एक गरीब आदमीने वर्धा के खादी-भडार से कुछ खादी खरीदी थी। वह इतनी कमजोर निकली कि एक-दो बार की धुलाई मे ही टुकडे-टुकडे हो गई। यह बात भी गाधीजी के पास पहुँची। उन्होने तुरत पूछताछ शुरू की। शिकायते दोनो ही सच्ची निकली। खादी-सेवक जितने भी है उन सबने दरिद्रनारायण की सेवा करने का व्रत ले रखा है, तो भी उनमे कुछ लोग ऐसे है जो हमेशा ही लडते-झगडते रहते है। उनके आपसी कलह का कभी अंत होता ही नही। ऐसे झगडों की बाते भी गाधीजी के पास आती रहती हैं। इससे गाधीजी को यह लगने लगा कि यह व्यापारी खादी ही इस तमाम कलह की जड है। उनका यह विश्वास इस नई शोध से और भी दृढ हो गया। इसलिए उनके अतर मे जो दृढ मान्यता जड जमा चुकी थी उसे उन्होने तुरत ही 'एक-सी मजदूरी' शीर्षक अपने प्रसिद्ध लेख मे प्रगट कर दिया।

यह बात नही है कि खादी-सेवकोने जान-बूझकर कोई अन्याय किया है। जो कुछ भी खादी-सेवा हुई है वह सब बेकार पडे हुए मनुष्यो को काम देने की मंशा से ही हुई है। और कीमत घटाने

[२०८ वे पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १६ अगस्त, १९३५

बंबई का खादी-भंडार

बंबई का खादी-भंडार चर्खा-संघ का सब से बड़ा खादी-भंडार है। वह किसी एक व्यक्ति की संपत्ति नहीं है। वह चर्खा-संघ की संपत्ति है, और चर्खा-संघ एकमात्र दरिद्रनारायण का ट्रस्टी है। अतः दरिद्रनारायण का हितसाधन ही उसका मुख्य कर्तव्य है। यद्यपि कुछ मध्यमवर्ग के लोगों को एक प्रतिष्ठित काम दिलाने में वह साधनरूप रहा है, तोभी उसे नौकरी दिलानेवाला मुहकमा नहीं समझ लेना चाहिए। चूंकि अब एक नई नीति ग्रहण की जा रही है, इसलिए उस नीति की आवश्यकताएँ पूरी करने की दृष्टि से भंडार का स्टाफ कम किया जा रहा है। श्री जेराजाणी अपनी शोधक बुद्धि से सोच-सोचकर जो नये-नये डिजाइनों की खादी बनवाकर मंगाते थे, उसीकी बिक्री बढ़ाने का अबतक असाधारण प्रयत्न होता रहा है। पर दरिद्र-नारायण की दृष्टि से यह प्रयत्न कुछ बहुत अच्छा नहीं था, क्योंकि उस खादी पर ऊपरी खर्चा बहुत पड़ जाता था। खादी-सेवकों का मुख्य काम यह था कि अपने-अपने प्रांत में खादी को स्वाश्रयी या अधिक-से-अधिक लोकप्रिय बनाते। पर उनका ध्यान इस मुख्य काम पर से हट गया। सच्चे प्रांतीय प्रयत्न के बिना खादी का व्यापक उद्देश कभी पूरा हो ही नहीं सकता। इस उद्देश में सफलता तभी मिल सकती है, जब अगणित उत्पत्ति-केन्द्रों में खादी की उत्पत्ति का काम बांट दिया जाय। बेशक बंबई-जैसे बड़े-बड़े शहरों के लिए कुछ खादी की तो हमेशा ही जरूरत रहेगी। वे खादी खुद कभी तैयार नहीं करेंगे। उनकी वह मांग बिना किसी असाधारण प्रयत्न के ही पूरी करनी होगी। शहरों के खादी-भंडारों में जो रकम-रकम के डिजाइन की खादी देखने में आती है उसका कारण यह है कि चर्खा-संघने शहर के लोगों की विविध प्रकार की रुचि रखने के लिए किस्म-किस्म की खादी तैयार कराने का पूरा प्रयत्न किया। मगर खादी को अगर अपना उद्देश पूरा करना है तो अब वह समय आ गया है, जब उसे अपना ध्यान शहरों की रुचि-तृप्ति की तरफ से हटा कर उत्पत्ति-केन्द्रों की ओर लगा देना चाहिए। उत्पत्ति-केन्द्र अभी बहुत ही थोड़े हैं। हरेक घर न हो सके, तो हरेक गांव को तो ऐसा उत्पत्ति-केन्द्र बनना ही होगा, जैसे हरेक घर रोटी का रसोई-केन्द्र बना हुआ है। रसोड़े का अर्थशास्त्र किताबी अर्थशास्त्र से एकदम भिन्न है। इसी तरह खादी का भी अर्थशास्त्र समझिए। तब विचारपूर्वक जो परिवर्तन किया जा रहा है उसका यह अर्थ है कि जिन बड़े-बड़े भंडारों को चर्खा-संघ चला रहा है उनके स्टाफ में काफी कमी की जाय। और इसका यह भी मतलब है कि चर्खा-संघ द्वारा प्रमाणित प्राइवेट उत्पत्ति-केन्द्रों की संख्या में कमी तो होनी ही चाहिए। यह कहना अभी कठिन है कि यह सब कैसे होगा। श्री शंकरलाल बैंकर मनोयोगपूर्वक इसे अमल में लाने की योजना बना रहे हैं और खास इसी उद्देश से वे सारे हिंदुस्तान का दौरा कर रहे हैं।

पर इस बीच में खादी के प्रेमियों और दरिद्रनारायण के भक्तों को इतना तो जान ही लेना चाहिए कि खादी इससे कुछ महँगी जरूर हो जायगी, और खादी-सेवकों को अपना शास्त्रीय ज्ञान और भी अधिक बढ़ाना होगा, और खादी की उत्पत्ति तथा बिक्री से संबंध रखनेवाले तमाम वर्गों के बीच स्वार्थत्याग की भावना और भी अधिक विकसित करनी होगी। खादी-भंडारोंने अबतक यह दिखाने में प्रसन्नता प्रगट की है कि देखो, हमने खादी की कीमत इतनी गिरादी है, अब खादी इतनी सस्ती मिलने लगी है। मुझे वह दिन याद है जब मैंने बहुत ही मोटी खादी का पहला थान एक रुपया गज से भी ऊपर बेचा था। आज तो वैसी खादी कोई दो आने में भी नहीं लेगा। खादी-भंडार उसे बेचेंगे भी नहीं। इसमें संदेह नहीं कि खादी के हरेक विभागने जो प्रगति और सफलता प्राप्त की है उसीसे खादी इतनी सस्ती हुई, पर इसमें सब से ज्यादा बेचारी कत्तिन का पेट काटा गया है। हां, उस कातनहारी का, जो दरिद्रनारायण की प्रत्यक्ष मूर्ति है—सारे हिंदुस्तान में सबसे कम मजदूरी उसीको दी जाती है। चर्खा-संघने यह अच्छा किया जो एक जमाने से बेकार पड़े हुए लोगों के लिए अपनी शक्ति के अनुसार एक बहुत बड़े पैमाने पर काम का एक जरिया तो तलाश दिया। एक घंटे की मजदूरी एक पाई ही क्यों न मिलती हो, पर कुछ मिलने तो लगा। लेकिन अगर संघको अपने ट्रस्ट का दायित्व पूरा करना है तो उसे कत्तिन को कम-से-कम इतनी मजूरी तो देनी ही होगी कि जिससे वह अपना पेट भर सके। अगर वह प्रतिदिन आठ घंटे काम करती है तो कताई की प्रति घंटा इतनी मजूरी तो उसे मिले कि जिसमें वह अपना गुजर-बसर कर सके। कितना पैसा दिया जाय आज यह प्रश्न नहीं है। अभी तो हमारे सामने यह प्रश्न है कि कत्तिनों को जिस दर से मजूरी दी जाती है उसमें वृद्धि होनी ही चाहिए। चर्खा-संघ की रिपोर्टों में अब यह उल्लेख नहीं रहना चाहिए कि खादी की कीमत में पहले से कितनी कमी हो गई है, बल्कि अब संघ को अपनी रिपोर्टों में यह दिखलाने में गर्व होना चाहिए कि कताई की मजदूरी की दर पहले से कितनी बढ़ा दी गई है। न चर्खा-संघ को ही तबतक संतोष होगा और न मुझे ही, जबतक कि कताई की प्रति घंटे की मजदूरी बुनकर की मजदूरी के बराबर नहीं हो जाती। और खरीदारों को यह याद रखना चाहिए कि वे उस महान् ट्रस्ट के सदस्य हैं, भले ही उनका नाम कागज पर दर्ज न हो, और कत्तिनों का हर तरह से खयाल रखना उनका धर्म है। एक बार यह संबंध जान लिया कि फिर खादी की दिनदूनी उन्नति में कोई कठिनाई आ ही नहीं सकती। क्या अच्छा हो कि तमाम खादी-प्रेमी अपना कर्तव्य समझले और उन अश्रद्धालु खादी-कार्यकर्त्ताओं की शंका निर्मूल करदें। जिनका यह खयाल है कि जनता कभी इतनी महँगी खादी खरीदेगी ही नहीं!!

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

[२०७ वे पृष्ठ से आगे]

में जो झपटा-झपटी हुई है, वह भी खादी को मिल के कपड़े की कृत्रिम प्रतिस्पर्धा में टिकाये रखने के उद्देश से ही हुई है और खादी-सेवकोंने इस चीज को अपना ध्येय बना रखा है। किन्तु इस न्याय करने की उतावली में कत्तिनों के साथ अनजान में हम से कुछ अन्याय हो गया है। यह बात गांधीजी को खटकी। जिन मित्रोंने

इस चर्चा में भाग लिया, उनमें से किसीने इस अन्याय से इन्कार करने या इस विषय में शंका उठाने का प्रयत्न तो क्या इच्छा भी नहीं की कि गांधीजी की यह सलाह कहातक न्यायसंगत है। उनके कहने का खास आशय तो यह था कि इसमें कुछ व्यावहारिक कठिनाइयां आयेंगी। खादी की कीमत बढ़ने का अर्थ है उसकी खपत घटना। इसलिए हमें कत्तिनों की संख्या कम करनी ही पड़ेगी। फिर सूत कातने की कसौटी हम काफी सख्त बना रहे हैं। इस कारण भी बहुत-सी कत्तिनें कातना छोड़ देंगी। इन दोनो कारणों से क्या उन हजारो गरीब कत्तिनो की रोजी—दो-चार पैसे रोज की ही सही—छिन नही जायगी? राजेन्द्रबाबूने कहा, "बिहार मे आज करीब पाच हजार स्त्रिया चार-चार छै-छै पैसे के लिए भी दस-दस मील से हमारे खादी-केन्द्रो मे आती है। खादी हम अधिक खपा सकें तो और भी अधिक स्त्रियां सूत कात-कातकर लायेंगी। खादी की खपत आज अगर बन्द हो जाय तो बेचारी उन गरीब स्त्रियो की क्या दशा हो?" गाधीजीने कहा, "बात बिलकुल सही है। बगाल और दक्षिण भारत के गांवो मे भी ऐसी ही स्थिति है, यह मैं जानता हूँ। पर मै आपकी बात को उलटे ढंग से रखता हूँ। फर्ज कीजिए कि आप आज कत्तिनो को प्रति घटा दो पाई देते है। दो पाई की जगह अगर आप मजदूरी मे एक पाई देने लगे तो आप पाच हजार नही बल्कि दस हजार स्त्रियो को काम दे सकेंगे। और मान लीजिए कि उन असहाय स्त्रियोने आपकी दी हुई एक पाई भी लेना स्वीकार कर लिया तो क्या उन्हे एक पाई देने का आप साहस कर सकेंगे? मै कहता हूँ कि आपकी हिम्मत कभी नही पड़ेगी। इसका मतलब यह हुआ कि आपको ऐसी एक सीमा तो निश्चित करनी ही पड़गी, कि जिससे नीचे फिर आप जा ही नही सकते। आप चाहे तो उसे 'लाचारी की हद' कहे। पर उस सीमा को अगर निश्चित करना ही है, तो क्यों न उसे एक बार स्थायी रूप से निश्चित करदे? भले ही उससे कुछ खादी कार्यकर्त्ताओ को फिलहाल नुकसान होता दिखाई दे। जहा खरीदारो की सख्या मर्यादित है, और उत्पादकों की सख्या अमर्यादित, वहा आपको कुछ उत्पादक तो कम करने ही पड़ेगे। तो फिर विचारपूर्वक कम-से-कम मजदूरी का ऐसा एक अंक क्यो न निश्चित कर दिया जाय कि जिससे इन गरीब कत्तिनो को पेट भरनेलायक तो पैसा मिलने लगे? नही तो हम आज अनजान मे उनका जो शोषण कर रहे है, उसका कभी अत आने का नही। कागज तैयार करनेवाला एक भाई हमें एक जगह से कागज भेजा करता है। वह अपने मजदूरो को डेढ आना रोज देता है। उसे आशा है कि अभी और भी सस्ता कागज बन सकता है। मैने उसे लिख दिया है कि मुझे तो तुम्हारा ऐसा सस्ता कागज नही चाहिए।"

एक मित्रने पूछा, "तो अब आप खादी की परिभाषा बदल देंगे? 'हाथ का कता और बुना हुआ कपडा' इस व्याख्या से अब काम चलने का नही। अब तो खादी उस कपड़े को कहना चाहिए जो हाथ का कता और बुना हो, और जिसकी कताई-बुनाई की मजदूरी अमुक दर से दी गई हो।"

"इसमें तो कोई शंका ही नही। दु:ख की बात यह है कि इस चीज का आपको इतनी देरी से पता लगा।"

"पर कताई तो सभी का धधा है। आप इतने बरसो से संसार को यही संदेश देते आये हैं। कतैया अपने फुर्सत के समय में ही कातता है।"

"इसका जवाब 'हां' और 'नही' दोनों ही है। मुझे यह मालूम है कि हजारों स्त्रियां ऐसी है, जो सारे दिन कातती है। कातना उनका अतिरिक्त धंधा नही, किंतु मुख्य धंधा है। और मान लीजिए कि उनका वह मुख्य धंधा नहीं है, तब भी दूसरा कोई भी काम एक घंटा करने की जितनी आप मजदूरी देते हैं उतनी मजदूरी सूत कातनेवाली स्त्रियों को आप क्यो न दे?"

"आपको शायद यह पता न होगा कि गुटूर जिले में कितनी ही जगह लोग कताई का काम छोड़कर चावल कूटने का काम करने लगे है, क्योंकि उसमें उन्हे ज्यादा मजदूरी मिलती है।"

"मुझे मालूम है। पर आपने जो यह कहा है उससे तो मेरी ही बात की पुष्टि होती है। लोग तो वह काम पसंद करेंगे ही जिसमे उन्हे ज्यादा पैसा मिलेगा। तब कताई के काम के लिए भी दूसरे कामो की जितनी ही मजदूरी देकर क्यो न हम उसे एक प्रतिष्ठित धधा बना दे?"

"इस अमल मे लाना बहुत ही मुश्किल है। न जाने कितनी कठिनाइयां आयेंगी। कत्तिनें कभी हमारी शर्तें माननेवाली नही। आप उनका बाकायदा रजिस्टर रखने के लिए कहते है। आप उनसे अमुक ही नबर का, अमुक ही समानता का और अमुक ही मजबूती का सूत कतवाना चाहते है। यह सब कैसे हो सकेगा?"

"इन कठिनाइयो को तो पार करना ही होगा। यह क्या मै नही जानता कि अभी बहुत समयतक तो हमे अनेक तरह का दुख-रोना सुनना पड़ेगा? कुछ लोग यह कहेगे कि अपने कपड़ेलायक सूत खुद ही कात लेने की बात हम कत्तिनो के गले नही उतार सकते, तो कुछ यह कहते आयेंगे कि जितना हमे चाहिए उतना सूत कातकर कत्तिने हमें देती ही नही।"

"पर मान लीजिए कि वे हमारे नियम स्वीकारले, और जिन चर्खों और तकुवो से वे काम चलाती हैं उनसे बढ़िये चर्खे और तकुवे उन्हे हम देदे, तो यह स्पष्ट है कि वे अधिक सूत कातेंगी और जितना पैसा उन्हे आज मिलता है उससे दूना या दूने से भी ज्यादा पैसा वे सहज मे कमा लेंगी।"

"यह तो खुद उनके पुरुषार्थ का काम हुआ, इसमें हमें कोई श्रेय मिलने का नही। लेकिन हमने आजतक उनके साथ जो अन्याय किया है उसे धो डालने के लिए हम क्या कर रहे है?"

इस सवाद के उपसहार मे गाधीजीने कहा, "हमें यह विचार ही अपने दिल से निकाल देना चाहिए कि खादी को मिल के कपड़े के साथ प्रतिस्पर्धा करनी है। मिल का कपडा मिल का कपडा है, और खादी खादी है। मिल का कपडा पैदा करनेवाले को तो यही धुन सवार रहा करती है कि कपडा सस्ते-से-सस्ता कैसे तैयार किया जाय। हमें यह धुन रहनी चाहिए कि खादी-उत्पादक के साथ न्याय किस तरह हो और यथोचित मजदूरी उस किस तरह मिले। इन दोनो का मुकाबिला हो ही नहीं सकता। आप कहते हैं कि इस सलाह को अमल मे लाने में कठिनाई पड़ेगी, तो मेरा यह कहना है कि अपने कर्मचारी कम करदे, विज्ञापन देना बद करदे, और प्राइवेट व्यापार के लिए खादी-उत्पादक को आप जो प्रोत्साहन देते हैं वह न दे। जिन लोगोंने केवल खादी ही पहनने की दृढ़ प्रतिज्ञा करली है, उनकी इसमें परीक्षा हो जायगी। वे या तो खादी खुद अपने हाथ से बनालें या जो कारीगर खादी तैयार करते है उन्हें पेट भरनेलायक मजदूरी का पैसा दे। यह खादीधारियों की आत्मशुद्धि का प्रश्न है। हमें यह नहीं भूलना

चाहिए कि हमारा ध्येय दरिद्रनारायण की सेवा है । कठिनाइयां तो आयेंगी ही, उन्हें हम धीरे-धीरे हल कर सकते हैं ।"

जिन खादी-सेवकोंने गांधीजी के साथ इस प्रश्न पर चर्चा की है उन सब का साधारणतया इस एक बात पर तो एकमत मालूम पड़ता था कि जहां-जहां हो सके वहां यह प्रयोग शुरू करदिया जाय, और कत्तिनों को भले ही भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न दर से मजदूरी दी जाय, पर आज जिस दर से उन्हें मजदूरी दी जाती है, वह तो अवश्य ही बढ़ा दी जाय ।

हमारे मेहमान

कार्य-कारिणी समिति के समस्त सदस्य जमनालालजी के यहा उतरे थे, पर एक दिन शाम को वे हमारे यहा जीमने आये थे । लेकिन उनके अतिरिक्त इस सप्ताह हमारी खुशकिस्मती से कुछ ऐसे मेहमान हमारे यहां आये, जो बारबार नहीं आया करते । राजकुमारी अमृतकुँवरि को अब मैं मेहमानो मे नहीं ले सकता, क्योंकि वे तो अब हम सब कुटुंबियो में ही अपनी गणना करायेंगी । आजकल उनका सारा समय स्त्रियो और गरीब कारीगरों की उन्नति के काम मे लग रहा है । और जब इस काम से उन्हे कुछ फुर्सत मिलती है तब थोड़ा निदिध्यास, आत्मनिरीक्षण और विचार-विनिमय करने के लिए वे तुरंत गांधीजी के पास आजाती हैं । दूसरी मेहमान श्रीमती आप्पास्वामी हैं । पर वे श्री कुमाराप्पा की बहिन हैं, इसलिए उन्हें मेहमानो में गिनना शायद कुमाराप्पा को अच्छा न लगे । पर हमारे लिए तो वे एक प्रतिष्ठिता अतिथि हैं ही । उनके दोनो भाइयोंने—ग्राम-उद्योग-संघ के मंत्री श्री कुमाराप्पा और डॉ० भारतन् कुमाराप्पा जो अब यहा आगये हैं—उन्हे यहा ठहरा लिया । वे मद्रास जारही थी । ये चारों कुमाराप्पा बंधु समस्त भारतवर्ष के शिक्षितवर्ग में काफी प्रसिद्ध हैं । चारोंने यूरोप-अमेरिका मे ऊँची शिक्षा और संस्कृति प्राप्त की है । इनके विचारों और दृष्टि में एक अद्भुत उदारता है । चारो भाइयोंने अपने-अपने क्षेत्र में प्रख्याति प्राप्त की है । इनमें से जिन दो भाइयोंने अपना जीवन देश के चरणो पर समर्पित कर दिया है उनमें एक तो हमारे ग्राम-उद्योग-संघ के मंत्री हैं । इन्होने कई बरस लंडन में रहकर 'चारटर्ड एकाउण्टेण्ट' की परीक्षा पास की, और उसके बाद अमेरिका जाकर कोलंबिया-विश्वविद्यालय मे अर्थशास्त्र में एम० ए० की डिग्री ली । डॉ० भारतन् कुमाराप्पाने जर्मनी, अमेरिका और इग्लैण्ड मे शिक्षा प्राप्त की । और ईसाई, धर्मशास्त्र और दार्शनिक ज्ञान के विषयों में अमेरिका तथा इग्लैण्ड में इन्हे डॉक्टर की एक छोड दो उपाधिया मिली । रामानुजाचार्य की फिलासफी पर इनका एक भारी ग्रन्थ अँग्रेजी में अभी हाल में प्रकाशित हुआ है । मदनापल्ली के कालेज में यह प्रोफेसर थे । अब वह काम छोडकर ये यहा आगये हैं । ऐसे सुयोग्य भाइयो की बहिन फिर ऐसी सुयोग्य क्यो न हो ? श्रीमती आप्पास्वामी में भी ऐसे ही उच्च संस्कार हैं । उन्होंने शिक्षा को अपना जीवन-कार्य बनाया है, और इसके लिए उन्होंने अनेक प्रवास किये हैं । मद्रास में वे एक 'आदर्श कन्या-विद्यालय' चला रही हैं । राजकुमारी अमृतकुँवरि और श्रीमती आप्पास्वामी दोनो एक ही सप्ताह मे यहां आईं, इसे एक आकस्मिक सुयोग ही समझना चाहिए ।

तीसरे एक मेहमान श्री कारेल डुयेर हैं । उनका परिचय तो मैंने एक अलग ही लेख में दिया है ।

महादेव ह० देसाई

मिठाइयों का राजा गुड़

श्लेष्माणमाशुविनिहन्ति सदार्द्रकेण
पित्तं निहन्ति च तदेव हरीतकीभिः ।
शुण्ठ्या समं हरति वातमशेषमित्थं
दोषत्रयक्षयकराय नमो गुडाय ॥

(भा० प्र०)

"हे गुडदेव ! आप अदरख के साथ मिलकर कफ को तुरन्त नष्ट करने में समर्थ हो जाते हैं; यदि आपके साथ हर्रं मिल जाय तो आप पित्त की धज्जियां उड़ा सकते हैं, और सोंठ का सहयोग पाकर आप सम्पूर्ण वातज रोगों का नाम-निशान मिटा देते हैं । हे सर्वरोग नाशक गुडदेव ! आपको नमस्कार है ।"

गांधीजी के ग्राम-उद्योग आन्दोलनने खादी की तरह गुड और नीम के भाग्य भी जगा दिये हैं । प्राचीन काल से तो नहीं, पर फिर भी बहुत दिनों से साधारण जनता में यह विश्वास घर किये हुए है कि गुड सभी मिठाइयों में निकृष्ट है । अमीरों के बच्चे गुड के लिए तरसते हैं । उन्हें गुड खिलाना पोजीशन के प्रतिकूल समझा जाता है ! हकीम और वैद्य आंखें बन्द करके, कान मूंदकर प्राय सभी रोगियों से कह देते हैं "परहेज कुछ नहीं, बस गुड, तेल और खटाई बचाये रहना ।" जनसाधारण और खासकर शहरी जनता यह समझने लगी है कि दुनिया में स्वास्थ्य नष्ट करनेवाले यदि कोई पदार्थ हैं, तो बस गुड, तेल और खट्टी चीजें हैं ।

यह सही है कि कुछ रोगो में गुड बहुत हानिकारक है, ठीक वैसे ही जैसे सुधा के समान दूध कई रोगो में विषवत् मारक है, पर इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि गुड सदैव हानि ही पहुँचाता है और उसे खाद्य पदार्थों की सूची से निकाल दिया जाय ।

हमारे आयुर्वेद की गुड के विषय मे बहुत ऊँची सम्मति है—

"प्रभूत क्रिमिमज्जासृङ्मेदोमांसकरो गुडः ।"

(चरक सं०, अ० २७)

अर्थात् गुड अत्यंत रक्त, मास, मेद और मज्जा-वर्द्धक है । संक्षेप में, यह कह सकते हैं कि गुड समस्त धातुओ की अत्यन्त वृद्धि करता है अथवा गुड अत्यन्त पौष्टिक है । इन अमूल्य लाभप्रद गुणो के साथ ही गुड में एक अवगुण भी है और केवल एक ही अवगुण है कि वह क्रिमिवर्द्धक है । भावप्रकाश के मतानुसार गुड मे कुछ और भी विशेष गुण होते हैं—

"गुडो वृष्यो गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्रशोधनः ।"

अर्थात्, गुड वृष्य (वीर्यवर्द्धक) गुरु, स्निग्ध, वायुनाशक और मूत्र को शुद्ध करनेवाला है ।

ऊपर के वर्णन में यह तो स्पष्ट ही है कि गुड अत्यन्त पौष्टिक है । यदि उसमें कोई अवगुण है तो यही कि यह क्रिमि-उत्पादक और कफवर्द्धक है । परन्तु ये अवगुण केवल नये गुड मे ही माने गये हैं । थोड़े दिन रखा रहे तो उसका क्रिमि-उत्पादक अवगुण भी नहीं रहता; यथा भावप्रकाशे—

गुडो जीर्णो लघुः पथ्योऽनभिष्यन्दोऽग्निपुष्टिकृत् ।
पित्तघ्नो, मधुरो, वृष्यो वातघ्नोऽसृक्प्रसादनः ॥

अर्थात्, पुराना गुड लघु (जल्दी पचनेवाला), पथ्य (स्वास्थ्य वर्धक), अनभिष्यन्दि (कफ को न बढानेवाला), अग्निवर्द्धक (भूख जगानेवाला) और पौष्टिक है । वह पित्त और वायु-नाशक, वीर्यवर्द्धक और रक्तशोधक है ।

पुराने गुड मे सभी गुण ऐसे है जो हमे प्रेरणा कर रहे है कि अमीर, गरीब सभीको उसका व्यवहार करना चाहिए। गुड को "पथ्य" कहना ही यह प्रगट करता है, कि प्राचीन आचार्य गुड खाने का जोरदार परामर्श दे रहे है।

सामान्य वैद्यों, हकीमों और सर्वसाधारण का यह विश्वास है कि गुड़ रक्त को दूषित करता है, उसके खाने से फोडे-फुन्सी निकल आते हैं और वह गरम है। किन्तु ये दोनों दोषारोपण निराधार हैं। गुड चाहे नया हो चाहे पुराना वह गरम तो है ही नही (कम-से-कम प्राचीन आयुर्वेदज्ञ तो उसे गरम नहीं मानते।) उपर्युक्त श्लोक के उत्तरार्द्ध में उसे स्पष्ट शब्दो में **पित्तनाशक** (गरमी कम करनेवाला) और **रक्तशोधक** लिखा है।

हारीत-संहिता मे तो गुड को क्षय, खासी, क्षतक्षीणता, पाण्डुरोग और **रक्त की कमी** में पथ्यतम (सर्वश्रेष्ठ पथ्य) कहा है—

क्षयेकासे क्षतक्षीणे पाण्डुरोगेऽसृजःक्षये।
हितो योग्येन संयुक्तो गुडः पथ्यतमो मतः॥

राजनिघण्टुकारने गुड़ मे और भी कई विशेष गुण माने है। उसके कथनानुसार गुड हृद्य (हृदय के लिए हितकारक), त्रिदोषनाशक, मल और मूत्र के रोगों को नष्ट करनेवाला, **खुजली और प्रमेह-नाशक**, थकान दूर करनेवाला और पाचनशक्ति बढानेवाला है :—

पित्तघ्नः पवनापहो रुचिकरो हृद्यस्त्रिदोषापहो,
संयोगेन विशेषतो ज्वरहरः सन्तापशान्तिप्रदः,
विण्मूत्रामयनाशनोऽग्निजननः कण्डूप्रमेहान्तकृत्,
स्निग्धः स्वादुरसो लघुः श्रमहरः पथ्यः पुराणो गुडः।

इसके अतिरिक्त अन्य आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे गुड को रसायन (आयु को स्थिर और शरीर को नीरोग तथा यौवनयुक्त रखनेवाला) तथा अर्श (बवासीर), शोष (शारीरिक धातुओ का सूखना), गुल्म, रक्तपित्त (मुहँ, नाक, गुदा आदि से रक्तस्राव होना), राजयक्ष्मा और अन्य अनेक रोगो का नाशक कहा है। यह वाक्य कितना सुन्दर और गुडगौरव-दर्शक है—

योगयुक्तो विशेषेण हितो गुणगणालयः।

साराश, गुड़ के विषय मे जनता मे जो अश्रद्धा फैली हुई है वह निराधार है। यद्यपि नया गुड कफवर्द्धक तथा खासी, श्वास, और रक्तदोषो में हितकर नही है, तथापि पौष्टिक और मलमूत्र-शोधक गुण उसमें भी कुछ कम नहीं होता, और पुराना (एक वर्ष का रखा हुआ) गुड तो गुणो का आकर ही है।

आयुर्वेद में साधारणतः गुड के चार भेद माने हैं—धौत, अधौत, पुरातन और नवीन। इनमें से कृमिउत्पादक केवल अधौत (अस्वच्छ) गुड ही होता है, धौत (स्वच्छ) नही। अतएव गुड बनाने क समय उसे अच्छी तरह साफ किया जाय, उसका मैल अच्छी तरह निकाल दिया जाय तो वह सर्वथा निर्दोष होजाता है।

(अपूर्ण)

वैद्य गोपीनाथ गुप्त

महाराष्ट्र के तीन खादी-केन्द्र

कार्यक्रम

१३ अप्रेल की शाम को श्री कृष्णदास गाधी के साथ वर्धा से रवाना हुआ। १४ अप्रेल को सुबह २ बजे जमैकुण्टा स्टेशन पहुँचा। वहां से बैलगाड़ी मे बैठकर सुबह दिन उगते वायलाल गया। सारा दिन वायलाल में रहकर वहां का काम देखा। रात को करीब आठ बजे फिर बैलगाड़ी पर सवार होकर पोटकापल्ली स्टेशन के लिए रवाना हुआ। वहां से चलकर दूसरे दिन सुबह १५ तारीख को कोथापेट स्टेशन पहुँचा और वहा से बैलगाडी में बारेगुड़ा। बारेगुड़ा सारा दिन, सारी रात और दूसरे दिन दुपहरतक रहा। ता. १६ की दुपहर को बारेगुडा से चलकर शाम को ५ बजे ताण्डूर पहुँचा। ताण्डूर में कताई-बुनाई का काम देखा, और उसी रातको वहां से ता १७ को वापस वर्धा आगया।

वायलाल

खादी कार्यालय वायलाल के मैनेजर है श्री नूरमहम्मद शेख अनवर। उनके तीन सहायक हैं-सर्वश्री पाठक, झुरले, और येलोरे। श्रीयुक्त नूरमहम्मद महाराष्ट्र-चर्खा-सघ के एक पुराने अनुभवी कार्यकर्ता हैं।

इस समय इस केन्द्र की ओर से २६ गांवो में खादी-उत्पत्ति का काम हो रहा है। कुल १०२ कर्घे चल रहे हैं। आम तौर पर यहा तीन चर्खों के पीछे एक कर्घा चलता है। इस हिसाब से आजकल कोई ३१० के करीब चर्खे चल रहे है। वैसे तो केन्द्र के गांवो मे करीब २००० चर्खे और १०००–१२०० कर्घे हैं। पर इन सबका उपयोग खादी-उत्पत्ति के काम में नही हो रहा है। मन्दी और बेकारी के कारण इनका उपयोग बहुत घट गया है। पर खादी की माग बढते ही या अनुकूल वातावरण बनते ही, इस क्षेत्र मे हर महीने हजारो की खादी बन सकती है।

यहां साल मे दो फसलें होती है। पहली फसल जुलाई-अगस्त मे बोते है, और नवम्बर-दिसम्बर मे काट लेते है। दूसरी फसल जनवरी में बोई जाती है और अप्रेलतक कटती है। फसल बोने के एक महीना पहले और एक महीना बाद लोग खूब काम में लगे रहते है। आम तौर पर गाववालो को ४ महीने का काम और ८ महीने की फुरसत रहती है। अधिकतर लोग अपनी फुरसत का उपयोग कातने-बुनने मे ही करते है।

आजकल खास वायलाल गांव मे १२ चर्खे और ८ कर्घे चल रहे हैं। वायलाल के पास गोपालपुर गांव में ५ कर्घे और वायलाल से तीन मील दूर रासापल्ली गांव में १० कर्घे और है। इन १५ कर्घों पर ऊनी कम्बल बने जाते हैं। खादी बुनने के लिए जुलाहे यहां कत्तिनो मे सूत खरीदते है।

वायलाल गाव में कुल करीब ५०० घर और १७०० स्त्री-पुरुषो की बस्ती है। गोपालपुरम्, नगरम्, पापकपल्ली और नागारम् ये वायलाल के चार उपगाव है, जिनमे कुल बस्ती १००० घरो की है। वायलाल गाव मे २० घर जुलाहो के, १० पिंजारो के, ३० धोबियो के ७५ कोलियों और भोइयो के और शेष ब्राह्मण बनिये, सुनार, वगैरा के है।

इस केन्द्र में अधिकतर ६ नं० से १४ नं० तक का सूत कतता है। ६ से ८ नं० का सूत एक रुपये मे १८ छटांक, और १० नं० का करीब १६ छटांक मिलता है।

१४ नंबर के सूत की कताई २० तोले पर डेढ़ आना है, यानी छ आने मे १४ नं० का एक सेर पक्का सूत कतवाया जाता है। कताई की यह दर काफी सस्ती मालूम होती है। आमतौर पर यहा औरते चर्खे पर दिनभर मे ८ से १० तोला सूत कातती है। दु.ख की बात है, कि इस हिसाब से उन्हें दिनभर कातने पर भी एक आना नही मिल पाता। फिर भी लोग खुशी-

खुदी कातते हैं। लोगो की गरीबी और चर्खे की दीन-बन्धुता का इससे बढकर और क्या प्रमाण हो सकता है ?

वायलाल गाव में कत्तिनो और जुलाहो मे खादी पहनने का रिवाज है। हाथकते सूत की करीब आधों आध खादी उनके बदन पर दिखाई पड़ती हैं। शेष कपडों में मिलावटी खादी और मिल का कपड़ा पहना जाता है।

यहा मिल के सूत की बुनाई और हाथकते सूत की बुनाई मे कोई अन्तर नही है। दोनों के भाव एक ही हैं। बुनने में मिल का सूत अधिक बुना जाता है और हाथ का कम। फिर भी जुलाहे दोनों तरह के सूत एक ही दर से बुनते है। मिल और हाथकते सूत का भाव लगभग बराबर होने के कारण कुल मिलाकर खादी ही लोगो को अधिक सस्ती जँचती है, फिर भी कई लोग परिस्थिति के कारण मिल का कपड़ा पहनते है।

वायलाल में वासरुलु जाति के ६ घर है। ये लोग रेशमी किनार की बुनाई का काम करते है। साडियो और धोतियो में विदेशी रेशम और जरी की किनार बुनते है। सूत भी मिल का होता है और अधिकतर महीन कपड़ा ही बुना जाता है।

वायलाल की कत्तिनें अपनी रुई धुनिये से धुनवाती है। पूनियां भी धुनिया ही बनाता है। १॥ सेर रुई धुनने और उसकी पूनी बनाने के लिए कत्तिनें धुनिये को दो आने देती हैं। कपास अधिकतर घर की खेती का होता है।

वायलाल के चर्खे का व्यास २१ इंच है। कुछ चर्खे २०", २०॥" के भी हैं। चर्खे और तकुए के बीच २४" से लेकर २७" इंचतक का फासला होता है, और तकुए का घेरा एक इंच से लेकर ११। इंच तक। तकुए पर 'साड़ी' लगाई जाती है। तकुआ साधारणत: ७" इंच लम्बा होता है। एक तकुए की कीमत आध आना है। तकुए साधारणत: कच्चे लोहे के और पतले होते है। चर्खे की माल कत्तिनें हाथकते सूत की ही बनाती हैं। अधिकतर माल छ: तारी बनाती है। माल पर राल नही लगाई जाती। तकुए के चक्कर ५० के आसपास होते हैं।

कत्तिनो को नगे तकुए पर कातने में आपत्ति है। उन्हे विश्वास नही होता कि नगे तकुए पर भी सूत कत सकता है। पूनिया खराब और अच्छी कताई के लिए बेकार-सी होती है।

श्री नूरमहम्मदजीने नगे तकुए का प्रयोग करने और स्वय अनुभव ले लेने के बाद कत्तिनो में उसका प्रचार करने का वचन दिया है। पिजाई में सुधार करने की आवश्यकता पर भी उनका ध्यान गया है।

वायलाल में बच्चो के लिए निवार और जाली के झूले इधर अच्छे बनने लगे हैं, और उनकी माग भी चारो ओर से आती है। एक लोहे की सलाखो के सिवा झूलो का बाकी सारा सामान वायलाल मे ही तैयार किया जाता है। सलाखे बम्बई से आती हैं। तैयार झूले की कीमत २) है। झूले की जाली बनाने का काम गाव की स्त्रिया करती हैं। एक जाली की मजदूरी तीन आना मिलती है। जाली में ≈)॥ का १२ तोला सूत लगता है और उसकी लम्बाई-चौडाई ३४"×५३" होती है।

वायलाल के कुछ जुलाहे लम्बे अर्ज की उम्दा खादी बुनने हैं। एक परिवार के पास तीन कर्घे है, जिनपर ५८", ६४", ७२" इंची खादी बनी जाती है। ७२" इंचवाले कर्घे पर एक दिन में ३ से ३। गज कपड़ा बुना जाता है। ५४" ६४" इंची पर ४ से ४। गज। ७२" इंचवाले कर्घेपर १०॥ गज का एक थान बुनते हैं, ५४" इंचवाले पर १२ गज का।

साधारण खादी का लम्बे-से-लम्बा ताना १२ गज का होता है। कोटिंग के लिए १४ गजतक का ताना भी तैयार किया जाता है। वायलाल की तरह इतने बड़े अर्ज की खादी बहुत ही कम खादी-केन्द्रों में बनती है। वायलाल की यह एक विशेषता है।

गोपालपुरम् की ऊनी खादी—वायलाल से लगे हुए इस छोटे-से गाव में अधिकतर बस्ती जुलाहो की है। ये लोग ऊन कातने और कम्बल बुनने का काम करते है। ऊन के लिए ये स्वयं भी भेड़ पालते हैं और धनगरो से भी ऊन खरीदते हैं। कम्बल बुनने में भेड और बकरी दोनो का ऊन काम में लाते हैं। प्राय: सभी ऊन मोटा और काला होता है।

ऊन की कताई का काम औरतें करती हैं। लकडी की मोटी और बडी तकलियो पर मोटा ऊन काता जाता है। एक तकली की कीमत ढाई आने के करीब होती है और वजन करीब पाव-३ छटाक। ३६"×२॥ गज का एक कम्बल बुनने के लिए १। सेर से लेकर १॥ सेरतक ऊन की जरूरत रहती है। इतना ऊन तीन औरतें एक दिनमें कात लेती है और जुलाहा १॥ सेर ऊन का एक कम्बल एक दिन में बुन देता है। जुलाहे अपने कर्घों पर लम्बे अर्ज के यानी ४५"×३ गज के सर्लैंग कम्बल भी बुनते है। वायलाल के ये कम्बल इधर महाराष्ट्र में और बाहर भी काफी लोकप्रिय होरहे है। लोकप्रियता के मुख्य कारणो में कम्बलो की सन्तोषजनक बुनावट और सस्तापन है।

साल मे दो बार ऊन काटा जाता है। और हरबार मे फी भेड़ लगभग आधा सेर ऊन उतरता है।

जुलाहे धनगरो से १) का १० सेर ऊन खरीदते है। पिंजाई जुलाहे और कत्तिनें स्वयं कर लेती हैं। आधा सेर ऊन की कताई में दो आने दिये जाते है। ऊन को इमली के बीजो की माड़ लगाकर उसका ताना तैयार करते हैं।

गरीबी ठीक-ठीक है। लोगो का मुख्य भोजन मक्का, जुवार, चावल, मूग और तुवर की दाल है।

औरते छोटे अर्ज की लम्बी साड़िया पहनती हैं। रगीन कपडे पहनने का रिवाज बहुत कम है। मर्द भी ज्यादातर सफेद और मोटा कपडा ही पहनते है। कपड़े मे धोती और साफा या पगडी ही मुख्य हैं। कुर्ते आदि बहुत कम पहने जाते है।

जुलाहों के घर की औरतें कातना नही जानतीं, जो जानती भी हैं, वे कातने का समय नही पाती। गाव में कुनबी, धनगर, और दूसरी जातियो के घर चर्खे है—और इन जातियो की औरतें घर पर सूत काता करती है।

गाव के गरीब लोग कर्जदारी मे बुरी तरह फँसे है। साहूकार प्रतिमास एक आना रुपयातक सूद लेते है। गाव का मुखिया बड़ा कठोर आदमी बतलाया जाता है। खादी-कार्यालयवाले इस अन्याय के प्रतिकार में गरीबो की यथाशक्ति सहायता करते रहते हैं।

वायलाल महाराष्ट्र का एक होनहार खादी-केन्द्र है।

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

अकेन्द्रीकरण ?·

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३]   दिल्ली, शुक्रवार, २३ अगस्त, १९३५.   [संख्या [illegible]

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्राम-सेवा

इस सप्ताह हमारे गांव में कोई ऐसी खास उल्लेखनीय बात नही हुई। गाव के बच्चे तो नित्य ही हमारे यहा आते हैं, और उनके साथ हमारा स्नेह-सम्बन्ध बढ़ता ही जाता है। हम लोगो मे से एक आदमी गांव मे रहने के लिए कभी से तैयार है, पर अभीतक हमे कही मकान ही नही मिला। अब बेचारा रहे तो कहा ? इस एक बात मे ही हमारी कठिनाइयो [illegible] कल्पना की जा सकती है। अन्त मे, हमने यह निश्चय किया है कि गाव मे कही अच्छी-सी जमीन मिल जाय तो वहा अपना एक नया ही झोपड़ा बनाले। लेकिन जमीन भी मिलने की अभी कोई सम्भावना नजर नही आती।

मगर खुशी की बात यह है कि मैं अपने ग्राम-सेवा-कार्य का प्रति सप्ताह जो वर्णन लिखता हूँ उसे गावो की सफाई मे रस लेने-वाले हमारे कुछ मित्र, मालूम होता है कि, बड़े गौर से पढ़ते है। यह वर्णन पढ़कर कि, कुएँ के पास हमने एक गड्ढा खोदा था, श्री नारायण नाम के एक इंजीनियर सज्जनने गन्दे पानी के निकास के बारे में विस्तार के साथ कुछ सूचनाएँ लिख भेजी है। अपने पत्र में वे लिखते है :—

"आपने गन्दे पानी के लिए जो गड्ढा खोदा था, वह गर्मियो मे तो और भी अधिक हानिकारक था, क्योंकि गदले पानी के ऐसे खुले हुए गड्ढों मे ही तो मच्छर खूब कसरत से पैदा होते हैं। इंजीनियरी का और मलेरिया के साथ लड़ने का मेरा पन्द्रह साल का अनुभव है, और अपने उस अनुभव के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ, कि गन्दे पानी का निकालना जरा भी मुश्किल काम नही है। इस चीज पर हमने ध्यान ही नही दिया, इसीसे आज हमें यह काम सब से मुश्किल मालूम पड़ता है।

जहा जमीन खुश्क हो, बारिश बहुत ज्यादा न होती हो, और जमीन ऊँची-नीची हो, वहा तो यह काम बहुत ही आसान है। जिस जगह से गंदा पानी आता हो, उस जगह एक छिछली नाली निकाल दो। हर २० फुट पर ½ फुट के हिसाब से ढलाव देते जाओ। नाली १०० फुट लबी खुद जाने के बाद एक क्रम से २-३ कट्ठा जमीन पर पानी को फैलने दो। इस तरह पानी से सिंची और खाद दी हुई जमीन पर घास और केला वगैरा उग सकते हैं। आपके यहा की तरह जहा जमीन का सुभीता न हो, वहा पानी के निकास की निम्नलिखित रीति बहुत ही अच्छा काम देगी। यह रीति हर हालत मे काम दे सकती है। हा, वहा इससे काम नही चलेगा, जहा जमीन मे इतनी ज्यादा तरी हो कि अगूठे से कुरेदने से ही पानी निकलने लगे। नाली का ढलाव इसमे जितना रखा जा सके उतना रखा जाय, यद्यपि प्रति २० फुट ६ इंचों से कम तो वह होना ही नही चाहिए। किसी दूसरे की जमीन की मेड़ जहातक न दबे वहातक बराबर नाली खोदते जाओ, जितनी दूर ले जा सको उतनी दूर ले जाओ। इसके बाद उसे एक गड्ढे के साथ जोड़दो। गड्ढा नीचेलिखे अनुसार तैयार किया जाय —

गड्ढा ८ फुट लबा, ४ फुट चौड़ा और ५॥ फुट गहरा खोदा जाय। (गड्ढे की लबाई, चौड़ाई कितनी होनी चाहिए, यह तो इस पर निर्भर करेगा कि पानी उसमें कितना बहकर आयगा। जिन सार्वजनिक कुओं का उपयोग काफी ज्यादा मनुष्य करते हो, उनके [illegible] लो के [illegible] ० फुट लबा, १० फुट चौड़ा और ५॥ फुट गहरा गड्ढा होना चाहिए।) ककड़ या रोड़ा जो आसानी से मिल सके उसके १ इंच के, २ इंच के, ३ इंच के, ४॥ इंच के और ५ इंच के टुकड़े करके क्रमश. उनकी तहे उसमें जमा दे। गड्ढे के नीचे एक फुट की तह ६ इंची पत्थर या ईंट की जमाई जाय, उसके ऊपर की तह ४॥ इंची पत्थर या ईंट की, उसके ऊपर की तह ३ इंची की, उसके ऊपर की २ इंची की और फिर उसके ऊपर की तह १ इंची पत्थर या ईंट की जमाई जाय। और सबके ऊपर तीन इंच अच्छी साफ रेती बिछा दी जाय। यह गड्ढा तमाम गंदा पानी सोख लेगा, पानी-पानी नीचे चला जायगा, और पत्तियां व कचरा वगैरा ऊपर रह जायगा। ऊपर का वह कूड़ा-कचरा नित्य दो बार नही तो एकबार तो साफ कर ही लेना चाहिए। वह झाड़ू से साफ हो सकता है। वह सब कचरा वहीं नजदीक मे एक फुट गहरा गड्ढा खोदकर उसमे डाला जा सकता है। पर उसे मिट्टी से जरूर ढक देना चाहिए। कूड़ा-कचरा अगर ठीक तरह से साफ नही किया जायगा, तो वह गड्ढा ठीक-ठीक काम नही देगा, क्योंकि कुछ दिनो में वह कचरा इतना जम जायगा कि पानी नीचे जाने से रुक जायगा। और उस कचरे के कारण मक्खियां भी पैदा होंगी। स्वास्थ्य के लिए ये मक्खियां भी तो हानिकारक हैं।

मैंने इस तरफ और उत्तर भारत में जो गांव देखे हैं, वहा

घर-घर मेरे देखने में यह आया है कि कूड़ा-कचरा बाहर फेंक देने के बाद उसकी कोई पर्वा ही नहीं करता। गांवों में मकानों के पिछवाड़े कचरे की काली-काली तहें जम जाती हैं। उनमें मच्छर और कीड़े-मकोड़े पैदा होते हैं, और ऐसी दुर्गन्ध आती है कि एक मिनिट भी खड़ा रहना मुश्किल हो जाता है। बड़े-बड़े कस्बों में पीछे जगह न होने के कारण घरों के सामने ही गलियों और रास्ते पर गंदे पानी के चहबच्चे भर जाते हैं। गांवों में जहां पानी के निकास की पहली रीति अमल में न लाई जा सके, वहां यह दूसरी रीति तो घर-घर काम दे ही सकती है। लोग वहां खूब आराम की नींद सो सकते हैं, क्योंकि मच्छरों का जरा भी भय नहीं रहेगा।"

इस पत्र का अवतरण देते हुए मैं यह कहूंगा कि इसमें जो सलाह दी गई है, कुछ-कुछ उसके अनुसार ही अपने खोदे हुए गड्ढे को काम में लाने का हमारा इरादा था। लेकिन यकायक बरसात आ गई, और लोग हमें सामान वगैरा देने के लिए तैयार नहीं थे, इसलिए हम अपनी योजना अमल में नहीं ला सके। श्रीनारायण ने जिस योजना की सलाह दी है, उसका अमल तो सभी जगह हो सकता है।

जूते बनाने का एक और पाठ

हमारा साप्ताहिक पत्र ध्यान के साथ पढ़नेवाले पाठकों को इतना तो याद होगा ही कि कुछ सप्ताह पहले हमारे यहां चिथड़ा लपेटे एक ऐसा बुड्ढा आदमी आगया था, जो सबेरे से लेकर शामतक काम में जुटा रहता था और कूड़ा-कचरा उठाने का या दूसरा कोई भी हलके-से-हलका काम हो उसे करने में एतराज या टाल-टूल की बात तो वह जानता ही न था। उसका एक भी दांत नहीं गिरा था, और उसमें खास बात यह थी कि एक वक्त खूब डटकर खा लिया कि चौबीस घंटे के लिए छुट्टी। वह कुछ दिनों के लिए बाहर चला गया था, पर अब वापस आ गया है और हमारे यहां स्थायी रूप से रहने लगा है। वर्षा हो या ठंड उसकी शक्ति या उत्साह पर उसका कोई असर नहीं पड़ता। सारे दिन काम करता ही रहता है। उसके काम को 'सेनीटरी इंस्पेक्टर का काम' कहना ठीक होगा। यह काम वह बड़े तड़के से पहर रात गयेतक बराबर करता ही रहता है। खुला हो चाहे बरसता हो, बुढ़ऊ को तो आप हमेशा उघारे शरीर वही फटी-पुरानी धोती पहने काम करते हुए ही पायेंगे। एक दिन उसने गांधीजी से आकर कहा, 'मुझे अब एक जोड़ा जूता चाहिए। दिन में तो मुझे जूते की जरूरत नहीं, पर रात को अँधेरे या बरसात में काम के वक्त पहन लिया करूंगा।' उसने एक दफा तो मुलायम कार्डबोर्ड के कुछ रद्दी टुकड़ों को सीकर जूता जोड़ा बना लिया था। पर वह कागज का जूता एक दिन से ज्यादा थोड़े ही चल सकता था? वह तो उसी दिन फट-फटू गया। इसलिए उसने गांधीजी से कहा कि 'किसी का फटा-पुराना फालतू जोड़ा पड़ा हो तो वह मुझे दिला दिया जाय।'

गांधीजीने पूछा, 'पर फटा हुआ जोड़ा क्यों?'

बुड्ढे को हम लोग 'भानुबापा' के नाम से पुकारते हैं। उसने बड़े ही सरल भाव से कहा, 'बचा-खुचा अन्न खाकर और फटा-पुराना जोड़ा पहनकर गुजर करना ही अच्छा है।'

'पर मैं तुम्हारे लिए नया जोड़ा बनवा दूं तो?'

'तो यह आप की कृपा होगी। पर मुझे ये नये जमाने के चप्पल या स्लीपर पसंद नहीं। मुझे तो पुराने ढंग का अपना वही 'ओखाई' जोड़ा चाहिए।'

'ठीक, तुम्हारे लिए अपने चर्मालय से हम वैसा जोड़ा तैयार करा सकते हैं।'

'पर बिना देखे ओखाई जोड़ा मोची कैसे बना सकेगा? बिना नालवाड़ी गये मैं मोची को कैसे समझा सकता हूं? पर मैं एक दिन का भी काम कैसे छोड़ूं? और बिना गये काम बनेगा नहीं।'

'तुम्हें अपना काम छोड़कर जाने की जरूरत नहीं, न मोची को ही यहां बुलाने की जरूरत है। लाओ, मुझे यह कार्डबोर्ड का टुकड़ा देदो। मैं इसका 'ओखाई' जोड़े का नमूना बनाऊंगा, और इस नमूने के अनुसार जूता-जोड़ा बना देने के लिए मोची को कहला दूंगा।' यह कहकर गांधीजीने कुछ ही मिनिटों में कार्डबोर्ड का 'ओखाई' जोड़ा बना दिया। तीस बरस पहले कहीं उन्होंने वह जोड़ा देखा था, पर उसका घाट याद करके उन्होंने उस जोड़े का नमूना तैयार कर दिया। भानुबापा और हम सब लोग वह हूबहू नमूना देखकर अचरज में पड़ गये! ओखाई जोड़ा बनकर आ गया है, और यह देखकर अब हमें बड़ा ही मजा आता है कि हमारे बुढ़ऊ भानुबापा उघारे बदन, फटी धोती और नया ओखाई जोड़ा डाटे सारे दिन मगनवाड़ी में चक्कर लगाया करते हैं।

सर्प-विद्या

ज्योंही गांधीजी को स्वामी आनंद से यह मालूम हुआ कि उनके थाणा के आश्रम में सांप बहुत कसरत से निकलते हैं, त्योंही गांधीजीने हाफकिन इन्स्टीच्यूट के कर्नल सोखे से इस संबंध में पत्र व्यवहार शुरू कर दिया। गांधीजीने उनसे कई प्रश्न पूछे—जैसे, साधारण आदमी यह किस तरह बतला सकता है कि यह सांप जहरीला है, और यह नहीं, सांप के काटे का क्या और किस तरह इलाज किया जाय, इत्यादि इत्यादि। गांधीजी के पत्र के उत्तर में कर्नल सोखेने तुरन्त सर्पविषयक साहित्य भेज दिया। पर उससे तो गांधीजी की सर्प-विद्या-संबंधी जिज्ञासा और भी बढ़ गई। और एक दिन जब जमनालालजीने उन्हें यह बताया कि मैं एक ऐसे साधु को जानता हूं जिसे इस विद्या का बड़ा अच्छा ज्ञान है, उसके पास अनेक प्रकार के सर्प हैं और वह अपना प्रयोगात्मक प्रदर्शन भी दिखा सकता है।' गांधीजीने उसकी सर्प-विद्या देखने की इच्छा प्रगट की। अतः वह सँपेरा साधु एक दिन मगनवाड़ी में बुलाया गया। वह अपने सब सांप तो नहीं, केवल एक सांप लाया। कार्यकारिणी समिति के सदस्यों को गांधीजी की बैठक के सामने सँपेरे की यह दूकान देखकर और भी अधिक आश्चर्य हुआ! उस दिन मोचीने अपनी दूकान फैला रखी थी, आज यह सँपेरा बैठा हुआ है! मगर जब गांधीजी उस साधु से सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्रश्न पूछने लगे, तब तो उनका आश्चर्य मनोरंजन में परिणत हो गया। वह साधु अपने फन में काफी कुशल मालूम हुआ, पर कर्नल सोखेने जो बातें बतलाई थीं उससे अधिक तो वह नहीं बतला सका। सर्पविद्याविषयक अँग्रेजी की एक प्रामाणिक पुस्तक से अनूदित एक मराठी पुस्तक उसके पास थी। दुर्भाग्य से वह मूल पुस्तक आजकल अप्राप्य है। जो सांप उस दिन वह लाया था वह ऐसा ज्यादा जहरीला नहीं था। उसने हमें बतलाया कि इसमें जहर तो है, पर हलका जहर है। उसके लिए तो वह विष-धर सर्प एक केंचुए के समान था! और जब वह सँपेरा सांप को गांधीजी के गले में लपेटने के लिए आगे बढ़ा, तब तो कार्यकारिणी

के सदस्य एकदम स्तंभित और भयभीत-से हो गये। गांधीजीने उसे रोका नहीं। उसने सांप उनकी गर्दन में लपेट दिया। गांधीजी के गले में वह सर्प की माला देखकर हम तो कुछ क्षणों के लिए घबरा-से गये। कड़ा जी करके हमने वह दृश्य देखा। इसके बाद उस साधुने सांप का फन खोलकर उसके विषैले दांत और विष की पोटली दिखाई। उसने कहा कि अगर कोई खुशी से सांप से कटवाना चाहे तो मैं उसका जहर फौरन निचोड़ दूंगा। गांधीजी की ज्ञान-पिपासा तो कभी शांत होती नहीं, साथ ही वे ऐसे किसी भी नये प्रयोग के लिए हमेशा ही उद्यत रहते हैं, जिसकी सहायता से वे दीन-दुर्बलों की सेवा और भी अच्छी तरह कर सकें, इसलिए वे खुद ही सर्प से डँसवाने के लिए तैयार हो गये। पर हम सबने एक स्वर से इस बात का विरोध किया, और इससे साधु महाराज की हिम्मत नहीं पड़ी। उससे हमने कहा कि हम इतने लोग जो यहां खड़े हैं उनमें से किसी एक पर तुम अपनी गारुड़ी विद्या आजमा सकते हो। इस पर वह राजी हो गया। दो सज्जन तुरत तैयार हो गये। मगर वह सांप भी पहले नंबर का सत्याग्रही निकला। कितनी ही कोशिश की, पर उन सज्जनों को वह अपना घातक विषदान देना ही नहीं चाहता था।

रसोइया भी, परसैया भी

ऐसे नये-नये प्रयोग देखकर आज वक्त सरदार वल्लभ भाई चिढ़ उठते हैं। ऐसी बातों में वे कुछ-कुछ पुराने विचार के हैं। जब भी कोई गृहस्थीसम्बन्धी नई समस्या लेकर गांधीजी के पास पहुँचता है, तब सरदार पूछ बैठते हैं, 'ऐसी भी कोई चीज है, जिसके विषय में आप यह कबूल करलें कि इस चीज में मैं निष्णात नहीं हूँ?' गांधीजी इस पर खूब खिल-खिलाकर हँसते हैं, और अपने प्रयोग और सलाह बतलाते जाते हैं। हमारे यहां अकसर ऐसे भी मेहमान आ जाते हैं, जिन्हें पल्थी मारके बैठने की टेव नहीं होती, और इससे हमारे साथ बैठकर जीमने में उन्हें कठिनाई होती है। एक दिन जब हम परेशान थे कि किस तरह अपने मेहमानों को बिठावें, गांधीजीने कहा, 'अरे, तुम व्यर्थ परेशान हो रहे हो—मेज और स्टूल ही चाहिए ना? उठाओ उस चीर के बक्से को, उससे मेज का काम चल जायगा। अब रहा स्टूल, सो उससे कुछ छोटा खोखा रखदो।' यह प्रबन्ध हमारे मेहमानों के बिल्कुल अनुकूल पड़ा। गांधीजीने हँसते हुए कहा, 'अच्छा, तो मैंने रसोइये और परसैये दोनों का ही काम कर दिया, और मैं ऐसे-ऐसे कामों में कुशल हूँ!'

एक कठिन प्रश्न

एक विद्यार्थीने, जो 'हरिजन' नियमपूर्वक पढ़ता है, गांधीजी से पूछा है कि, निम्नलिखित पत्र में वर्णित परिस्थितियों में उसका अपना बर्ताव कायरता में गिना जायगा या स्वाभाविक ही समझा जायगा। वह लिखता है :—

"शरीर से मैं बहुत ही कमजोर हूँ, इसलिए जब भी महज़ोर गुंडों से मेरा सामना होगा, तब स्वभावतः मैं अपने को उनसे दूर ही रखूंगा। अगर कोई मनुष्य किसी ऐसे दानव को देखकर भाग जाता है जिसका मुकाबला वह कभी कर ही नहीं सकता, तो उसका यह काम कायरता में क्यों गिना जाय? बिल्ली को देखकर चूहा अगर भाग जाता है, तो क्या वह कायर है?"

गांधीजी को चूहे-बिल्ली की यह उपमा ही बड़ी असंगत लगी। उनकी राय में मनुष्य शरीर से चाहे कितना ही कमजोर हो उसे पशु की कोटि में तो अपने को गिनना ही नहीं चाहिए। इसलिए उन्होंने उस युवक को यह जवाब लिख भेजा है—"शरीर से मनुष्य चाहे जितना कमजोर हो, पर इससे क्या? यदि पीठ दिखाकर भाग जाने में शर्म की बात है, तो ऐसा कमजोर मनुष्य भी अपनी जगह डटा रहेगा, वहां से एक इंच भी पीछे न हटेगा, और वहीं खड़ा-खड़ा मृत्यु को छाती से लगा लेगा। इसमें अहिंसा भी है और वीरता भी। या फिर—वह जितना कमजोर हो तो भी उसमें जितनी शक्ति होगी उसका वह प्रतिपक्षी पर प्रहार करने में उपयोग करेगा, और ऐसा करते हुए मरना भी पड़े तो मर जायगा। इसमें बहादुरी तो है, पर अहिंसा नहीं। मनुष्य का धर्म जब खतरे का सामना करना हो, तब यदि वह भाग जाय तो उसका वह काम कायरता में गिना जायगा। मैंने ऊपर तीन उदाहरण दिये हैं। पहले उदाहरण में मनुष्य में प्रेम या उदारता का भाव होगा। और दूसरे और तीसरे उदाहरण में उसके मनमें अरुचि, अविश्वास या भय होगा।"

नये अखबार किसलिए?

शायद ही कोई ऐसा सप्ताह जाता होगा, जिसमें कोई नवीन दैनिक, साप्ताहिक या मासिक पत्र निकालनेवाले सज्जन गांधीजी से सदेश भेजने की प्रार्थना न करते हों। गांधीजी इनमें से किसी को भी संदेश नहीं भेजते, क्योंकि उन्हें ऐसा लगता है कि हमारी इस मौजूदा दशा में तो नये अखबारों के लिए गुंजाइश ही नहीं। नया अखबार निकालने की तैयारी में लगे हुए ऐसे एक सज्जन से गांधीजी अच्छी तरह परिचित हैं, इसलिए उन्हें तो उन्होंने साफ साफ लिख दिया कि, "आपके पास दुनिया को देने के लिए ऐसे कुछ खास संदेश हैं क्या, जिनके लिए आप इस तरह व्याकुल होगये हैं और एक नया जोखिम उठाने को तैयार होरहे हैं? आजकल सभी को अखबार निकालने की सनक सवार हो रही है। क्या कोई इससे अच्छा काम आपको नहीं सूझ रहा है? खुदा के लिए, छोड़िए यह झंझट।'

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

"पानी-फंड"

'हरिजन-पानी-फंड' में १९ अगस्त, १९३५ तक निम्नलिखित दान प्राप्त हुए हैं —

श्रीयुक्त प्रभुदयाल, नई दिल्ली	५)
,, भगवतीप्रसाद वकील, झांसी	५)
गुलेरिया गांव (जिला बुलडाना) से	२५)
श्रीमती रामेश्वरी नेहरू, लाहौर (द्वारा ह० से० स०, पंजाब)	२५०)
श्रीयुक्त लाला प्रकाशनाथ, इंजीनियर श्रीनगर, (द्वारा ह० से० स०, पंजाब)	१००)
	३८५)
पूर्व प्राप्त	१३,८४३।।)
कुल	१४,२२८।।)

मंत्री, ह० से० सं०

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करें। ग्राहक-नंबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा।

व्यवस्थापक—'हरिजन-सेवक' दिल्ली

हरिजन-सेवक
शुक्रवार, २३ अगस्त, १९३५

अकेन्द्रीकरण ?

हरिजन-सेवक-सघ की कार्यकारिणी समिति की आगामी बैठक इस महीने की ३०वी तारीख को वर्धा मे होनेवाली है। उसमे जिन अनेक महत्वपूर्ण विषयो पर चर्चा होगी, उनमे एक विषय यह है कि सघ का कार्य-सचालन आज जो सेण्ट्रल बोर्ड के द्वारा होता है उसके बजाय ऐसी व्यवस्था करने की जरूरत है या नही कि वह प्रातीय शाखाओ के द्वारा हो। कुछ प्रातीय बोर्ड यह महसूस करते हैं कि अकेन्द्रीकरण कर देने से सघ का ध्येय और भी अच्छी तरह सपादन होगा।

सेठ घनश्यामदास बिड़ला और श्री अमृतलाल ठक्कर का यह आग्रह था कि सघ का सारा कारबार दिल्ली मे केन्द्रित रखा जाय। इसका निश्चित कारण यह था कि पैसा दिल्ली के प्रधान कार्यालयने इकट्ठा किया था, प्रातीय बोर्डो के अध्यक्षो को सेठ घनश्यामदासने निर्वाचित किया था, और सघ की नीति भी क्रमश सेण्ट्रल बोर्डने ही बनाई थी।

सघ के कारबार को एक केन्द्र मे रखने की नीति से मै सहमत रहा हूँ सही, तो भी मेरी इच्छा हमेशा ही यह रही है कि प्रथम अवसर मे ही यह कारबार सघ की विभिन्न शाखाओ मे विभक्त कर दिया जाय। मुझे इसमे सदेह नही कि सेण्ट्रल बोर्ड की भी यही इच्छा रही है। पर यह तो तभी हो सकता है, जब प्रातीय बोर्ड अपनी जरूरतभर का पैसा इकट्ठा कर लेने के लिए तैयार और समर्थ हो। गाव-गाव मे हरिजन-सेवक-सघ हो, और उसके लिए हर गाव खुद पैसा इकट्ठा कर लिया करे इससे अधिक प्रिय मुझे और क्या हो सकता है? ऐसा दिन जब आयगा, तब अस्पृश्यता का सर्वथा नाश भी हो गया होगा। आज तो बदकिस्मती से यह मानना पड़ेगा कि अब भी इस आदोलन को सारे देश मे जो इने-गिने थोड़े-से सच्चे सुधारक हैं वही चला रहे हैं। इन सब मे अपने अपने कार्यक्षेत्र से पैसा इकट्ठा कर लेने की शक्ति नही है, और किस तरह की नीति से काम चलाना चाहिए इसका भी सबको पूरा पता नहीं है। 'नीति' शब्द का मै जान-बूझकर उपयोग कर रहा हूं। क्योकि ध्येय क्या है यह तो सभी जानते हैं, पर सच्चे सुधारको को कैसी-कैसी सख्त मर्यादाओ के अदर काम करना पड़ता है इस बात का सबको पता नही है। निर्णय करने मे जरा-सी भूल हो गई, या उतावली मे कोई काम कर बैठे, या बिना सोचे-समझे कोई बात ही कहदी, तो सारा किया-कराया काम मिट्टी मे मिल सकता है। इसलिए सघ के कार्य की नीति उन्ही थोड़े-से आदमियो को अपने नित्य के कार्यानुभव के आधार पर काफी सावधानी के साथ बनानी होती है, जिनके मन मे हरिजनो की सेवा करने और हिदूधर्म का अस्पृश्यतारूपी यह महान् कलंक धो डालने के अतिरिक्त दूसरा कोई विचार ही नही।

हरिजन-सेवको को यह जानकर दुःख होगा कि प्रधान कार्यालय के बही-खातो मे ८००००) से अधिक ही रकम बतौर पेशगी के प्रातीय बोर्डो के नाम पड़ी हुई है। इसका मतलब यह हुआ कि जिन प्रातीय बोर्डो के नाम यह रकम पेशगी पडी हुई है, वे अपने निर्धारित हिस्से का पैसा इकट्ठा नही कर सके। यह भी एक दुःख की बात है कि प्रातीय बोर्डोने आंकडे और तथ्य संघ-द्वारा निश्चित किये हुए रूप मे नही भेजे। तीसरी उल्लेखनीय बात यह है कि सघ के मंत्रियो के सतत जागरूक रहते हुए और उनके कई बार दौरा करने पर भी जिला-संघो को जिस तरह काम करना चाहिए था उस तरह नही किया। यह सब कहने का अर्थ यह नही है कि प्रातो तथा जिलो के हरिजन-सेवको के जमा की तरफ एकदम शून्य है, या उन्होने कुछ किया ही नही। निस्सदेह 'हरिजन' में समय-समय पर जो रिपोर्टें निकलती रहती हैं उन्होंने अधिकाश में यह सिद्ध कर दिखाया है कि हरिजन-सेवक-सघ की शाखाओं को काम आरभ किये अभी थोड़ा ही समय हुआ है, पर इतने ही समय मे उन्होने कितनी अद्भुत प्रगति की है। मगर इस वक्त तो मेरा हेतु उधार-नामा जाचना है कि जिससे हरिजन-सेवक एक सच्चे निर्णय पर आ सके। यह भी संभव है कि मैने जिन त्रुटियो की ओर ध्यान आकर्षित किया है वे त्रुटियां केन्द्रीकरण की नीति पर आवश्यकता से अधिक आग्रह रखने का परिणाम हो। अगर ऐसा है तो जो लोग अकेन्द्रीकरण के पक्ष मे हैं उन्हे अपना केस साबित करना पड़ेगा। सेण्ट्रल बोर्ड को अगर अपनी शाखाओं के द्वारा काम चलाने की जरूरत मालूम पड़ती, तो वह यह कभी का कर चुका होता। आगामी बैठक सेण्ट्रल बोर्ड की कार्यकारिणी समिति की है। उसमे केवल सात सदस्य हैं, और अध्यक्ष उसमे उपस्थित नही हो सकते। अत प्रत्येक प्रात के हरिजन-सेवको से मेरा यह निवेदन है कि वे इस विषय पर अपनी निश्चित राय सघ के मत्रियो के पास भेजदे, साथ ही अपनी राय के समर्थन मे तथ्य और आकडे भी सक्षिप्त रूप में भेजे। हरिजन-सेवा का कार्य दयाधर्म का कार्य है, और इसमे एक प्राचीन धर्म के जीवन-मरण का प्रश्न अतर्निहित है। इसलिए इस कार्य को आगे बढाने के लिए हमे अपनी शक्तिभर एक भी उपाय नही छोड़ना चाहिए। ऐसे विषयो में व्यक्तिगत दृष्टि से विचार करने का कोई मूल्य ही नहीं।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

यथार्थता की जरूरत

हरिजन-सेवक-सघ के सेण्ट्रल बोर्डने प्रातो मे स्थापित संघ की शाखाओ की उचित व्यवस्था के लिए जो नियम बनाये हैं, उनका पालन करने की आवश्यकता के सबध मे प्रो० मलकानी प्रातीय सघो के नाम समय-समय पर गश्ती चिट्ठिया निकालते रहते है, और उनकी नकले मेरे पास भी वे कृपाकर भेजते रहते है। प्रातीय बोर्ड जबतक समय-समय पर सेण्ट्रल बोर्ड-द्वारा जारी किये हुए तमाम नियमो और आदेशो का सख्ती से पालन नही करेगे, तबतक वे अच्छी तरह न तो सेण्ट्रल बोर्ड के ही साथ और न दूसरी शाखाओ के ही साथ हिलमिलकर काम कर सकेंगे। बजट या हिसाब-किताब का आकड़ा तैयार करने के सम्बन्ध के जो नियम है उनका यदि पालन न हो तो हिसाब के बारे मे अंधेरखाता ही समझिए। जिस सस्था की अनेक शाखाएँ हों और उन शाखाओ को बड़ी-बड़ी रकमो की व्यवस्था करनी हो, उस संस्था के हक मे ऐसी अधेरखाते की स्थिति बहुत ही गंभीर समझी जायगी। कार्य-विवरण अगर प्रधान कार्यालय के पास नियमित रीति से न भेजा जाय, तो उसे किसी काम का पता नही चलेगा, और इस तरह सारा काम अव्यवस्थित हो जायगा। सदस्य यदि संघ की बैठको में उपस्थित न हो, तो काम ही अटक जाय, और

अंत में संघ टूट जाय। व्यापारी कोठियों में अगर नियमों और आदेशों का पालन जरूरी समझा जाता है, तो जो संस्था स्वयंसेवी तथा पारमार्थिक हो और प्रायश्चित्त के अर्थ स्थापित हुई हो उसमें तो नियमों और आदेशों का पालन और भी अधिक आवश्यक होना चाहिए। अतः मैं आशा करता हूं कि संघ की सभी शाखाएँ प्रधान कार्यालय के बनाये हुए नियमों का पालन करेंगी, उसके पास अपनी यथार्थ तथ्यों तथा आंकड़ों की रिपोर्टें ठीक समय पर भेजती रहेंगी, और इस तरह अत्यंत शुद्ध व्यवहार के द्वारा हमारे समाज से अस्पृश्यतारूपी विषवृक्ष का नाश शीघ्र-से-शीघ्र करने में हमें सहायता देंगी।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

मिठाइयों का राजा गुड़

खांड और गुड़

[गतांक से आगे]

खांड और गुड़ दोनों ही ईख का रस पकाकर बनाये जाते हैं। अगर खांड बनानी होती है तो चाशनी में रवा (दाना) पैदा करने की कोशिश की जाती है और गुड़ में वह थोड़ी पतली रक्खी जाती है। इसे हिन्दी में राब और संस्कृत में क्षुद्र गुड़ या फाणित कहते हैं। इसके बनाने में तेल (तोरे का तेल) पर्याप्त मात्रा में व्यवहृत होता है। इसमें जिस तेल का उपयोग होता है वह खाने के लिए अच्छा नहीं है और न उसे कोई खाता या शरीर पर मलता है। इसके प्रयोग के कारण राब भी हानिकारक होजाती है और इसीलिए राब को समस्त इक्षुविकारों में निकृष्ट माना गया है। राब में शीरे को पृथक् करके खांड बनाई जाती है। राब से शीरा निकाल देने के कारण अवशेषांश (खांड) बहुत से दोषों से मुक्त हो जाता है। मगर शीरे के साथ ही उसके बहुत से पौष्टिक तत्त्व भी अवश्य ही निकल जाते हैं जो गुड़ में विद्यमान रहते हैं।

खांड को इक्षुविकारों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है, परन्तु इससे गुड़ का महत्त्व घट नहीं जाता। गुड़ की महत्ता तो उसके उपर्युक्त गुणों में ही सिद्ध है। खांड को सर्वश्रेष्ठ इक्षुविकार मानने का एक यह भी कारण हो सकता है कि वह अत्यन्त स्वच्छ होती है। यदि गुड़ भी अच्छी तरह स्वच्छ करके (मैल को खूब साफ करके, खूब निखारी करके) बनाया जाय, तो वह भी खांड के समान ही श्रेष्ठ कहलाने का अधिकारी हो सकता है और साथ ही उसमें सम्पूर्ण पौष्टिक तत्त्व भी मौजूद रहेंगे।

यहां एक बात और भी विचारणीय है, और वह यह कि आयुर्वेदीय ग्रन्थों में जिस वस्तु को खाण्ड और शर्करा लिखा है, वह वर्तमान रीति से बनाई हुई खांड ही है अथवा इससे भिन्न।

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में गुड़ शर्करा, यावनाल शर्करा, यवास शर्करा, मधु शर्करा और पुष्प शर्करा आदि अनेक प्रकार की शर्कराओं का वर्णन मिलता है, किन्तु आजकल की पद्धति से खांड बनाने में जो शीरा पृथक् हो जाता है उसका कहीं पता नहीं है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन समय में इस प्रकार शीरा (द्रव भाग) पृथक् करके खांड बनाने की परिपाटी ही नहीं थी। इससे मालूम होता है कि आयुर्वेद की शर्करा वर्तमान खांड नहीं बल्कि मेरठ-मुजफ्फरनगर आदि में जिसे शक्कर कहते हैं वही है।

आयुर्वेद यह मानता है कि इक्षुविकारों में (राब, गुड़ इत्यादि में) ज्यों-ज्यों निर्मलता आती जाती है, त्यों-त्यों वे शीतल और गुणकारक होते जाते हैं, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि शुद्धि की जो परिपाटी आजकल प्रचलित है वही प्राचीन काल में थी। मैं तो यह समझता हूँ कि ईख के रस को पकाते समय उसका मैल जितना ही अधिक उतारा जाय उतना ही माल सफेद और अधिक गुणकारी बनेगा। इस विधि से जो शक्कर अत्यन्त सफेद बनेगी उसीको आचार्योंने शर्करा लिखा है।

प्राचीन आचार्योंने राब, गुड़ और शर्करा की स्वच्छता और उनके गुणों की उत्तमता का तारतम्य से वर्णन किया है। उनकी वर्णन-शैली से स्पष्ट है कि वे गाढ़े रस को लसीका, उससे गाढ़े रस को जिसमें द्रवभाग कम हो और घनभाग अधिक हो फाणित, (राब) और उसमें भी गाढ़ा हो जाने पर उसे मत्स्यण्डी कहते थे। मत्स्यण्डी तैयार हो जाने पर भी यदि पकाना जारी रख कर द्रव्यभाग को सुखा दिया जाय तो उसे गुड़ कहते थे। यदि अधिक सफाई करके रस को इतना पकाया जाय कि वह सफेद चूर्ण के रूप में आ जाय तो उसे शर्करा कहते थे। इसी शर्करा को युक्तप्रान्त के कुछ जिलों में शक्कर कहते हैं। वर्तमान काल में खाण्ड कहलानेवाले पदार्थ का तो शास्त्रों में वर्णन ही नहीं मिलता।

औषधरूप में गुड़ का उपयोग

गुडेन मिश्रितं क्षारं कदुष्णं कामतः पिबेत्।
मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करा वातरोगजित् ॥

(ग० नि०)

दो तोले गुड़ में एक माशा जवाखार मिलाकर गर्म पानी के साथ सवेरे-शाम सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र (मूत्र रुक-रुककर आना) और पेशाब की रेग (मसाने में रेती हो जाना) ये रोग नष्ट हो जाते हैं।

आमेषु सगुडां शुण्ठीं, अजीर्णे गुडपिप्पलीम्।
कृच्छ्रे जीरगुडं दद्यात्, अर्शे सगुडामभयाम् ॥

(शा० ध०)

यदि पेट में पेचिश हो तो एक तोला गुड़ में डेढ़ माशा सोंठ का चूर्ण मिलाकर दिन में दो-तीन बार गरम पानी के साथ खिलावे।

यदि अजीर्ण (बदहजमी) हो तो ऊपर की विधि से गुड़ और पीपल का चूर्ण मिलाकर खिलावे।

मूत्रकृच्छ्र में उपर्युक्त विधि से गुड़ और जीरे का चूर्ण सेवन करना चाहिए।

इसी विधि से गुड़ और हर्रे का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से अर्श (बवासीर) नष्ट हो जाता है।

जीरकं गुडसंयुक्तं विषमज्वरनाशनम्।
अग्निमांद्यं जयेच्छीतं वातरोगहरं परम् ॥

(वृ० नि० र०)

एक तोला गुड़ में ३ माशे काले जीरे का चूर्ण मिलाकर प्रातःकाल गरम पानी के साथ खावे, इसी प्रकार दोपहर और शाम को भी। इससे विषम ज्वर (मलेरिया), अग्निमांद्य, शीत और वात रोगों का नाश होता है।

इसे मलेरिया में देना हो तो जाड़ा लगने के समय से पहले-पहले दो-दो घंटे के अन्तर से दो-तीन मात्रा दे देनी चाहिए।

सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्याशभुङ्नरः।
तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्वदेहजः ॥

(वृ० मा०)

तीन माशे जीरे का चूर्ण एक तोला गुड़ में मिलाकर उष्ण-जल के साथ दिन में दो-तीन बार सेवन करने से एक सप्ताह में उदर्द (पित्ती उछलना) निर्मूल हो जाता है।

गुडेन स्वादितं विल्वं रक्तातीसारनाशनम्।
आमशूलविबन्धघ्नं कुक्षिरोगविनाशनम्॥
(भा० प्र०; भै० र०)

डेढ माशा बेलगिरी के चूर्ण को एक तोला गुड में मिलाकर उष्ण जल के साथ सुबह-शाम और दोपहर को सेवन करने से रक्तातिसार (दस्तो में रक्त आना), आम (पेचिश) शूल, मल मूत्र का रुकना और कुक्षिशूल का नाश होता है।

गुड़ेन शुण्ठी मथनोपकुल्यां पथ्यां तृतीयामथ दाड़िमं वा।
आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु वर्चोविबन्धेषु च नित्यमद्यात्॥
(भा० प्र०)

एक तोला गुड़ में सोंठ, दन्तीमूल हर्र और अनारदाने किसी एक का १॥ माशा चूर्ण मिलाकर नित्यप्रति प्रातःकाल उष्ण जल के साथ सेवन करने से आम (पेचिश), अजीर्ण, अर्श और मलावरोध का नाश होता है।

पित्तश्लेष्मप्रशमनीकच्छूकण्डुरुजापहा।
गुदजान्नाशयत्याशु योजिता सगुडाऽभया॥
(वं० से०)

एक तोला गुड़ में १॥ माशा हर्रे का चूर्ण मिलाकर उष्ण जल के साथ सेवन करने से पित्त (गरमी), श्लेष्म (सरदी), कच्छू (दाहयुक्त तर खुजली), खाज और अर्श (बवासीर) का अत्यन्त शीघ्र नाश होता है।

इसी प्रकार आयुर्वेद में और भी अनेक रोगों में गुड़ प्रयुक्त हुआ है। सारांश यह है कि यदि उचित मात्रा में खाया जाय तो गुड़ अनेकरोगनाशक और पथ्यतम पदार्थ है। इसीलिए—

दोषत्रयक्षयकराय नमो गुडाय!

वैद्य गोपीनाथ गुप्त

टिप्पणियाँ

हरिजन और नट्टार

यह प्रश्न तो हमारे सामने अब भी वैसा ही है। उस अत्याचार-पीड़ित प्रदेश के एक कार्यकर्त्ताने मेरे पास एक लंबी रिपोर्ट भेजी है। उसे देखने से मालूम होता है कि नट्टारों की मनोवृत्ति में पहले से कुछ अधिक सुधार नहीं हुआ। जो थोड़ा-सा सुधार हुआ है, वह इस कारण नहीं कि वे अपना अपराध कबूल करते हो या अपने किये अन्याय को महसूस करते हो। उनकी मनोवृत्ति में थोड़ा-सा सुधार होने का सब से बड़ा कारण तो उनका यह भय है कि हरिजनों का अगर उन्होंने कोई नुकसान किया तो कहीं उन पर फौजदारी का मुकदमा न चल जाय। और इधर हरिजनों में हरिजन-सेवक-संघ के कार्यकर्त्ताओंने जो काम किया है वह भी एक कारण हो सकता है। हरिजनों के दिल में नट्टारों के अत्याचारों का जो डर समाया हुआ था उसे दूर करने के प्रयत्न में हरिजन-सेवक कुछ सफल तो हुए हैं। स्थायी सुधार तो तभी सभव है, जब, रिपोर्ट की सूचना के अनुसार, वहां हरिजनों और नट्टारों के बीच खूब लगकर काम हो। हरिजनों की अपेक्षा नट्टारों को समझाने की शायद ज्यादा जरूरत है। उनकी अकथनीय असहिष्णुता की वजह इतनी ज्यादा उनकी दुष्टता या शरारत नहीं है, उनका कारण तो निस्सदेह उनकी अक्षम्य अज्ञानता है। इसलिए कितनी ही भारी-भारी कठिनाइयां आड़े क्यों न आवें, संघवालों को उनसे जरा भी विचलित हुए बिना निर्भयता के साथ अपनी सारी सेवा-शक्ति वहां लगा देनी चाहिए। अगर हरिजन-सेवकोंकी श्रद्धा अततक अटल बनी रही, तो यह हो नहीं सकता कि उन्हें विजय न मिले।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

सवर्णों की धमकी

सवर्ण हिन्दू अकसर गरीब हरिजनों को बहिष्कार की धमकी देकर डरा देते हैं, जिससे कि वे दूसरी जातियों के साथ बिना किसी भेद-भाव के सार्वजनिक स्थानों के उपयोग करने का अधिकार अमल में न ला सकें। धमकी की ऐसी खबरें समय-समय पर देश के विभिन्न भागों से आती रहती हैं। रढु गांव से हाल ही में इसी तरह का एक समाचार आया है। यह गाव खेड़ा जिले के मातर तालुका में है। रढु से दो मील के फासले पर एक चादणा गाव है। यहां की हरिजन-पाठशाला का हरिजन अध्यापक अपने चाचा के साथ रढु में रहता है। गुजराती के छठे दरजे तक वह पढ़ा है। वर्नाक्युलर फाइनल में बैठने के इरादे से वह गांव के प्राइमरी स्कूल में दाखिल होने के लिए पहुँचा। हेडमास्टरने उसे तुरन्त दाखिल कर लेने के बजाय फिलहाल यह कहकर टाल दिया, कि इसके लिए स्कूल-कमेटी से पूछना पड़ेगा, और कमेटी की मंजूरी लेनी पड़ेगी। यह खबर फैलते ही कि चांदणा का नौजवान हरिजन अध्यापक स्कूल में भरती होने की हिमाकत कर रहा है सारे गाव में कोलाहल मच गया। गाव के मुखियोंने हरिजन बुनकरों को बुलाया और उनमें डांटते हुए कहा कि 'अगर ऐसी अनीति हुई तो तुम लोगों का बहिष्कार कर दिया जायगा, और इतनी पिटाई होगी कि मालूम पड़ जायगा।' गरीब हरिजनों को पैसे-टके के अनेक मामलों में सवर्ण हिन्दुओं पर निर्भर रहना पड़ता है, इससे उनकी बहिष्कार या मारपीट की महज घुड़की ही हरिजनों को झुका देने के लिए काफी होती है। उस अध्यापक के पास जाकर उन सबोंने हाथ जोड़कर कहा, कि, 'भैया, क्यों नाहक यह आफत मोल लेते हो? छोड़दो स्कूल में पढ़ने का यह इरादा।' मगर अध्यापक विचलित होनेवाला आदमी नहीं है। वह अपने निश्चय पर वैसा ही दृढ़ है, और हर तरह का कष्ट उठाने को तैयार है। सिर्फ उसे बिरादरीवालों के सताये जाने का डर है, नहीं तो अबतक वह स्कूल में निश्चय ही दाखिल हो जाता।

और चादणा गाव भी, जहां उसकी अपनी पाठशाला है, मुसीबतों से खाली नहीं है। पाठशाला के लिए कोई मकान ही नहीं मिल रहा है। बेचारा एक पेड़ के नीचे बच्चों को पढ़ाता है। बारिश के दिनों में उसे काफी कठिनाई पड़ रही है। पास में वहां एक धर्मशाला है। शायद ही कभी कोई उसमें ठहरता होगा। खालीही पड़ी रहती है। इसलिए जिला-हरिजन-सेवक-संघ के मंत्रीने डिस्ट्रिक्ट लोकल बोर्ड को बरसात के दिनों में वहां स्कूल लगाने के लिए लिखा। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को हालांकि यह तजबीज पसन्द आई, तो भी इस सम्बन्ध में तालुका-बोर्ड की राय लेना जरूरी समझा गया, और दरखास्त वहां भेज दी गई। बात यह है कि वह इमारत तालुका-बोर्ड के चार्ज में है। वहां से वह अर्जी चादणा गांव के अधिकारियों के पास पहुँची। बिना उनकी राय लिये कैसे मंजूरी दी जा सकती थी? राय चाहे जो दी हो, पर अर्जी देखते ही उन्होंने हरिजन-पाठशाला के अध्यापक को बुलाया और डांट

बताते हुए कहा, कि 'दिमाग तुम्हारा आसमान पर चढ़ गया है क्या ? खबरदार, जो कभी धर्मशाला का नाम लिया। गांव से निकाल बाहर कर दिये जाओगे, और ऐसी मार पड़ेगी कि, छठी का दूध याद आ जायगा!' अबतक कोई फैसला नहीं हुआ। लेकिन बहिष्कार की धमकी की तलवार तो गरीब अध्यापक के सिर पर लटक ही रही है। उसे कुछ सूझ नहीं रहा है कि ऐसी परिस्थिति में आखिर वह क्या करे।

ऐसी विपरीत परिस्थितियों में हरिजन-सेवकों को किस मार्ग का सहारा लेना चाहिए, इस सम्बन्ध में गांधीजी न जाने कितनी बार सलाह दे चुके हैं। जिले के प्रभावशाली कार्यकर्त्ता इस मामले को अपने हाथ में लेलें, और हरिजनों का प्रतिबन्ध हटवा देने के पक्ष में लोक-मत जाग्रत करने का अधिक-से-अधिक प्रयत्न करें।

वं० शुक्ल

निरी नासमझी

गुजरात-हरिजन-सेवक-संघ के मन्त्रीने एक वाकया लिख भेजा है। उसे पढ़ने से यह प्रगट होता है कि अस्पृश्यता का बुद्धि से तो रत्तीभर भी वास्ता नहीं, फिर भी इसके कारण बेचारे हरिजन-सेवकों को कैसे-कैसे कष्ट झेलने पड़ते हैं। घटना लखतर की है। जिला अहमदाबाद की सरहद पर काठियावाड़ में यह एक छोटी-सी रियासत है। सन् १९२२ में शुद्ध सेवा-भावना से प्रेरित होकर एक सवर्ण युवकने यहां एक हरिजन पाठशाला खोली थी। एक ओर तो सवर्ण हिंदुओं का विरोध, और दूसरी ओर हरिजनों की अज्ञानता और उदासीनता। पर वह युवक तो हिम्मत हारनेवाला नहीं था। उसने प्रयत्न नहीं छोड़ा। बरसों अकेले ही पाठशाला चलाई। उसके गजब के धीरजने अत्यज-सेवक-मंडलवालों पर असर डाला, और मंडलने पाठशाला को अपनी व्यवस्था में ले लिया। बाद को काठियावाड़ के हरिजन-सेवक-संघ की व्यवस्था में यह पाठशाला आगई। अध्यापक हमेशा ही वहां सवर्ण हिंदू रहा है। वर्तमान अध्यापक गत सात बरसों से वहां पढ़ा रहा है। हरिजनों के हृदय को उसने अपनी सेवा-साधना के बल से बहुत कुछ जीत लिया है। अब उनमें वैसी उदासीनता देखने में नहीं आती। बुनकर और चमार अपने बालकों को मेहतरों के बच्चों के साथ बिठाने को किसी तरह राजी नहीं थे, इसलिए उसने मेहतर बालकों के लिए एक अलग वर्ग खोल दिया, और दोपहर को नित्य दो घंटे एक पेड़ के नीचे वह उन्हें पढ़ाने लगा। इस तरह उसने अपना अधिकांश समय हरिजनों की सेवा में ही लगाया। त्योहारों के दिनों में हरिजन-बस्तियों में अकसर दारूखोरी, जुआ और लड़ाई-झगड़ा आदि दुर्व्यसन देखने में आते थे। उसने हर त्योहार पर भजन-मंडलियों का आयोजन किया, और इस तरह उन्हें कुमार्ग से मोड़कर सन्मार्ग पर लाने का जतन किया। उसके अनवरत प्रयत्न सफल न हों यह कैसे हो सकता था? पाठशाला जाने लायक अधिकांश हरिजन बच्चे अब साधारण लिखने-पढ़ने लगे हैं, और जुआ अगर एकदम निर्मूल नहीं हुआ तो रुक तो गया ही है। कई हरिजन शराब और मुर्दार मांस न खाने की कोरी प्रतिज्ञा ही करके नहीं रह गये, बल्कि अपने वचन पर दृढ़ भी हैं।

अध्यापक जाति का बनिया है। उसका ब्याह हुए चार बरस हुए हैं। स्त्री-पुरुष दोनों मन्दिर में जाते थे, और महल के पास जो सार्वजनिक कुआं है उससे बराबर पानी भरते थे। किसी तरह की उन्हें कोई रोक-टोक नहीं थी। पर इधर मामला एकदम पलट गया। हुआ क्या कि यकायक मन्दिर में उनका प्रवेश बन्द कर दिया गया, और इसके बाद कुआं भी बन्द! यह अभी चन्द महीनों की ही बात है। कस्बे में यह सब से बड़ा सार्वजनिक कुआं है। इससे सभी लोग पानी भरते हैं। सिर्फ हरिजनों और वागड़ियों के लिए मनाही है। पर अब तो वह कुआं एक वैश्य दम्पति की छाया पड़ने से ही अपवित्र हो जाता है! राज्य के अधिकारियों के इस हुक्म की तरफ कौन उँगली उठावे? अधिकांश लोग तो ऐसे ही हैं, जो रिवाज और राजाज्ञा का अन्धपालन करते-करते एक तरह की नपुंसकता की हालत को पहुँच गये हैं, और वे ऐसे अन्याय की ओर आज उँगली उठा ही नहीं सकते। और जो थोड़े-से दूसरे लोग हैं उनमें विरोध की आवाज उठाने का साहस नहीं। इस बीच में उस बहादुर अध्यापक और उसकी स्त्रीने यह अच्छा ही किया कि अब वे उस तालाब में पानी भर रहे हैं जो हरिजनों के लिए खुला हुआ है। इसे एक संयोग ही कहना चाहिए जो उन्हें हरिजनों के और भी घनिष्ठ सम्पर्क में आने का एक सुन्दर अवसर मिल गया। उनकी सेवा-भावना को इससे और भी अधिक उत्तेजन मिलेगा। फिर भी हमें यह आशा करनी चाहिए कि राज्य के अधिकारियोंने हरिजनों और उनके अध्यापक पर यह अनुचित रोक लगाकर जो घोर अन्याय किया है उसे वे जल्द-से-जल्द महसूस करेंगे, और अपने उस हुक्म को रद्द करके अब भी अपनी भूल सुधार लेंगे।

वं० शुक्ल

धर्मशाला का जीर्णोद्धार

गुजरात-ग्राम-सेवा-संघ के एक ग्राम-सेवक की डायरी से नीचे कुछ अवतरण देता हूँ। खानपुर के पास एक गांव में यह सेवक काम कर रहा है। वहां जाने पर कुछ दिनों के बाद उसे मालूम हुआ कि यहां जो धर्मशाला थी वह गिर गई है, और गांव के लोग परस्पर सहयोग से उसे फिर से खड़ी करने की चर्चा कर रहे हैं। स्वभावतः हमारे ग्रामसेवकने लोगों के इस विचार को प्रोत्साहन दिया। खर्च करने का सवाल तो था नहीं, क्योंकि यह गांव गरीब किसानों का है। मिट्टी की चुनाई करनी थी। इसके लिए यह योजना बनाई गई कि बारी-बारी से हर मुहल्लेवालों को दीवारों की चुनाई करनी चाहिए। योजना बनालेना तो आसान है, पर उसे अमल में लाना कितना कठिन है इसका वहां प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। तीन महीने में भी भीतें कुछ बहुत ऊँची नहीं उठीं। इधर बरसात आ पहुँची। अब तो और भी घबराने की बात थी। डायरी में हमारा ग्राम-सेवक लिखता है.—

१६ जून—सफाई वगैरा कर चुकने के बाद कई लोगों के घर गया और उन्हें समझाया कि अब इस काम में देरी नहीं होनी चाहिए, और सबको अपने-अपने हिस्से का काम पूरा कर डालना चाहिए। पर कोई तैयार नहीं हुआ।

१७-१८ जून—लोगों को समझाने में मेरे ये दो दिन व्यर्थ ही गये।

१९ जून—कल रात को बारिश हुई, पर बहुत कम। तो भी धर्मशाला की अधबनी भीतों पर टीन की चद्दरें रख दीं, क्योंकि इस मेह-पानी से उनके भिसक पड़ने का डर था। एक सज्जनने इस काम में मदद दी।। मैं तो कहते-कहते हार गया हूँ, कोई सुनता ही नहीं। आज मैंने किसीसे नहीं कहा।

२१ जून—कुछ बड़े-बूढ़ों के पास बैठकर उन्हें आदर्श दृष्टांत-माला की एक-दो कथाएँ सुनाईं। इसी सिलसिले में धर्मशाला की

बात आ गई। मैं जला तो बैठा ही था। मैंने कहा, 'अब तो मैं यह चर्चा ही नहीं छेड़ूंगा। क्या फायदा? कहना फिजूल है।'

लोगों को मेरी यह बात लग गई। बोले, 'यह आप क्या कहते हैं? हम तो अपने हिस्से का काम कर ही चुके हैं। दूसरे नहीं करते तो हमारा क्या वश?'

मैंने कहा, 'चलो, यों काम नहीं चलता। फलां आदमी काम करे तभी मैं करूँ, क्या इस तरह कभी धर्म का कार्य पूरा हो सकता है?'

मेरी इस बात का अच्छा असर पड़ा। तुरन्त कुदाली-फावड़ा लेकर सब-के-सब जुट पड़े। रात के ८ बजेतक तमाम मिट्टी गोड़ डाली।

२२ जून—मगर दूसरे दिन फिर मुश्किल आ पड़ी। लोगों को घर से बाहर निकालना उतना आसान नहीं था। पांच-छै आदमी किसी तरह तैयार हुए। इतने में एक के पास यह खबर आई कि तुम्हारी गजी में आग लग गई है। और वही डटकर काम करनेवाला आदमी था। बेचारा उदास होकर लौट गया। दूसरे भी खिसकने लगे। अन्ततक दो बुड्ढोंने साथ दिया। मैं कुएँ से पानी खींचता था और वे दोनों ढो-ढोकर ले जाते थे। गारा तैयार हो गया। दोपहर होते-होते पांच आदमी अपने हिस्से का काम करने के लिए आ गये, और किसी तरह दीवारें और उनके थमले हम लोगोंने खड़े कर दिये।

फिर कुछ दिन चद्दर जड़नेवाला बढ़ई तलाशने में काफी दौड़-धूप करनी पड़ी।

२९ जून—आज दोपहर को बढ़ई के दरवाजे पर आसन जमाकर बैठ गया। उसे किसी तरह साथ में लेकर धर्मशाला का काम शुरू कराया, पर दूसरा कोई मदद करनेवाला नहीं था। कोई आता भी तो घड़ी-दो-घड़ी ठहरकर चला जाता। शामतक मैंने मियारी और चद्दरें चढा दी, और बहुत कुछ काम खत्म कर डाला। अभी छै-सात चद्दरों की कमी है। चद्दरें नाप की थीं, पर कुछेक चद्दरें लोग शायद अपने घर उठा ले गये। अब फिर से जुटानी पड़ेगी।

'हरिजन-बंधु' से] जुगतराम दवे

गाय का दूध कैसे बढ़े ?

दरभंगा-निवासी मेरे मित्र ठाकुर धर्मलालसिंहजीने कृपाकर मेरे पास शालिहोत्र विषयक एक पुस्तक भेजी है। जिला उन्नाव के अंतर्गत तियारी गांव के रहनेवाले श्री केशवसिंहजी इसके रचयिता हैं। पुस्तक दोहा चौपाई में है।

अन्य कई प्रकार की पशु-चिकित्सा के साथ-साथ उसमें गाय का दूध बढाने के लिए मंत्र, यंत्र और औषध का भी उल्लेख आया है। औषध के संबंध में लिखा है :—

> दूध बढ़ावन जो चहो, कोऔ वैद्य-विधान।
> रोज दुहो नित-नित बढ़े, जानो चतुर सुजान॥
> लेहु सतावरि-मूल खोदाई।
> आध पाव नित पीसि पियाई॥
> एक मास लगि या विधि करै।
> बाढ़ै दूध दुःख तनु हरै॥"

अर्थात्, आध पाव सतावरी की जड़ पीसकर नित्य गाय को पिलाई जाय। एक महीने तक यह क्रम जारी रखा जाय, इससे दूध दिन-दिन बढेगा।

मैं चाहता हूं कि गाय रखनेवाले कोई सज्जन इस औषध का प्रयोग करके देखें, और यदि परिणाम अच्छा आवे, तो इस दुग्ध-वर्द्धक औषध का देश में अधिक-से-अधिक प्रचार करें।

बा० गो० दे०

हरिजन-पाठशालाओं के नियम

राजपूताना-हरिजन-सेवक-संघने अपनी पाठशालाओं के लिए २५ नियम बनाये हैं। उनमें कुछ तो ऐसे हैं, जो प्रत्येक प्रांत की हरिजन-पाठशालाओं तथा साधारण पाठशालाओं के लिए भी उपयोगी और सहायक हो सकते हैं। वे ये हैं—

१—साधारणतः संघ की सब पाठशालाओं में केवल दो वर्ष का पाठ्यक्रम रखाजाय और बाद में विद्यार्थिओं को जहां संभव हो, सार्वजनिक स्कूलों में दाखिल करा दिया जाय।

२—जहां संभव हो, विद्यार्थियों को तकली चलाने, फीता बनाने, चटाई बुनने, मिट्टी के खिलौने बनाने, रस्सी बटने अथवा और किसी स्थानीय महत्व के शारीरिक श्रम की शिक्षा दी जाय।

३—पाठशालाओं में सभी जातियों के, विशेषकर सवर्ण कहलानेवाली जातियों के विद्यार्थी भी भरती किये जायें और उनके साथ समान व्यवहार रखाजाय।

४—समिति अपनी प्रत्येक दिन की पाठशाला के साथ रात्रि की पाठशाला अवश्य खोले। साधारणतः दिन की पाठशाला कम-से-कम चार घंटे और रात्रि की पाठशाला दो घंटे रखी जाय। प्रत्येक अध्यापक दोनों जगह काम करे।

५—प्रत्येक शिक्षक निर्व्यसनी और शुद्ध खद्दर पहननेवाला होना चाहिए।

६—जहां फसल के कारण विद्यार्थियों की उपस्थिति बहुत कम हो जाय, वहां फसल के दिनों में पाठशाला बंद कर देनी चाहिए और उन दिनों अध्यापक गावों में पैदल यात्रा और प्रचार करें।

७—प्रत्येक पाठशाला का कार्य निर्दिष्ट प्रार्थना के साथ शुरू और निर्दिष्ट भजन के साथ समाप्त होना चाहिए।

८—जो लड़के अथवा लड़कियां दतमंजन करके न आयें हों, उनसे पाठशाला में मंजन करवाया जाय।

९—जो लड़के या लड़कियां हाथ और मुहँ धोकर न आयें हों उनके पाठशाला में हाथ और मुहँ धुलवाये जायें।

१०—पाठशाला और उसके आसपास की नित्य सफाई हो, और यह काम शिक्षक और छात्र मिलकर करें।

११—प्रत्येक दिवस और रात्रि-पाठशाला का मासिक विवरण अलग-अलग तैयार किया जाय और वह अगले मास की ३ तारीख तक शिक्षक-द्वारा समिति के मंत्री के पास भेज दिया जाय।

१२—प्रत्येक रात्रि-पाठशाला में नित्य 'हरिजन-सेवक', 'हमारा कलंक' अथवा अन्य अच्छे साहित्य में से कुछ-न-कुछ पढ़कर सुनाया जाय।

१३—छुट्टी के दिन प्रत्येक शिक्षक छात्रों को नहलावे-धुलावे और सफाई सिखावे।

वि० ह०

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

बाध्य नहीं "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 1369.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक' बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.
संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]
वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, ३० अगस्त, १९३५. [संख्या २८

विषय-सूची

सर्वत्र ही रेगिस्तान !

पाच बड़ी-बड़ी नदियों का प्रदेश पंजाब हो या बाढ़ों का देश बंगाल या उड़ीसा हो, गंगा और जमुना का हरा-भरा दोआबा हो या कावेरी और गोदावरी से सिंचित दक्षिण प्रदेश हो—हरिजनों के लेखे तो सर्वत्र मरुभूमि ही है, उन बेचारों के लिए तो भारत का हरेक भाग रेगिस्तान ही है। किसी भी प्रांत से ऐसी रिपोर्ट न आई कि हमारे यहा के हरिजनों को पानी का कोई कसाला नहीं है। चारों ओर से हृदय-विदारक ही रिपोर्टें आ रही हैं। बंगाल को ही लीजिए। श्री सतीशबाबू की जो पानी-सम्बन्धी रिपोर्ट आई है, उसे हम संक्षिप्त रूप में नीचे देते हैं —

"कहने को तो हमारा बंगाल नदी-नालों का देश है, किन्तु गर्मियों में तो यहां भी धूल उड़ती है। पानी का अकाल पूस-माह में ही शुरू हो जाता है। पीने का अच्छा पानी तो चौमासे में भी ठीक तरह से नहीं मिलता। बड़ी-बड़ी बाढ़ें आती हैं, और खेतों व सड़कों को आप्लावित कर जाती हैं। पानी पूरे जोश के साथ आया, और खेलता-कूदता चला गया। पानी की यह प्रचुरता—वह भी गरीबों के हक में दुखदायी—चंद दिनों ही रहती है। इसके बाद वह धीरे-धीरे सूखने लगता है, और फिर सूखा पड जाता है। दो-तीन महीनेतक गदले पानी के पोखरे भरे रहते हैं। पर फरवरी से लेकर एप्रिलतक तो बड़ी ही बुरी हालत रहती है। पानी का भरपूर कष्ट रहता है।

मकानों के नीचे छोटे-बडे हर आकार के आप जो खड्ड देखेंगे, उनसे किसी तरह काम चलता रहता है। ये गड्ढे भी क्या है—मेढकों के घर, सड़े-गले पत्तों और कूड़े-कचरे के आश्रयस्थान ! हरा-हरा सड़ा पानी और दुनियाभर की गंदगी। उन्हींमें मनुष्य नहाते-धोते हैं, और उन्हींमें जानवर। कीड़े पड जाते हैं, बुरी बास आती है, फिर भी वही पानी पीते हैं ! पर गर्मियों में तो ये 'दोबा' भी सूख जाते हैं। तब बड़े आदमियों के तालाबों से पानी लेने लोग मीलों जाते हैं। वहां भी पानी गंदा ही मिलता है। जानवरों की तो और भी दुर्दशा होती है। पानी न मिलने से कितने ही मवेशी बेमौत मर जाते हैं। चेचक और हैजे का बंगाल के गांवों में इन दिनों खूब प्रकोप रहता है।

पानी की 'सर्वे' करने के लिए गांवों में आते हैं, तो लोग यह आशा बांध लेते हैं कि उनका जलकष्ट अब दूर होने ही वाला है ! उनकी यह आशा कैसे पूरी हो ? बंगाल के जिला-बोर्ड सात लाख रुपये वार्षिक पानी पर खर्च करते हैं, पर हालत जैसी की प्राय वैसी ही है। यह रुपया मध्यम वर्ग के लोगों के हलकों और मुहल्लों पर खर्च होता है। गरीबों की सुध लेनेवाला तो बोर्डों में जैसे कोई है ही नहीं। इसलिए उनका जल-कष्ट तो जैसा था वैसा ही बना हुआ है।

रामरतनपुर में एक तालाब बनवाने के लिए हमने एक स्थान चुना है। इस गांव में २०० कुटुम्ब हैं, और सब हरिजन हैं। खेती करते हैं, पर अपनी जमीन किसीके भी पास नहीं। इन्हें दो मील से एक-एक घड़ा पानी लाना पडता है। सब दो बीघा जमीन की कीमत के ४९५) रुपये में वहा तालाब बन सकेगा। मजूरी के २९५) निकाल दीजिए, क्योंकि गाव के लोग खुदाई वगैरा का काम मुफ्त में करने को तैयार हैं। असल में २००) की जरूरत पड़ेगी।

यह एक गांव की बात है। पर सवाल है हजारों गांवों का। संघ के अध्यक्ष सेठ घनश्यामदासजी बिड़लाने एक लाख रुपये की अपील निकाली है। अगर यह एक लाख रुपया मिल जाय, तो वह सब-का-सब हमारे बंगाल में ही खर्च हो सकता है—और वह 'सिंधु में बिंदुवत्' ही कहा जायगा।"

यह तो हुई उस प्रांत की बात, जहां यह कहा जाता है कि अस्पृश्यता-जनित कष्ट तो यहां कोई है ही नहीं। अब जरा कड़ा जी करके तामिल-नाड का हृदय-विदारक दृश्य देखिए। वहा के हरिजन-सेवक-संघ के मंत्री अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं,—

"एप्रिल में हमने १२७ और मई में १२८ हरिजन-बस्तियां देखीं। हरिजनों को नित्य नहाने और कपड़े धोने की सलाह देते हुए हमें भारी संकोच होता था, क्योंकि शायद वे यह जवाब दे बैठें कि 'नहाने-धोने के लिए आप कहते हैं, पर पानी बताइए, कहां से लावें ?' बहुत-से स्थान ऐसे हैं जहां हरिजनों के लिए कुएँ नहीं हैं, और जहां हैं वहां भी इस वैसाख-जेठ की गरमीने गरीबों को और भी मारा। पीने का पानी सूख गया। बेचारे हरिजन बैठे-बैठे रतजगा किया करते, और कुओं में जो एक-एक बूंद झरता उसे अपने टीन के छोटे-छोटे बर्तनों में भर लेते। और वह कितना पानी—एक बेर में आध सेर तीन पाव से ज्यादा नहीं ! यह दृश्य देखकर किसे दुःख न होगा ? और जहां कुओं में पानी था, वहां भी उन्हें घंटों राह देखते हुए बैठना पड़ता था। कोई दयावान् पुरुष या स्त्री आगई और उसने उनके घड़ों में पानी डाल दिया, तो ठीक, नहीं तो बेचारे धूप में चूर रहे हैं ! कुएँ से खुद पानी खींचने की हिम्मत तो हरिजनों में है नहीं, क्योंकि उन्हें यह भारी भय लगा रहता है कि कहीं सवर्ण हिंदू गुस्से में आकर

उनकी हड्डी-पसली न तोड़ डाले। कहीं-कहीं तो उन्हें सवर्णों के खेतों की उन मटीली मोरियों से पानी भरना पड़ता है, जो सिचाई का काम देती है। और यह पानी भी मुफ्त नहीं मिलता। उसके बदले में उन्हें खेत के मालिक को मुफ्त में बेगार देनी पड़ती है! और जिस दिन चरसा नहीं चलता, उस दिन वे बिना ही पानी के रहते हैं। और भी एक भारी आफत है। गर्मियों में उनकी कई बस्तियों में आग लगी, और जलकर वे सब खाक हो गईं। पानी ही नहीं, आग बुझे तो कैसे? हमारे पास अग्नि-काण्डों की कितनी ही रिपोर्टें आईं, पर इतना पैसा कहां कि हम सब जगह मदद पहुँचा सकें?"

अन्य प्रांतों के विषय में हम किसी आगामी अंक में लिखेंगे। बिहार, पंजाब, सिंध और काठियावाड़ के जल-कष्ट के सम्बन्ध में तो हम लिख ही चुके हैं।

हरिजनों की यह हृदय-विदारक स्थिति किसी भी दृष्टि से उपेक्षा की चीज नहीं। हमें यह याद रखना चाहिए कि हरिजनों के प्रति हमारी यह क्रूर उपेक्षा हिंदूधर्म का नाश करके रहेगी।

वि० ह०

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्रामसेवा

इधर यह पूरा सप्ताह मेरा बाहर ही गया, इसलिए मैंने अपने गांव के कार्य के सम्बन्ध में अपनी टोली की एक ग्रामसेविका बहिन से विवरण मँगाया है। वर्धा से यह विवरण उन्होंने भेजा है —

"हमारा इस सप्ताह का काम अपेक्षाकृत आसान था। मेह अब बन्द हो गया है, और आकाश बराबर साफ रहा। या तो हमारे इतने महीनों के लगातार काम से लोगोंने स्वच्छता का पाठ सीख लिया है, या फिर यह भी एक कारण हो सकता है कि वर्षा बन्द हो गई है। कारण चाहे जो हो, पर टट्टी फिरने लोग अब गांव से काफी दूर जाते हैं। मेरा ऐसा विश्वास है कि यह हमारे काम का प्रभाव होगा। एक ग्रामवासी तथा हमारी टोली के एक भाई के बीच उस दिन जो बात हुई, उससे मेरी उक्त धारणा को सहारा मिलता है। हमारा वह साथी एक दिन एक मकान के आगे से मैला उठाना भूल गया, इसलिए मकान मालिकने हमें बुलाकर धीरे से कहा, 'देखो, आपने मेरे मकान के आगे सफाई नहीं की, यह तो आप लोग भूल ही गये!' जिस ग्राम-सेवकने यह बात सुनी उसने कहा, 'माफ करो भाई, हम इसी वक्त साफ किये देते हैं। पर तुमसे मैं इतना जरूर कहूँगा कि तुम ग्रामवासियों को अब खुद ही यह सफाई का काम शुरू कर देना चाहिए।' इसपर उस मकानवालेने कहा कि, 'क्या आप यह समझते हैं कि यह सारा कचरा मेरे ही घर का है? यहां तो चाहे जो चाहे जिसके घर के आगे कूड़ा-कचरा डाल देता है।' 'यह तो सच है। हम इतने दिनों से यहां काम कर रहे हैं, इसलिए इस बात का तो हमें पता है ही। पर अपने हिस्से का काम तो तुम कर ही सकते हो।' कुछ देरतक वह सोचता रहा, और फिर बोला, 'मुझे आपकी यह बात सच मालूम देती है। मैं अपने हिस्से का काम अब कर लिया करूँगा।' हमने इस गांव में जब काम करना आरम्भ किया, तब लोगों में इतनी सहिष्णुता, इतनी विचार-शीलता देखने में नहीं आती थी। जिस भाई के साथ यह बात हुई उसीने गांव की दो स्त्रियों की यह निम्नलिखित बात-चीत सुनी। एक स्त्रीने कहा, 'ये बेचारे भले आदमी हमारा मैला उठा रहे हैं, और हम उनका कुछ भी हाथ नहीं बँटाते, हमारे लिए क्या यह शर्म आने की बात नहीं है? तुम्हें यह सब देख-कर कैसा लगता है?' जो ग्राम-सेवक उनकी बातें खड़ा-खड़ा सुन रहा था उसने कहा, 'हमें तो इस काम में बड़ा आनन्द आता है।' इसपर उस नेक स्त्रीने कहा, 'भाड़ में जाने दो इन सब को। तुम लोग रोज-रोज हमारा यह गन्दा काम करने की किसलिए तकलीफ उठा रहे हो?' इस सहानुभूति से हमें क्यों न आनन्द हो? पर उस बहिन की समझ में यह बात न आई कि सहानुभूति दिखाने का अच्छे-से-अच्छा मार्ग यह है कि वह कम-से-कम खुद तो अपना कर्तव्य करने लग जाय। हमें आशा है कि किसी-न-किसी दिन जरूर इन ग्रामवासियों की आंखें खुलेंगी, और उन्हें अपना धर्म स्पष्ट हो जायगा। इसी सेवक का तीसरा अनुभव भी उल्लेखनीय है। पाठकों को यह याद होगा कि कुछ दिन पहले हमारे यहां एक जर्मन अतिथि आया था और वह दो-तीन हफ्ते हमारे साथ रहा था, और उसने तथा कनू गांधीने मिलकर एक गड्ढा बड़े-बड़े पत्थरों से भरा था। उनमें से एक पत्थर टूट गया और उसे कोई उठा ले गया। इसलिए उस दिन एक पड़ोसीने कनू को बुलाकर कहा, 'यह गड्ढा जरा ठीक तरह से भर दो ना।' कनूने जवाब दिया कि 'पत्थर तुम लाकर दे दो, गड्ढा भरने में हम खुशी से तुम्हारी मदद कर देंगे। यह तो तुम्हें मालूम ही है कि ये पत्थर हमें तब तुम लोगों में से ही किसीने लाकर दिये थे।' ऐसा मालूम हुआ कि कनू गांधी की यह बात उसे पसन्द आ गई। दूसरे ही दिन उसने अपने मकान के आंगन में रोड़े बिछाकर उसे ठीक कर दिया। पर गड्ढा पूरने के लिए जो बड़े-बड़े पत्थर चाहिए उन्हें वह अभीतक नहीं ला सका। अन्त में, मुझे यह लिखते हुए खुशी होती है कि हम लोगों में से जिस भाईने इस गांव में रहने का निश्चय किया है उसकी झोपड़ी के लिए जमीन का एक छोटा-सा टुकड़ा मिल गया है। यों तो यह मुफ्त मिलना चाहिए था, पर यह दुःख की बात है कि ८० फुट लम्बे और २५ फुट चौड़े इस टुकड़े के लिए ग्रामउद्योग-संघ को ३०) देने पड़े हैं। किन्तु एक बार जो हमें ऐसा मालूम होता था कि जमीन बिल्कुल मिलेगी ही नहीं उससे तो यह अच्छा ही है कि इतने दिन राह देखने के बाद किसी तरह झोपड़ी के लिए जमीन मिल तो गई।

राजकुमारी अमृतकुँवर और श्रीमती आप्पा स्वामी गांव में आकर हमारा सेवा-कार्य देख गई हैं। दोनों ही ग्राम-सेवा के कार्य में काफी रस लेती हैं। श्रीमती आप्पा स्वामी का यह विचार है कि यहां से वापस जाने के बाद टिनेवेली जिले में उनका जो गांव है वहां कुछ काम किया जाय।"

धीरे-धीरे

इधर इस सप्ताह मुझे कई जगह कई मित्रों के साथ भोजन करने का मौका आया है, और मेरे लिए यह प्रसन्नता की बात है कि हर जगह भोजन करते समय हमारी बातचीत का विषय हमारा नवीन आहार-सुधार का ही रहा। एक जगह मेरे मेजबानों-ने मुझ से कहा कि 'बिना कुटे चावल की बात जब से लोगों के सामने रखी गई है, तब से हम लोगोंने कुटा हुआ चावल कभी छुआ भी नहीं, और जब कभी हमें कहीं बाहर भोजन करना पड़ता है और वहां पॉलिश-रहित चावल नहीं मिल सकता, तो चावल हम खाते ही नहीं।' उस दिन जब मैंने एक प्रसिद्ध पत्र-संपादक

के यहां भोजन किया, तब मैं कबूल करता हूं कि मुझे यह आशा नहीं थी कि वहां मुझे बिना कुटा चावल परोसा जायगा, पर वहां भी मुझे वही चावल मिला, और बड़ा बढ़िया पका हुआ। और यह बात नहीं कि खासकर मेरी खातिर वैसा चावल राधा गया था। मुझे उन्होंने बताया कि बिना पॉलिश का चावल और हाथ का पिसा आटा तो हमें घर में रखना ही पड़ता है, क्योंकि हमारे एक मित्र, जो ग्राम-उद्योग-संघ के सदस्य हैं और नियम पालन में बड़े पक्के हैं, वे अक्सर हमारे यहां आते रहते हैं। मेरे मित्र और उनकी पत्नीने अभी अपने आहार में सुधार नहीं किया, अभी वे पॉलिशदार चावल ही खाते हैं, पर अपने मित्र के आगे ऐसा भोजन रखते हुए, जिसे खाने में उसे पसोपेश होता हो, उनकी विवेकवृत्ति को ठेस पहुंचती है। लेकिन मेरे मित्र यह कबूल करने को तैयार थे कि, बिना कुटा चावल, कुटे चावल से अधिक स्वादिष्ट होता है, और मुझे ऐसे लोगों से मिलने का अवसर आया है, जिन्होंने यह बतलाया है कि जब से वे पॉलिशदार चावल के बदले बिना पॉलिश का चावल खाने लगे हैं, तब से उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है।' उन्होंने यह भी कहा कि, 'मुझे विश्वास है कि जिन लोगों का आहार केवल चावल ही है, वे आपकी इस बिना कुटे चावल की दलील को उन लोगों की अपेक्षा जल्दी अनुभव कर लेंगे कि जिनका मुख्य आहार चावल नहीं है। इसलिए बंगाल, कोंकण और दक्षिण भारत-जैसे चावल के प्रदेशों में ही आहार-सुधार का अधिक-से-अधिक प्रयत्न आपको करना चाहिए। गरीब आदमियों को यह चावल न केवल सस्ता पड़ेगा, बल्कि कम दामों में उन्हें अधिक पोषण भी मिलेगा।' एक दूसरे मित्र, जिनका इस नवीन आहार-विज्ञान में पूरा विश्वास है, वे तो मुझे पौष्टिक कच्ची साग-भाजी खिलाने में सभी से बाजी मारले गये। जो हम भांति-भांति के व्यंजन परोसते हैं, इस संबंध में मेरा खयाल है, मारवाड़ियों से हम बहुत-कुछ सीख सकते हैं। किफायतसारी और सादगी का भोजन करने में मारवाड़ी लोग पटु होते हैं। तो भी ये लोग 'विटामिन' तत्वों का खयाल नहीं रखते और जो चीजें ये खाते हैं उनमें चर्बी और कार्बोहाइड्रेट की मात्रा बहुत अधिक होती है। खैर, पर इस विषय में लोगों की सामान्य भावना क्या है यह एक दूसरे मित्र के निम्न शब्दों में आजाता है, 'मनुष्य हर बात में सुधारक नहीं हो सकता। आहार-सुधार की बातों में कुछ भी हो, मैं तो भाई, पुराने खयाल का आदमी हूँ और अब मेरी इतनी ज्यादा उम्र हो गई है कि यह आशा करना व्यर्थ है कि मैं अब सुधारक बन सकूंगा।' हमें धीरे-धीरे ही प्रगति-पथ पर चलना होगा।

एक चेतावनी

लेकिन एक मित्रने उस दिन हमें जो चेतावनी दी, उसमें काफी सार है। उन्होंने कहा, 'मैं आपके इस सुधार के बिल्कुल पक्ष में हूं। आप 'विटामिन' के ऊपर जितना चाहे उतना जोर दें, पर अनजान में किसी शत्रु को घर में न पैठा लें, इतना ख्याल आप जरूर कृपाकर रखें। जैसे आजकल सोयाबीन का बहुत गुणगान किया जा रहा है। मैं यह मानता हूँ कि सोयाबीन में 'प्रोटीन' की मात्रा बहुत ज्यादा होती है। पर क्या इसका आपको यकीन है कि हमारी मूंग, उड़द, मसूर, चोला, मटर और दूसरी छीमियां, चीन-जापान की इस विदेशी चीज से बहुत घटिया हैं? मेरा तो यह खयाल है कि यह सोयाबीन आज जो इतनी प्रसिद्ध हो रही है, करीब-करीब उसके बराबर ही हमारी इन छीमियों में गुण होना चाहिए, क्योंकि सोयाबीन इन्हीं छीमियों की जाति की मालूम होती है। और यह भी मानलें कि सोयाबीन में प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है, तब भी कोई कारण नहीं कि हमें हमारी ये देशी छीमियां सतोष न दे सकें। आप को शायद मेरी कठिनाई नजर नहीं आ रही है। इसमें तो आपको इन्कार ही नहीं कि खाने-पीने और पहनने की चीजों में किसी देश को किसी दूसरे देश पर निर्भर नहीं करना चाहिए। पचास बरस या इससे कुछ पहले हमारा देश इन दोनों ही चीजों में पूरी तरह से स्वयपूर्ण था। पर आज बिलायती कपड़ा हमारे बाजारों में तमाम भरा पड़ा है, और अब विदेशी गेहूँ, विदेशी आटा, विदेशी दूध का पाउडर और विदेशी मक्खन हमारे खाद्यपदार्थों की स्वतन्त्रता का अपहरण करना चाहते हैं। जो चीज हमें अंत में काफी महँगी पड़ेगी, क्या उसके बिना हमारा काम चल ही नहीं सकता?'

'मैं आपसे बिल्कुल सहमत हूं। किंतु देश के अनेक भागों में हम सोयाबीन पैदा करने लगे हैं और जिन-जिन छीमियों की हम जरूरत है उन्हें हम अपने यहां पैदा न कर सकें इसका कोई कारण नहीं।'

'ठीक है, सो तो मैं समझता हूँ। जिन प्रयोगों को हम सफल मानते हैं वे तो हो ही रहे हैं। पंजाब के सरकारी फार्मों में ऐसे प्रयोग हुए हैं, और उनका परिणाम भी अच्छा आया है। सोयाबीन की कुछ किस्मों की पैदावार प्रति एकड़ ९ मन से लेकर १२ मन तक हुई है। पंजाब के कृषिविभाग की रिपोर्ट में लिखा है कि किसान कपास की जगह सोयाबीन आसानी से पैदा कर सकते हैं। इन प्रयोगों के पक्ष में तो मैं हूं ही। पर मैं आपको इतना जरूर महसूस कराना चाहता हूं कि ये प्रयोग जिन फार्मों में होते हैं वहां यह पर्वा नहीं की जाती कि उनपर कितना पैसा खर्च होता है। निस्संदेह इस सोयाबीन को दूसरे देश हमारे देश से अधिक सस्ता पैदा कर सकते हैं। मूंगफली को लीजिए। अभी-अभीतक वह देसावरों को जाती थी, अब उसका निर्यात बहुत ही कम हो गया है। अगर सोयाबीन का चलन हमारे देश में चल गया, तो मुझे इसमें आश्चर्य नहीं कि हमारी तमाम मंडियां विदेशी सोयाबीन से पट जायँगी। उस वक्त हमारे गरीब किसान क्या करेंगे? इसलिए मुझे आप से इतना ही कहना है कि इस चीज के बारे में हमें बहुत सावधानी के साथ बात करनी चाहिए।'

हमारे इन मित्र को विश्वास रखना चाहिए कि उनकी इस चेतावनी पर जरूर ध्यान रखा जायगा। और जबतक यह मालूम न होजायगा कि हमारा सामान्य किसान अपनी साधारण साधन-सामग्री से सोयाबीन पैदा करके फायदा उठा सकता है, तबतक तो आहार में सोयाबीन शामिल करने की सलाह लोगों को हम देंगे ही नहीं।

लगातार प्रचार होना चाहिए

एक मित्रने उस दिन एक अच्छी मजेदार बात सुनाई। उनके यहां मोटर का ड्राइवर है महार, और क्लीनर है मांग—हरिजन दोनों ही हैं। हमारे इन मित्र का माली वहीं पास के एक गांव में रहता है। वह अपने यहां सत्यनारायण की कथा करा रहा था, और अपने मालिक को उसने कथा में आने का निमंत्रण दिया था। मालिकने निमंत्रण स्वीकार कर लिया, पर इस शर्त पर कि

[२२५वें पृष्ठ के पहले कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ३० अगस्त, १९३५

वाध्य नहीं

भादरण तालुका (बरोदा राज्य) के पीपलाव ग्रामनिवासी कुछ बुनकरोने मुझे लिखा है कि—

"दो साल का अर्सा हुआ कि हम लोगोने मुर्दार मास न खाने का निश्चय किया और इसीसे ढोरो की लाशे उठाने और उनकी खाल उधेड़ने का काम भी छोड़ दिया, मगर इस गाव के चमार और भगी यह सब काम बराबर करते है। गाव के पाटीदारो को यह सहन नही हुआ। उनकी दृष्टि मे हमने यह भारी गुस्ताखी का काम किया! इसलिए उन्होने हमारे सख्त बहिष्कार की घोषणा करदी, तमाम सामाजिक संबध तोड दिये। हमारे कुएँ का पानी खराब कर डाला। और हमारे छप्परो पर पत्थर फेंकने लगे। अब आप बतावे, ऐसे मे हम क्या करे?"

अपनी अस्पृश्यता-निवारण की प्रगतिशील नीति के लिए बरोदा राज्य काफी प्रसिद्ध है। मुझे भरोसा है कि सवर्ण हिंदुओ के द्वारा जहा भी गरीब असहाय हरिजन सताये जायँ, वहा राज्य के अधिकारी अवश्य उनकी मदद करेगे। प्रगतिशील भादरण के सुधारकों का भी यह फर्ज है कि वे इन गरीब बुनकरो को हर तरह से मदद दे, और पीपलाव के पाटीदारो को जाकर समझावे कि अपने बुनकर भाइयो के साथ उन्हे ऐसा जालिमाना बर्ताव नही करना चाहिए। मुर्दार मास छोड़ देने के लिए बुनकर बधाई के पात्र है। पर इसके लिए उन्हे यह जरूरी नही कि वे ढोरो की लाशे उठाना और उनकी खाल उतारना छोडदे। यह तो एक फायदे का और प्रतिष्ठित पेशा है। साथ ही, यह एक आवश्यक समाज-सेवा भी है। लेकिन इस काम के लिए वे मजबूर नही किये जा सकते। अगर एक प्रतिष्ठित धंधा आज अपमानजनक समझा जाता है, तो उसके ऐसे समझे जाने का उत्तरदायित्व सवर्ण हिंदुओ पर ही है। इसमे अचरज ही क्या, अगर पीपलाव के बुनकर अपनी अपमानजनक अवस्था का भान होने पर उससे छुटकारा पाने के लिए एक ऐसे धधे को छोड बैठे हैं, जिसकी बदौलत वे आज तिरस्कृत या पतित समझे जाते हैं। यह अच्छी बात है कि पीपलाव गाव के चमार और भगियो को अभी अपनी अवनत अवस्था का भान नही हुआ, और अबभी वे लाशो को उठाने और चमडा उधेड़ने का प्रतिष्ठित धधा कर रहे है, जिसे समाजने गलती से एक नीच काम मान रखा है। अगर इन उच्च कही जानेवाली जातियोने अपने मे किसी भी अन्य जाति के लोगो कोनीच समझने की पाप-पूर्ण प्रथा का नाश अपना धर्म समझकर न किया, तो निश्चय ही हमारा सारा सामाजिक ढाचा टुकडे-टुकडे हो जायगा। किंतु उस अवस्था के आने से पहले अधिकारियों और सुधारको का यह फर्ज है कि पीपलाव गाव के गरीब बुनकरों के साथ जिस जालिमाना बर्ताव के होने की खबर आई है, उससे असहाय हरिजनो की रक्षा करने मे उन्हे अपनी शक्तिभर कुछ उठा नही रखना चाहिए।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

वस्त्र-स्वावलंबन

बिहार के मधुपुर-खादी-केन्द्र से यह खबर आई है कि १० गांवो मे १७ व्यक्तियोंने अपने काते हुए सूत की १९६।। गज खादी अपने उपयोग के लिए बुनवाई, और २२ गांवों में ८२ व्यक्तियोंने अपना काता हुआ सूत देकर उसके बदले में ७०९ गज खादी उक्त केन्द्र से ली। समाचार यह सुदर है।

मलबार के पय्यानुर और नीलेश्वर गांव से यह सुदर समाचार आया है कि वहा कपास का बीज लोगो को दिया गया, और उन्होंने स्वय सूत कातने का सकल्प करके वह बीज बोया। हमारे देश मे खुद सूत कातने के लिए कपास बोने का चलन जब गांव-गाव में चल जायगा, तब खादी लोगों को सिर्फ उनकी फुर्सत के वक्त मे की हुई मेहनत के मोल पड़ जायगी। अपने घरो मे कपास बोनेवालों को खादी की तमाम क्रियाएँ सीखनी होंगी। आसाम मे अनेक घरो मे रेशम का काम इसी तरह होता है। रेशम का प्रचार घर-घर नही हो सकता। रुई को हम व्यापक रूप दे सकते है, और एक जमाने मे तो वह सार्वत्रिक थी भी। ऐसा करने का मतलब यह है कि राष्ट्र की आय में बृद्धि भी खासी अच्छी होजायगी, और जो करोड़ो मनुष्य इस देश मे कई महीने बेकार पड़े रहते हैं उन्हे काम देने के लिए एक सर्वांग सुदर योजना भी बन जायगी।

कहने मे तो यह चीज आसान है, पर इसे व्यावहारिक रूप देना बड़ा मुश्किल है। मगर यह असभव तो किसी भी तरह नही। इसमे कोई भारी पूजी लगाने की जरूरत नही। जो क्रियाएँ सीखनी हैं, वे अत्यत सरल हैं। और जिन औजारो की जरूरत पड़ती है वे गांव में सब मौजूद हैं, या जल्दी बन सकते हैं। बडी-से-बडी बाधा तो यह है कि लोग नई लीक पर चलने या बुद्धि लगाने के लिए तैयार नही। कई पीढ़ियोतक मजबूरन बेकार पड़े रहने और उस बेकारी के कारण भूखो मरते रहने से न उनमें आज आशा रही है, न शक्ति। जीने की इच्छातक उनकी मर गई है। लोगो मे जीवित रहने की भी इच्छा न रहे इस निराशा से बढ़कर विपत्ति किसी राष्ट्र के लिए और हो ही क्या सकती है? पर जिन लोगो में यह निराशा नही आई है उन्हे अपने ध्येय पर अखड श्रद्धा रखकर पहले से भी अधिक उत्साह के साथ काम करना होगा। निश्चय ही उनकी श्रद्धा बड़े-से-बडे पर्वतो को भी लाघ जायगी। इस सुजला सुफला भूमि में, जहा बिना भारी श्रम और सूझ के काफी अन्न और वस्त्र पैदा किया जा सकता है, हताश होने की कोई जरूरत नही।

किंतु इस आशा को हमे उस प्रगतिशील कार्य मे परिणत करना है, जो खादीशास्त्र के प्रगतिशाली ज्ञान पर आधार रखता है। चर्खासघ की ओर से समय-समय पर जो सूचनाएँ निकलती हैं, उनका खादी-सेवको को अनुसरण करना चाहिए, और उन्हे जिन ग्रामवासियो की सेवा करनी है, उनकी तमाम आपत्तियो को भी पहले से ही जान लेना चाहिए। इसके लिए उन्हे ग्रामवासियो के प्रगाढ संपर्क मे आना चाहिए। इस संपर्क के साथ-साथ उनके हृदय में ग्रामवासियो के प्रति सहानुभूति और विश्वास की वृत्ति होनी चाहिए। ग्रामवासियों के सामने उन्हे आश्रयदाता के रूप मे नही जाना चाहिए। उन्हे तो वहां उन स्वयसेवको के रूप में जाना चाहिए, जो अबतक अपने कर्तव्य के संबंध में दुर्लक्ष्य किये रहे हैं। इतनी प्रारंभिक शर्तों का अगर पालन किया जाय, तो बाकी का सारा काम आप से आप उस तरह चल निकले, जिस तरह कि नित्य रात के बाद दिन आ जाता है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

[२२३ वे पृष्ठ से आगे]

माली की कथा मे मोटर-ड्राइवर महार और क्लीनर माग को भी निमंत्रण देना चाहिए । माली के लिए यह बात कठिन तो अवश्य थी, पर मालिक को अपने यहा बुलाने की उत्कट इच्छाने उसके वहम पर विजय प्राप्त करली, और उन दोनों हरिजनो को भी उसने निमंत्रण दे दिया । यह बात यो है तो नगण्य-सी, पर इसमें भी यह एक सीखनेलायक सबक है कि सुधारक का इस तरह का एक भी मौका हाथ से नहीं जाने देना चाहिए । एक सज्जन लिखते हैं, कि काठियावाड़ के एक गाव का यह हाल है कि वहां के ग्रामसेवको के साथ बाहर के हरिजन-सेवक आकर ठहरे तो इसमे लोगों को कोई आपत्ति न होगी, पर वेही ग्रामसेवक गाव के हरिजनो के साथ मिले-जुले तो लोग यह सहन करने को तैयार नही ! है तो यह बिलकुल ही वाहियात सी बात, पर इस तरह का समझौता भी किसी दिन लोगो को पूर्ण सुधार की ओर ले जायगा ऐसी आशा की जा सकती है । बबई की सरकारने हरिजनो और सार्वजनिक स्थानो के बाबत जो हुक्म जारी किये है उनसे गुजरात के हरिजन-सेवको के सामने जो परिस्थिति पैदा हो गई है, उसके लिए उन्हे तैयार रहना चाहिए, और जगह-जगह लगातार प्रचार के द्वारा उन्हे ऐसा लोकमत बना देना चाहिए, कि जिसमे हरिजनो को सार्वजनिक स्थानो का उपयोग करने मे कोई रोकटोक न हो। उन्हे अपने सुधारक मित्रो के बालको के साथ हरिजनो के बालको की टोलिया बना-बनाकर गावों मे ले जानी चाहिए, और वहा लोगो को यह बताना चाहिए कि हरिजन बच्चो के साथ हिलने-मिलने से जिस तरह इन सुधारको के बच्चो मे कोई बुराई नही आई, उसी तरह तुम्हारे बच्चो मे भी कोई खराबी नही आयगी । उन्हे यह भी समझाया जाय कि अगर उन्होने यह वहम और अधर्म न छोडा, तो किसी दिन अचानक ऐसा प्रलयकारी तूफान आयगा, जिसमे ये उच्च कही जानेवाली जातिया एकबारगी साफ हो जायेंगी ।

ग्राम-सेवकों के कुछ प्रश्न

कुछ नवयुवकोने, जो एक काठियावाडी राज्य के एक गांव मे जाकर बस गये है, गाधीजी से नीचे लिखे प्रश्न पूछे हैं --

"१ स्वराज्य के काम के लिए किसी देशी राज्य का गाव पसद करना चाहिए या ब्रिटिश भारत का ?

२ ग्रामउद्योग के कार्यक्रम की दृष्टि मे दो में से कौन सा गाव पसद करना चाहिए ?

३ ब्रिटिश भारत के गांवो में ग्रामोद्धार का काम अपेक्षाकृत क्या अधिक जरूरी नही है ?

४ यदि हा, तो तमाम ग्रामसेवक ब्रिटिश भारत के गांवो मे जाकर क्यों न बस जायें ?

५. इस विषय मे काग्रेस क्या कोई निश्चित आदेश नही निकालेगी ?

६ ग्रामसेवक अपनी रहनी का क्या परिमाण रखे ? गाव के लोग जिस तरह रहते है, उस तरह तो ग्रामसेवक नहीं रह सकते । आप ग्रामसेवको को दूध और फल लेने से मना नही करते । किंतु ग्रामवासियों को तो ये चीजें कभी नसीब होती नहीं । तब ग्रामसेवकों का दिल इन चीजो को किस तरह ग्रहण कर सकता है ?

७ यह एक निर्विवाद बात है कि हमारे देश के करोड़ों मनुष्य भूखो मर रहे हैं । हम भी अगर भूखे रहे, तो उनकी सेवा हम किस तरह कर सकते है ? भूखे तो सेवा होती नही । किंतु कुटुब का नियम तो जुदा ही है । कुटुब में एक भाई दूसरे भाई को भूखों नहीं मरने देगा, बल्कि अपने हिस्से की रोटी में से उसे एक टुकड़ा दे देगा ।

"८ जीवन की कम-से-कम आवश्यकताएँ क्या होनी चाहिए?"

गाधीजीने इन प्रश्नो का नीचे लिखे अनुसार उत्तर दिया है --

"१--५ जहांतक ग्रामउद्योग के कार्यक्रम का संबध है, वहातक देशी राज्य और ब्रिटिश भारत के गांवों में कुछ भी अंतर नही । ग्रामसेवक को किसी भी हालत में अधिकारियो के संघर्ष मे नही आना चाहिए ।

६--८ ग्रामसेवक को खास बात यह ध्यान में रखनी है कि वह ग्रामवासियों की सेवा करने के लिए ही गांव में गया है, और वहां आहार की तथा दूसरी ऐसी जरूरत की चीजो के लेने का उसका अधिकार है, उसका धर्म है, जिनसे वह अपने शरीर मे इतना स्वास्थ्य और बल बनाये रहे कि जिससे अच्छी तरह सेवा-कार्य कर सके । यह सही है कि ऐसा करते हुए ग्रामसेवक को अपने रहने के ढग पर ग्रामवासियो की अपेक्षा कुछ अधिक खर्च करना पडेगा, पर मेरा ऐसा खयाल है कि ग्रामवासी ग्रामसेवक की जरूरी चीजों को डाह की दृष्टि से नहीं देखते । ग्रामसेवक का अंतःकरण ही उसके आचरण की कसौटी है । वह संयम से रहे, स्वाद के लिए कोई चीज न खावे, विलासिता में न पडे, और जबतक जागता रहे तबतक सेवा-कार्य में ही लगा रहे । फिर भी यह सभव है कि उसके रहन-सहन पर कुछ लोग टीका-टिप्पणी करें । पर उस आलोचना या निंदा की उसे पर्वा नहीं करनी चाहिए । मैंने जिस आहार की सलाह दी है वह सब गांवो मे मिल सकता है । दूध आम तौर से गाव मे मिल जाता है, और बेर, करौंदा, अमरूद, वगैरा अनेक फल भी गांवो मे आसानी से मिल जाते हैं । इन फलो को इसीलिए हम कोई महत्व नही देते कि वे आसानी से मिल जाते हैं । गांवों में अनेक तरह की पत्तिया या वनस्पतिया काफी प्रचुरता से मिलती हैं, पर हम केवल अपने अज्ञान या आलस्य के कारण उन्हें उपयोग मे नहीं लाते । मैं खुद आजकल ऐसी अनेक प्रकार की हरी पत्तियां खा रहा हूँ जिन्हे मैने पहले कभी जीभ पर नही रखा था । पर अब मुझे ऐसा मालूम होता है कि मुझे ये सब पत्तिया पहले से ही खानी चाहिए थी । गांव मे गाय रखना पुसा सकता है और अपना खर्चा तो वह खुद निकाल सकती है । मैने यह प्रयोग किया नही है, किंतु मुझे लगता है कि यह चीज सभव होनी चाहिए । मेरा यह भी खयाल है कि ग्रामसेवक के जैसा आहार ग्रामवासियो को भी मिल सकता है और उसे वे ले सकते हैं, और इस तरह ग्रामसेवक के जैसा रहन-सहन रखना ग्रामवासियो के लिए भी कोई असंभव बात नही है ।"

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

भूल-सुधार

१--२६ वा अंक . 'महाराष्ट्र के तीन खादी-केन्द्र' लेख के २१२ वे पृष्ठ के पाचवे पैराग्राफ मे 'तकुए का घेरा १ इंच से ११। इंच' के स्थान में १ से १॥ इंच पढ़िए ।

२--२७ वा अंक 'पानी-फंड' में 'गुलेरिया (जि० बुलडाना) के स्थान पर 'गुलरिया, जि० बदायूं' पढ़िए । --संपादक

टिप्पणियाँ

सेवा की रीति

एक बहिन एक गाव में करीब एक साल से रहती है, और वहा ग्रामवासियों की सेवा करती है। धीरे-धीरे वह अपना सेवा-मार्ग तय कर रही है। कठिनाइयो के बहुत-कुछ पहाड़ वह लाघ चुकी है। किसानो के साथ हल चलाती है, रास्ता साफ करती है, स्त्रियो को सूत कातना सिखाती है और बालको तथा वयस्को को पढाती है। वह अपने अनुभव मुझे भेजती रहती है। अभी हाल मे उसने जो अनुभव लिख भेजा है उसे अत्यत उपयोगी समझकर मैं यहां उद्धृत करता हूँ —

"एक दिन क्या हुआ कि महारवाड़े में एक बकरी मर गई। महार लोगोने मुर्दार जानवर का मास खाना या उसका चमड़ा उतारना दोषास्पद समझकर छोड दिया है, और जो ऐसा करे उसका ५०) दड नियत कर दिया है। इसलिए जब मैं वहा गई तब वे लाश को दफनाने की तैयारी कर रहे थे। मैंने उनसे कहा कि यह तो ठीक नहीं है। लाश गाड देने से नुकसान ही होगा, और चमड़ा बेकार जायगा। वह बकरी एक बुढिया की थी। वह बोली, 'फिर क्या करे? इसे हम गाड़ेंगे नहीं, तो हमे जातिदण्ड भरना पड़ेगा।' मैंने उससे पूछा, 'तो इसे चमार को क्यो न दे दिया जाय? वह इसकी खाल उतार लेगा।' जवाब मिला कि, 'चमार नही लेगा।' मैंने कहा, 'कैसे नही लेगा, चलो, मै चमार को दिलवा दूगी।' बुढियाने कहा, 'पर वहांतक ले कौन जायगा? हम लोग तो लाश उठायेंगे नहीं।' इस पर मैने कहा, 'इसकी फिक्र न करो। लाओ टोकरी, मैं सिर पर रखकर ले चलूगी।' यह सुनकर वह अवाक् हो गई। पर मेरा निश्चय देखकर उसने अपनी बहू के सिर पर बकरी की लाश रखकर मेरे साथ भेजदी। मै चमारवाड़े में गई, पर महार की छुई हुई लाश लेने के लिए चमार तैयार नही थे! उलटे मुझे सिखाने लगे कि हमसे यह सब भ्रष्टाचार न कराओ! जब वे किसी भी तरह समझाने से न समझे, तब मैंने कहा कि, तो अब मागवाड़ा चलना चाहिए। मगर वह महार बहिन मागवाडा जाने को राजी हो तब ना! पर लाश तो ठिकाने लगानी ही थी। मैंने खुद ही अपने सिर पर रखली। यह देखकर तो उसके आश्चर्य का पार ही नहीं रहा। लोगो के लिए तो यह एक तमाशा था। जुलूस-सा बन गया। रास्ते से मै अकेली ही जा रही थी, और लोग आखे फाड़-फाडकर देख रहे थे। मै सीधी मागवाडे में गई, और माग लोगोने वह लाश ले ली और कहा 'बहिन-जी, तुम खुद ही अपने सिर पर लादकर इसे क्यो लाई? हमे कहला भेजती, तो क्या हम आते नही?' मैने कहा, 'मुझे यह बतलाना था कि काम गदा नहीं होता, मनुष्य गदा होता है। मुझे तो कोई शर्म थी नही, इसलिए तुम्हे किसलिए कष्ट देती?'

इस उदाहरण से यह प्रगट होता है कि भाषणो से काम नही चलता। दूसरो से हम जो काम कराना चाहते हैं वह हमे खुद ही करके दिखाना चाहिए, तभी काम चलेगा।

'हरिजन-बधु' से] मो० क० गांधी

झूठे विज्ञापन

कलकत्ते मे एक सज्जनने अच्छे प्रसिद्ध अखबारो म से कुछ ऐसे विज्ञापन काट-काटकर मुझे भेजे है, जो निरे झूठ से भरे हुए हैं। मालूम होता है, कि आजकल बंगाल मे और अन्य प्रांतो में भी हिंदुस्तानी चाय पीने के पक्ष में बड़ा प्रचंड प्रोपेगेण्डा हो रहा है। चाय के एक विज्ञापन का नमूना देखिए। यह बंगला का अनुवाद है —

"चाय पीओ चाय, हमेशा जवान दिखोगे"

जलपाईगुड़ी, १५ मई

"उतरती अवस्था मे भी जवानी और ताकत कायम रखने मे चाय मदद देती है, यह बात, मालूम होता है, श्रीयुक्त नेपालचद्र भट्टाचार्य के अनुभव से प्रमाणित हुई है। भट्टाचार्य-जी की अवस्था आज अड़तालीस वर्ष की है, पर देखने से उनकी उम्र चौंतीस साल से अधिक नहीं जँचती। चौदह साल की उम्र से उन्होने चाय पीना शुरू किया था। तब से वे बराबर बिला नागा चाय पी रहे हैं। और इधर दो साल से वे करीब ३० प्याले चाय नित्य नियमित रीति से पीते हैं। इस सबध मे वे अपनी एक खास विशेषता रखते हैं। चाय तैयार होते ही वे तुरन्त नहीं पीते, उसे कुछ देरतक रखी रहने देते हैं, और सारी ही चाय नही पी जाते, थोड़ी-सी चायदानी मे छोड़ देते है। एक-एक बार मे छै प्याले से लेकर दस-दस प्यालेतक चाय भट्टाचार्यजी पी जाते हैं।"

यह तो ऐसे-ऐसे विज्ञापनो की एक बानगी है। इसे पढते हुए ऐसा मालूम होता है, गोया यह अखबार के अपने सवाददाता की रिपोर्ट हो! चाय पीने के पक्ष मे यह विज्ञापन एक ऐसा दावा हमारे सामने रखता है, जिसे मनुष्य के अनुभव का कहीं भी समर्थन नही मिलता। देखने मे तो इससे उलटा ही आता है। चाय के पक्ष मे वकालत करनेवाले भी बहुत ही थोडी चाय पीने की सलाह देते हैं। हिंदुस्तान के लोग अगर चाय न पीयें, तो इससे उनकी कोई हानि तो होगी नहीं। मगर दुर्भाग्य से यह चाय और ऐसी ही दूसरी पीने की चीजें, जो अहानिकर समझी जाती हैं, अब हम लोगो मे जड जमा चुकी हैं। मेरा कहना यह है कि हमे विज्ञापन देते समय सचाई का उचित ध्यान जरूर रखना चाहिए। लोगो की, खासकर हिंदुस्तानियों की यह एक आदत बन गई है, कि किताब हो या अखबार उसमें छपे हुए एक-एक शब्द को वे 'ब्रह्मवाक्य' मान लेते है! अत विज्ञापन बनाने में अधिक-से-अधिक सावधानी रखने की जरूरत है। ऐसी-ऐसी झूठी बातें, जिनकी तरफ उक्त पत्र-लेखकने मेरा ध्यान आकर्षित किया है, बड़ी ही खतरनाक होती है। नित्य तीस-तीस प्याले चाय पी डालना—यह क्या है! इससे शरीर और दिमाग मे भला ताजगी आयगी? इससे तो पाचन-शक्ति कमजोर पड़ जायगी, और शरीर क्षीण हो जायगा। हलकी-सी चाय के दो प्याले पी लेने मे शायद नुकसान नही होता, और मनुष्य का शरीर इतनी ही चाय पचा सकता है। फिर हिंदुस्तान मे चाय की पत्तियां असल में उबाली जाती हैं, और इस तरह उनका सारा 'टैनिन' पानी में खिंच आता है। कोई भी डाक्टर यह प्रमाणित कर देगा कि मेदे के लिए यह 'टैनिन' अच्छी चीज नहीं है। चाय पीना तो बस चीनी लोग जानते है। पत्तियो को वे छन्नी मे रखकर उन पर खौलता हुआ पानी डालते है। पत्तियों को वे चायदानी मे कभी नही डालते। पानी में पत्तियो का सिर्फ रंग उतर आता है। उनकी वह चाय हलके पीले रंग की दिखती है, ऐसी लाल रंग की नही, जैसी कि हिंदुस्तान में साधारण रीति से बनाई जाती है। तेज चाय तो जहर है।

मो० क० गांधी

हरिजनों पर जुल्म

८ अगस्त के दिन धोलका (अहमदाबाद) तालुका के कावीठा गांव के बुनकर हरिजनोने अपने पांच लड़के वहा की सार्वजनिक पाठशाला में दाखिल कराने का प्रयत्न किया। इससे गांव के राजपूत और बारैया लोग चिढ़ गये, और उन्होने अपने तमाम बालको को पाठशाला से निकालकर हरिजनो का बहिष्कार कर दिया। इतना ही नही, बल्कि उन्होंने यह भी निश्चय किया कि न तो ये बुनकर कही मजदूरी में लगाये जायँ, और न इनके मवेशी ही कही चर सके ! हरिजनो के साथ हमदर्दी दिखानेवाले दस सवर्ण कुटुंबो का भी गाववालोने बहिष्कार कर दिया।

मगर हरिजनोंने हिम्मत नही हारी, और जो सज्जन उनकी मदद करते थे उनके साथ अपने बच्चो को वे बराबर पाठशाला में भेजते रहे। जब सवर्ण हिंदुओ का यह प्रयत्न निष्फल गया, तब कुछ उत्पाती लोगोंने गाव के लडको को उस्का कर हरिजन बालको और मजदूरो को छेड़ना व पत्थर मारना शुरू किया। इससे भी जब पूरा नहीं पड़ा, तब १३ अगस्त को अंदाजन ८ बजे करीब २०० आदमियोने बुनकर-बस्ती पर धावा बोल दिया, और तमाम हरिजन स्त्रियो, पुरुषो और बच्चो को बस्ती से निकाल बाहर कर दिया। इसके बाद ऊजड़ मुहल्ले में खूब उत्पात मचाया, और उन गरीबो का नुकसान भी खूब किया।

कुछ हरिजन इस स्थिति में अहमदाबाद पहुँचे, और उन्होंने पुलिस की रक्षा चाही। इस परिस्थिति को सुलझाने और जहातक बन सके वहांतक गाव के लोगों को समझाने के लिए श्री नरहरि भाई परीख, श्री जुठाभाई, श्री डाह्याभाई मनोरभाई पटेल आदि कावीठा गाव गये, और लोगो को समझाया, कि 'छोड़ो यह वहम, बेकसूर बुनकरो पर यह जुल्म ढाकर तुम लोग यह बहुत बुरा काम कर रहे हो।' पर उत्पाती लोगो के कारण कुछ हो नही सका। हरिजन तथा उनके साथ सहानुभूति रखनेवाले १० सवर्ण कुटुब अपने भाइयों का विरोध और बहिष्कार बड़े धीरज के साथ बर्दाश्त कर रहे हैं। सुप्रसिद्ध हरिजन-सेवक श्री नाथाभाई इस सारे आदोलन की नैतिक जवाबदेही अपने सिर पर उठाकर इस संकट-काल मे हरिजनो को हिम्मत बँधा रहे हैं। श्री नाथाभाईने ही हरिजनो मे स्वाभिमान का भाव जाग्रत किया है। इनकी सेवा-भावना और प्रामाणिकता को यहां कौन नहीं जानता ?

परीक्षितलाल मजमुदार

महाराष्ट्र के तीन खादी-केन्द्र

[२६वे अंक से आगे]

बारेगुड़ा

महाराष्ट्र का यह पुराना खादी-केन्द्र है, पर अब ताण्डूर केन्द्र का उपकेन्द्र माना जाता है। बारेगुड़ा जाने के लिए कोथापेट स्टेशन पर उतरना पड़ता है। स्टेशन गांव से करीब ३ मील है। बैल-गाड़ी मिल जाती है।

बारेगुडा में महाराष्ट्र-चर्खा-संघने कार्यालय के लिए निजकी जमीन खरीदली है और उसी जमीन पर टिन और घास-फूस के झोंपड़े खड़े कर लिये है। कार्यालय एक ऊँची टेकरी पर बसा हुआ है। पास ही में बारेगुडा की नदी बहती है। इस नदी का पानी कपड़ों की धुलाई के लिए बहुत उपयोगी है। उसमें धुले हुए कपड़ों पर एक खास चमक और सफेदी आ जाती है। पानी साबरमती की तरह छिछला और नदी का पट रेतीला है।

बारेगुडा मे खादी-उत्पत्ति विशेष प्रकार की होती है। इधर महार कौम के लोग ही अधिकतर यह काम करते है। पीजना, कातना और बुनना सभी क्रियाएँ इन परिवारों में परम्परा से होती आई हैं। पिंजाई बीच मे बन्द हो गई थी और लोग मुसल-मान पिंजारों से पिंजवाने लगे थे, पर पिछले साल सवा साल के प्रयत्न से चर्खा-संघवाले जुलाहो के घरो में पींजने स्थापित करने मे कामयाब हुए हैं, और अब बारेगुडा में कई महार-परिवार ऐसे हैं, जो अपनी जरूरत की रुई स्वय ही धुन लेते है। पींजन भी अपनी लकड़ी देकर सुतार से बनवा लेते हैं। एक पींजन की मजदूरी ≈)॥ होती है। तांत भी ये जुलाहे अब स्वयं बनालेते है। सिक्का हाली के एक आने में दो 'पाट' मिलते है—जिन से ८ तारी मोटी २० गज तांत बन जाती है। इतनी मोटी तांत से धुनने के कारण रुई की धुनाई मे दोष रह जाते हैं। कार्यकर्ताओं का ध्यान इस ओर है, और वे इस स्थिति में सन्तोषजनक परिवर्तन करने के प्रयत्न में है।

बारेगुडा मे अधिकतर ऐसे ही महार-परिवार है, जो कपास ओटने से लेकर थान तैयार करने तक की सारी क्रियाएँ अपने घर करते है और कार्यालयवालो के हाथ बने-बनाये थान ही बेचते हैं। इस दृष्टि से इन परिवारो का जीवन बहुत ही अनुकरणीय मालूम होता है। वायलाल के जुलाहों की स्त्रिया सूत नहीं कातती। यहा तो जुलाहे अपनी स्त्रियों और बच्चो के कते सूत पर ही आधार रखते है। यदि इन्हे दूसरी तरह की सहूलियतें हो, तो ये पूरी तरह वस्त्र स्वावलम्बी बन सकते है, और आज भी कई परिवारो के पास अधिकतर कपड़े तो खादी के ही है।

बारेगुडा के महार-परिवारो मे ज्यादातर किसानपेशा हैं। पर एक-दो परिवार ऐसे भी हैं, कि जो अपने निर्वाह के लिए सिर्फ कर्घे और चर्खे पर ही निर्भर करते है। ऐसे एक परिवार से मैं मिला था। परिवार के मुखिया का नाम सोभाजी है। पत्नी के अलावा सोभाजी के घर मे उनका एक वयस्क लड़का और पुत्र-वधू भी है। घर मे एक कर्घा और ३ चर्खे है। स्त्री-पुरुष दोनो सूत कातते है। दो चर्खों पर ८–१० दिन कातने पर एक थान के लायक सूत तैयार हो जाता है। एक महीने में ३६"×१२॥ गज के अधिक-से-अधिक चार थान तैयार हो पाते हैं। एक थान की कीमत ३) मिलती है। कभी थान पीछे ≈) से लेकर ।) तक जुर्माना भी देना पड़ता है। यही परिवार पहले छोटे अर्ज की २५ हाथ खादी ३ दिन मे बुनता था और बीस हाथ का एक थान ४) मे बेचता था।

सोभाजी पर १५) का कर्ज है। सन् १९३४ के अगस्त मे उन्होंने ३–४ साहूकरो से सब मिलाकर १५) उधार लिये थे। अगस्त से मार्च तक के पिछले आठ महीनो मे वह इन रुपयों पर इकन्नी रुपये के हिसाब से करीब आठ रुपये ब्याज पेटे जमा करा चुके है। और मूल धन के १५) वैसे ही बरकरार है ! उनका कहना है कि अगर खादी-कार्यालयवालोने उनकी खादी बराबर खरीदी और उन्हे लगातार दाम मिलते रहे, तो बरस-दो-बरस में वह अपना यह ऋण चुका सकेंगे; नही तो इसका अदा होना कठिन ही है।

सोभाजी के पड़ोस मे रहनेवाले एक दूसरे महार-परिवारने खादी बना-बनाकर अपने लिए थोडी पूंजी बनाली है। कार्यकर्ता-

ओ के साथ मैं उस परिवार के मुखिया से भी मिला। यह भाई अपनी अच्छी स्थिति के कारण स्वयं थोडी-बहुत साहूकारी भी कर लेते हैं। पर ऐसे तो बिरले ही है।

तुंगड़ा

नदी के उस पार बारेगुडा से आध मील की दूरी पर बसा हुआ यह एक छोटा-सा गांव है, जिसमे जुलाहो के कोई ६० घर हैं। सभी महार है और अस्पृश्य माने जाते है। गांव में महारो की बस्ती अलग ही बसी हुई है। सवर्ण-बस्ती से एक ओर—गांव के एक किनारे!

इस गांव मे इस प्रदेश की भीषण गरीबी का प्रत्यक्ष दर्शन करके बहुत क्लेश हुआ। अत्यन्त साधारण स्थिति मे, घास-फूस की टूटी-फूटी झोपड़ियो का सहारा लेकर किसी तरह ये गरीब अपने जीवन के दिन टेर करते है। पर इस भौतिक गरीबीने अभी इनके मन और इनकी आत्मा को पूरी तरह गरीब नही बना पाया है। अब भी इनमे मन और आत्मा की सुन्दर सम्पन्नता के दर्शन करके मन प्रसन्न हो उठता है।

बारेगुडा की तरह ये सब परिवार भी खादी की समस्त क्रियाएँ घर पर ही करलेते है। खादी-निर्माण की दृष्टि से तो इनका एक-एक घर एक-एक खादी-उद्योग-मन्दिर ही कहा जा सकता है। चर्खी, पीजन, चर्खा, कर्घा आदि खादी के सभी साधन इनकी झोपडियो में व्यवस्थित रूप में पाये जाते हैं।

इस प्रदेश में कपास की खेती भी होती है। 'जड़ी' नाम का कपास ज्यादा पैदा होता है और वही बरता भी जाता है। यह कपास साधारण कोटि का है। इसके रेशे छोटे और कम मुलायम होते है। जो जुलाहे किसानी भी करते है, वे अपने कपास का स्वयं ही उपयोग करलेते है। जिनके खेती नहीं होती, वे कपास उधार ले लेते या खरीदते हैं।

गरीबी के कारण ये लोग अपने खेत जोतने-बोने के लिए बैल नही रख सकते। फसल के मौकों पर सवर्ण किसानों के बैल किराये पर लाते हैं, उन्हे अपने घर रखते है और एक बैल जोडी पीछे उसके मालिक को एक खाडी अनाज देते है। अधिकतर जुआर, बाल, मक्का, कुलथी और धान की खेती होती है। गरीबो का मुख्य आहार जुआर, कुलथी, बाल, मक्का आदि हैं।

तुंगडा के चर्खों का व्यास १६॥ और चर्खे और तकुए का बीच का अन्तर २२।। है। तकुए का घेरा एक से सवा इंचतक पाया जाता है। लोग तकुए पर साडी चढाकर कातते है। चर्खे के एक चक्कर मे तकुआ ५० के आसपास चक्कर लगाता है। १¼" के घेरेवाले तकुए के ४९ चक्कर और १" घेरेवाले तकुए के ५५ चक्कर मैंने दो भिन्न चर्खों पर गिने। चर्खा ५१७ बार घुमाने पर कातनेवाला मुश्किल से १ या १¼ फुट लम्बा तार कात पाता है। सूत साधारणत. ८ से १२ न० का कतता है। माल सादी, बिना खाल की बरती जाती है। चर्खे पर कत्तिनों की औसत गति १५० से लेकर २०० गज तक पाई जाती है, जो बहुत कम मालूम होती है। अगर चर्खे में आवश्यक सुधार कर दिये जायँ तो सूत की मजबूती, कताई की गति, और उत्पत्ति पर उनका बहुत हितकर प्रभाव पड़ सकता है। केन्द्र के कार्यकर्त्ताओ का ध्यान इधर है, और वे चर्खे का अभ्यास करके उसमें अनुकूल और आवश्यक हेर-फेर करने की चिन्ता में है।

यहा मर्द और औरत दोनों कातते हैं। सब हिलमिलकर बुनाई का काम करते है। इधर करीब एक साल से मर्दोंने रूई पीजना और पूनी बनाना भी सीख लिया है, जिससे सूत की किस्म और गुण मे काफी सुधार हुआ है। ये लोग अधिकतर अपने हाथ-कते-बुने सूत की ही खादी पहनते हैं। खादी की जो धोतियां और साड़ियां ये अपने लिए बनाते हैं, वे काफी गफ और मजबूत होती है और वकील उनके १॥ से २ सालतक चलती है। इस अर्से मे जो कपडा ये पहनते है, उसका पूरा-पूरा उपयोग कर लेते हैं। पचीसो पैबन्द लगाकर और जोड-तोड़कर जैसे-तैसे उसे पहने ही चले जाते है। यहांतक कि शुरू की धोती बाद में गमछा, और गमछा लगोटी में बदल जाता है। इनकी गरीबी ही इस दयनीय परिस्थिति का कारण है। मिल का मिलावटी खादी का कपड़ा भी इनके घरो में पाया जाता है—पर वह बतौर मजबूरी के और जबर्दस्ती इनके घर आता है, और इन्हे अपनी लाज ढंकने के लिए उसे आश्रय देना पड़ता है।

औरतें १२ से १६ हाथ लम्बी ३६॥—४०॥ अर्जवाली साडिया पहनती है। इधर स्त्रियो मे कचुकी पहनने का अधिक रिवाज नही है। मर्द ३॥ गजी×४०" धोती पहनते है। इन लोगो का अनुभव है कि मिल की साडी और धोतियां खादी की साडी और धोतियो के मुकाबिले कम चलती है और एक बार फटने पर फिर किसी काम की नही रह जाती हैं। सस्ती होते हुए भी वे महँगी ही पडती है। साफा या पगडी ४ गजी×२०" पहनी जाती है।

जब हम गांव में घूमे और लोगो से खादी के सम्बन्ध में बाते करने लगे, तो हमारी आवाज सुनकर पास की एक झोपडी से एक युवती बहिन मुसकराती हुई बाहर निकली और हमारी बातों मे शामिल हो गई। वह उसका मायका था। उसके शरीर पर खादी की लाल चौखानोवाली एक सुन्दर साडी सुहा रही थी। उस बहिन की आखो मे एक अपूर्व-सा तेज और चमक थी। उसे देखते ही उसकी साडी की ओर हम आकर्षित हुए और उससे इस साड़ी का इतिहास पूछा। उसने बड़े गर्व के साथ हमें बताया कि साडी उसके भैयाने बुनी है, और भैया की वह भेंट बहिन के शरीर की शोभा बन रही है! मैने मन-ही-मन उस सौभाग्यवती बहिन को और उसके बड़भागी भैया को प्रणाम किया और प्रसन्नमन आगे बढ गया!

इस साड़ी के लाल चौखानों को देखकर मैंने लोगो से सूत की रँगाई के बारे में प्रश्न किया और उत्तर मे मुझे एक करुण कहानी सुनने को मिली। इस प्रदेश के लोग देशी जड़ी-बूटियों-द्वारा रँगाई का काम करने मे कुशल रहे है। अभी १०—१५ वर्ष पहलेतक ये लोग देशी रँग का ही उपयोग करते थे। इनके बड़े-बूढ़े रँग बनाने की क्रियाएँ अब भी जानते हैं। रँग के कच्चे साधनो की भी इस प्रदेश मे कमी नही है। खासकर लाल रँग बनाने के साधन यहा प्रचुर मात्रा मे मौजूद हैं।

साली के पेड़ की जड़, पलास के पेड़ की डालियां और फिटकरी ये तीन चीजे लाल रँग बनाने मे मुख्यत: काम आती हैं। अब भी कुछ परिश्रमी लोग इस तरह रँग बना लेते हैं। पर अधिकतर तो अब विदेशो का सस्ता रँग ही बरता जाने लगा है!

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R S. Gupta.

एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव   "आत्मवत् सर्वभूतेषु"   Reg. No. L. 1369.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३]   दिल्ली, शुक्रवार, ६ सितम्बर, १९३५.   [संख्या २९

विषय-सूची

हमारा कर्त्तव्य

अस्पृश्यता की चक्की में एक तरह से गुजरात के हरिजन शायद जितना पिस रहे हैं उतना दूसरी जगह के नहीं। धोलका में एक हरिजन को एक सवर्ण हिन्दूने मार डाला, और वह हत्यारा ३००) जुर्माना देकर साफ छूट गया। काबीठा गांव के हरिजनोंने एक सार्वजनिक पाठशाला में अपने बच्चे भेजने का साहस किया, तो वहां के राजपूत कहेजानेवाले लोगोंने उन असहाय गरीबों पर बड़ी बेरहमी से चढ़ाई करदी। काठियावाड़ में तो आज यह हाल है कि वहां कई राज्यों के अनेक गांवों में सवर्ण हिन्दू हरिजनों को बेतरह सता रहे हैं—और यह इसलिए कि ढोरों में वहां महामारी का प्रकोप बढ़ रहा है। लोगों के मन में वहां यह वहम समा गया है कि जादू-टोना करके हरिजन ये बीमारियां फैलाते हैं। हरिजनों को हमेशा ही अपने जान-माल का भय लगा रहता है। सुधारक लाचारी महसूस करते हैं। राज्य या तो उदासीन हैं, या फिर ताकतवर सवर्णों के मुकाबले में वह खुद अपने को असहाय समझते हैं। कारण स्पष्ट है। हरिजनों को यह पता ही नहीं कि इस अत्याचार का आखिर क्या इलाज किया जाय। अपनी रक्षा करने की उनमें इच्छा ही नहीं। अपने सवर्ण भाइयों के इन धृष्टतापूर्ण औद्धत्य से अपनी रक्षा करने के अर्थ उन्हें अपने मनुष्योचित गौरव या स्वाभाविक शक्ति का बिल्कुल ही भान नहीं। सुधारकों को वहां हरिजनों को सतानेवाले सवर्ण हिन्दुओं का अज्ञानांधकार दूर करना है। सवर्णों को यह खबर नहीं कि वहम के वश होकर वे यह सब क्या कर रहे हैं। उन लोगों में पर्चे छपा-छपाकर बांटे जायें। पर ये उपद्रवी सवर्ण शायद ही कभी अखबार या पर्चे वगैरा पढ़ते हैं। वे अपने को स्वयंपूर्ण और स्वयंसन्तुष्ट समझते हैं। उन्हें समझाने का तो सिर्फ एक रास्ता है, और वह यह कि उनसे हेलमेल बढ़ाया जाय। जरूरत हो तो उनके घरों में जाकर उनसे मिला जाय। उनके गांवों में सभाएँ की जायँ। कितनी ही नाराजी प्रगट करो, कितनी ही बातें बघारों, इससे उनका अज्ञान दूर होने का नहीं। जल्दी-से-जल्दी उन लोगों का अज्ञान दूर करने का उपाय तो यह है कि उनमें यह प्रचार किया जाय कि ढोरों में किस तरह ये छूतैल रोग फैलते हैं और अच्छी तरह ठीक-ठीक इलाज करने से वे किस तरह रुक सकते हैं या दूर हो सकते हैं।

इसका यह अर्थ हुआ कि प्रचारकों को धीरज के साथ खूब लगातार काम करना होगा। और जिन राज्यों में हरिजन सताये जायें उन राज्यों से भी कहा जाय कि वे उन गरीबों की रक्षा करें। जहां सुधारक खासी अच्छी संख्या में हों वहां वे हरिजनों के बीच जाकर बस जायें और जो मुसीबत उनपर पड़े उसे वे भी उनके साथ-साथ झेलें। हरिजनों का सताया जाना अगर सुधारक नहीं रोक सकते, तो उन गरीबों की विपता को तो वे बँटा ही सकते हैं। अज्ञान-निवारण की इस प्रवृत्ति में सनातनियों की भी मदद लेनी चाहिए। मुझे विश्वास है कि गलत रास्ते पर जानेवाले नासमझ सवर्णों के द्वारा बिल्कुल बेकसूर हरिजनों पर किये गये निर्दयतापूर्ण अत्याचारों का कोई भी समझदार सनातनी समर्थन नहीं करेगा।

'हरिजन' से]   मो० क० गांधी

पार लगाना ही है

गुजरात के लोकल बोर्ड के स्कूलों के संबंध में जो खबरें मिल रही हैं उनका अध्ययन करने से यह पता चलता है कि सरकारने हरिजनों और सार्वजनिक स्थानों के उपयोग के बारे में जो हुक्म जारी किये हैं उनका वहां किस तरह अमल हो रहा है। यह जानकारी रोचक होने के साथ-साथ दुःखपूर्ण भी है। एक हरिजन सेवक पंचमहाल जिले के हरिजनों की स्थिति का बड़ी बारीकी से अध्ययन कर रहा है। स्कूलों के संबंध में दो साल पहले जो सरकारी हुक्म निकला था उसका अमल वहां किस तरह हुआ इसकी तफसीलवार रिपोर्ट उसने भेजी है। पंचमहाल जिले के लोकलबोर्डने सन् १९३३ के मार्च में स्कूलों के नाम जो हुक्म निकाला था उसमें यह साफ साफ बतला दिया गया था कि, हरिजनों और दूसरी जातियों के बीच अध्यापकों को जरा भी भेदभाव नहीं रखना चाहिए, पाठशाला अगर मंदिर में या किसी ऐसी जगह पर हो कि जहां हरिजनों के प्रवेश करने की मनाही हो, तो उसके लिए दूसरे मकान की कोशिश करनी चाहिए। इसके बाद उसी साल सितंबर में दूसरा हुक्म निकला। यह हुक्म इस आशय का था कि अध्यापक अगर हरिजन बालकों के साथ भेदभाव रखेंगे तो यह उनका कसूर समझा जायगा। अध्यापकों को चाहिए कि वे हरिजनेतर बालकों के माता-पिताओं और अभिभावकों का इस हुक्म की तरफ ध्यान आकर्षित करें, और उन्हें यह साफ-साफ बतला दें कि अगर आप हरिजनों को पाठशाला में नहीं आने देंगे तो आपके बालकों को शिक्षा के लाभ से वंचित रहना पड़ेगा। यह भी देखते रहें कि हरिजनों के बालक सफाई से रहते हैं या नहीं और अपने कपड़े-लत्ते अच्छे रखते हैं या नहीं। हरिजनों को स्कूल-बोर्ड में लेने का प्रयत्न किया जाय, और हरिजन बालकों को पाठशाला में दाखिल करने

मे दूसरे लोग पाठशाला का बहिष्कार करदे, तो उसकी फौरन रिपोर्ट की जाय, और जरूरत हो तो पुलिस पटेल की भी मदद ली जाय। इस हुक्म का कुछ भी असर नहीं हुआ—और हुआ तो उल्टा ही असर हुआ। अधिकाश गावोंने इस हुक्म के प्रति विरोध प्रकट किया। इसलिए जिला लोकल बोर्डने यह निश्चय किया कि जबतक दूसरा नया हुक्म न निकले, तबतक इस हुक्म को अमल में लाना स्थगित रखा जाय। हमारे सवाददाता सज्जन लिखते हैं कि बोर्ड का वह नया हुक्म आजतक नहीं निकला, और इससे पच-महाल के हरिजनो की स्थिति पाठशालाओं के सबध में जैसी दो साल पहले थी वैसी ही आज है। सरकारने हाल में जो हुक्म निकाला है, उसे निकालने के पहले उसके बारे में जिला लोकल बोर्ड की राय मांगी गई थी। पचमहाल जिला बोर्ड की बैठक में जब उस पर विचार हुआ तो दोनों ही पक्षों के बराबर-बराबर वोट आये। उस समय बोर्ड के चेयरमैन श्री मणिलाल महेता थे, उन्होंने अपना 'निर्णायक मत' (कास्टिंग वोट) सरकारी हुक्म का विरोध करनेवालों के पक्ष में दिया। दुख की बात यह है कि उस समय जिला लोकल बोर्ड के उक्त चेयरमैन पचमहाल हरिजन-सेवक-सघ के भी अध्यक्ष थे! हमारे सवाददाता को अभी यह मालूम हुआ है कि सरकारने जिला-बोर्ड को यह चेतावनी दी है कि अगर इस स्थिति में फौरन सुधार न हुआ, तो जिला-बोर्ड को सरकार की ओर से जो ग्राट मिलती है वह बद कर दी जायगी।

कावीठा (जिला अहमदाबाद) की ग्राम-पाठशाला में अपने लड़के भेजने के अपराध पर सवर्णोंने हरिजनों के साथ कैसे-कैसे जुल्म किये हैं इस विषय का गुजरात-हरिजन-सेवक-सघ के मत्री श्री परीक्षितलाल मजमुदार का भेजा हुआ विवरण 'हरिजन-सेवक' के गताक मे प्रकाशित हो ही चुका है।

मातर तालुका के रढु गाव का किस्सा भी 'हरिजन-सेवक' में आ चुका है। रढु के हरिजनों को सवर्ण हिन्दुओंने इतना अधिक डरा दिया है कि वे हरिजन-पाठशाला के हरिजन अध्यापक को अपनी बस्ती में मकान देने तक की हिम्मत नहीं कर सकते।

ऐसी-ऐसी कठिनाइयां और टक्करें शुरू-शुरू में तो होती ही हैं। अस्पृश्यता निवारण की बातें तो हम बहुत दिनों से कर रहे थे, पर उन्हें अमल में नहीं ला रहे थे। अगर आचरण में लाये होते तो जो घटनाएँ आज घट रही हैं वे कई बरस पहले घट चुकी होतीं, और आज हमारा काम काफी सरल हो गया होता। अब समझौता करके या फक-फूक के कदम रखने से काम चलने का नहीं। इस तरह हमारा ध्येय कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता। अभी बहुत दिन नहीं हुए कि इस पत्र में बबई हाते के बैकवर्ड क्लास आफिसर की रिपोर्ट पर प्रकाश डाला गया था। उस रिपोर्ट में यह कहा गया था कि जिन हलकों में यों ही पाठशालाएँ बहुत कम हैं वहां इस वजह से अगर पाठशालाएँ बद कर दी गईं तो लोगों को भारी परेशानी उठानी होगी, और इसीसे सरकार इस विषय में सावधानी के साथ कदम बढ़ा रही है। पर अब तो यह मालूम होता है कि इस तरह काम चलने का नहीं। अब तो हद हो गई है। सरकार को अब अपने हुक्म का सख्ती से अमल कराने में संकोच नहीं करना चाहिए। हरिजनों की सामाजिक बहिष्कार से रक्षा करना और इन शरारत करनेवालों की अक्ल ठिकाने लगाना सरकार के लिए कोई मुश्किल काम नहीं होना चाहिए। मौजूदा स्थिति सुल-झाने के लिए कई उपाय सुझाये जा सकते हैं। जैसे, एक तो यह कि पुराने खयालात के पुलिस पटेलों को हटाकर उनकी जगह सुधारक पटेल नियुक्त कर दिये जायं। दूसरा उपाय यह कि पाठशाला ऐसी सुरक्षित जगह पर हटाकर ले जायँ, जहां हरिजन अपने बालकों को बिना किसी डर के पाठशाला में भेज सकें। इस बीच में हरिजन-सेवकों को हमेशा जाग्रत रहने की जरूरत है। वे अपने हलके के एक-एक गाव की बिल्कुल सही सूचनाएँ इकट्ठी करें और हरिजनों को अपनी सहानुभूति के द्वारा सच्चा विश्वास दिलाने के लिए उन गांवों में जाकर रहें, हरिजनों पर सवर्णों की ओर से जो जुल्म हो उसे सहन करने में वे खुद भी भाग लें, और उत्तर-दायी अधिकारियों से मिलकर जहां झगड़ा होने की आशंका हो वहां शान्तिपूर्वक उसे हल करने के लिए उपाय ढूढ निकालने में अधिकारियों को सहायता दें। यह काम ऐसा है कि इसकी खातिर हरिजन सेवकों को कष्ट झेलने और हरिजनों पर होनेवाले अत्याचारों में भाग लेने लिए अधिक-से-अधिक मुस्तैदी रखनी ही चाहिए। इस विषय में ढील करने, काम अधूरा करके छोड़ देने या समझौता करके सतोष मान लेने से अब काम चलने का नहीं। इस काम को तो अब पार ही लगाना होगा।

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्रामसेवा

इस सप्ताह भी शांति से काम किया। दो-तीन दिन सबेरे ओर का मेह पड़ने से सफाई के काम में कुछ रुकावट जरूर पड़ी। जब जरूरत नहीं होती, तब बरसता है, और जहा पानी की जरूरत होती है, वहा पानी का नाम नहीं। मौज है यह कुदरत की। यह सब उसका मनमौजीपन है। लेकिन जब हम विचार करते हैं तो यह मालूम होता है कि मनुष्य का मनमौजीपन जितना बुरा है, उतना कुदरत का नहीं। और अगर हम मनुष्य के मनमौजीपने से अधीर नहीं होते, तो कुदरत के मनमौजीपने से क्यों अधीर हों?

मनुष्य की अधीरता के सबध का एक उदाहरण लीजिए। विहार मे एक सज्जन लिखते हैं—'हमने इस गांव में एक सफाई-कमेटी बनाई और यह आशा की थी कि लोग हमारी नियत जगह पर पाखाना फिरने जायँगे। पर उन्होंने तो इसके विपरीत ही काम किया। उन्होंने कहा कि हम चाहे जहा बैठेंगे, तुम कहनेवाले कौन? और जान-मानकर उन्होंने आम जगहें गंदी कीं। एक दिन एक स्वयंसेवक कुदाली-फावड़ा लेकर गया, और धीरज और शांति के साथ उसने तमाम कचरा साफ कर दिया। कुछ लोग तो बाज आगये, पर कुछ लोगों को हमारा यह गंदा काम बहुत बुरा लगा और उन्होंने हमें यह धमकी दी कि अगर तुमने यह काम न छोड़ा तो इसका बहुत बुरा नतीजा होगा। हम उनकी घुड़की से डरे नहीं। बराबर अपना काम जारी रखा। कुछ दिनों के लिए हालत कुछ सुधर गई, पर अब फिर वही हालत है।' गंदगी फैलाने से वे बाज ही नहीं आते। अगर वे इसी तरह तमाम आम जगह खराब करते रहें, तो हम आखिर कबतक सफाई करते रहेंगे? सफाई का हमारा यह आग्रह उनकी लज्जाशीलता को कुंठित कर देगा और वे पक्के बेशर्म बन जायँगे। हमें उस हालत में भंगियों की तरह नित्य नियमित रीति से उन का मल-मूत्र साफ करना पड़ेगा।'

हमें सचमुच 'बाकायदा भंगी' बनना होगा, अगर हम चाहते हैं कि वे खुद किसी दिन अपने भंगी बन जायं। अबतक वे गंदगी

करने से बाज नहीं आते, तबतक हमें भी सफाई करने से बाज नहीं आना चाहिए। और मनुष्य अधीर क्यों हो, जब कि वह जानता है कि उसके कार्य का फल उसके खास गांव में न सही, पर अन्यत्र तो दिखाई दे रहा है? देखिए, बारडोली ताल्लुका के एक गांव से यह रिपोर्ट आई है कि--'पंद्रह दिन से मैं उस सड़क को साफ कर रहा हूँ। कुछ दिन तो लोगोंने विरोध किया, पर अब धीरे-धीरे वे समझ से काम लेने लगे हैं। अब वह बात नहीं है। बच्चों पर हमारे काम का सबसे पहले असर हुआ। जहां वे पाखाना फिरने बैठते हैं, वहां गड्ढा खोद लेते हैं और बाद में उसे मिट्टी से पूर देते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि स्वच्छता का उनपर इतना अच्छा प्रभाव पड़ा है कि जहां कहीं वे कचरा पड़ा देखते हैं उस पर मिट्टी पूर देते हैं और दातुन की फाके-जैसी इधर-उधर पड़ी हुई रद्दी चीजों को उठा-उठाकर एक गड्ढे में, जो इसी काम के लिए बना दिया गया है, डाल देते हैं।

बरमा का एक नवयुवक, जो कुछ दिन यहां रह गया है और हमारा काम देख गया है, अपने पत्र में लिखता है कि-- 'टट्टियां हटा देने के बारे में मैं बरमी लोगों से बात कर रहा हूँ, उन्हें मैंने सारी क्रिया समझा दी है, और मैं आशा करता हूँ कि हमारे प्रयत्न का नतीजा अच्छा ही होगा।' मैं इस नवयुवक की रिपोर्ट की राह देखूंगा।

सारांश यह है कि इसमें अधीरता से काम नहीं चलेगा। एक जगह भले असफलता हो, पर दूसरी जगह तो सफलता मिलेगी। हम तो बस अपने काम में धीरज के साथ जुटे रहें। स्विट्जरलैंड के एक गांव से गांधीजी के पास एक पत्र आया है। उसका एक अंश मैं यहां देता हूं। लिखा है--"कोई 'एम. डी' नाम के सज्जन 'हरिजन' में इधर बराबर नियमित रूप से सुधारक की कठिनाइयों के बारे में लिख रहे हैं। आपको जिन अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है उनकी सचाई इसमें पहले इतनी स्पष्टता के साथ मेरी नजर के सामने कभी आई ही नहीं। दुनिया भर की गंदगी और कचरे के खिलाफ लड़ते हुए आप-जैसे स्वच्छताप्रिय मनुष्य जिस गजब के धीरज से काम ले रहे हैं उसपर जब मैं विचार करता हूँ, तब मुझे उसमें एक पाठ मिलता है। गंदगी से मैं नफरत करता हूँ और उसे देखकर मुझे सूग आती है--यद्यपि असल में देखा जाय तो 'किसी चीज का उसके योग्य स्थान में न होने का' ही नाम गंदगी है--और मुझे ऐसा लगता है कि उन गरीब आदमियों की गंदगी की तरफ इस हद दरजे की लापर्वाही को देखकर, खासकर अगर मैंने उसे साफ करने में इतनी ज्यादा तकलीफ उठाई हो, कम-से-कम मुझे तो, बड़ी ही खीझ आजाय। इस सेवा-पथ पर आपको जो यह विजय मिल रही है, मेरे लिए तो वह और चीजों से बहुत ऊँची और मनोहर चीज है।" पर हम तो अब भी किसी ऐसी विजय से बहुत दूर हैं, हम तो अब भी यही कहेंगे कि 'दिल्ली अभी दूर है।'

अकेले ही काम करना है

पूरे परिश्रम के साथ काम में लगे रहने का ही तो नाम धैर्य है। कार्य का कोई फल प्रत्यक्ष न दिखाई दे, सहायक थक गये हों, और निराशाने घेर लिया हो, तो भी अपने काम में बराबर एक धुन से लगा रहे इसी को तो धैर्य कहते हैं। अभी ग्रामउद्योग-संघ के व्यवस्थापक मंडल की जो यहां बैठक हुई थी, उसमें गांधीजीने इसी बात को सबसे अधिक जोर देकर समझाया था--'हमें अपनी सख्त मर्यादाओं की तरफ देखना चाहिए। आप इसकी चिंता न करें कि हम बहुत थोड़े-से इने-गिने कार्यकर्त्ता हैं। हमारे साधन थोड़े हैं, और सीमित भी। बड़े-बड़े नामोंवाली योजनाओं के ऊपर पैसा बहाना हमें नहीं पुसा सकता, और हम चाहे जिस साधन को ग्रहण भी नहीं कर सकते। हो सकता है कि हमें कार्यकर्त्ता और एजेण्ट न मिलें, और हमारे संघ की शाखाएँ देश में कुछ इनी-गिनी ही खुल सकें। मगर देश में जगह-जगह संस्थाएँ देखने की मुझे ऐसी कोई जल्दी नहीं पड़ी है। हमारी नीति तो अकेले ही धीरे-धीरे काम करने की है।

यह बात नहीं कि संघ के सदस्य इस बात को समझते नहीं हैं। उनमें जो सब से अधिक कर्मनिष्ठ हैं, वे इसी तरह धीरज के साथ काम कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, श्रीमती गोशी बहिन कप्टेन को ही लें। बंबई में वे अपनी गांधी-सेवा-सेना की दूकान चला रही हैं। वहां हाथ के पिसे आटे और बिना कुटे चावल की माहवारी बिक्री के आंकड़े अब भी कुछ सौ से ऊपर नहीं गये हैं पर इससे उनके उत्साह में जरा भी कमी नहीं आई है। 'सुप्रसिद्ध सॉलिसिटर श्रीयुक्त-- हमारी दूकान में चावल खरीदते हैं,' उन्होंने कहा, 'और मुझे इसमें संदेह नहीं कि हम धीरे-धीरे ही सही, पर प्रगति जरूर कर रहे हैं। हम अपने रसोड़े में--यह याद रहे कि उस रसोड़े में जहां अभी कुछ ही समय पहलेतक पश्चिमी तरीके से हरेक चीज पकाई जाती थी--बिना कुटा चावल ही काम में लाते हैं, और हम सोयाबीन का भी उपयोग करते हैं। पर यह कोई अचरज में डालनेवाली बात नहीं है। मेरे एक डाक्टर मित्र तो २० बरस से बिना कुटा ही चावल खाते हैं, और बिना कुटे चावल तथा दूसरे विज्ञान-शुद्ध आहार पर पले-पुसे उनके बच्चों के चेहरे सुर्ख गुलाब-से दीखते हैं। आहार के पोषण का उन्होंने खूब गहरा अध्ययन किया है, और बंबई-अहमदाबाद-जैसे बड़ी-बड़ी मिलोंवाले और घनी आबादी के शहरों के मजदूरों की तरफ वे अब ध्यान दे रहे हैं। वे इस विचार में हैं कि उनके अस्थिपंजर-जैसे शरीरों को सुधारने में कुछ योग दिया जाय। डॉक्टर तिलक की तरह उन्होंने भी एक योजना बनाई है, जिससे मजूरों को युक्ताहार मिलता रहे, और आज जितना पैसा खाने-पीने में वे खर्च करते हैं उससे अधिक न खर्चना पड़े। उन्हें खुद इस बात का पता नहीं कि इस प्रयत्न में उन्हें सफलता मिलेगी या नहीं, और मिलेगी तो कब मिलेगी। पर उनका यह विश्वास है कि जितना अपने से हो सके उतना तो करना ही चाहिए।' श्रीमती गोशी बहिन अपने साथ कुछ जापानी खिलौने भी लाई थीं। अपने एक मित्र से, जो अभी-अभी जापान से आये हैं, संघ के सदस्यों को दिखाने के लिए उन्होंने ये खिलौने मांग लिये थे। इन छोटी-छोटी चीजों में खासी सुन्दर कला थी। सादी बांस की खपच्चियों और दियासलाई की जैसी लकड़ी के ये खिलौने थे। गोशी बहिनने खिलौने दिखाते हुए कहा, 'क्या अच्छा हो कि इस किस्म का गृह-उद्योग हम अपने गांवों में दाखिल कर सकें। हमारे यहां हर तरह की लकड़ी, घास और बनस्पतियां भरी पड़ी हैं। मैं यह नहीं कहती कि हम इन जापानी खिलौनों की नकल करें, लेकिन लोगों को हम यह सिखावें कि गांवों के नजदीक मिलनेवाली चीजों में से ही, घर में बैठे-बैठे ही वे ऐसी सादी कारीगरी की चीजें बनावें और उनके द्वारा अपने राष्ट्र की कला-वृत्ति प्रगट करें।'

[२३३वें पृष्ठ के पहले कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, ६ सितम्बर, १९३५

एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव

गत सप्ताह अखिल भारतीय ग्रामउद्योग-संघ के व्यवस्थापक-मंडल की यहां जो बैठक हुई थी, उसमें पूरे दो दिन अच्छी तरह चर्चा होने के बाद सर्वसम्मति से नीचेलिखा प्रस्ताव पास हुआ —

"चूंकि मरे हुए या मरनेवाले उद्योगों के पुनरुद्धार को प्रोत्साहन देकर ग्रामीण जनता की नैतिक और आर्थिक उन्नति करना संघ के उद्देश में आता है, इसलिए व्यवस्थापक मंडल यह चाहता है कि संघ की प्रबंध के नीचे तैयार होनेवाली या बिकनेवाली तमाम चीजों के लिए हरेक मजदूर स्त्री या पुरुष को कम-से-कम अमुक मजदूरी मिलनी ही चाहिए— इस नियम से हिसाब लगाकर, कि आठ घंटे अच्छी तरह काम करने का पैसा उसे इतना मिलना चाहिए कि जिससे वैज्ञानिक रीति से निश्चित आहार की कम-से-कम आवश्यकताओं के परिमाण के मुताबिक उसका पोषण हो जाय। और संघ से जिनका संबंध है, उन सब का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे इस बात को देखते रहें कि जिन उद्योगों को उन्होंने प्रोत्साहन दिया है उनमें लगे हुए कारीगरों या मजदूरों को इस प्रस्ताव में निश्चित परिमाण से कुछ कम पारिश्रमिक तो नहीं मिल रहा है। और वे यह भी ध्यान में रखें कि ज्योंही और जब परिस्थितियां अनुकूल हों, त्योंही इस परिमाण को धीरे-धीरे बढ़ाते जायें, ताकि अंत में वह उस सीमा को पहुँच जाय, जिससे काम करनेवाले कुटुंबियों की कमाई से कारीगर के कुटुंब की ठीक-ठीक परवरिश होती रहे।"

अगर इस प्रस्ताव पर ईमानदारी के साथ अमल किया जाय तो यह हो नहीं सकता कि इसके बड़े-बड़े प्रभावकारी परिणाम न आवें। सभी श्रमजीवी वर्गों के साथ, आया वे मजदूर हों या कारीगर, यह देरी से ही किया गया न्याय कहा जायगा। उनकी जीविका के लिए कितना पैसा दिया जाय इसका ठीक-ठीक आंकड़ा ढूंढ निकालना मुश्किल काम मालूम हो रहा है। संघ के सदस्यों और एजेंटों को ये तीन तरह के नकशे तैयार करने पड़ेंगे —

(१) आज भिन्न-भिन्न प्रांतों में, अलग-अलग क्षेत्रों में मजदूरी करनेवाले स्त्री और पुरुष अपने काम से प्रति घंटा कितना पैसा कमाते हैं ?

(२) मजदूरों का उनके अपने प्रदेश में नित्य का आहार क्या है, और उस आहार पर उनका कितना पैसा खर्च होता है ?

(३) उस-उस प्रांत में पैदा होनेवाली जिंसों में से, वैज्ञानिक पैमाने का, कम-से-कम कितना आहार आवश्यक है इसका विशेषज्ञों-द्वारा तैयार किया हुआ नकशा और उस आहार की कीमत।

मुझे जो आंकड़े मिले हैं उनसे यह प्रगट होता है कि पंजाब को छोड़कर बाकी सारे हिन्दुस्तान में जनसाधारण को जिस आहार पर गुजारा करना पड़ता है उससे शरीर का काफी पोषण नहीं हो सकता।

'कम-से-कम आहार के पैमाने' के विषय में डॉ० तिलक की 'बेलेंस्ड डाइट्स'(युक्ताहार) नाम की एक छोटी-सी पुस्तक सबसे अधिक सहायक हो सकती है। इसकी कीमत चार आना है। 'बेबी एण्ड हेल्थ वीक असोसियेशन' (डिलाईल रोड, बम्बई नं ११) ने यह पुस्तक डॉ० तिलक से तैयार कराई है। मूल पुस्तक अंग्रेजी में है। मराठी और गुजराती में भी इसका अनुवाद हो गया है। इस पुस्तक में जिस आहार की सिफारिश की गई है, उसमें समूचा अनाज (कुछ अनाजों को भिगोकर अंकुरे फूट आने के बाद खाना) सोयाबीन, मलाई उतरे हुए दूध का चूर्ण और साग-भाजी इतनी चीजें आती हैं। एक सफेद चूहे को खूब कुटे हुए पॉलिशदार चावल और बहुत ही थोड़े साग और दूध के आहार पर रखा गया, तो उसका वजन १३ ग्राम था। उसी चूहे को जब उपर्युक्त 'युक्ताहार' दिया गया, तो उसका वजन बढ़ते-बढ़ते ५५ ग्रामतक पहुँच गया। इस पुस्तक में जिस आहार की सिफारिश की गई है, उसका निर्णय खूब सावधानीपूर्वक अनेक प्रयोग करने के बाद किया गया है। इस आहार पर बम्बई में ५) खर्च होता है। इसमें मुझे शंका है कि बम्बई-जैसी जगह में भी गरीब मनुष्य के आहार में सोयाबीन और मलाई उतरे हुए दूध के चूर्ण का समावेश किया जा सकता है या नहीं। दाल वगैरा को भिगोकर उसमें अँकुरे फूटने के बाद खाने की डॉ० तिलकने जो सिफारिश की है, यह चीज भी खानगी घरों में मुश्किल है। गावों में तो इस चीज का दाखिल करना असम्भव ही है। मलाई उतरा हुआ दूध (जिसे 'सेपरेटे' मिल्क कहते हैं) गावों में मिलता नहीं। और मुझे इस बात का पता है कि सैकड़ों गावों में ताजे दूध या अच्छे घी की एक बूंद भी दुर्लभ है। मैं इन कठिनाइयों का उल्लेख इसलिए कर रहा हूं कि निष्णात लोग डॉ० तिलक के तैयार किये हुए इस आहार-परिमाण के आधार पर अपने-अपने प्रान्त के गावों के लिए ऐसा पैमाना ढूंढ निकालें जो वहां के लिए अधिक अनुकूल पड़े, और जिससे वही परिणाम निकलें, जो परिणाम डॉ० तिलक-द्वारा निश्चित किये हुए आहार के आये कहे जाते हैं। जबतक ग्राम-सेवक अपने प्रभाव में आनेवाले मजदूर या कारीगर को उसके तथा उसके आश्रितों के लिए यथेष्ट आहार मिलने के साधन नहीं जुटा देते, तबतक हमें सन्तोष नहीं होना चाहिए। हमारे लिए यह सबसे पहले ध्यान देने की बात है कि माल पैदा करने के काम में लगे हुए मजदूर या कारीगर इतना पैसा कमा सकें कि जिससे उनकी ठीक-ठीक जीविका चल सके। चीजों की कीमत घटाने का विचार हमेशा गौण रहना चाहिए। हमें मशीनों के जरिये बने हुए विदेशी या देशी माल के मुकाबले में प्रतिस्पर्धा करने का विचार ही मन से निकाल देना होगा। यह स्थिति आनी ही नहीं चाहिए कि भाप या बिजली की ताकत से चलनेवाली मशीनों के जरिये माल तैयार कराने में थोड़े-से मनुष्यों को लगाकर उन्हें जरूरत से ज्यादा पैसा मिले और इस वजह से करोड़ों मनुष्य भूख की चक्की में पिसते रहें। छोटे-छोटे उद्योगों को राज्य का सरक्षण तो प्राप्त है नहीं, इसलिए लोकमत ऐसा तैयार कर देना चाहिए कि देश के श्रमजीवियों का शोषण कोई करे ही नहीं।

बिक्री की खादी उत्पन्न करने के काम में जो खादी-सेवक लगे हुए हैं उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि जो बात दूसरे ग्राम-उद्योगों में लागू होती है, वह बिक्री के लिए उत्पन्न की हुई खादी में भी उतनी ही लागू पड़ती है। कतैये से लेकर बुनकरतक खादी के सभी मजदूर कारीगरों को प्रस्तुत प्रस्ताव में निश्चित की हुई मजदूरी तो मिलनी ही चाहिए।

'हरिजन-बंधु' से] मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

[२३१वें पृष्ठ से आगे]

इसी तरह अकेले ही काम करनेवाले एक सदस्य और हैं, और वे डॉ० प्रफुल्ल घोष हैं। कलकत्ते की टकसाल मे इन्हें अच्छी खासी तनखाह मिलती थी। १९२० में अगर उन्होने यह नौकरी न छोड दी होती तो आज वे सरकारी टकसाल के सबसे बड़े अफसर होते। पर अब तो वे अपना सारा वैज्ञानिक ज्ञान दरिद्रनारायण की सेवा मे अर्पित करने का प्रयत्न कर रहे है। आज तो वे बगाल के गाव-गाव में जाकर ग्रामो के पुनरुद्धार का सन्देश पहुँचा रहे है, और जो फुर्सत का समय मिलता है उसमे 'विटामिन' और आहार-विज्ञान का अध्ययन करते हैं। मनुष्य के खानेलायक तेलो का भी उन्होने अध्ययन किया है, और 'हरिजन' के पाठको को उनके इस विषय के लेख कुछ दिनों में पढने को मिलेंगे। उन्होंने कहा, 'विटामिन के सम्बन्ध मे ऐसे लेख लिखने का मेरा विचार है, जिन्हे आम लोग समझ सके। हम अबतक यह मानते थे कि हमारे शरीर के पोषण मे विटामिन बहुत महत्वपूर्ण भाग लेते है, पर विटामिन तत्व जिन चीजो मे रहते है उनमे वे ऐसे ओतप्रोत हो गये है कि न तो हम उनका पता लगा सकते थे और न उन्हे अलग ही कर सकते थे। अब मैं आपसे कह सकता हूँ कि विटामिन ए, बी, सी और डी को तो अलग कर लिया गया है, और उसके बाद उन्हे मिलाया भी गया है। उनका पृथक्करण और सयोजन दोनो ही हो सकते है। अन्य विटामिनो के सम्बन्ध मे हमे अभी बहुत कम ज्ञान है। किन्तु जिन चीजो मे वे रहते है उनसे अलग किये हुए पदार्थ के रूप मे हमे वे विटामिन मिल सकते है।'

कम-से-कम पेट भरनेलायक मज़दूरी

बोर्ड की बैठक में सबसे महत्व का प्रश्न जो उपस्थित हुआ वह मजदूरों व कारीगरों को कम-से-कम पेट भरनेलायक मजदूरी देने के सबध का था। कत्तिनों को इसी तरह की मजदूरी देने के प्रश्न पर तमाम खादी-सेवक विचार कर रहे है, पर अभी यह नही कहा जा सकता कि यह प्रश्न हल हो गया है। मगर ग्राम-उद्योग संघ के सामने जो प्रश्न है वह कुछ सरल है, क्योकि उसके लिए क्षेत्र नया है और कुछ गृहउद्योगो का तो हमे 'एकना एक' से श्री गणेश करना है। इस प्रश्न पर सघ के सदस्योने दो दिन खूब तसल्ली के साथ चर्चा की। और इस एक बातपर तो सभी एकमत मालूम पड़े कि हम जिन मजदूरो और कारीगरो से काम लें उन्हे इतनी तो मजदूरी मिलनी ही चाहिए कि उससे उन्हे वह आहार मिलता रहे जिसे हम 'युक्ताहार' कह सके। यह दूसरा सवाल है कि बिहार मे यह आहार ~)॥ में पडता है, गुजरात मे ।) मे पड़ता है और बबई में ।=) मे; यद्यपि हमें इस धोखे मे नही पड़ना चाहिए कि वहां भी आज गरीब-से-गरीब आदमी रूखी सूखी रोटी और नमक की डली खाकर जी रहा है, इस आहार से वह कुछ मर नही गया है। यह आहार ऐसा नही है कि कम-से-कम इसे खाकर मनुष्य बारह महीने संतोषजनक रीति से काम कर सके। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि युक्ताहार का पैमाना हरेक प्रात के लिए निश्चित करना चाहिए, और उसमें यह ध्यान रखना चाहिए कि मजदूर स्त्री या पुरुष सभी को आहार में दूध, घी और विटामिन काफी मात्रा में मिलना ही चाहिए। गांधीजीने कहा, 'अगर हमें यह मालूम हो जाय कि कम-से-कम इतनी मजदूरी देकर कोई उद्योग चल ही नही सकता, तो यह बेहतर होगा कि हम अपना काम बंद करदे। हम जो भी उद्योग हाथ में लें उसमें उचित आजीविकायोग्य मजदूरी तो हमें देनी ही चाहिए।'

डॉ० प्रफुल्ल घोषने कहा, 'मैं जब सरकारी अफसर था और मुझे तनखाह मिलती थी, तब मैं यह हिसाब लगाया करता था कि मेरे नौकरो और उनके आश्रितो को उनके ठीक-ठीक निर्वाह के लिए कितने पैसे की जरूरत होगी, और उतनी तनखाह मैं उन्हे देता था। यह हिसाब २०) महीने का पडता था। और कपड़े और दूसरी जरूरी चीजें जोड़ने से ३०) तक पहुँच जाता था।'

गाधीजीने हसते हुए कहा, 'तो आप चाहें तो मजदूरी की दर बगाल मे कम-से-कम एक रुपया रोज रखे। जो आप बतौर सरकारी अफसर के करते थे, वह अब बतौर संघ के सदस्य के कीजिए। मै तो यह अवश्य चाहता हू कि मजदूरी की दर जहातक हो सके उतनी ऊची रखी जाय और उससे कम-से-कम एक आश्रित के भरण-पोषण की समाई तो हो ही जाय। पर आप जिस हदतक जा सके वहातक जावें।'

श्री वैकुठ महेता प्रातीय कोऑपरेटिव बैंक के मेनेजिंग डायरेक्टर हैं। उन्हे तो इसमें तनिक भी शंका नही थी कि इस प्रश्न को हम जितनी ही जल्दी हल कर डालें उतना ही हमारे लिए अच्छा होगा। क्योकि जब बड़ी-बड़ी मिलो के उद्योगो में मजदूरों को पर्याप्त मजदूरी देने और उनसे पूरा काम लेने का आग्रह रखा जाता है, तब छोटे-छोटे उद्योगो म भी इन प्रश्नो पर ध्यान देना हमारा कर्तव्य हो जाता है। कठिनाइया तो स्पष्ट ही है, पर उन्हे इसमें तनिक भी संदेह नही था कि लोगों को जब यह बतला दिया जायगा कि सघ की देखरेख मे बनी हुई चीज खरीदने मे जो वे एक रुपया खर्चते हैं उसमें का ९० प्रतिशत सीधा उस चीज के उत्पादक के खीसे में ही जाता है, तो लोग उतना पैसा देने मे कोई हिचकिचाहट जाहिर नही करेगे।

श्री शंकरलाल बैंकरने इस बात पर जोर दिया कि युक्ताहार के लिए जो कम-से-कम चीजें आवश्यक है उनकी मुख्तलिफ प्रांतों म क्या कीमत पडती है इस संबध के आकडे इकट्ठे करने चाहिए। पर मौजूदा उद्योगों में मजदूरी का यह सवाल लागू करने मे उन्हे कुछ कठिनाई मालूम पडती थी।

गाधीजीने यह स्पष्ट कर दिया कि हम तो उन्ही उद्योगो को जो मर गये है या मरनेवाले है, जिलाने का प्रयत्न कर रहे है, इसलिए हमारा सबध तो सिर्फ उन्ही उद्योगो से है, और आज जो उद्योग चल रहे है उनमे हम विक्षेप नही डालना चाहते। कम-से-कम मजदूरी की दर निश्चित करने से, ग्रामवासियों की आज जो दशा है क्या उनकी उससे भी खराब हालत हो जाने की सभावना है? ग्रामवासियो को मिट्टी के बासन और दिये वगैरा जिन छोटी-छोटी चीजो की नित्य जरूरत पड़ती है उनके बारे मे आप क्या कहेगे? शहर के लोग चूकि इन चीजो के ज्यादा दाम देते हैं, इसलिए ग्रामवासी भी उनकी ज्यादा कीमत दे? शहरों के पास के गावो को तो आज भी दूर के गावों की अपेक्षा दूध के लिए ज्यादा पैसा देना पडता है। इन प्रश्नों के उत्तर में गाधीजीने कहा, 'यह तो होगा ही, इसका कोई उपाय नहीं। पर ग्रामवासी आपस मे खुद ही भाव निश्चित कर लेगे। और जब हमारा सगठन अच्छी तरह चलने लगेगा, तब कुम्हार से कम-से-कम दरवाली कीमत पर मिट्टी के बासन-भाड़े लेनेवाले सुनार, लुहार, बनकर

और कतैये को अपने भी हरेक माल के लिए उसी प्रकार की दर से पैसा मिलेगा, और इससे उन्हे गरीब कुम्हार को उसके माल की उचित कीमत देने मे कोई हिचकिचाहट मालूम नही होगी । पर यह तो अभी दूर का ध्येय है । अभी हाल तो गांवो से शहरों मे जानेवाली चीजों के सम्बन्ध मे इतना करके हमे संतोष मानलेना चाहिए । कम-से-कम पेट भरनेलायक मजदूरी की कीमत से कम भाव से हमें किसी मजदूर या कारीगर की चीजे नही खरीदनी चाहिए ।'

एक उदाहरण

इस नये नियम का अमल किस प्रकार होना चाहिए इसका एक उदाहरण लीजिए । खेडा जिले मे एक सहकारी मित्र ग्राम-उद्योग-संघ का काम कर रहे है । उन्हे गाधीजीने जो पत्र लिखा है उसका सार मै यहा दे रहा हूं । यह मित्र हमें कभी-कभी जरूरत होती है तब गाय का घी भेज देते है । उन्होने गाधीजी से पूछा कि 'खेती के साथ-साथ क्या मै एक पूरक उद्योग के रूप में लोगो से घी बनवाने का काम शुरू करदू और उसीमे अपना सारा ध्यान लगादू ? और अगर आप अनुमति दे तो यह काम मुझे किस तरह करना चाहिए ?'

गाधीजीने उन्हे इस आशय का उत्तर लिखा है—"अगर आप वहा गाय का अच्छा और शुद्ध घी बनवा सके तो जरूर इस काम मे आप अपना सारा ध्यान लगा दे । आपको पहले इस बात का खूब अच्छी तरह पता लगा लेना चाहिए कि घी बनानेवाले को इससे गुजरलायक पैसा मिल सकेगा, या नही । हमे अपने मजदूर वर्ग के जीवन में प्रवेश करना है । वे क्या खाते है क्या पीते है और किस तरह रहते है और उनके ऊपर कितना कर्जा है आदि बातो का हमे ठीक-ठीक पता लगाना है । इस तरह आप घी का जो नमूना मुझे भेजे उसका पूरा इतिहास आप मुझे बतला सके इतनी जानकारी तो आपको होनी ही चाहिए । आपकी दूकान में एक ऐसा रजिस्टर होना चाहिए, जिसमे इतनी बातो का तफसीलवार उल्लेख रहे (१) घी बनानेवाले का नाम और ठिकाना, (२) घी बनाने मे कुल कितना समय लगा, (३) कितने दूध से उतना घी बना, (४) घी की कीमत, (५) घी बनानेवाले को प्रति घटा कितनी मजदूरी मिली, (६) गाहक के पास माल पहुँचानेवाले व्यापारी की कमाई और गाडी-भाड़ा वगैरा । हरेक चीज के ऊपर, जो आप अपनी दूकान मे बेचे, उसके इतिहास की तफसीलवार चिट होनी चाहिए । जो आदमी वह चीज खरीदेगा उसे उस चिटके मांगने का हक है । आपको यह तो कहना ही नही चाहिए कि 'यह सब काम तो जी उकतानेवाला है, और मुझे इसके लिए समय नही ।' एकबार यह काम आरम्भ कर दिया कि वह नित्य का एक साधारण काम हो जायगा, और उसमें अधिक समय खर्च नही होगा । ग्रामउद्योग संघ कम-से-कम मजदूरी की चाहे जो दर निश्चित करे, पर आप तो किसी भी आदमी को प्रति घटा आध आने मे कम मजदूरी दीजिए ही नही । यह आसानी से हो सकता है । यह हिसाब निकालिए कि अमुक चीज के बनाने मे कितने घटे लगते है, और तब उसकी मजदूरी और कीमत लगाइए । उदाहरण के लिए, साधारण कतैये को १५ नम्बर का ४०० गज सूत कातने मे एक घटा लगता है । इसलिए आप १५ नम्बर के मजबूत और यकसां सूत की कताई की मजदूरी उसे आध आना दीजिए ।"

'हरिजन' से] **महादेव ह० देशाई**

'तकली कैसी कातें ?'

ग्राम-सेवा-मडल, वर्धाने 'तकली कैसी कातें ?' नाम की एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित की है । तकली चलाने के जुदे-जुदे आसनो के तीन चित्र हैं, खादी कागज पर छपी है, और कीमत एक आना है ।

तकली के अनन्य उपासक श्रीविनोबाजी 'प्रस्तावना' मे लिखते हे —"खादी-आन्दोलन मे तकली का एक खास स्थान है । आज तो तकली की गति में आश्चर्यजनक प्रगति होने के कारण तकली 'वस्त्रपूर्णा' देवी बन गई है । हिंदुस्तान में हरेक आदमी को औसतन १४ गज कपडे की आवश्यकता होती है । इतना कपड़ा रोज आध घटा तकली कातने से बन सकता है ऐसी आज की स्थिति है । शुरू-शुरू मे एक समय ऐसा था, जब आध घटे मे ५० तार कात लेना कुतूहल का विषय था । अब तो तकली इससे चौगुना भी कात सकती है । दुगुना तो मामूली गति से कातनी है ऊपर जो १४ गज का हिसाब किया गया है, वह इसी मामूली गति के अनुसार है । 'जहा मैं जाता हू वही तू मेरा साथी है'—यह जो साधु तुकारामजीने ईश्वर के लिए कहा है वही तकली के विषय मे भी सच है । तकली का ऐसा मनोहर और स्नेहभरा स्वरूप है । है तो वस्तु छोटी-सी, पर उसकी महिमा विशाल है । तकली हमारे आंदोलन का 'रामनाम' है । करोड़ों को वह आसरा देगी ।"

वस्त्रपूर्णा तकली देवी की उपासना की संपूर्ण विधि इसमे आ गई है । तकली कातने के आसन, तकली की सरल साधन-सामग्री, कलाई और बटाई की विधि, तार न टूटने का उपाय, तार लपेटने का ढंग, सूत उतारना, उसकी अटी बनाना आदि सभी विषय इस छोटी-सी पुस्तिका मे आ जाते हे ।

'कितने सूत का कितना कपडा' तैयार होगा इसका एक नकशा अत मे दिया हुआ है, जो खादी-प्रेमियो के लिए रसदायक वस्तु है—

सूत का नं०	अर्ज व लंबाई	सूत का वज़न पौंड में	लच्छी
१२ (कुर्ते का कपडा)	३६×१०	३।	३९
१४ (धोती)	४५× ८	२।।।	३८
१६ ”	५०× ९	३	४८
२० (साडी)	४५× ८	२	४०
२५ ”	५०× ९	२	५०
२८ से ३०	५०× ९	२	५६

[नोट—४ फीट=१ तार; १६० तार=१ अटी, ४ अंटी अर्थात् ६४० तार=१ लच्छी]

पुस्तक के अत मे, आध घटे मे तकली की गति का एक नकशा दिया हुआ है, जिसमे यह दिखाया गया है कि वर्धा-आश्रम में अधिक-से-अधिक तकली की गति आजतक कहांतक पहुँची है :—

पुरुष वर्ग

उम्र	तार	नंबर
८	७८	१२
१६	२०२	१२
१९	२२३	११।।।
२१	२०६	१९
३३	१४९	१३
६५	१३५	१४

स्त्री वर्ग

उम्र	तार	नंबर
८	७७	१२
१०	१३०	१२
१७	१८७	२०
१९	१७८	१६
२८	१३०	१४

तकली की यह आश्चर्यजनक गति है । पुस्तक में दी हुई उपयोगी सूचनाओं से हरेक खादी-प्रेमी काफी लाभ उठा सकता है ।

श्री विनोबाजी के कथनानुसार 'इन उपयुक्त सूचनाओं का उपयोग करके जो कोई तकली हाथ में लेगा उसके जीवन मे वह परिवर्तन कर देगी।'

कि० ह०

महाराष्ट्र के तीन खादी-केन्द्र

[गतांक से आगे]

एक बूढ़े पर चतुर जुलाहेने हमसे अपनी जवानी का जिक्र करते हुए उस समय की खादी और रँगाई का बड़े गर्व के साथ बयान किया, और अन्त मे एक लम्बी सास लेकर वह बोला—"भैया, कोई पन्द्रह साल पहलेतक हम जगल की इन जड़ियो से अपनी जरूरत का रँग बना लेते थे। उसमे मेहनत तो खूब होती थी, पर फल भी उतना ही अच्छा मिलता था। उस रँग के रँगे हुए कपड़े का रँग, कपड़ा तार-तार होनेतक बना रहता था। उसकी तो चमक ही निराली होती थी—अब वह बात ही कहा? कमनसीबी हमारी थी कि सरकारवालों से हमारा यह सुख देखा नही गया। उन्होने छाल का रँग बनाने के लिए हमारे प्रत्येक घर पीछे तीन रुपये का सालाना कर लगा दिया! हमारी हिम्मत टूट गई। हमने वह काम ही बन्द कर दिया। अब फिर कुछ-कुछ शुरू हुआ है। भैया, क्या करे, इस दुनिया मे गरीबो का कोई बेली नही, नही तो आसमानी और सुलतानी दोनो जरियो से आज जो मुसीबत हमें उठानी पड़ती है, वह भला क्यों उठानी पड़ती? मेहनत से हम दिल नही चुराते, लेकिन मजबूरी से मरे जाते हैं!" मैं नीचा सिर किये उनकी यह करुण-कहानी सुनता रहा। मजबूरी तो मेरे भी पाले पड़ी थी, मैं और करता ही क्या?

इस गाव के प्राय सभी जुलाहे खादी के महत्त्व को समझते हैं। उनका कहना है कि हाथ के सूत के मुकाबले मे मिल का सूत जल्दी बुना जाता है, पर इससे क्या? वह हमारा पोषण तो नही कर सकता। हम लोग न उसे खरीदते हैं, न बुनना चाहते हैं! इस तरफ खादी और मिल के सूत की बुनाई की दर एक ही है। एक कर्घे पर अपनी सारी क्रियाओं के साथ खादी का एक थान ३ दिन मे बनकर तैयार हो जाता है। ये लोग अपने कर्घों पर २७", ३६", ४०", ४५" इच अर्ज का कपडा बुनते हैं। लम्बाई ८ से १२॥ गजतक होती है।

तुंगड़ा के महार-परिवार अपने खेतों मे अपनी जरूरत की तम्बाकू भी बोते है और स्त्री-पुरुष, बच्चे प्राय सभी आवतन तम्बाकू खाते या पीते है! तम्बाकू के इस व्यसन से उन्हे छुड़ाना कार्यकर्त्ताओं के मीठे स्वभाव और निरंतर प्रयत्न पर निर्भर है। आशा है, इस ओर प्रयत्न होगा।

यहां की दूसरी विशेषता चीजो की बदलौवल है। सिक्के की अपेक्षा लेन-देन के काम में कपास का चलन ज्यादा है। कपास के बदले में पसारी की दूकान से आप बहुतेरी चीजे खरीद सकते है। और प्राय सभी चीजें अधिकतर कपास के बदले में बराबरी से मिलती है—नमक, 'बगड़', भुने हुए चने, गुड़, जुवार आदि कपास के बदले में आप खुशी से खरीद सकते है! इस रिवाज के कारण गरीबो को कुछ सहूलियत-सी रहती है। पैसा प्रायः उनकी गाठ में नही रहता, इसलिए जरूरत की चीजें वे इसी तरह खरीद लिया करते है। पंसारी को इस तरह जो कपास मिलता है, उसे या तो वह बेच देता है, या जुलाहों को देकर उसकी खादी बुनवा लेता है। पर आज अधिकतर तो वह बेचता ही है।

सिक्का यहां हैदराबादी (निजाम) चलता है, जो कलदार अँग्रेजी सिक्के से मूल्य में कम होता है। कलदार १) के बदले हैदराबादी हाली का १) और ≈)॥ मिलते है। पाई से लेकर रुपये और मोटतक सब सिक्के हैदराबाद के अपने है। निजाम स्टेट की रेल का टिकट भी हैदराबादी सिक्को से ही खरीदना पड़ता है। निजाम राज्य की हद मे घुसते ही और सब सिक्के बेकार हो जाते हैं।

तुगड़ा मे हमने दो बूढ़े बुनकरो के पास घण्टो बैठकर बातें की। सुख-दुःख और धूप-छाह की अनेक बाते हुई। उन्हे हम में विश्वास हुआ। हम उनको निकट से देख सके। उनकी सरलता, स्वाभिमान और सहज प्रेम की निर्दोष बातें सुनकर हम गद्गद हो गये, और उनकी घोर गरीबी का प्रत्यक्ष दर्शन करके मन-ही-मन रोये। आप खयाल तो कीजिए—५ मनुष्यो का एक परिवार टूटी-फूटी झोपड़ी, पर अन्दर से साफ लिपी-पुती, व्यवस्थित। घर की सारी सम्पत्ति ८—१० पुराने, कुछ टूटे-फूटे, कुछ साबूत मटके, तेल का एक शीशा, तीन सीके, अलगनी पर कुछ मैले फटे चीथड़े और दो खटियां—इतनी ही चीजो की थी। धातु का घर मे एक भी बर्तन नही। पेटी और सदूक का नामतक नही। ओढने-बिछाने का कोई सामान नहीं! हमने हाल ही में ब्याहे हुए एक नौजवान पति-पत्नी की सूनी कुटिया भी देखी—वे बेचारे मजदूरी पर गये थे। लिपाई-पुताई और सुघराई में आदर्श—मन चाहे कि वही बैठ रहे—पर कुटिया में सामान के नाम इनी-गिनी चीजें। वही तीन-चार मटके, एक खटिया और कुछ चीथड़े। कोने मे चूल्हे पर एक हँडिया रखी थी, जिसमे जुवार का दलिया, जो इधर 'आंबील' कहलाता है, पककर ठण्डा हो रहा था। न कोई थाली कटोरी थी, न नमक-मिर्च पीसने का साधन था। ८), १०) की झोपड़ी और २॥), ३) रुपयो की घर की सम्पदा! स्थावर और जगम सभी कुछ! दोनो घरो में चर्खे और कर्घे बेकार पड़े थे, क्योंकि एक में बूढा बाप बुढापे के कारण मजबूर था और दूसरे मे नौजवान पति-पत्नी मजदूरी करके पेट भरने के लिए मजबूर थे। बूढा अपने फुरसत के वक्त मे बैठा चर्खा काता करता है और रह-रहकर तम्बाकू की फकी लगाकर सारा दिन अपने आस-पास पीक की गंदी पिचकारियां छोड़ा करता है। दिनभर नाती-पोते इर्द-गिर्द सेवा करते है, पर उस गरीब को इस गन्दगी मे न नफरत है, न उससे होनेवाली हानियों का कोई खयाल ही है!

जाड़ा और बारिश इन गरीबो के लिए पूरी तपस्या के मौसिम हैं। जाड़े मे बदन पर जो कुछ होता है, बहुतों के वही ओढन और वही बिछावन रहता है। बच्चे एक-दूसरे से चिपटकर आच के पास सो जाते है। मा-बाप जबतक सो सकते हैं, सोते है, नही, उठकर सारी रात आंच के पास बैठे काता करते हैं। बारिश की भी यही दर्दनाक कथा है। क्या यह पत्थर को पिघलाने और वज्र को झुकाने-जैसी करुण-कहानी नहीं है? पर हम तो आज पत्थर और वज्र से भी गये-बीते है—हम पर इन गरीबों की इस दुर्दशा का कोई असर नही। विधि की कैसी विडम्बना है। मैं तो मानता हूँ कि इन गरीबो का ही यह पुण्य और पुरुषार्थ है कि जिसकी साख पर आज भारतमाता जी रही है। घण्टों की बात-चीत के बाद इन सरल और भोले भाइयों से बिदा लेकर हम सवर्णों के मुहल्ले में गये और वहा एक व्यापारी से मिले।

बारेगुडा आते समय ही हमे रास्ते मे पता चला था कि इधर कुछ महीनो से निजाम राज्य मे कपडे की दो मिलें चालू हो गई है, और उनका कपडा राज्य के गावो मे फैलने लगा है। मिल-व्यवसायियो की नीति और मिल के कपडे के कारण देश मे खादी की प्रगति और खादी-सबधी गृहउद्योगों की उन्नति में जो बाधाएँ प्रस्तुत होती रही है, उन्हे यहा दोहराने की कोई आवश्यकता नही मालूम होती। और खासकर उन स्थानो मे, जहा आज भी लोग परम्परागत रिवाज के कारण दूर देहात मे चर्खे और कर्घे के आधार पर अपना जीवन बिता रहे हैं, मिल के कपडे के कारण जो बरबादी हो रही है, वह तो गरीबो के लिए असह्य ही है। जब तगडा मे हमे पता चला कि वहा के एक कोमटी की दूकान पर वारगल मिल का कपडा बिकता है, तो हम उसे देखने के लिए उधर गये। रहनुमाई के लिए जो जुलाहा हमारे साथ अपने मुहल्ले मे हो लिया था, वह दूर ही से हमे व्यापारी की दूकान बतलाकर चुपचाप वापस लौट गया। उसके चेहरे पर आतक और और भय के से भाव छा रहे थे। बाद में हमें मालूम हुआ कि वह इस व्यापारी का कर्जदार था और उसके सामने आना नही चाहता था।

काशिनाथ त्रिवेदी

ग्रामउद्योगसंघ के बोर्ड की बैठक

२२ व २३ अगस्त, १९३५ को मगनवाडी, वर्धा मे ग्राम-उद्योग-संघ के व्यवस्थापक-मडल की जो बैठक हुई थी, उसके कार्यविवरण में से निम्नलिखित अश दिये जाते है —

बोर्ड की २० जून, १९३५ की बैठक के बाद अबतक सघ मे ४६ साधारण सदस्य दाखिल हुए।

३ फरवरी, १९३५ को जो प्रस्ताव पास हुआ था, उसके अनुसार कुमिल्ला के डॉ० नृपेन्द्रनाथ बोस एजेण्ट नियुक्त किये गये, और उन्हे इस सम्बन्ध का पत्र भेज दिया गया है।

बोर्ड की गत बैठक के बाद अबतक ८ और एजेण्ट नियुक्त किये गये है। एक एजेण्टने त्याग-पत्र दे दिया है।

बोर्ड की गत बैठक के बाद अबतक ८ दूकानो को प्रमाण-पत्र दिये गये है। एक दूकान बद हो गई है।

एक सबद्ध सस्थाने काम करना बंद कर दिया है।

अबतक सघ के सगठन का यह विवरण है :—

३९८ साधारण सदस्य
२५ प्रमाणित दूकाने
६५ एजेण्ट
५ सबद्ध सस्थाएँ

श्रीयुक्त सूरजी वल्लभदास के प्रस्ताव पर संघ के विधान मे निर्दिष्ट साधारण सदस्यता का प्रतिज्ञापत्र निम्नलिखित सशोधित रूप मे स्वीकृत हुआ :—

"मैने अखिल भारतीय ग्रामउद्योग-संघ का विधान और नियम पढ लिये हैं। मै सघ का सदस्य होना चाहता हूँ,और भारतवर्ष की ग्रामीण जनता के सर्वांग हित-साधन का संघ का जो उद्देश है उसे पूरा करने के लिए ईश्वर के सहारे अपनी शक्ति और बुद्धि का यथाशक्ति उपयोग करने की मैं प्रतिज्ञा करता हू।"

ग्रामउद्योगो की प्रदर्शिनियो की स्थायी व्यवस्था के संबंध मे विचार किया गया, और इस सबंध में उठनेवाले तमाम प्रश्नो को भुगताने और इस प्रकार भी प्रदर्शिनियो को विचारों, तजवीजों और सूचनाओ की सहायता देने का काम श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम आसर को सौंप दिया गया।

लखनऊ में कांग्रेस के अवसर पर होनेवाली अखिल भारतीय ग्रामउद्योग-प्रदर्शिनी के सबध में यह निश्चय हुआ कि श्री शकरलाल बैंकर को खादी-प्रदर्शिनी के साथ-साथ इस प्रदर्शिनी का भी प्रबंध-कार्य सोप दिया जाय।

यह निश्चय हुआ कि सघने जिन चीजों के लिए प्रमाण-पत्र दिये हैं, उनकी मासिक बिक्री का विवरण भेजने के लिए तमाम एजेण्टो और प्रमाणित दूकानो को लिखा जाय।

यह निश्चय हुआ कि डा० भारतन् कुमाराप्पा को संघ का सहायक मत्री नियुक्त किया जाय और उन्हे उनके खानगी खर्च के लिए ५०) मासिक देना मजूर किया जाय।

सघ के अधीन काम करनेवाले कारीगरों को देने के लिए कम-से-कम कितनी मजदूरी नियत कर देनी चाहिए इस प्रश्न पर विचार हुआ, और निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ। (यह प्रस्ताव पृष्ठ २३२ मे 'एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव' शीर्षक गांधीजी के लेख मे आगया है।)

बोर्ड की गत बैठक में स्वीकृत १२ वें प्रस्ताव के अनुसार, ग्रामसेवा मे अपना सारा समय लगानेवाले ग्रामसेवको की नियुक्ति के सबध मे नीचेलिखे नियम बनाये गये :—

१ ग्रामसेवक १८ बरस से ऊपर की उम्र का होना चाहिए। जहांतक हो, वह उस गांव का रहनेवाला हो जिस गाव मे उसे काम करना है, या फिर किसी ऐसे पडोस के गाव का रहनेवाला हो जहा से वह पैदल आ-जा सके, अथवा जिस गांव के लिए उसकी नियुक्ति हुई हो उसमे रहना उसे स्वीकार करना चाहिए।

२. अपनी मातृभाषा के मूलतत्वों का उसे कम-से-कम इतना ज्ञान होना चाहिए जिससे वह उसमें स्पष्टरीति से चिट्ठी-पत्री लिख-पढ सके। गणित का भी उसे प्रारभिक ज्ञान होना चाहिए।

३ उसे अपने निजी उपयोग के लिए खादी ही काम में लानी चाहिए, और यदि उसे कोई भी उद्योग न आता हो तो कोई-न-कोई एक उद्योग सीख लेना चाहिए।

४ उसे अपने गाव मे खुद सफाई का काम और ग्रामउद्योगो से सबध रखनेवाला शारीरिक श्रम करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

५. उसे किसी भी मनुष्य को अस्पृश्य अथवा अपने से नीचा नही समझना चाहिए।

६. उसे जब भी जो काम करने को दिया जाय, उसमें उसे अपना सारा समय और ध्यान लगाना चाहिए।

७. उसे अपने कार्यों की मर्यादा और सेवा के नियत काल के सबंध में एक सादा इकरारनामा लिख देना चाहिए।

८ संघ के लिए प्रतिदिन वह जो भी काम करे उसका उसे नित्य नियमित रीति से विवरण लिखना चाहिए, और जब वह कार्य-विवरण देखने को मांगा जाय तब उसे दिखा देना चाहिए।

९ शरीर उसका नीरोगी और मजबूत होना चाहिए।

यह निश्चय हुआ कि जिन स्थानों में एजेण्ट न हों, वहां साधारणतया ऐसे सेवक नियुक्त किये जायें।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

खानगी-खादी उत्पादक चेत जायँ "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 1369.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, १३ सितम्बर, १९३५. [संख्या ३०

विषय-सूची

"हरिजन-दिवस"

[२५ सितंबर, १९३५]

चूंकि सितंबर के अंत में हरिजन-सेवक-संघ को स्थापित हुए पूरे तीन वर्ष हो जायेंगे, और २४ सितंबर १९३२ को पूना में सवर्ण हिंदुओं और हरिजनों के नेताओंने 'पूना-पैक्ट' पर सही की थी, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि सितंबर का अंतिम सप्ताह और खासकर उसकी २५ वीं तारीख हरिजन-सेवक-संघ के इतिहास में एक महत्व की तारीख समझी जाय। वर्ष [illegible] अभी हाल में संघ की कार्यकारिणी समिति [illegible], उसमें भी यह निश्चय हुआ है कि समस्त भारतवर्ष में सवर्ण हिंदू और हरिजन दोनों ही २५ सितंबर के दिन नीचेलिखे कार्यक्रम के अनुसार **हरिजन-दिवस** मनावें।

(१) उस दिन तमाम हरिजन-सेवक सबेरे के समय हरिजन-बस्तियों में जायँ और वहां हरिजनों को सफाई वगैरा का महत्व समझावें। साथ ही, अपने हाथ से उनकी कुछ सेवा भी करें।

(२) शाम को खुली जगहों में हरिजन और हरिजन बच्चों के खेल-कूद और मन-बहलाव का आयोजन किया जाय।

(३) जुलूस, कीर्तन या भजन-मंडलियां निकाली जायँ। जहां हो सके वहां सार्वजनिक सभाएँ की जायँ, और अमुक जाति में जन्म लेने के कारण किसी व्यक्ति को अस्पृश्य न मानने की जो प्रतिज्ञा हिंदू जातिने की है उसे दोहराया जाय।

(४) संघ के सहायकों और शुभचिंतकों के नाम दर्ज किये जायँ।

(५) **पानी-फंड** के लिए—जो इस वर्ष के कार्यक्रम का एक खास अंग है—धन-संग्रह करने का काम खूब जोश और परिश्रम के साथ शुरू किया जाय।

नारायणदास मलकानी
संयुक्त मंत्री—ह० से० सं०

हरिजन-सेवक-संघ के प्रस्ताव

अकेन्द्रीकरण

हरिजन-सेवक-संघ के सेण्ट्रल बोर्ड की कार्यकारिणी समिति की जो बैठक वर्धा में ३० अगस्त से २ सितंबरतक हुई थी, उसमें कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए हैं। उनमें से एक प्रस्ताव नीचे-लिखे अनुसार है —

"श्री पं० हृदयनाथ कुंजरू की उपस्थिति में, जिन्हें समिति की इस बैठक में खास तौर पर आमंत्रण दिया गया था, संघ के अर्थ और व्यवस्था के अकेन्द्रीकरण के प्रश्न पर चर्चा की गई। संयुक्तप्रांत (पूर्वी विभाग) की स्थिति तथा दूसरे प्रांतों से आई हुई सम्मतियों पर विचार किया गया। चर्चा के अंत में, पंडित हृदयनाथ कुंजरू से यह प्रार्थना की गई कि वे अपने प्रांतीय बोर्ड और जिला-कमेटियों के साथ परामर्श करके प्रयोगात्मक रूप में संयुक्तप्रांत (पूर्वी विभाग) के लिए एक अलग योजना बनावें और उसे कार्यकारिणी समिति की आगामी बैठक में उपस्थित करें।"

हरिजन-दिवस

दूसरा जो महत्व का प्रस्ताव पास हुआ वह यह है —

"निश्चित हुआ कि सन् १९३५ के २५ सितंबर को, जिस दिन कि 'पूना-पैक्ट' पर हस्ताक्षर हुए थे, दिल्ली के प्रधान कार्यालय द्वारा जारी की हुई सूचनाओं के अनुसार 'हरिजन-दिवस' मनाया जाय।"

आशा है कि समस्त भारतवर्ष के हरिजन-सेवक हरिजनों के साथ और भी निकट का संपर्क स्थापित करने का खास प्रयत्न करेंगे, और इस कार्य के लिए हरेक मनुष्य अधिक-से-अधिक आत्मसमर्पण करने की चेष्टा करेगा।

अधिक सांनिध्य

तीसरा महत्वपूर्ण प्रस्ताव यह है —

"निश्चित हुआ कि चर्खा-संघ, ग्रामउद्योग-संघ और हरिजन-सेवक-संघ की प्रवृत्तियों के सांनिध्य के लिए प्रयत्न किया जाय, और इस हेतु को पूरा करने के लिए यह तजवीज की जाती है कि इन तीनों संघों के मंत्रियों की एक समिति, चर्खा-संघ और ग्रामउद्योग-संघ से बाकायदा स्वीकृति लेकर, बना दी जाय।"

चूंकि यह तीनों ही प्रवृत्तियां रचनात्मक हैं और तीनों के क्षेत्र कई बातों में एक दूसरे से मिलते हैं, इसलिए जहां-जहां संभव और वांछनीय हो वहां अगर इन तीनों संघों के कार्य-कर्त्ताओं के बीच में अधिक सांनिध्य हो तो समय, शक्ति और पैसे में बहुत-कुछ बचत हो सकती है और तीनों संघों का काम भी आगे बढ़ सकता है।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

अचल-ग्राम-सेवा-संघ

[आगरे के प्रसिद्ध देशभक्त सेठ अचलसिंहजी-द्वारा संस्थापित यह सस्था आगरा और मथुरा जिले मे ग्रामसेवा कर रही है। अखिल भारतीय ग्रामउद्योग-सघ की यह संबद्ध सस्था है। इसके दो सेवा-केन्द्र हैं—एक तो आवलखेडा (जिला आगरा) में, और दूसरा सलीमपुर (जिला मथुरा) मे। सेठजी का तो पूरा सहयोग है ही; साथ ही, इस भाग्यशालिनी सस्था को एक ऐसे अच्छे सेवा-भावी सज्जन मिल गये हैं कि जिनके द्वारा बहुत-कुछ सेवा-कार्य होने की आशा है। श्री चैतन्य नाम के एक काठियावाडी सज्जन यहा काम कर रहे हैं। यह एक अच्छे त्यागी, विनम्र और साधु-प्रकृति के ग्रामसेवक हैं। लोक-प्रकाश मे आने से बहुत बचते हैं, और इनका यह विश्वास है कि एक छोटे-से क्षेत्र में बैठकर ही मनुष्य अधिक सेवा कर सकता है। श्री चैतन्यने संघ की दोनो शाखाओ का वार्षिक कार्य-विवरण भेजा है, जिसके कुछ महत्वपूर्ण अश नीचे दिये जाते हैं—वि० ह०]

आंवलखेडा

आस-पास के गावो में इस साल चेचक का भारी प्रकोप रहा। पर सघ मार्च के महीने मे ही व्यवस्थित ढग पर सेवा कार्य शुरू कर सका। जुलाईतक डेढ सौ गावों मे करीब दो हजार रोगियो की साधारण सेवा-शुश्रूषा की। हमारे तीन ग्राम-सेवक इसी काम मे लगे रहे। कुछ सेवाभावी ग्रामवासियोने भी हमारे इस काम में मदद दी। दवाइया बाटी गई, वहम छुडाने का जतन किया गया और टीका लगवाया गया। इस विषय के पर्चे भी बाटे। यह बीमारी इतनी अधिक भयकरता से क्यो फैली—इसके हमें ये कारण मालूम पडे—(१) गदगी, (२) रोगी बच्चो के पास तदुरुस्त बच्चो का रहना, और (३) टीका लगवाने से जी चुराना। दरिद्रता के कारण शरीर के पोषण के लिए आवश्यक दूध-घी और सब्जी की कमी से भी इन सक्रामक रोगो को उत्तेजन मिलता है।

दो गावा में प्लेग भी शुरू हुआ, पर ईश्वर की दया से बढा नही। अँकुरा निकलते ही खुटक दिया गया। सफाई पर सब से पहले ध्यान दिया गया। रोग के कीटाणुवाली जगहों को साफ करके जलाया और नीम की पत्तियो की खूब धूप दी। इस भयकर रोग का भी मुख्य कारण गदगी है। मरे हुए चूहों को वही मकानो के पास फेक देते हैं, यह नही कि उन्हें गाड दें।

आवलखेडा केन्द्र के आस-पास के गावो मे सघ की सहायता से ३ रात्रि-पाठशालाएँ चल रही हैं। एक चलता-फिरता पुस्तकालय भी है। सघ का यहा एक दवाखाना भी है। औसतन २० रोगी रोज दवा ले जाते हैं।

एक होनहार हरिजन बालक को सन्निपात हो गया था। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से सहायता पानेवाले वैद्य से प्रार्थना की, पर वे उस बालक को देखनेतक नहीं गये। तब सघ के सेवकोंने ही दवा दारू देकर उसे अच्छा किया।

सलीमपुर

इस साल यहा खेतो मे हमने खाद डलवाने का काम शुरू किया। जगह-जगह कूडे-कचरे के घूरे लगे थे। जब लोगो से खेतो मे कूडा कचरा डालने को कहा, तो जवाब मिला कि गाडी ही नही है, खाद डालें तो कैसे ? अधिकाश किसान कर्जदार हैं। गाड़ी रखते हैं, तो गाड़ी के साथ खेती के बैल भी कुर्क हो जाते हैं, नहीं तो बैल कुर्क नही होते। इस लाचारी की हालत मे संघ की तरफ से दो गाडियां खरीदी गईं। एक दिन उन्हें ठीक कराने में लग गया। दो आने रोज भाडे पर गाड़ियां खाद ढोने के लिए किसानों को दी गईं। दनादन खाद खेतों में पहुँचने लगा। ९ किसानोने ४२ दिन मे करीब ६०० गाड़ी खाद खेतों में डाला। कुछ खाद और भी था। पर बरसात आ जाने से गाडियो का चलना मुश्किल हो गया, और इससे वह खाद खेतों मे नही पड़ सका।

गाव मे घूम-घूमकर बच्चों के हाथ-पैर और दांत साफ कराने का कार्यक्रम करीब एक महीनेतक चला। अधिकांश बालक तो मजन कभी करते ही नही थे। पर अब कुछ-कुछ आदत पड़ रही है।

आठ से लेकर चौदह बरसतक की उम्र के लड़के हार में ढोर चराने जाते हैं या लकडी काटकर बेचते हैं। केवल ८ बालक हमारे बाल-मदिर मे पढने आते हैं। पहले सब से ज्यादा ध्यान स्वच्छता और शिष्टता की क्रियात्मक शिक्षा पर दिया जाता है। अक्षरो का ज्ञान तो पीछे कराया जाता है। सवर्ण और हरिजन बालक एक साथ कुएँ पर जाकर नहाते और कपड़े धोते हैं। अध्यापक छोटे-छोटे बच्चों को कपड़ा धोना सिखाता है और कभी-कभी खुद धो देता है। कुछ सवर्ण हिंदू हमारे इस शिक्षा-क्रम से असतुष्ट-से हैं। उनका विश्वास तो किताब, तख्ती और मास्टर की छडी में है। एक-दो बार बच्चो को उन्होने हमारे बाल-मदिर से निकाल भी लिया, पर फिर स्वेच्छा से भेज दिया।

यहा भी एक वाचनालय है। छोटा-सा एक दवाखाना भी है। औसतन १५ रोगी रोज दवा ले जाते हैं। 'मोतीझरे' के कई रोगी संजीवनी बटी, शहद और अदरक का रस देने से अच्छे हो गये हैं। पथ्य दूध और गुड का दिया जाता है।

सत्य और अहिंसा

गाधीजी सत्य और अहिंसा को एक ही सिक्के की दो बाजुओं की तरह मानते हैं। एक बाजू पर सत्य लिखा हो तो दूसरी बाजू पर अहिसा लिखी हुई दिखाई देगी। जो सत्य को सिद्ध करना चाहता है उसे अहिसा को स्वीकर करना ही होगा; अथवा जो अहिसा पर दृढ रहेगा, वह अवश्य ही सत्य का साक्षात्कार करेगा।

एक सज्जन सत्य और अहिसा दोनो को स्वीकार करते हैं, और दोनो को एक दूसरे से स्वतत्र रूप मे समझ सकते हैं। पर गाधीजी की यह ऊपर की बात उनकी समझ मे नही आती। वे सत्य और अहिसा का ओतप्रोत सबंध नही समझ सकते। दोनों का यह ओतप्रोत सबध स्पष्ट रीति से समझा देने के लिए उन्होने मुझे तीन-चार बार अनुरोधपूर्वक लिखा।

उनका अनुरोध मैं पूरा नही कर सका। थोड़ा समय का अभाव तो था ही; साथ ही, इच्छा भी नही होती थी। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसी बाते तर्क या विश्लेषण की पद्धति से उतनी अच्छी तरह समझ मे नही आतीं, जितनी कि उन धर्मों के पालन करने का प्रयत्न करते-करते अपने अनुभव से आप ही समझ में आ जाती हैं। और इस तरह जब वे समझ मे आ जाती हैं, तब फिर उनमें कभी कोई शका उठती ही नही।

पर उन सज्जन का आग्रह तो जारी ही रहा। इससे उन्हे एक पत्र लिखना ही पड़ा। उस पत्र से उन्हें संतोष भी हुआ। इसलिए इस आशा से कि उनके जैसे अन्य विचारकों को भी शायद उससे कुछ विचार-साहाय्य मिले, उस पत्र को मैं यहां उद्धृत करता हूँ :—

"ऊपर से विचार करते हुए हमें ऐसा लगता है कि जगत् मे सत्य भी है और असत्य भी, हिंसा भी है और अहिंसा भी।

और इसी तरह, ऊपर-ऊपर के विचार से यह जान पडता है कि जिसे हम सत्य मान लेते है वह सत्य ही होगा ऐसा निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। न यह भी खातिरी के साथ कहा जा सकता है कि जिसे हम असत्य मानते हैं वह सचमुच असत्य ही होगा। कभी-कभी यह देखने मे आया है कि जिसे कलतक हम सत्य समझते थे, वह आज असत्य सिद्ध हो जाता है; और जिसके ऊपर कलतक हम असत्य का आक्षेप या वहम करते थे वह सत्य मालूम होता है। इसलिए अनेक लोगो का कुछ ऐसा विचार बन गया है, कि असल में सत्य और असत्य के विषय मे कोई निश्चित निर्णय किया ही नही जा सकता। ऐसे सब अभिप्राय निरे कपोल-कल्पित ही हैं। इस प्रकार के विचार से ही मायावादी कहते है कि जो भी नाम-रूपात्मक है, व्यक्त है, मन—बुद्धि—इंद्रियो का विषय है, उनसे ज्ञेय है, प्रकृति का कार्य है, वह सब मिथ्या अथवा असत्य ही है। केवल एक ब्रह्म—आत्मा—ही सत्य है। बाकी सब जगत् और जगत् के नियम, कानून, भावनाएँ या पदार्थ असत्य ही हैं। इसी विचार से उनका यह कथन है कि हिंसा और अहिंसा भी मायिक, अर्थात् जगत् की भावनाएँ है, अत: ये दोनो असत्य ही है। इतना ही नहीं, बल्कि जगत् के सत्य और असत्य का भी आत्मा के साथ संबंध नहीं है। आत्मा की दृष्टि मे जगत् का सत्य और असत्य दोनों असत्य ही है। अथवा, यों भी कह सकते है कि आत्मा का सत्य इस प्रकार का सत्य है कि वह जगत् के समस्त सत्यों और असत्यों, हिंसा और अहिंसा, तथा दूसरे तमाम द्वन्द्वो का आधार है। आत्मा के सत्य से जगत् के सत्य और असत्य दोनो को बल प्राप्त होता है; उसीसे जगत् की हिंसा और अहिंसा दोनों को पोषण मिलता है, और दूसरे द्वन्द्व भी प्रगट होते हैं।

किंतु ये सब विचार—यह आत्मवाद, यह मायावाद तथा यह द्वन्द्व-विचार—ऊपर-ऊपर के ही विचार हैं। जगत् में सत्य और असत्य दोनो ही है, हिंसा भी है, अहिंसा भी है, सुख का भी अनुभव होता है, और दुःख का भी—ये विचार उतने ही निरीक्षण पर बँधे हुए हैं जितना निरीक्षण एक बालक कर सकता है। और ये सब वाद ऊपर-ऊपर के अवलोकन से ही उत्पन्न हुए हैं।

लेकिन हम अब जरा गहरे उतरकर खोजने का प्रयत्न करें। जगत् मे क्या ऐसा भी कोई असत्य मिल सकता है कि जो केवल आत्मा के ही नही, बल्कि जिसे हम जगत् का सत्य समझते हैं उस प्रकार के सत्य के आधार पर स्थित न हो? क्या ऐसा एक भी मूढ़-तम भ्रम या ऊटपटांग कल्पना की जा सकती है जो किसी भी प्रकार के सर्वमान्य और प्रसिद्ध अनुभव अथवा सर्वव्यापी और प्रसिद्ध नियम पर निर्भर न करती हो? हम नित्य ही उपासना के समय यह गाते हैं कि 'असतो मा सद्गमय—प्रभो, असत्य में से तू मुझे सत्य की ओर ले चल।' असत्य और सत्य का यदि किसी जगह मेल न हो, तो यह प्रार्थना वैसी ही व्यर्थ होगी, जैसी यह प्रार्थना कि, 'मृगतृष्णा के जल से, हे प्रभो, तू हमारी तृषा शांत करदे!' पर हम यह आशा लेकर प्रार्थना कर सकते है, क्योंकि वास्तव में बात यह है कि बिना सत्य की सहायता या आधार के कोई असत्य बन ही नहीं सकता। असत्य कोई मिथ्या या मायावी वस्तु नहीं, वरन् जंग चढ़ा हुआ, मलिन बना हुआ, ढका हुआ या किसी दूसरी तरह अस्पष्ट अथवा अव्यवस्थित दशा में पड़ा हुआ सत्य ही है। और सत्य को ढँकनेवाले ये जंग, मैल या ढक्कन भी वास्तव में असत्य पदार्थ नहीं है। जिसे हम खोजते हैं उस विषय की अपेक्षा मे वे आवरणरूप हैं। किंतु यदि वे अपने ही स्थान पर हो, अथवा शोध के विषय हो तो वे भी सत्य ही हैं। घर में मिट्टी पडी हो तो वह गर्द कही जाती है। कारण यह है कि हम घर का फर्श, लिपाई-पुताई अथवा जाजम स्पष्ट रूप में देखना चाहते हैं, और वह मिट्टी या गर्द उसे ढँक देती है। पर वही मिट्टी खेत में गर्द नहीं कही जाती, क्योंकि वहां हम खेत को—अर्थात्, मिट्टी की गहराई को ही—देखना चाहते है। इसी तरह कागज-पत्रों का ढेर मेज पर पड़ा हो, तो वह कूड़ा-कचरा नहीं कहा जाता। पर वही कागजों का ढेर आंगन में पड़ा हो, तो वह कचरा समझा जाता है, और देखने में बुरा लगता है। और, वही कूडे की टोकरी में पड़ा हो, तो वह कूड़ा-कचरा तो जरूर है, पर देखने मे बुरा नहीं लगता। इसी तरह जिस वस्तु की हम शोध करना चाहते हैं उसे ढँक रखनेवाले पदार्थ, उस वस्तु की दृष्टि से असत्य के आवरण कहे जाते हैं। किसी चीज को बहुत सुंदर डिब्बी मे बिकने से ही अगर मैं खरीदता हूं तो डिब्बी के अंदर की चीज अच्छी निकलती है या बुरी यह कोई बड़े महत्व की बात नहीं है; क्योंकि मैंने उसे डिब्बी के लिए खरीदा है, मुझे तो सुंदर डिब्बी चाहिए। पर अगर मुझे उस चीज की गरज है, तो मैं इसकी पर्वा नहीं करूँगा कि डिब्बी सुंदर है या सादी। बल्कि डिब्बी तो सुंदर हो, पर उसके भीतर की चीज खराब निकले, तो उस चीज का बनाने-वाला ग्राहको को धोखा देता है ऐसा मैं महसूस करता हूं। डिब्बी सोने की हो, पर भीतर कंकड़ रख दिये गये हों, तो सोना यद्यपि एक बहुमूल्य चीज है तो भी यह कहा जायगा कि उसमे असत्य भरा हुआ है। लेकिन एक रत्न चिथड़े में बांधकर, एक लाल गूदड़ी के अंदर रखकर दिया जाय, तो भी हम यह कहेंगे कि उस चिथड़े या गूदड़ी के अंदर सत्य है। सारांश यह, कि जो सत्य अयोग्य स्थान से अथवा अव्यवस्थित रीति से आने के कारण, हमारे शोध के सत्य को ढंक देता है, वह असत्य कहा जाता है। और इसीलिए हम असत्य में से सत्य मे जाने की आशा रख सकते हैं। (अपूर्ण)

किशोरलाल घ० मशरूवाला

संस्थाओं को सहायता

हरिजन-सेवक-संघ की कार्यकारिणी समिति की (३० अगस्त से २ सितंबरतक) बैठकमें निम्नलिखित संस्थाओंको सीधे ग्रांट देना निश्चित हुआ :—

सेवासदन औषधालय, कटक	२५)	मासिक
श्रीछत्रपति साहू बोर्डिंग हाउस, सतारा	५००)	वार्षिक
हरिजन-छात्रालय, धूलिया	२००)	,,

१४वें प्रस्ताव में निम्नलिखित संस्थाओं को सीधे दी जाने-वाले ग्रांटो पर स्वीकृति दी गई :—

हरिजन-कन्या-पाठशाला, अजमेर	७)	मासिक
अयकाली वीविंग इन्स्टीट्यूट, त्रावणकोर	१५)	,,
हरिजन-आश्रम, कन्नानोर	२०)	,,
देवधर मलबार रिकंस्ट्रक्शन असो०, गोपालपुरम्	१५)	,,
अग्निकांड-कष्ट-निवारण-कार्य, कडालोर	१००)	
,, ,, रिस्पना (देहरादून)	५०)	
मलेरिया-निवारणकार्य, दक्षिण त्रावणकोर	२५०)	

नारायणदास मलकानी, संयुक्त मंत्री—ह० से० सं०

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, १३ सितम्बर, १९३५

खानगी खादी-उत्पादक चेत जायँ

कत्तिनो और खादी-उत्पत्ति के काम मे लगे हुए दूसरे कारीगरो को यथेष्ट मजदूरी देने की जो नीति बन रही है, उसमे यह गंभीर प्रश्न आकर खडा हो जाता है कि खानगी रीति से खादी तैयार करनेवाले जिन लोगो को चर्खा-सघ की ओर से प्रमाणपत्र दिये गये हैं उनका क्या किया जाय। ये लोग काफी मिकदार मे खादी तैयार करते है। मजदूरी मे जीविका उपार्जन करनेवाले लोगो के प्रति चर्खा-सघ का जो धर्म है वही इन खानगी उत्पादको के प्रति भी है। इनके साथ संघने जो इकरार किया है उसका पूरी तरह से पालन होना चाहिए। किंतु सघ का कर्त्तव्य यही पूरा हो जाता है। चर्खा-सघ का सारा तंत्र कत्तिनो के हक में बतौर एक ट्रस्ट के चल रहा है, या चलना चाहिए, और कत्तिनो की स्थिति मे धीरे-धीरे अवश्य सुधार होना चाहिए। खानगी उत्पादकों को प्रमाणपत्र जो दिये गये हैं उसका खास उद्देश कत्तिनो को लाभ पहुँचाना ही है। इसलिए ये उत्पादक कत्तिनों का पेट काटकर नही, किंतु उनकी सेवा करके जो मुनाफा उठा सकें वह उठावें। पर आज तो हम देखते है कि वे तथा दूसरे लोग गरीब कत्तिनों को नुकसान पहुँचाकर ही लाभ उठा रहे है

किंतु ये उत्पादक यदि चर्खा-सघ के एजेंटो की पंक्ति मे आ जायँ, तो फिर उनके प्रमाण-पत्र उनसे वापस ले लेने की जरूरत नही रहती। लेकिन अगर वे ऐसा करेंगे, तो उन्हे अपनी कार्य-पद्धति जडमूल से बदलनी पडेगी। उन्हे अपने मुनाफे मे कमी करके सतोष मानना पडेगा, शायद उन्हे घाटा भी उठाना पड़े। उन्हे चर्खा-सघ के नियम के अनुसार कत्तिनो और दूसरे मजदूरो के रजिस्टर रखने पडेंगे। उन्हे मजदूरो को मजदूरी के पैसे देने का सबूत पेश करना पडेगा, और इस सबध का हिसाब-किताब तैयार करके सघ के दफ्तर मे भेजना पडेगा। यह काम शायद उन्हे बहुत मुश्किल मालूम पड़े। खादी की कीमत मे वृद्धि हो जाने की संभावना है, इसलिए जो जोखिम उन्हे उठाना पडेगा वह शायद इतना भारी हो कि वे उसे बर्दाश्त न कर सके। सघ के बनाये हुए नियम उन उत्पादको को शायद बहुत सख्त मालूम हो। इसमें तो शक ही नही कि आज जितना मुनाफा उन्हे मिल रहा है उतने मुनाफे के लिए उन्हे अब काफी कडी मेहनत करनी पड़ेगी। जिन्हे इसमें कठिनाई मालूम होती हो, उन्हे आज से ही अपना खादी का व्यापार बंद कर देना चाहिए। जो खादी का काम चालू रखना चाहते है वे अपने को सघ के एजेंटो के संपर्क में रखें। उन्हे इतना समझ लेना चाहिए कि नियत शर्तों के पालन मे अगर वे जरा भी लापर्वाही करेंगे तो उनके प्रमाण-पत्र रद कर दिये जायँगे। घाटा हो या न हो, पर इस संघ के साथ अपना इकरार कायम रखने के लिए विशुद्ध ईमानदारी एक आवश्यक शर्त है। इसलिए जो खादी के प्रेमी और दरिद्रनारायण के भक्त हों, और दरिद्रनारायण के लिए घाटा भी उठाने को तैयार हों, उन्ही को यह खादी का काम चालू रखना चाहिए। जो खुद तथा अपने घर में खादी का उपयोग नही करते, वे इकरार चालू रहने की बिल्कुल आशा न रखें।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्रामसेवा

यह सारा सप्ताह योंही गया—किसी दिन कुछ भी काम नही कर सके। नित्य ही सांझ को या रात को वर्षा खूब जोर से होती थी, इसलिए दूसरे दिन सबेरे हमारा बाहर निकलना असंभव हो जाता था। पर मैंने देखा कि सफाई के काम के लिए जाने की जरूरत तो हमें जरा भी नही थी। एक दिन शाम को जब आसमान साफ था, हम यह देखने गये कि गांव कैसा दिखता है। कुछ रास्तो पर तो कीचड था ही, पर ज्यादातर गलियों मे मैला पडा नही दिखाई दिया। वर्षा से वह सब धुलकर बह गया था।

किंतु हमारे पास यदि शक्ति और साधन हो तो इस गांव मे हल करने के लिए प्रश्न तो कई पड़े हुए है। महारवाडे की एक झोपडी मे एक बीमार आदमी पडा हुआ था। उसे दुनियाभर की बीमारिया थीं। गांव के किसी नीमहकीमने कह दिया होगा कि तुम्हारी तिल्ली बढ गई है, इसलिए तुम्हे अपना पेट दगवाना पडेगा। वैद्य की बात माननी ही चाहिए। पेट दागा जा चुका था, और मीराबहिनने जब उसे पिछली बार देखा था तब वह दाग के घाव के कष्ट से बहुत ही पीडित था और जोर-जोर से कराह रहा था। उसके पेट में भी शूल के जैसा दर्द होता था। उसे 'केलोमेल' की एक मात्रा हमारे यहां से भेजदी गई थी। रात को जब हम देखने गये तब वह पहले से कुछ ठीक था। घाव करीब-करीब पुर गया था, पर उसकी आखे डरावनी व पीली-पीली दिखती थी।

हमने उससे पूछा, 'तुम खाते क्या हो?'

'जो मिल जाता है, वही' उसने जवाब दिया।

हमने पूछा, 'तुम चावल, रोटी और दाल खाना बंद नही कर सकते? कुछ हरी साग-भाजी नही ले सकते क्या?'

हम यह जानते थे कि उससे यह प्रश्न पूछना व्यर्थ था।

'हमलोग बिना काम धंधे के बेकार बैठे है, फिर दूध और साग-भाजी कहां से लावे?' उसने हमे यह जवाब दिया। फिर बोला, 'अपने बगीचे मे क्या हमे आप कुछ काम नहीं दे सकते?'

हमने कहा, 'किस तरह दे सकते है, भाई? दो कुटुब तो वहा काम कर ही रहे हैं। इतना काम तो हमारे पास है नही कि उसमे अब और अधिक आदमी लगाये जा सकें।'

घर का बुड्ढा आदमी बोला, 'हा भैया, बात सच है। एक आदमी को निकालकर तो आप हमे रखेंगे ही नही। वे भी बेचारे हमारी ही तरह गरीब होंगे। पर हमें कहीं दूसरी जगह आप काम दिला सकें तो दिलावें।

हर जगह यही भयकर बेकारी का प्रश्न है। हम जब उनसे बातें कर रहे थे, तब दो लडके वहा आ खडे हुए। बहुत करके वे उस बीमार आदमी के लड़के होंगे। वे हरी-हरी छीमियां भिगो-भिगोकर खा रहे थे। इसलिए हमने उस बीमार मनुष्य से कहा कि 'हमने तुमसे दाल छोड़देने के लिए कहा है। क्या तुम इन छीमियों का रसा बनाकर नही पी सकते? या फिर अपने हाते में उगनेवाली किसी भी खाने की भाजी को उबालकर उसका पानी पी सकते हो। पर वहां तो उसकी मड़ैया के पास हाते-जैसी कोई जगह थी ही नही। किंतु इसके पहले कि हम और अधिक बात करें, उसने हमें अपना काम दिखाया। उसमें असह्य दर्द होता था। गांव-गंवई की सारी दवाइयां वह कर चुका था, पर

उनसे कुछ भी फायदा नहीं हुआ था। उससे यह कहकर हम लोग घर को चल दिये कि कल सबेरे हम जरूर कान में डालने की दवा लायेंगे।

गांवों में हम जाते हैं तो वहां ये तथा इसी तरह के दूसरे अनेक प्रश्न हमारे सामने आ जाते हैं। और इसीसे जब गांधीजी से एक मित्रने अपने पत्र के वार्षिकांक या जयती-अंक के लिए सदेश मांगा, तो गाधीजीने उन्हें यह लिख भेजा कि—'मेरा वह झरना सचमुच अक्षरश सूख गया है। किसीने मांगा और तुरन्त उसके लिए कोई सदेश लिखकर भेज दिया यह शक्ति अब मुझ में नहीं है। यह गावों का काम इतना कठिन और जटिल है कि अगर मेरा वश चले तो लिखना बिल्कुल बद ही करदूं और किसी गाव में जाकर बैठ जाऊँ और जितनी सेवा मुझ से बने उतनी वहां करूँ। और वह भी मैं चुपचाप पूरी शांति के साथ करना पसंद करूँगा। इस परिस्थिति मे मैं आपके पत्र के लिए सदेश नही भेज रहा हूँ, इसके लिए, आशा है, आप मुझे क्षमा करेगे।'

पाप और संतति-निग्रह के विषय में

गाधीजी के ध्यान मे सारे दिन ग्राम और ग्रामवासी ही रहते है, और स्वप्न भी उन्हे इसी विषय के आते है। स्वामी योगानद नाम के एक सन्यासी सोलह बरस अमेरिका में रहकर अभी-अभी स्वदेश वापस आये है। गत सप्ताह राची जाते हुए गाधीजी से मिलने के लिए वे यहा उतर पड़े और दो दिन ठहरे। उनके साथ गाधीजी का जो खासा लंबा संवाद हुआ उसमे भी उनके इस ग्राम चितन की काफी स्पष्ट झलक दिखाई देती थी। स्वामी योगानद केवल धर्म-प्रचार के लिए अमेरिका गये थे, और उनके कहे अनुसार, उन्होंने आचरण और उपदेश के द्वारा भारतवर्ष का आध्यात्मिक सदेश ससार को देने का ही सब जगह प्रयत्न किया। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि 'भारतवर्ष के बलिदान से ही जगत् का उद्धार होगा।'

गाधीजी के साथ उन्हे पाप और सतति-निग्रह इन दो विषयो पर चर्चा करनी थी। अमेरिका के जीवन की काली बाजू उन्होंने अच्छी तरह देखी थी, और अमेरिका के युवकों और युवतियों के विलासितामय जीवन की एक-एक बात पर प्रकाश डालनेवाली पुस्तक के लेखक जज लिंडसे के साथ उनका वहा काफी निकट का परिचय था।

गाधीजीने कहा, 'दुनिया मे पाप क्यो है, इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। मै तो एक ग्रामवासी जो जवाब देगा वही दे सकता हूँ। जगत् में प्रकाश है तो अधकार भी है। इसी तरह जहा पुण्य है, वहां पाप होगा ही। किंतु पाप और पुण्य तो हमारी मानवी दृष्टि से हैं। ईश्वर के आगे तो पाप और पुण्य-जैसी कोई चीज ही नही। ईश्वर तो पाप और पुण्य दोनो से ही परे है। हम गरीब ग्रामवासी उसकी लीला का मनुष्य की वाणी में वर्णन करते हैं, पर हमारी भाषा ईश्वर की भाषा नहीं है।

वेदांत कहता है कि यह जगत् मायारूप है। यह निरूपण भी मनुष्य की तोतली वाणी का ही है। इसीलिए मै कहता हूँ कि मै इन बातों में पड़ता ही नहीं। ईश्वर के घर के गूढ़-से-गूढ़ भेद जानने का भी मुझे अवसर मिले तो भी मैं उन्हें जानने को हामी न भरूं। कारण यह है कि मुझे यह पता नहीं कि मैं वह सब जानकर क्या करूँगा। हमारे आत्मविकास के लिए इतना ही जानना काफी है कि मनुष्य जो कुछ अच्छा काम करता है, ईश्वर निरंतर उसके साथ रहता है। यह भी ग्रामवासी का ही निरूपण है।"

'ईश्वर सर्वशक्तिमान् तो है ही, तो वह हमें पाप से मुक्त क्यो नहीं कर देता?' स्वामीजीने पूछा।

'मै इस प्रश्न की भी उधेडबुन में नही पडना चाहता। ईश्वर और हम बराबरी के नही है। बराबरीवाले ही एक दूसरे से ऐसे प्रश्न पूछ सकते हैं, छोटे-बड़े नही। गाववाले यह नही पूछते कि शहरवाले अमुक काम क्यों करते है; क्योंकि वे जानते है कि अगर हमने वैसा किया तो हमारा सर्वनाश तो निश्चय ही है।'

'आप के कहने का आशय मैं अच्छी तरह समझता हूँ। आपने यह बड़ी जोरदार दलील दी है। पर ईश्वर को किसने बनाया?' स्वामीजीने पूछा।

'ईश्वर यदि सर्वशक्तिमान् है तो अपना सिरजनहार उसे स्वय ही होना चाहिए।'

'ईश्वर स्वतत्र सत्तावान् है या लोकतत्र में विश्वास करनेवाला? आपका क्या विचार है?'

'मै इन बातो पर बिल्कुल विचार नही करता। मुझे ईश्वर की सत्ता मे तो हिस्सा लेना नही, इसलिए ये प्रश्न मेरे लिए विचारणीय नही है। मै तो मेरे आगे जो कर्तव्य है उसे करके ही सतोष मानता हूँ। जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई और क्यों हुई इन सब प्रश्नो की चिता मे मैं क्यो पड़ूं?

'पर ईश्वरने हमे बुद्धि तो दी है न?'

'बुद्धि तो जरूर दी है, पर वह बुद्धि हमे यह समझने में सहायता देती है कि जिन बातों का हम ओर-छोर नही निकाल सकते उनमे हमें माथापच्ची नही करनी चाहिए। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि सच्चे ग्रामवासी मे अद्भुत व्यावहारिक बुद्धि होती है, और इसमें वह कभी इन पहेलियों की उलझन मे नही पड़ता।

'अब मै एक दूसरा ही प्रश्न पूछना हूँ। क्या आप यह मानते है कि पुण्यात्मा होने की अपेक्षा पापी होना सहल है, अथवा ऊपर चढ़ने से नीचे गिरना आसान है?'

'ऊपर से तो ऐसा मालूम होता है। पर असल बात यह है कि पापी होने की अपेक्षा पुण्यात्मा होना सहल है। कवियोंने कहा है सही कि नरक का मार्ग आसान है, पर मै ऐसा नही मानता। मै यह भी नही मानता कि ससार में अच्छे आदमियो की अपेक्षा पापी लोग अधिक है। अगर ऐसा है तो ईश्वर स्वय पाप की मूर्ति बन जायगा। पर वह तो अहिसा और प्रेम का साकार रूप है।'

'क्या मै आपकी अहिसा की परिभाषा जान सकता हूँ?'

'ससार मे किसी भी प्राणी को मन, वचन और कर्म से हानि न पहुँचाना, अहिसा है।'

गांधीजी की इस व्याख्या पर से अहिसा के संबंध में काफी लंबी चर्चा हुई। पर उस चर्चा को मै छोड़ देता हूँ। 'हरिजन' और 'यंग-इण्डिया' में न जाने कितनी बार इस विषय पर चर्चा हो चुकी है।

'अब मैं दूसरे विषय पर आता हूँ,' स्वामीजीने कहा, क्या आप संतति-निग्रह के मुकाबले में सयम को अधिक पसंद करते है?

'मेरा यह विश्वास है कि किसी कृत्रिम रीति से या पश्चिम में प्रचलित मौजूदा रीतियों से संतति-निग्रह करना आत्मघात है। मैंने यहां जो आत्मघात शब्द का प्रयोग किया है उसका अर्थ यह नहीं है कि प्रजा का समूल नाश हो जायगा। 'आत्मघात' शब्द

को मै इससे ऊँचे अर्थ में लेता हूँ। मेरा आशय यह है कि सततिनिग्रह की ये रीतिया मनुष्य को पशु से भी बदतर बना देती है; यह अनीति का मार्ग है।'

'पर हम यह कहातक बर्दाश्त करे कि मनुष्य अविवेक के साथ सतान पैदा करता ही चला जाय? मैं एक ऐसे आदमी को जानता हू, जो नित्य एक सेर दूध लेता था और उसमें पानी मिला देता था, ताकि उसे अपने तमाम बच्चों को बाट सके। बच्चो की संख्या हर साल बढती ही जाती थी। क्या इसमे आप पाप नही मानते?'

इतने बच्चे पैदा करना कि उनका पालन-पोषण न हो सके यह पाप तो है ही, पर मै यह मानता हू कि अपने कर्म के फल से छुटकारा पाने की कोशिश करना तो उसमे भी बडा पाप है। इसमे तो मनुष्यत्व ही नष्ट हो जाता है।'

'तब लोगो को यह सत्य बतलाने का सबसे अच्छा व्यावहारिक मार्ग क्या है?'

'सब से अच्छा व्यावहारिक मार्ग यह है कि हम सयम का जीवन बितावें। उपदेश से आचरण ऊँचा है।'

'मगर पश्चिम के लोग हमसे पूछते है कि "तुम लोग अपने को पश्चिम के लोगों से अधिक आध्यात्मिक मानते हो, फिर भी हम लोगो के मुकाबिले मे तुम्हारे यहा बालकों की मृत्यु अधिक सख्या मे क्यो होती है?" महात्माजी, आप मानते है कि मनुष्य अधिक सख्या मे सतान पैदा करे?"

'मैं तो यह माननेवाला हू कि संतान बिल्कुल ही पैदा न की जाय।'

'तब तो सारी ही प्रजा का नाश हो जायगा।'

'नाश नही होगा, प्रजा का और भी सुदर रूपातर हो जायगा। पर यह कभी होने का नही, क्योकि हमें अपने पूर्वजो से यह विषयवृत्ति का उत्तराधिकार युगानुयुग से मिला हुआ है। युगों की इस पुरानी आदत को काबू मे लाने के लिए बहुत बडे प्रयत्न की जरूरत है, तो भी वह प्रयत्न सीधा-सादा है। पूर्ण त्याग, पूर्ण ब्रह्मचर्य ही आदर्श स्थिति है। जिससे यह न हो सके, वह खुशी से विवाह करले, पर विवाहित जीवन मे भी वह सयम से रहे।'

'जनसाधारण को सयममय जीवन की बात सिखाने की क्या आपके पास कोई व्यावहारिक रीति है?'

'जैसा कि एक क्षण पहले मैं कह चुका हूं, हमे पूर्ण संयम की साधना करनी चाहिए, और जनसाधारण के बीच जाकर सयममय जीवन बिताना चाहिए। भोग-विलास छोड़कर ब्रह्मचर्य के साथ अगर कोई मनुष्य रहे तो उसके आचरण का प्रभाव अवश्य ही जनता पर पडेगा। ब्रह्मचर्य और अस्वाद व्रत के बीच अविच्छिन्न सबध है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है वह अपने प्रत्येक कार्य मे सयम से काम लेगा, और सदा नम्र बनकर रहेगा।'

स्वामीजीने कहा, 'मैं समझ गया। जनसाधारण को सयम के आनद का पता नही, और हमें यह चीज उसे सिखानी है। पर मैने पश्चिम के लोगो की जिस दलील के बारे में आपसे कहा है, उसपर आपका क्या मत है?'

'मै यह नही मानता कि हमलोगो मे पश्चिम के लोगों की अपेक्षा आध्यात्मिकता अधिक है। अगर ऐसा होता तो आज हमारा इतना अधःपतन न होगया होता। किंतु इस बात से कि पश्चिम के लोगो कीउम्र औसतन हम लोगों की उम्र से ज्यादा लंबी होती है, यह साबित नही होता कि पश्चिम में आध्यात्मिकता है। जिसमे अध्यात्मवृत्ति होती है उसकी आयु अधिक लंबी होनी ही चाहिए यह बात नही है, बल्कि उसका जीवन अधिक अच्छा, अधिक शुद्ध होना चाहिए।

प्राणियों का संग्रहालय!

पंडित हृदयनाथ कुजरू से, जो हरिजन-सेवक-सघ की कार्यकारिणी समिति के सिलसिले में यहा आये हुए थे, गाधीजीने कहा, 'हमारा तो सचमुच यह प्राणियो का एक संग्रहालय ही है। और अगर मेरे पास इन बातो के कहने का और आपको सुनने का समय होता, तो मैं इसपर घटो बात कर सकता हूँ।' यह बात कुछ तो विनोद में और कुछ गम्भीरता के साथ गांधीजीने कही। पर एक मित्रने तो पूरी सच्चाई और सजीदगी के साथ हम लोगो के सम्बन्ध मे लिखा है कि, 'ऐसा लगता है कि मगनवाड़ी कहीं सरकस की जगह तो नही है। दिन-रात शोरगुल और बासनो की खनखनाहट होती ही रहती है। मुझे तो इन दो मे से एक भी चीज पसन्द नही। लोगों की भीड़-भाड़ से भी मै इतना ही घबराता हूँ। जहा देखो तहा मनुष्य-ही-मनुष्य दिखाई देते हैं। ऐसा लगता है कि यह भयकर जन-समुद्र तो किसी दिन हमे डुबोकर ही छोड़ेगा। अगर मैं उनके बीच में रहकर अपनी शान्ति कायम नही रख सकता, तो मुझे उनका साथ त्याग देना चाहिए।' पर इसके बाद वह सज्जन लिखते हैं, 'पर यहा भी बापू की बात तो अलग ही है।' उनका यह लिखना ठीक ही था। सचमुच हमारा निवास-स्थान उद्योग-परायण मधुमक्खियो के छत्ते जैसा है। एक कोने में चक्की घरर-घरर चल रही है, दूसरे कोने में रसोडे और बगीचे में लोग काम कर रहे हैं। तीसरे कोने मे बच्चे लिख-पढ रहे हैं, और चौथे कोने मे मित्रो या पाहुनो के बाल-बच्चे शोरगुल मचा रहे हैं। और वही एक तरफ मीराबहिन का तबेला है, जिसमे बकरिया भी हैं, बैल भी है, और अभी हाल में आई हुई एक घोडी भी है, जिसपर सवार होकर मीरा-बहिन आस-पास के गाव देखने जाया करती है।

मगर यह सरकस या जीव-जतुओं का सग्रहालय तो जानमानकर बनाया गया है। अमेरिका के विचारक इमर्सनने क्या यह नही लिखा है कि 'एकांत मे शाति के साथ रहना सहल है, पर महापुरुष तो वह है जो इस व्यवसायी जगत् के कोलाहल मे भी एकात-वास की सी शाति का अनुभव करता है?' गाधीजी इसी आदर्श के अनुसार चलना चाहते है, और इतना ही नही, बल्कि वे यह भी चाहते है कि दूसरे लोग भी इसी आदर्श का अनुसरण करे।

हमारे यहां दो सज्जन ऐसे हैं, जो इस रात-दिन के शोरगुल मे भी शांति अनुभव करने का प्रयत्न कर रहे है, और उसमें उन्हें सफलता भी मिल रही है। उनमें एक तो हमारे भणसालीजी हैं। वे तपस्या के कठिन मार्ग पर अपना एक-एक डग नित्य बढाते ही जाते हैं। कुछ दिन तो उन्होने यह किया कि कमरतक पानी में दो-दो तीन-तीन घण्टे खड़े रहते। इसकी तो गांधीजीने उन्हे इजाजत दे दी थी। पर इस सप्ताह तो वे यह भयानक प्रस्ताव लेकर आये कि मैं लगातार तीन दिनतक पानी में खड़ा रहना चाहता हूँ। गांधीजी को उनकी यह बात नामंजर कर देनी पड़ी। भणसाली

जी से उन्होंने कहा, 'किसी भी तरह देह को कष्ट दिया जाय इसपर तुम तुले तो बैठे नहीं ! देहदमन के लिए ही तुम देह का दमन करो यह तो नहीं हो सकता। तुम्हारी प्रत्येक तपस्या का हेतु तो यह है कि वह तुम्हें ईश्वर का दर्शन कराने में सहायकरूप हो। इसलिए इस देह-दमन के ऊपर भी कुछ अंकुश होना चाहिए। धन्य है भणसालीजी की नम्रता ! उन्होंने कोई बहस नहीं की, तुरत अपना वह विचार छोड़ देने को राजी हो गये। उनके प्रति न्याय करने के लिए हमें यह कहना चाहिए कि वे जितना भी तप करते हैं, वह ऐसा मालूम होता है कि, प्रसन्नता के साथ कर रहे हैं, और अक्सर दिन हो या रात आप सुनेंगे कि वे या तो प्रेम में मगन होकर भजन गा रहे हैं या खूब खिलखिलाकर हँस रहे हैं।

दूसरे सज्जन बिहार के हैं। कुछ समय से वे आतरिक वेदना भोग रहे थे। अत आत्मशान्ति के लिए उन्होंने सत्रह दिन के उपवास करने का संकल्प किया। गांधीजीने उन्हें सावधान करते हुए कहा कि 'संभव है कि तुम उपवास का कष्ट सहन न कर सको, इसलिए जब तुम्हें ऐसा मालूम हो कि शरीर की शक्ति अब क्षीण हो रही है और मित्रो की सेवा-सहायता के बिना काम नहीं चल सकता, तो उसी क्षण उपवास तोड़ देना।' वे इसपर राजी हो गये, और असाधारण शान्ति के साथ उन्होंने अपना सत्रह दिन का उपवास पूरा किया। पहले वे जिन अनेक मानसिक कष्टों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछ-पूछकर गांधीजी का काफी वक्त ले लेते थे, उनके वे सब कष्ट काफूर हो गये ऐसा मालूम पड़ता था। उपवासके दिनो में वे नित्य शाम को गांधीजी के पास अपने दिनभर के काते हुए सूत की अटी लेकर आते, भगवान् का निहोरा मानने और उपवास निर्विघ्न समाप्त हो जाने के लिए गांधीजी का आशीर्वाद मांगते। जिस दिन उनका उपवास समाप्त हुआ, उस दिन गांधीजी को यह मानना पड़ा कि, 'इससे अधिक शान्ति के साथ समाप्त होनेवाला और ऊँचा उठानेवाला उपवास मेरे देखने में नहीं आया।'

और ऊपर मैंने जो यह सब वर्णन किया वह जन कोलाहल में ही हुआ है। जिसे गावों में बैठकर काम करना हो उसे जितनी शान्ति यहा है उससे अधिक की आशा नहीं करनी चाहिए।

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

हरिजनों पर जुल्म

(१)

काठियावाड़-हरिजन-सेवक-सघ के मत्री श्री छगनलाल जोशी गाधेसर गाव की दुःखद-घटना के विषय में लिखते हैं :—

"गाधेसर गांव भावनगर राज्य के पास एजेन्सी की हद में हैं। यहां ढोरों में मरी शुरू हुई, इसलिए लोगोंने भगियों को बुलाकर यह धमकी दी, कि ढोरों की बीमारी अच्छी करो, नहीं तो तुम लोगों पर बड़ी मार पड़ेगी। लोगो के दिल में यह वहम समाया हुआ है, कि यह महामारी ये भगी ही जादू-टोना करके फैलाते हैं। भगी बेचारे असम्भव को सम्भव कैसे कर सकते थे ? इससे सवर्णों के क्रोध की आग भड़क उठी। लाठियां ले-लेकर भंगियों की बस्ती पर हमला बोल दिया। सवर्णों की सेना देखते ही भगी अपनी-अपनी झोपड़िया छोड़-छोड़कर भागने लगे। सवर्णोंने तीन मीलतक उनका पीछा किया, त्रास से कापते हुए भंगियोंने भागते-भागते पसवी गांव में सांस ली। वहां से निकलकर भावनगर राज्य की हद में गुंदरणा गांव में एक भंगी के झोंपड़े में उन्हें शरण मिली। स्त्री, पुरुष और बालक सब मिलाकर घर-द्वार छोड़कर भाग आनेवाले ये २५ जने हैं। उस छोटे-से झोंपड़े में २५ आदमियो की समाई कैसे हो सकती है ? बड़ी मुश्किल से दिन काट रहे हैं। भागते समय साथ में तो डर के मारे कुछ सामान ले नहीं सके थे। एजेन्सी के अफसरों के पास उन्होंने अर्जियां भेजी हैं, पर अभीतक कोई नतीजा हासिल नहीं हुआ।"

(२)

"गुंदरणा गाव भावनगर राज्य में है। वहा भी यह बीमारी शुरू हुई, और वही किस्सा वहा भी हुआ। करीब डेढ़ सौ आदमियो का एक जत्था भंगियों के मुहल्ले में पहुँचा। पर कुशल रही, कोई उपद्रव नहीं हो पाया। एक हरिजन-सेवकने लोगों को समझा-बुझाकर लौटा दिया। उसके बाद महुआ के अफसरने गांव में यह डुंडी पिटवा दी कि 'मरी एक कुदरती बीमारी है, इसके बारे में किसी को ढेड़ या भंगियों से कुछ भी नहीं कहना चाहिए। दरबार का यह हुक्म है। अगर किसीने कोई जुल्म किया, तो उस के खिलाफ कानूनी कार्रवाई की जायगी।' इससे वहा के भंगी सवर्णों के जुल्म से बच गये।"

(३)

इसी तरह की तीसरी घटना की रिपोर्ट श्री परीक्षित मजमुदारने भेजी है। बोरसद ताल्लुका के दावोल गांव में इसी बीमारी के वहम में बेकसूर चमारों पर मार पड़ी है।

(४)

तीसरा किस्सा काठियावाड़ के पालडी गांव का है। श्री शंभुशकर लिखते हैं :- -

"राम को एक हरिजन बुढ़िया को सवर्णों के मुहल्ले में देखकर लोगोंको यह वहम हो गया कि यह रांड कुछ-न-कुछ टोना करने के लिए ही आई है। असल में वह एक किसान के यहां अपना अनाज लेने गई थी। गाव के लोगो का यह कहना है कि उन्होंने एक जगह थोड़ा उड़द पड़ा देखा। बस, इसी वहम के आधार पर क्रोधान्ध होकर सवर्णोंने भंगियो का मुहल्ला घेर लिया और भगियो को खूब पीटा। सवर्णों की इस उन्मत्त सेना मे उनकी स्त्रियां भी शामिल थी। भगियों को पीटने में सभी को उत्साह था। यह कहते मुझे खुशी होती है कि पालडी गाव के लोगो को जब समझाया गया तो उन्हें अपनी करनी पर पछताव हुआ और उन्होंने यह वचन दिया कि वे आइन्दा अब कभी ऐसा काम नहीं करेंगे।

चन्द्रशंकर शुक्ल

महाराष्ट्र के तीन खादी-केन्द्र

[गतांक से आगे]

ज्योंही हम कोमटी श्री लक्ष्मण अय्या की दूकान पर पहुँचे, वह बैठक से उतरकर नीचे आगये और हमें इशारे से दरवाजे पर ही रुकने को कहा। हम रुक गये और लक्ष्मण अय्याने हमारे लिए जमीन पर एक टाट बिछा दिया। टाट पर बैठने का इशारा करते हुए उन्होंने हम से तेलगू में पूछा कि आप महारों के मुहल्ले से आरहे हैं न ? उनके सवाल का मतलब हम समझ गये और मुसकराते हुए टाट पर बैठ गये। बातचीत शुरू हुई। एक मित्र दुभाषिये का काम करने लगे। हमने लक्ष्मण अय्या को अपने आने का उद्देश्य बताया और नांदेड़ और वारगल का कपड़ा बतानें की प्रार्थना की। उनकी बातों से मालूम हुआ कि उनके पास निजाम

राज्य की नांदेड और वारंगल, इन दो मिलो में से सिर्फ एक वारंगल मिल का थोड़ा कपड़ा है। नांदेड का कपड़ा वह अभीतक गांव में लाये ही न थे। उन्होंने हमें वारंगल मिल के सफेद शर्टिंग का एक थान बताया। थान का अर्ज ४०" इंच और लम्बाई ४० गज थी। कपड़ा सफेद, बिना धुला, साधारण मोटा और गफ बुना हुआ था। इस कपड़े का ठेठ वारंगल का भाव उन्होंने हमें ७।।) से ७।।।) फी थान बताया। पर वह स्वयं तो पास के रेछनी गांव के एक बड़े व्यापारी से ९) फी थान देकर कुछ कपड़ा लाये थे और अपने गांव में १०) फी थान के हिसाब से बेचते थे। उन्होंने बताया कि देहात में व्यापरियो को कपड़े पर इकन्नी रुपया मुनी देनी पड़ती है। बीच में बिचवइयो और दलाली की भी एक बड़ी संख्या कमीशन पर पलती है, और इनका सब का बोझ गरीब देहातियों को उठाना पड़ता है। इस हिसाब से वारंगल से बारेगुड़ा पहुँचने में एक थान पर २।।) कीमत चढ़ जाती है, और जो थान वारंगलवालों को ७।।) या ७।।।) मिलता है, बारेगुड़ा और तुगड़ावालों को वही १०) में मिल पाता है! इससे अधिक अनर्थ भला और क्या हो सकता है?

लक्ष्मण अय्या की दूकान पर शर्टिंग और धोती के सिवा कोई खास कपड़ा नहीं था। इधर स्त्रियों में रंगीन कपड़ा पहनने का रिवाज नाम-मात्र का ही है, इसलिए इस तरह के कपड़ो से लक्ष्मण अय्या की दूकान बिलकुल सूनी थी। धोतियाँ उनके पास हिंगनघाट मिल की थी—४१" इंची, आठ गजी। कीमत रेछनी की २=) और तुगड़ा-बारेगुड़ा की २।)। गांववालो का आम तजरुबा यह मालूम हुआ कि मिल के कपड़े की ४ धोतियां और ४ कुर्ते एक आदमी के लिए सालभर को काफी होते हैं। लोग यह भी मानते है कि इस कपड़े के मुकाबले में तुगडा-बारेगुड़ा के महारोद्वारा बनी हुई शुद्ध खादी की धोतियां और कुर्ते कुछ महँगे पड़ने पर भी दुगुने चलते है और अधिक उपयोगी होते हैं। फिर भी वे अपने बचाव में यह कहते है कि चूंकि अब गांव के इज्जतदार (!) लोग मिल का कपड़ा पहनने में ही अपना गौरव समझते हैं, इसलिए और लोग भी उनकी देखा-देखी उन्हींका अनुकरण कर रहे हैं! हालांकि जानते सब है कि मिल का कपडा सिर्फ देखने-सुनने में ही अच्छा है, और वह अपने साथ अपने आश्रयदाताओ की बरबादी ही लेकर आया है, और गरीबों का तो वह सत्यानाश कर रहा है, फिर भी दुनिया झुकती है। 'झुकानेवाला चाहिए' की मसल है, और हम उसी के शिकार हो रहे है। कम्बख्ती यह है कि जिन महारो की बनाई शुद्ध खादी पहनने में हमारे पूर्वज किसी वक्त गौरव का अनुभव करते थे, आज उन्हीं महारों की सन्तान-द्वारा बनाई जानेवाली खादी को केवल लोकलाज के कारण हम ठुकरा रहे हैं और उससे नफरत करने लगे हैं! यह सब मतलब की बीमारी है, जो हमारी आखें खुलने पर ही किसी दिन मिटेगी! अभी तो उनपर गहरा पर्दा पड़ा हुआ है।

उन्होंने हमें बताया कि तुंगड़ा-जैसी छोटी बस्तीवाले गांव में प्रतिवर्ष ४००) से ५००),और कभी इसमे भी अधिक का मिल का कपड़ा बिकता है। अभीतक हिंगनघाट वगैरा मिलो का ही कपड़ा बाजार में था; कोई दो-तीन महीने हुए, वारंगल और नांदेड़ की मिले भी मैदान में आ गई हैं और वातावरण स्पर्धा से भर गया है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इधर के देहात में 'बार्टर', बदलौअल, की प्रथा अभीतक मौजूद है—जिससे खाली गांठवाले गरीब अपने पास के कपास, धान, गेहूँ, तिल, जुवार, जवास आदि के बदले में अपनी जरूरत का कपड़ा गांव के सौदागर से खरीद लेते हैं। सौदागरों को इस तरह बदले में जो कपास मिलता है, कभी-कभी अपनी जरूरत के लिए जुलाहों को नाम-मात्र की मजदूरी देकर वे उसकी खादी बनवा लेते हैं और खास मौको पर उसे पहनते है। मजदूरी की दर का दारोमदार जुलाहों की गरज पर रहता है, जो जितना गरजमन्द, दर भी उतनी ही कम! बुनाई नकद और धान दोनों रूप में दी जाती है।

जिस श्रद्धा और साधना के बल पर खादी को आज का स्वरूप प्राप्त हुआ है, बारेगुड़ा में उसकी एक झांकी देखकर मै तो मुग्ध हो गया। बारेगुड़ा के खादी-सेवकों में खादी-द्वारा लोक-सेवा की अभिलाषा रखनेवाला एक नवयुवक है, जो अभी कार्यालय में उम्मीदवारी कर रहा है। लोग उसे दौलत कहते है और उसका पूरा नाम दौलतराव नागझरीकर है। २१ वर्ष की वय का यह ठिगना और सावला नवयुवक स्वभाव का वीर, कष्ट-सहिष्णु, अपनी बात का धनी और कार्यकुशल है। सरलता के साथ मिली हुई तेजस्विता उसकी भोली तरुण आंखो का सिंगार है। उसके साथ बातचीत करने में बड़ा आनन्द आता है। वह आफत का मारा और अपने माता-पिता-द्वारा सताया हुआ एक दृढ़प्रतिज्ञ खादी-सेवक है। छः वर्ष की छोटी उम्र से उसे राष्ट्रीय शिक्षा का सुयोग मिला था। वह नागपुर के राष्ट्रीय विद्यालय का एक पुराना विद्यार्थी है। पिछले साल वस्त्र-स्वावलम्बन का जो प्रयोग उसने किया, वह उसकी खादी-भक्ति और पितृ-सेवा का एक अनूठा और अनुकरणीय उदाहरण है। भाई दौलत के एक वर्ष के वस्त्र-स्वावलम्बन की रिपोर्ट नीचे प्रायः उन्हीं के शब्दों में देता हूँ। आशा है, उससे पाठको को प्रसन्नता के साथ ही प्रेरणा भी प्राप्त होगी। अपनी रिपोर्ट में वह लिखते हैं—

"मुझे वस्त्र-स्वावलम्बन का प्रयोग करते हुए आज एक वर्ष समाप्त हो रहा है। इन १२ महीनो में से पहले ६ महीने मेरे नागझरी में बीते। इस दरम्यान अपने हाथकते सूत की जो खादी मैने वहा बनवाई उसका विवरण नीचेलिखे अनुसार है—

१ २५ गज×३६"×१३ पुजम खादी फी गज –)।। के हिसाब से २।–)।। में एक जुलाहे से बुनवाई।

२. १६ गज×२७"×९ पुजम का एक थान फी गज)।। के हिसाब से ।।।) में बुनवाया।

इसके बाद मैं महाराष्ट्र-चर्खा-संघ में काम करने लगा। चर्खा-संघ में अपने हिस्से का समस्त कार्य करते हुए फुरसत के समय में जो सूत मैंने काता, उसका नीचेलिखा कपड़ा इन छः महीनों में बना पाया हूँ—

१ ८।। गज×४५"×१९।। पुजम् का एक धोती-जोड़ा, जिसकी बुनाई १) हाली दी गई।

२. १०।। गज×४०"×१४ पुजम् धोती-बुनाई ।।।) आना।

३ एक महाराष्ट्री साड़ी (पाताल) बतौर नमूने के ७।। गज×४५"×१६ पुजम्। मजदूरी अभी नहीं चुकाई।

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta

आंतियाँ

"आत्मवत सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 1369.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक — वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, २० सितम्बर, १९३५. [संख्या ३१

विषय-सूची

सत्य और अहिंसा

[२]

जो सत्य और असत्य के विषय में कहा गया है, वही अहिंसा और हिंसा के विषय में समझना चाहिए। जिस तरह बिना सत्य के आधार के कोई असत्य टिक नहीं सकता, उसी तरह ऐसी कोई भी हिंसक शक्ति नहीं जो अहिंसा के आधार के बिना टिक सके। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अहिंसा का अर्थ प्रेम का बल है। जो प्रेमबल एक छोटे-से क्षेत्र में व्याप्त होकर उतने ही क्षेत्र में उपयोग में लाया जाता है, वह उस क्षेत्र की मर्यादा के बाहर हिंसा के रूप में प्रगट होता है। पालतू कुत्ता घर के आदमियों को देखकर नहीं भूकता, वह तो बाहरवालों को देखकर भूकता है। और जो वह बाहरवालों को देखकर भूकता है, उसका कारण है उन लोगों के प्रति उसका प्रेम, कि जिनपर वह कभी नहीं भूकता। इसी तरह जो दूसरों की हिंसा करता है, वह हिंसा जिनकी वह हिंसा नहीं करता उनके प्रति प्रेम होने के कारण करता है। मुझे अपने शरीर पर चूंकि अत्यंत प्रेम है, इसलिए उसे हर तरह से सुख देने के लिए मैं हजारों जीवों को कष्ट पहुँचाता हूँ। किन्तु मुझे अपने परिवार पर भी प्रेम है, इसलिए पीड़ा पहुँचाने के क्षेत्र में मैं उन्हें शामिल नहीं करता। उन्हें तो मैं अपनी सेवा के क्षेत्र में शामिल करता हूँ। धीरे-धीरे मेरे प्रेम की सीमा मेरी जाति तक पहुँचती है, और इसीसे मैं जातिवालों को भी अपने हिंसा-क्षेत्र से अलग कर देता हूँ और उन्हें सेवा के क्षेत्र में दाखिल कर लेता हूँ। इस तरह जैसे-जैसे मेरे प्रेम का क्षेत्र बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे हिंसा का क्षेत्र संकुचित होता जाता है। यदि मुझे किसी पर—यहांतक कि अपने शरीर पर भी—लवलेश प्रेम न हो, तो मुझ से न किसी की हिंसा हो सकेगी, न किसी की सेवा। किंतु कहीं पर भी हमारा प्रेम न हो यह एक अशक्य बात है। क्योंकि आखिरकार हमारा अपने प्रति तो प्रेम रहेगा ही। वह प्रेम नष्ट नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह प्रेम हमारे अपने स्वरूप के साथ जुड़ा हुआ है, और दूसरे समस्त प्रेमों का उद्भव भी अपने से ही होता है। इसीलिए एक प्राणी अहिंसा की मूर्ति हो सकता है, अहिंसा की मूर्ति बन नहीं सकता। वह हिंसा को अपने में से निर्मूल करने की आशा रख सकता है, अहिंसा का उन्मूलन नहीं कर सकता।

परंतु, मनुष्य जितने अंश में अपने को छोटा—अल्प सीमा में आबद्ध—अनुभव करता है, उतने ही अंश में उसका प्रेमबल—अहिंसा—अल्प और बेढंगा होता है। अपने को वह जितना ही विशाल अनुभव करता है, उतनी ही उसकी अहिंसा व्यापक होती है। इस तरह, हिंसा बल की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि वह कैद में बँधा हुआ या अशुद्ध और अनाड़ीपने से उपयोग में लाया हुआ अहिंसा-बल है।

इस प्रकार, जहां मनुष्य अपने को अनुभव करता है वहां, उसका प्रेम अर्थात् अहिंसाबल काम करता है। जहां वह परत्व को—मैं नहीं, मेरा नहीं—देखता है, वहां वह, कम हो या अधिक, कुछ न-कुछ हिंसा करता ही है। मतलब यह कि प्रेम—अहिंसा—मनुष्य के स्वत्व के अनुभव में अन्तर्निहित शक्ति है।

अपने इस स्वत्व के अनुभव—अपने आपके दर्शन का ही दूसरा नाम सत्य की शोध है। मैं कहां-कहां हूँ, कैसा हूँ, कौन हूँ, कितना हूँ, इसीको मनुष्य खोजता है और इसीको वह सत्य की शोध कहता है।

अर्थात्, सत्य शब्द आत्मा के अस्तित्व का सूचक है; अपनेपन का अधिकाधिक अनुभव उसकी शोध का सूचक है। और, प्रेम शब्द उस अनुभव के साथ एकरूप होकर रहनेवाली शक्ति का सूचक है।

जिसे हमारे धर्मग्रन्थ साधारणतया 'अनात्मा'—मैं नहीं, मुझ से भिन्न—कहते हैं, उसमें यदि अपनेपन का अनुभव किया ही न जा सके, यदि उस अनुभव में वृद्धि न हो सके, तो यह भी कौन और किस तरह कह सकता है कि 'आत्मा है?' अगर उस अनुभव में कुछ शक्ति न हो, तो उसके अस्तित्व का प्रयोजन भी क्या हो सकता है? आत्मा और अनात्मा का भेद—'स्व' और 'पर' के भेद की तरह—केवल स्थूल दृष्टि से सत्य है; सिद्धान्ततः, अनात्मा—मैं नहीं—जैसी कोई चीज ही नहीं।

किंतु आत्मा की जो शक्ति है, जिसके द्वारा वह विविध रूप में प्रगट होती है, क्रियावान होती है, अनेक रूपों में अपने को अनुभव करती है—वह शक्ति प्रेम की है। यह प्रेम आदि में अपने प्रति होता है, और अंत में भी अपने ही प्रति रहता है। किंतु विवेक-बुद्धि की वृद्धि के साथ-साथ अपनेपन का स्वरूप बढ़ता ही चला जाता है। अखिल विश्वब्रह्माण्ड को अपने आप में देखने की वह आकांक्षा करता है। यद्यपि वस्तुतः इतना अनुभव करने में उसे सफलता नहीं मिलती, तोभी जितना वह सफल होता है, उतना ही उसकी अहिंसा का क्षेत्र विस्तृत होता जाता है।

इस तरह, अपने विराट् दर्शन के साथ-साथ मनुष्य की अहिंसा का विस्तार होता है। इसके विपरीत, पहले अहिंसा का आश्रय लेकर उसे विस्तारने का निर्णय करनेवाला साधक भी आत्मा की विश्वरूपता का ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार, अहिंसा को विस्तृत करने के प्रयत्न में वह सत्य पर आरूढ रहता है। और सत्य को खोजने तथा उसका अनुभव करने के प्रयत्न मे उसे अहिंसा अपरिहार्य रीति से प्राप्त हो जाती है। कारण यह है कि जहां वह द्वेष करने जाता है, वहा वह तभी द्वेष कर सकता है जब वह अपने से भिन्न किसी की कल्पना करे, किन्तु जो मनुष्य कुछ व्यक्तियों को 'वे मेरे हैं' इस दृष्टि से अनुभव करता है, उसे दूसरो को अपने से भिन्न समझने के लिए बुद्धि का कोई आधार ही नही मिलता। वह इतना ही कह सकता है कि वह दूसरो मे अपनेपन का अनुभव नही कर सकता। शुद्धबुद्धि से वह यह सिद्ध नहीं कर सकता कि वे उससे भिन्न ही है।

उलटा यह होता है कि जब वह शुद्धबुद्धि से विचार करने बैठता है, तब उसे यह मालूम होता है कि दूसरो को अपने से भिन्न समझकर किये हुए कामों में गलतियां और उलझने ही पैदा होती है। सुधारना चाहता है एक काम, और बिगड जाते है तीन! जिसके प्रति वह द्वेष करना चाहता है, केवल उसी एक का अहित नहीं करता, बल्कि दूसरे बहुत-से लोगो का भी अहित करता है। कितने ही निर्दोषो को भी कष्ट पहुँचाता है, और कभी-कभी साधारण मित्रों का भी जी दुखाता है, और अत मे अपने आप की भी क्षति कर बैठता है।

जिस सत्य को सिद्ध या प्रगट करने के लिए वह इस द्वेषयुक्त बल का उपयोग करता है, वह सत्य प्रगट होने की अपेक्षा विशेष रूप से और ढँक जाता है। इस तरह, यदि वह सत्य का शोधक है, तो थोड़े ही अनुभव से जान लेगा कि अहिंसा के द्वारा ही सत्य सिद्ध हो सकता है।

अगर कोई यह कहे कि मैने हिंसा के द्वारा सत्य को पहिचाना है, तो उसके कथन का यह तीन प्रकार का तात्पर्य हो सकता है—एक तो यह कि जिसे वह सत्य समझता रहा है वह निरा भ्रम ही हो, अथवा यह कि वह अहिंसा को ही हिंसा के नाम से पहिचानता हो, या फिर यह कहना चाहता हो कि हिंसा करके मैंने हिंसा की व्यर्थता पहिचानी।

यदि विचार, अवलोकन और अनुभव से ये सब विचार सत्य मालूम हो, तो यह भी ज्ञान हो जायगा कि सत्य और अहिंसा ये एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न प्रकार से समझानेवाले शब्द है।"

किशोरलाल घ० मशरूवाला

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्रामसेवा

बरसात और चिपचिपे कीचड के मारे यद्यपि सफाई का काम हमारा बिल्कुल बद ही रहा, तो भी हममे एक या दो जने तो बीच-बीच मे गाव देखने बराबर जाते ही थे। मुझे यह कहते दु ख होता है कि हमारा गांव इधर बहुत गदा हो गया है, और हमारा सफाई का काम काफी बढ गया है, हमारे एक या दो हफ्ते इस तमाम गदगी को साफ करने मे लग जायँगे।

पर यह काम ही ऐसा है, जिसका हफ्तो में अंदाजा लगाया जा सकता है, और हफ्तो में ही नहीं, इसका हिसाब तो हमें महीनो और बरसो का लगाना चाहिए। वर्धा से गुजरते हुए उस दिन श्री राजगोपालाचारीने कहा, 'जब मैं हर सप्ताह तुम्हारे गांव के बारे में 'हरिजन' मे पढता हूँ, तब मुझे ऐसा लगता है, मानों मैं अपने ही गाव का हाल पढ रहा हूं।'

मैंने कहा, 'नही, आप यह मजाक कर रहे हैं। इसमे शक नही कि हमारे सभी गांवों की हालत प्राय. एक-सो ही है, पर हमारे सिंदी गांव में सहयोग की जैसी कुछ वाहियात कमी है, वैसी शायद ही हमें दूसरे गांवों में देखने को मिले। इतने महीनों से हम इस काम मे लगे हुए हैं, और अब भी यह प्रश्न हमें वैसा ही पेचीदा मालूम देता है।'

राजाजीने कहा, 'तुम तो, भाई, महीनो की ही बात कर रहे हो, मै तो दस बरस से वहा काम कर रहा हूँ, और अब भी मेरे गाव की करीब करीब वैसी ही बेढगी रफ्तार है। नहीं, इस तरह निराशा की दृष्टि से काम नही चलेगा। हमे तो अपना काम करते ही जाना चाहिए।'

पिछले सप्ताह की बात है कि रेल मे मेरे साथ एक सज्जन सफर कर रहे थे। सेनेटरी महकमे मे वे कई बरस एक ऊँचे ओहदे पर रह चुके थे। मैंने उनके साथ स्वास्थ्य और सफाई के संबध मे चर्चा छेड़दी। उन्होंने मुझे अपने दुर्भिक्ष-निवारण-कार्य का अनुभव सुनाते हुए कहा कि मुझे हजारो आदमियों के पडाव का इन्तिजाम करना पडा था, और मुझे तो सारे पडाव की सफाई की व्यवस्था मे तनिक भी दिक्कत नही पडी थी।

मैने कहा, 'ठीक है, मै आपकी बात पर विश्वास कर सकता हूँ। हम लोग भी काग्रेस-सप्ताह के दिनो मे और मेलो-ठेलो पर ऐसा ही करते है। परेशानी तो सारी हमे गांवों के प्रश्न के बारे मे है।'

'इसका तो बस एक ही रास्ता है, और वह यह कि हम ग्रामवासियो के बीच मे जाकर बस जायँ, और वहा अपने उदाहरण से उन्हे यह बतलादे कि मनुष्य को अपने मकान के इर्दगिर्द किस तरह सफाई रखनी चाहिए। पेन्शन लेने के बाद मैने देहात मे जाकर एक बगला बना लिया है, और ज्यादातर मै अब वही अपना समय बिताता हूँ।'

'बिल्कुल ठीक है। पर आपकी तरह हरेक आदमी तो देहात मे जाकर बगला बना नही सकता। मेरा खयाल है कि वहा आप अपना खास भगी रखते होगे।'

'जी हा।'

'तो आप गाव के लोगो से क्या कराना चाहते है? मेरे खयाल मे यही न कि उनसे आप कुछ भगी रख लेने के लिए कहे?'

उनके चेहरे पर कुछ घबराहट-सी दिखाई दी। मैने उनसे कहा कि यह प्रश्न उतना आसान नही, जितना कि आप समझते है। हम लोग महीनो से इस सवाल को सुलझाने मे लगे हुए है, पर सुलझता नजर नही आता। मैने यह सोचा था कि वे मुझे कोई व्यावहारिक गुर बतलायेंगे, क्योंकि वे एक सेनेटरी इजीनियर थे, और इसीसे मैं इस विषय पर उनके साथ चर्चा कर रहा था।

'अरे, यह तो बडा ही सरल प्रश्न है,' उन्होने तुरंत जवाब दिया। 'ग्रामवासी पाखाना फिरने खेतों में जायँ—हर घड़ी तैयार रहनेवाले भगी, याने गांव के सूअर तो वहां हैं ही।'

मैने उन्हे इन सुअरो का और लोगो के खेतों में जाने का अपना अनुभव सुनाया, और कहा कि सच पूछा जाय तो हमारे

गांव में अपनी जमीन बहुत ही थोडे लोगों के पास है।'

लेकिन हमारे पेंशनर साहब इस तरह परास्त होनेवाले नही थे। अब भी उनमें वह अफसरी शान और आजादाना ढंग की बू तो थी ही। सो, उसी ढंग में उन्होने कहा, 'मै जानता हू कि वे लोग कभी पाखाने पर मिट्टी नही डालेंगे। आप लाख जतन करें, बरसों सिर खपाये, पर वे लोग कभी आपका कहा नही मानेंगे।'

'तो आप उन्हे योंही उनकी किस्मत पर छोड देंगे!'

'भाई साहब, हमारे मुल्क में सफाई का तो कोई प्रश्न ही नहीं। जहा बडे-बडे मैदान हो, और काफी तेज धूप पडती हो, वहा गदगी के लिए ठौर ही कहां? शायद ही हमारे यहा गदगी के कारण कभी कोई बीमारी फैलती हो, क्योंकि हमारा बहुत-कुछ सफाई का काम तो सूरज देवता कर डालते है। हा, मझे जरूर उन बुड्ढों को उनकी अपनी किस्मत पर छोड देना चाहिए।'

'तब आप नई पौद को सुधारने का काम करेंगे।'

'हा, यह असल बात कही आपने। बच्चो और नवयुवकों मे आप अपना प्रचार-कार्य कीजिए। वे आपकी बात सुनेंगे और मानेंगे, और जब वे सयाने होंगे, तबतक ये बुड्ढे आदमी इस दुनिया से चल बसे होंगे।'

'लेकिन,' उन्होने कहा—ऐसा मालूम हुआ जैसे एक अच्छी नई सूझ उनके दिमाग मे आगई थी—'लेकिन आप इस सफाई के प्रश्न को लेकर क्यों परेशान होरहे है? हमारे नवयुवको में सिगरेट-बीडी पीने और सिनेमा देखने की जो वाहियात लत पड गई है, वह छुडानी चाहिए। असल मे, यह प्रश्न हमें हाथ मे लेना चाहिए। राष्ट्र का कितना अधिक पैसा इन दुर्व्यसनो में बर्बाद होरहा है, और साथ ही उनमे चरित्रहीनता भी आरही है।' एक बात यहां उल्लेखनीय है, और वह यह कि एक मिनिट पहले ही उन्होने सिगरेट का एक जला हुआ टुकडा खिडकी से बाहर फेंका था। उनका शायद यह खयाल होगा कि बुढापे मे सिगरेट पीने का विशेष अधिकार प्राप्त होजाता है। और इन पेंशनभोगी सेनेटरी अफसरों को अच्छी तरह खूब मजे से आराम करने का अधिकार है—सफाई और आरोग्य के प्रश्नो से हल्लाकान होने का उनका काम नही।

प्रभावकारी सेवा-कार्य

'हरिजन-सेवक' के किसी पिछले अक मे मैने एक दूर के गाव मे सेवा-कार्य करनेवाले एक उत्साही नवयुवक का एक पत्र उद्धृत किया था, और उसकी आलोचना भी की थी। उसकी रिपोर्ट या चिठ्ठी एक मित्र के पास आई है, जिसमें उसकी कार्य-प्रगति का बडा रोचक विवरण दिया हुआ है। उसे अब वहा उचाट नही होता। ग्रामवासियो के साथ अब वह एक तरह का भाईचारा महसूस करने लगा है। वह ग्रामवासियो के साथ उनके खेतो मे जाकर काम करता है, और कभी उनसे अपने काम की मजदूरी नही लेता। वह घर-घर का दुलारा बन गया है। लिखता है, 'वे यो मुझे काम थोडे ही करने देते हैं, पर मै उन्हे मना लेता हूं, और उनके साथ काम करने लगता हूं। वे मुझपर अपना जो प्रेम बरसाते रहते है, वही मेरे लिए क्या है, कम पर और भी अकुलाहट की बात तो यह है कि वे दुनियाभर की साग-भाजी और अनेक तरह की खाने की चीजे मेरे यहां पूरे रहते है—इतना अधिक कि हम जैसे कई आदमी वह सब नही खा सकते। इससे मैंने निश्चय कर लिया है कि बाहर से मुझे अब एक पाई भी नही मँगानी चाहिए, और जो भी गाव के लोग दे सकें उसीमे संतोष मानना चाहिए। इसलिए जिन ग्रामवासियो को मैं सेवा कर रहा हूँ उन्हींके ऊपर सब तरह से निर्भर रहने का मै विचार कर रहा हूँ। मेरे रसोडे मे तीन छोटे-छोटे मटके है, जिनमे ढाई-ढाई सेर नाज अमाता है। एक मे चावल, एक मे दाल और एक मे बाजरी रखी रहती है। जब ये घैले खाली हो जाते है, तब मै लोगो से उन्हे भरवा लेता हूँ; पर जबतक वे फिर खाली नही हो जाते, तबतक मैं उनकी कोई भी चीज नही लेता, और न उनसे कभी कुछ मांगता ही हूँ। मुझे यह कहते हुए आनद होता है कि मेरे ये मटके कभी खाली नही होते, इसलिए मुझे मागने की कभी जरूरत ही नही पडी। लेकिन मुझे अपनी बहुत-सी सभ्यता की आवश्यकताएँ निकाल देनी पडी है। सम्भव है कि मै कभी फिर उन आवश्यकताओ को अपनालू, पर तबतक नही, जबतक कि मै गाववालो को यह अनुभव नही करा लूगा कि मुझे उन की जरूरत है। यहा से मीलेक दूर एक खेत मे एक छोटी-सी झोपडी बनाने का भी मेरा विचार है, जिससे कि मैं दूसरे गावो की भी अधिक सहूलियत से कुछ सेवा कर सकू। पर यह गाव तो मेरा निज का गाव रहेगा ही। मै पडोस के एक गाव में जाया करता हूँ, जहा के लोग रोटी-भाजी से और जगह से सुखी हैं, और जहा एक खासा अच्छा अंग्रेजी स्कूल भी है। डेढ सौ से ऊपर इस स्कूल मे लडके पढते हैं। हर सप्ताह एक दिन मैं वहा जाता हूँ, और तमाम विद्यार्थियो को कुछ सामान्य ज्ञान की बाते बतलाया करता हूं। अध्यापको और विद्यार्थियो के साथ मेरा बडा सुन्दर सबध हो गया है, और उन्होने इस बात का बडा आग्रह किया कि मै उनके गाव मे आकर रहने लगू। मैने उनकी इस कृपा का आभार माना, पर वहा रहने की हामी नहीं भरी। मैने उनसे कहा कि मेरे लिए तो मेरा वह छोटा-सा गांव ही अच्छा है, वहा मेरी ज्यादा जरूरत है। दसहरे का दिन मेरे लिए बडी मुश्किल का दिन होगा। अन्धविश्वास का साम्राज्य तो यहा है ही। उस दिन इन सीधे-सादे अज्ञानी लोगो को बिना एक भैसा कत्ल किये चैन पडने का नहीं। जितना मुझसे बनेगा उन्हे समझाऊगा। देखना है, मुझे इसमे कितनी सफलता मिलती है।

सेवा का ऐसा ही एक और उदाहरण है, और वह है देश के एक दूसरे भाग मे काम करनेवाली एक बहिन का। उसका पत्र गाधी जी 'सेवा की रीति' नामक लेख में 'हरिजन-सेवक' के ३० अगस्त के अक में दे चुके है। कुछ दिन हुए कि मुझे उस बहिन के गाव मे जाने का मौका आया। पहले से बिना कोई सूचना दिये मैं वहां बडे तडके जा पहुँचा। उसे आनद भी हुआ और अचरज भी। और जब मेरी आवभगत करने वह बाहर आई, तो मैने देखा कि उसके हाथ आटे मे भिडाये हुए हैं। उसने हमे बतलाया कि मै अभी-अभी चक्की पर से उठी हूँ। इसके बाद उसने हमे थोडी-सी लपसी का कलेवा कराया, और फिर हमे अपना गाव दिखाने ले गई। जहा भी हम गये, लोगोने हमारी बडी आवभगत की। हमें ऐसा लगा कि यह बहिन जैसे जन्म से इसी गाव की रहनेवाली हो। ऐसा मालूम होता था कि छोटे-बडे सभी उसे अपने कुटुबी की ही तरह मानते है। मुझे मन-ही-मन ईर्ष्या हुई कि धन्य है इस बहिन का भाग्य! और एक हमारा कम्बख्त गांव है, जहां हमें नित्य ही कठिनाइयो का सामना करना पडता है! पर इस बहिन के मुकाबिले में हमने अपने गांव में अभी सेवा-कार्य किया ही कितना है?

[२४९ पृष्ठ के पहले कालम पर]

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २० सितम्बर, १९३५

भ्रान्तियाँ

घटनाओं और चीजों को ध्यान के साथ देखनेवाले एक सज्जन लिखते है —

"आपके जिस पत्र का मैं जवाब दे रहा हूँ उसमे बतलाई हुई दिशाओं में काम करने का काफी बड़ा क्षेत्र पड़ा हुआ है। गृहउद्योगों के लिए तो क्षेत्र है ही। पर अगर साफ-साफ पूछा जाय तो, मैं यह स्पष्ट कहूँगा कि मेरे खयाल में ये गृहउद्योग बड़े-बड़े उद्योगों का स्थान नहीं ले सकते। इन बड़े बड़े उद्योगों के सचालकों के आर्थिक हितों को एक तरफ रखदे तो भी मेरा यह खयाल है कि इस प्रकार के जो बड़े-बड़े उद्योग स्थापित हो चुके है या स्थापित हो सकते है उन्हे नष्ट करने का प्रयत्न करना देश के हक में अच्छा नहीं होगा। यत्रों के खिलाफ सबसे बड़ी आपत्ति यही उठाई जाती है कि काम-धधे में लगे हुए आदमियों का काम ये यत्र दिन-पर-दिन छीनते चले जा रहे है। नतीजा यह होता है कि बेकारी बढ़ती ही जाती है। मुनाफे के विभाजन की जो मौजूदा प्रणाली है, सम्भव है कि, उसमे फेरफार करने की जरूरत हो। पर फुर्सत के समय का अगर सदुपयोग हो सके, तो वह और बहुत-से कामों से अधिक महत्व का काम होगा। सिर्फ लोगों को भारी तादाद मे काम मे लगाने के लिए मेरे विचार मे यह जरूरी नहीं कि हम इन यत्रों को खारिज करदे, जिनसे पैसे की बचत भी होती है और काम भी अच्छा और अधिक मात्रा मे होता है। होना यह चाहिए कि इन यत्रों से अनेक मनुष्यों को फुर्सत और अन्न मिले। इन 'अनेक मनुष्यों' मे ऐसे लोगों को भी मैं शामिल कर लेता हूँ, जिनका इस उद्योग के साथ दूर का भी सम्बन्ध नहीं। भारत की जन-सख्या एक तो योंही अधिक है, और वह बराबर बढ़ती ही जा रही है—यह देखते हुए मुझे यह डर है कि ऐसा समय तो शायद ही कभी आयगा जब यहा हरेक आदमी को ठीक-ठीक सुख-सुविधा दी जा सके। ज्यों-ज्यों लोगों मे शिक्षा और स्वच्छता का प्रचार होगा, त्यों-त्यों उनकी आयु बढ़ेगी और मृत्यु-सख्या के प्रमाण मे कमी होती जायगी। जन-सख्या की दृष्टि से देखे तो स्थिति तब और भी बुरी हो जायगी। इसलिए माफ करे, मुझे यह कहना ही पड़ेगा कि इस दिन-दिन बढ़ती हुई आबादी के रोकने का प्रयत्न करना ही हमारा सब से पहला काम होना चाहिए, और यह काम बिना सतति-निग्रह के नहीं हो सकता। मै यह जानता हूँ कि आप इस चीज के खिलाफ है। मगर आज चूकि आप सफाई, आहार-सुधार, ग्रामउद्योग आदि के द्वारा आर्थिक पुनःरचना पर ही अपना सारा ध्यान दे रहे हैं, इसलिए मैं आपसे यह देख लेने की प्रार्थना करता हूँ कि यह चीज भी आपके ध्यान देने की है या नहीं।"

जिन सज्जनने यह पत्र लिखा है वे एक ईमानदारी से विचार करनेवाले व्यक्ति हैं, तो भी, जैसा कि मुझे मालूम होता है, जिन दोनों संघों को लेकर उन्होंने लिखा है उनके कार्य का सारा ध्येय ही वे नहीं समझ सके। बड़े-बड़े उद्योगों को हटाकर उनकी जगह ले लेना या उन्हें नष्ट कर डालना तो इन संघों का ध्येय है ही नहीं, उनका ध्येय तो यह है कि मृत या मृतप्राय उद्योगों को पुनरुज्जीवित किया जाय, और उनके द्वारा उन करोड़ों मनुष्यों के लिए काम तलाशा जाय, जिन्हे जबरन पूरी या आधी बेकारी मे रहकर अधपेटा रहना पड़ता है। यह विनाशात्मक नहीं, रचनात्मक कार्यक्रम है। ये बड़े-बड़े उद्योग करोड़ों बेकार मनुष्यों को तो कभी काम दे नहीं सकते, और उन्हें यह आशा भी नहीं है। उनका मुख्य ध्येय तो अपने चद मालिकों को रुपया पैदा करने का है, करोड़ों बेकार आदमियों को काम देना उनका खास उद्देश कभी रहा ही नहीं। खादी और दूसरे ग्रामउद्योगों के संचालक यह आशा तो करते नहीं कि निकट भविष्य मे बड़े-बड़े उद्योगों पर कोई असर पड़ेगा। यह आशा वे अवश्य करते है कि ग्रामवासियों की अँधेरी कोठरियों मे—जिन्हे झोपड़िया कहना भी भाषा का दुरुपयोग करना है—प्रकाश की एक किरण पहुँचाई जाय। पत्रलेखक सज्जन जब यह कहते हैं कि 'फुर्सत के समय का अगर सदुपयोग हो सके, तो वह और बहुत से कामों से अधिक महत्व का काम होगा,' तब ऐसा मालूम होता है कि उनका सारा ही केस खत्म हो जाता है। जिन प्रवृत्तियों को वे स्वीकार नहीं करते, उन प्रवृत्तियों का उद्देश उस ध्येय को ही तो पूरा करना है जो उनकी दृष्टि में है। आलस्य मे पड़े हुए करोड़ों मनुष्यों के फुर्सत के समय का सदुपयोग करना ही इन प्रवृत्तियों का ध्येय है।

इसमे यत्रों के गलत उपयोग और दुरुपयोग के—अर्थात् करोड़ों को नुकसान पहुँचानेवाले उपयोग के विरुद्ध जरा-भी लड़ाई नहीं है। हिन्दुस्थान के सात लाख गांवों में फैले हुए ग्रामवासीरूपी करोड़ों जीवित यत्रों के विरुद्ध इन जड यंत्रों को प्रतिद्वन्द्विता मे नहीं लाना चाहिए। यंत्रों का सदुपयोग तो यह कहा जायगा कि उसमे मनुष्य के प्रयत्न को सहारा मिले और उसे वह आसान बनादे। यंत्रों के मौजूदा उपयोग का झुकाव तो इस ओर ही बढ़ता जा रहा है कि कुछ इने-गिने लोगों के हाथ मे खूब सपत्ति पहुँचाई जाय, और जिन करोड़ों स्त्री-पुरुषों के मुहँ से रोटी छीन ली जाती है, उन बेचारों की जरा भी पर्वा न की जाय। अत्यंत सूक्ष्म मनोवृत्तियोंवाले मनुष्यरूपी यत्रों से काम न लेने की इच्छा से जड यत्रों के जरिये काम लेकर विपुल सपत्ति इकट्ठी करने की सनकने जो घोर असतोष प्रज्वलित कर रखा है, उसे यथासभव शमन करने के ही विचार से चर्खा-सघ और ग्रामउद्योग-संघ की रचना की गई है।

पत्र-लेखक को यह भय है कि ऐसा समय कभी नहीं आयगा कि जब हरेक मनुष्य को ठीक-ठीक सुख-सुविधा दी जासके। जो लोग गांवों में काम कर रहे हैं, उन्हें ऐसा कोई भय नहीं है। बल्कि बात इससे उलटी है। गांववालों के निकट संपर्क में आने और गांवों की स्थिति से अधिक परिचित होने से उनकी यह आशा बढ़ती ही जा रही है कि अगर ग्रामवासियों से उनकी यह पुश्तैनी काहिली छुड़ाई जा सके तो वे सब-के-सब ठीक-ठीक सुख-सुविधा में रह सकते हैं, और इसके कारण देश की आर्थिक व्यवस्था में कोई बड़ी उथल-पुथल भी न हो। इसमें शक नहीं कि कुछ त्रास-दायक स्थितियों का जुल्म तो कम करना ही पड़ेगा। पर अगर

धनिक कहे जानेवाले वर्गों की ओर से कुछ सहयोग मिले तो इस जुल्म कम करने की क्रिया का असर भी प्रायः आसेगा नहीं।

वर्तमान जन-संख्या के लिए ठीक-ठीक सुख-सुविधा की व्यवस्था करने के विषय मे पत्र-लेखक को जो भय है उससे स्वभावतः हद से ज्यादा आबादी बढ़ जाने का भय उनके मेन में पैदा हुआ है। इस दशा मे तब संतति-निग्रह ही तर्कसंगत उपाय हो जाता है। मेरे लिए संतति-निग्रह एक अंधकूप है। अज्ञात शक्तियों के साथ खेलने-जैसी बात है। यह भी मान लिया जाय कि कृत्रिम उपायो के द्वारा कुछ स्थितियो में संतति-निग्रह करना उचित है, तो भी मुझे ऐसा भास होता है कि करोड़ो मनुष्यो के लिए यह चीज बिल्कुल ही अव्यवहार्य है। उन्हे गर्भाधान रोकने के उपायो से संतति-निग्रह की बात समझाने की अपेक्षा मुझे तो यह ज्यादा आसान मालूम होता है कि उन्हे संयम के साथ रहने की बात समझाई जाय। हमारा यह छोटा-सा पृथिवी-मंडल कुछ कल का बना हुआ खिलौना नही है। अनगिनते युगो से यह ऐसा ही चला आ रहा है। जन-संख्या की वृद्धि के भार से उसने कभी कष्ट का अनुभव नही किया। तब कुछ लोगों के मन मे यकायक यह सत्य का उदय कहा से हो गया कि यदि गर्भाधान रोकने के कृत्रिम उपायों से जनन-प्रमाण न रोका गया, तो अन्न न मिलने से पृथिवी-मंडल का नाश हो जायगा ? मुझे यह भय है कि मेरे पत्र-लेखक मित्र एक भ्रांति से दूसरी भ्रांति मे पड़ते गये है, और अन्त मे एक एमे भारी पैमाने पर किये जानेवाले गर्भाधान-निरोध के दलदल मे जा फँसे है, जो अभी तक एकदम अज्ञात है।

'हरिजन' से] मा० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

[२४७वें पृष्ठ से आगे]

मज़दूरी की दर के संबंध में

खादी के कारीगरो को कम-से-कम कितनी मजदूरी दी जाय इस संबंध मे यहां एक चर्चा और हुई। यह तो मै पहले ही कह चुका हूँ कि ग्रामउद्योग-विभाग को जिन ग्रामउद्योगो को हाथ मे लेना है उनके संबंध में तो यह चीज बहुत आसान है, और इसी से इस विषय का एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास करने मे संघ की कार्यकारिणी समिति को बहुत बहस करने की जरूरत नही पड़ी। पर खादी-कार्यकर्त्ता तो सभी जगह भारी परेशानी मे पड़े हुए है, और गत सप्ताह मेरठ और उत्तरी भारत के कुछ खादी कार्यकर्त्ताओं के साथ गांधीजी को काफी बात करनी पड़ी। उनकी दलीलो का सार संक्षेप मे यह है -- (१) यह कहना गलत है कि हम गरीब कत्तिनों का शोषण कर रहे है या उनका पेट काट रहे हैं। उलटे, जो लोग सस्ता जापानी या दूसरा विदेशी कपड़ा आसानी से खरीद सकते है, वे हमारी महँगी खादी खरीदते हैं। यह शोषण नही, देशानुराग है : (२) इस पेटपुराऊ मजदूरी का अर्थ यही होगा कि बहुत थोड़ी कत्तिनो को थोड़ा पैसा और मिलजायगा, पर उन हजारों कत्तिनो की क्या हालत होगी जो बेकार हो जायँगी ? (३) कत्तिनें खुद पेट भरनेलायक किंतु अनिश्चित मजदूरी के बजाय थोड़ी किंतु स्थायी मजदूरी अधिक पसंद करेंगी। अगर इसपर मतसंग्रह किया जाय, तो वे अपनी राय इस पेट भरनेलायक मजदूरी के खिलाफ ही देंगी। (४) हमने कत्तिनों की मजदूरी नही घटाई; खादी के दाम हमारे जो घट गये हैं उसका कारण यह है कि इधर रुई का भाव गिर गया है, और बुनकरों की मजदूरी की दर कम होगई है। (५) अगर राजनीतिक परिस्थितियां अनुकूल होती, तो इस संबंध में हम कुछ कर सकते थे, पर आज तो इस परिवर्तन के हक में वातावरण बिल्कुल ही अनुकूल नही। इत्यादि, इत्यादि।

गांधीजीने उनकी इन आपत्तियों की जड़पर कुठाराघात करते हुए कहा कि "यह तो संघ का नाम ही बतलाता है कि हमारा ध्येय सबसे कम मजदूरी पानेवाली कत्तिनों का हित सबसे पहले साधने का है। इसलिए हमें धीरे-धीरे उनकी स्थिति मे सुधार करके अपना ध्येय सार्थक करना है। आपको यह याद रखना चाहिए कि जो बात आज से मैंने बहुत पहले कही थी, वह बात आज भी वैसी ही कायम है--अर्थात् 'हरेक घर मे चर्खा होना चाहिए, और हर गांव मे एक या एकाधिक करघे।' यह वस्त्र-स्वावलंबन का आदर्श है। अगर मै आपको अपनी बात समझा सकूं तो मै आपसे यह कहूंगा कि जितनी सेवा कत्तिनो की आप उनकी खादी बेचकर कर रहे है, उससे अधिक सेवा आप उनसे अपने जाती उपयोग के लिए खादी तैयार कराके कर सकते है। अपनी रोटियां हम अपने घर मे ही बना लेते है. गांवो मे होटल तो कहीं हैं नही; इसी तरह तमाम ग्रामवासियो को अपने लिए खादी खुद ही बना लेनी चाहिए। यह बात नही कि उनमें कुछ लोग अतिरिक्त खादी तैयार नहीं करेंगे, मांग होगी तो जरूर तैयार करेंगे। शहर के जो लोग हमारी खादी खरीदना चाहेंगे उनसे तो हम आर्डर लेंगे ही, और वह खादी हम जिन कारीगरो से तैयार करायेंगे उन्हें नित्य की आवश्यकताओं के अनुसार प्रतिघंटा पर्याप्त मजदूरी मिलेगी। संभव है कि इससे खादी का मौजूदा भाव फिलहाल कुछ चढ़ जाय। हमें लोगो की गरीबी का बेजा फायदा तो उठाना ही नही चाहिए। मैंने यह कभी नही कहा कि गरीब कत्तिनो का जान-बूझकर पेट काटा गया है। हम लोगोने गत पन्द्रह वर्षो मे जो कुछ किया है उसका पूरा उत्तरदायित्व मै अपने ऊपर लेता हू, और जो कुछ हमने किया है वह अनिवार्य था। पर अब हमे एक नई लीक पर चलना है। सामान्य वर्ग के गरीब लोगों की तरफ सदियो से हमने ध्यान तक नही दिया, और उन्हे अपने काबू मे रखकर उनसे काम लेने का हम अपना बेजा हक मान बैठे है, पर यह बात कभी हमारे ध्यान में नहीं आई कि अपनी उचित मजदूरी मांगने का उन्हे भी तो कोई हक है, और जिस तरह रुपया-पैसा हमारी पूंजी है उसी तरह श्रम या मजदूरी उनकी पूंजी है। अब वह समय आगया है जब हमे उनकी आवश्यकताओं का, उनके काम के घंटो का, उनकी फुर्सत के समय का और उनकी रहनी का विचार जरूर करना चाहिए।

यह दलील देना व्यर्थ है कि कत्तिनें बजाय इसके कि थोड़ी-सी कत्तिनो को ऊँची दर से मजदूरी मिले, यह चाहेंगी कि मजदूरी थोड़ी मिले पर मिले सब को। गरीबों का शोषण करने वाला और गुलामो को रखनेवाला हरेक आदमी यही दलील देता है। और सचमुच कम्बख्त गुलामो में कुछ ऐसे आदमी थे, जिन्हे गुलामी की जंजीर बड़ी प्यारी लगती थी। पर आपको यह भय क्यो हो रहा है कि उनमें से अधिकांश कत्तिने बेकार हो जायँगी ? क्या हम उन्हें कोई दूसरा धंधा नही बतला सकते ? आंध्र में सीताराम शास्त्रीने उन्हे तुरन्त धान कूटने में काम में लगा दिया है, क्योंकि कताई से धान-कुटाई में उन्हें ज्यादा पैसा मिलता है।

हमें अपने आपको धोखा नहीं देना चाहिए। उनकी गरज का हमने अबतक फायदा उठाया है, और उनकी दृष्टि से हमने इस प्रश्न पर कभी विचार किया ही नहीं।"

इस बातचीत के समय सतीश बाबू भी उपस्थित थे। उन्हे यह डर था कि इस पेट भरनेलायक मजदूरी की बात से अनेक तरह की धोखेबाजी के लिए दरवाजा खुल जायगा। गांधीजीने इस पर यह कहा कि यह डर आज का थोड़ा ही है, यह तो हमेशा से ही है। मजदूरी की दर अभी बढ़ी तो है नहीं, पर धोखेबाजी आज कहा नहीं होती? यह तो एक ऐसा प्रश्न है जिसे स्वतन्त्र रीति से ही हल करना होगा। मैं इस बात पर पूरी तरह से सहमत हूँ कि खादी-कार्यकर्त्ताओं के बीच यह जो प्रतिस्पर्धा का वातावरण है वह अवश्य दूर हो जाना चाहिए, और मुझे विश्वास है कि खादी के पीछे जो यह व्यापारी वृत्ति है उसके दूर होते ही प्रतिस्पर्धा का वातावरण नष्ट हो जायगा।

सतीश बाबू को इस बात की भी चिंता थी कि खादी के कारीगर की मजदूरी किसान की मजदूरी से किसी हालत में ज्यादा नहीं होनी चाहिए। गांधीजीने कहा कि किसान की मजदूरी! ऐसी तो कोई चीज ही नहीं है। भारतवर्ष के अनेक भागो में किसान को अपनी जमीन से शायद ही पेट भरनेलायक अनाज मिलता हो। और जिस किसान के पास अपनी जमीन नहीं है और पट्टे की जमीन पर काश्त करता है उस बेचारे की पैदावार तो इतनी भी नहीं होती कि जिससे और नहीं तो जमीन का लगान तो भर सके। किसान की स्थिति का तो कोई पैमाना ही नहीं। पेट के लिए रोज रोटी भर मिलती जाय, यही एकमात्र पैमाना है। इससे कम मजदूरी देने का प्रयत्न करना अपराध कहा जायगा।

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

टिप्पणियाँ

एक संशोधन

प्रो० मलकानी लिखते हैं कि 'हरिजन-दिवस' २४ सितम्बर को मनाया जायगा, २५ को नहीं, क्योंकि 'पूना-पैक्ट' पर २४ सितम्बर को सही हुई थी।

मो० क० गांधी

हरिजन-बोर्डों को चेतावनी

श्रीमलकानी के पत्र में से नीचे एक अवतरण देता हूँ'—

"प्रांतीय बोर्डों के मंत्रियो के इस आशय के पत्र मेरे पास आने शुरू हो गये है कि हरिजन-सेवा-कार्य के खर्च का २५ प्रतिशत जो उन्हें इकठ्ठा करना है उसे भी इकठ्ठा करने में उन्हे कठिनाई आ रही है। श्रीगोपाल स्वामी के पत्र से, जिसकी एक नकल मैं इसके साथ भेज रहा हूँ, यह मालूम हो जायगा कि पैसा इकट्ठा करने मे ढील से काम लेना कितना खतरनाक है। २२ अगस्त को प्रांतीय बोर्डों के नाम ८१७५५॥=)२ की रकम हमारे पेशगी के खाते में थी। इस रकम से करीब-करीब सभी बोर्डों और उनकी शाखा-समितियो का दो महीने का खर्च चल सकता है। मुझे ऐसा मालूम होता है के हमारी अनेक समितियो को पैसा इकट्ठा करने के बजाय पेशगी की रकम खर्च कर डालने की आदत-सी पड़ गई है। अगर यह मनोवृत्ति बढती गई—और आगामी १ अक्तूबर के बाद इसके बढ़ने की संभावना है भी—तो एक बडी बिकट स्थिति पैदा हो जायगी। हम कोई नई रकम पेशगी न दें, तो भी उनके मत्थे इतना ज्यादा बकाया चढ़ चुका होगा कि उन्हें साधारण काम-काज चलाना मुश्किल हो जायगा। इस बात में आसाम का बोर्ड सबसे अधिक अपराधी है, और उसकी लापर्वाही के उदाहरण से दूसरे बोर्डों को सचेत हो जाना चाहिए। हरिजन-यात्रा में गांधीजी को वहा जितना पैसा मिला था वह सब-का-सब उसे सौप दिया था, उसमें से कुछ भी नही काटा गया था, और प्रबंध तथा प्रचार-खर्च के लिए ३ सहायता अलग ही गई। तो भी इस प्रांतीय बोर्ड के नाम भारी बकाया पड़ा हुआ है। मैं आपका आभार मानूंगा, अगर आप हमारी पेशगी दी हुई रकमो और नया चंदा इकट्ठा करने के संबंध में जागृत रहने का महत्व हरिजन-बोर्डों को बतलाने की कृपा करेंगे।"

इस पर टिप्पणी लिखने की शायद ही जरूरत हो। प्रांतीय बोर्डों, जिला बोर्डों और दूसरी शाखा-समितियोने अगर आज पैसा इकठ्ठा करने का समय ढिलाई में खो दिया, और बैठे-बैठे ऊँघते रहे, तो आगे वे अपने को बिना साधन-सामग्री के पायेंगे। भाग्य जागते हुए पर ही कृपा करता है, सोते हुए पर कभी नहीं। जो सोता है वह खोता है। मैं जानता हूं कि संघ का प्रधान कार्यालय भाग्य की इस सुन्दर रीति का अक्षरश: पालन करेगा। इसलिए संघ की तमाम शाखाओ को समय पर चेत जाना चाहिए, और उनके लिए यह अच्छा होगा कि वे अब भी अपना साधनबल सचय करलें। यदि वे अच्छा ठोस काम करके दिखायेगे तो उन्हे स्थानीय चंदे से पैसा मिलता रहेगा। और जो न मिले तो इसका यह अर्थ होगा कि उन्हे अपना काम समेट लेना चाहिए।

'हरिजन' से] **मो० क० गांधी**

गाँवों में वस्त्र-स्वावलंबन

वस्त्र-स्वावलबन के प्रयोग भारतवर्ष के अनेक भागो में हो रहे हैं। पुलियन, कुरिची, कैकलूर, चिगमलपट्टी और वडक्कम-पट्टी में वस्त्र-स्वावलबन का जो प्रयोग हुआ है, उसके कुछ रोचक आकड़े चर्खा-संघ की तामिल-नाडू-शाखाने भेजे हैं।

३० जून, १९३५ तक छे महीने में १६१ कत्तिनोने १४०१ पाउण्ड सूत काता, जिसकी १७२१ वर्गगज खादी २० बुनकरोने ३१)॥ में बुनी।

'अंग्रेजी' से] **मो० क० गांधी**

एक सुन्दर उदाहरण

अपने घरेलू काम-काज में या सार्वजनिक दूकानो, अथवा सरकारी नौकरियो मे हरिजनों को अगर हम नौकर रखने लगे, तो उनकी अस्पृश्यता और अपने को स्वभावत: छोटा समझने की वृत्ति दूर करने का यह एक भारी साधन हो सकता है। संघ जब से स्थापित हुआ तभी से वह इस बात को कहता आ रहा है, पर इस दिशा में सफल प्रयत्नों के उदाहरण बहुत कम देखने में आये हैं। दोहद की हरिजन-सेवक-समिति के मंत्री का ऐसा ही एक उदाहरण है। सब से पहले उन्होने पानो की अपनी थोक बिक्री की दूकान पर एक पढ़ा-लिखा ढेढ नवयुवक रखा। इसके बाद पंचमहाल जिले में एक तरुण हरिजन को 'तलाटी' (मालगुजारी का मुनीम) की जगह पर, और दूसरे को दोहद की मुन्सिफी कचहरी में

चपरासी की जगह पर रखलेने के लिए सिफारिश की गई। दोहद में मामलतदार के आफिस में भी चपरासी की जगह के लिए एक योग्य भंगी रखने की सिफारिश की गई, और वह वहां रख लिया गया। और चौथा हरिजन बतौर उमेदवार के 'तलाटी' की जगह पर रख लिया गया। गुजरात में ऐसे उदाहरण बहुत ही कम देखने में आयेंगे। इस सत्प्रयत्न के लिए दोहद की हरिजन-सेवक-समिति के मंत्री बधाई के भाजन हैं।

अमृतलाल वि० ठक्कर

दो महत्त्व के काम

राजपूताना-हरिजन सेवक-संघ के मंत्री श्री शोभालाल गुप्तने जुलाई मास का जो कार्य-विवरण भेजा है, उसे देखने से यह मालूम होता है कि संघने ये दो अच्छे महत्त्व के काम किये हैं:—

१—बागड़-सेवा-मंदिर के हमारे कार्यकर्त्ताओंने सागवाड़ा के इर्दगिर्द के गांववालों के दिल में यह बात बैठा देने की कोशिश की कि कपास की खेती से उन्हें कितना लाभ हो सकता है। हमारे प्रयत्न का यह परिणाम हुआ कि करीब १२० किसानोंने इस साल कपास बोने का निश्चय कर लिया। इन किसानोंने यह प्रयोग अपने जीवन में पहली ही बार किया है।

२—डूंगरपुर में हरिजन-पाठशाला के मुख्याध्यापक श्री मदन सिंहजी और उनके साथियोंने गरीब हरिजनों की दो बावडियों को अपने हाथ से अच्छी तरह साफ किया। बावडियां साफ हो जाने से गरो और चमार तथा नायक हरिजन जातियों को अब स्वच्छ जल मिलने लगा है।"

वि० ह०

हमारे लिए यह शर्म की बात है

सूरत में महाराष्ट्र मित्र-मंडल की सभा में ४ सितंबर को श्री ठक्कर बापाने जो भाषण दिया था उसका यह नीचेलिखा अंश श्री परीक्षितलाल मजमुदारने भेजा है:—

"सभापति महोदयने इस पर खेद प्रगट किया है कि आज की सभा में लोग बहुत थोड़े आये हैं। पर मुझे इससे निराशा नहीं होती। मेरा यह विश्वास है कि अस्पृश्यता-निवारण के विषय में महाराष्ट्र से गुजरात प्रांत पिछड़ा हुआ है। महाराष्ट्र में हरिजनों के बालक सवर्ण बालकों के साथ बैठते हैं, और हरिजन अध्यापक भी सवर्णों के बालकों को पढ़ाने में कोई संकोच नहीं करते। पर यहां तो कवीठा गांव में जरा-सा प्रयत्न होने से ही ऊधम मचा हुआ है। और यह बात भी इतनी ही सच है कि गुजरात के हरिजनों में महाराष्ट्र के हरिजनों की जैसी शक्ति नहीं है कि वे सवर्णों के अत्याचार का साहस के साथ सामना कर सकें। और, हमारे काठियावाड में तो यहां से भी अधिक दुःखदायक स्थिति है।

दुःख की बात यह है कि हम अपने समाज के, अपने धर्म के और अपने देश के मनुष्यों को सहन नहीं कर सकते। युनाइटेड स्टेट्स, अमेरिका, की 'लिंचिंग' की बात जब मैं सुनता था, तब मुझे पहले अचरज होता था कि वहां ऐसा अमानुषिक अत्याचार कैसे होता होगा! पर हमारे यहां गुजरात-काठियावाड़ में ढोरों की बीमारी के दिनों में भी सवर्ण हिंदू 'लिंचिंग'-जैसा ही जुल्म कर रहे हैं। त्रावणकोर राज्य में हर साल कम-से-कम दस हजार हरिजन ईसाई होते हैं। इससे यही प्रगट होता है कि हरिजनों के प्रति हमारा जो क्रूरता का बर्ताव है उससे तंग आकर ही उन्हें दूसरे धर्म की शरण लेनी पड़ती है। हमारे लिए यह शर्म से डूब मरने की बात है।

ऐसी स्थिति हिंदुस्तान के करीब-करीब सभी प्रांतों में आपको मिलेगी। बंगाल में कुल हिंदू-जनसंख्या में ४२ प्रतिशत हरिजन हैं। कितने ही गांवों में सवर्णों की आबादी से खुद हरिजनों की आबादी अधिक है, तो भी हम उनकी अवगणना करते हैं; और वहां तो उन नमोशूद्र लोगों की भी गिनती अस्पृश्यों में होती है, जिनकी संख्या २५ लाख से ऊपर है, और जिनमें अच्छे-अच्छे वकील और डाक्टर हैं! त्रावणकोर में थीया और एजुवा लोगों की भी यही स्थिति है। हरिजन चाहे जितने पढ़े-लिखे या धनवान हों, चाहे जितने साफ-सुथरे हों, उनकी अस्पृश्यता नहीं जाती! इसे सवर्णों की घोर दुर्बुद्धि ही कहना चाहिए। पंजाब का चूढ़ा, जिसका अर्थ भंगी होता है, भंगी का धंधा न भी करता हो, तो भी हम सवर्ण लोग उसे पैर के नीचे दबाए हुए हैं।

इस तरह हम अपने देश की कुल ३५ करोड़ की आबादी में से ५ करोड़ भाइयों को दलित बनाये चले आरहे हैं। इस बर्ताव में अब तुरत ही परिवर्तन करने की जरूरत है। यह काम सवर्णों के हृदय-परिवर्तन पर निर्भर करता है, और हमें आशा है, कि सवर्णों का ईश्वर शीघ्र सुबुद्धि देगा।

'हरिजन-बंधु' से] चं० शुक्ल

महाराष्ट्र के तीन खादी-केन्द्र

[गतांक से आगे]

नागझरी में रहते हुए मैं प्रतिदिन २००० तार, अर्थात् ६६० तार की तीन लट्टियां नियमित गति से कातता था। लगातार छः महीनोंतक मेरा यह क्रम चला। बाद में बीमार पड़ जाने के कारण कुछ दिन पूरी कताई न हो सकी। इस बीच कौटुम्बिक परिस्थितियों के कारण मुझे शारीरिक और मानसिक क्लेश भी कुछ कम नहीं रहा, फिर भी मैं प्रसन्नभाव से अपना कर्त्तव्य करता रहा। निराशा को मैंने अपने पास फटकने नहीं दिया। चर्खा-संघ में आने के बाद दूसरे छः महीनों में मैंने करीब २७ गज खादी का सूत काता। लेकिन यह सब अपनी फ़ुरसत के समय में। चर्खा-संघ की ओर से मैं केन्द्र में खादी खरीदने, ताने-बाने का सूत तौलकर देने, धोबी से कपड़े धुलवाने, संघ का हिसाब रखने और गांवों में घूम-घूमकर जुलाहों से मिलने का काम करता हूँ।

यरवडा-चक्र पर मेरी गति २० मिनट में१६० तार की है। और फाल्के पर इतना सूत लपेटने में मुझे २॥ मिनट लगते हैं। तकली पर आध घण्टे में १३० तार कात लेता हूँ।"

भाई दौलत के पिता उनसे असंतुष्ट हैं, परन्तु दौलत तिस पर भी अपनी पितृभक्ति भूले नहीं हैं। उन्होंने अपने हाथकते सूत की बुनी खादी का एक उमदा महीन धोती-जोड़ा बड़ी श्रद्धा के साथ अपने पूज्य पिताजी को भेंट किया है। अपनी सौतेली मां के लिए भी वह एक महाराष्ट्री साड़ी बुनवा रहे हैं। माता-पिता-द्वारा तिरस्कृत और उपेक्षित होने पर भी भाई दौलत के दरिया दिल में उनके प्रति अथाह कर्तव्य और प्रेम की भावनाएँ निर्विकार रूप से हिलोरें लेती रहती हैं। यह सब जानकर मुझे अतिशय आनंद हुआ और इस मनस्वी तरुण की आदर्श भक्ति के सामने मेरा सिर झुक गया।

भाई दौलत चर्खा-संघ के एक होनहार सेवक मालूम होते हैं। आज तो वह अपनी जीविका के लिए संघ से ९) मासिक की सहायता पाते हैं। और उसीमें मोटा-झोटा खा-पी और पहनकर अपने कार्य में मस्त रहते हैं। ईश्वर उन्हें चिरायु करे!

ताण्डूर

यह महाराष्ट्र-चर्खा-संघ का ५ वर्ष का पुराना उत्पत्ति-केन्द्र है। खास ताडूर गाव में जुलाहो के २२ घर है, जिनमें १५ कर्घों पर खादी बुनी जाती है। आज से कोई डेढ़ साल पहले ताण्डूर के जुलाहे भी पिंजारो से अपनी रुई धुनवाते और पूनिया बनवाते थे। पर पिछले १२। ५ महीनो के प्रयत्न से इस केन्द्रने इस दिशा में काफी प्रगति की है। लोग अपनी जरूरत की रुई स्वय पीज लेते है। पूनियां भी खुद बना लेते है। कई स्त्री-पुरुषोने बुनना सीख लिया है। सारी बस्ती मे ८ पीजने स्थायी रूप से चलने लगी है। लोगोने सुतारी का काम भी सीख लिया है। लोग अपनी पीजने अब स्वय बना लेते है, और बिगडे हुए कर्घो को भी सुधार लेते है। पीजन के साथ तांत का अटूट सम्बन्ध है। यह खुशी की बात है कि ताण्डूर के जुलाहे इस सम्बन्ध मे भी स्वावलम्बी बन गये हैं। वे अपने लिए अच्छी तात स्वय बना लेते है। 'मादगी' नामक चमार कौम से ।॥ आने मे वे एक पाट खरीदते है, और उसकी १५ हाथ लबी अच्छी बढ़िया तात बना लेते है। दो पैसे की इस एक तात पर वे १२ सेर तक रुई पींज लेते हैं। पिजाई मे उनकी गति फी घण्टा १॥ छटांक या ७॥ तोला है।

पुरुष बुनाई के अलावा धुनाई, कताई, सुतारी और तांत-बनाई का काम बडे रसपूर्वक करते है। स्त्रियां भी एक बुनाई को छोडकर खादी की प्राय सभी क्रियाएँ जानती हैं। धुनना तो उन्होने अभी-अभी उत्साहपूर्वक सीखा है। धुनाई के साथ पूनी बनाने की क्रिया मे सुधार हुआ है और अब लोग बाकायदा पटरी पर गोल सलाख की सहायता से उम्दा पूनिया बनाकर कातते है। इससे उनकी गति और सूत के नबर मे भी तरक्की हुई है।

रुई और कपास ये लोग या तो साहूकार से खरीदते है, या उधार लेते है या मजदूरी के बदले मे पाते हैं।

कर्घे के लिए ये लोग देशी कठले का ही उपयोग करते है, जो ।=)। से लेकर ।॥) तक मे मिल जाता है। 'राछ' और 'फणी' के लिए ताण्डूरवाले भी हाथ का सूत बरतते है, जो अभीष्ट और अनुकरणीय है।

ताण्डूर में ४५" × ८ गजी धोती की कीमत २॥) है। इस पौने तीन रुपये का हिसाब जाननेयोग्य है। एक जोडा धोती मे करीब १२० तोला रुई लगती है, जिसकी कीमत १) होती है। =) इतनी रुई की पिजाई के होते है। ।॥=) सूत-कताई के और ।।=) बुनाई के। जो परिवार ये सारी क्रियाएँ घर पर कर लेता है, उसके लिए खादी कितनी सस्ती पड सकती है, ऊपर के विवरण से इसकी कल्पना करना कठिन नही है।

ताण्डूर में चर्खे का व्यास २०" इंच, चर्ख और तकुए के बीच का अन्तर २२ इच, तकुए की लम्बाई ७॥" और तकुए का घेर। मय साडी के १ से १¼ तक इच है। और तकुए के चक्कर ८५ और ९० के बीच। माल हाथकते सूत की खादी ४ तारी बरती जाती है, जो गर्मियों मे ४ दिन और दूसरे मौसिमों मे अधिक दिन टिकती है।

इस गाव मे महारो के अलावा भोइयों (मछुओं या धीमरों) की भी कुछ बस्ती है। प्राय प्रत्येक भोई के घर चर्खों पर जाल बनाने के लिए उम्दा मजबूत सूत काता जाता है। औरते ६ से ८ नबरतक का सूत दिन मे रोज करीब ६ तोलातक कातती है। फुरसत पाकर पुरुष भी चर्खे पर बैठ जाते है और सूत काता करते है। लेकिन दुःख यह है कि इनका यह सारा सूत सिर्फ जाल बनाने के ही काम आता है। इन लोगो के पास खादी की कला का एक अग जीवित है, पर उसका उपयोग एक खास दायरे में ही होरहा है। यदि किसी तरह खादी का पावन सन्देश इनके गले उतारा जा सके, तो इन भयत्रस्त गरीब धीमर परिवारों का बडा हित हो। इन अभागो से बेगार कसकर लीजाती है, और वह इतनी त्रासदायक हो पडी है कि औरतें, मर्द और बच्चे सभी उसके नाम से थर-थर कांपते हैं और हमारे जैसे निर्दोष खादी-सेवको से बात करने और हमें अपना नाम-धाम बतानेतक में डरते हैं! ये लोग खेतो मे मजदूरी भी करते हैं, इनमें से कुछ काश्तकार भी है।

एक धीमर बहिन को अपने आगन में बैठे चर्खे पर सूत कातते देखकर, उससे बाते करने और उसके चर्खे को निकट से देखने की इच्छा हुई। भाषा की दीवार को एक दुभाषिये मित्र की मदद से तोड़कर उसकी अनुमति पाकर हम उसके पास पहुँचे और उससे खादी और चर्खे के सम्बन्ध में थोड़ी देर बातचीत की। उसका तो अन्ततक हमे एक ही उत्तर मिलता रहा कि इस मजबूत सूत की जालिया ही बनती है। कपडे के लिए यह हमारे पास बचता ही नही! कमबख्ती यह थी कि उस बहिनने, जो उम्र मे ३०।३५ से कम न थी, अबतक गाधीजी का नाम भी न सुना था, और उनके काम का तो उसे खयाल ही नही था! हमने थोडे मे उसे खादी-आन्दोलन का मतलब और गाधीजी का हेतु समझाया और उससे अपने हाथकते सूत की खादी बुनवाने और वही पहनने का अनुरोध करके हम वापस कार्यालय में आये।

ताण्डूर से वर्धा जाने के लिए रात को करीब २ बजे गाडी मिलती है। हमने ताण्डूर-कार्यालय मे भाई श्यामरावजी और चाफेकरजी के साथ भोजन किया, वस्त्र स्वावलम्बन की क्षमता और आवश्यकता के सबध मे चर्चा की और रात को १० बजे के करीब मित्रो से बिदा होकर स्टेशन पर पहुच गये। १० से २ तक प्लेटफार्म पर चन्द्रमा की शीतल किरणो के नीचे विश्राम किया। गाडी आई, सवार हुए और सुबह दिन उगते-उगते श्री कृष्णदास भाई के साथ वर्धा आ पहुँचे।

इन तीन दिनों मे श्री कृष्णदास भाई के साथ रहने और उन्हे निकट से देखने का मुझे अनायास ही सुयोग प्राप्त हो गया। उनकी सादगी, मितभाषिता, खादी-सम्बन्धी शास्त्रीय ज्ञान की विशालता और चुस्त व्यवस्था-शक्ति देखकर मै बहुत प्रभावित हुआ, और गाधी-परिवार के इस कर्मण्य नवयुवक का बरबस एक प्रशसक बन गया। श्री कृष्णदास भाई को वस्त्र-स्वावलम्बन के प्रोग्राम से मौलिक प्रेम है। वह उसके प्रेरको मे से एक कहे जा सकते है, और यदि महाराष्ट्र मे वस्त्र-स्वावलम्बन के प्रचार का काम वह अपने हाथों मे लेले, तो देखते-देखते वह काम सगठित और व्यवस्थित होकर चमक उठे। पर यह तो तभी हो, जब महाराष्ट्र-चर्खा-संघ अपने इस सुयोग्य व्यवस्थापक को व्यवस्था के कार्य से मुक्त कर सके और श्री कृष्णदास भाई निश्चिन्त होकर वस्त्र-स्वावलम्बन के प्रचार में लग सकें।

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

एक परित्याग "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 1369.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

संपादक — वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शुक्रवार, २७ सितम्बर, १९३५. [संख्या ३२

विषय-सूची

कृपया नोट करलें

अब 'हरिजन-सेवक' बजाय शुक्रवार के शनिवार को प्रकाशित हुआ करेगा। अत अगला अंक ५ अक्तूबर को निकलेगा—संपादक

गुजरात में हरिजन-कार्य

वलसाड़—यहा शहर के तथा रलवेस्टेशन के भगियो की बस्ती देखी। शहर के भगियो की बस्ती में कई साल से काम हो रहा है, तो भी अभीतक कोई सुधार नही हुआ। इस संबंध में म्यूनिसिपैलिटी के अधिकारियों के साथ बातचीत की। स्टेशन के भंगियों को रेलवे की सहकारी समिति से कर्जा बड़ी मुश्किल से मिलता है। प्राथमिक पाठशाला की उन्हे खास जरूरत है। सघ की ओर से जो यहा रात्रि-पाठशाला चल रही है उसमे अग्रेजी की चौथी कक्षा के दो भगी विद्यार्थी अध्यापन का भी काम करते है। दो हरिजन बालक छै मील दूर के गाव से नित्य अग्रेजी स्कूल मे पढने आते है, अर्थात् महीने के २५ दिन में वे तीन सौ मील की यात्रा करते हैं।

चीखली तालुका के खेरगाम मे पहाडी जातियो में भी अस्पृश्य समझी जानेवाली कोलचा जाति के करीब ५० घर है। फिलहाल तो सरकारने उन्हे रहने और खेती करने के लिए जमीन देदी है, तोभी उनमें सेवाकार्य करने की खास जरूरत है।

नवसारी—यहां हरिजन-कार्य सन् १९२४ से हो रहा है। यहां के आश्रम मे १८ विद्यार्थी तथा चप्पल व बूट बनानेवाले चमार कारीगर अपने कुटुम्ब के साथ रहते है। कारीगरो के रहने के लिए पास ही एक जगह झोंपडिया कतार मे बना दी गई हैं, और उनके लिए बाजार मे एक दूकान का भी प्रबंध कर दिया है। आधे विद्यार्थी तो शहर के अंग्रेजी और गुजराती-पाठशाला मे जाते है, और छोटे-छोटे बालकों को आश्रम में पढाते हैं। यहा के भंगियों के लिए एक सहकारी समिति नौ साल से बडी अच्छी तरह चल रही है। समिति का सगृहीत मूलधन उनका अपना ही है, जो पाच हजार रुपये के ऊपर है। उसमे अमानत का फंड २०००) का है। समिति के सत्प्रभाव मे आकर अधिकांश भंगियोने शराब पीना छोड दिया है। हरेक म्यूनिसिपैलिटी के साथ अगर ऐसी सहकारी समितिया हो, तो भंगियो के और नही तो आधे कष्ट तो दूर हो ही जायँ। उनकी घर-गिरस्ती की साधारण चीजों का यहा एक छोटा-सा सहकारी भडार भी है। म्यूनिसिपैलिटीने उनके रहने की कोठरिया बनवा देने का काम अभीतक हाथ में नही लिया। इस सबध म कमेटी के चेयरमैन और जिले के सूबा से प्रार्थना की। यहा के भंगी कुछ तो मोडासा तालुका के है और कुछ भावनगर राज्य के। म्यूनिसिपैलिटी शहर का तमाम मैला एक जगह योंही डलवा देती है। कमेटी से इस संबंध में बातचीत हो रही है कि उस मैले का बतौर खाद के उपयोग किया जाय, ताकि गरीब भंगियो को उससे दो-चार पैसे मिलने लगे। नवसारी जिले के आठ तालुकों में से छै के गावों की हरिजन-बस्तियो की सर्वे हो चुकी है। मुझे आशा है कि जहा-जहा पानी का कसाला है, वहा जिला-पंचायत नये कुएँ बनवा देगी अथवा टूटे-फूटे कुओ की मरम्मत करा देगी।

सूरत—गणेशोत्सव के अवसर पर यहा दीवान बहादुर चुनीलाल गांधी की अध्यक्षता मे एक सार्वजनिक सभा हुई। सूरत शहर की डेढ लाख की आबादी है, तोभी शहर की सडकों की सफाई करनेवाले सिर्फ १५० आदमी हैं। ये बहुत कम हैं। इसी से शहर की ठीकठीक सफाई नही हो सकती, और गदगी रहती है। भडोच शहर की सिर्फ ४० हजार की आबादी है। पर वहा की सडकों की सफाई के लिए करीब-करीब इतने ही भगी तैनात हैं। और सूरत मे खुली हुई पक्की गटर या बद गटर की कुछ भी व्यवस्था नही। चौमासे में लोग अपने घरो का गदा पानी भी रास्ते के ऊपर ही बहाते है, इससे बरसात मे तो शहर की गदगी का कोई पार ही नही रहता। बाजार की बडी सडक को छोड़कर तमाम सडको पर जहा भी आप जायँगे वहा गदी गटरें देखने मे आयँगी। सार्वजनिक तथा खानगी पाखाने साफ करने के लिए २९६ भगी भी काफी नही। भगियों को बहुत अधिक काम करना पडता है, फिर भी पूरा नही होता। इससे अतिरिक्त काम करने की उन्हे हमेशा शिकायत रहती है। कहते है कि मैला ढोने के लिए मोटरें भी काफी नहीं हैं।

स्थानीय हरिजनो के अलावा यहा काठियावाड़ से ५५७ कुटुब आकर फुटकर मजूरी के लिए कई बरसो से बसे हुए है। ये लोग सड़को की मरम्मत और इसी तरह के दूसरे काम करके अपनी गुजर कर रहे है। इस शहर मे हरिजन-कार्य करने का अच्छा विशाल क्षेत्र है, और इसीसे यहा के संघने हरिजनो के बीच

हमेशा काम करने के लिए एक सेवक नियुक्त कर देने का निश्चय किया है। म्युनिसिपैलिटी के स्वास्थ्य विभाग के नौकरों के लिए यहा दस बरस से एक सहकारी समिति चल रही है। इसमे अबतक २५८ सदस्य हुए है, और उसका अपना मूल धन साढे बारह हजार रुपये का है। गत वर्ष बीस हजार रुपये का लेन-देन हुआ था। इस समिति के द्वारा अभी और भी अच्छा काम हो सकता है।

भड़ोच---यहा की मिलो मे हरिजन मजदूरो की खासी अच्छी सख्या है। ये लोग मिलो की पुरानी टूटी-फूटी कोठरियो मे रहते है। इन कोठरियों की दीवारे बास की है। गोपाल मिल की चाली की कोठरियो मे तो बरसात का पानी खूब भर गया था, क्योंकि कोठरियो का फर्श रास्ते से एक फुट नीचा है। 'फाइन काउण्ट मिल' की चाली गोपाल मिल की चाली से फिर भी कुछ अच्छी है।

भगियो की बस्ती देखने गया। उनके लिए एक सहकारी समिति है, और स्थिति साधारणतया ठीक है। उनकी बड़ी-बड़ी उम्र की लड़किया शहर की पाठशाला मे सब के साथ बैठकर पढ़ती है।

आसपास के गावो से आये हुए हरिजन नेताओं से मिला। गावो मे पीने के पानी की उन्हे तकलीफ है। और ग्राम-पाठशालाओं मे उनके बच्चो को बैठने की भी कठिनाई है।

अंकलेश्वर---चमारो, ढेढ़ो और भगियो के मुहल्ले देखे। गावो के जो हरिजन यहा इकट्ठे हुए थे, उन्होंने अपने-अपने गाव की मुसीबते तफसीलवार लिख रखी थी। मुख्य कठिनाइया कुओ और पाठशालाओं के सबध की थी। उन्होंने बतलाया कि हरिजन विद्यार्थियो को, उनकी गरीबी के कारण, पुस्तको और फीस वगैरा की मुश्किल पड़ती है। पाच महीने पहले की बात है कि यहा हरिजनो के एक कुएं मे एक ११ बरस की लड़की गिरकर मर गई थी। इस दुर्घटना का कारण यह है कि उस कुएं पर कोई आड या जाली नही थी। हरिजनो के कुए की पर्वा ही किसे है? म्युनिसिपैलिटी की यह कितनी बड़ी लापर्वाही है।

'हरिजन-बंधु' से] **अमृतलाल वि० ठक्कर**

साप्ताहिक पत्र

अफ़सरों की राय

इस सप्ताह, मै वर्धा मे नही हूँ, इसलिए मै अपने गाव के सिलसिले मे कुछ लिख नही सकता। गावो की सफाई के बारे मे कुछ अफसरो की आज से बरसो पहले क्या राय थी वह इधर मेरे देखने मे आई है, और उसीमें से थोड़ा-सा यहा दे रहा हूँ। सन १८९१ मे जब पहले पहल फ्लोरेन्स नाइटिंगेलने हिंदुस्तान के गावो की गदगी के बारे मे प्रश्न उठाया, और भारत-सचिव तक इस प्रश्न को ले जाकर भारत-सरकार को इसके लिए मजबूर किया कि वह विभिन्न प्रातीय सरकारो का इस बहुत बड़ी बुराई की तरफ ध्यान आकर्षित करे, तब अनेक सेनेटरी कमिश्नरोने वही अपनी सनातन की दलील देते हुए कहा था कि, "देहात के अधिकाश लोग इतने पढ़े-लिखे तो हैं नही कि उनसे यह आशा की जा सके कि वे अपनी बाबा आदम के जमाने की उन आदतो को छोड़ देंगे, जो, माना कि सफाई के आधुनिक उसूलो के विरुद्ध है तोभी, उन्हें आपत्तिजनक मालूम नही होती। हमारा यह विश्वास है कि भारत में गांवों की सफाई का प्रश्न कोई हँसी-खेल नही है। बहुत बड़ी चौकसी के साथ हमे इसे हाथ मे लेना चाहिए, और उसमें सुधार करते समय लोगो की आदतो और तअस्सुबो का खूब सावधानी से ध्यान रखना चाहिए।" और फिर --"जब यह कहा जाता है कि गावो मे जो यह तमाम गदगी नजर आती है उससे ग्रामवासियो के स्वास्थ्य की जड़ भीतर-भीतर खोखली होती जा रही है, तब हमे ऐसा मालूम होता है कि इस कथन मे अतिशयोक्ति से काम लिया जाता है। सैकड़ो बरसो से जो हालत चली आ रही थी, उससे शायद अब गावो की सफाई की हालत कहीं अच्छी है।" एक दूसरे कमिश्नरने १८ जून, १८९२ के अपने एक पत्र मे यह दलील पेश की है, 'मैंने इग्लैण्ड के गाव उतनी ही गदगी की हालत मे देखे हैं, जितना गदा कि औसतन हिंदुस्तान का कोई गाव हो सकता है।" और यह मानने को वह तैयार नही कि, "गत २००० बरसो मे ग्रामवासियो का जैसा स्वास्थ्य रहा है उससे वह अब और अधिक क्षीण होता जा रहा है। उन भावुक सुधारकों के ऊपर मुझे हँसी आती है, जो किसी भारतीय देहाती को उस जगह पाखाना फिरने से रोकना चाहते हैं जहा सैकड़ो बरस से उसके बाप-दादे बैठते आये है।"

.......और लोगो की उन जुग-जुग-पुरानी आदतो मे ऐसी क्रान्ति करना चाहते है, जो सौ मे दस-पाच गावो में भी नही हो सकती। अगर यह महान् विकट काम थोड़ा-बहुत हाथमें लिया भी जाय तो इस पर बहुत अधिक रुपया खर्च करना पड़ेगा। और जब लोगो की खानगी जीवन मे दखल दिया जायगा, और सड़को और स्कूलो के खर्चे की मद काटकर यह सफाई का काम हाथ मे लिया जायगा, तब सरकार अपनी सत्ता के मध्य स्तभ किसानों की नजरो मे घृणा की चीज बन जायगी।"

हम यह कल्पना कर सकते है कि सनातनी आज जैसी दलील देते है यह वैसी ही दलील है, लेकिन जिसे इस बात का पता है कि भारत के ग्रामो मे सक्रामक रोगो का फैलना एक बहुत मामूली-सी बात है, वह कभी ऐसी कल्पना नही करेगा। सफाई के इस प्रश्न पर सन् १८९२ मे ही नही बल्कि सन् १८६३ चर्चा चल रही है, जिस साल कि भारतीय सेना की सेनेटरी की हालत पर रॉयल कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। और सन् १८७९ में ही गाव के अफसरो से यह देखने के लिए कहा गया था कि, "गाव की तमाम सड़के व गलिया साफ रखी जाती है या नही उन पर कोई गदी चीज तो नही पड़ी रहती, घरो के इर्द-गिर्द कूड़ा या कचरा तो नही फेका जाता। गाव के किसी रास्ते, गली या बगीचे के पास खुली जगहो मे बैठकर कोई पाखाना न फिरे, और न पेशाब करे। गाव के अफसर को चाहिए कि वह मकानो के उस तरफ ओट मे जहां कि हवा का उलटा रुख हो थोड़ी-सी अलग जगह नियत करदे, और तमाम कचरा वही डाला जाय। ग्रामवासियो को इस बात की वह अच्छी तरह सूचना देदें और फिर बराबर देखता रहे कि कूड़ा-कचरा सब उसी जगह डाला जाता है या नही। गाव के बाहर उसे कुछ ऐसी खुली जगह नियत कर देनी चाहिए, जहा लोग दिशा-मैदान जाया करे और टट्टी फिरने के बाद हरेक आदमी के लिए यह लाजिमी है कि वह अपने मैले को मिट्टी से ढँक दिया करे।" सन् १८८७ मे मद्रास-सरकारने जो एक सर्कूलर निकाला था उसमे टट्टियों और उनका उपयोग करने के बारे मे ये नीचेलिखी मुकम्मल हिदायतें दी गई थीं —

"मल-मूत्र साफ करने के संबंध में भारी खबरदारी रखने की जरूरत है। सार्वजनिक पाखानों को जहांतक हो सके खूब साफ रखना चाहिए, सूखी मिट्टी खूब काम में लानी चाहिए, और चूंकि इन पाखानों की समय-समय पर सफाई होती रहती है, इसलिए लोगों को बजाय सड़कों और नरदहों के इन पाखानों का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

"अगर नरदहे और घर की मड़ासें ही काम में लाई जायँ, तो जितनी बार हो सके उतनी बार उन्हें साफ कराया जाय, और जब भी कोई पाखाना फिरने जाय तब सूखी मिट्टी बराबर मैले पर डाली जाय।

"आम पाखाने अगर लोगों की जरूरत पूरी न कर सकें तो ऐसी बेकार पड़ी हुई जमीन पर जहां हवा का उलटा रुख हो, कुछ अस्थायी टट्टियां, जो एक जगह से दूसरी जगह हटाई जा सकें, बना दी जायँ।

"इन टट्टियों के अन्दर एक फुट चौड़ी और दो फुट गहरी खाइयां खोद दी जायँ, और इन खाइयों में पाखाना फिरने के बाद फावड़े से मिट्टी डाल दी जाय, ताकि मलमूत्र ठीक तरह से ढँक जाय। टट्टी तब वहां से दूसरी जगह आसानी से हटाई जा सकती है।"

इससे अधिक स्पष्ट और ब्योरेवार और क्या हो सकता था? लेकिन अनेक अफसरों की रिपोर्टों का असल सार यह था कि, 'यह सब असंभव है।' सन् १८८८ में एक डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने कहा था—"यह कह देने में लगता ही क्या है कि गांव खूब साफ-सुथरा रखा जाय? कहना तो बड़ा आसान है, पर क्या गांव साफ-सुथरा रहेगा? जो नियम बनाये गये हैं वे खूब अच्छे हैं, मगर मेरी राय में कमी उन लोगों की है जो बदअमली और सख्ती के बिना इन नियमों पर गांव के लोगों से ठीक-ठीक अमल करा सकें। क्या हम इस अंग्रेज मजिस्ट्रेट के इस कथन को मानकर संतुष्ट हो जायँ कि, "यह पेटेण्ट गंदगी तो देशी आदमी के स्वभाव का एक अंग है, इसे समय और आदतने मानों उसके खून में पैठा दिया है?"

इस अभियोग का जवाब है हमारा ग्राम-उद्योग-संघ और वह काम जो उसकी छाया में अनेक गांवों में स्वेच्छा से सेवा करनेवाले हमारे कार्यकर्त्ता आज कर रहे हैं।

व्यक्तिगत प्रयत्न

उस दिन तीसेक बर्ष के अनुभवी एक डाक्टर के साथ जो मैंने बातचीत की थी उसमें यह स्पष्ट हो जाता है कि बम्बई-जैसे शहर में भी जो व्यक्ति इस प्रकार की मनोवृत्ति का है वह बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर सकता है। अट-सट आहार से हमारे उन डाक्टर साहबने अपना स्वास्थ्य चौपट कर दिया था, मगर काफी पहले उन्होंने यह महसूस कर लिया कि ठीक-ठीक वैज्ञानिक आहार से ही उनका स्वास्थ्य सुधर सकता है। जन्म से पड़ी हुई आदतें उन्होंने त्याग दीं। शराब ही नहीं, सिगरेट बीड़ीतक छोड़ दी। मांस खाना भी बहुत कम कर दिया। और अब खाते क्या थे—एकाध बार का कुटा हुआ चावल, हाथ की चक्की का आटा, पत्तीदार सब्जी और कच्चा दूध। उन्होंने यह भी तय किया कि अगर मेरा शरीर मजबूत न भी हो, तोभी मेरे लिए यह सबसे अच्छा होगा कि मुझे अपने बच्चों का उस तरह पालन-पोषण नहीं करना चाहिए, जिस तरह और जिन परिस्थितियों में मैं इतना बड़ा हुआ हूं। इसका यह परिणाम हुआ कि उनके बच्चे अयुक्ताहार जानते ही नहीं, न वे अयुक्ताहार को बर्दाश्त ही कर सकते हैं। क्या ही सुन्दर स्वास्थ्य है उनका! गुलाब से चेहरे हैं। उन्होंने कभी कोई अप्राकृतिक चीजें नहीं खाईं और सिवा खादी के दूसरा कपड़ा पहना ही नहीं।

'हां, यह तो बतलाइए, आपने अपने लिए चावल और आटे का किस तरह प्रबंध किया था?' मैंने उनसे पूछा।

'चावल तो बड़ी ही कठिनाई से मिलता था। नजाई के दूकानदार को बतलाता कि भाई, मुझे बिनाकुटा चावल चाहिए, पर उसकी समझ में यह बात आती ही नहीं। बिनाकुटे चावल की बात पर वह हंस देता था। तब मैंने एक चावल की मिल के मालिक से मिलकर यह प्रबंध किया कि वह सिर्फ एक बार का कुटा हुआ चावल मुझे दे दिया करे। वह काफी अच्छा था, क्योंकि जो पॉलिशदार चावल हम लोगों के यहां आता है वह तो कई बार कूटा जाता है। असली बिनाकुटा चावल तो मुझे आपके इस ग्रामउद्योग-आंदोलन के आरंभ होने के बाद मिला। हाथ की चक्की का पिसा आटा तो मैं कई साल से खा रहा हूं। एक 'पायली' (करीब १॥ सेर) पिसाई का मैं ≈) देता हूं। इसमें शक नहीं कि मुझे वह काफी महँगा पड़ता है, पर पीसनहारी को इतनी मजदूरी देनी ही पड़ती है। कम-से-कम आठ आने रोज की मजदूरी तो बम्बई-जैसे शहर में गरीब पीसनहारी को मुझे देनी ही चाहिए। एक घंटे में आधा सेर से ज्यादा शायद ही वह पीसती है। लेकिन उसे जो यह पिसाई की मजदूरी मैं देता हूं उसकी मुझे कोई शिकायत नहीं। मेरा ग्वाला मेरे सामने अपनी गाय दुह देता है, और इस तरह शुद्ध थनदुहा दूध मुझे मिल जाता है। दूध दुहने से पहले वह अपने हाथ खूब अच्छी तरह धो लेता है, और लाल दवाई (परमेंगनेट पोटाश) से गाय के थन भी धो डालता है। पहले तो उसे यह सब कुछ कष्टदायक-सा मालूम हुआ, पर अब वह मेरे घर का आदमी हो गया है, और अब थन वगैरा धोकर सफाई के साथ दूध दुहने में उसे कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि वह यह जानता है कि हम लोग थनदुहा कच्चा ही दूध पीते हैं।'

'क्या आपने किसी हदतक अपने मरीजों में इस आहार-सुधार का प्रचार किया है?'

उन्होंने कहा, 'हां, किया है, और यह सुनकर आप प्रसन्न होंगे कि कुछ हदतक मुझे इसमें सफलता भी मिली है। जबतक वे मुझसे इलाज कराते हैं, तबतक तो वे मेरी बात मानते ही हैं। मेरे लिए इतना ही बहुत काफी है। वे जल्दी अच्छे हो जाते हैं। अधिकतर उपयुक्त आहार की सहायता से मैंने दमा और मलेरिया के दो मरीजों का इलाज किया है।'

अपनी कहानी समाप्त करते हुए उन्होंने कहा, 'आपने अपने 'हरिजन' में गुड़ के वैज्ञानिक गुण पर बहुत अधिक जोर दिया है। गुड़ तो शक्कर से हर तरह से अच्छा है ही और उसके सस्तेपन के मुकाबले में तो विदेशी ग्लूकोज और डेक्स्ट्रोज वगैरा चीजें कभी टिक ही नहीं सकतीं। कबाहत सिर्फ यह है कि हमारे यहां की कुछ चीजें अधिक दिनोंतक नहीं रह सकतीं। पर अधिक समय तक रखी रहने के लिए वे हैं भी नहीं। हम भारतीय लोग तो ताजी चीजें खानेवाले हैं। इस कम्बख्त व्यापारिक सभ्यताने ही शक्कर, पॉलिशदार चावल आदि व्यापार की बासी चीजों को यह महत्व दे रखा है। इन सब चीजों का सत्त्व पॉलिश कर-करके

(२५६वें पृष्ठ के दूसरे कालम पर)

हरिजन-सेवक

शुक्रवार, २७ सितम्बर, १९३५

एक परित्याग

सन् १८९१ में विलायत से लौटने के बाद मैंने अपने परिवार के बच्चों को करीब-करीब अपनी निगरानी में ले लिया, और उनके—बालक-बालिकाओं के—कंधों पर हाथ रखकर उनके साथ घूमने की आदत डाल ली। ये मेरे भाइयों के बच्चे थे। उनके बड़े हो जाने पर भी यह आदत जारी रही। ज्यों ज्यों परिवार बढ़ता गया, त्यों-त्यों इस आदत की मात्रा इतनी बढ़ी कि इसकी ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होने लगा।

जहांतक मुझे याद है, मुझे कभी यह पता नहीं चला कि मैं इसमें कोई भूल कर रहा हूँ। कुछ वर्ष हुए कि साबरमती में एक आश्रमवासीने मुझसे कहा था कि, 'आप जब बड़ी-बड़ी उम्र की लड़कियों और स्त्रियों के कंधों पर हाथ रखकर चलते हैं, तब इससे लोकस्वीकृत सभ्यता के विचार को चोट पहुचती मालूम होती है।' किंतु आश्रमवासियों के साथ चर्चा होने के बाद यह चीज जारी ही रही। अभी हाल में मेरे दो साथी जब वर्धा आये, तब उन्होंने कहा कि, 'आपकी यह आदत, संभव है कि, दूसरों के लिए एक बुरा उदाहरण बन जाय, इसलिए आपको यह बंद कर देनी चाहिए।' उनकी यह दलील मुझे जँची नहीं। तो भी उन मित्रों की चेतावनी की मैं अवहेलना नहीं करना चाहता था। इसलिए मैंने पांच आश्रमवासियों से उसकी जांच करने और इसके संबंध में सलाह देने के लिए कहा। इस पर विचार हो ही रहा था कि इस बीच में एक निर्णयात्मक घटना घटी। मुझे किसीने बतलाया कि यूनिवर्सिटी का एक तेज विद्यार्थी अकेले में एक लड़की के साथ, जो उसके प्रभाव में थी, सभी तरह की आजादी से काम लेता था, और दलील यह दिया करता कि वह उस लड़की को अपनी सगी बहिन की तरह प्यार करता है, और इसीसे कुछ चेष्टाओं का प्रदर्शन किये बिना उससे रहा नहीं जाता। कोई उसपर अपवित्रता का जरा भी आरोपण करता तो वह नाराज हो जाता। वह नवयुवक क्या-क्या करता था उन सब बातों को अगर यहां लिखूं तो पाठक बिना किसी हिचकिचाहट के कह देंगे कि जिस आजादी से वह काम लेता था उसमें अवश्य ही गंदी भावना थी। मैंने और दूसरे जिन लोगोंने इस संबंध का पत्र-व्यवहार जब पढ़ा तब हम इस नतीजे पर पहुँचे कि या तो वह युवक विद्यार्थी परले सिरे का बना हुआ आदमी है, या फिर खुद अपने आपको धोखा दे रहा है।

चाहे जो हो, इस अनुसन्धानने मुझे विचार में डाल दिया। मुझे अपने उन दोनों साथियों की दी हुई चेतावनी याद आई, और अपने दिल से पूछा कि अगर मुझे यह मालूम हो कि वह नवयुवक अपने बचाव में मेरे व्यवहार की दलील दे रहा है, तो मुझे कैसा लगे? मैं यहां यह बतला दूं कि वह लड़की, जो उस नवयुवक की चेष्टाओं का शिकार बन गई है, यद्यपि वह उसे बिलकुल पवित्र और भाई के समान मानती है, तोभी वह उसकी उन चेष्टाओं को पसन्द नहीं करती, बल्कि वह आपत्ति भी करती है, पर उस बेचारी में इतनी ताकत नहीं कि वह उस युवक की आपत्ति-जनक चेष्टाओं को रोक सके। इस घटना के कारण मेरे मन में जो आत्म-परीक्षण मथन कर रहा था उसका यह परिणाम हुआ कि उस पत्र-व्यवहार का पढ़ने के दो-तीन दिन के अन्दर मैंने अपनी उपर्युक्त प्रथा का परित्याग कर दिया, और गत १२ वीं तारीख को मैंने वर्धा के आश्रमवासियों को अपना यह निश्चय सुना दिया। यह बात नहीं कि यह निर्णय करते समय मुझे कष्ट न हुआ हो। इस व्यवहार के बीच या इसके कारण कभी कोई अपवित्र विचार मेरे मन में नहीं आया। मेरा आचरण कभी छिपा हुआ नहीं रहा है। मैं मानता हूँ कि मेरा आचरण पिता के जैसा रहा है, और जिन अनेक लड़कियों का मैं मार्ग-दर्शक और अभिभावक रहा हूँ उन्होंने अपने मन की बातें इतने विश्वास के साथ मेरे सामने रखीं कि जितने विश्वास के साथ वे शायद और किसी के सामने न रखतीं। यद्यपि ऐसे ब्रह्मचर्य में मेरा विश्वास नहीं, जिसमें स्त्री-पुरुष का परस्पर स्पर्श बचाने के लिए एक रक्षा की दीवार बनाने की जरूरत पड़े, और जो ब्रह्मचर्य जरा-से प्रलोभन के आगे भंग हो जाय, तो भी जो स्वतंत्रता मैंने ले रखी है, उसके खतरों से मैं अनजान नहीं हूँ।

इसलिए जिस अनुसन्धान का मैंने ऊपर जिक्र किया है उसने मुझे अपनी यह आदत छोड़ देने के लिए सचेत कर दिया, फिर मेरा कंधों पर हाथ रखकर चलने का व्यवहार चाहे जितना पवित्र रहा हो। मेरे हरेक आचरण को हजारों स्त्री-पुरुष खूब सूक्ष्मता से देखते हैं, क्योंकि मैं जो प्रयोग कर रहा हूँ उसमें सतत जागरूक रहने की आवश्यकता है। मुझे ऐसे काम नहीं करने चाहिए जिनका बचाव मुझे दलीलों के सहारे करना पड़े। मेरे उदाहरण का कभी यह अर्थ नहीं था कि उसका चाहे जो अनुसरण करने लग जाय। इस नवयुवक का मामला बतौर एक चेतावनी के मेरे सामने आया और उससे मैं आगाह हो गया। मैंने इस आशा से यह निश्चय किया है कि मेरा यह त्याग उन लोगों को सही रास्ता पकड़ा देगा, जिन्होंने या तो मेरे उदाहरण से प्रभावित होकर गलती की है या यों ही। निर्दोष युवावस्था एक अनमोल निधि है। क्षणिक उत्तेजना के पीछे जिसे गलती से 'आनंद' कहते हैं, इस निधि को यों ही बर्बाद नहीं कर देना चाहिए। और इस चित्र में चित्रित लड़की के समान कमजोर मनवाली लड़कियों में इतना बल तो होना ही चाहिए कि वे उन बदमाश या अपने कामों से अनजान नवयुवकों की हरकतों का – फिर वे उन्हें चाहे जितना निर्दोष जतलावें – साहस के साथ सामना कर सकें।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

(२५५वें पृष्ठ से आगे)

निकाल ही देना चाहिए, ताकि वे बाहर देशावरों में भेजी जा सकें। हम अपनी खाने-पीने की चीजों को कभी बाहर तो भेजते नहीं थे। यही हमारे आहारसम्बन्धी सारे अर्थशास्त्र का रहस्य है। यह बात कब हमारी समझ में आयगी?'

महादेव ह० देशाई

नोट—यह सच है कि अधिक समयतक, और खासकर बरसात के दिनों में, गुड़ का रखना मुश्किल है, पर मुझे एक जानकर सज्जनने बतलाया है कि 'राब' चाहे जितने दिनोंतक ठहर सकती है और अधिक समयतक रखने के लिए राब अच्छी समझी जाती है। ईख की फसल जब शुरू हो, तब इस प्रयोग की परीक्षा करनी चाहिए।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

टिप्पणियाँ

रेशम और ऊन

हाथ के कते और हाथ के बुने ऊनी और रेशमी कपड़ों का शुद्ध खादी से संबंध है और उसे वे सहारा दिये हुए हैं। कुछ कुछ सहारा चर्खा-संघ इन दोनों उद्योगों को दे रहा है—ऊन को खासकर काश्मीर में, और रेशम को बंगाल में। अब सवाल यह उठ खड़ा हुआ है कि कम-से-कम पेट भरनेलायक मजदूरी देने का नियम ऊन और रेशम की कत्तिनों के साथ कहा तक लागू होता है। यह नियम तो खादी में भी अधिक कड़ाई के साथ ऊन और रेशम की कताई में लागू होता है। ईश्वर की कृपा से ये उद्योग आज भी अपने पैरों पर खड़े रह सकते हैं। ऊनी और रेशमी कपड़ों पर ज्यादा मुनाफा लिया जा सकता है, और इस तरह खादी की कीमत घटाने में इनसे मदद मिलती है। इसलिए ऊन और रेशम की कातिनों को उचित मजदूरी देना हमारा एक ऐसा कर्तव्य है कि जिससे हम किसी भी कारण से पीछे पैर नहीं हटा सकते। ग्रामउद्योग-संघ के प्रस्ताव के पीछे जो कल्पना है और चर्खा-संघ जो प्रयत्न कर रहा है उसका अर्थ यह है कि इन दोनों संघों के कार्यक्षेत्र में काम करनेवाले कारीगरों और मजदूरों को कम-से-कम इतनी मजदूरी तो देनी ही चाहिए कि जिससे उनका पेट भर सके। और यह देखते हुए कि मजदूरी की जो दर अंत में नियत की जायगी वह कम-से कम होगी, जहा जहा संभव हो वहा कम-से-कम दर से, अधिक मजदूरी देने की ही प्रवृत्ति होनी चाहिए। इसका यह अर्थ निकलता है कि तबतक किसी उत्पादक को ग्रामउद्योगसंघ और चर्खा-संघ प्रमाण-पत्र दे ही नहीं जबतक कि व अपने यहां के कारीगरों व मजदूरों का ठीक-ठीक रजिस्टर न रखें और कारीगरों और मजदूरों को निश्चित दर से मजदूरी देने का सबूत न दे सके। इसका यह भी अर्थ निकलता है कि उन ऊनी और रेशमी कपड़ों को, जो प्रमाणपत्र-प्राप्त उत्पादकों से न खरीदे गये हो, कोई प्रमाणित खादी-भंडार नहीं रख सकता।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

स्व० जस्टिस रानडे और चर्खा

एक सज्जनने मेरे पास एक अच्छा रोचक विज्ञापन भेजा है। स्वर्गीय न्यायमूर्ति रानडेने यह विज्ञापन १ दिसंबर, १८८० को भारतीय पत्रों में प्रकाशित कराया था —

"हमारे देश के अनेक भागों में कपास की खेती होती है, और अनेक जगहों में चर्खे पर सूत कातने का उद्योग खासे बड़े पैमाने पर चल रहा है, चूंकि चर्खे के सूत की अब भी काफी बड़ी माग है। इन परिस्थितियों में कताई की रीति में अगर सुधार कर दिया जाय तो यह चीज गरीब और मेहनती लोगों के हक में अच्छी लाभदायक साबित हो सकती है। इसी आशय से कताई की मशीन का यह विज्ञापन प्रकाशित किया जा रहा है। उस मशीन में ये नीचेलिखे सुधार होने चाहिए —

१—रुई साफ करने के लिए एक यंत्र हो, जो या तो खुद चर्खे का एक हिस्सा हो, या उससे अलग चीज हो।

२—बजाय एक धागे के उससे पाच धागे निकलें और इस तरह सूत की कुल उत्पत्ति पचगुनी बढ़ जाय।

३—यकसा होने के अलावा सूत कम-से-कम इतना महीन कतना चाहिए कि जितने महीन सूत की खादी बुनी जाती है। सूत इससे मोटा न हो।

४—मशीन मजबूत होने के अलावा, सादी होनी चाहिए, और ऐसी हो कि चलने में खरर-खरर आवाज न निकले और टूटे-टाटे नहीं।

यह मशीन किसी संग्रहालय में बतौर एक नमूने के रखने के लिए नहीं चाहिए, बल्कि जब चलाई जाय तो वह हमेशा बिलकुल ठीक-ठीक काम दे। ये मशीने (ऊपर दिये आर्डर के अनुसार) १५ मई, १८८१ के पहले आ जायँ। उन सब मशीनों की जांच निष्णातों के द्वारा कराई जायगी। और जिस मशीन को परीक्षक पसंद करेंगे उसके बनानेवाले को ५००) का पुरस्कार दिया जायगा।

उस मशीन बनानेवाले को हमारे आर्डर पर उचित कीमत लेकर २५ मशीनोंतक के देने का जिम्मा लेना पड़ेगा, और उसे यह भी गारंटी लेनी होगी कि चलने के चार महीने के अंदर अगर मशीनें बिगड़ जायँ, तो वह उन्हें ठीक कर देगा।

इसलिए जो लोग इस प्रयोग को आजमाना चाहें, उन्हें इसके अनुसार इस विज्ञापन के प्रकाशन की तारीख से दो महीने के अंदर हमें लिखकर सूचना दे देनी चाहिए।

श्री हट्टीबेन्गलकर, शुक्रवार पेठ, पूना से खुद मिलकर अथवा उन्हें जवाबी कार्ड लिखकर इस संबंध में विस्तृत बातें कोई पूछना चाहते हों तो पूछ सकते हैं।

पूना शहर
१-१२-१८८०

(सही) श्रीनिवास शेषो हट्टीबेन्गलकर
पेंशनर रिकार्ड कीपर, एस डी
(सही) महादेव गोविंद रानडे

भारत के पत्रकारों से हमारी यह प्रार्थना है कि इस विज्ञापन को वे अपने-अपने पत्रों में एकाधिक बार छापें, ताकि इस पर अधिक से-अधिक लोगों की नजर पड़ जाय।"

जैसा कि स्व० गोखले कहा करते थे, रानडे की तीक्ष्ण दृष्टि से एक भी चीज नहीं बची थी, और जिस चीज से उनके देशवासियों को यत्किंचित् भी लाभ पहुंच सकता था, उसे उन्होंने कभी अपने मन में नगण्य नहीं समझा।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

कर्णाटकी सारस्वतों का उदाहरण

उत्तरी कानड़ा जिले के अंतर्गत अंकोला के पास केनी गाव में खेतिहरों की एक छोटी-सी बिरादरी है। इन लोगों को बाकट या बाकड कहते हैं। करीब चालीस बरस पहले ये लोग अस्पृश्य समझे जाते थे। १८८३ में प्रकाशित कानड़ा-गजीटियर में दूसरी अस्पृश्य जातियों के साथ इन्हें 'दलित वर्ग' में गिनाया भी है। लेकिन आज ये बाकट लोग अछूत नहीं माने जाते, अस्पृश्यता का वह दाग इनका आज छूट गया है। कइयों को तो इस बात का पता भी नहीं कि ये लोग किसी जमाने में अस्पृश्य थे। बाकटों के सामाजिक दरजे का जो यह धीरे-धीरे काया-कल्प हुआ है, उसका सबसे जबर्दस्त कारण सिर्फ यह हो सकता है कि अंकोला के गौड़ सारस्वत ब्राह्मण उन्हें, खासकर उनकी स्त्रियों को, इधर तीस-पैंतीस साल से अपने घरों में नौकर रखते आरहे हैं। आज भी सारस्वत ब्राह्मण अपनी घर-गिरस्ती का काम बाकट लोगों से कराते हैं। यह उल्लेखनीय बात है कि सारस्वतों के निकट संपर्क में आने से बाकटोंने अपनी पुरानी गंदी आदतें छोड़ दीं, और अपने मालिकों के रहन-सहन का यहांतक उन्होंने अनुकरण किया कि आज बाकट स्त्रियां अंकोला तालुका की दूसरी खेतिहर जातियों

की स्त्रियों से ऊँची समझी जाती है। बाकट अपने को 'भट' कहते हैं, जिसका कानडी में भट या योद्धा अर्थ होता है। कुछ लोग तो अब भी अपने नाम के साथ 'नायक' लगाते हैं। साधारण रीति से ये लोग चावल, रागी और मछली खाते हैं। ये लोग मास भी खाते हैं, पर दारू नहीं पीते। इन लोगों का खास धंधा किसानी का है, इसीसे ये अपनी जीविका चलाते हैं। इनकी सामाजिक स्थिति अपने उन भाइयों की स्थिति से, जो आज भी हरिजन हैं, कहीं ज्यादा अच्छी है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि सवर्ण हिंदुओं को कर्णाटक के गौड सारस्वतों के इस उदाहरण का अनुसरण करना चाहिए और अपने घरों में उन्हें हिम्मत के साथ हरिजनों को नौकर रखना चाहिए।

'हरिजन' से] दिनकर देसाई

कादम्बरी में प्रमाण

इसकी कौन कल्पना कर सकता है कि अस्पृश्यता-विरोधी प्रमाण कादम्बरी-जैसे गद्यकाव्य में भी मिल जाता है? लिखा है कि पुंडरीक को जब चांडाल स्त्री के घर ले जाते हैं, तो वहां वह अन्न-जल का त्याग कर देता है। इसपर चांडालवेशधारिणी लक्ष्मी उससे कहती है —

'फलानि तु तनोऽपि [चाण्डालोऽपि] प्रतिगृह्यन्त एव। पानीयमपि चाण्डालभाण्डादपि भूविगलितं पवित्रमेवेत्येव जनः कथयन्ति। तत्किमर्थमात्मानं क्षुधा पिपासया वा पातयसि।

अर्थात्, फल तो चाण्डाल के ग्रहण करने ही हैं। पानी भी चांडाल के बर्तन से भी भूमि पर उड़ेला हुआ पवित्र ही है ऐसा लोग कहते हैं। तो फिर तू किसलिए भूख या प्यास से यह शरीर छोड़ रहा है?"

इससे यह सिद्ध होता है कि (१) चांडाल के घर रहने में कोई आपत्ति नहीं, (२) उसके हाथ के फल ले सकते हैं, और (३) कादंबरीकार के समय में प्रचलित और सम्मत प्रथा के अनुसार चांडाल के बर्तन में अपने लोटे से पानी लेकर पिया जा सकता है।

चांडाल के घड़े का पानी सनातनी पीये या नहीं, पर अपने गरीब सहधर्मियों को वे जो भगवान् का दिया हुआ शुद्ध जल पीने से रोकते हैं, उस महान् पाप से भी क्या वे मुक्त नहीं होना चाहते?

'हरिजन-बंधु' से] वा० गो० देसाई

कालपी का हाथ का बना कागज

'हरिजन-सेवक' में श्री वालजी गोविंदजी देसाई का एक नोट कालपी के खद्दर-कागज पर निकल चुका है। अब कालपी के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता श्री मुन्नालाल खद्दरीने अपने यहा के बने कागज के संबंध में हमारे पास एक लेख भेजा है, जिसके मुख्य अंश हम नीचे देते हैं.—

"एक जमाना वह था, जब हमारा कालपी का कागज़ ढाके की मलमल की तरह दूर-दूरतक मशहूर था। किंतु आज तो यह उद्योग अपनी अंतिम सासें गिन रहा है। आज तो जैसे कहानी ही कहने को रह गई है।

हमारे यहा यह कागज सन की बनी हुई चीजों — टाट, जाली, रस्सी, पाखरी आदि—के पुराने-फटे चिथड़ों या टुकड़ों से बनता है। रद्दी कागजों और घास-लकड़ी आदि का जो कागज बनता है, उससे यह कालपी का कागज ज्यादा मजबूत होता है। सबसे अधिक महत्व की बात तो यह है, कि इस उद्योग के द्वारा करीब ९५ फी सदी पैसा मजदूरों और किसानों में बट जाता है। बड़ा टिकाऊ कागज होता है। पांच-पांच सौ बरसतक यह ज्यों-का-त्यों बना रहता है। न स्याही फूटती है, न फैलती है। कुडकता भी नहीं। महाजनों के बही-खातों और सरकारी दफ्तरों के रिकार्डों के लिए यह कागज अत्यंत उपयोगी है। लिफाफे, पैड, सोखता वगैरा भी इसके खासे अच्छे बन सकते हैं। इस कागज की अच्छी तरह उत्पत्ति बढ़ाई जाय, तो हजारों बेकार मनुष्यों को इससे रोजी मिलने लगे, और यह मृतप्राय गृहउद्योग फिर से वैसा ही चमक जाय। इस उद्योग को पुनरुज्जीवित करने के लिए कालपी में एक कागज-शिल्प-शिक्षण स्कूल के खोले जाने की बड़ी जरूरत है।

दिवाली आ रही है। महाजन लोग अपनी बहियां इसी अवसर पर बदलते हैं। मिल के बने कागज के मुकाबले में भले ही यह कालपी का कागज महगा पड़े, पर समय और धर्म का यही तकाजा है कि वे इसी शुद्ध स्वदेशी कागज की बहियां बनायें, और चिट्ठी-पत्री लिखने में भी यही कागज काम में लावें।

चर्खा-संघ के अधीन तमाम खादी-भंडार और उत्पत्तिकेन्द्र तो अपने रजिस्टरों, बहियों और चिट्ठी-पत्रियों में इस हाथ के बने कागज का ही उपयोग करेंगे, ऐसी आशा है।' वि० ह०

आगरे के एक ग्राम में सेवा-कार्य

आगरा जिले के सुप्रसिद्ध ग्राम सेवक श्री जयन्तीप्रसादजी छोटी बैनई गांव में अब धूनी रमाकर जा बैठे हैं, और वहां गांधीजी की ग्राम-सुधार-योजना के अनुसार सेवा-कार्य कर रहे हैं। हमारे पास उनका जो पत्र आया है उसमें वे लिखते हैं:

"एक दिन बालक-बालिकाओं से कहा गया कि कल दतौन ले-लेकर आना। ४६ की हाजिरी में ३२ दतौन लेकर आये। उन्हें दतौन करना बतलाया और दांत साफ रखने का महत्व समझाया। तब से अब सब बच्चे दतौन करने लगे हैं।

गांव की रात्रि-पाठशाला में जाट, मुसल्मान, धोबी, चमार, ब्राह्मण, सुनार आदि सब जातियों के लड़के बिना किसी भेदभाव के पढ़ते हैं। लगभग ५० लड़के पढ़ने आते हैं, और गांव के मामूली पढ़े-लिखे लोग ही इन बालकों को पढ़ाते हैं।

जहां घूरे पड़े हुए थे, और मैले की गदगी रहती थी, वे स्थान अब साफ हो गये हैं, और अस्थायी पाखाने और पेशाबघर बना दिये गये हैं। टट्टी-पेशाब करने के बाद मिट्टी डाल देते हैं, जिससे बदबू नहीं फैलती और खाद तैयार हो जाता है।

गांव में आनेवाले भिखारियों तथा सड़ी-गली चीजें बेचनेवालों को युक्तिपूर्वक रोकता रहता हूँ।

कताई, धुनाई और बुनाई की क्रिया भी छोटे पैमाने पर चल रही है।" वि० ह०

"ढोरों के लिए उत्तम चारा"

दिल्ली के केटिल ब्रीडिंग फार्म लि० के गो-सेवा-विभागने "ढोरों के लिए उत्तम चारा" नामक एक सुंदर उपयोगी चार्ट प्रकाशित किया है। इसमें ढोरों के लिए चारा पैदा करने की संपूर्ण विधि विस्तारपूर्वक दी है। ग्रामसेवा-कार्य में दिलचस्पी लेनेवाले जो सज्जन इस चार्ट से लाभ उठाना चाहें, वे उसे 'दिल्ली केटिल ब्रीडिंग फार्म लि०, दिल्ली' के पते पर)॥। का टिकट भेजकर मंगा सकते हैं। वि० ह०

वस्त्र-स्वावलम्बन का एक विवरण

गांधी-आश्रम-मेरठ के वस्त्र-स्वावलम्बन-केन्द्र रणीवा से हमें नीचेलिखा छःमाही विवरण प्राप्त हुआ है। आशा है, खादी-प्रेमी जनता और खादी-सेवक इसे दिलचस्पी के साथ पढ़ेंगे और इससे आवश्यक प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे।

क्षेत्र का चुनाव- इस क्षेत्र में कार्य प्रारम्भ करने का विचार हम लोगोंने दिसम्बर, १९३४ में किया। यह क्षेत्र उपयुक्त इस कारण मालूम हुआ कि इसके इर्दगिर्द चर्खे का कुछ वातावरण पहले से था। साथ ही यह आशा थी कि यहां की दरिद्रता लोगों को इस ओर झुकायेगी। हमने देखा कि थोड़ी बातचीत करने और चर्खे की उपयोगिता बताने से ही लोगों की उत्सुकता बढ़ने लगी। पर दिसम्बर मास तो क्षेत्र का निरीक्षण करने और क्षेत्र चुनने में ही बीत गया। आसपास देखने के बाद "रणीवां करमाजीत" गांव ही हमें ठीक मालूम हुआ। इसी गांव में हम लोग आकर बैठे। गांव के कुछ प्रतिष्ठित सज्जनों की सहायता से हम रहने के लिए एक घर मिल गया। उसका किराया तो हमें कुछ नहीं देना पड़ा, पर उस मकान की मरम्मत और सफाई आदि में हमारा काफी समय गया। हमने जनवरी १९३५ में कार्य प्रारम्भ किया।

पूर्व स्थिति और कठिनाइयां- प्रारम्भ से ही यहां हम तीन कार्यकर्ता रहे हैं। बीच में कुछ अस्थायी कार्यकर्ता आये और चले गये। पर तीन कार्यकर्ता तो बराबर डटे रहे। अपने आश्रम-जीवन को आदर्श बनाने के लिए हमने शुरू से ही सारा काम अपने हाथों करना तय किया। सफाई करना, भोजन बनाना और अपने भोजन के लिए आटा पीसना। ये सब काम हम स्वयं करने लगे। हमारे इन कामों को देखकर पहले तो लोग हमें बुरा-भला कहने लगे। खासकर चक्की पीसना और सफाई करना तो लोगों को बहुत ही नागवार मालूम होता था, तोभी अन्ततक काम में डटे रहने से लोगों पर हम लोगों की एक अजीबसी छाप पड़ी।

कठिनाइयां- १ अयोध्याजी के करीब होने के कारण यहां दकियानूसी विचारों का बोलबाला है। लोग पुराने विचारों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। उच्चवर्ण के लोग तो चर्खा चलाना प्रायः अधर्म समझते हैं। कुर्मी और चमार आदि में चर्खा चलता है, पर वह स्थायी नहीं है। स्थायी तो तभी हो सकता है, जब उच्चवर्ण के लोग उसे अपनावें। पर उच्चवर्ण, जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के लोग चर्खा चलाना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। तिस पर यह गांव तो खासकर साहूकारों का गांव है।

२— वस्त्र-स्वावलम्बन के लिए सब से आवश्यक चीज कपास की खेती है। पर इधर इस जिले में कपास की खेती एकदम नहीं होती। लोग कपास के पौधेतक को नहीं जानते।

३—तीसरी कठिनाई है दकियानूसी विचारवालों का विरोध। चर्खे के साथ धुनने का सम्बन्ध है। अगर लोग स्वयं न धुनें तो इधर चर्खा चल नहीं सकता। धुनिये इधर हैं, लेकिन वे इतना अधिक चार्ज करते हैं कि लोगों की हिम्मत नहीं होती कि धुनवावें। वे धुनाई में रुई के बदले चावल या गेहूं बराबरी में लेते हैं। और पूनी बनाने की मजदूरी अलग वसूल करते हैं। लोगों को धुनना सिखाना भी कठिन है, क्योंकि धार्मिक विश्वास के कारण वे तांत को छूनातक पाप समझते हैं।

४—चौथी कठिनाई है बुनकरों की कमी। इधर आसपास कोई बुनकर नहीं। कपड़ा बुनवाने के लिए यहां से १२ मील दूर अकबरपुर ही जाना पड़ता है। हम इनसे सूत लेते और अकबरपुर से उन्हें कपड़ा बुनवाकर देते हैं।

५—पांचवीं बात तकुए की है। इधर के लुहार तकुआ बनाना नहीं जानते। कच्चे लोहे का बनाते हैं। पर उससे सूत बहुत मोटा कतता है। अगर पक्के लोहे का बनाते हैं, तो वह इतना मोटा होता है कि उसके चक्कर बहुत घट जाते हैं।

६—अंतिम कठिनाई है उपयुक्त कार्यकर्ताओं का न मिलना। देहाती कार्यकर्ता मिलते नहीं। शहर के युवक हम लोग ग्रामीण जीवन बिताने में असमर्थ होते हैं। गांवों में रहकर कड़ी मेहनत हम कर नहीं सकते। इस कारण ग्रामवासियों के विश्वासपात्र बनने में हमें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

सब कठिनाइयों के रहते हुए भी जो सब से बड़ी सुविधा हमें मिली वह है, यहां के प्रतिष्ठित सज्जनों के भावों का परिवर्तन और उनकी हमारे साथ सहानुभूति; हमारे व्यक्तिगत जीवन और हमारे आदर्श की ओर उनका आकर्षण।

हमारी प्रगति- "रणीवा करमाजीत" हमारी प्रवृत्ति का मुख्य केन्द्र है। यहीं पर हमारा आश्रम है। इसी ग्राम के आवमियों से हमारा चौबीसों घण्टे सम्पर्क रहता है। इस ग्राम के साथ-साथ हमने आसपास के २ ग्राम और ले लिये हैं। हमारा प्रयत्न बराबर वस्त्रस्वावलम्बन की ओर ही रहा है। हमने एक छोटा-सा दवाखाना और एक बढ़ई-विभाग भी खोल रक्खा है। इनसे हमें अपने कार्य में सहायता मिलती है। दवाई हम ग्रामीणों को मुफ्त देते हैं। बढ़ई-विभाग से हमारे कार्यकर्ता अनुभव प्राप्त करते तथा चर्खे बनाते हैं। शुरू में हमने लोगों को सूत से कपड़ा बदलने के लिए राजी किया। लोग सूत कातते थे, और उसके बदले में चर्खा-संघ के केन्द्रों से कपड़ा लाते थे। पर अब हम उनके काते हुए सूत का कपड़ा बनाने पर ही जोर दे रहे हैं। इधर प्रयत्न करने पर ब्राह्मणोंने तो चर्खा अपना लिया है, पर क्षत्रिय लोग अभीतक राजी नहीं हो सके हैं। शुरू में धुनना सिखाना भी एक कठिन काम था, पर अब लोग इस ओर काफी आकर्षित हुए हैं, और आज करीब-करीब सभी परिवारों के लोग धुनना जानते हैं। ब्राह्मण परिवारों में पर्दा होने के कारण बहनें अभीतक धुनना नहीं सीख सकी हैं, पर उनके परिवार के लोगोंने धुनना सीख लिया है, उन्हें धुनिये पर अवलम्बित नहीं रहना पड़ता। बुनने की समस्या अब भी हमारे सामने है। हम ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं, जिससे यहां के लोग बुनना भी सीख जायं और कुछ का यही पेशा हो जाय।

हमारे कार्य की ग्रामवार प्रगति इस प्रकार है। अबतक हम इस केन्द्र में स्वावलम्बन के लिए ये तीन ही गांव ले सके हैं

१ रणीवा करमाजीत २ मकनपुर और ३ ईशरपट्टी।

१. रणीवां करमाजीत- हमारा मुख्य आश्रम इसी ग्राम में है। यहां कुल ५५ घर हैं। सब से अधिक ब्राह्मण और चमार हैं। हमारे आने के पहले भी २—४ चर्खे चलते थे। चलानेवाले कुर्मी और चमार थे। हमारे आने पर यहां के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति पं० लालताप्रसाद मिश्रने, जो यहां सरकारी सरपंच और मुखिया हैं, सब से पहले चर्खे को अपनाया और फिर उसके कारण सारे गांववालोंने। आज ५५ घरों में ३५ चर्खे चलते हैं। सभी ब्राह्मण परिवारोंने चर्खा अपना लिया है। स्वावलम्बन की दृष्टि से केवल ४ परिवारोंने ही प्रतिज्ञा ली है। इन चारों में

प० लालताप्रसाद का प्रयत्न सराहनीय है। इन ६ महीनों मे इस ग्राम मे ३२५ गज खादी बनकर आई है। सब से अधिक पंडितजी के यहा ही बनी। धुनना सभी परिवार के लोगोने सीख लिया है। जो लोग अपने सूत का कपड़ा नही बनाते, मगर सूत कातते है, वे उसे चर्खा-संघ के केन्द्रो में देकर बदले में उसकी रुई ले आते हैं। इस प्रकार बदलने मे जब पूंजी बढेगी तब ये भी उसका कपड़ा बनायेंगे। यह कठिनाई इस कारण होती है कि इन लोगो के पास रुई खरीदकर कातने को नकद पैसे नहीं होते। कपास की खेती इधर होती नही। इसलिए ये सूत बदलकर ही रुई इकट्ठी करते और फिर कातकर कपड़ा बनाते है।

२. **मकनपुर**—इस गाव मे कुल २२ घर है। अधिकतर ब्राह्मण है। एक चर्खा पहले से चलता था। अब चार चर्खे चलते है। ३ परिवार स्वावलम्बन की दृष्टि से चर्खा कात रहे है। इस गाव मे कार्य प्रारम्भ किये अभी सिर्फ दो ही महीने हुए है। एक परिवारने १२ गज कपड़ा बनवाया है, और बाकी सभी सूत इकट्ठा कर रहे है। इस गाव के सभी लोग खेतिहर है। आज-कल बारिश का मौसम होने के कारण सभी बुरी तरह खेती में फँसे है। पहले इस गाव मे कोई धुनिया नही था। अब चर्खा चलानेवाले सभी परिवारोंने धुनना सीख लिया है।

३. **ईशरपट्टी**— इस गाव मे १७ घर है। अधिकतर ब्राह्मण और कुरमी है। पहले कोई चर्खा नही था। अब पाच चर्खे चलते है। एक परिवार स्वावलम्बन की दिशा मे है, पर कपड़ा अभी नही बुना सका है। काम प्रारम्भ किये दो महीने हुए है। कातनेवाले परिवारोंने धुनना सीखा है।

इनके अलावा रणीवा से १६ मील दूर पश्चिम में हमारा एक और छोटा-सा केन्द्र है, जिसका नाम **नरियाँवा** है। यह गाव काफी बड़ा है। कुल १४४ घर है। यहा के कुछ लोग फौज मे भी काम करते है। इस कारण इस गाव मे बहुत सफलता नही मिली। गाव मे पहले एक भी चर्खा नही चलता था। पहला काम तो हम लोगों का यही रहा। अब इसी गाव मे २२ चर्खे चल रहे है। दो परिवार स्वावलम्बन की ओर है। चार माह मे यहा काम हो रहा है। १२५ गज खादी बनकर आई है। आस-पास के गावो मे भी अभी चर्खा-प्रचार का प्रारम्भिक काम हो रहा है। ३ मील के दायरे के सभी गाव ले लिये गये है। इधर कुछ प्रतिष्ठित ठाकुरोंने भी चर्खा अपनाया है। यह गाव भी अयोध्याजी के बहुत पास है। इस कारण यहा कट्टरता और भी अधिक है। चर्खा तो लोगोंने अपना लिया है। पर धुनना सीखने को अभी तैयार नही है। मुश्किल से दो-तीन परिवारोंने धुनना सीखा है। तो भी भविष्य निराशा-जनक नहीं है।

कपास की खेती—यह तो हम पहले ही लिख चुके है कि इस जिले में कपास की खेती नहीं होती। कपास के लिए हमे कानपुर-इटावा आदि की शरण लेनी पड़ती है। बिना कपास हुए स्वावलम्बन का काम चलना कठिन ही नहीं, असम्भव-सा प्रतीत होता है। पर चूंकि यहा अरहर की खेती होती है, इस लिए अनुमान है कि कपास की खेती भी हो सकेगी। इस वर्ष हमने कपास की खेती का भी प्रयत्न किया, पर अधिक सफलता नही मिली। लोग बिना नतीजा देखे यकायक इस नये जोखिम को उठाने के लिए तैयार नही है। २५-३० किसानोंने मिलकर २० बीघे की खेती की है। पौधे अच्छे है। यदि इस वर्ष इसमें सफलता मिली, तो आशा है कि अगले साल कपास की समस्या हल हो जायगी। एक कठिनाई और है। इधर कपास के पौधो मे एक प्रकार का हरा कीड़ा लगता है जो सारी खेती को चौपट कर देता है। अबकी हम इसकी पूरी चौकसी रख रहे है। और इसी विचार से इस वर्ष की सब खेती हमने अपनी सीधी देख-रेख में रखी है।

बदलौन—प्रारम्भ मे हम लोगो की एक और योजना थी। हम कत्तिनो से सूत लेकर उन्हे कपड़ा देते थे। १॥ सेर सूत के बदले मे उसी नबर की १ सेर खादी उन्हे दी जाती थी। यह चीज उन्हे सहल मालूम हुई। इसका प्रचार भी खूब हुआ। जहा-जहा हम स्वावलम्बन का काम नही कर रहे हैं, वहां हमारा यही काम जारी है। सालभर के अन्दर, हमें आशा है, हम सारे जिले मे इस योजना को सफल बना सकेंगे। गरीब कत्तिने इसे इसलिए भी पसन्द करती है कि बुनाई के लिए वे नकद दाम दे नही सकती। इस साल छ मास के अन्दर ही हमारी यह योजना बहुत प्रिय हो चुकी है। ४०० कत्तिनोंने लगभग ५००० गज कपड़ा इस प्रकार बदले में पाया है। इस योजना का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है। यदि चर्खा-संघ के प्रत्येक सूत-केन्द्र मे यह क्रम जारी कर दिया जाय तो कत्तिनें आसानी से खादी धारण करलें और वस्त्र-स्वावलम्बन की उपयोगिता भी समझ जायँ।

हमारा भविष्य—जिन कठिनाइयो के बीच हमने काम आरम्भ किया था, उन्हे देखते हुए हमारा भविष्य निराशा-जनक नहीं है। अपने सारे काम स्वयं करलेने और हर वक्त काम मे लगे रहने की हम लोगों की आदत गाँववालो को एक नई चीज मालूम होती है। इसी कारण वे हमारी ओर आकृष्ट भी हुए है। प० लालताप्रसादजीने अपनी कुछ जमीन हम आश्रम बनाने के लिए दी है। जमीन जगली और ऊबड़-खाबड़ है। हम लोगोंने वही आश्रम बनाने का निश्चय किया है। काम तो कठिन है, पर हमने प्रारंभ कर दिया है। हम सभी कार्यकर्ता उस जमीन को चौरस करने और रहनेयोग्य बनाने में लगे हुए हैं। हमारी इस प्रवृत्ति से गाववाले भी हमारी ओर आकृष्ट हो रहे हैं—वे भी सहायता करने को उत्सुक हैं।

हमारी पद्धति से अपने घर मे पैसे की बचत होती देखकर, और यह देखकर कि उससे तीन आने का काम दो आने मे हो जाता है, अब यहां के ब्राह्मण और ठाकुर भी धीरे-धीरे हमारी ओर आकर्षित हो रहे हैं। इन लोगो के परिवारों में फुर्सत का सवाल उतना टेढा नही। फसल के ३-४ महीनो को छोड़कर शेष ८-९ महीने ये एकदम बेकार रहते हैं। इस बेकारी का सदुपयोग करने मे जो लाभ है, उसे अब ये लोग समझने लगे हैं। यही हमारी आशा है।

धुनाईने भी हमारे काम मे बड़ी मदद पहुँचाई है, और लोगो के हृदयतक पहुँचाने का वह एक बड़ा अच्छा जरिया रहा है।

अगर हमारे कार्यकर्ता योग्य रहे और हम लोग परिश्रम करते रहे तो अपने उद्देश मे हमे सफलता भी मिलेगी।

भविष्य भगवान् के हाथ है।"

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

'धर्मान्तर' के विषय में

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
बिड़ला लाइन्स, दिल्ली.

सम्पादक — वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, [illegible] १९३५. [संख्या ३३

विषय-सूची

ताड़ का गुड़

भारतवर्ष के कुछ भागों में ताड़ के पेड़ काफी संख्या में होते हैं। चूंकि भारत अपनी खपतलायक पर्याप्त गुड़ पैदा नहीं करता, इसलिए हमने यह विचार किया कि ताड़ के वृक्षों से गुड़ किस तरह बनता है और उसमें शक्कर और खनिज द्रव्यों की मात्रा कितनी होती है इस सबकी खोज-बीन करनी चाहिए।

ताड़ का गुड़ बंगाल प्रान्त में चौबीस-परगना, हावड़ा, मिदनापुर और फरीदपुर में बनता है, किंतु बर्दवान, बांकुड़ा, बीरभूमि और मुर्शिदाबाद इन जिलों में ताड़ के पेड़ तो हैं, पर उनका उपयोग इस काम के लिए बिल्कुल नहीं होता। इसलिए हमारी यह खोज-बीन और भी अधिक महत्व की थी।

हमने चौबीस-परगने के डायमण्ड हार्बर इलाके में जो आंकड़े इकट्ठे किये उनसे हमें यह विश्वास हो गया कि भारत में यदि केवल इसी प्रश्न पर अपना ध्यान दिया जाय, तो करोड़ों रुपयों का गुड़ बन सकता है।

ताड़ में नर और मादा दोनों तरह के पेड़ होते हैं। नर की अपेक्षा मादा में अधिक रस झरता है। प्रत्येक पेड़ के रस की मात्रा में काफी अन्तर पड़ता है। रोज ५ सेर (बंगाली) से लेकर १० सेरतक रस हरेक पेड़ से मिलता है, और औसत ६–७ सेर (बंगाली) का पड़ जाता है। इस रस में १३ से लेकर १५ प्रतिशत-तक शक्कर होती है। ६–७ सेर रस से साधारणतया एक सेर (८० तोला) अच्छे ठोस गुड़ की परिया बनती है। इसका विश्लेषण करने से निम्नलिखित आंकड़े प्राप्त हुए हैं :—

ईख की शक्कर	८६%
'इन्वर्ट शुगर'	५%
राख	२·२%

राख में कैलशियम, मैगनेशियम, सोडियम, पोटाशियम, लोहा एल्युमिनियम, मेंगनीज, सिलीकेट और फासफेट के तत्व हैं। स्वास्थ्य के लिए ये सभी द्रव्य अच्छे हैं।

ताड़ी का भेली का गुड़ थोड़ा मलाई के रंग का और देखने में सुन्दर तथा स्वाद में सरस होता है। वास उसकी बड़ी ही सौंधी होती है।

लगभग चार महीने के मौसिम में हरेक पेड़ औसतन ३ मन (८२ पाउण्ड=१ मन) गुड़ देता है। गुड़ की कीमत उसकी जाति के अनुसार अलग-अलग आंकी जाती है। एक मन की कीमत कम-से-कम ४) और अधिक-से-अधिक ७॥) होती है। ५) मन का औसत लगावें, तो हरेक पेड़ से औसतन १५) का गुड़ पैदा होता है।

डायमण्ड हार्बर की तरफ हरेक ताड़ीवाला १० से लेकर १५ पेड़ों तक का रस निकालता है। रस निकालने और गुड़ बनाने के लिए उसे मौसिम में ईंधन और दूसरी चीजों पर २०) से अधिक खर्च नहीं करना पड़ता। हरेक 'सिनली' (ताड़ीवाला) सारे मौसिम में कम-से-कम १२०) कमा लेता है। उसकी आमदनी अधिक-से-अधिक ३००) तक पहुंचती है।

इन आंकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ताड़ का गुड़ बनाने के काम में अच्छा आर्थिक लाभ हो सकता है।

ताड़ के पेड़ से रस रोज निकाला जा सकता है। यह बात खजूर के पेड़ में नहीं है। रस के मटके के अन्दर थोड़ा चूना लगा देते हैं, जिससे रस में खटास न आने पावे। सारे मौसिम में प्रति पेड़ ४० तोला चूना खर्च होता है, अर्थात् नित्य हर पेड़ पर ⅓ तोला या ६० ग्रेन चूने की जरूरत पड़ती है। रात का तथा दिन में झरा हुआ रस बहुत बढ़िया किस्म का गुड़ बनाने के काम आता है। बंगाल में खजूर का बहुत बढ़िया गुड़ बनाने में दिन का रस काम में नहीं लाया जाता, क्योंकि उसमें खटास आ जाती है। उसमें थोड़ा चूना मिला दिया जाय तो न तो खटास आयगी, और न वह बिगड़ेगा ही। खजूर का रस निकालनेवालों की आय भी अच्छी तरह बढ़ जाने की काफी सम्भावना है।

रस निकालने का मौसिम शुरू तब होता है, जब ताड़ के वृक्ष फूलने लगते हैं, और वर्षारंभ होते-होते समाप्त हो जाता है।

'हरिजन' से]

प्रफुल्लचन्द्र घोष

गुजरात में हरिजन-कार्य

[२]

निरीक्षण का यह दूसरा सप्ताह समाप्त हुआ है। इस सप्ताह सोमवार को बड़ोदा, मंगलवार, बुधवार और गुरुवार को दाहोद, शुक्रवार को गोधरा और शनिवार को उमरेठ का निरीक्षण किया। इस सप्ताह कुछ तो बरसात के अटकाव के कारण, और कुछ दाहोद में भील-सेवा-मंडल के काम में डेढ़ दिन देना पड़ा

इससे, हरिजन-कार्य कम ही हुआ है, फिर भी जितना हो सका उतने कार्य से मुझे असतोष नही हुआ ।

पादरा—बड़ोदा से १० मील के फासले पर यहा एक छोटा सा आश्रम है । आश्रम को देखकर पादरा के भगी-मुहल्ले का निरीक्षण किया । भगियो की कोई सहकारी समिति न होने से उन्हे कर्जा लेने मे बडी कठिनाई पडती है । यहा उन्हे तनख्वाह भी बहुत कम मिलती है—स्त्रियो को ६) और पुरुषो को ७) । सहकारी समिति स्थापित कराने और स्त्रियो को, सोहर के दिनों में, छुट्टी देने के सम्बन्ध मे म्युनिसिपैलिटी के मेबरो से प्रार्थना की । यहा भगियो को हर रविवार को आधे दिन की छुट्टी मिलती है ।

बड़ोदा तो सर सयाजीराव की राजधानी है । हरिजन-उन्नति की तरफ श्रीमान् गायकवाड का जो उत्साह और प्रेम है उसे कौन नही जानता ? पर उनके अधिकारियो और समस्त प्रजा का हरिजन-उन्नति के प्रति उतना ही प्रेम न होने के कारण श्रीमान् के हृदय की अभिलाषा अधूरी ही रही है । दो बरस पहले उन्होंने यह आज्ञा निकाली कि अब पृथक् अन्त्यज-पाठशालाएँ न रखी जाये, उन्हे सामान्य ग्राम-पाठशालाओ में शामिल कर दिया जाय । इसके अनुसार बहुत हदतक हुआ भी । पर आलोचको का कहना यह है कि शिक्षा पर जो भारी खर्चा हो रहा था उसे कम करने के लिए श्रीमान्ने यह किया था । कारण चाहे जो हो, पर नतीजा इसका यह हुआ है कि हरिजनो की तथा उनके मुहल्लो की पाठशालाएँ बद हो जाने से उनके छोटे-छोटे बच्चो की पढाई बद हो गई है, और इससे उन्हे मजबूरन यह दड भोगना पड रहा है । इसके अलावा कुछ हरिजन अध्यापको की नौकरी छूट गई है, जिससे उनमे बेकारी भी काफी बढ रही है । फिर सवर्ण भला कैसे सहन कर सकते थे कि वे अपने बच्चो को हरिजन-बच्चो के साथ बिठावे ? उन्होने खूब हल्ला मचाया, कुछ हरिजनों पर अत्याचार भी किया, और अत मे राज्य के अधिकारियोने छूट देदी । नतीजा यह हुआ कि हरिजन बालको को फिलहाल सवर्ण बालको से दूर बैठना पडता है । बडे-बडे गावों के हरिजन-मुहल्लो के पास और नही तो छोटे-छोटे, अर्थात् दूसरी कक्षा तक पढनेवाले बच्चो के लिए तो पाठशालाएँ रहने देनी चाहिए थीं । गुजराती की तीसरी से सातवी कक्षातक पढनेवाले विद्यार्थियो को साधारण पाठशालाओ मे भेज दिया जाय तो कोई हानि नहीं, बल्कि लाभ ही है । दूसरी कक्षातक की पाठशालाओं मे हरिजनो के अलावा अन्य बालको को भी दाखिल कर सकते है, और इन दो या तीन बरसो मे हरिजन बालको को स्वच्छता और सुंदर सस्कृति की शिक्षा दी जा सकती है ।

यहा एक सुदर क्षत्रिय रानीपरज छात्रालय है, जिसे एक रानीपरज दपति अपने निःस्वार्थ प्रयास से चला रहे है । पति-पत्नी दोनों ही अध्यापन का कार्य करते है । छात्रालय देखकर चित्त प्रसन्न होगया । करीब ४० विद्यार्थी हैं, जो अध्यापको के ट्रेनिंग कॉलेज मे, कला-भवन मे और अग्रेजी स्कूलों में पढते है । अधिकांश खर्च उनका राज्य की ओर से मिलनेवाली छात्रवृत्तियो से चलता है । रानीपरज की शामिल जाति के इस दपति का काम देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि अब सर सयाजीराव के शिक्षारूपी आम्रतरु के सरस फल पकने लगे हैं । इस छात्रालय मे शामिल, चौधरी और धोडिया जाति के विद्यार्थी रहते है । इनके अलावा कोलचा जाति का अंग्रेजी पढनेवाला एक उत्साही नवयुवक भी यहा देखने मे आया । यह चीखली तालुका के खेरगाम का बाशिदा है । कोलचा जाति रानीपरजों में भी अस्पृश्य समझी जाती है । भंगी भाइयोंतक में जब अच्छी जागृति दिखाई देती है, तब इसमे अचरज ही क्या जो कोलचा जाति मे जागृति के चिह्न दिखाई दे ?

सघ की ओर से चलनेवाला हरिजन-छात्रालय देखा । उसमें अभी हाल हाईस्कूल मे पढनेवाले १० विद्यार्थी हैं । इनके अलावा कॉलेज मे भी ६–७ विद्यार्थी पढते हैं, जिनमे दो तो बी० ए० मे है, और प्रत्येक को राज्य की ओर से १५) से लेकर २०) तक छात्रवृत्ति मिलती है । इन विद्यार्थियो से भी मैं मिला । कला-भवन, ट्रेनिंग कॉलेज, और राज्य की दूसरी शिक्षण-सस्थाओं मे पढनेवाले ४०–५० विद्यार्थियो के लिए एक खास बड़े छात्रालय की यहा बडी जरूरत है । इस सबध मे यहा के मित्रों से बात की । भगियो के मुहल्ले भी देखे । उनकी कुछ तकलीफो के बारे में म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन और खास-खास मेंबरों से कहा । बड़ोदा जैसे भारी शहर मे भी पाखानेवाले घर भगियो के (जायदाद मे) बँधे हुए हैं, और वह पुराना रिवाज, जिसे यहा 'टोपला सिस्टम' कहते है, अब भी चालू है । इस प्रथा से म्युनिसिपैलिटी थक गई है, क्योंकि इससे अपने मुलाजिम भंगियों के काम पर भी वह उचित देख-रेख नही रख सकती, और वे काम मे लापर्वाही करते हैं । भगी खुद यह 'जायदाद' छोड़ने को राजी नहीं, क्योकि वे एक-दूसरे को अपना यह 'हिस्सा' बेच सकते हैं, और उससे अच्छा पैसा पैदा कर सकते है । भंगी कही हड़ताल न करदे इस डरसे इस प्रथा को म्युनिसिपैलिटी नष्ट नही कर सकती, और उसे चुपचाप चलने देती है ।

सघ की स्थानीय शाखा की सभा मे बड़ोदा के हरिजन-कार्य का विवरण सुना । ताडकेश्वर के मदिर के सामने सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें हरिजन भी उपस्थित थे ।

'हरिजन-बधु' से] **अमृतलाल वि० ठक्कर**

साप्ताहिक पत्र

(१)

भारत-मत्री की सलाह के अनुसार भारत-सरकारने जब मिस फ्लारेन्स नाईटिंगेल का पत्र प्रत्येक प्रांतीय सरकार के पास सम्मति के लिए भेजा, तो १८ जून,१८०० को सिंध के कमिश्नर मि० जेम्सने उस पर अपनी राय देते हुए यह लिखा था—"उन लोगोंतक में,जिन्होंने ब्रिटिश स्कूलो और कॉलेजों में शिक्षा पाई है, (शायद यूरोपियन ढग पर रहनेवाले कुछ इने-गिने कुटुम्बो को छोडकर) सफाई की तरफ अगर सर्वथा अरुचि का भाव नहीं है, तो कम-से-कम उदासीनता तो है ही, और सफाई के लाभ मे तो लोगों का कतई विश्वास नही । जब से मैं सरकारी नौकरी कर रहा हूँ, तब से मुझे ऐसे एक ही देशी सज्जन मिले हैं, जिन्होंने सफाई के विषय का अच्छा अध्ययन और मनन किया था, और इस बात को ठीक-ठीक समझा था कि स्वास्थ्य की दृष्टि से सफाई कितने महत्व की चीज है । मेरा मतलब माननीय रणछोड़लाल छोटालाल सी. आई. ई. से है । और सफाई के प्रति लोगो में आम तौर पर जो यह उदासीनता का भाव देखने में आता है उसका कारण खोजने के लिए हमें बहुत दूर नही जाना है । सफाई के प्रति प्रेम होने का अर्थ है लोगों का सभ्यता की ओर कदम बढ़ाना, और जिस ज़माना-

वरण में उनके पूर्वज रहते थे, उसमे अधिक सुविधा और सुघराई के वातावरण में रहने की इच्छा का वह एक चिन्ह है। मै सब धान बाईस पंसेरी नही तौल रहा हूँ, तोभी हम देखते है कि बबई कलकत्ते-जैसे बड़े-बड़े शहरो में भी ऊँचे-से-ऊँचे उन्नत विचारवाले तथा सुशिक्षित लोग और बड़े-बड़े करोड़पति आज भी उन्ही गलीज गलियों व जगहों में खूब सतोष के साथ रहते हैं, जहा उनके बाप-दादे सतोषपूर्वक पड़े रहते थे !" दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यह राय आज भी बहुत अंशो में सही है, जिसका आपको नीचे-लिखी एक घटना से पता चल जायगा। लाहौर से एक सज्जन लिखते हैं :—

"इसी एप्रिल मास की बात है। डाक्टर धर्मवीर की अंग्रेज पत्नी कुछ खादी खरीदने खादी-भडार गई थी। भडार जाते हुए उन्होने एक आदमी को सडक पर पेशाब करते देखा। मुहँ फेर कर वे तेजी से आगे बढ गई। भडार से लौटी, तो फिर एक आदमी को सडक पर पेशाब करते देखती हैं। एक क्षण व वहा रुक गई और ज्योही वह पेशाब करके उठा, उन्होने उसे डांट बतलाई और कहा, कि 'क्या तुम्हे यह सडक ही खराब करने को मिली है ? तुम्हे शर्म भी नही आती !' उस आदमीने जवाब दिया कि मेरा मकान यहा से दो मील है, और मेरी दूकान है तो इसी सडक पर मगर उसमें पाखाना या पेशाब को जगह नहीं। अब आप ही बतावें, मैं जाऊँ तो कहा जाऊँ ?' मेरे खयाल मे, उसका कहना ठीक ही था, क्योंकि लाहौर म मैने तो कहीं एक भी सार्वजनिक 'पेशाब-घर' नहीं देखा। भारत की राजधानी दिल्लीतक में थोड़े-से इनेगिने ही पेशाब-घर हैं। मनुष्य की यह सबसे बड़ी आवश्यकता है। हमारी ये म्यूनिसिपैलिटिया इस कमी को पूरी करने की जरूरत कब महसूस करेगी ?"

मेरे खयाल मे, शायद एक बबई जैसे शहर को छोड़कर हमारे अधिकाश कस्बो और शहरो के बारे में यह शिकायत बिल्कुल सच है। और बबई-जैसे शहर के बारे मे भी हम यह नही कह सकते कि पेशाबघर वहा पर्याप्त सख्या में है या वे काफी साफ रहते है। इस लापर्वाही को न्यायसगत तो कोई ठहरा ही नहीं सकता। जो बड़े-बड़े शहर अपने को सभ्य कहते हैं उनके लिए तो यह लापर्वाही एक अक्षम्य अपराध है। यह बिलकुल सभव है कि या तो हमारी बेढगी सफाई पसद करनेवाले दिमाग मे यह चीज आई नहीं, या फिर कानून की किताब में लिखे हुए सफाई के कायदो को लोगोने उतना माना नही जितना कि तोड़ा है। हरेक म्यूनिस्पल मेंबर को यह देखना चाहिए कि उसके कस्बे या शहर मे स्त्रियो और मर्दों के निस्तार के लिए अलग-अलग काफी और सुविधाजनक पेशाबघर हैं या नहीं। उदाहरण के लिए, लडन मे जमीन के नीचे भोयरो में ऐसी अनेक जगहे हैं, जहा भगी हमेशा तैनात रहते है और जहा हरेक चीज खबरदारी के साथ खूब साफ रखी जाती है। तौलिया और साबुन की टिकिया भी वही रखी रहती है। जो लोग वहा जाते है उन्हे साबुन और तौलिया के लिए थोड़ी मामूली-सी फीस देनी पड़ती है। गावो की सफाई का प्रश्न मुश्किल हो सकता है और है, पर शहरो की सफाई का प्रश्न तो, खासकर वहां जब पश्चिम के नमूनों का न्यूनाधिक रूप में अनुसरण किया जाता है—कठिन होना ही नहीं चाहिए।

आमदनी का औसत यह है !

उस दिन पचासेक बरस का एक अधेड़ आदमी खादी की बिल्कुल दूध-सी झक तो नही, पर धुली हुई साफ धोती और कुरता पहने गाधीजी का दर्शन करने मगनवाड़ी पहुँचा। करीब साढेदस बजे हम लोगो के भोजन के समय वह आया था। किसीने उससे कह दिया कि अगर तुम इस वक्त गाधीजी का दर्शन करना ही चाहते हो, तो यही दूर से देखलो और चले जाओ। पर उसने कहा कि इतनी दूर से मेरी ये भटअँधरी आंखें काम नही देंगी, जबतक आप मुझे गाधीजी के बिल्कुल पास नही जाने देगे। तबतक मैं उनके दर्शन नही कर सकता। इसलिए जबतक गाधीजी भोजन करके वापस नही आये, तबतक वह बैठा ही रहा। जब उसे गांधीजी के पास ले गये, तो उससे गाधीजीने पूछा, 'तुम रहते कहां हो ? तुम्हारी आखो का यह हाल है तो फिर तुम काम क्या करते हो ?' 'उसने कहा कि मेरा अधिकाश समय भगवान् के ध्यान और भजन म ही जाता है।' 'सो तो ठीक है, पर तुम्हारी जीविका कैसे चलती है ?' उसने कहा, 'मेरे एक मित्र मुझे २५) की वार्षिक सहायता देते है, और मेरी स्त्री को, जो बीमार पड़ी रहती है, एक दूसरे मित्र २५) सालाना देते है। इस तरह गुजर हो जाती है।' 'पर २५) साल में गुजर कैसे होती होगी ?' उसने कहा, 'मै एकही बार खाता हूँ—दिन मे करीब २ बजे, और दाल-चावल पर ३ पैसे से ज्यादा खर्च नही होता। मेरी स्त्री साझ को भी कुछ खाती है, पर उसका भी खर्चा साल मे २५) से ऊपर नही जाता।' वह बहुत ही दुर्बल और क्षीण दिखाई देता था, जैसे पेटभर भोजन कभी मिला ही न हो। लेकिन इससे उसे कोई चिंता मालूम नहीं होती थी। वह यो पढ़ा-लिखा आदमी था और अग्रेजी भी अच्छी जानता था। वर्धा से उसका गाव करीब ९ मील था।

भीवापुर गाव के एक-एक घर के जो तथ्य और आकड़े श्री राधाकृष्ण बजाजने इकट्ठे किये है, उसमे मुझे यह मालूम हुआ कि जिस अधपेट रहनेवाले मनुष्य के विषय मे मैने ऊपर लिखा है, उसकी गरीबी किसी भी तरह हद दरजे की नही कही जा सकती। दरिद्रता तो गावो मे इससे भी अधिक विकराल है। वर्धा से यह भीवापुर गाव लगभग १० मील के फासले पर है। इसमे ६३ घर और ३४० प्राणी हैं—१६२ पुरुष और १७८ स्त्रिया ७ बरस से ऊपर की १३९ स्त्रिया है, जिनमें सिर्फ चार ही अविवाहिता है। पुरुषो मे ४० और स्त्रियों मे केवल ४ साक्षर है। १०६ मनुष्य अपनी जमीन (करीब १२०० एकड़) जोतते हैं, २५ नौकरी करते हैं, ७४ खेत-खलिहान के मजदूर है, और ६ दूसरे जरियो से अपना पेट पालते है। इस तरह ११० मर्द और १०१ औरते या तो खेतीपाती मे, या मजदूरी या नौकरी-चाकरी से कुछ पैसे कमा लेत है।

उनकी आमदनी का अलग-अलग ब्योरा यह है :—

३	घरों की	औसत	कमाई	१)	मासिक है
२०	,,	,,	,,	१) से १॥)	,,
१७	,,	,,	,,	१॥) से २)	,,
१०	,,	,,	,,	२) से २॥)	,,
८	,,	,,	,,	२॥) से ४)	,,
५	,,	,,	,,	४) से ऊपर	,,

जिनकी मासिक आमदनी ४) से ऊपर है, उनके कोई-न-कोई परिवारवाले बाहर दूसरी जगह कमाते है। एक व्यक्ति का पिता नागपुर में इंजीनियर है, तो एक का लड़का नागपुर में अध्यापक

है। दो पटेल हैं, और एक परिवार में केवल एक स्त्री ही है, जिसके पास कुछ जमीन है।

४२ घर ऐसे हैं, जिनपर कुल १'१६१०) का कर्जा है। २१ घर ऋणमुक्त हैं, जिनमें ३ साहूकार हैं, ४ किसान और ४ हल-वाहे। गाव की मासिक आमदनी कुल ५२०) की है। इसका हिसाब नीचे लिखे अनुसार लगाया है :—

७५ नौकरी-चाकरी करनेवाले	१०५)
१८० खेती-पाती करनेवाले, या खेत-खलिहान के मजदूर	२५०)
६ लगान वगैरा से	१६५)

[फी एकड़ औसत लगान ४) है, सरकारी कर का १॥) निकाल देने पर फी एकड़ २॥) वार्षिक आमदनी है। कुल ७९.३ एकड़ जमीन पट्टे पर इस गाव में दी हुई है।]

चार घर 'वस्त्र-स्वावलबन' में विश्वास करते हैं। २४ व्यक्ति अपने कपड़ेभर के लिए काफी सूत कात लेते हैं।

प्रति मनुष्य की औसत आय १॥) से कुछ ही ऊपर आती है। यहा यह याद रखना चाहिए कि थोड़े-से आदमी जमीन का जो भारी लगान वसूलते हैं, उसी रकम की बदौलत यह औसत आया है। तब इसका यह अर्थ हुआ कि अधिकांश लोगों की असल आमदनी तो १॥) के औसत से बहुत ही कम है!

(२)

हमारी ग्रामसेवा

ठीक पन्द्रह दिन के बाद आज मैं अपने गाव के बारे में लिख रहा हूँ। बात यह हुई कि उधर करीब दो सप्ताह मुझे बंबई में रहना पड़ा, और गांव देखने मैं पिछले हफ्ते ही जा सका। मीरा बहिन भी नियमित रूप से नहीं जा सकीं, क्योंकि वे बीमार पड़ गई थीं। इस बीच में कुछ ऐसी बातें हुई, जो द्वेषभाव की सूचक कही जा सकती हैं। झोपड़ी बनाने के लिए हमने जमीन का जो टुकड़ा लिया है, उस पर हमने अपने खभे गाड़ दिये थे। वहां जानेपर हमें यह मालूम हुआ कि वे खंभे तो दूसरे ही दिन किसीने उखाड़कर फेंक दिये थे। किसीने हमें कसूरवारों का सुराग तो दिया नहीं। यह साफ ही अदावत का काम था। कारण इसका जाहिर है। एक हरिजन के मकान के पिछवाड़े की दीवार इस जमीन पर पड़ती है। उसके हृदय पर यह चोट लगी कि यह जमीन तो इन लोगों को मिल ही गई है, अब दीवार के पीछे जो जमीन पड़ी है उसके एक हिस्से का शायद ये लोग कुछ दिनों में उपयोग—असल में बेजा उपयोग—करने लगें। हमने उसे खातिरी दिलाने की भरसक कोशिश की कि, भाई, हमारी ऐसी कोई बुरी नीयत नहीं है, और न हम यहा कोई दखल ही देंगे; पर उसे हमारी बात पर विश्वास नहीं आया। सभव है कि किसी दिन हमारा अखड सेवा-कार्य उसका सारा अपडर दूर करदे, और वह हम लोगों से प्रेम करने लग जाय।

यह तो हुआ। इधर इस बीच में, हम लोग जिस ढग से अपने गाव में काम कर रहे हैं, उसपर मेरे पास आलोचनाएँ आने लगी हैं। एक मित्र लिखते हैं—"आप अपने साप्ताहिक पत्र में ग्रामसेवा पर जो लिख रहे हैं उसका मैं ध्यान से अध्ययन करता हूँ—खास-कर इसलिए कि इसी तरह के काम में मैं भी रस लेता हूँ। पर माफ कीजिए, आपने गलत सिरे से काम शुरू किया है। आपने वह काम सब से पहले हाथ में लिया है, जिसे लोग बिल्कुल ही पसंद नहीं करते, और जिससे उनका बिदक जाना अनिवार्य है। इसमें अचरज ही क्या, जो आपके साथ पग-पग पर लोग असहयोग कर रहे हैं। सहानुभूति किसी की आपके साथ है नहीं, दबाव आप उनपर डाल नहीं सकते। नतीजा जो इसका होना चाहिए था वही हुआ। आपको जमीन का एक जरा-सा टुकड़ा भी बड़ी कठिनाई से मिला। लोगों की रुचि का अगर आपने कोई काम हाथ में लिया होता, और आप लोगों में से कोई वहा जाकर बस जाता तो मुझे विश्वास है कि आपको अधिक सफलता मिली होती। इस गांव में दो महीने से मैं काम कर रहा हूँ। मेरे एक मित्र पहले से ही यहा काम कर रहे थे, पर बिना लोगों के सपर्क में आये, वे व्यर्थ ही अपना तन गार रहे थे। मैंने उन्हें यह सलाह दी कि लोगों को रोज रामायण की कथा सुनानी चाहिए। मैं नित्य साझ को दो घटे के लिए वहा जाता हूँ, और रामायण की कथा, अर्थ-सहित, कहता हूँ। पन्द्रह-बीस आदमी नित्य कथा सुनने आ जाते हैं। मेरे मित्र दो बजे दिन को गांव में जाते हैं और शामतक वहीं बैठे-बैठे आनद से अपना चर्खा चलाते हैं। इसका यह परि-णाम हुआ है कि गांव में आज तीन चर्खे चल रहे हैं, और यहां के बच्चे हमें पूरा सहयोग दे रहे हैं। मैं किसी दिन न भी जाऊँ, तो भी रामायण की कथा तो होती ही है। लोगोंने हमें रहने के लिए एक घर भी दे दिया है, और हमारा यह इरादा है कि दसहरे के दिन हममें से कोई-न-कोई वहां जाकर रहने लगेगा। हम तुरन्त ही वहा बुनाई का काम शुरू कर देना चाहते हैं। एक रात्रि-पाठशाला खोलने का भी हमारा विचार है। हमारी इस पाठशाला में जो लड़के पढ़ने आयेंगे, उन्हींके द्वारा सफाई का प्रश्न हाथ में लेने का हमारा विचार है। हम यह चाहते हैं कि गाव के लोग खुद अपनी मदद करें, अपने पैरों पर खड़ा होना सीखें। आपकी तरह वहां जाकर हम लोग उनकी गलीज गलियों की सफाई नहीं करेंगे। हमने वहां हरिजन-दिवस भी मनाया था, पर भगियों की बस्ती में हम जान-बूझकर नहीं गये। क्योंकि लोगों को हमने इतना तैयार तो किया नहीं था कि वे हमारी इस बात को सहन कर लेते। हम धीरे-धीरे ही आगे बढ़ना चाहते हैं, और जब किसी हदतक अस्पृ-श्यता दूर करने में हम सफल हो जायगे, तब लोगों से हम उनका कचरा साफ करा सकेंगे।"

यह भाई यहा यह भूल जाते हैं कि गांव में जाने और वहा बैठजाने की बात तो हमारे दिमाग में शुरू में ही है, हालाकि अभी-तक हम यह कर नहीं सके। वे यह भी भूल जाते हैं कि मनुष्य कहीं भी रहे, सफाई तो उसका सबसे पहला कर्त्तव्य है। गदी बुनियाद पर, चाहे सभव भी हो, तो भी कोई मकान खड़ा नहीं करना चाहेगा। हम चाहते हैं कि हमारे मित्र अपने गांव में खूब अच्छा सेवा-कार्य करें, और हम यह आशा करते हैं कि वह दिन आवे जब उन्हें लोगों से उनका कचरा साफ कराने में सफलता मिले। पर अगर वे ऐसा न करा सकें और जिन लोगों पर उनके तअस्सुबने पूरी तरह से अधिकार कर लिया है, उनके आगे कचरा साफ करने की बात अगर एक करारे धक्के के रूप में आई, तो दूसरे काम के बैठ जाने का पूरा भय है। उन्हें यह भी जान लेना चाहिए कि देश के दूसरे हिस्सों में ग्रामसेवकोंने सफाई से ही कार्यारंभ किया है और उन्हें उसमें बहुत अच्छी सफलता मिली है। हिकमत और सावधानी से आप जितना चाहें उतना काम लें, पर कृपाकर गंदी बुनियाद पर इमारत खड़ी करने की बात न सोचें।

उल्लेखनीय कार्य

हमारे एक गुजरात के ग्रामसेवकने सफाई की पुख्ता बुनियाद पर से ही काम शुरू किया है। कई महीनेतक तो ऐसा मालूम हुआ कि उन्हें कोई सफलता नहीं मिल रही है। लेकिन अंत में उन्होने लोगों के दिल में अपना घर कर ही लिया। उस नवयुवक को कभी किसी चीज का अभाव नही रहा। सुधार का सारा ही काम ऐसा है, जो धीरे-धीरे ही लोगो को सिखाया जा सकता है। बुद्धि से उसका उतना संबंध नहीं, जितना कि चरित्र से है। इसमे लोगो के हृदय के सस्कार की जितनी आवश्यकता है उतने उनके बौद्धिक संस्कार की नही। सेवा के सदर कार्यों से ही लोगों के हृदय पर हम असर डाल सकते है। इसी कारण किसी गाव को कभी-कभी जाकर देख आने की नही, बल्कि वहां चौबीसो घंटे सेवा करने की दृष्टि से स्थायीरूप से जमकर बैठजाने की जरूरत है। इसी निश्चय को लेकर यह भाई उस गांव में जाकर बैठ गये हैं, और उन्हें वहा एक ऐसे काम में सफलता मिली है, जिसमें असफलता का मिलना ही अधिक स्वाभाविक था। मेरा आशय यहा धर्म के नाम पर की जानेवाली निरीह मूक पशुओ की बलि से है। हर साल देवियो दुर्गाओ के आगे तीन पशुओ की बलि दी जाती थी—दो भैसे काटे जाते थे, और एक बकरा। और ये चण्डिकाएँ जिन लोगो के सिर आती थी, उनके द्वारा अपनी बलि मांगा करती थीं! इन भक्त लोगो को समझाना जरा टेढ़ी खीर था। पर हमारे मित्रने खूब अच्छी तरह दलीलें दे-देकर समझाया, एक-एक से जाकर मिले और उनसे बातें की। पर कालीमाई का प्रलयंकर कोप कौन अपने सिर ले! बतौर समझौते के लोगोने यह सलाह दी कि जब यह आदमी कांपने लगे और कालीमाई उसके सिर आ जायँ, तब हम लोग उनके पैर पकडकर कहे कि माता, यह पशु-बलि तो अब बंद ही करा दी जाय। हमारे ग्रामसेवक मित्रने कहा, 'मैं भी जगदंबा से विनय करूँगा। मैं उनके चरणो पर गिरकर यह कहूँगा कि 'हे माता, तेरे चरणों पर मैं अपने प्राण चढ़ाता हूँ। तू मेरे रक्त से संतुष्ट हो जा, और इन मूक पशुओ पर दया कर। यह बतला दिया गया और जब देवी दुर्गाएँ आदि अपने-अपने घुडलो के सिर आईं, तब उनमें से एक देवीने आते ही कहा कि मैं किसी प्राणी के रक्त की प्यासी नही हूँ। दूसरी चंडिका जरा जिद्दिन निकली। पर थोड़ी देर बाद वह भी मान गई। अब यह सलाह हुई कि पशु-बलि के बदले कोई दूसरी वस्तुएं माता को चढाई जायें। हमारे मित्रने चढ़ावे की बढ़िया-बढ़िया चीजें बतलाने मे भक्तों को खूब मदद दी! अंत मे यह तय हुआ कि विधिपूर्वक एक ऐसा वैदिक यज्ञ किया जाय, जिसमे निरीह पशुओं की बलि न हो। यज्ञ की सामग्री के लिए पैसा इकट्ठा किया गया, पर कोई यज्ञ करानेवाला ब्राह्मण नही मिला। जब ब्राह्मण देवता आये तो यज्ञ की सामग्री तैयार नहीं थी! यज्ञ की तैयारी मे ही शाम हो गई थी, इसलिए पुरोहितजीने कहा कि रात को तो अब कोई यज्ञ हो नही सकता। इसलिए यह निश्चय हुआ कि यज्ञ अब अमुक शुभ दिन को किया जाय। लोगोने अपने-अपने घर जाकर अच्छी तरह भोजन किया, और सब खूब प्रसन्नचित्त थे। पत्र के अंत मे वे लिखते हैं, "मेरे खयाल मे, लोगो को अस्पृश्यता-निवारण की बात समझाने का समय अब आया है। दो दिन पहले मुझे एक हरिजन बहिन को छूना पड़ा था। बात यह हुई कि उसे बिच्छूने डंक मार दिया था और मुझे उसका इलाज करना पड़ा। मैं जब दवा लगा रहा था, तब मेरा एक पड़ोसी वहां खड़ा-खड़ा देख रहा था। पहले की तरह उसदिन उसने हल्ला-गुल्ला नहीं मचाया। सिर्फ इतना ही आपत्ति उठाते हुए, कहा 'तो आप इसे छूकर अब नहायगे नही?' इससे यह प्रगट होता है कि लोगो का वह विरोध-भाव करीब-करीब अब शांत होगया है, और यह कैसे हुआ इसका किसी को खयाल भी नही। अब गाधीजी के अस्पृश्यता-संबधी लेख और इसी विषय का गुजराती का 'धर्म-मन्थन' ग्रन्थ लोगो को पढ़-पढ़कर सुनाया करूँ यह मैंने सोचा है।"

कालेज के एक विद्यार्थी का बजट

हमारे यहा आजकल दुर्गा-पूजा की छुट्टियां मनाने एक कालिज का विद्यार्थी आया हुआ है। अच्छे सुन्दर विचारो का नवयुवक है। हरेक चीज सीखने के लिए उत्सुक और हलके-से-हलका काम करने को तैयार रहता है। मैंने उससे पूछा कि 'कालिज में आप अपने पिता का कितना रुपया हर माह खर्च करते है?' उसने कहा, 'साठ-सत्तर रुपये खर्च हो जाते है।' उसका यह उत्तर सुनकर मैं तो दग रह गया। देखने में वह सीधा-सादा-सा लड़का है। मैं तो समझ ही नही सका कि साठ-सत्तर रुपये आखिर वह किस तरह खर्च करता होगा। उसने बतलाया कि, 'यह तो फिर भी वाजिब खर्चा है। हमारे अनेक विद्यार्थी तो इससे बहुत अधिक खर्च करते है, और इससे कम खर्चा तो बहुत ही थोड़े विद्यार्थियों का है।'

'कृपाकर बतलाइए तो कि आप किस तरह इतना रुपया खर्च करते है?'

'पन्द्रह रुपये तो भोजन के हुए, और कम-से-कम पांच रुपये दूध के लगा लीजिए।'

'बिना दूध के भोजन के पन्द्रह रुपये?'

'जी हां, दूध और फल का हिसाब तो हम लोगो का भोजन से अलग ही है। महीने में कम-से-कम पाच रुपये के तो फल ही चाहिए। २५) तो यही हो गये, ५) बोर्डिंग की फीस के, और २०) कालिज की फीस के।'

'५५) ये हो गये।'

'फिर किताबें भी तो खरीदनी पड़ेंगी, और कपड़ो की भी धुलाई देनी पडती है। सैर-सपाट के लिए भी कुछ चाहिए, और कभी-कभी सिनेमा या नाटक भी देखने जाते है। पर यह तो मेरे जैसे औसत दरजे के विद्यार्थी का किफायत का खर्चा है। जमीदारो और तालुकदारो के लड़कों की बात जुदी है। वे तो अपनी मोटर गाड़िया और नौकर वगैरा भी रखते हैं।'

यह सब सुनकर मुझे एक धक्का-सा लगा। एक गहरी आह खींचकर सोचने लगा कि यह विद्यार्थी, जो सादा रहन-सहन पसंद करता है और इस समय मेरे साथ कचरा साफ कर रहा है, यह जानता है कि यह एक अक्षम्य अपव्यय है। उसने खुद अपनी आखों देखा है कि हम लोग यहा भूखो नही मरते और चार आने से अधिक हमारे भोजन का खर्चा कभी नही पडता—और उस भोजन का, जिसमें आधा सेर दूध और तीन तोला घी भी हमें मिलता है। अभीतक अधिक-से-अधिक तीन आने से लेकर साढे तीन आनेतक हमारा खर्चा पहुँचा है। उसने खुद ही कहा कि, 'मैं समझता हूँ कि हमारा यह भयंकर अपव्यय है। और फिर इससे मतलब क्या निकलता है? मैं जानता हूं कि हम जो ये ढेरों किताबे घोट-घोटकर पढ़ते हैं, और बी० ए०, एम० ए० तक की

[२७०वे पृष्ठ के पहले कालम पर]

हरिजन-सेवक

शनिवार, ५ अक्तूबर, १९३५

'धर्मान्तर' के विषय में

उस दिन 'फेडरेशन आफ इण्टरनेशनल फेलोशिप' के सदस्य श्री ए. ए. पालने मुझे लिखा था, कि अच्छा हो, अगर धर्मान्तर के विषय मे आप 'हरिजन' मे अपनी विचार-स्थिति साफ-साफ बतलादे। इसपर मैंने उनसे यह कहा था कि जिन बातो का आप मुझ मे उत्तर चाहते हो उन्हे कृपाकर प्रश्नो के रूप मे लिख भेजे। परिणामस्वरूप, उनका यह पत्र, मय सिद्धात-सूची क, आया है —

"आपको याद होगा कि एक महीने से कुछ ऊपर हुआ, जब मैंने आपको यह लिखा था कि क्या आप अपने 'धर्मान्तर-विषयक' विचारो को एक वक्तव्य के रूप में प्रकाशित कर देंगे। आपने मेरे पत्र के जवाब में यह लिखा था कि, 'मेरे लिए यह अधिक आसान होगा, अगर आप अपने विचारो को प्रश्नो या सिद्धांतो के रूप मे लिख भेजे।' मद्रास-इण्टरनेशनल फेलोशिप की कार्य-कारिणी समिति के अनुरोध पर हमारे एक ख्रिस्ती बन्धुने यह सिद्धात-सूची तैयार करदी है, और समितिने इस प्रार्थना के साथ आपके पास इसे भेजदेने के लिए मुझसे कहा है कि आप कृपाकर 'हरिजन' मे इन प्रश्नो का उत्तर प्रकाशित करदे। इसमे सदेह नही कि ख्रिस्ती-धर्म की दृष्टि से ही ये सिद्धात तैयार किये गये है, पर हमारी समिति का यह खयाल है कि उन अन्य मिशनरी धर्मो को भी ये सिद्धात उतने ही लागू हो सकते है, जो आज धर्मान्तर क कार्यक्रम मे लगे हुए है। तो क्या मै यह आशा करूं कि इन सिद्धातो के सबध मे आप अपनी विचार-स्थिति स्पष्ट कर देगे ?"

सिद्धांत

१ हृदय का, पाप से ईश्वर के प्रति, परिवर्तन ही धर्मान्तर है। यह ईश्वर का कार्य है। पाप का अर्थ है 'ईश्वर से बिलगाव।

२ ईसाई यह मानते है कि मानवजाति के कल्याणार्थ ईसा पूर्णावतार के रूप मे प्रगट हुआ था, ईश्वर का वह पूर्ण इलहाम है। वह पापो से हमारा उद्धार करना है। पापी को एक वही ईश्वर की शरण मे ले जानेवाला है, और वही उसका जिलानेहारा है।

३ जिस ईसाईने ईसा मसीह के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया है, वह ईसा के सबध मे बोलना, और जिस वस्तु को मुक्तहस्त मे देने के लिए ईसाने पृथिवी पर अवतार धारण किया था उस वस्तु की घोषणा करना अपना सौभाग्य और धर्म समझता है।

४ यदि इस सदेश को सुनकर किसी मनुष्य का हृदय इतना अधिक प्रभावित हो जाय कि वह अपने पापो के लिए पश्चात्ताप करके ईसा के शिष्य के रूप मे नया जीवन बिताना चाहे, तो उसे ईसा के अनुयायियो के सप्रदाय में—ईसाई धर्मसघ मे—दाखिल करलेना ईसाई उचित ही समझना है।

५ ईसाई ऐसे सभी मामलों मे, उस मनुष्य की श्रद्धा सच्ची है या नही इस बात की थाह लेने का भरसक प्रयत्न करेगा, और जितना उससे हो सकेगा उसे धर्म-परिवर्तन के परिणाम समझायगा और अपने कुटुम्ब के प्रति उस मनुष्य का क्या कर्तव्य है इसपर वह खास जोर देगा।

६ ईसाई खुद अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए, जहांतक उससे हो सकेगा, किसी मनुष्य का धर्म-परिवर्तन नही करेगा, और यह ध्यान रखेगा कि वह मनुष्य रुपये-पैसे की लालच में पडकर ईसाई तो नही बन रहा है।

७ चूंकि ईसा पूर्णजीवन का दान देने के लिए पृथिवी पर उतरे थे और यह इतिहास-प्रसिद्ध बात है कि ईसाई धर्म मे आने से अनेको का जीवन ऊँचा उठ गया है, इसलिए यदि ईसाई धर्म मे आने से किसी मनुष्य की सामाजिक उन्नति हो जाती है तो ईसाई धर्म की दीक्षा देनेवाले किसी ईसाई पर यह दोषारोपण नही करना चाहिए कि उसने उस मनुष्य को रुपये-पैसे का लोभ देकर ईसाई बनाया है। क्योकि किसी को धर्म में मिलाने के लिए तो प्रलोभन दिया ही नही जाता।

८. सच्ची श्रद्धा से जो ईसाई धर्म मे आ जाता है उसकी देह, उसकी आत्मा और उसके मन की सार-सभाल रखना ईसाई अपना जो कर्तव्य समझता है वह ठीक ही करता है।

९. ईसाइयो पर यह दोष लगाना ही नही चाहिए कि वे रुपये-पैसे का प्रलोभन देते है। हिदुओ के सामाजिक सिद्धातो मे कुछ ऐसे तथ्य है, जिनपर ईसाइयो का कोई काबू नही, और जो खुद ही हरिजनो के हक मे प्रलोभनस्वरूप हो जाते है। (किंतु इस विषय में सिद्धात न० ५ और ६ देखिए)"

इन सिद्धातो की भूमिका समझने के लिए पाठको को यह जान लेना चाहिए कि दक्षिण भारत का एक सारा ही गांव—जिसमे हरिजनो की पूरी या अधिकाश आबादी थी—ईसाई बना डाला गया है, इस विषय पर मेरी श्री ए० ए० पाल के साथ जो चर्चा चल रही थी, उसीसे यह मुख्य प्रश्न उठा। इस धर्मान्तर के संबंध मे पाठको को शायद और भी अधिक पढने को मिले। फिलहाल इतना समझ लेना उनके लिए काफी होगा कि ऊपर जो ये सिद्धात दिये गये है, उन्हे 'सामूहिक' धर्मान्तर की कसौटी पर ही कसना है। नवा सिद्धात तो करीब-करीब यही बात बतला भी रहा है।

मैंने कई बार इन सिद्धातों को पढा, और जितना ही अधिक मैं उन्हे पढता हू उतना ही मुझे लगता है कि ये सिर्फ व्यक्तियो के संबध मे ही लागू हो सकते है, साधारण जनसमूह के विषय मे तो ये कभी लागू हो ही नही सकते। पहले ही सिद्धात को लीजिए। पाप की व्याख्या की गई है 'ईश्वर से बिलगाव।' 'हृदय का, पाप से ईश्वर के प्रति, परिवर्तन ही धर्मान्तर है। यह धर्मान्तर ईश्वर का कार्य है।' सिद्धातकार का ऐसा कथन है। अगर धर्मान्तर ईश्वर का ही कार्य है, तो वह कार्य उससे क्यो छीना जाय ? और ईश्वर से कोई चीज छीन लेनेवाला मनुष्य होता कौन है ? ईश्वर के हाथ का वह तो एक विनम्र साधन या यत्र ही बन सकता है। इसी तरह वह दूसरो के हृदय का मुसिफ भी नही हो सकता। दूसरों के हृदय की बात तो दूर रही, मुझे तो इसीमें अकसर शका रहती है कि क्या हम खुद अपने साथ सदा सच्चा ही इसाफ करते है, क्या हम सही मानी में खुद अपने दिल के सच्चे मुसिफ है ? 'अय मनुष्य, तू अपने आपको जान', यह अन्तर्ध्वनि किसी निराश हृदय से ही निकली होगी। और अगर हम स्वयं अपने विषय में इतना कम जानते हैं, तो हमें अपने उन पड़ोसियों और दूर के अजनबियों के बारे में कितना कम पता होगा, कि जिनका हमारे साथ बीसियों चीजों में, और कई तो अत्यंत महत्व की चीजों में, मतभेद हो सकता है ? दूसरे

प्रश्न मे, ईसाइयो के उस श्रद्धा की बात आती है, जिसे वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी मानते चले आरहे है, किंतु जिसकी सचाई को हजारों-लाखों जन्मजात ईसाइयोने खुद अपने आप पर कभी नही कसा, और यह ठीक ही है। जिन लोगों का जन्म और पालन-पोषण एक दूसरे ही धर्म मे हुआ है, उनके आगे इस तरह की श्रद्धा की बात रखना सचमुच एक खतरनाक चीज है। किसी अन्य धर्म के अनुयायी के आगे मैं अपनी अनपरखी श्रद्धा की बात रखता हूँ तो यह मेरी धृष्टता ही होगी, क्योंकि मे जानता हूँ कि उसका धर्म भी उतना ही सच्चा हो सकता है जितना कि मेरा है। सबसे उत्तम तो यह है कि मेरी धर्म-श्रद्धा मेरे लिए अच्छी है, और उसकी उसके लिए। पृथिवी के शीतप्रधान देश के निवासियो के लिए एक मोटा ऊनी लबादा जितना उपयुक्त है, विषुवत् रेखा के समीपस्थ देश मे रहनेवालों के लिए उतना ही उपयुक्त लगोटी का एक छोटा-सा टुकड़ा है।

तीसरे सिद्धात का भी, पहले की ही तरह, धर्म के गूढ रहस्यो से सबंध है। साधारण लोग उन रहस्यो को यद्यपि समझते नहीं हैं, तो भी उन्हे वे श्रद्धापूर्वक मानते है। परपरागत श्रद्धा के अनुयायी के हक मे वे काफी अच्छा काम दे सकते हे। पर जिन्हे बचपन से किसी दूसरी ही वस्तु मे श्रद्धा करना सिखाया गया है उन्हे तो वे गूढ रहस्य अटपटे-से ही मालूम होगे।

इसके आगे के पाच सिद्धातो का संबध मिशनरियों के उन लोगो के प्रति किये जानेवाले व्यवहार से है, जिन्हे कि वे अपने धर्म की दीक्षा देना चाहते हैं। इनका व्यवहार मे लाना मुझे लगभग असभव मालूम होता है। आरभ ही जहा गलत हो, वहां बाद को जो कुछ भी किया जायगा, वह सब गलत ही होगा। अपने श्रोताओ की आंतरिक श्रद्धा की सचाई का पता कोई ईसाई कैसे लगा सकेगा? क्या उनके हाथ उठाने से? क्या उनके साथ खुद बात करने से? या क्या किसी क्षणिक परीक्षा से? ऐसी कोई भी परीक्षा, जिसकी कि कल्पना की जा सकती है, दलीलो के द्वारा निर्णयात्मक होने पर भी, असफल ही रहेगी। मनुष्य के अतर की बात सिवा एक अतर्यामी ईश्वर के और कोई नही जानता। क्या किसी ईसाई को अपने तन, अपने मन और अपनी आत्मा के प्रामाणिक या शुद्ध होने का इतना अधिक भरोसा है कि वह आसानी से यह महसूस कर सके कि "खीस्त धर्म में दीक्षित मनुष्य की देह, आत्मा और मन की सार-संभाल रखना उसका कर्तव्य है?"

अतिम सिद्धांत तो पहले के सब सिद्धातो से बढ-चढ जाता है! उसे पढ़कर स्तब्ध ही हो जाना पडता है, क्योंकि उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दूसरे आठो सिद्धातो का प्रयोग बेचारे हरिजनों पर होना है। और अभी तो पहला ही सिद्धात आज के युग के बडे-बडे बुद्धिमान और तत्ववेत्ताओं को भी चक्कर में डाले हुए है। कौन जानता है कि जन्मजात पाप किस प्रकार का होता है? ईश्वर से विलगाव का क्या अर्थ है? ईश्वर के साथ ऐक्य-साधन करने का क्या मतलब है? जिसने ईश्वर के साथ ऐक्य कर लिया उस मनुष्य के क्या लक्षण है? जो ईसा के संदेश के उपदेश करने का साहस करते हैं, क्या उन सब का यह विश्वास है कि उनका ईश्वर के साथ ऐक्य होगया है? यदि नही, तो हरिजनों के इन गंभीर विषयों के ज्ञान की परीक्षा कौन लेगा?

ऊपर के सिद्धांत पढ़कर मेरे मन मे जो विचार आये है वे ये हैं। मुझे आशा है कि मेरे इन विचारों को पढ़कर किसी ईसाई का दिल दुखेगा नहीं। इन नौ सिद्धातों के संबंध में यदि मै अपनी सच्ची स्थिति अपने अनेक ईसाई मित्रो को न बतलाता, तो मुझे ऐसा लगता कि मै उनके साथ असत्य व्यवहार कर रहा हूँ।

अब मै अपनी निजी राय थोड़े में देदू। मेरा विश्वास है कि धर्मान्तर जिस अर्थ में आज लिया जाता है, उस अर्थ मे एक धर्म से दूसरे धर्म में मनुष्य जा ही नही सकता। यह तो मनुष्य और ईश्वर के बीच की एक व्यक्तिगत बात है। मुझे अपने पड़ोसी के धर्म के प्रति कोई बुरी नीयत नही रखनी चाहिए, उसके धर्म का मुझे उतना ही आदर करना चाहिए, जितना कि मै अपने धर्म का करता हूँ। कारण यह है कि जितना सच्चा मेरा धर्म मेरे लिए है, उतने ही सच्चे दुनिया के तमाम महान् धर्म उन धर्मों के अनुयायियो के लिए हैं। ससार के धर्मग्रन्थों का आदरपूर्वक अध्ययन करने मे मुझे उन सब मे सौन्दर्य देखने में जरा भी कठिनाई मालूम नही पड़ती। जिसतरह मै अपना धर्म बदलने का विचार नही करता, उसी तरह किसी ईसाई या मुसल्मान या पारसी या यहूदी से यह कहने की कल्पना भी नही करता कि वह अपना धर्म बदल दे। इससे यह होता है कि अपने धर्म के अनुयायियों की अनेक बड़ी-बड़ी त्रुटियों के विषय मे मै जितना दुर्लक्ष करता हूँ उससे अधिक दुर्लक्ष उन धर्मों के अनुयायियो की त्रुटियों के संबंध मे नही करता। और यह देखते हुए, कि मेरी सारी साधन-शक्ति तो अपने आचरण को अपने धर्म के आदर्शतक लेजाने का प्रयत्न करने मे और अपने सहधर्मियो को तद्वत उपदेश देने में ही खर्च हो जाती है, मै दूसरे धर्मानुयायियो को उपदेश देने की स्वप्न मे भी कल्पना नही करता। 'दूसरो के मुंसिफ न बनना, नहीं तो तुम भी न्यायतुला पर तोले जाओगे,' यह मनुष्य के आचरण के हक में एक अत्यत सुंदर नियम है। मेरी यह धारणा दिन-दिन बढती ही जा रही है कि अगर महान् और समृद्ध ईसाई पादरी भारत को या कम-से-कम उसके सीधे-सादे ग्रामनिवासियो को ईसाई धर्म मे मिलाने, और इसतरह उनके सामाजिक ढाचे को नष्ट करने का भीतरी इरादा छोड़कर शुद्ध दयाभाव से मानव सेवा करनेतक ही अपने कार्यों को सीमित रखने का निश्चय करले, तो वे भारत की सच्ची सेवा करेंगे। हमारे यहा की समाज-रचना मे यद्यपि अनेक त्रुटिया है, अनेक दोष है, और उसपर भीतर और बाहर से कितने ही हमले हुए हैं, तोभी अनेक युगो से वह आजतक वैसी ही अडिग खड़ी हुई है। ये मिशनरी और हम चाहें या न चाहे, तो भी हिंदूधर्म मे जो सत्य है, वह हमेशा रहेगा, और जो असत्य है वह खड-खंड होकर नष्ट हो जायगा। प्रत्येक जीवित धर्म के अदर, अगर उसे दुनिया मे जीवित रहना है, पुनर्योवन-सचार की शक्ति होनी ही चाहिए।

'हरिजन' से]　　मो० क० गांधी

वृक्षवाला कपास और कताई

नोआखाली की श्रीमती किरणप्रभा चौधरी के विषय में, जिन्होंने कि मुझे खास अपने हथकते सूत की खादी का एक सुंदर नमूना भेजने की कृपा की थी, उनके एक मित्र लिखते है :—

"खादी पर श्रीमती चौधरी का उतना ही प्रेम है, जितना कि उनका अपने खास बच्चों पर। सन् १९२१ से ही, जबकि उनकी अवस्था सिर्फ १७ साल की थी, अपने कपड़ों के लिए वे खुद ही सूत

कातती हैं, और बराबर अपने हथकते सूत के ही कपडे पहनती हैं। बाजार से वे कभी खादी नहीं खरीदतीं। अपने बाग में कपास के पेड उगाने के सम्बन्ध में वे अपना खास ध्यान रखती हैं। अपने चर्खे के लिए बाजार में वे कभी रुई नहीं खरीदतीं। वे वृक्षवाला कपास काम में लाती हैं, जिसे बगाल में "जटाकपास" कहते हैं। उनका यह सदा से अमोघ अनुभव है कि यह कपास टिपरा, चटगाव या वर्धा के कपास से अच्छा होता है। कम-से-कम वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से जो कातते हैं उनके लिए तो यह बहुत ही अच्छा कपास है। इसका तार लम्बा निकलता है, और इसकी रुई धुनने की बिल्कुल ही जरूरत नहीं। श्रीमती चौधरीने कई साल टिपरा और वर्धा के कपास का उपयोग किया, पर अब उनकी यह राय है कि बगाल में कपास की यह खास जाति सब जगह हो सकती है। यह खूब हुतगाह होता है। सार-सभाल की जरूरत बहुत ही कम पड़ती है। सिर्फ बारी या घेरा ठीक तरह से लगा देना चाहिए, जिससे ढोर या बकरिया उसकी पत्तिया न खा सकें। चैत्र के अन्त में या वैशाख के शुरू में इस कपास का बीज बोया जाता है। और १२ महीने के भीतर ही इसमें रुई की ढेढिया लगने लगती हैं। १२--१५ सालतक यह पेड चलता है, और धीरे-धीरे इसकी रुई की पैदावार बढती ही जाती है। हरेक पेड से १॥ सेर से लेकर २ सेरतक हर मौसिम में रुई निकलती है। मामूली गृहस्थ के लिए इस कपास के २५ पेड काफी हैं। आजकल श्रीमती चौधरी की सीधी देखरेख में १०० पेड से ऊपर ही हैं। सन् १९२१ से वे बराबर १००० गज सूत रोज कातती हैं। नागा तभी पडता है जब या तो वे बीमार होती हैं या कोई दूसरा बहुत जरूरी काम आ जाता है। उनकी दृष्टि में रुई का बाजार से खरीदना उतना ही गलत या अनुचित है जितना अनुचित कि खादी खरीदना है। अपने वस्त्रों के लिए सूत कातनेवाले व्यक्ति अपना कपास खुद पैदा करलें इसको वे सबसे अधिक महत्व देती हैं। उनके लिए खादी का प्रश्न अपने ही घर में कपास पैदा कर लेने का प्रश्न है, और इस प्रश्न को गावों में हरेक कतैया या कत्तिन आसानी से हल कर सकती है।

हजारो चर्खे आज जो बेकार पडे हैं, उसका कारण यह है कि हमारे नेतागण चर्खा चलाने की बात तो कहते हैं, पर लोगों को कपास पैदा करने के महत्व पर जितना चाहिए उतना भार नहीं देते। खादी-आदोलन के हक में यह चीज हानिकार साबित हुई है।"

खादी के प्रति इस बहिन की जो गहरी लगन है उसके लिए मैं उसे बधाई देता हूँ। वृक्षवाला कपास उगाने पर उसने जो जोर दिया है, उसका समर्थन देश के अनेक खादी-निष्णातोंने किया है। यह प्रयोग तमाम हिन्दुस्तान में एक खास बडे पैमाने पर करने लायक है। और यों इस पर पैसा ही क्या खर्च होना है? अगर यह सही है कि इस कपास की रुई को धुनने की कोई आवश्यकता नहीं, तो इसका अवश्य ही यह अर्थ हुआ कि मामूली पौधेवाले कपास से इस कपास में यह एक बहुत बडा फायदा है। अच्छा हो कि जो लोग वृक्षवाले कपास की रुई का सूत कातते हों, वे मुझे अपने अनुभव---और संभव हो तो अपनी रुई, सूत और कपास के बीज के नमूने भी भेजदें।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

आचार्य पी० सी० राय
और
कत्तिनों का कल्याण-कार्य

[खादी-प्रतिष्ठान के काम में आचार्य प्रफुल्लचद्र राय अत्यत रस लेते हैं, और उन्होंने अपनी आय की बचत में से उसे खासी अच्छी सहायता दी है। कत्तिनो की मजदूरी की दर बढाने तथा खादी को स्वाश्रयी बनाने के लिए, जो प्रतिष्ठान का मुख्य कार्य है, आचार्य पी० सी० रायने अपनी योजना की सिफारिश खादी-प्रतिष्ठान से करते हुए नौ ऐसी तथ्य की बातें मुझे भेजी हैं, जो महत्वपूर्ण होने के अलावा आचार्य राय की खादी-विषयक गहरी श्रद्धा और उनकी उस सक्रिय दिलचस्पी पर प्रकाश डालती हैं, जो वे अपनी इस वृद्धावस्था में भी ले रहे हैं। मो० क० गांधी]

बगाल के खादी-कार्य में सलग्न खादी-प्रतिष्ठान को कत्तिनो को काम देने (धीरे-धीरे उनकी मजदूरी की दर बढाते हुए) तथा वस्त्र-स्वावलबन के साथ-साथ उनकी उत्पन्न की हुई खादी का बिकवाने का काम क्यों जारी रखना चाहिए, इस सबध में मेरे ये चद विचार है---

१. खादी का यह कभी आशय नहीं रहा है कि वह मशीन, अर्थात् मिल के बने कपडे की प्रतिस्पर्धा में लाई जाय।

२. खादी 'ग्रामोद्धार' की प्रवृत्ति को सूचित करती है।

३. ग्राम-जीवन का अर्थ है सादगी, और शहर के 'सभ्य और साज-सिंगार' के जीवन से विमुक्ति --यानें उस जीवन से छुटकारा, जिसमें सिनेमा, घुडदौड़ का जुआ, और ऐसी ही दूसरी वाहियात चीजों का समावेश होता है।

४. मिलो में मजदूरो को मजदूरी तो ऊची मिलती है, पर मिलों के वातावरण में उनकी बेइख्तियार पिसाई होती है। उनकी आधी कमाई तो शराब और व्यभिचार में ही चली जाती है।

५. गरीब असहाय स्त्रियां--आमतौर पर विधवाएँ--जो चर्खा चलाकर दो-चार पैसे कमा लेती हैं, वे अपना पेट आप पाल सकती हैं, अपने उन सबधियो की असरेऊ (आश्रित) नहीं रहती, जो योंही हाथ-पर-हाथ धरे बेकार बैठे रहते हैं और असहाय आश्रित स्त्रियों से क्रीत दासियों की तरह सारे दिन मेहनत-मजदूरी कराते हैं। स्त्रिया बेचारी इसतरह सख्त मेहनत-मशक्कत से बच जाती हैं।

६. जो स्त्रिया चर्खा चलाती हैं, उन्हें सारेदिन तो बहुत ही कम काम या शायद कभी नहीं करना पड़ता; घर-गिरस्ती के कामों से बीच-बीच में जब फुर्सत मिलती है, तब अपने उस अवकाश के समय का वे चर्खा चलाने में उपयोग करती हैं। इसलिए उनके फुर्सत के समय की मेहनत का मिलों की लहू-पानी एक कर देनेवाली मशक्कत से मिलान करना ठीक नहीं।

७. बंगाल के अधिकांश भागों में सिर्फ एक फस्ल धान की होती है। इससे किसानों को साल में सिर्फ तीन महीने का काम होता है। जहा दूसरी फस्ल होती है, वहा भी वे सात महीने तो बेकार बैठे ही रहते हैं, सिर्फ दो ही महीने उन्हें और काम करना पड़ता है। इसलिए अगर लोगों से चर्खा चलवाया जाय, तो उन्हें एक दूसरा काम या आमदनी का एक और जरिया मिल जाय। सूखा और बाढ़ के कारण जब फस्ल नहीं होती, (जैसा कि बगाल में अक्सर हुआ ही करता है) तब तो चर्खा का चलाना 'भगवान् का वरदान' ही समझा जायगा। लोग भूखों नहीं मरेंगे या दुर्भिक्ष-

निवारण केन्द्रों में खैरात में बांटे जानेवाले चुटकी-चुटकी चावल के लिए उन्हें हाथ नहीं पसारना पड़ेगा।

८. सिर्फ कत्तिनों व कतैयों को ही इससे लाभ नहीं पहुँचेगा; उनके साथ-साथ बहुसंख्यक बुनकरों को भी काम मिल जायगा। सचमुच हर हफ्ते, खासकर हाट-बाजार के दिनों में, खादी-उत्पत्ति-केन्द्रों के बुनकर अपनी-अपनी बुनी हुई धोतियां और कुरतों के कपड़े ले-लेकर अपने दाम-पैसे लेने कितनी उत्कण्ठा से आते हैं। और भी कई सहायक कारीगरों—जैसे, चर्खा बनानेवाले गांव के बढ़ई, लुहार वगैरा को भी लाभ पहुँचेगा।

९. अत्राल और तालोरा केन्द्रों में (जिनका निरीक्षण आपने सन् १९२५ में किया था) एक अनुपम प्रयोग किया जा रहा है। १२ बरस के कड़े परिश्रम और व्यय से—स्वेच्छा से खादी-कार्य करनेवाले सेवकों के त्याग के विषय में कहने की आवश्यकता नहीं—आखिरकार कुछ ऐसी कत्तिनें हमें मिल गई हैं,जो खुशी-खुशी अपने वस्त्रोंभर के लिए सूत कात लेती हैं। मैंने स्वयं बड़ी रुचि और आनन्दपूर्वक यह देखा है कि कत्तिनों को जब उनके सूत के बदले में साड़ियां, चोलियों का कपड़ा और बच्चों के लिए चादरें दी जाती हैं, तब वे कितनी लालसा-भरी दृष्टि से खादी की ओर देखती हैं।

'हरिजन' से] प्रफुल्लचन्द्र राय

गुड़ रखने की एक तरकीब

एक सज्जनने एक ऐसा उपयोगी तरीका लिख भेजा है, जिससे गुड़ बहुत दिनोंतक रखा रह सकता है। वे लिखते हैं —

"आपने 'हरिजन' के पिछले अंक में यह लिखा था कि "यह सच है कि बहुत समयतक, खासकर बरसात के दिनों में, गुड़ का रखना मुश्किल है।" आपको नम्रतापूर्वक मैं एक ऐसा तरीका बतलाना चाहता हूँ,कि जिससे गुड़ ज्यों-का-त्यों सूखा रखा रहसकता है। गुड़ रखने का यह तरीका मेरे जिले में,जहां ईख का गुड़ सबसे बढ़िया किस्म का और बहुत बड़ी मिकदार में बनता है, आमतौर पर बर्ता जाता है। बरसात शुरू होने से पहले,गुड़ और लाल खांड़ ऐसे बोरों में भर देनी चाहिए, जिनके भीतर कपड़े का अस्तर लगा हो। अस्तरवाले सिले-सिलाये बोरे बाजार में नहीं मिलते। होता यह है कि बोरे के आकार का कपड़े का थैला बनवाकर बोरे के अन्दर रख दिया जाता है। गुड़ और लाल खांड के इन बोरों को एक ऐसे बंद कमरे में रख देते हैं, जहां हवा की नमी नहीं पहुँचती और उन्हें अच्छी तरह चारों तरफ से गेहूँ के भूसे से ढक देते हैं। फर्श पर बहुत-सा भूसा बिछा देना चाहिए, ताकि फर्श की सील असर न कर सके। और बोरों को दीवारों से बिलकुल अलग रखना चाहिए। समय-समय पर जरूरतभर का गुड़ बोरे से निकाल सकते हैं। उस गुड़ को ऐसे बर्तन में रखना चाहिए, जिस में हवा तक न जा सके। गुड़ निकालने के बाद बोरे को फिर अच्छी तरह भूसे से ढक देना चाहिए। इस तरह गुड़ बिल्कुल सूखक हालत में बरसों रखा रह सकता है। और पुराना गुड़ तो अनेक रोगों में अत्यंत गुणकारी औषध का काम देता है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

खाली करदें कवीठा को

१० सितंबर को असोसियेटेड प्रेसने यह समाचार प्रकाशित किया था कि कवीठा के सवर्ण हिंदू हरिजन लड़कों को कवीठा की ग्रामपाठशाला में दाखिल करने की बात पर राजी हो गये हैं, और सवर्णों व हरिजनोंने आपस में प्रेम से समझौता कर लिया है। अहमदाबाद के हरिजन-सेवक-संघ के मंत्रीने १३ तारीख को इस समाचार का खंडन करते हुए अपने वक्तव्य में कहा था कि हरिजनोंने अपने बच्चों को पाठशाला में न भेजने का जो करार किया है,वह वास्तव में खानगी तौर पर किया है। यह करार उन्होंने अपनी मरजी से नहीं किया, बल्कि सवर्ण हिंदुओंने याने गरासियोंने डरा-धमकाकर उनसे जबरन कराया है। इन गरासियोंने ही बुनकरों, चमारों और दूसरे गरीब हरिजनों के १०० से ऊपर कुटुंबों के सामाजिक बहिष्कार की घोषणा की थी। यह तय किया गया था कि न तो हरिजनों से खेती-बारी का काम कराया जाय, न उनके ढोरों को चरागाहों में चरने दिया जाय और न उनके बच्चों को छाछ दिया जाय। इतना ही नहीं, बल्कि एक हरिजन नेता को महादेवजी की सौगंद खाकर मजबूरन यह वचन देना पड़ा कि आइन्दा अब कभी वह तथा दूसरे हरिजन भाई अपने बच्चों को पाठशाला में फिर से दाखिल कराने का प्रयत्न तक नहीं करेंगे। असोसियेटेड प्रेसने जिस समझौते को छापा था वह असल में इस तरह हुआ था।

लेकिन इस १० तारीख को प्रकाशित फरेब से भरे हुए झूठे समझौते के बाद भी और गरीब हरिजनों के पूरी तरह से अपने को सवर्णों के हवाले कर देने पर भी १९ तारीखतक, और कुछ तो २२ तारीख तक बहिष्कार नहीं उठाया गया। गरासिये जब अपने ढोरों की लाशें खुद नहीं उठा सके, तब थोड़ा पहले चमारों के मुखिये पर से उन्होंने बहिष्कार उठा लिया, और इसतरह चमारों के साथ उन्हें कुछ जल्दी समझौता कर लेना पड़ा। इस घोर पाप से भी जब संतोष न हुआ, तब हरिजनों के कुए में मिट्टी का तेल डाला गया—एकबार१५ तारीख को और फिर१९ तारीख को! गरीब हरिजनों पर किस कदर आतंक जमाया गया है, इसकी आप कल्पना कर सकते हैं। और हरिजनों का कसूर केवल इतना ही था कि उन्होंने गरासियों के शाही लड़कों की पंक्ति में अपने बच्चों को बिठाने का साहस किया था!

२२ तारीख को सबेरे मैं गरासियों के नेताओं से मिला। उन्होंने मुझसे कहा कि हमारे लड़कों के साथ ढेड़ और चमारों के लड़के बैठें, यह हम से सहन नहीं होगा।

अहमदाबाद के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट से भी मैं इस विचार से मिला कि वे इस स्थिति को सुलझाने के लिए कुछ कर सकें तो अच्छा हो, पर कोई नतीजा नहीं निकला।

इस तरह दरअस्ल बेचारे हरिजन लड़कों पर ग्राम-पाठशाला में जाने की रोक लगा दी गई है। उन गरीबों का वहां कोई मददगार नहीं। हरिजनों में इससे यहांतक निराशा छा गई है कि वे सब-के-सब एकसाथ कवीठा को छोड़कर किसी दूसरे गांव में चले जाने की बात सोच रहे हैं।

'हरिजन' से] अमृतलाल वि० ठक्कर

[अपनी सहायता आप करने के समान दुनिया में कोई दूसरी सहायता नहीं। ईश्वर उन्हींकी मदद करता है, जो खुद अपनी मदद करते हैं। इन हरिजनोंने कवीठा छोड़कर अन्यत्र चले जाने का जो इरादा किया है उसे अगर उन्होंने पूरा कर दिखाया, तो इससे सिर्फ उन्हींको चैन नहीं मिलेगा, बल्कि उन्हींकी तरह सताये जानेवाले दूसरे भाइयों के लिए भी वे रास्ता तैयार कर देंगे। जब

काम-धंधे की तलाश में लोग अपना देश छोड़कर दूसरी जगह चले जाते है, तो फिर अपनी इज्जत-आबरू की तलाश मे उनके लिए अपना घर-द्वार छोड़ देना क्या और भी अधिक आवश्यक नही है ? मुझे आशा है कि हरिजनो के हितचिंतक इन गरीब हरिजन कुटुबो को उस क्रूर कवीठा गाव को खाली कर देने मे, जो उन्हे आज पनाह नही दे रहा है, जरूर मदद देगे। मो० क० गांधी]

साप्ताहिक पत्र

(२६५ वे पृष्ठ से आगे)

परीक्षाएँ पास करने है, इनसे हमे कोई मदद मिलन की नही। हमारे लिए कही नौकरिया तो रखी नही। हम अगर किसी अर्थ के हो सकते है, तो सिर्फ गावो मे कुछ काम कर सकते है। और इसीलिए मै यहा आया हूँ। मेरे पिताजीने जब मुझे यहा आने की इजाजत दी, तो उन्होने यह कहा कि तुम वर्धा इसी शर्त पर जा सकते हो कि वहा तुम्हे हरेक काम खुद अपने हाथ से करना होगा। आप देखते ही है कि मेरी हथेलियो मे पीसते-पीसते और फावड़ा चलाते-चलाते ये फफोले पड़ गये है, लेकिन फिर भी मुझे यह सब काम पसद है।'

एक विनम्र प्रयास

जब इस-जैसा कोई विचारशील विद्यार्थी हमारे किसी गाव मे, मसलन भीवापुर में—जिसके विषय मे मै ऊपर लिख चुका हूँ—जाता है, और वहा यह देखता है कि वह अपने खाने-पीने पर इतना पैसा खर्च करता है जितने से कि वह २० गरीब आदमियो का पेट भर सकता है, और उसका जितना मासिक खर्चा है, उतने मे तो ५० आदमी खा सकते है, तब उसके सामने गावो की सच्ची स्थिति आ जाती है और उसकी आखे उघर जाती है। अपने और गरीब ग्रामवासियों के बीच की उस खाई की डरावनी गहराई को वह खुद अपनी आखो से देखता है, जिसे उसकी ढेरों किताबे नहीं दिखा सकती।

कत्तिनों और मजदूरो व कारीगरो को कम-से-कम पेट भरने-लायक मजदूरी देने का हाल मे जो आदोलन छेड़ा गया है वह इस खाई की चौडाई कम करने का ही एक विनम्र प्रयास है। २४ सितम्बर को—विक्रमी संवत् के अनुसार गाधीजी के जन्म दिवस पर—महाराष्ट्र और यू० पी के चर्खा-संघने यह घोषणा की है कि वे अपनी कत्तिनो को अब कताई की मजदूरी एक बढ़ी हुई दर के हिसाब से देगे। कुछ दिनोंतक उनका यह निश्चय अभी कागज पर ही रहेगा, क्योकि कत्तिनो को कुछ समय तो सूत की मजबूती, समानता और अकों की नई शर्ते पूरी करने मे लग ही जायगा। हममें से कुछ लोग बिना समझे-बूझे योंही हल्ला मचा रहे है कि इससे तो खादी महगी हो जायगी, पर जब हम इस प्रश्न को उन गरीब कत्तिनो की दृष्टि से देखेगे, जिन्हे मुश्किल से अधपेट मजदूरी भी नही मिलती, तब हमारी यह व्यर्थ की चिल्लाहट बद हो जायगी। 'मशीन रेकर्स' नामक एक हृदयस्पर्शी नाटक मे टालरने कहा है—"यह दारुण विपदा ही विद्रोहियो की जननी है। लेकिन देश मे इस विपदा को जरा इतना बढ़ने दो कि वह सभी का गला दबोच ले—सब बिना घर-द्वार के हो जायँ, और भूख के मारे तड़पने लगे—फिर देखो, उन तमाम विद्रोहियो को! क्या वे सब कोई भले विद्रोही साबित होगे ? तुम उनके साथ भाईचारा बांधने जाओगे, और वे तुम्हे घृणा की नजर से देखकर ताना मारेंगे। तुम उनसे कहोगे धर्म पर दृढ़ रहने की बात और वे उन दगाबाजों के पास दौड़े जायेंगे जो उन्हे उनकी इच्छाएँ तुरन्त पूरी कर देने का मोहन-मंत्र सुनाते होगे। तुम उनसे त्याग करने के लिए कहोगे, और वे ऐसे प्रत्येक नेता के किराये के टट्टू और शिकार बन जायँगे, जो उनकी मरभुखी आखो के आगे लूट-पाट की आशा का सब्जबाग रखेगे!" पेट भरनेलायक एक निश्चित मजदूरी देने का यह आदोलन क्रांति की इसी भयकर बाढ को रोकने का एक विनम्र प्रयास है।

हमारे मेहमान

इधर हमारे यहा जो मेहमान आये है उनमे अवकाश-प्राप्त सरकारी अफसर भी है। पर ऐसे अवकाश-प्राप्त नही, जिन्होंने इतने लंबे समयतक नौकरी की हो कि उनकी काम करने की सारी शक्ति ही चुक गई हो, बल्कि ऐसे अवकाश-प्राप्त, जिन्होने देश की सेवा कर सकने के खयाल से काफी पहले नौकरी छोड़ दी, और जो गुजरलायक पेंशन से अपनी जीविका चला रहे है। इनमे से दो सज्जन ग्रामोद्धार और खादी के काम में खूब ही रस लेते है, और अपना समय और शक्ति वे इन्हीं कामो मे दे रहे है। दूसरे मेहमान श्रीयुक्त जे० एम० कुमारप्पा है। सुयोग्य और सुसंस्कारी कुमारप्पा परिवार मे यह सब से जेठे है। आप सुप्रख्यात शिक्षा विशारद और भारतीय ईसाई धर्म के एक उत्कृष्ट प्रतिनिधि है। हमारे यहा के हरेक छोटे-से-छोटे काम का वे बड़े ध्यान के साथ अध्ययन कर रहे है। और अत में, श्रीयुक्त सावत का उल्लेख मै न करूँ यह कैसे हो सकता है ? यह एक बड़े होनहार मूर्तिकार है। कलाकारो के आगे अपनी तसवीर उतराने के लिए बैठना गाधीजीने यो कभी पसद नही किया, पर कभी-कभी काम करते समय वे इन सज्जनो को बैठ जाने देते है, बशर्ते कि वे लोग उनके काम मे कोई बाधा न डाले। इग्लैण्ड जब हम लोग गये थे, तब वहां के दो प्रख्यात मूर्तिकारो और तीन चित्रकारो को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यो अभी हाल गांधीजी इस तरह की इजाजत नही देते, पर जब उन्हे यह मालूम हुआ कि वह नवयुवक जाति का हरिजन है, तब उन्होंने खुशी से उसे बैठ जाने की इजाजत देदी। बीस साल से वह अभी कम ही उम्र का होगा, तोभी पेसिल से चित्र बनाना, नाखून से नक्काशी करना, आदि अनेक कामो मे वह कुशल है। आगे चलकर वह सचमुच एक अच्छा कलाकार बन सकता है।

एक और तरुण हमारे यहा आया था। उसने योग के आसन इत्यादि बड़े ही अच्छे ढंग से दिखाये। शरीर के हरेक पट्ठे पर उसका अद्भुत काबू था। न तो वह बड़ी-बड़ी बातें बघारता है और न अपने योगाभ्यास का कोई असाधारण दावा ही करता है। उसका नाम विठ्ठलदास है। देश के तमाम प्रांतो के विद्यार्थियो मे वह योग की आसनो और प्राणायाम का प्रशसनीय प्रचार-कार्य कर रहा है।

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करें। ग्राहक-नंबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा।

व्यवस्थापक—'हरिजन-सेवक' दिल्ली

सोयाबीन

यह दावा किया जाता है कि सोयाबीन में पोषक द्रव्य अधिक मात्रा में होते हैं। इसलिए मैं, बंबई के "बाल और आरोग्य-सप्ताह मंडल" से प्रकाशित पत्रिका (नं० ७) से नीचेलिखा अंश उद्धृत करता हूँ।

सब से पहले सन् १७१२ में एंजलबर्ट काकर के आहारशास्त्र की दृष्टि से किये प्रयोगों का परिणाम प्रकाशित होने पर यूरोपीय जनता को इस चीज की जानकारी प्राप्त हुई। वियेना-विश्व-विद्यालय के अध्यापक हॉबर लाटेने सन् १८७३ की वियेना-प्रदर्शिनी में, घर में काम में लाने के लिए सोयाबीन का वैज्ञानिक रूप से प्रचार किया। और उनके प्रयत्न से आस्ट्रिया में सोयाबीन का उपयोग होने लगा है।

सोयाबीन द्विदल अनाजों की श्रेणी में गिना जाता है और यह लगभग १५०० किस्मों का होता है। इसका दाना मटर के दाने के बराबर होता है; किंतु सोयाबीन में प्रोटीन और चर्बी मटर अथवा दालों की अपेक्षा अधिक होती है। और दूसरे द्विदल अनाजों की अपेक्षा सोयाबीन में पोषक तत्त्व अधिक ही होता है। इतनी ही बात नहीं, बल्कि उनके तत्त्वों की जाति एक भिन्न प्रकार की होती है, यह नीचेलिखी बातों से समझ में आ जायगा। सोयाबीन कई रंग के पीले, काले, भूरे या इन सब रंगों की मिलावट के चित-कबरे रंग के होते हैं।

× × × ×

अमेरिका में कपास व अनाजवाले प्रदेश सोयाबीन बोने के लिए खास तौर पर उपयुक्त सिद्ध हुए हैं। इसलिए भारत में गुजरात, सिंध आदि स्थानों में इसकी खेती बहुत अच्छी तरह हो सकती है। सोयाबीन के पौधे की दूसरी खूबी यह है कि यह जमीन का सुधार करता है। जमीन से नाइट्रोजन न खींचकर यह हवा से नाइट्रोजन खींचता है। १०० दिनों में ही यह जमीन से बहुत ही थोड़ी शक्ति लेकर प्रोटीन, चर्बी और दूसरे खनिज पदार्थ काफी अधिक परिमाण में जमीन में संचित कर देता है।

× × × ×

साधारण तौर पर यह कहा जा सकता है कि पीली छीमी में प्रोटीन और चर्बी—खासकर चर्बी—सब से अधिक मात्रा में होती है। इसके बाद हरे रंग की छीमी का नंबर है, और काले रंग की छीमी का नंबर तो सबसे अंत में आता है। संसार के किसी भी हिस्से में जो किसान सोयाबीन की खेती करना चाहते हैं, उन्हें दूसरे रंगों की अपेक्षा पीले रंग की छीमी ही बोनी चाहिए।

× × × ×

सोयाबीन आहार की एक अत्यन्त महत्व की चीज है। अभी तक जितने भी प्रकार के अन्नों या दालों का पता लगा है, उनमें सोयाबीन में प्रोटीन सब से अधिक मात्रा में होता है। उसमें प्रोटीन की मात्रा ४० प्रतिशत यानी दाल की अपेक्षा दूना, गेहूँ से तिगुना और चावल से पचगुना उसमें प्रोटीन होता है।

सोयाबीन का प्रोटीन बहुत अधिक पोषक होता है। इसका प्रोटीन गाय के दूध अथवा मांस के प्रोटीन से मिलता-जुलता है। निरामिषभोजियों के हक में सोयाबीन तो आशीर्वादरूप है, क्योंकि इसका प्रोटीन मांस के प्रोटीन से मिलता है। सोयाबीन के तेल में लेसिथीन तथा विटामिन 'ए' और 'डी' अधिक मात्रा में है, इसलिए इस संबंध में वह मक्खन से मिलता है। अंडे की जर्दी में जैसा लेसिथीन होता है, वैसा ही सोयाबीन में होता है।

सोयाबीन उन थोड़े-से अनाजों में आता है जिनमें 'ए', 'बी' और 'डी' ये तीन विटामिन होते हैं। मनुष्य के मुख्य आहार में इन तीनों विटामिनों का होना आवश्यक है।

× × × ×

सोयाबीन में खनिज क्षार दूसरे किसी अनाज की अपेक्षा अधिक होता है। और इसलिए ज्ञानतंतुओं के रोगों के उपचार में इसका उपयोग करने से भारी लाभ होता है।

सोयाबीन में स्टार्च की मात्रा चूंकि बहुत कम (२४ प्रतिशत) होती है, इसलिए मधुप्रमेह के रोगियों के लिए यह बड़े फायदे की चीज है। मधुप्रमेह के रोगी के आहार के संबंध में इधर जो संशोधन हुए हैं, उनसे यह मालूम होता है कि इस रोग के रोगी को कम स्टार्चवाले अनाज देने चाहिए। यह बात सोयाबीन में है।

× × × ×

सोयाबीन की काफी बनाने के लिए उसकी छीमियों को काफी की छीमियों की तरह भूनकर उनका चूर्ण बना लेते हैं।

सोयाबीन का दूध

सोयाबीन की, तिनके के पीले रंग की या कुछ पीलापन लिये हरे रंग की किस्में हमेशा वनस्पति-दूध बनाने के काम में आती हैं। सोयाबीन की दाल को पानी में कई घंटे भीगने दे, ताकि दाल अच्छी तरह फूल जाय और उसमें का प्रोटीन आसानी से खिंच आय। इसके बाद उसे या तो सिल-बट्टे से पीस ले, या चक्की में दल ले। तब उस पिट्ठी को तिगुने पानी में फेंटकर और कपड़े से छान-कर उबाल ले। उबालने के बाद उसे फिर छाने, इस तरह छानने से सफेद दूध निकल आयगा।

सोयाबीन के आटे को भी इसी तरह काम में ला सकते हैं, और उपर्युक्त रीति से जैसा दूध बनता है वैसा ही बढ़िया दूध इससे भी बन सकता है। दूध बनाने के लिए यह रीति सुविधा की भी है, क्योंकि इसमें कम मेहनत करनी पड़ती है, और समय भी कम लगता है। खौलते हुए पानी में आटा डालकर उसे दस मिनटतक उबाले, और उसे बराबर कलछी से हिलाता जाय। दूध बनाने की भिन्न-भिन्न रीतियों के प्रयोगों से यह मालूम हुआ है कि सोयाबीन की दाल को भिगोकर और फिर उसे पीसकर उसका जो परिणाम आता है, उतना ही परिणाम आटे से आता है। पूर्व के देशों में दाल को पीसकर दूध बनाने का रिवाज है। आटे और पानी को उबाल-लेने के बाद उस मिश्रण को कपड़े से छानले। अगर ज्यादा गाढ़ा दूध चाहिए तो पानी कम डालिए।

सोयाबीन का आटा

सोयाबीन को दो दिन धूप में सुखाले, इससे उसकी दलाई आसान हो जाती है। दाल के तमाम छोटे-छोटे कण बीनकर उन्हे दाल में मिला देना चाहिए, और सिर्फ ऊपर की पतली भूसी ही फेंकनी चाहिए। इस दाल को चावल, गेहूँ या बाजरी के साथ मिलाले। दूसरे अनाज के ६ या ८ भागों के साथ सोयाबीन का एक भाग मिलाना चाहिए। फिर उस बिर्रे अनाज का आटा पीस-कर उसकी रोटी या पूड़ी उसी तरह बन सकती है, जिस तरह कि और आटों की बनती है।

× × × ×

सोयाबीन आम तौर पर अकेला नहीं खाया जाता, किंतु

दूसरे आहार के साथ खाया जाता है। इससे आहार में प्रोटीन, चर्बी और क्षार की मात्रा बढ़ जाती है, जो निरामिषभोजियों के लिए बहुत ही लाभदायक है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

केरल में वस्त्र-स्वावलम्बन

आजकल पैयानूर में चर्खा-संघ की केरल-शाखा का हेडऑफिस है। नागरकोइल और पैयानूर ये दो इस शाखा के मुख्य उत्पत्ति-केन्द्र हैं। शाखा की ओर से पैयानूर केन्द्र में वस्त्र-स्वावलम्बन का जो कार्य जनवरी से जून १९३५ तक हुआ है, उसका नीचेलिखा विवरण हमें प्राप्त हुआ है। आशा है, पाठक इसे दिलचस्पी के साथ पढ़ेंगे।

शाखा के मंत्रीजी लिखते हैं—

"इन छः महीनों में कार्यालयने ५५ व्यक्तियों को कपास ओटना, रुई धुनना और सूत कातना सिखाया। इन ५५ में से ४ पैयानूर के, १८ कोक्कनीसरी के और १३ त्रिकरपुर के थे। इनमें ४७ मर्द और ८ औरतें थीं। जाति के हिसाब से ४ ब्राह्मण, १२ हरिजन, ३ धोबी, ७ थीया, ८ मुसलमान और शेष नायर थे।

ये सब अब अच्छी तरह ओटना, धुनना और कातना जान गये हैं। ये लोग फसल के दिनों में अपना निज का कपास ओटते हैं और बाकी दिनों में वस्त्रालय से कपास खरीदते हैं। इनमें से तीन को छोड़कर, जो कभी-कभी कातते हैं, बाकी सभी नियमित रूप से धुनते और कातते हैं।

इन छः महीनों में कार्यालय की ओर से ३३ व्यक्तियों के लिए विभिन्न अर्ज की ५० पौंड से कुछ अधिक करीब १८९ गज खादी बुनी गई।

वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से कपास की खेती का अत्यधिक महत्त्व होने के कारण इस वर्ष कार्यालयने अपने क्षेत्र के आठ गावों में देवकपास के १०,००० से अधिक बीज बुवाये हैं। इनमें से अधिकांश बीज उग निकले हैं, और पौधे अच्छी तरह बढ़ रहे हैं। जो बीज नहीं उगे हैं, उनकी जगह नये और अच्छे बीज बोने की कोशिश चल रही है। आशा है, इन पौधों से जो कपास पैदा होगा, उससे कम-से-कम उन कत्तिनों की आवश्यकता तो अवश्य ही पूरी हो सकेगी, जो वस्त्र-स्वावलम्बन के विचार से सूत कातती हैं।

शुरू में कार्यकर्त्ताओंने घर-घर जाकर कत्तिनों को ठीक से कातना सिखाया। बाद में त्रिकरपुर गाव में हमें एक मकान मुफ्त मिल गया। इस सुविधा के कारण हम कई-कई कत्तिनों को एक साथ सिखा सके। त्रिकरपुर में वस्त्र-स्वावलम्बन के कार्यक्रम में दिलचस्पी रखनेवाले गांव ही के कुछ प्रभावशाली सज्जनों की एक समिति भी बनाई गई है। समिति का उद्देश वस्त्र-स्वावलम्बन के कार्य में सहायता पहुँचाना है। समिति के सदस्योंने देवकपास के बीज तकसीम करने और बुवाने में इस बार हमारी बड़ी सहायता की। सच तो यह है कि अगर उनकी मदद न मिलती तो इस वर्ष हम ठीक समय पर यह कार्य कर ही न पाते।

कताई की गति की दृष्टि से नगे या बिना पुली के तकुओं से राळवाली माल लगाकर कातना आवश्यक मालूम हुआ है। लेकिन राल का मरहम बनाने की विधि न जानने के कारण इधर हम नगे तकुओं का बहुत ही कम प्रचार कर पाये। खुशी की बात है कि अब हमने मरहम बनाने की यह विधि जान ली है और उसके सफल प्रयोग भी कर चुके हैं। अब हम इस बात की कोशिश में हैं कि मोटे और पुलीवाले तकुओं की जगह घर-घर नगे तकुओं का प्रचार करें और जिन कत्तिनों के चर्खे बिगड़े हुए हों, उसकी मरम्मत भी करदें।

हमने अपने क्षेत्र में इस बात की भी कोशिश की कि जिन जातियों की बहनें बिलकुल नहीं कातती हैं, वे भी वस्त्र-स्वावलंबन की आवश्यकता को समझें और अपनी जरूरत का सूत स्वयं कात लिया करें। पर खेद है कि हमें अपने इस प्रयत्न में विशेष सफलता नहीं मिली। अब हमें इसके प्रचार के लिए एक बहन की सेवाएँ प्राप्त हो गई हैं और आशा है कि अब उनके प्रयत्न से वे बहनें भी वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से कातने लगेंगी, जो जातिगत रिवाजों के कारण, काफी फुरसत रहते हुए भी, बिलकुल नहीं कातती हैं।

जिन जुलाहों का हम से सम्बन्ध है, वे अपनी जरूरत का कपड़ा या तो खुद अपने सूत का बना लेते हैं, या हम से खादी खरीदकर पहनते हैं। दुःख है कि कत्तिनों के विषय में हमें अब-तक इस तरह की कोई सफलता नहीं मिली। हमारी आशा इस वर्ष बोये गये देवकपास पर है। संभवतः इन पेड़ों से हमें अगली गर्मियों में कपास मिल सकेगा। इस कपास के उतारने के बाद हमें आशा है कि हम कत्तिनों को बिक्री के सूत के अलावा अपनी आवश्यकता का सूत भी कातलेने की बात समझा सकेंगे।

हमारे जितने कार्यकर्त्ता उत्पत्ति और वस्त्र-स्वावलम्बन का काम कर रहे हैं, वे अब अपना कपास स्वयं ओट, धुन और कात लेते हैं। सिर्फ बिक्री-भण्डारों के कार्यकर्त्ता हैं, कि जो केवल कातना जानते हैं। वस्त्र-स्वावलम्बन के कार्य में श्री० एन० पी० राघवन ही एक ऐसे कार्यकर्त्ता हैं, जिन्हें खादी की सभी क्रियाओं का आवश्यक ज्ञान है। दूसरे कार्यकर्त्ता इस दिशा में अपनी योग्यता बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

नगे तकुओं का अबतक हमें जो अनुभव हुआ है, उस पर से हम यह कह सकते हैं कि उसके कारण कातने की गति के साथ सूत की मजबूती और समानता भी बढ़ती है। हमारे क्षेत्र के सभी कार्यकर्त्ता आजकल नियमित रूप से नगे तकुओं पर ही कातते हैं, और खुशी की बात है कि इसमें उन्हें कोई तकलीफ नहीं होती।

आधे इंच से भी कम परिधि के नगे तकुए अब हम यहीं बनवाने लगे हैं। ये तकुए चर्खे के एक चक्कर में करीब ९० बार घूमते हैं। साढ़ी या पुलीवाले तकुओं के इतने चक्कर नहीं होते थे।

जनवरी से जून १९३५ तक इस दिशा में जो कार्य हुआ है, संक्षेप में, उसका यही विवरण है।

काशिनाथ त्रिवेदी

"तकली कैसे कातें ?"

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Birla Mills, Delhi, by R. S. Gupta.

अद्वितीय शक्ति

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
किंग्सवे, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३]

दिल्ली, शनिवार, १२ अक्तूबर, १९३५.

[संख्या ३४

विषय-सूची

सूचना—पत्र-व्यवहार अब बजाय बिड़ला-लाइंस के किंग्सवे, दिल्ली के पते पर किया जाय—मैं० ह० से०

गुरु के घर

[गांधीजीने एक कार्यकर्त्ता को बुनाई का उत्तम सीखने के लिए एक खादी-उत्पत्ति-केन्द्र में भेजा है। इस केन्द्र में बुनकर लोग सब हरिजन ही हैं। वह भाई यद्यपि बड़ी उम्र के हैं, तो भी इस समय तो वह एक शिष्य ही हैं, और हरिजन बुनकर उनका गुरु अर्थात् सेवनीय है। वह अपने गुरु की किस तरह सेवा कर रहे हैं यह सुननेयोग्य बात है। उसके पत्र से कुछ अंश उद्धृत करके भेज रहा हूँ। कि० घ० म०]

"मेरा काम तो यहां बहुत ही सुन्दर प्रकार से चल रहा है। उसका थोड़ा-सा वर्णन लिखने को जी चाहता है। मुझे एक हरिजन-बस्ती में एक हरिजन के घर बुनाई सीखने को जाना पड़ता है। आजकल मेहकी झड़ी तो हर घड़ी लगी रहती है। गलियों में तमाम कीचड़-ही-कीचड़ मच रहा है। हरेक घर के आगे गदले पानी का एक-एक नरक-कुंड भरा है। मेरे शिक्षक के घर के सामने भी मोरी सड़ रही थी। पहले दिन तो मैंने कुछ न कहा। पर दूसरे दिन मैंने एक फावड़ा मंगाया और वह मोरी साफ कर डाली। एक कामचलाऊ नाली भी बनादी। उस घर के एक लड़केने इस काम में मेरी मदद की।

उस घर की बहिनें खुली जगह में बैठकर स्नान करती थी। यह भी मुझसे सहन न हुआ। बरसात के कारण स्नानघर तो नहीं बन सका, पर वह नहाने की जगह बदल दी है। कुछ घास-फूस की आड़ करके बहिनों के लिए एक स्नानघर बनाने की बात मैंने उस कुटुम्ब के गले उतार दी है। उसमें एक पैसे की भी लागत न लगेगी।

एक दिन उस घर में एक धूर्त साधु आ पहुँचा, और लोगों को बहकाने लगा कि मैं जन्तर-मन्तर भूत-प्रेत वगैरा की विद्या जानता हूँ। मेरे सामने वह अपना जादू चलाने में सँकुचाता था। बहुत-से बुनकर वहां जमा हो गये। मुझे वहां से हटाना चाहा। पर थोड़ी-सी बात करके उन सबको मैंने निर्भय कर दिया। उसने धूपदीप जलाई और एक भूत को पकड़ने का ढोंग रचा। मैं बैठा-बैठा बुन रहा था, पर गौर से उसकी ओर देखता भी जाता था। उसने एक लोटे में चावल भरे और बहुत देरतक उसमें एक छुरी मारता रहा। लोटे में जब चावल खूब ठंस गया, तब चावलमें छुरी को पकड़ लिया। बस, लोगोंने समझा कि छुरी भूतने पकड़ली है! मैंने सबको समझाया कि इसमें भूत की कोई करामात नहीं, ऐसा तो कोई भी कर सकता है। बाबाजी बोले—"अच्छा, तो आप ही कर दीजिए।" मेरा भोजन का समय हो चुका था, पर लोगों का भ्रम दूर करने के लिए मैंने वैसा कर दिखाया। एक बुनकर के हाथ से भी करा दिया। अब तो लोगों का भ्रम दूर हो गया और मेरी बात सबने सच मानली। इन भोले-भाले लोगों को ये धूर्त मनुष्य कैसे फंसाते हैं यह मैंने प्रत्यक्ष देख लिया।

इस प्रकार के बहुत-से वहम इनमें ही नहीं, सारी जनता में फैले हुए हैं। अगर कुछ समझदार लोग इनके बीच में जाकर बस जायँ, तो इस तरह की बिना जड़-मूल की गैर-समझ दूर होने में देर न लगेगी?"

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्राम-सेवा

हमारा सिंदी गांव आखिरकार सचमुच अब हमारा अपना गांव हो जायगा। हमारी एक छोटी-सी झोंपडी—८॥ फुट लंबी और ६॥ फुट चौड़ी—एक हफ्ते के भीतर वहां तैयार हो जायगी। २ अक्तूबर को हमारी इस 'राम-मढ़ैया' की नींव रखी गई थी। सबसे पहले इस झोंपडी में मीरा बहिन जाकर डेरा डालेगी। आजकल मीरा बहिन का गांव में ज्यादातर समय बीमारों को उनके झोंपड़ों में जाकर देखने-भालने और गांधीजी के आदेशानुसार अधिकांश रोगियों को देशी दवाइयों के नुस्खे बतलाने में ही खर्च होता है। कुछेक लोगों को, जिन्हें विशेष डाक्टरी परीक्षा और इलाज की जरूरत होती है, वे सिविल अस्पताल में भेजवा देती हैं। अपने रोगियों (जिनमें पशु भी शामिल हैं) की सेवा-शुश्रूषा में वे इतनी अधिक तल्लीन रहती हैं कि कुछ पूछिए नहीं। बात करेंगी तो अपने रोगियों के ही सम्बन्ध में। उनके पास बात करने का आज कोई दूसरा विषय ही नहीं।

"बापू, यहां एक गाय की टांग टूट गई है। वह अच्छी दुधारू गाय है। अगर ठीक-ठीक इलाज न हुआ तो उसका सारा दूध छनक जायगा। मैंने डाक्टर को कहला भेजा था, पर उसका यह कहना है कि गाय को पशुओं के अस्पताल में ही लाना चाहिए, वहीं उसका ठीक-ठीक इलाज हो सकेगा। अब हम किस तरह उस अपंग गाय को गाड़ी में उठाकर लादें और वहांतक ले जायँ? इस उठाई-धराई में तो उसे बहुत अधिक कष्ट होगा।"

"उसे अस्पताल ले जाने की जरूरत नहीं। अपनी घोड़ी पर सवार होकर तुम तुरंत अस्पताल चली जाओ, और डाक्टर को

सारी स्थिति समझादो और उससे कहो कि आपका यह कर्त्तव्य है कि गाव मे स्वय जाकर आप गाय का इलाज करें। उसे उठाने धरने मे जो कष्ट होगा वह तो है ही, इसके अलावा अस्पताल तक अपनी गाय ले जाने के लिए गाडी का किराया देना एक गरीब आदमी को पुसा भी तो नहीं सकता।"

"हा, सो तो मे समझती हूँ। अभी थोडे दिन की बात है कि वहा एक गरीब स्त्री के बच्चा हुआ था। पौष्टिक भोजन न मिलने से उस बेचारी के शरीर मे खून की कमी होगई है।"

"तो तुम उसे ये गोलिया दे देना। और एक हफ्ते के बाद मुझे बतलाना कि उसकी तबीयत कैसी है।"

"और उस लडके का क्या किया जाय? उसके फोडो पर मक्खिया बैठ-बैठकर बहुत तग करती है।"

"नीम के गरम पानी से फोड़ो को धोकर बोरिक का मरहम लगा देना, और पट्टी बाध देना।" इत्यादि इत्यादि।

हमारी झोपडी एक हरिजन-बस्ती के ठीक बीच मे बन रही है। हमे एक यह कठिनाई मालूम पड रही थी कि महारो के कुएँ से मीरा बहिन पानी भर सकेंगी या नही, क्योकि महारो का यह खयाल है कि हमलोग भंगी है—और भगी भला महारो के कुएँ पर चढने की हिम्मत कर सकते है? एक दिन शाम को मीरा बहिनने आकर यह सुखद समाचार सुनाया कि मुझसे मांग लोगोने यह कहा है कि अगर दूसरे लोग आपको अपने कुए से पानी न भरने दे तो आप खुशी से हमारे कुएं से पानी भरें। मीरा बहिनने बड़ी प्रसन्नता से कहा, 'यह तो और भी अच्छी बात है कि जो लोग सबसे नीच समझे जाते हैं उनके साथ मित्रता का सबध जोड़ा जाय।'

उसदिन बस्ती की कुछ स्त्रियोने आकर बड़े प्रेम से मीराबहिन की आवभगत करते हुए कहा, 'हमे यह जानकर बडी खुशी हुई कि आप हमारी बस्ती मे रहने के लिए आ रही है। पर एक बात की हम आशा करे कि आप हमसे मैला साफ करने के लिए तो नही कहेगी?'

यह मै जरूर कहूँगा कि बरसात बद होने से इधर सफाई मे अब काफी सुधार हो गया है। बहुत-से आदमी तो गाव से काफी दूर टट्टी फिरने जाते हैं, और जहा हमें कचरे के सोलह-सोलह डोल भर-भरकर फेकने पड़ते थे वहा अब तीन-चार डोल मे ज्यादा कचरा नही निकलता।

गांधीजी का जन्म-दिन

गाधीजी के जन्म दिन के बारे मे एक बात उल्लेखनीय है, और वह यह कि जिसने भी जन्म-दिन मनाया उसने दरिद्रनारायण के प्रीत्यर्थ कुछ-न-कुछ ठोस काम तो किया ही। कुछ बरस पहले जब गांधीजी को यह मालूम हुआ कि लोग उनका जन्म-दिन मनाने जा रहे है तब उन्होने यह कहा था कि 'दरिद्रनारायण के प्रीत्यर्थ सूत कातकर यह दिन मनाया जाय।' और तबसे इस शुभ दिन के उपलक्ष में कुछ-न-कुछ खादी-कार्य प्रतिवर्ष बराबर होता आरहा है। इस वर्ष विक्रमी तिथि के अनुसार तो २४ सितंबर को जन्म-दिन था, और ईसवी तारीख के अनुसार २ अक्तूबर को—दोनो मे ९ दिन का अतर पड़ गया था। लोगोने यह सारा ही समय अतिरिक्त सूत कातने में अथवा खादी बेचने या खादी के लिए पैसा इकठ्ठा करने में लगाया। २४ सितबर को सयोग से हरिजन-दिवस भी इस साल पड गया था, इसलिए देश के अनेक भागों में हरिजनों के अर्थ कुछ-न-कुछ विशेष सेवा कार्य करने का प्रयत्न किया गया। विनोबाजी अपने नित्य के अध्यापन तथा पत्र-व्यवहार के काम के अलावा आठ घटे एकाग्र चित्त से १६ आटी (१६० तार या २१२ गज = १ आंटी) सूत कातते है। उन्होने जन्म-दिन की प्रभातकालीन प्रार्थना मे सम्मिलित होने के लिए हमारे यहां आने की बात सोची थी। पर बाद को यह विचार बदल दिया, और यह तय किया कि मगनवाडी न जाकर वह समय अतिरिक्त कताई मे ही लगाया जाय। कई जगह, जिनमे हमारी मगनवाडी भी शामिल है, नित्य १६ घटे अखड रीति से चर्खा चलाया गया, और कताई का यह अनुष्ठान सपूर्ण सप्ताह हुआ। पर गाधीजी को इतने से संतोष कहा? उन्होने कहा, 'मनुष्य अगर सालभर पड़ा सोता रहता है तो उसके इस तरह सात-आठ दिन चर्खा चलाने से कोई लाभ नही। आज जब कि हमारे सामने आठ घटे के काम के लिए कम-से-कम पेट भरने-लायक मजदूरी देने का एक निश्चित आदर्श रखा हुआ है, तो हम लोगो मे से कुछ आदमी अकेले अथवा कई एक मिलकर आठ घटे कातने का अवश्य प्रयत्न करे, और हरेक व्यक्ति की तथा हरेक दिन की कताई का बाकायदा हिसाब रखे, ताकि कताई के एक औसत परिमाण पर पहुँच सके।' हमारे पास अनेक तरह के काम रहते हे, इससे हम इस सलाह को तुरन्त तो अमल मे नही ला सके, पर जिनके लिए सभव हो वे इसकी परीक्षा करें, और जो परिणाम आवे उन्हे हमारे पास भेजदे। सूत कुल कितना काता इसके अलावा यह बतलाना भी आवश्यक होगा कि उनका सूत किस दरजे का और कितने नंबर का है।

राजकोट मे श्री नारायणदास गाधी के अधीन वहां के राष्ट्रीय विद्यालयने जन्म-दिन मनाने का एक नया ही कार्यक्रम बनाया था। गाधीजी का यह ६६वा वर्ष पूरा हुआ है, इसलिए यह तय किया गया कि ६६ गज खादी का सूत (करीब २००००० गज) काता जाय, और खादी-कार्य के लिए जो खुशी से पैसा देना चाहे उससे तांबे या चादी के ६६ सिक्के लिये जायँ—कम-से-कम दान ६६ पाइयों, याने ।-)॥ का हो। २५००) से कुछ ऊपर इकठ्ठा हुआ। विद्यालय के हाल में कई चर्खे रखे गये थे, और शहर के लोगो को वहां आने और सारे सप्ताह या सप्ताह में जितने दिन वे चाहे उतने दिन सूत कातने का आमत्रण दिया गया था। लोगोने बड़े उछाव से इस कताई-यज्ञ मे भाग लिया। सारे दिन बीसियो चर्खों का वहां मधुर गुजन होता रहता था।

इसी सप्ताह गाधीजीने अपनी रुई धुनना आरंभ किया। उन्होंने बड़े हर्षपूर्वक कहा, 'आज मैं पांच वर्ष के बाद अपनी रुई धुनक रहा हूँ।' दूसरे अनेक कामो के रहते हुए भी उन्होने अपनी रुई धुनकना जारी रखा है। ईश्वर करे, गाधीजी के हम अनेक जन्म-दिन देखें, हरेक वर्ष-गाठ के दिन हम उन्हे मानवजाति के कल्याणार्थ और भी अधिक कार्य-संलग्न और सक्रिय पावे। एक मित्र से उन्होने उस दिन कहा, "आपकी इस कामना के पीछे, कि अनेक बार मेरा जन्म-दिन आवे, जो गहरी भावना है उसे मैं समझता हूँ। पर यह तो आप भलीभांति जानते ही हैं कि करतारने मेरी आयु जितनी लिख दी होगी उसमे वह एक क्षण भी जोड़ने का नही, मनुष्य फिर चाहे जितना जतन करे। तो भी जबतक हमारे जीवन की डोरी पूरी नहीं हुई, तबतक हम सदा ईश्वर की प्रार्थना और हर तरह से एक दूसरे के कल्याण और दीर्घायु के लिए प्रतिक्षण प्रयत्न करते रहेगे।"

एक ग्रामसेवक को कुछ सूचनाएँ

हमारे अच्छे-से-अच्छे कार्यकर्त्ताओं में से एक सेवक गुजरात के एक गांव में काम कर रहा है। उसने अपनी आवश्यकताएँ बहुत ही कम करदी हैं। सिर्फ ५) महीने में वह काम चला रहा है। अपने सेवा-कार्य और ग्रामजीवन का गत सप्ताह उसने बहुत ही संक्षिप्त विवरण भेजा है, जिसमें से कुछ अंश लेकर मैं यहां दे रहा हूँ—

"अब तो सारा ही गांव खाईवाली टट्टियों का उपयोग करने लगा है। जो लोग पहले इसमें बिल्कुल ही लापर्वाही दिखाते थे, वे अब इसे एक जरूरी चीज समझने लगे हैं।......सब से पहले तो इस काम में लड़के आगे आये, पर जैसा कि आपने पहले ही कह दिया था, बड़े-बूढ़े अब सब से पीछे आ रहे हैं।' ...... मैं अपने साथ अपनी धुनकी तो रखता हूँ, पर अभीतक रुई नहीं मिल सकी। मेरा एक पड़ोसी कपास की तमाम क्रियाएँ खुद ही करता है। उसके पास कुछ रुई है, और उससे मुझे शायद उधार मिल जाय ऐसी आशा है। ......साबरमती और बोचासन जाने के लिए मैंने कुछ समय निकाल लिया था। मुझे मालूम हुआ है कि आप को मेरी यह बात पसंद नहीं आई। मैंने यह सोचा था कि मैं एक-दो दिन के लिए अगर बाहर चला जाऊँ, तो आप कोई ऐसा खयाल नहीं करेंगे।

आप जानते हैं कि मैं एक ऐसी जगह रह रहा हूँ, जो एक तरह से भोंयरा या गुफा है। गांव से कुछ दूर मैं एक झोपड़ी बना लूं और फिर वहां चला जाऊँ तो इसमें आपको आपत्ति तो नहीं होगी? ... खुली हवा और एकान्त स्थान का मैं सदा से ही प्रेमी रहा हूँ। सफाई के संबंध में मेरे हर तरह से जतन करने पर भी पड़ोस गंदा रहता ही है, जिससे मुझे बड़ी घबराहट होती है। कुत्तों का भी मैला पड़ा रहता है। मैंने इस गंदगी से बचने का एक ऐसा उपाय ढूंढ़ निकाला है जिसे शायद आप पसंद नहीं करेंगे। यहां से मैं थोड़ी दूर पर जाकर एक मित्र के खेत में आकाश के नीचे सोता हूँ। ऐसा मालूम होता है कि मेरी संगति से वह कुछ लाभ भी उठा रहा है। वह आश्रम का जीवन बिताना चाहता है। नित्य प्रातःकाल उसके साथ मैं 'गीता-मंथन' पढ़ता हूँ।' ......बरसात के कारण तमाम रास्तों में दल्ले और दरारें हो गई हैं। आजकल हम लोग रास्तों की मरम्मत के काम में लगे हुए हैं। गांव के लोग हमें बराबर मदद दे रहे हैं। एक भंगियों का ही अभीतक मुझपर विश्वास नहीं जमा। वे कहते हैं, 'अरे, आप हमारे मुहँ का कौर क्यों छीन रहे हैं?' वे मुझसे पूछते हैं, 'आप चर्खा कातने और लोगों को पढ़ाने-लिखाने का ही काम क्यों नहीं करते?' कुछ तो मुझ पर नाराज भी हैं।.........इस कड़ी मेहनत से तो मैं आजकल इतना अधिक थक जाता हूँ कि कुछ पूछिए नहीं। दूसरे दिन बड़ी ही थकावट मालूम होती है। मीरा बहिन अब मुझे यह दोष नहीं दे सकती कि तुम तो सूर्य भगवान् के सामने ध्यान लगाये ही बैठे रहते हो, न कुछ करना न धरना! अगर वे कभी यहां आवें, तो मेरे हाथ में अब वे कचरे का डोल और झाड़ू और फावड़ा देखेंगी।...... मैं ५) माहवार में बड़े मजे से अपना काम चला लेता हूँ। अब मुझे आसानी से गाय का अच्छा शुद्ध दूध मिल जाता है। गाय रखने के लिए मैं हरेक किसान से कहता हूँ। एक डेरी यहां का तमाम दूध खरीद लेती है। जिनके पल्ले कुछ पैसा है वे उसका दूध तो लेंगे नहीं, वे तो चाय, तमाखू और बिड़ी में अपना पैसा बहायेंगे! ....'एक परित्याग' नाम का आपका लेख मैंने संतोष के साथ पढ़ा, पर आपका यह वाक्य पढ़कर रंज हुआ कि 'यह बात नहीं कि इस निर्णय पर पहुँचने मुझे गहरा दुःख न हुआ हो।'

ऊपर के इस विवरण में जो अनेक तरह के प्रश्न उठते हैं उनका उत्तर गांधीजीने एक लम्बे पत्र में इस तरह दिया है—

"अभी तो भले ही तुम रुई उधार लेलो, पर अगले साल तो तुम्हें अपना ही कपास पैदा करना चाहिए। तुम किसी खेत में थोड़े-से कपास के पेड़ लगाना चाहो तो कोई मना नहीं करेगा। बीज तुम्हें 'देवकपास' (वृक्षवाला कपास) का बोना चाहिए। यह दस से लेकर पन्द्रह सालतक चलता है। और मुझे लोगोंने बतलाया है कि देवकपास की रुई को धुनने की कोई जरूरत नहीं। मैंने स्वयं तो इस कपास का उपयोग नहीं किया, पर इसे काम में लाने की मैं सलाह देता हूँ।

हां, तुम्हारा यह सोचना सही है कि मैंने तुम्हारा दो दिन के लिए भी गांव छोड़कर बाहर जाना पसन्द नहीं किया था। कारण उसका यह था कि वह तुम्हारे लिए एक मनबहलाव की चीज थी। सब से अच्छा अनुशासन तो तुम्हारे लिए यह होगा कि शान्ति से वहां जमकर बैठ जाओ, और एक वर्षतक निर्बाध रीति से चुपचाप खूब लगके काम करो। उस ग्रामवासी को अपने मित्रों से मिलने-जुलने का समय ही कहां, जो अपने काम में तल्लीन है? हमें तो उसके साथ हिसका करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसलिए तुम्हें तो बस यह नियम बना लेना चाहिए कि हम दस मील की सीमा के अन्दर ही रहेंगे। जबतक ग्रामवासियों के बीच में चौबीसों घंटे हम बराबर जमकर न बैठेंगे, तबतक उनका विश्वास प्राप्त करना असम्भव ही है। बाहर आने जाने का बहाना तो तुम्हें तभी मिलेगा, जिस क्षण कि इस नियम को तुम कुछ ढीला कर दोगे।

अवश्य गन्दगी और कुत्तों के मल-मूत्र से बचना जरूरी है, पर मनुष्य को इस वातावरण से एकदम दूर नहीं भागना चाहिए। हर कोई तो इस तरह अपना घर-द्वार छोड़कर किसी दूसरी जगह आराम से सो नहीं सकता। दूसरों में भी तो हमें स्वच्छता की यह भावना पैदा करनी है। इसलिए लोगों से दूर रहने की जरूरत नहीं। इतनी दूर रहकर तुम उनकी सेवा नहीं कर सकते। मैं यह जानता हूँ कि यह कह देना तो आसान है, पर इसे अमल में लाना कठिन है। अगर तुम उस तमाम वाहियात गन्दगी के बीच नहीं सो सकते, तब तो खेतों में ही जाकर सोओ। मैं तुमसे कोई ऐसा काम नहीं कराना चाहता जिसमें तुम्हारा स्वास्थ्य बिगड़ने का भय हो।

हां, तुम वहां एक फूस की झोंपड़ी बना सकते हो, पर वह गांव से दूर नहीं होनी चाहिए। हम ऐसी जगह रहें कि दिन में या रात में, जब भी लोग हमें बुलाना चाहें, आसानी से बुलालें। तुम रोज शाम को ७ बजे गांव छोड़कर चले जाते हो इसका यह अर्थ हुआ कि ब्यालू के बाद ग्रामवासियों को न तो तुम्हारे साथ बैठकर बात करने और न तुमसे कोई सलाह लेने का ही मौका मिलता है। और इससे एक घंटे को भी तुम रात्रि-पाठशाला नहीं लगा पाते। गांवों में आश्रमवासी जो सेवा-कार्य कर रहे हैं, उनकी कठिनाई तो तुम देखते ही हो। आश्रम का जीवन और आश्रम के नियम शायद आसानी से विलास में परिणत हो सकते हैं। हमें यह अनुभव करना चाहिए कि अपनी जिस सादगी और त्याग की हम बहुत डींग मारते हैं उसके साथ हमें जो बहुत-सी सुविधाएँ मिली हुई हैं, वे सब सुविधाएँ गरीब ग्रामवासियों को नसीब नहीं। मनुष्य स्वभावतः

(२७९वें पृष्ठ के दूसरे कालम पर)

हरिजन-सेवक

शनिवार, १२ अक्तूबर, १९३५

अद्वितीय शक्ति

मेरी प्रत्येक प्रवृत्ति के मूल में अहिंसा रहती है, और इसीमे जिन तीन सार्वजनिक प्रवृत्तियों में मैं आजकल अपना सरबस उँडेलता दिखाई देता हूँ, उनके मूल में तो अहिंसा होनी ही चाहिए। ये तीन प्रवृत्तियां अस्पृश्यता-निवारण, खादी और गावों का पुनरुद्धार है। हिंदू-मुसलमान-ऐक्य चौथी वस्तु है। इसके साथ मैं अपने बचपन से ही ओत-प्रोत रहा हूँ। पर अभी मैं इस विषय में ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकता, जो प्रत्यक्ष नजर आ सके। इसलिए इस दृष्टि से मैंने इस विषय में अपनी हार कबूल करली है। पर इसपर से कोई यह कल्पना न करले, कि मैं इस सम्बन्ध में हाथ धो बैठा हूँ। मेरे जीते जी नहीं तो मेरी मृत्यु के बाद हिंदू और मुसल्मान इस बात की साक्षी देंगे कि मैंने हिंदू मुस्लिम-ऐक्य साधने का मंत्र-जप अततक नहीं छोड़ा था। इसलिए आज, जब कि इटलीने अबीसीनिया के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया है, अहिंसा के विषय में थोड़ा विचार कर लेना अप्रासंगिक तो नहीं, किंतु आवश्यक ही है ऐसा मैं देखता हूँ। अहिंसा को जो धर्म के रूप में मानते हैं उनकी दृष्टि से उसे सर्वव्यापक होना चाहिए। अहिंसा को धर्म माननेवाले अपनी एक प्रवृत्ति में अहिंसक रहें और दूसरी के विषय में हिंसक, ऐसा कैसे हो सकता है? यह तो कबल व्यवहार-नीति मानी जायगी। इसलिए इटली जो युद्ध कर रहा है उसके संबंध में अहिंसाधर्मी उदासीन नहीं रह सकता। यह होते हुए भी इस विषय में अपनी राय बतलाने और अपने देश का मार्ग दिखाने के लिए आग्रहपूर्ण सूचनाओं के प्रति मुझे इन्कार करना पड़ा है। बहुधा सत्य और अहिंसा के लिए मौनरूपी आत्म-निग्रह धारण करना ही पड़ता है। यदि भारतने बतौर राष्ट्र के सामाजिक अहिंसा को धर्मरूप में स्वीकार किया होता, तो मैंने अवश्य ही कोई-न-कोई सक्रिय मार्ग बता दिया होता। यह मैं जानता हूँ कि करोड़ों के हृदय पर मुझे कितना अधिकार प्राप्त हो चुका है। पर उसकी बड़ी-बड़ी मर्यादाओं को भी मैं ठीक-ठीक समझ सकता हूँ। सर्वव्यापक अहिंसा के मार्ग पर भारत की पचरंगी प्रजा को मार्ग दिखाने की शक्ति ईश्वरने मुझे प्रदान नहीं की है। अनादि काल से भारत को अहिंसा-धर्म का उपदेश तो अवश्य मिलता चला आ रहा है, किंतु समस्त भारतवर्ष में सक्रिय अहिंसा पूर्णरूप से किसी काल में अमल में लाई गई थी ऐसा मैंने भारत के इतिहास में नहीं देखा। यह होते हुए भी अनेक कारणों से मेरी ऐसी अचल श्रद्धा है सही कि किसी भी दिन सारे जगत् को भारत अहिंसा का पाठ पढ़ायगा। ऐसा होने में भले ही कई युग गुजर जायँ। पर मेरी बुद्धि तो यही बतलाती है कि दूसरा कोई भी राष्ट्र इस कार्य का अगुवा नहीं बन सकता।

अब हम जरा यह देखें कि इस अद्वितीय शक्ति के अंग में क्या समाया हुआ है। कुछ ही दिन पहले इस चालू युद्ध के संबंध में अनायास ही कुछ मित्रोंने मुझसे नीचेलिखे ये तीन प्रश्न पूछे थे :-

१—अबीसीनिया, जिसे शस्त्र दुर्लभ है, यदि अहिंसक हो जाय तो वह शस्त्र-सुलभ इटली के मुकाबिले में क्या कर सकता है?

२—यूरोप के पिछले महासमर के परिणाम-स्वरूप स्थापित राष्ट्र-संघ का इंग्लैंड सबसे प्रबल सदस्य है। इंग्लैण्ड यदि आपके अर्थ के अनुसार अहिंसक हो जाय तो वह क्या कर सकता है?

३—भारतवर्ष आपके अर्थ के अनुसार यदि अहिंसा को एकदम ग्रहण करले तो वह क्या कर सकता है?

इन प्रश्नों का उत्तर देने के पहले अहिंसा से उत्पन्न होनेवाले इन पांच उपसिद्धांतों का आ जाना आवश्यक मालूम होता है :—

(१) मनुष्यों के लिए यथाशक्य आत्म-शुद्धि अहिंसा का एक आवश्यक अंग है।

(२) मनुष्य-मनुष्य के बीच मुकाबिला करें तो ऐसा देखने में आयगा कि अहिंसक मनुष्य की हिंसा करने की जितनी शक्ति होगी उतनी ही मात्रा में उसकी अहिंसा का माप हो जायगा।

यहां कोई हिंसा की शक्ति के बदले हिंसा की इच्छा समझने की भूल न करे। अहिंसक में हिंसा की इच्छा तो कभी भी नहीं हो सकती।

(३) अहिंसा हमेशा हिंसा की अपेक्षा बढ़कर शक्ति रहेगी, अर्थात् एक मनुष्य में उसके हिंसक होते हुए जितनी शक्ति होगी उसमें अधिक शक्ति उसके अहिंसक होने से होगी।

(४) अहिंसा में हार के लिए स्थान ही नहीं है। हिंसा के अंत में तो हार ही है।

(५) अहिंसा के संबंध में यदि जीत शब्द का प्रयोग किया जा सकता है, तो यह कहा जा सकता है कि अहिंसा के अंत में हमेशा ही जीत होगी। वास्तविक रीति से देखें, तो जहां हार नहीं वहां जीत भी नहीं।

अब इन उपसिद्धांतों की दृष्टि से ऊपर के तीन प्रश्नों पर विचार करें --

१ -अबीसीनिया हिंसक हो जाय तो उसके पास जो थोड़े-बहुत हथियार हैं, उन्हें वह फेंक देगा। उसे उनकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। यह प्रत्यक्ष है कि अहिंसक अबीसीनिया किसी राष्ट्र के शस्त्र-बल की अपेक्षा न करेगा। यह राष्ट्र आत्म-शुद्ध होकर अपने विरुद्ध किसी को **शिकायत करने** का कोई मौका न देगा, क्योंकि वह तो तब सभी की कल्याण-कामना करेगा। और अहिंसक अबीसीनिया जैसे अपने हथियार फेंककर इटली के खिलाफ नहीं लड़ेगा, उसी तरह इच्छापूर्वक या जबरन उसे सहयोग नहीं देगा, उसके अधीन नहीं होगा। अतः इटली हबशी प्रजा पर अधिकार प्राप्त नहीं करेगा, किंतु केवल उनकी भूमि पर कब्जा करेगा। हम यह जानते हैं कि इटली का हेतु केवल जमीन पर कब्जा करने का नहीं है। इटली का हेतु तो इस उपजाऊ देश के हब्शियों को अपने बस में करने का है। उसका यह हेतु यदि सिद्ध न हो सका, तो फिर वह किसके विरुद्ध लड़ेगा?

२—समस्त अंग्रेज जनता हृदय से अहिंसा को स्वीकार ले, तो वह साम्राज्य-विस्तार का लोभ छोड़दे, अरबों रुपये के दारू-गोला इत्यादि का त्याग करदे। इस कल्पनातीत त्याग में जो नैतिक बल अंग्रेजों में देखने में आयगा उसका असर इटली के हृदय पर हुए बिना न रहेगा। अहिंसक इंग्लैण्ड जिन पांच उपसिद्धांतों को मैंने बतलाया है, उनका संसार को चकाचौंध में डाल देनेवाला एक सजीव प्रदर्शन हो जायगा। यह परिवर्तन एक ऐसा महान् चमत्कार होगा जो किसी भी युग में न अबतक हुआ है, और न आगे कभी होगा। ऐसा परिवर्तन कल्पनातीत होते हुए भी अगर अहिंसा एक सच्ची

शक्ति है तो वह होकर ही रहेगा। मै तो इसी श्रद्धा पर जी रहा हूँ।

३—तीसरे प्रश्न का उत्तर इस तरह दिया जा सकता है। यह तो मै ऊपर कह ही चुका हूँ कि भारत राष्ट्र के रूप मे पूर्ण रीति से अहिसक नहीं है। और उसके पास हिसा करने की भी शक्ति नहीं। बहादुर आदमियो को हथियारो की पर्वा कम-से-कम हुआ करती है। जरूरी हथियार किसी तरह से भी वे प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए हिन्दुस्तान में हिंसा करने की शक्ति नहीं है इसका अर्थ यह हुआ कि हिदुस्तानने कभी भी एक राष्ट्र के रूप में इस शक्ति को विकसित नहीं किया। इसलिए उसकी अहिसा दुर्बल की अहिसा है, इसीसे वह उसे मोह नहीं सकती, और उसका प्रभाव नहीं पड़ सकता। जहा-तहा हम नित्य भारत की दुर्बलता का ही वर्णन किया करते हैं और ससार के सामने भारत एक ऐसी प्रजा के रूप मे दिखाई देता है कि जिसका दिन-दिन शोषण होता जा रहा है। यहां भारत की राजनीतिक पराधीनता ही बताने का हेतु नहीं है, बल्कि अहिसक और नैतिक दृष्टि से हम आज उतरे हुए मालूम होते है। आपस मे बात करे तो भी हम अपने को नीचे ही देखते है। ऐसा मालूम होता है कि किसी भी बलवान् के आगे साहस के साथ खड़े होने की शक्ति हम खो बैठे हैं। हम लोगो में ऐसी शक्ति नहीं है, यह बात हमारे दिल मे घर कर गई है। जहा तहा हम अपनी निर्बलता ही देखा करते है। यदि ऐसा न हो तो हम लोगो मे हिन्दू-मुसलमान के बीच झगड़ा भी क्यो हो? आपस में तकरार ही क्यो हो? राजसत्ता के विरुद्ध लड़ाई किसलिए हो? यदि हममें सबल राष्ट्र की अहिसा हो, तो अग्रेज न हम लोगो के प्रति अविश्वास करे, न अपने प्राणों का हमारी तरफ से कोई भय रखे और न अपने को यहा विदेशी शासक के रूप मे माने। भले ही राजनीति की भाषा मे इच्छा हो तो हम उनकी टीका करे। कितनी ही बातों में हमारी आलोचना मे सचाई होती है। किन्तु यदि एक क्षण के लिए भी पैंतीस करोड मनुष्य अपने को एक सबल मनुष्य के रूप मे समझ सके और अग्रेजो को—या किसी को भी—क्षति पहुँचाने की कल्पना करते हुए भी लज्जित हो, तो अग्रेज सिपाहियो व्यापारियो अथवा अफसरों का भय हम छुड़ा देगे, और अंग्रेजो मे हमारे प्रति आज जो अविश्वास है वह दूर हो जायगा। यदि हम सच्चे अहिसक हो जायँ तो अग्रेज हमारे मित्र बन जायँ। अर्थात्, हम करोडो की सख्या मे होने से इस दुनिया मे बड़ी-से-बड़ी शक्ति के रूप मे पहिचाने जायँ, और इसी लिए उनके हितचिंतक के रूप में हम जो सलाह उन्हें दे उसे वे अवश्य ही मानें।

मेरी दलीले पूरी हो गई। पाठक देख सकेंगे कि ऊपर की दलीले देकर मैंने उक्त पाच उपसिद्धातो का ही जैसे-तैसे समर्थन किया है। सच बात तो यह है कि जिसकी दलील से पूर्ति करनी पड़ती है वह न तो सिद्धात है न उपसिद्धात। सिद्धांत को तो स्वयंसिद्ध होना चाहिए। पर दुर्भाग्य से हम मोहजाल में अथवा जड़तारूपी शक्ति मे ऐसे फसे हुए है कि अक्सर सूर्यवत् स्पष्ट वस्तुओं को भी हम नहीं देख सकते। इसीसे किसी प्राचीन ऋषिने कहा है कि, "सत्य के ऊपर जो सुनहरा आवरण आ गया है, उसे हे प्रभो, तू दूर करदे।"

यहां, जब मै विद्यार्थी था तब का मुझे एक स्मरण याद आ रहा है। जबतक 'भूमिति' समझनेलायक मेरी बुद्धि विकसित नहीं हुई थी, तबतक यह बात थी कि अध्यापक तो तख्ती पर आकृतियां बनाया करता और मेरा दिमाग इधर-उधर चक्कर लगाया करता था। कई बार यूकलिड के १२ सिद्धान पढे, पर मेरी समझ में पत्थर भी न आया। जब एकायक मेरी बुद्धि खुल गई, तब उसी क्षण भूमितिशास्त्र मुझे एक सरल-से-सरल शास्त्र मालूम हुआ। इससे भी अधिक सरल अहिसाशास्त्र है, ऐसा मेरा विश्वास है। पर जबतक हमारे हृदय के पट नहीं खुल जाते, तबतक अहिसा हमारे अतर मे कैसे प्रवेश कर सकती है? बुद्धि हृदय को भेदने मे असमर्थ है। वह हमें थोड़ी ही दूर लेजा सकती है, और वहा व्याकुल बनाकर छोड़ देती है। अनेक सशय हमें भ्रमाते है। अहिंसा श्रद्धा का विषय है, अनुभव का विषय है। जहातक ससार उसपर श्रद्धा जमाने के लिए तैयार नहीं, वहातक तो वह चमत्कार की ही बाट जोहता रहेगा। उसे बड़े पैमाने पर जो प्रत्यक्ष दिखाई दे सके ऐसी अहिसा की जीत देखनी है। इसलिए कुछ विद्वान बुद्धि का महान् प्रयोग करके हमें समझाते हैं कि बतौर सामाजिक शक्ति के अहिसा को विकसित करना आकाश-पुष्प तोड़ने की तैयारी करने के समान है। वे हमें समझाते हैं कि अहिसा तो केवल एक व्यक्तिगत वस्तु है। सचमुच अगर ऐसा ही है, तो क्या मनुष्यजाति और पशुजाति के बीच वास्तविक भेद कुछ है ही नहीं? एक के चार पैर है, दूसरे के दो, एक के सीग, दूसरे के नहीं!

'गुजराती' से] मो० क० गांधी

आभार

मेरे ६७ वे जन्म-दिन के उपलक्ष मे मुझे अनेक बहिनो और भाइयोने हरेक प्रात मे अपनी शुभ कामना और अपने आशीर्वाद के तार और पत्र भेजे है। उन सबका आभार इस दरिद्र वाणी से तो माना ही नहीं जा सकता। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि सब भाई-बहिनो के शुद्ध प्रेम का वह मुझे पात्र बनावे और मुझे जनता का सच्चा सेवक बनने की शुद्धि प्रदान करे। मैं यह जानता हूँ कि जो तार और पत्र आये हैं उनमे कोई रूखी-सूखी विनय की बात नहीं है, उनमे तो हार्दिक भावो का प्रदर्शन है।

इन सब सदेशो की अलग-अलग स्वीकृति भेजना असंभव है। इसलिए मै यह आशा करता हूँ कि मेरी इस स्वीकृति से ही सब बहिनें और भाई सतुष्ट हो जायँगे।

मो० क० गांधी

धीरे बोलो

एक सज्जन लिखते हैं:—

"अच्छा हो या बुरा, किसी-न-किसी रूप मे आवाज का असर हमपर पड़ता ही है। आधुनिक स्वर-विज्ञान भी इस बात का समर्थन करता है, और प्राचीन सगीत-शास्त्र भी इस विषय मे सहमत है। यहातक कि हमारे सगीताचार्योंने तो विविध राग-रागिनियो की सृष्टि ही अलग-अलग प्रभाव डालने की दृष्टि से की है, और उन सबका उचित और योग्य नामकरण भी किया है। अधिक ऊंचा बोलना हमारे लिए आवश्यक नहीं, किंतु दुर्भाग्य से हमें इसकी कुटेव पड़ गई है। इस विषय में पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक दोषी है। जो लोग खुद धीरे बोलने के आदी हैं, वे भी दूसरो की अनावश्यक ऊंची आवाज को सहन कर लेते है। इस भावना से दूसरों का दिल न दुखाने के कारण हम इसे भले ही 'अहिंसा' मानलें, पर इसे शिष्टता तो हम कदापि नहीं कह

सकते । आदर्श मॉण्टेसरी बाल-मंदिर भले ही शांति के धाम बन जायँ, पर हमारे घर, हमारी संस्थाएँ और सड़कें आदि सार्वजनिक स्थान तो कोलाहलपूर्ण हुल्लड़खाने ही हैं। जिस तरह गंदगी का आप घोर विरोध कर रहे हैं, और गावों की सफाई में ही ग्राम-सेवकों को पूर्णरूप से लगा रहे हैं, उसी तरह तमाम सार्वजनिक स्थानों में होनेवाले हुल्लड़ों के खिलाफ आप आवाज क्यों नहीं उठाते ? जनता की शिक्षा में जैसे आरोग्य-विद्या का एक स्थान है, वैसे ही रवर-विद्या का भी होना चाहिए। क्या मैं आपसे कह सकता हूँ कि इस विषय में आप कम दोषी नहीं हैं ? मैंने कई बार लिखा है कि आप अनावश्यक ऊंची आवाज को बर्दाश्त कर लेते हैं, जिससे आपके स्वास्थ्य को भी गहरा धक्का लगता है, और जनता को भी हानि पहुँचती है।"

इस दोष को मैं कबूल करता हूँ। पर इस पत्र को 'हरिजन-सेवक' में स्थान देने का कारण इस दोष की स्वीकृति ही नहीं थी। अध्यापकों और संस्थाओं के संचालकों को सावधान करने के लिए मैंने इस पत्र को यहां उद्धृत किया है। इस दोष को दूर करने के लिए ये लोग चाहें तो काफी प्रयत्न कर सकते हैं। रेल-गाड़ियों में भी लोग बहुत शोरगुल मचाते हैं। इसे दूर करना बहुत जरूरी है। इस संबंध में मुझे सिक्खों के जलसों का स्मरण आता है। अगर कभी उनके जलसों में शोरगुल होने लगता है, तो कोई एक व्यक्ति व्याख्यानमंच पर खड़ा होकर एक लंबे बांस में लटकती हुई तख्ती चारों ओर घुमाता है, जिसपर 'जोर से न बोलिए', 'शांति शांति' ऐसे कुछ वाक्य बड़े-बड़े अक्षरों में लिखे रहते हैं। इसी तरह की कोई तरकीब रेलगाड़ी आदि में हम भी कर सकते हैं।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

एक अटपटा सवाल

जबसे कत्तिनों की मजदूरी की दर बढ़ाने की बात उठी है, तबसे खादी-प्रेमियों के मन में तरह-तरह की व्यर्थ की शंकाएँ पैदा होने लगी हैं। मसलन, उन्हें ऐसा लगता है कि खादी की कीमत चढ़ जाने से उसकी खपत कम हो जायगी। पर मैं यह आशा कर रहा हूँ कि खादी की कीमत का थोड़ा बढ़ाना आवश्यक है इसका लोग समर्थन ही करेंगे। आजतक चर्खा-संघने असाधारण प्रयत्न करके खादी की कीमत बराबर घटाते रहने का जो ध्येय रखा है उससे लोगों को लाभ ही हुआ है। खादी आज जितनी सस्ती है उतनी कभी नहीं थी। फिर भी प्रचार-कार्य न होने के कारण खादी की बिक्री कम हो गई है। यदि व्यवस्था-खर्च बढ़ाये बिना कुछ बाकायदा प्रचार-कार्य होता रहे, तो मुझे इस बात में तनिक भी संदेह नहीं कि कीमत बढ़ जाने पर भी खादी की बिक्री बढ़ सकती है।

किंतु हमें बुरी-से-बुरी स्थिति के लिए पहले ही से तैयार रहना चाहिए। चर्खा-संघ को, खादी की खपत घट जाने के डर से, कत्तिनों के प्रति न्याय करने से मुहँ नहीं मोड़ना चाहिए। अगर आवश्यक हो तो कत्तिनों की सूची से उन बहिनों के नाम निकाल दिये जायँ, जिन्हें अपने पेट के लिए कातने की जरूरत नहीं पड़ती। कत्तिनों में हजारों नहीं तो सैकड़ों स्त्रियां तो ऐसी जरूर होंगी, जो नाज-पानी वगैरा खरीदने के लिए नहीं, बल्कि तमाखू, चूड़ियां या इसी तरह की दूसरी चीजें बिसाहने के लिए कातती होंगी। अगर जरूरत आ पड़े तो इन स्त्रियों से यह कहा जा सकता है कि उन्हें उन कत्तिनों की प्रतिस्पर्धा में नहीं आना चाहिए जिन्हें अपने पेट के लिए पैसे की जरूरत है। कत्तिनों का बहुत बड़ा भाग तो अन्न के लिए कातनेवालियों का है। इसलिए खादी-सेवकों के आगे तो चर्खा-संघ की योजना की दृष्टि से केवल गरजवाली कत्तिनों को ही ढूढ़ निकालने का प्रश्न है। जो छोटे-छोटे किसान मजदूरों-द्वारा खेती-पाती का कार्य कराते हों और जिन्हें साधारण रीति से अन्नवस्त्र की तंगी न पड़ती हो, और खाने-पीने की चीजें खरीदने के लिए जिन्हें अपनी जमीन या दूसरी मिलकियत बेच डालने की जरूरत न पड़ती हो उनका इस परिभाषा में समावेश नहीं होता। मगर जिनके पास न जमीन है न कोई जायदाद, और जिन्हें चर्खा-संघ या ग्रामउद्योग-संघ काम न दिलावे तो अधपेट रहना या भूखों मरना पड़ता हो, उन मजदूरों को कातने या कताई के सिलसिले का कोई भी काम दिला देने का प्रयत्न संघ अवश्य करेगा; और उन मजदूरों को यह विश्वास दिलायगा कि रोज के आठ घंटे के काम के हिसाब से उन्हें कम-से-कम पेट भरनेलायक मजदूरी दी जायगी। हां, जो स्त्री-पुरुष किसी दूसरी तरह गुजर करते होंगे उनकी फिक्र ये संघ नहीं करेंगे। इसका कारण यह नहीं कि उनमें इच्छा का अभाव है, बल्कि इसमें उनकी केवल असमर्थता ही समझिए। इन संघों को अगर अपने कार्य में पूरी सफलता मिल गई तो वे अपना उद्देश पूरा कर लेंगे। और इतना ही नहीं, बल्कि अप्रत्यक्ष रीति से दूसरे तमाम गरीब-मनुष्यों की सहायता और उनके घोर निराशामय जीवन में वे उज्ज्वल आशा का संचार करेंगे।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

तीन प्रश्न

बारी, कटक, से श्री गोपबन्धु चौधरीने नीचेलिखे तीन प्रश्न पूछे हैं —

"१—वस्त्र-स्वावलंबन में अतिरिक्त खादी की क्या कीमत होनी चाहिए ?

२—यदि किसी ग्रामवासी के पास रुई हो, पर घर में उसके कुटुंब की जरूरतभर का सूत कात देनेवाले न हों, और अपने कुटुंब की जरूरतलायक सूत उसे अपने गांव की या अड़ोस-पड़ोस के गांव की कत्तिनों से कताना हो, तो उस कताई की मजदूरी की दर क्या होनी चाहिए ? तिजारती खादी के लिए कम-से-कम पेट भरनेलायक मजदूरी का जो नियम बनाया गया है, वह क्या यहां लागू हो सकता है ? या यहां कातने और कतानेवाले आपस में कताई की दर निश्चित कर सकते हैं ?'

३—किसी कातनेवाली स्त्री के पास अगर अपनी रुई न हो और वह जीविका के लिए मजदूरी में मिलनेवाले नकद पैसे-टके के लिए नहीं, बल्कि रुई के लिए—और वह भी अपने कपड़ों की जरूरतभरके सूत के लिए—अगर कातती हो। तो उस हालत में मजदूरी की क्या दर होनी चाहिए ?"

चर्खा-संघ के मारफत आनेवाली अतिरिक्त खादी की उतनी ही कीमत होनी चाहिए, जितनी कि उस प्रांत की अन्य किसी भी खादी की हो सकती है। अभी तो शहरों की जरूरतभर की खादी को छोड़कर अधिकांश खादी जिस प्रांत में बनती है उसकी बिक्री उसी प्रांत में होगी, इसलिए अलग-अलग प्रांतों की खादी की कीमत में जितना अंतर आज है शायद उससे अधिक अंतर

पड़ जायगा। किंतु अतिरिक्त खादी और दूसरी किसी किस्म की खादी के बीच तो कुछ अंतर हो ही नही सकता। असल में अभी तो बिक्री की तमाम खादी अतिरिक्त खादी ही होगी, क्योंकि जो स्त्री या पुरुष नख से शिखतक खादी धारण करनेवाला नही है उसके यहां से चर्खा-संघ या उसकी कोई भी शाखा खादी लेगी ही नही। हां, संधि-काल मे इस नियम को अवश्य कुछ ढीला करना पड़ेगा।

ऊपर के इस पहले प्रश्न के उत्तर के अनुसार इसमे सदेह नही कि जहांतक चर्खा-संघ का सम्बन्ध है, वहांतक उसे सब कत्तिनों को एकसमान ही मजदूरी देनी चाहिए। पर कत्तिनों के अपने आपस के व्यवहार मे चर्खा-सघ दखल नही देगा। उन्हें अपना आपसी व्यवहार एक दूसरे से मिलकर खुद ही तय कर लेने देना चाहिए। यही एक नीति है। दूसरी कोई भी नीति असफल हुए बिना न रहेगी।

पहले दो प्रश्नो के संबंध मे जो सिद्धात लागू होते है वही तीसरे प्रश्न के विषय मे भी लागू होंगे। याद तो यह रखना है कि जहा सघ का अपना सबध है वहा कम-से-कम पेट भरनेलायक मजदूरी दिलाने की उसपर जिम्मेदारी है। उसकी नीति अगर लोकप्रिय और व्यापक हो जाय, तो इसमे सदेह नही कि किसीके भी लिए यह असभव नही तो कठिन तो अवश्य होगा कि वह कम मजदूरी देकर किसी मजदूर या कारीगर से काम करा सके। और सभवत: चर्खा-संघ और ग्रामउद्योग-सघ का पारस्परिक सहयोग इतना प्रबल हो जाय कि दूसरे हरेक खाते में मजदूरी की दर एकदम बढ़कर इन संघों-द्वारा निश्चित पैमानेतक पहुँच जाय। खरीदारो की हार्दिक जिम्मेदारी पर इस प्रयत्न की सफलता निर्भर करती है। अगर वे यह महसूस कर लेगे कि अब उन्हे उन गरीब ग्रामवासियो को, जिनपर कि उनका जीवन निर्भर कर रहा है, और अधिक शोषण नही करना चाहिए, तो बेकारी और अधपेट रहकर भूखो मरने का सवाल आप ही हल हो जायगा।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

सोया बीन

यह मालूम हुआ है कि सोयाबीन को हम किसी भी छीमी की तरह समूची ही पकाकर खा सकते है। बरोदा के श्रीनरहरि भावे, जिन्होने अपने तीनों सुयोग्य और साधुमना सुपुत्रा—विनोबा, बालकृष्ण और शिवाजी—को देश की सेवा में अर्पित कर दिया है, स्वय प्रत्येक वस्तु का खूब ध्यान से अवलोकन करते है। उनकी ६१ वर्ष की अवस्था है। वे अधिकतर केवल दूध और ६ आउन्स सोया बीन खाकर रहते हैं, और उनका स्वास्थ्य खूब अच्छा है। शक्ति भी शरीर मे पूरी है। उनकी यह राय है कि उनकी कोष्ठबद्धता दूर करने मे सोयाबीनने अच्छी सहायता दी है। केवल दूध, अथवा अनाज और सब्जी के साथ दूध से उनकी कोष्ठबद्धता की शिकायत दूर नही हो सकी थी। उनकी यह भी राय है कि आफरा की शिकायत दूर करने में भी सोयाबीनने उन्हे मदद दी है, जो कि दूसरी दालों या दूध से पैदा हो गई थी। इस परिणाम पर वे दस महीने से ऊपर के अखंड अनुभव के बाद पहुँचे है। यहां मैं इतना और बतलादूं कि श्री भावे को गठिये और मुटापे की भी शिकायत रहती थी, और कुछ मधुमेह के चिन्ह भी मालूम होते थे। केवल आहार पर ठीक-ठीक ध्यान देने से ही उनकी ये तीनों शिकायतें दूर हो गईं। श्री भावे की देखादेखी मगनवाड़ी के निवासी—जिन में मै भी शामिल हूँ—पिछले कुछ दिनो से सोयाबीन का परीक्षण कर रहे हैं। इतनी जल्दी हम उसपर अपनी कोई राय कायम नही कर सकते। हरेक व्यक्ति को नित्य एक कलछुलभर यह स्वादिष्ट फलाहार मिलता है। सोयाबीन को इस तरह पकाते हैं—कूड़ा-करकट वगैरा बीनकर साफ की हुई छीमियो को ठंडे पानी में धोकर कम-से-कम बारह घटे तक भीगने दीजिए—पर अठारह घटे से अधिक नही। फिर वह पानी फेंक दीजिए। इसके बाद खौलते हुए पानी में छीमियों को डालकर तेज आच पर पद्रह मिनिट उसन दीजिए। उसते समय उनमे नमक या सोडा न मिलाया जाय। बाद को नमक मिला सकते है। मगनवाड़ी में तो हम छीमियो को दो घटे बफाते है।

गरीब मनुष्यो की दृष्टि से जो लोग आहार-सुधार मे रस लेते है, उन्हे इस प्रयोग की परीक्षा करनी चाहिए। यह याद रखना चाहिए कि सोयाबीन एक अत्यत पौष्टिक आहार है। जितने खाद्य पदार्थों का हमे पता है उनमें सोयाबीन सर्वोत्कृष्ट है, क्योंकि उसमे कार्बोहाइड्रेट की मात्रा कम और क्षारो, प्रोटीन तथा चर्बी की मात्रा अधिक होती है। शक्ति का परिमाण उसका प्रति पाउण्ड २१०० कैलोरी* (Calory) होता है, जहा गेहूँ का १७५० और चने का १५३० होता है। सोयाबीन मे ४० प्रतिशत प्रोटीन, और २०.३ प्रतिशत चर्बी होती है, जहा चने में १९ प्रतिशत प्रोटीन और ४.३ प्रतिशत चर्बी, तथा अडे में १४.८ प्रतिशत प्रोटीन और ४.३ प्रतिशत चर्बी होती है। अत: प्रोटीन तथा चर्बीदार सामान्य भोजन के अलावा सोयाबीन को नही खाना चाहिए। इसीसे गेहूँ और घी की मात्रा कम कर देनी चाहिए, और दाल को तो एकदम निकाल देना चाहिए, क्योकि सोयाबीन खुद ही एक अत्यत पौष्टिक दाल है। हम लोग अभी मंचूरियन जाति की सोयाबीन का परीक्षण कर रहे है। बरोदा की छीमियों की हमने परीक्षा नही की। मगनवाड़ी मे सोयाबीन की हमने खुद अपनी काश्त की है। मुझे आशा है कि ज्योंही इसकी भारतीय जातिया मेरे देखने मे आयेंगी मैं उनके गुण के संबध मे लिखूंगा। जिनके पास इसकी भारतीय किस्मे हो, वे कृपाकर मुझे उनके नमूने, मय कीमत के, भेजदें।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

(२७५ वे पृष्ठ से आगे)

प्रत्येक त्याग को विलास में परिणत कर देने के लिए तैयार रहता है। सन्यास आश्रम, जो सर्वोच्च त्याग का द्योतक है, आज अनेको के लिए आलस्य और विलास का बड़े-से-बड़ा साधन बन गया है।

तुम्हारे प्रेम-पूर्ण सेवा-कार्य को भगी भाई भी धीरे-धीरे समझ जायँगे। तुम्हे उन्हें समझाना चाहिए कि तुम उनका काम हथियाना नही चाहते, बल्कि उनकी योग्यता में सुधार करना चाहते हो। उनके लिए आमदनी के कुछ और भी जरिये तुम्हे ढूढ निकालने चाहिए।

तुम्हे इसीसे तो दुखी होने की जरूरत नही कि मेरा हाल का यह त्याग एक गहरे दु:ख का कारण था। मेरा वह दु:ख आनन्द का हेतु था; और ऐसे दु:खो का होना तो अनिवार्य्य है।"

---

* यह 'हीट' अर्थात् ताप की इकाई है, और भिन्न-भिन्न खाद्य पदार्थों में भिन्न-भिन्न परिमाण में पाई जाती है। १ पाउण्ड से २१०० कैलोरी मिल सकती हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि वह उतने ताप का उत्पादन कर सकता है। —सम्पादक

लड़ाई !

लड़ाई बेत ही गई, यद्यपि घबराया हुआ जगत् अब भी देख रहा है कि क्या होनेवाला है।

जिन लोगोंने लड़ाई प्रत्यक्ष नहीं देखी, उन्हें युद्धविषयक प्रसिद्ध पुस्तक 'आल क्वाइट ऑन दि वेस्टर्न फ्रण्ट'* में लड़ाई का रोमांस-जैसा इतना स्पष्ट चित्र दिखाई देता है कि रुलाई-सी आने लगती है, असह्य मानसिक वेदना होने लगती है। टॉलर, जो जर्मनी की तरफ से लड़ा था, जब अपंग हो जाने से लड़ाई के अयोग्य हो गया, तब उसने युद्ध के विरुद्ध आवाज उठाई, और इस अपराध पर जेल में उसे लम्बी-लम्बी सजाएँ भोगनी पड़ी। अपनी 'आत्म-कथा' में युद्ध के उसने इतने बुरे और घृणोत्पादक चित्र अंकित किये हैं कि उन्हें कोई अच्छा बता ही नहीं सकता।

एक जगह उसने लिखा है :—

"हरा-भरा जंगल एक आबाद राष्ट्र के समान है। और ऊजड़ जंगल उस राष्ट्र के समान है, जिसका कत्लेआम कर दिया गया हो। अंगभंग ठूठ सारे दिन योंही ताका करते हैं। रात्रि भी उन्हें अपनी दया की चादर में नहीं छिपाती; और हवा भी उनके प्रति निठुर और प्रतिकूल ही रहती है।

यूरोप के एक ऐसे ही विध्वस्त स्थान में फ्रांस और जर्मनी की युद्ध की खाइयां खुदी हुई थीं। हम लोग एक दूसरे के इतने अधिक पास-पास थे कि कमरकोटे के ऊपर अगर हम अपने सिर निकालकर खड़े हो जाते, तो एक दूसरे के साथ बिना आवाज बाहर निकाले बड़े मजे में बातें कर सकते थे।

उन ओछी खाइयों के अंदर किसी कदर जल्दी से सिमटकर हम लोग सो जाते थे। खाइयों की कगारों में पानी चूता रहता था, और चूहे हमारी दाढ़ी कुतरा करते थे। और वह सोना क्या था, किसी तरह रात गुदराम करना था। कभी घर के सपने आते थे, कभी लड़ाई के, और इसमें रह-रहकर आंख खुल जाती थी। आज हम दस आदमी हैं, कल शायद सिर्फ आठ ही रह जायँ। हम अपने मुर्दों को दफनाते नहीं थे। हमारे आराम करने के लिए खाई की दीवार में जो छोटे-छोटे ताखे काट दिये गये थे, उन्हींके अंदर हम अपने मुर्दों को ठूंस-ठांस देते थे। खाई के नीचे जब मैं अपना सिर नीचा किये फिसलता और सरकता हुआ जाता था, तब मुझे यह पता नहीं चलता था कि जिन मनुष्यों में होकर मैं गुजर रहा हूँ वे मुर्दा हैं या जिंदा! उस नरक-कुंड में, मुर्दा हो या जिंदा, सभी के चेहरे एक ही से सफेद व पीले-पीले भयावने दिखते थे।

किसी पेड़ के ठूठ में मांस के लोथरे लगे देखकर ही पता चलता था कि यहां कोई मनुष्य मर गया है—शरीर के तो अकसर टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे।

या अगर किसी खदानने खाई का कोई हिस्सा भसका दिया तो खुद ही वहां कब्र खुद जाती थी।

हमारी दाहिनी ओर तीन सौ गज के फासले पर, उस 'काल्ड्रेन' में, एक उपरोध-गृह था, जिसपर बीस बार जर्मनोंने और बीस बार फ्रांसवालोंने कब्जा किया था। तमाम मरे हुए सिपाहियों का एक भारी ढेर लगा दिया गया था। बड़ी सड़ी दुर्गन्ध आती थी। लाशों के ऊपर पतला-पतला सफेद चूना बिछा दिया गया था।

एक रात को हमें वहां एक अत्यन्त वेदना का क्रन्दन सुनाई दिया। और फिर सब शान्त हो गया। हमने सोचा कि शायद कोई मृत्यु-यन्त्रणा भोग रहा होगा। पर एक घंटे के बाद वह वेदना का क्रन्दन फिर सुनाई दिया। सारी रात वह कराहने की आवाज आई। और दूसरी रात भी वही हाल। अस्पष्ट आवाज थी। मालूम नहीं, वह किसी जर्मन सिपाही के गले से निकल रही थी या किसी फ्रेंच सिपाही के। हमने अपने-अपने कान अपनी उँगलियों से बन्द कर लिये, ताकि वह मर्मभेदी वेदना का क्रन्दन न सुनाई दे। पर व्यर्थ था यह। वह वेधक आवाज तो बराबर आ ही रही थी। हमारा एक-एक मिनिट एक-एक घंटे की तरह, और एक-एक घंटा एक-एक बरस की तरह कट रहा था।

मैं खाई में उठकर खड़ा हो गया, और अपनी कुदाली में मिट्टी हटाने लगा। कुदाली किसी चीज में जा लगी, और मैंने उसे एक झटके से खींच लिया। किसी लसलसी-सी चीज की पोटली-सी मालूम हुई। और जब मैं देखने को नीचे झुका, तो मैंने देखा कि मेरी कुदाली में किसी मनुष्य की अन्तड़ियां लिपटी हुई हैं। अरे, यह तो कोई मुर्दा आदमी गड़ा हुआ था।

एक—मृत—मनुष्य

एक—मृत—मनुष्य

और यकायक अंधकार में प्रकाश की तरह, वास्तविक सत्य मेरे अन्तर की आंखों के आगे आ गया। मनुष्यात्मा इस सीधे से सत्य को मैं भूल गया था—मानवता का, सर्वात्मैक्य का विचार मैं एकदम भूल गया था, मनुष्यात्मा का विचार मेरी दृष्टि के एकदम ओझल हो गया था।

एक मृत मनुष्य—

मृत मनुष्य न फ्रान्स का मनुष्य है,

मृत मनुष्य न जर्मनी का मनुष्य है,

एक मृत मनुष्य है।

ये तमाम लाशें मनुष्य थीं, मनुष्य; ये सब लाशें उसी तरह सांस लेती थीं, जिस तरह कि मैं ले रहा हूँ; इन मृत मनुष्यों के भी वैसे ही माता-पिता थे, जैसे कि मेरे हैं। ये सब मृत मनुष्य भी किसी-न-किसी स्त्री को प्यार करते थे। इनके पास भी अपना-अपना जमीन का टुकड़ा था। इनके चेहरों पर भी कभी आनन्द और कष्ट मेरी ही तरह झलकता था। इनकी आंखों में भी दिन की प्रकाश-रेखा और आकाश की नीलिमा चित्रित होती थी। उस सत्य-साक्षात्कार के समय मैंने देखा कि इतने दिन मैं इसीलिए अंधा बना रहा कि मैंने घट-घट में रमनेवाली एक ही मनुष्यात्मा देखने की कभी इच्छा ही नहीं की। यह परम सत्य तो उसी क्षण मेरे सामने आया कि तमाम मनुष्य, चाहे वे फ्रान्स के हों चाहे जर्मनी के, भाई-भाई हैं, और मैं उन सबका भाई हूँ।

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

* मूल पुस्तक जर्मन भाषा में है, और इसका यह अंग्रेजी अनुवाद है। इसकी लाखों प्रतियां बिक चुकी हैं। इसमें यह दिखाया है कि लड़ाई के ढोल दूर से ही सुहावने लगते हैं, जिन्हें उसमें भाग लेना पड़ता है उनके लिए तो वह नरकयात्रा का काम करती है। पढ़नेवाले को लड़ाई से घृणा होने लगती है। इसीलिए हिटलरने जर्मनी में इसका प्रचार रोक दिया है। संपादक

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi, by R. S. Gupte.

नहीं, यह पैबंदगिरी नहीं है

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक' किंग्सवे, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥। एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शनिवार, १९ अक्तूबर, १९३५. [संख्या ३५

विषय-सूची

दुर्भाग्य की बात है

[असोसियेटेड प्रेस का निम्नलिखित तार पाकर गांधीजीने नीचेलिखा वक्तव्य दिया है—म० ह० दे०]

अ० प्रे० का तार

"नासिक में, कल शाम को बंबई प्रांतीय दलित जातीय परिषद् में भाषण देते हुए, डा० अंबेडकरने हरिजनों के प्रति किये गये सवर्ण हिंदुओं के बर्ताव का बड़े मर्मवेधी शब्दों में वर्णन किया और कहा कि, 'हमें अब यह समता प्राप्त करने की लड़ाई बंद कर देनी चाहिए। चूंकि दुर्भाग्य से हम अपने को हिंदू कहते हैं, इसीलिए हमारे साथ आज ऐसे-ऐसे बर्ताव होरहे हैं। यदि हम किसी दूसरे मजहब के अनुयायी होते तो कोई इस तरह के बर्ताव करने का साहस न करता।' उन्होंने कहा कि, 'आपलोग अपने लिए ऐसा कोई भी नया धर्म चुन सकते हैं, जो आपको बराबरी का दर्जा देकर आपके साथ समता का बर्ताव करे।' अंत में, उन्होंने यह कहा कि, 'मुझे अछूत पैदा होने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है, पर इसमें मेरा कसूर नहीं। मैं हिंदू रहकर मरूँगा नहीं, क्योंकि यह मेरी शक्ति के भीतर है।' डॉ० अंबेडकर की सलाह से परिषद्ने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास किया कि दलित जातियों को हिंदूधर्म से एकदम संबंध-विच्छेद करके किसी भी ऐसे धर्म को ग्रहण कर लेना चाहिए, जो उन्हें उनके अन्य सहधर्मियों की बिल्कुल बराबरी का दर्जा देता हो और उनके साथ समान बर्ताव करने को तैयार हो।

डा० अंबेडकर के भाषण तथा दलित जातीय परिषद् के इस प्रस्ताव पर कृपया महात्माजी की राय तार-द्वारा भेजिए।"

गांधीजी का वक्तव्य

'मुझे तो विश्वास नहीं होता कि डॉ० अंबेडकरने ऐसा भाषण दिया होगा। लेकिन अगर डा० अंबेडकरने ऐसा भाषण दिया है और दलित जातीय परिषद्ने इस आशय का प्रस्ताव पास किया है कि उन्हें हिंदूधर्म से अपना नाता एकदम तोड़कर किसी भी ऐसे धर्म को ग्रहण कर लेना चाहिए, जिसमें उन्हें बराबरी का अधिकार मिलता हो, तो मैं इन दोनों को ही बड़े दुर्भाग्य की बात मानता हूँ। खासकर ऐसे अवसर पर, जबकि, एक-दो विपरीत घटनाओं को छोड़कर, कुल मिलाकर अस्पृश्यता अपनी अंतिम साँसें गिन रही है। कावीठा तथा दूसरे गांवों में हरिजनों के प्रति जो अत्याचार हुए हैं, उनपर डॉ० अंबेडकर-जैसे उच्च आत्मावाले और उच्च शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति का नाराज होना मेरी समझ में आ सकता है। किंतु धर्म तो वह बंधन है जो मनुष्य को उसके सिरजनहार के साथ संबंधित करता है, और इस नाशवान शरीर के नष्ट हो जाने पर भी धर्म तो मृत्यु के बाद भी बना रहता है। अगर डॉ० अंबेडकर की ईश्वर में श्रद्धा है, तो मैं उनसे अनुरोध करूंगा कि वे अपने रोष को दूर करके शांति के साथ इस पर फिर से विचार करें, और अपने पूर्वजों के धर्म की परीक्षा उसके गुण-दोषों की दृष्टि से करें, न कि उसके अश्रद्धालु अनुयायियों की कमजोरी से। अंत में, मैं यह कहूंगा कि मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि डॉ० अंबेडकर अथवा इस प्रस्ताव को पास करनेवालों के धर्मान्तर कर डालने से उनका ध्येय पूरा होने का नहीं। कारण यह है कि लाखों सीधे-सादे अपढ़ हरिजन डॉ० अंबेडकर तथा इस प्रस्ताव को पास करनेवालों की बातों पर ध्यान नहीं देंगे, जबकि वे अपने पूर्वजों का धर्म त्याग चुके होंगे, खासकर जब कि हम यह जानते हैं कि चाहे भलाई के लिए हो चाहे बुराई के लिए, हरिजनों का जीवन सवर्ण हिंदुओं के जीवन के साथ ओतप्रोत है।"

घर-घर बुनाई की सुंदर कला

श्री एच० एफ० सम्मनने सन् १८९७ में आसाम के वस्त्र-उद्योग विषय पर जो लेख लिखा था, उसमें वे लिखते हैं —

"एक छोर से लेकर दूसरे छोरतक तमाम ब्रह्मपुत्रा-घाटी में घर-घर बुनाई का काम होता है। पर वहां यह कार्य लोगों का पेशा नहीं है, और सच पूछिए तो वहां का यह उद्योग भी नहीं। अमीर घराने की हो, या गरीब घराने की, ऊँच जाति की हो या नीच जाति की वहां स्त्रियां और सयानी लड़कियां घर-घर बुनाई का काम करती हैं। आसाम-निवासियों में कपड़ा बुनना तो कन्या-शिक्षा का एक अंग हो गया है। स्त्रियां इसे भी गृहस्थी का एक साधारण काम-काज मानती हैं। हरेक कुटुंब की स्त्रियों से वहां यह आशा की जाती है कि वे खुद अपने लिए तथा घर के पुरुषों के लिए तो कपड़े बुन ही लेंगी। पहले सचमुच होता भी यही था, पर धीरे-धीरे अब हवा का रुख बदलता जा रहा है। अमीर घरानों की स्त्रियोंने रोजमर्रा के पहनने का मामूली कपड़ा

बुनना छोड़ दिया है। अब तो वे रेशम या सोने-चांदी के तारों की सुंदर बेल-बूटेदार किनारियों की बढ़िया साड़ियां ही अपने लिए बनाती हैं। मध्यम वर्ग के स्त्री-पुरुष भी अब बाहर का बना कपड़ा पहनने लगे हैं। और आज बुनाई का काम उन वर्गों में बहुत ही गिरी हुई हालत में है। रहे गरीब आदमी, सो वे अबभी अधिकांशतः अपना कपड़ा खुद ही बुनते हैं, क्योंकि उन्हें विदेशी माल खरीदना पुसा नहीं सकता, और ज्यादातर अपने हाथ का बनाया कपड़ा वे पसंद भी करते हैं।

पर इससे यह अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि पुराने जमाने की अपेक्षा आजकल बुनाई के हुनर की तरफ लोगों का बहुत ही कम ध्यान है। नहीं, स्त्रियों के ऊँचे-से-ऊँचे गुणों में बुनाई का यह कला-कौशल आज भी एक उत्कृष्ट गुण माना जाता है। इस कला में जिसने निपुणता प्राप्त करली, उसकी घर-घर बड़ाई होती है। सचमुच कताई और बुनाई के कला-कौशल से ही स्त्रियों के प्रायः सभी गुणों का अंदाजा लगाया जाता है। जब सगाई की बात चलती है, तब सब से पहला प्रश्न यह पूछा जाता है कि 'लड़की कताई और बुनाई में निपुण है न ?' और आशा की जाती है कि अगर वह सचमुच निपुण है तो लड़की के मातापिता उसके हाथ के बनाये कुछ कपड़े लाकर वरपक्षवालों को अवश्य दिखायँगे। दहेज में खुद अपने हाथ का बुना और फूलपत्ती काढ़ा हुआ कपड़ा तो होना ही चाहिए।

पहाड़ी जातियों में तो बुनाई के काम की अब भी वैसी ही स्थिति है। गारो हिल्स के डिपुटी कमिश्नरने लिखा है कि यहां तो जैसा रसोई का काम, वैसा ही बुनाई का काम।

"पर सरमा-घाटी का हाल दूसरा है। बाजारों में तमाम बाहर का कपड़ा पटा पड़ा है, यहां के कपड़े को अब कोई नहीं पूछता। दिसावरी माल का असर ब्रह्मपुत्रा घाटी और पहाड़ी जातियों पर जो नहीं पड़ा उसके ये दो मुख्य कारण हैं। पहिली बात तो यह है कि यहां बुनाई का काम एक गृहस्थी का धन्धा माना जाता है और उसे सिर्फ स्त्रियां ही करती हैं। इसलिए मजदूरी का खर्चा, कपड़े की लागत का हिसाब लगाते समय, असल में कभी जोड़ा ही नहीं जाता। आसामी स्त्रियां अपना घर-गृहस्थी का काम-काज कर चुकने के बाद अगर बुनाई का काम न करें तो हाथ-पर-हाथ धरे ही बैठी रहेंगी। पैसे के लिए वे दस्तकारी का काम करेंगी नहीं और करघे को छोड़कर उनके पास मन-बहलाव का कोई और साधन नहीं। इसलिए बुनाई का काम इतना मेहनत का काम नहीं जितना कि मन-बहलाव का है। इसलिए उसमें जितना समय लगता है उसे कपड़े का दरदाम लगाते समय हिसाब में लिया ही क्यों जाय ? पर इस उद्योग को जीवित रखने में अकेली किफायतसारी का ही हाथ नहीं, यह भी बात है कि अपने घर की बनी चीज में आकर्षण होता ही है। कला का मूल्य भी तो कोई वस्तु है। गृहस्थी के नित्य के काम-काजों में ऐसे-ऐसे उद्योग जीवन-शक्ति कायम रखने के साधन हैं। और आसाम की बुनाई की कला इसका अपवाद नहीं।

विदेशी कपड़ा यहां के कपड़े की प्रतिस्पर्धा में आना चाहे तो दूसरी भी एक रुकावट है और वह पहली से भी बड़ी है। आसाम में जो कपड़े बनते हैं उनमें अनेक कपड़े खास-खास तरह के होते हैं। सचमुच इसमें सन्देह ही है कि मशीनों से यह कपड़े कहां तक बन सकते हैं।

फिर पहाड़ी जातियों की तो बात ही निराली है। न सिर्फ एक जाति के कपड़े दूसरी जातियों से बिल्कुल ही नहीं मिलते, बल्कि कुछ-कुछ जातियों में तो बहुत थोड़े लोग ऐसे मिलेंगे जो एक-सी पोशाक पहनते हों। नागा लोगों में हरेक ग्राम या ग्राम-समूह उसके कपड़ों के रंग से या कपड़ों की खास धारियों से पहचाना जाता है। खाम्प्टियों में भी पहाड़ी जाति का हरेक विभाग एक जुदे ही ढंग की लुंगी पहनता है। खास-खास किस्म का कपड़ा पहननेवाले लोगों की संख्या इतनी कम है कि हरेक जाति के लिए विदेशी व्यापारी अगर अलग-अलग कपड़ा बनाने बैठे तो उसका कभी पूरा ही नहीं पड़ेगा।

इसलिए जबतक ये पहाड़ी जातियां अपने देश की पोशाक छोड़ नहीं देतीं, तबतक निश्चय ही यहां बुनाई की कला ऐसी ही हरियाली रहेगी। मगर पहाड़ियों के जो बाशिंदे मैदानों में जाकर बस गये हैं, उन्होंने करीब-करीब बिल्कुल ही अपने देश की पोशाक छोड़ दी है। और यही झुकाव उन लोगों का भी है, जो पहाड़ी इलाकों से उतरकर नीचे मैदान के पास की बस्तियों में रहते हैं, या महज वहां आते-जाते हैं। आजकल गारो पहाड़ियों में तो आप जहां एक आदमी को खरवा कपड़ा पहने देखेंगे वहां दस आदमियों को मशीन के बने कपड़ों में पायँगे।"

ये पंक्तियां करीब ८० बरस पहले लिखी गई थीं। चर्खा-संघ के प्रयत्नों के होते हुए भी, इसमें सन्देह नहीं कि हालत तब से आज बदतर ही दिखाई देती है। पर कौन कह सकता है कि आज से ८० साल बाद हालत क्या-से-क्या हो जायगी ? आसाम के कार्यकर्त्ता शायद कह सकेंगे क्या ?

[अंग्रेजी से] वालजी गोविन्दजी देसाई

गुजरात में हरिजन-कार्य

[३]

दाहोद—यहां का हरिजन-कार्य विस्तार में तो अधिक नहीं, पर खासा ठोस देखने में आया। यहां कुछ हरिजन मामलतदार और मुंसिफ की कचहरियों में नौकर रख लिये गये हैं। एक तो गांव का तलाटी हो गया है। और दस-बारह बुनकर साग-भाजी की फेरी लगाने लगे हैं। गुजरात के लिए यह बात मामूली नहीं कही जा सकती। गांव की प्राथमिक कन्या-पाठशाला में बुनकर और भंगियों की लड़कियां बिना किसी प्रकार के भेद-भाव के अन्य लड़कियों के साथ बैठ सकती हैं। बालकों के लिए चौथे दरजेतक की यद्यपि अभी यहां अलग प्राथमिक पाठशाला है, तो भी चौथे दरजे के ऊपर के हरिजन बालक सामान्य पाठशाला में सब के साथ बैठ सकते हैं। एक छोटे-से और पिछड़े हुए शहर के लिए यह खासी अच्छी प्रगति कही जा सकती है।

म्यूनिसिपैलिटी के मलाजिम भंगियों को यहां सिर्फ सात रुपये मिलते हैं। यह बहुत कम वेतन है। इसलिए उन्होंने कमेटी को यह दरखास्त दे रखी है कि अगर तीन महीनेतक हमारे वेतन में उचित वृद्धि न की गई और हमारी अन्य शिकायतें दूर न की गईं, तो हम लोग काम छोड़ देंगे। तीन महीने की यह अवधि आधे अक्तूबर में पूरी होगी। इस संबंध में मैंने म्यूनिसिपैलिटी के मेंबरों से चर्चा की, और उनसे यह आग्रहपूर्वक कहा कि भंगियों की यह मांग बेजा नहीं है, और उन्हें जरूर संतोष दिलाना चाहिए।

यहां आठेक साल से म्यूनिसिपैलिटी के तमाम मुलाजिमों

की—क्लर्कों, अध्यापकों और भंगियों की—एक संयुक्त सहकारी समिति है। काम इसका अच्छा चल रहा है। एक बार भंगियो का तमाम देना पटवा दिया गया था। पर इधर कर्ज में वे फिर फँस गये हैं। पठानो से कर्ज ले बैठे है—चार आना माहवारी अथवा ३०० प्रतिशत सालाना सूद पर! उन्हे फिर से ऋणमुक्त कराने के संबंध में भी चर्चा की, और उन्होने यह वचन दिया कि अब आइंदा हम कभी पठानो से कर्जा नही लेगे, और न दारू ही पियेंगे।

ढबगरों के यहा करीब ६० और बुनकरो के १५ घर हैं। ढबगर लोग गावो से कच्चा चमड़ा खरीदकर बड़े-बड़े व्यापारियों के हाथ बेचने का काम करते हैं। उसे वे रगते नही, सिर्फ बीच की दलाली का ही धधा करते है। बुनकर भी कपड़ा वगैरा नही बुनते। कुछ तो मजदूरी करते है और कुछ साग-भाजी की बगीचियो मे साग वगैरा लाकर शहर मे फेरी लगाते है।

भील-सेवा-मडल को काम करते आज १३ बरस हो गये है। मण्डल के कार्यकर्त्ताओं की बैठक मे उस दिन १७०००) के लगभग का आनुमानिक आय-व्यय-पत्र स्वीकृत हुआ। दाहोद और झालोद तालुका के सवा लाख भीलो की तथा कुछ अशों मे दूसरी जातियो की सेवा करने का काम भील-सेवा-मडल कर रहा है। आश्रमों, पाठशालाओ छात्रवृत्तियो, सहकारी समितियो तथा ग्रामोद्धार की योजना-द्वारा अपना मूक सेवा-कार्य वह किये जा रहा है। आर्थिक मदी होने के कारण सदस्यो का वेतन कम करके भी मंडलने अपना काम चालू रखा है।

× × × ×

गोधरा—पचमहाल जिले के इस मुख्यनगर मे सन् १९१७ मे जो हरिजन-कार्य आरभ हुआ था, वह आजतक भलीभाति हो रहा है। मामा फड़के के प्रयास से यहा कई बरसो से एक आश्रम चल रहा है। इधर कुछ महीने से हरिजन-सेवक-सघने उसे अपने हाथ मे ले लिया है। पहले कई सालतक तो पचमहाल के हरिजनोने इस आश्रम से कोई लाभ नही लिया, पर यह खुशी की बात है कि पिछले चारेक साल से वे बराबर उससे लाभ उठा रहे हैं, यद्यपि भंगियोने काफी प्रयत्न होते हुए भी अभी उससे लाभ नही उठाया।

म्यूनिसिपैलिटी की ओर से एक सहकारी समिति भंगियो तथा दूसरे मुलाजिमो के लिए १६ वर्ष से काम कर रही है। हर माह उनमे उनकी तनखाह की थोड़ी-थोड़ी (चार आना माहवार) बचत अनिवार्य रूप से ली जाती है। इससे सिर्फ उन्हींकी पूजी आज साढे बारह हजार रुपये के लगभग हो गई है, और इतनी पूजी से ही उनकी सहकारी समिति की व्यवस्था चल रही है। कुछ भंगी कुटुम्बोने इस समिति की सहायता से ईंट के पक्के मकान बनवा लिये है, और एकने तो दो-मंजिला मकान बनवा लिया है। उनके मुहल्लो में बिजली की बत्तिया भी म्यूनिसिपैलिटीने लगवादी है। उनकी आर्थिक तथा नैतिक स्थिति में अच्छा सुधार हुआ है। यहां के दो मुहल्लो मे कलेक्टर श्री मिरचदाणी के प्रयत्न से भंगियो के चार बरस से कम उम्र के कुल ६० बच्चों को नित्य नहलाने और दूध पिलाने का प्रबन्ध है। इससे उन बच्चो में खूब तेजी और स्वच्छता आ रही है। थोड़े-से खर्च मे म्यूनिसिपैलिटी की देखरेख में यहां खासा अच्छा काम हो रहा है। भंगियों के एक मुहल्ले में उनका एक मन्दिर बननेवाला है। अपनी तनखाह में से उन्होंने २००) इकट्ठे किये है और म्यूनिसिपैलिटीने जमीन देदी है। दीवाली के बाद मन्दिर का काम शुरू हो जायगा। सार्वजनिक सहायता भी अच्छी मिल जायगी ऐसी आशा है। क्या अच्छा हो, अगर इस मन्दिर के साथ-साथ धार्मिक उपदेश हर एकादशी को नियमित रीति से कराने का प्रबन्ध हो जाय। इससे उनकी धार्मिक उन्नति पूरी तरह से हो जायगी।

× × × ×

कालोल—इस गाव के २० भगी-कुटुम्बो के लिए अच्छे नये मकान बनवाने की योजना पर विचार किया। कालोल के भगियो को सिर्फ ४) मासिक वेतन मिलता है। उनके इस अपर्याप्त वेतन में उचित वृद्धि अवश्य होनी चाहिए, इस सम्बन्ध मे सलाह हुई। उनके लिए पाच बरस से यहा सहकारी समिति अच्छा काम कर रही है। इसमे वे ऋणमुक्त भी हो गये हैं। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि यहा की अग्रेजी पाठशाला मे दो भगी विद्यार्थी पाचवे दरजे में पढ रहे हैं।

× × × ×

उमरेठ—इस शहर के विषय मे जितना लिखा जाय उतना थोडा है। यह जगह अभी हाल तो जैसे बिना ही धनी-धोरी की दिखाई दी। म्यूनिसिपैलिटी का यहा होना-न-होना बराबर है। बरसात मे सफाई या सड़कोतक का जब नाम-निशान नही, तब बाकायदा 'ड्रेनेज' तो होगा ही कहा से? कीचड और कचरे का तो कोई पार नही। गलियो मे हाथ-हाथ गहरे गड्ढे हैं। किसे पड़ी जो उन्हे पूरे? ग्राम-सुधार का आज खूब जोर है और इससे कुछ गावो की सफाई और रास्ते वगैरा ठीक देखने मे आते है। उन गावो के मुकाबिले उमरेठ की स्थिति तो बहुत ही खराब है। कहा जाता है कि म्यूनिसिपैलिटी की आमदनी ३७०००) की है। समझ में नही आता कि यह रुपया आखिर कहा फेका जाता है! भगियों को ६)—६॥) मिलते है। पाखाने साफ करने की मजदूरी उन्हे मकान-मालिक देते है वह अलग है। उनके कुएँ की मरम्मत के लिए कुछ साल पहले जो १०००) की रकम खर्च हुई थी, कहते है कि, उसके अधिकाश भाग का पता ही नही कि कौन खा-पी गया! मीठे पानी का कुआ न होने से बेचारे भगी एक-एक बूद पानी के लिए तरसते है। सहकारी समिति है, पर ऋणरूपी ग्राहने उन गरीबो को बुरी तरह ग्रस लिया है। खडेलवाल ब्राह्मण उन्हे कर्जा देते है। ब्याज ऐंठने मे इन ब्राह्मण देवताओने तो काबुली पठानो के भी कान काट रखे है। ये लोग या तो सहकारी समिति में से या फिर अदालत के जरिये अपना लहना वसूल करते है। गरीब भगी मारे कर्जे के त्राहि-त्राहि कर रहे है। ऋण से बेचारे उऋण हों तो कैसे? न हिम्मत ही है, न सूझ ही। जेल जाने से डरते है, और दिवालिये भी नहीं बनते! ऋणग्राह के फंदे से उन्हे छुड़ाने-वाला इस समय तो कोई नजर आता नही।

'हरिजन-बधु' से] अमृतलाल वि० ठक्कर

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करे। ग्राहक-नंबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा।

व्यवस्थापक—

'हरिजन-सेवक' दिल्ली

हरिजन-सेवक

शनिवार, १६ अक्तूबर, १६३५

नहीं, यह पैबंदगिरी नहीं है

एक सज्जनने, जिनकी सचाई के बारे में किसी को भ्रम नहीं हो सकता, कुछ समय पहले मुझे एक बड़ा लम्बा पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन और हरिजन-सेवक-संघने अस्पृश्यता दूर करने के लिए जो उपाय अख्तियार किये हैं उनके विरुद्ध बहुत-कुछ लिखा था। इस काम को उन्होंने योंही इधर-उधर पैबंद लगाने जैसा काम कहा था। उनका वह पत्र कई हफ्ते मेरे कागज-पत्रों में पड़ा रहा। जब लिखने को बैठता, तब कोई-न-कोई ऐसा काम आ जाता जिस में अधिक महत्व का और जरूरी समझता था। इसीसे उनके पत्र पर अबतक कुछ लिख नहीं सका। बड़ी कठिनाई के साथ अब उस पत्र को ठीक तरह से संक्षिप्त रूप में करके नीचे दे रहा हूँ—

"मैं समझता हूं कि अस्पृश्यता-निवारण के सम्बन्ध का आपका जो कार्यक्रम है वह नीचेलिखे कारणों से गलत धारणा पर बना हुआ मालूम होता है। आप समझते हैं कि हरिजनों के कष्टों के दस अंशों में नौ अंश तो यह अस्पृश्यता है, और उन कष्टों के दूर करने का एकमात्र इलाज अस्पृश्यता-निवारण है। आप इसे सामाजिक और धार्मिक अभिशाप मानते हैं। क्षमा कीजिए, मैं यहां आपके साथ सहमत नहीं हूँ। मैं तो यह मानता हूँ कि यह सारी विपदा बिलकुल आर्थिक है। लोगों के खयाल में जो सामाजिक व धार्मिक रूप घुसे हुए हैं वे तो सिर्फ असलीयत को जरी की चादर से ढाके हुए हैं। युगों से हमारे पूर्वज (जिन्हें इसका ठीक-ठीक पता था) यह शिक्षा देते आ रहे हैं कि आंख मीचकर कड़ुवा घूट पी जाओ, पर इसमें तो उस कड़ुवेपन का असली रूप और भी बुरी तरह से हमारे सामने आ जाता है। मेरा विश्वास है कि हरिजनों की अपने को छोटे समझने की भावना नष्ट होते ही यह अस्पृश्यता निश्चय ही दूर हो जायगी। हरिजन की गरीबी के कारण दूर कीजिए। उसकी आर्थिक अवस्था सुधारिए, राष्ट्रीय सम्पत्ति के जरा और भी उचित विभाजन के लिए लड़िए और हरिजन को यह महसूस कराइए कि उसे इस मौजूदा थैलीशाही शोषण के विरुद्ध विद्रोह करना है, और फिर देखिए कि उसके उज्ज्वल भविष्य के द्वार चारों ओर से किस तरह खुल जाते हैं। उसे तब इस बात के लिए किसी बाहरी संस्था की जरूरत न रहेगी कि प्रगति-पथ पर वह कितने डग चला है, और बीच-बीच में कहां किस मंजिल पर उसे खतरे से आगाह रहने के लिए ठहरना है।

आपकी यह धारणा है कि अस्पृश्यता हिन्दू-समाज की ही एक विशेषता है, और यह चीज सिर्फ हमारे ही देश में है। मगर मेरा विचार तो इससे बिलकुल ही जुदा है। यह तो एक विश्व-व्यापी समस्या है। हरेक देश में अस्पृश्यता है, हरेक देश में हरिजन हैं। इसलिए इस बुराई को निर्मूल करने का उपाय तो ऐसा होना चाहिए, जो सब देशों के लिए एक-सा लागू हो सके, जो उसकी जड़ पर कुठाराघात करे और सिर्फ ऊपर-ऊपर की डालियां ही छांटकर हम सन्तुष्ट न हो जायें। आखिर यह अस्पृश्यता क्या चीज है? सारी-की-सारी कौम के साथ कोढ़ियों के ऐसा बर्ताव करना और उन्हें मनुष्य के मौलिक अधिकारों तक से वंचित कर देना ही अस्पृश्यता है। महज 'छूना' या 'न छूना' तो उस बीमारी का मनुष्य को गुलाम की तरह दबाये रखने का एक बाहरी चिन्ह या लक्षण है, और जबतक उस खास नासूर को दूर करने का जतन नहीं किया जाता तबतक रोगी को उससे कुछ भी फायदा नहीं हो सकता। इस दृष्टि से, अस्पृश्यता सारे जहान में फैली हुई बीमारी है और इस जुल्म के विरुद्ध सभी सताई हुई जातियों को बगावत करनी है। भिन्न-भिन्न देशों में इस मायाविनीने भिन्न-भिन्न भेष धारण कर रक्खे हैं, अन्तर है तो बस केवल न्यूनाधिक मात्रा में। कहीं यह अस्पृश्यता कम है तो कहीं अधिक, पर है सर्वत्र। हर जगह आधार उसका आर्थिक ही है, जिसे गलती से हम 'राजनीतिक' प्रश्न कहते हैं। मेरा विश्वास है कि भारतीय अस्पृश्यता का उद्भव आर्यों की उस विजय से हुआ, जो उन्होंने 'आदिम' कही जानेवाली जातियों पर की थी। आज के हरिजनों को अपने पूर्वजों के अनुक्रम का पता उन्हीं आदिम जातियों में लगाना है। अमेरिकन अस्पृश्यता की उत्पत्ति इस प्रकार है। वहां हबशियों को अस्पृश्य मानते हैं। इसकी भी जड़ वही आर्थिक है। हबशियों के प्रति वहां जो सूग है उसकी जड़ उस श्वेतांग मनुष्य की वहां की सरसब्ज जमीन के प्रति लालच है जो सब से पहले अमेरिका पहुँचा था। यहूदियों के प्रति हिटलरशाही की घृणा, बूर्जों के प्रति बोलशेविकों की सूग और चीनवालों को 'मिकाडो' का भय इन सबका मूल कारण एक ही है, याने आर्थिक शोषण। इसके लिए मुलायम शब्द का प्रयोग करना हो तो 'राजनीति' शब्द से काम चल जाता है। हिन्दुस्तान की 'अस्पृश्यता', अमेरिका का 'लिंचिंग', बेलजियम का 'कोंगो' और नाजियों का 'यहूदियों पर जुल्म ढाना' ये सब उसी अन्याय के उदाहरण हैं और दुनियां में बड़ी-बड़ी लड़ाइयों का मूल स्रोत स्वभावतः यही है।

फिर अस्पृश्यता या और स्पष्ट रूप में कहा जाय तो इस देश के विजित मूल निवासियों की 'छुटाई की भावना' असल में आर्यों की एक बूर्जुआ-जैसी राजनीतिक आवश्यकता थी, ताकि केवल अपने आर्थिक स्वार्थ साधने के लिए आर्य लोग अपेक्षाकृत हरिजनों की छोटी जातियों को चिरकालतक अपने अधीन रख सकें, अर्थात् विजित लोगों पर विजेता स्थायी रूप से अपने दर्जे का बड़प्पन कायम रख सकें। भारतीय सिविलियनों के 'फौलादी ढांचे' की उत्कृष्टता, जिसका आज इतना अधिक विज्ञापन किया जारहा है, और अफ्रीका के हबशी सरदार शेकडी को उसके यूरोपियन मालिकोंने हाल में जो असभ्यतापूर्ण धमकी दी है वह, और यूरोपियन लोगों के नस्लवालों के साथ दूसरों के मुकाबले में होनेवाला आला बर्ताव यह सब क्या है? छोटे-छोटे किन्तु प्रबल-तर राष्ट्र बड़ी-बड़ी किन्तु दुर्बल जातियों का शोषण कर सकें इस खयाल से खूब सोच-विचारकर जो आयोजन रचे गये हैं उनसे सम्बन्ध रखनेवाली ही ये सब जीती-जागती यादविहानियां हैं। विजेता आर्योंने इस देश के पराजित निवासियों के साथ जो निर्दयतापूर्ण व्यवहार किये, यह इससे अच्छी तरह प्रगट हो जाता है, और आर्थिक स्वार्थ-साधन के लिए ही यह सब किया गया था इसकी सम्भावना इससे और भी अधिक बढ़ जाती है। फिर क्या, जैसे दिन के बाद निश्चय ही रात आती है, उसी तरह

इसके बाद खूब बेरहमी के साथ हरिजनों को दबाया गया, और उनके रहने, मिलने-जुलने, खाने-पीने और दूसरी तमाम बातों मे अपनी जातिगत उच्चता दाखिल करने और उसे कायम रखने के लिए हर तरह का प्रयत्न किया गया। कवियोंने इस प्रथा का यशोगान किया, पुराणोंने उसपर 'ईश्वरदीय विधान' की छाप लगादी ! 'नेटाल के प्रवासी भारतीयों' की तरह हरिजनों को डराया-धमकाया गया कि वे हमारी व्यापारिक प्रतिस्पर्धा मे न उतरे, और यह कानून बना दिया गया कि मुख्य-मुख्य उद्योग-धन्धों और उन्नति-कारी व्यापार-क्षेत्रो से उन्हें निकाल बाहर कर दिया जाय। अब बेचारे दरिद्र हरिजनो के हाथ मे केवल मेहनत-मजूरी का ही काम रह गया। तन पर पूरा कपडा नहीं, रहने को सडी-गली झोपड़िया, चारों ओर गन्दगी और घर घर निरक्षरता। जो सिर पर आवे चुपचाप झेलते जाओ, चू-चपड करने का भी अधिकार नही। दुनिया मे विजित जातियो को जो दड भोगना पड़ता है, हरिजनो को भी वही दड भोगना पड़ा।

आप 'वर्ग-युद्ध' मे विश्वास नहीं करते और न उन थैलीशाहों को पदच्युत करने को ही तैयार है—और यह महज इसलिए कि उनके दर्जे मे किसी तरह का खलल नही डालना चाहिए। आप यह माननेवाले नही कि जबतक थैलीशाहों और श्रमिकों की मौजूदा स्थिति मे असमानता को हम स्वीकार करते हैं और इस बात की कोशिश करते है कि वह बनी रहे तबतक उनके हितो में निश्चय ही संघर्ष होता रहेगा।

हरिजन बेचारा मागता है रोटी का टुकड़ा और मिलता है उसे पत्थर ! जहातक मै हरिजनो के सबध मे जानता हूँ, वहातक उन्हे इस 'छुओ मत' की बला से कोई वास्ता नही। मुझे यकीन है कि आप यह मानते है कि हरिजनो की अस्पृश्यता इतनी गहरी जड जमा चुकी है कि कभी-कभी उनके साथ बैठकर खा-पी लेने से, उनके मोहल्लो म झाड़ू लगा आने से, मदिरो मे बतौर एक दस्तूर के उनका प्रवेश करा देने से और दया-भाव से प्रेरित होकर उन्हे कपड़े व मिठाई बाट आने से वह दूर नहीं हो सकती। यह तो एक ढला-ढलाया प्रोग्राम मालूम होता है, जो शायद लडाई से परिश्रान्त काग्रेसजनो के लिए तैयार किया गया है। यह प्रोग्राम यो बड़ मजे में चलता हुआ मालूम देता है। 'हरिजन' मे यह निकलता रहता है कि इतने लडकों को उन स्कूलो मे छात्रवृत्तिया मिल रही है जिनके द्वार उनके लिए अभी-अभीतक बन्द थे, और इतने मंदिर खुले व इतने कुएँ। पर हरिजन क्या इस सबसे सन्तुष्ट हो रहे है ? क्या हम यह कह सकते है कि इस तरह उनका बहुत जल्दी उद्धार होजायगा ? लोगो से अगर यह कहा जाय कि हरिजनो से काम तो कम घटे कराया जाय और मजदूरी उन्हे अधिक दी जाय और उन गरीबों के प्रति वे अपना उचित कर्त्तव्य-पालन करें, तो फिर देखे, इसका क्या जवाब मिलता है।

आप से मै सत्य ही कहूँगा, मुझे मजबूरन यह कहना पडता है, कि हरिजनो के जीवन के लिए जो अधिक आवश्यक प्रश्न है उनके मुकाबले मे आपने अस्पृश्यता के इस छोटे-से प्रश्न पर जरूरत से ज्यादा जोर दे रखा है। इससे हरिजन आत्म-प्रवंचना की ओर जा रहे हैं, थैलीशाहो के शोषण के शिकार बन रहे है और उनकी उस आर्थिक स्वतंत्रता का शुभ दिन अनिश्चित काल के लिए दूर होता जारहा है, जिसे उनके दूसरे देशों के भाई-बंधु प्राप्त करने के लिए जीतोड़ प्रयत्न कर रहे है।"

हरिजन-कार्य के सिलसिले मे पारसाल जब मैं दक्षिण में प्रवास कर रहा था, तब ऐसी ही दलीलें मेरे सुनने में आई थी। यह अच्छा हुआ कि उन सब दलीलो को एक पत्र मे एकत्र करके रख दिया है। पत्र-लेखकने एक भूल की है। उनका यह खयाल है कि अस्पृश्यता-निवारण की यह लड़ाई छूतछात दूर होजाने के साथ ही खत्म होजायगी। धर्म के अभेद्य प्रतिबध के निवारण से इस प्रवृत्ति का आरम्भ करना पडा है। धार्मिक प्रतिबध के दायरे में जो लोग आते है उनका एक जुदा ही वर्ग है। अस्पृश्यता का काला दाग तो जन्म के साथ ही उनके शरीर पर लगा आता है। यह कौन नही जानता कि उनकी आर्थिक अवस्था ठीक होते हुए भी उनके साथ सामाजिक कोढ़ियो का सा सलूक किया जाता है ? त्रावण-कोर के हजारो एजवा और बगाल के नमोशूद्र खासे अच्छे सम्पन्न है, तोभी उनके लिए यह कितने दुःख की, और सवर्ण कहे जाने-वाले हिन्दुओं के लिए कितनी शर्म की बात है कि उन हरिजनो की सम्पन्नता या समृद्धता से उनके सामाजिक दर्जे में कोई अन्तर नहीं आता।

यह कबूल करने मे कोई कठिनाई नहीं, कि इस दुष्ट प्रतिबध के दूर होने के बाद काफी काम करने को है। सचमुच इस स्पष्ट सत्य को स्वीकार करके ही हरिजन-सेवक-संघने हरिजनो का शिक्षा-सम्बन्धी और आर्थिक काम हाथ में लिया है, जिसे, मालूम होता है, पत्र-लेखक सज्जन कोई अधिक महत्त्व नहीं देरहे है। इस काम म हरिजनो की असली सेवा होरही है और सुधारको की सच्चाई की परीक्षा भी इससे होजाती है। और जिनकी सेवा करने के लिए उन्होने कमर कसी है उनके निकट सम्पर्क मे वे इस काम के जरिये आते है। अस्पृश्यता जब सर्वांश मे दूर होजायगी, तब हरिजन भी दूसरो के साथ-साथ उस आर्थिक उन्नति से लाभ उठायँगे जो धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रीति से होरही है। हिन्दुस्तान की कुल जनसख्या मे लगभग १६% हरिजन है। लेकिन आर्थिक शोषण के जो लोग शिकार होरहे है, वे कम-से कम ९०% है। इसीलिए, जैसा कि मैं 'हरिजन' मे लिख चुका हूँ, चर्खा-सघ और ग्राम-उद्योग-सघ तथा हरिजन-सेवक-सघ का एक दूसरे के साथ अन्तर्सम्बन्ध है, और इसी वजह से हरिजनो का क्षेत्र विस्तृत होगया है।

पत्र-लेखक का यह कहना सही नहीं कि 'मै वर्गयुद्ध के अस्तित्व म विश्वास नहीं करता।' जिस चीज मे मै विश्वास नही करता वह है वर्गयुद्ध को उकसाना या उत्तेजन देना और उसे जारी रखना। दिन-दिन मेरा यह विश्वास बढ़ता ही जाता है, कि वर्ग-युद्ध का न होने देना पूर्णतया सभव है। उसे उकसाने में कोई तारीफ नही। तारीफ तो उसे रोकने मे है। पूँजीपतियों और श्रमिकों के बीच का सघर्ष केवल ऊपरी या दिखाऊ है। श्रमिक वर्ग मे जब अपना संगठन करलेने लायक सुमति आजायगी और बिलकुल एकमत होकर वे काम करने लगेगे तो उनके श्रम का मूल्य रुपये-पैसे से अधिक नहीं तो उसके बराबर तो अवश्य हो जायगा। झगडा तो असल मे समझ और नासमझी के बीच है। ऐसे झगडे का जारी रखना सचमुच एक नादानी का ही काम है। उनमे जो सुमति का अभाव है उसे जरूर दूर कर देना चाहिए।

रुपये का उतना ही उपयोग है, जितना कि श्रम का। आखिर-कार रुपया है तो विनिमय का ही एक चिन्ह। एक आदमी के पास २५) हैं। वह ५० मजदूरो को ।।) रोज पर रखता है, और

उनसे ८ घंटे रोज काम लेता है। उधर एक श्रमजीवी है। उसके साथ उसके ४९ श्रमजीवी भाई पूर्णत संगठित होकर काम करते है। अत उस ४९ साथियोवाले श्रमजीवी और उस व्यक्ति में जिसके पास २५) है कुछ भी अतर नही। अगर कुछ फायदा कोई उठा सकता है तो वह मनुष्य जिसके पास इजारा है, आया वह इजारा श्रम का हो या रुपये का। अगर दोनो समान है, तो उनमे मेल या सामंजस्य बना-बनाया है। इसलिए प्रश्न एक वर्ग को दूसरे वर्ग के विरुद्ध उभाडने का नही, किंतु श्रमजीवियो के अदर श्रम की प्रतिष्ठा की भावना भरने का है। और दुनिया मे धनिको की सख्या है ही कितनी? श्रमजीवियो मे यह भावना आते ही ये रुपये-पैसेवाले आदमी उसी क्षण ठीक हो जायँगे। धनिको के खिलाफ मजदूरो को उभाडना वर्गजनित द्वेष और उससे पैदा होनेवाले दुनियाभर के सत्यानाशी परिणामो को स्थायी रूप देना है। यह द्वन्द्व 'रक्तबीज' की तरह सघर्ष को सदा बढाने ही वाला है। इसे तो रोकना ही है, चाहे इसके लिए बडी-से-बडी कीमत क्यो न देनी पडे। यह तो कमजोरी को कबूल करना है, या छुटाई की भावना का एक चिन्ह है। श्रमजीवियो के अपने श्रम की प्रतिष्ठा पहचानते ही रुपया-पैसा अपने उचित स्थान पर आ जायगा, याने श्रमिको के हितार्थ वह ट्रस्ट की चीज हो जायगा—क्योंकि रुपये-पैसे से श्रम का मूल्य अधिक है।

'हरिजन' से] **मो० क० गांधी**

६३ वर्ष पहले और आज

२४ फरवरी, सन् १८७२ की एक गश्ती चिट्ठी (सर्क्युलर) से यह पता चलता है कि काठियावाड के अन्तर्गत बडोद में नीचे-लिखे अनुसार रुई काम मे लाई जाती थी —

वस्तु	सेर
वळतडी	३००
गास मुहँरा	६५०
सूत की डोरी	४६
देशी कपडा	२,०००
गद्दे	७५
सीने का डोरा	५०
दीये की बत्ती	७५
जनेऊ	८
	कुल २८०० सेर

१०,००० पाउण्ड रुई दूसरी जगह जाती थी। इसी सर्क्युलर मे लिखा है कि कताई चर्खो पर ही होती थी, और कुनबी, कोली, राजपूत, बनिया, ब्राह्मण, खोजा, मेमण, दर्जी, लुहार, सुतार, मोची, तेली, ढेड, भगी आदि जातियो की स्त्रिया कातती थी। बुनने का काम करघे पर सिर्फ ढेड लोग ही करते थे। कुल ५३ चर्खे और १० करघे चलते थे। चर्खे चलानेवाली स्त्रियो की जातिया नीचेलिखे अनुसार उसमे दी हैं :—

११ कुनबी	८ बनिया	१ दर्जी
१० कोली	१ नाई	१ लुहार
५ सुनार	२ सुतार	२ मोची
१ पिंजारा	१ ब्राह्मण	१ मेमण
९ [illegible]	४ राजपूत	१ बावा (गुसाई)
१ खोजा	१ भंगी	१ खवास

सर्क्युलर भेजनेवाले सज्जन लिखते है कि ६३ वर्ष पहले जहा २००० सेर रुई काती जाती थी, वहा आज दो सेर भी नही कतती, एक भी चर्खा नही चलता। एक-दो जो बुनकर है—वे मील के सूत का कपडा बुनते है। इसी बडोद मे और इसी काठियावाड मे रुई की उत्पत्ति आज कम नही है, बल्कि ज्यादा ही है। और जो स्थिति बडे-से-बडे उद्योग की हुई, वही छोटे उद्योग की भी हुई है। हम इसकी सहज ही कल्पना कर सकते है, और प्रत्यक्ष देख सकते है कि जो लोग अपनी ही सीमा मे पैदा होनेवाले कच्चे माल की चीजे न बनाकर उसे योही बेच डालते है वे किस बुरी तरह से कगाल हो जाते है। जो अनेक तरह के धधे गावो मे पहले चलते थे, वे आज बंद हो गये है। नतीजा इसका यह हुआ है कि आज अधिकाश स्त्री-पुरुष बेकार बैठे है। फिर ये बैठे-ठाले लोग सर्वनाश की ओर न जाय तो और करे क्या?

'हरिजन-बधु' से] **मो० क० गांधी**

पत्र-लेखकों से

समय के साथ-साथ मेरे निजी पत्र-व्यवहार की वृद्धि का वेग भी बढता जाता है, और अपने प्रतिस्पर्धी को वह बहुत ही पीछे छोडता चला जा रहा है। इस नित्य बढते हुए पत्र-व्यवहार का ढेर जिस प्रमाण मे बढता जा रहा है, उस प्रमाण में मेरी उस तक पहुँचने की शक्ति घटती जाती है। इधर जो ये नये अनमांगे काम मेरे पास आगये है उनसे दिक्कत और भी ज्यादा बढगई है। इनमे सबसे अधिक तन्मय कर देनेवाला और मोह लेनेवाला काम गावो के पुनरुद्धार का है। ज्यो-ज्यो इस काम की कठिनाइया मेरे सामने आती जाती है, त्यो-त्यो इस काम के सबध का रस मेरा बढता ही जाता है। मेरा मन आज गावो मे बस रहा है। गाव यह सदा लगा रहे है कि मै वही धूनी रमाकर बैठ जाऊँ। मै नही जानता कि मेरे अदर यह जो मथन हो रहा है उसका कैसा क्या परिणाम होगा। गावो मे जाकर वही खप जाने की जो बात है उसके मार्ग मे विघ्न अभी से आडे आने लगे है। मेरी बहुत-कुछ अनिच्छा के होते हुए भी, अगले साल के शुरू मे मुझे गुजरात मे एक भार उठाने का वचन दे देना पडा है। मालूम नही, इस सिलसिले मे मेरे सिर पर क्या-क्या काम आ पडे। ईश्वर की जो मर्जी होगी वह होकर रहेगी, उसे कौन टाल सकता है?

पर अगर मुझे अपने शरीर का अटक जाने से रोकना है तो मुझे निजी पत्र-व्यवहार जितना हो सके उतना कम कर देना चाहिए, और उसमे जो पत्र अधिक महत्व के हो उनका उत्तर मुझे अपने बजाय किसी दूसरे के द्वारा दिलाना चाहिए। तभी मैं 'हरिजन' की इस बढती हुई माग को पूरी करने की कुछ आशा रख सकता हूँ। 'हरिजन' का क्षेत्र इधर जो विस्तृत कर दिया गया है उससे महादेव देसाई पर तथा मुझपर भार बहुत आ गया है। 'हरिजन' के पाठको के साथ अगर न्याय करना है, तो आजतक हमने उसमे जितना समय और जितनी शक्ति दी है उससे अधिक समय और शक्ति हमें अब देनी चाहिए।

अतः यह लेख लिखकर मै अपने अनेक पत्र-लेखको का सहयोग चाहता हूँ। उन्हें यह विश्वास रखना चाहिए कि मैं पत्र-व्यवहार से ऊबा नही हूँ। उनका मेरे ऊपर जो विश्वास है, वह मेरे लिए अनमोल है। उसके कारण मै मनुष्य-स्वभाव का तथा उसके मूल में रहनेवाली महत्ता का जो वर्णन कर सका हूँ, वह अन्यथा नहीं

कर सकता था। ऐसा पत्र-व्यवहार करते हुए मुझे एक पीढ़ी से ऊपर समय हो गया है। जो लोग अमुक विषयों पर मेरी राय जानना चाहते हैं, उन्हें मेरे लेखों व मेरे प्रकाशित पत्र-व्यवहार से काफी मदद मिलेगी। यह मैं जानता हूँ कि व्यक्तिगत सपर्क की तुलना में तो कोई चीज आ ही नहीं सकती। पर यह तो स्वभाव से ही नाशवान् वस्तु है, क्षणभगुर है। पत्र-लेखकों से मेरी यह विनय है कि वे हरेक तरह के प्रश्न के सम्बन्ध में मेरी सलाह पूछने की लालच में न पड़े। वे खुद ही परिश्रम करके नीतिग्रन्थों तथा धर्मग्रन्थों से जो सहायता ले सके उसके द्वारा अपने उन प्रश्नों को हल करें। इससे वे देखेंगे कि मुझे प्रत्येक प्रसग का 'शब्द-कोश' बनाने की अपेक्षा मेरे बताये हुए इस उपाय से उन्हें अधिक लाभ होगा।

खैर, चाहे जो हो, मुझे निजी पत्र-व्यवहार लिखनेवालों को अगर अब मेरे पास से सीधा जवाब न मिले, अथवा उनके पत्रों का जवाब न दिया जाय या मेरी तरफ से कोई दूसरा व्यक्ति उन्हें जवाब दे, तो वे अचरज न करें।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

देवकपास

'हरिजन' के कुछ पाठकों को शायद 'खादी-पत्रिकाओं' के प्रकाशन की याद होगी, जिनमें खादी-सेवकों के काम की सभी तरह की सूचनाएँ रहती थीं। खादी-शास्त्र का डौल डालनेवाले स्व० मगनलाल गांधी के मार्ग-दर्शक कार्य का यह भी एक हिस्सा था। सिकन्दराबाद के श्रीनिवासनने सन् १९३३ में प्रकाशित 'देवकपास' नाम की एक पत्रिका मेरे पास भेजी है। उसमें यह प्रगट होता है कि खादी-आन्दोलनने जब होश भी नहीं सँभाला था, उस वक्त भी वस्त्र-स्वावलम्बन की योजना चलाने के लिए किस तरह प्रयत्न किये जा रहे थे। आज, जब कि चर्खा-संघ की प्रवृत्तियों में वस्त्र-स्वावलम्बन को प्रथम स्थान दिया जा रहा है, उस पत्रिका का यहां उद्धृत करना गुणग्राहक पाठकों के लिए अच्छा ही होगा।

"देवकपास रेंडी के बड़े पेड़ के जितना बढ़ता है। इसलिए उसका बीज ८-८ फुट के फासले पर बोना चाहिए। एक साल बाद वह फूलने-फलने लगता है, और कई बरस बारहों मास फूलता-फलता रहता है। कई प्रान्तों में तो देवकपास के पेड़ आप घरों के आगनों में लगे देखेंगे।

सुना है कि और भी कई जगहों में यह होता है। धानवाले रकबों में, जहां कपास की फस्ल नहीं हो सकती, वहां इस वृक्षवाले कपास को मेड़ों पर लगा देते हैं। इसकी पत्तियां गहरे हरे रंग की चिकनी व चमकदार होती हैं। आकार इनका अगूर की पत्तियों या रेंडी की पत्तियों जितना होता है। इसकी फलियों में तीन खाने होते हैं और वे नोकदार होती हैं। जब वे फटती हैं, तब रुई उनमें से एकदम बाहर नहीं फूट पड़ती, किन्तु रेशम के कोये की तरह वहीं बँधी रहती है। देवकपास के रेशे बीयों के चारों ओर चिपके या उनसे खूब लिपटे रहते हैं। यह बात दूसरी जातियों में नहीं है। इसके बीयों का रंग काला होता है, और वे दुहरी कतार में एक दूसरे से सटे रहते हैं। बीये आसानी से अलग हो सकते हैं। बोते वक्त हरेक छेद में सिर्फ एक बीज डालना चाहिए।

इसमें तीसरे साल ठीक तरह से फलियां आती हैं। दक्षिण कनाड़ा के एक मित्रने अपने यहां के देवकपास का एक नमूना भेजा है। वे लिखते हैं कि एक पेड़ से यहां ७ पाउण्ड कपास निकला है। इस जाति के कपास से २५% रुई निकलती है। इसलिए ७ पाउण्ड बीया-समेत कपास में १¾ पाउण्ड रुई निकलेगी।

देवकपास का रेशा बहुत लंबा होता है। सत्याग्रहाश्रम के देवकपास का रेशा १¼ से १½ इंचतक लंबा होता है। मगर कनाड़ा के पेड़ के रेशे की लम्बाई करीब ¾ इंच की थी। उसकी रुई छूने में उतनी मुलायम नहीं थी। इससे यह मालूम होता है कि जमीन में अवश्य कुछ अंतर होगा।

यह भी देखा गया है कि इस पेड़ पर सिंचाई का अच्छा असर पड़ता है। फलते समय अगर मामूली कपास की सिंचाई की जाय तो उसका फलना बंद हो जाता है, और पत्तियां निकलने लगती हैं। देवकपास के संबंध में इससे बिल्कुल ही उलटी बात है। पानी देने से, यह खूब कसरत से फलता है। रेशा अच्छा लंबा निकलता है, और रुई भी ज्यादा मुलायम होती है।

इसकी रुई धुनकी की धुनाई बर्दाश्त नहीं करती। इससे उसके रेशे खराब हो जाते हैं। इसलिए उसे उंगलियों से सिर्फ अलग-अलग कर लेते हैं। उसमें कोई कचरा तो होता ही नहीं, और न चर्खी में उसे कभी ओटते हैं, इसलिए उसकी रुई में गुठलें नहीं पड़तीं। उंगलियों से रुई अलग करने में कुछ अधिक समय नहीं लगता। और इस किस्म की ओटाई से इसकी धुनाई (जो उंगलियों से ही की जाती है) और भी अच्छी होती है। ६० से लेकर ७० नबरतक का सूत इस कपास का कतता है, और वह सूत खासा उम्दा होता है।

कुछ लोग तो योंही, बीयों से रुई को अलग किये बिना, कातते हैं। 'ईडी' रेशम के कोये से जैसा धागा निकलता है ठीक वैसा ही डोरा इससे निकलता है। जब सारी रुई कत जाती है तो हाथ में सिर्फ कपास का गंजा बिनोला रह जाता है। पर यह शायद इसका ठीक उपयोग नहीं। ऊपर लिखे अनुसार ओटाई और धुनाई के बाद सूत जल्दी, और उम्दा व यकसा कत सकता है।

रुई को बीयों से अलग करने में अधिक समय नहीं लगता, इसलिए फली में निकली हुई बीया-लगी रुई को सीधा कातना ठीक नहीं।

श्रीयुत पुजारीने, जिनकी निगरानी में कर्णाटक प्रांत के बीजापुर ताल्लुका में खादी का काम हो रहा है, अपने यहां के कपास के नमूने भेजे हैं, और उसके साथ एक लंबे पत्र में देवकपास के संबंध में लिखा है —

"मेरी राय में तो हमारे काम के लिए यह सब से अच्छा और सब से उपयुक्त कपास है। यह हरेक के आगन में और हर तरह की आब-हवा में हो सकता है। ८ से १० फुटतक ऊँचा इसका पेड़ जाता है। १५-२० बरस की आयु होती है। आंगन में चार-पांच पेड़ लगा लिये जायं तो एक कुटुंब के कपड़ों के लिए उनसे काफी कपास निकल सकता है। इसे अधिक पानी देने की जरूरत नहीं। कर्णाटक प्रांत में आप अनेक गृह-आगनों में देवकपास के पेड़ पायेंगे। खद्दर-आंदोलन को अगर काफी लंबे समयतक चलाना और उसे एक सफल गृह-उद्योग बनाना है, तो मेरे खयाल में यह जरूरी है कि हरेक कुटुंब को देवकपास लगाने का प्रबंध करना चाहिए। लोग बतलाते हैं कि हमारे पूर्वज अपने पवित्र यज्ञोपवीत के लिए इस देवकपास का ही सूत कातते थे।"

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

कर्णाटक में वस्त्र-स्वावलम्बन

चर्खा-संघ की कर्णाटक-शाखाने धारवाड जिले के कोरडुर और शर्मापुर नामक केन्द्रों मे इस वर्ष वस्त्र-स्वावलम्बन का प्रयोग शुरू किया है। कोरडुर मे तो सन् १९३० से ही खादी का कुछ वातावरण रहा है, जो बराबर जोर पकडता गया है। खेद है कि इस वर्ष से पहले वहा लगकर व्यवस्थित रूप से कोई कार्य न किया जा सका। सन् १९३० में गांधीआश्रम, होसरित्ति के श्री महादेव मइलोरने साबरमती-आश्रम से लौटकर इस गाव के कोई ५ व्यक्तियों को बुनना सिखाया था। पर बाद मे सत्याग्रह-आन्दोलन के कारण करीब ४ वर्षतक इस दिशा में कोई कार्य न हो सका।

जुलाई, सन् ३४ में जब कार्यकर्त्ता स्वतंत्र हुए तो खादी-कार्य की दिशा ही बदल चुकी थी। वस्त्र-स्वावलम्बन की योजना सामने आ चुकी थी और देशभर में चर्खा-सघ के कार्यकर्त्ताओं का ध्यान इस ओर लग चुका था। कर्णाटकवालोंने भी अपनी एक योजना तैयार की और उसके प्रयोग के लिए कोरडुर-शर्मापुर को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। चर्खा-सघ की स्वीकृति से इस वर्ष १३ अप्रेल के दिन प्रातीय शाखा के सुयोग्य मत्री श्री० हनुमन्तराव कौजलगी के हाथो इन केन्द्रो मे वस्त्र-स्वावलम्बन का श्रीगणेश करवाया गया। उसदिन पैर से कपास ओटने, धुनने और कातने की प्रतियोगिता में लोगोंने बड़े प्रेम से भाग लिया। कुछ परिवारो-द्वारा घर मे कती-बुनी खादी की एक छोटी-सी प्रदर्शिनी का आयोजन भी उसदिन के कार्यक्रम का एक अग था।

कार्य का आरभ देर से होने के कारण कार्यकर्त्ताओं को अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा। इस वर्ष कपास का भाव चढजाने से गाववालोंने अपना सभी कपास बेच दिया था। स्थानीय उपयोग के लिए स्थानीय कपास का मिलना कठिन हो गया था। कार्यकर्त्ताओ की यह पहली और बडी कठिनाई थी। दूसरी कठिनाई पीजन और तात की थी—स्थानीय सुतारों से शुद्ध पीजने बनवाने मे कार्यकर्त्ताओ को काफी परिश्रम करना पडा। फिर तात का प्रश्न आ खडा हुआ। श्री गगाधर रावजी देशपाडे के हुदली-आश्रम मे तात बनाई जाती है, पर वह आश्रम के लिए ही काफी नहीं होती। अत मधुबनी (चम्पारन, और बारडोली से ताते मँगवाकर काम शुरू किया गया। मधुबनी की तात १॥=) दर्जन के हिसाब से मिली, लेकिन प्रतिदिन ४ घण्टे के हिसाब से काम करने पर एक तात एक हफ्ते से अधिक नहीं चलती थी। बारडोली की तांत ६) दर्जन के हिसाब मे मिली, लेकिन मधुबनी के मुकाबले उसने छ. गुना अधिक काम दिया। इस प्रकार तात्कालिक काम तो चल गया। पर इससे समस्या हल न हुई। जबतक स्थानीय तात का प्रबध न होगा, समस्या बनी ही रहेगी। खुशी की बात है कि कार्यकर्त्ताओं का ध्यान इस ओर है, और वे इस समस्या को हल करने के प्रयत्न में है।

इन सब कठिनाइयो के रहते हुए भी पिछले ४ महीनो मे ३५ व्यक्तियों को धुनना सिखाया गया है। इनमे १२ स्त्रिया और २३ पुरुष है। कुछ अपनी आवश्यकताभर का धुन लेते है, कुछ धुनाई के काम मे काफी होशियार हो चुके हैं। अबतक लोग पेशेदार धुनियों की धुनी हुई रुई बरतते थे; लेकिन अब धीरे-धीरे उन्हे इस रुई की बनी पूनी से नफरत होने लगी है—लोग स्वेच्छा से धुनना और घर की पूनी बनाना पसन्द करने लगे है। आशा है, कपास के अगले मौसिम मे गाव के अधिकाश लोग धुनना सीख जायँगे।

पिछले महीनो मे कोरडुर, शर्मापुर, होसरित्ति और चाणूर की कत्तिनोंने ४८", ४५", ४६", और २८" इच की कोई ६०० गज खादी अबतक बनवाई है। इनमे चौंतीस ८ गजी साड़िया है, ६ जोड़ ८ गजी धोतिया है, और शेष ३६ इच और २४ इच की खादी है, जो कुर्त्तों और पगड़ियो के काम आती है। कत्तिने साधारणत १५ से २० नबरतक का सूत कातती है, जो काफी यकसा और मजबूत होता है। कपास आम तौर पर लोग अपने घरो ही मे लोढ लेते हैं। ४-५ परिवार ऐसे भी है, जो खुद ही ओट, धुन और कात लेते है। सारे क्षेत्र मे कोई १५ परिवार खादीधारियो के हैं, जिनमें कोई १०० आदमी सिर से पैरतक खादी-पहननेवाले है। इधर खादी बुननेवाले जुलाहो की सख्या भी बढ रही है। लोगो मे खादी की माग भी बढी है। घर की खादी के अलावा २०००) से अधिक की बाहरी खादी इन केन्द्रों मे अबतक बिक चुकी है।

श्रीमती सिद्धिमती देवीने, जिन्होंने खादी का कार्य साबरमती-आश्रम मे सीखा था, इधर १२ लड़कियो को तकली कातना और छ बहनो को धुनना सिखाया है। गाधी-आश्रम में छोटे बालकों को भी तकली कातना सिखाया जाता है। तकली की कताई मे वर्धा की पद्धतिने एक क्रान्ति-सी करदी है। यह पद्धति बहुत ही उपयोगी और सर्वत्र अपनानेयोग्य है। खुशी की बात है कि कार्यकर्त्ता यहा भी इसी पद्धति के प्रचार का प्रयत्न कर रहे है।

कर्णाटक मे साधारणत ४ प्रकार का कपास बरता जाता है। इनम नया जयवन्ती कपास ही सबसे अच्छा है और अधिक प्रचलित भी है। इस कपास का रेशा लम्बा होता है। २० तोला कपास में से १५ तोला बिनौले और ५ तोला रुई निकलती है। १५ से २० नंबरतक का सूत कतता है। अभी से इन केन्द्रों मे इस बात का प्रयत्न और प्रचार किया जा रहा है कि लोग अगले वर्ष घर-घर रुई का सग्रह रक्खे और अपना जरूरतभर का तमाम कपडा इसी रुई को धुन और कातकर बनवा लिया करे। आशा है, कार्यकर्त्ताओ को इस काम मे जनता का पूरा सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

लोगो को स्वभाव ही से वस्त्र-स्वावलम्बी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि धुनाई और कताई के उनके औजार अच्छे, सुधरे हुए और थोडे समय मे अधिक काम देनेवाले हो। इस दिशा मे इन केन्द्रो मे अभीतक कोई खास कार्य नही हुआ है। लेकिन कार्यकर्त्ताओं का ध्यान इस ओर है। वे स्थानीय चर्खों में अभी आवश्यक परिवर्तन करने के प्रयत्न मे है। अभी तो चर्खे के एक चक्कर मे अधिकाश तकुए ५० से ६० चक्कर ही लगा पाते हैं। बहुत ही थोडे चर्खे ऐसे है, जिनके चक्कर १०० के करीब पहुँचते हैं। स्थानीय चर्खों के अलावा यहा यरवडा चक्र और बारडोली के चर्खों का भी कुछ प्रचार हुआ है। इन चर्खों पर कताई की साधारण गति प्रतिघण्टा क्रमश: २५०, ४५० और ३५० गज है। इस हिसाब से स्थानीय चर्खे की गति में वृद्धि की काफी गुंजाइश है।

काशिनाथ त्रिवेदी

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi, by R. S. Gupte.

अपनी आखिरी सांसे ले रही हैं "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
किंग्सवे, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शनिवार, २६ अक्तूबर, १९३५. [संख्या ३६

विषय-सूची

दो प्रश्न

चर्खा-संघ की जो नई नीति बन रही है उसके सम्बन्ध में अनेक प्रकार के प्रश्न उठते ही रहते हैं। उनमें से दो प्रश्न ये हैं—

'१—नई नीति को अमल में लाने के लिए कार्यकर्ता किस तरह तैयार हो सकते हैं ?'

सर्वोत्तम उपाय एक यह है कि जिनके मन में नई नीति का मसला अच्छी तरह बैठ गया है वे गांवों में से और जो अंग्रेजी पढ़े-लिखे न हों उन लोगों में से कार्यकर्ता तैयार करें। ~~यदि~~ पद्धति व्यापक बनानी है तो हमें असंख्य कार्यकर्ताओं की जरूरत पड़ेगी। उनका वेतन अगर भारी रखते हैं तो इस गरीब देश में यह पुसा नहीं सकता। अंग्रेजी पढ़े-लिखों में से ही कार्यकर्ता तैयार करें तो उन्हें वेतन बहुत चाहिए। उनकी आवश्यकताएँ बढ़ गई हैं। उनका शरीर तकलीफ झेल सकनेलायक या मेहनत उठाने लायक तो रहा नहीं। और जहां अंग्रेजी भाषा के ज्ञान की आवश्यकता नहीं, वहां उनकी उपयोगिता विशेष नहीं होती। अधिकतर उनकी उपयोगिता कम ही होती है। उन्हें गांवों में रहना दूभर मालूम होता है, और वे अपने शहर के जीवन को गांवों में भी ले जानेकी कोशिश करते हैं। उनका शरीर कम काम करता है, और शायद ही वे कुशल कारीगर हो सकते हैं। कारीगरी सीखते हैं, तब भी वे सामान्य कारीगर के साथ शायद ही मुकाबला कर सकते हैं। यहां तो मुझे इतनी ही सलाह देनी है कि हमें अंग्रेजी जाननेवाले कार्यकर्ताओं को प्राप्त करने का मोह छोड़ देना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि हमें अंग्रेजी जाननेवालों का त्याग कर देना है, या उनके प्रति द्वेष करना है। उनमें से कोई अगर ऐसा मिल जाय जो हमें उसका सहर्ष स्वागत करना है। उनके स्थान में वह शोभा ही देगा। यहां आशय केवल इतना ही है कि अंग्रेजी जाननेवाला ही कार्यकर्ता चाहिए ऐसा भ्रम हमें छोड़ देना चाहिए। यदि कोई गांव का सेवक मिल जाय तो उसे जितना पैसा दिया जायगा उससे अधिक ही वह उपार्जन करेगा। ऐसे कार्यकर्ता के लिए १०) या १५) से अधिक वेतन की जरूरत नहीं होनी चाहिए। और इतना तो हर महीने वह सहज ही कमाकर दे देगा। जहां-जहां खादी-केन्द्र हैं, वहां-वहां सञ्चालक ऐसे कार्यकर्ता पैदा करें और काम का विस्तार उतनी ही मात्रा में बढ़ावें। कार्यकर्ता को कपास बोने से लेकर खादी बनानेतक की तमाम क्रियाओं में जानकारी होनी ही चाहिए। और केन्द्र में काम करनेवाला यदि खुद कार्य-कुशल हो तो आसानी से और बगैर पैसा खर्च किये वह ऐसे कार्यकर्ता पैदा कर सकता है।

मेरी दृष्टि के सामने अभी कार्यकर्ता तैयार करने के लिए कोई नई संस्था बनाने की कल्पना नहीं है।

'२—नई पद्धति को अमल में लाने से खानगी व्यापारी बढ़ेंगे या घटेंगे ?'

खानगी व्यापारी इसमें बढ़ तो सकते ही नहीं। मुख्य प्रवृत्ति स्वावलम्बन की रहेगी। उसमें तो खानगी व्यापारी को कहीं स्थान ही नहीं। यह सही है कि शहरों में खादी की बिक्री के लिए ऐसे व्यापारी रहेंगे। पर उनकी संख्या बढ़ने की सम्भावना बहुत कम है, क्योंकि ज्यों-ज्यों कारीगरों की अधिकाधिक कमाई करने की वृत्ति बढ़ती जायगी, त्यों-त्यों खानगी व्यापारी घटते जायँगे। कारण कि उन्हें मुनाफा करने का लोभ होता है। वहां उनकी तृप्ति नहीं हो सकती। नई योजना में बेचनेवाले की कमाई की एक हद बँध जायगी और जो मुनाफा होगा वह कारीगरों की ही जेब में जायगा।

'हरिजन-बंधु' से] मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

[१]

हमारी ग्राम-सेवा

मीराबहिन के लिए जो झोंपड़ी बन रही है, वह करीब-करीब तैयार हो गई है। वहां जाकर अपना डेरा जमाने के पहले ही उन्हें अजीब-अजीब अनुभव होने लगे हैं। उनके रोगियों की सूची बढ़ती ही जाती है। पर यह कोई आनन्ददायक बात नहीं। लोगों के साथ उनका परिचय भी दिन-दिन बढ़ता चला जा रहा है। इन रोगियों में हरिजनों के अलावा सवर्ण भी हैं। हमें इतनी जल्दी इस बात की आशा नहीं थी। मगर मीरा बहिनने यह एक कठिन काम उठाया है इसकी प्रतीति करानेवाले अनुभव उन्हें होने लगे हैं। एक दिन शाम को, वे अपनी घोड़ी पर बैठकर गांव से घर की तरफ आरही थी, कि रास्ते में उन्हें कुछ शराबी आदमी मिले और उन्होंने उनकी घोड़ी को रोककर ठहरा लिया। फिर वे पियक्कड़ बदहोशी में जो मुह में आया बकने लगे, और एकने तो मीरा बहिन के चप्पल ही उतार लिये। कुछ देर तो मीरा बहिन उनके साथ हँसती रही, पर बाद को उन्होंने धीमे स्वर से कहा, 'अरे, चप्पल तो देदो भाई !' मीरा बहिन की इस धीमी आवाज में दृढ़ता थी, इसलिए जिन लोगोंने रकाब में से उनके चप्पल निकाल लिये थे उन्होंने वापस दे दिये। दूसरे दिन सवेरे

मीरा बहिनने उन दारूखोरों को पहिचान लिया और उन्हें खूब अच्छी तरह समझाया। उन्होंने शर्मिन्दा होकर वचन दिया कि अब हम कभी ऐसा न करेंगे।

एक दिन साझ को मीरा बहिनने सोचा कि जिन बहिनों के पड़ोस मे मुझे रहना है उनसे आज मिलती चलूँ। एकने उन्हें देखते ही चिल्लाकर कहा, 'खबरदार, इधर न आना, नही तो तुम्हें गालियां दूगी।' मीरा बहिन हँस पड़ी और बोली, 'तुम्हारी राजी, चाहे जितनी गालियां देलो, मैं तो तुम्हें गाली दूँगी नही।' मीरा बहिन ऐसा जवाब देगी यह तो उनकी धारणा ही नही थी। इसलिए वे सब चुप हो गईं और मीरा बहिन उनके बीच मे जाकर बैठ गईं। फिर उनमें से एकने कहा, 'अच्छा बहिन, मैं तुम्हारे पास आऊँ तो तुम मुझे कौन-सी दवाई दोगी?' मीरा बहिनने कहा 'पर तुम बीमार पड़ो ही क्यों? न तुम बीमार पड़ोगी, न मैं तुम्हें दवा दूँगी।' उन स्त्रियो को मीरा बहिन की यह बात बड़ी अच्छी लगी और सब हँसने लगीं। जिस बुढ़ियाने गालियां देने की धमकी दी थी, वह भी नरम पड़ गई, और मीरा बहिन से पूछने लगी, 'मेरे चेहरे पर यह फोड़ा हुआ है इसके लिए तुम मुझ क्या दवा दोगी?' इस तरह मीरा बहिन के साथ उन ग्राम-नारियो का सुखद संवाद बड़ी देरतक होता रहा। यह बात ही वे भूल गईं कि थोड़ी देर पहिले उन्होंने मीरा बहिन को गालियां देने की धमकी दी थी।

किन्तु मीरा बहिन को इस गाव मे एक दूसरी ही तरह के मरीज मिला करते हैं। ऐसे मरीज तो उन्हें ही नही, देश मे हम सभी को मिलते है और उनका मर्ज कोई ऐसा-वैसा मर्ज नही है। 'काम दो, नौकरी दो', इस राग की चर्चा तो सारे देश मे ही आप सुनेंगे। मगर दुर्भाग्य से इस गाव के लोगों के दिल मे मीरा बहिन और उनके धन-दौलत के बारे मे कुछ विचित्र-विचित्र कल्पनाएं घर कर बैठी है। इनके पिता इगलैण्ड के नौसेना-विभाग मे एक महान् एडमिरल थे, इसलिए मीरा बहिन का बैक मे काफी रुपया जमा होगा, लोगों की कुछ ऐसी धारणा है, और वे कहते है कि यह तो हमे मालूम है कि आपके पिता का स्वर्गवास हो गया है, पर आपकी बहिन तो अच्छी मालदार है। जितने रुपयों की आपको जरूरत पड़ती है वे आपको विलायत से भेज देती है। इसलिए कृपाकर आप कही हमे कोई नौकरी दिलादे तो अच्छा हो। हमारे गाव मे जो लोग रोज सबेरे मैला उठाने आते है उन्हें आपने जिस तरह नौकर रख लिया है, उसी तरह हमे भी कही नौकरी दिलादें।" ये भोले-भाले लोग यह मानते हैं कि मीरा बहिन एक परोपकारिणी धनाढ्य महिला है और उन्होंने कुछ बेकार भंगियों को हमारे गाव की सफाई करने के लिए नौकर रखा है! मीरा बहिन उनसे कह देती है, 'नहीं भाई, मैंने उन्हें नौकर-औकर नही रखा। वे लोग किसी के भी नौकर नही है। मैं भी उन्हीं लोगों की टोली की हूँ। हम लोग जो यह सफाई का काम करते हैं उसका सबब यह है कि हमे वह अच्छा लगता है और हमे अपने दुखी भाई-बहिनो की कुछ सेवा करनी है। अरे, इतनी सीधी-सी बात भी तुम्हारी समझ मे नही आती? और अब तो मैं इससे भी आगे जानेवाली हूँ। मेरे वे भाई-बहिन तो नित्य सबेरे यहां आकर तुम्हारी सेवा करेंगे ही। पर मैं तो चौबीसो घंटे तुम्हारे गांव में रहूँगी।" वे लोग आश्चर्य से यह बात सुनकर रह जाते है, और यह सच है इस पर उनका विश्वास ही नहीं जमता।

खादी-कार्य में दिशा-परिवर्तन

गांधीजीने चर्खा-संघ की खादी-कार्य-विषयक नीति में जिस दिशा-परिवर्तन की सलाह दी है, उसके सम्बन्ध मे गम्भीरतापूर्वक विचार करने के लिए संघ की कार्यकारिणी-समिति की बैठक यहा गत सप्ताह हुई थी। उस दिन समिति के एक सदस्यने कहा कि, 'इधर पन्द्रह बरस के अर्से मे ऐसी गम्भीर बैठक तो मैंने एक भी नही देखी।' खादी-उत्पत्ति का काम करनेवाले हरेक श्रमजीवी कारीगर को कम-से-कम पेट भरनेलायक पैसा मिलना चाहिए यह एक सीधी-सी बात है और हरेक सदस्य इसे स्वीकार करता था। यह भी सब मानते थे कि इसके अन्दर जो सिद्धान्त है उसमे कोई दोष नही। पर इसे अमल में लाना कुछ सदस्यों को एक बड़ा अटपटा-सा सवाल मालूम होता था। महाराष्ट्र में इस नई नीति का अमल मे लाना शुरू हो गया है, इसलिए कुछ लोगो का यह खयाल था कि इस प्रात मे इसका अनुभव देखकर बाद को इस सम्बन्ध में कोई ठीक-सा निर्णय करना चाहिए। कुछ सदस्यो को यह भय था कि खादी जिस प्रात मे बनती है उसका वहीं बेचना सम्भव नही, और खादी बेचने के सम्बन्ध मे इस नई नीति से काफी कठिनाई पड़ेगी। यों ही खादी की बिक्री घटती चली जाती है। और अब अगर कोई हेर-फेर हुआ तो जो थोड़ी-सी बिक्री होती है वह भी बन्द हो जायगी। आध्र-जैसे प्रात मे आज महीन खादी अमुक भाव में मिल सकती है। वहा अब इस नई परिस्थिति मे उतने भाव मे मोटी खादी भी नही बिक सकेगी। व्यवस्था का खर्चा कम नही होगा, बल्कि उत्पादन का क्षेत्र छोटा हो जाने से उलटा बढ़ जायगा, क्योंकि इस नई नीति के अनुसार खादी-सेवकों मे खादी-कला-सम्बन्धी और भी अधिक कुशलता और सावधानी की जरूरत पड़ेगी और उन्हें एक-एक तफसील पर और भी अधिक ध्यान देना पड़ेगा। इसलिए इस नई नीति का अमल करते हुए घाटा तो आयगा ही। यह घाटा भी क्या गाहक के मत्थे मढ़ा जाय? कत्तिनों को अधिक मजदूरी दी जायगी, तो खादी तो महँगी हो ही जायगी, इसमें क्या इस घाटे को भी जोड़ले? प्रयोग तो जितने करने हो उतने किये जा सकते है और किये भी जायँगे, पर तब खादी-सेवकों से यह आशा नही रखनी चाहिए कि वे घाटा नहीं होने देंगे। इस तरह की अनेक बातें कार्य-कारिणी-समिति के सदस्योंने की।

इन तमाम आपत्तियों और शकाओं का समाधान करने के लिए गाधीजीने अपने प्रस्तावित सिद्धान्त को अधिक तफसील के साथ बताते हुए कहा "हमें अपने हृदय से आत्मा का हनन करनेवाले निष्फल अर्थशास्त्र के साथ प्रतिस्पर्धा करने का विचार ही हमेशा के लिए निकाल बाहर कर देना चाहिए। यह आपको मालूम है कि जापानी कपड़ा कैसी चालाकी से हमारे बाजारों मे पैठ गया है और बाजार दिन-दिन उससे पटते ही जारहे हैं? पाच साल पहले यह कपड़ा कुछ हजार गज ही आता था, पर आज वह लाखों गज धड़ल्ले के साथ आरहा है। उसके साथ आप कैसे होड़ा-होड़ी लगा सकेंगे? इसलिए हमे इस प्रतिस्पर्धा में पड़ने के लिए खादी का भाव घटाने का विचार ही छोड़ देना चाहिए। इतने वर्ष हमने गाहकों का ही विचार किया है, कातनेवालों का विचार बहुत ही कम किया है। हमारा यह संघ कतइयों का संघ है, गाहकों का संघ नहीं। यह बात हम भूल ही गये हैं कि हमें कत्तिनों का सच्चा प्रतिनिधि बनना है। यह बात तो हमारे दिमाग से उतर ही गई है। परिणाम इसका यह हुआ है कि हमारा

उधरा किसी तरह चलता गया है; हम इस बात पर भरोसा बांधे बैठे रहे हैं कि राजनीतिक वातावरण में उथल-पुथल हो तब बात बने, और एक तरह का जुआ हमने खेला है। मैंने जेराजाणी से पूछा था, कि 'तुम ये जो तमाम चित्ताकर्षक विज्ञापन देते रहते हो इससे लाभ ? इस तरह तो हम थोडे ही दिनों में इस दोषारोप के भाजन बन जायंगे कि हमने मध्यम वर्ग के बेकार मनुष्यों को नौकरी दिलाने के लिए ही यह संस्था खोली है। इसीमें मैं यह सलाह देता हूँ कि अब हमें अपने गरीब-से-गरीब भाइयों का शोषण करने के लिए घाटे में बिलकुल उतरना ही नहीं।' 'आप सौ स्त्रियों को सन्तोष-कारक मजदूरी देने के लिए हजारों को बेकार बनाने का जोखम अपने सिर पर उठायेंगे ?' ऐसा प्रश्न किसीने मुझसे पूछा था। मैं कहता हूँ कि विषमज्वर में जिस प्रकार रोगी को एक बार तो ताप चढ़ानी ही पड़ती है उसी प्रकार खादी-कार्य में इस प्रसंग का आना आवश्यक है। हमारा ध्येय तो यह है कि प्रत्येक बालिग ग्राम-वासी चर्खा चलावे और गांव-गांव करघा चलता हो। हमने लाखों रुपये की खादी पैदा की होगी, पर अपने ध्येय की दिशा में हम जरा भी आगे नहीं बढ़े। मैं आपसे कहता हूं कि शहरों और शहरों के ग्राहकों को तो आप भूल ही जाइए। आप तो अपनी सारी शक्ति इसमें लगावें कि हमारे तीस करोड़ ग्रामवासी खुद अपने हाथ से खादी पैदा करें और खुद ही उसे पहनें। इसलिए एक करोड़ या इससे अधिक जो नगरनिवासी हैं वे तो अपने-आप खादी पहनने लगेंगे। खादी में कुछ दिनों के लिए मंदी आजाय या बिक्री रुक जाय तो इससे आप घबराना नहीं। खादी की मांग न हो तो उसे आप बनाइए ही नहीं। जहां आपके भंडार घाटे पर चलते हों वहां उन्हें बन्द करदें, और जिन्हें आपकी खादी लेने की पर्वा हो उनसे आप कहें कि 'आपके लिए हम खादी तो बना देंगे, पर नये दर-दाम पर बनायेंगे'।

पर मैं अपनी बात जबरदस्ती आप लोगों से स्वीकार नहीं कराना चाहता। आपके गले अगर मेरी यह बात न उतरती हो तो इसे आप जाने दें। आपके कंधे जितना भार उठा सकें उससे अधिक जवाबदेही का भार आप अपने ऊपर न लें। जितना कपड़ा पास में हो, उसी हिसाब से खोल लीजिए। आपसे मैं इतना ही कहूँगा हूँ कि सावली के उत्पत्ति-केन्द्र में कुछ कत्तिनें अभी से नई मजदूरी की दर की शर्तें पालने लगी हैं और रोज तीन-चार आने कमालेती हैं। जहां-जहां हो सके, वहां वस्त्रस्वावलम्बन के काम में आप अपनी सारी शक्ति लगादें। इससे खादी का सुन्दर वातावरण बनेगा। उदाहरणार्थ, काठियावाड़ में खादी-सेवकोंने काफी समयतक उत्पत्ति-केन्द्र चलाकर उनमें उत्पन्न होनेवाली खादी बेचने का भारी परिश्रम और प्रयत्न किया है। अब उन्होंने यह प्रयत्न छोड़ दिया है। और श्री शंकरलाल बेंकर को जो जवाब मिले हैं उनमें काठियावाड़-शाखा के मंत्री का जवाब यह है कि हमें नई नीति के विषय में कोई आलोचना करनी ही नहीं और न कोई राय ही देनी है, क्योंकि हमारे यहां तो जितनी खादी होती है वह सब वस्त्रस्वावलम्बन की ही बनती है।"

इस चर्चा के परिणामस्वरूप गत बैठक में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास हुआ, जो इस अंक में अन्यत्र दिया जा रहा है। उसमें इस नई नीति की बहुत ही ब्योरेवार व्याख्या की गई है और समस्त खादी-सेवकों के लिए विस्तारपूर्वक उसमें कुछ सूचनाएँ भी दी गई हैं।

एक ग्राम-सेवक के अनुभव

पाठकों को याद होगा कि खेड़ा जिले में काम करनेवाले हमारे एक ग्राम-सेवक हैं, जो हमें गाय का घी भेजा करते हैं। गांधीजी-ने उनके काम के सम्बन्ध में उन्हें कुछ तफसीलवार सूचनाएँ भेजी थी। उन्होंने खुद किस तरह काम किया है इसका उन्होंने एक वर्णन लिख भेजा है। लिखा है कि—"जहांतक मुझसे बनता है मैं गाय का बढ़िया-से-बढ़िया घी जुटाने का प्रयत्न करता हूँ। मैंने एक-एक पर जाकर लोगों के घी बनाने के भांड़े-बासनों को अच्छी तरह से देखा-भाला है। वे लोग बड़ी मुसीबत में रहते हैं। छोटे-छोटे झोंपड़ों में ये और उनके ढोर एक हो साथ रहते हैं। उन्हीं झोंपड़ों में दिन में ये रोटी पकाते हैं और रात को सोते हैं। किवाड़ जब बन्द कर लेते हैं तब बिलकुल अंधाधुप होजाता है, क्योंकि इन झोंपड़ियों में कोई खिड़की या जंगला तो होता नहीं। जिन बड़े-बड़े मटकों में दूध, दही और घी रखा जाता है वे बहुत ही गंधाते हैं। दही बिलोने की मटकी, घी ताने का बर्तन सभी गंदे हैं। गरम पानी से अगर काम कर चुकने के बाद इन भांड़े-बासनों को लोग धो डाला करें तो उनमें जरा भी गंध न रहे। पर किसे पड़ी है कि यह सब करे ? इनकी आदतें सुधारना कठिन ही है। अब मैं ये दो प्रकार के प्रयोग करना चाहता हूँ एक तो यह कि लोगों से मक्खन खरीदकर उससे घी बनाऊँ जिससे स्वच्छ और अच्छा घी मिले; और दूसरा यह, कि दूध खरीदकर उसे खुद जमाऊँ, बिलाऊँ और मक्खन निकालकर उसका घी तैयार करूँ।"

भले ही ये प्रयोग किये जायं, पर इनका मूल्य तो इस दृष्टि से आंका जा सकता है, कि घी बनानेवालों को हम यह बतावें कि घी की जाति किस तरह सुधर सकती है और घी बनाने की तमाम क्रियाएं स्वच्छता के साथ किस प्रकार की जा सकती हैं, और उन्हें अधिक पैसा देकर घी बनाने की लालच हम लगावें। कम-से-कम पेट भरनेलायक मजदूरी का सिद्धान्त हमारी उत्पादन की प्रत्येक शाखा के लिए लागू होता है।

इन ग्राम-सेवक सज्जनने जो आंकड़े भेजे हैं, उनसे यह मालूम होता है कि उन्होंने चावल कूटनेवाली स्त्रियों को अच्छी उचित मजदूरी दी है। धान की दलाई की मजदूरी चार आने मन और एक बार की कुटाई की मजदूरी दो आने मन के हिसाब से दी है। जो स्त्रियां यह काम करती हैं वे ६, ७ घंटे काम करके सहज ही तीन, चार आने कमा लेती हैं। फरवरी से जुलाई तक हर महीने औसतन सोलह स्त्रियां काम करती थीं, यद्यपि मई से जुलाई तक सात-आठ दिन का ही काम निकला था। इन स्त्रियों की मासिक आमदनी का औसत चार से पांच रुपए तक पड़ता था। एक स्त्री ७=) माहवारतक कमा लेती थी। पर अधिकांश स्त्रियों की कमाई ६) से ऊपर नहीं जाती थी।

आहार-सम्बन्धी प्रयोग

पाठकों को ऊपर के इस वर्णन से यह मालूम होगया होगा कि, शुद्ध, बढ़िया बिना मिलावट का घी खोजने में कितनी मुश्किल पड़ती है। उनका अपना भी अनुभव ऐसा ही होगा। अच्छा शुद्ध घी मिलने के इस हमेशा के प्रश्न को हल करने के हेतु से ही गांधीजी किसी ऐसी चीज को खोज निकालने के लिए परिश्रम

(२९३ वें पृष्ठ के पहले कालम पर)

हरिजन-सेवक

शनिवार, २६ अक्तूबर, १९३५

अपनी आखिरी सांसें ले रही है

हिंदू रहकर मरने की अपेक्षा किसी दूसरे धर्म को ग्रहण कर लेने की डॉ० अंबेडकरने जो धमकी दी है उसके जवाब में मेरे इस दावे को, कि कावीठा की दुखद घटना के होते हुए भी अस्पृश्यता आज अपनी आखिरी सासें गिन रही है, कुछ आलोचकोंने बिना किसी हिचकिचाहट के अयुक्त या असगत बतलाया है। वास्तव मे, कावीठा की खुद यह घटना मेरे इस दावे का समर्थन करती है। कावीठा गाव जबतो बसा, शांति के साथ रह रहा था। यह तो हमारे एक जरूरत से ज्यादा जोशीले कार्यकर्त्ताने, जिसे खुद अपनी मर्यादाओ का पता नही था, कावीठा के हरिजनो को अपने बच्चे वहा की पाठशाला मे भेजने के लिए हिम्मत दिलाई, यद्यपि वह यह जानता था कि कावीठा के कुछ सवर्ण हिंदू इस काम की मुखालिफत करेगे। वह तो इस आशा म था, जैसा कि दूसरी जगहो मे हुआ है, कि हरिजनो को सार्वजनिक पाठशालाओ मे अपने बच्चो को भेजने का जो हक है उसपर वे दृढता के साथ डटे रहेंगे,और उसमे उन्हे सफलता भी मिलेगी। किंतु कावीठा के सवर्णोंने यह दिखला दिया कि उन्होंने समय की गति को अभी पहचाना नही था।

कुछ ही साल पहले कावीठा मे यह घटना घटी होती, तो किसी का उसपर ध्यान भी न जाता। उन दिनो सुधारको की सख्या बहुत ही कम थी। थोडे-से जो इने-गिने सुधारक थे, वे अधिकतर बड़े-बड़े कस्बो और शहरो मे ही थे। अब ईश्वर की कृपा से,उनकी सख्या बराबर बढती ही जाती है,और आज हर गाव मे आपको कुछ-न-कुछ सुधारक मिल जायगे। किंतु कुछ ही बरस पहले हरिजनो को किसी भी कारण से अस्पृश्यता का सामना करने के लिए प्रेरित नही किया जा सकता था। अस्पृश्यता जिस तरह आज सवर्णो के धर्म का एक अग है, उसी तरह वे उसे अपने धर्म का एक अग मानते थे। अस्पृश्यता-निवारण-आदोलन की साप्ताहिक प्रगति का 'हरिजन' में काफी प्रामाणिक विवरण निकलता रहता है। हालाकि प्रगति प्रत्यक्ष देखने मे आती है, तो भी कावीठा की तथा ऐसी ही अन्य दुखद घटनाओ से यह पता चलता है कि अनेक जगहो के अधिकाश सवर्णो के दिल पर अब भी इसका कोई असर नही हुआ है। सुधारको और हरिजनो को इससे यह चेतावनी मिलती है कि सवर्णों के कठोर हृदय पिघलाने के लिए अबभी बहुत कुछ करने को बाकी है।

फिर यह भी एक देखने की बात है कि कावीठा की इस दुखान्त घटना को लोक-प्रकाश मे लाने और उसे एक अखिल भारतीय महत्व देने का काम सवर्ण सुधारकोंने ही किया है। इस घटनाने जितना रोष हरिजनो को दिलाया है, उससे कही अधिक उसने सवर्णों के हृदय में खलबली मचा दी है। मुझे शर्म और अफसोस के साथ यह लिखना पड़ता है कि कावीठा के हरिजन भी अपने अधिकारो के लिए अब और अधिक हलचल नही मचाना चाहते। सवर्णों की उद्दण्डता के आगे उन्होंने अपने को दीनतापूर्वक झुका दिया है। उन्हें सब तरह से मदद देने पर भी वे कावीठा छोड़ने को तैयार नही। वहा जो थोड़े-से हरिजन हैं उनके लिए कहीं भी इज्जत-आबरू के साथ मेहनत-मजूरी करके पेट भरना कोई मुश्किल काम नही है। सुधारकोने उन्हे अपनी हिफाजत में कावीठा छोड़ देने के लिए प्रोत्साहित करने का जो प्रयत्न किया था वह असफल ही रहा।

धर्म का परिवर्तन—उसकी अपनी निजी त्रुटियों के कारण नहीं, बल्कि उसके अनेक अनुयायियों के अनुचित दुराग्रह के कारण—उचित भी मान लिया जाय, तो भी डॉ० अंबेडकर के इस धर्मान्तर मे उस कार्य की, जिसे वे करना चाहते है, केवल हार ही होगी। डॉ० अंबेडकर-जैसे शक्तिशाली लोगो के हिन्दूधर्म मे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने से हरिजनो के बचाव के हक में कुछ कमजोरी ही आ सकती है। अहिन्दू हरिजन, फिर वे चाहे कितने ही प्रभावशाली हों, हिन्दू हरिजनो को सहायता नही पहुँचा सकते। असल मे, जिन धर्मो को उन्होंने ग्रहण किया है, उनमें अब भी उनका वर्ग एक अलग है ही। भारत मे भारतीय नमूने की अस्पृश्यता का लोगो पर इस तरह कब्जा है!

डॉ० अंबेडकर के इस उचित रोष से सुधारकों को अधीर या उद्विग्न नही होना चाहिए, उन्हें तो उससे और भी अधिक प्रयत्नशील बनने की प्रेरणा मिलनी चाहिए। यद्यपि यह सच है कि अस्पृश्यता के विरुद्ध लड़नेवाले कार्यकर्त्ताओं की सख्या अब बहुत बढ गई है, फिर भी इसमे सन्देह नही कि उनकी संख्या अबभी इतनी छोटी है कि उससे युगों का दुराग्रह दूर नही हो सकता। तो भी अस्पृश्यता-निवारण-जैसी प्रवृत्तिने जहातक प्रगति की है, और जो छोटी-से-छोटी प्रतिकूल घटना के होने से दुनियाभर का ध्यान आकर्षित कर सकती है उसे देखने से तो यही कहा जा सकता है कि अस्पृश्यता अब अपनी आखिरी ही सासें ले रही है। मानवता अब उसे बहुत दिनोंतक बर्दाश्त नही कर सकती।

'हरिजन' से] **मो० क० गांधी**

धूल में से धन

युक्ताहार के विषय में इस पत्रमें समय-समय पर जो निकलता रहता है उसे नियमित रीति से पढनेवाले पाठक समझते होंगे कि हम अभी गेहूँ का चोकर और चावल की भूसी जो केवल फेक देते हैं या ढोरो को खिला देते है वह हमारे आहार के लिए बडे ही महत्व की चीज है। ढोरो को चोकर और भूसी मिलती है, इसका मुझे कोई द्वेष नही। पर मुझे ऐसा लगता है कि हम बहुत सी बातो की तरह ढोरो के आहार के विषय मे भी अविचार से ही काम लेते है। ढोरों के लिए हरे घास और खली की जितनी जरूरत है, उतनी चोकर या भूसी की नहीं। अगर हम गाव की घानो को फिर से काम मे लाने लगें, तो खली में से ढोर सहज में अपना हिस्सा निकाल सकते हैं। पर हमें अगर उत्पादन के साधन के रूप मे समर्थ बनना है, इस दुनिया में किसी भी राष्ट्र से हार नही खानी है, और हिंसा-प्रतिहिंसा की प्रतिस्पर्धा में नहीं उतरना है या एक दूसरे का गला नही काटना है, तो हमें चोकर या भूसी जितनी मिले उतनी का उपयोग अपने आहार मे करना चाहिए। किंतु गेहूं का चोकर राधने की जो एक सरल विधि एक मित्रने मुझे लिख भेजी है, उसकी इस प्रस्तावना को जो इतनी लंबी हो गई है मुझे अब और अधिक नहीं बढ़ाना चाहिए। यह विधि उन सज्जन को अपनी बहिन से मिली है। विधि यह है:—

इतना गेहूं मोटा-मोटा पीसो कि जिससे आध सेर चोकर निकल आये। मझौली चलनी में चालने से चोकर-चोकर अलग निकल आयगा। इस चोकर मे १० छटांक ठंडा पानी, आठ तोला अच्छे गुड का चूरा और आधी छोटी चम्मच अच्छा साफ नमक डालदो, और उसे अच्छी तरह हिलाओ। इस मिश्रण को किसी छिछले बर्तन में उँडेल दो, और उसे ढांककर पूरा आध घंटा रहने दो। फिर ऐसा तवा या थाली उस बर्तन पर रख दो जो उसपर ठीक तरह से बैठ जाय। फिर उसे कोयले की आंच पर रखदो, और उस थाली या तवे पर भी कुछ जलते हुए कोयले रखदो। इस तरह दोहरी आंच के बीच उस बर्तन को पांच मिनिट तक रहने दो। इसके बाद उस मिश्रण को लोहे की कढ़ाई मे डालकर मंदी आंच मे सिकने दो। पानी जल जाय, तब उस बर्तन को चूल्हे पर से उतार लो, और चोकर को ठंडा होने दो। बाद को साफ हाथ से उसे चलनी मे दबाकर चालो। नीचे रखे रखे हुए साफ कपडे या पाटिये पर उसमे महीन सेव या सिमई-सी गिरेगी। उन्हे धूप मे रखकर अच्छी तरह सुखा लो। फिर उन सेवों को योंही अथवा गरम या ठंडे दूध अथवा गरम पानी या छाछ के साथ खा सकते हैं। एक छटांक सेव का यह अच्छा बढ़िया कलेवा है। इतना ही नहीं, बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि इससे कब्ज भी दूर हो जायगा। कब्ज का रहना एक भारी अभिशाप है, इससे अनेक प्रकार की व्याधियां पैदा होती है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

(२९१ वे पृष्ठ से आगे)

कर रहे हैं, जो दूध और घी का काम दे सके। सोयाबीन मे प्रोटीन और चर्बी की मात्रा अधिक होती है और वह हमारे बाग-बगीचो मे ही पैदा हो सकती है। श्री नरहर भावेने सोयाबीन का जो प्रयोग किया है उसमे उन्हे सफलता भी मिली है। यह सब देखकर गत सप्ताह गांधीजी को हुआ कि इसका प्रयोग मगनवाडी में करके देखना चाहिए। जिन भाई-बहिनोने इस प्रयोग मे भाग लिया है उनके आहार मे से तेल घी बिलकुल और गेहूँ अमुक मात्रा में निकाल दिया गया है, और उन्हे उतनी मात्रा मे सोयाबीन दी जाती है कि जिससे उन्हे उतना ही पोषण मिल सके। इन प्रयोगो के परिणाम के विषय मे अभी कुछ कहना कठिन है, पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि सोयाबीन के दूध के अरोचक स्वाद से पहिले जो एक भड़क-सी थी वह अब चली गई है। हमलोग सोया-बीन को कुछ घंटे पानी मे भिगोकर रख देते हैं, फिर उसे भाप से बफा लेते है, और समूचा दाना ही खाते है। स्वाद मे यह गुजरात और महाराष्ट्र के 'वाल' की तरह या बफाई हुई मूंगफली की तरह लगती है। बफाने पर इसका दाना दूना बड़ा होजाता है, इसलिए दूसरी छीमियों के दाने की तरह सोयाबीन नही खाई जाती और उसे अच्छी तरह चबाना पडता है। हमने अपने बगीचे मे ही इतनी सोयाबीन कर ली है कि हमारे प्रयोगोभर के लिए तो हमे वह यही से काफी मिलती रहेगी।

इन प्रयोगो का परिणाम चाहे जो आवे, पर पुरानी बात को छोड़कर नई बात को सहज ही स्वीकार न करनेवाले लोग सोया-बीन के इतिहास के विषय में कुछ ताजी बाते जानलें यह आवश्यक है। 'फार ईस्टन सर्वे' नाम का एक पत्र है। उसके ११ सितम्बर के अंक मे लिखा है, कि 'अमेरिका के सयुक्तराज्य में सोयाबीन की फसल ८८७००० हजार एकड में होती थी, अब वह बढते-बढते दस लाख एकड के ऊपर पहुँच गई है और अन्दाजन एक करोड अस्सी लाख बुशल सोयाबीन निकलेगी।' पत्र में लिखा है कि 'संयुक्त राज्य मे सोयाबीन और उससे बननेवाली चीजों के विषय मे लोगों की जो दिलचस्पी बढने लगी है उससे यह विश्वास किया जा सकता है कि इस देश में इसकी उत्पत्ति और इसका उपयोग दोनो ही बढेंगे। उत्पत्ति के विस्तार में ज्यों-ज्यो वृद्धि होती जायगी, त्यों-त्यों इसके बीज की मांग बढती ही रहेगी। यह चीज मनुष्यों और पशुओं के आहार मे काम में आयगी। सोयाबीन के तेल का उपयोग रंग, साबुन, लीनोलियम इत्यादि के उद्योगो मे बढ़ता ही जाता है। पूर्व के देशो में तो एक जमाने से सोयाबीन का तेल रसोई मे, और सोयाबीन आहार के काम मे आती है, पर अमेरिकावालों के आहार मे तो सोयाबीन का उपयोग अभी-अभी होने लगा है। आटा और आटे की बनी चीज, दूध, तेल, मांस, मार्गरीन इत्यादि अनेक चीजो में इसका उपयोग होने लगा है। इससे यह प्रगट होता है कि आहार में सोयाबीन का उपयोग बढ़ता ही जाता है। इसका कारण यह है कि इसमें प्रोटीन, चर्बी और विटामिन अधिक मात्रा में होते हैं।"

(२)

हमारी ग्राम-सेवा

१६ तारीख, बुधवार की शाम को मीरा बहिन अपनी नई मढैया मे रहने के लिए सिंदी गाव को रवाना हुईं। उनका वहा यह पहला रैन-बसेरा था। झोपडी का यह हाल था कि एक तो अभी छप्पर पर खपरे नही छये थे, दूसरे, बेमौसिम की बूंदाबादी से फर्श तमाम भीग गया था। पर बुधवार के दिन वहा जाने का वे निश्चय कर चुकी थी, इसलिए चल ही दी। अपना डेरा-डंडा लेकर मगनवाडी से वे जब चली, तब बिल्कुल 'बाबाजी' की तरह लगती थी। सामान उनका था ही कितना---पाच-सात चीजो का एक थैला, बिस्तरे का छोटा-सा पुलिंदा और एक लालटेन। उन्हे पहुँचाने मै उनके साथ गावतक गया था, इसलिए थोड़ा सामान उनके हाथ मे मैने भी ले लिया। मेरी आखो मे उनका वह फकीरी बाना देखकर आसू भर आये, जिनमे आनन्द भी था और दुःख भी। आनन्द तो इस बात का कि आखिरकार मीराबहिनने, जिन्होने कि आगे-पीछे की चिंता छोडकर अपना सर्वस्व होम दिया है और जिन्हें ससारी मोह-माया हममें से किसी के भी मुकाबले मे बहुत कम है, इस बेपनाह गाव मे जा बैठने का निश्चय कर ही लिया, और दुःख इस बात कि गाधीजी को छोड़कर हम में से एक भी उनकी जगह जाने को तैयार न हुआ। गांधीजी से जब बिदा होने लगी, तब वे इस असमंजस मे पड़ गईं कि प्रभात-प्रार्थना का ठीक समय उन्हे कैसे मालूम हो सकेगा! वे अपनी घड़ी साथ नही ले जा रही थी। उन्होने कहा, 'चलो, कोई चिंता नहीं, मृगशीर्ष नक्षत्र की ओर देखकर मुझे यह पता चल जाया करेगा कि प्रार्थना का समय हो गया है।' गांधीजीने हँसते हुए कहा, 'पर तुम अपनी घड़ी वहां ले जा सकती हो। इसमे संदेह नहीं कि गाव में भी पाच-सात आदमी घड़ी रखनेवाले निकल ही आयँगे। हां, गरम पानी के लिए तुमने क्या इतजाम किया

है ? सबेरे-सबेरे तुम्हें गरम पानी वहां कहां मिलेगा ? अच्छा हो कि तुम अपना 'थरमस' लेती जाओ, ताकि बड़े तड़के तुम्हें पानी गरम करने की जरूरत न पड़े ।" मगर थरमस का न ले जाना ही उन्होंने पसंद किया, क्योंकि यह चीज गांव में अनसोहनी मालूम होती है। उस रात उन्हें अपनी झोपड़ी के छोटे-से ओसारे में सोना पड़ा।

उस दिन सांझ को हम लोगोंने अपने गांव में पहली बेर प्रार्थना की। गांव के कुछ बच्चे भी प्रार्थना में आ गये थे। हमारे साथ कुछ श्लोक और मराठी भजन सुर के साथ कहने का उन्होंने भी प्रयत्न किया। ऐसा लगा कि अपने गांव में यह नयी बात देखकर उन्हें बड़ा आनंद आ रहा है। दूसरे दिन शाम को हमने देखा कि एक कालेज का विद्यार्थी (जो अपना नाम गुप्त ही रखना चाहता है) अपनी एक महीने की छुट्टी में रोज शाम को प्रार्थना के बाद बच्चों को किस्सा-कहानी सुनाने के लिए वहां जाने को तैयार है। उसकी कहानी उन्हें खूब भाती है, और इस तरह हमारे बाल-गोपालों की मंडली रोज बढ़ती ही जाती है।

ग्रामवासी भी मीरा बहिन के साथ नाता जोड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं, पर ढंग उनका अपना है। मीरा बहिन को अब भी उन्होंने ठीक-ठीक नहीं समझा। मालूम होता है कि उनके वहां जाने के पहले ही लोगों में यह अजीब-सी नासमझी का खयाल घर कर बैठा है कि मीरा बहिन के पास लाखों रुपये हैं, मगनवाड़ी का सारा खर्चा यही चला रही हैं, और हमारे गांव में भंगियों की एक टोली तैनात करके यहां ये कोई अच्छा-सा काम करना चाहती हैं ! इन सीधे-सादे लोगों के दिल में यह भ्रम दूर करना अब भी कठिन है। उनका यह वहम तो धीरे-धीरे ही दूर होगा।

उस दिन शाम को जो लोग वहां जमा हो गये थे उन्हें मैंने मीरा बहिन के वहां रहने के निश्चय का उद्देश अच्छी तरह समझाया, और उन्हें बताया कि किस तरह और क्यों अपना घर और अपने देशवासियों को छोड़कर वे यहां सेवा करने के लिए आई हैं, और उन लोगों से मैंने कहा कि इन्हें आप अच्छी तरह रखना, यह आपकी बहिन के समान है। एक मांग युवकने कहा, 'नहीं, मीरा बहिन हमारी मां है। मैं अपने कुएं से पानी खींचकर ला दिया करूंगा, क्योंकि महार भाई तो अपने कुएं से इन्हें पानी भरने नहीं देंगे।' उस युवकने मीरा बहिन का घड़ा उठाया और तुरत मांगों के कुएं से पानी भर लाया।

कर्णाटक के एक गाँव में सेवा-कार्य

कर्णाटक के एक ग्रामसेवकने अपने ग्राम की समस्याओं के बारे में कुछ प्रश्न पूछे थे। उसके प्रश्नों के मैंने उत्तर भी दे दिये थे। मेरे पत्र के उत्तर में अब उसने मुझे एक खासा लंबा पत्र लिखा है, जिसके कुछ अंश मैं यहां उद्धृत करता हूँ —

"हम दो आदमी यहां काम कर रहे हैं। मेरा मित्र इसी गांव का है। लोग हमें आदर की दृष्टि से देखते हैं। हमारे काम के साथ उनकी सहानुभूति भी है। गांव के अनेक नवयुवक हमारे काम में हाथ बटा रहे हैं। अभी हम सारे मुहल्लों की सफाई हाथ में नहीं ले सके। असल में, अभी तो हमारा सारा ध्यान यहां की मुख्य सड़क पर ही है। यह सड़क पहले बहुत ही गंदी रहती थी। अब करीब-करीब वह साफ रहने लगी है। कई लोगोंने अपने-अपने हाते की सफाई शुरू करदी है। हमें अब सिर्फ बेवाला मकानों और पाठशाला, मंदिर आदि सार्वजनिक स्थानों के आगे ही सफाई करनी पड़ती है। दिन में हम वस्त्र-स्वावलम्बन का प्रचार और अपने छोटे-से चर्मालय का काम करते हैं। दो रात्रि-पाठशालाएँ भी हम चला रहे हैं—एक हरिजन-बस्ती में, और दूसरी हरिजनेतर-मुहल्ले में। सादी देशी दवाइयां भी हम यहां बांटते हैं, और हरिजनों के लिए एक कुआं भी हमने अभी-अभी तैयार किया है।"

काम यह सब अच्छा है। हमारे मित्रने कचरा वगैरा साफ करने के बारे में कुछ तफसील के साथ लिखा होता तो अच्छा होता। चूंकि गांव के नवयुवक सफाई के काम में सहयोग दे रहे हैं, इसलिए उन्हें गांव का एक भी हिस्सा नहीं छोड़ना चाहिए। यह याद रखना चाहिए कि गांव के किसी खास हिस्से में अगर आप हाथ नहीं लगायेंगे, तो वहां गोबर के घूरे और गर्द के ढेर लग जायेंगे।

पत्र के अन्त में, मेरे मित्रने एक प्रश्न पूछा है। मैं यह जरूर कहूंगा कि उनके उस प्रश्न को देखकर मुझे दुःख और आश्चर्य ही हुआ है। लिखा है :— "यहां पास में एक नाला है और उसीसे हमारा पीने के पानी का काम चलता है। चन्द कदम पर ऊपर की तरफ उस दिन मैंने देखा कि एक बुड्ढा आदमी वहां अपनी भैंस को नहला रहा है। मैंने उसे समझाया और कहा कि, 'पानी को क्यों गंदला कर रहे हो ? तुम्हें मालूम नहीं कि लोग इसी पानी को पीते हैं ?' पर उसने सुनी अनसुनी करदी। उसने मुझसे कहा 'तुम अपना काम किये जाओ। तुम्हें मेरे काम से मतलब ?' और लगा मुझे चोटी चढ़ाने व गालियां देने। अब तो मुझे भी गुस्सा आ गया, और उसे एक चपत लगाने को आगे बढ़ा। लेकिन मारा नहीं। सोचा, यह ठीक नहीं। और मैं रुक गया। मैंने फिर उससे मिन्नत की, और अन्त में वह अपनी भैंस लेकर वहां से चला गया। अब प्रश्न यह है कि उसे मैंने जो योंही छोड़ दिया क्या यह अच्छा किया ? गांव के कई आदमी कहते हैं कि मुझे इस तरह उसे छोड़ना नहीं चाहिए था, उसे यह दिखा देना चाहिए था कि मुझे वह इस तरह गालियां देकर बिना सजा पाये छूट नहीं सकता, और थोड़ी-सी कुटम्मस करदी जाती तो अच्छा ही होता। कुछ लोगों का तो यह खयाल है कि मैं कायर हूँ। मैं नहीं जानता कि मुझे किस तरह पेश आना चाहिए था। मुझे तो ऐसा लगता है कि अगर मैंने कायरता ही दिखाई तो इससे मेरा कुछ बिगड़ा नहीं। और मैं यह भी महसूस करता हूँ कि गांववालों में मेरी जो रसाई व मान्यता है वह मुझे खोनी नहीं चाहिए।"

हमारी प्रवृत्ति की प्रगतिकर अवस्था में इस तरह के प्रश्न का उठना एक अनोखी-सी ही बात है। तो इतने दिनों क्या हम योंही इस मंत्र की माला जपते रहे हैं कि हम अत्यन्त प्रसन्नता के साथ अपमान सहेंगे, घूंसे या थप्पड़ें खायेंगे और गालियां भी सुनेंगे ? और एक चपत लगाने की क्षमता पर ही लोगों पर किसी का प्रभाव क्यों निर्भर करे ? इससे गांववालों पर से प्रभाव उठ जायगा यह कैसी बात है ? लोगों को जब हम शिक्षा दें, तब धीरे-धीरे उनके दिल में हमें अहिंसा के मौलिक सिद्धान्तों को भी उतारते रहना चाहिए। हमारे नवयुवक मित्र को यह समझ लेना चाहिए कि उस बूढ़े मनुष्य पर उसकी जो चपत पड़ती, वह उसके सेवा-कार्य पर काफी आघात का काम करती, और वह चपत उसे ग्रामसेवा के लिए बिलकुल अयोग्य बना देती। उसे यह

भी जानना चाहिए कि आज गावो मे जो अनेक नवयुवक सेवा-कार्य कर रहे हैं, वे अहिंसा-सिद्धान्त को केवल कर्म से ही नही, बल्कि मन और वाणी मे भी अमल में ला रहे हैं, और इस तरह अहिंसा की निर्भय नीव पर अपना नाम सदा के लिए अमर कर रहे हैं।

एक दूसरा चित्र

गुजरात में एक तरुण सेवक है, जिसने दसहरे के दिन भैंसे का बलिदान रोकने का प्रयत्न किया और उसमें उसे सफलता भी मिली। इसमे संदेह नही कि उसने काफी चतुराई से काम लिया। पर उसके पीछे यदि अहिंसा न होती तो वह सब निष्फल ही जाती। उसने एक ऐसी घटना का वर्णन लिख भेजा है, जो गांवों के लिए बहुत ही साधारण-सी चीज है। एक दिन उसने एक खत मे एक बैल हल में जुता हुआ देखा। वह बैठ गया था, और उठने का नाम भी नही लेता था। किसान उसे अरई (कील लगी हुई लकडी) चुभो रहा था, उसका भाई उसके पेट पर खूब ठोकरे लगा रहा था, और उसकी स्त्री उस बेचारे बैल की नकेल जोर से खीच रही थी और बुरी-बुरी गालियां दे रही थी। पर वह टस-से-मस नही हो रहा था। नथनो से उसके खूब खून आ रहा था।

यह सब देखकर हमारे मित्र से न रहा गया। उनके वहा पहुँचने पर एक क्षण के लिए वे सब ठिठक गये। उन बेचारो को अपने कसूर का बिल्कुल ही पता नही था। "देखते नही, यह बैल कैसा गरियार है?" उनमे से एकने कहा, "अरे, इसे हुआ कुछ नही यह हरामजादा यो ही बहाना बना रहा है।"

"पर जरा देखो तो, इसकी नाक से कितना खून आ रहा है," हमारे ग्रामसेवकने कहा।

"यह कुछ नही है। यह तो आज सबेरे इसकी नाक मे नकेल डाली गई है, इसीसे यह खून आ रहा है।"

"पर तुम्हे कम-से-कम आज तो इसे नही जोतना चाहिए था। आज ही नकेल डाली, और आज ही उसे जोतने लगे! तुमने यह अच्छा नही किया। यह अभी बिलकुल बिना निकला बछडा है। तुम्हें तो इस हल मे डालकर धीरे-धीरे ही निकालना चाहिए। मेरी बात मानो, वह इस तरह उठने का नही।"

"वह उठेगा और फिर उठेगा। देखते नही, यह मेरे हाथ मे अरई है?"

"ईश्वर के लिए रहम करो, भाई! तुम एक बच्चे से मन-सवा मन का बोझा उठवाना चाहते हो! यह तो ठीक नही।"

"बच्चा!" किसान की स्त्रीने चिल्लाकर कहा। इस नागफनी को देखा है? अब की बार जरा बैठे तो मै उसके नीचे यह रख दूगी, अगर उसी वक्त न उठ बैठे, तो मेरा नाम न लेना।"

"नही, तुम्हे यह सब नही करना चाहिए। क्या तुम्हारे कोई लड़की नही है?"

"हां, है तो।"

"वह कितने घडे पानी भरके लाती है?"

"दो घड़े पानी एक वक्त में लाती है।"

"क्या शुरू से ही?"

"नहीं, पानी भरना एक छोटे-से चैले से उसने शुरू किया था, फिर उसके बाद जरा बड़ा घड़ा लाने लगी, और अब वह दो घड़े पानी बड़े मजे में भरके लाती है।"

"इसी तरह इस गरीब बछड़े को भी पहले धीरे-धीरे ही निकालना चाहिए। इस तरह तो यह बेचारा मर जायगा। हमारी-तुम्हारी तरह यह बेचारा मुहँ से तो कुछ बोलता नही। इस गरीब पर कुछ तो दया करो।"

"दया!" उस किसानने चिल्लाके कहा, "दया! हल नही जोतेंगे तो खायँगे क्या?"

बेचारा अब उठ बैठा, कुछ कदम चला और फिर बैठने लगा। उस निर्दय स्त्रीने दो नागफनी उसके नीचे रखदी, पर वह तो बैठ ही गया। वे कांटे उसे चुभे तो जरूर, पर वहीं मिथल गये।

खैर, उन लोगो को, जो पशुओ के साथ दिन-रात रहते-रहते उनसे भी अधिक पशु-वृत्ति के हो गये हैं, उस दिन छोड़ना ही पडा। दलीले सब बेकार थी। कुछ दिनो बाद वह स्त्री हमारे ग्रामसेवक को मिली और उसने यह कबूल किया कि उस दिन तो हमारी सारी कोशिश अकारथ ही गई।

उस किसान और उसकी स्त्री के साथ हम अगर हमसरी करने लगें, तो उनमे और हम मे फिर अन्तर ही क्या रह जाय?

एक सभ्य उपनगर में यह हालत है!

हमारे एक आश्रमवासी के एक पत्र से, जो आजकल बम्बई के सभ्य उपनगर सांटाक्रूज मे ठहरे हुए है, वहां के पाखानो की भयकर हालत पर बड़ा उग्र प्रकाश पडता है। वे लिखते हैं—"जो पाप हमारी रोज की आदतो मे शामिल हो गये हैं, उनमें एक तो हमारा वह ढग है, जिसमे हम म्युनिसिपैलिटी की हद में बने हुए पाखानों की भारी गदी हालत को बिला शिकायत बर्दाश्त किये जा रहे हैं, और चूकि मै उसमे कुछ भी सुधार नही कर सकता, और उनका उपयोग अगत्या मुझे करना ही पड़ता है, इसलिए मैं भी लज्जापूर्वक उस पाप का भागी हूँ।

एक मेहतरानी रोज हमारी टट्टियां साफ करने आती है। देखिए, उसके काम करने का ढग कितना कष्टकर है। उस दिन मैंने उसे काम करते देखा, तो मेरे रोंगटे खड़े हो गये। पेशाब व आबदस्त का तमाम गदा पानी एक खुली हुई गटर से बहकर पाखाने से कुछ फासले पर एक पक्के चहबच्चे मे जाता है। यह चहबच्चा हर पन्द्रहवे दिन खाली होता है, और मोटर लारी उस तमाम गदे पानी को भरके ले जाती है। पाच या सात औरते उसे खाली करती है। चहबच्चे से चालीस या पचास फुट के फासले पर मैले की लारी खडी होती है। उन औरतों को इस गंदे पानी के पीपे वहातक अपने सिर पर रखकर ले जाने पड़ते हैं। इन पीपो को जब वे झुककर पानी मे डुबोती है, तब उनके माथे पर, नाक पर और उनके कपडो पर उसके खूब छीटे पडते हैं। इससे बचने के लिए इन स्त्रियो को हाथ से उस पानी को रोकने और उसे उलीचने का लगातार प्रयत्न करना पडता है, पर उनके चेहरे और कपडे-लत्ते तो हमेशा ही उस नरक-कुड के पानी से खराब हो जाते हैं।

हरिजन-सेवकों और हरिजन-सघो के काम की रिपोर्टें हमारे हरिजन पत्रों मे समय-समय पर प्रकाशित होती रहती है। कितनी रात्रि-पाठशालाएं खुली, कितनी दवाइया बांटी गई और हरिजन-बस्तियो में इसी तरह का और क्या-क्या काम हुआ यही सब उन रिपोर्टों मे रहता है। मुझे भय है कि जबतक हमने भंगियों को उस हालत में, जिसमें कि उन्हे काम करना पड़ता है, जड़मूल से सुधार नहीं कर दिया, तबतक हरिजनोद्धार के इन कामों को कोई बड़ा महत्त्व नही मिल सकता।

दो प्रश्न   'आत्मवत् सर्वभूतेषु'   Reg. No. L 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक' किंग्सवे, दिल्ली.   संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]   वार्षिक मूल्य ३॥। एक प्रति का -)

भाग ३]   दिल्ली, शनिवार, २ नवम्बर, १९३५   [संख्या ३७

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्रामसेवा

गांव की प्रारंभिक समस्याएं अब मीराबहिन के सामने आई हैं। पानी का प्रश्न वैसा आसान नहीं है, जैसा कि हमारा खयाल था। और मांग लोगोंने जो यह कहा था कि हम आपके घड़े में पानी डाल दिया करेंगे वह उनका केवल ऊपरी शिष्टाचार था। यहांतक तो महार भी करने को तैयार थे। अपने घड़े में पानी डलवाने के लिए मीराबहिन अगर राजी हो जाती, तब तो कोई भी उनके लिए पानी खींच देता। मगर यह स्वेच्छा की सेवा कहांतक ली जानी चाहिए, इसकी भी कुछ सीमा है, अगर वास्तव में वह काम अपनी इच्छा से किया जाय, और सेवा में आता हो। पानी की तो तमाम दिन सभी तरह के कामों के लिए हर हमेश जरूरत पड़ती है, और यह स्वेच्छा की सेवा सदा तो प्राप्त होती नहीं, और हमेशा उसपर निर्भर करना शायद ही उचित था। किंतु यह तो तुरन्त ही पता चल गया कि इसके पीछे मांग लोगों के भी मन में एक तरह की अनिच्छा का भाव था, और वह यह कि वे भी मीराबहिन को अपने कुएं पर पानी नहीं भरने देना चाहते थे! उन्होंने एक दिन कहा, "हम सभी के हातों में यहां अपने-अपने कुएं हैं। फिर आप भी अपने हाते में क्यों न अपना कुआ खुदवालें?"

"पर मेरा हाता तो बहुत ही छोटा है और वह आप सब भाई-बहिनों के बैठने के लिए ही है, जो सांझ को प्रार्थना के समय यहां आते हैं। और जब यहां से थोड़ी ही दूर पर कई कुएं हैं, तो मैं एक और कुआं क्यों खुदवाऊं? मेरा तो यह खयाल था कि महार भाई अगर मुझे पानी नहीं भरने देंगे तो आप लोगों को अपने कुएं पर से मेरे पानी भरने में कोई एतराज नहीं होगा," मीराबहिनने मांगों से कहा।

"हमारी बिरादरी के बड़े-बूढ़े हमें जाति-बाहर कर देंगे।"

इस गांव में मांगों के घर दो या तीन से ज्यादा नहीं हैं। मीराबहिन के ध्यान में अब यह आया कि सबसे अच्छा तो यह होगा कि वर्धा के उस बनिये से, जिसका मकान सामने ही सड़क के आगे है, कहा जाय कि वह अपने कुएं से उन्हें पानी भरने की इजाजत दे दे। वह खुद तो वहां हमेशा नहीं रहता, पर उसके खेत-खलिहान के नौकर-चाकर वहां रहते हैं, और वह कभी-कभी गांव में अपनी खेती-बारी देखने आता है। सो एक दिन उसे वहां देखकर मीराबहिन अपना घड़ा लिये उसके कुएं पर जा पहुंची।

"हमारे कुएं में तो पानी बहुत ही थोड़ा है," उसने कहा। "सारे दिन चरसा चलता रहता है, फिर शाम को पानी रहे, तो कहां से?"

"पर मुझे ज्यादा पानी तो चाहिए नहीं। और यह बात मैंने आपके ही मुहँ से आज सुनी कि इस कातिक के महीने में भी आपके कुएं में काफी पानी नहीं है! सच बात यह क्यों नहीं कहते कि आप मुझे अपने कुएं से पानी नहीं भरने देंगे, और आपको यह डर है, जैसा कि इन महारों और मांगों तक को है, कि मेरे पानी भरने से आपका कुआ भ्रष्ट हो जायगा! यही बात है न?"

"मुझे खुद तो कोई आपत्ति नहीं," पर यह तो आप समझती ही हैं कि मेरे ये आदमी काम छोड़ देंगे, इन्हींका मुझे खयाल है। पर मैं अपने बड़े भाई से पूछूंगा, देखें, वे क्या कहते हैं।"

यह याद रखने की बात है कि ये महार और मांग और बल्कि बड़े-बड़े ब्राह्मणतक मीराबहिन को अपने घरों में बुलाने और उनके हाथ से दवा-दारू लेने में कोई आपत्ति नहीं करते। तब न तो उनके स्पर्श से वे ही भ्रष्ट होते हैं, न उनका पानी!

यह तो हुई पानी की बात। अब दूसरा जरूरी सवाल है सफाई का। ठीक उनके बीच में रहकर मीराबहिन सफाई के प्रश्न की गम्भीरता अब और भी अधिक अनुभव कर रही हैं। मैले व कचरे की गंदगी से सिर्फ सड़कें ही खराब नहीं होतीं, बल्कि हवा भी तमाम इर्दगिर्द की उससे खराब हो जाती है। इस विषय में वे रोज शाम को लोगों से बात करती हैं। टट्टियों का होना जरूरी है यह तो अब सभीने मान लिया है। पर उन्हें साफ कौन करेगा?

"साफ वही भंगी करेंगे जो रोज यहां आते हैं।"

"वे लोग इस तरह हमेशा थोड़े ही यहां आते रहेंगे। आप लोगों को यह जान लेना चाहिए कि वे भंगी नहीं हैं। आप इस बात में अपनी अज्ञानता का बहाना नहीं बना सकते। ऐसे भंगी आपने कभी देखे भी हैं? आपको याद रखना चाहिए कि अपनी इच्छा से जो लोग यहां मैला व कचरा साफ करने आते हैं उनमें से कुछ तो हमारी मगनवाड़ी के मेहमान होते हैं। वे यहां आप लोगों को यह सिखाने आते हैं कि अपना मल-मूत्र खुद अपने हाथ से साफ करने में कोई शर्म की बात नहीं है। सबसे बड़ी शर्म की बात तो यह है कि जब वे भले आदमी आपकी सेवा करने आते हैं तब आप खड़े-खड़े उनकी ओर ताका करते हैं और आम रास्तों को आप रोज ही गन्दा करते हैं। असल में, मुझे गांव के जमींदारों (वर्धा के वे व्यक्ति

[illegible] "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक' किंग्सवे, दिल्ली. | संपादक—वियोगी हरि [हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में] | वार्षिक मूल्य ३॥) एक प्रति का -)

भाग ६] दिल्ली, शनिवार, २ [illegible] [[illegible]

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्रामसेवा

गांव की प्रारंभिक समस्याएँ अब मीराबहिन के सामने आई हैं। पानी का प्रश्न वैसा आसान नहीं है, जैसा कि हमारा खयाल था। और [illegible] लोगोंने जो यह कहा था कि हम आपके घड़े में पानी डाल दिया करेंगे वह उनका केवल ऊपरी शिष्टाचार था। यहांतक तो महार भी करने को तैयार थे। अपने घड़े में पानी डलवाने के लिए मीराबहिन अगर राजी हो जातीं, तब तो कोई भी उनके लिए पानी खींच देता। मगर यह स्वेच्छा की सेवा कहांतक ली जानी चाहिए, इसकी भी कुछ सीमा है, अगर वास्तव में वह काम अपनी इच्छा से किया जाय, और सेवा में आता हो। पानी की तो तमाम दिन सभी तरह के कामों के लिए हर हमेशा जरूरत पड़ती है, और यह स्वेच्छा की सेवा सदा तो प्राप्त होती नहीं, और हमेशा उसपर निर्भर करना शायद ही उचित था। किंतु यह तो तुरन्त ही पता चल गया कि इसके पीछे गांव लोगों के भी मन में एक तरह की अनिच्छा का भाव था, और वह यह कि वे भी मीराबहिन को अपने कुएँ पर पानी नहीं भरने देना चाहते थे। उन्होंने एक दिन कहा, "हम सभी के हातों में यहां अपने-अपने कुएँ हैं। फिर आप भी अपने हाते में क्यों न अपना कुआं खुदवालें ?"

"पर मेरा हाता तो बहुत ही छोटा है और वह आप सब भाई-बहिनों के बैठने के लिए ही है, जो शाम को प्रार्थना के समय यहां आते हैं। और जब यहां से थोड़ी ही दूर पर कई कुएँ हैं, तो मैं एक और कुआं क्यों खुदवाऊँ ? मेरा तो यह खयाल था कि महार भाई अगर मुझे पानी नहीं भरने देंगे तो आप लोगों को अपने कुएँ पर से मेरे पानी भरने में कोई एतराज नहीं होगा," मीराबहिनने [illegible] से कहा।

"हमारी बिरादरी के बड़े-बूढ़े हमें जाति-बाहर कर देंगे।"

इस गांव में [illegible] के घर दो या तीन से ज्यादा नहीं हैं। मीराबहिन के ध्यान में अब यह आया कि सबसे अच्छा तो यह होगा कि [illegible] के एक बनिये से, जिसका मकान सामने ही सड़क के आगे है, कहा जाय कि वह अपने कुएँ से उन्हें पानी भरने की इजाजत देदे। वह खुद तो वहां हमेशा नहीं रहता, पर उसके खेत-खलिहान के नौकर-चाकर वहां रहते हैं, और वह कभी-कभी गांव में अपनी खेती-पाती देखने आता है। सो एक दिन उसे वहां देखकर मीराबहिन अपना घड़ा लिये उसके कुएँ पर आ पहुँचीं।

"हमारे कुएँ में तो पानी बहुत ही थोड़ा है," उसने कहा। "सारे दिन चरसा चलता रहता है, फिर शाम को पानी रहे, तो कहां से ?"

"पर मुझे ज्यादा पानी तो चाहिए नहीं। और यह बात मैंने आपके ही मुहँ से आज सुनी कि इस कातिक के महीने में भी आपके कुएँ में काफी पानी नहीं है ! सच बात यह क्यों [illegible] कि आप मुझे अपने कुएँ से पानी नहीं भरने देंगे, और [illegible] है, जैसा कि इन महारों और मांगों तक को है, कि [illegible] भरने से आपका कुआं भ्रष्ट हो जायगा ! यही बात है न ?"

"मुझे खुद तो कोई आपत्ति नहीं," पर वह तो [illegible] ही है कि मेरे ये आदमी काम छोड़ देंगे, इन्हीका मुझे खयाल है। पर मैं अपने बड़े भाई से पूछूँगा, देखें, वे क्या कहते हैं।"

यह याद रखने की बात है कि ये महार और मांग और बल्कि बड़े-बड़े ब्राह्मणतक मीराबहिन को अपने घरों में बुलाने और उनके हाथ से दवा-दारू लेने में कोई आपत्ति नहीं करते। तब न तो उनके स्पर्श से वे ही भ्रष्ट होते हैं, न उनका पानी !

यह तो हुई पानी की बात। अब दूसरा जरूरी सवाल है सफाई का। ठीक उनके बीच में रहकर मीराबहिन सफाई के प्रश्न की गम्भीरता अब और भी अधिक अनुभव कर रही हैं। मैले व कचरे की गदगी से सिर्फ सड़कें ही खराब नहीं होतीं, बल्कि हवा भी तमाम इर्दगिर्द की उससे खराब हो जाती है। इस विषय में वे रोज शाम को लोगों से बात करती हैं। टट्टियों का होना जरूरी है यह तो अब सभीने मान लिया है। पर उन्हें साफ कौन करेगा ?

"साफ वही भंगी करेंगे जो रोज यहां आते हैं।"

"वे लोग इस तरह हमेशा थोड़े ही यहां आते रहेंगे। आप लोगों को यह जान लेना चाहिए कि वे भंगी नहीं हैं। आप इस बात में अपनी अज्ञानता का बहाना नहीं बना सकते। ऐसे भंगी आपने कभी देखे भी हैं ? आपको याद रखना चाहिए कि अपनी इच्छा से जो लोग यहां मैला व कचरा साफ करने आते हैं उनमें से कुछ तो हमारी मगनवाड़ी के मेहमान होते हैं। वे यहां आप लोगों को यह सिखाने आते हैं कि अपना मल-मूत्र खुद अपने हाथ से साफ करने में कोई शर्म की बात नहीं है। सबसे बड़ी शर्म की बात तो यह है कि जब वे भले आदमी आपकी सेवा करने आते हैं तब आप खड़े-खड़े उनकी ओर ताका करते हैं और आम रास्तों को आप दोनों ही गन्दा करते हैं। असल में, मुझे गांव के जमींदारों (गांवों के वे व्यक्ति

(जिनकी जमीनें इस गाव मे है) से कहकर यहा कुछ टट्टिया बनवानी होंगी। और गाव की सफाई के लिए एक भगी परिवार आपको यहा रखना होगा।"

सध्या की प्रार्थना यहा नित्य नियमित रीति से होती है। शुरू मे बहुत शोरगुल होता था। एक या दो दिन कुछ ऊधमी बच्चोंने कुछ अशान्ति भी मचाई थी। किंतु ये काका साहब तथा दूसरे मित्रों के सामने, जो प्रार्थना के बाद उन्हे कहानिया सुनाते आते है, व्यवस्थित और शात रहते है। काका साहब इन ऊधमी बच्चों को जिस तरह काबू मे कर सकते है उस तरह दूसरा नही कर सकता। काका साहब एक जन्मजात शिक्षक जो ठहरे।

एक सूचना

सफाई के प्रश्न के सम्बन्ध मे मेरे पास देश के तमाम भागों से पत्र आते रहते है। एक मित्रने, जो शोलापुर जिले के एक गाव मे काम कर रहे है, एक लबा पत्र लिखा है। उस पत्र को मै सक्षिप्त रूप मे नीचे देता हूँ :—

"'हरिजन' को मै बराबर नियमित रीति से और ध्यान के साथ पढता हूँ, क्योंकि मै दो महीने से इस गाव मे मैला वगैरा साफ करने का काम कर रहा हूँ। सहयोग का तो यहा नाम भी नही, और लोग विरोध भी नही करते। मै अकसर अचरज से पडकर सोचा करता हूँ कि क्या यह प्रश्न कभी हल होगा? मै बिल्कुल हताश नही हुआ हूँ, क्योंकि मेरा विश्वास है कि यह विकट प्रश्न एक बरस मे हल हो या सौ बरस में, उसे हल करना ही है। और जो इस काम को करता है, वह किसी के साथ एहसान नही करता, वह तो अपना कर्तव्य-पालन करता है। पर हिंदुस्तान के ७००,००० गावों के लिए हम ७००,००० स्वयसेवक कहा से लायेंगे? इसके बजाय ७००,००० गावो मे क्या हम ७००,००० भगी-परिवार नही रख सकते? भगियों का अपने यहा कोई टोटा नही है, और अगर हरेक गाव एक-एक भगी कुटुब रखले तो यह सफाई का प्रश्न आप ही हल होजाय। एक भगी कुटुब के लिए ३००) वार्षिक रख लीजिए, इससे अधिक देने की जरूरत नही। २००) टट्टियो की बनवाई वगैरा के रखले। साल मे ५००) से ऊपर खर्चा नही पडेगा। आपके अपने आकडो के अनुसार एक व्यक्ति के मैले का खाद अगर ठीक तरह से रखा जाय और उसका उचित उपयोग हो तो वह साल मे २) का होता है। इसका यह अर्थ हुआ कि जिस गाव की आबादी ५०० है, उसकी सालाना आमदनी १०००) की हुई, और इस तरह वह गाव आसानी से यह ५००) का खर्चा अपने ऊपर ले सकता है। भगी को गाववालो की महज दया पर नहीं छोड देना चाहिए। ग्राम-सेवक ३० गाव हाथ मे लेकर भगी के साथ एक-एक दिन एक-एक गाव मे सफाई का काम करे और उसका काम देखे और उसे ठीक तरह से काम करने का ढग सिखाये।"

सूचना जरा भी बुरी नही है, और जहा इसकी जरूरत मालूम पडे और लोग तैयार हो वहा इसके अनुसार काम किया जा सकता है। लेकिन ऊपर से यह चीज जितनी आसान दिखती है उतनी आसान है नही। जैसा कि मैने ऊपर कहा है, हमलोग खुद ही अपने सिंदी गाव मे एक भगी कुटुब बसाना चाहते है। किंतु जबतक भगी को हमने उसके पहले के प्रतिष्ठित पद पर नही पहुंचा दिया, और उसके काम को एक नया दरजा प्राप्त नही हो गया, तबतक यह प्रश्न हल होने का नही। हमारे एक डेनमार्क के मित्रने, जो कुछ दिन हमारे साथ यहां रह गये है, हमसे कहा था कि डेनमार्क के गांवो मे ग्रामवासियो के ठीक बीच में भगी रहते है, और वहा कोई यह नहीं कह सकता कि यह भंगी बढई है, या लुहार है या कोई दूसरा कारीगर है। सामाजिक समानता के इस वातावरण के पैदा होने में अवश्य अभी समय लगेगा। शिक्षित तथा देशभक्त तरुण इस काम को करने के लिए आगे आवें। यह बहुत धीरे-धीरे धीरज के साथ चलने का मार्ग है, किंतु है यह राजमार्ग। हमारे इन मित्र की नाई दूसरे अनेक ग्रामसेवक देश के विभिन्न भागों मे इसी तरह का काम कर रहे है। निस्सदेह ऐसे कार्यकर्ता आज मुट्ठीभर ही है, पर एक बार काम का ढर्रा चल निकले, तब न तो यह हिसाब लगाने की जरूरत है, और न यह राह देखने की ही कि सौ वर्ष मे हमे ७,००,००० ग्रामसेवक मिलेंगे। यह तो आप जानते ही है कि जरा-सा खमीर सारे आटे को उठा देता है।

खमीर

यह खमीर क्या होगा, इसे गाधीजीने २२ अक्तूबर को उन ग्राम-सेवको के आगे अपने भाषण मे विस्तार के साथ बतलाया था कि जिनका आतिथ्य करने का उस दिन हमे सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

ये उस छोटी-सी टोली के ग्राम-सेवक थे, जिसे विनोबाजीने ट्रेनिंग दिया है, और जो करीब दो साल से वर्धा जिले के गावो मे काम कर रही है। उनके सघ के अविराम रीति से काम करनेवाले मत्री श्री राधाकृष्ण बजाज साल मे एक या दो बार उनकी सभाओं का आयोजन करते है, जिनमे वे सब आपस मे विचार-विनिमय तथा अपने कार्य से सबध रखनेवाले प्रश्नो पर चर्चा करते है। इस साल राधाकृष्णजीने ८ अक्तूबर से २२ अक्तूबर तक पद्रह दिन के एक अध्ययन-क्रम का आयोजन किया था। विनोबाजी, काका साहब, किशोरलाल भाई, धर्माधिकारी और दूसरे सज्जनोंने न केवल ग्राम-सबधी समस्याओ पर, बल्कि समाज-वाद, वर्गवाद, गाधीवाद, धर्म, सहकारिता, बैंक आदि विषयो पर भी भाषण दिये थे। अतिम दिन वे सब लोग मगनवाडी के पाहुने थे। गाधीजीने उस दिन उनके लिए खूब ध्यान के साथ ऐसे भोजन का प्रबध किया था, जो ग्रामवासियो के अनुकूल पड़े। ६॥ पैसे का वह खासा अच्छा युक्ताहार था। वह भोजन हरेक के सतोष का था। और उसका इस ढग से आयोजन किया गया था कि वह दिन के मुख्य आहार का काम दे सके। दूसरे भोजन या भोजनो मे एक आना या एक आने के लगभग ही खर्च होगा, इससे ज्यादा खर्च नही होना चाहिए। उन्हे गांवो मे काम करना है और यह जान लेना उन्हे जरूरी है कि औसत दरजे के एक ग्रामवासी को अधिक या कम जितना मिल सकता है उतने भोजन पर वे स्वयं भी सतोष रखे। बाद को इन ग्राम-सेवकोंने खूब अच्छी तरह चर्चा करने के पश्चात् अपनी बैठको मे यह निश्चय किया कि ग्रामउद्योग-सघ और चर्खा-सघ-द्वारा नियत मजदूरी के उसूल पर आठ घंटे काम करने के लिए जबतक कोई सेवक या सेविका तैयार न हो, तबतक उसे गाव मे सेवा-कार्य के लिए जाना ही नही चाहिए; उनका अधिक-से-अधिक अलाउन्स १५) मासिक होना चाहिए; उनमे ७॥) माहवार के अदर गुजर करलेने की योग्यता होनी चाहिए, और, अगले साल सघ उन्हे उतनी मजदूरी दे जितना कि वे खुद कमा सकें।

कर्मयोग का सिद्धांत

उसदिन एक सज्जनने गांधीजी से पूछा कि कर्मयोग पर आपका अनुचित आग्रह न सही, पर क्या आप उस पर

जरूरत से ज्यादा जोर नहीं दे रहे हैं ? गाधीजीने इसका यह जवाब दिया कि, "नहीं, यह बात बिल्कुल नहीं, जो मैंने कहा है उसका हमेशा वही अर्थ लिया है। इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। कर्मयोग पर जरूरत से ज्यादा जोर देने की बात तो कभी हो ही नहीं सकती। मैं तो गीता में भगवान्ने जो यह कहा है केवल उसी को दोहरा रहा हूँ कि—

"यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

अर्थात्, यदि मैं सतत जागृत रहकर कर्म न करूं, तो तमाम मनुष्य मेरा अनुकरण करने लग जायँगे।" क्या मैंने व्यवसायी लोगों से यह प्रार्थना नहीं की कि वे खुद चर्खा चलाकर हमारे तमाम देशवासियों के सामने एक सदर उदाहरण रखें ?"

"भगवान् बुद्ध की तरह आपको कोई मनुष्य मिले तो क्या उससे भी आप यही बात कहेंगे ?"

"अवश्य, इसमें मुझे जरा भी हिचकिचाहट नहीं होगी।"

"तो फिर तुकाराम और ज्ञानदेव-जैसे महान् सतों के विषय में आप क्या कहेंगे ?"

"उनके संबंध में विवेचन करनेवाला मैं होता कौन हूँ ?"

"पर बुद्ध के संबंध में आप ऐसा कहेंगे ?"

"मैंने ऐसा तो कभी नहीं कहा। मैंने तो सिर्फ यह कहा है कि अगर बुद्ध की कोटि के किसी मनुष्य से प्रत्यक्ष मिलने का मुझे सद्भाग्य प्राप्त हो, तो मैं उससे यह कहने में जरा भी संकोच न करूँ कि वह ध्यानयोग के मुकाबले में कर्मयोग की पुष्टि करे। उन महान् संतों से यदि मेरा मिलना हो, तो उनसे भी मैं यही बात कहूँ।"

देह-दमन

गाधीजी का यद्यपि यह आग्रह है, जैसा कि हमने देखा है, कि ग्राम-सेवक को ऐसे भोजन पर रहना चाहिए जो ग्रामवासी के अनुकूल हो और जिसपर तीन आना रोज से ज्यादा खर्च न पड़े, पर वे यह आग्रह कभी नहीं करते कि ग्रामसेवक भूखा रहे या अपनी देह का व्यर्थ दमन करे। एक कार्यकर्त्ताने दिन में केवल एकबार भोजन करने का कठोर व्रत ले रखा है—और उस भोजन में साधारणतया १५ तोला चावल, दाल व साग और छाछ रहता है, जो सिर्फ चार पैसे रोज का होता है। गाधीजीने उसे लिखा है —

"तुम्हारा यह आहार बहुत ही अल्प है। मेरी राय में, ईश्वरने तुम्हें जो शरीररूपी यंत्र दिया है उसका तुम पूरा उपयोग नहीं कर रहे हो। बाइबिल की वह सिक्कोंवाली कहानी* तुम्हें मालूम है जिसमें उस मनुष्य से सिक्के वापस ले लिये गये थे जो या तो उनका उपयोग करना नहीं जानता था, या जानकर उपयोग नहीं करता था ? देह का दमन करना तब आवश्यक है, जब कि वह हमारी आत्मा के विरुद्ध विद्रोह करती हो। किंतु जब वह काबू में आगई हो, और लोक-सेवा में उसका उपयोग किया जा सकता हो, तब उसका दमन करना पाप है। इसे यों भी कह सकते हैं कि देह-दमन में स्वतः कोई नैसर्गिक गुण नहीं है।

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

* उसका सिक्का उससे लेलो (जिसने उसका उपयोग नहीं किया, बल्कि उसे जमीन में गाड़ रखा था) और वह उसे देदो, जिसके पास दस सिक्के हैं (जिसने पाँच के दस कर लिये हैं); जिसने उनका उपयोग किया है उसीको दिये जायँगे, और उसे प्रचुर मात्रा में दिये जायँगे; किंतु जिसने उनका उपयोग नहीं किया उसके पास जो हैं वे भी उससे ले लिये जायँगे। —बाइबिल से

विद्यार्थी क्या सेवा करें ?

एक विश्व-विद्यालय के एक सेवाव्रती विद्यार्थीने गाधीजी से पूछा था कि 'अपने फालतू समय में देश की मैं क्या सेवा कर सकता हूँ, कि जिससे मेरी पढाई में बाधा न आवे ?' गाधीजीने उसे नीचे-लिखी तफसीलवार सूचनाएँ भेजी हैं :—

"देश की तुम इस-इस तरह से सेवा कर सकते हो

(१) नित्य दरिद्रनारायण के प्रीत्यर्थ एकाग्र और मजबूत सूत कातो, सूत कातने का समय, सूत का तार, वजन और नम्बर, इन सबका हिसाब रखो, और हर महीने अपने काम की रिपोर्ट मुझे भेजो। जो सूत कातो उसे सँभालकर रखो, और बाद को उसे मेरे पास भेजदो।

(२) स्थानीय प्रमाणित खादी भंडार की तरफ से रोज थोड़ी खादी बेचो और रोज की बिक्री का ठीक-ठीक हिसाब रखो।

(३) नित्य कम-से-कम एक पैसा बचाओ।

(४) एकत्रित किया हुआ वह सब पैसा मुझे भेजदो। 'कम-से-कम' इस विशेषण का अर्थ समझलेना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि अधिक पैसा बचा सको तो दरिद्रनारायण की पेटी में और भी अधिक पैसा जायगा।

(५) दूसरे विद्यार्थियों को साथ लेकर हरिजन-बस्ती में जाओ, अपने साथियों के साथ बस्ती में सफाई करो, हरिजन बालकों के साथ मित्रता जोड़ो और उन्हें उनके शरीर और घर और गलियाँ साफ रखने की बात सिखाओ।

इस सब काम के बाद तुम अधिक समय बचा सको तो एक आध ग्राम-उद्योग सीखलो, जिससे भविष्य में अपना अध्ययन पूरा कर चुकने के बाद तुम ग्राम-वासियों की कुछ सेवा कर सको। अभी इतना करो और इतने पर भी पढाई के बाद अधिक काम करने के लिए समय और हविस हो तो मुझसे पूछना, मैं तुम्हें और भी अधिक सूचनाएँ लिख भेजूँगा।"

महादेव ह० देसाई

स्यालकोट का हाथ का बना कागज़

१८८३ के इंपीरियल गजेटियर, जिल्द १२ पृष्ठ ४५२ में लिखा है —

"इस जगह का खास उद्योग कागज का है। शहर से लगे हुए तीन पुरवों में यह काम होता है। कहा जाता है कि कागज बनाने का यह उद्योग यहां चार सौ बरस पहले दाखिल हुआ था, और मुगलों के शासन-काल में अपनी सुंदरता के लिए यह कागज काफी प्रसिद्ध था। दिल्ली के सरकारी दफतरों में इसकी बहुत खपत होती थी। उन दिनों यह कहा जाता है कि, यहां हर साल ८०,००० पाउण्ड की कीमत का कागज बनता था। लेकिन सिक्खों के राज्य-काल में यह उद्योग इतनी जल्दी गिरा कि कागज के सिर्फ २० कारखाने रह गये, जिन में २५०० पाउण्ड की कीमत का कागज बनता था। सन् १८५०–१८६० में इस जिले का जब बदोबस्त हुआ, तब ८२ कारखाने चल रहे थे, जिनमें ७५०० पाउण्ड का कागज हर साल बनता था। अब यह उद्योग फिर गिरता चला जा रहा है। कारण यह है कि सरकार केवल जेल के बने कागज को ही काम में ला रही है।"

'हरिजन' से] **वा० गो० देसाई**

हरिजन-सेवक

शनिवार, २ नवम्बर, १९३५

दो प्रश्न

हरिजन आन्दोलन के एक कार्यकर्त्ताने मुझे दो प्रश्न लिख भेजे है। उनमे से पहला यह है :—

"मै अपने यहां एक हरिजन रखता हूँ। एक दिन मेरे यहा एक मेहमान आते है, जो अस्पृश्यता के हामी है। इस समय यदि मै अपने नौकर से उन्हे पानी वगैरा दिलवा देता हूँ, तो उन्हे धोखा देता हूँ, और अगर नौकर से न दिलवाकर खुद देता हूँ, तो नौकर का जी दुखता है। मेरे लिए यह एक भारी धर्मसकट है। ऐसी हालत मे क्या करना चाहिए, कुछ समझ मे नहीं आता।"

इसमे धर्मसकट का तो सवाल ही नहीं उठता। जब हम किसी भगी हरिजन को अपना कुटुम्बी बनाकर रक्खे तो पहलेसे ही उसे अपने घर के सब नियम बता देने चाहिएँ। उसमे यह साफ-साफ कह देना चाहिए कि हमारे यहा अस्पृश्यता माननेवाले मेहमान भी आते है, और उनके दिल को न दुखाने के लिए हम खुद ही उन्हे पानी वगैरा देते है या दूसरे नौकरो से दिला देते है। जो भगी नौकर हमारी इस आदत को जानता है, उसे दुख मानने का कोई कारण नहीं रह जाता। लेकिन उक्त प्रश्न मे यह अध्याहार है कि इस बर्ताव से भगी के सामने एक नई समस्या खडी हो जाती है। इसलिए ऐसे मौको पर हम अपने मेहमान और भगी सेवक दोनो के सामने अपनी आपत्ति को खोलदे, तो न तो किसी को धोखा ही होगा और न किसी प्रकार का धर्मसकट ही आयगा।"

दूसरा प्रश्न यह है —

"कुछ हरिजनो को एक भोज दिया जाता है, जिनमे अधिकतर चमार है और दो-चार राजपूत भी। भोजन बनाने और परोसनेवाले भगी है। पर यह बात भोजन करनेवालो को नहीं बताई जाती। वे बिना जाने खाकर चले जाते है। अगर उन्हे यह बात भोजन से पहले बता दी जाती तो वे छोडकर चले जाते और बाद मे बताई जाती, तो झगडा करते। इसलिए उन्हे अनजान मे खिलाना क्या धोखा नहीं हुआ ? यह उचित था या अनुचित ?"

यह प्रश्न अगर किसी बीती हुई घटना के बारे मे है, तो बिलकुल निरर्थक है। मै भविष्य के बारे मे ही कह सकता हूँ। जब हम सब प्रकार के हरिजनो को भोजन के लिए बुलावे, तो उन्हे पहले से ही बता देना चाहिए कि भोजन बनाने और परोसनेवाले भगी हरिजन ही होगे। अगर हम यह बात साफ नहीं करते, तो सरासर धोखा देना है। हमे यह बात कभी न भूलनी चाहिए कि अस्पृश्यतारूपी जहर हरिजनो मे भी फैला हुआ है।

मो० क० गांधी

मुलाकातियों से क्षमा-प्रार्थना

मगनवाडी पर उसकी शक्ति से अधिक भार पड रहा है, उसके लिए यह हद से भी ज्यादा है। मगनवाडी मे मेहमानो के लिए जो कमरे है उनमे अधिक-से-अधिक १२ आदमियो की समायत हो सकती है। मुख्यतया ग्रामउद्योग-सघ के बोर्डवालो तथा उन व्यक्तियों के लिए ये कमरे है, जिन्हे कि सघ के अध्यक्ष अथवा मन्त्री सलाह-मशविरा या दूसरे कामों के लिए बुलाते रहते है। लेकिन जहां भी मै रहता हूँ, वहा चारो तरफ से लोगो के आने का तांता-सा लगा रहता है। मैने यह नियम बना लिया है कि लोगों से जहातक हो यह कह दिया करूँ कि मेरे इख्तियार में जो जगह है वहा वे मेरे साथ ठहर सकते है। नतीजा इसका यह हुआ है कि मेरा निवास-स्थान आज एक धर्मशाला बन गया है, उसमे कोई खानगी कमरा तो रहा ही नहीं।

खुश्क मौसिम मे तो कोई कठिनाई नहीं पडती। मेरे तथा बोर्ड के आफिस के कमरों की काफी चौरस छतो पर लोग सो सकते हैं। दिन मे वे किसी तरह काम चला लेते है। इस तरह रहते हुए मेरे लिए यह सभव नहीं कि अनगिनत मुलाकातियो के लिए मैं अच्छे आराम के कमरे दे सकू, तो भी वे बिना पहले से पूछे चले आते है। फिर यह भी बात है कि हमलोग बिना नौकरो के ही काम चला रहे है। रसोई बनाना, भाडे-बासन माजना और तमाम सफाई करना ये सब काम हम खुद ही करते हैं। इसलिए जब बिना कोई इत्तिला दिये लोग आ जाते है तब मगनवाडी के पास जितनी कुछ साधन-सामग्री है उसपर सचमुच भारी भार पडता है। मुझे मजबूरन इन्कार करना पडता है कि न उन्हें यहा जगह मिलेगी न भोजन। रात को यह हिसाब लगा लिया जाता है कि कल कितने लोग रहेगे, और इसके अनुसार ही भोजन हमेशा बनता है। यो यह सब लोकाचार के विपरीत है। भारतीय गृहस्थ के यहा सयोग से जब कभी कोई ऐसा पाहुना आ जाता है, तब उसे बडे आदर से लेते हैं, और घरवालो के लिए जो भी रसोई तैयार होती है वह उनके साथ खा लेता है। पर मगनवाडी तो कोई गृहस्थ का घर है नहीं। यह तो एक ट्रस्ट है, जो अधपेट रहनेवाले करोडो बेकारो या अर्द्धबेकारो की सेवा के लिए ही स्थापित हुआ है। अपनी समझ के अनुसार जिस तरह हमसे बनता है हम एक-एक पाई बचाने के लिए हर तरह से किफायत के साथ चलने की कोशिश करते है। इसलिए ऐसे किसी लुटाऊ भोजन-भडार का जिम्मा तो हमारे पास है नहीं कि जितने भी लोग आवे वे सभी उसमे खाने चले जायँ। इसलिए लोग भले ही हमे जाहिल या कजूस समझे, मुझे मजबूरन काफी सख्ती से काम लेना पडता है और जो लोग पहले से वादा लिये बिना आ जाते है उन्हे निकाल देना पडता है। इसलिए मेरी इच्छा के बहुत-कुछ विरुद्ध होते हुए भी इस लाचारी की हालत मे जिन लोगो की खातिरदारी नहीं की गई, वे कृपाकर मेरे साथ अपनी सहानुभूति ही प्रगट करेगे और मुझे माफ कर देगे। मगनवाडी मे हम जिस खास परिस्थिति मे रह रहे हैं उसे भविष्य मे आनेवाले सज्जन कृपाकर ध्यान मे रखे। और जो पहले से बिना कोई सूचना दिये आ ही जायँ, उनके सुभीते के लिए मै यहा यह बतला दू कि मगनवाडी से थोडी ही दूर पर एक सुन्दर धर्मशाला है जिसमे काफी मेहमान बडी अच्छी तरह ठहर सकते हैं। उसमे थोडे-से व्यक्तियों के लिए कुछ खानगी कमरे भी है। यहा इतना और कह दू कि आइन्दा आनेवाले सज्जन मुझसे मिलने का वादा लेने मे मुझपर दया ही रखे। इससे मेरी जो दैनिक कामों के करने की शक्ति है वह व्यर्थ खर्च हो जाती है। सिवा उन कामों के हितार्थ, जिनमे कि आज मेरा सारा ध्यान लगा हुआ है और किसी भी काम के लिए मुझसे मिलने का वादा लेने का लोग प्रयत्न न करें।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

सुधारकों का कर्त्तव्य

लाहौर के सनातनधर्म कॉलिज के प्रिंसिपल का निम्नलिखित पत्र मैं सहर्ष यहां प्रकाशित कर रहा हूँ --

"बालकों पर जो अप्राकृतिक अत्याचार हो रहे हैं उनकी ओर मैं अधिक-से-अधिक जोर देकर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

आपको यह तो मालूम ही होगा कि इनमें से बहुत ही थोड़े मामलों की पुलिस में रपट लिखाई जाती है, या उन्हें अदालत में ले जाते हैं। इधर कुछ दिनों से पंजाब में ऐसे केस इतने ज्यादा होने लगे हैं कि जिनकी कोई हद नहीं। इस पत्र के साथ आपके अवलोकनार्थ अखबारों की कुछ कतरनें भेज रहा हूँ। अदालत में कभी-कभी जो एकाध मामले आते हैं उनमें से अत्यंत बीभत्स किस्से ही अखबारों में प्रकाशित होते हैं। इन्हें पढ़कर आपको यह पूरी तरह से मालूम हो जायगा कि हमारे कोमलवयस्क बालक-बालिकाओं पर इस भय का किस कदर आतंक छाया हुआ है। कुछ महीने पहले लाहौर में गुंडोंने दिन दहाड़े कुछ स्कूलों के फाटकों पर से छोटे-छोटे बच्चों को उठा ले जाने के साहसिक प्रयत्न किये थे। आज भी बालकों के स्कूलों में जाते और आते वक्त खास इतिजाम रखना पड़ता है। अदालत में जो मामले गये हैं उनकी रिपोर्टों में बालकों के ऊपर किये गये जिन आक्रमणों का वर्णन आया है वे अत्यंत क्रूरता और साहस-पूर्ण हैं। ऐसे राक्षसी काम तो बिरले ही मनुष्य कर सकते हैं।

साधारण जनता या तो इस विषय में उदासीन है, या वह इस तरह की लाचारी महसूस करती है कि इन अपराधों को संगठित होकर कुचल देने की लोगों में आत्मश्रद्धा नहीं।

पंजाब-सरकार के जारी किये हुए सरक्युलर की जो नकल इसके साथ में भेज रहा हूँ, उससे आपको यह पता चल जायगा कि जनता और सरकारी अफसरों की उदासीनता के कारण सरकार भी इस विषय में अपनेको लाचार-सा अनुभव करती है।

आपने 'यंग इंडिया' के ९ सितंबर १९२६ के तथा २७ जून १९२९ के अंक में यह ठीक ही कहा था कि इस प्रकार के अप्राकृतिक व्यभिचार के अपराधों के संबंध में सार्वजनिक चर्चा करने का समय आ गया है। और इस विषय में सारे देश में लोकमत जागृत करने के लिए अखबारों-द्वारा इन जुर्मों का प्रकाशन ही एकमात्र प्रभावोत्पादक उपाय है।

मैं आपको अत्यंत आदर के साथ यह बतलाना चाहता हूँ कि आज की मौजूदा स्थिति में कम-से कम इतना तो हमें करना ही चाहिए। मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि इस दुराचार के विरुद्ध अखबारों-द्वारा जोरदार आन्दोलन चलाने के लिए, आप अपनी प्रभावशाली आवाज उठाकर दूसरे अखबारों को रास्ता दिखाइए।"

इस बुराई के खिलाफ हमें अविश्रान्त लड़ाई लड़नी चाहिए इस विषय में तो शंका हो ही नहीं सकती। इस पत्र के साथ जो अत्यंत घृणोत्पादक रिपोर्टें भेजी गई थीं उन्हें मैंने पढ़ डाला है। सनातनधर्म कॉलेज के आचार्यने मेरे जिन लेखों का उल्लेख किया है उनमें जिस किस्म के मामलों की मैंने चर्चा की थी उससे ये मामले जुदे ही प्रकार के हैं। वे मामले अध्यापकों की अनीति के थे, जिनमें उन्होंने बालकों को फुसलाया था। और इन रिपोर्टों में अधिकतर जिन मामलों का वर्णन आया है, उनमें तो गुंडोंने कोमल वय के बालकों पर अप्राकृतिक व्यभिचार करके उनका खून किया है। अप्राकृतिक व्यभिचार, और उसके बाद खून किये जाने के केस हालांकि और भी अधिक घृणा पैदा करनेवाले मालूम होते हैं, तो भी मेरा यह विश्वास है कि जिन मामलों में बालक जान-बूझकर अपने अध्यापकों की विषय-वासना के शिकार होते हैं उनकी अपेक्षा इस प्रकार के मामलों का इलाज करना सहल है। दोनों के ही विषय में सुधारकों के सतत जाग्रत रहने और इस बीभत्स कर्म के संबंध में लोगों की अंतरात्मा जगाने की आवश्यकता है। पंजाब में चूँकि इस किस्म के अपराध बहुत अधिक होने लगे हैं, इसलिए वहां के नेताओं का यह कर्तव्य है कि वे जाति और धर्म का भेद एक तरफ रखकर एक जगह इकट्ठे हों, और बालकों को फुसलाकर फँसानेवाले या उन्हें उठाले जाकर उनके साथ अप्राकृतिक बलात्कार करके उनका खून करनेवाले अपराधियों के पंजे से इस पंचनद प्रदेश के कोमलवयस्क युवकों को बचाने के उपाय का आयोजन करें। अपराधियों की निंदा करनेवाले प्रस्ताव पास करने से कुछ भी होने-हवाने का नहीं। पापमात्र भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग हैं, और सुधारकों को उन्हें रोग समझकर ही उनका इलाज करना चाहिए।

इसका अर्थ यह नहीं कि पुलिस इन मामलों को सार्वजनिक अपराध समझने का अपना काम मुल्तवी रक्खेगी। किंतु पुलिस जो कार्रवाई करती है उसकी मंशा इन सामाजिक अव्यवस्थाओं के मूल कारण ढूँढकर उन्हें दूर करने की होती ही नहीं। यह तो सुधारकों का खास अधिकार है। और अगर समाज के सदाचार के विषय की भावना और आग्रह न बढ़ा, तो अखबारों में दुनियाभर के लेख लिखे जायँ तो भी ऐसे अपराध और-और बढ़ते ही जायेंगे। इसका कारण यही है कि इस उलटे रास्ते पर जानेवाले लोगों की नैतिक भावना कुंठित हो जाती है और वे अखबारों को--खासकर उन भागों को जिनमें ऐसे-ऐसे दुराचारों के विरुद्ध जोश से भरी हुई नसीहतें रहती हैं--शायद ही कभी पढ़ते हैं। इसलिए मुझे तो यह एक ही प्रभावकारक मार्ग सूझ रहा है कि सनातनधर्म कॉलिज के प्रिंसिपल (यदि वे उनमें से एक हों तो)-जैसे कुछ उत्साही सुधारक दूसरे सुधारकों को एकत्रित करें और इस बुराई को दूर करने के लिए कुछ सामूहिक उपाय हाथ में लें।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

कलकत्ते की बस्तियाँ

कलकत्ते की बस्तियों में श्रमजीवी वर्ग के लोग, जूट मिलों और प्रेसों में काम करनेवाले मजदूर, बिहारी चमार, और कलकत्ता-कार्पोरेशन के झाड़ूदार व भंगी, डोम और अन्य हरिजन जातियां हजारों की संख्या में रहती हैं। १०० से लेकर १००० से भी ऊपर आदमी एक-एक बस्ती में रहते हैं। इन बस्तियों को कुछ धनाढ्य लोगोंने खानगी तौर पर बनवाया है। कारपोरेशन चाहे तो इन खानगी बस्तियों को अपने अंकुश में आसानी से ला सकता है। लेकिन उसने ऐसा किया नहीं। कहते हैं कि कारपोरेशन की हद में ऐसी बस्तियां लगभग २०० के हैं, शहर के उपनगरों में जो दर्जनों बस्तियां हैं वे जुदी। बस्तियों का वर्णन करना कठिन है। कितनी गन्दगी है, आबादी कितनी घनी है और बस्तियां कैसी बेडौल

बसी हुई है इन सब बातो का वर्णन करना सचमुच बड़ा कठिन है। इन बस्तियो के बारे मे अगर अच्छी तरह जानना हो, तो खुद अपनी आखो से देखकर उनका खूब अध्ययन करना चाहिए। एक-एक बस्ती मे इतनी अधिक आबादी है, लोग ऐसे खचाखच भरे हुए है कि कुछ पूछिए नही। मुश्किल से कही एक-आध पानी का नल है और वह भी बहुत गन्दा रहता है। नाली या मोरी का नाम नही। और गलिया तो बडी ही तग है। न तो बरसाती पानी के निकास के लिए नालिया है और न गन्दे पानी के लिए कोई गटर है। मुश्किल से वहा एक-एक दो-दो टट्टिया है। बस्ती मे लोग जितनी बडी सख्या मे रहते है उस देखते हुए पाखाने वहा बहुत ही कम है। सडके छोटी-छोटी सकडी गलियो से अधिक चौडी नही है। बस्तियो मे झाडू तो शायद ही कभी लगती हो।

पहली बार या कभी-कभी कलकत्ता देखने के लिए जो आयगा वह यहा की चित्तरजन एवन्यू-जैसी बडी-बडी सडको के दोनो ओर बनी हुई आलीशान इमारतो की तो एक तरफ, और दूसरी तरफ मेहदीबागान-जैसी नारकीय बस्तियो को देखकर दुःख के साथ आश्चर्यचकित रह जायगा।

मनुष्यो से अधिक सुविधाएँ तो यहा पशुओ को प्राप्त है। म्यूनिसिपैलिटी की मैलागाडियो के, जिनमे घोडे और भैसे जोते जाते है, गाडीवानो का खुद उन जानवरो के साथ मे मुकाबला करूँगा। गाडीवानो को रहने को कोठरिया मिली हुई है, जिन्हे असल मे 'कबूतर-खाने' कहना चाहिए। दीवारे और छते लोहे के पटरो की है। जानवर अच्छी पटी हुई लम्बी-लम्बी लाइनो मे, जिनके सामने और पीछे खुली हुई जगह है, रहते है, जहा गर्मिया तक मे ठण्डक रहती है। और मनुष्य लोहे की उन दीवारो के बीच गर्मियों मे इस तरह उबले रहते है, जैसे आवे के अदर भुन रहे हो। एक बस्ती मे ४०० से ऊपर प्राणी है, जहा अभी-अभी तक सिर्फ छः टट्टिया थी, और अब बारह टट्टिया बन गई है। इसे उनका भाग्य ही कहना चाहिए। सद्भाग्य से पानी की टोटिया भी लगा दी गई है, क्योकि यह हो नही सकता था कि मनुष्यो को छोडकर जानवरो को पानी दिया जाय। मनुष्यो के रहने के लिए जो कोठरिया है वे मुश्किल से १०×८ फुट है। फर्श ऊँचा-नीचा है। प्रकाश आने की कोई जगह नही, इसलिए वहा सूरज के राज मे भी रात ही रहती है। जहा से अपने अपने घरो मे लोग आते-जाते है उस गली मे भी अधकार रहता है। ऐसी जरा-जरा-सी कोठरी मे पाच-पाच आदमी रहते है, उसीमें रोटी बनाते हैं, उसीमे सोते है। और कारपोरेशन की जय मनाते है, क्योकि उनसे कोई किराया नही लिया जाता--यह इसलिए कि वे ऐसी जगह रहते है जहा जानवरो को चारा-घास डाला जाता है और उनकी सार-सभाल की जाती है।

मेहदीबागान—यह एक खानगी बस्ती है, जिसमे करीब चालीस छोटी-छोटी झोपडिया उतने ही कुटुम्बो के लिए बनी हुई है। ८ फुट लम्बी, ८ फुट चौडी, इससे ज्यादा बडी कोई झोपडी इस बस्ती मे नही है। और माहवारी किराया ३) से लेकर ५) तक! बीच मे आने-जाने का जो रास्ता है वह बस ३ फुट चौड़ा है। यह रास्ता हमेशा एक तरह से गन्दा ही रहता है, क्योकि यही उनका आगन है, यही उनका हाता। यही बच्चे खेलते है, यही औरते बैठती हैं और यही डोम लोग बास की टोकरिया बनाते है। बस्ती के तमाम नर-नारियो के लिए सिर्फ एक पाखाना है। इस-लिए मर्द बस्ती से लगे हुए ताड़ी-खाने की टट्टियों में जाते है। बस्ती मे जिस जमीदार के मकान है उसीका यह ताड़ीखाना है। ताडीखाने की टट्टिया भी रात को ८ बजे के बाद बन्द हो जाती है और सबेरे काफी देर से खुलती है। पानी का नल इस बस्ती में एक भी नही। न कपडे धोने की कोई जगह है न नहाने की, फिर नाली और मोरी का तो काम ही क्या? सडक पर के एक बम्बे मे स्त्रिया पानी भर ले जाती है, जो बस्ती से करीब १०० गज के फासले पर है। ऐसी गन्दगी मे कारपोरेशन के सैकडो हजारो झाडूदार रहते है। १५) तनख्वाह मिलती है और ३) से लेकर ५) तक मासिक मकान-भाडा देना पडता है।

तुलना करना यो कोई अच्छी चीज नहीं। लेकिन जहा आकाश-पाताल का अतर हो वहा तो मिलान करना ही पडता है। कलकत्ता और बम्बई इन दोनो शहरो की आबादी करीब-करीब एक-सी ही है। उच्चवर्गों की धनाढ्यता और मजदूरो की दरिद्रता भी दोनो शहरो की एक समान ही है। दोनो शहरो मे बस्तियां भी है, जिनमे झाडूदारो और भगियो की असीगत हजारो की सख्या मे है। लेकिन बम्बई के कारपोरेशनने अपने झाडूदारो और भगियो के लिए मकान बनवा देने का सवाल आसानी से हल कर लिया है। कलकत्ते की अपेक्षा बम्बई मे सफाई विभाग के मुलाजिमो को वेतन भी अधिक मिलता है। कुछ ही अशो मे सही, बम्बईने सिटी इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट के द्वारा मकानो का प्रश्न हल तो कर लिया है, किंतु कलकत्तेने इस सबध मे अभीतक कुछ भी नही किया। बम्बई का कारपोरेशन गत २० बरस से अपने तमाम मुलाजिमो के लिए लाइने या चाले बनवा रहा है; और कलकत्तेने शायद से इस काम मे अभी हाथ लगाया हो। बम्बई में झाडूदारो और भंगियो को १९) से लेकर २३) तक वेतन मिलता है; किंतु कल-कत्ते मे इन बेचारो को १५) से अधिक वेतन नही मिलता। कलकत्ते से अधिक वेतन तो कुछ शहर, जो कलकत्ते से बहुत छोटे है, भगियो को देते है। बम्बई के मेहतरो को ।-) से लेकर ।।=) तक नाममात्र का मासिक-भाडा जमीनवालो को देना पडता है, जबकि कलकत्ते के मेहतरो को ३) से लेकर ५) तक मासिक किराया बस्ती के मालिक को देना पड़ता है, और उन बस्तियों मे जहा न नालिया है न सफाई की दूसरी कोई सुविधाएँ, न रोशनी और न काफी हवा। बम्बई मे प्राविडेंट फड भी मिलता है। एक आना रुपया मुलाजिम का जमा होता है और उतना ही कारपोरेशन देता है। बीस या तीस साल बाद जब वह अवकाश ग्रहण करता है, तब उसे एक खासी अच्छी रकम मिल जाती है। कलकत्ते मे यह चीज नही है। सारी जिन्दगी कलकत्ते मे काम करके जब वह ढलती हुई उम्र मे अपने घर जाता है, तो खाली हाथ ही जाता है। साराश यह है कि कलकत्ते के हरिजन मुलाजिम को रहने को न अच्छा घर मिलता है, न उचित वेतन। जबतक नौकरी करता है तबतक उसे कोई सुख-सुविधा नसीब नहीं और जब नौकरी छोडता है तब उसके पल्ले एक पैसा भी नही होता। यह अन्तर है बम्बई और कलकत्ते के सफाई-विभाग के हरिजन मुलाजिमों मे।

सब से बडे आश्चर्य की बात तो यह है कि बस्ती के मालिकों के प्रति कलकत्ता-कारपोरेशन क्यों इतनी मुलामियत से, बल्कि तरफदारी के साथ, पेश आ रहा है! बस्ती के मालिकों के प्रति मुलामियत के साथ पेश आने का अर्थ है उन हजारों मूक, गरीब मनुष्यो के साथ अन्याय करना जो बिहार और उड़ीसा से रोजी

की तलाश में घर-द्वार छोड़-छोड़कर कलकत्ते आते हैं। करना चाहे तो कारपोरेशन बहुत-कुछ कर सकता है। अध्याय २२ के अंतर्गत धारा ३३५ से ३६२ तक और अध्याय २३ के अन्तर्गत धारा ३४७ और ३४९ के अनुसार कारपोरेशन को इसका काफी अधिकार है, कि वह बस्ती के मालिकों को इस बात के लिए मजबूर करे कि वे ३ से लेकर ६ फुटतक की गन्दी गलियों की जगह १२ फुट से लेकर १६ फुटतक की चौड़ी सड़कें और रास्ते बनवाकर और सफाई की तमाम सुविधाएँ देकर तथा पानी के नल लगवाकर बस्तियों की हर तरह से तरक्की करे। पर कारपोरेशन तो अपने कर्तव्य-पालन में बहुत बुरी तरह से असफल रहा है। सन् १९३४ में हरिजन-यात्रा के सिलसिले में गांधीजी जब कलकत्ते आये थे, तब भंगियों के सुधार के लिए एक कमेटी बनी थी, पर रिपोर्ट पेश कर देने के बाद कमेटीने कुछ भी नहीं किया। हरिजन मुलाजिमों के लिए १५००००) रुपये की रकम खर्च करने का काफी शोर सुना था पर वह अभीतक मंजूर ही नहीं हुई। इससे अब बेचारे गरीब आदमी बिलकुल हताश हो गये हैं। पृथिवी पर है कोई ऐसी शक्ति, जो महान् प्रबल कार्पोरेशन को हरिजनों और मजदूरों के हक में कुछ प्रेरित कर सके ?

अमृतलाल वि० ठक्कर

ग्राम-सेवा पर एक प्रवचन

(मैंने 'साप्ताहिक पत्र' में एक जगह यह उल्लेख कियाहै, कि २२ अक्टूबर को गांधीजीने ग्रामसेवकों की एक टोली के आगे, जो उस दिन हमारे मेहमान थे, उनके भोजन तथा ग्रामसेवा-कार्य के विषय में विस्तारपूर्वक एक भाषण दिया था। उस भाषण का सारांश यह है—म० ह० दे०)

युक्ताहार

चूंकि आजके भोजन के व्यंजनों की सूची मैंने कुछ ध्यान के साथ बनाई है, और खासकर ग्राम-सेवकों की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर, इसलिए उसके संबंध में कुछ विस्तार के साथ मुझे कहना ही होगा। आप लोगों को ऐसा भोजन कराने का विचार था, जो पोषक हो, और जिसे एक औसत दर्जे का ग्रामवासी आठ घंटे काम की कम-से-कम मजदूरी जो हमने नियत की है, यानी तीन आने की आमदनी के अंदर, आसानी से प्राप्त कर सके।

आज हम लोग कुल ९८ भोजन करनेवाले थे, और हमारे भोजन पर कुल खर्चा ९।।।=)।। का आया है। इसका यह अर्थ हुआ कि हरेक के भोजन पर ६ पैसे से कुछ ही अधिक खर्च हुआ है।

तफसील यह है —

१८ सेर	गेहूँ का आटा	१।।)
९ ,,	टमाटर	।।=)।।
२ ,,	गुड़	।=)।।
१२ ,,	कोम्हड़ा	।=)।।।
३ ,,	अलसी का तेल	१=)
२५ ,,	दूध	३।।।–)
२ ,,	सोयाबीन	।=)
२ ,,	नारियल की गिरी	।)
	१६ कैथ	=)
	इमली और नमक	=)।।
	ईंधन	१)
	कुल—	९।।।=)।।

विनोबाने मुझे यह सलाह दी थी कि मुझे आप लोगों के लिए रोटी बनवाने की झंझट में नहीं पड़ना चाहिए, बल्कि गेहूँ का दलिया (जो हम लोग सबेरे खाते हैं), दिया जाय और इस तरह रोटी बनाने की झंझट से हम बच जायँगे। पर मैंने अपने मन में कहा कि, नहीं, आप नौजवानों को, जिन्हें ईश्वरने अच्छे मजबूत दांत दिये हैं अच्छी सिकी हुई कुड़कुड़ी भाकरी जरूर देनी चाहिए। भाकरी का कोई भी बना सकता है, और एक जगह से दूसरी जगह उसे हम आसानी से अपने साथ ले जा सकते हैं, और वह दो दिनतक रक्खी रह सकती है। गूंदने के पहले आटे में अलसी के तेल का मोन दे दिया गया था कि जिससे भाकरी मुलायम और मुरमुरी बने। कुछ पत्तियां और कच्ची तरकारी तो हमें खानी ही चाहिए, इसलिए हमने टमाटर और दो चटनियां भोजन में रखी थीं। एक चटनी तो कैथे की थी, जो इधर कसरत से मिलता है, और दूसरी हमारे बगीचे में उगी हुई पत्तियों की बनाई गई थी। कैथे में रेचक और बंधक दोनों ही गुण हैं, और थोड़ा-सा गुड़ डाल देने से उसकी चटनी अच्छी स्वादिष्ट हो जाती है। दूसरी चटनी में थोड़ी नारियल की गिरी, इमली और नमक था, ताकि पत्तियों में एक कच्चा जायका आजाय। हरी पत्तियां हमें किसी-न-किसी रूप में जरूर ही खानी चाहिए, जिससे कि हमें अपने भोजन में उचित मात्रा में विटामिन मिलते रहें। हमने जो तरकारी चुनी थी वह सस्ती-से-सस्ती है और हमारे गावों में हर जगह होती है। चटनी में मैंने इमली भी डलवाई थी। इमली के विरुद्ध लोगों में जो एक तरह की बुरी धारणा है उसके होते हुए भी यह देखने में आया है, कि वह एक अच्छी रेचक और रक्त-शोधक वस्तु है। हमारे एक साथी को यहां मलेरिया हो गया था। उसे मैंने इमली के पानी की कई मात्राएँ दी थीं, जिसका उसपर बड़ा अच्छा असर पड़ा था। कब्ज में भी मैंने इमली को अनेक बार आजमाया है।

आहार में दूध का होना जरूरी है। आपके भोजन में पाव-पाव दूध था। पर मैंने आपको घी नहीं दिया। तो भी मैं आशा करता हूँ, कि घी आपको एक तरह से मिल गया, क्योंकि मैंने आपको सोयाबीन और तेल दिया है। सोयाबीन में तेल काफी यानी २० प्रतिशत होता है और ४० प्रतिशत प्रोटीन। तेल मूंगफली में भी काफी होता है, पर उसमें जो स्टार्च अत्यधिक मात्रा में होता है वह हानिकर है। उसके मुकाबले में सोयाबीन में यह बात नहीं। जितनी चर्बी की हमें जरूरत होती है उतनी दूध और सोयाबीन से मिल जाती है, और इससे घी की बिलकुल ही जरूरत नहीं रहती। तब हम क्यों घी बनाने की व्यर्थ की झंझटों में पड़ें? और जहां अच्छे शुद्ध घी का मिलना संदेहास्पद है, वहां मिलावटी घी खाने से लाभ? लेकिन दूध या छाछ का लेना जरूरी है, चाहे वह कितनी ही कम मात्रा में मिले। घी को आप बिना किसी डर के अपने आहार में से निकाल सकते हैं। हाल में अभी दो छोटे-छोटे बच्चे मेरी निगरानी में थे, जिनका आहार मैंने खूब ध्यान के साथ नियमित किया था। मैं उन्हें घी नहीं देता था, और घी न देने से उनके स्वास्थ्य पर कोई बुरा असर नहीं पड़ा था। हां, मैं उन्हें अलबत्ता जितना वे चाहते थे उतना दूध देता था।

हमारे इस भोजन पर ६ पैसे से कुछ ही अधिक खर्चा आया है। एक वक्त का यह खासा पूरा आहार था। यह जरूरी नहीं कि दूसरे वक्त के भोजनों में इतनी सब चीजें हों। उनमें एक आने से

अधिक खर्चा नहीं होना चाहिए, दूध उनमे से निकाल सकते है। गेहूं की भाकरी, सोयाबीन और चटनी, बस इतना काफी होना चाहिए।

दो मुख्य कर्त्तव्य

जो मुख्य दो चीजें आपको करनी है उनमें से एक तो यह है कि ग्रामवासियो को आप लोग एक अच्छे युक्ताहार का निश्चय करादें, और उसी प्रकार के आहार से आप स्वयं भी संतुष्ट रहे। कुछ लोग ऐसे हो सकते है जिनके आहार में बहुत-सी निकम्मी चीजें रहती है, और ऐसे तो बहुत है, जिनके आहार में विटामिनों की बड़ी भारी कमी रहती है। उन्हें आपको एक अच्छा उपयुक्त आहार बतलाना है। आप लोग खुद भी गो-पालन सीखें और ग्रामवासियों को भी उसका चसका लगावें। यह हमारे लिए एक शर्म की बात समझी जानी चाहिए कि हमारे अनेक गावो मे आज दूध नही मिल रहा है। दूसरा मुख्य कर्तव्य है सफाई का। इसमें संदेह नही कि यह बहुत ही कठिन काम है। पर अगर आपको इन चीजो मे सफलता मिल गई, अर्थात् ग्रामवासियों में आप एक अच्छा उपयुक्त आहार दाखिल करादे, और गावो को अच्छा साफ-सुथरा बनादे, तो इसका यह अर्थ हुआ कि मानव-शरीर को आपने ईश्वर का निवास-मंदिर होनेलायक और उसे ठीक तरह से काम करने का एक सुन्दर साधन बना दिया।

अपना वेतन खुद पैदा करें

खादी निश्चय ही हमारे ग्रामउद्योगरूपी सौरमण्डल में केन्द्रीय स्थान लेगी। किंतु यह याद रखें कि हमें गावों को वस्त्र-स्वावलबी बनाने में अपना सारा ध्यान एकाग्र करके लगाना है। वस्त्र-स्वावलबन की खादी के पीछे-पीछे व्यापारी खादी तो चलेगी ही। 'हरिजन' में आप इस तरह की दलीलें देखेंगे। मगर खादी की सफलता या असफलता तो आप लोगो के ऊपर निर्भर करेगी। खादी इससे महँगी हो जायगी, खादी मिलेगी ही नहीं आदि बातो से लोग व्यर्थ ही भयभीत हो गये है। आप लोगो को उनके दिलमें खादी के प्रति फिर से वही श्रद्धा उतारनी होगी, और चर्खा-संघ की नई नीति उन्हे अच्छी तरह से समझानी होगी।

हा, गावो में जो भी उद्यम प्राप्त हो, और जिस चीज की बाजार में खपत हो सके उसे आप अवश्य हाथ में लेले। पर यह ध्यान में रखना चाहिए कि घाटे पर कोई दूकान न चलाई जाय, और न ऐसी चीजे बनाई जाय कि जिनकी बाजार में खपत न हो। जो भी देशी हुनर आपकोपसद हो उसमें नित्य आठ घण्टे का समय दीजिए, और गाववालों को यह करके बतलाइए कि जिस तरह हम लोग अपने गुजारे भर का पैसा पैदा कर लेते है, उसी तरह आप लोग भी आठ घण्टे काम करके पैदा कर सकते है। विनोबा का यहा अपना आदर्श बनाइए। उनकी विद्वत्ता या अद्भुत स्मरण-शक्ति में उनके साथ प्रतिस्पर्धा करना तो आपके लिए असभव है, पर उनकी उद्योग-शक्ति और कार्य-सलग्नता में आप उनके साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते है। उपनिषदो पर टीका या भाष्य लिखने के लिए आप गावो मे न जाये, यह काम तो आप शहरो में भी अच्छी तरह कर सकते हैं। विनोबा के एकाग्र चित्त से किये हुए काम की तरह आप लोगो का काम ही आपका एक सर्वोत्तम भाष्य होगा। हमें अपने कार्य की लगन की छाप गाव के लोगो में लगानी है। हम यह कहते है कि वे लोग तो आज लकडी काटनेवाले और पानी खींचनेवाले ही रह गये हैं। इसलिए कि वे आत्माभिमान के साथ स्वाश्रयी बन जायें और यह कह सके कि अब वे हमारे लिए महज लकडी काटनेवाले और पानी खींचनेवाले न रहेंगे, आपको उन्हें उनके हरेक काम का कारण ठीक-ठीक समझाना होगा, और कम-से-कम गुजारेलायक पैसा पैदा करने के लिए उन्हें स्वेच्छा से काम करनेवाला बनाना होगा। विनोबाने जो काम किया है वह इन सीधे-सादे ग्रामवासियों के लिए तो और भी आसान होना चाहिए। मैंने सुना है कि एक गुलाब नाम का गाव का लड़का कताई में विनोबा से भी बाजी मार ले गया है।

कर्त्तव्य कर्म

एक बात और। गाव में अपने साथ आप कोई संगी-साथी न ले जाये। हमारी नीति यह है कि एक ग्राम में या ग्रामसमूह में केवल एक ही सेवक भेजा जाय। जितने भी संगी-साथी वह चाहे उतने वह अपने गाव में से चुनले। वे सब उसकी निगरानी में काम करेंगे, पर उस गाव की खास जिम्मेवारी तो उसीपर रहेगी।

हमें इस यंत्र-युग के लोभ-पाश मे नही फँसना चाहिए। हम तो अपने शरीर-यंत्रो को पूर्ण और काम करनेयोग्य औजार बनायें और उनका अच्छे-से-अच्छा उपयोग करें। यही आपका कर्त्तव्य कर्म है। इसी को लेकर आप हिम्मत के साथ आगे बढ़े। जी कचियाने का तो कोई कारण ही नही। जिस कार्यक्षेत्र को विनोबाने अपना खास क्षेत्र बना लिया है, और जिसमें उन्होने अपने जीवन के १५ वर्षों का सर्वोत्तम भाग दिया है उसमे निराश होने की तो कोई बात ही नही। कम-से-कम मुझे तो कोई निराश होने का कारण नही देख पडता, और यही कारण है। जो मुझे आप लोग आज यहा बैठा हुआ देख रहे है।

हरिजन को गोदान

बिलासपुर (मध्य प्रांत) की हरिजन-सेवक-समिति के एक सदस्य लिखते है :—

"दशहरे के दिन, यहा के सुप्रसिद्ध हरिजन-सेवक श्री साम्बा के यहा प्रीति-भोज हुआ था, जिसमें बिनाकुटे चावल, गुड़ और घानी के तेल की मिठाई परोसी गई थी। तेल श्री साम्बाने पेरा था। प्रीति-भोज में हरिजन और कई उच्चवर्णों के सज्जन सम्मिलित हुए थे। भोज के बाद श्री साम्बाने एक हरिजन को बडी श्रद्धा के साथ गो-दान दिया।"

बिलासपुर के साधुमना श्री साम्बा की हरिजन-सेवा देखने का गत वर्ष मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्री साम्बा एक सच्चे और विनम्र जन-सेवक हैं। हरिजन-जैसे सत्पात्र को गोदान देकर उन्होने दान-पद्धति में एक बडा उत्तम आदर्श उपस्थित किया है। यह कौन नहीं जानता कि गरीब हरिजनों के नन्हे-नन्हें बाल-गोपाल आज एक-एक बूँद गोरस के लिए तरसते है? श्री साम्बा के इस स्तुत्य कार्य का जितना भी अनुकरण किया जाय थोड़ा है।

वि० ह०

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi, by R. S. Gupte.

एक भ्रम

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
किंग्सवे, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३]

दिल्ली, शनिवार, ९ नवम्बर, १९३५.

[संख्या ३८

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्रामसेवा

सिंदी गांव में मीरा बहिन ठीक तौर से अभी जमी भी नहीं थीं कि उन्हें मालूम हुआ कि पड़ोस के एक गांव में हैजा फैल रहा है। थोड़ी ही देर में सिंदी में भी एक केस हो गया। मीरा-बहिनने तुरत सिविल अस्पताल दौड़कर डाक्टरों को इसकी खबर दी। डाक्टरोंने उसी वक्त कूड़े-कचरे की सफाई वगैरा कराई, कुओं में लाल दवा डलवाई, हैजे के टीके लगाये और रोगियों को दवाई दी। नतीजा यह हुआ कि बीमारी वहीं रुक गई। वह [illegible] उसका अंकुर ही उसी वक्त खुटक लिया गया, नहीं तो यह भयंकर बीमारी वर्षों तक छापा मारती।

सफाई के जिस काम को अभीतक हमारी एक टोली करती थी उसे अब हमारा अकेला एक साथी कर रहा है। एक आदमी के लिए इतना काम कितनी मशक्कत का है इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि उस बेचारे को कचरा वगैरा साफ करने में रोज सवेरे पांच घंटे का समय लग जाता है। इस गांव में कोई पाठशाला नहीं है। हमारे ग्रामसेवकने बड़ी खुशी से बच्चों को पढ़ाने-लिखाने का काम हाथ में ले लिया होता, पर जबतक वहां कुछ पाखाने नहीं बन गये, और उसका सवेरे का सारा ही समय सफाई में लग रहा है, तबतक तो प्रारंभिक शिक्षा का प्रश्न मुल्तवी ही रखना होगा।

'शास्त्र और अस्पृश्यता'

नवजीवन कार्यालय, अहमदाबादने The Shastras on Untouchability (शास्त्र और अस्पृश्यता) नामकी एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित की है। श्री वालजी गोविंदजी देसाईने इसका संपादन किया है और गांधीजीने इसकी प्रस्तावना लिखी है। यह श्री देसाई के उन छै लेखों का सकलन है, जो 'हरिजन' में प्रकाशित हो चुके हैं। धूलिया के महामहोपाध्याय श्रीधर शास्त्री पाठक के शास्त्र और अस्पृश्यताविषयक सुप्रसिद्ध मराठी ग्रन्थ का इस पुस्तक में श्रीदेसाईने सुंदर सारमर्म दिया है। शास्त्रीजी सारे महाराष्ट्र में सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित तो आप हैं ही, शुद्ध जीवन और आचरण की दृष्टि से भी आप पुराने ढंग के एक अच्छे वयोवृद्ध ब्राह्मण हैं। जिस तरह किसी सुधारक के विचारों को लोग योंही उड़ा देते हैं, और उनपर कोई ध्यान नहीं देते, उस तरह शास्त्रीजी के अस्पृश्यता-संबंधी विचारों का अप्रामाण्य मानने का शायद ही कोई साहस करेगा। *सत्य के प्रति उनका जो प्रेम है उसीसे प्रेरित होकर उन्होंने रूढ़ि-प्रिय पंडितों-द्वारा प्रस्तुत अस्पृश्यता विषय का अच्छी तरह परीक्षण* करके यह सिद्ध किया कि जिस प्रकार की अस्पृश्यता आज मानी जाती है उसके लिए हमारे शास्त्रों में कोई आधार नहीं है, और हिन्दूधर्म में वह 'अजागल-स्तन' की तरह है। श्री वालजी भाईने मराठी न जाननेवाले पाठकों के लिए मूल ग्रन्थ के मुख्य विषय को बड़ी ही स्पष्ट रीति से व्यक्त किया है। हरिजन-सेवकों के हक में उन्होंने यह बड़ा सुन्दर काम किया है। इस पुस्तिका के सहारे वे अस्पृश्यता की धज्जियां उड़ा सकते हैं। अच्छा हो कि २८ पृष्ठ की इस पुस्तिका का वे अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषा में अनुवाद करें और उसे अधिक-से-अधिक प्रकाश में लायें। पुस्तक बड़े सुंदर ढंग से लिखी गई है। कौन प्रमाण कहां का है इसे समझने के लिए उस-उस अध्याय और श्लोक का निर्देश कर दिया गया है। शैली काफी सुबोध्य है। साधारण पाठक अच्छी तरह समझ सकता है। इस पुस्तक में यह प्रमाणित किया गया है कि (१) वैदिक काल में समग्र हिन्दू-समाज चार वर्णों के अन्तर्गत था, कोई पंचम वर्ण नहीं था, और इस चातुर्वर्ण्य में वर्णान्तर विवाह होते थे; (२) मनुष्य का वर्ण उसके गुण और कर्म पर निश्चित किया जाता था, न कि उसके जन्म पर, और यदि ब्राह्मण वेदाध्ययन छोड़ देता था तो वह अश्रोत्रिय ब्राह्मण शूद्र हो जाता था, और शूद्र आगम-सम्पन्न होनेपर ब्राह्मण हो जाता था (३) *चाण्डाल ही केवल एक अस्पृश्य समझा जाता था, और आज जो जातियां अस्पृश्य मानी जाती हैं उन्हें चाण्डाल की परिभाषा* में हम किसी भी प्रकार नहीं ले सकते, (४) इन पीछे के शास्त्रोंने भी अपवादों के द्वारा अस्पृश्यता के प्रभाव को वस्तुतः निरर्थक कर दिया है, (५) किसी मनुष्य पर अस्पृश्यता का कलंक जीवनभर नहीं लगा रहता था, स्वयं स्मृतिकारोंने ही कुछ ऐसे सरल धार्मिक संस्कार बतला दिये थे कि जिनसे मनुष्य की अस्पृश्यता दूर हो सकती थी।

एक और प्रामाणिक व्यवस्था

किन्तु यदि इससे भी अधिक प्रामाणिक व्यवस्था की आवश्य-कता हो, तो वह 'धर्म-शास्त्र-विचार' नाम की एक मराठी पुस्तक में मिल सकती है। बम्बई-हाईकोर्ट के वकील प्रो० पी० वी० काणेने यह पुस्तक लिखी है। श्री काणे संस्कृत-साहित्य के धुरंधर विद्वान्

है। बम्बई के रूढ़िप्रिय ब्राह्मणों के नेता, और अगर मैं गलती नहीं कर रहा हूँ तो बम्बई की ब्राह्मण-सभा के आप अध्यक्ष भी हैं। लोगों की खासी अच्छी उपस्थिति मे, जिसमें अधिकांशतः रूढ़िप्रिय ब्राह्मण ही थे, उन्होंने हिन्दू-धर्म के सिद्धान्तों पर कई व्याख्यान दिये थे। इस पुस्तक में उसी व्याख्यान-माला का सारमर्म है। उनका एक व्याख्यान अस्पृश्यता विषय पर था। अस्पृश्यता पर उसमें उन्होंने जो विचार प्रगट किये थे उनका जितना ही प्रसिद्धिकरण हो थोड़ा है। उनके वे विचार इस बात की एक और साक्षी देते हैं कि अस्पृश्यता आज अपनी अन्तिम सांसें ले रही है। उन्होंने श्रीधर शास्त्री को उनकी पुस्तक के लिए बधाई दी है, और अपने खास परिणामों पर पहुँचने के लिए एक नया ही मार्ग ग्रहण किया है। उनके अस्पृश्यता-सम्बन्धी विचार, मय उनकी जोरदार दलीलों के, संक्षिप्त रूप में नीचे दिये जाते हैं :—

(१) 'अस्पृश्य' अथवा 'अस्पृश्यता' यह शब्द वेदों में नहीं मिलता, और न कोई ऐसा वैदिक मंत्र ही है कि जिसके आधारपर हम किसी जाति या किसी पेशेवर वर्ग पर अस्पृश्यता की छाप लगा सकें। अत्रिस्मृति में जिन पेशेवर नामों को अस्पृश्य बताया है उनका वेदों में भी उल्लेख आता है, पर वेदों में उन्हें अस्पृश्य कहीं भी नहीं कहा।

(२) सनातनी जिन वैदिक मंत्रों के बल पर अस्पृश्यता प्रमाणित करते हैं वे कुल तीन या चार प्रमाण हैं—छान्दोग्य उपनिषद् ५–१०–७, बृहदारण्यक उपनिषद् ४–३–२२, छान्दोग्य उपनिषद् ५–२४–४ और बृहदारण्यक उपनिषद् १–३–१० में इसका उल्लेख आया है। सिवा अन्तिम प्रमाण के, इन सभी में चाण्डाल शब्द का उल्लेख मिलता है, किन्तु जहां उनमें यह आया है कि चाण्डाल नीचातिनीच है, वहां उनसे यह प्रगट नहीं होता कि वह किसी रूप में अस्पृश्य शब्द का वाची है। सनातनी जब यह दलील देते हैं कि चूंकि स्मृतियोंने चाण्डाल को अस्पृश्य कहा है, और चाण्डाल का उल्लेख वेदों में मिलता है, इसलिए वेदों के अनुसार भी चाण्डाल को अस्पृश्य मानना ही चाहिए, तब वह सारे प्रश्न को पहले से ही स्वयंसिद्ध मान बैठते हैं।

(३) पाणिनि तकने चाण्डालों को शूद्र माना था, और यद्यपि मनु के अनुसार केवल एक चाण्डाल ही अस्पृश्य है, तो भी आज जो जातियां अस्पृश्य समझी जाती हैं, वे मनु के चाण्डाल की व्याख्या में नहीं आतीं।

(४) 'जन्मना' अस्पृश्यता तो एक बहुत पीछे की चीज है, जो मनोवैज्ञानिक कारणों पर आधार रखती है, और यद्यपि वह अब एक बहुत दिनों से चली आई प्रथा बन गई है, तो भी कोई कारण नहीं कि वह क्यों न रद्द कर दी जाय।

(५) यह हाल की अस्पृश्यता भी 'जन्मना' अस्पृश्यता नहीं हो सकती। यह कई प्रकार की है: (क) अमुक अवस्था के कारण, जैसे रजस्वला स्त्री; (ख) दूषणीय आचरण के कारण, जैसे ब्रह्म-हत्या का दोषी; (ग) आजीविका प्राप्त करने के निकृष्ट साधनों के कारण, (घ) अमुक देशों में जा बसने के कारण; (ङ) पारस्परिक द्वेष के कारण—वैष्णव जैसे शैव को अस्पृश्य समझता है, और शैव वैष्णव को।

उपर्युक्त व्याख्याओं में आनेवाले मनुष्य अधिकांश में आज अस्पृश्य नहीं रहे हैं, और कोई कारण नहीं कि इनमें जो थोड़े-से बाकी बचे हैं वे क्यों अब भी अस्पृश्य माने जायें।

(६) सार्वजनिक स्थानों, जलाशयों और देवालयों से संबंध रखनेवाली अस्पृश्यता के लिए तो कोई आधार ही नहीं। वस्तुतः स्मृतियों तक में ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि जिनसे यह प्रगट होता है कि इन स्थानों के आगे अस्पृश्यता विलुप्त हो जाती है।

प्रो० काने कानूनन मंदिर-प्रवेश कराने के विरुद्ध हैं। क्योंकि उन्हें यह भय है कि इससे अशांति भड़केगी, और वे यह मानते हैं कि एसेम्बली के अन्य धर्मावलंबी सदस्य हिंदुओं के लिए कानून नहीं बना सकते। किंतु जहांतक शास्त्रों से संबंध है वहांतक उनकी स्थिति दीपकवत् स्पष्ट है और रूढ़िप्रिय पंडितों के लिए तो वह एक तरह की सीधी ललकार है। सनातनियों से अपील करते हुए उन्होंने कहा है कि उनका अपना वर्तमान आचरण तो स्वयमेव शास्त्र-विरुद्ध है।

प्रो० काने कहते हैं कि, "प्राचीन स्मृतिकारोंने म्लेच्छों को, अस्वच्छों को और अधार्मिकों को एक ही पंक्ति में रखा है, और उनसे बोलने का निषेध किया है (गौतमस्मृति ९.१७, विष्णुस्मृति ६४.१५)। किंतु आज हम क्या करते हैं? इन स्मृतियों के अनुसार यूरोपियन सभी म्लेच्छ हैं, पर उनसे बातचीत करने में हम एक दूसरे से बढ़ जाना चाहते हैं। यह तो हम पहले ही बता चुके हैं कि मनुने कहा है कि पौण्ड्रक, द्राविड़, यवन और शक क्षत्रियों के पद से च्युत होकर शूद्र हो गये थे, क्योंकि उन्होंने अपना धर्म त्याग दिया था। ऐतरेय ब्राह्मण में उन्हें विश्वामित्र का वंशज बताया है। अजीगर्त के पुत्र शुनःशेप को जब विश्वामित्र अपना दत्तक पुत्र बनाने लगे, तब उनके पचास पुत्रोंने उन्हें ऐसा करने से रोका। इससे उन्हें विश्वामित्र के रोष और शाप का भाजन बनना पड़ा, और इसके परिणामस्वरूप वे नीच अधम हो गये। अन्त्यज निश्चय ही म्लेच्छों, शकों, पौण्ड्रकों इत्यादि से नीच नहीं हो सकते। ये लोग तो गोमांसभक्षक और मूर्तिभंजक हैं, किंतु अन्त्यज तो इन बातों से कोसों दूर हैं। वे तो मूर्तिपूजक हैं। इसलिए मैं 'सनातनधर्म-दीपिका' के लेखक श्री अनंत शास्त्री से अनुरोध करूँगा कि वे कृपया इन बातों [illegible] करें। बाजा बजानेवाले मुसलमान अस्पृश्य नहीं हैं, [illegible] ।ब अंत्यज मंदिर की हद में पैर नहीं रख सकते! याज्ञवल्क्यने पारसियों को म्लेच्छ अत अस्पृश्य कहा है। लिखा है.—

"चांडाल, पुक्कस, म्लेच्छ, भिल्ल और पारसीक-जैसे पापियों को छूकर सचैल स्नान करना चाहिए।"

किंतु चांडाल और पुक्कस को छोड़कर बाकी सभी आज स्पृश्य हो गये हैं। तब बेचारे चांडालों और पुक्कसों का ही ऐसा कौन-सा अपराध है? इसके उत्तर में कोई यह न कहे कि वे सब बल या हिंसा का प्रयोग करके स्पृश्य बन गये हैं। यह बात तो आपकी निकृष्ट मनोवृत्ति का ही परिचय देगी कि चांडालों को भी आप बल या हिंसा का अचल पकड़ावें।"

"चर्खे का पुनःप्रवेश"

यह एक कटिंग का शीर्षक है, जिसे एक अमेरिकन मित्रने 'कंसास सिटी टाइम्स' पत्र से काटकर भेजा है। इस पत्र की गणना अमेरिका के अनुदार मत के तथा अत्यंत प्रभावशाली पत्रों में की जाती है। इस लेख में यह स्पष्टतापूर्वक बतलाया गया है कि चर्खे और कर्घे के पुनःप्रवेश का आरंभ किस त[illegible] है कि, "कंसास में राज्य की कई हजार [illegible] तागे, स्वैटर, कंबल और कपड़े बुनना रि[illegible]

उन स्त्रियों को, जिन्हें रिलीफ फंड से पैसा मिलता है, आगामी वर्षा और शीतऋतु में कसास की इमर्जेन्सी रिलीफ कमेटी के आदेशानुसार ३०९४४० पाउण्ड ऊन के स्वीटर और गरम कपड़े बुनने है। हरेक सूबे में एक शिक्षक और अन्य सहकारी रहेंगे, जिनकी मदद से यह काम कराया जायगा········ मिस्टर स्टज कहते हैं कि १ जून को रिलीफ की फन्डों से वेतन पानेवाली १२३०३ स्त्रियां थीं। इन स्त्रियों में नये-नये हुनर दाखिल करने के प्रयत्न में,कं० इ० रि० कमेटी कताई, बुनाई और मोजे वगैरा बिनने का काम जारी करने की तजवीज कर रही है, ताकि इन स्त्रियों को ऊन की जितनी भी क्रियाएँ हैं वे सब सिखा दी जायँ। हाथ की बिनी चीजों और हाथ के बुने कपड़े की माग दिन-दिन बढती जा रही है। यूनाइटेड स्टेट्स में इस तरह का काम इधर कुछ वर्षों से अपेक्षाकृत कहीं-कहीं ही देखने में आया है। जो यह माग पूरी कर सकते हैं, उन्हें इससे शायद जीविका का साधन मिल सकता है।········ कंबल बुनने के केन्द्र दो सरकारी सुपरवाइजरों और स्थानीय दारोगों की निगरानी में रहेंगे। कोशिश यह की जायगी कि २० और २५ साल के बीच की उम्रवालों को ही काम में लगाया जाय, क्योंकि ऐसा विश्वास है कि बड़ी उम्रवालों के मुकाबले में नौजवानों के लिए यह अनुभव अधिक उपयोगी साबित होगा। कारखानों में जानेवाले काम करनेवाले लोगों को सावधानी के साथ चुनने का प्रयत्न किया जायगा, ताकि यह अवसर उन लोगों को दिया जाय जिनके लिए कि वह उन्हें पुनः पहले पद पर पहुँचाने में अधिक-से-अधिक महत्व का हो। कुछ सरकारी सिलाई के कारखानों में चर्खे और हाथ के कर्घे तो पहले से ही काम में लाये जा रहे हैं। चिथड़ों या गुदड़ों के कबल बनाने में यहां हाथ के कर्घों का उपयोग होता है, और अनेक स्त्रियां उनपर काफी दिलचस्पी और रुचि के साथ काम करती हैं।

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

घी

जिन्हें पुसा सकता है वे घी शौक से खाते हैं। करीब-करीब सभी मिठाइयों के बनाने में घी लगता है। और तो भी, या शायद उसके कारण से, घी खाने-पीने की उन चीजों में से है जिनमें ज्यादा-से-ज्यादा मिलावट होती है। बाजार में जो घी बिकता है इसमें शक नहीं कि अधिकांश में वह मिलावटी ही घी होता है। यदि अधिकतम भाग में नहीं तो कुछ में तो ऐसी हानिकारक चर्बी जरूर मिली होती है, जिसे निरामिषभोजियों को खाना ही नहीं चाहिए। बहुधा वनस्पति तेलों को घी में मिलाते हैं। इस मिलावट के तेल में अगर चिकटापन न हो तो भी घी में जो पोषक गुण है वह कम हो जाता है। तेल जब चिकटा हुआ मिलाया जाता है तो वह घी खाने लायक ही नहीं रहता।

मगनवाड़ी में हम यह आग्रह कर रहे हैं कि घी गाय का ही लिया जाय। इसमें कठिनाई बहुत है और पैसा भी ज्यादा खर्च [illegible]ता है। हमने २० सेर घी का ~~४~~ २५) तक दिया है, और रेल-[illegible] अलग।

इसका स[illegible] अमीर आदमी के ही बूते का काम है। हम तो गरीब है। यह श्री देस[illegible] के पैमाने के निकट पहुँचने का जितना हमने प्रकाशित हो चुके हैं [illegible] है, और उसके साथ युक्ताहार के प्रमाण पाठक के स्वास्थ्य और अ[illegible] ने देखा कि डॉ० आइक्रोडने अपने युक्ताइस पुस्तक में श्री देसाईने [illegible] हार के पैमाने से घी को निकाल दिया है। डाक्टरी प्रमाण ले तो उनका आग्रह दूध या छाछ के लिए है, पर उनका यह आग्रह नहीं कि मक्खन या घी हमारे नित्य के आहार का एक अनिवार्य अंग है। अतः हमने बतौर एक प्रयोग के घी को अपने आहार में से निकाल दिया है। मगनवाड़ी में सिर्फ वही लोग घी खाते हैं जो उसे अपने स्वास्थ्य के लिए जरूरी समझते हैं। शुद्ध ताजे वनस्पति तेलों के परिमाण की हम एक सममूल्य वस्तु जारी कर रहे हैं। हिंदुस्तान के करोड़ों आदमियोंने घी को कभी चक्खा तक नहीं। खैर, यह बात याद रखनी चाहिए कि जो लोग दूध पीते हैं, उन्हें शुद्ध-से-शुद्ध और अच्छी तरह हजम होनेवाले रूप में कुछ घी तो मिल ही जाता है। स्वाद की तो बात अलग है, उसे जाने दें, पर यह निर्भयतापूर्वक कहा जा सकता है कि जबतक ग्रामसेवकों को कुछ दूध या दही या छाछ मिल सकता है तबतक उन्हें घी खाने की जरूरत नहीं, अपने आहार में से बिना किसी डर-भय के वे घी को निकाल सकते हैं।

इसके साथ ही धनिक लोगों तथा म्युनिसिपैल्टी-जैसी सार्वजनिक संस्थाओं का यह फर्ज है कि वे ऐसा प्रबन्ध करदें कि गरीब आदमियों को सस्ता खालिस दूध और मक्खन या घी मिलने लगे।

दूध अथवा दूसरी खाने की चीजों में मिलावट करना उतना ही मुश्किल हो जाना चाहिए जितना कि जाली सिक्कों, या नोटों या डाकखाने की टिकटों का बनाना कठिन है, और जिस तरह डाकखाने की टिकटों का एक निश्चित मूल्य है उसी तरह इन चीजों का भी मूल्य एक प्रमाण पर निश्चित हो जाना चाहिए।

आज इन तमाम तिजारती कारबारों के इंतिजाम में, जो खानगी मुनाफे के लिए चलाये जा रहे हैं, जितनी निपुणता खर्च की जा रही है, उससे आधी भी निपुणता अगर जनता के हितार्थ दुग्धशालाएँ और खाद्य वस्तुओं की दूकानें चलाने में खर्च की जाय, तो वे स्वावलंबी संस्थाओं की तरह बड़े मजे में चल सकती हैं। कोई कारण नहीं कि वे स्वावलंबी न हो सके, हां, यह बात अलग है कि ऐसी लोकहितैषिणी दुग्धशालाओं और भोजन-वस्तु-भंडारों को उचित सूझ-बूझ और धन की सहायता देने की लोगों को इच्छा न हो। धनिकों की परोपकारिता या दानशीलता तो 'सदाव्रत' चलाने अर्थात् समाज के भाररूप भिखमंगों की दिन-दिन बढ़ती हुई सेना को खिलाने-पिलाने के प्रयत्न में खर्च होती है। ये भिखमंगे बिना ही हाथ-पैर हिलाये मुफ्त में खाते हैं। इसे यदि अपकारशीलता न कहा जाय तो परोपकारशीलता का दुरुपयोग तो यह है ही। हरेक कस्बे और गांव में आहार की शुद्ध स्वास्थ्यकर चीजों का ठीक दर-दाम पर मिलना जो कठिन ही नहीं बल्कि असंभव हो रहा है, वह ग्रामसेवकों के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा है। इस भारी बाधा के होते हुए भी ग्रामसेवक जब अपने प्रयोगों के द्वारा यह शोधने का प्रयत्न करते हैं कि उपयुक्त आहार प्राप्त करने के क्या-क्या देशी साधन हैं, तब वे अपना समय कुछ योंही नष्ट नहीं करते।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करें। ग्राहक-नंबर मालूम न होने पर उसके पत्रादि का तात्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा।

व्यवस्थापक—'हरिजन-सेवक'

हरिजन-सेवक

शनिवार, ९ नवम्बर, १९३५

एक भ्रम

मेरे कागज-पत्रो मे यह निम्नलिखित प्रश्न बहुत दिनो से पडा हुआ है —

"आपको क्या ऐसा नही लगता कि जबतक राजनीतिक सत्ता हाथ में न होगी, तबतक कोई महान् परिवर्तन नही हो सकता ? फिर हमे आजकी आर्थिक रचना····· का सामना करना है। इसकी मर्यादाए समझ ली जाय, तो अधिक अच्छा हो। सगठन मे राजनीतिक हेतु तो मुख्य ही रहना चाहिए— फिर वह प्रत्यक्ष रीति से हो या अप्रत्यक्ष रीति से। इससे आपकी हरी पत्तिया, साग-भाजी, 'पूर्ण 'अपूर्ण' चावल आदि इस सब का क्या अर्थ होता है ?"

बहुत-सी चीजो के बारे मे, उन्हे न करने के समर्थन मे, ऊपर जैसी दलील मैंने सुनी है। कुछ काम तो जरूर राजनीतिक सत्ता के बिना नही होते, पर असख्य कामो के साथ राजनीतिक सत्ता का कुछ भी वास्ता नही होता। इसलिए थोरो-जैसा विचारक लिख गया है कि, 'वही राजसत्ता अच्छी गिनी जाती है, जिसका उपयोग कम-से-कम होता है।' इसलिए कि जनता के हाथ मे राज्य का तत्र पूरी तरह से आजाय, उसकी दखलगिरी बढने के बजाय घटनी ही चाहिए। इसी चीज को दूसरे शब्दो मे यो कह सकते है कि 'जिस राष्ट्र के अधिकाश मनुष्य बाह्य अकुश के बिना अपने काम अच्छी तरह सुसगठित करके चलाते है वही राष्ट्र जनसत्तात्मक राज कर सकता है। जहा यह स्थिति नही है, वहा का तत्र जन-सत्तात्मक कहलाते हुए भी जनसत्तात्मक नही है, यह सिद्ध हो सकता है।'

अपने विचार के ऊपर तो किसी का अकुश होता नही। अनेक सुधारक आजकल हमारी विचार-सामग्री के सुधार पर जोर डाल रहे है। पर हम कितने आदमी विचारो मे सुधार कर रहे है ? शुद्ध विचारो में बहुत बडी शक्ति है ऐसा आज के वैज्ञानिक स्वीकार करते है और इसीसे यह कहा जाता है, कि 'मनुष्य जैसा विचारता है वैसा हो जाता है।' हत्या का नित्य चिंतन करनेवाला हत्यारा हो जायगा। व्यभिचार का चितन करनेवाला व्यभिचारी हो जायगा, सत्य का चिंतन करनेवाला सत्यमय, अहिंसा का चितन करनेवाला अहिंसामय और भगवान् का चितन करनेवाला भगवत्स्वरूप हो जायगा। इस प्रकार यदि इस असर्यादित क्षेत्र मे राजसत्ता की आवश्यकता नही, तो हमे सहज ही यह समझ लेना चाहिए कि *अनेक प्रवृत्तियो मे राजसत्ता से कोई सरोकार नही।* उपर्युक्त प्रश्न उठानेवाले सज्जन को, और जिनके मनमे ऐसा प्रश्न उठता है उन्हे मेरी यह सलाह है कि वे अपने सिर्फ एक ही दिन के तमाम कार्यो को लिख डाले। ऐसा करने पर वे देखेंगे कि उनके अधिकाश कार्यो मे राजसत्ता का जरा भी हिस्सा नही है। *मनुष्य पराधीन अपने* अपराध से होता है और स्वाधीन भी वह अपनी ही इच्छा से हो सकता है।

प्रश्नकारने महान् परिवर्तन का अटकाव खडा करके अपने मार्ग को हाथ में लेकर भयानक बना दिया है। जो छोटा फेरफार नहीं कर सकता, वह भारी फेरफार करने की कला कभी हस्तगत नहीं कर सकता। अपनी शक्ति के अंतर्निहित तमाम वस्तुओं को करने-वाला अपनी शक्ति नित्य बढाता ही जायगा, और अंत में यह होगा कि जो फेरफार उसे बडा मालूम होता था वह छोटा-सा लगने लगेगा। जो मनुष्य इस प्रकार अपने जीवन की रचना करता है उसका जीवन नैसर्गिक अथवा स्वाभाविक बन जायगा, दूसरे जीवन कृत्रिम होगे। राजनीतिक हेतु सिद्ध करने के लिए उस हेतु को भूल जाने की आवश्यकता है। सभी बातों मे यह हेतु लगाना किसी चीज को और-और बिगाडने-जैसी बात है। जो चीज हमारे पीछे लगी हुई है उसका विचार किसलिए करे ? बिना मौत किसलिए मरें? इसलिए मुझे तो हरीपत्ती, साग-भाजी, पूर्ण-अपूर्ण चावल आदि मे बहुत रस आता है। लोगो के पाखाने किस तरह साफ रखे जायें, लोग धरतीमाता को जो सवेरे के पहर गलीज करना शुरू करते हैं, इस महान् पाप से उन्हे किस तरह बचाया जाय, इस विषय मे *विचार करना, इस पाप के निवारण का उपाय ढूंढना मुझे तो बहुत* ही प्रिय लगता है। इसमे किसलिए राजनीतिक हेतु नहीं है और सरकार की आर्थिक नीति का विचार करने मे किस कारण राज-नीतिक हेतु है ही, यह मेरे मन मे तो जरा भी स्पष्ट नही होता। मै जो काम कर रहा हू उसे चाहे तो करोडो मनुष्य कर सकते है, और सरकारी नीति पर विचार करने का काम करोडो को आता ही नही, उसे वे समझते ही नही। यह काम कुछेक लोगो को ही करना चाहिए ऐसा मै मानता हू। उसे करने की योग्यता जिसमें हो वह भले ही करे। पर ऐसे नेता महान् परिवर्तन करा सकें तब-तक मेरे-जैसे करोडो मनुष्य अपनी सारी योग्यता का उपयोग जनता के हितार्थ क्यो न करे ? वे क्यो अपने निर्बल शरीर को सबल न बनायें ? क्यो न अपने आगन की गदगी दूर करे ? व्याधि-ग्रस्त वे क्यो बने रहे, और क्यो कुछ भी सेवा करने के अयोग्य रहे ? मुझे भय है कि प्रश्नकार के प्रश्न के पीछे आलस है, निराशा है, और वर्तमान सदता के प्रवाह मे वह पड गया है। मेरा यह दावा है कि देश की स्वतत्रता प्राप्त करने की लगन मुझ मे कम नही। मै काम करने से थका नही हूँ। पर अनेक वर्षो के अनुभव से मैने यह देखा है कि जिन प्रवृत्तियो मे मै रचा-पचा रहा हूँ उनमे बराबर राष्ट्र की स्वतत्रता के उपाय रहे है, उन्हींमे से शुद्ध स्वत-त्रता की मूर्ति खडी होती है। इसीलिए इस महायज्ञ मे सभी को— स्त्रियो, पुरुषो, बालको, सर्व वर्णो और सर्व जातियो को मै निमत्रण दे रहा हूँ।

'हरिजन-बधु' से]

मो० क० गांधी

दयालु ग्राहकों की आवश्यकता है

आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय, जो दीन-दुखियों के कल्याणार्थ ७५ बरस की उम्र मे भी नौजवानो के ऐसा उत्साह दिखला रहे है, लिखते है —

"मै अतराई, तल्लोरा और सरियाकण्डी के उन केन्द्रो में गया था जहा हाल मे ही चरखे का प्रवेश किया गया है। चावल और पाट के दाम, जो उस इलाके की खास फसल है; बहुत गिर गये है, इससे व्यापार मे मन्दी हो रही है और किसानों की हालत बहुत खराब हो गई है। सरियाकण्डी की हालत तो खास तौर पर खराब है। रेलवे-स्टेशन से नाव में बैठकर, छः घण्टे में मैं वहा पहुँचा; लेकिन वापसी के वक्त नदी का प्रवाह विरुद्ध दिशा में था, इसलिए पूरे पन्द्रह घंटे लगे। रास्ते में मांझीने मुझसे कहा कि वहा चरखा दाखिल करने से बहुतों को 'जीवन-दान' मिला

है। इस समय वहा ४-५ सौ के करीब चरखे चल रहे है—इतने पर भी, लोगोंने मुझे घेर लिया और इस बात की प्रार्थना करने लगे कि और भी चरखे वहा चलवाये जायें।

यहा का कता हुआ सूत खासा बढ़िया होता है, पर बगाल मे उसके कपड़े की खपत बहुत कम है और उसके लिए हमे बम्बई के बाजार का मुहँ ताकना पडता है। इससे जो माल तैयार होता है उसकी खपत करने में बड़ी कठिनाई पडती है, जो सब आपको मालूम ही है। बम्बईवाले हमारा माल खरीदना बन्द करदे तो हमें घटिया किस्म का सूत तैयार कराना पड़ेगा जिससे कि स्थानीय कत्तिने अपने खुद के ही काम मे उस कपडे को ले आवे।

"इस बात का खयाल रखते हुए कि कताई के रिवाज का बिलकुल लोप ही हो चुका था, यह अचरज की बात है कि थोडे ही समय म, यानी ज्यादा-से-ज्यादा डेढ साल के अन्दर, लोगोंने इतनी तत्परता के साथ न केवल कताई का का ही शुरू कर दिया है बल्कि वे इतना बढिया सूत कातने लगे है। लेकिन बिलुप्त कला को पुनर्जीवित करने और कायम रखने के लिए न केवल बहुत अधिक धीरज रखने की ही जरूरत है, बल्कि शुरुआत मे खर्च करने के लिए काफी रुपया भी चाहिए। बहरहाल उत्तरी बगाल मे इसके लिए बहुत-कुछ किया गया है और उससे हमे काफी मदद मिलने की सम्भावना है। हमे इसमे हतोत्साह हर्गिज नही होना चाहिए।

"अब मै नाव-द्वारा पबना के निकटवर्त्ती स्थानो का दौरा करते हुए आसपास के लोगो की माली हालत के बारे मे थोडी-बहुत जानकारी हासिल कर रहा हूँ।"

बढिया खादी की गहँकी तो भाव बढने के पहले से भी घटने लगी थी, अब अगर उससे ज्यादा घटने लगे तो वह भावो के बढ़ने के कारण नही बल्कि खरीदार के प्रेम या दयालुता की कमी के कारण होगा। दयालुता सौदे की भावना से कम दाम की तलाश नही करती। मनुष्य की दयालुता तो खरीद मे भी सेवा के अवसर ढूढती है और पहले यह नही पूछती कि चीज के दाम क्या है, बल्कि यह पूछती है कि उसके बनानेवाले की दशा कैसी है और फिर उन्ही चीजो को खरीदती है जिनके द्वारा अधिक-से-अधिक सेवा—अधिक-से-अधिक गरजमन्द के अभावो की पूर्त्ति—होती हो। अगर दीन-दुखियो के प्रति प्रेम-भाव से भरे हुए स्त्री-पुरुषो की सख्या काफी हो जाय तो खादी की माग भी बढती रहेगी। अब तो और भी ज्यादा, क्योंकि अब इस बात का बहुत ही ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है कि छोटे-से-छोटे कतवैये को भी कम-से-कम पेट भरनेलायक मजदूरी तो अवश्य मिल जाय। यह मजदूरी ऐसी न होगी जिससे किसी कदर उनकी उदरपूर्त्ति हो जाय, बल्कि ऐसी होगी जिसमे उन्हे पोषक खुराक मिल सके।

खादी के कारीगरो को निर्वाह-योग्य मजदूरी देने के साथ-ही-साथ खादी के लिए और अच्छा, यानी ज्यादा स्वाभाविक बाजार ढूंढने की भी कोशिश करनी चाहिए। अबतक हमने बम्बई, कलकत्ता और मद्रास-जैसे बडे-बड़े शहरो मे ही ग्राहक ढूढकर सस्ते मे अपना सन्तोष कर लिया है; लेकिन यह गलत तरीका था। मैंने आचार्य राय को कहलाया है कि यदि उनका स्वास्थ्य अच्छा हो तो वह अपने प्रेम का यह सन्देश खादी-उत्पादक केन्द्रों के आसपास पहुँचायें। सारा बगाल बढ़िया कपडा पहनता है, तो फिर वह बढ़िया खादी क्यों न पहने? इस नई योजना के अनुसार तो खादी और भी मस्ती की जा सकती है, अगर बगाल सट्टे के लिए नही बल्कि महज घरू इस्तेमाल के लिए कपास पैदा करे। लेकिन यह दिन अभी दूर है। फिलहाल तो बगाल सारे भारत की तरह मानवता के खातिर ही खादी पहने, व्यापारिक भाव से दाम-दाम गिनकर नही। क्या कभी हम इसका भी हिसाब लगाते हे कि हमारे बच्चो और बूढे माता-पिता पर क्या खर्च पडता है? उनकी परवरिश तो हम हर हालत मे करते ही हे, चाहे उसमे कितना ही खर्च क्यो न हो। तो क्या अपने करोडो बहिन-भाइयो के प्रति हमारा कर्तव्य इससे कम है, जो महज इसी कारण भूखो मर रहे हैं कि हम उनके प्रति अपने कर्तव्य-पालन में लापरवाही कर रहे है? हमे भारत के किसी भी हिस्से की उपेक्षा नही करनी चाहिए। खादी-विज्ञान के लिए इस बात की जरूरत है कि पैदावार और बिकरी एक ही जगह न होकर जगह-जगह हो।

खादी की बिकरी जहातक मुमकिन हो उत्पत्ति-केन्द्रो के आस-पास ही होनी चाहिए। सारी शक्ति हमे इसीमे लगानी चाहिए। हम शहरो के लिए खादी भले ही बनाये, लेकिन हमे उनपर कभी अवलम्बित न रहकर स्थानीय बाजार पर ही अपना आधार रखना चाहिए। सबसे पहले हम स्थानिक बाजार की स्थिति का अध्ययन करें और उसकी आवश्यकता पूरी करें। चूकि तमाम खादी-कारीगर, और चरखा-सघ तथा ग्राम-उद्योग-सघ मे काम करनेवाले सभी खादी पहननेवाले होगे, इसलिए कुछ माग* तो कायम रहेगी ही। अनन्तपुर के श्री जेठालाल और बगाल के सतीश बाबूने अलग-अलग हिसाब लगाकर यह नतीजा निकाला है कि खादी को स्वावलम्बी बनाने के मानी होगे तीन गज कपड़ा कारीगर पहने तो दो गज कपड़ा बाहर बिके। यदि यह अन्दाज सही हो, तो स्वावलम्बी खादी को लोकप्रिय बनने के लिए स्थानिक बाजारो मे बहुत अधिक सहायता की आवश्यकता होगी। चूकि खादी के साथ-साथ दूसरे उद्योग-धन्धे भी रहेगे ही, अत यह सम्भव है कि स्वावलम्बी खादी को दूसरे ग्राम-उद्योगो से भी सहायता मिले। स्वावलम्बी खादी की कसौटी इसी बात में है कि वह पहननेवाले पर अपने श्रम के सिवाय कोई खर्च नही पड़ने देती। स्वावलम्बी खादी तबतक सारे देश मे नही फैल सकेगी जबतक कि स्थानिक बाजार तैयार नही किये जायेंगे और माग स्थिर न हो जायगी। इस माग को स्थिर बनाने के लिए यह जरूरी है कि प्रत्येक उत्पत्ति-केन्द्र अपना एक क्षेत्र निश्चित करले जिसमे न तो काम दुहेरा हो और न एक ही सघ के कार्यकर्ताओ मे अनुचित स्पर्धा बढे।

'हरिजन' से] **मो० क० गांधी**

खादी की नई योजना

चर्खा-संघने कत्तिनो की मजदूरी के सम्बन्ध मे साधारण खादी-नीति के विषय में जो प्रस्ताव पास किया है उसका प्रत्येक खादी-सेवक को ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। यदि इस नई खादी-नीति का ठीक-ठीक अमल हो, तो उससे बड़-बड़े परिवर्तन हो सकते है। इस नीति को ठीक तरह से अमल में लाने के लिए चर्खा-संघ की ओर से समय-समय पर निकलनेवाली सूचनाओ का सूक्ष्मता के साथ पालन होना आवश्यक है।

खादी की समस्त संस्थाओं में वस्त्र-स्वावलम्बन को प्रथम स्थान मिलना चाहिए। एक तरह से वस्त्र-स्वावलम्बन और

बिक्री के लिए उत्पादन दोनों साथ-साथ चलेंगे। वस्त्र-स्वावलम्बन के साथ अनायास विक्रयार्थ खादी भी बनेगी, और उसमें सफलता मिलेगी तो वस्त्र-स्वावलम्बन की ही बदौलत मिलेगी। खादी-उत्पत्ति के साथ अब शर्त यह है कि खादी बनानेवाले कारीगरों को खादीधारी होना ही चाहिए, इसलिए उन्हें अपने लिए खादी या तो बनानी होगी या खरीदनी होगी। यह तो वे आसानी से कर सकते हैं, क्योंकि उन्हें अपनी मजूरी की दर में उनकी दृष्टि से जो इतनी अधिक बढ़ोतरी मिलती है कि जिसकी न उन्होंने आशा की थी और न जो मांगी ही थी उसमें से वे इतना पैसा खर्च कर सकते हैं। मगर मजदूरी तो उस खादी पर निर्भर करेगी, जिसे वे अपने घरू उपयोग के अलावा बनायेंगे। यह खादी भी उसी वक्त बिक जाय तभी उससे कारीगरों को लाभ होगा। इस तरह वस्त्र-स्वावलम्बन का तरीका वहीं आसान होगा जहां खादी के उत्पत्ति-केन्द्र हैं। कारण कि जिन लोगों के संपर्क में खादी-सेवक कभी आये ही नहीं उनकी अपेक्षा कतिनों और खादी के दूसरे कारीगरों के गले यह बात अधिक सुगमता से उतारी जा सकेगी।

किन्तु कुछ लोग यह कहते हैं कि खादी की कीमत बढ़ा देने से फिर उसे खरीदेगा कौन? मैं मानता हूँ कि यह प्रश्न अज्ञान, अविश्वास और अकुशलता ही प्रगट करता है।

अबतक हमने सिर्फ शहरों में ही खादी की मांग बढ़ाने की तरफ ध्यान दिया है, हमारी शहराती मनोवृत्ति ही रही है। खादी जिन केन्द्रों में बनती है उनके आसपास के गावों के अध्ययन करने की हमने कभी पर्वा ही नहीं की, हमने खादी उत्पन्न करनेवाले मनुष्यों पर ही ध्यान नहीं दिया। अब हम इन लोगों को परखने के भी पहले इतना विश्वास करने लगे हैं कि वे इस बात को अवश्य मानेंगे। तब पास-पड़ोस के तथा गावों के लोगों के सम्बन्ध में हम ऐसा ही विश्वास क्यों न रखें? उन्हें नित्य के उपयोग के लिए कपड़े की जरूरत तो पड़ती ही है। तब वे अपने पास-पड़ोसियों की बनाई हुई थोड़ी-सी खादी खरीदलें, उनसे ऐसी आशा रखना क्या अत्यधिक है? मैं जानता हूँ कि जिन्होंने इस दिशा में लगन के साथ प्रयत्न किया है उन्हें कभी विफलता नहीं हुई। विफलता तो हमारी है, भावी ग्राहकों की नहीं। वे आज चाहे जो कपड़ा खरीदकर पहनते हों, तो भी हमेशा से हैं तो वे हमारे साथ ही। हम अगर इर्दगिर्द के गावों की आवश्यकताओं का अध्ययन करेंगे तो हम ऐसी खादी बनायेंगे जो उनकी अभिरुचि के अनुकूल हो और उनका ध्यान आकर्षित करे। खादी-सेवकोंने शहर के लोगों के लिए इसी तरह किया है और उन्हें कामयाबी भी मिली है। अब क्या वे इसी तरह गावों की ओर दृष्टि फेरेंगे? लोग खादी से जो दूर भागते हैं उसका कारण खादी का महंगापन नहीं, बल्कि हमारी अश्रद्धा और कुशलता की ही कमी है। हम लोगों में यदि श्रद्धा होगी तो यह बात हमारी नजर के आगे आ जायगी कि जापान से आनेवाले कपड़ों के टुकड़े (Fents)* बेचनेवाले जिन करोड़ों ग्राहकों को ये टुकड़े बेचते हैं उन्हीं करोड़ों को हम खादी बेच सकते हैं। ये लोग अपना टुकड़ेल बेचने के लिए उसकी सस्ती कीमत का सहारा लेते हैं। हम अपने ग्राहकों के देश-प्रेम पर और अपने माल की सफाई व सुन्दरता पर भरोसा रख सकते हैं।

*कपड़े की अपेक्षा टुकड़ेल पर आयात-कर कम है, इसलिए चुंगी बचाने के लिए जापानी व्यापारी कपड़े के थान के टुकड़े फाड़-फाड़कर बेचते हैं, और यह टुकड़ेल हमारे देश के बाजारों में काफी बिक रहा है।

चर्खा-संघ की कार्यकारिणी समितिने जो यह आग्रह रखा है कि खादी का काम करनेवाली प्रत्येक संस्था को स्वावलम्बी अत. स्वतंत्र होना चाहिए, उसका कोई उचित कारण न हो यह बात नहीं। ये संस्थाएँ अब चर्खा-संघ से पोषण मिलने की आशा में न बैठी रहें। चर्खा-संघ की केन्द्रीय पूंजी को अब हमें ऐसे क्षेत्र विकसित करने में लगाना चाहिए, कि जिनपर अभीतक हमारा ध्यान ही नहीं गया था।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

सोयाबीन

लोग पूछताछ कर रहे हैं कि सोयाबीन कहां मिलती है, और कैसे बोयी जाती है, और किस-किस रीति से पकाई जाती है।

बंबई-हेल्थ-असोसियेशन से प्रकाशित पत्रिका का खुलासा अभी हाल ही में 'हरिजन' में निकल चुका है. अब मैं बरोदा-राज्य के फूड सर्वे आफिस से प्रकाशित एक गुजराती पत्रिका के मुख्य-मुख्य अंशों का स्वतंत्र अनुवाद नीचे देता हूँ। उसका मूल्य एक पैसा है —

एक फुट से लेकर सवाफुट तक ऊँचा सोयाबीन का पौधा होता है। हरेक फली में औसतन तीन दाने होते हैं। इसकी बहुत-सी किस्में हैं। सोयाबीन सफेद, पीली, कुछ काली-सी और रंगबिरंगी आदि अनेक तरह की होती है। पीली में प्रोटीन और चर्बी की मात्रा सबसे अधिक होती है। इस किस्म की सोयाबीन मांस और अंडे से अधिक पोषक होती है। चीनी लोग सोयाबीन को चावल के साथ खाते हैं। साधारण आटे के साथ इसका आटा मिलाकर चपातियां भी बना सकते हैं। मिश्रण इस तरह किया जाय कि एक हिस्सा सोयाबीन का आटा हो और पांच हिस्से गेहूँ का।

सोयाबीन की खेती से जमीन अच्छी उपजाऊ हो जाती है। कारण यह है कि दूसरे पौधों की तरह जमीन से नाइट्रोजन लेने के बजाय, सोयाबीन का पौधा उसे हवा से लेता है, और इस तरह जमीन को जरखेज बनाता है।

सोयाबीन दरअस्ल सभी किस्म की जमीनों में पैदा होती है। सबसे ज्यादा वह उस जमीन में पनपती है, जो कपास या अनाज की फस्लों के लिए मुआफिक पड़ती है। नोनिया जमीन में अगर सोयाबीन बोयी जाय तो वह जमीन सुधर जाती है। ऐसी जमीन में खाद अधिक देना चाहिए। बिजबिजाया हुआ गोबर, घास, पत्तियां और गोबर के घूरे का खाद सोयाबीन की खेती के लिए बहुत ही मुफीद है।

सोयाबीन के लिए ऐसी जगह अनुकूल पड़ती है जो न बहुत गर्म हो न बहुत सर्द। जहां ४० इंच से अधिक वर्षा नहीं होती, वहां इसका पौधा खूब पनपता है। उसे ऐसी जमीन में नहीं बोना चाहिए, जहां पानी-ही-पानी ठिला हो। यों आमतौर पर सोयाबीन को पहला मेंह पड़ने के बाद बोते हैं, पर वह किसी भी मौसिम में बोयी जा सकती है। खुश्क मौसिम में हफ्ते में एक या दो बार उसे पानी की जरूरत पड़ती है, अगर जमीन जल्दी-जल्दी खुश्क हो जाती हो।

जमीन तो सबसे अच्छी गर्मियों में तैयार होती है। खूब अच्छी तरह जोत डाले और उस पर तेज धूप पड़ने दे। फिर ढेलों

को तोड़-तोड़कर मिट्टी को खूब महीन कर देना चाहिए।

दो-दो, तीन-तीन फुट के फासले की पांतियो में इसका बीज बोना चाहिए। पौधे कतारो मे तीन-तीन, चार-चार इची की दूरी पर होने चाहिए। निराई इसकी बारबार होनी चाहिए।

एक एकड जमीन में १० सेर से लेकर १५ सेरतक बीज लगता है। बीज दो इची से ज्यादा गहरा नही बोना चाहिए। एक एकड के लिए १० गाड़ी खाद की जरूरत पडेगी।

अंकुरा निकल आने के बाद हलके हल से इसकी ठीक तरह से निराई होनी चाहिए। जमीन का सारा उपरला परत तोड देना देना चाहिए।

बोने के चार महीने बाद इसकी फलिया तोड़नेलायक हो जाती है। पत्तिया ज्योही पीली-पीली पडने और झड़ने लगे त्योही फलियां को तोड़ ले। छीमियो के मूहँ खुलजाने और उनमे से दाने झड-झड़कर मिट्टी मे मिल-मिल जानेतक छीमिया पौधो में नही लगी रहने देनी चाहिए।

यह तो हुई इसकी खेती की बात।

अब मगनवाडी में सोयाबीन का जो प्रयोग किया जा रहा है उसका क्या परिणाम आया है, इसके विषय मे थोडा-सा कहूँगा।

अभी इतनी जल्दी कोई परिणाम निकालना कठिन है। यह कह सकते है कि मगनवाडी-वासियो का वजन बराबर वैसाही है। कुछ लोगो का वजन जरूर बढ़ा है, एक का तो इधर पद्रह दिन मे ४॥ पाउण्ड वजन बढ गया है। पहले सप्ताह के अत से घी बंद कर दिया गया है। इससे वजन पर अबतक तो कोई असर पडा नही। घी की जगह आधी छटाक तेल दिया जाता है। पहले एक-एक छटाक सोयाबीन दी जाती थी, अब इस हफ्ते से डेढ-डेढ छटाक दी जाने लगी है। सुबह और शाम दोनो वक्त दी जाती है। अच्छी जायकेदार बनती है। जिस पानी में वह बफाई जाती है, वह अलग छान लिया जाता है और उसमें इमली और नमक मिला देते हैं। इस रसे को लोग खूब पसद करते है। पानी अलग कर देने के बाद सोयाबीन म अलसी या तिल का तेल और नमक मिला देते है। सबेरे तो उसे रोटी या भाखरी के साथ खाते है, और शाम को चावल के साथ। इसे खूब अच्छी तरह चबाकर खाना चाहिए। अभीतक कोई बुरा प्रभाव तो इसका स्वास्थ्य पर पडा सुना नही।

सोयाबीन बबई और बरोदा मे मिल सकती है। कीमत मे कमी करने के बारे में लिखा-पढी चल रही है। इस बीच में मगन-वाडी से ।=) सेर के भाव से थोडी-बहुत मिकदार मे मिल सकती है, रेलभाडा अलग। यह कीमत बहुत ज्यादा है। बरोदा से हमने जो सोयाबीन मंगाई थी, वह कुछ गलती मे बजाय मालगाड़ी के पैसेंजर गाडी से आ गई। मेरी यह सलाह है कि मगनवाडी से लोग सोयाबीन न मगाये। बम्बई से मगाना हो तो गाडरेज एण्ड को० परेल बम्बई, इस पते पर आर्डर दिया जाय, और बरोदा से मंगाना हो तो बरोदा स्टेट को लिखा जाय।

अंग्रेजी से] मो० क० गांधी

लाजपतराय सप्ताह

स्व० लाला लाजपतराय-द्वारा सस्थापित अखिल भारतीय अछूतोद्धार कमेटीने पंजाब-केसरी की पुण्य-स्मृति के अर्थ ११ नवम्बर से १७ नवम्बरतक हरिजन-सप्ताह मनाने का निश्चय किया है। स्थानीय समितियां जो कार्यक्रम निश्चित करेंगी उसके अतिरिक्त एक सामान्य बातों के कार्यक्रम के अनुसार लालाजी की पुण्य-स्मृति मनाने के लिए अखिल भारतीय अछूतोद्धार कमेटीने देश के तमाम हरिजन-सेवको के पास एक सरक्युलर भेजा है। वह कार्यक्रम यह है :—

"११ नवम्बर प्रभातफेरी, हरिजनो को भाई-बहिनो की तरह समझने की आवश्यकता के सम्बन्ध में तथा लालाजी की हरिजन-सेवा के विषय मे गीत गाये जायँ।

१२ नवम्बर : हरिजन-बस्तियो मे रामायण, गीता, भागवत आदि की कथा। अन्य हिन्दुओं को भी आमत्रण दिया जाय।

१३ नवम्बर : हरिजन-बस्ती या किसी मन्दिर मे हरिजन पंचो की सभा। हरिजनो मे जो आपसी अस्पृश्यता, और बुरी आदते हैं उन्हे दूर करने की आवश्यकता के विषय पर भाषण दिये जायँ।

१४ नवम्बर : सवर्ण बहिने हरिजन-बस्तियो में जाकर हरिजन बहिनों से मिले और उनसे बातचीत करे।

१५ नवम्बर बच्चो का प्रदर्शन। किसी मन्दिर या धर्मशाला मे हरिजन माताएँ अपने बच्चों को लेकर आवे। सवर्ण बहिने उन बालको को उपहार आदि दे, और स्वच्छता तथा स्वास्थ्य के लिए इनाम भी बाटे।

१६ नवम्बर : सवर्ण और हरिजन विद्यार्थियों के संयुक्त देशी खेल; अन्त में फल मिठाई आदि का अल्पाहार।"

श्री अलगूराय शास्त्री, जिन्होने मित्रों के पास यह सर-क्युलर भेजा है, मुझे लिखते हैं कि ऊपर के इस कार्यक्रम मे परिवर्तन होने की सम्भावना है। इसलिए अछूतोद्धार कमेटी की तरफ से जो परिवर्तित कार्यक्रम भेजा जाय उसके लिए पाठको को तैयार रहना चाहिए। मुख्य बात यह याद रखने की है कि यह सप्ताह उस रीति से मनाना चाहिए जो महान् हरिजन-आन्दोलन और लालाजी-जैसे महान् देशभक्त तथा सुधारक की स्मृति को शोभा दे। इसलिए हरिजन-सेवको और समितियों को यह हरिजन-सप्ताह सफल बनाने के प्रयत्न मे खूब लगन और उत्साह से लग जाना चाहिए।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

अजमेर और जयपुर के हरिजन-क्षेत्रों में

१२ अगस्त को मै अजमेर की रेगर-पाठशाला देखकर 'मलूसर का नरक' देखने गया। डिग्गी की रेगर-बस्ती की गंदगी देखकर मै सोच रहा था कि म्युनिसिपैलिटी तो "पैसो के रूप मे कर" देनेवाले लोगो के आसपास ही सफाई रखना उचित समझती है। उसे 'समाज-सेवा के रूप मे कर' देनेवाले इन लोगो के आसपास उतनी ही सफाई रखने का समान कर्तव्य अभी नही सूझ सकता, तो इस हालत मे हमारे कार्य-कर्ताओ को प्रयत्न करना चाहिए। किन्तु जब मै वहा से निकलकर मलूसर में घुसा तो गंदगी असह्य हो गई। मुझे तो सास लेने में भी कष्ट हुआ। मै सोचने लगा, इस 'नरक' मे भी मनुष्य रहते हैं क्या?

बीच मे मैला-गाडिया थी। शहर का मैला यही आता है। वहीं कब्रस्तान भी है और उसके आसपास ही करीब २०० घर भंगियों के बसे है। वहा से जरा आगे बढा तो समिति के मंत्रीने बताया, "देखिए, वह जो नीचा-सा नल कीचड़ में दीखता है यही भंगियों का नल है।" उसके चारो ओर काफी कीचड़ रहता है। उसे किसी ऊँचे चबूतरे पर भी नही लगाया गया है। उससे कोई

२० गज की दूरी पर ही सवर्णों के लिए दीवारो की आड मे नल लगे है। उनपर लोग मुर्दे जलाकर नहाते है। वे लोग सवर्णो की वह सेवा करते हैं जिसे सवर्ण स्वय अपने लिए भी करने को राजी नही, किन्तु फिर भी वे पीनेतक के पानी का कष्ट पाते है!

गाछी-मुहल्ले की पाठशाला मे देखा कि अब गाछियो (मेहतरो) के बालक काफी साफ हैं। उन्हें अक्षर-ज्ञान के साथ-साथ स्वच्छता का ज्ञान भी मिला है। इन लोगो मे हरिजन-सेवकों के प्रयत्न से शराबखोरी भी कम हुई है।

१५ अगस्त को फुलेरा मे हरिजनो को अस्पृश्यता और शराबखोरी के दोष मैजिक लालटेन से समझाये गये। यहां के हरिजन सादे और सस्ते जूते, खजूर के पखे, झाडू और चटाई आदि बनाते है। दु:ख है, कि बलाइयोने बुनाई का धन्धा छोड दिया है। वे अब नौकरी, खेती और मजदूरी से निर्वाह करते है।

१९ अगस्त को नीम का थाना की पाठशाला देखी। मुहल्ले भी देखे। लडके भी साफ थे और मुहल्ले भी। यहा के हरिजन अपने धन्धो के साथ जब खेती करते है, तब कही जैसे-तैसे गुजर होती है। १०० घर के लगभग बुनकर है। ताने मे मिल का और बाने मे हाथ का सूत काम मे लाते है। चमडा रगकर उसके जूते आदि भी बनाते है। कथिया भी यहा बनाई जाती है।

२० अगस्त को मैं श्रीमाधोपुर के श्रमजीवी-सघ मे था। यहा श्री वशीधरजी आर्य प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोगों से ग्रामवासियो की सेवा कर रहे है। लोगों को अक्षर-ज्ञान भी देते है। स्थान बहुत साफ, बस्ती से दूर, स्वच्छ प्रदेश मे है। वशीधरजी यहा की समिति के मत्री है। समिति की ओर से श्रीमाधोपुर मे, एक मेहतर-पाठशाला चलती है। पाठशाला इस बात को कह रही थी कि हरिजनो की यहा वास्तविक सेवा हो रही है। मेहतरो के मुहल्ले में एक मेहतर के घर मे पाठशाला के छात्रोने जयपुरी-बोली मे जब गाया—"प्रभु जी म्हा को जनम सुधारो जी, शरणो थाको छे"—तो मुझे ऐसा लगा कि उनकी प्रार्थना जैसे सचमुच स्वीकार हो रही हो।

यहा मेहतरो के १०० घर है। ये सफाई करते हैं, सूअर-मुर्गी पालते हैं और कुछ सूप बनाते है, किन्तु इससे उनका गुजारा नही होता। बेचारे रोजी के लिए शहरो की ओर भागने को मजबूर है। यहा के हरिजनो मे रैगर (६० घर) और बलाई (१२० घर) चमडे का काम करते है। यहा भी सहायक धधा खेती है। ऊन रंगी जाती है। यहा घानी चलकर तेल निकालनेवाले तेलिया के ५० घर है। कुछ जुलाहे बुनाई के अच्छे डिजाइन निकालते हैं।

२२ अगस्त को चौमू की पाठशाला देखी। सफाई और सदाचार की शिक्षा के अलावा यहा की पढाई भी बहुत अच्छी थी। यहां सवर्ण और हरिजन-बालक, जिनमे मेहतर भी थे, एक साथ बैठकर शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।

मनोहरपुर खादी-केन्द्र है। यहा के बलाइयों का शुद्ध धन्धा बुनाई है और उसीसे उन्हे रोजी मिलती है। इस धन्धे मे बहुत-सी कतवारियो का भी पेट पलता है।

२४ अगस्त को मैं कालाडेरा गया। यहां की व्यवस्था सामान्यतः ठीक मिली। 'अ' से लेकर पढनेवाले हरिजन बालको की योग्यता अब दर्जा ४ के बालको जैसी थी। यह पाठशाला यहा के ए० बी० स्कूल के अध्यापको के प्रयत्न से चल रही है।

२७ अगस्त को खोरावीसल की पाठशाला देखी। यहां के हरिजन-बालको की अवस्था देखने से पता चलता था कि यहा गरीबी अन्य स्थानो की अपेक्षा अधिक है। हरिजन यहा के काफी कर्जदार है। यहा के उत्साही अध्यापक हरिजनो की यथाशक्ति सेवा कर रहे है। वे इसी गाव के रहनेवाले हैं, जिससे उन्हें समाज का काफी विरोध सहना पडा है, फिर भी उनकी हरिजन-सेवा मे कमी नही आई।

२९ अगस्त को जयपुर की गुलाबबाडी की मेहतर-पाठशाला देखी। इस पाठशाला को कई स्थानीय उत्साही गृहस्थो का सहयोग प्राप्त है। पाठशाला की दशा सतोषजनक है। साप्ताहिक सत्सगो पर मेहतरो के सिवा अन्य वर्गों के हरिजन भी आते है। उन लोगो को पाठशाला से काफी लाभ पहुंचा है।

तोपखाने की रैगर-पाठशाला को स्वामी मुनीश्वरानन्दजीने जो स्वय हरिजन है, जमाया था। जयपुर शहर की अन्य पाठशालाओ की देख-रेख भी वे ही करते है। पाठशाला में व्यवस्था थी, विद्यार्थी स्वच्छ और योग्य थे। उनमे कुछ सवर्ण भी थे।

३१ अगस्त को मनोहरपुर का श्रीराम-विद्यालय देखा। यह भी एक खादी-केंद्र है। यहा शुद्ध-खादी बुननेवाले बलाइयो के ५५ घर है। रगाई-छपाई करनेवालो के ५० के करीब घर है। लोहे और लकडी की ग्रामीण उपयोग की चीजे भी बनती है। १००० के करीब बहने चरखे चलाती हैं। यहा पहले लोग खादी शुद्ध और मिश्रित पहनते थे, किन्तु बाजार के लिए तैयार होनेवाली महगी खादीने उन्हे मिल का सस्ता कपडा पहना दिया है।

१ सितम्बर को घाट दरवाजा, जयपुर की मेहतर-पाठशाला देखी। मकान एक मालदार मेहतर का था। अच्छा साफ मकान था। २५ मेहतर छात्र थे। इनमे ७ लडकिया थीं। कुछ तकलिया भी अगुलियो मे नाच रही थी।

इस मुहल्ले मे मेहतरो को पानी की सुविधा कम है। एक नल है जो टट्टियो के पास है, जिसपर मैले के हाथ भी धोये जाते हैं। वास्तव में, इन लोगो को पीने के लिए पानी का दूसरा साफ नल या कुआ चाहिए। सवर्णो का इन भाइयो के साथ बर्ताव सुनकर कुछ दुःख हुआ। जिन लोगो को कोई वेतन नही मिलता, उन्हे भी लोग प्राय डेढ आना या दो आना मासिक और आधी, चौथाई हलकी रोटी इस भारी सेवा के बदले मे देते है! अभी तो यह मनोवृत्ति भी हमें अपनी निरतर सेवा से बदलनी है।

२ सितम्बर को निवाई की पाठशाला देखी। विद्यार्थियो को देखकर ऐसा लगा, मानो यह सवर्णों की ही पाठशाला हो और उन्ही का मुहल्ला। हरिजनो की माली हालत साधारण है। यहा के अध्यापकने अपने काम के प्रति सवर्णों में सहानुभूति पैदा करने मे सफलता पाई है। जहा पहले लोग अध्यापक को भी अनादर के भाव से देखते थे, वहा इस बार उनमें से कितने ही पाठशाला के उत्सव मे भी शामिल हुए थे। मैंने सोचा कि सवर्णों का थोडा-सा भी प्रेम इन लोगो पर कितनी बडी विजय प्राप्त कर सकता है।

रामसिंह, निरीक्षक

राजपूताना—ह० से० सं०

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi, by R. S. Gupte.

जात-पांत तो नष्ट होनी ही चाहिए "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक' किंग्सवे, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शनिवार, १६ नवम्बर, १९३५. [संख्या ३९

विषय-सूची

एक अनुकरणीय सेवा-कार्य

'हरिजन-सेवक' के पाठकों को कदाचित् यह याद होगा कि संघ की ओर से हमारा एक तरुण कार्यकर्ता जरायमपेशा जातियों की व्याख्या में आनेवाले हरिजनों की एक बस्ती में इधर एक वर्ष से सेवाकार्य कर रहा है। शुरू में उसे कैसी-कैसी कठिनाइयां झेलनी पड़ीं, और किस प्रतिकूल वातावरण में काम करना पड़ा यह उसकी वार्षिक रिपोर्ट देखने से पता चलता है। रिपोर्ट के कुछ महत्वपूर्ण अंश हम संक्षिप्त रूप में नीचे देते हैं —

"इस बस्ती में बसे मुझे अब पूरा एक बरस हो गया है। पहले कई महीनेतक तो लोगोंने मुझे संदेह की दृष्टि से देखा। बात करते तो थे,पर बिदकते थे। बच्चों को मेरे पास पढ़ने के लिए भेजने में टाल-मटोल करते थे। एक बार तो पंचोंने बिरादरी के लोगों को यहांतक डांट बतलाई कि अगर मास्टर के पास तुम्हारे बच्चे जायँगे तो तुमसे जुर्माना वसूल किया जायगा! मुझे अगरे में कुछ लोग अपनी बस्ती से भगाना चाहते थे। पर मैं तो डटा रहा। अंत में उनका सारा संदेह दूर हो गया, और मुझपर विश्वास करने लगे।

सबसे पहले मैंने सफाई का प्रश्न हाथ में लिया था। बस्ती में सुअर तो काफी हैं ही। सुअर जो गंदगी फैलाते हैं,उसका इलाज तो अब भी नहीं। एक बार मैंने सारी बस्ती के सुअरों का मैला उठाकर फेंका। ३ दिन में बस्ती का कुल कचरा साफ हुआ था। करीब ६०० बाल्टी कचरा फेंका था। सफाई के इस काम में कुछ बहिनों और बच्चोंने भी मुझे मदद दी थी। मेरा यह काम देखकर कुछ लोगोंने सलाह की कि अपने-अपने मकान को हम लोग क्यों न ठीक तरह से साफ रखा करें। बस्ती में पहले से अब अच्छी सफाई रहने लगी है। कुछ घरों में लोग चौका लगाकर खाना बनाते हैं। खाने-पीने के बर्तन-भांडे भी उनके साफ रहते हैं।

कुछ बालकोंने जब मांस, दारू, तम्बाकू आदि का परित्याग कर दिया, तो उनके मां-बापने उन्हें बहुत तंग किया। पर बालक तो अपने प्रण पर डटे रहे। मैंने यह विचार किया था कि इन बालकों को कोई तकलीफ न होने पाय। इसलिए करीब ६) माहवार चार महीनेतक मैंने अपने पास से खर्च किये। ७ बालक तो अपने प्रण से डिग गये, पर ३ तो अपने वचन पर अब भी कायम हैं, और आगे भी रहेंगे ऐसी आशा है। अंत में उनके मां-बाप भी मान गये। अब उनके यहां गोश्त की जगह दाल-तरकारी बनने लगी। उनके बर्तन भी अलग कर दिये गये। दिवाली के दिन का मुझे डर था, क्योंकि उस दिन तो इनके यहां मांस खाना अनिवार्य होता है। पूजा के बाद प्रसाद मांस का ही बंटता है। पर उन बालकों के माता-पिताओंने उन्हें उनकी मरजी पर छोड़ दिया। भगवान्ने ही उन बालकों की उस दिन रक्षा की। ये बालक बड़े होनहार मालूम होते हैं। इनमें से एक तो अंग्रेजीके छठे दरजे में पढ़ता है।

पहले इस बस्ती में जुए का खूब जोर था। पर अब तो यह दुर्व्यसन बहुत ही कम दिखाई देता है।

बालक कुल १८ और बालिकाएँ १२ पढ़ती हैं। रात को भी मेरे पास ७ विद्यार्थी पढ़ते हैं। पढ़ाने की तरफ लोगों में थोड़ी-सी रुचि पैदा हुई है, अभी बस इतना ही कहा जा सकता है।

साधारण रोगों की दवाइयां भी दीं। माहवारी औसत ७७ रोगियों का रहा। पहले तो यह हाल था, कि तमाम रोगों को ये लोग भूत-प्रेतों की करामात मानते थे और इनका यह विश्वास था कि झाड़-फूंक से ही रोग दूर हो सकते हैं। पर अब वहम थोड़ा बहुत दूर हो गया है, और दवा-दारू किसी तरह लेने लगे हैं। कुनैन छोड़कर और सब दवाइयां देशी ही रखता हूँ।

रात को रामायण बांचता हूँ। पर श्रोता तो मेरी कथा के ६ बालक ही हैं। पहले सात आठ बड़ी उम्र के भी श्रोता आ जाते थे, पर अब नहीं आते।

३ बालकों को दर्जी का काम सीखने के लिए सिलाई की एक कम्पनी में दाखिल करा दिया है, और वे बड़ी लगन के साथ काम सीखते हैं।

बच्चे कबड्डी खेलते हैं, और महीने में एक बार दौड़ वगैरा भी लगाते हैं।

मैंने अपना सेवा-क्षेत्र मर्यादित रखा है। एक छोटी-सी सीमा के भीतर ही अपनी क्षुद्र शक्ति और योग्यता के अनुसार काम कर रहा हूँ। सहारा तो सब भगवान् और संघ का है, मैं तो एक निर्बल सेवक हूँ।"

वि० ह०

'आसाम में हरिजनों का निर्माण'!!

शीर्षक से चौंकिएगा नहीं। आसाम में चाय के साथ-साथ हरिजन भी उपजते या तैयार किये जाते हैं। सचमुच वहां चाय की यूरोपियन और हिंदुस्तानी जमींदारियों में हरिजनों का भी सृजन

होता है। यह सृष्टि-रचना इस तरह होती है। बिहार, उड़ीसा, छोटा नागपुर का पठार, मध्यप्रान्त, खासकर गोंडवाना और छत्तीसगढ़, तथा रीवा राज्य इन जगहों से चाय के बगीचों के लिए कुलियों या मजदूरों की भरती होती है। और अब तो बम्बई हाते से और यहांतक कि उत्तरी-पूर्वी गुजरात के भीलों के इलाके से भी कुली भरती किये जाते हैं। साल-दो-साल और शायद इससे भी ज्यादा ये लोग चाय के बगीचों में काम करते हैं; मगर मियाद पूरी हो जाने पर कुछ मजदूर बतौर साधारण किसानों के या तो चाय की जमींदारियों की फालतू जमीन पर या फिर सरकारी पड़ती जमीन पर, जिसकी कि वहां कोई कमी नहीं, बस जाते हैं और एक-दो पीढ़ी में चाहे वे किसी भी प्रान्त के हों 'आसामी' हो जाते हैं।

आसाम की १९३१ की मनुष्यगणना के सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० सी० एस० मुलनने इस प्रकार के खेतिहरों की दशा का बिल्कुल ठीक वर्णन किया है, जो वहां की पड़ती जमीन जोतकर एक तरह से आसाम को समृद्ध ही बना रहे हैं। उन्हें जब कोई बेहतर नाम नहीं मिला, तो उन्होंने उनका एक नया नाम गढ़ डाला—"चायबागान की कुली जातियां," यह नाम रख दिया। बंगाल के राजा बल्लालसेन की तरह उन्होंने चायबागान की कुली जातियों का यह एक अलग समुदाय बना दिया है। पर उन्होंने उनका जो वर्णन किया है वह बिल्कुल ठीक बैठता है, और बिल्कुल सही है। लिखा है —

"यह नाम विविध जातियों के एक समुदाय का द्योतक है। उनमें कुछ तो निश्चित रूप से हिंदू जातियां हैं, जिनमें यह पता चलता है कि वे लोग किन प्रांतों के मूलनिवासी हैं, कुछ को महज मुरौवत के खयाल से हिंदूजातियों में ले लेते हैं, और मुंडा तथा संथालों को तो किसी जाति में ले ही नहीं सकते, उनकी गणना तो आदिमनिवासियों के फिरकों में होती है। तो भी आसाम में कुलियोंने अपना एक अलग ही वर्ग बना लिया है, चाहे वे किसी भी जाति या किसी भी फिरके के हों। और इसमें यही ठीक मालूम पड़ता है कि तमाम कुली जातियों और फिरकों को एक ही वर्ग में रखा जाय, क्योंकि उन सबकी एक सामान्य विशेषता है, और वह यह कि आसाम में 'कुली' हमेशा ही 'कुली' है। चाहे वह बगीचे में काम करता हो या उसने बगीचा छोड़ दिया हो और एक साधारण किसान की तरह बस गया हो उसका सामाजिक दरजा वहां कुछ है ही नहीं। आसामी समाज की दृष्टि से कुली जाति या कुली फिरके का मनुष्य बिलकुल बाहर का आदमी है, और आसाम की जिन जातियों को मैंने 'बहिष्कृत' जातियों में गिना है, वह आदमी भी वैसा ही बहिष्कृत (या दलित) है।

दुर्भाग्य से, आसाम में आसामी बोलनेवालों की संख्या बहुत कम है, आसाम की कुल ९२½ लाख की आबादी में आसामी बोलनेवाले सिर्फ २० लाख ही हैं। आसाम तो असल में बंगालियों से भरा हुआ है। उनकी ४० लाख की आबादी है। इसका कारण यह है कि सिलहट जिले में बंगालियों की बहुत अधिक आबादी है। यह जिला यों पूर्वी बंगाल का है, पर प्रबंध-संबंधी कारणों से वह आसाम के साथ जोड़ दिया गया है। बंगाली सुरमा घाटी और तीन पहाड़ी जिलों को अलग कर दें, तो भी ५१ लाख की आबादी में २० लाख तो केवल बंगाली ही हैं। इस तरह आज खुद अपनी ब्रह्मपुत्रा, (या आसाम) घाटी में भी आसामियों की संख्या बड़ी नहीं है, और गैर-आसामियों को वे "बंगाली" के ही नाम से पहचानते हैं। उनकी दृष्टि में आसाम के अतिरिक्त और किसी भी प्रांत का आदमी हो, वह 'बंगाली' ही है—बिहारी भी बंगाली, मध्यप्रान्तीय भी बंगाली, राजस्थानी भी बंगाली और बंगाली तो बंगाली है ही। इस तरह आसाम के मूल निवासी के लिए चायबागान के तमाम कुली "विदेशी" या बंगाली हैं। इसके अलावा चाय के बगीचों में हरेक कुली, चाहे वह छूत हो या अछूत, ब्राह्मण हो या बढ़ई या लुहार, स्वतन्त्रतापूर्वक अछूतों के साथ काम करता है, लोग क्या कहेंगे इसका उसे कोई भय नहीं, और शायद वह मुर्दार मांस भी खाता है, और दारू पीता है। यद्यपि चाय के बगीचों का काम छोड़ देने के बाद वह अलग जमीन लेकर बस जाता है, तो भी अपनी मूलजाति को तो वह तिलांजलि ही दे देता है, क्योंकि इसके बाद भी उसे बगीचों में कभी-कभी काम करना पड़ता है। इस तरह आसामियों की दृष्टि से वह न केवल एक बाहर का आदमी या बंगाली ही है, बल्कि दलित भी है, वहां के देशी दलितों से अधिक नहीं, तो उनके जैसा दलित तो है ही।

मि० मूलन 'कुलीजाति' की सामाजिक अवस्था का वर्णन करते हुए लिखते हैं —

"सचमुच कई दृष्टियों से यहां कुलियों और जो अब कुलीगिरी नहीं करते उनकी भी सामाजिक स्थिति दूसरे प्रान्तों के किसी भी वर्ग की स्थिति से बदतर है। शिक्षा में तो वे बहुत ही बुरी तरह से पिछड़े हुए हैं। न उनका कोई अपना नेता है, न कोई सभा। अपनी मांगें स्वीकार कराने अथवा अपनी सामाजिक उन्नति के लिए काम करने का उनके पास कोई साधन ही नहीं। देश की दृष्टि में देशी होते हुए भी वे विदेशी हैं। और शराब पीने की लत तो सारे ही कुली वर्ग को लगी हुई है।"

ऊपर के उद्धरण में दो जगह कुछ शब्दों को महत्वपूर्ण समझकर मैंने रेखांकित कर दिया है।

हां, ये लोग कैवर्तों, या नामशूद्रों या भिन्नल बनियों से भी नीच समझे जाते हैं। कैवर्तों, नामशूद्रों और भिन्नल बनियों में तो उनकी सुध लेनेवाले अनेक पढ़े-लिखे लोग हैं। प्रान्तीय और केन्द्रीय धारा सभाओं में उनके अपने प्रतिनिधि भी हैं। पर मेरे खयाल में इन कमबख्त चायबागान के कुलियों का भाग्य तो जैसा आज है, अभी वैसा ही बहुत दिनोंतक रहेगा। प्राथमिक शिक्षातक का तो उन्हें पता नहीं। हरिजन-सेवक-संघने बेशक उनके लिए कुछ पाठशालाएँ खोल दी हैं, क्योंकि न तो सरकार ही उनके लिए कुछ करेगी और न लोकल बोर्ड ही। पर वे इन पाठशालाओं का पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा रहे हैं। मलेरिया और नहरुआ की बीमारी इन लोगों को बहुत होती है। कोसोंतक न यहां कोई दवाखाने हैं, न किसी किस्म के कोई खानगी डाक्टर। ईसाई मिशनरीतक वहां कोई काम नहीं करते, क्योंकि ईसाई धर्म में आने की उनकी तरफ से कोई ऐसी अधिक आशा नहीं।

चाय के इन कुलियों की संख्या कुछ कम नहीं है। सारे आसाम की ९२½ लाख की आबादी में वे १४ लाख, यानें १५% हैं। आसाम या अकेली ब्रह्मपुत्रा घाटी को ही ले लीजिए, जो आसाम में चाय की पैदावारी का खास इलाका है, तब भी इस घाटी में उनकी संख्या का प्रमाण खासा बड़ा है। ५१ लाख की आबादी में वे १०½ लाख, या २०% से कुछ ऊपर ही हैं। ब्रह्मपुत्रा घाटी की इतनी बड़ी आबादी पर सरकारने, लोकल

बोर्डोंने या उनका शोषण करनेवाले चाय की जमीदारियों के प्रमुओंने जरा भी ध्यान नही दिया, और सबसे दु ख की बात तो यह है कि जनताने भी उनकी सुध नहीं ली। सरकार को एक खास वेलफेयर विभाग बनाने के लिए चाय पर एक खास कर लगा देना चाहिए। चाय के धन्धेदार उन्हे दूसरे प्रान्तो से उन्हे भरती करके लाते है, और सस्ती मजदूरी पर उनसे काम कराके उन्हे निचोडे हुए नीबू की तरह फेक देते है। कोई कारण नही कि इन कुलियो और उनके बच्चो के लिए किसी तरह का हितकारी कार्य करने के अर्थ सरकार क्यो न चाय के उद्योग पर एक खास टैक्स लगा दे।

हिंदुओ की संस्थाए जो उनकी सामाजिक उन्नति के लिए कुछ काम कर रही है उनका तो एक तरह अभी जन्म ही हुआ है। उनकी खास सभाएँ या सस्थाएँ समय के गर्भ मे है। तो क्या इधर सनातनी हिंदू, आर्य-समाजी, सुधारक, ब्रह्मसमाज और श्रीरामकृष्ण-मिशनजैसी परोपकारी सस्थाएं या वर्णाश्रम-संघ इनकी सक्रिय सहायता करने आयेंगे ? क्या आसाम के नवयुवक गहरी नींद से जागकर इन भाग्यहीन गरीबो के प्रति अपना कर्तव्यपालन करेंगे, जो अपने पसीने की कमाई खाते है, और साथ ही उनके प्रात की संपत्ति बढा रहे है ? आर्त आसाम आज सारे देश के आगे सहायता के लिए गुहार लगा रहा है। बबई या दिल्ली या मद्रास या पडोसी बगालतक के कानो मे क्या उसकी आर्त्त पुकार की भनक नही पडेगी ?

अमृतलाल वि० ठक्कर

सस्ती पाठशालाएँ

भारत मे अन्य कार्यक्रमो के साथ साक्षरता-प्रचार का कार्यक्रम बहुत महत्व रखता है। हम प्रतिदिन देखते है कि परिश्रमी, ईमानदार, पर अक्षरज्ञान-हीन स्त्रिया, किसान, मजदूर और अन्य लोग भी किस प्रकार दिनदहाडे ठगे जाते है। और प्रान्तो का तो मुझे विशेष ज्ञान नही, पर महाराष्ट्र मे श्री भागवत विशेष रूप से प्रौढ-शिक्षा के लिए ग्रामो मे प्रयत्न कर रहे है, और उन्होने तीन महीने मे मनुष्य को आवश्यक गणित और पढने-लिखने आदि की एक योजना बनाई है, और काठियावाड के भावनगर राज्य मे दक्षिणा- मूर्ति नामक शिक्षा-सस्था इस कार्य को विशेष रूप से सचालित कर रही है। उसने इस कार्य के लिए एक कार्यक्रम भी बनाया है।

गोरखपुर जिले मे हम जो प्रयत्न कर रहे है वह एक दूसरे ही प्रकार का है। इस कार्यक्रम के अनुसार प्रौढो को नही, बल्कि बालको को शिक्षा दी जाती है। देखा यह गया है कि देहातो मे गरीब किसान जिला-बोर्डो के स्कूलो मे फीस लगने से अपने बच्चो को पढाने मे असमर्थ हैं। आज किसान के लिए पैसा कितना महँगा है, यह सभी जानते है। फिर वह गरीब किसान अपने बच्चो के लिए नियमित रूप से दो पैसे मासिक भी फीस कहा से दे सकेगा ? गोरखपुर जिला-बोर्ड के कई अध्यापको से मैने सुना है कि अपनी नौकरी कायम रखने के लिए वे प्रतिमास अपने वेतन में से ५-५, ७-७, और कभी-कभी ९-९ रुपये तक बच्चो की फीस देकर अपनी पाठशालाओं को जीवित रखने के लिए मजबूर हो गये है। इस विवशता के कारण दिये हुए उनके पैसे से हम कल्पना कर सकते है कि हमारे ग्रामीण भाई इच्छा रखते हुए भी अपने बच्चो को पढाने मे किस प्रकार असमर्थ है।

जहा एक ओर यह हालत है, वहा दूसरी ओर हम यह भी देखते है कि कई सौ नवयुवक आज मिडिल, एण्ट्रेन्स आदि परीक्षाएँ दे-देकर घर मे बेकार पडे हुए है। न उनका घर का काम करने मे मन लगता है और न वे कही जाकर नौकरी ही कर सकते हैं।

तब इन अन्धे-लँगडे की भेट क्यो न कराई जाय ? इसी विचार से कई नौजवानो से कहा कि "भाई, तुम तो घर पर खाते ही हो और बेकार बैठे हो। अच्छा होता यदि तुम गाव मे पढाते। गाववालो से तुम्हे भोजन मिल जाय और कुछ ऊपरी खर्च के लिए ३) मासिक बाहर से दिये जायँ, तो तुम्हारी भी बेकारी दूर हो जायगी और आज गरीबी के कारण जो बच्चे पढ नहीं सकते वे भी आवश्यक अक्षर-ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।"

कई नवयुवको को यह बात जँच गई और उसीके परिणामस्वरूप गोरखपुर जिले की सदर तहसील मे चौरीचौरा, हाटा तहसील मे तरकुलवा, धुसी बसनपुरा और रुद्रपुरा, देवरिया तहसील मे पतिया, डेईडीहा, डभुसा, डगुरी और पिपरा, और बासगाव तहसील मे खैरारी और सोनघट इस प्रकार ११ गावो मे एक-एक पाठशाला खुल गई है, जिनमे कुल मिलाकर इस समय ४७५ छात्र शिक्षा पा रहे है। इनमे २२५ छात्र हरिजन है। इन ११ पाठशालाओ का ३५) मासिक खर्च है। प्रत्येक पाठशाला के अध्यापक को भोजन गाववालो की ओर से मिलता है और तीन रुपये प्रतिमास सहायता 'हरिजन-सेवक-सघ' दिल्ली से। इस प्रकार अनुमानत चौदह आने के खर्च मे एक छात्र को एक बर्ष के लिए शिक्षा दी जा रही है। भोजन का प्रबन्ध करदेना गाववालो के लिए आसान है।

यह तो अभी प्रयोगमात्र है। पर इसी प्रयोग को और भी उत्साही भाई अपने हाथो मे ले ले तो बहुत बडा काम हो सकता है। विशेषत जहा सम्पन्न और उत्साही शिक्षित युवक है, वहा तो यह कार्य अवश्य हाथ मे लेना चाहिए। खाते-पीते मे पुरुषो, पढे-लिखे लोग देहातो मे काफी तादाद मे है। क्या वे अपने ग्रामीण भाई-बहनो को आवश्यक अक्षर-ज्ञान देकर उन्हे दिनदहाडे की लूट से नही बचायेंगे ?

राघवदास

सूचना

बबई मे, "सूरजी वल्लभदास स्वदेशी बाजार के ग्रामउद्योग विभाग, जवेरी बाजार, बबई नं० २" इस पते पर 'सोयाबीन' ५ रतल ।)॥ और १ रतल -) भाव से मिलती है। सपादक

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नबर अवश्य लिख दिया करे। ग्राहक-नबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नही दिया जा सकेगा।

व्यवस्थापक—**'हरिजन-सेवक'**

"तकली कैसे कातें ?"

यह पुस्तक, एक प्रति के लिए -)॥ के टिकट भेजने से, 'चर्खा-सघ-कार्यालय, मिर्जापुर रोड, अहमदाबाद' से भी मिल सकती है।

हरिजन-सेवक

शनिवार, १६ नवम्बर, १९३५

जात-पांत तो नष्ट होनी ही चाहिए

मर जी० डी० मडगावकर की खुली चिट्ठी इस अक में मै सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ। इस सम्बन्ध मे मेरा अपना क्या मत है, इसपर 'हरिजन' में अनेक बार लिखा जा चुका है। सार-रूप मे मेरे विचार ये है -

१—मै वेदोक्त वर्णाश्रम मे विश्वास करता हूँ, जो मेरी राय मे दरजे की पूर्ण समानता पर आधार रखता है, यद्यपि स्मृतियो तथा अन्य ग्रन्थो मे इसके विपरीत भी वाक्य पाये जाते है।

२—मुद्रित पुस्तको के प्रत्येक शब्द की शास्त्रो मे गणना करना मेरी राय मे कोई श्रुति-प्रकाश नहीं।

३—जिन्हे हम प्रामाणिक वचन मानते है उनकी व्याख्या मे बराबर विकास होता आया है, और मनुष्य की बुद्धि और हृदय की तरह उस व्याख्या मे भी असीमित विकास के लिए स्थान है।

४—शास्त्रो मे जो वस्तु स्पष्ट ही सर्वव्यापी सत्यो और सदाचारो के विरुद्ध है वह कभी ठहरने की नही।

५—युक्तिवाद से सिद्ध की जानेवाली शास्त्रो की कोई भी वस्तु, यदि वह बुद्धि के विरुद्ध जाती है तो वह, कभी टिकने की नहीं।

६—शास्त्रोक्त वर्णाश्रम आज व्यवहारत विलुप्त हो गया है।

७—वर्तमान जाति-प्रथा वर्णाश्रम के बिल्कुल ही विपरीत है। लोकमत इसे जितनी ही जल्दी नष्ट करदे उतना अच्छा।

८—वर्णाश्रम म वर्णान्तर रोटी-बेटी-व्यवहार के लिए कोई निषेध नही था, और न होना चाहिए। निषेध तो उसमे अर्थ-लाभ के लिए अपनी आजीविका का वशपरपरागत धधा बदल देने का है। इसलिए इस मौजूदा जाति-प्रथा मे तो दो-दो दोष है—एक ओर तो उसने रोटी-बेटी-व्यवहार के सम्बन्ध म निर्दय प्रतिबन्ध लगा रखे है, और दूसरी ओर चाहे जो धधा ग्रहण कर लेने की अराजकता वह बर्दाश्त किये जा रही है।

९—यद्यपि वर्णाश्रम मे रोटी-बेटी-व्यवहार का कोई निषेध नही है,तो भी उसमे कोई जोर-जबर्दस्ती नही हो सकती। लडका या लडकी विवाह-सबध कहा करगे यह तो उनकी निर्बाध इच्छा पर ही छोड देना चाहिए। यदि वर्णाश्रम का नियम पाला जायगा तो स्वभावत लोगो की प्रवृत्ति, जहातक विवाह का सम्बन्ध है, यह होगी कि अपने वर्ण के भीतर ही वे विवाह-सम्बन्ध करे।

१०—यह मै अनेक बार कह चुका हूँ कि शास्त्रो मे 'जन्मना' अस्पृश्यता-जैसी चीज का तो कही पता भी नहीं। अत आज की इस वर्तमान अस्पृश्यता को मै एक पाप और हिंदूधर्म का सबसे बडा कलक मानता हूँ। मै इस बात को पहले स भी अधिक महसूस कर रहा हूँ कि अगर यह अस्पृश्यता जीवित रही, तो हिंदूधर्म का नाश निश्चित है।

११—जात-पात नष्ट करने का सबसे अधिक प्रभावकारी, सबसे अधिक सत्वर और सबसे अधिक विनम्रतायुक्त मार्ग यह है कि सुधारक स्वय उसपर अमल करना आरंभ करदे, और जहा आवश्यक हो वहा सामाजिक बहिष्कार का दड सिरपर लेने को तैयार रहे। कट्टर विचार के लोगो को कोसने या गालिया देने से सुधार होने के नहीं। परिवर्तन धीरे-धीरे ही होगा और कैसे होगा इसका पता भी नहीं चलेगा। निम्नवर्ण कहे जानेवालो पर उच्चवर्ण कहे जानेवाले कोई असर डाल सके इसके पहले उन्हे अपने पद से नीचे उतरना होगा। ग्राम-कार्य का दैनिक अनुभव हमे यह बतलाता है कि नगर-निवासियो और ग्रामवासियो, अर्थात् उच्च-वर्गो और निम्नवर्गो के बीच जो खाई पड गई है, उसे पाटना कितना कठिन काम है। ये दोनो समानार्थक शब्द नहीं हैं, क्योंकि वर्ग-भेद तो शहरो और गावो दोनो मे ही मौजूद है।

'हरिजन' से] **मो० क० गांधी**

गांधीजी और हिंदूनेताओं के नाम

एक खुली चिट्ठी

सपादक महोदय, हरिजन—

डॉ० अबेडकर की हाल की घोषणा से कि 'मै हिंदू रहकर नही मरूँगा' हिंदू-समाज के अदर एक फडफडाहट-सी पैदा हो गई है। डॉ० अबेडकर चाहे हिंदू-महासभा के अध्यक्ष हो जायँ या किसी दूसरे धर्म मे चले जायँ, यह एक ऐसी बात है कि जिसके सम्बन्ध मे साधारण हिंदू को कुछ नही कहना है, और न उसपर वह अपनी राय या सलाह ही दे सकता है। हरिजनो की सास्थिति अथवा विद्रोह की भावना या कटुता को भी समझकर और उसके प्रति सहानुभूति दिखाकर वह ज्यादा-से-ज्यादा सिर्फ पछता सकता है। राममोहन राय और दयानद सरस्वती के समय से इस तरफ भडारकर, रानडे और गोखले-जैसे उदारचेता और दूरदर्शी हिंदू-नेता जाति-प्रथा के दोषो की तरफ—कि जिसकी पराकाष्ठा यह अस्पृश्यता है—हिंदुओ का ध्यान आकर्षित कर रहे है और उनपर यह जोर डालते आ रहे है कि हमे अपना अस्त-व्यस्त घर सँवार लेना चाहिए। अनेक समाज तथा पूना के दलितजाति-मिशन-जैसे सघ, और महात्मा गाधी का यह हरिजन-आन्दोलन ये सब इस दिशा मे अपनी शक्तिभर काम कर रहे है। पर सदियो की बिगडी बात एक दिन मे थोडे ही बन जाती है। जिस चीज क खिलाफ हम लड रहे है वह सैकडो बरस की पुरानी प्रथा है। एक ऐसे रूढिग्रस्त और उदासीन तथा विशाल समाज के साथ हमारा साबिका पड रहा है, जिसमे स्त्रिया और साधारण जनता तो बिल-कुल ही निरक्षर है। सरकार का रुख यो सिद्धान्तत तो हितैषिता से भरा हुआ है, पर जब व्यवहार की बात आती है,तब वह व्यर्थ की तटस्थता दिखाने लग जाती है। यह दिन-दिन बढती हुई दरिद्रता और यह जीवन-संग्राम तथा सरकारी नौकरियो के लिए यह हम-सरी या हायहाय और यह राजनीतिक सक्षोभ तो था ही—इसके साथ ही, पिछडी हुई जातियो की मागो को पृथक् निर्वाचन के साथ सरकारने स्वीकार कर लिया, इस सबसे समाज-सुधारकों का काम अब पहले से भी ज्यादा मुश्किल हो गया है।

भारत को राजनीतिक सुधार देने के सम्बन्ध मे ब्रिटिश सर-कार के लिए मर स्टेनली रीडने लदन मे दिये हुए अपने हाल के एक भाषण मे जो 'टू लेट', अर्थात् 'समय के बहुत पीछे' शब्द का प्रयोग किया था वह एक आदर्श शब्द था। प्रेसीडेन्सी सोशल रिफार्म असोसियेशन' का एक बहुत पुराना सदस्य होने के नाते

मुझे भय है कि बिल्कुल यही बात मुझे हम हिंदुओं के सामाजिक सुधार के रुख के सम्बन्ध में कहनी पड़ती है। हम इस प्रश्न का ईमानदारी के साथ ठीक तरह से सामना करने को तैयार नहीं। साफ-साफ जवाब देने और उसपर अमल करने से हम जी चुराते हैं। दुनियाभर के पेचीदा शब्दों और टालमटोल-भरी बातों की हम शरण लेते फिरते हैं। इससे तो प्रश्न और उलझता है। इस तरह वह हल होने का नहीं। और फिर हमारे शासकों के मुकाबले में हमें वैसा बहाना भी तो बनाने को नहीं है, क्योंकि ज्यादा-से-ज्यादा सिवा कोरी ऐंठ के उसमें हमारी कोई आर्थिक स्वार्थ-दृष्टि तो है नहीं। एक अत्यन्त सच्चे अर्थ में तो, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से हम सभी एकसमान ही दलित हैं। लेकिन हम जितने ही अधिक गरीब और कमजोर होते जाते हैं, उतनी ही स्पष्टता से हम अपनी जाति की कोरी शेखी बघारते हैं, क्योंकि और तो हमसे कुछ करा धरा होता नहीं।

मैं यह मानता हूँ कि हम हिंदुओं के सामने स्पष्ट प्रश्न यह है कि हम आज सामाजिक अन्तर्सम्बन्ध, और खासकर हिंदुओं की तमाम जातियों—जिनमें अस्पृश्य भी शामिल हैं—के बीच रोटी-बेटी-व्यवहार के पक्ष में हैं या विपक्ष में? इस आवश्यक प्रश्न के विषय में दो पक्षों में से केवल एक ही संगत और संभव है। एक तो यह कि जात-पात की प्रथा एक दिव्य और पवित्र प्रथा है, और व्यावहारिक विचारों से बिल्कुल परे है, और वर्णान्तर-विवाह से चाहे नस्ल सुधरने के लाभ होते हों अथवा सामाजिक, आर्थिक लाभ होते हों या राजनीतिक, उनका जातिप्रथा की रक्षा और सनातनता पर कोई असर पड़े यह होने का नहीं। वह तो अक्षुण्ण ही रहेगी। जैसा कि हिंदू-लॉ में सिद्धान्ततः कहा है, शास्त्रानुसार यह माना जाय कि केवल चार वर्ण (और अस्पृश्य) ही रहने चाहिए। लेकिन चूँकि व्यवहार में केवल उन चार जातियों को ही फिर से स्थापित करना असंभव है, इसलिए यह रिआयत वास्तविक होने की अपेक्षा दिखाऊ ही अधिक है। मि० विन्स्टन चर्चिलने साधिकार या असली औपनिवेशिक स्वराज्य और अधिकार-रहित या अव्यावहारिक औपनिवेशिक स्वराज्य में, अथवा सर मालकम हेलीने स्वायत्तशासन और उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के बीच जो युक्ति-युक्त अन्तर बतलाया है उसमें कुछ-कुछ यह रिआयत मिलती है।

यह असल में सनातनी हिंदू का मत और उत्तर है। भण्डारकर-जैसे विद्वानोंने जो यह बतलाया है कि प्राचीनतम वेदोंने जाति-प्रथा का कहीं भी समर्थन नहीं किया और यह पीछे की चीज है, इसे सनातनी मत उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। सनातनी मत इन बातों की पर्वा नहीं करता कि इस जाति प्रथा का मूल चाहे जो रहा हो, पर आज कुछ सच्चे संस्कृतिवान और शिक्षित लोगों के भी विषय में श्रम-विभाग-जैसी आर्थिक वास्तविकताओं के साथ न उसकी कोई अनुरूपता है न सम्बन्ध ही।

दूसरा पक्ष समाज-सुधारक का है। वह न तो अपने नाम से ही लज्जित होता है और न अपनी दृढ़ धारणाओं और उनके तर्कसम्मत परिणाम से ही। जाति-प्रथा की उत्पत्ति और वृद्धि चाहे जैसे हुई हो, है वह मानवी रचना। दूसरे देशों में भी जात-पात की प्रथा रही है, और जान और अनजान में मनुष्य के ही द्वारा उसमें सुधार भी हुए हैं। किंतु भारतवर्ष में तो इसके विपरीत ही हुआ। यहां तो उसने कुछ ऐसी विचित्रता से हाथ-पैर फैलाये कि कुछ पूछिए नहीं। यहां की जात-पात की लीला तो जैसे तीन लोक से न्यारी है। इसकी तो अन्यत्र कल्पना भी नहीं की जा सकती। हिंदू-समाज में वह फूट पैदा कर रही है और उसे दिन-दिन दुर्बल बनाती जा रही है। नासूर की तरह वह समाज की सारी जीवन-शक्ति को भीतर-ही-भीतर खाती चली जाती है।

ज्वाइण्ट सेलेक्ट पार्लमिण्टरी कमेटीने जाति-प्रथा की विवेचना करते हुए जो यह कहा था कि, "प्रजासत्तात्मक सिद्धान्तों के साथ यह चीज मेल नहीं खाती"—इसमें कुछ औचित्य तो है। मगर आज भी इस सम्बन्ध में हिन्दू-नेताओंने सार्वजनिक रूप से जो सम्मतियां दी हैं, वे कांग्रेस या हिन्दू-महासभाने जो रुख अख्तियार किया है उससे कुछ अधिक साफ नहीं हैं। मेरा सम्बन्ध न तो कांग्रेस से है, न हिन्दू-सभा से। न मैं नेतृत्व करने का ही दावा करता हूँ। किन्तु वर्णान्तर-विवाह के सम्बन्ध में मेरे विचार हमेशा स्पष्ट रहे हैं। अस्पृश्यता के विषय में यह बात है, कि सन् १९३२ में जब बम्बई के गौड़ सारस्वत ब्राह्मणों की एक सार्वजनिक सभा में करीब १२०० के बहुमत से—और सिर्फ दो आदमियों के विरुद्ध मत से—हरिजनों के लिए सवर्णों के मन्दिर खोल देने का प्रस्ताव पास हुआ, तब उस सभा के अध्यक्ष-पद से मैंने यह कहा था कि, "मैं तो इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकता कि हिन्दू-समाज पर ईश्वर किस तरह ऐसा वाहियात और आत्मघातक कानून लाद सकता है कि मनुष्य तभीतक अस्पृश्य रहता है जबतक कि वह हिंदू बना रहता है, किन्तु ज्योंही वह हिन्दू-समाज से अपना नाता तोड़ लेता है उसी क्षण वह अस्पृश्य हो जाता है!" और जनवरी १९३५ में 'हिन्दू-लॉ-रिफार्म असोसियेशन' की वार्षिक बैठक में मैंने यह कहा था कि, "जिस सच्चे प्रश्न का हमें सामना करना है वह यह है कि आया हम जाति-प्रथा को अपने देश से निकाल बाहर कर देने और उसे उस बीमारी की तरह हटा देने को तैयार हैं या नहीं, जो हमें दिन-दिन कमजोर करती जा रही है, जिसने हमें बर्बाद कर दिया है और जो एक दिन हमारे प्राण लेकर रहेगी; या हम बराबर यह मानते चले जायंगे कि जाति-प्रथा एक पवित्र और हितकारी प्रथा है, और बड़े प्यार से उसे अपनी छाती से चिपटाये रहेंगे? किसी मराठे के लिए क्या यह बुद्धिमानी की या युक्ति-युक्त या न्याय-संगत बात है कि वह समानता की बात लेकर ब्राह्मण को तो बुरा-भला कहे और खुद अन्त्यज पर आक्रमण करे? माना कि यह जात-पात एक दिन में विनष्ट नहीं होगी, किन्तु उसका वास्तविक विनाश और उसकी मृत्यु कितनी जल्दी होगी यह हम लोगों पर ही निर्भर करता है।" दूसरे देश और समाज बिना जाति-प्रथा के पृथिवी पर मौजूद हैं और उन्होंने तरक्की भी की है, और इसी तरह हिन्दू-समाज भी कर सकता है। इस देश में जात-पात न रहेगी तो इससे कुछ आसमान नहीं टूट पड़ेगा।

मूल कारण तो दारुण दरिद्रता है, आया वह किसान की हो या अछूत की। उसे आर्थिक और राजनीतिक उपायों के द्वारा हल करना ही होगा। मगर कानून की दृष्टि में तो समानता पहले से ही है। यह माना जा सकता है और मानना चाहिए कि सार्वजनिक पैसे की सहायता से चलनेवाले स्कूलों से लाभ उठाने का सबको एक समान अवसर प्राप्त है, फिर पुराने खयाल के लोगों की चाहे जो आपत्तियां हों। लेकिन यहां भी, और कुओं के उपयोग के सम्बन्ध में खासकर गांवों में दुराग्रह और विरोध देखने में आता है, और यह दुर्भावना अब्राह्मणों में, जैसे गुजरात के पाटीदारों में, महाराष्ट्र के मराठों में और कनाड़ा के लिंगायतों में पाई जाती है। समानता

का व्यवहार लोगो मे मजबूरन कराने के लिए हरेक गाव मे पुलिस रखी जाय यह सम्भव नही। इसका तब यही एक इलाज हो सकता है कि जिस गाव के स्पृश्य लोग अस्पृश्यों को कुओं पर चढ़ने से रोकते हो, वहा उनसे कानूनन अस्पृश्यों के लिए एक अच्छा-सा अलग कुआं बनवा दिया जाय। रही मन्दिर-प्रवेश की बात, सो उसके लिए मैं यह कहूँगा कि सार्वजनिक मन्दिरो के सम्बन्ध मे शीघ्र ही ऐसा कानून बना दिया जाय, कि जिससे अस्पृश्यों-समेत समस्त हिंदुओ के लिए बिल्कुल समान रीति से मन्दिर खोल दिये जायें। पूजार्चा करनेवाले पुजारियो के लिए मन्दिर के भीतर का जो स्थान सुरक्षित हो, उसे छोड़कर बाकी के मुख्य भाग मे हिन्दुओं के किसी वर्ग को जाने से जो भी प्रथा या ट्रस्ट, स्पष्ट या ध्वनितार्थ से, रोके वह रद्द कर दिया जाय।

पर यहा मुझे यह भी बतला देना चाहिए कि तमाम हिन्दुओं की तरह ये अस्पृश्य भी अब्राह्मणों या ब्राह्मणो से कुछ कम दोषी नही है। ये लोग खुद भी आपस मे जात-पात के नियमो का उतनी ही कड़ाई के साथ पालन करते है। गुजरात मे ढेड और भगी और महाराष्ट्र मे महार, चमार और माग इस बात के उदाहरण है। इसलिए अस्पृश्यो के लिए भी वही प्रश्न है, और जब उनके नेता समानता पर जोर देते हैं तब वहा वही बात आ जाती है कि आपस मे रोटी-बेटी-व्यवहार और समाज-सुधार के लिए वे भी अपनी-अपनी बिरादरी को प्रोत्साहित करे। अन्त मे, मैं यह कहूँगा कि कानून चाहे मना करे चाहे परवानगी देदे, पर वह सामाजिक अन्तर्सम्बन्ध या वर्णान्तर-विवाह करा नही सकता। व्यर्थ के आक्षेपो और राजनीतिक हेतुओ की अपेक्षा यह तो सम-समान नियमो से, सस्कृति और सहानुभूति से और सामान्य आदर्शो के अनुसार काम करने से ही बनेगा।

महात्मा गाधी, पडित मालवीय, श्री एन० सी० केलकर और श्री बी० वी० जाधव-जैसे हिन्दू-नेताओ से मैं यह प्रार्थना करूंगा कि वे इस अत्यावश्यक प्रश्न के सम्बन्ध मे हमे एक स्पष्ट और बीरोचित मार्ग दिखाये। ऐसा कोई मार्ग निकल आवे इस आशा से ही मैं आपके पत्र मे लिखने की ढिठाई कर रहा हूं।

१६८, कोरेगांव पार्क
पूना, ५ नवम्बर, १९३५

आपका
जी० डी० मडगांवकर

दवा-दारू की सहायता

भिन्न-भिन्न सस्थाओं की ओर से किये जानेवाले ग्राम-कार्य या समाज-सेवा के काम की जो रिपोर्टे मेरे पास आती है, मै देखता हूँ कि उनमे से बहुतों मे दवा-दारू की सहायता के काम को बहुत महत्व दिया जाता है। यह सहायता बीमारो को दवा बाटने के रूप मे की जाती है —और बीमारो का तो कहना ही क्या, जहा उन्होने किसी को दवा बाटने की बात कहते सुना नही कि उसे आकर घेर लिया। इस तरह जो व्यक्ति दवा बाटता है उसे इसके लिए कोई खास अभ्यास करने का कष्ट नही उठाना पड़ता। रोग और उसके लक्षणो का विशेष या किसी तरह का ज्ञान रखने की उसे जरूरत नही होती। यहातक कि दवाएँ भी अक्सर दयालु दवा-फरोशो से मुफ्त ही मिल जाती हैं। ऐसे दानियो से इसके लिए चन्दा भी हमेशा मिल ही जाता है, जो चन्दा देते वक्त ज्यादा उधेड़-बुन नही करते। बस इसी खयाल से उन्हे आत्म-सन्तोष होजाता है कि हम जो दान दे रहे है उससे दीन-दुखियो की मदद होगी।

सेवा के जितने भी तरीके है उनमें यह सामाजिक सेवा मुझे सबसे ज्यादा काहिल और अक्सर शरारत से भरी हुई मालूम पड़ती है। इसकी बुराई का आरम्भ तो तभी होजाता है जबकि मरीज यह समझने लगता है कि, बस दवा सटक जाने के सिवा मुझे और कुछ नहीं करना है। दवा पाकर वह आगे के लिए सावधान बने, ऐसा नहीं होता। अलबत्ता, कभी-कभी वह पहले से भी गया-बीता बन जाता है—क्योंकि इस खयाल से कि अनियमितता और लापरवाही से कुछ गड़बड़ी हुई तो क्या, सेंत-मेंत या बरायनाम पैसो की कुछ दवा लेकर खालूगा और सब ठीक-ठाक होजायगा। वह तत्सम्बन्धी बचाव या सयम रखने की फिक्र नहीं करता। फिर इस बात से कि उसे ऐसी (दवा-दारू की) मदद बिना कुछ खर्च किये मुफ्त ही मिल जायगी, उसके उस आत्म-सम्मान का भी ह्रास होता है जो बिना किसी काम के किये खैरात मे कुछ लेना गवारा नहीं कर सकता।

लेकिन दवा-दारू की सहायता का एक और भी तरीका है, और निस्सदेह वह हमारे लिए एक बड़ी नियामत है। जो लोग रोग और उसे पैदा करनेवाले कारणो को जानते है वही ऐसी सहायता कर सकते हैं। वे बीमारो को खाली दवा ही नहीं देंगे, बल्कि यह बतायेंगे कि उन्हे क्या खास बीमारी है और क्या करने से आगे वे उससे बचे रह सकते है। ऐसे सेवक रात-दिन की कोई पर्वा न करेंगे, और हरसमय सहायता के लिए तत्पर रहेंगे। ऐसी सहायता से रोग-निवारण ही नहीं होगा, बल्कि स्वास्थ्य-विज्ञान की शिक्षा भी लोगों को मिलेगी, जिससे वे यह जान सकेंगे कि स्वास्थ्य और सफाई के नियमो का पालन करते हुए वे किस प्रकार तन्दुरुस्त रह सकते है। लेकिन ऐसी सेवा बहुत कम देखने मे आती है। अधिकाश रिपोर्टों मे तो दवा-दारू की सहायता का उल्लेख बतौर इश्तिहार के ही होता है, ताकि लोग उसे पढ़कर उनके दूसरे ऐसे काम-काज के लिए चन्दा देने को प्रेरित हो, जिनमें शायद दवा-दारू की सहायता से भी कम ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसलिए समाज-सेवा के कार्य मे लगे हुए सब भाइयो से, ख्वाह वे शहरो मे काम करते हो या गावो मे, मेरी प्रार्थना है कि दवा-दारू की अपनी इस हलचल को वे अपने सेवा-कार्य का सबसे कम महत्वपूर्ण अग शुमार करे। बेहतर तो यह होगा कि अपनी रिपोर्टों मे ऐसे सहायता-कार्य का वे कोई उल्लेख ही न करे। इसके बजाय वे ऐसे उपायो का सहारा ले जिनसे उस स्थान मे बीमारी मे रुकावट हो, तो अलबत्ता वे अच्छा काम करेगे। दवा-दारू का सामान तो जहातक हो कम करना चाहिए। जो दवाएँ उनके गाव मे ही मिल सके उनके उपयोग की जानकारी उन्हे हासिल करनी चाहिए और जहातक हो उन्हीका इस्तेमाल करना चाहिए। ऐसा करने पर उन्हे पता लगेगा, जैसा कि सिन्दी गाव मे हमे मालूम होता जा रहा है, कि बहुत-से रोगो में तो गरम पानी, धूप, साफ नमक और सोडा के साथ कभी-कभी अण्डी के तेल व कुनैन का प्रयोग करने से ही काम चल जाता है। जो भी ज्यादा बीमार हो उन सबको शहर के बड़े अस्पताल में भेज देने का हमने नियम बना लिया है। नतीजा यह हुआ कि मरीज लोग मीराबहिन के पास दौड़े चले आते है और उनसे स्वास्थ्य, सफाई व रोग-निवारण के उपाय मालूम करते हैं। दवा के बजाय रोग-निवारण का उपाय ग्रहण करने में उन्हे कोई आपत्ति हो, ऐसा मालूम नहीं पड़ता।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

टिप्पणियाँ

राजपूताने में हरिजन-दिवस

गत २४ सितम्बर को समस्त देश मे सघ के आदेशानुसार जो हरिजन-दिवस मनाया गया था उसकी अनेक स्थानो से उत्साह-वर्द्धक रिपोर्टें आइ है। राजपूताना-हरिजन-सेवक-सघने अपनी सितम्बर मास की रिपोर्ट मे हरिजन-दिवस के सम्बन्ध मे अच्छा रोचक और शिक्षाप्रद विवरण दिया है। कई स्थानो मे तो इस ऐतिहासिक दिवस का कार्यक्रम खासा महत्वपूर्ण रहा, जिसे हम सक्षिप्त रूप मे नीचे दे रहे है —

डूंगरपुर—यहा हमारे हरिजन अध्यापकोने अपने विद्यार्थियो की सहायता से मेहतरो की बस्ती मे बरसाती पानी के निकास के लिए पत्थरो से पाटकर एक मोरी बनाई। यहा इतनी गढइया बरसात मे भर जाती थी, कि रास्ता पार करना कठिन हो जाता था। उसी दिन तीसरे पहर स्थानीय हरिजन-सेवक-समिति के अध्यक्ष राजगुरु सरजूदासजी के साथ करीब ६० प्रतिष्ठित नागरिकोने हरिजनो की टूटी-फूटी झोपडियो का निरीक्षण किया।

सागवाड़ा—महन्त लच्छीरामजी के सुप्रसिद्ध 'रामद्वारा' मे हरिजन विद्यार्थियोने प्रार्थना की। प्रार्थना के उपरान्त, महन्तजीने हरिजनो को अपने हाथ से मिठाई बाटी। इसके बाद सवर्णो और हरिजनो की एक सयुक्त सभा हुइ, जिसमे हरिजनो तथा धार्मिक महतो के अस्पृश्यता-निवारण पर भाषण हुए।

पानरो—यहा हरिजन-सेवको के प्रयत्न से भीलो के गुफाओ-जैसे २५ अधेरे घरो मे खिडकिया लगाई गई।

खड़लाई—भील विद्यार्थियोने यहा अपने हाथो से अपनी पाठशाला पर छप्पर डाला। इसके लिए उन्हे सब आवश्यक सामान उनके माता-पिताओने दिया। अध्यापको और हरिजन-सेवकोने भील बस्ती मे एक सडक भी बनाई।

हिंडोन—यह स्थान जयपुर राज्य के अतर्गत है। यहा एक सयुक्त सत्सग का आयोजन किया गया, जो बडा ही सफल रहा। लगभग सभी जातियो के ५०० मनुष्योने इस सत्सग मे भाग लिया।

नारेली—आश्रम-वासियोने दो हरिजन-बस्तिया साफ की। ११ स्वयसेवको के एक जत्थेने एक सप्ताहतक आसपास के गावो मे भ्रमण किया।

अजमेर—यहा हरिजनो मे प्रचलित सामाजिक बुराइया खासकर शराब और मुर्दार मास के विरुद्ध पूरे एक सप्ताहतक जोरो का प्रचार-कार्य किया गया।"

ऐसे ठोस कामो से ही इस ऐतिहासिक दिवस की ऐतिहासिकता अमरत्व प्राप्त कर सकती है। इसमे सदेह नही कि रचनात्मक कार्य से शून्य कोरा प्रचार-कार्य कोई अर्थ नही रखता। राजपूताने मे जिस ढंग से हरिजन-दिवस मनाया गया है वह अनुकरणीय है।

वि० ह०

नीबू के गुण

नीबू के नीचेलिखे गुण "स्वास्थ्य-विज्ञान" पत्र मे प्रकाशित हुए हैं :—

"नीबुओं के कई भेद है, लेकिन हमारी समझ मे कागजी नीबू उत्तम है, और उसके ही गुणो का हम वर्णन कर रहे है।

नीबू खट्टा, वातनाशक, दीपक, पाचक, हलका, कृमि-समूह-नाशक, तीक्ष्ण, उदररोग-नाशक, वात, पित्त, कफ और शूल मे हितकारी, अरुचिनाशक और रोचक है।

स्फूर्ति—प्रतिदिन एक नीबू का रस प्याले मे भरकर नमक या शक्कर मिलाकर सेवन करने मे दिनभर शरीर मे स्फूर्ति रहती है।

मुटापा—गरम पानी के साथ खाली नीबू का रस लेने मे मुटापा दूर होता है।

दांत का दर्द—दातो को स्वच्छ रखने के लिए एक चम्मच नीबू का रस गिलासभर पानी मे डालकर कुल्ला करना चाहिए, इससे दातो का मैल दूर हो जाता है, और उनकी कीडो से रक्षा होती है।

सौन्दर्य-वृद्धि—नीबू का रस नमक के साथ पानी मे मिलाकर स्नान करने से त्वचा का रग निखरता है और सौदर्य बढता है।

अजीर्ण—नीबू और सेधा नमक भोजन के पहले खाना चाहिए। इससे अजीर्ण नष्ट होकर अग्नि दीप्त होती है।

हैज़ा—नीबू के रस मे चीनी डालकर शर्बत बनाले, अथवा प्याज के रस मे आवश्यकता पडने पर थोडा-थोडा चटावे।

शूल—नीबू के फल अथवा जड का रस शहद और जवाखार मिलाकर सेवन करे, इससे शूल नष्ट होते है।

दस्त—नीबू की जड, अनार की जड और केशर जल मे पीसकर पीनी चाहिए।

गर्भाशय की शुद्धि—नीबू का बीज और मोचरस को जड दूध मे पीस, छानकर रजस्वला होने से चार दिनतक सेवन करे।

हिचकी—नीबू के रस मे शहद और काला नमक मिलाकर सेवन करे।

यकृत—नीबू के भीतर का अश दो तोले और काला नमक छ मासे प्रतिदिन दो बार खाना चाहिए।

आरोग्य-वृद्धि—भोजन के समय दाल या साग मे नीबू का रस डालदे, इससे पाचन-शक्ति ठीक रहेगी और मन्दाग्नि या कोष्ठबद्धता भी नहीं होगी।'

अस्पृश्यता में दया कहाँ ?

सेवाश्रम, नारेली (राजपूताना) से श्री अचलेश्वरप्रसाद शर्माने बमवा (जयपुर) के हरिजन अध्यापक के पत्र का निम्न-लिखित अश भेजा है :—

"गत सप्ताह, मै पाठशाला के ८, १० विद्यार्थियो को लेकर रामपुर के हौज पर नहाने के लिए गया। साथ मे एक पचास वर्ष का अन्धा हरिजन भी था। रामपुरा बसवा से दो मील है। यह एक तीर्थ-स्थान माना जाता है। जन्माष्टमी के दिन यहा भारी मेला लगता है। तीर्थ के हौजो मे हरिजनो को नहाने की कोई मुमानियत नही। उस दिन जब हम रामपुरा पहुँचे, तो वहा के एक पुजारीने कहा कि आप सबको बाहर के हौज मे ही कपडे धोने चाहिएँ। हमने पुजारी की बात मानली। पर चूंकि अधे हरिजन को कपडे नही धोने थे, इसलिए वह भीतर के हौज पर ही नहाने के लिए कपड़े उतारने लगा। पुजारी की दृष्टि उसपर जा पडी। उन्होंने बुड्ढे से पूछा, तुम कौन जाति के हो ?' उसने उत्तर दिया, 'महाराज ! मै जाति का बलाई हूँ।' 'तब तुम इस हौज मे कैसे नहा रहे हो ?' पुजारीने कडककर कहा। अंधेने अचरज मे आकर पूछा, 'महाराज' आज से पहिले तो आपने हमें नहाने से कभी नही रोका था। यह नई बात आज ही क्यों ?'

पुजारीजी यह सुनकर कुछ कह ही रहे थे कि एक ब्राह्मण युवक बीच ही में कूद पड़ा और यह कहते हुए कि 'तू हम ब्राह्मणों के मुहँ लगता है,' उस गरीब अंधे को चार-पांच थप्पड़ें जोर से रसदीं। इसके बाद वह अपनी जूती निकालकर अंधे को मारने ही वाला था कि मैंने लपककर उसका हाथ पकड लिया। मैंने कहा कि, 'आप इस अंधे हरिजन को क्यों पीटते है? आपको अपना क्रोध उतारना ही है तो मुझे जी भरकर पीट लीजिए।' इसपर वह कुछ शर्मिंदा हुआ और अपने घर चला गया।"

अस्पृश्यताने हमारे मनुष्यत्व को कितनी बेरहमी से कुचल डाला है! उच्चता की झूठी मनोवृत्ति मनुष्य को मनुष्य नहीं समझती। हरिजन-सेवकों के धैर्य और सेवा-कार्य से ही सवर्णों का हृदय पलट सकता है। यही एकमात्र मार्ग है।

वि० ह०

मेवाड़ का कागज

कुछ समय पूर्व मेवाड़ के एक हरिजन-सेवक से वहां के कागज के उद्योग की जांच करके लिखने का अनुरोध किया गया था। मेवाड़ में इस उद्योग का केन्द्र चित्तौड के पास घोसूंडा नामक गांव है। यह मित्र वहां गये और उन्होंने जो विवरण भेजा है वह 'हरिजन-सेवक' के पाठकों के लिए रोचक और शिक्षाप्रद होगा ऐसी आशा है। थोड़ा उसे संक्षिप्त करके मैं नीचे देता हूं:—

"घोसूंडा जाते ही वहां के एक पुराने तथा अनुभवी कागजी भाई हसनजी नूरमहमदजी से मिला। उन्होंने कृपाकर सारी बातें बड़ी दिलचस्पी के साथ बतलाईं। कागजियों की अवस्था बड़ी शोचनीय है। ये लोग तो इस धन्धे के विषय में अब निराश-से हो चुके हैं और उससे शीघ्र ही मुक्त होने का प्रयत्न कर रहे हैं। कितनोंने तो अब खेती को अपना सहायक धन्धा बना लिया है। वे कभी कागज बनाते हैं तो कभी खेती करते रहते हैं, कुछेक कागजियों ने शहरों में आकर नौकरी करली है।

कागजियों के यहां कुल ७ घर हैं। लगभग ३० स्त्री-पुरुष काम करनेवाले हैं। ये लोग अपने काम के लिए करीब २३० मजदूरों से मदद लेते हैं। इस तरह कुल मिलाकर ३०० स्त्री-पुरुष इस धन्धे में काम करते हैं। मजदूरी ।) चित्तौड़ी अर्थात् ≈)। कलदार देते हैं। होशियार मजदूरों को ।।) राजनय भी देते हैं।

इनके बनाये हुए कागज स्वर्गवासी महाराणा फतहसिंहजी बराबर लेते थे और इनका गुजारा मजे से चलता था। बीच में दो वर्षतक तो इनका कागज महाराणा साहब के स्वर्गवास के पीछे किसीने नहीं लिया। केवल ५० या ६० रीमें व्यापारियों में खपीं। इस वर्ष ये लोग वर्तमान महाराणा साहब की सेवामें अपना दुखड़ा सुनाने गये और उन्होंने उनका कागज १००० रीमतक लेना स्वीकार किया है। पर भाव बहुत सस्ता रक्खा है। ९।।) और १०।।) रुपये चित्तोड़ी अर्थात् ५।-)।। और ५।।।≈)।। कलदार पर क्रमशः एक रीम का भाव सरकार से काटा जाता है। इससे इन्हें मुश्किल से १) या १।।) रुपया चित्तौड़ी बचता है। पर इन लोगोंने यह भाव इसलिए स्वीकार कर रक्खा है कि महाराणा साहबने हमारे पूर्वजों को यहां बुलाकर बसाया है इसलिए कुछ भी हो, जैसे-तैसे गुजर चलायेंगे और इस मृतप्राय उद्योग को जीवित रक्खेंगे। अगर इस समय इनका सहायक धन्धा खेती न होती, तो शायद ये लोग इस कागज के धन्धे को छोड़ बैठते।

इस काम में माल की खपत न होने के अलावा और भी कुछ कठिनाइयां हैं। इन लोगों को कागज की कतरन आसानी से तथा सस्ती नहीं मिलती। ये लोग मन्दसौर, अहमदाबाद आदि स्थानों से कतरन मंगाते हैं और वह बड़ी महँगी पड़ती है। रेलभाड़ा आदि लगकर यह इन्हें ३) मन पड़ती है। मजदूर भी अब इन्हें आसानी से नहीं मिलते। शिक्षा और पूंजी के अभाव से ये अपने काम में उन्नति की बात भी बहुत कम सोच सकते हैं। इनका कहना है कि हमारा धन्धा दस साल पहिले तक खूब चलता था, पर इधर बहुत क्षति हुई है।

ये लोग केवल सन के पुराने रस्सों से ही काम चला सकते हैं, पर इससे कागज बनाने में कठिनाई होती है, इसलिए पुरानी बहियों के कागज, शहरों की कतरन आदि उसमें मिलाते हैं। इससे गलाई में और अन्य प्रकार भी जल्दी हो जाती है। पुराने सन के रस्सों की भूसी तथा कतरन ये लोग एक हौज में गलाते हैं।

वह एक-दो दिन में गलकर तैयार हो जाती है। फिर उस पदार्थ को एक दूसरे हौज में डालकर कूटते हैं। मिश्रित पदार्थ पर सज्जी या चूना भुरकाया जाता है और फिर उसे दो-तीन बार कूटा जाता है। यह कूटा हुआ पदार्थ 'लई' कहलाता है। 'लई' को दो-तीन बार नदी में धोते हैं। फिर उसे एक चबूतरे पर फैला देते हैं और उसपर तरी देकर हवा में रखते हैं। चार-पांच रोज बाद फिर वही लई एक बार और चूना और सज्जी भुरकाकर कूटी जाती है। और फिर धोकर सिमिट के हौजों में स्वच्छ पानी में डाल दी जाती है। १२ घंटे बाद फिर उसमें एक जाली का सांचा डालकर उसमें से एक-एक ताव गीली हालत में निकाला जाता है। ये कागज बाहर एक चपटे पत्थर पर जमाये जाते हैं और फिर दबाकर उनका पानी निकाल दिया जाता है। फिर एक-एक पाठा सिमिट की दीवारों पर चिपका दिया जाता है। सूख जाने पर उनकी घुटाई की जाती है। घुटे हुए कागज अलग-अलग आकार के काटकर उनकी रीमें बनाली जाती हैं।

एक गड्डी या रीम में १० दस्ते और एक दस्ते में २४ पाठे होते हैं। इस प्रकार २४० कागजों की एक गड्डी होती है। १ मन कतरन का १५ दिन में ७ गड्डी कागज तैयार होता है, जिस पर खर्च तो करीब ६८) खर्च पड़ते हैं। कागज यहां तीन प्रकार का बनता है। कागज बनानेवाले सब मुसलमान भाई हैं। ये कागजी कहलाते हैं। राज्यने जो आर्डर दिया है उसमें केवल तीन ही घर काम करने के लिए काफी हैं। कागज का आकार प्रायः २०×२६ होता है।"

राजपूताने में सांगानेर और घोसूंडा में ही हाथ के कागज का उद्योग अभीतक विद्यमान है। यदि जयपुर और मेवाड़ राज्य इसे पूरा प्रोत्साहन दें तो यह जीवित रह सकता है। व्यापारी तथा शिक्षित वर्ग भी इसे अपनाकर कायम रख सकते हैं।

रामनारायण चौधरी

भूल-सुधार

'हरिजन-सेवक' के गतांक में "घी" शीर्षक लेख में ५०) के स्थान पर २९) पढ़िए। संपादक

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi, by R. S. Gupte.

भय की भावना

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
किंग्सवे, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३]

दिल्ली, शनिवार, २३ नवम्बर, १९३५.

[संख्या ४०

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

[१]

हमारी ग्राम-सेवा

सिन्दी का काम बहुत ही कठिन साबित हो रहा है। सफाई के काम में न जाने कितनी कठिनाइयां आ रही हैं। अब भी हम उस प्रश्न को किसी तरह हल नहीं कर सके। हम सबकी शक्ति इसी काम में खर्च हो रही है। यह अच्छा है कि इस गांव के प्रश्न का मध्यबिन्दु ही हमने हाथ में लिया है। इसे हल करना ही है इसी निश्चय से हम काम कर रहे हैं। मीराबहिन जिस झोंपड़ी में रहती है उसके इर्द-गिर्द इतनी बदबू आती है कि कुछ पूछिए नहीं। मीरा बहिन जो वर्णन करती है उससे मैं यह कल्पना कर सकता हूं कि वहां सबेरे तीन बजे के बाद नींद का आना असम्भव हो जाता होगा। फिर वह झोंपड़ी हरिजन-बस्ती के ठीक बीच में है, इसलिए उपद्रवी लोग भी वहां काफी हैं। उन्हें धीरे-धीरे मीराबहिन ठीक कर रही हैं।

मुझे कोई उपमा देनी हो तो यह दूंगा कि अभी हाल तो सिंदी गांव एक तरह से वह काम दे रहा है, जो काम किसी ट्रेनिंग कालेज के साथ एक नार्मल-स्कूल देता है। ग्राम-जीवन और ग्रामों के प्रश्नों का अध्ययन करनेवाले कुछेक लोग कुतूहल से यहां आते हैं। अभी एक वकील साहब आये हैं। फुर्सत के समय में ग्राम-सेवा करने का उनका इरादा है। वे नित्य सबेरे दो घंटे सिंदी में मैला साफ करने के लिए जाते हैं। वहां वे गड्ढे खोदते हैं, और तमाम मैला इकट्ठा करते हैं।

मीरा बहिन को अस्पृश्यता के विविध रूपों का नित नया अनुभव होता जाता है और वे धीरज के साथ उन सब का सामना कर रही हैं। एक दिन एक ब्राह्मण देवता दवा लेने आते हैं। उन्हें आना ही पड़ता है, क्योंकि मीरा बहिन अब घर-घर दवा बांटने तो जाती नहीं। ब्राह्मण देवता नम्रता-पूर्वक कहते हैं, 'पुड़िया या गोलियां आप इस तरह दूर से मेरे हाथ में छोड़ दें कि आपका हाथ छू न जाय, नहीं तो मैं जाति-बाहर कर दिया जाऊँगा!'

मीरा बहिन को अपने कुएँ से पानी भरने की इजाजत दे देने के लिए मांग लोगों का कुछ-कुछ मन तो हुआ है। महार लोग इस बात का विचारतक करने को तैयार नहीं—हां, वे महार भी राजी नहीं, जो एक कुएँ की मरम्मत कराने के लिए हरिजन-सेवक-संघ से पैसा मांगते थे! मांग लोग बस यहांतक तैयार हैं कि सिर्फ मीरा बहिन उनके कुएं से पानी भर लिया करें। वे कहते हैं कि इससे आगे जाना हमारे बस का नहीं। उनसे यह नहीं हो सकता कि हम लोगों में से कोई मीरा बहिन के साथ गांव में काम करने जाय, और उससे वे अपना कुआं भ्रष्ट करायें। मीरा बहिन उस रिआयत से अकेली भला कभी लाभ उठायेंगी, जो उनके साथियों को न मिले?

एक तूफान

अच्छे-से-अच्छे ग्राम-सेवक के जीवन में भी तूफान आये बिना नहीं रहते, यह खेड़ा जिले के एक गांव में कार्य करनेवाले श्री बबलभाई मेहता के पत्र से मालूम होता है। इन्हें अपने काम में भारी सफलता मिली है। उनके पत्रों से समय-समय पर कुछ अंश मैं बराबर देता रहता हूँ। पाठकों को याद होगा कि दशहरे के दिन वहां जो हर साल एक भैंसा मारा जाता था, वह इन्हीं बबलभाई के प्रयत्न से इस साल नहीं मारा जा सका। एक दिन ऐसा हुआ कि मुक्ति-सेना के कुछ आदमी हरिजनों को ईसाई हो जाने की बात समझाने के लिए हरिजन बस्ती में आये। बबलभाईने उनसे हाथ मिलाया और उन लोगोंने जो सभा की उसमें बबलभाई उनके साथ बिल्कुल सटकर बैठे। बाद को उन्होंने भी हरिजनों को समझाया कि उनसे जो अपना धर्म बदल डालने की बात कही जाती है, यह सब वाहियात जाल है। शाम को उन्होंने हरिजनों के पास जाकर उनसे आत्म-शुद्धि करने, और शराब व मुर्दार मांस त्यागने आदि के बारे में बातें कीं। वहां से लौटकर वे आ ही रहे थे कि गांववालोंने उन्हें घेर लिया और उनसे पूछा, 'आज सबेरे आपने मुक्ति सेना के उन क्रिस्तान आदमियों से हाथ मिलाया था, और सभा में उनके साथ जाकर बैठे थे, तो अब आप नहायेंगे या नहीं?' बबलभाईने कहा, 'नहीं तो, मैं तो यहां से सीधा घर जा रहा हूँ, और योंही सो जाऊँगा।' और जाकर वे सो भी गये।

दूसरे दिन गांव में हल्ला मच गया। वे लोग जैसे यह भूल ही गये कि इस आदमीने उनकी कितनी अधिक सेवा की है। कुछ लोग उन्हें गांव में निकाल बाहर कर देने की बात करने लगे। जिस घर में वे रहते हैं उसको मालिकनने उन्हें घर खाली कर देने की धमकी दी। बबलभाईने इस तूफान की तरफ बिल्कुल ध्यान ही नहीं दिया और न लोगों के साथ कोई बहस ही की। लोगों से बात करना तक बन्द कर दिया, और सफाई का काम करने में अब और भी अधिक समय देने लगे।

गांव से निकाल देने की बात कुछ दिनों में शान्त हो गई। लोग उन्हें समझाने आने लगे, और उनसे कहने लगे, 'आप जो यह तमाम काम करते हैं उसे हम समझते न हों यह बात नहीं।

एक बस इतनी ही बात आप छोड़दे । आपको ऐसा करना ही है तो हमारे पीठ पीछे करे । इन लोगों को आप हमारे सामने न छुएँ, जिसमें कि हमें नाव चढ़ने का मौका ही न आय ।' बबलभाईने उनसे शान्तिपूर्वक कहा कि, 'नहीं, न तो मै आप लोगों की आंख में धूल झोंक सकता हू, न अपनी में । जिसे मैं अपना धर्म समझता हूँ, उसे मै कैसे छोड सकता हूँ ? आप लोगों से मैं जबरन तो कुछ कराऊँगा नहीं । मै तो बस इतना ही चाहता हूँ कि अगर मेरी बात आपकी समझ में न आय, तो मेरी तरफ आप कोई ध्यान ही न दे ।'

रात्रि-पाठशाला मे पहले २६ की हाजिरी थी, पर जब यह तूफान उठा तब सिर्फ ३ ही छात्र पढने आते थे । पर कुछ दिनो मे हाजिरी फिर बढने लगी, और अब १८ की हाजिरी हो गई है ।

पाठकों को याद होगा कि बबलभाई तीन हडिया रखते है, उनमें लोग खुशी से जो अनाज भरदे उसीसे अपना निर्वाह किया जाय ऐसा उनका सकल्प है । बबलभाई आभार मानते हुए लिखते है कि इस तूफान के दिनों में भी उनकी तीनों हडिया तो हमेशा ही भरी रहती थी । पत्र समाप्त करते हुए वे लिखते है, "दोपहर को बारह बजेतक मै मैला वगैरा साफ करता हूँ, और सडके झाडता हूँ । सडके और गलिया दिन मे तो सूरज के प्रकाश में और रात को चादनी मे आईने की तरह चमकती है । यह दृश्य जितना मुझे प्रिय लगता है, उतना ही, मै मानता हू, लोगों को भी प्रिय लगता है । दोपहर के बाद दो बजे से पाच बजेतक खेतों मे काम करता हूँ, और जिस समय लोग मेरे पास बैठकर अपने सुख-दुख की बाते करते हैं, उस समय ऐसा लगता है, गोया उनके तमाम वहम गलते जा रहे हो, और मेरी विचित्रताओं के होते हुए भी वे ऐसा भाव बतलाते है कि मै उन्हींमे का एक आदमी हूँ । गाव के कुछेक लोग यह सहन नहीं कर सकते कि मै उनके आगन साफ करूँ । वे खुद ही अपने आगन झाड-बुहारकर साफ करते हैं । लोगो के सफाई-सम्बन्धी विचार मे काफी सुधार हुआ है । यह चाहे जैसे हुआ हो, पर मुझे इतना तो विश्वास है ही कि इतना तमाम तूफान उठने पर भी लोगो का प्रेम मेरे ऊपर वैसा ही बना हुआ है, और इसका कारण मेरा फावड़ा और झाडू है ।'

मेहनत करते ही जाओ

ये सब अनुभव यह बतलाते है कि हम धैर्य और शान्तिपूर्वक निरन्तर परिश्रम किये ही जायें यह बहुत आवश्यक है । उदाहरण के तौर पर, गुजरात के एक ग्राम-सेवक की पत्नी लिखती है, "हमें नित्य दो घंटे सफाई करनी पडती है । हमारे घर मे तीन-चार जने काम करनेवाले है, और दो-तीन जने गाव के आ जाते है । गाव के तालाब के किनारे जो सामनेवाली सडक है उसे लोग बतौर वपुलिग के काम मे लाते थे । हमारे प्रयत्न से वहा जितनी भी गदगी थी वह सब दूर हो गई है । कुछ लोग गलिया और आगन झाडने-बुहारने लगे है,और कुछ खडे-खडे सिर्फ ताका ही करते हैं ।

दोपहर को हमने बडी उम्र के लोगों का वर्ग रखा है । उसमें हम उन्हे पुस्तके पढकर सुनाते है, और अक्सर अनेक विषयों पर चर्चा करते है । पर अस्पृश्यता-निवारण के नाम से लोग भड़कते हैं । कहते है, 'आप और चाहे जिस विषय पर बात करे, पर इस चीज का नाम न ले ।' कुछेक स्त्रिया पढ़ना-लिखना सीखने आती हैं, और हमारे साथ चर्खा भी चलाती है । मुझ यह बतलाते हुए खुशी होती है कि इस वाचन-वर्ग मे ४५ वर्ष से ऊपर की उम्र की स्त्रियां आती है । वे बहुत नियमित रीति से नहीं आती, पर एकादशी, पूनो, अमावस-जैसे त्योहारी दिनों को उनकी काफी अच्छी हाजिरी रहती है । हम अभी इतना ही कर सके है कि वे लोग हमारी बाते बिना गुस्सा हुए सुन लेते है, और एक दूसरे को गालियां देते हुए अब कुछ शर्माते-से है ।"

भणसालीजी के साथ हुए सवादो का जो वर्णन मैंने दिया था उसके सबध में दूर के तथा पास के मित्रों की तरह-तरह की टीकाएँ आई है । श्री खालिदा खानुम लिखती है—"यह जो साधुओ के ऐसा जीवन बिता रहे है इसमे वह बडे-से-बड़ा प्रलोभन है जो आत्मा की वेदना भोगनेवालो को होता है । जो देह का दमन कर सकते है पर विद्रोही और अत्यत कुटिल मन को बश मे नहीं रख सकते, उनके लिए फँसाने का क्या यह केवल एक फदा नहीं है ? सेवा करना छोड़दे और अपनी आत्मा का ही ध्यान धरा करे यह चीज ललचानेवाली जैसी तो लगती ही है । क्या यह सेवा का क्षेत्र छोडकर एक तरह से पीछे हटना नहीं है ? यह ऐसा ही लगता है जैसे भारतीय हेमलेट का अभिनय हो । जीना अथवा मरना ? सेवा करना और जूझ पडना अथवा रण से पीठ दिखाकर अतर की शांति प्राप्त करने के लिए अलग जा बैठना ? .... साधु भणसाली गावों में जाकर कूडा-कचरा साफ करे या किसी गाव की पाठशाला मे पढावे या ऐसा ही कोई और काम लेले तो क्या अधिक पुण्यदायक कार्य नहीं होगा ? इससे उनके मन को शायद अपार चिन्ता करनी पडे, सम्भव है कि उन्हे इससे जरा भी शान्ति न मिले, पर भारत को अपना मस्तक ऊँचा करने से पहले काम के जिस महान् समुद्र की आवश्यकता है उसमे एक बूद तो बढ ही जायगी ।" एक अंग्रेज पाठकने तो बड़ी ही कड़ी आलोचना की है, लिखा है—"भणसालीने अपनी इन समस्याओ से ईश्वर के साथ क्या अधिक ऐक्य अनुभव किया है ? इनसे क्या उनकी सेवा करने की इच्छा और शक्ति बढती है ? हम अग्रेज लोग खेलने-कूदने के दुनिया से जरूरत से ज्यादा शौकीन कहे जाते है, पर मैं यह मानता हूँ कि तुम कुछेक हिन्दुस्तानियोंने अपनी धार्मिक तपस्याओं को करीब-करीब एक तरह का भारी परिश्रमसाध्य खेल बना रखा है ! कृपाकर अपने प्रति प्रामाणिक बनो, और इतना ध्यान रखो कि तुम्हारी ये तपस्याएँ मलिन न सही, पर कहीं एक तरह के प्रच्छन्न स्वेच्छाचार में परिणत न हो जायें ।"

ये दोनों आलोचनाएँ मैने भणसालीजी को पढकर सुनादी । उन्होंने मुस्कराकर यह लिख दिया कि—"मैं यह स्वीकार करता हूँ कि आध्यात्मिक स्वार्थ-परता और स्वेच्छाचारिता जैसी वस्तु तो है । पर मुझे यह कहना चाहिए कि यह ढग बहुत दिनोतक नहीं चल सकता । अपने आसपास के तमाम दुःखो के प्रति निरपेक्ष रहना और दूसरों के दुःख के विषय मे नहीं किन्तु अपने दुःख के विषय मे तीव्र भान रखना आध्यात्मिक स्वार्थ-परता की कुंजी है । जिसने अहकार और स्वार्थ छोड दिया है वह तो आसपास के दुःख से बहुत ही दुखी होगा और जहा उसकी सेवा की जरूरत आ पडेगी, वहां वह दौड़ जायगा । पर मुझे यह कहना चाहिए कि सेवा का अर्थ ईश्वर की सेवा है, और यदि किसी को ऐसा लगता हो कि वह ईश्वर की सेवा आत्म-ध्यान के द्वारा कर रहा है, तो अन्य 'सेवा' उसे एक व्यर्थ की चीज मालूम होगी ।"

मैंने कहा, 'पर मै तो इन आलोचकों को और ही तरह से जवाब दूगा । मनुष्य की सेवा का शुद्ध साधन बनना है, और किसी

की मृत्युपर्यन्त ऐसा लग सकता है कि मुझ मे इतनी शुद्धता नही कि ईश्वर मेरी सेवा स्वीकार करले। इसलिए उसका सम्पूर्ण जीवन सेवा की मूक तैयारी का रूप बन जाता है, सेवा इस जन्म मे न हो सके तो भले आगामी जन्म मे हो।

भणसालीजीने कहा, 'यह ठीक है। पर मै तो सेवा पर नहीं किन्तु आत्मार्पण पर जोर देता हूँ। सेवा को मै आत्म-साक्षात्कार का एक साधन मानता हूँ।'

'तब तो लोगों को आप अपने ऊपर यह आरोप करने दगे कि अपनी आध्यात्मिक आतुरता सन्तुष्ट करने में ही आप सारी शक्ति लगा रहे है ? यही बात है न ?'

'शायद ऐसा हो। पर मुझे तो आत्मार्पण अधिक महत्व का प्रतीत होता है। तो भी मै किसी तरह की सेवा से जी नही चुराऊँगा। मुझे केवल एकान्तवास प्रिय लगता है। मेरा स्वभाव ही कुछ ऐसा बना है। मेरी यह मर्यादा है। मै दूसरी किसी रीति से ईश्वर के साथ ऐक्य अनुभव नहीं कर सकता।'

पाठकों से यहा मै इतना कहदूँ कि भणसालीजीने अब गाधीजी से यह कहा है कि वे खुद किसी गाव के पडोस मे रहने और नित्य आठ घटे शान्ति-पूर्वक सूत कातने के लिए तैयार है। कातने का तो उन्होंने यही से आरम्भ कर दिया है। मै यह भी बतलादू कि वे रोज शाम को सिदी गांव जाते है और वहा जब अखबार पढ़-कर सुनाया जाता है या लोगों के साथ बातचीत होती है, तब मीरा बहिन के पास बैठकर वे अपने दो घटे खर्च करते है।

ऐच्छिक कर

पडित जवाहरलाल नेहरू जर्मनी मे अपनी पत्नी की सार-संभार मे लगे रहने पर भी गाधीजी को जो पत्र भेजते है, उनमें अक्सर रोचक बाते और लोगों की तथा चीजो की तीखी आलोचना रहा करती है। अपने १० अक्तूबर के पत्र मे वे लिखते है -

"आज रविवार को यहा जर्मनी में 'जाडे का सहायता-दिवस' है। बेकारो को सहायता देने का प्रश्न जाड़े मे खासकर विकट हो जाता है, अत इसके लिए बडे-बडे चदे—नाम के लिए ऐच्छिक पर वस्तुत अनिवार्य—किये जाते है। पैसा उघाने के लिए अनेक तरह की युक्तियां की जाती है। एक युक्ति यह है कि जाडे मे हर महीने एक दिन नियत किया जाता है, उस दिन होटल मे, रेस्टोरा मे या घर मे हरेक आदमी को दोपहर को बहुत ही सादा, एक ही चीज का भोजन दिया जाता है, यद्यपि उसमे पैसा पूरे भोजन का ले लिया जाता है। उसमें जो बाकी बचता है वह जाड़े के सहायता-खाते में जाता है। सो आज हमें ऐसा ही सादा भोजन जीमने को मिला था।"

जहां सहायता करने की इच्छा हो वहां सहायता करने के रास्ते न जाने कितने निकल आते है। हमारा आदोलन जिन दिनो खूब जोश के साथ चल रहा था, तब अनेक प्रकार के ऐच्छिक चदे होते थे—बाजार मे जो अनाज बिकने आता था, उसपर फी बोरा एक पैसा लेने का रिवाज, अथवा राष्ट्रीय पाठशालाओं को सहायता देने के लिए नित्य धर्मादे की पेटी में एक पैसा डालने का नियम, या खिलाफत के दिनों में मुसलमानों के घरो मे हर हफ्ते एक बार सादा भोजन, इस प्रकार के उदाहरण हमारे यहां मौजूद है। पर इस ऐच्छिक दान की प्रथा हमारे देश में बहुत प्राचीन है। महाराष्ट्र का पैसा-फण्ड महाराष्ट्र की स्वाश्रयी वृत्ति का स्मरण कराता है। कराची से 'यंग बिल्डर' नामका एक मासिक पत्र निकलता है। उसके अक्तूबर के अंक में श्री बी० जे० पादशाह का एक पुराना पत्र पुन प्रकाशित हुआ है। यह पत्र उन्होंने सन् १८९३ में, जब वे डी० आई० सिंध-कालेज के प्रोफेसर थे, लिखा था। इसमें यह योजना दी हुई है कि कालेज के विद्यार्थियो को स्वेच्छा से कालेज के लिए कर देना चाहिए। यह एक प्रतिशत की योजना, जो मूलत स्व० दयाराम गिदूमलने प्रस्तुत की थी, गत ४० साल के अर्से में किस-किस अवस्था को प्राप्त हुई यह हमें पता नही। जब यह योजना ठीक व्यवस्था के साथ चल रही थी, तब श्री पादशाह का अनुमान था कि कुल चन्दा आसानी से बारह हजार रुपये वार्षिक होगा। क्या हमारे भारतीय विद्यार्थी, जो रोज रो-एक रुपया या इससे भी अधिक खर्च कर डालते हैं, उसमें से एक पैसा अपने भूखो मरते हुए भाई-बहिनो के लिए अलग नहीं निकाल सकते ?

सच्चे म्यूनिसिपल मेम्बर

एक भारी कस्बे मे—जो अपनी गन्दगी के लिए भी मशहूर है—'म्यूनिसिपल सुधारक पार्टी' नाम की एक नई पार्टी बनी है। इसका उद्देश कस्बे की गदगी दूर करना है। इस पार्टीने गाधीजी का आशीर्वाद चाहा, और जितने की उसने आशा की थी उससे बहुत अधिक उसे मिला। गाधीजीने उन्हे यह लिखा—"कहना एक बात है, और करना दूसरी। आप लोग म्यूनिसिपैलिटी मे जाने के लिए ही अगर यह तमाम शोरगुल मचा रहे है तब तो यही अच्छा है कि आप मुझे भूल जायँ। कस्बे की तमाम सड़को, पायखानो, नहाने की जगहो और हरिजन-बस्तियों को साफ करने की अगर सुधारक पार्टी की प्रतिज्ञा हो तो मैं उसे आशीर्वाद देता हूँ, पर मै आपसे यह कहूँगा कि मेम्बर लोग खुद अपने हाथ मे झाड़ू और बालटी लेकर कूड़ा और मैला साफ करने न जायँगे तो शायद ही वे कुछ कर सकेंगे।"

[२]

हमारी ग्राम-सेवा

इस सप्ताह कुछ अधिक लिखने को नहीं है। एक-दो घटनाएँ ऐसी जरूर हुई जिनसे यह प्रगट होता है कि जिस गाव के साथ रोज हमारा अधिकाधिक परिचय बढता जाता है वह गाव न जाने किस प्रकार की प्रकृति का बना है।

उस दिन क्या हुआ कि एक मकान के पास रास्ते पर एक छोटा-सा पिल्ला मरा पडा था। न तो मकान-मालिक को ही यह हुआ न किसी और को ही कि उसे वहा से खुद हटा-हुटू दें या किसी और से हटवा दे। वे लोग सब हरिजन थे। सब-के-सब मीरा बहिन के पास आये और उनसे कहा कि आप इस पिल्ले को कही फिकवादे तो बडी मेहरबानी हो।

"तुम्ही बताओ, मै उसे किससे हटवाऊँ ?"

"उन्ही मुफ्त के भगियो से जो हमारे यहा रोज सबेरे काम करने आते है," फौरन यह जवाब मिला।

"पर वे उसे क्यों उठाकर फेंकें ? वे लोग तुम्हारे गांव के तो हैं नहीं। तुम उन्हें कोई तनख्वाह तो देते नहीं। क्या सिर्फ इसीलिए कि वे भले आदमी तुम्हारे यहा रोज आते हैं और तुम्हारा सारा कूड़ा-कचरा साफ करते हैं ?"

वे कुछ शरमिंदा-से मालूम हुए, पर यह शरमिंदगी एक क्षण

(३२६ वें पृष्ठ के दूसरे कालम पर)

हरिजन-सेवक

शनिवार, २३ नवम्बर, १९३५

भय की भावना

अनेक ग्रामसेवक इस बात से बड़े भयभीत हो रहे हैं कि गावों में अपनी गुजर-बसर के लिए वे क्या करेंगे। उन्हें इस बात का बड़ा भय है कि अगर किसी संस्था या व्यक्ति से उन्हें खर्चा न मिला तो गावों में कोई काम करके तो वे अपना गुजारा शायद ही चला सकें। फिर अगर कहीं वे विवाहित हुए और कुटुम्ब का भी भार उनपर हुआ, तब तो उन्हें और भी ज्यादा चिन्ता होती है। लेकिन, मेरी राय में उनकी यह धारणा ठीक नहीं है। इसमें शक नहीं कि अगर कोई आदमी शहरी मनोवृत्ति के साथ गाव में जाय और शहर की ही तरह वहा भी अपना रहन-सहन रखना चाहे तब तो उसके लिए वहा अपने गुजारे-लायक कमाई करना असम्भव ही है, उस हालत में तो वह तभी उतनी कमाई कर सकता है, जबकि शहरवालों की तरह वह ग्रामवासियो का शोषण करे। लेकिन अगर कोई व्यक्ति किसी एक गाव में जा बसे और वहा गाववालो की ही तरह रहने की कोशिश करे तो अपने परिश्रम द्वारा अपनी गुजर करने में उसे कोई दिक्कत न होगी। उसे अपने-नई इस बात का विश्वास होना चाहिए कि जब वे ग्रामवासी भी किसी-न-किसी तरह अपने गुजारे-लायक कमा ही लेते हैं जो बारहो महीने बाप-दादो के वक्त से चले आये ढंग पर अपनी बुद्धि का उपयोग किये बगैर आख मूदकर चले जाते हैं, तो वह भी कम-से-कम उतना तो कमा ही लेगा जितना कि औसत तौर पर कोई ग्रामवासी कमा लेता है। और ऐसा करते हुए वह किसी ग्रामवासी की रोजी भी नहीं मारेगा, क्योंकि गाव में वह उत्पादक बनकर जायगा, न कि दूसरो की कमाई पर गुलछर्रे उडानेवाला (परोपजीवी) बनकर।

गाव में जानेवाले ग्रामसेवक के साथ अगर उसका साधारण परिवार भी हो, तो उसकी पत्नी तथा परिवार के एक अन्य व्यक्ति को चाहिए कि वे भी दिन-भर की पूरी मशक्कत करें। यह तो नहीं कहा जा सकता कि गाव में जाते ही कोई कार्यकर्ता गाववालो की तरह कड़ी मशक्कत करने लगेगा, लेकिन अगर वह अपनी झिझक और भय की भावना छोड़दे तो यह जरूर है कि अपनी मेहनत की कमी की पूर्ति वह बुद्धिमत्ता-पूर्वक काम करने से कर लेगा। जबतक कि गाववाले उसकी सेवा की इतनी कद्र न करने लगें कि उसका सारा समय उनकी अधिक-से-अधिक सेवा में ही लगने लगे, तबतक उसे कोई ऐसा उत्पादक-कार्य करते रहना चाहिए जिसमें दूसरो पर बोझ पड़े बिना उसका खर्च चलता रहे। हा, जब उसका सारा समय सेवा में ही लगने लगे तब वह उस अतिरिक्त उत्पत्ति में से बतौर कमीशन के कुछ पाने का पात्र होगा, जोकि उसके द्वारा प्रेरित उपायों के फलस्वरूप होने लगेगी। लेकिन ग्राम-उद्योग-संघ की देख-रेख में जो ग्राम-कार्य शुरू हुआ है उसका कुछ महीनों का अनुभव तो यह जाहिर करता है कि गाववालो में अपनी पैठ बहुत धीरे-धीरे होगी और कार्यकर्ता को गाववालों के सामने अपने आचरण से यह सिद्ध कर देना पड़ेगा कि श्रम और सदाचरण की दृष्टि से वह उनके लिए एक नमूना-रूप है। इससे उन्हें बड़ा सुन्दर पाठ मिलेगा और अगर कार्यकर्ता गाववालों का संरक्षक बनकर अपनी पूजा कराने के बजाय उन्हीं-में से एक बनकर, अर्थात् उनके साथ हिल-मिलकर, रहेगा तो देर सबेर उसका असर पड़े बिना नहीं रह सकता।

सवाल अब यह है कि जीविका के लिए गाव में कौन-सा काम किया जाय? उसे और उसके घरवालों को अपना कुछ-न-कुछ समय तो गांव की सफाई में लगाना ही होगा, चाहे गाववाले इस में उसकी मदद करें या न करें, और साधारण तौर पर दवा-दारू की जो सीधी-सादी मदद वह कर सकता हो वह भी करेगा ही। इतना तो हर कोई कर ही सकता है कि कुनैन या इसी तरह की मामूली दवा बनादे, घाव या जख्म धोकर साफ करदे, मैली आखो व कानो को धोदे और घाव पर साफ मरहम लगादे। मैं ऐसी किसी किताब की खोज में हूँ जिसमें गावों में हमेशा ही होनेवाली मामूली बीमारियो के लिए सरल-से-सरल उपाय व हिदायतें हो। क्योंकि कैसी भी हो, ये दोनों बातें तो ग्राम-कार्य का मूल अंग होगी ही। लेकिन इनमें ग्रामसेवक का दो घण्टा रोज से अधिक समय न लगना चाहिए। ग्रामसेवक के लिए आठ घण्टे का दिन जैसी कोई बात नहीं। ग्रामवासियों के लिए वह जो श्रम करता है वह तो प्रेम का श्रम है। इसलिए अपने गुजारे के लिए, इन दो घंटों के अलावा, उसे कम-से-कम आठ घंटे तो लगाने ही होंगे। यह ध्यान रखने की बात है कि चर्खा-संघ और ग्राम-उद्योग-संघने जो नयी योजना बनाई है उसके अनुसार तो सब तरह के श्रम का कम-से-कम मूल्य या महत्व एकसमान ही है। इस प्रकार जो पिंजारा अपनी पींजन पर एक घंटा काम करके औसत परिमाण में रुई धुनकता है वह ठीक उतनी ही मजदूरी पायगा जितनी कि उतनी देर के अर्थात् एक घंटेतक निश्चित परिमाण में किये हुए काम के लिए किसी बुनकर, कतवैये या कागज बनानेवाले को मिलेगी। इसलिए ग्रामसेवक अपने इच्छानुसार कोई भी ऐसा काम चुन सकता है जिसे वह आसानी से कर सके, अलबत्ता यह खबरदारी हमेशा रखनी चाहिए कि काम ऐसा ही चुना जाय जिसके फलस्वरूप तैयार होनेवाला माल उसी गाव में या उसके आस-पास के इलाके में खप सके अथवा जिस माल की संघ को जरूरत हो।

इस बात की जरूरत तो हरेक ही गाव में है कि ऐसी कोई दूकान वहा हो, जहा से खाने-पीने की चीजें शुद्ध और वाजिबी दामों पर मिल सकें। यह ठीक है कि दूकान चाहे कितनीही छोटी हो, फिर भी उसके लिए थोड़ी-बहुत पूंजी तो चाहिए ही। लेकिन जो कार्यकर्ता अपने कार्यक्षेत्र में थोड़ा भी परिचित हो उसकी ईमानदारी पर लोगों का इतना विश्वास तो होगा ही कि दूकान के लिए थोड़ा थोक माल उसे उधार मिल जाय।

इस तरह के और उदाहरण देने की अब जरूरत नहीं। जो सेवक सतत निरीक्षण की वृत्ति से काम करेगा, उसे नित-नई बातों का पता लगता ही रहेगा और जल्दी ही वह यह जान लेगा कि उसे कौन-सा ऐसा काम करना चाहिए जिससे उसका निर्वाह भी हो और जिन ग्रामवासियो की उसे सेवा करनी है उनके लिए वह आदर्श भी उपस्थित कर सके। अतएव उसे ऐसा कोई काम चुनना पड़ेगा जिससे ग्रामवासियों का शोषण न हो, और न उनके आरोग्य या नैतिकता को ही धक्का लगे, बल्कि उन्हें अपने फुर्सत के फालतू समय में हुनर-उद्योग का कोई काम करके अपनी बराय नाम आमदनी में कुछ वृद्धि करने की शिक्षा मिले। सतत निरीक्षण से

उसका ध्यान उन चीजों की ओर जायगा, जो गावों में अकारथ ही बर्बाद होती हैं—जैसे खेतों में फसल के साथ उग आनेवाले घास-पात और दूसरी अपने-आप पैदा होनेवाली चीजें। बहुत जल्द उसे पता लग जायगा कि उनमें से बहुत-सी तो बड़ी उपयोगी हैं। उनमें से खाने अथवा अन्य उपयोग के लायक वनस्पतियों का वह चुनाव करले तो गोया वह अपनी रोजी कमाने के ही बराबर होगा। मीरा बहिनने मुझे तरह-तरह के पत्थर गावों से लाकर दिये हैं जो देखने में संगमरमर-जैसे सुन्दर लगते हैं और बड़े उपयोगी हैं। मुझे फुर्सत मिली तो शीघ्र ही मैं मामूली औजारों से उन्हें तरह-तरह की शक्लों में तब्दील करके बाजार में बेचने-लायक बना दूंगा। काका साहबने बास की सड़ी-गली खपच्चियों को, जो निकम्मी समझकर जलाई जानेवाली थीं, एक मामूली-सी चाकू के सहारे कलम काटने के चाकुओं और लकड़ी की चम्मचों में परिणत कर दिया, जिन्हें एक हदतक बाजार में बेचा भी जा सकता है। मगन वाड़ी में कुछ लोग अपने फुर्सत के समय का उपयोग रद्दी कागजों के, जोकि एक तरफ कोरे होते हैं, लिफाफे बनाने में करते हैं।

दरअसल बात यह है कि गांववाले अब बिलकुल निराश हो चुके हैं। जिस किसी भी अजनबी को वे देखते हैं, उन्हें यही खयाल होता है कि वह उनका गला दबाने और उनका शोषण करने के ही लिए आया है। बुद्धि और श्रम का सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने से, अर्थात् उनमें बुद्धि-शक्ति न होने से, उनकी विचार-शक्ति कुण्ठित हो गई है। काम के समय का भी वे सर्वोत्तम उपयोग नहीं करते। ग्राम-सेवक को चाहिए कि ऐसे गावों में वह अपने हृदय में प्रेम और आशा भरकर जाय। उसे अपने-लिए इस बात का विश्वास रहना चाहिए कि जहां विवेक-हीनता से काम करके स्त्री-पुरुष साल में छः महीने बेकार बैठे रहते हैं वहां वह पूरे साल विवेक-पूर्वक काम करेगा तो निश्चय ही वह ग्रामवासियों का विश्वास-पात्र बन जायगा और उनके बीच परिश्रम करता हुआ ईमानदारी के साथ अपने निर्वाह-लायक कमाई कर सकेगा।

"लेकिन मेरे बाल-बच्चों और उनकी पढ़ाई-लिखाई का क्या होगा?" यह बात ग्रामसेवा के इच्छुक कार्यकर्ता पूछते हैं। मगर बच्चों को आधुनिक ढंग की शिक्षा देनी हो तो मैं कोई ऐसी बात नहीं बता सकता जो कारगर हो। हां, अगर उन्हें स्वस्थ, मजबूत, ईमानदार और समझदार ग्रामवासी बनाना काफी समझा जाय, जिससे कि जब चाहे तब गांवों में वे अपनी रोजी कमा सकें, तो उन्हें सब-कुछ शिक्षा अपने मा-बाप की छत्रच्छाया में ही मिल जायगी, और उसके साथ-साथ, जैसे ही वे सोचने-समझनेलायक उम्र को पहुँचेंगे और अपने हाथ-पैरों का ठीक-ठीक उपयोग करने लग जायँगे, वैसे ही अपने परिवार में वे थोड़ी-बहुत कमाई भी करने लगेंगे। सुघड़ घर के समान कोई स्कूल नहीं हो सकता; न ईमानदार सदाचारी माता-पिता के समान कोई अध्यापक ही हो सकते हैं। आधुनिक माध्यमिक शिक्षा तो गाव वालों पर एक व्यर्थ का बोझ है। उनके बच्चे कभी भी उसे ग्रहण नहीं कर सकेंगे—और ईश्वर की कृपा है कि, सुघड़ घरेलू शिक्षा उन्हें प्राप्त हो तो वे उसमें महरूम भी हर्गिज नहीं रहेंगे। ग्रामसेवक चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, अगर ऐसा न हो कि अपने घर को सुघड़ रख सके, तो उसे ग्राम-सेवक बनने की ऊँची सुविधा व सम्मान प्राप्त करने की आकांक्षा न रखना ही ठीक होगा'।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

एक महान् समाज-सेवक का स्वर्गवास

श्रीगोपाल कृष्ण देवधर के स्वर्गवास से देश एक महान् समाज-सेवक और हरिजनों का एक सुदृढ और विश्वसनीय प्रभु गँवा बैठा। स्व० गोखले की स्थापित की हुई 'सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी' के श्री देवधर संस्थापक सदस्यों में से थे। प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ के वे अध्यक्ष भी थे। देश में ऐसा एक भी दुर्भिक्ष नहीं पड़ा या ऐसी बाढ़ नहीं आई जहां उनकी याद न की गई हो। वे चाहते तो आसानी से काफी पैसा पैदा कर सकते थे, पर उन्होंने तो गरीबी का ही बाना धारण किया, क्योंकि लोक-सेवक का जीवन-सिद्धान्त ही गरीबी है। उनकी अथक कार्यशक्ति संक्रामक थी। जब भी उनको समाज सेवा की मांग हुई, वे कभी उससे पीछे नहीं रहे। उनका जीवन एक निष्कलंक पवित्रता का जीवन था। अपने प्रिय पूना-सेवा-सदन के तो वे प्राण थे। उसके लिए उन्होंने इतना अच्छी तरह परिश्रम किया कि एक छोटी सी चीज से बढ़ते-बढ़ते वह आज इतनी अच्छी संस्था बन गई है कि भारतवर्ष में जितनी भी इस प्रकार की संस्थाएँ हैं उनसे वह किसी तरह पीछे नहीं। दिवंगत आत्मा के परिवार के साथ मैं सादर समवेदना प्रगट करता हूं।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

ग्रामउद्योग-संघ की बैठक

[ग्रामउद्योग-संघ के व्यवस्थापक-मंडल की बैठक के कार्य-विवरण में से नीचे मुख्य भाग उद्धृत किये जाते हैं।]

व्यवस्थापक-मंडल की एक बैठक ७ और ८ नवम्बर, १९३५ को मगनवाड़ी, वर्धा में हुई, जिसमें निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे.—

१—महात्मा गांधी
२—श्री वैकुंठराय मेहता
३—श्रीमती गोशीबेन कप्तेन
४—डॉ० प्रफुल्लचन्द्र घोष
५—सेठ शूरजी वल्लभदास
६—श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम
७—श्री शंकरलाल बैंकर
८—डॉ० गोपीचन्द
९—श्री कुमारप्पा

सेठ जमनालाल बजाज भी, जिन्हें आमंत्रण दिया गया था, उपस्थित थे। प्रधान मंत्री श्री कुमारप्पाने सूचित किया कि संघ के अध्यक्ष श्री कृष्णदास जाजू बीमार होने के कारण उपस्थित नहीं हो सकते, अतः इस बैठक के लिए श्री वैकुण्ठराय मेहता अध्यक्ष चुन गये। इसके बाद मंत्रीने निम्नलिखित रिपोर्ट पेश की.—

व्यवस्थापक मंडल के ३१ अक्तूबर १९३५ तक के हिसाब में बतलाये हुए अनुसार ट्रस्टी मंडल से २०८१५४) ८१ की रकम प्राप्त हुई थी, और ८३९१)११ रोकड़ बाकी थी। घानी का छप्पर, मधु-मक्खियों का झोपड़ा, बुनाई का छप्पर, और कागज के काम का छप्पर बढ़ाने तथा एक छोटी झोपड़ी बनाने में १६८१-) खर्च हुए। इस बीच में ५०३८)॥। की कीमत का इमारती सामान इकट्ठा किया गया।'

२२ अगस्त, १९३५ को मंडल की जो पिछली बैठक हुई थी उसके बाद २६ साधारण सदस्य भरती किये गये। एक सदस्यने त्यागपत्र दे दिया है। मंडल की गत बैठक के बाद दो एजेण्ट

नियुक्त किये गये है । तीन एजेण्टोने त्यागपत्र दे दिये हैं । मंडल की गत बैठक के बाद दो दूकानो को प्रमाणपत्र दिये गये है । आज इस प्रकार सदस्यों आदि की संख्या है :—

८२३ साधारण सदस्य ।

६१ एजेण्ट ।

२७ प्रमाणपत्रवाली दूकाने ।

५ सबद्ध सस्थाएँ ।

मगनवाडी मे सिंचाई के लिए कुएँ पर एक रहँट लगाया गया है ।

संग्रहालय के लिए श्री सुरेन्द्रनाथ कार की तैयार की हुई कच्ची योजना स्वीकार की गई, और यह निश्चय हुआ कि उनसे तफसील-वार योजना बना देने की प्रार्थना की जाय । आर्किटेक्ट श्री डाक्टर और म्हात्रे ब्योरेवार अन्दाजा देने के लिए, और इस योजना को अमल मे लाने के अर्थ आवश्यक वस्तुओ का दर दाम बतलाने के लिए नियुक्त किये गये । उन्होंने कृपाकर अपनी सेवाएँ मुफ्त मे देना स्वीकार किया है । और हमने उन्हे यह वचन दिया है कि हमारे काम के लिए उन्हे जो सफर-खर्च और अपनी गाठ से अन्य खर्च करना पडे वह हम चुका देंगे ।

यह निश्चय हुआ कि तमाम प्रमाणपत्रवाली दूकानो को, उन पर जो पैसा निकलता हो वह, और अपना हिसाब आखिरी तारीख से लेकर एक महीने के भीतर भेज देना चाहिए । अगर न भेजा तो उनके प्रमाणपत्र रद कर दिये जायँगे । प्रमाणपत्र-सम्बन्धी नये आवेदन-पत्रो के बारे में यह निश्चय किया गया कि प्रमाणपत्र के लिए जो आवेदन-पत्र भेजा जाय उसके साथ ही कम-से-कम ५) शुल्क के भेज देने चाहिए ।

ग्रामसेवको के लिए एक शिक्षणालय खोलने के प्रश्न पर विचार हुआ, और श्री कृष्णदास जाजू, डॉ० गोपीचद, श्रीजयराम-दास दौलतराम और राजकुमारी अमृतकुंवर की भेजी हुई तजवीजो पर बहस होने के बाद इस प्रकार का शिक्षणालय खोलने का निर्णय हुआ, और निम्नलिखित खर्चे के लिए ४०००) की रकम मंजूर की गई —

६) मासिक की एक साल के लिए १५ छात्रवृत्तिया	१०८०)
सुपरिटेण्डेण्ट, अध्यापक और नौकर का वेतन	१३२०)
सामान	२००)
दीगर खर्च	२००)
मकान	१२००)

अध्यक्ष और मंत्री को आवश्यक ब्योरेवार व्यवस्था करने तथा शिक्षणालय चलाने के लिए नियम इत्यादि बनाने का अधिकार दिया गया ।

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करें । ग्राहक-नंबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा ।

व्यवस्थापक—'हरिजन-सेवक'

"तकली कैसे कातें ?"

यह पुस्तक, एक प्रति के लिए -)॥। के टिकट भेजने से, 'चर्खा-संघ-कार्यालय, मिर्जापुर रोड, अहमदाबाद' से भी मिल सकती है ।

साप्ताहिक पत्र

[३२३वे पृष्ठ के आगे]

ही रही । मीरा बहिन हाथ में डोल लटकाये जब उस जगह जाने लगी, तो वे भी सब उनके पीछे-पीछे बड़ी खुशी से हो लिये । उन्होंने पिल्ले को उगली से बतलाते हुए कहा, "देखो, वह पड़ा है।" उसकी माने पहले ही अपने पजो से खोद-खादकर एक गड्ढे में उसे आधा गाड दिया था । मीरा बहिनने उस नन्हीं-सी लाश को खोदके निकाला और उसे वे डोल मे रखकर हमारे बनाये हुए एक खेत के गड्ढे मे डालने के लिए ले गई । "पर मान लो, अगर मै न होती, और वे स्वेच्छा से काम करनेवाले भगी भी न होते, तो तुम लोग क्या करते ?" मीरा बहिनने उनसे पूछा । थोड़ी देरतक तो उन्हे कोई जवाब नही सूझा । पीछे कुछ लोगोंने यह कहा कि, "गोड़ आकर हटा देता ।" मालूम होता है कि ये गोड लोग हरिजनो की ही एक उपजाति में आते हैं, और लाशों को उठा-उठाकर फेंकना इन गोडो का ही काम है । लेकिन पता नही, इस बार गोड क्यो नही बुलाया गया ।

साझ को जिस जगह प्रार्थना होती है वहा नित्य ही कुछ उपद्रवी लोग पत्थर फेंकते है । इसलिए सामूहिक प्रार्थना फिलहाल हमे बन्द ही कर देनी पडी है ।

पानी का प्रश्न अब भी हल नही हो सका । मीरा बहिन तबतक उनसे पानी भरवायँगी नही जबतक कि वे उन्हे और उनके साथियो को कुएँ से पानी नही भरने देंगे, और जबतक उन्हे पानी प्राप्त नही होता, तबतक वे गाव में खाना नही पका सकती । इसलिए सबेरे और शाम को उनके लिए बना-बनाया भोजन भेजना पड़ता है ।

यह सब होते हुए भी, हम यह कह सकते है कि मीरा बहिन के वहा रहने का धीरे-धीरे लोगो पर असर तो पड रहा है । उस दिन एक माग शाम को आया और मीरा बहिन से बोला, "जब से आप यहा आई है, मैंने शराब पीना छोड दिया है ।"

"तुम जल्दी मे कोई काम न करना," उन्होंने उससे कहा, "जब तुम्हे यह निश्चय हो जाय कि यह तेज अर्क एक तरह का जहर है और उसे छोड ही देना चाहिए, तभी तुम उसे छोडना ।"

ज़रूरत उन्हें इस शिक्षा की है

किंतु इसमे सदेह नही कि सिंदी गावने कुछ बाहर के लोगो का तो ध्यान आकर्षित किया है । यहा के नये कालेज के अध्यापक कुछ विद्यार्थियो को लेकर एक दिन वहा गये थे, और अब उन्होने गाव में कुछ सामाजिक सेवा-कार्य करने की इच्छा प्रगट की है । उस दिन वे गाधीजी से मिलने आये थे । यह देखकर कि वे वयस्कों और बच्चो के लिए रात्रि-पाठशालाएँ खोलने का विचार कर रहे है, गांधीजीने यह जानना चाहा कि, "आप लोग ग्राम-उद्योग-संघ के नीचे काम करना पसद करेगे या अपनी अलग ही योजना बनायँगे ? अगर आप अलग योजना बनाना चाहते हैं, तब तो स्वभावतः मेरे पास कोई सूचनाएँ देने को नहीं है, और अगर आप ग्रामउद्योग-सघ के नीचे काम करना चाहते है तो ग्रामवासियो को जिस प्रकार की शिक्षा की जरूरत है उसके संबंध मे मेरा अपना जो विचार है वह मैं आपको बतलाऊँगा । जिस शिक्षा की उन्हें जरूरत है वह अक्षर-ज्ञान की शिक्षा नहीं, किंतु उनके आर्थिक-जीवन की शिक्षा है, उन्हे आज यह सिखलाने की जरूरत है कि वे अपनी आर्थिक अवस्था को किस तरह बेहतर बना सकते हैं ।

आज वे महज मशीनों की तरह मशक्कत कर रहे हैं। न तो उन्हें यही खयाल है कि अपने पड़ोसियों के प्रति उनकी क्या जवाबदेही है, और न वे श्रम का आनंद ही अनुभव करते हैं। यह परिस्थिति कैसे आई इसकी सारी जिम्मेवारी हमारे ऊपर है, क्योंकि उनके साथ हमने कभी घनिष्ठ संपर्क रखा ही नहीं। स्व० रमेशचन्द्र दत्त की तरह हमने उनकी राजनीतिक-आर्थिक अवस्था का अध्ययन अवश्य किया है। किंतु जहां वे यह बतलाते हैं कि वे किस बदतर हालत को पहुँच गये हैं, वहां उन्हें यह पता नहीं कि वे खुद अपनी दारुण दरिद्रता को आंशिक रूप में या पूर्णतया किस प्रकार दूर कर सकते हैं। अब मेरे विचार से उन्हें यह बतलाया जा सकता है कि वे अपनी आय किस तरह दुगुनी कर सकते हैं। आप यह कहेंगे कि वे बेचारे भारी-भारी कर चुकाते-चुकाते ही मरे जाते हैं, उनकी आर्थिक अवस्था सुधरे तो कैसे? यह ठीक है, पर इस वक्त उस प्रश्न से मेरा कोई संबंध नहीं। हमारी वर्तमान नीति यह है कि राजनीति और राजनीतिक-अर्थनीति के तमाम प्रश्नों को अभी छोड़ ही दिया जाय। इसलिए आपको अपने कार्य का श्रीगणेश उनकी सामाजिक, स्वास्थ्य तथा स्वच्छता-संबंधी और नैतिक अवस्था के अध्ययन से करना होगा। इस काम के लिए आप मैजिक लालटेन का उपयोग कर सकते हैं। आप उन्हें यह बतलावें कि अस्पृश्यता धर्म का अंग नहीं है, और यह दरजे की ऊँचाई का खयाल किसी भी धर्म-मजहब से संबंध नहीं रखता। जिस तरह एक स्वस्थ मनुष्य किसी अस्वस्थ मनुष्य को दरजे में अपने से नीचा नहीं समझता, उसी तरह कोई अध्यापक या व्यापारी किसी भंगी को अपने से नीचा न समझे। धर्म और नीति के इन मूल सिद्धांतों की उन्हें शिक्षा देनी होगी। इसके बाद आप उन्हें भूगोल और इतिहास पढ़ायें - इतिहास आप सबसे पहले उन्हें उनके अपने गांव का बतायें। इसके बाद मैं उन्हें इन चीजों का ज्ञान कराने के लिए अक्षर-ज्ञान की शिक्षा दूंगा, पर इसके लिए उन्हें मैट्रिक या बी० ए०, एम० ए० तक पढ़ाने की जरूरत नहीं। अंग्रेजी का ज्ञान आजकल भले ही आय का एक साधन हो, पर मनुष्य के मानसिक या शारीरिक स्वास्थ्य से इसका जोड़ना जरूरी नहीं। हमारी तमाम शक्ति आज एक विदेशी भाषा में कमाल हासिल करने और गट्ठरों किताबें पढ़ने में क्षीण हो रही है। यह चीज न तो हमारे शारीरिक और चारित्रिक संगठन में ही किसी तरह की कोई मदद देती है, और न ग्रामवासियों की सेवा करने में ही सहायक होती है। अब आप देखेंगे कि मैं अक्षर-ज्ञान का आरंभ कहां से करता हूं। अक्षर-ज्ञान का स्थान अंत में और सब से पीछे आता है, न कि आदि में, और तब वह स्थायी वस्तुओं के लिए सहायकरूप होता है। आपके समय का इससे अच्छा उपयोग और क्या हो सकता है कि आप रोज रात को एक घंटा ग्रामवासियों को आरोग्य के नियम बतायें, सामाजिक सदाचार सिखायें और वह मार्ग बतलायें, जिसपर चलकर वे सहज श्रम के द्वारा अपने जीवन को महान् उद्योगमय बना सकें।

पड़ोसी के प्रति हमारा कर्त्तव्य

हमारे देश में, जहां व्यक्तिगत स्वच्छता की भावना इतनी उत्कट है, वहां अक्सर देखने में आता है कि सामूहिक स्वच्छता की बहुत बुरी तरह से कमी है। हम अपना आंगन या हाता भले ही साफ रखेंगे, पर अपने यहां का तमाम कूड़ा-कचरा झाड़कर अपने पड़ोसी के हाते की दीवार पर फेंकने में जरा भी नहीं हिचकेंगे, इसमें हम अपना जरा भी कुसूर महसूस नहीं करेंगे। कूड़े-कचरे के घूरों की तो कुछ पूछिए ही नहीं, वे तो आपको चारों तरफ नजर आयेंगे। म्यूनिसिपैलिटियां तक अक्सर उनपर कोई ध्यान नहीं देतीं, और न कायदा-कानून तोड़नेवालों से जवाब तलब ही करती हैं। जो मामले हमारे यहां कुसूर-जैसे मालूम ही नहीं होते उन मामलों में इंग्लैण्ड में क्या होता है, यह 'दि चिल्ड्रेन्स न्यूजपेपर' नामक पत्र के हाल के एक अंक में उद्धृत निम्नलिखित पैरे से मालूम हो सकता है —

"इस बात का हरेक मनुष्य को ज्ञान नहीं कि अगर वह अपनी जमीन पर घास-पात या झाड़-झंखाड़ उगने और उसका बीज फैलने देता है तो वह कायदा-कानून भंग करता है। किसी अंग्रेज की नजर में उसका मकान महल हो सकता है, पर उसके पड़ोस का मकान भी उसके पड़ोसी के लिए महल है। अगर उस अंग्रेज की जमीन में, जिसे वह घास-पात उगने से बचाता है, पड़ोसी की लापर्वाही से घास-पात उग आये, तो उसकी यह एक ऐसी शिकायत है जिसे दूर करना कानून का फर्ज है।

कृषि-विभाग-द्वारा प्रकाशित आंकड़ों से यह पता चलता है कि गत वर्ष करीब ३००० ऐसे मामले अधिकारियों के सामने पेश किये गये थे। अपनी जमीन पर गर्व करनेवाले दूरदेश किसान यह महसूस करते हैं कि कानून और भी सख्ती से लागू होना चाहिए।

एक कठिनाई इमारत बनवानेवाले सट्टेबाजों के हाथों में जमीन चले जाने से होती है। वह जमीन खेती न होने से घास-पात से खूब भर जाती है, जिसके बीज तमाम इर्द-गिर्द के खेतों और बगीचों तक पहुंचाते हैं। देहातों में मकान बनवानेवालों को भी, लापर्वाह किसानों की ही तरह, अपने पड़ोसियों के प्रति कर्त्तव्य-पालन की शिक्षा देनी होगी।

श्रम की महिमा

अपने मित्र किशोरलाल मशरूवाला का किया हुआ खलील गिब्रान की रचना "दि प्रॉफेट" का "विदाय वेळाए" नामक सुंदर गुजराती अनुवाद यदि मैं न पढ़ता तो मैं सीरिया के इस महाकवि से अपरिचित ही रहता। खलील गिब्रान् का जन्म सन् १८८३ में सीरिया देश के अंतर्गत माउण्ट लेबानोन में हुआ था। यह देश यहूदियों के अनेक पैगंबरों के जन्मस्थल के लिए प्रसिद्ध है। बारह वर्ष की उम्र में उसके माता-पिता उसे बेल्जियम, फ्रांस और अमेरिका के संयुक्त राज्यों में अपने साथ घुमाने ले गये थे, और इन देशों में उसने शिक्षा भी प्राप्त की थी। उसने अरबी भाषा में बहुत-सी पुस्तकें लिखी थीं, पर सन् १९१८ में वह अंग्रेजी में लिखने लगा, और मृत्युपर्यन्त, १९३१ तक, वह अंग्रेजी में ही लिखता रहा। उसकी पुस्तकों के अनुवाद यूरोप की बीस से भी अधिक भाषाओं में हुए हैं। 'प्रॉफेट' उसने अपनी मृत्यु से आठ वर्ष पहले लिखा था। जीवन, मृत्यु, प्रेम, बालक, श्रम, हर्ष, दुःख आदि विषयों पर लेखक के विचारों की यह पुस्तक मानो पुष्प-वाटिका है। इसकी भाषा बाइबल की काव्यमयी भाषा से मिलती है। शैली बड़ी मनोहारिणी है। सीरिया के इस कवि के संबंध में सुप्रसिद्ध आयरिश तत्ववेत्ता तथा कवि स्व० ज्यॉर्ज रसलने कहा है :—

"मुझे नहीं लगता कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजलि' के

बाद पूर्व से ऐसी मुदर ध्वनि निकली हो जैसी खलील गिब्रान् के —जो चित्रकार एव कवि है—'दि प्रॉफेट' में सुनाई पड़ती है। विचार मे इससे अधिक सुन्दर पुस्तक मैने वर्षो से नही देखी, और इसे जब मै पढ़ता हूँ तब सुकरात का 'दि बेंकवेट' मे कहा हुआ यह वाक्य कि-- विचार का सौन्दर्य आकृति के सौन्दर्य से अधिक सम्मोहक असर डालता है—अधिक स्पष्टता के साथ मेरी समझ मे आता है। ·········इस पुस्तक के एक-एक पृष्ठ से मै उद्धरण दे सकता हूँ, और हरेक पृष्ठ मे कोई-न-कोई सुन्दर और प्रेरक विचार मे ढूँढ सकता हूँ।"

पर अब स्वय इस पुस्तक को देखिए। मै यहा उससे अनेक उद्धरण देने का प्रयत्न नही करूँगा, किन्तु लेखकने जहा श्रम की महिमा गाई है वह पूरा प्रकरण मै यहा उद्धृत करूँगा। अन्य पचीस विषयो पर यो एक-से-एक सुन्दर और कला-पूर्ण परिच्छेद है, पर मैने श्रम का विषय ही चुना है, जो मुझे अत्यन्त अपील करता है और 'हरिजन' के पाठको के लिए मुझे यह सबसे अधिक उपयुक्त भी मालूम होता है :—

"इसके बाद एक किसानने पूछा, श्रम के विषय मे मुझे समझाओ।

इसका उत्तर देते हुए वह बोला

जगत् और जगदात्मा की चालके साथ-साथ अपनी चाल रखने के लिए तुम श्रम करो।

कारण, आलसी रहने का अर्थ है ऋतुओं (काल) मे अपरिचित रहना, और जिस गौरवयुक्त तथा अभिमानयुक्त प्रपत्ति अर्थात् शरणभावना से चैतन्य का जुलूस अनंत की ओर कूच करता है उससे छुटकारा पा जाना।

* * *

जब तुम श्रम करते हो तब तुम बांसुरी बन जाते हो; और उसके अतर मे घड़िया (काल) अपनी फूंको से उसे सगीतमय करती है।

तुम लोगो मे से ऐसा कौन है जो, जब जगत् के समस्त पदार्थ सवाद मे गान करते हो, तब—मूक और तृष्ण—ठोस डंडा बना रहना चाहता हो ?

* * *

श्रम शाप है और मजदूरी मंदभाग्य है, ऐसा तुम्हे सदा सिखाया गया है।

पर मै कहता हूँ कि जब तुम श्रम करते हो तब तुम पृथ्वी माता की अगाध-से-अगाध आशा को सफल करते हो, जो आशा उसने तुमसे आदि से ही रखी थी।

और मजदूरी से चिपटे रहने का अर्थ है जीवन को यथार्थ रूप में चाहना।

और मजदूरी के द्वारा जीवन को चाहने का अर्थ है जीवन के गूढ़तम रहस्य का प्रगाढ परिचय प्राप्त करना।

* * *

पर यदि तुम दु:ख के मारे जन्म को तो विपत्ति और देह के पोषण को कपाल पर लिखा हुआ शाप समझते हो, तो मुझे तुमसे कहना चाहिए कि तुम अपने कपाल पर लिखे हुए शाप को केवल पर-सेवा से ही पखार सकोगे।

* * *

फिर, तुम्हे समझाया गया है कि जीवन अंधकार-मय है। पर यह थके हुए मनुष्य का विचार है, और थकावट की पीड़ा में तुमने इसे सच मान लिया है।

और मैं भी कहता हूँ कि जीवन सचमुच ही अधकारमय है— यदि वह अन्त प्रेरणा से रहित हो तो।

और अन्त प्रेरणा भी अधी है—यदि वह ज्ञानयुक्त न हो तो।

और वह मेहनत निरर्थक है—यदि उसमें प्रेम न हो तो।

पर जब तुम प्रेम से मेहनत करते हो तब तुम अपने आपके साथ, दूसरो के साथ तथा ईश्वर के साथ योग करते हो।

* * *

और प्रेमभरी मेहनत क्या है ?

वह है तुम्हारे हृदय में से कातकर निकले हुए सूत की खुद ही बुनी हुई खादी, मानो तुम्हारा प्रियतम उसे पहननेवाला हो।

अथवा, तुम्हारा प्रेम से बनाया हुआ मकान मानो तुम्हारा प्रियतम उसमे रहनेवाला हो।

अथवा तुम्हारी करुणा से बोई हुई, तुम्हारे हर्ष से लुनी हुई खेती - मानो तुम्हारा प्रियतम उसका फल आरोगनेवाला हो।

(प्रेमभरी मेहनत का) अर्थ है जो कुछ भी तुम रचो उसे अपने प्राणो से प्राणवान करना, और समग्र स्वर्गवासी पितृगण तुम्हारे चारो ओर खडे होकर तुम्हे निहार रहे है, यह जानना।

* * *

मानो तुम नीद के झोको मे बोल रहे हो इस तरह अकसर मैने तुम्हे यह कहते हुए सुना है कि, "संगमरमर को तराशकर उसमें अपनी भावना को मूर्तिमत करनेवाला (शिल्पी) हल से जमीन को जोतनेवाले किसान से श्रेष्ठ है।

और इन्द्र-धनुष्य के रगो को पकड़कर उन्हे परदे पर मनुष्याकृति मे उतारनेवाला (चित्रकार) जूते बनानेवाले मोची से श्रेष्ठ है।"

पर मै—नीद के झोको मे नही, किन्तु दिन की पूर्ण जागृति मे कहता हूँ कि वायु घास के क्षुद्र तृण के साथ रमती है इसकी अपेक्षा वह विशाल वट वृक्ष के साथ अधिक मीठी बाते नही करती;

केवल वही श्रेष्ठ है जो वायु की सन-सन आवाज को अपने प्रेम के द्वारा सगीतमय करके अधिक मधुर बनाता है।

* * *

श्रम का अर्थ है प्रेम का साकार स्वरूप।

पर यदि तुम प्रेम से श्रम नही कर सकते तब तो यह बेहतर है कि तुम अपना काम छोड़दो और मन्दिर की सीढ़ियो पर बैठकर हर्ष-पूर्वक मेहनत करनेवालो के हाथ से भीख लेलो।

क्योकि, यदि तुम लापर्वाही से रोटी सेकोगे तो वह कड़वी होगी और मनुष्य की भूख वह आधी ही बुझायगी।

और यदि कोल्हू चलाते हुए तुम्हारा मन नही लगता, तो तुम्हारी वह अरुचि रस मे विष पैदा कर देगी।

और तुम्हारा कठ गंधर्व के जैसा हो, पर अपने गान में तुम्हें प्रेम न हो, तो तुम दिन के कोलाहल से और रात्रि के कोलाहल मे मनुष्यों के कान बहरे कर डालोगे।"

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi, by R. S. Gupte.

एक रोचक बात

"आत्मवत सर्वभूतेषु"

Reg. No. L 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक' किंग्सवे, दिल्ली.

संपादक — वियोगी हरि

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)

एक प्रति का -)

भाग ३]

दिल्ली, शनिवार, ३० नवम्बर, १९३५.

[संख्या ४१

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्राम-सेवा

उस दिन सिंदी मे हमने एक सभा की थी। सभा मे अधिकतर हमारे अपने ही आदमी थे। गांव के लोग तो चौबीस-पचीस ही होंगे। जमनालालजी को भी हमने उस सभा में बुलाया था। उन्होने तथा दूसरे सज्जनोने हमारा उद्देश लोगों को अच्छी तरह समझाया, और उनकी विवेक-बुद्धि से अपील की कि उन्हें हमारे उद्देश का महत्व समझना चाहिए। जहांतक स्वयं सिंदी गांव का सम्बन्ध था, वहांतक तो यही लगा कि हमारी इस सभा का कोई फल नही निकला, क्योंकि दूसरे ही दिन कुछ स्त्रियोंने खब गला फाड़-फाड़के मीरा बहिन से कहा कि 'अगर तुम लोगोंने हमारे लिए कोई पाखाना-याखाना बनवाया तो हम उसमें हर्गिज जाने की नही।' मगर ऐसा मालूम हुआ कि पड़ोस के एक गांव के कुछ लोगों पर, जो सभा में आये थे, खासा अच्छा असर पड़ा, और दूसरे दिन उन्होने मीरा बहिन से आकर कहा कि आप कृपाकर हमारे गांव में चलिए और वही काम कीजिए।"

लेकिन सिंदी गांव छोड़ने का मीरा बहिनने जो निर्णय किया उससे इस बात का कोई सम्बन्ध नही। सिंदी की गणना वे गांव में करती ही नही। उसे तो वे वर्धा का ही एक गलीज पुरवा समझती हैं। वे बहुत दिनो से किसी ऐसे गांव में जाने के लिए व्याकुल हो रही है जो यथार्थ में गांव हो। किसी दूसरे गांव मे बसने की उत्कण्ठा मन में होते हुए भी मीरा बहिन जो सिंदी मे टिकी हुई थी उसका एक और भी सबब था। एकदिन गांधीजीने वह कारण मालूम कर लिया। वह कारण यह था कि मीरा बहिन बापू को खुद सिंदी में जाने से रोकना चाहती थी। इसलिए गांधीजीने उन्हें यह सलाह दी कि तुम अपने मन का कोई गांव ढूढ लो, और श्री गजानन नायक को, जो सिंदी में पहले से ही काम करते थे, उनकी जगह पर रख दिया। श्री नायक अब मीरा बहिन की झोंपड़ी में रहने लगे हैं।

पानी की उन्हें भी वही कठिनाई पड़ी। पड़ोस के एक कुम्हारने उन्हें दो डोल पानी तो दे दिया, पर उसे यह गवारा नही कि वे कुएँ के पास आवे। लेकिन उत्तरभारत के एक सज्जनने उन्हें यह वचन दे दिया है कि आप मेरे पम्पवाले कुएँ से पानी ले सकते हैं। श्री नायकने वहां अब रात्रि-पाठशाला खोल दी है। वर्धा-कालेज का एक अध्यापक भी उन्हें इस कार्य में सहायता देता है। बड़ी उम्र के लगभग दस-बारह मनुष्यों की उपस्थिति हो जाती है।

इस गांव में हम नौ महीने से कूड़ा-कचरा और मल-मूत्र साफ करने का काम कर रहे हैं, पर अब कहीं हमें वहां एक ऐसा आदमी मिला है जो यह चाहता है कि हम उसके खेत में मैले की बाल्टियां उँडेल दिया करें। एक दिन उसने गजानन नायक से आकर पूछा कि, 'जिस खेत में आप लोग मैला डालते हैं, क्या उसका मालिक आपको कुछ देता भी है?' जब उसे यह बतलाया गया कि 'नहीं, वह तो हमें एक पाई भी नहीं देता'—तब उसने कहा, 'यह बात है, तब तो आप मेरे खेत मे खुशी से [illegible] खाद तो मेरा ही होगा, मुझे इसमें कोई आपत्ति नही।' खैर, मैले के खाद का उसने इतना महत्व तो समझा, यह क्या कम है!

अखण्ड श्रद्धा

हरिजन-सेवक-संघ की कार्यकारिणी-समिति की बैठक के काम से श्री घनश्यामदास बिड़ला यहां आये थे। उस दिन गांधीजी के साथ उनकी जो बात हुई उससे उस श्रद्धा का, जो गांधीजी के प्राणों को टिकाये हुए हैं, सबसे अधिक पता उसी दिन चला। श्री घनश्यामदासजी हमारा नालवाड़ी का चर्मालय देखकर उस समय लौटे ही थे, और वहां उन्होंने जो काम देखा था, उससे वे बहुत ही प्रसन्न हुए थे। पर उन्हें यह शंका थी कि जिस काम में इतने अनवरत त्याग और अमन्द श्रद्धा की जरूरत हो, वह अधिक समयतक कैसे चल सकेगा।

उन्होंने कहा, "आप कहते हैं कि जिन सज्जन की निगरानी में यह चर्मालय चल रहा है वे केवल निर्वाहलायक थोड़ा-सा पैसा लेकर ही काम कर रहे हैं। उनकी इस त्याग-वृत्ति की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।"

"हां, वह जाति का ब्राह्मण है और ग्रेज्युएट भी है," गांधीजीने कहा। "आठ आने रोज से ज्यादा वह लेता ही नही। उसकी पत्नी भी एक दूसरी जगह सारे दिन काम करती है और केवल निर्वाहलायक ही पैसा लेती है।"

"हां! इस सबसे मुझे आश्चर्य होता है, पर पता नही, मशीनो के इस युग में यह चीज कबतक चल सकेगी।"

"मुझे ऐसा कोई भय नहीं है," गांधीजीने कहा, "क्योंकि मेरे अन्दर यह पक्का विश्वास है कि जब यन्त्र-युग के ये सारे पराक्रम अलोप हो जायँगे, तब भी हमारी ये दस्तकारियां रहेंगी, जब

तमाम लूट-खसोट बन्द हो जायगी, तब भी सेवा और सच्ची मेहनत-मजदूरी रहेगी। यह श्रद्धा ही मुझे जिला रही है और इसी बल-भरोसे पर मैं काम कर रहा हूँ। और फिर हम हताश किसलिए हो? अनंत काल के विराट विस्तार में थोड़े-से वर्षों का लेखा ही क्या? मनुष्य-जाति के आदि उद्भव का अध्ययन हमें करोड़ों वर्ष पीछे ले जाता है। स्टीफेन्सन और कोलम्बस-जैसे मनुष्यों को उनकी अदम्य कार्य-श्रद्धाने ही जीवित रखा था। अपने काम में मेरी जो श्रद्धा है वही मेरे प्राणों को टिकाये हुए है, किन्तु उसके साथ मेरी यह दृढ़ धारणा भी है कि मेरी श्रद्धा को दूसरी जो तमाम चीजें ललकारती हुई मालूम देती हैं उनका अन्त हो जायगा। क्या यह बात तुम्हें दिखाई नहीं देती कि अगर हिन्दुस्तान में जगह-जगह कल-कारखाने खड़े कर दिये गये, तो लूट-खसोट की नीयत से दूसरी दुनियाओं को तलाशने के लिए एक नादिरशाह की जरूरत पड़ेगी, ब्रिटेन और जापान और अमेरिका की, और रूस और इटली की नौसेना और अन्य सैन्य-शक्ति के साथ हमें खुद प्रति-युद्ध करना पड़ेगा। इन संघर्षों के विषय में सोचता हूँ तो मेरा सिर चक्कर खाने लगता है। नहीं, इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि जहां यंत्र-युग का लक्ष्य मनुष्यों को मशीनों में परिणत कर देने का है, वहां मेरा यह लक्ष्य है कि जो मनुष्य आज मशीन बन गया है उसे फिर से उसकी मनुष्यता की स्थिति को पहुँचा दिया जाय।"

"सो तो मैं आपकी इस अखंड श्रद्धा को अच्छी तरह समझता हूँ," घनश्यामदासजीने मुस्कराते हुए कहा, "पर शायद आप अपने अदम्य उत्साह में आकर यह भूल जाते हैं कि आप हमारे साथ अनन्त कालतक तो रहेंगे नहीं। आप वृद्ध होते जा रहे हैं। आप खूब पैसा इकट्ठा करके अपने ग्राम-कार्य को एक अच्छे विशाल क्षेत्र में क्यों नहीं फैलाते?"

"नहीं, जितने की मुझे जरूरत होती है उससे ज्यादा पैसा इकट्ठा करने में मैं विश्वास नहीं करता।"

"पर मान लीजिए, आप बीस, और बीस न सही दस ही गाव नमूने के बनादे, तो कैसा हो?"

"अगर यह इतना आसान काम है, तो तुम अपने रुपये से यह कर सकते हो। मगर मैं जानता हूँ, कि यह काम इतना आसान है नहीं। यह बात नहीं कि रुपये की जादू की लकड़ी फेरने ही कोई गाव नमूने का बन जायगा। और मैं यह जानता हूँ कि जनता से जो भी पैसा मुझे मिलता है उससे पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। फिर यह भी बात है कि मैं अब किसी संघ के केन्द्रीय फण्ड के लिए और अधिक पैसा इकट्ठा नहीं करना चाहता। गुजरात में इतनी अधिक हरिजन-पाठशालाएँ और आश्रम हैं कि जिनका खर्चा चलाने के लिए २९०००) वार्षिक चाहिए। मैं तुमसे गुजरात के काम के लिए क्यों मागू? क्या यह गुजरातियों का धर्म नहीं है कि अपने गुजरात में ही वहां के हरिजन-कार्य के लिए वे पैसा इकट्ठा कर लिया करें? अगर उन्हें पैसा नहीं मिल सकता, तो बाहर से सहायता मांगने से तो यह बेहतर होगा कि वे अपनी संस्थाएँ ही बन्द करदें।"

"अपना अंतर शोधो"

वर्धा में जो अनेक सार्वजनिक संस्थाएँ मौजूद हैं उन सबके अस्तित्व के कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से जमनालालजी हैं। उनमें उन्होंने एक संस्था और जोड़ दी है। यद्यपि यह बिल्कुल छोटी-सी संस्था है, तो भी उसके पीछे कोमल दयार्द्र भावनाएँ हैं, और इससे उस मनुष्य की मनोवृत्ति का पता चलता है, जो लोकोपकार के लिए धनोपार्जन करने में विश्वास करता है। उस नई संस्था से आशय हरिजन-छात्रावास से है, जिसकी नींव २४ अक्तूबर को श्रीघनश्यामदासजी बिड़लाने रखी थी। जमनालालजीने अपनी कोठी के स्व० मुनीम की स्मृति में ४०००) का दान इस छात्रावास को दिया है। सरकारने भी इसके लिए नाममात्र के सिर्फ १) सालाना के पट्टे पर २०००) कीमत की जमीन दे दी है। नीव रखते समय घनश्यामदासजीने जो छोटा-सा सुंदर भाषण दिया उसमें उन्होंने हरिजन-कार्य के आड़े आनेवाली उन कठिनाइयों की चर्चा की जिन कठिनाइयों का सामना हरिजन-सेवकों को युग-पुरातन दुराग्रहों के मुकाबले में करना पड़ रहा है, और कहा कि जब मैंने "हरिजन" में यह पढ़ा कि जिन लोगों की सेवा करने मीरा बहिन सिंदी गाव गई हैं वे उन्हें अपने कुओं पर पानी नहीं भरने देते, तब मेरा सिर मारे शर्म के नीचा हो गया। बिड़लाजीने कहा, "डॉ० अंबेडकरने हाल में जो घोषणा की है उसने हमें नींद के झोकों से जगा-सा दिया है और मालूम देता है कि कोई ऐसा काम करने के लिए अनेक लोग बड़े उतावले हो रहे हैं कि जिससे डॉ० अंबेडकर हिंदूधर्म छोड़कर किसी दूसरे धर्म में न जाने पायें। मुझे अंदेशा है कि यह सारी शक्ति का बुरी तरह से खर्च हो रहा है। मान लीजिए कि डॉ० अंबेडकर को अगर हमने रोक भी लिया, पर उन लाखों करोड़ों को हम किस तरह दूसरे धर्मों में जाने से रोक सकते हैं जिन्हें हमारे सहधर्मी, संभव है कि, आगे ऐसा करने के लिए बाध्य करें? इसलिए हमें तो अपना अंतर शोधना चाहिए। एक ऐसे सुंदर भजन से हमारे इस कार्य का आरंभ हुआ है कि उससे मुझे आज कुछ कहने के लिए बिल्कुल ठीक मसाला मिल गया है। हमारी श्रद्धा ठीक है, उसमें कोई कमी नहीं। वह बड़ी ही सुंदर है। किंतु जिस मंदिर में हमने उस श्रद्धा की स्थापना कर रखी है वह चारों तरफ से बिल्कुल बंद है। उस मंदिर के द्वार हमें खोल देने चाहिएँ, और उसमें अच्छी तरह दीपक जलाकर उसे सुंदर, सुहावना और उसके भीतर जो देवता है उसके निवास-योग्य बना देना चाहिए। हरिजन-सेवक-संघ की सारी नीति और कार्यक्रम ही आत्मशुद्धि का है। श्रद्धा हमारी महान् है और पवित्र है, पर हम लोगों को परंपरा से प्राप्त उस श्रद्धा के योग्य बनना है, अपने आपको शुद्ध करना है। भगवान् करे, यह हरिजन-छा[illegible] की अपने [illegible] है। [illegible]हे कितना ही छोटा हो, हमें उस आत्मशुद्धि की ओ[illegible] कदम ले जाने में सहायक हो।"

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

बाल-विवाह की भीषणता

बाल-विवाह-निषेधक समितिने बाल-विवाहविषयक एक उपयोगी तथा शिक्षाप्रद पत्रिका प्रकाशित की है। उसमें से मुख्य-मुख्य भाग मैं नीचे उद्धृत करता हूँ:—

"सन् १९३१ की सेंसस रिपोर्ट में १५ वर्ष से नीचे की उम्र में ब्याही हुई लड़कियों के आंकड़े इस तरह दिये गये हैं:—

उम्र	प्रतिशत ब्याही हुई स्त्रियां
० से १	.८
१ " २	१.२
२ " ३	२.०
३ " ४	४.२

४ " ५	६.६
५ " १०	१९.३
१० " १५	३८.१

इस तरह लगभग एक वर्ष से कम उम्रवाली सौ लड़कियों में एक विवाहित है, और १५ वर्ष से कम उम्र की लड़कियों में भी ऐसी ही भयंकरता देखने में आती है।

इसका एक नतीजा यह हुआ है कि हमारे देश में एक ऐसे प्रमाण में बाल विधवाएँ मौजूद हैं कि जिसपर विश्वास तक नहीं किया जा सकता। इसके जरा आकड़े देखिए :—

उम्र	विधवाओं की संख्या
० से १	१५१५
१ " २	१७८५
२ " ३	३४८५
३ " ४	९०७६
४ " ५	१५०१९
५ " १०	१०५४८२
१० " १५	१८५३३९

अक्सर यह कहा जाता है कि हमारे देश में बाल-विवाह से होनेवाली हानि संख्या की दृष्टि से बहुत कम है, और यह प्रथा सार्वत्रिक नहीं है। पर यदि बालविधवाओं की सच्ची संख्या उपयुक्त आकड़ों के सौवें भाग जितनी भी हो, तो भी कोई भी दयाधर्म वाली जनता या सरकार इस प्रथा को बन्द ही कर देगी, तबतक वह एक क्षण भी आराम से नहीं बैठेगी। इस सम्बन्ध में हमें यह भी याद रखना चाहिए कि इनमें अधिकांश लड़कियों के लिए पुनर्विवाह असंभव ही है।

बाल-विवाह का दूसरा दुष्परिणाम यह हुआ कि उसकी वजह से जवान जच्चाएँ सौहर में ही मर जाती हैं। हिंदुस्तान में हरसाल सौहर में औसतन २००,००० स्त्रियां मरती हैं, अर्थात् हर घंटे २० की मृत्यु होती है, और उनमें ज्यादातर बीस बरस के अंदर की स्त्रियां ही होती हैं। सर जॉन मेगवा के आकड़ों के अनुसार प्रति एक हजार जवान जच्चाओं में सौ सौहर में ही स्वर्ग सिधार जाती हैं। हमारे पास जच्चाओं की मृत्यु का ठीक-ठीक हिसाब नहीं है। पर यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में प्रति हजार यह प्रमाण जहां २०५ है वहां इग्लैण्ड में ८५ है।

बाल-विवाह के कारण माता की ही नहीं, बल्कि बालक और समस्त जाति की भी अपरिमित हानि होती है। हिंदुस्तान में प्रति हजार जन्मे हुए बालकों में १८१ बालक मर जाते हैं। यह तो औसत है। पर इस देश में ऐसी कितनी ही जगह हैं जहां यह औसत फी हजार ४०० तक पहुँच जाता है। इस सबंध में हम कितने पिछड़े हुए हैं यह इग्लैण्ड और जापान के साथ तुलना करने से स्पष्ट हो जायगा। इग्लैण्ड और जापान में बाल-मृत्यु का प्रमाण प्रति हजार क्रमश: ६० और १२४ ही है। सचमुच तब बड़ा भय मालूम होता है जब हम यह याद करते हैं कि यह बुराई रोकी जा सकती है, और शिक्षित समाज की अंतरात्मा जागृत न होने से ही यह बुराई इस निरकुशता के साथ बढ़ गई है।

सबसे अधिक दुःख की बात यह है कि इस विषय में प्रगति इतनी अधिक मंद है कि वह करीब-करीब न होने जैसी कही जा सकती है। उदाहरणार्थ, १९२१ में एक साल से कम उम्र की पत्नियों की संख्या ९०६६ थी; १९३१ में यह संख्या ४४०८२ होगई, अर्थात् पहले की संख्या से पंचगुनी बढ़गई, जहां जन-संख्या तो सिर्फ .१ ही बढ़ी है। फिर, १९२१ में एक साल से कम उम्र की ७५९ विधवाएँ थीं, यह संख्या १९३१ में १५१५ तक पहुँच गई। इन बुराइयों को रोकने के लिए जो उपाय किये जाते हैं उनके प्रमाण में जन-संख्या बड़ी ही तेजी से बढ़ती जाती है। इसलिए उन्हें दूर करने के लिए सक्रिय उपाय हाथ में लेने की आवश्यकता आज पहले से भी अधिक तात्कालिक मालूम होती है—और इस विषय में जनसाधारण तथा सरकार की अंतरात्मा जागृत करने की अपेक्षा अधिक महत्व और अधिक तात्कालिक काम भारत के नारी-आंदोलन के पास दूसरा हो ही नहीं सकता।"

ये आकड़े देखकर हम सबको अपना सिर शरम से नीचा कर लेना चाहिए। पर इससे यह कुप्रथा दूर होने की नहीं। बाल-विवाह की यह बुराई जितनी शहरों में फैली हुई है उतनी ही गांवों में भी फैली हुई है। यह काम तो खास करके स्त्रियों का है। पुरुषों को भी अपने हिस्से का काम करना तो है ही, परन्तु पुरुष जब पशु बन जाता है तब वह समझदारी की बात सुनना पसन्द नहीं करता। इसलिए माताओं को ही उनके इन्कार कर देने का अधिकार बताना है और उन्हें उनका धर्म समझाना है। यह उन्हें सिवा स्त्रियों के और कौन सिखा सकता है? इसलिए मैं यह सलाह देने का साहस करता हूँ कि अखिल भारतीय महिला-परिषद् को यदि अपना नाम सार्थक करना है तो उसे शहरों से हटकर गांवों के कार्य-क्षेत्र में उतरना चाहिए। ये अच्छी बहुमूल्य पत्रिकाएँ हैं। पर थोड़ी-सी ही शहरों में रहनेवाली अग्रेजी पढ़ी-लिखी बहिनोंतक ही ये पहुँचेंगी। असल जरूरत तो गांवों की स्त्रियों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क जोड़ने की है। यह सम्बन्ध अगर कभी जुड़ भी गया, तो भी जुड़ने के साथ ही काम सरल नहीं हो जायगा। पर किसी-न-किसी दिन तो इस दिशा में शुरूआत करनी ही पड़ेगी। उसके बाद ही किसी परिणाम की आशा की जा सकती है। अखिल भारतीय महिला-परिषद् क्या अखिल भारतीय ग्रामउद्योग-संघ के साथ-साथ काम करेगी? कोई भी ग्रामसेवक या ग्रामसेविका चाहे कितनी ही कुशल हो तो भी उसे मात्र समाज-सुधार के लिए गांवों के लोगों के पास जाने का विचार नहीं करना चाहिए। उसे तो ग्राम-जीवन के सभी अंगों के सम्पर्क में आना पड़ेगा। मैंने अनेक बार कहा है, और फिर कहूँगा कि ग्रामसेवा ही सच्ची जन-शिक्षा है। शिक्षा अक्षर-ज्ञान की नहीं देनी है, बल्कि ग्रामवासियों को यह सिखाना है कि मनुष्य, जो विचार करनेवाला प्राणी कहा जाता है, वास्तविक जीवन व्यतीत करने के योग्य किस प्रकार बन सकता है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करें। ग्राहक-नंबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा।

व्यवस्थापक—'हरिजन-सेवक'

हरिजन-सेवक

शनिवार, ३० नवम्बर, १९३५

एक रोचक बात

गत सप्ताह वर्धा मे हरिजन-सेवक-सघ की कार्यकारिणी-समिति की बैठक हुई थी। मेरे "जात-पात नष्ट होनी ही चाहिए" शीर्षक लेख को लेकर उसमे कुछ सदस्योने यह प्रश्न उठाया कि मेरे लिए 'हरिजन' या हरिजन-सेवक', जो कि हरिजन-सेवक-संघ की ओर से निकलते है, मेरा जाति-प्रथा के सम्बन्ध मे ऐसे विचार प्रगट करना कहांतक ठीक है, जो, सम्भव है, सघ के अनेक सदस्यो को पसन्द न हो? अथवा, क्या मै उनमें ऐसे विचार प्रगट कर सकता हूँ, जो सघ की अख्तियार की हुई नीति के अदर न आते हों, या क्या सघ अपने उद्देशो का क्षेत्र व्यापक बना सकता है?

मैंने उन्हे बताया कि मैने ऐसा समझ-बूझकर किया है, क्योकि अपनी राय मे व्यक्तिगत रूप से मै 'हरिजन' या 'हरिजन-सेवक' के अदर उन विचारो को देने के लिए स्वतन्त्र हूँ, जो हो सकता है कि, कुछ सदस्यो के विचारो से मेल न खाते हो या जिन्हे अभी सघने अपनी नीति के तौर पर न अपनाया हो। मेरी राय मे संघ के हरेक सदस्य को यह स्वतत्रता है, क्योकि उसके विचारो से संघ के उद्देश मे कोई बाधा नही पडती। सघ की नीति तो नरम-गरम दोनो ही तरह के सुधारकों के बीच अधिक-से-अधिक सामजस्य बनाये रखना है; क्योकि हरिजन-सेवक-सघ मे दोनो ही तरह के लोग काफी सख्या मे मौजूद है। उसमे जहां ऐसे सनातनी भी हैं, जो अस्पृश्यता-निवारण को खाली स्पर्श तक ही सीमित रखना चाहते है, वहा ऐसे लोग भी है जो रोटी-बेटी-व्यवहार तक को उसमें शामिल करना चाहते है। सदस्यता के प्रतिज्ञा-पत्र मे तो वही बात रक्खी गई है जो हरेक सदस्य का मंजूर हो सके और वह अपने जीवन मे उसपर अमल कर सके। उससे किसी सदस्य को और आगे बढने मे उस वक्ततक कोई बाधा नही पडती, जबतक कि वह उन विचारों को सघ पर लादने की कोशिश न करे। इस आन्दोलन क आरभ मे सब तरह के हिन्दुओ की एक सम्मिलित सभा हुई थी और उसने एक ऐसा व्यापक प्रस्ताव पास किया था, जिसपर उपस्थितजनो मे अधिकांश व्यक्ति सहमत थे। इस निर्णय की बुद्धिमत्ता इस बात से सिद्ध है कि, भारत-भूषण मालवीयजी की कृपा से, प्राय सर्व-सम्मिति से वह हुआ था। यह स्पष्ट है कि उस प्रस्ताव मे अगर यह बात होती कि सघ के सदस्य व्यक्तिगत रूप से भी प्रगतिशील विचार नही रख सकते या उनपर अमल नही कर सकते तो अनेक सदस्य उन पाबन्दियों को स्वीकार न करते। इसके विरुद्ध, दूसरी ओर, साधारण सदस्य तो दूर, व्यवस्थापक-मण्डल के सदस्यो का बहुमत भी, जहांतक उद्देश से सम्बन्ध है, सघ का विधान नहीं बदल सकता। यह तो खास तौर पर इस काम के लिए की जानेवाली हिन्दुओ की ऐसी आम सभा के द्वारा ही हो सकता है, जिसमें सब तरह के विचार रखनेवाले हिन्दुओ का प्रतिनिधित्व हो। इसलिए फूक-फूंककर कदम रखनेवाले सुधारक को तो इस बात से निश्चिन्त रहना चाहिए कि संघ की मूल नीति मे सहसा कोई परिवर्तन नहीं होगा; दूसरी ओर अत्यन्त उग्र सुधारक भी, व्यक्तिगत रूप मे, निर्बाध रीति से उन विचारों का प्रतिपादन कर सकते हैं, जिनसे उनकी राय में हिन्दू-जाति शुद्ध और स्वस्थ हो सकती है।

प्रसगवश यहां यह भी बतला देना चाहिए कि "जात-पांत नष्ट होनी ही चाहिए" शीर्षक लेख मे मैने जो विचार प्रगट किये है उन्हे, भिन्न-भिन्न शीर्षकों से, मै अक्सर इन पत्रो में प्रगट करता रहा हूँ। फिर वह लेख सवर्ण और हरिजन हिन्दुओ के सम्बन्ध मे नही है। उसमे तो सवर्णों के ही सुधार का वर्णन है। जब अस्पृश्यता नही रहेगी, तो अस्पृश्यो की बहुत-कुछ वैसी ही स्थिति हो जायगी जैसी कि आज सवर्णो की है। और तब कोई भी नियम या प्रथा क्यो न हो, सवर्ण लोग उन हरिजनो पर हुकूमत करेंगे जो कि उस वक्त हरिजन न रहेगे। इसलिए अगर उस वक्त भी आज की ही तरह जाति-भेद बना रहा, तो हरिजनो और सवर्णों के बीच न तो खान-पान का सम्बन्ध होगा और न व्याह-शादी का ही। लेकिन अगर जाति-प्रथा, जिस रूप मे वह आजकल है, न रहे, जैसा कि किसी-न-किसी दिन होगा अवश्य, तो फिर हरिजनो और सवर्णों के बीच आपस में उसी तरह रोटी-बेटी-व्यवहार होने लगेगा जिस तरह कि सवर्ण-सवर्ण के बीच होता है। और अगर वर्ण-व्यवस्था रही, जोकि मुझे उम्मीद है रहेगी, तो भूत-काल की तरह काम-धन्धे परस्पर मे मर्यादित रहेगे, लेकिन रोटी-बेटी-व्यवहार मे उसी तरह कोई प्रतिबन्ध नही रहेगा जिस तरह कि पहले नही था। जो कुछ भी होगा, यह तय है, वह सघ-द्वारा सस्था क रूप मे की गई हलचल के कारण नही, बल्कि उन दूसरी शक्तियों के कारण होगा जिनका न तो सघ सचालन ही कर सकता है और न जिनपर वह नियत्रण ही रख सकता है। सघ के सदस्य भी व्यक्तिगत रूप में, उन शक्तियो को अपने इच्छानुसार दृढ करने और आगे बढाने मे पर्याप्त रूप से भाग लेगे, यह निश्चित है।

अंग्रेजी से] मो० क० गांधी

आदर्श और व्यावहारिकता

श्री गोपबन्धु चौधरी लिखते है :—

"दयालु ग्राहकों की आवश्यकता है," शीर्षक लेख मे आपने हिसाब लगाया है कि 'स्वावलम्बी खादी का मतलब यह है कि २ गज खादी बाहर के लिए तैयार की जाय, जब कि ३ गज कारीगर या मजदूर आदि के निज के व्यवहार के लिए हो।' प्रत्यक्षतः यह हिसाब इस बात पर निर्भर है कि रुई और बुनाई के दामों के लिए स्वावलम्बी कत्तिन या कतवैये को कुछ ज्यादा या अतिरिक्त सूत कातना पड़ेगा। बेशक आप यह स्वीकार करते हैं कि रुई खरीदने या बुनकर को बुनाई के दाम देने के लिए कत्तिन या कतवैया गाव के दूसरे धन्धे भी कर सकते है। लेकिन लेख को पढ़कर ऐसा भासित होता है, मानों स्वावलम्बी खादी पूर्णतः खादी की बिकरी पर निर्भर है। मगर क्या यह सही आदर्श है? क्या स्वावलम्बी खादी का आदर्श यह नही है कि जहांतक हो ज्यादातर कत्तिनें अपनी खुद की ही रुई कातें या रुई खरीदकर बुनकर को बुनाई के दाम अपनी उस कमाई में से दें जो वे दूसरे ग्रामीण धन्धो या खेती-बारी के श्रम से करे?"

"नही तो, जब कि हमारा उद्देश गांव के हरेक घर को स्वावलम्बी बना देना है, तब कत्तिनों द्वारा बिकरी के लिए तैयार

किये हुए अतिरिक्त दो गज की बिकरी कहा होगी ? क्या शहरों की मांग इतनी बढ जाने की सभावना है ?"

"मुझे तो ऐसा मालूम पडता है कि स्वावलम्बी खादी को व्यावसायिक रूप मे खादी की बिकरी तक ले जाकर हम स्वावलम्बी खादी का पक्ष कमजोर करते है और खादी-कार्यकर्ताओ के सामने अमली तौर पर उसे दूसरा स्थान देते है जिसमें कि आप क्रान्तिकारी परिवर्तन करना चाहते है। स्वावलम्बी खादी तो अपने गुण-दोष के ऊपर स्वतंत्र रूप से बढनी चाहिए, क्योकि बहुत-सी ऐसी जमीन अभी अनुपयोगी पड़ी हुई है जिसमे उसके लिए आवश्यक रुई पैदा की जा सकती है और लोगों के पास इतना समय भी फालतू है ही कि जिसमे वे सूत कात सकते है।"

निस्सन्देह आदर्श तो यही है कि जैसे हरेक परिवार को अपनी आवश्यकतानुसार खेती करके अपने द्वारा पैदा किये नाज को ही पकाकर खाना चाहिए, ठीक उसी तरह कपडे के लिए भी हरेक परिवार को खुद ही अपनी रुई पैदा करने, कातने, बुनने और अपने ही कपडे पहनने चाहिएं। लेकिन हम यह जानते है कि हरेक परिवार इस आदर्श को नही पहुचेगा और न पहुच ही सकता है; साथ ही हम यह भी जानते है कि स्वावलम्बी खादी के विशुद्ध सदेश का प्रचार आरम्भ करने के साथ ही कार्यकर्ता को सफलता नही मिल जायगी। गोपबन्धु बाबूने खुद जो बात सुझाई है कि गृहस्थ आवश्यक रुई खरीदकर उसको कातले और फिर अपनी अन्य कमाई की बचत के पैसो से उसे बुनकर द्वारा बुनवालें, वह स्वय एक बीच का उपाय है। लेकिन लाखो व्यक्तियो के पास तो बचत ही नही होती और लाखो व्यक्ति ऐसे मौजूद है जो इनमे से कोई-सा भी काम न कर सीधे बाजार से ही अपना बना-बनाया कपडा खरीदते है। अपने लिए सूत कातकर अन्य किसी धन्धे की कमाई से उसका कपडा बुनवा लेना एक बीच का उपाय है। अपनी आवश्यकता से अधिक कातकर जो कमाई हो उससे कपडा बुनवा लेना इस तरह का दूसरा बीच का उपाय है और सम्भवत मजदूर (कारीगर) व कपडा पहननेवाले दोनो की दृष्टि से सबसे आसान तरीका है। और इस उपाय को अमली रूप देने के लिए खादी-केन्द्र तो तैयार है ही। खादी-भण्डारो के कार्य-कर्ताओ को चाहिए कि वे कतवैयो और दूसरे कारीगरो को इस बात के लिए प्रेरित करे कि अगर उन्हे चरखा-सघ के द्वारा काम पाते रहना है तो उन्हे खादी ही पहननी चाहिए। उनमे अनेक ऐसे है जो कताई, बुनाई, धुनाई या रगाई का काम करके ही अपनी जीविका चलाते है। अगर वे अपनी जरूरत से ज्यादा अर्थात् बाहर बेचने के लिए खादी तैयार करें तो खुद उनको तो बिलकुल खादी ही पहरनी चाहिए। और अगर कतवैयो की मजूरी बढा देने पर भी खादी की मौजूदा मांग बनी रहे तब तो यह मुश्किल भी नही होना चाहिए।

अमल में तो सभी उपायो पर साथ-ही-साथ काम किया जायगा। नई योजना में तो जो बात ठीक है उसपर जोर देते हुए ध्येय को स्पष्ट मात्र कर दिया गया है। अब खादी-कार्यकर्ता खादी की कीमत घटाने व बिकरी बढाने पर जोर नही देगे। अब से तो वे इसी बात पर जोर देंगे कि, जहांतक कपडो का सवाल है, कम-से-कम कताई तक तो वे स्वावलम्बी हो ही जायँ—अर्थात् अपने लिए आवश्यक कपडों का सूत तो कात ही लिया करें। उन्हें कारीगरों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क पैदा करना होगा, उनसे मेल-जोल करना पडेगा, उनकी जरूरतों का पता लगाकर उनकी मदद करनी होगी और उनके फुर्सत के समय का अच्छे-से-अच्छा उपयोग करके और सब के लिए समान अवसर उपस्थित करके उन्हें उत्तरोत्तर उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारना होगा। यह ऐसा कार्यक्रम है जो बड़े-से-बडे महत्वाकांक्षी कार्यकर्त्ता के लिए भी काफी होना चाहिए। उनके लिए सब से मुश्किल बात तो यह होगी कि एक ओर तो लाखो व्यक्तियो को समझा-बुझाकर इस बात के लिए तैयार करना कि वे अपने फुर्सत के समय का उपयोग अपनी भलाई के लिए करे, दूसरी ओर खरीदनेवालो शहरवासियो और दलालो—को यह महसूस कराना कि गाव का बना कपड़ा जाहिरा तौर पर चाहे उसमे कुछ महँगा ही क्यो न हो जो कि वे अबतक लेते आये है और उसका ऊपरी रूप भी चाहे वैसा आकर्षक न हो जिसके कि वे अबतक आदी रहे है, पर दूर जाकर वही उन्हे सस्ता पडता है। क्योकि उससे लोगो की माली हालत सुधरकर उनकी क्रय-शक्ति बढती है। इसलिए नई योजना का उद्देश 'जाति, रग या धर्म' के भेदभाव बिना राष्ट्र की सर्वोत्तम शक्तियो का उपयोग करना है। लेकिन अन्त मे बात यही सामने आती है कि "इस काम के लिए जैसे शुद्ध, स्वार्थ-त्यागी, अध्यवसायी और परिश्रमी कार्यकर्ताओ की आवश्यकता है, क्या वे पर्याप्त सख्या में हमारे पास है ?"

'अंग्रेजी' से] मो० क० गांधी

नीम के पत्ते और इमली

मेरे कुछ प्रश्नो के जवाब मे कुनूर के 'न्यूट्रीशन रिसर्च' के डायरेक्टर डॉ० एक्राइडने निम्नलिखित रसदायक उत्तर भेजे हैं:—

"आप आहार के तत्वो के बारे में पूछते है। इस सम्बन्ध में यहा तथा भारत के दूसरे प्रान्तो मे तथ्य तेजी के साथ इकट्ठे होते जा रहे है, और मुझे आशा है कि बहुत जल्द तमाम साधारण आहारो की रासायनिक रचना, विटामिन की मात्रा इत्यादि बतलानेवाली प्रामाणिक पुस्तक या पत्रिका आहार-विज्ञान में दिलचस्पी लेनेवालो को प्राप्त हो जायगी। आप जो यह कहते है कि भिन्न-भिन्न प्रकार की वनस्पतियो की चर्बी और तेल शरीर पर भिन्न-भिन्न प्रकार का असर करते है, यह सही है—इसमें मुझे कोई सदेह नही। इसका कारण शायद उनकी भिन्न-भिन्न रासायनिक रचना हो, किन्तु दुर्भाग्य से अभी इसमें हम रासायनिक रचना और आहारविषयक प्रभाव का सम्बन्ध जोडने की स्थितितक नही पहुँचे। बहुत सभव है कि ससार मे कही कोई शोधक शीघ्र हमें इस विषय में ज्ञान करायगा।

हमने प्रयोगशाला में नीम के पत्तो का विश्लेषण किया है। पहले जिन अनेक हरी भाजियो का अन्वेषण किया गया है उनके मुकाबले में इन पत्तो में पोषक तत्त्व अधिक मात्रा मे है। पके हुए पत्तो और कोपलो दोनो मे ही प्रोटीन, कैलश्यम, लोहा और विटामिन 'ए' खासी अच्छी मात्रा में होते है, और इन दृष्टियों से नीम के पत्ते चौराई कोथमीर, काहू की पत्तियों, सहजना, पालक और दूसरी कई भाजियो से बढकर होते है। लोग जो इन पत्तों को अधिक पौष्टिक मानते है इसका यही कारण होगा। मेरा विश्वास है कि चीन की आधुनिक प्रयोग-शालाओं में जो अन्वेषण हुए हैं, उनमे बहुधा यह मालूम हुआ है कि प्राचीन चीनी ग्रन्थों में जिन वनस्पतियों और आहारसम्बन्धी वस्तुओं की सिफारिश

की गई है उनमें विटामिन आदि बहुत अच्छी मात्रा में पाये जाते है।

विटामिन की दृष्टि से देखते हुए इमली और नीबू करीब-करीब एकसरीखे हे; नीबू मे सिर्फ विटामिन 'सी' की मात्रा अधिक है। नीबू मे तो नही, पर इमली मे यह बात है कि उसमे टार्टरिक एसिड खासा अच्छा—याने लगभग १४ प्रतिशत है। नीबू में मुख्य एसिड साइट्रिक एसिड है। यों ये दोनो फल आहार की दृष्टि से एक दूसरे से बराबर मिलते है। ऐसा मानते है कि इमली की कुछ रेचक तासीर है। लोगो की जो यह धारणा है कि इमली खाने से ज्वर और गठिया हो जाता है' इसके समर्थन में कहने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है।"

पाठकों को जानना चाहिए कि मै नीम के पत्तो और इमली के अनेक प्रयोग कर रहा हूँ। नीम के पत्ते तो हममे से कई आदमी खा रहे है, पर किसी को कोई नुकसान नही हुआ। कठिनाई मेरे लिए यह है कि नीम को स्वादिष्ट किस तरह बनाया जाय। इमली के काफी गूदे और नमक के साथ, या नीबू और नमक के साथ बतौर चटनी के खाने से वह कम-से-कम कड़वी मालूम होती है। कोई-कोई दो-दो तीन-तीन तोला मेंगे पत्ते बडे मजे से चबा जाते है। यह मै ठीक-ठीक नही कह सकता कि इस तरह पत्तो के खाने से शरीर पर क्या असर होता है। जिन्हे अपनी खुशी से इसे आजमाना हो उन्हे जो मै इसके लिए ललचा रहा हूँ उसका कारण यह है कि एक तो आयुर्वेद मे इसका खूब गुण-गान किया गया है, और दूसरे श्री भणसाली पर इसका निश्चय ही अच्छा असर हुआ है। इसका आमतौर पर उपयोग होने लगे तो गरीब लोगों को बिना किसी अतिरिक्त खर्च के हरी पत्तिया खाने को मिलने लगें, जिनपर कि आधुनिक आहार-वैज्ञानिक बहुत अधिक जोर दे रहे हैं। नीम के पत्ते खाने का कोई बुरा परिणाम नही होता इतना तो मै पूरे भरोसे के साथ कह सकता हूँ।

इमली के बारे मे भी मै इतना ही विश्वास के साथ लिख सकता हूँ। भोजन करते समय इमली का आधी छटाक गूदा लेने से कइयो के पेट साफ हो गये है। इसे साग, भात या दाल मे भी मिला सकते है। जरा ज्यादा गुड के साथ मिलाकर इसका मुरब्बा बनाकर भी खा सकते है। मैने इमली का पना देकर बुखार कम करने के लिए दिया तो उसका अच्छा ही असर हुआ है। जैसा कि बहुत-से लोग मानते है, मेरे देखने में यह नही आया कि इससे किसी को सरदी लगी हो, या गठिया हुआ हो या फोडे निकले हो। दक्षिण में तो शायद ही कोई स्त्री या पुरुष ऐसा होगा, जो किसी-न-किसी रूप मे इमली न खाता हो। उनके 'रसम्' मे मुख्य चीज यह इमली ही तो होती है।

शहरो में जो खर्चीली किंतु उपयोगी चीजे काम मे लाई जाती है और जो गावो मे भेंट में या पैसा देने पर भी नही मिल सकती उनकी जगह जहातक हो सके सस्ती, प्रभावकारी और अहानिकर चीजे ग्रामसेवको को ढूढ निकालनी होगी। इमली और नीम की पत्तिया ऐसी ही चीजे हैं।

'हरिजन से] मो० क० गांधी

सूचना

बंबई में, "मूरजी वल्लभदास स्वदेशी बाजार के ग्रामउद्योग विभाग, जवेरी बाजार, बंबई नं० २" इस पते पर 'सोयाबीन' ५ रतल ।)॥। और १ रतल -) भाव से मिलती है।

टिप्पणियाँ

एक अनुभव

एक सज्जन, जो कई वर्षों से अपने ही सूत की खादी पहनते आ रहे है, लिखते हैं:—

"इस वर्ष मैंने ५० इंची अर्जकी ८० गज खादी तैयार की। करीब २०) उसपर मेरे खर्च पडे। लोग मेरी उस खादी के ॥=) गज के हिसाब से ५०) देना चाहते हैं। इस तरह अगर मैं ३ गज (याने ।॥) की) खादी खुद अपने उपयोग में लाना चाहूँ, तो मुझे सिर्फ ११ गज (याने ।॥)॥ की) ही खादी बेचने की जरूरत होगी। अगर मैं अपने लिए २० गज खादी रखलू और बाकी सब बेच दू, तो अपनी खादी की कीमत चुका देने के बाद, मुझे १७॥) का मुनाफा हो जायगा।"

मै इन सज्जन को जानता हूँ। उनकी एक खास अनुकूल स्थिति है। वह ऐसा कर सकते हैं, क्योंकि उनका सूत उम्दा, यकसा और मजबूत होता है। बुनकर उनके सूत को अच्छी खरी मजदूरी लेकर बुनते है, और इसीसे वह खादी टिकाऊ और देखने में सुन्दर होती है, और उसकी मांग भी खूब रहती है। हरेक मनुष्य, जिसमें श्रद्धा और धैर्य हो, खुद इसका प्रयोग करके जाचे कि इस कथन मे कहातक सत्य है। मजबूत, यकसा और उम्दा सूत ही खादी की सफलता का रहस्य है।

'हरिजन' से] मो० क० गांधी

कैसी दुःखद कहानी है!

अभी जब मै आसाम मे दौरा कर रहा था, करीब १४ बरस की उम्र के एक हरिजन विद्यार्थीने मुझे दरखास्त दी कि वह जिला कामरूप के पाठशाला गाव के अंग्रेजी मिडिल स्कूल मे पढ रहा है और वह सघ से कुछ सहायता चाहता है। प्रार्थना-पत्र का पहला वाक्य था—कि "मै एक वेश्या का पुत्र हूँ।" जब मैंने यह वाक्य पढ़ा, मै स्तब्ध रह गया। पूछ-ताछ करने पर मुझे मालूम हुआ कि वह लड़का 'नट' जाति का है, और उसकी माने अपनी इच्छा से नही, बल्कि जाति की प्रथा से वेश्यावृत्ति ग्रहण कर ली है। आसाम मे नटो की एक छोटी-सी जाति है। आसाम की १९३१ की सेंसस रिपोर्ट तक में नट जाति का उल्लेख नहीं है। ये लोग सिर्फ तीन गावो मे है—दो गाव तो कामरूप जिले मे है, और तीसरा लखीमपुर मे। इनके कुल घर लगभग २५० के, या जन-सख्या लगभग १२०० के हैं। पहले इस जाति की स्त्रियां डूबी, हाजो और डेरगाव के मन्दिरो मे देवप्रतिमाओ के आगे नाचती थी और इन्ही गावो मे ये रहती हैं। किंतु कालांतर मे, परिस्थितियोवश उनका इतना अध:पतन हो गया कि उन्हें वेश्यावृत्ति की शरण लेनी पडी। अनेक स्त्रिया अब इस पाप-वृत्ति को छोडती जा रही है और सर्व-साधारण की तरह वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रही है। उन्होने अपनी जाति का नामतक छोड़ दिया है, वे अपने को नट नही कहती। यह बड़ा अच्छा शुरूआत है। यह वेश्या-प्रथा मद्रास की देवदासी-प्रथा से और महाराष्ट्र की मुरली प्रथा से मिलती-जुलती है, पर सद्भाग्य से आसाम में यह कुप्रथा बहुत ही छोटे क्षेत्र में सीमित है।

प्रार्थी बालक को मैंने यह वचन दे दिया है कि तुम्हें तुम्हारी स्कूल की फीस और अन्य सहायता मिल जायगी। उसकी यह

दुःखद कहानी सुनकर मुझे उपनिषद में वर्णित 'सत्यकाम जाबाल' का उपाख्यान याद आ गया ।

अमृतलाल वि० ठक्कर

'दोनों'

भारतीय साहित्य के मुखपत्र 'हंस' के नवम्बरवाले अक में श्री स० नवाब अली की 'दोनो' शीर्षक एक बडी सुन्दर कविता निकली है । जहरीले साम्प्रदायिक वातावरण में ऐसी ही कविताएँ अमृत का काम देती है, इसमे सन्देह नही । उस कविता को हम नीचे उद्धृत करने का लोभ संवरण नही कर सकते :-

"हिमाला से निकलते गरचे हैं गंगो-जमन दोनों,
अलग बहते है—पर गाते है कुदरत के भजन दोनों;
इलाहाबाद में मिलजाती है इनकी हुई ऐसी
पहन लेते हैं यकरंगी का असली पैरहन दोनों.
इसी सूरत से हैं एक दूसरे से गो अलग लेकिन,
तेरे फरज़न्द हैं, अय हिंद ! शेखो बरहमन दोनों.
वो गायें अपना-अपना राग पहुचेंगे पराग एक दिन,
हमेशा फिर तो सींचेंगे दोआबे के चमन दोनों.
जबां 'नव्वाब' दिल की एक है उर्दू हो या हिंदी,
रहें मिल-जुलके आपस में न क्यों ए हमवतन दोनों ।"

गदी थियेटरी गजलों की जगह देश के बच्चो और जवानो की जबान पर क्या अच्छा हो कि हलमेल के मुरझाये हुए पौधे को पनपानेवाली ऐसी ही अमृत से भरी गजलें सदा रहा करे ।

वि० ह०

चाय से हानियाँ

'तुलसी-पत्र' में एक विशेषज्ञ चाय की हानियों के विषय में लिखते है :—

"चाय धीरे विष (Slow Poison) का काम करती है। इसका प्रभाव शरीर पर धीरे-धीरे पडता है, और एक अत्यावश्यक तत्त्व सदा के लिए विलुप्त हो जाता है । बहुत-से पीनेवाले सोचते हैं कि एक कप पीने से विशेष नुकसान नही हो सकता । वास्तव में एक कप पीने से शरीर पर होनेवाले दुष्परिणाम इतने सूक्ष्म होते है कि कल्पना भी नही हो सकती । पर इतने से ही हृदय तथा जीवनशक्ति की जो क्षति हो जाती है उसकी पूर्ति फिर सारे जीवन मे भी नही होती ।

वृक्को (Kidneys) की शिथिलता, फेफडो की क्रियाक्षीणता तथा आमाशय मे मंदाग्नि ये परिणाम कुछ दिनोंतक चाय पीने से प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगते है । चाय की प्रत्येक प्याली इन विकारों को उत्पन्न करने मे मदद देती है ।

कुछ चाय-प्रेमी बच्चों को भी दो-चार चम्मच चाय पिला देते है । इसका परिणाम यह होता है कि उन्हें मूत्र-स्राव होता रहता है, जिसके लिए डाक्टरों को दिखाकर कई तरह की दवाइया पिलाई जाती है । परन्तु मूल कारण न जानने से उनका कोई परिणाम नहीं होता । उत्तेजित नाडियों को शांत करने के प्रयत्न में कुछ समय बाद वे पूर्णतया मृतप्राय हो जाती है । जिन मनुष्यों को कोई दीर्घकालीन रोग नही होता, वे प्रायः अधिक चाय पीने के कारण अर्द्धांगवात से पीडित होकर मरते हैं ।

चाय पीने से हृदय-क्रिया इतनी मंद हो जाती है कि कई लोग इसी बीमारी से जीवन खो बैठते है । नाडी-चक्रो के केन्द्र चाय पीने से शिथिल हो जाते है । अर्द्धांगवात से पीडित रोगियों में अधिकांश चाय पीनेवाले ही होते है ।"

अधिक मात्रा मे चाय पीने के सम्बन्ध मे 'हरिजन-सेवक' के ३० अगस्त १९३५ के अक में गाधीजी चेतावनी दे चुके है । आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रायने भी 'मॉडर्न रिव्यू' में चाय-पान के दुष्परिणामो पर एक अच्छा युक्तिपूर्ण लेख लिखा है । पर आज तो इस चीज का प्रचार ही अधिक होता दिखाई दे रहा है । राह चलते सीधे-सादे ग्रामवासियो को आज चाय के विज्ञापक जिस तरह बनता है उस तरह एक-दो प्याला चाय पिला ही देते हैं । चाय-प्रचार के अड्डों पर कहीं ग्रामोफोन बजता है, कहीं राधे-श्याम की रामायण गाई जाती है, कहीं नजरबन्दी के खेल दिखाये जाते है । अभी उसदिन एक जगह एक प्रचारक महाशय 'चाय से हिंदुओं मे संगठन होगा' यह भी उपदेश दे रहे थे । शायद ही कुछ ऐसे अखबार होंगे, जिनमें चाय के अतिशयोक्तिपूर्ण विज्ञापन न छप रहे हो । विज्ञापनबाजी के इस युग मे अगर चाय पीने से होनेवाली हानियो पर एक क्षण के लिए भी हमारी दृष्टि चली जाय, तो सद्भाग्य ही समझना चाहिए ।

वि० ह०

उत्कल में हरिजन-कार्य

[उत्कल उन अकिंचन जन-सेवको का प्रांत है, जहा साधन-सपन्नता के न होते हुए भी कार्य-सलग्नता, सेवा-भावना और उत्साह-शीलता का अभाव नही। यहा शुरू से ही अच्छा कार्य हो रहा है । हमारे पास अक्तूबर, १९३४ से लेकर सितम्बर, १९३५ तक की जो लबी रिपोर्ट आई है उसमें से नीचे मुख्य-मुख्य अश ही हम उद्धृत कर रहे है—सम्पादक]

"जिला बालासोर मे लालपाडा और बडभागिया इन दो गांवो मे दो हरिजन-सेवकोने जमकर काम किया । उन हरिजन-बस्तियो मे, जहा तीस-तीस, चालीस-चालीस कुटुम्ब है, ये सेवक रहे, और दिन और रात काम किया । बच्चो और वयस्को को पढाया, सफाई की, सामाजिक बुराइया दूर करने का जतन किया और आर्थिक अवस्था सुधारने की भी थोडी-बहुत चेष्टा की ।

"गजाम जिले के अतर्गत रभा मे हाडी जाति के हरिजनोंने स्वय अपने पैसे और परिश्रम से दो मदिर बनाये, जिनका उद्घाटन प्रांतीय संघ के अध्यक्ष साधुमना आचार्य हरिहरदासने किया ।

"सार्वजनीन दुर्गोत्सव कटक, सोर और बालासोर मे बड़े ही सफल रहे । हरिजन और सवर्ण हिंदू बिना किसी भेद-भाव के इन उत्सवो मे सम्मिलित हुए । तीनो जगह हरिजनोने भगवती दुर्गा को भोग चढाया, और प्रसाद लिया । सवर्णों और हरिजनोंने एक ही पंक्ति में बैठकर भोजन किया ।"

× × × ×

"संघ की पाठशालाएँ इस वर्ष कुल ४० रहीं, जिनमें २८ दिवस-पाठशालाएँ है, और १२ रात्रि-पाठशालाएँ । इनमें कुल १०९६ विद्यार्थी पढते हैं, जिनमें एक चौथाई लड़किया हैं । ये सब प्राथमिक पाठशालाएँ हैं ।'

"संघने अधिक-से-अधिक प्रयत्न म्यूनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और लोकल बोर्ड के सार्वजनिक स्कूलों में हरिजन बालकों

को दाखिल कराने का किया है, और इसमे उसे सफलता भी अच्छी मिली है। बालासोर जिले के स्कूलो मे ३१ मार्च, १९३५ को ५५४८ हरिजन लडके पढते थे, और केन्द्रपाड़ा में १०८४। केन्द्रपाड़ा के मिडिल स्कूलो मे ८०, और हाईस्कूल मे ३ हरिजन विद्यार्थी थे। कटक की सदर कमेटीने ३०० लडके, गजामने ६०, संबलपुरने ११ और पुरीने ३५० लड़के सामान्य स्कूलो मे भरती किये। ११ लडके सबलपुर मे हाईस्कूल और मिडिल स्कूलो मे दाखिल हुए। बिहार और उडीसा की सरकारने खुद यह स्वीकार किया है कि इधर एक-दो साल से हरिजन बालक प्राथमिक पाठशालाओ मे काफी सख्या मे दाखिल हो रहे है। सरकारी शिक्षा-विभाग की १९३५ की रिपोर्ट में लिखा है--

"दलित जातियो के स्कूलो की संख्या ३२३ से ३७३ हो गई है। पहले जहा ८९१६ विद्यार्थी पढ रहे थे वहां अब १०६०९ विद्यार्थी पढ रहे है। दलित जातीय विद्यार्थियो की सख्या मे काफी वृद्धि हुई है। अब ६४३२८ विद्यार्थी हो गये है, जहा पहले ५८१८७ थे। दलित जातीय बच्चो की शिक्षा मे लोकल सस्थाएँ दिन-दिन दिलचस्पी ले रही है।"

इसका कारण है प्राथमिक कक्षा से लेकर मैट्रीक्युलेशन तक फीस का एकदम माफ कर देना। बिहार-उडीसा की सरकारने यह बडा ही अच्छा काम किया है।

मिडिल और हाईस्कूलो मे पढनेवाले योग्य विद्यार्थियो को संघने यथाशक्ति छात्रवृत्तिया भी दी है।

"सघ की ओर से तीन हरिजन-छात्रालय चलते रहे—खास कटक में प्रातीय संघ का 'कैवल्य-कुटीर' छात्रालय, केन्द्रपाडा का छात्रालय और सबलपुर का छात्रालय, जिनमे क्रमश ९, १२ और ५ हरिजन विद्यार्थी रहते है। संबलपुर के छात्रालय में जिला-संघ के मत्री श्री नृसिंह गुरु सकुटुम्ब हरिजन बालको के साथ रहते हैं।

"संघ के खर्चे से बालासोर के मिशन इंडस्ट्रियल स्कूल मे ३ हरिजन लडके बढई का काम सीख रहे है। बालासोर-सघने एक लडके को मयूरभज स्टेट मे बेत का काम सीखने के लिए भेजा है। काम सीख चुकने पर वह लडका उडीसा के विभिन्न हरिजन-सेवा-केन्द्रो मे स्कूल के लडको को बेत का काम सिखाने के लिए भेजा जायगा। 'कैवल्य-कुटीर' मे बढईगिरी का भी काम सिखाया जाता है, जहा ५ हरिजन बालक काम सीख रहे है। एक तो काम सीख चुकने पर अपनी रोजी कमाने लगा है। एक सवर्ण लडका श्री सतीश बाबू के चर्मालय मे काम सीखने के लिए इस साल कलकत्ते गया है। सघ जो एक प्रातीय चर्मालय खोलने का विचार कर रहा है वह इसी ट्रेण्ड लडके की देखरेख मे चलाया जायगा। प्रातीय सघ इस औद्योगिक शिक्षा पर जो ४५) मासिक खर्च कर रहा है, वह रकम 'रघुमल-दातव्य कोष' से मिल रही है।

× × × ×

पुरी मे मेहतरों की सहकारी समिति अच्छी तरह चल रही है। यह सघ और म्यूनिसिपैलिटी के सयुक्त प्रयत्न से स्थापित हुई है। २५० से ऊपर ही मेंबर है। आर्थिक स्थिति बिल्कुल ठीक है। जनवरी से अगस्ततक २७४२) बतौर कर्ज के समिति के मेंबरों को दिये गये। सूदखोर साहूकारो के खूनी पंजो से इस समितिने गरीब हरिजनों को खूब बचाया है। कटक में भी ऐसी ही एक सहकारी समिति खोलने की कोशिश की गई, पर वह बेकार रही। म्यूनिसिपैलिटी की एक को-आपरेटिव सोसाइटी, मेहतरों की हड़ताल के बाद से वहा जरूर सतोषजनक रीति से काम कर रही है। तालपाडा गाव में हरिजनों का अपना एक बैंक है, जिसमें बहुत ही थोडा पैसा है, फिर भी वह कुछ-न-कुछ चल रहा है। इस गाव मे एक हरिजन को एक छोटी-सी दूकान चलाने के लिए २०) पेशगी दिये गये।

× × × ×

"गजाम की हरिजन-पाठशालाओं के अध्यापक हफ्ते में एक दफा अपने बच्चो को नहलाते ओर उनके कपडो को साफ करते है। सबलपुर मे छात्रालय-वासियोने हाते का तमाम कूड़ा-करकट व झाड-झखाड अपने हाथो से साफ किया।"

बालासोर के तालपाडा, बडभागिया और कुष्मनसिंग केन्द्रों मे हरिजन-सेवको को होमियोपैथिक बॉक्स दिये गये। सवर्ण हिंदुओने दवाइयों के दाम दिये, और उस पैसे से हरिजनो को मुफ्त दवाइयां दी गई।

तालपाडा और बड़भागिया केन्द्रो मे सेवकोंने नियमित रीति से सफाई की और इससे बस्तियो की अब सूरत ही बदल गई है।"

"झारपाडा के सेवा-सदनने रोगियो को दवा-दारू की सहायता पहुँचाने मे प्रशंसनीय कार्य किया है। सघ के प्रधान कार्यालय की ओर से उक्त संस्था को २५) मासिक सहायता मिलती है। डॉ० एन० सेन की देखरेख में यहां एक औषधालय चल रहा है, जिसमे एक हरिजन-विभाग भी है। ३९०३ मरीजो को यहा दवा-दारु की मदद दी गई और उनका इलाज किया गया। १५८२ इजेक्सन कोढ के दिये गये। डॉ० सेनने १२६ दिन सफाई के सम्बन्ध मे दौरा किया और बस्तियों मे जगह-जगह रोग-निवारण के उपाय लोगों को बतलाये।"

× × × ×

"सेन्ट्रल बोर्ड से कुएँ खुदवाने के लिए २०००) मिले है। १८ कुओ की मजूरी हो चुकी है। जिनपर करीब २०००) खर्च होगे। १६ कुएँ अबतक बनकर तैयार हो गये है। बालासोर जिले में एक गुजराती सज्जनने एक ट्यूब वैल का खर्चा देने का वादा किया है।

× × × ×

"उड़ीसा के हरिजनो को खादी बांटने के लिए एक सज्जनने, जो अपना नाम गुप्त रखना चाहते है, २५०) श्री गोपबन्धु चौधरी के पास भेजे थे। श्री गोप बाबूने यह रुपया सघ के अध्यक्ष और मंत्री को सौप दिया है। यह निश्चय हुआ है कि हरिजन-पाठशालाओं के विद्यार्थियो को इस रुपये की खादी पारितोषिक के रूप में बांटी जाय। इन गुप्तदानी सज्जन को हम हृदय से धन्यवाद देते हैं।

बारी-कटक का 'सेवा-घर,' अगरपाड़ा का 'कर्म-मन्दिर,' साखीगोपाल का 'गोपबन्धु-सेवा-सदन', और ढेलंग का 'सेवा-कुटीर' इन संस्थाओने हरिजन-कार्य में काफी योग दिया है। सत्याग्रह-आश्रमवासिनी श्रीमती पुरुबाई बहिनने भी बालासोर जिले में हरिजन-कुटुम्बो में बड़े प्रेम-भाव से काम किया है। अतः इन सब के हम हृदय से आभारी हैं।"

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi, by R. S. Gupte.

उधार बिक्री से हानि

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
किंग्सवे, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३]

दिल्ली, शनिवार, ७ दिसम्बर, १९३५.

[संख्या ४२

विषय-सूची

स्व० देवधर दादा

स्व० गोपाल कृष्ण गोखले के पट्टशिष्य, भारत-सेवक-समाज के १९२७ से लेकर मरणपर्यन्त सभापति और पूना के सुप्रख्यात 'सेवा-सदन' के पिता गोपाल कृष्ण देवधर चल बसे। उनका कार्य-क्षेत्र खासकर बम्बई और मद्रास इलाके में तथा अन्य अनेक स्थानों में इतना विस्तृत था कि वे यद्यपि स्थूल रूप से चल बसे है, तो भी सूक्ष्म देह से वे जीवित हैं और सदा रहेंगे ; वे स्वर्ग सिधार गये हैं ऐसा मन को कबूल कराते हुए दुराग्रह करना पड़ता है। मेरे चार गुरुओं—स्व० पिता विट्ठलदास, शिंदे, कर्वे और देवधर—में से एक और चल बसे इससे मुझे कितना दुःख हुआ यह कहने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने स्त्रियों और शूद्रों की सेवा को अपने जीवन का ध्येय बनाया था, इसलिए उनका उपकृत मण्डल बहुत बड़ा था। वे सब उन्हें चिरकालतक नहीं भूल सकेंगे।

बचपन में वे बहुत गरीबी हालत में पले थे। जब दादा बच्चे ही थे, तभी उनके पिताने सन्यास ले लिया था, इसलिए बड़े भाई के आश्रय में उनका पालन-पोषण हुआ था। पढ़ने के लिए पैसा न होने से चना-मुरमुरा तक बेचकर पाठशाला की पुस्तकें खरीदीं, और पढ़ते समय भी दूसरों को पढ़ाकर उन्होंने अपना निर्वाह किया। इस प्रकार पढ़ा हुआ मनुष्य संसार के पाठ को किस तरह भूल सकता है ? गरीबी में पले हुए विद्यार्थियों, विधवाओं और निराधार स्त्रियों, अकाल और दूसरे दैवी संकटों से पीड़ित मनुष्यों तथा हरिजनों और समस्त आर्तजनों की पीड़ा एवं दुःख दूर करने में, यथाशक्ति सहायता करके उनका संसार का भार हलका करने में उन्होंने अपना शरीर जर्जरित कर डाला। गांधीजीने ठीक ही कहा है कि एक भी दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, अग्नि-काण्ड, भूकम्प अथवा अन्य दैवी या सामाजिक संकट ऐसा न होगा कि जहां देवधर दादा दौड़े न गये हों, और हजारों रुपये इकट्ठे करके पीड़ितों को सहायता न पहुँचाई हो। इसके अलावा उनके जीवन का महान् कार्य तो 'सेवा-सदन' है। इस सदन की देखादेखी देश में अनेक जगह अनेक स्त्री-उन्नति की संस्थाएँ स्थापित हुई हैं।

उनके स्वभाव में प्रेम और ममत्व कूट-कूटकर भरा था। युवक और वृद्ध, स्त्री और पुरुष सार्वजनिक अथवा व्यक्तिगत कठिनाइयों के अवसर पर उनसे सलाह लेने और अपना कर्त्तव्य-मार्ग पूछने के लिए उनके पास दौड़ते थे। और हरेक व्यक्ति को उचित सलाह, सहायता, सिफारिशी चिट्ठियां और अपने गरीब खीसे में थोड़ा पैसा हुआ तो वह भी दिये बिना वे कभी लौटाते नहीं थे। उनके जैसा निरभिमानी, ममतामय, प्रेमी, शत्रु को भी वश में करनेवाला, एक भी कटु वचन न बोलनेवाला सत्पुरुष शायद ही कहीं मिलता है।

उनका और मेरा तो गुरु-शिष्य का संबंध था। मुझे सार्वजनिक काम-काज की शिक्षा उन्होंने अच्छी तरह दी थी। उनके चरणों के पास बैठकर नौकरी करते हुए मैने बहुत-कुछ सीखा है। किंतु उनके राजनीतिक विचार भिन्न प्रकार के होने के कारण अवसर मैं उनके साथ झगड़ बैठता था। कभी-कभी तो जैसे ऊधमी बच्चे जान-बूझकर अपने बुजुर्गों को चिढ़ाते हैं, उसी तरह मैं राजनीतिक विषयों में अपनी कृति और वाणी से उन्हें खिझाता था। फिर भी मुझे ऐसा कोई प्रसंग याद नहीं, जब वे कभी गुस्सा हुए हों, कडुआ वचन बोले हों या उन्होंने अपना ममत्व और प्रेम जरा भी कम किया हो। सन् १९३० में जब मेरा महेमदाबाद के जेल में जाने का प्रसंग आया, तब भी वे पूना से दौड़ आये और उन्होंने यह साबित करके दिखा दिया कि उनके स्वभाव में कितनी गहरी ममता है।

देवधर दादा को हरिजन-उत्थान का कार्य बहुत प्रिय था। सन् १९१२ में देखा कि बंबई-म्यूनिसिपैलिटी में काम करनेवाले मेहतर लोग कर्ज में एकदम डूबे हुए हैं, तो उन लोगों को ऋण-मुक्त करने के लिए उन्होंने करीब २० सहकारी-समितियां बना दीं, और श्रीमन्त लोगों के पास से थोड़ा-थोड़ा पैसा लाकर उन सब का कर्जा पटवा दिया। उनसे वे हर हफ्ते पैसा वापस लेते थे। लेकिन इस काम में म्यूनिसिपैलिटीने बिल्कुल योग नहीं दिया, बल्कि उसकी तरफ से थोड़ा विरोध भी देखने में आया। इससे पूरी रकम वसूल न होसकी।

सेवा-सदन में अधिकतर ब्राह्मण तथा अन्य उच्च वर्णों की स्त्रियां—विधवा और विवाहिता आती थीं। देवधर दादा धीरे-धीरे महार जाति की स्त्रियां भी दाखिल करने लगे। शुरू में तो उनका रसोड़ा अलग बनवा दिया और रहने की कोठरियां भी अलग ही थीं। मगर धीरे-धीरे जब अन्य स्त्रियों के हृदय से

छूत-छात का भाव दूर हो गया, तब वे महार बहिनों के साथ प्रेम से मिलने-जुलने लगीं। कई महार स्त्रियां आज अध्यापिकाएँ और दाइयां बन गई हैं, और देवधर दादा को अचल प्रसार-प्रसार कर असीसती हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने तो दो-चार पतित स्त्रियों को भी सेवा-सदन में दाखिल करके उनका जीवन सुधार दिया। नाजायज बच्चों को भी वे सेवा-सदन में ले लेते थे। जब मैंने उनसे महाराष्ट्र प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ का सभापतित्व स्वीकार करलेने की प्रार्थना की तो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया, और अततक हरिजन-उत्थान का काम किया।

मृत्यु के पहले बीमारी में उनका स्वभाव बालकों के ऐसा कोमल बन गया था। जो स्नेही मिलने जाता उसे छाती से लगाकर गद्गद हो जाते और रो भी पड़ते। यह उनके स्वभाव की निष्कपटता और निर्मलता का परिणाम था। उनके शरीर छोड़ने के पहले गांधीजीने उन्हें लिखा था कि 'इस संसार में कदाचित् आपका काम पूरा हो गया होगा, तो भी जिस लोक या जिस नये जगत् में आप जायँगे वहां भी आप सेवा ही करेंगे।' गीता का उनका पक्का अध्ययन था। फल की आशा छोड़कर सतत सेवा-कार्य में लगे रहनेवाले, और समाज तथा जनता-जनार्दन की सेवा को अपना धर्म माननेवाले देवधर दादा थे।

दुःख के चाहे जितने बादल घुमड़ आये हों, निराशा की चाहे जैसी काली अंधेरी झुक आई हो, चाहे जितना अपमान या मान-हानि हुई हो, तो भी शांत चित्त से सब कुछ बर्दाश्त कर जाना और प्रसन्नवदन हँसते-हँसते नित्य का कार्य करते जाना यह उनके स्वभाव में एक ईश्वरीय देन थी। कुटुंब की, पत्नी के स्वास्थ्य या सुख की, अपने बच्चों को ठिकाने लगाने की, बड़ी-बड़ी उम्र की पुत्रियों का ब्याहने की, और अपने स्वास्थ्य की फिक्र या पर्वा तो उन्होंने कभी की ही नहीं।

सेवा-सदन संस्था का ७५०००) का सालाना खर्चा कैसे चलेगा यह चिंता ही उन्हें दिन-रात परेशान किये रहती थी। सेवा-सदन के ऊपर अभी कर्ज का बोझ भी कुछ कम नहीं है। इस संस्था का पच्चीस-वर्षीय उत्सव इसी दिसंबर में मनाने और कर्जा पटाने का स्वप्न देखते-देखते वे चल बसे। दादा के मित्र, उनके काम की कद्र करनेवाले तथा यह माननेवाले कि बिना स्त्रियों की उन्नति के राष्ट्र की उन्नति संभव नहीं—ये सब, दिवंगत देवधर की इस लाडली संस्था के लिए यदि यथाशक्ति सहायता भेजेंगे तो वह श्रद्धांजलि उनकी आत्मा और सर्वान्तर्यामी प्रभु स्वीकार करेंगे।

अमृतलाल वि० ठक्कर

दुराचार पर कर

सन् १७४३ ई० में विलायत की हाउस आफ लार्ड्स नामक अमीरों की सभा में सरकारी आमदनी के सम्बन्ध में बहस हुई थी, तब लॉर्ड चेस्टरफील्डने यह कहा था :—

"सभासदो! सुख-भोग की सामग्रियों पर कर लगाना चाहिए और बुराइयों को दूर करनेवाला कानून बनाना चाहिए। यही कायदा है। कानूनों का प्रयोग करना कठिन समझकर चुप रह जाना ठीक नहीं। क्या आप पाप पर कर लगायेंगे? महात्मा ईसा मसीह की दस आज्ञाओं का उल्लंघन करनेवालों पर कर लगाकर आमदनी की राह निकालेंगे? क्या इस तरह का कर निंदनीय नहीं होगा? क्या उसका यह अर्थ न होगा कि जो लोग कर देने की शक्ति रखते हैं वे जी खोलकर पाप करें? अमीरो! दुराचार कुछ ऐसी चीज नहीं है कि उसपर कर लगाया जाय। उसका तो समूल नाश ही कर देना चाहिए। सुख-भोग की इच्छा भी बेहद बढ़ जाय तो वह दुराचार में परिणत हो जाता है। इसलिए उसपर कर लगाकर उसे काबू में रखना उचित है। किन्तु प्रकृति से ही जो कृत्य बुरे हैं उनका तो नाश ही करना चाहिए। क्या आपने कभी सुना है कि किसी भी देश में चोरी या व्यभिचार पर कर लगाया गया है? कर लगाने का मतलब यह है कि जबतक उस वस्तु पर लगाया हुआ कर ठीक-ठीक अदा होता जाय, तबतक लोग उस वस्तु का आज़ादी के साथ उपयोग कर सकते हैं। मद्यपान तो सभी दशाओं में हर तरह से बुरा है। इसलिए उसका उपयोग दण्डनीय है। उसपर कर लगाना उचित नहीं।

"अभी कुछ लोगोंने अपने व्याख्यान में कहा था, कि बहुत-से लोग शराब बनाने के काम में लगे हुए हैं, और उनमें कई तरह की कार्य-कुशलताएँ हैं। इसलिए इस व्यवसाय में रुकावट नहीं डालनी चाहिए। अमीरो! यह बात सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। ये कारीगर जो चीज पैदा करते हैं वह शरीर को कमजोर बना देती है, गुण और कुल का नाश करती है और बुद्धि को मन्द कर देती है। 'ऐसी चीज तैयार करनेवाले कई हैं' यह भी क्या कोई दलील है? चोरों की संख्या अधिक होने से क्या चोरी का निषेध करनेवाला कानून उठा दिया जाय? ऐसी बात भी आपने कहीं सुनी है? अगर मनुष्यों की बुद्धि को बिगाड़नेवाली चीज के बनानेवाले इतने अधिक हों, तो भी सोचिए कि हमारा क्या कर्तव्य है? क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि सत्यानाश हो जाने से पहले ही हम उस बुराई को एकदम बन्द करदें? अमीरो! शराब बनानेवालों की निपुणता की बड़ाई की जाती है। लेकिन स्वादिष्ट विष पैदा करनेवाला व्यक्ति कैसा भी होशियार क्यों न हो वह मनुष्य-समाज के लिए कभी उपयोगी नहीं हो सकता। मेरा तो यही विश्वास है। क्या कोई यह कहने का साहस कर सकता है कि हत्यारेने खूब मेहनत करके अपनी कला में उन्नति की है, इसलिए उसे माफ कर देना चाहिए? अमीरो! यदि इन लोगों की बनायी शराब बढ़िया-से-बढ़िया हो, तो भी आइए, हम उसका तुरन्त नाश करदें, ताकि जनता धोखे में पड़कर उसके इस्तेमाल से दुःख न भोगे। देश में बीमारी, हत्या और दुःख बढ़ाने के कारण यही लोग हैं। लोगों को फँसाकर ये व्यभिचार के गढ़े में गिरा देते हैं। आइए, हम लोग इनकी कार्य-कुशलता और कारवाई का तुरन्त ही नाश करके देश का उद्धार करें।"

तमिल मासिक पत्र 'विमोचन' से] **च० राजगोपालाचार्य**

जातिभेद तथा अस्पृश्यता पर
श्री केलकर के विचार

संपादक महोदय, हरिजन,

१६ नवम्बर के 'हरिजन' में महात्मा गांधी के नाम सर गोविंदराव मडगावकर की एक खुली चिट्ठी प्रकाशित हुई है। जात-पात तथा छूतछात के प्रश्नों पर उन्होंने अपने निजी विचार उस पत्र के मुख्य भाग में स्पष्ट कर दिये हैं, और अन्त में कुछ व्यक्तियों से, जिन्हें कि वे हिंदूनेता समझते हैं, इस आवश्यक प्रश्न पर एक 'स्पष्ट' और 'साहसपूर्ण' मार्ग दिखाने के लिए अपील की है।

हिंदू नेताओं की इस श्रेणी में सर गोविंदरावने महात्मा गाधी और पंडित मालवीय के साथ मुझे भी घसीट लिया है। किन्तु अपने को हिंदू-मत व्यक्त करनेवाला इतना बड़ा नेता न समझते हुए भी, जैसा कि वे मुझे मानते है, मुझे लगता है कि मैं उक्त प्रश्नो पर अपना मत प्रकाशित करने के लिए बाध्य हू, क्योंकि मै मानता हूँ कि सार्वजनिक प्रश्नो के सम्बन्ध मे मनुष्य के जो विचार होते है वे बतौर सार्वजनिक सम्पत्ति के समझे जा सकते है, और उचित चुनौती दी जाय तो अपने उन विचारो का मनुष्य प्रकाशित कर सकता है।

सर गोविंदराव केवल 'स्पष्ट' ही नही, बल्कि 'साहसिकतापूर्ण' पथ-प्रदर्शन चाहते है। उनका जो आतरिक अर्थ है वह बिलकुल स्पष्ट है। उनकी इस चुनौती को स्वीकार करने मे मुझे जरा भी हिचकिचाहट नही। मै नही जानता कि नीचे सक्षेप मे जो जवाब मै दे रहा हूँ, उसमे उनका आशय काफी स्पष्ट हो जायगा या नही, मगर मै जो कह रहा हूँ उसपर चाहे कुछ भी हो, कायम रहने के लिए मै तैयार हूँ। मेरे ये विचार मेरे जीवन मे सदा एक-से रहे है, और एक पत्रकार तथा सक्रिय सार्वजनिक कार्यकर्ता होने के नाते अनेक अवसरो पर मुझे अपने उन विचारो को व्यक्त करना पड़ा है।

जातिभेद को मै ईश्वरीय सृष्टि नही मानता। वह तो मनुष्य की बनाई हुई और कुछ खास स्थान या भौतिक स्थितियो से हुए सामाजिक विकास से उत्पन्न वस्तु है। इस विषय मे गीता के 'चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः' श्लोक का अर्थ एक मामूली समझ के मनुष्य के लिए भी बिलकुल स्पष्ट होना चाहिए। यहा वर्ण का अर्थ 'जन्मना जाति' नही है। मनुष्य का वर्ण उसकी एक दार्शनिक व्याख्या या निरूपण है, जिसमे उसकी मानसिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियो का, साथ ही उन प्रवृत्तियो से प्रभावित होकर वह जो कर्म करता है उनका विचार रक्खा गया है।

यदि इस प्रकार का चातुर्वर्ण्य 'ईश्वरीय' कहा जा सकता है, तो वह उतना ही ईश्वरीय है कि जितनी ईश्वरीय ईश्वर की सृष्टि मे अन्य प्रत्येक वस्तु है, और मनुष्य उसका रूपान्तर या परिवर्तन नही कर सकता तो केवल उतने ही अर्थ मे। सर गोविंदराव की भाति, मै भी जाति-प्रथा का, जिस रूप मे कि सनातनी हिंदू-समाज उसे आज समझता और मानता है, बदाश्त नही मानता। निस्सदेह, जातिभेद अत्यन्त प्राचीन प्रथा-जनित है, मगर ऐसी एक भी प्रथा नही कि हिंदू-समाज को उसे बदलने का यदि वह उसे विवेक-बुद्धि से बदलना चाहता है—अधिकार न हो। वेदोतक को प्रमाण मानने की हमारी बुद्धि उस कल्याण भावना से मर्यादित है और होनी चाहिए, जो हमारे लिए, अर्थात् विशेष व्यक्तियो के लिए नही किन्तु समस्त हिंदू-समाज के लिए विवेक-बुद्धि की दृष्टि से हितकर हो। मै यह नही मानता कि मौजूदा जाति-भेद ऐसा ही बना रहेगा, या उसे बना रहना चाहिए। सहभोज ही नही, बल्कि विभिन्न जातियो के बीच आतर्विवाह भी **सिद्धांततः** न तो हिंदू-धर्म मे कोई पाप है, और न हिंदू-समाज के विरुद्ध कोई अपराध। इस विषय मे मेरी अपनी राय क्या है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण कोई चाहे तो मै यह कहूंगा कि (१) मैने बसु-बिल और पटेल-बिल का समर्थन किया था, (२) खुल्लम-खुल्ला मैं सहभोजो मे सम्मिलित हुआ हूँ, और (३) ब्राह्मणो की उपजातियो में मेल-मिलाप की भावना को प्रोत्साहन देने के लिए मैने (खुद अपने कुटुम्ब मे) आतरविवाह कराये है।

इनमे से कुछ बातो के कारण मै जाति-बाहर कर दिया गया और मेरा अपमान कई लोगोने किया है। पर मै डिगा नही। मै अस्पृश्यता मे विश्वास नही करता, और यह मानता हूँ कि वह अवश्य नष्ट हो जानी चाहिए। केवल इस कारण से ही नही कि हिंदू-समाज अन्दर से शक्तिशाली हो जायगा, बल्कि विशुद्ध न्याय और ईमानदारी की दृष्टि से भी मै ऐसा चाहता हूँ।

लेकिन मै इन विचारो मे सिद्धान्ततः विश्वास करता हू सही, तो भी उन उग्रमत के या क्रान्तिकारी समाज-सुधारकों से मेरा मतभेद रहा है और रहना चाहिए, जो तमाम आवश्यक उलट-पलट और परिवर्तन बलात्कारी कानूनो के द्वारा करना चाहते है। इस मामले मे अनुमतिदायक कानून से आगे मै नही जा सकता, ताकि प्रगतिशील लोगो को खुद अपने ऊपर अपने प्रिय सुधार का प्रयोग करने मे सहायता मिले और उनका जो नागरिक दरजा है उसे कोई अनुचित क्षति न पहुँचे। इसी प्रकार मै उस कानून के भी खिलाफ हू कि जिसका मशा पुराने विचार के सनातनियों पर, उनके मदिरो मे तमाम लोगो या अमुक जातिवालो को प्रविष्ट कराने के लिए, जबरन जोर डालना है। सर गोविंदराव को यदि यह बात मालूम न हो तो मुझे आश्चर्य होगा कि मदिर के मुख्य भाग और अदर के प्रतिमा-स्थान के बीच मे एक भेदक रेखा खीच देने के बारे मे जो राय उनकी है ठीक वैसी ही राय मेरी वर्षो से है। यह कोई अभिमान की बात नही, पर मेरा यह दावा है कि महाराष्ट्र मे शायद मैने ही सबसे पहले, बतौर एक समझौते के, यह प्रस्ताव रक्खा था। मेरी तजवीज यह है कि एक अमुक सीमातक, जहा से कि सभामडप मुख्य देवायतन से अलग होता हो, तमाम जातियो को मदिर मे प्रवेश करने की स्वतत्रता होनी चाहिए, किन्तु, नियोजित पुजारी के अतिरिक्त, और किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह बड़े-से-बड़ा ब्राह्मण ही क्यो न हो, पवित्र देवायतन के अदर नही जाने देना चाहिए। इस समझौते मे ये तीन बाते पूरी हो जाती है। (१) प्रत्यक्ष देवदर्शन करके अस्पृश्यो को सतोष, यदि वे वास्तव मे उस आत्मिक आनद के लिए उत्सुक हो। (२) उन्हे इस बात का यकीन करा देना कि किसी भी अन्य वर्ग के साथ उनका भी वही अधिकार या स्वत्व है, यदि ब्राह्मणो का ईर्ष्या-द्वेष **सचमुच ही** उन्हे कष्ट पहुँचा रहा हो। (३) किसी के अविवेकपूर्ण प्रवेश के कारण पवित्र देवायतन अपवित्र न होने देना।

आशा है कि सर गोविंदराव के पत्र मे जिन तमाम प्रश्नो का उल्लेख आया है उनके विषय मे मैने अपनी स्थिति स्पष्ट करदी है।

'हरिजन' से]

न० चिं० केलकर

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नबर अवश्य लिख दिया करे। ग्राहक-नबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नही दिया जा सकेगा।

व्यवस्थापक—**'हरिजन-सेवक'**

"तकली कैसे कातें ?"

यह पुस्तक, एक प्रति के लिए -)॥ के टिकट भेजने से, 'चर्खा-सघ-कार्यालय, मिर्जापुर रोड, अहमदाबाद' से भी मिल सकती है।

हरिजन-सेवक

शनिवार, ७ दिसम्बर, १९३५

उधार बिक्री से हानि

जब कि खादी के बारे में चर्खा-संघ की सारी ही नीति की अच्छी तरह जांच-पड़ताल हो रही है, यह अच्छा होगा कि जिन लोगों की निगरानी में खादी-भंडार चल रहे हैं उन्हें यह जता दिया जाय कि खादी को उधार बेचने के रिवाज से कुल मिलाकर अन्त में फायदे के बजाय नुकसान ही हुआ है। मित्रों, परिचितों और श्रीमन्त लोगों को उधार देने का प्रलोभन निस्सन्देह बहुत बड़ा है। जब वे बहस में यह दलील देते हैं कि इसमें कोई जोखिम तो है ही नहीं, तब अगर उन्हें उधार देने से इन्कार कर दिया जाता है तो इसमें अक्सर वे बुरा मान जाते हैं। ये भले आदमी यह नहीं देखते कि किसी विक्रेता से यह आशा करना ही गलत है कि वह गाहकों में कोई अनुचित भेद-भाव करेगा। अपने मित्रों और सम्पन्न लोगों के बारे में अनेक खादी-भंडारों के मैनेजरों की शिकायतें आई हैं कि वे अपना कर्जा नहीं चुका रहे हैं। अदालत के जरिये कर्जा वसूल करना एक ऐसा काम है कि जिससे न तो कोई तारीफ मिलने की है और पैसा भी खर्च होता है, और उससे कहीं ज्यादा परेशानी उठानी पड़ती है। इसलिए कुछ गाहकों का जी दुखाने और उनसे हाथतक धो बैठने का जोखिम अपने ऊपर लेते हुए भी बिना खतरे का रास्ता तो यह है कि "यहां उधार बिक्री नहीं होती" इस स्वर्ण नियम को कदापि नहीं छोड़ना चाहिए। खादी-सेवकों को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि खादी का कार्य उन्हें शहरों में सीमित नहीं रखना है, बल्कि उसका करोड़ों ग्रामवासियों में, जो उसकी बाट जोह रहे हैं, प्रचार करना है। उनतक हम किस तरह पहुँचें यह हमें मालूम नहीं। अबतक तो हमने घुमाव-फिराव के रास्ते से जाने की कोशिश की है। शहरों के खादी-भंडारों के बही-खातों में दिन दिन बढ़ती हुई बिक्री दिखाने के व्यर्थ प्रयत्न के द्वारा हमें सीधा और सच्चा रास्ता मिलने का नहीं। हमें यह जानना चाहिए कि शहरों में उन्हें जो खादी बचती है वह तो 'अतिरिक्त उत्पत्ति' की खादी है। भारी मिकदार में खादी गांववालों को खुद ही बनानी होगी और खुद पहननी होगी। गांववालों तक पहुँचने का सच्चा रास्ता यह है कि उनके अपने झोपड़ों में ही जमकर एकाग्रता से काम किया जाय। इसलिए खादी कार्य की उन्नति शहर की बिक्री के बही-खाता में नहीं आंकी जा सकती। अब आइन्दा खादी के आंकड़ों को यह बतलाना होगा कि गांवों में प्रतिवर्ष खादीने क्या उन्नति की है। गांवों में खादी-कार्य विस्तृत करने के लिए अगर हम काफी बड़ी संख्या में खादी-सेवकों को मुक्त करना है, तो हमें अपने शहरों के काम में कमी करनी ही होगी। इसका एक मार्ग यह है कि उधार बिक्री करें ही नहीं इसे हम अपना धर्म समझें, और सिर्फ उन्हीं गाहकों पर ध्यान दें जो सचमुच खादी के चाहक हों, और नकद दाम देने के महत्व की कद्र करते हों। उधार बिक्री का हमेशा ही अर्थ है दाम चढ़ जाना, क्योंकि उसमें अधिक काम, याने अधिक खर्चे का समावेश रहता है। किसी भी दृष्टि से देखें, थोड़े-से गाहकों के संदिग्ध सुभीते के सिवा और कुछ है ही नहीं जो उधार बिक्री के पक्ष में पेश की जा सके। मगर खादी उन थोड़े-से गाहकों के सुभीते के लिए तो है नहीं। उसका उद्देश तो 'सर्वजन-हित' है। इसलिए केवल नकद दामों पर ही खादी का कारोबार चलाने में चर्खा-संघ न सिर्फ करोड़ों भूखों मरनेवाले ग्रामवासियों का ही, बल्कि शहरों के खादी-गाहकों का भी हित-साधन करने का प्रयत्न कर रहा है।

'हरिजन' से]

मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्राम-सेवा

सिंदी की हालत पहले से अब अच्छी है। काम शान्ति के साथ ठीक-ठीक चल रहा है। श्री गजानन नाइक पड़ोस के एक उत्तरभारतीय सज्जन के घर से पानी भर लेते हैं। तमाम मल-मूत्र उठाने, मोरियों की सफाई व कुओं की जगत पर पड़ा हुआ कूड़ा-करकट और छों पर उगा हुआ घास-पात वगैरा साफ करने और पानी-सोख गड्ढे बनाने आदि के अलावा गजानन नाइक तथा मगनवाड़ी के दूसरे कार्यकर्ता सिंदी गांव की आम सफाई पर भी नजर रखते हैं। रास्तों पर झाड़ू लगाना और हरिजनों और सवर्णों के मुहल्लों में रात को जाकर पढ़ाना, यह तो गजानन भाई के नित्य के कार्यक्रम का एक नियमित अंग है। गांव के बड़ी उमरवाले तमाम हरिजनों और सवर्णों को एक ही साथ पढ़ाने की बात तो अब भी दूर है। बच्चों का बर्ताव पहले से अब अच्छा है। गजाननजी उन्हें जो खेल-कूद बतलाते हैं उनमें वे अब बराबर भाग ले रहे हैं, और छह बच्चे तकली चलाना भी सीख रहे हैं।

आहार-सुधार में भी लोग धीरे धीरे दिलचस्पी ले रहे हैं। दो कुटुम्ब इस बात पर राजी हो गये हैं कि वे मिल का पिसा आटा नहीं खायेंगे। हमारी छोटी सी झोपड़ी में पालिशदार और बिना पालिश के चावलों के, अच्छे साफ घानी के पिरे और मिल के पिरे तेल के, गुड़ और अंकुर निकले हुए अनाजों के तथा खली के नमूने रखे रहते हैं।

मीरा बहिन अब मगनवाड़ी से करीब पांच मील दूर सेगांव नामक ग्राम में बसने का प्रयत्न कर रही हैं।

हैरान करनेवाले सवाल

एक कार्यकर्ता उस दिन कई प्रश्न लेकर आये—यद्यपि उनपर पचासों बार काफी चर्चा हो चुकी है, तो भी वे प्रश्न उन्हें परेशान कर रहे थे। उन्होंने सबसे पहले यह पूछा कि, "खादी और आहार की स्वास्थ्यप्रद चीजों पर क्यों इतना अधिक जोर दिया जा रहा है, जब कि आप जानते हैं कि इस देश में अंग्रेजों के आने के पहले भी, हम लोग खादी पहनते थे, और आहार की अच्छी चीजें भी हमारे यहां मौजूद थीं, तब भी हमारी स्थिति कुछ बहुत अच्छी नहीं थी?"

गांधीजीने कहा, "अगर आप उन दिनों 'यंगइण्डिया' और 'नवजीवन' पढ़ते होंगे, तो आपको मालूम होगा कि उन पत्रों में इस प्रश्न पर अनेक बार चर्चा हुई थी। यह तो बहुत पुराना प्रश्न है। पर, खैर, सार रूप में इस प्रश्न का उत्तर मैं आपको देता हूँ। बेशक, खादी हमारे यहां थी, पर हम उसका महत्व नहीं समझते थे, हम स्वात्म-निर्भर तो थे, पर आत्म-निर्भरता की आवश्यकता अनुभव नहीं करते थे। खादी और हमारी दूसरी दस्तकारियों के पीछे हमारा बुद्धि-चातुर्य नहीं था, और हम यह अनुभव नहीं करते थे कि उनसे हमारे प्राणों को पोषण मिल रहा है।

इसीसे जब वे हमारे देश से विलुप्त हो गई तब हमें उनका अभाव खला नहीं, और आज जब उनके पुनरुद्धार का प्रयत्न किया जा रहा है, तब हममें से कुछ लोग आश्चर्य कर रहे हैं कि उनके पुनरुद्धार से लाभ ही क्या हो सकता है ?"

"तब इसका यह अर्थ हुआ कि राजनीतिक शिक्षा और प्रचार की जरूरत है, और आपने इसका निषेध कर दिया है।"

"लोगों को आत्म-निर्भर बनने का, आहार सुधारने का और अपनी जड़ता दूर करके अपनी फ़ाज़िली के समय का अच्छा-से-अच्छा उपयोग करने का पाठ पढ़ाने के लिए किसी राजनीतिक शिक्षा और प्रचार की जरूरत नहीं।"

"मेरी कठिनाई तो यह है कि हमारे गावों में हालांकि लोग सुबह से लेकर रात तक गधों की तरह मशक्कत कर रहे हैं और उन्हें एक घंटे की भी छुट्टी नहीं मिलती, तो भी उन्हें पेटभर रोटी नसीब नहीं होती। और आप उनसे और भी ज्यादा मेहनत लेना चाहते हैं !"

"आप जो कहते हैं यह तो मेरे लिए नई बात है। मैं तो उन गावों को जानता हूं, जिनमें लोगों का काफ़ी समय यों ही नष्ट हो रहा है। लेकिन अगर जैसा आप कहते हैं कि ऐसे भी लोग हैं जो अपनी ताकत से ज्यादा काम करते हैं, तो मैं उनसे यह कहूँगा कि ठीक आठ घंटे के काम की पेटभरलायक जितनी मजदूरी होती है उससे वे एक पाई भी कम न लें।"

"लेकिन यंत्रों को क्यों न अपनालें ? उनमें जो अच्छी-अच्छी बातें हों उन सब को लेलें, और उनकी बुरी बातों को अलग करदें।"

"मुझे यह नहीं पुसा सकता कि हमारे मानव-यंत्र बेकार पड़े रहें। हमारे यहां इतनी अधिक मानव-शक्ति बेकार पड़ी हुई है कि किसी दूसरी 'पावर' से चलनेवाली मशीनों के लिए हमारे यहां गुंजाइश ही नहीं।"

"आप पॉवर से चलनेवाली मशीनों को दाखिल कीजिए, और उन्हें उतने ही समय तक चलाइए कि जितना हमारे मतलब भर के लिए आवश्यक हो।"

"आपका आशय क्या है ? मान लिया कि हमारा आवश्यकता भर का तमाम कपड़ा खासकर इसी मतलब से खड़ी की गई मिलों में बन जाता है और उनमें करीब ३० लाख आदमियों को काम मिल जाता है, फिर ? इन ३० लाख आदमियों के पास उतना रुपया पहुँच जायगा जितना कि सौ बरस पहले ३० करोड़ आदमियों में बँट जाया करता था।"

"जी, नहीं", उन सज्जनने दलील देते हुए कहा, "मेरी यह तजवीज है कि हमारी आवश्यकताओं के लिए जितने काम की जरूरत हो उससे अधिक काम हमारे आदमियों को नहीं करना चाहिए। कुछ काम वास्तव में हम सब के लिए जरूरी है, पर हम रोज दो घंटे से ज्यादा काम क्यों करें, और अपने बचे हुए समय को क्यों न अन्य आल्हादप्रद कामों में लगायें ?"

"इसमें अगर हमारे आदमियों को रोज एक ही घंटा काम करना हो तो आप संतुष्ट हो जायँगे।"

"यह करके देखना चाहिए। लेकिन मुझ तो अवश्य संतुष्ट हो जाना चाहिए।"

"यह कबाहत है, मैं तो, जबतक तमाम आदमियों के पास काफ़ी उत्पादक काम, याने रोज आठ-घंटे का काम न हो, तबतक संतुष्ट होने का नहीं।"

लेकिन मुझे आश्चर्य होता है कि आप इस कम-से-कम आठ घंटे के काम पर क्यों इतना आग्रह कर रहे हैं ?"

"क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि करोड़ों आदमी काम की खातिर ही काम में नहीं लगते। अगर उन्हें अपने पेट के लिए काम करने की जरूरत न हो, तो उन्हें प्रेरणा ही न मिले। मान लीजिए कि चंद करोड़पती अमेरिका से आवें और हमारे पास तमाम खाने-पीने की चीजें भेज देने के लिए कहें, और हमसे प्रार्थना करें कि आप लोग कोई काम न करें, किन्तु हमें परोपकार वृत्ति से अपने यहां सदावर्त खोल लेने दें, तो मैं तो उनकी यह बात स्वीकार करने से साफ़ ही इन्कार करदूं।"

"क्या इसलिए कि उससे आपके आत्म-सम्मान पर चोट पहुँचेगी ?"

"नहीं, सिर्फ़ इसी कारण से नहीं, बल्कि खासकर इसलिए कि उससे हमारे जीवन के इस मौलिक नियम का मूलोच्छेद होता है, कि हमें अपने पेट के लिए श्रम करना ही चाहिए, हम अपने पसीने की कमाई की ही रोटी खानी चाहिए।"

"पर यह तो आपका व्यक्तिगत विचार है। क्या आप समाज की व्यवस्था को खुद समाज पर ही छोड़ देंगे, या चंद अच्छे मार्ग-दर्शकों के ऊपर ?"

"थोड़े-से अच्छे मार्ग दर्शकों के ऊपर मुझे समाज की व्यवस्था छोड़ देना चाहिए।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि आप 'डिक्टेटर शिप' के पक्ष में हैं?"

"नहीं, महज इस कारण से कि मेरा मौलिक सिद्धान्त अहिंसा है, और मुझे किसी व्यक्ति या समाज पर बलात्कार नहीं करना चाहिए। मार्गदर्शन का अर्थ 'डिक्टेटरशिप' नहीं है।"

यह बहस न जाने कबतक होती रहती, पर गांधीजी के पास और अधिक समय नहीं था, इसलिए उन सज्जन को उस दिन इतने से ही संतोष करना पड़ा।

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

तुलसी

तुलसी का वृक्ष हरेक हिन्दू-घर में धर्म की दृष्टि से पूजा जाता है। इसका गूढ़ अर्थ यह है कि मामूली खांसी, सर्दी, बुखार आदि की यह घरेलू दवा है। नित्य दो पत्ते भोजन के साथ खाने से हाजमा दुरुस्त रहता है। जिस जगह बुखार अधिक आता हो वहां तुलसी के पत्ते बतौर चाय के पीने से ज्वर का शमन होता है। कुकर खांसी (Whooping Cough) की यह बढ़िया दवा है —

तुलसी मंजरी	½ तोला
बच	½ तोला
पीपल	½ तोला
मुलहटी	½ तोला
शक्कर	२½ तोला

इन सबको उबालकर पानी जब आध पाव रह जाय तब उतार लो, खुराक चाय की चम्मचभर दिन में ५—६ बार।

कान का दर्द व दांत का दर्द इसका रस लगाने से आराम होता है। इसलिए हिंदू अपने घरों में तुलसी-घर या तुलसी-चौरा बनाकर उसका पूजन करते हैं।

इन्हीं बातों का ख्याल करके मौजा बैदपाली (तहसील महा-समुन्द, जिला रायपुर, सी० पी०) के ग्राम-सेवासंघने एक प्रस्ताव

१–९–३५ को पास किया है कि तुलसी के पौधे की तरक्की जहां-तक हो घर-घर की जाय, क्योंकि यह बड़ी उपयोगी चीज है।

संघ के दो ग्राम-सेवकोंने एक हफ्ते के अन्दर दो मौजों के हर घर में तुलसी लगवादी है। निम्नलिखित जातियों के इतने घरों में तुलसी लगवाई गई है—

सौरा–१० घर, कोलता–४ घर, रावत–७ घर, तेली–३ घर, अघरिया–२ घर, धोबी–१ घर, केवट–३ घर, बिझवार–१ घर, गोंड–११ घर, गाडा–९ घर, घासिया–७ घर, पनका–१४ घर,

अंत की तीन जातियां अस्पृश्य मानी जाती है।

उम्मीद है, कि ३ माह मे कम-से-कम १०० मौजो में खासकर हरिजन भाइयो के घर तुलसी लगादी जायगी। इससे दो फायदे होते है—एक तो हरिजनो के घर स्वच्छ रहने लगते है, दूसरे वे बीमार कम पडते हैं। घर में तुलसी रहने से वे शराब भी छोडते जाते है। इसका बडा अच्छा असर पड़ रहा है। हरिजन भाई बगैर कहे ही स्नान करने लगे है—और तुलसी के चौरे भी बनवाये है। ये चौरे हर अमावस व पूनो को छुई मिट्टी से पोते जायेंगे—हर गांव में २ स्वयसेवक नियत है जो चौरे सफेद कर दिया करेगे।

शहरो के बेकार भाइयो को चाहिए कि अपने आस-पास के दसेक गावों मे एक माह मे हरिजन-मुहल्लो के प्रत्येक घर मे तुलसी चौरा बनादे, ताकि हरिजनो की बस्ती की सफाई जल्दी होने लग जाय, और कभी-कभी सवर्ण भाई उनके यहां बैठने जाया करे।

'एक ग्राम-सेवक'

हरिजन-सेवक-संघ की कार्य-कारिणी-समिति के प्रस्ताव

हरिजन-सेवक-संघ की तृतीय बैठक २३ और २४ नवम्बर को वर्धा में हुई, जिसमे नीचेलिखे सदस्य उपस्थित थे

(१) श्री घनश्यामदास बिड़ला
(२) श्रीमती रामेश्वरी नेहरू
(३) श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त
(४) ,, महावीरप्रसाद पोद्दार
(५) ,, जी० रामचन्द्रन
(६) ,, अमृतलाल वि० ठक्कर
(७) ,, नारायणदास मलकानी

इस बैठक मे निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुए :—

१. भारत-सेवक-समिति और महाराष्ट्र प्रान्तीय-हरिजन-सेवक-संघ के अध्यक्ष श्री गोपालकृष्ण देवधर के स्वर्गवास पर ह० से० संघ की कार्य-कारिणी समिति उनके कुटुम्बियो के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रगट करती है और हरिजनो की उन्नति के लिए उन्होने जो सहानुभूति प्रदर्शित की तथा अमली मदद दी उसके लिए उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करती है।

२ इन्दौर के हरिजन-सेवक-संघ के अध्यक्ष डॉ० सरयूप्रसाद तिवारी के स्वर्गवास पर ह० से० संघ की कार्य-कारिणी समिति उनके कुटुम्बियों के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रगट करती है, और हरिजनो की उन्नति के लिए उन्होंने जो सहानुभूति प्रदर्शित की तथा अमली मदद दी उसके लिए उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करती है।

३. गांधी-थैली-फण्ड का रुपया सिर्फ उन्हीं जिलों में खर्च होना चाहिए जिनमे कि वह एकत्र हुआ है; लेकिन जहां कोई हितकर कार्य व्यवस्थित करने के प्रयत्न निष्फल हो और गांधी-थैली-फण्ड की रकम योंही पड़ी रहे वहां उस जिले से सम्बन्धित प्रान्तीय संघ उस बेकार पड़ी हुई रकम का उपयोग करेगा, पर उसकी योजना तैयार करके पहले उसे सेण्ट्रल बोर्ड से मंजूर करा लेनी होगी। थैली-फण्ड की जिन रकमों का, उनके जमा होने से लेकर ३ सालतक जिला-कमिटी या प्रान्तीय संघ के द्वारा कोई उपयोग न होगा, वे सेण्ट्रल बोर्ड के कब्जे में आ जायँगी।

४. मराठी मध्यप्रान्तीय संघ की ओर से सेण्ट्रल बोर्ड ६,५०० रु० (जिसमे अबतक दिया हुआ ३००० रु० भी शामिल है) बतौर कर्ज के, जिसपर कोई ब्याज नही लिया जायगा, नालवाड़ी के चर्मालय के लिए, जो अब ग्राम-सेवा-मण्डल, वर्धा के अधिकार और व्यवस्था में रहेगा, ग्राम-सेवा-मण्डल को प्रदान करे। कर्ज दी हुई रकम, जिस तारीख को कर्ज दिया जाय उससे १० साल के अन्दर-अन्दर, वापस मिल जानी चाहिए, और अगर इस बीच चर्मालय का दिवाला निकल जाय, या वह रहन हो जाय, तो उसकी सम्पत्ति पर पहला हक सेण्ट्रल बोर्ड का होगा। इस प्रस्ताव की एक-एक नकल (१) गांधी-सेवा-संघ, (२) ग्राम-सेवा-मण्डल और (३) मराठी मध्यप्रान्तीय संघ को उनकी जानकारी के लिए भेजी जाय।

५. छुट्टियो के बारें मे जिन नियमो का मसविदा संयुक्त-मंत्रीने पेश किया है, उन्हे प्रस्तावित संशोधनों के साथ मंजूर किया जाता है। उन्हे संघ की सब शाखाओ के पास भेज देना चाहिए, ताकि १ अक्तूबर १९३५ से उनपर अमल होने लगे।

६. स्वर्गीय ज्वालाप्रसाद मण्डेलिया की जगह श्री लक्ष्मी-निवास बिड़ला हरिजन-सेवक-संघ के कोषाध्यक्ष बनाये जायं।

७. सेण्ट्रल बोर्ड के किसी एक मंत्री से प्रार्थना की जाय कि वह अजमेर जाकर हिण्डौन और ब्यावर के मामलो का निपटारा करदे, जिनके बारे मे राजपूताना-संघने इस समिति के पास शिकायत भेजी है।

८ कोडमबक्कम् के उद्योग-मंदिर (इण्डस्ट्रियल इंस्टीटयूट) के बारे मे श्री जी० रामचन्द्रन की रिपोर्ट पढ़कर स्वीकार की गई; और निश्चय हुआ कि मंत्री श्री आर० वी० शास्त्री से प्रार्थना की जाय कि उस रिपोर्ट मे जो संशोधन सुझाये गये हैं उनको मद्देनजर रखते हुए वह उसका नया बजट बनाकर पेश करे।

९. दिल्ली के हरिजन-उद्योग-भवन के बारे में संयुक्त-मंत्री का नोट पढे जाने के बाद निश्चय हुआ कि जो नकशा बनाया गया है उसके अनुसार फिलहाल २५ छात्रो के रहनेलायक मकान वहां बनाये जायें और अध्यक्ष तथा प्रधान मंत्री के परामर्श से धीरे-धीरे निम्नलिखित गृह-उद्योग सिखाने की उसमें व्यवस्था की जाय:—

(१) सब्जी और फलो की बागबानी
(२) दर्जी का काम
(३) बढ़ईगिरी
(४) जूते बनाने का काम
(५) राज का काम
(६) हाथ की मशीनो से छपाई
(७) जिल्दसाजी
(८) हाथ से कागज बनाना

१०. तिरुचनगोडू के गांधी-आश्रम-द्वारा एक हरिजन-

छात्रावास बनाने के लिए ५००) रु० की रकम मंजूर की जाती है, लेकिन यह दी तभी जायगी जबकि इस काम के लिए पहले इतनी ही रकम वहां एकत्र कर ली जाय ।

११. इलाहाबाद में होनेवाले अर्द्धकुम्भी के मेले के समय खर्च करने के लिए ५००) रु० की रकम मजूर की जाती है, बशर्ते कि वहा की स्थानीय समिति अथवा प्रान्तीय सघ इसके लिए उपयुक्त योजना पेश करे और इतनी ही रकम खुद भी लगाये।

१२ नीचेलिखी हरिजन-सस्थाओ को दी जानेवाली सहायता १९३५–३६ के लिए भी स्वीकृत की जाती है :—

(१) सस्ती पाठशालाएँ, गोरखपुर	३५)
(२) गोपीनायकन पेट्टी होस्टल, मद्रास	६)
(३) गोपालपुरम-बस्ती, डी० एम० आर० ट्रस्ट	१५)
(४) नन्दनार मठ, चिदम्बरम	१००)
(५) हरिजन-छात्रावास, मरखड (बरार)	१५)
(६) आदि-द्रविड सेवक समोधन, मद्रास	३०)
(७) अय्यनकालीस बनाट-शाला, वेगनूर	१५)
(८) आनन्दतीर्थ-विद्यालय, पायानूर, एस० त्रावणकोर	२०)

१३ १९३५–३६ के बजट के बारे में तामिलनाड, राजपूताना, बिहार और महाराष्ट्र प्रान्तीय सघों के पत्रो को पढ़कर, विचारोपरान्त, निश्चय हुआ कि प्रधान मत्री, सयुक्त मत्री तथा श्री जी० रामचन्द्रन की जो उपसमिति इस सम्बन्ध में बनाई गई थी उसकी रिपोर्ट मजूर कर ली जाय,और सम्बन्धित प्रान्तीय संघो के पास उसकी सूचना भेज दी जाय ।

१४. तामिलनाड प्रान्तीय संघ के अध्यक्ष डॉ०टी०एस०एस० राजन का त्याग-पत्र पढ़ने के बाद निश्चय हुआ कि हरिजन-सेवक सघ के अध्यक्ष से प्रार्थना की जाय कि वे डॉ० राजन से पत्र-व्यवहार करके उन्हे तामिलनाड-संघ का अध्यक्ष बने रहने का आग्रह करे, क्योंकि उसके लिए उनकी सेवाएँ बहुमूल्य है ।

१५. सेण्ट्रल बोर्ड की तीसरी सालाना बैठक, १९३६ की फरवरी के पहले सप्ताह के बाद, दिल्ली मे होगी । इसकी अतिम तारीख यथासमय अध्यक्ष निश्चित करेंगे ।

१६. प्रान्तीय सघो से प्रार्थना की जाय कि उनके या उनकी शाखाओ के पास जो मिल्कियत हो उसकी पूरी सूची तैयार करके सेण्ट्रल बोर्ड के पास भेजदे, जिससे कि ऐसी मिल्कियतो की सुरक्षा और व्यवस्था के लिए प्रान्तीय ट्रस्ट बनाये जा सकें ।

१७ आसाम मे बसे हुए उन कुलियो की सहायतार्थ जो चायबगानो मे काम करते है या पहले करते थे, और ब्रह्मपुत्र-घाटी में बसी हुई आदिम जातियो के बीच कल्याण-कार्य शुरू किया जाय । इसके लिए प्रधान मत्री एक उपयुक्त योजना तैयार करे, जिसमे खर्च का बजट ५००) रु० महीने से ज्यादा न हो, और उपयुक्त कार्यकर्त्ताओं के मिलते ही वहा कार्यारम्भ कर दिया जाय ।

१८. हरिजन-सेवक-संघ के अध्यक्ष से प्रार्थना की जाय कि श्रीमान् बड़ौदा-नरेश की हीरक-जयन्ती के अवसर पर वह उन्हे एक पत्र भेजकर उनकी उस सहानुभूति और सक्रिय सहायता के लिए बधाई दें जोकि उन्होंने अपने लम्बे शासन-काल में बड़ौदा-राज्य में हरिजनों के प्रति प्रगट की है ।

१९ १९३४–३५ के आय-व्यय का वार्षिक ब्योरा और तलपट, जैसा कि १ अक्तूबर १९३५ को था, पढे जाने के बाद पास किया गया ।

२०. सेण्ट्रल बोर्ड ने पानी-फण्ड के लिए जो रकम इकठ्ठी की है उसका उपयोग नये कुएँ खोदने या पानी की मौजूदा व्यवस्था ठीक करने मे किया जायगा, जिसके लिए प्रान्तीय संघो को अपने निश्चित प्रस्ताव भेजने चाहिएँ । पानी-फण्ड मे जबतक रुपया रहेगा, कुल खर्च की ५० फी सदी तक मागे मंजूर की जा सकेगी । सिन्ध, काठियावाड और गुजरात-जैसे प्रान्त, जिन्होने अपने पानी-फण्ड अलग जमा किये है, केन्द्रीय पानी-फण्ड से कोई रकम नही माग सकेंगे ।

कार्य-कारिणी समिति यह भी प्रार्थना करती है कि केन्द्रीय पानी-फड मे और भी चन्दा एकत्र करने और सामान्य कार्य के लिए स्थानिक चन्दे प्राप्त करने मे सहायता पहुँचाने के लिए श्रीमती रामेश्वरी नेहरू और श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त का एक प्रतिनिधि-मण्डल भारत के भिन्न-भिन्न भागो मे दौरा करे ।

२१ बासवी-प्रथा (हरिजन बालिकाओ को वेश्यावृत्ति के लिए प्रदान करने का रिवाज) नष्ट करने के लिए मैसूर-संघ के मत्रीने काम करने की जो योजना पेश की है उसे मजूर करके निश्चय किया जाता है कि इसके लिए एक वर्षतक ५००) माहवार की सहायता मैसूर के हरिजन-सेवक-सघ को दी जाय, बशर्ते कि इतनी ही रकम वह भी इस काम मे लगावे ।

२२ तामिलनाड प्रान्तीय सघने (१) टिनेवली (२) कराइकुडी (३) दक्षिणी आर्कट (४) उत्तरी आर्कट (५) चिंगलपेट (६) सेलम (७) नीलगिरी और (८) फासीसी इलाका इन आठ जिलो के लिए विशेष कारणवश थैली-फड मे से जो रकम मागी है वह स्वीकृत की जाती है, लेकिन शर्त यह है कि इस सहायता का आधार ½ के बजाय ⅓ होगा, अर्थात् कुल खर्च की आधी ही नही बल्कि ⅔ रकम तामिलनाड-सघ को अपनी ओर से जुटानी पडेगी, और १ अक्तूबर १९३६ से शुरू होकर छ: महीने से ऊपर यह सहायता हर्गिज न दी जायगी ।

२३. ५००) इसलिए स्वीकृत किये जाते है कि जरूरत पड़ने पर प्रधान मत्री के इच्छानुसार हरिजन विद्यार्थियों की कालेजी परीक्षाओं की फीस देने के काम आयेंगे ।

२४ पण्ढरपुर (महाराष्ट्र) के श्री गाडगे बुआ साहबने वहा की हरिजन-धर्मशाला को उसकी व्यवस्था आदि के लिए ट्रस्ट बनाकर संघ के सुपुर्द करने का जो प्रस्ताव किया है उसपर निश्चय हुआ कि आपस मे जो शर्तें तय हुई हैं उनके अनुसार संघ उसे लेकर उसके लिए एक खास ट्रस्ट बनादे ।

२५. माध्यमिक शालाओं और उद्योग-धन्धो की शिक्षा के लिए जिस रघुमल ट्रस्ट से छात्रवृत्तिया दी जाती थी उससे १ जनवरी १९३६ से बजाय ४००) के २००) माहवार ही मिलेगा, इसलिए निश्चय हुआ कि इस समय लगभग ५००) माहवार की जो छात्रवृत्तिया दी जाती है वे सिर्फ एप्रिल १९३६ के आखिरतक ही जारी रहें । उसके बाद इन छात्रवृत्तियो का क्या हो, इसका विचार सेण्ट्रलबोर्ड की अगली बैठक में किया जायगा, जो फरवरी १९३६ में दिल्ली में होगी ।

टिप्पणियाँ

अहिंसा—एक सामूहिक बल

गुजरात के सुविख्यात लेखक श्री कन्हैयालाल मुनशीने 'हंस' के नवम्बर के अंक में अहिंसा के सम्बन्ध में एक अच्छी विचारपूर्ण टिप्पणी लिखी है। उसका कुछ अंश हम नीचे देते हैं :—

"अहिंसा के नियम से प्रेरित सामूहिक प्रवृत्ति बहुत ही खरी है; क्योंकि उससे अपनी सामूहिक संकल्प-शक्ति आजमाने की प्रेरणा प्रत्येक व्यक्ति को मिलती है। असत्य और हिंसा से होनेवाला शक्ति का निरर्थक अपव्यय इसमें नहीं होता। इसके परिणाम भी चिरजीवी और सच्चे होते हैं। इस तरह अहिंसा लोगों के हाथ में एक सामाजिक उद्धार का सबल शस्त्र बन जाती है।

हिंसक प्रवृत्ति बहुत-से अनिश्चित अवसरों पर ही सफल होती है। महायुद्ध चल रहा हो, या कहीं अंधाधुन्धी मच रही हो, अंतःकलह फैल रहा हो, सरकार की सत्ता निर्बल हो गई हो, और सुसज्जित सैन्य हिम्मत हार बैठी हो तभी इसके परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं। इन सब का मूल असत्य और हिंसा में है। जो लोग इस तरह की राक्षसी प्रवृत्ति की परिभाषा बोलते हैं, वे भविष्य की चकाचौंध में पड़कर वर्तमान का बल खो बैठते हैं। इस जंगली प्रवृत्ति का मुकाबला करने के लिए ही हमें अपने में अहिंसक प्रवृत्ति जाग्रत रखनी चाहिए। इसके द्वारा धीरे-धीरे राष्ट्रीय जीवन स्वातंत्र्य और शक्ति की प्रतिमूर्ति बन जाता है।"

भूकम्प-विध्वस्त बिहार में पुनर्निर्माण का कार्य करनेवाले सुप्रसिद्ध डॉ० पेरी सेरेसोलने भी उसदिन एक पत्र-प्रतिनिधि से बात करते हुए इसका समर्थन किया था। उन्होंने कहा था :—

"युद्ध की भावना से नहीं, बल्कि पारस्परिक सहायता के भाव से ही संसार में शांति स्थापित की जा सकेगी। मुसोलिनी का नहीं, बल्कि महात्मा गांधी का मार्ग ही सत्य का मार्ग है। गांधीजी के आध्यात्मिक तरीकों से आशान्वित सफलता, थोड़े दिनों के प्रयत्न से, न मिलने के कारण ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वह असफल हो गया। मेरा विश्वास है कि केवल अहिंसात्मक सिद्धांत के सतत प्रयोग से ही अंतर्राष्ट्रीय गुत्थियां सुलझ सकेंगी।"

म्रि० ह०

व्यर्थ का दुराग्रह

रूढ़िप्रिय सनातनी कभी-कभी व्यर्थ का ही विरोध खड़ाकर देते हैं। गरीब हरिजनों को सताने में उन्हें कुछ आनन्द-सा आता है। भेलसा का एक वाकया है। नवरात्रि के दिनों में यहां हर साल सवर्णों तथा हरिजनों के अलग-अलग जुलूस निकलते और नदी के घाट पर जाते हैं। इस साल क्या हुआ कि रूढ़िचुस्त सनातनी भाइयोंने नदी के घाट पहले से ही रोक लिये और वहां खूब डटकर वे स्नान-संध्या आदि करने लगे। हरिजनोंने अधिकारियों को इसकी इत्तिला करदी। अधिकारियों और गांव के समझदार लोगोंने बाधक सनातनियों को घाट छोड़ देने के लिए बहुत समझाया, पर उनपर कुछ भी असर नहीं हुआ। अंत में, पुलिसने आकर हटाया तब हटे। स्वभावतः इससे उत्तेजना भी फैली।

इसी तरह गूना में एक गरीब मेहतर विद्यार्थी पर कुछ सवर्णोंने मंदिर में जबरन घुसने का दावा ठोक दिया। पर दावा तो झूठा था, और वह खारिज हो गया। पता नहीं, इस तरह गरीब हरिजनों को व्यर्थ तंग करने में हमारे सनातनी भाइयों को क्या आनन्द आता है!

कृ० वि० दाते

लेकिन 'वे' नहीं!

इस सप्ताह में एक काम से हरिद्वार गया था। वहां पतितपावनी गंगा का 'हरि की पैड़ी' नाम का घाट अत्यंत पवित्र समझा जाता है। जूते उतारकर वहां और सब लोग जाकर स्नान कर सकते हैं, प्रतिबंध है तो केवल हरिजनों पर। वहीं अस्थियां भी लोग डालते हैं। गंदे-से-गंदे कपड़े धोते हैं। फूल-पत्ते सड़ते हैं, और वहां से चंद कदम ही आगे शहर की गटरों का गन्दा पानी भी गंगाजी में आता है। मुझे अचरज और दुःख हुआ कि तमाम गन्दगी फैलानेवाले तो हरि की पैड़ी पर नहा-धो सकते हैं, लेकिन वे लोग वहां पैर भी नहीं रख सकते, जो दुनिया भर की गन्दगी दूर करते हैं। तो तीर्थों में भी क्या उलटी गंगा बहती है?

वि० ह०

और यह क्या है?

हरिद्वार से मैं दिल्ली वापस आ रहा था। उसी डिब्बे में भियानी तरफ के एक वृद्ध पंडितजी थे। वानप्रस्थ आश्रम में थे। उनके साथ एक ब्रह्मचारीजी भी थे। उनसे पंडितजी कहने लगे कि, 'देखो, कैसा भ्रष्टाचार फैल रहा है! शुचिता तो आज कहीं दिखाई ही नहीं देती। वह छोकरा, देखो, जूते पहने ही चाय पी रहा है!' ब्रह्मचारीने उनकी बात का समर्थन किया। पंडितजीने लघुशंका-निवारण की, और लकसर में गाड़ी से उतरकर पानी मंगाया और नीचे प्लेटफार्म पर हाथ धोकर कुल्ला किया। पंडितजी चिलम पीते थे और इससे खांसीका आना स्वाभाविक था। फिर वृद्धावस्था! एक-दो बार नहीं, कई बार उन्होंने वहीं जहां बैठे थे, गाड़ी में खूब खखार-खखारकर थूंका। बैठे खिड़की के पास थे। पर उन्होंने तो गाड़ी के स्वच्छ फर्श पर ही थूकना पसन्द किया। जब उनकी खांसी बन्द हो गई, तो मैं धीरे से उठा और एक रद्दी कागज से वह तमाम थूक पोंछकर साफ कर दिया। वे आश्चर्य-दृष्टि से मेरी तरफ देखने लगे। मैं उनकी बेंच की तरफ जाने लगा तो उन्होंने अपना बिस्तरा खींच लिया। संभव है, उन्होंने मुझे भंगी समझा हो। मैं मन-ही-मन सोचने लगा कि जूते पहनकर चाय पीना तो भ्रष्टाचार हुआ, पर थूक-थूककर इन्होंने जो गाड़ी का डिब्बा गन्दा किया यह कौन-सा पवित्राचार है!

वि० ह०

सूचना

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi, by R. S. Gupte.

श्रम की कीमत

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
किग्सवे, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शनिवार, १४ दिसम्बर, १९३५. [संख्या ४२

विषय-सूची

आसाम के हरिजन

'हरिजन-सेवक' के १६ नवंबर, १९३५ के अंक में आसाम के हरिजनों के विषय में मेरा एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें आसाम के चायबागान-द्वारा निर्मित कुलियो के संबंध मे ही मैंने मुख्यतया लिखा है। इस लेख में वहा के अन्य हरिजनों तथा पह[illegible] जातियों के विषय में अपनी पिछली आसाम की हरिजन-यात्रा के अनुभवों के आधार पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करूंगा।

आसाम में हरिजनो की संख्या ब्रह्मपुत्र की घाटी की अपेक्षा सुरमा-घाटी मे ढाई गुनी अधिक है। सुरमा-घाटी में सबसे बडा जिला सिलहट है। इसकी आबादी २७ लाख है। हिंदू केवल ११ लाख हैं, जिनमें ४ लाख के लगभग तो हरिजन ही हैं। हरिजनो मे बडा भाग नम शूद्रों का है। करीब सवा लाख अकेले नम:शूद्र है। तीसेक साल पहले ये लोग चाडाल कहे जाते थे, पर अब सद्भाग्य से उनका वह नाम नही रहा। नम:शूद्र का अर्थ है नमन करनेयोग्य शूद्र, अर्थात् अतिशूद्र नही। समस्त सुरमा-घाटी मे तमाम हरिजन जातियो की सख्या नीचेलिखे अनुसार है:—

नम:शूद्र	१,३९,०००
पाटनी	१,१०,०००
जोगी	८४,०००
माली	३९,०००
कैवर्त	३०,०००
धोबी	२३,०००
सूत्रधार (सुतार)	१३,०००
झालो और मालो	११,०००
कोली	१०,०००
मोची	८,०००
महारा (महार ?)	५,०००
मेहतर	१,०००
कुल—	४,१३,०००

बिहार और मध्य प्रान्त तथा बंगाल व आसाम में धोबी अस्पृश्य समझे जाते है। पचास वर्ष से ऊपर की बात है कि धोबी के हाथ मे काठियावाड़ मे लोग पानी छिड़ककर कपड़े लेते थे। यह मेरी आंख की देखी बात है। संयुक्त प्रांत और मध्य प्रांत में आज भी कई जगह पुराने विचार के लोग ऐसा ही करते है। पूरब में दूसरे अस्पृश्यो की तरह धोबियों को अब भी अछूत समझते हैं।

यहां जोगी या नाथ नाम की जाति की भी गणना हरिजनों में होती है। असल मे, ये लोग बुनाई का काम करते थे; पर अब यह काम इन्होंने छोड़ दिया है। ये ऐसा कोई भी धंधा नहीं करते जो हलका गिना जाता हो। इन्होंने विधवा-विवाह भी बंद कर दिया है, तो भी ये अस्पृश्य—अथवा सच्चे शब्द का प्रयोग करें तो 'जल-चल'—अभी नहीं बने। यह माना जाता है कि दूसरे प्रांत से आकर ये लोग यहां कई सौ बरस हुए जब बस गये होंगे, इसलिए इन्हें दूर ही रखकर 'अ-जल-चल' बना दिया होगा। बंगाल और आसाम में हरिजनों को अस्पृश्य कहना ठीक नहीं। उन्हें छूकर रूढ़ि-प्रिय लोग भी स्नान नही करते, और बदन पर पानी भी नही छिड़कते। सिर्फ उनका छुआ या भरा हुआ पानी उच्चवर्ण के लोग व्यवहार में नही लाते। अथवा जिस घर मे वे चले आते है उसका तमाम पानी छुतिहा या अपवित्र हो जाता है ऐसा मानते हैं, इसलिए उन्हे घर मे नही आने देते। जो जाति 'जल-चल' न हो, अर्थात् जिसका भरा छुआ हुआ पानी सवर्ण लोग काम में न लाते हों ऐसी तमाम जातियां इन प्रांतो मे हरिजन मानी जाती है। गुजरात के जोगियो की भांति ही इस तरफ के जोगी है। ये लोग राजा भरथरी को अपना इष्टदेव मानते है, और 'एकतारा' पर उन्हींके भजन गाते है।

मगर सच्चा आसाम तो ब्रह्मपुत्र घाटी का ही प्रदेश है। यहां के हरिजनो की चार बड़ी-बड़ी जातिया है। सबसे बड़ी जाति कैवर्त अथवा नदीआल, यानी नदी-तट पर रहनेवाला या मछुओ की है। अधिकाश कैवर्त अब मछुवे का धधा छोड़कर खेती करने लगे है, तो भी उनकी अस्पृश्यता, अथवा 'अ-जल-चलत्व' नही गया। दूसरी जाति नम शूद्र, और तीसरी 'हीरा' नाम की है। सबसे छोटी और चौथी जाति को आजकल बनिया या खिस्तियाल बनिया कहते है। खिस्तियाल बनिया का अर्थ है धधे से बनिया। एक विचित्र सामाजिक रचना या अत्याचार से अथवा स्वेच्छाचारी राजा की आज्ञा से सोने का धंधा करनेवाले ये सुवर्णकार आज आसाम मे 'अ-जल-चल' बने हुए हैं! इनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी है, ठीक तरह से ये शिक्षित भी है, सरकारी नौकरियो में ऊंचे-ऊंचे ओहदो पर भी है, तो भी हिंदू-समाजने किसी जमाने मे इनका जो बहिष्कार किया था वह आज भी कायम है। संख्या तो इनकी केवल १४ हजार ही है, पर यह खासी प्रगतिशील

जाति है। ब्रह्मपुत्र-घाटी के प्रदेश की ५१ लाख की कुल आबादी में हरिजनों की संख्या नीचेलिखे अनुसार है :—

केवर्त	१,१९,०००
नमशूद्र	३१,०००
हीरा	१७,०००
बनिया	१४,०००
मेहतर	२,०००
कुल	१,८३,०००

चाय बागान के अभागे कुलियों की अस्पृश्यता और दुरवस्था के विषय में तो मैं अपने पहले लेख मे लिख ही चुका हूं। सच पूछो तो आसाम गरीब हिंदूजातियों को अस्पृश्य अथवा 'अ-जल-चल' बनाने का एक भारी कारखाना बन गया है। इनके अलावा पहाडो के ऊपर जगलो मे रहनेवाली जो जातिया पहाड़ों से उतरकर नीचे मैदान मे आ बसी है, और खेती-बारी तथा दूसरे धधे करने लगी है, उन्हे भी आसाम मे 'अ-जल-चल' या हरिजन मानते है। काचारी, गारो, राभा, मीरी, मिकिर, लालुग, हाजोग आदि जातियों का इनमें समावेश होता है। इन पहाड़ी जातियो को न तो 'नामघरो' अर्थात् आसामी प्रार्थना-मदिरो मे जाने देते है और न उनके हाथ का पानी ग्रहण करते है। वहा ये नीच जातिया समझी जाती है। हमारे गुजरात में दुबला, गामीत, घोड़िया, भील, बसावा, कोकणा आदि इसी प्रकार की पहाडी जातियो को अस्पृश्य नही मानते। इसका कारण यह नही कि ये जातिया गुजरात में 'जल-चल' है। उनमे से अधिकाश को 'अ-जल-चल' मानते है, तो भी गुजरात मे तो उसी जाति को अस्पृश्य मानते है, जिसके छुने से ही छूत लगती हो। गुजरात तथा अन्य प्रातो मे स्पर्श-दोष का जैसा रोग है वैसा आसाम मे है ही नही। आसाम मे तो उसके स्थान पर 'जल-दोष' है, और जल-दोषवाली जातियो की संख्या बहुत अधिक होती ही है, इसलिए दोनो जगह,गुजरात और बंगाल-आसाम मे, अस्पृश्यता की व्याख्या भिन्न है।

आसाम की कुल ९२॥ लाख की आबादी में हरिजनों की संख्या मर्दुमशुमारी के अनुसार ६,५६००० मानी गई है, पर हिंदू-समाज जिन्हे 'अ-जल-चल' अथवा हरिजन मानता है उनकी संख्या नीचेलिखे अनुसार है —

जन्म से माने हुए हरिजन	६,५६०००
चाय बागान मे बने हुए हरिजन	१४,००,०००
पहाड़ी जातियो में से बने हुए हरिजन	६,००,०००
कुल	२६,५६,०००

आसाम की कुल आबादी ९२॥ लाख है। इसमें ५२ लाख हिंदू, २८ लाख मुसलमान, १० लाख 'ॲनिमिस्ट' और २॥ लाख ईसाई है। इसलिए हरिजनों की संख्या कुल आबादी की २८·७ प्रतिशत और हिंदूधर्मावलंबी ५० प्रतिशत से ऊपर हैं। यह भीषण स्थिति किस प्रकार सहन की जा सकती है ? आसाम के अवर्णों को ऊँचा उठाने के लिए भगीरथ प्रयत्न करने की आवश्यकता है। एक भी प्रात में ऐसी भीषणता देखने में नही आती। और फिर दूसरे प्रांतों से आये और बने हुए हरिजनो के प्रति आसामी लोगों की जितनी उपेक्षा है, उतनी उपेक्षा कही अन्यत्र देखने में नहीं आती। यह भयकर स्थिति सुधारने के लिए भगीरथ प्रयत्न की आवश्यकता है। समस्त भारत के नेताओ को इस पुण्यकार्य में योग देना चाहिए।

अमृतलाल वि० ठक्कर

मीरा बहिन का नया सेवा-मंदिर

"मीरा बहिन, इस मिट्टी के तवे पर दलिया बनेगा क्या ?" "मै दलिया वहां खाऊँगी ही नही" श्री महावीरप्रसाद पोद्दार को जवाब देते हुए मीरा बहिनने कहा, "लेकिन आप लोग कभी मेरी पहुनई स्वीकार करे, तो आपको दलिया भी खिला सकूंगी।"

उस दिन सवेरे के पहर खूब ठंड में मीराबहिन अपना नया सेवा-मंदिर बनाने जा रही थी। साथ में श्री जमनालाल बजाज, श्रीमती रामेश्वरी नेहरू, श्री पोद्दारजी, आचार्य धर्माधिकारी तथा अन्य सज्जन थे। मीराबहिनने साथ में इतना ही सामान लिया था, जो एक आदमी आसानी से अपने साथ लेकर चल सके। इस गिरस्ती के सरंजाम मे मिट्टी के तीन तवे भी थे। यह चीज ग्राम्य मनोवृत्ति के बिलकुल अनुरूप थी।

मीराबहिन का यह नया घर या सेवा-मन्दिर वर्धा से चारेक मील दूर 'सेगांव' नामक एक छोटे-से ग्राम में बननेवाला है। यहा १५० घर की बस्ती है, और जन-सख्या ५५० है। हरिजन भी यहा काफी तादाद मे है।

हम लोग गरम-गरम जुवार का होरहा खा रहे थे, और उधर महार आदि हरिजन भाई सभा के लिए जमा होते जाते थे। सभापति बनाये गये हरिजनो से प्रेम रखनेवाले तथा काका कालेलकर के मेहमानदार बाबा साहब देशमुख। मीराबहिन का परिचय देते हुए जमनालालजीने कहा—"मीराबहिन आप लोगो के गाव मे रहने के लिए आई है। यह एक अग्रेज महिला हैं और यह बड़े सुख व आराम मे पली हैं। आज आप लोगो के गाव मे रहने आ रही है तो इसका यह अर्थ नही कि आप लोग यह समझने लग जायँ, कि 'अब हमारे तमाम दुखो का अन्त हो गया, हमें अच्छी नौकरी मिल जायगी और खूब आराम से रहेंगे।' मीराबहिन के पास रुपया-पैसा नही है। वे तो फकीरी बाना धारण करके आपकी सेवा करने आई हैं। अभी तो दो-तीन महीने में यहां के बारे में अध्ययन करेंगी, और फिर यह विचार कर सकेंगी कि वे यहां रहकर आप लोगो की क्या सेवा कर सकती हैं। मीराबहिन को आप उनके काम मे सहायता दें। आपका सहयोग और प्रेम पाकर ही वे आपकी सेवा कर सकेंगी।'

जमनालालजी व बाबा साहब देशमुख वाळोनावाले इस गांव के मालगुजार है। अतः अपने बारे मे भी इस सिलसिले में जमनालालजीने दो शब्द कह दिये। बोले—"मीराबहिन इस गांव मे रहें यह तो हमारे लिए प्रसन्नता की बात है। हमें खूब सावधानी रखनी पड़ेगी। क्योंकि अगर अब हमारे आदमियोंने जरा भी गलती की तो मीराबहिन पूज्य बापूजी के पास वह शिकायत ले जायँगी। लेकिन मै तो यह सोचता हूँ कि ये आप लोगों की सेवा करने के लिए इतना कष्ट उठाकर यहां रहना चाहती हैं तो हमें तो खुशी ही होगी, अगर वे हमारी त्रुटियां हमें सुझा सकेंगी। मुझे यदि यह मालूम हो जाय कि यहां के लोग मुझसे असन्तुष्ट हैं तो मैं अपनी मालगुजारी दूसरे को देने के लिए सदा तैयार हूँ।"

प्रार्थना के बाद श्रीमती रामेश्वरी नेहरूने कहा—"मैं इसी तरह अपनी मीरा बहिन का घर देखने फिर कभी आऊँगी। उस वक्त मैं देखूंगी कि ये बच्चे आज की भांति गंदे नही होंगे, और आपके गांव की ये गलियां भी साफ होंगी, आपके घर और आंगन भी स्वच्छ होंगे। लेकिन यह तभी हो सकता है जब आप

लोग मीरा बहिन को उनके सेवाकार्य में पूरा-पूरा सहयोग दें।"

उपस्थित हरिजनों और अन्य लोगोंने बड़े प्रेम और शांति से अपने पाहुनो की हितभरी बाते सुनी।

दामोदर दास

अंग्रेजी का रोग

साप्ताहिक 'अर्जुन' में 'अंग्रेजी का रोग' नामकी एक सपाद-कीय टिप्पणी निकली है जिसे हम कुछ संक्षिप्तरूप मे नीचे उद्धृत कर रहे है —

"अंग्रेजी का रोग हमारे मे इतना घर कर गया है कि आश्चर्य होता है। हमारे पारस्परिक निजी पत्र-व्यवहार तक अंग्रेजी में होते हैं, जैसे कि हमारी कोई भाषा ही न हो। बहुत-से लेखक हिन्दी-पत्रो में हिन्दी लेख भेजते समय परिचयात्मक पंक्तिया अंग्रेजी मे देते है, इसका अनुभव प्राय. प्रत्येक पत्रकार को होगा। वे शायद समझते हैं कि अंग्रेजी मे परिचय देने मे सम्पादक उसे अवश्य प्रकाशित कर देगे। हमारा दु.ख तब और बढ जाता है, जब हम देखते है कि बहुत-सी राष्ट्रीय संस्थाएँ हिन्दी पत्रो को भी अंग्रेजी मे रिपोर्ट भेजती हैं। हरिजनो की सेवा करनेवाला हरिजन-सेवक-संघ भी इस रोग से अछूता नही है। जब ये सस्थाएँ अंग्रजी पत्रो की सुविधा देखते हुए अंग्रेजी मे रिपोर्ट भेजती है, तब हिंदी-पत्रो की सुविधा के लिए क्यो नहीं थोडा-सा कष्ट उठाकर हिंदी मे भेजती है? वस्तु-स्थिति यह है कि अभी हमारे हृदय मे हिंदी के प्रति प्रेम ही उत्पन्न नही हुआ। हम यह समझते है कि अंग्रेजी में छपने से हमारा प्रचार अधिक होगा, यद्यपि यह सत्य से बहुत दूर है। साधारण जनता मे अपने विचारों का प्रचार करने के लिए कांग्रेस-कमेटियो हिंदू-सभाओ और हरिजन-संघो को देशी भाषा के पत्रो की ही शरण लेनी पड़ेगी। भारत-सरकार का प्रकाशन-विभाग अपने वक्तव्य में हिन्दी पत्रों को हिन्दी मे भेजने लगा है, क्योकि उसने हिन्दी-पत्रो मे प्रचार की आवश्यकता और महत्त्व को समझ लिया है। क्या हमारे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता भी समझेंगे? क्या हम आशा करे कि हम अपनी भाषा से प्रेम करने लगेगे? जब प० जवाहरलाल लण्डन मे हिन्दी मे भाषण कर सकते है, तब हमें भारत मे ही उसका प्रयोग करने में क्यो उत्साहशील न होना चाहिए।"

उपर्युक्त टिप्पणी में जो सत्य है उससे हम कैसे इन्कार करें? अंग्रेजी भाषा पर हमारी यह बेहद ममता सचमुच हमारे लिए शर्म की बात है। कहने को तो हम हिंदी हिंदुस्तानी को राष्ट्र-भाषा मानते है, पर व्यवहार में अंग्रेजी को ही देश की भाषा मान रहे है। गनीमत है कि हम अंग्रेजी को खुल्लमखुल्ला राष्ट्र-भाषा कहने की हिम्मत नही करते। यह गांधीजी का ही प्रताप है जो हिंदी हिंदुस्तानी के प्रति हमारे अन्दर इतनी वफादारी तो है। फिर भी हम निराश होने का कारण नही देखते। आज नही तो कल हिंदी के द्वारा ही अपना सारा राष्ट्रीय कार्य चलाना होगा, क्योंकि ग्रामों के बिना राष्ट्रीयता का सपना हम देख ही नही सकते। ग्रामीण भारत की राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही रहेगी।

वि० ह०

ग्राम-सेवकों के लिए

ट्रेनिंग स्कूल

१ जनवरी, १९३६ को मगनवाडी, वर्धा में अखिल भारतीय ग्रामउद्योग-संघ की ओर से ग्रामसेवकों के लिए एक ट्रेनिंग स्कूल (शिक्षणालय) खोला जायगा।

१. शिक्षा-क्रम बारह महीने का होगा—सेवको को चार महीने गावों में रहना होगा।

२. हिंदी माध्यम के द्वारा शिक्षण दिया जायगा

३ शिक्षण के ये विषय होगे —

(१) पीजना और कातना और एक और कोई उद्योग

(२) कवायद और शारीरिक व्यायाम

(३) बही-खाता

(४) जिले और ग्राम का प्रबंध, और स्थानिक स्वराज्य-सस्थाएँ

(५) ग्रामीण अर्थशास्त्र

(६) सहकारिता

(७) सफाई, स्वास्थ्य और आरोग्य-शास्त्र

(८) भजनो का पाठ

(९) कांग्रेस का इतिहास तथा विधान, और अखिल-भारतीय ग्रामउद्योग-संघ तथा चर्खा-संघ की प्रवृत्ति

(१०) हिंदी (जो हिंदी भाषा अच्छी तरह जानते हैं, उन्हें सीखने की आवश्यकता नही)

(११) साक्षरता-प्रसार के तरीके

४. ग्रामउद्योग-संघ-द्वारा नियुक्त परीक्षा-समिति वर्ष के अंत मे विद्यार्थियो की परीक्षा लिया करेगी।

५. दाखिल होने के लिए आवेदन-पत्र भेजनेवालो की आयु १८ वर्ष से कम नही होनी चाहिए, और उनकी कम-से-कम वर्ना-क्यूलर मिडिल तक की योग्यता होनी चाहिए।

६. सुपरिटेण्डेण्ट, ग्राम-सेवक-ट्रेनिंग स्कूल, मगनवाडी, वर्धा (मध्य प्रांत) के पते पर दाखिल होने के लिए आवेदन-पत्र तुरत भेज देने चाहिए।

३१ जनवरी, १९३६ आवेदन-पत्र भेजने की आखिरी तारीख है।

आवेदन-पत्रो के साथ दो सिफारिशी चिट्ठियां होनी चाहिए। दाखिल होने समय १०) डिपॉजिट करने होंगे। पढाई और बोर्डिंग की कोई फीस नही ली जायगी। भोजन-खर्च लगभग ६) मासिक होगा। विद्यार्थियो को अपने लिए बिस्तरे, कपड़े और खाने-पीने के बरतन खुद लाने होंगे।

स्कूल-सुपरिटेण्डेण्ट का स्वीकृति का पत्र मिलने से पहले किसी प्रार्थी को नहीं आना चाहिए।

७. ६)-६) मासिक की कुछ छात्रवृत्तियां देने के लिए एक गुंजाइश है, और ये छात्रवृत्तियां बहुत गरीब और योग्य छात्रों को ही दी जायंगी। इन छात्रवृत्ति पानेवाले विद्यार्थियों को एक नियत समय तक, वैतनिक सेवकों की योजना के अनुसार, ग्रामउद्योग संघ की सेवा करनी होगी।

जे० सी० कुमारप्पा
व्यवस्थापक और मंत्री

हरिजन-सेवक

शनिवार, १४ दिसम्बर, १९३५

श्रम की क़ीमत

कत्तिनों और बुनकरों को कम-से-कम क्या मजदूरी दी जाय, इस प्रश्न पर आजकल चर्खा-संघ की तमाम प्रान्तीय शाखाएँ विचार कर रही हैं। औसत परिमाण में हरेक मजदूर को इतनी रकम मिल जाय कि जिससे वह अपने लिए युक्ताहार की चीजें खरीद सके, ऐसी कम-से-कम मजदूरी के तखमीने बनाने में वे लगी हुई हैं। लेकिन भिन्न-भिन्न प्रान्तों की परिस्थिति भिन्न-भिन्न है, और हम यह जानते हैं कि भिन्न-भिन्न मौसिम व भिन्न-भिन्न समय में उसमें अन्तर पडता रहता है। चर्खा-संघ की कार्य-कारिणी समिति की आगामी बैठक में, जिसमें स्वास्थ्य के अचानक कुछ गडबड हो जाने के कारण शायद गांधीजी भाग न ले सकें, सब केन्द्रों से प्राप्त मजदूरी के तखमीनों पर, कार्यकर्त्ताओं-द्वारा इस सम्बन्ध में एकत्र किये गये तथ्यों के आधार पर, विचार किया जायगा।

मजदूरों की कम-से-कम मजदूरी के सिलसिले में तत्कालीन इग्लैण्ड के ग्रामीण मजदूरों के इतिहास का एक अध्याय पेश करना रुचिकर होगा, जबकि इग्लैण्ड की राजनीति विशिष्ट श्रेणी के कुछ व्यक्तियों की ही राजनीति थी और ऐसी निर्बाध सत्ता उन्हें प्राप्त थी जिसमें जनता कोई दस्तदाजी नहीं कर सकती थी। वहा १७६० से १८३२ तक ग्रामीण श्रमिकों की क्या स्थिति थी, किस प्रकार कष्ट, दरिद्रता और अभाव का जीवन उन्हें बिताना पड़ता था, गृहिणियां भोजन के पीछे किस तरह झगडती थीं, इस स्थिति में सुधार करने के प्रयत्न लगातार किस तरह असफल होते रहे और अन्त में मजदूरों को किस तरह विद्रोह करना पड़ा, जिसका अन्त उन लोगों को भारी-भारी सजाएँ देने के रूप में हुआ कि जिनका मशीनों को तोड़ने या मजदूरों को भड़काने में जरा भी हाथ था—इन सब बातों का श्रीयुत और श्रीमती हैमण्डने अपनी पुस्तक में बड़े विस्तार से वर्णन किया है। कम-से-कम मजदूरी की नीति पर तो बहुत पहले, १७९५ में ही, विचार हो गया था और इस बात का बार-बार प्रयत्न किया गया कि कम-से-कम मजदूरी का विधान (मिनियम वेज बिल) कानून बन जाय। पर रहे ये सब प्रयत्न असफल ही। लेकिन हमारे मतलब की तो वह दस्तावेज है जो इतने पर भी 'मान-मर्यादा और स्वाधीनता की भावना से पूर्ण' मजदूरोंने स्वयं बड़े परिश्रम से तैयार की थी। श्रीयुत और श्रीमती हैमण्डने एक नॉरविच पत्र से एक उद्धरण दिया है, जिसमें ऐसी भाषा में मजदूरों की कम-से-कम मांगों का उल्लेख है जो ऐसे ही लोगों के उपयुक्त है कि जिनकी शिष्टता का नाश नहीं हो गया है। ये मांगें प्रस्तावों के रूप में हैं और नॉरफॉक प्रदेश के कुछ 'पादरी'-इलाकों के दिन में काम करनेवाले ऐसे मजदूरों की तैयार की हुई हैं, जो "जिन सख्त और यन्त्रणापूर्ण कठिनाइयों को अनेक वर्षों से वे चुपचाप बर्दाश्त करते आ रहे थे उनसे छुटकारा पाने का सर्वोत्तम और शान्तिपूर्वक उपाय ढूंढने के लिए" एकत्र हुए थे। नीचे हम उन प्रस्तावों को देते हैं, जिनमें मानो सदा के लिए उन सिद्धान्तों की घोषणा कर दी गई है कि जिनके आधार पर उन मजदूरों की मजदूरी निश्चित की जानी चाहिए जिनका निर्वाह एकमात्र मजदूरी पर ही निर्भर करता है:—

(१) "मजदूर को उसकी मजदूरी का मुआवजा मिलना ही चाहिए। उसके कष्ट-निवारण के लिए बहुत समय से उसे बाजार-भाव पर आटा देने का जो रिवाज चला आ रहा है, जिसके अनुसार उन्हें पादरी-इलाकों के रेट पर आटा मिलता है, वह न केवल उसकी निम्न और विनम्र स्थिति का अश्लीलतापूर्ण अपमान है बल्कि सहायता का बहुत भद्दा तरीका है और अपनी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में मजदूर को सब तरह के जिन कष्टों का सामना करना पड़ता है उनसे अच्छी तरह छुटकारा पाने का वह हर तरह से अपर्याप्त मार्ग है।

(२) "मजदूर की मजदूरी हमेशा, गेहूँ की कीमत का अनुमान लगाकर, रक्खी जानी चाहिए। जीवन के लिए आवश्यक इस पदार्थ की कीमत नियन्त्रित रहनी चाहिए और मजदूरी, जैसा कि साथ में नत्थी नकशे में तफ़सीलवार बताया हुआ है, न सिर्फ अच्छी तरह हिसाब लगाकर ही रक्खी जानी चाहिए बल्कि ऐसी होनी चाहिए जिसमें मजदूर को सुख मिले और किसान को भी नुकसान न हो। इस मूल्यवान और उपयोगी श्रेणी के लोगों के लिए स्थायी सुख की प्राप्ति का हमें तो यही बुद्धिमत्तापूर्ण साधन नजर आता है, जो अगर अमल में लाया गया तो सर्वसाधारण पर भार-रूप गरीबी को बिलकुल नष्ट नहीं कर देगा तो उसे बहुत कुछ कम तो शीघ्र कर ही देगा।

(यहां पर गेहूँ के अनुपात में मजदूरी का क्रमिक हिसाब दिया गया है; जैसे, अगर गेहूँ की कीमत १४ पौंड हो तो दैनिक मजदूरी १ शिलिंग २ पेंस होगी, कीमत १८ पौंड हो तो दैनिक मजदूरी १ शिलिंग ६ पेंस होगी और जब २८ पौंड हो तो दैनिक मजदूरी २ शिलिंग ४ पेंस होगी, आदि।)

(३) "उपर्युक्त योजना के अनुसार मजदूरी नियन्त्रित करवाने के लिए, शीघ्र ही पार्लमेण्ट को आवेदनपत्र भेजने की व्यवस्था की जाय।"

इसके बाद कई प्रस्तावों में यह बताया गया है कि आवेदन-पत्र पर मजदूरों के हस्ताक्षर कराने का सब से अच्छा और आसान तरीका क्या है। श्रीयुत और श्रीमती हैमण्ड कहते हैं कि "यह उस समय की एक बहुत रोचक और बोधप्रद दस्तावेज है।" इससे मालूम पड़ता है कि सर्वसाधारण की पुरानी भावना थोड़ी-बहुत अभी भी मौजूद थी। लेकिन इस घटना की फिर कोई पुनरावृत्ति नहीं हुई। मजदूरों की यह भारी योजना यों ही रह गई; बिजली की तरह यह आई और चली गई। इसका कारण? इसका कारण, हमें सन्देह है, विश्वासघात और राजद्रोह के उन कानूनों में समाया हुआ है, जिन्हें इसी महीने पार्लमेण्ट से पास कराने में पिट (इग्लैण्ड का प्रधानमन्त्री) लगा हुआ था।"

इन प्रस्तावों से अहिंसा की जो महत्त्वपूर्ण भावना प्रगट होती है वह ध्यान देनेयोग्य है। इनमें जिस कम-से-कम मजदूरी की मांग की गई है वह अगर उदारता के साथ मंजूर कर ली गई होती, तो शायद देश को सुधारों के लिए खून-खराबी का रास्ता न पकड़ना पड़ता। हमारे देश में भी मजदूर और कारीगर वैसे ही असंगठित हैं जैसे अठारहवीं सदी के अंत में इंग्लैण्ड में थे। इनमें भी वही विचार हैं, वही भावनाएँ हैं और उसी तरह

अभाव और भूख की वेदना है। इनकी प्रतिनिधि-स्वरूप दो संस्थाएँ हैं, जिन्होंने कम-से-कम मजदूरी की योजना स्वीकार कर ली है। अब यह सर्वसाधारण का काम है कि वे उत्साहपूर्वक उसे अमली रूप दें; क्योंकि सर्वसाधारण अहिंसा के द्वारा स्वतन्त्रता की ओर जो प्रगति कर रहे हैं, उसमें ऐसा करके वे एक कदम आगे ही बढ़ेंगे।

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्रामसेवा

गांव की सफाई, कचरा वगैरा उठाना और दूसरा सेवा-कार्य करना श्री गजानन नाइक का नित्य का धंधा है। उनका कार्यक्रम अब शांति के साथ चल रहा है। ग्रामवासियों के साथ उनका संपर्क नित्य बढ़ता ही जाता है। आहार-सुधार, सफाई और सहायक धंधों की ओर वे उनका मन रसपूर्वक आकर्षित कर रहे हैं। हरिजनेतर मुहल्लों में रात को नित्य नियमपूर्वक पढ़ाते हैं, पर विद्यार्थियों के अभाव से हरिजन-मुहल्ले का वर्ग तोड़ देना पड़ा है। नाइकजी कहते हैं कि, "लगातार तीन-चार रात मैं बैठा-बैठा बाट जोहता रहा कि कुछ-न-कुछ हरिजन पढ़ने आयेंगे, पर कोई भी नहीं आया।"

जो व्यक्ति अपने खेत में खाद के लिए मैला डलवा रहा है उसने अपनी जमीन में सोयाबीन बोई है। इस जमीन की सिंचाई कुएँ के पानी से होती है, और अच्छे बढ़िया बीज और खेती के उन्नत तरीकों का प्रयोग करने के लिए यह तैयार की गई है।

श्री गजानन नाइक हरेक के यहां जाते हैं और वहां लोगों से अच्छी तरह बातें करते, और उनके सुख-दुख के बारे में पूछताछ करते हैं। मांग भाइयों के साथ भी उन्होंने परिचय बढ़ा लिया है। मांग लोगों के यहां चार घर है, जिनमें कुल २८ प्राणी रहते हैं। त्योहारों और ब्याह-शादी के अवसर पर बाजा बजाना ही इनका एकमात्र धंधा है। हर मांगलिक अवसर पर यह पांच बजैयों की टोली दो या तीन रुपये पैदा कर लेती है। पर ऐसे अवसर बारहो मास थोड़े ही आते रहते हैं। साल में बाकी के दिन तो उनके यों ही बेकार जाते हैं। उनकी स्त्रियों के विषय में एक बात अवश्य उल्लेखनीय है। गांव में वे दाई का काम करती हैं, और बड़े-बड़े ब्राह्मण तक उन्हें अपने घर बुलाते हैं। जबतक सोहर रहती है, वे सीधी जच्चा की कोठरी तक जाती-आती हैं। उन दिनों उनकी अस्पृश्यता की भावना को जरा भी ठेस नहीं लगती। काम अटकता है तब 'धर्म-अधर्म' का विचार नहीं रहता।

आचरण और उपदेश

किंतु हमारे जीवन के रोजमर्रा के कुछ कामों में विवेक-बुद्धि का बहुत कम भाग रहता है। हम बड़ी राजी से रिवाज के आगे सिर झुका देते हैं, और उस वक्त अपने दृढ़ विश्वासों को भूल जाते हैं। भोले-भाले गांववाले अगर ऐसा करते हैं तो इसमें कोई अचरज की बात नहीं, जब कि बड़े-बड़े पढ़े-लिखे आदमीतक अपने दृढ़ विश्वासों पर कायम नहीं रह सकते। मोरसी के उत्साही हरिजन-सेवक श्री अकर्ते अपने एक पत्र में लिखते हैं कि हिंदू-सभा के एक सुप्रसिद्ध कार्यकर्त्ताने, जो निश्चय ही अस्पृश्यता में विश्वास नहीं करते, एक ऐसे मंदिर में खुशी से कीर्त्तन किया, जहां हरिजनों के जाने की मनाही है। लेकिन उन्होंने यह भी लिखा है कि दो अन्य कार्यकर्त्ताओंने जो संस्कृत के प्रख्यात विद्वान् हैं और ब्राह्मणों में जिनका अच्छा मान है, उस मंदिर में प्रवचन या कीर्त्तन करने से साफ इन्कार कर दिया, और मंदिर के बाहर, जहां हरिजन भी सबके साथ सुन सकते थे, उन्होंने भगवद्भक्ति पर प्रवचन करना पसन्द किया। हिंदू-सभा के कार्यकर्त्ताने अपने बचाव में यह दलील दी कि मैं मंदिर के भीतर पुराणप्रिय सनातनियों के आगे कीर्त्तन करने को सहमत हो गया था सही, पर मैं उन्हें यही बात अपने प्रवचन में समझा रहा था कि हरिजनों के साथ आप लोग बराबरी का बर्ताव करें। मगर समता के उपदेश का उन्होंने सबसे प्रभावोत्पादक मार्ग ग्रहण नहीं किया। और उन दूसरे कार्यकर्त्ताओंने यह कहा कि, "चूंकि हम हरिजनों में काम कर रहे हैं, इसलिए हम खुद हरिजन हैं, और यदि हरिजनों को इस मंदिर में जाने का अधिकार नहीं तो हमें भी उसमें जाने का अधिकार नहीं। कीर्त्तन का अर्थ है भगवान् का यशोगान। जो भी हरि-कीर्त्तन में भाग लेना चाहे, उन्हें लेने का पूर्ण अधिकार है। किसी व्यक्ति को हरि-कीर्त्तन में भाग लेने से रोकना अपने आपके तथा अपने सिरजानहार के अस्तित्व से इन्कार करना है।"

चीन की एक कहानी

इस करनी और कथनी के सम्बन्ध में चीन से एक ख्रीस्त धर्म-प्रचारिकाने एक सुन्दर उत्साहपूर्ण वर्णन लिख भेजा है। मिस म्यूरियल लेस्टर उसकी झोपड़ी देखने गई थीं, और इसी विषय का वह वर्णन है। वह लिखती है, "मिस म्यूरियल लेस्टर का मैं आपको एक फोटो भेज रही हूं, जिसमें वे एक चीनी गांव में एक नहर के किनारे पाखाना साफ कर रही हैं। मैं एक ईसाई मिशनरी हूँ, और ग्राम-सुधार के काम में मैं बहुत ही रस लेती हूँ। यद्यपि म्यूरियल लेस्टर को बहुत ही कम अनुभव है, तो भी जब वे मेरी रहने की कच्ची झोपड़ी और हमारी ग्राम-पाठशाला, जहां हम इस शरद् में एक खेत के मकान में पढ़ाते हैं, देख रही थीं, उन्होंने मुझे बहुत कुछ प्रेरणा और व्यावहारिक सहायता दी। हमारे ग्रामीण वर्गों में हरेक व्यक्ति घर-गिरस्ती के काम में मदद करता है और हमारे तमाम कामों का निरीक्षण एक आरोग्य-समिति करती है। इस प्रकार हम ग्रामीण आरोग्यशास्त्र के व्यावहारिक पाठ पढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। हुआ क्या कि हमारे एक उपदेशक-शिक्षक या तो अपने हाथ गन्दे नहीं कर सकते थे, या गिरस्ती के काम में मदद देकर अपनी शान नीची नहीं कर सकते थे। इससे म्यूरियल लेस्टर को जोश चढ़ आया, और उन्होंने उसी वक्त हमें एक व्यावहारिक पाठ दिया। उन्होंने पूछा कि क्या कोई पाखाना साफ करने को है, और जो पाखाना सबसे पास था उसे साफ करने के लिए नहर के किनारे लपक के जा पहुँची। तसवीर को देखिए, गांव के लोग किस तरह आश्चर्यचकित होकर कुछ भय और कुछ कुतूहल के साथ उनका पाखाना साफ करना देख रहे हैं!"

ग्राम्य मनोवृत्ति

मगर मिस म्यूरियल लेस्टर के पाखाना साफ करने में ऐसी कोई आश्चर्य-जनक बात नहीं है, क्योंकि वे एक ऐसी बस्ती का संचालन करती हैं, जहां हरेक आदमी इस बात में विश्वास करता है कि हरेक काम उसे अपने ही हाथ से करना चाहिए। इससे भी

अधिक पुलकित कर देनेवाली तो अभी उस मिट्टी की झोपडी की कहानी है, जिसे इस मिशनरी महिलाने सच्ची ग्राम्य मनोवृत्ति की भावना से प्रेरित होकर बनाया है। वह अपने पत्र में लिखती है, "पाच बरस मुझे यहा रहते हो गये है, पर जब मै अमेरिका के ढंग का अच्छा मकान बनाकर उसमें रहती थी, तब मुझे कभी सच्चा सन्तोष मालूम नही हुआ; क्योकि काम तो मै किसानों में करती थी, और मेरा वह ऊँचे दरजे का रहन-सहन मेरे और उन गरीब किसानो के बीच मे बाधक हो रहा था। दो वर्ष पहले मै एक 'बजरे' (हाउस-बोट) में रहती थी, पर 'सूचाउ' की उस पानी-ही-पानी की बस्ती के होते हुए भी मै यह महसूस करती थी कि, 'ग्रामवासियो के हृदय तक सच पूछा जाय तो मै अब भी नही पहुँच सकी हूँ। मै अब भी उसके लिए बाहर की ही हूँ— उनके घरो और दिलो को बाहर से ही झाक रही हूँ, उनके साथ अभी मेरा तादात्म्य नही हुआ।' इसलिए पार साल मैंने एक छोटे-से गाव मे अपने लिए यह वैसा ही मिट्टी का एक कच्चा घर बनवाया, जैसे घर कि मेरे इर्द-गिर्द के किसानों के है। इसके बनाने मे बहुत ही कम पैसा खर्च हुआ है। तब से मुझे सचमुच अलौकिक-सा आनन्द मिल रहा है। इस घर मे मै और एक ख्रीस्त धर्म-प्रचारिका चीनी लडकी रहती है। हमारे यहा कोई नौकर-चाकर नही है। हमारे घर मे सिवा एक ग्रामोफोन और एक सीने की मशीन के ऐसी एक भी चीज नही, जिसे इस जिले का औसत दरजे का किसान न खरीद सकता हो। पर ये दोनो चीजें हमारे काम मे उन किसानो के लिए साधन-रूप है। फर्श भी मिट्टी का ही है, पर मिट्टी अच्छी कमाई हुई है। कभी-कभी तो सीमेण्ट का धोखा हो जाता है। छत पर है तो छप्पर ही, पर उसमें सादे शीशे के सुन्दर रोशनदान लगे हुए हैं। इन गावो के लिए यह एक नई चीज है। दीवारें भी कच्ची ईंटो की है, जिन्हे बनाने मे मैंने खुद मदद दी थी, उनपर भीतर और बाहर खूब अच्छी चमचमाती हुई सफेदी करादी है। दीवारे ऐसी दिखती है, जैसे स्वच्छ संगमरमर की हो। हमारे पड़ोस के घरो में तो एक या दो ही खिडकियां हैं, पर हमारे घर में १४ खिडकियां है। तमाम खिडकियां और दर-वाजो पर तार की बारीक जाली लगी हुई है। वनस्पति-तेल उस पर छिड़क देने से मच्छर नही आते। इसपर मच्छरदानी से कम खर्च पड़ता है और टिकाऊ भी खूब होती है। मशहरी किसान बेचारे कहां खरीद सकते हे? दीवारो पर हमने अच्छे आकर्षक किन्तु सस्ते चित्र टांग दिये हे, और गांव की बनी मामूली आल्मारियो मे कागज चढ़ाकर अच्छी-अच्छी किताबे भी ग्रामवासियों के पढने के लिए रखदी हैं। घर हमारा काफी हवादार है। धूप भी खूब आती है। फूलो की मीठी महक और नन्हे-नन्हे बच्चो की प्यारी खिल-खिलाहट से सबेरे से लेकर राततक हमारा यह देहाती घर खूब भरा-पूरा रहता है।

देहात के लोगों की समस्याएँ हम अब समझने लगी हैं, और उनकी आरोग्य-सम्बन्धी या मानसिक अथवा आध्यात्मिक जीवन की समस्याओं की किस तरह मामूली तौर मे पूर्ति हो सकती है यह भी हमारी समझ में आने लगा है। हमने यह साबित कर दिया है कि मक्खियों और मच्छरों से बचकर, अपने आहार को युक्त बनाकर, बरतनोंको बिना साबुन के भी सफाई के साथ मांज-धोकर और अपना पीने का पानी उबालकर एक गरीब मनुष्य स्वस्थ रह सकता है, और गरीब-से-गरीब आदमी को भी, अगर वह परिश्रम बचानेवाले उपाय जानता हो तो, पढना-लिखना सीखने और ईश्वर का ध्यान और प्रार्थना करने के लिए समय मिल सकता है। हमारा सर्वश्रेष्ठ छात्र एक किसान है, जो अत्यन्त दरिद्र है। उसने ६० बरस की उम्र में पढ़ना आरम्भ किया और दो महीने में ७०० अक्षर सीख लिये। गत सप्ताह उसने मुझसे कहा था कि मैंने एक दिन शाम को सात बजे एक किताब पढना शुरू किया और पढते-पढते जब देखा तो रात के दो बजे थे। यह है रोम-रोम को पुल-कित कर देनेवाला काम।"

उस अनुभव का और अधिक ब्योरा

एक सज्जन का मै कृतज्ञ हूँ कि जिन्होने हिसाब की एक जरा-सी भूल सुधार दी है। ३० नवम्बर के 'हरिजन-सेवक' मे गाधीजी की जो "एक अनुभव" शीर्षक टिप्पणी निकली थी, उसमें गाधीजीने जिन सज्जन का उल्लेख किया है उनके लगाये हुए हिसाब में एक भूल हो गई है। उसमें लिखा है कि, "इस तरह अगर मै खुद अपने लिए ३ गज खादी रखना चाहूँ तो मुझे सिर्फ १। गज खादी बेचने की जरूरत होगी।" असल मे, उन्हें अपना बजट ठीक करने के लिए ५ गज खादी खुद अपने लिए रखनी हो तो २ गज बेचनी चाहिए (५ गज × ४ आना = २ गज × १० आना)। मगर दूसरा हिसाब बिल्कुल सही है।

जिन सज्जनने अपनी ८० गज खादी के बारे मे वह विवरण लिखा था, उन्होने अब उसका और भी अधिक ब्योरा भेजा है, जो हरेक खादी-भक्त के लिए रसदायक होगा। उनकी २० नंबर के अच्छे यकसां सूत की कताई की गति ३२० गज से ज्यादा नही है, और वे नित्य नियमपूर्वक ८४० गज की एक कुकडी कातते थे। यह सूत उन्होने अपने फालतू समय में काता था, जिस के परिणामस्वरूप ५०) कीमत की ८० गज खादी तैयार हुई। ३०) का उन्हे खालिस मुनाफा हुआ, यानी २॥) माहवार उन्होंने अपने फालतू समय में सूत कातकर कमाया। में यहां इतना और कहदू कि यह सज्जन एक सुशिक्षित व्यक्ति हैं। पहले जो यह धंधा करते थे उससे इन्हे अच्छा लाभ होता था। पर उसे छोड़े इन्हे दस साल का अर्सा हो गया है। अब तो यह अपना सारा समय देश के ही काम में दे रहे है। अपने फुर्सत के समय में एक उत्पादक ग्राम-कार्य करके अपनी आय में २॥) की वृद्धि करना उनकी दृष्टि में कोई ऐसा काम नहीं है कि जिससे उनकी मान-मर्यादा घटती हो। और इतना ही नही, बल्कि वे तो इसे अपना एक धार्मिक कर्त्तव्य समझते हैं। तब जिन्हे अपनी आय में कुछ-न कुछ वृद्धि करने की बहुत ही अधिक आवश्यकता है, वे आवश्य-कता की ही दृष्टि से—न सही धर्म की दृष्टि से—क्यों न रोज अपने फालतू समय में इस काम को करे?

एक और उदाहरण

एक और बिल्कुल ऐसा ही उदाहरण है, और वह रत्नागिरि के समीपवर्ती एक आश्रम का है। यह आश्रम इधर आठ या दस महीने से श्रीयुक्त अप्पा पटवर्धन (एक एम० ए० और भूतपूर्व प्रोफेसर) की निगरानी में चल रहा है। अन्य आश्रमवासी भी सब सुशिक्षित व्यक्ति हैं। श्री अप्पा पटवर्धन और उनके साथी नित्यप्रति एक धार्मिक विधि की तरह १२ बजे से १२॥ बजे तक तकली चलाते हैं, और उनकी इस आध घंटे की कताई की रफ्तार करीब-करीब असाधारण कही जा सकती है। लगभग छह

सप्ताह के अर्से में उन्होने कताई की गति में जो लगातार उन्नति की है वह नीचे के आकड़ो से स्पष्ट हो जाती है :—

कताई की रफ्तार

कातनेवाले	अगस्त, १९३५		सितबर, १९३५	
	१४ ता०	३१ ता०	४ ता०	२४ ता०
डॉ० भागवत	१२८ गज	१३३ गज	१६० गज	१७२ गज
श्रीयुक्त महाजन	१६० ,,	१६० ,,	१८० ,,	२०० ,,
,, बर्वे	२३० ,,	२२० ,,	२३२ ,,	२४८ ,,
,, पटवर्धन	१८० ,,	१८० ,,	२१० ,,	२२० ,,
,, सावलाराम	१५६ ,,	१६८ ,,	१८४ ,,	२१२ ,,
,, जयराम	१२० ,,	१५६ ,,	१८५ ,,	२२४ ,,

अच्छा होता अगर हरेक के सूत के आकडे भी दिये गये होते। पर अगर हम यह मान ले कि हरेक व्यक्ति का सूत २० नबर का है, तो नित्य एक घटा तकली पर सूत कातकर हरेक कतैये को आसानी से २५ गज कपडा मिल जायगा, और साल मे एक हिंदुस्तानी औसतन जितना कपडा पहनता है उससे यह कपड़ा दूना होगा। अगर हम एक कल्पना और करले—जिसमे जोखिम तो किसी तरह कोई है ही नही—और वह यह कि जिस जाति और जिस बुनावट की ८० गज खादी उपर्युक्त सज्जन की थी, वैसी ही खादी अगर इन आश्रमवासियो के काते हुए सूत की हो, तो हरेक व्यक्ति १५ गज खादी तो अपने पहनने के लिए रख सकता है, और १० गज बेच सकता है, और इस तरह यह १५ गज खादी उसे बिल्कुल मुफ्त पड जायगी। इसके लिए जिस दृढ़ इच्छा की आवश्यकता है वह हम सब में हो तो फिर काम ही न बन जाय!

'हरिजन' से] महादेव ह० देशाई

[गत सप्ताह, 'साप्ताहिक पत्र' का कुछ भाग रह गया था, अत: वह शेषाश इस अक में नीचे दिया जाता है। सम्पादक]

एक कठिन विज्ञान

इस चर्चा के सिलसिले मे प्रसिद्ध अग्रेज लेखक श्री एल० पी० जैक्स का 'अवकाश के समय का विज्ञान तथा कला' नामक निबंध पढ़नेलायक है। इसमें लेखकने बताया है कि अवकास के समय का सदुपयोग करना एक कठिन विज्ञान एवं कला है, और श्रम-विज्ञान तथा श्रम-कला को हस्तगत किये बिना अवकास के विज्ञान तथा कला में कोई पारंगत हो ही नही सकता। बरट्रेण्ड रसल यह मानते हैं कि सफल समाज-व्यवस्था का एक आवश्यक अग यह है कि हरेक आदमी को काफी फ़ुर्सत का समय रहना चाहिए; वह मानते हैं कि मनुष्य को नित्य चार घटे काम करने के होने चाहिए—गनीमत है कि उपर्युक्त सज्जन की तरह इन्होंने सिर्फ एक घंटा काम करने की सलाह नही दी है। मगर मिस्टर जैक्स का यह खयाल है कि बरट्रेण्ड रसल इस प्रश्न को जितना सरल मानते हैं उतना सरल यह है नहीं। इतना ही नही, बल्कि वे यह भूल जाते हैं कि "पहले मनुष्य की फ़ुर्सत में दूसरे मनुष्यो के कामो के कारण बाधा आयगी ही," क्योकि "हम फ़ुर्सत का अधिकांश समय तो एक दूसरे के साथ पंचायत करने में ही बिताते हैं।" आगे मि० जैक्सने, बड़ी-से-बड़ी कठिनाई क्या है यह बतलाते हुए कहा है कि "फिर हमें यह विचार भी करना है कि मनुष्य के फ़ुर्सत के समय में ही शैतान को पैर फैलाने का अच्छे-से-अच्छा मौका मिलता है। रोजमर्रा के काम के घंटे घटकर अगर चार रह जायँ तो शैतान को कितना आनंद हो इसकी कल्पना हम कर सकते हैं।"

इसके बाद 'फ़ुर्सत' की परिभाषा बतलाते हुए मि० जैक्स कहते हैं—"फ़ुर्सत मानव-जीवन का एक ऐसा भाग है जिसमें उसकी आत्मा पर कब्जा करने के लिए दैवी और आसुरी संपदाओ के बीच अत्यन्त घोर युद्ध होता रहता है।" और फिर उन्होंने ऐसे थोड़े-से आंकड़े दिये हैं, "जो यह जानने में सहायता देते हैं कि लोग आज-कल फ़ुर्सत के समय का उपयोग आत्मा के विकास मे करते हैं, या किसी और प्रवृत्ति मे।" डफ़स नामक एक अमेरिकन लेखक की 'पुस्तकें' (Books) नामकी एक छोटी-सी पुस्तक से ये आकड़े लिये है। आकडे देते हुए मि० जैक्स कहते है :—

"अमेरिका के सयुक्त राज्य में हर सप्ताह ११॥ करोड़ मनुष्य सिनेमा देखने जाते है, और सारे देश की आबादी साल मे पुस्तको पर जितना पैसा खर्चती है, उतना पैसा वह तीन हफ्तो मे सिनेमा पर खर्च करती है। पुस्तको पर अमेरिका की प्रजा २० करोड़ डालर खर्च करती है, और मोटरों पर शौकिया सैल-सपाटे की खातिर ३ अर्ब डालर! अमेरिका की प्रजा अपनी आय का ½ प्रतिशत ही पुस्तकों पर खर्च करती है। खूब बारीकी के साथ हिसाब लगाने के बाद मि० डफ़स इस निर्णय पर पहुँचे है कि, 'सामान्य अमेरिकावासी साल मे दो पुस्तके खरीदता है, और दो पुस्तके पुस्तकालय से पढने के लिए लाता है। अमेरिका की एक सरकारी पत्रिका से लेकर हम निम्नलिखित अश यहा दे रहे हैं—"मिठाई पर राष्ट्रीय खर्च पुस्तको पर के राष्ट्रीय खर्च के २७ गुना है; सिनेमा का २२ गुना है; वायरलेस का १२॥ गुना है; और शराब को छोड़कर अन्य पेय पदार्थों का खर्च ११ गुना है। शराब पर अमेरिका के लोग कितना खर्च करते है यह नही बताया है। इन आंकड़ों से कोई अर्थ निकालना हो तो ऐसा करने मे सावधानी तो रखनी ही चाहिए। यह बात नही कि जितनी पुस्तके खरीदी जाती है या पढ़ने के लिए पुस्तकालयो से ली जाती हैं वे सब आत्मा की उन्नति करनेवाली होती है। दूसरी ओर, बाकी के आकड़े जो अवकास के समय की प्रवृत्तियो के हैं उन सब प्रवृत्तियों का सस्कृति की दृष्टि से कोई मूल्य नही ऐसा बिना विचारे नही कहा जा सकता। किंतु इस बात को छोड़ दें, तो भी में जो बात कहता हूँ उसीका इन आंकड़ों से समर्थन होता है कि आज दुनिया मे जहां फ़ुर्सत ज्यादा है वही कलि के चारों चरण है।"

यह तो अमेरिका की बात हुई। इंग्लैण्ड के सम्बन्ध में लिखते हुए मि० जैक्सने लैंकशायर के एक बड़े गाव का उदाहरण दिया है। लिखा है—"शिकारी कुत्तों के 'रेस' का एक नया खेल निकला है। यह खेल जिस जगह होता है उसके बाहर सबेरे के पहर एक भारी जन-समूह फाटक खुलने की राह देखता हुआ खड़ा था। दरयाफ्त करने पर यह मालूम हुआ कि इसमें अधिकांश लोग बेकार थे। पड़ोस की बहुत-सी मिले बन्द हो गई थी, पर कुत्तों के 'रेस' का धन्धा तो तब भी खूब धड़ल्ले के साथ चल रहा था। कुछ दिनो बाद एक प्रसिद्ध सज्जन मुझे मिले, और उनसे मैंने पूछा कि उधर आपकी तरफ लोगो को काफी फ़ुर्सत रहती है, तो क्या इससे आपके वर्गों और भाषणो मे लोग अधिक आते हैं या नहीं?' उन्होंने कहा 'नही साहब, लोगों को लुभानेवाली दूसरी चीजें क्या कम हैं? यह शिकारी कुत्तो के 'रेस' का खेल ही लीजिए?"

भारतवर्ष के सम्बन्ध में यह नही जा सकता है कि देश में जो दंगे-फिसाद और विनाशात्मक प्रवृत्तियां देखने में आ रही है उन

सबको करनेवाले वही आदमी है कि जिन्हें न कोई काम है न कोई धंधा। अपराधियो के आकड़ो का अध्ययन फुर्सत के समय के उपयोग की दृष्टि से किया जाय तो कितनी ही बातें जानने को मिले। पर इसमें तो कोई शक ही नही कि 'खाली दिमाग शैतान का घर' इस कहावत को अभीतक तो किसीने असत्य साबित करके बताया नही। म० ह० देसाई

गुजरात-हरिजन-सेवक-संघ

१९३४-३५ का वार्षिक विवरण

अपने जीवन के तीन वर्ष समाप्त करके सघने ता० १-१०-३५ से चौथे वर्ष मे प्रवेश किया है।

इधर हरिजनो मे शिक्षा की भूख बड़े पैमाने पर जागी है। जगह-जगह से पाठशालाएँ खोलने के लिए प्रार्थना-पत्र आते रहते हैं। पाठशालाओ में जानेवाले विद्यार्थियो के लिए आर्थिक सहायता भी मांगी जाती है। माध्यमिक और उच्च शिक्षा प्राप्त करनेवाले हरिजन विद्यार्थियों की सख्या खास तौर पर हरसाल बढती रही है। हरिजनो में शिक्षा-विषयक जाग्रति का यह एक प्रमाण है। पिछले एक वर्ष से सघने हरिजनों के लिए अलग नई पाठशालाएँ खोलने की नीति छोड़ दी है, और इसके बदले मे हरिजन बालको को सर्वसाधारण पाठशालाओ मे भरती कराने के प्रयत्न हो रहे हैं। साथ ही, जो पाठशालाएँ अबतक सघ की सहायता से स्वतंत्र चलती है, उनके लिए म्युनिसिपैलिटी और स्कूल-बोर्ड-जैसी स्थानीय संस्थाओ से सहायता लेने की नीति अपनाई गई है।

आश्रम

खेड़ा-आश्रम: सन् १९२९ से इस आश्रम मे भंगियो के बालको को एक स्थान में रखकर उनके भोजन आदि की सुविधा का और शिक्षा का प्रबध किया गया है। गांव के भगी भाइयों के १८ बालक आज इस सस्था से लाभ उठा रहे हैं। ये बालक आश्रम के छात्रालय मे रहकर स्कूल-बोर्ड की पाठशाला मे अभ्यास करते हैं और अग्रेजी स्कूल में भी पढने जाते है।

नवसारी-आश्रम: आश्रम में चप्पल बनाने का काम करके आश्रम की सहायता से स्वतत्रजीविकोपार्जन करनेवाले हरिजन विद्यार्थियों की सख्या ७ है। चप्पले मुर्दा ढोर के चमड़े की बनाई जाती हैं। चप्पलो की बिक्री का प्रबंध नवसारी, सूरत, भडौंच और बम्बई के खादी-भडारो एवं स्वदेशी-स्टोरो में किया गया है। आश्रम के माल का अधिक प्रचार करने और कारीगरों की जीविका को स्थिर बनाये रखने के लिए ता० १-८-३५ से नवसारीनगर में श्री लोकमान्य-उद्योग-भंडार खोला गया है। इस भंडार मे चप्पलें और बूट आदि की बिक्री का प्रबंध किया गया है। एक विद्यार्थी दर्जी का भी साधारण काम करता है। आश्रम में कारीगरो की संख्या बढने से और कई कारीगरों के साथ उनका परिवार भी होने से आश्रम के निकट थोड़ी जमीन खरीदकर करीब ४५०) की लागत से पांच सादी झोपड़ियां बनाई गईं और उनमें इन कुटुम्बों के रहने का प्रबध किया गया। आश्रम के छात्रों में से ९ छात्र नगर की अंग्रेजी-पाठशाला तथा गुजराती फाइनल में पढ़ रहे हैं। 'नवसारी प्रान्त-पंचायत' की ओर से इस वर्ष भी नवसारी के हरिजन-आश्रम को भेंटरूप ४००) की सहायता मिली थी।

गोधरा-आश्रम: पंचमहाल और बाहर के विद्यार्थियों की कुल सख्या इसमें २१ है। बड़ी उम्र के विद्यार्थियों के लिए चप्पले बनाने और दर्जीगिरी सिखाने का प्रबंध किया गया था। जुलाई के अन्त में आश्रम में टाइफॉइड की छूतवाली बीमारी से एकाएक ७ व्यक्ति बीमार पड गये और आश्रम का दैनिक कार्य-क्रम प्राय. बन्द हो गया। कुछ विद्यार्थियो को घर भी भेज देना पड़ा। आश्रम का एक विद्यार्थी सिलाई का काम सीखने के लिए शहर में जाता है और एक विद्यार्थी कपड़ा बुनने का काम जानता है।

बड़ौदा प्रान्त के हरिजन-सेवक-सघने बडौदा मे १० विद्यार्थियों का एक छात्रालय खोला है। ये विद्यार्थी छात्रालय मे रहते और शहर की पाठशाला मे पढने जाते है।

वीरमगाम शहर मे वीरमगाम तालुका हरिजन-सघ के अवैतनिक मत्री श्री भवसुखराय खारोडने भी इसी प्रकार का एक छात्रालय शुरू किया है, जिसमे १० विद्यार्थी रहते है।

बडौदा राज्य के पादरा गाव मे एक हरिजन साधुने एक छोटा-सा छात्रालय खोला है। इस छात्रालय मे ७ हरिजन बालक रहते और प्राथमिक शिक्षा पाते हैं। सघ की ओर से इस सस्था को १०) मासिक सहायता दी जाती है।

छात्र-वृत्तियाँ—देहात की प्राथमिक पाठशालाओं में पढने-वाले विद्यार्थियो को आवश्यकतानुसार पुस्तके, पट्टी आदि पढाई की साधन-सामग्री देने, अग्रेजी पढनेवाले छात्रों को फीस के लिए छात्रवृत्तियां देने और सिलाई तथा चित्रकारी के लिए छात्रों को छात्रवृत्तियो के रूप में सहायता देने की नीति रक्खी गई है। इसके अतिरिक्त गुजरात के चार हरिजन छात्रोंने आर्ट्स-कॉलेज में पढ़ने के लिए दिल्ली के केन्द्रीयसंघ की 'डेविड'-छात्रवृत्ति से भी लाभ उठाया है।

कन्या-शिक्षा—साबरमती के हरिजन-आश्रम में अहमदाबाद के हरिजन-संघ-द्वारा स्थापित एक हरिजन-कन्या-छात्रालय है, जो श्री नरहरि भाई परीख की देख-रेख मे चल रहा है। इस छात्रा-लय में इस समय ३० हरिजन बालाएँ हैं। प्राथमिक शिक्षा के अतिरिक्त इन्हे सब प्रकार के गृह-कार्य की शिक्षा दी जाती है और इन्हे सिलाई सिखाने का प्रबन्ध भी किया गया है।

श्री काका साहब कालेलकर द्वारा इस सघ को कन्याओ में माध्यमिक शिक्षा के प्रचार के लिए ३४९०) की रकम का एक ट्रस्ट प्राप्त हुआ है, जिसमें से ट्रेनिंग कालेज आदि सस्थाओं में अभ्यास करनेवाली हरिजन-बालाओ को छात्रवृत्तियां दी जाती हैं। देहात की प्राथमिक पाठशालाओं मे भी कन्या-शिक्षा को प्रोत्सा-हित करने की दृष्टि से पुस्तकों आदि साधनों की सहायता देने का प्रबन्ध किया गया है।

गांधीजी के द्वारा एक सज्जन की ओर से १७५०) शिक्षा-प्रचार के लिए मिले है। इसके सूद का उपयोग खेड़ा जिले की माध्यमिक पाठशालाओं में अभ्यास करनेवाली छात्राओं के सहाय-तार्थ होने लगा है।

परीक्षितलाल मजमुदार,
चुनीलाल भगत,
मंत्री—गु० ह० से० संघ

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi, by R. S. Gupte.

काबीठा के वीर नाथाभाई

Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

संपादक — वियोगी हरि

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)

एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शनिवार, २१ दिसम्बर, १९३५. [संख्या ४४

विषय-सूची

"महाराष्ट्र के हरिजन"

[उनकी आर्थिक तथा सामाजिक जाँच]

इधर बारेक वर्ष से जब से अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनने जोर पकड़ा है, इस विषय पर अनेक निबंध और पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। कुछ साहित्य तो अधिकतर सुनी-सुनाई बातों या सरकारी रिपोर्टों के आधार पर लिखा गया है, और थोड़ी ऐसी भी चीजें देखने में आई हैं, जो हरिजनों का प्रत्यक्ष संपर्क प्राप्त करके काफी खोज-बीन के साथ लिखी गई हैं, और तथ्यों और आंकड़ों की दृष्टि से ऐसी ही पुस्तकें अधिक महत्त्वपूर्ण और स्थायी कही जा सकती हैं। ऐसी ही एक छोटी-सी पुस्तक अभी मेरे देखने में आई है। बंबई के श्रीयुत एम० जी० भगतने एम० ए० की डिग्री के लिए "दि अनटचेबुल क्लासेज आफ महाराष्ट्र" नामका एक शोधपूर्ण निबंध लिखा है, और यह पुस्तक उसीका संक्षिप्त संस्करण है* ।

लेखकने महाराष्ट्र के १० जिलों के हरिजनों के विषय में यथार्थ तथा प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करके यह शोधपूर्ण निबंध लिखा है। किंतु कोलाबा, थाना, नासिक, सतारा, अहमदनगर और पूर्व खानदेश, इन ६ जिलों में लेखकने शोध का काम विस्तृत रीति से किया है, और इसीसे अपने निबंध में केवल इन्हीं छै जिलों के नक्शों से काम लिया है।

इन जिलों में हरिजनों की मुख्य जातियां पांच हैं—महार, चमार, मांग, ढोर (चमड़ा कमानेवाले) और भंगी। भंगी महाराष्ट्र के मूल निवासी नहीं हैं, क्योंकि वहां स्थानीय भंगी न होने के कारण बाहर से ये बसाये गये हैं। ये लोग या तो संयुक्त प्रांत के हैं या गुजरात के। लेखकने कुल ५४२ हरिजन-कुटुंबों का अध्ययन किया है, जिसका विश्लेषण मैं संक्षिप्त रूप में नीचे देता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक में परिश्रमपूर्वक तैयार किये हुए आंकड़ों के ३१ नकशे लेखकने दिये हैं, जिनसे महाराष्ट्र के हरिजनों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ये सभी नकशे रोचक और अध्ययन करनेयोग्य हैं। विवाहित-अविवाहित व्यक्तियों के नकशे (नं० ६-७) देखने से यह पता चलता है कि इन जातियों में अविवाहित तो कोई [illegible] ही नहीं, और बाल-विवाह खूब प्रचलित है। एक वर्ष की उम्र के भीतर के बालकों की मृत्यु का परिमाण भी अधिक है—१०० मृत्युओं में २६.७ शिशु मर जाते हैं।

साक्षरता

साक्षरता के संबंध में लेखकने ४ नकशे दिये हैं। अन्य जातियों की अपेक्षा चमारों में साक्षरता अधिक है, इसका कारण संभवतः यह हो सकता है कि इन लोगों की आर्थिक स्थिति और जातियों से अच्छी है।

पर यह बात प्राइमरी शिक्षा तक ही मिलती है, वर्नाक्युलर फाइनल, सेकंडरी तथा हाईस्कूल की शिक्षा में महारों की संख्या सब से अधिक है। भंगियों को छोड़कर मांग साक्षरता के क्षेत्र में सबसे पिछड़े हुए हैं, कारण कि इनकी आर्थिक स्थिति सबसे खराब है। और स्त्रियों की यह हालत है कि २०४९ स्त्रियों में केवल ४४ ही मामूली लिखना-पढ़ना जानती हैं। करीब ९८ प्रतिशत तो बिल्कुल ही निरक्षर हैं। अंग्रेजी पढ़े-लिखे हरिजन कोलाबा जिले में अधिक हैं, क्योंकि इस जिले में फौजी पेंशनर ज्यादा हैं। नासिक में भी अंग्रेजी जाननेवालों की संख्या अच्छी है। बात यह है कि यहां के हरिजनों में जागृति बहुत अधिक है, आर्थिक स्थिति भी ठीक है, और दो जगह छात्रालय भी हैं। अहमदनगर में अंग्रेजी शिक्षा का अच्छा प्रचार है, और इसका श्रेय संभवतः मिशनरियों को है। साक्षरता के संबंध में सबसे अधिक पिछड़ा हुआ जिला तो पूर्व खानदेश है। कोलाबा में तीसरे दरजे तक अंग्रेजी पढ़ी-लिखी सिर्फ एक लड़की देखने में आई।

पेशे-धंधे

सिवा महारों के और सभी हरिजन जातियां अपने पुश्तैनी पेशों पर निर्भर करती हैं। महारों का न कोई स्थायी पेशा है, और न कोई स्थायी आय। कुछ महारों के पास 'वतन' की नौकरी है, पर उससे उन्हें बहुत ही कम पैसा मिलता है। थाना और अहमदनगर के जिलों में सरकार उन्हें १॥) मासिक देती है, पूर्व खानदेश में १॥।) मासिक, नासिक में ॥।-)४ मासिक और सतारा में =)१ मासिक ! और इन 'वतनदारों' की नौकरी की कोई व्याख्या ही नहीं। हर मुहकमे का इन पर हुकम चलता है, हर मुहकमे का इनके ऊपर दावा है। 'गरीब की लुगाई सबकी भौजाई' की मसल है। यह जुल्म से भरी हुई प्रथा है,

*यह पुस्तक, "एम० जी० भगत, स्कूल आफ एकनॉमिक्स एण्ड सोशियालोजी, यूनिवर्सिटी आफ बंबई, फोर्ट, बंबई" इस पते पर मिलती है। मूल्य १) है।

और इन लोगो की उन्नति मे यह काफी बाधा डाल रही है। इनकी आय के दूसरे अल्प साधन तो इनाम की जमीन और 'बलूता' है। गांववाले फसल पर इन्हे जो अनाज देते हैं उसे बलूता कहते है। पर ग्रामवासियो को गरीबीने अपने घातक शिकंजे मे इधर कुछ वर्षों से इस कदर जकड लिया है कि बेचारे 'बलूता' दे तो कहां से? वे खुद ही दाने-दाने के मोहताज हो रहे है। रही इनाम की जमीन, सो उसके बटते-बटते इतने अधिक भाग हो गये है कि अब उससे कुछ मिलना कठिन हो गया है। अत ५८ प्रतिशत महार मेहनत-मजूरी करके पेट पालते है। पर यह मजूरी का काम भी बारहों मास तो मिलता नही। इसलिए महीने मे दस दिन तो उन्हे बेकार ही बैठा रहना पडता है।

और खेती पर २६.५% महार तथा २०% चमार निर्भर करते है। पर अपनी जमीन तो बहुत ही थोडे लोगो के पास है।

मागो का अपना पुश्तैनी धधा है, अत: खेती पर उन्हे इतना अधिक निर्भर नही रहना पडता। पर गरीबी उनमे इतनी प्रचुरता से है कि न तो वे अपने उद्योगधधे मे पैसा ही लगा सकते है, और न उन्हे कोई कर्ज ही देता है।

महारो मे कुछ लोग या तो पढाने का, बढईगिरी का और दूकानदारी का काम करते है या सरकारी नौकरी करते है पर इनकी संख्या दाल मे नमक के बराबर भी नही। इसमें इनकी आर्थिक दुरवस्था और अस्पृश्यता खासकर बाधक हो रही है।

सतारा और अहमदनगर जिले मे ढोर लोग महारो से कच्चा चमड़ा लेकर पकाते हैं। इससे उनकी आर्थिक स्थिति एक तरह से अच्छी है।

महारों मे कुछ लोग पुरोहिताई का काम भी अपनी जाति-बिरादरी में करते है। लेखकने १८ महारो और ४ चमारों को घरों में नौकरी करते हुए देखा। महार ज्यादातर मुसलमानों के यहां नौकर है। शादी-व्याह के लिए मुसलमानो से ये कर्ज काढते है, और उनके यहां नौकरी करने के लिए शर्तबद हो जाते हैं।

मागों की स्त्रिया फुर्सत के समय में रस्सी भाजने का धधा करती है, और इससे वे कुछ-न-कुछ पैसा कमा ही लेती है। भंगियो में ३३% स्त्रिया सफाई वगैरा का काम करती है। और महारो में कुछ स्त्रिया खेती व मजदूरी का काम करती है। भगियों और चमारो में बेकारी बहुत ही कम दिखाई देती है और इसका श्रेय इनके पुश्तैनी पेशो को है।

कुल मिलाकर हरिजनों में २४% कुटुंबों की ५) से कम ही मासिक आमदनी है और ३२% कुटुंबों की ५) से ऊपर किंतु १०) से कम आमदनी है। गरीबी और बेकारी की चक्की में हत्यारी अस्पृश्यता इन बेचारों को किस बुरी तरह से पीस रही है! महार और माग तो सबसे ज्यादा गरीब हैं। चमार और भगी इनसे कुछ ठीक है।

महार-कुटुंब की वार्षिक आय का औसत १३८), चमार-कुटुंब का २३४), मांग-कुटुब का लगभग १३३), और भगी-कुटुब का ३३८॥) आता है। ढोर जाति के सिर्फ २७ कुटुब हैं, जिनकी वार्षिक आय का औसत २१२) पड़ जाता है।

शादी-व्याह का खर्च

इन लोगो की अजहद दरजे की गरीबी के अन्य कारण तो हैं ही, पर सबसे जबरदस्त कारण तो व्याह-शादी का भारी खर्चा है। इसके लिए इन्हें रक्त-शोषक ऋण की शरण लेनी पड़ती है, और सूद भरते-भरते ही बेचारे बेमौत मरते है। श्रीयुत भगतने कोलाबा जिले के पनवेल तालुका के एक महार कुटुम्ब का उदाहरण दिया है। इस कुटुम्ब की मासिक आमदनी ७॥) से अधिक नहीं है। घर में छ: प्राणी हैं। सन् १९३० में एक लड़के की शादी हुई, जिसमे १८६॥) खर्च हुए थे। यह कुटुम्ब २५०) का कर्जदार है। १५०) इस शर्त पर उसे उधार मिले थे कि हर साल साहूकार को बतौर सूद के १८ मन धान देनी पड़ेगी। उन दिनों धान का भाव आज से दूना था, मतलब यह कि ३६% ब्याज भरना पड़ा। और १००) इस शर्त पर मिले थे कि ४ वर्षतक उसे २० मन धान हर साल सूद में देनी पड़ेगी। चार साल में ब्याज-ही-ब्याज के १८०) बेचारे को भरने पड़े। जब कर्जा न चुक सका, तो साहूकारने अदालत में उसपर नालिश ठोक दी। बेचारा बर्बाद हो गया। इसे शादी कहा जाय या बर्बादी? और यह रुपया फूंकने की लत सिर्फ महारोतक ही सीमित नही है, यह विष तो सभी हरिजन जातियो में व्याप्त है।

भंगियों को ब्याह-शादियो में सबसे ज्यादा रुपया खर्च करना पडता है। दुलहिन के पिता को ये लोग १००) से लेकर ५००) तक दहेज में देते हैं। सफर-खर्च भी काफी होता है। नासिक जिले की बात है। एक भगी की शादी में ९००) खर्च पड़े थे, और यह सारी रकम उधार काढी गई थी। प्राण ही चाहे चुक जायँ, पर यह कर्जा कभी चुकने का नही।

कर्ज

जिन जातियो की आय अच्छी है, वे ही ज्यादातर मकरूज हैं। उन्हें कर्जा आसानी से मिल जाता है। महारों में ३८%, चमारो में ३६%, मांगों में ४८%, ढोरों में ६१% और भगियों में २५% कुटुम्ब ऋण से मुक्त है। इसका यह अर्थ नहीं कि इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी है, बल्कि यह अर्थ है कि ५% को छोड़कर बाकी के कुटुम्ब इतने अधिक गरीब है, कि उन्हें कोई साहूकार कर्जा देता ही नही। सबसे अच्छी साख तो बाजार में भंगियो की है, और उन्हे कर्जा चाहे जब मिल जाता है। और वही सबसे ज्यादा ऋणग्रस्त है। साहूकार इन हरिजन जातियों से ६ प्रतिशत से लेकर १०० प्रतिशत तक सूद ऐंठते हैं, मगर औसत ३७॥) प्रतिशत का है।

सामाजिक कष्ट

हरिजनों को अस्पृश्यता-जनित अनेक असहनीय कष्टों का शिकार होना पड़ रहा है। शिक्षा-सम्बन्धी कष्ट उन्हे हैं, पानी का कष्ट उन्हे है, कर्ज की मार उनपर पड़ रही है और उधर भयकर बेकारी का सामना उन्हें करना पड़ रहा है। सच है, 'छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति।'

शिक्षा—धारवाड़ के सरकारी स्कूल में एक दलित जाति के लड़के को दाखिल करने का प्रश्न सबसे पहले सन् १८५६ में उठा था। इससे दो साल पहले कम्पनी-सरकार सिद्धान्तत: यह घोषणा कर चुकी थी कि 'सरकारी स्कूल या कॉलिज में दाखिल होने में किसी की जाति बाधक नहीं होगी।' पर जब महार लड़केने दाखिल होने के लिए अर्जी दी, तब बम्बई-सरकारने यह कहकर उसकी अर्जी खारिज करदी कि 'न्याय तो महार लड़के के पक्ष में हैं, पर अभी युग-पुरातन जातिगत दुराग्रह इतना अधिक है कि अगर यह अस्पृश्य लड़का दाखिल कर लिया गया तो सम्भवत: उससे समूचे शिक्षा-कार्य को हानि पहुँचे।' इसके बाद दलित

जातियों के लिए थोड़ी-सी पृथक् पाठशालाएँ खुलीं। सन् १८८२ में प्राइमरी स्कूलों में सिर्फ २७१३ विद्यार्थी पढते थे।

उन्हें दाखिल करने में सामाजिक और धार्मिक दोनों ही प्रकार की कठिनाइयां थीं। छूतछात की बात सवर्ण हिन्दू पेश करते थे और यही सबसे बड़ी कठिनाई थी। सरकारने और सवर्ण हिन्दुओंने पूरी उदासीनता ही इस सम्बन्ध में दिखाई। एक यह दलील पेश की जाती थी कि अस्पृश्य लड़के गन्दे रहते हैं, और उनमें बात करनेतक की तमीज नही। पर धारवाड़ मे रेजीमेंट के जिन लड़कों को दाखिल करने से इन्कार कर दिया गया था, वे 'न गंदे ही थे, न गँवार ही। असल में तो यह सब बहाना था। खैर, पृथक् प्राइमरी पाठशालाएँ खोल दी गईं, पर सेकंडरी स्कूलो के द्वार तो बंद ही थे।

इधर सन् १८५५ मे एक ईसाई मिशनरीने अहमदनगर मे अस्पृश्य जातियो मे शिक्षा-प्रसार का प्रयत्न किया, और सबसे पहला प्रयत्न तो सन् १८४८ में जोतिबा फुलेने पूना मे किया। उन्होंने दलित जातियो के बच्चो के लिए एक पृथक् पाठशाला खोली। १८८२ में हंटर कमीशन के आगे उन्होंने अपने वक्तव्य मे कहा था कि, "यह कितने दु:ख की बात है कि सरकार बम्बई इलाके के करीब १० लाख बच्चो पर शिक्षा की मद से एक पैसा भी खर्च नही कर रही है। सारे पूना मे, जहां ५००० से ऊपर ही इन लोगों की आबादी है, सिर्फ एक स्कूल है, जिसमे केवल ३० लड़के पढते हैं!"

लेकिन आज हम देखते हैं कि स्थानीय अफसर भी बाधाएँ दूर करने में काफी प्रयत्न कर रहे हैं, और साधारणतया बड़े-बड़े कस्बों मे सवर्ण हिन्दू भी अपने बच्चो के साथ हरिजन बच्चो को बिठाने में आपत्ति नही करते। मगर देहातो में तो अब भी लोगो में वैसा ही दुराग्रह घर किये हुए है।

३० नम्बर का नकशा देखनेलायक है, जिसे नीचे देने का मै लोभ संवरण नही कर सकता :—

जिले	वे गाव, जिनमे प्राइमरी शिक्षा का प्रबन्ध है		वे गाव, जिन मे प्राइमरी शिक्षा का प्रबध नही है	गावों की कुल संख्या
	जहां अन्य लड़कों के साथ हरिजन लड़के बैठ सकते हैं	जहां हरिजन लड़के पाठशाला में अलग बिठाये जाते हैं		
कोलाबा	१३	१०	१०	३३
थाना	१६	५	८	२९
नासिक	३९	३	१४	५६
सतारा	३१	८	३	४२
अहमदनगर	२८	१	२	३१
खानदेश (पूर्व)	७	१२	७	२६
कुल मिजान	१३४	३९	४४	२१७

कुएँ—यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण और सबसे कठिन प्रश्न है। एक भी ऐसा कुआं लेखकने नहीं देखा, जिसपर स्पृश्य और अस्पृश्य एकसाथ पानी भरते हों। सरकारने सार्वजनिक कुएँ खोल देने का हुक्म हालांकि कभी का दे दिया है, पर उसपर अमल नहीं हो रहा है। कहीं-कहीं पानी का उन्हें अत्यन्त कष्ट है। श्रीयुत भगत लिखते हैं—"मैंने कुल २१७ गांवों की पैमाइश की है, इनमे ५ गांव ऐसे हैं, जहां पानी का इन जातियों के लिए कोई स्थायी प्रबन्ध है ही नहीं। शेष २१२ गावो मे पानी प्राप्य कहा जा सकता है। १२० गांवों में तो बारहों मास पानी इन्हे मिल जाता है। मगर बाकी के ४२ गांवों में गरमी के मौसिम मे पानी का भारी कसाला रहता है। ५० गावों में गांववालों से पानी मागना पड़ता है, १८ गांवों में दूर-दूर से पानी लाना पड़ता है; २० गांवों में नदी-नालो का पानी पीना पड़ता है; २ गांवों में गांववालों से पानी मोल लेना पड़ता है, और नासिक जिले के एक गांव मे एक मराठा पैसा लेकर उनके घड़ों में पानी डाल देता है। और अहमदनगर के एक गांव में भी इसी तरह वहां के हाकिम उनके मटको मे पानी डलवा देते हैं।" पानी का यह महान् कष्ट क्या कोई मामूली कष्ट है?

कष्टों का इलाज

श्रीयुत भगतने अपनी प्रश्नमाला में एक यह भी प्रश्न रखा था कि उनका सामाजिक और आर्थिक उत्थान किस तरह हो सकता है। हरिजनोंने इस प्रश्न के जो भिन्न-भिन्न उत्तर दिये हैं वे बड़े रोचक और महत्वपूर्ण हैं।

छ जिलों के १६९ विभिन्न हरिजन-कुटुम्बोंने यह कहा कि कानूनन अस्पृश्यता-निवारण मे ही हमारी सामाजिक और आर्थिक अवस्थाओं मे सुधार हो सकता है।

१५२ हरिजन-कुटुंबोंने—१३२ महार-कुटुंब, ९ चमार-कुटुंब और १० माग कुटुंब और १ भंगी कुटुंब—कहा कि शिक्षा-प्रसार से ही हम लोगो का उद्धार हो सकता है। ९४ कुटुंबोने यह तजवीज पेश की कि हमारे लड़कों व लड़कियों को छात्रवृत्तियां मिलनी चाहिएँ। कुछेक कुटुंबोंने अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा की आवश्यकता बतलाई। इनमें १२ कुटुंब ढोर जाति के भी थे। महारजाति के ८ कुटुंबोने छात्रालय खोलने के लिए कहा। २१ कुटुंबोने अपने गावो में प्राइमरी स्कूल खुलवाने पर जोर दिया। पूर्व खानदेश और कोलाबा के कुछ हरिजनोने यह भी कहा कि हमारे बच्चो को स्कूलों में अलग न बिठाया जाय, उन्हें दूसरे लड़कों के साथ ही बिठाना चाहिए।

अन्य शिकायतें—पानी की शिकायत तो प्राय: सभी जगह है। मुर्दारमास खाने के बारे में १० हरिजन-कुटुंबोंने कहा कि यह चीज कानूनन बंद करा देनी चाहिए। मुर्दारमास को ये लोग छोड़ते भी जारहे हैं। कोलाबा जिले के दो चमार कुटुंबों की शिकायत भी सुननेलायक है। इनके यहां ब्याह-शादी मे तो ब्राह्मण देवला पुरोहिताई करते हैं,और मृत्यु-संस्कार कुंभार कराते है। कुंभार इन्हे बहुत तंग करते हैं, पर यह तो एक स्थानीय शिकायत है।

७४ परिवारोंने सरकारी नौकरियो की तरफ इच्छा प्रगट की। उन्होंने कहा कि हमारी सामाजिक और आर्थिक स्थिति इसीसे सुधर सकती है। ६१ कुटुंबोंने कर्जे के बारे में शिकायत की। ३४ कुटुंबोंने सहकारी समितियां स्थापित कराने की तजवीज पेश की। 'वतन' और 'बेगार' के बारे में भी लोगों को काफी शिकायत है।

मैंने श्रीयुत भगत के संक्षिप्त निबंध का केवल सारमर्म ही ऊपर दिया है। क्या अच्छा हो कि प्रत्येक प्रांत में, प्रांतीय संघों की देख-रेख में, हरिजनों के विषय में ऐसे ही शोधपूर्ण निबंध लिखे जायँ, और प्रकाशित कराये जायँ। वि० ह०

हरिजन-सेवक

शनिवार, २१ दिसम्बर, १९३५

कावीठा के वीर नाथाभाई

गांधीजीने जब "अस्पृश्यता आखिरी सांसे ले रही है" शीर्षक लेख लिखा तब उसमे उन्होने कहा था कि कावीठा गांव की दुःखद घटना जो ससार के सामने लाई गई और उसे देशव्यापी प्रश्न बनाया गया यह सवर्ण सुधारकों का ही काम था, और कावीठा के एक अत्यन्त उत्साही कार्यकर्त्ताने ही हरिजनो को अपने अधिकारो पर दृढ रहने को कहा था। हमारे पास अब उस "अत्यन्त उत्साही" सवर्ण हरिजन-सेवक का पत्र आया है, जिसमें उसने कावीठा तथा उसके इर्द-गिर्द मे होनेवाली अस्पृश्यता-निवारण की लडाई का इतिहास दिया है। हरिजन-आन्दोलन के इतिहास में यह एक प्रेरणाप्रद पृष्ठ जोड़ता है।

श्रीयुत नाथाभाई अपने गाव की सरकारी पाठशाला में अध्यापक थे। असहयोग के दिनो मे उन्होने नौकरी छोडदी, और राष्ट्रीय कार्य करने लगे। खादी और खासकर अस्पृश्यता-निवारण के कार्य मे वे रस लेते थे। इसका कारण था। उन्होने अपनी आंखो से देखा था कि उनके गाव मे खास उनकी जाति के राजपूत किस तरह गरीब हरिजनो को सताते और कष्ट देते थे। लगभग सात साल हुए कि उनकी जाति-बिरादरी की पचायतने उनसे पूछा कि वे क्यो न जाति-बाहर कर दिये जायँ? वे बहादुरी के साथ अपने मामले पर लड़े, और उनके विरोधियो को मुह की खानी पड़ी। बिरादरीने उनका पिण्ड तो छोड़ दिया, पर जहां से वे निकलते लोग उनपर व्यंग कसते और उन्हे 'नरसी मेहता' कहते। बात यह थी कि काठियावाड के सुप्रसिद्ध सन्त नरसीमेहता जाति के उच्च ब्राह्मण थे, और अपनी बिरादरी की रत्तीभर भी पर्वा न करके खुले आम हरिजनो के साथ उठने-बैठते थे। सन् १९३० में नाथाभाई की जाति-बिरादरीने उनपर आरोप लगाया कि उन्होने तीन बैल बधिया करा दिये है। उनपर ५) जुर्माना हुआ और यह जुर्माना उनके रिश्तेदारो से वसूल किया गया। उसी साल सविनय अवज्ञा के सिलसिले मे उन्हे एक साल की सजा हुई, और ऊपर से ५००) जुर्माना। जुर्माने की वसूली के लिए उनके तीन बैल कुर्क करके बेच दिये गये। १९३२ में फिर जेल गये, और जुर्माना भी ५००) का हुआ। और यह रकम उनके साहूकार से वसूली गई। तीसरी बार उन्हे उनके बड़े भाई और उनके ८० बरस के बूढे पिता को भी एक साल की सजा हुई, और तीनों पर २५००) का जुर्माना। सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित होने के बाद इस जुर्माने की कुछ रकम चुका दी गई।

जवांमर्दी तो ८० बरस के उस बुड्ढे की थी जिसने बहादुरी के साथ जेल में सजा काटी, लेकिन अगर पुत्र के प्रति उसके हृदय में असीम स्नेह न होता तो वह ऐसा न करता। ऐसा मालूम होता है कि एक सुधार की बात छोड़कर, पुत्र के साथ वह किसी भी क्षेत्र में चाहे जिस हदतक जा सकता है। उनकी भाई की स्त्री को मरे पन्द्रह बरस हो गये हैं, और वह उनके अंतर की प्रेरणा से पुर्नविवाह अब करेगा नहीं, मगर बुड्ढे को इससे तसल्ली नहीं हो सकती। नाथाभाई खुद ही घर में अलग-से रहते हैं। कोई बुड्ढा मनुष्य जितना सहन कर सकता है, यह उससे अधिक ही है। शायद हरिजन-आन्दोलन के सम्बन्ध में उसने यही रुख अख्तियार कर रखा है, लेकिन बुड्ढे का विश्वास तो व्यर्थ का हल्ला-गुल्ला मचाने की अपेक्षा चुपचाप मानसिक कष्ट सहन करते जाने में है।

किन्तु नाथाभाई—वह अपनी लड़ाई इस तरह अकेले नहीं लड रहे है। उनके झण्डे के नीचे दूसरे ग्यारह कुटुम्ब भी लड़ने और अपनी योग्यता और शक्ति के अनुसार कष्ट झेलने को तैयार है। नाथाभाईने हरिजन-सेवको को अपने यहां रखा, और उनके साथ हरिजन-बस्ती मे भोजन किया, और अपनी लड़की को हरिजन-आश्रम में भेज दिया, जहां वह हरिजन लड़कियो के साथ रहती व खाती-पीती है। इसपर उनकी बारह गावो की बिरादरीने पचायत करके यह निश्चय किया कि कावीठा के १२ राजपूत कुटुम्बो को "हरिजनो के साथ सहानुभूति दिखाने" के अपराध पर दण्ड दिया जाय। वह इस तरह कि हरेक से १०१) दण्ड के रूप में लिये जायँ, और जो इन कुटुम्बो के साथ सामाजिक सम्बन्ध रखे, उसपर ५०१) का जुर्माना किया जाय। नाथाभाई को जुर्माने की सजा नही दी गई, पर उन्हे पचायतने जाति से निकाल दिया।

इन बारह कुटुम्बों मे से एकने भी जुर्माना नही दिया, जिनसे वे सब-के-सब जाति-बाहर कर दिये गये। अब भी उनका सामाजिक बहिष्कार है। चार या पाच महीने से न उनका काम नाई करता है, न कुम्हार और न बढई। एक नाई अब इन सत्याग्रही कुटुम्बो मे फिर से शरीक हो गया है।

और नाथाभाईने जो लडाई लडी है, यह बात नही कि, उसमें उन्हे एकदम असफलता ही मिली हो। हरिजन आज चाहे अपने बच्चो को पाठशाला मे न भेज सकें, पर कभी भी हिम्मत न हारनेवाले नाथाभाई की मदद से वे कई जोर-जुल्म और बेगार के कामो से रिहाई पा सके है, जिनमे वे हमेशा ही पिसते रहते थे। यह उनकी पन्द्रह बरस की मेहनत का फल है। हरिजनोंने इस सम्बन्ध में न सिर्फ अपनी ही सहायता की है, बल्कि आसपास के गावो के हरिजनो को भी, नाजायज बेगार छोड देने और जिन लोगोंने उन्हे सताया उनसे जवाब तलब कराने में उन्हे मदद दी है।

मगर नाथाभाई यह जानते है कि अस्पृश्यता का आत्यन्तिक नाश कोई मामूली काम नही। उनका गांव शरारत के लिए मशहूर है। वहां के शरारतियोंने अच्छे-अच्छे किसानो, लुहारों और दर्जियों को डरा-धमकाके बिचका दिया। तब इसमें आश्चर्य ही क्या, जो गरीब हरिजनों को उनके उत्पातों के आगे बराबर दबना पड़े! पर नाथाभाई हताश नहीं हुए। वे कहते हैं कि, "कष्ट झेलना मैंने बहुत सीखा, और आशा है कि अभी और भी अधिक कष्ट सहन करने का अभ्यास करूँगा।" उनके साथ आज ऐसे थोड़े-से हरिजन हैं, जो हर तरह का जोखिम उठाने को तैयार हैं।

यहा यह याद रखना चाहिए कि नाथाभाई महज एक किसान, और ग्राम-पाठशाला के एक अध्यापक हैं, मगर वे निराश होना नहीं जानते। वे सच्चे अर्थ में एक राजपूत और क्षत्रिय हैं। वे जानते है कि मुझे अस्पृश्यता-निवारण के पीछे कष्ट झेलने ही चाहिए, क्योंकि यह हमारा धर्म है और प्रायश्चित है। वे यह भी जानते हैं कि भारतवर्ष में यह एक ही कावीठा नही है, बल्कि ऐसे सैकड़ों कावीठा हैं, और हिन्दू-धर्म पर से अस्पृश्यता की यह कलंक-

कालिमा मिटा डालने के पहले सैकड़ों-हजारो व्यक्तियों को अपने आपको मिटा देना होगा। इसलिए वे अपनी श्रद्धा पर दृढ़ हैं, और उनका अगर कोई साथ भी न दे तो भी उन्हे कोई पर्वा नही। हम लोगों में से बहुतो के लिए, जो नाथाभाई से कहीं अधिक शिक्षित हैं पर जिनमें श्रद्धा का अभाव है, उनका उदाहरण एक प्रेरणा-प्रद उदाहरण है।

'हरिजन' से] महादेव ह० देशाई

सेवक का पाथेय

वर्धा का ग्राम-सेवा-मंडल, वर्धा तहसील में ग्राम-सेवा के कार्य का छोटे पैमाने पर एक व्यवस्थित प्रयोग कर रहा है। इस संस्था की ओर से वर्धा तहसील के १२ गावो में काम हो रहा है। इस वर्ष की अपनी वार्षिक बैठक मे उसने काफी वाद-विवाद के बाद नीचेलिखा एक प्रस्ताव स्वीकार किया है :--

"ग्राम-सेवा-मडल की ओर मे देहात मे काम करनेवाला प्रत्येक मनुष्य (१) प्रतिदिन कम-से-कम आठ घण्टे शारीरिक श्रम करनेवाला और प्रतिदिन चार आने मे अपना जीवन-निर्वाह करने की तैयारी रखनेवाला होना चाहिए, और (२) किसी भी परिस्थिति में, कही से भी सपरिवार पूरा काम करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के पीछे ।!) आठ आना प्रतिदिन से अधिक की अपेक्षा न रखनेवाला होना चाहिए।

१ नवम्बर, १९३५ से एक वर्षतक जो ग्राम-सेवक चर्खा-संघ के भाव से सूत कातकर जितनी मजदूरी कमायेगा, उतनी ही अतिरिक्त मदद और लेने का उसे अधिकार रहेगा।"

मुझसे यह कहा गया है कि इस प्रस्ताव पर मे अपना भाष्य लिखू। प्रस्ताव का स्वरूप इतना क्रान्तिकारक है कि लोगो के लिए उसके भाष्य की अपेक्षा रखना स्वाभाविक है। इसका भाष्य यदि हुआ, तो वास्तविक व्यवहार द्वारा होगा, शब्दो द्वारा नही। तथापि साहित्य के ऋण से उऋण होना भी आवश्यक है, अतः नीचे थोडे मे कुछ लिखता हू।

प्रस्ताव के पूर्वार्द्ध मे शारीरिक श्रम और ऐच्छिक गरीबी का तत्त्व स्वीकारा गया है। एक-न-एक कारण खड़ा करके अबतक हम शारीरिक श्रम से बचने का प्रयत्न करते रहे है। ससार मे फैली हुई विषमता, ऊँचनीच के विचार, गुलामी और हिंसा, य सब विशेषकर उस आर्थिक पाप के परिणाम है, जो शारीरिक श्रम से बचने के प्रयत्न में हम अबतक करते आये हैं। बच्चे और बूढ़े शारीरिक श्रम न करें, विद्यार्थी और अध्यापक शारीरिक श्रम न करें, जो रोगी और असमर्थ है वे तो कदापि न करे, निरुद्योगी और उच्चोद्योगी भी न करें, संन्यासी और देशभक्त भी न करे, विचारक, प्रचारक और व्यवस्थापक भी शारीरिक श्रम न करें; तो आखिर करे कौन ! वे, जो अज्ञान हैं और पीड़ित है ? प्रस्ताव के पूर्वार्द्ध में इसी वस्तु का परिचय कराते हुए यह कहा गया है कि जबतक हम इस भयंकर स्थिति से अपना पिड न छुड़ा लेगे, तबतक दूसरी कोई भी स्थापना, सिद्धान्त, वाद, व्यवस्था, और रचना से हमारा निस्तार न होगा। मनु के शब्दो में यह अर्थ-शुचित्व का एक प्रयत्न है।

प्रस्ताव के उत्तरार्द्ध को 'काम-शुचित्व का प्रयत्न' कहा जा सकता है। स्त्रियों को अपनी भोग्य सामग्री समझकर एक ओर उनसे अपनी पूरी व्यक्तिगत सेवा करवाना और दूसरी ओर उन्हें अपना भार समझकर उस भार को समाज-सेवा पर लादना, एक ऐसी वृत्ति है, जिसमे सेवा का केवल नाम-मात्र रह जाता है। इसके कारण स्त्रियों की अद्भुत शक्ति को कोई अवकाश नहीं मिलता और समाज-सेवा का कार्य एकांगी और महँगा होता जाता है। यदि कुटुम्ब अथवा परिवार की व्याख्या में कुटुम्ब को समाज-सेवा के लिए संगठित एक सहज, स्वयंपूर्ण एवं सहायक मडल मानलिया जाय, तो कुटुम्ब समाज के लिए भार-रूप न रह जाय; उलटे समाज का उपकारक बन जाय।

अर्थ-शुचित्व और काम-शुचित्व दोनो सेवा-धर्म के सच्चे साधन हैं, और साध्य भी यही हैं।

जो लोग इस गरीब और पीड़ित देश की सेवा उत्कट लगन के साथ करना चाहते हैं, वे यदि इस मर्म को समझ ले कि अर्थ-शुचित्व और कामशुचित्व के बिना वास्तविक सेवा हो ही नही सकती, तो मुझे आशा है कि इन दोनों तत्त्वो की सिद्धि के लिए—फिर ये कितने ही कठिन क्यो न प्रतीत होते हो—प्रयत्न करने में अपनी ओर से वे कोई बात उठा न रक्खेंगे।

प्रस्ताव का अन्तिम भाग उन सेवको की अतिरिक्त सहायता के लिए है, जो ग्रामसेवा के क्षेत्र मे प्रवेश किया चाहते हैं या नये-नये प्रविष्ट हुए हैं। महाराष्ट्र-चर्खा-सघने प्रेमपूर्वक, साहसपूर्वक और सकोचपूर्वक कुछ ऐसी व्यवस्था की है कि जिससे कातने-वालों को बढी हुई मजदूरी के रूप मे ९ घण्टे काम करने पर ३ आने मिलेगे। यह मजदूरी पर्याप्त तो नहीं है। अपने पिछले ४॥ महीनो की कताई के लगातार अनुभव पर से मैं कह सकता हूँ कि इस बढ़ी हुई दर के अनुसार भी ९ घण्टे में ३ आने कमाना साधारणत कठिन ही होगा। अपने इस कथन की पुष्टि के विवरण मे मै यहा न उतरूँगा, यद्यपि विवरण मेरे पास तैयार है। किन्तु इस स्थिति मे भी सेवको को तो उसी तरह का जीवन बिताना चाहिए, जिस तरह का जीवन देश की गरीब और अनाथ स्त्रिया आज बिता रही हे। तथापि जबतक सेवाकार्य का रहस्य अपने आप स्वय स्फूर्ति से प्रगट न होन लगे, तबतक सेवा के सशोधन और चिन्तन के लिए प्राथमिक अवस्था मे सेवक को सेवा-कार्य के अतिरिक्त थोड़ी फुरसत मिलनी चाहिए। इस अतिरिक्त सहायता का यही हेतु है। आगे तो जब सेवक स्वयं चिन्तन मे मग्न रहने लगेगा, तो सन्त तुकाराम के शब्दों में वह भी यह गुनगुनाने लगेगा कि "चिंतनासी न लगे वेळ। सर्वकाळ करावें।

विनोबा भावे

साप्ताहिक पत्र

पाठकों से

गांधीजी को अबतक पत्र-व्यवहार करने और किसी भी तरह का कोई ऐसा काम करने की मनाही है, जिससे उन्हे शारीरिक या मानसिक श्रम होता हो, तबतक पाठकों को कृपा करके मुझसे ही अपना मन समझाना होगा। जहांतक हम देख सकते हैं, लगातार अपनी शक्ति से अधिक काम करते रहने से ही गांधीजी की तबीयत खराब हुई है और फिर से अपने मामूली काम-काज शुरू करने से पहले उनके लिए नीद और विश्राम की इस भारी कमी को पूर्ण कर लेना आवश्यक है। यह भी हो सकता है कि साधारणतः वे कितना शारीरिक और मानसिक कार्य कर सकते

हैं, इसके अपने पहले के अन्दाजे में भी उन्हें कुछ हेर-फेर करना पड़े। कई महीनों से तो वह लगातार रात के दो-दो बजे से, और कभी-कभी तो इससे भी पहले उठकर, शाम के ८ या ९ बजेतक काम करते रहे हैं, जिसके दर्मियान बहुत थोड़ी-थोड़ी देर वह सोये या कुछ विश्राम लिया है। और प्राय ऐसे मौके आये हैं कि इस तमाम समय भी उन्हें फुर्सत नहीं मिली और भोजन तथा सुबह-शाम की हवाखोरी के वक्त भी उन्हें अक्सर गम्भीर बातचीत करनी पड़ी है। सच तो यह है कि अक्सर तो घूमने का यह समय पहले से ही किसी-न-किसी विषय की बातचीत के लिए बँधा रहता है, जिससे व्यायाम या मनबहलाव के इस समय से भी उन्हें वह विश्राम और स्फूर्ति नहीं मिल पाती. जो साधारणत: मिलनी चाहिए। इसलिए अब जब वह काम-काज शुरू करे तो उन्हें इस सब व्यवस्था में फेर-फार करना पड़ेगा।

पाठकों को चाहिए कि गांधीजी के स्वास्थ्य की इस गड़बड़ी के लिए वे बेचारी 'सोयाबीन' या उनके आहार-सम्बन्धी प्रयोगों को न कोसें। सच तो यह है कि इन प्रयोगों में उनकी उम्र और दिन-भर में भोजन की पांच चीजें ही लेने की उनकी वह प्रतिज्ञा, जिसे लिये उन्हें अब बीस बर्ष हो गये हैं, भारी रुकावटें हैं, और इनके लिए समय और सावधानी की जो आवश्यकता है वह दूसरी हलचलों के कारण पूरी नहीं होती।

जो लोग बात-बात में उनकी ओर निहारा करते हैं और हर बात में उनकी सलाह मांगते रहते हैं उन्हें थोड़ा अपने पर संयम करना सीखना होगा और गांधीजी को विश्राम की जो आवश्यकता है उसे पूरा करने में सहयोग देना पड़ेगा।

इस बीच, पाठकों को मुझसे ही अपना सन्तोष करना चाहिए। अभीतक तो ऐसा हुआ है कि 'हरिजन' में एक भी लाइन ऐसी नहीं निकली, जिसे गांधीजीने एक बार ध्यानपूर्वक न देख लिया हो और न कोई ऐसा अंक ही निकला है जिसमें उनके नाम से कोई लेख न निकला हो। लेकिन पिछले सप्ताह के अंक में ये दोनों ही बातें नहीं हुईं, और अभी कई सप्ताह पाठकों को उनसे वंचित ही रहना पड़ेगा। मुझे विश्वास है कि पाठक इस अनिवार्य कमी को सब्र के साथ बर्दाश्त कर लेंगे और इस बीच अन्य लेखों से ही सन्तोष करेंगे।

एक पाठ

लेकिन इसके अलावा और भी ऐसी बातें हैं, जिनके लिए हम केवल परमात्मा से ही प्रार्थना कर सकते हैं कि वह उनके बोझ से गांधीजी को बचाये। उनके आसपास के वातावरण में ऐसी बहुत-सी बातें हैं जो उनपर असर करती हैं, और वह वातावरण, हमें स्मरण रखना चाहिए, न केवल हिन्दुस्तान तक ही सीमित है बल्कि सारे विश्व में व्याप्त है। लेकिन जातियों या जन-समूहों की गिरावट से उन्हें उतनी ठेस नहीं लगती जितनी कि व्यक्तियों के पतन से लगती है। जैसा कि मैंने कहा है, उस परमात्मा से ही हम प्रार्थना कर सकते हैं कि वह कृपाकर हमारी त्रुटियों और पतन से हमारी रक्षा करे।

यहां मैं एक उदाहरण देता हूं, जो है तो अजीब-सा पर ऐसा है जैसे कि अक्सर होते रहते हैं। सुदूर दक्षिण भारत से एक हरिजन लड़का शिक्षण के लिए यहां आनेवाला था। जिस दिन गांधीजी अस्वस्थ हुए उससे एक दिन पहले, अथवा यों कहो कि जब डाक्टरोंने गांधीजी को पत्र-व्यवहार बन्द कर देने की सख्त हिदायत तो नहीं की थी पर पहली चेतावनी देदी थी उसके दो दिन बाद, मैंने उनसे कहा था कि दक्षिण भारत के एक मित्रने लिखा है कि अगले दिन सबेरे की अमुक गाड़ी से एक हरिजन-विद्यार्थी यहां आयगा और उन्होंने आशा प्रगट की है कि कोई-न-कोई व्यक्ति लड़के को स्टेशन पर मिल जायगा। मैंने इस बात को नोट कर लिया था, लेकिन फिर भी मैं किसी से स्टेशन जाने को कहना भूल गया। साधारणत: तो खुद मुझी को स्टेशन जाना चाहिए था, लेकिन इधर-उधर की फिक्रों के बीच न तो मैं खुद ही वहां जा सका और न किसी और से ही जाने को कहा। उस दिन शाम को गांधीजी के खून का दबाव अपनी चरम सीमा को पहुँच गया था, और दूसरे दिन सबेरे डाक्टरों की सलाह के मुताबिक वह मौन धारण किये हुए थे। सबेरे ११ बजेतक तो मैं इधर-उधर के कामों में लगा रहा। इसके बाद जैसे ही पहली बार मैं उनके पास गया, तो सबसे पहले मुझसे उस हरिजन लड़के के बारे में ही लिखकर पूछा—"उस लड़के का क्या हुआ? कोई उसे स्टेशन पर लेने गया था?" यह सुनकर मैं तो शर्म से मानो गड़ गया। मुझसे कोई जवाब देते न बन पड़ा। क्योंकि मैं तो उसके बारे में सब कुछ भूल ही गया था। तब मैंने यह पता लगाने की जल्दी की कि वह आगया है या नहीं? पर वह सकुशल आपहुँचा था, अपनी मातृभाषा में बात करनेवाला एक साथी भी उसने ढूंढ निकाला था, भोजन कर चुका था, और हमारे गृह का एक सदस्य बन गया था। गांधीजीने उसे बुलवाया और लिखा—"उससे पूछो कि वह यहां कब आया?" उस भले लड़केने कहा, "आज सबेरे।" मानों कोई बात ही नहीं हुई है। "उससे पूछो कि वह किस वक्त यहां आया?" लड़केने इस बार भी उसी तरह हँसते हुए कहा, मानो कोई बात ही नहीं हुई है, "आज सबेरे।" "सबेरे कितने बजे?" गांधीजीने पूछा, "यहां आनें में उसे कितना समय लगा और किसने उसे यहां का रास्ता बताया?" लड़केने कहा, "मैं स्टेशन से सीधा यहां आया हूं।" "जगह का पता लगाने में कोई दिक्कत तो नहीं हुई?" "नहीं, किसीने मुझे रास्ता बता दिया था।" "जिस आदमीने तुम्हें यहां का पता बताया उससे तुमने बातचीत कैसे की? क्या तुम हिन्दी जानते हो?" "हां, कुछ थोड़ी-सी।" "उससे पूछो कि क्या शर्मा का कोई पत्र लाया है या नहीं?" तब लड़केने अपने साथ लाया हुआ पत्र, फल और शहद दिया। "अब इसे ...... के पास ले जाओ और उनसे कहो कि इससे मित्रता करें और इसे जो-कुछ जरूरत हो उसकी पूर्ति करे।" इसके बाद सब उस कमरे से चले गये और गांधीजीने और कुछ नहीं लिखा। लेकिन उनकी ऐसी खामोशी थी कि उससे जितने मेरे प्राण सूख गये उतना उनके बोलने से न सूखते। इसमें संदेह नहीं कि मेरी लापरवाही से उनके जी को बहुत चोट पहुँची, क्योंकि श्रीमती सेंगर या सरदार वल्लभभाई पटेल-जैसों की बनिस्बत उस हरिजन लड़के के लिए स्टेशन जाने की कहीं ज्यादा जरूरत थी जो अभी बालक ही है, तेलगु के अलावा कोई भाषा नहीं जानता, और अपने स्थान से बाहर कभी गया नहीं था। इससे मुझे सबक तो मिल गया, लेकिन मुझे यकीन है कि इससे गांधीजी के खून का दबाव थोड़ा-बहुत जरूर बढ़ा होगा।

तीर्थयात्रा

वह एक ऐसा प्रसंग था, जिसके लिए डाक्टरों को अगर

मालूम हो जाता तो वे मुझे डांट सकते थे। लेकिन उन्हे अगर पता भी चल जाता तो वे ऐसा न करते। और उन्होने मुझे फटकारा भी तो एक ऐसी बात पर जिसके लिए, मुझे यकीन है, मुझपर उनकी डाट-फटकार नही पड़नी चाहिए थी। कारण यह है कि डाक्टरो को अब भी अपने रोगी की मनोवृत्ति जाननी है। उन्होंने कहा कि तुम्हे एलोर के उन चार सौ तीर्थयात्रियो को गांधीजी के पास नही ले जाना चाहिए था, जो उनका दर्शन करने आये थे। पर मैंने उन्हे गांधीजी के पास ले जाने में कोई भूल नहीं की, क्योंकि मुझे मालूम था कि गांधीजी की तबीयत तब पहले से अच्छी थी। पहले तो वे बेचारे तीर्थयात्री बिना सूचना दिये नही आ रहे थे, यद्यपि करीब पंद्रह दिन हुए कि जब उनके आने का पत्र आया तो उसमे ४०० पर को एक बिंदी भूल से छूट गई थी। फिर वे गांधीजी से कोई बातचीत नही करना चाहते थे, केवल उनका दर्शन करना चाहते थे। "हम लोगोंने पंढरपुर, नासिक और अन्य तीर्थ-स्थानों की यात्रा की है। अब हम उत्तर भारत में आये है। उत्तर भारत में गांधी के सिवा और कोई देवी-देवता नही," उनमें से एकने यह टूटी-फूटी अंग्रेजी में कहा। वे नासिक से वापस चले गये होते, जमनालालजीने उन्हे वर्धा न आने का तार भी दे दिया था, पर वह तार उन्हें मिला ही नही। अब बताओ, मैं उन्हे नाहीं कैसे कर सकता था?

और उन्होंने आकर किया क्या? वे आ तो गये थे सबेरे की ही गाडी से, पर जब मैंने उनसे कहा कि गांधीजी जिस बरामदे में आराम कर रहे हैं उसके सामने आंगन में आप लोगो के लिए हमने प्रार्थना का आयोजन किया है, और उसी समय शाम को मैं गांधीजी का दर्शन आप लोगों को करा सकूंगा, तबतक आप ठहरिए, तो उन्होंने मेरी यह बात बड़ी खुशी से मान ली। शाम को वे आये और एक कायदे से चुपचाप बैठ गये। उन्होंने एक-दो भजन गाये, प्रार्थना में भाग लिया, २५०) इकट्ठे करके गांधीजी को भेंट में दिये और शांतिपूर्वक उठकर चले गये। उनमें से एक भी व्यक्तिने गांधीजी से बात करने की इच्छा प्रगट नही की। दूसरे दिन भी वे ठहरे, और दोनो दिन उन्होने लगभग ७००) की खादी खरीदी। वह देखनेलायक दृश्य था, जब ये खादीधारी तीर्थयात्री वर्धा की सडको पर से निकलते थे। खादी का यह एक मूक प्रचार भी था। जमनालालजीने, जो उनमें से किसीको भी नही जानते थे, शाम को उन्हे अपने यहां भोजन करने का निमंत्रण दिया। निमंत्रण उन्होने अत्यन्त प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया, और जमनालालजी के संपर्क में आने का अवसर हाथ से नही जाने दिया। जमनालालजी के घर के मंदिर में, जहां हरिजन स्वतंत्रतापूर्वक जा सकते है, उन तीर्थयात्रियोंने खूब प्रेम के साथ भजन गाये।

सांटाक्रूज के बचाव में

'हरिजन-सेवक' के २६ अक्तूबर के अंक मे, बम्बई के उप-नगर सांटाक्रूज के पाखानो की मैंने टीका की थी। और उस टीका का आधार एक मित्र का पत्र था, जिसके कुछ अंश मैंने उद्धृत किये थे। एक सज्जनने, जोकि सांटाक्रूज-म्यूनिसिपैलिटी के एक उत्तरदायी मेम्बर हैं, मुझे उसका चुस्त जवाब भेजा है, जिसमें उन्होंने बतलाया है कि कुछ वर्ष पहले यहां की हालत क्या थी, और तब से अब कितनी तरक्की हो गई है। उन्होंने यह भी बतलाने का प्रयत्न किया है कि इससे अधिक सुधार करने में कई कठिनाइयां है, और जबतक सन्तोषजनक 'ड्रेनेज' का इंतिजाम नही हो जाता, तबतक पाखानो की हालत सुधरना मुश्किल ही है। जिन सज्जन के पत्र से मैंने उद्धरण लेकर दिये थे उनका एतराज उस तरीके के बारे में था जो पाखानों के चहबच्चे खाली करने मे काम में लाया जाता है। उन्होंने कहा था कि यह तरीका इतना गंदा है कि कुछ कहने का नही, इसमे गरीब मेहतरानियों के चेहरे और कपड़े-लत्ते उन नरक-कुंडों के गंदले पानी से ख़राब हो जाते हैं। इसपर मेरे यह मित्र लिखते हैं—

"चहबच्चों का गंदा पानी ले जानेवाली मोटर गाड़ियां अंदर नही जा सकती, क्योंकि किसी भी बंगले के बाग का रास्ता काफी चौड़ा नहीं है।......हमने एक बड़ा पंप लेकर उससे पानी जज्ब करने का तरीका आजमा कर देखा, और मेरा खयाल है कि उसपर ७००) या ८००) हमने खर्च किये।.........मगर दुर्भाग्य से, वह चला नहीं। इसलिए एक ही रास्ता है, और वह यह है कि अगर चहबच्चों को साफ करना है तो म्यूनिसिपैलिटी के मेहतर या मेहतरानियां उनका पानी खाली करें या उसे मोटर गाड़ियोंतक पीपों मे भर-भरकर ले जायँ। जैसा कि आपके पत्र-लेखकने कहा है, यह कोई अच्छी चीज नही है, मगर जबतक यहां यह टोकरी का रिवाज मौजूद है, तबतक मेरे खयाल में कोई दूसरा रास्ता नजर नही आ सकता।......जबतक हमारे यहां 'ड्रेनेज' का इंतिजाम नहीं होगा, तबतक मौजूदा स्थिति पर ही हमें संतोष करना होगा। बड़े-बड़े शहरोंतक का मेरा अनुभव यह है कि जहां भी टोकरी का रिवाज है, वहां कोई दूसरा रास्ता निकल ही नही सकता।"

खैर, मैंने अपनी टिप्पणी में यह लिखा था कि भारत के दूसरे नगरों और उपनगरों की हालत इससे भी बदतर है, मगर मैं यह जरूर कहूँगा कि इन मौजूदा हालतो मे सुधार हो सकता है। क्या मैं एक तजवीज बताने का साहस करूँ? स्त्रियों को गंदे पानी के पीपे अपने सिर पर रखकर क्यों ले जाने पड़े? क्या उन्हे इसके लिए कावर नही दी जा सकती? इसमें शक नहीं कि कावर से ढोने का यह तरीका अधिक स्वच्छ, और बल्कि अधिक जल्दी का भी है। और पंप पर जो ७००) खर्च किये गये थे, इतना रुपया कांवरो पर तो कभी खर्च होगा ही नहीं।

हमारे यह मित्र भंगियों को काम करते समय की वर्दियां देने की आवश्यकता तो स्वीकार करते हैं, पर, साथ ही, हमारे पत्र-लेखक की इस बात पर बिगड़ बैठते हैं कि—"हमें अपने भंगी भाइयों को--यानी उन लोगों को जो स्वेच्छा से इस काम को हाथ मे लेगे---आदेश देने का यह अधिकार देना ही पड़ेगा कि वे अमुक हालत में ही हमारी सेवा कर सकते हे।" इसपर मेरे मित्र कहते हैं—"अगर ऐसी बात है, तो वह हालत मौजूदा हालत से बदतर ही होगी। मुझे भय है कि दूसरी बातो को ठीक किये बिना, शायद इस तरह की असबद्ध बात करने से हालत में सुधार नहीं, बल्कि बिगाड़ ही होगा।" अगर मेरे यह मित्र हरिजन-कार्य के एक जबरदस्त समर्थक न होते, तो कदाचित् इस जवाब से एक तरह की गलतफहमी पैदा हो सकती थी। मेरे मित्रने इसे अनुभव करके भी उन उपायों का सारांश देने की जल्दी की है, जोकि सांटाक्रूज की म्यूनिसिपैलिटीने अपने मेहतरों की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए ग्रहण किये हैं। फिर भी मुझे संदेह है कि हमारे पत्र-लेखकने जो राय दी है उसके ठीक-ठीक आशय को

वे बिलकुल ही छोड़ गये हैं। उनके पत्र में आगे जो वाक्य आया है उससे उनका आशय प्रगट हो जाता है। उन्होंने यह कहा था कि, "हमें यह आदेश देने का उन्हें अधिकार होना चाहिए कि हमें किस किस्म के कपड़े और उनके काम करते समय की वर्दियां और क्या-क्या सुविधाएँ उन्हें देनी होंगी, और उनके लिए किस किस्म के पाखाने बनवाने होंगे, वगैरा-वगैरा।" इसमें मैं कोई असबद्ध या बेसिर-पैर की बात नहीं देखता। पाखाने बनवाते समय हमने अपने आराम और सुविधा और अपनी सुघराई या औचित्य की भावना की तरफ ध्यान दिया है; उन लोगों के आराम, सुविधा, सुघराई या औचित्य की ओर हमारा ध्यान ही नहीं गया, जो यह गलीज काम करते हैं। बम्बई के उपनगरों के पाखानों की बनावट के बारे में यह बात इतनी सच है कि उससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। कुछ त्रुटियां तो इतनी स्पष्ट हैं, कि अगर हरेक गृहस्थ को अपना पाखाना दो ही दिन अपने हाथ से साफ करना पड़े, तो उसे खुद ही उनका पता चल जायगा। मसलन्, चुचाती हुई उस बांस की गदी टोकरी को, जो आम तौर पर मैले के लिए रखी जाती है, वह कभी छुएगा भी नहीं। उसे साफ मालूम हो जायगा कि पाखाना इस तरह की बनावट का हो कि पेशाब व गंदा पानी जमीन में खुदे हुए चहबच्चे में बहकर न जाय, बल्कि कुछ ऊँचाई पर रखी हुई टंकी में जाय और उसमें एक टोटी लगी हो, ताकि उसमें डोल डुबो-डुबोकर उसका गंदा पानी न निकालना पड़े, बल्कि टोटी के नीचे डोल रखकर उसे खाली कर लिया करे। फिर यह भी उसे तुरन्त मालूम हो जायगा कि मैले के बरतन और खुड्डी (बैठने की जगह) के बीच का फासला, तथा खुड्डी की लम्बाई और चौड़ाई इस हिसाब से होनी चाहिए कि तमाम मल-मूत्र सीधा बरतन में गिरे। बरतन के सिवा और किसी चीज पर न पड़े, और न कोई जगह खराब हो। और इसपर भी उसका कुछ ध्यान जायगा कि डोल किस आकार और किस शक्ल का होना चाहिए। पर ये बातें उसे सूझती ही नहीं। कारण इसका यह है कि पाखाना साफ करने का उसे कभी काम ही नहीं पड़ता, और जिन्हें यह काम करना पड़ता है, उनमें उतनी बुद्धि नहीं, और हिम्मत तो और भी कम है कि जिनके पाखाने वे साफ करते हैं उनसे इतना तो कह सकें कि पाखाने और सफाई के तरीके इस तरह के नहीं, बल्कि इस तरह के होने चाहिएँ। अगर स्वेच्छा से भंगी का काम करनेवाले समझदार व्यक्ति हों तो वे निस्संदेह हमें यह आदेश देंगे कि वे अमुक स्थितियों में ही काम करेंगे, और उनके उस आदेश का हमें कुछ भी बुरा नहीं मानना चाहिए।

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

आवश्यकता है

हरिजन-सेवक-संघ के सेण्ट्रल आफिस, दिल्ली के लिए दो हरिजन क्लार्कों की आवश्यकता है, जो अण्डर ग्रेज्युएट या मैट्रिक पास हों, (टाइपिस्ट अधिक पसन्द किये जायँगे।) २५) मासिक वेतन मिलेगा। तीन महीने इम्तिहानन काम करने के बाद मुस्तकिल किये जायँगे। मय सर्टीफिकेटों के अपना प्रार्थना-पत्र जनरल सेक्रेटरी, हरिजन-सेवक-संघ, किंग्सवे, दिल्ली के पते पर भेजें।

स्व० श्री टिकेकरजी

गत १० दिसंबर मंगलवार को नागपुर में, कुछ ही दिन बीमार रहने के बाद, श्री गणपतराव टिकेकर का देहावसान हो गया। नागपुर का ही नहीं, सारे मध्यप्रांत का एक ऐसा लोक-सेवक चल बसा, जिसकी स्थान-पूर्ति असंभव है। असहयोग-युग के पहले वे रेलवे के ठेकेदार थे, और अपनी ईमानदारी और योग्यता के बल पर उन्होंने काफी रुपया कमाया। अर्सा हुआ कि वे यह सब छोड़-छाड़कर जी-जान से आजादी की लड़ाई में कूद पड़े। वे जमकर चुपचाप काम करनेवाले व्यक्ति थे। अपनी प्रखर व्यवसाय-बुद्धि को उन्होंने रचनात्मक कार्य संचालन करने में लगाया। कताई और खादी के काम में तो उनकी इतनी लगन थी कि अपनी मृत्यु से दो दिन पहले जब उनकी लड़कियां उनके आगे बैठी रो रही थीं, उन्होंने धीरे से उन्हें आश्वासन दिया और कहा कि "बेटियो, तुम मेरे पास बैठकर चर्खा चलाओ, जिससे तुम्हारा कातना देखकर मुझे सांत्वना मिले। प्रांत में ऐसा एक भी रचनात्मक कार्य न होगा—चाहे वह हरिजन-कार्य हो, चाहे ग्राम-उद्योग का हो या खादी का हो—जो उनपर निर्भर न किया हो। और उन्होंने सचमुच अपने को देश की सेवा में खपा दिया। मृत्यु से दस दिन पहले वे यहां बिल्कुल स्वस्थ व प्रसन्न थे, और अगले वर्ष के आरंभ में नागपुर में होनेवाली प्रदर्शिनी के एक-एक ब्योरे के बारे में उन्होंने चर्चा की थी, और बीमारी भयंकर हो जाने के बाद भी, वे प्रदर्शिनी के ही विषय में सोचते और बातें करते थे। श्री टिकेकरजी की वृद्धा माता, उनकी विधवा पत्नी और उनके भाइयों और बच्चों के प्रति हम हार्दिक समवेदना प्रगट करते हैं।

म० ह० दे०

स्व० श्री दीपनारायणसिंह

बाबू दीपनारायणसिंह की दुःखद मृत्यु से बिहार आज शोकाकुल है। दरिद्रनारायण के प्रीत्यर्थ दीपबाबू सदैव देते रहते थे। एक भी ऐसा महत्वपूर्ण सार्वजनिक कार्य न होगा जिसके लिए बाबू राजेन्द्रप्रसाद को उनके यहां से खाली हाथ लौटना पड़ा हो। उनके असामी यह जानते थे कि हमारा मालिक ऐसा है जो कभी हमारा शोषण नहीं करना चाहता, किंतु हमें सुखी और सतुष्ट ही देखना चाहता है। उनकी मृत्यु से असेंबलीने एक पक्का देशभक्त और देश और बिहार प्रांतने एक महान् लोकोपकारी खो दिया है। श्रीमती लीलासिंह के प्रति हम हार्दिक समवेदना प्रगट करते हैं।

म० ह० दे०

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करें। ग्राहक-नंबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा।

व्यवस्थापक—'हरिजन-सेवक'

"तकली कैसे कातें ?"

यह पुस्तक, एक प्रति के लिए ~)॥। के टिकट भेजने से, 'चर्खा-संघ-कार्यालय, मिर्जापुर रोड, अहमदाबाद' से भी मिल सकती है।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi, by R. S. Gupta.

क्रान्ति तो हो चुकी है

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक' किंग्सवे, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शनिवार, २८ दिसम्बर, १९३५. [संख्या ४५

विषय-सूची

कुछ हरिजन-छात्रालय

कर्णाटक तथा काठियावाड़ मे कुछ हरिजन-छात्रालय देखने का मुझे अनायास अवसर मिला। कोरठूर गांव में हीसरित्ति के गांधी-आश्रम के अधीन श्री महादेव मैलार हरिजन-बस्ती के पड़ोस में ही एक झोंपड़ा बनाकर रहते हैं। इस गाव मे वस्त्र-स्वावलंबन की प्रवृत्ति मुख्य है। हरिजन-आश्रम में भी इसी प्रवृत्ति का वातावरण जान पड़ा। एक ही खड के लंबे-चौड़े झोंपड़े मे एक पर्दा बनाकर एक तरफ रुई धुन रहे थे। एक हिस्से मे लड़के, युवतियां और बुढ़ियां चर्खे चला रही थीं। एक भाग में सभा का आयोजन किया गया था। एक हरिजन विद्यार्थी को अपना बनाया संवाद सुनाने की इच्छा हो आई। एक प्रसिद्ध लिंगायत भक्त के वचन तथा जीवनी में से करीब-करीब उस भक्त की ही भाषा मे वह संवाद रचा गया था। कानड़ी में होने से मै उसे ठीक तरह से तो समझ नही सका, किंतु श्री दिवाकरजीने मुझे उसका भावार्थ समझा दिया। प्रसग यह था कि इस भक्त को एक हरिजन शिष्य प्रणाम करने आया। भक्तने भी उसे प्रत्युत्तर में नमस्कार किया। इसपर उस शिष्य तथा अन्य शिष्योंने पूछा कि यह किस प्रकार उचित कहा जा सकता है कि आप सरीखा महात्मा अपने शिष्य के—और फिर एक नीचजातीय शिष्य के—नमस्कार के प्रत्युत्तर में नमस्कार करे? इसपर उस भक्तने सर्व प्राणियों की समानता तथा नम्रता के विषय में प्रवचन किया।

दूसरा एक आश्रम नीपाणी में श्री रामतीर्थ नाम के एक तरुण हरिजन-सेवक चला रहे हैं। यह आश्रम भी एक छोटे-से झोंपड़े में है। यह कह सकते हैं कि एक-एक झोंपड़ा एक-एक छोटा हरिजन-छात्रावास है। अत्यंत सादगी से ७ से लेकर १४ वर्षतक के बालक यहां रहते और पढ़ते हैं। कुछ व्यायाम और कुछ कातने-पींजने का काम करते है, और अधिक करके पाठशाला पढ़ने जाते हैं। आश्रम के तमाम विवरण में उतरने का मुझे समय नहीं मिला, पर श्री ठक्कर बापाने आश्रम की निरीक्षण-पुस्तक में जो नोट लिखा है, वैसी ही छाप मेरे ऊपर भी पड़ी। श्रीरामतीर्थ एक उत्साही सेवक हैं, पर यह अधिक अच्छा होगा कि वे अनेक प्रकार की प्रवृत्तियों में भाग लेने और विशाल क्षेत्र में उतरने का लोभ रखने के बजाय अपने आश्रम के ही पीछे अधिक परिश्रम करे। इस आश्रम की रिपोर्ट मैं ध्यान के साथ पढ़ गया, और उसमे मुझे जो एक चीज खटकी वह थी श्री रामतीर्थ की अपनी ही उसमें बार-बार आई हुई प्रशंसा। श्री रामतीर्थ की उम्र अभी तीस साल से कम ही है। श्री रामतीर्थ को मै यह चेतावनी दे देना चाहता हूँ कि अगर वे अपना 'कीर्तिस्तंभ' इस तरह बहुत उतावली से बनाने लगेंगे तो इसमें जोखिम है।

यद्यपि दो-चार मिनिट से अधिक समय मै नही दे सका, तो भी नीपाणी के श्री वीर शैव कक्कय समाज का बोर्डिंग मेरा ध्यान आकर्षित किये बिना नही रहा। यह बोर्डिंग मांग या चमारों से मिलती हुई एक जाति के स्कूल तथा कॉलेज में पढ़नेवाले कुछ विद्यार्थी चला रहे हैं। इसका खर्चा भी अधिकतर वे अपनी जाति से ही लेकर चलाते हैं। कुछ विद्यार्थियों को जो सरकारी छात्रवृत्ति मिलती है, उसे भी वे अपने बोर्डिंग को ही दे देते है, और इस तरह करीब बीस विद्यार्थी इस बोर्डिंग में खाते-पीते और पढ़ते हैं। तमाम व्यवस्था विद्यार्थी अपने हाथ से ही कर लेते है। इस स्वावलम्बी कार्य के लिए ये विद्यार्थी धन्यवाद के भाजन हैं।

कर्णाटक के घास-फूस के कच्चे झोंपड़ों में चलते हुए ये आश्रम देखकर काठियावाड़ में जाते ही चित्र एकदम पल्टट गया हो ऐसा मालूम पड़ा। वहां के मुकाबले में काठियावाड की संस्थाओ के मकान विशाल बंगले कहे जा सकते हैं। विद्यार्थियो की संख्या तो कर्णाटक, काठियावाड, या साबरमती कही भी तीस से ऊपर शायद ही हो। पर कर्णाटक की सादगी या उद्योगमयता काठियावाड़ में न देखने से मुझे खेद हुआ। बालक, बालिकाओ तथा अध्यापको सभी में आडम्बरी रसिकता दिखाने के लिए अवश्य भारी चिन्ता रखी जाती है ऐसा देखने मे आया। सवर्ण तथा अवर्ण सभी तरुण-तरुणियो को देखकर मेरे मन मे एक ही प्रश्न उठा कि समाज के सच्चे गुरु कौन हैं? और इसका उत्तर मिला यह कि रंगभूमि पर के नट और नटियां। अपने बचपन में मै जिस प्रकार के नृत्य, रास, कपड़े तथा बालो का फेशन नाटक के लड़कों या लड़कियो का भेष धारण करनेवाले नटो में देखता था वह आज सारे समाज में व्याप्त रूढ़ियो में परिणत हो गया है।

भावनगर के 'ठक्करबापा-हरिजन-आश्रम' में मेरे लिए दो-ढाई घंटे का कार्यक्रम बनाया गया था। उसमें झांझ-पखावज के साथ गायेजानेवाले भजन थे, रास था, दोहे थे, लोकगीत थे। और सिर पर जल-पात्र रखकर पनिहारी (बल्कि पनिहारा) का नृत्य था! अतिथि की अपनी विशेषता दिखाने के विचार से

यदि इसका आयोजन किया हो तो मुझे खेद के साथ कहना पडेगा कि मेरा इससे मनोरंजन नही हुआ। इसका अर्थ यह नही कि ये भजन या रास या दोहे या लोकगीत अच्छी तरह गाये नही गये थे या नृत्य मे कोई कला नही थी। यह नृत्य भी कोई मामूली नृत्य नही था, किंतु हमारे बालक और बालिकाओं में हम किस तरह का शौक पैदा कर रहे है, हम कैसी छिछोरी रसिकता के पागलपन और वाहियात भावुकता के पीछे पडे हुए है इस बात का जब मै विचार करता हूँ तब यह सौन्दर्य और सस्कारिता का भास पैदा करनेवाली तालीम मेरे मन को खिन्न कर देती है। जब वह पनिहारी का गाना गानेवाला लडका (एक सोलह-सत्रह वर्ष का युवक) 'साहेली, मने राम रम्याना कोड' या ऐसा ही कोई गीत उसके साथ बोलने लगा, और साथ ही स्त्रैण हाव-भाव दिखाने लगा, तब मुझे, यह सारी प्रवृत्ति जिस विचार शून्य रीतिसे चल रही है इसका दुःख हुए बिना नही रहा। यदि गुजरात सौराष्ट्र की सस्कृति की यही विशेष साधना है तो यह कोई बहुत बडी विशेषता नहीं ऐसी मेरी विनम्र सम्मति है।

कर्णाटक की अपेक्षा काठियावाड की हरिजन-सस्थाओ में खादी भी कम देखने में आई, और शायद ही कोई ऐसा विद्यार्थी देखा, जिसे कातने का अच्छा ज्ञान हो अथवा जिसने ऐसा सूत काता हो जो ठीक तरह से बुना जा सके।

हा, एक प्रकार की जागृति काठियावाड मे मैंने खूब देखी। डॉ० आंबेडकरने हरिजनों के धर्मान्तर के विषय की जो सूचना निकाली है उसके संबंध में छोटी तथा बड़ी उम्र के अनेक हरिजनोने मुझसे हर जगह प्रश्न पूछे। अस्पृश्यता हरिजनो को कितनी कष्ट-कर होने लगी है, और इस विषय में वे कितने अधीर हो गये है इसका उन प्रश्नो से तुरंत पता लग सकता है। यह स्वीकार करते हुए भी कि अस्पृश्यता का जोर कम हो गया है और उसे दूर करने के लिए गाधीजीने अपार परिश्रम किया है, वे यह पूछते हैं कि—कितने वर्ष में अस्पृश्यता बिल्कुल नष्ट हो जायगी यह नही कहा जा सकता, और हमें कबतक अपमानित स्थिति में रहना होगा। धीरज रखने के लिए मैने समझा तो दिया, तो भी इन प्रश्न पूछनेवालो के प्रति सहानुभूति की भावना पैदा हुए बिना नही रहती। मैंने किसी हरिजन के घर जन्म लिया होता तो मै भी इसी तरह अधीर हो गया होता।

'हरिजन-बंधु' से] **किशोरलाल घ० मशरूवाला**

संत एकनाथ और अस्पृश्यता

महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध सन्त-प्रवर श्री एकनाथ पूर्ण समदर्शी महात्मा थे। वे अखिल जगत् को वासुदेवरूप देखते थे। परम भागवत की दृष्टि में तो केवल एक भक्ति है, उसे वर्ण अथवा आश्रम का तो भान ही नही। वह तो सर्वत्र बराबर मे भगवद्भाव ही देखता है। हरिभक्त के विषय में एकनाथजीने लिखा है—

'जन्म कर्म वर्णाश्रम जाती। पूर्ण भक्त हातीं न धरिती।
चहूं देहांची अहंकृती। स्वप्नीं ही न धरिती हरिभक्त॥

अर्थात्, जन्म, कर्म, वर्णाश्रम या जाति को भगवान् के पूर्ण-भक्त कभी पकड़े नहीं रहते। चारों देहों का अहंकार-भाव त्याग देते हैं, सपने में भी हरिभक्त ऐसा अहंकार धारण नहीं करते। एकनाथ महाराजने केवल ऐसा गाया ही नहीं, बल्कि अपने आचरण में उतारा भी। सन्तों की कथनी और करनी में कोई अन्तर नही रहता, यह उन्होंने सिद्ध कर दिया। नीचे मै श्री पं० लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर बी० ए० के 'श्री एकनाथ-चरित्र' में से ऐसे कुछ प्रसंग दे रहा हूँ, जिनसे अन्त्यजों के प्रति उनकी आत्मीयता की भावना का पता चलता है।

पैठण में रनिया नाम का एक महार रहता था। बड़ा सदा-चारी और श्रद्धालु था। उसकी स्त्री भी वैसी ही सदाचारिणी थी। दोनो स्त्री-पुरुष सत एकनाथ का हरि-कीर्त्तन सुनने नित्य आया करते थे। एक दिन ज्ञानेश्वरी का प्रवचन हो रहा था। उस दिन विश्व-रूप-दर्शन का प्रसग चल रहा था। प्रवचन समाप्त होने पर रनिया महारने पूछा। 'महाराज, भगवान्ने जब विश्वरूप धारण किया तब यह रनिया कहा था?' उत्तर मिला—'रनिया भी श्री कृष्ण-रूप मे ही था।'

एक दिन रनिया के मन में आया कि एकनाथ महाराज को अपने यहा भोजन के लिए बुलाना चाहिए। इतने बडे भगवद्भक्त का पुण्य समागम होने से हमारा उद्धार हो जायगा। और महारो की अपेक्षा रनिया अधिक शुचिता और स्वच्छता के साथ रहा करता था। विट्ठल नामका खूब प्रेम से जप करता था। एकनाथजी को उसने बडे भक्ति-भाव से भोजन के लिए निमत्रण दिया और उन्होंने स्वीकार भी कर लिया। इसपर ब्राह्मणोंने बड़ा कोलाहल मचाया। कहने लगे, 'देखे, एकनाथ उस महार के यहां कैसे भोजन करने जाते है!' एकनाथजी के घर से उस महार के घरतक रास्ते मे थोड़े-थोडे फासले पर ब्राह्मण प्रतीक्षा मे बैठे रहे। नाथ महाराज बेखटके सब के सामने घर से निकले और रनिया भगत के यहां पहुँचे। भक्ति-गद्गद रनिया और उसकी स्त्रीने आसन बिछाया, पत्तल रखी, चौक पूरा और महाराज से बैठने के लिए प्रार्थना की। श्री एकनाथजीने आसन पर बैठकर उस भक्त दम्पति के हाथ का बडे प्रेम से भोजन किया।

× × × ×

अस्पृश्यता-जैसी निर्दय नास्तिकता की भावना को संत-हृदय मे स्थान ही कहा? जिस हृदय में दया और प्रेम का असीम समुद्र लहरा रहा हो वहां अस्पृश्यता कभी प्रवेश कर सकती है? श्री एकनाथजी का हृदय ऐसा ही था। एक दिन जेठ-बैसाख की कड़ी धूप में एकनाथजी मध्याह्न सध्या करने के लिए गगाजी जा रहे थे। रास्ते मे एक महार का बालक अपनी मां के पीछे-पीछे दौडता जा रहा था। उसकी मा जल्दी में कुछ आगे निकल गई, और बच्चा बेचारा रास्ते में लडखड़ाकर गिर पड़ा। बालू का वह मैदान सूर्य की प्रचंड किरणो से भट्टी की तरह जल रहा था। बच्चे के मुंह से लार निकल रही थी। बेचारा न तो तेजी से दौड़ ही सकता था, और न पीछे लौटने को ही मन होता था। उस नन्हें बालक को देखकर नाथ महाराज का हृदय विकल हो उठा। दौड़कर झट उस बिलखते हुए बच्चे को गोद में उठा लिया। उसका नाक-मुह साफ किया और अपनी धोती उघाकर धूप से बचाते हुए उसे महारों की बस्ती में ले आये। बच्चेने पहुँचते ही अपना घर पहचान लिया। उसका बाप दौड़ता हुआ बाहर आ गया। इतने में मां भी गगरी लिए आ पहुँची। एकनाथजीने बच्चे को सौंपते हुए उसके मा-बाप से कहा, 'देखो भैया, छोटे-छोटे बच्चो को इस तरह नहीं छोड़ देना चाहिए, लापर्वाही करना ठीक नहीं।'

× × × ×

पैठण में एकनाथजीने एक और अंत्यज की सेवा-शुश्रूषा करके उसका उद्धार किया था। वह नामी चोर था। आखिरकार एक बार पकड़ा गया, और जेल में डाल दिया गया। वहां उसे भारी यत्रणा दी गई। एक दिन एकनाथजी का हरिकीर्तन सुनकर वह भाग निकला, और रेंगते-रेंगते महाराज के द्वार पर जा पहुँचा। भूख के मारे उससे बोला भी नहीं जाता था। बड़ी ही दयनीय दशा थी। नाथ महाराजने खीर तैयार कराके अपने हाथ से उसके मुहँ में डाली। बिछाने और ओढ़ने को वस्त्र दिये और सोने के लिए स्थान भी बता दिया। दूसरे दिन, एकनाथजीने हाकिमों को उसके जेल से भाग आने की खबर करदी और उनसे कहा कि दवा-दारू के लिए उसे अब मेरे ही यहां रहने दिया जाय। हाकिमोंने भी एकनाथजी का यह आग्रह मान लिया। तीन महीने वह नाथ महाराज के यहां रहा। उसकी वहां खूब सेवा-शुश्रूषा हुई, और तीन महीने मे वह पहले की ही तरह हट्टा-कट्टा हो गया। उसकी सारी मलिन वासनाएँ भी धुल गईं। चोरी की लत छूट गई, और विट्ठल भगवान् का उपासक हो गया।

× × × ×

संत एकनाथ की यह समदर्शिता महारो और मांगोतक ही सीमित नहीं थी, पशुपक्षियोंतक के लिए उनका दयार्द्र हृदय-द्वार खुला रहता था। गाय और गधा दोनों ही उनके एकसमान स्नेह-पात्र थे। नीचे का यह प्रसंग देखिए —

काशी की यात्रा करके एकनाथजी रामेश्वरधाम जा रहे थे। रामेश्वर के समीप पहुँचे तो पास के एक रेतीले मैदान में क्या देखते हैं कि एक गधा तप्त बालू में लोट रहा है। नाथ उसके पास गये। देखा, पानी के बिना उसके प्राण छटपटा रहे हैं। नाथने तुरत अपनी कावर से जल लेकर उसके मुंह में डाल दिया। कंठ में पानी पहुँचते ही वह गधा उठ बैठा। उद्धवादि भक्तोंने प्रयाग का जल गधे को पिलाते देखा तो कहने लगे कि प्रयाग का गंगा-जल व्यर्थ ही गया, यात्रा निष्फल ही गई।' तब एकनाथजीने हँसकर उनसे कहा, 'बार-बार सुनते हो कि भगवान् घट-घट में सब प्राणियों के अंदर रम रहे हैं, फिर भी ऐसे बावले बनते हो! समय पर याद न रहे तो यह ज्ञान किस काम का? यह मच्छर है और यह हाथी, यह चाण्डाल है और यह ब्राह्मण, यह गौ है और यह गधा इस तरह का भेद क्या आत्मा में है? मेरी पूजा तो यहीं से श्री रामेश्वर के चरणों में पहुँच गई। भगवान् सर्वगत और सद्रूप हैं। राजा की देह और गधे की देह समान ही तो हैं। इन्द्र और चींटी दोनो देह की दृष्टि से समान ही हैं। देहमात्र नश्वर है। और शरीर का पर्दा हटाकर देखो तो सर्वत्र भगवान्-ही-भगवान् हैं। सर्वत्र चैतन्य ही है।"

मयूर कविने ठीक ही कहा है कि श्री एकनाथने तृषाकुल गधे को जो दयार्द्र अंतःकरण से पानी पिलाया उनका वह धर्मकार्य 'लक्ष विप्र-भोजन' के समान हुआ।

वि० ह०

गांव की सरहद

उस दिन सबेरे मुझे बहुत लंबा चलना पड़ा, इसलिए जो गांव मैं ढूंढ रही थी वहां कब पहुँचूंगी इस बात की चिंता मुझे होने लगी। पर उसी वक्त एक लंबी पगडंडी तय करके मैं खुले खेतों में आ गई, और मेरी नजर सामने टेकरी पर बसे हुए गांव पर पड़ी। नीचे नदी बह रही थी। प्रभात के सूर्य के प्रकाश में यह दृश्य इतना मनोहर लग रहा था कि मेरे मुहँ से बरबस आनंद का उद्गार निकल पड़ा। मैं जल्दी-जल्दी डग बढ़ाने लगी। दो-तीन खेत और एक छोटा-सा नाला पार करते ही गांव की सरहद आ गई। वहां मैंने क्या देखा? गोबर के घूरे लगे हुए और आदमियों का मैला जगह-जगह पड़ा हुआ! सूअर और मुर्गे इधर-उधर गंदगी फैला रहे थे, और तीन स्त्रियां टट्टी फिर रही थीं। बदबू से तो नाक फटी जाती थी। साड़ी के छोर से नाक दाबी और झपटकर मैं गांव में घुस गई। टेकरी पर चढ़कर मैं पटेल के घर पहुंची। घर में सुंदर ओसारा था, उसपर से नीचे नदी और दूर क्षितिज के आगे नीली-नीली टेकरियों की पंक्ति दिख रही थी। नदी के किनारे अनेक स्त्रियां कपड़े धोती थीं, और कुछ मनुष्य अपने ढोरों को नहला रहे थे। मैंने पूछा कि, 'शौच भी लोग क्या नदी के किनारे पर ही जाते हैं?' 'हां', मुझे जवाब मिला। मैंने कहा, 'मगर मालूम होता है कि लोग पीने का पानी भी नदी से ही भर ले जाते हैं!' 'हां, तो फिर क्या करें? गांव में कुए ही नहीं। अपने सभी कामों के लिए हम लोग नदी से ही पानी भरते हैं।'

× × × ×

पौ फटती आ रही है। सूरज निकलने में अभी देर है। सर्दी खूब कड़ाके की है। इसलिए रास्ते के पहले एक-दो मील तो मैं खूब सपाटे से चलूंगी, ताकि बदन में कुछ गर्मी आ जाय। आज का रास्ता कुछ चढ़ाईदार खुले हुए प्रदेश में होकर जाता है। झाड़ियों में लोमड़ियां भों-भों कर रही हैं। मुझे जिस गांव में जाना है वह दूर से टेकरी की बाजू में बसा दिखाई दे रहा है। अभी हाल में ही यहां हैजा बुरी तरह फैला था, इसलिए मुझे यह देखना है कि हैजा यहां हुआ क्यों? गांव के गेंवड़े में आम तौर पर जैसी बदबू मारती है वैसी बदबू इस तरफ जरा भी नहीं, न लोग टट्टी फिरते ही दिखाई देते हैं। इससे मुझे आश्चर्य ही हुआ। गांव के भीतर भी और जगहों से सफाई ज्यादा ही है। मैंने एक आदमी से पूछा, 'तुम लोग पाखाना फिरने कहां जाते हो?' उसने गर्व से जवाब दिया, 'पीछे इसी टेकरी के ऊपर।' मैंने कहा, 'पर तुम्हारे कुओं में पानी तो इसी टेकरी की जमीन पर से आता है, इस टेकरी को रोज खराब करके तुम लोगोंने अपने गांव में तमाम कुए खराब कर डाले हैं। फिर हैजा फैले तो इसमें अचरज की बात ही क्या?'

× × × ×

धाम नदी के दक्षिण ओर यह आखिरी टिगरा है। टिगरे पर एक छोटा-सा सफेद मंदिर है, और गांव तलहटी में बसा हुआ है। सूर्योदय अभी-अभी हुआ है, और पृथ्वी स्वर्ण-किरणों में मानो नहा रही है। मुझे हुआ कि चलो, मंदिर के आगे चलूं, वहां से उत्तर के ओर की टेकरियों का दृश्य बहुत ही रमणीक दिखाई देता होगा। मैं ऊपर चढ़कर देखती हूं तो दृश्य तो सचमुच ही स्वर्गोपम है। किंतु नरक की जैसी दुर्गन्ध भी है, क्योंकि तमाम जगह लोग वहां टट्टी फिरने के लिए बैठे हुए हैं!

× × × ×

सेगांव में, जहां मैं आकर रहती हूँ, काम का श्रीगणेश मैंने सफाई से ही किया है, और भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि मुझे वह अंधेरे में रास्ता सुझावे!

'हरिजन' से] मीरा

हरिजन-सेवक

शनिवार, २८ दिसम्बर, १९३५

क्रान्ति तो हो चुकी है

भारत की राष्ट्रीय महासभा का स्वर्ण-जयन्ती-महोत्सव मनाया जा रहा है। शक्ति के विरुद्ध स्वत्व को कायम रखने के लिए एक शक्तिशाली और अदम्य शस्त्र का प्रयोग—उचित बात के लिए कष्ट-सहन को साहसपूर्ण कर्त्तव्य के रूप में लोकप्रिय बनाने का काम—कांग्रेस के उस युग की प्रमुख विशेषता है जो गांधी-युग के नाम से प्रख्यात है। यह जीवन-प्रद बात न केवल इस युग के राजनीतिक आन्दोलनों के ही लिए है, बल्कि इस युग में समाज-सुधार के लिए जो आन्दोलन हुए उनमें भी यह विशेषता पाई जाती है। इसमें शक नहीं कि कष्ट-सहन का साधन कोई नया साधन नहीं—स्वयं धर्म के जितना ही यह भी पुराना है, और सारी मानव-प्रगति इसी पर निर्भर है। लेकिन गांधीजी के नेतृत्व में साहस के साथ एकमात्र इसीपर जो जोर दिया गया है उसने इसे एक तरह से बिलकुल नया आविष्कार ही बना दिया है।

कुछ लोग पूछते है, "तुमने सफलता क्या हासिल की ?" हम कह सकते है कि, राष्ट्र में नव-जीवन का संचार हो गया है। इस नवजीवन के साथ, हम पूर्व के जीवन की बात बिलकुल भूल गये हैं। ज्यादातर लोगों का कुछ ऐसा ही हाल हुआ है कि भारत में पहले जो राजनीतिक या सामाजिक स्थिति थी उसका कोई खयाल नहीं रहा। गांधी-युग के महान् आन्दोलनों की शुरूआत से पहले जो स्थिति थी उसे लोग बिलकुल भूल गये हैं। अब तो सब स्टैण्डर्ड नये ही हो गये हैं। इन आन्दोलनों से पहले और अब की स्थिति में उतना ही अन्तर पड़ गया है जितना कि गाय और मनुष्य के बीच है। हमारे उद्देश, आदर्श, कार्य और स्वप्न पहले से बदल गये हैं। राष्ट्र का प्रत्येक दलित और असन्तुष्ट वर्ग अगर जरा भी अपनी स्मृति पर जोर डाले और पहले की स्थिति का स्मरण करके उसके साथ आज की स्थिति की तुलना करे, तो वह यह समझ सकेगा कि इन पिछले बीस वर्षों में हमने भारी सफलता प्राप्त की है।

यह ठीक है कि अस्पृश्यता अभी भी बिलकुल नष्ट नहीं हो गई है। लेकिन क्रान्ति तो सचमुच समाज में हो चुकी है, अब तो सिर्फ उसका मलबा हटाने का काम बाकी रह गया है। अस्पृश्यता रूपी दानवी का वध तो हो चुका है, लेकिन उसकी लाश बहुत बड़ी है और वह दुन्दुभि की तरह हमारे सामने पड़ी हुई है। हो सकता है कि इस कूड़े-कचरे को हटाने का श्रेय आगे की पीढ़ी और कांग्रेस के सिवा दूसरी अनेक संस्थाओं को, यहांतक कि सरकारी मिनिस्टरों को भी, प्राप्त हो, लेकिन फिर भी इतिहास तो इस महान् क्रान्ति को कांग्रेस के गांधी-युग में ही हुई बतलायगा। क्योंकि जब एक ऐसे जन-समाज के, जो कि सच्चे अर्थ में सभ्य और धर्म-भीरु है, तमाम विचारशील नर-नारी एक बात को गलत मान चुके हैं, तो मानना होगा कि वस्तुतः उसमें क्रान्ति हो चुकी है। हरिजन नेताओं और सवर्ण हिन्दू सुधारकों में जो अधीरता दिखाई देती है वह उसी का परिणाम है और यही साबित करती है कि स्थिति में कितना अधिक परिवर्तन हो गया है। हमें कहना चाहिए कि इस क्रान्ति-रामायण का सुन्दर-काण्ड समाप्त हो चुका है, अर्थात् हनुमानने सीता का पता लगा लिया है और जिन्होंने सीता को बन्दी बना रक्खा था उन्हें काफी भयभीत कर दिया है और समझदार लोग निश्चित रूप से इसके परिणाम को जान गये हैं—अर्थात्, रावण का पतन होकर ही रहेगा।

अस्पृश्यता-संबंधी जो क्रान्ति हमारे यहां हो रही है, उसके रक्त-पातहीन होने के कारण, यह हो सकता है कि इतिहास के नाम से पुकारी जानेवाली पुस्तकों के स्याही से रंगे पन्नों में उसका उल्लेख न मिले, लेकिन सच्चे इतिहास में वह उससे कम गौरवपूर्ण स्थान न पायगी जैसा कि अमेरिका में 'गुलामों की मुक्ति' को मिला है।

"ठीक है, लेकिन," हमारे टीकाकार लोग पूछेंगे, "स्वराज में हरिजनों पर जुल्म नहीं होगा ?"

इसके जवाब में १९३१ में लिखे हुए एक अंग्रेज के ये शब्द हम पेश करते है, "जो राष्ट्र गांधीजी का अनुसरण करेगा उसके द्वारा किसी पर जुल्म होने की कोई संभावना नहीं।" और, १९३१ के बाद, गांधीजी तथा कांग्रेस कुछ बदल नहीं गये हैं, बल्कि उन्होंने अपने इन गुणों के और भी अधिक प्रमाण सर्वसाधारण के सामने पेश किये है।

लेकिन हमेशा तो गांधीजी रहेंगे नहीं: उनके बाद जिनके हाथ में राष्ट्र की बागडोर होगी वे तो सन्त न होकर राजनीतिज्ञ ही होंगे न ? इसका भी जवाब, संभवतः, कर्नल वेजवुड के ही इन शब्दों में मिल जाता है—"चाहे गांधीजी का शासन न भी हो, तो भी जो राष्ट्र समाज-सेवा के लिए आजन्म आत्म-त्याग करनेवाले लोग पैदा कर सकता है, जिसका परिचय भारत-सेवक समिति से मिलता है, वह उन लोगों की देख-भाल के लिए, कि जो स्वयं अपनी देखभाल नहीं कर सकते, वैसा ही समर्थ है जैसा दुनिया का कोई भी दूसरा राष्ट्र हो सकता है।" और पन्द्रह वर्ष पहले जब ये शब्द लिखे गये थे तब से मानव-सेवा की भावना और भी गहरी तथा विस्तृत ही हुई है।

'हरिजन' से] च० राजगोपालाचार्य

साप्ताहिक पत्र

हमारी ग्रामसेवा

इधर कुछ दिनों से सिंदी गांव के सम्पर्क से मैं अलग-सा ही रहा। एक दिन बड़े तड़के मेरा मन हुआ कि गांव की सफाई करनेवाले अपने आदरणीय मित्रों के साथ आज सिंदी चलना चाहिए। ये लोग तो रोज ही वहां जाते है। खैर, जहांतक सफाई का सम्बन्ध है, मैंने कोई फर्क नहीं पाया। पहले से सफाई अच्छी नहीं तो बुरी भी नहीं थी। मगर एक बात अच्छी हुई, और वह यह कि दुराग्रह की मजबूत दीवार एक जगह से तो टूटी। एक किसानने यह देखकर कि मनुष्य के मैले का खाद कितना कीमती है अपने खेत में खाइयां खुदवा ली हैं, और वह खुद और उसके आदमी अब खाइयों में शौच जाते हैं। गांव में ये पहले ही व्यक्ति हैं जो मैले पर मिट्टी डालते हैं। वह हमसे हमारा खाद खरीदने को भी राजी हो गया है, बशर्ते कि हम सारा खाद उसके खेत में ढोकर डाल दें। चार आने गाड़ी के हिसाब से उसने दो गाड़ी खाद खरीदा भी, और अब अगर हम तमाम मैला उसके खेत में

डाल दिया करें तो वह उसका ५) माहवार हमें देने को तैयार है पर उसके लिए जहा यह एक बहुत बड़ी प्रगति की बात है, वहां हमारे लिए यह खासा कठिन प्रश्न है। गाव की उत्तरी सरहद से उसका खेत एक मील से ऊपर ही है, और हमें इतनी दूर यहा मे वहातक मैले की बालटियां ले जाने में बड़ी मुश्किल पड़ती है। लेकिन हमने फिलहाल एक बीच का रास्ता ढूढ निकाला है। गांव के उत्तर और दक्षिण में हम अपने ढोल दो बड़े-बड़े गड्ढों मे उँडेलते रहेंगे और इसके बाद गाडियो में भर-भरके हर महीने खाद बेचते जायँगे।

इस बीच मे एक और बात अच्छी हुई। जिन सज्जनने अपने पपवाले कुएँ से श्री गजानन नाइक को पानी लेने की इजाजत दे दी थी, वह कहते है कि मेरे भाईने मुझे डरा दिया है, इसलिए हमारे नाइकजी से उन्होंने कह दिया कि कृपाकर आप अब हमारे पप से पानी न भरा करे। पर एक ब्राह्मण सज्जनने हिम्मत की और अपना कुआ हमारे हरेक कार्यकर्त्ता के लिए खोल दिया है। यह हुआ यो कि हमारे ग्रामसेवकोंने उनकी थोडी-सी सेवा की थी और वह इस रूप मे कि उनके कुएँ के इर्दगिर्द उन्होंने सफाई करदी। यह तारीफ की बात है कि उन सज्जनने स्वय भी सफाई के काम में योग दिया। फिर उन्होने हम भगियों तक को अपने कुएँ से पानी भरने की इजाजत खुशी-खुशी देदी।

मीरा बहिन की नई झोंपड़ी

सिंदी का झगडा तो यह चल ही रहा है। अब मीरा बहिन की नई झोपड़ी के बारे में कुछ सुनिए। सेगाव की अपनी नई झोपडी मे मीरा बहिन अब मजे मे रहती है। यह गांव मगनवाडी से पांचेक मील दूर है। झोपडी सादी-से-सादी बनावट की है। टटियों की एक मामूली-सी मडैया है। दीवारो पर मीरा बहिनने अवकाश के समय कुछ सुन्दर चित्र खींचे है—एक तो मोर का चित्र है, दो बैलों के हैं, और छोटी-सी खिड़की को टेक दिये हुए दो चित्र ताडवृक्षों के है। दरवाजे भी टटियो के ही है। ये टटिया यहां आसानी से लग जानेवाली ताड़ की डालियो की बनाई जाती है। यह गांव जमनालालजी का है, इसलिए मीरा बहिन को जो कठिनाइया सिंदी में हुई थी, वैसी यहा नही होती। झोपड़ी जमनालालजीने खुद बनवा दी है, और इसपर करीब २५) खर्च पड़े है। उन्होने दो भगियों को रखने की भी स्वीकृति देदी है, जो मीरा बहिन की देखरेख में सफाई वगैरा का काम करेंगे। यहा काम करने की मीरा बहिन की कई योजनाएँ हैं, पर उनके विषय मे तो तभी लिखूगा, जब वे योजनाएँ कुछ प्रौढ रूप ग्रहण कर लेंगी। अभी तो इतना ही कहूँगा कि ग्राम-जीवनने मीरा बहिन के मन को मोह लिया है। वे लिखती है, "शहर मेरे लिए उस पानी के समान है, जो रुकावट के कारण उलटे रूख बहता है, और गांव मेरे लिए जीवन एवं सौन्दर्य का स्रोत है।" मीरा बहिनने एक काव्यात्मक वर्णन भेजा है, जिसमे जीवन का स्वाभाविक सौन्दर्य स्रोत दिखाई देता है।

ग्राम-बालकों की कविता

मीरा बहिन जिस प्रकार के जीवन-काव्य का आनन्द ले रही है, वैसे ही एक सरस प्रसंग की याद मिस मेरी बार दिलाती हैं। वे जिस गाव में सेवा-कार्य कर रही है, वहां के बालकों की एक कविता-जैसी बात का उन्होंने अपने पत्र में, बच्चों के ही शब्दों में, वर्णन लिखा है। बालकों की वह उपमा या रूपक उन्हे इतना प्यारा लगा कि उन्होंने मुझे उसका वर्णन लिख भेजा है। वह अंश यह है :—

"कुछ महीनों की अनुपस्थिति के बाद जब मै इस गांव में वापस आई, तब पांच या छः वर्ष की उम्र के दो बालकोंने मुझसे यह प्रश्न बार-बार पूछा कि, "हमे आप फिर से 'बादल बनाना' कब सिखायेंगी ?" दूसरे दिन भी उन्होंने वही बात दोहराई। दो-तीन दिन तो मै हैरान रही। मेरी समझ में ही नही आता कि इसमे इनका क्या मतलब है। तब उनमें से एकने और भी जरा पूरी तरह से समझाते हुए कहा, "आपको, देखो, यह मालूम ही है कि हम इस तरह रुई के बादल बनाया करते थे………" और उसने रुई खींचने का काम अपनी नन्ही-नन्ही उँगलियों से करके मुझे दिखाया। तब कहीं मुझे याद आया कि पार साल जब हमारे देवकपास के पेड़ फल रहे थे, तो मैंने कुछेक छोटे-छोटे बच्चों को बिनौलों से रुई निकालने का काम करने को कह दिया था,जबकि एक या दो नित्य नियमपूर्वक कातनेवाले उसकी पूनिया बना रहे थे। यह जाहिर ही है कि यह बडे गौरव का काम था, और जब राज इसके लिए उनका बाल-हठ बढता ही आता है तब मैंने भी इस काम के लिए एक दिन नियत कर दिया है, यद्यपि हमारी कपास की छोटी-सी फस्ल अभी बिल्कुल तैयार नहीं हुई। इस प्रकार का अनुभव खादी-कार्यविषयक विस्मय और आनन्द और विशेषाधिकार का एक अग है। बच्चो की 'बादल बनाने' की इस बात पर यहा हम लोग खूब हँसते है, और यह तो आप भी मानेंगे कि यह बड़ी सुन्दर उपमा है। सिवा एक नन्हे-से बच्चे के और दूसरा कौन ऐसे सुन्दर रूपक की कल्पना करता, और ऐसी गम्भीरता के साथ कौन उसके विषय में कहता ?

जीवन-गीत

मीराबहिन और मिस मेरी बारकी तरह एक और बहिन जीवन-गीत का मधुर रस पान कर रही है,जिनकी डायरी से एक-दो पन्ने मैं यहा उद्धृत करता हूँ। वे काव्यरस में कुछ कम आसक्त नही कही जा सकती,और सचमुच उन्होने अपनी झोपडी का वर्णन काव्यात्मक ही किया है। यह झोपड़ी उनके लिए एक किसानने बनवा दी है। चहुँ ओर की पहाड़ियो को तो उन्होंने कमल की पंखड़ियों की और शस्य-श्यामल खेतो को मरकत-मणियों की पटतर दी है। सुन्दर काव्यात्मक चित्रण किया है। यह बहिन काम तो करती है एक छोटे-से कस्बे में, किन्तु एक किसानने उनके लिए कुछेक मील दूर, जहा वे एक सप्ताह के लिए गई थी, एक छोटी-सी झोंपड़ी बना दी है। वे अपने दो साथियो के साथ गई थी और तीनोंने वहां एक छोटा-सा आश्रम बना लिया है। आश्रम में प्रातः और सायंकाल प्रार्थना होती है, चर्खे गूंजते है, चक्की चलती है और तीन पत्थरों के एक चूल्हे पर रसोई बनती है। गांव के रास्ते रोज साफ किये जाते हैं, और 'दासबोध' और 'गीताई' का पाठ तथा प्रवचन होता है। पास-पड़ोस के गांवों में ग्राम-सेवकों की ये तीनों झाड़ू और बालटिया लेकर सफाई करने गई थी। दो या तीन दिन में तमाम गलियों और ढोरवाड़ो का कचरा व कूड़ा साफ कर डाला। चौथे दिन देखा तो उनके लिए वहां कोई काम ही नहीं था। "यह क्यों ? अरे, आज किसने यह सारी सफाई कर डाली है ?" उन्होंने लोगों से पूछा। ग्रामवासियोंने कहा, "जरूर हमें इससे कुछ शर्म आती है। जब ब्राह्मणों की लड़कियां आकर हमारी सड़कों

पर झाड़ू देती हैं, तो क्या यह काम हम खुद नही कर सकते ?" और उस दिन से वे रोज यह सड़के झाड़ने-बुहारने का काम करने लगे। इसके बाद ये बहिनें, ब्राह्मणो की ये लड़किया उनके खेतों पर गईं और उनके साथ काम किया। उनके साथ घास काटा और सिर पर उसके गट्ठे रखकर घर लौटी। इससे वे सब किसान बरबस इन देवियो की ओर आकर्षित हो गये, और नित्य अपने खेतो पर उन्हें बुलाने लगे। उन्हे वे साग-तरकारी भेंट में देते, और जब वे उसका दाम देना चाहती तो वे लेने से साफ इन्कार कर देते। गांव की स्त्रियां आती और इन तीनो लडकियो का आटा पीसने और गिरस्ती के दूसरे काम-धन्धो मे हाथ बँटातीं। वे इसके बाद एक दूसरे गांव में गईं। वहा देखकर उन्हे हर्ष भी हुआ और आश्चर्य भी। गाव के मुखियाने उनसे कहा, "यह आशा न करना कि हमारी गलिया झाड़-बुहारकर तुम हमें शर्मिन्दा कर दोगी। तुम देख सकती हो कि हमारा गाव काफी सजग है। एक साल से ऊपर ही हो गया होगा कि हम अपने गाव पर पूरा ध्यान रखते हे।" और सचमुच वह गांव बिल्कुल साफ-सुथरा और सुघरा हुआ दिखाई दिया। ग्राम-पचायत भी वहां थी। हरेक व्यक्ति अपने काम में लगा हुआ दिखाई दिया। उन्होंने खुद अपनी सड़के बना ली थी. और गोबर और कचरे के घूरे गाव से काफी दूर थे। खाद के लिए वे खासकर इतनी दूर रखे गये थे। गलियो और सड़को पर गन्दगी का कहीं नाम भी नही था। शौच के लिए लोग खेतो मे काफी दूर जाते थे। इस गाव का एक आदमी बम्बई चला गया था और वहा उसने थोडा रुपया कमा लिया था। उसने अब एक पाठशाला बनवा दी है, और उसे लोकल बोर्ड के हवाले कर दिया है। हरिजनो के घर इस गांव मे काफी हे, पर अस्पृश्यता नही है। हां, एक चीज की कमी खटकी। और वह यह कि चर्खे यहां देखने मे नही आये। एक बहिनने उन लोगो को चर्खे की महिमा सुनाई, और उन्होने यह बात मान ली कि वे विद्यार्थियो को इन बहिनो के आश्रम में पीजना व कातना सीखने के लिए जरूर भेजेगे।

"मगर", वह बहिन कहती है, "जब हम घर लौटी तब तो एक दूसरा ही दृश्य देखने में आया। ग्रामवासियोंने उस कस्बे के लोगो से जाकर कह दिया था कि तीन ब्राह्मण लडकिया उनके यहां गई थीं और हरिजनो से वे हर जगह खूब प्रेम से मिलीं, उनकी उन्होंने गलियां साफ की और सब तरह का गलीज काम किया। यह सुनकर तो वे अचरज में पड़ गये। भारी हल्ला मचा हुआ था। हमारा सेवा-कार्य जहांतक कस्बे का सबध है वहातक तो उन्हें ठीक मालूम होता था, पर हमारे गावो के अंदर जाने से तो वे सब भयभीत हो गये।"

अनकुटे चावल का चमत्कार

जहां चावल ही आहार की मुख्य वस्तु है, और गेहू-जैसी दूसरी चीजे उसकी पूर्ति करने के लिए जहा मुश्किल से ही होती हैं, वहां चद हफ्तों में ही अनकुटा चावल कुटे चावल की जगह लेकर कैसा चामत्कारिक परिणाम ला सकता है, यह मदनपल्ली के थियोसोफिकल स्कूल की मासिक पत्रिका "मदनपाल" में के उद्धृत कटिंग से स्पष्ट हो जाता है :—

"होस्टल में अनकुटा भूरा चावल दाखिल करने से लड़कों के वजन में भारी अतर हो गया है। पहले दो मास, जुलाई और अगस्त में, एक लड़के का वजन नौ पाउण्ड बढ़ा, एक का आठ पाउण्ड, एक का सात पाउण्ड, चार का छै-छै पाउण्ड, तीन का पांच-पांच पाउण्ड, चार का चार-चार पाउण्ड, और चार का तीन-तीन पाउण्ड, छै का दो-दो पाउण्ड, और छै का एक-एक पाउण्ड। चार लड़कों का वजन न घटा न बढ़ा। दो का एक-एक पाउण्ड कम हो गया, एक का तीन पाउण्ड, और एक मोटेराम का तो पांच पाउण्ड वजन कम हो गया।

लगभग ये सारी वजन-वृद्धियां अगस्त में हुई, जबकि केवल भूरा चावल ही दिया जाता था। पहले महीने में जिन अनेक लड़को का वजन गिर गया था, जब उन्हे बारी-बारी से भूरा और सफेद चावल दिया गया, तो जितना घटा था उससे अधिक ही दूसरे महीने मे उनका वजन बढ़ गया। कुछ लड़को का वजन छुट्टियों मे घर चले जाने से फिर घट गया, मगर जो लड़के छुट्टियो में यहीं बने रहे, उनमें से अधिकाश का वजन बराबर बढ़ता रहा।

१—पहले महीने में, जब **दोनों प्रकार** के चावल मिलाकर दिये गये, तब सारे होस्टल में १७ पाउण्ड वजन कम हुआ, और ५५ पाउण्ड वजन बढ़ा (यह स्कूल सेक्सन की बात है।)

२—दूसरे महीने में, जब अनकुटा भूरा चावल दिया गया, तब सिर्फ ५ पाउण्ड ही वजन घटा, और १०० पाउण्ड बढ़ा।

सिर्फ मूढ़ विश्वासियो को छोड़कर और सभी को इन आकड़ो से पोषणहीन तथा क्षारहीन कुटे हुए चावल के बारे मे कायल हो जाना चाहिए। यह भी उल्लेखनीय बात है कि **जो लड़के यह नीरस सत्वहीन "नेल्लोर" चावल खाने के लिए अपनी इच्छा पर छोड़ दिये जाते हैं वे खुद ही कुछ दिनों के बाद पुनः स्वास्थ्यकर और भूख बढ़ानेवाला अनकुटा चावल खाने लगते हैं।** इसकी लोकप्रियता कॉलेज के विद्यार्थियो मे भी नित्य बढ़ती जा रही है। एक दिन अक्टूबर में जब यह चावल कुछ कम पड़ गया, तब इसकी जगह सफेद चावल देने के विरोध में इन विद्यार्थियों में **भूख-हड़ताल** तक कर देने की बात चल रही थी।"

इन प्रयोगो को श्री डंकन ग्रीनलेस नामक एक अध्यापक करा रहे हे। आहार-सुधार में यह खूब रस लेते है। ये प्रयोग जिस सावधानी के साथ किये गये हैं, और उससे जो परिणाम आये हैं, वह प्रशंसनीय है। मुझे आशा है कि दूसरे होस्टल और बोर्डिंग मदनपल्ली के थियोसोफिकल स्कूल के इस सुदर उदाहरण का अनुकरण करेंगे।

'हरिजन' से] महादेव ह० देशाई

गुजरात में भी प्रगति

गुजरात प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ की नवंबर की रिपोर्ट देखने से ऐसा मालूम होता है कि गुजरातने भी, जो अस्पृश्यता का कलंक धोने में बहुत ढिलाई दिखा रहा है, कुछ प्रगति तो की है। एक खबर तो खासे महत्व की है। वह यह कि नवंबर में भलाड़ा (खेड़ा जिला) गांव के लोकल बोर्ड-स्कूल में ७ हरिजन बालक दाखिल कर लिये गये। और अहमदाबाद जिले के रामपुरा गांव की पृथक् पाठशाला में पढ़नेवाले सभी हरिजन बालक आम स्कूल में दाखिल कर लिये गये, और इससे वह पाठशाला तोड़ दी गई। कावीठा की दुःखद घटना घटे अभी बहुत दिन नहीं हुए। घाव अभी हरा ही है। ऐसे ही आशा-संचारक समाचारों से वह घाव भरा जा सकता है। इन संतोषप्रद उदाहरणो का गुजरात की ग्राम-पाठशालाएं कहांतक अनुकरण करती हैं यह देखना है।

भंगियों की तरफ भी इधर ध्यान गया है, जो सचमुच एक शुभ सूचना है। यह कौन नहीं जानता कि भंगी ही सबसे अधिक उपेक्षित और दलित हैं। नडियाद में सहकारी समिति के वयस्क हरिजन सदस्यों के लिए एक वर्ग आरंभ किया गया, जिसका खर्चा समितिने अपने कोष से देना स्वीकार किया है। नवसारी में भंगियों की एक छोटी-सी बस्ती के लिए एक वर्ग आरंभ किया गया। यह वचन मिलने पर कि एक हरिजन-हितैषी सज्जन आर्थिक सहायता देंगे, खेडा जिले के धीरोल गाव में हरिजन बच्चों के लिए एक पाठशाला खोली गई।

गुजराती टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, अहमदाबाद में पढनेवाली एक लड़की को १०) मासिक छात्रवृत्ति दी गई।

यह तो हुई हरिजनों की शिक्षा-सबधी बात। उनके आर्थिक उद्धार के विषय में भी दो-तीन जगह काम हुआ है। डाकोर और उमरेठ की म्युनिसिपैलिटियों के हरिजन मुलाजिमों के लिए सहकारी ऋणदात्री समितिया संगठित करने का प्रारंभिक काम किया गया। और इसी तरह बड़ोदा की समिति में सुधार हो रहा है। खेडा-हरिजन-सेवक-संघ के मशीन जिनिंग फैक्टरियों में काम आनेवाले चमडे के वाशर तैयार करने के चमारों के व्यापार और उसकी अवनति के कारणों की जाच की।

अहमदाबाद जिले में पाच कुएँ बनाने की मंजूरी हो चुकी है, जिनपर १२५०) खर्च होंगे। काम शीघ्र आरंभ कर दिया जायगा।

रिपोर्ट में कुछ फुटकर कामों का भी उल्लेख है —

नडियाद की म्यूनिसिपैलिटी के मेहतरों का संघ अपने प्रयत्न से यह एक अच्छा काम करा सका कि १ एप्रिल, १९३६ से मेहतरानियों के मासिक वेतन में ॥) की वृद्धि करने और ३ हफ्ते की सवेतन छुट्टी देने का वचन म्यूनिसिपैलिटीने दे दिया है।

धोलका की म्यूनिसिपैलिटीने हरिजन-रात्रि-पाठशाला के उपयोग के लिए अपने पुस्तकालय का कमरा मुफ्त दे दिया है।

सूरत के पास गणदेवी की म्यूनिसिपैलिटीने श्रीमान् गायकवाड़ की 'हीरक जयंती' के स्मृतिस्वरूप अपने मेहतरों के लिए मकान बनवाने के अर्थ ४०००) मंजूर किये हैं।

उपर्युक्त म्युनिसिपैलिटियों की ओर से हरिजनों के हितार्थ जो काम हुआ है वह अवश्य ही गुजरात की अन्य म्यूनिसिपैलिटियों के लिए अनुकरणीय है।

नवबर मास में गुजरात के संघने २११८) खर्च किये— इसमें १६६८) हरिजनों के कल्याण-कार्य पर खर्च हुए।

अमृतलाल वि० ठक्कर

दक्षिण भारत में हरिजन-कार्य

दक्षिण भारत के हरिजन-कार्य के निरीक्षक की जो रिपोर्ट श्री ठक्कर बापा के पास आई है, उसमें से कुछ महत्वपूर्ण अंश मैं नीचे देता हूँ —

टिन्नेवली—की म्यूनिसिपैलिटी के भंगियों की बस्ती बड़ी ही गन्दी है। वे लोग ऐसे नरक में रहते हैं, यही आश्चर्य है। वहां तो खड़ा होना भी मुश्किल है। बड़ी ही सड़ी बदबू आती है। हरेक घर के आगे आपको चमड़ा, हड्डियां और मांस के लोथरे पड़े दिखाई देंगे। मैला ढोनेवाली गाड़ियां उसी हाते में रखी रहती हैं, जहां १२० घरों की बस्ती है। जगह थोड़ी, मकान ज्यादा। इतनी बड़ी आबादी के लिए काफी जगह चाहिए। ऐसी गन्दी जगह में भी हरिजन-सेवक-संघ की एक पाठशाला दो वर्ष से चल रही है, जिसमें ३८ हरिजन-बालक पढ़ते हैं। शहर के एक दूसरे भाग में, ब्राह्मणों के मुहल्ले के पास, इन भंगियों के मकानों के लिए जगह देने की एक तजवीज म्यूनिसिपल काउन्सिल के आगे रखी गई है। देखें, उसपर क्या होता है।

तूतीकोरिन—में बाउल्टनपुर नाम की हरिजन-बस्ती में करीब ४०० घर नमक बनानेवाले मजदूरों के हैं। पानी का यहां बड़ा ही कसाला था। अब एक कुआं यहां बन गया है। पाठशाला के मकान के लिए यहां जो जमीन खरीदी गई थी, उसपर एक अधबना छप्पर खड़ा है। जब और पैसा मिले तब काम पूरा हो।

एक छोटा-सा हरिजन-छात्रालय भी यहां देखा, जिसमें छः लड़के रहते हैं। प्रति छात्र के खाने का ५) मासिक खर्च पड़ता है, जो संघ की ओर से दिया जाता है। विद्यार्थी बड़ी सन्तोष-जनक रीति से उन्नति कर रहे है। कान्ति स्वामी नाम के एक उत्साही कार्यकर्ता यहां ७ वर्ष से प्रचार-कार्य कर रहे हैं। केवल उनका मार्ग-व्यय संघ की ओर से दिया जाता है। वह गांव-गाव में जाकर हरिजन-बालकों को आम पाठशालाओं में दाखिल कराने और "अदर्शनीय" कहे जानेवाले हरिजनों के कपड़े अपने हाथ से साफ करते हैं। सवर्ण हिन्दुओं-द्वारा किये गये पाप का यह अच्छा प्रायश्चित्त है। ये "अदर्शनीय" हरिजन इस टिन्नेवली जिले में ही पाये जाते हैं।

विरुदनगर—में १४० घरों की एक हरिजन-बस्ती में बालिकाओं की रात्रि-पाठशाला देखी। १९३४ के जून में यह खुली थी। १५ लड़कियां इसमें पढ़ती हैं। विरुदनगर में हरिजनों की कई पाठशालाएँ हैं, और उनकी अच्छी व्यवस्था है। संघ के मंत्री इन पाठशालाओं का नियमित रीति से निरीक्षण करते हैं, और अध्यापकों से पूरा काम लेते हैं।

वेल्लोर—में करीब २०० घरों की एक बस्ती में स्थानीय हरिजनोंने खुद ही एक पाठशाला खोली थी और उसे वे ही चला रहे थे। अब गत मई में उसे स्थानीय संघने ले लिया है। यह अच्छी लोकप्रिय पाठशाला है। मकान भी पाठशाला का अपना ही है, और सबसे अच्छी बात तो यह है कि इसमें सवर्ण बालक भी पढ़ते हैं।

मदुरा की हरिजन-बस्तियां गंदी भी हैं और पानी और रोशनी वगैरा की भी तकलीफ है। बस्तियां नीचान में हैं, और सदा ही सील रहती है। एक बस्ती में, जहां १०० घर से ऊपर ही हैं, सिर्फ एक नल लगा हुआ है।

यह उल्लेखनीय बात है कि एक हरिजन-बस्ती में एक तालाब है, जिसमें से सवर्ण हिंदू और हरिजन हिंदू दोनों ही बिना किसी हिचकिचाहट के पानी भर ले जाते हैं।

गत नवबर मास में यहां एक बस्ती में एक रात्रि-पाठशाला खोली गई, जिसमें ४५ विद्यार्थी पढ़ते हैं, और अधिक संख्या लड़कियों की है। गरीब सीधे-सादे हरिजनोंने पाठशाला के लिए हमारा बड़ा आभार माना, और हमारी बातें सुनने के लिए तमाम स्त्रियां, पुरुष और बच्चे हमारे पास जमा हो गये।

वि० ह०

गुजरात-हरिजन-सेवक-संघ

१९३४-३५ का वार्षिक विवरण

[४३ वे अंक से आगे]

आर्थिक स्थिति—हरिजनों की सहयोग समिति के अलावा गांवों में यत्र-तत्र कुछ भंगी भाइयों को ऋण-मुक्त करने की

योजना खेड़ा जिले में संघ के अध्यक्ष श्री भाईलाल भाई के प्रयत्न से व्यवहार मे आई है। बोरीआवी, कंजरी, सामरखा आदि गांवो के भगी भाइयो के कर्ज की छोटी-छोटी रकमें अदा करके उन्हे सूद के बोझ से मुक्त किया गया, और इस प्रकार उन्हे जो रकम बिना ब्याज के उधार दी गई है, उसकी वसूली के लिए जहा-जहा हो सका है वहा-वहा उन्हें काम मे लगाया गया है। यदि अपनी किस्ते अदा करने में भंगी भाइयोने जरा ज्यादा मुस्तैदी से काम लिया होता तो सम्भव था कि इस प्रवृत्ति को बहुत अधिक वेग मिलता।

पानी—संघने हरिजनो के लिए पीने के पानी का प्रबन्ध करने का काम उठाया है। गुजरात के बाढ़-सकट के बाद सन् १९२९ में श्री ठक्कर बापाने अपने दाहोद-कार्यालय से हरिजनो के लिए ऐसे कुएँ बनवाने का काम शुरू किया था, कि जिनमे वे पानी खींच सके। उन्होंने गिरे हुए कुओ की मरम्मत भी करवाई थी। सन् १९३२ तक उन्होने सार्वजनिक कोष मे ८९,२०२॥=)९ के खर्च से १०९ नये कुएँ बनवाये थे और इतने ही कुओं की मरम्मत भी करवाई थी। इसी मुताबिक छोटे पैमाने पर कुओ का काम इस संघने भी चालू रक्खा है और पिछले दो वर्षो मे कुल १४,६५३)९ के खर्च से २९ नये कुँए बनवाये और १६ कुओं की मरम्मत करवाई है। अबतक की जाच के फलस्वरूप कुल १८८ कुँओं की और आवश्यकता है, जिनमे मरम्मततलब कुएँ भी आ जाते हैं। इसके खर्च का अदाज लगभग २६,६९०) होता है।

हरिजनो के कुओ के लिए सीमेण्ट कंकरीट के कुओ की योजना पर अमल किया जा रहा है। लगभग २००) से २५०) की लागत में २० फीट गहरे और ३॥ से ४ फीट चौड़ाईवाले ऐसे कुएँ बन सकते है। साबरमती-आश्रम के श्री जुठाभाई शाहने सीमेण्ट कंकरीट के ऐसे कुएँ अहमदाबाद जिले में बनवाने का विचार किया है और इस योजना के सिलसिले में अहमदाबाद जिले के उन गावों की सूची भी बनाई जा चुकी है, जिनमें पीने के पानी के प्रबन्ध की आवश्यकता है। अबतक कुल ८५८ कुओ की गिनती हो चुकी है।

विशेष प्रवृत्तियाँ—सूरत जिला हरिजन-सघने सूरत शहर में हरिजनो के लिए एक मुफ्त दवाखाना खोलकर अपनी प्रवृत्ति में एक उल्लेखनीय वृद्धि की है। सघ के सौभाग्य से उसके अध्यक्ष और मत्री दोनो डॉक्टर है, और उन्हे दूसरे डॉक्टर मित्रो का बहुत-कुछ सहयोग प्राप्त है। इस कारण इस दवाखाने से लाभ उठानेवालो की सख्या दिन-दिन बढती ही जारही है। जहां पहले महीने में ५० रोगी आये थे, वही अब प्रति मास ७०० रोगी इलाज के लिए आने लगे है। संघ के अध्यक्ष डॉ० धीया अपने अस्पताल में आख के आपरेशन बिना कुछ लिये ही करते हैं। सघने दिसबर, सन् १९३५ के लिए नेत्र-सेवा का एक विशेष कार्यक्रम बनाया है। जिले के सघ की ओर से बोदाल, नड़ियाद, और महुधा मे हरिजनो के लिए दवा-दारू की सुविधा का प्रबंध है। बोदाल में हरिजनों का एक दवाखाना है, जिसमें उन्हे मुफ्त दवा दीजाती है।

साहूकारो के त्रास से नड़ियाद के कुछ भगी भाइयों को अपने घर छोड़ने पड़े थे, और कुछ के घर आदमियों के रहनेयोग्य ही नहीं थे, अतएव हरिजन-संघ के प्रयत्न से उनकी एक नई बस्ती बसाने का उपक्रम हुआ है।

सघने ८००) के खर्च से एक ब्लॉक बनवाना तय किया है। और इसी प्रकार की कोई प्रवृत्ति आरम्भ करने का निर्णय स्थानीय म्यूनिसिपैलिटी भी कर चुकी है।

बोदाल-आश्रम में एक हरिजन कारीगर रहते है, जो बांस की टोकनियां आदि बनाकर आश्रम को देते हैं। इसी प्रकार खेड़ा के निकट विट्ठलपुर के हरिजन भाइयों को भी ऐसी ही कुछ सहूलियते देने का प्रबन्ध हुआ है।

बड़ोदा के हरिजन-संघने भगी भाइयो के मंडल का काम अपने हाथ मे ले लिया है। इसके अतिरिक्त बड़ोदा के खादी-प्रचारक-मडल की सहायता से हरिजनो मे कताई की कक्षाए भी चलाई जा रही है।

दाहोद के हरिजन-सघने अपनी दूकान पर एक हरिजन-युवक को नौकर रखकर अस्पृश्यता-निवारण की पहल की है। दूसरे चार विद्यार्थियों को उन्होंने सरकारी दफ्तरों मे नौकरी दिलवाई है, जिनमें से एक को तो तलाटी या पटवारी की जगह भी मिली है। यहा के कुछ हरिजन फेरी लगाकर साग-सब्जी बेचने का काम भी करते हैं।

विवरण के वर्ष मे जिन स्थानों से हरिजनों के घरो मे आग लगने से हानि होने की खबरें मिली थी उनके लिए बम्बई के श्री एन० एम० वाडिया चैरीटीज के ट्रस्टियो से सहायता की प्रार्थना की गई थी। उन्होने तत्काल ही सहायता भेजकर इन भाइयो को आराम पहुँचाने मे मदद की थी। इस सहायता के लिए सघ उनका आभारी है।

म्यूनिसिपैलिटीवाले शहरों मे सफाई खाते का काम करने-वाले हरिजनो की उपयोगिता से इनकार नही किया जा सकता। आज वर्षों से थोडा वेतन लेकर वे यह नौकरी कर रहे है, और तिसपर भी नौकर के नाते उनके कोई अधिकार नही है। उन्हे न हक की छुट्टियां मिलती है, न आकस्मिक छुट्टिया दी जाती है। उनकी स्त्रियो को प्रसूति के समय भी सवेतन छुट्टी नहीं मिलती। उनके लिए पेंशन, प्रॉवीडेण्ट फण्ड या ग्रेच्युटी के भी नियम नहीं होते, और रविवार के दिन उन्हे आधे दिन की भी छुट्टी नहीं मिलती। इसके लिए गुजरात की प्रत्येक म्यूनिसिपैलिटी से पत्र-व्यवहार द्वारा और वहां संभव हुआ, वहा प्रत्यक्ष मिलकर भी प्रार्थना की गई है, कि जिससे इस स्थिति मे सतोषजनक सुधार हो। नवसारी, गोधरा, वसो और दाहोद-जैसी कुछ इनीगिनी म्यूनिसिपैलिटियोंने अबतक केवल प्रसूति के समय में स्त्रियों के साथ कुछ रियायत करने के निश्चय किये है। मालूम हुआ है कि कुछ दूसरी म्यूनिसि-पैलिटियां भी इस प्रकार का विचार कर रही हैं। फिर भी यहां हमे खेद के साथ इस बात का उल्लेख तो करना ही पड़ता है कि म्यूनिसिपल नौकरो के लिए जो सुधार अत्यन्त आवश्यक हैं, उनकी ओर भी म्यूनिसिपैलिटी के लोकप्रतिनिधियों का जितना ध्यान जाना चाहिए था, उतना नही गया है।

परीक्षितलाल मजमुदार,
चुनीलाल भगत,
मंत्री—गु० ह० से० संघ

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi, by R. S. Gupte.

क्रियात्मक रूप में पारस्परिक सन्मान "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक' किंग्सवे, दिल्ली.
संपादक — वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]
वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शनिवार, ४ जनवरी, १९३६. [[illegible]

विषय-सूची

गरीबों का अंतिम सहारा

अभी हालतक कताई गरीबों का अंतिम सहारा रही है। द्वार पर खड़े भेड़िये के सामने हमेशा से यही उनकी रक्षक रही है और जब उनके और सब साधन बेकार हो गये, तब इसीने उन्हे रोटी दी है। और यह बात सिर्फ हिन्दुस्तान पर ही लागू नही होती, बल्कि पश्चिमी एशिया के अरब तथा अन्य देशों का भी यही हाल रहा है। 'आरब्योपन्यास' में इसराइल के एक ईमानदार भक्त का जो किस्सा दिया हुआ है, उसे हम यहां उद्धृत करते हैं; उससे यह अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगा। किस्सा, कुछ हेर-फेर के साथ, इस प्रकार है.—

प्राचीन काल में इसराइल के पुत्रो (यहूदियों) में एक ईमानदार आदमी ऐसा था, जिसका परिवार रुई कातता था और वह हर रोज उस सूत को बेचकर नई रुई खरीद लाता और इससे जो पैसे बचते उनसे घर का खर्च चलाता। एक दिन सबेरे वह गया और उस दिन का सूत बेच दिया, लेकिन इतने ही में उसे रिश्ते का अपना एक भाई मिला, जिसने उसके सामने अपनी जरूरत बयान की। इसपर सूत बेचकर मिले हुए दाम उसने उसे देदिये और आप खाली हाथ घर लौटा। घरवालोंने कहा, "रुई और खाने का सामान कहां है?" तब उसने बताया, कि "एक जरूरतमन्द आदमी मिला और उसने मुझे अपनी जरूरत बताई; इसपर, सूत बेचकर जो दाम मुझे मिले थे वे मैंने उसे दे दिये।" घरवालोंने कहा, "तो अब हम क्या करेंगे? हमारे पास तो अब बेचने को कुछ भी नही है।" उनके पास बस, एक टूटी-फूटी कठौती और एक बरतन था; उन्हींको लेकर वह बाजार चल दिया, लेकिन कोई खरीदने को तैयार न हुआ। उन्हे लिये हुए वह बाजार में खड़ा था, कि इतने में अकस्मात् एक आदमी उसके पास से गुजरा, जो एक ऐसी बदबूदार और सूजकर फूली हुई मछली लिये आरहा था कि जिसे कोई न खरीदता। उसने इससे कहा, "क्या तू मेरी इस मछली के बदले में अपने ये टूटे-फूटे बरतन देगा?" यहूदीने कहा 'हां' और अपनी टूटी-फूटी कठौती व बरतन देकर उससे मछली लेली। जब उसे वह अपने घर लेगया, तो घरवालोंने कहा, "इस सड़ी मछली का हम क्या करेंगे?" उसने कहा, "जबतक अल्लाह महरबानी करके और कुछ खाने को न दे तबतक हम इसीको पकाकर खायेंगे।" घरवालोंने मछली लेली और पकाने के लिए उसे वे काटने लगे। जैसे ही उन्होने उसका पेट चीरा, उसके अन्दर से एक बड़ा मोती निकला। उन्होंने घर के मुखिया को बताया, तो उसने कहा, "इसे अच्छी तरह देखो। अगर यह बेधा हुआ हो, तब तो समझो कि यह किसी दूसरे का है, और अगर अनबेधा हो, तो समझो कि अल्लाहने हमारे लिए ही इसे भेजा है।" घरवालोंने उसे देखा तो वह अनबेधा ही था। तब, दूसरे दिन, यहूदी उसे अपने एक ऐसे भाई के पास ले गया जो जवाहरात का माहिर था। उसने कहा, "अरे भले आदमी, तुझे यह कहां से मिल गया?" यहूदीने जवाब दिया, "इसे सर्वशक्तिमान अल्लाहने हमे बख्शीश में दिया है।" माहिरने कहा, "यह एक हजार दिरहम (अरबी सिक्का) की कीमत का है, जो मै तुझे दे सकता हूँ, लेकिन तू इसे फलां आदमी के पास ले जा, क्योकि वह इस बारे मे मुझ से ज्यादा समझता है और उसके पास रुपया भी ज्यादा है।" तब यहूदी उसे जौहरी के पास ले गया। उसने कहा, "यह सत्तर हजार दिरहम से ज्यादा का नही है।" और यह रकम उसे देदी। यहूदी दो मजदूर करके उसे अपने घर लेगया। ज्यों ही वह अपने दरवाजे पर पहुँचा, उसे यह कहता हुआ एक भिखारी मिला, "अल्लाहने जो कुछ तुझे दिया है उसमें से कुछ मुझे भी दे।" इसपर यहूदीने उससे कहा, "कल हमारी हालत भी तेरी ही जैसी थी; इसलिए, ले तूभी इसमें से आधी रकम लेले।" यह कहकर उसने कुल रकम के दो हिस्से किये और आधी-आधी बाट ली। तब भिखारी बोला, "अपनी रकम वापस लेले, अल्लाह तुझे खुश रक्खे, मैं तो रसूल हू, मुझे अल्लाहने तेरी परीक्षा लेने के लिए भेजा है।" इसके बाद वह चला गया और यहूदी व उसके घरवाले उस वक्ततक जीवन का सारा आनन्द लेते रहे, जबतक कि समस्त आनन्द के नाशक, समाज को छिन्न-भिन्न करनेवाले, राजमहलों को भग्नावशेष करनेवाले और स्मशान के अधिपति क्रूर कालने उनको समाप्त नही कर दिया।

'अंग्रेजी' से] **वालजी गोविन्दजी देसाई**

संयुक्त प्रान्त के गृह-उद्योग

१९२३–२४ में संयुक्तप्रान्त की औद्योगिक जांच की जो रिपोर्टें प्रकाशित हुई थीं उन्हें देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि

इस प्रान्त के कितने ही बड़े-बड़े गृह-उद्योग देखते-देखते मर गये और मरने चले जा रहे है। इसके और भी कारण हो सकते है और है, पर इसपर तो दो रायें हो ही नहीं सकती कि सदियों से फूलते-फलते गृह-उद्योगो का गला घोंटने में मुख्य हाथ तो 'यन्त्रासुर' का ही रहा है। अन्य कारणो को मशीन के नादिरशाही आक्रमण का परिणाम कहा जाय तो असंगत न होगा। सयुक्तप्रान्त के सेसस सुपरिटेण्डेण्ट श्री ए० सी० टर्नरने अपनी १९३१ की रिपोर्ट (१ भाग) मे मृत तथा मृतप्राय उद्योगो के विषय में लिखते हुए इसका सबसे जबर्दस्त कारण मशीनो के बने हुए माल की प्रतिस्पर्धा को ही माना है। फिर यह दिन-दिन बढती हुई फेशन-प्रियता, कारीगरो मे पारस्परिक सहयोग का अभाव और औद्योगिक कला तथा ज्ञान का ह्रास— ये भी गृह-उद्योगो के नाश के कारण है। ग्राम्य मनोवृत्ति का दिन-दिन अभाव होता जा रहा है, और कृत्रिम सभ्यता के माया-जाल में हम खुशी-खुशी फँसते चले जा रहे है। देशी कारीगरी की तरफ लोक-रुचि न रहने के कारण कारीगरो में न उत्साह ही रहा,न पारस्परिक सहयोग ही। कारीगर या तो किसानी करने लगे या कल-कारखानो मे मजदूरी। नतीजा यह हुआ कि चालीस-पचास साल के भीतर-भीतर हमारे कितने ही गृह-उद्योग नष्ट या नष्टप्राय हो गये है। नीचे मै श्री ए० सी० टर्नर की उक्त रिपोर्ट के आधार पर सयुक्तप्रान्त के कुछ ऐसे मृत अथवा मृतप्राय गृह-उद्योगो के सम्बन्ध मे लिखता हूं कि जिनसे इस प्रान्त का जीवन ४०–५० वर्ष पहले स्वाश्रयी और समृद्ध था, और अब भी अगर ग्रामउद्योग-सघ की नीति के अनुसार व्यवस्थित रीति से इन उद्योगो पर समुचित ध्यान दिया जाय तो ग्रामो की आर्थिक स्थिति काफी उन्नत हो सकती है।

मुरादाबाद जिले के कितने ही छोटे-छोटे उद्योग देखते-देखते नष्ट हो गये। अमरोहे की दरिया और सूती गलीचे दूर-दूरतक मशहूर थे। ये गलीचे मुगलो के जमाने मे दिल्ली और आगरे के शाही महलो में बिछते थे। पर यह हुनर गिरा-सो-गिरा। अभी २० साल पहले की बात है कि आगरे के बाजार मे अमरोहे की जहा१००० दरिया बिकती थी वहा अब१० से ज्यादा दरिया नही खपती। माल नही खपा तो कारीगर बुरी तरह से मकरूज हो गये और यह प्राचीन प्रसिद्ध उद्योग मिट्टी में मिल गया। यही हाल टोपियो के उद्योग का हुआ। अमरोहे की चांदी-सोने के सिलमे-सितारे की टोपिया लाहौर और अमृतसर मे खूब खपती थी। पर विलायती फेज टोपी के आगे अमरोहे की टोपी को आज कौन पूछता है? टोपी काढनेवाले कारीगरो का भी बुरा हाल हुआ। इस उद्योग को मटियामेट करने मे सूदखोर साहूकारो का भी कम हाथ नहीं रहा। बहलो व पालकियो में जड़ने का पीतल का सामान भी अमरोहे मे बड़ा सुन्दर बनता था। १५ बरस पहले इस सामान की वहां३० दूकानें थीं,जिनमे१५० कारीगर काम करते थे। पर आज केवल ३० आदमी रह गये हैं। रेलगाडियो और मोटरो की सवारी छोड़कर रथों, बहलों और पालकियों पर सवार होना आज कौन पसन्द करता है? रथो और पालकियों की थोड़ी-बहुत शोभा तो व्याह-बारातोतक ही समझिए, वह भी गांवों मे।

हां, मुरादाबाद के पीतल के बरतनो की खपत आज भी अच्छी है। पर *ग्रामउद्योग की दृष्टि से तो इसे भी हम मृतप्राय ही* कहेगे। बिजली से चलनेवाली मशीनो से अब काम लेते है। यंत्रों की सहायता से उत्पत्ति भी बेहद बढ़ रही है। पीतल की चद्दरें भी बाहर से ही आती है। पहले तो गांवों में ही पीतल ढलता था। अत हाथ का काम अब बहुत कम रह गया है। इसलिए इस समुन्नत उद्योग के भी अधिकाश कारीगर बेकार हो गये है। अमरोहे में मिट्टी के बरतन भी अच्छे बनते थे, पर आज यह उद्योग भी नष्ट हो गया है। यही हाल सम्भल की कंघियों और सीग की दूसरी चीजों का भी है।

जिला इटावे का हर गांव कई वस्तुओ मे स्वाश्रयी था। वहा हरेक गाव में जूते बनानेवाले, हरेक गाव में तेल पेरनेवाले और हरेक गाव मे कपडे बुननेवाले मिल जाते थे। पर आज वह बात नही रही। अब तो मशीनो का बना माल धड़ा-धड बिक रहा है। कारीगर अपने धन्धे छोड़ बैठे है, कुछ तो खेती-बारी करने लगे हैं और कुछ मजदूरी। हा, इटावे का बुना हुआ रेशमी और सूती कपडा अब भी बाजार में कुछ नाम पाये हुए है।

जिला बलिया में 'फूल' (तांबा, टिन और कुछ दूसरी धातुओ का समिश्रण) के सुदर बरतन आज भी बनते है, पर यह उद्योग भी धीरे-धीरे गिरता चला जा रहा है। यह सोलहो आने गृह-उद्योग है। मिट्टी के सांचों मे ढालकर फूल के बरतनो को बनाते है, और हाथ से ही उनपर पॉलिश करते है। इस सुदर हुनर पर ठीक तरह से ध्यान दिया जाय तो यह अब भी नष्ट होने से बच सकता है।

इसी जिले के नागपुर गाव मे कुम्हार मिट्टी के बडे ही सुदर बासन बनाते है। यह इनकी पुश्तैनी कला है। पर यह कारीगरी भी गिरती पर है। मेलों-ठेलो में इनके बासन-भाड़े बिक जाते है, यो ज्यादा कद्र नही। इन चीजो की खपत की ठीक-ठीक व्यवस्था की जाय तो इस उद्योग के विकास के लिए अब भी काफी गुजाइश है।

जिला गढ़वाल मे न अब कपास होता है, न चर्खे ही चलते हैं। ५० वर्ष पहले जो गढवाल पूर्ण वस्त्र-स्वावलंबी था, वह आज परावलबी बन गया है। मिल के बने कपड़ोंने खादी-उद्योग को चौपट कर दिया है। रथ और चांदपुर के खसिया लोगों का पुश्तैनी पेशा जूट तैयार करने का था, पर आज वे इसे एक नीच धधा समझते है,और इससे वह नष्ट होता जा रहा है। लकड़ी के खाने-पीने के बरतन भी गढ़वाल में बड़े सुदर बनते थे,पर उनकी जगह धातु के बरतनोने लेली है, अत इस उद्योग का भी खात्मा ही समझिए। अधिक क्या, बास की टोकरियां तक तो बाहर से आने लगी हैं, इसलिए यह गरीब उद्योग भी मृतप्राय हो गया है।

रायबरेली जिले के एक-दो छोटे-छोटे उद्योग कुछ जीवित है। कसकुट के बरतन-भाड़े और सरौते यहा बनते हैं और यही बिकते है। जाइस की सुप्रसिद्ध 'जाइस' मलमल का तो अब लोप ही समझिए। कपड़े की मिलोने हमारे देश के इस सुप्रसिद्ध उद्योग का जिस निर्दयता के साथ गला घोंटा है उसके बार-बार दोहराने की जरूरत नही।

कपड़े की बुनाई फैजाबाद की दूर-दूरतक प्रसिद्ध थी, पर मशीनों के बने मालने यहां भी इस उद्योग को भारी क्षति पहुँचाई। टांडा में अब भी कपड़ा बुना जाता है। खादी भी यहां बनती है। कपड़ा यहा रंगा भी जाता है और छपता भी है। नेपाल मे यहां की रंगाई-छपाई खूब पसंद की जाती है। टांडा के ७५ या ८ कारीगरों की नेपाल में करीब सौ दूकाने है।

कपड़ा बहराइच जिले में भी बुना जाता था, पर अब वहां यह

उद्योग नष्ट हो गया है। यहां कंबल का उद्योग अगर ठीक तरह से बढ़ाया जाय तो यह अच्छी उन्नति कर सकता है। सैकड़ों गरीब गड़रियों की रोजी इससे चल सकती है।

कालपी और मथुरा का कागज काफी मशहूर था। पर आज तो उसकी कहानी ही रह गई है। ग्रामउद्योग-संघने इधर ध्यान दिया है, और यदि यह उद्योग पुनरुज्जीवित हो गया तो इससे हजारों कारीगरो को रोटी मिल सकती है।

यंत्रोंने यद्यपि ग्राम-उद्योगों को नष्ट करने में कुछ उठा नही रखा, तथापि अब भी अनेक उद्योगों के प्राण थोड़े-से ही सगठित प्रयत्न से बचाये जा सकते है, और ग्रामों और शहरो के बीच जो भयंकर खाई खुद गई है उसे हम अब भी बहुत-कुछ पाट सकते हैं। ग्राम्यवृत्ति की ओर झुकनेभर की देरी है। पर कृत्रिम शहरी वातावरण में यही प्रश्न तो महान् कठिन है। वि० ह०

अस्पृश्यता तथा मन्दिर-प्रवेश

[साप्ताहिक 'सनातन धर्म' पत्र के २२ दिसम्बर, १९३५ के अक में, श्री कृष्णप्रेम वैरागीजी का 'अस्पृश्यता तथा मन्दिर-प्रवेश' शीर्षक एक अच्छा विचारपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है। श्री कृष्ण-प्रेमजी का पहले का नाम श्री रेनाल्ड निक्सन है। योरोपीय महायुद्ध में आपने भाग लिया था, और उसके बाद बौद्धधर्म की ओर आपका झुकाव हो गया। काशी-विश्व-विद्यालय में कुछ वर्ष पहले आप प्रोफेसर भी थे। बाद को वैष्णवधर्मने अपनी ओर खींच लिया। श्री कृष्णप्रेम वैरागी आपका वैष्णव नाम है। भक्ति के विषय पर, कभी-कभी आपके सुदर भावपूर्ण लेख देखने में आते हैं। लिखते आप अच्छी परिष्कृत हिन्दी मे हैं। आपके उक्त लेख के कुछ महत्त्वपूर्ण अश नीचे दिये जाते है,जिसमे विद्वान् और भक्त लेखकने एक सच्चे वैष्णव की दृष्टि से हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश प्रश्न पर विचार किया है। वि० ह०]

श्रीमद्भागवत में भगवान् कहते है :—

"न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स पूज्यो यथा ह्यहम्॥"

"अभक्त चतुर्वेदी ब्राह्मण मुझे प्रिय नही है,पर भक्त चाण्डाल प्रिय है! वह (भक्त चाण्डाल) भेंट पाने के योग्य पात्र है तथा उसका दिया हुआ उपहार दूसरे लोगों के लेनेयोग्य है और वह (चाण्डाल भक्त) वैसा ही पूज्य है जैसा कि मै!"

"पर भक्तो की बात ही क्यो उठाई जाय? क्या जितने उच्चजाति के लोग, जो मन्दिर में जाते है वे, सब-के-सब बड़े भक्त ही होते हैं? तब फिर उन दीन-दुखी व अभागे लोगो को (जो नीच जाति के कहाते है और जो साधारण उच्च जातिवालो से बढ़कर या घटकर भक्त नही हैं) क्यो न यह अधिकार हो कि वे भी मन्दिर में भगवान् के दर्शन करके उस पतितपावन, दु:ख-नाशक के चरणों में अपना दुःख-निवेदन कर सके? परमभक्त के लिए तो ईंट व पत्थर के बने हुए मन्दिरो की इतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी कि उस दीन-दुखी व अभागे को है, क्योकि भक्त के लिए तो समस्त संसार ही उसका मन्दिर है, और वह सभी प्राणियों के हृदय में अपने भगवान् को देखता है। पतितों और पापियों के लिए—उनके लिए जो भगवान् को अपने हृदय में नहीं देख पाते—मन्दिरों की विशेष आवश्यकता है। सबसे अधिक इन्हीं लोगों के लिए एक "दृष्टि में आनेवाली" मूर्ति की जरूरत है, जिसकी सुन्दरता उनके हृदयो को आकर्षित करे और जिससे उन्हे यह शिक्षा मिले कि क्षणभंगुर शरीर की त्रुटियों व बन्धनो से परे 'विकार-रहित' आत्मा पर दृष्टि रखनेवाला भी एक परमात्मा है।

पर नही, जिसे मन्दिर की सबसे अधिक आवश्यकता है वही उसकी पवित्र सीमा के भीतर नही जाने पाता! स्कूल, अदालतें तथा रेल मे सब के लिए खुले है, परन्तु भगवान् के मन्दिर उनके लिए बन्द है, जिनकी आंखो को भगवान् के श्रीविग्रह के दर्शनो की सब से अधिक आवश्यकता है।

अच्छा, अब यह देखना चाहिए कि कौन-सी अपवित्रता है जो अछूत अपने साथ मन्दिर में लाता है! "शक्ति-मन्दिर" बलि चढ़ाये हुए बकरो के रुधिर और उनकी लाशो से अपवित्र नहीं समझे जाते और दक्षिण के वैष्णव-मन्दिर भी 'देवदासी' नामधारी स्त्रियो के कुकृत्यो से अपवित्र नहीं समझे जाते और फिर पुजारियो तथा पडो का सर्वव्यापी लोभ, जो भक्तों को उस शान्ति के प्राप्त करने से वचित रखता है जो मन्दिरों में जाने से होनी चाहिए! मै फिर कहता हूँ कि वह भी मन्दिर के वातावरण को कलुषित करनेवाला नही गिना जाता, परन्तु यदि एक गरीब, अपढ़, अछूत (जो महस्रो उच्च जातिवालो से न बढ़कर है न घटकर) अगर मन्दिर मे पैर रखदे, तो मन्दिर शुद्ध कराना पड़े और शायद विग्रह को भी प्रायश्चित करना पड़ता है!

एक यह भयानक आवाज उठाई जाती है कि ये (अछूत) लोग मांस खाते है! अच्छा, यदि खाते है तो क्या हुआ? क्या हमारे नगरो के सहस्रो ब्राह्मण मास नही खाते? क्या वैष्णवों मे भी सहस्रो व्यक्ति मछली नही खाते? पाश्चात्य रग-ढंग में रंगे हुए क्या-क्या नही खाते? सभी जानते है कि वे ऐसा करते है, फिर भी यदि वे लोग सिर्फ 'पतलून' उतारकर धोती भर पहन लेते है तो उनके मन्दिर मे जाने पर कोई आपत्ति नही की जाती!

× × × ×

मै अपने हृदय मे इस दारुण अन्याय का विरोध करता हूँ। श्रीकृष्ण भगवान् मेरे हृदय मे है तथा उसके हृदय में भी है जो इन शब्दो को पढ़ता है। इसलिए हृदय की सम्पूर्ण भावनाओ को पूर्णतया जाननेवाले उस हृदयस्थ भगवान् की सर्वव्यापी दृष्टि के सामने कोई 'सत्य' के साथ चाल नही कर सकता। इधर-उधर के प्रमाणो को देकर 'अन्याय' को पुष्ट करने के लिए तर्क करते समय तो अच्छा लगता है, परन्तु जब अपने ही भाइयो को अछूत व अपवित्र समझने पर, जिन अपवित्र समझे जानेवाले लोगों के हृदय मे स्थित होने से स्वय भगवान् को घृणा नही होती, तब वह फल अच्छा न लगकर कड़ुवा प्रतीत होगा।"

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करे। ग्राहक-नबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नही दिया जा सकेगा।

हरिजन-सेवक

शनिवार, ४ जनवरी, १९३९

क्रियात्मक रूप में पारस्परिक सन्मान

बड़े दिनो मे वर्धा मे अन्तर्राष्ट्रीय धर्म-सहकारिता-सघ की कौंसिल का अधिवेशन हुआ था। यह अधिवेशन मदुरा में होनेवाला था, किंतु कौंसिलवाले अपनी कार्रवाई मे गांधीजी का भी सहयोग चाहते थे, इसलिए उन्होने यहीं एकत्र होने का निश्चय किया। दुर्भाग्यवश बीमारीने गांधीजी को इसमें सम्मिलित नही होने दिया, फिर भी अनेक कारणो से यह अधिवेशन महत्वपूर्ण रहा।

कौंसिल के सदस्य कुल पांच दिन या इससे अधिक समयतक वर्धा रहे। जबतक यहा रहे तबतक वे सब सेठ जमनालालजी के ही मेहमान रहे। एक हिन्दू-द्वारा किया गया यह आतिथ्य, जो एक ऐसे अतिथि-मण्डल का आतिथ्य था जिसमे ज्यादातर ईसाई-ही-ईसाई थे, इतना हार्दिक और शानदार था कि अतिथियो को बहुत दिनोंतक उसकी याद बनी रहेगी। इनमे से अनेक मित्रो को तो इस बात का बडा अचरज ही रहा कि वह कौन भला आदमी है, जिसने दूसरे धर्मवालों को अपने घर पर एकत्र होने और जो चाहे सो कहने के लिए आमंत्रित किया है और इतनी खातिरदारी से पेश आ रहा है! यह छोटी-सी बात स्वय एक ऐसी घटना है, जो हमारे लिए बडी शिक्षाप्रद है।

इस अधिवेशन की दूसरी विशेषता यह है कि इसमे जिन विषयो पर चर्चा हुई वे बहुत महत्वपूर्ण है। ग्राम-संगठन में लगे हुए एक सच्चे सेवक देवकोटा के श्री आर० आर० कीथनने ग्राम-पुन:रचना के विषय को उठाया। उन्होंने 'विभिन्न धर्मों के आधार पर ग्राम-पुन रचना' करने के लिए कहा। इस शीर्षकने अनेको को उलझन मे डाल दिया, लेकिन श्री कीथन का आशय तो स्पष्ट था। "गरीब, पीडित और दलितजन किसी भी धर्म के क्यों न हो, क्या हम इस तरह उनकी मदद नही कर सकते, जिसमे उनके धर्म-विश्वास को कोई आच न आये?" यह मानो उनका प्रश्न था, जिसका जवाब उन्होने 'हा' में दिया। "हिन्दूधर्म को", उन्होंने अपने निबन्ध में कहा, "अपने अन्दर हरिजनो के लिए स्थान देना ही चाहिए। उन्हे उसमें, औरों के समान ही, स्थान मिलना चाहिए। धर्मान्तर की शिकायत करने में कोई लाभ नही। धर्मान्तर से, जैसा कि आम तौर पर मैं होते हुए देखता हूँ, मुझे एक तरह की चिढ-सी है, फिर भी मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हरिजनो के मामलो में जब-जब मुझे कट्टर हिन्दुओं का रुख देखने का मौका पडा तब-तब अक्सर निराशा से अपना सिर ठोंकना पडा है।" इस विषय पर जिस गंभीरता से विचार होना चाहिए था वह नही हुआ, क्योंकि कौंसिल के सदस्यों मे ऐसे बहुत कम थे कि जिन्हे गांवो के पुनर्निर्माण-कार्य का वास्तविक अनुभव हो। मगर श्री कीथनने कई ऐसी बातें बताईं जिनके द्वारा ग्रामवासियो के धर्म में हस्तक्षेप किये बगैर ग्राम-सेवक उनकी मदद कर सकता है, जैसे ग्रामीणों की आर्थिक समृद्धि, स्वास्थ्य, सफाई, मुकदमेबाजी इत्यादि। खुद उन्होने अनेक ऐसे मामलों मे मदद की है कि जिनमें बेचारे गरीबो को धोखा देकर उनसे फसल का मूल्य छीना जा रहा था; डॉक्टरों का एक स्वयंसेवक दल बनाने का वह इरादा कर रहे हैं; और ऐसे वकील तो उन्हें उपलब्ध भी हो चुके हैं जो गरीबों के आपसी मामले-मुकदमों को निपटाने के लिए उनके साथ गांवों में जाते है। लेकिन सवाल तो यह है कि क्या और लोग भी उनके इस नये मिशन में शरीक होने को तैयार हैं?

इसका जवाब हमें धर्मान्तर के सिलसिले में होनेवाले वाद-विवाद से मिलता है। इस वाद-विवाद को सफल तो नहीं कह सकते, लेकिन इससे सदस्य एक-दूसरे के विचारों को अच्छी तरह जान गये। इन सदस्यों में, कौंसिल के मंत्री श्री पॉल को छोड़कर, धर्मान्तर को छोड देने के समर्थक बहुत कम मालूम पड़े। एकने तो इंजील के प्रति उग्र वफादारी जाहिर करते हुए कहा कि "सब को ईसाई बनाना या मर जाना, यही मेरा सिद्धान्त है।" दूसरोंने ये शब्द तो नही कहे, पर उनमें से अधिकांश का आशय यही था। तारीफ यह कि यह बात उठाई उन लोगो के दृष्टिकोण से गई, जिनके लिए कहा गया कि वे बहुत बुरी दशा में है और अपना धर्म छोड़कर दूसरे धर्म मे चले जाना चाहते हैं, पर जिनके प्रतिनिधि-स्वरूप कोई भी व्यक्ति वहा मौजूद नही था। कहा यह गया कि "उन लोगो से हम क्या कहे, जो पददलित है और जिनको अपने जीवन में डग-डग पर कठिनाई और सघर्ष का सामना करना पडता है? अगर वह इस कठिनाई से बचने के लिए अपना धर्म छोडकर हमारे साथ आ मिलना चाहते है, तो हम उन्हे कैसे इन्कार कर सकते है? ऐसे बहुत-से मामले हैं, जिनमें उन्हे असुविधाएँ भुगतनी पड रही है और सहायता की बहुत जल्द जरूरत मालूम पड़ती है। ऐसी हालत में हम क्या करें? क्या हम उनसे यह कहें कि जबतक तुम्हारे सहधर्मियों का हृदय-परिवर्त्तन न हो जाय तबतक सब्र के साथ प्रतीक्षा करते रहो? या, इसके बजाय, उन्हे अपने धर्म में मिलाकर हम तत्काल उनकी मदद न करदे? त्रावणकोर मे ऐसी सड़कें है, जिनपर मुसलमान और ईसाई तो जा सकते है पर हरिजन पैर नही रख सकते। अगर हरिजन ईसाई बनकर अपनी इस असुविधा का अन्त करना चाहे, तो हम उन्हे ईसाई क्यों न बनाले?" यह दलील जाहिरा तौर पर बड़े अच्छे ढंग से पेश की गई और यह बात कहकर मानो इसे बिलकुल स्पष्ट कर दिया गया कि दरअसल किसी आध्यात्मिक भावना से प्रेरित होकर ये लोग धर्म-परिवर्त्तन नही करते, उन्हे कुछ सुविधाओं का अभाव बुरी तरह खटक रहा है और जब वे यह देखते हैं कि धर्मान्तर के द्वारा हम आसानी से इन सुविधाओ को प्राप्त कर सकते हैं, तो उन्हे ऐसा क्यो न करने दिया जाय?

इसमे शक नही कि अगर कोई खास जाति सुविधा के लिहाज से अपना धर्म बदलना चाहे तो उसके ऐसा करने में कोई रुकावट नही है, फिर इससे उस जाति और धर्म की कितनी ही हानि क्यों न हो जिससे कि वे लोग अलग हों। लेकिन क्या वह नया धर्म, कि जिसे अपना धर्म छोड़कर वे अपनायेंगे, अपने इन अनुयायियों से समृद्ध होगा? थोड़ी-सी सुविधाओं की खातिर नया धर्म ग्रहण करने के बाद भी अगर वे अपने पुराने विश्वासों और पूजा के तौर-तरीके पर कायम रहे तो क्या होगा? और अगर धर्म इस तरह की सुविधाओ की ही बात बन जाय, तब तो यही न देखा जाने लगेगा कि किस धर्म में अधिक-से-अधिक सुविधाएँ मिलती हैं? निश्चय ही यह धर्म उन लोगों के लिए नहीं है, जो कहते है

कि खाली रोटियों से मनुष्य जिन्दा नही रहता। किंतु वस्तुस्थिति यह है कि ऐसी जातियां थोड़ी ही हैं, जो अधिक सुविधाएं प्राप्त करने के लिए धर्म-परिवर्त्तन कर रही हों। यह हिन्दू-धर्म की कूवत ही है, जो अपने कुछ सुविधा-प्राप्त सहधर्मियों के दुर्व्यवहार के होते हुए भी हरिजन अब भी हिन्दू-धर्म मे बने हुए हैं।

उनकी मदद करना हमारा कर्त्तव्य अवश्य है, लेकिन क्या मदद का एकमात्र यही तरीका है कि हम उन्हे अपने धर्म में दीक्षित करलें? क्या इससे अधिक सम्मानपूर्ण, इससे अधिक शानदार और गौरवपूर्ण, कोई और तरीका नहीं है? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जो जातियां अपने पर लगी हुई दूसरे धर्म की छाप के कारण ही सुविधाओ का उपयोग कर रही है वे तबतक ऐसा करने से इन्कार करदे जबतक कि दूसरे धर्मवालो को भी वे न मिलने लगें? क्या इन जातियों के समझदार व्यक्तियों से वे यह प्रार्थना नही कर सकते कि वे अपना घर व्यवस्थित करले? हिन्दू-धर्म के अन्दर इस समय आत्म-शुद्धि का जो महान् आन्दोलन हो रहा है उसको महसूस करना क्या उनका कर्तव्य नही है?

लेकिन यहा तो बात ही कुछ और है। इस तरह की सहायता करने की जो चिन्ता है उसका आधार अपने को उनसे ऊँचा मानने का भाव है, या यो कहिए कि यह भावना है कि हमारे ऊपर जिस धर्म की छाप लगी हुई है वह उन लोगो के धर्म से श्रेष्ठ है जोकि सकट मे पड़े हुए है। भला इस धारणा पर कही विभिन्न धर्मों की सहकारिता सम्भव है? विभिन्न धर्मों की सहकारिता इस अनिश्चित आधार पर हर्गिज नहीं हो सकती। सच तो यह है कि, जैसा १९३३ में विभिन्न धर्मों की विश्वव्यापी सहकारिता के सम्मेलन को तार-द्वारा अपना सन्देश भेजते हुए गाधीजीने लिखा था कि "विभिन्न धर्मों की सहकारिता तभी स्थापित हो सकती है जब कि विभिन्न धर्मों के अनुयायी एक-दूसरे धर्म के प्रति क्रियात्मक रूप में सन्मान का भाव प्रकट करे।"

अंग्रेजी से] महादेव ह० देशाई

एक हरिजन-सेवक पर बिपदा

एक हरिजन-सेवक लिखता है :—

"इधर कई बरसों से मैं हरिजनो में साक्षरता-प्रसार का प्रयत्न कर रहा हूँ। मेरा यह विश्वास है कि कोई भी स्वच्छ मनुष्य किसी भी स्वच्छ मनुष्य के हाथ का परोसा हुआ स्वच्छ भोजन ग्रहण करले, और इसपर भी वह किसी के तअस्सुब को ठेस न पहुँचाये। मैंने हरिजनो की एक ही पंक्ति मे बैठकर कभी भोजन नही किया। अगर मैं ऐसा करता, तो इससे एक व्यर्थ की असंतोषाग्नि भड़क उठती, हरिजन मुझे छोड़ बैठते, और सवर्ण हिन्दू मेरा बहिष्कार कर देते। तो भी मैंने किसी मनुष्य को कभी अस्पृश्य नही समझा, और मेरी पाठशाला मे पढ़ने के लिए दूसरे गावो के भगी लड़के भी आये तो मैने उन्हे खुशी से दाखिल कर लिया है।

"मेरा जन्म इसी गांव में हुआ है। चार वर्ष से मैं हरिजन तथा हरिजनेतर बच्चों की एक संयुक्त पाठशाला चला रहा हूँ। कई अध्यापक इस पाठशाला मे पढ़ाते हैं। तीन वर्ष मैंने भी अध्यापन का काम किया, पर एक वर्ष से मैंने पढाना बन्द कर दिया है, हालांकि पाठशाला चलती मेरी ही निगरानी में है। आपके इस हरिजन-आन्दोलन से क्रोधित होकर यहां के सवर्ण हिन्दुओंने हमारी पाठशाला से हरिजन-बालकों को निकाल देने की कोशिश तो की है, पर इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। मगर इधर एक ऐसा छोटा-सा प्रसंग आ गया कि जिससे उनका क्रोध इतना ज्यादा भड़क उठा कि कुछ पूछिए नही। पहले कभी भी कोई ऐसी बात नही हुई, क्योंकि भंगी इस गांव में कम ही आता है। २५ अक्तूबर को हुआ क्या कि एक स्त्री साग-भाजी बेचने इस गाव में आई। मेरे मकान के पास एक मन्दिर के ओसारे में उसने अपनी टोकरी उतारकर रखदी, और कुछ सवर्ण स्त्री-पुरुष साग-भाजी खरीदने के लिए वहां जमा हो गये। मैं भी था। मैं जहां खड़ा था, वहीं एक कोने में एक मेहतरानी खड़ी थी, जो हाल ही में हमारे गांव में आई थी। कपड़े उसके काफी साफ थे। मेरी तरफ पीठ दिये हुए वह खड़ी थी। मैंने भी उसे नहीं देखा था। मै जब लौटकर घर की तरफ आने लगा, तो मेरी चाचीने, जो उस मन्दिर में पूजा करती थी, मुझे आगाह करते हुए कहा कि 'देखो, मेहतरानी से बचकर आना, कही उसे छू न लेना।' अबतक मैने न उसका स्पर्श किया था, और न छूने का कोई प्रसंग ही आया था। इसलिए यह चेताना अनावश्यक ही था। लेकिन इस चेतावनीने मुझे उकसा दिया, और यह कहकर कि वह किसी भी हालत में अछूत नही है मैंने उसे छू लिया। उस बेचारीने मुझसे बचने की कोशिश की। वह मुझे गालियो की बौछाड़ से बचाना चाहती थी। पर मैंने गालियों की कोई पर्वा नही की, और अस्पृश्यकतारूपी पाप के खिलाफ खड़ा-खड़ा मै दलीले देता ही रहा। कुछ लोगोने चुनौती देते हुए मुझसे कहा, कि 'अच्छा' हिम्मत हो तो जरा फिर तो छुओ।' मैंने उसे फिर छू लिया। तब कुछ लोगोंने मुझसे गिड़-गिड़ाकर कहा, "तुम चाहो तो भाई, दूसरे अछूतों को छू सकते हो, पर भंगी को तो न छुओ।" मैंने उनसे कहा कि, "मै किसी भी मानव-प्राणी को अस्पृश्य नही मानता, और अगर आप लोगों का यह विश्वास है कि मैं भगी और अन्य हरिजनो के बीच कोई भेद करता हूँ तो आपकी यह भूल है। यह बात दूसरी है कि भगी को छूने का मुझे कोई ऐसा मौका नही आया, क्योंकि हमारे गाव मे भंगी है ही नही, पर जब भी कोई प्रसग आयगा, मै खुशी से उसका स्पर्श करूंगा।"

खैर, इससे सारे गांव में तहलका मच गया। ब्राह्मण अध्यापक पाठशाला छोड़कर चला गया। गाव के बच्चोने मेरे बच्चों के साथ खेलना बंद कर दिया। और मैं एक अस्पृश्य घोषित कर दिया गया। मेरे लिए जो नौकरानी पानी लाती थी, उसने पानी लाना बन्द कर दिया। दिन की पाठशाला मुझे बन्द कर देनी पड़ी हैं। रात्रि-पाठशाला एक हरिजन लड़के की निगरानी मे चल रही है, जो पहले हमारी पाठशाला का विद्यार्थी था। बहिष्कार अब उतना सख्त नही है। मैं अब अस्पृश्य नहीं समझा जाता हूँ। दूसरे बच्चे भी अब मेरे बच्चों के साथ खेलने आने लगे है। मगर मेरी वह महरी तो किसी तरह मानने की नही। वह काम करने आयगी ही नही। घर-गिरस्ती के और भी अनेक काम वह कर दिया करती थी। कभी-कभी रसोई बनाने में भी मदद देती थी। उसका काम दूसरा कोई करता नही, और मुझे बड़ी मुश्किल पड रही है। मेरी स्त्री के अभी-अभी एक बच्चा हुआ है, इससे एक नौकर की तो सख्त जरूरत है। वह बेचारी बीमार पड़ी है, और दूसरा कोई मुझे मदद देनेवाला नही। ये परिस्थितियां है—अब बताइए, मैं क्या करूँ? क्या मैं और आगे बढ़ूं, या फिर पीछे लौट पड़ूं? मुझे अपनी कोई चिंता नही, चिंता है तो बीबी और बच्चों की।

यह एक ऐसी जगह है, कि जहां न तो डाकखाना है, न तारघर, न रेल है न कोई अस्पताल। मुझे अक्सर दूसरे गांवो में जाना पड़ता है, और मैं नही जानता कि मेरी गैरमौजूदगी में मेरी स्त्री को कब क्या हो जाय। कुछ वर्ष हुए कि जब मेरी लड़की मरी, तब मेरे ऊपर ऐसी ही मुसीबत आकर पड़ी थी। गाव में कोई मेरा मददगार नहीं था, पर सद्भाग्य से दूसरे कार्यकर्त्ता थे जिन्होने समय पर मेरी सहायता की थी, पर अबकी तो ऐसा भी कोई सहायक नजर नही आता।"

कार्यकर्त्ताओं को कैसी-कैसी मुसीबत उठानी पड़ती है यह उसकी एक नमूने की बानगी है—और खासकर जब वे ऐसे देहातो में काम करते है, जहां निरक्षरता का पूर्ण साम्राज्य है, और लोगों के दुराग्रहो तथा मूढ़ विश्वासों पर अब भी कोई असर नही पड़ा है। इससे भी अधिक निर्दयतापूर्ण सामाजिक बहिष्कारो के उदाहरण हमे मालूम है, ऐसे-ऐसे उदाहरण कि जहा सिर्फ नौकरोने ही काम करना नहीं छोड़ दिया है, बल्कि सुधारक को खाने-पीने की चीजें देना भी बन्द कर दिया गया है। अभी कुछ सप्ताह पहले मैंने काबीठा के श्री नाथाभाई की जीवन-कहानी 'हरिजन' में दी थी। उन्हे तो और भी अधिक कष्ट-सहन करना पडा है, और उनके उस कष्ट-सहन का यह परिणाम हुआ कि उन्हे दु:ख बटानेवाले कुछ सगी-साथी मिल गये है।

उक्त हरिजन-सेवक को इस मामले में नौकर न मिलने से इतनी लाचारी महसूस नही करनी चाहिए। जबतक उसकी पत्नी बीमार है, उसे बाहर दूसरे गावो मे जाना ही नही चाहिए। घर का सारा काम उसे खुद ही करना चाहिए। यह सभव नही कि सारे गाव में उसका कोई मित्र और सहानुभूति दिखानेवाले न हों। यह कल्पना ही नहीं की जा सकती कि जिस सेवकने खास अपने ही गाव में चार सालतक लगकर काम किया हो उसका वहा एक भी मित्र या सहानुभूति दिखानेवाला पड़ोसी न हो। अगर बहिष्कार अब उतना सख्त नही है, जैसा कि वह खुद कबूल करता है, तो उसे सवर्ण हिंदुओ के दिल पिघलने की आशा नही छोड़ देनी चाहिए। उसे धैर्यपूर्वक उनके साथ दलील करनी चाहिए। उन्हें यह बतलाना चाहिए कि जो प्रवृत्ति मझे प्रिय है उसकी खातिर मै दुनियाभर की विपदा झेलने को तैयार हूँ, मै अपनी प्राणप्रिय प्रवृत्ति को यो छोड़नेवाला नही। निश्चय ही उसके कष्ट-सहन से विरोधियो का पाषाण-हृदय पिघलेगा और अवश्य पिघलेगा।

और, पहले जिन हरिजनो की उसने इतनी अच्छी तरह सेवा की है, क्या उनमें से उसे कोई मदद देने को तैयार नही? लेकिन शायद वह खुद अपने जीवन में सुधार को अभी इस हदतक नही ले गया है कि अपने घर में किसी हरिजन को नौकर रखने के लिए तैयार हो। जब वह यह पूछता है कि 'क्या मै और आगे बढ़ू या फिर पीछे लौट पड़ू' तो शायद उसका यही अर्थ होगा। और आगे बढ़ने का अर्थ या तो और भी मुसीबतें उठाना है या घर में किसी हरिजन को नौकर रख लेना है, या किसी हरिजन पड़ोसी की सहानुभूति प्राप्त करना है। यह कहना कठिन है कि 'पीछे लौट पड़ने' से इस सेवक का क्या आशय है। क्या इसका यह अर्थ है कि वह अपने विश्वास से मुहँ मोड़ले या लोगो से वह अपने कार्य के लिए क्षमा मागले, या प्रायश्चित्त कर डाले? सुधार का यह कार्य, हरिजनो का यह सेवा-कार्य इतना अधिक पुनीत है कि वह त्यागा नहीं जा सकता। फिर यह तो पहली ही परीक्षा है। सुधारक के पथ पर गुलाब के फूल थोड़े ही बिछे हैं। सुधार का कंटकाकीर्ण पथ जब वह चुनता है, तब उसी क्षण वह अपने सर्वस्व में आग लगा देता है, और जबतक अपने लक्ष्य को नही पहुँचता तबतक बीच में कहीं थमने या ठहरने का नाम भी नही लेता। यह तो शूर-वीरों का पथ है, पीछे पैर रखना कैसा? कबीरने क्या अच्छा कहा है—

अब तो जूझे ही बनै, मुड़ि चाले घर दूर।
सिर साहिब को सौंपते, सोच न कीजै शूर॥

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

साप्ताहिक पत्र

हमारा गाँव

गत सप्ताह कई मित्रोंने, जो वर्धा आये हुए थे, यह इच्छा प्रगट की कि जिस सिंदी गाव के बारे में लिखते हुए आप कभी अघाते नहीं, उसे हम लोग भी देखना चाहते हैं। मैंने कहा कि हमने वहा ऐसा तारीफ का काम किया ही क्या है, जो आपको ले जाकर दिखावे, और अगर आप चलते ही हैं, और वहा हमारे गदे काम से आप अगर बिचके नही, तो आपको वहा हमारे काम में हाथ भी बँटाना होगा। मुझे यह कहते प्रसन्नता होती है कि इस पर उन मित्रोने कहा कि हमने वहा कोई बहुत बड़ी चीज देखने की आशा तो बांधी नही, और हम बड़ी खुशी से आपके साथ वहां डोल व झाड़ू लेकर कूड़ा-कचरा साफ करेंगे। बगाल के स्वास्थ्य-विभाग के असिस्टेण्ट डायरेक्टर डॉ० चाटराने हमारे इस काम मे बड़ा ही उत्साह दिखाया, और जो अनेक सूचनाएँ उन्हे देनी थी उनपर उन्होने अच्छी तरह चर्चा की। मि० कीथनने भी, जो अत.राष्ट्रीय धर्म सहकारिता संघ के सदस्य की हैसियत से यहा आये थे, हमारे काम में इस तरह भाग लिया, मानो वे हमेशा से ही इस काम के करने के आदी हो। जब उनसे हमने कहा कि, "यहा का तो कुछ अजीब हाल है। हमने यहा एक पाखाना खडा किया, तो उसमे जाने से कुछ लोगोंने तो साफ ही इन्कार कर दिया। कहने लगे, इससे हमारी चाहे जहा बैठे जाने की स्वतत्रता में हस्तक्षेप होता है!" तो उन्होने कहा कि, "इसमे ऐसी कोई अचरज की बात नही। हम सुसभ्य अमेरिका के निवासी भी ऐसा ही करते है। आपको मालूम नही कि मद्य-निषेध के विरोधियोने हमारे यहा भी ऐसी ही आवाज उठाई थी? वे भी यही दलील देते थे कि यह तो हमारी मद्य-पान की स्वतत्रता में सरासर हस्तक्षेप है! मद्य-पान की स्वतत्रता और सार्वजनिक रास्तो पर टट्टी फिरने की स्वतंत्रता में कोई ज्यादा फर्क नही। अतर है तो इतना ही कि यहा के लोग अज्ञानग्रस्त हैं, और हमारे वहां अज्ञान का ऐसा कोई बहाना बनाने को नही!"

५) माहवार में

मैंने इन मित्रो से कहा कि, "जहातक हमारा काम से संबंध है, हम ऊबे नही, धैर्यपूर्वक अपना काम हम करते ही गये। सिंदी गाव में अगर हमें अपनी मेहनत का कोई फल नहीं दीख पड़ा तो दूसरे गांवों में तो हमें सफलता मिली; और ज्योंही लोगों के बीच एक सेवक को चौबीसों घंटे के लिए हम ठीक तरह से बिठा सके, उसके सेवा-कार्य का असर लोगों पर पड़ा। एक गरीब

ग्रामवासी मैले के खाद के लिए—जिस खाद को कि वह कुछ ही दिन पहले चिमटे से भी छूने को तैयार न था—५) माहवार हमें जो दे रहा है, यह कोई मजाक नहीं। फिर जिस तरह अहिंसापूर्ण मत-परिवर्तन धीरे-धीरे ही होता है, उसी तरह हमारा यह काम धीमी गति से ही चलेगा। इस प्रसग मे यहा मैं एक ग्रामसेवक के कार्य की बहुत संक्षिप्त रिपोर्ट देता हूँ। यह सेवक ५) माहवार मे मजे में अपना निर्वाह कर रहा है, और सेवाजनित आनंद में फूला नही समाता। लिखता है—"मुझे यहा रहते अब सातेक महीने हो गये हैं। मेरे दो महीने तो गांव के लोगों के साथ परिचय प्राप्त करने में ही लग गये। चौमासे में तो सडको की सफाई का काम बिल्कुल बंद ही रहा, पर मैने टट्टियो मे जाने के लिए लोगो को राजी कर लिया था, और इस तरह बारह-तेरह टट्टिया खडी करके उनकी सफाई मे रोजमर्रा किया करता था। मगर अधिकारियोने टट्टिया हटवा दी! क्यो ? इसका कारण वही जाने ? लोग फिर मैदान में शौच के लिए बैठने लगे। चौमासा निकल जाने के बाद मेरा मुख्य काम था सडको की मरम्मत, गड्ढो का भरना, सडको की सफाई और मैला उठा-उठाकर फेकना। मै यहा यह जरूर कहूँगा कि मेरा काम आपके सिंदी के काम से ज्यादा आसान रहा है। कदाचित् इसका कारण यह हो कि शुरू में मैने लोगो का दिल अपनी तरफ खीचने मे ही अपना सारा ध्यान लगाया। अब जबकि मैं इस गाव की गलियां और सडको को साफ करने के लिए जाता हूँ—जो कि मेरे जैसे आदमी के लिए एक बहुत बडा गांव है—तो स्त्रिया अपना-अपना हाता साफ करने और मुझे सहयोग देने के लिए फौरन अपने घरो से निकल आती है। वे अक्सर मेरे साथ अच्छी तरह बातें करती हैं, और बर्ताव उनका हमेशा अनुकूल ही रहता है। उन्होने यह खुद अपनी आखो देखा है कि और जगह जो काम हुआ है वह दबाव से हुआ है, और इसीसे मेरे धीरे-धीरे हृदय पलटने के तरीके की यहा कद्र की जा रही है। मुझे इससे कोई छोटा गाव रहने के लिए पसद करना चाहिए था, जहा स्कूल न होता और जहा ज्यादातर हरिजनो या साधारण लोगों की ही आबादी होती। यह ५००० की आबादी का इतना बड़ा गाव तो मुझे भयभीत-सा कर रहा है, पर जहातक मेरे लिए संभव है वहींतक मैं प्रयत्न करता हूँ। खुशी तो मुझे इस बात में है कि मेरा काम इन लोगो को बुरा नही लगता, उससे ये भागते नही। मैं सोलहो आने 'भगी' बनने की चाहे जितनी कोशिश करूँ, ये लोग मुझसे उस तरह परहेज नही करते, जैसा कि उस गरीब आदमी से करते है, जो कि दुर्भाग्य से अस्पृश्य समझा जाता है। लेकिन इससे अस्पृश्यता-निवारण के काम मे मुझे सहायता ही मिलती है। गांव की तमाम गलियो और सड़को को मैं यद्यपि रोज ही देखता और साफ करता हूँ, तो भी हफ्ते में एक दिन हरेक हिस्से के लिए मैने नियत कर रखा है और उस दिन उस हिस्से की खूब अच्छी तरह से पूरी सफाई करता हूँ। गांव को मैंने सात भागों में बांट रखा है। परिणाम इसका यह हुआ कि जब मैं यहा आया था तबसे अब सफाई बहुत अच्छी रहने लगी है, सडके तो बहुत ही साफ रहती है। रात को मैं पढ़ाता भी हूँ। मेरी रात्रि-पाठशाला में ४० लड़कों की हाजिरी रहती है। मैं उन्हे सफाई, आरोग्य, सदाचार और सामयिक विषयों पर आरंभिक तथा साधारण बातें बताता हूँ। स्त्रियों के लिए एक दूसरा वर्ग है। इस वर्ग में मैं उन्हे कोई धार्मिक पुस्तक पढ़कर सुनाता हूँ, और साथ ही उनकी वाहियात प्रथाओं और मूढ़विश्वासों का खंडन करता हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि खेतों में काम करनेवाले लोगों और हरिजनों के लिए एक विशेष वर्ग रखा जाय। पर अभी तो यह संभव नहीं, क्योंकि अपने खेतो में सोने के लिए वे सूरज डूबते ही गांव से चल देते हैं। आपसे यह बतलाने की जरूरत है क्या कि यह काम मेरे मन का है, और इसमे मुझे सदैव आनंद मिलता है ?"

एक दूसरे ग्रामसेवक के अनुभव

एक दूसरे ग्रामसेवकने एक ऐसे गाव से पत्र लिखा है, जहां उसे मुसल्मान भाइयो के बीच काम करना पड़ा है। वहां के अपने मधुर अनुभवो का उसने वर्णन लिख भेजा है। खाईवाले पाखाने को लोकप्रिय बनाने का वह प्रयत्न करता आ रहा है। शुरू में तो मुसल्मानोने इसपर कोई तवज्जह नही दी, पर इसकी पोशीदगी की वजह से मुसल्मान स्त्रियो को यह पसन्द आया, और अब तो लोग उसे खूब पसन्द करते हैं। पहले जहा लोग गली-कूचे को रोज गदा करते थे, वहा अब इस पाखाने मे वे नियमित रीति से जाते हैं। बेशक हमारे ग्रामसेवक को यह पाखाना रोज साफ करना पड़ता है और उसकी वह देखभाल भी अच्छी तरह रखता है। चर्खा व तकली भी लोग अब खूब चाव से चलाते हैं। अनेक मुसल्मान भाई भी चर्खे और तकली के हामी बन गये हैं। इस सम्बन्ध मे इस ग्रामसेवकने एक छोटी-सी सुन्दर कहानी लिख भेजी है, जो सचमुच उल्लेखनीय है। लिखा है—"उमराव बी नाम की यहा छः साल की एक छोटी-सी लड़की है। एक दिन वह तकली के लिए मचल गई और अपने अब्बाजान से तकली खरीदवा करही मानी। तकली तो मिल गई, पर पूनियो के लिए रूई कौन धुने ? पुराने गद्दो को उधेडा और थोडा-सा पहला निकालकर उसने सूत कातने की कोशिश की, पर धागा निकला नहीं। तब बेचारी हमारे यहा पहुँची। हरेक धुनिये से एक-एक दो-दो पूनियां माग लेती, उन्हे कातती और बडी ही खुश होती। पर इस तरह रोज-रोज थोड़े ही पूनियां मिल सकती थीं ! उसने अपने अब्बा से बड़ी मिन्नत के साथ कहा कि आप मेरी तकली के लिए थोड़ी-सी रुई धुन दीजिए। वह लगा हुआ था अपनी खेतीबारी के काम में, इसलिए उमराव की बात उसने सुनी ही नहीं। पर वह इस तरह हियाव हारनेवाली नही थी। वह तो पीछे पड़ गई। बाप खेत को जाता तो वह भी उसके पीछे-पीछे चली जाती। जहा कही वह जाता यह जिद्दिन लड़की वहीं पहुँच जाती और थोड़ी-सी रूई धुन देने और उसकी पूनिया बना देने के लिए हा-हा विनती करती। बाल-हठ के आगे पिता को झुकना ही पड़ा। उसका दिल आखिर पिघल ही गया। वह हमारे यहा पिंजाई सीखने के लिए आया और दो-तीन दिन मे उसने अपनी लड़की की खातिर रुई धुनना व पूनिया बनाना सीख लिया। अब अपने अब्बाजान की बनाई पूनिया कातने मे उमराव बी कैसा गर्व अनुभव करती है ! हमारे तकली-वर्ग में वह बिला नागा आती है, और ५० से ६० गजतक सूत तो कात ही लेती है।"

बड़ा दिन और ग्रामउद्योग

इस युग का यह एक चिन्ह है कि जिन्होंने बड़े दिन के कार्ड और नूतन वर्ष के अभिवादन-पत्र अपने मित्रो के पास भेजे है उनमें से कुछेकने हाथ की ही बनी वस्तुओ को इस मांगलिक कार्य के

लिए चुना। गांधीजी के पास ऐसे दो अभिवादन-पत्र आये हैं। ये छोटे-छोटे सुन्दर ताड़-पत्रों पर छपे हुए हैं, और दोनो ताड़ के रेशो से टँचे हैं। ऊपर के ताड़-पत्र पर तो हल चलाते हुए एक किसान की तसवीर बनी हुई है, और नीचे के पत्र पर सन्त तुकाराम की दो सुन्दर पंक्तियां छपी हैं। एक दूसरा कार्ड गांधीजी के पास काश्मीर से आया है, जो सुन्दर भोज-पत्र पर छपा है। और एक बहिनने हाथ के बने कागज पर अपना मगल अभिवादन भेजा है, जिसमें अपने हाथ से उन्होने हमारे ग्यारह व्रतो को सुन्दर हाशिये के अन्दर लिखा है।

बड़े दिन के साथ यो इसका तनिक भी सम्बन्ध नहीं,पर इस ग्राम्यवृत्ति के सिलसिले मे, स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित कांग्रेस के इतिहास का मराठी संस्करण उल्लेखनीय अवश्य है। महाराष्ट्र-कांग्रेस कमेटीने इसे प्रकाशित किया है, और प्रकाशकों की सत्वरता तथा उद्योगशीलता की मे तारीफ करूंगा कि सबसे पहले मराठी का ही सस्करण मुझे मिला। पर जब मैंने यह देखा कि यह तो हाथ के बने कागज पर ही सारी पुस्तक छपी है, तब तो मेरा आश्चर्य और भी बढ गया। मेरा खयाल है कि यह 'उपहार-संस्करण' है, जिसकी एक दर्जन या इससे भी कम प्रतियां छपी होंगी। कुछ भी हो, प्रकाशकों की यह सूझ है सुन्दर।

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

टिप्पणियाँ

ग्रामों के हरिजन

हरिजनो को मंदिरो या कुओ का उपयोग न करने देने के लिए सवर्ण हिन्दू अनेक तरह की थोथी दलीले दिया करते है। इनमें हरिजनों के आचरण ठीक न होने की दलील तो एक मामूली बात है। कोई शराब पीने व कोई मुर्दार मास खाने का दोष देकर उन्हे मनुष्यमात्र के अधिकारों से वंचित रखना चाहते हैं। किन्तु जहां ये बातें नहीं पाई जातीं, वहां दूसरी बातें खोज निकालते है। कहीं तो गन्दे काम करना ही उन्हे दुरदुराने का कारण समझा जाता है; किन्तु जहां अपना मतलब निकलता हो वहां ऐसे कामो का न करना भी उन्हींके विरुद्ध बतौर दलील के पेश किया जाता है!

मैं उस दिन ऐसे ही एक गाव में पहुच गया। यद्यपि इस गांव में कई कुएँ है; तो भी हरिजनो को तालाब का ही पानी पीना पड़ता है। गांव के मालगुजार एक सेठ हैं, और वे अपने को वैष्णव भी कहते हे, किन्तु हरिभक्त होकर भी वे हरिजनो को जीवन की सामान्य सुविधाएँ नहीं देना चाहते। पानी आदि की सुविधाएँ न पाने के कारण अपने लिए अलग कुँआ बनवाने के अर्थ 'हरिजन-सेवक-संघ' को प्रार्थना पत्र मिला। परिस्थिति की जांच करने के लिए मैं ग्रामो में दौरा करता हुआ उस गांव में भी गया। हरिजनों के प्रति इस व्यवहार का कारण पूछने पर सेठजी आपे से बाहर होकर बोले— "इनके लिए आप लोग दौड़ते फिरते हैं और हम लोग भी मन्दिर व कुओ पर इन्हे जाने देते हैं—(जो कि बिल्कुल झूठ था) किन्तु ये बदमाश अपनी करतूत से बाज नही आते!"

मैने पूछा—"आखिर बात क्या है? ये लोग मद्य-मांस नहीं छोड़ते क्या?"

सेठजी—"नही, ये लोग घोड़े की लीद उठाने से इन्कार करते है। जितना ही इनके साथ रिआयत करो, ये लोग सिर पर चढ़ते चले जाते हे।"

इसपर चमार बोले—"हम लोगों को न तो कुएँ से पानी भरने दिया जाता है और न एक फर्श पर बिठाते है।"

मैंने पूछा—"क्या आप लोगों को इन बातों में कुछ एतराज है?"

इसपर सेठजी बोले—"एतराज तो कुछ नहीं। सिर्फ पानी की कमी के कारण ऐसा होता है। पर इन लोगो को अपनी चालें छोड़नी चाहिए।"

पूछने पर मालूम हुआ कि केवल हरिजन ही नहीं, बल्कि कोल आदि अन्य जातिया भी लीद नही उठाती। किन्तु उनपर कोई जबर्दस्ती नही कर सकता। हमारे हरिजन भाई ही सस्ते हैं, जिन्हे हर तरह से दबाया जा सकता है। यह भी सच है कि इन जातीय बन्धनो व कुप्रथाओं के कारण हरिजनो को आर्थिक हानि भी उठानी पड़ती है। उदाहरणार्थ, अन्य जातिया लाख तोड़कर काफी कमाई कर लेती हैं; पर अगर हरिजन लाख तोड़े तो जातिच्युत कर दिये जायें! इसलिए जबतक एक तरफ तो हरिजन अपनी कुप्रथाएँ, और दूसरी तरफ सवर्ण अपनी *अन्यायवृत्ति* न छोड़ेगे, तबतक दोनो की ही अवस्था सुधरने की नहीं।

ब्योहार राजेन्द्रसिंह

बरार में

बरार प्रान्त की नवम्बर, १९३५ की रिपोर्ट मे आया है:—

सुकोडा और रिधोरा गावो के मांग (या चटाई बुननेवाले) लोगों को बांस की खपच्चियों की रंगीन टोकरियां, फूलदान और दूसरी सुन्दर चीजे बनाने के लिए प्रोत्साहन दिया गया।

अकोला की म्यूनिसिपैलिटीने मेहतरानियों को, बच्चा जनने पर, एक महीने की सवेतन छुट्टी देने का निश्चय किया है। क्या दूसरी म्यूनिसिपैलिटियां इस प्रशंसनीय कार्य का अनुकरण करेंगी?

व्यक्तिगत रूप से हरिजनों की सेवा करने का नीचे जो उल्लेख है वह स्तुत्य है। ऐसी सेवा से न केवल अस्पृश्यता की कलक-कालिमा ही धुलती है, बल्कि सवर्ण हिन्दुओ और हरिजन हिन्दुओ के बीच श्रेयस्कर सामंजस्य भी स्थापित होता है—

श्रीमती दातेने सुकोडा गांव में, खास अपने खेत में, ४० बालकों को 'हुरड़ा' (होरा) का प्रीति-भोज दिया। श्रीमती जोशी अपने यहां चार हरिजन बच्चो को पढ़ा रही है। श्रीमती ओक तीन हरिजन बच्चो को नित्य नहलाती हैं, और इन बच्चों को उनके अपने बच्चो के साथ शिक्षा दी जाती है।

अ० वि० ठक्कर

गीता-जयंती पर

राजपूताना-हरिजन-सेवक-संघ के मंत्री श्री शोभालाल गुप्त लिखते हैं:—

"परतापपुर (बांसवाड़ा राज्य) में गीता-जयन्ती के अवसर पर रामसनेही महत श्री लच्छीरामजीने हरिजन छात्रों को अपने हाथ से मिठाई बांटी और उपदेश दिया। १२ हरिजन छात्रोंने तम्बाकू और शराब न पीने की प्रतिज्ञा की। २० हरिजनोंने हमेशा को शराब व मास छोड़ दिया। सबेरे हरिजन-मुहल्लों की सफाई भी की गई।"

वि० ह०

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi, by R. S. Gupta.

स्वेच्छा से लादी हुई गरीबी

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
किंग्सवे, दिल्ली.

संपादक — वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शनिवार, ११ जनवरी, १९३६. [संख्या ४७

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

महाकवि श्री नागुची

जापान के महाकवि योन नागुची को गाधीजीने जो बुलाया और उनसे वे मिले, इसे डॉक्टरो की सलाह के विरुद्ध एक अपवाद ही समझिए। गांधीजीने कहा, "वे मेरे साथ किसी विषय पर बहस करने तो आ नहीं रहे है। मै तो सिर्फ उनकी बातें सुनने का आनन्द लेना चाहता हूँ।" कविवर आये, और गांधीजी को उन्होंने सिर पर गीली मिट्टी की पट्टी बांधे शैया पर पडा हुआ देखा। "भारत की मिट्टी में मैंने जन्म लिया है, और इसीसे भारत की यह मिट्टी मे अपने मस्तक पर धारण किये हुए हूँ," गाधीजीने कहा।

कविने कहा, "जापान और भारतवर्ष दोनो ही देश त्याग, (इससे क्या उनका आशय 'आत्मनिग्रह' से था ?) सादगी और जीवन के साथ कविता के तादात्म्य के उपासक है, इसलिए आपको दो-चार शब्दों में श्रद्धांजलि अर्पण करने के लिए आये हुए इस जापानी को भी आप मूलत. अपने से अभिन्न, अर्थात् उसी मिट्टी का समझिए।"

गाधीजी के उनसे यह पूछने पर कि भारत की यात्रा की उनके ऊपर क्या छाप पड़ी है, उन्होंने कहा, "भारतने तो मुझे इतना मोह लिया है कि कुछ कहते नहीं बनता। मैंने यहा इतनी चीजें देखी हैं कि जिनकी मैंने कभी कल्पना भी नही की थी। कभी-कभी मुझे निराशा भी हुई है। नागपुर की प्रदर्शिनी मे मैने एक नया ही भारतवर्ष देखा। लोग वहां काम करने मे खूब संलग्न थे।"

मैं तो इस आशा में था कि जापान के महाकवि के मुख से कुछ और भी अधिक पूर्ण और अधिक विस्तृत वर्णन सुनने को मिलेगा। पर उन्होंने कुछ अधिक नहीं कहा। उन्होंने गाधीजी से पूछा कि, "क्या आप हमारे जापान के सम्बन्ध में कुछ जानते हे ?" "नहीं," गांधीजीने कहा, "बस, एडविन आर्नेल्ड के लिखे जापानी जीवन के वर्णनात्मक लेख मैंने ठीक ४५ वर्ष पहले पढे थे, जो एक अंग्रेजी अखबार में प्रति सप्ताह प्रकाशित होते थे। उन्होने एक जापानी महिला के साथ शादी की थी और इसीसे उन्होंने जो भी लिखा, वह प्रगाढ सहानुभूति के साथ लिखा।"

"आप ठीक कहते है," कविने कहा, "आर्नेल्ड की पुस्तक में मुझे आज भी सत्य का दर्शन मिलता है। प्रेम और सहानुभूति के बगैर आप किसी राष्ट्र का यथार्थ चित्रांकण कर ही नहीं सकते।"

"जी हां," गाधीजीने कहा, "और बुराइयों को देखना तो आसान-से-आसान काम है। जिस तरह जापान के व्यापार और व्यापारिक प्रतिस्पर्धा के द्वारा जापान की बुराइयों को हम जानते हैं उसी तरह आपने भी हमारी त्रुटियो को अ[illegible] देखा होगा। लेकिन अच्छाइया देखना ही सबसे उत्तम बात है, और जापान की जो अच्छाइया है उन्हें मैने महान् सुधारक 'कगवा' की आंखों से देखा है।"

इतने में कस्तूरबा आई, और कविवर नागुची से उनका परिचय कराया गया।

गाधीजीने मुस्कराते हुए कहा, "आपको क्या यह एक जापानी स्त्री जैसी नही लगती है ?"

"जी हा," कविने कहा, "यह तो मेरी माता जैसी हैं।"

भारतवर्ष के सम्बन्ध मे कविने जो इतना थोडा कहा उससे गाधीजी को भला सन्तोष कैसे हो सकता था ? इसलिए उन्होंने एकबार फिर कहा, "मै जहांतक जानता हूँ, आपका देश संसार में अतिथि-सेवा की दृष्टि से सबसे आगे है। मै आशा करता हूँ कि मेरे देश को आप अतिथि-सेवा मे कम-से-कम दूसरा नम्बर तो देंगे ही।"

"नही," कविने इस बात पर जैसे कुछ कायल न होते हुए कहा, "आपका ही देश सब से अधिक अतिथि-सेवी है।"

वे शायद गाधीजी का समय, कमजोरी की इस हालत मे, अधिक नही लेना चाहते थे। इसलिए उन्होने कहा, "मुझे आपसे कोई बात पूछनी तो है नही, क्योंकि आपका जीवन मेरे लिए एक खुली हुई किताब है, आपने कोई वस्तु गोपनीय नही रखी।" पर ज्यो ही वे उठने लगे, उन्होंने गाधीजी से कहा, "क्या जापान के लिए आप मुझे कोई संदेश देंगे ?" गाधीजीने कहा, "आपको कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने जो सदेश दिया है उसमें मेरे संदेश का समावेश हो जाता है। हम मे से अनेक व्यक्ति जो सदेश दे सकते हैं, वे सब उनके सदेश मे आ जाते है।"

गाधीजीने कविवर नागुची से अहमदाबाद आने की प्रार्थना की, और सेठ अंबालाल साराभाई के मार्फत उन्हे निमंत्रण देने का भी आयोजन किया, किंतु न गांधीजी ही अहमदाबाद जा सके, न कविवर नागुची ही। जिस दिन गाधीजी अहमदाबाद जानेवाले थे उसदिन उनकी तबीयत और भी बिगड़ गई, और उसी दिन जापान के राजदूत का तार गांधीजी को मिला कि अत्यधिक काम

आ पड़ने के कारण कविवर नोगूची की तबीयत कुछ खराब हो गई है, इसलिए वे अहमदाबाद नहीं जा सकते ।

ग्राम-यात्रा

आंध्रदेश में इधर हाल में एक नई प्रवृत्ति शुरू हुई है, और वह प्रवृत्ति ग्राम-यात्रा की है । गुडीवाडू तालुका के २७ गांवो की ऐसी ही एक यात्रा का वर्णन अगलूर के एक कार्यकर्त्ताने भेजा है । ग्राम-यात्रियों की यह टोली एक चरखा, तकलियां, एक धुनकी, और एक फावडा लेकर गई थी । २८ दिन में ८५ मील से अधिक उन्होने यात्रा नही की । उन्होने रास्ते व गलिया साफ की, मेला वगैरा उठाया, कताई और पिंजाई के प्रदर्शन किये, और गृह-उद्योगो, अनकुटे चावल, घानी के पिरे तेल और गुड़ के विषय में लोगो को अच्छी तरह समझाया । कचरा वगैरा की सफाई तो सिर्फ छै ही गावो मे हो सकी, कारण यह था कि मेह के मारे यह काम हो ही नहीं सका । सड़कों की सफाई में ग्रामवासियोने हर जगह सहयोग दिया, और स्त्रियोने कताई के तरीको में जो-जो सुधार इधर हुए है, उन्हे रसपूर्वक ग्रहण किया । १॥) वाले चरखे का नाम "हरिजन-चरखा" बिल्कुल ठीक रखा है । यह चरखा खासा लोकप्रिय हो जायगा ऐसा विश्वास है । यात्रियो की यह टोली जहा भी गई, वहा हरिजन-बस्तिया तो जरूर ही देखती थी, और कहीं-कहीं तो उसने हरिजनों को चरखे बाटने के लिए सवर्ण हिंदुओ से अनुरोध भी किया । रास्ते मे इधर-उधर पड़े हुए हड्डे और सींग इकट्ठे किये और लोगों से कहा कि वे हड्डियो व सींगो को अच्छी तरह इकठ्ठा करके उनका बढ़िया खाद बना सकते है । हरेक गाव में इस ग्रामयात्री-दलने कुछ उपयोगी आंकडे भी इकट्ठे किये, जैसे वहां कितनी हरिजन पाठशालाएँ है, चरखे असल मे कितने घरो मे चल रहे है, आदतन खादी पहननेवाले कितने लोग है, वगैरा-वगैरा ।

शेरीकलवापुडी नामक एक ग्राम के तथ्य और आकडे बड़े ही रोचक है । इस गांव मे कुल १११ घर है और जन-संख्या ५४२ है । ३५ यहा चरखे चल रहे है, और ९ करघे, और १२५ व्यक्ति यहा आदतन खादी पहननेवाले है । बाकी लोग भी अपने ही सूत की अगलूर-उद्योग-गृह की बुनी हुई खादी काफी पहनते हैं । कताई-बुनाई के अलावा यहां दूसरे भी गृह-उद्योग देखने में आये, जैसे जाली बुनना, बेंत का काम, चटाई बनाना आदि । अस्पृश्यता यहा बिल्कुल ही नही । यहा की करीब-करीब सारी सड़के गाववालोने खुद ही बनाई है ।

ग्रामयात्राओ की यह योजना हर जगह हाथ मे ली जा सकती है । इसमें लाभ तो है ही । हमारे इन मित्रने साइकिल पर भ्रमण करनेवाले एक यात्री के विषय मे लिखा है । वह उनके आश्रम में दस दिन रहा, उसने वहा तकली चलाना सीखा और एक चरखा खरीदा और साइकिल पर पूरे प्रात का दौरा किया । जैसा कि अक्सर बहुत-से साइकिलवाले यात्री करते हैं, उसने बड़े-बड़े आदमियो के हस्ताक्षरों का संग्रह नहीं किया । उसने तो हर जगह चरखे और तकली की महिमा लोगो को बतलाई । अपनी सारी साइकिल-यात्रा में उसने तकली और चरखा चलाया । यात्रा उसकी जब समाप्त हुई, तो वह १०८६१ गज सूत कात चुका था ।

एक योगी

पाप-विनाशन नामक एक गांव में, जहां ये ग्रामयात्री गये थे, एक योगी रहता है । अपेक्षया वह योगी एकान्तवासी है । जो लोग उसके दर्शनों के लिए जाते हैं, उन्हें वह शरीर-श्रम का उपदेश देता है, और स्वयं भी कर्म-मार्ग का अनुसरण करता है । अपने आश्रम के समीप की जमीन में उसने स्वयं १५ पेड़ नारियल के और बहुत-से पेड़ नारंगियों के उगाये हैं, और १९३० में उसने नारियल की नरेटी के ६००० बटन बनाये थे । फिर उसने सूत कातना शुरू किया, और चरखा-संघ को कई लाख गज सूत दिया । मोटा सूत जो वह कातता है उसके वह जालीदार थैले बनाता है, और ऐसे लगभग सौ थैले उसने अबतक बेचे है । अपनी जमीन पर वह रोज चार घंटे डटकर मेहनत करता है, और तीन से चार घंटे नित्य सूत कातता है । दिन में केवल बारह बजे से पांच बजे तक वह बोलता है । बाकी समय पूर्ण मौन धारण किये अपने काम में मगन रहता है । कहते है कि गत १२ वर्ष से उसके जीवन का यह क्रम चल रहा है, और शातिमय श्रमपूर्ण जीवन का वह एक अच्छा ज्वलत उदाहरण है ।

अंग्रेजी से] महादेव ह० देशाई

खादी की नई योजना
अपने व्यावहारिक रूप में

"इसलिए यह जरूरी है कि जो लोग बतौर कारीगरों के या बेचनेवालो की हैसियत से या अन्य किसी भी रीति से उत्पत्ति का काम करते हो, वे दूसरे किसी भी प्रकार के कपडो को काम मे न लाये, अर्थात् केवल खादी का ही उपयोग करे ।"

कताई की मजदूरी बढ़ाने के सम्बन्ध मे अखिल भारत चर्खा-संघने ता० १३ अक्तूबर, १९३५ को जो प्रस्ताव स्वीकृत किया है, ऊपर उसी मुख्य प्रस्ताव के तीसरे पैरे का अवतरण दिया गया है । शुरू में तो प्रस्ताव के इस अंश को पढकर उत्पत्ति-केन्द्रो में काम करनेवाले कार्यकर्त्ता और साधारण जनता आश्चर्य के साथ यही प्रश्न पूछेगी कि आखिर इस प्रस्ताव को कार्य-रूप मे कैसे परिणत किया जा सकेगा । अबतक तो कत्तिनोने और हाथकता सूत बुननेवाले जुलाहोने खादी को अपनी आय का एक साधन ही समझा है और खादी से होनेवाली इस आमदनी को अपने मनचाहे ढंग से खर्च करने में वे स्वतंत्र भी रहे है । कई उदाहरण तो ऐसे भी है कि जब कताई और बुनाई की मजदूरी के रूप मे दी गई रकम को इन लोगोने आध घण्टे के अन्दर ही विदेशी या स्वदेशी मिलो का कपड़ा खरीदने मे खर्च किया है । कार्यकर्त्ता समय-समय पर इन कत्तिनो और जुलाहो को अपनी जरूरत के लिए खादी ही खरीदने को समझाते और मनाते रहे है, किन्तु इन्होने कभी उनकी बात पर ध्यान देने का कष्ट नही उठाया । बल्कि नीति इनकी यह रही कि ये महँगे-से-महँगे बाजार में अपना माल बेचते और सस्ते-से-सस्ते बाजार से खरीदते रहे । इस वस्तु-स्थिति के रहते हुए कइयो का यह सोचना स्वाभाविक ही है कि ऊपर के प्रस्ताव को व्यवहार में लाना बहुत ही कठिन होगा । मैसोर राज्य के बदनवाल और तगादूर केन्द्रों को देखने से पहले स्वय मैं भी इसी विचार का था, किन्तु अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह में इन केन्द्रों का निरीक्षण करने के बाद मुझे अपने ये विचार बदलने पड़े हैं ।

सन् १९३४ के अन्त में अखिल भारत चर्खा-संघ की एक गश्ती चिट्ठी पाकर बदनवाल केन्द्र को अपनी कार्य-प्रणाली में परिवर्तन करने की प्रेरणा हुई । इस गश्ती चिट्ठी में उत्पत्ति-केन्द्रों को यह सलाह दी गई थी कि वे अपनी खादी के लिए स्थानीय बाजार

खड़े करें, और खासकर उन कारीगरों में उसे खपाने का प्रयत्न करें, जो अपने परिश्रम द्वारा उसकी उत्पत्ति में सहायक होते हैं। तुरन्त ही इस सम्बन्ध में मैसोर राज्य के सम्बन्धित अधिकारियों से पत्र-व्यवहार किया गया और उन्होंने तत्काल ही कारीगरों के हाथ लागत मूल्य में खादी बेचने की अनुमति देदी। १९३४ के नवम्बर में पत्रिकाओं द्वारा कताई और बुनाई-केन्द्रों में व्यापक प्रचार किया गया और लोगों को उन उत्पत्ति-केन्द्रों की कठिनाइयां समझाई गईं, जो अपने माल की खपत के लिए नगरनिवासियों के मुहताज रहते हैं। साथ ही, इन कारीगरों को अपनी बनाई हुई खादी खुद ही खरीदने और पहनने की आवश्यकता, उपयोगिता और औचित्य भी बताया गया। इस अर्से में जो कत्तिने और जुलाहे उत्पत्ति-केन्द्रों के कार्यालय में आये, उन्हें कार्यालयों के भण्डारों में पड़ी हुई ढेरों खादी बताकर यह समझाने की कोशिश की गई कि चूंकि शहरवाले अब इस खादी को खरीद नहीं रहे हैं, इसलिए यह बेकार पड़ी है, और ऐसी बेकार खादी को बराबर बनवाते जाना भी बेकार ही है। अतएव अगर यह खादी न बिकी तो केन्द्रों में सूत की खरीद कम कर देनी पड़ेगी और बुनाई का काम भी घटा देना होगा। ऐसा भी समय आ सकता है कि जब सारा काम बिल्कुल ही बन्द कर देना पड़े। कारीगरों पर इस प्रचार का अच्छा असर हुआ, और बात उनके गले उतरी। उन्होंने देखा कि अगर अपने ही हित के लिए खादी के काम को केन्द्रों में चालू रखना हो, तो यह जरूरी है कि वे स्वयं अपनी बनाई हुई थोड़ी बहुत खादी इन भण्डारों से खरीदें और उनका भार हलका करें।

इसके बाद केन्द्रों में सूत खरीदनेवाले कार्य-कर्त्ताओं को यह आदेश दिया गया कि वे कत्तिनों से सूत खरीदते समय सूत की कीमत का एक तिहाई बतौर अमानत के अपने पास रख लिया करें, ताकि आगे चलकर इस अमानत की रकम में से कत्तिनें अपनी आवश्यकता की खादी खरीद सकें। इस प्रथा के शुरू होने के बाद जैसे ही अमानत की रकम छ या आठ आने के लगभग पहुंची, प्रायः अधिकांश कत्तिनोंने, वैसे ही, उसके बदले में खादी मांगना शुरू कर दिया। जब यह स्थिति उत्पन्न हुई तो केन्द्रोंने कत्तिनों को उनकी जरूरत की खादी देना और अमानत की रकम में से उसकी कीमत काटना शुरू किया। जहां कीमत अमानत की रकम से ज्यादा रही, वहां उतनी रकम कत्तिनों के नाम लिखली गई और बाद में धीरे-धीरे ऊपर की रीति से आसान किस्तों में यह रकम उनसे वसूल करली गई। नीचेलिखी हकीकत से यह साफ पता चलता है कि व्यवहार में भी यह प्रथा बहुत सरल और सफल सिद्ध हुई है :—

१. कुछ अल्पसंख्यक कत्तिनों को छोड़कर, जिन्हें इस प्रथा से थोड़ी शिकायत है, बाकी सभी कत्तिनोंने आमतौर पर इस प्रथा को सहर्ष और सहज भाव से स्वीकार किया है।

२. कत्तिनोंने केवल साड़ियां ही नहीं, बल्कि धोतियां, दुपट्टे, दुशाले, छींट, कमीज और कोट आदि की खादी भी खरीदी है, जो इस बात का प्रमाण है कि उनके घरों में भी खादी बरती जाने लगी है।

३. कत्तिनें अपना सूत नियमित रूप से केन्द्रों में लाती रही हैं और अपनी रकम के अढाई पेटे सूत की कीमत का कुछ भाग कार्यालय में सहर्ष कटवाती रही हैं। इस प्रकार पिछले १० महीनों में जो लेन-देन हुआ है, उसमें जितनी कीमत का कपड़ा कत्तिनों के हाथ बेचा गया है, उसका केवल १२% प्रतिशत अभी उनसे वसूल लेना निकलता है, बाकी सब वसूल हो चुका है।

४. सन् १९३४ के नवम्बर से अबतक कारीगरों में करीब ९००) की खादी बेची गई है, जो कुल उत्पत्ति के एक पंचमांश के बराबर है। इसे देखते हुए सहज ही आशा की जा सकती है कि अगले वर्ष कारीगरों द्वारा इससे दुगुने मूल्य की खादी तो सहज ही खरीदली जायगी। इसी प्रकार तगादूर केन्द्र में अबतक कुल उत्पत्ति के दसवें भाग, यानी ८००) की खादी कारीगरों द्वारा खरीदी गई है।

५ शुरू में यह भय था कि इस नई प्रथा के कारण कई कत्तिनें कातना छोड़ देंगी। किन्तु सौभाग्य से बदनवाल केन्द्र आज ऐसी स्थिति में है कि जिससे यह भय मिथ्या सिद्ध हो चुका है, यानी इस वर्ष उसकी बिक्री बढ़ी है। और सच तो यह है कि अपनी ही मेहनत से अपने कपड़े का प्रबन्ध कर लेने की इस नई प्रथा की स्वयं कत्तिनोंने भी कदर की है और वे इससे अधिकाधिक लाभ उठाने लगी हैं।

ऊपर के इस विवरण से इतना तो स्पष्ट ही है कि अपने कारीगरों को खादी पहनाने के सम्बन्ध में चर्खा-संघ के उक्त प्रस्ताव में दी गई सूचनाओं का पालन करने में बदनवाल और तगादूर केन्द्रों को कोई कठिनाई नहीं होगी।

कर्णाटक के दूसरे भागों में खादी-कार्य करनेवालों के हितार्थ नीचे इन केन्द्रों की परिस्थिति से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ और भी बातें दी जाती हैं। आशा है, कार्यकर्त्ता उनपर ध्यान देंगे।

१ बदनवाल और तगादूर केन्द्र की प्रायः सभी कत्तिनें मध्यम श्रेणी के किसान-पेशा परिवारों से आती हैं, जिन्हें अपनी आजीविका के लिए कताई पर निर्भर नहीं करना पड़ता। इनमें कोई १० प्रतिशत ही ऐसी होंगी, जो कताई से अपना पेट पालती हैं। धारवाड़, बेलगाम और बीजापुर जिलों की कत्तिनें भी इन्हीं मध्यम श्रेणी के किसान-पेशा परिवारों की होती हैं, जो अतिरिक्त आय की दृष्टि से कातने लगी हैं। इस प्रकार यद्यपि कत्तिनों को अपनी आजीविका के लिए कताई पर ही निर्भर नहीं करना पड़ता है, तथापि इसका यह आशय नहीं निकलता कि यदि उनसे बदलौन की रीति से खादी खरीदने को कहा जायगा, तो वे कातना ही छोड़ देंगी।

२ बदनवाल और तगादूर केन्द्रों में कत्तिनें स्वयं ही अपना कपास खरीदती हैं। और यद्यपि कपास की खेती करनेवाले परिवारों की संख्या कुल कातनेवाले परिवारों की संख्या के २५ प्रतिशत जितनी ही है, तथापि प्रायः कत्तिनें गांवों में से कपास खरीदना ही लाभदायक समझती हैं। इस कपास को वे स्वयं ओट और धुन लेती हैं।

३. यहां कत्तिनें आम तौर पर २० से ४० नंबर तक के मिल के सूत की ७॥ गजी और ४२ इंची साड़ियां पहनती रही हैं। खादी की साड़ियां उतनी ही लम्बी-चौड़ी १२ से १५ नंबर के हाथकते सूत की बनती हैं। यद्यपि इन साड़ियों के कुछ मोटी और खुरदरी होने की शिकायत शुरू में रही थी, किन्तु अनुभव से कत्तिनें अब यह जान गई हैं कि इन साड़ियों का रंग टिकाऊ होता है और मिल की साड़ियों के मुकाबिले में ज्यादा भी चलती हैं।

एच० एस० कौजलगी

हरिजन-सेवक

शनिवार ११ जनवरी, १९३६

स्वेच्छा से लादी हुई गरीबी

जब किसी जाति या राष्ट्र के लोग अपने आहार के लिए ऐसे अनिष्ट-पथ पर चल पड़ते है जो उन्हे स्वत. गरीबी की ओर ही ले जाय, तो उससे इतनी अधिक हानि होती है जितनी किसी विदेशी सत्ता-द्वारा किये गये किसी निर्दयतापूर्ण कार्य से भी नही होती। दुर्भाग्यवश हमारे बंगाल की भी ऐसी ही दशा हुई है। चावल हमारा मुख्य आहार है। इसीपर अनेक पीढ़ियों से हमारे स्वास्थ्य, बल, स्फूर्ति एव बुद्धि का बहुत-कुछ दारोमदार रहा है। लेकिन अचरज की बात यह है कि हमारे यहा, खासकर हमारे ऊँची श्रेणी के लोगो में, मूर्खता की ऐसी विनाशक महामारी फैल गई है कि हम अपने इस मुख्य आहार का बहुमूल्य पौष्टिक अश नष्ट हो जाने देते है। जिस तेजी के साथ धान-कुटाई के कारखाने सारे प्रान्त मे फैलते चले जा रहे हे, उसके कारण लोगो के मुख्य आहार मे से पौष्टिकता का अश लगातार कम होते हुए, मलेरिया तथा प्राणनाश करनेवाली अन्य बीमारिया भयावह रूप से सर्व-साधारण की शक्ति का क्षय करती जा रही हैं। रोजमर्रा हम जो चावल खाते है उसका पौष्टिक अश हम माड के रूप मे ही नही निकाल देते, बल्कि बडी-बडी मशीनो से उसकी कुटाई और पॉलिश करवाकर उसके अत्यन्त महत्वपूर्ण अश को ही खो देते हैं। यह दुर्भिक्ष का ऐसा रूप है जिसे जबरदस्ती हमने अपने ऊपर लाद रखा है और जो लोग पहले ही शुद्ध दूध-घी के अभाव मे कष्ट पा रहे है उन्होंने जान-बूझकर इसे अपनाया है। इसके फलस्वरूप जो बीमारियां हुई उनमे से 'बेरी-बेरी'ने खास तौर पर बगालियो को अपना शिकार बना लिया है, लेकिन अभी भी वे लापर्वाह है और इससे कोई शिक्षा नही ले रहे है। मुझे बताया गया है कि इस नाशक बुराई को कानून के द्वारा रोकने की बात उठी थी। मुझे इसकी खुशी है कि वह बात कामयाब नही हुई, क्योंकि सर्वसाधारण कोई ऐसे बच्चे तो है नहीं, जिन्हे अपनी निरी बेवकूफी से बचने के लिए रात-दिन पहरेदार नर्सों की जरूरत हो। यह तो हमारा ही काम है कि अपनी बुद्धि का उपयोग करके, समझदारी के साथ, हम अपने लिए ऐसे आहार का चुनाव करे जो स्वादिष्ट के साथ ही पोषक भी हो। लोगो को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि गेहूँ पीसने की चक्की, तैल पेरने का कोल्हू और धान कूटने की ओखली के देशी साधनो को छोडकर हम कल-कारखानो की शक्ति से काम लेंगे तो अन्त में, कुल मिलाकर, वह हमे महँगी ही पडेगी। स्वास्थ्यप्रद आहार से जो शारीरिक शक्ति प्राप्त होती है वह स्वय तो मूल्यवान् है ही, किन्तु इस दृष्टि से उसका और भी महत्व है कि उससे मनुष्य की उपार्जन-शक्ति भी बढती है। फिर हमें अपने ग्रामो के आर्थिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकता पर भी ध्यान रखना होगा, जिसमें लोहे के कारखाने-रूपी दानवोंने बडी निष्ठुर बाधा उपस्थित कर दी है। गावों की स्त्रियों को अपने गुजारे की जो स्वाभाविक सुविधाएँ थीं उन्हें इसने उनसे छीन लिया है और श्रमजीवी वर्ग को उस अधिकार से वंचित कर दिया है जो लोगों के सुखी-सम्पन्न जीवन से सादगीके साथ अपना भरण-पोषण करने का उन्हें था। काफी समय से ऐसी बाधाएँ पड़ती आ रही हैं, जिसके फलस्वरूप ग्राम-जीवन का क्षेत्र सिंचाई की पुरानी पद्धति के उठ जाने से शुष्क होकर मरुस्थल-सा हो रहा है, और हमारे गांवों की यह दशा हो रही है कि जहा जाते हैं वहां अभाव और दरिद्रता ही दिखाई देती है। क्या यह आशा करना बहुत बड़ी बात होगी कि बंगाल में स्वयसेवको का एक ऐसा दल संगठित हो, जिसके सदस्य गम्भीरता-पूर्वक इस बात की प्रतिज्ञा करले कि हम अपने भोजन में ढेकी का कुटा हुआ चावल ही खायेंगे और मांड के रूप में उसके पोषक अंश को व्यर्थ नही फेंक देंगे? क्या वे यह नही समझ सकते कि यह हमारे राष्ट्र का दुर्भाग्य है, जो आत्म-हत्या का यह घातक तरीका अपने घरो में जारी करके हममें से अधिकांश लोग इसे कायम रख रहे हैं?

'हरिजन' से] रवीन्द्रनाथ ठाकुर

हिन्दुओं को नैतिक चुनौती

डाक्टर अम्बेडकरने जब से हिन्दू-धर्म त्यागने का अपना निश्चय प्रगट किया है तब से चारो तरफ एक तहलका-सा मच गया है। हिन्दूजाति पर आज सदियों से आफत आ रही है और कब इसका अत होगा, इसका कोई ठिकाना नही है। पर हिन्दू-जन-समाज मे जैसी सामुदायिक जागृति आज दिखाई देती है, वैसी शायद सैकडो वर्षों में भी न देखने मे आई होगी। इसी-लिए इस चोट से सार्वजनिक खलबलाहट-सी दिखाई देती है और हिन्दू-नेता जी-जान से इस फिक्र मे है कि अम्बेडकर हिन्दू नाम को न छोडे। किसी एक आर्यसमाजी सज्जनने तो यहांतक कह डाला है कि यदि अम्बेडकर के कोई सुपुत्र हो तो वे अपनी लडकी उसे ब्याह देने को तैयार है। अन्य सज्जन हिन्दू-धर्म की महत्ता दिखाते हुए अम्बेडकर से धर्म-त्याग न करने की प्रार्थना करते है। सुना है, पूज्य मालवीयजी अम्बेडकर को समझाने जानेवाले है, पर इसका कोई फल होगा, ऐसी उम्मीद करना बेकार है।

ईसाई, मुसलमान आदि भी अम्बेडकर का दरवाजा जोरों से खटखटा रहे हैं और उन्हे अपने-अपने धर्म की महत्ता दिखा रहे है। क्या हिन्दू, क्या ईसाई और क्या मुसलमान सभी यह समझ बैठे है कि जहां एक अम्बेडकरने धर्म छोडा, लाखों हरिजन हिन्दू-धर्म को तिलाञ्जलि दे देंगे और हिन्दुओं को जिस बात का भय है वही बात ईसाई और मुसलमानों के लिए आशा की किरण है। इसलिए हिन्दू एक तरफ और अन्यधर्मी दूसरी तरफ। इनके बीच काफी खींचातानी है।

दोनों पक्षवाले खाहमखाह धर्म की महत्ता दिखाते हैं। धर्म तो—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

यह है। और यह कहना चाहिए कि जिसमें ये दस लक्षण पाये जायँ वही भागवत, आर्य या हिन्दू है। इसी तरह मुसल्लम-बा-ईमान (पूर्ण धार्मिक) ही मुसलमान कहलाना चाहिए। पर आज तो ये सब बातें पोथी-पत्रोंतक ही सीमित हैं। न तो इन दस लक्षणों की कसौटी पर कसे जाने के कारण ही कोई हिन्दू कहला सकता है और न मुसलमान कहलाने के लिए मुसल्लम-बा-ईमान होने की जरूरत है। हिन्दू, मुसलमान आदि शब्दों की परिभाषा

तो अब समाज-विशेषतक ही परिमित है। अम्बेडकर को भी कोई आध्यात्मिक उधेड़-बुन नहीं है, जो अन्वेषण करने में लगे हों कि इन दस लक्षणोंवाला धर्म श्रेष्ठ है या इस्लाम। उन्हें तो 'हिन्दू' नाम अखरता है और वे उसे छोड़ने की फिक्र में हैं। हमें भी इसी बात की फिक्र है कि वे बराय नाम भी हिन्दू बने रहें, चाहे उसमें सत्य मैं रहे, चाहे जाय। संख्या बनी रहे, यही चिंता है; और यह तृष्णा यदि स्वच्छ हो तो कोई अनुचित भी नहीं है। "षण जीतेरे राजिया"। "कलौ संघशक्ति"। पर क्या इस कूद-फांद या बेतुकी बौखलाहट से हमारी संख्या बढ़ सकती है, अथवा जितनी है उतनी भी कायम रह सकती है?

दुःख के साथ कहना पड़ता है कि अम्बेडकर की इस चुनौती से जहां उत्तेजना भरपूर है, वहां शांत और सुस्पष्ट सूझ का दीवाला-सा दिखाई पड़ता है। एक रोगी की जान बचाने के लिए पचासों उपचारक भिन्न-भिन्न दवाइयां लेकर उसे पिलाने का हठ करें तो रोगी के रहे-सहे दिनों का भी खातमा ही समझना चाहिए। एक बहुत बड़े बांध में, जो चलनी की तरह छिद्रोंवाला हो गया हो और जिसमें से फुहारे बड़े जोर से फूट रहे हों, निकलते हुए पानी को लोटों-लोटों भर-भरकर रोकने का प्रयास करना हास्यास्पद ही होगा। इस सम्बन्ध की हमारी क्रिया भी कुछ वैसी ही है। अम्बेडकर को भीतर रखने की जितनी चिंता हो रही है, उसका शताश भी हिन्दू-शरीर को स्वस्थ करने की नहीं। प्रेमरम्मत हिन्दू-समाज-रूपी घर चाहे अम्बेडकर को रख ले, तो भी वह और लाखों अम्बेडकर खो बैठेगा। हमारी संख्या का आधार हिन्दू-जमात के सुधार पर ही अवलम्बित है।

आश्चर्य तो यह है कि ऐसे विकट समय में भी हम वस्तु-स्थिति को देखने से इनकार कर रहे हैं। आजतक हजारों विधवाएँ, अनाथ और हरिजन विधर्मी बन गये हैं और बनने जा रहे हैं। मैं एक भी ऐसे नव-विधर्मी को नहीं जानता जिसने कुरान या बाइबिल पर आशिक होकर चुटिया कटाई हो। किसी ऐसे समाज-परित्यक्त से पूछिए, वह बतायेगा कि हिन्दू-समाज को उसने नहीं, किन्तु समाजने उसे त्याग दिया है। फिर अम्बेडकर के इस निश्चय पर इतनी घबराहट क्यों? और यदि रोग से मुक्त ही होना अभीष्ट है तो हम यह क्यों नहीं देखते कि अम्बेडकर भी उसी पुरानी लकीर पर जा रहे हैं जिसपर से करोड़ों हिन्दू त्रस्त होकर हिन्दू-समाज को तिलाञ्जलि देते हुए गुजर गये हैं। जब कोई लड़की मुसलमान-द्वारा भगाई जाती है तब हमें मुसलमानों पर रोष आता है, पर क्यों नहीं हम अपनी नालायकी पर रोष करते जो उस भगाई गई लड़की के भगाये जाने की जिम्मेवार थी?

कुछ वर्षों की बात है। एक मारवाड़ी लड़की को एक मुसलमान भगाकर ले गया। समाज को काफी रोष हुआ। खिलाफत का जमाना था, इसलिए यह मसला मुसलमान-नेताओं तक पहुँचाया गया। उन्होंने धारमाशरमी में आकर कुछ मदद भी की, पर लड़की के जब वापस आने की आशा बंधी तब सबके चेहरों पर स्याही दौड़ गई। सवाल यह हुआ कि उस लड़की को उसके घरवाले रख सकते हैं या नहीं? पंचोंने व्यवस्था दी कि वह घर में नहीं आ सकती। नौजवानोंने रोष दिखलाया, पर उनकी एक न चली। आखिर वह लड़की नहीं आई, वहीं अपघात करके मर गई। हिन्दू-समाजने यह साबित कर दिया कि लड़कीने हमको नहीं, किन्तु हमने लड़की को छोड़ा। यह पन्द्रह वर्ष की बात हुई। आज भी किसी विधवा-आश्रम में जाकर वहां रहनेवाली किसी विधवा का इजहार लीजिए। कुछ ऐसी ही कथा सुनने को मिलेगी।

पर अब कुछ तुरत-ताजा बानगी भी देखिए। वर्धा के पास एक छोटा-सा सिंदी ग्राम है। वहां मीरा बहन (मिस स्लेड) ने ग्रामोत्थान का कार्य प्रारंभ किया। वहां वे एक छोटी-सी झोपड़ी बनाकर रहने लगीं। जब पहले-पहल वहां पहुँची तब कौतूहलवश लोग इकट्ठे हो गये और उनसे तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगे। पानी की जरूरत पड़ी, तब एक नौजवान पानी ले आया और घड़े में पानी डालकर चला गया। पर यह कौतूहल कबतक ठहरता? आखिर दूसरे दिन मीरा बहन को पानी की जरूरत पड़ी तब घड़ा लेकर कुएँ पर पहुँची। जिन चेहरों पर पहले मैत्री का प्रकाश था वही आंखें दिखाने लगे और बोले— "आप यहां पानी नहीं निकाल सकती, पानी चाहिए तो अपना अलग कुआं बनवालो"। एक बनिये के कुएँ पर गई, महारों (हरिजनों की एक उपजाति) के कुएँ पर गईं, मांगों (हरिजनों की एक दूसरी उपजाति) के कुएँ पर गईं, पर मीरा बहन के घड़े को कुएँ में डलवाकर कुआं कौन अपवित्र करावे! गांववाले मीरा बहन की प्रार्थना में आते हैं, अपना दुःख-दर्द सुना जाते हैं, पर अपने कुएँ में मीरा बहन का घड़ा नहीं जाने देते। मीरा बहन दवा देती हैं तब सब लोग ले जाते हैं; ब्राह्मण भी ले जाते हैं, पर दवा बिना स्पर्श किये ऊपर से डालनी पड़ती है, नहीं तो ब्राह्मण अपवित्र हो जाय! मीरा बहन कितना ही उपकार क्यों न करें, पर पानी नहीं मिलने का। अम्बेडकर के जाने से हमारा समाज नहीं डूबेगा, पर यह सुलूक है जो हमारे समाज को डुबो देगा।

जो हमारी संख्या कायम रखना चाहते हैं उन्हें अक्ल से काम लेना चाहिए। चाहे एक हिन्दू लड़की मुसलमान-द्वारा भगाई जाय या एक लावारिस धोखे में मुसलमान बना लिया जाय, चाहे एक हरिजन प्रलोभन से ईसाई बन जाय अथवा अम्बेडकर हिन्दू-समाज को तिलाञ्जलि देने का निश्चय करें, यह सब एक ही रोग के भिन्न-भिन्न लक्षण हैं। जानेवाले खुद नहीं जा रहे हैं, उन्हें हम भगा रहे हैं। हिन्दू-घर को हमने हरिजन, विधवा, अनाथ और जाति-बहिष्कृतों के लिए रहनेलायक नहीं रखा, ऐसी हालत में जो हो रहा है वह अनिवार्य है। संख्या कायम रखना है तो अम्बेडकर को या किसी अन्य बाहर जानेवाले को रोकने से नहीं, अपने घर की सफाई करने में ही तात्पर्य सिद्ध होगा। कलेजे को चाक करके सांस को कायम रखने का प्रयास करना मूर्खता नहीं तो क्या है?

हिन्दू-समाज का भला हो यदि अम्बेडकर के इस निश्चय से हमें कुछ सबक मिले। क्या हम अम्बेडकर को भूलकर समाज की सफाई में नहीं लग सकते? सौ कथनी से एक करनी हजार बार अच्छी है, पर इस समय तो केवल फिजूल का हो-हल्ला है, इसमें करनी का नितान्त अभाव है।*

घनश्यामदास बिड़ला

धर्माचरण और धर्मान्तर

अन्तःराष्ट्रीय धर्म-सहकारिता-सम्मेलनने गांधीजी के साथ बातचीत करने का जो आनन्द-लाभ छोड़ दिया, उसमें उसने

* 'सरस्वती' से उद्धृत

बहुत ही विवेक के साथ काम लिया। सम्मेलन के सदस्य हमारी प्रार्थना के समय आये, उन्होने भजन सुनाये, किन्तु बातचीत करने की जरा भी इच्छा प्रगट नही की। गांधीजी से वे एक दिन सबेरे जब मिले, तब उन्होंने गाधीजी को हरिजनो के लिए एक छोटी-सी थैली दी और कहा कि, 'हम लोग यह आशा लेकर नही आये है कि आप हमारे साथ बाते करें।'

उन्होंने यह भी अच्छा किया कि अपने मेहमानदार या मेहमानदारो को अपने वाद-विवाद मे पूरी तरह से भाग लेने के लिए बुलाया। सबसे अधिक, तो भी तथापि स्वभावसिद्ध विनय से भरा हुआ भाषण जमनालालजी का था। उन्होने कुछ ऐसे प्रश्न पूछे, कि जिनका उत्तर देना उन लोगो को मुश्किल हो गया। हिन्दुस्तानी मे बोलनेवाले केवल जमनालालजी ही थे, लेकिन उनकी सरल और जोरदार हिन्दी में ऐसा आकर्षण था कि बाकी के हम सब लोग अग्रेजी मे व्याख्यानबाजी करके भी उनके आगे निस्तेज-से पड गये। जमनालालजीने कहा कि, 'हिन्दी में बोलने के लिए मुझे क्षमा मांगने की जरूरत नही; क्योकि इस देश मे यदि सच्चा धर्म-बन्धुत्व आप लोगो को पैदा करना है तो आपको हिन्दी जाननी चाहिए। मै तो सारी जिन्दगी व्यापारी रहा हूं, इसलिए मैने भिन्न-भिन्न धर्म-मजहबो का अध्ययन नही किया, अपने धर्मग्रन्थों का भी मुझे बहुत विस्तृत ज्ञान नही। इसलिए मेरी दृष्टि मे तो धर्म का अर्थ है 'व्यवहार मे उसका आचरण, अमुक धर्म के अनुयायियो का अन्य धर्मावलम्बियो एव समस्त मानवजाति के प्रति बर्ताव।' मुझे यह दुःख के साथ कहना पड़ता है कि मुझे अपने धर्म के अनुयायियो के आचरण से जितनी निराशा हुई है उससे कम निराशा ईसाइयो के आचरण से नही हुई। साधारणत. ईसाइयो की, और विशेषत पादरियो की कार्य-पद्धति के सम्बन्ध में काफी सन्देह हो सकता है।" यह उनके भाषण का साराश है। उन्होने कुछ राजनीतिक आधारो की चर्चा भी की, किन्तु वह इस अराजनैतिक पत्र मे नही दी जा सकती। मगर जमनालालजीने सम्मेलन के आगे कुछ काफी कठिन पहेलिया रख दी, जिनका कोई जवाब नही दे सका।

ऐसे ही कूट प्रश्न श्री कुमाराप्पा के थे। उनके भाषण में कटुता की अपेक्षा दु.ख अधिक था। एक ईसाई की हैसियत से अपने सहधर्मियो को डांटने के अधिकार का उपयोग करके उन्होने स्पष्टतापूर्वक कहा कि, "हमारी परीक्षा इससे नही होनी है कि हमने कितने मनुष्यो को ईसाई बनाया, किंतु इससे होनी है कि मानव भाई-बन्धुओ के साथ हमारा बर्ताव कैसा रहा है। हमारे धर्मशास्त्र में ईश्वरने कहा है—'मै भूखा था और तूने मुझे खाने को नही दिया; मै प्यासा था और तूने मुझे पानी नहीं दिया; मै अजनबी था और तूने मुझे घर में ठहरने नहीं दिया, मै नगा था, और तूने मुझे वस्त्र नही दिया, मै बीमार और बदी था, और तू मुझे देखने नही आया।" इस वचन* के सबंध में श्री कुमाराप्पाने उन हजारो आदमियो के बारे मे कहा, कि जिन्होने जेलों में जाकर और बाहर स्वतंत्रता-संग्राम में कष्ट झेले है, और पूछा—"जो लोग भारत की सेवा करने यहा आये हैं उन्होने अत्याचार-पीड़ितों के साथ कष्ट-सहन करने की बात तो दर-किनार, अत्याचारी के विरुद्ध क्या विरोध की आवाज भी उठाई है?" धर्मान्तर के संबंध में ऐसा लगा, मानो उन्होने बाइबल की भाषा में यह पूछा—"क्या हमें ज्ञान-द्वारा प्राप्त नवजीवन मिल गया है? इस स्थिति में ग्रीक या यहूदी, सुन्नत या गैर सुन्नत, जंगली या सीथियन, बदी या मुक्त जैसा कोई भेद नहीं, सब क्राइस्ट है और क्राइस्टमय ही है। इसलिए ईश्वर के पवित्र और प्रिय भक्त बनकर दया, करुणा, नम्रता, आर्जव और सहन-शीलता धारण करो; एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता और क्षमा-वृत्ति रखो, और इस सब के अतिरिक्त हृदय की उदारता अवश्य रखो; यही पूर्णत्व की साधना है।" इसका भी कोई जवाब नही मिला।

जिन दिनो यह धर्म-सहकारिता-सम्मेलन वर्धा मे हो रहा था, ठीक इसी समय नागपुर में कैथलिक ईसाइयो की परिषद् हो रही थी। हमारा यह खयाल था कि वह जमाना अब गया जब पुराने ढग के पादरी दूसरे धर्मों को गालियां दिया करते थे। कुछ वर्त्तमान पादरियो का सचमुच ऐसा दावा है। मगर श्री जोसफ के भाषण का एक स्तोपम अंश यह है—"मै यह नहीं चाहता कि कोई भी मनुष्य उद्दण्डता या लड़ाई-झगड़ा करे, पर इतना तो साफ-साफ समझ लेना चाहिए कि पादरी यहां जो आये हैं उसका कारण यह है कि यह देश जिस हीन धर्म मे डूब गया है वह धर्म मिथ्या है, और जो मिथ्या है वह नष्ट ही हो जाना चाहिए, और उसके स्थान पर सन्मार्ग, सत्य, सद्धर्म की स्थापना होनी चाहिए।" उन्होने कैथलिको से 'जाग्रत रहकर विरोधी' वृत्ति धारण करने की प्रार्थना की, अत उनके भाषण के वाक्य यदि विरोधी वृत्तिवाले विषयो से लबालब भरे हो तो इसमें कोई आश्चर्य नही। किंतु उनके निम्नोद्धृत अंश में उनकी जो अज्ञान-भरी धृष्टता दिखाई देती है, वह तो उनके दूसरे तमाम वचनों को लाघ जाती है—"हमने सुना है कि हिंदूधर्मने अन्य धर्माव-लंबियो को उनके कल्पित धार्मिक कर्त्तव्य का पालन करने की छूट देदी है, इतना ही नही, बल्कि उन्हे इस काम मे मदद देने को भी कहा है..........इसलिए हिंदू-नेताओ से हम यह आशा रखते हैं कि ईसाइयो के धार्मिक कर्त्तव्य मे यदि हिंदुओ को ईसाई धर्म में मिलाने का समावेश होता हो तो उस कर्त्तव्य को पालने मे ईसाइयो को सहायता देना हिंदुओं को अपना धर्म मानना चाहिए।" यह तो ऐसी बात हुई कि कोई लुटेरो या हत्यारों का दल जिस अहिंसक जनसमूह को लूटने या मार डालने की धमकी देता है वह जनसमूह उनके विरुद्ध हलके-से विरोध की आवाज उठाता है, इसलिए वे लुटेरे या हत्यारे गुस्सा हो जाते है! यह सज्जन यह चाहते है कि उस अहिंसक जनसमूह को अपनी लूट या हत्या होने में सहायता ही करनी चाहिए!

ऐसे मनुष्योंने धर्मान्तर की जो व्याख्या दी हो उसका गम्भीरता-पूर्वक विचार करना ही नही चाहिए। किन्तु वर्धा के सम्मेलन में कुछ सज्जन ऐसे थे, जिनका आग्रहपूर्वक यह कहना था कि धर्मान्तर कराने का हमें अधिकार है। इसके समर्थन में उन्होने जो व्याख्या दी उससे उनके कथन का समर्थन नही होता था। "ईश्वर-हीन जीवन में से ईश्वर की ओर गमन" इस व्याख्या को सहज मे स्वीकार कर सकते है, किन्तु इससे क्या यह सिद्ध होता है कि किसी मनुष्य को दूसरे व्यक्ति अथवा जातियों को चाहे जिस तरह अपने धर्म में कर लेने का अधिकार है? इस व्याख्या के अनुसार तो यह चीज मनुष्य के हृदय-परिवर्तन की होनी चाहिए। बाइबिल के जिस वाक्य में बालकों की निर्दोषता धारण करने की बात कही है, (जिसका नाम ही सच्चा नवजीवन या 'द्विजत्व' है) उसमें

उसका भी यही अर्थ है कि "तुम जबतक जीवन नहीं पलटोगे और नन्हे-नन्हे बच्चो-जैसे नही बनोगे, तबतक तुम्हारा स्वर्ग राज्य में वेश होने का नहीं।" उपनिषद की यह महान् प्रार्थना भी जीवन-परिवर्तन की प्रार्थना है—"असत् में से मुझे सत् में ले चल, अंधकार से प्रकाश में ले चल, मृत्यु से अमृत में ले चल।" यह परिवर्तन तो एक ईश्वर ही कर सकता है; और व्यक्ति तो सत्य, प्रकाश और अमृतमय जीवन बिताकर इसमें अपने से जो हो सके बस उतनी ही सहायता कर सकते हैं। इसीसे गांधीजीने विश्व के धर्म-सहकारिता-सम्मेलन को यह लिख दिया था कि—"मैं अपने जीवन-द्वारा सन्देश न भेज सकू, तो लेखनी-द्वारा क्या सन्देश भेज सकगा? अभी तो इतना ही बहुत है कि ईश्वर को जो जीवन रुचिकर लगे उसे बिताने का मुझे प्रयत्न करना चाहिए।"

'हरिजन' से] **महादेव ह० देसाई**

आंध्रदेश की एक झलक

चावल, चावल—जहा देखो वहां चावल। खेतों में चावल, हाट-बाजार मे चावल, थाली में चावल—चारो ओर चावल ही चावल की माया! बेचारे रोटी खानेवाले की तो मुसीबत ही है! फिर भी आंध्रदेश कैसा सुरम्य देश है, और यहा के लोग कितने प्रेमी और उत्साही हैं।

आंध्र यों तो मैं कितनी ही बार गई हूँ, पर अब की बार, यद्यपि मैं एक ही हफता वहां रही, मैंने उसे पहले से कहीं अधिक अच्छी तरह देखा। कारण इसका यही है कि मोटरो की सवारी छोड़कर अब की बार मैं अधिकतर पैदल ही वहा घूमी, घोडे या बैलगाडी की तो कहीं-कहीं ही मदद ली।

कृष्णा डेल्टा के गांव पहले के मुकाबले में यद्यपि आज कंगाल हो गये हैं, तो भी भारतीय ग्रामों के वे आज भी खासे अच्छे नमूने है। वहा सुन्दर कलामय घर हैं, पत्थर के सुन्दर मन्दिर है, पाठशालाएँ है और पुस्तकालय है। मगर अफसोस! हरिजनो की बस्तिया जैसी होनी चाहिए थीं वैसी नहीं हैं। लेकिन फिर भी और जगहो मे तो वे अच्छी ही हैं। कई गावो मे, जहा मैं गई, हरिजनो के लिए मन्दिर खुल गये हैं, और मैं एक **भंगिन**, जो सिदी गाव मे मांग लोगो के भी कुएँ से पानी नही भर सकती, इन मन्दिरो मे जा सकी, पूजार्चा देख सकी और भगवान् का प्रसाद ले सकी।

इन गावो से प्रोत्साहन और यहा के उदात्त कार्यकर्ताओ से एक प्रकार की प्रेरणा मिलती है।

एक हफते का समय होता ही कितना है? उसमें भी मैंने इतनी जगहें देखीं और इतने लोगो से मिली कि हरेक चीज का याद रखना सम्भव नही, और अगर याद भी रख सकू तो इस छोटे-से लेख में उन सब बातो को लिखना असम्भव ही है। वहां सार्वजनिक सभाएँ और प्रदर्शनियो के उद्घाटन तो हुए ही, पर सबसे अधिक प्रभाव तो मेरे मन पर श्री सीताराम शास्त्री के विनयाश्रम के सेवकों का, श्री सुब्रमण्यम् के आश्रम और गावों का, और गुनडाला के खद्दर-संस्थान की सुव्यवस्था का पड़ा। अनेक प्रकार की प्रवृत्तियों में मैंने वहां धान की हथकुटाई, ताड़ का गुड़ बनाना, टोकरियां, पंखे, खिलौने, मिट्टी के बरतन आदि बनाना और बढ़िया कताई और बुनाई की कला देखी।

आंध्र के सुन्दर गांवों में होकर जब मैं जाती, तो वहा की सफाई वगैरा मैं जरूर देखती थी। गांवों के अन्दर तो सफाई बुरी नहीं थी, पर सरहद तो हर जगह गदी ही नजर आई। मुझे जहां भी मौका मिला, सफाई के इस प्रश्न पर विस्तारपूर्वक अच्छी तरह चर्चा करने से मैं कभी चूकी नहीं। यद्यपि इस दिशा में अभी कुछ हुआ नही, तो भी मैंने देखा कि इस प्रश्न में लोग रस खूब लेते है, और इसका महत्व भी समझते है।

जिस दिन ये गाव खूब साफ-सुथरे रहने लगेंगे, और हरिजन-बस्तियां अन्य बस्तियो की जैसी हो जायँगी, उस दिन ये निश्चय ही सच्चे सौन्दर्य के नमूने बन जायँगे।

'हरिजन' से] **मीरा**

मशीन और बेकारी

आज संसार के सामने सबसे बड़ी गभीर समस्या समाज की अनेक श्रेणियो के लोगों में बढती हुई बेकारी की है, जो सिर्फ रूस को छोड़कर बाकी सभी देशों की सरकारों को बेकारो की सहायता के कोष खोलने के लिए मजबूर कर रही है। हालाकि हिंदुस्तान मे सरकार की ओर से बेकारो की सहायता का कोई तरीका अख्तियार नही किया गया है, मगर बेकारी की समस्या यहां भी जटिल होती जा रही है। दो प्रान्तों मे स्थानीय सरकारो द्वारा स्थापित उपसमितिया नगर-निवासियों की बेकारी की व्यापकता की जाच तथा बेकारो की सहायता का तरीका खोज रही हैं। गांवों मे तो बेकारी सदा ही रही है, यद्यपि इस ओर लोगोंने ध्यान प्राय नही दिया है। और इसके साथ ही वहां सदा रहनेवाली अर्द्धबेकारी का भी प्रश्न है। भारतीय शाही कृषि-कमीशनने, जिसने इस प्रश्न पर कुछ ध्यान दिया था, कहा था कि भारत के किसानों का आधे से कहीं अधिक हिस्सा साल मे २ से ४ महीने तक बिल्कुल बेकार बैठा रहता है। हमारी बराबर बढती हुई जन-संख्या के कारण इस प्रश्न की गभीरता और भी बढ़ गई है। सन् १९३१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार भारत की जो जनसंख्या ३५ करोड आकी गई थी, लोगो का खयाल है कि अब वह ३७ करोड हो गई है। और कर्नल रसेलने भारत के सार्वजनिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध की अपनी रिपोर्ट में दृढ़तापूर्वक कहा है कि आगामी मर्दुमशुमारी के समयतक भारत की आबादी निश्चित रूप से ४० करोड से कहीं ज्यादा हो जायगी। इस बढती हुई आबादी को काम और रोटी देने का प्रश्न राष्ट्र की प्रमुख समस्याओं में स्थान रखता है और इसकी ओर तुरत ध्यान देना बहुत जरूरी है।

हमारे देश की यद्यपि आर्थिक अवस्था दूसरे देशो से कुछ भिन्न है, तो भी इस प्रश्न के सुलझाने में दूसरे मुल्कों के अनुभव से हम बहुत-कुछ सीख सकते हैं। हिन्दुस्तान मे ऐसे अर्थशास्त्रियों की कमी नही, जो इस बात की सिफारिश करते हैं कि समाज की इस दुरवस्था को दूर करने का उपाय जोरों के साथ सम्पूर्ण देश को मशीनमय कर देना है। वे इस बात को भूल जाते हैं कि मशीनो की अत्यधिक वृद्धि से बेकारी की समस्या दूर होने की अपेक्षा बेकारों की संख्या और भी अधिक बढ़ जाती है। अमेरिका के मजदूर-संघ के मुख-पत्र 'अमेरिकन फेडरेशनिस्ट' के अक्टूबर, १९३५ के अंक में हैरी कालकिन्स और फ्रैंक फिनीने "२२ करोड़ सहायता-कोष में क्यों?" नाम का एक लेख लिखा है, जिसमें उन्होंने यह दिखाने की कोशिश की है कि मशीनों की वृद्धि का

राष्ट्र के आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है। अमेरिका में मशीनो का प्रचार इतना अधिक है कि उससे अधिक की कल्पना इस समय मनुष्य का मस्तिष्क कर ही नही सकता। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका की उत्पादन-शक्ति संसार के अन्य १४ प्रमुख राष्ट्रो की उत्पादन-शक्ति के बराबर है और भारतवर्ष की अपेक्षा यह २५ गुनी अधिक है। पर क्या अमेरिकनो की इस अत्यधिक उत्पादन-शक्तिने उनकी समृद्धि को बढ़ाया है? उक्त लेखकोने बड़े जोर-दार शब्दो में इसका नकारात्मक उत्तर दिया है। परिश्रम को बचानेवाली मशीन के प्रयोग से परिश्रम की कीमत कम करने के प्रयत्न में अमेरिका के मिलमालिकोने वहा के लोगो की उनकी माल खरीदने की शक्ति ही कम करदी है। बराबर नई-नई परिश्रम बचानेवाली मशीनो के आविष्कार होते रहने के कारण अवस्था यहांतक पहुँच गई है कि आजकल वहां किसी मनुष्य के लिए शायद ही कुछ करने को रह गया है। यह बात आकडों से साबित हो चुकी है। आकडे हमे बताते है कि अमेरिका मे १९२९ में जितना काम १०० मजदूर कर सकते थे आज वही काम ७५ मजदूर कर लेते है। परिणाम यह हुआ कि साढे चार करोड काम करनेयोग्य आदमियो में से २५ सैकडे आज मशीन के प्रयोग के बाहुल्य के कारण बेकार बैठे हैं। इस तरह इस उन्नति के कारण इस समय १ करोड १५ लाख मनुष्य बेकार है, जिनकी सहायता के लिए ये कोष खोलने पडे।

उक्त लेखक कहते है कि अमेरिका को मशीनो से उस समय तो कुछ लाभ हो सकता था, जब संसार के दूसरे देशों को वह अपना माल लेने के लिए मजबूर कर सकता था। पर आज वह अपने अधिकार-क्षेत्र को और ज्यादा नही बढा सकता। इसलिए अमेरिका को विदेशी व्यापार की बात भूलकर पहले अपने घर का कष्ट ही दूर करना है। पार साल अमेरिका मे बेकारो की सहायता मे १७० खरब डालर खर्च किये गये और अगर सरकारी सहायता के अतिरिक्त इस बेकारी को दूर करने का कोई उपाय नही निकाला गया तो सहायता की इस रकम की तादाद, सभव है, इस साल और अधिक बढ जाय।

लेखकोने उक्त लेख मे इस समस्या को सुलझाने की जो बात सुझाई है वह बिलकुल नई है। जिन्हे 'परिश्रम बचानेवाली' मशीनें कहते हैं उन्हे उन्होंने दो हिस्सों में बाट दिया है। इनमे से कुछ को, जैसे, टाइप राइटर, रेडियो, फोटो-कैमरा, सोडावाटर की मशीन, मोटर, हवाई जहाज आदि, उन्होने परिश्रम की सृष्टि करनेवाला माना है। लेकिन टाइप सेटिंग मशीनें, बिजली, स्टीम आदि मे चलनेवाली मोटरे तथा खेती के या अन्य औजार, कपडे और जूतो की मिले, अर्थात् वे सभी मशीने जो अपने-आप काम करती है, परिश्रम को नष्ट करनेवाली है। इस दूसरे प्रकार की मशीनो में से निश्चित सख्या मे कुछ ही नष्ट कर दी जायँ तो, लेखको का विश्वास है कि जीवन की हरेक दिशा मे, प्रत्येक व्यापार-व्यवसाय मे मशीनो की बहुलता के कारण जो बेकार हो गये है उन्हें बिना किसी कठिनाई के काम मिल जाय। केवल परिश्रम-नाशक मशीनो को ही नही छोड देना होगा, बल्कि लेखको की राय है कि ऐसी मशीनों के लिए पेटेण्ट अधिकार भी भविष्य में किसी को न दिया जाय। यहां यह दलील पेश की जा सकती है कि इससे तो परिश्रम बचानेवाली मशीनों की उत्पत्ति करने-वाले बेकार हो जायगे। पर इस प्रकार की मशीन बनानेवालों की संख्या तो उनके प्रयोग से बेकार हो जानेवालों की तुलना मे कुछ है ही नही। लेखको का यह भी कहना है कि इस प्रकार की मशीनों का परित्याग कर देने से चीजो की कीमत पर भी कोई खास असर नही पड़ेगा। अनुभव बताता है कि मशीनो के कारण सामान की कीमत में कमी होने का लाभ ग्राहको को बहुत ही कम मिला है, उसके लाभ का अधिकांश भाग तो मिल-मालिको की ही जेब मे जाता है। ऐसा न भी हो तो भी लेखकों का विश्वास है कि जब-जब चीजो का दाम ज्यादा हुआ है, तब-तब लोगो के पास अधिक दाम देने के लिए पैसा भी बढ गया है और व्यापार मे खूब तरक्की हुई है।

लेखकोने इन बातो से यह नतीजा निकाला है कि वैज्ञानिक आविष्कार जहां एक ओर मनुष्य के साधनो को बढ़ाने में बहुत मददगार हैं, वहा दूसरी ओर मनुष्य पर प्रभुता जमाने पर, उसे गुलाम बनाने पर वे हमारा अनिष्ट ही करते है, और इसलिए राज्य और समाज का यह कर्त्तव्य है कि वे आविष्कारक शक्तियो को पथ-भ्रष्ट न होने दें। परिश्रम बचानेवाली उस मशीन को जो परिश्रम-नाशक है, कभी प्रोत्साहन नही देना चाहिए। यही नही, राज्य की ओर से नियमित आन्दोलन होना चाहिए जिससे लोगों को कृत्रिम नहीं बल्कि स्वाभाविक रोजगार मिल सके। लेखको का कहना है कि अगर मशीन को काम न देकर मनुष्यो को वह काम दिया जाय तो हमारे देश में सभी आदमियो के लिए पर्याप्त काम है, सभी भूखो के लिए काफी खाना है, और सभी के खुश रहने के पूरे साधन हैं। लोगो को फिर से खेतो मे भेजकर उन्हे अपनी आवश्यकता की चीजें पैदा करना सिखाना चाहिए और उसके साथ ही उन्हें व्यवसाय-सम्बन्धी हाथ से काम करने की भूली हुई कला भी सिखाने का प्रयत्न करना चाहिए। अपने अभिमान मे चूर इस सभ्यताने हमें जीविका के जिस मार्ग पर निर्भर रहना सिखाया है, उससे यह मार्ग कहीं अधिक अमली और ग्रहण करनेलायक है। अगर अमेरिका में बेकारी की बढती के साथ-साथ मशीनो की वृद्धिने वहां के सामाजिक विचारको को इस नतीजे पर पहुँचने के लिए प्रेरित किया है, तो भारत के लिए तो अभी समय है कि मशीनो और बेकारी की इन जुड़वा बहनो को, हमें आक्रान्त करके हमारे कष्टो को और भी बढा सकने के पहले ही वह आगे बढने से रोक दें। [इस अभिशाप से बचने के लिए एक व्यावहारिक योजना की जरूरत है, जैसी कि अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-सघ-द्वारा काम में लाई जारही है।

'हरिजन' मे] **वैकुंठराय ल० मेहता**

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करे। ग्राहक-नबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi, by R. S. Gupta.

विलासूचक घटनाएँ

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
किंग्सवे, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शनिवार, १८ जनवरी, १९३६. [संख्या ४८

विषय-सूची

गांवों में : किसलिए ?

ग्राम-उद्योग-संघ की स्थापना के बाद क्या सरकारी हल्कों में और क्या गैर-सरकारी भारत में ग्राम-सेवा की हवा बँध रही है। देशभक्त और दीन-भक्त अब यह जोर के साथ महसूस करने लगे हैं कि ग्राम-सेवा ही सच्ची देश-सेवा है, ग्राम-सुधार ही सच्चा देश-सुधार है, ग्राम-सभ्यता ही सच्ची भारतीय सभ्यता है। इसका अर्थ बाहरी आचार-विचार में सुघडता या सुन्दरता नही, बल्कि हृदय की सुन्दरता है, जिसका मूल हृदय की उज्वलता और पवित्रता में है। यह शहरो की अपेक्षा गांवो में निस्सन्देह अधिक है। एक ओर हम ग्राम-सभ्यता का और दूसरी ओर ग्रामो की वर्तमान दुर्दशा और दीनता का सच्चा चित्र हम गांवो में रहकर, गांवो मे बार-बार जाकर, उनके जीवन में अपने जीवन को मिलाकर ही अच्छी तरह देख सकते हैं। जो ३५ करोड की फिक्र रखना चाहते हैं उन्हे गांवों में बसे बिना, या ग्राम-सेवको की सेना गांवों में बसाये बिना, अभीष्ट-सिद्धि नही हो सकती।

परन्तु 'ग्राम-सेवा' मे जितनी मोहकता है उतनी सुगमता नही है। कठिनाइयो का पाणिग्रहण करके ही गावो में जाना उचित है। गांवों में यदि सत्य और श्रद्धा लेकर जायँगे तो सफलता निश्चित है; हां, समय जरूर लगेगा। यदि राजनीति और छल-प्रपञ्च लेकर जायँगे तो मानो अन्धे कुएँ में गिरेंगे। राजनैतिक ज्ञान एक वस्तु है और राजनीति दूसरी वस्तु है। ग्रामों मे हम ग्रामवासियो की सेवा के लिए जायँ, उनकी सेवा में अपना उपयोग देने के लिए जायँ; उनका उपयोग अपने भिन्न-भिन्न उद्देशों की पूर्ति में करने के लिए न जायँ। ग्रामों में हम ग्रामवासियों का 'उद्धार' करने के लिए भी न जायँ। हम जायँ उनकी सेवा-सहायता करके अपनी मनुष्यता को शुद्ध करने और उनकी मनुष्यता को विकसित करने। हम उनपर हुक्म चलाने के लिए भी न जायँ—क्योंकि इसके लिए तो ठेठ चौकीदार पटेल-पटवारी से लेकर बडे-बडे सरकारी हाकिम तक ही क्या कम हैं—उनसे सेवा लेने के लिए भी न जायँ; उनके कारकुन, शिक्षक, परिचारक, भंगी, और बुरा न मानें तो 'गुलाम' बनने के लिए जायँ। आप उनके डाक्टर, वैद्य, वकील, पुरोहित, महाजन कुछ न बनें—इनकी कमी उन्हें नही है, कमी है इनको देने के लिए आवश्यक पैसे की; आप तो उनके कुटुम्बी, उनके दुःख-दर्द के साथी, उनकी कठिनाइयों में सहारा बनने के लिए जायँ। वे उजड़ गये हैं, उन्हे आप बसाने के लिए जायँ।

यह तो आपको उन्हे देना है। उनसे लेना क्या है, इसका विचार बहुत कम ग्राम-सेवकोंने किया होगा। क्योंकि हमने तो अबतक अपने को देने का ही अधिकारी माना है। ग्रामों की दशा पर हमारे बड़प्पन को अबतक दया ही आई है; उनसे कुछ सीखने की नम्रता अभी इस गांधी-युग मे भी हमने नहीं पाई है। उनसे सीखना है सबसे पहले हमें तितिक्षा—जाड़े में एक फटे कम्बल में रात गुजार देना, गरमियो मे कड़ी धूप में दिनभर कड़ा काम करना, हाथ पर रखकर रूखी मोटी रोटी और चटनी से पेट भर लेना, और हाथ का सिरहाना रखकर गाढी नींद सो जाना। पाठक चौंकेंगे—यह तो तुम उन्नति का काटा पीछे घुमा रहे हो, सभ्यता की अबतक की कमाई को बट्टेखाते लिख देना चाहते हो! नहीं, मै आपको मूढ अनुकरण करने की सलाह नहीं दे रहा हूँ, सच्चे ग्राम-सेवक की मनोवृत्ति को दिशा दिखा रहा हूँ और उसे अपना वास्तविक स्थान पाने की ओर संकेत कर रहा हूँ। स्वच्छता, सुघडता, सौन्दर्य, सभ्यता बहुतेरे बाह्य साधनों की गुलामी का नाम हरगिज नहीं है। प्रकृतिदत्त शरीर और इन्द्रियों का पूरा उपयोग होने के बाद ही मनुष्य-निर्मित साधनो का उपयोग करने से व्यक्ति स्वतन्त्र और समाज के लिए विशेष उपयोगी हो सकता है, अन्यथा वह भारभूत होकर ही रहेगा। समाज को देना कम और उससे लेना अधिक यह चोरी है। ग्राम-सेवक को इस चोरी से अपने को बचाना चाहिए।

हरिभाऊ उपाध्याय

धन्धों का निश्चय

मेरे गुजरात के प्रवास मे सरकारी या राष्ट्रीय, हरिजन या हरिजनेतर जिस किसी भी पाठशाला या छात्रालय के विद्यार्थियो के आगे बोलने का मुझे मौका आया, वहा एक प्रश्न जो मै सबसे पूछता था वह यह था, "बड़े होने पर तुम कौन-सा धन्धा करके अपनी गुजर करोगे, इसका कुछ निश्चय कर लिया है या नही ?" अर्थात्, शायद ही एक दर्जन तरुण या बालक ऐसे मिले, जिन्होंने अपने भावी उद्योग के विषय मे निश्चय कर रखा हो। कॉलेज के भी अधिकाश विद्यार्थी नही जानते थे कि वे ग्रेज्युएट होने पर निश्चयपूर्वक कौन-सा धन्धा हाथ मे लेगे। हाई स्कूल की कक्षा के विद्यार्थियो में से अनेक लडको को यह प्रश्न सुनकर आश्चर्य भी हुआ। वे शायद यह सोचते थे कि इस भूमिका के विद्यार्थियों से ऐसा प्रश्न किस तरह पूछा जा सकता है। मिडल स्कूल की कक्षा में जब यह प्रश्न मैंने पूछा तब तो अध्यापकों को भी आश्चर्य हुआ। और जब मैंने बाल-मन्दिर के कुछ अध्यापकों के आगे यह विचार रखा कि हरेक बालक को बड़े होने पर अपने निर्वाह के लिए कौन-सा धन्धा पसन्द करना चाहिए इसका निश्चय उन्हें

अपने बालकों को बाल-मन्दिर से ही करा देना चाहिए, तब मुझे पता नहीं, उन्होने क्या महसूस किया होगा।

प्रवास से लौटने पर मुझे एक अध्यापक का पत्र मिला, जिसमें से निम्नलिखित अंश मै यहा उद्धृत करता हूँ :—

"बालक को कौन-सा धन्धा करना है इसका निर्णय करने के लिए आपने सलाह दी है। परन्तु बाल्यावस्था में वह यह निश्चय करले, क्या इतनी उसमें शक्ति हो सकती है ? अभी न तो उसने दुनिया को ही देखा है, और न अपनी अभिरुचि या योग्यता की उसे कल्पना ही है। इस कच्ची उम्र मे वह इस प्रकार का निश्चय करे तो किस तरह करे ? मै तो मानता हूँ कि प्रवेशिका परीक्षा हो जानेतक वह सिर्फ साधारण शिक्षा प्राप्त करे, हाथ और पैर का उपयोग सीखे, भिन्न-भिन्न धन्धो के विषय में जानकारी प्राप्त करे। उसके बाद ही वह अपना मार्ग निश्चित कर सकता है। बढ़ई-गिरी, लुहार का काम, दरजी-गिरी आदि उद्योगो को कुछ-कुछ सीख ले, इसके बाद उस अनुभव से वह अपना मार्ग निश्चित कर सकता है। इसमे अगर कोई विचार का या दृष्टि का दोष हो, तो अपना वक्तव्य आप मुझे विशेष स्पष्ट रूप से समझाइए।"

इस अनुरोध को मै सादर मानने का प्रयत्न करता हूँ।

भारतवर्ष में शिक्षा का अँग्रेजी युग आरम्भ होने से पहले यह सवाल कभी खड़ा ही नही होता था कि बड़ा होने पर बालक कौन-सा धन्धा करेगा। जिस तरह बालक नि.शक भाव से स्वीकार कर लेता था कि यदि वह हिन्दू है तो चोटी उसे रखनी ही चाहिए, और मुसलमान है तो सुन्नत करानी ही चाहिए, उसी तरह वह निःशक भाव से यह मान लेता था कि वयस्क होने पर उसे अपने माता-पिता का ही धन्धा करना होगा। चाहे वह वेदान्त सीखे, चाहे भगवद्भक्त बन जाय, चाहे काव्य रचे, चाहे आलीशान मकान खड़े करे या पुल और सड़के बनावे, चाहे चित्र खीचे, चाहे अपने धन्धे का मामूली जानकार हो या भारी निष्णात, कम यशस्वी हो अथवा अधिक यशस्वी, इतना तो निश्चित था ही कि वह व्यवसाय करेगा तो अपने पिता के धन्धे-द्वारा ही छोटा या बड़ा मनुष्य होगा। इस प्रकार धन्धे के विषय में अनिश्चितता न थी। गांधीजी की भाषा-शैली मे कहे तो उस समय 'वर्णव्यवस्था अखण्डित अवस्था मे थी।'

शिक्षा के इस अंग्रेजी युग मे यह अवस्था बदल गई। इस अवस्था के बदलने के कारण अनेक है। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी राज्यने जिस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली उत्पन्न की वह इसका एक कारण है; अंग्रेजी राज्य-व्यवस्था में जो अनेक नये-नये किस्म के पेशे उत्पन्न हुए वह दूसरा कारण है, फिर यत्रयुग के कारण दुनियाभर में उद्योग-धन्धे और आर्थिक व्यवहारों मे जो महान् क्रान्ति हुई वह तीसरा कारण है।

अंग्रेजी युग के पूर्व देश की शिक्षा-प्रणाली मे परम्परागत धन्धों की शिक्षा देने के लिए कुछ व्यवस्था अवश्य होगी, परन्तु, सम्भव है कि व्यवस्थित रूप से 'साधारण शिक्षा' देने के लिए कोई सुसंगठित योजना न हो। यह एक हमारे देश की त्रुटि थी। वह त्रुटि अंग्रेजी राज्य-प्रबन्धको को नडने लगी। साधारण शिक्षा के अभाव के कारण राज्य के भिन्न-भिन्न विभागो को चलाने के लिए—नौकर की हैसियत से अथवा स्वतंत्र पेशेदार की हैसियत से—आवश्यक व्यक्तियों को प्राप्त करने में राज्य के शासकों को बड़ी कठिनाई मालूम होती थी। इससे उन्होंने शिक्षा की जो प्रणाली बनाई, वह शुरू में सिर्फ साधारण शिक्षा देनेवाली और बाद मे भिन्न-भिन्न विभागों के धन्धों का ज्ञान देनेवाली बनाई। हमारे पूर्व जीवन की इस त्रुटि के कारण, अंग्रेजों-द्वारा स्थापित शिक्षण-संस्थाओं में पढ़े हुए और उनमें न पढ़े हुए लोगों के बीच भेद की जो खाई आड़े आ जाती थी वह जनता की दृष्टि में आने लगी। इससे वैसी शिक्षा के लिए जनता की यहांतक रुचि बढ़ती गई कि जब अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली की अन्य त्रुटियों की ओर लोक-नेताओं का ध्यान आकर्षित हुआ, और वे राष्ट्रीय शिक्षा की योजनाएँ बनाने लगे, तब उन्हे भी सदा यह चिन्ता रही कि राष्ट्रीय शिक्षा मे भी साधारण शिक्षा की किसी प्रकार न्यूनता न हो। बल्कि, इसी दृष्टि से योजनाओ का विचार किया गया कि सरकारी शिक्षा की त्रुटिया विशेष प्रकार की साधारण शिक्षा द्वारा ही पूरी करदी जायँ। अंग्रेजी की जगह मातृ-भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना, हिन्दी को बतौर राष्ट्र-भाषा के स्थापित करना, इतिहास को सशोधित करके, जिस तरह वह राष्ट्र-भावना का पोषक हो उस तरह उसे पढ़ाना, मातृ-भाषाओं को विकसित करना, थोड़े वर्षो में विशेष अध्ययन कराना इत्यादि बातों को राष्ट्रीय शिक्षा के प्रयोजकोने अपना ध्येय बनाया। इस प्रकार की सरकारी या गैर-सरकारी शिक्षा का सादा नाम है—'साधारण शिक्षा' और उसका रोचक नाम है—'संस्कार-दायिनी शिक्षा'।

परन्तु, किसी को यह बात नही सूझी थी कि जितना समय किसी बालक या किशोर या युवक विद्यार्थी को साधारण शिक्षा प्राप्त करने मे लगा हो, उतने समय मे उसे अपने पैतृक अथवा दूसरे किसी निर्वाहदायी उद्यम का ज्ञान किस तरह प्राप्त हो सकेगा। धंधों की शिक्षा में भी बहुत-सी त्रुटिया आ गई थी। एक या अनेक कारणो से धंधे टूटते जा रहे थे, कला नष्ट होती जाती थी और अज्ञान बढता जाता था। उसमें साधारण शिक्षा की ओर ही प्रवाह बढने से जो कुछ भी थोड़ा-सा ज्ञान परम्परा से चला आता था वह भी विस्मरण होने लगा, और कुछ ज्ञान तो केवल स्मरणावशेष ही बन गया। परिणाम यह हुआ कि आज हम यह मानने लगे है कि मनुष्य जबतक बीस वर्ष की उम्र का—कम-से-कम पन्द्रह वर्ष की उम्र का तो जरूर—न हो तबतक उसके उद्यम का कोई निश्चय हो ही नही सकता। जीवन के ये १५ या २० वर्ष साधारण शिक्षा के ही समझने चाहिए।

परिणामत आज यह हो सकता है कि एक किसान पिता के लड़को में एक वकील हो, दूसरा डॉक्टर, तीसरा इंजीनियर, चौथा व्यापारी, पाचवा आबकारी का इन्स्पेक्टर, छठा रसायन-शास्त्री, सातवां अध्यापक और आठवा सम्पादक या लेखक, और सम्भव है कि उनके पुत्रो मे भी वैसी ही विविधता हो।

इस परिणाम में सरकारी शिक्षा तथा राष्ट्रीय शिक्षा, सनातनी एवं सुधारक, हिन्दू तथा मुसलमान सभी का एक-सा हाथ है—किसीने रुकावट तो डाली ही नही। 'वर्ण' यानी 'धंधा', गांधीजी का यह अर्थ स्वीकार कर लिया जाय तो सबने मिलकर पूरी-पूरी वर्णसंकरता या अव्यवस्था स्थापित करदी। न केवल जन्म से ही किसी के वर्ण का निश्चय करना असम्भव बना दिया गया, बल्कि जन्म के बाद भी २०–२२ वर्षतक—कदाचित् एक-दो बच्चो का पिता होने पर भी—वह नही जानता कि उसका कौन-सा वर्ण है। जिस मनुष्य को स्वयं अपने वर्ण को समझना मुश्किल हो, वह अपने बालक को भला किस वर्ण के आनुवंशिक संस्कार दे सकता है?

यह हमारी मौजूदा स्थिति है। इसमें से निकल जाना जरूरी है। यह न केवल आर्थिक समस्याओ को हल करने के लिए— यद्यपि यह कारण भी मामली या गौण समझनेयोग्य नही है— बल्कि प्रजा के मौलिक और चारित्र्यविकास के लिए भी जरूरी है। यह कितनी विषम और शोचनीय अवस्था है कि एक मनुष्य बी० ए० अथवा एम० ए० तक पढा हो और पूर्ण तारुण्य को प्राप्त कर चुका हो, फिर भी वह जीवन में स्वय कौन-सा धधा कर सकेगा, किस उद्यम के लिए उसका शरीर और मन बनाया गया है इसका उसे पता ही न चले ! यह हो सकता है कि मनुष्य किसी उद्यम को जानता हो तो भी आर्थिक परिस्थिति उसे बेकार रखे। परन्तु २० वें वर्ष में भी स्वतः कुछ करने के लिए तैयार ही न हुआ हो, और यह भी न जानता हो कि किस उद्यम की उसे तैयारी करनी चाहिए, यह केवल आर्थिक दुर्भाग्य ही नही, मानसिक और नैतिक दुर्भाग्य भी है।

इसका एक ही उपाय है। गांधीजी की भाषा में कहा जाय तो वह यह है कि हम वर्ण-व्यवस्था को फिर से उसके आदि स्वरूप में स्थापित करे। व्यवहार की भाषा मे कहा जाय तो इसका अर्थ यह है कि जितनी भी छोटी उम्र मे हो सके हम हरेक बालक को यह समझादे कि "बडे होने पर तुम्हे अमुक व्यवसाय करना है। अपनी कौटुंबिक या स्वयं अपनी शक्ति, उत्साह, पुरुषार्थ और बुद्धि के अनुसार तुम जितनी भी चाहो उतनी साधारण शिक्षा, संस्कारिता प्राप्त करलो, जितना तुमसे हो सके उतना कला-कौशल्य सीखलो, पर यह न भूलना कि तुम्हे इस व्यवसाय के लिए भी बाल्यावस्था से ही तैयार होना चाहिए। यदि तुम्हारा पुरुषार्थ और भाग्य तुम्हे सहायता दे तो उस व्यवसाय की उच्चतम श्रेणी तक भी तुम पहुँच सकते हो। यह न हो, तो सामान्य कक्षा मे रहना। परन्तु दोनो अवस्थाओं मे व्यवसाय तो यही करना है, यह निश्चय करलो।"

इस प्रकार का निश्चय करा देने के पूर्व माता-पिता और अध्यापक को बालक के आनुवंशिक सस्कार, स्वभाव, जन्मदत्त सिद्धियां, माता-पिता की आर्थिक परिस्थिति आदि का अवश्य विचार कर लेना चाहिए। पर ऐसा न होना चाहिए कि विचार करने में ही कई वर्ष चले जायें। जितना जल्दी निश्चय कराया जा सके उतना अच्छा; और इसमें साधारणतया कौटुंबिक व्यवसाय की ओर ही झुकाव होना ठीक होगा। अपवाद-स्वरूप ही कोई बालक पैतृक व्यवसाय से भिन्न प्रकार के व्यवसाय में पडे।

यह सही है कि इस जमाने में अठारह नही, बल्कि अठारह सौ प्रकार के व्यवसाय उत्पन्न हो गये हैं, और उनमें दिन-प्रति-दिन वृद्धि ही होती जाती है। फिर भी, इन सब व्यवसायो की जांच-पड़ताल करने पर यह मालूम हो सकता है कि वे सब आठ या दस गोत्रों में एकत्रित किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, बढई, लुहार, राज, टर्नर, फिटर, रिपेरर, सिविल इंजीनियर, मिकैनिकल इंजीनियर, इलेक्ट्रिकल इंजीनियर, वैमानिक इंजिनियर, इंजिन बनानेवाला आदि व्यवसायियो का एक ही गोत्र है। हम उसे मिस्त्री या कारीगर के नाम से पहचान सकते हैं। इसमें भले किसी को सिर्फ आठ ही आने रोज मिले और कोई अस्सी रुपये रोज भी प्राप्त कर सकता है। उसमें जो कोई अन्याय हो उसे दूर करने का विचार यहां हम नही कर रहे हैं। व्यवसाय के प्राथमिक निश्चय में बालक को हम कम-से-कम उसके भावी व्यवसाय के गोत्र का निश्चय करादे। फिर, ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाय, त्यों-त्यों उसके लिए उस धंधे की शाखाओं और उपशाखाओ का निर्णय किया जा सकता है।

यदि इस तरह हम बालक को उसके भावी पेशे के विषय में स्थिरबुद्धि कर सकें, तो केवल उसे ही अपना सीधा मार्ग खोजने में सहायता न होगी, बल्कि हमारी शिक्षण-प्रवृत्तिया भी अधिक स्पष्ट मार्गों पर चलने लगेंगी। 'साधारण शिक्षा' में भी सब मनुष्यो के लिए अवश्य वांछनीय सामान्य संस्कारों की ही शिक्षा नही होती। अमुक सीमातक जाने के बाद वकील के धंधे के लिए साधारण शिक्षा एक प्रकार की होती है, डॉक्टर के लिए दूसरे प्रकार की; किसान-विद्यालय में एक प्रकार की, मजदूरशाला में दूसरे प्रकार की। अर्थात्, जिस गोत्र के लिए विद्यालय हो उसकी साधारण शिक्षा में भी शुरू से ही कुछ भिन्नता का होना संभव है।

अर्थात्, इस सब विवेचन में यह सूचना भी अवश्य ही है कि केवल साधारण शिक्षा—सस्कारदायिनी शिक्षा—का विद्यालय त्रुटियो से भरी हुई सस्था है। इस प्रकार के विद्यालयों का परिणाम यह हुआ है कि विद्यार्थी ज्यों-ज्यो बडा होता है,वह अपने धधे के विषय मे केवल सशयात्मा ही नहीं होता जाता है बल्कि आनुवंशिक व्यवसाय को भूलता भी जाता है, और अपनी संपादन की हुई 'उदार' शिक्षा से अपने पैतृक व्यवसाय से लाभ होना तो दूर उसकी शिक्षा उसे उसके लिए उलटा अयोग्य ही बना देती है।

व्यवसाय का निश्चय और बाल्यावस्था से ही उसकी शिक्षा का प्रबन्ध इन दो वस्तुओं के अतिरिक्त हरेक बालक के लिए एक इतर उद्योग—अतिरिक्त पेशे—की भी जरूरत समझनी चाहिए। इतरोद्योग में दो लक्षण दिखने चाहिए, मुख्य व्यवसाय के साथ-साथ आराम के समय मे निर्वाह के लिए नहीं, बल्कि बतौर शौक के वह प्रिय मालूम हो; और यदि आवश्यक ही हो, अथवा वैसी अनुकूलता प्राप्त हो, तो उसे निर्वाह के लिए भी करने की उसमे अनुकूलता हो। इनके अतिरिक्त एक तीसरा भी लक्षण सभवत. उसमे हो सकता है। वह यह कि उस दूसरे व्यवसाय का ज्ञान अपने मुख्य व्यवसाय को अलकृत —कलामय— करने मे उपयुक्त हो। इस इतरोद्योग की पसदगी मे बालक के व्यक्तित्व का अध्ययन करके उसके मन के अनुकूल प्रवृत्ति खोजने के लिए पर्याप्त अवकाश है। [अर्थात्, यहा पर मै इतरोद्योग से सहोद्योग—जैसे कातने, पीजने की तरह दूसरे धधे की पूर्ति में चलनेवाले व्यवसाय का विचार नही कर रहा हूँ। उसका समावेश तो मुख्य व्यवसाय मे ही हो जाता है।]

कितना अच्छा हो, अगर हरेक आदमी अपने मन के अनुकूल व्यवसाय में रात-दिन प्रवृत्त हो सके, और उसके द्वारा अपना निर्वाह भी कर सके ! पर ससार की मौजूदा स्थिति में ऐसी अनुकूलता सबको प्राप्त नही होती बल्कि बहुत ही कम लोगों को प्राप्त होती है। इससे उदास या निराश होने से या चिढने से कुछ हासिल न होगा। इसीलिए, धर्म को मनोनुकूल प्रवृत्ति का मार्ग नही माना गया, किंतु कर्तव्य का मार्ग माना गया है। अतः मनोनुकूलता की अपेक्षा कर्त्तव्य के प्रति आदर-भाव रखना हमारा प्रथम धर्म है, और मनोनुकूल प्रकृति को आजीविका के लिए नहीं किन्तु शौक के लिए, निवृत्ति के लिए, वैयक्तिक विकास बलाना यह दूसरा धर्म है।

किशोरलाल घ० मशरूवाला

हरिजन-सेवक

शनिवार १८ जनवरी, १९३९

दिशासूचक घटनाएँ

एक सज्जन लिखते हैं :—

"एक दिन बड़े सबेरे जबकि मैं अपने ऊपर के कमरे में बैठा हुआ एक किताब पढ़ रहा था, नीचे एक आदमी एक गरीब भंगी को गंदी-से-गंदी गालियां दे रहा था। झांककर देखा, तो मेरे मकान के सामने ही एक अग्रवाल की दूकान के बाहर वह भंगी कड़ाके की सर्दी में खड़ा हुआ कांप रहा था, दूकानदार के आगे अंगीठी रखी हुई थी, और वह बिना ही किसी अपराध के उस बेचारे भंगी को बुरी-बुरी गालियां दे रहा था। मैं बाहर निकलकर आया कि बात आखिर क्या है। कारण यह था कि उस दूकानदारने अभीतक अपनी दूकान का कूड़ा बाहर नहीं फेंका था। अंगीठी छोड़कर वह अभी दूकान में बुहारी नहीं लगाना चाहता था। भंगी का इतना ही अपराध था कि वह इतने सबेरे इस हड़कंप सर्दी में सड़कें साफ करने आ पहुँचा! दूकानदार भंगी से कह रहा था कि, 'सेठजी जरा जल्दी कीजिए, देखिए, सारा बाजार साफ करने को पड़ा है। सूरज निकल आयगा, तो लोग मेरी और भी बुरी गति कर देंगे। मालिक, मुझे बहुत देर हो रही है।' पर उसके इस गिड़गिड़ाने का तो सेठजी पर उलटा ही असर पड़ा, गरीब पर और भी गंदी-गंदी गालियां पड़ने लगीं। आखिरकार दूकानदार अंगीठी छोड़कर उठा, और गालियां बकता हुआ दूकान साफ करने लगा। भंगी बेचारा चुपचाप झाड़ू हाथ में लिये वहीं बैठा रहा। सर्दी के मारे उसके दांत-से-दांत बज रहे थे। दूकानदार अब भी उसे गालियां दे रहा था कि, 'देखो तो इस हरामजादेने इतने सबेरे आकर कैसी गड़बड़ी मचाई!' जबतक वह भंगी उसकी आंखों से ओझल नहीं हो गया, वह उसे गंदी-गंदी गालियां देता ही रहा। मैंने उस भंगी का नाम वगैरा जाकर पूछा, पर उसने बतलाया नहीं—शायद इस डर से कि कहीं मैं थाने में उसकी रपट न लिखादूं। मारे गुस्सा के एकबार तो मेरा मन हुआ कि उस बेहूदे दूकानदार को दो-चार चपत कसके जमा दूं। पर रुक गया। एक बार यह विचार आया कि उस दुष्ट दूकानदार की दूकान पर बैठकर तबतक उपवास करूँ, जबतक कि वह अपनी अनीति का प्रायश्चित्त न करे, उस निरपराध भंगी से माफी न मांग ले। किंतु वह क्या मानेगा? मैं तो नहीं समझता कि वह ऐसा करेगा। लोगों से पूछताछ करने पर बाद में मुझे यह मालूम हुआ कि इन भंगियों को कहीं से कोई तनखाह नहीं मिलती, क्योंकि यहां म्यूनिसिपैलिटी ही नहीं। ये लोग मुफ्त में ही शहर का तमाम कूड़ा-कचरा साफ करते हैं। भंगी को कुछ दूकानदार तो एकाध जूठी रोटी रोज दे देते हैं, और कोई-कोई महीने में एक-दो पैसे। कोई केवल गालियां ही देते हैं। बतलाइए, अब क्या किया जाय!"

नीचे एक कहानी दी जाती है, जो मद्रास के अंग्रेजी दैनिक "हिंदू" में प्रकाशित एक फौजदारी मामले की रिपोर्ट से ली गई है:—

"मामला यह है। वी० राजय्याने सुब्बन्ना से पड़ोस के एक गांव से अपने लिए कुछ चीजें ले आने के लिए कहा। राजय्याने सुब्बन्ना को वहां जाने के लिए अपनी साइकिल देदी। सुब्बन्ना जब साइकिल पर कुम्मिदी वापस आ रहा था, तब अभियुक्तोंने, जो कापू जाति (अब्राह्मणों की एक उपजाति) के थे, सुब्बन्ना को साइकिल पर आते हुए देखा। जाति का एक हरिजन उनके सामने साइकिल पर सवार होने की गुस्ताखी करे यह उन लोगों से सहन न हुआ। उन्हें गुस्सा आ गया, और सुब्बन्ना से उन्होंने साइकिल से उतर पड़ने के लिए कहा। सुब्बन्ना बेचारा उतर पड़ा, पर उसने उन लोगों से कहा कि, 'क्या मुझे साइकिल पर चढ़ने का अधिकार नहीं है?' इसपर अभियुक्तोंने बिगड़कर सुब्बन्ना को एक जूता मार दिया।

अभियुक्तोंने सफाई में यह दलील पेश की कि हम लोग तो उस वक्त वहां थे ही नहीं; हमारे गांव की मदीगा जाति और कापू जाति में लड़ाई-झगड़ा चल रहा है, इसलिए यह मुकदमा उस झगड़े का ही परिणाम है।

सब-मजिस्ट्रेट, रामचन्द्रपुरम्‌ने फैसले में दोनों अभियुक्तों को सौ-सौ रुपये जुर्माने की सजा, या जुर्माना न देने पर, छै-छै हफ्ते की कैद की सादी सजा सुनाई।

अभियुक्तोंने ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट मि० आर० गेलिटी, आई० सी० एस० की अदालत में इस सजा के विरुद्ध अपील की। इस मजिस्ट्रेटने अपने फैसले में कहा कि, "मैं देखता हूँ कि सजा के पक्ष में शहादत बिल्कुल ठीक है, पर मेरे खयाल में मातहत अदालतने न तो इसीपर काफी विचार किया कि हतक वास्तव में किस हदतक की गई है और न यही काफी तौर से देखा कि मुजरिमों की हैसियत इतना जुर्माना देने की है या नहीं। यह हतक एक मामूली किस्म की थी, और जिस व्यक्ति की हतक की गई वह एक ऐसे वर्ग का है, जो कुछ वर्ष पहले अगर ऐसी बात होती तो उसे हतक या अपमान वह समझता भी नहीं।"

अगर एक मदीगा को जूते से पीट देना महज एक मामूली किस्म की हतक है, और उसमें ऐसी बेइज्जती की बात नहीं आती, या ठीक-ठीक कहा जाय तो वह ऐसी हलकी-सी बेइज्जती है, जिसपर सिर्फ २५) के जुर्माने की ही, न कि १००) के जुर्माने की, सजा हो सकती है, तो फिर एक भंगी को गंदी गालियां देने में तो बेइज्जती की कोई बात ही नहीं! इस आई० सी० एस० मजिस्ट्रेट के मुकाबले में वह दूकानदार तो बहुत ही कम पढ़ा-लिखा था, इसलिए उसने यह कल्पना भी न की होगी कि उस भंगी को गालियां देकर उसने उसकी कोई बेइज्जती की है। और गरीब भंगीने भी यह खयाल नहीं किया कि उसकी बेइज्जती की गई है, किसी मजिस्ट्रेट की अदालत में दावा करना तो दूर की बात है उसने अपना नामतक नहीं बताया। इसी तरह पुराने जमाने में चाय वगैरा की काश्त करनेवाले यूरोपियनों के दिमाग में यह बात नहीं आती थी कि जब वे अपने मजदूरों को ठोकरें मारते थे तो उससे वे उनकी कोई बेइज्जती करते थे, और जब उनके पाद-त्राणों के प्रहार से कोई मजदूर मर जाता था तो उस जमाने की अदालतें भी उसे कोई ऐसा संगीन जुर्म नहीं समझती थीं। मालूम होता है, वे दिन अब चले गये, और ये

आई० सी० एस० मजिस्ट्रेट भी शीघ्र यह आरंभिक सिद्धान्त हृदयंगम कर लेंगे कि कानून व्यक्तियों में कोई भेद नहीं करता। किसी गरीब मदीगा को जूता लगाना हलक का उतना ही संगीन जुर्म है जितना कि किसी मजिस्ट्रेट पर जूता फेंकना। मगर कुछ शिक्षा की जरूरत तो एक समान दोनों को ही है, गरीब मदीगा और भंगी को जहां अपमान का मुकाबला करना सीखना है, वहां दूकानदारों और मजिस्ट्रेटों को यह सीखना है कि कोई भी मानवप्राणी, चाहे वह मदीगा हो या मजिस्ट्रेट, मनुष्य है, और उसे इस तरह अपमानित नहीं करना चाहिए।

इस बीच में हमें यह याद रखना चाहिए कि हम एक ऐसे समाज में रह रहे हैं, जहां इस प्रकार के शिक्षा-प्रसार की सख्त जरूरत है। गुस्सा होने, गालियां देने या उपवास करने से कोई काम सरने का नहीं। हमें तो हरिजनो को प्रेमपूर्वक अपनाना होगा। जहां वे अक्सर अपमानित किये जाते हो उन बस्तियों और उन जगहों में जाकर उन्हें सतानेवाले नासमझ लोगो को अच्छी तरह समझाना चाहिए, और सताये हुओ को मदद पहुंचानी चाहिए, और जहां जरूरत जान पड़े वहां पुलिस और अदालत की भी मदद लेनी चाहिए—यहां यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि ऊपर के मुकदमावाले मामले में दोनो ही अदालतोंने अभियुक्तो को दंड दिया—और इस सब के अलावा हमे उनके जीवन की एक-एक बात मे सगे भाई-बंधु की तरह दिलचस्पी लेनी चाहिए। दूकानदार-द्वारा किये गये अपमान के मामले में, अच्छा होता कि संवाद-प्रेषक सज्जन उस भंगी भाई के साथ-साथ उसके मुहल्ले मे चले जाते, वहां जाकर उनकी स्थिति समझने का प्रयत्न करते, यह मालूम करने की कोशिश करते कि जूठे-जाठे टुकड़ों की खातिर वे क्यो इस पतनावस्था को पहुंच रहे है, और यह भी पता लगाते कि उनके लिए क्या वहां कोई दूसरा धंधा नहीं है, साथ ही वहां के दूकानदारो को अच्छी तरह समझाते कि उन्हें उन भंगियो के साथ, जो उनकी सेवा करते है, ठीक तरह से न्याय करना चाहिए। इन अभागे लोगो को जब यह मालूम हो जायगा कि वे अपनी आफत-मुसीबत मे हमारे ऊपर विश्वास करते है, और हम उनके साथ अपने सगे भाई-बन्धुओ की तरह बर्ताव कर रहे है, तो उसी क्षण उनके अन्दर आत्मसम्मान की यह भावना जाग्रत हो जायगी कि हम भी वैसे ही मानव-प्राणी हैं जैसे कि दूसरे है, और अपना अपमान नही होने देंगे।

उक्त सज्जन का पत्र और रामचन्द्रपुरम् का मुकदमा ये ऐसी घटनाएं है जिनसे यह पता चलता है कि हवा किस रुख बह रही है। वे दिन अब गये, जब अपमान अपमान नही समझे जाते थे, और मनुष्य मनुष्य नहीं लेखे जाते थे।

'हरिजन' से] महादेव ह० देशाई

साप्ताहिक पत्र

यह सेवा है ?

अखबारों को खबर भेजनेवाली एजेन्सियां अपने को 'न्यूज-सर्विस' कहती हैं, लेकिन कभी-कभी आश्चर्य के साथ मन में यह विचार उठता है कि सेवा की अपेक्षा वे शोषण का ही तो अधिक साधन नहीं बन रही हैं ? इसी ८ जनवरी की बात है। शाम के वक्त 'रूटर' और 'असोसियेटेड प्रेस आफ इण्डिया' ने मुझे फोन किया। लण्डन की यह खबर सुनाकर, कि गांधीजी की हालत बहुत नाजुक हो रही है, उन्होंने मुझसे कहा—'आप बताइए कि यह खबर सच है या झूठ ? अगर सच है तो इसका समर्थन कीजिए, और अगर झूठ है तो इसका प्रतिवाद कीजिए।' मैंने तुरन्त उसका प्रतिवाद कर दिया। लेकिन शरारत तो जो होनी थी वह हो ही चुकी थी। फलतः सबेरे ही हाल जानने के लिए लण्डन के मित्रो के उत्सुकतापूर्ण तार आये। इसी तरह १० जनवरी को मुझसे विदेशी न्यूज-सर्विस की उस रिपोर्ट का खण्डन करने के लिए कहा गया, जो एक बार नाजुक हालत बताने के बाद फैलनी ही चाहिए थी। इन गलत खबरों को रोकना बहुत मुश्किल है। जान-बूझकर जो झूठी बातें गढी जाती हैं उन्हें रोकना तो असंभव ही है।

४ दिसम्बर को गाधीजी की तबीयत बिगडी, जिसकी खबर ५ या ६ तारीख के अखबारो में प्रकाशित हो ही चुकी थी। मगर १४ तारीख को एक अखबार में, जो रोज गांधीजी की बीमारी का हाल प्रकाशित करता रहा है, मैंने 'अपने वर्धा के संवाददाता द्वारा' इस बड़े-बड़े अक्षरो के शीर्षक के नीचे पढा, कि "गाधीजी के कुछ नजदीकी साथियो से मैंने सुना है कि गाधीजी सविनय अवज्ञा द्वारा आक्रमण की कोई ऐसी योजना बना रहे है जो नई और अंतिम होगी।" फिर जबतक उस योजना की तफसीलो का चित्रण न हो, तबतक खबर पूरी कैसी ? अतः यथासम्भव सुन्दर और आकर्षक रूप में योजना की तफसीलें भी दी गईं। मैंने पत्र लिखकर पूछा, कि यह 'वर्धा का संवाददाता' आखिर कौन है और किससे उसे यह खबर मिली है ? उस अखबार के सम्पादक महोदयने तुरन्त जवाब देने की कृपा की, और यह लिखा कि "दफ्तर के कर्मचारियो की गलती से यह समाचार इस तरह छप गया है कि जैसे हमारे वर्धा के संवाददाताने भेजा हो, पर दरअसल यह एक दूसरे अखबार का उल्था है। तब मैंने उसे लिखा, लेकिन वहा से भी यही जवाब आया कि "गलती से" यह इस तरह प्रकाशित हो गया। मानों हमारे वर्धा-स्थित संवाददाताने ही भेजा है ! इस दुष्टतापूर्ण शृंखला को मैं और आगे नही ले गया। पर यह सोचने की बात है कि हमारे अखबारो मे से कितने ऐसे हैं जो ऐसा समझते हैं कि उन्हें एक पवित्र कर्तव्य का पालन करना है और कितनी बार वे गड़बड़ नही कर डालते ?

प्रभु की इच्छा का पालन

दो महीने पहले की बात है, जब गाधीजीने गुजरात प्रान्त के हरिजन-कार्य के लिए पैसा इकट्ठा करने को गुजरात का दौरा करना स्वीकार किया था। खर्च का सालाना बजट २९०००) के लगभग था, और स्वयं गुजरात में ही यह रकम इकट्ठी न हो जाय, यह गाधीजी के विचार में गुजरात के लिए एक लज्जा की बात थी। लेकिन इधर अचानक उनकी तबीयत खराब हो गई। तब दौरे का विचार तो छोड दिया गया, और गांधीजीने कहा कि मैं तो अहमदाबाद जाकर आराम करूंगा और सरदार वल्लभभाई तथा ठक्कर बापा चन्दा इकट्ठा कर लेगे। पर अचानक गाधीजी के रक्त का दबाव बढ जाने के कारण जब उनका अहमदाबाद जाना भी रुक गया तो सरदारने तार से पूछा कि क्या मैं वर्धा आऊँ ? इसपर मैंने उन्हें लिखा, कि गांधीजी का दिल तो हरिजनों के लिए धन-संग्रह पर लगा हुआ है और उनकी इच्छा है कि जबतक सरदार पैसा इकट्ठा न करले तबतक अहमदाबाद न छोड़ें। इस समय अहमदाबाद

में और कामो के लिए भी चन्दे हो रहे थे और फिर हरिजन-फण्ड के लिए धन-संग्रह का काम है भी जरा मुश्किल। लेकिन सरदार सबेरे से लेकर आधी-आधी रातनक घर-घर फिरे और चार दिन के अन्दर ही उन्होने गांधीजी को तार से खबर दी कि जितनी रकम चाहिए थी उससे भी अधिक इकट्ठी हो गई है।

दूसरे जिन लोगोने शीघ्र उनका स्वास्थ्य सुधारने के लिए प्रभु की इच्छा का पालन किया उनमें वे कार्यकर्त्ता भी है जो थे तो वर्धा में ही, फिर भी उन्हे देखने नही जाते थे, बल्कि जिस काम में वे लगे हुए थे उसीमें और अतिरिक्त प्रयत्न उन्होने किया। मीरा बहिन को प्राय: यह लगा कि गाव का काम छोड़कर बापू के पास पहुँच जाऊँ, किन्तु अपनी इच्छा को उन्होने रोका और अपने काम पर वे मुस्तैदी से डटी रही। भणसालीजी, जबसे गाधीजी अधिक आराम और शान्ति प्राप्त करने के लिए मगनवाडी से आश्रम के भवन में गये तभी से, बजाय साधारण ८ घण्टे के, रोज ११ घण्टा सूत कातने लगे।

विनम्र मेहमान

मिस म्यूरियल लेस्टर, जिन्होंने अपने आने से करीब तीन महीने पहले हमें अपने आने की खबर भेज दी थी, मध्य दिसम्बर के लगभग कलकत्ता आ गई; लेकिन जब गाधीजी कुछ ठीक हो जायें तभी यहां आने का उन्होंने विचार किया। वह तो यहा के लिए बजाय मेहमान के घर की ही जैसी है, पर उनके साथ एक तो जापान की, और दूसरी चीन की मेहमान है जो गाधीजी से कुछ बाते करना चाहती थी, इसलिए उन्होने यही ठीक समझा कि पहले त्रावणकोर मे होनेवाली महिला-परिषद् से निबट ले, फिर यहा आये। वहा से निबटकर ही वे यहा आईं, मगर गाधीजी की तबीयत इस बीच में फिर बिगड गई थी। इससे तुरन्त उन्होने कहा कि हम गाधीजी के आराम मे बाधा नही डालेगी, बल्कि जबतक वह कुछ ठीक नही हो जाते तबतक हम यही ठहरेगी। मिस लेस्टर से तो हमारे पाठक इतने परिचित है कि नये सिरे से उनका परिचय देने की कोई आवश्यकता नही। वह विश्वशान्ति का मिशन लिये हुए अभी अमेरिका, जापान और चीन का भ्रमण करके आई है, और अपना पूरा समय ससार मे शान्ति और साम्राज्यवाद-विरोधी विचार फैलाने मे लगा रही हैं। यहा रहते हुए अनेक चर्चाओ के सिलसिले में बड़े रोचक और मन में उतरनेवाले ढग से उन्होने बताया कि लण्डन के ईस्ट-एण्ड मे किंग्सले हाल कैसे और क्यो बना, उसने ब्रिटेन मे युद्ध-विरोधी तथा दूसरी क्या-क्या हलचले की, और जेल मे भी युद्ध की भीषणता को रोकने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिदूतो की सेना की कल्पना का स्वप्न देखनेवाले पवित्रात्मा पियरी सेरेसोल के नेतृत्व में बननेवाला अन्तर्राष्ट्रीय सेवादल (Civile) असल में क्या है। वे सुन्दर विचारो के रग में रगी हुई हैं। आराम व सुख का जीवन त्यागकर वे स्वेच्छा से लण्डन के दरिद्रनारायणो के बीच जाकर बसी, ताकि वास्तविक धार्मिक जीवन व्यतीत करे, उन कौहिल अमीरो के *पापों का प्रायश्चित्त करे कि जो बेचारे गरीबो का शोषण किया करते है, पर यह नही जानते कि हम क्या कर रहे है, और* दलितो तथा दुखियों को ऊँचा उठाये। अनेक स्त्री-पुरुषों का उन्होने मदिरा-पान छुड़ाया है, और इस प्रकार उनके अन्धकारमय तथा निराशापूर्ण जीवन में प्रकाश और आनंद बिखेरा है। यही क्यो, लोगो को जुटाकर वे उन्हें तैयार करना भी जानती हैं। अपने किंग्सले हाल में वे तरुण स्त्री-पुरुषों को अपने साथी मनुष्यों की सेवा के लिए दक्ष बनाती हैं। उनकी एक साथिन मिस ग्लैडीस ओवन हैं, जिनका विचार गरीबों की सेवा के लिए भारत रहने का हैं। श्रीमती त्याऊ चीन के शासकवर्ग की महिला हैं। उनके चाचा चीन के परराष्ट्र सचिव थे और १९१८-१९ की वर्सेलीज-संधि के समय चीन के प्रतिनिधि होकर वर्सेलीज गये थे। जैसा कि उन्होंने खुद ही बताया, वह पहले खूब शान-शौकत के साथ रहती थी, पर बाद में उनके जीवन का दृष्टिकोण बदल गया। उन्होने तथा उनके पतिने, शान-शौकत से रहना छोड दिया और, अपने पति की मृत्यु के बाद तो वे शघाई के गरीबो के ही एक मुहल्ले में जा बसी। मिस लेस्टर की जान-पहचान से, जो बाद में मित्रता के रूप में परिणत हो गई, उन्हे प्रेरणा मिली और हालांकि है तो अभी वे बिलकुल नवयुवती ही, फिर भी इस आशा से उन्होने पहले हिन्दुस्तान और फिर एक सालतक किंग्सले हाल में रहने के लिए लण्डन जाने का निश्चय कर लिया है कि जिससे मनुष्यो व सस्थाओ आदि का इतना अनुभव उन्हे हो जाय कि वापस अपने देशमें पहुँचकर वे अपने यहा के लोगो का जीवन ऊँचा उठा सके।

डा० कोरा

और, जापानी मित्र डा० टोमिको कोरा थी, जो जापान के महिला-विश्व-विद्यालय में अध्यापिका है और जापानी स्त्रियो में एक सबसे श्रेष्ठ महिला एव दृढ़ शान्तिवादिनी है। हमारे कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ जब जापान गये थे तो इन्हीने महिलाओ की ओर से उनके विभिन्न स्वागतो का आयोजन किया था, और उनके वार्तालाप और भाषणो को भाषातर करके समझाया था। आप 'नव-जीवन' प्रवृत्ति (न्यूलिविंग मूवमेण्ट) की ओर से, जिसका आप प्रतिनिधित्व करती है, गाधीजी को जापान आने के लिए निमंत्रण देने आई हैं। इनसे बात करते हुए इनकी विनम्रता और इनकी गम्भीर सस्कृति की तुरन्त ही छाप पडती है, और जब यह दीन-दुखियो के सबध मे बाते करती है तो उनके प्रति इनकी दयालुता तथा विशाल मानव-सहानुभूति छलछला उठती है। इन्होने मुझसे कहा, "मै अपने देश के सर्व-साधारण की ओर से गाधीजी को जापान आने का निमत्रण देती हूँ, जहां कि उनकी प्रेरणा की इतनी अधिक आवश्यकता है जितनी कि दीर्घकालिक अनावृष्टि के अनतर वर्षा की होती है।"

"लेकिन", मैंने उनसे पूछा, "क्या सचमुच आपको गांधीजी की आवश्यकता है? भला जापान के लिए—उस जापान के लिए जो भारत का शोषण कर रहा है और चीन पर बलात्कार करता है, गाधीजी किस काम के? चीन का सब से ताजा समाचार तो यह है कि चहार और होपी को स्वतंत्रता के नाम पर जापान के सैनिक सत्तावादियो के अधीन किया जा रहा है—और, यह कोई नही कह सकता कि इससे आगे क्या होगा। मै स्वयं तो यह समझ ही नहीं सकता कि जापान भला गांधीजी का क्या उपयोग कर सकता है!"

मेरी इस बात का उन्होंने जरा भी बुरा नही माना, और कहा, "नहीं, गांधीजी की हमें बहुत ज्यादा जरूरत है। मैं आपको यकीन दिलाती हूँ कि चीन में जो जापानी लोग सैनिक सत्तावाद का परिचय दे रहे हैं उनसे हम साधारण जापान-निवासियों का कोई भी सरोकार नहीं। तो भी मैं कबूल करती हूँ कि

चीन में होकर आने में मेरी हिम्मत नहीं पड़ती, क्योंकि उन सैनिक सत्तावादी जापानियों की करतूतों से मैं तो मारे शर्म के गड़ी जाती हूँ। इसमें हम सामान्य लोगों का दोष नहीं। भौतिक समृद्धि हमारे पास पर्याप्त है, पर हमें अपनी आत्मा से हाथ धो बैठने का भय लगा हुआ है, और इसीसे हमारे देशवासी, जो भौतिकता के निबिड़ अंधकार से घिरे हुए है, आशा की एक सुनहरी किरण पाने के लिए बेतरह तरस रहे हैं। भारतवर्ष को हमने हमेशा ही भगवान् बुद्ध की धर्मभूमि माना है, और भारत को उसके भौतिक क्षेत्र में यद्यपि हम आज काफी सिखा सकते है, तो भी आध्यात्मिक क्षेत्र में तो वही हमारा सदा शिक्षा-गुरु रहेगा। अपनी भौतिक समृद्धि से तो हम अब ऊब गये है। वह हमारे लिए भाररूप हो रही है। हमारा जीवन आज बुरी तरह से भौतिक हो गया है, जीवन का हमें कोई अर्थ ही नहीं मालूम होता। आप कहेंगे कि तुम्हारे यहां महान् सुधारक 'कागवा' तो है। यह ठीक है, पर उसका प्रभाव थोड़े-से ईसाइयों में ही है। हमारे यहा ईसाई केवल १२०००० है। लेकिन हम तो महात्माजी-जैसे किसी महापुरुष को चाहते है, जो हमारे देश के समस्त बौद्धों और शितो-धर्मावलबियों को प्रेरणा दे सके।"

इसके बाद उन्होंने मुझे अपने यहां की "नवजीवन प्रवृत्ति" के सबंध में बहुत कुछ बतलाया। इस प्रवृत्ति के केन्द्र सारे जापान में हैं। इस प्रवृत्ति को वहा "सेटो मिनको सेकाटू कान" कहते हैं। सेटो, जिसके नाम से यह प्रवृत्ति चलरही है, एक करोड़पति बौद्ध है, जिसने अपनी सारी सपत्ति गरीबो के जीवन-पुनर्निर्माण के लिए देदी है। इस प्रवृत्ति के अतर्गत ग्राम-पुनर्रचना-कार्य का नेतृत्व ३० वर्षतक यामा-शीनाने किया है। "हमारे यहा भी ऐसी ही जटिल समस्याएँ थी," उन्होंने कहा, "और हमने उन्हे हल कर डाला है। आपको मालूम है कि हमारे जापान में भी अस्पृश्य थे? ये अस्पृश्य कहलानेवाले लोग बाहर से आये थे, और वे हमारा तमाम गदा काम करते थे। ये लोग लाशें उठाते थे, खाल उधेड़ते थे और चमड़ा पकाते थे। आपके यहां के हरिजनों की तरह ये लोग अलग मुहल्लों में रहते थे, उनके साथ ऐसा बुरा बर्ताव होता था कि जैसा कोई कुत्ते के साथ भी नहीं करता। आपके देश की अस्पृश्यता जैसी ही चीज हमारे यहा थी। किंतु उद्धार-प्रवृत्ति के बाद उसका तुरंत अंत हो गया। मुझे याद है कि बचपन मे इन 'एताह'—अस्पृश्यों से दूर रहने के लिए मुझसे कहा जाता था। मगर मौजूदा पीढ़ी से आप पूछें तो वह आप को बतला नहीं सकती कि अछूत किसे कहते है।"

मैंने कहा, "मुझे आपकी इस बात में खूब रस आ रहा है, कृपाकर इस विषय में आप मुझे जरा और विस्तार से बतलाइए। इस कुप्रथा का अंत क्या वहां राजाज्ञा से हुआ, या उपदेश और सुधार के तरीकों से?',

निस्सदेह, राज्य इस कुप्रथा को नहीं चाहता था, और इस अनुकूल परिस्थिति में हमारी प्रवृत्तिने भी काम किया। समता की इस प्रवृत्ति के द्वारा तमाम ऊँचाई-निचाई को हमने एक सतह पर ला दिया। मेरा ख़याल है कि इसमें हमें करीब ३० वर्ष लगे।"

मुझे आशा है कि जापान पहुँचने पर वे अपने देश की इस प्रवृत्ति के विषय में मुझे और भी तफसीलवार लिखेंगी। मैला-कचरा साफ करने के प्रश्न पर मैं उनके साथ चर्चा करना चाहता था, पर वे यहां बहुत ही कम ठहरीं, और मेरे साथ मिस म्यूरियल लेस्टर की तरह हमारे सिंदी गांव नहीं जा सकीं।

आहार-सुधार के विषय में भी मेरी उनसे बातें हुईं। इस विषय का उन्हें अच्छा ज्ञान है। उनका पति तोकियो में एक प्रसिद्ध डॉक्टर है। हमलोग अपने यहां अनकुटे चावल और घानी के पिरे तेल इत्यादि की ओर लोगो को आकर्षित करने का जो काम कर रहे हैं, इसमें वे बहुत ज्यादा दिलचस्पी लेती हैं। उन्होंने कहा, "अपने ग्राम-केन्द्रों में, मेरा ख़याल है, हम लोग जो आहार-सुधार-सबधी प्रदर्शन करते हैं, वे बिल्कुल अनूठे होते है। और नि:शुल्क रसोडों का भी वहां आयोजन किया जाता है, जहा लोग—खासकर गृहिणियां आहार की विविध वस्तुओं का अध्ययन करने के लिए बुलाई जाती है। सुधरे हुए आहार का आर्थिक महत्व क्या है, और जीवन-तत्त्व की दृष्टि से उसका हमारे ऊपर कैसा क्या असर पड़ता है, ये बातें नोट कर ली जाती है और उनपर समय-समय पर चर्चा होती रहती है। मेरा ख़याल है कि इन आहार-सुधार-सबंधी प्रदर्शनोंने हमारा जीवन समृद्ध ही किया है, और हमारे ग्राम-निवासी इन प्रदर्शनो की सहायता से चीजो को समझदारी के साथ देखने-भालने लगे है।

जापानी नारी-जीवन के विषय में उन्होंने हमारे आश्रम की लड़कियों को बतलाया, कि जापान में मातृत्व कितनी श्रद्धा से देखा जाता है, और संतान जनते ही जापानी माता अपने आकर्षक रत्नजटित आभूषणों और चटकीले वस्त्रों को त्याग देती है, और अपनी सतान के हितार्थ अपना सर्वस्व अर्पण करदेती है। जापानी गावों में लड़कियों के जो क्लब है उनके सम्बन्ध में भी उन्होंने बतलाया। अपनी हस्त-कलाओं से वहां वे जो कमाती हैं उसका उपयोग वे गरीबों, बाढ़ और भूकम्प-पीड़ितों के हितार्थ तथा अबीसीनिया के रेडक्रास फड में करती हैं।

उनके साथ जो बात हुई उससे शिक्षा भी मिली और प्रेरणा भी। जापान में गांधीजी के सम्बन्ध मे जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई है, उन सबका उन्होंने अध्ययन किया है, और उन्हे अनेक तरह के प्रश्न पूछने थे। जब वे विदा होने लगी, तो आंखों में आंसू भरकर उन्होंने फिर एक बार गांधीजी को जापान लाने के लिए प्रार्थना की और कहा, "जिस मार्ग पर हम जा रहे है, मेरा विश्वास है, उससे कोई भी देश जापान से भयभीत ही होगा, उसे न वह प्रेम करेगा, न आदर की दृष्टि से देखेगा। गांधीजी का पथ-प्रदर्शन मैं केवल जापान के खातिर नहीं, बल्कि चीन, जापान और भारत की दृष्टि से चाहती हूँ। आध्यात्मिक उत्तराधिकार हमारा सामान्य है, और महात्माजी को हम बतौर उस उत्तराधिकार की मूर्त्ति के चाहते है। शायद जापान और चीन के बीच सजीव सम्बन्ध होना उन्हींके हाथ से होना हो। हमें उनकी जरूरत अपने तात्कालिक वर्तमान के लिए नहीं, बल्कि प्राच्यदेशों के भविष्य के लिए, आनेवाली शताब्दी के लिए है।

प्रशंसनीय कार्य

कुरला शहर की म्यूनिसिपैलिटी के हेल्थ डिपार्टमैंट की सहकारी ऋणदात्री सोसाइटी की ११ वीं वार्षिक रिपोर्ट देखने से पता चलता है कि इस सोसाइटीने अच्छी प्रशंसनीय प्रगति की है। इसका सारा श्रेय अकेले श्री एम० बी नाइक के प्रयत्न को है, जो इस सोसाइटी के अध्यक्ष हैं, और जिन्होंने उसे उसके जन्म-काल से ही पालपोस कर इस उन्नत अवस्था को पहुँचाया है। श्रीयुत नाइक स्वयं जाति के ब्राह्मण हैं, और म्यूनिसिपैलिटी के वेतनभोगी सेनी-

टरी इन्सपेक्टर है। सहकारी समिति का काम तो उनका प्रेम का काम है। उन्हे सब तरह की विषम परिस्थितियो का सामना करना पड़ा है, कभी तो हरिजनोने ही बाधाएँ डालीं, और कभी दूसरे लोगोने। किसी-किसीने तो एतराज करते हुए उनसे यहा तक कहा कि आपके घर में हरिजनो की यह रात-दिन की आवाजाई अच्छी नही, यह तो पड़ोसियो के हक में एक कंटक है इससे तो पडोस के रूढ़िप्रिय लोगो की धार्मिक भावनाओ को शायद ठेस भी पहुँच सकती है।

श्री नाइकने बहुत धीरे-धीरे काम शुरू किया। अच्छी पुख्ता नींव तैयार करने के बाद ही उन्होने उसपर इमारत खड़ी की। कुरला के हरिजन अपनी बुरी आदतो के लिए मशहूर थे। सूदखोरी का कोई ठिकाना न था! कुछ अर्से तक तो ऐसा लगा कि वे सुधर ही नही सकते, उनका कोई इलाज ही नही। मगर अब उनकी वह हालत नही रही। अब वे कुछ-कुछ अपने काम-काजों को खुद समालने लगे हैं,और सभाओ व विषय-निर्धारिणी में खासी अच्छी तरह भाग ले सकते हैं। सोसाइटी की सारी पूजी उनकी अपनी ही मालूम होती है, बाहर से एक पैसा भी उधार नहीं लिया है। ५८ सदस्यो की २०७१) की पूजी वक्त जरूरत के लिए अलग रखी हुई है, जिनमे से दो सदस्यो के शेयर तो सौ-सौ रुपये के हैं, और ३२ सदस्यो के शेयर ३१) से ९०) तक के है। यह याद रखना चाहिए कि इन भंगियो की माहवारी कमाई का औसत १५) से २०) तक का ही है।

इस वर्ष सोसाइटीने १३८७) की रकम उधार दी, जिसमे ८.७) पुराने कर्जों की अदायगी के लिए दिये गये। इतनी रकम देकर ११६७) की रकम खारिज करा दी गई है। दो मेंबरो के ऊपर तो कर्ज के नाम अब किसी की एक पाई भी नहीं।

सोसाइटीने बतौर नैतिक खमीर के काम किया है यह इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि तीस-पैंतीस मेंबरोने खुद ही ताड़ी व शराब न छूने की प्रतिज्ञाएं ले ली है, और दो बरस से अपनी प्रतिज्ञाओ का वे खूब सावधानी के साथ पालन कर रहे है। दूसरो से भी वे ऐसी ही प्रतिज्ञा कराने का प्रयत्न कर रहे है। कमखर्ची और ईमानदारी की भावना भी सोसाइटीने अपने मेंबरो में पैदा की है, इस ११ बरस के अर्से में २६०००) उधार दिये गये, पर एक पाई भी बट्टेखाते नही डालनी पडी। पठानो और साहूकारो के साथ भी सोसाइटीने अच्छा संबध कर लिया है। ये लोग पहले १५० प्रतिशत तक सूद ऐंठते थे, पर अब सूद की दर ३७½ प्रतिशत कर दी है। सोसाइटी के मेंबर खूब स्वच्छता के साथ रहते हैं, और ब्याह-शादियो के अवसर पर शराब पिलाने का रिवाज भी उनमें तेजी से दूर होता जा रहा है।

सोसाइटीने करीब २०००) बचाये हैं, जिनमें १२२५) तो स्थायी कोष में है, और बाकी रकम मुनाफे के हिस्सो की है, जो अभी तकसीम नहीं हुई है। ११७५) आफिस, स्कूल, मनोरंजन, मीटिंग वगैरा के लिए एक छोटा-सा भवन बनवाने के अर्थ अलग रख दिये गये हैं।

हरिजन-सेवक-संघ भी यहां बना दिया गया है, पर प्रभावोत्पादक रीति से वह ठीक-ठीक काम नही कर सकता। कारण यह है कि उसमे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो इन हरिजनों के बीच में जाकर रह सके, और उनके सुख-दु:ख में हिस्सा ले सके। कहते हैं कि सोसाइटी के लिए सवर्ण मंत्री तक तो मिल नहीं सका।

श्रीयुक्त नाइक एक ऐसे सच्चरित्र और योग्य हरिजन-सेवक के लिए लालायित है, जो अपना सारा समय हरिजन-कार्य में दे सके, हरिजनोंके बीच में रहने को तैयार हो, उनके बच्चों को पढ़ा सके, उनके छुट्टी के समय में उन्हें किसी काम-धंधे में लगावे,उनकी बुरी आदतों को ठीक करे और साधारणतया उनके जीवन को सुधारे। श्रीयुक्त नाइक को जबतक कोई ऐसा सेवक न मिले, तबतक उन्हें खुद ही यह सब काम करना चाहिए। उन भंगियों में से ही उन्हे एक-दो आदमी अच्छे योग्य और ईमानदार चुन लेने चाहिए और उनके द्वारा काम चलाना चाहिए। वे ऐसा प्रयत्न करें, जिससे सघ के अध्यक्ष और मंत्री हरिजन भाइयो के हितकारी कार्यों मे दिलचस्पी लेने लगें और इन लोगों से मिलने-जुलने और इनके साथ मित्रता का संबंध जोड़ने के लिए अपना अधिक-से-अधिक समय देने लगें।

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

गुंटूर ज़िले में खादी की प्रगति

गुटूरजिला-खद्दर-सघ की उपयोगी प्रवृत्ति का एक वर्ष और १९३५ के अंत में, पूरा हो गया। इस वर्ष उसने जो काम किया है उससे सबध रखनेवाले महत्त्वपूर्ण आकड़े मै नीचे देता हूँ :—

(१) उत्पत्ति	६०,५२९॥=)११
(१) खरीद	
(क) प्रात में	२५,३४०)॥।
(ख) प्रात के बाहर	६,६२८।-)
(३) खरी बिक्री कुल	९३,४७३।=)७
यह बिक्री इस प्रकार हुई	
(क) अपने खास भंडारो के द्वारा	३२,६८६॥)॥
(ख) फेरीवालों के द्वारा	४१,५४१-)।
(ग) प्रात मे	२८,४६८।)॥
(घ) फुटकर बिक्री	२,९८५=)१
(ङ) प्रात के बाहर	१,८५०॥=)
कुल	१,०७,५३१॥।)८
वापसी माल	१४,०५८।-)॥।
खरी बिक्री	९३,४७३।=)७

१९३४ के आंकड़ों से इस साल के आंकड़े काफी अच्छे है। उस साल ३१,३९४ की उत्पत्ति, १६,५३०) की खरीद और ६३,७३८) की बिक्री हुई थी। इधर सब बातों में तरक्की हुई है। उत्पत्ति ९३% बढ गई है; खरीद भी ९३% बढी है; और बिक्री भी ४७% बढ़ गई है। एक उल्लेखनीय बात यह है कि कुल बिक्री का लगभग एक तिहाई भाग फेरी-द्वारा हुई बिक्री का है, और यह फेरी की बिक्री आमतौर पर गांवों में होती है। दूसरी महत्त्व की बात यह है कि दूसरे प्रांतो में खादी एक तरह से इस साल कुछ भी नही गई, सिर्फ २% ही बाहर गई है। (वापसी का सम्बन्ध तो ज्यादातर फेरीवालो के हिसाब से है।)

१९३५ में जो काम हुआ है वह अब भी १९३३ के काम के परिमाण तक नही पहुँचा; मगर उसके वहातक पहुँचने में अब बहुत ही थोड़ा अतर रह गया है।

'हरिजन' से] जी० सीताराम शास्त्री

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi, by R. S. Gupta.

हिन्दू नेताओ, जाग जाओ

"आत्मवत सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक'
किंग्सवे, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शनिवार, २५ जनवरी, १९३९. [संख्या ५१

विषय-सूची

ईश्वर का राज्य

(१)

'गांवों में, किसलिए—?' नामक लेख का आखिरी पैरा जब मैं लिख रहा था तो मुझे लड़कपन में अपने चाचाजी की कही एक सुन्दर कहानी याद आ रही थी। मुझे लोभ हो रहा है कि उसे पाठकोंतक पहुँचा दूं। उसने मेरे जीवन पर सदा के लिए अपनी छाप छोड दी है।

"एक राजा था। बूढ़ा होने पर उसके मन में विचार आया कि राजपाट बहुत कर चुका। बेटे भी राज-काज सँभालनेलायक हो गये। सारी उम्र दुनियादारी में ही बिता दी—अब कुछ ईश्वर-भजन भी करना चाहिए। दीवानने भी उसके इस प्रस्ताव का समर्थन किया। युवराज को तो यह तजवीज और भी पसंद आई, किन्तु पिताजी का अपने से दूर रहना उसे अखर भी रहा था।

युवराज को राजगद्दी पर बिठा देने के बाद राजा वन-गमन की तैयारी करने लगा। साथ में क्या-क्या चीजें ले जायें इसका विचार शुरू हुआ। कम-से-कम एक बिस्तरा तो चाहिए ही। खाने-पीने का कुछ सामान और बरतन भी जरूरी मालूम हुए। और सामान तथा बिछौना उठाने के लिए कम-से-कम एक नौकर। बेटेने बहुत-कुछ कहा कि सवारी के लिए घोड़ा लेते जाइए, सामान तथा नौकर-चाकर और ले लीजिए, लेकिन राजा को तो विराग का रंग लग चुका था। नौकर को साथ ले पैदल महल से बाहर हो गया। नगरवासी शहर की हदतक राजा को पहुँचाने के लिए आये। राजा न्यायी और प्रजा-प्रिय था। प्रजाजन के आंसुओंने उसे बिदाई दी। राजा यों तो अकेला गया, पर मानों सब प्रजाजन का मन भी अपने साथ लेता गया।

कुछ दूर जाकर राजा को बड़ी प्यास लगी। उसने नौकर से पानी लाने के लिए कहा। कुछ ही दूर एक झरना बहता था। नौकर लोटा-गिलास लेकर दौड़ा गया। राजाने सोचा, चलो मैं भी झरना देखलूं। नौकर छानकर लोटे में जल भर ही रहा था कि एक किसान आया। उसने झरने में हाथ धोये, दोनों हाथों से पंखे की तरह पानी इधर-उधर हटाया और चुल्लू से पानी पीने लग गया। राजा की नजर पड़ी। उसने आश्चर्य से चिल्लाकर नौकर से कहा, अरे देख, यह तो बिना गिलास के चुल्लू से ही पानी पी रहा है! नौकरने कहा—हुजूर, गांव के लोग तो इसी तरह पानी पीते हैं। राजाने कहा—तो पहले क्यों नहीं बताया, जब सामान लिया जा रहा था? हम लोटा-गिलास फजूल ही लाये। राजा को यह बात जानकर बड़ा ही आनन्द हुआ। उसे मालूम हुआ, मानो ईश्वर की उसपर विशेष कृपा हुई जो इतनी जल्दी ऐसा अनुभव हुआ। उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया और नौकर से कहा—यह लोटा-गिलास किसी गरीब को देदे। ईश्वरने जब पानी पीने के लिए हाथ बना दिये हैं तो फजूल इस बोझको क्यों लादें? ईश्वर की रचना का ही उपयोग क्यों न करें? नौकरने राजा को बहुत समझाया; पर उसने एक न मानी। इस दृश्यने ईश्वर के रचना-नैपुण्य के प्रति उसका आदर और श्रद्धा बढ़ादी थी।

दोपहर का वक्त। एक खेत के किनारे पेड़ की छाहें के नीचे राजा थकान के लिए आराम कर रहा है। राजा मन में अपने पिछले जीवन का सिंहावलोकन कर रहा है। आज कुछ घण्टों के जीवन में उसने जो आनन्द-लाभ किया वह पिछले ७० वर्ष में उसे नहीं मिला था—यह अनुभव कर रहा था। इतने में एक किसान पास के खेत से आया। कपड़े में बँधी हुई मोटी रोटियां निकालीं, एक हथेली पर रोटी रखली, उसीपर चटनी, और दूसरे हाथ से खाने लगा। राजा की निगाह गई। उसके आनन्द की सीमा न रही। उछलकर नौकर से कहा—अरे देख तो, हम थाली नाहक ले आये, रोटी तो इन्सान हाथ पर रखकर भी खा सकता है। नौकरने जवाब दिया—महाराज, किसान तो इसी तरह खाया करते हैं। राजाने जरा झल्लाकर कहा—तो भले आदमी, घर पर ही यह क्यों नहीं बता दिया? नौकरने कहा—सरकार, आप राजा ठहरे, आपसे यह सब कैसे होता? राजाने कहा—पर मैं तो फकीर बनना चाहता हूँ। मनुष्य के राज्य से हटकर मैं ईश्वर के राज्य में पहुँचना चाहता हूँ। मैं देखता हूँ, मनुष्य का राज्य इन्सान को बनावटों का गुलाम बनाता है, और ईश्वर की रचना उसे स्वाधीन, स्वयंपूर्ण, स्वावलम्बी बनाना चाहती है। अब इन बरतनों की मुझे कोई जरूरत नहीं है।

रोटी खाकर किसान अपने बायें हाथ का सिरहाना देकर उसी हरी घासपर सो गया और गाढ़ी नींद लेने लगा कि राजा को सारी उम्र वह नसीब न हुई होगी। राजा मन में बड़ा प्रसन्न हुआ। भगवान् को बार-बार धन्यवाद देने लगा, उसकी कुदरत पर और इन नये-नये अनुभवों पर वह धन्य-धन्य! कहने लगा। नौकर से कहा, अरे देख, आज मुझे कुदरत का सच्चा सुख मिल रहा है। इस बिस्तर को भी फेंक, और तू भी घर लौट जा; ईश्वरने इन्सान को इतना पूरा और कुदरत को इतना भार

बनाया है कि मुझे तेरे और इस सामान के अवलम्बन की कतई जरूरत नही है। मुझे अकेला अपने हाथ-पांव और ईश्वर के भरोसे छोडकर तू चला जा। अब मैं सब तरह सुखी रहूँगा। अपने हाथ-पाव से काम लूंगा और प्रभु-मय जीवन बिताऊँगा।"

(२)

दोपहर राजाने उसी किसान की तरह हरी घास पर सोकर काटी और चलते-चलते शाम को एक बड़े-से बड के पेड के नीचे आकर बैठा और ईश्वरचिन्तन में डूब गया। इतने ही मे एक आदमी झाड़ू हाथ मे लिये आया, और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। राजा की आख खुली तो पूछा, 'तू कौन है और हाथ बाधे क्यो खड़ा है ?'

"मै देवदूत हूँ।"

"तो तू यहा क्यो आया है ?"

"मुझे ईश्वरने आपकी सेवा के लिए भेजा है। आप जहां रहे वहा झाड़ू लगा देने और सफाई करने का मुझे हुक्म है।"

"तो भई, मुझे तो तेरी सहायता की जरूरत नहीं है। खुद मेरे ही नौकर-चाकर क्या कम थे जो मैं ईश्वर को कष्ट में डालता। जा, तू ईश्वर से मेरा प्रणाम कहकर कह देना कि, मुझे तुम्हारे सिवा किसी चीज की जरूरत नही है।"

थोडी देर मे वह झाड़ूवाला अब की फर्श और लेकर वापस आ गया, और आते ही झाड़ू-बुहारा करने लगा। राजाने पूछा—'तू फिर आ गया ?'

"जी हा, मुझे भगवान् का हुक्म है कि आपसे कुछ न पूछू और जो हुक्म हुआ है उसकी तामील करता रहूँ।"

राजा चुप रहा। मन मे कहा—कहने दो। अपने से क्या मतलब। उसकी फर्श पर तो मुझे बैठना है नही। अरे, यह सब सुख-विलास मेरे महल मे क्या कम था ?

भोजन के वक्त वही आदमी एक थाल ले आया,जिसमे तरह-तरह के बढ़िया राजसी पक्वान्न और मिष्ठान्न थे।

राजाने देखकर कहा—"भई, तुम मुझे क्यो तग करते हो ? मुझे तो इसमे से कुछ खाना नही है।"

देवदूत—"मुझे तो जो हुक्म हुआ है उसकी तामील कर रहा हूँ।"

राजाने खाना गरीबों को खिला दिया और खुद जो कन्द-मूल जगल मे से बीनकर लाया था उसको खाकर पेड़ के नीचे हरी घास के गद्दे पर सो रहा।

रोज यही सिलसिला रहता।

थोड़े ही अर्से में चारो ओर शोहरत फैलने लगी कि कोई बड़ा पहुचा हुआ महात्मा आया है। रोज न जाने कहां से नया-नया फर्श आकर बिछता है और बढ़िया भोजन का थाल आता है। बड़ा करामाती है।

दर्शकों और भक्तो का ठठ जमने लगा।

एक किसान अपनी गरीबी से बडा बेजार था। उसने सोचा, इस महात्मा से कुछ उपाय पूछें। यह नंगे हाथ आया था और रोज इतना ठाट कैसे लगा लेता है!

बड़े भक्तिभाव से प्रणाम करके एक रोज अपनी गरीबी का दुखड़ा रोकर सुनाया। बोला—"महाराज, मुझे भी यह तरकीब बतादो जिससे इसी तरह मेरा भी ठाट-बाट लग जाय। घर बैठे थाल आ जाया करे।"

राजाने कहा—"भई, मैं तो कुछ तरकीब-वरकीब जानता नही हूँ। ईश्वर का नाम लेता हूँ, वही भेज देता है।"

"तो महाराज, मुझे क्यों नहीं भेज देता, आप तो कुछ नही लेते हैं फिर भी जबरदस्ती भेजता है, और हम रोज पुकारते हैं फिर भी वह नही सुनता!"

"भई, मैं राजा था। मैंने उसके नामपर राज-पाट सब छोड़ दिया और जगल में आकर रहने लगा तो उसने वह ठाट यहां भी लगा दिया, मगर मुझे इसकी कोई जरूरत नही है। तू भी ईश्वर के नाम पर सब कुछ छोड़ दे। मैं इसके सिवा तुझे और क्या रास्ता बताऊँ।"

किसान खुशी-खुशी घर दौड़ा गया। घरवाली को पुकारकर दरवाजे से ही कहा—"अरी सुन! बड़वाले महात्माने एक तरकीब बताई है—अपना सब दलिद्दर दूर हो जायगा। कल से मैं ईश्वर के नाम पर घर-बार खाना-पीना सब छोड़-छाड़कर एक पेड़ के नीचे आसन जमाके बैठ जाऊँगा। आज घर में जो-कुछ घी-गुड़ हो उसका हलवा-पूड़ी बनाके मुझे खिला दे—न जाने कितने दिन भूखा रहना पड़े।"

"तुम पागल तो नही हो गये हो, क्या बहकी-बहकी बाते कर रहे हो ?"

किसानने तमाचा उठाया और कहा—"रांड, तू देर मत कर, निहाल हो जाने की तरकीब ढूढ लाया हूँ, तू जल्दी कर।"

× × ×

भूखा-प्यासा बैठे दो दिन हो गये। देवदूत अभीतक क्यों नही आया ? इस महात्माने चकमा तो नही दे दिया। दो दिन की कमाई से भी गया और भूखा मरा सो अलग। किसान मन में पछताने लगा। कोई आदमी आता दिखाई पडता तो समझता, यह देवदूत ही आया होगा। भूख से व्याकुल हो ईश्वर को बुरी तरह कोसने लगा। उस साले राजा का तो एक ही दिन में ठाट लगा दिया। मैं दो दिन से भूखो मर रहा हूँ, कोई सुनवाई ही नहीं। गरीब और दुखियो का कोई नही। ईश्वर भी बड़ों का पक्ष करता है।" इतने मे थाल हाथ में लिये हुए एक आदमी आता दिखाई दिया।

किसानने आतुर होकर पुकारा—'तू देवदूत है ?'

'हां'

'तो अबतक कहां मरगया था ? ला, जल्दी ला, क्या-क्या लाया है ? किसान आदमी, दो दिन से पेट में कुछ भी नही डाला है!!'

उसने थाल आगे बढाया तो तीन-चार मोटी-मोटी रोटियां और दो प्याज! किसान जल-भुनकर खाक हो गया। थाली उठाकर देवदूत के सिर पर दे मारी। 'शर्म नहीं आई रोटी और प्याज लाते हुए ? उस राजा को छप्पन भोग, मुझ गरीब को वही प्याज-रोटी। अरे, यह तो मै रोज ही खाता था। इसी के लिए दो दिन भूखो मरने की क्या जरूरत थी ? लौटा लेजा, और भगवान् से कह कि उस महात्मा जैसे ठाट लगादें तो खाना खाऊंगा।'

देवदूतने भगवान् से आकर किस्सा सुनाया। उन्होंने कहा—"उसे समझा कि राजाने जो मेरे नामपर छोड़ा था वह उसे दे दिया—जो तूने छोड़ा सो तुझे भेज दिया। तू तो इसका भी अधिकारी नहीं था। राजा का त्याग तो सच्चा और निष्काम था। अब भी तो वह उसका उपभोग नहीं कर रहा है।"

हरिभाऊ उपाध्याय

नवसारी की भंगी-बस्ती

नवसारी-हरिजन-आश्रम के व्यवस्थापक तथा नवसारी के भंगियों में सामाजिक काम करनेवाले श्री खंडेरियाजी के साथ भंगी-बस्ती देखने के लिए उस दिन जब मै जा रहा था, तो रास्ते में वे मुझसे बात करने लगे। बोले—"हमने भंगियो की एक सहकारी समिति स्थापित की है, और ऋणमुक्ति के सम्बन्ध में हमें अच्छी सफलता मिली है। भंगियों का अभी हाल में हमने संगठन भी किया है, और म्यूनिसिपैलिटीवाले भी हमें अच्छा सहयोग दे रहे है। अनेक पुराने पियक्कड भंगियोने भी दारूपीने का दुर्व्यसन छोड़ दिया है। दारू पीनेवालों की संख्या अब बहुत थोड़ी रह गई है। आशा है कि कुछ दिनो में शराब पीने की बुराई वे भी समझ जायेंगे। सहकारी समिति की तरफ से हम खाने-पीने तथा घर-गिरस्ती की दूसरी जरूरत की चीजो की एक दूकान चला रहे है। दूकान पर बेचने का काम नियत समय पर एक हमारा भंगी भाई ही करता है। बाजार मे ये लोग बनिया या तेली के यहा सौदा लेने जाते है तो दूर खडा रहना पडता है, यह तो वे कभी जांच ही नही सकते कि माल अच्छा है या खराब, यह भी नही देख सकते कि तोल ठीक है या कम, उन्हें तो दूर से सौदा लेना पड़ता है, और माल हलके-में-हलका तथा महँगे-से-महँगा मिलता है। हम अब इकट्ठा माल खरीद लेते हैं और खरीद के दामों पर उतनी ही कीमत चढाते हैं जिसमे कि बेचनेवाले का मेहनताना तथा कोई दूसरी कमी पडे तो वह निकल आय। इससे हमारी दूकान पर लोगों को सस्ता और बढिया माल मिलता है। ये लोग सबेरे और शाम को तो काम करने जाते है, और दोपहर को उन्हे फुर्सत रहती है। सहकारी समिति की ओर से हम इकट्ठे बास खरीद लेते हैं, और फुर्सत के वक्त उनसे उनकी टोकरियां बनवाते है। जितनी टोकरिया तैयार होती है उतनी म्यूनिसिपैलिटीवाले ही खरीद लेते है। इसलिए पाच भंगी-कुटुम्बो को साल में दो सौ रुपये की मजदूरी मिल जाती है कचरे वगैरा का खाद बनाने की योजना की भी बातचीत हम म्यूनिसिपैलिटी के साथ कर रहे है। इस योजना पर अमल होना शुरू हो जाय तो कुछेक ही भंगियों को एक नया काम, और कुछ भंगियों को थोड़ा अतिरिक्त काम मिल जाय, और मैले का बहुमूल्य उपयोग भी होने लगे, जो आज बिलकुल फिजूल ही जाता है। म्यूनिसिपैलिटी से भंगियो को ११) मासिक तथा उनकी स्त्रियो को ८) मासिक वेतन मिलता है। पाखाना साफ करनेवालो को ११) मासिक और झाडने-बुहारनेवालो को ९) मासिक वेतन मिलता है। फिर नवसारी की बस्ती भी भले आदमियो की है। पारसी यहां अधिक हैं, इसलिए भंगियो को खाना और कपडा अच्छा मिल जाता है। संगठन करने के बाद भंगियो को एक भारी लाभ हुआ है। हरेक भंगी को रोज कितने पाखाने साफ करने पड़ते होंगे इसकी बात जब चली तो म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन साहबने कहा कि—'बस, पचास-पच्चावन तो हद है।' मैने तुरन्त हिसाब निकालकर बतला दिया कि किसी भी भंगी को ८० टट्टियों से कम साफ नहीं करनी पड़ती है। कुछ भंगियों को तो १०० से भी ऊपर टट्टियां कमानी पड़ती हैं। इस सम्बन्ध में म्यूनिसिपैलिटी के साथ हमारी लिखा-पढी चल रही है, और हम यह प्रयत्न कर रहे हैं कि गरीब भंगियों के साथ ठीक-ठीक न्याय होना चाहिए।"

भंगियों की ये सब 'सुख' की बातें सुनता हुआ मैं मन-ही-मन विचार करता जाता था कि हमारे भाई-बहिन हमारा जो गंदे-से-गंदा और अत्यंत आवश्यक काम करते है उनके वेतन में कुछ वृद्धि हो जाय, उन्हें कुछ अधिक भीख मिलने लगे, थोड़ी कम टट्टिया साफ करनी पड़ें तो इससे उन बेचारो को कितनी प्रसन्नता हो। जिनकी सेवा के बिना सारा गांव गँधा उठे और लोग जी भी न सकें उन्हे यह कम-से-कम रोजी क्यों? भीख पर वे क्यो गुजर करें? समाज में चारों तरफ से वे क्यों दुत्कारे जायें? फिर भी इस अभागी कौम का हाथ पकडकर उन्हे थोड़ी राहत दिला सकने के लिए भाई खंडेरियाजी को जो आनंद होता है वह स्वाभाविक ही है। अभी तो वे उनके लिए बड़े-बड़े काम करने की आशाएँ बँधाते है, इसलिए उन्हे उसन्न होने का हक है।

इतने मे भंगियो की बस्ती आ गई। बस्ती के बीच में एक बडा पक्का मकान दिखाई दिया। मैने सोचा कि यह किसी अच्छी सपन्न स्थितिवाले भंगी का मकान होगा। पर जब पूछा तो यह मालूम हुआ कि यह तो सार्वजनिक पाखाने की इमारत है! किसी गांव या शहर के बाहर से देखने पर दूसरे घरो के मुकाबले में जैसे मदिर के शिखर या हवेलियों और महलो की अट्टालिकाएँ ऊँचा सिर किये दिखाई देती हैं उसी तरह भंगियो के झोपडों के मुकाबले मे यह पक्की इमारत राज-महल-जैसी लगती थी। इस मकान के आसपास—शायद ही दस-दस फुट जगह चारो तरफ छोडकर—भंगियो के झोपड़े थे। सारे ही झोपड़े टूटे-फूटे कनिस्टरो के पटरो के थे। बिल्कुल ही नीचे, अदर खिड़कियों का नाम भी नही। भंगी-बस्ती की बाजू में बदबूदार पानी का एक बरसाती खड्डे-जैसा तालाब था, जिसमे शहर की तमाम गटरो का पानी आता होगा। और मैला-गाडियों का डलाव भी वही। दूसरी बाजू मे नदी की खाडी। इसका उपयोग भी लोग बतौर बपुलिसो के ही करते है। दुर्गन्ध की सारी ही सामग्री वहा मौजूद थी, बस्ती को बीमारियो और बदबू का अड्डा बनाने में कोई कसर नही रखी गई है। भंगी भाइयो से करीब एक घटा मैंने बात की होगी, पर वहां तो मारे दुर्गन्ध के इतना बैठना भी मुश्किल हो गया। मैं घबरा उठा। ऐसी बदबूदार जगह में तो ढोर भी रहना पसंद नहीं करेंगे, लेकिन मानव बंधुओ को इस नरक मे ही जिन्दगी काटनी है! फूल-जैसे नन्हे-नन्हे सुकुमार बालको को यहा चौबीसो घटे रहना है! इस हृदय-द्रावक परिस्थिति की भीषणता तब तो और भी बढ गई जब मैंने सुना कि जिस बंपुलिस के पास ही, या जिस बंपुलिस में इन अभागे लोगो को रहना था, उस बंपुलिस का एक-दो बरस पहले वे उपयोग नही कर सकते थे! पाखानों को वे साफ भर करें, उनका उपयोग न करें! यह उपयोग करने की इजाजत तो उन्हे अभी-अभी मिली है।

खंडेरियाजी से मैने कहा कि आपने भंगियो के दूसरे सुख व सुविधाओ की जो बाते की हैं वे मुझे अच्छी लगीं, पर यह दृश्य तो देखा नहीं जाता, यह तो असह्य है। उन्होंने कहा कि बस्ती यहां से उठवाने की लिखा-पढी चल ही रही है। ठक्कर बापा जब यहां आये तब वे तो यह देखकर चौंक पडे थे। ठक्कर बापा जैसे दीनवत्सल लोकसेवक का हृदय यह नारकीय दृश्य देखकर क्यो न व्याकुल हो उठे? उन्होंने दीवान साहब को इस विषय में पत्र

[४०० पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

हरिजन-सेवक

शनिवार २५ जनवरी, १६३६

हिन्दू नेताओ, जाग जाओ

मैंने हाल ही में मद्रास-सरकार की एक विज्ञप्ति इस आशय की पढ़ी है कि हरिजन विद्यार्थी, जो स्कूल की फीस की माफी और दूसरी रियायतो का लाभ उठा रहे है वे सब रियायते अब इसके बाद 'परिशिष्ट वर्गों' (शेडयूल्ड कास्ट्स) अर्थात् हरिजन जातियो को, ईसाई या अन्य किसी भी धर्म मे चले जाने पर भी, मिलती रहेगी। इसी तरह किसी भी छात्रवृत्ति पानेवाले विद्यार्थी को, उसे जो रियायत मिल रही है, वह उसके हिन्दूधर्म त्याग देने के कारण बन्द नही की जायगी। यह बात हिन्दूधर्म के नेताओ के लिए विचार करनेयोग्य है ! यह बहुत सम्भव है कि ईसाई पादरियोने खानगी रीति से अपनी आपत्तियो के पक्ष मे जो जोरदार वकालत की, उसके कारण सरकार की नीति मे यह यकायक हेरफेर हुआ हो। उन्हे यह मानने का अधिकार है कि जो हरिजन हिन्दूधर्म मे है उन्हे दी जानेवाली इन खास रियायतों की वजह से अब वे अन्य धर्म मे जाकर फिर हिन्दूधर्म मे लौट आते है या ईसाई धर्म मे जाने से इन्कार कर देते है। दूसरी ओर, इस वजह से कि अमुक जाति पिछडी हुई है या गरीब है उसे दी जानेवाली रियायत उसके धर्म-परिवर्तन के कारण अगर बन्द न की जाय तो हमे इसके खिलाफ शिकायत करने का अधिकार नही। सरकार की इस उदारता के विरुद्ध शिकायत करने का अर्थ यह स्वीकार कर लेने के बराबर हुआ कि हिन्दूधर्म ही उन लोगो को गरीब और अवनत बनाता है, और ज्योंही वे हिन्दूधर्म त्याग देते है त्योंही वे अपने पैरो पर खड़े हो सकनेलायक बन जाते है !

यह हो नही सकता कि हम लोग हिन्दूधर्म को सुधारने से तो इन्कार करदे, और उसके विषय मे हरिजनो की निष्ठा बनाये रखने के लिए सरकार से कृत्रिम सहायता मांगें। इसमे शक नही कि स्कूल की फीस वगैरा की खास रियायत हिन्दू हरिजनो को ही देने का नियम हिन्दूधर्म का एक कृत्रिम बचाव था, और यह चीज अब छीन ली गई है। इसलिए अब शिक्षा के लिए तरसते हुए मा-बाप और बच्चों के सम्बन्ध मे हिन्दूधर्म की परीक्षा होनी है। आज अनेक नई शक्तिया काम कर रही है, क्या यह बात हिन्दूधर्म के नेता समझेगे ? क्या वे यह समझेगे कि अब सुधार किये बिना इस तरह ऊंघते रहने मे काम नही चलेगा, जन-साधारण के पुराने वहमों और जड़ता के सरक्षणों पर ही अब उन्हे निर्भर नही रहना पडेगा ? अब वे बाते गईं; आज चारो ओर परिवर्तन और जागृति हो रही है।

धार्मिक सस्थाओ के अधिष्ठाताओ को इसकी जरा भी खबर नही कि आज दुनिया में कहां क्या हो रहा है। जब वे यह देखने के लिए जाने का निश्चय मन में करेंगे कि दरवाजा ठीक तरह से बन्द है या नही तब इतने में तो घोड़ा चोरी चला ही गया होगा !

इसलिए जिन हिन्दुओंने आधुनिक शिक्षा प्राप्त की हो, और जो इस युग की शक्तियों और आन्दोलनों से परिचित हों उनका यह कर्त्तव्य है कि वे इन धर्मगुरुओं को समय के साथ चलने की सलाह दें। सरकारने स्कूलों की फीस के बारे में जो फेरफार किया है वह तो अभी पहला कदम है। अभी तो हरेक छूट और रियायत में, जो हरिजनों को दी जाती है या दी जायगी, परिवर्तन और विस्तार होगा और ऐसा उन बड़े-बड़े जोरदार हल्को के दबाव के कारण होगा कि जिनके ऊपर पादरियो की राय का असर पडता है। इन रियायतों को धर्म-परिवर्तन के मार्ग में बाधक बनने से रोकने का प्रयत्न तो हर तरह से किया जायगा, इसमें कोई कसर नही रखी जायगी।

किसी भी धर्म को सामाजिक अधिकारों में भेदभाव-द्वारा कृत्रिम टेक मिलने का हक नही। भविष्य मे हिन्दूधर्म के प्रति हरिजनो के हृदय मे प्रेम तथा भक्तिभाव तभी रह सकता है अगर उनमें के सुशिक्षित लोगो को यह मालूम होगा कि हिन्दूधर्म प्रेम और भक्ति का पात्र है। किसी समझदार मनुष्य को सामने आता हुआ देखकर हम अपने घर या मन्दिर के द्वार बन्द करले, और इतने पर भी यह आशा रखें कि हमारे धर्म के प्रति उसकी सद्भावना और निष्ठा बनी रहेगी तो हमारी इस आशा को मृग-तृष्णा ही समझना चाहिए।

'हरिजन' मे] च० राजगोपालाचार्य

जाति और वर्ण

एक सज्जन लिखते है कि 'आप जो यह कहते हैं कि—"जातिया नष्ट हो जानी चाहिए, वर्ण स्थिर है और होने चाहिए", इसे कृपया उदाहरण देकर समझाइए।'

जातिया अनेक हैं, और वे मनुष्यकृत हैं। उनमें निरंतर परिवर्त्तन हुआ करते हैं। पुरानी जातियों का नाश होता है, नई पैदा होती हे। धधों पर से जातिया सारी दुनिया में है। केवल एक हिंदुस्तान में ही ये रोटी-बेटी के प्रतिबध जातियों के कारण देखने में आते है, और फिर ऐसे प्रतिबध कि जहां बुद्धि की गति नही ! यह वस्तु बहुत हानिकर है। यह प्रजा की प्रगति को रोकती हे। इसका धर्म के साथ कुछ भी सबध नही।

वर्ण अनेक नही, किंतु चार है। शास्त्रो मे इस चातुर्वर्ण्य का प्रतिपादन है। जान या अनजान में ये वर्ण समस्त जगत् में देखने मे आते है। जगत् के कल्याणार्थ ईश्वर-विषयक ज्ञान देनेवाला, अनेक प्रकार के भयो से प्रजा की रक्षा करनेवाला, उनके पोषण के लिए खेती व्यापार इत्यादि धंधे करनेवाला और इन तीनों वर्गों की नौकरी करनेवाला—ये चार विभाग होने ही चाहिएँ। इनमे ऊँच-नीच का भाव नहीं होता। किंतु जगत् में इस चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को एक महान् नियम के रूप में न पहचानने से वर्ण का सकर हो गया है, अर्थात् इन चार कार्यों को उन-उन वर्णों में रहने के बजाय चाहे जो मनुष्य चाहे जिन कामों को करता है, और चाहे जिस तरह अपना स्वार्थ साधता है। भारतवर्ष में एक समय इस महान् नियम का ज्ञानपूर्वक पालन होता था और उससे सब सुखी रहते थे। सब अपने-अपने वर्ण के धंधे लोक-कल्याणार्थ करके सतोष पाते थे। धन या कीर्त्ति के लोभ से एक वर्ण में से कूदकर दूसरे वर्णों में छलांग मारनेवाली, लोगों का अहित करनेवाली प्रतिस्पर्धाएँ नहीं चलती थीं। आज तो भारतवर्ष में भी वर्ण की इस विशेषता का प्राय: लोप हो गया मालूम होता है। नाशकारिणी प्रतिस्पर्धा बढ़ गई है, सभी लोग चाहे जिस धंधे को करने लगे हैं, और वर्ण का अर्थ किया जा रहा है रोटी-बेटी-विषयक कृत्रिम और अनावश्यक प्रतिबंध, और इसीसे प्रजा की

प्रगति रुक गई है। अनेक प्रकार के प्रतिबंध दूर होकर यदि शुद्ध वर्ण-नीति का पुनरुद्धार हो जाय, उच्च-नीच के भेद मिट जायँ तो हिंदूधर्म पुनः उज्ज्वल हो जाय, भारत का कल्याण हो और उसके साथ ही जगत् का भी कल्याण हो।

वर्धा, २८-११-३५
'हरिजन-बंधु' से]

मो० क० गांधी

साप्ताहिक पत्र

हँसी और आँसू

वर्धा में इस बीमारी में जमनालालजी गांधीजी का पहरा-देते थे—और उनका पहरा भी कितना सख्त था कि गांधीजी को उन्होंने सभी मिलने-जुलनेवालों से बचाया, और आश्रमवासियों और खुद मगनवाड़ीवालों तक को उनके पास नहीं जाने दिया। लेकिन आखिरी दिन उनका हृदय कुछ पिघल गया और जो लोग गांधीजी को देखना चाहते थे उन्हें उन्होंने एक-एक दो-दो मिनट उनके पास रहने की इजाजत देदी। उनमें से एक बहिन को गांधीजी चाहते थे कि उनकी अनुपस्थिति में वह मगनवाड़ी में ही रहे। इसकी उसे कुछ बहुत खुशी नहीं थी, क्योंकि मुश्किल से ही वहां उसका कोई साथी था। "क्या मैं यह विश्वास करूँ कि तुम मगनवाड़ी में प्रसन्नतापूर्वक रहोगी, और मुझे अपने बारे में परेशान नहीं करोगी?" गांधीजीने उससे पूछा।

"हां, बापू!" उसने कहा, "मैंने रहने का निश्चय कर लिया है, और एक ऐसा काल-क्रम बना लिया है, जिससे मैं सारे दिन काम में लगी रहूँगी।"

मगर सरदारने, जो वहां मौजूद थे, बीच में टोकते हुए कहा—"आप इतने दिनों से हरेक का ही तो विश्वास करते आ रहे हैं, और इसका परिणाम भी आप जानते हैं!"

"मैं समझता हूँ कि आप इन लोगों को भी नहीं छोड़ना चाहते हैं," गांधीजीने कहा, तो सब-के-सब हँस पड़े।

इसके बाद मीरा बहिन आईं। जबकि वे प्रणाम कर रही थीं, गांधीजीने उनसे कहा, "क्या कारण है कि तुम हजारों आदमियों के बीच में अकेली रहती हो, पर किसी को तुम्हारे लिए चिंता नहीं करनी पड़ती और सभी तुम्हारे ऊपर विश्वास करते हैं? उस विश्वास के लायक तुमने ऐसा क्या काम किया है?"

"मैंने तो ऐसा कुछ भी नहीं किया है," आंखों में आनंदाश्रु भरकर मीरा बहिनने कहा। "वह तो आपका प्रताप है।"

"पर, यह तो तुम समझती ही हो कि मैंने तुम्हारे साथ कोई पक्षपातपूर्ण बर्ताव तो किया नहीं।"

"तब भी इतनी निर्भयता, लाखों आदमियों के बीच में रहने की यह निर्भयता आपने ही मेरे अंदर भर दी है।"

हम लोग जब बंबई को रवाना हुए, तो डॉ० जीवराज मेहता और सरदार वल्लभ भाईने हमारे साथ तीसरे दरजे में ही सफर किया। गांधीजी को यह आशा नहीं थी। कैसा क्या इंतजाम किया गया है इस सब की तफसीलें बतलाकर उन्हें किसीने कष्ट नहीं दिया था। जब गाड़ी खुल गई और उन्होंने देखा कि सरदार और डॉक्टर मेहता तीसरे दरजे के डिब्बे में अपने बैठने का इंतजाम कर रहे हैं तब उन्होंने पूछा, "ऐसी जरूरत ही क्या थी जो आप लोग तीसरे दरजे में सफर कर रहे हैं?"

"डॉक्टर मेहताने कहा, "तब तो यह निरर्थक-सी ही बात होती न कि मैं आपका मार्गरक्षक बनने का दावा करता और आपके साथ उसी डिब्बे में न बैठता!"

मगर सरदार को ऐसा करने की क्या जरूरत थी? उन्होंने अपना जवाब पहले ही तैयार कर रखा था। बोले, "जबकि डॉक्टर साहब, जो अमूमन पहले दरजे में सफर करते हैं, आज तीसरे दरजे में सफर कर रहे हैं, तब मैंने सोचा कि मुझे उनका साथ देना ही चाहिए।"

डॉक्टर मेहताने मार्गरक्षक का काम किया भी बहुत अच्छा। गाड़ी चलते ही उन्होंने यह देखना शुरू किया कि खिड़कियां इस तरफ की जरूर खुली रहनी चाहिएँ, गांधीजी को इस लंबी संदूक के ऊपर ही सोना चाहिए, क्योंकि इसीपर उन्हें सबसे ज्यादा आराम मिलेगा, इत्यादि इत्यादि। लेकिन दूसरे दिन जबकि कल्याण जंकशन से गाड़ी चली, तो उन्होंने हम सबको अचरज में डाल दिया। हमारे असबाब की तमाम चीजों को उन्होंने जिस ध्यान और चतुराई के साथ तरतीबवार लगाया उसे देखकर तो हम सब आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने तमाम चीजें इकट्ठी कराईं और इकट्ठी करने में खुद मदद की कि कौन चीज किस सामान के साथ रखनी चाहिए। उन्होंने बतलाया कि ये इधर-उधर पड़ी हुई तमाम छोटी-छोटी चीजें एक जगह जमा करके रख दी जायँ तो इतना फैलाव भी न रहे और गिनने-गिनाने की दिक्कत भी बच जाय। उन्होंने सारे असबाब को इस तरतीब के साथ लगा दिया कि जिससे वह कम-से-कम वक्त में गाड़ी से उतारा जा सके।

गांधीजीने, जो यह सब व्यवस्था ध्यान से देख रहे थे, कहा, "डॉक्टर आप तो आज मुझे स्व० गोखले की बारबार याद दिला रहे हैं। वह अपना सारा सामान खुद ही तरतीब के साथ पैक करते थे और हरेक तफसील को खूब ध्यान से देखते थे। वह गणित-शास्त्री थे और इन तमाम अवसरों पर उनकी चातुर्यपूर्ण व्यवस्था और यथार्थता देखते ही बनती थी। जब वे दक्षिण अफ्रीका से हिंदुस्तान को रवाना हुए, तब करीब ४५ अभिनंदनपत्र, तसवीरों के बड़े-बड़े चौखटे, छोटे-छोटे संदूकचे आदि चीजें साथ लाने को थीं। उन्होंने उन सब चीजों का पैकिंग खुद कराया, और यह देखा कि केबिन या रेल के डिब्बे में उन्हें कहां और किस तरह रखना चाहिए कि जिससे कोई चीज टूटे-फूटे नहीं।"

बंबई में गांधीजी इतने आराम और शांति के साथ रहे, कि जितना रहना चाहिए था। हरेक व्यक्तिने खूब हृदय से सहयोग दिया। श्रीमती सरोजिनी नायडू रोज ही आतीं और गांधीजी को बिना देखे ही चली जाती थीं। एक दिन शाम को वे एक चिट पर यह लिखकर चली गईं "यह चौथी बार है कि मैं वापस जा रही हूँ। आप को हँसाकर आपके उस पोपले मुहँ की हँसी का आनंद नसीब न हो सका। इससे अब आंखों में आंसू लेकर ही घर वापस जा रही हूँ।"

हमारा गाँव

सिंदी का काम इधर तरक्की पर है। श्री गजानन नाइकने हमारा मैले का खाद खरीदने के लिए एक किसान को और राजी कर लिया है। भाव उन्होंने काफी कम रखा है, यानी सिर्फ चार आने गाड़ी। दो आदमियों को अपने छोटे-छोटे हातों में खाईवाली टट्टियां के लिए भी उन्होंने राजी कर लिया है। वे लोग खुद अपनी टट्टियों की सफाई की देखरेख रखेंगे। खाद की बिक्री का

जो पैसा हमें मिलेगा उसे हम एक के बाद दूसरा सार्वजनिक पाखाना बनाने में लगाते जायेंगे और ये सब पाखाने खाईवाले होंगे। हरेक टट्टी पर आठ या नौ आने से ज्यादा खर्च नही आयगा—हां, खाइयां खोदने का काम श्री नाइक करेंगे, और मगनवाड़ी के दूसरे कार्यकर्त्ता भी वहां हुए तो उनका हाथ बँटाते रहेंगे। श्री नाइक को इस काम में अब भी लोग सहयोग नही दे रहे है, पर यह सहयोग भी उन्हें धीरे-धीरे मिलने लगेगा। वे निराश होनेवाले नहीं। धैर्य उनका अटूट है।

इस बीच कई व्यक्ति ऐसे आये जिन्होने हमारे प्रयोग को, जो कि मीराबहिन द्वारा सिन्दी गांव मे किया जा रहा है, देखा और उसमे दिलचस्पी ली। मिस लेस्टर एक दिन प्रातःकाल सिन्दी गईं और हमारे साथ उन्होने भी मैला उठा-उठाकर बालटियों मे ले जाने का काम किया। इस काम से उन्हे तो प्रसन्नता ही हुई। उन्हे इस बात का बड़ा आश्चर्य हुआ कि मीराबहिन के यहां आने से पहले इस गाव की तथा उन गावो की, जहा इस तरह का काम नही हो रहा है, क्या हालत होगी! मैने उन्हें बताया कि हमारे दयालु सहायक धूप और पशु सदियो से इस दिशा में हमारी सहायता करते आ रहे हैं। लेकिन फिर भी बीमारिया फैलने से बचाने में उन्हें हमेशा ही कामयाबी नही हुई। जब मैंने यह कहा कि ५० साल पहले दीन-दुखियो की महान् सहायिका मिस फ्लोरेन्स का ध्यान इस ओर गया था लेकिन बहुत कोशिश करने पर भी गांवों के स्थानीय कर को गावो की सफाई के लिए सुरक्षित रखाने में उन्हे कामयाबी नही हुई, तो उन्होने आश्चर्य के साथ निराशा की लम्बी सांस ली।

लेकिन, ईश्वर-कृपा से विविध प्रकार से ऐसे-ऐसे क्षेत्रों से हमें प्रोत्साहन मिलता रहता है जिनकी कल्पना भी नहीं होती। अत. जब मिस लेस्टरने मुझसे कहा कि मैला साफ करने की हमारी जो पद्धति है वह इतनी बढ़िया है कि उससे बढ़कर उन्होंने और कही नही देखी, और इसमे वह हमारे साथ चाहे जितने समयतक काम कर सकती हैं जब कि जापानी और चीनी ढंग से मैला उठाते समय वह पास भी नही खड़ी हो सकती थी, तो मुझे आश्वासन मिला और मैंने सोचा कि हमारे प्रयत्न बिल्कुल निराशाजनक तो नहीं हैं।

जापानी पद्धति

आगे चलकर कुमारी लेस्टरने जापान की अत्यन्त गन्दी और बदबूदार पद्धति का वर्णन किया। इससे मुझे वह वर्णन याद आ गया जो कुछ वर्ष हुए डा० कजिन्सने अपनी 'नवीन-जापान' नामक पुस्तक में लिखा था। उनका कहना था, कि "यह सही है कि व्यक्तिगत सुविधा के मामले में जापान मानवी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के काम में अपनी लकड़ी और मिट्टी की सुन्दर कलाओं से सहायता ले लेता है और सुगन्धित द्रव्यो के सत्वो को खोज निकालने में अपनी परम्परागत सूक्ष्मता का भी उपयोग कर लेता है, लेकिन इनके मुकाबले में मैला उठाने की उसकी पद्धति इतनी भयंकर दुर्गन्धयुक्त है कि जितने उसकें कलापूर्ण मन्दिरो के सामने तार के खम्भे भद्दे दीखते हैं। फिर भी भद्दे दृश्य से मनुष्य अपनी आंख फेर सकता है, लेकिन मेहतर की एक गाड़ी से दूसरी गाड़ीतक जिस दुर्गन्ध का तांता बँधा रहता है उससे क्योंकर बचा जाय? वह बदबू इतनी इकट्ठी होकर और सड़कर पैदा होती है कि उससे सिर भिन्ना जाता है। वह घर के जोड़-जोड़ और दरार-दरार में से निकलती है। इस बदबू के मारे जरा भी सुगन्ध के अभ्यस्त मनुष्य के लिए रूप और रंग का सौन्दर्य और क्रम देख सकना असम्भव हो जाता है। और रूप और रंग भी कैसा, जिसे देखकर आंखें-ही-आंखें हो तो खुश हो जायें!

"बीच-बीच में नियमित समय पर घरों में से इकट्ठा मैला ले जाया जाता है। इस क्रिया की घोषणा अपने आप दूर-दूरतक हो जाती है। विश्व-विद्यालय के कमरे में जब मैं सार्वजनिक व्याख्यान देता था, तो कई बार दम घुटने लगता और मुझे मजबूर होकर एक तरफ की खिड़कियां बन्द करने के लिए कहना पड़ता। यह इकट्ठा मैला लकड़ी की बन्द बालटियों में भर-भरकर गाड़ियों से ले जाया जाता है और विशेष स्थानों पर जमा कर दिया जाता है। फसल उगने के समय खेतों के पास के इन सड़ते हुए घूरो से मजदूर लोग दो-दो बालटियां भर-भरकर ले जाते हैं। ये बालटियां कन्धे पर रक्खे हुए बांस के डण्डे के दोनो सिरो पर लटकती रहती हैं। इस मैले को ये मजदूर पौदो में सींचते हैं और उसकी दुर्गन्ध हवा में फैला देते हैं। और यह काम होता एक ऐसे कलश से है जो कला की प्रदर्शिनी में रक्खा जा सकता है। ओइवाके में हमारा घर खेतो के पिछवाड़े में था और हमारा सवेरे का समय घ्राणेन्द्रिय की इस महादु:खदायिनी परीक्षा मे ही बीतता था। फिर तो हमने निश्चय कर लिया था कि जो भाग्य में बदा है उसे चू-चरा किये बिना सह ही लेना चाहिए।"

निस्सन्देह मिट्टी बदबू मिटाने का सबसे अच्छा उपाय है। लेकिन हाला कि मिट्टी के उपयोग मे भारत संसार को खूब पदार्थ-पाठ दे सकता है, फिर भी हमारे बहुत-से शहरो में वही दु:खदायी दृश्य मिलते हैं जो डा० कजिन्स की पुस्तक में चित्रित किये गये है। अगर गावों के लोग मिट्टी का उपयोग करने की आदत डाल लें तो हमारे गांवों की सफाई की समस्या आधी हल हो जाय। शहरो मे भी जहा मेहतरो को अभीतक मैले के बरतन हाथ से उठाने का गन्दा काम करना पड़ता है, अगर पाखाने जाते समय हरबार मिट्टी काम मे लाई जाय तो न मक्खियां हो और न बदबू फैले। गावो में, जहां लोग खाइयो में या दूर-दूर खेतों में टट्टी जाना मंजूर नहीं करते, वहा हमारे कार्यकर्त्ता इतना आग्रह तो रख ही सकते हैं कि लोग कहीं भी टट्टी फिरे, कम-से-कम उसे मिट्टी से तो जरूर ही ढक दिया करें।

अपूर्व परिणाम

श्रीयुत बालूभाई मेहताने खानदेश के एक गांव के काम की जो रिपोर्ट भेजी है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे ग्राम-सेवकों के सेवा-कार्य के अपूर्व और उल्लेखनीय परिणाम देखने में आ रहे हैं। रिपोर्ट में वे लिखते हैं—"हमारा सफाई का काम नित्य नियमित रीति से वैसा ही चल रहा है। बेंदू सेठ नाम का एक बूढ़ा सुनार हमारे साथ रोज सफाई करने जाता है। खादी का यह भारी भक्त है। मैला वगैरा साफ करने का काम अब बहुत कम रह गया है, हालांकि सच पूछा जाय तो यह तो हम अब भी नहीं कह सकते कि गांव में गन्दगी या कचरा वगैरा नही है, क्योंकि जब भी कोई बाहर के अजनबी आदमी आजाते हैं, वे चाहे जहां गंदा कर देते हैं। कुछ पुराने अभ्यासी भी हैं, जो कूड़ा-कचरा फेंकेंगे तो बीच रास्ते पर ही फेंकेंगे। तो भी कुल मिलाकर कूड़े-कचरे की सफाई अब कम ही करनी पड़ती है। स्त्रियों के लिए हमने ११ खाईवाली

टट्टियां बनादी हैं। हमारा यह पक्का खयाल था कि उनमें से कुछ टट्टियों का उपयोग तो होने का नहीं; पर नहीं, हमारा खयाल गलत निकला, उपयोग तो सारी ही टट्टियों का खूब हो रहा है। गाव के बिल्कुल पास हमने बच्चों के लिए पांच लम्बे-लम्बे बड़े गड्ढे खोद दिये हैं। सयाने और बड़ी उम्र के अधिकाश लोग नदी के किनारे झाड़ियों की ओट मे एक भारी मैदान में जाते हैं। इस खयाल से कि उनकी शौच-क्रिया में कोई बाधा न डाली जाय और खाद भी बर्बाद न हो, ग्राम-पंचायतने वहा १० फुट लम्बी और २ फुट गहरी १२ खाइयाँ खुदवा दी हैं। इन सभी खाइयो का उपयोग हो रहा है और टट्टी फिर चुकने के बाद मैले पर मिट्टी डाल दी जाती है। पहले जो जमीन एक मारा खुली हुई बंपुलिस थी और मारे बदबू के जहा एक मिनिट भी खड़ा नही रहा जाता था, वह जगह अब बिल्कुल साफ रहने लगी है। जो स्त्रिया इतनी दूर जाने की हिम्मत रखती है उनके लिए भी यहां से कुछ फासले पर इसी तरह की पाच खाइयां खुदवा दी है।

इन खाइयो का खूब सफाई के साथ इस्तेमाल करने की पूरी-पूरी हिदायते स्त्रियों को दे देनी चाहिए, इस दृष्टि से गाव के विभिन्न भागो में हमने स्त्रियों की छह सभाएँ की, और मै यह जरूर कहूँगा कि खाइयो का उपयोग अच्छा ही हो रहा है। मै 'अच्छा ही उपयोग' कहता हूँ, क्योंकि अब भी कुछ ऐसी स्त्रिया है, जो खाइयो को काम मे नही लाती, और मैदान मे ही बैठती हैं। यह सिर्फ इसलिए कि मैले पर मिट्टी डालने का कौन कष्ट करे !

गांव के घूरो को हम अब भी ठीक तरह से साफ नही कर सके है। हम चाहते है कि गांव से काफी दूर ये घूरे रहे, पर कही इतनी फालतू जमीन नही मिल रही है। और चूकि इन घूरो पर पर प्राय: हमेशा ही लोग पेशाब वगैरा करते है, इससे जैसा कि हम चाहते है, वे साफ नही रहते।

मगर खाइयो और टट्टियो का तो खासा अच्छा उपयोग हो रहा है, और हमे आशा है कि दो महीने मे जब हम इस सुन्दर खाद का नीलाम करेगे तब हमें इससे एक अच्छी रकम मिल जायगी। दो किसानोने अपने खेतों में ही खाइया खोद ली है, तथा लोगो को वे अपने खेतों में पाखाना फिरने के लिए बुलाते हैं। मुझे यह कहते खुशी होती है कि उनके खेतों में काफी लोग जाने लगे है।"

'हरिजन' से] महादेव ह० देशाई

भाई-भाई थे और हैं

[दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचारसभा, मद्रास के पाचवे उपाधि-वितरणोत्सव के अवसर पर २९ दिसम्बर, १९३५ को श्रीयुक्त प० सुन्दरलालजीने जो भाषण दिया था, उसमें के हिंदू-मुसलिम संस्कृति और ऐक्य-संबधी कुछ महत्वपूर्ण अंश नीचे दिये जाते है। —सम्पादक]

बाबर, हुमायू, अकबर, जहांगीर, शाहजहां और इसके बाद औरंगजेब के तमाम उत्तराधिकारियो के समय में हिन्दू और मुसलमानों के साथ एकसमान व्यवहार किया जाता था, दोनों धर्मो का एकसमान आदर किया जाता था, और धर्म की बिना पर किसी के साथ किसी तरह का भी पक्षपात नहीं किया जाता था। दिल्ली के मुगल दरबार के अन्दर हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के खास-खास त्यौहार एक-जैसे जोश और उत्साह के साथ मनाये जाते थे। दशहरे के दिन सम्राट् का जलूस निकलता था, जिसमें हाथियों और घोड़ों को खूब सजाया जाता था और हिन्दू और मुसलमान अमीर-उमरा सजधज के साथ शामिल होते थे। रक्षाबन्धन के दिन ब्राह्मण लोग और हिन्दू सामन्त सरदार सम्राट् की कलाई पर राखी बांधते थे। दिवाली की रात को शाही महलो के अन्दर रोशनी होती थी और जुआ तक खिलता था। शिवरात्रि और यमद्वितीया, ईद और शबे-बरात भी इसी उत्साह के साथ मनाई जाती थी। हर सम्राट् की ओर से असंख्य हिन्दू-मन्दिरों को जागीरे और माफिया दी गई। औरंगजेब मुतआस्सिब था। किन्तु औरंगजेब के दरबार में भी हिन्दू मन्त्री और उसकी सेना में हिन्दू सेनापति मौजूद थे। औरंगजेब का अर्थसचिव अन्ततक हिन्दू रहा। आजतक उत्तरीय भारतभर में अनेक हिन्दू-मन्दिरो के पुजारियों या मालिकों के पास औरंगजेब के दस्तखती फरमान मौजूद हैं, जिनमें औरंगजेबने उन मन्दिरो को जागीरें प्रदान की हैं। इस तरह के दो फरमान अभीतक इलाहाबाद में मौजूद है, जिनमें से एक अरैल मे सोमेश्वरनाथ के प्रसिद्ध मन्दिर के पुजारियों के पास है। दो सौ वर्ष से ऊपरतक मुगल-साम्राज्यभर में गोहत्या की कानूनन कड़ी मनाही थी और उसपर कड़ाई के साथ अमल-दरामद होता था।

× × × ×

पन्द्रहवीं, सोलहवी और सतरहवी शताब्दियों के अन्दर भारत में एक इसी तरह की सुन्दर संयुक्त राष्ट्रीय संस्कृति का निर्माण हो रहा था। धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में कबीर, और सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में अकबर इसके सबसे महान् निर्माता थे। यह संस्कृति न हिन्दू संस्कृति थी न मुसलिम संस्कृति, यह शुद्ध भारतीय संस्कृति थी। पन्द्रहवी, सोलहवीं और सतरहवी शताब्दियो में और उसके बाद भी नेपाल से अफगानिस्तानतक और कश्मीर से लंकातक सैकडो हिन्दू और मुसलमान सन्त-महात्मा अपने उच्च आध्यात्मिक उपदेशों-द्वारा इसकी नीवों को मजबूत करते हुए फिर रहे थे। राष्ट्र के रहन-सहन, खान-पान, कला-कौशल, भाषा, साहित्य और ज्ञान-विज्ञान सब पर इसका गहरा प्रभाव पडा। राष्ट्र में एक नवीन जागृति, नई बेदारी चारो ओर दिखाई देने लगी।

इस संयुक्त संस्कृति की एक ठोस मिसाल निर्माण-कला की है। इस कला मे आपको प्राचीन हिन्दू आदर्श देखना हो तो दक्षिण के अनेक प्राचीन मन्दिर है। विशाल, महान्, कुरसी के ऊपर कुरसी और कगूरे के ऊपर कगूरा, हिन्दोस्तान के घने जंगलों की तरह एक-एक इंच दीवार मूर्तियों और चित्रो से भरी हुई। उसकी महानता और व्यापकता और सौन्दर्य से चकित होकर देखनेवाले की आखें उसमें उसी तरह रास्ता भूल जाती है जिस तरह भारत के वनों में। दूसरी ओर, यदि आपको बाहर से आये हुए मुसलिम आदर्श की मिसाल देखनी हो तो दिल्ली और अजमेर की सुन्दर मसजिदें है। अरब के रेगिस्तान की तरह ऊँची नंगी दीवारे, नीले आसमान से बात करनेवाली मीनारे, बड़े-बड़े गुम्बद और उसकी विशालता के भीतर उपासक के ध्यान को बटानेवाली सिवाय अल्लाह के कोई दूसरी चीज नही। किन्तु यदि कला की दृष्टि से आपको इन दोनों अलग-अलग आदर्शों के प्रेमालिंगन को देखना हो तो आगरे का वह ताज है जो न केवल इस समन्वय की

भारतीय निर्माण-कला का सबसे सुन्दर पुष्प है वरन् संसार भर के अन्दर मानव-सृष्टि के सबसे अधिक गौरवान्वित पदार्थों में से है। कवीन्द्र रवीन्द्र-जैसो के लिए A poetry in Stone 'पत्थर की कविता' और संसार के कलाविशारदों के लिए एक अचम्भा है, वह हमारी इस संकटमय अवस्था में भी भारत के रुग्ण शरीर और झुके हुए मस्तक के ऊपर झूमर की तरह चमक रहा है।

उस संयुक्त प्रगति का दखल हमारे रोजमर्रा के जीवन में इतना गहरा हो चुका है कि उससे इन्कार करना या उससे फिरने की कोशिश करना आत्म-हत्या करना होगा और बिना अपनी खाल अपना मांस नोचकर फेंके हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए इस तरह की कोशिश असम्भव है।

कौन समझदार हिन्दू अपने बाग से गुलाब को इसलिए निकालकर फेंक देगा क्योंकि वह मुसलमानो के साथ ईरान से आया था? हमारी मिठाइयों में से तीन चौथाई शाहजहान् के समय की ईजाद है जैसा कि उनके फारसी और अरबी नामों से अभीतक पता चलता है। हमारी पोशाक मे आधी से ज्यादह चीजें, जिन्हे पहराकर हम मन्दिरों में अपने देवताओ का श्रृगार करते है, मुसलमानी समय की हैं। हमारे अनेक सुन्दर और स्वादिष्ट मेवे उसी युग के हैं। कम-से-कम उत्तर भारत में हर हिन्दू शादी के समय 'नौशाह' बनता है। हिन्दू की शादी बिना सेहरे और जामे के नहीं होती और करोड़ों मुसलमानो की शादी बिना कगने के। सेहरा और जामा मुसलमानी है और कंगना हिन्दू। मुझे नही मालूम, भारत भर में कितने मुसलमान घर मिलेगे जिनमे लड़को और लड़कियो का कनछेदन और नकछेदन नहीं होता। दोनो रिवाज हिन्दी हैं जिनका इसलाम से कोई सम्बन्ध नहीं। इस तरह की छोटी-छोटी बातों में यदि हम ईमानदारी से देखें तो अनेक बातो में एक पेशावर के हिन्दू और एक मद्रास के हिन्दू मे कहीं अधिक अन्तर है, बनिस्बत एक पेशावर के हिन्दू और पेशावर के मुसलमान में।

यदि हम धर्म या धार्मिक सिद्धान्तो की दृष्टि से विचार करें तो निष्पक्षता से अध्ययन करने पर हमे हिन्दू धर्म और इसलाम दोनों में आश्चर्यजनक समानता और दोनो में एक-सी लहरे चलती हुई दिखाई देंगी। इतना ही नहीं, हिन्दू धर्म की किन्ही-किन्ही सम्प्रदायो के बीच कहीं अधिक अन्तर है, बनिस्बत हिन्दू धर्म और इसलाम के। इस विषय में बाबू भगवानदास की सुन्दर पुस्तक The Untiy of all Religions (धर्म-मजहबो की एकता) प्रत्येक भारतवासी के पढने योग्य है।

× × × ×

व्यापक मानवधर्म का आधार किसी लिंग विशेष पर नही है। मानवधर्म एक हृदय की चीज है। वह व्यापक प्रेम का धर्म है। संसार के समस्त धार्मिक ग्रन्थ वास्तव में मनुष्य को इसी ओर ले जाने का प्रयत्न करते हैं, रूढ़ियां और कर्मकाण्ड केवल उपाय हैं। इस मानवधर्म की जितनी स्पष्ट, विस्तृत और सुन्दर व्याख्या कबीर, नानक, दादू इत्यादि १५ वी, १६ वीं और १७ वीं सदी के अगणित भारतीय सन्तों और उनके समकालीन या उनसे पूर्व के मुसलमान सूफियों के उपदेशों मे मिलेगी उससे बढ़कर और कही मिलना कठिन है।"

नवसारी की भंगी-बस्ती

[३९५ वें पृष्ठ से आगे]

लिखा। राज्य के स्वास्थ्य-विभाग का बड़ा अफसर यह बस्ती देखने आया और यह विश्वास दिलाया कि बस्ती यहां से उठनी ही चाहिए। तबसे लिखा-पढी ही चलरही है। इस बात को उठे चार-पांच साल होगये हैं। मुझे यह सुनकर चोट-सी लगी, और बड़ी अकुलाहट हुई। मैंने कहा कि चलें, हमलोग म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन साहब से मिले। दूसरे दिन सबेरे हम उनसे मिलने गये। उन्हें मालूम तो सब था ही। मुझे तो उन्हें अपनी अकुलाहट बतलानी थी। उन्होने कहा कि, हमारी म्यूनिसिपैलिटी का काम ऐसा ढीला-ढाला चलता है कि कुछ पूछिए नही। वह दुर्गन्धपूर्ण खड्डा पुरवा देने मे इरीगेशन महकमा की अड़चन आड़े आती है। वह उसपर अपनी मालिकी का दावा करता है, इससे म्यूनिसिपैलिटी कुछ कर ही नही सकती। बस्ती यहा से उठाकर दूसरी जगह बसाने की बात आती है तो ये भंगी ही हल्ला मचाते है! दूसरी जगह ऊँची भी है और सब तरह से सुदर भी है, पर भगियों को वह दूर मालूम होती है, इसलिए उस जगह को वे छोडना नहीं चाहते। म्यूनिसिपैलिटी के मेंबरों में भी कुछ इसके खिलाफ है। बाद को जांच-पड़ताल करने पर उनके विरोध का कारण यह मालूम पड़ा कि भंगी अगर म्यूनिसिपैलिटी के मकानों में रहेंगे तो वे सब-के-सब परावलंबी हो जायँगे। किसी वक्त म्यूनिसिपैलिटी के साथ अगर उनकी न बने और वे उससे लड़ना चाहे तो वह अपने मकान खाली करा सकती है। उस हालत मे वे बेचारे मारे-मारे फिरेंगे। जब मैंने चेयरमैन साहब से पूछा कि ऐसी जगह के नजदीक क्या हम क्षण भी रह सकते हैं? तब उन्होने सहानुभूति प्रगट करते हुए कहा कि अब दो-तीन महीने मे बस्ती दूसरी जगह बसाने का अवश्य प्रबध किया जायगा। खुद अपने से जितना हो सके उतनी ताकीद वे करेंगे ऐसा उन्होंने आश्वासन भी दिया।

जहा खड़ा रहना भी हमसे बर्दाश्त नही होता ऐसे स्थान से भी भंगी भाई राजी-खुशी से हटने को तैयार नही यह बात विशेष रीति से करुणाजनक और हमें शर्मिन्दा करनेवाली है। उनके साथ अन्यायपूर्ण और अमानुषीय बर्ताव रखकर हमने उन्हे ऐसा बना डाला है कि उनका मनुष्यत्व जैसे मृतप्राय हो गया है। ठक्कर बापाने इस बात को हाथ में लिया है। राज्य के बड़े-बड़े अफसरोतक यह बात पहुँची है, और म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन भी इस विषय में ताकीद करने के पक्ष में है, इसलिए ऐसी आशा है कि बस्ती तो थोड़े समय में यहां से हटकर दूसरी जगह चली ही जायगी। लेकिन हमने खुद ही अपने इन सधर्मी भाई-बहिनों की मनुष्यता जो कुचल डाली है, उसे जागृत करने के लिए हरिजन-सेवकों को कमर कसनी है।

'हरिजन' से] नरहरि द्वारकादास परीख

नोट करलें

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहकगण कृपया अपना ग्राहक-नंबर अवश्य लिख दिया करें। ग्राहक-नबर मालूम न होने पर उनके पत्रादि का तत्काल उत्तर नहीं दिया जा सकेगा।

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi; by R. S. Gupta.

विदेशियों के नये-नये हमले

"आत्मवत् सर्वभूतेषु"

Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक' किंग्सवे, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि

[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)

एक प्रति का -)

[illegible] ३]

दिल्ली, शनिवार, १ फ़रवरी, १९३६.

[संख्या ५०

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

एक एटर्नी के दफ़्तर में

श्री पकवासा बम्बई की एक प्रसिद्ध सालिसिटर-फर्म के एक पुराने सदस्य हैं। वे ग्राम-उद्योग-संघ के भी सदस्य हैं। एक दिन योंही मैने उनसे पूछा, कि अपने ख़ुद के दफ्तर में भी वे ग्राम-उद्योगों की प्रगति के अर्थ कुछ कर रहे हैं या नहीं। इस पर उन्होंने मुझे अपने दफ्तर में आने के लिए कहा। यह तो मै पहले से ही जानता था कि वह, और दर्जे में उनसे बड़े उनके साझीदार श्री छोटूभाई बरसों से आदतन खादीधारी है, लेकिन उनके दफ्तर में तो कई ऐसी बातें मिली जिनका मुझे कोई ख़याल भी नहीं था। श्री मंगलदास के दफ्तर में किताबों की अलमारियों के साथ-साथ दो अलमारियां ऐसी भी मिली जो गांवों में बनी चीजों से भरी हुई थी। इनमें से एक का ज्यादातर हिस्सा बिलकुल खादी से भरा हुआ था, और मेजपोश, परदे, तौलिये, झाड़न, कमीज व कोट के कपड़े, नेकटाई आदि रोजमर्रा के उपयोग की हरेक चीज के नमूने उसमें थे। इसके अलावा हाथकुटे चावल से लेकर हाथ का बना कागज और गांव की बनी फाउण्टेन-पेन की स्याही तथा मुरदा जानवर की खाल के बने चप्पल व बूट जूतेतक हर तरह का सामान मौजूद था। यह बात भी नहीं कि ये सब चीजें सिर्फ दिखावे के लिए ही वहां रक्खी हों। ये तो वहां नियमित रूप से बिकती हैं, जिसके लिए खास तौर पर एक क्लार्क नियत है। वह विविध संघों की ओर से रक्खी हुई इन चीजों का बाकायदा हिसाब रखता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि श्री पकवासा की फर्म हाथ से बने कागज का इस्तेमाल सिर्फ मामूली चिट्ठी-पत्री या याददाश्त के रुक्कों आदि में ही नहीं करती बल्कि दस्तावेज आदि महत्व के कामों में भी करती है—और, जैसाकि उन्होंने मुझसे कहा, कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कई ऐसी चीजें, जिनपर ग्रामउद्योग-संघ की दूकानों में किसी का ध्यान आकर्षित नहीं होता और जो बहुत दिनों तक बिना बिकी ही पड़ी रहती हैं, वे यहां हाथों-हाथ बिक जाती हैं। निस्सन्देह ये ग्राहक सब इस फर्म के मवक्किल ही होते हैं, लेकिन अक्सर ऐसा भी होता है कि फर्म के चिट्ठी-पत्री लिखने के कागज व दस्तावेजों पर दूसरी भी फर्मों का ध्यान जाता है और वे भी उसके लिए आर्डर दे देती हैं।

यह एक ऐसा उदाहरण है जिसका हर जगह अनुकरण होना चाहिए। छोटी जगह के वकीलों को तो अवश्य इसका अनुसरण करना चाहिए, क्योंकि वे नित्यप्रति अपने मवक्किलों के सम्पर्क में आते रहते है और कई तरह से वे इसके लिए उनपर ज़ोर डाल सकते हैं। इसी तरह डाक्टर लोग भी गांवों की बनी चीजों की अलमारियां अपने यहां रख सकते हैं। वे तो हाथकुटे चावल, कोल्हू के पिरे शुद्ध तेल और गुड़ जैसे खाद्य पदार्थों के साथ-साथ ऐसे नक़शे भी रख सकते हैं, जिनमें इन चीजों के स्वास्थ्यप्रद तथा पोषक गुणों का ठीक-ठीक स्पष्टीकरण हो।

तकली की उपयोगिता

अभी उस दिन की बात है कि तुमसर की एक राष्ट्रीय पाठशाला के प्रधानाध्यापकने पांच गज कपड़े की दो धोतियां गांधीजी के लिए भेजी। ये धोतियां उस सूत की बुनी हुई थीं जो उस शाला के लड़कोंने गांधीजी के जन्म-दिन पर तकली से काता था। यह जानने के लिए कि छोटे बच्चे तकली से अच्छी तरह कितना कात सकते हैं, मैने इस सम्बन्ध का विस्तृत विवरण भेजने के लिए उन्हें लिखा। उसके जवाब में प्रधानाध्यापकने जो पत्र भेजा वह इस सम्बन्ध की रोचक बातों से भरा हुआ है। उससे मालूम पड़ता है कि तीन तकलियों पर लगातार २४ घण्टे तक काम हुआ, तीन-तीन लड़कोंने एक-एक बार में काम किया और दो-दो घण्टे में उनकी जोड़ी बदलती रही। इस तरह कुल १२ बार में ३६ लड़कोंने तकली चलाई और एक तकली का हिसाब लगायें तो कुल ७२ घण्टे का काम हुआ। सूत की औसत कताई फी घण्टा लगभग १८० गज हुई और कुल लगभग १३,००० गज सूत का पांच गज कपड़ा तैयार हुआ। उस पाठशाला में कुल ५२ लड़के हैं, जिनमें से कोई १५—१६ बहुत छोटे हैं। इन सबको रोज ४० मिनट तकली चलानी पड़ती है, लेकिन इन छोटे लड़कों का सूत बुनाई के लायक नहीं होता। लड़कों की कताई की गति औसतन १९२ गज फी घण्टा है।

ऊपर के विवरण से मालूम होगा कि एक तकली पर औसतन १८० गज फी घण्टे की गति से काम करने से—हालांकि तकली के अच्छे कतवैयोंने जो गति प्राप्त की है उससे यह बहुत कम है—७२ घण्टे में ५ गज कपड़े के लायक सूत काता जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि अगर इसी गति से काम किया जाय तो सालभर में २५ गज कपड़ा, अर्थात् हिन्दुस्तान में औसतन फी आदमी जितना कपड़ा खपता है उससे दुगुना आसानी से तैयार हो सकता है। इस तरह हरेक लड़का-लड़की

रोज सिर्फ एक घण्टा तकली चलाकर ही इतना सूत तैयार कर सकते हैं जो उनकी अपनी जरूरत के लिए काफी होगा, और जो इससे दुगुनी गति बढ़ा सके--जैसा कि कुछ महीनोंतक किसी की देख-रेख में अभ्यास करने से बहुत से लड़के-लड़कियां करते है—तो उनके लिए तो तकली रोज आध घण्टे से अधिक चलाने की भी जरूरत नही है। सच बात तो यह है कि किसी की देख-रेख में अभ्यास करने से जल्दी ही गति बढ़ जाती है, जैसा कि छ-सात सप्ताह पहले दिये हुए रत्नागिरि-आश्रम की तकली-कताई के आकड़ों से स्पष्ट है। वहा छ सप्ताह के अभ्यास में कम-से-कम कातनेवाले भी आध घण्टे मे १२० गज से लेकर २२४ गज तक कातने लग गये और सबसे तेज कातनेवाले तो आध घण्टे मे २२० से लेकर २४८ गजतक कातने लगे है। इसके लिए जरूरत है तो सिर्फ थोड़ा-सा ध्यान देने की।

असाधारण

विनोबाजी की तरह बुद्धियुक्त निश्चय और पूर्ण एकाग्रता के साथ कोई इसमें जुट जाय तो वह क्या कर सकता है, यह उस प्रयोग मे स्पष्ट है जो कुछ समय से वे कर रहे है। यह तो हमे मालूम ही है कि कुछ महीनो मे वे आठ घण्टे रोज के हिसाब मे चर्खा चला रहे है और उन्होंने दायें-बायें दोनो हाथो से प्राय एकसी ही गति मे चर्खा चलाने का अभ्यास कर लिया है। दाहिना हाथ चर्खा चलाते हुए थक जाता है तो उसे आराम देकर बायें से वे चलाने लगते है। उन्होंने तकली में भी यह करके देखा है और उसमे भी वही कामयाबी मिली है। अनेक आश्रमो मे धर्म-कृत्य के रूप मे नित्य आधा घण्टा तकली चलाई जाती है। विनोबाजी भी उसे इसी धर्म-भाव से चर्खे के अलावा चलाते हैं। २८ अक्तूबर को उन्होंने बायें हाथ से तकली चलाना शुरू किया था। पहले दिन तो वह २८ गज फी घण्टा से अधिक तेज न कात सके, लेकिन १३ दिसम्बर तक उनकी गति बढ़कर फी घण्टा २५० गज के करीब पहुँच गई। इस तरह विनोबाजी उन थोड़े-से व्यक्तियों में से है जिन्होने महान् बुद्धिवादी होते हुए भी बुद्धिवाद मे हटकर शारीरिक श्रम अंगीकृत किया है और बौद्धिक श्रम की ही तरह शारीरिक श्रम मे भी असाधारणता प्राप्त की है।

सच्ची कद्र

इस अखड श्रद्धा के साथ काते हुए विनोबाजी के सूत से बननेवाली धोतियो की सख्या धीरे-धीरे बढ़ती ही जारही थी और चूंकि वह किसी चीज पर अपना स्वामित्व न रखने की प्रतिज्ञा का पूरी तरह पालन करते है इसलिए यह एक कठिन समस्या-सी उत्पन्न हो गई थी कि इन सुन्दर बुनी हुई धोतियो का क्या किया जाय। उनकी इच्छा थी कि पहला जोड़ा तो अवश्य ही उनके पिता को दिया जाय, लेकिन तेजी के साथ जमा होती हुई और धोतियो का क्या हो? आखिर जमनालालजीने इस सौगात का उपयोग ढूढ निकाला और तुरन्त उन्हे ग्राहको के मोल-तोल से मुक्त कर दिया। उनके कुटुम्ब का जो मन्दिर है (जो भारत में हरिजनों के लिए सबसे पहले खोला गया था) उसमें श्री लक्ष्मीनारायण की मूर्तियों को वह सिवा खादी के और कोई कपड़ा नही पहनाते और अब तो उन्होंने इन धोतियो को मन्दिर के श्रीविग्रहों के लिए ही सुरक्षित कर दिया है। लेकिन देवप्रतिमाओं के लिए भी इन वस्तुओं की आवश्यकता, आखिर मर्यादित ही होगी, इसलिए जो अन्य मन्दिर हरिजनों के लिए खुले हुए हैं उनके भक्तों को भी चाहिए कि वे भी जमनालालजी के पास, जो इन धोतियो के संरक्षक बन गये हैं, अपनी मांग पेश करे।

संरक्षक-संरक्षक में भेद

यो तो दुनिया में तरह-तरह के संरक्षक होते है, लेकिन हमे जमनालालजी की तरह शुद्ध और पवित्र वस्तुओं का संरक्षक बनना चाहिए। दक्षिण भारत के एक स्थान से आये हुए निम्नांकित पत्र से मालूम होगा कि संरक्षक के कर्तव्यों का पालन करना कितना कठिन है —

"मगलगिरि मे श्री लक्ष्मीनृसिह स्वामी का मन्दिर एक बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध मन्दिर है। इसके वार्षिकोत्सव पर हजारों तीर्थयात्री आते हैं। गत वर्ष, २० मार्च को रथ-यात्रा का उत्सव हुआ था। उस समय काग्रेस के आदर्श पर चलनेवाले चार व्यक्तियोने रथ के जलूस मे, गाड़ी के अन्दर, आपका फोटो रखने का प्रयत्न किया। पर मन्दिर के ट्रस्टी इस बात के विरुद्ध थे, इसलिए उन्होंने ऐसा करने से मना किया। इसपर कुछ गड़बड़ मची, और अन्त मे काग्रेसियों को ऐसा करने से रोक दिया गया। उनके खिलाफ एक मुकदमा भी चलाया गया और उन्हे सजा हो गई। इस साल रथ-यात्रा का उत्सव ८ मार्च को होगा। मुझे मालूम हुआ है कि इस बार कुछ काग्रेसी आपके फोटो को गाड़ी मे रखने की और भी निश्चित और व्यवस्थित रीति से तैयारियां कर रहे है। गाड़ी मे आपका फोटो रखने पर ट्रस्टियों को जो आपत्ति है वह शुद्ध धर्म के आधार पर है। मै जानता हूँ कि आपके यश को बढ़ाने के लिए किये जानेवाले ऐसे प्रयत्नो को आप मूर्खतापूर्ण और गलत ही खयाल करते है। इस सम्बन्ध मे जो भी आपके विचार हों उन्हे प्रगट करने की कृपा करे, क्योकि मुझे विश्वास है, उनका असर अच्छा ही होगा। मुझे इस बात का दुःख है कि आपके स्वास्थ्य की मौजूदा हालत मे भी मै आपको यह कष्ट दे रहा हूँ, लेकिन आप निश्चय जाने कि इसमें मेरा उद्देश यह है कि शान्ति के साथ सब काम हो जाय।"

लेकिन अगर दरअसल स्थिति वैसी ही है जैसा कि पत्र में लिखा गया है, जिसके लिखनेवाले इस मन्दिर के एक ट्रस्टी महाशय ही है, तो जिन लोगोने गत वर्ष मन्दिर के रथ में गाधीजी का फोटो रखने का प्रयत्न किया उन्होंने गाधीजी की इज्जत नहीं की और गांधी-भक्त के रूप मे अपनी प्रतिष्ठा नही बढ़ाई। हमे आशा करनी चाहिए कि इस साल ऐसे अविचारपूर्ण कृत्यों की पुनरावृत्ति नहीं की जायगी। जिन्हे हम पूज्य मानते हैं उनकी प्रतिष्ठा करने का तो केवल एक ही मार्ग है, और वह यह कि हम उनके इच्छानुसार अर्थात् वह काम करें जो उन्हे सबसे अधिक प्रिय हो।

'हरिजन' से] महादेव ह० देसाई

सेगाँव में कार्यारम्भ

कुछ तथ्य और आंकड़े

अब चूंकि सेगांव में कुछ काम और प्रयोग चलाने तथा समय-समय पर अपने अनुभवों को लिखते रहने की मैं आशा करती हूँ, यह अच्छा ही होगा कि शुरू में अपने इस गांव का मैं थोड़ा-सा वर्णन देदूं।

जमीन इस गाव की कई किस्म की है—हलकी और पथरीली मुरम से लेकर भारी काली मिट्टी तक यहां मिलती है। फसल खासकर जुवार, कपास, दाल, गेहूं, चना और अलसी की होती है। अमरूद, संतरे, केले और गन्ने के एक-दो छोटे-छोटे बाग हैं। जगह-जगह, और खासकर छोटे-छोटे नालो के किनारे सिंधी ताड़ लगे हुए हैं, जिनसे अक्सर लोग ताडी निकालते है। गाव के चारों ओर खेत-ही-खेत है। वर्धा यहा से पाचेक मील है, चार मील के भीतर कोई भी सडक नही। सिर्फ बैलगाडी की गडवायेंते और पगडंडियां ही है।

जन-संख्या यहा की ६३९ है। हरिजनो की काफी बडी सख्या है—२७१ महार है और १० माग। कुनबी १०९, गोड ९२ और बाकी के लोग विभिन्न जातियो के है।

कुल ९६ कुएं है, जिनमे ११ तो ऊँची जातियो के है और ५ महारो के। माग लोगो के घडो में महार भाई पानी डाल देते हैं, पर उनके कुओ से वे पानी नही खीच सकते!

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का यहा एक प्राइमरी स्कूल भी है, जिसमे २० लड़के और १० लडकिया पढती है।

३ मंदिर है। एक मे तो सभी सवर्ण जा सकते है, पर दूसरे में केवल ऊँची जातिया ही जा सकती है। और तीसरे मे महार तो जा सकते है, पर मागो को उसमे जाने की मनाही है।

उद्योग-धंधे इस गाव के कुल ४ है —

१. खपरे बनाना
२. चटाई बनाना (ताड़ के पत्ता की)
३ कपड़े बुनना. (मिल के सूत के)
४. ताडी निकालना

यहां ३ छोटी-छोटी दूकाने है। एक झोपडे मे पान और बीडिया बिकती है, और जुए का जमघट रहता है।

मांगो की स्त्रिया गांव मे दाई का काम करती हैं। काम के वक्त तो उन्हे बडी-बडी ऊँची जातियों के रसोडे तक मे जाने की इजाजत मिल जाती है—उस समय भारी छूतछात काफूर हो जाती है!

कुछेक ब्राह्मण परिवारो को छोड़कर सभी जातिया बकरे, मुर्गी और मछली का मास खाती है। हरिजन खूब दारू व ताडी पीते है। ऊँची जातियो के लोग ज्यादा नही पीते—कभी-कभी थोडी-सी शराब पी लेते हैं।

सेगांव की कुल जमीन तकरीबन १५५० एकड है, और सरकारी लगान १२१५) है।

जमीन इस तरह बँटी हुई है :—

१. जमनालालजी	७० एकड़
२. बाबा साहब देशमुख	करीब १५० एकड़
३. ६० छोटे-छोटे जमींदार, २३ गोड़, २२ कुनबी और मराठा, और १५ महार	१३३० एकड़

गांव की मालगुजारी इन दो हिस्सो में विभक्त है :—

१. जमनालालजी की मालगुजारी	७५ फी सदी
२. बाबा साहब देशमुख "	२५ फी सदी

सफाई के प्रयोग

यहां से गांव में इस अत्यंत आवश्यक प्रश्न को हल करने का मैं प्रयोग कर रही हूँ। तैयारी अब भी बिल्कुल पूरी तो नहीं हुई है, पर यह अच्छा होगा कि सफाई की जो योजना मैंने बनाई है उसके विषय मे अब थोड़ा-सा हाल नीचे देदू। इसके बाद समय-समय पर मै अपने काम की प्रगति की रिपोर्ट देती रहूँगी।

यहा मेरे आने के बाद दो या तीन हफ्ते तक तो मैंने गाव के लोगों की आदतो का अध्ययन करने के सिवा और कुछ भी नही किया। इसके बाद, जब मुझे उनके तौर-तरीके कुछ-कुछ मालूम हो गये, तब मैंने गाव के बाहर उन्ही हिस्सों में, जहां कि लोग पहले टट्टी फिरने जाते थे, शौच के लिए बैठने की ७ जगह चुनी। (सिंदी गाव के मेरे प्रयोगोने मुझे यह सबक दे दिया था कि जिस तरफ लोग जाते है उस रास्ते को बदलने का प्रयत्न करना खतरे से खाली नही।) इस तरह गांव के बाहर इन हिस्सो मे शौच के लिए बैठने की जगहो का मै इंतजाम कर रही हूँ। हरेक दिशा मे एक जगह पुरुषो के लिए और एक जगह स्त्रियो के लिए रहेगी, और एक चौथी जगह स्त्रियो के लिए एक हिस्से मे और तैयार की जारही है, जहा कि रोज सवेरे मामूली से ज्यादा उनकी सख्या हो जाती है। टट्टिया मामूली व सादी ही बनाई जा रही है। करीब २५–३० फुट लंबी और १० से २० फुटतक चौडी जमीन पर का तमाम घास और झाड-झखाड़ काटकर साफ कर दिया गया है, और जिधर खुला हुआ है उसके चारो तरफ परदे के लिए चटाइया लगाई जा रही हैं। स्त्रियो के लिए एक बडा-सा मैदान बहुत काफी है, क्योंकि उन सब को एक साथ बैठने की आदत है, लेकिन पुरुषो के लिए इन टट्टी-बाडों के भीतर छोटे-छोटे विभाग बनाये जा रहे है। इन ५ बडे-बडे बाडो का तमाम मैला ४½ फुट गहरे और १० फुट लंबे-चौडे एक बडे गड्ढे मे डाला जायगा। गांव की एक बाजू मे तो यह बड़ा गड्ढा और दूसरी बाजू मे उससे एक छोटा गड्ढा (४ फुट गहरा और ६ फुट लंबा-चौडा) बाकी के दो टट्टी-बाडो का मैला डालने के लिए, इस तरह दो गड्ढे खुदवाये गये है। एक भगी और उसकी स्त्री को, १७) मासिक पर तैनात कर दिया है, जो इन बाडो को साफ किया करेंगे और गाव के रास्तो व चौपालों पर झाड़ू भी रोज लगायेंगे। गड्ढो मे पहले मैला डाला जायगा, और उसपर रास्तो का कूड़ा-कचरा और मिट्टी डालते जायेंगे। गड्ढे भर जाने के बाद कुछ महीनो में उन्हे जब खोदेंगे तो उनसे अच्छा बढ़िया खाद निकलेगा, बू उसमें जरा भी न होगी। भगी को यह वचन दे दिया गया है कि खाद की हरेक गाड़ी पर उसे एक आना बतौर बोनस के दिया जायगा।

इस खाद की कीमत मे टट्टी-बाडो और भगी की तनख्वाह का खर्च निकल आना चाहिए। चौमासे में खाद तैयार करने का तो कोई दूसरा ही तरीका हमें अख्तियार करना होगा, पर उसके संबध मे जब वह समय आयगा तब देखा जायगा।

सफाई का एक ऐसा स्वावलम्बी तरीका ढूढ निकालना ही इस प्रयोग का उद्देश है, जिसपर कि लाखों गांवो में अमल किया जा सके। अपने ही हाथों से सफाई का यह काम करना हमारे लिए है अच्छा, पर थोडे नहीं, हिन्दुस्तान में ७०००,००० गाव हैं, जहां हम कभी पहुँच ही नहीं सकते।

असल में सेगांव में खुद जमनालालजी हमारे इस प्रयोग का सारा खर्चा उठा रहे हैं, और इस काम में मुझे मालगुजारी के मैनेजर और उनकी सीर में काम करनेवाले लोगों का पूरा-पूरा सहयोग मिल रहा है। दूसरे गांव आसपास के इन प्रयत्नों को शुरू से

[४०८ पृष्ठ के दूसरे कालम पर]

हरिजन-सेवक

शनिवार १ फ़रवरी, १९३६

विदेशियों के नये-नये हमले

हमारे देश पर विदेशियो के अनेक आक्रमण हुए हैं, पर विदेशी जातियो के आक्रमणो की अपेक्षा विदेशी सुधारो के आक्रमण अधिक प्रबल है, और चूंकि वे अनेक मोहक आकर्षणो से भरे हुए है इसलिए उनका मुकाबला करना कठिन है। एक समय था कि जब इन सुधारो से हमारे यहा के लोग चकाचौध मे पड गये थे और बहुत-से लोग तो आकर्षित होकर उनके वशीभूत हो गये थे। हमारे देश मे स्वातन्त्र्य-यज्ञ से जो जागृति हुई उसके साथ-साथ हमारी प्राचीन सभ्यता का अध्ययन और ज्ञान बढा, उस सभ्यता के विषय मे ममत्व और अभिमान फिर से जी उठा, और विदेशी सभ्यता के मोहक तथापि भीषण स्वरूप हमारी दृष्टि मे आने लगे। अनेक मोहक स्वरूपो की भीषणता आज साफ नजर आ रही है, उनकी कलई खुल गई है, किन्तु दिन प्रतिदिन जो नये-नये आक्रमण हो रहे है, उनका सामना करना मुश्किल हो गया है। नई सभ्यता के इन मोहक स्वरूपो मे सबसे अन्तिम स्वरूप सन्तति-निग्रह का है। पिछले दस-पन्द्रह वर्ष से इस विषय का ढेरो साहित्य हमारे यहा आने लगा है, और अब तो हमारे देश के उद्धारार्थ सन्तति-निग्रह के प्रचारक—अथवा प्रचारिकाएँ भी आने लगी है। गत वर्ष इग्लैण्ड से हाउ मार्टन नाम की एक महिला आई थी, और उन्होने अखिल भारतीय महिला-परिषद् पर अपना प्रभाव डाला था, और कुछ शहरो मे घूम-घूमकर इस विषय पर भाषण भी दिये थे। इस साल इन महिला के अलावा अमेरिका की धुरन्धर व्याख्यान-विशारदा तथा लेखिका मिसेज मार्गरेट सेगर भी पधारी थी, और इन दोनो महिलाओने अखिल भारतीय महिला-परिषद् में जाकर सन्तति-निग्रह के पक्ष मे प्रस्ताव पास कराया। अभी अगले वर्ष भी इन लोगों की चढाई होनी है। और इस चढाई का हेतु है हमारे देश की स्त्रियो का उद्धार! इसकी जरा बारीकी से जांच-पडताल करने की जरूरत है।

श्रीमती मार्गरेट सेगर अभी थोड़े ही समय पहले गाधीजी से वर्धा मे मिली थी। गाधीजीने उन्हे अच्छी तरह समय दिया था। भारतवर्ष छोडने के पहले उन्होने 'इलस्ट्रेटेड वीकली' मे एक लेख लिखा है, जिसमे यह दिखाया गया है कि गाधीजी के साथ उनकी जो बातचीत हुई उससे उन्हे कितना थोडा लाभ प्राप्त हुआ है। गाधीजी से यह मार्ग-दर्शन प्राप्त करने के लिए आई थी। "अगणित लोग आपको पूजते हैं, आपकी आज्ञा पर चलते हैं, फिर उनसे आप इस सम्बन्ध में क्यो नही कहते? उनके लिए आप कोई ऐसा मत्र क्यों नही देते कि जिससे वे सन्मार्ग पर चलना सीखें?" —यह वे चाहती थी। 'देश के लाखों स्त्री-पुरुषों का हित आपने किया है, तो फिर इस विषय में भी आप कुछ कीजिए,' यह उनकी मांग थी। पहले दिन अच्छी तरह बात करने के बाद जब वे तृप्त नही हुईं तो दूसरे दिन भी उन्होंने उतनी ही देरतक बाते की। अब वे अपने लेख में यह लिखती हैं कि गांधीजी को तो भारत की महिलाओं का कुछ ज्ञान ही नहीं, बल्कि उन्हें महिलाओं के मन का ही कुछ पता नहीं, क्योंकि उन्होंने तो सारी बातचीत में दो ऐसी बेहूदी बातें की कि जिससे उनका अज्ञान प्रगट हो गया। गांधीजीने इस बातचीत में अपनी आत्मा निचोड़ दी थी, अपनी आत्म-कथा के कितने ही प्रकरण हृदयंगम भाषा में बताये थे, किन्तु उन सब का मथितार्थ इस महिलाने यह निकाला कि गांधीजी को स्त्रियों की मनोवृत्ति का कुछ ज्ञान ही नहीं!

गाधीजी से श्रीमती सेगर स्त्रियो के लिए एक उद्धारक मंत्र लेना चाहती थीं। और वह मत्र उन्हें मिला, पर वह तो असल में यह चाहती थीं कि उनके अपने मंत्र पर गांधीजी मोहर लगादें। इसलिए वह सुवर्ण मंत्र उन्हे दो कौड़ी का मालूम हुआ। उन्हें भले ही वह दो कौडी का मालूम हुआ हो, पर भारत की स्त्रियों को वह मत्र देना जरूरी है, उन्हे वह कौडी मोल का मालूम नहीं जँचेगा। गाधीजीने तो उनसे बार-बार विनय करके यह भी कहा था कि मुझसे आपको एक ही बात मिल सकती है, मेरे और आपके तत्त्व-ज्ञान में जमीन-आसमान का अन्तर है। इन सब बातों को उस समय तो उन्होने अच्छा महत्व दिया, पर खुद उन्होने जो लेख प्रकाशित कराया है, उसमे उन्हे जरा भी महत्व नही दिया।

गाधीजीने तो पीडित स्त्रियो के लिए यह सुवर्ण मंत्र दिया था कि—"मैने तो अपनी स्त्री के गज से ही तमाम स्त्रियों का माप निकाला है। दक्षिण अफ्रीका मे अनेक बहिनो से मै मिला—योरोपीय और भारतीय दोनो से ही। भारतीय स्त्रियो से तो मै सभी से मिल चुका था ऐसा कहा जा सकता है, क्योकि उनसे मैने काम लिया था। सभी से मै तो डुडी पीट-पीटकर कहता था कि तुम अपने शरीर की—आत्मा की तरह शरीर की भी—स्वामिनी हो, तुम्हे किसी के वश मे होकर नही बरतना है, तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध तुम्हारे माता-पिता या तुम्हारा पति तुमसे कुछ नही करा सकता। लेकिन बहुत-सी बहिने अपने पति से 'ना' नही कह सकती। इसमे उनका दोष नही। पुरुषोने उन्हें गिराया है, पुरुषोने उनके पतन के लिए अनेक तरह के जाल रचे है और उन्हे बाधने की जजीर को भी उन्होने सोने की जजीर का नाम दे रखा है। इसलिए वे बेचारी पुरुष की ओर आकर्षित हो गई है। मगर मेरे पास तो एक ही सुवर्ण-मार्ग है, और वह यह कि वे पुरुषो का प्रतिरोध करे, यह वे उन्हे साफ-साफ बतला दें कि उनकी इच्छा के विरुद्ध पुरुष उनके ऊपर संतति का भार डाल ही नही सकते। इस प्रकार का प्रतिरोध कराने मे अपने जीवन के शेष वर्ष यदि मै खर्च कर सकू, तो फिर संतति-निग्रह-जैसी बात का कोई प्रश्न ही नही रहता। पुरुष यदि पशुवृत्ति लेकर उनके पास जायें तो वे स्पष्ट रीति से 'ना' कहदें, यह शक्ति अगर उनमे आ जाय तो फिर कुछ भी करने की जरूरत नहीं। यहां हिन्दुस्तान मे तो सतति-निग्रह का प्रश्न ही नही रहेगा। सभी पुरुष तो पशु हैं नही। मैने तो अपने निजी संपर्क में आई हुई अनेक स्त्रियो को यह प्रतिरोध की कला सिखाई है। असल प्रश्न तो यह है कि अनेक स्त्रियां यह प्रतिरोध करना ही नही चाहती.........मेरा तो यह विश्वास है कि ९९ प्रतिशत स्त्रियां बिना किसी कटुता के अपने प्रेम से ही पतियों से यह प्रार्थना कर सकती हैं कि हमारे ऊपर आप बलात्कार न करें। यह चीज असल में उन्हें सिखाई नही गई; न माता-पिताने ही सिखाई, न समाज-सुधारकोंने ही। तो भी कुछ पिता ऐसे देखे हैं कि जिन्होंने अपने दामाद से यह बात की है, और कुछ अच्छे पति भी देखने में आये हैं कि जिन्होंने अपनी स्त्री की रक्षा की है।

मेरी तो सौ बात की एक बात है कि स्त्रियों को प्रतिरोध का जो जन्मसिद्ध अधिकार है, उसका उन्हें निर्बाध रीति से उपयोग करना चाहिए।"

मगर यह बात श्रीमती सेंगर को बेहूदी-सी मालूम हुई। गांधीजी के आगे तो उन्होंने नहीं कहा, पर अपने लेख मे वे कहती है कि इस सारी बात से गांधीजी का अज्ञान ही प्रगट होता है, क्योंकि स्त्रियों में इस तरह का प्रतिरोध करने की शक्ति ही नहीं। आज स्त्रियां यह प्रतिरोध नही करती यह तो गांधीजी भी खुद मानते है, पर उनका कहना यह है कि प्रत्येक शुद्ध सुधारक का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह स्त्रियों को इस तरह का प्रतिरोध करने की शिक्षा दे। क्रोध, द्वेष और हिंसा की दावाग्नि महात्मा ईसा के जमाने मे भी सुलग रही थी, किन्तु उन्होंने उपदेश दिया प्रेम का, अहिंसा का। उस उपदेश का पालन आज भी कम ही होता है, पर इससे यह कोई नहीं कहता कि महात्मा ईसा को मानव-समाज का ज्ञान न था।

श्रीमती सेंगर बम्बई की चालियों मे कुछ स्त्रियो से मिलकर आई थी, और कहती थी कि उन स्त्रियों के साथ बात करने पर उन्हे ऐसा लगा कि उन स्त्रियो को यदि संतति-निग्रह के साधन प्राप्त हो जायें तो उन्हे बड़ी खुशी हो। ईश्वर जाने, वे वहां किस चाली मे गई थीं, और उनका दुभाषिया कौन था! मगर गांधीजीने तो उनसे यह कहा कि, "हिन्दुस्तान के गांवों मे आप जायं तो आपके संतति-निग्रह के इन उपायो की वे लोग बात भी सहन नहीं करेंगी। आज इनी-गिनी पढ़ी-लिखी स्त्रियो को आप भले ही बहका सकें, पर इससे आप यह न मानलें कि हिन्दुस्तान की स्त्रियों की ऐसी मनोवृत्ति है।"

लेकिन श्रीमती सेंगर को ऐसा मालूम हुआ कि इस प्रतिरोध से तो गार्हस्थ्य जीवन में कलह बढ़ेगा, स्त्रियां अप्रिय हो जायेंगी, पति-पत्नी के विवाहित जीवन की सुगंध और सुंदरता नष्ट हो जायगी। बात तो यह थी कि इस प्रतिरोध से यह सब होगा यह बात नही, पर बिना शरीर-संबंध का विवाहित जीवन ही शुष्क हो जाता है ऐसा वे मानती है। इसलिए शरीर-संबंध के विरुद्ध यह विद्रोह की सलाह ही उनके गले नही उतरती। अमेरिका के कुछ उदाहरण उन्होंने गांधीजी के आगे रखे और बतलाया कि 'देखिए, इन पति-पत्नियों का जीवन अलग-अलग रहने से कंटकमय हो गया था, पर उन्होंने संतति-निग्रह करना सीखा और इससे वे लोग विवाहित जीवन का आनंद भी उठा सके, और उनका जीवन भी सुखी हुआ।' गांधीजीने कहा---'मैं आपको पचासों उदाहरण दूसरे प्रकार के दे सकता हूं। शुद्ध संयमी जीवन से कभी दुःख की उत्पत्ति नहीं हुई। किंतु आत्मसंयम तो एक खरी वस्तु है। आत्म-संयम रखनेवाला व्यक्ति अपने जीवनमात्र को जबतक संयत नहीं करता, तबतक उसमें वह सफल हो ही नहीं सकता। मेरा तो यह विश्वास है कि आपने जो उदाहरण दिये है वे तो संयमहीन, बाह्य त्याग करके अंतर से विषय का सेवन करनेवालों के उदाहरण हैं। उन्हें यदि मैं संतति-निग्रह के उपायों की सिफारिश करूं तो उनका जीवन तो और भी गंदा हो जाय।"

कुंवारे स्त्री-पुरुषों के लिए तो ये साधन नरक का द्वार खोल देंगे इस विषय में गांधीजी को शंका ही नहीं थी। उन्होंने अपने अनुभव भी सुनाये, मगर श्रीमती सेंगर की चर्चा की बातचीत से यह जान पड़ा कि वे कुंवारे पुरुषों के लिए इन उपायों की सिफारिश नहीं कर रही हैं। उन्होंने तो इतना पूछा कि, 'विवाहितों के लिए भी क्या आप इन साधनों की अनुमति नहीं देते?' गांधीजीने कहा, 'नहीं, विवाहितों का भी ये साधन सत्यानाश करेंगे।' मिसेज सेंगरने अपने लेख में जो दलील इसके विरुद्ध रखी है वह दलील उन्होंने बातचीत में नहीं दी थी। वे लिखती हैं—"यदि संतति-निग्रह के साधन से ही मनुष्य अत्यन्त विषयी अथवा व्यभिचारी बनते हों, तब तो गर्भाधान के बाद के नौ मास मे भी अतिशय विषय और व्यभिचार के लिए क्या गुंजाइश नहीं रहती?" दलील की खातिर तो यह दलील की जा सकती है, पर मालूम होता है कि मिसेज सेंगरने इस बात का विचार नहीं किया कि स्त्री जाति के लिए ही यह दलील कितनी अपमानजनक है। बहुत ही दबाई हुई अथवा एकाध अत्यंत विषयांध स्त्री को छोड़कर क्या कोई गर्भवती स्त्री अपने पति की भी विषयवासना के वश होती है?"

मगर बात असल मे यह थी कि श्रीमती सेंगर और गांधीजी की मनोवृत्तियों में पृथिवी-आकाश का अंतर था। बातचीत में विषयेच्छा और प्रेम की चर्चा चली। गांधीजीने कहा कि विषयेच्छा और प्रेम ये दोनों अलग-अलग चीजें है। मिसेज सेंगरने भी यही बात कही। गांधीजीने अपने अनुभव का प्रकाश डालकर कहा कि 'मनुष्य अपने मन को चाहे जितना धोखा दे, पर विषय विषय है, और प्रेम प्रेम है। कामरहित प्रेम मनुष्य को ऊँचा उठाता है, और कामवासनावाला संबंध मनुष्य को नीचे गिराता है।' गांधीजीने संतानोत्पत्ति के लिए किये हुए धर्म्य संबंध का अपवाद कर दिया। उन्होंने दृष्टांत देकर समझाया कि, 'शरीर-निर्वाह के लिए हम जो खाते हैं, वह अस्वाद है, आहार है; पर जो जीभ को प्रसन्न करने के लिए खाते हैं वह आहार नहीं, अस्वाद नहीं, किंतु स्वाद है और विहार है। हलवा या पकवान या शराब मनुष्य भूख या प्यास बुझाने के लिए नहीं खाता-पीता, किंतु केवल अपनी विषय-लोलुपता के वश होकर ही इन चीजों को खाता-पीता है। इसी तरह शुद्ध संतानोत्पत्ति के लिए पति-पत्नी जब इकट्ठे होते है तब उस संबंध को प्रेम-संबंध कहते हैं, संतानोत्पत्ति की इच्छा के बिना जब वे इकट्ठे होते है तो वह प्रेम नही, भोग है।'

श्रीमती सेंगरने कहा—'यह उपमा ही मुझे स्वीकार्य नहीं।'

गां---'आप को यह क्यों स्वीकार्य हो? आप तो संतानेच्छा-रहित संबंध को आत्मा की भूख मानती हैं, इसलिए मेरी बात क्यों आपके गले उतरे?'

श्री० सें०---'हां, मै उसे आत्मा की भूख मानती हूं। मुख्य बात यह है कि वह भूख किस तरह तृप्त की जाय। तृप्ति के परिणाम-स्वरूप संतान हो या न हो यह गौण बात है। अनेक बच्चे बिना इच्छा के ही उत्पन्न होते हैं, और शुद्ध संतानोत्पत्ति के लिए तो कौन दंपति इकट्ठे होते होंगे? यदि शुद्ध संतानोत्पत्ति के लिए ही इकट्ठे हो तो पति-पत्नी को जीवन में तीन-चार बार ही विषयेच्छा को तृप्त करके संतोष मानना पड़े। और यह तो ठीक बात नहीं कि संतानेच्छा से जो संबंध किया जाय, वह शुद्ध प्रेम है और संतानेच्छा-रहित संबंध विषय-संबंध है।

गां०—मैं यह अनुभव की बात कहता हूं कि मैंने अमुक संतानें होने के बाद अपने विवाहित जीवन में शरीर-संबंध बंद कर दिया। संतानेच्छा का या संतानेच्छारहित सभी संबंध

विषय-संबंध है ऐसा आप कहना चाहे तो मै यह कबूल कर सकता हूं। मेरा तो एक अनुभव आईना-सा स्पष्ट है कि मै जब-जब शरीर-संबंध करता था, तब हमारे जीवन मे सुख एवं शांति और विशुद्ध आनंद नहीं होता था। एक आकर्षण था सही, किंतु ज्यो-ज्यो हमारे जीवन मे,—मेरे मे—सयम बढ़ता गया त्यों-त्यो हमारा जीवन अधिक उन्नत होता गया। जबतक विषयेच्छा थी, तबतक सेवा-शक्ति शून्यवत् थी। विषयेच्छा पर चोट की कि तुरंत सेवा-शक्ति उत्पन्न हुई। काम नष्ट हुआ और प्रेम का साम्राज्य जमा।" उन्होने अपने जीवन के एक अन्य आकर्षण की भी बात की। उस आकर्षण से ईश्वरने उन्हे किस तरह बचाया यह भी उन्होने बतलाया। पर ये तमाम अनुभव की बाते मिसेज सेगर को अप्रस्तुत मालूम हुई। शायद न माननेयोग्य मालूम हुई हो तो कोई अचरज नही, क्योकि अपने लेख मे वे कहती है कि 'कांग्रेस के मुट्ठीभर आदर्शवादी कार्यकर्ता अपनी विषयेच्छा को दबाकर सेवा-शक्ति मे भले ही परिणत कर सके हो, पर उन इने-गिने व्यक्तियों को छोड़कर उन्हे तो हम लोगो की बाते करनी थी।' पर जहातक मेरा खयाल है, गाधीजीने तो काग्रेस या काग्रेस के कार्यकर्ताओ का सारी बातचीत मे कोई हवाला ही नही दिया था। पर मिसेज सेगर यह भूल जाती है कि तमाम नैतिक उन्नति "मुट्ठीभर आदर्शवादियों" के आचरण की बदौलत ही हुई है। सच बात तो यह है कि गाधीजीने बतौर स्वप्नद्रष्टा के बात नही की थी। गाधीजी खुद एक नीति-शिक्षक है और मिसेज सेगर भी नीतिशिक्षिका है; वे स्वय एक समाजसेवक है और मिसेज सेगर भी समाजसेविका है यह मानकर ही सारा सवाद चला था। और यह होते हुए भी व्यवहार की भूमिका पर खड़े होकर ही उन्होने उनमे बाते की थी। उन्होने कहा—"नही, बतौर नीतिरक्षक के मेरा और आपका कर्त्तव्य तो यह है कि इस सततिनिग्रह को छोड़कर अन्य उपायो का आयोजन करे। जीवन में कठिन पहेलिया तो आयेंगी ही, पर वे किसी मनचाहे अनुकूल साधन से हल नही की जा सकतीं। इन सततिनिग्रह के साधनो को असमर्थ समझकर आप चलेगी तभी आपको अन्य साधन सूझेंगे। तीन-चार बच्चे पैदा हो जाने के बाद मा-बाप को अपनी विषय-वासना शांत कर देनी चाहिए, इस प्रकार की शिक्षा हम क्यो न दें, इस तरह का कानून हम क्यो न बनावें ? विषय-भोग खूब तो भोग लिया, चार-चार बच्चे हो जाने के बाद भोग-वासना को अब क्यो न रोका जाय ? बच्चे मर जायें और बाद को जरूरत हो, तो सतान उत्पन्न करने की गरज से पति-पत्नी फिर से इकट्ठे हो सकते है। आप ऐसा करेगी तो विवाह-बंधन को आप ऊँचे दरजे पर ले जायेंगी। संतति-निग्रह की सलाह मुझ से कोई स्त्री लेने आवे तो मै तो उससे यही कहूँ कि, 'यह सलाह, बहिन, तुम्हें मेरे पास मिलने की नही, और किसी के पास जाओ।' पर आप तो संतति-निग्रह के धर्म का आज प्रचार कर रही हैं। मै आपसे यह कहूँगा कि इससे आप लोगो को नरक मे लेजाकर पटकेंगी, क्योंकि उनसे आप यह तो कहेंगी नही कि—'बस, अब इससे आगे नही।' इसमे आप कोई मर्यादा तो रख नही सकेंगी।"

वर्धा में जो बातचीत हुई उसमें तो श्रीमती सेंगरने इतने अधिक मित्रभाव से, इतनी अधिक जिज्ञासावृत्ति से बरताव किया कि कुछ पूछिए नही। गांधीजी से उन्होंने कहा था—'पर आप कोई उपाय भी तो बतलाइए। संयम मे भी चाहती हूँ, सयम मुझे अप्रिय नहीं, पर शक्य संयम का ही पालन हो सकता है न?' सत्यशोधक की नम्रता से गाधीजीने कहा—'निर्बल मनुष्यों के लिए एक उपाय दिखाई देता है। वह उपाय हाल ही में एक मित्र की भेजी हुई पुस्तक मे देखा है। उसमें यह सलाह दी है कि ऋतु-काल के बाद के अमुक दिनों को छोड़कर विषय-सेवन किया जाय। इस तरह भी मनुष्य को महीने मे १०—१२ दिन मिल जाते है, और सतानोत्पादन से वह बच सकता है। इस उपाय में बाकी के दिन तो संयम पालने में ही जायँगे, इसलिए मै इस उपाय को सहन कर सकता हूँ।'

पर यह उपाय श्रीमती सेगर को तो नीरस ही मालूम हुआ होगा, क्योकि इस उपाय का उन्होने न तो अपने लेख मे कही उल्लेख किया है, न अपने भाषणो मे ही! इस उपाय की ही बात करे तो सतति-निग्रह के साधन बेचनेवाले भीख मागने लगे। और तीसों दिन जिन्हे भोग-वासना सताती हो, उन बेचारों की क्या हालत हो ?

फिर श्रीमती सेगर तो ऐसे दुखियो की दुख-भजक ठहरी। ऐसे दुखियो का मोक्ष-साधन सतति-निग्रह के सिवा और क्या हो सकता है ! मै यह कटाक्ष नही कर रहा हूँ। श्रीमती सेगरने अमेरिका मे सर्वधर्म-परिषद् के आगे जो भाषण दिया था, उसमे उन्होने सतति-निग्रह को मोक्ष-साधन का रूप दिया है। उस भाषण मे उन्होंने न तो सयम की बात की है, न केवल विवाहित दपतियो की, वहा तो उन्होंने बात की है उस अमेरिका की—जहा हर साल २० लाख भ्रूण-हत्याएँ होती है ! इतनी बाल-हत्याएँ रोकने के लिए सतति-निग्रह के साधनो के सिवा दूसरा उपाय ही क्या ! ! पर अभी जरा और आगे बढें तो कुछ दूसरी ही बात मालूम होगी, और वह यह कि इन विदेशी प्रचारिकाओं की चढाई भारत की स्त्रियो के हितार्थ नही, किन्तु दूसरे ही हेतु से हो रही है। अमेरिका के उस भाषण मे ही उन्होने स्पष्ट रीति से कहा था कि—"जापान की आबादी कितनी बढ रही है ! वहा तो जन-वृद्धि की मात्रा पहले ही बढी-चढी थी, और अब तो वह उसे भी पार कर रही है। इसी तरह अगर यह बढती गई तो इन एशिया के राष्ट्रों का त्रास पृथिवी कैसे सहन कर सकेगी ? राष्ट्रसघ को इसके विरुद्ध कोई जबर्दस्त प्रतिबन्ध लगाना ही होगा। अपनी इतनी बडी प्रजा के लिए खाने की तगी होने से जापान को और भी देशों की जरूरत होगी, और भी मडियां चाहनी पड़ेंगी, इसीसे वह पवित्र सधियो को भग कर रहा है, और विश्वव्यापी युद्ध का बीज बो रहा है।" जापान आज जिस अप्रिय रीति से पेश आ रहा है उसे देखते हुए तो जापान का यह उदाहरण चतुराई से भरा हुआ उदाहरण है, पर श्रीमती सेंगर को तो इस डर का हौवा (भयंकर स्वप्न) दबा रहा है कि सतति-निग्रह न करनेवाले एशियाई राष्ट्र योरोपीय प्रजा के लिए खतरनाक हो सकते हैं। ऐसे जन-हितैषियो की चढ़ाई से हम जितनी ही जल्दी सजग हो जायें उतना अच्छा।

'हरिजन-बंधु' से] महादेव ह० देशाई

मैसोर के खादी-केन्द्र

[१९३४-३५ का कार्यविवरण]

खादी की बढ़ती हुई उत्पत्ति को उत्पत्ति-केन्द्रों और आस-पास के गाँवों ही में खपाने के विचार से इस वर्ष गांवों में कत्तिनों,

जुलाहो और अन्य ग्रामवासियों को खादी पहनाने का प्रयत्न किया गया। खादी-प्रचार का यह कार्य ही इस वर्ष की सबसे बड़ी विशेषता थी। एक साल पहलेतक उत्पत्ति-केन्द्रों का सारा आधार शहरो में होनेवाली खादी की बिक्री पर रहता था और बिक्री की कमी के साथ-साथ कताई और बुनाई की प्रवृत्ति पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था। अखिल भारत चर्खा-संघने अपनी यह नीति बनाई कि भविष्य मे उसके उत्पत्ति-केन्द्रो को खादी-द्वारा वस्त्र-स्वावलम्बन की योजना का व्यवहार करना चाहिए। बदनवाल के कताई-केन्द्रो मे सन् १९३४ के नवम्बर से इस नीति का पालन शुरू हुआ। कत्तिनो, जुलाहो और उनके परिवारो को लागत दाम पर खादी बेचने के लिए राज्य की स्वीकृति भी प्राप्त की गई। कत्तिनो को जो खादी दी जाती थी, उसके दाम उनसे सूत-खरीदी के समय किस्तों में वसूल किये जाते थे। इस वर्ष कुल बिक्री ४५,३०६) रुपयो की हुई, जिसमें से कत्तिनों द्वारा कुल ५,८८३) की खादी खरीदी गई, अर्थात् कुल बिक्री का १२॥% कत्तिनोंने खरीदा। सोचा यह गया है कि कत्तिनो को वर्ष में जितने मूल्य के कपड़े की आवश्यकता हो, उसका एक चौथाई मूल्य वे बचाकर रक्खे, और वर्ष मे कम-से-कम एक साड़ी तो अवश्य ही खरीदें। केन्द्रो मे कुल कत्तिने करीब २८०० है, और आशा की जाती है कि अगले वर्ष वे करीब ८०००) की खादी अवश्य खरीद सकेंगी। अक्तूबर, १९३५ के बाद, जबकि योजना को आरंभ हुए पूरा एक वर्ष बीत चुकेगा, सरकारी हुक्म के अनुसार एक खास रिपोर्ट मैसोर सरकार की सेवा मे पेश की जायगी।

सूत और खादी की उत्पत्ति

विवरण के वर्ष मे २४,३९३) का ३८,०१० पौंड सूत कता जबकि पिछले वर्ष कुल २३८९३ पौंड सूत कता था। गुण्डलुपेट केन्द्र की कत्तिनो सहित कुल कत्तिनो की संख्या वर्षके अन्त मे २६०० रही, जो कि इस वर्ष की अनुमानित संख्या थी। पिछले वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष केन्द्रो मे कताई-कार्य की स्पष्ट प्रगति हुई है, और कत्तिनो को खादी देने की प्रथा के आरंभ होजाने से उनकी उत्पत्ति मे भी वृद्धि हुई है।

पिछले साल जहां कुल २६,९४६) की ६२,८५७ वर्ग गज और २२,५५५ पौंड खादी बनी थी, तहां इस वर्ष कुल ३१,२७५) की ६८,९१५ वर्ग गज और २३,३०८ पौंड खादी तैयार हुई। साड़ियों और चेक-कोटिंग की किस्मो के रूप में इस वर्ष रंगीन खादी की उत्पत्ति मे वृद्धि हुई है। वर्ष के अन्त मे काम मे लगे हुए जुलाहों की कुल संख्या १२० थी, जिनमें ३० जुलाहे गुण्डलुपेट-कताई-केन्द्र के भी शामिल थे। इन जुलाहो मे कुल मिलाकर इस वर्ष ८,१६८) की मजदूरी बांटी गई।

खादी-बिक्री

गांवो में खादी की मांग का विस्तार होने से इस वर्ष पिछले वर्ष की अपेक्षा कुछ ज्यादा खादी बिक सकी है। जहां १९३३-३४ में कुल ४१,९२८) की खादी बिकी थी, तहां इस वर्ष कुल ४५,३०६) की बिकी है।

गत वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष एजेण्टों द्वारा भी कुछ अधिक बिक्री हुई। जहां पिछले साल उन्होंने कुल १०३७५) की खादी बेची थी, तहां इस साल कुल १२,५१५) की खादी बेची। जिला-बोर्ड के चितलदुगवाले खादीभंडार के साथ और कोलार की कोऑपरेटिव सोसाइटी के साथ ओकड़ खादी बेचने का भी प्रबंध किया गया था। खादी-वस्त्रालय, बेंगलोर, और खादी-सहयोग-समिति, मैसोर के साथ इस वर्ष भी एजेन्सी-प्रथा से व्यवहार चालू रहा। खानगी व्यापारियों और व्यक्तियों के हाथ इस वर्ष कुल ७,९१०) की खादी बेची गई, जबकि गतवर्ष कुल ९५२९) की खादी बिकी थी। सरकारी खातों में जहां १९३३-३४ मे १४,५०८) की खादी बिकी थी, तहां इस वर्ष १५,१०४) की बिक्री हुई। बिक्री घट जाने के कारण अ० भा० चर्खा-संघ की कर्णाटक-शाखाने इस वर्ष राज्य में अपने कुछ खादीभंडार बन्द कर दिये और बाकी के भंडारो में लगी हुई पूंजी कम करदी। अपने भंडारों में बदनवाल-खादी का पर्याप्त संग्रह रखने मे उन्होंने बड़ी झिझक से काम लिया। इस नीति के कारण चर्खा-संघ द्वारा इस वर्ष कुल ३८६४) की ही बिक्री हुई, जो कि अपेक्षा से बहुत ही कम रही। पिछले साल यही बिक्री ७४४४) की और सन् १९३२-३३ में १२,४०८) की हुई थी। इन अंकों से इस नीति का व्यापक और सतत परिणाम स्पष्ट हो जाता है।

कपास की खेती

वस्त्र-स्वावलम्बन की योजना की सफलता के लिए यह अत्यन्त हितकर है कि प्रत्येक कत्तिन अपनी आवश्यकता का कपास स्वयं पैदा करले। महात्मा गांधीने इसका संकेत किया और मैसूर दरबार की तो शुरू ही से इस ओर दिलचस्पी थी। अतः दरबार का संकेत मिलते ही हमने अपने केन्द्र मे इस बात की जांच की कि गांवो में कितने घर ऐसे है, जो अपनी आवश्यकता का कपास खुद उत्पन्न कर लेते है, और कपास की यह खेती कितनी जमीन में होती है। जांच खतम होने पर पता चला कि ५३ गावों के ३७४ परिवारोने, जो चर्खा चलाते है, कुल ५३४ एकड़ जमीन मे कपास बोया था। इनके साथ ही ८१ परिवार ऐसे थे, जिनके यहा चर्खे नही चलते थे, लेकिन जिन्होंने १२५ एकड़ जमीन में कपास की खेती की थी। कुल मिलाकर औसत प्रति परिवार १·४५ एकड़ आता है—जिससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि बदनवाल क्षेत्र में कपास की खेती लोग मुख्यतः निजी और स्थानीय उपयोग के लिए ही करते है। इस केन्द्र मे कुछ ऐसे भी गाव है, जहा कताई शुरू होने के बाद लोगोने कपास बोना शुरू किया है। अब मैसूर-दरबारने यह हुक्म जारी किया है कि एक ऐसी रिपोर्ट तैयार की जाय, जिसमे राज्य के दूसरे भागो में भी कपास की खेती को प्रोत्साहन देने के उपायों की सूचना हो, खासकर उन भागो के लिए, जहां हाथ-कताई का उद्योग एक मुख्य ग्राम-उद्योग है।

निरीक्षण

२०, अगस्त, १९३४ को मैसूर के दीवान साहब बदनवाल-केन्द्र देखने आये, और यहा के काम का उन्होने निरीक्षण किया। उन्होने अपनी यह इच्छा प्रगट की कि केन्द्रो में कत्तिनो की संख्या दूनी कर दी जाय और उन्हे समझाया जाय कि वे अपनी आवश्यकता का तमाम कपड़ा और साड़िया शुद्ध खादी की पहनें।

अखिल भारत चर्खा-संघ के प्रधान मंत्री श्री० शंकरलाल बैंकर कृपापूर्वक बदनवाल आये और ३० और ३१ मई, १९३५ को उन्होंने केन्द्र के कुछ गावों मे खादीकार्य का निरीक्षण किया। इस क्षेत्र में अखिल भारत चर्खा-संघ की वस्त्र-स्वावलम्बन-नीति को सफलतापूर्वक व्यवहृत होते देख उन्होंने अपनी प्रसन्नता प्रगट की। कत्तिनों की कार्यक्षमता बढ़ाने की दृष्टि से उन्होंने यह सलाह दी कि कत्तिनों को सुधरे हुए चर्खे और सीधे तकुए देने

का विशेष प्रयत्न किया जाय। उन्होंने यरवडा चक्र पर स्वयं सूत कातकर बताया और कत्तिनो की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए संगठित प्रयत्न करने की आवश्यकता पर जोर दिया। यह कार्य अगले वर्ष सन् ३५-३६ में यथाविधि उठाया जायगा।

उटकमंड से मैसूर जाते हुए श्री० भूलाभाई देसाईने भी ७ जून १९३५ को उटकमड के रास्ते में पडनेवाले एक कताई-केन्द्र का और बदनवाल की बस्ती का निरीक्षण करने की कृपा की थी।

आर्थिक स्थिति

ता० ३०-६-३५ को समाप्त होनेवाले वर्ष मे इस केन्द्र को ५६१ रु० ३ आने ८ पाई का खरा लाभ हुआ था, जबकि सन् १९३३-३४ के अन्त में जाचे हुए हिसाब के अनुसार लाभ की यही रकम १६४५ रु० १३ आने, ११ पाई थी। मुनाफे मे यह कमी दो कारणो से हुई है। एक तो रिपोर्ट के वर्ष में कुछ किस्मों की खादी के बिक्री-भाव घटाये गये थे, और दूसरे, खादी को लोकप्रिय बनाने की दृष्टि से गावो में कत्तिनों को खादी लागत मूल्य पर दीगई थी। नयी योजना के कारण धुलाई और मजदूरी की मद में कुछ अधिक खर्च करना पडा था और ये सब खर्च लगातार होते रहे थे। घटी मे ये भी कारणभूत थे ही। किन्तु जब कत्तिनो और जुलाहो के हित और लाभ की दृष्टि से इसका विचार करते है, तो यह घटी उचित ही ठहरती है।

एस० वी० राजाराम ऐयंगर
व्यवस्थापक, बदनवाल-कताई-केन्द्र

मूंगफली की खली

[अध्यापक सहस्रबुद्धेने मूगफली की खली पर अपनी जो प्रशसा-पूर्ण सम्मति प्रगट की है उसे एक मित्रने मेरे पास भेजा है। मूंगफली की खली को अवश्य आजमाना चाहिए। मो० क० गांधी]

आहार मे सोयाबीन का उपयोग करने के लिए काफी उपदेश दिया जा रहा है, पर मूगफली की तरफ, जिसकी खेती हिंदुस्तान में काफी मात्रा मे होती है, उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना कि देना चाहिए। मूगफली आहार की दृष्टि से बहुत मूल्यवान वस्तु है। मूगफली स्वय सहज मे पच जाय ऐसी चीज नहीं है और अक्सर पाचन मे यह गडबड़ पैदा करती है। इसका कारण यह है कि इसमें तेल की मात्रा बहुत अधिक, याने ५० प्रतिशत है। मूगफली के दानो को अच्छी तरह साफ करके उनमें से तेल निकाल लिया जाय तो जो खली बाकी बचेगी वह मनुष्य के लिए बहुत पौष्टिक आहार का काम देगी और कोई नुकसान नही पहुँचायगी। मूगफली की खली का और सोयाबीन का पृथक्करण इस प्रकार है:—

	मूगफली की खली प्रतिशत	सोयाबीन प्रतिशत
आर्द्रता	८	८
प्रोटीड	४९	४३
कार्बोहाइड्रेट	२४	१९.५
चरबी	१०	२०
रेशा	५	५
खनिज द्रव्य	५	४.५

मूगफली की खली सोयाबीन की तुलना में बहुत अच्छी उतरती है। प्रोटीड और खनिज द्रव्य, जो अन्न के आवश्यक तत्त्व हैं, सोयाबीन की अपेक्षा मूंगफली की खली में अधिक है। और 'एमिनो-एसिड' के जो आवश्यक तत्त्व हैं वे भी सोयाबीन के प्रोटीड से मूंगफली की प्रोटीड मे अधिक है।

मूगफली की खली खाने से अगर पित्त बढता हो तो थोडा-सा गुड़ या जरा-सा सोडा-बाई-कार्ब साथ लेने से पित्त बंद हो जायगा।

मूगफली की खली का स्वाद बहुत अच्छा होता है, और खली को गरम करके अच्छी तरह बद किये हुए बरतन में रखदें तो वह काफी मुद्दततक वैसी ही रखी रह सकती है।

मूंगफली की खली की मिठाई और खाने की दूसरी कई सामान्य चीजे बन सकती है। इसलिए मूगफली की खली के उपयोगिता-विषयक ज्ञान के प्रचार करने का प्रयत्न देश में होना चाहिए। सोयाबीन की तरह तो यह है ही, बल्कि उससे बढकर भी है।

'हरिजन' से]

सेगाँव में कार्यारम्भ

[४०३ पृष्ठ से आगे]

ही ध्यान से देखते आ रहे है, और अगर हम इसे सफल बना सकें, तो इसमें सन्देह नही कि यह चीज जरूर पड़ोस के गावो मे फैल जायगी। वर्धा और इधर इर्द-गिर्द मे जो बहुत से भंगी बेकार बैठे है, वे इस आशा से हमारे इन प्रयत्नो को खूब ध्यान के साथ देख रहे है कि शायद भविष्य में उन्हे गावो की सफाई का काम मिल जाय।

अबतक दो टट्टी-बाड़े तैयार हो चुके हैं। स्त्रियो के लिए दो बाड़े पहले ही तैयार कर दिये गये हैं। बाड़ों का काम तो करीब-करीब खत्म ही समझिए, पर इसके साथ-साथ हमारी कठिनाइयो की शुरूआत हो गई है। तरह-तरह की अफवाहे उडने लगी है। यह सुनने मे आया है कि जो लोग इन टट्टी-बाडो मे जायँगे उनसे चार-चार आने माहवार वसूल किये जायँगे। यह भी कानाफूसी हो रही है कि मुझे जरूर सरकार से तनख्वाह मिलती है, और इस सब काम का नतीजा यही होगा कि लोगों पर किसी तरह का कोई टैक्स लगा दिया जायगा। मगर जो हिम्मतवाली स्त्रिया है वे तो पहले से ही साहस दिखा रही है। मुझे रोज बिला नागा हरेक टट्टी-बाड़े में जाना पडता है, और उन्हे यह यकीन दिलाना पड़ता है कि हम लोग जो यह सब मेहनत कर रहे हैं इसके बदले में हम आपसे रुपया-पैसा नहीं, किन्तु यह खाद भर चाहते है।

मुलाकातियों से दो शब्द

वर्धा से यह गांव ५ मील है, और खेतों में होकर आना पडता है, तो भी मुलाकाती सज्जन अक्सर यहां आ पहुँचते है। कृपा कर वे इतना याद रखें कि यहां चीजें बहुत थोड़ी मिलती हैं और समय भी बहुमूल्य है। इसलिए जब वे यहां दिनभर के लिए आना चाहें, तो मेहरबानी करके अपने साथ अपना खाना भी लाया करें।

'अंग्रेजी से'] मीरा

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi, by R. S. Gupta.

पेटभर मजदूरी तो दो "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक' किंग्सवे, दिल्ली.

संपादक—वियोगी हरि
[हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में]

वार्षिक मूल्य ३॥)
एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शनिवार, ८ फ़रवरी, १९३६. [संख्या ५१

विषय-सूची

साप्ताहिक पत्र

हमारा गाँव

दो सप्ताह से सिन्दी के बारे में मैंने कुछ नहीं लिखा, अब तो उसकी सुध लेनी ही चाहिए। वहां के कामकाज की खबरें मुझे नियमित रूप से मिलती रहती हैं, जिससे मालूम पड़ता है कि उसमें क्रमशः प्रगति हो रही है। जैसे जैसे खादी तैयार होती है वैसे ही बिक जाती है, क्योंकि अब वहां उसके नियमित खरीदार हो गये हैं। श्री गजानन नायकने वहां स्त्रियों के टट्टी जाने के लिए एक लम्बी खाई खोद दी है। उन्हें सन्देह था कि कुछ समयतक इसका इस्तेमाल नहीं किया जायगा, लेकिन थोड़े दिनों की झिझक के बाद काफी तादाद में स्त्रियोंने नियमित रूप से इसका इस्तेमाल शुरू कर दिया है। अभी भी मिट्टी डालने की परवा तो वे नहीं करतीं, लेकिन धीरे-धीरे यह भी करने लगेंगी।

दो-तीन महीने पहले जहां यह हालत थी कि श्री गजानन को कोई अपने कुएँ से पानी नहीं भरने देता था, वहां अब वह एक ब्राह्मण के कुएँ का स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग करने लगे हैं, और जहां पहले लोग उन्हें कोढ़ी की तरह अपने से दूर रखते थे, वहां अब दावतों में भी उन्हें बुलाया जाने लगा है। निस्सन्देह लगातार शान्त, निःस्वार्थ काम का असर हुए बिना नहीं रह सकता।

उस दिन हमारे इन मित्रने एक आदमी के खेत में, जिसने कि खेत का एक हिस्सा खेती-सम्बन्धी प्रदर्शनों के लिए अलग रखना मंजूर कर लिया है, हड्डियों से खाद बनाकर बताया। मगनवाड़ी में कोल्हू से निकाला जानेवाला तेल भी श्री गजानन के यहां बिकता है, जिसके ग्राहक धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं। साबुन भी बनाकर बताया गया था, और गांव का एक व्यक्ति अपने लिए स्वयं साबुन बनायगा।

रात्रि-पाठशाला धीरे-धीरे लोकप्रिय होती जा रही है। सवर्ण और हरिजन लड़के एक साथ बैठकर पढ़ते हैं, और कभी-कभी लड़कियां भी पढ़ने के लिए आती हैं। बच्चे तो शाम के ६ से ६॥ बजेतक पढ़ते हैं और वयस्क ७ से ९ बजे राततक।

गुजरात में खाईवाली टट्टियाँ

गांधीजी के स्वास्थ्य में क्रमशः जो सुधार हो रहा है उसके कारण मुझे कुछ दिनों के लिए गुजरात में दौरा करने का मौका मिल गया। मैंने देखा कि वहां खाईवाली टट्टियों का रिवाज पकड़ता जा रहा है। मैं बड़ौदा-राज्य के एक गांव में गया, जहां हमारे एक कार्यकर्ता को गांववालोंने वहां बसने के लिए आमंत्रित किया था। उस समय वहां प्रायः एक ही ऐसा व्यक्ति था जो उस गांव में रह गया। यह सज्जन पिछले १५ वर्षों से खादी में विश्वास रखते हैं और अपने निजी व्यवहार में हाथ से कती-बुनी खादी के अलावा और किसी कपड़े का उन्होंने उपयोग नहीं किया। पिछले वर्ष उनके कुटुम्बने १७८ गज कपड़े के लायक सूत कात लिया था, और अब तो उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि अपने घर में न सिर्फ अपने पहनने के लिए बल्कि और किसी काम में भी खादी के सिवा और किसी कपड़े का इस्तेमाल नहीं करेंगे। 'नव-जीवन' और 'हरिजन-बन्धु' को वह नियमित रूप से पढ़ते रहे हैं और एकमात्र गावों में ही बनी हुई चीजों का व्यवहार करने में उनका पूरा विश्वास है। हमारे कार्यकर्ता के उस गांव में पहुंच जाने के बाद तो उनका उत्साह और भी बढ़ा है। उन्होंने अपने लिए खाईवाली टट्टी बना ली है और दूसरों को भी उसका इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं, और अब तो गांव के मुख्तलिफ हिस्सों में ऐसी कई टट्टियां बन गई हैं। एक तो गांव के स्कूल में भी है। इन सब टट्टियों को मैंने देखा, सभी साफ-सुथरी थीं और अच्छी तरह देखभाल के साथ रक्खी जाती हैं। मिट्टी का इस्तेमाल करने पर वहां कोई एत-राज तो नहीं है, लेकिन लापरवाही अभी भी है, इसलिए हमारा ग्रामसेवक रोज चक्कर लगाकर देखता है कि हरेक टट्टी बिलकुल साफ है या नहीं। मैंने भी तुरन्त की इस्तेमाल की हुई टट्टियों को जाकर देखा। निस्सन्देह जबतक कोई बतावे नहीं तबतक किसी को यह सन्देह नहीं हो सकता कि टट्टियों में अभी-अभी कोई पाखाना फिरकर गया है। इस सब काम का गांववालों पर असर पड़ा है और वे आशा करते हैं कि स्थानीय बोर्ड इस बात के लिए काफी रकम मंजूर करेगा कि जिससे कुछ टट्टियां बनाई जा सकें।

इस गांव में ३५ चर्खे चलने लगे हैं और काफी तादाद में ऐसे उत्साही व्यक्ति हो गये हैं जिन्होंने निर्वाह-योग्य मजदूरी वाला प्रस्ताव पास होने के बाद से प्रारम्भ होनेवाले ९ घंटे की कताई का प्रयोग शुरू कर दिया है। इनमें 'ऊँची' जाति के हिन्दू और पिछड़ी हुई जाति के दुबला तथा हरिजन सब साथ-साथ बैठते हैं। दुबलों में होनेवाली जागृति ध्यान देने योग्य है। वे रात्रि-शाला में पढ़ने आते हैं, चर्खा-कताई में शरीक होते

हैं और गरबा-नृत्य में भी भाग लेते हैं जिससे कि वे कमाल करते मालूम पड़ते हैं। पिछले साल तो इन नचवैयों का एक दल ३० मील चलकर बारडोली के गावो मे भी गया था, जहां इनका खूब स्वागत-सत्कार हुआ था।

बारडोली के एक गाँव में

इस जातिके लोग (दुबले) अब ऐसा महसूस करते हैं कि गाव की हलचलों मे इनका भी शरीक होना जरूरी है। जहा १२ साल पहले यह हालत थी कि इन्हे रात्रि-शाला में पढने के लिए भेजने मे बडी कठिनाई पडती थी और लोगों का, जो इनके साथ गुलामो से अच्छा व्यवहार नही करना चाहते थे, इतना जबरदस्त विरोध था कि पढने के इनके हक को मनवाने के लिए एक कार्यकर्त्ता को आठ दिन का उपवास करना पड़ा था, वहा अब सारा विरोध दब गया मालूम पडता है और बच्चो व बडो के झुण्ड-के-झुण्ड हमारी रात्रि-शालाओ मे पढने के लिए आते है। इस तरह पढनेवालो की संख्या, बारडोली के गावो मे, कम-से-कम ८०० तो होगी ही। उनकी लडकियो को ऊँची जाति की लडकियो के साथ गरबा-नृत्य में शरीक होते और कुछ को खूबसूरती के साथ रुई धुनते व कातते हुए भी मैंने देखा। धुनाई व कताई की शिक्षा होती ही एक ऐसे भव्य मकान मे है जो कि एक पाटीदार का है। रात के कोई १० बजे दूर के एक गाव से स्त्री-पुरुषों, लडके-लडकियो का एक समूह भजन गाता हुआ आया, जो गरबा-नृत्य मे अपनी कमाल की कला दिखाने के लिए उत्सुक था।

रानीपरज लोगों में

रानीपरज लोगो मे जो काम हो रहा है उसका केन्द्र वेडछी गाव है। वहा जाकर बडा आनन्द आया। राम के परम भक्त सन्त कवि तुलसीदासजीने कहा है कि राम का नाम तो स्वयं राम से भी बडा है। यहा भी यही बात लागू होती है, क्योंकि इन जगली जातियों में स्वयं गाधीजी की अपेक्षा गांधीजी का नाम कही अधिक महत्व की चीज है। गांधीजी को देखा तो इनमें से बहुत ही थोड़े लोगोंने है, करीब-करीब सभी निरक्षर हैं, और इनमें थोड़े ही ऐसे हैं जो कभी अपने ताल्लुके से बाहर कही गये होंगे। लेकिन प्रेम, शुद्धता एवं कताई के सन्देश को इन्होंने सुना है और वह इनके जीवन मे समाविष्ट हो गया है। इनमें से एक की कुछ ही समय पहले मृत्यु हुई है, जो खादी का और उसके साथ जिन बातों का समावेश होता है उन सबका भक्त था। वह अपनी दो छोटी झोंपडिया, मन्दिर, स्कूल व वाचनालय के तौर पर उपयोग करने के लिए छोड गया है। इस जगह मे गया तो एक तरह का पवित्रता का भाव आये बिना न रहा। मै तो अचानक वहा पहुँचा था, लेकिन फिर भी मैंने वहा की झोपडियों को बहुत साफ-सुथरा और व्यवस्थित देखा। गली-कूचे भी कीचड़ और धूल से मुक्त थे। कुएँ तथा उनके आस-पास की जगह भी खूब साफ-सुथरी थी। खाद की नई टट्टियां इस्तैमाल करने के लिए समझाने की भी यहा कोई जरूरत नहीं थी, क्योंकि यहा-वालोंने खुद ही इसका एक सस्ता उपाय सोच लिया है। घर पर ही जो कच्चा माल मिल जाता है उससे उन्होंने टट्टियां तैयार करके उन्हे अपने खेतों मे खड़ा कर दिया है। निर्वाहयोग्य, कम-से-कम मजदूरी की नई योजना को उन्होने उत्साह के साथ अपना लिया है और मैने देखा कि रानीपरज स्त्री-पुरुषोंने अपनी कातने की गति, सूत की बारीकी व उसकी उत्पत्ति के परिणाम को उतना कर भी लिया है जितना कि पूरे तीन आने की मजदूरी के लिए निश्चित किया गया है। नीचे एक रानीपरज युवक द्वारा की गई प्रगति का नकशा दिया जाता है:—

सप्ताह	सूत का नं०	टेस्ट प्रतिशत	औसत-गति प्रति घण्टा (गजों में)	जो गति प्राप्त करनी चाहिए (गजों में)
दूसरा	२०	५५	१४२	३००
चौथा	२८½	८६	१७७	२६०
पांचवां	२९	५६	१७७	२३५
सातवा	२९	८१	१६९	२३५
आठवा	३०	७४	१९५	२३०
दसवां	३२	६०	२२२	२२०

इस प्रयोग से एक लाभ यह भी हुआ है कि उनमे नियमित-ता तथा अमल करने की आदत पड गई है जो पहले कभी नहीं थी। दो महीनो में इस युवकने जो काम किया उसका विवरण इस प्रकार है.—

काम	कितने घण्टो मे किया	काम की तादाद
रुई की सफाई	६५	१० पौण्ड ३ तोला
धुनाई	८१	१० पौण्ड ३ तोला
कताई	३७१	६५,२८० गज
अन्य कार्य	५	
कुल	५२२	१०।।।=) आमदनी हुई

एक दूसरे गाँव का हाल

अब एक दूसरे गाव का हाल सुनिए, जहा के निवासियों को सत्याग्रह-आन्दोलन के समय बहुत-कुछ कष्ट उठाना पड़ा था। एक कार्यकर्त्ता, जो ऊंची जाति का ब्राह्मण है और एक इज्जतदार घराने का है, इस गांव में बस गया है और चुपचाप सफाई, कताई व शिक्षा का काम कर रहा है। जब वह दूसरे गावों को जाता है तो उसकी पत्नी, जो लम्बी अवधितक जेल मे रह चुकी है, गली-कूचो को साफ करने व मैला उठाने का काम करती है।

वह एकमात्र उन्ही चीजों का इस्तैमाल करता है जो गांव में तैयार होती है, रात को पढाई का काम करता है, और एक खेत में स्वयं खेती करने का भी इरादा कर रहा है। यह वह खेत है जिसमें उसने बदलती रहनेवाली तीन टट्टियां बनाई है और जिसे उनके मैले से वह खूब उपजाऊ बना रहा है।

बारडोली के इन गावो की एक बडी भारी खासियत यह है कि इनमें किसी कार्यकर्त्ता को अपने रहने के लिए मकान मिलने मे कोई कठिनाई नही हुई। यहां पर जो काम हुआ है उसका लोगो पर इतना असर पड़ा है कि वे बिना किसी उज्र के अपना मकान कार्यकर्त्ता को सौंप देते हैं। इस गांव में तो जिस व्यक्तिने अपना मकान कार्यकर्त्ता को दिया था उसे अपना मकान सफाई-सुन्दरता के साथ रक्खा जाते देखकर इतना उत्साह हुआ कि उसने कार्यकर्त्ता से आग्रह किया कि उसके दूसरे मकानों का भी शाला तथा वाचनालय के लिए उपयोग कर लिया जाय। इस प्रकार जहां कुछ महीने पहले उपेक्षा एवं अविश्वास का वातावरण था वहां अब सराहना, सहयोग एवं विश्वास के भाव पैदा हो गये हैं।

इन गांवों में जाकर इन सेवा-रत कार्यकर्त्ताओं से बातें करने में एक तरह की ऐसी शक्ति प्राप्त होती है जिसका वर्णन करने में अतिशयोक्ति हो ही नहीं सकती।

एक बहिन का सुन्दर कार्य

ये सब कार्यकर्ता पहले काग्रेस के उन मकानों में रहा करते थे, जिन्हें सत्याग्रह-आन्दोलन के समय सरकारने अपने कब्जे में कर लिया। वे अभी भी उसीके कब्जे मे हैं, लेकिन कार्यकर्ताओंने ऐसे भले आदमियों को पा लिया है जिन्होने अपने मकान उन्हे दे दिये हैं, इसलिए उन्हें उनका प्रभाव इतना महसूस नही हुआ जितना कि अपना सारा समय व शक्ति अस्पताल मे ही लगानेवाली श्रीमती मंजुकेशा मशरूवाला को हुआ। यह अस्पताल पहले काग्रेस के ही मकान मे था, जो अभीतक सरकारी कब्ज में है, लेकिन अब बारडोली के एक किराये के मकान में खुल गया है।

'हरिजन' पत्रो मे अस्पतालो का गुण-गान करने की मेरी आदत नही है, लेकिन इस अस्पताल मे कई ऐसी बाते है जिनका उल्लेख करना ठीक ही होगा। श्रीमती मंजुकेशा डाक्टरी डिग्री हासिल करने के बाद बारडोली आई थी और काग्रेस की ओर से उन्होंने यहा एक अस्पताल खोला था, जो खास तौर पर स्त्रियो के ही लिए था। सत्याग्रह-आन्दोलन के समय उन्हे अस्पताल बन्द करके लड़ाई मे कूद पड़ने की बड़ी इच्छा हुई, लेकिन गाधीजीने कहा कि उन्होने जो काम उठाया है वह इतना पवित्र है कि किसी भी हालत मे उसे न छोड़ना चाहिए। तब से वह, इन तमाम सालो, बराबर इसी काम मे लगी हुई है। इसके लिए वह कोई तनख्वाह भी नही लेती, सिर्फ अपने खानेभर के खर्च मे सन्तोष करती है जो ज्यादा-से-ज्यादा १०) से १३) रु० तक होता है। और तारीफ यह कि, मैंने अभीतक जितने अस्पताल देखे है उनमे, यह एक ऐसा अस्पताल है जो बहुत सुचारु रूप से चल रहा है। इलाज व दवा-दारू के लिए जो फीस यहा ली जाती है वह मरीज की हैसियत के अनुसार सिर्फ १ पैसे से लेकर २ आने तक है। हरिजनो का इलाज मुफ्त होता है और दो मरीजो के अस्पताल म रहने की भी व्यवस्था है जिसका उपयोग हिन्दू (हरिजन भी), मुसलमान आदि सब जातिवाले एकसा तौर पर करते है। उनके रिश्तेदार वहां रहकर उनके लिए खाना बना सकते है। इस प्रकार इस छोटे-से स्थानने जातपांत के सब बन्धनो को तोड दिया है। मरीजों की औसत-सख्या हर रोज ६० से ९० तक हो जाती है, जिसमें कोई ६० प्रतिशत पुरुष और ४० प्रतिशत स्त्रिया होती है। हिन्दू-मुसलमान दोनो ही समान-रूप से इस अस्पताल से लाभ उठाते है और धन्धों के हिसाब से मरीजो का वर्गीकरण करने पर मालूम पड़ता है कि उनमें से आधे तो किसान है, बाकी मजदूर, कारीगर, व्यापारी और बँधी हुई तनख्वाह पानेवाले है। कोई २५० से अधिक गांवो का इस अस्पताल से काम चलता है और प्रसूति के मामलों में काम करने के लिए श्रीमती मंजुकेशा रात-दिन किसी भी समय काम करने के लिए हमेशा तैयार रहती है। योगियों की तरह कठोर एवं सादा जीवन व्यतीत करते हुए वह इलाज की बनिस्बत बचाव पर, अर्थात् डाक्टर के पास इलाज के लिए दौड़ने की बनिस्बत अपनी रहन-सहन का ढग बदलने पर, वह ज्यादा जोर देती हैं। अस्पताल के आमद-खर्च का हिसाब देखने से मालूम पड़ता है कि उसे ५००) रु० साल का घाटा है, जो, जितने गांवों और मरीजों की सेवा उससे हो रही है उनकी संख्या को देखते हुए इतनी छोटी रकम है, कि किसी भी दानी को बड़ी आसानी से दे देनी चाहिए।

'हरिजन' से] महादेव ह० देशाई

राजपूताने में हरिजन-कार्य

[राजपूताना-हरिजन-सेवक-संघ की नवम्बर मास की रिपोर्ट देखने से मालूम होता है कि वहां हरिजन-कार्य धीरे-धीरे बड़ी अच्छी प्रगति कर रहा है। रिपोर्ट मे से नीचे मैं जिन अशो को संक्षिप्त रूप में उद्धृत कर रहा हूँ उनसे दूसरे हरिजन-सेवको को प्रेरणा मिल सकती है। वि० ह०]

डूगरपुर राज्य में चमार भाइयों के दो बड़े-बड़े मृत्युभोज हुए। उनमें शरीक होनेवाले चमार प्रतिनिधियों में बागड़-सेवा-मन्दिर, (सागवाड़ा) के कार्यकर्ताओंने सघ के उद्देशों का प्रचार किया, जिसके फलस्वरूप १४० गांवों के करीब ८०० चमार परिवारोंने शराब और मुर्दार मास सेवन न करने का निश्चय किया। चमार-पंचायतने, इस निश्चय का ठीक-ठीक पालन होता है या नही, यह देखने का भार हरेक गांव के मुखियों को सौंप दिया है। डूगरपुर राज्य के ७५० गावों मे से अब कुछ ही गाव ऐसे रह गये है, जहां के चमार भाइयोंने शराब और मुर्दार मास का त्याग न कर दिया हो। दूसरा सुधार मृत्युभोज के अवसर पर होनेवाले अपव्यय को कम करने की दिशा मे हुआ है। २० गांवो की चमार-पंचायतने यह निश्चय किया है कि दो-दो, तीन-तीन दिन के बजाय जाति-भोज केवल एक ही दिन किया जाय, और उसमे २० सेर से अधिक घी खर्च न हो।

सागवाड़ा-केन्द्र के कार्यकर्ताओं को तबाकू-निषेध-प्रचार मे भी अच्छी सफलता मिली है। लाजपत-सप्ताह के सिलसिले में उन्होंने ८ गावों मे प्रचार किया, जिससे प्रभावित होकर १०० बलाई हरिजनोंने तबाकू पीना छोड दिया है। शराब और मास तो वे पहले ही छोड़ चुके थे।

इसी तरह नागौर (मारवाड) की हरिजन-पाठशाला के ६ गाछा हरिजन विद्यार्थियोंने मादक वस्तुओ का सेवन करना छोड़ दिया है।

झालावाड राज्यने अपने यहां की हरिजन-पाठशालाओं के लिए २५) मासिक देना मजूर किया है। यह छोटा-सा कार्य राज्य की सहानुभूति का सूचक है, इसमे सदेह नहीं।

सूरजगढ की हरिजन-समिति के अध्यक्ष सेठ गंगाबख्शजीने गरीब असहाय हरिजनो को २१ रजाइया बनवा दी, और ९ मन अनाज वितरण किया।

रामपुर (जयपुर राज्य) के हरिजनो को पानी का भारी कसाला है। मालियो से बेचारे पानी मोल लेते है। माली लोग जब कुआ जोतना बद कर देते है, तब हरिजनों को बहुत दिक्कत उठानी पड़ती है। उनका यह कष्ट दूर करने के लिए वहां एक कुआं बनवा देने का उद्योग किया जा रहा है, और उसके लिए स्थानीय हरिजन-सेवकोंने ५००) के वचन प्राप्त कर लिये है।

चिड़ावे मे हरिजन-पाठशाला अबतक एक किराये के मकान में लगती थी, मगर इधर कुछ हरिजन-विरोधियो के बहकावे में आकर मकान-मालिकने वहा की समिति के मंत्री को बुरा-भला कहा, और मकान खाली कर देने की धमकी दी। इस घटना से स्थानीय सेवको को प्रेरणा मिली और पाठशाला के लिए अलग मकान बनाने का उन्होंने निश्चय कर डाला। भगवान् की दया से उन्होंने आवश्यक साधन जुटा लिये हैं, और एक सुन्दर स्थान पर पाठशाला का मकान बन रहा है।

हरिजन-सेवक

शनिवार ८ फ़रवरी, १९३६

पेटभर मजदूरी तो दो

'मॉडर्न रिव्यू' के दिसबर के अंक मे टाटा आयर्न एण्ड स्टील वर्क्स के जनरल मनेजर श्री कीनन का जो लेख प्रकाशित हुआ है उसे देखने से यह मालूम होता है कि हिंदुस्तान मे मजदूरो से बेहद काम लेने की ऐसी-ऐसी जगहे है जिनके विषय मे हमने कभी कल्पना भी नही की है। इस देश मे बेकारी कितनी बढ गई है और बेकार लोग थोडे-से पैसे के लिए किस हदतक तनतोड मेहनत करने को तैयार हो जाते है, इसका ज्ञान पहले-पहल हमे खादी-आंदोलनने कराया। लेकिन श्री कीननने कच्चे लोहे की खानो के मजदूरो की स्थिति का जो वर्णन अपने इस लेख मे दिया है वह तो यह बतलाता है कि खादी अधिक मजदूरी कराकर थोडा पैसा देती है, फिर भी खानों के १९ हजार से ऊपर ही काम करनेवाले इन मजदूरों की जो हालत होती है उसकी अपेक्षा खादी का काम करनेवालो की स्थिति अच्छी है। श्री कीनन लिखते है --

"कुछ अर्सा हुआ कि मै यो ही एक दिन खाने देखने चला गया। टेंडर मगाकर ठेका देने की पद्धति चलाकर हमने काफी पैसा बचाया है। हमारी एक खान मे कच्चा लोहा खुदवाने की मजदूरी चौदह आने से घटकर सात आने हो गई है। पर मै आपसे कहूँगा कि हमारी एक खान मे मजदूरी की दर घटते-घटते तीन पैसा रोज हो गई है! मै यह जानता हूँ कि चावल का भाव बहुत गिर गया है, तो भी यह तो मै कह ही नही सकता कि हमारे ठेकेदार खानो मे मजदूरों को जिस दर पर पैसा देते है, वह टाटा आयर्न एण्ड स्टील कपनी को जरा भी शोभा नही देती है। अब हमे ऐसी कोई कडी कार्रवाई करनी ही चाहिए कि जिससे गरीब मजदूरो का और नही तो पेट तो भर सके। गत तीन सप्ताह से मेरी पत्नी सबेरे, दोपहर और साझ को नित्य यह बात मेरे मनमे बैठाया करती है। उस दिन एक खान के सामने हमने देखा कि लगभग अठारह बरस की एक लडकी आ रही है जिसकी गोदी मे एक या दो महीने का एक बच्चा है। उसने मेरी पत्नी की लारी को रोका। ऐसा मालूम हुआ कि उस लडकी के स्तन जैसे बिल्कुल सूख गये हो। मेरी पत्नी इन लोगो की बोली तो समझती नहीं, पर एक नौसिखिया आदमी भी इतना तो समझ ही सकता था कि उस लडकी की गोद का बच्चा भूख के मारे तडप रहा था और वह अपने बच्चे की यह दशा अपने स्तनो को ऊँचा करके बताना चाहती थी। वह स्तन चूसता तो था, पर उसे शांति नही होती थी और वह सारे दिन रोता ही रहता था। इससे यह साफ मालूम होता था कि मा के स्तनो में एक बूद भी दूध नही था।

यह ठीक है कि कारखाने मे हम माल की उत्पत्ति का खर्च कम कर सकते हैं। पर मि० वुलवर्थ की अंग्रेजी कंपनी का अनुकरण करके हमे यही ध्येय नही रखना चाहिए कि जमशेदपुर बेहद माल की महज एक प्रदर्शिनी बन जाय, हमें छोटे-छोटे टिगरों पर रहनेवाले जंगली लोगो का भी ध्यान रखना चाहिए। इनमें से बहुत-से आदमी कच्चे लोहे से भरी हुई जमीन पर रहते हैं। इस जमीन पर आज हमारा कब्जा हो गया है, पर इन लोगो के बाप-दादों की तो शताब्दियो से यह जमीन है। यह बात हमारे समझने की है, और इन मजदूरो को कम-से-कम पेट भरनेलायक मजदूरी तो देनी ही चाहिए।'

चर्खा-संघ और ग्रामउद्योग-संघने अपने हाथ के नीचे काम करनेवाले कारीगरों व मजदूरो को कम-से-कम पेट भरनेलायक मजदूरी देने की जो नीति अख्तियार की है वह उन्होंने उचित ही किया है। 'महाराष्ट्र-खादी-पत्रिका' के दिसबर के अक से यह पता चलता है कि इस नई योजना पर वहां ठीक-ठीक अमल होनेलगा है। महाराष्ट्र-चर्खा-संघ के प्रसिद्ध उत्पत्ति-केन्द्र सावली में इस योजना के एक सप्ताह चलने का परिणाम खादी-पत्रिका के इस अक में दिया है। खादी-सेवकोने अनुभव से यह देखा कि केवल कताई की मजदूरी की दर बढाने से कुछ लाभ नही; कत्तिनो को पेट भरनेलायक ठीक-ठीक मजदूरी मिल सके इसके लिए यह भी होना चाहिए कि वे माल की उत्पत्ति भी बढावे। इस उद्देश से उन्होने मौजूदा चर्खे और पूनियो मे सुधार कराना शुरू किया। उन्होंने युगपुरातन चर्खे में एक चक्र बढाया, और इस तरह तकुवे के चक्कर करीब-करीब दूने हो गये और इससे उन्हे भारी सफलता मिली है। फिर कत्तिनों को चर्खा-संघ के कार्यालय मे पतली तातवाली मझोली पीजन पर धुनाई सीखने के लिए आने को समझाया। उन्हें यह भी बताया कि एक तकुवे पर एक ही वक्त में २० मिनिट से अधिक समयतक नही कातना चाहिए, क्योंकि एक ही तकुवा एकसाथ एक घंटेतक काम में लाया जाय इसकी अपेक्षा अगर हर बीस मिनिट पर सूत उतार लिया जाय तो एक घटे मे बहुत ज्यादा सूत कत सकता है। सूत उतारने की अटेरन मे भी सुधार किया गया। आजतक इस सबका जो परिणाम आया है वह अच्छा और उत्साहजनक है। यह नया प्रयोग आरभ होने के पहले साठेक साल की एक बुढियाने, ७ घटे १७ मिनिट मे २२ नबर का १३३१ गज सूत काता था, उसीने अब चद हफ्तो की तालीम के बाद ७ घटे ४० मिनिट मे २५ नंबर का २६४७ गज सूत काता, और ३ आने, २ पाई मजदूरी उसे मिली। दूसरी दो और कत्तिने कार्यालय में सीख रही है। उनकी कताई का वेग घटे मे २० से २२ अक के ४५० से ४७५ गज तक पहुँचा है। इनमे से एक कत्तिन तो ६० बरस की और दूसरी ४० बरस की है। सावली की कत्तिनों की एक सप्ताह की कमाई के आकडे नीचे दिये जाते है, जिन्हे देखने से यह पता चल जायगा कि महाराष्ट्र-चर्खा-संघने रोज की जो ≈) मजदूरी निश्चित की है, कत्तिने करीब-करीब उतनी मजदूरी तक पहुँच गई है :—

उम्र	८ घटे की मजदूरी की दर	सूत का नम्बर	विवरण
५०	०—३—५	२६ से २९	दो चक्रवाले चर्खे पर
४०	०—२—११॥	२७ से ३२	"
५५	०—२—११।	२४ से २६	पुराने चर्खे पर
५०	०—२—११	२१ से २८	"

ये परिणाम यद्यपि उत्साहजनक है, तो भी हमें इतना ध्यान में रखना चाहिए कि इतने से ही हमारा काम पूरा होने का नहीं, और हरेक कत्तिन को पेट भरनेलायक मजदूरी मिलने लगे इसके

पहले हमे काफी मेहनत करनी पडेगी । इसके अलावा सब तरह की मजदूरी का पैसा देने के विषय मे लोगों के हृदय जागृत करने की बहुत ही जरूरत है । हरेक मनुष्य को इतनी धर्म-बुद्धि अवश्य रखनी चाहिए कि जब दूसरे मनुष्य से, उसकी इच्छा से या अनिच्छा से मजदूरी कराने का वक्त आवे तब सारे दिन की मजदूरी का पेट भरनेलायक पैसे का हिसाब लगाकर मजदूर को पर्याप्त पैसा दिये बिना उससे मजदूरी करानी ही नहीं चाहिए । श्री कीनन के लेख से टाटा कम्पनी की ही नहीं, बल्कि हरेक व्यक्ति की आंख खुल जानी चाहिए और सब को मजदूरमात्र से हद से बाहर तनतोड़ मेहनत न कराने का निश्चय कर लेना चाहिए ।

'हरिजन' से] महादेव ह० देशाई

मेरे सेगांव के अनुभव

सांझ पड़ने पर मैंने दिया-बत्ती जलाई ही थी कि एक जवान आदमी आया और मेरे दरवाजे पर बैठ गया । थोड़ा सुस्ताकर वह बोला "बाई, दोपहर से सिर मे ऐसा दर्द हो रहा है जैसे कोई हथौड़ा ठोंक रहा हो । आपके पास कोई दवाई होगी?" "नहीं भाई" मैंने कहा "मेरे पास कोई दवाई तो नहीं है, पर तुम्हारा यह दर्द पेट मे कुछ गड़बड़ी होने से ही हुआ है । पता लगाने की कोशिश करें कि तुम्हारे पेटमे आखिर क्या खराबी है और फिर उसका इलाज करें ।"—हां, उसे तो मलेरिया था । तीसरे पहर बुखार चढ़ आया था और उसका जहर अब भी शरीर म पैठा हुआ था । तब तो आठ ग्रेन कुनैन फौरन देदेनी चाहिए और दस ग्रेन दूसरे दिन । गोलिया देते हुए उससे मैंने कहा 'पर, दोनों गोलिया खाने के बाद दूध तुम्हें जरूर पीना चाहिए ।" 'जरूर पीऊंगा बाई,' कहकर वह उसी वक्त दो पैसे का दूध लेने ग्वाले के यहा चला गया । वह सनीचर की रात थी, और इतवार को वह वर्धा की हाट मे जाने के लिए चिन्तित था ।

थोड़ी देरमें वह लौट आया, और बोला, "बाई, कोई ग्वाला मुझे दूध बेचने को तैयार नहीं । उनका यह कहना है कि सनीचर और इतवार को हम लोग कभी महारों को दूध नहीं बेचते ।" "पर यह व्यर्थ-सी बात है," मैंने कहा, "जाओ, तुम उनसे यह कहो कि दूध तो मुझे दवाई के लिए चाहिए । जाओ, दूध तुम्हें मिल जायगा ।" सिर हिलाते हुए उसने कहा, "अरे, रामका नाम लो बाई, अब वे लोग मेरी बात सुननेवाले नहीं ।" "तब तो हम दोनों ही उनके घर चलें । मैं उन्हें अच्छी तरह समझा दूंगी, पर इतने पर भी अगर उन्होंने तुम्हें दूध न दिया, तो शायद वे मुझे दो पैसे का दूध देदेंगे ।" इसके पहले ग्वाले लोग जब बीमार थे, तब मैं उनके यहा अक्सर उनकी सेवा-सुश्रूषा करने जाती थी, और उन्हें यह मालूम था कि कुनैन की गोलियां खाने के बाद उन्हें दूध जरूर पीना पड़ता था । मैंने उन्हें इन सब बातों की याद दिलाई और तब कहीं कुछ शर्मिन्दा होकर उस बेचारे बीमार महार को उन्होंने दूध बेचा !

जब हम लौट रहे थे, तो रास्ते मे उसने इस कलियुगी छुआछूतका दुखड़ा रोना शुरू करदिया । मैंने कहा "हां, बात तो सही है । यह छुआछूत सचमुच बहुत बुरी चीज है, पर तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि तुम्हारे साथ ऊँची जाति के लोग जितना बुरा बर्ताव करते हैं तुम तो उनसे भी बुरा बर्ताव मांग लोगोंके साथ करते हो !" उसका चेहरा उतर गया । मैंने कहा, "तुम तो मांग को अपने हाते मे भी नहीं घुसने दोगे !" "हां बात तो यह सच है, हम लोग मांग को अपने यहा सचमुच नहीं आने देते । पर हमारे यहा जब बच्चा पैदा होता है तब उनकी स्त्रियों को हम अपने घरों मे बराबर चली आने देते हैं ।" "यह खूब कहा ! इतना तो कुनबी लोग भी करते हैं । करते हैं न?"

और फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि मांग कोई गंदा पेशा नहीं करते । वे गावों मे शादी-ब्याह के अवसर पर सिर्फ बाजे बजाते हैं। और घर पर झाड़ू-टोकरी बनाते या इसी तरह का कोई दूसरा काम करते हैं । मैंने उससे कहा, "जितना हमसे होसकेगा उतनी तुम्हारी मदद हम लोग करेंगे । पर यह याद रखो कि जैसा हम बोयगे, वैसा लुनेंगे ।" यह कर्म का कानून ईश्वरीय कानून है । जबतक तुमलोग मांगोंको और दूसरी गरीब जातियों को सताते रहोगे तबतक तुम्हें खुद जोर-जुल्म से बचाना बड़ा कठिन काम है ।'

दो दिन बाद एक मांग मेरे पास आया । उस समय मैं कुएँ से पानी खींच रही थी । आकर उसने कहा, "माई, हम लोगों को बड़ा कष्ट है । आपसे हम कुछ सहायता चाहते हैं । आपकी बड़ी दया होगी ।" "क्या बात है?" मैंने उससे पूछा । हमारा कुआ टूट-टाटकर इसी चौमासे मे बिल्कुल गिर पड़ा है, और नया खुदाने को हमारे पास पैसा नहीं । महार अपने कुएँ से हमें पानी नहीं भरने देते, और जबतक कोई हमारे घड़े मे पानी खींचकर नहीं डाल देता तबतक हम खड़ा ही रहना पड़ता है । बड़ी मुसीबत है माई ! हम लोगोंके तीन घर हैं । हमारे घड़ों में रोज-रोज भला कौन पानी डालेगा ? कुटुंब हमारे बड़े-बड़े हैं, इससे पानी भी बहुत चाहिए । इससे हमें उस गंदे-से नाले का, जो गावके पिछवाड़े बहता है (पर अब वह भी सूखगया है), पानी पीना पड़ता है । माई, दया करो, हमारी बड़ी ही दयनीय दशा है ।"

दूसरे दिन मैं उनका टूटा-टाटा धसका हुआ कुआ देखने गई । मैंने वह जगह भी देखी जहा वे गंदले नालेसे पानी लाते हैं। कुआ बहुत ही मामूली था । यहीं के बने खपरों से बंधा हुआ था । और अब तो वह जमीन से मिल गया था । बिल्कुल सूखा हुआ पड़ा था । जहासे वे आजकल पानी भरकर लाते हैं, वह तो नाले के किनारे खुदा हुआ एक गड्ढा-सा है । मैंने उस मांगसे कहा, "अच्छा, मानलो कि तुम लोगोंकी इस तकलीफ के बारे में सेठजी से मैं कहूँ और वह एक नया कुआ खुदवाने की मदद करने को राजी होजायँ तो क्या तुम भंगियों और चमारों को उस कुएँ से पानी भरने दोगे?" "नहीं माई, नहीं, हमसे आप यह बात न कहें !" "तब तुम मुझसे कुछ नहीं करा सकते । समझे?" मैंने उसे जब कुछ समझाया तो अन्त में उसने कहा, "अच्छा जैसा आप ठीक समझें वैसा करें, हम राजी हो जायँगे ।"

सच पूछा जाय तो भंगी ही तो सबसे अधिक दलित हैं । हम सबको इन उपेक्षित भंगियो की सबसे पहले सुध लेनी चाहिए ।

× × × × ×

इधर चौदह-पंद्रह दिन से मैं रोज शाम को आम प्रार्थना का आयोजन करती हूँ । पहले कुछ दिन तो चार-पांच ही बच्चे आते थे, पर धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ने लगी । अब दस से लेकर बारह तक तो बच्चे आजाते हैं, और कुछ लोग बड़ी उमरके

भी आते है । एक छोटा-सा मुसल्मान लडका तो पहले ही दिनसे आरहा है। यह बडा ही उत्साही बालक है । ऊँची जाति के बच्चे उसे बडी खुशीसे आगे की पंक्तिमें बिठाते है, पर महारो को वे पीछे रखने की कोशिश करते है । माग बच्चोने तो वहा झाकने की भी अभीतक हिम्मत नहीं की ।

हम हरेक चीज सबके लिए तैयार और बिल्कुल खुली हुई भले ही रखे, पर जबतक खुद लोगोके दिलो को खोलने मे हम असमर्थ है, तबतक दैनिक जीवन के अतर्बन्धनो म एक-दूसरे के सताने का भय प्रगतिको अटकाये ही रखेगा ।

× × × × ×

सफाई का सवाल तो अब भी मेरा बहुत अधिक समय ले रहा है । फिर भी कुल मिलाकर स्त्रिया टट्टी-बाडोका उपयोग करने लगी है । पर कुछ अब भी ऐसी है, जो चटाइयो के बाहर ही रास्तेमे ही बैठनेकी जिद करती है । "मेहरबानी करो ! यहा न बैठो, अदर चली आओ न !" मैने एक स्त्री से कहा, जो टट्टीबाडे से कुछ ही कदम के फासले पर बीच रास्ते मे बैठना चाहती थी । "मुझे तग न करो" उसने जवाब दिया । "मेरा पेट पिरा रहा है, मै जहा बैठना चाहूँगी वहा बैठ जाऊँगी ।" और उसने किया भी यही ! एक दूसरी स्त्रीको देखा कि वह बाडे के आगे खुली जगह मे बैठ रही है तो उसे भी मैने टोका । उसपर वह फौरन जवाब देती है कि, "जाओ, अपना घर देखो । हम गाववालो को तुम्हारी टट्टियो मे बैठने की आदत नही ।"

सात में मे चार टट्टी-बाडे तो तैयार होगये है, बाकी के तीन इस हफ्ते मे बन जायेंगे । इसके बाद मैं लोगो को टट्टियो में बैठने की आदत डलवाने का प्रयत्न करूँगी ।

'अंग्रेजी' से] मीरा

एक महत्वपूर्ण भाषण

[आन्ध्र मे अरुन्धतीय नाम की एक हरिजन जाति है । अभी हाल ही में कोयम्बतूर मे प्रथम अरुन्धतीय-जिला-परिषद् हुई थी । उसके सभापति के आसन से श्री एल० सी० गुरुस्वामी एम० एल० सी० ने जो महत्वपूर्ण भाषण दिया था उसके कुछ महत्वपूर्ण अश यहां उद्धृत किये जाते है --म० ह० दे०]

हरिजन-सेवक-संघ का कार्य

"सरकार के अलावा कुछ उच्च और उदार विचारो के व्यक्ति और संस्थाएं भी हमारी सहायता के लिए आगे बढी है । वे हमारे धन्यवाद की पात्र हैं । उनमें मगलोर, पूना और अन्य स्थानो के "डिप्रेस्ड क्लासेज मिशन" मुख्य हैं । किन्तु दलित वर्गों की सहायता के लिए जो सबसे विस्तृत और सुसगठित सस्था है, वह है हरिजन-सेवक-संघ । इसे तीन वर्ष पूर्व महात्मा गाधीने स्थापित किया था । इसका प्रधान कार्यालय दिल्ली में तथा शाखाएं सारे देश में फैली हुई है । मै स्वयं उसकी मद्रास-नगर शाखा का सदस्य हूँ । संघ का कार्य-क्षेत्र विस्तृत है । शिक्षा, सफाई, गृह-उद्योग, कथा-कीर्तन आदि सभी को प्रोत्साहन दिया जाता है । किन्तु सबसे बडी बात यह है कि सघ उच्च जातियो के हृदयों में दलित वर्गों के प्रति मैत्री और सेवा के भावो को जगा रहा है । आप सब जानते ही है कि वर्त्तमान सुधारो के बनते समय गान्धीजीने हरिजनों के प्रथक् निर्वाचन को रोकने के लिए आमरण-उपवास ठाना था, और उपवास प्रारम्भ होने पर सवर्ण हिन्दुओं और हरिजनोंने मिलकर एक ऐसा समझौता किया था जिसे पूना-पैक्ट के नाम से पुकारते है । इसके अनुसार हमें अपनी संख्या के अनुकूल नयी धारा-सभाओं में प्रतिनिधित्व मिल गया है ।

कोई राजनीतिक स्वार्थ नहीं

मुझे खेद है कि कुछ लोगोने, जिन्हे कि वस्तु-स्थिति को अच्छी तरह जानना चाहिए, हरिजन-सेवक-संघ को काग्रेस के साथ शामिल कर दिया है और उसके रुपये के खर्च के विषय में बहुत अन्यायपूर्ण संदेह प्रगट किया है । मैं कह चुका हूँ कि मै और हमारी जाति के कुछ सम्मान्य नेता जैसे दीवानबहादुर श्री निवासन्, रा० ब० एम० सी० राजा, रा० सा० धर्मलिंगम् पिल्ले और स्वामी सहजानन्द इस सघ में शामिल है । मै अपनी और उन सबकी ओर से आपको आश्वासन दिलाता हूँ कि हरिजन-कोष की पाई-पाई का हिसाब रक्खा जाता है, संघ राजनीति और दलबन्दियो से बहुत ऊपर है और वह एक स्वतन्त्र और रजिस्टर्ड सस्था है । मै यह भी बता दू कि गाधीजी और हम लोगो में राजनीतिक मतभेद भी है, किन्तु राजनीतिक मतभेद होते हुए भी हम उनके हरिजनों के प्रति गहरे और हार्दिक प्रेम का आदर करते है । यदि हम उनकी महान् सेवाओ के लिए आभार प्रगट न करे, जो उन्होने हमारी हित-रक्षा के लिए की है तो हम कृतघ्नता के भागी होगे । हरिजन-सेवक-सघ की रिपोर्ट और हिसाब-किताब बराबर प्रकाशित होते रहते है और मै पूछता हूँ कि आलोचना करनेवाले उन्हे पढने का कष्ट क्यो नही करते ?

हिन्दू धर्म के अन्दर रहो

अपना भाषण समाप्त करने के पहिले मै एक बात और कह देना चाहता हूँ। मुझे संतोष है कि दीवानबहादुर श्री निवासन् और स्वामी सहजानन्द सरीखे दक्षिण के हरिजन-नेताओंने डॉ० अम्बेडकर की बात का विरोध किया है । मै भी नम्रता के साथ उन्हींके स्वर मे अपना स्वर मिलाता हूँ—अपनी और अपनी अरुन्धतीय जाति की ओर से उनका समर्थन करता हूँ । उत्तर भारत के हरिजनों की अपेक्षा हम दक्षिण भारत के हरिजन कही अधिक सामाजिक अन्याय सहन करते है, तो भी हम अपने पूर्वजो के धर्म को नही छोड़ना चाहते । एक अंग्रेजी कवि ने कहा है—"इगलैण्ड ! सब दोषो के होते हुए भी मैं तुझे प्यार करता हूँ ।" हम भी उसी प्रकार त्रुटियो के रहते हुए भी हिन्दू-धर्म को प्यार करते हैं । सिर्फ समाज के दुर्व्यवहारों से बचने के लिए एक धर्म छोडकर दूसरा ग्रहण करना या एक जाति छोडकर दूसरी मे शामिल होना बिल्कुल व्यर्थ है ।

किन्तु साथ ही, हम लोगो को यह कबूल करना चाहिए कि इन १५ वर्षों के भीतर हमारे प्रति उच्च जातियो के बर्त्ताव में बड़ा भारी अन्तर होगया है । गान्धीजी का हमारी हित-रक्षा के लिए उद्यत होना, सरकारी सहायता, राजनीतिक-सुधार और लोगों की यह समझ कि हम लोगों की दुर्दशा सारे देश के लिए एक कमजोरी का कारण है, ये सब बाते मिलकर पुरानी खाम-ख्यालियों और कुप्रथाओ को धीरे-धीरे गला रही है । हम हिन्दू-समाज में हैं इसी कारण हमसे यह सब सहानुभूति बतलाई जाती है । जिस दिन हम हिन्दू न रहेंगे उसी दिन हिन्दू-महासभा, हरिजन-सेवक-संघ या मजदूर-संघ या और कोई संस्था हमारी ओर आंख उठाकर भी न देखेंगी । और जब यह विशेष सहायता

'मंदिर-प्रवेश' "आत्मवत् सर्वभूतेषु" Reg. No. L. 3169.

हरिजन सेवक

'हरिजन-सेवक' किंग्सवे, दिल्ली. | संपादक—वियोगी हरि [हरिजन-सेवक-संघ के संरक्षण में] | वार्षिक मूल्य ३॥) एक प्रति का -)

भाग ३] दिल्ली, शनिवार, १५ फरवरी, १९३६. [संख्या ५२

विषय-सूची

कश्मीर-जम्मू के हरिजन

कश्मीर राज्य भारत के देशी राज्यों में एक विशाल राज्य समझा जाता है। वहां के महाराजा हिंदू हैं, और उनकी प्रजा अधिकांश मे मुसलमान है। दक्षिण हैदराबाद में इससे उलटा है। वहां निजाम साहब मुसलमान हैं, और उनकी प्रजा ८८ प्रतिशत हिंदू है। कश्मीर राज्य की जनसंख्या में ७७ प्रतिशत मुसलमान, २० प्रतिशत हिंदू, और बाकी के ३ प्रतिशत सिक्ख, ईसाई, बौद्ध आदि हैं।

कश्मीर राज्य असल में दो भागों में बँटा हुआ है—(१) कश्मीर (२) जम्मू। तमाम राज्य की जनसंख्या ३६॥ लाख जिसमें कश्मीर मे १६ लाख से कम, जम्मू में १८ लाख और लाख से अधिक पहाड़ी भागो की है। किन्तु कश्मीर प्रात की जनसंख्या में ९६ प्रतिशत मुसलमान हैं, हिन्दू न होने के ही बराबर हैं। पहाड़ी भागों में सो में एक ही हिन्दू है, बाकी ९९ प्रतिशत मुसलमान और बौद्ध है। रहा अब जम्मू प्रांत। यह प्रात पंजाब के सियालकोट, रावलपिंडी, गुरदासपुर और कांगडा जिले के ठेठ उत्तर में है, और इसमें हिन्दू आबादी ३७ प्रतिशत है। जम्मू प्रांत के पाच जिलों में तीन जिले खासे बड़े हैं—(१) जम्मू, (२) ऊधमपुर, और (३) कठुवा। इन तीनों जिलों में हिन्दू आबादी अच्छी संख्या में है, पर खास जानने की बात तो यह है कि इन हिन्दुओं में हरिजन हिन्दुओं की भी काफी बड़ी संख्या है।

जम्मू प्रांत के उ[illegible] कश्मीर और दक्षिण में पंजाब के जिले हैं। कश्मीर में [illegible] करीब तमाम लोग मुसलमान हो गये हैं, हिन्दू रहे ही [illegible] हिन्दुओं का जो वर्ग नीच समझा जाता है वह सब-का-सब मुसलमान धर्मावलम्बी होगया है। इसी तरह उत्तर पंजाब के जो जिले जम्मू प्रांत के दक्षिण में हैं, उनमें भी, सिवा कांगड़ा के, अधिकांश आबादी मुसलमानों की ही है। बीच में जम्मू प्रांत में जो ३७ प्रतिशत हिन्दू बच गये हैं यह एक आश्चर्य की-सी बात मालूम होती है। पर हमें तो आज वहां के हरिजनों के विषय में चर्चा करनी है। हिन्दू आबादी में हरिजन अथवा अस्पृश्य समझे जानेवाले भाइयों का खासा अच्छा भाग है। नीचे का नक्शा देखिए—

	हिन्दू जनसंख्या	इसमें हरिजन-जनसंख्या	प्रतिशत
जम्मू जिला	२,१७०००	६६,७००	३०·७
ऊधमपुर जिला	१,५६०००	४३,०००	२७·६
कठुवा जिला	१,[illegible]०००	२३,६००	१९·५

हरिजनों में निरक्षरता की तो जैसे कोई हद नहीं। पुरुषों में शायद ही सौ में [illegible] आदमी साक्षर, याने हिन्दी या उर्दू लिखने-पढ़नेवाला मिलेगा। स्त्रियों में तो हजार में एक या दो साक्षर मिलेंगी। सेंसस रिपोर्ट में से हरिजनों की निरक्षरता के भयकर आंकड़े नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

	हरिजन आबादी	पढ़े-लिखे	प्रतिशत
जम्मू	६६,७००	३५६	०·५
ऊधमपुर	४३,०००	२४२	०·५
कठुवा	२३,६००	९७	०·४

अर्थात्, प्रति २०० अथवा २५० व्यक्तियों में एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति मिलता है।

निरक्षरता के साथ-साथ गरीबी भी उतनी ही भयंकर है। जाड़ों मे मजूरी के लिए उनके टोले-के-टोले पहाड़ों पर से पंजाब में उतर आते हैं।

सारे राज्य में हरिजनों की जातिवार संख्या नीचेलिखे अनुसार है :—

मेघ (अथवा मेघवाल)	७८,०००
चमार	४१,०००
डोम (अथवा डुम)	३४,३००
बरवाला	५,७००
बटवाल	५,६००

गत सितंबर मास में कठुवा जिले के हीरानगर गांव में डोगरा ब्राह्मणों की परिषद् हुई थी। हरिजनों का स्पर्श करना और उनके साथ अन्य हिन्दुओं की तरह ही बरतना यह चर्चा इस परिषद् मे छिड़ते ही भारी खलभलाहट मच गई। मगर थोड़ा समझाने-बुझाने के बाद बात संभल गई, और हरिजनों की भजन-मंडलीने ब्राह्मणों की सभा में, उनके साथ बैठकर, झांझ-पखावज के साथ भजन सुनाये। ऐसे सद्विचार दूर-से-दूर जगहों में भी फैलते जा रहे हैं।

कश्मीर राज्यने अपनी तमाम पाठशालाएँ, अंग्रेजी स्कूल एवं जलाशय हरिजनों के लिए खोल दिये हैं, और राज्य के आश्रय में जो मंदिर हैं उन्हें भी खोल दिया है। राज्यने जितनी उदारता दिखानी चाहिए उतनी दिखाई है, पर अज्ञान और दरिद्रता के कारण हरिजन उससे लाभ नहीं उठा सकते।

जम्मू शहर में हरिजन-सेवक-संघ की शाखा गत तीन वर्ष से काम कर रही है। संघ की शाखा एक कन्या-पाठशाला तथा एक ग्राम-पाठशाला चला रही है, और अन्य प्रकार से भी हरिजनों की सहायता करती है। आर्य-समाजी भाई भी कई साल से यहां काम कर रहे हैं। ठीक तरह से पैसा और अच्छे स्थानीय कार्यकर्त्ता मिल सके तो इस केन्द्र का काम अच्छी तरह विकसित किया जा सकता है। अमृतलाल वि० ठक्कर

एक अंग्रेज-बहिन की दृष्टि में

वर्धा में मैंने अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ के कार्य का थोड़ा-सा परिचय प्राप्त किया था। मधु-मक्खियो के पालने, चमड़ा पकाने और कागज बनाने के साथ-साथ कातने, बुनने और रंगने की पुरानी कलाओं की शिक्षा वहा दी जाती है। सब गाववालो की अपेक्षा कुछ थोड़े-से व्यक्ति खेती और सफाई के नवीन साधनो को जल्दी सीख लेते हैं। गांवो मे जाकर काम करनेवाला कितना भी उत्साही क्यो न हो, किन्तु यदि वह मिलनसार नही है और किसानो को अपनी ओर आकर्षित होनेतक धैर्य नही रख सकता, तो उसका वहां चक्करा जाना निश्चित है।

चीन मे एक गाव में मैंने ऐसा ही दृश्य देखा था। बहुत ऊँची भावना और पवित्र आदर्श लेकर कुछ देशभक्तोने एक गांव मे काम शुरू किया था। उनमे धैर्य और विनयशीलता नही थी। गांववालों के धार्मिक आचार-विचार और पुरानी परम्पराओ को समझने का यत्न न करके उन्होने गलतियों पर गलतियां की और उनकी सहानुभूति से वे हाथ धो बैठे। उन्हे निराश देखकर मैने उनको दक्षिण-भारत के उस हरिजन-गांव का हाल सुनाया, जिसे सन् १९३४ में गांधीजी के साथ दौरा करते हुए मैंने देखा था। वह गाव इतना साफ-सुथरा था कि बहुत-से लोग उसे चमत्कार समझते थे। उस चमत्कार का कारण यह था कि दो वर्ष पहले एक युवक ब्राह्मणने अपनी पत्नी के साथ उस गाव में आकर बिना भाषण-प्रदर्शन-आन्दोलन के मित्र की तरह वहां रहना शुरू कर दिया था। संयम, धैर्य और प्रेमपूर्ण व्यवहार के रूप में उसकी कीमत चुकानेवाला तो कोई भी वैसा चमत्कार करके दिखा सकता है।

गत सप्ताह जालन्धर में मै राजकुमारी अमृतकौर की मेहमान थी। मै उनके साथ मंगवाल गाव गई, जहां अभी छ ही महीने हुए ग्राम-उद्योग-संघ का काम शुरू किया गया है। कुल १३०० वहां की आबादी है। तोते, मोर, राय-चिरैय्या आदि को खेतों में देख मुझे बहुत कुतूहल हुआ। जल्दी ही रास्ता धूल से भर गया, सामने से एक गाड़ी इस तरह धूल के धुरहरे उड़ाती हुई आरही थी, जैसे नाव पानी की धाराओ को चीरती हुई अपना रास्ता बनाती है।

हमारी गाड़ी की चाल धीमी होते ही गान्धी-टोपी पहिने एक बूढेने अमृत कौर को झुककर नमस्कार किया। वे जब इधर आती है, तब यह उनको यहां ही खड़ा हुआ मिलता है और उनसे अपने गांव में ग्राम-उद्योग-संघ की शाखा खोलने की प्रार्थना करता है। अभी-अभी उस बूढेने अपनी पोती का विवाह कुल आठ आने के खर्च मे किया है। इसके लिए उसकी चारों ओर शोहरत है।

हाथों में झाड़ू लिये गांव के लड़के-लड़कियोंने हमें चारों ओर से आ घेरा। वहां काम करने के लिए जा बसनेवालो के ये उत्साही सहायक थे। वे हमें गांव में चारों ओर ले गये। रास्तों की सफाई कमाल की थी। गांववालोंने नियम से गांव की सफाई के लिए जो जतन करना शुरू किया है, उसीका यह परिणाम है कि उन्होंने सड़े हुए पानी के एक तालाब को साफ करके उसके चारो ओर २-३ फीट ऊँचा किनारा बांध दिया है, जिसपर शाम को गाव की स्त्रिया बैठकर चर्खा कातती और गप-शप लगाती हैं। मच्छरों को जन्म देनेवाले ऐसे ही दूसरे तालाबों को साफ करने का भी उन्होंने निश्चय कर लिया है। जैसे हम आगे बढ़ते थे, हमारे साथ भीड़ बढ़ती जाती थी। खिड़कियों और दरवाजो में खड़े होकर लोग हमे देख रहे थे। जब हम उस झोंपड़ी के दरवाजे पर पहुँचे तब भीड़ बहुत बढ़ गई, जिसमें कि कन्या-पाठशाला लगती है और जिसे उसके मालिकने इस काम के लिए अभी पांच ही महीने हुए दिया है। अभी वहां केवल लिखना-पढ़ना सिखाया जाता है। कमरा बहुत छोटा है। १३ वर्ष की आयु की केवल एक अध्यापिका है। वह और उसकी एक सहेली केवल दो शिक्षिका स्त्रिया उस गांव में हैं, किन्तु विद्यार्थी लड़कियो की संख्या ५९ तक पहुँच गई है। स्त्रियो और लड़कियोने हमे और उस स्कूल को आ घेरा। पुरुषो की भीड़ बाहर खडी थी। केवल दो खिड़किया थी, उनमे भी १०–१२ आदमी खड़े वहा की कार्यवाही देख रहे थे। अध्यापिकाने एक बार तो उन खिड़कियो को बद कर दिया, शायद बाहर खड़े हुए पुरुषों को यह बताने के लिए कि उन्हे उस स्थान से किस प्रकार अलग रखा गया है। पर, अन्धेरे और गरमी के कारण जल्दी ही उन्हे खोल देना पड़ा और बाहर खड़े हुए भी उस दृश्य का आनन्द लूटने लगे।

स्कूल से हम लोग बाहर आये, जहा कि बहुत बडी भीड़ जमा थी। पास के घरो की छतो पर स्त्रिया सब कार्यवाही देखने को बैठी हुई थी। पहले अध्यापक और उसके भाईने गांधीजी के बारे मे एक गाना गाया। उसके बाद गांव का एक बड़ा आदमी सामने आया और गाव के मामलो पर बडी सुन्दर और रसदायक चर्चा शुरू हो गई। घण्टेभर बाद हम लोग अपनी गाड़ी की ओर चल पड़े।

लड़के-लड़कियोंने अपने झाड़ू रख दिये। अब वे लोहे के गोलों के साथ खेलने की तय्यारी करने लगे। वे उन्हे पूरे जोर के साथ ढकेलकर गोल चक्कर में उनके साथ तेज घोड़े की तरह दौड़ने और उछलने-कूदने लगे। मगवाल के-से इस खेल मे होशियार लड़के मैंने बहुत कम स्थानो पर देखे हैं। यह स्पष्ट है कि ग्राम-उद्योग-संघ के कार्य को युवकोंने अपना लिया है और उससे उनमे स्फूर्ति तथा चैतन्य का संचार होगया है।

'डेरी' के नियम

[दूध दुहने और गायों की [illegible] व्यवस्था तथा दूध व डेरी सम्बन्धी देखभाल रखने के [illegible] दिये हुए पचास नियम सयुक्त-राज्य अमरीका के [illegible] कृषि-विभाग की ओर से बनाये जाकर प्रकाशित हुए हैं। [illegible] ग्राम-सेवक गायों की देख-भाल का काम करते हैं उनके लिए वे उपयोगी होंगे, इस आशा से हम उन्हे नीचे उद्धृत करते हैं। —वा० गो० देसाई]

मालिक और उसके सहायक

(१) डेरी-सम्बन्धी नये-नये साहित्य को पढ़ते रहो और नये विचारों से वाकफियत रक्खो।

(२) सफाई का पूरा खयाल रक्खो। गाय, उन्हें सम्हालने वाले, गोशाला और दूध के बर्त्तन अधिक-से-अधिक साफ रहने चाहिएँ।

(३) जो आदमी किसी रोग से पीड़ित हो,या जिसे छूत की कोई बीमारी हो चुकी हो, उसे गायों से व दूध से दूर रक्खो।

गायों के रहने की जगह

(४) डेरी के ढोरों को छप्पर या मकान में रक्खो और अच्छा यह होगा कि न तो उसमें नीचे कोई तहखाना हो, न ऊपर सामान रखने का कोठा हो।

(५) गायों के रहने के स्थान ऐसे होने चाहिएँ जिनमें हवा व रोशनी अच्छी तरह आ सके और कीचड़-कादड़ न हो। उनका फर्श साफ हो और बनावट सीधी-सादी।

(६) गन्दे या सड़े-गले कपड़ों से कभी काम न लो।

(७) गायों के रहने की जगह में थोड़ी देरतक भी तेज गन्धवाली कोई चीज पड़ी न रहने दो। गोबर को बाहर ढककर रक्खो और जहांतक हो सके जल्दी-जल्दी उसे वहा से हटाते रहो।

(८) गायों के रहने की जगह पर साल में एक या दो बार चूने की पुताई कराओ और गोबर के गड्ढों में रोज फिनाइल डाला करो।

(९) दूध दुहते वक्त सूखी और गन्दी घास मत खिलाओ, अगर चारा गन्दा हो तो खिलाने से पहले उसे पानी से धोलो।

(१०) दूध दुहने से पहले गायों के स्थान को झाड़-बुहारकर साफ कर लिया करो; गर्मी के मौसम में फर्श पर पानी का छिड़काव भी कर लेना चाहिए।

(११) गायों के स्थान तथा दूध के कमरे को सुव्यवस्थित रक्खो और इस बात पर जोर दो कि डेरी फैक्टरी या जिस किसी जगह दूध जाय वह भी वैसा ही साफ-सुथरा रहे।

गायों की देखभाल

(१२) गायों को ज्यादा नहीं तो साल में कम-से-कम दो बार तो जरूर किसी पशु-विशेषज्ञ (जानवरों के डाक्टर) से जँचवा लिया जाय।

(१३) जिस जानवर में कोई बीमारी या खराबी पाई जाय उसका दूध रद करके उसे तुरन्त अन्य जानवरों से जुदा करदो। इसी तरह किसी नये जानवर को उस वक्ततक सब के साथ मत रक्खो जबतक कि इस बात का निश्चय न हो जाय कि उसे कोई बीमारी और खासकर क्षय (तपेदिक) की बीमारी नहीं है।

(१४) गायों को दुहने या चराने को ले जाते वक्त भगाना नहीं चाहिए, बल्कि आराम से ले जाना चाहिए।

(१५) तेज हांककर, गाली देकर, जोर से चिल्लाकर या व्यर्थ छेड़-छाड़ करके गायों को भड़काओ मत; न ठण्ड और बारिश में उन्हें खुले [illegible]।

(१६) उनके [illegible] एक कोई हेर-फेर मत करो।

(१७) खिलाई [illegible] करो; लेकिन खिलाओ हमेशा ताजा और खाने[illegible] चारा ही, सड़ी-गली व मुसीतुसी घास हरगिज नहीं खिलानी चाहिए।

(१८) पानी का ऐसा प्रबन्ध करो कि जब चाहे तब बहुतायत से साफ-सुथरा पानी उन्हें मिल सके; वह ताजा तो हो, पर बहुत ठण्डा न हो।

(१९) नमक भी जब वे चाहें तब उन्हें मिल सकना चाहिए।

(२०) लहसन, करमकल्ला और शलगम जैसी तेज गन्धवाली चीजें उन्हें मत खाने दो; अगर ये चीजें खिलाई ही जायें तो सिर्फ दूध दुहने के बाद तुरत ही खिलाई जाये।

(२१) गायों के सारे शरीर की रोज सफाई करनी चाहिए। उनके थन के बाल अगर आसानी से साफ न रक्खे जा सके तो उन्हें काट देना चाहिए।

(२२) बियाने के बीस दिन पहले और बियाने के बाद तीन से पांच दिनतक गाय का दूध नहीं पीना चाहिए।

दूध दुहने की तरकीब

(२३) दूध दुहनेवाला हर तरह साफ-सुथरा होना चाहिए। दूध दुहते वक्त उसे तमाखू नहीं पीनी चाहिए और दूध दुहने से पहले अपने हाथों को अच्छी तरह धो-पोंछकर साफ कर लेना चाहिए।

(२४) दूध दुहनेवाले को अपने कपड़ों के ऊपर एक ऐसा साफ कपड़ा पहनना चाहिए जो सिर्फ दूध दुहते वक्त ही पहना जाय और बाकी वक्त किसी साफ-सुथरी जगह रक्खा रहे।

(२५) थनों को तथा उनके आस-पास की जगह को दूध दुहने से पहले ब्रुश और गीले कपड़े या स्पंज से झाड़-पोंछकर साफ कर लेना चाहिए।

(२६) दूध शान्ति, फुर्ती और सफाई से अच्छी तरह दुहा जाय। व्यर्थ का शोर-गुल और विलम्ब गायों को अच्छा नहीं लगता। साथ ही, रोज सुबह-शाम ठीक उसी वक्त और नम्बर से गायों को दुहना चाहिए।

(२७) हरेक थन से दूध की जो पहली दो-तीन धारें निकलें उन्हें फेंक देना चाहिए (लेकिन जमीन में नहीं, बल्कि नाबदान में फेंकना ठीक होगा); क्योंकि पहली दो-तीन सेंटों का दूध बहुत पनीला और बहुत कम मूल्यवान् ही नहीं होता, बल्कि बाकी के दूध को भी बिगाड़ देता है।

(२८) किसी भी दूध में अगर कहीं खून का या नीला-सा कोई रंग मालूम पड़े, अथवा दीखने में वह गैरमामूली-सा मालूम पड़े, तो उस सब दूध को रद कर देना चाहिए।

(२९) दूध हमेशा इस तरह दुहा जाय कि हाथों से उसका स्पर्श न हो।

(३०) दूध दुहते वक्त कुत्ते, बिल्ली या ऊट-पटांग बातें करनेवाले लोगों को वहां मत रहने दो।

(३१) किसी कारण-वश अगर दूध से पूरे या आधे भरे हुए बरतन में कोई गन्दगी होजाय तो उस दूध को छानकर ठीक करने की कोशिश मत करो, बल्कि उस सारे दूध को रद करके दूध के बरतन को साफ करो।

(३२) हरेक गाय के दूध का वजन करके उसका हिसाब रक्खो और सप्ताह में कम-से-कम एक बार उसके सवेरे के व रात के दूध की परीक्षा जरूर कराया करो।

दूध की रखवाली

(३३) हरेक गाय का दूध दुहने के बाद तुरन्त गायों के स्थान से ऐसे खुश्क कमरे में ले जाओ, जहा साफ और मीठी हवा हो। बड़े वर्त्तनों में जब दूध भरा जा रहा हो तो उन्हें गायों के स्थान में नहीं रहने देना चाहिए।

[४२४ वें पृष्ठ के पहले कालम पर]

हरिजन-सेवक

शनिवार १५ फ़रवरी, १९३६

"मंदिर-प्रवेश"

हरिजनों के मंदिर-प्रवेश के सम्बन्ध में हरिजन-सेवक-संघ के सेण्ट्रल बोर्डने, गत ८ फरवरी की बैठक में, नीचे लिखा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया है :—

"चूंकि हरिजनों के लिए मंदिरों के द्वार खुलवाने में अब और अधिक देरी करने के परिणामस्वरूप हिंदूधर्म को भारी क्षति पहुँचेगी, और चूंकि यह मंदिर-प्रवेश का प्रश्न उस तात्कालिक न्याय का एक भाग है जिसके कि हरिजन अधिकारी है, अत. हरिजन-सेवक-संघ का सेण्ट्रल बोर्ड निश्चय करता है कि हरिजनों के मंदिर-प्रवेश के लिए तुरन्त प्रभावोत्पादक कार्यवाही की जाय, और इसके लिए संघ की कार्यकारिणी समिति से कहा जाय कि वह गांधीजी की सलाह लेकर इस सम्बन्ध में जो भी आवश्यक समझे वह करे ।"

बोर्ड की इस बैठक में हरिजनों के मंदिर-प्रवेश का यह प्रश्न केरल प्रांत के प्रख्यात हरिजन-कार्यकर्त्ता श्री जी० रामचंद्रनने बड़े ही जोरदार और विचारपूर्ण शब्दों में पेश किया । संघ के अनेक सदस्योंने काफी दिलचस्पी के साथ इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर चर्चा की । मंदिर-प्रवेश के विरोधियों की ओर से जो यह दलील दी जाती है कि हरिजनों का मंदिर-प्रवेश से कोई वास्ता नहीं, यह तो कुछ जोशीले अदूरदर्शी सुधारकों का उठाया हुआ प्रश्न है, इसका जवाब देते हुए केरल के सदस्योंने यह अच्छी तरह सिद्ध कर दिया कि केरल और मलबार में सुशिक्षित हरिजनों का वर्ग मंदिर-प्रवेश के प्रश्न को लेकर आज किस तरह अधीर हो रहा है । वहां के शिक्षित तथा जाग्रत हरिजन अब और अधिक इस महान् अमानुषिक अपमान को बर्दाश्त नहीं कर सकते । इझवा या तिया जाति के हरिजनों को ही लीजिए । वे अच्छे सुशिक्षित है, बड़े-बड़े ओहदों पर हैं, आर्थिक स्थिति भी उनकी अच्छी है, पर यह अधर्ममूलक अस्पृश्यता उन्हें पग-पग पर अपमानित कर रही है । श्री सी० के० परमेश्वरम् पिल्लेने इस तथ्य का समर्थन करते हुए कहा—"श्री एम० गोविन्दन को ही, जो यहां उपस्थित है, ले लीजिए । त्रावणकोर में यह डिस्ट्रिक्ट जज थे । इनका पंखा खींचनेवाला सवर्ण हिंदू था । अर्दली में भी सवर्ण हिंदू थे । चपरासियों में कुछ ब्राह्मण भी थे । वे सब चपरासी तो मंदिरों में निर्बाध रीति से जा सकते थे, पर हमारे मित्र गोविन्दन को, हमारे इन जज साहब को मंदिरों में जाने की मुमानियत थी ! अत: इस बहिष्कार को अगर वे अपना अपमान समझते है तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या ?"

इसमें संदेह नहीं कि यह असहनीय अपमान इन जाग्रत हरिजनों को हिंदूधर्म छोड़ने के लिए बाध्य कर रहा है, और परिणामत: हिंदूधर्म क्षय को प्राप्त होता जा रहा है । पर यह बात नहीं कि हिंदुओं की संख्या कहीं कम न हो जाय इसलिए हरिजनों के लिए मंदिरों के द्वार खोल देने चाहिए । इस बात को छोड़ दीजिए । यहां तो शुद्ध धर्मनीति का प्रश्न है । हमारा यह फर्ज है कि इस दिशा में हम शीघ्र-से-शीघ्र हरिजनों के साथ न्याय करें । जबतक मंदिर-प्रवेश का प्रश्न नहीं सुलझता तबतक अस्पृश्यता समूल नष्ट होने की नहीं । अस्पृश्यता का सबसे अधिक पाठ पढ़ानेवाले ये मंदिर ही तो है । प्रस्ताव का समर्थन करते हुए श्री गुरुस्वामीने यह कितने तथ्य की बात कही कि—"५ या ६ बरस का बालक जब अपने माता-पिता से पूछता है कि मैं तो मंदिर में जाता हूँ, पर वह लड़का क्यों मंदिर के बाहर खड़ा रहता है—तो उसे यह जवाब मिलता है कि वह लड़का 'अस्पृश्य' जाति का है । इसलिए यह अस्पृश्यता का विष छुटपन में ही बच्चों को पिला दिया जाता है और ज्यों-ज्यों वे सयाने होते जाते हैं त्यों-त्यों यह विष और-और भयंकर होता जाता है ।"

इसलिए मंदिर-प्रवेश का प्रश्न अब किसी भी तरह टाला नहीं जा सकता । केरल में इसके पक्ष में लगभग अनुकूलता भी है । गुरुवायुर में इस विषय पर जब मत-संग्रह किया गया तब हरिजनों के मंदिर-प्रवेश के पक्ष में ही सवर्ण हिंदुओंने अधिक-से-अधिक मत दिये थे । त्रावणकोर-सरकार की मंदिर-प्रवेश-जाच-कमेटी के रूढ़िप्रिय सनातनी सदस्योंने भी इतना तो कबूल किया ही है कि सवर्ण हिंदुओं की ओर से हरिजनों के मंदिर-प्रवेश का आज जोरों से समर्थन किया जा रहा है । श्री रामचंद्रनने अपने मूल प्रस्ताव पर बोलते हुए कहा—"सद्भाग्य से केरल के हरिजन नेताओं की राय अब भी हरिजन-सेवक-संघ के साथ है, और मंदिर-प्रवेश के विषय में वे अपनी सुगंगठित मांग पेश कर रहे हैं । अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए उनमें इस कदर जाग्रति आ गई है कि मुझे तो देखकर आश्चर्य होता है । वहां के बहुसख्यक सवर्ण हिंदू नायर भी हरिजनों के मंदिर-प्रवेश का जोरों से समर्थन कर रहे है, यह सद्भाग्य की बात है ।" ऐसी स्थिति में इस अत्यावश्यक प्रश्न को यों ही टालते जाना उचित नहीं मालूम होता । इसके लिए साधारणत: सारे देश में, और विशेषत. केरल में आंदोलन अब होना ही चाहिए, यह राय बोर्ड के अनेक सदस्योंने दी । डॉ० राजनने तो यहांतक कहा, कि "देश के किसी भी भाग में इस विषय में कुछ-न-कुछ तो करना ही चाहिए । केरल में इसके लिए आन्दोलन आरंभ किया जा सकता है । मगर महज एजीटेशन और प्रोपेगेंडा से कोई सफलता नहीं मिल सकती । अंत में, सत्याग्रह की शरण लिये बिना काम चलने का नहीं ।"

और यह बात नहीं कि केवल केरल के हरिजनों में ही मंदिर-प्रवेश के विषय में जाग्रति हो । श्री नागेश्वर राव के कथनानुसार उनके आंध्र देश में भी मंदिर-प्रवेश के प्रश्न के प्रति हरिजन काफी उत्सुकता दिखा रहे है ।

अत: विरोधियों की इस दलील में कोई सार नहीं कि हरिजन खुद मन्दिर-प्रवेश के प्रश्न के प्रति उदासीन हैं । हरिजनों के साथ सदियों से जो घोर अन्याय होता आ रहा है उसे इस तरह ढंकने का प्रयत्न करना सरासर धृष्टता है । हरिजनों के हृदय में आज कैसी आग धधक रही [illegible] मन्दिर-प्रवेश के विरोधियों को स्वयं उनकी ही आखों [illegible] हिए ।

संघ का अब इस विषय में [illegible] इसे स्पष्ट करते हुए श्री रामचन्द्रनने कहा—

"अच्छा हो कि मन्दिर-प्रवेश के इस प्रश्न को हमारा सेण्ट्रल बोर्ड एक अखिल भारतीय प्रश्न बना दे । इस विषय में हम उसका नैतिक समर्थन चाहते हैं । जबतक यह अखिल भारतीय प्रश्न नहीं बनेगा तबतक इसमें सफलता मिलने की नहीं । अत: विभिन्न प्रान्तों

को अपने-अपने क्षेत्रों में इस सम्बन्ध में प्रचार-कार्य जोरों से करना चाहिए, और सारे देश में मन्दिर-प्रवेश के बारे में जगह-जगह सभाएँ और सम्मेलन होने चाहिए। पर वास्तविक काम का आरम्भ तो कुछ चुनी हुई जगहों में हीं किया जाय। केरल के लिए सेण्ट्रल बोर्ड एक खास कमेटी बना दे, जिसमें केरल के प्रसिद्ध व्यक्ति और सेण्ट्रल बोर्ड के एक या दो प्रमुख सदस्य रहें। यह कमेटी सभा-सम्मेलनों का आयोजन करे और हजारों हरिजनों और सवर्ण हिन्दुओं से मन्दिर-प्रवेश के विषय में हस्ताक्षर कराके महाराजा त्रावणकोर और महाराजा कोचीन की सेवा में प्रार्थना-पत्र पेश कराये। उनकी सेवा में प्रतिनिधि-मंडल भेजवाने की भी वह व्यवस्था करे, और दोनों राज्यों की काउन्सिलों में प्रस्ताव भी पेश कराये जायें। यह प्रश्न कोई नया प्रश्न नहीं है। संघ के जन्म-काल से ही यह प्रश्न हमारे सामने है। तैयारी-तैयारी में ही समय नहीं खोना चाहिए। तैयारी अब काफी हो चुकी है। इन तैयारियों का निश्चित परिणाम अब आना ही चाहिए।"

यह महत्वपूर्ण प्रश्न, यह बात नहीं कि, खटाई में पड़ गया है। यह तो टाला ही नहीं जा सकता। गांधीजी बराबर यह कहते आ रहे हैं कि हरिजनों को देव-मन्दिरों में जाने का अधिकार तो मिलना ही चाहिए, और इसमें जो कानूनी बाधाएँ आड़े आती हैं, वे भी दूर होनी चाहिएँ। पर साथ ही, सतर्कता से कदम रखने की जरूरत है। संघ के अध्यक्ष श्री घनश्यामदास बिड़लाने सदस्यों को आगाह करते हुए, अंत में, कहा कि—"आप लोगों को ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए जो असफलता की ओर ले जाय। यह मैं मानता हूँ कि यदि यह मंदिर-प्रवेश का प्रश्न न सुलझा तो हिन्दू-धर्म की मृत्यु निश्चित है। अतः इस प्रश्न को संघ की कार्य-कारिणी समिति गांधीजी से सलाह लेकर शीघ्र ही सुलझाने का प्रयत्न करे, इस आशय का प्रस्ताव हम स्वीकार करते हैं।"

फलतः मंदिर-प्रवेश के विषय में जो प्रस्ताव संघ के सेण्ट्रल-बोर्डने पास किया है, वह ऊपर दिया जा चुका है। हरिजनों के मंदिर-प्रवेश का प्रश्न कितना आवश्यक और महत्वपूर्ण है यह ऊपर की चर्चा से दीपकवत् स्पष्ट हो जाता है, सचमुच धर्म के नाम पर हरिजनों के लिए भगवान् के मंदिरों के द्वार बंद कर देना भारी-से-भारी अन्याय और अत्याचार है। इस असह्य अन्याय का अंत अब होना ही चाहिए।

वि० ह०

साप्ताहिक पत्र

एक सुरक्षणीय पत्र

आठ हफ्ते के चढ़ाव-उतार के बाद उस दिन गांधीजी के खून का दबाव नार्मल हुआ, और सभी को इससे प्रसन्नता हुई। पर शायद खुशी मनाने में [illegible] संतोष की, क्योंकि खून का दबाव फिर थोड़ा बढ़ ग[illegible]ाद, [illegible] यह है कि नार्मल पर उसका आना केवल अस्थ[illegible]चा[illegible]म अब भी चिंता-विमुक्त नहीं हुए, पर हमें यह नि[illegible]ना चाहिए कि हम अब चिंतित नहीं होंगे। और इसका एक कारण है। गत सप्ताह उस महान् तुर्की महिला बेगम खालिदा खानुम का जो पत्र गांधीजी के पास आया, उसमें हमें वह कारण मिल जाता है। पत्र में वे लिखती हैं, "आप की तबीयत ठीक नहीं है यह जानकर मुझे बुरा तो लगता है, पर मैं चिंता नहीं करती। जो व्यक्ति अपने जीवन में कोई उद्देश लेकर जगत में आते हैं, वे तबतक तमाम दैहिक व्याधियों का सामना करते हुए अपने प्राणों को टिकाये रखते हैं जबतक कि वे उस सामाजिक-नैतिक इमारत की नींव नहीं रख देते जिसका बनाना उनके जीवन का उद्देश होता है। महात्मा ईसाने अपने प्राणों की आहुति देदी, क्योंकि उनका यह विश्वास था कि मृत्यु ही उनके जीवन का उद्देश है। महात्मा मूसाने अपने जीवन का उद्देश जबतक पूरा नहीं किया तबतक वे जीवित रहे। हमारे पैगम्बर मुहम्मद साहबने तबतक अपना चोला नहीं छोड़ा जबतक कि उन्होंने अपनी सामाजिक व्यवस्था की नींव नहीं रखदी।"

इसके आगे, उनके मन में गांधीजी का जो जीवन-उद्देश है, उसका उन्होंने वर्णन किया है। अच्छा तो यही होगा कि श्रीमती खालिदा खानुम के कहने का जो अपना एक अनोखा ढंग है उसीमें, उनके ही शब्दों में, हम उस उद्देश को यहां रखें—"जबसे मैं हिन्दुस्तान देखकर लौटी हूँ, तब से जात-पांत के प्रश्न के बारे में मेरी दिलचस्पी और भी ज्यादा बढ़ गई है। हमारी इस अशांत दुनिया में आज जो हो रहा है उसका पूर्वकालिक इतिहास से पता लगाया जा सकता है और यह निश्चय किया जा सकता है कि 'प्रश्न यह है कि जात-पांत को कायम रखा जाय या नहीं।' आपके मुल्क के इस पेचीदा सवाल से मैं आपको परेशान नहीं करना चाहती। मगर मेरे लिए तो समाज का भावी रूप उस प्रकार की व्याख्या पर अधिकांश में निर्भर करेगा, जो आप भारत की जाति-व्यवस्था के विषय में देंगे। और इसीसे मेरा यह विश्वास है कि जबतक आपने जात-पांत के बारे में भारत को एक निश्चित दिशा की ओर संचालित नहीं कर दिया है, तबतक हमारी अज्ञान-तिमिराच्छन्न दुनिया में आप हमारी रहनुमाई करते रहेंगे।"

शायद बेगम खालिदा खानुमने गांधीजी का 'हरिजन' में प्रकाशित "जात-पात तो नष्ट होनी ही चाहिए" शीर्षक लेख नहीं पढ़ा है। जात-पात के सम्बन्ध में तो हिन्दू-भारत को गांधीजीने पहले ही एक निश्चित मार्ग पकड़ा दिया है। पर श्रीमती खालिदा खानुमने तो हमारे जात-पात के खास प्रश्न के विषय में लिखा है। जाति का क्या इससे अधिक विशाल अर्थ नहीं है? और क्या गांधीजी का उद्देश जातिप्रथा को उसके तमाम रूपों और नामों में—जैसे, शोषक और शोषित, उच्च और नीच, अमीर और गरीब जातियों को—नष्ट कर देने का नहीं है? पर इस जातिवाद को आमूल नष्ट करने का उनका तरीका किसी भी प्रकार के हिंसा-बल का नहीं, बल्कि शुद्ध-से-शुद्ध अहिंसामूलक शक्तियों का है। निस्संदेह यही गांधीजी का मिशन है, जिसके लिए वे जी रहे हैं और तबतक जीते रहेंगे जबतक कि ईश्वर उन्हें जीवित रखेगा।

स्वीडन का एक संदेश

गांधीजी के इस जीवन-उद्देश की कहानी दुनिया के दूर-से-दूर भागों में भी किस तरह फैल गई है, यह स्विट्जरलैण्ड के एक स्कूल के बच्चों के एक पत्र से स्पष्ट हो जाता है। पत्र के साथ उन बच्चोंने ३५) की एक चेक, और अपने खींचे हुए कुछ चित्र भी भेजे हैं। चित्र हैं तो आखिर नन्हें-नन्हें बच्चों के हाथ के, इसलिए भद्दे-से तो हैं, पर उल्लेखनीय अवश्य हैं। एक चित्र में

गांधीजी मशीन गनों के सामने अपना चर्खा लिये खड़े हैं। इस चित्र का नाम 'अहिंसा' है। और दूसरे चित्र में इंग्लैण्ड और हिंदुस्तान को मिलानेवाले एक पुल के ऊपर गांधीजी खड़े है। वह भी 'अहिंसा' का ही चित्र है। यह तो हुई चित्रों की बात, अब उनके पत्र को देखिए, जिसे में ज्यों-का-त्यों नीचे उद्धृत करता हूँ:—

"प्रिय गांधी, हम लोग अपनी भूगोल की किताब में हिंदुस्तान के बारे मे पढा करते हैं, और आपके बारे में भी हम पढ़ते हैं। हमने सुना है कि आपके देशवासी कैसी मुसीबत की जिंदगी बिताते हैं, खासकर वहां के गरीब किसान और मजदूर। हिंदुस्तान-ने आजादी हासिल करने के लिए जो निःशस्त्र लड़ाई लड़ी है उसके विषय मे भी हमने पढ़ा है, और हम आशा और कामना करते है कि आपके देश को जरूर आजादी मिलेगी। कई साल हुए, जब हम लोगोंने एक पर्चा निकाला था। यह तब की बात है जब हम लोग पहली कक्षा में गये थे। हमने उस पर्चे को हाथ से लिखा था। अपने स्कूल के मित्रों और माता-पिताओं के हाथ उसे बेचकर हमने थोड़ा-सा पैसा कमाया था, जो हमने एक बैंक में जमा कर दिया था। हमारा यह विचार था कि कभी उस पैसे को मनोरंजन के किसी काम में—जैसे सैल-सपाटे में या सिनेमा या थियेटर देखने मे—खर्च करेगे। पर अब हमने यह तय किया है कि, वह पैसा आपके पास भेज दिया जाय। हमें यह बहुत ज्यादा पसंद आयगा, अगर आप इसका उपयोग किसी छोटे-से हिंदुस्तानी लड़के या लडकी के स्कूल में पढ़ाने के काम में कर सकें। और यह संभव न हो तो किसी और काम में लगा दीजिएगा। स्वीडन की राजधानी स्टॉकहाल्म के पास "विगीबायहॉन" के एक बोर्डिंग-स्कूल मे हमलोग चौथे दरजे में पढ़ते है। अपने स्कूल के भवन का हम आपको एक कार्ड भेज रहे हैं। हमारा कैसा सुंदर स्कूल है। है न? अंत मे, हम आशा करते हैं कि यह छोटी-सी रकम आपके पास पहुँच जायगी, और इसका आप अवश्य कोई-न-कोई उपयोग करेंगे।"

नीचे में एक और पत्र देता हूँ। ऊपर जिन छोटे-छोटे बालकों का पत्र उद्धृत किया है उनसे उम्र में यह पत्र-प्रेषक तरुण निस्संदेह बड़ा है। दक्षिण स्वीडन के बोरास नामक स्थान से उसने पत्र लिखा है, और ऊपर बच्चों का जो पत्र मैंने उद्धृत किया है उसके दो सप्ताह बाद यह पत्र हमें मिला है :—

"प्रिय बापूजी, बड़े दिन की छुट्टियो में मेरा ध्यान आपके उस पीड़ित राष्ट्र की ओर जा रहा है, जिसने मुझे भगवद्गीता, उपनिषद, बुद्ध, तुलसीदास, विवेकानंद, रामकृष्ण, रवीन्द्रनाथ, और साधु सुंदरसिंह जैसी अनमोल निधियां दी हैं। मैंने आपकी पुस्तकें पढ़ी है, और मैं निरामिषभोजी बन गया हूँ। निरामिष-भोजन मैं घर पर ही करता हूँ, क्योंकि बाहर इसका उलटा ही असर पड़ेगा। पर इसके बारे में लोगों से मैं कहता जरूर हूँ, क्योंकि मेरा यह दृढ विश्वास है कि हमारे प्रेम के पशु-पक्षी भी वैसे ही अधिकारी हैं जैसे कि मनुष्य हैं। पशु-पक्षियों का भी वही सिरजन-हार है जो हमारा है। ईश्वर से हमारी यही हार्दिक प्रार्थना है कि वह आपको सत्याग्रह चलाने की श्रद्धा और शक्ति दे और आप विजयी हों। मैं अपने देश के पांच सिक्के आपकी सेवा में भेजता हूँ। जब मैं कहीं अध्यापक हो जाऊँगा, तब आपके देश के दरिद्र-नारायणों के प्रीत्यर्थ कुछ और अधिक भेजूंगा। इस छोटी-सी सेवा के लिए आप मुझे धन्यवाद न दें—आपका एक।" तरुण मित्र

स्वीडन देश के बालकों के इन संदेशों से हमारे हृदय में भावी आशा का संचार होता है। क्योंकि जिन बालकों और तरुणों के हृदय में समस्त संसार की पीड़ित मानवता के प्रति प्रेम होता है, भविष्य की बागडोर उन्हींके हाथ में होती है। उनका प्रेम किसी भी बंधन की पर्वा नहीं करता।

और यहां के अत्याचार?

पर जब हम अपने इर्द-गिर्द की घटनाओं पर नजर डालते हैं तब हम शर्म से अपना सिर नीचा कर लेते हैं, और भय से कांपने लगते हैं। जिन गरीबों की हालत पर रहम खाकर सात समुंदर पार के छोटे-छोटे बालक तक हमदर्दी प्रगट करते है, उनके साथ हमारे अपने ही आदमी आज कैसा पाशविक बरताव कर रहे हैं। रोज ही अखबारों में हरिजनों पर किये गये जुल्म या अन्याय की रिपोर्टें आती हैं। संयुक्तप्रांत के एक अखबार में एक मुकदमे की रिपोर्ट आई है, जिसमें दफा २९७ भारतीय दंडविधान के अनुसार चार हरिजनों को इस अपराध पर दंड दिया गया कि उन्होंने ब्राह्मण के मरघट में एक डोम लड़की का दाह-संस्कार किया था! मुकदमे की सुनवाई एक सब-मजिस्ट्रेट की अदालत में हुई, जिसने फरियादियों के पक्ष में फैसला दिया, और हरेक मुजरिम को दस-दस रुपये जुर्माने की, या जुर्माना न देने पर [illegible] एक मास की जेल की सजा सुनाई, और यह हुक्म दिया [illegible] मरघट की शुद्धि के लिए ब्राह्मणों को उन्हें २०) देने चाहिए [illegible] यह कहना कठिन है कि वह मरघट उस ब्राह्मण की प्रा[illegible] जायदाद मे आता है या सार्वजनिक जायदाद में, और इस[illegible] यह नही कहा जा सकता कि इस मुकदमे में शुद्ध कानूनी दृ[illegible] से मजिस्ट्रेटने मुजरिमों को सजा देकर कहांतक न्याय किया [illegible] मगर यहां कानूनी हक की बात हो या न हो, नैतिक दृष्टि से देखा जाय तो गरीब हरिजनों को दी हुई इस सजा से कमीनी और जलील चीज कोई हो ही नहीं सकती। अगर हम किसीके मुर्दे तक की इज्जत नहीं कर सकते, तो स्पष्ट है कि जीवित मनुष्यों का आदर करने के प्रश्न से हम अब भी बहुत दूर हैं।

अब एक किस्सा बिहार का सुनिए। कुछ चमारों को एक गांव में इस बात पर निर्दयतापूर्वक दंड दिया गया कि ढोरों में महामारी उन चमारोंने ही वहां फैलाई थी! रिपोर्ट में यह आया है कि रोग रोकने की उन गरीब चमारोंने जब असमर्थता प्रगट की, तो वे एक जलते हुए कुंड में ढकेल दिये गये और उनमें से एक तो बुरी तरह झुलस गया। अगर यह किस्सा सच है, जैसा कि बहुत संभव है—क्योंकि काठियावाड़ में पारसाल इस तरह के कई केस हुए थे—तो इससे बड़ा पाशविकता का काम और क्या हो सकता है? जुल्म करनेवालों से जवाब तलब किया जायगा सही, पर हम तो यह आशा करते हैं कि हरिजन-सेवक-संघ के कार्यकर्ता और स[illegible] जहां भी ढोरों में महामारी फैले वहां जाकर [illegible] भारी वहम को दूर करने का प्रयत्न करें, और जहां [illegible] की दुर्दशा [illegible] वे हरिजनों और पाशविक सवर्णों के बीच में आ[illegible] [illegible]।

'हरिजन' से] [illegible] महादेव ह० देसाई

आपकी प्रकृति आम्ल है या क्षार

[डॉ० मेन्कल और उनकी पत्नी दोनों का ही प्राकृतिक उपचारों में बहुत विश्वास है, और दोनों ही आहारशास्त्री हैं।

...प्रकाशित 'हेरल्ड ऑफ हेल्थ' नामक मासिक पत्रिका में ...अच्छे उपयोगी लेख प्रकाशित हुआ करते हैं। उपर्युक्त ...डॉ० मेल्कल का एक लेख बहुत ही उपयोगी है, जिसका ...नीचे दिया जाता है। 'हरिजन-सेवक' के पाठकों को अपने ...हन में आम्लप्रकृति के पोषक तत्त्वों को जिस तरह बने ...रह कम करना चाहिए। महादेव ह० देसाई]

...आपकी प्रकृति आम्ल है, यह कहने का क्या अर्थ है? सारी ...प्रकृति हो जाय तब तो मनुष्य जीवित ही न रहे। रोम-... स्वस्थ शरीर ही विशेषकर क्षारमय होता है। शरीर में ...निक रीति से ८० प्रतिशत क्षारतत्त्व और २० प्रतिशत ...तत्त्व होने चाहिए। इस चार और एक के प्रमाण के सुरक्षित ...का अर्थ है आरोग्य की रक्षा करना और दीर्घजीवी होना। हमारा रहन-सहन, हमारा संयम-असंयम, आहार-विहार इस ...और एक की मात्रा को न्यून या अधिक कर देता है। तो भी ...ल और क्षारप्रकृति की रचना में मुख्य रीति से भाग लेनेवाले ...हमारे खान-पान से बनते हैं; जिसमें फोस्फरस, सल्फर, क्लोरीन, आयोडीन, आर्सेनिक, ब्रोमाइन हो वह ...और जिसमें पोटेशियम, सोडिअम (सोडा), केल्शयम ...हा, तांबा आदि हो वह क्षारपोषक है। इससे तो ...मनुष्य के ज्ञान में बहुत वृद्धि नहीं होती, पर ये तत्त्व ...र के पदार्थों में जिस रीति से विभक्त हैं उसे ध्यान ...आम्लपोषक और क्षारपोषक आहारों और पीने की ...सूची नीचे दी जाती है :—

...आम्लपोषक	क्षारपोषक
	फूल गोभी
...ी का मास	करमकल्ला, गाजर, चुकंदर
	सेलरी नामक साग
...र	चिचेंड़ा
...ाज (गेहूं, चावल, मकई, आदि)	जैतून (पके हुए)
	प्याज
	हरा मटर
मेवा	आलू
...द खांड	लौकी, कद्दू
...ाई मात्र	मूली, चौराई, पालक, मेथी
...कलेट	आदि भाजिया
...-कॉफी	टमाटर, शलगम
...ब्बे	लगभग तमाम फल
...ी हुई चीजें	सेब, जरदालू या खुबानी
...की चीजें	पूरी तरह से पके हुए केले
...ा हुआ दूध	अंगूर, अंजीर, मुनक्का आदि
...र	संतरे, मोसंबी आदि का रस
	...ाड़ू, नासपाती, अलूचा
	...च्चा दूध
	छाछ

...गर आपको यह देखना हो कि आपकी प्रकृति क्षार है ...तो नीचे के प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न के ...जवाब के १० अंक रखिए, और फिर उन्हें जोड़ डालिए। ...से यह मालूम हो जायगा कि आप मुख्य रीति से आम्ल ...तिवाले हैं या क्षार प्रकृतिवाले।

आम्लपोषक	क्षारपोषक
दांतों वगैरा में कोई खराबी है?	दांत, नाक, गला वगैरा साफ है न?
तमाखू पीते हो?	तमाखू आदि का व्यसन तो नहीं है न?
दारू वगैरा पीते हो?	दारू ताड़ी से मुक्त हो न?
रोज पांच तोला से अधिक दाल मछली, मांस, अंडा खाते हो?	पांच तोला से अधिक दाल, मछली, मांस आदि नहीं खाते हो न?
चावल, अनाज, रोटी आदि अधिक स्टॉर्चवाले पदार्थ खूब खाते हो?	स्टॉर्चवाले पदार्थ कम खाते हो न? (जैसे कि चावल, गेहूं आदि)
घी-तेल में तले हुए पदार्थ खाते हो?	तले हुए पदार्थों का त्याग किया है न?
ताजा फलों से दूर भागते हो?	रोज एकबार फलाहार करते हो न?
कच्चे हरे सागों से दूर भागते हो?	हरे साग (पकाये हुए और कच्चे) अच्छी तरह खाते हो?
पानी कम पीते हो?	पानी अच्छी तरह पीते हो?
कोष्ठबद्धता है क्या?	दो-तीन बार शौच जाते हो?
एस्पीरीन-जैसी औषधियों का उपयोग करते हो?	एस्पीरीन-जैसी औषधियों को जहर समझते हो न?
चिंता, क्रोध बारबार करते हो?	चिंतामुक्त और प्रसन्न रहते हो न?
घर में पड़े रहते हो?	बाहर खुली हवा में खूब कसरत करते हो न?
रतजगा करते रहते हो क्या?	जल्दी सोकर खूब गाढ़ी नींद लेते हो न?

शरीर में आम्ल क्रिया किस प्रकार चल रही है इसका विचार यह देखकर किया जा सकता है कि कितने निरर्थक आम्ल पदार्थ शरीर से निकला करते हैं। हमारे फेफड़े प्रति घंटा ३० क्वार्ट कारबोनिक एसिड हवा बाहर निकालते हैं। इतनी सब हवा शकर, स्टार्च, चरबी और प्रोटीनवाले आहार जो पचाने पड़ते हैं उसके परिणाम-स्वरूप निकलती है। यदि आहार में इन पदार्थों की विशेषता हो तो गैस काफी बाहर निकालना पड़ता है। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे और भोजन खूब डटकर करें, तो इसका परिणाम यह होगा कि हमारा शरीर आम्लप्रधान प्रकृति का बन जायगा।

शरीर के आम्ल मलों का तीसरा भाग तो फेफड़ों के द्वारा निकलता है और शेष दो-तृतीयांश भाग मल-मूत्र और पसीने के द्वारा निकलता है।

अगर यह मालूम पड़ जाय कि मूत्र में आम्ल की कितनी मात्रा है तो यह मालूम हो जाय कि शरीर में आम्ल का कितना प्रमाण है। आरोग्य की जांच कराने के लिए बारबार यह परीक्षा होनी चाहिए। साधारणतया मूत्र थोड़ा आम्ल तो होता ही है। जिसमें अधिक आम्ल हो उसमें रुधिर की अपेक्षा १०० से १००० गुना आम्ल-मूत्र होना चाहिए। इतनी मात्रा में मूत्रपिंड (किडनी) को आम्ल-विसर्जन करना पड़े, और इतना अधिक उस पर जोर पड़े तो वह अवयवों को रोगी बना देगा। इस अनारोग्य से इन अवयवों की रक्षा करने के लिए प्रकृति यह करेगी: साधारणतया आम्ल पदार्थ शुद्ध रीति से शरीर में से नहीं निकलें, इससे उन्हें निकालने को वह तैयार हो जाती है या तुरंत उन्हें

क्षार पदार्थों से बांध लेती है, या ऐसा करती है कि जिससे वह शरीर में से कम-से-कम नुकसान करके निकलें। जब शरीर में आहार की चीजें बहुत क्षार पदार्थोंवाली नहीं होतीं तब प्रकृति रुधिर और शरीर के अन्य तंतुओं में से क्षार खींचती है। दांत और हड्डे इन क्षारों से भरे हुए होते हैं। इनमें से चूना इस तरह खिचता जाता है कि दांत और हड्डे निर्बल पड़ते जाते हैं। फिर निस्सत्त्व अवयवों में से इस कमी की पूर्ति होती जाती है। इन अवयवों में से क्षार खिचता जाता है तब ये अवयव दुखते हैं, सूजन चढ़ जाती है, और इसका यह परिणाम होता है कि गठिया और वात के अनेक प्रकार शरीर में घर कर बैठते हैं।

आम्ल पदार्थों की थोड़ी मात्रा स्नायु और मज्जा की रचना के लिए आवश्यक है। पांच तोले मांस से अथवा एक बड़े अंडे से या पांच तोले दही और उसके साथ डबल रोटी के दो टुकड़ों से अथवा बिनाछने हाथ के पिसे आटे की एक छटांक रोटी से यह मात्रा प्राप्त होती रहती है। इससे अधिक आम्ल पदार्थों के लेने से भी आम्ल-प्रकृति बढ़ती है।

यह तो ऊपर बता ही दिया है कि क्षार किस प्रकार के सागों और फलों से प्राप्त होते रहते हैं। इन क्षारों से आम्ल पदार्थों को यथेष्ट रीति से मारना ही समतोल आहार का उपाय है। एक प्रसिद्ध डॉक्टर लिखता है—"कोई प्राकृतिक मौत नहीं होती। प्राकृतिक कारणों से होनेवाली जो मौतें कही जाती हैं वे सब शरीर में आम्ल की अधिकता से ही होती हैं।"

इस अधिकता को रोकने के लिए आम्ल पदार्थों को बांधनेवाले क्षार पदार्थ प्रकृति को पूरे पड़ते जाने चाहिए, और क्षार-पोषक रहन-सहन और आदतें डालते जानी चाहिए।

ऊपर जो जमा और नामे की बाजू में प्रश्न दिये गये हैं उनके जवाब देकर आप सहज ही यह निर्णय कर सकते हैं कि आपकी जमावाली बाजू खाली है या भरी हुई। इसलिए यदि आपको अपने स्वास्थ्य की रक्षा करनी है तो आपको यह समझ लेना चाहिए किन आहारों को तो हमें बढ़ाना है और क्या-क्या आदतें छोड़नी हैं और कौन-कौन-सी आदतें डालनी हैं। इतना तो बारबार समझ लेना चाहिए कि हरी साग-भाजियां ही स्वास्थ्य की प्रथम रक्षक हैं। इसलिए हमें अपने आहार में एक भाग अन्न तो चार भाग फल और हरी पत्तियां या हरे साग लेने की प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए। स्वास्थ्य का यह प्रथम और अंतिम नियम है।

'डेरी' के नियम

[४१९ वे पृष्ठ से आगे]

(३४) दूध दुहे जाने के बाद तुरन्त किसी धातु की छननी और फलालेन या सूती कपड़े के छलने में उसे छान लेना चाहिए।

(३५) छानने के बाद दूध को अगर बाहर भेजना हो तो ४५ डिग्री जितना, और घर या फैक्टरी के इस्तेमाल के लिए हो तो ६० डिग्री जितना ठण्डा करलेना चाहिए।

(३६) जबकि दूध में उष्णता मौजूद हो, उसके बरतन को कभी बन्द मत करो।

(३७) दूध के बरतन का ढक्कन हटाया जाय तो उसे कपड़े के टुकड़े या जाली से ढक देना चाहिए, जिससे उसमें कीटाणु न पैठ सकें।

(३८) दूध को अगर देरतक रखना हो तो उसे साफ-सुथरे सुश्क, ठण्डे कमरे के अन्दर ताजे ठण्डे पानी की टंकी रखनी चाहिए (पानी को, जैसे-जैसे वह गरम होता जाय, बार-बार बदलते रहना चाहिए)। और दूध से मलाई अलग न निकालनी हो तो टीन की कलछी से उसे बीच-बीच में चलाते रहना चाहिए जिससे उसमें मलाई की तह न पड़े।

(३९) रात के दूध को किसी ऐसी जगह (सायबान में) रखना चाहिए कि वर्षा होने पर पानी दूध के बरतन में न पहुँचे। गर्मी के मौसम में ताजे ठण्डे पानी की टंकी में रखना ठीक होगा।

(४०) ताजा धारोष्ण दूध को उस दूध में कभी मत मिलाओ जो दुहे जाने के बाद ठण्डा होचुका हो।

(४१) दूध को रखा-रखा जमने मत दो।

(४२) दूध को खटियाने से बचाने के लिए उसमें कोई चीज हर्गिज न डाली जाय। इसके बचाव के लिए तो सिर्फ सफाई और ठण्डक की जरूरत है।

(४३) जब क्रीम (मलाई) या चीज (पनीर) बनाई जाय तो दूध सब-का-सब अच्छी हालत में होना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि सख्त गर्मी के दिनों में दोनों वक्त के दूध से एक-साथ इन्हें बनाने के बजाय अलग-अलग दोनों वक्त बनाया जाय।

(४४) दूध के बरतन को कहीं ले जाना हो तो उन्हें पूरा भरके और स्प्रिंगदार डब्बे में ले जाना चाहिए।

(४५) गर्मी के दिनों में जब दूध के बरतनों को डब्बे (वैगन) में रखकर ले आया जाय, तो उन्हें साफ गीले कम्बल या मोमजामे से ढक देना चाहिए।

दूध के बरतन

(४६) डेरी-कार्य के लिए दूध के जो बरतन रक्खे जायें वे धातु के बने होने चाहिएँ और उनमें जहां-जहां जोड़ हों वे अच्छी तरह सफाई के साथ सम्बद्ध हों। उनके अन्दर जंग या गन्दगी कभी मत होने दो।

(४७) दूधवाले बरतनों में भरकर बिगड़ी हुई या खराब चीजों को कहीं मत ले जाओ। इसके सिवा काम ही न चले तो इस बात पर जोर दो कि स्किम-मिल्क या छाछ की टंकी बिल्कुल साफ-सुथरी रहे।

(४८) स्किम-मिल्क या छाछ भरकर जो बरतन आयें उन्हें आते के साथ ही खाली करके अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिए।

(४९) डेरी के सब [illegible]नों को पहले तो गरम पानी से अच्छी तरह साफ करो; [illegible] करने की दवाई मिले हुए गरम पानी व बुश के सहा[illegible] खूब साफ करो, और इस सबके बाद खौलते हु[illegible] में उन्हें औटाओ। यह ध्यान रक्खो कि पानी बिल[illegible]

(५०) बरतनों को साफ कर[illegible] उनकी जरूरत न पड़े तबतक के लिए शुद्ध हवा और संभव हो तो धूप में औंधा रक्खो।

'हरिजन' से]

Printed at the Hindustan Times Press, Burn Bastion Road, Delhi and Published at the Harijan Sevak Sangha Office, Kingsway, Delhi by R. S. Gupta.